कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-३)

जिंदगी में सदा हँसते रहो, हंसना जिंदगी की जरूरत है,
जिंदगी जियो तो ऐसे जियो, देखकर सबको यह लगे, कि जिन्दगी कितनी खूबसूरत है।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री परमानन्द चंचलानी
स्वर्णकला प्रिंटर्स अँन्ड अॅडव्हर्टायजर्स, २४८/३, रास्ता पेठ, पुणे - २

* सौजन्य :- ट्रॅक्टो मॅटीक्स्, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* सहयोगी छायांकन :- रश्मि हीरा - संजय हीरा

* कृतिकार :- श्री अनन्तसुत मणिरत्नम् महेन्द्रकुमार पाटोदिया
कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १
फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

* पॅकिंग श्री ओमप्रकाश बलभद्रदास अग्रवाल

जिन्दगी में मोड़ बहुत हैं, जहाँ सम्भल-सम्भलकर चलना पड़ता हैं,
अगर सम्भल न पाए तो जी कर भी कुछ खोना पड़ता है।

* मूल्य - आपका सक्रिय पठन

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

सामंजस्य और सूझबूझ से ही उलझन को मिटाया जा सकता है।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अग्रवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री सिद्धार्थ सराफ
सराफ कोर्ट, यशवंत स्टेडियम के सामने, धन्तोली,
नागपूर-४४००१२ फोन नं. २५६११३८

६) श्री जगदीश बाघमल अग्रवाल
हॉटेल टूरिस्ट, मंगलवार पेठ, पुणे- २

७) श्री शाम ग्यानीराम अग्रवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

८) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

९) श्री सुशीलजी अग्रवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

१०) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

११) श्रीमती शारदा नेमीचंद अग्रवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

१२) श्री सर्वेश गर्ग
ई-९७, साकेत, इन्दौर

१३) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१४) श्री राधेश्याम गोयल
सिनर्जी इन्स्टिट्यूट ऑफ मॅनेजमेंट
फडके हॉल के ऊपर, सदाशिव पेठ,
खजिना विहार चौक, पुणे- ४११०३६
फोन २४४९७८४७, २४४९७१३० मो. ९८२२०८६४४२

१५) श्री विजय अग्रवाल
दि स्पेअर हाऊस, खामकर हाऊस,
माफको यार्ड, पूनित चेम्बर्स के बाजू में, वाशी,
नवी मुंबई-४००७०५ फोन नं. २७६८६६६३

१६) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१७) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

१८) श्री सत्यनारायणजी कंसल
९१०/९११, ९ वा मजला, पृथ्वी ब्लॉक,
मायहोम द्विपा के पास, हायटेक सिटी, माधापूर,
हैद्राबाद- ५०००८१, मो. ९३९१६३६६६२

१९) श्री राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल
श्री खाटू श्याम मित्र मंडल, पूना
सी.एम.ई. पुणे- ४११०३१ मो. ९७६४४५५८५५

२०) श्री. राजेश सत्यनारायण मित्तल
मित्तल स्टील, सर्वे नं. १०, कामराज नगर,
येरवडा, पुणे- ४११००६
मो. ९८९०११४३०० ऑ. २६६८६९२३

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अग्रवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अग्रवाल, ३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल, ५) राजेन्द्र बेनीप्रसाद मंगल, ६) पंडित रमाकांत शर्मा

कहानी घर घर की महाभारत घर परिवार का (भाग-३)

यादें रह जाती हैं और दिन गुजर जाते हैं, देखते-देखते हरे-भरे बाग उजड़ जाते हैं।
वक्त के हाथों का खिलौना होता है इंसान, जीवन भर के हमसफर कुछ समय में ही बिछड़ जाते हैं।

* विषय उपक्रम *

१)	द्रोण पर्व	४ से २६६
२)	कर्ण पर्व	२६७ से ३९४
३)	शल्य पर्व	३९५ से ४६८
४)	सौप्तिक पर्व	४६९ से ५०७
५)	स्त्री पर्व	५०८ से ५४२
६)	शांति पर्व	५४३ से ६६५
७)	अनुशासन पर्व	६६६ से ७४०
८)	आश्वमेधिक पर्व	७४१ से ८०२
९)	आश्रमवासिक पर्व	८०३ से ८१३
१०)	मौसल पर्व	८१४ से ८१९
११)	महाप्रस्थानिक पर्व	८२० से ८२९
१२)	स्वर्गारोहण पर्व	८३० से ८३२
१३)	लौहनारी महाभारती पांचाली	८३३ से ८३६
१४)	उपसंहार	८३७ से ८४६
१५)	गीता मीमांसा	८४७ से ८४८

जिन्दगी का गीत आहों से गढ़ा है, हर कदम पर दर्द लेकर जो बढ़ा है।
कौनसा ऐसा वीराना जिसने प्यार न पाया, कौन सा ऐसा पथ जिसपर उतार चढ़ाव न आया।

द्रोण पर्व

* विषय उपक्रम *

१) आचार्य द्रोण की महासेनापति पद पर नियुक्ति ५

२) महाभारत युद्ध का ११ वां दिन १९
(युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का प्रयास)

३) महाभारत युद्ध का १२ वां दिन ३०
(प्रागज्योतिषपुर नरेश भगदत्तका वध)

४) महाभारत का १३ वें दिन का युद्ध- ५१ से १०९

१) अभिमन्यु वध ५१

२) अभिमन्यु की मृत्यु पर युधिष्ठिर का विलाप ७५

३) अभिमन्यु वध पर अर्जुनका विषाद व द्रौपदी और उत्तरा का विलाप ८१

४) सुभद्रा का विषाद और कृष्ण का सान्त्वना देना ९९

५) अभिमन्यु की अन्त्येष्टि १०४

५) महाभारत के १४ वें दिन का युद्ध १०९ से १८६

१) आचार्य द्रोण का पराक्रम १०९

२) विंद और अनुविंद का वध व कृष्ण के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या १२५

३) सात्यकिद्वारा भूरिश्रवा का वध १६०

४) जयद्रथ वध १६८

६) चौदहवें दिन का रात्रि युद्ध १८६ से २३५

१) अश्वत्थामा और घटोत्कच का युद्ध १८६

२) कर्ण और घटोत्कच का मायायुद्ध २१०

३) घटोत्कच का अलम्बुष से युद्ध २१३

४) घटोत्कच वध २१६

७) पन्द्रहवें दिन का युद्ध २३५ से २६६
(राजा द्रुपद, महाराज विराट व आचार्य द्रोणाचार्य का वध)

द्रोण पर्व

१) आचार्य द्रोण की महासेनापति पद पर नियुक्ति

कर्ण ने जब सुना कि भीष्म रण में धराशायी हुए। पांडवों ने अधर्म से शिखंडी को आगे करके उन्हें मार दिया। तब उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। वे जिस प्रकार अपने शिबिर में बैठे थे वैसे ही जल्दी से उठकर पितामह के दर्शनों को चले। उनकी आँखों में आँसू थे, हृदय धड़क रहा था। जिस वीर को युद्ध में देवता भी परास्त नहीं कर सकते थे उनको अन्याय से, अधर्म से पांडवों ने जीत लिया। जब वे शिखंडी को स्त्री समझ कर युद्ध से उपराम हो चुके थे, तब शस्त्रहीन होने पर भी अर्जुन ने उनपर असंख्यों बाण छोड़े। ये बातें स्मरण करके कर्ण बड़े दुखी थे। बिना सेवक, नौकर और वाहन के कर्ण अकेले ही भीष्म के पास चले।

इसी समय कर्ण भीष्मके धराशायी हो जानेका समाचार सुनकर कुछ भयभीत हो जल्दीसे उनके पास आया। इन्हें शर-शय्यापर पड़े देख उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने गद्‌गद कण्ठसे कहा, महाबाहु भीष्म। हे भरतश्रेष्ठ। मैं कर्ण हूँ। आपका कल्याण हो, आप अपनी पवित्र दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये और अपने मङ्गलमय शब्दोंसे मुझे अनुगृहीत कीजिये। मुझे धनसंग्रह, मन्त्रणा, व्यूहरचना और शस्त्रसंचालनमें आपके समान कौरवोंमें और कोई दिखायी नहीं देता। आपके सिवा और कौन है, जो अर्जुनके साथ लोहा ले सके। बड़े-बड़े बुद्धिमानोंका यही कथन है कि अर्जुनके पास अनेकों दिव्य अस्त्र हैं और वह निवातकवचादि अमानवोंसे तथा स्वयं महादेवसे भी युद्ध कर चुका है। साथ ही उसने भगवान शंकरसे अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुर्लभ वर भी प्राप्त किया है। तो भी आपकी आज्ञा होनेपर तो मैं आज ही अपने पराक्रमसे उसे नष्ट कर सकता हूँ। जिसे आप सदा द्वेषभरी दृष्टिसे देखते थे, वही मैं राधाका पुत्र कर्ण आपकी सेवामें उपस्थित हूँ।

जहाँ भीष्म शरशैय्या पर पड़े थे, उनके चारों ओर गहरी खाई खुदी हुई थी। पंक्तिबद्ध सैकड़ों सैनिक शस्त्र लिये उनकी रक्षा में चारों ओर खड़े थे। कर्ण ने जाकर देखा जैसे सहस्त्रों रश्मियों से सूर्य की शोभा होती है, वैसे ही असंख्य बाणों से विद्ध पितामह शोभित हो रहे थे। जैसे शरद का चन्द्रमा पृथ्वी पर गिर पड़ा हो, उसी प्रकार उनकी कान्ति छिटक रही थी। वे नेत्र बन्द किये सनातन परब्रह्म वासुदेव के ध्यान में मग्न थे। कर्ण ने डबडबाई आँखों से उन वृद्ध महारथी को देखा और रूँधे हुए कंठ से कहा- पितामह। मैं आपका प्रतिद्वन्द्वी, सदा आपकी आँखों में किरकिरी की तरह खटकने वाला सूतपुत्र राधेय कर्ण आपको प्रणाम कर रहा हूँ। यह कहकर कर्ण ने अपना किरीट युक्त सिर पितामह के चरणों में रख दिया। यह सुनकर भीष्मने पलक उघाड़कर धीरेसे कर्णकी ओर देखा। इसके बाद उस स्थानको सूना देख पहरेदारोंको भी वहाँसे हटा दिया। हे भरत शिरोमणि ये राधेय सारे अपने किये और अनकिये अपराधों के लिये क्षमा चाहता है और आपको सादर प्रणाम करता है।

योगी जिस प्रकार समाधि से उठकर नेत्र खोलता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे पितामह ने नेत्र खोले। उन्होंने एक बार दोनों नेत्रों से जी भरकर कर्ण के मुख को देखा। उनके दोनों नेत्रों की कोर से अश्रुविन्द इधर-उधर ढल पड़े। प्रहरी को आज्ञा हुई, समस्त रक्षकों को दूर चले जाने की आज्ञा दो। जब समस्त पहरेवाले दूर चले गये, तब पितामह ने अत्यन्त ही स्नेह के साथ कहा- पुत्र कर्ण। आओ पुत्र। आज मैं तुम्हें अच्छी तरह आलिंगन कर लूँ। आज मैं अपनी अन्तिम इच्छा को पूर्ण कर लूँ। यह कहकर उन्होंने कर्ण को अपने समीप बुलाया। नीचा मुख किये हुए कर्ण पितामह के दायीं ओर चले गये। पितामह के सम्पूर्ण शरीर में बाण बिंधे हुए थे। बड़े कष्ट से उन्होंने अपना बाँया हाथ उठाकर कर्ण को अपनी छाती से चिपटाया। उन्होंने अपने आँसुओं से पितामह के वक्षस्थल को भिगो दिया और पितामह के नेत्रों के आस-पास की

जमीन गीली हो गई। पितामह ने गद्‌गद कंठ से कहा- पुत्र कर्ण। इस समय तुमने आकर मेरा बड़ा प्रिय कार्य किया है। मैं तुम्हारे इस कार्य से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। देखो पुत्र। मैं तुम्हें एक गुप्त रहस्य बताता हूँ। तुम सूत के पुत्र नहीं हो। न अधिरथ तुम्हारा पिता है और न राधा माता। वास्तव में तुम्हारी माता महारानी कुन्ती हैं और भगवान सूर्य तुम्हारे पिता हैं। धर्मत: तुम पाण्डु के पुत्र और मेरे पौत्र हो। मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ कि मेरा तुमसे कभी द्वेष नहीं रहा है। हृदय से मैं सदा तुम्हारा सबसे अधिक सम्मान करता रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम महापराक्रमी हो और संसार में एक तुम ही मुझसे टक्कर लेनेवाले, मेरे प्रतिस्पर्धी हो मैं तुम्हारे गुणों को अच्छी तरह से जानता हूँ। तुम धर्मात्मा, शूरवीर, सत्यपरायण और दानी हो। संसार में तुम्हारे टक्कर का योद्धा शायद ही कोई हो। तुम जरासन्ध से भी बढ़कर हो। संसार में वह अजेय था, युद्ध में उसे कोई भी नहीं जीत सका, उसे भी तुमने हराया था। तुमने अपने बाहुबल से पृथ्वी के समस्त राजाओं को जीतकर दिग्विजय की थी। मैं तुम्हारी शूरवीरता को खूब जानता हूँ। जान-बूझकर ही मैं तुम्हारी सदा निन्दा करता रहता था। वह इसलिये कि तुम्हारा बल और उत्साह क्षीण हो। मुझे विश्वास था कि यदि दुर्योधन को तुम्हारा साहाय्य और सहयोग प्राप्त न होता तो वह कभी युद्ध न करता। यदि तुम उससे अलग हो जाते तो यह सर्व-संहारक, कुल-घातक महायुद्ध छिड़ता ही नहीं। अपने कुल की भलाई के लिये मैं तुम्हें उत्साहहीन करने के लिये ऐसी कड़ी-कड़ी बातें कहा करता था तुम धर्मात्मा हो और निन्दा करने के अयोग्य हो। तुम वीरता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के समान हो। मैं मन ही मन तुम्हारा आदर करता था, किन्तु मुझे यह परस्पर का युद्ध अभीष्ट नहीं था, वही हुआ और युद्ध का कर्णधार मुझे ही बनना पड़ा। अब पुत्र। मेरी बात मान लो। अब तुम पांडवों से मेल कर लो। मुझ बूढ़े की आहुति देने से ही यह नरसंहारी महायुद्ध समाप्त हो जाय, तब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। मेरी तो अब अवस्था ही है। मैं तो मृत्यु के घाट पर बैठा ही था, आज नहीं कल, मुझे तो मरना ही है। अभी तुम सब बच्चे हो, राज सुख के योग्य हो। भाई-भाई परस्पर में मिलकर सुख भोगो और अपना संयुक्त बल लगाकर विपक्षी राजाओं को परास्त करो। कर्ण और अर्जुन मिलकर देवताओं को भी जीत सकते हैं। तुम दोनों भाई अद्वितीय योद्धा हो। तुम सब भाई मेरे सामने आकर छाती-से-छाती लगाकर मिलोगे तो मुझे कितना सुख होगा। तुम्हें प्रेम से साथ बैठे देखकर मैं सन्तोष के साथ सुखपूर्वक प्राण त्याग सकूँगा। पुत्र। मेरी इस बात को मान लो। इतना कहते-कहते पितामह का गला सूखने लगा। वे बहुत थक गये और चुप हो गये।

भीष्म बोले, यशस्वी भव कुन्तीपुत्र कर्ण ये तुम भी जानते हो और मैं भी कि तुम कौन हो। कर्ण बोला- यदि आप जानते थे तो आपने अपने ध्वजतले युद्ध करने का सौभाग्य क्यों नहीं दिया। भीष्म बोले, इसके दो कारण हैं सूर्यपुत्र। पहिला तो यह कि तुमने अपनी आंखों पर उपेक्षा की पट्टी बांध रखी है। हे पुत्र आंखों पर पट्टी बांध कर किसी भी शूरवीर को रणभूमि में नहीं उतरना चाहिये और दूसरा कारण यह कि इस महायुद्ध में इतने शूरवीर मारे जायेंगे कि भारतवर्ष में शूरवीरों का अकाल ही पड जायेगा। यदि तुम युद्ध में भाग लोगे तो अर्जुन और तुममे से कोई एक ही बचेगा और मैं यह चाहता था पुत्र कि तुम दोनों ही बचे रहो क्योंकि तुम जैसे दोनों शूरवीर बार-बार जन्म नहीं लेते। तुम भरतवंशी नहीं हो किन्तु मुझे हर वीर अपने ही परिवार का एक व्यक्ति लगता है हे पुत्र यदि यह युद्ध रोक सको तो रोको किन्तु यदि ना रोक पाओ और युद्ध करना ही पड़ जाये तो पांडवों के पक्ष में युद्ध करो। आओ, मेरे प्रतिस्पर्धी। तुम सदा मुझसे लाग-डाँट रखते आये हो। यदि मेरे पास नहीं आते तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण नहीं होता। महाबाहो। तुम राधाके नहीं, कुन्तीके पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं, सूर्य हैं- यह बात मुझे व्यास और नारदसे ज्ञात हुई है। यह बिल्कुल सच्ची बात है, इसमें तनिक भी द्वेष नहीं है; तुम अकारण ही पाण्डवोंपर आक्षेप करते थे, अत: तुम्हारा दु:सासह दूर करनेके लिये ही मैं कठोर वचन कहता था। नीच पुरुषोंका सङ्ग करनेसे तुम्हारी बुद्धि

गुणवानोंसे भी द्वेष करने लगी है। इस कारणसे ही कौरवोंकी सभामें मैंने तुम्हें अनेकों बार कटुवचन सुनाये हैं। मैं जानता हूँ, युद्धमें तुम्हारा पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य है। तुम ब्राह्मणोंके भक्त हो, शूरवीर हो और दानमें तुम्हारी बड़ी निष्ठा है। मनुष्योंमें तुम्हारे समान गुणवान कोई नहीं है। बाण मारनेमें, अस्त्रोंका संधान करनेमें, हाथकी फूर्तीमें और अस्त्रबलमें तुम अर्जुन और श्रीकृष्णके समान हो। तुम धैर्यके साथ युद्ध करते हो, तेज और बलमें देवताके तुल्य हो। युद्धमें तुम्हारा पराक्रम मनुष्योंसे अधिक है। पूर्वकालमें तुम्हारे प्रति जो मेरा क्रोध था, उसे मैंने दूर कर दिया है। अब मुझे निश्चय हो गया है कि पुरुषार्थसे दैवके विधानको नहीं पलटा जा सकता। पाण्डव तुम्हारे सहोदर भाई हैं; यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहो, तो उनके साथ मेल कर लो। मेरे ही साथ इस वैरका अन्त हो जाय और भूमण्डलके सभी राजा आजसे सुखी हों।

कर्ण बोला, यदि मैं ऐसा करूं पितामह तो दुर्योधन के नमक के ऋण का क्या होगा? और आप तो वचन का मूल्य जानते हैं। इसलिये दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने की मुझे आज्ञा दीजिये। दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने के लिये आप भी विवश थे और मैं भी विवश हूं। कर्णने कहा- महाबाहो। आपने जो कहा कि मैं सूतपुत्र नहीं, कुन्तीका पुत्र हूँ- यह मुझे भी मालूम है। किंतु कुन्तीने तो मुझे त्याग दिया और सूतने मेरा पालन-पोषण किया है। आजतक दुर्योधनका ऐश्वर्य भोगता रहा हूँ, अब उसे हराम करनेका साहस मुझमें नहीं है। जैसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी सहायतामें दृढ़ हैं, उसी प्रकार मैंने भी दुर्योधनके लिये अपने शरीर, धन, स्त्री, पुत्र और यशको निछावर कर दिया है। जो बात अवश्य होनेवाली है, उसको बदला नहीं जा सकता। पुरुषार्थसे दैवके विधानको कौन मिटा सकता है? आपको भी तो पृथ्वीके नाशकी सूचना देनेवाले अपशकुन ज्ञात हुए थे, जिन्हें आपने सभामें बताया था। मैं भी पाण्डवों और श्रीकृष्णका प्रभाव जानता हूँ, ये मनुष्योंके लिये अजेय हैं। तो भी मेरे मनमें यह विश्वास है कि मैं पाण्डवोंको रणमें जीत लूँगा। यह वैर बहुत बढ़ गया है, अब इसका छूटना कठिन है; इसलिये मैं अपने धर्ममें स्थित रहकर प्रसन्नतापूर्वक अर्जुनसे युद्ध करूँगा। युद्ध करनेके लिये मैंने निश्चय कर लिया है, अब आप आज्ञा दें। आपकी आज्ञा लेकर ही युद्ध करनेका मेरा विचार है। आजतक अपनी चपलताके कारण मैंने जो कुछ कटुवचन कहा हो या प्रतिकूल आचरण किया हो, उसे आप क्षमा करें।

कर्ण बोले, पितामह। यदि ऐसा हो सकता हो तो इससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती, किन्तु ऐसा अब होना असम्भव ही है। आप स्वयं ही कह चुके हैं पुरुषार्थ से कोई भाग्य को असम्भव नहीं कर सकता। मालूम होता है कि मुझे विधाता ने इसीलिये उत्पन्न किया है। अर्जुन से लड़ने की मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यह मैं आपकी बात मानता हूँ कि वासुदेव जिसके रक्षक हैं उस अर्जुन को कोई संसार में जीत नहीं सकता, किन्तु इससे मेरा उत्साह कम नहीं हुआ है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मेरे मन में ऐसा उत्साह उठता है कि मैं पांडवों को जीत लूँगा। पांडवों की इतनी तैयारियों से भी मुझे भय नहीं होता। मैं अर्जुन से युद्ध किये बिना मानूँगा नहीं, किन्तु शस्त्र मैं तभी उठाऊँगा जब आपकी आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लूँगा। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक टेककर आपसे युद्ध करने की आज्ञा और अनुमति चाहता हूँ। आपका आशीर्वाद मेरे लिये कल्याण-प्रद ही होगा।

भीष्म बोले, मैं आज्ञा तो नहीं दे सकता पुत्र किन्तु यह अवश्य कह सकता हूँ कि हे सूर्यपुत्र कर्ण अपने धर्म का पालन करो। हे पुत्र धर्मक्षेत्र में हर व्यक्ति अकेला होता है और उसे अकेले ही निर्णय लेना पड़ता है। इस धर्म और कुरुक्षेत्र में जितने भी योद्धा एकत्रित हैं वे चाहे किसी भी शिबिर में हो अकेले ही हैं। अकेलेपन का अर्थ तुमसे अधिक कौन समझ सकता है पुत्र? कर्ण। यदि यह दारुण वैर मिट नहीं सकता तो मैं तुम्हें युद्धके लिये आज्ञा देता हूँ। तुम स्वर्गकी कामनासे ही युद्ध करो। क्रोध और डाह छोड़कर अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार रणमें पराक्रम दिखाओ। सदा सत्पुरुषोंके आचरणका पालन करो। अर्जुनसे युद्ध करके तुम क्षत्रियधर्मसे प्राप्त होनेवाले लोकोंमें जाओगे। अहंकार त्यागकर अपने

बल और पराक्रमका भरोसा रखकर युद्ध करो। क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणका साधन नहीं है। कर्ण। मैंने शान्तिके लिये महान् प्रयत्न किया है, किंतु इसमें सफल न हो सका। यह तुमसे सच कह रहा हूँ।

पितामह की आँखों से फिर टप-टप करके आँसू गिरने लगे। उन्होंने कर्ण को फिर छाती से लगाया और बोले- पुत्र। मैं भी जानता हूँ कि संसार के वीरों का क्षय इस युद्ध में अवश्यम्भावी है। युद्ध को अब टालने की किसी में शक्ति नहीं है। वासुदेव को यही स्वीकार है। अर्जुन के रथ पर बैठकर वे ही सबकी आयु और प्राणों का क्षय कर रहे हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ तुम क्षत्रिय धर्म के अनुसार बड़े उत्साह के साथ युद्ध करो। जैसे पांडवों के सर्वस्व श्रीकृष्ण हैं, उसी तरह कौरवों के सहारे, रक्षक और त्राता तुम हो। दुर्योधन के एकमात्र अवलम्ब तुम ही हो। तुम अर्जुन से खुलकर युद्ध करो। तुम्हारा मङ्गल होगा। मरकर उत्तम लोकों को प्राप्त करोगे। क्षत्रियों के लिये रणभूमि में शस्त्र के प्रहार से लड़ते-लड़ते शत्रु के सम्मुख मर जाने से श्रेष्ठ गति दूसरी कोई नहीं है। माँ जगदम्बा तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें। तुम्हारे पिता सूर्य तुम्हारे शौर्य, तेज और बल-पौरुष से सन्तुष्ट होकर तुम्हें अपना स्वरूप प्रदान करें। मेरी मङ्गल कामना तुम्हारे लिये सदा बनी रहेगी। यह कहकर भीष्म ने कर्ण का माथा सूँघा।

राजन्। कर्णके इस प्रकार कहनेपर कुरुवृद्ध पितामहने प्रसन्न होकर देश और कालके अनुसार कहा, कर्ण। तुम शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले होओ। भगवान विष्णु जैसे देवताओंके आश्रय हैं, उसी प्रकार तुम कौरवोंके आधार बनो। दुर्योधनकी जयकी इच्छासे ही तुमने अपने बाहुबलसे उत्कल, मेकल, पौण्ड्र, कलिङ्ग, अन्ध्र, निषाद, त्रिगर्त्त और बाह्लीक आदि देशोंके राजाओंको परास्त किया था। इनके सिवा जगह-जगह और भी अनेकों वीरोंको तुमने नीचा दिखाया था। जैसे दुर्योधन सब कौरवोंका कर्णधार है, उसी प्रकार तुम भी उन्हें पूरा आश्रय देना। जाओ, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ; तुम शत्रुओंके साथ संग्राम करो, युद्धमें कौरवोंके पथप्रदर्शक बनो और दुर्योधनको जय प्राप्त कराओ। दुर्योधनकी तरह तुम भी मेरे पौत्रके समान ही हो। धर्मत: जैसे मैं उसका हितैषी हूँ, वैसे ही तुम्हारा भी हूँ।

भीष्मकी यह बात सुनकर कर्णने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर वह सेनाकी ओर चला गया और उसे उत्साहित किया। कर्ण ने प्रणाम किया और भीष्म ने आशीर्वाद दिया यशस्वीभव। कर्ण वहां से चला गया। भीष्म बोले, हे कुन्ती, कर्ण जैसे महावीर की माता होना भी बड़े गर्व की बात है। बधाई हो पुत्री।

कर्ण ने फिर गद्गद कंठ से कहा- मेरे पितामह। मेरे माननीय देव। यदि भूल में, प्रमाद से, अज्ञानतावश मैंने जो भी अनुचित बात कह दी हो उसे आप भूल जायँ, मेरे अपराधों को क्षमा करें। इतना कहकर कर्ण ने पितामह के पैर छुए, उनकी प्रदक्षिणा की और अपने शिबिर को लौट आये। बड़ों का सदा सम्मान करने से, उनकी अनुचित बातों को भी सहने से उसका परिणाम अच्छा ही होता है और पीछे उसका शुभ फल मालूम पड़ता है।

संजय बोला, राजन्। भीष्मने जब ऐसा कहा तो कर्णने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले रथपर बैठकर आपके पुत्र दुर्योधनके पास चला गया।

शर शय्या पर भीष्म है करे कर्ण से बात, वीरों का यह धर्म है रहे धर्म के साथ।

जख्मों और लाशों के जंगल में खडा समय भविष्य की ओर देख रहा है क्योंकि इस वर्तमान के साथ लाशों और जख्मों के सिवा और कुछ है नहीं। तो हे मानव जाति तू भी समय के साथ भविष्य की ओर देख क्योंकि यदि तुमने ऐसा न किया तो इस कुरुक्षेत्र में सांस लेनेभर हवा ही नही मिलेगी। भविष्य की तरफ देखे जा और यह सोचते रह कि सूरज तो जरूर ही निकलता है, सवेरा तो जरूर ही होता है, ऋतु तो अवश्य ही बदलती है। शरद के उपरान्त तो ऋतुराज का आना निश्चित है इसलिये क्षितिज पर आंखें गडाये रखो जहां से सूर्य उदय होगा और धरती को कान लगाये रहो तो ऋतुराज के आने की

आहट सुन सके। यदि ढाढस की जरूरत हो तो रंगभूमि की ओर देख जहां वर्तमान तीरों की शैय्या पर पड़ा सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहा है और दियों की लौओं का एक कारवां उसकी ओर बढ़ रहा है।

रात में द्रौपदी, उत्तरा असंख्य दीपक जलाये रणभूमि में शर शैया पर लेटे भीष्म के पास आती है और सिसककर भीष्म के चरणों में प्रणाम करती है। भीष्म बोले, सौभाग्यवतीभव। हे पुत्री निकट अतीत में जो कुछ भी हुआ हो तुम सदा भरतवंश के मान और सम्मान का प्रतीक मानी जावोगी और आदरणीय रहोगी। द्रौपदी बोली, हे पितामह भारतवर्ष के मान-सम्मान उस मर्यादा के प्रतीक आप स्वयं हैं और यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपकी पौत्रवधू हूं। आज्ञा दीजिये कि मैं आपके घावों को दिन की धूप और रात की ओस से बचाने का प्रयत्न करूं। इसलिये मैं आपको कष्ट देना चाहती हूं। उत्तरा ने भीष्म के चरण स्पर्श किये। भीष्म बोले, आयुष्मती भव। यह कन्या कौन है पुत्री? द्रौपदी बोली, यह सुभद्रानन्दन अभिमन्यु की वधू उत्तरा है। भीष्म बोले, रणभूमि कुलवधू से मिलने के लिये उचित स्थान नहीं है पुत्री किन्तु मैं तो पहली बार तेरे पति से भी इसी रणभूमि में मिला था। हे पुत्री यह तो पता नहीं इस युद्ध के उपरान्त कौन होगा और कौन नहीं होगा? किन्तु तेरे पति के बाणों का स्वाद मेरे शरीर को भलीभांति याद है। उसकी युवावस्था देखकर मुझे अपनी युवावस्था याद आ गई थी पुत्री। लेकिन यदि मेरे पास आयु का कोश होता था पुत्री तो मैं वह सारा कोश उसी को दे देता। तुझे आज मैंने पहली बार देखा है पुत्री और आज तुझे देने के लिये मेरे घावों और अर्जुन के बाणों के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है पुत्री। जानती हो पुत्री इनमें से जो भी बाण मुझे लगा, मुझे ऐसा लगा जैसे यह बाण नहीं, अपना अर्जुन है जो दौड कर मेरी गोदी में छिप गया है। यदि ये मेरे वश में होता तो मैं अपने शरीर में धंसे अर्जुन के हरेक बाण का चुम्बन ले लेता। मेरे सारे जीवन की कमाई ये ही बाण है पुत्री। ये ही बाण है। सुखी रहो पुत्री। मेरे प्रिय अर्जुन से कहना वो अपने बाणों की ओर से मन मैला न करे। उसने अपने बाण चलाकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया है और मैंने उसके बाण खाकर अपने कर्त्तव्य का।

कुरुकुल की वधुयें मिली, लिये आरती दीप, काल रखेगा दीप ये अपने हृदय समीप।
झडी लगाये अश्रु की, खडी रह गई रात, मन में आंधीसी उठे, मौत करे ना बात।
मौन दिशायें देखती, शर शैय्या पर कौन, हाथ जोडकर सामने मौत खडी है मौन।

इतने में दुर्योधन भी भीष्म पितामह की ओर आ रहा है। वो रास्ते में पांडवों की कुलवधुओं को वक्र दृष्टि से देखता है। द्रौपदी ने पूछा कैसे हो दुर्योधन? दुर्योधन बोला, तुम क्या समझती हो कि उस कायर अर्जुन ने पितामह को गिराकर हस्तिनापुर का ध्वज ले लिया है। नहीं द्रौपदी हस्तिनापुर का ध्वज पितामह नहीं, हस्तिनापुर का ध्वज दुर्योधन है। द्रौपदी बोली, यही तो हस्तिनापुर का दुर्भाग्य है और यह कहकर द्रौपदी वहां से चली जाती है।

दुर्योधन पितामह के पास आता है। सैनिक लोगों ने आकर दुर्योधन को प्रणाम किया। दुर्योधन ने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि पितामह के चारों ओर एक गहरी खाई खोद दी जाये और ध्यान रहे की कोई भी हिंसक जीव जन्तु इन तक नहीं पहुंच सके और भूमि के इस टुकडे को युद्धक्षेत्र से बाहर कर दिया जाये। सेवक बोला, जो आज्ञा।

मनुष्य अपना असली पुरुषार्थ तभी प्रकट कर सकेगा, जब वह प्राणों का मोह छोड़ देगा। जब तक मनुष्य मरने को उद्यत नहीं होता, तब तक उसे किसी भी काम में पूर्ण सफलता नहीं मिलती। सत्-कार्य के लिये हँसते-हँसते मरना ही जीना है। जो मरना नहीं जानता वह व्यर्थ जीता है। जिसे प्राणों का मोह है वह तो नारकीय जीव है। प्राणों का उपयोग ही यश, कीर्ति और आत्मज्ञान है। जिसने इस नश्वर शरीर से अक्षयकीर्ति लाभ नहीं की, जिसने प्राणों की बाजी लगाकर सत्-साधन नहीं किये वह तो व्यर्थ है। इसीलिये तो जङ्गल में घोर साधन करते हुए योग के द्वारा अपने आप शरीर को

त्याग देना और समर में शत्रु के सामने हँसते-हँसते प्राण त्याग देना, ये ही दो श्रेष्ठ मृत्यु बताई गई हैं। इन्हीं दो का शरीर धारण करना सार्थक है। नहीं वैसे तो कौआ भी बुरी वस्तु से अपना पेट भरकर बहुत वर्षों तक जीता रहता है।

महावीर कर्ण के अस्त्र-ग्रहण कर लेने पर कौरवों को बड़ी प्रसन्नता हुई और बड़े उत्साह से कौरव सेना युद्ध में प्रवृत्त हुई। यद्यपि पांडव पक्षीय वीर अपने बाणों से कौरव सेना का बुरी तरह विनाश कर रहे थे, किन्तु कौरव सेना ने कायरता नहीं दिखाई। सभी प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। कर्ण सबको उत्साहित कर रहे थे।

समर में कभी किसी की जय होती है और कभी किसी की पराजय। सदा जय तो भगवान की ही होती है भगवान् को छोड़कर अन्य पुरुषों की कभी जय होती है कभी पराजय। कर्ण अनेक योद्धाओं से लड़े। कभी अवसर पाकर वे युद्ध से हट जाते और थोड़ी देर में सँभलकर युद्ध करने लगते।

दुर्योधन के शिबिर में कर्ण, शकुनि और दु:शासन। कर्ण बोला, दुर्योधन को अब तक आ जाना चाहिये था मामाश्री। शकुनि बोले, अंगराज हो सकता है गंगापुत्र भीष्म अपनी अन्तिम इच्छा बता रहे हों कि हे पुत्र दुर्योधन अब मेरे जाने का समय आ गया है। तुम पांडवों को अपना आधा राज्य देना न भूलना पुत्र। कर्ण बोला, किसी शूरवीर के विषय में यों बाते करना आपको शोभा नहीं देता मामाश्री। शकुनि बोले, जो तुम जैसे महावीर को युद्ध करने से रोक सकता हो अंगराज उसकी वीरता चाहे संदिग्ध हो या ना हो किन्तु उसकी निष्ठा अवश्य ही संदिग्ध है। हां इसमें भी कोई सन्देह नहीं हो सकता कि गंगापुत्र युद्ध सदैव दुर्योधन के पक्ष से ही लडेंगे किंतु विजय सदैव उस युधिष्ठिर की ही चाहेंगे। और अब जो महारथी प्रधान सेनापति बन कर आये हैं उनकी निष्ठा भी बहुत विश्वसनीय नहीं है भान्जे क्योंकि अभी भी वो कहते नहीं थकते पुत्र कि अर्जुन ही उनका सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। इतने में दुर्योधन वहां पर आ जाता है। दुर्योधन बोला, आप ठीक कह रहे है मामाश्री। दु:शासन बोला, किन्तु उनके होते किसी और को तो प्रधान सेनापति बनाया नहीं जा सकता। दुर्योधन बोला, मुझे भी लगता है कि आचार्य द्रोण पांडवों का वध नहीं करेंगे। किन्तु यदि हम उनसे कहें कि वो युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर हमें सौंप दे तो वो हमारा दास हो जायेगा और युद्ध समाप्त हो जायेगा। कर्ण बोला, यह सुझाव तो उत्तम है मित्र।

राजा जनमेजयने पूछा- ब्रह्मन। पितामह भीष्मको पाञ्चालराजकुमार शिखण्डीके हाथसे मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्र दुर्योधनने क्या किया? वैशम्पायन बोले, राजन। भीष्मकी पराजय समाचार सुनकर राजा धृतराष्ट्र एकदम चिन्ता और शोकमें डूब गये। उनकी सारी शान्ति नष्ट हो गयी। रात-दिन उन्हें दु:खहीका विचार रहने लगा। इतनेहीमें उनके पास विशुद्धहृदय सञ्जय आया। वह कौरवोंकी छावनीसे रातहीमें हस्तिनापुर पहुँचा था। उससे भीष्मका धराशायी होना सुनकर राजा धृतराष्ट्रको बड़ा ही खेद हुआ। वे आतुर होकर विलाप करने लगे और फिर पूछा, तात। महात्मा भीष्मके लिये अत्यन्त शोकातुर होकर फिर कौरवोंने क्या किया? वीर पाण्डवोंकी विशाल और विजय वाहिनी तो तीनों लोकोंमें अत्यन्त भय उत्पन्न कर सकती है। अब भला, दुर्योधनकी सेनामें ऐसा कौन महारथी है, जिसकी उपस्थितिमें ऐसा महान् भय सामने आनेपर भी वीरोंका धैर्य बना रहे।

संजयने कहा- राजन्। भीष्मके धराशायी होनेपर आपके पुत्रोंने क्या-क्या किया यह आपको बताता हूँ। भीष्म के धराशायी होनेपर कौरव और पाण्डव दोनों ही अलग-अलग विचार करने लगे। उन्होंने क्षात्रधर्मकी निन्दा करते हुए महात्मा भीष्मको प्रणाम किया, फिर उनकी रक्षाका प्रबन्ध कर आपसमें उन्हींकी चर्चा करते रहे। तदनन्तर पितामहकी आज्ञा होनेपर उनकी प्रदक्षिणा करके वे फिर आपसमें युद्ध करनेके लिये कमर कसकर चल दिये। थोड़ी ही देरमें तुरही और भेरियोंकी ध्वनिके साथ आपके पुत्रोंकी और पाण्डवोंकी सेनाएँ युद्ध करनेके लिये निकल पड़ी।

HHH(१०)HHH

राजन। आपके पुत्र और आपकी नासमझीके कारण तथा पितामह भीष्मका पतन हो जानेसे अब कौरव और उनके पक्षके सब राजा मृत्युके समीप आ पहुँचे हैं। भीष्मको खोकर उन सभीको बड़ा शोक हुआ है। उनके न रहनेसे कौरवोंकी सेना भी अनाथ-सी हो गयी है। जिस प्रकार कोई आपत्ति आ पड़नेपर अपने बन्धुकी याद आने लगती है, उसी प्रकार अब कौरव वीरोंका ध्यान कर्णकी ओर गया; क्योंकि वह भीष्मके समान ही गुणवान् तथा समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और अग्निके समान तेजस्वी था। कर्ण दो रथियोंके बराबर था, किंतु भीष्मने बलवान और पराक्रमी रथियोंकी गणना करते समय उसे अर्धरथी ठहराया था। इसलिये दस दिन तक, जबतक कि पितामहने युद्ध किया, महायशस्वी कर्णने संग्रामभूमिमें पैर नहीं रक्खा था। अब सत्यप्रतिज्ञ भीष्मके धराशायी होनेपर आपके पुत्रोंने कर्णको याद किया और वे अब तुम्हारे लड़नेका समय आ गया है ऐसा कहकर कर्ण। कर्ण। पुकारने लगे।

अब महारथी कर्ण समुद्रमें डूबती हुई नौकाके समान आपके पुत्रकी सेनाको इस आपत्तिसे पार करनेके लिये तुरंत ही कौरवोंके पास आया और उनसे कहने लगा, भीष्ममें धैर्य, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति आदि सभी वीरोचित गुण थे। उनके पास अनेकों दिव्य अस्त्र भी थे। साथ ही नम्रता, लज्जा, मधुर भाषण और सरलताकी भी उनमें कमी नहीं थी। वे दूसरोंके उपकारोंको याद रखनेवाले और विप्रविद्वेषियोंके विरोधी थे। उनका पतन हो जानेसे तो मुझे सब वीरोंका अन्त हुआ-सा ही दिखायी देता है। ऐसा कहकर तथा महाप्रतापी भीष्मके पतन और कौरवोंकी पराजयका विचार करके कर्णको बड़ा ही खेद हुआ और वह आँखोंमें आँसू भरकर लंबे-लंबे साँस लेने लगा।

कर्णने दुर्योधन से कहा, वह भीष्म पितामह से मिलकर आ रहा है और उन्होंने स्वीकार किया कि कर्ण वीर और योद्धा के रूप में किसी से कम नहीं है। वे नहीं चाहते थे कि यह युद्ध हो, इसलिए वे कर्ण को हतोत्साहित करने के लिए जानबूझकर उसका तिरस्कार करते रहे। वे जानते थे कि युद्ध आप कर्ण के भरोसे ही कर रहे हैं। कर्ण यदि हतोत्साहित हो गया तो दुर्योधन यह युद्ध नहीं करेगा। पितामह को खेद है कि उनका व्यवहार दुर्योधन के प्रति सौहार्द्रपूर्ण नहीं रहा। आरंभ में तो पितामह ने कर्ण से यही कहा अब भी समय है पाण्डवों से सन्धि कर लो। जब कर्ण ने यह स्पष्ट कह दिया है कि यह सम्भव नहीं है तो पितामह हँसकर बोले ठीक है। यदि यह सम्भव नहीं है तो अपने शस्त्र उठाओ और अर्जुन से युद्ध करो। जाओ दुर्योधन को विजय दिलाने का प्रयत्न करो। उसका तुम जैसा हितैषी कोई और नहीं है। वे मानते हैं कि कर्ण अर्जुन को पराजित नहीं कर सकता। वे यह भी मानते हैं कि अर्जुन कर्ण का काल है। दुर्योधन बोला, अंगराज यह तो निश्चित ही है कि पितामह के युद्धक्षेत्र से हट जाने के कारण तुम्हारे लिए रणभूमि में लौटने के मार्ग में कोई बाधा नहीं है। यह भी सत्य है कि पितामह के धराशायी हो जाने से कौरवों की सेना में जो एक भयंकर शून्य उत्पन्न हो गया है, स्थान रिक्त हो गया है वह तुम्हारे आ जानेसे भर जाएगा। तुम्हारे आ जानेके समाचार से मेरे सैनिकों में जैसा उत्साह जागेगा, उसकी कल्पना करके ही मैं तृप्त हो रहा हूँ। तुम्हारे आगमन से हमारी सेना पर सूर्योदय का-सा प्रभाव पड़ेगा।

कर्णके ये वचन सुनकर आपके पुत्र और सैनिक लोग भी आपसमें शोक प्रकट करने लगे और अत्यन्त आतुर होकर आँखोंसे आँसू बहाते हुए ढाढ़ मारकर रोने लगे। तब रथियोंमें श्रेष्ठ कर्णने अन्य महारथियोंका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, भीष्म के गिर जानेसे कोई सेनापति न रहनेके कारण कौरवोंकी सेना बहुत घबरायी हुई है, शत्रुओंने इसे निरुत्साह और अनाथ कर दिया है। किंतु अब मैं भीष्मकी तरह ही इसकी रक्षा करूँगा। मैं अनुभव करता हूँ कि अब यह सारा भार मेरे ऊपर ही है। मैं रणभूमिमें घूम-घूमकर अपने बाणोंसे पाण्डवोंको यमराजके घर भेज दूँगा और सारे संसारमें अपना महान् यश प्रकट करके रहूँगा अथवा शत्रुओंके हाथसे मरकर पृथ्वीपर शयन करूँगा। फिर अपने सारथीसे कहा, सूत। तू मुझे कवच और शीर्षत्राण पहना तथा शीघ्र ही मेरे रथको

तरकस, दिव्य धनुष, तलवार, शक्ति, गदा और शफआदि सभी सामग्रियोंसे सजाकर घोड़े जोतकर ले आ।

इधर दुर्योधन अपने शिबिर में अकेला बैठा अपनी जीवन कथा के पृष्ठ उलट रहा था। उसके मन ने बहुत सारे प्रश्नों से जूझना चाहा। वंचना की संभावना भी उसको ही होती है, जिसके पास कुछ हो। दुर्योधन के पास राज्य होते हुए भी वह कोई नियम नहीं बना सकता था। वह अपनी इच्छानुरूप निर्माण नहीं कर सकता था तो अपनी इच्छा के अनुसार ध्वंस तो कर सकता है? वह नियम बना नहीं सकता, पर नियम तोड़ अवश्य सकता था। उसके नियमों में कोई आस्था नहीं थी। उसको भीष्म और विदुर कभी अच्छे नहीं लगे। सत्यवती और व्यास के प्रति उसके मन में कोई श्रद्धा नहीं थी।

उसको अच्छे लगे मामा शकुनि, जिन्होंने सदा से उसे प्रकृति का एक ही नियम सिखाया था कि अधिकार से अधिक महत्त्वपूर्ण है, आधिपत्य। जो कुछ तुम्हें चाहिए, उस पर आधिपत्य जमाओ, अधिकार की चिंता मत करो। जिसके पास अधिकार है, उसे आधिपत्य मत जमाने दो, वह देखता रह जाएगा। और आधिपत्य के लिए आवश्यक है, बल। यदि तुम्हारे पास बल है तो फिर किसी नियम और नैतिकता की ओर देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। नियमों को व्यवहार में लाने के लिए, उनका कार्यान्वयन करने के लिए भी उनके पीछे राज्य अथवा समाज का बल होता है। नियम के पीछे बल न हो तो नियम का कोई अर्थ नहीं है। तो तुम बल एकत्रित करो। मात्र नियम बनाने से कुछ नहीं होगा। जिस समय धृतराष्ट्र को शारीरिक रूप से अपूर्ण मान कर राज्य नहीं दिया गया, उस समय यदि वे भीष्म, विदुर और सत्यवती से अधिक बलवान होते तो राज्य कदापि पांडु को नहीं मिलता।

पर दुर्योधन आश्वस्त था, उसके साथ उसके मामाश्री थे। क्रमश: उसने कर्ण और अश्वत्थामा से मित्रता कर ली थी। दु:शासन भी ठीक उसी के समान सोचता था और सदा उसका साथ देने को तत्पर रहता था। वैसे भी कुछ ही दिनों में उसने परख लिया था कि पांडवों में से कोई भी उससे संघर्ष के लिए उत्सुक नहीं था। वे न तो उसके पिता धृतराष्ट्र से राज्य लौटा लेने की स्थिति में थे और न ही बड़े हो जाने पर वे उससे राज्य छीन पाएँगे। हस्तिनापुर का प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि दुर्योधन हस्तिनापुर और कौरवों का भावी सम्राट था। उस पर कोई नियम लागू नहीं होता था। उस पर कोई शासन नहीं कर सकता था। मामाश्री ने समझा दिया कि नियम कायरों के लिए होते हैं। वीर लोग अपने नियमों का निर्माण स्वयं करते हैं। दुर्योधन को सत्ता चाहिए थी और कर्ण को सत्ता की कृपा, सान्निध्य और सम्मान। दुर्योधन उसकी प्रशंसा करता रहेगा और कर्ण आजीवन उसके लिए लड़ता रहेगा।

न वह धर्म को मानना चाहता था, न शास्त्र को। न परंपरा को न कुल वृद्धों के आदेश को। वह तो यह जानता था कि वह अपना राज्य किसी को नहीं दे सकता था। कुछ हो जाए। यदि उसे सीधे-सीधे राज्य नहीं दिया जाएगा तो वह उसे कुटिल मार्ग से प्राप्त करेगा। वे कहते थे कि हस्तिनापुर का राज्य उसका नहीं था। पर क्यों नहीं था? जिस राज्य को वह अपना मानता था, वह उसका था। किसी के कहने से वह उसे कैसे त्याग सकता था।

दुर्योधन उस मिट्टी का बना हुआ नहीं है। वह एक पूर्ण राजनीतिज्ञ है। उसका धर्म क्षात्र धर्म है; और क्षत्रिय के लिए आवश्यक है कि वह अपने शत्रुओं को ही नहीं, संभावित शत्रुओं का भी वध कर दे। किसी के पास इतना धन न छोड़े कि वह धन भविष्य में उसके लिए किसी प्रकार का संकट उत्पन्न कर सके। किसीको इतना शक्तिशाली न बनने दें कि वह उसके लिए कोई चुनौती खड़ी कर सके। राजनीति में कोई आदर्श नहीं होता, कोई सिद्धांत और कोई धर्म नहीं होता। यदि होता भी है तो दुर्योधन उसको नहीं मानता। राजा का कर्त्तव्य क्या होता है। दुर्योधन का अपना चिंतन है। राजा का एक ही कर्त्तव्य है कि वह स्वयं को शक्तिशाली, धनी और समर्थ बनाए। जिसका हित करने में उसका लाभ हो, उसका हित करे

और जिससे प्रतिकूलता की संभावना हो, उसे किसी भी प्रकार नष्ट कर दे। राजनीति में कोई स्थायी मित्र और शत्रु नहीं होता। अपना स्वार्थ ही एकमात्र मित्र है।

मनुष्य का एकमात्र धर्म है अपना सुख, अपना स्वार्थ। यदि धन से सुख मिलता है तो धन प्राप्त करे। स्त्री से सुख मिलता है तो स्त्री को हस्तगत करे। सत्ता से सुख मिलता है तो सत्ता छीन ले। अहंकार से सुखी होता है तो अहंकार को स्फीत करे। शत्रु को पीड़ित कर सुख मिलता है तो शत्रु को तड़पाए। इसलिए जब कर्ण ने द्रौपदी को निर्वस्त्र कर देने के लिए कहा तो उन्माद हो गया था दुर्योधन को। उसने तो इस सुख की कल्पना ही नहीं की थी। वह तो केवल इतना भर ही सोच पाया था कि वह द्रौपदी को अपनी दासी के रूप में अपमानित करे और पांडवों का तड़पना देखे। कर्ण ने द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रस्ताव किया था। जिस द्रौपदी को पाने की आकांक्षा उसके मन में मर कर भी नहीं मरी थी, उसका इस प्रकार सार्वजनिक निर्वस्त्र दर्शन संसार की कोई सुरा इतना मद नहीं दे सकती थी। उसमें काम की उत्तेजना भी थी, अहंकार का उद्दाम मद भी, अपने शत्रुओं को पीड़ित और अपमानित देखने का सुख भी। धर्म-धर्म चिल्लानेवाले कुलवृद्धों को नतमस्तक देखने में कैसा अलौकिक सुख था। द्रौपदी चीत्कार करती थी कि बताओ धर्म क्या है तो उस चीत्कार की असहायता को देखकर दुर्योधन को एक पूरे भांड का मद चढ़ जाता था। वैसी मधान्दता का उसने अपने जीवन में फिर कभी अनुभव नहीं किया।

उसके मन में था ये पाण्डव मूर्ख हैं और राजनीति नहीं समझते थे। नहीं जानते थे कि राजनीति में वचन और आश्वासन देते समय भी यह सबको ज्ञात होता है कि उनका पालन नहीं किया जाएगा। उन्होंने दुर्योधन अथवा धृतराष्ट्र के वचन का विश्वास किया तो यह उनका धर्म नहीं राजनीति की अनभिज्ञता अथवा मूर्खता थी। वे राजनीति में धर्म की बात ही क्यों करते हैं- यह दुर्योधन आज तक नहीं समझ सका था। कोई राजा इसलिए इतना बड़ा साम्राज्य किसी को सौंप देगा, क्योंकि वे कुछ शर्तें पूरी कर आए थे? नियमत: राज्य उनको मिलना चाहिए था। वे शास्त्र की बात कर रहे थे, विधान और संविधान की बात कर रहे थे। व्यावहारिक राजनीति का उनको ध्यान ही नहीं था। दुर्योधन ने तो आरंभ से ही सोच रखा था कि वह यही कहेगा कि वे अज्ञातवास में ही पहचान लिए गए थे। गणना में हेरफेर करने में क्या लगता है, जब कि सत्ता उसके हाथ में थी। गणक उसके थे। पर कुरुवृद्ध भीष्म ने उसकी योजना नष्ट कर दी थी। दुर्योधन जानता था कि भीष्म और विदुर जैसे लोगों को अपनी राजसभा में रखना उसकी राजनीतिक भूल थी। पर वह क्या कर सकता था। यह उसकी राजनीतिक बाध्यता भी थी। अब तो यही संभव था कि वह सिवाय अपनी इच्छा के शेष किसी भी विधान को मानना अस्वीकार कर देता। धृतराष्ट्र ने कहा कि राज्य पांडवों का है, किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। भीष्म ने समझाया, पिता ने समझाया, विदुर ने समझाया, द्रोणाचार्य कहते रहे, माता गांधारी को बुला लिया गया। कृष्ण कहते रहे पर क्या किसी के कहने से दुर्योधन अपना राज्य पांडवों को दे देता। जिस किसी विधान से उसका अधिकार बनता था, राज्य उसका था, जिसका उसपर आधिपत्य था। इस समय दुर्योधन कुरु साम्राज्य का अधिपति था।

कर्णको सब सेनाके आगे आता देखकर दुर्योधनादि समस्त कौरवोंको भी बड़ा हर्ष हुआ। वे ताल ठोंककर, उछल-उछलकर, सिंहनाद करके और तरह-तरहसे धनुषोंकी टंकार करके कर्णका स्वागत करने लगे। फिर उससे दुर्योधनने कहा, कर्ण। अब तुम हमारी सेनाके रक्षक हो, इसलिये मैं इसे सनाथ समझता हूँ। तुम इस बातका निर्णय करो कि क्या करनेसे हमारा हित हो सकता है।

कर्णने कहा- राजन्। आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, आप अपना विचार कहिये; क्योंकि स्वयं राजा कर्त्तव्यका जैसा ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हैं, वैसा कोई दूसरा पुरुष नहीं कर सकता। इसलिये हम आपकी ही बात सुनना चाहते हैं।

HHH(१३)HHH

दुर्योधनने कहा- पहले आयु, बल और विद्यामें बढ़े-चढ़े पितामह भीष्म हमारे सेनापति थे। उन्होंने सब योद्धाओंको साथ रखते हुए शत्रुओंका संहार किया और भीषण युद्ध करते हुए दस दिनतक हमारी रक्षा की। अब वे तो स्वर्गवासकी तैयारीमें हैं, अत: उनके स्थानपर तुम्हारे विचारसे किसे सेनापति बनाना उचित होगा? नायकके बिना तो सेना एक मुहूर्त्त भी नहीं ठहर सकती। जिस प्रकार बिना मल्लाहकी नौका और बिना सारथीका रथ चाहे जिधर चलने लगते हैं, उसी प्रकार बिना सेनापतिकी सेना बेकाबू हो जाती है। इसलिये मेरे पक्षके सब वीरोंपर दृष्टि डालकर तुम यह निश्चय करो कि भीष्मके बाद कौन उपयुक्त सेनापति होगा। इस पदके लिये तुम जिसे कहोगे, उसीको हम सहर्ष अपना सेनापति बनायेंगे।

दुर्योधन ने कर्ण से कहा, मित्र अपनी सेना के लिए प्रधान सेनापति नियुक्त करना है। कर्ण बोला, आपके पास योद्धाओं की कोई कमी नहीं है राजन्। दु:शासन, शल्य, शकुनि, जयद्रथ, भगदत्त, कृतवर्मा, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य। दुर्योधन बोला सम्भव है किसी एक का नाम प्रधान सेनापति के रूप में सामने आयेगा तो अन्य राजा लोग इर्ष्या करेंगे। विद्रोह भड़क सकता है। वे लोग फिर मेरे हित की भावना से युद्ध नहीं करेंगे।

कर्ण बोला- यहाँ जितने राजालोग उपस्थित हैं, वे सभी बड़े महानुभाव हैं और नि:संदेह इस पदके योग्य हैं। ये सभी कुलीन, गठीले शरीरवाले, युद्धकलामें कुशल तथा बल, पराक्रम और बुद्धिसे सम्पन्न हैं; सभी शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान और युद्धमें पीठ न दिखानेवाले हैं। किंतु एक साथ सभीको तो सेनानायक बनाया नहीं जा सकता। इसलिये जिस एकमें सबसे अधिक गुण हों, उसीको इस पदपर नियुक्त करना चाहिये। मेरे विचारसे तो समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोणको ही सेनापति बनाना उचित है; क्योंकि ये सभी योद्धाओंके आचार्य और गुरु हैं तथा वयोवृद्ध भी हैं। ये साक्षात् शुक्राचार्य और बृहस्पतिके समान हैं तथा इन्हें कोई परास्त भी नहीं कर सकता। अत: इनके रहते और कौन हमारा सेनापति हो सकता है? आपके ये गुरुदेव सभी सेनानायकोंमें, सभी शस्त्रधारियोंमें और सभी बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये जिस प्रकार देवताओंने स्वामी कार्तिकेयको अपना सेनाध्यक्ष बनाया था, उसी प्रकार आप इन्हें अपना सेनापति बनाइये।

कर्ण बोला, तो फिर एक ही मार्ग है कि आचार्य द्रोण को प्रधान सेनापति बना दिया जाए। वे वयोवृद्ध हैं, आचार्य हैं, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं और उनके सेनापति बनने से कृपाचार्य और अश्वत्थामा भी प्रसन्न होंगे। दुर्योधन बोला, मित्र सब अपना-अपना मूल्य माँग रहे है तनिक-सी बात पर तुनककर पांडवों के पक्ष में चल देंगे। कर्ण बोला, मेरे लिए अपना सेनापति बनना महत्वपूर्ण नहीं है मेरे लिए महत्वपूर्ण है तुम्हारी विजय। इसलिए तुम उनको सेनापति बना दो। दुर्योधन बोला, तुम मेरे वास्तविक मित्र हो इसलिए मेरे मन की बात भी समझते हो। द्रोण के सेनापति होने के और भी लाभ हैं। अर्जुन किसी भी स्थिति में अपने गुरु का वध नहीं करेगा। द्रोण सम्मुख होंगे तो अर्जुन का परम शौर्य प्रकट नही होगा। कर्ण बोला, मैं जानता हूँ तुम्हारे मन में मेरे लिए कितना प्रेम है मित्र। वैसे तो मैं स्वयं अकेला ही पाँचों पांडवों और धृष्टद्युम्न के लिए पर्याप्त हूं किंतु इतने बड़े युद्ध में अनेक प्रकार की योद्धाओं की आवश्यकता पड़ती है। हमें उन सबकी आवश्यकता है।

द्रोण के शिबिर में द्रोण और अश्वत्थामा आपस में बात कर रहे हैं। द्रोण बोले, पुत्र भीष्म धराशायी हो चुके हैं और मैं अकेला हूँ। अश्वत्थामा बोला, भीष्म के पश्चात आपका ही प्रधान सेनापति चुना जाना स्वाभाविक, न्यायोचित तथा निश्चित है। क्या आप अर्जुन को अपना सर्वश्रेष्ठ शिष्य, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी नहीं मानते हो? द्रोण बोले, नहीं। मैं उसे एक श्रेष्ठ धनुर्धारी मानता था। उसके सर्वश्रेष्ठ होने का प्रमाण तो मुझे विराट नगर के गोहरणवाले युद्ध में हुआ। अश्वत्थामा बोला, तो फिर आपने एकलव्य का अंगूठा क्यों लिया? केवल अर्जुन को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बनाये रखने के लिए। द्रोण बोले, अर्जुन से कहीं अधिक तो मैंने तुमको सिखाया पुत्र। तुम मेरे प्रिय पुत्र हो। एकमात्र पुत्र हो। तो फिर मैं तुमसे

अधिक और किसे सिखा सकता था? मैंने एकलव्य का अँगूठा इसलिये लिया क्योंकि वो मेरा अपमान था। वो यह सिद्ध कर रहा था कि द्रोण के सिखाये बिना ही संसार का श्रेष्ठ धनुर्धारी हो सकता है। जिसको मैंने शिक्षा नहीं दी, वह मेरे शिष्य से अच्छा धनुर्धर प्रमाणित हो जाए तो फिर मेरे चयन और प्रशिक्षण का अर्थ ही क्या रह गया? अश्वत्थामा सोचता रह गया किसी अबोध की श्रद्धा और निष्ठा से भी किसी ज्ञानी का अहंकार आहत होता है। यह अहंकार तो उसके पिता में भी है। द्रोण बोले, मैं युद्धाचार्य हूँ पर योद्धा नहीं। मैं सैद्धान्तिक पक्ष का ज्ञाता हूँ पर मैंने कभी युद्ध नहीं किया। जो केवल सिद्धान्त की बात करता है आवश्यक नहीं कि वह वीर भी हो। वह किसीका संरक्षण पाकर सुरक्षित ढंग से अपना कार्य करना चाहता है। मैं भी भीष्म की छाया में सुरक्षित रहकर द्रुपद से प्रतिशोध लेना चाहता था। हस्तिनापुर में रहते हुए युद्धोंका पूर्वाभ्यास भी हुआ। विराटनगर में अर्जुन मेरा वध करने नहीं आया था वह तो केवल विराट का गोधन लौटा ले जाने के लिए आया था। वह युद्ध तो मैंने भीष्म की छाया में ही लड़ा। अर्जुन मुझसे प्रेम करता है, मेरा सम्मान करता है, मेरे सम्मुख वह अपना परम शौर्य प्रकट नहीं करेगा। मुझे विश्वास है वह मेरा वध नहीं करेगा। जैसे वह भीष्म का वध करना नहीं चाहता था। किन्तु अर्जुन न तो राजा है न प्रधान सेनापति। अश्वत्थामा बोला, चिंता का कोई कारण नहीं है पिताश्री। हम क्षत्रिय नहीं है तो क्या हुआ? किन्तु योद्धा तो है। द्रोण बोले, तुम्हे अपनी क्षमता का ज्ञान है पर अपने शक्तियों की क्षमता का नहीं। हमें बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। पुत्र पिताकी आत्मा होता है वह उसका आत्मज है, वह उसका भविष्य है, वह उसका विकास और विस्तार है। इसलिए मैं तुम्हारे लिए चिंतित हूं। अर्जुन का मोह भी मुझको है। वह मेरा मानस पुत्र है। किन्तु देह के संबंधों का मोह बड़ा होता है। किसी गुरु को अपना शिष्य अपने औरस पुत्र से अधिक प्रिय नहीं होता। पर मेरे तो तुम एकमात्र पुत्र हो। तुम्हें कुछ हो गया तो मेरे जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। मैं अपना मोह दूर नहीं कर पा रहा। मैंने युद्ध में देखा कि महाराज विराट के आँखों के सम्मुख उनके तीन-तीन पुत्रोंका वध हुआ। अर्जुन के सारे सामर्थ्य और पांडव सेना की सारी शक्ति के होते हुए भी अर्जुन का पुत्र इरावान मारा गया और फिर भी वे पिता योद्धाओं के रूप में सहज भाव से युद्ध कर रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि अपने पुत्र के हताहत होने का समाचार पाकर कोई पिता जीवित कैसे रह सकता है? दुर्योधन के न तो शौर्य में मेरी आस्था है और न ही उसके धर्म में। वह अधर्मी है वह अपने स्वार्थ के कारण कहीं भी गिर सकता है और किसी की भी चापलूसी कर सकता है। किंतु धर्म का तो लेश भी नहीं है उसमें। मुझे इसीका तो संताप है कि मैंने इस धर्म की रक्षा के लिए धनुष क्यों नहीं उठाया? स्वार्थ की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण क्यों किया? भीष्म अब नहीं रहे। वे असमर्थ होकर शरशय्या पर पड़े हैं और उनके प्राण अपने प्रयाण के लिए जाने किस अनुकूल क्षण की प्रतीक्षा में हैं। दुर्योधन स्वयं को हमारा स्वामी माने बैठा है। मैं उस अधर्मी का स्वामित्व कैसे सह पाऊंगा। सत्य तो यह है पुत्र कि मैं युद्ध करना नहीं चाहता कितु अब चाहूँ भी तो इससे बच नहीं सकता। अश्वत्थामा बोला, आप लड़ना न चाहें तो कौन आपको बाध्य कर सकता है? द्रोण बोले, मेरे अपने कर्म। यदि मैं दुर्योधन को त्यागना चाहूँ तो उसे इस बात से डर है कि मैं पाण्डवों के पक्ष में चला जाऊँगा। वह इसे सहन नहीं कर पायेगा। वह द्रोण को स्वच्छंद और मुक्त जीवित नहीं रहने देगा। मैं तुम्हारे प्राणों को संकट में नहीं डालना चाहता। द्रुपद तो कदाचित मुझे क्षमा भी कर दे किन्तु उसके परिवारवाले धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी तो मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। मित्र तो मेरा एक ही था द्रुपद। किन्तु शत्रु तो उसका सारा परिवार है। हम जब कर्म करते हैं तो यह कल्पना भी नहीं करते कि उसके परिणाम रूपी रज्जू भविष्य में हमें किन जटिलताओं में उलझा देगी। हम चाहेंगे भी तो मुक्त नहीं हो सकेंगे। कर्म तो भाग्य का ऐसा आलेख है, जो किसी भी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता। कम क्षमता और कम बुद्धि के व्यक्ति की आज्ञा के अधीन लड़ने

में भी तो कोई सुख नहीं है। सेनापति सेना का तो सर्वोच्च अधिकारी होता है, किंतु वह राजा नहीं हो सकता। यदि मैं सेनापतित्व पद अस्वीकार कर लूं तो भी इस पापी दुर्योधन की आज्ञाओं से मुक्ति नहीं मिल सकती।

द्रोण के शिबिर में दुर्योधन, दु:शासन और कर्ण, शकुनि आते हैं। दुर्योधन बोला, प्रणाम गुरुदेव। द्रोण बोले, मैं बिल्कुल अकेला रह गया दुर्योधन। दुर्योधन आचार्य द्रोणके पास आया और बोला, हे आचार्य। वर्ण, कुल, उत्पत्ति, विद्या, आयु, बुद्धि, पराक्रम, युद्धकौशल, अजेयता, अर्थज्ञान, नीति, विजय, तपस्या और कृतज्ञता आदि सभी गुणोंमें आप सबसे बड़-चढ़कर हैं। आपके समान राजाओंमें भी हमारा कोई रक्षक नहीं है। अत: इन्द्र जिस प्रकार देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा कीजिये। हम आपके नेतृत्वमें ही शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। अत: आप हमारे प्रधान सेनापति बननेकी कृपा करें। यदि आप हमारे सेनापति हो जायेंगे, तो हम अवश्य ही राजा युधिष्ठिरको उनके अनुयायी और बन्धु-बान्धवोंसहित जीत लेंगे।

सेनापति पद पर अभिषिक्त हुए आचार्य द्रोण ग्यारहवें दिन अपने रथ पर आरूढ़ हुए। रात्रि में ही पितामह से मिलकर आये दुर्योधन ने उनके शिबिर में जाकर कहा था, हे आचार्य, आप साक्षात् धनुर्वेद हैं। सावधानी कृतज्ञता, यशश्विता और अशरण पराक्रम आदि गुण आप में वास करते हैं। जैसे रुद्रों में कपालि, वसुओं में पावक है, वैसे ही आप हैं। यज्ञ में तो आपकी कुबेर से ही तुलना की जा सकती है। देवताओं में जैसे इन्द्र हैं, वैसे ही आप हैं। समस्त विप्रों में वसिष्ठ को माना जाता है, वैसे ही आप ज्ञानवान हैं। दैत्यों में जो सम्मान शुक्राचार्य का और पितरों में यमधर्म का है- वही सम्मान आपका है। अन्त में दोनों हाथ जोड़कर, नतमस्तक होकर बनावटी नम्रता से उसने कहा, हे आचार्य, युवराज कहलानेवाले, उठते-बैठते हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर अधिकार जतानेवाले युधिष्ठिर को मेरे आगे जीवित उपस्थित किया जाए।

मैं तो आपसे केवल यह कहने आया हूँ कि आज से कुरुसेना के प्रधान सेनापति आप हैं। कर्ण बोला, आप यह तो नही कहेंगे आचार्य कि ये राधेय आपके ध्वजतले युद्ध नहीं कर सकता। द्रोण बोले, यदि तुम युद्ध के लिये इतने उत्सुक हो अंगराज तो अवश्य युद्ध करो। दु:शासन बोला और आप पितामह की भांति ये तो नहीं कहेंगे कि मैं पांडवों का वध नहीं करूंगा। द्रोण बोले, मैं यह कहूंगा तो नहीं किन्तु मैं यह वचन भी नहीं दे सकता हूं। हो सकता है कि वो मेरे हाथों वीरगति को प्राप्त हो जाये किन्तु यह भी हो सकता है कि मैं उनके हाथों वीरगति को प्राप्त हो जाऊं। यह रणभूमि है दु:शासन। यहां कुछ भी हो सकता है। मैं कुरुवंशी नहीं हूं इसलिये मेरे निर्णय का क्षेत्र सीमित है। मैं गंगापुत्र की भांति ये भी तो नहीं कह सकता कि मैं किसका वध करूंगा और किसका नहीं। जब तक तुम्हारे पक्ष में हूँ दुर्योधन तब तक तुम्हारे शत्रुओं से युद्ध करना मेरा कर्त्तव्य है। द्रोण बोले, अर्जुन जब गंगा पुत्र को रोके नहीं रुका तो फिर किसके रोके रुकेगा। दुर्योधन बोला, उसे आप रोकेंगे गुरुदेव। कौरव सेना में तुम्हारा स्वागत है अंगराज। कर्ण बोला, प्रणाम आचार्य।

दुर्योधनके इस प्रकार कहनेपर उसे हर्षित करते हुए सब राजाओंने द्रोणाचार्यका जय-जयकार किया। वे सब द्रोणाचार्यका उत्साह बढ़ाने लगे। तब आचार्यने दुर्योधनसे कहा, राजन्। मैं छहों अङ्गयुक्त वेद, मनुका कहा हुआ अर्थशास्त्र, भगवान शंकरकी दी हुई बाणविद्या और कई प्रकारके अस्त्र-शस्त्र जानता हूँ। तुमने विजयकी अभिलाषासे मुझमें जो-जो गुण बतायें हैं, उन सभीको निभाता हुआ मैं पाण्डवोंके साथ संग्राम करूँगा। किंतु मैं द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नका वध किसी प्रकार नहीं कर सकूँगा।

संजय धृतराष्ट्र को बोला, राजन्। इस प्रकार आचार्यकी अनुमति मिलनेपर आपके पुत्र दुर्योधनने उन्हें विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। उस समय बाजोंके घोष और शर्खोंकी ध्वनिसे सब लोगोंने हर्ष प्रकट किया तथा पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, सूत और मागधोंके स्तुतिगान और ब्राह्मणोंके जय-जयकारसे आचार्यका सम्मान किया

गया। द्रोणके सेनापति होनेसे सब लोग यही समझने लगे कि अब हमने पाण्डवोंको जीत लिया। दुर्योधन ने अपने हाथों, शास्त्रीय विधि से आचार्य द्रोण का प्रधान सेनापति के रूप में अभिषेक किया। बहुत आडंबर और समारोह के साथ अपनी प्रसन्नता जताई। वाद्यों के घोष और शंखों की ध्वनि से आकाश फटने लगा। पुण्याहवाचन हुआ, स्वस्तिवाचन हुआ। सूत, मागध तथा बंदीजनों ने स्तोत्र तथा गीत गाए। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने जयजयकार किया। द्रोण को युद्ध की स्थिति में प्रधान सेनापति बनकर ही समझ में आता है कि अधिकार क्या होता है।

द्रोण के शिबिर में कृपाचार्य और अश्वत्थामा। द्रोण बोले, बधाई हो कृपाचार्य आप कुरुसेना के प्रधान सेनापति होने से बच गये। अश्वत्थामा बोले यह आप कैसी बातें कर रहे हैं पिताश्री। मैं मानता हूं कि पांडव हमारे शत्रु नहीं है, वे तो मेरे गुरुभाई भी है किन्तु जब आप दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करने का निर्णय ले चुके तो फिर यह द्विविधा क्यों? कृपाचार्य बोले, यही तो द्विविधा का कारण है वत्स। शत्रु पर प्रहार करना तो सहज होता है परन्तु जो अपने प्रिय हो उनके शरीर को भेदनेवाला बाण तो स्वयं अपने हृदय को भी भेद जाता है। अश्वत्थामा बोला, तो फिर आप युद्ध क्यों कर रहे हैं मामाश्री? द्रोण बोले, इसका तो कारण दुर्योधन ही जानता है पुत्र। हम उसके नमक के ऋणी हैं, कृतज्ञ हैं। उसकी रक्षा करते हुये वीरगति को प्राप्त हो जाने के लिये विवश हैं इसलिये निर्णय हमारे हाथ में नहीं है। हां तुम उसके ऋणी नहीं हो। अश्वत्थामा बोला, मैं ऋणी तो नहीं हूं किन्तु मैं विश्वासघाती भी नहीं हूं। दुर्योधन की विजय हो चाहे पराजय, मैं उसके पक्ष में रहूंगा। पांडवों का वध करना मेरा सैनिक कर्त्तव्य है। दुर्योधन द्रोण के शिबिर में आता है। दुर्योधन बोला, कैसे हो भ्राताश्री। अश्वत्थामा बोला, अच्छा हूं। दुर्योधन बोला, प्रणाम गुरुदेव, प्रणाम कुलगुरु कृपाचार्य। दोनों ने हाथ उठाकर दुर्योधन को आशीर्वाद दिया। दुर्योधन बोला- क्या बात है आपके शिबिर में इतनी तपन क्यों? द्रोण बोले, मुझमें और अश्वत्थामा में थोडा सा मतभेद हो गया था। अच्छा अब यह बताओ इस समय तुम्हारा आना कैसे हुआ? दुर्योधन बोला, पितामह की दुर्घटना ने मुझे द्विविधा में डाल दिया है गुरुदेव और मैं इन दामों में विजय नहीं चाहता परन्तु मैं क्या करूं? विवश हूं। मैं कुरुक्षेत्र के इस युद्ध में इतना आगे बढ़ चुका हूं गुरुदेव कि मेरे लिये रिक्त हाथों लौटना असम्भव है। इसलिये मैं आपसे यह कहने आया हूं गुरुदेव कि मुझे पांडवों के शव पर अपना राजभवन नहीं खडा करना है। यदि आप भ्राता युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर मुझे सौंप दे तो मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं तुरन्त ही युद्ध समाप्ति की घोषणा कर दूंगा। सहसा द्रोण जैसे आकाश से गिरे। उनके पैरों को यथार्थ के कंकड़ चुभने लगे। वे दुर्योधन की सेना के प्रधान सेनापति थे। दुर्योधन की सेना में उनका महत्व सर्वोपरि था, किंतु पांडवों की सेना पर तो उनका कोई नियंत्रण नहीं था। पांडव योद्धा तो उनकी आज्ञा के अधीन नहीं थे। क्या अर्जुन अपने भाई युधिष्ठिर को जीवित बंदी करने देगा। युधिष्ठिर को बंदी करने के लिए पाण्डवों का सारा बल लग जाएगा। उस प्रयत्न में कितने कौरव सैनिक मारे जाएँगे क्या दुर्योधन यह जानता नहीं। दुर्योधन में सामर्थ्य है नहीं और इच्छाएँ आकाश को छू रही हैं। आदेश तो इस प्रकार देता है, जैसे ब्रह्माण्ड उसी के आदेश से परिचालित होता है। इधर दुर्योधन ने इच्छा की और उधर सृष्टि ने अपना क्रम बदला। उसके अपने उसी अहंकार में इस मूर्ख ने पांडवों को अपना शत्रु बना डाला। द्रोण बोले, तुम्हारी मांग के पीछे धर्म है अथवा राजनीति? दुर्योधन बोला, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है आचार्य। मैं सांसारिक मनुष्य हूँ। मैं धर्म के नाम पर वंचित नहीं किया जा सकता। संसार में तात्कालिक लाभ तो अधर्म से ही होता है। धर्म को जितना त्यागते जाओ, उतनी ही सांसारिक सफलता पाते जाओ। पर दुर्योधन यह नहीं समझ पाया सफलता के मद में सफलता ही क्षय का द्वार भी है।

द्रोण बोले, तुम युधिष्ठिर को मृत्युदंड तो नहीं दोगे। दुर्योधन बोला, कभी नहीं गुरुदेव। मैं युधिष्ठिर को मृत्युदंड कभी नहीं

दूंगा। यदि आप युधिष्ठिर का वध कर भी देंगे, तो युद्ध में हमारी विजय नहीं होगी और न पांडवों का राज्य मैं निष्कंटक भोग पाऊंगा। तब भी भीम, नकुल, सहदेव जीवित रहेंगे। आचार्य मुझे क्षमा करें। हमारी सेनाओं और सेनापतियों के लिए उन पांडवों से निपटना भी सरल नहीं है। पितामह भीष्म के जैसे सेनापति होते हुए भी पिछले दस दिनों में एक भी पांडव महावीर या उनकी सेना का कोई प्रबल योद्धा नहीं मारा जा सका।

युद्ध की जय-पराजय ही तो बाद की राजनीति को जन्म देती है। पर दुर्योधन शायद कुशल राजनीतिज्ञ है। उसका अपना तो धर्म, नियम, आदर्श और सिद्धान्त नहीं है। वह केवल अपना स्वार्थ समझता है। किसी भी मूल्य पर, किसी भी माध्यम से। शक्ति, धन, सत्ता, राज्य, भोग सब कुछ चाहिए उसे, केवल अपने लिए। उसके पास सब कुछ हो पर किसी अन्य के पास कुछ भी न हो। इसलिए वह युद्धों को जन्म देता है। युद्ध की स्थिति पैदा कर देता है। जहाँ विजयी हो सकने की संभावना हो, वहीं युद्ध करता है और जहाँ पराजय की सम्भावना हो वहाँ धूर्तता का आश्रय लेता है। दुर्योधन क्षत्रिय तो है, पर वीर नहीं है। उसमें धर्म और विवेक का अंश भी नहीं है। उसकी राजनीति प्रजा के हित में कोई उदात्त कार्य नहीं करती। द्रोण बोले, जबतक अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा के लिए युद्धभूमि में प्रस्तुत है तबतक युधिष्ठिर को जीवित बन्दी करना असंभव है राजन्। दुर्योधन बोला, क्या आप कोई ऐसा षडयंत्र नहीं रच सकते जिसके कारण अर्जुन कहीं फँस जाए। द्रोण बोले, सेनापति का काम युद्ध का आदेश देना है राजन् षडयंत्र रचना नहीं। दुर्योधन बोला, यह षडयंत्र नहीं आचार्य मैं इसे रणनीति कहता हूँ। शत्रु की क्षमता को विभाजित कर उसके अलग-अलग खंडों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित करना युद्धकौशल है। द्रोण बोले षडयंत्रों का क्षेत्र राजा का होता है सेनापति का नहीं। दुर्योधन बोला यदि अर्जुन यहाँ नहीं हुआ तो क्या आप युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लायेंगे। क्या आप यह प्रतिज्ञा करेंगे? द्रोण बोला, अवश्य। मैं युधिष्ठिर को बन्दी बनाऊँगा। समझ गया। पांडवों की पराजय के बाद तुम उनके भाग का राज्य उन्हे सौंप देना चाहते हो। प्रिय दुर्योधन यदि तुमने यह कल सोच लिया होता तो आज गंगापुत्र बाणों की शैया पर नहीं होते किन्तु मेरे पास तुमने यह सुझाव लाकर मुझे अति प्रसन्न किया है। मैं कल युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर तुम्हे सौंप दूंगा।

दुर्योधन बोला, दु:शासन। सारी सेना में सूचना प्रसारित करवा दो कि कौरवों के प्रधान सेनापति आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को जीवित बंदी बनाकर मुझे सौंपेंगे। कर्ण बोला, क्या आपको अपने आचार्य प्रधान सेनापति पर विश्वास नहीं है। दुर्योधन बोला, पांडवों के संदर्भ में मैं उन पर विश्वास नहीं कर सकता क्योंकि वे पाण्डवों के प्रति कोमल भाव रखते हैं। शकुनि बोला, आचार्य को बाध्य करने के लिए इस प्रतिज्ञा का प्रचार करना आवश्यक है। दुर्योधन बोला, उनपर दृष्टि रखनी चाहिए। उनको चारों ओरसे घेरे रखना चाहिए ताकि वे युद्ध करते रहें और अपनी मनमानी न कर पाएँ। हमें तो उनका युद्ध कौशल चाहिए। शत्रुता अपने आपमें ही सुखदायी नहीं होती।

मनुष्य कैसे इतना मोहग्रस्त हो जाता है कि यह निर्णय भी नहीं कर पाता कि कौन-सा पक्ष उसका अपना है और कौन-सा कर्म उसका कर्त्तव्य है।

धृष्टद्युम्न के पास सेवक आया और बोला एक गुप्तचर समाचार लेकर आया है। गुप्तचर बोला, आचार्य द्रोण कल सम्राट युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का प्रयत्न करनेवाले है। धृष्टद्युम्न बोला, आचार्य द्रोण अपने आप को समझते क्या हैं? क्या वो यह समझते हैं कि हमें युद्ध कला नहीं आती? क्या सम्राट युधिष्ठिर इतनी असहाय गौ है जिसे रणभूमि से हाक दिया जाये।

युद्ध के शिबिर में सभी नरेश पांडव कृष्ण के साथ विचार विमर्श कर रहे हैं। कृष्ण बोले, युद्ध में क्रोध से नहीं समझ से काम लेना चाहिये कुमार धृष्टद्युम्न। आचार्य स्वयं क्या समझेंगे अपने को? उन्हें तो हम समझते है। उन्हें समझता है पार्थ,

मझले भैया भीम समझते हैं। आचार्य तो पितामह से भी कहीं अधिक कठिन लक्ष्य है क्योंकि वे तो ये भी नहीं बतायेंगे कि उन्हें रणभूमि से हटाने का उपाय क्या है? उनका उपाय तो हम लोगों को सोचना पडेगा। आप बडे भैया की सुरक्षा का प्रबन्ध कीजिये। दुर्योधन ने भी यह बडा ही अचूक बाण चलाया है क्योंकि वह यह जानता था कि आचार्य द्रोण चाहे कहे या ना कहे किन्तु पांडवों का वध करने में वे संकोच अवश्य करेंगे। तो दुर्योधन ने उनकी आत्मा के कन्धे से यह बोझ ही हटा दिया। किन्तु यदि वो बडे भैया को बन्दी बनाने में सफल हो गये तो यह युद्ध ही समाप्त हो जायेगा क्योंकि युद्ध बन्दी तो दास हो जाता है और आधुनिक समाज में दास व्यक्ति नहीं होता एक वस्तु हो जाता है तो उनके दास हो जाने के पश्चात इन्द्रप्रस्थ पर उनका कोई अधिकार नहीं रह जायेगा। यदि बडे भैया वीरगति को प्राप्त हुये तो यह युद्ध अवश्य चलता रहेगा क्योंकि इन्द्रप्रस्थ के उत्तराधिकारी एक नहीं अनेक है परन्तु दास को तो जब अधिकार ही नहीं होता तो उसका उत्तराधिकारी कौन होगा? इसलिये सेनापति धृष्टद्युम्न महाराज युधिष्ठिर की सुरक्षा का प्रबंध कीजिये। द्रुपद बोले, पुत्र वासुदेव कृष्ण ठीक कह रहे हैं। अर्जुन बोला, गुरुदेव आदरणीय अवश्य हैं महाराज किन्तु इधर भी उनके कई शिष्य हैं और फिर आप है उनके गुरु भाई, सात्यकि है, मत्स्य नरेश है। प्रधान सेनापति ने यह तो ठीक ही कहा था कि भ्राताश्री कोई असहाय गौ नहीं जिसे कुरुश्रेष्ठ रणभूमि से हांक ले जाये।

भीम अपने पुत्र घटोत्कच को अपने शिबिर में लेकर आता है। आओ पुत्र। भीम बोला, भ्राताश्री यह मेरा पुत्र घटोत्कच। घटोत्कच ने युधिष्ठिर को चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। युधिष्ठिर बोले, यशस्वी भव। घटोत्कच ने कृष्ण को प्रणाम किया। कृष्ण बोले, कीर्तिमान भव। घटोत्कच ने अर्जुन का चरण स्पर्श किया और बोला सेवक मानकर स्वीकार कीजिये। अर्जुन बोला, यह तुमने क्या कह दिया पुत्र? तुम तो अभिमन्यु से बडे हो पुत्र और तुम अपना स्थान स्वयं ग्रहण करोगे। यदि ऐसा है तो हे ज्येष्ठ पिताश्री जब परिवार संकट में था तो फिर अपने सेवक को युद्ध से भाग लेने का आदेश क्यों नहीं दिया? मैं मानता हूँ कि मेरी माता क्षत्राणी नहीं है किन्तु... कृष्ण बोले, जो तुम जैसे महावीर को जन्म दे वो आदरणीय नारी यदि क्षत्राणी न भी हो तो भी क्षत्राणी ही है क्योंकि नागफणि के पौधे पर चमेली का फूल तो नहीं आ सकता। हे पुत्र कोई जन्म से ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं होता। तुम वीरों की जाति के हो क्योंकि तुम महावीर हो। घटोत्कच बोला, हे चक्रधारी, हे गिरधर, हे नर में नारायण यदि ऐसा है तो माता द्रौपदी के पुत्रों और माता सुभद्रा के पुत्रों के भांति मैं रण में क्यों नहीं था? कृष्ण बोले, हे पुत्र सबके आने और जाने का एक उचित समय होता है। तुम यहां ठीक समय पर आये हो और हे महावीर भारत वर्ष के भविष्य के लिये तुम सदैव आदरणीय रहोगे और क्षत्राणियों के पुत्र सदैव तुम्हे आदर सहित प्रणाम करते रहेंगे। तुम भारत हो और भरत वंश कभी तुम्हारा ऋण नहीं चुका पायेगा। घटोत्कच बोला, प्रणाम। कृष्ण बोले, धन्य है वो माता जिसने तुम जैसे पुत्र को जन्म दिया हो। मैं वासुदेव कृष्ण उन्हे प्रणाम करता हूँ।

२) महाभारत युद्ध का ११ वां दिन (युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का प्रयास)

संजयने कहा, राजन्। सेनापतिका अधिकार प्राप्त करके महारथी द्रोण अपनी सेनाकी व्यूहरचना कर आपके पुत्रोंके सहित युद्धक्षेत्रको चले। उनकी दाहिनी ओर सिन्धुराज जयद्रथ, कलिंगनरेश और आपका पुत्र विकर्ण चल रहे थे। उनकी रक्षाके लिये गन्धारदेशकी घुड़सवार सेनाके सहित शकुनि उनके पीछे था। बायीं ओर कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति और दु:शासन आदि वीर थे। उनकी रक्षाका भार सुदक्षिण आदि काम्बोज वीरोंपर था। उन्हींके साथ शक और यवन-सेना भी चल रही थी। मद्र, त्रिगर्त्त, अम्बष्ठ, मालव, शिबि, शूरसेन, शूद्र, मलद, सौधीर, कितव तथा पूर्वी, पश्चिमी,

उत्तरी और दक्षिणी देशोंके सभी योद्धा आपके पुत्रोंके सहित दुर्योधन और कर्णके पीछे-पीछे चल रहे थे। वे सब अपनी-अपनी सेनाओंके बल और उत्साहको बढ़ाते जाते थे। समस्त योद्धाओंमें श्रेष्ठ कर्ण सेनामें शक्तिका संचार करता हुआ सबके आगे चल रहा था। आज कर्णको देखकर किसीको भीष्मका अभाव भी नहीं खलता था। सबके मुँहपर यही बात थी कि आज कर्णको सामने देखकर पाण्डवलोग रणक्षेत्रमें नहीं ठहर सकेंगे। कर्ण तो देवताओंके सहित स्वयं इन्द्रको भी जीत सकते हैं, फिर इन बल-पराक्रमहीन पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? भीष्म भी थे तो बहुत पराक्रमी, परंतु वे पाण्डवोंको बचाते रहते थे। सो अब कर्ण उन्हें अपने तीखे बाणोंसे तहस-नहस कर देंगे।

राजन्। इस प्रकार वे सब सैनिक कर्णकी प्रशंसा करते मन-ही-मन उसे आदर देते चल रहे थे। रणक्षेत्रमें पहुँचकर आचार्यने अपनी सेनाका शकटव्यूह बनाया। इधर धर्मराजने पाण्डवसेनाका क्रौञ्चव्यूह बना रक्खा था। उस व्यूहके मुखस्थानपर पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण और अर्जुन खड़े हुए अपनी वानरके चिह्नवाली ध्वजा फहरा रहे थे। इधर आपकी सेनाके मुहानेपर कर्ण था। कर्ण और अर्जुन दोनों ही एक-दूसरेपर विजय पानेके लिये उतावले हो रहे थे और दोनों ही एक-दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे। इसलिये दोनोंहीकी एक-दूसरे को देख रहे थे। उसी समय यकायक महारथी द्रोण आगे बढ़े और सारी सेनाके बीचमें आपके पुत्रसे कहने लगे, राजन्। तुमने भीष्मके बाद मुझे सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया है, सो मैं तुम्हें उसके अनुरूप फल देना चाहता हूँ। बताओ, मैं तुम्हारा क्या काम करूँ? तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे वही वर माँग लो।

इसपर राजा दुर्योधनने कर्ण और दु:शासनादिसे सलाह करके आचार्यसे कहा, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो महारथी युधिष्ठिरको बन्दी बनाकर मेरे पास ले आओ। यह सुनकर आचार्यने कहा, तुम कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको कैद करना ही चाहते हो, उनका वध करानेके लिये तुमने वर नहीं माँगा; इसलिये वे धन्य हैं। किंतु दुर्योधन। तुम्हें उनको मरवा डालनेकी इच्छा क्यों नहीं है? पाण्डवोंको जीतनेके पश्चात् फिर युधिष्ठिरको ही राज्य सौंपकर तुम अपना सौहार्द्र तो दिखाना नहीं चाहते? धर्मराजपर तुम्हारा स्नेह है, इसलिये वे अवश्य बड़े भाग्यवान् हैं; उनका जन्म सफल है तथा उनकी अजातशत्रुता भी सच्ची है।

राजन्। आचार्यके ऐसा कहते ही आपके पुत्रके हृदयमें जो भाव सदा बना रहता था, वह सहसा बाहर प्रकट हो गया। वह प्रसन्न होकर कह उठा, आचार्यपाद। युधिष्ठिर के मारे जानेसे मेरी विजय नहीं हो सकती; क्योंकि यदि हमने उन्हें मार भी डाला तो शेष पाण्डव अवश्य ही हमें नष्ट कर देंगे। सब पाण्डवोंको तो देवता भी नहीं मार सकते; इसलिये उनमेंसे जो भी बच जायेगा, वही हमारा अन्त कर देगा। यदि सत्यप्रतिज्ञ युधिष्ठिर मेरे काबूमें आ गये तो मैं उन्हें फिर द्यूतमें जीत लूँगा और तब उनके अनुयायी पाण्डवलोग भी फिर वनमें चले जायेंगे। इस तरह स्पष्ट ही बहुत दिनोंके लिये मेरी जीत हो जायगी। इसीसे मैं धर्मराजका वध किसी भी अवस्थामें नहीं करना चाहता।

द्रोणाचार्य बड़े व्यवहारकुशल थे। वे दुर्योधनका कूट अभिप्राय ताड़ गये, इसलिये उन्होंने उसे एक शर्तके साथ वर देते हुए कहा- यदि वीर अर्जुनने युधिष्ठिरकी रक्षा न की, तो तुम युधिष्ठिरको अपने काबूमें आया हुआ ही समझो। अर्जुनके ऊपर आक्रमण करनेका साहस तो इन्द्रके सहित देवता और असुर भी नहीं कर सकते। इसलिये यह काम मेरे वशका भी नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि वह मेरा शिष्य है और उसने मुझहीसे अस्त्रविद्या सीखी है, तथापि वह युवा है और पुण्यशील भी है। मेरे बाद वह इन्द्र और रुद्रसे भी अस्त्र प्राप्त कर चुका है और तुम्हारे ऊपर उसका कोप भी है ही। इसलिये उसकी उपस्थितिमें मैं यह काम नहीं कर सकूँगा। अत: जैसे बने, वैसे ही तुम उसे युद्धक्षेत्रसे दूर ले जाना। अर्जुनके जानेपर तो धर्मराज तुम्हारे हाथहीमें हैं। अर्जुनके दूर चले जानेपर यदि धर्मराज थोड़ी देर भी मेरे सामने डटे रहे तो मैं नि:संदेह उन्हें अपने वशमें कर लूँगा।

संजय बोला, राजन्। द्रोणाचार्यके इस प्रकार शर्तके साथ प्रतिज्ञा करनेपर भी आपके मूर्ख पुत्रोंने युधिष्ठिरको कैद किया

हुआ ही समझा। दुर्योधन यह जानता था कि द्रोणाचार्य पाण्डवोंपर प्रेम रखते हैं, इसलिये उनकी प्रतीज्ञाको स्थायी बनानेके लिये उसने वह बात सेनाके सभी पाण्डवोंमें घोषित करा दी। सैनिकोंने जब सुना कि आचार्यने राजा युधिष्ठिरको कैद करनेकी प्रतिज्ञा की है तो वे सिंहनाद करते हुए ताल ठोंकने लगे। अपने विश्वासपात्र गुप्तचरोंसे द्रोणकी इस प्रतिज्ञाका समाचार पाकर धर्मराज युधिष्ठिरने सब भाइयोंको और दूसरे राजाओंको भी बुलाया। फिर अर्जुनसे कहा, पुरुषसिंह। आचार्य जो कुछ करना चाहते हैं, वह तुमने सुन लिया? अब किसी ऐसी नीतिसे काम लो, जिसमें उनका विचार सफल न हो। उन्होंने एक शर्तके साथ प्रतिज्ञा की है और उस शर्तका सम्बन्ध तुम्हींसे है। अत: तुम मेरे पास रहकर ही युद्ध करो, जिससे कि द्रोणके द्वारा दुर्योधनकी इच्छा पूरी न हो सके।

अर्जुनने कहा, भ्राताश्री। जिस प्रकार मैं आचार्यका वध नहीं करना चाहता, उसी प्रकार आपसे दूर होनेकी भी मेरी इच्छा नहीं है। ऐसा करनेमें भले ही मुझे युद्धस्थलमें अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़े। भले ही नक्षत्रसहित आकाश गिर पड़े और पृथ्वीके टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, तथापि मेरे जीवित रहते स्वयं इन्द्रकी सहायता पाकर भी आचार्य आपको बंदी नहीं बना सकते। इसलिये जब तक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक आप द्रोणसे तनिक भी न डरें। मैं दावेके साथ कहता हूँ, मेरी यह प्रतिज्ञा टल नहीं सकती। जहाँतक मुझे स्मरण है मैंने कभी असत्य नहीं बोला, कहीं पराजय प्राप्त नहीं की और न कभी कोई प्रतिज्ञा करके उसे तोड़ा ही है।

संजय बोला, महाराज। फिर पाण्डवोंके शिबिरमें शफ, भेरी, मृदङ्ग और नगाड़ोंका शब्द होने लगा; पाण्डवलोग सिंहनाद करने लगे तथा उनकी प्रत्यञ्चाओंका टंकार और तालियोंका शब्द आकाशमें गूँजने लगा। यह देखकर आपकी सेनामें भी बाजे बजने लगे। फिर व्यूहरचनासे खड़ी हुई दोनों सेनाएँ धीरे-धीरे आगे बढ़कर आपसमें युद्ध करने लगीं। युद्ध आरम्भ हो गया। द्रोणाचार्य ने युद्ध आरम्भ किया। पांडवों की सेना मरने लगी। युधिष्ठिर बोले, तुम लोग मुझे घेरे क्यों खड़े हो? जाओ और आचार्य पर आक्रमण करो। यदि उन्हे न रोका गया तो वे आज ही युद्ध समाप्त कर देंगे। भीम बोला, चिन्ता न कीजिये भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, चिन्ता कैसे ना करूं अनुज। अपने सैनिकों की चिन्ता करना राजा का धर्म है। हे वत्स यह न भूलो कि ये अनगिनत सैनिक हमारे पक्ष में युद्ध कर रहे है वे हमारे शरीर का एक भाग है और उनके शव हमारे शवों से अधिक आदरणीय है। हम तो अपने अधिकारों के लिये युद्ध करते हैं किन्तु वे हमारे लिये युद्ध कर रहे हैं। यदि तुम लोग आचार्य का सामना नहीं कर पा रहे हो तो मैं उनसे युद्ध करूंगा। उधर क्या देख रहे हो प्रिय भीम? अर्जुन बोला, प्रधान सेनापति ने हमें आज आपके पास रहने का आदेश दिया है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, तो फिर मैं उस प्रधान सेनापति के आदेश को अस्वीकार करता हूं और आदेश देता हूं कि तुम लोग जाकर हमारी सेना के साधारण सैनिकोंको, योद्धाओंको आचार्य के प्रहार से बचाने का प्रयत्न करो। भीम बोला, मैं तो आज आप ही के पास रहूंगा भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, प्रिय अनुज भीम क्या तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगे? तुम लोग अवश्य ही कुछ मुझसे छिपा रहे हो? द्रोण ने पांडवों की सेना को खदेडना शुरू किया।

शकुनि बोला, यदि इस बार मैं युद्ध में असफल हो गया तो हस्तिनापुर, आर्यवर्त को छोड़कर गान्धार ही चला जाऊँगा। शकुनि की इस मूर्खतापूर्ण बक-बक को गुरुदेव द्रोण ने अनसुना कर दिया। द्रोण बोले, हे दुर्योधन जब अर्जुन युधिष्ठिर से दूर होगा, तब उस अवसर का लाभ उठाकर मैं युधिष्ठिर को बन्दी बना लूँगा।

युद्ध का ग्यारहवाँ दिन उदित हुआ। कौरवों का नेतृत्व करने हेतु उनका राजध्वज फहराते हुए गुरुदेव द्रोण युद्ध में आये। भीष्म पतन के कारण रातभर विकल रही कौरव-सेना आज द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में गर्जना करने लगी। कुरुक्षेत्र का परिसर उन गगनभेदी गर्जनाओं से गूँजने लगा। सृञ्जय (पांचाल) वीरोंने आचार्यकी सेनाको नष्ट-भ्रष्ट करनेका बहुत

प्रयत्न किया, किंतु उनसे रक्षित होने के कारण वे वैसा कर न सके। इसी प्रकार दुर्योधनके महारथी योद्धा भी अर्जुनसे सुरक्षित पाण्डवी सेनापर काबू न पा सके। द्रोणाचार्यके छोड़े हुए भयंकर बाण पाण्डवोंकी सेनाको संतप्त करते हुए सब ओर सनसना रहे थे। इस समय उनमेंसे किसी भी वीरकी दृष्टि आचार्यपर ठहर नहीं पाती थी। इस प्रकार पाण्डवोंकी सेनाको मूर्छितसी करके वे अपने पैने बाणोंसे धृष्टद्युम्नकी सेनाको कुचलने लगे। उनके छोड़े हुए बाण अनेकों रथियों, घुड़सवारों, गजारोहियों और पैदलोंका नाश कर रहे थे। इससे शत्रुओंको बहुत भय होने लगा। आचार्यने घूम-घूमकर सेनाको घबराहटमें डाल दिया और उनके भयको बढ़ा दिया। इस समय युद्धभूमिमें रक्तकी भीषण नदी बहने लगी, जो सैकड़ों वीरोंको यमराजके घर ले जा रही थी और जिसे देखकर कायरोंके दिल दहल जाते थे। अर्जुन और कर्ण के बीच घमासान युद्ध हो रहा है। भीम और दुर्योधन में गदा युद्ध हो रहा है। अभिमन्यु और जयद्रथ आपस में भिड रहे हैं। शल्य और नकुल लड़ रहे हैं। अब आचार्य द्रोणपर सब ओरसे युधिष्ठिरादि महारथी टूट पड़े। परन्तु आपके पराक्रमी वीरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। बड़ा ही रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया।

शकुनि बोला, रथ रोको सारथी। सहदेव और शकुनि आपस में बाण चला रहे हैं। द्रोण और युधिष्ठिर परस्पर युद्ध कर रहे हैं। युधिष्ठिर द्रोण पर भाले फेंकने लगा। इतने में ही अर्जुन वहां पर आ गया। अर्जुन ने द्रोण को बाणों से बींध दिया। शकुनि ने सहदेव का रथ तोडकर उसे गिरा दिया। शकुनि बोला, भान्जे अपनी मृत्यु को आमन्त्रित क्यों कर रहा है? शकुनि और सहदेव पदाति युद्ध कर रहे हैं।

महामायावी शकुनिने सहदेवपर धावा किया और अपने पैने बाणोंसे उसके सारथी, ध्वजा और रथको बींध दिया। इसपर सहदेवने अत्यन्त कुपित होकर शकुनिके रथकी ध्वजा और धनुषको काट डाला तथा उसके सारथी और घोड़ोंको नष्ट करके बाणोंसे उसें बींध दिया। तब शकुनि गदा लेकर अपने रथसे कूद पड़ा और उसीसे सहदेवके सारथीको रथसे नीचे गिरा दिया। इस प्रकार रथहीन हो जानेपर वे दोनों वीर हाथमें गदाएँ लेकर युद्धके मैदानमें क्रीड़ा-सी करने लगे। शकुनि बोला, सहदेव तुझे कल फिर देखूंगा।

द्रोणने राजा द्रुपदको बाण मारे। उनका जवाब उन्होंने अनेकों बाणोंसे दिया। इसपर आचार्यने उनपर उससे भी अधिक बाण छोड़े। भीमने विविंशतिपर बाणोंका वार किया, किंतु इससे वह वीर टससे मस भी न हुआ। यह देखकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उसने यकायक भीमके घोड़े मार डाले तथा उनके रथकी ध्वजा और धनुषको भी काट दिया। इससे सभी सेना वाह-वाह करने लगी। भीम शत्रुका ऐसा पराक्रम सहन न कर सके। इसलिये उन्होंने अपनी गदासे उसके सब घोड़े मार डाले। दूसरी ओर शल्यने हँसते हुए अपने प्यारे भान्जे नकुलको बींधना आरम्भ किया। प्रतापी नकुलने बात-की-बातमें शल्यके घोड़े, छत्र, ध्वजा, सूत और धनुषको नष्ट कर डाला और फिर अपना शफ बजाया। धृष्टकेतुने कृपाचार्यके छोड़े हुए तरह-तरहके बाणोंको काटकर बाणोंसे उन्हें बींध दिया और उनकी ध्वजा काट डाली। तब कृपाचार्यने बड़ी बाणवर्षा करके धृष्टकेतुको रोका और उसे अत्यन्त घायल कर दिया। सात्यकिने अपने बाणोंसे कृतवर्माकी छातीपर वार किया और फिर हँसते-हँसते बाणोंसे उसे घायल कर दिया। इसपर कृतवर्माने बड़ी फुर्तीसे बाण छोड़े। किंतु उनसे घायल होकर भी सात्यकि पर्वतके समान अचल बना रहा।

राजा द्रुपद भगदत्तसे भिड़ गये। उनका बड़ा ही अद्भुत युद्ध हुआ। भगदत्तने राजा द्रुपदको उनके सारथीके सहित बींध डाला तथा उनके रथ और उसकी ध्वजामें भी बाण मारे। इसपर द्रुपदने कुपित होकर भगदत्तकी छातीमें बाण मारा। दूसरी ओर भूरिश्रवा और शिखण्डी बड़ा भीषण युद्ध कर रहे थे। महाबली भूरिश्रवाने बाणोंकी भारी बौछारोंसे महारथी शिखण्डीको

आच्छादित कर दिया। इसपर शिखण्डीने कुपित होकर बाणोंसे भूरिश्रवाको अपने स्थानसे डिगा दिया। क्रूरकर्मा राक्षस घटोत्कच और अलम्बुष दोनोंही सैकड़ों प्रकारकी मायाएँ जाननेवाले थे और अभिमानी होनेके कारण एक-दूसरेको नीचा दिखानेपर तुले हुए थे। वे सबको आश्चर्यचकित करते अन्तर्धान होकर युद्ध करने लगे। इसी प्रकार चेकितान और अनुविन्दका तथा क्षत्रदेव और दुर्योधन पुत्र लक्ष्मणका भी संग्राम होने लगा।

इसी समय पौरव गर्जना करता हुआ अभिमन्युकी ओर दौड़ा। दोनोंका बड़ा घोर युद्ध छिड़ गया। पौरवने बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको बिल्कुल ढक दिया। तब अभिमन्युने उसके ध्वजा, छत्र और धनुष काटकर पृथ्वीपर गिरा दिये। फिर बाणोंसें उसने पौरवको और उसके सारथी तथा घोड़ोंको घायल कर दिया। इसके बाद वह ढाल-तलवार लेकर पौरवके रथके जूएपर कूद पड़ा और वहींसे उसके बाल पकड़ लिये; फिर एक लातसे सारथीको रथसे गिरा दिया और तलवारसे ध्वजा उड़ा दी तथा पौरवको बाल पकड़कर झकोरने लगा। जयद्रथसे पौरवकी यह दुर्दशा नहीं देखी गयी। इसलिये वह ढाल-तलवार लेकर अपने रथसे कूद पड़ा। जयद्रथको आते देखकर अभिमन्युने पौरवको छोड़ दिया और बाजकी तरह तुरंत ही रथसे उछलकर उसके सामने आ गया। जयद्रथने उसपर प्रास, पट्टिश और तलवार आदि कई प्रकारके शस्त्रोंकी वर्षा की; किंतु अभिमन्युने उन सबको तलवारसे ही काट डाला और ढालसे रोक दिया। उन दोनों वीरोंकी फुर्ती देखने लायक थी। उनकी तलवारोंके चलाने, टकराने, रोकने तथा बाहर या भीतरकी ओर घुमानेमें कोई अन्तर ही नहीं जान पड़ता था। दोनों ही वीर भीतर और बाहरकी ओर घूमते हुए युद्धके अद्भुत पैंतरे दिखा रहे थे। इतनेहीमें अभिमन्युकी ढालसे लगकर जयद्रथकी तलवार टूट गयी इसलिये वह तुरंत ही अपने रथपर चढ़ गया। इसी समय अवकाश पाकर अभिमन्यु भी अपने रथपर जा बैठा।

अभिमन्युको रथपर चढ़ा देखकर कौरवपक्षके सब राजाओंने मिलकर उसे घेर लिया। अत: उसने जयद्रथको छोड़कर अब सभी सेनाको संतप्त करना आरम्भ किया। इसी समय शल्यने उसपर एक अग्निशिखाके समान देदीप्यमान भयंकर शक्ति छोड़ी। अभिमन्युने उछलकर उसे बीचहीमें पकड़ लिया और उसी शक्तिको अपने पूरे बाहुबलसे शल्यकी ओर छोड़ा। उसने राजा शल्यके सारथीको मारकर रथसे नीचे गिरा दिया। यह देखकर राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, युधिष्ठिर, सात्यकि, केकयराजकुमार, भीम, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल-सहदेव और द्रौपदीके पुत्रोंने वाह-वाहकी ध्वनिसे आकाशको गुँजा दिया तथा वे अभिमन्युका हर्ष बढ़ाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे।

सारथीको मरा हुआ देखकर राजा शल्यने लोहेकी ठोस गदा उठायी और क्रोधसे गर्जना करते हुए वे रथसे कूद पड़े। उन्हें दण्डधर यमराजके समान अभिमन्युकी ओर झपटते देख तुरंत ही भीम अपनी भारी गदा लिये उनके सामने आ गये। संग्राममें भीमकी गदाका प्रहार मद्रराजको छोड़कर और कोई सहन नहीं कर सकता था तथा मद्रराजकी गदाके वेगको सहनेवाला भी भीमके सिवा और कोई नहीं था। वे दोनों ही वीर गदा घुमाते हुए मण्डलाकार चक्कर काटने लगे। दोनोंका समानरूपसे युद्ध हो रहा था, कोई भी घट-बढ़कर नहीं जान पड़ता था। आखिर, भीमकी चोटोंसे शल्यकी भारी गदाके टुकड़े-टुकड़े हो गये तथा शल्यके प्रहारोंसे आगकी चिनगारियाँ उगलती हुई भीमकी गदा वर्षाकालमें पटबीजनोंसे घिरे हुए वृक्षके समान दिखायी देने लगी। इस प्रकार वे दोनों ही गदाएँ आपसमें टकराकर बार-बार आग प्रकट कर देती थी। दोनों वीरोंपर गदाओंके अनेकों प्रहार हुए, किंतु दोनों ही टससे मस न हुए। अन्तमें बहुत घायल हो जानेके कारण वे दोनों ही युद्धभूमिमें गिर गये। शल्य अत्यन्त व्याकुल होकर लंबी-लंबी साँसें ले रहे थे। उन्हें तुरंत ही महारथी कृतवर्मा अपने रथमें डालकर ले गया। महाबाहु भीमको भी थोड़ी देरमें होश आ गया और वे खड़े होकर फिर हाथमें गदा लिये युद्धके मैदानमें दिखायी देने लगे।

मद्रराजको युद्धके मैदानसे बाहर गया देखकर आपके पुत्र अपनी चतुरङ्गिणी सेनाके सहित थर्रा उठे तथा विजयी

पाण्डवोंसे पीड़ित होकर भयसे इधर-उधर भाग गये। इस प्रकार कौरवोंको जीतकर पाण्डवलोग हर्षमें भरकर बार-बार सिंहनाद और हर्षध्वनि करने लगे तथा नरसिंगे, मृदङ्ग और नगाड़े आदि बजाने लगे। जब द्रोणाचार्यने देखा कि शत्रुओंके हाथसे अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण कौरवोंकी विशाल वाहिनीके पैर उखड़ गये हैं, तो उन्होंने पुकारकर कहा- शूरवीरों। मैदानसे भागो मत। फिर वे क्रोधमें भरकर पाण्डवोंकी सेनामें जा घुसे और राजा युधिष्ठिरके सामने आये। आज सर्वप्रथम कुरु-सेनापति द्रोणाचार्य युधिष्ठिर पर ही टूट पड़े। कृष्ण की आज्ञा से सात्यकि, विराट, द्रुपद, कैकेय, व्याघ्रदत्त और सिंहसेन को लेकर युधिष्ठिर की रक्षा के लिए दौड़े। किन्तु आज द्रोणाचार्य को रोकना असम्भव हो रहा था।

युधिष्ठिरने अपने तीखे बाणोंसे उन्हें घायल कर दिया। इसपर आचार्यने उनके धनुषको काटकर बड़ी तेजीसे आक्रमण किया। आज वे धर्मराजको पकड़ना चाहते थे; इसलिये उन्हें रोकनेके लिए जो-जो योद्धा सामने आये, उन्हींको उन्होंने प्रहार करके क्षुब्ध कर दिया। उन्होंने बाणोंसे शिखण्डीको, उत्तमौजाको, नकुलको, सहदेवको, युधिष्ठिरको, द्रौपदीके पुत्रोंको, सात्यकिको और मत्स्यराज विराटको घायल कर दिया। इतनेहीमें युगन्धरने उनकी गति रोक दी। तब आचार्यने राजा युधिष्ठिरको और भी घायल करके एक भालेसे युगन्धरको रथसे नीचे गिरा दिया। इसी समय धर्मराजको बचानेके लिये राजा विराट, द्रुपद, केकयराजकुमार, सात्यकि, शिबि, व्याघ्रदत्त और सिंहसेन- इन सब वीरोंने बहुत-से बाण बरसाकर आचार्यका रास्ता रोक दिया। पञ्चालदेशीय व्याघ्रदत्तने बाण मारकर द्रोणको घायल कर दिया। इससे लोगोंमें बड़ा कोलाहल होने लगा। सिंहसेनने भी आचार्यको बाणोंसे बींध दिया और वह सब महारथियोंको भयभीत करके स्वयं हर्षसे अट्टहास करने लगा। किंतु द्रोणाचार्यने क्रोधमें भरकर बाणोंसे इन दोनों वीरोंके सिर उड़ा दिये तथा अन्य महारथियोंको बाणजालसे आच्छादित कर मृत्युके समान युधिष्ठिरके सामने जाकर डट गये। आचार्यका ऐसा पराक्रम देखकर सब सैनिक यही कहने लगे कि ये इसी समय युधिष्ठिरको पकड़कर हमारे महाराजको सौंप देंगे।

जिस समय आपके सैनिक इस प्रकार चर्चा कर रहे थे, उसी समय अर्जुन ने बड़ी तेजीसे तिलमिलाकर कृष्ण से कहा, हे माधव, नन्दिघोष को आचार्य द्रोण के पास ले चलो और अपने रथके शब्दद्वारा सब दिशाओंको गुँजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने युद्धके मैदानमें खूनकी नदी बहा दी, जिसमें रथ भँवरके समान जान पड़ते थे तथा जो शूरवीरोंकी हड्डियोंसे भरी हुई, शवरूप किनारोंको बहा ले जानेवाली, बाणसमूहरूप फेनसे व्याप्त तथा प्रासरूप मछलियोंसे भरी हुई थी। उस नदीको पार कर उन्होंने कौरव वीरोंको युद्धके मैदानसे भगा दिया और फिर अपनी घनघोर बाणवर्षासे शत्रुओंको अचेत करते हुए वे सहसा द्रोणाचार्यकी सेनाके सामने आ गये। धनञ्जयकी बाणवर्षाके कारण दिशाएँ, अन्तरिक्ष, आकाश और पृथ्वी- कुछ भी दिखायी नहीं देता था; सब बाणमय-से जान पड़ते थे। तब तक ज्वालामुखी के समान दहकता कर्ण रणभूमि में निरंकुश भ्रमण कर रहा था, अर्जुन को उसके आगे ले जाने में धोखा था। अत: कृष्ण ने भीम को कर्ण से भिड़ाया। उन दोनों में छिड़े हुए एक-दूसरे से न हारनेवाले घनघोर युद्ध को देखते हुए ग्यारहवाँ दिन अस्त होने आ गया।

इतनेहीमें सूर्य अस्त हो गया और अन्धकार फैलने लगा। युद्ध समाप्ति का शंख बज उठा। और ११ वें दिन का युद्ध समाप्त हुआ। ऐसे में शत्रु, मित्र-किसीका भी पता लगना कठिन हो गया। यह देखकर द्रोणाचार्य और दुर्योधनने अपनी सेनाको युद्ध बंद करनेकी आज्ञा दी तथा अर्जुनने भी अपनी सेनाको शिबिरकी ओर जानेका संकेत किया। इस प्रकार शत्रुओंके दाँत खट्टे कर वे श्रीकृष्णके साथ बड़े आनन्दसे सारी सेनाके पीछे अपनी छावनीकी ओर चले। इस समय पाञ्चाल और सृञ्जय वीर उनकी उसी प्रकार प्रशंसा कर रहे थे, जैसे ऋषिलोग सूर्यकी स्तुति करते हैं।

शान्तनु स्वर्ग में उद्विग्न बैठा देख रहा है। इतने में एक अप्सरा आती है और बोली, ये स्वर्ग है महाराज शान्तनु। यहां

उदासी के लिये कोई स्थान नहीं। यहां उदास होकर देवेन्द्र का अपमान मत कीजिये। शान्तनु बोले, आनन्द का स्त्रोत तो स्वयं के भीतर से ही फूटता है देवि। कोई व्यक्ति उदास होना नहीं चाहता फिर भी उदास होता रहता है। अप्सरा बोली, आप व्यक्ति नहीं आत्मा है राजन जो पीछे छूट गया सो छूट गया। शान्तनु बोले, नहीं। पीछे कुछ नहीं छूटता। मैं अपने वंशजों में वहां भी हूं। हर दिन के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो रहा हूं और बाणों की शैया पर लेटा हुआ युद्ध की समाप्ति की प्रतीक्षा भी कर रहा हूं। मेरे पूर्वजों ने मुझे एक सुखी और सन्तुष्ट हस्तिनापुर दिया था और आज उसकी दुर्दशा तो देखो उस दुर्दशा का कारण मैं हूं देवि मैं। मेरा हस्तिनापुर आज बाणों की शैया पर पडा है और मुझे ऐसा लग रहा है आदरणीय शरीर के आर-पार हो जानेवाला हर बाण भारतवर्ष की छाती भेद गया हो। कुरुक्षेत्र की रणभूमि वास्तव में मेरी रणभूमि है देवि मेरी। मैं ही बाण चला भी रहा हूं और मैं ही बाण खा भी रहा हूं। मैं ही धृतराष्ट्र हूं और मैं ही युधिष्ठिर। वो भी मैं ही था जिसने द्रौपदी को दांव पर लगाया था और वो हाथ भी मेरा ही था जिसने द्रौपदी को देखकर भरी सभा में अपनी जंघा पीठी थी और वे हाथ भी मेरे ही थे जो द्रौपदी के वस्त्र तक पहुंचे। मैं इस अश्लील वास्तविकता से भाग नहीं सकता देवि। भाग नहीं सकता। क्योंकि यह वास्तविकता मेरी है। मैं अपने पुत्र देवव्रत के पास जाकर उसके घावों को प्रणाम करना चाहता हूं। परन्तु मैं उसके पास जाने का साहस नहीं कर पा रहा हूं। दिन पर दिन बीत गये। भीष्म सो रहे हैं और सपना देख रहे हैं।

शान्तनु की छाया भीष्म के पास आयी। शान्तनु बोला, हे अद्वितीय योद्धा, हे ज्येष्ठपुत्र शान्तनु का प्रणाम स्वीकार करो। भीष्म बोले, पिताश्री आप, प्रणाम। देखिये मैं आज आपको उठकर प्रणाम भी नहीं कर सकता। आपके प्रपौत्र सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के बाणों ने भूमि के इस टुकडे से मुझे बांध दिया है। उसके बाण खाकर मैंने जिस आनन्द का अनुभव किया है वो मैं आपको बता नहीं सकता। ये आपके लिये भी गर्व का विषय है पिताश्री कि आप उसके पूर्वज हैं।

शान्तनु बोले, मेरे लिये तो गर्व का विषय तुम हो पुत्र तुम। और मैं ही क्यों तुम पर तो ये भारत वर्ष सदैव गर्व करेगा। अम्बा तक का ऋण उतार देनेवाले हे महारथी आज मैं तुम्हे साक्षी बनाकर अपनी मातृ भूमि से क्षमा मांगता हूं। मेरा अपराध यह है कि मैंने सत्यवती को हस्तिनापुर से अधिक प्रेम किया। धृतराष्ट्र मेरी मरूभूमि में उगा हुआ एक वृक्ष है और दुर्योधन उस वृक्ष का फल। सत्यवती के लिये मेरा प्रेम मेरा निहित स्वार्थ बन गया मैंने राजनीति में अपने निज स्वार्थ का विष घोलने का प्रयत्न किया है। हे मातृभूमि मुझे क्षमा कर दे। भीष्म बोले, इतिहास के पुल के नीचे से समय का जो पानी बह गया है पिताश्री वो तो बह गया। वो पानी अब लौट कर नहीं आ सकता किन्तु यदि अपराध हुआ है तो वो अपराध मुझसे हुआ है। अपने पिताश्री के प्रति मेरी भक्ति, मेरा निहित स्वार्थ बन गई थी। जब भी पिता अपने पुत्र को पुत्र अपने पिता को मातृभूमि से अधिक महत्व देगा तो यह रणभूमि अवश्य सजेगी। लहू की वर्षा अवश्य होगी। शवों के ढेर अवश्य लगेंगे। यह युद्ध मेरी भूल का परिणाम है पिताश्री। शान्तनु बोले, नहीं पुत्र, नहीं। भीष्म बोले, हां पिताश्री। फिर भी मैंने भरतवंश की ओर आते ही सर्वनाश की आंधी की दिशा बदलने का पूर्ण प्रयास किया पर सफल नहीं हो सका। मैं आपसे और अपने सारे पूर्वजों से क्षमा चाहता हूं। शान्तनु बोले, सच कहता हूं पुत्र कि अब इस देश का नाम भारतवर्ष के स्थान पर भीष्म पर्व या देवस्थान हो जाना चाहिये। भीष्म बोले, नहीं पिताश्री। चक्रवर्ती महाराज भरत के वंशज भारतवंशी रहकर ही अच्छे लगेंगे फिर मेरे वस्त्रों पर उस मौन की धूल भी है जिसके कारण भरतवंश कुरुक्षेत्र की रणभूमि में खडा अपने सर्वनाश का द्वार खटखटा रहा है। हस्तिनापुर के अपराधियों में कहीं न कहीं मैं भी खडा हुआ हूं परन्तु बाणों की शैया पर लेटे लेटे कदाचित उस अपराध का प्रायश्चित कर रहा हूं। शान्तनु बोले, तुमने कोई अपराध नहीं किया है पुत्र। तुमने तो जो किया है उसके लिये भरतवंश और भारतवर्ष सदैव के लिये तुम्हारा आभारी हो गया है। यहां बाणों की शैया पर बहुत

लेट चुके तुम, अब तुम चलो मेरे साथ। वहां स्वर्गलोक में सब तुम्हारे दर्शनों के अभिलाषी हैं। भीष्म बोले, मेरे दर्शनों के। शान्तनु बोले- हां पुत्र। वैसे तो वहां अनगिनत योद्धा हैं किन्तु किसी के पास तुम्हारे अनगिनत घाव जैसा एक भी घाव नहीं। चलो। भीष्म बोले, नहीं पिताश्री। मैं अभी आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकता क्योंकि ज्येष्ठ भरतवंशज होने के नाते मैं यहां आतिथ्येय ही हूं। और अतिथियों को विदा करने से पहिले मैं जाकर आतिथ्य की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता। जिन लोगों को जाना है मैं उन लोगों को विदा करने के उपरान्त ही अपनी अन्तिम यात्रा आरम्भ करूंगा। और फिर यह भी है पिताश्री मैंने आपको वचन दिया था कि जब तक हस्तिनापुर सुरक्षित नहीं हो जाता मैं इस मृत्युलोक को नहीं त्यागूंगा। यही तो आपकी इच्छा मृत्युवाले वरदान का तात्पर्य है पिताश्री। आप मेरे लिये दु:खी मत होइये। क्योंकि स्वयं अपने आपके लिये मैं भी दु:खी नहीं हूं। शान्तनु चले जाता है। भीष्म की नींद खुल जाती है।

आचार्य द्रोण भीष्म के पास आते हैं और बोले हे गंगापुत्र आपको मेरे आशीर्वाद की आवश्यकता नहीं है फिर भी आज ये ब्राह्मण आपको एक आशीर्वाद देना चाहता है। आपके जीवनकाल का एक पारितोषिक यही हो सकता है कि आपको मोक्ष प्राप्त हो। मैं कदाचित अपने लिये ईश्वर से यह पारितोषिक मांग भी नहीं सकता क्योंकि मैं इस पारितोषिक के योग्य भी नही हूं। निष्काम कर्मयोगी का दृष्टान्त आज केवल आप हैं। हम सब तो कहीं ना कहीं अपने निहित स्वार्थ, निहित कामना, मोह की डोरी से बन्धे हैं। हे महापुरुष मुझे आपसे पहिले जाना है इसलिये इस ब्राह्मण का अन्तिम प्रणाम।

द्रोण चले कर भीष्म को अन्तिम आज प्रणाम, फिर न दिखेगा भीष्म सा धीर, वीर, निष्काम।

कुरुक्षेत्र में ये रातें बड़ी काली हैं। एक क्षण को दूसरा क्षण नहीं दिखाई दे रहा है। सूरज निकलता है तो लगता है जैसे नही निकलता। लगता है कि जैसे एक रात के बाद दूसरी रात ही आ गई है। वीर योद्धा अपने घावों की मशाले जलाये रास्ता खोजते रहते हैं और सोचते रहते हैं कि अन्धेरे का ये जंगल कब खत्म होगा और वे कब उजाले की सीमा में पांव धरेंगे। किन्तु पांडव श्रीकृष्ण की छाया में शान्त हैं और कौरव अपनी अपनी छाया के साथ अकेले और बेचैन।

दुर्योधन के शिबिर में सब मन्त्रणा कर रहे हैं। दुर्योधन बोला, द्वारपाल क्या आचार्य द्रोण तुमसे कुछ भी कहकर नहीं गये? कर्ण बोला, यदि कहा होता तो इसने पहिले ही बता दिया होता मित्र। शकुनि बोले, वे अपने प्रिय पांडव शिष्यों को मिलने गये होंगे। उन्हे बताने गये होंगे कि कल वो कौनसा व्यूह रच रहे हैं और उसकी काट क्या है? यह तुम सब मेरी ओर इस तरह क्यों घूर रहे हो? अरे जब गंगापुत्र भीष्म स्वयं अपनी पराजय का उपाय बता सकते हैं तो फिर आचार्य द्रोण ऐसा क्यों नहीं कर सकते? यह भी नहीं भूलना चाहिये ये दोनों ही महापुरुष निष्ठा की एक ही मिट्टी से बने हुये है भानजो।

कर्ण बोला, महारथी शकुनि गंगापुत्र भीष्म और महारथी द्रोणाचार्य की निष्ठाओंपर सन्देह करने से बडा पाप इस रणभूमि में और कोई तो हो ही नहीं सकता। वो चाहते तो उधर से भी युद्ध कर सकते थे। और यह आपके प्रिय भान्जे दुर्योधन का सौभाग्य है कि गंगापुत्र भीष्म ने इन्हीं के ध्वज तले युद्ध किया और आचार्य द्रोण भी उसीके ध्वजतले युद्ध कर रहे हैं। मेरा मन उनकी ओर से आज भी मैला है किन्तु मैं उनपर विश्वासघात का आरोप नहीं लगा सकता। उनके ध्वजतले युद्ध करने में एक गर्व का अनुभव होता है और यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं गंगा पुत्र भीष्म के ध्वज तले युद्ध नहीं कर पाया क्योंकि कृपया आप गंगापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण जैसे श्रेष्ठ योद्धाओं का नाम आदर सहित लिया कीजिये। शकुनि बोले, मैं जिनका आदर नहीं करता अंगराज कर्ण उनका नाम भी आदर सहित नहीं लेता। मेरे गान्धार में आदर इतना सस्ता नहीं है कि उसे बांटते फिरो। ये माना कि आचार्य द्रोण एक महान यौद्धा हैं किन्तु फिर भी वो तुम जैसे निष्ठावान नहीं है। दु:शासन बोले, परन्तु मामाश्री आप इन्हें... कर्ण बोला, पर आप इन्हे चुप न कराओ दु:शासन। कर्ण बोला, मैं निष्ठावान नहीं हूं

गान्धार नरेश, मैं ऋणी हूँ अपने इस मित्र का। ऋण और निष्ठा में बडा अन्तर होता है मामाश्री। निष्ठा की बात मैं ऋण उतारने के बाद ही कर सकता हूँ। किन्तु वे निष्ठावान हैं। यदि ऐसा न होता तो गंगापुत्र भीष्म को यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि मैं पांडवों का वध नही करूंगा। ऐसे खरे लोग बडे आदरणीय होते हैं मामाश्री। शकुनि बोले, तुम्हारे स्वर मुझे बहुत बदले-बदले लग रहे हैं अंगराज। किस द्विविधा में हो? कर्ण बोला, जो वीर पुरुष होते हैं मामाश्री, वो कभी द्विविधा में नहीं होते वे यदि कोई अशुद्ध कार्य भी करते हैं तब भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते। दुर्योधन बोला, क्या तुम यह कहना चाहते हो कि तुम केवल मेरे ऋणी हो तो जाओ मित्र फिर मैंने तुम्हे आज से अपने उस ऋण से मुक्त किया। मैं तो आज तक इसी भ्रम में था कि तुम्हारे और मेरे बीच केवल मित्रता का नाता है। यदि मुझे किसी की निष्ठा पर भरोसा था तो केवल तुम्हारी ही निष्ठा पर और आज तुम यह कह रहे हो कि तुम निष्ठावान नहीं हो। तुम केवल ऋणी मात्र हो फिर क्या तुम मेरे मित्र नहीं हो, केवल ऋणी हो। कर्ण बोला, ऋण चुकाये बिना मैं तुम्हारे प्रति अपनी निष्ठा सिद्ध नहीं कर सकता मित्र। जो ऋणी होते है उनका किसी पर अधिकार नहीं होता। ऋण की डोरी मे बन्धी हुई मेरी निष्ठा तुम्हारे यह प्रश्न ऋण चुक जाने के बाद करना। कि मेरी निष्ठा तुम्हारे प्रति है या नहीं? दुर्योधन बोला, मैंने तुमसे कहा न मित्र कि जाओ मैंने तुम्हे तुम्हारे उस ऋण से मुक्त किया। कर्ण बोला, दान लेना मेरे लिये उचित नहीं है मित्र, मैंने तो देवताओं को भी दान दिया है मित्र किन्तु आज तक किसीसे दान नहीं लिया। यदि तुमको मेरी निष्ठा पर सन्देह है मित्र तो यह देखो और कटार अपनी छाती में भौंकने का यत्न करता है कि इतने में ही झपटकर दुर्योधन ने कर्ण का हाथ पकडा। इतने में ही वहां पर आचार्य द्रोण आ जाते हैं। दुर्योधन बोला, मैं क्षमा चाहता हूं। कर्ण बोला, मित्रों के बीच क्षमा याचना का कोई स्थान नहीं और दोनों गले लग जाते हैं।

दु:शासन बोला, आप कहां चले गये थे गुरुदेव। शकुनि बोले, प्रणाम आचार्य, हम सब तो चिन्ता में पड़ गये थे कि अभी तक आप... द्रोण बोले, गंगापुत्र के पास गया था। सब बैठ जातें हैं। अर्जुन के होते हुये युधिष्ठिर को बन्दी बनाना सम्भव नहीं लगता है कुमार। दुर्योधन आचार्य को प्रणाम कर बोला, आज युद्ध का ग्यारहवाँ दिन भी बीत गया आचार्य किन्तु हम वहीं खड़े है जहाँ से चले थे। द्रोण बोले, राजन्। योद्धा का काम तो युद्ध करना ही है। जय-पराजय तो भाग्य के अधीन है। दुर्योधन बोला जब राजा और सेनापति के हाथ में कुछ नहीं है सब कुछ विधाता के ही हाथ में है तो फिर हम यह युद्ध क्यों कर रहे है? द्रोण बोले, राजन्। तुमसे कुछ छिपा तो है नहीं। युद्ध में सबसे आगे तो तुम ही थे। हमने उत्तम व्यूह रचा था। सब पक्षों तथा प्रपक्षों का ध्यान रखा था। दक्षिण पक्ष में जयद्रथ, कलिंगराज और विकर्ण थे। उनका प्रपक्ष शकुनि था। वाम पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति तथा दु:शासन थे। उनकी सहायता के लिए कंबोज, शक तथा यवन थे। उनके पीछे कर्ण था। कर्ण की रक्षा के लिए मद्र, त्रिगर्त, अंबुष्ट, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, शिवि, शूरसेन, मलद के श्रेष्ठ योद्धा थे। दुर्योधन बोला, तो फिर हमें अपने लक्ष्य में सफलता क्यों नहीं मिली? द्रोण बोले, इसके लिए न तो मैं अपने आपको दोषी मानता हूँ और न किसी और को। सभी सम्पूर्ण युद्ध के लक्ष्य तथा परिप्रेक्ष्य को भूलकर अपना व्यक्तिगत युद्ध लड़ने लग गये। सात्यकि कृतवर्मा से, शकुनि सहदेव से, भूरिश्रवा शिखंडी से, शल्य नकुल से, भगदत्त द्रुपद से और अलम्बुष घटोत्कच से अपने-अपने प्रतिशोध के लिए एक-दूसरे से उलझे हुए थे। वे सभी युद्धविज्ञान को भूलकर अपने व्यक्तिगत शत्रु से जूझ रहे थे जिससे संपूर्ण सेना का व्यूह व्यर्थ हो रहा था। दुर्योधन बोला, आचार्य मैं यह नहीं समझ पाता कि एक छोटा सा बालक अभिमन्यु आप लोगों से क्यों नहीं सम्भाला गया और आपमें से कोई कुछ नहीं कर पाया। ऐसा क्या है उस सोलह वर्ष के बालक में जिसके हाथोंमें हमारे श्रेष्ठ योद्धाओंका सम्मान सुरक्षित नहीं है। द्रोण बोले अभिमन्यु

को मात्र बालक समझना भूल है। मैंने उससे युद्ध करते देखा है उसके मन में भय जैसा कोई भाव नहीं है। वह बड़े से बड़े योद्धा से तनिक भी भयभीत नहीं होता। किसीसे भी समान भाव से जूझ पड़ता है। उसके पास अर्जुन और श्रीकृष्ण की युद्ध विद्या कि सम्पत्ति है। उसे तुम दूसरा अर्जुन ही जानो। द्रोण बोले यह सत्य है कि मैं युधिष्ठिर को बन्दी नहीं बना सका। पर मेरी प्रतिज्ञा आज भी वही है। दुर्योधन बोला, आप युधिष्ठिर को प्राय: बन्दी कर चुके थे किन्तु उस समय अर्जुन वहाँ आ गया इसलिए हमारी सेना को वापिस अपने शिबिरों में लौटना पड़ा। द्रोण बोले, यदि मुझे थोड़ासा भी समय और मिल जाता तो मैं युधिष्ठिर को अवश्य बन्दी कर लिया होता। अब उसे बन्दी करने के लिए अर्जुन को वहाँ से दूर हटाना होगा। हमें अपनी सेना को आगे दूर तक फैलाना होगा। दुर्योधन बोला, कल के युद्ध में युधिष्ठिर और अर्जुन अलग-अलग स्थान पर लडेंगे यह आप मेरेपर छोड़िये। द्रोण बोले, दुर्योधन पाण्डवोंकी रणनीति तुम तय नहीं करते हो तो फिर यह कैसे कह सकते हो कि युधिष्ठिर और अर्जुन कल एक स्थान पर युद्ध नहीं करेंगे। दुर्योधन बोला, यह आप मुझपर छोड़िये। कल रणभूमि में युधिष्ठिर अकेले होगा। शकुनि को प्रकृति से विचित्र सूझ-बूझ मिली है। घात लगाने की बुद्धि यदि शकुनि में है वैसी किसी में भी नहीं। उन्हें कुछ सूझे या न सूझे पीछे से वार करना खूब आता है। दुर्योधन को अपने मामाश्री पर आश्चर्य होता था कि इतने शांत कैसे रह लेते हैं? क्या मामाश्री ने विषयों के समान कोई सिद्धि पा ली क्या अधिक मदिरा पान कर लिया? कितनी ही बड़ी विपत्ति हो या उपलब्धि, मामाश्री की एकाग्रता भंग नहीं होती। उनका संतुलन तनिक भी नहीं डगमगाता। कैसी भी परिस्थिति हो मामाश्री शांत दिखाई देते है और इधर मेरे पिता धृतराष्ट्र छोटी सी एक चिड़िया भी चुहूक जाए तो उनका आसन डोलने लग जाता है। यह तो अच्छा है कि भगवान ने उन्हें दृष्टि नहीं दी, नहीं तो दिन भर कुछ न कुछ देखते रहते और घबराते रहते। शकुनि बोला, भान्जे कुछ चिंतित लग रहे हो? तुमने तो अपने पिताकी प्रवृत्ति पायी है। जरासा कुछ हुआ नहीं सृष्टि की प्रत्येक क्रिया के लिए उत्कंठित रहते हो। अपनी माँ की ओर देखो जैसे आँखें रहते हुए भी सबकुछ देखना अस्वीकार कर दिया। धैर्य की सीमा है तुम्हारी माता पर तुममें तो तनिक भी धैर्य नहीं। दुर्योधन बोला, अब समस्या यह है मामाश्री कि अर्जुन को युद्धक्षेत्र से दूर कौन ले जाए। शकुनि बोला पाण्डवोंके परम मित्रोंके परम शत्रु ही तुम्हारे मित्र हो सकते हैं। द्रोण ने तो युद्धों से भागने के लिए प्रसिद्धि नहीं पाई है। उसने जगत्विजेता शिष्य उत्पन्न करने में नाम कमाया है। द्रोण अर्जुन का गुरु है। उन दोनों का युद्ध कभी गम्भीर नहीं हो सकता। कोई नहीं कह सकता की कब गुरु और शिष्य का प्रेम जाग उठे। कब शिष्य के मन में गुरुभक्ति आ जाएं। मेरी समझसे तो युद्ध में न कभी द्रोण अर्जुन का वध करेगा और ना ही अर्जुन द्रोण के प्राण हरेगा। मत्स्यों का परमशत्रु त्रिगतराज सुशर्मा है। वे बड़े वीर हैं। पर्याप्त बल है उनके पास। युद्धक्षेत्र में यदि अर्जुन उनका अनवरत वध भी करता जाएं तो भी वे उसे संध्या तक रोक रखेंगे। धर्म में भी उनका विश्वास है और धर्म के पक्के हैं। उन्हें उनके धर्ममें बाँधो और उनसे प्रतिज्ञा करवाओ।

दुर्योधन को शकुनि का यह दांव ठीक लगा। दुर्योधन जानता था कि राजनीति में वैसे कोई किसीपर विश्वास नहीं करता और फिर यह तो युद्धकाल था। चारों ओर गुप्तसेनाओं का जाल फैला हुआ था। इसलिए सारी गतिविधि गोपनीय रखने की आवश्यकता थी। कृष्ण के कान में तो इसकी भनक भी नहीं पड़नी चाहिए। यदि कहीं कृष्ण को इसका पता लग गया तो वह सागर तट की लहरों को देख सागर के गर्भ का भेद जाननेवाला व्यक्ति है। वह तो पहले से ही जान जाता है कि विरोधी पक्ष कौनसी चाल चलनेवाला है। वह तो तत्काल समझ जायेगा कि आघात कहां होगा और उसका परिणाम क्या होगा?

सञ्जयने कहा- राजन्। उन दोनों पक्षोंकी सेनाओंने अपने-अपने शिबिरमें जा अपनी-अपनी योग्यता और सेनाविभागके अनुसार विश्राम किया। सेनाको लौटानेके पश्चात् आचार्य द्रोणने अत्यन्त खिन्न होकर बड़े संकोचसे दुर्योधनकी ओर

देखते हुए कहा, मैंने यह पहले ही कहा था कि अर्जुनकी उपस्थितिमें युधिष्ठिरको देवतालोग भी बन्दी नहीं बना सकते। आज युद्धमें तुमलोगोंके प्रयत्न करनेपर भी अर्जुनने यह बात करके दिखा दी। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसमें शंका मत करना। ये कृष्ण और अर्जुन तो अजेय हैं। यदि तुम किसी उपायसे अर्जुनको दूर ले जा सको, तो महाराज युधिष्ठिर तुम्हारे काबूमें आ सकते हैं। कोई वीर उसे युद्धके लिये ललकारकर दूसरी ओर ले जाय तो वह उसे परास्त किये बिना कभी नहीं लौटेगा। इस बीचमें अर्जुनके न रहनेपर तो मैं धृष्टद्युम्नके सामने ही सारी सेनाको हटाकर युधिष्ठिरको पकड़ लूँगा। अर्जुनके न रहनेपर यदि युधिष्ठिर मुझे अपनी ओर आते देखकर युद्धका मैदान छोड़कर भाग न गये तो उन्हें पकड़ा ही समझो।

कर्ण बोला, अर्जुन को मुझपर छोड़िये आचार्य। द्रोण बोले, मैं भी परशुराम शिष्य हूं अंगराज और गंगापुत्र भी परशुराम शिष्य ही हैं। मुझे तुम्हारी वीरता पर सन्देह नहीं है किन्तु अर्जुन फिर भी अर्जुन ही है। विराट युद्ध में तुम स्वयं उसके बाणों का स्वाद चख चुके हो। कर्ण बोला, तो क्या हमें वहां चलकर आत्मसमर्पण कर देना चाहिये? आचार्य शकुनि बोले, अंगराज कर्ण की बात है तो विचारणीय आचार्य। द्रोण बोले, गान्धार नरेश। कर्ण बोला, मैं प्रधान सेनापति से क्षमा चाहता हूं। दुर्योधन बोला, एक बात याद रहे कि आप सबके सब योद्धा मेरे पक्ष में युद्ध कर रहे हैं। यदि मेरे शिबिर में अहं से अहं टकराता रहा तो मेरी पराजय निश्चित है इसलिये मैं आप सब लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि अपने अहं को मेरे हितों पर अधिमान न दीजिये और मैं गुरुश्रेष्ठ से इस विषय में सहमत हूं कि जब तक हम युधिष्ठिर को अर्जुन से दूर करने में सफल नहीं हो जाते तब तक युधिष्ठिर को बन्दी बनाना सम्भव नहीं इसलिये मैं आप सब लोगों से यह पूछना चाहता हूं कि अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किसे सौंपा जाये? कर्ण बोला, मैं तो यह कार्य कर नहीं सकता मित्र क्योंकि इसमें मुझे अर्जुन से भागने का नाटक करना पडेगा और मैं तो भागने का नाटक नहीं कर सकता। दुर्योधन बोला, गुरुदेव मेरी समझ तो इस कार्य में हमें त्रिगत देश के नरेश की सहायता लेनी चाहिये।

आचार्य द्रोण, दु:शासन और दुर्योधन त्रिगर्त्तराज सुशर्मा के शिबिर में आते हैं। त्रिगर्त्तराज सुशर्मा ने अकस्मात आये हुए दुर्योधन का स्वागत किया और बड़े सम्मान से बिठाया और पूछा इस समय आप कैसे पधारे? आप आदेश दें। दुर्योधन बोला हम मित्रोंके समान बातें करेंगे। मैं कल के युद्ध की रणनीति तय करने के लिए तुम्हारे पास आया हूं। मित्र युद्ध के इतने दिन व्यतीत हो गए हैं। दोनों ओर की सेना का नाश भी पर्याप्त संख्या में हो गया पर हम आज तक विजय नहीं कर पाये हैं। शत्रुओं का कोई प्रमुख योद्धा धराशायी भी नहीं हुआ। मैं चाहता हूँ कि अब हम अधिक समय और सैनिक न खोएं और निर्णायक युद्ध करें। तुम अब मुख्य सेना और व्यूह को भूल जाओ और पाण्डव पक्ष के कोई महावीर योद्धा को अपने समान युद्ध करने के लिए चुन लो। सुशर्मा बोला, यह तो आपका उचित निर्णय है राजन। हम व्यर्थ ही अपना समय, अपनी क्षमता और सैनिक नष्ट क्यों कर रहे है हमें लक्ष्यबद्ध युद्ध करना चाहिए। दुर्योधन बोला पाण्डवों का बली वस्तुत: अर्जुन है। उसके गाण्डीव से सब डरते हैं। भीम को तो मैं अपने प्रतिद्वन्द्व के लिए रखना चाहता हूँ।

त्रिगत नरेश सुशर्मा बोले, इस कार्य के लिये दुर्योधन और प्रधान सेनापति को मेरे शिबिर में आने के कष्ट उठाने की आवश्यकता ही नहीं थी। हे आचार्य अर्जुन को ललकारने का अर्थ मृत्यु के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता किन्तु हम हस्तिनापुर के पक्ष में युद्ध करने आये है इसलिये हम दोनों भाई अर्जुन के हाथों अपनी मृत्यु स्वीकार करते हैं। दु:ख केवल इसका है कि यह कहने आप स्वयं आये है। यदि आपका द्वारपाल भी हमें आकर यह सन्देश पहुंचा देता तो भी हम अपना जीवन आपको भेंट कर दिये होते। दुर्योधन बोला, इतिहास सदैव तुम्हारी गिनती महावीरों में करेगा मित्र और आज तुमने दुर्योधन के साथ-साथ हस्तिनापुर को भी अपना ऋणी बना लिया है। त्रिगत नरेश अग्नि को साक्षी देकर शपथ लेते

हैं। यदि हम रणभूमि से जीवित लौटे तो अर्जुन वध के पश्चात लौटेंगे और यदि हम अर्जुन वध न कर पाये तो फिर यहां हमारे शव आयेंगे। ऐसा ही होगा कुरुराज। अर्जुन कायर नहीं है वह हमारी ललकार और चुनौती की उपेक्षा नहीं करेगा। उसी समय सुशर्मा के बुलाने पर उसके भाई सत्यवर्मा, सत्यरथ, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा आ जुटे। सुशर्मा उनको सुनाकर बोला, कुरुसम्राट। हमें अपनी इच्छा से अपने परम शत्रु से कल प्रात: संशप्तक युद्ध करने का अवसर देने के लिए पधार रहे हैं। सुशर्मा ने निमिष मात्र भी समय नहीं खोया। तत्काल अपने पुरोहित को बुलाया। और भाइयों के साथ स्नान किया और भाइयों सहित शुद्ध हो, कुश ले, अग्निदेव का पूजन किया। नई मुंज धारण की। ब्राह्मणों को दक्षिणा दी और युद्ध का संकल्प लिया कि यदि हम अर्जुन को मारे बिना लौटे, या युद्धभूमि से जीवित भाग आये तों हमें अपने किसी पुण्य का फल न मिले। हमारा युद्ध तब तक चलेगा, जब तक या तो अर्जुन का वध न हो, या हम वीरगति को प्राप्त न हों। अपना वचन भंग करने पर हम स्वेच्छा से स्वयं अग्निरोहण करेंगे।

युधिष्ठिर के शिबिर में कृष्ण, अर्जुन और सभी भाई बैठे हैं। इतने में गुप्तचर आया प्रणाम कर बोला, त्रिगत राज सुशर्मा अर्जुनसे मृत्युपर्यंत संशप्तक युद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने कल रात्रि अपने भाइयों के साथ अग्नि के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की है या तो वे अर्जुन का वध करेंगे या स्वयं को अग्निसात करेंगे। यदि धनंजय सच्चे क्षत्रिय हैं तो उनकी चुनौती स्वीकार करेंगे। अर्जुन बोला, मैं अवश्य जाऊंगा और उस नीच सुशर्मा से जहाँ लड़ना चाहेगा वहाँ लडूँगा।

३) महाभारत युद्ध का १२ वां दिन (प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्तका वध)

त्रिगर्तराज और उसके भाइयोंने कहा, राजन्। अर्जुन हमें हमेशा नीचा दिखाता रहा है। उन बातोंको याद करके हम रात-दिन क्रोधकी ज्वालामें जला करते हैं। हमें रातमें नींदतक नहीं आती। इसलिये यदि सौभाग्यवश वह हमारे सामने आ गया, तो हम उसे अलग ले जाकर मार डालेंगे। हम आपसे सच्ची प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि अब पृथ्वीमें या तो अर्जुन ही नहीं रहेगा या त्रिगर्त्त ही नहीं होंगे। हमारे इस कथनमें कोई फेर-फार नहीं हो सकता। राजन्। सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा- ये पाँचों भाई ऐसी प्रतिज्ञा कर दस हजार रथी सैनिकोंको लेकर वहाँसे चल दिये। इसी तरह तीस हजार रथोंके सहित मालव और तुण्डिकेर वीर तथा दस हजार रथी और मावेल्लक, ललित्थ एवं मद्रक वीरोंको लेकर अपने भाइयोंके सहित त्रिगर्तदेशीय प्रस्थलेश्वर सुशर्मा भी रणक्षेत्रको चला। इसके बाद भिन्न-भिन्न देशोंके दस हजार चुने हुए रथी भी शपथ करनेके लिये आगे आये। उन्होंने अग्नि प्रज्वलित कर युद्ध करनेका नियम लिया और फिर उस अग्निको साक्षी करके दृढ़ निश्चयपूर्वक प्रतिज्ञा की। उन्होंने सब लोगोंको सुनाते हुए उच्च स्वरसे कहा, यदि हम संग्रामभूमिमें अर्जुनको न मारकर उसके हाथसे पीडित होनेपर पीठ दिखाकर लौट आवें तो व्रतहीन, ब्रह्मघाती, मद्यप, गुरुपत्नीसे संसर्ग करनेवाले, ब्राह्मणका धन चुरानेवाले, राजाका अन्न हरनेवाले, शरणागतकी उपेक्षा करनेवाले, याचकपर प्रहार करनेवाले, घरमें आग लगानेवाले, गोहत्यारे, अपकारी, ब्राह्मणद्रोही, श्राद्धके दिन भी मैथुन करनेवाले, आत्मवञ्चक, धरोहरको हड़प करनेवाले, प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले, नपुंसकसे युद्ध करनेवाले, नीच पुरुषोंका अनुसरण करनेवाले, नास्तिक, माता-पिता और अग्नियोंको त्याग देनेवाले तथा अनेक प्रकारके पाप करनेवाले पुरुषोंको जो लोक मिलते हैं, वे ही हमें भी प्राप्त हों और यदि हम संग्रामभूमिमें अर्जुनका वधरूप दुष्कर कर्म कर लें तो नि:संदेह इष्टलोक प्राप्त करें। राजन्। ऐसा कहकर वे युद्धके लिये अर्जुनको ललकारते हुए दक्षिणकी ओर चल दिये।

उन वीरोंके पुकारनेपर अर्जुनने उसी समय धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा, महाराज। मेरा यह नियम है कि पुकारे जानेपर मैं पीछे कदम नहीं रखता और इस समय संशप्तक योद्धा मुझे युद्धके लिये ललकार रहे हैं। देखिये, अपने भाइयोंके सहित यह

सुशर्मा मुझे युद्धके लिये चुनौती दे रहा है। इसलिये आप मुझे सेनाके सहित इसका संहार करनेका आदेश दीजिये। मैं इनकी इस चुनौतीको सह नहीं सकता। आप सच मानिये, ये सब मरनेहीवाले हैं।

युधिष्ठिरने कहा- अनुज। द्रोणने जो प्रतिज्ञा की है, वह तुम सुन ही चुके हो। अब तुम वही उपाय करो, जिससे वह पूरी न होने पावे। द्रोणाचार्य बलवान् और शूरवीर हैं, वे शास्त्रविद्यामें भी पारंगत हैं तथा युद्धमें परिश्रमको तो वे कुछ भी नहीं समझते। उन्होंने मुझे पकड़नेकी प्रतिज्ञा की है। तुम त्रिगर्तों के साथ लड़ने के लिए मुख्य युद्धभूमिसे दूर हटाये जा रहे हो। आचार्य द्रोण ने आज मुझे जीवित बन्दी कर दुर्योधनको सौंप देनेका वचन दिया है। भीम बोले, धर्मराज को बन्दी बनाना इतना सरल और सहज नहीं है। कृष्ण बोले, गजसेना के आक्रमण को रोकने रथों, गजों तथा पैदल सेना का विनाश करने का जो काम आप कर सकते हैं भीम भैय्या वो और कोई नहीं कर सकता। उसीप्रकार शत्रुओंके कूट, व्यूह और षडयन्त्रों से सेना की रक्षा करने का जो काम अर्जुन कर सकते हैं वो आप नहीं कर सकते। आचार्य द्रोण का प्रतिकार आपके पास नहीं है। धृष्टद्युम्न बोले, आचार्य द्रोण की आप चिंता न करे। मेरे जीवित रहते तो द्रोण कुछ नहीं कर पायेंगे।

कृष्ण बोले, लेकिन अर्जुन के लिए यह चुनौती स्वीकार करना क्यों आवश्यक है? यह न तो कोई चुनौती है और न न्याय। सुशर्मा ने युद्ध की शपथ ले ली, इसलिए तुम अपने भाइयों, अपनी सेना, अपनी योजना सब कुछ छोड़ दोगे, यह बुद्धिमत्ता तो नहीं। अर्जुन बोला, यह क्षत्रिय धर्म है। कृष्ण बोले, मैं उसे नहीं मानता। कल भविष्य में दुर्योधन का कोई सैनिक आकर यह शपथ ग्रहण कर ले कि वह अर्जुन से युद्ध करेगा तो क्या कल तुम अपना गांडीव त्यागकर उससे लड़ने चले जाओगे? अथवा जयद्रथ यह शपथ ग्रहण कर ले कि वह तुमसे सिंधु तीर पर लड़ेगा तो क्या तुम सिंधु के तट पर चले जाओगे? यह तो तुम्हें मात्र युद्धक्षेत्र से हटाने का षडयन्त्र है। तुम भले इसे क्षत्रिय धर्म कहो, किंतु मेरी समझ में तो यह अन्याय है। दुर्योधन की सेना पहले दिन से ही धर्म को तिलांजलि देकर ही युद्ध कर रही है, तुम अब भी इसको पहचान नहीं रहे हो। अर्जुन बोला, किंतु कोई क्षत्रिय इस प्रकार दी गई युद्ध की चुनौती को अस्वीकार तो नहीं कर सकता केशव। कृष्ण बोले, पार्थ तुम क्रोध में हो। क्रोध से मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मृति विभ्रम हो जाता है। स्मृति के अभाव में बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि नष्ट होनेपर सर्वनाश होता है। युधिष्ठिर बोले, मैं अर्जुन के जाने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं धनंजय की अनुपस्थिति में स्वयं को सुरक्षित नहीं समझता।

इसपर अर्जुनने कहा, राजन्। आज यह सत्यजित संग्राममें आपकी रक्षा करेगा। इस पाञ्चालराजकुमारके रहते आचार्य अपना मनोरथ पूर्ण नहीं कर पायेंगे। यह पुरुष सिंह युद्धमें काम आ जाय, तो और सब वीरोंके आसपास रहनेपर भी आप संग्रामभूमि से हट जाएं।

कृष्ण बोले, पार्थ। मैंने कभी भी इन रूढ़िवादोंको अपना धर्म नहीं माना। कल यदि कर्ण अपनी सेनाके साथ आकर अकेले धर्मराज को इसी प्रकार के संशप्तक युद्ध के लिए ललकारे तो क्या धर्मराज को उसकी चुनौती स्वीकार कर उसके साथ युद्ध करने के लिए अकेले चले जाना चाहिए? तुम्हे अपना व्यूह रचना है। संसार में लोग तुम्हें विविध प्रकारकी चुनौतियां देते रहेंगे, अलग-अलग व्यूहों से पुकारेंगे, तो तुम उनकी योजनाओं के अनुसार भागते रहोगे, अपना व्यूह कब रचोगे? अपना युद्ध कब लड़ोगे? जीवन को सफलतापूर्वक वहीं जी सकता है जो अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि से जिए। मैं यह भी जानता हूँ तुम सुशर्मा और उसके भाइयों और उसकी सेना से लड़ने में समर्थ हो; किंतु अपने सामर्थ्य का अहंकार भी तुम्हारा शत्रु हो सकता है। एक बार इन्हीं धर्मराज ने शत्रु की शर्तों पर द्यूत खेला था और आज तुम त्रिगर्तों की इच्छा से द्यूत खेलने जा रहे हो। मेरा मन आश्वस्त नहीं है मित्र।

HHH(३१)HHH

तब महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुनको जानेकी आज्ञा दी, उन्हें गले लगाया और प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर आशीर्वाद दिया। इस प्रकार उनसे विदा होकर अर्जुन त्रिगर्तोंकी ओर चले। आचार्य ने सूर्योदय होने पर रण आरम्भ का शंख फूंक दिया। महासंग्राम छिड़ गया। घमासान युद्ध होने लगा। अर्जुनके चले जानेसे दुर्योधनकी सेनाको बड़ा हर्ष हुआ और वह बड़े उत्साहसे महाराज युधिष्ठिरको पकड़नेका उद्योग करने लगी। फिर वे दोनों सेनाएँ वर्षाकालमें उमड़ी हुई गङ्गा-यमुनाके समान बड़े वेगसे आपसमें भिड़ गयीं।

बारहवें दिन प्रतिज्ञापूर्वक किसी का वध करनेवाले अथवा स्वयं मृत्यु को प्राप्त होनेवाले संशप्तकोंने आह्वानपूर्वक अर्जुन ही को घेर लिया। संशप्तकोंने (त्रिगत)एक चौरस मैदानमें अपने रथोंको चन्द्राकार खड़ा करके मोर्चा जमाया। जब उन्होंने अर्जुनको अपनी ओर आते देखा, तो वे हर्षमें भरकर बड़े ऊँचे स्वरसे कोलाहल करने लगे। त्रिगत सुशर्मा ने ललकारा- अर्जुन। बेनाम सैनिकों से क्या युद्ध कर रहे हो तुम्हे यदि युद्ध करना है तो हमसे करो क्योंकि आज हम दोनों भाई प्रतिज्ञा कर के आये हैं या तो तुम हमारे शव देखोगे या हम तुम्हारे शव को प्रणाम करेंगे। अर्जुन बोला, त्रिगतराज। भीम बोला, यह चुनौती नहीं है प्रिय अनुज। यह गुरुश्रेष्ठ की युद्ध नीति है। अर्जुन बोला, किन्तु वो मुझे ललकार रहे हैं मझले भैया। भीम बोला, तो तुम भी उन लोगों की ललकार मत सुनो। गुरु द्रोण तो इसी ताक में है। ये दोनों तो तुमको पीठ दिखाकर भागने की तैयारी में है। यही तो युद्धनीति है कि तुम इनका पीछा करते करते दूर निकल जाओ ताकि फिर गुरु द्रोण बडे भैया को बन्दी बनाने के लिये आक्रमण कर सके। अर्जुन बोला, आपके होते हुये बडे भैया को कौन छू सकता है मझले भैया। भीम बोला, मैं सारी कौरवसेना को रोक सकता हूं प्रिय अनुज किन्तु गुरु द्रोण मेरे रूके नहीं रूकेंगे। त्रिगत नरेश बोला, अर्जुन तुम कैसे गाण्डीवधारी हो कि ललकार सुनकर भी आगे नहीं बढते तो अरे फेंक दो यह गांडीव। अर्जुन बोला, त्रिगत नरेश। मुझे अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करने दीजिये मझले भैया। वो मुझसे गांडीव रखने को कह रहा हैं। मै वचनबद्ध हूं जो कोई मुझे गांडीव रखने को कहेगा महादेव की सौगन्ध मैं उसे जीवित नही छोडूँगा। रथ आगे ले चलिये केशव। वह शब्द सम्पूर्ण दिशा-विदिशा और आकाशमें फैल गया। उन्हें अत्यन्त आह्लादित देखकर अर्जुनने मुस्कराकर श्रीकृष्णसे कहा, देवकीनन्दन। आज इन मरणासन्न त्रिगर्त्तबन्धुओंको तो देखिये, ये रोनेके समय खुशी मनाने चले हैं। श्रीकृष्णसे इतना कहकर महाबाहु अर्जुन त्रिगर्त्तोंकी व्यूहबद्ध सेनाके समीप पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना देवदत्त शंख बजाकर उसके गम्भीर शब्दसे सारी दिशाओंको गुँजा दिया। उस शब्दसे भयभीत होकर संशप्तकोंकी सेना पत्थरकी तरह निश्चेष्ट हो गयी। उनके घोड़ोंकी आँखें फट गयीं, कान और केश खड़े हो गये, पैर सुन्न हो गये तथा वे बहुत-सा खून उगलने और मूत्र त्यागने लगे। थोड़ी देरमें उन्हें होश आया तो उन्होंने सेनाको सँभालकर एक साथ ही अर्जुनपर बहुत-से बाण छोड़े। किंतु अर्जुनने अपने बाणोंसे ही उन हजारों बाणोंको बीचहीमें काट डाला। फिर उन्होंने अर्जुनपर बाण छोड़े और अर्जुनने उनमेंसे प्रत्येकको बाणोंसे घायल किया। इसके पश्चात् उन्होंने अर्जुनको बाणोंसे बींधा और पराक्रमी अर्जुनने उन्हें बाणोंसे बींधकर वार किया।

अब सुबाहुने बाणोंसे अर्जुनके मुकुटपर वार किया। इसपर अर्जुनने बाणसे सुबाहुके दस्तानेको काट दिया और फिर बाणोंकी वर्षा करके उसे मानो बिल्कुल ढक दिया। तब सुशर्मा, सुरथ, सुधर्मा, सुधन्वा और सुबाहुने उनपर बाणोंसे चोट की। उन बाणोंको अर्जुनने अलग-अलग काट डाला तथा इनकी ध्वजाओंको भी काटकर गिरा दिया। फिर उन्होंने सुधन्वाके धनुषको काटकर उसके घोड़ोंको भी मार गिराया तथा उसका शीर्षत्राण-सुशोभित सिर भी काटकर धड़से अलग कर दिया। वीर सुधन्वाके मारे जानेसे उसके सब अनुयायी डर गये और अत्यन्त भयभीत होकर दुर्योधनकी सेनाकी

ओर भागने लगे। अर्जुन अपने पैने बाणोंसे त्रिगर्त्तोंको नष्ट कर रहे थे। इसलिये वे मृगोंकी तरह डरकर जहाँ-के-तहाँ अचेत हो जाते थे। तब त्रिगर्त्तराजने क्रोधमें भरकर अपने महारथियोंसे कहा, शूरवीरों। बस, भागना बंद करो; डरो मत। तुमने सारी सेनाके सामने कठोर प्रतिज्ञा की है। अब भला, दुर्योधनकी सेनाके पास जाकर इसी मुखसे क्या कहोगे? संग्राममें ऐसी करतूत करनेपर भला, संसारमें तुम्हारी हँसी क्यों न होगी? इसलिये लौटो, हम सब मिलकर अपनी शक्तिके अनुसार पराक्रम करें। राजाके ऐसा कहनेपर वे वीर परस्पर हर्ष प्रकट करते हुए शङ्खध्वनि और कोलाहल करने लगे। फिर वे संशप्तक और नारायणसंज्ञक गोप मरनेपर भी पीछे न हटनेका निश्चय करके मैदानमें आ गये।

अर्जुन और त्रिगर्त नरेश में घमासान युद्ध हो रहा है। दुर्योधन बोला, गुरुदेव वे त्रिगर्त भाई अर्जुन को यों बहा लिये जा रहे हैं जैसे नदी का बहाव नाव को बहाकर ले जाता है। गुरुदेव अब आक्रमण में विलम्ब क्यों? द्रोण बोले, अर्जुन अभी तक इतनी दूर नहीं गया है कि लौटकर युधिष्ठिर की रक्षा के लिये आ न सके। दु:शासन बोला, वो मूर्ख भागते क्यों नहीं युद्ध क्यों कर रहे है। कर्ण बोला, वो दोनों वीर है दु:शासन। वो वीरगति को प्राप्त होने प्रतिज्ञाबद्ध हैं। वे भाग नहीं रहे हैं। अर्जुन के बाणों की बौछारों के आगे उनसे ठहरा नहीं जा रहा है। और यह भी न भूलो दु:शासन ये जिस धनुर्धर का सामना कर रहे है उसने स्वयं आचार्य के रथ को पीछे हटा दिया था। रणनीति का खेल तो खेल रहे हैं हम लोग, वे दोनों तो युद्ध कर रहे हैं।

संशप्तकोंको फिर लौटा हुआ देखकर अर्जुनने कृष्णसे कहा, हृषीकेश। घोड़ोंको फिर संशप्तकोंकी ओर ले चलिये। मालूम होता है, ये शरीरमें प्राण रहते युद्धका मैदान नहीं छोड़ेंगे। आज आप मेरा अस्त्रबल और धनुष तथा भुजाओंका पराक्रम देखिये। भगवान शंकर जैसे प्राणियोंका संहार करते हैं, उसी प्रकार आज मैं इन्हें धराशायी कर दूँगा।

अब नारायणी सेनाके वीरोंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अर्जुनको चारों ओरसे बाणजालसे घेर दिया और एक क्षणमें ही श्रीकृष्णके सहित अर्जुनको अदृश्य-सा कर दिया। इससे अर्जुनकी क्रोधाग्नि भड़क गयी। उन्होंने गाण्डीव धनुष सँभालकर शंखध्वनि की और फिर उनपर विश्वकर्मास्त्र छोड़ा। उससे अर्जुन और श्रीकृष्णके अलग-अलग हजारों रूप प्रकट हो गये। अपने प्रतिद्वद्वियोंके उन अनेकों रूपोंको देखकर नारायणीसेनाके वीर बड़े चक्कर में पड़े और एक-दूसरेको अर्जुन समझकर यह अर्जुन है, यह कृष्ण है ऐसा कहकर आपसमें ही मार-धाड़ करने लगे। इस प्रकार इस दिव्य अस्त्रकी मायामें फँसकर वे आपसमें ही लड़कर मर गये। उनके छोड़े हुए हजारों बाणोंको भस्म करके वह अस्त्र उन सभीको यमलोकमें ले गया।

अब अर्जुनने हँसकर अपने बाणोंसे ललित्थ, मालव, मावेल्लक और त्रिगर्त्त वीरोंको पीड़ित करना आरम्भ किया। तब कालकी प्रेरणासे उन क्षत्रिय वीरोंने भी अर्जुनपर अनेक प्रकारके बाण छोड़े। उनकी भीषण बाणवर्षासे बिल्कुल ढक जानेके कारण वहाँ न अर्जुन दिखायी देते थे और न रथ या श्रीकृष्ण ही दीख रहे थे। इस प्रकार अपना लक्ष्य सिद्ध हुआ समझकर वे वीर बड़े हर्षसे कहने लगे कि कृष्ण और अर्जुन मारे गये तथा हजारों भेरी, मृदङ्ग और शफबजाकर भीषण सिंहनाद भी करने लगे। इसी समय श्रीकृष्णने पुकारकर कहा, अर्जुन। तुम कहाँ हो? मुझे दिखायी नहीं दे रहे हो। श्रीकृष्णका यह वाक्य सुनकर अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे वायव्यास्त्र छोड़ा। उससे उनकी बाणवर्षा छिन्न-भिन्न हो गयी तथा वायुदेव संशप्तक वीरोंको भी उनके घोड़े, हाथी और रथोंके सहित सूखे पत्तोंके समान उड़ा ले गये। इस प्रकार व्याकुल करके उन्होंने हजारों संशप्तकोंको अपने पैने बाणोंसे मार डाला। प्रलयकालमें जैसे भगवान् रुद्रकी संहारलीला होती है, उसी प्रकार इस समय संग्रामभूमिमें अर्जुन बड़ा ही बीभत्स और भीषण काण्ड कर रहे थे। अर्जुनकी मारसे व्याकुल होकर त्रिगर्त्तोंके हाथी, घोड़े और रथ उन्हींकी ओर दौड़ते थे और फिर संग्रामभूमिमें गिरकर इन्द्रके अतिथि हो जाते थे। इस प्रकार वह सारी भूमि मरे हुए महारथियोंके कारण सब ओर लाशोंसे भर गयी।

HHH(३३)HHH

संजयने कहा-राजन्। इस प्रकार संशप्तकोंके साथ लड़नेके लिये अर्जुनके चले जानेपर आचार्य द्रोण अपनी सेनाकी व्यूहरचना कर युधिष्ठिरको पकड़नेके विचारसे युद्धक्षेत्रकी ओर चले। महाराज। युधिष्ठिरने आचार्यकी सेनाका गरुडव्यूह देखकर उसके मुकाबलेमें मण्डलार्धव्यूह बनाया। कौरवोंके गरुडव्यूहके मुखस्थानपर महारथी द्रोण थे। शिर:स्थानमें भाइयोंके सहित राजा दुर्योधन था, नेत्रस्थानमें कृतवर्मा और कृपाचार्य थे। ग्रीवास्थानमें भूतशर्मा, क्षेमशर्मा, करकाक्ष तथा कलिंग, सिंहल, पूर्वदेश, शूर, आभीर, दशेरक, शक, यवन, काम्बोज, हंसपथ, शूरसेन, दरद, मद्र और केकय आदि देशोंके वीर हथियारोंसे लैस होकर हाथी, घोड़े, रथ और पदातिसेनाके रूपमें खड़े थे। दायीं ओर अक्षौहिणी सेनाके सहित भूरिश्रवा, शल्य, सोमदत्त और बाह्लीक थे। बायीं ओर अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्द एवं कम्बोज नरेश सुदक्षिण थे। इनके पीछे द्रोणपुत्र अवत्थामा डटे हुए थे। पृष्ठस्थानमें कलिंग, अम्बष्ठ, मगद, पौण्ड्र, मद्र, गन्धार, शकुन, पूर्वदेश, पर्वतीय प्रदेश और बसाति आदि देशोंके वीर थे। पूँछकी जगह अपने पुत्र तथा जाति और कुटुम्बके लोगोंके सहित भिन्न-भिन्न देशोंकी सेना लिये कर्ण खड़ा था तथा हृदयस्थानमें जयद्रथ, सम्पाति, ऋषभ, जय, भूमिञ्जय, वृष, क्राथ और निषधराज बहुत बड़ी सेनाके साथ खड़े थे। इस प्रकार पदाति, अश्वारोही, गजारोही और रथीसेनासे आचार्य द्रोणका बनाया हुआ वह गरुडव्यूह वायुके झकोरोंसे उछलते हुए समुद्रके समान जान पड़ता था। इसके मध्यभागमें हाथीपर चढ़े हुए महाराज भगदत्त बालसूर्यके समान सुशोभित हो रहे थे। इस अजेत और अतिमानुष व्यूहको देखकर राजा युधिष्ठिरने धृष्टद्युम्नसे कहा, वीर। आज तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मैं द्रोणाचार्यके हाथमें न पड़ूँ।

धृष्टद्युम्नने कहा- महाराज। द्रोणाचार्य कितना ही प्रयत्न करें, वे आपको अपने काबूमें नहीं कर सकेंगे। आज उन्हें और उनके अनुयायियोंको मैं रोकूँगा। मेरे जीवित रहते आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। द्रोणाचार्य संग्राममें मुझे किसी प्रकार नहीं जीत सकते।

ऐसा कहकर महाबली धृष्टद्युम्न बाणोंकी वर्षा करता हुआ स्वयं ही द्रोणाचार्यके मुकाबलेमें आ गया। यह अपशकुन देखकर आचार्य कुछ खिन्न हो गये। तब आपके पुत्र दुर्मुखने धृष्टद्युम्नको रोका। दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। जिस समय ये दोनों युद्धमें संलग्न थे, द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे युधिष्ठिरकी सेनाको अनेक प्रकारसे छिन्न-भिन्न कर दिया। इससे कहीं-कहींसे पाण्डवोंका व्यूह टूट गया। अब वह युद्ध पागलोंके समान मर्यादाहीन हो गया। उस समय आपसमें अपने-परायेका भी पता नहीं लगता था। इस प्रकार जब बड़ा ही घमासान और भयंकर युद्ध चल रहा था, आचार्यने सब वीरोंको भ्रमित कर युधिष्ठिरपर आक्रमण किया।

युधिष्ठिर अकेला रह गया और नकुल से बोला, लगता है अर्जुन तो बहुत दूर निकल गया प्रिय नकुल। भीम बोला, आप चिन्ता न कीजिये भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, चिन्ता कैसे न करूं अनुज। चिन्ता मुझे अपनी सुरक्षा के लिये नहीं है किन्तु यदि मैं बन्दी बना लिया गया तो युद्ध यहीं समाप्त हो जायेगा। क्योंकि युद्ध का बन्दी दास होता है और दास को कोई अधिकार नहीं होता। नकुल बोला, अर्जुन भैया के न होने का तात्पर्य क्या यह है कि हम सब मिलकर भी आपकी सुरक्षा नहीं कर सकते बडे भैया। भीम बोला, अर्जुन के अतिरिक्त गुरु द्रोण को कोई नहीं रोक सकता प्रिय नकुल। द्रोण का रथ युधिष्ठिर के पास आने लगा।

राजा युधिष्ठिर आचार्यको अपने समीप पहुँचा देखकर निर्भयतासे बाण बरसाते हुए उनका सामना करने लगे। इसी समय महाबली सत्यजित उन्हें बचानेके लिये आचार्यकी ओर बढ़ा। उसने अपना अस्त्रकौशल दिखाते हुए एक तीखी नोकवाले बाणसे आचार्यको घायल कर दिया। फिर बाण मारकर उनके सारथीको मूर्छित किया, घोड़ोंको घायल कर

डाला, बाणोंसे दोनों पार्श्वरक्षकोंको बींध दिया और अन्तमें उनकी ध्वजा भी काट डाली। तब द्रोणने मर्मभेदी बाणोंसे सत्यजितको घायल करके उसके धनुष-बाण भी काट डाले। सत्यजितने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर आचार्यपर बाणोंसे वार किया। इस प्रकार द्रोणको सत्यजितके काबूमें पड़ा देख पञ्चालदेशीय वृकने भी उनपर बाणोंकी चोट की।

सात्यकि पांचालवीर सत्यजित और विराट-पुत्र शतानीक तथा वसुदान की सहायता से युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य से बचाये रखने हेतु प्राणपण से युद्धरत हुआ। किन्तु आज द्रोणाचार्य को कोई भी रोक नहीं पा रहा था।

यह देखकर पाण्डवलोग हर्षनाद करने लगे। इसी समय वृकने अत्यन्त क्रोधमें भरकर द्रोणकी छातीमें बाण मारे। तब आचार्यने सत्यजित और वृकके धनुषोंको काटकर बाणोंसे वृकको, उसके सारथी और घोड़ोंके सहित मार डाला। इसपर सत्यजितने दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्यको उनके सारथि और घोड़ोंके सहित घायल कर दिया तथा उनकी ध्वजा भी काट डाली। जब सत्यजितके हाथसे आचार्य बहुत पीड़ित होने लगे तो उन्हें सहन न हुआ और उन्होंने उसे मारनेके लिये बाणोंकी बरसात शुरू कर दी। उन्होंने उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष, मूठ, सारथी और दोनों पार्श्वरक्षकोंपर हजारों बाण छोड़े। किंतु सत्यजित बार-बार धनुष कट जानेपर भी आचार्यके सामने डटा ही रहा। युद्धभूमिमें उसका ऐसा उत्साह देखकर आचार्यने एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका सिर उड़ा दिया। उस पाञ्चाल महारथीके मारे जानेपर धर्मराज द्रोणाचार्यके भयसे अपने घोड़ोंको बहुत तेजीसे हँकवाकर युद्धके मैदानसे भागकर अपने शिबिर की ओर चले गये।

अब आचार्यके सामने मत्स्यराज विराटका छोटा भाई शतानीक आया। वह तीखे बाणोंसे सारथी और घोड़ोंके सहित द्रोणको बींधकर बड़ी गर्जना करने लगा। फिर उसने उनपर और भी सैकड़ों बाण छोड़े। तब उसे बहुत गरजते देख आचार्यने बड़ी फूर्तीसे एक क्षुरप्र बाण मारकर उसका कुण्डलमण्डित मस्तक काट डाला। यह देखकर मत्स्यदेशके सब वीर भागने लगे। इस प्रकार मत्स्य वीरोंको जीतकर द्रोणाचार्यने चेदि, करूष, केकय, पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डव वीरोंको भी बार-बार परास्त किया। आग जैसे जंगलको जला डालती है, उसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए आचार्यको सेनाओंका विध्वंस कर देखकर सब सृञ्जय वीर काँप उठे।

जब युधिष्ठिर आदिने देखा कि आचार्य हमारी सेनाओंको भस्म किये डालते हैं तो वे उनपर चारों ओरसे टूट पड़े। फिर उनमेंसे शिखण्डीने, क्षत्रवर्माने, वसुदानने, उत्तमौजाने, क्षत्रदेवने, सात्यकिने, युधामन्युने, युधिष्ठिरने, धृष्टद्युम्नने और चेकितानने बाणोंसे उनपर चोट की। तब द्रोणने सबसे पहले दृढसेनको धराशायी किया। फिर बाणोंसे राजा क्षेमको घायल किया। इससे वह मरकर रथसे नीचे गिर गया। इसके पश्चात् उन्होंने शिखण्डीको ओर उत्तमौजाको घायल किया तथा एक भल्ल-बाणसे वसुदानको यमराजके घर भेज दिया। फिर क्षत्रवर्मापर और सुदक्षिणपर वार किया तथा एक भल्लसे क्षत्रदेवको रथसे नीचे गिरा दिया। तदनन्तर युधामन्युको और सात्यकिको बींधकर वे फूर्तीसे धर्मराज युधिष्ठिरके सामने आ गये। यह देखकर युधिष्ठिर अपने घोड़ोंको तेजीसे हँकवाकर युद्धक्षेत्रसे भाग गये और अब आचार्यके सामने एक पाञ्चाल राजकुमार आकर डट गया। आचार्यने फौरन ही उसका धनुष काट दिया तथा सारथी और घोड़ोंके सहित उसका वध कर दिया। उस राजकुमारके मारे जानेपर सेनामें चारों ओरसे द्रोणको मारो, द्रोणको मारो ऐसा कोलाहल होने लगा। किंतु उन अत्यन्त क्रोधातुर पाञ्चाल, मत्स्य, केकय, सृञ्जय और पाण्डव वीरोंको द्रोणाचार्यने घबराहटमें डाल दिया। उन्होंने कौरवोंसे सुरक्षित होकर सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, वृद्धक्षेम और चित्रसेनके पुत्र, सेनाविन्दु और सुवर्चा- इन सभी वीर और दूसरे राजाओंको युद्धमें परास्त कर दिया तथा आपके पक्षके दूसरे योद्धा भी उस महासमरमें विजय पाकर सब ओर पाण्डवपक्षके वीरोंको कुचलने लगे।

HHH(३५)HHH

सञ्जयने कहा, महाराज। फिर थोड़ी ही देरमें पाण्डवोंकी सेनाने लौटकर द्रोणको घेर लिया और उनके पैरोंसे उठी हुई धूलने आपकी सेनाको आच्छादित कर दिया। इस प्रकार आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण कौरवोंने समझा कि आचार्य मारे गये। तब दुर्योधनने अपनी सेनाको आज्ञा दी कि जैसे बने, वैसे पाण्डवोंकी सेनाको रोको। यह सुनकर आपका पुत्र दुर्मर्षण भीमको देखकर उसके प्राणोंका प्यासा होकर बाण बरसाता हुआ उसके आगे आया। उसने अपने बाणोंसे भीमको ढक दिया और भीमने उसे बाणोंसे घायल कर दिया। इस प्रकार दोनोंका भीषण संग्राम होने लगा। स्वामीकी आज्ञा पाकर कौरवपक्षके सभी बुद्धिमान और शूरवीर योद्धा अपने राज्य और प्राण जानेका भय छोड़कर शत्रुओंके सामने आकर डट गये। इस समय शूरवीर सात्यकि द्रोणाचार्यको पकड़नेके लिये आ रहा था; उसे कृतवर्माने रोका। क्षत्रवर्मा भी आचार्यकी ओर ही बढ़ रहा था; उसे जयद्रथने अपने तीखे बाणोंसे रोक दिया। इसपर क्षत्रवर्माने कुपित होकर जयद्रथके धनुष और ध्वजाको काट डाला और दस नाराचोंसे उसके मर्मस्थानोंपर आघात किया। इसपर जयद्रथने दूसरा धनुष लेकर क्षत्रवर्मापर बाणोंकी बौछार आरम्भ कर दी।

महारथी युयुत्सु भी द्रोणाचार्यके पास पहुँचनेके ही प्रयत्नमें था। उसे सुबाहुने रोका। किंतु युयुत्सुने दो क्षुरप्र बाणोंसे सुबाहुकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। धर्मप्राण युधिष्ठिरकी गति मद्रराज शल्यने रोक दी। धर्मराजने शल्यपर अनेकों मर्मदभेदी बाण छोड़े तथा मद्रनरेशने भी उन्हें बाणोंसे घायल करके बड़ी गर्जना की। तब युधिष्ठिरने बाणोंसे उनके धनुष और ध्वजाको काट डाला। इसी प्रकार अपनी सेनाके सहित राजा द्रुपद भी द्रोणकी ओर ही बढ़ रहे थे। उन्हें राजा बाह्लीक और उनकी सेनाने बाण बरसाकर रोक दिया। उन दोनों वृद्ध राजाओंका और उनकी सेनाओंका बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अवन्तिनरेश विन्द और अनुविन्दने अपनी सेना लेकर मत्स्यराज विराट और उनकी सेनापर धावा किया। उनका भी देवासुर-संग्रामके समान बड़ा घोर युद्ध हुआ। इसी प्रकार मत्स्य वीरोंकी केकय वीरोंके साथ भी करारी मुठभेड़ हुई, जिसमें अश्वारोही, गजारोही और रथी-सभी निर्भयतासे लड़ रहे थे।

एक ओर नकुलका पुत्र शतानीक भी बाणोंकी वर्षा करता हुआ आचार्यकी ओर बढ़ रहा था। उसे भूतकर्माने रोका। तब शतानीकने अच्छी तरह सानपर चढ़ाये हुए बाणोंसे भूतकर्माके सिर और बाहुओंको काट डाला। भीमका पुत्र सुतसोम बाणोंकी झड़ी लगाता द्रोणाचार्यपर ही आक्रमण करना चाहता था। उसे विविंशतिने रोका। किंतु सुतसोमने सीधे निशानेपर लगनेवाले बाणोंसे अपने चाचाको बींध डाला और स्वयं निश्चल खड़ा रहा। इसी समय भीमने बाणोंसे शाल्वको उसके सारथी और घोड़ोंसहित यमराजके घर भेज दिया। श्रुतकर्मा भी रथमें चढ़कर द्रोणकी ओर ही बढ़ रहा था। उसे चित्रसेनके पुत्रने रोक दिया। आपके वे दोनों पौत्र एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे बड़ा घोर युद्ध करने लगे। इसी समय अश्वत्थामाने देखा कि राजा युधिष्ठिरका पुत्र प्रतिविन्ध्य द्रोणके सामने पहुँच चुका है, तो उन्होंने उसे बीचमें आकर रोक दिया। इसपर कुपित होकर प्रतिविन्ध्यने अपने पैने बाणोंसे अश्वत्थामाको घायल कर दिया। अब द्रौपदीके सभी पुत्र बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको आच्छादित करने लगे। अर्जुनके पुत्र श्रुतकीर्तिको दु:शासनके पुत्रने द्रोणकी और जानेसे रोका। किंतु वह अपने पिताके समान ही वीर था; उसने तीखे बाणोंसे उसके धनुष, ध्वजा और सारथीको बींध दिया और स्वयं द्रोणके सामने जा पहुँचा।

राजन्। पटच्चर राक्षसका वध करनेवाला वह वीर दोनों ही सेनाओंमें बहुत माना जाता था। उसे दुर्योधन पुत्र लक्ष्मणने रोका। उसने लक्ष्मणके धनुष और ध्वजाको काटकर उसपर बड़ी बाणवर्षा की। द्रुपदपुत्र शिखण्डीको महामति विकर्णने रोका। तब शिखण्डीने बाणोंको जाल-सा फैलाकर उसे रोक दिया। किंतु आपके वीर पुत्रने उसे फौरन काट-कूड डाला। उत्तमौजा बराबर आचार्यकी ओर बढ़ता जा रहा था। उसे अंगदने रोका। उन पुरुषसिंहोंका जो घमासान युद्ध हुआ, उसे देखकर सभी सैनिक वाह-वाह करने लगे। महान् धनुर्धर दुर्मुखने पुरुजित्को आचार्यकी ओर जानेसे रोका। इसपर पुरुजितने उसकी भौहोंके बीचमें बाण मारा। कर्णने पाँच केकय भाइयोंको रोका। उन्होंने बड़े क्रोधमें भरकर कर्णपर बाण

बरसाने आरम्भ कर दिये। कर्णने भी उन्हें कई बार अपने बाणजालसे बिल्कुल आच्छादित कर दिया। इस प्रकार कर्ण और केकयदेशीय पाँचों राजकुमार आपसकी बाणवर्षासे छिप जानेके कारण अपने घोड़े, सारथी, ध्वजा और रथोंके सहित दिखने भी बंद हो गये। आपके पुत्र दुर्जय, विजय और जयने नील, काय और जयत्सेनको बढ़नेसे रोका। इसी प्रकार क्षेमधूर्ति और बृहत्- इन दोनों भाइयोंने द्रोणकी ओर बढ़ते हुए सात्यकिको अपने तीखे तीरोंसे घायल कर दिया। उन दोनोंके साथ सात्यकिका बड़ा अद्भुत संग्राम हुआ। राजा अम्बष्ठ अकेला ही आचार्यसे युद्ध करना चाहता था। उसे चेदिराजने बाणोंकी वर्षा करके रोक दिया। तब अम्बष्ठने एक अस्थिभेदिनी शलाकासे चेदिराजको घायल कर दिया। वृष्णिवंशीय वृद्धक्षेमका पुत्र बड़े क्रोधमें भरकर जा रहा था। उसे आचार्य कृपने अपने छोटे-छोटे बाणोंसे रोक दिया। ये दोनों ही वीर अनेक प्रकारका युद्ध करनेमें कुशल थे। उस समय जिन लोगोंने इनके हाथ देखे वे ऐसे तन्मय हो गये कि उन्हें और किसी बातका होश ही नहीं रहा। सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाने द्रोणकी ओर आते हुए राजा मणिमान्‌का मुकाबला किया। मणिमान्‌ने बड़ी फूर्तीसे भूरिश्रवाके धनुष, तरकस, ध्वजा, सारथी और छत्रको काटकर रथसे नीचे गिरा दिया। तब भूरिश्रवाने अपने रथसे कूदकर बड़ी तत्परता से तलवार लेकर उसे उसके घोड़े, सारथी, ध्वजा और रथके सहित काट डाला। फिर वह अपने रथपर चढ़ गया और दूसरा धनुष लेकर स्वयं ही घोड़ोंको हाँकता हुआ पाण्डवोंकी सेनाको कुचलने लगा। इसी तरह दुर्जय वीर पाण्डवोंको आते देखकर उसे महाबली वृषसेनने अपने बाणोंकी बौछारसे रोक दिया।

इसी समय द्रोणाचार्यपर धावा करनेके विचारसे घटोत्कच गदा, परिघ, तलवार, पट्टिश, लोहदण्ड, पत्थर, लाठी, भृशुण्डी, प्रास, तोमर, बाण, मूसल, मुद्गर, चक्र, भिन्दिपाल, फरसा, धूल, वायु, अग्नि, जल, भस्म, ढेले, तृण और वृक्षादिसे सारी सेनाको घायल और नष्ट करता तथा इधर-उधर भगाता आगे आया। उसपर राक्षसराज अलम्बुषने तरह-तरहके हथियारोंसे वार किया। उन राक्षसवीरोंका बड़ा घोर युद्ध होने लगा।

इस प्रकार आपकी और पाण्डवोंकी सेनाके रथी, गजारोही, अश्वारोही और पदाति सैनिकोंकी सैकड़ों जोटें, बँध गयीं। इस समय द्रोणको मरनेसे बचानेके लिये जैसा युद्ध हुआ, वैसा इससे पहले न तो देखा था न और न सुना ही था। राजन्। वहाँ जहाँ-तहाँ अनेकों युद्ध हो रहे थे; उसमें कोई घोर था, कोई भयानक था और कोई बड़ा विचित्र था।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। जब पाण्डवलोग इस प्रकार लौटकर युद्धके लिये अलग-अलग बँट गये तो मेरे पुत्रोंने और उन्होंने किस प्रकार युद्ध किया?

संजयने कहा- राजन्। जब सब लोग संग्रामके लिये सजकर तैयार हो गये, तो आपके पुत्र दुर्योधनने गजारोहियोंकी सेना लेकर भीमके ऊपर धावा किया। किंतु युद्ध कुशल भीमने थोड़ी ही देरमें उस गजसेनाके व्यूहको तोड़ दिया। उनके बाणोंसे हाथियोंका सारा मद उतर गया और वे मुँह फेरकर भागने लगे। इसी तरह भीमने उस सारी सेनाको कुचल डाला। यह देखकर दुर्योधनका क्रोध भड़क उठा और वह भीमके सामने आकर उन्हें अपने पैने बाणोंसे बींधने लगा। किंतु एक क्षणमें ही भीमने बाण बरसाकर उसे घायल कर दिया तथा बाण छोड़कर उसकी ध्वजामें चित्रित मणिमय हाथी और धनुषको काट डाला। इस प्रकार दुर्योधनको पीड़ित होते देख अंगदेशका राजा हाथीपर सवार हुआ भीमके सामने आया। उसके हाथीको अपनी ओर आते देखकर भीमने बाणोंकी वर्षा करके उसके मस्तकको बहुत घायल कर दिया। इससे वह घबराकर पृथ्वीपर गिर गया। हाथीके गिरनेके साथ अंगराज भी जमीनपर गिर गया। इसी समय फुर्तीले भीमने एक बाणसे उसका सिर उड़ा दिया। यह देखते ही उसकी सेना घबराकर भाग गयी।

भीम कर्ण से लड़ रहे थे, कौरवों के गजदल पर टूट पड़े। अपने दाँत पीसते हुए अपनी प्रचण्ड गदा के प्रहारों से कई हाथियों के गण्डस्थल विदीर्ण कर डाले। वे अपनी बाहुओं की सहस्र गज-शक्ति को प्रमाणित कर रही थी। चीत्कार करते

हुए धरती पर गिरनेवाले हाथियों से धूल-ही-धूल उड़ने लगी।

इसके बाद ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए एक विशालकाय गजराजपर चढ़ प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तने भीमपर आक्रमण किया। उनके हाथीने क्रोधमें भरकर अपने आगेके दो पैर और सूँड़से भीमके रथ और घोड़ोंको एकदम कुचल डाला। भीम अञ्जलिकावेध (हाथी के पेट पर हाथसे थपथपाना अञ्जलिवेद कहलाता है यह हाथीको अच्छा लगता है इससे बिगडे हुए हाथीको बसमें किया जाता है) जानते थे। इसलिये वे भगे नहीं, बल्कि दौड़कर हाथीके पेटके नीचे छिप गये और बार-बार उसे थपथपाने लगे। उस गजराजमें दस हजार हाथियोंके समान बल था और वह भीमको मार डालनेपर तुला हुआ था, इसलिये बड़ी तेजीसे कुम्हारके चाकके समान चक्कर लगाने लगा। तब भीम नीचेसे निकलकर उसके सामने आ गये। हाथीने उन्हें सूँड़से गिराकर घुटनोंसे मसलना आरम्भ किया। तब भीमने अपने शरीरको घुमाकर उसकी सूँड़से निकाल लिया और वे फिर उसके शरीरके नीचे छिप गये। कुछ देरमें वे उससे बाहर आकर बड़े वेगसे भाग गये। यह देखकर सारी सेनामें बड़ा कोलाहल होने लगा। पाण्डवोंकी सेना उस हाथीसे बहुत डर गयी और जहाँ भीम खड़े थे, वहीं पहुँच गयी।

तब महाराज युधिष्ठिरने पाञ्चाल वीरोंको साथ लेकर राजा भगदत्तको सब ओरसे घेर लिया और उनपर सैकड़ों हजारों बाणोंसे वार किया। किंतु भगदत्तने पाञ्चाल वीरोंके उस प्रहारको अपने अंकुशसे ही व्यर्थ कर दिया और फिर अपने हाथीसे ही पाञ्चाल और पाण्डव वीरोंको रौंदने लगे। संग्रामभूमिमें भगदत्तका यह बड़ा ही अद्‌भुत पराक्रम था। इसके बाद दशार्णदेशका राजा हाथीपर चढ़कर भगदत्तके सामने आया। अब दोनों हाथियोंका बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया। भगदत्तके हाथीने पीछे हटकर फिर एक साथ ऐसी टक्कर मारी कि दशार्णराजके हाथीकी पसलियाँ टूट गयीं। वह तुरंत पृथ्वीपर गिर गया। इसी समय भगदत्तने सात चमचमाते हुए तोमरोंसे हाथीपर बैठे हुए दशार्णराजको मार डाला।

अब युधिष्ठिरने बड़ी भारी रथसेना लेकर भगदत्तको चारों ओरसे घेर लिया। परंतु प्राग्ज्योतिषनरेशने अपने हाथीको यकायक सात्यकिके रथपर छोड़ दिया। हाथीने उसके रथको उठाकर बड़े वेगसे दूर फेंक दिया। किंतु सात्यकि रथमें से कूदकर भाग गया। तब कृतीका पुत्र रूचिपर्वा भगदत्तके सामने आया। वह एक रथपर सवार था। उसने कालके समान बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ कर दी। किंतु भगदत्तने एक ही बाणसे उसे यमराजके घर भेज दिया। वीर रुचिपर्वाके मारे जानेपर अभिमन्यु, द्रौपदीके पुत्र, चेकितान, धृष्टकेतु और युयुत्सु आदि योद्धा भगदत्तके हाथीको तंग करने लगे। उसका काम तमाम करनेके लिये उन्होंने उसपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। किंतु जब महावतने उसे एड़ी, अंकुश और अँगूठेसे गुदगुदाकर बढ़ाया तो वह सूँड़ फैलाकर तथा कान और नेत्रोंको स्थिर करके शत्रुओंकी ओर चला। उसने युयुत्सुके घोड़ोंको पैरसे दबाकर उसके सारथीको मार डाला। तब युयुत्सु तुरंत ही रथसे कूदकर भाग गया।

अब अभिमन्युने, युयुत्सुने तथा द्रौपदीके पाँचों पुत्र और धृष्टकेतुने बाण मारकर उसे घायल कर दिया। शत्रुओंकी बाणवर्षाने उसे बहुत ही पीड़ा पहुँचायी। महावतने उसे फिर युक्तिपूर्वक बढ़ाया। इससे कुपित होकर वह शत्रुओंको उठा-उठाकर अपने दायें-बायें फेंकने लगा। इससे सभी वीरोंको भयने दबा लिया। गजारोही, अश्वारोही, रथी और राजा सभी डरकर भागने लगे। उस समय उनके कोलाहलसे बड़ा भीषण शब्द होने लगा। वायु बड़े वेगसे बह रहा था, इसलिये आकाश और समस्त सैनिक धूलसे ढक गये।

अर्जुनने राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके लिए सात्यकि, पांचाल राजकुमार सत्यजित आदिको नियुक्त किया और स्वयं संशप्तकोंसे युद्ध करने चले गये। संशप्तकोंके शूरोंका शौर्य अतुलनीय था। उनके एक-एक सैनिकने संग्राममें जीवनकी बाजी लगा रखी थी किन्तु गाण्डीव धन्वाके साथ श्रीकृष्ण हों तो प्रतिपक्ष समर शैय्याके अतिरिक्त और क्या पा सकता है। अवश्य ही अर्जुनको भी दिनका अधिक भाग अविराम युद्ध करना पड़ा। मरते, कटते, संख्या बलके अनवरत क्षय होते

रहनेपर भी उन श्लाघ्य वीरोंने सव्यसाचीको तनिक भी अवकाश नहीं दिया।

सहसा अर्जुनको मुख्य संग्रामभूमिसे उठती हाथीकी भयानक चिङ्घाड़ सुनायी पड़ी और आकाशमें धूलिका अम्बार उठता दिखा। उन्होंने अनुमान कर लिया कि प्राग्ज्योतिषपुरका नरेश भगदत्त अपने हाथीपर चढ़कर पाण्डपक्षपर आक्रमण कर रहा है। पृथ्वीके गिने चुने श्रेष्ठतम वीरोंमें भगदत्तकी गणना थी। अर्जुन चिन्तित हो उठे कि उसके आक्रमणको उनके अतिरिक्त सह लेनेवाला पाण्डवपक्षमें कोई वहाँ था ही नहीं।

अर्जुन मुख्य युद्धभूमिमें लौटना चाहकर भी लौट नहीं पा रहे थे। अब भी लगभग आधी सेना संशप्तकोंकी शेष थी और वे ललकार रहे थे। अर्जुनने अब दिव्यास्त्रके प्रयोगका निर्णय किया। इस प्रकार अधिकांश संशप्तकोंको मारकर, अन्तिम चुनौती देनेवाले उनके अग्रणी सुशर्माको भी संग्राममें मूर्च्छित करके वे मुख्ययुद्ध भूमिमें लौट आये। आते ही कौरव सेना को अपनी बाण वर्षासे सन्त्रस्त कर दिया और आगे बढ़ते भगदत्तकी गति रोक दी।

उन्हे जाते देखकर चौदह हजार संशप्तक, दस हजार त्रिगर्त और चार हजार नारायणी सेनाके वीर पीछेसे पुकारने लगे। सुशर्मा प्रकट होकर बोला, कायरके समान कहाँ भागा जा रहा है अर्जुन। पहले मुझसे युद्ध कर। अब अर्जुनका हृदय द्विविधामें पड़ गया। वे सोचने लगे कि मैं संशप्तकोंकी ओर लौटूँ या राजा युधिष्ठिरके पास जाऊँ? इन दोनोंमेंसे कौन काम करना विशेषहितकर होगा? अन्तमें उनका विचार संशप्तकोंका वध करनेके पक्षमें ही अधिक स्थिर हुआ। इसलिये वे अकेले ही वीरोंका नाश करनेके विचारसे फिर संशप्तकोंकी ओर लौट पड़े। यह योद्धा नहीं छलावा है। मुझे क्षत्रियों का धर्म सिखाता है और स्वयं केवल कपट युद्ध करता है।

यह देखकर सुशर्माने अपने भाइयोंको साथ लेकर उनका पीछा किया। तब अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा, अच्युत। देखिये, इधर तो अपने भाइयोंके सहित सुशर्मा मुझे युद्धके लिये ललकार रहा है और उधर उत्तर दिशामें हमारी सेनाका संहार हो रहा है। बताइये, इनमेंसे कौन काम करना हमारे लिये अधिक हितकर होगा? यह सुनकर श्रीकृष्णने त्रिगर्त्तराज सुशर्माकी ओर रथ मोड़ दिया। अर्जुनने तुरंत ही बाणोंसे सुशर्माको बींधकर बाणोंसे उसके धनुष और ध्वजाको काट डाला। फिर उसके भाईको सारथी और घोड़ोंसहित यमराजके पास भेज दिया। तब सुशर्माने देखकर अर्जुनपर एक लोहेकी शक्ति और श्रीकृष्णपर एक तोमर छोड़ा। अर्जुनने बाणोंसे शक्ति और तोमर दोनोंहीको काट डाला और फिर बाणोंकी वर्षासे सुशर्माको मूर्च्छित कर द्रोणकी ओर लौट पड़े।

भगदत्तका वह अस्त्र लोकपालोंको भी मार देनेमें समर्थ था। अस्त्रसे अभिमन्त्रित अंकुश प्रज्वलित वज्रके समान सम्पूर्ण दिशाओंको आलोकित करता चला। किन्तु श्रीकृष्णने उठकर अर्जुनको अपनी आड़में कर लिया और अपने वक्षपर वह अस्त्र ले लिया। उनके श्रीवत्सांकित वक्षका स्पर्श होते ही वैष्णवास्त्रका प्रभाव समाप्त हो गया। अंकुश तनिक आहत करता गिर पड़ा। इस प्रकार भगदत्तके अनेकों पराक्रम दिखानेपर जब अर्जुनने आकाशमें धूल उठती देखी और हाथीकी चिग्घार सुनी तो उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, मधुसूदन। मालूम होता है, प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त आज हाथीपर चढ़कर हमारी सेनापर टूट पड़े हैं नि:संदेह यह चिग्घार उन्हींके हाथीकी है। मेरा तो ऐसा विचार है कि ये युद्धमें इन्द्रसे कम नहीं हैं। इन्हें गजारोहियोंमें पृथ्वीभरमें सबसे श्रेष्ठ कहा जा सकता है। आज ये अकेले ही पाण्डवोंकी सारी सेनाको नष्ट कर देंगे। हम दोनोंके सिवा इनकी गतिको रोकनेमें और कोई समर्थ नहीं है। इसलिये अब जल्दी ही उनकी ओर चलिये।

उन्होंने अपनी बाणवर्षासे कौरवोंकी सेनाको ढक दिया और फिर वे भगदत्तके सामने आकर डट गये। भगदत्त मेघके समान श्यामवर्ण हाथीपर चढ़े हुए थे। उन्होंने अर्जुनपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ कर दी। किंतु अर्जुनने बीचहीमें उन सब बाणोंको काट डाला। इसपर भगदत्तने भी अर्जुनके बाणोंको रोककर श्रीकृष्ण और उनपर बाणोंकी चोट आरम्भ की।

HHH(३९)HHH

तब अर्जुनने उनके धनुषको काट डाला अङ्गरक्षकोंको मारकर गिरा दिया और भगदत्तके साथ खेल-सा करते हुए युद्ध करने लगे। भगदत्तने उनपर तोमर छोड़े, किंतु उन्होंने प्रत्येकके दो-दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने भगदत्तके हाथीका कवच काट डाला। तब भगदत्तने श्रीकृष्णपर एक लोहेकी शक्ति छोड़ी, किंतु अर्जुनने उसके दो टुकड़े कर डाले तथा भगदत्तके छत्र और ध्वजाको काटकर उन्हें बाणोंसे बींध डाला। धनंजय ने एक अर्धचन्द्राकार बाण उसके प्रचण्ड हाथीके गण्डस्थल में मारा। हाथी नीचे गिर गया और भगदत्तको धरतीपर पटक दिया। इससे भगदत्तको बड़ा विस्मय हुआ।

भगदत्तने कम पौरुष नहीं प्रकट किया किन्तु अर्जुनने अन्तमें उसके धनुष और त्रोण भी काट दिये। उसके मर्मस्थलोंपर आघात किया। व्याकुल होकर भगदत्तने अंकुशपर ही वैष्णवास्त्रका आवाहन किया और उसे अर्जुनपर पूरे बलसे फेंका।

अर्जुनके ऐसा कहनेपर कृष्ण उनके रथको उसी ओर ले चले, जिधर भगदत्त पाण्डवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे। अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न हुए कृष्ण ने अब नन्दिघोष रथ को युधिष्ठिर की ओर उसके रक्षणार्थ दौड़ाया। नरकासुर पुत्र भगदत्त ने युधिष्ठिर को घेरकर संकट में डाल दिया था। इस प्रकार वहाँ जो संशप्तक वीर मौजूद थे, उनमेंसे अधिकांशको मारकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- अब भगदत्तकी ओर चलिये। तब कृष्णने तत्परता से घोड़ोंको द्रोणाचार्यकी सेनाकी ओर मोड़ दिया।

संशप्तक महारथियोंने एक साथ हजारों बाण अर्जुनपर छोड़े। उनसे बिल्कुल ढक जानेके कारण अर्जुन, कृष्ण तथा उनके घोड़े और रथ सभी दिखने बन्द हो गये। तब अर्जुनने बात-की-बातमें उन्हें ब्रह्मास्त्रसे नष्ट कर दिया। फिर उनके बाणोंसे संग्रामभूमिमें अनेकों ध्वजाएँ, घोड़े, सारथी, हाथी और महावत कट-कटकर गिर गये; अनेकों वीरोंकी भुजाएँ, जिनमें ऋष्टि, प्रास, तलवार, बघनख, मुद्गर और फरसे आदि लगे हुए थे, कटकर इधर-उधर फैल गयीं तथा उनके सिर जहाँ-तहाँ लुढ़कने लगे। अर्जुनका यह अद्भुत पराक्रम देखकर श्रीकृष्णको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे, पार्थ। आज तुमने जो काम किया है, मेरी समझसे वह इन्द्र, यम और कुबेर भी नहीं कर सकते। मैंने युद्धमें प्रत्यक्ष ही सैकड़ों-हजारों संशप्तक महारथियोंको एक साथ गिरते देखा है।

इस प्रकार अर्जुनके बाणोंसे बिंधे हुए भगदत्तने भी क्रोधमें भरकर उनके मस्तकपर कई बाण मारे। इससे उनका मुकुट कुछ टेढ़ा हो गया। मुकुटको सीधा करते हुए अर्जुनने भगदत्तसे कहा- राजन्। अब तुम इस संसार को जी भरकर देखलो। यह सुनकर भगदत्त क्रोधमें भर गये और अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। यह देख अर्जुनने बड़ी फूर्तीसे उनके धनुष और तरकसोंको काट डाला तथा बाणोंसे उनके मर्मस्थानोंको बींध दिया। इससे अत्यन्त व्यथित होकर भगदत्तने वैष्णवास्त्रका आवाहन किया और उससे अंकुशको अभिमन्त्रित करके उसे अजुर्नकी छातीपर चलाया। भगदत्तका वह अस्त्र सबका नाश करनेवाला था, अत: श्रीकृष्णने अर्जुनको ओटमें करके उसे अपनी ही छातीपर झेल लिया। इससे अर्जुनके चित्तको बड़ा क्लेश पहुँचा और उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा, भगवन्। आपने तो प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध न करके केवल सारथीका काम करूँगा; किंतु अब आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं संकटमें पड़ जाता या अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता, उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। आपको तो यह भी मालूम है कि यदि मेरे हाथमें धनुष और बाण हो तो मैं देवता, असुर और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण लोकोंको जीतनेमें समर्थ हूँ।

यह सुनकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपूर्ण वचन कहे, कुन्तीनन्दन, सुनो; मैं तुम्हें एक गुप्त बात बतलाता हूँ, जो पूर्वकालमें घटित हो चुकी है। मैं चार स्वरूप धारण कर सदा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षामें तत्पर रहता हूँ। अपनेको ही अनेकों रूपोंमें विभक्त करके संसारका हित करता हूँ। (नारायण नामसे प्रसिद्ध) मेरी एक मूर्ति इस भूमंडलपर रहकर तपस्या करती है। दूसरी मूर्ति जगत्के शुभाशुभ कर्मोंपर दृष्टि रखती है। तीसरी मनुष्य लोकमें आकर नाना प्रकारके कर्म करती है और

चौथी वह है, जो हजार वर्षोंतक जलमें शयन करती है। वह मेरा चौथा विग्रह जब हजार वर्षके पश्चात् शयनसे उठता है, उस समय वर पानेयोग्य भक्तों तथा ऋषि-महर्षियोंको उत्तम वरदान देता है। एक बार, जब कि वही समय प्राप्त था, पृथ्वीदेवीने जाकर मुझसे यह वरदान माँगा कि मेरा पुत्र (नरकासुर) देवता तथा असुरोंसे अवध्य हो और उसके पास वैष्णवास्त्र रहे। पृथ्वीकी यह याचना सुनकर मैंने उसके पुत्रको अमोघ वैष्णवास्त्र दिया और उससे कहा- पृथ्वी। यह अमोघ वैष्णवास्त्र नरकासुरकी रक्षाके लिये उसके पास रहेगा, अब इसे कोई नहीं मार सकेगा। पृथ्वीकी मन:कामना पूरी हुई और वह ऐसा ही हो कहकर चली गयी तथा वह नरकासुर भी दुर्द्धर्ष होकर शत्रुओंको संताप देने लगा। अर्जुन। वही मेरा वैष्णवास्त्र नरकासुरसे भगदत्तको प्राप्त हुआ था। इन्द्र और रुद्र आदि देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस अस्त्रसे मारा न जा सके। अत: तुम्हारी प्राणरक्षाके लिये ही मैंने इस अस्त्रकी चोट स्वयं सह ली और इसे व्यर्थ कर दिया है। अर्जुन यदि उसके हाथी का पैर हमारे रथ पर पड़ या तो अश्वोंसहित रथ बैठ जाएगा अब तुम भगदत्त की पीड़ा समाप्त करो। अब भगदत्तके पास यह दिव्य अस्त्र नहीं रहा, अत: इस महान् असुरको तुम मार डालो।

महात्मा श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने सहसा तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके भगदत्तको ढक दिया और उनके हाथीके दोनों कुम्भस्थलोंके बीचमें बाण मारा। वह बाण पूँछसहित उसके मस्तकमें धँस गया। फिर तो राजा भगदत्तके बार-बार हाँकनेपर भी हाथी आगे न बढ़ सका और आर्तस्वरसे चिग्घारते हुए उसने प्राण त्याग दिये। तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- पार्थ। यह भगदत्त बहुत लम्बी आयु का है, इसके केश श्वेत हो गये हैं। पलकें ऊपर न उठनेके कारण इसकी आँखें प्राय: बंद रहती हैं; इस समय इसने आँखोंको खुली रखनेके लिये कपड़ेकी पट्टीसे पलकोंको ललाटमें बाँध रक्खा है।

श्रीकृष्ण के कहनेसे अर्जुनने बाण मारकर भगदत्तके सिरकी पट्टी काट दी उसके कटते ही भगदत्तकी आँखें बंद हो गयीं। तत्पश्चात् एक अर्धचन्द्राकार बाण मारकर अर्जुनने राजा भगदत्तकी छाती छेद दी। उनका हृदय फट गया, प्राणपखेरू उड़ गये और हाथसे धनुष-बाण छूटकर गिर पड़े। पहले उनके मस्तकसे खिसककर पगड़ी गिरी, फिर वे स्वयं भी पृथ्वीपर गिर गये। इस प्रकार अर्जुनने उस युद्धमें इन्द्रके सखा राजा भगदत्तका वध किया और कौरवपक्षके अन्यान्य योद्धाओंका भी संहार कर डाला।

संजयने कहा- भगदत्तको मारकर अर्जुन दक्षिण दिशाकी ओर घूमे। उधरसे गन्धारराज सुबलके दो पुत्र वृषक और अचल आ पहुँचे तथा दोनों भाई युद्धमें अर्जुनको पीड़ित करने लगे। एक तो अर्जुनके सामने खड़ा हो गया और दूसरा पीछे; फिर दोनों एक साथ तीखे बाणोंसे उन्हें बींधने लगे। तब अर्जुनने अपने पैने बाणोंसे वृषकके सारथी, धनुष, छत्र, ध्वजा, रथ और घोड़ोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं तथा नाना प्रकारके अस्त्रों और बाणसमूहोंसे बींधकर गन्धारदेशीय योद्धाओंको व्याकुल कर डाला। साथ ही, क्रोधमें भरकर उन्होंने गान्धारवीरोंको यमलोक भेज दिया। यह देख क्रुद्ध हुए शकुनि ने अपने सैनिकोंसहित अर्जुनपर आक्रमण किया। आदित्य अस्त्र का प्रयोग कर गान्धार सेना सहित शकुनि को भगा दिया।

वृषकके रथके घोड़े मारे जा चुके थे, इसलिये उससे कूदकर वह अपने भाई अचलके रथपर जा बैठा और उसने दूसरा धनुष हाथमें ले लिया। अब तो वे वृषक और अचल दोनों भाई बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको बींधने लगे। वे दोनों रथपर एक दूसरेसे सटकर बैठे थे, उसी अवस्थामें अर्जुनने एक ही बाणसे दोनोंको मार डाला। दोनों एक साथ ही रथसे नीचे गिर पड़े। राजन् अपने दोनों मामाओंको मरा देख आपके पुत्र आँसू बहाने लगे। भाइयोंको मृत्युके मुखमें पड़ा देख सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाले शकुनिने श्रीकृष्ण और अर्जुनको मोहमें डालनेके लिये मायाकी रचना की। उस समय समस्त दिशाओं और उपदिशाओंसे अर्जुन पर लोहेके गोले, पत्थर, शतघ्नी, शक्ति, गदा, परिघ, तलवार, शूल, मुद्गर, पट्टिश, ऋष्टि, नख, मूसल, फरसा, छुरा, क्षुरप्र, नालीक, वत्सदन्त, अस्थिसंधि, चक्र, बाण और प्रास आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा

होने लगी। गदहे, ऊँट, भैंसे, सिंह, व्याघ्र, चीते, रीछ, कुत्ते, गिद्ध, बंदर, साँप तथा नाना प्रकारके राक्षस और पक्षी भूखे तथा क्रोधमें भरे हुए सब ओरसे अर्जुनकी ओर टूट पड़े।

अर्जुन तो दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता थे ही, सहसा बाणोंकी वृष्टि करते हुए उन जीवोंको मारने लगे। अर्जुनके बाणोंकी मार पड़नेसे वे सभी प्राणी जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए नष्ट हो गये। इतनेहीमें अर्जुनके रथपर अँधेरा छा गया। उसमेंसे बड़ी क्रूर वाणी सुनायी देने लगी। परंतु उन्होंने ज्योतिष नामक अत्यन्त उत्तम अस्त्रका प्रयोग करके उस भयंकर अन्धकारका नाश कर दिया। अँधेरा दूर होते ही वहाँ भयानक जलधाराएँ गिरने लगीं। तब अर्जुनने आदित्यास्त्र का प्रयोग करके वह सारा जल सुखा दिया। इस प्रकार शकुनिने अनेकों प्रकारकी मायाएँ रचीं, किंतु अर्जुनने हँसते-हँसते अपने अस्त्रबलसे उन सबका नाश कर दिया। जब सम्पूर्ण मायाका नाश हो गया और शकुनि अर्जुनके बाणोंसे विशेष आहत हो गया, तब वह भयभीत होकर रणभूमिसे भाग गया।

तदनन्तर अर्जुन कौरव-सेनाका विध्वंस करने लगे। वे बाणोंकी वर्षा करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे, किंतु कोई भी धनुर्धर वीर उन्हें रोक न सका। अर्जुनकी मारसे पीड़ित हो कौरवोंकी सेना इधर-उधर भागने लगी। उस समय घबराहटके कारण कौरवोंके बहुत-से सैनिकोंने अपने ही पक्षके योद्धाओंका संहार कर डाला। अर्जुन हाथी, घोड़े और मनुष्योंपर उस समय दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे, एक ही बाणसे आहत होकर वे प्राणहीन हो धराशायी हो जाते थे। मारे गये मनुष्य, हाथी और घोड़ोंकी लाशोंसे भरी हुई उस रणभूमिकी अद्भुत शोभा हो रही थी। सभी योद्धा बाणोंकी मारसे व्याकुल हो रहे थे, उस समय बाप बेटेको और बेटा बापको छोड़कर चल देता था। मित्र-मित्रकी बात नहीं पूछता था। लोग अपनी सवारी भी छोड़कर भाग चले थे।

इधर द्रोणाचार्य अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवसेनाको छिन्न-भिन्न करने लगे। अद्भुत पराक्रमी द्रोण जिस समय उन योद्धाओंको कुचल रहे थे, सेनापति धृष्टद्युम्नने स्वयं आकर द्रोणके चारों ओर घेरा डाल दिया। फिर तो द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नमें अद्भुत युद्ध होने लगा। दूसरी ओर अग्निके समान तेजस्वी राजा नील अपने बाणोंसे कौरवसेनाको भस्म करने लगा। उसे इस प्रकार संहार करते देख अश्वत्थामाने हँसकर कहा- नील। तुम अपनी बाणाग्निसे इन अनेक योद्धाओंको क्यों भस्म कर रहे हो, साहस हो तो केवल मेरे साथ लड़ो। यह ललकार सुनकर नीलने बाणोंसे अश्वत्थामाको बींध दिया। तब उसने भी बाण मारकर नीलके धनुष, ध्वजा और छत्रको काट डाला। यह देख नील हाथमें ढाल-तलवार से रथसे कूद पड़ा और अश्वत्थामाके सिरको काटना ही चाहता था कि उसीने भाला मारकर नीलके कुण्डलसहित मस्तकको काट गिराया। नील पृथ्वीपर गिर पड़ा। किन्तु घमासान युद्ध में अश्वत्थामा ने राजा नील का वध कर दिया था। उसकी मृत्युसे पाण्डवसेनाको बड़ा दु:ख हुआ।

द्रोणाचार्यने धनुषपर नागपाश चढ़ाया था युधिष्ठिरको बाँधनेके लिए। दूसरी ओर श्रीकृष्णने सहसा रथ मोड़ दिया और अर्जुनसे बोले, शीघ्रता करो। आचार्यका धनुष काट दो।

अचानक आचार्यका धनुष दो टुकड़े हो गया। उन्होंने देखा कि बाण तो सव्यसाचीका है। वे पुकार उठे- अर्जुन आ गया। आचार्यका पुकार उठना उनके पक्षके लिए अधिक अहितकर हो गया। उनकी सेनाके लोग भी पुकार उठे- अर्जुन आ गया। कौरव सेनामें आतंक छा गया। दूसरी ओर पाण्डव सेनामें भी लोगोंने कहा- अर्जुन आ गये। उनमें उत्साह दौड़ गया। भागते लोग भी लौट पड़े। अस्त व्यस्त सेना जमकर प्रतिकार करने लगी।

सचमुच अर्जुन आ गये। श्रीकृष्णने नन्दिघोष रथ सीधे हाँक दिया था। अर्जुनकी बाणवर्षा और नन्दिघोषका लोगोंको कुचलता चलता रथ चक्र उसके वेगमें व्याघात पड़ नहीं सकता था। पहुँचते ही अर्जुनने वह संहार प्रारम्भ किया कि पृथ्वी

शत्रुओंके शवोंसे पट गयी। कौरव सेना त्राहि-त्राहि करती भाग खड़ी हुई। आचार्य द्रोण कुछ कर नहीं सके। सूर्यास्तने ही युद्ध बन्द कराके कौरवोंको सुरक्षा दी।

इतनेहीमें अर्जुन बहुत-से संशप्तकोंको जीतकर, जहाँ द्रोणाचार्य पाण्डवसेनाका संहार कर रहे थे, वहाँ आ पहुँचे और कौरव योद्धाओंको अपने शस्त्रोंकी आगमें जलाने लगे। उनके सहस्त्रों बाणोंसे पीड़ित होकर कितने ही हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल सैनिक भूमिपर गिरने लगे। कितने ही आर्तस्वरसे कराहने लगे। कितनोंने तो गिरते ही प्राण त्याग दिये। उनमेंसे जो उठते-गिरते भागने लगे, उन योद्धाओंको अर्जुनने युद्धसम्बन्धी नियमका स्मरण करके नहीं मारा। भागते हुए कौरव हा कर्ण। हा कर्ण। ऐसे पुकारने लगे। शरणार्थियोंका वह करुण क्रन्दन सुनकर- वीरो। डरो मत ऐसा कहकर कर्ण अर्जुनका सामना करने चला। कर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ था, उसने उस समय आग्नेयास्त्र प्रकट किया; परंतु अर्जुनने उसे शान्त कर दिया। इसी प्रकार कर्णने भी अर्जुनके तेजस्वी बाणोंका अपने अस्त्रसे निवारण कर दिया और बाणोंकी वर्षा करते हुए सिंहनाद किया। तब धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि भी वहाँ पहुँचकर कर्णको अपने बाणोंसे बींधने लगे। कर्णने भी बाणोंसे उन तीनों वीरोंके धनुष काट डाले। तब उन्होंने कर्णपर शक्तियोंका प्रहार करके सिंहोंके समान गर्जना की। कर्ण भी बाणोंसे उन शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़े करके अर्जुनपर बाण बरसाता हुआ गर्जने लगा। यह देख अर्जुनने बाणोंसे कर्णको बींधकर उसके छोटे भाईको मार डाला, फिर उसके दूसरे भाई शत्रुञ्जयको भी बाणोंसे मौतके घाट उतारा। उसके बाद एक भाला मारकर विपाटके भी मस्तकको काटकर उसे रथसे गिरा दिया। इस प्रकार कौरवोंके देखते-देखते कर्णके सामने ही उसके तीनों भाइयोंको अर्जुनने अकेले ही मार डाला। सन्ध्या समय पहली बार कर्ण का जैत्ररथ अर्जुन के नन्दिघोष के आगे आया। दोनों ने एक साथ ही एक-दूसरे पर शरसन्धान किया। कुरुक्षेत्र की पवित्र रणभूमि पर नन्दिघोषारूढ़ कृष्णने हँसते-हँसते अस्त होते सूर्यबिम्ब की ओर देखकर नमस्कार किया।

तदनन्तर, भीम भी अपने रथसे कूद पड़े और तलवारसे कर्णपक्षके पंद्रह वीरोंको मारकर फिर अपने रथपर चढ़ आये। इसके बाद दूसरा धनुष लेकर उन्होंने कर्णको तथा उसके सारथी और घोड़ोंको बाणोंसे बींध डाला। इसी प्रकार धृष्टद्युम्न भी अपने रथसे उतरकर ढाल-तलवार लिये आगे बढ़ा और चन्द्रवर्मा तथा निषधदेशके राजा बृहत्क्षत्रको मारकर पुन: रथपर आ गया। फिर दूसरा धनुष हाथमें ले उसने सिंहनाद करते हुए बाणोंसे कर्णको बींध दिया। इसके बाद सात्यकिने भी दूसरा धनुष उठाया और बाणोंसे कर्णको बींधकर सिंहके समान गर्जना की। फिर उसने कर्णका धनुष काट दिया और उसकी बाहुओं तथा छातीमें प्रहार किया।

द्रोण ने बाण वर्षा की। भीम ने भी बाणवर्षा की। द्रोण ने भीम को आहत किया। एक के बाद एक बाण चला रहे हैं। भीम ने अपनी गदा उठा ली। नकुल ने आचार्य पर आक्रमण किया। सहदेव ने द्रोण पर बाण चलाये। सभी भाई द्रोण से युद्ध करने में लग गये। अब युधिष्ठिर अपनी सेना के साथ अकेला रह गया। द्रोण ने युधिष्ठिर पर बाण चलाना आरम्भ किया और युधिष्ठिर के बाण काटने लगे। सबके बाण खाली हो गये। इतने में अर्जुन वहां पर आ गया और द्रोण से युद्ध करने लगा।

कर्ण सात्यकिरूपी समुद्रमें डूब रहा था; उस समय दुर्योधन, द्रोणाचार्य और जयद्रथने आकर उसके प्राण बचाये। फिर तो कौरवोंकी सेनाके सैकड़ों पैदल, रथी और हाथीसवार योद्धा कर्णकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न, भीम, अभिमन्यु, नकुल और सहदेव सात्यकिकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार वहां समस्त धनुर्धारियोंका नाश करनेके लिये महाभयानक संग्राम छिड़ गया। कौरवोंके और पाण्डवपक्षके वीरोंमें प्राणोंका मोह छोड़कर युद्ध होने लगा। इतनेमें सूर्य अस्ताचलको जा पहुँचा और युद्ध समाप्ति की घोषणा हुई।

दूसरे दिनके इस युद्धमें भी द्रोणाचार्यका युधिष्ठिरको बन्दी बनानेका प्रयास असफल सिद्ध हुआ। उन्होंने प्रयत्न बहुत किया और पाण्डवपक्षकी सेनाका संहार भी बहुत किया। अनेक महारथियोंको पीछे भागनेको भी विवश किया किन्तु युधिष्ठिर तक वे पहुँचते इससे पूर्व ही भगदत्तको भी मारकर अर्जुन सम्मुख आ पहुँचे।

द्रोणाचार्य अर्जुनके आनेपर स्वयं संकटमें पड़ गये। कर्ण उनकी रक्षाको आगे बढ़ा किन्तु सात्यकिके साथ युद्धमें कर्ण ही मारा जाता यदि जयद्रथ, द्रोणाचार्य आदिने उसको बचाया न होता।

अर्जुन और भीमने आजके युद्धमें कौरवपक्षका इतना विनाश किया कि उनकी सेना अस्त व्यस्त होकर भाग चली। सूर्यास्त हो गया इसी समय, अत: दोनों दल युद्ध रोककर अपने शिबिरोंको लौटने लगे। तब दोनों ओर की थकी-माँदी एवं लहूलुहान हुई सेनाएँ एक-दूसरेको देखती हुई धीरे-धीरे अपने शिबिरको लौट गयी। सूर्यास्त हो गया और युद्ध समाप्ति हो गई। द्रोण युधिष्ठिर को बन्दी नहीं बना पाये।

दुर्योधन के शिबिर में कर्ण, दु:शासन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य सभी चिन्तामग्न बैठे हैं। गुरु द्रोणाचार्य आते हैं। दुर्योधन बोला, हे परशुराम शिष्य आचार्य, हे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, मैं हस्तिनापुर के प्रति आपकी निष्ठा को सादर प्रणाम करता हूँ। आपका यह आदेश था कि यदि मैं युधिष्ठिर को बन्दी बनाना चाहूँ तो अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर करना पडेगा। मैंने उसका प्रबन्ध भी किया गुरुदेव और यह प्रबन्ध मुझे अपने सैकड़ों सैनिकों की बलि देकर करना पड़ा। किन्तु मैंने देखा कि आपके युधिष्ठिर के निकट पहुंचने के उपरान्त भी आपने उसे बन्दी नहीं बनाया। आप तो अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की प्रतीक्षा करते रहे कि वो आये और युधिष्ठिर को बचाकर ले जाये। गुरुदेव पितामह ने यह कहने का साहस तो किया कि वो इस युद्ध में पांडवों का वध नहीं करेंगे किंतु आप तो वचन देकर फिर गये।

सत्पुरुष सदाके लिए समाप्त हो जायँ, यदि दुष्टोंके दुरभिप्राय सफल होते रहें। दूसरे दिनकी पराजयसे दुर्योधन बहुत दु:खित हुआ था। रात्रिमें द्रोणाचार्यके समीप जाकर बोला- आपने प्रसन्न होकर मुझे वरदान तो दे दिया किन्तु उसे अवसर आनेपर भी पूर्ण नहीं किया। कल समीप आनेपर भी युधिष्ठिरको आपने छोड़ दिया। लगता है कि आपका हमपर स्नेह समाप्त हो गया है।

खिन्न होकर आचार्य बोले- राजन्। मैंने तो पहिले ही कहा था कि अर्जुनको पराजित करना असम्भव है। श्रीकृष्ण और अर्जुन साथ हो तो भगवान शंकर भी उनके सामने पराजित ही होंगे। युद्धका ऐसा कोई कौशल नहीं जिसे अर्जुन न जानता हो या न कर सके। उसे यदि तुम दूर हटा सको तो मैं कल ऐसा अभेद्य व्यूह बनाऊँगा। जिसमें पाण्डव पक्षके श्रेष्ठतम एक महारथीकी मृत्यु तो अवश्य ही होगी।

कर्ण बोला, मित्र दुर्योधन। दुर्योधन बोला, नहीं मित्र मैं जय या पराजय का प्रश्न नहीं उठा रहा हूँ किन्तु मुझे यह जानने का अधिकार है कि हमारे प्रधान सेनापति जय और पराजय के विषय में क्या सोच रहे हैं? मैं अपने प्रधान सेनापति के कारण यह युद्ध हारना नहीं चाहता? जिस हस्तिनापुर ने आचार्य को आदरपूर्वक हृदय में स्थान दिया है उसी हस्तिनापुर को यह पूछने का अधिकार है कि यह क्या चाहते हैं? तुम यह न समझो मित्र कि मुझे अपने गुरु से यह पूछने में दु:ख नहीं हो रहा या लाज नहीं आ रही किन्तु मेरे लिये यह जानना आवश्यक है कि ये किसके पक्ष में है, दुर्योधन के या पांडवों के? गुरुश्रेष्ठ मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि क्या मैं आप पर विश्वास कर सकता हूँ या नहीं? द्रोण बोले, मैं तुम्हारे विश्वास का दास नहीं हूँ दुर्योधन। रणभूमि और क्रीड़ाभवन में अन्तर करना सीखो। युद्ध हमारे हाथ में है किन्तु युद्ध का परिणाम हमारे हाथ में नहीं है। यदि अर्जुन कुछ और दूर होता तो मैं युधिष्ठिर को अवश्य बन्दी बना चुका होता किन्तु युद्धभूमि में किन्तु शब्द का बहुत बडा महत्व होता है।

HHH(४४)HHH

दुर्योधन बोला, यदि आप प्रयत्न कर रहे होते तो इतनी बड़ी कौरव सेना और इतने महारथियों के होते हुए एक युधिष्ठिर को न पकड़ पाते? वह कोई ऐसा असाधारण योद्धा तो है नहीं। कौन विश्वास करेगा आपके प्रयत्न का?

द्रोण बोले, मुझे असमर्थ मान लो, किंतु मेरे प्रयत्न पर संदेह मत करो। मैंने कल भी यही कहा था कि अर्जुन को युद्ध से दूर रखो और आज भी वही कह रहा हूँ। फिर अर्जुन ठीक समय पर युद्धभूमि में उपस्थित कैसे हो जाता है? यदि तुम्हारे संशप्तक अपने प्राण देकर भी कल अर्जुन को युद्धभूमि से दूर रख सकें तो कल कुछ न कुछ तुम्हारी इच्छानुकूल अवश्य होगा। कल मैं चक्रव्यूह की रचना करूँगा। मेरी सूचना के अनुसार पांडव सेना में चक्रव्यूह का वेधन केवल अर्जुन और कृष्ण कर सकते हैं। यदि वे दोनों अनुपस्थित हों तो उनकी सेना में चक्रव्यूह का वेधन करनेवाला कोई नहीं है। सारा कुछ सेनापति के किए ही नहीं होता और लोगों को भी युद्ध करना पड़ता है। राजा तो तभी जीतता है, जब अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक सैनिक लड़ता है। सारथी और अश्व भी अपना कर्त्तव्य न करें तो राजा को पराजय का मुँह देखना पड़ता है। दुर्योधन तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि केवल द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य के युद्ध से ही तुम्हें विजय नहीं मिलेगी। अर्जुन को रणभूमि से हटाओ। मैं तुम्हे युधिष्ठिर को बन्दी बनाकर सौंप दूंगा। कल मैं चक्रव्यूह की रचना करूंगा जिसे अर्जुन के अतिरिक्त कोई तोड ही नहीं सकता।

संजय कहते हैं राजन्। उस दिन अमित तेजस्वी अर्जुनने कौरवोंकी सेनाको पराजित कर युधिष्ठिरकी रक्षा की और द्रोणाचार्यका संकल्प सिद्ध नहीं होने दिया। दुर्योधन शत्रुओंका अभ्युदय देखकर उदास और कुपित हो रहा था। उसी दिन शामको उसने सब योद्धाओंके सामने प्रेम और अभिमानपूर्वक द्रोणाचार्यसे कहा, द्विजवर। निश्चय ही हम लोग आपके शत्रुओंमेंसे हैं, तभी तो कल आपने युधिष्ठिरको निकट आ जानेपर भी कैद नहीं किया। शत्रु आपकी आँखोंके सामने आ जाय और आप उसे पकड़ना चाहें, तो सम्पूर्ण देवताओंको साथ लेकर भी पाण्डवलोग आपसे उसकी रक्षा नहीं कर सकते। आपने प्रसन्न होकर पहले मुझे वरदान तो दे दिया, किंतु पीछे उसे पूर्ण नहीं किया।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर आचार्य द्रोणने कुछ खिन्न होकर कहा, राजन्। तुम्हें ऐसा नहीं समझना चाहिये। में तो सदा तुम्हारा प्रिय करनेकी ही चेष्टा करता हूँ। किंतु क्या करूँ? अर्जुन जिसकी रक्षा करते हो उसे देवता, असुर, गन्धर्व, सर्प, राक्षस तथा सम्पूर्ण लोक भी नहीं जीत सकते। जहाँ विश्वविधाता श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ शंकरके सिवा और किसका बल काम दे सकता है? तात। इस समय तुमसे सत्य कहता हूँ, यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता- आज पाण्डवपक्षके किसी एक श्रेष्ठ महारथीका नाश करूँगा। कल वह व्यूह बनाऊँगा, जिसे देवता भी नहीं तोड़ सकते। लेकिन अर्जुनको तुम किसी भी उपायसे यहाँसे दूर हटा दो। युद्धके विषयकी कोई भी कला ऐसी नहीं है, जो अर्जुनको ज्ञात न हो अथवा वे उसे कर न सकें। उन्होंने युद्धका सम्पूर्ण विज्ञान मुझसे तथा दूसरोंसे जान लिया है।

रात्रि में जलते पलीतों के प्रकाश में, कृष्ण के भव्य शिबिर में पाण्डवों सेना-प्रमुखों की बैठक आरम्भ हुई। सभी चिन्ताक्रान्त थे। हमारे गुप्तचर-प्रमुख द्वारा कौरवों के शिबिर से प्राप्त किया गया समाचार ही कुछ ऐसा था। नातों के सभी बन्धनों को ठुकराकर दुर्योधन कठोर शब्दों में सेनापति द्रोणाचार्य पर बरस पड़ा था, बारह दिन में बारह लक्ष कौरव-सेना धराशायी हो गयी, किन्तु अब तक एक भी पाण्डव मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ। मेरे आधे से अधिक भ्राता वीरगति को प्राप्त हुए, किन्तु पाण्डवों का बाल भी बाँका नहीं हुआ। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की प्रतिज्ञा आपने की थी। यह सब क्या हो रहा है? गुरुदेव, पाण्डवों के प्राण हरण करने में यदि आपका धनुष असमर्थ हो, तो कल अपने रथ पर फहराता राजध्वज कर्ण के हाथ में दे दीजिए। हम देखेंगे, युद्ध कैसे लड़ा जाए।

HHH(४५)HHH

इस कठोर निर्भर्त्सना से क्रुद्ध हुए द्रोणाचार्य ने उच्चासन से उठकर घोर निश्चय घोषित किया, मेरे पराक्रम पर विवेक-शून्य सन्देह करनेवाले दुर्योधन, मैं दिखा दूँगा कि कल का सूर्य चक्रव्यूह में पड़े किसी-न-किसी श्रेष्ठ पाण्डव योद्धा के शव को देखे बिना अस्त नहीं होगा।

पांडवों का गुप्तचर पकडा गया और द्रोण के पास ले आये। द्रोण बोले, तुम कहां जा रहे थे सैनिक। गुप्तचर बोला, मैं महाराज युधिष्ठिर की सेवा में जा रहा था आचार्य पर... द्रोण बोले, क्यों? गुप्तचर बोला, हे आचार्य इस युद्ध के नियमानुसार सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच इस सेना के लोग उस सेना में, उस सेना के लोग इस सेना में आ-जा सकते है। द्रोण बोले, मैं तुमसे रण के नियम नहीं पूछ रहा हूं सैनिक। इतनी रात गये युधिष्ठिर की सेवा में जाने का कारण पूछ रहा हूँ। सैनिक बोला, नियमानुसार आपको पूछने का कोई अधिकार नहीं है आचार्य। द्रोण बोले, सैनिक। अश्वत्थामा बोला, क्या तुम अपने प्रधान सेनापति से बात करने की सभ्यता भी भूल गये हो? सैनिक बोला, भूलने की बात मत कीजिये आचार्य पुत्र। मैं तो कुछ नहीं भूला हूं किन्तु बहुत से आदरणीय लोग बहुत कुछ भूल चुके है, स्वयं प्रधान सेनापति भी। अश्वत्थामाने सैनिक को मारने के लिए हाथ उठाया तब द्रोण ने रोका और बोले अश्वत्थामा तुम जैसे महारथी को एक साधारण सैनिक से ऊँचे स्वर में बात करना शोभा नहीं देता। द्रोण सैनिक से बोले, तुम क्या याद दिलाना चाहते थे सैनिक। क्या भूल गया मैं? सैनिक बोला, आप निष्ठा की परिभाषा भूल गये हैं आचार्यवर। आपकी निष्ठा हस्तिनापुर के प्रति होनी चाहिये थी किन्तु आपकी निष्ठा नरेश और युवराज के निहित स्वार्थ तक सीमित हो गई है। हे आचार्य मैं महाराज युधिष्ठिर को यह समाचार देने जा रहा था कि कल का दिन कुन्तीपुत्र अर्जुन के लिये दूर जाने का दिन नहीं है क्योंकि कल आप चक्रव्यूह की रचना करने जा रहे हैं जिसका तोड उस शिबिर में उस सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के अतिरिक्त कोई नहीं जानता। हे आचार्य मैं वहां अपने नागरिक कर्तव्य का पालन करने जा रहा था और यदि आप हस्तिनापुर के शत्रु हैं तो मुझे अवश्य न जाने दीजिये। द्रोण बोले, हे सैनिक तुम्हारा साहस और हस्तिनापुर के लिये तुम्हारी निष्ठा आदरणीय है किन्तु मैं इस सेना का प्रधान सेनापति हूँ और मैं किसी गुप्तचर को इतना महत्वपूर्ण समाचार लेकर उस शिबिर में जाने की आज्ञा नहीं दे सकता। इस युद्ध कि समाप्ति के पश्चात स्वयं हस्तिनापुर नरेश तुम्हारे साथ न्याय करेंगे। ले जाओ इसे। अश्वत्थामा बोला, आपने उसे मृत्युदंड क्यों नहीं दिया पिताश्री? द्रोण बाले, वो अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा था पुत्र। उसकी निष्ठा उसे वहां ले जा रही थी। क्योंकि यह तो सत्य है पुत्र कि उस शिबिर में चक्रव्यूह तोडना वासुदेव और अर्जुन के अतिरिक्त कोई नहीं जानता।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें अर्जुन श्रीकृष्णके समीप जा बैठे। उन्होंने कहा- गोविन्द। आचार्य पृथ्वीके किसी भी योधासे कम नहीं हैं। वे अजेय प्राय हैं। वैसे भी युद्धमें जय, पराजय अनिश्चित रहती है। मैं जानना चाहता हूँ कि कलको मैं किसीके अमोघ अस्त्रसे मारा ही जाऊँ तो आप क्या करेंगे? श्रीकृष्ण सीधे बैठ गये। उनका स्वर गंभीर हो गया- धनंजय। तुम ऐसा क्यों सोचते हो? मैं तुम्हारे साथ हूँ और तुम्हें कोई मार देगा? सृष्टिने ऐसा शूर न कभी उत्पन्न किया, न कर सकती। कोई अस्त्र ऐसा नहीं है जो श्रीकृष्णके संकल्पको अन्यथा कर सके। स्वयं शूलपाणि भगवान प्रलयंकर पिनाक लेकर आ जायँ तो भी मेरे प्राण सखा अर्जुनको मारा नहीं जा सकता। अर्जुनके ऊपर प्रयुक्त पाशुपतास्त्र भी प्रभावहीन होकर रहेगा। पृथ्वी रहे या खण्ड-खण्ड हो जाय, सृष्टि समाप्त हो जाय किन्तु मेरे रहते तुम्हें मारनेका प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।

अर्जुनने सस्मित मुख कहा- यह जानता हूँ, किन्तु कभी-कभी अनहोनी भी हो जाती है। ऐसा हो जाय तो तुम क्या करोगे मेरे मरनेके पश्चात्? श्रीकृष्णका स्वर काँपने लगा-यदि यह असम्भव कदाचित सम्भव हो जाय तो सृष्टिकी सब मर्यादाएं नष्ट हो जायँगी। मैं चक्र उठाऊँगा और किसीके भी वरदान एवं महास्त्रकी मर्यादाकी किंचित चिन्ता किये बिना

सम्पूर्ण कौरव पक्षको, उसकी सहायताको सब देवता, दैत्य, दानव आ खड़े हों तो उन्हें भी केवल कुछ पलोंमें नष्ट कर दूँगा। सबको मारकर युधिष्ठिरको सिंहासनपर बैठाकर उनका अभिषेक कर दूँगा।

इतना सब करके तब अपने सखाके शरीरके साथ स्वयं चितारोहण करूँगा। अर्जुन। कृष्णकी प्रतिज्ञा है कि वह तुमसे रहित पृथ्वीपर नहीं रहेगा। वह तुमसे पहिले धराका त्याग करेगा। अर्जुनने श्रीकृष्णके दोनों चरणोंको अंकमें लिया और उनसे लिपटकर अपने अश्रुओंसे उन्हें धोने लगा। श्रीकृष्ण ऐसा उदार, इतना सुहृद सखा। वे पद्मपलाश नयन अपने पटुकेसे अर्जुनके अश्रु पोंछ रहे थे। इनके रहते अर्जुनके लिए भला कहीं भय हो सकता है।

अभिमन्यु उत्तरा के पास आया और बोला, प्रेम कला की भांति युद्ध कला में भी व्यूहों का बडा महत्व है प्रिये। प्रेमकला में तो तुम निपुण हो। नयन व्यूह, केश व्यूह, अधर व्यूह, मुस्कान व्यूह, लज्जा व्यूह। उत्तरा बोली, तुम्हारे वाक्य भी तुम्हारे बाणों की तरह अचूक हैं। तुम्हे युद्ध कला के कितने व्यूह आते हैं। अभिमन्यु बोला, बस एक व्यूह को छोड दो तो सारे व्यूह। उत्तरा बोली, मैं एक व्यूह को छोडूं क्यों आर्यपुत्र। अभिमन्यु बोला, क्योंकि वो व्यूह मुझे आधा ही आता है चक्रव्यूह। उत्तरा बोली, यह व्यूह तुम्हें पूरा क्यों नहीं आता। अभिमन्यु बोला, पहिले वचन दो चक्रव्यूह की बात सुनते सुनते तुम सो तो नहीं जाओगी। उत्तरा बोली, लेकिन मेरे सोने या ना सोने से चक्रव्यूह का क्या सम्बन्ध? अभिमन्यु बोला, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे गर्भ में मेरा जागता हुआ पुत्र अधूरी बात सुने। मैं गर्भ में था जब पिताश्री माताश्री को चक्रव्यूह की रचना समझा रहे थे। मैं सुन रहा था। पिताश्री माताश्री को चक्रव्यूह में प्रवेश करने का मार्ग ही समझा पाये कि माताश्री की आंख लग गई और चक्रव्यूह के विषय में मेरा ज्ञान अधूरा ही रह गया। मैंने मामाश्री कृष्ण से बहुत कहा कि वे मुझे चक्रव्यूह में से निकलने का मार्ग समझा दे किन्तु वो यह कहते रहे कि अपने पिताश्री से सीखो और पिताश्री से सीखने का अवसर ही नहीं मिला। उत्तरा बोली, तुमने ठीक से हठ नहीं की होगी। अभिमन्यु बोला, उनकी मुस्कान हठ करने ही कहां देती है किसीको? उनकी मुस्कान जैसा अचूक बाण तो पिताश्री के तूणीर में भी नहीं। यदि इस युद्ध में पिताश्री नहीं होते तो बहुत बडी समस्या खड़ी हो गई होती। आचार्य द्रोण केवल इसलिये उस व्यूह की रचना नहीं कर रहें कि पिताश्री वहां उपस्थित हैं। नहीं तो वो चक्रव्यूह बनाकर आक्रमण करते और युद्ध तो कब का समाप्त हो चुका होता।

अभिमन्यु अपना युद्धवेश उतरवाकर विश्राम कर रहा था। सोलह वर्ष के उस नवयुवा योद्धा को देखकर, उसे सन्देश देने में सारथी तनिक हिचकिचाया। मामा ने स्मरण किया है यह सुनते ही कन्धे पर लहराते अपने सिर के घुँघराले केशों पर शिरत्राण रखते हुए वह शीघ्र ही सात्यकि के साथ चल पड़ा। एक वर्ष पहले ही उस नवयुवा का विवाह हुआ था। इस समय उसकी सुशीला, रूपवती, सगर्भा पत्नी, विराट-पुत्री उत्तरा पाण्डव-स्त्रियों के शिबिर में थी।

दुर्योधन के शिबिर में दु:शासन दुर्योधन से बोला, मुझे तो यह करना उचित नहीं लगता क्योंकि सुशर्मा वीर भी है और प्रतिज्ञा बद्ध भी। दुर्योधन बोला, कोई भी वीर रणनीति को अस्वीकार नहीं कर सकता। चलो मेरे साथ। दोनों सुशर्मा के शिबिर में आते हैं। अर्जुन के इस शिबिर में कृष्ण के साथ अर्जुन बोला, मैं जानता हूं केशव मैं जानता हूँ किन्तु यदि सुशर्मा ने मुझे कल फिर ललकारा तो मुझे उसकी ललकार स्वीकार करनी ही पडेगी केशव क्योंकि यही क्षत्रिय धर्म है।

कृष्ण बोले, अब तुम मुझे क्षत्रिय धर्म की परिभाषा क्या समझाओगे पार्थ। इस युद्ध में पाण्डवों की पराजय का अर्थ है समाज कल्याण के सारे अशुम लक्षणों का पतन। तुम्हारा धर्म तो समाज कल्याण के लिये युद्ध करना है पार्थ। इस युद्ध में सुशर्मा की ललकार सुनना क्षत्रिय धर्म नहीं हैं हां तुम्हारे व्यक्तिगत क्षत्रिय धर्म की बैसाखी अवश्य है। अर्जुन बोला, यदि वासुदेव... कृष्ण बोले, फिर भी यही तो तुम्हारी समस्या है पार्थ किन्तु फिर भी यदि तुम उसकी ललकार सुनना क्षत्रिय धर्म

समझते हो तो अवश्य सुनो। मैं तो तुम्हारे आदेश का सारथी हूं ना। जहां कहोगे वहां पहुंचा दूंगा।

दुर्योधन और दु:शासन सुशर्मा के पास आते हैं। दुर्योधन सुशर्मा से कहता है कैसे हो मित्र? सुशर्मा बोला, मैं बहुत लज्जित हूं युवराज कि न तो मैं रणभूमि से अर्जुन का शव ही ला सका और न रणभूमि में अपना शव छोड़ सका। दुर्योधन बोला, अर्जुन तो वो महारथी है मित्र जिससे आचार्य द्रोण भी दिनभर युद्ध नहीं कर सकते। तुमने तो फिर भी उसको दिनभर उलझाये रखा। सुशर्मा बोला, किन्तु कल मैं अपना वचन अवश्य पूरा करूंगा युवराज। दु:शासन बोला, परन्तु भ्राताश्री आज तुमसे तुम्हारे प्राणों से कहीं अधिक मूल्यवान बलिदान मांगने आये है। सुशर्मा बोला, क्यों, युवराज मुझसे मांगने आये है? मैं वो दिन देखने के लिये जीवित नहीं रहना चाहता युवराज दुर्योधन कि जिससे आपको मुझसे कुछ मांगना पड़े। आप तो आदेश दीजिये। दुर्योधन बोला, मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं मित्र वो आदेश के स्वर में कही जानेवाली बात नहीं है। सुशर्मा बोला, फिर भी मैं उसे आदेश ही की भांति स्वीकार करूंगा। कहिये युवराज। दुर्योधन बोला, मैं यह कहना चाहता हूं कि मित्र कि कल रणभूमि में तुम अर्जुन से युद्ध नहीं करोगे। सुशर्मा बोला, युद्ध न करूं क्योंकि यह तो सम्भव ही नहीं है युवराज। मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूं। दुर्योधन बोला, कल के लिये आचार्य की नीति यही है मित्र। सुशर्मा बोला, आचार्य की रणनीति यह है कि युद्ध में मैं पीठ दिखाऊं। दुर्योधन बोला, नहीं नहीं मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है मित्र। मैं तो केवल यह कहना चाहता हूं कि कल तुम रणभूमि में अर्जुन को इतने दूर निकाल ले जाओ कि सूर्यास्त से पहिले लौटकर आ ही नहीं सके। अपने साथ में सैनिक चाहे जितनी ले जाना जो मर जाएंगे सो मर जाएंगे। अर्जुन तुम्हारे सैनिकोंकी गिनती गिनने नहीं आयेगा कि कौन मर गया और कौन जीवित रहेगा। अर्जुन को जितनी दूर ले जा सको, ले जाओ। उस पर इतना बड़ा आक्रमण मत करना कि उसे देवास्त्रों का प्रयोग करना पड़े। छोटे-छोटे आक्रमण करना। तुम उसे युद्ध में उलझायें रखना। उसे तुम्हें मुख्य रणक्षेत्र से दूर रोके रखना है ताकि दिनभर आक्रमण चलता रहे। निरंतर आक्रमण करना। थोड़े सैनिकों की टोली में युद्ध करना। थोड़ेसे सैनिकों के लिए वह देवास्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा और संध्या तक वहाँ से हिल न सकें। संध्या तक कोई भी संदेशवाहक वहाँतक पहुँचना नहीं चाहिए। यह मत कहना कि जो कुछ कर रहे हो युद्ध के नियम के विरुद्ध है। युद्ध जीतना हो तो बने हुए युद्ध के नियम तोड़ने पड़ते हैं और जीतने के लिए अपने अनुकूल नियम बनाए जाते हैं। यदि कल सूर्यास्त पूर्व अर्जुन रणभूमि में लौट आया तो समझो तुम्हारा अन्त भी निकट ही है।

सुशर्मा बोला, इससे क्या होगा? दु:शासन बोला, इससे यह होगा मित्र कि आचार्य युधिष्ठिर को बन्दी बनाने में सफल हो जायेंगे। सुशर्मा बोला, युधिष्ठिर को बन्दी बनाने से क्या होगा? दुर्योधन बोला, युद्ध समाप्त हो जायेगा और क्या तुम नहीं चाहते कि यह युद्ध समाप्त हो जाये? सुशर्मा बोला, यह कौन नहीं चाहता? पर क्या आप मुझे एक वचन देंगे युवराज। दुर्योधन बोला, कैसा वचन? सुशर्मा बोला, मैं युधिष्ठिर का ऋणी हूं। विराट युद्ध में मुझे बन्दी बनाने के पश्चात् मुक्त कर दिया था। यदि आप यह वचन दें कि उसे बन्दी बनाने के पश्चात आप उसे मेरे प्रस्ताव पर मुक्त कर देंगे तो मैं आपके लिये इस युद्ध में यह छल भी कर लूंगा। दु:शासन बोला, छल, यह छल नहीं है मित्र। सुशर्मा बोला, यह छल के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता राजकुमार दु:शासन। दुर्योधन बोला, तो ठीक है मित्र। मैं तुम्हे वचन देता हूँ कि तुम्हारे इस प्रस्ताव पर मैं युधिष्ठिर को मुक्त कर दूंगा और बोलो। सुशर्मा बोला, अब मैं तुम्हे वचन देता हूं कि यदि आवश्यकता हो तो मैं अर्जुन को धरती के दूसरे छोर तक निकाल ले जाऊंगा।

दुर्योधन ने कपट से, तुरंत बनाई बात, वचन दिया झूठा स्वयं किया मित्र से घात।

HHH(४८)HHH

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में कायर कोई नहीं। न अर्जुन न ही दुर्योधन किन्तु दुर्योधन महावीर होने के बाद भी उसने कपट को अपनी रणनीति में ऊंचा स्थान दिया इसलिये युधिष्ठिर को जिन्दा बन्दी करने के लिये वो द्रोणाचार्य से भी असत्य बोला और सुशर्मा से भी। वो जानता था कि सुशर्मा युधिष्ठिर को मुक्त कराने का वचन याद दिलाने के लिये जिन्दा ही नहीं रहेगा तो उसे कोई भी वचन दिया जा सकता है किन्तु बात फिर भी यही है कि दुर्योधन ने एक ऐसा वचन दिया है कि जो वो पूरा करनेवाला नहीं था और दुर्योधन जैसे यौद्धा को यह शोभा नहीं देता। दुर्योधन और दु:शासन अपने शिबिर में आते हैं। दु:शासन बोला भ्राताश्री आपने सुशर्मा को ऐसा वचन क्यों दिया? दुर्योधन बोला, मेरे वचन पालन करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता अनुज। तुम क्या समझते हो कि सुशर्मा युधिष्ठिर की मुक्ति के प्रस्ताव के लिये क्या जीवित रहेगा? नहीं अनुज उसका प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन है और वो उसे जीवित नही छोड़ेगा।

दुशासन और दुर्योधन भीष्म पितामह के पास आते हैं और प्रणाम कर दुर्योधन बोला प्रणाम पितामह। भीष्म बोले, आयुष्मान भव। आज युद्ध में क्या हुआ पुत्र। दुर्योधन बोला, आज भी रणभूमि में युद्ध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हुआ। परन्तु कल यह युद्ध अवश्य समाप्त हो जायेगा। भीष्म बोले, वो कैसे? दुर्योधन बोला, कल युद्ध में आचार्य द्रोण चक्रव्यूह की रचना करने जा रहे हैं। भीष्म बोले, वासुदेव और अर्जुन दोनों ही उसे तोडना जानते हैं पुत्र। दुर्योधन बोला, वे दोनों ही तोडने के लिये आस-पास नहीं होंगे पितामह क्योंकि मैं उन्हें दूर निकाल ले जाने का प्रबन्ध कर चुका हूं और उन दोनों के लौटने तक हम युधिष्ठिर को बन्दी बना चुके होंगे और युद्ध समाप्त हो जायेगा। मैं आपको यही शुभ समाचार देने आया हूं पितामह।

कुछ लोगों का अस्तित्व अपनी उपयोगिता पर नहीं, दूसरों के विरोध पर ही आधृत होता है।

कुछ लोगों ने यह मान लिया है कि भीष्म इतना वृद्ध हो गया है कि उसके जीवित रहने और न रहने में कोई अंतर नहीं है। पितामह बोले, मैं चाहता हूं कि लोग मुझे चलते फिरते देख लें, ताकि उन्हे यह ज्ञात हो जाए कि भीष्म अभी जीवित है और समर्थ है। युवराज। मैं अभी रथारूढ़ हो सकता हूं। धनुष धारण कर सकता हूं। इतना अभ्यास आज भी करता हूं कि पूरी की पूरी सेनाओं का मुँह मोड सकूँ। मेरा आयुद्ध ज्ञान भी अभी समयातीत नहीं हुआ है। जिन आयुद्धों को पाकर आज के महान योद्धा स्वयं को अजेय समझने लगते हैं, वे अभी भी मेरे लिए खिलौने हैं।

भीष्मने कहा, तुम जब द्वैतवर जा रहे थे, मुझे तब भी कुछ अनुमान था कि तुम किसी शोभनीय अभियान पर नहीं जा रहे हो। जो कुछ तुमने वहाँ किया, वह तो लज्जाजनक था ही। फिर भी युधिष्ठिर ने तुम्हारी रक्षा की। क्यों की? क्योंकि कुरुकुल के गौरव के लिए वह आवश्यक था। यही हमारी परंपरा है कि अपने निजी सुख-दुख की चिंता न कर हम अपने कुल की दृष्टि से सोचें। हम अपने वंश के लोगों को अपना मित्र मानों, अपना बंधु। वे तुम्हारे भाई हैं और तुम उनके शत्रु बने हुए हो। अब किसी को भी भ्रम नहीं है कि तुम क्या करना चाहते हो। तुम्हारे वश में होता तो तुम कब से उनका वध कर चुके होते। किंतु तुम इतने शक्तिशाली नहीं हो। क्षत्रिय का गौरव इसमें नहीं है कि वह स्वयं से निर्बल लोगों का वध करे और स्वयं से शक्तिशाली की चाकरी करे। उसका धर्म है कि धर्म की रक्षा करे। निर्बल को अत्याचारी से बचाए। तुम ऐसा करोगे, ऐसी आशा मुझे नहीं है। किंतु मैं इतना अवश्य चाहता हूं कि तुम अपनी रक्षा करो। तुम पांडवों का वध नहीं कर सकते। इसलिए अपनी रक्षा के लिए ही सही, उनसे संधि करो और इस आत्मघाती, परिवार घाती, वंशघाती अभियान को त्याग दो।

मैं जानता हूं कि कौन तुम्हें यह मंत्र देता रहता है। किसके बल पर तुम इतने निर्भीक बने हुए हो। तुम्हारा यह मित्र... पितामह ने सीधे कर्ण की ओर इशारा किया, यह सूतपुत्र कर्ण कितना बड़ा वीर है, तुम देख ही चुके हो। डींग हाँकने की प्रतियोगिता में यह सदा प्रथम है, किंतु युद्ध का अवसर आने पर यह सबसे पहले अपने प्राण लेकर भागता है। इसके भरोसे

लड़ना चाहते हो तुम, अर्जुन से? भीम से? धनुर्वेद हो, शौर्य हो अथवा धर्माचरण- किसी भी क्षेत्र में यह उन पांडवों का एक चौथाई भी नहीं है। तुम देखोगे, और बार-बार देखोगे कि इससे बड़ा कायर संसार में कोई नहीं है।

भीष्म बोले, हे भगवान इसे बुद्धि दो। अरे पुत्र यह शुभ समाचार नहीं है। जाओ और मुझे मेरे घाव के साथ अकेला छोड दो। दुर्योधन बोला, इसका तात्पर्य तो यह हुआ पितामह कि आप मेरी पराजय चाहते हैं। भीष्म बोले, नहीं पुत्र। न तो मैं तुम्हारी पराजय चाहता हूं और न ही युधिष्ठिर की विजय। मैं तो अपने हस्तिनापुर की सुरक्षा चाहता हूं। अपने हस्तिनापुर की शान्ति चाहता हूं पुत्र।

विदुर अपने घर में चिंतित बैठे हैं इतने में ही धृतराष्ट्र आता है। विदुर ने उठकर स्वागत किया। प्रणाम भ्राताश्री। आइये। विराजिये। धृतराष्ट्र बोला, सुखी रहो। विदुर बोला, सुख न खेत में उपजे और न हाट बिका है तो फिर सुख कहां से लाऊं भ्राताश्री। यदि मैं सुख का घर जानता होता तो मैं उससे प्रार्थना करता हे सुख कब तक रूठे रहोगे, अब तो हस्तिनापुर लौट चलो किन्तु आपने आने का कष्ट क्यों किया भ्राताश्री? धृतराष्ट्र बोला, मुझे यहां आने का कष्ट इसलिये करना पडा अनुज कि बुलाने पर तुम कदाचित आते नहीं। विदुर बोला, यदि आप ज्येष्ठ भ्राता के नाते बुलाते तो अवश्य चला आता। धृतराष्ट्र बोला, और यदि हस्तिनापुर नरेश के नाते बुलाता? विदुर बोला, इस प्रश्न का उत्तर तो आप भलीभांति जानते हैं भ्राताश्री कि हस्तिनापुर नरेश से तो अब मेरा कोई सम्बन्ध रह ही नहीं गया है। पारसंवी आती है और प्रणाम कर बोलती है प्रणाम ज्येष्ठश्री। धृतराष्ट्र बोला, सौभाग्यवती भव। मुझसे यह आशीर्वाद पानेवालों की गिनती दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है पारसंवी। पहिले तो शत पुत्रवधुयें थी किंतु अब कुछ पुत्र विधवायें है और कुछ पुत्रवधुयें। लगता है कि धीरे-धीरे करके केवल विधवायें ही रह जायेगी। विदुर बोला, मैं कुछ कहूं भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोला, नहीं। ये तुम्हारी नीति का क्षेत्र नहीं है प्रिय अनुज। यह आवेग का क्षेत्र है। केवल अनुभव की समस्या एक नेत्रहीन वृद्ध पिता का शोक केन्द्र है। यदि तुम बता सको तो बताओ कि जिन आंखों ने उन्हे देखा तक नहीं उनके लिये रो क्यों रही है? क्या तुम्हे मेरे वीर पुत्रों को वीरगति प्राप्त होने का समाचार सुनकर रोना आया था विदुर? विदुर बोला, रोना तो आया था भ्राताश्री। रोना तो बहुत आया था पर रोने से अधिक मुझे आप पर क्रोध आया था। यदि आप चाहते थे तो जो आज जीवित नहीं है वो जीवित होते। वो सब जीवित होते परन्तु आपने अपने सिंहासन को अपने पुत्रों से कहीं अधिक अनुराग दिया। पारसंवी बोली, यह आप क्या कह रहे है? धृतराष्ट्र बोला, बोलने दो इसे। इसके इन्ही कठोर और कडवे वाक्यों को सुनने के लिये तो मेरे कान तरस रहे है। बोलो विदुर बोलो। अच्छा तो यह बताओ कि दुर्योधन और दु:शासन को वीरगति का समाचार सुनकर भी शोक प्रकट करने नहीं आओगे? विदुर बोला, आप चाहे मेरे विषय में जो भी सोचे किन्तु मैं आपकी ओर से बहुत चिंतित हूं और आपके लिये बहुत दु:खी भी हूं भ्राताश्री। किन्तु मैं क्या करूं भ्राताश्री। मैंने जब भी आपके हित में बात करनी चाही आपने मेरी जिव्हा ही बन्द कर दी। मैंने जब भी आपको सहारा देने के लिये अपने हाथ बढाये, आपने मेरे बढे हुये हाथों को पीछे धकेल दिया। यदि अभी भी मेरा स्वर आप तक पहुंच रहा है तो भगवान के लिये भ्राताश्री संजय को अपने साथ लेकर कुरुक्षेत्र चले जाइये। मैं आपके रथ के पीछे-पीछे नंगे पांव दौडता हुआ आपके साथ चलूंगा। वहां पहुंचकर वासुदेव कृष्ण से यह विनती कीजिये कि इस युद्ध को वो ही रोक सकते हैं। भ्राताश्री जो लोग वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं वो तो वीरगति पा ही चुके किन्तु शेष रह जानेवाले तो जीये। धृतराष्ट्र बोला, विदुर नहीं। सन्धि को पीछे छोड़कर मैं बहुत आगे निकल चुका अब लौटकर पीछे नहीं जा सकता। यदि मैंने ऐसा किया तो मेरा प्रिय दुर्योधन आत्महत्या कर लेगा। विदुर बोला, आपका प्रिय दुर्योधन तो युद्ध आरम्भ होने के बहुत पहिले ही आत्महत्या कर चुका है भ्राताश्री।

HHH(५०)HHH

४) महाभारत का १३ वें दिन का युद्ध

१) अभिमन्यु वध- महाभारत युद्ध प्रवहमान था। महायुद्ध था। महासंहार था। महानाद था। सुबह होते ही रथचक्रों की गड़गड़ाहट गूँज उठती। तूर्यनाद हो उठते। अनेकों हेमजाल-आच्छादित श्वेत महाशंखों के उद्‌बोधन से रोम-रोम सिहर उठता था। असंख्य हेषारवों एवं गजों की मत्त चिंघाड़ें भय का संचार कर उठतीं। वीरों के हुंकार-स्वरों से कुरुक्षेत्र व्याप्त था। हिलते-डुलते स्वर्णछत्र थे। फरफराकर उड़ती असंख्य पताकाएँ गतिमान फेनराशि-सी प्रतीत होतीं। फेनमाला ही जैसे उमड़ पड़ी हो। हर योद्धा स्वयं को श्रेष्ठ क्षत्रिय सिद्ध करना चाहता था। हर योद्धा वीरगति प्राप्त करना चाहता। विचित्र प्रतिस्पर्धा थी। प्रत्येक वीर दूसरे से पहले मृत्युमाल वरना चाहता। इसी स्पर्धा में प्रतिदिन असंख्य वीर हताहत होते। असंख्य वीरगति प्राप्त करते। किन्तु आगामी सुबह असंख्य वीर लौह-शिरस्त्राण एवं कवच शस्त्र धारे पुन: इस क्षत्रिय-महायज्ञ में प्राणों की आहुति देने तत्पर हो जाते। उसी दिन प्रात: अभिमन्यु अपनी बड़ी माता द्रौपदीके चरणस्पर्श करने आया युद्ध से पहले।

अहो। पांचाली ने प्रेम से हाथ फैलाकर उसका कोमल काकपक्षों से युक्त शीश अपने वक्ष में भर लिया और नयनोंसे अश्रुधारा बहने लगी। अभिमन्यु बोला, नहीं अम्ब। अब यह अश्रु नहीं देख सकता। आज शपथ लेकर जा रहा हूँ कि जिन दुष्ट अधर्मियों ने तुम्हें इतनी यातना दी, उन्हें आज यातना दे-देकर ही यमलोक पहुँचाऊँगा। चुन-चुनकर प्रहार करूँगा एक-एक पर वह माता के अश्रु पोंछता हुआ बोला।

द्रौपदी बोली, आयुष्मान भव वत्स, चिरंजीवी भव। पांचाली दोनों हाथों में थामे अभिमन्यु का शिशु-सम अबोध मुख जलभरे नयनों से निहार रही थी। कितना अद्‌भुत साम्य था अभिमन्यु और उसके मातुल श्रीकृष्ण की मुखाकृति में। मधुसूदन के समान ही गोल मुख। वे ही सुन्दर विशाल कमलनेत्र। घुँघराले काकपक्ष। चिबुक, नासिका- सब कुछ वही। किन्तु वह गौरांग था। माता सुभद्रा से गौरवर्ण पाया था। पिता अर्जुन से विशाल स्कन्ध एवं आजानुबाहु। और हृदय? वही अग्नि उसके नन्हे से हृदय में धधकती रहती जो पांचाली इतने वर्षों से अपने उर में छिपाये घूमती थी। अपमान का प्रतिकार। यहीं वे दोनों एक-दूसरे से अभिन्न थे।

अभिमन्यु माता सुभद्रा के निश्छल अपार स्नेह का भक्त था; किन्तु विमाता पांचाली के ओज एवं तेजस्विता का भी अनन्य भक्त था। विमाता के राजनीति, धर्म व विधि के ज्ञान पर वह न्यौछावर था उसकी तर्कशक्ति और बुद्धिमत्ता पर मुग्ध था। उसकी सहनशक्ति, धीरज, साहस, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता के समक्ष नतमस्तक था। अभिमन्यु को माता द्रौपदी से सदा एक तेजमयी प्रेरणा प्राप्त होती थी।

अपने पिता धनंजय से उसने अन्तर की कोमलता एवं भावुकता भी पायी थी। जब एकान्त में बैठता वह भावुक किशोर, तो उसके अश्रु प्रवाहित हो चलते। इतनी महिमामयी राजरानी महारानी द्रुपदनन्दिनी को स्वयं उसी के श्वसुर मत्स्यराज विराट के महल में एक दरिद्र सैरन्ध्री के रूप में दिन काटने पड़े? वह जब छोटा था तभी से माता के असंख्य कष्टों की कथा पितामही कुन्ती से सुनता तो क्रोध से प्रकम्पित हो उठता। जयद्रथ। कीचक। दु:शासन। दुर्योधन। कर्ण। शकुनि। बालपन से ही उसके कोमलमन में इन क्षुद्रों के प्रति घृणा का अंकुरण हो गया था। मन ही मन संकल्प करता कि अवसर पाते ही वह एक-एक का वध करेगा। यदि माता द्रौपदी के दग्ध अन्तर को शीतलता प्रदान कर पाया तो उसका जीवन धन्य हो जाएगा। उसने कामना की थी कि मातुल श्रीकृष्ण द्वारा प्रस्तावित सन्धिवार्ता विफल हो जाये, ताकि वह युद्ध में उन पापियों के बलिष्ठ तनों को क्षत-विक्षत कर सके।

युद्ध छिड़ गया। उसे तथा उसके पाँचों भाइयों- प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, शतानीक, श्रुतकीर्ति और श्रुतकर्मा- पाँचों द्रौपदेयों को पृष्ठभूमि में रखा जाता। अभिमन्यु सदा अवसर ढूँढ़ता रहता। उस रात्रि वह सो नहीं पाया। कभी जयद्रथ तो कभी कर्ण, कभी दु:शासन तो कभी दुर्योधन के घृणित मुखमण्डल घूम-घूमकर उसकी स्वप्नमाला छिन्न-भिन्न कर जाते। सोते-सोते उसकी बाहु फड़क उठती। उसे दिखता- जयद्रथ उस पर वार कर रहा है, और वह हुंकार भर-भरकर जयद्रथ को पछाड़ देता। सारी निशा विचित्र उद्विग्नता एवं व्यग्रता में बीती। वह उठा तो इसी संकल्प के साथ कि आज वह सेना के अग्रभाग में रहेगा। आज अवश्य इन अधर्मियों को यमलोक पहुँचाकर ही श्वास लेगा। स्फूर्ति से उठकर वह युद्धसज्जा कर माता द्रौपदी का आशीर्वाद लेने आ गया।

अभिमन्यु बोला, अम्ब। आज तुम्हारी वर्षों-संचित पीड़ा का प्रतिशोध लेकर ही आऊँगा, अन्यथा लौटूँगा नहीं।

द्रौपदी भयातुर होकर धड़कते हृदय से बोली, ऐसा न कह ऐसा न कह वत्स। तत्काल उसने हाथ से अभिमन्यु का मुख बन्द कर दिया। तू अपने संकल्प में अवश्य सफल होगा अभिमन्यु और लौटकर स्वयं ही यह शुभसमाचार मुझे देगा। किन्तु अशुभ वचन मुख से न निकाल वत्स। अभिमन्यु बोला, अशुभ क्यों अम्ब। तुम ही तो कहती हो कि वीरगति पाने से उत्तम और कोई लक्ष्य नहीं क्षत्रिय जीवन का। पितृव्य तो युद्धविमुख थे। तुम ही ने उनमें साहस एवं शक्ति के प्राण फूँके। वह खड़ा होकर सुस्थिर, दृढ़ एवं गम्भीर दृष्टि से अपनी प्रेरणा-मूर्ति माता को निहार रहा था।

आज पहली बार पांचाली निरुत्तर हुई थी। बालक अभिमन्यु ने ही माता को निरुत्तर किया। द्रौपदी मन में सोचती रह गयी हाँ, समस्त क्षत्रिय जाति को युद्ध में झोंक दिया मैंने। किन्तु अभिमन्यु? अभिमन्यु नहीं। यहीं उसका हृदय पीछे हट गया। चरण पीछे हट गये। नहीं। नहीं।

द्रौपदी बोली, वीरगति होने दे वत्स, भीष्म पितामह की। आचार्य द्रोण की। वयोवृद्ध क्षत्रियों की। पुत्र। अभी तूने देखा ही क्या है? मेरे अपमान का प्रतिशोध ये अक्षौहिणी चतुरंगिणी भी न ले सकेंगी क्या? पाण्डववीर नहीं ले सकेंगे? भले ही मेरे अपमान का प्रतिकार न हो आजीवन अपमान-ज्वाला में धधकती रह जाऊँगी। किन्तु आयुष्मन। तुझे तो न खोना चाहूँगी किसी भी स्थिति में। ऐसे कठोर वचन कहकर क्यों माता का हृदय विदीर्ण किये दे रहा है?

अभिमन्यु बोला, तो कैसी वीर माता हो अम्ब। वह सूर्यपुत्र-सा तेजस्वी बाल-क्षत्रिय दृढ़ता से बोला और मुस्कराकर किशोर सिंह-शावक की भाँति नवउत्साह में चल पड़ा।

संजय धृतराष्ट्रसे बोले, द्रोणके ऐसा कहते ही संशप्तकोंने अर्जुनको पुन: युद्धके लिये ललकारा और वे उन्हें दक्खिन दिशाकी ओर हटा ले गये। सुशर्मा ललकार कर बोला, कल तो युद्ध से भाग आए मुझे मरा हुआ समझ लिया। मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैं अभी जीवित हूँ। अगर तुममें साहस हो तो मेरे साथ युद्ध करो। अर्जुन बोला, भाग मैं आया था या तुमही कही विलुप्त हो गए थे। मुझे तो लगा कि तुम किसी अन्य मार्ग से भागकर अपने शिबिर में जा चुके हो। अर्जुन बोला वीर तो तुम हो नहीं तुम तो निर्लज्ज और मिथ्याभाषी हो। सुशर्मा बोला, युद्धक्षेत्र में देखते है कौन मिथ्याभाषी है। कृष्ण बोले, पार्थ वे तुम्हे धर्मराज से दूर रखने का बहाना मात्र है। सम्भव है कि वे आज भी धर्मराज को बन्दी बनाने का प्रयत्न करे। अर्जुन बोला, तुम जानते हो केशव मैं युद्ध के लिए ललकारने पर पीछे नहीं हट सकता ऐसा मेरा संकल्प है। कृष्ण बोले, संकल्प तो ठीक है किन्तु हमारा कोई आदर्श, हमारी वंचना का कारण तो नहीं बन सकता। तुम्हे मालूम होना चाहिए कि धर्मराजने तुम्हारे भरोसे पर ही यह युद्ध स्वीकार किया है। अर्जुन बोला, मैं अपना दायित्व जानता हूँ मैं इन बचे-कूचे त्रिगर्तों को थोड़े ही समय में निपटा दूँगा और मुख्य युद्ध में भाग लूँगा। कृष्ण बोले, पर इसे निपटाना क्यों आवश्यक है? द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन, जयद्रथ,

कृतवर्मा इत्यादि की चुनौती को छोड़कर इस सुशर्मा की चुनौती में क्या रखा है? यह एक प्रकार का अहंकार है जो तुम्हारी बुद्धि को संमोहित किए हुए है। तुम अपना स्वयं का निर्णय लेकर उसकी इच्छाके दास हो गए हो। तुम्हारा कर्म अपने मान-अपमान की भावना से प्रेरित नहीं होना चाहिए। यह धर्म नहीं है यह उत्तेजना है, क्रोध है, अहंकार है। इससे किसीका कोई कल्याण नहीं होता। फिर भी तुम कहते हो तो मैं रथ सुशर्मा की ओर ले चलता हूँ।

उस समय अर्जुनका शत्रुओंके साथ ऐसा घोर युद्ध हुआ, जैसा पहले न तो कभी देखा गया और न सुना ही गया था। महाराज। इधर, आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहका निर्माण किया; उसमें उन्होंने इन्द्रके समान पराक्रमी राजाओंको सम्मिलित किया और उस व्यूहके अरोंके स्थानपर सूर्यके तुल्य तेजस्वी राजकुमारोंको खड़ा किया। राजा दुर्योधन इसके मध्यभागमें खड़ा हुआ; उसके साथ महारथी कर्ण, कृपाचार्य और दु:शासन थे। व्यूहके अग्रभागमें द्रोणाचार्य और जयद्रथ खड़े हुए; जयद्रथके पासमें अश्वत्थामाके साथ आपके तीस पुत्र, शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा खड़े थे। तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंमें मृत्युको ही विश्राम मानकर रोमाञ्चकारी तुमुल युद्ध छिड़ गया।

कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमिमें द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की द्रोण ने अपना शंख फूंक दिया आक्रमण आरम्भ हो गया। दोनों सेनायें आपस में घमासान युद्ध करने लगी। अर्जुन और त्रिगर्त नरेश सुशर्मा के बीच घमासान युद्ध होने लगा।

रणवीर द्रोणाचार्य-कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को, शस्त्रास्त्र-सज्जित, ग्रथित, विस्तृत, शूरवीर-समूह को,
जब एक अर्जुन के बिना पाण्डव न भेदन कर सके, तब बहुत ही व्याकुल हुए, सब यत्न कर करके थके।

कौरवों की सेना आगे बढ़ रही थी। पाण्डवोंके पास यह विकल्प नहीं था कि आगे बढ़ें अथवा न बढ़ें। न ही उनके पास यह विकल्प था कि वे किस ओर से आगे बढ़ें। स्थिति तो यह थी कि या तो कौरवसेना से टकराओ या उससे परास्त हो जाओ। वह सेना तो जैसे विराट ग्राह के समान लहरों पर तैरती हुई आगे बढ़ रही थी। मुँह खोले हुए सर्वग्रासी। जो कुछ सामने आएगा उसके उदर में समा जाएगा। उसका अर्थ ही था मृत्यु। एक-एक कर पांडव योद्धा उस सेना की मार सह नहीं पा रहे थे। सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंतिभोज, द्रुपद, क्षत्रधर्मा, बृहत्क्षेत्र, युधामन्यु, शिखंडी, उत्तमौजा, विराट, धृष्टकेतु और पाँचों द्रौपदेय गए और जैसे व्यूह से टकराकर लौट आए। भीम ने प्रबल आक्रमण किया किंतु कौरवों के व्यूह में एक खरोंच भी नहीं पड़ी।

दुर्योधन एक दिवस विचारा। कैसे जीतूँ रण दुस्तारा। चक्रव्यूह कल्पना बनाई। तेहि पल अर्जुन थे घर नाईं।
अर्जुन संग कृष्ण भगवाना। दुर्योधन मनमें अनुमाना। पांडव दल में खबर करा कर। रचा व्यूह योजना बनाकर।

दुर्योधन गुरु द्रोणसे बोला, आचार्य अब तो हमें अर्जुन का ध्वज भी दिखाई नहीं दे रहा है। शकुनि बोला, इसमें तो अब कोई सन्देह ही नहीं रह गया। सुशर्मा अर्जुन को अपने पीछे लगाकर बहुत दूर जा चुका है। अब तो अर्जुन के युद्ध के लक्षण ही दिखाई नहीं देते भान्जे। कर्ण बोला, अब मेरी समझ में यह नहीं आ रहा है आचार्य कि सुशर्मा जैसा महावीर कायरों की भांति भाग क्यों रहा है? जयद्रथ बोला, अपनी समझ पर इतना भार मत डालो अंगराज। दुर्योधन बोला, जाने दो मित्र, सिन्धुराज जयद्रथ हमारे बहनोई है। हां तो आचार्य अब हमारे लिये क्या आदेश है? द्रोण बोले, सुशर्मा को थोडा और दूर चले जाने दो ताकि अर्जुन के लौट आने की सम्भावना ही नहीं रहे। कर्ण बोला, मेरी तो समझ में ही नहीं आ रहा कि आप लोग अर्जुन से इतने डरते क्यों है? द्रोण बोले, मैं अर्जुन से डरता नहीं अंगराज किन्तु मैं अर्जुन को अच्छी तरह से जानता हूं। मैं तो चाहता हूं कि उसे चक्रव्यूह की भनक तक न पड़े।

बन्दी बनाया हुआ गुप्तचर अपनी बेडियां काटकर भागकर युद्धभूमि में आकर युधिष्ठिर को सूचना देता है। उस समय दुर्योधन के सैनिकोंने भागते बन्दी को छुरा भौंक दिया। वह घायल अवस्था में रणभूमिमें युधिष्ठिर के पास पहुंचाता और

आकर सूचना देता है कि आचार्य द्रोण ने व्यूह रचना की है और मर जाता है।

भीम बोला, मैं तो पहिले ही कहता था कि सुशर्मा कोई योद्धा नहीं, गुरुवर की युद्धनीति का प्रतीक है पर अर्जुन ने मेरी एक न मानी। युधिष्ठिर बोले, क्रोध न करो प्रिय भीम। यह तो सोचो कि चक्रव्यूह को तोडना हममें से कोई भी नहीं जानता। नकुल बोला, छोटे भैया जानते थे लेकिन उन्हें सुशर्मा निकाल ले गया। युधिष्ठिर बोला, यह न भूलो अनुज हमारे अर्जुन के सारथी स्वयं वासुदेव हैं। वे कुछ सोचकर ही सुशर्मा के पीछे ले गये होंगे। महाराज युधिष्ठिर बहुत चिंतित थे कि क्या करें? अभी उनके पक्ष के अनेक योद्धा और थे, किंतु वे जानते थे कि वे भी इसी प्रकार असफल होकर लौटेंगे। न तो वे युद्ध का क्षेत्र छोड़ सकते थे और न ही उनसे टकरा सकते थे। धनंजय किसी अज्ञात स्थान पर त्रिगर्तों से युद्ध करने चले गए थे। आचार्य निरंतर अपनी सेनाको युधिष्ठिर की ओर बढ़ा रहे थे। आज वे धर्मराज को बंदी बनाकर दुर्योधन को सौंप ही देंगे। आचार्य द्रोणकी सम्मतिसे संशप्तकोंने पुन: प्रात:काल अर्जुनको युद्धकी चुनौती दी। अर्जुन उनसे युद्ध करने चले गये। आचार्य द्रोणने चक्रव्यूह बनाया सेनाका। इस व्यूहका भेदन पाण्डव पक्षमें केवल अर्जुन तथा उनके पुत्र अभिमन्युको आता था। लेकिन अभिमन्यु व्यूहसे निकलनेकी शिक्षा नहीं पा सके थे। अर्जुनकी अनुपस्थितिमें विवश होकर युधिष्ठिरको व्यूह भेदनके लिए अभिमन्युको आदेश देना पड़ा। पाण्डवोंने आशा की थी कि अभिमन्युकी बनायी भिन्न व्यूह भित्तिके मार्गसे वे भी भीतर जा सकेंगे किन्तु मानवकी आशा सदा सफल तो नहीं होती। कोई अभिमन्युके पीछे व्यूहमें नहीं जा सका। सेना की नीतियों और अतिरथियों की इच्छाएं तो अलग ही होती है। जो व्यक्ति अपने सामर्थ्य को जानता है, वह कभी-कभी ऐसे निर्णय भी कर लेता है, जो दूसरों के समझ में नहीं आते। पाण्डव सेनामें हताशा की लहर दौड़ रही थी। किसीको कोई समाधान नहीं सूझ रहा था उसी समय धर्मराजको चिंतित देख राजकुमार अभिमन्युने आकर प्रणाम किया और धर्मराज को सांत्वना दी। क्यों चिंतित हैं ज्येष्ठ पिताश्री। युधिष्ठिर बोला, क्या बात है पुत्र। धर्मसंकट की इस घडी में तुम सामने क्यों आये? अभिमन्यु बोला, आप चिन्ता न करें ज्येष्ठ पिताश्री। युधिष्ठिर बोला, चिन्ता ही का तो विषय है फिर चिन्ता कैसे ना करूं पुत्र? अभिमन्यु बोला, आप चक्रव्यूह की ओर से चिंतित है। पिताश्री नहीं है तो क्या हुआ। मैं जो हूं उनका पुत्र। चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो मुझे आता है किन्तु मैं उसमें से निकलने का मार्ग नहीं जानता। किन्हीं कारणों से पिताश्री को उन्हें यह सिखाने का अवसर ही नहीं मिला था।

यों देखकर चिन्तित उन्हें धर ध्यान समरोत्कर्ष का, प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शूर षोडष वर्ष का।
वह वीर चक्रव्यूह-भेदन में सहज सज्ञान था, निज जनक अर्जुन-तुल्य ही बलवान था, गुणवान था।
हे तात। तजिए सोच को, है काम ही क्या क्लेश का? मैं द्वार उद्घाटित करूँगा व्यूह-बीच प्रवेश का।
यों पाण्डवों से कह, समर को वीर वह सज्जित हुआ, छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ।।

मैं सारे कौरवों का वध तो कर दूँगा पर यदि किसी कारण से मुझे बाहर लौटना पड़ा तो बाहर निकलने के लिए मुझे सहायता की आवश्यकता होगी।

चक्रव्यूह की तोड़न रीति। केवल अर्जुन को थी प्रतीति।
धर्मराज मन चिंता छाई। करहि विचार करूं क्या भाई।।
तेहि अवसर अभिमन्यु आया। ताऊजी को शीश नवाया।
शीश नवाया तात को, क्यों कुम्हलाया गात।।
धर्मराज किस सोच में, ऐसी क्या है बात।

कहहु तात चिंता केहि हेतू। मुख पर ये ग्लानि केहि हेतू।।
धर्मराज कह सुनु चितलाई। कठिन व्यूह की रचना बनाई।।
केवल अर्जुन लड़ सकता था। चक्रव्यूह भंग कर सकता था।।
अर्जुन करे सुदूर लड़ाई। एहि कारण चिंता घिर आई।।
धर्मराज चिंतामय जाने। अभिमन्यु ने वचन बखाने।।
तोड़न चक्र तात जाऊँगा। रण कौशल अब दिखलाऊँगा।

युधिष्ठिर बोले, तुम इसकी चिन्ता न करो पुत्र हम सब लोग तुम्हारे पीछे-पीछे होंगे और तुम उस व्यूह में जो द्वार खोलेंगे हम उसे बन्द ही नहीं होने देंगे। यदि तुम हमारे लिए द्वार बना दोगे तो हमारे रथ और सेना उस द्वार में प्रवेश कर जाएँगे। छाया के समान हम तुम्हारे साथ लगे रहेंगे। एक बार भीतर प्रवेश कर जाएंगे तो सीधे दुर्योधन के पास पहुँच जाएँगे फिर देखेंगे कि कौन-सा व्यूह उन्हें राजा दुर्योधन की रक्षा से रोके रखेगा।

भीम कहे सुनु कहन हमारा। अति कोमल है राजकुमारा।।
कृष्ण बहन का प्राण पियारा। अर्जुन की आँखों का तारा।।
हाथ जोड़ बोला अभिमन्यु। योद्धा का सुत है अभिमन्यु।।
शीश नवा बोला तभी, अर्जुन पिता हमार।
कृष्ण बहनं माता मेरी, गुरु है द्रोणाचार्य।
सुनहू तात गुप्त एक बाता। बैठे बतलाये पितु माता।।
तेहि दिन पितु द्रोण गुरु पाही। रचना चक्रव्यूह पढ़ आही।।
चक्रव्यूह रचना समझाये। माता सुनती ध्यान लगाये।।
मैं था मात गर्भ के मांई। जब पितु ने यह कला बताई।।
व्यूह तोड़कर बाहर आने की। रीति बताई जब आगे की।।
सुनहू बात तेहि अवसर ताता। आगई नींद सोगई माता।।
एहि कारण बाहर आने की। रीति न सीख सका इस रणकी।।
चक्र तोड़ वापस आऊँगा। श्रीचरणों में शिर नाऊँगा।।
विदा कीन्ह उत्तरा हरषकर। माथे तिलक कियो माँ हंसकर।।

दुर्योधन बोला, हे गुरुश्रेष्ठ अब आप क्या सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं? द्रोण ने चक्रव्यूह युद्ध के आरम्भ का शंख फूंक दिया। युधिष्ठिर बोले, यह तो गुरुदेव के शंख की ध्वनि है। आक्रमण आरम्भ हो गया है। जावो पुत्र जावो यशस्वी भव।

रथ किया तैयार सारथी ने, घोड़े सुंदर जुतवाये हैं।
और सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र, रथ के अन्दर रखवाये हैं।।
अभिमन्यु बनाके वीर वेश, जब रथ के पास पधारे हैं।
जयघोष हुआ चहुं ओर सभी ने, आशीर्वचन उचारे हैं।।

सारथी बोला द्रोणाचार्य अस्त्रविद्या के आचार्य हैं, जीवनभर उन्होंने शस्त्र चलायें हैं। वे तपे हुए योद्धा हैं और स्नेह की कोमलता में, स्नेह की स्निग्धता में आपका पालन-पोषण हुआ है। कुमार तो नव-गजरास से मत्त हो झूम रहे थे। न भूत,

न भविष्य की चिन्ता। कहने लगे- सारथे। आज मुझे कोई नहीं रोक सकता। स्वयं श्रीकृष्ण भी आ जाएँ, स्वयं पिताश्री क्यों न आ जाएँ, आज मैं किसी से भी भयभीत नहीं। चलो सूतनन्दन। शुभस्य शीघ्रम्। इतनी कम आयु में ऐसा सम्मान किसी को मिलता है क्या? मेरा परम सौभाग्य है यह तो। आज जीवन का बहुप्रतीक्षित मुहूर्त्त मुझे मिला है।

नर-देव-सम्भव वीर वह रण-मध्य जाने के लिए, बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिए।
यह विकट साहस देख उसका, सूत विस्मित हो गया; कहने लगा इस भाँति फिर वह देख उसका वय नया।।
हे शत्रुनाशन। आपने यह भार गुरुतर है लिया, हैं द्रोण रण-पण्डित, कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।
रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं पर सहज ही सुकुमार हैं, सुख-सहित नित पोषित हुए निज वंश-प्राणाधार हैं।।
सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह वीर यों, करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों।
हे सारथे। हैं द्रोण क्या, देवेन्द्र भी आकर अड़े, है खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह-भेदन कर लड़े।।
श्रीराम के हयमेध से अपमान अपना मान के, मख-अश्व जब लव और कुश ने जय किया रण ठान के।
अभिमन्यु षोडष वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं, क्या आर्य-वीर विपक्ष-वैभव देखकर डरते कहीं?
सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश-कथा, उनपर झपटता सिंह-शिशु भी रोष कर जब सर्वथा।
फिर व्यूह-भेदन के लिए अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो, क्या वीर-बालक शत्रु का अभिमान सह सकते कहो?
मैं सत्य कहता हूँ सखे। सुकुमार मत मानो मुझे, यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे।
है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं, मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं।।
ज्यों ऊनषोडष वर्ष के राजीवलोचन राम ने, मुनि-मख किया था पूर्ण वध कर राक्षसों को सामने।
कर व्यूह-भेदन आज त्यों ही वैरियों को मार के, निज तात का मैं हित करूँगा विमल यश विस्तार के।।

विलम्ब न करो, द्रोणाचार्य की सेनाएँ मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

जय घोष सुना जब महलों में, उत्तरा बहुत हरषाई है।
पति रण को जानेवाले हैं, झट आरति थाल सजाई है।।
सब सोलह साज वदन पर हैं, मुख चमके चंदा की नाईं।
दासी कर, आरति थाल थमा, वह मुख्य द्वार पर है आई।।
रथ रुका पति का आकर के, अभिमन्यू रथ से उतर पड़े।
देखा जब पति का वीर वेश, प्रेमाश्रु नयन से ढुलक पड़े।।
पति बोले हमको करो विदा, हे मृगलोचनि हरषाकरके।
चढ़ गया वीर रस अबला पर, अरु वचन कहे मुसकाकरके।।
जावो स्वामी रणभूमि में, और विजय प्राप्त करके आना।
छक्के छुट जायें दुश्मन के, तुम ऐसे करतब दिखलाना।।
अभिमन्यु बोले सुनो प्रिये, मैं रण में प्रलय मचा दूंगा।
कौरव दल के महारथियों को ,मैं नाको चने चबा दूंगा।।
लाशों का ढेर लगा दूंगा, हे प्रिया आज रणभूमि में।
शोणित की नदी बहा दूंगा, हे प्रिया आज रणभूमि में।।

नहीं तेरी मांग लजाऊँगा, अर्जुन का पुत्र कहाऊँगा।
बलशाली भीम, युधिष्ठिर का, मैं आज नाम चमकाऊँगा।।
हे प्रिया करो मत तुम चिंता, नहीं माँ का दुध लजाऊँगा।
या तो आउंगा युद्ध जीत, या वहीं खेत रह जाउंगा।।
उत्तरा कहे जावो प्रियतम, और माथे तिलक लगाया है।
पति के चरणों का स्पर्श किया, और जयजयकार सुनाया है।।
प्यारी पत्नी से विदा होय, माता को शीश नवाया है।
पय धार लगी बहने माँ के, बेटे को गले लगाया है।।
फिर आशिर्वचन सुना करके, बोली जावो रणभूमि में।
रण देवी तुम्हें पुकार रही, जावो बेटा रणभूमि में।।
माता बोली हरषकर, विजयी होकर आय। बेटा मेरी कोख को, देना नहीं लजाय।।
चरण वन्दि कियो वीर पयाना। संग लिया सारथी सुजाना।।
दौड़वीर रण भूमि आयो। रथ को वेग और बढ़ावायो।।
रक्षक दल सब पीछे छूटा। दौड़ लगाई घेरा टूटा।।
यों कह वचन निज सूत से वह वीर रण में मन दिये, पहुँचा शिबिर में उत्तरा से बिदा लेने के लिए।
सब हाल उसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ, कहने लगी तब वह स्वपति के अति निकट आकर वहाँ।।
मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवतेश लड़ें नहीं, तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं।
मैं जानती हूँ नाथ। यह, मैं मानती भी हूँ तथा, उपकरण से क्या शक्ति में ही सिद्धि रहती सर्वथा।।
क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही, सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिये जो आप ही।
जो वीर पति के कीर्ति-पथ में विघ्न-बाधा डालतीं, होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं?
अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए, मत जाइए सम्प्रति समर में प्रार्थना यह मानिए।
जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में, उठती बुरी हैं भावनाएँ, हाय मम हृद्धाम में।।
है आज कैसा दिन न जाने, देव-गण अनुकूल हों; रक्षा करें प्रभु मार्ग में जो शूल हों वे फूल हों।
कुछ राज-पाट न चाहिए, पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही; हे उत्तरा के धन। रहो तुम उत्तरा के पास ही।।
कहती हुई यों उत्तरा के नेत्र जल से भर गये, हिम के कणों से पूर्ण मानों हो गये पंकज नये।
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रखकर वदन वह सुन्दरी, करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी।।
यों देखकर व्याकुल प्रिया को सान्त्वना देता हुआ, उसका मनोहर पाणि-पल्लव हाथ में लेता हुआ।
करता हुआ वारण उसे दुर्भावना की भीति से, कहने लगा अभिमन्यु यों प्यारे वचन अति प्रीति से।।
जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये। कातर तुम्हें क्या चित्त में इस भाँति होना चाहिए?
हो शान्त, सोचो तो भला, क्या योग्य है तुमको यही, हा। हा। तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही।।
वीर-स्नुषा तुम वीर-रमणी, वीर-गर्भा हो तथा, आश्चर्य, जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा।
हो जानती बातें सभी कहना हमारा व्यर्थ है; बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है?

निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए, बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।
पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा, वर वीर क्षत्रिय-वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा।।
इन कौरवों ने हा। हमें सन्ताप कैसे हैं दिए, सब सुन चुकी हो तुम इन्होंने पाप जैसे हैं किए।
फिर भी इन्हें मारे बिना हम लोग यदि जीते रहें, तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें?
जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है, उसके लिए चिन्तित तथा रहता सदा वह व्यग्र है।
होता इसी से है तुम्हारा चित्त चंचल हे प्रिये। यह सोचकर सो अब तुम्हे शंकित न होना चाहिए।।
रण में विजय पाकर प्रिये। मैं शीघ्र आऊँगा यहाँ, चिन्तित न हो मन में, न तुमको भूल जाऊँगा वहाँ।
देखो, भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में, जीवित रहेगा कौन फिर आकर हमारे लक्ष में?
यों धैर्य देकर उत्तरा को, हो बिदा सद्भाव से; वीराग्रणी अभिमन्यु पहुँचा सैन्य में अति चाव से।
स्वर्गीय साहस देख उसका सौगुने उत्साह से, भरने लगे सब सैनिकों के हृदय हर्ष-प्रवाह से।।

कर्णिका ध्वज फहराता हुआ राजपुत्र अभिमन्यु का रथ द्रोणसेना के निकट जैसे ही पहुँचा, वह सुकुमार बालक सिंह-शावक की भाँति उछलकर गजसेना पर टूट पड़ा। भयंकर संग्राम हुआ। अवर्णनीय। द्रोणाचार्य को अवाक् छोड़, उनके देखते-देखते वह नन्हा योद्धा चक्रव्यूह भेदकर भीतर प्रवेश कर गया।

द्रोणाचार्यद्वारा सुरक्षित उस दुर्द्धर्ष व्यूहपर भीमको आगे करके पाण्डवोंने आक्रमण किया। सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तिभोज, द्रुपद, अभिमन्यु, क्षत्रवर्मा, बृहत्क्षत्र, चेदिराज, धृष्टकेतु, नकुल, सहदेव, घटोत्कच, युधामन्यु, शिखंडी, उत्तमौजा, विराट, द्रौपदीके पुत्र, शिशुपालका पुत्र, केकय-राजकुमार और हजारों पांचालवशीय क्षत्रिय ये तथा और भी बहुत-से रणोन्मत्त योद्धा युद्धकी इच्छासे सहसा द्रोणाचार्यके ऊपर टूट पड़े। उन्हें अपने निकट पहुँचा देखकर भी आचार्य द्रोण विचलित नहीं हुए, उन्होंने बाणोंकी वर्षा करके उन सब वीरोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय कौरवोंने द्रोणकी भुजाओंका अद्भुत पराक्रम देखा कि पाञ्चाल और सृञ्जय क्षत्रिय एक साथ मिलकर भी उनका सामना न कर पा रहे है। द्रोणाचार्यको क्रोधमें भरकर आगे बढ़ते देख युधिष्ठिरने उन्हें रोकनेके विषयमें बहुत विचार किया। द्रोणका सामना करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन समझकर उन्होंने इस गुरुतर कार्यका भार अभिमन्युपर रक्खा। अभिमन्यु अपने मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनसे कम पराक्रमी नहीं था, वह अत्यन्त तेजस्वी तथा शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाला था। युधिष्ठिरने उससे कहा- पुत्र अभिमन्यु। चक्रव्यूहके भेदनका उपाय हमलोग बिल्कुल नहीं जानते। इसे तो तुम, अर्जुन, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न ही तोड़ सकते हैं। पाँचवाँ कोई भी इस कामको नहीं कर सकता। अत: तुम अस्त्र लेकर शीघ्र ही द्रोणके इस व्यूहको तोड़ डालो।

अभिमन्युने कहा, आचार्य द्रोणकी यह सेना यद्यपि अत्यन्त सुदृढ़ और भयंकर है, तथापि मैं अपने पितृवर्गकी विजयके लिये इस व्यूहमें अभी प्रवेश करता हूँ। पिताश्रीने व्यूहको तोड़नेका उपाय तो मुझे बता दिया है, पर निकलना नहीं बताया है। यदि मैं वहाँ किसी विपत्तिमें फँस गया तो निकल नहीं पाऊँगा।

युधिष्ठिर बोले- वीरवर। तुम इस सेनाको भेदकर हमलोगोंके लिये द्वार तो बनाओ। फिर जिस मार्गसे तुम जाओगे, तुम्हारे पीछे-पीछे हमलोग भी चलेंगे और सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करेंगे।

भीमने कहा- मैं, धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा पञ्चाल, मत्स्य, प्रभद्रक और केकय देशके योद्धा ये सब तुम्हारे साथ चलेंगे। एक बार जहाँ तुमने व्यूह भंग किया, वहाँके बड़े-बड़े वीरोंको मारकर हमलोग व्यूहका विध्वंस कर डालेंगे।

अभिमन्युने कहा- अच्छा, तो अब मैं द्रोणकी इस दुर्द्धर्ष सेनामें प्रवेश करता हूँ। आज वह पराक्रम कर दिखाऊँगा,

जिससे मेरे मामा और पिता दोनोंके कुलोंका हित होगा। उससे मामा भी प्रसन्न होंगे और पिताश्री भी। यद्यपि मैं बालक हूँ, तो भी सम्पूर्ण प्राणी देखेंगे कि मैं किस तरह आज अकेले ही शत्रुसेनाको संहार कर कालका ग्रास बनाता हूँ। यदि जीते-जी युद्धमें मेरे सामने आकर कोई जीवित बच जाय तो मैं अर्जुनका पुत्र नहीं और माता सुभद्राके गर्भसे मेरा जन्म नहीं हुआ। युधिष्ठिरने कहा- सुभद्रानन्दन। तुम द्रोणकी दुर्द्धर्ष सेनाको तोड़नेका उत्साह दिखा रहे हो, इसलिये ऐसी वीरताभरी बातें करते हुए तुम्हारा बल सदा बढ़ता रहे।

अभिमन्यु युद्ध के लिये सज्ज होकर रणभूमि में आता है। राजकुमार अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश किया और कौरव सेना में विकट विनाश मचाया। उन्होंने गजारोही, अश्वारोही तथा पैदल सेना को मार भगाया। कौरव सेनामें भगदड़ मच गयी द्रोण भी चिंतित हो उठे। उन्होंने तत्काल अपने महारथियों को आदेश दिया कि वे कौरव नरेश दुर्योधन की रक्षा करें। वे सब राजकुमार अभिमन्यु की ओर बढ़े; किंतु राजकुमार ने उन सबको अपने बाणों की नोक पर रोक दिया।

फिर पाण्डवों के मध्य में अति भव्य निज रथ पर चढ़ा, रणभूमि में रिपु-सैन्य-सम्मुख वह सुभद्रा-सुत बढ़ा।
पहले समय में ज्यों सुरों के मध्य में सजकर भले; थे तारकासुर मारने गिरिनन्दिनी-नन्दन चले॥
तत्काल ही दोनों दलों में घोर रण होने लगा, प्रत्येक पल में भूमि पर वर वीर-गण सोने लगा।
रोने लगीं मानो दिशाएँ पूर्ण हो रण-घोष से, करने लगे आघात सम्मुख शूर-सैनिक रोष से॥
इस युद्ध में सौभद्र ने जो की प्रदर्शित वीरता, अनुमान में आती नहीं उसकी अगम गम्भीरता।
जिस धीरता से शत्रुओं का सामना उसने किया, असमर्थ हो उसके कथन में मौन वाणी ने लिया॥
करता हुआ कर-निकर दुर्द्धर सृष्टि के संहार को, कल्पान्त में सन्तप्त करता सूर्य्य ज्यों संसार को।
सब ओर त्यों ही छोड़कर निज प्रखरता शर-जाल को, करने लगा वह वीर व्याकुल शत्रु-सैन्य विशाल को॥
शर खींच उसने तूण से कब, किधर सन्धाना उन्हें, बस विद्ध होकर ही विपक्षी वृन्द ने जाना उन्हें।
कोदण्ड कुण्डल-तुल्य ही उसका वहाँ देखा गया, अविराम रण करता हुआ वह राम-सम लेखा गया॥
कटने लगे अगणित भटों के रुण्ड-मुण्ड जहाँ तहाँ, गिरने लगे कटकर तथा कर-पद सहस्त्रों के वहाँ।
केवल कलाई ही कुतूहल-वश किसी की काट दी, क्षणमात्र में ही अरिगणों से भूमि उसने पाट दी॥
करता हुआ वध वैरियों का वैर-शोधन के लिए, रण-मध्य वह फिरने लगा अति दिव्य-द्युति धारण किये।
उस काल सूत सुमित्र के रथ हाँकने की रीति से, देखा गया वह एक ही दस-बीस-सा अति भीति से॥
उस काल जिस जिस ओर वह संग्राम करने को गया, भगते हुए अरि-वृन्द से मैदान खाली हो गया।
रथ-पथ कहीं भी रुद्ध उसका दृष्टि में आया नहीं; सम्मुख हुआ जो वीर वह मारा गया तत्क्षण वहीं॥
ज्यों भेद जाता भानु का कर अन्धकार-समूह को, वह पार्थनन्दन घुस गया त्यों भेद चक्रव्यूह को।
थे वीर लाखों पर किसी से गति न उसकी रुक सकी, सब शत्रुओं की शक्ति उसके सामने सहसा थकी॥

जयद्रथ चक्रव्यूह के मुख पर खडा है। पृष्ठभाग में दुर्योधन, कर्ण, अश्वत्थामा, द्रोण, दु:शासन, कृपाचार्य, शकुनि है। भीम बोला, इस चक्रव्यूह में प्रवेश कहां से करोगे वत्स? अभिमन्यु बोला, मैं चक्रव्यूह का निरीक्षण करता हूं और फिर उस स्थान पर पहुंच जाता हूं जहां से प्रवेश करना सम्भव है। युधिष्ठिर बोले, ठीक है वत्स, हम तुम्हारे साथ होंगे। प्रधान सेनापति यौद्धाओं सहित वहां पहुंचे। धृष्टद्युम्न बोला, जो आज्ञा।

पर साथ भी उसके न कोई जा सका निज शक्ति से, था द्वार-रक्षक नृप जयद्रथ सबल शिव की भक्ति से।

अर्जुन बिना उसको न कोई जीत सकता था कहीं, थे किन्तु उस संग्राम में भवितव्यता-वश वे नहीं।।

संजय धृतराष्ट्र से बोले- धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर अभिमन्युने सारथीको द्रोणकी सेनाके पास रथ ले चलनेको कहा। जब बारंबार चलनेकी आज्ञा दी तो सारथीने उससे कहा- आयुष्मन्। पाण्डवोंने आपपर यह बहुत बड़ा भार रख दिया है; आप थोड़ी देर इसपर विचार कर लीजिये, फिर युद्ध कीजियेगा। आचार्य द्रोण बड़े विद्वान हैं, उन्होंने उत्तम अस्त्रविद्यामें बड़ा परिश्रम किया है। इधर आप बड़े सुख और आराममें पले हैं तथा युद्धविद्यामें उनके समान निपुण भी नहीं हैं।

सारथीकी बात सुनकर अभिमन्युने उससे हँसकर कहा, सूत। यह द्रोण अथवा क्षत्रिय-समुदाय क्या है? यदि साक्षात् इन्द्र देवताओंके साथ आ जायें अथवा भूतगणोंको साथ लेकर शंकर उतर आवें, तो मैं उनसे भी युद्ध कर सकता हूँ। इस क्षत्रियसमूहको देखकर आज मुझे कोई आश्चर्य नहीं हो रहा है। यह सम्पूर्ण शत्रुसेना मेरी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। और तो क्या, विश्वविजयी मामा श्रीकृष्ण और पिता अर्जुनको भी अपने विपक्षमें पाकर मुझे भय नहीं होगा। इस प्रकार सारथीकी बातकी अवहेलना करके अभिमन्युने उसे शीघ्र ही द्रोणकी सेनाके पास चलनेकी आज्ञा दी। यह सुनकर सारथी मनमें बहुत प्रसन्न तो नहीं हुआ, परंतु घोड़ोंको उसने द्रोणकी ओर बढ़ाया। पाण्डव भी अभिमन्युके पीछे-पीछे चले। उसके आते देख कौरवपक्षके सभी योद्धा द्रोणको आगे करके उसका सामना करनेके लिये डट गये।

अर्जुनका पुत्र अर्जुनसे भी बढ़कर पराक्रमी था। वह युद्धकी इच्छासे द्रोण आदि महारथियोंके सामने इस प्रकार जा डटा, जैसे हाथियोंके आगे सिंहका बच्चा हो। अभिमन्यु अभी व्यूहकी ओर बीस ही कदम बढ़ा था कि कौरव योद्धा उसके ऊपर प्रहार करने लगे। फिर तो एक-दूसरेका संहार करनेवाले उभय पक्षके योद्धाओंमे घोर संग्राम होने लगा। उस भयंकर युद्धमें द्रोणके देखते-देखते व्यूह भेदकर अभिमन्यु उसके भीतर घुस गया। वहाँ जानेपर उसके ऊपर बहुत-से योद्धा टूट पड़े। परंतु वीर अभिमन्यु अस्त्र चलानेमें फुर्तीला था। जो-जो वीर उसके सामने आये, सबको अपने मर्मभेदी बाणोंसे मारने लगा। उसके पैने बाणोंकी मार पड़नेसे घायल हो बहुत-से योद्धा धराशायी हो गये। मरे हुए वीरोंकी लाशों और उसके टुकड़ोंसे वहाँकी भूमि ढक गयी। धनुष, बाण, ढाल, तलवार, अंकुश, तोमर आदि बहुत-से शस्त्रों और आभूषणोंसे युक्त हजारों वीरोंकी भुजाओंको अभिमन्युने काट डाला तथा रथोंको तोड़ डाला। उसने अकेले ही भगवान् विष्णुके समान अचिन्तनीय पराक्रम कर दिखाया। राजन्। उस समय आपके पुत्र और आपके पक्षके योद्धा दसों दिशाओंकी ओर देखते हुए भागनेकी राह ढूँढने लगे। उनके मुँह सूख गये थे, नेत्र चञ्चल हो रहे थे, बदनसे पसीना बह रहा था, रोएँ खड़े हो गये थे। वे शत्रुको जीतनेका साहस खो बैठे थे; अगर कुछ उत्साह था तो वहाँसे निकल भागनेका। मरे हुए पुत्र, पिता, भाई, बन्धु तथा सम्बन्धियोंको छोड़कर अपना प्राण बचानेकी इच्छासे घोड़े और हाथियोंको उतावलीके साथ हाँकते हुए सब लोग भाग चले।

अभिमन्यु बोला, चलो सारथी। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह तोडकर उसमें प्रवेश किया और घमासान युद्ध करने लगा। वहां पर जयद्रथ खडा था वह पांडवों पर आक्रमण कर भीतर प्रवेश करने से रोक रहा था। अभिमन्यु चारों ओर से कौरवों की सेना से घिर गया था। दूसरी ओर सुशर्मा और अर्जुन में घोर युद्ध छिड़ा हुआ था जो अर्जुन को बहुत दूर ले जा चुका था। अभिमन्यु ने लड़कर कौरवों की सेना पर आक्रमण कर दिया। कौरव सैनिक मरने लगे। मार काट दोनों ओर जोरों से होने लगी। जयद्रथ ने युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव इत्यादि से घमासान युद्ध किया पर जयद्रथ ने उन्हें चक्रव्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया।

अमित तेजस्वी अभिमन्युके द्वारा अपनी सेनाको इस प्रकार तितर-बितर होते देख दुर्योधन अत्यन्त क्रोधमें भरा हुआ उसके सामने आया। द्रोणाचार्यकी आज्ञासे और भी बहुत-से योद्धा वहाँ आ पहुँचे और दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर उसकी रक्षा करने लगे। इसी समय द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, बृहद्बल, शल्य, भूरि, भूरिश्रवा,

शल, पौरव और वृषसेनने सुभद्राकुमार अभिमन्युपर तीखे बाणोंकी वर्षा करके उसे आच्छादित कर दिया। इस प्रकार अभिमन्युको मोहित करके उन्होंने दुर्योधनको बचा लिया।

पाण्डवोंका अनुमान भ्रमित प्रमाणित हुआ। राजकुमारने चक्रव्यूह पर आक्रमण किया और अपने लिए एक द्वार बनाकर उसमें से प्रवेश कर गए। किंतु जिस समय भीम उसमें प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे उसी समय द्वाररक्षक सिंधुपति जयद्रथ द्वारा उस चक्रव्यूहका द्वार बन्द कर दिया। उस समय सभी पांडव बाहर ही रह गए और कोई कुछ न कर पाए। व्यूहमें प्रवेश करते-करते राजकुमार अभिमन्यु उस व्यूहमें गहरे-से-गहरे उतरते गए।

उसे चारों ओर से गजारोही, अश्वारोही, रथी, पदाति सेना ने घेर लिया था। किन्तु अद्‌भुत थी उसकी स्फूर्ति। विलक्षण था उसका कौशल। अपूर्व था उसका साहस। शत्रुओं द्वारा छोड़ी गयी शक्तियाँ सर्प की भाँति लपलपाती आतीं, तो कुमार गरुड़ की भाँति उछलकर उन्हें बीच में झपटकर पकड़ लेता। सिंह की भाँति वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर उछलकर पहुँच जाता। क्रुद्ध नाग-सा यदि फुफकार उठता तो कितने ही वीर धूलमें लोट जाते। शत्रुसेना कड़ा संघर्ष कर रही थी उसके विरुद्ध, किन्तु बीच बीच में शत्रु ही स्वयं उसके कौशल पर साधु-साधु कह उठते। शत्रुसेना चकित थी उस सिंह-शावक के पराक्रम को देख। मुग्ध थी। लड़ते-लड़ते शत्रुओं के हाथ रुक जाते, क्षणभर को उसे देखने के लिए... उस कुमार कार्तिकेय से अपूर्व रूपवान किशोर को देखने, जो रणक्षेत्र में ऐसे खिलवाड़ कर रहा था जैसे वह क्रीड़ांगन हो। वह बालक जिसके श्मश्रुरेख अभी उभरी न थी, अट्टहास कर-करके, अपने काकपक्ष को झटके से पीछे कर-करके, ऐसे प्रहार करता कि शत्रुसेना में त्राहि-त्राहि मच जाती। वह प्रलय मचाता-सा शत्रुओं को कुशग्रास की भाँति भूमि पर बिछाता जा रहा था। भुजाएँ, पाँव, मस्तक, हाथ और कबन्ध चारों ओर ऐसे छितरे पड़े थे जैसे यज्ञवेदी पर कुश बिछे हों।

राजा दुर्योधन की रक्षा के लिए कौरव योद्धाओं ने राजकुमार अभिमन्यु को घेर लिया। उनमें द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दु:सह, दु:शासन, विविंशति, कृतवर्मा, शल्य, शकुनि, बृहद्‌बल, भूरिश्रवा तथा स्वयं राजा दुर्योधन थे।

जैसे मुँहका ग्रास छिन जाय, उसी प्रकार दुर्योधनका निकल जाना अभिमन्युसे नहीं सहा गया। उसने बड़ी भारी बाणवर्षा करके घोड़े और सारथियोंसहित उन सभी महारथियोंको मार भगाया तथा सिंहके समान गर्जना की। द्रोण आदि महारथी उसका सिंहनाद नहीं सह सके। वे रथोंसे उसको घेरकर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, किंतु अभिमन्यु उन सब बाणोंको आकाशमें ही काट गिराता और तुरंत तीखे बाण मारकर सबको बींध डालता था। उसका यह पराक्रम अद्‌भुत था। उस समय अभिमन्यु और कौरव योद्धा एक-दूसरेपर लगातार प्रहार कर रहे थे। कोई भी युद्धसे विमुख नहीं होता था। उस घोर संग्राममें दु:सहने बाण मारकर अभिमन्युको बींध दिया। फिर दु:शासनने, कृपाचार्यने, द्रोणने, विविंशतिने, कृतवर्मा, बृहद्बलने, अश्वत्थामाने, भूरिश्रवाने, शल्यने, शकुनिने और राजा दुर्योधनने बाण मारे।

दुर्योधन को देखते ही जैसे उसके तन-मन में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसकी आग्नेयदृष्टि एवं विकट भाव भंगिमा देख सेनानायक द्रोणाचार्य भी विचलित हो उठे कि यह अर्जुनकुमार आज दुर्योधन का काल बना प्रतीत होता है। दुर्योधन की रक्षा करो। दुर्योधन की रक्षा करो। आचार्य ने इंगित किया, और तत्परता से दुर्योधन की रक्षा के लिए महान् योद्धागण जुट गये। कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, शल्य, भूरिश्रवा, सोमदत्त, विविंशति, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, लालित्य, प्रबाहु, दीर्घलोचन आदि सब एकत्रित हो गये थे।

महाराज। उस समय प्रतापी अभिमन्यु जैसे नाच रहा हो, इस प्रकार सब ओर घूम-घूमकर सब महारथियोंको बाणोंसे बेधता जाता था। फिर, आपके पुत्रोंने मिलकर जब उसे भय दिखाना आरम्भ किया तो अभिमन्यु क्रोधसे जल उठा और

अपनी अस्त्रशिक्षाका महान् पराक्रम दिखाने लगा। इतनेमें अश्मकनरेशके पुत्रने बड़ी तेजीसे वहाँ आकर अभिमन्युको रोका और बाण मारकर उसको बींध डाला। तब अभिमन्युने मुसकराते हुए उसे बाण मारे और उनसे उसके घोड़ों, सारथी, ध्वजा, धनुष, भुजाओं तथा मस्तकको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया।

अभिमन्युके हाथसे अश्मकराजकुमारके मारे जानेपर सारी सेना विचलित होकर भागने लगी। तब कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, शल, शल्य, भूरिश्रवा, क्राथ, सोमदत्त, विविंशात, वृषसेन, सुषेण, कुण्डभेदी, प्रतर्दन, वृन्दारक, ललित्थ, प्रबाहु, दीर्घलोचन और दुर्योधन इन सबने क्रोधमें भरकर अभिमन्युपर बाणवर्षा आरम्भ की। इन बड़े-बड़े धनुर्धारियोंके बाणोंसे जब अभिमन्यु बहुत घायल हो गया, तो उसने कवच और शरीरको छेद डालनेवाला एक तीखा बाण कर्णके ऊपर चलाया। यह देखकर कर्णसे सहन नहीं हुआ उसने अभिमन्युपर आक्रमण कर दिया। अभिमन्युने भी कर्णको घायल कर पीछे धकेल दिया। अश्वत्थामा और कृतवर्माको भी गहरी चोट आयी। मद्रनरेश और धृष्टद्युम्न में भी दोनोंका युद्ध हुआ। शल्य को इतने बाण लगे कि वे मूर्च्छित होकर रथमें बैठ गए।

वह बाण कर्णका कवच छेदकर बड़े वेगसे उसके शरीरमें घुसा और उसे भी वेधकर पृथ्वीमें समा गया। उस दुःसहप्रहारसे कर्णको बड़ी व्यथा हुई और वह व्याकुल होकर उस रणभूमिमें काँप उठा। इसी प्रकार क्रोधमें भरे हुए अभिमन्युने बाणोंसे सुषेण, दीर्घलोचन और कुण्डभेदीको भी मारा।

अभिमन्यु चक्रव्यूह में अकेला ही रह गया। धृष्टद्युम्न और जयद्रथ का भी जोरों से युद्ध हुआ फिर भी जयद्रथ रास्ता रोके रहा।

तब कर्ण, अश्वत्थामा, कृतवर्माने बाण मारकर अभिमन्युको घायल किया। उसके सम्पूर्ण शरीरमें बाण छिदे हुए थे, फिर भी यह पाशधारी यमराजके समान रणभूमिमें विचर रहा था। शल्यको अपने पास ही खड़ा देख अभिमन्युने बाणोंकी वर्षासे उन्हें ढक दिया और कौरवोंकी सेनाको डराते हुए उसने भीषण गर्जना की। उसके मर्मभेदी बाणोंसे घायल हुए राजा शल्य रथके पिछले भागमें जा बैठे और मूर्छित हो गये। शल्यकी यह अवस्था देख सम्पूर्ण सेना आचार्य द्रोणके देखते-देखते भाग चली। उस समय देवता, पितर, चारण, सिद्ध, यक्ष तथा मनुष्य अभिमन्युका यशोगान करते हुए उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

शल्यका एक छोटा भाई था। उसने सुना कि अभिमन्युने मेरे भाई मद्रराजको रणभूमिमें मूर्च्छित कर दिया है, तो क्रोधमें भरकर बाणवर्षा करता हुआ वह उनके पास आया। आते ही बाण मारकर उसने अभिमन्युको घोड़े और सारथीसहित घायल कर दिया, फिर बड़े जोरसे गर्जना की। तब अर्जुनकुमारने बाणोंसे उसके घोड़े, छत्र, ध्वजा, सारथी, जुआ, बैठक, पहिया, धुरी, भाथा, धनुष, प्रत्यन्चा, पताका, पहियोंके रक्षक एवं रथकी सब सामग्रीको खण्ड-खण्ड करके उसके हाथ, पैर, गला और मस्तक भी काट गिराये। तब तो उसके अनुचर अत्यन्त भयभीत हो सब दिशाओंमें भाग गये। अभिमन्युके उस अद्भुत पराक्रमको देखकर सबलोग उसे शाबाशी देने लगे। द्रोण यह देख चकित हो राजकुमार की प्रशंसा करते हुए बोले, चाहे बालक ही हो; किंतु उसमें अपने पिता और मामा दोनों का सम्मिलित बल और कौशल प्रकट कर रहा है। यह सुनकर दुर्योधन इसे सहन नहीं कर पाया और बिफरकर बोला, हमारे प्रधान सेनापति अपने प्रिय शिष्य के पुत्र को मारना नहीं चाहते नहीं तो चक्रव्यूह में अकेला घुस आया यह बालक अभी तक इस प्रकार खुला घूमकर सारे योद्धाओंको पीड़ित नहीं कर रहा होता। हमारे गुरुदेव तो अर्जुनपुत्र की रक्षा कर रहे है और वह उनसे रक्षित होकर हमारा काल बना हुआ है।

उस समय वह दिव्य अस्त्रोंसे शत्रु-सेनाका संहार करता हुआ चारों दिशाओंमें दिखायी दे रहा था। उसके इस अलौकिक कर्मको देख कौरवोंके सैनिक काँपने लगे।

और समाचार आते जा रहे थे। राजकुमार अभिमन्यु प्रारम्भ में मृदुल भाव से हँस-हँसकर युद्ध कर रहा था किन्तु धीरे-

धीरे द्विप्रहरी के भगवान सूर्य की भाँति प्रचण्ड रूप से तप्त हो उठा, उग्र हो उठा। उस कार्तिकेयकुमार का वह त्रैलोक्यदुर्लभ रूप देखकर द्रोणाचार्य स्वयं सम्मोहित हो गये। वे मुग्ध हो ठगे-से देखते रह गये। दुर्योधन ने गुरुवर की यह दशा देखी तो ईर्ष्या से भुन गया। दु:शासन को बुलाकर आदेश दिया, इस उद्दण्ड राजपुत्र के प्राण ले डालो। दुर्योधन की बात सुनकर दु:शासन आगे बढ़ आया। दु:शासन और अभिमन्यु में द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ।

इसी समय आपका पुत्र दु:शासन बड़े जोरसे गरजा और क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करता हुआ सुभद्राकुमारपर चढ़ आया। आते ही उसको अभिमन्युने बाण मारे। अभिमन्यु और दु:शासन दोनों ही रथ-शिक्षामें कुशल थे। वे दायें-बायें विचित्र मण्डलाकार गतिसे चलते हुए युद्ध करने लगे। राजकुमार अभिमन्यु बोले, अरे मूर्ख, द्यूतक्रीडा में विजय पाने के उन्माद में अपने शब्दों से तूने धर्मराज को कुपित किया और वीरवर भीमके प्रति अनर्गल और अपमानजनक बातें कहीं। मेरे उग्र धनुर्धर पितरों के राज्य का अपहरण किया। इन सभी बुराइयों के फलस्वरूप उन महात्मा पांडवों के क्रोध से आज तेरा यह दुर्दिन आया है। हे कुरुकुल कलंक। आज मैं अपनी रोषमयी माता पांचाली और अपने ज्येष्ठ पिता भीम का अभीष्ट पूर्ण कर इस युद्ध के ऋण से उऋण हो जाऊँगा। ओ मिथ्याभिमानी। निठुर। परनिन्दक। धर्मविमुख। क्यों काल के समक्ष आ खड़ा हुआ है मूढ़। बहुत तूने सज्जनों को कष्ट दिये हैं। परायी सम्पत्ति का छल से हरण करना, अशान्ति फैलाना, लोभप्रेरित रहना, ये ही तो तेरे नीच चरित्र की विशेषताएँ हैं। कुरुकुल-कलंक। आज माता द्रौपदी के सारे अपमानों का प्रतिशोध लेने का संकल्प करके ही मैंने रणक्षेत्र में पाँव रखा है। अधम। तेरा वध करके मैं पितृऋण से आज ही मुक्त हो जाऊँगा।

अभिमन्युने उसे बाण मारे। उसकी पीड़ा से व्यथित हो दु:शासन रथ में बैठ गया। उसे मूर्च्छा आ गयी। दु:शासन युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। सारथी उसे तत्काल युद्धक्षेत्र से दूर ले गया। और दु:शासन अन्तत: उसके प्रखर तेज के समक्ष टिक न सका व व्याकुल हो श्रृंगाल की भाँति पलायन कर गया।

कौरवसेनाओं में अर्जुनकुमार के प्रचण्ड ताप से हाहाकर मच उठा। ऐसा प्रखर सूर्य-सा वह प्रदीप्त था कि किसी की दृष्टि उस पर टिक न पाती। साक्षात् काल बना वह सम्पूर्ण रणक्षेत्र में हुंकारें भरता दौड़ रहा था। जिधर जाता, उधर ही आतंक फैल जाता, किन्तु साथ ही शत्रुकण्ठों से प्रशंसा में धन्य-धन्य निकल पड़ता।

द्रौपदी को भी यह समाचार चर से मिल रहे थे और मन से बड़ी प्रसन्न हो रही थी कि मेरे वीर पुत्र ने मेरे अपमान का प्रतिशोध ले लिया। तभी तो कहते है कि पुत्र समर्थ हो जाए तो माता की शक्ति सौगुना बढ़ जाती है।

उस समय युधिष्ठिर आदि पाण्डव, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, केकय, धृष्टकेतु तथा मत्स्य, पाञ्चाल और सञ्जय वीर बड़ी प्रसन्नताके साथ द्रोणकी सेनाको नष्ट करने की इच्छासे आगे बढ़े। फिर तो कौरवों और पाण्डवोंकी सेनामें महान् युद्ध होने लगा। इधर कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भरकर अभिमन्युके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करने लगा और उसका तिरस्कार करते हुए उसके अनुचरोंको भी बाणोंसे बींधने लगा। अभिमन्युने भी तुरंत ही उसे बाणोंसे बींध डाला। उस समय उसकी गति कोई नहीं रोक सका। तदनन्तर, कर्णने अपनी उत्तम अस्त्र-विद्याका प्रदर्शन करते हुए सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युको बींध डाला। कर्णके द्वारा पीड़ित होकर भी सुभद्राकुमार शिथिल नहीं हुआ; उसने तेज बाणोंसे शूरवीरोंके धनुष काटकर कर्णको भी खूब घायल किया। साथ ही उसके छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ोंको भी हँसते-हँसते बींध डाला। फिर कर्णने भी उसे कई बाण मारे, किंतु अभिमन्युने अविचल भावसे सबको झेल लिया और मुहूर्तभरमें एक ही बाणसे कर्णके धनुष और ध्वजाको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार कर्णको संकटमें फँसा देखकर उसका छोटा भाई सुदृढ़ धनुष ले अभिमन्युका सामना करनेको आ गया। उसने आते ही बाण मारकर अभिमन्युको छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ोंसहित बींध

डाला। यह देख आपके पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। तब अभिमन्युने मुसकराकर एक ही बाणसे उसका मस्तक काट गिराया। धर्मराज युधिष्ठिर को जयद्रथ ने बाहर ही शिथिल कर दिया। सौवीरराज जयद्रथ का सामना करने में पाण्डवसेना असमर्थ रही।

तब विदित कर्ण-कनिष्ठ भ्राता बाण बरसा कर बड़े, रे खल। खड़ा रह वचन यों कहने लगा उससे कड़े।
अभिमन्यु ने उनको श्रवण कर प्रथम कुछ हँस भर दिया, फिर एक शर से शीघ्र उसका शीश खण्डित कर दिया॥
यों देख मरते निज अनुज को कर्ण अति क्षोभित हुआ, सन्तप्त स्वर्ण-समान उसका वर्ण अति शोभित हुआ।
सौभद्र पर सौ बाण छोड़े जो अतीव कराल थे, आ:। बाण थे वे या भयंकर पक्षधारी व्याल थे॥
अर्जुन-तनय ने देख उनको वेग से आते हुए, खण्डित किया झट बीच में ही धैर्य दिखलाते हुए।
फिर हस्तलाघव से उसी क्षण काट के रिपु चाप को, रथ, सूत, रक्षक नष्ट कर सौंपा उसे सन्ताप को॥

राजन्। भाईको मरा देख कर्ण बहुत दु:खी हुआ। इधर सुभद्राकुमारने कर्णको विमुख करके दूसरे धनुर्धरोंपर धावा किया। क्रोधमें भरकर वह हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे युक्त उस विशाल सेनाका संहार करने लगा। कर्ण तो उसके बाणोंसे बहुत पीड़ित हो चुका था, इसलिये अपने शीघ्रगामी घोड़ोंको हाँककर रणभूमिसे भाग गया। इससे व्यूह टूट गया। उस समय टिड्डियों या जलकी धाराओंके समान अभिमन्युके बाणोंसे आकाश आच्छादित हो जानेके कारण कुछ सूझ नहीं पड़ता था। सिन्धुराज जयद्रथके सिवा दूसरा कोई रथी वहाँ टिक न सका। अभिमन्यु अपने बाणोंसे शत्रुसेनाको दग्ध करता हुआ व्यूहमें विचरने लगा। रथ, घोड़े, हाथी और मनुष्योंका संहार होने लगा। पृथ्वीपर बिना मस्तककी लाशें बिछ गयीं। कौरव-योद्धा अभिमन्युके बाणोंसे क्षत-विक्षत हो प्राण बचानेके लिये भागने लगे। उस समय वे सामने खड़े हुए अपने ही दलके लोगोंको मारकर आगे बढ़ रहे थे और अभिमन्यु उस सेनाको खदेड़-खदेड़कर मार रहा था। व्यूहके बीच तेजस्वी अभिमन्यु ऐसा दीख पड़ता था, जैसे तिनकोंके ढेरमें प्रज्वलित अग्नि।

चक्रव्यूह के अन्दर जाकर। मार काट करता बढ़ बढ़कर॥
हा-हाकार चहूं दिसि माच्यो। जीवित सन्मुख कोई न बाच्यो॥
कट कट मुंड धरण गिरते थे। हा-हाकार सभी करते थे॥
कटे असंख्य मुंड तेहि काला। रुंड मुंड शोणित बहनाला॥

चारों पांडवों तथा पाँचों द्रौपदेयों ने हर्षनाद किया और पांचालों तथा कैकेयों की सहायता से द्रोण के व्यूह का भेदन करने के लिए उस पर टूट पड़े। व्यूहद्वार पर तो जयद्रथ था और वह पांडवों को किसी भी प्रकार आगे बढ़ने नहीं दे रहा था; किंतु उस पर भी दुर्योधन भयभीत स्वर में कर्ण को फटकारता हुआ बोला, दु:शासन सूर्य के समान शत्रुओं को संतप्त करता हुआ, युद्ध में उनका भयंकर विनाश कर रहा था, उसी अवस्था में वह अभिमन्यु के चंगुल में फँस गया। उधर पांडव अभिमन्यु की सहायता के लिए प्रचंड बलशाली सिंहों के समान द्रोणाचार्य के व्यूह को तोड़ने के लिए धावा कर चुके हैं। वे किसी भी समय व्यूह तोड़कर भीतर आ सकते हैं। और तुम क्या कर रहे हो? व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हो। तुम अभिमन्यु को रोक नहीं सकते?

दुर्योधन की फटकार कर्ण को वैसे ही लगी जैसे अश्व को कशा लगता है या फिर गज को अंकुश लगता है। वह तड़पकर आगे बढ़ा और उसने राजकुमार पर अनेक बाण बरसाए। राजकुमार तब तक आचार्य द्रोण पर आक्रमण करने का मन बना चुके थे। वे आचार्य के सम्मुख पहुँचने को बहुत उतावले हो चुके थे। उन्होंने सामने से आकर बाण चलाते हुए कर्ण को घायल किया और आगे बढ़ गए। उनका मार्ग कोई रोक नहीं सका। पर कर्ण ने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसने पहले से अनेक बाण खाए हुए राजकुमार अभिमन्यु को अपने बाणोंसे बींध डाला। अपनी ओर से उसने कोई कोर

कसर नहीं छोड़ी। जितनी पीड़ा वह दे सकता था, उसने दी। राजकुमार उसकी और उपेक्षा न कर सके। उन्होंने अपने भल्लों द्वारा शत्रुओं के धनुष काट दिए। कर्ण का मुख मोड़ दिया। उसके अश्व घायल हो गए थे। उसका सारथी भी क्षतविक्षत हो गया था और स्वयं कर्ण के शरीर पर भी अनेक घाव लगे थे। कर्ण की दशा इतनी दीन हो गई कि उसका छोटा भाई उसे बचाने के लिए दौड़ा आया।

व्यूह के बाहर पांडवों का भयंकर कोलाहल था किंतु वे लोग अब तक व्यूह का भेदन नहीं कर पाए थे कि राजकुमार की कोई सहायता कर पाते। इधर राजकुमार अभिमन्यु ने कर्ण की सहायता को आए उनके भाई का मस्तक काट कर भूमिपर लुढ़का दिया। कर्ण पीड़ा से चीत्कार कर उठा। पर राजकुमार वहीं तक रुकनेवाले नहीं थे। उन्होंने कर्ण पर न केवल अपना दबाव बढ़ा दिया, वरन् उसे ही अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया। परिणाम यह हुआ कि अपने शरीर से बहते रक्त को देखता हुआ कर्ण युद्धभूमि से बाहर हो गया। तब राजकुमार ने अन्य योद्धाओं की ओर ध्यान दिया।

महाराज युधिष्ठिर, मध्यम पांडव भीम, महावीर सात्यकि, प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न, अप्रतिहत शिखंडी, महाराज द्रुपद और विराट, पाँचों द्रौपदेय और कैकेय राजकुमार मिलकर चक्रव्यूह में अपने प्रवेश के लिए द्वार बनाने का विकट प्रयत्न कर रहे थे; किंतु भयंकर और महान् धनुष धारण करनेवाले सिंधुराज जयद्रथ ने अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर उन सबकी प्रगति रोक दी थी। यह अविश्वसनीय था किंतु सत्य था। धृष्टद्युम्न ने जयद्रथ का धनुष काट दिया, पर जयद्रथ ने तत्काल दूसरा धनुष उठा लिया। भीमने बाण मारकर जयद्रथ का धनुष, ध्वज और छत्र काट दिए, किंतु जयद्रथ ने तीसरा धनुष उठा ही नहीं लिया, उन्होंने महावीर भीम का रथ भी नष्ट कर दिया। भीम अपनी रक्षा के लिए सात्यकि के रथ में चले गए। सिंधुराज का यह पराक्रम अनपेक्षित और अविश्वसनीय था। राजकुमार अभिमन्यु ने द्वाररक्षक गजों को मारकर, पांडवों के व्यूह में प्रवेश के लिए जो मार्ग बनाया था, जयद्रथ ने उसे भी बंद कर दिया था। मत्स्य, पांचाल, कैकेय और पांडव बार-बार प्रयत्न कर रहे थे; किंतु जयद्रथ ने उन्हें हर बार पीछे धकेल दिया। अधिक उदारता भी कल्याणकारी नहीं होती। कौरवों ने अपने रथसमूह से राजकुमार को सब ओर से घेर लिया था। जाने उनमें कर्णपुत्र वृषसेन कैसे सबसे आगे हो गया था।

धृतराष्ट्रने पूछा- सञ्जय। अभिमन्युने जिस समय व्यूहमें प्रवेश किया, उसके साथ युधिष्ठिरकी सेनाका कोई और भी वीर गया था या नहीं? सञ्जयने कहा- महाराज। युधिष्ठिर, भीम, शिखण्डी, सात्यकि, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, केकय, धृष्टकेतु और मत्स्य आदि योद्धा व्यूहाकारमें संगठित होकर अभिमन्युकी रक्षाके लिये उसके साथ-साथ चले। उन्हें धावा करते देख कौरवोंके सैनिक भागने लगे। तब आपके दामाद जयद्रथने दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करके पाण्डवोंको सेनासहित रोक दिया। धृतराष्ट्रने पूछा- सञ्जय। मैं तो समझता हूँ जयद्रथके ऊपर यह बहुत बड़ा भार आ पड़ा, जो अकेले होनेपर भी उसने क्रोधमें भरे हुए पाण्डवोंको रोका। भला, जयद्रथने कौन-सा ऐसा महान् तप किया था जिससे पाण्डवोंको रोकनेमें समर्थ हो सका?

सञ्जयने कहा- जयद्रथने वनमें द्रौपदीका अपहरण किया था, उस समय भीमसे उसे परास्त होना पड़ा। इस अपमानसे दु:खी होकर उसने भगवान् शंकरका आराधना करते हुए बड़ी कठोर तपस्या की। भक्तवत्सल भगवान्ने उसपर दया की और स्वप्नमें दर्शन देकर कहा- जयद्रथ। मैं तुझपर प्रसन्न हूँ, इच्छानुसार वर माँग ले। वह प्रणाम करके बोला- मैं चाहता हूँ अकेले ही समस्त पाण्डवोंको युद्धमें जीत सकूँ। भगवान्ने कहा, सौम्य। तुम अर्जुनको छोड़ शेष चार पाण्डवोंको युद्धमें जीत सकोगे। उस वरदानसे और दिव्यास्त्रके बलसे ही जयद्रथने अकेले होनेपर भी पाण्डवसेनाको आगे नहीं बढ़ने दिया। उसकी प्रत्यञ्चाकी टंकार होते ही शत्रुवीरोंपर भय छा गया और कौरवोंके सैनिकोंको बड़ा हर्ष हुआ। उस समय सारा भार जयद्रथके ही ऊपर पड़ा देख कौरवोंके क्षत्रिय वीर कोलाहल करते हुए युधिष्ठिरकी सेनापर टूट पड़े। अभिमन्युने व्यूहके

जिस भागको तोड़ डाला था, उसे जयद्रथने पुन: योद्धाओंसे भर दिया। फिर उसने सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न और विराटको बाण मारे। इसी प्रकार द्रुपदको, शिखण्डी, केकयराजकुमारोंको, द्रौपदीके प्रत्येक पुत्रको और युधिष्ठिरको बाणोंसे बींध डाला। साथ ही दूसरे योद्धाओंको भी बाणोंकी भारी वर्षासे पीछे हटा दिया। उसका यह काम अद्भुत ही हुआ। तब राजा युधिष्ठिरने हँसते-हँसते एक तीक्ष्ण बाणसे जयद्रथका धनुष काट डाला। जयद्रथने पलक मारते ही दूसरा धनुष लेकर युधिष्ठिरको और अन्य योद्धाओंको बाणोंसे बींध दिया। उसका हस्तलाघव देखकर भीमने बाणोंसे उसके धनुष, ध्वजा और छत्रको काट गिराया। जयद्रथने पुन: दूसरा धनुष उठाया और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर भीमके धनुष, ध्वजा और घोड़ोंका संहार कर डाला। घोड़ोंके मर जानेपर भीम उस रथसे कूदकर सात्यकिके रथपर जा बैठे। जयद्रथका यह पराक्रम देख कौरवोंके सैनिक प्रसन्न होकर उसे धन्य धन्य कहने लगे। इतनेमें अभिमन्युने उत्तर दिशाकी ओर युद्ध करनेवाले हाथीसवारोंको मारकर पाण्डवोंके लिये मार्ग दिखाया, किंतु जयद्रथने उसे भी रोक लिया। मत्स्य, पाञ्चाल, केकय और पाण्डव वीरोंने बहुत कोशिश की, पर वे जयद्रथको हटा न सके। कौरवोंके शत्रुओंमें जो भी द्रोणसेनाका व्यूह तोड़नेका प्रयत्न करता, उसे जयद्रथ वरदानके प्रभावसे रोक देता था।

सञ्जय धृतराष्ट्र से बोले- तदनन्तर दुर्द्धर्ष वीर अभिमन्युने उस सेनाके भीतर घुसकर इस प्रकार तहलका मचाया, जैसे बड़ा भारी मगर समुद्रमें हलचल पैदा कर देता है। कौरवोंकी सेनाके प्रधान वीरोंने रथोंसे अभिमन्युको घेर रक्खा था, तो भी उसने वृषसेनके सारथीको मारकर उसके धनुषको भी काट डाला। बलवान् वृषसेन भी अपने बाणोंसे अभिमन्युके घोड़ोंको बींधने लगा। घोड़े रथ लिये हुए वहाँसे भाग गये। यह विघ्न आ पड़नेसे सारथी रथको दूर हटा ले गया। थोड़ी ही देरमें शत्रुओंको रौंदते हुए अभिमन्युको पुन: आते देख बसातीयने तुरंत उनका सामना किया। उसने अभिमन्युको बाणोंसे घायल कर डाला। तब अभिमन्युने बसातीयकी छातीमें एक ही बाण मारा, जिससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख कौरवोंकी सेनाके बड़े-बड़े क्षत्रियोंने क्रोधमें भरकर अभिमन्युको मार डालनेकी इच्छासे घेर लिया। उसके साथ उनका बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अभिमन्युने कुपित हो उनके धनुष और बाणोंके टुकड़े-टुकड़े करके कुण्डल और मालाओंसे मण्डित मस्तक भी काट डाले।

तत्पश्चात् मद्रराजका बलवान् पुत्र रुक्मरथ आया और डरी हुई सेनाको आश्वासन देता हुआ बोला- वीरो। डरो मत। मेरे रहते इस अभिमन्युकी कोई हती नहीं है। संदेह न करो, मैं इसे जीते-जी पकड़ लूँगा। यह कहकर वह अभिमन्युकी ओर दौड़ा और उसकी छाती तथा दायीं-बायीं भुजाओंमे बाण मारकर गर्जने लगा। तब अभिमन्युने उसका धनुष काट दिया और शीघ्र ही उसकी दोनों भुजाओं तथा मस्तकको भी काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया।

राजकुमार रुक्मरथके कई मित्र थे, वे भी रथमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले थे। उन्होंने अपने महान् धनुष चढ़ाकर बाणोंकी वर्षासे अभिमन्युको ढक दिया। यह देख दुर्योधनको बड़ा हर्ष हुआ; उसने यही समझा कि बस, अब तो अभिमन्यु यमलोकमें पहुँच गया। किंतु अभिमन्युने उस समय गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया। वह अस्त्र बाणोंकी वृष्टि करता हुआ युद्धमें कभी एक, कभी सौ और कभी हजारकी संख्यामें दिखायी देता था। अभिमन्युने रथसंचालनकी कला और गन्धर्वास्त्रकी मायासे उन राजकुमारोंको मोहित करके उनके शरीरोंके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। कितनोंके धनुष, ध्वजा, घोड़े, सारथी, भुजाएँ तथा मस्तक काट डाले। एक अभिमन्युके द्वारा इतने राजपुत्रोंको मारा गया देख दुर्योधन भयभीत हो गया। रथी, हाथी, घोड़ो और पैदलोंको रणभूमिमें गिरते देख वह क्रोधमें भरा हुआ अभिमन्युके पास आया। उन दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अभी क्षणभर भी पूरा नहीं होने पाया कि सैकड़ों बाणोंसे आहत होकर दुर्योधन भाग गया।

HHH(६६)HHH

राजकुमार ने अपनी रथमाया प्रकट की और गांधर्वास्त्र का प्रयोग कर उस सारे बाण जाल को काटकर परे फेंक दिया। वे अस्त्र-संचालन का कौशल दिखाते हुए अलातचक्र की भाँति घूम रहे थे। वस्तुत: वे एक नहीं सहस्त्रों रूपों में दिखाई पड़ रहे थे। अभी यहाँ थे, अगले क्षण कहीं और थे। ऐसा लगता था कि वे युद्धक्षेत्र में सब स्थानों पर हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं था, जहाँ वे नहीं थे। उन्होंने अपने घेरनेवाले रुक्मरथ के मित्र राजकुमारों के शरीरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे।

अब दुर्योधन के भयभीत होने की बारी थी। वह जो समझ रहा था कि आचार्य द्रोण ने एक ऐसे व्यूह की रचना कर दी है, जिसमें राजकुमार अभिमन्यु घिर गए हैं और पांडव सेना से उन्हें कोई सहायता नहीं मिल सकती- वह सब उसका भ्रम था। ऐसा लगता है कि राजकुमार अभिमन्यु के संदर्भ में दुर्योधन को अब किसी पर भी विश्वास नहीं रह गया था। उसे सब ओर अपने विरुद्ध षडयंत्र दिखाई दिए होंगे। आचार्य द्रोण और कर्ण से तो वह पहले ही झगड़ चुका था। अब और किससे कहता। परिणामस्वरूप वह स्वयं ही अपनी सेना के साथ राजकुमार पर चढ़ दौड़ा। पर विचित्र बात यह हुई कि राजकुमार से उसका युद्ध जैसा युद्ध हुआ ही नहीं। एक आधी-अधूरी क्षणिक-सी झड़प हुई और दुर्योधन अनेक बाणों से घायल होकर युद्ध छोड़कर भाग गया।

धृतराष्ट्रने कहा- सूत। जैसा कि तुम बता रहे हो, अकेले अभिमन्युका बहुत-से योद्धाओंके साथ संग्राम हुआ तथा उसमें विजय भी उसीकी हुई- सहसा इस बातपर विश्वास नहीं होता। वास्तवमें सुभद्राकुमारका यह पराक्रम आश्चर्यजनक है। किंतु जिन लोगोंका धर्मपर भरोसा है, उनके लिये यह कोई अद्‌भुत बात नहीं है। सञ्जय। जब दुर्योधन भाग गया और सैकड़ों राजकुमार मारे गये, उस समय मेरे पुत्रोंने अभिमन्युके लिये क्या उपाय किया?

सञ्जयने कहा- महाराज। उस समय आपके योद्धाओंके मुँह सूख गये थे, आँखें कातर हो रही थीं, शरीरमें रोमाञ्च हो आया था और पसीने चू रहे थे। शत्रुको जीतनेका उत्साह नहीं रह गया था, सब भागनेकी तैयारीमें थे। मरे हुए भाई, पिता, पुत्र, सुहृद्, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छोड़कर अपने हाथी घोड़ोंको जल्दी-जल्दी हाँकते हुए रणभूमिसे दूर निकल गये। उन्हें इस प्रकार हतोत्साह होकर भागते देख द्रोण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, कृतवर्मा और शकुनि ये सब क्रोधमें भरे हुए समरविजयी अभिमन्युकी ओर दौड़े। किंतु अभिमन्युने इन्हें फिर अनेकों बार रणसे विमुख किया। केवल दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण ही सामने डटा रहा। पुत्रके स्नेहसे उसके पीछे दुर्योधन भी लौट आया; फिर दुर्योधनके पीछे अन्य महारथी भी लौट पड़े। अब सबने मिलकर अभिमन्युपर बाण बरसाना आरम्भ किया। परंतु अभिमन्युने अकेले ही उन सब महारथियोंको परास्त कर दिया और लक्ष्मणके सामने जाकर उसकी छाती और भुजाओंमें तीक्ष्ण बाणोंका प्रहार किया। फिर लक्ष्मणसे कहा- भाई। एक बार इस संसारको अच्छी तरह देख लो; क्योंकि अभी तुम्हें परलोककी यात्रा करनी है। आज तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंके देखते-देखते तुम्हें यमलोक भेज रहा हूँ। यह कहकर महाबाहु सुभद्राकुमार अभिमन्यु ने लक्ष्मणकी ओर एक भल्ल चलाकर उसके सुन्दर नासिका, मनोहर भ्रुकुटि तथा घुँघराले बालोंवाले कुण्डलमण्डित मस्तकको धड़से अलग कर दिया।

यों कर्ण को हारा समझ कर चित्त में अति क्रुद्ध हो, दुर्योधनात्मज वीर लक्ष्मण आ गया फिर युद्ध को।
सम्मुख उसे-अवलोक कर अभिमन्यु यों कहने लगा, मानो भयंकर सिन्धु-नद हद तोड़कर बहने लगा।।
तुम हो हमारे बन्धु इससे हम जताते हैं तुम्हें, मत जानियो तुम यह कि हम निर्बल बताते हैं तुम्हें।
अब इस समय तुम निज जनों को एक बार निहार लो, यम-धाम में ही अन्यथा होगा मिलाप विचार लो।।
उस वीर को, सुनकर वचन ये, लग गई बस आग-सी, हो क्रुद्ध उसने शक्ति छोड़ी एक निष्ठुर नाग-सी।

अभिमन्यु ने उसको विफल कर पाण्डवों की जय कही, फिर शर चढ़ाया एक जिसमें ज्योति-सी थी जग रही ।।
उस अर्द्धचन्द्राकार शर ने छूटकर कोदण्ड से, छेदन किया रिपु-कण्ठ तत्क्षण फलक धार प्रचण्ड से ।।
होता हुआ इस भाँति भासित शीश उसका गिर पड़ा, होता प्रकाशित टूटकर नक्षत्र ज्यों नभ से बड़ा ।।

चारों ओर हाहाकार मच गया। जिसे बचाने के लिए अपने प्राणों को पुन: संकट में डालकर दुर्योधन लौट आया था, वह लक्ष्मण उसकी आँखों के सामने मारा गया था। वह पूरी शक्ति से चीत्कार कर उठा, इस अभिमन्यु को मार डालो और तत्काल राजकुमार को घेर लिया। इस बार उसको घेरेनवालों में आचार्य द्रोण भी थे। उसके साथ कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि, दु:शासन और कृतवर्मा थे। राजकुमार उनसे जूझते रहे। सहसा वे पलटे और उन्होंने चक्रव्यूह के मुख्य प्रवेश-द्वार की रक्षा करनेवाली सिंधुराज की गजसेना पर आक्रमण कर दिया।

अर्जुनकुमारने अपने तीखे बाणोंसे घायल करके उन सबको पुन: भगा दिया और बड़े वेगके जयद्रथकी सेनाकी ओर धावा किया। यह देख कलिङ्ग और निषाद वीरोंके साथ क्राथपुत्रने आकर हाथियोंकी सेनासे अभिमन्युका मार्ग रोक दिया। फिर तो उनके साथ बड़ा भयानक युद्ध हुआ। अभिमन्युने उस गज-सेनाका संहार कर दिया। तदनन्तर, क्राथ अर्जुनकुमारपर बाण समूहोंकी वर्षा करने लगा। इतनेमें भागे हुए द्रोण आदि महारथी भी लौटे और अपने धनुषकी टंकार करते हुए अभिमन्युपर चढ़ आये। किंतु उसने अपने बाणोंसे उन सब महारथियोंको रोककर क्राथपुत्रको भलीभाँति पीड़ित किया। फिर असंख्य बाणोंकी वर्षा करके उसके धनुष, बाण, केयूर, बाहु, मुकुट तथा मस्तकको भी काट डाला। साथ ही उसके छत्र, ध्वजा, सारथी और घोड़ोंको भी रणभूमिमें गिरा दिया। क्राथके गिरते ही सेनाके अधिकांश योद्धा विमुख होकर भागने लगे।

द्रौपदी को लगातार समाचार मिल रहे थे। सभी कौरव महारथी एकत्रित होकर अभिमन्यु पर आक्रमण कर रहे थे। किन्तु अदम्य था उसका साहस। बातों ही बातों में उसने शल्य के भाई का वध कर दिया। पाण्डवों में हर्ष छा गया। कर्ण के भाई का वध किया। वसातीय मारा गया। उन्मत्त व्याघ्र जैसे हिरण को दबोच लेता, वैसे ही उसने सत्यंश्रवा को मसल डाला। मद्रराजपुत्र रुक्मरथ मारा गया। वह बाल योद्धा विद्युत्-तरंग-सा थिरकता फिर रहा था एकाकी-भयंकर नरसंहार करता। जैसे प्रलयंकारी मेघगर्जना करता हुआ स्वयं देवराज इन्द्र हाथ में वज्र नचाता चला आया हो। कौरवसेना व्याकुल हो चली। क्राथपुत्र मारा गया। वृन्दारक मारा गया। दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण मारा गया। पाण्डव-सेना से निरन्तर हर्ष-ध्वनियाँ उठ रही थीं। द्रौपदी रोमांचित थी, गर्व से वक्ष फूल गया, प्रेम से हृदय उमड़ आया।

तब द्रोण आदि छ: महारथियोंने पुन: अभिमन्युको घेरा। यह देख अभिमन्युने द्रोण, बृहद्बल, कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामाको बाणोंसे बींध डाला। तदनन्तर, उसने कौरवोंकी कीर्ति बढ़ानेवाले वीर धृतराष्ट्र पुत्र वृन्दारकको देखते-देखते मार डाला। तब अभिमन्युके ऊपर द्रोणने, अश्वत्थामा, कर्ण, कृतवर्मा, बृहद्बल और कृपाचार्यने बाण मारे। इस प्रकार उनके द्वारा सब ओरसे पीड़ित होते हुए भी सुभद्राकुमारने उन सबको बाणोंसे मारकर घायल कर दिया। इसके बाद कोसलनरेशने अभिमन्युकी छातीमें बाण मारा। अभिमन्युने भी उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष और सारथीको काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। रथसे हीन होकर कोसलनरेशने ढाल-तलवार हाथमें ले ली और अभिमन्युके कुण्डलयुक्त मस्तकको काट लेनेका विचार किया; इतनेहीमें अभिमन्युने उसकी छातीमें बाण मारा। उसके लगते ही कोसलराजका हृदय फट गया और वे उस रण-भूमिमें गिर गये। साथ ही अभिमन्युने वहाँ उन दस हजार महाबली राजाओंका भी वध कर दिया, जो खड़े-खड़े अमङ्गलसूचक बातें निकाल रहे थे। इस प्रकार सुभद्रानन्दन बाणोंकी वर्षासे आपके योद्धाओंकी गति रोककर रणभूमिमें विचरने लगा।

द्रोणाचार्य, बृहन्नल, कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण सब आहत हो चुके थे उसके अचूक एवं कठोर प्रहारों से।

सब विचलित थे। सब अचम्भित थे। श्रीकृष्ण के भागिनेय, सुभद्रा के पुत्र और अर्जुन की आशाओं के केन्द्रबिन्दु, उस सुकुमार बालक में ऐसा तेज। ऐसा बल। ऐसा कौशल। ऐसी निडरता। धन्य है। धन्य है।

कौशलराजपुत्र बृहद्बल मारा गया। कर्ण के छ: मन्त्री मारे गये। मगधराजपुत्र अश्वकेतु मारा गया। शत्रुंजय मारा गया। चन्द्रकेतु मारा गया। मेघवेग मारा गया। सुवर्चा मारा गया। सूर्यभास मारा गया। सुबलपुत्र कालिकेय मारा गया।

पाण्डवसेना हर्षोन्मत्त हो अपने नन्हे सेनापति का प्रचण्ड जयघोष करती थकती न थी। कौरव-सेनापति, वयोवृद्ध महापराक्रमी द्रोणाचार्य का रणकौशल फीका पड़ गया था। निस्तेज, प्रभावहीन। उनकी सेना का उत्साह क्षीण पड़ता जा रहा था। कौरवसेना भयातुर थी। आतंकित थी। उस एकाकी बालक के शौर्य से थर-थर प्रकम्पित थी। द्रोणाचार्य हतप्रभ थे। दुर्योधन व्याकुल था। कर्ण विचलित था। दु:शासन भयभीत था। सेनापति महावीर द्रोणाचार्य की प्रतिष्ठा दाँव पर लगी थी। इस नन्हें धनंजयपुत्रने उनकी छवि धूमिल कर दी थी। यह एकाकी बालक समस्त कौरव-वीरों का काल बना घूम रहा है। द्रोणाचार्य की चिन्ता बढ़ रही थी।

अभिमन्युने अश्वत्थामा को घायल कर दिया। अपने पुत्र पर संकट देखकर द्रोण पगला गए। अश्वत्थामा को लगा कि उसकी रक्षा करते हुए द्रोण संकट में फँसते जा रहे है। अभिमन्युने कर्ण के कान में एक बाण मारा और उसके छ: मन्त्रियों और सारथियों को अश्वोंसहित मार डाला। मार्तिकावतक नरेश भोज भी अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसी समय दाँत पीसता हुआ दु:शासनपुत्र अपना रथ वहाँ ले आया और बाण मारकर सारथी और अश्वोंसहित अभिमन्युको घायल कर दिया। फिर राजकुमार अभिमन्यु सचेत होकर हँसकर बोले, तेरा पिता तो कायर के समान भाग गया। प्रसन्नता की बात है कि तू युद्ध करना जानता है। इसी बीच अश्वत्थामा ने भी कही बाण मारे। अभिमन्युने अश्वत्थामाके रथकी ध्वजा काट दी और उसकी सहायता के लिए आनेवाले शल्य को बाणोंसे बींध दिया। उसके रथके दोनों पार्श्वरक्षकों को मार डाला। शल्य भागकर दूसरे रथपर चले गए। अब अभिमन्युने अपना रथ शकुनि की ओर मोड़ लिया और बाणोंकी वर्षा करने लगे। घायल शकुनि ने दुर्योधन से कहा, राजन्। यह हममें से एक-एक कर युद्ध कर हम सबको मार डाले जा रहा है। उसके पहले ही हम सबको मिलकर अभिमन्यु को मार डालना चाहिए। कर्ण आचार्य द्रोण से बोले, हे आचार्य। इससे पहले कि यह हमें मार डालें हमें इसका वध करना होगा। आचार्य कौरव सेना पर आए संकट को समझ रहे थे और कर्ण की पीड़ा को भी देख रहे थे। किन्तु वे राजकुमार अभिमन्यु की वीरता पर मुग्ध थे। और वे बोले, पिता और पुत्र में कोई अंतर दिखता ही नहीं। इसका युद्धकौशल और इसकी वीरता किसी भी योद्धा का मन प्रसन्न कर देती है। तब कर्ण क्रोधित होकर आचार्य से बोला, हे आचार्य आप उस बालक पर मुग्ध होते ही रहेंगे या कुछ करेंगे भी। मैं उसके बाणों से आहत और पीड़ित होकर केवल इसलिए समरभूमि में खड़ा हूँ क्योंकि समरभूमि से पलायन क्षत्रियकर्म नहीं है। आचार्य मुसकराकर बोले, अन्यथा तुम तो भाग जाते? प्रत्येक युद्ध में सबसे पहले भागनेवाले योद्धा तो तुम ही हो। आचार्य की बात सुनकर भी कर्ण लज्जित नहीं हुआ। और क्रुद्ध होकर बोला, आपका क्या बिगड़ा है इस युद्ध में। मारे तो मेरे भाई गए हैं। मेरे पुत्रों ने वीरगति पाई है। मेरा भी अपना कोई न मरता तो मैं भी अभिमन्यु की वीरता पर मुग्ध होता। आचार्य बोले, अभिमन्यु का कवच अभेद्य है। उसको कोई भेद नहीं सकता। यदि इसको परास्त करना चाहते हो तो सारे महारथी एकत्रित होकर उसपर वार करो। जब वह हम सबके बीच अकेला घिर जाएगा और निकट से सम्मुख युद्ध करने को बाध्य होगा तो हम सब विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त होकर उसका वध कर सकेंगे।

छोड़ लड़ाई भागण लागे। भगदड़ मची फौज भई आगे।।

HHH(६९)HHH

सप्तरथी मन चिंता छाई। केहि विधि काबू करें लड़ाई।।
सबने मिल मंत्रणा करी, द्रोण कहे धरि धीर।
मिलकर चारों ओर से, सभी चलावो तीर।।

परस्पर परामर्श हुआ। कर्ण, दुर्योधन, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा सबने एक साथ उस एकाकी बाल योद्धा पर सामूहिक आक्रमण कर दिया। कर्ण ने उसका धनुष काटा। कृतवर्मा ने उसके अश्वों का वध कर दिया। कृपाचार्य ने उसके दोनों पार्श्वरक्षकों को मार डाला। शेष महारथी घमासान बाणवर्षा करने लगे उस रथविहीन, धनुषहीन एकाकी बालक पर।

आचार्यकी बात सुनकर कर्णने बाणोंसे अभिमन्युके धनुषको काट डाला। उसे धनुष और रथसे हीन देख बाकी महारथीलोग बड़ी शीघ्रतासे उसपर बाण बरसाने लगे। एक ओर छ: महारथी थे, दूसरी ओर असहाय अभिमन्यु, तो भी ये निर्दयी उस अकेले बालकपर बाणवर्षा कर रहे थे। धनुष कट गया, रथसे हाथ धोना पड़ा, तो भी उसने अपने धर्मका पालन किया। हाथमें ढाल-तलवार लेकर वह तेजस्वी बालक आकाशमें उछल पड़ा। अपनी लघिमा-शक्तिसे अभी वह गरुडकी भाँति ऊपर मंड़रा ही रहा था, तबतक द्रोणाचार्यने क्षुरप्र नामक बाणसे उसकी तलवारके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और कर्णने ढाल छिन्न-भिन्न कर दी।

वह अब खड्ग लेकर थिरक रहा था। द्रोणाचार्य ने आगे बढ़कर उसके खड्ग की मूठ काट डाली। कर्ण ने तुरंत आगे बढ़कर उसकी ढाल पर आघात कर उसे खण्ड-खण्ड कर डाला। रथहीन, धनुषहीन, खंगहीन, ढालहीन कर दिया उसे। किन्तु वह तेजस्वी बालक जैसे शौर्य का अवतार था। हाथ में चक्र घुमाता वह गरुड़-सा झपट्टा मारता दौड़ने लगा। परन्तु उसका वह एकमात्र अस्त्र, चक्र भी काट दिया गया।

अब उसके हाथमें तलवार भी न रही, सारे अंगोंमें बाण धँसे हुए थे; उसी दशामें वह आकाशसे उतरा और क्रोधमें भरकर रथका चक्र हाथमें लिये द्रोणाचार्यपर झपटा। उस समय वह चक्रधारी भगवान् विष्णुकी भाँति शोभायमान हो रहा था। उसे देखकर राजालोग बहुत डर गये और सबने मिलकर उसके चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

तब कर्ण द्रोणाचार्य से साश्चर्य यों कहने लगा, आचार्य। देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।
रघवर-विशिख से सिन्धु-सम सब सैन्य इससे व्यस्त है। यह पार्थ-नन्दन पार्थ से भी धीर वीर प्रशस्त है।।
होना विमुख संग्राम से है पाप वीरों को महा, यह सोचकर ही इस समय ठहरा हुआ हूँ मैं यहाँ।
जैसे बने अब मारना ही योग्य इसको है यहीं, सच जान लीजे अन्यथा निस्तार फिर होगा नहीं।।
वीराग्रणी अभिमन्यु। तुम हो धन्य इस संसार में, हैं शत्रु भी यों मग्न जिसके शौर्य-पारावार में।
होता तुम्हारे निकट निष्प्रभ तेज शशि का सूर का, करते विपक्षी भी सदा गुण-गान सच्चे शूर का।।

अभिमन्यु चक्रव्यूह के आखिरी छोर पर पहुंच गया जहां वो कौरवों के सातों महारथियों से घिर गया। अभिमन्यु ने जोरों से बाणवर्षा की। उन महारथियों के छक्के छूटने लगे। अभिमन्यु की वीरता देखकर सब चकित हो रहे थे। अभिमन्यु बाहर निकलने में असमर्थ हुआ क्योंकि बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा था। अभिमन्यु द्रोण के पास आया और बोला सावधान आचार्य। दोनों ओर बाण वर्षा होने लगी। मद्र नरेश शल्य पर बाण वर्षा की सावधान कुलगुरु कृपाचार्य और उनपर बाण वर्षा की। सावधान अंगराज कर्ण और बाणों से क्षत कर दिया। सावधान गुरुपुत्र अश्वत्थामा और बाणों के प्रहार से परास्त किया। सावधान मामा शकुनि।

तत्काल हाहाकार-युत रिपु-पक्ष में दु:ख छा गया, फिर दुष्ट दु:शासन समर में शीघ्र सम्मुख आ गया।
अभिमन्यु उसको देखते ही क्रोध से जलने लगा, निश्वास वारंवार उसका उष्णतर चलने लगा।।

रे रे नराधम नारकी। तू था बता अब तक कहाँ? मैं खोजता फिरता तुझे सब ओर कब से हूँ यहाँ।
यह देख, मेरा बाण तेरे प्राण-नाथ-निमित्त है, तैयार हो, तेरे अघों का आज प्रायश्चित है।
सब सैनिकों के सामने ही आज वध करके तुझे, संसार में माता-पिता से है उऋण होना मुझे।
मेरे करों से अब तुझे कोई बचा सकता नहीं, पर देखना, रणभूमि से तू भाग मत जाना कहीं।।
कह यों वचन अभिमन्यु ने छोड़ा धनुष से बाण को, रिपु-भाल में वह घुस गया झट भेद शीर्ष-त्राण को।
तब रक्त से भीगा हुआ वह गिर पड़ा पाकर व्यथा, सन्ध्या समय पश्चिम-जलधि में अरुण रवि गिरता यथा।।
मूर्च्छित समझ उसको समर से ले गया रथ सारथी, लड़ने लगा तब नृप वृहद्बल उचित नाम महारथी।
कर खेल क्रीड़ासक्त हरि ज्यों मारता करि को कभी, मारा उसे अभिमन्यु ने त्यों छिन्न करके तनु सभी।।
उस एक ही अभिमन्यु से यों युद्ध जिस जिसने किया, मारा गया अथवा समर से विमुख होकर ही जिया।
जिस भाँति विद्युद्दाम से होती सुशोभित घन-घटा, सर्वत्र छिटकाने लगा वह समर में शस्त्रच्छटा।।

सावधान छोटे ताऊश्री और बाणोंसे आहत किया। सावधान ताऊश्री दुर्योधन और बाणों के प्रहार से दुर्योधन को परास्त किया। दुर्योधन बौखलाकर बोला मुझे इसकी मृत्यु चाहिये तब सबने मिलकर उसपर पीछे से एक साथ बाण चलाकर आक्रमण किया। अभिमन्यु बोला, हे श्रेष्ठ ब्राह्मण, हे भरद्वाज पुत्र मैं आपके सर्वश्रेष्ठ शिष्य अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु, मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि क्या आप वो सारे नियम भूल चुके है जो आपही के प्रधान सेनापति गंगापुत्र भीष्म ने बनाये थे। क्या यह नियम नहीं बना था कि एक यौद्धा से एक यौद्धा ही युद्ध करेगा। दुर्योधन बोला, युद्ध कर बालक, तेरी मृत्यु निश्चित है क्योंकि तेरे बाहर जाने का मार्ग बन्द हो चुका है। अभिमन्यु बोला, जो वीर होते है वो भागने का मार्ग खोलते भी नहीं ताऊश्री और फिर बाण छोडकर युद्ध करने लगा। सातों महारथियों ने उसे घेरकर धोखे से बाण चलाकर आक्रमण कर उसे रथ से नीचे गिराया। अभिमन्यु बोला, यदि आप कायर नहीं तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कीजिये। हे आचार्यवर मैं भी श्रीकृष्ण वासुदेव जैसे गुरु का शिष्य हूं। यह न समझियेगा कि यदि आप सब एक साथ आक्रमण करेंगे तो मैं युद्ध नही करूंगा। मैं तब भी अवश्य युद्ध करूंगा। मैं तो केवल यह चाहता था कि आनेवाला कल आप जैसे महारथियों की गिनती कायरों में न करे क्योंकि आपमें से कोई मेरे पिताश्री का गुरु है, कोई गुरुपुत्र है, कोई भाई है तो कोई मित्र है।

तब सप्त रथियों वहाँ रत हो महा दुष्कर्म में, मिलकर किया आरम्भ उसको विद्ध करना मर्म में।
कृप, कर्ण, दु:शासन, सुयोधन, शकुनि, सुत-युत द्रोण भी; उस एक बालक को लगे वे मारने बहु विध सभी।।
कुछ देर में जब रिपु-शरों से अश्व उसके गिर पड़े, तब कूद कर रथ से चला वह, थे जहाँ वे सब खड़े।
जब तक शरीरागार में रहते जरा भी प्राण हैं, करते समय से वीर जन पीछे कभी न प्रयाण हैं।।
फिर नृत्य-सा करता हुआ धन्वा लिए निज हाथ में, लड़ने लगा निर्भय वहाँ वह शूरता के साथ में।
था यदपि अन्तिम दृश्य यह उसके अलौकिक कर्म का, पर मुख्य परिचय भी यही था वीर जन के धर्म का।।
होता प्रविष्ट मृगेन्द्र-शावक ज्यों गजेन्द्र-समूह में, करने लगा वह शौर्य त्यों उन वैरियों के व्यूह में।
तब छोड़ते-कोदण्ड से सब ओर चण्ड-शरावली, मार्तण्ड-मण्डल के उदय की छवि मिली उसको भली।।
यों विकट विक्रम देख उसका धैर्य रिपु खोने लगे, उसके भयंकर वेग से अस्थिर सभी होने लगे।
हँसने लगा वह वीर उनकी धीरता यह देख के, फिर यों वचन कहने लगा तृण-तुल्य उनको लेख के।।
मैं एक तुम बहु सहचरों से युक्त विश्रुत सात हो, एकत्र फिर अन्याय से करते सभी आघात हो।

होते विमुख तो भी अहो। झिलता न मेरा वार है, तुम वीर कैसे हो, तुम्हें धिक्कार सौ सौ बार है।।
उस शूर के सुन यों वचन बोला सुयोधन आप यों, है काल अब तेरा निकट करता अनर्थ प्रलाप क्यों?
जैसे बने निज वैरियों के प्राण हरना चाहिए, निज मार्ग निष्कण्टक सदा सब भाँति करना चाहिए।।
यह कथन तेरे योग्य ही है प्रथम यों उत्तर दिया, खर-तर-शरों से फिर उसे अभिमन्यु ने मूर्च्छित किया।
उस समय ही जो पार्श्व से छोड़ा गया था तान के, उस कर्ण-शर ने चाप उसका काट डाला आन के।।

युधिष्ठिर बोला, हे भगवान वहां अभिमन्यु भरद्वाज पुत्र द्रोण और अनेक महारथियों के बीच अकेला पड गया है। उनमें से एक यौद्धा सौ-सौ सैनिकों के बराबर है। सब रणनीति में निपुण है। अगर कुछ हो गया तो मैं अर्जुन को क्या मुंह दिखाऊंगा। सब ने मिल अभिमन्यु को रथ से गिरा निहत्था कर दिया। चारों ओर से बाण चल रहे थे। अभिमन्यु ने रथ का चक्र निकाल उठाकर फेंकने का प्रयास किया पर सभी ने मिलकर उस पर वार किया। सभी तलवार घोपकर उसका वध करने लगे।

यों रिक्त-हस्त हुआ जहाँ वीर रिपु-संघात में, घुसने लगे सब शत्रुओं के बाण उसके गात में।
व पाण्डु-वंश प्रदीप यों शोभित हुआ उस काल में, सुन्दर सुमन ज्यों पड़ गया हो कण्टकों के जाल में।।
संग्राम में निज शत्रुओं की देखकर यह नीचता, कहने लगा वह यों वचन दृग युग करों से मीचता।
नि:शस्त्र पर तुम वीर बनकर वार करते हो अहो, है पाप तुमको देखना भी पामरो। सम्मुख न हो।।
दो शस्त्र पहले तुम मुझे, फिर युद्ध सब मुझसे करो, यों स्वार्थ-साधन के लिए मत पाप-पथ में पद धरो।
कुछ प्राण-भिक्षा मैं न तुमसे माँगता हूँ भीति से, बस शस्त्र ही मैं चाहता हूँ धर्म्मपूर्वक नीति से।।
कर में मुझे तुम शस्त्र देकर फिर दिखाओ वीरता, देखूँ, यहाँ फिर मैं तुम्हारी धीरता, गम्भीरता।
हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रुलाऊँ मैं तुम्हें, कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हें।।
नि:शस्त्र पर आघात करना सर्वथा अन्याय है, स्वीकार करता बात यह सब शूर-जन-समुदाय है।
पर जानकर भी हा। इसे आती न तुमको लाज है, होता कलंकित आज तुमसे शूरवीर-समाज है।।
हैं नीच ये सब शूर पर आचार्य। तुम आचार्य हो, वरवीर-विद्या-विज्ञ मेरे तात-शिक्षक आर्य हो।
फिर आज इनके साथ तुमसे हो रहा जो कर्म है, मैं पूछता हूँ, वीर का रण में यही क्या धर्म है?
यह सत्य है कि अधर्म से मैं निहित होता हूँ अभी, पर शीघ्र इस दुष्कर्म का तुम दण्ड पाओगे सभी।
क्रोधाग्नि ऐसी पाण्डवों की प्रज्वलित होगी यहाँ, तुम शीघ्र जिसमें भस्म होगे तूल-तुल्य जहाँ तहाँ।।

प्राण त्यागते त्यागते अभिमन्यु बोला यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं आप जैसे कायरों के हाथों वीरगति को प्राप्त हो रहा हूं। पिताश्री पिताश्री। सूर्यास्त के उपरान्त यहां आकर इस भूमि से पूछियेगा कि आपका पुत्र इन कायर महारथियों से कैसे लडा। आप आचार्य हैं, आप सब देख रहे हैं गुरुश्रेष्ठ क्या योद्धा का यही धर्म है कि एक साथ इतने यौद्धा मिलकर एक निहत्थे यौद्धा पर आक्रमण करे। हे भरद्वाज पुत्र, हे परशुराम शिष्य क्या यही आपकी रणनीति है। तब महारथी अभिमन्युने बहुत बड़ी गदा हाथमें ली और अश्वत्थामापर चलायी। जलते हुए वज्रके समान उस गदाको आते देख अश्वत्थामा रथसे उतरकर तीन कदम पीछे हट गया। गदाकी चोटसे उसके घोड़े, पार्श्वरक्षक और सारथी मारे गये। इसके बाद अभिमन्युने सुबलके पुत्र कालिकेयको तथा उसके अनुचर गान्धारोंको मौतके घाट उतारा। फिर बसातीय महारथियोंको तथा केकय महारथियोंका संहार कर हाथियोंको मार डाला। तत्पश्चात् दु:शासनकुमारके रथ और घोड़ोंको गदासे चूर्ण कर डाला। इससे दु:शासनके पुत्रको बड़ा क्रोध हुआ और वह भी गदा उठाकर अभिमन्युकी ओर दौड़ा। फिर तो दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे परस्पर प्रहार करने लगे। दोनोंपर

गदाके अग्रभागकी चोट पड़ी और दोनों साथही पृथ्वीपर गिर पड़े। वह सर्वथा नि:शस्त्र निहत्था हो गया और अब...? उसके पास रक्षा के लिए कोई शस्त्र नहीं। कोई व्यक्ति नहीं। शत्रुओं की सेना उस पर कालमेघ-सी घिरती आ रही थी। कौरव महारथी प्रसन्न थे उस निहत्थे को असहाय देख। अब उन पर वीरता चढ़ी थी। दु:शासनपुत्र अब आगे बढ़ा और भरपूर गदा बालक के शीश पर दे मारी और वह नूतन शाल-वृक्ष... जैसे महाशैल से अरअराता भूमिपर गिर गया। दु:शासनकुमार पहले उठा और अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि उसने उसके मस्तकपर गदा मारी। उसके प्रचण्ड आघातसे बेचारा अभिमन्यु पुन: बेहोश होकर गिर पड़ा। महाराज। इस प्रकार उस एक बालकको बहुत लोगोंने मिलकर मारा। हे तात हे मातुल अभिमन्यु का अन्तिम प्रणाम और अभिमन्यु ने रणभूमि में प्राण त्याग दिये।

अकेला बालक अभिमन्यु व्यूहमें गया। उसका पराक्रम अकल्पनीय था किन्तु संख्या बल बहुत बड़ी वस्तु है। कौरव महारथियोंने उसे घेर लिया। द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा बृहद्बल इन ६ महारथियोंने मिलकर उसके रथके अश्व मार दिये, धनुष काट दिया और निहत्था करके उस अद्वितीय शूरका वध कर दिया।

कौरवसेना में प्रचण्ड जयघोष उठा। शंख-घण्ट घड़ियाल बज उठे और पाण्डवसेनाओं का मर्मान्तक आर्तनाद दिशाओं को प्रकम्पित कर गया।

सप्त रथी ने छोड़ सभी को। घेर लिया उस बाल रथी को।
बालक एक और रथि साता। फिर भी लड़ा वीर विख्याता।
सातों ने मिल तीर चलाये। अभिमन्यु के गात समाये।
बालक वीर पड्यो धरनी पर। शत्रू भी लौटे अति थककर।
वीर अकेला ही लडा सात सात के साथ और वीरगति पा गया और झुका गर्व का मान।

इसप्रकार वीरवर अभिमन्यु की नृषंस हत्या की गयी। कौरवोंकी नीचता और क्रूरता व बर्बरता की पराकाष्ठा प्रतिम्बिबित हुई। मृत्यु भी उस वीर बालक से पराजित हुई। वह वीर बालक सदा-सदा के लिए इस जग से अलविदा कर गया। कौरवोंने धोखेसे उस वीर बालक का आखेट किया।

मैं तो अमर होकर यहाँ अब शीघ्र सुरपुर को चला, पर याद रक्खो, पाप का होता नहीं है फल भला।
तुम और मेरे अन्य रिपु पामर कहावेंगे सभी, सुनकर चरित मेरा सदा आँसू बहावेंगे सभी।।
हे तात। हे मातुल। जहाँ हो है प्रणाम तुम्हें वहीं, अभिमन्यु का इस भाँति मरना भूल मत जाना नहीं?
कहता हुआ वह वीर यों रण-भूमि में फिर गिर पड़ा, हो भंग श्रृंग सुमेरु गिरि का गिर पड़ा हो ज्यों बड़ा।।
इस भाँति उसको भूमि पर देखा पतित होते यदा, दु:खील दु:शासन तनय ने शीश में मारी गदा।
दृग बन्द कर तब वह यशोधन सर्वदा को सो गया, हा। एक अनुपम रत्न मानो मेदिनी का खो गया।।
हे वीरवर अभिमन्यु। अब तुम हो यदपि सुर-लोक में, पर अन्त तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक में।
दिन दिन तुम्हारी कीर्ति का विस्तार होगा विश्व में, तब शत्रुओं के नाम पर धिक्कार होगा विश्व में।।

सन्ध्या हो चली थी। भगवान् अंशुमाली भी निराश, हताश सेनापति से रक्तलोहित हुए बोझिल मन, बोझिल तन अपने विश्राम-शिबिर की ओर अग्रसर थे। आज का दिन भगवान भास्कर के लिए भी दारुण रहा। उनके देखते-देखते एक महातेजस्वी किशोर, एक बाल-सेनापति का, कई महाकाय महारथियों ने एकाकी करके, नि:शस्त्र करके, क्रूरता से वध कर डाला था। सूर्यदेव व्यथित थे। दिशाएँ काँप उठी थीं, रक्तलोहित अश्रु बहा रही थी। उस बाल-महारथी के सम्मान में

आकाश भी जैसे झुक आया था।

आकाशसे टूटकर गिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति उस शूरवीरको रणभूमिमें गिरा देख अन्तरिक्षमें खड़े हुए प्राणी भी हाहाकार करने लगे। सबने एक स्वरसे कहा, द्रोण और कर्ण- जैसे छ: प्रधान महारथियोंने मिलकर इस अकेले बालकका वध किया है, इसे हमलोग धर्म नहीं मानते। चन्द्रमा और सूर्यके तुल्य कान्तिमान् अभिमन्युको इस प्रकार पड़ा देख आपके योद्धाओंको बड़ा हर्ष हुआ और पाण्डवोंके हृदयमें बड़ी पीडा हुई। राजन्। अभिमन्यु अभी बालक था, युवावस्थामें उसका पदार्पण नहीं हुआ था। उस वीरके मरते ही युधिष्ठिरके देखते-देखते सम्पूर्ण पाण्डवसेना भाग चली। यह देख युधिष्ठिरने उन वीरोंसे कहा- वीरो। युद्धमें मृत्युका अवसर आनेपर भी अभिमन्युने पीठ नहीं दिखायी है। तुम भी उसीकी भाँति धीरता रक्खो, डरो मत। हमलोग निश्चय ही शत्रुओंपर विजय पायेंगे। ऐसा कहकर धर्मराजने अपने दु:खी सैनिकोंका शोक दूर किया। राजन्। अभिमन्यु श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी था, वह दस हजार राजकुमारों और महारथी कौसल्यको मारकर मरा है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि वह पुण्यवानोंके अक्षय लोकोंमें गया है, अत: वह शोक करने योग्य नहीं है।

महाराज। इस प्रकार हमलोग पाण्डवोंके उस श्रेष्ठ वीरको मारकर और उनके बाणोंसे पीड़ित एवं लोहूलुहान हो सायंकाल अपने शिबिरमें चले आये। आते समय देखा, शत्रु भी बहुत दुखी और उदास हो अपने शिबिरको जा रहे हैं। उस समय श्रेष्ठ योद्धाओंने रक्तकी नदी बहा दी थी, जो वैतरणीके समान भयंकर और दुस्तर थी। रणभूमिके मध्यमें बहती हुई वह नदी जीवित और मृतक सबको अपने प्रवाहमें बहाये जा रही थी। अनेकों धड़ वहाँ नाच रहे थे; रणस्थलको देखनेमें डर मालूम होता था।

आज की धूप का पल्लू सूरज के आंसू पोंछते पोंछते भी भीग गया है। और यदि यह सूरज के वश में रहा होता तो अभिमन्यु की मृत्यु के सागर में उसके जीवन के साथ ही डूब गया होता और समय हैरान है कि भरतवंश के पांच पुत्र भरद्वाज शिष्य द्रोणाचार्य इस हत्या में भागीदार कैसे बने? सूर्यपुत्र कर्ण ने निहत्थे अभिमन्यु पर बाण कैसे चलाया? ऋषि पुत्र कृपाचार्य ने कायरता के इस प्रदर्शन को कैसे स्वीकार किया? द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को यह याद क्यों नहीं आया कि इसी युद्ध के कुछ नियम बनाये गये थे। रणभूमि कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में आज के दिन युद्ध की नैतिकता का सूरज डूब गया। आज के बाद यह युद्ध चाहे जितने दिन चले अन्धेरे में होगा। न कोई नियम और न कोई नैतिक दायित्व और कुरुक्षेत्र से बहुत दूर सुभद्रा युद्ध के नैतिक दायित्वों के सवालों से बेखबर बैठी अपने पुत्र अभिमन्यु के बारे में सोच रही है। उसे यह नहीं मालूम पडा कि उसका पुत्र वीरगति को प्राप्त हो चुका है परन्तु मां का हृदय तो फिर मां का ही हृदय होता है। दासी सुभद्रा के पास अभिमन्यु का पत्र लेकर आती है। दासी बोली, महारानी कुरुक्षेत्र से पत्र आया है। सुभद्रा बोली, मेरे अभिमन्यु का पत्र होगा। सुभद्रा खोलकर पढ़ती है। आदरणीय माताश्री सादर प्रणाम। सुभद्रा बोली, आयुष्मान भव पुत्र। कल रणभूमि में पितामह भीष्म से आशीर्वाद लेने का अवसर मिला। वे मुझसे बाण खाकर बोले प्रिय प्रपौत्र तुममें अर्जुन का प्रतिबिम्ब देख रहा हूं। पिताश्री की आंखों में भी गर्व का सूर्य उदय हो गया। सुभद्रा अभिमन्यु को याद कर रोने लग गई। उसी समय वसुदेव आये और बोले क्या हुआ पुत्री? सुभद्रा बोली, पता नहीं पिताश्री। रणभूमि से अभिमन्यु का पत्र आया और पढ़ते-पढ़ते अचानक आंसू आ गये। जैसे अनगिनत बाण मेरे हृदय के आर-पार हो गये हो। वहां अवश्य कोई दुर्घटना हुई है पिताश्री। मैं तुमसे अपना अभिमन्यु लूंगी भैया।

अपने कक्ष में धृतराष्ट्र बोला, हे संजय आज दुर्योधन ने अभिमन्यु के शव से सन्धि का मार्ग बिल्कुल बन्द कर दिया। अर्जुन अभिमन्यु के वध पर मेरे बचे खुचे पुत्रों को कभी क्षमा नहीं करेगा। यह रण तो मेरे वंश पर बहुत भारी पडेगा संजय। तनिक देखकर तो बताओ इस समय अर्जुन कहां है? संजय बोला, जो आज्ञा महाराज।

२) अभिमन्यु की मृत्यु पर युधिष्ठिर का विलाप

खबर युधिष्ठिर पहुं जब आई। कैसी अशुभ बात बतलाई।।
हाय दूत क्या खबर सुनाई। कैसे कहूं महल में जाई।।
भीम, नकुल, सहदेव बतावो। अभिमन्यु से मुझे मिलावो।।
भीम कहाँ अतुलित बल तेरा। कित छोड़ा अभिमन्यु मेरा।।
हाय देव मैं काह बिगारा। काहे दीन्हा दु:ख दुस्तारा।।
हा: सुत हा: आखों के तारे। पांडव कुल के राज दुलारे।।
धरती माँ मोहे तुमहि बतावो। अपने अन्दर मुझ समावो।।
आंखों में आंसू की धारा। सुबक भीम यह वचन उचारा।।
धीरज धारण कीजे भ्राता। होता वहि जो करे विधाता।।
सुनत वचन बोले विकलाई। कैसे धीरज धारूं भाई।।
अर्जुन जब पूछेगा भ्राता। कहाँ गया अभिमन्यु ताता।।
सुता उत्तरा जब पूछेगी। अभिमन्यु मुझसे मांगेगी।।

दूत ने आकर युधिष्ठिर को अभिमन्यु वध का समाचार दिया। युधिष्ठिर बोले, नहीं सैनिक नहीं। तुमने किसी और को वीरगति प्राप्त होते हुये देखा होगा सभी भाइयों ने युधिष्ठिर को सम्भाला। युधिष्ठिर बोले, भीम तुमने सुना क्या सचमुच मेरा अभिमन्यु वहीं सो गया। भीम बोला, वही नींद सो गया जिससे कोई जागता ही नहीं। युधिष्ठिर बोला, क्या सचसमुच वो वीर बालक चला गया भीम। हे भगवान, मैं अर्जुन को क्या मुँह दिखाऊंगा। मैं कैसे अर्जुन को समझाऊंगा? युधिष्ठिर विलाप करने लगे।

सञ्जय कहते हैं- महाराज। महावीर अभिमन्युके मारे जानेके पश्चात् सभी पाण्डव-योद्धा रथ छोड़, कवच उतार और धनुष फेंककर राजा युधिष्ठिरके चारों ओर बैठ गये तथा अभिमन्युको मन-ही-मन याद करते हुए उसके युद्धका स्मरण करने लगे। भाईका पुत्र अभिमन्यु-जैसा वीर मारा गया, यह सोचकर राजा युधिष्ठिर बहुत दु:खी हो गये और विलाप करने लगे- जैसे गौओंके झुंड़में सिंहका बच्चा प्रवेश कर जाय उसी प्रकार जो केवल मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे द्रोणके दुर्भेद्य व्यूहमें जा घुसा, युद्धमें जिसके सामने आकर बड़े-बड़े धनुर्धर और अस्त्रविद्यामें कुशल वीर भी भाग गये, जिसने हमारे कट्टर शत्रु दु:शासनको अपने बाणोंसे शीघ्र ही मार भगाया था, वह वीर अभिमन्यु द्रोणसेनारूपी महासागरके पार होकर भी दु:शासनकुमारके पास जा मृत्युको प्राप्त हुआ। सुभद्राकुमारके मारे जानेके बाद अब मैं अर्जुन अथवा सुभद्राको कैसे मुँह दिखाऊँगा? हाय। वह बेचारी अब अपने प्रिय पुत्रको नहीं देख सकेगी। श्रीकृष्ण और अर्जुनको यह दु:खद समाचार कैसे सुनाऊँगा? आह। मैं कितना निर्दयी हूँ; जिस सुकुमार बालकको भोजन और शयन करने, सवारीपर चलने तथा भूषण-वस्त्र पहननेमें आगे रखना चाहिये था, उसे मैंने युद्धमें झोंक दिया। अभी तो वह तरुण कुमार युद्धकी कलामें पूरा प्रवीण भी नहीं हुआ था, फिर कैसे कुशलसे लौटता? अर्जुन बुद्धिमान, निर्लोभ, संकोचशील, क्षमावान्, रूपवान्, बलवान्, बड़ोंको मान देनेवाले, वीर और सत्यपराक्रमी हैं, जिनके कर्मोंकी देवतालोग भी प्रशंसा करते हैं, जो अभय चाहनेवाले शत्रुको भी अभय दान देते हैं, उन्हींके बलवान् पुत्रकी भी हमलोग रक्षा न कर सके। बल और पुरुषार्थमें जो अपना सानी नहीं रखता था, उस अर्जुन कुमारको मारा गया देखकर अब विजयसे भी मुझे प्रसन्नता न होगी; उसके बिना पृथ्वीका राज्य, अमरत्व अथवा देवताओंके लोकका अधिकार भी मेरे लिये किसी कामका नहीं है।

विचलित न देखा था कभी जिनको किसी ने लोक में, वे नृप युधिष्ठिर भी स्वयं रोने लगे इस शोक में।
गाते हुए अभिमन्यु के गुण भाइयों के संग में, होने लगे वे मग्न-से आपत्ति-सिन्धु-तरंग में॥
इस अति विनश्वर-विश्व में दु:ख-शोक कहते हैं किसे? दु:ख भोगकर भी बहुत हमने आज जाना है इसे।
निश्चय हमें जीवन हमारा आज भारी हो गया, संसार का सब सुख हमाराआज सहसा खो गया॥
हा। क्या करें? कैसे रहें? अब तो रहा जाता नहीं, हा। क्या कहें? किससे कहें? कुछ भी कहा जाता नहीं।
क्योंकर सहें इस शोक को? यह तो सहा जाता नहीं; हे देव इस दु:ख-सिन्ध में अब तो बहा जाता नहीं॥
जिस राज्य के हित शत्रुओं से युद्ध है यह हो रहा, उस राज्य को अब इस भुवन में कौन भोगेगा अहा?
हे वत्सवर अभिमन्यु। वह तो था तुम्हारे ही लिए, पर हाय। उसकी प्राप्ति के ही समय में तुम चल दिए॥
जितना हमारे चित्त को आनन्द था तुमने दिया, हा। अधिक उससे भी उसे अब शोक से व्याकुल किया।
हे वत्स, बोलो तो जरा, सम्बन्ध तोड़ कहाँ चले? इस शोचनीय प्रसंग में तुम संग छोड़ कहाँ चले?
सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया, फल योग्य ही हे पुत्र। उसका शीघ्र हमने पा लिया।
परिणाम को सोचे बिना जो लोग करते काम हैं; वे दु:ख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम हैं॥
तुमको बिना देखे अहो। अब धैर्य हम कैसे धरें? कुछ जान पड़ता है नहीं हे वत्स। अब हम क्या करें?
है विरह यह दुस्सह तुम्हारा हम इसे कैसे सहें? अर्जुन, सुभद्रा, द्रौपदी से हाय। अब हम क्या कहें?
है ध्यान भी जिनका भयंकर, जो न जा सकते कहे, यद्यपि व्रढ़-व्रत पाण्डवों ने थे अनेकों दु:ख सहे।
पर हो गये वे हीन-से इस दु:ख के सम्मुख सभी; अनुभव बिना जानी न जाती बात कोई भी कभी॥

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर जब इस प्रकार अपने शिबिर में अभिमन्यु के शव के पास बैठे विलाप कर रहे थे, उसी समय महर्षि वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे और युधिष्ठिर को ढाँढ़स बँधाया। अभिमन्युकी मृत्युके शोकसे सन्तप्त होकर युधिष्ठिर महर्षि व्याससे बोले, मुनिवर। सुभद्रानन्दन अभिमन्यु युद्ध कर रहा था, उस समय उसे अनेकों अधर्मी महारथियोंने घेरकर मार डाला है। मैंने उससे कहा था, हमलोगोंके लिये व्यूहमें प्रवेश करनेका द्वार बना दो। उसने वैसा ही किया। जब स्वयं भीतर प्रवेश कर गया, तब उसके पीछे हमलोग भी जाने लगे; किंतु जयद्रथने हमें रोक दिया। योद्धाओंको अपने समान वीरसे युद्ध करना चाहिये; किंतु शत्रुओंने जो उसके साथ व्यवहार किया है, वह नितान्त अनुचित है। इसी कारण मेरे हृदयमें बड़ा संताप हो रहा है। बार-बार उसीकी चिन्ता होने लगती है, तनिक भी शान्ति नहीं प्राप्त हो रही।

तब महर्षि व्यास बोले- युधिष्ठिर। तुम तो महान् बुद्धिमान और समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता हो। तुम्हारे जैसे पुरुष संकट पड़नेपर मोहित नहीं होते। अभिमन्यु युद्धमें बहुत-से वीरोंको मारकर प्रौढ़ योद्धाओंके समान पराक्रम दिखाकर स्वर्गलोकमें गया है। भारत। विधाताके विधानको कोई टाल नहीं सकता। मृत्यु तो देवता, गन्धर्व और दानवोंके भी प्राण ले लेती है; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?

युधिष्ठिरने कहा- मुने। ये शूरवीर राजकुमार शत्रुओंके वशमें पड़कर विनाशके मुखमें चले गये। कहते हैं, ये मर गये; किंतु मुझे संदेह होता है कि इन्हें मर गये ऐसा क्यों कहा जाता है। मृत्यु किसकी होती है? क्यों होती है? और वह किस प्रकार प्रजाका संहार करती है? तथा कैसे यह जीव को परलोकमें ले जाती है?

तब व्यास बोले- राजन्। मैं एक उपाख्यान सुनाता हूँ जो सब पापोंको नष्ट करनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, शोकनाशक, अत्यन्त मङ्गलकारी तथा वेदाध्ययनके समान पवित्र है। आयुष्मान पुत्र, राज्य और लक्ष्मी चाहनेवाले द्विजोंको प्रतिदिन

प्रात:काल इस आख्यान का श्रवण करना चाहिये।

यों जान व्याकुल पाण्डवों को व्यास मुनि आये वहाँ- कहने लगे इस भाँति उनसे वचन मनभाये वहाँ।
हे धर्मराज। अधीर मत हो, योग्य यह तुमको नहीं, करते भला क्या विधि-नियम पर मोह ज्ञानीजन कहीं?
यों वादरायण के वचन सुन, देखकर उनको तथा, कहने लगे उनसे युधिष्ठिर और भी पाकर व्यथा।
धीरज धरूँ हे तात कैसे? जल रहा मेरा हिया, क्या हो गया यह हाय। सहसा दैव ने यह क्या किया?
जो सर्वदा ही शून्य लगती आज हम सबको धरा, जो नाथ-हीन अनाथ जग में हो गई है उत्तरा।
हूँ हेतु इसका मुख्य मैं ही, हा। मुझे धिक्कार है, मत धर्मराज कहो मुझे, यह क्रूर-जन भू-भार है।।
हे पुत्र दुर्लभ सर्वथा अभिमन्यु-सा संसार में, थे सर्व गुण उस धर्मधारी धीर-वीर कुमार में।
वह बाल होकर भी मृदुल, अति प्रौढ़ था निज काम में, बातें अलौकिक थीं सभी उस दिव्य शोभा-धाम में।।
क्या रूप में, क्या शक्ति में, क्या बुद्धि में, क्या ज्ञान में, गुणवान वैसा अन्य जन आता नहीं है ध्यान में।
पर हाय। केवल रह गई है अब यहाँ उसकी कथा, धिक्कार है संसार की निस्सारता को सर्वथा।।
प्रति दिन जा इस समय आकर मोदयुत संग्राम से, करता हृदय मेरा मुदित था भक्ति-युक्त प्रणाम से।
हा। आज वह अभिमन्यु मेरा मृतक भू पर है पड़ा, होगा कहो मेरे लिए क्या कष्ट अब इससे बड़ा?
करने पड़ेंगे यदपि अब भी काम सब जग में हमें, चलना पड़ेगा यदपि अब भी विश्व के मग में हमें।
सच जानिये पर अब न होगा हृदय लीन उमंग में, सुख की सभी बातें गईं सौभद्र के ही संग में।।
उसके बिना अब तो हमें कुछ भी सुहाता है नहीं, हा। क्या करें हत हृदय दु:ख से शान्ति पाता है नहीं।
था लोक आलोकित उसीसे, अब अँधेरा है हमें, किस दोष से दुर्देव ने इस भाँति घेरा है हमें।।
अब भी मनोरथ मूर्ति उसकी फिर रही है सामने, पर साथ ही दु:ख की घटा भी घिर रही है सामने।
हम देखते हैं प्रकट उसको किन्तु पाते हैं नहीं, हा। स्वप्न के वैभव किसीके काम आते हैं नहीं।।
कैसी हुई होगी अहो। उसकी दशा उस काल में- जब वह फँसा होगा अकेला शत्रुओं के जाल में?
बस वचन ये उसने कहे थे अन्त में दु:ख से भरे- निरुपाय तव अभिमन्यु यह अन्याय से मरता हरे।।
कहकर वचन कौन्तेय यों फिर मौन दु:ख से हो गए, दृग-नीर से तत्काल युग्म कपोल उनके धो गए।
तब व्यास मुनि ने फिर उन्हें धीरज बँधाया युक्ति से, आख्यान समयोचित सुनाये विविध उत्तम उक्ति से।।

प्राचीन कालकी बात है। सत्ययुगमें एक अकम्पन नामके राजा थे। उनपर शत्रुओंने आक्रमण किया। राजाके एक पुत्र था, जिसका नाम था हरि। वह बलमें नारायणके समान था और युद्धमें इन्द्रके समान। उस युद्धमें दुष्कर पराक्रम दिखाकर अन्तमें वह शत्रुओंके हाथसे मारा गया। इससे राजाको बड़ा शोक हुआ। उसके पुत्र शोकका समाचार जानकर देवर्षि नारद वहाँपर आये। तब राजाने उनसे कहा- भगवन्। मेरा पुत्र इन्द्र और विष्णुके समान कान्तिमान् एवं महाबली था। उसको बहुत-से शत्रुओंने मिलकर युद्धमें मार डाला है। अब मैं यह ठीक-ठीक जानना और सुनना चाहता हूँ कि यह मृत्यु क्या है? इसका वीर्य, बल और पौरूष कैसा है ?

राजाकी यह बात सुनकर नारदने कहा- राजन्। आदिमें सृष्टिके समय पितामह ब्रह्माजीने जब सम्पूर्ण प्रजाकी सृष्टि की, तो उसका संहार होता न देख उसके लिये वे विचार करने लगे। सोचते-सोचते जब कुछ समझमें न आया तो उन्हें क्रोध आ गया। उनके उस क्रोधके कारण आकाशसे अग्नि प्रकट हुई और वह सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गयी। भगवान् ब्रह्माने उसी

अग्निसे पृथ्वी, आकाश एवं सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को जलाना आरम्भ किया। यह देख रुद्रदेवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। शंकरजी के आनेपर प्रजाके हितके लिये ब्रह्माजीने कहा- पुत्र। तुम अपनी इच्छासे उत्पन्न हुए हो और मुझसे अभीष्ट वस्तु पाने योग्य हो। बताओ, तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? तुम्हें जो भी अभीष्ट होगा, उसे पूर्ण करूँगा।

रुद्रने कहा- प्रभो। आपने नाना प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि की है, किन्तु वे सभी आज आपकी क्रोधाग्निसे दग्ध हो रहे हैं। उनकी दशा देखकर मुझे दया आती है। भगवन्। अब तो उनपर प्रसन्न होइये।

ब्रह्माजीने कहा- पृथ्वीदेवी जगत्‌के भारसे पीड़ित हो रही थी, इसीने मुझे संहारके लिये प्रेरित किया। इस विषयमें बहुत विचार करनेपर भी जब कोई उपाय न सूझा, तो मुझे बहुत क्रोध चढ़ आया।

रुद्रने कहा- भगवन् संहारके लिये आप क्रोध न करें। प्रजापर प्रसन्न हों। आपके क्रोधसे प्रकट हुई आग पर्वत, वृक्ष, नदी, जलाशय, तृण, घास आदि सम्पूर्ण स्थावर जंगमरूप जगत्‌को जला रही है। अब आपका क्रोध शान्त हो जाय- यही वरदान मुझे दीजिये। प्रजाके हितके लिये कोई ऐसा उपाय सोचिये, जिससे इन प्राणियोंकी जान बचे।

नारदजी कहते हैं- शंकरजीकी बात सुनकर ब्रह्माजीने प्रजाका कल्याण करनेके लिये उस अग्निको पुन: अपनेमें लीन कर लिया। उसे लीन करते समय उनकी सब इन्द्रियोंसे एक स्त्री प्रकट हुई। उसका रंग था काला, लाल और पीला। उसकी जिव्हा, मुख और नेत्र भी लाल थे। ब्रह्माजी ने उसे मृत्यु कहकर पुकारा और बताया कि मैंने लोकोंका संहार करने की इच्छासे क्रोध किया था, उसीसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अत: तुम मेरी आज्ञासे इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌का नाश करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा सुनकर वह स्त्री अत्यन्त सोचमें पड़ गयी, फिर फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी आँखोंसे जो आँसू झर रहे थे, उसे ब्रह्माजीने हाथोंमें ले लिया और उसे भी सान्त्वना दी। तब मृत्युने कहा- भगवन्। आपने मुझे ऐसी स्त्री क्यों बनाया? क्या मैं जान-बूझकर यह अहितकारक कठोर कर्म करूँ? मैं भी पापसे डरती हूँ। मेरे सताये हुए लोग रोयेंगे; उन दुखियोंके आँसुओंसे मुझे बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। मुझे वर दीजिये, मैं आजसे धेनुकाश्रममें जाकर आपकी ही आराधनामें संलग्न हो तीव्र तपस्या करूँगी। रोते-बिलखते लोगोंके प्राण लेनेका काम मुझसे नहीं हो सकेगा। मुझे इस पापसे बचाइये।

ब्रह्माजीने कहा, मृत्यो। प्रजाका संहार करनेके लिये ही तुम्हारी सृष्टि हुई है। जाओ, सब प्रजाका नाश करती रहो। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा ही होगा, इसमें कभी परिवर्तन नहीं हो सकता। तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। इसमें तुम्हारी निंदा नहीं होगी।

ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वह कन्या प्रजाके संहारकी प्रतिज्ञा किये बिना ही तप करनेकी इच्छासे धेनुकाश्रममें चली गयी। वहाँसे पुष्कर, गोकर्ण, नैमिष और मलयाचल आदि तीर्थोंमें जा-जाकर अपनी रूचिके अनुकूल कठोर नियमोंका पालन करती हुई अपने शरीर को कृश करने लगी। वह अनन्यभावसे केवल ब्रह्माजीमें ही सुदृढ़ भक्ति रखती थी। उसने अपने धर्माचरणसे पितामहको प्रसन्न कर लिया।

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न मनसे उससे कहा- मृत्यो। बताओ तो सही, किसलिये यह अत्यन्त कठोर तप कर रही हो? मृत्यु बोली, प्रभो। मैं आपसे यही वर चाहती हूँ कि प्रजाका नाश न करूँ। मुझे अधर्मसे बड़ा भय हो रहा है, इसीलिये तपमें लगी हूँ। भगवन्। मुझ भयभीत अबलाको आप अभयदान दें। मैं एक निरपराध स्त्री हूँ, बहुत दु:ख पा रही हूँ; आपसे कृपाकी भीख माँगती हूँ, मुझे शरण दीजिये। ब्रह्माजीने कहा, कल्याणी। इस प्रजावर्गका संहार करनेसे तुम्हें पाप नहीं लगेगा। मेरी बात किसी तरह मिथ्या नहीं हो सकती। इसलिये तुम चार प्रकारकी प्रजाका नाश करो, सनातनधर्म तुम्हें पवित्र बनाये रक्खेगा। लोकपाल, यम तथा तरह-

तरहकी व्याधियाँ तुम्हारी सहायिका होंगी। फिर देवतालोग तथा मैं- सभी तुम्हें वरदान देंगे।

यह सुनकर मृत्युने ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा, प्रभो। यदि यह कार्य मेरे बिना नहीं हो सकता, तो आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब एक बात कहती हूँ लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता तथा परस्पर कटुवचन बोलना- ये नाना प्रकारके दोष ही प्राणियोंकी देहका नाश करें। ब्रह्माजीने कहा- मृत्यो। ऐसा ही होगा। तुम्हारे आँसुओं की बूँदें, जिन्हें मैंने हाथमें ले लिया था, व्याधि बनकर गतायु प्राणियोंका नाश करेंगी। तुम्हें पाप नहीं लगेगा। अत: डरो मत। तुम कामना और क्रोधका त्याग करके सम्पूर्ण जीवोंके प्राणोंका अपहरण करो। ऐसा करनेसे तुम्हें अक्षय धर्मकी प्राप्ति होगी। जो मिथ्याके आवरणसे ढके हुए हैं, उन जीवोंको अधर्म ही मारेगा। असत्यसे ही प्राणी अपनेको पापपममें डुबाते हैं।

नारदजी कहते हैं- उस मृत्युनामधारिणी स्त्रीने ब्रह्माजीके उपदेशसे तथा विशेषत: उनके शापके भयसे बहुत अच्छा कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। तबसे वह काम और क्रोधको त्यागकर अनासक्तभावसे प्राणियोंका अन्तकाल उपस्थित होनेपर उनके प्राणोंको हर लेती है। यही प्राणियोंकी मृत्यु है इसीसे व्याधियोंकी उत्पत्ति हुई है। व्याधि कहते हैं रोगको, जिससे जीव रुग्ण हो जाता है। अन्तकाल आनेपर सभी प्राणियोंकी मृत्यु होती है, इसलिए राजन्। तुम व्यर्थ शोक न करो। मरणके पश्चात् सभी प्राणी परलोकमें जाते हैं और वहाँसे इन्द्रियों तथा वृत्तियोंके साथ ही यहाँ लौट आते हैं। देवता भी परलोकमें अपने कर्मभोग पूर्ण करके फिर इस मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। इसलिये तुम्हें अपने पुत्रके लिये शोक नहीं करना चाहिये। वह वीरोंको प्राप्त होने योग्य रमणीय लोकोंमें पहुँचकर वहाँ स्वर्गीय आनन्दका उपभोग करता है। ब्रह्माजीने मृत्युको प्रजाका संहार करनेके लिये स्वयं ही उत्पन्न किया है अत: वह समय आनेपर सबका संहार करती ही है। यह जानकर धीर पुरुष मरे हुए प्राणियोंके लिए शोक नहीं करते। यह सारी सृष्टि विधाता की बनायी हुई है, वे स्वेच्छानुसार इसका उपसंहार करते हैं; इसलिये तुम अपने मरे हुए पुत्रका शोक शीघ्र ही त्याग दो।

व्यासजी कहते हैं- नारदजीकी यह अर्थभरी बात सुनकर राजा अकम्पनने उनसे कहा- भगवन्। मेरा शोक दूर हुआ, अब मैं प्रसन्न हूँ। आपके मुखसे यह इतिहास सुनकर मैं कृतार्थ हो गया, आपको प्रणाम है। राजाकी ऐसी संतोषपूर्ण वाणी सुनकर देवर्षि नारदजी तुरंत नन्दनवनको चले गये। राजा युधिष्ठिर। इस उपाख्यानको सुनने-सुनानेसे पुण्य, यश, आयु, धन तथा स्वर्गकी प्राप्ति होती है। महारथी अभिमन्यु युद्धमें धनुष, तलवार, गदा तथा शक्तिसे प्रहार करता हुआ मृत्युको प्राप्त हुआ है। वह चन्द्रमाका निर्मल पुत्र था और पुन: चन्द्रमामें ही लीन हुआ है। इसलिए तुम धैर्य धारण करो और प्रमाद त्यागकर भाइयोंको साथ ले शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

व्यास बोले राजन। मृत्यु अवश्यभावी है। इस जग में कोई भी अमर नहीं रहता है। मृत्यु हर घर और परिवार में होती है इससे पहिले भी सभी प्रकार के लोगों में श्रेष्ठ, महाजनों में, राजा-महाराजाओं के महलों में, सभीके पूर्वज काल के ग्रास बने हैं। इसलिये मृत्यु शोक करने योग्य नहीं होती है। पूर्वकाल में सृञ्जय, मरूत, सुहोत्र, शिबि यहाँतक की मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भी परलोकगमन किया था। मृत्युने इन्हें भी नहीं छोड़ा इसलिए तुम्हें अपने पुत्रके लिए शोक नहीं करना चाहिए।

उत्तम गुणोंको प्राप्त करके राजा शिबि समय आनेपर दिव्य लोक को चले गये। वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे बढ़कर पुण्यात्मा थे। जब वे ही मृत्यु को नहीं लांघ सके तो फिर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। दशरथनन्दन राम अत्यन्त तेजस्वी थे और असंख्य गुणोंके भण्डार थे। जो देवता और ऋषि भी उनकी सेवा में थे, जिन्होंने भूख और प्यास को जीत लिया था, वे कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न थे और सदा अपने तेज से प्रकाशमान थे। सब प्राणियों से अधिक तेजस्वी थे। उन्होंने ११

हजार वर्षोंतक राज्य किया। उन्होंने चारों वर्णोंकी प्रजाको साथ में सदेह परमधामको गमन किया। वे तुमसे और तुम्हारे पुत्रसे सर्वथा श्रेष्ठ थे। यदि श्रीराम जैसे महापुरुष भी यहाँ नहीं रह सके तो फिर तुम्हें अपने पुत्रके लिए शोक नहीं करना चाहिए। जिन राजा भगीरथ ने यज्ञ कर गंगा के किनारोंपर सोने की ईंटों की घाट बनाई। बहुत सी बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किए। गंगा जिनकी पुत्री हुई वे राजा भगीरथ भी ब्राह्मणोंकी कृपा से ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए। वे भी इस लोक में नहीं रह सके। राजा दिलीप जिन्होंने यज्ञोंमें सोनेकी सड़कें बनाई। इन्द्र आदि देवता उन्हें धर्मके समान मानकर उनके यज्ञमें पधारे। धन-धान्य से सम्पन्न यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। उनके राज्य में रसकी नदियाँ बहती थीं, धनधान्य, अन्नके पहाड़ लगे थे। जिस समय राजा दिलीप जल में युद्ध करते थे तो उनके रथ के पहिये पानीमें नहीं डूबते थे। ऐसे सत्यवादी तथा उदार नरेश का जो कोई दर्शन कर लेते थे वे भी स्वर्गलोक के अधिकारी हो जाते थे। राजा खटवांग के घर कभी स्वाध्याय, अतिथियोंके लिए खाओ, पीओ और भिक्षा ग्रहण करो इनके लिए कभी द्वार नहीं बन्द होते थे ऐसे राजा भी इस लोक में जीवित नहीं रह सके। युवनाश्वके पुत्र मान्धाताकी मृत्यु सुनी गई है। उस मान्धाता ने समस्त पृथ्वीको जीता था। वे धर्मात्मा, धैर्यवान, वीर, सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय थे। उन्होंने जनमेजय, सुधन्वा, गय, पूरू, बृहद्रथ, असित और नृगको भी जीत लिया था। सूर्य जहाँसे उदय होता था और जहाँ जाकर अस्त होता था वह सब-का-सब क्षेत्र मान्धाता का राज्य कहलाता था। मान्धाता ने सौ-सौ अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये थे। उनके यज्ञमें दूध बहानेवाली नदियाँ बहती थी और घी के कई कुंड थे। गुड़ का रस ही उनका जल था। समय आनेपर वे भी इस लोक से अस्त हो गए। सम्पूर्ण दिशाओंमें अपना सुयश फैलाकर वे पुण्यवानोंके लोक में चले गए। तुम्हारे ही पूर्वजों में नहुषनन्दन ययाति की भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने हजार पुण्डरीक यज्ञ, सौ वाजपेय यज्ञ, हजार अतिरात्र याग तथा चातुर्मास्य और अग्निष्टोम आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये है। जब उन्होंने ही संसार का त्याग कर दिया तो फिर तुम्हें अपने पुत्र के लिए शोक नहीं करना चाहिए। नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष ने मृत्युको वरण किया है। जिन्होने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पाकर कहीं महायज्ञोंका अनुष्ठान किया। महर्षि लोग उनपर प्रसन्न होकर असंख्य दक्षिणा देनेवाले राजा अम्बरीष जैसा यज्ञ करते है वैसा न तो पहले कभी किसीने किया और ना यज्ञ कर पायेंगे। वे ही जब मृत्यु के वशमें पड़ गयें तो फिर औरों का तो कहना ही क्या? एक लाख पत्नियों का भोग करनेवाले राजा शशबिन्दु का ही देहान्त हो गया जिनके असंख्य सन्ताने उत्पन्न हुई थी। उनके राज्य में कोई विघ्न नहीं था, कोई रोग नहीं था। बहुत समय तक राज्य का उपभोग करके अन्त में वे भी दिव्यलोक को प्राप्त हो गए। मृत्यु तो किसीको छोड़ती नहीं है। राजा अमृतरयके पुत्र गयकी भी मृत्यु सुनी गई है। जब प्रतिदिन होमावशिष्ट अन्नका ही सेवन करते थे। जिन्होंने धर्मसे तत्वोंपर विजय पायी जिन्होंने दर्श, पौर्णमास, आग्रयण तथा चातुर्मास्य आदि नाना प्रकारके यज्ञ किये और उनमें प्रचुर दक्षिणा ब्राह्मणोंको दी। जो सदा ही स्वर्ण अशर्फियों का दान करते थे। जिनकी यज्ञवेदियों पर मोती और हीरे बिछे हुए रहते थे। अक्षयवट तथा पवित्र तीर्थ ब्रह्मससर भी उनके कारण विख्यात हो गये। जब वे राजा गय ही जीवित नहीं रह सके तो राजन् फिर तुम्हें अपने पुत्र के लिए शोक नहीं करना चाहिए।

संकृतिके पुत्र रन्तिदेव भी जीवित नहीं रह पाए। राजा रन्तिदेव प्रत्येक पक्ष में सुवर्णके हजारों बैल दान करते थे। वे सब वस्तुएँ सोनेकी ही दान दिया करते थे। उनके यहाँ जो कुछ भी था वह स्वर्ण का ही था। उनके दिये हुए हव्य और कव्यको देवता तथा पितर प्रत्यक्ष आकर ग्रहण करते थे। उनकी भी मृत्यु हुई है तो राजन् फिर तुम्हें अपने पुत्र के लिए शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारे ही भरतवंश में राजा दुष्यन्तके पुत्र भरत भी मृत्युको प्राप्त हुए है। जो अत्यन्त पराक्रमी थे। जो सिंहोंको बाँध लेते थे। अजगरोंके दाँत तोड़ देते थे और हाथियों के दाँत पकड़कर अपने वश में कर लेते थे। जो सर्वदमन

नाम से जाने गए ऐसे राजा भरत भी इस संसार को छोड़कर चले गए। महर्षियों ने राजसूय यज्ञमें जिन्हें सम्राट पदपर अभिषिक्त किया वे महाराज पृथु भी मृत्यु को प्राप्त हुए। पृथु के लिए यह पृथ्वी कामधेनु बन गयी थी। जिसका दोहन राजा पृथु ने किया था। जब राजा पृथु समुद्र में यात्रा करते तब पानी थम जाता था और पर्वत उन्हें मार्ग देती थी। उनके राज्य में कोई भूखा नहीं रहता था, सभी निरोग थे, सबकी इच्छाएं पूर्ण होती थी और किसीको भी किसीका भय नहीं था। सभी मनुष्य सुखी, सन्तुष्ट और प्रसन्न थे। उन्होंने ही इस लोक का त्याग किया। तो राजन् जब इतने श्रेष्ठ, महावीर, महारथी, महापुरुष इस धरती पर अमर नहीं रह सकें इसलोक को कभी-न्-कभी तो त्यागना ही पड़ता है। इसलिए आप अपने पुत्रके लिए शोक न करें। राजन अभिमन्यु तो शूरवीर और कृतार्थ था। उसने रणभूमि में हजारों शत्रुओंको मौत के घाट उतारकर सामना करते हुए प्राण त्याग कर दिया।

योगी, निष्काम भावसे यज्ञ करनेवाले और तपस्वी पुरूष जिस उत्तम गतिको पाते हैं, तुम्हारे पुत्रने भी वही अक्षय गति प्राप्त की है। अभिमन्यु चन्द्रमाके स्वरूपको प्राप्त हुआ है, वह वीर अपनी अमृतमयी किरणोंसे प्रकाशमान हो रहा है; उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार सोच-समझकर तुम धैर्य धारण करो। शोक करनेसे तो दु:ख ही बढ़ता है; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह शोकका परित्याग करके अपने कल्याणके लिये प्रयत्न करे। तुमने मृत्युकी उत्पत्ति और उसकी अनुपम तपस्याकी बात सुनी ही है। मृत्युके लिये सब प्राणी एक-से हैं। ऐश्वर्य चञ्चल है। इसलिये राजा युधिष्ठिर। अब तुम शोक न करो।

यह कहकर भगवान् व्यास वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, राजा युधिष्ठिरने प्राचीन राजाओंकी यज्ञसम्पत्ति सुनकर मन-ही-मन उनकी प्रशंसा की और शोक त्याग दिया। फिर यह सोचकर कि अर्जुनसे मैं क्या कहूँगा? चिन्तामें पड़ गये।

३) अभिमन्यु वध पर अर्जुनका विषाद व द्रौपदी, और उत्तरा का विलाप

सूर्यास्त हुआ और आज का युद्ध समाप्त हो गया। अर्जुन स्वयं को बहुत थका हुआ अनुभव कर रहा था। उसका शरीर उतना क्लांत नहीं था, जितना कि मन अवसाद में डूबा हुआ था। आज का दिन तो व्यर्थ ही गया। संशप्तक सेना प्राय: नष्ट हो गई थी; किंतु सुशर्मा आज भी न तो मारा गया और न बंदी ही हुआ। आज वह अर्जुन के सम्मुख प्राय: नहीं आया था। थोड़ी देर के लिए सामने आता भी था तो फिर कहीं विलुप्त हो जाता था। छोटी-छोटी टुकड़ियों के साथ लौकिक शस्त्रों से साधारण युद्ध करते ही सारा दिन बीत गया। दिन भर उसे अपने भाइयों और सेना का कोई समाचार नहीं मिला। कृष्ण ने ठीक ही कहा था कि यह मात्र षडयंत्र था, युद्ध नहीं। पर उस समय अर्जुन जाने क्यों उसे स्वीकार नहीं कर पाया था।

अर्जुन त्रिगत नरेश सुशर्मा के साथ घमासान युद्ध कर रहा होता उसके परिवार सहित भाइयोंका युद्ध में वध कर देता है। अर्जुन बोला, अब चलिये वासुदेव। न जाने क्यों मेरा मन आज रोने को कर रहा है। वहां अवश्य कोई दुर्घटना हुई होगी। कृष्ण बोले, पार्थ धर्मयुद्ध में स्वयं धर्म की पराजय के अतिरिक्त किसी भी होनी को दुर्घटना नहीं कहना चाहिये। अर्जुन बोला, तो फिर मेरी आंखों में आंसू क्यों भर आये केशव। कृष्ण बोले, तुमने अपनी आंखों को ठीक से समझाया नहीं होगा पार्थ। अर्जुन बोला, नहीं केशव। कृष्ण रथ हांक देता।

सञ्जय कहते हैं- महाराज। उस दिन जब सूर्यनारायण अस्त हो गये, प्राणियोंका घोर संहार बंद हुआ तथा सभी सैनिक अपने-अपने शिबिरमें जाने लगे, उसी समय अर्जुन भी अपने दिव्य अस्त्रोंसे संशप्तकोंका वध करके रथपर बैठ शिबिरकी ओर चले। चलते-चलते ही वे श्रीकृष्णसे बोले- केशव। न जाने क्यों आज मेरा हृदय धड़क रहा है, सारा शरीर शिथिल हो रहा है। कोई अनिष्ट अवश्य हुआ है, यह बात हृदयसे निकलती ही नहीं। पृथ्वीपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें होनेवाले

भयंकर उत्पात मुझे डरा रहे हैं। मुझे डर है, मेरे पूज्य भ्राता राजा युधिष्ठिर अपने मन्त्रियोंसहित सकुशल तो होंगे?

उस दिन सूर्यास्तके समय संशप्तकोंका संहार करके अर्जुन जब अपने शिबिरकी ओर लौटने लगा तो उन्हें बहुत अमंगल सूचक अपशकुन मिले। मार्गमें ही श्रीकृष्ण-अर्जुनने सायं सन्ध्या की। संशप्तकोंके संग्राममें पूरा दिन लग गया। शिबिरमें आनेपर वहाँ सर्वत्र उदासी दीखी। अभिमन्युकी मृत्युका समाचार पाकर अर्जुन शोकसे मूर्च्छित हो गये। वे कुछ सचेत होनेपर विलाप करने लगे।

श्रीकृष्णने कहा- शोक न करो, मन्त्रियोंसहित तुम्हारे भाईका तो कल्याण ही होगा। इस अपशकुनके अनुसार कोई दूसरा ही अनिष्ट हुआ होगा। तदनन्तर दोनों वीरोंने संध्योपासना की और फिर रथपर बैठकर युद्धसम्बन्धी बातें करते हुए आगे बढ़े। पार्थ का रथ युद्ध अन्त होनेपर अपने शिबिर की ओर लौट रहा था। पार्थ-सारथि मौन थे। गम्भीर। शान्त होकर वे रथ-संचालन करते पाण्डव-शिबिरों की ओर अर्जुन को ला रहे थे।

अर्जुन बोला, माधव। आज मेरा हृदय वेग से स्पन्दित हो रहा है। कैसी विचित्र-सी शान्ति छायी है चारों ओर। पाण्डव-शिबिरों पर शंखध्वनि नहीं। मांगलिक गान नहीं। चारण-भाट सबके कण्ठ-स्वर शान्त हैं। कहीं कुछ अघटनीय तो नहीं हुआ? पार्थ-सारथी मौन थे। अर्जुन बोले जा रहे थे, आज सुना, गुरुवर द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह रचा था, यदि यह सत्य है, तो हम अवश्य पराजित हुए होंगे। मेरे और आपके अतिरिक्त और कौन व्यूह भेद सकता था? समझ नहीं पा रहा, किसे यह दायित्व सौंपा गया होगा। अभिमन्यु... अवश्य जानता है... किन्तु उसका प्रशिक्षण अपूर्ण है अभी। केवल व्यूह-भेदन मैं उसे सिखा पाया हूँ, व्यूह से बाहर कैसे निकला जाता है, यह वह नहीं जानता। वह तो अभी मात्र बालक है उसे कोई कैसे यह घोर गम्भीर दायित्व सौंप सकता है। किन्तु यह... कैसी श्वासरोधक नीरवता है?

पाण्डव-शिबिरों पर वास्तव में विकराल सन्नाटा छाया हुआ था।

अर्जुन बोला, क्या घटित हुआ वासुदेव? चारों वीर भाई तो सकुशल होंगे न।

इतने में ही अर्जुन कृष्ण सहित रणभूमि में आ जाते हैं। अपने शिबिर में। अर्जुन बोला, केशव शिबिर में इतना सन्नाटा क्यों है? कृष्ण बोले, यह तो शिबिर में पहुंचने के उपरान्त ही पता चलेगा पार्थ।

रथ रुकते ही वे लपककर उतरे। शिबिर के मध्य सामने ही युधिष्ठिर अन्य भाइयों, सात्यकि तथा धृष्टद्युम्न के साथ भयंकर रूप से शोकमग्न बैठे थे। कौन-सी अपूरणीय क्षति हुई? किसके लिए ऐसा शोक?

जब शिबिरके पास पहुँचे, तो उसने आनन्दरहित और श्रीहीन देखा। तब वे चिन्तित होकर श्रीकृष्णसे कहने लगे- जनार्दन। आज इस शिबिरमें माङ्गलिक बाजे नहीं बज रहे हैं। न दुन्दुभिका निनाद है, न शफ्की ध्वनि। आज वीणा भी नहीं बजती, मङ्गलगीत नहीं गाये जाते। बंदीजन न स्तुति करते हैं न पाठ। मेरे सैनिक मुझे देखकर नीचे मुँह किये चल देते हैं। इन वजनोंको व्याकुल देखकर मेरे हृदयका खटका नहीं मिटता। आज प्रतिदिनकी भाँति सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने भाइयोंके साथ हँसता हुआ मेरी अगवानी करने नहीं आ रहा है।

इस प्रकार बातें करते हुए दोनोंने शिबिरमें पहुँचकर देखा कि पाण्डव अत्यन्त व्याकुल और हतोत्साह हो रहे हैं। भाइयों तथा पुत्रोंको इस अवस्थामें देख और सुभद्रानन्दन अभिमन्युको वहाँ न पाकर अर्जुन बहुत दुखी होकर बोले, आज आप सब लोगोंके मुखपर अप्रसन्नता दिखायी दे रही है। इधर, मैं अभिमन्युको नहीं देखता और अभिमन्युका स्थान रिक्त है। आपलोग मुझसे प्रसन्नतापूर्वक बोलते नहीं; इसका क्या कारण है? मैंने सुना था, आचार्य द्रोणने चक्रव्यूहकी रचना की थी, आपलोगोंमेंसे बालक अभिमन्युके सिवा दूसरा कोई उस व्यूहका भेदन नहीं कर सकता था। अभिमन्युको भी मैंने उस

व्यूहसे निकलनेका ढंग अभी नहीं बताया था। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आपलोगोंने उस बालकको शत्रुके व्यूहमें भेज दिया हो? सुभद्रानन्दन उस व्यूहको अनेकों बार तोड़कर युद्धमें मारा तो नहीं गया?

उस समय ही संसप्तकों को युद्ध में संहार के, लौटे धनञ्जय विजय का आनन्द उर में धार के।
होने लगे पर मार्ग में अपशकुन बहु विध जब उन्हें, खलने लगी अति चित्त में चिन्ता कुशल की तब उन्हें।।
कुविचार वारंवार उनके चित्त में आने लगे, आनन्द और प्रसन्नता के भाव सब जाने लगे।
तब व्यग्र होकर वचन वे कहने लगे कृष्ण से, होगी न आतुरता किसे आपत्ति के अनुमान से?
हे मित्र। मेरा मन न जाने हो रहा क्यों व्यस्त है। इस समय पल-पल में मुझे अपशकुन करता त्रस्त है।
तुम धर्मराज-समीप रथ को शीघ्रता से ले चलो, कृष्ण। मेरे शत्रुओं की सब दुराशाएँ दलो।।
बहु भाँति तब सर्वज्ञ हरि ने शीघ्र समझाया उन्हें, सुनकर मधुर उनके वचन सन्तोष कुछ आया उन्हें।
पर, स्वजन-चिन्ता-रज्जु-बन्धन है कदापि न टूटता, जो भाव जम जाता हृदय में वह न सहसा छूटता।।
करते हुए निज चित्त में नाना विचार नये-नये, निज भाइयों के पास आतुर आर्त्त अर्जुन आ गये।
तप तप्त तरूओं के सदृश तब देखकर तापित उन्हें, व्याकुल हुए वे और भी कर कुशल विज्ञापित उन्हें।।

शिबिर में सभी भाई मुंह लटकाये बैठै हैं। अभिमन्यु का स्थान रिक्त है। अर्जुन बोला, प्रहरी हमें प्रणाम भी नहीं कर रहे और सिर झुकाकर दूसरी ओर देखने लग जाते हैं। ये लक्षण शुभ नहीं है केशव। हर दिन की भांति अभिमन्यु भी अपने भाइयों सहित आपके स्वागत के लिये बाहर दौडकर क्यों नहीं आया? यह तुम्हे आज क्या हुआ सैनिक? युद्ध में आज क्या हुआ? क्या हमारी सेना महाराज की रक्षा नहीं कर पायी। क्या गुरु द्रोण ने महाराज को बन्दी बना लिया। बोलो सैनिक। प्रहरी सैनिक बोला, नहीं कुमार ऐसा तो कुछ नहीं हुआ। अर्जुन बोला, तो फिर क्या हुआ सैनिक? सैनिक बोला, आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की थी। अर्जुन बोला, चक्रव्यूह की रचना की थी गुरुद्रोण ने। आपने सुना जनार्दन। आपके और मेरे अतिरिक्त इस सेना में चक्रव्यूह तोडना कोई जानता ही नहीं है। किन्तु हमारे शिबिर पर अब भी हमारा ध्वज लहरा रहा है। चक्रव्यूह पर अभिमन्यु ने तो आक्रमण नहीं किया ना। बोलो सैनिक। सैनिक बोला, जी हां। अर्जुन बोला, लेकिन उसे तो चक्रव्यूह से निकलना आता ही नहीं था। दोनों शिबिर के अन्दर आते हैं। वहां सभी को नंगे सिर बैठे आंखों में आंसू बहते देखा। अर्जुन बोला, मेरे अभिमन्यु का स्थान आज रिक्त क्यों है भ्राताश्री? मेरे प्रश्न का उत्तर तो अब उत्तरा देगी। अर्जुन बोला, केशव मेरा अभिमन्यु। कृष्ण बोले, हां पार्थ। हम क्षत्रियों के जीवन के आरम्भ और अन्त के बीच शस्त्रों के अतिरिक्त और तो कुछ होता ही नहीं। हमारी मृत्यु तो हमारे युद्ध के रथ में बैठते ही हमारे पीछे-पीछे चलती है। रणभूमि में मृत्यु के अतिरिक्त हमारे साथ और कोई भी नहीं होता ना पार्थ और हम भागना नहीं जानते पार्थ तो उन्हे किसी न किसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त होना पडता ही है पार्थ। इन सबका मौन बता रहा है पार्थ कि अपना अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुआ है। अर्जुन रोते हुये विलाप करते बोला नहीं केशव मेरा अभिमन्यु कहां? कृष्ण बोले, नहीं पार्थ। वत्स बस। यदि तुम ही शोक के बोझ से टूट गये पार्थ तो यह वीर अभिमन्यु की मृत्यु का अपमान होगा ना। उसकी वीरता का घोर अपमान होगा पार्थ। तुम्हारा बालक तो आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण, महारथी दुर्योधन, महारथी कृपाचार्य, महारथी कृतवर्मा जैसे यौद्धाओं के साथ अकेला ही युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ है। गर्व करो इस बात पर।

रुदन महान महल में छायो। तेहि अवसर अर्जुन घर आयो।।
कृष्ण कहे सबको समुझाई। चिंता छोड़ उठो मेरे भाई।।

अमर नाम अभिमन्यु ने, किया वीरगति पाय।
बंश नाम रोशन किया, सकल जगत के मांय।।

युधिष्ठिर बोले, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ धनंजय। तुम छोटे भाई होकर मेरी रक्षा करते रहे और मैं बड़ा होकर परिवार का मुखिया होकर भी अभिमन्यु की रक्षा नहीं कर पाया। धर्मराज ने संक्षेप में सारी घटना सुना दी। अर्जुन की आँखों में अश्रुओं का वेग बढ़ा और गला रूँध गया। पीछेसे अभिमन्यु ने मेरा दायित्व निभाया उसने मेरे स्थानपर आपकी रक्षा की। युधिष्ठिर बोले, तुम कह रहे हो उसने तुम्हारे स्थान पर मेरी रक्षा की पर मैं कह रहा हूँ उसने मेरे स्थान पर अपने प्राण दिए। अब मैं पांचाली और सुभद्रा, उत्तरा को क्या मुँह दिखाऊँगा? कृष्ण बोले, अभिमन्यु आपका भी पुत्र था धर्मराज? वह सुभद्रा और उत्तरा की ही तो अमानत नहीं था। उसने वीरगति पाई है, असाधारण वीरता दिखाई है। उस वीर क्षत्रिय ने अपने मातृ और पितृ दोनोंका ही मुख उज्ज्वल किया है। उससे सुभद्रा और उत्तरा के चेहरे गर्व से गौरवान्वित होंगे। आप उन्हें धैर्य बंधाएँ। बड़ों के समान उनका रक्षण और पालन करें। अर्जुन बोला, अभिमन्यु की क्षतिपूर्ति तो नहीं हो सकती बड़े भैया। पर कौरवोंको उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। उन्हें मैं बताऊँगा किसी निहत्थे, नि:शस्त्र वीर बालक को घेरकर छह-छह महारथियोंद्वारा उसका वध उन्हें कितना महँगा पड़ेगा।

हे हे जनार्दन। आपने यह क्या दिखाया है हमें? हे देव। किस दुर्भाग्य से यह दु:ख आया है हमें?
हा। आपके रहते हुए भी आज यह क्या हो गया? अभिमन्यु रूपी रत्न जो सहसा हमारा खो गया।।
निज राज्य लेने से हमें हे तात। अब क्या काम है? होता अहो। फिर व्यर्थ ही क्यों यह महासंग्राम है।।
क्या यह हमारी हानि भारी, राज्य से मिट जायगी? त्रैलोक्य की भी सम्पदा उस रत्न को क्या पायगी?
मेरे लिए ही भेद करके व्यूह द्रोणाचार्य का, मारे सहस्त्रों शूर उसने ध्यान धर प्रिय कार्य का।
पर अन्त में अन्याय से निरुपाय होकर के वहाँ, हा। हन्त। वह हत हो गया, पाऊँ उसे अब मैं कहाँ।।

किन्तु केशव इस पांडव सेना के महारथी क्या इस बात को नहीं जानते थे कि मेरा अभिमन्यु चक्रव्यूह से निकलना नहीं जानता था। भीम बोला, हां हम यह जानते थे अनुज। हम सब ये जानते थे इसलिये हम सब प्रिय अभिमन्यु के पीछे चल रहे थे की उसीके साथ चक्रव्यूह में प्रवेश कर जायेंगे किन्तु सिन्धु नरेश जयद्रथ ने अकेले ही हम सब को रोक लिया। कृष्ण बोले, किन्तु सिन्धु नरेश जयद्रथ अकेला नहीं था नकुल। उसके साथ महादेव का वरदान था। द्रौपदी हरण के असफल प्रयत्न के पश्चात पांडवों से जीवनदान पाने के उपरान्त जयद्रथ ने महादेव की घोर तपस्या की थी। उनसे यह वरदान पाया था कि एक युद्ध में वो एक दिन पार्थ के अतिरिक्त वो चारों भाइयों पर भारी पडेगा और आज का दिन उसी वरदान का दिन था इसलिये आज जयद्रथ को कोई पराजित कर ही नहीं सकता था। अर्जुन बोला, जयद्रथ। मेरे पुत्र का शव कहां है? वीर धृष्टद्युम्न और शिखंडी जयद्रथ को अपने मार्ग से नहीं हटा पाए। युयुधान सात्यकि उससे पराभूत होकर रह गया। अर्जुन बोला, इसका अर्थ तो यह हुआ कि अकेला जयद्रथ हमारी सारी सेनापर भारी पड़ गया। जब किसी असमर्थ व्यक्ति को तनिक-सा भी सामर्थ्य मिल जाता है, तो उसका अहंकार आकाश को छूने लगता है। जयद्रथ को चारों पांडवों को रोकने का यश मिल गया तो उसका अहंकार तो स्फीत होना ही था। उसी अहंकार में उसने पांडवों के साथ दुर्व्यवहार किया। स्वयं को असाधारण वीर माना और अभिमन्यु के वध का श्रेय स्वयं लिया। जो भी हो। अर्जुन ने कहा, उसने अभिमन्यु के वध का यश लिया है तो उसका दंड भी वही पाएगा। मैं उसे इस यश का किरीट पहनने नहीं दूँगा।

श्रीकृष्णने सखाको समझाया- युद्धमें पीठ न दिखानेवाले श्लाघ्य शूरोंको इसी पथसे जाना पड़ता है। शास्त्रोंने श्रेष्ठ

क्षत्रियकी यही गति कही है। धर्मयुद्धमें शत्रुके हाथसे मृत्यु उत्तरवीरको सदा अभीष्ट रहती है। अभिमन्युने अमित पराक्रम करके शत्रुओंका संहार किया और तब मारा गया है। उसके लिए शोक मत करो। तुम्हें तो भाइयों तथा दूसरे शोकार्त लोगोंको आश्वासन देना चाहिए।

श्रीकृष्णके समझानेपर अर्जुनने युधिष्ठिरसे पूरा वृत्त विस्तारसे सुनानेको कहा। बहुत व्यथापूर्वक धर्मराजने बतलाया कि विवश होकर उन्होंने अभिमन्युको व्यूहमें प्रवेशकी आज्ञा दी। वे स्वयं सब महारथियोंके साथ अभिमन्युकी रक्षा करने साथ जाना चाहते थे किन्तु जयद्रथने सबको द्वारपर रोक दिया।

वह सुभद्रा और द्रौपदीका प्रिय तथा माता कुन्ती और श्रीकृष्णका दुलारा था; बताइये तो कालके वशमें पड़ा हुआ ऐसा कौन है, जिसने उसका वध किया है। हा। वह कैसे हँस-हँसकर बातें करता था और सदा बड़ोंकी आज्ञामें रहता था। बचपनमें भी उसके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी। कितनी प्यारी-प्यारी बातें करता था। ईर्ष्या-द्वेष तो उसे छू नहीं गया था। वह महान् उत्साही था। उसकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी और आँखें कमल-के समान विशाल थीं। अपने सेवकोंपर उसकी बड़ी दया थी, कभी नीच पुरुषोंकी संगति नहीं करता था। वह कृतज्ञ, ज्ञानी और अस्त्रविद्यामें कुशल था; युद्धमें पीछे पैर नहीं हटाता था। युद्धका तो वह अभिनन्दन करता था, शत्रु उसे देखते ही भयभीत हो जाते थे। वह आत्मीय जनोंका प्रिय करनेवाला और पितृवर्गकी विजय चाहनेवाला था। शत्रुपर पहले कभी नहीं प्रहार करता था और युद्धमें सदा निर्भीक रहता था। रथियोंकी गणना होते समय जिसे महारथी गिना गया था, उस वीर अभिमन्युका मुख देने बिना अब मेरे हृदयको क्या शान्ति मिलेगी? अपनेसे अधिक दु:ख तो सुभद्राके लिये हो रहा है, वह असहाय पुत्रकी मृत्यु सुनते ही शोकसे पीड़ित होकर प्राण त्याग देगी। अभिमन्युको न देखकर सुभद्रा और द्रौपदी मुझसे क्या कहेंगी? उन दोनोंको मैं क्या उत्तर दूँगा? सचमुच मेरा हृदय वज्रका बना हुआ है, तभी तो पुत्रवधू उत्तराके रोने-बिलखनेका ध्यान आते ही इसके हजारों टुकड़े नहीं हो जाते।

इस प्रकार अर्जुनको पुत्रशोकसे पीड़ित और उसीकी यादमें आँसू बहाते देख कृष्णने उन्हें पकड़कर सँभाला और कहा- मित्र। इतने व्याकुल न होओ। जो युद्धमें पीठ नहीं दिखाते, उन सभी शूरवीरोंको एक दिन इसी मार्गसे जाना पड़ता है। जिनकी युद्धसे ही जीविका चलती है, उन क्षत्रियोंका तो विशेषत: यही मार्ग है; उनके लिये सम्पूर्ण शास्त्रज्ञोंने यही गति निश्चित की है। युद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मृत्यु हो जाय- ऐसा तो सभी शूरवीर चाहते हैं। अभिमन्युने बड़े-बड़े वीर एवं महाबली राजकुमारोंको युद्धमें मारा है और शत्रुके सामने डटे रहकर वीरोंके लिये वाञ्छनीय मृत्यु प्राप्त की है। तुम्हें शोक करते देख ये तुम्हारे भाई और मित्र अधिक दुखी हो रहे हैं। इन्हें सान्त्वनाभरी बातोंसे आश्वासन दो। तुम तो जाननेयोग्य तत्वको जान चुके हो; तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

कृष्णके इस प्रकार समझानेपर अर्जुनने अपने भाइयोंसे कहा- मैं अभिमन्युकी मृत्युका वृत्तान्त आरम्भसे ही सुनना चाहता हूँ। आप सब लोग अस्त्रविद्यामें कुशल हैं, हाथोंमें शस्त्र लिये वहाँ खड़े थे। ऐसे समयमें वह यदि इन्द्रसे भी युद्ध करता हो, तो भी नहीं मारा जाना चाहिये; फिर आपके रहते कैसे उसकी मृत्यु हुई? यदि मैं जानता कि पाण्डव और पाञ्चाल मेरे पुत्रकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, तो स्वयं ही उपस्थित होकर उसकी रक्षा करता।

इतना कहकर अर्जुन चुप हो गये। उस समय युधिष्ठिर अथवा श्रीकृष्णके सिवा, दूसरा कोई भी उनकी ओर देखने या बोलनेका साहस नहीं कर सका। युधिष्ठिरने कहा- महाबाहो। जब तुम संशप्तकोंकी सेनासे लड़ने चले गये, उसी समय द्रोणाचार्यने मुझे पकड़नेका घोर प्रयत्न किया, वे रथोंकी सेनाका व्यूह बनाकर बारंबार उद्योग करते थे और हमलोग व्यूहाकारमें संगठित हो उनके आक्रमण को व्यर्थ कर रहे थे। किंतु द्रोणाचार्य अपने तीखे बाणोंसे हमें बहुत पीड़ा देने लगे।

उस समय व्यूह-भेदन करना तो दूरकी बात है, हम उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे। ऐसी स्थिति आ जानेपर हम सबने अभिमन्युसे कहा- पुत्र। तुम व्यूहको तोड़ डालो। हमारे कहनेसे ही उसने इस असह्य भारको भी वहन करना स्वीकार किया और तुम्हारी दी हुई शिक्षाके अनुसार वह व्यूह तोड़कर उसमें प्रवेश कर गया। हम भी उसके बनाये हुए मार्गसे व्यूहमें प्रवेश करनेको जब पीछे-पीछे चले तो नीच जयद्रथने शंकरजीके दिये हुए वरदानके बलसे हमें रोक लिया। तदनन्तर द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि और कृतवर्मा- इन छः महारथियोंने उसे सब ओरसे घेर लिया। घिरे होनेपर भी उस बालकने अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें जीतनेका पूर्ण प्रयास किया, किंतु उन सबने मिलकर उसे रथहीन कर दिया। जब वह अकेला और असहाय हो गया, तो दुःशासनके पुत्रने संकटापन्न अवस्थामें उसे मार डाला। उसने पहले एक हजार हाथी, घोड़े, रथी और मनुष्यों को मारा; फिर आठ हजार रथी और नौ सौ हाथियोंका संहार किया; तत्पश्चात् दो हजार राजकुमारों तथा अन्य बहुतसे अज्ञात वीरोंको मारकर राजा बृहद्बलको भी स्वर्गलोकका अतिथि बनाया। इसके बाद वह स्वयं मरा है और यही हमलोगोंके लिये सबसे बढ़कर शोककी बात हुई है।

उद्योग हम सबने बहुत उसके बचाने का किया, पर खल जयद्रथ ने हमें भीतर नहीं जाने दिया।
रहते हुए भी सो हमारे युद्ध में वह हत हुआ, अब क्या रहा सर्वस्व ही हा। हा। हमारा गत हुआ।।
पापी जयद्रथ पार उससे जब न रण में पा सका, उस वीर के जीते हुए सम्मुख न जब वह जा सका।
तब मृतक उसको देख सिर पर पैर रक्खा नीच ने, हा। हा। न यों मनुजत्व को भी स्मरण रक्खा नीच ने।।
श्रीकृष्ण से जब ज्येष्ठ पाण्डव थे वचन यों कह रहे, अर्जुन हृदय पर हाथ रक्खे थे महा दुःख सह रहे।
हा पुत्र। कहकर शीघ्र ही फिर वे मही पर गिर पड़े, क्या वज्र गिराने पर बड़े भी वृक्ष रह सकते खड़े?
जो शस्त्र शत-शत शत्रुओं के सहन करते थे कड़े, वे पार्थ ही इस शोक के आघात से जब गिर पड़े;
तब और साधारण जनों के दुःख की है क्या कथा, होती अतीव अपार है सुत-शोक की दुःसह व्यथा।।
यों देख भक्तों को प्रपीड़ित शोक के अति भार से, कुछ द्रवित अच्युत भी हुए कारुण्य के संचार से।
तल-मध्य-अनल-स्फोट से भूकम्प होता है जहाँ, होते विकम्पित-से नहीं क्या अचल भूधर भी वहाँ?
हे हे परन्तप। ताप सहकर चित में धीरज धरो, हे धीर भारत। हो न आरत। शोक को कुछ कम करो।
पड़ता समय है वीर पर ही, भीरु-कायर पर नहीं, दृढ़-भाव अपना विपद में भी भूलते बुधवर नहीं।।
निज जन-विरह के शोक का दुःख-दाह कौन न जानता? पर मृत्यु का होना न जग में कौन निश्चित मानता?
सहनी नहीं पड़ती किसे प्रिय-विरह की दुस्सह व्यथा? क्या फिर हमें कहनी पड़ेगी आज गीता की कथा?
आते बुरे दिन बीतने पर मनुज के जग में जहाँ, जाते हुए कोई न कोई दुःख दे जाते वहाँ।
अतएव अब निश्चय तुम्हारे उदय का आरम्भ है, होगा अधिक अब दुःख क्या? यह सब दुःखों का खम्भ है।।
जिस ज्ञान के बल से अनेकों विपद-नद तरते रहे, जिस ज्ञान के बल से सदा ही धैर्य तुम धरते रहे।
हे बुद्धिमानों के शिरोमणि। ज्ञान अब वह है कहाँ? अवलम्ब उसका ही तुम्हें लेना उचित है फिर यहाँ।।
निश्चय विरह अभिमन्यु का है दुःखदायी सर्वथा, पर सहन करनी चाहिए फिर भी किसी विध यह व्यथा।
रण में मरण क्षत्रिय जनों को स्वर्ग देता है सदा, है कौन ऐसा विश्व में जीता रहे जो सर्वदा?
हे वीर, देखो तो, तुम्हें यों देखकर रोते हुए, हैं हँस रहे सब शत्रुजन मन में मुदित होते हुए।
क्या इस महा अपमान का कुछ भी न तुमको ध्यान है? क्या ज्ञानियों को भी विपद में त्याग देता ज्ञान है?

तुम कौन हो, क्या कर रहे हो, क्या तुम्हारा कर्म है? कैसा समय, कैसी दशा, कैसा तुम्हारा धर्म है?
हे अनघ। क्या यह विज्ञता भी आज तुमने दूर की? होती परीक्षा ताप में ही स्वर्ण के सम शूर की।।
जिस बात से निज वैरियों को थोड़ा-सा भी हर्ष हो, है योग्य उसका त्याग ही, बाधा न क्यों दुर्द्धर्ष हो।
वह वीर ही क्या, शत्रु का सुख-हेतु हो जो आप ही, निज शत्रुओं का तो बढ़ाना चाहिए सन्ताप ही।।
जिन पामरों ने सर्वदा ही दु:ख तुमको है दिया, षड्यन्त्र रच-रचकर अनेकों विभव सारा हर लिया।
उन पापियों को देखते है योग्य क्या रोना तुम्हें? निज शत्रु-सम्मुख तो उचित है मुदित ही होना तुम्हें।।
निज सहचरों का शोक तो आजन्म रहता है बना, पर चाहिए सबको सदा कर्त्तव्य अपना पालना।
हे विज्ञ। सो सब सोचकर यों शोक में न रहो पड़े, लो शीघ्र बदला वैरियों से, धैर्य धरकर हो खड़े।।
मारा जिन्होंने युद्ध में अभिमन्यु को अन्याय से, सर्वस्व मानो है हमारा हर लिया दुरुपाय से।
हे वीरवर। इस पाप का फल क्या उन्हें दोगे नहीं? इस वैर का बदला कहो, क्या शीघ्र तुम लोगे नहीं?
श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे, सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े, करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े।।
उस काल मारे क्रोध के तनु काँपने उनका लगा; मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा।
मुख बाल-रवि-सम लाल होकर ज्वाल-सा बोधित हुआ, प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ?
युग-नेत्र उनके जो अभी थे पूर्ण जल की धार से, अब रोष के मारे हुए वे दहकते अंगार-से।
निश्चय अरुणिमा-मिस अनल की जल उठी वह ज्वाल ही, तब तो दृगों का जल गया शोकाश्रु जल तत्काल ही।।
करतल परस्पर शोक से उनके स्वयं घर्षित हुए, तब विस्फुरित होते हुए भुजदण्ड यों दर्शित हुए।
दो पदम् शुंडों में लिए दो शुंडवाला गज कहीं, मर्दन करे उनको परस्पर तो मिले उपमा वहीं।।

धर्मराजकी यह बात सुनकर अर्जुन हा पुत्र। कहते हुए करुण उच्छवास् लेने लगे और अत्यन्त व्यथासे पीड़ित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय सबके मुखपर विषाद छा गया, सभी अर्जुनको घेरकर बैठ गये और निर्निमेष नेत्रोंसे एक-दूसरेको देखने लगे। थोड़ी देर बाद अर्जुनको होश हुआ, तब वे क्रोधमें भरकर बोले- मैं आपलोगोंके सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि जयद्रथ कौरवोंका आश्रय छोड़कर भाग नहीं गया, या हमलोगोंकी, श्रीकृष्णकी अथवा महाराज युधिष्ठिरकी शरणमें नहीं आ गया तो कल उसे अवश्य मार डालूँगा। वह कल का सूर्यास्त नहीं देखेगा। कौरवोंका प्रिय करनेवाला पापी जयद्रथ ही उस बालकके वधमें निमित्त बना है, अत: निश्चय ही कल उसे मौतके घाट उतारूंगा।

सब सुनकर अर्जुन पहिले तो मूर्च्छित हो गये फिर सचेत होनेपर क्रोधमें भरकर बोले- मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जयद्रथ यदि कल युद्ध त्यागकर कुरुक्षेत्रसे ही घर नहीं भाग गया अथवा श्रीकृष्ण या महाराज युधिष्ठिरकी शरणमें नहीं आ गया तो मैं कल सूर्यास्त तक उसे अवश्य मार दूँगा। उसे मैं कल न मार सका तो स्वयं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करके देह त्याग कर दूँगा। कल जयद्रथ चाहे स्वर्गमें जा छिपे या पातालमें, उसके रक्षक बनकर सब दैत्य-दानव आ जायँ या सब देवता, कल उस अभिमन्युके शत्रुको मैं अवश्य मार दूँगा।

अगर कल उसे न मारूं तो माता-पिताकी हत्या करनेवाले, गुरुस्त्रीगामी, चुगलखोर, साधुनिन्दक, दूसरोंपर कलंक लगानेवाले, दूसरों के धरोहर को हड़प लेनेवाले और विश्वासघाती पुरुषोंकी जो गति होती है वही मेरी भी हो। जो वेदाध्ययन करनेवाले उत्तम ब्राह्मणोंका तथा बड़े-बूढ़ों, साधुओं और गुरुजनोंका अनादर करते हैं, ब्राह्मण, गौ और अग्निका

चरणोंसे स्पर्श करते हैं और जलमें मल-मूत्र या थूक डालते हैं, उन्हें जो दुर्गति प्राप्त होती है वही कल जयद्रथको न मारनेपर मेरी भी हो। नंगे नहानेवाले, अतिथिको निराश करनेवाले, सूदखोर, मिथ्यावादी, ठग, आत्मवञ्चक, दूसरोंपर झूठे दोष लगानेवाले तथा परिवारवालोंको दिये बिना अकेले ही मिष्टान्न खानेवाले लोगोंको जो दुर्गति प्राप्त होती है, वही जयद्रथका वध न करनेपर मेरी भी हो। जो शरणमें आये हुएका त्याग करता है तथा कहनेके अनुसार चलनेवाले सज्जन पुरुषका पालन-पोषण नहीं करता, उपकारीकी निंदा करता है, पड़ोसमें रहनेवाले सुयोग्य व्यक्तिको श्राद्धका दान न देकर अयोग्य व्यक्तियोंको देता है और शूद्र जातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवालेको श्राद्धान्न जिमाता है तथा जो शराबी, मर्यादा भंग करनेवाला, कृतघ्न और स्वामीका निन्दक है, उस पुरुषकी जो दुर्गति होती है वही जयद्रथको न मारनेपर मेरी भी हो। जो बायें हाथसे भोजन करते, गोदमें रखकर खाते, पलाशके पत्तेपर बैठते और तेंदूकी दातून करते हैं, जिन्होंने धर्मका त्याग किया है, जो प्रात:काल सोते हैं, ब्राह्मण होकर शीतसे और क्षत्रिय होकर युद्धसे डरते हैं, शास्त्रकी निन्दा करते हैं, दिनमें नींद लेते या मैथुन करते हैं, घरमें आग लगाते, अग्निहोत्र और अतिथिसत्कारसे विमुख रहते तथा गौओंके पानी पीनेमें विघ्न डालते हैं, जो रजस्वलासे संसर्ग करते हैं, कीमत लेकर कन्याको बेचते हैं, बहुत लोगोंकी पुरोहिती करते हैं, ब्राह्मण होकर दासवृत्तिसे जीविका चलाते हैं, मुखमें मैथुन करते हैं तथा जो ब्राह्मणको दानका संकल्प करके फिर लोभवश नहीं देते, उन सबकी जो दु:खदायिनी गति होती है, वही जयद्रथको न मारनेपर मेरी भी हो। ऊपर जिन पापियोंका नाम मैंने गिनाया है तथा जिनका नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है वही मेरी भी हो- यदि कल जयद्रथका वध न कर सकूँ। अब मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी सुनिये- यदि कल सूर्य अस्त होनेके पहले पापी जयद्रथ नहीं मारा गया, तो मैं स्वयं ही जलती हुई आगमें प्रवेश कर अग्नि समाधि ले लूँगा। देवता, असुर, मनुष्य, पक्षी, नाग, पितर, राक्षस, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, यह चराचर जगत् तथा इसके परे जो कुछ है, वह भी ये सब मिलकर भी मेरे शत्रुकी रक्षा नहीं कर सकते। यदि जयद्रथ पातालमें घुस जायगा या उससे आगे बढ़ जायगा अथवा अन्तरिक्षमें, देवताओंके नगरमें या दैत्योंकी पुरीमें भागकर छिपेगा, तो भी मैं कल अपने सैकड़ों बाणोंसे अभिमन्युके उस शत्रुका सिर उतारूँगा ही।

जयद्रथ तो कल संध्या तक ही धरती पर पड़ा होगा; और कर्ण भी अपने पुत्रशोक से वैसे ही रोएगा, जैसे आज मैं रो रहा हूँ। अर्जुन की आँखों से अश्रु फूट बहे। सब लोग सुनें। अर्जुन जैसे आपे से बाहर हो गया था, मैं अपने गांडीव की सौगंध खाकर प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि कल सूर्यास्त तक यदि मैंने जयद्रथ का वध न किया तो चितारोहण कर अपने प्राण दे दूँगा।

अर्जुन असाध्य आवेश में था। उसने गांडीव को अपने दाएँ और बाएँ दोनों हाथों से टंकारा। देवदत्त को हाथ में लेकर जोर से फूँका, जैसे वह अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा सारे युद्धक्षेत्र में कर रहा हो।

साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं, पूरा करूँगा कार्य सब कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी, वे शत्रु सत्वर शोक-सागर-मग्न दीखेंगे सभी।।
अभिमन्यु-धन के निधन में कारण हुआ जो मूल है, इससे हमारे हत-हृदय को हो रहा जो शूल है।
उस खल जयद्रथ को जगत में मृत्यु ही अब सार है, उन्मुक्त बस उसके लिए रौरव नरक का द्वार है।।
सुर, नर, असुर, गन्धर्व, किन्नर आदि कोई भी कहीं, कल शाम तक मुझसे जयद्रथ को बचा सकते नहीं।
चाहे चराचर विश्व भी उसके कुशल-हित हो खड़ा, भू-लुंठित कलरव-तुल्य उसका शीश लोटेगा पड़ा।।
उपयुक्त उस खल को न यद्यपि मृत्यु का भी दण्ड है, पर मृत्यु से बढ़कर न जग में दण्ड और प्रचण्ड है।
अतएव कल उस नीच को रण-मध्य जो मारूँ न मैं, तो सत्य कहता हूँ कभी शस्त्रास्त्र फिर धारूँ न मैं।।

हे देव अच्युत, आपके सम्मुख प्रतिज्ञा है यही, मैं कल जयद्रथ-वध करूँगा, वचन कहता हूँ सही।
यदि मारकर कल मैं उसे यमलोक पहुँचाऊँ नहीं, तो पुण्य-गति को मैं कभी परलोक में पाऊँ नहीं।।
पापी जयद्रथ। हो चुका तेरा वयोविस्तार है, मेरे करों से अब नहीं तेरा कहीं निस्तार है।
दुर्वृत्त। तेरा त्राण कोई कर नहीं सकता कहीं, वीर-प्रतिज्ञा विश्व में होती असत्य कभी नहीं।।
विषधर बनेगा रोष मेरा खल। तुझे पाताल में, दावाग्नि होगा विपिन में, बाड़व जलधि-जल-जाल में।
जो व्योम में तू जायगा तो वज्र वह बन जायगा, चाहे जहाँ जाकर रहे जीवित न तू रह पायगा।।
छोटे बड़े जितने जगत में पुण्य-नाशक पाप हैं, लौकिक तथा जो पारलौकिक तीक्ष्णतर सन्ताप हैं।
हों प्राप्त वे सब सर्वदा को तो विलम्ब बिना मुझे, कल युद्ध में सन्ध्या समय तक, जो न मैं मारूँ तुझे।।
अथवा अधिक कहना वृथा है, पार्थ का प्रण है यही, साक्षी रहें सुन ये वचन रवि, शशि, अनल, अस्वर मही।
सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ-वध करूँ, तो शपथ करता हूँ स्वयं मैं ही अनल में जल मरूँ।।
करके प्रतिज्ञा यों किरीटी क्रोध के उद्‌गार से, करने लगे घोषित दिशाएँ धनुष की टंकार से।
उस समय उनकी दीप्ति ने वह दृश्य याद करा दिया, जब शार्ङ्गपाणि उपेन्द्र ने था रोष असुरों पर किया।।

कृष्ण की आँखों में चिंता का धुँधलका उतरा, यह तुमने क्या किया सव्यसाची। किसी से परामर्श तो कर लिया होता।

अर्जुन बोला, यह वही जयद्रथ है कृष्ण। जिसे मैंने वनवास काल में सेना सहित योजनों आगे दौड़ते हुए भी अपने बाणों से बींध दिया था। कृष्ण बोले, ठीक कहते हो, किंतु न तो उस समय तुम्हारे सम्मुख समय की सीमा थी और न दुर्योधन वहाँ उपस्थित था। कृष्ण की चिंता कम नहीं हुई थी, आज की तुम्हारी प्रतिज्ञा का समाचार शीघ्रातिशीघ्र दुर्योधन तक पहुँच जाएगा। वे लोग जयद्रथ को कल प्रात: से सूर्यास्त तक कहीं छुपा लेंगे अथवा सारी सेना और सारे महारथी मिलकर उसकी रक्षा करेंगे। केवल एक दिन की ही तो बात है। अकेला सुशर्मा, केवल अपने दम पर दो दिनों से तुमसे बचता फिर रहा है, तो क्या दुर्योधन अपने सारे सामर्थ्य के होते हुए, एक दिन के लिए जयद्रथ को छिपा नहीं सकता? यदि वे उसमें सफल हो जाते हैं तो तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा में बँध कर संध्या समय चितारोहण करना पड़ेगा। दुर्योधन के लिए, तुमसे छुटकारा पाने का इससे सरल उपाय और क्या हो सकता है। तुमने स्वयं ही एक प्रकार से उसकी विजय के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

अर्जुन बोला, मुझे इसका भय नहीं है। छिपा लें उसे, कहाँ छिपाएँगे- आकाश में, पाताल में, अंतरिक्ष में। मैं उसे कहीं से भी खोज लाऊँगा। अभिमन्यु का वध कर वह इस प्रकार जीवित नहीं रह सकता और यदि मैं उसे दंडित नहीं कर सकता तो फिर मेरे इस जीवन का लाभ ही क्या है। ऐसे में मुझे मर ही जाना चाहिए। यह कहकर अर्जुनने गाण्डीव धनुषकी टंकार की, उसकी ध्वनि आकाशमें गूँज उठी। अर्जुनकी वह प्रतिज्ञा सुनकर श्रीकृष्णने अपना पाञ्चजन्य शफ बजाया और कुपित हुए अर्जुनने देवदत्त नामक शफ्की ध्वनि फैलायी। वह शफ्नाद सुनकर आकाश-पातालसहित सम्पूर्ण जगत् काँप उठा।

सुन पार्थ का प्रण रौद्र रस में वीर सब बहने लगे; कह साधु-साधु प्रसन्न हो श्रीकृष्ण फिर कहने लगे।
यह भारती हे वीर भारत। योग्य ही तुमने कही, जिन वैरियों के विषय में कर्त्तव्य है समुचित यही।।
फिर भीम-अर्जुन आदि भी निज शफ-रव करने लगे, पीछे उन्हीं के सैन्य में रण-वाद्य मन हरने लगे।
तब गूँजकर वह घोर रव सब ओर यों भरने लगा, मानो चराचर विश्व को ही नादमय करने लगा।।
करके श्रवण उस नाद को कौरव बहुत शंकित हुए, नाना नवीन विचार करके चित्त में अंकित हुए।
पार्थ-प्रतिज्ञा भी उन्होंने दूत के द्वारा सुनी, ज्यों दैत्य-गण ने जिष्णुजय जीमूत के द्वारा सुनी।।

ग्रीष्मान्त में घन-नाद सुनकर भीत होता हंस ज्यों, व्याकुल हुआ यह बात सुनकर सिन्धुराज नृशंस त्यों।
प्रत्यक्ष-सा निज रूप उसको मृत्यु दिखलाने लगी, दावाग्नि-सी बढ़ती हुई वह निकटतर आने लगी।।

भीतरी भाग से सुभद्रा निकलकर आई। कृष्ण ने उसकी ओर देखा वह बहुत उदास थी। उदास तो उसको होना ही था। उसकी आँखों से झर-झर अश्रु बह रहे थे, किंतु वह सँभल-सँभलकर अपने पगों पर चल रही थी।

मात सुभद्रा तेहि पल आई। जैसे बछड़ा ढूँढ़े गाई।
धर्मराज व्याकुल भये भारी। भीम, नकुल, अर्जुन, असुरारी।।
नयन नीर ढूंढें चहुं ओरा। कहाँ गया अभिमन्यु मोरा।।
कहां गया गाण्डीव तुम्हारा। सौ गजका अतुलित बल सारा।।
चक्र सुदर्शन कहां तुम्हारा। कित भाणज अभिमन्यु प्यारा।।
आ बेटा तेरि मात पुकारे। क्यों रूठा कुछ तो बतलारे।।
हाय पुत्र तू प्यासा होगा। नहिं कुछ खाया भूखा होगा।।
आ बेटा तेरा मुख धुलवादूँ। अपने हाथों तुझे खिलादूँ।
कैसे अब मैं धीरज धारूँ। पुत्रवधू से कहा उचारूँ।।
एक बार तो धीर बन्धादे। चंदा सा तेरा मुख दिखलादे।।
विकल होय कर होश गंवाई। सुधि नहिं पड़ी धरण पर जाई।।

तभी सुभद्रा के शिबिर से ऊँचे स्वर में सामूहिक क्रन्दन सुनाई पड़ा। धनंजय की आजानुबाहु शिथिल होकर एकाएक झूल गयीं। पाँव विश्वासघात कर गये। हृदयगति जैसे थम गयी। सामने खड़े थे अपराध-भावना से ग्रस्त युधिष्ठिर। आत्मग्लानि में डूबे भीम। नतमस्तक नकुल। सजलनेत्र सहदेव। सबकी वाणी जड़ हो चुकी थी। कौन कहे?

यों जानकर सबको दुखी, लख उत्तरा-उत्ताप को, भूले रहे भगवान भी कुछ देर अपने आपको।
फिर रोक करुणा-वेग सबको शीघ्र समझाने लगे, उस शोक-सागर से उन्हें तट ओर ले जाने लगे।।
धीरज धरो कृष्णे, अहो। भद्रे सुभद्रे। शान्त हो, है गति यही तनुधारियों की शोक से मत भ्रान्त हो।
यह कौन कह सकता कि अब अभिमन्यु जीवित है नहीं? जग में सदा को कीर्ति करना, है भला मरना कहीं?
जब तक प्रकाश समर्थ होगा अन्धकार-विनाश में, जब तक उदित होते रहेंगे सूर्य-शशि आकाश में,
अभिमन्यु का विश्रुत रहेगा नाम तब तक सब कहीं, नश्वर जगत में जन्म लेकर वीर मरते ही नहीं।।
आजन्म तप करके कठिन मुनि भी न जा सकते जहाँ, संसार के बन्धन कभी कोई न आ सकते जहाँ।
अक्षय्य सब सुख हैं जहाँ- दु:ख एक भी होता नहीं; सच मानकर मेरे वचन अभिमन्यु को जानो वहीं।।
वह वीर नश्वर देह तजकर आप तो है ही जिया, पर सत्य समझो, है तुम्हें भी अमर उसने कर दिया।
ऐसे समर्थ सपूत का तुम शोक करती हो अहो। उसकी सहज की मृत्यु में गौरव कहाँ था यह कहो?
कहकर वचन भगवान ने यों ज्ञान जब उनको दिया, कुछ शान्त जब हरि-सान्त्वना से हो गया उनका हिया।
तब युग दृगों से दु:खमय अविरल सलिल-धारा बहा; पाकर तनिक अवलम्ब-सा यों याज्ञसेनी ने कहा।।
धिक्कार है हे तात। ऐसी अमरता परलोक में, जीना किसे स्वीकार है आजन्म रहकर शोक में?
पूरे हुए हैं क्या हमारे पूर्व-पाप नहीं अभी? हा। वह हमारा पुत्र प्यारा फिर मिलेगा क्या कभी?

अभिमन्यु को मृत देखकर भी हाय। मैं जीती रही, हा। क्यों न मुझ हतभागिनी के अर्थ फट जाती मही।
दु:ख भोगने के लिए क्या जन्म है मेरा हुआ? हा। कब रहा जीवन न मेरा शोक से घेरा हुआ?
मेरे हृदय के हर्ष हा। अभिमन्यु, अब तू है कहाँ? दृग खोलकर बेटा, तनिक तो देख हम सबको यहाँ।।
मामा खड़े हैं पास तेरे, तू मही पर है पड़ा। निज गुरुजनों के मान का तो ध्यान था तुझको बड़ा।।
व्याकुल तनिक भी देखकर तू धैर्य देता था मुझे, पर आज मेरे पुत्र प्यारे, हो गया है क्या तुझे?
धात्री सुभद्रा को समझकर माँ मुझे था मानता, पर आज तू ऐसा हुआ मानो न था पहचानता।।
हा। पाँच ग्रामों की बुरी वह सन्धि जब होने लगी, सुनकर तथा उस बात को जब मैं बहुत रोने लगी,
क्या याद है? था पाण्डवों के सामने तूने कहा- स्वीकृत नहीं यह सन्धि मुझको, मां। न तू आँसू बहा।
रहते हुए भी शस्त्रधारी पाण्डवों के साथ में, हा। तू अकेला हत हुआ, पड़ पापियों के हाथ में।
कोई न कुछ भी कर सका ऐसा अनर्थ हुआ किया, धिक् पाण्डवों की शूरता, धिक् शस्त्र धारण की क्रिया।।
कहती हुई यों द्रौपदी का कण्ठ गद्‌गद हो गया, विष-वेग के सम शोक से चैतन्य उसका खो गया।
हरि ने सजग कर तब उसे व्यजनादि के उपचार से, दी सान्त्वना समयोपयोगी ज्ञान के विस्तार से।।

सब स्पष्ट था, कहने की आवश्यकता नहीं। अर्जुन का मन हाहाकार कर उठा।

जनार्दन। आपने मुझे क्यों नहीं बताया? उन क्रूर महारथियों को मैं वहीं भस्म कर डालता। माधव। मैं शिबिर में कैसे जाऊँ? उस दु:खविह्वला सुभद्रा को क्या मुख दिखाऊँ? दु:खकातर द्रौपदी उसकी माता से भी बढ़कर थी, वह भला मुझसे बात भी करेगी। हाय रे दुर्भाग्य। मेरे रहते, पिता के रहते वह सुकुमार बालक अरक्षित-सा, अनाथ-सा बलि चढ़ गया। यह क्या हो गया? मेरी सुकोमल पुत्रीसम उत्तरा का क्या होगा? हैं किसी के पास शब्द उसे धीरज बँधाने के? हे अच्युत। यह मैंने क्या गँवा दिया? यह कैसे गँवा दिया? तनिक-सी असावधानी के कारण मेरा अमूल्य लाल चला गया।

गम्भीर श्रीकृष्ण का हाथ अर्जुन के कन्धे पर पहुँचा और बोले, व्याकुल न हो पार्थ। तुम इस पाण्डवकुल के मेरुदण्ड हो। तुम इस प्रकार टूटोगे तो अन्य सबका क्या होगा? तुम्हें गर्व नहीं कि उस नन्हें सिंहशावक ने अपने यशस्वी पितामह महाराज पाण्डु के कुल का नाम उजागर कर दिया। कुल की वैजयंती पताका दिग्‌दिगन्त में फहरा दी? कुल-परिवार के नाम की ज्योतिशिखा को ऊर्ध्वमुखी कर दिया? तुम्हें गर्व नहीं होता धनंजय? तुम पुत्र के अभूतपूर्व त्याग से रोमांचित नहीं हो उठते? ऐसा तेजस्वी पुत्र। इतना वीर-शूर पराक्रमी पुत्र और उसका इतना भावुक, कोमल-मन पिता। सोचो मित्र, उसने किस प्रचण्ड उत्साह से लड़ते-लड़ते वीरगति पायी है। तुम्हारा यह विलाप अभिमन्यु को कितना कष्ट पहुँचाता, यदि वह तुम्हें ऐसी स्थिति में देख पाता, सुन पाता।

अभिमन्यु के दर्शन बिना तुमको न रोना चाहिए, उसकी परम पद-प्राप्ति सुनकर शान्त होना चाहिए।
ले जन्म क्षणभंगुर-जगत में कौन मरता है नहीं? पर है उचित मरना जहाँ पर वीर मरते हैं वहीं।।
अभिमन्यु के घातक सभी शीघ्र मारे जायँगे, तुम स्वस्थ हो, इस पाप का वे दण्ड पूरा पायँगे।
करते अभी तक पार्थ थे जो युद्ध करुणाधीन हो, बन जायँगे अब रुद्र रण में, रोष में अति लीन हो।।
होगा जयद्रथ कल निहित, प्रण कर चुके अर्जुन अभी, धीरज धरो अतएव मन में शान्त होकर तुम सभी।
दो धैर्य मेरी ओर से, सब उत्तरा के चित्त को, सुत-रूप में वह पायेगी खोये हुए निज वित्त को।।
श्रीकृष्ण ने इस भाँति सबको लीन करके ज्ञान में, प्रस्तुत कराई शीघ्र ही चन्दन-चिता सुस्थान में।

अभिमन्यु का मृत देह उस पर शान्ति से रक्खा गया, ज्यों क्रूरता की गोद में कारुण्य का भाजन नया ।।
होकर ज्वलित तत्क्षण चिता की ज्वाल ने नभ को छुआ, पर उस वियोग-विपत्ति विधुरा उत्तरा का क्या हुआ?
उस दग्धहृदया को मरण भी हो गया दुर्लभ बड़ा, वह गर्भिणी थी, इसलिए निज तनु उसे रखना पड़ा ।।
अभिमन्यु का तनु जल गया तत्काल ज्वाला-जाल से, पर कीर्ति नष्ट न हो सकी उस वीरवर की काल से ।
अच्छा-बुरा बस नाम ही रहता सदा इस लोक में, वह धन्य है जिसके लिए हों लीन सज्जन शोक में ।।

अर्जुन व्यथा से ढह गये । उनके शालकन्ध झुक गये थे । नेत्र जलपूरित थे । हृदय आवेग से उमड़ रहा था । पश्चात्ताप और ग्लानि से मन आलोड़ित था । तभी उनकी दृष्टि अपने भ्राताओं पर पड़ी, जो पराजित से, अपराधी से, आत्मग्लानि से लिपे-पुते विषाद की मूर्ति बने खड़े थे । धनंजय के दु:ख में आक्रोश भी सम्मिलित हो गया ।

वे रुद्धकण्ठ बोल उठे, आप सब शस्त्रविद्या के पण्डित बैठे रहे और उस सुकुमार सौभद्र को काल ऐसी सरलता से खींच ले गया । आप सबके रहते । इन्द्र भी उससे युद्ध करता, तो भी आपके रहते अभिमन्यु का प्राणान्त नहीं होना चाहिए था । मुझे यदि स्वप्न में भी भान होता कि समस्त पाण्डव उस बालक की रक्षा करने में असमर्थ हैं, तो मैं ही रक्षा कर लेता । आप लोग बाणवर्षा करते रहे और बालक का शत्रुओं ने वध कर दिया । धिक्कार है । धिक्कार है । मुझे पहले ही क्यों न ज्ञात हुआ कि आप सब पौरुषहीन हैं, पराक्रम शून्य हैं, पुरुषार्थविहीन हैं किन्तु आप लोग तो जैसे हैं वैसे ही रहते । वास्तव में उत्तरदायी मैं ही हूँ जो आप पर अत्यधिक विश्वास कर, आपके अवलम्ब पर उस किशोर को छोड़ गया । जानता था, आप सब कापुरुष हैं, दुर्बल हैं, तो भी विनाशबुद्धि से प्रेरित होकर मैं चला गया । आश्चर्य । आश्चर्य महाबाहो । ये कवच । ये शिरस्त्राण । ये अस्त्रशस्त्र । ये आपके तन पर स्थित क्यों हैं अन्तत: ? केवल शोभावृद्धि करने हेतु ? ये शस्त्र क्या आपके आभूषण हैं ? सज्जा के साधन हैं ? इस वीरवेश में भी आप लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रह गये । और वह हमारा नयनतारक, हमारा लाड़ला वत्स व्याघ्रों से घिरकर इस क्रूरता से मारा गया ।

पांडव प्रस्तरखण्ड से खड़े थे । धर्मराज की वाणी बन्द थी । भयंकर वज्रपात हुआ था पाण्डवकुल पर । सुभद्रा के शिबिर से कोहराम की ध्वनियाँ बढ़ चलीं । सुभद्रा, उत्तरा, उनकी सखियाँ, दास-दासी, बन्धु-बान्धव पछाड़ें खा-खाकर विलाप कर रहे थे । इस वज्रपात से बड़े-बड़े धीर जनों का संयम विगलित हो चला था ।

हा पुत्र । हा वत्स । अर्जुन बिलख उठे ।

अरे उसे तो मात्र व्यूहभेदन ही आता था धर्मराज । उसे क्यों आपने व्यूह में भेज दिया ? वह तो पूर्ण प्रशिक्षित भी न था । जो शावक भलीभाँति उड़ नहीं पाते, उन्हें पक्षी तक एकाकी नहीं छोड़ते और आप जैसे धर्मज्ञ ने यह क्या कर डाला । आपने सोचा भी नहीं, आप क्या कर रहे हैं ? अहो । कैसा अन्धेर कर डाला धर्मराज । कैसी अदूरदर्शिता... कैसा अनर्थ कर डाला ।

युधिष्ठिर बोले, पार्थ । मैंने उससे कहा था कि वह केवल व्यूह-प्रवेश का द्वार बना दे, उसके पीछे-पीछे शत्रुसंहार करते-करते हम सब भी प्रवेश कर जाएँगे... अर्जुन बोला, फिर क्या हुआ, धर्मराज ? धर्मराज पिछड़ गये और बोले, वही जो सदा होता आया है । क्योंकि सिन्धुराज जयद्रथ व्यूह-द्वार पर खड़ा था । धर्मराज फिर कभी आगे बढ़ सकते थे क्या ? रुदनपूरित कम्पित वाणी सुन सबने मुड़कर देखा- केश बिखेरे विक्षित उन्मादिनी-सी पांचाली खड़ी थी । रो-रोकर नेत्र रक्तवर्ण हो गये थे । मुखमण्डल सूज गया था । वेदना का अन्त न था । उसकी विक्षिप्तावस्था देखते ही अर्जुन संयत हो गये ।

जयद्रथ को रुद्र भगवान का वर है, वह हमें रोक सकता है । हम आगे न बढ़ सके पार्थ ।

पांचाली बोली, आगे भी नहीं बढ़ सके, और प्रयास भी न किया ? और उस नन्हे बालक को अरक्षित ही छोड़ दिया ।

युधिष्ठिर बोले, किन्तु द्रुपदसुते। इस समस्त नरसंहार के मूल में तुम ही हो। न यह युद्ध होता, न आज अभिमन्यु को हम खोते। अर्जुन बोला, मैं ही हतभागा हूँ... मैं ही तो उत्तरदायी हूँ जो पुत्र की रक्षा करने में असमर्थ रहा। मैं जयद्रथ का वध करके भी क्या पुत्रवधू से उऋण हो सकूँगा माधव? द्रौपदी बोली, किन्तु आर्यपुत्र। अपने को दोष न दें। धर्मराज ठीक कहते हैं। दोषी मैं हूँ... और द्रौपदी वेग से रो पड़ी। सबके हृदय काँप गये।

किन्तु अर्जुन तत्काल सँभल गये और बोले, यह क्या पांचाली। तुम ऐसे अधीर हो रही हो... वीरमाता होकर। सबको प्रेरणा, साहस, बल और स्फूर्ति देती आयीं और... अब दुर्बल पड़कर तुम यह क्या करने लगीं भारती?

द्रौपदी बोली, मैं दोषी हूँ पार्थ। मुझे विधाता ने इस समूचे जनसंहार का निमित्त ही जैसे बना दिया है। यह सब मेरे कारण ही तो हो रहा है। बालक... वत्स... अभिमन्यु मुझसे प्रात: कह गया था कि मेरे अपमान का प्रतिशोध लेकर ही आएगा... अन्यथा... अन्यथा नहीं लौटेगा... और वह बिलख-बिलखकर विलाप कर उठी।

क्या दोष था मेरे लाल अभिमन्यु का? अर्जुन के रूप, गुण और वीरत्व को लेकर जनमा था, अत: अधिक मोह था, नेह था। चक्रव्यूह में प्रवेश वह जानता था, लौटना नहीं। फिर युधिष्ठिर ने ऐसे कोमलमति को सप्तरथियों से लड़ने भेज दिया? भेजने से पूर्व पूछा भी नहीं कि चक्रव्यूह भेद करने, उसका प्रवेश और प्रस्थान कौशल भी जानते हो या नहीं। सदा आफत के मुंह में जायेंगे अर्जुन या फिर उनके पुत्र। युधिष्ठिर किस चीज के बने हैं। जैसे हृदय नाम का कुछ है ही नहीं। धर्मात्मा पुरुष क्या निष्ठुर ही होते हैं।

द्रौपदी शोक में टूट पड़ी थी और कहा- सखा, मेरा पुत्र अभिमन्यु कहां? उसने क्या पाप किया था? उसे महाकाल ने क्यों छीन लिया? उसकी मृत्यु पृथ्वी पर किस पाप से मुक्त होगी?

कृष्ण ने दीर्घ सांस छोड़कर कहा- सखी। यही युद्ध की दारुण परिणति है। पृथ्वी के मंगल के लिए दुष्टनाशन के मार्ग मे साधु-सतों को भी त्याग करना पड़ता है। विश्वकल्याण के लिए व्यक्ति स्वार्थ को जलांजलि देनी पड़ती है। व्यक्ति को प्राणबलि देनी पड़ती है। विश्वकल्याण के पथ में अभिमन्यु ने प्राणबलि दी है। वीरोचित मृत्यु वरण कर स्वर्गलोक पाया है। पृथ्वी के इतिहास में अभिमन्यु का नाम चमकता रहेगा।

द्रौपदी ने अभियोग-भरे स्वर में विलाप कर कहा- इतिहास के पन्नों में पुत्र जीवित रहने पर मां का दु:ख नहीं मिटता। वीरोचित मृत्यु वरण कर अमर बनाने के लिए कोई मां पुत्र की मृत्युकामना नहीं करती। तुम पुरुष हो। मां का मन कैसे समझोगे? कृष्ण ने म्लान हंसी में कहा- याज्ञसेनी। मैं अभिमन्यु का मामा हूं। तुम वन में थे तब उसके साथ-साथ रहा हूँ। उसका लालन-पालन, शिक्षा, युद्धाभ्यास का सारा दायित्व लेकर सखा का योग्य दायाद बना रहा था। मैं उसका मामा ही नहीं था, उनका पिता-माता-गुरु-सखा, सब कुछ था। उनकी मृत्यु पर मुझे अधिक दु:ख होना चाहिए। पर मैं काल की गति जानता हूँ। अत: मृत्यु के लिए शोक नहीं करता। तुम धीर धारण करो। ऐसे करोगे तो सखा अर्जुन को धीर कौन बंधायेगा? उसका विषादग्रस्त चेहरा देखोगी तो समझ सकेगी। द्रौपदी ने तेज स्वर में कहा- सखा, तृतीय पांडव आपको प्राणों से भी अधिक चाहते हैं, इसलिए उन्हें ऐसा दु:ख दिया? यही तुम्हारी नीति है?

सखा का स्वर शांत था और बोले, युद्ध में मोहग्रस्त होकर वीर अर्जुन जब अस्त्र त्यागकर बैठ गया, बंधु सहोदर, गुरु, पितामह के विरुद्ध अस्त्र न उठाने की बात कहीं तब उसके मन में मोह और जड़ता दूर करने के लिए आत्मा की अमरता, जन्म-मरण, पाप-पुण्य, आत्मा-परमात्मा और संसार संबंधी सारा तत्त्व युद्धक्षेत्र में ही व्याख्या करना पड़ा। अत: अर्जुन

इस दु:ख को धीरे-धीरे पार करेंगे। उनकी चिन्ता न करो।

विराटनगर में रहते समय पुत्रों से रहकर उत्तरा एवं उत्तर को बेटी-बेटे की तरह स्नेह दिया था। उत्तरा को बहू बनाकर लायी कितने सुख के सपने उसकी आंख में अंजन की तरह आंज कर। उत्तर और उसका भाई युद्ध में मृत। किशोरी उत्तरा अंत:सत्वा है, ऐसे में पति अभिमन्युविहीन हो गई। कैसे धीर धरूँ? सुभद्रा सदा की भाग्यवादी है। वह भोली ठहरी। इकलौते पुत्र के उठ जाने पर बोली खो गई। उत्तरा पागल ही हो गई। अर्जुन शोकाभिभूत। युधिष्ठिर नीरव, निर्विकार।

पुत्र अभिमन्यु की नारकीय हत्या कुछ अधिक बेध रही है। सात-सात रथियों ने मिलकर हत्या की। और हत्याकांड के नायक थे, अभिमन्यु के ताऊ कुंतीपुत्र कर्ण। अभिमन्यु के मृत्युशोक में टूट गई। सब लोग रो रहे थे। सब अपने अश्रु पोंछ रहे थे। श्रीकृष्ण सुभद्रा को धीरज बँधाने जा चुके थे। पार्थ पांचाली को धीर बँधा रहे थे। उत्तरा, द्रौपदी, सुदेष्णा सभी अभिमन्यु के शव पर रोकर विलाप कर रहे हैं।

इस भांति पाई वीरगति सौभद्र ने संग्राम में, होने लगे उत्सव निहत भी शत्रुओं के धाम में।
पर शोक पाण्डव-पक्ष में सर्वत्र ऐसा छा गया, मानो अचानक सुखद जीवन-सार सर्व बिला गया।।
प्रिय मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विष-भरा, चित्रस्थ-सी, निर्जीव मानो, रह गई हत उत्तरा।।
संज्ञा रहित तत्काल ही फिर वह धरा पर गिर पड़ीं, उस काल मूर्च्छा भी अहो। हितकर हुई उसको बड़ी।।
कुछ देर तक दुर्देव ने रहने न दी यह भी दशा, झट दासियों से की गई जागृत वहां वह परवशा।
तब तपन नामक नरक से भी यातना पाकर कड़ी, विक्षिप्त-सी तत्क्षण शिबिर से निकल कर वह चल पड़ी।।
अपने जनों द्वारा उठाकर समर से लाये हुए, व्रण-पूर्ण, निष्प्रभ और शोणित-पंक से छाये हुए।
प्राणेश-शव के निकट जाकर चरम दु: सहती हुई, वह नव-वधू फिर गिर पड़ी हा नाथ। हा कहती हुई।।
फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई, कुररी-सदृश सकुरण गिरा से दैन्य दरसाती हुई।
बहु विध विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में, निज प्रिय-वियोग समान दु:ख होता न कोई लोक में।।
मति, गति, सुकृति, धृति, पूज्य, पति, प्रिय, स्वजन, शोभन-संपदा, हा। एक ही जो विश्व में सर्वस्व था तेरा सदा।
यों नष्ट उसको देखकर भी बन रहा तू भार है। हे कष्टमय जीवन। तुझे धिक्कार वारंवार है।।
था जो तुम्हारे सब सुखों का सार इस संसार में, वह गत हुआ है अब यहाँ से श्रेष्ठ स्वर्गागार में।
हे प्राण। फिर अब किसलिए ठहरे हुए हो तुम अहो। सुख छोड़ रहना चाहता है कौन जन दु:ख में कहो?
अपराध सौ सौ सर्वदा जिसके क्षमा करते रहे, हँसकर सदा सस्नेह जिसके हृदय को हरते रहे।
हा। आज उस मुझ किंकरी को कौन से अपराध में, हे नाथ। तजते हो यहाँ तुम शोक-सिन्धु अगाध में?
तज दो भले ही तुम मुझे, मैं तज नहीं सकती तुम्हें, वह थल कहाँ पर है जहाँ मैं भज नहीं सकती तुम्हें?
है विदित मुझको वह्नि-पथ त्रैलोक्य में तुम हो कहीं, हम नारियों को पति-बिना गति दूसरी होती नहीं।।
जो सहचरी का पद मुझे तुमने दया कर था दिया, वह था तुम्हारा इसलिए प्राणेश। तुमने ले लिया।
पर जो तुम्हारी अनुचरी का पुण्य-पद मुझको मिला, है दूर हरना तो उसे, सकता नहीं कोई हिला।।
क्या बोलने के योग्य भी अब मैं नहीं लेखी गई? ऐसी न पहले तो कभी प्रतिकूलता देखी गई।
वे प्रणय सम्बन्धी तुम्हारे प्रण अनेक नये नये, हे प्राणवल्लभ, आज हा। सहसा समस्त कहाँ गये?
एकान्त में हँसते हुए सुन्दर रदों की पाँति से, धर चिबुक मम रुचि पूछते थे नित्य तुम बहु भाँति से।

वह छबि तुम्हारी उस समय की याद आते ही वहीं, हे आर्यपुत्र। विदीर्ण होता चित्त जाने क्यों नहीं।।
बहु भाँति सुनकर सु-प्रशंसा और उसमें मन दिये, सुरपुर गये हो नाथ, क्या तुम अप्सराओं के लिए?
पर जान पड़ती है मुझे यह बात मन में भ्रम-भरी, मेरे समान न मानते थे तुम किसी को सुन्दरी।।
हाँ अप्सराएँ आप तुम पर मर रही होंगी वहाँ, समता तुम्हारे रूप की त्रैलोक्य में रक्खी कहाँ?
पर प्राप्ति भी उनकी वहाँ भाती नहीं होगी तुम्हें? क्या याद हम सबकी वहाँ आती नहीं होगी तुम्हें?
है यह भुवन ही इंद्र-कानन कर्मवीरों के लिए, कहते सदा तुम तो यही थे- धन्य हूँ मैं हे प्रिये।
यह देव दुर्लभ, प्रेममय मुझको मिला प्रियवर्ग है, मेरे लिए संसार ही नंदन-विपिन है, स्वर्ग है।।
मैं हूँ वहीं जिसका हुआ था ग्रन्थि-बन्धन साथ में, मैं हूँ वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ में।
मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्द्धांगिनी, भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिरसंगिनी।।

उत्तरा बोली, उठो आर्य पुत्र। आप ऐसे तो कभी नहीं सोये। मातायें पास बैठी है और आप सो रहे हैं। अपने प्यार का परिणाम देखा माताश्री। अब ये जागे तो इन्हे घुडका दीजिये। अर्जुन और कृष्ण वहां आते हैं। उत्तरा बोली, अब तो उठ जाइये। देखिये परिवार के सभी बडे एकत्रित खड़े हैं। आप इस तरह सोये रहेंगे तो लोग क्या कहेंगे। देखिये पिताश्री ये उठते नहीं। क्यों नहीं उठते। अर्जुन बोला, अब मैं उत्तरा से क्या कहूं केशव? कैसे बताऊं इसे, कैसे समझाऊं इसे? जो भूमिपर लहु लूहान पडा है वो मेरा पुत्र अभिमन्यु नहीं है बल्कि उसकी आत्मा का वस्त्र है बोलिये केशव? कृष्ण बोले, धन्य है इस महावीर के माता-पिता। धन्य है इस बालक की विधवा और धन्य है वे सारी आंखे जिन्हे आज इसके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उठो पुत्री। और क्षत्राणियों की भांति विदा करो इस महावीर को। जो समय के दूसरे छोर तक युवा पीढी के लिये एक दृष्टान्त बनकर रह जायेगा। हे पुत्री मृत्यु तो हर जीवन का अन्तिम सत्य है किन्तु ऐसी मृत्यु तो किसी किसी को ही मिलती है ना। आज यह उन यौद्धाओं के साथ अकेला लडा है जिनसे तो सेनायें तक नहीं लड सकती। आज संसार का हर यौद्धा मेरे वत्स अभिमन्यु के जीवन से मृत्यु बदलने को तैयार हो जायेगा। अग्नि के चारों ओर फेरे लेते हुये इसने तुम्हे वचन दिये थे, आज इसे उन वचनों से मुक्त कर दो पुत्री। मैं अपनी बहन सुभद्रा की ओर से इस बालक को ममता के ऋणों से मुक्त कर रहा हूं। तुम भी इसे अपने ऋणों से मुक्त कर दो। पार्थ अभिमन्यु को उसकी अन्तिम यात्रा के लिये तैयार करो। अर्जुन ढांव ढांव कर जोरों में विलाप करने लगा। अर्जुन बोला, वत्स मैं तुम्हे वचन देता हूं कि कल सूर्यास्त के पहिले जयद्रथ का वध नहीं किया तो मैं स्वयं अग्नि समाधि ले लूंगा।

तेहि काल बहु रुदन मचाई। सभा बीच उत्तरा सिधाई।।
बिखरे बाल मांग थी सूनी। हाथ जोड़ बोली सुनु गुन्नी।।
पति सिधारे यमपुर लोका। हमको केहि कारण से रोका।।
सती होने की आज्ञा देदो। हमको भी पति संग जाने दो।।
बिना पति कुछ भी नहीं सूना सब संसार।।
मात-पिता, सुत, धन, सभी, बिन उनके बेकार।।
सुनि सबके मुख गये सुखाई। मुख पर बात एक नहिं आई।।
कठिन समय जाना भगवाना। बोले बचन हृदय अनुमाना।।
गर्भवती तुम हो मेरी बेटी। छोड़ो संग जाने की हेटी।।

चक्रवर्ती होगा सुत तेरा। नाम परीक्षित बचन है मेरा।।
अभिमन्यु से मिलन का, सुनलो सही उपाय।।
कलियुग में लेगा जनम, एक वैश्य घर जाय।।

सुभद्रा जीवनमें प्रथम बार शोकार्त हुई थीं। उन महा महनीयाने समस्त विपरीत परिस्थितियोंको, बड़ीसे बड़ी विपत्तिको अपने भाईका मंगल विधान ही माना था और उसमें सदा सुप्रसन्न रही थीं किन्तु उनका मातृत्व आज उन्हें उन्मथित कर रहा था। वे कातर क्रन्दन कर रही थीं। अभिमन्युकी पत्नी उत्तरा वह बेचारी बालिका। अभिमन्यु ही सोलह वर्षके हुए थे इस समय और वह तो उनसे छोटी थी दो वर्षं। अभी इसी वर्ष युद्धारम्भसे कुछ मास पूर्व विराटनगरमें पिताने उसका विवाह सम्पन्न किया था। विवाहमें लगी मेहंदीकी ललाई भी हाथोंसे नहीं छूटी और वह विधवा हो गयी। उसका क्षण-क्षणभर मूर्च्छित होना। सुभद्रासे पुत्रवधूकी यह व्यथा कैसे सही जाय। उत्तराने सुनते ही सहमरणका निश्चय कर लिया था।

श्रीकृष्णने उत्तराकी ओर देखा- बहू। अपनेको सम्हाल लो। तुम इस कुरूवंशकी माता हो चुकी हो। अभिमन्युकी धरोहरकी सुरक्षाका दायित्व आ गया है तुमपर। उसकी ओरसे उदासीन मत बनो।

कृष्णने द्रौपदीको बुलाकर कह दिया- उत्तरा अन्तर्वत्नी है। उसके गर्भमें जो अभिमन्युका अंश है, वही कुरुवंशका बीज बनेगा। अत: उत्तराको सती होनेकी आज्ञा शास्त्र नहीं देता। उसे समझाओ।

उत्तराका सती होनेका आवेश सुनते ही समाप्त हो गया और अब वह शोक-विह्वल बालिका। उसे कैसे कोई समझावे।

श्रीकृष्ण सर्वसमर्थ हैं। वे जहाँ सुमनसे भी सुकुमार हृदय हैं, वहाँ वज्रसे भी निष्ठुर भी हैं। इन्हें जहाँ भक्तका तनिक-सा भी भय-कम्पन व्याकुल कर देता है, उसके समीपसे भी विपत्तिकी छाया निकल जाय, यह स्वीकार नहीं होता, वही इन्हें किसीके भी मरणका शोक-स्पर्श नहीं करता। इनका संकल्प जहाँ असंख्य ब्रह्मांडोंका सृजन करता है, वहीं संहारका महाताण्डव भी करता है।

बाल-विधवा उस बालिकाने सिमटे हुए ही भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। वह अपने सगे श्वसुरके इन सखा, अपने पतिके इन स्नेहमय मामाको अपने मानसमें सदा पूजती रही है। पतिने एकान्तमें इनका ही तो निरन्तर सुयश सुनाया है। इनके सम्मुख उसका संकोच उसे बोलने भले न दे किन्तु इनका आदेश, इनका दिया दायित्व तो उसका सर्वस्व है। वह जीवित रहेगी, इनकी आज्ञाका पालन करनेके लिए जीवित रहेगी। उसे अपने शोकको समाप्त ही करना चाहिए।

उत्तरा के सती होने का आग्रह तो कृष्ण ने मना कर दिया और उसे वरदान दिया कि तू अगले जनम में, कलियुग में महासती होगी और वहीं उत्तरा कलियुग में नारायणी नाम से जनमी। जो आज राणी सती नाम से विख्यात है और बंसल गोत्रवालों की कुलदेवी है।

सती होने की आस तुम्हारी। पूरी होगी राजकुमारी।।
कलियुग में जब तूं जनमेगी। शुभ नाराणी नाम धरेगी।।
अभिमन्यु भी कलियुग मांई। जनमें तनधन नाम धराई।।
तनधन संग रचाय विवाहा। सति होगी सैं दिन मुकलावा।।
जो जन मेरी भक्ति करेंगे। मुझसे पहले तुझे नवेंगे।।
घर-घर तेरी पूजा होगी। क्या गृहस्थ क्या तापस जोगी।।
जो राणी सति नाम जपेगा। सुख सम्पत्ति से पूर्ण रहेगा।।

गाँव झुंझुनू वास करेगी। घर-घर सतकी ज्योत जलेगी।।
कन्या ध्यावे घर, वर पावे। युवती सुंदर पुत्र खिलावे।।
वृद्धा जपे अमर पद पावे। व्यापारी धन खूब कमावे।।
रोग, दोष सारे कटें, जो कोई तुझको ध्याय।
वैभव सकल मिले उसे, रमाकान्त गुणगाय।।
रोगी जपे, रोग छुट जावे। भूत, पिशाच निकट नहिं आवे।।
मंगल उत्सव, ब्याह, सगाई। पूजा, हवन कथा सुखदाई।।
सकल काज पल में सवरेंगे। जो नर तेरा ध्यान धरेंगे।।
पारवती, लक्ष्मी, ब्रह्माणी। सन्तोषी माता गुण खानी।।
तेरे तन में वास करेगी। जब तू अग्निप्रवेश करेगी।।
जदपि अनेक नाम जग मांही। मेरा वास तेरे मन मांही।।
एहि कारण यह नाम दिया है। नाराणी कल्याण किया है।।
कह उत्तरा सुनहु गिरधारी। शिरोधार्य आज्ञा प्रभु थारी।।
सकल सभा हर्षित भइ भारी। साधु-साधु की ध्वनी उचारी।।
एहि प्रकार कलियुग के मांई। लियो जनम उत्तरा सुहाई।।
नाराणी सो नाम सुहायो। कलियुग में आनंद बढ़ायो।।
कथा पुनीत सकल जग जानी। तेहि ते मैं संक्षेप बखानी।।
पूर्व जनम की कथा सुहाई। रमाकांत सेवक कह गाई।।
जेहि विधि किया चरित शुभकारी। नाम राणी सति दादी धारी।।
बहुरि सकल देवन्ह सिर नाई। कहहुं चरित्र कवित्त बनाई।।
भारत देश महान है, जग में है विख्यात।
उसी भूमि पर आयकर, जनम लियो सतिमात।।

कृष्ण बोले, कृष्णे। इनको लेकर तुम लौटो। विजयकी प्रतिज्ञा सुन ही चुकी हो। कल क्या होगा, कौन कह सकता है।

स्वयं अर्जुनके लिए आशंका है, यह बात वहाँ साभिप्राय कही गयी थी। इससे सुभद्रा, उत्तराका भी ध्यान आसन्न विपत्तिकी ओर चला गया और जो घट चुका था उसका शोक ही घट गया। द्रौपदीने कहा, कलके सम्बन्धमें मुझे कोई चिन्ता नहीं है। गाडीव धन्वाके रथकी रश्मि तुम्हारे हाथोंमें रहती है, इसलिए वे चाहे जो प्रतिज्ञा कर लेनेको अपनेको स्वाधीन मानते हैं। वे भले भूल करते हों, उसको सुधार लेनेमें तुम असमर्थ नहीं हो। द्रौपदी सब स्त्रियोंको लेकर अपने शिबिर में चली गयी। श्रीकृष्णकी चिंता इतनी ही तो नहीं थी।

सञ्जय कहते हैं- तदनन्तर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, भगवन्। अब आप सुभद्रा और उत्तराको जाकर समझाइये; जैसे भी हो, उनका शोक दूर कीजिये। तब श्रीकृष्ण बहुत उदास होकर अर्जुनके शिबिरमें गये और पुत्रशोकसे पीड़ित अपनी दु:खिनी बहिनको समझाने लगे। उन्होंने कहा- बहिन। तुम और बहू उत्तरा- दोनों ही शोक न करो। कालके द्वारा सब प्राणियोंकी एक दिन यही स्थिति होती है। तुम्हारा पुत्र उच्च वंशमें उत्पन्न, धीर, वीर और क्षत्रिय था; यह मृत्यु उसके

योग्य ही हुई है, इसलिये शोक त्याग दो। देखो। बड़े-बड़े संत पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान और सद्बुद्धिके द्वारा जिस गतिको प्राप्त करना चाहते हैं, वही गति तुम्हारे पुत्रको भी मिली है। तुम वीरमाता, वीरपत्नी, वीरकन्या तथा वीरकी बहिन हो; कल्याणी। तुम्हारे पुत्रको बहुत उत्तम गति प्राप्त हुई है, तुम उसके लिये शोक न करो। बालककी हत्या करानेवाला पापी जयद्रथ यदि इन्द्रलोकमें जाकर छिपे तो भी अब अर्जुनके हाथसे उसका छुटकारा नहीं हो सकता। कल ही तुम सुनोगी कि जयद्रथका मस्तक कटकर समन्तपञ्चकसे बाहर जा गिरा है। शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रियधर्मका पालन करके सत्पुरुषोंकी गति पायी है, जिसे हमलोग तथा दूसरे शस्त्रधारी क्षत्रिय भी पाना चाहते हैं। चिन्ता छोड़ो और बहूको धीरज बँधाओ। अर्जुनने जैसी प्रतिज्ञा की है, वह ठीक ही होगी; उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह निष्फल नहीं होता। यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, राक्षस, पक्षी, देवता और असुर भी युद्धमें जयद्रथकी सहायता करें, तो भी वह कल जीवित नहीं रह सकता।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर सुभद्राका पुत्रशोक उमड़ पड़ा और वह बहुत दुखी होकर विलाप करने लगी- हा पुत्र। तुम्हारे बिना आज मैं मन्दभागिनी हो गयी। पुत्र। तुम तो अपने पिताके समान पराक्रमी थे, फिर युद्धमें जाकर मारे कैसे गये? पाण्डव, वृष्णिवंशी तथा पाञ्चाल वीरोंके जीतेजी तुम्हें किसने अनाथकी भाँति मार डाला। हाय। तुम्हें देखनेके लिये तरसती ही रह गयी। आज भीमके बलको धिक्कार है। अर्जुनके धनुष-धारणको और वृष्णि तथा पाञ्चाल वीरोंके पराक्रमको भी धिक्कार है। केकय, चेदि, मत्स्य, और सृञ्जयोंको भी बारंबार धिक्कार है, जो ये युद्धमें जानेपर तुम्हारी रक्षा न कर सके। आज सारी पृथ्वी सूनी और श्रीहीन दिखायी देती है। मेरी शोकाकुल आँखें रणक्षेत्र में अभिमन्युको ढूँढ़ती हैं, पर देख नहीं पातीं। हाय। श्रीकृष्णके भानजे और गाण्डीवधारी अर्जुनके अतिरथी पुत्र होकर भी तुम रणभूमिमें पड़े हो, मैं कैसे तुम्हें देख सकूँगी? पुत्र। कहाँ हो? आओ, मेरी गोदमें बैठो; तुम्हारी अभागिनी माता तुम्हें देखनेको तरस रही है। हा वीर। तुम सपनेकी सम्पत्तिके समान दर्शन देकर कहाँ छिप गये? यह मनुष्यजीवन पानीके बुलबुलेके समान कितना चञ्चल है। पुत्र। तुम असमयमें ही चले गये; तुम्हारी यह तरुणी पत्नी शोकमें डूबी हुई है, इसे कैसे धीरज बँधाऊँगी? निश्चय ही कालकी गतिको जानना विद्वानोंके लिये भी कठिन है; तभी तो श्रीकृष्ण-जैसे सहायकके जीते-जी तुम अनाथकी भाँति मारे गये। वत्स। यज्ञ और दान करनेवाले आत्मज्ञानी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, पुण्यतीर्थोंमें स्नान करनेवाले, कृतज्ञ, उदार, गुरुसेवक तथा सहस्त्रों गोदान करनेवाले जिस गतिको प्राप्त होते हैं, वही तुम्हें भी मिले। पतिव्रता स्त्री, सदाचारी राजा, दीनोंपर दया करनेवाले, चुगलीसे अलग रहनेवाले, धर्मशील, व्रती और अतिथि-सत्कार करनेवाले लोगोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें भी प्राप्त हो। आपत्ति और संकटके समय जो धैर्यपूर्वक अपनेको सँभाले रहते हैं, सदा माता-पिता की सेवा करते है और ही पत्नी से सन्तुष्ट रहते है उनकी जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो। जो मात्सर्यसे रहित हो सब प्राणियोंको सान्त्वनापूर्ण दृष्टिसे देखते हैं, क्षमाभाव रखते हैं, जो किसीको आहत नहीं करते, जो मद्य, मांस, मद, दम्भ और मिथ्यासे दूर रहते हैं, दूसरोंको कष्ट नहीं पहुँचाते, जिनका स्वभाव संकोची है, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण और जितेन्द्रिय हैं, उन साधु पुरुषोंकी जो गति होती है, वही तुम्हारी भी हो।

पुत्र अभिमन्यु की नारकीय हत्या कुछ अधिक बेध रही है। सात-सात रथियों ने मिलकर हत्या की और हत्याकांड के नायक थे; अभिमन्यु के ताऊ कुंतीपुत्र कर्ण। अभिमन्यु के मृत्युशोक में टूट गई।

इस प्रकार शोकसे दुर्बल एवं दीनभावसे विलाप करती हुई सुभद्राके पास द्रौपदी और उत्तरा भी आ पहुँचीं। अब तो उनके दु:खकी सीमा न रही। सब फूट-फूटकर रोने लगीं और उन्मत्तकी तरह पृथ्वीपर गिरकर बेहोश हो गयीं।

HHH(९८)HHH

हे जीवितेश। उठो, उठो, यह नींद कैसी घोर है, है क्या तुम्हारे योग्य, यह तो भूमि-सेज कठोर है।
रख शीश मेरे अंक में जो लेटते थे प्रीति से, यह लेटना अति भिन्न है उस लेटने की रीति से।।
कितनी विनय मैं कर रही हूँ क्लेश से रोते हुए, सुनते नहीं हो किन्तु तुम बेसुध पड़े सोते हुए।
अप्रिय न मन से भी कभी मैंने तुम्हारा है किया, हृदयेश। फिर इस भाँति क्यों निज हृदय निर्दय कर लिया?
होकर रहूँ किसकी अहो। अब कौन मेरा है यहाँ? कह दो तुम्हीं बस न्याय से अब ठौर हैं मुझको कहाँ?
माता-पिता आदिक भले ही और निज जन हों सभी, पति के बिना पत्नी सनाथा हो नहीं सकती कभी।।
रोका बहुत था हाय। मैंने जाइए मत युद्ध में, माना न तुमने किन्तु कुछ भी निज विपक्ष-विरुद्ध में।
हैं देखते यद्यपि जगत में दोष अर्थी जन नहीं, पर वीर जन निज नियम से विचलित नहीं होते कहीं।।
किसका करूँगी गर्व अब मैं भाग्य के विस्तार से? किसको रिझाऊँगी अहो। अब नित्य नव श्रृंगार से?
ज्ञाता यहाँ अब कौन है मेरे हृदय के हाल का? सिन्दूर-बिन्दु कहाँ चला हा। आज मेरे भाल का?
हा। नेत्र-युत भी अन्ध हूँ, वैभव सहित भी दीन हूँ, वाणी-विहित भी मूक हूँ, पद-युक्त भी गतिहीन हूँ।
हे नाथ घोर विडम्बना है आज मेरी चातुरी, जीती हुई भी तुम बिना मैं हूँ मरी से भी बुरी।।
जो शरण अशरण के सदा अवलम्ब जो गतिहीन के, जो सुख दुखीजन के, तथा जो बन्धु दुर्विध दीन के,
चिरशान्तिदायक देव है यम। आज तुम ही हो कहाँ, लोगे न क्या हा हन्त। तुम भी सुध स्वयं मेरी यहाँ?
उस समय ही कृष्णा, सुभद्रा आदि पाण्डव-नारियाँ, मानो असुर-गण-पीड़िता सुरलोक की सुकुमारियाँ।
करती हुईं बहु भाँति क्रन्दन आ गईं सहसा वहाँ, प्रत्यक्ष ही लक्षित हुआ तब दु:ख दुस्सह-सा वहाँ।।

उनकी यह दशा देख श्रीकृष्ण बहुत दुखी हुए और उन्हें होशमें लानेकी तरकीब करने लगे। उन्होंने जल छिड़ककर उन्हें सचेत किया और कहा- सुभद्रे। अब पुत्रके लिये शोक न करो। द्रौपदी। तुम उत्तराको धीरज बँधाओ। अभिमन्युको बड़ी उत्तम गति प्राप्त हुई है। हम तो यह चाहते हैं कि हमारे वंशमें जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे सब यशस्वी अभिमन्युकी ही गति प्राप्त करें। तुम्हारे महारथी पुत्रने अकेले जो काम कर दिखाया है, वही हम और हमारे सब सुहृद् भी करें।

सुभद्रा, द्रौपदी और उत्तराको इस प्रकार आश्वासन देकर कृष्ण पुन: अर्जुनके पास गये और मुस्कराते हुए बोले- अर्जुन। तुम्हारा कल्याण हो, अब जाकर विश्राम करो।

४) सुभद्रा का विषाद और कृष्ण का सान्त्वना देना

अभिमन्युके मारे जानेका समाचार शिबिरमें भी पहुँचा और वहाँसे सुभद्रा, द्रौपदी, उत्तरा आदि स्त्रियां रोती हुई पाण्डव की बैठक में आ गयी थीं। अर्जुन स्वयं इतने शोक कातर थे कि वे अपने शिबिरमें क्रन्दन करती उन महिलाओंके समीप जानेका भी साहस अपनेमें नहीं पाते थे। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा- माधव। आप ही अपनी बहिन सुभद्रा और वधू उत्तराको समझाइये।

भैया, कहो मेरे दृगों का आज तारा है कहाँ? मुझ दु:खिनी हतभागिनी का सौख्य सारा है कहाँ?
सम्पूर्ण-गुण-सम्पन्न वह अनुचर तुम्हारा है कहाँ? हा। पाण्डुवंश-प्रदीप अब अभिमन्यु प्यारा है कहाँ?
भैया, तुम्हें क्या विश्व में मुझको दिखाना था यही? हा। जल गया यह हत हृदय, दृग-ज्योति सब जाती रही।
तब काल गति के मार्ग में अभिमन्यु ही था क्या अहो? करुणानिधे, करुणा तुम्हारी हाय यह। कैसी कहो?
रोने लगी यों कह सुभद्रा, दु:ख वेग न सह सकी, पर रुद्धकण्ठा द्रौपदी कुछ भी न उनसे कह सकी।
बस अश्रु-पूर्ण विलोचनों से देखकर हरि को वहाँ, निर्जीव-सी वह रह गई बैठी जहां की ही तहाँ।।

मानो गिरा भी कह सकी पीड़ा न उसकी हार के, वह दु:खिनी चुप रह गई हरि को समक्ष निहार के।
पर अश्रुजल-अवरुद्ध उसकी दृष्टि ने मानो कहा- अब और क्या इस दु:खिनी को देखना बाकी रहा।।

सुभद्रा बोली, यह क्या हुआ भैया? आप और धनंजय मिलकर भी अभिमन्यु की रक्षा नहीं कर सके।

कृष्ण ने सुभद्रा को समझाया और बोले, हाँ। हम दोनों भी उसकी रक्षा नहीं कर सके। हम दोनों ही यहाँ नहीं थे। उसका लाभ उठाया इन कौरवों ने। अकेले निहत्थे बालक को चक्रव्यूह में बंदी कर छह-छह महारथियों ने घेर कर उसका वध कर दिया। पर तुम चिंता मत करो बहन। धनंजय ने कल संध्या तक उसका प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की है। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। कल सूर्यास्त तक जयद्रथ का प्राणांत हो जाएगा। जिन्होंने अभिमन्यु का इस प्रकार वध किया है, वे सब इसका फल पाएँगे। उन्हें भी अपने अथवा अपनों के रक्त से इस अन्याय का मूल्य चुकाना पड़ेगा।

सुभद्रा बोली, जयद्रथ तो मारा जाएगा, किंतु अभिमन्यु वह तो लौट कर नहीं आएगा।

कृष्ण बोले, मैं समझता हूँ तुम्हारी पीड़ा को। जानता हूँ कि अभिमन्यु बहुत जल्दी चला गया। पर सोचो, वह इतनी कम अवस्था में ही वह सब कुछ कर गया, जो कोई वीर क्षत्रिय अपने दीर्घ जीवन में करने की इच्छा रखता है। वीरता और पराक्रम का यशोस्तंभ स्थापित कर गया अभिमन्यु।

सुभद्रा देखते ही भाईके चरणोंपर गिरकर फूट पड़ी- भैया। तुम्हारे रहते यह क्या हो गया?

श्रीकृष्ण रोये नहीं। कोई दिखावा नहीं किया। स्वस्थ स्वरमें बोले- तुम भी इतनी व्याकुल होती हो? तुम वीर जननी हो। जानती हो कि अमर कोई रह नहीं सकता। अभिमन्यु वृद्ध होकर रोगशय्यापर मरता तो कोई लाभ था? वह क्षत्रियके लिए परम अभीष्ट गतिको पा सका। असंख्य योद्धाओंका संहार करके, कौरव दलके महारथियोंका मानमर्दन करके, सम्मुख समरमें मरकर सूर्य-मण्डल भेदन कर योगियोंको प्राप्त होनेवाली दुर्लभ गतिसे परमपदको प्राप्त हुआ। यह अवसर योधाके जीवनमें तो बार-बार नहीं आता। सुभद्रा बोली, वह तो ठीक है भैया। किंतु उसने जीवन का कौन-सा सुख देखा? क्या सुख भोगा? अभी उसने जीवन में देखा ही क्या था?

कृष्ण बोले, पुण्यात्मा संसार में सुख भोगने के लिए नहीं, कर्म करने आता है। जिसने कर्त्तव्य किया, वह मुक्त हुआ और जिसने सुख भोगा, वह कर्म बंधन का बंदी हुआ। जीवन और मृत्यु के चक्र का बंदी। बंदी तो बार-बार इस मर्त्यलोक में आएगा। तुम समझती हो कि अभिमन्यु अपने दिव्य लोकों और दिव्य शरीर को छोड़कर इस पृथ्वी पर इस मर्त्य शरीर के भोग भोगने आया था? जो कर्म करने आते हैं, वे कम समय में ही अपना कर्म कर अपने लोक को लौट जाते हैं। उसने अपने दिव्य कर्मों से इस पृथ्वी पर यश का दिव्य शरीर पाया है, और दिव्य लोकों में अपने लिए अक्षय स्थान बनाया है। अभिमन्यु की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है।

सुभद्रा बोली परंतु मेरा तो एक ही पुत्र था भैया। कृष्ण बोले, तेरा और मेरा क्या होता है? कौन किसका है? तेरा होता तो तू रोक न लेती उसे। जिसे वह पीछे छोड़ गया, वह उसका नहीं था। उसका होता तो साथ न ले जाता। अपनों को ही खोज रही है तो पांडवों के अन्य पुत्र तेरे नहीं हैं क्या? द्वारिका में तूने बस अभिमन्यु को ही पाला था तेरह वर्ष? द्रौपदी के पुत्र तेरे पास नहीं थे? वे तेरे पुत्र नहीं हैं? इस काया के संबंध को ही संबंध मानती है तू? जिसे तूने जन्म दिया, वही तेरा है? पर यह काया ही तेरी नहीं है सुभद्रा। हम यह शरीर नहीं हैं। स्वयं को सँभाल, क्योंकि तुझे उत्तरा को भी सँभालना है। उत्तरा की भावी संतान भी तेरी ही संतान है। तेरे पास सांसारिक दायित्व के नाम पर अब केवल उत्तरा है। उसकी देखभाल कर। उसका दुख कम नहीं है तुझसे और उसकी अवस्था और अनुभव तुझसे बहुत कम है। तेरे पास संसार को देखने की

जो दृष्टि है, संभव है उसके पास वह भी न हो। जाओ उसे सँभालो।

सुभद्रा बोली, धनंजय तो देख नहीं पाए कि संशप्तकों के युद्ध के पीछे क्या है। पर क्या आपका विवेक भी नहीं समझ पाया कि उन्हें इस युद्ध की स्थिति में अपने परिवार और अपनी सेना को शत्रुओं की कृपा पर छोड़कर नहीं जाना चाहिए था? क्या आप भी उन्हें समझाने में समर्थ नहीं थे कि उनका इस प्रकार जाना विनाशकारी हो सकता है?

कृष्ण बोले, मनुष्य का अहंकार बहुत बलवान होता है। उसके उदय से बुद्धि कार्य नहीं करती। विवेक नष्ट हो जाता है। क्या बात है सुभद्रा? किसी संशय से पीड़ित हो?

सुभद्रा बोली, आप कहते हैं भैया। कि हमें अपने कर्मों का फल मिलता है। पुण्य कर्मों से सुख मिलता है और दुष्कर्मों से व्यक्ति दु:ख पाता है। इसका कहीं यह अर्थ भी है कि जो व्यक्ति सुखी दिखाई पड़ता है, वह अपने सत्कर्मों का सुख भोग रहा है और जो मनुष्य दु:खी है, वह अपने पापों का दंड पा रहा है। मेरे मन में बार-बार आ रहा है कि मेरे किन पापों के कारण मेरा किशोर पुत्र अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ? उसे पूर्णायु क्यों नहीं मिली? अभिमन्यु पूर्वजन्मों के अपने किन पापों के कारण इस अल्पायु में संसार छोड़कर चला गया?

कृष्ण बोले, तुम कहना चाहती हो कि अभिमन्यु की इस वीरगति का अर्थ है कि यह उसे, तुम्हें तथा धनंजय- तीनों को ही तुम लोगों के पापों का दंड मिला है? कौन है ऐसा व्यक्ति, जो पुत्र की इस प्रकार की मृत्यु के क्षण में माँ को सांत्वना देने के लिए कह सकता है कि वह, उसका पुत्र और उसका पति-तीनों ही पापी हैं; और अपने पापों का दंड पा रहे हैं? यह उचित नहीं है। दुखों का अंत तो सत्य को जानकर, उसे स्वीकार कर ही होता है।

ब्रह्म अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के माध्यम से यह सृष्टि रचता है और आगे का सारा प्रपंच उस प्रकृति के तीनों गुणों का ही है। इस दृष्टि से कर्त्ता या तो ब्रह्म है अथवा उसकी प्रकृति। विद्या माया भी उसी की है और अविद्या माया भी। परा शक्ति भी उसकी है और अपरा शक्ति भी। वस्तुत: प्रकृति के गुण ही सारे जीवों से सब कुछ करवा रहे हैं। किंतु उस अविद्या माया के वशीभूत होकर आत्मा देह के साथ अपना तादात्म्य कर लेती है और अपने अहंकारवश स्वयं को कर्त्ता मान लेती है। जो मनुष्य स्वयं को कर्मों का कर्त्ता मान लेता है, वह कर्मबंधनों में बँधता है। जो उसे निष्काम रूप से करता है और यही जानता है कि कर्त्ता वह नहीं कर्तार है, वह उन कर्म बंधनों में नहीं बँधता। ठीक है? तो अपने कर्मों का फल तो उसी को मिलेगा, जो अपने अज्ञान और अपनी आसक्ति के कारण स्वयं को कर्त्ता मानेगा। जो जीव अपना सारा कर्तृत्व ईश्वर को समर्पित कर देता है और स्वयं को कर्त्ता नहीं मानता, उस पर कर्म का नियम-संसार का कार्य-कारण का नियम- लागू नहीं होता। वह ईश्वर का उपकरण मात्र है। जो कर्त्ता का अहंकार पालता है, वह प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने कर्मों का फल अवश्य पाता है। अब कर्म फल को केवल दो भागों-सुख और दुख या दंड और पुरस्कार में मत बाँटों। कर्म का फल तो क्रिया की प्रतिक्रिया है। उसका रूप कुछ भी हो सकता है। यह माया की सृष्टि है। यहाँ जो सत्य है, वह दिखाई नहीं देता; और जो सत्य नहीं है, वह दिखाई पड़ता है। इसका अर्थ है कि जिसको मनुष्य सुख मान बैठता है, आवश्यक नहीं कि वह सुख ही हो। जिसे हम दुख मानते हैं, वह अनिवार्यत: दुख नहीं होता।

पांडवों का जन्म हस्तिनापुर से दूर पर्वतों पर स्थित ऋषिकुल में हुआ। दुर्योधन तथा उसके भाई हस्तिनापुर में कुरुओं के राजप्रासाद में जन्मे। कोई भी यह मानेगा कि दुर्योधन का शैशव सुखमय था और पांडवों का दुखों और कठिनाइयों से भरा। किंतु पांडवों का वह दुख उनके लिए हितकर था। उसी के कारण उन्हें धर्म की शिक्षा मिली और वे धर्मात्मा हुए। क्या तुम चाहोगी कि पांडवों का जन्म हस्तिनापुर में होता, चाहे वे दुर्योधन के समान पापी ही बनते?

सुभद्रा बोली, नहीं। मैं यह नहीं चाहती। किंतु क्या दुखों को सौभाग्य माना जाए? आप मुझसे कहेंगे कि क्या अभिमन्यु का वध मेरे लिए सौभाग्य का प्रतीक है?

कृष्ण बोले, नहीं। ऐसा नहीं कहूँगा। केवल इतना ही कहूँगा कि संसार में जिसे सुख और दुख कहा जाता है, उन दोनों में ही सम रहने का प्रयत्न करो। यदि दुख में यह कहकर सांत्वना दी जाती है कि इसे ईश्वर की इच्छा मानकर स्वीकार करो और इतने व्याकुल मत होओ तो यह भी कहा जाना चाहिए कि सुख को भी ईश्वर की इच्छा मानकर सहज रूप से स्वीकार करो। उससे इतना उत्फुल्ल होना भी श्रेयस्कर नहीं है। दूसरी बात यह है सुभद्रे। कि जिसे हम अपना मान बैठते हैं, वह हमारा होता नहीं है। हमारा होता तो हमें छोड़कर न जाता। जब वह मेरा है ही नहीं, तो मुझसे छिना क्या?

सुभद्रा बोली, जब वह मेरा था ही नहीं तो उसके चले जाने पर मेरा मन दुखी क्यों है? जहाँ दुख है? वहाँ कुछ दोष भी है ही।

कृष्ण बोले, ठीक कह रही हो। जहाँ दुख है, वहाँ दोष भी है। पर वह दोष तुम्हारे पूर्व जन्मों के पाप नहीं हैं, अपने पुत्र में तुम्हारी आसक्ति है। यह आसक्ति ही कष्ट देती है। यही दुख का कारण है।

सुभद्रा बोली, क्या आप प्रेम को आसक्ति कहते हैं?

कृष्ण बोले, नहीं। प्रेम को आसक्ति नहीं कहता। मैं आसक्ति को ही आसक्ति कहता हूँ। प्रेम, मोह और आसक्ति में अंतर करना सीखो सुभद्रे। द्वारिका में अभिमन्यु और द्रौपदेयों के पालन-पोषण के लिए जो कष्ट तुमने सहा, और उस कष्ट में जो सुख पाया, वह तुम्हारा प्रेम है। उन पर तुम जितना अधिकार जताओगी, उन्हें अपने साथ बाँध कर रखने का जितना प्रयत्न करोगी; और उनके विकास के मार्ग में जितनी बाधा तुम बनोगी, वह तुम्हारा मोह होगा।

अपना जीना स्थगित कर, उनके माध्यम से जीने का प्रयत्न और इस प्रक्रिया में स्वयं पाया गया कष्ट तथा उनको दिया गया क्लेश तुम्हारी आसक्ति होगी। मोह और आसक्ति के कारण दुख होता है, प्रेम के कारण नहीं। प्रेम सबको मुक्त करता है। वह न स्वयं बँधता है, न औरों को बाँधता है। अधिक से अधिक संख्या में जीवों से प्रेम करो सुभद्रे। किंतु किसी के प्रति मोह मत पालो और आसक्ति तो ईश्वर के सिवाय और किसी में होनी ही नहीं चाहिए।

सुभद्रा ने उनकी ओर देखा और उसके मन का क्षोभ एक बार ही फूट पड़ा, यह ईश्वर का कैसा न्याय है कि धर्मराज युधिष्ठिर जैसा सात्विक और पवित्र जीवन जीनेवालों को कष्ट दिया जाए और धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन जैसे पापियों को राजपाट का सुख ऐसे में किसी को भी उसके न्याय में विश्वास रह जाएगा?

कृष्ण बोले, कहा न कि यह माया की सृष्टि है। ईश्वर जिनसे रुष्ट होता है, उन्हें इतना सुख देता है कि वे उसे भूल जाएँ और भूले ही रहें; और जिनसे प्यार करता है, उन्हें कष्ट देता है। तुम्हें नहीं लगता कि पांडवों ने जो कष्ट सहा, वह उनकी तपस्या थी, उनकी परीक्षा थी? उस तपस्या ने उन्हें जो बना दिया है, वह तुम अभी नहीं जानती हो। उनका स्थान देवताओं से भी ऊँचा है। उनकी उपलब्धि मानव इतिहास में अद्वितीय होगी। सहस्त्राब्दियों तक उनकी पूजा होगी। धृतराष्ट्र की सारी उपलब्धियाँ शरीर के सुख तक सीमित हैं। शरीर असमर्थ होता जाएगा और उन सुखों का भी अंत हो जाएगा। विषय तो रहेंगे, किंतु उसकी इंद्रियाँ उनका भोग नहीं कर पाएँगी। इसमें अन्याय कहाँ है सुभद्रे?

सुभद्रा को कोई तर्क नहीं सूझ रहा था। कृष्ण कह तो ठीक ही रहे थे किंतु उसका मन अभी भी विद्रोह किए हुए था, एक ओर हम अपने किए हुए कर्मों का फल पाते हैं; और दूसरी ओर ईश्वर रुष्ट होकर मनुष्य को सुख देता है, तथा प्रसन्न होकर कष्ट देता है। दोनों बातें कैसे संभव हैं?

कृष्ण बोले, संभव तो हैं किंतु हम उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, क्योंकि माया ने हमें मोहित कर रखा है। जिसे हम

सुख मानते हैं, वह सुख नहीं है; जिसे हम दुख मानते हैं, वह दुख नहीं है। यह तो बुद्धि का फेर है। पलंग पर बैठ गरिष्ठ भोजन करता हुआ व्यक्ति स्वयं को परम सुखी मान रहा है; जबकि वह सीधे-सीधे रोग के राज्य में प्रवेश कर रहा है। अखाड़े, खेल के मैदान अथवा खेत-खलिहान में श्रम कर पसीना बहाते व्यक्ति को, वह कष्ट सहन करता हुआ दुखी व्यक्ति मान रहा है, जबकि वह नि:रुग्णता और पुष्टता की ओर अग्रसर हो रहा है। अपने संचित कर्मों के परिणामस्वरूप, व्यक्ति ईश्वर द्वारा उन कर्मों की ओर प्रेरित होता है, जो उसके वास्तविक सुख-दुख के दाता हैं। यह दूसरी बात है कि मनुष्य की सीमित दृष्टि उस सुख-दुख को न देख सके। कर्म सिद्धांत और ईश्वर की माया में कहीं कोई विरोध नहीं है सुभद्रे।

पुरस्कार परीक्षा के बाद ही मिलता है और परीक्षा उसी की होती है, जो परीक्षा देने को प्रस्तुत हो। जो परीक्षा देना नहीं चाहता, वह न तो स्वयं को तपस्या की भट्टी में तपाता है और न ही पुरस्कार पाता है। किसी भी बड़ी उपलब्धि के लिए परीक्षा तो देनी ही होगी। ईश्वर को पाने के लिए सात्विकता तो अर्जित करनी ही होगी; और स्वयं को तपाए बिना कोई निर्मल कैसे हो सकता है।

सुभद्रा बोली, हाँ भैया। मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि अभिमन्यु कहाँ होगा, किस रूप में होगा, किस स्थिति में होगा? कृष्ण बोले, सुभद्रे। आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसका केन्द्र इस शरीर में अवस्थित है; किंतु उसकी परिधि कहीं नहीं है। जब वह केन्द्र एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित हो जाता है, तो पहले शरीर की तथाकथित मृत्यु हो जाती है। मृत्यु का अर्थ है उस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित हो जाना। आत्मा जड़ की उपाधियों से बद्ध नहीं है। वह स्वरूपत: नित्य, शुद्ध बुद्ध तथा मुक्त स्वभाव है।

मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष को प्राप्त कर लिया है। सूर्य के समान कांतिमान, अंधकार और अज्ञान से परे उस महान् पुरुष को मैं जानता हूँ। केवल उस पुरुष को जानकर ही मनुष्य मृत्यु को लाँघ जाता है, मृत्यु से परे जा सकता है, मृत्यु के चक्र से छूट सकता है। क्या अर्थ है इसका? इसका अर्थ है कि इस बंधन में बँधने का, मृत्यु के चक्र में पड़ने का, अंधकार और अज्ञान में डूबने का एक ही कारण है कि हम उस पुरातन पुरुष को भूल गए हैं। भूलने से पहले हम उसे जानते भी रहे हो सकते हैं। उसे भूलकर ही आत्मा जड़ को सत्य मानने और उसकी दासता करने लगी है।

श्रीकृष्ण चाहें, ये सम्मुख हों तो किसीका शोक टिका करता है। सुभद्राने नेत्र पोंछ लिये- भैया। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। सबका श्रेय तुम्हारे ही हाथोंमें सुरक्षित है। तुम वही करते हो, जिसमें तुम्हारे चरणाश्रितोंका आत्यन्तिक हित हो। मैं भूल रही थी कि अभिमन्यु मेरा था। वह तो तुम्हारा ही था। तुम्हारा स्नेह भाजन था। तुमने जिसमें उसका श्रेय समझा, वही उचित था। इसप्रकार सान्त्वना पाकर चली गयी।

यहाँ पाण्डव शिबिरमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- धनंजय। तुमने अपने भाइयों तथा मुझसे भी पूछे बिना जयद्रथके वधकी प्रतिज्ञा कर ली, यह उचित नहीं किया। यह दुस्साहस है। इससे तुम्हारा उपहास होगा। अपने गुप्तचरोंने जो कौरवपक्षका समाचार दिया है, वह चिन्ताजनक है।

इसके अनन्तर कृष्ण ने सबको बहुत धीरज दिया, फिर आर्त्त अर्जुन को वहाँ इस भाँति उत्तेजित किया।
अत्यन्त रोषावेग में तुमने किया है प्रण कड़ा, अब यत्न क्या इसका सखे? यह कार्य है दुष्कर बड़ा।।
यों सुन वचन गोविन्द के निर्भय धनंजय ने कहा- वीरत्व-करुणा शान्ति का त्रिस्त्रोत गंगाजल बहा।
निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे, हे देव। मेरे यत्न तुम हो मत दिखाओ भय मुझे।।
कहते हुए यों पार्थ के दो बूँद आँसू गिर पड़े, मानो हुए दो सीपियों से व्यक्त दो मोती बड़े।

फिर मौन होकर निज शिबिर में वे तुरन्त चले गए, छलने चले थे भक्त को, भगवान आप छले गए।।
कहते हुए यों पार्थ पर सहास उदासी छा गई, उत्तर दिशा से उत्तरा की याद उनको आ गई।
हा। निज जनों का शोक सबको स्वप्न में भी सालता, मृत-बन्धुओं का ध्यान ही मन को विकल कर डालता।।
उत्पत्ति होती है जहाँ पर नाश भी होता वहाँ, होता विकास जहाँ सखे। है ऱ्हास भी होता वहाँ।
होता जहाँ पर सौख्य दु:ख भी वहाँ अनिवार्य है, करती प्रकृति अविराम अपना नियमपूर्वक कार्य है।।
सुख-दु:ख-विचार-विहीन तुमको कर्म का अधिकार है, संसार में रहना नहीं, पाना अचल उद्धार है।
माना न तुमने एक भी, सौ-सौ तरह हमने कहा, अब भी तुम्हारा चित्त क्या व्याकुल विमोहित हो रहा?
गद्‌गद हृदय से पार्थ तब बोले वचन श्रद्धा भरे, लीला तुम्हारी है विलक्षण हे अखिल लोचन हरे।
इस आपदा से त्राण मेरा कौन करता तुम बिना? प्रत्यक्ष दिखलाकर सभी दु:ख कौन हरता तुम बिना?

५) अभिमन्यु की अन्त्येष्टि

इस ओर देकर पाण्डवों को शान्तिदायी सान्त्वना, सौभद्र-शव-संस्कार की श्रीकृष्ण ने की योजना।
कृष्णादि से वेष्टित उसे भगवान ने देखा यथा, मुरझी लताओं के निकट सूखा प्रसून पड़ा यथा।।
कृष्णा, सुभद्रा आदि को अवलोककर रोते हुए, हरि के हृदय में भी वहाँ कुछ-कुछ करुण रस-कण चुए।
आते हुए अवलोक उनको देह भान विसार के, बोली सुभद्रा- मृतकवत्सा गो-समान पुकार के।।

अर्जुन अभिमन्यु की शव को उठाकर अन्त्येष्टि के लिये लेकर आया। सभी कौरव महारथी, दुर्योधन, कृपाचार्य, दु:शासन, कर्ण, शकुनि वहां पर शोक प्रकट करने आये। अर्जुन उनके पास आकर बोला मेरे पुत्र अभिमन्यु की चिता पर आपका हार्दिक स्वागत है। दुर्योधन बोला, इसके बाद तुम्हारी बारी है। अर्जुन बोला, आपके शिष्य अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु आप जैसे योद्धाओं से लडते समय घबराया तो नहीं था आचार्य। द्रोण बोले, हे कौन्तेय आज सूर्यास्त होने से पहिले तक वीर अभिमन्यु के जैसा यौद्धा कोई भी इस रणभूमि में नहीं थां हममें से कोई भी ऐसा यौद्धा नहीं था जो उसके हाथों से घायल नहीं हुआ हो। यह वृद्ध ब्राह्मण तुम्हारे पुत्र के शव को प्रणाम करने आया है। मेरे और युधिष्ठिर के बीच में केवल वही था। यदि वो ना होता तो मैं युधिष्ठिर को बन्दी बना चुका होता और युद्ध समाप्त हो गया होता। द्रोण अभिमन्यु के शव को श्रद्धांजलि अर्पित कर प्रणाम कर वहां से चले गये। सभी कौरवों ने बारी-बारी से अभिमन्यु की परिक्रमा की। कर्ण बोला, हे सौभद्र इस राधेय का प्रणाम स्वीकार करो। धन्य है तेरी जननी। धन्य है तेरे पिता अर्जुन। धन्य है वो वंश जिसके इतिहास के आंगन में तू एक दीप की भांति सदैव जलता रहा है। प्रणाम। जयद्रथ के आने पर अर्जुन बोला तुम नहीं सिन्धु नरेश। तुम मेरे पुत्र के शव को हाथ नहीं लगाओगे। मैं अपने वीर पुत्र के शव का अपमान सहन नहीं कर सकता भ्राताश्री। आप इस व्यक्ति को पहिचान नहीं रहे है। ये हमारा दास जयद्रथ है जिसे आपने एक दिन मुक्ति दान दिया था और आज यह मेरे पुत्र की हत्या का कारण बना हुआ है। महादेव की सौगन्ध यदि सूर्यास्त नहीं हो चुका होता तो मैं इस कायर को यहीं मार डालता। जयद्रथ तुम कल का सूर्यास्त नहीं देखोगे और यदि तुमने कल का सूर्यास्त देखा तो मैं अग्नि समाधि ले लूंगा। सभी परिवारवालों ने अभिमन्यु को अग्नि दान दिया।

पिता अग्नि दे पुत्र को रखे हृदय पर भार, मन में तो बडवाग्नि है नयन अश्रु की धार,
धू धू कर जलती चिता, धू धू करे प्रतिशोध, जयद्रथ पर था पार्थ का पल-पल बढता क्रोध।

द्रोण अपने शिबिर की ओर लौटे तो वे स्वयं ही नहीं समझ पा रहे थे कि वे प्रसन्न हैं अथवा अप्रसन्न। वे सफल हैं अथवा

असफल। उन्होंने युधिष्ठिर को बंदी कर दुर्योधन को सौंपने का वचन दिया था। वह तो हो नहीं सका।

क्या समझें द्रोण... उनका चक्रव्यूह भी असफल रह गया। छह-छह महारथियोंने मर्यादा भंग कर उस अकेले निहत्थे बालक को मारा। यदि वे समझते हैं कि अभिमन्यु के वध से अर्जुन टूट जाएगा- तो उन्होंने अर्जुन को नहीं जाना। अभिमन्यु के वध का समाचार पाकर अर्जुन के हृदय का उग्रदेव जागेगा। वह पहले से भी अधिक प्रचंड होकर लड़ेगा। द्रोण ने पांडव पक्ष को एक अधिरथी से वंचित किया है, किंतु उन्होंने उनके युद्ध के आवेश में जो वृद्धि की है, वह क्या कम घातक है? अब तक वे लोग कौरव सभा में हुए द्रौपदी के अपमान और अपने वनवास के कष्टों को ही नहीं भूले; ऊपर से उन्हें यह घाव और दे दिया गया। पर कौन जाने, आज के युद्ध का विश्लेषण दुर्योधन किस रूप में करता है। वह तो युद्ध गणितज्ञ है, जाने किसके मरने और किसके जीने को कहाँ जोड़ता है और कहाँ घटाता है।

द्रोण के शिबिर में कृपाचार्य बोले, युद्ध में यौद्धा वीरगति को प्राप्त होते हैं आचार्य। द्रोण बोले, तो क्या मैं वीर नही हूं। मैं क्यों नहीं प्राप्त हो गया वीरगति को? अभिमन्यु तो अभी छोटा था, बालक था, आचार्य। हम सबने युद्ध के नियम तोडकर उसका वध किया जबकि वे नियम स्वयं हम लोगों के द्वारा ही बनाये गये थे। मैं तो इतना लज्जित हूं आचार्य की मैं तो गंगापुत्र के सामने जाने का साहस भी नहीं कर सकता। यदि वो मुझसे पूछ बैठे आचार्य द्रोण तुम भी? तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा आचार्य? आज हमने अभिमन्यु के वध में जितनी मर्यादाएँ तोड़ी हैं, उसके बाद न कोई क्षत्रिय धर्म रह जाता है, न युद्ध मर्यादा। मेरी अपेक्षा है कि कल वह उग्रदेव के समान युद्धक्षेत्र में अवतरित होगा।

पार्थकी इस प्रतिज्ञाका समाचार कौरव शिबिरमें भी पहुँच गया। जयद्रथ भय और शोकसे व्याकुल होकर भाग जाना चाहता था किन्तु दुर्योधन उसे लेकर द्रोणाचार्यके समीप गया। द्रोणाचार्यने जयद्रथकी रक्षा करनेका वचन दिया। दुर्योधनका कहना था- कल शाम तक जयद्रथको बचा लिया जाय तो अर्जुन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार जल मरेगा। अर्जुनके न रहनेपर शेष पाण्डवोंको जीत लेना तो बहुत सरल है।

सिन्धु नरेश जयद्रथ ने आकर द्रोण को प्रणाम किया। द्रोण बोले, बैठो जयद्रथ। कल के सूर्योदय होने पर तुम्हे युद्ध करना है नरेश। तुम्हें विश्राम करना चाहिये था। जयद्रथ बोला, मेरे हृदय में एक कांटा खटक रहा है गुरुदेव और आप ही मेरे हृदय से वो कांटा निकाल सकते हैं। आप मेरे भी गुरु है और अर्जुन के भी फिर वो आपका सर्वश्रेष्ठ शिष्य क्यों है? द्रोण बोले, उसके सर्वश्रेष्ठ होने में मेरा कोई हाथ नहीं है वत्स। मैंने तो तुम दोनों को एक जैसी ही शिक्षा देने का प्रयत्न किया था। किन्तु वो मेरी दी हुई शिक्षा से सन्तुष्ट होकर बैठा नहीं रहा। उसने मेरी दी हुई शिक्षा को आधार शिला मानकर चतुर्विद्या का दुर्ग बना लिया और तुमने मेरी दी हुई शिक्षा से संतुष्ट होकर बैठै रहे किन्तु यह भयभीत होने का विषय नहीं है वत्स। मृत्यु तो हर जीवन का अन्तिम सत्य है वत्स। मृत्यु कायर की भी होती है और वीरों की भी। नि:सन्देह अर्जुन मेरा सर्वश्रेष्ठ शिष्य है किन्तु मैं स्वयं कौरव सेना का प्रधान सेनापति हूं। क्या अभिमन्यु वध में मैं तुम्हारे साथ नहीं था? कल भी मैं तुम्हारे साथ ही रहूंगा सिन्धु नरेश। कल भी तुम्हारे पास ही रहूंगा। तुम्हारी सुरक्षा का दायित्व मेरा है इसलिये अपने शिबिर में जाकर विश्राम करो। जयद्रथ वहां से चला गया।

दुर्योधन अपने शिबिर में बंदी सिंह के समान चक्कर लगा रहा था। संध्या समय जब वह दिन भर के युद्ध के लाभ-हानि का गणित मिलाने बैठा, तो वह समझ नहीं पा रहा था कि उसने क्या पाया और खोया था। दिनभर के युद्ध में सहस्त्रों सैनिक खोकर वे लोग केवल अभिमन्यु का वध कर पाए थे। इस युद्ध से पहले दुर्योधन ने अभिमन्यु को कभी कुछ नहीं गिना था; किंतु आज के युद्ध में उसने जो प्रखर वीरता दिखाई थी, उससे उसने अपने पिता और मामा दोनों के गुण प्रकट कर दिए

थे। वह और जीवित रहता तो कौरवों के लिए और बड़ा संकट प्रमाणित होता। उसका मारा जाना तो ठीक रहा। यदि कहीं पितामह ही युद्धक्षेत्र में महासेनापति के रूप में खड़े रहते तो साधारण सैनिकों का चाहे कितना संहार करते, पर वे अभिमन्यु का वध नहीं होने देते। वे कौरवों और पांडवों को एक ही परिवार मानते हैं- वे अपने वंश का वध नहीं होने देते। वे अपने वंश की अगली पीढ़ी का वध कैसे होने देते। यह तो द्रोण का ही सेनापतित्व था कि उन्होंने चक्रव्यूह की रचना कर अभिमन्यु को फाँस लिया और सारे नियमों और मर्यादाओं को एक किनारे रख, अभिमन्यु का वध करवा दिया। द्रोण को पांडवों से सचमुच कोई मोह नहीं रह गया है क्या? पर त्रिगर्तों ने युधिष्ठिर को जीवित बंदी बनाने का जो दो दिनों का अवसर दिया था, उसे तो खो दिया द्रोण ने। क्या सचमुच अभिमन्यु ने ऐसा ही युद्ध किया था कि द्रोण असहाय हो गए थे। या फिर उनके मन में पांडवों की ममता जाग उठी थी। सैनिकों को शांति काल में इसलिए नहीं पाला जाता कि युद्धकाल में वे पद त्याग करें या संधि और समझौतों की बात करें।

दुर्योधन के शिबिर में दु:शासन, कर्ण और शकुनि बैठे विचार विमर्श कर रहे है। कर्ण बोला, अर्जुन के हाथों से सिन्धु नरेश का बचना मुझे तो सम्भव दिखाई नहीं देता। शकुनि बोला, किन्तु यदि हम कोई उपाय कर के कल जयद्रथ को अर्जुन के हाथों से बचा ले तो अर्जुन अग्नि समाधि ले लेगा। दुर्योधन बोला, और शेष बचे हुये यौद्धाओं को हम गाजर मूली की तरह काटकर फेक देंगे। कर्ण बोला, भीम को न भूलो मित्र। दुर्योधन बोला, भीम को मुझसे भी अधिक कौन जानता है भला मित्र? उसी की भांति उसकी बुद्धि भी मोटी है। वो मूर्ख है। उसे वीरगति की प्राप्ति की ओर ढकेल देना कठिन नहीं होगा। खटका तो बस अर्जुन से है। बल्कि अर्जुन से भी अधिक खटका उसके मायावी साथी वासुदेव से है। शकुनि बोला, कल सिन्धु नरेश उसके हाथों चाहे मारे जाये या ना मारे जाये किन्तु अर्जुन का अन्त निश्चित है। दु:शासन बोला, वो कैसे मामाश्री? शकुनि बोला, जयद्रथ के साथ-साथ उसके पिता का एक श्राप भी चल रहा है। दुर्योधन बोला, श्राप, कैसा श्राप? शकुनि बोला, हा भान्जे, जयद्रथ का वध करनेवाले के लिये तो यह श्राप ही हुआ ना। वो बृहदाश्व का इकलौता पुत्र है और यह बात तो तुमसे अधिक कौन जानता है भान्जे कि पुत्र मोह पिता से क्या नहीं करवा सकता। बृहदाश्व भी पुत्र मोह का त्याग नहीं कर पाये। हुआ यह है कि एक दिन जयद्रथ ने उनके चरण स्पर्श किये और पिता ने आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव। जयद्रथ बोला, मुझे वो आशीर्वाद दीजिये पिताश्री जो हस्तिनापुर नरेश शान्तनु ने अपने पुत्र भीष्म को दिया था। बृहदाश्व बोले, न तुम गंगापुत्र भीष्म हो और न मैं शान्तनु। इसलिये मैं तुम्हे इच्छा मृत्यु का आशीर्वाद नहीं दे सकता। किन्तु तुम्हे एक श्राप का कवच अवश्य पहिना सकता हूं। हे पुत्र तेरे कटे हुये सिर को भूमिपर गिरने का कारण बनेगा उसके सिर से उसी समय एक विस्फोट होगा जो उसकी मृत्यु का कारण बनेगा। जयद्रथ बोला, आज्ञा दीजिये पिताश्री। शकुनि बोला, इसलिये कल तो इस युद्ध का अन्तिम दिन ठहर ही गया भान्जे। यदि अर्जुन कल जयद्रथ का वध ना कर पाया तो वो अग्नि समाधि ले लेगा और यदि वो वध कर पाया तो बृहदाश्व को वो श्राप उसे जीने नहीं देगा। इसलिये कल का दिन तो शुभ ही शुभ है भान्जो। प्रतीक्षा करने योग्य है। इतने में जयद्रथ दुर्योधन के शिबिर में आता है।

आचार्य बोले, ठीक है। कल प्रत्येक मूल्य पर जयद्रथ की रक्षा की जाएगी। अर्जुन मेरा शिष्य है। उसे युद्ध में एक दिन के लिए रोके रखना कोई ऐसा असाधारण कार्य नहीं है, जो मेरी क्षमता से बाहर हो।

राम बाण की ही तरह है अर्जुन का बाण, चूक न कर सकता कभी जब करले सन्धान।
दिये जा रहे सान्तवना जयद्रथ को सब लोग, पर सबके मन खा रहा भय का भीषण रोग।

युद्ध न आयु देखे न पीढ़ी। इसीलिये धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में तीरों के बिछौने पर गंगापुत्र भीष्म लेटे हुए है और उनसे थोडी

दूरपर अभिमन्यु की चिता जल रही है। एक वृद्ध एक बालक इन दोनों के बीच में भरतवंश की दो पीढियां है। इस युद्ध की आग एक वंश की चार पीढियों को अपनी लपेट में लिये हुये है और इस युद्ध की आड में चिताओं की आग भी मिलती आ रही है। तो हर दिल एक अंगारा बन चुका है जो हर यौद्धा को जलाये जा रहा है। किन्तु दु:ख की बात यह है कि हर यौद्धा किसी मां का बेटा ही होता है और यह आग मांओं की नींद भी जला रही है। सैकड़ों, हजारों आंखे करवटें बदल रही हैं।

गांधारी कुन्ती के पास आती है। गान्धारी बोली, कुन्ती। तुम जाग क्यों रही हो कुन्ती? कुन्ती बोली, नींद नहीं आ रही दीदी। गान्धारी बोली, जिन मांओं के पुत्र रणभूमि में होते है उनसे न तो जागा जाता है और न ही सोया जाता है। आओ हम प्रार्थना करे कि मैं भगवान से तुम्हारे पुत्रों के लिये लम्बी आयु मांगु और तुम मेरे पुत्रों के लिये किन्तु हम भगवान को संकट में क्यों डाले? हममें से किसी न किसी एक की प्रार्थना तो उन्हें अस्वीकार करनी ही पडेगी। कुन्ती फफक फफक रोने लगती है। गांधारी बोली, क्या हुआ कुन्ती। कुन्ती बोली, पता नहीं दीदी आज शाम से ही बहुत रोना आ रहा है। लगता है कि कुरुक्षेत्र में आज बहुत बडी दुर्घटना घटी है दीदी। गान्धारी बोली, हम दोनों भी दुर्घटनाओं के युग में जी रहे है। इसलिये जब मेरी आँखों में आँसू आते है तो मैं उनसे कह देती हूँ कि जाओ और अपने लिये कोई और आँखे ढूँढ़ो। कुन्ती बोली, मेरे आंसू मेरा कहां नहीं मानते दीदी। भगवान भरतवंश की रक्षा करे।

भीष्म शर शैय्या पर लेटे हुये हैं। अर्जुन उनके पास आता है आकर प्रणाम करता है। भीष्म बोले, आओ पुत्र, कुछ कहो। अर्जुन बोला, आज मैं जो कुछ कहने आया हूँ वो कहने के लिये मेरे पास उचित शब्द नहीं है पितामह। भीष्म बोले, कुछ कहने आये हो या कुछ बताने वत्स? अर्जुन बोला, मैं शोक प्रकट करने आया हूं। आज के युद्ध में आपका प्रपौत्र प्रिय अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हो गया पितामह। भीष्म बोले, अर्थात चौथी पीढ़ी में भी हाथ लग गया। उसका वध किसने किया वत्स? अर्जुन बोला, गुरुदेव आचार्य द्रोण ने, कुलगुरु कृपाचार्य ने, गुरु भाई अश्वत्थामा ने, वो महारथी दुर्योधन, शकुनि, दु:शासन, सूतपुत्र कर्ण ने। भीष्म बोला, यह कैसे सम्भव है पुत्र। निर्णय तो यह लिया गया था कि एक से एक लडेगा। अर्जुन बोला, यह निर्णय तब लिया गया था जब कौरव सेना के सेनापति आप थे। गुरुवर ने चक्रव्यूह का निर्माण किया था और उन सात-सात महारथियों ने मेरे पुत्र को घेरकर मार डाला पितामह। भीष्म बोले, तुमने सहायता क्यों नहीं की उसकी? अर्जुन बोला, धोखे से मुझे सुशर्मा दूसरी ओर ले गया था पितामह। और जयद्रथ ने उसके पीछे चक्रव्यूह में किसी को भीतर जाने नहीं दिया। मेरा पुत्र वीर अभिमन्यु अकेला पड गया था पितामह। और उन सात महारथियों ने मेरे निहत्थे पुत्र को घेरकर मार डाला पितामह। भीष्म बोले, मेरे आंसू पौंछ दो पुत्र। अर्जुन जिन लोगों ने एक निहत्थे बालक को घेरकर मार दिया हो वो महारथी कहलाने के योग्य नहीं है। वो तो कायर थे उन्हे इस अपराध के लिये क्षमा कर दो। वास्तव में तो उस बालक का हत्यारा तो वो जयद्रथ है जिसने उसे सहायता नहीं पहुंचने दी। उसे क्षमा मत करना वत्स। पुत्र उत्तरा के सिर पर मेरी ओर से हाथ रखकर कहना कि अभिमन्यु जैसे महान यौद्धा की विधवा होना भी बड़े गर्व की बात है।

उस दिन पाण्डव-शिबिरमें अकेले अर्जुन ही निश्चिन्त सोये। जिसके लिए श्रीकृष्ण सचिन्त जग रहे हों, वह चिन्ता क्यों करे। लेकिन शेष सब लोग कलकी चिन्ता और चर्चामें जागते रहे रात्रिभर। कौरव-शिबिरमें तो कोई सो ही कैसे सकता था। दुर्योधन समझता था कि कल जयद्रथको बचा लिया तो अपनी विजय सुनिश्चित हो गयी। वह द्रोणाचार्य, कर्ण, कृप प्रभृति सबके यहाँ सबको उत्साहित करता घूमता रहा। आचार्य द्रोण रात्रिभर सैनिकोंका व्यूह बनाते रहे और स्वयं उस व्यूहका निरीक्षण करते रहे। कोई उस समय कहाँ जानता था कि यह तेरहवें दिनकी रात्रिका जागरण कितनोंका काल बनेगा और कलकी रात्रि भी युद्ध करते ही बीतनी है। अब युद्ध तो जयद्रथकी ही नहीं, स्वयं आचार्य द्रोणकी आहुति लेकर

विरमित होगा। अर्जुनको निश्चिन्त सो जानेके लिये कहकर श्रीकृष्ण अपने शिबिरमें आये। वे भी विश्राम करने लेटे किन्तु कुछ ही क्षणोंमें बैठ गये और दारुकको बुलाकर समीप बैठा लिया। उस रात्रिके निशीथमें श्रीकृष्णके आंतरिक उद्‌गारका साक्षी उनका वह एकमात्र सारथी बना जो उनका अन्तरंग आत्यंतिक सेवक था।

द्रौपदी के शिबिर में द्रौपदी सो रही है। उत्तरा भी वहीं है जाग रही है। द्रौपदी उठ जाती है और बोली कहां जा रही हो पुत्री। उत्तरा बोली, सूर्योदय हो गया है माताश्री और वो अभी तक नहीं जागे? द्रौपदी बोली, धीरज से काम लो पुत्री। और यह मान लो कि मृत्यु तो साधारण लोगों की होती है। सैनानी तो वीरगति को प्राप्त होते हैं। अपने को सम्भालो पुत्री। तुम्हारे पास अभिमन्यु की एक थाती धरोहर है। उस थाती को संभालो पुत्री। तुम्हारे गर्भ में जो जीव है वो भारतवर्ष और भरतवंश का भविष्य है उसके पालन-पोषण के लिये अपने आप को सम्भालो। उत्तरा बोली, किन्तु यह युद्ध का समय तो सिर पर आ गया है फिर क्या ऐसे समय किसी महारथी को सोना शोभा देता है? मैं उन्हे जगाकर आती हूँ। द्रौपदी बोली, जाओ किन्तु कल के युद्ध में वो बहुत थक गया पुत्री उसे सोने ही दो पुत्री। उत्तरा बोली, नहीं माताश्री, जगाना आवश्यक है। हां, यदि नहीं जगाया तो क्षत्राणियां मुझपर हंसेगी कि मैंने आपके पुत्र को रणभूमि में नहीं भेजा। हां आप चिन्ता न करे माताश्री। कौरव सेना वासुदेव के शिष्य का भला क्या बिगाड सकती है। द्रौपदी बोली, हां यह भी ठीक है। मैं उसे जगाकर आऊं। उत्तरा बोली, नहीं, अब उनको जगाना पत्नी के कार्यक्षेत्र में है माताश्री। द्रौपदी बोली ठीक है जाओ। उत्तरा अभिमन्यु की बैठक में आती है और कहती है हे जगदीश, हे सूर्यमुखी चन्द्रवंशी बहुत सो चुके अब उठ भी जाओ। युद्ध की बेला आ गई है। देखो तो सेनाये रणभूमि की ओर प्रस्थान कर चुकी है और इस सोने की आदत कैसी डाली है तुमने, यदि सोना भी है तुम्हे तो शैय्या छोडकर भूमि पर क्यों सो रहे हो? उठो ना। द्रौपदी वहां आती है। उत्तरा बोली, मेरी बात क्यों नहीं मानते। उठो ना। देखिये ना उठ ही नहीं रहे। द्रौपदी बोली, यह अब नहीं उठेगा पुत्री। उत्तरा बोली, क्यों नही उठेंगे माताश्री? क्या सचमुच मैं विधवा हो गई हूं। नहीं नहीं यह नहीं हो सकता। उत्तरा की संज्ञा लौटी। द्रौपदी बोली, रोओ मत पुत्री। कल सत्य तेरा ऋणी हो गया, धर्म तेरा ऋणी हो गया। आज संसार की हर सुहागिन तुझसे छोटी हो गई। जब तक यह संसार रहेगा, सुहागिने तुझे सादर प्रणाम करेगी। उत्तरा बोली, मुझसे नहीं जिया जायेगा। द्रौपदी बोली, तुझे जीना पडेगा पुत्री। तुझे अभिमन्यु की थाती के लिये जीना पडेगा इसलिये तो युद्ध को अशुभ कहते है इसमें खोना अधिक पडता है और पाना कम। पुत्री यह वो सौदा है जिसमें विजय भी कांटे बनता है। यह बात मैं आज समझी पुत्री। हमारी सेनायें यह युद्ध अवश्य जीतेगी किन्तु जब तेरे ज्येष्ठ पिताश्री अपने सिंहासन पर बैठेंगे तब क्या वो यह नही देखेंगे कि वो सिंहासन अपने प्रिय अभिमन्यु के रक्त से सना है। उठो पुत्री।

अर्जुन द्रोण की शिबिर में आया और बोला, रोने आया हूँ आपके सम्मुख। महावीर अर्जुन तो रोता हुआ अच्छा नहीं लगेगा, पर आपका शिष्य बालक अर्जुन तो रो सकता है न। आप नहीं जानते? जानकर अनजान बनते हैं। आपने घेर कर मेरे नन्हे से पुत्र को मार दिया। कोई न्याय है यह? आपको मुझसे प्रेम नहीं तो कोई बात नहीं, किन्तु न्याय और धर्म की मर्यादा से तो प्रेम होना चाहिए। द्रोण अपनी आँखें नहीं उठा सके और बोले, वह दुर्योधन की इच्छा थी मेरी नहीं।

अर्जुन बोला, दुर्योधन की इच्छा तो संसार को आग लगा देने की है। उसमें तो आप उसके सहायक हो ही रहे हैं। अब धर्म को आग लगा देने के लिए तो उसके सहायक मत होइए। वैसे यह सब कहने नहीं आया था मैं। मैं तो केवल इतना कहने आया था कि पुत्र की मृत्यु से बहुत पीड़ित हूँ मैं। अपने पौत्र को मारकर आपको कैसा लग रहा है? द्रोण बोले, प्रतिशोध से क्षमा अधिक महान् कर्म है।

द्रौपदी अपने शिबिर में बोली, वह मोह कितना दृढ़बद्ध है कि तेरह दिनों का युद्ध हो जाने पर, इतने लोगों के वीरगति प्राप्त करने पर भी धनंजय ने अभी एक बार भी आचार्य द्रोण के वध का मन नहीं बनाया है।

द्रोण जीवित रहेंगे, कृपाचार्य जीवित रहेंगे, कर्ण, कृतवर्मा और वह दु:शासनपुत्र, जिसने अचेत अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया- वे सब जीवित होंगे और हमारे भाइयों, पिताओं, पतियों और पुत्रों का वध करने का निरंतर प्रयत्न करेंगे। यदि कहीं धनंजय, आचार्य द्रोण के वध की प्रतिज्ञा करते तो कौरवों के आधे प्राण आज संध्या तक निकल जाते।

परीक्षार्थी की पुन: परीक्षा बुद्धिमत्ता नहीं है। यह तो वह अपराधी है जो क्षमा का दान पा पश्चात्ताप नहीं करता, पहले से भी अधिक भयंकर हो उठता है।

आज अभिमन्यु की मृत्यु हो गई; पर कल क्या होगा? अर्जुन ने बहुत संकटपूर्ण प्रतिज्ञा कर ली थी। उसके प्रति उसके मन में कोई पश्चात्ताप भी नहीं था। उसकी भूल उसके ध्यान में ही नहीं आ रही थी। इस समय अपने आवेश के कारण वह आत्मविश्वास से परिपूर्ण था और जयद्रथ के वध के लिए कृतसंकल्प था। पर क्या उसका ध्यान अपने मार्ग की कठिनाइयों पर नहीं गया? पता नहीं ऐसी प्रतिज्ञाएँ करने से पूर्व ये लोग कुछ सोचते क्यों नहीं हैं। अर्जुन के मन में ऐसा संकल्प जागा ही था तो उसे वह मन में ही रखता और कल संध्या तक जयद्रथ के वध का पूरा प्रयत्न करता। इस सार्वजनिक घोषणा की क्या आवश्यकता थी। मन का आवेग उससे रोका नहीं गया। घोषणा ही करनी थी तो कहता कि वह संध्या समय तक जयद्रथ का वध कर देगा। चितारोहण से इस शपथ को जोड़ने का क्या औचित्य था? अर्जुन का नियंत्रण नहीं है स्वयं पर। पुत्र की मृत्यु ने उसके संयम के सारे बंधन तोड़ दिए हैं। भूल गया वह कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। भूल गया वह कि ये दैहिक संबंध भ्रम मात्र हैं। कैसे स्मरण रहता उसे यह सब। अभी उसका अहंकार पूर्णत: विगलित नहीं हो पाया है। ओह क्षत्रियों का यह अहंकार। कोई भी किसी भी दिन विचलित हो जाता है।

अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है, किंतु अपने ही प्राणों को संकट में डाल दिया है।

महायुद्ध का तेरहवाँ दिन अभिमन्यु के गगनभेदी, अशरण पराक्रम से गूँज उठा। द्रोणाचार्य के रचे चक्रव्यूह को भेदने हेतु आज अभिमन्यु भीम सहित कौरव-सेना में प्रवेश कर गया। एक के बाद एक शत्रुसेना के मण्डल भेदते हुए वह चक्रव्यूह के सीधे केद्रस्थान में जा पहुँचा। वहाँ दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण से उसका तुमुल गदायुद्ध हुआ। दोनों मूर्च्छित हुए। किन्तु पहले सावधान हुए दु:शासन-पुत्र ने मूर्च्छित अभिमन्यु पर गदा-प्रहार करते हुए, उसका वध कर दिया। उन्मत्त जयद्रथ ने औंधे गिरे अभिमन्यु के शव को सीधा करने के लिए लात मारी।

५) महाभारत का १४ वें दिन का युद्ध

१) आचार्य द्रोण का पराक्रम- आधी रातके समय ही कृष्णकी नींद टूट गयी; तब वे अर्जुनकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके दारुकसे बोले- पुत्र शोकसे व्यथित होनेके कारण अर्जुनने यह प्रतिज्ञा कर डाली है कि मैं कल जयद्रथका वध करूँगा। किंतु द्रोणकी रक्षामें रहनेवाले पुरुषको इन्द्र भी नहीं मार सकते। इसलिये कल मैं ऐसी व्यवस्था करूँगा, जिससे अर्जुन सूर्य अस्त होनेके पहले ही जयद्रथको मार डालें। दारुक। मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु कोई भी कुन्तीनन्दन अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता। अर्जुनके लिये मैं कर्ण, दुर्योधन आदि सभी महारथियोंको उनके घोड़े और हाथियोंसहित मार डालूँगा। कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायगी कि मैं अर्जुनका अभिन्न सखा हूँ। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मुझसे भी रखता है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है।

सबेरा होते ही मेरा रथ सजाकर तैयार कर देना। उसमें सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति और शार्ङ्ग धनुषके साथ ही सभी आवश्यक सामग्री रख लेना। घोड़े जोतकर प्रतीक्षा करना; ज्यों ही मेरे पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो, मेरे पास रथ ले आना। मैं आशा करता हूँ- अर्जुन जिस-जिस वीरके वधका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ उनकी अवश्य विजय होगी।

कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, सुदर्शन चक्र, धनुष बाण, अन्य आवश्यक सामग्री सब रथ में रख लेना। गरुड़ध्वज भी लहरा देना। रथ में बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव को ही जोतना और उन पर दृढ़ अयस के जाल डाल देना। शत्रुओं के बाण उन तक नहीं पहुँचने चाहिए। तुम सन्नद्ध रहना और जैसे ही पांचजन्य का घोष सुनो, मेरे पास आ जाना। मैं कल वह उद्योग करूँगा, जिससे कुंतीपुत्र अर्जुन, सूर्यास्त से पहले जयद्रथ को मार डाले। दारुक बोला, आपकी आज्ञा का पालन होगा गोविंद। किंतु आप रथ का क्या करेंगे? पुरुषोत्तम। आप जिसके सारथी हैं उसकी विजय तो निश्चित है, पराजय हो ही कैसे सकती है? अर्जुनकी विजयके लिये आप मुझे जो कुछ करनेकी आज्ञा दे रहे हैं, उसे सबेरा होते ही मैं पूर्ण करूँगा।

उन अन्तर्यामी हृषीकेशने मानो पार्थके प्रेमावेशमें प्रलाप प्रारम्भ किया- दारुक। अपने पुत्र अभिमन्युको मृत्युसे शोकार्थ पार्थने जो प्रतिज्ञा कर ली है उसे तुमने सुना ही है। दुर्योधन कल जयद्रथकी रक्षाके लिए कुछ नहीं उठा रखेगा। उसकी सब सेना, सब महारथी कल इसका प्राणपणसे प्रयत्न करेंगे। द्रोणाचार्यसे सुरक्षित जयद्रथको मार देना वज्रधर इन्द्रके लिए समस्त सुरोंकी सहायता होनेपर भी सम्भव नहीं है किन्तु अर्जुन की प्रतिज्ञा कल पूरी होनी ही चाहिए।

मुझे स्त्री-पुत्र, स्वजन-सम्बन्धी कोई भी अर्जुनसे अधिक प्रिय नहीं है। मैं अर्जुनसे रहित इस संसारको दो घड़ी भी देख नहीं सकता। मेरे रहते अर्जुनका अनिष्ट कोई कर नहीं सकता।

आवश्यकता हुई तो मैं अर्जुनके लिए कर्ण, दुर्योधन आदि समस्त शत्रुओंका स्वयं संहार कर दूँगा। इतना कहते-कहते श्रीकृष्णके स्वरमें आवेश आ गया। उनके नेत्र अरुण हो उठे।

दारुक। कलके युद्धमें अर्जुनके लिए पराक्रम प्रकट करते श्रीकृष्णका पौरुष सारी सृष्टिको चकित कर देगा। कल त्रिलोक देखेगा कि श्रीकृष्णको मित्रता करना आता है और वह अर्जुनका मित्र है। जो अर्जुनसे द्वेष करता है वह मुझसे द्वेष करता है और जो अर्जुनसे प्रेम करता है वह मुझसे प्रेम करता है। अर्जुन मेरा आधा शरीर है।

अब केशवने दारुककी ओर देखा- कल प्रात: तुम्हें भी सावधान रहना है। मेरे रथको अभी रात्रिमें भली प्रकार सजा दो। कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग धनुष, मेरे त्रोण, नन्दक खड्ग, चक्र, शक्ति आदि सब अस्त्र-शस्त्र उसमें रख दो। गरुड़ध्वज भली प्रकार सुसज्जित रखो। अश्वोंको स्नान कराके, स्वर्ण कवचसे सुरक्षित करो और तृप्त करके रथमें जोड़ो। स्वयं भी अपना उत्तम कवच पहिनकर रथ लेकर सतर्क रहना। मेरे पांचजन्य शंखका ऋषभ स्वर सुनायी पड़ते ही प्रमाद त्यागकर शीघ्र मेरे समीप पहुँच जाना। दारुक। मैं कल एक ही दिनमें अर्जुनके सब दु:ख दूर कर दूँगा। अर्जुन कल धृतराष्ट्र पुत्रोंकी आँखोंके आगे जयद्रथको मार देंगे और कोई कुछ नहीं कर सकेगा। कल महामृत्यु अर्जुनके संकल्पके साथ उनके बाणपर बैठेगी और सव्यसाची जिसे-जिसे मारना चाहेंगे, वह चामुण्डा उसे उसी क्षण मुखमें लेकर चबा डालेगी।

दारुकने अन्तमें कहा- स्वामी आप सर्वसमर्थ हैं। आपका संकल्प अन्यथा नहीं हो सकता। आप चाहते हैं तो अर्जुनकी विजय सुनिश्चित ही है। आपका यह सेवक आपकी आज्ञाका पालन करेगा।

दारुक प्रणाम करके उठा। उसे अश्वोंको खिला-पिलाकर रथको सुसज्जित कर देना था। उसने अपने छोटे भाईको भी दूसरा रथ शस्त्रसज्ज करके प्रात: सतर्क रहनेको कह दिया। श्रीकृष्ण दारुकके चले जानेपर वहीं बैठकर ध्यानस्थ हो गये। उनकी चिन्ता अभी भी समाप्त नहीं हुई थी।

HHH(११०)HHH

सञ्जय कहते हैं- महाराज। दूतोंने आकर जयद्रथसे अर्जुनकी प्रतिज्ञा कह सुनायी। सुनते ही जयद्रथ शोकसे विह्वल हो गया। बहुत सोच-विचारकर वह राजाओंकी सभामें गया और वहाँ रोने-बिलखने लगा। अर्जुनसे डर जानेके कारण उसने लजाते-लजाते कहा- राजाओं। पाण्डवोंकी हर्षध्वनि सुनकर मुझे बड़ा भय हो रहा है। मरणासन्न मनुष्यकी भाँति मेरा सारा शरीर शिथिल हो गया है। निश्चय ही अर्जुनने मेरा वध करनेकी प्रतिज्ञा की है, तभी तो शोकके समय भी पाण्डव हर्ष मना रहे हैं। यदि ऐसी बात है तो अर्जुनकी प्रतिज्ञाको देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते; फिर नरेशोंकी तो बात ही क्या है? इसलिए मुझे यहाँसे जानेकी आज्ञा दीजिये। मैं जाकर ऐसी जगह छिप जाऊँगा, जहाँ पाण्डव मुझे देख नहीं सकेंगे।

जयद्रथ आँधी के समान शिबिर में घुसा। पर उसे देखकर लगा कि उस पर से कई आँधियाँ पहले से ही बीत चुकी हैं। दुर्योधन ने उसे इतना अस्तव्यस्त और घबराया हुआ पहले कभी नहीं देखा था।

कर्त्तव्य-मूढ़ समान वह चिन्ताग्नि में जलने लगा, निज कृत्य वारंवार उसको चित्त में खलने लगा।
देखा न और पदार्थ कोई प्रण से प्यारा कहीं, है वस्तु अप्रिय अन्य जग में मृत्यु से बढ़कर नहीं।।
संसार में आशा उसे कुछ भी न जीवन की रही, बस दीखने उसको लगी निज मृत्युमय सारी मही।
तब वह सुयोधन के निकट आया फँसा भय-जाल में, गति है न अन्य सुहज्जनों से भिन्न आपत्काल में।।
कारण समझकर भी उसे व्याकुल विलोका जब वहाँ, पूछा सुयोधन ने स्वयं भय-हेतु उससे तब वहाँ।
होकर चकित-सा थकित-सा सर्वस्व से जाकर ठगा, भय से विकृत अप्रकृत स्वर से वचन वह कहने लगा।।
जो प्रण किया है पार्थ ने सुत-शोक के सन्ताप से, हे कुरुकुलोत्तम। क्या अभी तक वह छिपा है आपसे?
मारूँ जयद्रथ को न कल मै। तो अनल में जल मरूँ, की है यही उसने प्रतिज्ञा, अब कहो मैं क्या करूँ?
कर्त्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है, भय और चिन्तायुक्त मेरा जल रहा सब गात है।
अतएव मुझको अभय देकर आप रक्षित कीजिए, या पार्थ-प्रण करने विफल अन्यत्र जाने दीजिए।।
मैं सत्य कहता हूँ, नहीं है मृत्यु की शंका मुझे, सब दीप्त जीवन-दीप बुझते हैं, बुझेंगे, हैं बुझे।
है किन्तु मुझको चित्त में चिन्ता प्रबल केवल यही, अब देख पाऊँगा तुम्हारी मैं न निष्कण्टक जमीं।।

दुर्योधन बोला, आइये सिन्धु नरेश विराजिये, क्या बात है? कर्ण बोला, नरेश आज आप बडे चिंतित दिखाई दे रहे है। जयद्रथ बोला, महाराज। मेरी रक्षा कीजिए या फिर मुझे अनुमति दीजिए कि मैं अपनी सेना लेकर अपने राज्य में लौट जाऊँ। अर्जुन जैसे यौद्धा ने जिसके वध की शपथ ले रखी हो अंगराज उसे चिंतित तो होना ही पडता है। मैं तो आज ही रात में सिन्धु प्रदेश लौटने की सोच रहा हूं। दुर्योधन बोला, आज के युद्ध के महावीर। इतने उद्विग्न क्यों हो? क्या सिंधुराज बताएँगे कि हमसे क्या अपराध हुआ है?

जयद्रथ बोला, आपसे कोई अपराध नहीं हुआ महाराज। अर्जुन ने कल संध्या तक मेरा वध करने की प्रतिज्ञा की है।

दुर्योधन बोला, पर तुम्हें ही मारने की प्रतिज्ञा क्यों की है? अभिमन्यु का वध करनेवाले तो तुम नहीं थे।

जयद्रथ बोला, मैंने व्यूह के द्वार पर उन सबको रोक दिया था। मैंने उसको मारने का श्रेय लेने की बात कही थी। सहसा जैसे जयद्रथ को दौरा पड़ा, दुर्योधन। मुझे अपने देश चले जाने दो। मैं अपनी सेना के साथ यहाँ से सुरक्षित निकल जाना चाहता हूँ। महाराज। मैं यहाँ रहा तो कल संध्या तक अर्जुन अवश्य ही मेरा वध कर देगा। मुझे अपने देश लौट जाने दें। दुर्योधन तुम कुछ कहते क्यों नहीं? दुर्योधन बोला, इतना घबराओ मत। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

HHH(१११)HHH

जयद्रथ और भी घबरा गया और बोला, कौन रक्षा करेगा मेरी? मुझे किसी पर भी विश्वास नहीं है। मैं एक बार अर्जुन और भीम का क्रोध झेल चुका हूँ। अब और अपमानित नहीं होना चाहता। मुझे अपने देश लौट जाने दो।

दुर्योधन बोला, वीरवर जयद्रथ। देश भाग जाने से न तुम्हारी कीर्ति की रक्षा हो पाएगी और न तुम्हारे प्राणों की। उस दिन भी तुम्हारी सेना और तुम्हारे मित्र तुम्हारे साथ थे, जब तुमने द्रौपदी के अपहरण का प्रयत्न किया था। पांडवों ने तुम्हें न केवल पराजित किया था, तुम्हें बंदी भी किया था। तुम्हारे वक्ष पर अपना चरण रखकर भीमने तुमसे कहलवाया था कि तुम युधिष्ठिर के दास हो। तुमने द्रौपदी का अपमान किया था, उन्होंने तुम्हें अपमानित करके छोड़ दिया। अब उनके अनुसार तुमने अभिमन्यु के प्राण लिए हैं। वे तुम्हारा वध करने के लिए आएँगे तो तुम्हारी सेना तुम्हारी रक्षा कर लेगी? यहाँ तुम्हारी सेना है। तुम्हारे मित्र राजाओं की सेनाएँ हैं। आचार्य द्रोण हैं, कर्ण है, अश्वत्थामा है, कृतवर्मा है, कृपाचार्य हैं, मैं हूँ, दु:शासन है क्या अब भी तुम्हें लगता है कि तुम अपने देश में अधिक सुरक्षित रहोगे? तुम्हारी रक्षा करके ही हम स्वयं सुरक्षित रह सकते हैं सिधुराज। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

शकुनि बोला, यह आप क्या कह रहे हैं सिन्धु नरेश? आपकी सुरक्षा के लिये तो कल रणभूमि में बडे-बडे यौद्धा होंगे। हां आचार्य द्रोण, आचार्य कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन, दु:शासन, कृतवर्मा, कर्ण और हां मैंने भी तो तीर चलाना सीख ही रखा है। कल पूरी कौरव शक्ति आपको अर्जुन के बाणों से बचाने के लिये खड़ी होगी। अर्जुन तो फिर भी केवल एक यौद्धा है परन्तु आपकी ओर तो यमराज भी भयभीत होकर अपनी दिशा बदल देंगे। दुर्योधन बोला, और यदि आप चले गये तो मेरी सेना का हृदय बैठ जायेगा भ्राताश्री। मेरे सारे साथी यह सोचते रहेंगे कि जब सिन्धु नरेश जैसा महारथी अर्जुन के भय से रातों रात कौरव सेना का शिबिर छोड़कर भाग गया तो मेरी सेना में तो भगदड मच जायेगी और हम यह जीता हुआ युद्ध हार जायेंगे भ्राताश्री। जयद्रथ बोला, मामाश्री ने जिन योद्धाओं के नाम लिये है वे कल रक्षकों के भांति मेरे साथ रहेंगे ना? दुर्योधन बोला, आप चिन्ता न करे भ्राताश्री। हम सब आपके साथ है। जाइये और अपने शिबिर में विश्राम कीजिये।

जयद्रथको इस प्रकार भयसे व्याकुल हो विलाप करते देख राजा दुर्योधनने कहा, पुरुषश्रेष्ठ। तुम इतने भयभीत न होओ। युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रिय वीरोंके बीचमें रहनेपर तुम्हें कौन पा सकता है? मैं, कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल, शल्य, वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दु:शासन, सुबाहु, कलिङ्गराज, विन्द, अनुविन्द, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि ये तथा और भी बहुत-से राजालोग अपनी-अपनी सेनाके साथ तुम्हारी रक्षाके लिये चलेंगे। तुम अपने मनकी चिन्ता दूर कर दो। सिन्धुराज। तुम स्वयं भी तो श्रेष्ठ महारथी हो, शूरवीर हो; फिर पाण्डवोंसे डरते क्यों हो? मेरी सारी सेना तुम्हारी रक्षाके लिये सावधान रहेगी, तुम अपना भय निकाल दो।

इस भाँति उसके सुन वचन कुरुराज बोला प्रेम से- हे वीर। तुम निर्भय तथा नि:शंक सोओ क्षेम से।
जब तक हमारे पक्ष का जन एक भी जीवन धरे, है कौन ऐसा जो तुम्हारा बाल भी बाँका करे?
यह प्रण हमारे भाग्य से ही धनञ्जय ने किया, होगी सहज ही में हमारी अब सफल सारी क्रिया।
कर्णादि के रहते हुए क्या वह सफलता पायगा? कल शाम को जलकर अनल में वह स्वयं मर जायगा।।
अर्जुन बिना जीवित रहेंगे धर्मराज नहीं कभी, सो यों स्वयं ही रिपु हमारे नष्ट अब होंगे सभी।
कृप, कर्ण, द्रोणाचार्य जिसके त्राण के हित हों खड़े, बस जान लो सब शत्रु उसके मृत्यु के मुख में पड़े।।
अन्यत्र जाने की अपेक्षा योग्य है रहना यहीं, रक्षा तुम्हारी विश्व में अन्यत्र सम्भव है नहीं।
क्या द्रोण, कर्ण, कृपादि से बलवान है कोई कहीं? रक्षक जहाँ आत्मीय जन हों योग्य है रहना वहीं।।

कहकर वचन कुरुराज ने यों जब उसे धीरज दिया, हो स्वस्थ तब उसने नृपति का बहुत अभिनन्दन किया।
कर्णादि ने भी दूर की बहु भाँति उसकी यन्त्रणा, करने लगे फिर अन्त में सब युद्ध-विषयक मन्त्रणा।।

अर्जुनने जब जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञा कर ली, उसके बाद श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- धनंजय। तुमने न तो भाइयोंकी सम्मति ली और न मुझसे ही सलाह पूछी, फिर भी लोगोंको सुनाकर जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा कर डाली- यह तुम्हारा दु:साहस है। जब तुमने सिन्धुराजके वधकी प्रतिज्ञा की थी, उस समय यहाँ रणभेरी बजी थी और सिंहनाद किया गया था। उसकी आवाज कौरवोंने सुनी, उन्हें तुम्हारी प्रतिज्ञा मालूम हो गयी। इससे दुर्योधनके मन्त्री उदास और भयभीत हो गये। जयद्रथ भी बहुत दुखी हुआ और राजसभामें जाकर दुर्योधन से बोला- राजन्। अर्जुन मुझे ही अपने पुत्रका घातक मानता है, इसलिये उसने अपनी सेनाके बीच खड़े होकर मुझे मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है। यह सव्यसाचीकी प्रतिज्ञा है; इसे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते। तुम्हारी सेनामें मुझे ऐसा कोई धनुर्धर नहीं दिखायी देता, जो महायुद्धमें अपने अस्त्रोंसे अर्जुनके अस्त्रोंका निवारण कर सके। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि श्रीकृष्णकी सहायता पाकर अर्जुन देवताओंसहित तीनों लोकोंको नष्ट कर सकता है। इसलिये मैं यहाँसे चले जानेकी आज्ञा चाहता हूँ। अथवा यदि तुम ठीक समझो तो अश्वत्थामा और द्रोणाचार्यसे मेरी रक्षाका आश्वासन दिलाओ।

श्रीकृष्णने वह समाचार सुनाया कि सव्यसाचीकी प्रतिज्ञाका समाचार पाकर जयद्रथ कितना डर गया था। उसे लेकर दुर्योधन स्वयं द्रोणाचार्यके समीप गया। जयद्रथकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध आचार्यने कर लिया है। कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य और शल्य ये ६ महारथी आगे रहेंगे। द्रोणाचार्यने ऐसा व्यूह बनाया है जिसका अगला भाग शकटाकार है और पिछला भाग कमलके समान है। कमल व्यूहकी मध्य कर्णिकापर सूची व्यूहमें छिद्रस्थानपर जयद्रथ छिपा रहेगा।

द्रोणाचार्यने कहा- तात। यद्यपि तुम्हारे और अर्जुनके हम एक ही आचार्य हैं, तथापि अभ्यास और क्लेश सहनेके कारण अर्जुन तुमसे बढ़े-चढ़े हैं। तो भी तुम्हें उनसे डरना नहीं चाहिये; क्योंकि मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। मेरी भुजाएँ जिसकी रक्षा करती हों, उसपर देवताओंका भी जोर नहीं चल सकता। मैं ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसमें अर्जुन पहुँच ही नहीं सकेंगे। इसलिए डरो मत, खूब उत्साहसे युद्ध करो। तुम्हारे जैसे वीरको तो मृत्युका डर होना ही नहीं चाहिए; क्योंकि तपस्वीलोग तप करनेपर जिन लोकोंको पाते हैं, क्षत्रियधर्मका आश्रय लेनेवाले वीर पुरुष उन्हें अनायास पा जाते हैं।

इस प्रकार आश्वासन मिलनेपर जयद्रथका भय दूर हुआ और उसने युद्ध करनेका विचार किया। उस समय आपकी सेनामें भी हर्ष-ध्वनि होने लगी। दुर्योधन बोला, कल किसी भी मूल्य पर जयद्रथ की रक्षा होनी ही चाहिए आचार्य। आप कल किसी पांडव का वध न करें, किसी को बंदी न बनाएँ; किंतु जयद्रथ को कल तक के लिए जीवित बचा लें।

तब दुर्योधनने स्वयं जाकर द्रोणाचार्यसे बहुत प्रार्थना की है। जयद्रथकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है, रथ भी सजा दिये गये हैं। कलके युद्धमें कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य और शल्य- ये छ: महारथी आगे रहेंगे। कमलव्यूहके मध्यकी कर्णिकाके बीच सूची-व्यूहके पास जयद्रथ खड़ा होगा और बाकी सभी वीर चारों ओरसे उसकी रक्षामें रहेंगे और ये छ: महारथी धनुष, बाण, पराक्रम और शारीरिक बलमें दु:सह है। इनमेंसे एक-एकके पराक्रमका विचार करो। जब ये छ: एक साथ होंगे, उस समय इनका जीतना सहज नहीं होगा।

अर्जुनने कहा- मधुसूदन। कौरवोंके जिन महारथियोंको आप बलमें अधिक मानते हैं, उनका पराक्रम मैं अपनेसे आधा भी नहीं समझता। यदि साध्य, रुद्र, वसु, अश्विनीकुमार, इन्द्र, वायु, विश्वेदेव, गन्धर्व, पितर, गरुड़, समुद्र, यह पृथ्वी,

दिशाएँ, दिक्पाल, गाँवोंके लोग, जंगली जीव तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणी सिन्धुराजकी रक्षाके लिये आ जायँ, तो भी मैं सत्य और आयुधोंकी शपथ से कहता हूँ कल आप जयद्रथको मेरे बाणोंसे मरा हुआ देखेंगे। मैंने यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और रुद्रसे जो भयंकर अस्त्र प्राप्त किये हैं, उन्हें कलके युद्धमें लोग देखेंगे। जयद्रथके रक्षक जो-जो अस्त्र छोड़ेंगे, उन्हें मैं ब्रह्मास्त्रसे काट गिराऊँगा। केशव। कल इस पृथ्वीपर मेरे बाणोंसे कटे हुए राजाओंके मस्तक बिछ जायेंगे, सो आप देखेंगे ही। हृषीकेश। गाण्डीव-जैसा दिव्य धनुष है, मैं योद्धा हूँ और आप सारथी हैं; यह सब होते हुए मैं किसे नहीं जीत सकता? हे कृष्ण। आपकी कृपासे इस युद्धमें मुझे क्या दुर्लभ है? आप तो जानते ही हैं कि शत्रु मेरा वेग नहीं सह सकते, तो भी क्यों मुझे लज्जित कर रहे हैं? ब्राह्मणमें सत्य, साधुओंमें नम्रता और यज्ञोंमें लक्ष्मीका होना जैसे निश्चित है, उसी प्रकार जहाँ नारायण हों वहाँ विजय भी निश्चित है। कल सबेरा होते ही मेरा रथ तैयार हो जाय, ऐसा प्रबन्ध कर लीजिये।

श्रीकृष्ण साथ हों तो शुभ शकुन स्वत: आगे आवेंगे। अपशकुनोंका अनवरत क्रम तो उनको मिलता है जो उन कमल लोचनके प्रतिपक्ष में होते हैं। अर्जुनकी यात्रा अनेक शकुनोंका स्वागत लेती चली। दुर्धर्षणकी गजसेना आगे आकर मर मिटी। दु:शासनको भागकर प्राण बचाने पड़े। द्रोणाचार्यसे उस दिन युद्ध अनावश्यक था। श्रीकृष्णने अर्जुनको आचार्यसे उलझने नहीं दिया। सावधान कर दिया- आचार्यसे उलझकर अधिक समय नष्ट मत करो। इनको एक ओर छोड़कर ही आज आगे बढ़ो। स्पष्ट था कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी रक्षार्थ कितने सतर्क रहते थे। गुप्तचरोंका संचालन वे ही करते थे। उनकी बात सुनकर अर्जुनने कहा- मधुसूदन। कल सिन्धुराज जयद्रथकी रक्षा यदि सम्पूर्ण चराचरके प्राणियोंका लेकर यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और रुद्र भी आ जायँ तो भी वे उसे मरा देखेंगे। मेरे हाथमें गाण्डीव जैसा धनुष है और आप सारथी हैं तो मेरी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेमें सन्देह कहाँ है। ब्राह्मणोंमें सत्य, साधुओंमें नम्रता तथा यज्ञमें श्री भले न रहें, किन्तु जहाँ आप नारायण हैं, वहाँ विजय निश्चित है।

अर्जुन अपनी इस आस्थाके बलपर निश्चिन्त थे और कौन ऐसा साहस कर सकता है कि इस आस्थाको अल्पशक्ति कहे। श्रीकृष्णपर आस्था- इसके सम्मुख टिकनेवाली शक्ति तो हो नहीं सकती इस आस्थाका पराभव तो प्रलयमें भी सम्भव नहीं। पार्थका अजेय बल यह आस्था और जो भी अर्जुनके समान श्रीकृष्णपर आस्था करके निश्चित हो सके, वह अर्जुनके समान सदा अदम्य एवं अजेय।

कृष्ण पाण्डवोंके शिबिरमें आते हैं और राजा युधिष्ठिर कृष्णसे बोले, हे माधव। जैसे देवता इन्द्रके आश्रयमें रहते हैं, उसी प्रकार हमलोग आपकी ही शरणमें रहकर युद्धमें विजय और स्थायी सुख चाहते हैं। सर्वेश्वर। हमारा सुख और हमारे प्राणोंकी रक्षा- सब आपके ही अधीन है; आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे हमारा मन आपमें लगा रहे और अर्जुनकी की हुई प्रतिज्ञा सत्य हो। इस दु:खरूपी महासागरसे आप ही हमारा उद्धार करें। पुरुषोत्तम। आपको हमारा बारंबार प्रणाम है। देवर्षि नारदने आपको पुरातन ऋषि नारायण बतलाया है, आप ही वरदायक विष्णु हैं; इस बातको आज सत्य करके दिखाइये।

श्रीकृष्ण बोले, अर्जुन बलवान्, अस्त्रविद्याके ज्ञाता, पराक्रमी, युद्धमें चतुर और तेजस्वी हैं; वे अवश्य ही आपके शत्रुओंका संहार करेंगे। मैं भी ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे अर्जुन धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाको उसी प्रकार जला डालेंगे, जैसे आग ईंधनको। अभिमन्युकी हत्या करानेवाले पापी जयद्रथको अर्जुन अपने बाणोंसे मारकर आज ऐसी जगह भेज देंगे, जहाँ जानेपर मनुष्यका पुन: यहाँ दर्शन नहीं होता। यदि इन्द्रके साथ सम्पूर्ण देवता भी उसकी रक्षाके लिये उतर आवें, तो भी आज युद्धमें प्राण त्यागकर उसे यमकी राजधानीमें जाना पड़ेगा। राजन्। अर्जुन आज जयद्रथको मारकर ही आपके निकट उपस्थित होंगे, इसलिये शोक और चिन्ता दूर कीजिये।

इन लोगोंमें इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि अर्जुन अपने मित्रोंके साथ राजाका दर्शन करनेके लिये वहाँ आ

पहुँचे। भीतर आकर युधिष्ठिरको प्रणाम करके वे सामने खड़े हो गये। उन्हें देखते ही युधिष्ठिरने उठकर बड़े प्रेमसे गले लगाया। और बोले, अर्जुन। आज तुम्हारे मुखकी जैसी प्रसन्न कान्ति है तथा श्रीकृष्ण जैसे प्रसन्न हैं, उससे ज्ञात होता है युद्धमें तुम्हारी विजय निश्चित है।

अर्जुन अनुज को सौंपता हूँ मैं तुम्हारे हाथ में, जो योग्य समझो कीजियो प्रभुवर। हमारे साथ में।
बस अन्त में विनती यही है छोड़कर बातें सभी, हैं हम तुम्हारे ही सदा, मत भूलियो हमको कभी।।
यों कह युधिष्ठिर ने वचन जब मौन धारण कर लिया, निश्चिंत कर भगवान ने तब अभयदान उन्हें दिया।
तत्काल ही फिर युद्ध के बाजे वहाँ बजने लगे, सोत्साह जय जयकार कर सब शूर रण सजने लगे।।
तब भीम-सात्यकि आदि को रक्षक युधिष्ठिर का बना, गाण्डीवधारी पार्थ ने समझी सफल निज कामना।
कर वन्दना श्रीकृष्ण की वे शीघ्र ही रथ पर चढ़े, बलवान वृत्रासुर-विध को मेघवाहन सम गढ़े।।
पीछे युधिष्ठिर को कियी आगे चले अर्जुन बली, लचने लगे फण शेष के, मचने लगी अति खलबली।
अन्यत्र अनुगामी बड़ों के सृजन होते सर्वदा, पर आपदा में दीखते हैं अग्रगामी ही सदा।।

तदनन्तर सब लोग धर्मराजकी आज्ञा ले, कवच आदिसे सुसज्जित हो बड़ी शीघ्रताके साथ युद्धके लिये निकल पड़े। सबके मनमें हर्ष था, उत्साह था। सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी युधिष्ठिरको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक युद्धके लिये उनके शिबिरसे बाहर निकले। श्रीकृष्णने घोड़ोंकी बागडोर हाथमें ले ली। अर्जुन उन दोनोंके साथ युद्धको चल दिये। उस समय विजयकी सूचना देनेवाले नाना प्रकारके शुभ शकुन होने लगे। कौरवोंकी सेनामें अपशकुन हुए। शुभ शकुनोंको देखकर अर्जुन सात्यकिसे बोले, युयुधान। जैसे ये निमित्त दिखायी दे रहे हैं, उनसे जान पड़ता है आज युद्धमें निश्चय ही मेरी विजय होगी। अत: अब मैं वहाँ जाऊँगा, जहाँ जयद्रथ मेरे पराक्रमकी प्रतीक्षा कर रहा है। इस समय राजा युधिष्ठिरकी रक्षाका भार तुम्हारे ऊपर है। इस संसारमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो तुम्हें युद्धमें हरा सके; तुम साक्षात् श्रीकृष्णके समान हो। तुमपर या प्रद्युम्नपर ही मेरा अधिक भरोसा है। मेरी चिन्ता छोड़कर सब तरहसे राजाकी ही रक्षामें रहना। जहाँ भगवान् वासुदेव हैं और मैं हूँ, वहाँ किसी विपत्तिकी सम्भावना नहीं है। अर्जुनके ऐसा कहनेपर सात्यकि बहुत अच्छा कहकर जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चला गया।

अर्जुन न भयभीत था न आशंकित; किंतु चिंतित तो वह भी था। कृष्ण की प्रतिक्रिया और अपने भाइयों की मुद्राएँ देखकर वह समझ गया था कि उसने एक कठिन प्रतिज्ञा कर ली थी। यद्यपि वह अपने मन में आश्वस्थ था; किंतु कृष्ण की चिंता अकारण तो नहीं थी। क्यों चिंतित थे कृष्ण? क्या उन्हें भी लगता था कि वह कल संध्या तक जयद्रथ का वध नहीं कर पाएगा? वे उसकी क्षमता को कम आँक रहे थे अथवा कौरवों की शक्ति को कुछ अधिक ही समझ बैठे थे?

कृष्ण अर्जुन से बोले, उद्योगहीन मनुष्य की चिंता उसके शोक का दूसरा नाम है। शोक उसका सबसे बड़ा शत्रु है। शोक मित्रों को दुर्बल करता है और शत्रुओं को बल देता है। अर्जुन बोले, मैं शोक नहीं कर रहा हूँ न ही मैं जयद्रथ से भयभीत हूँ पर चिंतित तो मैं अवश्य हूँ। अर्जुन ने शिव का स्मरण किया और युद्ध के लिये प्रस्थान किया। सूर्योदय हो गया।

युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन बोला, मुझे जयद्रथ की तरफ ले चलिये केशव। कृष्ण बोले, किन्तु आज तुम्हारे और जयद्रथ के बीच सारी कौरवसेना के महारथियों की दीवार है पार्थ। अर्जुन बोला, आज मुझे कोई दीवार रोक नहीं पायेगी केशव। कृष्ण बोले, मैंने कहा था ना पार्थ केवल कर्म तुम्हारे वश में है और कर्मफल तुम्हारे वश में नहीं है इसलिये सूर्योदय और सूर्यास्त भी तुम्हारे वश में नहीं है पार्थ। तुम भरतवंशियों को प्रतिज्ञायें करने में इतनी रूचि क्यों है? पितामह प्रतिज्ञा

में जकड़े हुये है, मझले भैया प्रतिज्ञाबद्ध हैं और अब तुमने अपने आपको एक प्रतिज्ञा में बांध लिया। अर्जुन बोला, किन्तु क्या तो उनको अभिमन्यु के साथ छल करने में शोभा देता था केशव? एक बालक पर सात-सात महारथियों का आक्रमण करना धर्म के विरुद्ध नहीं है। कृष्ण बोले, अपने इन प्रश्नों के उत्तर महादेव से मांगो पार्थ क्योंकि कल जयद्रथ उनके वर का कवच पहिने हुये था और उन्होंने सब कुछ जानते हुये सिन्धु नरेश को यह वर दिया था। वे ईश्वर हैं पार्थ और ईश्वर से कभी कोई कार्य अनजाने में नहीं होता। जयद्रथ का वध आवश्यक है किन्तु इसके लिये तुम्हे स्वयं को प्रतिज्ञा की डोरी से बांधने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अब तुम्हारी आंखे लक्ष्य से अधिक सूर्य पर होगी। लक्ष्य को बाण नहीं बेधता पार्थ। लक्ष्य को बेधती है धनुर्धर की आंखे और आज इस समय तुम्हारी आंखों में तुम्हारी शपथ की धूल है। अर्जुन बोला, मैं क्षमा चाहता हूं वासुदेव किन्तु अब तो शपथ ले चुका मुझे जयद्रथ की ओर ले चलिये। कृष्ण बोले, ले चलता हूं पार्थ लेकिन यह समझ लो आज जयद्रथ आचार्य द्रोण के कमल व्यूह के भीतर है जो यहां से १२ कोस की दूरी पर है। अर्जुन बोला, वो हजार कोस की दूरी पर क्यों न हो केशव। मैं आज सूर्यास्त के पहिले उसका वध अवश्य करूंगा। यदि वध नहीं कर पाया तो अग्नि समाधि ले लूंगा केशव। मुझे जयद्रथ की ओर ले चलिये।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय अर्जुन जैसा यौद्धा का यों अग्नि समाधि ले लेना तो कोई अच्छी बात नहीं है। आचार्य द्रोण के कमल व्यूह को तोडकर उसके पास पहुंचना तो असम्भव है। प्राण त्यागने के पश्चात जब स्वर्ग में अनुज पांडु से भेंट होगी तो मैं उसको क्या उत्तर दूंगा? वो तो यही कहेगा ना कि मैंने अर्जुन को बचाने का प्रयत्न ही नहीं किया। संजय बोले, वे तो और कई प्रश्न भी कर सकते है महाराज। लाक्षागृह से लेकर द्रौपदी वस्त्राहरण तक सभी बातें पूछ सकते है वे। धृतराष्ट्र बोले, नहीं। तुम मेरे अनुज को जानते नहीं थे संजय। वो तो सिंहासन पर ही नहीं बैठ रहा था किन्तु दादीश्री सत्यवती के आदेश ने उसे विवश कर दिया। यदि वो होता तो नि:सन्देह वो मेरे दुर्योधन को ही युवराज नियुक्त करता। किन्तु वो अवश्य ही यह तो पूछेगा संजय कि भ्राताश्री जब मेरा पुत्र आत्मदाह के मार्ग पर जाने लगा तो आपने उसे रोका क्यों नहीं मुझे इस प्रश्न का उत्तर बताओ संजय। संजय बोला, ऐसे प्रश्नों के उत्तर तो स्वयं ही देने पडते हैं महाराज। सिन्धु नरेश और पांडु पुत्र अर्जुन में से किसी एक को तो आज प्राण त्यागने ही होंगे। अपने हृदय में झांककर देखिये महाराज कि आप स्वयं किसे जीवित देखना चाहते हैं? धृतराष्ट्र बोले, जयद्रथ मेरा दामाद है संजय। उसकी मृत्यु के विषय में तो मैं सोच भी नहीं सकता और अर्जुन मेरा अनुज पुत्र है। मैं अपने आपको भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता। मैं अग्निदेव की पूजा करूंगा और जब अर्जुन अग्नि समाधि लेना चाहे तो वो प्रकट ही न हो। इस प्रकार जयद्रथ भी बच जायेगा और अर्जुन भी। ऐसा नहीं है कि मुझे सौभद्र की मृत्यु का दु:ख नहीं है। दु:ख तो है किन्तु युद्ध में लोग वीरगति को प्राप्त होते ही रहते हैं। फिर भी मैंने युधिष्ठिर के पास अपना शोक सन्देश भेज दिया है किन्तु अर्जुन को यह तो शोभा देता ही नहीं कि स्वयं अपनी बहिन का सुहाग उजाडने का प्रयत्न कर रहा है। मुझे तो लगता है कि वासुदेव उसे समझाने में सफल हो जायेंगे किन्तु यह सारा दोष उस वासुदेव का ही है। अर्जुन तो युद्ध के लिये तैयार ही नहीं था और जब वो युद्ध के लिये तैयार नहीं हुआ होता तो आज फिर यह युद्ध भी न होता। और जो यह युद्ध नहीं हुआ होता तो प्रिय अभिमन्यु आज जीवित होता। अरे संजय यह युद्ध तो करवा रहा है वो देवकी का पुत्र। न जाने किस जन्म का बैर निकाल रहा है।

धृतराष्ट्रने कहा- संजय। अभिमन्युके मारे जानेसे दु:ख-शोकमें डूबे हुए पाण्डवोंने सबेरा होनेपर क्या किया? तथा मेरे पक्षवाले योद्धाओंमेंसे किस-किसने युद्ध किया? अर्जुनके पराक्रमको जानते हुए भी उन्होंने उनका अपराध किया, ऐसी दशामें वे निर्भय कैसे रह सके? जब श्रीकृष्ण सब प्राणियोंपर दया करनेके लिये कौरव-पाण्डवोंमें संधि करानेकी इच्छासे

यहाँ आये थे, उस समय मैंने मूर्ख दुर्योधनसे कहा था कि पुत्र। वासुदेवके कथनानुसार अवश्य संधि कर लो। यह अच्छा अवसर हाथ आया है, दुर्योधन। इसे टालो मत। श्रीकृष्ण तुम्हारे हितकी बात कहते हैं, स्वयं ही संधिके लिये प्रार्थना करते हैं; यदि इनकी बात न मानोगे, तो युद्धमें तुम्हारी विजय असम्भव है।

श्रीकृष्णने स्वयं भी अनुनयपूर्ण बातें कहीं, परंतु उसने अस्वीकार कर दीं। अन्यायका आश्रय लेनेके कारण हमारी बातें उसे ठीक नहीं लगी। वह दुर्बुद्धि कालके वशीभूत था, इसीलिये उसने मेरी अवहेलना करके केवल कर्ण और दु:शासनके ही मतका अनुसरण किया। जो जूआ खेला गया था, उसके लिये भी मेरी इच्छा नहीं थी। विदुर, भीष्म, शल्य, भूरिश्रवा, पुरूमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृप और द्रोण ये लोग भी जूआ होने देना नहीं चाहते थे। यदि मेरा पुत्र इन सबकी राय लेकर चलता तो अपने जाति-भाई, मित्र-सुहृद् सबके साथ चिरकालतक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता। मैंने यह भी कहा था- पाण्डव सरलस्वभाव, मधुरभाषी, भाई-बन्धुका प्रिय करनेवाले, कुलीन, आदरणीय और बुद्धिमान हैं; इसलिये उन्हें अवश्य सुख मिलेगा। धर्मका पालन करनेवाला मनुष्य सदा और सर्वत्र सुख पाता है। मरनेपर उसे कल्याण एवं आनन्दकी प्राप्ति होती है। पाण्डव पृथ्वीका राज्य भोगनेके योग्य हैं, उसे प्राप्त करनेकी शक्ति भी रखते हैं। पाण्डवोंसे जैसा कहा जायगा, वैसा ही करेंगे। वे सदा धर्ममार्गपर स्थित रहेंगे। शल्य, सोमदत्त, भीष्म, द्रोण, विकर्ण, बाह्लीक, कृप तथा अन्य बड़े-बूढ़े लोग जो तुम्हारे हितकी बात कहेंगे, उसे पाण्डव अवश्य मान लेंगे। श्रीकृष्ण कभी धर्मको छोड़ नहीं सकते और पाण्डव श्रीकृष्णके ही अनुयायी हैं। मैं भी यदि धर्मयुक्त वचन कहूँगा तो वे टाल नहीं सकेंगे। क्योंकि पाण्डव धर्मात्मा हैं।

संजय। इस प्रकार पुत्रके सामने गिड़गिड़ाकर मैंने बहुत कुछ कहा, किंतु उस मूर्खने मेरी एक न सुनी। जिस पक्षमें श्रीकृष्ण-जैसे सारथी और अर्जुन जैसे योद्धा हैं, उसकी पराजय हो ही नहीं सकती। पर क्या करूँ, दुर्योधन मेरे रोने-बिलखनेकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। दुर्योधन, कर्ण, दु:शासन और शकुनि इन सबने मिलकर क्या सलाह की? मूर्ख दुर्योधनके अन्यायके संग्राममें एकत्र हुए मेरे सभी पुत्रोंने कौन-सा कार्य किया? लोभी, मन्दबुद्धि, क्रोधी, राज्य हड़पनेकी इच्छावाले और रागान्ध दुर्योधनने अन्याय अथवा न्याय जो कुछ भी किया हो, सब बताओ।

संजयने कहा, महाराज। मैंने जो कुछ देखा है वह सुनाता हूँ। इस विषयमें आपका भी अन्याय कम नहीं है। नदीका पानी सूख जानेपर पुल बाँधनेके समान अब आपका यह रोना-धोना व्यर्थ है। इसलिये शोक न कीजिये। जब युद्धका अवसर आया, उसी समय यदि आपने अपने पुत्रोंको रोक दिया होता अथवा कौरवोंको यह आज्ञा दी होती कि इस उद्दण्ड दुर्योधनको बन्दी बना लो, या स्वयं पिताके कर्त्तव्यका पालन करते हुए पुत्रको सन्मार्गपर चलाया होता, तो आज आपपर यह संकट कदापि नहीं आता। आप इस जगत्में बड़े बुद्धिमान समझे जाते हैं; तो भी सनातनधर्मको तिलाञ्जलि देकर आपने दुर्योधन, कर्ण और शकुनिकी हाँ-में-हाँ मिला दी। इस समय जो आपने यह विलाप-कलाप सुनाया है, यह सब स्वार्थ और लोभके वशमें होनेके कारण है। विष मिलाये हुए शहदकी भाँति यह ऊपरसे मीठा होनेपर भी इसके भीतर घातक कटुता है। श्रीकृष्णने जबसे जान लिया कि आप राजधर्मसे भ्रष्ट हो गये हैं, तबसे वे आपके प्रति आदर-बुद्धि नहीं रखते। आपके पुत्रोंने पाण्डवोंको गालियाँ सुनायीं और आपने उन्हें रोका नहीं। पुत्रोंको राज्य दिलानेका लोभ आपको ही सबसे अधिक था; उसीका तो अब फल मिल रहा है। पहले आपने उनके पूर्वजोंका राज्य छीन लिया; अब पाण्डव स्वयं सम्पूर्ण पृथ्वी जीत लेते हैं, तो आप उसका उपभोग कीजियेगा। इस समय जब युद्ध सिरपर गरज रहा है, तो आप पुत्रोंके अनेकों दोष बताकर उनकी निन्दा करने बैठे हैं; अब ये बातें शोभा नहीं देतीं। पाण्डवोंके साथ कौरवोंका जो घमासान युद्ध हुआ, वह सुनिये।

अर्जुन बोला, मेरा रथ जयद्रथ की ओर ले चलिये। यदि आज सारी कौरवसेना उसकी सुरक्षा के लिये खडी है। तो मेरे

पास अधिक समय नहीं है। मेरा रथ उसकी ओर ले चलिये। कृष्ण बोले, ले चलता हूं पार्थ लेकिन तुम रथ के लिये मार्ग बनाना आरम्भ करो। अर्जुन बोला, जो आज्ञा केशव। युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन ने बाणों की वर्षा आरम्भ की। दुर्योधन बोला, अर्जुन तो बढते ही चला आ रहा है रोकिये उसे गुरुदेव नहीं तो सूर्यास्त के पहिले ही वो युद्ध जीत चुका होगा। द्रोण और अर्जुन के बीच भयंकर बाणों की वर्षा हो रही है। अर्जुन ने बाण मारकर द्रोण का रथ गिरा दिया। अर्जुन बोला, प्रणाम गुरुवर, आज मेरा मार्ग न रोकियेगा क्योंकि आज मेरे सामने जो भी आयेगा महादेव की सौगन्ध मैं उसे हटाकर जयद्रथ के सामने चला जाऊंगा। इसलिये आज मुझे रोकने का प्रयत्न न करना गुरुवर।

युद्ध आरम्भ हो गया किन्तु श्रीकृष्णने अर्जुनको सावधान करके रथ एक ओर हाँक दिया। द्रोणाचार्यने पुकारा- पाण्डुनन्दन, युद्धमें शत्रुको पराजित किये बिना तो तुम हटते नहीं। आज इस प्रकार कहाँ जा रहे हो?

द्रोण बोले, जब तक मैं तुम्हारा मार्ग रोके खडा हूं कुन्तीनन्दन तब तक तुम सिन्धु नरेश के पास जा ही नहीं सकते हो। सिन्धु नरेश जयद्रथ के पास जाने के लिये तुम्हे मुझे मार्ग से हटाना होगा। अर्जुन बोला, जो आज्ञा। अर्जुन ने द्रोणपर बाणों की भारी वर्षा की। कृष्ण बोले, यदि इनसे ही द्वन्द्व युद्ध में उलझे रहे पार्थ तो सूर्यास्त हो जायेगा। द्रोण बोले, ठहर जाओ अर्जुन। शत्रुओं को पराजित किये बिना ही जा रहे हो। अर्जुन बोला, आप मेरे शत्रु नहीं है आचार्य, आप तो मेरे गुरु है और मैं यह भी जानता हूँ कि स्वयं आपके अतिरिक्त इस संसार में आपको कोई भी पराजित नहीं कर सकता। हँसकर अर्जुनने सिर आचार्यकी ओर करके हाथ जोड़े- आप मेरे शत्रु नहीं, सम्मान्य हैं। आपको भला कौन पराजित कर सकता है। राजकुमार अर्जुन ने आचार्य द्रोण के व्यूह पर आक्रमण किया। आचार्य को सम्मुख पाकर वे बोले, ब्रह्मण। आप मेरा कल्याण चिंतन कीजिए। मुझे स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दीजिए। मैं आपकी कृपा से ही इस दुर्भेद्य सेना के भीतर प्रवेश करना चाहता हूँ। आप मेरे लिए पिता पांडु, धर्मराज तथा श्रीकृष्ण के ही समान श्रद्धेय हैं। जैसे अश्वत्थामा आपके लिए रक्षणीय है, उसी प्रकार मैं भी आपसे संरक्षण पाने का अधिकारी हूँ। मैं आपके प्रसाद से इस युद्ध में जयद्रथ को मारना चाहता हूँ। आप मेरी इस प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिए। किंतु आचार्य ने किसी प्रकार की कोई कोमलता नहीं दिखाई। बोले, अर्जुन। मुझे पराजित किए बिना जयद्रथ को जीतना असंभव है। उसके पश्चात् आचार्य ने राजकुमार को तनिक भी समय नहीं दिया। उन्होंने राजकुमार पर भयंकर आक्रमण किया। राजकुमार अर्जुन ने युद्धारंभ के रूप में अपने बाणों से उनके चरणों में आघात किया। आचार्य ने राजकुमार के बाण काटे और राजकुमार तथा श्रीकृष्ण- दोनों को ही आहत कर दिया। राजकुमार अभी संभवत: युद्धसंबंधी किसी निर्णय के विषय में सोच ही रहे थे कि आचार्य ने उनके धनुष की प्रत्यंचा काट डाली और राजकुमार के घोड़ों, ध्वज और श्रीकृष्ण को भी बींध डाला।

आचार्य ने गांडीव की प्रत्यंचा काट डाली। वह साधारण प्रत्यंचा नहीं है। युधिष्ठिर चकित थे, पहली बार सुन रहा हूँ कि गांडीव की प्रत्यंचा किसी ने काट दी। पहले तो कभी किसी ने यह नहीं किया था। उन्होंने नई प्रत्यंचा चढ़ा ली और आचार्य से अधिक पराक्रम दिखाया। आचार्य ने अपने नाराचों से राजकुमार के वक्ष में गहरा घाव किया।

नन्दिघोष रथका वेग आज असह्य था। वह जिधर जा रहा था, पीछे पर्याप्त चौड़ाईमें मनुष्यों, अश्वों, हाथियोंके कटे-फटे शरीरोंका समुदाय, टूटे रथों, अस्त्र-शस्त्र तथा कवचोंके खण्ड और रक्तकी कीच छोड़ता जा रहा था। लगता था कि प्रलयके देवता उधरसे सपरिकर निकल गये हैं।

मृत्यु, पराजय अथवा पलायन आज जो भी अर्जुनके सम्मुख संग्राम करने आया, प्रतिपक्षी बना, उसके प्रारब्धमें इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। अर्जुन अनवरत बाण वर्षा कर रहे थे और श्रीकृष्ण गजों तथा शवोंकी राशिको रौंदते रथको पूरे वेगसे बढ़ाये चले जा रहे थे।

HHH(११८)HHH

था विकट शकटव्यूह सम्मुख द्रोण का कोसों अड़ा, घन कण्टकित वन-तुल्य जिसका भेदना दुष्कर बड़ा।
पीछे जयद्रथ को छिपा छै नायकों के साथ में, आचार्य ही थे द्वाररक्षक शस्त्र लेकर हाथ में॥
अवलोक सम्मुख पार्थ ने गुरु को प्रणाम किया अहा, आशीष दे आचार्य ने उनसे प्लुत-स्वर में कहा।
देकर परीक्षा आज अर्जुन। तुष्ट तुम मुझको करो, आओ, दिखाओ हस्त-कौशल, यह समर-सामर तरो॥
सुख-घातकों को देखते ही पार्थ मानो जल उठे, मुख-मार्ग से क्या त्वेषं ही तो वे वहाँ न उगल उठे।
आचार्य। मेरा हस्त-कौशल देख लेना फिर कभी, अभिमन्यु का बदला तुम्हें लेकर दिखाना है अभी॥
उस ओर द्रोणाचार्य थे इस ओर अर्जुन वीर थे, गुरु-शिष्य दोनों छोड़ते तीखे हजारों तीर थे।
हैं घोर वाद-विवाद करते दो प्रबल पंडित यथा, करने लगे दोनों परस्पर शस्त्र वे खंडित तथा॥
दोनों रथी इस शीघ्रता से थे शरों को छोड़ते, जाना न जाता था कि वे कब थे धनुष पर जोड़ते।
थे बाण दोनों के गगन में इस तरह फहरा रहे- ज्यों ऊर्मिमाली में अनेकों उरग-वर लहरा रहे॥
करने लगे दोनों दलों को दलित यों दोनों बली, कुछ देर ही में रक्त की धारा धरा पर बह चली।
लड़ने लगे सब शूर सैनिक, भीति से कायर भगे; सानन्द गृध्र श्रृंगाल आदिक घूमने रण में लगे॥
आगे न अर्जुन बढ़ सके आचार्य-बल-वातूल से, कल्लोल लोल-पयोधि के ज्यों बढ़ न सकते कूल से।
बोले वचन तब पार्थ से हरि- व्यर्थ यह संग्राम है, है काल थोड़ा और करना बहुत भारी काम है॥
यों कह वचन श्रीकृष्ण ने रथ अन्य ओर बढ़ा दिया, चेष्टा बहुत किया द्रोण ने, पर क्या हुआ उनका किया?
प्रबल-प्रभञ्जन-वेग-गति रोकी न जा सकती कहीं, करने लगे वे विवश होकर व्यूह की रक्षा वही॥

अर्जुनको इस प्रकार बढ़ते देखकर महापराक्रमी राजा श्रुतायुध अपना विशाल धनुष चढ़ाता बड़े क्रोधसे उनके सामने आया। उसने अर्जुन और श्रीकृष्णके बाण मारे तथा एक तेज बाणसे उनकी ध्वजापर वार किया। अर्जुनने तुरंत ही उसका धनुष काटकर तरकसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब उसने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनकी छाती और भुजाओंमें बाण मारे। इसपर अर्जुनने हजारों बाण छोड़कर श्रुतायुधको तंग कर डाला और उसके सारथी एवं घोड़ोंको भी मार डाला। तब महाबली श्रुतायुध रथसे उतरकर हाथमें गदा ले अर्जुनकी ओर दौड़ा। यह वरुणका पुत्र था। महानदी पर्णाशा इसकी माता थी। उसने अपने पुत्रके स्नेहवश वरुणसे कहा था कि मेरा पुत्र संसारमें शत्रुओंके लिये अवध्य हो। इसपर वरुणने प्रसन्न होकर कहा था, मैं तुझे यह वर देता हूँ और साथ ही यह दिव्य अस्त्र भी देता हूँ। इसके कारण तेरा पुत्र अवध्य हो जायगा। परंतु संसारमें मनुष्यका अमर होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। जो उत्पन्न हुआ है, उसे अवश्य मरना होगा। ऐसा कहकर वरुणने श्रुतायुधको एक अभिमन्त्रित गदा दी और कहा, यह गदा तुम्हें किसी ऐसे व्यक्तिपर नहीं छोड़नी चाहिये, जो युद्ध न कर रहा हो। ऐसा करनेपर यह तुमपर ही गिरेगी। किंतु इस समय श्रुतायुधके मस्तकपर काल मँडरा रहा था। इसलिये उसने वरुणकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया और उसने श्रीकृष्णपर वार किया। श्रीकृष्णने उसे अपने विशाल वक्षःस्थलपर लिया और उसने वहाँसे लौटकर श्रुतायुधका काम तमाम कर दिया। श्रुतायुधने युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्णपर गदाका वार किया था। इसलिये उसने लौटकर उसीको नष्ट कर दिया। इस प्रकार वरुणके कथनानुसार ही श्रुतायुधका अन्त हुआ और वह सब योद्धाओंके देखते-देखते प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गया।

रथ देख बढ़ता पार्थ का सम्पूर्ण शत्रु दुखी हुए, सब शूर पाण्डव-पक्ष के कर हर्षनाद सुखी हुए।
लड़ने युधिष्ठिर से लगे तब द्रोण बढ़कर सामने, संग्राम जैसा था किया गाङ्गेय से भृगुराम ने॥

ज्यों ज्यों शरों से शत्रुओं को थे धनंजय मारते, श्रीकृष्ण थे रथ को बढ़ाते कुशलता विस्तारते।
उस काल रथ के हय तथा गांडीव के शर जगमगे, करते हुए स्पर्द्धा परस्पर साथ ही चलने लगे।।
टूटे हुए रथ थे कहीं, थे मृत गजाश्व अड़े कहीं, थे रुण्ड-मुण्ड-करादि रण में छिन्न-भिन्न पड़े कहीं।
इस भाँति अस्तव्यस्त फैले दीखते थे वे सभी- मानो हुई नभ से रुधिरमय वृष्टि यह अद्‌भुत अभी।।
गति रोकने को पार्थ की जो वीर रण करते गए, क्षणमात्र में उनके शरों से वे सभी मरते गये।
जाने उन्होंने शत्रुगण कितने वहाँ मारे नहीं, जाते किसी से हैं गिने आकाश के तारे कहीं?
इस भाँति अपने वैरियों को युद्ध में संहारते, बढ़ने लगे आगे धनंजय वीरता विस्तारते।
पर देख दिन को गमन करते वे बहुत क्षोभित हुए, अतएव दिनकर-तुल्य ही चलते हुए शोभित हुए।।
मारी श्रुतायुध ने गदा श्रीकृष्ण को उस काल में, पर वह उचटकर जा लगी उलटी उसीके भाल में।
सिर फट गया उसका वहीं, मानों अरुण रंग का घड़ा, हाँ विधि-विरुद्धाचार से किसको नहीं मरना पड़ा।।

श्रुतायु और अच्युतायुका वध हुआ देखकर उनके पुत्र नियतायु और दीर्घायु क्रोधमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते अर्जुनके सामने आये। किंतु अर्जुनने अत्यंत कुपित होकर अपने बाणोंसे एक मुहूर्तमें ही उन्हें यमराजके पास भेज दिया। हाथी जिस प्रकार कमलवनको खूँद डालता है, उसी प्रकार महावीर अर्जुन कौरवोंकी सेनाको कुचल रहे थे। उस समय कोई भी क्षत्रियवीर उन्हें रोक नहीं पाता था। इतनेहीमें गजसेनाके सहित अंगदेशीय, पूर्वीय, दाक्षिणात्य और कलिंगदेशीय राजाओंने दुर्योधनकी आज्ञासे उनपर आक्रमण किया। किंतु अर्जुनने गाण्डीवसे छोड़े हुए बाणोंसे तत्काल ही उनके सिर और भुजाओंको उड़ा दिया। इस युद्धमें अनेकों गजारोही म्लेच्छ धनंजयके बाणोंसे बिंधकर धराशायी हो गये। अर्जुनने अपने बाणजालसे सारी सेनाको आच्छादित कर दिया और मुण्डित, अर्धमुण्डित, जटाधारी एवं दाढ़ीवाले आचारहीन म्लेछोंको अपने शस्त्रकौशलसे काट-कूट डाला। उनके बाणोंसे बिंधकर वे सैकड़ों पर्वतीय योद्धा भयभीत होकर संग्रामभूमिसे भाग उठे। इस प्रकार घोड़े, हाथी और रथोंके सहित अनेकों वीरोंका संहार करते हुए वीर धनञ्जय रणभूमिमें विचर रहे थे।

अब राजा अम्बष्ठने उनकी गतिको रोका। अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे अपने तीखे बाणोंसे उसके घोड़ोंको मार डाला और धनुषको भी काट गिराया। अम्बष्ठ एक भारी गदा लेकर बार-बार अर्जुन और श्रीकृष्णपर चोट करने लगा। तब अर्जुनने बाणोंसे गदाके सहित उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं और उसका मस्तक भी उड़ा दिया। इस प्रकार वह मरकर धमाकसे पृथ्वीपर जा पड़ा।

कृष्ण ने राजकुमार अर्जुन से कहा, धनंजय। आज समय बहुत मूल्यवान है। हमारी दौड़ सूर्यदेव के साथ है। हमारा अधिक समय यहाँ नहीं बीतना चाहिए। इन्हें छोड़ दो। इस समय महत्त्वपूर्ण यह है कि हम सबसे बचते हुए जयद्रथ के पास पहुँचे। श्रीकृष्ण ने रथ हाँका। उनके रथ ने आचार्य द्रोण की परिक्रमा की और वे बाणों की वर्षा कर आगे निकल गए। द्रोण चिल्लाते ही रह गए, अरे कहाँ जा रहे हो। तुम तो शत्रु को पराजित किए बिना नहीं लौटते थे। धनंजय भी हँसे और बोले, सत्य है कि मैं शत्रु को पराजित किए बिना नहीं लौटता, किंतु आप मेरे गुरु हैं, शत्रु नहीं हैं। मैं आपका प्रिय शिष्य हूँ। इस जगत् में ऐसा कोई नहीं है जो आपको पराजित कर सके। और मुझे जयद्रथ तक पहुँचना ही है। मेरे पास कोई विकल्प नहीं है, आचार्य। अर्जुन ने युद्ध का दूसरा मुहाना खोलकर कृतवर्मा से युद्ध करने लगा और उसकी छाती भेद डाली।

कृतवर्मा ने उन्हें युद्ध में उलझाना चाहा तो श्रीकृष्ण ने तत्काल राजकुमार से कहा, हमारा अधिक समय यहीं व्यतीत न हो जाए। तुम कृतवर्मा पर दया मत करो अर्जुन। वह मेरी पुत्री चारुमती का श्वसुर भी है और हमारा पुराना साथी भी। मथुरा में संघर्ष के दिनों में वह हमारे साथ था; किंतु अब वह अधर्म के पक्ष में खड़ा है। विलंब मत करो। इस समय संबंधी

होने का विचार छोड़कर उसे मथ डालो। राजकुमार ने कृतवर्मा का वध तो नहीं किया किंतु उन्हें मूर्च्छित अवश्य कर दिया। कृतवर्मा अधिक समय तक अचेत नहीं रहे। राजकुमार ने जब तक कांबोजों की सेना पर आक्रमण किया, तब तक कृतवर्मा की चेतना लौट आई थी। उसने राजकुमार के पृष्ठरक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा को रोक दिया।

अर्जुन ने कृतवर्मा को जीवित छोड़ दिया।

दुर्योधन को लगा, उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया है। कहाँ वह सोचता था कि अर्जुन आचार्य द्रोण को ही पार नहीं कर पाएगा और कहाँ वह दुर्मर्षण, दु:शासन और कृतवर्मा को पछाड़ता और अनेक राजाओं का वध करता हुआ, व्यूह के भीतर दूर तक धँस गया था। द्रोण अभी व्यूह के प्रवेश-द्वार पर ही डटे खड़े थे। क्यों? ताकि वे अन्य पांडवों का प्रवेश भी सुविधा से करवा सकें? न तो वे अर्जुन के पीछे आए थे और न ही उन्होंने किसी और के माध्यम से अर्जुन को रोकने का कोई प्रयत्न किया था। ये तो वैसे ही द्वारपाल थे जो प्रत्येक व्यक्ति को द्वार में प्रवेश करने देता है और स्वयं द्वार पर खड़ा-खड़ा ही समझता है कि वह अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। वे व्यूह के द्वार पर खड़े रहेंगे और भीतर अर्जुन जयद्रथ का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा। दुर्योधन को जयद्रथ की उतनी चिंता नहीं थी, जितनी अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी होने की। जयद्रथ को मरना है तो मरे। किसी के हाथों मर जाए, आत्महत्या कर ले, किंतु उसका वध अर्जुन के हाथों नहीं होना चाहिए। अर्जुन की प्रतिज्ञा किसी भी दशा में पूरी नहीं होनी चाहिए। उसे आज रात तक चितारोहण करना ही होगा, चाहे कुछ हो जाए। दुर्योधन ऐसा स्वर्ण अवसर नहीं खो सकता। यदि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के हाथों नहीं मरा तो फिर उसको मारना कठिन होगा।

दुर्योधन अपनी व्यग्रता में बिना सहायकों और रक्षकों के अपना एकमात्र रथ दौड़ाता हुआ व्यूह के द्वार की ओर बढ़ा। उसने यह भी चिंता नहीं की कि उसकी इस दौड़ के कारण स्थान-स्थान पर विभिन्न वाहिनियों को व्यूह के नियमों के विरुद्ध इधर-उधर हटकर उसे मार्ग देना पड़ रहा है। उसका आचार्य के पास पहुँचना किसी भी व्यूह से अधिक महत्त्वपूर्ण था।

दुर्योधन ने द्रोण से कहा, अर्जुन हमारी इस विशाल सेना को मथकर व्यूह के भीतर चला गया है। इसका अर्थ जानते हैं आप? जयद्रथ मारा जाएगा उसके हाथों। अर्जुन के विनाश के लिए क्या करना चाहिए।

इस प्रकार जब अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेकी इच्छासे द्रोणाचार्य और कृतवर्माकी सेनाओंको चीरकर व्यूहमें घुस गये तथा उनके हाथसे सुदक्षिण और श्रुतायुका वध हो गया, तो अपनी सेनाको भागती देखकर दुर्योधन अकेला ही अपने रथपर चढ़ा हुआ बड़ी फुर्तीसे द्रोणाचार्यके पास आया और कहने लगा, आचार्य। अर्जुन हमारी इस विशाल वाहिनीको कुचलकर भीतर घुस गया है। अब आप विचार करें कि हमें उसके नाशके लिये क्या करना चाहिये। हमें तो आपहीका सबसे बढ़कर भरोसा है। आग जिस प्रकार घास-फूसको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन हमारी सेनाका संहार कर रहा है। इस समय जयद्रथकी रक्षा करनेवाले बड़े संदेहमें पड़ गये हैं। हमारे पक्षके राजाओंको पूरा विश्वास था कि अर्जुन जीते-जी आपको लाँघकर सेनामें नहीं घुस सकेगा। परंतु मैं देखता हूँ वह आपके सामने ही व्यूहमें घुस गया है। आज मुझे अपनी सारी सेना विकल और विनष्ट-सी जान पड़ती है। सिन्धुराज तो अपने घरको जा रहे थे। यदि आप मुझे यह वर न देते कि मैं अर्जुनको रोक लूँगा तो मैं उन्हें कभी न रोकता। मैंने मूर्खतासे आपकी रक्षामें विश्वास करके सिन्धुराजको भी समझा-बुझा दिया। मेरा विश्वास है कि मनुष्य यमराजकी दाढ़ोंमें पड़कर भले ही बच जाय, किंतु रणभूमिमें अर्जुनके हाथमें आकर जयद्रथके प्राण किसी प्रकार नहीं बच सकते। अत: अब आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे सिन्धुराजकी रक्षा हो सके। मैंने घबराहटमें कुछ अनुचित कह दिया हो, तो उससे कुपित न होकर आप किसी प्रकार इन्हें बचाइये। द्रोण बोले, तुम्हें जयद्रथ को बचाना है या अर्जुन को मारना है?

दुर्योधन बोला, इस भयंकर नरसंहार में जयद्रथ न मारा जाए, वैसा कोई उपाय कीजिए। हमारा सबसे बड़ा सहारा आप ही हैं। जब से अर्जुन आप की सेना का व्यूह भेदकर आपको भी लाँघ कर आगे चला गया है, तब से जयद्रथ की रक्षा करनेवाले योद्धा महान् संशय में पड़ गए हैं। अपनी यह इतनी विराट और संगठित सेना मुझे व्याकुल और विनष्ट हुई सी प्रतीत हो रही है। यदि शत्रु इसी प्रकार हमारे व्यूहों को भेद कर सेना में घुसते रहे और उन्हें सब ओर सफलता मिलती रही तो मेरी इस सेना का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। ज्ञात है मुझे कि आप सदा पांडवों का हित साधने में तत्पर रहते हैं। बहुत प्रिय हैं वे आपको। जिसका सेनापति ही उसके शत्रुओं से प्रेम करे, वह राजा अपने लक्ष्य को कैसे पा सकता है। इसीलिए अपने कार्य की गुरुता का विचार कर मैं व्याकुल हो रहा हूँ। जैसे भी हो सिंधुराज की रक्षा कीजिए।

युद्धक्षेत्र में दुर्योधन बोला, अर्जुन ने आपका कमल व्यूह तोड दिया गुरुदेव और वो सिन्धु नरेश की ओर बढता ही चला जा रहा है। हम सब तो यह सोचते रहे कि आपको पार करना अर्जुन को सम्भव नहीं होगा किन्तु आपने उसको कतराकर निकल जाने दिया। द्रोण बोले, मैं उसकी पीठ पर बाण नहीं चला सकता था युवराज।

दुर्योधन बोला, यदि आप घेरकर एक बालक का वध कर सकते है तो अर्जुन की पीठपर बाण क्यों नहीं मार सकते। गुरुदेव यह आपका आश्रम नहीं है जहां युद्ध की मर्यादा पर वाद विवाद चल सके। यह रणभूमि है गुरुदेव। जाइये और जाकर सिन्धु नरेश की रक्षा कीजिये। सिन्धु नरेश तो कल रात को ही सिन्धु देश प्रस्थान करना चाहते थे परन्तु मैनें उन्हें वचन दिया था कि मैं अर्जुन को तुम तक नही पहुंचने दूंगा। जाइये और जाकर मेरे वचन का पालन कीजिये। द्रोण बोले, मेरा यहां से जाना उचित नहीं है वत्स। मैं सिन्धु नरेश का कोई अंगरक्षक नहीं हूं। मैं तुम्हारी सेना का प्रधान सेनापति हूं और मुझे तुम्हारे लिये युधिष्ठिर को बन्दी बनाना। जयद्रथ की रक्षा के लिये तुम जाओ। मैं यहां ठहर कर युधिष्ठिर की प्रतीक्षा करूंगा। इस समय अर्जुन उसके पास नहीं है। इसलिये उसे बन्दी बनाने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होगी। सिन्धु नरेश की रक्षा के लिये तुम जाओ। दुर्योधन बोला, जो आज्ञा गुरुदेव। चलो सारथी।

माँ जब जन्म देती है, तभी माँ नहीं होती, वह आजीवन माँ ही रहती है। अपनी पीड़ा से भी अधिक कष्टदायक पुत्र की पीड़ा होती है।

अर्जुन के पास श्रीकृष्ण जैसा संसार का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट सारथी है। उनके अश्व भी इस समरभूमि के सर्वोत्तम अश्व हैं। उतने तीव्रगामी और ऊर्जायुक्त अश्व और किसी के पास नहीं हैं। इस समय तो आप अर्जुन के पीछे जाइए और जाकर उसको किसी भी प्रकार रोकिए। जयद्रथ की रक्षा होनी ही चाहिए। मैंने उसे वचन दिया था कि हम उसकी रक्षा करेंगे।

द्रोण सोचते हैं वह फिर उन्हें आज की पराजय के लिए भी दोषी ठहराएगा। पांडवों के प्रति पक्षपात का आरोप लगाएगा। यह नीच। धन के लोभ में अपने भाइयों की हत्या करवा रहा है इसलिए समझता है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति धन के लिए विश्वासघात कर सकता है। अपनी अयोग्यता के लिए भी दूसरों को धिक्कारता रहता है।

द्रोण दुर्योधन से बोले, राजन्। इस समय मेरी सेना के सामने कुंतीकुमारों की भारी सेना उपस्थित है। इसे छोड़कर जाऊँगा तो यह व्यूह ध्वस्त हुआ ही समझो। और वे बोले महाबाहो मैंने सारे क्षत्रिय समाज के सम्मुख प्रतिज्ञा की है कि समस्त धनुर्धरों के देखते-देखते मैं युधिष्ठिर को बंदी बना लूँगा। इस समय अर्जुन यहाँ नहीं है। युधिष्ठिर अरक्षित है। वह मेरे सामने खड़ा है। ऐसी अवस्था में मैं व्यूह का द्वार छोड़कर अर्जुन से युद्ध करने नहीं जाऊँगा।

इस समय अकेला है वह। और तुम सहायकों से संपन्न हो। तुम इस संपूर्ण जगत् के स्वामी हो। अत: डरो मत। जाकर अर्जुन से युद्ध करो। तुमने ही पांडवों के साथ वैर बाँधा है, अत: जहाँ अर्जुन गया है, वहाँ उससे युद्ध करने के लिए स्वयं

ही शीघ्रतापूर्वक जाओ।

दुर्योधन बोला, जो अर्जुन आपको भी लाँघकर आगे बढ़ गया, वह मेरे द्वारा कैसे रोका जा सकता है। उस पर भी यदि आप इसे ही उचित मानते हैं तो मैं आपके एक दास के समान आपकी आज्ञा के अधीन हूँ। मर ही तो जाऊँगा। आप मेरी रक्षा नहीं करना चाहते तो फिर मुझे जीवित रहकर करना भी क्या है।

द्रोण बोले, राजन्। रक्त बहाने से डरते हो? वैसे अपना रक्त बहाए बिना तो दूसरों का रक्त नहीं बहाया जा सकता। युद्ध शस्त्रों से नहीं साहस और वीरता से लड़ा जाता है।

आज के युद्ध का केन्द्र बस जयद्रथ था। सारा कुछ उसी के जीवन और मृत्यु पर निर्भर था। पांडवों का एकमात्र लक्ष्य जयद्रथ का वध था और कौरवों की एकमात्र उपलब्धि उसे बचाना था। जयद्रथ के मारे जाने से दुर्योधन के योद्धा समाप्त नहीं हो जाते, न ही युद्ध का निर्णय हो सकता था, किंतु उससे पांडवों का मनोबल बहुत बढ़ जाता और दुर्योधन तो टूट ही जाता।

द्रोण ने पांचालों पर बाण-वर्षा आरंभ की। अन्य कौरवपक्षी योद्धाओं के लिए भी पांचालों का विरोध ही अधिक सुविधाजनक था।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा, महाराज। इस समय सिन्धुराज जयद्रथ सारी सेनाके पीछे था और कृपाचार्य आदि महान् धनुर्धर उसकी रक्षाके लिये तैनात थे। उसकी दाहिनी ओर अश्वत्थामा और बायीं ओर कर्ण थे तथा भूरिश्रवा आदि उसके पृष्ठरक्षक थे। इनके सिवा कृपाचार्य, वृषसेन, शल और शल्य आदि अनेकों रणबाँकुरे वीर भी उसीकी रक्षाके लिये युद्ध कर रहे थे।

द्रोण को सामने देखकर धृष्टद्युम्न की आँखों में रक्त उतर आया। इस ब्राह्मण को मारे बिना उसके जीवन का कोई लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता था। धृष्टद्युम्न ने द्रोण पर प्रहार किया। लगा, द्रोण के चलाए हुए सारे बाण जैसे लौट रहे हों। कौरव सेना के लिए यह सर्वथा अप्रत्याशित था। द्रोण ने देखा, उनकी सेना के पैर जमने के स्थान पर उखड़ गए थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि धृष्टद्युम्न के आक्रमण में ऐसा क्या था कि उनकी सेना में भगदड़ मच गई थी। उनकी सेना जैसे तीन भागों में बँट गई थी। सैनिकों का पहला दल पांडव योद्धाओं की मार खाकर कृतवर्मा की शरण में चला गया था। दूसरा दल जलसंध की ओर भागता हुआ दिखाई पड़ा, और जो बच गए वे द्रोण का अनुसरण करते रहे। विकर्ण, विविंशति, चित्रसेन इत्यादि ने भीम को घेरा। बाह्लीक ने द्रौपदेयों को रोका। दु:शासन सात्यकि से भिड़ गया, शल्य ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। संजय ने चेकितान को रोका, शकुनि ने नकुल को, विंद और अनुविंद ने विराट को। और फिर जैसे युद्ध कुछ उलट गया। शिखंडी ने बाह्लीक पर आक्रमण कर दिया। किसी अज्ञात दिशा से घटोत्कच प्रकट हो गया और वह अलायुध पर टूट पड़ा।

द्रोण ने निकट से मारे जानेवाले छोटे बाणों की अनवरत वर्षा आरंभ कर दी। वे अपने बाणों से उसे बींधने में सफल हो गए थे। धृष्टद्युम्न के पास अपनी रक्षा का कोई मार्ग नहीं था। या तो वे सीधा द्रोण पर कूद ही जाता और उनका धनुष बाण छीन लेता किंतु वह संभव नहीं था। उसके और द्रोण के मध्य, रथ के वे सारे अवरोध थे, जो रथी की रक्षा के लिए लगाए जाते थे। उसे अपना संतुलन भी बनाए रखना था। द्रोण के बाणों से स्वयं को बचाना भी था और फिर द्रोण पर आक्रमण करना था।

सात्यकि ने देखा, धृष्टद्युम्न का साहसिक कार्य उसको बहुत महँगा पड़ रहा था। वह हवा में तलवार भांज रहा था और द्रोण उसे अपने बाणों से गोद रहे थे। सात्यकि ने द्रोण पर जैसे बाणों की वर्षा ही कर दी। द्रोण का ध्यान उधर से हटा और धृष्टद्युम्न उनके रथ से नीचे कूद गया। सात्यकि ने बाण मारकर धृष्टद्युम्न को द्रोण के चंगुल से बचा लिया था।

द्रोण को यह तनिक भी अच्छा नहीं लगा। अपनी मृत्यु को उन्होंने बहुत निकट से देखा था तो धृष्टद्युम्न भी काल के गाल

में समा ही चुका था। उनकी मुट्ठी में आकर धृष्टद्युम्न सुरक्षित निकल गया था। दुर्योधन के लिए चाहे अर्जुन का मरना ही महत्वपूर्ण था; किंतु द्रोण तो धृष्टद्युम्न का वध करने को भी उतने ही व्याकुल थे। यदि कहीं वे धृष्टद्युम्न को रथ से गिरा पाते तो यह उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि होती।

अब द्रोण का लक्ष्य सात्यकि ही था। इसी ने धृष्टद्युम्न को बचा लिया था। इसे न मारा तो यह हर बार धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर को बचा ले जाएगा। उन्होंने सात्यकि पर वेग से प्रहार किया। सात्यकि ने पलटकर द्रोण को बाण मारे। उसने द्रोण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी। द्रोण ने नया धनुष उठा लिया, पर सात्यकि ने उसकी भी प्रत्यंचा काट दी। द्रोण नया धनुष उठाते थे और सात्यकि उसे काट देता था। द्रोण इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने सात्यकि के वध के लिए दिव्यास्त्र प्रकट किया। सात्यकि हँसा द्रोण समझते हैं कि दिव्यास्त्र उनके ही पास हैं। उसने वारुण नामक दिव्यास्त्र धनुष पर चढ़ा ही नहीं लिया, तत्काल उसे द्रोण पर छोड़ भी दिया।

दु:शासन ने सात्यकि पर आक्रमण किया। बाण सीधा जाकर सात्यकि के वक्ष में लगा और उसने उसका कवच भी फाड़ दिया। घाव इतना गहरा था कि सात्यकि को मूर्च्छा आ गई। किंतु सात्यकि को सचेत होने में अधिक समय नहीं लगा। वह उठ खड़ा हुआ और उसने बाणों की झड़ी लगा दी। दु:शासन के सारे शरीर से रक्त बह रहा था और वह सात्यकि से अपनी रक्षा की विधि सोच रहा था। व्यर्थ ही छेड़ दिया उसने सात्यकि को। योद्धा तो और भी इतने थे। वह किसी और से भी तो भिड़ सकता था।

दु:शासन कृतवर्मा की मदद करने के लिये आया। दु:शासन और अर्जुन में घोर युद्ध हुआ। दु:शासन का रथ तोड गिराया। कृपाचार्य और अर्जुन में घोर संग्राम हुआ। कौरवों की सेना तितर-बितर होने लगी। इतने में ही मद्र नरेश ने आकर युद्ध किया। जयद्रथ युद्ध में छिपा हुआ था। वो सामने नहीं आ रहा था। अर्जुन और अश्वत्थामा के बीच घोर युद्ध हुआ। कर्ण और अर्जुन में भी भयंकर बाण वर्षा होने लगी और कर्ण को परास्त किया। दुर्योधन और अर्जुन के बीच में घमासान युद्ध होने लगा। उसकी छाती में बाण मारे।

संजय धृतराष्ट्र से बोले, कुन्ती पुत्र अर्जुन तो आज किसी के भी रोके रूक नहीं रहे महाराज। धृतराष्ट्र बोले, अब मैं दुर्योधन को क्या कहूं संजय। जब वासुदेव कृष्ण शान्ति सन्देश लेकर यहां आये थे तभी मैंने दुर्योधन को समझाया था कि पुत्र इनकी बात मान लो। पांच गांव देकर अलग करो पांडु पुत्रों को पर उसने मेरी एक न सुनी। संजय बोला, फिर राजन जब सारा अमृत आपकी अंजुलि से बह चुका है तब उसके विषय में सोचने से भला क्या लाभ हो सकता? जिस अंजुलि से अमृत बह गया राजन वो अंजुलि गान्धारी नन्दन दुर्योधन की नहीं थी। स्वयं आपकी थी महाराज। धृतराष्ट्र बोले, नहीं संजय वो मेरे दुर्भाग्य की थी। मुझे युद्ध की बातें विस्तार से बताये जाओ। यही मेरा दंड है। संजय बोला, कुन्ती पुत्र अर्जुन की चढ़ाई से घबराकर गान्धारी नन्दन दुर्योधन आचार्य द्रोण की ओर जा रहे हैं महाराज।

तभी भीम ने जलसंध पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने कृतवर्मा पर बाण चलाए। धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से लगभग सटा ही दिया। इतनी दूरी भी नहीं थी कि बाण मारा जा सके। तब धृष्टद्युम्न ढाल और तलवार ले रथ से कूदकर द्रोण के रथ पर जा चढ़ा। अपना एक पैर जूए के बीच में और दूसरा पैर घोड़े के पुट्ठे पर रखकर वह खड़ा हो गया। द्रोण के पास बचने अथवा सहायता पाने का कोई अवसर नहीं था।

दोनों ओर से दिव्यास्त्र चलने के कारण हाहाकार मच गया। दोनों पक्षों से अपने-अपने योद्धाओं की रक्षा का प्रयत्न किया गया। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीम तत्काल सात्यकि की रक्षा के लिए दौड़े। अब तक धृष्टद्युम्न भी स्वस्थ हो चुका था। उसने विराट और द्रुपद के साथ पुन: द्रोण पर आक्रमण किया। द्रोण को संकट में देखकर, दु:शासन के नेतृत्व

में कौरव पक्ष के असंख्य राजकुमार उनकी रक्षा के लिए आए और पांडव सेनाओं से भिड़ गए।

धृतराष्ट्रने पूछा-संजय। जब अर्जुन और श्रीकृष्ण पृथ्वीपर खड़े हुए थे, तो ऐसा अवसर पाकर भी कौरवलोग अर्जुनको क्यों नहीं मार सके? संजयने कहा- राजन्। जिस प्रकार लोभ अकेला ही सारे गुणोंको रोक देता है, उसी प्रकार अर्जुनने पृथ्वीपर खड़े होनेपर भी रथोंपर चढ़े हुए समस्त राजाओंको रोक रक्खा था।

२) विंद और अनुविंद का वध व कृष्ण के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या

अर्जुन और कृष्ण आगे बढ़ते चले गए थे। कृष्ण और अर्जुन दोनों ही समझ रहे थे कि उनके अश्व थक रहे थे और जयद्रथ अभी बहुत दूर था। इस समय बीच युद्ध के न तो अश्व बदले जा सकते और न ही उनको कुछ विश्राम दिया जा सकता था। परिणामत: उनकी गति मंथर होती जा रही थी। उसी का लाभ उठाया विंद और अनुविंद ने। थोड़े से अंतराल के पश्चात् उनके रथ अर्जुन को रोकने के लिए मार्ग के मध्य आ डटे। अर्जुन ने कहा, मुझे दुर्योधन के प्रति इनकी निष्ठा कभी समझ में नहीं आई। मैं कभी समझ ही नहीं पाया कि ये हमारे इतने विकट शत्रु क्यों हैं। कृष्ण धीरे से बोले, ये न तुम्हारे शत्रु हैं, न दुर्योधन के मित्र हैं। वस्तुत: इनकी निष्ठा जरासंध के प्रति थी और है। मैं जरासंध का शत्रु बना, इसलिए ये मेरे भी शत्रु हो गए। मेरे शत्रु तुम्हारे मित्र कैसे हो सकते थे? अर्जुन बोला, पर ये तुम्हारे शत्रु क्यों हैं? तुमने इनका क्या बिगाड़ा है? ये तुम्हारी बुआ के पुत्र हैं। तुम्हारे पत्नी के भाई हैं। फिर तुमसे स्नेह न कर तुम्हारे शत्रु क्यों हो गए हैं?

कृष्ण हँसे और बोले, वैसे तो दुर्योधन भी तुम्हारे ताऊ का पुत्र है, उसे तुमसे स्नेह होना चाहिए।

अर्जुन ने कहा, उससे हमारा राज्य का झगड़ा है। तुम्हारा विंद और अनुविंद से वैसा कोई झगड़ा नहीं है।

कृष्ण बोले, कहने को कहा जा सकता है कि वे जरासंध के पक्ष के थे और मैं जरासंध का विरोधी था फिर वे अपनी बहन मित्रविंदा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते थे, पर मित्रविंदा ने जयमाला मेरे कंठ में डाल दी; और मैं उसका हरण कर लाया। विरोध तो प्रत्यक्ष ही है, पर मैं जानता हूँ कि मूलत: विरोध यह नहीं है। यह कोई विरोध नहीं होता। विरोध का कारण जानने के लिए पूछना होगा कि वे मित्रविंदा का विवाह मुझसे होने देना क्यों नहीं चाहते थे? उसका कारण वही है, जो तुम लोगों के प्रति कर्ण के विरोध का कारण है। कर्ण ने आँखें खोलीं तो धृतराष्ट्र और दुर्योधन को राजा और राजकुमार के रूप में देखा। उसके मन में उनके लिए भक्ति जागी। तुम लोगों को उसने निर्धन वनवासी और धृतराष्ट्र के निर्धन आश्रित संबंधियों के रूप में देखा। उसका मन तुम्हें आज भी वैसा ही दीनहीन और निर्धन देखना चाहता है। परिवर्तन अथवा विकास स्वीकार नहीं उसे। वह तुम्हारा वैभव का अधिकार मानने को तैयार नहीं है। वैसे ही विंद और अनुविंद के लिए मैं उनके निर्धन मातुल का पुत्र हूँ, जो निर्धन गोपों के घर पला। वह न मेरे पिता का महत्त्व मानने को तैयार है और न मेरा। वे हमें अपने राजसमाज का अंग मान ही नहीं पाए। मनुष्य जब पहली बार किसी से मिलता है तो उसके उस रूप और स्थिति को स्वीकार कर लेता है। उसके पश्चात् उसके विकास और परिवर्तित स्थिति को स्वीकार करना नहीं चाहता। जब ऐसे किसी व्यक्ति का महत्त्व स्वीकार करने का अवसर आता है तो उसे स्वीकार करने के स्थान पर वह उससे ईर्ष्या करने लगता है। किंतु जब वह इसी कारण से किसी का शत्रु हो जाए और उसके प्राणों का हरण करना चाहे तो वह अधर्म और अपराध की ओर झुक जाता है; और तब उसका प्रतिरोध करना पड़ता है। इसलिए तुम विंद और अनुविंद को मेरी बुआ के पुत्र अथवा मेरे श्यालकके रूप में मत देखो। वे शत्रु हैं, अधर्मी तथा अपराधी हैं।

अर्जुन सोच रहा था ये अकारण शत्रु। अहंकार से उपजी अपनी इच्छा को दूसरों पर आरोपित नहीं कर पाए तो कृष्ण

और अर्जुन के ही नहीं, धर्म के भी शत्रु हो गए। अब वे अर्जुन से भी पहले कृष्ण का वध करना चाहते हैं। ऐसे ही अभागों ने अपने मूर्ख व्यक्तिगत राग-द्वेष को इतने बड़े युद्धों का कारण बना दिया है और संसार के संहार के निमित्त बन गए हैं। इनको जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।

अर्जुन ने बाणों की झड़ी लगा दी। दोनों के रथों के पृष्ठरक्षकों तथा चक्ररक्षकों को मार कर अश्वों के भी प्राण ले लिए। दोनों के सारथियों के वक्ष में बाण का प्रहार किया और अंतत: अर्जुन ने विंद को एक क्षुरप्र से मारकर रथ से नीचे गिरा दिया।

अर्जुन के बाण ने पहले अनुविंद की वह भुजा काटी, जिसने कृष्ण पर प्रहार किया था। फिर वह भुजा काटी, जो मुष्टिका बाँध कर प्रहार की मुद्रा में थी। उसके तीसरे और चौथे बाणों से उसके उरु काट डाले, जिनके बल पर वह उनके रथ की ओर दौड़ रहा था। और अंत में उसका मस्तक काट कर उसके प्राणों को उसके शरीर से मुक्त कर दिया।

अर्जुन ने अपने कंधों पर तूणीर बाँध लिए और रथ से उतर आया।

पुत्र-वियोग के सन्ताप से जयद्रथ कहाँ है... जयद्रथ कहाँ है? आक्रोश से चीत्कार करनेवाले अर्जुन के रथ को उसके नि:शस्त्र सारथी ने दिन-भर रणभूमि में दौड़ाया। किन्तु व्यर्थ। जब प्रहर के बाद प्रहर बीतने लगे और जयद्रथ का कहीं पता ही नहीं चला तो, खीझ और चिढ़े हुए अर्जुन ने अवन्ती के बन्धुद्वय- विन्द-अनुविन्द का ही वध कर दिया। वे दोनों कृष्ण के फुफेरे भ्राता थे। मित्रविन्दादेवी के सहोदर थे। अंकपाद आश्रम के आचार्य सान्दीपनि के शिष्य थे।

कौरव सैनिकों की समझ में नहीं आया कि हुआ क्या है। अर्जुन के रथ के घोड़े जीवित और स्वस्थ थे। सारथी जीवित और समर्थ थे। तो वह रथ से उतर क्यों आया? युद्ध में तो कोई रथ को इस प्रकार नहीं त्यागता। और तब उन्होंने देखा कि कृष्ण ने अश्वों को रथ से खोल लिया था। यह ठीक है कि आज श्रीकृष्ण जिस वेगसे रथ ले जा रहे थे, वह आचार्य द्रोणके लिऐ भी अकल्पनीय था किन्तु निरन्तर संघर्ष करते ही अर्जुनको बढ़ना था। एक क्षण भी उनके धनुषको विश्राम नहीं था। अश्वोंको तनिक भी समतल भूमि नहीं मिली। उन्हें मनुष्योंको ही नहीं, गजोंके शवों तथा टूटे रथोंके समूहपरसे दौड़ना पड़ रहा था। इसमें उनको कितना श्रम होगा, कोई समझ सकता है। अत: दोपहर होते-होते अर्जुनके रथके अश्व बहुत थक गये। उनके पूरे शरीरमें इतने बाण लगे थे कि शरीर अश्वोंको नहीं, काँटोंसे भरा साही का लगने लगा था। अर्जुनने इसे लक्ष्य किया। उसने श्रीकृष्णसे कहा- माधव। मैं समझता हूँ कि रथको रोककर अश्वोंको खोल दें और इनके शरीरोंमें लगे बाण निकाल दे तो उत्तम होगा। सबसे पहले उन्होंने अश्वों के शरीर में चुभे हुए बाण निकाले, घावों पर औषधि का लेप किया; और अपनी स्नेहमयी हथेलियों से उनके सारे शरीर में ऊर्जा का संचार किया।

श्रीकृष्णने अश्वोंके शरीरसे बाण निकालते निकालते अर्जुनसे कहा- पार्थ। अपने अश्व प्यासे हैं। यहाँ कोई जलाशय नहीं है। तुम इसकी तत्काल व्यवस्था करो। इन्हें स्नान कराना है।

अर्जुन बोला, रथ क्यों रोक दिया केशव। कृष्ण बोले, हमारे अश्व थक गये है पार्थ और थके हुये अश्व तुम्हारे रथ को विजयश्री की ओर नहीं ले जा सकते। अर्जुन बोला, परन्तु केशव। कृष्ण ने रथ से उतर घोडे खोल दिये। अर्जुन बोला, अब सूर्यास्त में बहुत देर नहीं है केशव। कृष्ण बोले, हां बहुत देर तो नहीं है। अर्जुन घोड़ों को सहला रहा है।

इसी समय श्रीकृष्णने घबराकर अपने प्रियसखा अर्जुनसे कहा, अर्जुन। यहाँ रणभूमिमें कोई अच्छा जलाशय नहीं हैं। तुम्हारे घोड़े पानी पीना नहीं चाहते हैं। अच्छा। केवल इतना कहकर अर्जुनने धनुषपर चढ़े बाणको वारुणास्त्रसे अभिमन्त्रित करके भूमिपर आघात किया। पृथ्वी फोड़कर इतनी प्रबल जलधारा प्रकट हो गयी कि उसने एक ही झटकेमें आसपास बढ़े आते शत्रु-समूह तथा वहाँ पड़े शव, रथ-खण्ड आदि सब बहा दिये। सुन्दर, स्वच्छ जलसे भरा सरोवर दो क्षणमें वहाँ

लहराने लगा। बहुत विशाल सरोवर और उसमें जलपक्षी उतरने लगे। अर्जुनके उस मन्त्रबलसे सरोवर में उसी समय कमल उगे और खिल गये। उसमें मछलियाँ और कछुए क्रीड़ा करते दीखने लगे। अगाध जलसे भरे उस परमपावन तीर्थमें स्नान करने, उस युद्धभूमिमें भी गगनसे देवर्षिके साथ अनेक दिव्य ऋषि-महर्षि उतर आये। श्रीकृष्णके इस अश्व-परिचारक रूपका दर्शन लोभ उन्हें यहाँ खींच लाया था। तीर्थस्नान तो बहाना बना था।

इसपर अर्जुनने तुरंत ही अस्त्रद्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीनेयोग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। यह सरोवर बहुत विस्तृत और स्वच्छ जलसे भरा हुआ था। एक क्षण में ही तैयार किये हुए उस सरोवरको देखनेके लिये वहाँ नारद मुनि भी पधारे। इसमें अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुनने एक बाणोंका घर बना दिया, जिसके खंभे, बाँस और छत बाणोंहीके थे। उसे देखकर श्रीकृण हँसे और बोले खूब बनाया। इसके बाद वे तुरंत ही रथसे कूद पड़े और उन्होंने बाणोंसे बिंधे हुए घोड़ोंको खोल दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग वाह वाह की ध्वनि करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनसे युद्ध करनेपर भी उन्हें पीछे न हटा सके। कमलनयन श्रीकृष्ण, मानो स्त्रियोंके बीचमें खड़े हों, इस प्रकार गये और आपके सब सैनिकोंके सामने ही निर्भय होकर उन्हें लिटाने लगे। वे अश्वचर्यामें उस्ताद तो हैं ही। थोड़ी ही देरमें उन्होंने घोड़ोंके श्रम, ग्लानि, कम्प और घावोंको दूर कर दिया तथा अपने करकमलोंसे उनके बाण निकाल कर मालिश करके और पृथ्वीपर लिटाकर उन्हें जल पिलाया। इस प्रकार जब वे नहाकर, जल पीकर और घास खाकर ताजे हो गये तो उन्हें फिर रथमें जोत दिया। इसके बाद वे अर्जुनके साथ फिर रथपर चढ़कर बड़ी तेजीसे चले।

अश्वोंको खोलकर श्रीकृष्णने टहलाया, भूमिमें लिटाया। बाणोंसे बने उस गृहमें ले जाकर मुस्कराते हुए वे उन अश्वोंसे बातें कर रहे थे और अश्व हर्षसे अपने सारथीको सूंघ-सूंघकर हिनहिना रहे थे। श्रीकृष्णने उनका कवच पहिले ही उतार दिया था। उनके शरीरोंसे बाण निकाल दिये थे। जलमें खड़ा करके उनको अपने हाथोंसे मलकर भली प्रकार स्नान कराया। श्रीकृष्णके अमृतस्यदी स्नेहपूर्ण श्रीकरोंका स्पर्श पाकर कहीं व्रण बचे रह सकते थे। घावोंके चिन्ह तक नहीं रह गये। श्रान्ति तो मिटी ही, सम्पूर्ण शरीर जैसे वज्रका हो गया और प्रत्येक नाड़ी मानो अपार शक्ति प्रवाहसे परिपूर्ण हो गयी। पानी पिलाकर, स्नान कराके श्रीकृष्णने अश्वोंको घास और दाना डाला। उन्हें पुचकार पुचकार कर उन सदाके गोपाल-पशुपालने खिलाया। वे स्नेहसे ही परिपुष्ट हो गये। वे स्वयं अब स्फूर्तिमय बने कूदने लगे थे रथमें जोते जानेके लिए। अपने इस अद्भुत अलौकिक सारथीकी सेवाका सौभाग्य मिला है उन्हें, वह वे भली प्रकार समझते थे।

अश्वों ने अपनी इच्छा भर जल पिया और कृष्ण उन्हें टहलाते हुए रथ के पास ले गए। उन्होंने उन्हें रथ में जोता और रथ को लेकर अर्जुन के पास आ गए।

अत्यन्त दुर्गम भूमि में अविराम चलने से थके, होकर तृषित रथ-अश्व उनके जब न सत्वर चल सके।
वरुणास्त्र-द्वारा पार्थ ने क्षिति से निकाला जल वहीं। भगवान की जिस पर कृपा हो कुछ कठिन उसको नहीं।।

अब अर्जुन और कृष्ण पुन: युद्ध के लिए तैयार थे। कौरव सैनिक खड़े देखते रह गए। न तो उनकी सहायता को कोई सेना आई थी और न ही कोई योद्धा।

शत्रु-समूह उमड़ रहा था। बाणोंकी अनवरत वर्षा कर रहा था। इससे अधिक उत्तम अवसर कहाँ मिलना था कि अकेले अर्जुन भूमिपर खड़े थे। अनेक महारथी आ गये थे और वे गदा, परिघ आदि कुछ भी प्रहार करनेमें कुछ उठा नहीं रख रहे थे किन्तु अर्जुनने सबको अपनी शर-वर्षासे रोक दिया था। वे दिव्यास्त्रका प्रयोग करके शत्रुओंके शस्त्रोंको बार-बार भस्म कर

रहे थे। श्रीकृष्णको अब इधर देखनेकी भी आवश्यकता नहीं थी। एक ही बार चारों ओर देखकर वे अपने सखाकी सुरक्षासे निश्चिन्त हो गये थे।

कौरव सैनिकों को लगा कि यह स्वर्ण अवसर था। अकेला अर्जुन भूमि पर खड़ा था। न तो वह रथ पर था कि वहाँ से सुरक्षित स्थान की ओर बढ़ जाएगा और न ही यहाँ उसका कोई सहायक था। वह कृष्ण को यहाँ असहाय छोड़कर भागेगा भी नहीं। उसे घेर कर बंदी भी बनाया जा सकता था और उसका वध भी किया जा सकता था। दूसरी ओर कृष्ण सर्वथा अकेले और नि:शस्त्र थे। यदि उनके ही प्राण लिए जा सके तो कौरवों की एक बड़ी उपलब्धि होगी।

पर उनमें से आगे बढ़नेवाले सैनिकों को तत्काल पता लग गया कि जिस कृष्ण और अर्जुन को वे अपने सामने समझ रहे थे वे बाणों की एक प्राचीर के पीछे थे; और वह प्राचीर अलंघ्य थी। कृष्ण अपने अश्वों को नहला रहे थे और कौरव सैनिक कुछ नहीं कर सकते थे। कृष्ण अश्वों को दाना खिला रहे थे और सैनिक कुछ नहीं कर सकते थे। न तो वे उनके निकट जा सकते थे और न उनके बाण ही उन तक पहुँच रहे थे। और तब कृष्ण अश्वों को लेकर अर्जुन के समीप आए।

हाथका सहारा देकर अर्जुनको उन्होंने रथपर बैठाया। चारों ओर एकत्र कौरव सेनामें निराशा और भगदड़ मच गयी। वे अपनेको धिक्कार रहे थे। यह सबने समझ लिया कि जब भूमिपर स्थित अर्जुनका कुछ नहीं बिगाड़ा जा सका तो अब रथारूढ़, श्रीकृष्णसे संरक्षित उसके अवरोध का अर्थ मरणके अतिरिक्त और क्या होगा।

संजयने धृतराष्ट्रसे कहा, राजन। अब श्रीकृष्ण और अर्जुन निर्भय होकर आपसमें जयद्रथका वध करनेकी बात करने लगे। उन्हें सुनकर शत्रु बहुत भयभीत हो गये। वे दोनों आपसमें कह रहे थे, जयद्रथको छ: महारथी कौरवोंने अपने बीचमें घेर लिया है; किंतु एक बार उसपर दृष्टि पड़ गयी, तो वह हमारे हाथसे छूटकर नहीं जा सकेगा। यदि देवताओंके सहित स्वयं इन्द्र भी उसकी रक्षा करेंगे, तो भी हम उसे मारकर ही छोड़ेंगे। उस समय उन दोनोंके मुखकी कान्ति देखकर आपके पक्षके वीर यही समझने लगे कि ये अवश्य जयद्रथका वध कर देंगे।

अश्वोंको स्नान कराके जब रथमें जोड़कर श्रीकृष्णने रथ हाँका, कौरव सेना इतनी हताश हो चुकी थी कि वह भागने लगी थी। दुर्योधन इसी समय आगे आया। उसे देखते ही श्रीकृष्णने अर्जुनको उत्साहित किया- सब अनर्थोंकी जड़ यही है। इसने तुम लोगोंको अनेक कष्ट दिये हैं। इसे आज मार ही डालो।

अर्जुनको भी यह अभीष्ट था। दुर्योधन यद्यपि उत्साहमें भरा था, उसके अंग सब अभेद्य कवचसे सुरक्षित थे और अर्जुनका दिव्यास्त्र मानवास्त्र भी उसपर व्यर्थ हो गया किन्तु अन्तमें उसे आहत होकर भागना पड़ा।

दुर्योधन इतने में वहां युद्ध भूमि में आ जाता है और बोला सावधान अर्जुन। कौरव हताश हो चुके थे। तभी दुर्योधन अपना रथ दौड़ाता हुआ आया और अर्जुन को लाँघकर उसके सामने जा खड़ा हुआ। वह तनिक भी हतोत्साहित अथवा निराश प्रतीत नहीं हो रहा था। उसका अदम्य आत्मविश्वास देखकर एक बार तो कृष्ण भी चकित रह गए। आज कौरवों में से किसी का भी आत्मविश्वास उन्हें संशक कर देता था। दुर्योधन ने बाण चलाकर कृष्ण का वक्ष छेद डाला और उनके हाथ के प्रतोद को काटकर भूमि पर गिरा दिया।

कृष्ण बोले, अर्जुन इस समय अपने रथ पर नहीं है दुर्योधन और युद्ध के नियम में एक नियम यह भी था कि पैदल पर कोई महारथी आक्रमण नहीं करेगा। दुर्योधन बोला, वो नियम तो पितामह ने बनाये थे वासुदेव, मैंने नही। मेरा नियम यह है कि शत्रु जहां मिले उसे वही मार डालना चाहिये। सावधान कहकर दुर्योधन ने बाण वर्षा आरम्भ कर दी। अर्जुन ने वहीं रणभूमि में बिना रथ के ही बाणवर्षा कर युद्ध करने लगा। अर्जुन बोला, शस्त्र उठाइये भ्राता दुर्योधन। दुर्योधन बोला, यो हाथ

रोककर मेरा अपमान न करो अर्जुन और मुझ पर बाण चलाओ। अर्जुन ने बाण चलाकर दुर्योधन को युद्ध में गिरा दिया।

अर्जुन के गांडीव से बाण छूटने लगे। पर वे बाण दुर्योधन के शरीर को आहत करने के स्थान पर उससे टकराने के पश्चात् फिसलकर ऐसे भूमि पर गिर रहे थे, जैसे वे किसी शिला से टकराकर अपनी निष्फलता सिद्ध कर रहे हों।

कृष्ण बोले, क्या हो गया है तुम्हें अर्जुन? तुम्हारे बाण काम नहीं कर रहे। वे तो जैसे प्रस्तर-खंड से टकरा-टकराकर गिर रहे हैं। तुम्हारा गांडीव, तुम्हारी मुट्ठी तथा तुम्हारा बाहुबल ठीक है न? या किसी कारणवश तुम समझते हो कि शत्रु से भेंट का अभी अंतिम समय नहीं आया? तुम्हारे बाणों को इस प्रकार निष्फल होते तो मैंने कभी नहीं देखा।

दुर्योधन उसी प्रकार निर्भय उसके सामने खडा रहा; किंतु अश्वत्थामा पीछे से आगे आ गया। उसने असाधारण स्फूर्ति का परिचय देते हुए, अर्जुन के इस सर्वास्त्रघातक अस्त्र को काट डाला। इस स्थिति का लाभ उठाकर दुर्योधन ने अपने बाणों से कृष्ण और अर्जुन के शरीर को कितने ही छोटे-बड़े घाव दे दिए।

दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों ही एक प्रकार से आश्वस्त थे कि अर्जुन पुन: मानवास्त्र नहीं छोड़ सकता। साधारण बाणों से अर्जुन, दुर्योधन को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकता था। उसका प्राय: सारा ही शरीर अभेद्य कवच से सुरक्षित था।

कोई विकल्प न देख, अर्जुन ने दुर्योधन के अश्वों और उसके पृष्ठरक्षकों को मार डाला। धनुष और दस्ताने काट दिए। रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। दुर्योधन ने घबराकर अपने हाथ जैसे ऊपर उठाए और अर्जुन ने उसकी हथेलियों में पैने बाण धँसा दिए।

कौरव योद्धाओं ने अपने राजा को इस प्रकार व्याकुल देखा तो वे उसकी रक्षा को दौड़े आए।

दुर्योधन चिल्लाया, जाओ, सिंधुराज जयद्रथ की रक्षा करो।

दुर्योधन युद्धभूमि से हट गया। उसके तन और मन में असह्य वेदना हो रही थी।

कृष्ण रथ को दौड़ाते जा रहे थे। युद्धभूमि में उड़ी धूल से उनकी पलकें तक धूल-धूसरित हो रही थीं औरचेहरा स्वेद से भीगा जा रहा था। रथ की गति फिर से कुछ मंद होने लगी थी।

अर्जुन ने कहा, आचार्य के मन का द्वंद्व मैं समझता हूँ। वे अपना कर्त्तव्यबोध कितना भी जगा लें; किंतु वे मेरे शत्रु नहीं हो सकते। कृष्ण बोले, ठीक है, पर वे तुम्हारे मित्र भी नहीं हो सकते। वे दुर्योधन के सेनापति हैं। उसको अभेद्य कवच दे सकते हैं; पर जो निष्ठा वह उनसे माँगता है, वह नहीं दे सकते। जो श्रद्धा वे दुर्योधन से माँगते हैं, वह दुर्योधन नहीं दे सकतां दुर्योधन और आचार्य- राजा और सेनापति- के पारस्परिक द्वंद्वों को तुम अपने प्रति उनका प्रेम मत समझो। मत भूलो कि अभिमन्यु के आखेट के लिए चक्रव्यूह भी उन्होंने ही रचा था। हम उन पर विश्वास तो नहीं कर सकते।

अर्जुन के मन से अपने गुरु का मोह नहीं जाता। कृष्ण केवल धर्म से प्रेम करते हैं और किसी से भी नहीं। उनकी व्यावसायित्मिका वृत्ति, उनकी निश्चयात्मक बुद्धि इतनी एकाग्र है कि उनको उनके लक्ष्य से कोई रंच भर भी डिगा नहीं सकता। वे जैसे सदा समाधि में ही रहते हैं। ऐसा योगी कोई और कैसे हो सकता है।

कृष्ण बोले, इसका ध्यान रखना पार्थ कि जयद्रथ का सिर कटकर भूमिपर न गिर जाये। उसके पिता का उसको यह वरदान था कि जो उसके सिर को काटकर भूमिपर गिरा दे स्वयं उसके ही सिर में विस्फोट होगा और वो टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा। इसलिये ऐसा बाण चलाना पार्थ कि जयद्रथ का सिर कटकर उसके ही पिता की गोद में गिर जाये। यही उसकी मुक्ति का मार्ग है। अर्जुन बोला, ऐसा ही होगा केशव।

अर्जुन ने अपना गांडीव ताना और बोला, मैं अभी इनका घेरा तोड़ता हूँ।

कृष्ण धीरे से बोले, अर्जुन। तुम उनका घेरा तोड़ तो लोगे, किंतु उसमें समय लगेगा और आज हमारे पास समय ही नहीं

है। उसने गांडीव की प्रत्यंचा को अपने दाएँ कान तक खींचा और कृष्ण ने पांचजन्य को शक्ति भर फूँका।

अर्जुन ने देखा, उन्हें घेरेनवाले रथियों में भी कँपकँपी मच गई थी। उनके रथ ऐसे अस्थिर हो रहे थे, जैसे कोई भूचाल आया हो और कृष्ण अपने अश्वों को उनके बीच में से निकालकर ले गए। अर्जुन के रथ के चारों ओर घेरा बनते-बनते रह गया। वे बहुत दूर नहीं जा सके। भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधन आठ-आठ महारथी पुन: उनके सम्मुख खड़े थे। सबसे आश्चर्य की बात थी कि जयद्रथ भी उनके साथ था।

कृष्ण को घायल देखकर अर्जुन कुपित हो उठा। जिसको देखो, वही योद्धा को छोड़ सारथी पर प्रहार कर रहा है। क्या चाहते हैं वे? वे चाहते हैं कि कृष्ण शस्त्र उठाएँ? वे चाहते हैं कि कृष्ण की प्रतिज्ञा भंग हो? पर वे नहीं जानते कि यदि सचमुच ही कृष्ण ने शस्त्र उठा लिया तो इनकी कितनी दुर्गति होगी। कृष्ण पर प्रतिज्ञा भंग का आरोप ही तो लगेगा। पर उससे क्या बिगड़ जाएगा कृष्ण का। इन कौरवों ने सारी मर्यादाओं को भंग कर अभिमन्यु का वध कर दिया, तो किस क्षत्रिय ने दुर्योधन का मुख काला कर, उसके सम्मुख उसके पुत्र को मृत्युदंड देने का साहस किया? द्रोण ने प्रतिज्ञा की और धर्मराज को बंदी नहीं बना सके तो क्या बिगड़ गया उनका? प्रतिज्ञा तो व्यक्ति का अपने आपको दिया गया एक वचन है। यदि धर्म की रक्षा के लिए कृष्ण अपने आपको अथवा बलराम को दिया गया एक वचन स्थगित करने का निश्चय कर लेंगे तो ये आठ के आठ महारथी अभी धूल चाटते दिखाई देंगे। पर अर्जुन यह नहीं होने देगा। उसके रहते वह स्थिति कभी नहीं आएगी कि कृष्ण को युद्ध में शस्त्र उठाना पड़ जाए।

बाण दोनों ओर से चल रहे थे। घाव भी दोनों ओर लग रहे थे। पर अर्जुन का ध्यान कर्ण और जयद्रथ पर अटका था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि वह आज जयद्रथ का वध करेगा। वध तो उसे कर्ण का भी करना था। इस युद्ध में बहुत कोलाहल नहीं मचा रहा कर्ण। क्या द्रोण भी उसे पितामह के ही समान कोई महत्त्वपूर्ण दायित्व नहीं सौंप रहे अथवा वह स्वयं ही मैत्री के नाम पर अभी तक दुर्योधन का अंगरक्षक बना घूम रहा है। राजा के साथ-साथ लगे रहने के कई लाभ होते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि व्यक्ति सुरक्षित रहता है।

मातुल शल्य भी बहुत उग्र हो रहे थे। किसके लिए लड़ रहे हैं ये? संबंधों के लिए? न्याय के लिए? अधिकार के लिए? धर्म के लिए? लाभ के लिए? लोभ के लिए? कुछ पता नहीं है इनको। युद्ध का उन्माद है उनको। बस युद्ध के लिए ही युद्ध कर रहे हैं शायद। उस युद्ध के लिए, जो लूट में धन और सत्ता देता है। शेष तो कुछ पता ही नहीं है उनको और जयद्रथ लड़ने आया भी है तो आठ-आठ महारथियों को साथ लेकर। जयद्रथ का चेहरा भय से पीला पड़ रहा था। उसकी कातर दृष्टि दुर्योधन पर पड़ी, तुमने तो कहा था राजन्। तुम मेरी रक्षा करोगे।

युधिष्ठिर को लगा कि यदि इस समय आचार्य को न रोका गया तो वे युद्ध का सारा संतुलन कौरवों की ओर झुका देंगे। धृष्टद्युम्न दूर था, नहीं तो वे उसी को भेजते। वे जानते थे कि उन्हें द्रोण से दूर रहना है। इस समय उनकी रक्षा के लिए नियुक्त सात्यकि भी उनके निकट नहीं था। किंतु द्रोण को मुक्त नहीं छोड़ा जा सकता था।

युधिष्ठिर ने अपनी वाहिनियों के साथ स्वयं द्रोण पर आक्रमण किया। पर द्रोण इस समय बहुत ही आक्रामक मुद्रा में थे। उन्होंने युधिष्ठिर पर बाणोंकी वर्षा कर दी। युधिष्ठिर का धनुष कट गया और वे बाणों से इस प्रकार ढँक गए कि अपनी वाहिनी से भी उनका संपर्क टूट गया। वे समझ रहे थे कि उनका इस प्रकार अपनी वाहिनी से असंपर्क और अपनी सेना की दृष्टि से ओझल हो जाना, उनकी सेना के लिए शुभ नहीं था। कोई भी सेना ऐसे में उन्हें मृत मान लेगी और जिस सेना का राजा मारा जाता है, उसका आत्मबल क्षणभर भी नहीं टिकता।

युधिष्ठिर ने अपने आत्मबल को संचित किया। अपने धर्म को स्मरण किया और उठकर खड़े हो गए। उन्होंने दूसरा धनुष लिया और आचार्य का धनुष काट डाला, ताकि न आचार्य की ओर से बाण चलें और न ही वे उन्हें ढँक पाएँ। पांडवों की सेना को ज्ञात होना चाहिए कि उनका राजा अभी जीवित है और युद्ध में समर्थ ही नहीं है, कौरवों के महासेनापति से भी लोहा ले सकने की स्थिति में है। राजा सदा अपनी सेना के सामने होना चाहिए। जब एक के पश्चात् एक शक्ति उठा ली और उच्च स्वर में सिंहनाद किया।

आचार्य ने तनिक भी संकट झेलना उचित नहीं समझा। उन्होंने धर्मराज की शक्ति को काटने के लिए ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। वह युधिष्ठिर की शक्ति को काटता हुआ उनकी ओर बढ़ रहा था। युधिष्ठिर के सम्मुख भी और कोई मार्ग नहीं था। उन्होंने भी आचार्य के ब्रह्मास्त्र के शमन के लिए अपना ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। द्रोण को घायल किया और उनके विशाल धनुष को फिर काट डाला।

आचार्य ने इस बार अपना कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष नहीं उठाया, एक भारी गदा उठाई और युधिष्ठिर पर सीधा वार किया। धर्मराज ने भी गदा से ही उसका प्रतिकार किया। किंतु तब तक आचार्य ने उनके अश्व मार दिए थे और उनके बाण सीधे युधिष्ठिर को पीड़ा पहुँचा रहे थे। युधिष्ठिर अपने रथ से कूदकर धरती पर आ गए। वे नि:शस्त्र थे और धरती पर खड़े थे। आचार्य के लिए उन्हें बंदी करने का स्वर्णिम अवसर था। वे युधिष्ठिर की ओर किसी श्येन के समान झपटे। पर तब तक सहदेव किसी ओर से प्रकट हो गया। उसने धर्मराज को तत्काल अपने रथ पर चढ़ा लिया और वहाँ रुकने के स्थान पर द्रोण के व्यूह से दूर अपनी सेना के मध्य ले गया।

अपनी सेना के मध्य सुरक्षित युधिष्ठिर स्वयं अपने आपको भी सँभालने का प्रयत्न कर रहे थे और अपनी सेना को भी। उन्हें समाचार मिल रहे थे। संशप्तक युद्ध के बचे हुए त्रिगर्त एक-एक कर मारे जा रहे थे। पहले त्रिगर्त वीर वीरधन्वा की मृत्यु हुई। उसके पश्चात सुशर्मा का पुत्र निरमित्र पांडव सेना में घिर कर मारा गया। नकुल ने विकर्ण को पराजित कर दिया था और विकर्ण उसके सम्मुख से हट गया था। व्याघ्रदत्त ने सात्यकि को पीड़ित किया था और सात्यकि ने उसका वध कर दिया था। द्रौपदेयों ने शल को मार गिराया था।

एक ओर महाबली भीमके साथ अलम्बुषका युद्ध हो रहा था। भीमने बाणोंसे उस राक्षसको घायल कर डाला। तब वह भयानक राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भीमकी ओर दौड़ा। उसने उन्हें बाणोंसे बींधकर उनकी सेनाके तीन सौ रथियोंका संहार कर दिया। फिर चार सौ वीरोंको और भी मारकर एक बाणसे भीमको घायल कर दिया। उस बाणसे महाबली भीमके गहरी चोट लगी और वे अचेत होकर रथके भीतर ही गिर गये। कुछ देर बाद उन्हें चेत हुआ तो वे अपना भयंकर धनुष चढ़ाकर चारों ओरसे अलम्बुषको बाणोंसे बींधने लगे। इस समय उसे याद आया कि भीमने ही उसके भाई बकको मारा था। अत: उसने भयानक रूप धारण करके उनसे कहा, दुष्ट भीम। तूने जिस समय मेरे महाबली भाई बकको मारा था, उस समय मैं वहाँ उपस्थित नहीं था; आज तू उसका फल चख ले। ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया तथा भीमके ऊपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगा। भीमने भी सारे आकाशको बाणोंसे व्याप्त कर दिया। उनसे पीड़ित होकर वह राक्षस अपने रथपर आ बैठा, फिर पृथ्वीपर उतरा और छोटा-सा रूप धारण करके आकाशमें उड़ गया। वह क्षण-क्षणमें ऊँचे-नीचे, अणु-बृहत् तथा स्थूल-सूक्ष्म विभिन्न प्रकारके रूप धारण कर लेता था तथा मेघके समान गरजने लगता था। उसने आकाशमें चढ़कर शक्ति, कणप, प्रास, शूल, पट्टिश, तोमर, शतघ्नी, परिघ, भिन्दीपाल, परशु, शिला, खड्ग, गुड़, ऋष्टि और वज्र आदि अनेकों अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की। उससे भीमके अनेकों सैनिक नष्ट हो गये। इसपर भीमने कुपित होकर विश्वकर्मास्त्र छोड़ा। उससे सब ओर अनेकों

बाण प्रकट हो गये। उनसे पीड़ित होकर सैनिकोंमें बड़ी भगदड़ पड़ गयी। उस अस्त्रने राक्षसकी सारी मायाको नष्ट करके उसे भी बहुत पीड़ा पहुँचायी। इस प्रकार भीमद्वारा बहुत पीड़ित होनेपर वह उन्हें छोड़कर द्रोणाचार्यकी सेनामें चला आया। उस महाबली राक्षसको जीतकर पाण्डवलोग सिंहनाद करके सब दिशाओंको गूँजाने लगे।

अब हिडिम्बाके पुत्र घटोत्कचने अलम्बुषके सामने आकर उसे तीखे बाणोंसे बींधना आरम्भ किया। इससे अलम्बुषका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने घटोत्कचपर भारी चोट की। इस प्रकार उन दोनों राक्षसोंका बड़ा भीषण संग्राम छिड़ गया। घटोत्कचने अलम्बुषकी छातीमे बाण मारकर बार-बार सिंहके समान गर्जना की तथा अलम्बुषने रणकर्कश घटोत्कचको घायल करके अपने भारी सिंहनादसे आकाशको गूँजा दिया। दोनों ही सैकड़ों प्रकारकी मायाएँ रचकर एक-दूसरेको मोहमें डाल रहे थे। मायायुद्धमें कुशल होनेके कारण अब उन्होंने उसीका आश्रय लिया। उस युद्धमें घटोत्कचने जो-जो माया दिखायी, उसीको अलम्बुषने नष्ट कर दिया। इससे भीम आदि कई महारथियोंका क्रोध बहुत बढ़ गया और वे भी अलम्बुषपर टूट पड़े।

अलम्बुषने अपना वज्रके समान प्रचण्ड धनुष चढ़ाकर भीम, घटोत्कच, युधिष्ठिर, सहदेव, नकुल और द्रौपदीपुत्रोंपर बाण छोड़े तथा बड़ा भीषण सिंहनाद किया। इसपर उसे भीम, सहदेव, युधिष्ठिर, नकुल और द्रौपदीके पुत्रोंने बाणोंसे बींध दिया तथा घटोत्कचने उसपर बाण छोड़कर बड़ी गर्जना की। उस भीषण सिंहनादसे पर्वत, वन, वृक्ष और जलाशयोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी। तब अलम्बुषने उनमेंसे प्रत्येक वीरपर बाणोंसे चोट की। इसपर घटोत्कच और पाण्डवोंने अत्यन्त उत्तेजित होकर उसपर चारों ओरसे तीखे-तीखे तीरोंकी वर्षा की। विजयी पाण्डवोंकी मारसे अधमरा हो जानेसे वह एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसकी ऐसी स्थिति देखकर युद्धदुर्मद घटोत्कचने उसका वध करनेका विचार किया। वह अपने रथसे अलम्बुषके रथपर कूद गया और उसे दबोच लिया। फिर उसे हाथोंसे ऊपर उठाकर बार-बार घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया। यह देखकर उसकी सारी सेना भयभीत हो गयी। वीर घटोत्कचके प्रहारसे अलम्बुषके सब अङ्ग फट गये और उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। इस प्रकार महाबली अलम्बुषको मरा देखकर पाण्डवलोग हर्षसे सिंहनाद करने लगे तथा कौरवों की सेनामें हाहाकार होने लगा।

अलंबुश ने भीम को कुछ इस प्रकार घायल कर दिया था कि भीम को मूर्च्छा आ गई थी। भीम अपने रथ की बैठक में गिर गया था। पर शीघ्र ही सचेत होकर उसने अलंबुश को घेरना आरंभ किया। अलंबुश ने अपनी राक्षसी विद्या प्रकट की किंतु भीम के बाणों ने उसकी एक नहीं चलने दी। अंतत: वह अपने प्राण बचाने के लिए भाग कर द्रोण की शरण में चला गया।

इस बार घटोत्कच ने अलंबुश पर आक्रमण किया। अलंबुश ने अपनी माया प्रकट की। पांडवों के लिए उसका एक ही अर्थ था कि वह राक्षस, युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर रहा था। क्रुद्ध पांडव उस पर टूट पड़े। उन्होंने अलंबुश को घेर लिया। और घटोत्कच सबके देखते हुए अपने रथ से कूदकर अलंबुश के रथ पर जा चढ़ा। जब तक स्वयं अलंबुश और उसका सारथि यह समझ सकते कि क्या हो रहा है, घटोत्कच ने उसे पकड़कर अपने सिर से भी ऊपर उठा लिया था। उसने उसे हवा में कई चक्कर दिए और पूरे वेग से धरती पर पटक दिया। अलंबुश का क्षतविक्षत शरीर धरती पर पड़ा था। उसकी त्वचा अनेक स्थानों से फट गई थी और उसकी हड्डियां टूट गई थीं।

अलंबुश को मारकर घटोत्कच स्वयं युधिष्ठिर के पास आया। उसने हाथ जोड़कर अपना मस्तक नवाया और फिर धर्मराज के चरणों का स्पर्श किया। युधिष्ठिर बोले, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं वत्स। तुम अपने पिता के उपयुक्त वीर पुत्र हो।

धर्मराज को सूचना मिली कि सात्यकि द्वारा अपनी सेना को पीड़ित जान और उसका कोई प्रतिकार न देख, आचार्य द्रोण ने स्वयं ही सात्यकि पर आक्रमण किया। दोनों में भयंकर युद्ध चला। द्रोण स्वयं भी घायल हो गए थे और सात्यकि

भी क्षतविक्षत हो गया था। सात्यकि की शिथिलता का समाचार पाते ही युधिष्ठिर सतर्क हो गए।

जैसे राहु सूर्य को ग्रस लेता है, वैसे ही इस समय सात्यकि को द्रोण ग्रस रहे हैं। तुम लोग दौड़ो और वहीं व्यूह बाँधों, जहाँ सात्यकि युद्ध कर रहा है। युधिष्ठिर ने कहा और तब उनकी दृष्टि धृष्टद्युम्न पर पड़ी, द्रुपदकुमार तुम इस प्रकार निष्क्रिय क्यों खड़े हो। द्रोण पर आक्रमण करो। उनको रोको। नहीं तो हम सात्यकि को खो बैठेंगे। सात्यकि मेरे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितने कृष्ण अथवा अर्जुन हैं। तुम देख नहीं रहे कि उस पर द्रोण का भय उपस्थित हो गया है? भीम को भी अपने साथ लो और जाकर सात्यकि युयुधान की रक्षा करो। सारे महारथी इस समय सात्यकि के रथ के समीप जाएँ और उसे यमराज के पाश से छुड़ाएँ द्रोण उसे आज नहीं छोड़ेंगे।

द्रोण पीछे हट गए थे। पांडव महारथियों ने सात्यकि को उनसे मुक्त करा लिया था और सात्यकि अब स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दे रहा था। जिस समय यह वीरोंका भीषण संहार हो रहा था, उसी समय राजा युधिष्ठिरके कानोंमें पाञ्चजन्य शफ्की ध्वनि पड़ी। इससे वे उदास होकर विचारने लगे, जिस प्रकार यह पाञ्चजन्यकी ध्वनि हो रही है और कौरवलोग हर्षमें भरकर बार-बार कोलाहल करते हैं, उससे मालूम होता है कि अर्जुनपर कोई आपत्ति आ पड़ी है। इस विचारके उठनेसे उनका हृदय व्याकुल हो उठा और उन्होंने गद्गदकण्ठ होकर सात्यकिसे कहा, शिनिपुत्र। पूर्वकालमें सत्पुरुषोंने संकटके समय मित्रका जो धर्म निश्चय किया है, इस समय उसे दिखानेका अवसर आ गया है। मैं सब योद्धाओंकी ओर देखकर विचार करता हूँ, तो तुमसे बढ़कर मुझे अपना कोई हितु दिखायी नहीं देता और मेरा ऐसा विचार है कि संकटके समय उसीसे काम लेना चाहिये, जो अपनेसे प्रीति रखता हो और सर्वदा अपने अनुकूल भी रहता हो। तुम श्रीकृष्णके समान पराक्रमी हो और उन्हींकी तरह पाण्डवोंके आश्रय भी हो। अत: मैं तुम्हारे ऊपर एक भार रखना चाहता हूँ, उसे तुम ग्रहण करो। इस समय तुम्हारे बन्धु, सखा और गुरु अर्जुनपर संकट है; तुम संग्रामभूमिमें उनके पास जाकर सहायता करो। जो पुरुष अपने मित्रके लिये जूझता हुआ प्राण त्याग देता है और जो ब्राह्मणोंको पृथ्वीदान करता है, वे दोनों समान ही हैं। मेरी दृष्टिमें मित्रोंको अभय देनेवाले एक तो श्रीकृष्ण हैं और दूसरे तुम हो। वे भी मित्रोंके लिये अपने प्राण समर्पण कर सकते हैं। जब एक पराक्रमी वीर विजयश्रीकी लालसासे संग्राममें जूझने लगता है तो वीर पुरुष ही उसकी सहायता कर सकता है, अन्य साधारण पुरुषोंका यह काम नहीं है। अत: ऐसे भीषण युद्धमें अर्जुनकी रक्षा करनेवाला तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है। अर्जुनने भी तुम्हारे सैकड़ों कर्मोंकी प्रशंसा करते हुए मुझसे कई बार कहा था कि सात्यकि मेरा मित्र और शिष्य है। मैं उसे प्रिय हूँ और वह मुझे प्यारा है। मेरे साथ रहकर वही कौरवोंका संहार करेगा। उसके समान मेरा सहायक कोई दूसरा नहीं हो सकता। जिस समय मैं तीर्थाटन करता हुआ द्वारिका पहुँचा था, उस समय भी मैंने अर्जुनके प्रति तुम्हारा अद्भुत भक्तिभाव देखा था। इस समय द्रोणसे कवच बँधवाकर दुर्योधन अर्जुनकी ओर गया है। दूसरे कई महारथी तो वहाँ पहले ही पहुँचे हुए हैं। इसलिये तुम्हें बहुत जल्द जाना चाहिये। भीम और हम सब लोग सैनिकोंके सहित तैयार खड़े हैं। यदि द्रोणाचार्यने तुम्हारा पीछा किया, तो हम उन्हें यहीं रोक लेंगे। हमारी सेना संग्रामभूमिसे भागने लगी है। रथी, घुड़सवार और पैदल सेनाके इधर-उधर भागनेसे सब ओर धूल उड़ रही है। मालूम होता है अर्जुनको सिन्धुसौवीर देशके वीरोंने घेर लिया है। ये सब जयद्रथके लिये अपने प्राण देनेको तैयार हैं, इसलिये इन्हें परास्त किये बिना जयद्रथको भी नहीं जीता जा सकेगा। आज महाबाहु अर्जुनने सूर्योदयके समय कौरवोंकी सेनामें प्रवेश किया था। अब दिन ढल रहा है। पता नहीं, अब तक वह जीवित भी है या नहीं। कौरवोंकी सेना समुद्रके समान अपार है, संग्राममें एकाएकी देवतालोग भी इसके सामने नहीं टिक सकते। इसमें अर्जुनने अकेले ही प्रवेश किया है। उसकी चिन्ताके कारण आज युद्ध करनेमें मेरी बुद्धि कुछ भी काम नहीं

कर रही है। जगत्पति श्रीकृष्ण तो दूसरोंकी भी रक्षा करनेवाले हैं। इसलिये उनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। यदि तीनों लोक मिलकर भी श्रीकृष्णसे लड़ने आयें तो उन्हें भी वे संग्राममें जीत सकते हैं; फिर इस धृतराष्ट्र पुत्रकी अत्यन्त बलहीन सेनाकी तो बात ही क्या है? किंतु अर्जुनमें यह बात नहीं है। उसे यदि बहुत-से योद्धाओंने मिलकर पीड़ा पहुँचायी तो वह तो प्राण छोड़ देगा। अत: जिस मार्गसे अर्जुन गया है, उसीसे तुम भी बहुत जल्द उसके पास जाओ। आजकल वृष्णिवंशी वीरोंमें तुम और महाबाहु प्रद्युम्न- दो ही अतिरथी समझे जाते हो। तुम अस्त्रसंचालनमें साक्षात् नारायणके समान, बलमें श्रीबलरामके समान और पराक्रममें स्वयं अर्जुनके समान हो। अत: मैं तुम्हें जो काम सौंप रहा हूँ, उसे पूरा करो। इस समय प्राणोंकी परवा छोड़कर संग्रामभूमिमें निर्भय होकर विचरो। अर्जुन तुम्हारा गुरु है और श्रीकृष्ण तुम्हारे और अर्जुन दोनोंहीके गुरु हैं। इस कारणसे भी मैं तुम्हें जानेका आदेश दे रहा हूँ। तुम मेरे कथनको टाल मत देना; क्योंकि मैं भी तुम्हारे गुरुका गुरु हूँ और इसमें श्रीकृष्णका, अर्जुनका और मेरा एक ही मत है। इसलिये तुम मेरी आज्ञा मानकर अर्जुनके पास जाओ।

युधिष्ठिर, सात्यकि के निकट आए और पूछा अब स्वस्थ हो? अर्जुन तुम्हारा भाई है। वह तुम्हारा मित्र भी है और गुरु भी। वह इस समय संकट में है। जाओ, उसकी सहायता का प्रयत्न करो।

सात्यकि मुझे लगता है कि वहाँ अर्जुन प्रखर और प्रासों से युद्ध करनेवाले जयद्रथ के सैनिकों में घिर गया है। उस सेना का निवारण किए बिना जयद्रथ को जीतना असंभव है। तुम जाओ सात्यकि। न विलंब करो, न भय।

युधिष्ठिर बोले, यह तो वासुदेव के शंख की आवाज आ रही है किन्तु इसके साथ मेरे प्रिय अर्जुन के प्रत्यन्चा की टंकार क्यों नहीं गुंजी। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरा प्रिय अर्जुन वीरगति को प्राप्त हो गया हो और क्रोध में आकर वासुदेव ने शस्त्र उठा लिये हो। प्रिय भीम तुम उस ओर जाओ। भीम बोला, क्षमा चाहता हूं भ्राताश्री क्योंकि आपकी सुरक्षा अर्जुन की सुरक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है। युधिष्ठिर बोले, हे सात्यकि मैं जानता हूं तुम बहुत घायल हो फिर भी तुमसे कहता हूं कि अर्जुन की सहायता के लिये तुम जाओ। नकुल बोला, छोटे भैया के साथ वासुदेव है भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, फिर भी सात्यकि।

युधिष्ठिर बोले, सात्यकि। तुम जैसा कहते हो, ठीक ही है; किंतु जब मैं अपनी रक्षाके लिये तुम्हें रखने और अर्जुनकी सहायताके लिये भेजनेके विषयमें विचार करता हूँ, तो मुझे तुम्हारा जाना ही अधिक अच्छा मालूम होता है। अत: अब तुम अर्जुनके पास पहुँचनेका प्रयत्न करो। मेरी रक्षा तो भीम कर लेंगे। इनके सिवा भाइयोंके सहित धृष्टद्युम्न, अनेकों महाबली राजालोग, द्रौपदीके पुत्र, पाँच केकयराजकुमार, राक्षस घटोत्कच, विराट, द्रुपद, महारथी शिखंडी, महाबली धृष्टकेतु, कुन्तिभोज, नकुल, सहदेव तथा पाञ्चाल और सृञ्जय वीर भी सावधानीसे मेरी रक्षा करेंगे। इनके कारण अपनी सेनाके सहित द्रोण और कृतवर्मा मेरे पासतक पहुँचने या मुझे कैद करनेमें समर्थ नहीं होंगे। किनारा जैसे समुद्रको रोके रहता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न आचार्यको रोक देगा। इसने कवच, बाण, खड्ग, धनुष और आभूषण धारण किये द्रोणका नाश करनेके लिये ही जन्म लिया है। इसलिये तुम इसके ऊपर पूरा भरोसा रखकर चले जाओ, किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे सात्यकि अर्जुनसे मिलनेके लिये कौरवोंकी सेनामें घुस गया।

मेरी रक्षा भीम करेगा। द्रौपदेय करेंगे। कैकेय राजकुमार हैं, घटोत्कच हैं, विराट हैं, द्रुपद हैं, शिखंडी है, धृष्टकेतु हैं, पुरुजित है। मेरे भाई हैं। इतने योद्धा होते हुए भी मेरी रक्षा नहीं होगी, तो क्या करना है इतने महारथियों का? युधिष्ठिर रुकें, मैं तुम्हारा महत्त्व कम नहीं आँक रहा हूँ युयुधान। तुम इन सबसे ऊपर हो। इसीलिए तुम्हें अकेले को कौरव सेना को लाँघकर अर्जुन की सहायता के लिए भेज रहा हूँ। आज तुम्हारी वीरता, बल और कौशल की परीक्षा है मेरा आदेश है, तुम जाओ।

सात्यकि बोला, पर अर्जुन मुझे आपकी रक्षा में नियुक्त करके गए हैं। ऐसे में मैं आपको छोड़कर कैसे जा सकता हूं।

द्रोण ने आपको बंदी कर लिया तो जयद्रथ का वध किसी भी प्रकार नहीं हो सकेगा।

धर्मराजके इस प्रेमयुक्त, मधुर, समयोचित और युक्तियुक्त कथनको सुनकर सात्यकिने कहा, राजन्। आपने अर्जुनकी सहायताके लिये मुझसे जो न्याययुक्त बात कही है, वह मैंने सुनी। वैसा करनेसे मेरा यश ही बढ़ेगा। अर्जुनके लिये मुझे अपने प्राणोंको बचानेका तनिक भी लोभ नहीं है और आपकी आज्ञा होनेपर तो इस संग्रामभूमिमें ऐसा कौन काम है, जो मैं न करूँ। इस दुर्बल सेनाकी तो बात ही क्या; आपके कहनेपर तो मैं देवता, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंसे संग्राम कर सकता हूँ। आज इस दुर्योधनकी सेनासे मैं सभी ओर युद्ध करूँगा और इसे परास्त कर दूँगा। मैं कुशलपूर्वक अर्जुनके पास पहुँच जाऊँगा और जयद्रथका वध होनेपर फिर आपके पास लौट आऊँगा। किंतु मतिमान् अर्जुन और श्रीकृष्णने मुझसे जो बात कह रक्खी है, वह भी मैं आपकी सेवामें अवश्य निवेदन कर देना चाहता हूँ। अर्जुनने सारी सेनाके बीचमें श्रीकृष्णके सामने ही मुझसे बहुत जोर देकर कहा था कि जबतक मैं जयद्रथको मारकर आऊँ, तबतक तुम बड़ी सावधानीसे महाराजकी रक्षा करना। मैं तुमपर या महारथी प्रद्युम्नपर ही महाराजकी रक्षाका भार सौंपकर निश्चिन्ततासे जयद्रथके पास जा सकता हूँ। तुम द्रोणको जानते ही हो। वे कौरवपक्षके सभी वीरोंमें श्रेष्ठ हैं। उन्होंने धर्मराजको पकड़नेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी है; अत: वे इसी ताकमें हैं और इन्हें पकड़नेकी उनमें शक्ति भी है। यदि किसी प्रकार सत्यवादी युधिष्ठिर उनके हाथमें पड़ गये तो हम सबको अवश्य ही पुन: वनमें जाना पड़ेगा। इसलिये आज तुम विजय, कीर्ति और मेरी प्रसन्नताके लिये संग्रामभूमिमें महाराजकी रक्षा करते रहना। राजन। इस प्रकार सव्यसाची पार्थने द्रोणाचार्यसे सर्वदा सशंक रहनेके कारण आज आपकी रक्षाका भार मुझे सौंपा था। मुझे भी संग्रामभूमिमें उनका सामना करनेवाला प्रद्युम्नके सिवा और कोई दिखायी नहीं देता। यदि आज यहाँ कृष्णकुमार प्रद्युम्नजी होते, तो मैं उन्हें आपकी रक्षाका भार सौंप देता और वे अर्जुनके समान ही आपकी रक्षा कर लेते; किंतु अब यदि मैं चला जाऊँगा तो आपकी रक्षा कौन करेगा? और अर्जुनकी ओरसे तो आप कोई चिन्ता न करें। वे कोई भी भार अपने ऊपर लेकर फिर उससे कभी नहीं घबराते। आपने जिन सौवीर, सिन्धुदेशीय, उत्तरीय और दाक्षिणात्य योद्धाओंकी बात कही है तथा जिन कर्ण आदि रथियोंका नाम लिया है, वे सब तो रणाङ्गणमें कुपित हुए अर्जुनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं। यदि पृथ्वीभरके देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, किन्नर और नाग आदि चराचर जीव पार्थसे युद्ध करनेको तैयार हो जायँ, तो वे सब भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। इन सब बातोंपर विचार करके आपको अर्जुनके विषयमें कोई आशंका नहीं करनी चाहिये। जहाँ महापराक्रमी वीरवर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं, वहाँ काममें किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ सकती। आप अपने भाईकी दैवी शक्ति, शस्त्र कुशलता, योग, सहनशीलता, कृतज्ञता और दयापर ध्यान दीजिये और जब मैं उनके पास चला जाऊँगा, तो उस समय द्रोणाचार्य जिन विचित्र अस्त्रोंका प्रयोग करेंगे, उनके विषयमें भी विचार कर लीजिये। राजन्। अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये आचार्य आपको पकड़नेको बहुत उत्सुक हैं। अत: आप अपने बचावका उपाय कर लीजिये। मेरे जानेपर आपकी रक्षा कौन करेगा। यदि इस बातका मुझे पूरा भरोसा हो जाय, तो मैं अर्जुनके पास जा सकता हूँ।

सात्यकि बोला, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महाराज क्योंकि स्वयं कुन्ती पुत्र अर्जुन ही मुझसे कह गये थे कि सात्यकि मेरे लौट आने तक तुम भ्राताश्री के पास से न हटना। मैंने उन्हे यह वचन दिया था कि उनके लौटने तक उनके स्थान पर मैं आपकी सुरक्षा के लिये खडा रहूंगा। वो वृद्ध ब्राह्मण हममें से किसी एक के वश में आनेवाला नहीं है और इस बात से मैं बलवान भीम से सहमत हूं कि आप की सुरक्षा अर्जुन की सुरक्षा से कहीं अधिक आवश्यक है और फिर यह भी सोचो महाराज जिसके साथ स्वयं वासुदेव है उसे किसी और की सहायता की क्या आवश्यकता हो सकती है। युधिष्ठिर बोले, मैं

फिर भी चाहता हूं महारथी सात्यकि कि तुम जाओ। सात्यकि बोला, जो आज्ञा। चलो सारथी।

युधिष्ठिर बोले, आचार्य मुझे बंदी नहीं कर पाएँगे। तुम सोचो, यदि वे इसमें समर्थ होते तो उनकी प्रतिज्ञा के तीसरे दिन भी मैं तुम लोगों के मध्य कैसे होता?

युधिष्ठिर ने उसे स्थिर दृष्टि से देखा और बोले, युद्धक्षेत्र में तुम्हें समझाने या मनाने में अधिक समय नहीं लगा सकता। मेरी आज्ञा से तुम वहीं जाओ। उनकी सहायता करो। मैं राजा होकर अपनी ही रक्षा करता रहूँगा या अपने सहयोगियों की देखभाल भी करूँगा। तुम स्वयं ही सोचो, ऐसे में तुम क्या करते।

चिन्तित युधिष्ठिर भी हुए इस ओर अर्जुन के लिए; निज भाव सात्यकि पर उन्होंने शीघ्र यों प्रकटित किये।
हे वीर। अर्जुन का न अब तक वृत्त कुछ विश्रुत हुआ, जगदीश जाने क्यों हमारा चित्त चिन्ता-युत हुआ।।
हा। वह कपिध्वज की ध्वजा भी दृष्टि में आती नहीं, उनकी रथ-ध्वनि भी यहाँ अब है सुनी जाती नहीं।
जब से हुए हैं ओट वे अब तक न दीख पड़े मुझे, हे दैव। बतला तो सही स्वीकार है अब क्या तुझे?
है व्यग्र सुनने को श्रवण पर सुन पाते नहीं; दृग दीन है पर दृश्य फिर भी दृष्टि में आते नहीं।
है चाहती खिलना तदपि मन की कली खिलती नहीं; मैं शान्ति पाना चाहता हूँ पर मुझे मिलती नहीं।।
होंगे न जाने किस दशा में हरि तथा अर्जुन कहाँ? हा। आज पल पल में विकलता बढ़ रही मेरी यहाँ।
कुछ बात ऐसी है कि जिससे चित्त चञ्चल हो रहा, विश्वास है, पर त्रास मेरे धैर्य को है खो रहा।।
हे सात्यके। अब शीघ्र मुझको शान्ति देने के लिए, जाओ मुकुन्दार्जुन-निकट संवाद लेने के लिए।
कुछ भी विलम्ब करो न अब, करता विनय मैं क्लेश से, अनुचित लगे यदि विनय तो जाओ अभी आदेश से।।
इस कार्य-साधन के लिए मैंने तुम्हीं को है चुना, हो अनुभवी तुम वीर, तुमने बहुत कुछ देखा सुना।
सप्रेम अर्जुन ने तुम्हें दी युद्ध की शिक्षा सभी, अतएव, अनुगामी बनो तुम आप निज गुरु के अभी।।
चिन्ता करो मेरी न तुम रक्षक त्रिलोकीनाथ हैं, सहदेव, धृष्टद्युम्न आदिक शूर अगणित साथ हैं।
अवसर नहीं है देर का, अब शीघ्र तुम तैयार हो, आशीष देता हूँ- तुम्हारा पथ सहज ही पार हो।।

इस बीच सात्यकि आगे जा चुका था। कृतवर्मा ने झल्लाकर सामने आए भीम पर आक्रमण किया। द्रोण ने भी बिखरी हुई सेना को सँभाला और उसका भार कृतवर्मा को सौंप कर स्वयं सात्यकि के पीछे भागे। युधिष्ठिर उन्हें यह नहीं करने दे सकते थे। वे नकुल और सहदेव के साथ आकर द्रोण के मार्ग में अड़ गए।

घुड़सवार सैनिक द्रोण के पास आता है। द्रोण बोले, क्या समाचार लेकर आये हो सैनिक। सैनिक बोला, सात्यकि सेना की टुकडी लेकर अर्जुन की सहायता के लिये चल पडे हैं। द्रोण ने आक्रमण किया दोनों सेनाओं में परस्पर युद्ध होने लगा।

यह पांडवों और पांचालों का सामूहिक युद्ध है, जो सब लोग मिलकर लड़ रहे हैं। वे यह ही मानते हैं कि यह उनका युद्ध है, उनके लिए राज्य प्राप्ति का युद्ध है, जो उनके भाई और संबंधी लड़ रहे हैं। वे इस समय अपनी सुरक्षा की ओर से अचेत हैं, किंतु भीम उनको असुरक्षित नहीं छोड़ सकता। सात्यकि ने उनकी रक्षा के लिए विशेष रूप से उससे कहा था।

युधिष्ठिर का मन अनेक प्रकार की कल्पनाएँ कर रहा था। उनके मन में अर्जुन और कृष्ण के संकट के अनेक चित्र बन और बिगड़ रहे थे। वे जानते थे कि कृष्ण सब प्रकार से समर्थ थे। अर्जुन जैसा योद्धा भी कोई नहीं था कौरवों के पास। किंतु उससे क्या होता है। वे सब मिल जाएँगे। कृष्ण और अर्जुन को घेर लेंगे। युद्ध के नियमों की मर्यादा का भी उनको कोई ध्यान नहीं रहेगा। वे अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। युधिष्ठिर को कुछ करना होगा। वे जानते हैं

कि कितनी भी इच्छा होने पर वे स्वयं को लाँघकर कौरव सेना में प्रवेश नहीं कर सकते। यदि वे ऐसा कोई प्रयत्न करेंगे तो संभव है कि द्रोण उनको मार्ग भी दे दें, और कौरव सेना में प्रविष्ट होनेपर उनको घेर कर बंदी कर लें। युधिष्ठिर बंदी हो गए तो अर्जुन युद्ध को जीत कर भी क्या पाएगा। अपने भाई और राजा की मुक्ति के लिए उसे सब कुछ त्यागना पड़ेगा। तो किसे भेजें, वे अर्जुन की सहायता के लिए? भीम वैसा दक्ष धनुर्धर नहीं है कि द्रोण, कर्ण और कृतवर्मा से लोहा ले सके और अर्जुन तथा कृष्ण की सहायता कर सके।

सञ्जयने कहा- राजन्। जब सात्यकि युद्ध करनेके लिये कौरवोंकी सेनामें घुसा तो अपनी सेनाके सहित महाराज युधिष्ठिरने सात्यकिका पीछा करते हुए द्रोणाचार्यको रोकनेके लिये उनके रथपर आक्रमण किया। उस समय रणोन्मत्त धृष्टद्युम्न और राजा वसुदानने पाण्डवोंकी सेनाको पुकारकर कहा, अरे। आओ, आओ, जल्दी दौड़ो। शत्रुओंपर चोट करो, जिससे कि सात्यकि सहजहीमें आगे बढ़ जायँ। अनेकों महारथी इन्हें परास्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा कहते हुए अनेकों महारथी बड़े वेगसे कौरवोंकी सेनापर टूट पड़े तथा उन्हें पीछे हटानेके विचारसे कौरवोंने भी उन पर आक्रमण किया। इसी समय सात्यकिके रथकी ओर बड़ा कोलाहल होने लगा। उस महारथीके बाणोंकी बौछारोंसे कौरवोंकी सेनाके सैकड़ों टुकड़े हो गये और वह तितर-बितर होकर इधर-उधर भागने लगी। उसके छिन्न-भिन्न होते ही सात्यकिने सेनाके मुहानेपर खड़े हुए सात वीरोंको मार डाला। इसके बाद और भी अनेकों राजाओंको अपने अग्निसदृश बाणोंसे यमराजके घर भेज दिया। वह एक बाणसे सैकड़ों वीरोंको और सैकड़ों बाणोंसे एक-एक वीरको बींध देता था। जिस प्रकार पशुपति पशुओंका संहार करते हैं, उसी प्रकार वह हाथीसवार और हाथियोंको, घुड़सवार और घोड़ोंको तथा सारथी और घोड़ोंके सहित रथोंको चौपट कर रहा था। इस प्रकार फुर्तीले सात्यकिने बाणोंकी झड़ी लगा दी थी, उस समय कौरवोंके सैनिकोंमेंसे किसीको भी उसके सामने जानेका साहस नहीं होता था। उसकी बाणवर्षासे घायल होकर वे ऐसे डर गये कि उसे देखते ही मैदान छोड़कर भागने लगे। सात्यकिके तेजसे वे ऐसे चक्करमें पड़ गये कि उस अकेलेको ही अनेक रूपोंमें देखने लगे। वे जिधर जाते थे, उधर ही उन्हें सात्यकि दिखायी देता था।

संजयने कहा, राजन। जब आचार्यने दु:शासनके रथको अपने पास खड़ा देखा तो वे उससे कहने लगे, दु:शासन। ये सब रथी क्यों भाग रहे हैं? राजा दुर्योधन तो कुशलसे हैं? तथा जयद्रथ अभी जीवित है न? तुम तो राजकुमार हो, स्वयं राजाके भाई हो और तुम्हींको युवराजपद प्राप्त हुआ है। फिर तुम युद्धसे कैसे भाग रहे हो? तुमने तो पहले द्रौपदीसे कहा था कि तू हमारी जूएमें जीती हुई दासी है। अब तू स्वेच्छाचारिणी होकर हमारे ज्येष्ठ भ्राता महाराज दुर्योधनके वस्त्र लाकर दिया कर। अब तेरा कोई पति नहीं है, ये सब तो तैलहीन तिलके समान सारहीन हो गये हैं। ऐसी-ऐसी बातें बनाकर अब तुम युद्धमें पीठ क्यों दिखा रहे हो? तुमने पाञ्चाल और पाण्डवोंके साथ स्वयं ही वैर बाँधा, फिर आज एक सात्यकिके सामने आकर ही तुम कैसे डर गये? पहले कपटद्यूतमें पासे पकड़ते समय तुमने यह नहीं समझा था कि एक दिन ये पासे ही कराल बाण हो जायँगे? शत्रुदमन। तुम सेनाके नायक और अवलम्ब हो; यदि तुम्हीं डरकर भागने लगोगे, तो संग्रामभूमिमें और कौन ठहरेगा। आज यदि अकेले ही जूझते हुए सात्यकिके सामनेसे तुम भागना चाहते हो तो रणस्थलमें अर्जुन, भीम या नकुल-सहदेवको देखनेपर क्या करोगे? जाओ, झटपट गान्धारीके पेटमें घुस जाओ। पृथ्वीपर भागकर जानेसे तो कहीं भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा नहीं हो सकेगी। यदि तुम्हें भागना ही सूझता है, तो शान्तिके साथ ही राजा युधिष्ठिरको पृथ्वी सौंप दो। भीष्मने तो पहले ही तुम्हारे भाई दुर्योधनसे कहा था कि पाण्डवलोग संग्राममें अजेय हैं, तुम उनके साथ संधि कर लो। मगर उस मन्दमतिने उनकी बात नहीं मानी। मैंने तो सुना है, भीम तुम्हारा भी खून पियेगा। उसका यह विचार पक्का ही

होगा और ऐसा ही होकर रहेगा। क्या तुम भीमका पराक्रम नहीं जानते, जो तुमने पाण्डवोंसे वैर बाँध लिया और आज मैदान छोड़कर भागने लगे? अब जहाँ सात्यकि है, वहाँ शीघ्र ही अपना रथ ले जाओ; नहीं तो तुम्हारे बिना यह सारी सेना भाग जायगी। जाओ, संग्राममें वीर सात्यकिसे भिड़ जाओ।

दु:शासन को अपने रथ के सामने खड़ा देख, आचार्य के धैर्य का बाँध टूट गया; क्या करते हैं धृतराष्ट्र के ये पुत्र। जहाँ युद्ध कुछ कठोर हुआ कि युद्ध छोड़कर भागते हुए आचार्य के पास पहुँच जाते हैं, जैसे योद्धा न हों, छोटे-छोटे बालक हों।

द्रोण ने पूछा, ये सारे रथी कहाँ भागे जा रहे हैं? और सहसा उनका मन आशंकित हो उठा, राजा दुर्योधन सकुशल है? जयद्रथ अभी जीवित है या नही? दु:शासन बोला, आचार्य। वे लोग सकुशल हैं। द्रोण बोले, तो फिर तुम यहाँ क्या कर रहे हो? युद्ध क्यों नहीं करते? दु:शासन बोला, आचार्य। सात्यकि किसी से भी सँभल नहीं रहा है।

द्रोण बोले, गुरुकुल समझ रखा है इसे कि सात्यकि का दोष बताने चले आए। युद्धक्षेत्र है। कोई नहीं सँभलता तो उसको सँभालने का प्रयत्न करना होता है। तुम राजा के पुत्र हो, राजा के भाई हो और स्वयं महारथी वीर हो। युवराज का पद पाकर भी ढंग से युद्ध करने के स्थान पर किसलिए इधर-उधर भागे-भागे फिरते हो। द्यूत में हारी हुई असहाय स्त्री को अभद्र और अश्लील बातें कहते हो; और वास्तविक युद्ध के सम्मुख पड़ते ही भाग जाते हो। वहीं लड़ सकते हो, जहाँ सामने कोई योद्धा न हो- एक असहाय स्त्री हो और शस्त्रविहीन, नतशिर योद्धा हताश बैठे हों। कोई लड़ न रहा हो। सारे पांचालों और पांडवों से वैर ठानकर अकेले सात्यकि का सामना नहीं होता तुमसे? कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान? कहाँ गई तुम्हारी गर्जना? विषैले सर्पों के समान कुंतिकुमारों को कुपित कर, अब कहाँ भागे जा रहे हो? राजा के क्रूरकर्मा भाई। अपनी सेना की रक्षा करने के स्थान पर युद्ध में पीठ दिखाकर भागे जा रहे हो? सात्यकि से इतना डरते हो तो अर्जुन और भीम का सामना कैसे करोगे? जाओ जाकर गांधारी के उदर में छुप जाओ। सारी पृथ्वी पर और कहीं भी तुम पांडवों से सुरक्षित नहीं हो। भागने का ही निर्णय कर लिया है तो युधिष्ठिर का राज्य शांति से उसे क्यों नहीं दे देते? व्यर्थ ही इतना रक्तपात क्यों करवा रहे हो? दु:शासन बोला, राज्य नहीं देंगे हम। द्रोण बोले, इससे पहले कि वे तुम्हारे सारे भाइयों को मार डालें, उनसे संधि कर लो। तुम क्या भीम के पराक्रम को नहीं जानते कि वैर ठाना और अब युद्ध से भागे जा रहे हो। जाओ, जाकर सात्यकि से युद्ध करो, ताकि सेना कुछ ठहर सके।

इस प्रकार आपके बहुत-से सैनिकोंको मारकर और सेनाको अत्यन्त छिन्न-भिन्न करके वह उसमें घुस गया। फिर जिस मार्गसे अर्जुन गये थे, उसीसे उसने भी जानेका विचार किया। किंतु इतनेहीमें द्रोणने उसे आगे बढ़नेसे रोका और मर्मभेदी बाणोंसे घायल कर दिया। इसपर सात्यकिने भी आचार्यपर तीखे बाणोंसे चोट की। तब द्रोणने सारथी और घोड़ोंके सहित सात्यकिपर बाण छोड़े। आचार्यका यह पराक्रम सात्यकि सह न सका। उसने भीषण सिंहनाद करते हुए उन्हें बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद उनके सारथीको, घोड़ोंको और उनकी ध्वजाको बींध दिया। इसपर द्रोणने बड़ी फुर्तीसे टिड्डीदलके समान बाणोंकी वर्षा करके उसे सारथी, रथ, ध्वजा और घोड़ोंके सहित एकदम ढक दिया। तब आचार्यने कहा, अरे। तेरा गुरु तो कायरोंकी तरह मेरे सामनेसे युद्ध करना छोड़कर भाग गया था। मैं तो युद्धमें लगा हुआ था, इतनेहीमें वह मेरी प्रदक्षिणा करने लगा। अब तू यदि मेरे साथ युद्ध करता रहा, तो जीता बचकर नहीं जा सकेगा। सात्यकिने कहा, ब्रह्मन्। आपका कल्याण हो। मैं तो धर्मराजकी आज्ञासे अर्जुनके पास ही जा रहा हूँ। इसलिये यहाँ मेरा समय नष्ट नहीं होना चाहिये। शिष्यलोग तो सर्वदा अपने गुरुओंके मार्गका ही अनुसरण करते आये हैं। अत: जिस प्रकार मेरे गुरुजी गये हैं, उसी प्रकार मैं भी अभी जाता हूँ।

HHH(१३८)HHH

यों सुन युधिष्ठिर के वचन सप्रेम सात्यकि ने कहा, है मान्य मुझको आर्य का आदेश जो कुछ हो रहा।
पर कृष्ण-सहचर के लिए कुछ सोच करना है वृथा, हरि के कृपाभाजन-जनों के कुशल की है क्या कथा?
त्रैलोक्य में ऐसा बली आता नहीं है दृष्टि में, जीवित खड़ा जो रह सके गाण्डीव की शर-वृष्टि में।
कैसे टलेगा पार्थ का प्रण जो नहीं अब तक टला। जो बात होने की नहीं किस भाँति वह होगी भला?
आदेश पाकर आपका जाता अभी मैं हूँ वहाँ, पर आप द्रोणाचार्य से अति सजग रहिएगा यहाँ।
हो क्षुब्ध, मर्यादा-रहित-जलनिधि-सदृश वे हो रहे; उनके सुबल-कल्लोल में सब आज फिरते हैं बहे।।
कहकर वचन यों वृष्णिनन्दन सात्यकि प्रस्तुत हुआ, इस कार्य में उसका पराक्रम पार्थ-सा ही श्रुत हुआ।
वह शत्रुओं को मारता सम्मुख पहुँच आचार्य के; लड़ने लगा कौशल प्रकट कर विविध विध रण-कार्यके।।
पड़ मार्ग में ज्यों रोक लेता शैल जल की धार को, त्यों देख रुकता द्रोण से अपनी प्रगति के द्वार को।
झट सात्यकि भी पार्थ की ही रीति से हँसकर चला, जो कार्य गुरु ने है किया वह शिष्य क्यों न करे भला।।

सात्यकि ने देखा, उसके लिए मार्ग बनाने के लिए, स्वयं धर्मराज ने आचार्य द्रोण पर आक्रमण कर दिया था। धर्मराज के हृदय की उदारता को पाना बहुत कठिन है। अपनी रक्षा की तनिक भी चिंता किए बिना, वे अपने भाई की रक्षा के लिए उसे भेज रहे हैं; और उसकी रक्षा के लिए स्वयं आचार्य पर आक्रमण कर रहे हैं। जब वे अपनी अक्षमता जानते हुए भी अपने गुरु और कौरवों के सबसे दुर्द्धर्ष योद्धा पर आक्रमण कर सारे संकट अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं तो फिर सात्यकि किसका भय करे? और इस समय तो वैसे भी द्रोण को धर्मराज ने उलझा रखा था।

सात्यकि ने सामने आनेवाले सात धनुर्धरों को मार गिराया और वह कौरव सेना में प्रवेश कर गया। उसने देखा, द्रोण धर्मराज को छोड़कर उसकी ओर दौड़े। उन्होंने तत्काल उसके सम्मुख आकर उसे रोका ही नहीं घायल भी कर दिया। पर उससे तो सात्यकि की उग्रता और भी भड़क उठी। उसने द्रोण को क्षतविक्षत कर दिया।

द्रोण हँस पड़े। बोले, तुम्हारे आचार्य अर्जुन तो एक कायर के समान, समरभूमि छोड़कर चले गए। मैं युद्ध कर रहा था, तो भी मेरी परिक्रमा कर, आगे बढ़ गए। यदि तुम भी उसी के समान भाग नहीं गए तो आज मेरे हाथों से मारे जाओगे।

सात्यकि बोला, मैं धर्मराज की आज्ञा से अपने आचार्य धनंजय के मार्ग पर जा रहा हूँ। वह बोला, आप ऐसा करें कि जिससे मुझे विलंब न हो। शिष्य तो सदा ही अपने आचार्य के मार्ग का अनुसरण करता है। जिस मार्ग से मेरे गुरु गए हैं, मैं भी उसीसे जा रहा हूँ।

राजन्। ऐसा कहकर सात्यकि द्रोणाचार्यजीको छोड़कर तुरंत ही वहाँसे चल दिया। उसे बढ़ते देख आचार्यको बड़ा क्रोध हुआ और वे अनेकों बाण छोड़ते हुए उसके पीछे दौड़े। किंतु सात्यकि पीछे न लौटा। वह अपने पैने बाणोंसे कर्णकी विशाल वाहिनीको बींधकर कौरवोंकी अपार सेनामें घुस गया। जब सेना इधर-उधर भागने लगी और सात्यकि उसके भीतर घुस गया तो कृतवर्माने उसे घेरा। उसे सामने आया देख सात्यकिने बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया और फिर बाणोंसे उसकी छातीपर वार किया। इसपर कृतवर्माने कुपित होकर सात्यकिकी छातीमें वत्सदन्त नामका एक बाण मारा। वह उसके कवच और शरीरको छेदकर खून से लथपथ हो पृथ्वीमें घुस गया। फिर उसने अनेकों बाणोंसे सात्यकिके धनुष और बाण भी काट डाले। सात्यकिने तुरंत ही दूसरा धनुष चढ़ाया और उससे सहस्त्रों बाण छोड़कर कृतवर्मा और उसके रथको बिल्कुल ढक दिया। फिर एक भल्लसे उसके सारथीका सिर भी उड़ा दिया। सारथी न रहनेसे घोड़े भाग उठे। इससे कृतवर्मा भी घबराहटमें पड़ गया। किंतु थोड़ी ही देरमें सावधान होकर उसने स्वयं ही घोड़ोंकी बागड़ोर सँभाल ली

और निर्भयतापूर्वक शत्रुओंको संतप्त करने लगा। इतनेहीमें सात्यकि कृतवर्माकी सेनासे निकलकर काम्बोज-सेनाकी ओर बढ़ गया। वहाँ भी अनेकों वीरोंने उसे आगे बढ़नेसे रोका।

भीम ने सात्यकि की कुछ नई-सी भंगिमा देखी तो साथ हो लिया, कहाँ जा रहे हो?

तब तक धर्मराज और मध्यम पांडव भीम आ गए थे और उन्होंने आचार्य को उलझा लिया था। सात्यकि का रथ वेगपूर्वक बाहलीकों की ओर चला तो द्रोण उसके पीछे दौड़े।

युद्ध-क्षेत्र में युधिष्ठिर स्वयं द्रोण के सम्मुख खड़े थे; किंतु उनका मन सहस्त्रों चिंताओं के दंशों का अनुभव कर रहा था। उन्हें अपनी चिंता थी, अर्जुन की चिंता थी, सात्यकि की चिंता थी। जाने वे लोग कहाँ थे और किस स्थिति में थे। उन्हें न तो कोई अपना रक्षक दिखाई पड़ रहा था और न ही द्रोण का कोई प्रतिद्वंद्वी। किसे कहें वे? कौन करेगा, उनका काम? क्या भीम?

वे भीम के पास पहुँचे, भीम। अर्जुन का कोई पता नहीं है। भीम बोले, क्या हुआ? आपकी ऐसी व्याकुलता तो मैंने कभी नहीं देखी। आज्ञा करें, मैं क्या करूँ।

सात्यकि बोला, धर्मराज ने मुझे धनंजय और केशव की सहायतार्थ जाने के लिए कहा है। भीम ने कहा, चलो। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। सात्यकि बोला, नहीं। महाराज ने कहा है कि मेरी अनुपस्थिति में आप उनकी रक्षा करेंगे। वह रुका, और मैं तो अपनी ओर से भी कहनेवाला था कि मेरी प्रार्थना मानकर, आप धर्मराज की रक्षा के लिए उनके निकट ही रहें। यदि हम दोनों चले जाएँगे तो महाराज के लिए संकट हो सकता है। भीम रुक गया, ठीक है, तुम चलो।

सात्यकि ने अपना मार्ग बदल दिया। वह कर्ण की सेना में से होकर कौरवों की सेना में प्रवेश कर गया। कौरव सैनिक इस प्रकार के आकस्मिक और वेगवान आक्रमण के लिए तैयार नहीं थे। उनके पाँव उखड़ गए।

कृतवर्मा को सात्यकि की यह आकस्मिक सफलता एकदम नहीं भाई। और सात्यकि को तो वह किसी भी स्थिति में आगे बढ़ने नहीं देगा। यदि इस युद्ध में से सात्यकि जीवित और यशस्वी होकर निकल गया तो कृतवर्मा के जीवन का लक्ष्य ही क्या रह जाएगा। कृतवर्मा ने आकर सात्यकि को घेर लिया। सात्यकि के लिए अपने मन का क्षोभ दूर करने का यह स्वर्णिम अवसर था। उसने तत्काल भयंकर बाणों से कृतवर्मा को आहत कर दिया। सात्यकि तो कृतवर्माका शत्रु है ही; वह स्वयं को सात्यकि का मित्र कहे भी तो सात्यकि उसको स्वीकार नहीं करेगा। इस व्यक्ति का कोई सिद्धांत नहीं है। इसके जीवन का कोई आदर्श नहीं है। केवल घृणा और द्वेष के आधार पर जीनेवाला यह व्यक्ति इस धरती का बोझ है। इससे तो यहीं, कुरुक्षेत्र में ही, अपना गणित बराबर कर लेना चाहिए। फिर जाने यह कहीं दिखाई पड़े न पड़े।

सात्यकि के धनुष से बाणों की धारा फूट पड़ी। कृतवर्मा अभी विचार ही कर रहा था कि सात्यकि के बाणों ने उसके शरीर से रक्त बहाना आरंभ कर दिया। कृतवर्मा के हाथ से धनुष बाण छूट गए और वह रथ के पिछले भाग में गिर गया।

राजा धृतराष्ट्रने कहा- संजय। हमारी सेना अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न और सुव्यवस्थित है। उसकी व्यूहरचना भी विधिवत् की जाती है। हम सर्वदा उसका अच्छी तरह सत्कार करते रहते हैं तथा उसका भी हमारे प्रति बड़ा अच्छा भाव है। उसमें कोई अधिक बूढ़ा या बालक, अधिक दुबला या मोटा अथवा बौना पुरुष भी नहीं है। सभी सबल और स्वस्थ शरीरवाले हैं। हमने किसीको भी फुसलाकर, उपकार करके अथवा सम्बन्धके कारण भर्ती नहीं किया। इनमें ऐसा भी कोई नहीं है, जो बिना बुलाये अथवा बेगारमें पकड़कर लाया गया हो। हमने अनेकों महारथी योद्धाओंको चुन-चुनकर ही भर्ती किया है तथा उनमेंसे किन्हींको यथायोग्य वेतन देकर और किन्हींको प्रिय भाषण करके संतुष्ट किया है। हमारी सेनामें ऐसा योद्धा एक भी नहीं है, जिसे थोड़ा वेतन मिलता हो अथवा वेतन मिलता ही न हो। मैंने, मेरे पुत्रोंने

तथा हमारे बन्धु-बान्धवोंने सभीका दान, मान और आसनादिसे सत्कार किया है। किंतु फिर भी श्रीकृष्ण और अर्जुन सही-सलामत हमारी सेनामें घुस गये, कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सका। यहाँतक कि सात्यकिने भी उन्हें कुचल डाला। इसमें भाग्यके सिवा और किसे दोष दिया जाय?

अच्छा, जब दुर्योधनने अर्जुनको जयद्रथके सामने खड़ा देखा और सात्यकिको निर्भयतासे अपनी सेनामें घुसते पाया, तो उसने उस समयपर अपना क्या कर्त्तव्य निश्चय किया? मैं तो यही समझता हूँ कि अर्जुन और सात्यकिको अपनी सेना लाँघते और कौरव-योद्धाओंको युद्धस्थलसे भागते देखकर मेरे पुत्र बड़ी चिन्तामें पड़ गये होंगे। इस समय सात्यकिके सहित श्रीकृष्ण और अर्जुनके अपनी सेनामें प्रवेशकी बात सुनकर मैं भी बड़ी घबराहटमें पड़ गया हूँ। अच्छा, जब द्रोणाचार्यने पाण्डवोंको व्यूहके द्वारपर रोक लिया तो वहाँ उनके साथ किस प्रकार युद्ध हुआ- यह मुझे सुनाओ और यह भी बताओ कि अर्जुनने सिन्धुराज जयद्रथका वध करनेके लिये क्या उपाय किया।

संजयने कहा- राजन। यह सारी विपत्ति आपके अपराधसे ही आयी है; इसलिये अन्य साधारण पुरुषोंके समान आप इसके लिये चिन्ता न करें। पहले जब आपके बुद्धिमान् सुहृद् विदुर आदिने कहा था कि आप पाण्डवोंको राज्यसे च्युत न करें, तो आपने उनकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया। जो पुरुष अपने हितैषी सुहृदोंकी बातपर ध्यान नहीं देता, वह भारी आपत्तिमें पड़कर आपहीकी तरह चिन्ता किया करता है। श्रीकृष्णने भी संधिके लिये आपसे बहुत प्रार्थना की थी; किंतु आपसे उनका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। इससे आपकी गुणहीनता, पुत्रोंके प्रति पक्षपात, धर्मपर अविश्वास, पाण्डवोंके प्रति मत्सर और कुटिल भाव जानकर तथा आपके मुखसे बहुत-सी बेबसीकी-सी बातें सुनकर ही सर्वलोकेश्वर श्रीकृष्णने कौरव-पाण्डवोंमें यह भारी युद्ध खड़ा किया है। यह भीषण संहार आपके ही अपराधसे हो रहा है। मुझे तो आगे-पीछे या मध्यमें भी आपका कोई पुण्यकृत्य दिखायी नहीं देता। मेरे विचारसे तो इस पराजयकी जड़ आप ही हैं।

जब सत्यपराक्रमी सात्यकि आपकी सेनामें घुस गया, तो भीम आदि पाण्डववीर भी आपके सैनिकोंपर टूट पड़े। उन्हें बड़े क्रोधसे धावा करते देख महारथी कृतवर्माने अकेले ही आगे बढ़नेसे रोक दिया। इस समय हमने कृतवर्माका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। सारे पाण्डव मिलकर भी युद्धमें उसे नीचा न दिखा सके। तब महाबाहु भीमने, सहदेव, धर्मराज, नकुलने, धृष्टद्युम्नने और द्रौपदीके पुत्रोंने बाणोंसे उसे घायल किया। तथा विराट, द्रुपद और शिखण्डीने बाण मारकर उसपर और भी वार किया। कृतवर्माने इन सभी वीरोंको बाणोंसे बींधकर भीमपर बाण छोड़े तथा उनके धनुष और ध्वजाको काटकर रथसे नीचे गिरा दिया। इसके बाद उसने क्रोधमें भरकर बड़ी तेजीसे बाणोंद्वारा उनकी छातीपर फिर चोट की। कृतवर्माके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो जानेसे वे काँपने लगा तथा अचेत-से हो गये; थोड़ी देर बाद जब होश हुआ तो भीमने उसकी छातीमें बाण मारे। इससे कृतवर्माके सब अङ्ग लोहूलुहान हो गये। तब उसने क्रोधमें भरकर भीमपर वार किया तथा अन्य सब महारथियोंको भी बाणोंसे बींध दिया। इसपर उन सबने भी उसपर बाण छोड़े। कृतवर्माने एक क्षुरप्र बाणसे शिखण्डीका धनुष काट दिया। इससे कुपित होकर शिखण्डीने ढाल-तलवार उठा ली तथा तलवारको घुमाकर कृतवर्माके रथपर फेंका। वह उसके धनुष और बाणको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ी। कृतवर्माने तुरंत ही दूसरा धनुष लेकर प्रत्येक पाण्डवको बाणोंसे बींध दिया तथा शिखण्डीको घायल कर डाला। शिखण्डीने भी दूसरा धनुष लेकर अपने बाणोंसे कृतवर्माको रोक दिया। इससे क्रोधमें भरकर वह शिखण्डीके ऊपर टूट पड़ा। इस समय अपने पैने बाणोंसे एक-दूसरेको व्यथित करते हुए वे महारथी प्रलयकालीन सूर्योंके समान जान पड़ते थे। कृतवर्माने महारथी शिखण्डीपर बाणोंसे वार करके फिर उसे बाणोंद्वारा घायल कर डाला। इससे वह मूर्च्छित हो गया और उसके हाथसे धनुष-बाण गिर गये। यह देखकर

उसका सारथी बड़ी फुर्तीसे रथको रणाङ्गणमें बाहर ले गया।

शिखण्डीको रथके पिछले भागमें अचेत पड़ा देखकर अन्य पाण्डव वीरोंने कृतवर्माको अपने रथोंसे घेर लिया; किंतु इस समय कृतवर्माने बड़ा ही अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। उसने अकेले ही उन सब वीरोंको उनकी सेनाके सहित परास्त कर दिया। पाण्डवोंको जीतकर उसने पाञ्चाल, सृञ्जय और केकय वीरोंके भी दाँत खट्टे कर दिये। अन्तमें कृतवर्माकी बाणवर्षासे व्यथित होकर वे सभी महारथी युद्धका मैदान छोड़कर भाग गये।

कृतवर्मा ने भीम को अपने बाणों से घायल कर दिया था। उसने भीम का धनुष भी काट दिया था। भीम पीड़ा से काँप रहा था। युधिष्ठिर ने अपना ध्यान अब कृतवर्मा पर केंद्रित किया। कृतवर्मा युधिष्ठिर की ओर उन्मुख हुआ और इधर भीम फिर से सचेत हो गया। उसने लोहे की एक शक्ति हाथ में लेकर कृतवर्मा पर प्रहार किया। कृतवर्मा ने उस शक्ति के भी टुकड़े कर दिए। पर अब भीम पूर्णत: सजग और सचेत था। उसने दूसरा धनुष उठा लिया और कृतवर्मा पर प्रहार किया। दूसरी ओर से शिखंडी आ गया था। कृतवर्मा ने अपने पहले ही बाण से उसका धनुष काट दिया। शिखंडी ने खड्ग उठाकर अपने रथ से ही कृतवर्मा को दे मारा। स्वयं कृतवर्मा को तो चोट नहीं लगी, किंतु उसका धनुष कट गया। कृतवर्मा उसके इस कौतुक से चकित ही रह गया। उसने दूसरा धनुष उठाया और बाणों की ऐसी वर्षा की कि शिखंडी उसमें घिर कर रह गया। न वह दूसरा धनुष उठा सका, न किसी और के रथ पर जा सका। परिणामत: मूर्च्छित होकर रथ में गिर गया। और कोई मार्ग न देख, उसका सारथी रथ को तत्काल युद्धभूमि से हटा ले गया।

शिखंडी के हटते ही पांडव सेना में भगदड़ मच गई। सात्यकि को लौटना पड़ा। उसने लौटकर कृतवर्मा पर आक्रमण किया; और एक ही झोंके में उसका धनुष काट कर, उसके घोड़ों को मार दिया। उसके पृष्ठरक्षकों और सारथी को क्षतविक्षत कर दिया। इस बार कृतवर्मा की भोजवंशी सेना सात्यकि के सामने नहीं ठहर सकी।

इसी समय एक हाथीपर सवार हुआ महाबली जलसन्ध अपना धनुष घुमाता सात्यकिपर चढ़ आया। सात्यकिने उसके हाथीको अकस्मात् आक्रमण करते देख अपने बाणोंसे रोक दिया। इसपर जलसन्धने बाणोंद्वारा सात्यकिकी छातीपर वार किया। सात्यकि बाण छोड़ना ही चाहता था कि जलसन्धने एक नाराचसे उसका धनुष काट डाला तथा बाणोंसे उसे भी घायल कर दिया। परंतु महाबाहु सात्यकि बहुत-से बाणोंसे घायल हो जानेपर भी टस-से-मस न हुआ। उसने तुरंत ही दूसरा धनुष लिया और बाणोंसे जलसन्धके विशाल वक्ष:स्थलपर वार किया। अब जलसन्धने ढाल और तलवार उठायीं तथा तलवारको घुमाकर सात्यकिके ऊपर फेंका। वह उसके धनुषको काटकर पृथ्वीपर जा पड़ी। तब सात्यकिने दूसरा धनुष उठाया और उसकी टंकार करके एक पैने बाणसे जलसन्धको बींध दिया। फिर दो क्षुरप्र बाणोंसे उसने जलसन्धकी भुजाएँ काट डालीं तथा तीसरे क्षुरप्रसे उसका मस्तक उड़ा दिया।

मगधराज जलसंध अपने हाथी को सात्यकि पर चढ़ा लाया। हाथी को इस प्रकार बढ़ते देख सात्यकि के घोड़े कुछ बिदके और उतने में जलसंध के कोदंड को ही काट दिया। जलसंध ने तोमर का प्रहार किया। तोमर सात्यकि की बाईं भुजा पर लगा। भुजा घायल हो गई। सात्यकि ने अपने घाव की चिंता न करते हुए, सीधा नाराच मारकर जलसंध का वध कर दिया।

त्रिगर्तों की गजसेना ने सात्यकि को बढ़ते देखा तो उसके चारों ओर घेरा डाल दिया। पर सात्यकि अब किसी से भी रुकनेवाला नहीं था। उसने गजसेना को एक प्रकार से ध्वस्त ही कर दिया।

संजयने कहा- राजन्। इस प्रकार द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा आदि आपके वीरोंको परास्त कर सात्यकिने अपने सारथीसे कहा, सूत। हमारे शत्रुओंको तो श्रीकृष्ण और अर्जुन पहले ही भस्म कर चुके हैं। हम तो इनकी पराजयमें केवल निमित्तमात्र हैं और

पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनके मारे हुए योद्धाओंको ही मार रहे हैं। सारथीसे ऐसा कहकर वह शिनिकुलभूषण सब ओर बाणोंकी वर्षा करता अपने शत्रुओंपर टूट पड़ा। उसे बढ़ता देख राजकुमार सुदर्शन क्रोधमें भरकर सामने आया और बलात्कारसे उसे रोकने लगा। उसने सात्यकिपर सैकड़ों बाण छोड़े। परंतु उसने उन्हें अपने पास पहुँचनेसे पहले ही काट डाला। इसी प्रकार सात्यकिने सुदर्शनपर जो बाण छोड़े उनके उसने भी दो-दो, तीन-तीन टुकड़े कर दिये। फिर उसने धनुषको कानतक तानकर बाण छोड़े, वे सात्यकिके कवचको फोड़कर उसके शरीरमें घुस गये। साथ ही बाणोंसे उसने सात्यकिके घोड़ोंपर भी वार किया। तब सात्यकिने बड़ी फुर्तीसे अपने तीखे तीरोंद्वारा सुदर्शनके चारों घोड़ोंको मारकर बड़ा सिंहनाद किया। फिर एक भल्लसे सुदर्शनके सारथीका सिर काटकर एक क्षुरप्रद्वारा उसका कुण्डलमण्डित मस्तक भी धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार राजा दुर्योधनके पौत्र सुदर्शनका संहार करके सात्यकिको बड़ा हर्ष हुआ। फिर वह आपकी सेनाको अपने बाणोंकी बौछारोंसे हटाकर सबको विस्मयमें डालता हुआ अर्जुनकी ओर चला। मार्गमें उसके सामने जो शत्रु आता था, उसीको वह अग्निके समान अपने बाणोंमें होम देता था। उसके इस अद्भुत पराक्रमकी अनेकों अच्छे-अच्छे वीर प्रशंसा कर रहे थे।

अब उसने अपने सारथीसे कहा, मालूम होता है महावीर अर्जुन यहाँ कहीं पास ही हैं; क्योंकि उनके गाण्डीव धनुषका शब्द सुनायी दे रहा है। मुझे जैसे-जैसे शकुन हो रहे हैं, उनसे यही निश्चय होता है कि ये सूर्यास्तसे पहले ही जयद्रथका वध कर देंगे। अब तुम थोड़ी देर घोड़ोंको आराम कर लेने दो। फिर जिस ओर शत्रुओंकी सेना है तथा जिधर दुर्योधनादि राजा एवं काम्बोज, यवन, शक, किरात, दरद, बर्बर, ताम्रलिप्तक तथा अनेकों म्लेच्छ खड़े हुए हैं, उधर ही रथ ले चलना। ये सब मेरे साथ ही युद्ध करनेकी तैयारीमें हैं। जब रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित इन सबका संहार हो जाय, तभी तुम समझना कि हमने इस दुस्तर व्यूहको पार किया है।

सारथीने कहा- वार्ष्णेय। यदि क्रोधमें भरे हुए साक्षात् परशुरामभी आपके सामने आ जायँ, तो मुझे कोई घबराहट नहीं होगी; इस गौके खुरके समान तुच्छ संग्रामकी तो बात ही क्या है। अब किस रास्तेसे मैं आपको अर्जुनके पास ले चलूँ?

सात्यकिने कहा- आज मुझे इन मुण्डलोगोंका संहार करना है। इसलिये तुम मुझे काम्बोजोंकी ओर ही ले चलो। गुरुवर अर्जुनसे मैंने जो शस्त्रविद्या सीखी है, आज मैं उसका कौशल दिखाऊँगा। जब मैं क्रोधमें भरकर चुने-चुने योद्धाओंका वध करूँगा, तो दुर्योधनको यही भ्रम होगा कि इस जगत्में दो अर्जुन हैं। महात्मा पाण्डवोंके प्रति मेरी जैसी प्रीति और भक्ति है, उसे इन राजाओंके सामने सहस्रों वीरोंका संहार करके मैं प्रकट करूँगा। आज कौरवोंको मेरे बलवीर्य और कृतज्ञताका पता लग जायगा। सात्यकिके ऐसा कहनेपर सारथीने बड़ी तेजीसे घोड़ोंको हाँका और तुरंत ही उसे यवनोंके पास पहुँचा दिया। जब उन्होंने सात्यकिको अपनी सेनाके समीप आया देखा तो वे बड़ी सफाईसे बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु सात्यकिने अपने तीखे बाणोंसे उनके बाण एवं अन्यान्य अस्त्रोंको बीचहीमें काट दिया और वे उसके पासतक फटक भी न सके। इसके बाद वह बाणोंकी वर्षा करके उनके सिर और भुजाओंको काटने लगा। वे बाण उनके लोहे और काँसेके कवचोंको फोड़कर शरीरोंको छेदते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे। इस प्रकार वीर सात्यकिके मारे हुए सैकड़ों म्लेच्छ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गये। इस प्रकार उसने हजारों काम्बोज, शक, शबर, किरात और बर्बरोंको धराशायी करके रणभूमिको मांस और रक्तसे लथपथ तथा अगम्य-सी कर दिया। सात्यकिके बाणोंसे मरे हुए उन वीरोंसे सारी पृथ्वी भर गयी। उनमेंसे जो थोड़े-से योद्धा बचे, वे प्राणसंकटसे भयभीत होकर रणाङ्गणसे भाग गये।

राजन्। इस प्रकार काम्बोज, यवन और शकोंकी दुर्जय सेनाको भगाकर सात्यकि आपके पुत्रोंकी सेनामें घुस गया और उन्हें भी परास्त करके सारथीको रथ बढ़ानेका आदेश दिया। उसे अर्जुनके समीप पहुँचा देखकर आपके सैनिक और चारणलोग बड़ी

प्रशंसा करने लगे। इतनेहीमें आपके पुत्र दुर्योधन, चित्रसेन, दु:शासन, विविंशति, शकुनि, दु:सह, दुर्धर्षण और क्रथने उसे पीछेसे जाकर घेर लिया। पुरुषसिंह सात्यकिको इससे तनिक भी भय न हुआ और वह अर्जुनसे भी बढ़कर कुशलता दिखाता हुआ उनके साथ युद्ध करने लगा। अब राजा दुर्योधनने बाणोंसे उसके सूत और चारसे चारों घोड़ोंको बींधकर सात्यकिपर बाणोंसे वार किया तथा दु:शासन, शकुनि, चित्रसेन और दु:सहने बाणोंसे उसपर चोट की। इसपर सात्यकिने मुसकराते हुए उन सभीको बाणोंसे बींध दिया। फिर शकुनिके धनुषको काटकर बाणोंसे दुर्योधनकी छाती पर वार किया तथा चित्रसेनको, दु:सहको और दु:शासनको बाणोंसे घायल कर दिया। इसके बाद उसने प्रत्येक वीरको बाण और भी मारे तथा एक भल्लसे दुर्योधनके सारथीपर प्रहार किया। इससे वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गया। सारथीके मारे जानेपर घोड़े हवासे बातें करने लगे और उसके रथको संग्रामभूमिसे बाहर ले गये। यह देखकर आपके अन्य पुत्र और दूसरे सैनिक भी मैदान छोड़कर भाग गये। इस प्रकार आपकी सब सेनाको तितर-बितर करके वह फिर अर्जुनके रथकी ओर ही चला।

किंतु वह कुछ ही आगे बढ़ा था कि दुर्योधनकी आज्ञासे संशप्तकोंके सहित वे सब योद्धा फिर लौट आये। स्वयं दुर्योधन उनके आगे था। उसके साथ तीन हजार घुड़सवार तथा शक, काम्बोज, बाह्लीक, यवन, पारद, कुलिन्द, तङ्गण, अबष्ठ, पैशाच, बर्बर और पर्वतीय योद्धा हाथोंमें पत्थर लेकर बड़े क्रोधसे सात्यकिकी ओर दौड़े। दु:शासनने इसे मार डालो ऐसा कहकर सबको उत्साहित किया और सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। वह अकेला ही बेखटके उन सबके साथ संग्राम कर रहा था तथा रथसेना, गजसेना और घुड़सवारोंके सहित उन सभी अनार्योंका संहार करता जाता था। जब वे मार खाकर भागने लगे, तो उनसे दु:शासनने कहा- अरे। भागते क्यों हो? तुमलोग तो पत्थरोंकी मार मारनेमें बड़े कुशल हो, सात्यकि तो इससे सर्वथा अनभिज्ञ है। यह सुनकर वे फिर सात्यकिपर टूट पड़े और हाथीके सिरके समान बड़ी-बड़ी शिलाएँ लिये उसके सामने आये। कोई उसे मार डालनेके लिये गोफनियाँ लेकर सब ओरसे मार्ग रोककर खड़े हो गये। उन्हें शिलायुद्ध करनेकी इच्छासे आया देख सात्यकिने बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। फिर उन्होंने जो भयंकर पाषाणवर्षा की, उसे सात्यकिने अपने बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। उन पथरोंके रोड़ोंसे आपहीकी सेना मरने लगी और उसमें बड़ा हाहाकार होने लगा। बात-की-बातमें पाँच सौ शिलाधारी वीर अपनी भुजाओंके कट जानेसे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर गये।

अब अनेकों व्यात्तमुख, अयोहस्त, शूलहस्त, दरद, तङ्गण, खस, लम्पाक और कुलिन्द योद्धा सात्यकिपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगे। किंतु युद्धकुशल सात्यकिने बाणोंकी बौछारसे उनके पत्थरोंके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उनकी बजरीकी चोट भौरोंके डंकके समान जान पड़ती थी। उससे पीड़ित होकर मनुष्य, हाथी और घोड़े संग्रामभूमिमें टिक न सके। जो हाथी मरनेसे बचे थे, वे खूनसे लथपथ हो गये तथा उनके मस्तकोंकी हड्डियाँ टूट गयीं। आपके जो पुत्र सात्यकिसे लड़ने आये थे, वे भी उसकी मारसे घबराकर द्रोणाचार्यकी सेनामें जा मिले तथा जिन रथियोंको लेकर दु:शासनने धावा किया था, वे सब भी भयभीत होकर द्रोणके रथकी ओर दौड़ गये।

अब भी जयद्रथ एक कोस दूर था और दुर्योधनकी रक्षाके लिए उसके पक्षकी अधिकांश सेना तथा महारथी आ गये थे। उन्होंने अर्जुनको घेर लिया था। श्रीकृष्णने अर्जुनको धनुषका ज्याघोष अधिक करनेका आदेश दिया और स्वयं पांचजन्य शंख अधरोंसे लगा लिया। इतनी प्रचण्ड ध्वनि मानो ब्रह्माण्ड फट जायगा। गाण्डीवका वह ज्याघोष तथा पांचजन्यका निनाद मानव मस्तिष्कके लिए असह्य था। शत्रु-सैनिक मूर्च्छित होकर गिर पड़े। रथोंके अश्व तथा गज अपनी ही सेनाको रौंदते व्याकुल भागने लगे। इस अवसरको पाकर अर्जुनका रथ-वायुवेगसे शत्रुका घेरा तोड़कर आगे बढ़ गया। अब जयद्रथके रक्षक महारथियोंका सूची व्यूह सम्मुख था।

HHH(१४४)HHH

भूरिश्रवा, शल्य, कर्ण, वृषसेन, शल, कृपाचार्य और अश्वत्थामा इन सात महारथियोंने अपने पीछे जयद्रथको सुरक्षित कर रखा था। दुर्योधन भी वहाँ आ पहुँचा था। इस प्रकार अकेले अर्जुनको नौ महारथियोंसे युद्ध करना था।

इस समय यह बड़े आश्चर्यकी बात हुई कि आचार्य उस वेगवान् पाञ्चालराजकुमारको काबूमें नहीं कर सके। संग्राममें द्रोणकी गति रुकी देखकर महाराज युधिष्ठिरकी विजय चाहनेवाले पाञ्चाल वीरोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। सब-के-सब मिलकर उनपर बाण, तोमर तथा तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। तब आचार्यने वीरकेतुके रथकी ओर एक बड़ा ही भयंकर बाण छोड़ा। वह उसे घायल करके पृथ्वीपर जा पड़ा और उसकी चोटसे प्राणहीन होकर वह पाञ्चालपुत्र रथसे नीचे गिर गया।

उस महान् धनुर्धर राजकुमारके मारे जानेपर पाञ्चाल वीरोंने बड़ी फुर्तीसे आचार्यको सब ओरसे घेर लिया। चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ- ये सभी राजकुमार अपने भाईकी मृत्युसे व्यथित होकर द्रोणके साथ संग्राम करनेके लिये उनके सामने आ गये और वर्षाकालीन मेघोंके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे। इससे विप्रवर द्रोण अत्यन्त क्रोधमें भर गये और उन्होंने उनपर बाणोंका जाल-सा फैला दिया। इससे वे सब राजकुमार घबराकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। तब आचार्यने हँसते-हँसते उनके घोड़े, सारथी और रथोंको नष्ट कर दिया तथा अत्यत तीखे भल्लोंसे उनके मस्तकोंको भी काटकर गिरा दिया। इस प्रकार उन राजपुत्रोंका वध करके आचार्य अपने धनुषको मडण्लाकार घूमाने लगे।

यह देखकर धृष्टद्युम्नको बड़ा उद्वेग हुआ। उसके नेत्रोंसे जल गिरने लगा और वह अत्यन्त कुपित होकर द्रोणके रथपर टूट पड़ा। तब धृष्टद्युम्नके बाणोंसे द्रोणकी गति रुकी देखकर संग्रामभूमिमें बड़ा हाहाकार होने लगा। उसने क्रोधसे तिलमिलाकर आचार्यकी छातीपर बाणोंसे चोट की। इससे वे रथकी गद्दीपर बैठकर मूर्च्छित हो गये। धृष्टद्युम्नने धनुष रखकर एक तेज तलवार उठायी और अपने रथसे कूदकर वह फौरन ही आचार्यके रथपर चढ़ गया। वह उनका सिर काटनेहीवाला था कि द्रोणकी मूर्च्छा टूट गयी। जब उन्होंने देखा कि धृष्टद्युम्न उनका काम तमाम करनेके लिये निकट आ गया है तो वे पाससे ही चोट करनेवाले वितस्त नामके बाण छोड़ने लगे। उन बाणोंसे धृष्टद्युम्नका उत्साह भङ्ग हो गया और वह तुरंत ही उनके रथसे कूदकर अपने रथपर जा चढ़ा। अब वे दोनों ही एक-दूसरेको बाणोंसे बींधने लगे। दोनोंहीने सम्पूर्ण आकाश, दिशा और पृथ्वीको बाणोंसे छा दिया। उनके उस अद्भुत युद्धकी सभी प्राणी प्रशंसा करने लगे। अब द्रोणने बड़ी फूर्तीसे धृष्टद्युम्नके सारथीके सिरको काटकर गिरा दिया। इससे उसके घोड़े रणभूमिसे भाग गये। तब आचार्य पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंके साथ युद्ध करने लगे तथा उन्हें परास्त करके फिर अपने व्यूहमें आकर खड़े हो गये।

इस प्रकार त्रिगर्त्त वीरोंका संहार करके वीर सात्यकि धीरे-धीरे अर्जुनके रथकी ओर बढ़ने लगा। इस समय आपके पुत्र दुःशासनने उसपर फिर बाणोंसे वार किया। तब सात्यकिने उसपर बाण छोड़े और उसके धनुषको भी काट डाला। इस प्रकार सबको विस्मयमें डालकर वह फिर अर्जुनके रथकी ओर बढ़ने लगा। इससे दुःशासनका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने सात्यकिका वध करनेके विचारसे उसपर एक लोहेकी शक्ति छोड़ी। किंतु सात्यकिने अपने पैने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। तब दुःशासनने दूसरा धनुष लेकर उसे बाणोंसे बींध डाला और सिंहके समान गर्जना की। इससे सात्यकिका क्रोध भड़क उठा और उसने दुःशासनकी छातीको बाणोंसे घायल कर एक भल्लसे उसके धनुषको और दोसे उसके रथकी ध्वजा तथा शक्तिको काट डाला। फिर कई तीखे बाण छोड़कर उसके दोनों पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। तब त्रिगर्त्तसेनापति उसे अपने रथपर चढ़ाकर ले चला। सात्यकिने कुछ देरतक उसका भी पीछा किया। किंतु फिर उसे भीमकी प्रतिज्ञा याद आ गयी, इसलिये उसने दुःशासनका वध नहीं किया। राजन्। भीमने आपकी सभामें ही आपके सब पुत्रोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये

सात्यकिने दु:शासनको मारा नहीं। वह उसे संग्रामभूमिमें परास्त कर बड़े वेगसे अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा।

संजयने कहा, राजन। इधर दोपहरके बाद आचार्य द्रोणका सोमकोंके साथ फिर घोर संग्राम होने लगा। उस समय जो योद्धा गरज रहे थे, उनका मेघके समान गम्भीर शब्द हो रहा था। पुरुषसिंह द्रोणने अपने लाल रंगके घोड़ोंवाले रथपर चढ़कर मध्यम गतिसे पाण्डवोंपर धावा किया और अपने तीखे बाणोंसें मानो चुने-चुने वीरोंपर बाण बरसा रहे हों, इस प्रकार युद्धमें खेल-सा करने लगे। इतनेहीमें पाँच कैकेय राजकुमारोंमेंसे रण-दुर्मद महारथी बृहत्क्षत्र उनके सामने आया और पैने-पैने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें पीडित करने लगा। द्रोणने कुपित होकर उसपर बाण छोड़े, किंतु उसने उन्हें अपने बाणोंसे ही काट डाला। उसकी ऐसी फूर्ती देखकर आचार्य हँसे और फिर उसपर बाणोंसे वार किया। यह देखकर बृहत्क्षेत्रने उन्हें उतने ही पैने बाण छोड़कर नष्ट कर दिया। बृहत्क्षत्रका ऐसा दुष्कर कर्म देखकर आपकी सेनाको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब द्रोणने अत्यन्त दुर्जय ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। उसे कैकेय राजकुमारने ब्रह्मास्त्रसे ही नष्ट कर दिया तथा आचार्यपर बाणोंसे चोट की। इसपर विप्रवर द्रोणने उसपर एक नाराच छोड़ा। वह उसके कवचको फोड़कर पृथ्वीमें घुस गया। इससे बृहत्क्षत्रका क्रोध बहुत बढ़ गया तथा उसने बाणोंसे द्रोणको और एकसे उनके सारथीको घायल कर डाला। तब आचार्यने अपनी बाणवर्षासे महारथी बृहत्क्षत्रका नाकमें दम कर दिया और उसके चारों घोड़ोंको भी मार डाला। फिर एक बाणसे इसके बाद एक बाण तानकर बृहत्क्षत्रकी छातीमें मारा। इससे उसकी छाती फट गयी और वह पृथ्वीपर जा गिरा।

द्रोण इतने उग्र हो गए थे कि पांचाल उनके सामने टिक नहीं सके। वे पीछे हट गए। द्रोण की ताड़ना से आहत होकर दु:शासन सात्यकि का मार्ग रोकने के लिए पहुँचा। द्रोण की ताड़ना सात्यकि के बाणों से किसी भी प्रकार कम पीड़ादायक नहीं थी। सात्यकि ने दु:शासन को आते देखा तो उसका उत्साह जैसे दुगुना हो गया। यह मूर्ख युद्ध तो कर नहीं सकता, असहायों को पीड़ित भर कर सकता है। इसीने पांचाली के केश पकड़कर उसे घसीटा था। सात्यकि को पता ही नहीं चला, कब उसने दु:शासन का धनुष काट डाला, उसका खड्ग तोड़ दिया, उसके रथ के अश्वों और सारथी को मार डाला। दु:शासन की सेना उसे छोड़कर भाग चुकी थी; और वह असहाय-सा उसके सम्मुख खड़ा था। वह पूरी तरह से सात्यकि के वश में था। द्रोण ने देखा कि दु:शासन घिर गया है। उन्होंने त्रिगर्तों को भेजा, जाओ, अपने लाडले युवराज के प्राण बचाओ। त्रिगर्त अर्जुन को नहीं पा सके थे। उनका अर्जुन के प्रति संचित द्वेष सात्यकि की ओर मुड़ गया। उन्होंने सात्यकि को जा घेरा।

सात्यकि इस समय अपने परम तेजस्वी रूप में था। उसके सामने त्रिगर्तों की एक नहीं चली। वे कट-कटकर गिरते रहे। कुछ मर गए और शेष समरभूमि छोड़कर भाग गए। सात्यकि ने उसकी गति रुद्ध करने के लिए उसके अश्वों और सारथी को मार डाला। उसके पार्श्वरक्षकों को मार डाला। उसकी रथ शक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

सात्यकि ने यह देखा तो उसका क्रोध फिर से उमड़ पड़ा। यह निर्लज्ज दु:शासन जीवित बच गया है। अब यह अपने घावों का उपचार करवाकर फिर से समरभूमि में आएगा और पांडव सेना को ललकारेगा। इसका तो मर जाना ही उचित है। सात्यकि ने अपना रथ मोड़ लिया और त्रिगर्त सेनापति का पीछा किया। सहसा वह चेता वह क्या कर रहा है। यह दु:शासन से निर्णय कर लेने का अवसर नहीं था। वह तो अर्जुन के पास जा रहा था। उसे शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचना है। संभव है कि अर्जुन को उसकी सहायता की आवश्यकता हो। संभव है कि धनंजय उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे हों। और फिर इस दु:शासन के वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा कर रखी है भीम ने। यदि इसे यहाँ सात्यकि ने मार डाला तो फिर भीम की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी?

युधिष्ठिर को लगातार युद्ध के समाचार प्राप्त हो रहे थे। पांचालों और कौरवों में द्रोण को दाँव पर रखकर एक प्रकार का द्यूत-सा हो रहा था। पांचाल किसी भी प्रकार आचार्य का वध कर देने पर तुले हुए थे और कौरवों की विजय इसी में थी कि

आचार्य सुरक्षित रहें। कैकेय के बृहत्क्षत्र ने द्रोण पर प्रबल आक्रमण किया था और क्षेमधूर्ति बृहत्क्षत्र का सामना करने आ गया था। धृष्टकेतु के सामने वीरधन्वा डट गया था। विकर्ण और नकुल में द्वंद्व हो रहा था। दूसरी ओर दुर्मुख से सहदेव भिड़ा हुआ था। व्याघ्रदत्त ने सात्यकि पर आक्रमण किया था। द्रौपदेयों ने सोमदेव के पुत्र और भूरिश्रवा के भाई शल को घेर रखा था। अलंबुश अपने भाई बकासुर की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए अब भी भीम से उलझा हुआ था।

इस प्रकार केकय-महारथी बृहत्क्षत्रके मारे जानेपर शिशुपालका पुत्र महाबली धृष्टकेतु द्रोणाचार्यके ऊपर टूट पड़ा। उसने आचार्य तथा उनके रथ, ध्वजा और घोड़ोंपर बाणोंसे वार किया। तब द्रोणने एक क्षुरप्र बाणसे उसका धनुष काट डाला। वह महारथी दूसरा धनुष लेकर उन्हें बाणोंसे बींधने लगा। द्रोणने बाणोंसे उसके चारों घोड़ोंको मार डाला और फिर हँसते-हँसते उसके सारथीका सिर धड़से अलग कर दिया। इसके बाद बाण धृष्टकेतुपर छोड़े। तब उसने रथसे कूदकर आचार्यपर एक गदा छोड़ी। उसे आते देख उन्होंने हजारों बाणोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इससे खीझकर धृष्टकेतुने द्रोणपर एक तोमर और शक्तिसे वार किया। आचार्यने बाणोंसे उन दोनोंको नष्ट कर दिया। फिर उन्होंने उसका वध करनेके लिये एक तेज बाण छोड़ा। वह उसके कवच और हृदयको फाड़कर पृथ्वीमें घुस गया।

इस प्रकार चेदिराजके मारे जानेपर उसके अस्त्रविद्या विशारद पुत्रको बड़ा रोष हुआ और वह उसके स्थानपर आकर डट गया। किंतु द्रोणने हँसते-हँसते उसे भी यमराजके हवाले कर दिया। तब जरासन्धका महाबली पुत्र उनके सामने आया। उसने अपने बाणोंकी बौछारोंसे रणाङ्गणमें द्रोणको अदृश्य कर दिया। उसकी ऐसी फूर्ती देखकर आचार्यने भी सैकड़ों-हजारों बाण बरसाने आरम्भ किये। इस प्रकार उस महारथीको रथमें ही बाणोंसे आच्छादित कर उन्होंने समस्त धनुर्धरोंके सामने मार डाला।

अब पाञ्चाल, चेदि, सृञ्जय, काशी और कोसल- इन सभी देशोंके महारथी बड़े उत्साहसे युद्ध करनेके लिये द्रोणके ऊपर टूट पड़े। उन्होंने आचार्यको मारने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी। परंतु आचार्यने अपने तीखे बाणोंसे उन्हींको यमराजके हवाले कर दिया। द्रोणके ऐसे कर्म देखकर महाबली क्षेत्रधर्मा उनके सामने आया और एक अर्धचन्द्र बाणसे उनका धनुष काट डाला। तब आचार्यने एक दूसरा धनुष लेकर उसपर एक तीखा बाण चढ़ाया। उससे क्षेत्रधर्माका हृदय फट गया और वह अपने रथसे पृथ्वीपर जा पड़ा। इस प्रकार उस धृष्टद्युम्नकुमारके मारे जानेपर सब सेनाएँ काँप उठीं। अब आचार्यपर महाबली चेकितानने आक्रमण किया। उसने द्रोणको बाणोंसे घायल करके उनकी छातीपर चोट की तथा बाणोंसे उनके सारथीको और घोड़ोंको बींध डाला। तब आचार्यने बाणोंसे उसकी छाती और भुजाओंपर वार किया। फिर ध्वजा काटकर सारथीको मार डाला। सारथीके मारे जानेसे घोड़े रथको लेकर भाग गये।

इस प्रकार चेकितानके रथको सारथीहीन देखकर द्रोण वहाँ एकत्रित हुए चेदि, पाञ्चाल और सृञ्जय वीरोंको तितर-बितर करने लगे। इस समय वे बड़े ही शोभायमान जान पड़ते थे। उनके केश कानोंतक पक चुके थे और आयु पच्चासी वर्षके लगभग हो चुकी थी। इतने वयोवृद्ध होनेपर भी वे संग्रामभूमिमें सोलह वर्षके बालकके समान विचर रहे थे।

अब भीम शत्रुओंपर अपनी भयंकरता प्रकट करते हुए चल दिये। वे अपने धनुषकी डोरी खींचकर बाणोंकी वर्षा करते हुए कौरवसेनाके अग्रभागको कुचलने लगे। उनके पीछे-पीछे दूसरे पाञ्चाल और सोमक वीर भी बढ़ने लगे। तब उनके सामने दुःशल, चित्रसेन, कुण्डभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विन्द, अनुविन्द, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन आदि आपके पुत्र अनेकों सैनिक और पदातियोंको लेकर आये और उन्हें चारों ओरसे घेरने लगे। किंतु भीम बड़ी तेजीसे उन्हें पीछे छोड़कर द्रोणकी सेनापर टूट पड़े तथा उसके आगे जो गजसेना थी, उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। पवनकुमार भीमने बात-की-बातमें उस सारी सेनाको नष्ट कर डाला। जिस प्रकार

वनमें शरभके गर्जनेपर मृग घबराकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार वे सब हाथी भयंकर चिंघार करते हुए इधर-उधर भागने लगे।

दु:शल, चित्रसेन, कुंडभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दु:सह, विकर्ण, शल, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, विदारक, सुहत, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन- ने आकर उसका मार्ग इस प्रकार छेक लिया, जैसे वे लोग उसको ही खोज रहे हों। पर भीम इस समय जिस मन:स्थिति में था, उसमें उसके लिए वे सब योद्धा नहीं थे। वे केवल बाधाओं का एक रूप थे, जो उसका मार्ग रोककर उसे अर्जुन और सात्यकि के निकट नहीं पहुँचने देना चाहते थे। भीम मुस्कराया। कोई व्यक्ति दूर के किसी देश की यात्रा पर निकला हो और मार्ग में कोई पर्वत आ जाए तो यात्री, उस पर्वत को खोदने नहीं बैठ जाता। वह उसे लाँघ जाता है। भीम को भी उनको लाँघ ही जाना था। हाँ। कोई शिला ऐसे ही अड़ जाए कि उसका पार पाना असंभव हो तो उस शिला को तोड़ना भी पड़ता है। दुर्योधन के ये भाई उसके लिए वैसी शिला नहीं थे। वह शिला तो इनके पार थी और वह थी आचार्य द्रोण की सेना।

जब महारथी भीम इस प्रकार कौरवोंका संहार करने लगे, तो द्रोणाचार्य उनके सामने आये। उन्होंने अपने बाणोंकी बौछारोंसे भीमको आगे बढ़नेसे रोक दिया। अब इन दोनों वीरोंका बड़ा घोर युद्ध होने लगा। भीम अपने रथसे कूदकर द्रोणके बाणोंकी मार सहते हुए उनके रथके पास पहुँच गये और उसका जुआ पकड़कर उसे दूर फेंक दिया। द्रोण एक दूसरे रथपर चढ़कर फिर व्यूहके द्वारपर आ गये। अपने निरुत्साहित गुरुको इस प्रकार फिर अपने सामने आया देख भीम फिर बड़े वेगसे उनके पास गये और धुरेको पकड़कर उस रथको भी दूर पटक दिया। इसी तरह भीमने अनायास ही द्रोणाचार्यके आठ रथ फेंक-फेंककर नष्ट कर दिये। आपके योद्धा यह सब कौतुक बड़े विस्मयभरे नेत्रोंसे देखते रहे।

सात्यकिको भेजे बहुत विलम्ब हुआ तो चिन्तित धर्मराजने भीमको व्यूहमें जानेकी आज्ञा दी। भीम तो अर्जुन नहीं थे कि आचार्य द्रोणका सम्मान करके उन्हें छोड़कर आगे बढ़ते। वे रथसे कूदकर आचार्यका रथ हाथसे उठाकर दूर फेंक देते थे। एकके पश्चात दूसरा इस प्रकार द्रोणके आठ रथ फेंककर भीमने ध्वस्त कर दिये और मुख्यद्वारसे व्यूहमें प्रवेश किया। व्यूहमें पहुँचते ही धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंको मार दिया। इससे कौरव सेना भीमके आगेसे भाग खड़ी हुई।

द्रोण ने कहा, महाबली भीम। तुम समरभूमि में मुझ शत्रु को पराजित किए बिना, इस शत्रु सेना में प्रवेश नहीं कर सकोगे। अर्जुन मेरी अनुमति लेकर ही इस सेना के भीतर घुसा है। यदि इच्छा हो तो तुम भी उसी प्रकार भीतर जा सकते हो। अन्यथा मेरी इस सेना में प्रवेश नहीं कर पाओगे।

भीम ने कहा, मैं तो तुम्हारा शत्रु भीम हूँ। तुम हमारे पिता, गुरु और बंधु हो। हम तुम्हारे पुत्र के तुल्य हैं। हम सब यही मानते हैं और सदा तुम्हारे सामने प्रणतभाव से खड़े होते हैं। यदि तुम अपने आपको शत्रु मानते हो तो ऐसा ही सही। मैं भीम तुम्हारे शत्रु के अनुरूप ही कर्म कर रहा हूँ।

भीम ने समरभूमि में अपने प्रवेश की घोषणा बड़े धमाके से की थी। कौरवों में उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही वेगशाली हुई। द्रोण के लिए नया रथ आया। वे तत्काल अपने व्यूह में आ खड़े हुए। भीम की उस गदा का आतंक असाधारण था। द्रोण क्षणभर को भी कल्पना करते तो उनका वक्ष चिंता से फटने लगता था। गदा जिस समय रथ से टकराई थी, उस समय कहीं वे भी रथ में होते तो उनके शरीर के अनेक खंडों को समरभूमि में दूर-दूर तक खोजना पड़ता।

अब आचार्य दूसरे रथपर चढ़कर व्यूहके द्वारपर आ गये और युद्धके लिये तैयार होकर खड़े हो गये। महापराक्रमी भीम क्रोधमें भरकर अपने सामने खड़ी हुई रथसेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इस सेनामें जो आपके महारथी पुत्र थे, वे भीमके बाणोंसे नष्ट होते हुए भी उनपर विजय प्राप्त करनेकी लालसासे बराबर युद्ध करते रहे। अब दु:शासनने

क्रोधमें भरकर भीमका काम तमाम कर देनेके विचारसे उनपर एक अत्यन्त तीक्ष्ण लोहमयी रथशक्ति फेंकी। किंतु भीमने बीचहीमें उस महाशक्तिके दो टुकड़े कर दिये। फिर उन्होंने अपने बाणोंसे कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन- इन तीन भाइयोंको मार डाला। आपके वीर पुत्र इसपर भी लड़ते ही रहे। इतनेहीमें उन्होंने महाबली वृन्दारक तथा अभय, रौद्रकर्मा और दुर्विमोचनका भी काम तमाम कर दिया। तब आपके पुत्रोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया और उनपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। भीमने हँसते-हँसते आपके पुत्र विन्द, अनुविन्द और सुवर्माको यमराजके घर भेज दिया। फिर उन्होंने आपके शूरवीर पुत्र सुदर्शनको घायल किया। वह पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया। इस प्रकार भीमने सब ओर ताक-ताककर थोड़ी ही देरमें अपने तेज बाणोंसे उस रथसेनाको नष्ट कर डाला। फिर तो सिंहकी दहाड़ सुनकर जैसे मृग भागने लगते हैं, उसी प्रकार उनके रथकी घरघराहट सुनकर आपके पुत्र सब ओर भागने लगे। भीमने आपके पुत्रोंकी भागती हुई सेनाका भी पीछा किया और वे सब ओर कौरवोंका संहार करने लगे। इस तरह बहुत मार पड़नेपर वे भीमको छोड़कर अपने घोड़ोंको दौड़ाते हुए रणभूमिसे भाग गये। महाबली भीम संग्राममें उन सबको परास्त करके बड़े जोरसे गरजने लगे।

युधिष्ठिर बोले, हे भगवन गांडीव की टंकार सुनवाइये। भीम बोला, आप घबराइये मत भ्राताश्री। प्रिय अर्जुन के साथ वासुदेव हैं। युधिष्ठिर बोले, यह तो मैं भी जानता हूं किन्तु गांडीव की टंकार तो नहीं सुनाई दी। महारथी सात्यकि भी तो अभीतक लौट कर नहीं आये। हे प्रिय भीम मेरी चिन्ता छोडो और अर्जुन के पास जाओ।

युधिष्ठिर ने भीमकी ओर देखा और बोले, तुम अर्जुन और सात्यकि के पास जाओ। देखो, मुझे मना मत करना। यदि बड़े भाई की आज्ञा मानना तुम्हारा कर्तव्य है तो जैसा मैं कह रहा हूँ, वैसा ही करो। अर्जुन को खोजो, सात्यकि को खोजो। अर्जुन से भी अधिक सात्यकि को खोजो। वह मेरे ही आदेश पर अर्जुन के खोजने के लिए मृत्यु के समान इस कौरव सेना में धँस गया है।

भीम बोला, किन्तु भ्राताश्री। युधिष्ठिर बोले, यह तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राताश्री और राजा का आदेश है। भीम बोला, जो आज्ञा। हे पांचाल यह तो तुम जानते ही हो कि आचार्य द्रोण भ्राताश्री को बन्दी बनाने का संकल्प लेकर आये हैं और भ्राताश्री मुझे अर्जुन की सहायता के लिये भेज रहे हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता इसलिये भ्राताश्री कि सुरक्षा आपका दायित्व है। नकुल बोला, आप चिन्ता न करें मझले भैया। भ्राताश्री को बन्दी बनाने के लिये आचार्य द्रोण को हमारा शव पार करना पडेगा। भीम बोला, चलो सारथी। भीम समरभूमि में लौट आया।

होने लगी अति घोर ध्वनि सब ओर हाहाकार की, आशा रही न किसी किसीको द्रोण के उद्धार की।
पर बीच ही में कूद रथ से वृद्ध गुरु आगे बढ़े, फिर युद्ध करने के लिये वे दूसरे रथ पर चढ़े।
रथ युक्त फिर भी भीम ने उन्हें अति रोष से, पूरित किया फिर व्योम को घन तुल्य अपने घोष से,
कर युद्ध वारंवार यों ही द्रोण को गुरु-ऋण चुका, वह वीर पहुँचा व्यूह में, न कराल शस्त्रों से रुका।।
मिल दुष्ट दुर्योधन-अनुज तब भीम से लड़ने लगे, पर शीघ्र मर मर कर तभी वे भूमि पर पड़ने लगे।
अम्भोज-वन को मत्त गज करता यथा मर्दित स्वत:, मारा वृकोदर ने उन्हें झट झपट झूम इतस्तत:।।
होकर पराजित, भीति, कातर शीघ्र उस बलधाम से, सब सैन्य हाहाकार कर भगने लगी संग्राम से।

भीम ने, समरभूमि में लौटते हुए, धृष्टद्युम्न को रोका। धृष्टद्युम्न ने पूछा, युद्ध की क्या स्थिति है?

महाबाहो। आचार्य द्रोण धर्मराज को बंदी करने पर तुले हुए हैं। उधर महाराज चिंतित हैं अर्जुन और सात्यकि के लिए। मैं जानता हूँ कि मेरे लिए अर्जुन और सात्यकि की सहायता करने से बड़ा कर्त्तव्य धर्मराज की रक्षा है, किंतु धर्मराज ने मुझे

आदेश दिया है कि मैं अर्जुन और सात्यकि की सहायता के लिए जाऊँ। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

धृष्टद्युम्न ने कहा, मेरा वध किए बिना, द्रोण धर्मराज को बंदी नहीं कर सकते और इतना तो तुम भी जानते हो कि वे मेरा वध नहीं कर सकते। मैं ही उनका वध करनेवाला हूँ।

अब, आँधी जैसे वृक्षोंको नष्ट कर देती है, उसी प्रकार संग्राममें क्षत्रियोंका नाश करते हुए भीम आगे बढ़े। कुछ दूर जानेपर उन्हें कृतवर्मासे सुरक्षित भोजसेना मिली, किंतु वे उसे भी तरह-तरहसे नष्ट-भ्रष्ट करके आगे बढ़ गये। फिर काम्बोजसेना तथा अनेकों और युद्धकुशल म्लेच्छोंको पार करनेपर उन्हें युद्ध करता हुआ सात्यकि दिखायी दिया। तब तो वे अर्जुनको देखनेकी इच्छासे अपने रथद्वारा बड़ी सावधानीसे तेजीके साथ आगे बढ़ने लगे। आपके अनेकों योद्धाओंको लाँघकर वे ज्यों ही कुछ आगे गये कि उन्होंने जयद्रथका वध करनेके लिये अर्जुनको युद्ध करते देखा। यह देखकर वे वर्षाकालीन मेघके समान बड़े जोरसे दहाड़ने लगे। भीमका वह सिंहनाद श्रीकृष्ण और अर्जुनके कानोंमें भी पड़ा। तब वे दोनों उन्हें देखनेके लिये गर्जना करते हुए उनसे आ मिले। महाराज। इधर भीम और अर्जुनका सिंहनाद सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका सारा शोक दूर हो गया और उन्हें अर्जुनकी विजयकी भी पूरी आशा हो गयी। भीमके सिंहनाद करनेपर वे मुसकराकर मन-ही-मन कहने लगे, भीम। तुमने खूब सूचना दी, तुमने अपने बड़े भाईका कहना करके दिखा दिया। जिनसे तुम द्वेष करते हो, संग्राममें उनकी विजय कभी नहीं हो सकती। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनके सिंहनादका शब्द भी सुनायी दे रहा है। जिसने इन्द्रको जीतकर खाण्डववनमें अग्निको तृप्त किया, एक ही धनुषसे निवातकवचोंको जीत लिया, विराट नगरमें गोहरणके लिये मिलकर आये हुए सब कौरवोंको परास्त किया और दुर्योधनको छुड़ानेके लिये गन्धर्वराज चित्ररथको नीचा दिखाया तथा श्रीकृष्ण जिसके सारथी हैं और जो मुझे सदा ही परम प्रिय है, वह अर्जुन अभी जीवित है- यह कैसे आनन्दकी बात है। क्या श्रीकृष्णकी रक्षामें सूर्यास्तसे पहले ही अपनी प्रतिज्ञाको पूरी करके लौटे हुए अर्जुनसे मेरी भेंट हो सकेगी? अर्जुनके हाथसे जयद्रथको और भीमके हाथसे अपने भाइयोंको मरा हुआ देखकर क्या मन्दबुद्धि दुर्योधन बचे-खुचे वीरोंकी रक्षाके लिये हमसे वैर छोड़कर संधि करना चाहेगा? इस प्रकार एक ओर तो महाराज युधिष्ठिर करुणार्द्र होकर तरह-तरहकी उधेड़बुनमें लगे हुए थे और दूसरी ओर तुमुल संग्राम हो रहा था।

भीम ने पूरे उत्साह से सिंहनाद किया। कृष्ण और अर्जुन ने भीम का सिंहनाद सुना। उनके चेहरे खिल गए। अर्जुन ने तत्काल अपना देवदत्त शंख फूँका। सात्यकि ने अपने उत्साह में भयंकर गर्जन किया।

भीम आगे बढ़ते हुए सूची व्यूहके समीप तक पहुँच गये और अर्जुनको देखकर अपने सिंहनादसे उन्होंने युधिष्ठिरको सूचना दे दी। धर्मराजकी चिन्ता इससे घट गयी।

जयद्रथ भी सूर्य की तरफ देख रहा था और अर्जुन भी। परन्तु दोनों के दृष्टिकोण अलग-अलग हैं। जयद्रथ चाहता है कि सूर्यास्त हो जाये और केवल सूर्यास्त ही उसे मृत्यु से बचा सकता है और अर्जुन चाहता है अभी सूर्यास्त न हो क्योंकि सूर्य की किरणों के साथ स्वयं उसके जीवन की डोर अटकी हुई है। इसलिये यह सूर्यास्त बहुत ही महत्वपूर्ण है। १२ दिनों के इस युद्ध में यह तो अवश्य हुआ है कि कभी इस सेना ने सूर्य की ओर देखा है कभी उस सेना ने। परन्तु आज दोनों सेनायें एक साथ सूर्य की ओर देख रही है और वो जो नेत्रहीन है वो भी सूर्य से आस लगाये बैठा है। धृतराष्ट्र बोले, तुम्हारा मन क्या कहता है संजय। क्या अर्जुन सूर्यास्त से पहिले जयद्रथ वध करने में सफल हो जायेगा। संजय बोला, महाराज रणभूमि में मन का कहा नहीं चलता। धृतराष्ट्र बोले, यह तो मैं भी जानता हूँ संजय किन्तु तुम तो युद्ध देख रहे हो, अनुमान तो लगा सकते हो। यदि जयद्रथ आज बच जाये तो फिर यह युद्ध भी आज

समाप्त हो जाये क्योंकि अर्जुन तो अपने वचन का धनी है। वो अवश्य ही अग्नि समाधि ले लेगा और फिर युधिष्ठिर उसके शोक में डूब जायेगा। संजय बोला, किन्तु युद्ध भी तो हो सकता है राजन कि पांडु पुत्र अर्जुन सिन्धु नरेश जयद्रथ का वध करने में सफल हो जाये। धृतराष्ट्र बोले, हां ऐसा भी हो सकता है किन्तु जब तक ऐसा न हो जाये तब तक मैं चाह तो सकता हूं कि ऐसा ना हो किन्तु अर्जुन के ना होने का लाभ उठाकर आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को बन्दी तो बना सकते हैं। यदि ऐसा हो जाये तो जयद्रथ वध के उपरान्त भी युद्ध समाप्त हो जायेगा। आचार्य द्रोण कर क्या रहे हैं। संजय बोला, इस समय तो धृष्टद्युम्न और आचार्य द्रोण में युद्ध चल रहा है महाराज। दोनों एक-दूसरे पर तलवार से वार कर रहे हैं। द्रोण बोले, आखेट से उसका आखेट नहीं छिनना चाहिये सात्यकि। सात्यकि बोला, रणभूमि में सभी आखेटक भी होते हैं आचार्य और आखेट भी। हे ब्राह्मण यह कोई पाठशाला नहीं है, रणभूमि है। अपने अहंकार के रथ से नीचे उतरो क्योंकि रथ तो क्षत्रियों की सवारी है। सात्यकि और द्रोण के बीच युद्ध हो रहा है। द्रोण से युद्ध करने में सात्यकि घायल हुआ। युधिष्ठिर बोला, लगता है महारथी सात्यकि अब थकने लगे हैं प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न और यदि सहायता न भेजी गयी तो वे अवश्य ही वीरगति को प्राप्त हो जायेंगे। धृष्टद्युम्न बोले, आक्रमण। सात्यकि और द्रोण के बीच युद्ध चल रहा है इतने में ही युधिष्ठिर के पांचो पुत्र वहां आ गये।

होकर प्रविष्ट व्यूह में तब पार्थ की ही नीति से, सात्यकि गमन करने लगा, कर युद्ध अद्‌भुत रीति से।
दावाग्नि से मचती विपिन में ज्यों भयंकर खलबली, करने लगा निज वैरियों को व्यस्त त्यों ही वह बली॥
सात्यकि गया, पर, स्वस्थ तो भी धर्मराज हुए नहीं, भेजा उन्होंने भीम को भी अनुज की सुध को वहीं।
रखते न अपनी आप उतनी चित्त में चिन्ता कभी, निज प्रियजनों का ध्यान जितना ज्येष्ठ जन रखते सभी॥
अर्जुन तथा सात्यकि-गमन से द्रोण थे क्षोभित बड़े, अतएव पहुँचे भीम जब बोले वचन वे यों कड़े।
अर्जुन-सदृश क्या भीम तू भी व्यूह में घुसने चला? क्या छल तुझे भी प्रिय हुआ जब से शकुनि ने है छला॥
सुनकर वचन आचार्य के हँस भीम ने उतर दिया, गुरु से धनंजय ने न लड़कर तात। क्या छल है किया?
छल-छदम् करने में सदा हम सब निरे अनभिज्ञ हैं, इस काम में तो बस हमारे बन्धु ही वर विज्ञ हैं॥
हाँ, कार्य अर्जुन का यही सम्मुचित न जा सकता गिना, रिपु मारने जो वे गये गुरु-दक्षिणा सौंपे बिना।
हे आर्य। वह ऋण ब्याज-युत अब मैं चुकाता आपको, तैयार होकर लीजिये, तजिये हृदय के ताप को॥
कहकर वचन यों भीम उन पर बाण बरसाने लगे, अद्‌भुत, अपूर्व, असीम अपनी शक्ति दरसाने लगे।
पर काटकर सब बाण उनके तोड़कर रथ भी अहा। गुरु-ऋण अभी न चुका वृकोदर। द्रोण ने हँसकर कहा॥
ज्यों द्रोणगिरि वज्रांग ने था हाथ पर धारण किया, त्यों द्रोण रथ को झट उन्होंने एक साथ उठा लिया।
कन्दुक-सदृश फिर दूर नभ में शीघ्र फेंक दिया उसे, कर सिंहनाद सवेग तब वे व्यूह के भीतर घुसे॥

अब तक द्रोण भागते-दौड़ते सात्यकि के सम्मुख आ गए थे। उनके साथ दु:सह, विकर्ण, चित्रसेन और दुर्योधन थे। सात्यकि ने द्रोण की आँख बचाई और दुर्योधन के रथ से अपना रथ भिड़ाकर जैसे एक श्रृंखला के रूप में अनेक बाण चला दिए। दुर्योधन इतना क्षतविक्षत हुआ कि वह अपना रथ छोड़कर चित्रसेन के रथ पर जा चढ़ा।

पर भीम तो दु:शासन को अपने सम्मुख देखकर अत्यंत प्रसन्न था, जैसे सिंह के सामने उसके भोजन के लिए कोई कोमल-सा मृग आ गया हो। प्रसन्नता से उसके दाँत दिखाई देने लगे। भीम के बाण आज कौरवों को अर्जुन के बाणों से भी कठोर लग रहे थे। दु:शासन का वक्ष छलनी हो रहा था।

भीम हँस रहा था, किंतु उसकी भंगिमा कुछ इतनी भयंकर थी कि दु:शासन अपने भाइयों को वहीं छोड़कर भाग गया। उसके भाई भी वहाँ खड़े नहीं रह सके। वे भीम के भय से, ऐसे आहत थे कि भीम के शस्त्रों की मार की प्रतीक्षा भी नहीं कर सके। भीम ने उनका दूर तक पीछा किया। तभी उसे स्मरण हो आया कि वह अर्जुन और सात्यकि की खोज में जा रहा था। धार्तराष्ट्रों के आखेट के लिए नहीं आया था वह। अर्जुन और सात्यकि की सुरक्षा अधिक आवश्यक है। वस्तुत: धर्मराज की सुरक्षा भी उन्हीं की सुरक्षा पर निर्भर थी।

इतना सब कहकर भी द्रोण शांत नहीं हुए। उनके भीतर जैसे अब भी लावा उबल रहा था। सामने पांचाल राजकुमार वीरकेतु पड़ गया तो उसका वध कर डाला। भाई का वध देखकर कुपित चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ- आचार्य पर टूट पड़े। पर आचार्य तो इस समय महाकाल के अवतार हो रहे थे। उन्होंने उन सबका वध कर दिया।

द्रोण कृतवर्मा से बोले हे महारथी भीम अर्जुन की सहायता के लिये जा रहा है। भीम का वहां पहुंच जाना हमारे लिये शुभ नहीं है इसलिये मैं तो युधिष्ठिर को रोकता हूं और आप भीम को रोकिये। कृतवर्मा बोला, जो आज्ञा गुरुवर। चलो सारथी रथ भीम की ओर ले चलो। रूक जाओ भीम। यदि युद्ध करना है तो मुझसे करो। इन साधारण सैनिकों से क्या युद्ध कर रहे हो। भीम बोला, बहती नदी के सामने जो आता है वो बह जाता है महारथी। किस शस्त्र का प्रयोग करोगे। भीम ने गदा उठाई और आपस में भीम और कृतवर्मा का गदा युद्ध होने लगा। गदाये टकराने लगी। चिनगारियां विस्फरित होने लगी। भीम बोला, युद्ध करना है तो इसकी गदा लो महारथी नहीं तो चुपचाप अपने रथ पर बैठकर मेरे सामने से हट जाओ। कृतवर्मा की गदा टूट गई। इतने में वहां पर द्रोण आ गया। द्रोण बोले, कहां जा रहे हो कुन्ती पुत्र भीम? मुझसे युद्ध किये बिना तो तुम अर्जुन की सहायता के लिये नहीं जा सकते। अर्जुन तो मेरी आज्ञा लेकर चला गया था। पर मैं तुम्हे जाने की आज्ञा नहीं दूंगा। भीम बोला, अर्जुन आपकी आज्ञा लेकर नहीं गया था वो तो आपको विवश कर गया था। यदि आप हमारे गुरु न रहे होते तो वो आपका वध करने के पश्चात जाता और यदि आपने मेरा मार्ग रोका तो मैं अपने गुरु को नहीं शत्रु सेना के प्रधान सेनापति को देखूंगा और आपको पराजित करना मेरा धर्म है। सावधान आचार्य द्रोण। भीम ने द्रोण के रथपर गदा प्रहार किया और रथ टूट पडा। द्रोण भूमिपर गिर गये। भीम बोला रथ आगे लो।

कर्ण को अपने सम्मुख देखकर भीम को वास्तविक सुख मिला। इस व्यक्ति को वह कब से खोज रहा था। यह है, जो दुर्योधन के मन का विष अधिक से अधिक गाढ़ा करता रहता है। यह है, जो दुर्योधन का सबसे बड़ा सहारा है। यह है जो पांडवों को पीड़ित कर सबसे अधिक सुख पाता है। यह है, जिसने द्यूतसभा में पांचाली को वेश्या कहा था और उसे निर्वस्त्र कर देने का प्रस्ताव किया था।

भीम ने अपने पहले बाण से कर्ण का कोदंड काट दिया। कर्ण कुछ सँभला। वह युद्ध में इस प्रकार शिथिल रहेगा तो भीम का वेग नहीं सँभाल पाएगा। भीम क्रोधी है, यह कर्ण भी जानता है और भीम क्षमा करना भी नहीं जानता। इसी भीम ने दुर्योधन की जंघा तोड़ने और दु:शासन के वक्ष को फाड़कर उसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा की है। भीम नहीं जानता कि कर्ण उसका भाई है। जान जाएगा तो क्या वह कर्ण के अपराध क्षमा कर देगा? क्या भूल जाएगा कि कर्ण का अब तक उन लोगों के प्रति कैसा व्यवहार रहा है? नहीं। शायद जानकर भी वह पांचाली का अपमान भूल नहीं पाएगा। पर भीम को रोकना तो होगा ही। कर्ण उसे मारना नहीं चाहता तो उसके हाथों मरना भी नहीं चाहता। न ही वह उसे उससे अपने संबंध के विषय में बता सकता है।

कर्ण ने हँसते हुए तब भीम का उपहास वह करने लगा; रे खल। खड़ा रह, क्यों समर से दूर फिरता है भगा?
तुझसे बनेगा क्या भला जो पेट ही भर जानता, रे मूढ़। अपने को वृथा ही वीर है तू मानता।।

प्रण था धनंजय ने किया राधेय के भी घात का, उत्तर दिया कुछ भीम ने इससे न उसकी बात का।
अति रोष तो आया उन्हें तो भी उसे मारा नहीं, सम्मान से भी धर्म-बन्धन हो किसे प्यारा नहीं?

भीमको रोकने कर्णको आगे आना पड़ा। कर्ण बार-बार पराजित होकर भागता था किन्तु फिर लौट आता था। अन्तमें भीमका रथ नष्ट करके वह उन्हें मूर्च्छित कर सका किन्तु सावधान होनेपर वे अर्जुनके समीप पहुँच गये और उनके ही रथपर बैठ गये। कर्णके साथ युद्ध करते हुए भीमने दुर्योधनके अनेक भाइयोंको यमपुर भेज दिया था।

धृतराष्ट्रने कहा- संजय। कर्णने तो साक्षात् महादेवके शिष्य परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी थी और उसमें शिष्यके सभी गुण विद्यमान थे। फिर उसे भीमने इस प्रकार खेलहीमें कैसे जीत लिया? मेरे पुत्र तो सबसे अधिक कर्णका ही भरोसा रखते थे। इस समय उसे भीमके सामनेसे भागता देखकर दुर्योधनने क्या कहा? और महाबली भीमने इसके बाद किस प्रकार युद्ध किया तथा कर्णने उसे संग्रामभूमिमें अग्निके समान प्रज्वलित होते देखकर क्या किया?

सञ्जयने कहा- राजन्। अब दूसरे रथपर चढ़कर कर्ण भीमकी ओर चला। उस समय कर्णको कुपित देखकर आपके पुत्र तो यही समझने लगे कि अब भीम आगकी लपटोंमें गिरनेहीवाला है। कर्णने धनुषकी भयंकर टंकार और तालियोंका शब्द करते हुए भीमपर धावा किया। बस, दोनों वीर दो कुपित सिंहोंके समान, झपटते हुए दो बाजोंके समान तथा क्रोधमें भरे हुए दो शरभोंके समान परस्पर युद्ध करने लगे। राजन्। जूआ खेलने, वनमें रहने और विराटनगरमें अज्ञातवास करनेके समय पाण्डवोंको अनेकों क्लेश उठाने पड़े हैं; आपके पुत्रोंने उनका विस्तृत राज्य तथा रत्नादि हर लिये हैं; अपने पुत्रोंकी सलाहसे आप भी उन्हें निरन्तर तरह-तरहके क्लेश देते रहे हैं; आपने पुत्रोंके सहित निरपराधिनी कुन्तीको लाक्षाभवनमें भस्म करनेका विचार किया था; आपके दुष्ट पुत्रोंने सभाके बीचमें द्रौपदीको तरह-तरहसे तंग किया था; दुःशासनने उसके केश पकड़कर खींचे और कर्णने उससे यह कठोर बात कही कि अब ये लोग तेरे पति नहीं है, तू कोई दूसरा पति चुन ले। इन सभी बातोंका इस समय भीमको स्मरण हो आया। इसलिये वे अपने प्राणोंका मोह छोड़कर धनुषकी टंकार करते कर्णपर टूट पड़े। उन्होंने अपने बाणोंके जालसे कर्णके रथपर सूर्यकी किरणोंका पड़ना बंद कर दिया। तब कर्णने अपने तीखे बाणोंसे उस जालको काटा और भीमपर भी चोट की। इसके जवाबमें भीमने फिर कर्णको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। उन दोनोंका रणक्षेत्र उस समय यमलोकके समान भयंकर और दुर्दश हो रहा था। दूसरे महारथी तो उस संग्रामको बड़े विस्मयके साथ देख रहे थे। दोनों ही वीरोंने एक-दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करते-करते सारे आकाशको बाणमय कर दिया था। उन बाणोंकी चमकसे उसमें चमचमाहट-सी होने लगी थी। दोनों ही वीरोंके बाणोंकी भारी मारसे घोड़े, हाथी और मनुष्य मर-मरकर धरतीपर लोट-पोट हो रहे थे। राजन्। उस समय आपके पुत्रोंके अनेकों योद्धा मारे गये; उनमेंसे कोई तो प्राणहीन होकर गिर रहे थे और कोई गिर चुके थे। इस प्रकार बात-की-बातमें वह सारी रणभूमि हाथी, घोड़े और मनुष्योंकी लोथोंसे पट गयी।

धृतराष्ट्र कहने लगे- संजय। पुरुषार्थको धिक्कार है, यह तो व्यर्थ ही है; मैं तो दैवको ही मुख्य समझता हूँ। कर्ण ऐसी सावधानीसे युद्ध कर रहा था, फिर भी भीमको काबूमें नहीं कर सका। दुर्योधनके मुँहसे मैंने कई बार सुना था कि कर्ण बलवान है, शूरवीर है, बड़ा धनुर्धर है और परिश्रमको कुछ भी नहीं समझता है। इसकी सहायता रहनेपर तो देवता भी मुझे संग्राममें नहीं जीत सकेंगे, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? जब उसीको दुर्योधनने भीमके हाथसे परास्त होकर युद्धसे भागते देखा तो क्या कहा? सञ्जय। भीमके सामने टिकनेका साहस कौन कर सकता है? यह तो सम्भव है कि कोई पुरुष यमराजके घरसे लौट आवे, किंतु भीमके सामने जाकर कोई पीछे नहीं फिर सकता। जो मूर्ख मोहके वशीभूत होकर क्रोधमें भरे हुए भीमके सामने गये, वे तो मानो पतंगोंके समान आगमें ही जा पड़े। भीमने हमारी सभामें सारे कौरवोंके सामने मेरे

पुत्रोंके वधकी प्रतिज्ञा की थी। उसे याद करके कर्णको पराजित देखनेपर दुर्योधन और दु:शासन तो डरके मारे उसके आगेसे भाग गये होंगे। कर्णको रथहीन और भीमके हाथसे पराजित देखकर अवश्य ही दुर्योधनको श्रीकृष्णका अपमान करनेके लिये पश्चात्ताप हुआ होगा। युद्धमें भीमके हाथसे अपने भाइयोंका वध होता देखकर उसे अपने अपराधके लिये अवश्य ही बड़ा संताप हुआ होगा। भला, अपने जीवनकी रक्षा चाहनेवाला ऐसा कौन प्राणी होगा जो साक्षात् कालके समान खड़े हुए भीमके आगे जायगा। मेरा तो यह निश्चय है कि बड़वानलकी ज्वालाओंमें पड़कर भले ही कोई बच जाय, किंतु भीमके सामने जानेपर कोई जीवित नहीं बच सकता। अब तो मेरे पुत्रोंका जीवन संकटमें ही है।

सञ्जयने कहा- कुरुराज। इस महाभयके उपस्थित होनेपर आप चिन्ता करने चले हैं। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि संसारके इस भीषण संहारकी जड़ आप ही हैं। अपने पुत्रोंकी बातोंमें आकर आपहीने यह महान् वैर बाँधा है। आपसे बहुत कुछ कहा भी गया; किंतु मरणासन्न पुरुष जैसे हितकारक औषध ग्रहण नहीं करता, उसी प्रकार आपने भी किसीकी एक न सुनी। राजन्। आपने स्वयं ही यह दुर्जर कालकूट विष पिया है, इसलिये अब आप ही इसका सारा फल भोगिये।

अस्तु, अब जैसे-जैसे आगे युद्ध हुआ वह मैं सुनाता हूँ। कर्णको भीमके हाथसे परास्त हुआ देखकर आपके पाँच पुत्र दुर्मर्षण, दु:सह, दुर्मद, दुर्धर और जय सहन न कर सके और वे एक साथ भीमपर टूट पड़े। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंसे टिड्डीदलके समान सारी दिशाओंको व्याप्त करने लगे। भीमने उन्हें अकस्मात् आते देख हँसते-हँसते अगवानी की। जब कर्णने आपके पुत्रोंको भीमके सामने जाते देखा तो कर्ण भी वहीं लौट आया। अब कौरवलोग उन्हें सब ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु भीमने बाणोंसे सारथी और घोड़ोंके सहित उन पाँचों भाइयोंको यमराजके हवाले कर दिया। उस समय हमने भीमका बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा। वे एक ओर तो अपने बाणोंसे कर्णको रोक रहे थे और दूसरी ओर आपके पुत्रोंको संहार कर रहे थे।

संजयने कहा, राजन्। प्रतापी कर्ण आपके पुत्रोंको मरते देख बड़ा ही कुपित हुआ; उसे अपना जीवन भी भारी-सा मालूम होने लगा। उसके देखते-देखते भीमने आपके पुत्रोंको मार डाला, इससे वह अपनेको अपराधी-सा समझने लगा।

तब वीर कर्ण समक्ष सत्वर उग्र साहस-युत हुआ, उस काल दोनों में वहाँ पर युद्ध अति अद्भुत हुआ।।
बहु बाण सहकर कर्ण के मारी वृकोदर ने गदा, सम्मुख चली इस भाँति वह प्रत्यक्ष मानो आपदा।
पर वज्र सम जब तक गिरे रथ पर गदा वह भीम की, रथ छोड़ने में शीघ्रता राधेय ने निस्सीम की।।
वह तो किसी विध बच गया झट कूद रथ के द्वार से; पर सूत, हय, रथ, नष्ट होने से बचे न प्रहार से।
हो अति कुपित वह वीर तब झट दूसरे रथ पर चढ़ा, मध्याह्न का मार्त्तण्ड मानो था महाद्युति से मढ़ा।।

धृतराष्ट्रने कहा- संजय। मुझे तीनों लोकोंमें ऐसा तो कोई भी वीर दिखायी नहीं देता, जो रणाङ्गणमें क्रोधसे भरे हुए भीमके सामने टिक सके। भला, जो रथपर रथ उठाकर पटक देता है और हाथीपर हाथीको उठाकर दे मारता है उसके आगे और तो कौन, साक्षात् इन्द्र भी कैसे खड़ा रह सकता है? मुझे भीमसे जैसा भय है वैसा न अर्जुनसे है, न श्रीकृष्णसे, न सात्यकिसे और न धृष्टद्युम्नसे ही है। संजय। यह तो बताओ, जब भीमरूप प्रचण्ड पावक मेरे पुत्रोंको भस्म करने लगा तो किन-किन वीरोंने उसे रोका?

इस प्रकार संग्राममें कर्णको परास्त करके भीम मेघके समान बड़े जोरसे गरजने लगे। उस सिंहनादको सुनकर धर्मराज समझ गये कि भीमने कर्णको परास्त कर दिया है। इससे वे बड़े प्रसन्न हुए। इधर जब आपके पुत्र दुर्योधनने देखा कि हमारी सेना तितर-बितर हो रही है तथा अर्जुन, सात्यकि और भीम जयद्रथके पास पहुँच चुके हैं तो वह बड़ी तेजीसे द्रोणाचार्यके पास आया

और उनसे कहने लगा, आचार्यचरण। अर्जुन, भीम और सात्यकि ये तीन महारथी हमारी इस विशाल वाहिनीको परास्त करके बेरोक-टोक सिन्धुराजके समीप पहुँच गये हैं। ये तीनों ही किसीके काबूमें नहीं आये हैं और वहाँ भी हमारी सेनाका संहार कर रहे हैं। गुरुजी। सात्यकि और भीम किस प्रकार आपको परास्त करके निकल गये? यह बात तो समुद्रको सुखा डालनेके समान संसारको आश्चर्यमें डालनेवाली है। जब ये तीनों महारथी आपको लाँघकर निकल गये, तो मुझे निश्चय होता है कि इस संग्राममें अभागे दुर्योधनका नाश अवश्यम्भावी है। खैर, जो होना था सो तो हो गया; अब आगेके लिये विचारिये और सिन्धुराजकी रक्षाके लिये हमें जो कुछ करना चाहिये, उसका निश्चय करके वैसा ही प्रबन्ध कीजिये।

कौरव सेना ने देखा कि दु:शल मारा गया है। कर्ण आहत हुआ है और दुर्योधन वहाँ से कहीं दूर चला गया है। अर्जुन का रथ जयद्रथ की दिशा में और आगे बढ़ गया था और सात्यकि तथा भीम अर्जुन के निकट पहुँचते जा रहे थे।

अर्जुन, सात्यकि और भीम दुर्योधन की विशाल सेना को पराजित कर जयद्रथ के अति निकट पहुँच गए हैं। उन्हें कोई नहीं रोक सका है। वे अपराजित होकर दुर्योधन की सेना पर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया कि अर्जुन संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी है, इसलिए द्रोणाचार्यको व्यतिक्रांत कर गया; किन्तु सात्यकि और भीम द्रोणाचार्यको कैसे व्यतिक्रांत कर गए? क्या द्रोणाचार्य उनसे पराजित हो गए?

द्रोणने कहा- तात। इस समय हमारा जो कर्त्तव्य है, वह सुनो। देखो, पाण्डवोंके तीन महारथी हमारी सेनाको लाँघकर भीतर घुस गये हैं। इस समय जयद्रथ क्रोधमें भरे हुए अर्जुनसे बहुत डरा हुआ है। उसकी रक्षा करना हमारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। इसलिये हमें प्राणोंकी भी परवा न करके उसकी रक्षा करनी चाहिये। इस युद्धद्यूतमें हमारी जीत-हार उसीके ऊपर अवलम्बित है। अत: जहाँ बड़े-बड़े धनुर्धर जयद्रथकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं, वहाँ तुम शीघ्र ही जाओ और उन रक्षकोंकी रक्षा करो। मैं यहीं रहकर तुम्हारे पास दूसरे योद्धाओंको भी भेजूँगा और स्वयं पाञ्चाल, पाण्डव तथा सृञ्जय वीरोंको आगे बढ़नेसे रोकूँगा।

द्रोण दुर्योधन से बोले, मैं तो यही रहूँगा। द्रोण किसी हठी बालक के समान अड़ गए, मुझे पांडवों, पांचालों और सृंजयों को रोकना है। मैं तुम्हारे पास अन्य रक्षकों को भेजता रहूँगा। द्रोण की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। पहले तो उन्हें लगा था कि वे धृष्टद्युम्न के चंगुल में फँस गए हैं और दूसरे ही क्षण धृष्टद्युम्न उनकी मुट्ठी में आकर सुरक्षित निकल गया था और अब वह अपने रथ के दंड और अपने कवच इत्यादि में इतना सुरक्षित था कि वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। द्रोण का सारा क्रोध उसके सारथी की ओर मुड़ गया। वह इस प्रकार समय से रथ न ले आया होता तो धृष्टद्युम्न बच नहीं सकता था। द्रोण ने अपने बाणों से धृष्टद्युम्न के सारथी का मस्तक काट कर फेंक दिया। उनका मन धृष्टद्युम्न से जितना डर रहा था, उनका प्रतिमन उतना ही हिंस्र होता जा रहा था।

द्रोण भी कुछ शांत हुए और बोले, उनके तीन महारथी हमें लाँघकर आगे बढ़ गए हैं। उनकी शेष सेना हमारे पीछे है। हमारी सेना उनके मध्य फँस गई है। पांडव सेना का जितना भय पीछे से है, उतना आगे से भी है। किंतु सर्वाधिक संकट वहीं है, जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। उन्हें रोका न गया तो जयद्रथ के प्राण नहीं बचेंगे। अत: जयद्रथ की रक्षा अधिक आवश्यक है। दुर्योधन बहुत चिन्तित था। उत्साहित था। दिनका चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ हो गया था। अब यदि सूर्यास्त तक जयद्रथकी रक्षा की जा सके तो अर्जुन अपनी प्रतिज्ञानुसार जल मरेगा। उसने कर्णको उत्साहित किया। कर्णने कहा- भीमके भयंकर एवं विशाल बाणोंसे मेरा अंग-अंग आहत हो चुका है। मेरा कोई अंग चेष्टा नहीं कर रहा है। मैं केवल कर्तव्य समझकर किसी प्रकार खड़ा हूँ। फिर भी आपके हितका शक्तिभर प्रयत्न करूँगा।

अर्जुन भी पूरे उत्साहमें थे। वे भी श्रीकृष्णको शीघ्र जयद्रथ तक रथ ले जानेको कह रहे थे। लेकिन यह बहुत कठिन

कार्य था। सब ओरसे कौरव महारथियोंने उन्हें घेर लिया था और उनपर अनवरत बाणवृष्टि कर रहे थे। अर्जुनका पराक्रम कल्पनासे परे था किन्तु कौरव महारथियोंमें भी कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा जैसे ६ महारथी थे और वे भी अपना पूरा पौरुष इस समय प्रकट कर रहे थे।

यों देख बढ़ते पार्थ को कुरुराज अति विह्वल हुआ, चेष्टा बहुत की रोकने की पर न कुछ भी फल हुआ।
तब वह निरा निस्तेज होकर घोर चिन्ता से घिरा; जाकर निकट यों द्रोण के कहने लगा कर्कश गिरा।।
आचार्य। देखो, आपके रहते हुए भी आज यों, दल नष्ट करता पार्थ है मृग-झुण्ड को मृगराज ज्यों।
हैं शूर मेरे पक्ष के यों कह रहे मुझसे सभी- जो चाहते आचार्य तो अर्जुन न बढ़ सकते कभी।।
निज शक्ति भर मैं आपकी सेवा सदा करता रहा, त्रुटि हो न कोई भी कभी, इस बात से डरता रहा।
सम्मान्य। मैंने आपका अपराध ऐसा क्या किया, जो सामने से आपने उसको निकल जाने दिया?
पहले वचन देकर समय पर पालते जो नहीं, वे हैं प्रतिज्ञा-घातकारी निन्दनीय सभी कहीं।
मैं जानता जो पाण्डवों पर प्रीति ऐसी आपकी, आती नहीं तो यह कभी बेला विकट सन्ताप की।।
निज सेवकों के अर्थ मन में सोचकर धर्म्मार्थ को, घुसने न देते व्यूह में जो आप मध्यम पार्थ को।
होती सहज ही में सफल तो आज मेरी कामना, है कौन ऐसा, आपका रण में करे जो सामना?
जो हो चुका सो हो चुका अब सोच करना व्यर्थ है; गत काल के लौटा लाने को कौन शूर समर्थ है?
है किन्तु अब भी समय यदि कुछ आपको स्वीकार हो, भय-पूर्ण पारावार भी पुरुषार्थ हो तो पार हो।।
पूर्वानुकम्पा का मुझे परिचय पुन: देते हुए, अन्त:करण से कौरवों की तरणि को खेते हुए।
अब भी जयद्रथ को बचाकर अनुचरों का दु:ख हरो, गुरुदेव। जाता है समय, रक्षा करो, रक्षा करो।।
इस भाँति निज निन्दा श्रवण कर प्रार्थना के कारण से, हो क्षुब्ध द्रोणाचार्य तब कहने लगे कुरुराज से।
है यह तुम्हारे योग्य ही जैसी गिरा तुमने कही, तुम जो कहो, या जो करो, है सर्वदा थोड़ा वही।।
जो लोग अनुचित काम कर जय चाहते परिणाम में, है योग्य उनकी-सी तुम्हारी यह दशा संग्राम में।
विष-बीज बोने से कभी जग में सुफल फलता नहीं, विश्वेश की विधि पर किसी का वश कभी चलता नहीं।।
यह रण उपस्थित कर स्वयं अब दोष देते हो मुझे, कह जानते हैं बस कुटिल जन वचन ही विष के बुझे।
दुष्कर्म तो दुर्बुद्धि-जन हठ युक्त करते आप हैं, पर दोष देते और को होते प्रकट जब पाप हैं।।
सब काल निस्संदेह मेरी पाण्डवों पर प्रीति है, पर इस विषय में व्यर्थ ही होती तुम्हें यह भीति है।
मैं पाण्डवों को प्यार कर लड़ता तुम्हारी ओर से, विचलित मुझे क्या जानते हो आत्म-धर्म्म कठोर से?
प्रेमादि जितने भाव हैं, वे देह के न विकार है; सब मानवों के चित्त ही उनके पवित्रागार हैं।
अतएव यद्यपि चित्त में हैं पाण्डवों ने घर किये; पर देह के व्यापार सारे हैं तुम्हारे ही लिए।।
गुण पर न रीझे वह मनुज है, तो भला पशु कौन है? निज शत्रु के गुणगान में भी योग्य किसको मौन है?
तुमने सजा यों पाण्डवों से शत्रुता का साज है, पर क्या न उनके शील पर आती तुम्हें कुछ लाज है?
मैंने तुम्हारे हित स्वयं ही क्या उठा रक्खा कहो? अभिमन्यु के वध के सदृश मुझसे हुआ है अघ अहो।
जब तक न प्रायश्चित्त उसका मृत्यु से हो जायगा, तब तक कभी क्या चित्त मेरा शान्ति कुछ भी पायगा।।
तुम पुत्र-सम प्यारे मुझे हो फिर तुम्हीं सोचो भला; क्या मैं तुम्हारे हित समर की शेष रक्खूँगा कला?

है बात यह, मुझसे विमुख हो पार्थ अपना रथ हटा, दक्षिण तरफ से व्यूह में पहुँचा जहाँ थी गज-घटा ।।
रुकता वहाँ किससे कहो, वह अद्वितीय महारथी? तिस पर उसे है मिल गया श्रीकृष्ण जैसा सारथी ।
पर त्याग कर तुम व्यग्रता धीरज तनिक धारण करो, कर्णादिकों के साथ उसका यत्न से वारण करो ।।
मेरा यहीं रहना उचित है व्यूह-रक्षा के लिए, तिस पर युधिष्ठिर पर विजय की मैं प्रतिज्ञा हूँ किये ।
तुम कौन कम हो पार्थ से, उत्साह को छोड़ो नहीं, होता जहाँ उत्साह है होती सफलता भी वहीं ।
यद्यपि नहीं होते सभी के एक-से पुरुषार्थ हैं, तुम भी उसी कुल में हुए जिसमें हुए ये पार्थ हैं ।
यह खेल पाँसों का नहीं है, प्राण का पण आज है; जो आज जीतेगा उसी का जीतना कुरुराज है ।।

श्रीकृष्णने अर्जुनकी ओर मुख किया और बोले, अर्जुन । इन ६ महारथियोंको पराजित किये बिना जयद्रथको मारना संभव नहीं है । सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं । अत: जो कुछ हो, उसमें डरना मत और मेरी बात ध्यानसे सुनना । अर्जुनने कह दिया- अच्युत । मैं सदा आपका आज्ञाकारी हूँ ।

द्रोण स्वयं को संयम नहीं रख पाए । कुछ तीव्र स्वर में बोले, शकुनि का जुआ, द्यूतसभा में फलित नहीं हुआ था, वह आज यहाँ फलित हो रहा है । उस दिन वहाँ किसी पक्ष की जीत अथवा हार नहीं हुई थी । जीत और हार तो आज यहाँ होगी, जहाँ हम प्राणों का पण लगाकर जुआ खेल रहे हैं । शकुनि जिन्हें पांसें समझकर उनके साथ खेलता रहा- वे दुर्धर्ष बाण थे । उनका वास्तविक रूप आज प्रकट हो रहा है । दाँव पर जयद्रथ लगा है । दाँव जीतना है तो जाओ, जयद्रथ की रक्षा करो ।

द्रोण का मन धृष्टद्युम्न के विषय में सोचकर त्रस्त होता जा रहा था । वह तो मायावी था । युद्धक्षेत्र में जैसे उड़ता फिरता था । और कैसा हिंस्र । वह द्रोण के केशों को अपनी मुट्ठी में जकड़कर अपने खड्ग से उनका मस्तक काट लेना चाहता है । जैसे भीम, दु:शासन का रक्त पीना चाहता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न उनका रक्त पी कर रहेगा ।

धृष्टद्युम्न के रथ के अश्व अनियंत्रित हो गए थे । सारथी के न रहने पर धृष्टद्युम्न उन्हें सँभाल नहीं पाया । वे रथ को ले भागे । पांचालों का मनोबल टूट गया । उनका वीर राजकुमार और पांडवों का प्रधान सेनापति युद्धक्षेत्र में से भाग गया था ।

द्रोण ने बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासंधपुत्र सहदेव और धृष्टद्युम्नपुत्र क्षत्रधर्मा का वध कर दिया था । वे अपना पराक्रम प्रकट कर अब भी गर्जना कर रहे थे । धृष्टद्युम्न का पता नहीं था कि वह इस समय कहाँ था । द्रुपद स्वयं को असहाय पा रहे थे; किंतु वे युद्ध छोड़कर भाग नहीं सकते थे । उनके सम्मुख उनके पौत्र का वध हुआ था । वे युद्ध से मुँह कैसे फेर लेते । पर वे स्वयं द्रोण पर आक्रमण करने का साहस भी नहीं कर पा रहे थे । अंतत: उन्होंने कुंतिपुत्रों को सामने रख द्रोण पर आक्रमण किया ।

धृतराष्ट्र बोले, आज सूर्यास्त क्यों नहीं हो रहा है? संजय बोला, कदाचित सूर्यदेव यह युद्ध देखने के लिये ठहर गये है महाराज । कुन्ती पुत्र भीम आचार्य के आठ रथ तोड चुके हैं । धृतराष्ट्र बोले, अपने गुरु का यों अपमान करना भीम को शोभा नहीं देता । विदुर बोले, इस समय वो गुरु और शिष्य नहीं है महाराज । वे तो प्रतिद्वन्द्वी हैं । कुन्ती पुत्र भीम आचार्य द्रोण को टूटे हुये रथ के पास जीवित छोडकर आगे बढ गये । विकर्ण बोला, रुक जाइये भ्राताश्री । भीम बोला, सारथी रथ रोको । तुम मेरा मार्ग मत रोको अनुज क्योंकि तुम्हारा वध करके मुझे बहुत दु:ख होगा क्योंकि तुम धर्म की परिभाषा जानते हो । दुर्योधन का अहंकार मेरे हाथों तुम्हारे २० भाइयों का वध करवा चुका है इसलिये मेरा मार्ग मत रोको । अनुज मेरे मार्ग से हट जाओ । विकर्ण बोला आप जानते हैं भ्राता भीम कि आज मैं आपके सामने से नहीं हट सकता । भीम बोला, किन्तु तुम तो यह भी जानते हो अनुज कि तुम युद्ध में विजय नहीं पा सकते । विकर्ण बोला, मैं जानता हूं और यह भी जानता हूं कि युद्ध में हस्तिनापुर की पराजय निश्चित है फिर भी मैं आपको आगे नही बढने दूंगा । मैं भ्राताश्री दुर्योधन को नहीं त्याग

सकता। इसलिये मैं प्राण त्यागने के लिये आपके सामने खडा हूं।

भीम बोला, मुझे आगे बढ जाने दो अनुज। मैं भूला नहीं हूं कि द्यूतक्रीडा में तुमने दुर्योधन का कैसा विरोध किया था। विकर्ण बोला, वो भी मेरा कर्त्तव्य था भ्राताश्री और आज आपसे युद्ध करने खडा हूँ यह भी मेरा कर्त्तव्य है। भीम बोला, तो ठीक है तुम अपने कर्त्तव्य का पालन करो, मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूं। दोनों में परस्पर भयंकर बाण वर्षा होती है। गदायें टकराती है। भीम के पीठ पर गदा का वार किया और विकर्ण की गदा तोड डाली। और उसका गदा दबाकर विकर्ण का वध कर दिया। और तभी शत्रुंजय, शत्रुसह, दृढ़वर्मा, उग्रसेन और विकर्ण ने आकर भीम को रोकने का प्रयत्न किया। तभी भीम ने शत्रुंजय, शत्रुसह, दृढ़वर्मा और उग्रसेन के साथ-साथ विकर्ण को भी मार गिराया। भीम ने एक शक्ति हाथ में उठा ली और उसे घूमाकर कर्ण पर दे मारा।

तब आपके पुत्र राजा दुर्योधनने अपने पक्षके राजा, राजकुमार और विशेषत: अपने भाइयोंसे कहा, धनुर्धरो। देखो, भीमके धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णको नष्ट करें, उससे पहले ही तुम उसे बचानेका प्रयत्न करो। दुर्योधनकी आज्ञा पाकर उसके सात भाई क्रोधमें भरकर भीमपर टूट पड़े और उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। वे भीमपर बाणोंकी वर्षा करके उन्हें बहुत पीड़ित करने लगे। तब महाबली भीमने उनपर बाण छोड़े। वे उनके हृदयको चीरकर उनका रक्त पीकर पार निकल गये। इस प्रकार उनसे मर्मस्थल बिंध जानेके कारण वे सातों भाई अपने रथोंसे पृथ्वीपर गिर गये। राजन्। इस तरह भीमके हाथसे आपके सात पुत्र शत्रुञ्जय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृढ़, चित्रसेन और विकर्ण मारे गये। आपके इन मरे हुए पुत्रोंमेंसे पाण्डुनन्दन भीम अपने प्यारे भाई विकर्णके लिये तो बहुत ही शोक करने लगे। वे बोले, भैया विकर्ण। मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं धृतराष्ट्रके सारे पुत्रोंको मारूँगा, इसीसे तुम भी मारे गये। युद्ध में कभी भी सम्बन्ध विचार नहीं किया जाता है। ऐसा करके मैंने अपनी प्रतिज्ञाकी ही रक्षा की है। तुम तो विशेषत: राजा युधिष्ठिर और हमारे ही हितमें तत्पर रहते थे। युद्ध बड़ा ही कठोर धर्म है।

तभी दुर्योधन के भेजे उसके और भाई कर्ण की रक्षा के लिए आ गए। चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुद्ध, चित्रवर्मा ने आकर भीम को रोकने का प्रयत्न किया। पर कर्ण देख रहा था कि यह कोई युद्ध नहीं था। वे आए और मारे गए। युद्ध में योद्धा लड़ता तो है, चाहे उसका मस्तक कट ही क्यों न जाए; किंतु दुर्योधन के ये भाई तो जैसे आकर भीम के सामने खड़े हो जाते थे, जैसे वे भीम को लक्ष्यवेध का अभ्यास करा रहे हों।

अब कर्णने भीमपर बाण छोड़े और भीमने बाणोंसे उनका जवाब दिया। वे बाण कर्णके कवचको फोड़कर उसकी दायीं भुजामें लगे और पृथ्वीपर जा पड़े। इस प्रकार भीमके बाणोंसे निरन्तर आच्छादित होकर कर्ण फिर युद्धसे पीछे हटने लगा। यह देखकर राजा दुर्योधनने अपने भाइयोंसे कहा, अरे। सब ओरसे सावधान रहकर तुरंत ही कर्णकी ओर बढ़ो। भाईकी यह बात सुनकर आपके पुत्र चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्मा बाणोंकी वर्षा करते भीमपर टूट पड़े। किंतु भीमने उन्हें आते देख एक-एक बाणमें ही धराशायी कर दिया। आपके महारथी पुत्रोंको इस प्रकार मारे जाते देखकर कर्णके नेत्रोंमें जल भर आया और उसे विदुरके वचन याद आने लगे। परंतु थोड़ी ही देरमें वह दूसरे रथपर चढ़कर फिर भीमके सामने आ गया और उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। कर्णके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे वे एकदम ढक गये और उनसे उनका शरीर घायल हो गया। इस समय कर्ण इतने वेगसे बाण छोड़ रहा था कि उसके धनुष, ध्वजा, उपस्कर, छत्र, ईषादण्ड और जुएसे भी बाणोंकी वर्षा-सी होती जान पड़ती थी। उसके इस प्रबल वेगसे सारा आकाश बाणोंसे छा गया। किंतु जिस प्रकार कर्णने भीमको बाणोंसे आच्छादित किया, उसी प्रकार भीमने भी उसपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। इस समय संग्राममें भीमका अद्‌भुत पराक्रम देखकर आपके योद्धा भी उनकी प्रशंसा करने लगे। भूरिश्रवा,

कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, श्रीकृष्ण और अर्जुन- ये कौरव और पाण्डवपक्षके दस महारथी साधु-साधु कहकर बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे।

भीम अर्जुन के पास आता है इतने में ही बीच में कर्ण आ जाता है। कर्ण बोला, तनिक ठहरो सर्वश्रेष्ठ गदाधर भीम और मार्ग रोककर खडा हो जाता है। मैं अपने २१ भाइयों के वध में नहाये हुये शूरवीर को एक बार तो देख लूं। भीम को वो द्यूतक्रीडा का दृश्य याद आता है कि इस कर्ण ने उस समय क्या-क्या कहा था। दोनों में भयंकर बाण वर्षा हो रही है। कर्ण और भीम में गदा युद्ध होता है। गदाओं का परस्पर में वार होता है। कर्ण की गदा तोड देता है। दोनों परस्पर भाले लेकर युद्ध करते हैं। नाराच और भालों से युद्ध करने लगते हैं। भीम और कर्ण में परस्पर तलवारों से खडग युद्ध होता है।

इसके बाद वे बड़े जोरसे सिंहनाद करने लगे। भीमका वह भीषण शब्द सुनकर धर्मराजको बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर आपके इकतीस पुत्रोंको खेत रहे देखकर दुर्योधनको विदुरके वचन याद आने लगे। वह मन-ही-मन कहने लगा, विदुरने जो हमारे हितके लिये कहा था, वह सब सामने आ गया। बहुत विचार करनेपर भी उसे इस समस्याका कोई समाधान न मिला। राजन् द्यूतक्रीडाके समय द्रौपदीको सभामें बुलाकर आपके दुर्बुद्धि पुत्र और कर्णने जो कहा था कि कृष्णे। पाण्डवलोग तो अब नष्ट होकर सदाके लिये दुर्गतिमें पड़ गये हैं, तू कोई दूसरा पति चुन ले, यह उसीका फल सामने आ रहा है। विदुरने बहुत गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की, परंतु फिर भी उन्हें आपसे कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। अब आप और दुर्योधन उस कुबुद्धिका फल भोगिये। वस्तुत: यह भारी अपराध आपका ही है।

बुद्धिमान् कर्ण भीमके इन शब्दोंसे उनका अभिप्राय ताड़ गया और सब धनुर्धरोंके सामने ही युद्धसे हट गया। भीमको रथहीन करके जब कर्णने श्रीकृष्ण और अर्जुनके सामने ही ऐसी न कहने योग्य बातें कहीं, तो श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उसपर कई बाण छोड़े। वे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णके शरीरमें घुस गये। उनसे पीडित होकर वह तुरंत ही बड़ी तेजीसे भीमके सामनेसे भाग गया। कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा और मुस्कराए, भीम आज अपने पूरे ज्वार पर है।

भीम ने दुर्मुख को आया देखा तो वह प्रसन्न हो गया। कर्ण तो अर्जुन के भाग का था। धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना तो भीम के लिए परम आनन्द का विषय था। धृतराष्ट्र का एक पुत्र मरता था तो भीम के कंठ में जैसे अमृत का एक और चषक उतर जाता था। उसने कर्ण को छोड़ दिया और अपना रथ दुर्मुख के सम्मुख ले गया। जब तक कर्ण अथवा कोई और दुर्मुख की सहायता को आता, भीम ने बाणों से दुर्मुख को जीवनमुक्त कर दिया। तब भीम सात्यकिके रथपर सवार होकर अपने भाई अर्जुनके पास आये। इसी समय अर्जुनने बड़ी फुर्तीसे कर्णको लक्ष्य करके एक कालके समान कराल बाण छोड़ा। किंतु उसे अश्वत्थामाने बीचहीमें काट डाला। इसपर अर्जुनने कुपित होकर अश्वत्थामाको बाणोंसे घायल कर दिया और चिल्लाकर कहा, जरा खड़े रहो, भागो मत। किंतु अर्जुनके बाणोंसे व्यथित होकर अश्वत्थामा रथोंसे भरी हुई मतवाले हाथियोंकी सेनामें घुस गया। अर्जुनने अपने बाणोंसे उस सेनाको व्यथित करते हुए कुछ दूर उसका पीछा भी किया। इसके बाद वे अनेकों हाथी, घोड़ों और मनुष्योंको विदीर्ण करते हुए उस सेनाका संहार करने लगे। भीम ने जैसे अपने अपमान की पीड़ा का दंश अनुभव किया और वह अत्यंत उग्र हो उठा। उसने कर्ण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी और कर्ण के वक्ष में भीषण आघात किया। उसके अश्वों का वध कर दिया और उसके सारथी का मस्तक काट दिया।

कर्ण को इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागते देख, दुर्मर्षण, दु:सह, दुर्मद, दुर्धर और जय ने भीम पर आक्रमण किया। कर्ण ने उन पाँचों को भीम से लड़ते देखा तो पलट आया। भीम ने कर्ण को लौटकर आते देखा तो वह उन पाँचों को छोड़कर कर्ण की ओर बढ़ गया। कौरवों ने कर्ण को घेर लिया। इस प्रकार वे उसकी रक्षा कर रहे थे और कर्ण उनके लिए अपने

बाणों से कवच का निर्माण कर रहा था। भीम को यह व्यवस्था अपने आड़े आती लगी। उसने बाणों से उन पाँचों और उनके सारथियों को यमलोक भेज दिया।

कर्ण का मन बुझ गया। दुर्योधन उसकी रक्षा के लिए बार-बार अपने भाइयों को भेज रहा था और कर्ण उनकी रक्षा नहीं कर पा रहा था। कर्ण जब दिग्विजय कर लौटा था तो धृतराष्ट्र ने उसे अपना पुत्र कहा था और उसके सामने ही भीम धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करता जा रहा है। कर्ण इतना असहाय तो कभी नहीं था। क्या दुर्योधन और धृतराष्ट्र मान लेंगे कि उसने उन धृतराष्ट्रपुत्रों की रक्षा में कोई शिथिलता नहीं दिखाई?

कर्ण के बाण चल रहे थे और लगता था कि उसका रथ निकट आता जा रहा है। भीम को मूर्च्छा सी आ रही थी।

सहसा दुर्योधन की दृष्टि अर्जुन की दिशा में उठी। अर्जुन के चक्ररक्षक-पांचाल कुमार, युधामन्यु और उत्तमौजा- सेना के बाहरी भाग से होकर अब सेना में प्रवेश कर अर्जुन के निकट जाने का प्रयत्न कर रहे थे। इसका अर्थ हुआ कि आचार्य ने उन्हें सेना में प्रवेश करने नहीं दिया। वे कौरव सेना के बाहर-बाहर से वन में यात्रा करते हुए, कौरवों की सेना के इस सिरे पर पहुँच गए हैं और यहाँ से सेना में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जहाँ कोई प्रभावी प्रतिरोध नहीं है। यदि ये भी अर्जुन के निकट पहुँच गए तो अर्जुन की स्थिति और भी सबल हो जाएगी।

सात्यकि ने भीम को कर्ण से त्रस्त देखा तो वह अर्जुन की ओर बढ़ने के स्थान पर भीम की दिशा में मुड़ गया।

दुर्योधन की दृष्टि उस पर पड़ी। वह नहीं चाहता था कि भीम को किसी प्रकार की सहायता मिले। दूसरी ओर से अर्जुन भी उसकी ओर बढ़ रहा था। यदि सात्यकि भी वहाँ जा पहुँचा तो वे तीनों मिलकर अपना व्यूह रच लेंगे। पर वह देख रहा था कि कौरवों के लिए सात्यकि को रोकना भी कठिन हो रहा था। सात्यकि इस समय धधकते दावानल के समान प्रचंड हो रहा था। वह किसी सर्वग्रासी यंत्र के समान कौरवों को निगलता जा रहा था। कोई उसके सम्मुख जाता था, वह लौटकर नहीं आता था। कौरवों के अनेक महारथी मारे गए तो राजा अलंबुश उसकी ओर बढ़ा। किंतु वह राक्षस अलंबुश तो था नहीं कि अपनी माया का प्रदर्शन करता। वह तो राजा अलंबुश था। सात्यकि के एक बाण ने उसका सिर काट दिया। दु:शासन आगे बढ़ा तो सात्यकि ने उसके घोड़ों को मार डाला। त्रिगर्तों ने सात्यकि को घेरा और पिटकर पीछे हट गए। शूरदेशीय सैनिक बढ़े और पराजित होकर लौट आए। कलिंग आगे बढ़े तो सात्यकि सुविधा से उन्हें भी लाँघ गया।

३) सात्यकिद्वारा भूरिश्रवा का वध- राजा धृतराष्ट्र कहने लगे- संजय। मेरा देदीप्यमान यश दिनोंदिन मन्द पड़ता जा रहा है, मेरे अनेकों योद्धा मारे गये हैं। इसे मैं अपने समयका फेर ही समझता हूँ। अब मुझे यही अनुमान होता है कि जयद्रथ जीवित नहीं है। अच्छा, वह युद्ध जैसे-जैसे हुआ उसका यथावत् वर्णन करो। जो उस विशाल वाहिनीको अकेला ही मथित करके भीतर घुस गया था, उस सात्यकिके युद्धका तुम यथावत् वर्णन करो।

संजयने कहा- राजन्। सात्यकि अपने श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए रथपर बैठकर बड़ी गर्जना करता हुआ जा रहा था। आपके सब महारथी मिलकर भी उसे रोकनेमें सफल न हुए। इस समय राजा अलम्बुष उसके सामने आया और उसे रोकनेका प्रयत्न करने लगा। महाराज। उन दोनों वीरोंका जैसा संग्राम हुआ, वैसा तो कोई भी नहीं हुआ। उस समय दोनों ओरके योद्धा उन्हींका युद्ध देखने लगे। अलम्बुषने सात्यकिपर बड़े जोरसे दस बाणोंद्वारा प्रहार किया, किंतु सात्यकिने उन्हें बीचहीमें काट डाला। फिर उसने सात्यकिपर बाण छोड़े, वे उसका कवच फाड़कर शरीरमें घुस गये। फिर बाणोंसे

अलम्बुषने उसके चारों घोड़ोंको भी घायल कर दिया। तब सात्यकिने बाणोंसे अलम्बुषके चारों घोड़ोंको मार डाला तथा एक भल्लसे उसके सारथीका सिर काटकर अलम्बुषके कुण्डलमण्डित मस्तकको भी धड़से अलग कर दिया।

इस प्रकार अलम्बुषका काम तमाम कर वह आपकी सेनाओंको चीरता हुआ अर्जुनकी ओर बढ़ने लगा। उसने जैसे ही उस अपार सैन्यसमुद्रमें प्रवेश किया कि अनेकों त्रिगर्त वीर उसपर टूट पड़े और उसे चारों ओरसे घेरकर बाणोंकी वर्षा करने लगे। किंतु सात्यकिने भारती सेनामें घुसकर अकेले ही पचास राजकुमारोंको परास्त कर दिया। उस समय वह महान् शूरवीर नृत्य-सा कर रहा था और अकेला होनेपर भी सौ रथियोंके समान कभी पूर्व, कभी पश्चिम, कभी उत्तर और कभी दक्षिण दिशामें दिखायी देने लगता था। उसका यह अद्भुत पराक्रम देखकर त्रिगर्त वीर तो घबराकर भाग गये। अब शूरसेन देशके योद्धा बाणोंकी वर्षा करके उसे आगे बढ़नेसे रोकने लगे। उनसे कुछ देर मुकाबला करके फिर वह कलिङ्गदेशीय वीरोंसे भिड़ गया। फिर उस दुस्तर कलिङ्गसेनाको पार करके वह अर्जुनके पास पहुँचा। जिस प्रकार जलमें तैरनेवाला मनुष्य स्थलपर पहुँचकर सुस्ताने लगता है, उसी प्रकार अर्जुनको देखकर पुरुषसिंह सात्यकिको बड़ी शान्ति मिली।

उसे आते देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा, अर्जुन। तुम्हारे पीछे सात्यकि आ रहा है। यह महापराक्रमी वीर तुम्हारा शिष्य और सखा है। इसने सब योद्धाओंको तिनकेके समान समझकर परास्त कर दिया है। यह तुम्हें प्राणोंसे भी प्यारा है; इस समय यह कौरव योद्धाओंका भयंकर संहार करके यहाँ पहुँचा है। इसने अपने बाणोंसे द्रोणाचार्य और भोजवंशी कृतवर्माको भी नीचा दिखा दिया है तथा तुम्हें देखनेके लिये यह अनेकों अच्छे-अच्छे योद्धाओंको मारकर यहाँ आया है। इसे धर्मराजने तुम्हारी सुध लेनेको भेजा है। इसीसे यह अपने बाहुबलसे शत्रुकी सेनाको विदीर्ण करके यहाँ पहुँचा है।

तभी अर्जुन ने देखा कि भूरिश्रवा का रथ पर्याप्त वेग से आगे बढ़ रहा था; किंतु उसका गंतव्य अर्जुन अथवा भीम नहीं थे। वह सात्यकि की दिशा में बढ़ रहा था। भूरिश्रवा ने सात्यकि पर आक्रमण किया। भूरिश्रवा ने कहा, आओ सात्यकि ? बहुत प्रतीक्षा की है मैंने तुम्हारी। तुम्हारे दादा ने मेरे पिता को युद्ध में अपमानित किया था। उनको धरती पर पटककर घसीटा था। उन्हें लात मारी थी। उन सबका प्रतिशोध लेना है मुझे। तुम्हारे पिता तो कभी युद्ध में सामने ही नहीं आए, तो अपने दादा का ऋण तुम्हीं चुकाओ। मैंने तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा की है। आज तुम मेरी पकड़ में आए हो, तुम्हारे मारे जाने पर कृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर उत्साहशून्य होकर युद्ध बंद कर देंगे। एक तुम्हारी मृत्यु से ये इतने सारे वीर क्षत्रिय इस युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने से बच जाएँगे।

सात्यकि ने वे सारी घटनाएँ सुनी थीं। उसके दादा ने एक स्वयंवर में भूरिश्रवा के पिता सोमदत्त को बहुत अपमानित किया था। सोमदत्त और भूरिश्रवा ने सात्यकि के दादा शिनि से अपने उस अपमान का प्रतिशोध लेने का बहुत प्रयत्न किया था, किंतु वे लोग सफल नहीं हो पाए। उन्होंने उसके पिता सत्यक से भी प्रतिशोध लेना चाहा, किंतु उनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। आज भूरिश्रवा उसी प्रतिशोध की बात कर रहा था।

अन्तमें सिंह जैसे हाथीको खदेड़ता है, उसी प्रकार कुरुश्रेष्ठ भूरिश्रवाने सात्यकिको पृथ्वीपर घसीटते हुए एकदम उठाकर पटक दिया। फिर छातीमें लात मारकर उसके बाल पकड़ लिये और म्यानमेंसे तलवार निकाली। अब वह सात्यकिके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटनेकी तैयारीहीमें था तथा सात्यकि भी उसके पंजेसे छूटनेके लिये कुम्हार जैसे डंडेसे चाक घूमाता है उसी प्रकार केशोंको पकड़नेवाले भूरिश्रवाके हाथोंके सहित अपने मस्तकको घूमा रहा था, अब वे दोनों ही अपने-अपने खड्ग लेकर आमने-सामने आ डटे। उन्होंने भ्रांत, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, सृत, संपात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखाए। दोनों ने ही एक-दूसरे की ढालें काट डालीं और खड्ग उनके हाथ से गिर गए। अब मल्लयुद्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं

था। आघात, निग्रह और प्रग्रह का प्रयोग होता रहा। मल्लयुद्ध प्रमाणित कर रहा था कि उन दोनों को ही अपने-अपने दाँव, प्रशिक्षण और शारीरिक बल का भरोसा था। भुजाश उनका प्रिय दाँव था। दोनों सिरों को टक्कर भी दे रहे थे पैरों को खींचकर, पैरों से पैर लपेटकर, तोमर प्रहार के समान ताल ठोंककर, अंकुश गड़ाने के समान नोचकर उनका मल्लयुद्ध चलता रहा। फिर पादबंध उदरबंध, उद्भ्रमण, गत, प्रत्यागत, आक्षेप, पतन, उत्थान और संप्लुत का प्रयोग किया गया। कृष्ण बोले, देखो पार्थ। वृष्णि और अंधक वंश का वह श्रेष्ठ वीर, भूरिश्रवा के वश में हो गया है। दुष्कर कर्म और कठिन परिश्रम से चूर-चूर होकर वह पृथ्वी पर गिर गया है। सात्यकि तुम्हारा शिष्य है। उसकी रक्षा करो अर्जुन।

इसी समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- महाबाहो। तुम्हारा शिष्य सात्यकि इस समय भूरिश्रवाके चंगुलमें फँस गया है। वह धनुर्विद्यामें तुमसे कम नहीं है। आज यदि भूरिश्रवा सत्यपराक्रमी सात्यकिसे बढ़ जाता है, तो उसका विक्रम अयथार्थ माना जायगा। श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महाबाहु अर्जुनने मन-ही-मन भूरिश्रवाके पराक्रमकी प्रशंसा की और फिर श्रीवसुदेवनन्दनसे कहा, माधव। इस समय मेरी दृष्टि जयद्रथपर लगी हुई है। तो भी इस यदुश्रेष्ठकी रक्षाके लिये मैं एक दुष्कर कर्म करता हूँ।

भूरिश्रवा को विश्वास हो गया कि अब सात्यकि पूर्णत: असहाय हो गया है। वह उसे भूमि पर घसीट भी चुका था और उसके वक्ष पर लात मारकर अपमानित भी कर चुका था। अब केवल उसका वध ही शेष था। पर वह वध भी तो अपमानजनक ही होना चाहिए। बाण मारकर अथवा खड्ग के आघात से उसके प्राण लेना भूरिश्रवा को प्रिय नहीं था।

कृष्ण कुछ आवेश में बोले, यह न्याय नहीं है पार्थ। नि:शस्त्र और युद्ध के अयोग्य सात्यकि को भूरिश्रवा खड्ग से मार रहा है। वृष्णि और अंधक वंश का यह सिंह, भूरिश्रवा के वश में पड़ गया है। अर्जुन। यह तुम्हारा शिष्य है और धनुर्विद्या में तुमसे कम नहीं है। वह तुम्हारा आश्रित है और तुम्हारे सम्मुख मर रहा है। तुम्हारा आश्रय लेकर भी वह इस दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है तो तुम्हारा पराक्रम मिथ्या है। ऐसा कहकर श्रीकृष्णकी बात मानते हुए उन्होंने गाण्डीव धनुषपर एक पैना बाण चढ़ाया और उससे भूरिश्रवाकी उस भुजाको काट डाला, जिसमें वह तलवार लिये हुए था।

अर्जुन ने गांडीव पर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र चढ़ाया और भूरिश्रवा के दाहिने कंधे का लक्ष्य कर उसे छोड़ दिया। अगले ही क्षण वह बाण भूरिश्रवा की खड्ग वाली भुजा लेकर इस प्रकार उड़ गया, जैसे कोई गरुड़ आकाश से उतरकर किसी भुजंग को अपनी चोंच में दबा, पुन: उड़ गया हो।

यह देखकर सभी प्राणियोंको बड़ा दु:ख हुआ। भूरिश्रवा सात्यकिको छोड़कर अलग खड़ा हो गया और अर्जुनकी निन्दा करने लगा। उसने कहा, अर्जुन। मैं दूसरेसे युद्ध करनेमें लगा हुआ था, तुम्हारी ओर तो मेरी दृष्टि ही नहीं थी। ऐसी स्थितिमें मेरा हाथ काटकर तुमने बड़ा ही क्रूर कर्म किया है। जब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर पूछेंगे, तो क्या तुम उनसे यही कहोगे कि मैंने संग्रामभूमिमें सात्यकिके साथ युद्ध करनेमें लगे हुए भूरिश्रवाको मार डाला है? तुम्हें यह अस्त्रनीति साक्षात् इन्द्रने सिखायी है। या महादेवजी अथवा द्रोणाचार्यने? तुम तो संसारमें अस्त्रधर्मके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हो। फिर भला, दूसरेके साथ युद्ध करते समय तुमने मुझपर क्यों प्रहार किया? मनस्वीलोग मतवाले, डरे हुए, रथहीन, प्राणोंकी भिक्षा माँगनेवाले या दु:खमें पड़े हुए पुरुषपर कभी वार नहीं करते। फिर तुमने यह नीच पुरुषोंके योग्य अत्यन्त दुष्कर पापकर्म क्यों किया? सत्पुरुष तो ऐसा कभी नहीं करते। सत्पुरुषोंके लिये तो उन्हीं कामोंका करना आसान बताया गया है, जिन्हें भले आदमी किया करते हैं; उनसे दुष्टोंद्वारा किये जानेवाले काम होने तो कठिन ही हैं। मनुष्य जहाँ-जहाँ जिन-जिन लोगोंकी संगतिमें बैठता है, उसपर उन्हींका रंग बहुत जल्द चढ़ जाता है। यही बात तुममें भी देखी जाती है। तुम राजवंशमें और विशेषत: कुरुकुलमें उत्पन्न हुए हो, साथ ही सदाचारी भी हो; फिर भी इस समय क्षात्रधर्मसे कैसे डिग गये? अवश्य

ही तुमने यह काम श्रीकृष्णकी सम्मतिसे किया होगा; सो तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं था।

अर्जुन निकट आ गया तो भूरिश्रवा ने उसकी ओर देखा, अर्जुन। यह तुम्हारी वीरता नहीं, क्रूरता है। मैं किसी अन्य योद्धा से युद्ध कर रहा था। तुम्हारी ओर तो मैंने देखा भी नहीं था। मेरी बाँह काट दी तुमने। धर्मराज को क्या मुँह दिखाओगे?

अर्जुन ने कहा, नि:शस्त्र सात्यकि का वध खड्ग से कर रहे थे आप। उस पर भी आपको अपनी धर्मपरायणता और वीरता पर अभिमान है।

भूरिश्रवाने बोला, ऐसी धूर्तविद्या और ऐसे कुतर्कों का उपदेश तुम्हें तुम्हारे किस गुरु ने दिया है- इंद्र ने ? रुद्र ने? द्रोण ने? या कृपाचार्य ने? यह नीच और पापकर्म है। कुरुकुल में जन्म लेकर भी तुम क्षत्रिय धर्म से कैसे गिर गए । तुम्हारा शील तो उत्तम था। तुमने अब तक श्रेष्ठ व्रतों का पालन किया है। सात्यकि की रक्षा के समय तुम्हें धर्म स्मरण ही नहीं रहा। तुम्हें सात्यकि प्यारा है, धर्म नहीं? यह निश्चय ही तुम्हारा नहीं कृष्ण का मत है। तुम्हारे लिए इतना नीचे गिरना संभव नहीं है। ऐसा तो कृष्ण का कोई मित्र ही कर सकता है। वह रुका और फिर जैसे कृष्ण को सुनाता हुआ बोला, वृष्णि और अंधक वंश के लोग संस्कारभ्रष्ट हिंसाप्रधान कर्म करनेवाले और स्वभाव से ही निन्दित हैं। उनको तुमने प्रमाण कैसे मान लिया?

अर्जुनने कहा, राजन्। सचमुच बूढ़े होनेके साथ मनुष्यकी बुद्धि भी बुढ़िया जाती है। इसीसे आपने ये सब बिना सिर-पैरकी बातें कहीं है। आप श्रीकृष्णको अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी उनकी और मेरी निन्दा कर रहे हैं। आप युद्धधर्मको जाननेवाले और समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं तथा मैं भी कोई अधर्म नहीं कर सकता- यह बात जानकर भी आप ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हैं ? क्षत्रियलोग अपने भाई, पिता, पुत्र, सम्बन्धी एवं बन्धु-बान्धवोंके सहित ही शत्रुओंके साथ संग्राम किया करते हैं। ऐसी स्थितिमें मैं अपने शिष्य और सम्बन्धी सात्यकिकी रक्षा क्यों न करता? यह तो मेरे दायें हाथके समान है और अपने प्राणोंकी भी परवा न करके हमारे लिये जूझ रहा है। संग्रामभूमिमें केवल अपनी ही रक्षा नहीं करनी चाहिये; बल्कि जिसके लिये जो लड़ रहा है, उसे उसकी रक्षाका ध्यान भी अवश्य रखना चाहिये। उसकी रक्षा होनेसे संग्राममें राजाकी ही रक्षा होती है। यदि मैं संग्रामभूमिमें सात्यकिको अपने सामने मरते देखता तो मुझे पाप लगता; इसीसे मैंने उसकी रक्षा की है। आप जो यह कहकर मेरी निन्दा करते हैं कि दूसरेके साथ युद्धमें लगे होनेपर मैंने आपको धोखा दिया है, सो यह आपका बुद्धिभ्रम ही है। जिस समय अपने और पराये पक्षके सब योद्धा लड़ रहे थे और आप सात्यकिसे भिड़ गये थे, उसी समय तो मैंने यह काम किया है। इस सैन्यसमुद्रमें एक योद्धाका एकहीके साथ संग्राम होना कैसे सम्भव है? आपको तो अपनी ही निन्दा करनी चाहिये; क्योंकि जब आप अपनी ही रक्षा नहीं कर सकते तो अपने आश्रितोंकी कैसे करेंगे?

अर्जुनके ऐसा कहनेपर भूरिश्रवाने सात्यकिको छोड़कर मरणपर्यन्त उपवास करनेका नियम ले लिया। उसने बायें हाथसे बाण बिछाकर ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे प्राणोंको वायुमें, नेत्रोंको सूर्यमें और मनको स्वच्छ जलमें होम दिया तथा महोपनिषद्संज्ञक ब्रह्मका ध्यान करते हुए योगयुक्त होकर उन्होंने मुनिव्रत धारण कर लिया। इस समय सेनाके सब लोग श्रीकृष्ण और अर्जुनकी निन्दा करने लगे, किंतु उन्होंने बदलेमें कोई कड़वी बात नहीं कही। तथापि अर्जुनको उनकी ओर भूरिश्रवाकी बातें सहन न हुईं। उन्होंने किसी प्रकारका क्रोध प्रकट न करते हुए कहा, मेरे इस व्रतको यहाँ सभी राजालोग जानते हैं कि यदि कोई हमारे पक्षका मनुष्य मेरे बाणकी पहुँचके अंदर होगा, तो कोई पुरुष उसे मार नहीं सकेगा। भूरिश्रवाजी। मेरे इस नियमपर विचार करके आपको मेरी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्मका मर्म बिना समझे किसी दूसरेकी निन्दा करना अच्छी बात नहीं है। मैंने आपकी सशस्त्र भुजाको काटकर कोई अधर्म नहीं किया है। बालक अभिमन्युके पास तो कोई भी हथियार नहीं था और उसके रथ और कवच भी टूट चुके थे; फिर भी आपलोगोंने उसे मिलकर

मार डाला। इस कर्मको कौन धर्मात्मा पुरुष अच्छा कहेगा? अर्जुनकी यह बात सुनकर भूरिश्रवाने अपना सिर पृथ्वीसे लगाया और मुख नीचा किये चुपचाप बैठा रहा।

कल ही जिन महारथियों ने मिलकर अकेले, नि:शस्त्र अभिमन्यु का वध किया है, वे न तो वृष्णिवंशी थे, न अंधकवंशी। न ही वे श्रीकृष्ण के मित्र थे; न ही उनके परामर्श पर चल रहे थे। न ही आप उनसे यह सब कहने गए थे भूरिश्रवा। अर्जुन बोला, आज प्रात: से आपके किस-किस योद्धा ने ध्यान रखा है कि अर्जुन, भीम या सात्यकि किसी अन्य योद्धा से युद्ध में संलग्न हैं, इसलिए किसी तीसरे योद्धा को उनके बीच हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए? जब मैं संशप्तकों से अकेला भिड़ रहा था, तब तो आपने दुर्योधन को नहीं समझाया कि वह अन्याय था। वह रुका, वृद्ध होने पर मनुष्य की बुद्धि भी बूढ़ा जाती है। क्षत्रिय अपने-अपने भाई, पिता, पुत्र, संबंधी बंधु-बांधवों, समवयस्क साथियों और मित्रों से घिरकर शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करते हैं। वे सब लोग उस प्रधान योद्धा के बाहुबल के आश्रित होते हैं। सात्यकि मेरा मित्र, शिष्य और संबंधी है। वह मेरे लिए ही अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है। राजन्। रणदुर्मद सात्यकि युद्धस्थल में मेरी दाहिनी भुजा के समान है। आप चाहते हैं कि मैं उसे मर जाने देता और आपकी वीरता की प्रशंसा करता? अर्जुन का स्वर कुछ और प्रखर हो गया, रणभूमि में वीर अपनी ही रक्षा नहीं करता, अपने रक्षणीयों की भी रक्षा करता है। इस समग्र युद्ध में सात्यकि के साथ आपके युद्ध को दो योद्धाओं का संग्राम कैसे माना जा सकता है? प्रात: से सात्यकि से केवल एक आप ही लड़े थे क्या? असंख्य योद्धाओं को धूल चटाकर आए, थके-हारे, परिश्रम से चूर, सात्यकि को पराजित कर आप वीर हो गए?

सात्यकि और भूरिश्रवा में युद्ध होता है। कुन्ती पुत्र अर्जुन ने पीछे से वक्ष में बाण मार दिया। भूरिश्रवा बोला, हे कुन्तीपुत्र तुमसे यह आशा नहीं थी मेरा सात्यकि से युद्ध चल रहा था। तुमने पीछे से आकर मुझे बाण मार दिया। क्या आचार्य द्रोण ने, या आचार्य कृप ने या तुम्हारे सारथी वसुदेव। अर्जुन बोला, वीरता और कायरता के विषय में आपको बोलना शोभा नहीं देता महावीर। क्या यह कायरता नहीं कि आप एक मूर्च्छित यौद्धा का वध कर रहे थे? क्या मेरे पुत्र अभिमन्यु के शव के चारों ओर नाचना उन वीरों को शोभा देता था? क्या वो वीरता थी।

तब अर्जुनने कहा- मेरा जो प्रेम धर्मराज, महाबली भीम और नकुल-सहदेवके प्रति है, वही आपमें भी है। मैं और महात्मा कृष्ण आपको आज्ञा देते हैं कि आप उशीनरके पुत्र शिबिके समान पुण्यलोकोंको प्राप्त हों।

भूरिश्रवा ने अर्जुन की ओर देखा, तुमने मेरी भुजा काटी है, मेरे प्राण नहीं लिए। तुमने मुझे वीरगति का यश भी नहीं दिया। मेरा जीवन न अब जीने योग्य है, न मेरी मृत्यु गौरवमयी हो सकती है। मैं ऐसा जीवन जीना नहीं चाहता। अपनी भुजा से होनेवाले रक्तस्राव से मरने से पूर्ण ही मैं आमरण अनशन का संकल्प लेकर यहीं युद्धक्षेत्र में बैठ रहा हूँ, ताकि संसार मेरी मृत्यु देखे और तुम्हें धिक्कारे।

भूरिश्रवा आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गया। ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा से प्राणायाम के द्वारा, प्राणों को उसने प्राणों में ही होम दिया। वह नेत्रों को सूर्य में और प्रसन्न मन को जल में समाहित करके महोपतिषत्प्रतिपादित परब्रह्म का चिंतन करते हुए योगयुक्त मुनि हो गया।

तभी अर्जुन ने उच्च स्वर में कहा, मेरा जो आत्मीय मेरे बाणों की प्रहारक्षमता के भीतर होगा, मेरे शत्रुओं के हाथों मारा नहीं जा सकता। मेरे किसी शरणागत का मेरे निकट रहते वध नहीं हो सकता। और फिर जिस प्रकार तुम लोगों ने अभिमन्यु का वध किया है, उसके पश्चात् दूसरों को धर्म का उपदेश देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। जो लोग स्वयं मर्यादा और धर्म की रक्षा नहीं करते हैं, उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे दूसरों को धर्मोपदेश दें।

अर्जुन का हृदय कुछ पिघला और बोला, तात भूरिश्रवा। मैं धर्मराज युधिष्ठिर के समान ही आपका भी सम्मान करता हूँ। युद्ध में मैं आपको छोड़ नहीं सकता था; किंतु अब हमारी कोई शत्रुता नहीं है। मैं और कृष्ण आपको आदेश देते हैं कि आप शिवि के समान पुण्यात्मा पुरुषों के लोक में जाएँ।

इसी समय सात्यकि उठा और उसने निर्दोष भूरिश्रवाका सिर काटनेके लिये तलवार उठायी। उसे श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, युधामन्यु, उत्तमौजा, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, वृषसेन और जयद्रथ- सभीने रोका। किंतु सबके चिल्लाते रहनेपर भी उसने अनशन-व्रतधारी भूरिश्रवाका मस्तक काट डाला। फिर उसने अपनी निन्दा करनेवाले कौरवोंको ललकारकर कहा, अरे धर्मिष्ठताका ढोंग रचनेवाले पापियों। तुम जो धर्मकी दुहाई देकर मुझसे कह रहे हो कि मुझे भूरिश्रवाको नहीं मारना चाहिये था, सो जिस समय तुमलोगोंने सुभद्राके पुत्र शस्त्रहीन बालक अभिमन्युकी हत्या की थी उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था। मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि यदि कोई पुरुष संग्राममें मेरा तिरस्कार करके मुझे जमीनपर घसीटकर जीवित अवस्थामें ही लात मारेगा वह फिर मुनिव्रत धारण करके ही क्यों न बैठ जाय, उसे मैं अवश्य मार डालूँगा।

उस काल दोनों में परस्पर युद्ध वह ऐसा हुआ, है योग्य कहना बस यही अद्‌भुत वही वैसा हुआ।
सब वीर लड़ना छोड़ क्षण भर देखने उसको लगे, कह धन्य-धन्य पुकार कर सब रह गये गुण पर ठगे॥
रथ-अश्व दोनों के शरों से साथ दोनों के मरे, व्रण-पूर्ण दोनों हो गये तो भी न वे मन में डरे।
करने लगे फिर क्रुद्ध दोनों बाहु युद्ध विशुद्ध यों- युग गिरि सपक्ष समक्ष हों लड़ते विपक्ष-विरुद्ध ज्यों॥
लड़ते हुए सात्यकि हुआ जब श्रमित शोणित से सना, तब खड्ग से भूरिश्रवा ने शीश चाहा काटना।
पर वार ज्यों ही कर उठाकर वेग से उसने किया, त्यों ही धनञ्जय के विशिख ने काट उसका कर दिया॥
करवाल-युत जब केतु-सम भूरिश्रवा का कर गिरा, सब शत्रु तब कहने लगे इस कार्य को अनुचित निरा।
वृषसेन, कर्ण, कृपादि ने धिक्कार अर्जुन को दिया, धिक् धिक्‌धनंजय। पापमय दुष्कर्म यह तुमने किया॥
बोले वचन तब पार्थ उनसे लीन होकर रोष में- क्या निज जनों का त्राण करना सम्मिलित है दोष में?
मेरा नियम यह है जहाँ तक बाण मेरा जायगा, अपने जनों को आपदा से वह अवश्य बचायगा॥
नास्तिक मनुज भी विपद में करते विनय भगवान से, देते दुहाई धर्म की त्यों आज तुम भी ज्ञान से।
लज्जा नहीं आती तुम्हें उपदेश देते धर्म का? आती हँसी तुम पापियों से नाम सुन सत्कर्म का॥
देखे बिना निज कर्म पहले बोध देना व्यर्थ है, होता नहीं सद्धर्म कुछ उपदेश के ही अर्थ है।
तुम सात ने जब वध किया था एक बालक का यहाँ, रे पामरो। तब यह तुम्हारा धर्म सारा था कहाँ?
पापी अनुज भी आज मुँह से राम नाम निकालते। देखो भयंकर भेड़िये भी आज आँसू डालते।
आजन्म नीच अधर्मियों के जो रहे अधिराज हैं- देते अहो। सद्धर्म की वे भी दुहाई आज हैं॥
सुनकर वचन यों पार्थ के चुप रह गये वैरी सभी, दोषी किसी के सामने क्या सिर उठा सकते कभी?
भूरिश्रवा का वध किया ले खड्ग सात्यकि ने वही, जिसकी सिरोही सिर उसी का, उक्ति यह कर दी सही॥
उत्साह-संयुत उस समय ही भीम आ पहुँचे वहाँ, मिलकर चले फिर शीघ्र सब था सिन्धुराज छिपा जहाँ।
पहुँचे तथा वे जब वहाँ निज मार्ग निष्कण्टक बना, कृप, कर्ण, शल्य, द्रोणि से करना पड़ा तब सामना॥
खल शकुनि दुःशासन-सहित जो जानता छल-कर्म को, पहुँचा वहाँ कुरुराज भी पहने अलौकिक वर्म को।
पीछे जयद्रथ को किये दृढ़ व्यूह-सा आगे बना, करने लगे संग्राम वे करके विजय की कामना॥

चारों ओर कोलाहल मच गया। कृष्ण और अर्जुन भी सात्यकि को रोक रहे थे। पर वह बढ़ता ही गया। और सब के देखते-देखते उसने भूरिश्रवा का मस्तक काट डाला।

सात्यकि हाथ में खड्ग लिये उठा और बोला, धर्म का आवरण ओढ़कर खड़े हुए, अधर्मपरायण पापात्माओ। जब तुमने अभिमन्यु को युद्ध में शस्त्रहीन कर मारा था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? भूरिश्रवा ने एक वीर के समान युद्ध में मेरा वध कर दिया होता, तो मुझे कोई दुख न होता। उसने मुझे पटककर भूमि पर घसीटा। मुझे अपमानित करने के लिए रोषपूर्वक पादप्रहार किया। किसलिए? इसलिए कि मेरे दादा ने उसके पिता का अपमान किया था? या इसलिए कि मैं उसकी पशुता का असहाय आखेट था? जब वह मेरा अपमान कर रहा था, वीरों के लिए वर्जित नीच कर्म कर रहा था, उस समय तो किसी ने उसे नहीं रोका। अब वह धर्मात्मा हो गया, क्योंकि वह मुनियों के समान मौन व्रत लेकर बैठ गया है। वह मुझसे मेरे दादा का प्रतिशोध ले रहा था तो मैं उससे अपना प्रतिशोध भी न लेता? मेरी भुजाएँ वर्तमान हैं और मैं अपने ऊपर किए गए, आघात का बदला लेने की निरंतर चेष्टा करता आया हूँ। तो भी तुम लोग मुझे मरा हुआ मान लेते हो तो दोष तुम्हारी बुद्धि में है। मैंने भूरिश्रवा का वध कर, मात्र उसके घात का प्रतिघात किया है। हाँ। मुझे संकट में देखकर धनंजय ने उसकी भुजा काट डाली, इससे मैं भूरिश्रवा के वध के यश से वंचित हो गया हूँ।

राजन्। सात्यकिके ऐसा कहनेपर फिर कौरवोंमेंसे किसीने कुछ नही कहा। परंतु मुनियोंके समान वनवासी यशस्वी भूरिश्रवाका इस प्रकार वध करना किसीको अच्छा नहीं लगा। भूरिश्रवाने अपने जीवनमें सहस्त्रोंका दान किया था और उसका कई बार मन्त्रपूत जलसे अभिषेक हुआ था। अत: वह देह त्यागकर अपने परम पुण्यके तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाशको आलोकित करता ऊर्ध्वलोकोंमें चला गया।

संजयने कहा- महाराज। भूरिश्रवाके परलोकको प्रस्थान करनेपर महाबाहु अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, माधव। जब जिधर राजा जयद्रथ है, उधर ही घोड़ोंको बढ़ाइये। आज जयद्रथके आगे तीन गतियाँ हैं- यदि वह युद्धमें लड़ते-लड़ते मारा गया तो तत्काल स्वर्ग प्राप्त करेगा; यदि पीठ दिखाकर भागते समय मेरे बाणका शिकार हो गया तो नरकमें पड़ेगा और यदि भाग गया, तो अपयशका भागी होगा। अब सूर्य बड़ी तेजीसे अस्ताचलकी ओर बढ़ रहा है। इसलिये आपको मेरी प्रतिज्ञा सफल करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आप घोड़ोंको ऐसी तेजीसे ले चलिये जिसमें सूर्य अस्त न हो मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाय और मैं जयद्रथको मार सकूँ।

तब अश्वविद्यामें कुशल कृष्णने घोड़ोंको जयद्रथके रथकी ओर हाँका। अर्जुनको जयद्रथका वध करनेके लिये बढ़ते देख राजा दुर्योधनने कर्णसे कहा, वीरवर। अब थोड़ा ही दिन शेष रह गया है। आज अपने बाणोंसे तुम शत्रुपर प्रहार करो। यदि किसी प्रकार आजका दिन बीत गया तो फिर निश्चय हमारी ही विजय होगी; क्योंकि सूर्यास्ततक जयद्रथकी रक्षा हो जानेपर अर्जुनकी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी और वह स्वयं ही अग्निमें प्रवेश कर जायगा। फिर अर्जुनके न रहनेपर तो इसके भाई और अनुयायीलोग एक मुहूर्त्त भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार हम निष्कण्टक होकर पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। अत: तुम अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य तथा मुझे और दूसरे योद्धाओंको भी साथ लेकर अर्जुनके साथ पूरी शक्तिसे संग्राम करो।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर कर्णने कहा, प्रचण्ड प्रहार करनेवाले, महान् धनुर्धर, वीरवर भीमने अपने बाणोंसे मेरे शरीरको बहुत ही जर्जरित कर दिया है। तो भी युद्धमें डटा ही रहना चाहिये इस नियमके कारण मैं यहाँ खड़ा हुआ हूँ। भीमके विशाल बाणोंसे व्यथित होनेके कारण मेरे अङ्गोंमें हिलने-डुलनेकी भी शक्ति नहीं है। तथापि अर्जुन जयद्रथको न मार सके- इस उद्देश्यसे मैं यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि मेरा जीवन तो आपहीके लिये है।

दुर्योधन पुन: बोला, सुनो। बहुत नहीं लड़ना है राधेय। दिन समाप्त होने तक जयद्रथ किसी प्रकार सुरक्षित रहे तो हमारी विजय ही विजय है। बहुत थोड़ा समय रह गया है। सूर्यास्त तक अर्जुन को किसी भी प्रकार रोक लो।

कर्ण के चेहरे पर एक प्रकार का दैन्य प्रकट हुआ, भीम ने आज बहुत कष्ट दिया है मुझे। फिर भी अपने धर्म का विचार कर युद्धभूमि में खड़ा हूँ मैं। पर तुम चिंता मत करो मित्र। तब भी मैं यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि मेरा यह जीवन तो तुम्हारे ही लिए है। इसकी और उपयोगिता ही क्या है। मेरा विश्वास करो, जब तक मेरे बाण चलते रहेंगे, तब तक अर्जुन, जयद्रथ को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकेगा। दुर्योधन ने कहा मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ और आगे बढ़ गया।

भीम और सात्यकि से सुरक्षित अर्जुन सूर्य के ही समान तप रहा था। उसने कौरव सेना का संहार आरंभ किया।

कृष्ण ने मुस्कराकर अर्जुन की ओर देखा, ये लोग तुमसे युद्ध नहीं कर रहे हैं। वे तो बस सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं। चाहते हैं कि जयद्रथ उनके रथों की दीवार के पीछे निष्क्रिय बैठा रहे और वे तुम पर बाण फेंकते रहें ताकि तुम आगे न बढ़ पाओ। बस शेष कार्य सूर्यदेव को सौंप दिया है इन्होंने।

कृष्ण बोले, इनको इसी प्रकार बाण फेंकते रहने दो। उन बाणों को काटने के लिए भीम और सात्यकि पूर्णत: समर्थ हैं। तुम इन छह महारथियों को लाँघ जाओ। तुम्हारा लक्ष्य जयद्रथ है। तुम्हारा शस्त्र खड्ग नहीं है कि सम्मुख खड़े इन महारथियों को लाँघे बिना तुम जयद्रथ को पा नहीं सकते।

अर्जुन के बाणों की झड़ी लग गई। कर्ण के शरीर से रक्त बहने लगा। उसके पिछले घाव भी छिल गए थे और अर्जुन ने कितने ही नए घाव भी दे दिए थे। अर्जुन ने कर्ण का धनुष काट दिया और अद्भुत स्फूर्ति का परिचय देते हुए, उसे बाण मारे।

जिस समय कर्ण और दुर्योधन इस प्रकार बातें कर रहे थे, अर्जुन अपने पैने बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। अनेकों हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, धनुष, चँवर और योद्धाओंके सिर उनके बाणोंसे कट-कटकर सब ओर गिरने लगे। आग जिस प्रकार घास-फूसको जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुनने बात-की-बातमें आपकी सेनाका संहार कर डाला। इस प्रकार जब अधिकांश योद्धा मारे गये, तो वे बढ़ते-बढ़ते जयद्रथके पास पहुँच गये। अर्जुनका यह पराक्रम आपके पक्षके वीर न सह सके। अत: जयद्रथकी रक्षाके लिये दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वयं जयद्रथने भी उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। ये सब महारथी जयद्रथको अपने पीछे रखकर श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेकी इच्छासे निर्भय होकर उनके चारों ओर घूमने लगे। सूर्य लाल हो चुका था; वे सब उसके छिपनेकी बाट जोह रहे थे और अर्जुनपर सैकड़ों तीखे तीरोंकी वर्षा करते जाते थे। किंतु रणोन्मत्त अर्जुन उनके बाणोंके दो-दो, तीन-तीन और आठ-आठ टुकड़े करके उन सभी रथियोंको बींधे डालते थे।

अर्जुनको जयद्रथकी ओर बढ़ते देखकर कौरव योद्धा उसके जीवनसे निराश होकर संग्रामभूमिसे लौटने लगे। इस समय आपके पक्षका जो वीर अर्जुनके सामने आता था, उसीके शरीरपर उनका प्राणान्तक बाण गिरता था। महारथी अर्जुनने आपकी सारी सेनाको कबन्धोंसे व्याप्त कर दिया। इसप्रकार आपकी चतुरंगिणी सेनाको व्याकुल करके वे जयद्रथके सामने आये। अर्जुन की मार से कर्ण को बचाने के लिए अश्वत्थामा बीच में आ कूदा। वह नहीं चाहता था कि भीम जैसे योद्धा पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कर्ण पर अब कोई आँच आए। न ही वह यह चाहता था कि उनके हाथ में आया हुआ भीम इस सुविधा से छूट जाए। उन्होंने अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य, शल्य, कर्ण, बत्तीस और जयद्रथको, बाणोंसे बींधकर बड़ा सिंहनाद किया। जयद्रथसे अर्जुनके बाण न सहे गये। वह अंकुश खाये हुए हाथीके समान अत्यन्त क्रोधमें भर गया। अत: उसने बाणोंसे श्रीकृष्णको और अर्जुनको बींधकर उनके घोड़ोंको घायल कर डाला तथा एक बाण उनकी ध्वजापर

छोड़ा। किंतु अर्जुनने उसके छोड़े हुए बाणोंको व्यर्थ करके एक ही साथ दो बाण मारकर उसके सारथीके सिर और ध्वजाको काट डाला। इसी समय सूर्यको बड़ी तेजीसे अस्ताचलके समीप जाते देख श्रीकृष्णने कहा, पार्थ। इस समय जयद्रथको छ: महारथियोंने अपने बीचमें कर रक्खा है। अत: संग्राममें इन छहोंको परास्त किये बिना जयद्रथको मारना सम्भव नही हैं। इसलिये इस समय मैं सूर्यको छिपानेके लिये एक ऐसा उपाय करूँगा, जिससे जयद्रथको साफ-साफ यही मालूम होगा कि सूर्य अस्त हो गया। इससे वह हर्षित होकर तुम्हें मारनेके लिये बाहर निकल आवेगा और अपनी रक्षाके लिये किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करेगा। उस अवसरपर तुम उसपर प्रहार करना, सूर्य अस्त हो गया है- यह समझकर उपेक्षा मत करना। इसपर अर्जुनने कहा, आप जैसा कहते हैं, वही किया जायगा।

४) जयद्रथ वध- अर्जुन ने कहा, श्रीकृष्ण। रथ को जयद्रथ की ओर ले चलिए। अब उसे अधिक देर तक जीवित नहीं रहना चाहिए। सूर्यदेव भी तीव्रगति से अस्ताचल की ओर ढल रहे हैं।

जयद्रथ का रथ उनसे कुछ ही पीछे था। वह कुछ इस प्रकार खड़ा था कि अर्जुन के बाणों से बचने के लिए उसे उन महारथियों की आड़ उपलब्ध हो, किंतु वह स्वयं अर्जुन पर प्रहार करना चाहे, तो उसकी सुविधा भी उसे हो।

जयद्रथ का रक्त संचार बहुत बढ़ गया था। वह कल रात से ही प्रत्येक क्षण मृत्यु की पीड़ा झेल रहा था। अभी तक वह घायल भी नहीं हुआ था। वस्तुत: आज अभी तक तो उचित ढंग से उसने युद्ध भी नहीं किया था। कोई शत्रु उसके निकट भी नहीं आया था। किंतु वह प्रतिक्षण मर ही तो रहा था। मृत्यु के भय की पीड़ा झेल रहा था। वह स्वयं को महाकाल के जबड़ों में फँसा हुआ अनुभव कर रहा था। अभी दाँत दबेंगे और उसकी सारी अस्थियाँ चरमरा जाएँगी। अपने शव को मानों उसने समरभूमि में धराशायी हुआ देखा... नहीं। वह अपनी रक्षा का दायित्व इस प्रकार दूसरों पर छोड़कर निश्चिंत नहीं रह सकता था। वे लोग अपना युद्ध लड़ रहे थे। उसकी रक्षा हो रही थी तो इसलिए कि अभी अर्जुन उसके इतना निकट नहीं आ पाया था या फिर वह ही अपनी बिल से निकलकर उसके सम्मुख खड़ा नहीं हुआ था। क्या वह इसी प्रकार भयभीत मूषक के समान अपनी बिल में छिपा बैठा रहेगा? क्यों नहीं वह अर्जुन के सम्मुख जाकर युद्ध करता? कल उसने अकेले ही पांडव पक्ष के सारे योद्धाओं को चक्रव्यूह के द्वार पर ही रोक लिया था। आज वह इस अकेले अर्जुन से नहीं लड़ सकता?

वह इतना घबरा गया था कि अपने स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहना उसके लिए कठिन हो गया। कल दुर्योधन ने उसे सिंधुदेश लौटने नहीं दिया था। कहा था कि कौरव योद्धा उसकी रक्षा करेंगे। यही रक्षा हो रही है उसकी। भीम और सात्यकि को साथ लेकर अर्जुन उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ है। निरंतर युद्ध हो रहा है। अर्जुन का रथ एक-एक अंगुल कर आगे बढ़ रहा है और गिनती के ये कौरव योद्धा इधर-उधर बाण फेंकने का नाटक कर रहे हैं। ये रक्षा करेंगे उसकी?

अर्जुन को तो जैसे अपने और जयद्रथ के मध्य खड़े छह महारथी दिखाई ही नहीं पड़ रहे थे। उसे केवल जयद्रथ दिखाई दे रहा था। जयद्रथ को अपने सम्मुख देखकर अर्जुन के नेत्र क्रोध से जल उठे। यह वह व्यक्ति है, जो दुर्योधन के साथ मिलकर सदा उन्हें पीड़ित और अपमानित करता रहा है। यह है, जिसने वन में से द्रौपदी का अपहरण कर लिया था। जो दुस्साहस दुर्योधन भी नहीं कर सका था, वह इसने किया। वह तो पांडव ही समय से पहुँच गए थे, अन्यथा इसने तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी और यही वह व्यक्ति था, जिसने घिर गए, आहत हो गए और क्रमश: मृत्यु के मुख में जाते हुए अभिमन्यु की रक्षा के लिए किसी पांडव योद्धा को व्यूह में प्रवेश करने नहीं दिया। यह है वह, जिसे डींग मारी कि उसने सिवाय अर्जुन के पांडवों के सारे योद्धाओं को अकेले ही पराजित कर दिया है। यह वह व्यक्ति है, जो स्वयं को अभिमन्यु का हत्यारा कहकर गौरवान्वित अनुभव करता है। इसने अभिमन्यु के वध का श्रेय माँगा है, तो फिर अर्जुन के हाथों मृत्यु भी तो इसे ही मिलेगी।

धृतराष्ट्र बोला, हे संजय एक ही दिन में मेरे २१ पुत्रों के शव देख कर भी सूर्यदेव का जी नहीं भरा। क्या वे आज मेरे शेष पुत्रों का शव देखे बिना अस्त ही नही होंगे। संजय बोला, अब सूर्यास्त होने ही वाला है महाराज। धृतराष्ट्र बोला, पता नही गान्धारी को यह सूचना कब और किससे मिलेगी कि पुत्रों की गिनती दिन पर दिन कम होती जा रही है? संजय मुझे यह बताओ भीम और दुर्योधन के बीच दूरी कितनी है? संजय बोला, कुन्तीपुत्र भीम को अंगराज कर्ण ने उलझा रखा है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, और दुर्योधन... संजय बोला, वो और कुमार दु:शासन साथ-साथ हैं। दुर्योधन बोला, ये निर्णायक घड़ियां है दु:शासन। यदि आज सूर्यास्त हो गया और तब तक अर्जुन सिन्धु नरेश का वध नहीं कर सका तब तो उसे अग्नि समाधि लेनी ही पडेगी और यदि इस रणभूमि में अर्जुन नहीं होगा तब इस युद्ध में हमारी विजय निश्चित है। दु:शासन जाओ और सिन्धु नरेश की रक्षा करो। दु:शासन बोला, जो आज्ञा। दुर्योधन बोला, हे सूर्यदेव आज शीघ्र ही अस्त हो जाओ।

तब योगीश्वर श्रीकृष्णने योगयुक्त होकर सूर्यको ढकनेके लिये अन्धकार उत्पन्न कर दिया। अन्धकार फैलते ही आपके योद्धा यह समझकर कि सूर्य अस्त हो गया है अर्जुनके नाशकी सम्भावनासे बड़ी खुशीमें भर गये। खुशीके मारे उन्हें सूर्यकी ओर देखनेका भी ध्यान नहीं रहा। श्रीकृष्णकी दृष्टि एकबार ऊपर उठी। अकस्मात् अन्धकार फैलने लगा। वे अर्जुनका वेग रोकनेमें व्यस्त थे और जानते थे कि पलक झपकनेका भी प्रमाद हुआ तो गाण्डीवसे छूटा बाण प्राण ही पी जायगा। अब अचानक अन्धकार फैला तो उन्होंने मान लिया कि सूर्यास्त हो गया। दुर्योधनने हर्षसे उछलकर शंखका विजयघोष प्रारम्भ कर दिया।

कृष्ण ने अंधकार को भी देखा और जयद्रथ को भी और मुस्कराकर बोले, अर्जुन। शीघ्रता करो।

कौरवों ने युद्ध समाप्ति की घोषणा नहीं की थी; किंतु इस अंधकार को नष्ट करने की तो वे क्या ही सोचते। वे उसे और सघन करना चाहते थे। यह तो उनके हित में ही था कि सूर्यास्त से पहले ही अंधकार हो जाए और पांडव युद्ध से निरस्त हो जाएँ। अंधकार अकस्मात् ही हट गया था और अर्जुन, जयद्रथ के अत्यधिक निकट आ खड़ा हुआ था। अब शायद जयद्रथ के जीवन की कोई आशा शेष नहीं थी। दुर्योधन तक जयद्रथ के जीवन से निराश हो चुका था। उसे लगा कि कर्ण जैसा योद्धा भी युद्ध से निवृत्त होकर बैठ गया था। इस समय जो-जो योद्धा अर्जुन की ओर बढ़ता था, उसके शरीर पर प्राणांतकारी बाणों की वर्षा होने लगती थी।

अर्जुन का रथ पुन: जयद्रथ की ओर बढ़ा। दुर्योधन ने जैसे उस ओर से अपनी आँखें फेर लीं। क्या होने जा रहा है। उसने पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना के उत्तर में अपने लिए ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित की थी। उसने यादवों को इस युद्ध से निरस्त कर दिया था। कृष्ण के शस्त्र छीन लिए थे। उसकी नारायणी सेना हड़प ली थी। और फिर यहाँ तो पांडव सेना थी ही नहीं। उनके मात्र तीन योद्धा थे, कौरव सेना के महासागर में घिरे हुए, फिर भी दुर्योधन जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में असमर्थ होता जा रहा था।

कृष्ण बार-बार सूर्य की ओर देख रहे थे। उनकी दृष्टि रणभूमि में उड़ती सूर्य के प्रकाश को मंद करती उस धूल पर भी थी और घबराया हुआ जयद्रथ भी उनका ध्यान आकृष्ट कर रहा था। कृष्ण स्पष्टत: देख रहे थे कि जयद्रथ की रक्षा को आए ये छह महारथी अर्जुन की गति रुद्ध तो नहीं कर पा रहे थे और न ही वे अर्जुन को जयद्रथ के वध से रोक पाएँगे, किंतु विलंब तो वे करा ही सकते हैं। उन छह का वध कर अर्जुन सूर्यास्त से पहले जयद्रथ तक नहीं पहुँच सकेगा। यह विलंब घातक भी हो सकता है।

सहसा कृष्ण ने अर्जुन का ध्यान आकृष्ट किया, पार्थ। जयद्रथ इस समय भयभीत है। उसके और तुम्हारे मध्य छह महारथी हैं। पाँच ही समझो। दुर्योधन तो अपनी सुविधा के अनुसार अपना स्थान परिवर्तित कर लेता है। तुम इन सबको जीतकर जयद्रथ तक पहुँच नहीं सकते- ऐसा मैं नहीं कहता; किंतु हमारे पास समय कम है। समय बीत गया तो हमारी

जय भी पराजय में बदल जाएगी। इसलिए आवश्यक है कि हम कुछ ऐसा करें कि वह धैर्य छोड़कर इतना व्याकुल हो जाए कि अपनी सावधानी भूलकर बाहर निकल आए।

मैं सूर्य को ढँकने की कोई युक्ति करूँगा। उसे लगेगा कि सूर्यास्त हो गया है तो वह असावधान होकर सामने आ जाएगा। तुम्हारी मृत्यु के लिए उतावला होकर वह स्वयं को गुप्त नहीं रख पाएगा। कृष्ण मुस्कराए ऐसा क्षण आने पर तुम यह मत सोचने लग जाना कि सूर्यास्त हो गया है और जयद्रथ के वध का काल सीमा पार कर गया है। उसका तत्काल वध करना। तुम्हें अधिक समय नहीं मिलेगा। तुम्हारी निमिष मात्र की भी शिथिलता हम सबके लिए घातक होगी। उनका स्वर असाधारण रूप से गंभीर था, एक निमिष की सक्रियता और निष्क्रियता से राष्ट्रों का इतिहास बदल जाता है। यह क्षण भी हमारे लिए इतिहास का निर्माण करनेवाला है।

इस ओर थे ये तीन ही, उस ओर वे छै सात थे; तिस परा असंख्यक शूर उनके कर रहे आघात थे।
पर कर रहे वर वीर ये वीरत्व व्यक्त विशेष थे, मानो प्रबल तीनों बली विधि, विष्णु और महेश थे।।
तब कर्ण ने दस दस शरों से विद्ध कर हरि-पार्थ को, दर्शित किया मानो वहाँ दुगुने प्रबल पुरुषार्थ को।
पर सूत, हय, रथ और उसका नष्ट करके चाप भी, कर चौगुना विक्रम हुए शोभित धनंजय आप भी।।
तत्काल ही फिर लक्ष्य करके कर्ण के वर वक्ष को, छोड़ा कपिध्वज ने कुपित हो एक बाण समक्ष को,
पर बीच में ही द्रोण-सुत ने काट उसको बाण से, जाते हुए लौटा लिये उस वीरवर के प्राण-से।।
थे दिव्य-वर पाये हुए सब शत्रु भी पूरे बली, अतएव वे भी स्थित रहे सह पार्थ-शर-धारावली।
इस ओर यों ही हो रहा जब युद्ध यह उद्दण्ड था, उस ओर अस्ताचल-निकट तब जा चुका मार्तण्ड था।।
क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही? इस दृश्य को अवलोक कर तो जान पड़ता है यही।
धर्म्मार्थ दु:ख सहे जिन्होंने पार्थ मरणासन्न हैं, दुष्कर्म ही प्रिय हैं जिन्हें वे धार्तराष्ट्र प्रसन्न हैं।।
परिणाम सोच न भीम-सात्यकि रह सके क्षण भर खड़े, हा कृष्ण। कह हरि के निकट बेहोश होकर गिर पड़े।
यों देखकर उनकी दशा दृग बन्द कर अरविन्द-से, कहने लगे अर्जुन वचन इस भाँति फिर गोविन्द से।।

कौरव भयभीत हो उठे। अर्जुन को रोकना शायद अब संभव नहीं था। किंतु वे जयद्रथ को इस प्रकार मारने नहीं दे सकते थे। यदि जयद्रथ आज अर्जुन के हाथों मारा गया तो फिर कल से अर्जुन का युद्धभूमि में सामना कौन करेगा। दुर्योधन कुछ आगे बढ़ा और छह के छह महारथी अर्जुन पर टूट पड़े।

जयद्रथ ने आकाश की ओर देखा, क्या सत्य ही रात्रि आ गई? क्या वह अर्जुन के हाथों मारा जाने से बच गया? क्या अब अर्जुन चितारोहण कर अपने प्राण दे देगा?

द्रोणाचार्य बहुत दूर थे। अब भी व्यूह द्वारपर घोर युद्ध चल रहा था। दुर्योधनका शंखनाद उन्होंने सुना तो कुछ समझ नहीं सके। यदि वे समझ पाते तो व्यूह-द्वार त्यागकर भी अपने इस बुद्धिहीन शिष्यको समझाने भागते क्योंकि हुआ केवल यह था कि सूर्यके सम्मुख एक ओर इतना सघन मेघ आ गया था श्रीकृष्णकी इच्छासे कि जहाँ सूचीव्यूह था, वहाँ दूर-दूर तक सूर्यास्त होनेका भ्रम होने लगा था। इसी समय राजा जयद्रथ सिर ऊँचा करके सूर्यकी ओर देखने लगा।

अर्जुन सत्यप्रतिज्ञ हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा छोड़ नहीं सकते। अत: अब इनके लिए शीघ्र चिता सज्जित करो। दुर्योधनने ही सबसे पहिले आदेश दिया। उसे अर्जुनकी प्रतिज्ञा-रक्षाकी सबसे अधिक चिन्ता हो गयी थी। वह साथ-साथ व्यंग करने लगा- अर्जुन तुम तो व्यर्थ इस प्रतिज्ञाके पचड़ेमें पड़े। तुम्हारी शोभा विराट्नगरमें बृहन्नला बनकर रहनेमें ही थी।

तुम कर्णको, अश्वत्थामाको, अथवा हमको कभी जीत नहीं सकते, यह तुम्हें बहुत पहिले समझ लेना था। अब तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्तिमें सहायक होनेके अतिरिक्त हम और कर भी क्या सकते हैं।

और तब जयद्रथ समझ ही नहीं पाया कि क्या हुआ कि अर्जुन के गांडीव से बाण ऐसे छूटे, जैसे सूर्य से रश्मियाँ छूटती हैं। एक साथ ही अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य, वृषसेन और जयद्रथ को अर्जुन के बाणों ने बींध दिया। केवल दुर्योधन बच गया था। वह जयद्रथ के भी पीछे चला गया था। अर्जुन ने सिंहनाद किया।

अर्जुन रथसे उतर आये। श्रीकृष्ण अब भी रथपर ही अश्वोंकी रश्मि सम्हाले बैठे थे। दुर्योधनने उनकी ओर देखकर कहा- पार्थ तुम इस डींग मारनेवाले वासुदेवके बहकावेमें आकर आज प्राण खो रहे हो। यह कितना अहंकारी और धोखा देनेवाला है। दुर्योधन, बस। अर्जुनका अत्यन्त क्रोधमें भरा उग्र स्वर गूँजा- अब एक शब्द भी तुमने श्रीकृष्णके सम्मानके विरुद्ध कहा या और कोई इस प्रकार बोला तो अब भी गाण्डीव मेरे करोंमें है और मैंने यह प्रतिज्ञा नहीं की है कि चितामें प्राणत्यागसे पूर्व पाशुपतास्त्रका प्रयोग नहीं करूँगा। श्रीकृष्ण हम पाण्डवोंके सदा सर्वस्व हैं। हम इनके श्रीचरणोंमें ही चित्त लगाकर देहत्यागकी कामना करते हैं। इन सर्वसमर्थ सकलेश्वरकी इच्छाको कोई भी व्यर्थ करनेमें समर्थ नहीं है। अर्जुनका जीवन और मरण दोनों इनके करोंमें है।

अर्जुन युद्ध करता हुआ वहां आ पहुंचा जहां जयद्रथ युद्ध कर रहा था। अर्जुन को देखते ही युद्ध आरम्भ हो गया। सभी कौरवों के महारथी दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दु:शासन युद्ध करने लगे। इतने में ही सूर्य पर बादल आ गये। चारों ओर अन्धेरा हो गया। सबको यह भ्रम हो गया कि सूर्यास्त हो गया। दुर्योधन जोर-जोर से हंसने लगा और उसे अपमान कर बोला, अब अग्नि समाधि कब लोगे अर्जुन हे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर।

रहते हुए तुम-सा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं, इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य-बल है सब कहीं।
जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मैं अभी, अच्युत। युधिष्ठिर आदि का सब भार है तुम पर सभी।।
सन्देश कह दीजो यही सबसे विशेष विनय-भरा- खुद ही तुम्हारा जन धनञ्जय धर्म के हित है मरा।
तुम भी कभी निज प्राण रहते धर्म को मत छोड़ियो, वैरी न जब तक नष्ट हों मत युद्ध से मुँह मोड़ियो।।
थे पाण्डु के सुत चार ही, यह सोच धीरज धारियो; हों जो तुम्हारे प्रण-नियम उनको कभी न बिसारियो।
है इष्ट मुझको भी यही यदि पुण्य मैंने हों किए, तो जन्म पाऊँ दूसरा मैं वैर-शोधन के लिए।।
कुछ कामना मुझको नहीं है इस दशा में स्वर्ग की, इच्छा नहीं रखता अभी मैं अल्प भी अपवर्ग की।
हा। हा। कहाँ पूरी हुई मेरी अभी आराधना, अभिमन्यु विषयक वैर की है शेष अब भी साधना।।
कहना किसीसे और मुझको अब न कुछ सन्देश है, पर शेष दो जन हैं अभी जिनका बड़ा ही क्लेश है।
कृष्णा-सुभद्रा से कहूँ क्या? यह न होता ज्ञात है, मैं सोचता हूँ किन्तु हा। मिलती न कोई बात है।।
जैसे बने समझा बुझाकर धैर्य सबको दीजियो; कह दीजियो, मेरे लिए मत शोक कोई कीजियो।
अपराध जो मुझसे हुए हों वे क्षमा करके सभी, कृपया मुझे तुम याद करियो स्वजन जान कभी-कभी।।
हा धर्मधीर अजातशत्रो। आर्य भीम। हरे। हरे। हा प्रिय नकुल। सहदेवभ्रात:। उत्तरे। हा उत्तरे।
हा देवि कृष्णे। हा सुभद्रे। अब अधम अर्जुन चला; धिक् है- क्षमा करना मुझे- मुझसे हुआ रिपु का भला।।
जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है, माधव। बिदा दो बस मुझे अब, बार-बार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिए यद्यपि नहीं तैयार हूँ, पर धर्म-बन्धन-बद्ध हूँ मैं क्या करूं लाचार हूँ।।

इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे, हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे।
गोविन्द। अब क्या देर है? प्रण का समय जाता टला, शुभ-कार्य जितना शीघ्र हो, है नित्य उतना ही भला।।

और अगले ही क्षण भीम ने शस्त्र छोड़कर रथ की वल्गा सँभाल ली। वह अपना रथ सीधे दुर्योधन के रथ पर चढ़ा ले गया। दुर्योधन की समझ में नहीं आया कि वह क्या करना चाहता है। क्या वह अपने रथ को उसके रथ से भिड़ाकर उसे कुचल डालना चाहता है? वह कुछ भी चाहता हो। वह तो वही जाने। वह तो बैल है, उसमें बुद्धि है ही कहाँ। शस्त्रास्त्रों का युद्ध छोड़कर रथ भिड़ाने पर आ गया है। पर दुर्योधन को तो अपना बचाव करना ही था। वह तत्काल अपने स्थान से हटकर किसी सुरक्षित स्थान की खोज में निकल गया। दुर्योधन के इस प्रकार अकस्मात हटने से उसके दाएँ-बाएँ और पीछे चलनेवाले रथों में भी भगदड़ मच गई। किसी की समझ में नहीं आया कि यह क्या हो रहा है। दुर्योधन इस प्रकार डरकर भागा क्यों है। पर उससे रथों की गतिविधि बहुत बढ़ गई थी।

दुर्योधन भयसे काँप उठा। कृपाचार्यने उसकी भर्त्सना की। चिता क्षणोंमें ही प्रस्तुत हो गयी। अर्जुनने धनुष रखा और कवच उतारनेका उद्यत हुए तो श्रीकृष्णने कहा- विजय। विधवा नारीके समान चितारोहण तुम्हारे उपयुक्त नहीं है। क्षत्रिय वीरके समान कवच पहिने, धनुषपर अपना सर्वोत्तम अस्त्र चढ़ाये तुम्हें चितारोहण करना चाहिए।

चितामें अग्नि लगानेको उद्यत दु:शासन प्रज्वलित उल्मुक लिये खड़ा था। जयद्रथ पीछेके स्थानसे आगे बढ़ आया। उसे किसीने कहा था- अब सूर्यास्त हो गया। तुम्हारे प्राण सुरक्षित हैं। अपने शत्रुको चितारोहण करते देख लो।

द्रौपदी उत्तरा को लेकर आती है। द्रौपदी बोली, पुत्री सूर्य से कहो जिस जयद्रथ के कारण सात महारथियों ने मिलकर तेरा सुहाग उजाडा उसका वध का दृश्य देखे बिना आज अस्त ना हो। सच तो यह पुत्री अभिमन्यु वध के पश्चात उन्हें उदय ही नहीं होना चाहिये था। सूर्य देव की तरफ देखकर उनसे मांग करना तेरा अधिकार है क्योंकि यदि जयद्रथ वध से पहले सूर्यास्त हो गया तो रणभूमि कुरुक्षेत्र में सेनानियों के शवों के साथ-साथ धर्म का शव भी दिखाई पडेगा। सूर्यदेव की ओर देख पुत्री। उत्तरा ने सूर्य को प्रणाम किया। द्रौपदी बोली, हे सूर्यदेव मेरे पुत्र अभिमन्यु की विधवा का प्रणाम स्वीकार कीजिये। आपने सात कायरों के हाथों उसके वध का दृश्य तो चुपचाप देख लिया तो आज फिर अपनी गति धीमी क्यों नही करते? हे पुत्री चुप क्यों है। मैं भी देखती हूं यह तेरी प्रार्थना का सागर पार करके आज कैसे अस्त होते है?

तब श्रीकृष्णने अर्जुनसे फिर कहा, वीर। देखो, सिन्धुराज तुम्हारा भय छोड़कर सूर्यकी ओर देख रहा है, इस दुष्टको मारनेका यही सबसे अच्छा अवसर है। इसका सिर काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। कृष्ण ने देखा कि कौरव असावधान थे और जयद्रथ अपनी व्याकुलता में सूर्य की ओर देख रहा था। क्या सत्य ही सूर्यास्त हो गया था? वे अर्जुन की ओर मुड़े, जयद्रथ तुम्हारा भय छोड़कर सूर्य की ओर ताक रहा है। इस दुरात्मा के वध का यही क्षण है। इसका मस्तक काटो और अपनी प्रतिज्ञा सफल करो।

अर्जुन। अभी भगवान भास्कर अस्त नहीं हुए। श्रीकृष्णका घनघोष स्वर गूँजा- जयद्रथ तुम्हारे सामने है।

अकस्मात अन्धकार हट गया और पश्चिम क्षितिजपर अस्तोद्यत सम्पूर्ण सूर्यबिम्ब प्रकट हो गया। कौरव कुछ करते या जयद्रथ भागता, इससे पूर्व तो अर्जुनके धनुषसे वह दिव्यास्त्र छूट चुका था।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर प्रतापी पाण्डुनन्दन अपने प्रचण्ड बाणोंसे आपकी सेनाका संहार करने लगे। उन्होंने कर्ण और वृषसेनके धनुष काटकर एक भल्लसे शल्यके सारथीको रथसे नीचे गिरा दिया तथा कृप और अश्वत्थामा दोनों ही

मामा-भानजोंको बहुत घायल कर डाला। कृष्ण ने शंख फूंका जयद्रथ पर आक्रमण करने का। जयद्रथ बोला, यह दुर्योधन भी आज मुझे मरवाये बिना मानेगा नहीं। मैं न जाने अब तक कितनी दूर निकल चुका होता। अरे आप लोग खड़े क्यों हो जाकर अर्जुन का रथ रोको। यह सूर्यास्त अब क्यों नहीं हो रहा? इस प्रकार आपके सब महारथियोंको अत्यन्त व्याकुल कर उन्होंने एक दिव्यास्त्रोंसे इन्द्रके वज्रके समान प्रचण्ड बाण निकाला। उसे विधिवत् वज्रास्त्रसे अभिमन्त्रित कर बड़ी फूर्तीसे गाण्डीवपर चढ़ाया। इस समय श्रीकृष्णने जल्दी करनेका संकेत करते हुए फिर कहा, धनंजय। सूर्य अस्ताचलपर पहुँचनेहीवाला है, दुष्ट जयद्रथका सिर फौरन काट डालो।

धनंजय सावधान। श्रीकृष्णने रथ बढ़ाया और हाथ पकड़कर अर्जुनको उसपर उठा लिया। वे कह रहे थे- जयद्रथका मस्तक नीचे गिरा तो तुम्हारा सिर भी सौ टुकड़े हो जायगा। इसे आकाशमें ऊपर ही ऊपर युद्धस्थलसे बाहर समन्तक पंचक क्षेत्रमें सरोवरके समीप सन्ध्या करने बैठे इसके पिता वृद्धक्षेत्रकी गोदमें इस प्रकार गिराओ कि उन्हें पता न लगे।

अर्जुन ने गांडीव को जयद्रथ की ओर कर, दिव्य मंत्रों से अभिमंत्रित किया हुआ बाण तत्काल छोड़ दिया। गांडीव से छूटा वज्र से भी कठोर स्पर्शवाला वह शीघ्रगामी बाण जयद्रथ का मस्तक काटकर श्येन पक्षी के समान उड़ गया।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर अर्जुनने वह वज्रतुल्य बाण छोड़ दिया। वह सिन्धुराजके मस्तकको काटकर उसे बाजकी तरह लेकर आकाशमें उड़ा और समन्तपञ्चक क्षेत्रके बाहर ले गया। इस समय आपके समधी राजा वृद्धक्षत्र संध्योंपासन कर रहे थे। उस बाणने वह सिर उनकी गोदमें डाल दिया और उन्हें इसका पतातक न चला। जब वृद्धक्षत्र जप करके उठे, तो वह सिर उनकी गोदसे पृथ्वीपर गिर गया और उसके गिरते ही उनके सिरके भी सौ टुकड़े हो गये।

कृष्ण बोले, अभी सूर्यास्त नहीं हुआ पार्थ। यह रहा सूर्य और वो रहा जयद्रथ सामने। उठो। अर्जुन बोला, अभी सूर्यास्त नहीं हुआ जयद्रथ। अर्जुन ने सीधा उसकी ओर बाण सन्धान कर दिये और बोला हे जयद्रथ मेरे अभिमन्यु का वध तूने किया था और जयद्रथ को बाण मार दिया। उसका सिर धड से अलग कर उसके पिता बृहदाश्व की गोद में गिरा, जैसे ही वो उठे उनकी गोद से सिर गिर कर भूमि पर पडा कि जोरों से विस्फोट हुआ और उसके सैकड़ों टूकडे हो गये।

सारे कौरवों ने देखा कि जयद्रथ का मस्तक उसके कबंध पर नहीं है। उसका कबंध लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़ा है। अब आज और युद्ध का कोई अर्थ नहीं था। कौरव सेनाएँ हताश हो चुकी थीं। और युद्ध का अर्थ था प्रचंड अर्जुन के हाथों और योद्धाओं का वध।

अर्जुनने उस मस्तकको इतने बाण मारे कि वह चारों ओरसे बाणोंसे निद्ध बड़ा भारी कदम्ब पुष्प-सा दीखने लगा। उसे देखकर भी पहिचानना संभव नहीं था। अर्जुनने समन्तक पंचक क्षेत्रके समीप पहुँचकर बाण मारकर धीरेसे जयद्रथका वह सिर उसके सन्ध्यामें बैठे ध्यानस्थ पिताकी गोदमें गिराया। वृद्धक्षत्र ध्यान करके उठ खड़े हुए। अचानक उनकी गोदसे उनके पुत्रका सिर पृथ्वीपर गिर पड़ा। साथ ही उनके सिरकी खोपड़ी भी सौ टुकड़े हो गयी।

रथों की गतिविधि रुकी तो आकाश की ओर उड़ती हुई धूल भी पृथ्वीपर आ गई। सबने देखा, न सूर्य की ज्योति मंद हुई थी, और न ही अभी सूर्यास्त ही हुआ था। कृष्ण मुस्करा रहे थे उन्होंने जैसे अपनी माया समेट ली थी।

सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गई, गम्भीर श्यामल मेघ में विद्युच्छटा-सी छा गई।
कहते हुए यों-वह न उनका भूल सकता वेश है- हे पार्थ। प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है।।
हो पूर्ण जब तक पार्थ-प्रति प्रभु का कथन ऊपर कहा, तब तक महा अद्भुत हुआ यह एक कौतुक-सा अहा।
मार्तण्ड अस्ताचल निकट घन-मुक्त-सा देखा गया। है जान सकता कौन हरि का कृत्य नित्य नया नया?

था पार्थ के हित के लिए यह खेल नटवर ने किया, दिन शेष रहते सूर्य को था अस्त-सा दिखला दिया।
अनुकूल अवसर पर उसे फिर कर दिया यों व्यक्त है, वह भक्तवत्सल भक्त पर रहता सदा अनुरक्त है॥
तत्काल अर्जुन की अचानक नींद मानो हट गई, सब हो गई उनको विदित माया महा-विस्मयमयी।
अवलोक तब हरि को उन्होंने एक वार विनोद से, निकटस्थ शीघ्र उठा लिया गाण्डीव अति आमोद से॥
इस स्वप्न के-से दृश्य से सब शत्रु विस्मित रह गये, कर्त्तव्यमूढ़-समान वे नैराश्य-नद में बह गए।
उस काल उनका तेज मानो पार्थ को ही मिल गया, तब तो सदा से सौगुना मुख शीघ्र उनका खिल गया॥
हो भीम-सात्यकि भी सजग आनन्द रव करने लगे, निज यत्न निष्फल देखकर वैरी सभी डरने लगे।
तब सम्मुख स्थित जाल-गत जो था हरिण-सा हो रहा, उस खल जयद्रथ से कुपित हो यों धनञ्जय ने कहा॥
रे नीच। अब तैयार हो तू शीघ्र मरने के लिये, मेरा यही अवसर समझ प्रण पूर्ण करने के लिये।
है व्यर्थ चेष्टा भागने की, मृत्यु का तू ग्रास है, भज रामनाम नृशंश। अब तो काल पहुँचा पास है॥
गति देख अन्य एक भी निज कर्म के दुर्दोष से करने लगा तत्क्षण जयद्रथ शस्त्र वर्षा रोष से।
आशा नहीं रहती जगत में प्राण रहने की जिसे, उसका भयंकर-वेग सहसा सह्य हो सकता किसे?
पर पार्थ ने सह ली व्यथा सब शत्रु के आघात की, आनन्द के उत्थान में रहती नहीं सुध गात की।
गाण्डीव से तत्काल वे भी बाण बरसाने लगे, जो उग्र उल्का-खण्ड-से चण्डच्छटा छाने लगे॥
वह शर इधर गाण्डीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ, धड़ थे जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ।
रक्ताक्त वह सिर व्योम में उड़ता हुआ कुछ दूर-सा, दीखा अरुणतम उस समय के अस्त होते सूर-सा॥
अर्जुन विशिख तो लौट आया पर न रिपु का सिर फिरा, अपने पिता की गोद में ही वह अचानक जा गिरा।
रण से अलग उसका पिता तप कर रहा था रत हुआ। भगवान की इच्छा, तनय के साथ वह भी हत हुआ॥
श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सात्यकि शंख-रव करने लगे, हर्षित हुए सबके वदन, मन मोद से भरने लगे।
प्रत्यक्ष कौरव पक्ष की तब नासिका-सी कट गई, मानो विकल कुरुराज की शोकार्त्त छाती फट गई॥

दुर्योधनादि भौंचक्के रह गये थे। जयद्रथका छिन्न मस्तक आकाशमें उठ चुका था और अर्जुन उसे बराबर बाण मारते हुए ऊपर ही ऊपर एक ओर उड़ाये जा रहे थे। श्रीकृष्ण नन्दिघोष रथको वेगपूर्वक चलाये जा रहे थे। उस रथको रोकनेवाला अब कोई नहीं था।

प्रण पूरा कर पार्थ ने सिद्ध किया सन्धान, जयद्रथ पितु संग मर मिटा व्यर्थ पार्थ के प्राण।

राजन्। इस प्रकार अब अर्जुनने जयद्रथको मार डाला, तो श्रीकृष्णने वह अंधकार दूर कर दिया। अब आपके पुत्रोंको मालूम हुआ कि यह सब तो श्रीकृष्णकी रची हुई माया ही थी। इस प्रकार अर्जुनने आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार करके आपके दामाद जयद्रथका वध किया। जयद्रथको मरा देखकर आपके पुत्र दु:खसे आँसू बहाने लगे और अपनी विजयके विषयमें निराश हो गये। इधर जयद्रथका वध होनेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सात्यकि, युधामन्यु और उत्तमौजाने अपने-अपने शफबजाये। उस महान् शंखनादको सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरको निश्चय हो गया कि अर्जुनने सिन्धुराजको मार डाला है। तब उन्होंने बाजे बजवाकर अपने योद्धाओंको हर्षित किया तथा संग्राममें द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेके लिये उनपर आक्रमण किया। अब सूर्यास्तके बाद सोमकोंके साथ आचार्यका बड़ा रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। वे सब द्रोणके प्राणोंके ग्राहक होकर उनके साथ लड़ने लगे। इधर वीरवर अर्जुन भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके सब ओरसे आपके योद्धाओंका संहार करने लगे।

अब श्रीकृष्णके मुखसे लगा उनका शंख विजयनाद करता गूँजने लगा। अर्जुनने भी अपना देवदत्त शंख अधरोंसे लगा लिया था। कौरव अब तक सतर्क हो चुके थे और क्रोधमें भर गये थे किन्तु श्रीकृष्ण अब अर्जुनको युद्धमें नहीं लगने देना चाहते थे। वे रथको युद्धस्थलसे बाहर ले चले। कौरवोंका सामना करनेके लिए सात्यकि और भीम संग्राम भूमिमें थे ही और वे पर्याप्त थे।

आगे दिखता काल जब, सूझ न पड़ती चाल, ऐसे में तो मित्र भी लगते है विकराल।

श्रीकृष्णने सूर्यास्त हो जानेपर शिबिरकी ओर चलते हुए अर्जुनसे कहा- विजय। सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। दुर्योधनने जो सैन्य संग्रह किया था, उसके सम्मुख समरमें सुर भी शिथिल हो सकते थे। त्रिलोकीमें तुम्हारे अतिरिक्त अन्य वीर नहीं है जो ऐसा दुष्कर कर्म कर सके। यहाँ जो नरेश एकत्र थे, उनमें अनेक इन्द्रको भी पराजित करनेमें समर्थ थे। अकेले उन सबको पराजित कर देना तुम्हारा ही पौरुष है। पुरुष श्रेष्ठ। तुम्हारा परंतप नाम सचमुच सार्थक है।

इस विध जयद्रथ-वध हुआ, पूरा प्रण पार्थ का: अब धर्मराजार्जुन मिलन है, मिलन ज्यों धर्मार्थ का।
वर्णन अत: उसका यहाँ पर है उचित ही सर्वथा, सर्वत्र ही कथनीय हैं सुख-सम्मिलन की शुभ-कथा।।
सूर्यास्त होना जानकर फिर जब लड़ाई रुक गई, निष्प्रभ पराजित कौरवों की रण-पताका झुक गई।
तब नृप युधिष्ठिर के निकट आनन्द से जाते हुए, बोले वचन हरि पार्थ से रण-भूमि दिखलाते हुए।।
हे वीर। देखो, आज तुम संग्राम में कैसे लड़े, मरकर तुम्हारे हाथ से ये शत्रु कितने है पड़े।
ज्यों कंज-वन की दुर्दशा कर डालता गजराज है, शोभित तुम्हारे शौर्य से त्यों यह रणस्थल आज है।।
इस ओर देखो, रक्त की यह कीच कैसी मच रही। है पट रही खण्डित हुए बहु रुण्ड-मुण्डों से मही।
कर-पद असंख्य कटे पड़े, शस्त्रादि फैले हैं तथा, रंगस्थली ही मृत्यु का एकत्र प्रकटी हो यथा।।
यद्यपि निहत होकर पड़े ये वीर अब नि:शक्त हैं, पर कौरवों का तेज अब भी कर रहे ये व्यक्त हैं।
बल-विभव में कुरुराज सचमुच दूसरा सुरराज है, पाई विजय प्रारब्ध से ही पार्थ। तुमने आज है।।
श्रीकृष्ण के प्रति वचन तब बोले धनंजय भक्ति से, क्या कार्य कर सकता हरे। मैं आप अपनी शक्ति से?
है सब तुम्हारी ही कृपा, हूँ नाम का ही वीर मैं; भूला नहीं अब तक तुम्हारा वह विराट शरीर मैं।।
है कालचक्र सदा तुम्हारा चल रहा संसार में, सर्वत्र तेज:पुञ्ज-सा है जल रहा संसार में।
पर देखने में चर्म के ये चक्षु अति असमर्थ हैं, तब तो मनुज कर्त्तृत्व का अभिमान करते व्यर्थ हैं।।
किसकी महत्ता थी कि जिसने आज प्रण की पूर्ति की। हिल जाय पत्ता तो कहीं सत्ता बिना इस मूर्ति की।
चलता सुदर्शन यदि न तो दिन ढल गया होता तभी, अर्जुन चितानल में कभी का जल गया होता अभी।।
होते तुम्हारे कार्य सारे गूढ़ भेदों से भरे, हृदयस्थ, तुम जो कुछ कराते, मैं वहीं करता हूँ हरे।
अनुचित-उचित के ज्ञान को कुछ भी नहीं मैं जानता; जो प्रेरणा करता विमल मन, मैं उसी को मानता।।
हाँ एक बात अवश्य है- रूककर धनंजय ने कहा, यद्यपि तुम्हारा ही किया है जो जगत में हो रहा।
बनते नहीं हो किन्तु उसके तुम स्वयं कारण कहीं, क्या ही चतुर हो, दोष-गुण करते स्वयं धारण नहीं।।
हंसते हुए तब पार्थ बोले अन्य विध वचनावली, गोविन्द। हो तो तुम बड़े ही क्रूर, मायावी, छली।
रवि को छिपाने के प्रथम मुझको सचेत किया नहीं; आ जाय मरने की दशा ऐसी हँसी होती कहीं?

स्वयं सब कुछ करके अपनोंको श्रेय देना, अपने आश्रितोंको आगे कर देना श्रीकृष्णका सदाका स्वभाव है। इनकी कृपादृष्टि रहे, इनके श्रीचरणोंसे चित्त दूर न चला जाय तो जीव अभिमानाक्रान्त नहीं होता और अपनी सफलतामें इनके

समर्थ करको देख पाता है। अर्जुनने कहा- केशव। इसमें आश्चर्यकी तो कोई बात नहीं है। मैं इससे भी अधिक पराक्रम प्रकट कर सकता हूँ, यदि आप ऐसे ही सहायक संरक्षक हैं। कठपुतलीका पौरुष तो उसके संचालककी शक्ति है और आपकी शक्ति नि:सीम है। वह जब अर्जुनके माध्यमसे प्रकट होती है तो उसकी समता कहीं कैसे हो सकती है। यह प्रभाव, यह पौरुष, यह विजय तो आपकी ही है और आप ही की अनुकम्पा है तो हम सदा आपकी बधाईके पात्र बने रहेंगे।

श्रीकृष्ण यह सब सुना नहीं करते। वे तो जिसे अपना स्वीकार कर लेते हैं, उसके हाथमें उठा तृण भी उन्हें त्रिभुवनका सर्वोत्तम रत्न लगता है। उन्होंने, युद्धभूमिमें अर्जुनने जो पराक्रम प्रकट किया था, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अर्जुनके द्वारा मारे गये लोगोंको दिखलाते, सखाका उत्साह बढ़ाते लौट रहे थे। आज नन्दिघोष रथ मन्दगतिसे लौट रहा था। स्वयं अर्जुनको आश्चर्य था कि उनके शरोंसे इतना संहार एक दिनमें सम्भव हुआ है।

युधिष्ठिरके समीप पहुँचकर श्रीकृष्ण रथसे कूदे और अभिवादन करके हर्षोल्लसित स्वरमें बोले- महाराजाधिराजका सौभाग्य सूर्य पूर्ण प्रकाशित है। आपका शत्रु मारा गया। आपके अनुजने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली।

हँसने लगे तब हरि अहा। पूर्णेन्दु-सा मुख खिल गया, हँसना उसीमें भीम, अर्जुन, सात्यकी का मिल गया।
थे मोद और विनोद के सब सरस झोंके झेलते, भगवान भक्तों से न जाने खेल क्या-क्या खेलते?
उन्मत्त विजयोल्लास ये सब लोग मत्त-गयन्द-से, राजा युधिष्ठिर के निकट पहुँचे बड़े आनन्द से।
देखा युधिष्ठिर ने उन्हें जब, जान ली निज जय तभी, मुख चिह्न से ही चित्त की बुध जान लेते हैं सभी।।
तब अर्जुनादिक ने उन्हें बढ़कर प्रणाम किया वहाँ, सिर पर उन्होंने हाथ रख सुख दिया और लिया वहाँ।
सब लोग उनको घेरकर थे उस समय उत्सुक खड़े, बोले युधिष्ठिर से स्वभू सुमन मानो झड़े।।
हे तात। जीत हुई तुम्हारी पुण्य-पूर्ण प्रताप से, रण में जयद्रथ-वध हुआ, छूटे धनंजय ताप से।
तुमने इन्हें सौंपा सबेरे था हमारे हाथ में, सो लीजिए अपनी धरोहर, सुख-सुयश के साथ में।।

युधिष्ठिरके नेत्र भर आये। कुछ क्षण वे हर्षके वेगमें विह्वल बोल ही नहीं सके। अपनेको सम्हालकर बोले- कमलनयन। आपके मुखसे यह समाचार पाकर मेरे हर्षका पार नहीं है। गोविन्द। आप जिनके आश्रय हैं, उनके लिए ऐसे संवाद सदा ही सुलभ हैं। हम तो आपके ही आश्रित हैं। आपके ही भरोसे हम इस युद्धमें उतरनेका साहस कर सके। आपका संरक्षण जिसे प्राप्त है, उसके लिए त्रिलोकीमें कुछ भी दुष्कर नहीं है।

युधिष्ठिरने भाव विह्वल होकर श्रीकृष्णकी स्तुति की। श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन करने लगे तो श्रीकृष्णने स्तुति प्रारम्भ कर दी- धर्मराज। आपकी तपस्या, धर्मपरायणता, साधुता, सरलताके प्रभावसे ही पापी जयद्रथ मारा गया। कौरव आपके अपमानके पापसे दग्ध हो रहे हैं। भीष्म जैसा व्रतधारी भी आपके प्रतिपक्षमें जाकर आपकी अवमाननाके दोषसे मरा।

श्रीकृष्णने अर्जुनके अस्त्रज्ञान, बाहुबल, स्थिरता, धैर्य, पराक्रम, कौशल स्फूर्ति, बुद्धि वैभवका बन्दीके समान वर्णन किया। युधिष्ठिरने भाईको हृदयसे लगाकर उनकी पीठपर हाथ फेरा।

सुनकर मधुर घन-शब्द को पाते प्रमोद मयूर ज्यों, श्रीकृष्ण के सुन, वचन सबको सुख हुआ भरपूर त्यों।
राजा युधिष्ठिर हर्ष से सहसा न कुछ भी कह सके, थे भक्ति के गुरु-भार से मानो वचन उनके थके।।
साक्षात् चराचरनाथ, तुम रखते स्वयं जब हो दया, आश्चर्य क्या फिर जो जयद्रथ युद्ध में मारा गया?
तो भी इसे सुनकर हृदय में सुख समाता है नहीं, साधन-सफलता-सुख-सदृश सुख दृष्टि आता है नहीं।।
बहु विज्ञ तत्वज्ञानियों ने बात यह मुझसे कही- माधव। तुम्हें जो इष्ट होता सर्वदा होता वही।

अज्ञानता से मूर्ख जन मानव तुम्हें हैं मानते, ज्ञानी, विवेकी, विज्ञवर, विश्वेश तुमको जानते।।
जो कुछ किया तुमने स्वयं हे देव-देव। हुआ वही, जो कुछ करोगे तुम स्वयं आगे वही होगा सही।
जो कुछ स्वयं तुम कर रहे हो, हो रहा अब है तथा, हैं हेतुमात्र सदैव हम, कर्त्ता तुम्हीं हो सर्वथा।।
हो निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा, हो तुम निरीह तथापि अद्भुत सृष्टि रचते हो सदा।
आकार-हीन तथापि तुम साकार सन्तत सिद्ध हो, सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेम-वश्य प्रसिद्ध हो।।
करते तुम्हरा ही मनन, मुनि रत तुम्हीं में ऋषि सभील, सन्तत तुम्हीं को देखते हैं ध्यान में योगीन्द्र भी।
विख्यात वेदों में विभो। सबके तुम्हीं आराध्य हो, कोई न तुमसे है बड़ा, तुम एक सबके साध्य हो।।
पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है; पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है।
जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते, वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते।।
हे सच्चिदानन्द प्रभो। तुम नित्य सर्व सशक्त हो, अनुपम, अगोचर, शुभ, परात्पर ईश-वर अव्यक्त हो।
तुम ध्येय, गेय, अजेय हो, निज भक्त पर अनुरक्त हो, तुम भवविमोचन, पदमलोचन, पुण्य, पद्मासक्त हो।।
तुम एक होकर भी अहो। रखते अनेकों वेश हो, आद्यन्त-हीन, अचिन्त्य, अद्भुत, आत्म-भू अखलेश हो।
कर्त्ता तुम्हीं, भर्त्ता तुम्हीं, हर्त्ता तुम्हीं हो सृष्टि के, चारों पदार्थ दयानिधे। फल हैं तुम्हारी दृष्टि के।।
हे ईश। बहु उपकार तुमने सर्वदा हम पर किये, उपहार प्रत्युपकार में क्या दें तुम्हें इसके लिए?
है क्या हमारा सृष्टि में? यह सब तुम्हीं से है बनी, सन्तत ऋणी हैं हम तुम्हारे, तुम हमारे हो धनी।।
जय दीनबन्धो, सौख्य-सिन्धो, देव-देव, दयानिधे, जय जन्म-मृत्यु-विहीन, शाश्वत, विश्व-वन्द्य, महाविधे।
जय पूर्ण-पुरुषोत्तम, जनार्दन, जगन्नाथ, जगद्गते, जय जय विभो, अच्युत हरे, मंगलमते, मायापते।।
कहते हुए यों नृप युधिष्ठिर मुग्ध होकर रुक गये, तत्क्षण अचेत-समान फिर प्रभु के पदों में झुक गये।
बढ़कर उन्हें हरि ने हृदय से हर्षयुक्त लगा लिया, आनन्द ने सत्प्रेम का मानो शुभालिंगन किया।।
वह भक्त का भगवान से मिलना नितान्त पवित्र था, प्रत्यक्ष ईश्वर-जीव का संगम अतीव विचित्र था।
मानो सुकृत आकर स्वयं ही शील से थे मिल रहे, युग श्याम गौर सरोज मानो साथ ही थे खिल रहे।।
करने लगे सब लोग तब आनन्द से जयनाद यों- त्रैलोक्य को हों दे रहे निर्भय विजय-संवाद ज्यों।
अन्यत्र दुर्लभ है भुवन में बात यों उत्कर्ष की, सचमुच कहीं समता नहीं है भव्य भारतवर्ष की।।

दूसरी ओर दुर्योधन बहुत व्याकुल होकर द्रोणाचार्यके समीप पहुँचा था। उसके दु:खका पार नहीं था। न केवल उसकी बहिन दु:शला विधवा हो गयी थी, उसके विजय पानेके सब स्वप्न समाप्त हो गये थे। युद्धके प्रारम्भमें उसके समीप पाण्डवोंसे चार अक्षौहिणी सेना अधिक थी किन्तु आज एक ही दिनके युद्धमें अकेले अर्जुनने उसकी आठ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर डाला था। एक अक्षौहिणीके लगभग पहिले मारी जा चुकी थी। अब कठिनाईसे उसके पास दो अक्षौहिणी सेना बची थी। जबकि पाण्डवोंके पास जो युद्धारम्भमें सात अक्षौहिणी थी, उसमें से अभी चार अक्षौहिणीसे अधिक ही उनके पास शेष थी।

जिस संख्या बलपर दुर्योधन युद्धारम्भमें गर्व करता था, वह अब पाण्डुपुत्रोंके पक्षमें हो गया था। अब उनके पास कौरवोंसे द्विगुणसे भी अधिक सैन्यबल था। दुर्योधनके लगभग आधे भाई भीम अब तक मार चुके थे।

दु:खी क्षुब्ध दुर्योधनने आचार्य द्रोणको बहुत उपालम्भ दिया। उसने कहनेमें कोई संकोच नहीं किया कि- आप पाण्डवोंका पक्ष लेते हैं। अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है, अत: आपने जान-बूझकर उसे व्यूहमें जाने दिया। उसकी

सफलताकी कामनासे ही आप व्यूहमुखपर आग्रहपूर्वक अड़े रहे। अर्जुनको रोकने नहीं आये।

द्रोणाचार्य लगातार चार दिनसे कठोर परिश्रम करते हुए युद्ध कर रहे थे। दुर्योधन आज भी कई बार उन्हें उपालम्भ दे चुका था। इससे चिढ़कर उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली- अब मैं पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करके अथवा प्राण त्याग करके ही कवच शरीरसे दूर करूँगा। युद्ध अब विरमित नहीं होगा।

दुर्योधनको लगा कि आचार्यका यह आवेश बना रहे इसीमें उसका हित है। आवेश शान्त होनेपर फिर पाण्डवोंके प्रति उनमें कृपा उदय हो जायगी। अत: उसने रात्रिको भी युद्ध चलता रहे- यह स्वीकार कर लिया। उसने जाकर कर्णसे मन्त्रणा की और युद्धकी भेरी बजवा दी।

यह युद्ध दुर्योधनके लिए बहुत भारी पड़ा। उसके पक्षके सब सैनिक और महारथी दिनभर अर्जुनको आगे बढ़नेसे रोकनेमें प्राण-पणसे जुटे रहे थे। बहुत थक गये थे और बहुत घायल हो गये थे। अर्जुनके धनुषकी शर वर्षाने उनके अंग-अंग छलनी कर दिये थे। विश्राम और उपचारका अवसर भी उन्हें नहीं मिला।

दूसरी ओर पाण्डव सेनामेंसे अर्जुन, भीम और सात्यकिको ही व्यूहमें जाकर संग्राम करना पड़ा था। शेष सेनाके लोगोंने तो अपनी ओरसे ही द्रोणाचार्यपर बारबार आक्रमण किया और जब भी हारे, पीछे हट गये। उन्हें पीछे जाकर विश्राम तथा उपचारकी सब सुविधा उपलब्ध थी।

धृतराष्ट्र शायद बिना कुछ सोचे-समझे बोल रहा था। क्या प्रमाण है कि यह सत्य है कि कृष्ण ईश्वर है?

संजय बोला, प्रमाण यही है कि यह घटित हुआ। सबने देखा कि वह सूर्य जो अस्त हो गया था, फिर से आकाश पर दिखाई दे रहा था। आश्चर्य सबको हुआ, पर जो कुछ सब लोग अपने नेत्रों से देख रहे थे, उसका तिरस्कार कैसे कर सकते थे। कल जब जयद्रथ ने चारों पांडवों और उनके सहयोगियों को चक्रव्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया था, आश्चर्य तब भी हुआ था सबको, किंतु उसे अस्वीकार कैसे कर सकते थे। वह सबके सम्मुख घटित हुआ था। वही बात आज भी हुई है।

धृतराष्ट्र ने स्वयं को कुछ सँभालकर कहा, आकाश पर बादल छा गए होंगे। लोगों ने मान लिया होगा कि संध्या हो गई है। सेनाएँ लौटने की तैयारी कर रही होंगी। और तभी मेघ उड़ गए होंगे। कृष्ण ने घोषणा कर दी होगी कि सूर्यास्त अभी नहीं हुआ है। पर उस मूर्ख जयद्रथ को इतनी जल्दी क्या थी कि वह अपने गुप्त स्थान से ही प्रकट नहीं हो गया, आकर अर्जुन के ही सामने खड़ा हो गया। सदा का अहंकारी और झगड़ालू। अर्जुन को चिढ़ाने आया था। बहुत आतुर रहता है दुर्योधन भी पांडवों को चिढ़ाने के लिए। क्या पाया था उसने घोषयात्रा में? और क्या पाया जयद्रथ ने अर्जुन को चिढ़ाने के लिए सम्मुख आकर? तुम स्वीकार करना नहीं चाहते कि आकाश पर बादल घनीभूत हो गए थे और लोगों ने संध्या मान लिया था? धृतराष्ट्र ने संजय को चुप रहने नहीं दिया।

संजय बोला, नहीं महाराज। कल संध्या समय आकाश पर मेघों का कोई भटका हुआ खंड भी नहीं था। आकाश स्वच्छ था। वैसे मेघ कितने भी सघन हो जाएँ, उनसे सूर्यास्त का भ्रम तो नहीं हो सकता।

धृतराष्ट्र बोले, अच्छा नहीं होंगे मेघ। निरभ्र आकाश रहा होगा; किंतु क्या तुम लोगों ने पता किया है कि कल सूर्यग्रहण तो नहीं था? संजय को हँसी आ गई, पर उसने स्वयं को संयत किया और बोला, आप कहते हैं तो महाराज। मैं ज्योतिषियों से पता कर लूँगा। किंतु चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण इत्यादि पर विचार तो कई-कई वर्ष पहले से कर लिया जाता है। उसकी सूचना सार्वजनिक होती है। लोग उस दिन पूजा-पाठ और दान इत्यादि करते हैं। प्रत्येक घाट पर सहस्त्रों लोग स्नान कर रहे होते हैं। सूर्यग्रहण कोई ऐसी गोपनीय घटना तो नहीं है कि उसका किसी को ज्ञान ही न हो। क्षणभर चुप

रहकर संजय पुन: बोला, और यदि हम यह मान भी लें कि कल सूर्यग्रहण था और सिवाय श्रीकृष्ण के और किसी को उसका पता नहीं था तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि श्रीकृष्ण ने बहुत पहले यह योजना बनाई होगी कि किस दिन अभिमन्यु का वध हो, उस दिन अर्जुन प्रतिज्ञा करे और अगले दिन अर्जुन सिंधुराज का वध करे। यदि उन्हें इतना कुछ ज्ञात ही था तो उन्होने अभिमन्यु का वध क्यों होने दिया? उसे बचाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया? यदि वे जानते थे कि अगले दिन सूर्यग्रहण होनेवाला है तो उन्होंने अर्जुन को ऐसी भयंकर प्रतिज्ञा करने से रोका क्यों नहीं?

धृतराष्ट्र के स्वर में फिर से रोष प्रकट हुआ और बोला, इन सब प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नहीं है। पर यदि यह सब न मानकर तुमसे सहमत हो जाऊँ कि कृष्ण और कोई नहीं, स्वयं नारायण हैं, तो फिर इतना समारोह करने की क्या आवश्यकता है। उनकी तो इच्छा मात्र से दुर्योधन की मृत्यु हो सकती है। उनकी इच्छा मात्र से अभिमन्यु जीवित हो सकता है। उनके एक संकेत पर यह युद्ध रुक सकता है। वे पांडवों को राज्य देने के लिए नई सृष्टि रच सकते हैं। सुदर्शन चक्र से सूर्य को ढँकने की क्या बात है, वे सूर्य को आदेश दे सकते हैं कि वह थोड़ी देर तक अस्त रहकर पुन: उदित हो जाए।

संजय ने कहा, हाँ। यदि नारायण की इच्छा हो तो यह सब हो सकता है। धृतराष्ट्र ने कहा, तुम मुझे डरा रहे हो, किंतु मैं इन बातों से न डरना सीख गया हूँ। झूठ है यह। न सूर्य किसी के कहने से छुप सकता है, न प्रकट हो सकता है। तुम भी विदुर के ही मार्ग पर जा रहे हो। मैं इस सारी मूर्खता में विश्वास नहीं कर सकता।

संजय के मन में अनेक विचार आ रहे थे। वह समझ रहा था कि दुर्योधन की हठ के महावट की जड़ें कहाँ हैं। उसके सम्मुख धृतराष्ट्र बैठा था, जो अंधा था, अपंग था, असहाय था, किंतु उसका अहंकार अपनी इच्छा के प्रतिकूल किसी सत्य को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। दुर्योधन तो फिर शरीर से स्वस्थ था, सैन्य संचालन कर सकता था, मित्र बना सकता था, षड्यंत्र रच सकता था। वह कैसे स्वीकार कर लेता कि कृष्ण स्वयं नारायण थे अथवा नारायण के अंशावतार थे? अंधा धृतराष्ट्र भी था और अंधा दुर्योधन भी था। संजय बोला, मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं कर रहा महाराज। कि कृष्ण नारायण हैं। मैंने तो आपके कहने पर कल की घटनाएँ आपको सुनाई हैं। यह युद्ध का समाचार है स्वामी। मैं इस समय ब्रह्म-चिंतन नहीं कर रहा।

धृतराष्ट्र ने कहा, तुम ब्रह्म-चिंतन नहीं कर रहे, तुम कृष्ण को नारायण सिद्ध नहीं कर रहे; किंतु तुम मुझे डराने का प्रयत्न कर रहे हो, ताकि मैं दुर्योधन पर दबाव डालूँ कि वह पांडवों को उनका राज्य दे दे। तुम भी विदुर के मार्ग पर ही जा रहे हो। मुझसे मेरी संपत्ति छीनने का प्रयत्न कर रहे हो। तुम्हारे मन को मैं जानता हूँ।

संजय बोला, नहीं। मैं ऐसा कोई प्रयत्न नहीं कर रहा। जहाँ तक मेरे मन की बात है, मैं तो केवल यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ महाराज कि श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप क्या है। जिस प्रकार वे राजनीति का संचालन करते हैं, उससे वे कुशल राजनीतिज्ञ लगते हैं। ऋषियों से चर्चा करते हैं तो ऋषि लगते हैं। द्रौपदी के सम्मान की रक्षा के लिए जो कुछ उन्होंने किया, कुरुओं की सभा में दुर्योधन इत्यादि को जिस प्रकार अचेत कर वे निकल गए और अर्जुन को जो उपदेश उन्होंने रणभूमि में दिया और अब अस्त सूर्य को पुन: उदित कर दिया इन सबसे उनको क्या समझें हम? क्या मानते हैं आप उनको? दुर्योधन उन्हें तांत्रिक मानता है, पर मेरा प्रश्न है कि आप क्या मानते हैं? यद्यपि अपने समय के, अपने निकट के किसी हाड़-मांस के मनुष्य को ईश्वर अथवा ईश्वर का अवतार मानना बहुत कठिन है। हमारा अपना अहंकार उसमें आड़े आता है। उसकी सीमाएँ हमारा विश्वास जमने नहीं देतीं; किंतु कृष्ण क्या हैं इसको समझने का प्रयत्न तो हमें करना ही होगा।

धृतराष्ट्र ने एक चिड़चिड़ाए हुए वृद्ध के समान कहा, मैं कृष्ण को नारायण मान लूँगा तो तुम्हें उससे क्या लाभ हो

जाएगा? संजय बोला, मुझे कोई लाभ नहीं होगा राजन्। किंतु संभव है कि आपको कोई लाभ हो जाए। आपका अहंकार विगलित हो, आपका लोभ कम हो जाए। आपके मन में यह बात आ जाए कि इस संसार में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है। इसीलिए हमें त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए। धन किसी का भी नहीं है। हमें उसका लोभ नहीं करना चाहिए।

धृतराष्ट्र ने कहा, तुमने लोभ किया होता तो तुम भी किसी राजवंश के प्रवर्तक होते संजय। अपने पीछे अपनी संतान के लिए तुम भी एक साम्राज्य छोड़ जाते। यह लोभ नहीं है, उपलब्धि है। उसे तुम नहीं समझ पाओगे?

संजन ने मन-ही-मन कहा, तुम भी इसे समझ नहीं पाओगे राजन्। ईश्वर की कृपा नहीं हुई है अभी तुम पर। अभी उसने तुम्हें सद्बुद्धि नहीं दी हैं। तुम्हें क्यों दिखाई नहीं देता कि जिसे तुम अपनी संतान के लिए साम्राज्य समझ रहे हो, वह उनकी मृत्यु ही नहीं, उनकी आत्मा के पतन का मूल कारण है।

दुर्योधन का सारा उत्साह भंग हो गया था। वह तो आज युद्ध को समाप्त करने पर ही तुला हुआ था। उसने विश्वास कर लिया था कि अर्जुन आज जयद्रथ का वध नहीं कर पाएगा और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चितारोहण कर मृत्यु को प्राप्त होगा। अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् पांडवों के लिए युद्ध का अर्थ ही क्या रह जाता।

सहसा वह चौंका वह अपनी इच्छा को प्रकृति का सत्य क्यों मान लेता है। वह चाहता है कि अर्जुन की मृत्यु हो जाए, तो क्या अर्जुन की मृत्यु हो जाएगी? वह चाहता है कि अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् उसके सारे भाई आत्महत्या कर लें, तो क्या वे आत्महत्या कर लेंगे? वह समझता है कि भीम उससे प्रतिशोध नहीं लेगा, आत्महत्या कर लेगा? वह आज समझ पाया था कि इस संसार में अर्जुन से बड़ा योद्धा कोई नहीं है। विराटनगर में गोहरण के समय अकेले अर्जुन ने जो किया था, वही उसने आज यहाँ भी संभव कर दिखाया। विराटनगर में तो कुछ ही महारथी थे, उनके पास इतनी बड़ी संख्या में सेनाएँ भी नहीं थीं। आज यहाँ उससे भी कहीं अधिक विकट युद्ध हुआ था। फिर भी दुर्योधन ने कैसे मान लिया था कि कर्ण अर्जुन को पराजित कर देगा? उसका वध कर देगा? या फिर उसे संध्या समय तक कहीं भी रोके रहेगा? कर्ण को तो आज भीम ने ही अनेक बार पराभूत कर दिया।

आचार्य का भी बहुत भरोसा था उसे। आचार्य को तो भीम उनके रथ सहित उठाकर, कहीं दूर फेंक आया था। सात्यकि भी लाँघ गया था आचार्य को। पर सच्चे अर्थों में तो दुर्योधन ने न कभी द्रोण का विश्वास किया था, न भीष्म का। उसका तो सारा बल कर्ण पर ही आश्रित था। जिसका भरोसा कर उसने शस्त्रास्त्रों का ऐसा संग्रह किया था, वही कर्ण पराजित हो गया। जिस कर्ण के पराक्रम का विश्वास कर उसने कृष्ण को भी तृण समान तुच्छ समझकर, न केवल उसके संधि प्रस्ताव को ठुकराया, उसको बंदी करने का भी प्रयत्न किया था, वही कर्ण पराजित हो गया। तो कर्ण की दिग्विजय का सत्य क्या है? कर्ण को दिग्विजयी मानकर ही तो दुर्योधन ने इस युद्ध की नींव रखी थी। क्यों स्मरण नहीं आया दुर्योधन को कि घोषयात्रा के अवसर पर भी युद्ध में पीठ दिखाकर सबसे पहले भागनेवाला योद्धा, कर्ण ही था। उस युद्ध में तो वह फिर लौटकर आया ही नहीं। दुर्योधन ने क्यों मान लिया कि पितामह से प्रतिस्पर्धा करनेवाला कर्ण उनके समान समर्थ योद्धा भी है। अर्जुन ने कभी पितामह का अपमान नहीं किया, युद्ध में भी नहीं; किंतु उसने शस्त्रबल में उन्हें पराजित किया। कर्ण ने केवल उद्दंडता की। अपना सामर्थ्य कभी प्रदर्शित नहीं किया।

और कोई मार्ग नहीं था। यदि द्रोण को त्याग देने पर अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसकी ओर से युद्ध करते तो वह द्रोण के पास कभी नहीं जाता। पर वैसा संभव नहीं है। दुर्योधन जानता है कि द्रोण की उपेक्षा की भनक भी पड़ जाए, तो अश्वत्थामा और कृपाचार्य एक किनारे होकर खड़े हो जाएँगे। अश्वत्थामा उसका मित्र अवश्य है किंतु वह अपने पिता का

न त्याग कर सकता है, न उनकी उपेक्षा सहन कर सकता है।

आचार्य द्रोण सोचने लगे, उनके भीतर कोई हँसा। क्या सीधा तर्क है... अन्न। और अन्न के स्थान पर रक्त ऐसा तर्क तो एक साधारण सैनिक भी नहीं करता... क्षत्रिय का तो व्यवसाय ही शस्त्र व्यवसाय है- वह भी लड़ता है तो न्याय के लिए लड़ता है। अपने देश के लिए, समाज के लिए, उनकी रक्षा के लिए, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ता है बिना सिद्धान्त के, बिना आदर्श के, मात्र वेतनभोगी सैनिक बहुत सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। वह तो भाड़े का सैनिक है।

और तुम तो ब्राह्मण हो द्रोण। शस्त्रव्यवसाय तुम्हारा व्यवसाय नहीं है। तुमने ज्ञान के रूप में शस्त्रविद्या सीखी थी। तुम आचार्य थे उस विद्या के। तुम गुरु के रूप में आए थे कुरुकुल में। पर तुम क्या हो यहाँ? गुरु? आचार्य? क्या हो? तुम इनमें से कुछ भी नहीं हो। तुम्हें पांडवों ने गुरु का सम्मान दिया हो, तो दिया हो, दुर्योधन ने तुम्हें न कभी गुरु का सम्मान दिया, न गुरु माना। उसने तुम्हें गुरु माना होता तो वह सच्चे मन से तुम्हारे चरणों में बैठकर तुमसे पूछता कि यह युद्ध छेड़ा जाए या नहीं? वह तुम्हें इस प्रकार आदेश देने का साहस नहीं करता। वह तुम्हें संबोधित चाहे गुरु कह कर करे, या अचार्य कहकर; किंतु तुम्हारे प्रति उसका व्यवहार और तुमसे उसकी अपेक्षाएं वैसी ही हैं, जैसी कोई अपने वेतनभोगी सेनापति से करता है। आदेश पर आदेश, और फिर बलात् कराई गई प्रतिज्ञाएँ। फिर उपालंभ, अविश्वास क्या है यह सब- मधुवेष्टित धमकियाँ, अपमान पदच्युत क्यों नहीं कर देता दुर्योधन उन्हें। सेनापति के काम से राजा संतुष्ट नहीं है तो उसे अधिकार है कि वह उनसे सेनापति के अधिकार छीन ले; और अपने विश्वास का, भरोसे का, सेनापति नियुक्त करे।

किसी जीव को सागर में उतार दिया जाए कि पी ले जितना जल पीना है। कितना जल पिएगा वह? पात्र अपनी क्षमता भर ही तो जल समेटेगा। और फिर जीव हो या पात्र। काल प्रवाहमें खाली हो जाएगा। जल वापस सागर में पहुँच जाएगा। अपने इस पचासी वर्ष के वय में क्या भोग पाये द्रोण? जब समय था, तब या तो उपलब्ध ही कुछ नहीं था या उन्होंने स्वयं को साधना के बंधनों में बाँध रखा था। प्रकृति कैसी लीला करती है मनुष्य के साथ। कुछ ऊँचा उठना है, कुछ बड़ा बनना है तो अपने आसपास के उपलब्ध सुखों की उपेक्षा कर, पहले स्वयं को वंचित कर, फिर आगे बढ़। स्वयं को वंचित नहीं करेगा तो आगे भी नहीं बढ़ेगा। और जब साधना का काल समाप्त हो जाए तो न भोग के लिए उपयुक्त वह रह जाता है, न मन:स्थिति। और महानता की मर्यादा? बड़प्पन के बंधन? वे कोई सुख भोग सहन नहीं करते ऋषि, स्त्री की कामना करे अथवा धन संपत्ति की, वह शासन की कामना करे या सत्ता की कितना हास्यास्पद हो जाता है वह। जहाँ, जब और जिस किसी भी स्थिति में जिसने भोग किया, उसका पतन आरंभ हो गया। पांडव वनों में मारे-मारे फिरते रहे उनकी आत्मा का मल कटता गया, उनकी साधना वर्द्धमान होती गई, उन्हें सिद्धियाँ मिलती गईं, उपलब्धियाँ होती गई। वह पांडवों का वंचना-काल था अथवा उपलब्धि-काल? और दुर्योधन अपने प्रासाद में बैठा सुख भोगता हुआ भी ईर्ष्या और द्वेष से जलता रहा, उसका मद और अहंकार बढ़ता गया, उसकी आत्मा कलुषित होती गई। उसके मन में राज्य छिन जाने का भय और पांडवों के लौट आने का त्रास तांडव करते रहे। क्या सुख भोगा होगा दुर्योधन ने? अपनी आत्मा, मन और हृदय में उसने मल का पहाड़ संचित कर लिया और फिर क्या पाया दुर्योधन ने? क्या उपलब्धि है उसकी? तो क्यों द्रोण छोड़ नहीं देते दुर्योधन को? क्यों वे बार-बार उससे अपमानित होकर भी उसके पाप में भागीदार हो रहे हैं? इस वय में अब सब कुछ अश्वत्थामा के लिए चाहते हैं? पर अश्वत्थामा तो स्वयं अपने लिए ही कर रहा है। वह अपना रक्त बहा रह है, शत्रुओं का संहार कर रहा है, दुर्योधन को विजय दिला रहा है। वह अपने ज्ञान, कला कौशल, श्रम, स्वामिभक्ति, मित्रता-सबका फल पाएगा। तो उसके लिए क्यों चिंतित हों द्रोण?

दुर्योधन आचर्य से बोला, पितामह ने स्वयं अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी उपेक्षा कर रहे हैं, क्योंकि आप अर्जुन से प्रेम करते हैं। ऐसे में किसके बल के भरोसे कोई हमारी सहायता करेगा। पांडवों के पक्ष का एक भी योद्धा हमारा कल्याण नहीं चाहता, किंतु हमारे सारे योद्धा या तो मन से पांडवों का कल्याण चाहते हैं, या फिर संशय में हैं। एक कर्ण ही है, जो सच्चे हृदय से मेरी विजय चाहता है।

भीष्म स्वेच्छा से शरशैया पर लेट गए हैं। जयद्रथ मारे गए। कर्ण पराजित हो गया। कहीं बैठा अपने अश्रुओं को सुरा में डुबो रहा होगा। दुर्योधन रुक गया और फिर उसने जैसे ब्रह्मास्त्र छोड़ा, आप पांडवों के गुरु हैं। अपने शिष्यों का अहित कभी नहीं चाहेंगे। तो फिर मेरे लिए विकल्प ही क्या? केवल आत्महत्या ही तो। आप जानते हैं कि मैं पांडवों से संधि नहीं कर सकता। द्रोण जैसे तड़पकर बोले, क्यों नहीं कर सकते संधि? न तो आप भीम को जानते है न पांचाली को। पांचाली पत्नी होते हुए भी पांडवों की प्रेयसी है। यह भी आपको बताना पड़ेगा क्या कि पत्नी, अपने पति की आज्ञा का पालन करती है; किंतु प्रेमी अपनी प्रेयसी की इच्छाओं का दास होता है।

अर्जुनने कहा- माधव। यह तो तुम्हारी ही कृपा है, जिससे मैंने प्रतिज्ञा पूरी की। तुम जिनके स्वामी हो- रक्षक हो, उनकी विजय होनेमें आश्चर्य ही क्या है? अर्जुनके ऐसा कहनेपर कृष्ण धीरे-धीरे घोड़ोंको हाँकते हुए चले और युद्धका वह दारुण दृश्य अर्जुनको दिखाने लगे। वे बोले- अर्जुन। जो लोग युद्धमें विजय और महान् सुयश पानेकी इच्छा कर रहे थे, वे ही हैं ये शूरवीर नरेश आज तुम्हारे बाणोंसे मरकर पृथ्वीपर सो रहे हैं। इनके शरीरका मर्मस्थान छिन्न-भिन्न हो गया है। ये बड़ी विकलता के साथ मृत्युको प्राप्त हुए हैं। यद्यपि इनकी देहमें प्राण नहीं है, तो भी बदनपर दमकती हुई दीप्तिके कारण ये जीवित-से दिखायी दे रहे हैं। साथ ही इनके नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र तथा वाहन यहाँ पड़े हुए हैं, जिनसे यह रणभूमि भर गयी है।

इस प्रकार संग्रामभूमिका दर्शन कराते हुए कृष्णने स्वजनोंके साथ अपना पाञ्चजन्य शफ बजाया। फिर अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके पास जा उन्हें प्रणाम करके कहा- महाराज। सौभाग्यकी बात है कि आपका शत्रु मारा गया; इसके लिये आपको बधाई है। आपके छोटे भाईने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की- यह बड़े हर्षका विषय है। यह सुनकर राजा युधिष्ठिर रथसे कूद पड़े और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको गले लगाकर मिले। उस समय वे आनन्दके उमड़ते हुए आँसुओंसे भिग रहे थे। वे बोले- कमलनयन श्रीकृष्ण। आपके मुखसे यह प्रिय समाचार सुनकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। वास्तवमें अर्जुनने यह अद्भुत काम किया है। सौभाग्यकी बात है कि आज मैं आप दोनों महारथियोंको प्रतिज्ञाके भारसे मुक्त देख रहा हूँ। यह बहुत अच्छा हुआ कि पापी जयद्रथ मारा गया। कृष्ण। आपके द्वारा सुरक्षित होकर पार्थने जो जयद्रथका वध किया है, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आप तो सदा सब प्रकारसे हमारे प्रिय और हितके साधनमें ही लगे रहते हैं। जनार्दन। जो काम देवताओंसे भी नहीं हो सकता था, उसे अजुर्नने आपके ही बुद्धि, बल और पराक्रमसे सम्पन्न किया है। यह चराचर जगत् आपकी ही कृपासे अपने-अपने वर्णाश्रमोचित मार्गमें स्थित हो जप-होमादि कर्मोंमें प्रवृत्त होता है। पहले यह सारा दृश्य-प्रपञ्च एकार्णवमें निमग्न-अन्धकारमय था, आपके अनुग्रहसे यह पुन: जगत्के रूपमें प्रकट हुआ है। आप सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेवाले अविनाशी परमेश्वर हैं, आप ही इन्द्रियोंके अधिष्ठाता है; जो आपका दर्शन पा जाते हैं, उन्हें कभी मोह नहीं होता। आप पुराण-पुरुष हैं, परम देव हैं; देवताओंके भी देवता, गुरु एवं सनातन हैं; जो लोग आपकी शरणमें जाते हैं, वे कभी मोहमें नहीं पड़ते। हृषीकेष। आप आदि-अन्तसे रहित, विश्वविधाता और अविकारी देवता है; जो आपके भक्त हैं; वे बड़े-बड़े संकटोंसे पार हो जाते हैं। आप परम पुरातन पुरुष हैं, परसे भी पर हैं, आप परमेश्वरकी शरण लेनेवाले भक्तको मुक्ति प्राप्त होती है। चारों वेद जिनका यश गान करते हैं, जो सभी वेदोंमें गाये जाते हैं, उन महात्मा श्रीकृष्णकी शरण लेकर मैं अनुपम कल्याण प्राप्त करूँगा। पुरुषोत्तम। आप

परमेश्वर हैं, ईश्वरोंके ईश्वर हैं; पशु-पक्षी तथा मनुष्योंके भी ईश्वर हैं। अधिक क्या कहें- जो सबके ईश्वर हैं, उनके भी आपही ईश्वर हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। माधव। आप ही सबकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण हैं, सबके आत्मा हैं। आपका अभ्युदय हो। आप धनञ्जयके मित्र, हितु और रक्षक हैं; आपकी शरणमें जानेसे मनुष्यकी सुखपूर्वक उन्नति होती है। प्राचीन महर्षि मार्कण्डेय आपके चरित्रोंको जाननेवाले हैं; उन्होंने कुछ दिन पहले आपके माहात्म्य और प्रभाव का वर्णन किया था। असित, देवल, महातपस्वी नारद और मेरे पितामह व्यासने भी आपकी महिमाका गायन किया है। आप तेज:स्वरूप, परब्रह्म, सत्य, महान् तप, कल्याणमय तथा जगत्के आदि कारण हैं। आपहीने इस स्थावन-जङ्गमरूप जगत्की सृष्टि की है। जगदीश्वर। जब प्रलयकाय उपस्थित होता है, उस समय यह आदि-अन्तसे रहित आप परमेश्वरमें ही लीन हो जाता है। वेदोंके विद्वान् आपको धाता, अजन्मा, अव्यक्त, भूतात्मा, महात्मा, अनन्त तथा विश्वतोमुख आदि नामोंसे पुकारते हैं। आपका रहस्य गूढ़ है, आप सबके आदि कारण और इस जगत्के स्वामी हैं। आप ही परम देव नारायण, परमात्मा और ईश्वर हैं। ज्ञानस्वरूप श्रीहरि और मुमुक्षुओंके आश्रयभूत विष्णु भी आप ही हैं। आपके तत्त्वको देवता भी नहीं जानते। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न आप परमात्माको हमने अपना सखा बनाया है।

युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर श्रीकृष्ण बोले- धर्मराज। आपकी उग्र तपस्या, परम धर्म, साधुता तथा सरलतासे ही पापी जयद्रथ मारा गया है। संसारमें शस्त्रज्ञान, बाहुबल, धैर्य, शीघ्रता तथा अमोघ बुद्धिमें कहीं कोई भी अर्जुनके समान नहीं है। इसीसे आपके छोटे भाईने रणभूमिमें शत्रुसेनाका संहार करके सिन्धुराजका मस्तक काट डाला है।

यह सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुनको गले लगाया और उनके बदनपर हाथ फेरकर गौरव बढ़ाते हुए कहा- अर्जुन। जिसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं कर सकते थे, वह काम आज तूने कर दिखाया है। सौभाग्यका विषय है कि इस समय तुम्हारे सिरका भार उतर गया, जयद्रथको मारकर तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। तदनन्तर, शूरवीर भीम और सात्यकिने भी धर्मराजको प्रणाम किया, उनके साथ पञ्चालदेशीय राजकुमार युधामन्यु और उत्तमौजा भी थे। उन दोनों वीरोंको हाथ जोड़कर खड़े हुए देख युधिष्ठिरने उनका अभिनन्दन किया। वे बोले- आज बड़े आनन्दकी बात है कि तुम दोनोंको मैं इस सैन्यरूपी सागरसे मुक्त देख रहा हूँ। तुम दोनों युद्धमें विजयी हुए। तुम्हारे मुकाबलेमें आकर द्रोणाचार्य और कृतवर्मा परास्त हो गये। अनेकों प्रकारके शस्त्रोंसे तुमने कर्णको हराया और राजा शल्यको भी मार भगाया। अब तुम्हें सकुशल देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। तुमलोग मेरी आज्ञाका पालन करते और मेरे प्रति गौरवके बन्धनमें बँधे रहते हो। संग्राममें तुम्हारी कभी हार नहीं होती, तुम दोनों बिल्कुल मेरे कहनेके अनुरूप हो। सौभाग्यसे ही आज तुम्हें जीते-जागते देख रहा हूँ। राजन्। उस समय पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना आनन्दमग्न हो गयी, फिर उसने बड़े उत्साहके साथ युद्धमें मन लगाया।

जयद्रथके मारे जानेपर आपका पुत्र दुर्योधन आँसू बहाने लगा, उसकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी; अब शत्रुओंपर विजय पानेका उसका सारा उत्साह जाता रहा। अर्जुन, भीम और सात्यकिने कौरव-सेनाका बड़ा भारी संहार कर डाला है- यह देखकर उसका चेहरा उदास हो गया, आँखें भर आयीं। वह सोचने लगा- इस पृथ्वीपर अर्जुनके समान कोई योद्धा नहीं है। जब अर्जुनको क्रोध चढ़ आता है, उस समय उनके सामने द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वथामा और कृपाचार्य भी नहीं ठहर पाते। कलके युद्धमें उसने हमारे सभी महारथियोंको हराकर सिन्धुराजका वध किया, किंतु कोई भी उसे रोक न सका। हाय। हमारी इतनी बड़ी सेनाको पाण्डवोंने हर तरहसे नष्ट कर डाला। जिसके भरोसे हमने युद्धके लिये अस्त्र-शस्त्रोंकी तैयारी की, जिसके पराक्रमका आश्रय ले संधिका प्रस्ताव करनेवाले श्रीकृष्णको तिनकेके समान समझा, उस कर्णको भी अर्जुनने युद्धमें परास्त कर दिया।

दुर्योधन ने हाथ जोड़कर आचार्य को प्रणाम किया। उसने उनके चरणों का स्पर्श नहीं किया।

कैसे हैं आचार्य ? द्रोण ने कहा, एक भयानक पराजय की असफलता को झेलता हुआ सेनापति कैसा हो सकता है राजन्। दुर्योधन बोला, शिखंडी भी उत्साह से भरकर युद्ध के मुख पर खड़ा है। शिखंडी। जो पूरा पुरुष भी नहीं है। और हम सब वीर पुरुष अपने चेहरे लटकाए हुए भयभीत मूषक के समान अपनी बिलों में छिपे बैठे हैं। आप जानते हैं कि जो लोग मेरी सहायता करना चाहते हैं, वे भी क्यों सहायता कर नहीं पाते? हताश आचार्य ने अवसादपूर्ण दृष्टि उस पर डाली, क्यों? दुर्योधन बोला, वे स्वयं को अरक्षित मानते हैं। वे भयभीत हैं। यदि हम उनमें सुरक्षा का भाव जगा सकते तो वे हमारी सहायता को आते, किंतु हम। दुर्योधन का स्वर बहुत कातर था, आचार्य। यदि आपने भरोसा न दिलाया होता तो मैं यह युद्ध कदापि आरंभ न करता। आपको पांडव इतने ही प्यारे थे तो मुझे भ्रम में क्यों रखा?

द्रोण ने दुर्योधन को देखा अपने जीवन को गँवा कर पाया गया अपना सत्य वे इसे कैसे समझाएँ कि स्वार्थी व्यक्ति मूर्ख होता है, वह अपना हित अनहित कुछ नहीं समझता। जिसे अपना लाभ मानकर वह दुराग्रहपूर्वक लपकता है, अंतत: वह उसकी हानि ही करता है; किंतु विवेकशून्य, चिंतनविहीन मूर्ख यह कैसे समझ सकता है कि लाभ और हानि किसे कहते हैं। कीचड़ में बिलबिलाता कीट स्वच्छता को श्रेष्ठ कैसे मान सकता है। और दुर्योधन तो स्वार्थी ही नहीं हठी भी है। क्या यह मूर्ख समझ सकता है कि द्रोणाचार्य झूठ नहीं बोल रहे, वे अपने दायित्व में प्रमाद नहीं कर रहे, वे किसी को धोखा नहीं दे रहे। वे धर्मपूर्वक युद्ध कर रहे हैं। आचार्य बोले, तुम विश्वास कर सको तो कहूँ कि मैं अपनी क्षमता भर पूरी निष्ठा से युद्ध कर रहा हूँ। किंतु तुम्हारे अपने मन का कपट तुम्हें मेरा विश्वास करने नहीं देगा। तुम्हारा अपना आचरण सत्य वचन और सत्य कर्म से परिचालित नहीं होता, इसलिए तुम समझते हो कि अन्य लोग भी तुमसे झूठ बोल रहे हैं। उन्होंने रुककर उसे देखा, अब तुम जाओ। मैं पांडवों की प्रभावकारी हानि किए बिना आज अपना कवच नहीं उतारूँगा।

राजन्। आपके पुत्रकी कही हुई बातें सुनकर आचार्य द्रोण मन-ही-मन दुखी हुए। वे थोड़ी देरतक चुपचाप कुछ सोचते रहे, फिर अत्यन्त व्यथित होकर बोले- दुर्योधन। तू क्यों इस प्रकार अपने वाग्बाणोंसे मुझे छेद रहा है। मैं तो सदा ही तुझसे कहता आया हूँ कि अर्जुनको युद्धमें जीतना असम्भव है। जिन भीष्मपितामहको हमलोग त्रिभुवनका सर्वश्रेष्ठ वीर समझते थे, वे भी जब मारे गये तो औरोंसे क्या आशा रक्खे? तूने जब जूआ खेलना आरम्भ किया था, उस समय विदुरने कहा था- पुत्र दुर्योधन। इस कौरव-सभामें शकुनि जो ये पासे फेंक रहा है, इन्हें पासा न समझो; ये एक दिन तीखे बाण बन जायँगे। वे ही पासे अब अर्जुनके हाथसे बाण बनकर हमें मार रहे हैं। उस दिन विदुरकी बात तेरी समझमें नहीं आयी। विदुर धीर है, महात्मा पुरुष हैं; उन्होंने तेरे कल्याणके लिये अच्छी बातें कही थीं, किंतु तूने विजयके उल्लासमें अनसुनी कर दीं। आज जो यह भयंकर संहार मचा हुआ है, वह उनके वचनोंके अनादरका ही फल है। जो मूर्ख अपने हितैषी मित्रोंके हितकर वचनकी अवहेलना करके मनमाना बर्ताव करता है, वह थोड़े ही समयमें शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है। यही नहीं, तूने एक और बड़ा भारी अन्याय किया कि हमलोगोंके सामने द्रौपदीको सभामें बुलाकर अपमानित किया। वह उच्च कुलमें उत्पन्न हुई है, सब प्रकारके धर्मोंका पालन करती है; वह इस अपमानके योग्य नहीं थी। गान्धारीनन्दन। उस पापका ही यह महान् फल प्राप्त हुआ है। यदि यहाँ यह फल नहीं मिलता, तो परलोकमें तुझे इससे भी अधिक दण्ड भोगना पड़ता। पाण्डव मेरे पुत्रके समान हैं, वे सदा धर्मका आचरण करते रहते हैं; मेरे सिवा दूसरा कौन मनुष्य है, जो ब्राह्मण कहलाकर भी उनसे द्रोह करे? दुर्योधन। तू तो नहीं मर गया था; कर्ण, कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा- ये सब तो जीवित थे; फिर सिन्धुराजकी मृत्यु क्यों हुई? तुम सबने मिलकर उसे क्यों नहीं बचा लिया? राजा जयद्रथ विशेषत: मुझपर और तुझपर ही अपनी जीवन-रक्षाका भरोसा किये बैठा था; तो भी जब अर्जुनके हाथसे उसकी रक्षा न की जा सकी, तो तुझे अब अपने

जीवनकी रक्षाका भी कोई स्थान नहीं दिखायी देता। जहाँ बड़े-बड़े महारथियोंके बीच सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा मारे गये, वहाँ तू किसके बचनेकी आशा करता है? जिन्हें इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता भी नहीं मार सकते थे उन भीष्मको जबसे मृत्युके मुखमें पड़ा देखा है, तबसे यही सोचता हूँ कि अब यह पृथ्वी तेरी नहीं रह सकती। यह देखो, पाण्डवों और सृञ्जयोंकी सेनाएँ एक साथ मिलकर मुझपर चढ़ी आ रही हैं। दुर्योधन। अब मैं पाञ्चाल राजाओंको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा। आज युद्धमें वही कर्म करूँगा, जिससे तेरा हित हो। मेरे पुत्र अश्वत्थामासे जाकर कहना कि वह युद्धमें अपने जीवनकी रक्षा करते हुए जैसे भी हो सोमकोंका संहार करे, उन्हें जीवित न छोड़े। दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणोंमें स्थित रहे; धर्मप्रधान कर्मोंका ही बारंबार अनुष्ठान करे। ब्राह्मणोंको संतुष्ट रक्खे। अपनी शक्तिके अनुसार उनका सत्कार करे, अपमान कभी न करे; क्योंकि वे अग्निकी लपटके समान तेजस्वी होते हैं। राजन्। अब मैं महासंग्रामके लिये शत्रुसेनामें प्रवेश करता हूँ। तुझे शक्ति हो तो सेनाकी रक्षा करना; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए कौरव तथा सृञ्जयोंका आज रात्रिमें भी युद्ध होगा। ऐसा कहकर आचार्य द्रोण पाण्डव तथा सृञ्जयोंसे युद्ध करनेके लिये चल दिये।

दुर्योधन बोला, कृपाचार्य भी आज के युद्ध में क्षतविक्षत हो गए हैं। पता नहीं जीवित भी बच पाएँगे या नहीं। वैद्यों और शल्यचिकित्सकों ने अभी ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया है। यदि जीवित बचेंगे तो जाने कब तक उनका उपचार होगा और कब वे युद्ध में लौट पाएँगे। ऐसे में मेरी ओर से युद्ध करनेवाला है ही कौन। भीम की लात खाने से तो अच्छा है कि मैं अपने प्राण दे दूँ। मैं मर जाऊँ तो आप भी सुविधा से पांडवों के पक्ष में जा सकते हैं, जैसे युयुत्सु गया है।

द्रोण बोले, ऐसे क्रूर वचनों से मुझे आहत क्यों कर रहे हो तुम। मैंने और भीष्म ने सदा यही कहा है कि अर्जुन अजेय है। उसके द्वारा सुरक्षित होकर शिखंडी भी भीष्म को धराशायी कर सकता है। द्रोण ने रुककर एक दृष्टि दुर्योधन पर डाली, तुम्हें अपने पापों का फल मिलना ही था। यहाँ नहीं मिलता तो परलोक में इससे भी कठोर होकर मिलता।

दुर्योधन का दर्प प्रकट हुआ, अर्जुन आपको कैसे लाँघ गया। वह किसके पापों का फल था?

द्रोण बोले, तुमने अपने सर्वश्रेष्ठ महारथियों के साथ अर्जुन को घेर लिया था, तो फिर पराजित कैसे हो गए- मेरे पापों के कारण? द्रोण तड़प उठे, तुम्हारे अपने बनाए अवरोध के भीतर से तुम्हारा आश्रित जयद्रथ कैसे मारा गया- मेरे पापों के कारण? मुझे अपने पापों ने मृतप्राय कर दिया था, किंतु तुम और कर्ण तो नहीं मर गए थे। शल्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तो जीवित थे। तो कैसे मारा गया सिंधुराज? जयद्रथ की रक्षा में असमर्थ रहे तुम और वाग्बाण मुझे मार रहे हो। मैं स्वयं कम संतप्त हूँ क्या?

दुर्योधन बोला, मैं जानता हूँ कि आप संतप्त हैं आचार्य। किंतु उसका प्रतिकार करने के लिए उद्यम भी तो आप ही को करना होगा। आप कुछ नहीं करेंगे तो पांडव मुझे मार डालेंगे और पांचाल आपको। उसने द्रोण की ओर देखा, मैंने सेनापति के रूप में आपका अभिषेक किस प्रयोजन से किया था?

द्रोण बोले, तुम युद्ध की कठोरता को अभी क्या जानते हो। जाकर कृपाचार्य से पूछो, जिन्होंने तुम्हारे लिए घाव खाए हैं। यदि वे जीवित हैं और जयद्रथ के मार्ग पर नहीं चले गए हैं तो मैं उनका अभिनन्दन करना चाहूँगा। उतने बाण तुमको लगे होते तो तुम कब के जाकर अपने रंगमहल में सो गए होते।

दुर्योधन बोला, आप स्वयं को ब्राह्मण कहते हैं। कितनी बार वचन दिया कि आप युधिष्ठिर को बंदी कर लाएँगे? किया बंदी युधिष्ठिर को? आप कौरव सेनाओं के संचालक हैं। आप उनके सेनापति हैं, पर क्या किया आपने? हमने तीन-तीन दिन तक अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर रखा, किंतु युधिष्ठिर को बंदी किया आपने? मुझे मेरे क्षत्रियत्व की लाज स्मरण करा रहे

हैं, सेनापति के रूप में आपने ही क्या कर दिखाया है? कुछ कहते क्यों नहीं?

द्रोण बोले, वह वचन मेरा नहीं था। तुमने बलात् मुझसे वचन उगलवाया था। अब मैं तुम्हें अपने मन से वचन देता हूँ। सारे पांचालों को मारे बिना मैं अपना कवच नहीं उतारूँगा। अश्वत्थामा से कहना कि युद्ध में अपनी रक्षा करते हुए, जैसे भी हो, सोमकों को जीवित न छोड़े। मैंने पिता के रूप में उसे जो उपदेश दिया है, उसका पालन करे। दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणों में स्थिर रहे। उन्होंने स्थिर दृष्टि से दुर्योधन की ओर देखा, तुममें साहस और सामर्थ्य हो तो तुम सेना की रक्षा करना। मैं निर्णायक युद्ध के लिए जा रहा हूँ। आज रात्रि हो जानेपर भी युद्ध बंद नहीं होगा। आज रात्रि में भी क्रुद्ध कौरव और सृंजय युद्ध करेंगे। जो तुमसे हो सके, तुम करो और जो तुम्हारा मित्र कर्ण कर सके, वह कर ले।

६) चौदहवें दिन का रात्रि युद्ध

१) अश्वत्थामा और घटोत्कच का युद्ध- १४ वे दिन का युद्ध अन्य दिनों के युद्ध से जरा अलग है। युद्ध के नियम तो आज से पहिले भी तोडे गये जिसकी सबसे साफ मिशाल एक ओर भीष्म की शैया है और दूसरी ओर अभिमन्यु का वध जिसे सात महारथियों ने घेर कर मार दिया किन्तु आज जो हुआ वो आनेवाले दिनों की बात बताता है कि शायद इस युद्ध के समाप्त होते होते कोई नियम टूटने से नहीं बचेगा। अभी तक एक आध योद्धा कोई नियम तोड रहा था लेकिन आज दोनों सेनाओं के हर योद्धा और हर सैनिक ने सूर्यास्त का आदर नहीं किया और सूर्यास्त के बाद भी लडाई चलती रही, जयद्रथ के वध के बाद भी सूरज डूबा किन्तु युद्ध की समाप्ति का शंख नहीं बजा। मशाले जल उठी तभी ऐसा कुछ तूफान सा आया कि कौरव सेना में अचानक ही भगदड मच गई। सबने मशालों की रोशनी में देखा एक पहाडनुमा विशाल दैत्य काय व्यक्ति खड़ा है और सबकी सांस जैसे उसे देखकर रूक गई। वो था भीम और हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच, अभी अभी युद्ध भूमि में आया था।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। जब अर्जुनने जयद्रथको मार डाला, उस समय मेरे पक्षवाले योद्धाओंने क्या किया?

सञ्जयने कहा- भारत। सिन्धुराजको युद्धमें अर्जुनके हाथसे मारा गया देख कृपाचार्यने क्रोधमें भरकर उनपर बड़ी भारी बाणवर्षा आरम्भ की। दूसरी ओरसे अश्वत्थामाने भी आक्रमण किया। फिर दोनों दो ओरसे अर्जुनपर तीखे बाणोंकी वर्षा करने लगे। इससे अर्जुनको बड़ी व्यथा हुई। कृपाचार्य गुरु थे और अश्वत्थामा गुरुपुत्र, अत: अर्जुन उन दोनोंके प्राण नहीं लेना चाहते थे; इसीलिये वे धीरे-धीरे उनपर बाण छोड़ रहे थे, तो भी इनके छोड़े हुए बाण उन्हें विशेष चोट पहुँचाते थे। अधिक बाण लगनेके कारण उन दोनोंको बड़ी वेदना हुई। कृपाचार्य तो रथके पिछले भागमें बैठ गये और उन्हें मूर्च्छा आ गयी। यह देख सारथी उन्हें रणभूमिसे बाहर ले गया। उनके हटते ही अश्वत्थामा भी वहाँसे भाग गया। कृपाचार्यको अपने बाणोंकी पीड़ासे मूर्छित देख अर्जुनको बड़ी दया आयी; उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी, वे बहुत दीन होकर रथपर बैठे-ही-बैठे इस प्रकार विलाप करने लगे- पापी दुर्योधनके जन्म लेते ही महाबुद्धिमान् विदुरने राजा धृतराष्ट्रसे कहा था कि यह बालक अपने वंशका नाश करनेवाला है; इसे मृत्युके हवाले कर दिया जाय, तभी कुशल है। इससे कुरुवंशके प्रमुख महारथियोंको महान् भय प्राप्त होगा। उन सत्यवादी महात्माकी कही हुई बात आज प्रत्यक्ष दिखायी दे रही है। दुर्योधनके ही कारण आज मैं अपने गुरुको बाणशय्यापर सोते देख रहा हूँ। क्षत्रियोंके ऐसे आचार और बल-पौरुषको धिक्कार है। मेरे-जैसा कौन मनुष्य ब्राह्मण-आचार्यसे द्रोह करेगा? शरद्वान् ऋषिके पुत्र, मेरे आचार्य और द्रोणके परम सखा ये कृप आज मेरे ही बाणोंसे पीड़ित होकर रथकी बैठकमें पडे हैं। इच्छा न रहते हुए भी मैंने इन्हें बाणोंसे बहुत घायल कर दिया। अब इन्हें दु:ख पाते देख मेरे प्राणोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। पहलेकी बात है, एक दिन अस्त्रविद्याकी शिक्षा देते हुए आचार्य कृपने मुझसे कहा था-

कुरुनन्दन। शिष्यको गुरुपर किसी तरह प्रहार नहीं करना चाहिये। उन साधु, महात्मा एवं आचार्यके इस आदेशका मैंने आज युद्धमें पालन नहीं किया। गोविन्द। मुझे धिक्कार है कि इनपर भी बारंबार हाथ उठाता हूँ।

दुर्योधन कर्ण के शिबिर में गया। कर्ण ने कहा, आओ मित्र। कुछ खिन्न लग रहे हो। दुर्योधन कुछ मुखर हुआ और बोला, खिन्नता का कोई कारण नहीं है क्या? जयद्रथ का मारा जाना, एक प्रकार से हम सबके लिए पराजय का पूर्व संकेत है। कर्ण बोला, नहीं। ऐसा तो कुछ नहीं है। एक से एक बड़ा योद्धा मारा जाता है, युद्ध में। उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह राजा भी हार जाएगा और सेना भी नष्ट होगी। हमने तो भीष्म के मरने पर भी यह स्वीकार नहीं किया कि दुर्योधन की पराजय होगी। दुर्योधन को आश्चर्य हुआ, कर्ण हताश नहीं लग रहा था। जयद्रथ के वध से वह वैसा दुखी भी नहीं था। तो फिर दुर्योधन ही इतना विचलित क्यों था?

दुर्योधन बोला, ठीक है वह सब। पर मैं आचार्य की नीति से दुखी हूं। मैं वर्षों से उनका और उनके परिवार का पालन-पोषण इसलिए तो नहीं कर रहा था कि युद्ध की स्थिति में वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करें। कर्ण ने कुछ विनोदी ढंग से पूछा, ऐसा क्या कर दिया आचार्य ने? आज तो उनके श्यालक कृपाचार्य ने तुम्हारे लिए बहुत रक्त बहाया है।

दुर्योधन बोला, यदि द्रोण अपनी पूरी क्षमता से अर्जुन को रोकने का प्रयत्न करते तो वह उनके दुर्भेद्य व्यूह को कैसे तोड़ सकता था। नहीं। सत्य यह है कि अर्जुन उनका प्रिय शिष्य है और उन्होंने युद्ध किए बिना ही उसे सेना में घुसने का मार्ग दे दिया। दुर्योधन अपने आवेश में बोला, इतना ही नहीं। कल जयद्रथ सिंधुदेश लौट रहा था, इस ब्राह्मण ने उसे रक्षा का आश्वासन देकर रोक लिया और आज उसे मरवा डाला। कर्ण ने कहा, आचार्य की निन्दा मत करो। वह ब्राह्मण तो अपने बल, शक्ति और उत्साह के अनुसार अपने प्राणों का भी मोह छोड़कर युद्ध करता है। दुर्योधन समझ रहा था कि कर्ण की सहानुभूति में भी आचार्य का तिरस्कार था। पर आज उसके स्वर में पांडवों की प्रशंसा का भाव भी था।

दुर्योधन बोला, युद्ध तो हम भी जी जान से कर रहे हैं, पर हमें निराशा ही क्यों हाथ लग रही है? दुर्योधन समझ नहीं पाया कि यह प्रश्न उसने कर्ण से पूछा है अथवा यह उसका वाचिक चिंतन मात्र था। कर्ण की मुद्रा कुछ दार्शनिक हो गई थी। अपना ही पूर्वकृत कर्म भाग्य बनकर हमारे सामने खड़ा हो जाता है। हमारे कर्म, छल, कपट और पराक्रम को दैव पीछे धकेल रहा है। दुर्योधन से जैसे यह कर्ण पहचाना ही नहीं जा रहा था। यह तो कोई और ही हो गया लगता था। आज क्या हो गया था उसको? वह दुर्योधन का कहीं भी समर्थन करने को तैयार नहीं दीखता था। दुर्योधन ने तो द्रोण के पांडवों से मिल जाने की संभावना की चर्चा की थी। पर कर्ण वह आज दिन भर भीम और अर्जुन से पिटा था। उसके शरीर पर अनेक घाव लगे थे। वह बार-बार पराजित और अपमानित हुआ था। फिर, जिस जयद्रथ की रक्षा के लिए वह युद्ध कर रहा था, वह जयद्रथ भी मारा गया। उस पर भी यह न तो दुखी दिख रहा था, न ही इस समय उसका रक्त क्रोध से खौल रहा था। यह तो कर्ण के व्यवहार के अनुकूल नहीं था। पांडवों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष से कंठ तक भरा हुआ कर्ण आज द्रोण का बचाव कर रहा था, पांडवों की वीरता की प्रशंसा कर रहा था; और अपने ही कृत्यों को छल, कपट और पाप बता रहा था। अवश्य ही कहीं कोई बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ।

आचार्यकी प्रेरणा पाकर दुर्योधनने भी युद्ध करनेका ही निश्चय किया। उसने कर्णसे कहा- देखो, श्रीकृष्णकी सहायतासे अर्जुनने द्रोणाचार्यका व्यूह भेदकर सब योद्धाओंके सामने ही सिन्धुराजका वध किया है। मेरी अधिकांश सेना अर्जुनके हाथों नष्ट हो गयी, अब थोड़ी-सी ही बची है। यदि इस युद्धमें आचार्य द्रोण अर्जुनको रोकनेकी पूरी कोशिश करते, तो वे लाख प्रयत्न करनेपर भी उस दुर्भेद्य व्यूहको नहीं तोड़ सकते थे। किंतु वे तो द्रोणके परम प्रिय हैं, तभी तो आचार्यने

जयद्रथको अभयदान देकर भी अर्जुनको व्यूहमें घुसनेका मार्ग दे दिया। यदि उन्होंने पहले ही सिन्धुराजको घर जानेकी आज्ञा दे दी होती, तो अवश्य ही मनुष्योंका इतना बड़ा संहार नहीं होने पाता। मित्र। जयद्रथ अपनी जीवनरक्षाके लिये घर जानेको तैयार था; किंतु मुझ अधमने ही द्रोणसे अभय पाकर उसे रोक लिया। आजके युद्धमें चित्रसेन आदि मेरे भाई भी हमलोगोंके देखते-देखते भीमके हाथसे मारे गये।

कर्णने कहा- भाई। तुम आचार्यकी निन्दा न करो; वे तो अपने बल, शक्ति और उत्साहके अनुसार प्राणोंकी भी परवा न करके युद्ध करते ही हैं। अर्जुन द्रोणका उल्लंघन करके सेनामें घुस गये थे, इसलिये इसमें उनका कोई दोष मैं नहीं देखता। मैंने भी उस रणाङ्गणमें तुम्हारे साथ रहकर बहुत प्रयत्न किया, तथापि सिन्धुराज मारा गया; इसलिये इसमें प्रारब्धको ही प्रधान समझो। मनुष्यको उद्योगशील होकर सदा नि:शमभावसे अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये, सिद्धि तो दैवके ही अधीन है। हमलोगोंने कपट करके पाण्डवोंको छला, उन्हें मारने को विष दिया, लाक्षागृहमें जलाया, जूएमें हराया और राजनीतिका सहारा लेकर उन्हें वनमें भी भेजा। इस प्रकार प्रयत्न करके हमने उनके प्रतिकूल जो कुछ किया, उसे प्रारब्धने व्यर्थ कर दिया। फिर भी दैवको निरर्थक समझकर तुम प्रयत्नपूर्वक युद्ध ही करते रहो।

राजन्। इस प्रकार कर्ण और दुर्योधन बहुत-सी बातें कर रहे थे, इतनेहीमें रणभूमिमें उन्हें पाण्डवोंकी सेना दिखायी दी। फिर तो आपके पुत्रोंका शत्रुओंके साथ घमासान युद्ध छिड़ गया।

दुर्योधन कर्ण के शिबिर से बाहर निकल आया। उसका विषाद बढ़ता जा रहा था। द्रोण के सम्मुख तो उसने अपने मन की भड़ास ही निकाली थी। वह उनको कुछ भी करने में असमर्थ मान चुका था। पर आज तो उसे कर्ण से भी कोई सहारा नहीं मिला था। उसका अहंकार इस प्रकार आहत और अपमानित होकर नहीं जा सकता था। उसका अवसन्न मन इस समय या तो युधिष्ठिर का मस्तक काट लेना चाहता था या फिर अपने ही प्राण दे देना चाहता था। यह युद्ध बंद ही क्यों हुआ। अंधकार हो गया तो क्या? संसार तो नष्ट नहीं हो गया, न ही कौरवों की सेना समाप्त हो चुकी है। और यदि ऐसा हो भी जाए तो दुर्योधन क्या पांडवों की विजय को स्वीकार कर चुपचाप अपने शिबिर में लौट जाएगा। उससे पहले ही आत्महत्या कर लेगा। दुर्योधन अपना रथ दौड़ाता हुआ कलिंग राजकुमार के शिबिर में पहुँचा।

दुर्योधन ने कलिंग राजकुमार से पूछा। तुम अपने पिता की मृत्यु से दुखी हो? राजकुमार ने कहा, बहुत दुखी हूँ। प्रतिशोध की ज्वाला से जल रहा हूँ। तो अपनी गजसेना लेकर अभी, इसी समय पांडवों की सेना पर आक्रमण कर दो। कलिंग राजकुमार ने आश्चर्य से पूछा, अभी? अंधकार हो चुका है। सूर्यास्त के पश्चात् युद्ध करना आर्य मर्यादा के अनुकूल नहीं है। दुर्योधन बोला, नहीं। जय उसकी होती है, जो अपने शत्रुओं को मार डालता है। उससे कोई पूछने नहीं आता कि उसने अपने शत्रुओं को कैसे मारा। मुझे मर्यादा नहीं, विजय चाहिए। तुम्हें अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेना है तो आक्रमण करो। पांडवों की सेना अभी युद्धक्षेत्र से हटी नहीं है। यदि हट गई होती तो हम उनके स्कंधावार पर आक्रमण करते। चकित मत होओ। आचार्य द्रोण भी या तो कहीं युद्ध कर रहे होंगे अथवा अभी युद्ध करने आ जाएँगे। महावीर कर्ण भी आता ही होगा। और मैं तो पांडव सेना में प्रवेश करने ही वाला हूँ, चाहे मेरी मृत्यु ही क्यों न हो जाए। मुझे पराजित जीवन नहीं चाहिए। वह मुड़ा और सहसा रूककर बोला, युद्ध के नियमों का पालन वहीं तक करो, जहाँ तक वे तुम्हें विजय दिला सकते हैं। युद्ध का एक ही नियम है विजय।

इधर कलिङ्गराजका पुत्र अपनी सेनाके साथ भीमपर टूट पड़ा। भीमने पहले उसके पिता कलिङ्गराजको मार डाला था, इससे उनके ऊपर उस राजकुमारका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था। उसने भीमको बाणोंसे घायल करके बींध डाला। इसके

बाद उनके सारथी विशोकको भी बाण मारकर एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा काट डाली। तब तो भीमके क्रोधकी सीमा न रही, वे अपने रथसे कूदकर उसीके रथपर चढ़ गये और उस क्रोधमें भरे हुए कलिङ्गवीरको बड़े जोरसे मुक्का मारा। पाण्डुनन्दन भीम अत्यन्त बली थे, उनके मुक्केकी चोटसे उसकी हड्डी-हड्डी छितरा गयी। उसकी वह दुर्गति कर्ण तथा उसके भाइयोंसे नहीं सही गयी, उन्होंने जहरीले साँपकी तरह बाणोंसे भीमको बींधना आरम्भ किया। तब भीम उसके रथको छोड़कर ध्रुवके रथपर चढ़ गये। ध्रुव भी निरन्तर उनकी ओर बाण चला रहा था; महाबली भीमने उसको भी मुक्केसे मार डाला। फिर वे जयरातके रथपर चढ़े और सिंहनाद करके उसे बायें हाथसे एक चाँटा लगाया। इस प्रकार कर्णके सामने ही उन्होंने उसे भी मार डाला। तब कर्णने भीमपर एक सुवर्णमयी शक्तिका प्रहार किया; किंतु भीमने हँसते-हँसते उसे हाथमें पकड़ लिया और फिर उसीको कर्णपर दे मारा। कर्णकी ओर आती हुई उस शक्ति को शकुनिने बाणसे काट गिराया। इस प्रकार अद्भुत पराक्रमी भीमने युद्धमें यह महान् पुरुषार्थ करके पुन: अपने रथपर आरूढ़ हो आपकी सेनापर धावा किया। क्रोधमें भरे हुए यमराजकी भाँति भीमको आते देख आपके पुत्रोंने बाण मारकर आगे बढ़नेसे रोक दिया और बाणवर्षासे उन्हें आच्छादित कर दिया। यह देख भीमने अपने बाणोंसे दुर्मदके सारथी और घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया। दुर्मद दुष्कर्णके रथपर जा चढ़ा। अब एक ही रथपर बैठे हुए दोनों भाइयोंने भीमपर धावा किया और उन्हें बाणोंसे बींधने लगे।

भीम ने अपने सारथी विशोक से घटोत्कच के पास ले चलने को कहा। घटोत्कच इस समय अपने पुत्र अंजनपर्व सहित रणभूमि के दूसरे छोर पर पश्चिम की ओर कौरव-सेना से युद्ध कर रहा था। भीम का सारथी बड़ी चपलता से अपना रथ उसके पास ले गया। भीम अपने रथ से उतरकर उस महारथी के राक्षसी रथ पर आरूढ़ हुआ।

जटासुर का पुत्र अलम्बुष उसके पास आकर बोला- दुर्योधन। यदि तुम आज्ञा दो तो मैं तुम्हारे प्रसिद्ध शत्रुओंको उनके अनुगामियोंसहित मार डालना चाहता हूँ। मेरे पिताका नाम था जटासुर। वे समस्त राक्षसोंके नेता थे। अभी कुछ ही दिन हुए, इन नीच पाण्डवोंने उन्हें मार डाला है। मैं इसका बदला चुकाना चाहता हूँ। तुम इस कामके लिये मुझे आज्ञा दो।

तभी जटासुर का पुत्र अलंबुश दुर्योधन के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। अलंबुश। जाने इतने सारे अलंबुश उसी की सेना में क्यों एकत्रित हो गए हैं- उसने सोचा- पहला अलंबुश, राक्षस ऋष्यश्रृंग का पुत्र था। उसे घटोत्कच ने ही मारा था। दूसरा क्षत्रिय राजा अलंबुश, जिसका वध सात्यकि के हाथों हुआ था। तीसरा अलंबुश अर्जुन से पराजित होकर भाग गया था। और जटासुर का पुत्र यह चौथा अलंबुश है। युद्ध के आरंभ में जब वह दुर्योधन से मिलने आया था, उसने बताया था कि मध्यम पांडव भीम ने उसके पिता जटासुर का वध किया था। वह भीम से अपने पिता का प्रतिशोध लेने आया था। वही अलंबुश आज फिर आकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया था।

अलम्बुष राक्षस बोला, यह रात्रि युद्ध है युवराज। इसमें हम राक्षसों की विशेष गति होती है। आपकी अनुमति हो तो मैं भीम से अपना ऋण वसूल कर लूँ। दुर्योधन के मन में तत्काल एक योजना बनने लगी थी। फिर भी बोला, प्रधान सेनापति के पास क्यों नहीं गए? अलम्बुष बोला, आपके लिए वे प्रधान सेनापति हैं, हमारे लिए तो वे पांडवों के गुरु हैं। वैसे भी युवराज। धर्म का प्रचार करनेवाले त्यागी तपस्वियों और जीवन का भरपूर भोग करनेवाले राक्षसों में कभी अनुकूलता नहीं हो सकती। हम इसे आपका युद्ध मानकर लड़ने आए हैं। आचार्य से हमें क्या लेना-देना।

दुर्योधन उसे देखता रहा और बोला, ठीक कह रहा है, आचार्य से इसे क्या लेना-देना। तुम भीम से प्रतिशोध चाहते हो? अलम्बुष बोला, हाँ युवराज। दुर्योधन बोला, भीम को तो मैं, कर्ण और द्रोण ही मिलकर मार डालेंगे। तुम इस घटोत्कच को सँभालो, जो सदा पांडवों के हित में तत्पर रहता है। वैसे भी भीम मरेगा तो घटोत्कच और प्रचंड हो जाएगा। घटोत्कच के

मारे जाने से भीम पुत्रशोक में ही मर जाएगा। एक के वध से दोनों से ही मुक्ति मिल जाएगी। तुम्हारा प्रतिशोध पूरा हो जाएगा। अलंबुश की समझ में दुर्योधन की बात आ गई। वह सीधा वहाँ पहुँचा, जहाँ कर्ण और घटोत्कच लड़ रहे थे। कर्ण के निकट उल्काओं का पर्याप्त प्रकाश था। घटोत्कच को शायद प्रकाश की उतनी आवश्यकता नहीं थी। वह तो बिना उल्काओं के ही युद्ध का अभ्यस्त था।

अलंबुश ने कर्ण से लड़ते घटोत्कच पर बाणों की वर्षा आरंभ की, आ मुझसे युद्ध कर हिडिंबा के पुत्र। घटोत्कच ने अविलंब कर्ण को छोड़ दिया। कर्ण कहीं भागा नहीं जा रहा। अलंबुश का क्या पता है कहाँ जा छुपे। वह दौड़कर घटोत्कच के रथ पर चढ़ गया। उसने घटोत्कच पर मुक्के का कठोर प्रहार किया। घटोत्कच ने धक्का देकर उसे रथ से नीचे गिरा दिया; और स्वयं भी धनुष बाण छोड़कर उस पर कूद गया। उसने अलंबुश को मुक्कों से पीटना आरंभ किया। उससे संतोष नहीं हुआ तो उसे धरती पर पटककर अच्छी तरह रगड़ा। पर जाने कैसे वह घटोत्कच की पकड़ से निकल गया और उसने घटोत्कच को भूमि पर गिरा लिया। उसने भी घटोत्कच को उसी प्रकार धरती पर रगड़ा, जैसे घटोत्कच ने उसे रगड़ा था। वह उससे युद्ध नहीं कर रहा था, अपने धरती पर रगड़े जाने का प्रतिशोध ले रहा था।

घटोत्कच ने उसे धक्का देकर परे धकेल दिया और धरती से उठ खड़ा हुआ। इस बार अलंबुश उस पर कूदा तो घटोत्कच ने उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर अपने सिर से भी ऊपर उठा लिया। कुछ चक्कर दिए और उसे धरती पर पटक दिया। अलंबुश फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा; किंतु उठने का साहस नहीं कर सका।

घटोत्कच ने अपना खड्ग निकाला और अलंबुश के मस्तक को काटकर उसके धड़ से पृथक् कर दिया। रक्त से भीगे हुए, अलंबुश के उस मस्तक को उसने उठाकर दुर्योधन के रथ में फेंक दिया। इसी बीचमें अलम्बुषको मार डालनेकी इच्छासे घटोत्कच ऊपरको उछला और बाजकी भाँति झपटकर उसने अलम्बुषको पकड़ लिया। फिर उसे ऊपरको उठाकर भूमिपर पटक दिया और तलवार निकालकर उसके भयंकर मस्तकको काट डाला।

कुछ उल्काओं का प्रबंध कर अश्वारोहियों और धावकों के पीछे-पीछे, बाधाओं से लड़ते-भिड़ते और व्यूहों को रौंदते हुए, द्रोण उस जयघोष के स्थान पर पहुँचे। उनका वेग इतना था कि पांडव सैनिक उसे दूर से ही अनुभव करने लगे थे।

अब तक अर्जुन और सात्यकि भी आ गए थे। उन्होंने द्रोण पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर और भीम भी द्रोण पर झपटे। नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, घटोत्कच, शिखंडी, कैकेय राजकुमार, मत्स, प्रभद्रक- सब ही द्रोण की दिशा में चल पड़े, जैसे सारी नदियाँ सागर की ओर भागती हैं। भीम ने द्रोण को देखा तो वह उग्र होकर आगे आया। पर द्रोण तक पहुँचने से पहले ही दुर्योधन के भाई उसके मार्ग में आ गए। भीम उन सबका वध कर, द्रोण की ओर बढ़ा।

कलिंग राजकुमार ने अपना रथ लाकर भीम के रथ के सम्मुख खड़ा कर दिया। उसके पिता का हत्यारा उसके सामने खड़ा था। वह उसको कैसे जीवित देख सकता था। उसने भीम और विशोक पर बाण चलाए।

भीम ने उग्र दृष्टि से कलिंग राजकुमार को देखा। इस अंधकार में भीम के बाण भटक जाते थे। लक्ष्यवेध हो नहीं रहा था तो फिर इस प्रकार बाण व्यर्थ गँवाने का क्या लाभ। उसने अपना धनुष रख दिया और अपने रथ से उसके रथ पर कूद गया। जब तक कलिंग राजकुमार समझता कि भीम क्या करना चाहता है, भीम ने वज्र के समान कठोर एक मुक्का उसकी नाक पर दे मारा। राजकुमार को सँभलने का तनिक भी अवसर नहीं मिला। भीम के मुक्के इस प्रकार चल रहे थे, जैसे किसी दक्ष धनुर्धारी के धनुष से बाण छूटते हैं। उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

अर्जुन इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि राधानन्दन कर्ण सिन्धुराजको मारा गया देख उनपर चढ़ आया। यह देख

पञ्चालराजके दोनों पुत्रों और सात्यकिने सहसा कर्णपर धावा किया। महारथी अर्जुनने जब कर्णको आते देखा तो हँसकर देवकीनन्दनसे कहा- जनार्दन। कर्ण सात्यकिके रथकी ओर बढ़ा जा रहा है। युद्धमें सात्यकिने जो भूरिश्रवाको मार डाला है, यह उससे नहीं सहा जाता। अत: जहाँ कर्ण जा रहा है, वहीं आप भी घोड़ोंको हाँककर ले चलिये। अर्जुनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णने यह समयोचित बात कही- पाण्डुनन्दन। कर्णके लिये सात्यकि अकेला ही काफी है; फिर जब पञ्चालराजके दो पुत्र भी उसके साथ हैं, तब तो कहना ही क्या है? इस समय कर्णके साथ तुम्हारा युद्ध होना ठीक नहीं है; क्योंकि उसके पास इन्द्रकी दी हुई शक्ति मौजूद है; तुम्हें मारनेके लिये ही वह बड़े यत्नसे उसे रखता है और बराबर उसकी पूजा करता है। अत: कर्णको जैसे-तैसे सात्यकिके ही पास जाने दो। मैं उस दुरात्माके अन्तकालको जानता हूँ, समय आनेपर बताऊँगा; फिर तुम अपने बाणोंसे उसे इस भूतलपर मार गिराओगे।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। भूरिश्रवा और जयद्रथके मारे जानेपर जब कर्णके साथ सात्यकिका युद्ध हुआ, उस समय सात्यकिके पास तो कोई रथ था ही नहीं; फिर वह किसके रथपर सवार हुआ?

संजयने कहा- महाराज। श्रीकृष्ण भूत और भविष्यको भी जानते हैं; उनके मनमें यह बात पहलेसे ही आ गयी थी कि भूरिश्रवा सात्यकिको हरा देगा। अत: उन्होंने अपने सारथी दारुकको आज्ञा दे दी थी कि तुम सबेरे ही मेरा रथ जोतकर तैयार रखना। राजन्। देवता, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस अथवा मनुष्य- कोई भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको नहीं जीत सकते। ब्रह्मा आदि देवता और सिद्ध पुरुष इन दोनोंके अनुपम प्रभावको जानते हैं। सात्यकिको रथहीन और कर्णको उसपर धावा करते देख श्रीकृष्णने अपने महान् शफ पाञ्चजन्यको ऋषभ-स्वरसे बजाया। शफ्नाद सुनते ही दारुक कृष्णका संदेश समझ गया और रथ उनके पास ले आया। फिर सात्यकि कृष्णकी आज्ञासे उसपर जा बैठा। वह रथ विमानके समान देदीप्यमान था, सात्यकि उसपर सवार हो बाणोंकी झड़ी लगाता हुआ कर्णकी ओर दौड़ा। उस समय अर्जुनके चक्ररक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा भी कर्णपर टूट पड़े। कर्णने भी बाणवर्षा करते हुए क्रोधमें भरकर सात्यकिके ऊपर धावा किया। इन दोनोंमें जैसा युद्ध हुआ था, वैसा इस पृथ्वीपर या देवलोकमें देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षसोंका भी युद्ध नहीं सुना गया। महाराज। उन दोनोंके अद्भुत पराक्रमको देख सभी योद्धा युद्ध बंद कर उन्हीं दोनोंके अलौकिक संग्रामको मुग्ध होकर देखने लगे। दारुकका सारथि-कर्म भी अद्भुत था; वह कभी रथको आगे बढ़ाता, कभी पीछे हटाता, कभी मण्डलाकारमें चारों ओर घुमाने लगता और कभी बहुत आगे बढ़कर सहसा लौट आता था। उसके रथसंचालनकी कला देख आकाशमें खड़े हुए देवता, गन्धर्व और दानव भी विस्मय-विमुग्ध हो रहे थे; सभी बड़ी सावधानीसे कर्ण और सात्यकिका युद्ध देख रहे थे। वे दोनों वीर एक-दूसरे पर बाणोंकी झड़ी लगा रहे थे। सात्यकिने अपने सायकोंकी चोटसे कर्णको खूब घायल किया। कर्ण भी भूरिश्रवा और जयद्रथकी मृत्युसे खीझा हुआ था, वह सात्यकिको अपनी दृष्टिसे दग्ध-सा करता हुआ बारंबार बड़े वेगसे धावा करता था; किंतु सात्यकि उसे कुपित देख अपनी बाणवर्षाके द्वारा बराबर बींधता ही रहा। रणमें उन दोनोंके पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं थी, दोनों ही दोनोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छेद रहे थे। थोड़ी ही देरमें सात्यकिने कर्णके सम्पूर्ण शरीरमें घाव कर दिया और एक भल्ल मारकर उसके सारथी को भी रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया। इतना ही नहीं, अपने तीखे तीरोंसे उसने कर्णके चारों श्वेत घोड़े भी मार डाले। फिर ध्वजा काटकर उसके रथके भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इस प्रकार सात्यकिने आपके पुत्रके देखते-देखते कर्णको रथहीन कर दिया।

तब कर्णपुत्र वृषसेन, मद्रराज शल्य और द्रोणनन्दन अश्वत्थामाने आकर सात्यकिको सब ओरसे घेर लिया। उधर कर्णके रथहीन हो जाने से सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार मच गया। कर्ण शोकोच्छ्वास खींचता हुआ तुरंत ही दुर्योधनके रथपर जा बैठा।

HHH(१९१)HHH

सात्यकि कर्ण तथा आपके पुत्रोंको मारनेमें समर्थ था, तो भी उसने अर्जुन और भीमकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये उनके प्राण नहीं लिये। केवल उन्हें घायल और व्याकुल करके ही छोड़ दिया। जिस समय पिछली बार जूआ खेला गया था, उसी समय भीमने आपके पुत्रोंको और अर्जुनने कर्णको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की थी। कर्ण आदि प्रधान-प्रधान वीरोंने सात्यकिको मार डालनेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे सफल न हो सके। अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा अन्य सैकड़ों क्षत्रिय महारथियोंको सात्यकिने एक ही धनुषसे परास्त कर दिया। वह श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान पराक्रमी था, उसने आपकी सम्पूर्ण सेनाको हँसते-हँसते जीत लिया। तत्पश्चात् दारुकका छोटा भाई एक सुन्दर रथ सजाकर सात्यकिके पास ले आया। उसीपर सवार हो सात्यकिने पुन: आपकी सेनापर धावा किया। फिर दारुक इच्छानुसार श्रीकृष्णके पास चला गया। इधर कौरव भी कर्णके लिये एक सुन्दर रथ ले आये, जिसमें बड़े वेगवान् उत्तम घोड़े जुते हुए थे। उस रथपर यन्त्र रक्खा था, पताका फहराती थी, नाना प्रकारके शस्त्र रक्खे हुए थे और उसका सारथी सुयोग्य था। उस रथपर बैठकर कर्णने भी शत्रुओं पर आक्रमण किया। राजन्। उस युद्धमें भीमने आपके इकतीस पुत्रोंको मार डाला। इस प्रकार आपकी अनीतिके कारण ही यह भयंकर संहार हुआ।

संजयने कहा- महाराज। एक तो भीमका रथ टूट गया था, दूसरे कर्णने उन्हें अपने वाग्बाणोंसे खूब पीड़ित किया; इससे वे क्रोधके वशीभूत होकर अर्जुनसे बोले- धनंजय। सुनते हो न? तुम्हारे सामने ही कर्ण मुझसे कहता है कि अरे नपुंसक, मूढ, पेटू, गँवार, बालक और कायर। तू लड़ना छोड़ दे। मेरे विषयमें ऐसी बात मुँहसे निकालनेवाला मनुष्य मेरा वध्य है; इसलिये तुम इसका वध करो और ऐसा उद्योग करो, जिससे मेरा वचन मिथ्या न हो।

भीमकी बात सुनकर अर्जुन आगे बढ़े और कर्णके निकट जाकर बोले- पापी कर्ण। तू आप ही अपनी तारीफ किया करता है। संग्रामभूमिमें डटे हुए शूरवीरोंको दो ही परिणाम प्राप्त होते है- जीत या हार। आज युद्धमें सात्यकिने तुझे रथहीन कर दिया था; तेरी इन्द्रियाँ विकल हो रही थीं, तू मौतके निकट पहुँच चुका था; तो भी तेरी मृत्यु मेरे हाथसे होनेवाली है- यही सोचकर ही सात्यकिने तुझे जीवित छोड़ दिया है। दैवयोगसे तूने भी महाबली भीमको किसी तरह रथहीन किया है; किंतु ऐसा करके जो तूने उनके प्रति कड़वी बातें कही हैं, वह महान् पाप है। यह काम नीच पुरुषोंका है। आखिर तू सूतका ही तो पुत्र ठहरा, तेरी समझ गँवारोंकी-सी क्यों न हो? महापराक्रमी भीमके प्रति तूने जो अप्रिय बातें सुनायी हैं, वे सहन करने योग्य नहीं हैं। सारी सेना देख रही थी, हमारी और श्रीकृष्णकी भी उधर ही दृष्टि थी, जब कि आर्य भीमने तुझे अनेकों बार रथहीन किया था। परंतु उन्होंने तेरे लिये एक बार भी कड़ी वाणी नहीं निकाली। इतने पर भी जो तूने उन्हें बहुत-से कटु वचन सुनाये हैं तथा मेरी अनुपस्थितिमें तुम सबने मिलकर जो सुभद्रानन्दन अभिमन्युका वध किया है, उस अन्याय का अब तुझे शीघ्र ही फल मिलेगा। अब मैं तुझे तेरे सेवक, पुत्र और बन्धुओंसहित मार डालूँगा। युद्धमें तेरे देखते-देखते तेरे पुत्र वृषसेनका वध करूँगा। उस समय मोहवश यदि दूसरे राजा भी मेरे पास आ जायँगे, तो उनका भी संहार कर डालूँगा।

जयद्रथ के आकस्मिक वध से द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन आदि सभी कौरव-योद्धा क्षुब्ध हो उठे। युद्ध आरम्भ होने के बाद आज पहली बार रात्रि-युद्ध आरम्भ हुआ। सैकड़ों जलते पलीतों के प्रकाश में गुरु द्रोण ने शिबि राजा पर आक्रमण किया।

इसप्रकार द्रोणाचार्यको शत्रु-सेनाका संहार करते देख प्रतापी राजा शिबि अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए उनके मुकाबलेमें आ डटे। पाण्डव-सेनाके महारथीको आते देख द्रोणने बाण मारकर उन्हें घायल किया; राजा शिबिने भी तुरंत बदला लिया, उन्होंने बाणोंसे द्रोणको घायल करके एक भल्लसे उनके सारथीको भी मार गिराया। तब द्रोणने उनके घोड़ों और सारथिको मार डाला तथा शिबिके मुकुटमण्डित सिरको भी धड़से अलग कर दिया। इतनेहीमें दुर्योधनने द्रोणके लिये तुरंत दूसरा

सारथी भेजा। उसने आकर जब घोड़ोंकी बागड़ोर हाथमें ली, तो द्रोणने पुन: शत्रुओंपर धावा किया।

युद्ध भूमि में मशालें जल रही है। घटोत्कच वहां पर आता है। घटोत्कच ने मुख से जलती अग्नि छोडी। कौरवों की सेना भागने लगी। रात्रिके युद्धमें दुर्योधनने पृथक् मोर्चा सम्हाला, किन्तु युधिष्ठिरने उसे पराजित करके भागनेपर विवश कर दिया। पाण्डव सैनिकोंका प्रधान आक्रमण आचार्य द्रोणपर ही था। इस रात्रि युद्धमें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सबसे प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया। उसने पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना मार दी। घटोत्कचके पुत्र तथा उसकी राक्षसी सेनाका संहार कर दिया।

कौरवों की गजसेना पांडव सेना का उल्लंघन कर सब ओर से प्रहार करने लगी। पांडवों को पहले तो समझ में ही नहीं आया कि युद्ध का यह पुनरारंभ कैसे हो गया। पर उनकी सेना अभी युद्धक्षेत्र में ही थी। उन्होंने न अभी कवच खोले थे और न ही शस्त्र रखे थे। वे सन्नद्ध हो गए। तत्काल संदेशवाहक दौड़ने लगे। आदेश और समाचार भेजे जाने लगे। सेनाओं का आगमन और स्थानांतरण आरंभ हो गया।

अंधकार इतना सघन हो चुका था कि योद्धा पहचाने नहीं जाते थे। नाम, गोत्र और कुल परिचय सुनकर ही पता चलता था कि कौन कहाँ और किससे लड़ रहा है। दुर्योधन ने पांचाल सेना पर आक्रमण किया था। वह इतना प्रचंड हो रहा था कि दिन भर के युद्ध से शिथिल सैनिक उसका प्रहार झेल नहीं पा रहे थे। कोई आश्रय न देखकर पांचाल सैनिकों ने समरभूमि छोड़ दी। उनका पलायन देखकर भीम ने आकर दुर्योधन को रोका।

संजय कहते हैं- महाराज। अश्वत्थामाने राजा कुन्तिभोजके दस पुत्रों तथा हजारों राक्षसोंका संहार कर दिया- यह देखकर युधिष्ठिर, भीम, धृष्टद्युम्न और सात्यकिने पुन: युद्धमें ही मन लगाया। संग्राममें सात्यकिपर दृष्टि पड़ते ही सोमदत्त पुन: आगबबूला हो गये। सात्यकि को अपने सम्मुख देख सबसे पहले सोमदत्त तड़पकर बोले, महात्माओं तथा देवताओं ने जिस क्षत्रिय धर्म का साक्षात्कार किया है, उसे छोड़कर तुम लुटेरों के धर्म में प्रवृत्त हो गए। कभी सोचा भी है कि कितने नीच हो तुम? क्षत्रिय वीरों के मध्य खड़े होने योग्य भी हो तुम? जो युद्ध से विमुख हो, दीनतापूर्वक शस्त्र त्याग चुका था, उस भूरिश्रवा पर कोई क्षात्रधर्मपरायण विद्वान पुरुष कैसे प्रहार कर सकता है?

सात्यकि का मुख भी तमतमा गया। कड़ककर बोला, तो क्षात्रधर्मपरायण विद्वान अपनी कुलवधू को सभा में निर्वस्त्र होते कैसे देख सकते हैं? ऐसे अनोखे क्षत्रिय तो संसार में केवल तुम ही लोग हो। कोई नीच दस्यु भी ऐसा नहीं करता। वे भी स्त्री मात्र की मर्यादा का सम्मान करते हैं। वह न भी कर सकें तो अपनी कुलवधुओं को तुम्हारे समान सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र करने का मनोरंजन नहीं करते। तुमने कभी यह भी सोचा कि तुम्हारा पाप प्रत्यावर्तित होकर आएगा और तुम्हारे संपूर्ण कुल का नाश कर जाएगा।

पर सोमदत्त ने न सात्यकि की बात सुनी, न उसका उत्तर दिया। बोले, वृष्णियों में दो ही विख्यात महारथी हैं- प्रद्युम्न और तुम। तुम भी ऐसे नीच, कायर और अपदार्थ निकले कि आमरण अनशन पर बैठे, मेरे पुत्र को मार डाला।

जब तुम लोगों ने अकेले बालक अभिमन्यु को व्यूह में घेरकर नि:शस्त्र कर मिलकर प्रहार किया था, जैसे वह कोई बाड़े में घिरा पशु हो, तब नहीं सोचा था कि दूसरे लोग भी नि:शस्त्र पर प्रहार कर सकते हैं। सात्यकि ने कहा, अपने लिए तो तुम लोगों को सारी मर्यादाओं के उल्लंघन का अधिकार चाहिए और दूसरों को धर्म का पाठ पढ़ाते हो।

सोमदत्त का स्वर और भी ऊँचा हो गया, मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि रात्रि व्यतीत होने से पूर्व ही, तुम्हें तुम्हारे भाइयों और पुत्रों सहित न मार डालूँ, तो यमराज मुझे नरक में स्थान दें।

सात्यकि के चेहरे पर एक क्रूर हँसी प्रकट हुई, इस शपथ का क्या अर्थ? कौन तुम्हारे पीछे देखने जाएगा कि तुम नरक

में गए अथवा नहीं। अपने दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप तुम्हें वैसे ही सदा के लिए नरक में वास करना चाहिए। अपने लोभ और स्वार्थ के लिए धृतराष्ट्र के अंधे शासन का समर्थन करनेवाले विलासी और अधर्मी लोग और जा भी कहाँ सकते हैं। सात्यकि ने रूककर उसकी ओर देखा, मैं तुम्हारे पुत्र के समान शस्त्र त्यागने का नाटक नहीं करता। मैं शस्त्र धारण कर खड़ा हूँ, तुम मुझ पर प्रहार करो, मैं तुम्हें भी तुम्हारे बंधु-बांधवों सहित मार डालूँगा।

सोमदत्त अपने आपे में नहीं था। उसके युद्ध कौशल को उसके क्रोध ने आच्छादित कर रखा था। उसने पहले ही झटके में अनेक बाणों से सात्यकि को ढँक दिया। अनेक बाण सात्यकि के शरीर में आ धँसे।

सात्यकि का क्रोध जैसे उछलकर हाथों में आ गया। उसने अपने धनुष से धारा के रूप में बाण चलाए। सोमदत्त को कोई गंभीर घाव लगा था। उसके हाथ से धनुष छूट गया और वह रथ की बैठक में आ गिरा।

सोमदत्तने बड़ी भारी बाणवर्षाकरके सात्यकिको आच्छादित कर दिया। फिर दोनों पक्षोंमें बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। सोमदत्तको निकट आया देख सात्यकिकी रक्षाके लिये भीमने उन्हें बाण मारकर घायल कर दिया। सोमदत्तने भी उन्हें बाणोंसे बींध डाला। यह देख सात्यकि क्रोधमें भर गया और वज्रके समान तीक्ष्ण बाणोंसे सोमदत्तको घायल किया। तदनन्तर भीमने सात्यकिका पक्ष लेकर सोमदत्तके मस्तक पर एक भयंकर परिघका प्रहार किया, साथ ही सात्यकिने भी अग्निके समान तेजस्वी बाण उनकी छातीपर मारा। परिघ और बाण दोनों एक ही साथ सोमदत्तको लगे, इससे वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

भीम ने देखा, कर्ण के साथ ही अश्वत्थामा, दुर्योधन, सोमदत्त और बाह्लिक भी आ गए थे। भीम तो सोमदत्त को ही समरभूमि में देखकर चकित हो रहा था और यहाँ बाह्लीक भी आ गए थे। देवापि के पुत्र और शांतनु के भाई। पितामह भीष्म के भी पितृव्य। क्या अवस्था होगी इनकी? इस अवस्था में तो मनुष्य शैया से उठकर अपने आँगन में टहल ले तो वही बहुत होता है और ये यहाँ युद्ध करने आ गए। क्यों? क्या आवश्यकता थी? दुर्योधन के प्रेम के कारण? नहीं। कदाचित भूरिश्रवा का मोह खींच लाया होगा सोमदत्त को; और सोमदत्त के मोह में बाह्लिक आ गए होंगे। वृद्धावस्था में मोह कुछ अधिक ही प्रबल हो उठता है। कृपाचार्य भी आ गए थे। वे घायल थे। कोई भी वैद्य उन्हें अभी युद्ध से दूर रहने का परामर्श देता; किंतु वे अपने रथ में खड़े होकर बाण संधान कर रहे थे। पुत्रके मूर्च्छित होनेपर बाल्हीकने धावा किया, वे वर्षाकालीन मेघके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे। भीमने पुन: सात्यकिका पक्ष ग्रहण किया और बाणोंसे बाह्लीकको बींध डाला। तब प्रतीपनन्दनने कुपित होकर भीमकी छातीमें शक्तिका प्रहार किया। उसकी चोटसे भीम काँप उठे और बेहोश हो गये। फिर थोड़ी ही देरमें चेतना आनेपर पाण्डुनन्दन भीमने उनपर गदा छोड़ी। उसके आघातसे बाह्लीकका सिर धड़से अलग हो गया। वे वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े।

बाह्लीकके मारे जानेपर आपके नागदत्त, दृढ़रथ, महाबाहु, अयोभुज, दृढ़, सुहस्त, विरज, प्रमाथी, उग्र और अनुयायी- ये दस पुत्र अपने बाणोंसे भीमको पीड़ित करने लगे। उन्हें देखते ही भीम क्रोधसे जल उठे और एक-एकके मर्मस्थानमें बाण मारने लगे। उनकी करारी चोटसे आपके पुत्रोंके प्राण-पखेरू उड़ गये और वे तेजहीन होकर रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े। शकुनिके भाई मारे गये। शकुनिके भाई गवाक्ष, शरभ, विभु, सुभग और भानुदत्त- ये पाँच महारथी दौड़े आये और भीमपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उनसे पीड़ित होकर भीमने बाण चलाये और उन पाँचोंको मार डाला। उन वीरोंको मृत्युके मुखमें पड़ा देख कौरवपक्षके राजा विचलित हो गये। इधर युधिष्ठिरने भी आपकी सेनाका संहार आरम्भ किया। उन्होंने कुपित होकर अम्बष्ठ, मालव, त्रिगर्त और शिबिदेशके योद्धाओंको यमलोक भेज दिया। इतना ही नहीं, राजा युधिष्ठिरने अभीषाह, शूरसेन, बाह्लीक तथा बसाति वीरोंका भी वध करके इस पृथ्वीको खूनकी धारासे पमिल बना दिया। उन्होंने अपने बाणोंसे

मद्रदेशीय योद्धाओंको भी प्रेतलोकका अतिथि बनाया।

तब भीमने कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, सोमदत्त और बाह्लीकके देखते-देखते दुर्मद और दुष्कर्णके रथको लातसे मारकर पृथ्वीमें धँसा दिया। फिर आपके उन दोनों पुत्रोंको मुक्केसे मार-मारकर कचूमर निकाल डाला और बड़े जोरसे गर्जना की। उस समय कौरव सेनामें हाहाकार मच गया। भीमकी ओर देखकर राजालोग कहते थे- ये भीम नहीं, भीमके रूपमें साक्षात् भगवान् रुद्र हैं, जो कौरवोंसे युद्ध कर रहे हैं। महाराज। यों कहकर सब राजा भागने लगे। सबके होश उड़ गये थे, सभी अपनी सवारियोंको तेजीसे भगाये लिये जाते थे। उस समय दो आदमी एक साथ नहीं दौड़ते थे, सब अकेले ही भाग रहे थे।

इस तरह उस प्रदोषकालमें भीमने कौरव-सेनाका भलीभाँति संहार किया। इससे नकुल, सहदेव, द्रुपद, विराट, केकय और राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे भीम की प्रशंसा करने लगे।

वृद्ध सोमदत्त की यह अवस्था देखकर द्रोण का मन जैसे पिघल गया। वह युद्ध नहीं कर रहा था वह तो अपने पुत्र का प्रतिशोध लेने आया था। पर वह यह भूल गया कि सात्यकि उसके वश का नहीं था। इस प्रकार का आत्मघाती युद्ध लड़ने का क्या लाभ, जिसमें तनिक भी सामर्थ्य और युद्ध कौशल न हो। तो फिर द्रोण सात्यकि का वध कर ही डालें। प्रात: तो वह भी अर्जुन के ही समान उनको प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा कर आगे बढ़ गया था। द्रोण उसके पीछे नहीं गए थे। उन्हें अपना व्यूह सँभालना था। फिर सात्यकि अर्जुन की सहायता के लिए जा रहा था। किंतु अब जयद्रथ मारा जा चुका था। अर्जुन के प्राणों पर कोई संकट नहीं था। सात्यकि ने भूरिश्रवा का वध कर दिया था। उन्हें सात्यकि बहुत क्रूर लग रहा था। वह ऐसी ही और हत्याएँ भी कर सकता है।

द्रोण ने सात्यकि पर प्रहार किया और उन्होंने देखा कि सात्यकि की सहायता के लिए युधिष्ठिर आ गया है। युधिष्ठिर को सात्यकि पर बहुत भरोसा था, तभी तो उसने भीम से भी पहले सात्यकि को अर्जुन की सहायता के लिए भेजा था। वह सात्यकि का कृतज्ञ भी होगा, उसने अर्जुन की सहायता के लिए बहुत बड़े संकट का सामना किया था। वैसे भी कृतवर्मा को रोके रखने के लिए सात्यकि ही युधिष्ठिर की ढाल था।

संजय कहते हैं- सात्यकिके प्रति राजा सोमदत्तका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था; इसका कारण यह था कि उसने उनके पुत्र भूरिश्रवाको, जबकि वह अनशन व्रत धारण करके बैठा हुआ था, मार डाला था। सोमदत्तने बाण मारकर सात्यकिको बींध डाला। फिर सात्यकिने भी उन्हें बाणोंसे घायल किया। सात्यकि बलवान् था और उसका धनुष भी खूब मजबूत था; अत: उसकी मारसे सोमदत्त बेतरह घायल हो गये और रथकी बैठकमें मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देख उनका सारथी उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। दूसरी ओर जब सात्यकिने देखा कि सोमदत्त अपना महान् धनुष टंकार रहे हैं, तो उसने सारथीसे कहा- सूत। मुझे सोमदत्तके पास ले चल। अपने बलवान् शत्रुसोमदत्तको मारे बिना अब मैं युद्धसे नहीं लौटूंगा। यह सुनकर सारथीने घोड़े बढ़ाये और सात्यकिको सोमदत्तके पास पहुँचा दिया। उसे आते देख सोमदत्त भी उसका सामना करनेको आगे बढ़े। उन्होंने सात्यकिकी छातीमें बाण मारकर उसे घायल कर दिया; फिर सात्यकिने भी तीक्ष्ण सायकोंसे सोमदत्तको बींध डाला। दोनों ही दोनोंके बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं लोहूलुहान हो खिले हुए टेसूके वृक्षके समान शोभा पाने लगे। इतनेहीमें महारथी सोमदत्तने अर्धचन्द्राकार बाण मारकर सात्यकिके महान् धनुषको काट दिया। फिर उसे बाणोंसे घायल करके शीघ्रतापूर्वक बाण और मारे। तबतक सात्यकिने दूसरा धनुष लेकर तुरंत ही सोमदत्तको बाणोंसे बींध डाला। तब सोमदत्तने पुन: सात्यकिको बाण मारे। इससे सात्यकि कुपित हो उठा और उसने एक तीखे क्षुरप्रसे सोमदत्तका धनुष काट डाला। तब सात्यकिकी ओरसे भीमने भी सोमदत्तपर बाणोंका प्रहार किया और सोमदत्तने भी भीमको बाणोंसे घायल किया। इसके बाद भीमने सोमदत्तकी छातीमें एक

परिघका वार किया, किंतु सोमदत्तने हँसे हुए उसके दो टुकड़े कर डाले। इसके पश्चात् सात्यकिने प्रज्वलित अग्निके समान एक भयंकर बाण छोड़ा; वह सोमदत्तकी छातीमें धँस गया और वे रथसे गिरकर मर गये।

सोमदत्तको मारा गया देख कौरव महारथी बाणोंकी बौछार करते हुए सात्यकि पर टूट पड़े। यह देखकर राजा युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव प्रभद्रक वीरोंके साथ बहुत बड़ी सेना लिये द्रोणाचार्यके सैन्यकी ओर बढ़ आये। उन्होंने आचार्यके देखते-देखते सायकोंकी मारसे आपकी सेनाको भगा दिया। यह देख आचार्य क्रोधसे लाल आँखें किये युधिष्ठिरपर टूट पड़े और उनकी छातीपर उन्होंने बाण मारे। तब युधिष्ठिरने भी द्रोणाचार्यको बींध डाला। उनके बाणोंके आघातसे पीड़ित एवं व्यथित होकर आचार्य दो घड़ीतक रथकी बैठकमें मूर्छित भावसे पड़े रहे; फिर जब होश हुआ तो बड़े क्रोधमें आकर उन्होंने युधिष्ठिरपर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। किंतु युधिष्ठिर इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने अस्त्रसे आचार्यके अस्त्रको शान्त कर दिया और उनके धनुषको भी काट डाला। द्रोणने दूसरा धनुष उठाया, किंतु युधिष्ठिरने एक तीक्ष्ण भल्ल मारकर उसे भी काट दिया।

संजय कहते हैं- महाराज्। पाञ्चाल और कौरव वीरोंमें परस्पर युद्ध होने लगा। सभी योद्धा एक-दूसरेको बाण, तोमर और शक्तियोंसे बींधकर यमलोक भेजने लगे। थोड़ी ही देरमें युद्धका रूप बड़ा भयंकर हो गया, रक्तकी नदी बह चली। उस समय आपके धनुर्धर पुत्र दुर्योधनके तीखे बाणोंकी मार खाकर पाञ्चालवीर इधर-उधर भागने लगे। उसके सायकोंसे पीडित हो पाण्डवसैनिक धराशायी होने लगे। उस समय आपके पुत्रने जैसा पराक्रम किया, वैसा कौरव-पक्षके किसी भी दूसरे वीरने नहीं किया। दुर्योधनके द्वारा पाण्डवसेनाको नष्ट होते देख पाञ्चाल वीर भीमको आगे करके उसपर टूट पड़े। उसने भीम, नकुल-सहदेव, विराट और द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, युधिष्ठिर, केकय तथा चेदि देशके योद्धाओंको अनेकों बाणोंसे बींध डाला। फिर, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्रोंको, घटोत्कचको बहुत से बाणोंद्वारा बींधकर सिंहनाद किया। इसके अलावा भी सैकड़ों योद्धाओं और उनके हाथियोंको काट गिराया। तब पाण्डवोंकी सेना रणभूमिसे भागने लगी। यह देख राजा युधिष्ठिर क्रोधमें भरकर आपके पुत्रको मार डालनेकी इच्छासे उसकी ओर बढ़े। दुर्योधनने बाणोंसे धर्मराजके सारथीको घायल करके एक बाणसे उनके धनुषको काट दिया। तब युधिष्ठिरने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर दो भल्लोंसे दुर्योधनके भी धनुषके तीन टुकड़े कर दिये। फिर सायकोंसे उसे बींध डाला। युधिष्ठिरके छोड़े हुए बाण दुर्योधनके मर्मस्थानोंको छेदकर पृथ्वीमें समा गये। तदनन्तर धर्मराजने दुर्योधनपर एक और भयंकर बाण चलाया; उसकी चोटसे दुर्योधनको मूर्च्छा आ गयी और वह रथकी बैठकपर लुढ़क गया। थोड़ी देरमें जब होश हुआ तो उसने पुन: सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया। इतनेमें विजयाभिलाषी पाञ्चाल वीर तुरंत दुर्योधनके पास आ पहुँचे। उन्हें आते देख आचार्य द्रोणने दुर्योधनकी रक्षाके लिये बीचमेंही रोक लिया। फिर तो आपकी ओर शत्रुओंकी सेनाओंमें महान् संग्राम होने लगा।

युधिष्ठिर ने जाकर दुर्योधन को सावधान किया, दुर्योधन। तुम घिर गए हो। दिन भर के थके हुए हो। यह युद्ध का समय भी नहीं है। अब तुम लौट जाओ।

दुर्योधन ने वचनों का उत्तर बाणों से दिया। युधिष्ठिर अभी सँभल भी नहीं पाए थे कि दुर्योधन के बाण से घायल हो गए। दुर्योधन ने उनके अश्वों को मार दिया। सारथी इंद्रसेन को भी ललाट पर चोट पहुँचाई। ध्वज भी काटकर फेंक दिया। और अंतत: युधिष्ठिर के धनुष की प्रत्यंचा भी काट दी। पर युधिष्ठिर ने अपना स्थान नहीं छोड़ा। उन्होंने दूसरा धनुष उठाया और दुर्योधन को अपने बाणों से ढँक दिया। दुर्योधन के शरीर से रक्त बहता हुआ देखकर पांडव सैनिक लौटे।

चारों ओर अंधकार था। प्रकाश की क्षीण रेखाएँ कहीं-कहीं आ रही थीं। युद्धभूमि की रेणु उड़कर आकाश की ओर जा

रही थी। कोलाहल इतना था कि कुछ ठीक से सुनाई नहीं देता था। जब सामने खड़ा योद्धा ही दिखाई नहीं दे रहा था तो ध्वनि का कोई क्या विश्वास करता।

उस समय अर्जुन, सात्यकि, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, सेनासहित धृष्टद्युम्न, राजा विराट, केकय, मत्स्य, शाल्व तथा राजा द्रुपदने भी द्रोणाचार्यपर धावा किया। द्रौपदीके पाँचों पुत्र और राक्षस घटोत्कच भी अपनी सेना साथ ले उन्हींकी ओर बढ़े। प्रहार करनेमें कुशल छ: हजार पाञ्चालों तथा प्रभद्रकोंने भी शिखण्डीको आगे रखकर द्रोणपर ही आक्रमण किया। इस प्रकार पाण्डव-पक्षके दूसरे-दूसरे महारथी भी एक ही साथ आचार्य द्रोणकी ओर लौट पड़े। जिस समय वे शूरवीर युद्धके लिये पहुँचे, भयंकर रात आरम्भ हो गयी थी। उस समय द्रोणाचार्य और सृञ्जयोंमें अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा। सारे संसारमें अन्धकार छा जानेके कारण कहीं कुछ दिखायी नहीं देता था। अपने-परायेकी पहचान नहीं हो पाती थी। उस प्रदोषकालमें सब लोग उन्मत्तसे हो रहे थे। रणभूमिकी धूल रक्तकी धारामें सनकर बैठ गयी थी। रात्रिकालके उस घोर युद्धमें पाण्डव और सृञ्जय क्रोधमें भरकर एक साथ ही आचार्य द्रोणपर टूट पड़े; किंतु आचार्यके सामने जो-जो प्रधान महारथी आये, उनमेंसे कुछको तो उन्होंने यमलोक भेज दिया और बाकी सबको मार भगाया। द्रोणने अकेले ही हजारों हाथी, दस हजार रथ, लाखों पैदल और अरबों घुड़सवार काट डाले। धृष्टद्युम्नके पुत्रों तथा केकयोंको भी शीघ्रगामी सायकोंसे घायल कर प्रेतलोक पहुँचा दिया।

तब सात्यकिका वध करनेकी इच्छासे आचार्य द्रोण उसकी ओर झपटे। उन्हें आते देख युधिष्ठिर आदि वीर सात्यकिकी रक्षाके लिये उसे घेरकर खड़े हो गये। तदनन्तर, द्रोणका पाण्डवोंके साथ युद्ध आरम्भ हुआ। द्रोणने पाण्डव-सेनाको बाणोंसे आच्छादित कर दिया और युधिष्ठिरको भी खूब घायल किया। फिर सात्यकिको, धृष्टद्युम्न, भीम, नकुल, सहदेव, शिखण्डी, द्रौपदीके प्रत्येक पुत्रको, विराट, द्रुपद, युधामन्यु, उत्तमौजाको बाण मारकर बींध दिया। इसके बाद अन्य योद्धाओंको भी घायल करके वे युधिष्ठिरकी ओर बढ़े। उनके बाणोंकी चोटसे आर्तनाद करते हुए पाण्डवसैनिक सब दिशाओंमें भागने लगे। जो-जो वीर आचार्यके सामने आ जाता, उसका मस्तक काटकर उनके बाण पृथ्वीमें समा जाते थे। इस प्रकार द्रोणके बाणोंसे आहत हुई पाण्डव-सेना अर्जुनके देखते-देखते भयभीत होकर भाग चली।

अर्जुन सोच रहा था उसने युधिष्ठिर की बहुत उपेक्षा की थी। द्रोण ने उन्हें जीवित बंदी करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी और अर्जुन संशप्तकों से लड़ने चला गया था। एक दिन में वह युद्ध समाप्त नहीं हुआ तो वह दूसरे दिन भी चला गया। फिर जयद्रथ को मारने की अपनी प्रतिज्ञा के कारण भी वह धर्मराज को असुरक्षित छोड़ गया। धर्मराज ने अपनी रक्षा की चिंता न करते हुए, सात्यकि और भीम को उसकी रक्षा के लिए भेज दिया था। अब और अधिक उनको आचार्य की कृपा पर छोड़ना उचित नहीं था। कहीं कोई गंभीर दुर्घटना ही न हो जाए।

इस समय आचार्य वैसे ही बहुत उग्र हो रहे थे। जाने दुर्योधन ने उन्हें क्या कह दिया था या वे ही उसे क्या वचन दे कर आए थे। नहीं तो सूर्यास्त के पश्चात् युद्ध का क्या अर्थ। पहले दुर्योधन की गजसेना ने आक्रमण किया और फिर नियमित युद्ध ही आरंभ हो गया। अब उसके रुकने का कोई आभास भी नहीं हो रहा। पांडवों को तब तक लड़ना होगा, जब तक दुर्योधन युद्ध बंद नहीं कर देता। पांडव युद्ध समाप्ति का एकांगी निर्णय नहीं कर सकते। आचार्य यदि अपनी सेनाएँ लौटा ले जाएँगे तो पांडव सेनाएँ उन पर आक्रमण नहीं करेंगी।

धृष्टद्युम्न ने कहा, मेरा विचार है सहदेव। मुझे धर्मराज के निकट पहुँचा दो। वहाँ से नया रथ लेकर मैं कर्ण पर आक्रमण करना चाहता हूँ। वह हमारे लिए महाकाल सिद्ध हो रहा है। दूसरी ओर द्रोण हैं। दोनों ही इस समय बहुत प्रचंड हो रहे हैं।

कर्ण को न रोका गया तो वह और द्रोण पांडव सेना को नष्ट कर देंगे।

युधिष्ठिर बोले, ठीक कहते हो राजकुमार। किंतु आत्महत्या का कोई लाभ नहीं है। दुर्योधन अपने लाभ के लिए युद्ध चलाए चल रहा है, अन्यथा अंधकार के साथ ही सेनाओं को अपने शिबिरों में लौट जाना चाहिए था। युद्ध की सारी मर्यादाओं का हनन कर दुर्योधन ने अंधकार के पश्चात् भी हमारी सेना पर आक्रमण किया है। पता नहीं क्यों आचार्य भी उसी दुर्बुद्धि की इच्छानुसार चल रहे हैं। ऐसे में हम उनके वचन का क्या विश्वास करें। यदि हम एकांगी युद्धविराम कर, शिबिर में लौट जाते हैं और वे युद्ध बंद नहीं करते तो हमारी और भी हानि होगी। संभव है कि वे युद्धभूमि और शिबिर की मर्यादा का भी पालन न करें और हमें युद्धभूमि में न पाकर हमारे शिबिर पर आक्रमण कर दें।

युधिष्ठिर ने कहा, हमारे सैनिक जिस प्रकार भाग रहे हैं, उससे स्पष्ट है कि वे बेचारे बहुत थक गए हैं और इस अंधकार में कर्ण और द्रोण की प्रचंडता का सामना करने में असमर्थ हैं। ऐसे में उन्हें युद्ध के लिए बाध्य करना अत्याचार है। मैं तो स्वयं भी समरभूमि से हट जाने का विचार कर रहा हूँ, पर अभी इस बात से आश्वस्त नहीं हूँ कि दुर्योधन हमारे शिबिर पर भी आक्रमण नहीं करेगा। अर्जुन बोला, गोविन्द। रथ को आचार्य के रथ के निकट ले चलें।

धृतराष्ट्रने पूछा, संजय। पाण्डवोंने जब हमारी सेनाका मन्थन कर डाला, सभी सैनिकोंके तेज क्षीण कर दिये और सब लोग उस घोर अन्धकारमें डूब रहे थे, उस समय तुमलोगोंने क्या सोचा? दोनों सेनाओंको प्रकाश कैसे मिला?

संजयने कहा- महाराज। दुर्योधनने सेनापतियोंको आज्ञा देकर जो सेना मरनेसे बच गयी थी, उसे व्यूहाकारमें खड़ी करवाया। उसमें सबसे आगे थे द्रोण और पीछे थे शल्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा शकुनि और स्वयं राजा दुर्योधन चारों ओर घूमकर उस रात्रिमें सेनाकी रक्षा कर रहा था। उसने पैदल सैनिकोंको आज्ञा दी कि तुमलोग हथियार रख दो और अपने हाथोंमें जलती हुई मशालें उठा लो। सैनिकोंने प्रसन्नतापूर्वक इस आज्ञाका पालन किया। कौरवोंने प्रत्येक रथके पास, हर एक हाथीके पास और एक-एक घोड़ेके पास एक-एक प्रदीप रक्खा। पैदल सिपाही हाथमें तेल और मशाल लेकर दीपकोंको जलाया करते थे। इस प्रकार क्षणभरमें ही आपकी सारी सेनामें उजाला हो गया।

हमारी सेनाको इस प्रकार दीपकोंके प्रकाशसे जगमगाते देख पाण्डवोंने भी अपने पैदल सैनिकोंको तुरंत ही दीप जलानेकी आज्ञा दी। उन्होंने प्रत्येक रथके आगे दस-दस और प्रत्येक हाथीके सामने सात-सात दीपकोंका प्रबन्ध किया। दो दीपक घोड़ोंकी पीठपर, दो बगलमें, एक रथकी ध्वजापर और दो रथके पिछले भागमें जलाये गये थे। इसी प्रकार सम्पूर्ण सेनाके आगे-पीछे और अगल-बगलमें तथा बीचबीचमें भी पैदल सैनिक जलती हुई मशालें हाथमें लेकर घूमते रहते थे। यह प्रबन्ध दोनों ही सेनाओंमें थां दोनों ओरके दीपकोंका प्रकाश पृथ्वी, आकाश और सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गया। स्वर्गतक फैले हुए उस महान् आलोकसे युद्धकी सूचना पाकर देवता, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध और अप्सराएँ भी वहाँ आ पहुँची। इधर युद्धमें मरे हुए वीर सीधे स्वर्गकी ओर चढ़ रहे थे। इस प्रकार स्वर्गवासियोंके आने-जानेसे वह रणभूमि देवलोकके समान जान पड़ती थी।

यह देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- गोविन्द। अब आप आचार्यके रथकी ओर चलिये। तब कृष्णने घोड़ोंको द्रोणके रथकी ओर हाँका। भीमने भी अपने सारथी विशोकको आज्ञा दी कि मुझे द्रोणके रथसे पास ले चलो। उनकी आज्ञा पाकर विशोकने भी अर्जुनके पीछे अपना रथ बढ़ाया। उन दोनों भाइयोंको तैयार होकर द्रोण-सेनाकी ओर आते देख पाञ्चाल, सृञ्जय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोशल और केकय महारथियोंने उनका साथ दिया। महाराज। तदनन्तर वहाँ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घोर संग्राम छिड़ गया। अर्जुन और भीमने अपने साथ रथियोंके भारी समूहको लेकर आपकी सेनाकेदक्षिण

और उत्तर भागमें घेरा डाल दिया। उन दोनों वीरोंको वहाँ उपस्थित देख सात्यकि और धृष्टद्युम्न भी आ गये। भूरिश्रवाके वधसे अश्वत्थामा बहुत चिढ़ा हुआ था, उसने सात्यकिको आते देख उसे मार डालनेका निश्चय करके उसपर धावा किया। यह देख भीमके पुत्र घटोत्कचने क्रोधमें भरकर अपने शत्रुको रोका। घटोत्कचका रथ लोहेका बना हुआ था, उसमें आठ पहिये थे; वह बहुत बड़ा और भयंकर था। उसीमें बैठकर वह अश्वत्थामाकी ओर चला। एक अक्षौहिणी राक्षसी सेना उसे चारों ओरसे घेरे हुए थी। किसीके हाथमें त्रिशूल था तो किसीके हाथमें मुगदर; कोई पत्थरकी चट्टान हाथमें लिये था और कोई वृक्ष। घटोत्कच प्रलयकालके दण्डधारी यमराजकी भाँति जान पड़ता था। उसके हाथमें उठाये हुए महान् धनुषको देखकर राजालोग भयसे व्याकुल हो उठे थे। वह भीमकाय राक्षस पर्वतके समान ऊँचा था, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण उसका मुख विकराल तथा भयंकर दिखायी पड़ता था। कान खूँटेके समान, ठोढ़ी बहुत बड़ी, बाल ऊपरकी ओर उठे हुए, आँखें भयावनी, मुँहपर चमक, पेट धँसा हुआ- यही उसका हुलिया था। गलेका छेद ऐसा था, मानो कोई बहुत बड़ा गड्ढा हो। सिरके बाल मुकुटसे ढके हुए थे। वह मुँह बाकर खड़े हुए यमराजके समान सम्पूर्ण प्राणियोंको त्रास पहुँचा रहा था, शत्रु उसे देखते ही व्याकुल हो जाते थे। राक्षसराज घटोत्कचको हाथमें धनुष लिये आते देख दुर्योधन की सेनामें हलचल मच गयी, सब-के-सब भयसे व्याकुल हो उठे। उस राक्षसके सिंहनादसे अत्यन्त भयभीत हो हाथी मूत्रत्याग करने लगे। मनुष्योंको व्यथा होने लगी। फिर तो वहाँ चारों ओरसे पत्थरोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। रात्रि होनेसे उस समय राक्षसोंका बल बहुत बढ़ा हुआ था। उनके चलाये हुए लोहेके चक्र, भुशुण्डी, प्रास, तोमर, शूल, शतघ्नी, और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्र वहाँ बरस रहे थे; बड़ा ही भयंकर संग्राम छिड़ा था। उसे देखकर कौरव-पक्षके राजाओं, आपके पुत्रों तथा कर्णको भी बहुत कष्ट हुआ और वे सब दिशाओंकी ओर भागने लगे। उस समय एकमात्र अभिमानी वीर अश्वत्थामा ही विचलित न होकर अपनी जगहपर डटा रहा। उसने घटोत्कचकी रची हुई माया अपने बाणोंसे नष्ट कर दी।

मायाका नाश होनेपर घटोत्कचके क्रोधकी सीमा न रही, उसने भयंकर बाणोंका प्रहार किया। वे सभी बाण अश्वत्थामाके शरीरमें घुस गये। तब अश्वत्थामाने भी क्रोधमें भरकर घटोत्कचको बाणोंसे बींध डाला। इससे उसके मर्मस्थानोंमें बड़ी चोट पहुँची। अत्यन्त पीड़ित होकर उसने लाख अरोंवाला एक चक्र हाथमें लिया, जिसके किनारेकी ओर डूरे लगे हुए थे; वह चक्र अश्वत्थामाको लक्ष्य करके उसने चलाया, परंतु अश्वत्थामाने बाण मारकर चक्रके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वह व्यर्थ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख घटोत्कचने अपने बाणोंकी वर्षासे अश्वत्थामाको आच्छादित कर दिया। इतनेहीमें घटोत्कचका पुत्र अञ्जनपर्वा वहाँ आ पहुँचा। उसने अश्वत्थामाको ऐसे रोक लिया, जैसे आँधीके वेगको पर्वत रोक देता है। घटोत्कच ने अश्वत्थामा के बाणों की ही नहीं, स्वयं अश्वत्थामा की गति भी रुद्ध कर दी। उसके बाण अश्वत्थामा की सेना को पीड़ित कर रहे थे। तभी उसकी दृष्टि कर्ण पर पड़ी इस कर्ण ने आज प्रात: उसके पिता को नि:शस्त्र कर अपमानित किया था और उन्हें वीरों से लड़ने के अयोग्य बताया था।

घटोत्कच ने अपने सैनिकों को संकेत किया और कर्ण पर बाणों के साथ ही पत्थर पड़ने लगे। उसके सैनिकों के हाथों में जो कुछ आया, उन्होंने उसे कर्ण की ओर उछाल दिया। कर्ण घायल हो चुका था। वह घटोत्कच की इस माया के सम्मुख नहीं टिका और युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग गया। अंतत: घटोत्कच ने व्यथित हो एक भयंकर चक्र चलाया; किंतु अश्वत्थामा ने उस चक्र को भी मार्ग में ही काट गिराया।

लगा कि अश्वत्थामा के सम्मुख घटोत्कच ही नहीं उसकी माया भी जैसे असहाय हो गई है। अपने पिता को संकट में देखकर अंजनपर्वा ने आकर अश्वत्थामा को रोका। पर अंजनपर्वा ने अपने और अश्वत्थामा, दोनों के ही सामर्थ्य का भ्रमित मूल्यांकन

किया था। अश्वत्थामा के सम्मुख पड़ना उसके लिए घातक हो गया। अश्वत्थामा ने पहले तो उसके अश्वों और दो सारथियों को मार डाला। फिर उसके त्रिवेणु को काट डाला। उसके खड्ग के दो टुकड़े कर दिए। अंजनपर्वा ने और कोई उपाय न देखकर अपनी भारी गदा उठाकर दे मारी। अश्वत्थामा ने उसकी गदा भी काट दी। अंजनपर्वा कुछ अपनी रक्षा और कुछ माया की दृष्टि से आकाश की ओर उछला, किंतु अश्वत्थामा ने उसे ऊपर ही अपने बाणों से बींध दिया।

अंजनपर्वा निष्प्राण होकर भूमि पर आ गिरा। तब अश्वत्थामाने एक बाणसे अञ्जनपर्वाकी ध्वजा, दोसे रथके दोनों सारथी, तीनसे त्रिवेणुक, एकसे धनुष और चारसे चारों घोड़े मार गिराये। रथहीन हो जानेपर उसने तलवार उठायी, किंतु द्रोणकुमारने तीखे तीरसे उसके भी दो टुकड़े कर दिये। तब अञ्जनपर्वाने गदा घुमाकर चलायी, किंतु द्रोणकुमारने उसे भी बाणोंसे मारकर गिरा दिया। फिर तो वह प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करता हुआ कूदकर आकाशमें चला गया और वहाँसे वृक्षोंकी वर्षा करने लगा। यह देख अश्वत्थामा उस मायावीको बाणोंसे बींधने लगा। तब वह नीचे उतरकर पुन: दूसरे रथपर जा बैठा। इसी समय अश्वत्थामाने अञ्जनपर्वाको मार डाला।

अपने महाबली पुत्रको अश्वत्थामाके हाथसे मारा गया देख घटोत्कच क्रोधसे जल उठा और अश्वत्थामाके पास जाकर बोला- द्रोणकुमार। मैं उन पाण्डवोंका पुत्र हूँ, जो युद्धमें कभी पीछे पैर नहीं हटाते। राक्षसोंका राजा हूँ और रावणके समान मेरा बल है। तू इस रणाङ्गणमें खड़ा तो रह, जीते-जी नहीं जाने पायेगा। आज मैं तेरा युद्ध करनेका हौसला मिटा दूँगा। ऐसा कहकर क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये वह महाबली राक्षस अश्वत्थामाकी ओर झपटा और उसपर रथके धुरेके सदृश बाणोंकी वर्षा करने लगा। किंतु घटोत्कचके बाण अभी निकट आने भी नहीं पाते थे कि अवत्थामा उन्हें काट गिराता था। अंजनपर्वा को मारकर अश्वत्थामा का आवेश कुछ कम हुआ था कि घटोत्कच आ गया। अश्वत्थामा के मन में एक विचित्र-सा अवसाद घिर आया था। उसने घटोत्कच को देखा और बोला, तुम जाओ घटोत्कच। युद्ध की बहुत लालसा है तो किसी और से लड़ लो। पुत्र के लिए उचित नहीं है कि वह पिता को सताए। मुझे कुपित मत करो, अन्यथा जीवित नहीं बचोगे।

पुत्र के लिए तो उचित नहीं है कि वह पिता को सताए, किंतु तुम्हारे लिए उचित है कि अपने पौत्र सरीखे अंजनपर्वा को मार गिराओ? पुत्र प्रिय है और पौत्र? और फिर यहाँ तो सब किसी न किसी के पुत्र और पौत्र ही हैं। क्यों लड़ रहे हैं फिर ये सब लोग? उसका स्वर कुछ ऊँचा हो गया, द्रोणपुत्र। मैं कायर नहीं हूँ कि तुम्हारी नीचतापूर्ण बातों से डर जाऊँ। मैं भी कुरुवंशी भीम का पुत्र हूँ। इस प्रकार अन्तरिक्षमें मानों बाणोंका एक दूसरा ही संग्राम चल रहा था। जब दोनों ओरके बाण टकराते तो उनसे चिनगारियाँ छूटने लगतीं, जो उस प्रदोषकालमें आकाशके बीच जुगनुओंकी भाँति जान पड़ती थीं।

यह देख महारथी घटोत्कच घोर गर्जना करता हुआ अश्वत्थामाके ऊपर टूट पड़ा और रथके धुरेके समान स्थूल बाणोंकी वृष्टि करने लगा। उसने वज्र तथा अशनिके समान देदीप्यमान बाण, क्षुरप्र, अर्धचन्द्र, नाराज, शिलीमुख, वाराहकर्ण, नालीक और विकर्ण आदि अस्त्रोंकी झड़ी लगा दी। यह देख अश्वत्थामाने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये हुए बाण मारकर उस घोर अस्त्रवृष्टिको शान्त कर दिया और राक्षसके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा आरम्भ क़ी। फिर तो घटोत्कच और अश्वत्थामामें घोर युद्ध होने लगा; उस समय रात्रिका अन्धकार खूब गाढ़ा हो चुका था। घटोत्कचने अश्वत्थामाकी छातीमें बाण मारे, उनकी चोटसे उसका सारा शरीर काँप उठा और मूर्छित होकर वह रथकी ध्वजाके सहारे बैठ गया। थोड़ी देरमें जब उसे होश हुआ तो उसने यमदण्डके समान एक भयंकर बाण घटोत्कचके ऊपर छोड़ा। वह बाण उसकी छाती छेदकर पृथ्वीमें घुस गया और घटोत्कच मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। उसे बेहोश देखकर सारथी तुरंत रणभूमिसे बाहर ले गया।

ताना देकर कर्ण पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सेनाकी ओर चला गया। उस समय सहदेव मृत्युके निकट पहुँच चुका था, कर्ण

चाहता तो उसे मार डालता। किंतु कुन्तीको दिये हुए वरदानको याद कर उसने सहदेवका वध नहीं किया। सहदेवका मन बहुत उदास हो गया था; वह कर्णके बाणोंसे तो पीडित था ही, उसके वाग्बाणोंसे भी उसके दिलको काफी चोट पहुँची थी। इसलिये उसे जीवनसे वैराग्य-सा हो गया। वह बड़ी तेजीके साथ जाकर पाञ्चाल राजकुमार जनमेजयके रथपर बैठ गया।

द्रोणपुत्रके मस्तकपर शस्त्रोंकी बौछार होती देख आपके योद्धा बहुत दुखी हुए, परंतु वह स्वयं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वज्रके समान सायकोंसे उस घोर शस्त्र-वर्षाका विध्वंस करता रहा। फिर उसने अपने तीक्ष्ण बाणोंको दिव्य-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके राक्षसोंकी सेनाका संहार आरम्भ किया। उसके बाणोंसे घायल होकर राक्षसोंका समुदाय व्याकुल हो उठा। अश्वत्थामाकी मार पड़नेसे वे सब-के-सब क्रोधमें भरकर उसके ऊपर टूट पड़े। उस समय अश्वत्थामाने ऐसा अद्‌भुत पराक्रम दिखाया, जो दूसरोंके किये नहीं हो सकता था। उसने राक्षसराज घटोत्कचके देखते-देखते अपने प्रज्वलित बाणोंसे उसकी सेनाको भस्मसात् कर दिया। तब क्रोधमें भरे हुए घटोत्कचने दाँतोंसे अपना ओठ चबाकर ताली बजायी और सिंहनाद करके आठघंटियोंवाली एक भयानक अशनि अश्वत्थामाके ऊपर छोड़ी। किंतु उसने कूदकर वह अशनि हाथमें पकड़ ली और पुन: उसे घटोत्कचपर ही चला दी। घटोत्कच कूदकर रथसे अलग हो गया और वह भयंकर अशनि उसके घोड़े, सारथी, ध्वजा तथा रथको भस्म करके पृथ्वीमें समा गयी।

अपने वीर बन्धुके मारे जानेपर महारथी विराट तुरंत ही उसके रथमें बैठ गये और क्रोधसे आँखें फाड़कर ऐसी बाणवर्षा करने लगे, जिससे शल्यका रथ आच्छादित हो गया। तब मद्रराजने सेनापति विराटकी छातीमें बड़े जोरसे बाण मारा। वे उसकी चोट नहीं सँभाल सके, मूर्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़े। यह देख उनका सारथी उन्हें रणभूमिसे दूर हटा ले गया। इधर शल्य सैकड़ों बाण बरसाकर विराटकी सेनाका संहार करने लगे, इससे वह वाहिनी उस रात्रिकालमें भागने लगी। उसे भागते देख श्रीकृष्ण और अर्जुन, जहाँ राजा शल्य थे, उधर ही चल पड़े; किंतु राक्षस अलम्बुषने वहाँ पहुँचकर उन्हें बीचमें ही रोक लिया। यह देख अर्जुनने तीखे बाण मारकर उसे बींध डाला। तब अलम्बुष भयभीत होकर भाग गया। उसे परास्त कर अर्जुन तुरंत द्रोणके निकट पहुँचे और पैदल, हाथीसवार तथा घुड़सवारोंपर बाणसमूहोंकी वृष्टि करने लगे। उनकी मारसे कौरव सैनिक आँधीमें उखाड़े हुए वृक्षकी भाँति धराशायी होने लगे। अर्जुनने जब इस प्रकार संहार आरम्भ किया, तो आपके पुत्रकी सम्पूर्ण सेनामें भगदड़ मच गयी।

दुर्योधन बोला, कर्ण। मित्रों के कर्त्तव्यपालन की परीक्षा का उपयुक्त अवसर आ गया है। कर्ण ने प्रसन्न भाव से पूछा, क्यों क्या हुआ मित्र? क्रोध में भरे हुए पांचाल, मत्स्य, कैकेय तथा पांडव महारथी फुफकारते हुए सर्पों के समान भयंकर हो उठे हैं। मेरे सारे महारथी घिर गए हैं। तुम्हें नहीं लगता कि कौरव सेना का कोई रक्षक नहीं है? दुर्योधन ने पांडव सेना की ओर संकेत किया, वह देखो, पांडव और पांचाल अपने विजयगर्व से उत्फुल्ल होकर कैसे सिंहनाद कर रहे हैं।

कर्ण बोला, चिंता मत करो मित्र। थोड़ा धैर्य धारण करो। इस अंधकार में क्या पता चलेगा कि कोई जीता भी है, अथवा अपने भ्रम में हमें भ्रमित करने के लिए चिल्ला ही रहा है। तुम जानते ही हो कि उनका घटोत्कच अपनी माया ऐसे ही फैलाता है। दुर्योधन बोला- विप्रवर। आचार्य तो अपने पुत्रकी भाँति पाण्डवोंकी रक्षा करते हैं और तुम भी सदा उनकी ओरसे लापरवाही दिखाते हो। मैं नहीं जानता तुम्हारा पराक्रम क्यों मन्द हो गया है, शायद मेरा दुर्भाग्य हो अथवा तुम धर्मराज या द्रौपदीका प्रिय करना चाहते होंगे। अश्वत्थामा। मुझपर प्रसन्न हो जाओ और मेरे दुश्मनोंका नाश करो। तुम पाञ्चालों और सोमकोंको उनके अनुचरोंसहित मार डालो। इनके बाद जो बाकी रह जायँगे, उन्हें तुम्हारे संरक्षणमें रहकर मैं स्वयं मौतके घाट उतारूँगा। पहले पाञ्चालों, सोमकों और केकयोंको जाकर रोको; क्योंकि ये लोग अर्जुनसे सुरक्षित

होकर मेरी सेनाका सफाया किये डालते हैं। पहले करो या पीछे, यह काम तुम्हारे किये ही हो सकता है। अत: पाञ्चालोंको तुम उनके सेवकोंसहित मार डालो। तुम इस जगत्‌को पाञ्चालरहित कर दोगे- ऐसा सिद्ध पुरुषोंने कहा है। इन्द्रसहित देवता भी तुम्हारे बाणोंका प्रहार नहीं सह सकते; फिर पाण्डवों और पाञ्चालोंकी तो बात ही क्या है? वीरवर। देखो, यह मेरी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर भाग रही है; अत: शीघ्र ही जाओ, जाओ।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामाने इस प्रकार उत्तर दिया- महाबाहो। तुमने जो कुछ कहा है, सब ठीक है; मुझे और मेरे पिताजीको पाण्डव बड़े प्यारे हैं तथा वे भी हम दोनोंपर प्रेम रखते हैं। किंतु यह बात युद्धके समय लागू नहीं होती। उस समय तो हमलोग प्राणोंका मोह छोड़ निडर होकर पूरी शक्तिसे युद्ध करते हैं। किंतु तुम तो महान् लोभी और कपटी हो, सबपर संदेह करनेका तुम्हारा स्वभाव हो गया है। अपने ही घमंडमें फूले रहते हो; यही कारण है कि हमलोगोंपर तुम्हारा विश्वास नहीं होता। खैर, मैं तो अब जाता हूँ; तुम्हारे हितके लिये जीवनका लोभ छोड़कर प्रयत्नपूर्वक शत्रुओंसे युद्ध करता रहूँगा और उनके मुख्य-मुख्य वीरोंको चुन-चुनकर मारूँगा। पाञ्चालों और सोमकोंका वध तो करूँगा ही, उन्हें मरा देख जो लोग मेरे साथ लड़ने आवेंगे, उन्हें भी यमलोक भेज दूँगा। मेरी भुजाओंकी पहुँचके भीतर जो आ जायँगे, वे छूटकर नहीं जा सकते।

इस प्रकार आपके पुत्रसे कहकर अश्वत्थामा समस्त धनुर्धारियोंको भगाता हुआ युद्ध करनेके लिये शत्रुओंके सामने जा डटा। उसने केकय और पाञ्चाल राजाओंसे पुकारकर कहा- महारथियों। तुम सब लोग एक साथ मुझपर प्रहार करो। यह सुनकर वे सभी वीर अश्वत्थामापर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। अश्वत्थामाने उनके अस्त्रोंका निवारण करके पाण्डवों और धृष्टद्युम्नके सामने ही उनमेंसे दस वीरोंको मार गिराया। अश्वत्थामाकी मार पड़नेसे पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय वहाँसे हटकर इधर-उधर सब दिशाओंमें भागने लगे। तब धृष्टद्युम्नने अश्वत्थामापर धावा किया और उसे मर्मभेदी सायकोंसे बींध डाला। अधिक घायल होनेसे अश्वत्थामा क्रोधमें भर गया और हाथमें बाण लेकर बोला- धृष्टद्युम्न। स्थिर होकर क्षणभर और प्रतीक्षा कर लो, अभी थोड़ी देरमें तुम्हें तीखे भल्लोंसे मारकर यमलोक पठाता हूँ। यह कहकर उसने धृष्टद्युम्नको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। तब पाञ्चाल राजकुमारने अश्वत्थामाको डाँटकर कहा- अरे ब्राह्मण। क्या तू मेरी प्रतिज्ञा तथा मेरे उत्पन्न होनेका प्रयोजन नहीं जानता? आज रातमें सबेरा होनेसे पहले ही तेरे पिताको मारकर फिर तेरा वध करूँगा। जो ब्राह्मण ब्राह्मणोचित वृत्तिका त्याग करके क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहता है, वह सब लोगोंका वध्य है।

अश्वत्थामाका वह पराक्रम देख सब योद्धा उसकी प्रशंसा करने लगे। अपना रथ नष्ट हो जानेसे घटोत्कच धृष्टद्युम्नके रथपर जा बैठा और एक भयानक धनुष हाथमें ले अश्वत्थामाकी छातीपर बाणोंसे प्रहार करने लगा। इसी प्रकार धृष्टद्युम्न भी निर्भीक होकर द्रोणपुत्रके हृदयमें बाणोंसे चोट पहुँचाने लगा। इधरसे अश्वत्थामा भी उनपर हजारों बाणोंकी वर्षा करने लगा और वे दोनों अपने अस्त्रोंसे उसके बाणोंको काटने लगे। इस प्रकार उनमें बड़ी तेजीके साथ अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ा हुआ था। उस समय अश्वत्थामाने वहाँ अत्यन्त अद्‌भुत पराक्रम प्रकट किया, जो दूसरोंके लिये सर्वथा असम्भव था। उसने पलक मारते ही घोड़े, सारथी, रथ और हाथियोंसहित राक्षसोंकी एक अक्षौहिणी सेनाका सफाया कर डाला। भीम, घटोत्कच, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, अर्जुन और श्रीकृष्ण भी देखते ही रह गये। उसके बाणोंकी चोट खाकर हाथी श्रृङ्गहीन पर्वतके समान पृथ्वीपर भहरा पड़ते थे। उसने अपने नाराचोंसे पाण्डवोंको बींधकर द्रुपदकुमार सुरथको मार डाला। फिर द्रुपदके छोटे भाई शत्रुञ्जयका काम तमाम किया। इसके बाद बलानीक, जयानीक और जयाश्वके प्राण लिये; फिर श्रुताह्वयको यमलोक भेज दिया। तदनन्तर बाणोंसे हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका वध किया। तत्पश्चात् कुन्तिभोजके दस पुत्रोंको भी बाणोंसे यमलोकका अतिथि बनाया। इसके बाद उसने यमदण्डके समान

घोर बाण धनुषपर चढ़ाया और घटोत्कचकी छातीमें प्रहार किया। वह महान् बाण उसकी छाती छेदकर पृथ्वीमें समा गया, घटोत्कच मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे मरकर गिरा हुआ समझकर धृष्टद्युम्न अश्वथामाके पाससे अपना रथ दूर हटा ले गया। युधिष्ठिरकी सेनाके राजालोग भाग चले; वीरवर अश्वत्थामा पाण्डव-सेनाको परास्त कर सिंहके समान गर्जना करने लगा। उस समय अन्य सब लोगोंने तथा आपके पुत्रोंने भी द्रोणकुमारका विशेष सम्मान किया। सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, सुपर्ण, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत, अप्सरा तथा देवतालोग भी अश्वत्थामाकी प्रशंसा करने लगे।

भीमने रात्रि युद्धमें भी धृतराष्ट्रके अनेक पुत्रोंको मार दिया। उन्होंने दुर्योधन सहित उसके सब भाइयोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी। धृतराष्ट्रके पुत्रोंको देखते ही उनका क्रोध सीमापर पहुँच जाता था और वे संहारकी साकारमूर्ति हो उठते थे। इस रात्रि युद्धमें तो उन्होंने शकुनिके भी सब भाइयोंको स्वर्ग भेज दिया।

आजकी विजयसे धर्मराज युधिष्ठिरमें असीम उत्साह आ गया था। इस उत्साहातिरेकमें वे सीधे आचार्य द्रोणसे युद्ध करने लगे थे और पराजित होकर भी पुन: आचार्यपर टूट पड़े थे। द्रोणाचार्यने दिव्यास्त्रोंका, ब्रह्मास्त्र तकका प्रयोग किया किन्तु धर्मराजने सबका उचित उत्तर दिया। ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे शान्त कर दिया।

तब आपके पुत्रने आचार्य द्रोणको युधिष्ठिरकी ओर प्रेरित किया। आचार्यने अत्यन्त क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रका प्रयोग किया, किंतु धर्मराजने उसे वैसे ही दिव्य अस्त्रसे काट दिया। तब तो द्रोणके कोपकी सीमा न रही। उन्होंने युधिष्ठिरपर वारुण, याम्य, आग्नेय, त्वाष्ट्र और सावित्र आदि अस्त्रोंका प्रयोग किया; किंतु वे इससे तनिक भयभीत नहीं हुए। उन्होंने भी दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग कर उन सभी अस्त्रोंको निष्फल कर दिया। तब द्रोणने ऐन्द्र और प्राजापत्य अस्त्रोंको प्रकट किया। यह देख युधिष्ठिरने माहेन्द्रअस्त्र प्रकट करके उन अस्त्रोंका नाश कर दिया।

इस प्रकार जब द्रोणाचार्यके अस्त्र लगातार नष्ट होने लगे, तो उन्होंने कुपित होकर युधिष्ठिरका वध करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उस समय चारों ओर घोर अन्धकार छा गया था। ब्रह्मास्त्रके भयसे सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे थे। उस ब्रह्मास्त्रको प्रकट हुआ देख युधिष्ठिरने ब्रह्मास्त्रसे ही उसे शान्त कर दिया। तब द्रोणाचार्य धर्मराज को छोड़कर क्रोधसे लाल आँखें किये चले गये और वायव्यास्त्रसे द्रुपदकी सेनाका संहार करने लगे। उनके भयसे पञ्चालदेशीय वीर भाग चले। इसी समय अर्जुन और भीम रथियोंकी बड़ी भारी सेना लेकर द्रोणके पास आये। अर्जुनने दक्षिणकी ओरसे और भीमने उत्तरकी ओरसे द्रोणकी सेनापर घेरा डाल दिया; फिर वे दोनों भाई उनपर बाणोंकी बौछार करने लगे। फिर तो वहाँ केकय, सृञ्जय, पाञ्चाल, मत्स्य और सात्वत वीर भी आ पहुँचे। अर्जुनने कौरव-सेनाका संहार आरम्भ किया। एक तो घोर अन्धकारमें कुछ सूझता नहीं था, दूसरे सबको नींद सता रही थी; इसलिये आपकी वाहिनीका बेतरह विध्वंस होने लगा। उस समय आचार्य द्रोण और आपके पुत्रने पाण्डव योद्धाओंको रोकनेकी बहुत कोशिश की, किंतु वे सफल न हो सके।

संजय कहते हैं- महाराज। जो स्थान पहले धूल और अन्धकारसे आच्छन्न हो रहा था, वह दीपकोंके प्रकाशसे आलोकित हो उठा रत्नजटित सोनेकी दीवटोंपर सुगन्धित तेलसे भरे हुए हजारों दीपक जगमगा रहे थे। जैसे असंख्य नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है, उसी प्रकार उन दीपमालाओंसे उस रणभूमिकी शोभा हो रही थी। उस समय हाथीसवार हाथीसवारोंसे और घुड़सवार घुड़सवारोंसे भिड़ गये। रथियोंका रथियोंके साथ मुकाबला होने लगा। सेनाका भयंकर संहार आरम्भ हो गया। अर्जुन बड़ी फूर्तिके साथ राजाओंका वध करते हुए कौरव-सेनाका विनाश करने लगे।

महाराज। उस रात्रिमें दुर्योधनने आचार्य द्रोणकी सलाह लेकर अपने भाइयों तथा कर्ण, वृषसेन, मद्रराज शल्य, दुर्द्धर्ष, दीर्घबाहु तथा उन सबके अनुचरोंसे कहा- तुम सब लोग पूर्ण सावधान रहकर पराक्रम करते हुए पीछे रहकर आचार्य

द्रोणकी रक्षा करो। कृतवर्मा दक्षिण पहियेकी और शल्य उत्तरवाले पहियेकी रक्षा करें। इसके बाद त्रिगर्तदेशके महारथी वीरोंमेंसे जो मरनेसे बचे हुए थे, उन सबको आपके पुत्रने आचार्यके आगे रहनेकी आज्ञा दी और कहा- वीरो। आचार्य द्रोण बड़ी सावधानीके साथ युद्ध कर रहे हैं; पाण्डव भी बड़ी तत्परताके साथ उनका सामना करते हैं। अत: अब तुमलोग सावधान रहकर आचार्यकी महारथी धृष्टद्युम्नसे रक्षा करो।

रात्रिका वह युद्ध इतना भयानक था कि वैसा उसके पहले न कभी देखा गया और न सुना ही गया था। उधर राजा युधिष्ठिरने पाण्डवों, पाञ्चालों और सोमकोंको आज्ञा दी कि तुम सब लोग द्रोणका वध करनेके लिये उनपर एकबारगी टूट पड़ो। राजाकी आज्ञा पाकर वे पाञ्चाल और सृञ्जय आदि क्षत्रिय भैरव-नाद करते हुए द्रोणपर चढ़ आये। उस समय कृतवर्माने युधिष्ठिरको और भूरिने सात्यकिको रोका। सहदेवका कर्णने और भीमका दुर्योधनने सामना किया। शकुनिने नकुलको आगे बढ़नेसे रोका। शिखण्डीको कृपाचार्यने और प्रतिविन्ध्यका दु:शासनने मुकाबला किया। सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाले राक्षस घटोत्कचको अश्वत्थामाने रोका। इसी प्रकार द्रोणको पकड़नेके लिये आते हुए महारथी द्रुपदका वृषसेनने सामना किया। मद्रराज शल्यने विराटका वारण किया। नकुलनन्दन शतानीक भी द्रोणकी ओर बढ़ा आ रहा था, उसे चित्रसेनने बाण मारकर रोक दिया। महारथी अर्जुनका राक्षसराज अलम्बुषने मुकाबला किया।

संजय कहते हैं- तदनन्तर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर और भीमने अश्वत्थामाको घेर लिया। इतनेहीमें राजा दुर्योधन द्रोणाचार्यके साथ पाण्डवोंपर चढ़ आया, फिर उनमें भयंकर युद्ध होने लगा। उस समय भीमने कुपित होकर अम्बठ, मालवा, बंगाल, शिबि तथा त्रिगर्त देशके वीरोंको यमलोक भेज दिया। फिर अभीषाह, शूरसेन तथा अन्यान्य रणोन्मत्त क्षत्रियोंका वध करके उनके खूनसे पृथ्वीको भिगोकर कीचड़मयी कर दिया। दूसरी ओरसे अर्जुनने भी मद्र, मालवा तथा पर्वतीय प्रदेशके योद्धाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मौतके घाट उतारा; इधर द्रोणाचार्य भी क्रोधमें भरकर वायव्यास्त्रसे पाण्डव-योद्धाओंका संहार करने लगे। उनकी मारसे पीड़ित होकर पाञ्चाल वीर अर्जुन और भीमके सामने ही भागने लगे। यह देख वे दोनों भाई सहसा द्रोणपर चढ़ आये। अर्जुन दक्षिण बगलमें थे और भीम उत्तरमें। दोनों ही आचार्य द्रोणपर बड़ी भारी बाणवर्षा करने लगे। यह देखकर सृञ्जय, पाञ्चाल, मत्स्य और सोमक क्षत्रिय उन दोनोंकी सहायतामें आ पहुँचे। इसी प्रकार आपके पुत्रके महारथी योद्धा भी बहुत बड़ी सेनाके साथ द्रोणाचार्यके रथके पास आ गये। कौरव-सेनापर पुन: अर्जुनकी मार पड़ने लगी। एक तो अँधेरेके कारण कुछ सूझता नहीं था, दूसरे नींदसे सब लोग व्याकुल थे इस कारण आपकी सेनाका भयंकर संहार हो रहा था। बहुत-से राजालोग अपने वाहनोंको वहीं छोड़ भयभीत होकर चारों ओर भाग गये।

तदनन्तर आचार्य द्रोणने शत्रुसेनाका संहार आरम्भ किया, किंतु पाञ्चालराजकुमार धृष्टद्युम्नने वहाँ पहुँचकर बाधा उपस्थित की तथा पाण्डवोंकी ओरसे जो दूसरे-दूसरे महारथी लड़नेको आये, उन्हें आपके महारथियोंने अपने पराक्रमसे रोक दिया। कृतवर्माने जब युधिष्ठिरको रोका तो उन्होंने उसे बाणोंसे मारकर बींध दिया। इससे कृतवर्मा क्रोधमें भर गया और एक भल्ल मारकर उसने धर्मराजका धनुष काट दिया, फिर बाणोंसे उन्हें घायल किया। युधिष्ठिरने दूसरा धनुष हाथमें लेकर कृतवर्माकी भुजाओं तथा छातीमें बाण मारे। उनकी चोटसे वह काँप उठा और रोषमें भरकर उसने बाणोंसे उन्हें खूब घायल किया।

वह भयंकर युद्ध चल ही रहा था कि धृष्टद्युम्नने भी द्रोणपर आक्रमण किया। वह बारंबार धनुष टंकारता हुआ द्रोणकी ओर बढ़ने लगा। उसे आते देख पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा उसको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उसे इस प्रकार सुरक्षित देखकर आपके पुत्र भी बड़ी सावधानीके साथ आचार्यकी रक्षा करने लगे। इसी बीचमें धृष्टद्युम्नने द्रोणकी छातीमें बाण मारकर सिंहनाद किया। तदनन्तर द्रोणका पक्ष ले कर्ण, अश्वत्थामा, स्वयं द्रोण, शल्य, दु:शासन, दुर्योधन और शकुनिने

बाण मारकर धृष्टद्युम्नको बींध डाला। किंतु वह इससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने उन सातों महारथियोंको बाणोंसे घायल कर दिया। फिर द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण और आपके पुत्रको बाणोंसे बींध डाला। तब उनमेंसे एक-एक महारथीने धृष्टद्युम्नको पुन: बाण मारे। फिर द्रुमसेनने कुपित होकर पहले एक बाणसे, उसके बाद तीन सायकोंसे धृष्टद्युम्नको घायल किया। धृष्टद्युम्नने भी उसे बाण मारे, फिर एक भल्लसे उसके सिरको धड़से अलग कर दिया।

धृष्टद्युम्नके कहे हुए इस कठोर वचनको सुनकर अश्वत्थामा प्रचण्ड कोपसे जल उठा और खड़ा रह। खड़ा रह। ऐसा कहते हुए उसने बाणोंकी वर्षासे उसे ढक दिया। उधरसे धृष्टद्युम्न भी अश्वत्थामापर नाना प्रकारके बाणोंका प्रहार करने लगा। उन दोनोंकी बाणवर्षासे आकाश और दिशाएँ भर गयीं, घोर अन्धकार छा गया; अत: वे एक-दूसरेकी दृष्टि से ओझल होकर ही लड़ने लगे। दोनोंके ही युद्धका ढंग बड़ा अद्भुत तथा सुन्दर था, दोनोंकी फूर्ती देखने ही योग्य थी। उस समय रणभूमिमें खड़े हुए हजारों योद्धा उन दोनोंकी प्रशंसा कर रहे थे। उस युद्धमें अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्नके धनुष, ध्वजा तथा छत्र काट डाले और पार्श्वरक्षक, सारथी तथा चारों घोड़ोंको भी मार गिराया। इसके बाद अपने तीखे बाणोंसे मारकर उसने सैकड़ों और हजारों पाञ्चालोंको भगा दिया। उसके इस पराक्रमको देखकर पाण्डव-सेना व्यथित हो उठी। उसने बाणोंसे सौ पाञ्चालोंका नाश करके तीन श्रेष्ठ महारथियोंके प्राण ले लिये। फिर धृष्टद्युम्न और अर्जुनके देखते-देखते वहाँ खड़े हुए बहुसंख्यक पाञ्चालोंका संहार कर डाला। उनके रथ और ध्वजाएँ चूर-चूर हो गयीं। अब तो सृञ्जय और पाञ्चालोंमें भगदड़ पड़ गयी। इस प्रकार महारथी अश्वत्थामा संग्राममें शत्रुओंको जीतकर बड़े जोरसे गर्जना करने लगा। उस समय कौरवोंने उसकी खूब प्रशंसा की।

कर्ण ने कृपाचार्य को देखा तो उन्हें सुनाकर दुर्योधन से बोला, मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में आए हुए पांडवों और पांचालों को निश्चय ही मार डालूँगा। मुझे तुम्हारा मनभावन करना है, इसी के लिए मैंने यह जीवन धारण कर रखा है। मैं तुम्हें विजय ही नहीं दिलाऊँगा। पांडवों को मारकर सारी पृथ्वी का राज्य तुम्हें दूँगा।

कृपाचार्य ने सुना और जैसे कोई शूल उनके मन में चुभा कह तो इस प्रकार रहा है, जैसे पृथ्वी का राज्य कोई कंकड़ पत्थर हो कि कोई भी उठाए और किसी की भी हथेली पर रख दे। झूठा कहीं का।

कर्ण ने कह तो दिया, किंतु उसके अपने ही मन का कोई कोना जैसे उसकी बात से सहमत नहीं था। वह दुर्योधन को वचन दे रहा है कि वह पांडवों को मार देगा; और कुंती को वचन दिया है कि वह पांडवों में से चार का वध नहीं करेगा। तो ये दोनों प्रतिज्ञाएँ कैसे पूरी हो सकती हैं। एक पूरी होगी तो दूसरी झूठी हो जाएगी। तो क्या वह चाहता है कि यदि पाँचों पांडव मारे जाएँ तो दुर्योधन को दिया हुआ वचन पूरा हो जाए और यदि किसी कारण से वह पांडवों को न मार सके तो कुंती को दिया हुआ वचन सत्य प्रमाणित हो। वह तो दोनों ही स्थितियों में सच्चा प्रमाणित हो जाएगा नहीं। वह यह सोचकर दोनों को वचन नहीं दे रहा है। पर यदि ऐसा हो भी जाए तो केवल अर्जुन का वध कर ही तो वह पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को नहीं दे सकता। उसके लिए तो सारे पांडवों और पांचालों का ही नहीं वृष्णिवंशियों का भी वध करना होगा। कर पाएगा वह? या वह केवल वह सब कह देता है, जो सुनना दुर्योधन को अच्छा लगता है? कुंती को दिया गया वचन भी क्या उस समय उसे टालने अथवा सामयिक रूप से सुखी करने का प्रयत्न मात्र था? उसकी प्रतिज्ञा...

दुर्योधन का स्वर कुछ हताश था, पर यह कैसे संभव होगा मित्र। युद्ध के इन सारे दिनों में अर्जुन एक दिन भी किसी से पराजित नहीं हुआ है। तुम उसे कैसे पराजित करोगे।

दुर्योधन का अभिप्राय कर्ण की समझ में आ रहा था। वह उससे पूछ नहीं रहा था कि वह अर्जुन को कैसे पराजित करेगा, वह तो अपनी निराशा प्रकट कर रहा था।

कर्ण दुर्योधन से बोला, आज युद्ध में यदि इंद्र भी रक्षा करने के लिए आए तो मैं उन्हें भी हराकर अर्जुन को मार डालूँगा। मैं अर्जुनपर इन्द्र की दी हुई शक्ति का प्रहार करूँगा। मैं जब तक जी रहा हूँ तुम तनिक भी विषाद मत करो। मैं सम्पूर्ण वृशियों को जीतकर यह पृथ्वी तुम्हें दान कर दूँगा।

जब कर्ण इस प्रकार कह रहा था, उसी समय कृपाचार्य हँसकर बोले- खूब। खूब। कर्ण। तुम बड़े बहादुर हो। यदि बात बनानेसे ही काम हो जाय, तब तो तुम्हें पाकर कुरुराज सनाथ हो गये। तुम इनके पास बहुत बढ़-बढ़कर बातें किया करते हो; किंतु न कभी तुम्हारा पराक्रम ही देखा जाता है और न उसका कोई फल ही सामने आता है। संग्राममें पाण्डवोंसे तुम्हारी अनेकों बार मुठभेड़ हुई है, किंतु सर्वत्र तुमने हार ही खायी है। कर्ण। याद है कि नहीं? जब गन्धर्व दुर्योधनको पकड़कर लिये जा रहे थे, उस समय सारी सेना तो युद्ध कर रही थी और अकेले तुम ही सबसे पहले भागे थे। विराटनगरमें भी सम्पूर्ण कौरव इकट्ठे हुए थे, वहाँ अर्जुनने अकेले ही सबको हराया था। तुम भी अपने भाइयोंके साथ परास्त हुए थे। अकेले अर्जुनका सामना करनेकी तो तुममें शक्ति ही नहीं है, फिर श्रीकृष्णसहित सम्पूर्ण पाण्डवोंको जीतनेका साहस कैसे करते हो? चुपचाप युद्ध करो, तुम डींग बहुत हाँकते हो। बिना कहे ही पराक्रम दिखाया जाय- यही सत्पुरुषोंका व्रत है। जबतक अर्जुनके बाण तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ रहे हैं, तभीतक गरज रहे हो; जब उनके बाणोंसे घायल होओगे तो सारी गर्जना भूल जायगी। क्षत्रिय बाहुबलमें शूर होते हैं; ब्राह्मण वाणीमें शूर होते हैं, अर्जुन धनुष चलानेमें शूर हैं, किंतु कर्ण तो मनसूबे बाँधनेमें ही शूर है। जिन्होंने अपने पराक्रमसे भगवान् शंकरको संतुष्ट किया है उस अर्जुनको कौन मार सकता है?

कृपाचार्यकी यह बात सुनकर कर्णने रुष्ट होकर कहा- वर्षाकालके मेघके समान शूरवीर सदा ही गर्जना करते रहते हैं और पृथ्वीमें बोये हुए बीजकी भाँति वे शीघ्र ही फल भी देते हैं। बाबाजी। यदि मैं गरजता हूँ तो आपका क्या नुकसान होता है? मैं कृष्ण और सात्यकिके साथ सम्पूर्ण पाण्डवोंका वध करके पृथ्वीका अकण्टक राज्य दुर्योधनको दे डालूँगा।

कृपाचार्य बोले, सूतपुत्र। मुझे तुम्हारे इस मनसूबे बाँधने और प्रलाप करनेपर विश्वास नहीं है। तुम तो श्रीकृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिरको सदा ही कोसते रहते हो। परंतु विजय उसी पक्षकी निश्चित है, जहाँ युद्ध-कुशल श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। यदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, सर्प और राक्षस भी कवच धारण करके युद्ध करने आवें तो उन दोनोंको नहीं जीत सकते। धर्मपुत्र युधिष्ठिर ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, गुरु और देवताओंका सम्मान करनेवाले, सदा धर्मपरायण, अस्त्रविद्यामें विशेष कुशल, धैर्यवान् और कृतज्ञ हैं। इनके भाई भी बलवान हैं और अस्त्रविद्यामें परिश्रम किये हुए हैं। वे सभी बुद्धिमान्, धर्मात्मा और यशस्वी हैं तथा उनके सम्बन्धी भी इन्द्रके समान पराक्रमी और उनके प्रति प्रेम रखनेवाले हैं। अत: पाण्डवोंका कभी नाश नहीं हो सकता। भीम तथा अर्जुन यदि चाहें तो अपने अस्त्रबलसे देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, राक्षस, भूत और नागगणोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत्का विनाश कर सकते हैं। युधिष्ठिर भी यदि रोषभरी दृष्टिसे देखें तो इस भूमण्डलको भस्म कर सकते हैं। जिनके बलकी कोई सीमा नहीं है वे श्रीकृष्ण भी जिनके लिये कवच धारण करके तैयार हैं, उन शत्रुओंको जीतनेका साहस तुम कैसे कर रहे हो?

यह सुनकर कर्णने हँसकर कहा- बाबा। तुमने पाण्डवोंके विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सच है। इतने ही नहीं, और भी बहुत-से गुण पाण्डवोंमें हैं। यह भी ठीक है कि उन्हें इन्द्र आदि देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षस भी नहीं जीत सकते, तो भी मैं उनपर विजय पाऊँगा। मुझे इन्द्रने एक अमोघ शक्ति दे रक्खी है, उसके द्वारा मैं युद्धमें अर्जुनको मार डालूँगा। उनके मरनेपर उनके सहोदर भाई किसी तरह पृथ्वीका राज्य नहीं भोग सकते। उन सबका नाश हो जानेपर समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी अनायास ही कुरुरराजके वशमें हो जायगी। तुम तो स्वयं बूढ़े होनेके कारण युद्ध करनेमें असमर्थ हो, साथ ही

पाण्डवोंपर तुम्हारा स्नेह है; इसीलिये मोहवश मेरा अपमान कर रहे हो। यदि मेरे विषयमें फिर कोई अप्रिय बात मुँहसे निकालोगे तो तलवारसे तुम्हारी जीभ काट लूँगा। दुर्बुद्धि ब्राह्मण। तुम कौरवोंको डराने के लिये पाण्डवोंकी स्तुति कर रहे हो? मैं तो पाण्डवोंका कोई विशेष प्रभाव नहीं देखता; दोनों ही पक्षकी सेनाओंका समान रूपसे संहार हो रहा है। द्विजाधम। जिन्हें तुम विशेष बलवान् समझते हो, उनके साथ मैं पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करूँगा। विजय तो प्रारब्धके अधीन है।

कर्ण का अहंकार कुछ ऐसा पीड़ित हुआ कि उसने कृपाचार्य और अश्वत्थामा की उपस्थिति की भी चिंता नहीं की। कुछ आवेश में बोला, आज मैं इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति वैजयंती, अर्जुन पर छोड़ दूँगा। अर्जुन के मारे जाने पर उसके सारे भाई तुम्हारे वश में हो जाएँगे, या स्वयं ही वन में चले जाएँगे। उन्हें मारने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। मैं पांचालों, कैकेयों, वृष्णिवंशियों के टुकड़े-टुकड़े कर, यह सारी पृथ्वी तुम्हें दे दूँगा।

कृपाचार्य को कर्ण का यह सब कहना बहुत अखर रहा था। उनके मन में दो ही चित्र उभर रहे थे... पहला किसी चाटुकार द्वारा अपने स्वार्थ के लिए अपने राजा के सम्मुख झूठ पर झूठ बोलते चले जाना; और दूसरा किसी असमर्थ पिता द्वारा अपने अबोध बालक को झूठे आश्वासनों के द्वारा बहलाना। पर कर्ण वैसा असहाय पिता नहीं था और न ही दुर्योधन वैसा अबोध बालक था। यह कर्ण धूर्त्तता कर रहा था और दुर्योधन को बहका रहा था। सारे पांडवों, पांचालों, कैकेयों, मत्स्यों और वृष्णियों को मारने की बात कोई योद्धा सोच-समझकर नहीं कह सकता। और पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को देने का वचन तो कोई विक्षिप्त भी नहीं दे सकता। आज कर्ण की चाटुकारिता कुछ अधिक ही बढ़ गई थी। या यह उसका अहंकार था? क्या वह सचमुच यह मानने लगा था कि वह इन सारे योद्धाओं को युद्ध में जीत सकता है?

कृपाचार्य स्वयं को रोक नहीं पाए। बोले, बातें बनाने से ही पृथ्वी का साम्राज्य मिल जाता, तो तुम जैसा सहायक पाकर कुरुराज दुर्योधन कृतार्थ हो जाते। बोलते तुम बहुत हो किंतु तुम्हारा पराक्रम तो भी दिखाई नहीं पड़ता। रणभूमि में पांडवों से तुम्हारा अनेक बार आमना-सामना हुआ है, पर सर्वत्र तुम ही परास्त हुए हो। पांडवों से सामना न हो तो भी क्या करते हो तुम। घोषयात्रा के समय सारी सेना गंधर्वों से युद्ध कर रही थी ओर तुम भाग गए थे। विराटनगर में अकेले अर्जुन ने ही हम सबको परास्त कर दिया था। कहाँ थे तुम तब? अपने ब्रह्मचारी जीवन में भी तुम गुरुकुल में सदा स्वयं को अर्जुन से श्रेष्ठ बताते रहे किंतु सिद्ध कभी नहीं कर पाए।

चुपचाप युद्ध करो। बातें बहुत करते हो। कुछ करना तुम्हारे वश का नहीं है। जब तक अर्जुन सामने नहीं है, गर्जना कर लो। अर्जुन के सम्मुख आते ही सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है तुम्हारी। आज से नहीं, गुरुकुल के दिनों से देखा है मैंने तुमको। अर्जुन से सदा अनावश्यक स्पर्धा की है तुमने। दुर्योधन का सहारा लेकर सदा पांडवों का अपमान करने का प्रयत्न किया है। शरद के मेघों के समान व्यर्थ गर्जना करते हो, बरसते कभी नहीं। पर दुर्योधन समझता ही नहीं है कि कर्ण केवल वाग्वीर है। बातें ही बना सकता है। तुम्हारी बातों ने उसके कान सी दिए हैं और मस्तिष्क को स्तब्ध कर दिया है।

कर्ण का आक्रोश कुछ इस प्रकार बढ़ा कि उसके मस्तिष्क में कोई तर्क नहीं उपजा। बोला, विप्रवर। मैं कृष्ण और सात्यकि सहित सारे पांडवों को युद्ध में मारने का निश्चय कर, गरज रहा हूँ, तो आपके पेट में शूल क्यों उठ रहा है? क्या कष्ट है आपको? क्या नष्ट हो रहा है आपका? मैं अब भी कह रहा हूँ कि मैं अर्जुन, सात्यकि और कृष्ण को मारकर पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को दे दूँगा।

कृपाचार्य वितृष्णा से हँस दिए और बोले, तुम कृष्ण को मारोगे? निरर्थक प्रलाप कर रहे हो तुम। विजय उसी पक्ष की होगी, जिस पक्ष की ओर से युद्धविशारद श्रीकृष्ण और वीरवर अर्जुन लड़ रहे हैं। धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध त्याग दें और एक

रोषभरी दृष्टि भी डालें तो इस पृथ्वी को भस्म कर दें। तुम उन सबको जीतकर पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को दे दोगे, जैसे पृथ्वी का राज्य तुम्हारी संपत्ति ही तो है।

कर्ण ने कृपाचार्य को एक कंटकित दृष्टि से देखा और अपने शब्दों को चबाता हुआ, उनका परिहास-सा करता हुआ बोला, बाबाजी। आज मैं अर्जुन पर वैजयंती छोड़ दूँगा। अब उसे और सँभालने की आवश्यकता नहीं है, न ही अर्जुन के वध को टालने का कोई लाभ है। सूतपुत्र कर्णको अपने मामाके प्रति कठोर भाषण करते देख अश्वत्थामा हाथमें तलवार ले बड़े वेगसे कर्णकी ओर झपटा। दुर्योधनके देखते-देखते वह कर्णके पास आ पहुँचा और अत्यन्त क्रोधमें भरकर बोला- अरे नीच। मेरे मामा शूरवीर हैं और ये अर्जुनके सच्चे गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं; तो भी तू अर्जुनसे द्वेष होनेके कारण इनका तिरस्कार कर रहा है। तू अपनी ही शूरताकी डीग हाँका करता है; किंतु जब तुझे हराकर अर्जुनने तेरे देखते-देखते जयद्रथका वध किया, उस समय कहाँ था तेरा पराक्रम? और कहाँ गये थे तेरे अस्त्र-शस्त्र? जिन्होंने युद्धमें साक्षात्, महादेवको संतुष्ट किया है, उन्हे जीतनेको तू व्यर्थ ही मनसूबे बाँधा करता है। श्रीकृष्णके साथ रहते अर्जुनको इन्द्र आदि देवता और असुर भी नहीं हरा सकते, फिर तू कैसे जीत सकता है? नराधम, खड़ा रह, अभी तेरा सिर धड़से अलग करता हूँ। मूर्ख सूतपुत्र। तेरा यह अपराध हम तो सहे लेते हैं, किंतु अर्जुन तेरे इस बढ़े हुए घमंडका अवश्य नाश करेगा।

दुर्योधन बोला- भाई अश्वत्थामा। शान्त हो जाओ। तुम तो दूसरोंको सम्मान देनेवाले हो, इस अपराधको क्षमा करो। तुम्हें कर्णपर किसी तरह क्रोध नहीं करना चाहिये। विप्रवर। मैंने तो तुमपर और कर्ण, कृप, द्रोण, शल्य तथा शकुनिपर ही इस महान् कार्यका भार दे रक्खा है।

इस प्रकार राजाके मनानेसे अश्वत्थामाका क्रोध शान्त हो गया। कृपाचार्यका स्वभाव भी बड़ा कोमल था, वे शीघ्र ही सदय होकर बोले, सूतपुत्र। हम तो तेरे अपराधको क्षमा कर देते हैं, परंतु तेरे बढ़े हुए घमंडका अर्जुन अवश्य नाश करेगा।

दूसरी ओर कृपाचार्यने शिखण्डीपर धावा किया। उन्हें निकट आते देख शिखण्डीने बाणोंसे घायल कर दिया। कृपाचार्यने भी बाणोंसे मारकर फिर उसपर आघात किया। फिर तो उन दोनोंमें महाभयंकर घोर संग्राम छिड़ गया। शिखण्डीने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे कृपाचार्यके धनुषको काट दिया। यह देख उन्होंने शिखण्डीपर शक्तिका प्रहार किया, किंतु उसने अनेकों बाण मारकर उस शक्तिके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर शिखण्डीको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। इससे शिथिल होकर वह रथके पिछले भागमें बैठ गया। उसे उस अवस्थामें देख कृपाचार्य उसपर लगातार बाण बरसाने लगे। तब तो वह भाग खड़ा हुआ। यह देख पाञ्चाल और सोमक वीर उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। इसी प्रकार आपके पुत्र भी बहुत बड़ी सेनाके साथ कृपाचार्यके चारों ओर डट गये। फिर दोनों दलोंमें घोर संग्राम होने लगा। उस समय कोई अपनेको भी नहीं पहचान पाते थे। मोहवश पिता पुत्रको और पुत्र पिताको मार रहे थे। मित्र मित्रके प्राण ले रहे थे। मामा भानजोंपर और भानजे मामापर प्रहार करते थे। रात्रिके उस भयंकर युद्धमें कोई नियम नहीं, कोई मर्यादा नहीं रह गयी थी।

श्रीकृष्ण अर्जुनका रथ लिये युधिष्ठिरके समीप पहुँचे और बोले- महाराज। आपको आचार्य द्रोणसे दूर ही रहना चाहिए। मेरी बात मानिए। आचार्य युद्धमें सदा आपको बन्दी बनानेके उद्योगमें रहते हैं। वे कब सफल हो जायँ, कोई नहीं कह सकता। इनका दिव्यास्त्र ज्ञान संसारमें दुर्लभ है। अत: इनके वधके लिए जो उत्पन्न हुआ है, वह धृष्टद्युम्न ही इनसे युद्ध करे। राजाके लिए राजासे युद्ध करना ही शोभास्पद है। अत: आप दुर्योधन जहाँ है, वहाँ पधारे। राजाको सहायक रहते अन्योंसे युद्ध करना उचित नहीं। कौरवोंकी सेनाको अर्जुन तथा भीम भली प्रकार रोक लेंगे।

धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी ओर देखा। ये भक्तवत्सल इतने सावधान, सचिन्त रहते हैं। चुपचाप युधिष्ठिर पीछे हट

गये। अबतक अन्धकार बहुत बढ़ गया था। अत: दोनों सेनाओंमें जो पैदल सैनिक थे उन्होंने शस्त्र रख दिये और मशालें सम्हाल लीं। उनका काम रथों, अश्वों, गजोंके साथ प्रकाश करते चलना रह गया।

संग्राम तो संग्राम ही है। उसमें सभी की जय-पराजय होती रहती है। जब अस्त्र-शस्त्र खटकने लगते हैं, प्राणियोंके शरीरोंका अत्यल्प मूल्य भी नहीं रह जाता। कौन गिने कि कितने हत या आहत हो रहे हैं। कभी कोई बीस पड़ रहा है तो थोड़ी देरमें वही भागनेपर विवश हो रहा है।

तदनन्तर पाण्डव और पाञ्चाल वीर कर्णकी निन्दा करते हुए चारों ओरसे एक साथ वहाँ आ पहुँचे। जब कर्णपर उनकी दृष्टि पड़ी, तो वे उच्च स्वरसे गर्जना करते हुए बोले- यह पाण्डवोंका कट्टर दुश्मन है, सदाका पापी है। यही सारे अनर्थोंकी जड़ है; क्योंकि यह दुर्योधनकी हाँ-में-हाँ मिलाया करता है। मार डालो इसे। ऐसा कहते हुए सभी क्षत्रिय वीर कर्णका वध करनेके लिये उसके ऊपर टूट पड़े और बाणोंकी बड़ी भारी वर्षा करके उसे आच्छादित करने लगे। उन सब महारथियोंको अपने ऊपर धावा करते देख महाबली कर्णने सायकोंकी मारसे पाण्डव-सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। महारथी कर्णने राजाओंके बाणसमूहोंका निवारण करके उनके रथों और घोड़ोंपर अपने नामवाले बाणोंका प्रहार किया। उससे व्याकुल होकर वे इधर-उधर भागने लगे। कर्णके सायकोंसे आहत होकर झुंड-के-झुंड घोड़े, हाथी और रथी मरते दिखायी देते थे।

दूसरी ओर शकुनिने हजारों रथी, हाथीसवार और घुड़सवारोंकी सेनासे अर्जुनके चारों ओर घेरा डाल दिया और उनपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वे सभी क्षत्रिय योद्धा कालकी प्रेरणासे महान् अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करते हुए अर्जुनके साथ युद्ध करने लगे। अर्जुनने महान् संहार मचाते हुए उन हजारों रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब शकुनिने हँसते-हँसते अर्जुनको बाणोंसे बींध डाला और उनके महान् रथकी प्रगति भी रोक दी। अर्जुनने भी शकुनिको तथा अन्य महारथियोंको बाण मारे। फिर शकुनिका धनुष काटकर उसके चारों घोड़ोंको यमलोक भेज दिया। तब वह उस रथसे उतरकर उलूकके रथपर जा चढ़ा। एक ही रथपर बैठे हुए वे दोनों महारथी पिता-पुत्र अर्जुनपर बाणोंकी झड़ी लगाने लगे। अर्जुन भी उन दोनोंको बाणोंसे घायल कर सैकड़ों और हजारों सायकोंकी मारसे आपकी सेनाको खदेड़ने लगे। उस समय सब सेना तितर-बितर होकर चारों दिशाओंमें भागने लगी। इस प्रकार उस युद्धमें आपकी सेनापर विजय पाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन बहुत प्रसन्न हो शफबजाने लगे।

संजय कहते हैं- द्रोणाचार्यका मुकाबला करनेके लिये राजा द्रुपद अपनी सेनाके साथ बढ़े आ रहे थे। उस समय वृषसेन सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करता हुआ उनके सामने आया। यह देख द्रुपदने कर्णनन्दकी भुजाओं और छातीमें बाण मारे। वृषसेन क्रोधमें भर गया और उसने रथपर बैठे हुए राजा द्रुपदकी छातीमें अनेकों बाण मारे। इस प्रकार दोनोंने दोनोंके शरीरमें घाव कर दिये थे, दोनोंके ही अङ्गोंमें बाण धँसे दिखायी देते थे। दोनों खूनसे लथपथ हो रहे थे। इसी बीचमें राजा द्रुपदने एक भल्ल मारकर वृषसेनके धनुषको काट दिया। वृषसेनने दूसरा सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया और उसपर संधान करके द्रुपदकी ओरको लक्ष्य कर एक भल्ल छोड़ा। वह भल्ल द्रुपदकी छाती छेदकर पृथ्वीमें समा गया और उससे आहत हुए राजाको मूर्छा आ गयी। यह देख सारथी अपने कर्त्तव्यका विचार करके उन्हें वहाँसे दूर हटा ले गया। फिर तो उस भयंकर रात्रिमें द्रुपदकी सेना रणभूमिसे भाग चली। वृषसेनके डरसे सोमक क्षत्रिय भी वहाँ नहीं ठहर सके। प्रतापी वृषसेन सोमकोंके अनेकों शूरवीर महारथियोंको परास्त करके तुरंत ही राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचा।

इसी प्रकार एक ओर नकुल भी आपकी सेनाका संहार कर रहा था। उसका सामना करनेके लिये क्रोधमें भरा हुआ शकुनि जा पहुँचा। वे दोनों ही आपसमें वैर रखते थे और दोनों शूरवीर थे; दोनों ही एक दूसरेके वधकी इच्छा से परस्पर

बाणोंका आघात करने लगे। जैसे नकुल बाणोंकी झड़ी लगा रहा था, उसी प्रकार शकुनि भी। शरीरमें बाण धँसे होनेके कारण वे दोनों कँटीले वृक्षोंके समान दिखायी देते थे। इतनेहीमें शकुनिने नकुलकी छातीमें एक कर्णी नामक बाण मारा। उसकी करारी चोटसे नकुलको मूर्च्छा आ गयी और वह रथके पिछले भागमें बैठ गया। फिर होशमें आनेपर उसने शकुनिको बाण मारे। इसके बाद उसकी छातीमें सौ नाराचोंका प्रहार किया और उसके बाण चढ़ाये हुए धनुषको भी बीचसे ही काट डाला। इस चोटको शकुनि नहीं सँभाल सका और बेहोश होकर रथकी बैठकमें धमसे गिर पड़ा। तब सारथी उसे रणभूमिसे बाहर हटा ले गया और नकुलका सारथी अपने रथको आचार्य द्रोणके पास ले गया।

द्रोणाचार्यको पाण्डव-सेनाका संहार करते देख सोमक क्षत्रिय तुरंत वहाँ पहुँचे और सब ओरसे द्रोणाचार्यपर बाण बरसाने लगे। आचार्य द्रोण भी चारों ओर बाणोंकी झड़ी लगाकर क्षत्रियोंके प्राण लेने लगे। उनकी मारसे पीडित हो पाञ्चाल योद्धा एक-दूसरेकी ओर देखकर आर्त चीत्कार मचा रहे थे। कोई पिताको छोड़कर भागे, कोई पुत्रोंको। किसीको अपने सगे भाई, मामा और भानजोंकी भी सुध न रही। मित्र, सम्बन्धी और बन्धु-बान्धवोंको छोड़-छाड़कर सब लोग तेजीके साथ भाग चले। सबको अपने-अपने प्राणोंकी लगी हुई थी। श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर तथा नकुल सहदेव देखते ही रह गये और उनकी सेना द्रोणके प्रहारसे पीडित हो जलती हुई हजारों मसालें फेंक-फेंककर उस रातमें भाग चली। सब ओर अन्धकारका राज्य था। कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था, केवल कौरव-सेनाके दीपकोंके प्रकाशसे शत्रु भागते दिखायी देते थे। महारथी द्रोण और कर्ण भागती हुई सेनाको भी पीछेसे बाण बरसाकर मार रहे थे।

यह सब देखकर श्रीकृष्णने कहा- अर्जुन। द्रोण और कर्णने धृष्टद्युम्न और सात्यकिको तथा सम्पूर्ण पाञ्चाल योद्धाओंको भी अपने बाणोंसे अत्यन्त घायल कर डाला है। इनकी बाणवर्षासे तुम्हारे महारथियोंके पैर उखड़ गये हैं; अब सेना रोकनेसे भी नहीं रुकती। अर्जुनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् कृष्ण और अर्जुन दोनोंने सैनिकोंसे कहा- पाण्डवसेनाके शूरवीरों। तुम भयभीत होकर भागो मत। भयको अपने हृदयसे निकाल दो। हमलोग अभी व्यूह रचकर द्रोण और कर्णको दण्ड देनेका प्रयत्न करते हैं।

श्रीकृष्ण और अर्जुन इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि भयंकर कर्म करनेवाले भीम अपनी सेनाको लौटाकर शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख जनार्दनने पुन: अर्जुनसे कहा- पाण्डुनन्दन। यह देखो, सोमक और पाञ्चाल योद्धाओंको साथ लिये भीम बड़े वेगसे द्रोण और कर्णकी ओर बढ़े जा रहे हैं। अब सेनाको धैर्य बँधानेके लिये तुम भी इनके साथ होकर युद्ध करो।

तदनन्तर अर्जुन और श्रीकृष्ण द्रोण और कर्णके पास जाकर सेनाके अग्रभागमें खड़े हो गये। द्रोण और कर्णने पुन: शत्रुओंका संहार आरम्भ किया। दोनों ओरकी सेनाओंमें घमासान युद्ध होने लगा। उस समय आपके सैनिक भी हाथोंमें मसालें फेंक-फेंककर उन्मत्तकी भाँति पाण्डवोंके साथ युद्ध करने लगे। चारों ओर अन्धकार और धूल छा रही थी। जैसे स्वयंवरमें राजालोग अपना नाम बोलकर परिचय देते हैं, उसी प्रकार वहाँ प्रहार करनेवाले योद्धाओंके मुखसे उनके नाम सुनायी पड़ते थे। जहाँ-जहाँ दीपकका प्रकाश दिखायी देता, वहाँ-वहाँ लड़ाकू सैनिक पतंगोंकी भाँति टूट पड़ते थे। इस प्रकार युद्ध करते-करते उस महारात्रिका अन्धकार बहुत घना हो गया।

२) कर्ण और घटोत्कच का मायायुद्ध- पिता-पुत्र रीछों के चर्म से आच्छादित उस प्रचण्ड रथ सहित कर्ण के आगे आये। कृष्णवर्ण के चौदह पुष्ट अश्वोंवाला वह रथ गृध्र पक्षी के भयंकर चित्र से अंकित ध्वज के कारण भयावह दिख रहा था। वह रक्तवर्णी राक्षसध्वज गीली आँतों की मालाओं से सजाया हुआ था। उस रथ के पीछे राक्षस-सैन्य खड़ा हुआ। अग्रस्थान पर स्थित रथ में खड़ा घटोत्कच जलते पर्वत-शिखर की भाँति भयंकर दिख रहा था। उसके शंकु जैसे कान, मोटी-मोटी भद्दी आँखें, मोटी भौंहें और औंधी कड़ाही जैसा रोएँदार पेट देखकर ही कौरव-सैनिक भयभीत हो गये।

ऐसे रथपर सवार घटोत्कचको आते देख कर्णने बड़े अभिमानके साथ आगे बढ़कर तुरंत ही उसे रोका। फिर दोनोंने अत्यन्त वेगशाली धनुष लेकर एक-दूसरेको घायल करते हुए बाणोंसे आच्छादित कर दिया। दोनों ही दोनोंको शक्ति और सायकोंसे घायल करने लगे। वह रात्रियुद्ध इतनी देरतक चलता रहा, मानो एक वर्ष बीत गया हो। इतनेहीमें कर्णने दिव्य अस्त्रोंको प्रकट किया- यह देख घटोत्कचने राक्षसी माया फैलायी। उस समय राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना प्रकट हुई; किसीके हाथमें शूल था तो किसीके हाथमें मुगदर। किसीने शिलाकी चट्टानें ले रक्खी थीं और किसीने वृक्ष। उस सेनासे घिरा हुआ घटोत्कच जब महान् धनुष लेकर आगे बढ़ा तो उसे देखकर सम्पूर्ण नरेश व्यथित हो उठे। इसी समय घटोत्कचने भीषण सिंहनाद किया, उसे सुनकर हाथी डरके मारे पेशाब करने लगे। मनुष्योंको तो बड़ी व्यथा हुई। तदनन्तर सब ओर पत्थरोंकी भयंकर वर्षा होने लगी। आधी रातके समय राक्षसोंका बल बढ़ा हुआ था; उनके छोड़े हुए लोहेके चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि हो रही थी। उस अत्यत उग्र और भयंकर युद्धको देखकर आपके पुत्र और सैनिक व्यथित होकर रणभूमिसे भाग चले। केवल अभिमानी कर्ण ही वहाँ डटा रहा, उसे तनिक भी व्यथा नहीं हुई। उसने अपने बाणोंसे घटोत्कचकी रची हुई मायाका संहार कर डाला।

वह आकाशमें अदृश्य होकर बाण छोड़ रहा था। उसके बाण भी दिखायी नहीं देते थे। वह मायासे सबको मोहित-सा करता हुआ विचरने लगा और मायाके ही बलसे बड़े भयंकर एवं अशुभ मुँह बनाकर कर्णके दिव्य अस्त्र निगल गया। फिर वह धैर्यहीन एवं उत्साहशून्य-सा होकर सैकड़ों टुकड़ोंमें कटकर गिरता दिखायी देने लगा। इससे उसे मरा हुआ समझकर कौरवोंके प्रमुख वीर गर्जना करने लगे। इतनेहीमें वह कई नये-नये शरीर धारण कर सभी दिशाओंमें दीख पड़ने लगा। देखते-ही-देखते उसके सैकड़ों मस्तक और सैकड़ों पेट हो गये। फिर शरीर बढ़ाकर वह मैनाक पर्वत-सा दीखने लगा। थोड़ी ही देरमें उसकी शकल अँगूठेके बराबर हो गयी। फिर समुद्रकी उत्ताल तरंगोंकी भाँति उछलकर वह कभी ऊपर और कभी इधर-उधर होने लगा। एक ही क्षणमें पृथ्वी फाड़कर पानीमें डूब जाता और पुन: ऊपर आकर अन्यत्र दिखायी पड़ता था। इसके बाद आकाशसे उतरकर वह पुन: अपने सुवर्णमण्डित रथपर जा बैठा। फिर मायाके ही प्रभावसे पृथ्वी, आकाश और दिशाओंमें घूमकर कवचसे सुसज्जित हो कर्णके रथके पास आकर बोला- सूतपुत्र। खड़ा रहना, अब तू मुझसे जीवित बचकर कहाँ जायगा? आज मैं इस समराङ्गणमें तेरे युद्धका शौक पूरा कर दूँगा।

ऐसा कहकर वह राक्षस पुन: आकाशमें उड़ गया और कर्णके ऊपर रथके धूरेके समान स्थूल बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसकी बाणवर्षाको दूरसे ही कर्णने काट गिराया। इस प्रकार अपनी मायाको नष्ट हुई देख घटोत्कच पुन: अदृश्य होकर नूतन मायाकी सृष्टि करने लगा। एक ही क्षणमें वह एक बहुत ऊँचा पर्वत बन गया और उससे पानीके झरनेकी भाँति शूल, प्रास, तलवार और मूसल आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि होने लगी। किंतु कर्णको इससे तनिक भी भय नहीं हुआ। उसने मुस्कराते हुए दिव्य अस्त्र प्रकट किया। उस अस्त्रका स्पर्श होते ही उस पर्वतराजका नाम-निशान भी नहीं रह गया। इतनेहीमें वह राक्षस इन्द्रधनुषसहित मेघ बनकर उमड़ आया और सूतपुत्रपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा; किंतु कर्णने वायव्यास्त्रका संधान करके उस काले मेघको फौरन उड़ा दिया। इतना ही नहीं, उसने सायक-समूहोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित करके घटोत्कचके चलाये हुए सम्पूर्ण अस्त्रोंका नाश कर डाला।

तब भीमके पुत्रने कर्णके सामने महामाया प्रकट की। कर्णने देखा, घटोत्कच रथपर बैठा आ रहा है। उसके साथ राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना है। राक्षसोंमें कुछ हाथीपर हैं, कुछ रथपर हैं और कुछ घोड़ोंपर सवार हैं। उनके पास नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और कवच दिखायी देते हैं। घटोत्कचने निकट आते ही कर्णको बाण मारकर बींध डाला और सब

राजाओंको भयभीत करता हुआ भैरव स्वरसे गर्जना करने लगा। फिर उसने अञ्जलिक नामक बाणके प्रहारसे कर्णके हाथका धनुष काट डाला। तब कर्ण दूसरा धनुष हाथमें ले आकाशचारी राक्षसोंकी ओर बाण मारने लगा। इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। घोड़े, सारथी तथा हाथीके सहित सम्पूर्ण राक्षस कर्णके हाथसे मारे गये। उस समय पाण्डवपक्षके हजारों क्षत्रिय योद्धाओंमें राक्षस घटोत्कचको छोड़ दूसरा कोई कर्णकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता था।

घटोत्कच क्रोधसे जल उठा, उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ छूटने लगीं। उसने हाथ-से-हाथ मलकर ओठको दाँतों तले दबाया और पुन: मायाके बलसे दूसरे रथका निर्माण किया। उसमें हाथीके समान मोटे-ताजे तथा पिशाचों-जैसे मुखवाले गदहे जोते गये। उस रथपर बैठकर वह कर्णके सामने गया और उसके ऊपर उसने एक भयंकर अशनिका प्रहार किया। कर्णने अपना धनुष रथपर रख दिया और कूदकर उस अशनिको हाथसे पकड़ लिया। फिर उसने उसे घटोत्कचपर ही चला दिया। घटोत्कच तो रथसे कूदकर दूर जा खड़ा हुआ किंतु उस अशनिके तेजसे गदहे, सारथी तथा ध्वजासहित उसका रथ जलकर भस्म हो गया। फिर वह अशनि पृथ्वीमें समा गयी। कर्णका यह पराक्रम देखकर देवता भी आश्चर्य करने लगे। सम्पूर्ण प्राणियोंने उसकी प्रशंसा की। पूर्वोक्त पराक्रम करके कर्ण अपने रथपर जा बैठा और पुन: राक्षससेनापर बाण बरसाने लगा। अब घटोत्कच गन्धर्व-नगरके समान पुन: अदृश्य हो गया और मायासे कर्णके दिव्यास्त्रोंका नाश करने लगा, तो भी कर्णने अपना धैर्य नहीं खोया। उस राक्षसके साथ युद्ध जारी ही रक्खा।

कर्ण का धैर्य चुक गया। नहीं यह साधारण बाणों से माननेवाला नहीं था। उसने अपना दिव्यास्त्र प्रकट किया। किंतु उससे घटोत्कच रुद्ध होने के स्थान पर कुछ और प्रचंड हो गया। वह अपने सैनिकों की सहायता से निरंतर लोहे के चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी तथा पट्टिश की वर्षा कर रहा था। वे किसी योद्धा द्वारा चलाए गए नहीं लग रहे थे। लगता था कि घटोत्कच अपनी माया से शस्त्रों की धाराप्रवाह वर्षा कर रहा है। उसका वेग इतना प्रबल था कि कौरव सेना के पाँव उखड़ गए। अनेक महारथी भागने में सैनिकों का नेतृत्व करते दिखाई पड़े। किंतु कर्ण आज अपने स्थान पर ऐसा दृढ़ खड़ा था कि स्वयं दुर्योधन को आश्चर्य हो रहा था। कर्ण के बाणों के प्रबल वेग ने जैसे घटोत्कच की माया नष्ट कर दी थी। किंतु घटोत्कच के अनेक बाण कर्ण के शरीर में समा गए थे। कर्ण उसकी पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकता था। कर्ण ने घटोत्कच को बाण मारे। घटोत्कच ने उसकी ओर देखा और धनुष के स्थान पर दिव्य सहस्त्रसार चक्र उठा लिया। चक्र की परिधि पर तीव्र क्षुर लगे हुए थे। घटोत्कच ने वह चक्र कर्ण पर चला दिया, जा कर्ण। अब तू जीवित नहीं रह सकता।

कर्ण ने बौखलाकर अपने अनुमान के अनुसार, घटोत्कच के होने के संभावित स्थानों पर दिव्यास्त्रों से आक्रमण किया। पर घटोत्कच जैसे उन सबको अपने असंख्य अज्ञात मुखों से निगलता जा रहा था। कभी युद्धक्षेत्र में उसका एक भी सैनिक दिखाई नहीं पड़ता था और कभी वे युद्धक्षेत्र के कोने-कोने से सहस्त्रमुख बनकर प्रकट होने लगते थे।

सूतपुत्र। खड़ा रह। आज मैं युद्ध में तेरी श्रद्धा को तृप्त कर दूँगा। वह भूमि से उछलकर सीधा कर्ण पर आ रहा था। कर्ण ने उस पर अनेक बाण चलाए, किंतु वह कर्ण के रथ पर आया ही नहीं। जाने उछलकर कहाँ अदृश्य हो गया था। कर्ण ने चिल्लाकर अपने सैनिकों को आदेश दिया। खोजो। उसे खोजो। सैनिक अपने हाथ में पकड़ी उल्काएँ उठा-उठाकर देख रहे थे किंतु उससे घटोत्कच तो क्या मिलता, वे अपनी और अन्य सैनिकों की छायाओं को घटोत्कच समझकर भय से चीत्कार कर उठते थे। लगता था योजनों तक केवल घटोत्कच ही घटोत्कच था। जहाँ वह नहीं था, वहाँ उसकी छाया थी। कर्ण समझ नहीं पाया कि घटोत्कच क्या करना चाहता है। उसने उसके आक्रमण की प्रतीक्षा कर लेना ही उचित समझा। और फिर उसने देखा कि घटोत्कच ने आठ चक्रों से युक्त अशनि उठा ली और पूरे वेग से कर्ण पर चला दी। कर्ण

ने रथ से उछलकर अशनि को हाथ से पकड़ लिया और धरती पर खड़ा हो गया। धरती पर खड़े-खड़े ही उसने उसे वापस घटोत्कच पर फेंक दिया। घटोत्कच अशनि को आते देखकर अपने रथ से कूद गया। अशनि के प्रभाव से उसका रथ पूर्णत: ध्वस्त हो गया था। कर्ण पुन: अपने रथ पर आ बैठा था किंतु घटोत्कच का युद्धक्षेत्र में कहीं पता नहीं था।

कर्णने उनमेंसे प्रत्येकको कई-कई बाण मारकर बींध डाला और दिव्य अस्त्रसे उस राक्षसी मायाका संहार करके घटोत्कचके घोड़ोंको भी यमलोक भेज दिया। इस प्रकार पुन: अपनी मायाका नाश हो जानेपर अभी तुझे मौतके मुखमें भेजता हूँ ऐसा कर्णसे कहकर घटोत्कच फिर अन्तर्धान हो गया।

घटोत्कच राक्षस था और उसमें भी भीमका अंश आया था। वह अस्त्रज्ञान तथा मायायुद्ध दोनोंका मर्मज्ञ था। इस रात्रिमें उसका बल बहुत बड़ा था। श्रीकृष्ण और अर्जुनने उसे गौरव दिया, यह भावना उसके अन्तरको अत्यधिक उत्तेजित कर चुकी थी। दुर्योधनके पक्षमें लड़नेवाला प्रचण्ड राक्षस अलम्बुष घटोत्कचकी क्रोधाग्निमें प्रथम आहुति बन गया। बहुत भरोसा था कौरवोंको अलम्बुषपर किन्तु घटोत्कचने उसे क्षुद्र पशुके समान काट फेंका। कर्ण की ओर देखते ही वह राक्षस-नायक घटोत्कच गरजा, जै हिडिम्बामाता। अपने पुत्र को प्रेरणा देने हेतु भीम ने भी भयावह गर्जना की- जै कुन्तीमाता। कर्ण ने अपनी ओर बढ़ते हुए घटोत्कच को रोका। किंतु घटोत्कच कोई दो-चार बाणों से रुकनेवाला नहीं था। कर्ण जल्दी से उसे निपटाकर अर्जुन की खोज में निकलना चाहता था; किंतु घटोत्कच को किसी प्रकार की कोई जल्दी नहीं थी। दोनों ओर से बाण चलने लगे। कर्ण ने घटोत्कच को पर्याप्त घायल कर दिया था; किंतु वह स्वयं भी कम घायल नहीं हुआ था। दोनों के शरीरों से निरंतर रक्त बह रहा था। किंतु घटोत्कच जिस स्फूर्ति से बाणवर्षा कर रहा था, उसे देखकर लगता था कि जैसे वह रक्त उसका अपना न हो, किसी और का हो।

३) घटोत्कच का अलम्बुष से युद्ध- अपने आगे राक्षस अलायुध को रखकर युद्ध करनेवाले कर्ण और भीम को अपने पृष्ठभाग में रखकर युद्ध करनेवाले घटोत्कच के बीच थर्रा देनेवाला रात्रि-युद्ध छिड़ गया। दुर्योधनकी सहायता करने राक्षस श्रेष्ठ अलायुध रथपर बैठा आया। भीमने उसे रोका किन्तु घटोत्कचको यह सहन नहीं था कि उसके रहते उसके पिताको युद्ध करना पड़े। अलायुध अपना रथ दौड़ाता आया और बोला, मैं सैन्यसमूह, घोड़े, हाथी और रथोंसहित भीम को तथा मंत्रियोंसहित हिडिंबापुत्र घटोत्कच को मार डालूँगा। आप अपनी सारी सेना को रोक दीजिए। पांडवों के साथ हम युद्ध करेंगे।

संजय कहते हैं- राजन्। इस प्रकार कर्ण और घटोत्कचका युद्ध हो ही रहा था कि अलायुध नामवाला एक राक्षस पूर्वकालीन वैरका स्मरण करके अपनी बड़ी भारी सेनाके साथ दुर्योधनके पास आया और युद्धकी लालसासे बोला- महाराज। आपको तो मालूम ही होगा कि भीमने हमारे बान्धव हिडिम्ब, बक और किर्मीरका वध कर डाला है। इसलिये आज हम स्वयं ही घटोत्कचका वध करेंगे तथा श्रीकृष्ण और पाण्डवोंके साथ हम राक्षसोंका ही युद्ध होगा।

महाराज। अलायुधके आनेसे कौरवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। मानो समुद्रमें डूबते हुएको जहाज मिल गया हो। उन्होंने अपना नया जन्म हुआ समझा। उस समय कर्ण और घटोत्कचमें अलौकिक युद्ध चल रहा था। द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि घटोत्कचके पुरुषार्थको देखकर थर्रा उठे थे। सबके मनमें घबराहट थी, सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ था। सारी सेना कर्णके जीवनसे निराश हो चुकी थी। दुर्योधनने देखा कि कर्ण बड़ी विपत्तिमें फँस गया है, तो उसने अलायुधको बुलाकर कहा- यह कर्ण घटोत्कचके साथ भिड़ा हुआ है और युद्धमें जहाँतक इसकी शक्ति है महान् पराक्रम दिखा रहा है। वीरवर। जैसी तुम्हारी इच्छा थी, उसके अनुसार ही इस संग्राममें घटोत्कचको तुम्हारे हिस्सेमें कर दिया गया है; अब तुम पुरुषार्थ करके इसका नाश करो। यह पापी अपने मायाबलका आश्रय लेकर पहले ही कहीं कर्णको मार न डाले।

दुर्योधन बोला, तुम अपनी इच्छानुसार युद्ध करो। हम तुम्हारे युद्ध में बाधा नहीं बनेंगे। सैनिकों सहित तुम्हें आगे रखकर, हम लोग भी शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे। हमारे सैनिक विरोधियों से इतने विचलित हैं कि वे न शांत रह पाएँगे न निष्क्रिय। दुर्योधन अपने लक्ष्य पर आया, कर्ण के प्राण इस समय भारी संकट में हैं। जाने अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और कृतवर्मा कहाँ हैं। इस अँधेरे में शकुनि और शल्य भी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वे सब भी कहीं न कहीं जूझ रहे होंगे। हम सबको अपना-अपना दायित्व निभाना है। मैंने इस समरांगण में घटोत्कच को तुम्हारा भाग नियत कर दिया है। तुम अपना पराक्रम दिखाओ और यथाशीघ्र उसे मार डालो।

दुर्योधनके ऐसा कहनेपर अलायुधने बहुत अच्छा कहकर घटोत्कचपर धावा किया। भीमके पुत्रने जब अपने शत्रुको सामने आते देखा तो कर्णको छोड़ दिया और उसीको बाणोंके प्रहारसे पीड़ित करने लगा। फिर दोनों राक्षस क्रोधमें भरकर एक-दूसरेसे भिड़ गये। भीमने देखा कि घटोत्कच अलायुधके चंगुलमें फँस गया है, तो वे अपने तेजस्वी रथपर बैठै बाणवृष्टि करते हुए वहाँ आ पहुँचे। यह देख अलायुधने घटोत्कचको छोड़कर भीमको ललकारा और उसके साथी राक्षस भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर भीमपर ही टूट पड़े।

घोड़ों और सारथीके मर जानेपर भीमने रथसे उतरकर भयंकर गर्जना की और उस राक्षसपर बड़ी भारी गदाका प्रहार किया। अलायुधने भी गदासे ही उस गदाको मार गिराया। तब भीमने दूसरी गदा हाथमें ली और उस राक्षसके साथ उनका तुमुल युद्ध होने लगा। उस समय एक-दूसरेपर गदाके आघातसे जो भयंकर शब्द होता था, उससे पृथ्वी काँप उठती थी। थोड़ी ही देरमें गदा फेंककर दोनों मुक्के मारते हुए लड़ने लगे। उनके मुक्कोंके आघातसे बिजलीके कड़कनेकी-सी आवाज होती थी। इस तरह युद्ध करते-करते दोनों अत्यंत क्रोधमें भर गये और रथके पहिये, जुए, धुरे तथा अन्य उपकरणोंमेंसे जो भी निकट दिखायी देता था, उसे ही उठा-उठाकर एक दूसरेको मारने लगे। दोनोंके शरीरसे रक्तकी धारा बह रही थी।

अलायुध ने भीम को ललकारा। भीम ने उसके उत्तर में उसे अपने बाणों से ढँक दिया। अलायुध हँसा, तेरे प्राण लेने के लिए मैं आ गया हूँ भीम। तेरे इन बाणों से क्या होगा। भीम ने देखा, उसके बाणों ने अलायुध को क्षतविक्षत कर दिया था। अब उसका अंत कर ही देना चाहिए। भीम ने अपनी भारी गदा उस पर वेग से फेंकी। अलायुध बोला, तूने मेरे भाई बक का वध किया। आज मैं उसका प्रतिशोध तो लूँगा ही, तुझे मारकर तेरे भाइयों को भी एक-एक कर मार डालूँगा।

थोड़ी देर उनमें गदायुद्ध चलता रहा और फिर एक भयंकर टकराहट से दोनों की गदाएँ ही उनके हाथों से छूट गईं। अब मल्लयुद्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। वे परस्पर गुँथ गए थे; किंतु यह आरंभ से ही स्पष्ट था कि अलायुध की मल्लयुद्ध में अधिक रुचि नहीं थी। अलायुध ने भीम की पकड़ से छूटते ही भूमि से टूटे हुए रथ का एक पहिया उठाकर भीम को दे मारा। और फिर उन दोनों के हाथ में जो कुछ आया, उन्होंने उससे ही अपने शत्रु पर प्रहार किया।

श्रीकृष्णने जब यह अवस्था देखी, तो उन्होंने भीमकी रक्षाके लिये घटोत्कचसे कहा- महाबाहो। देखो, तुम्हारे सामने ही सब सेनाके देखते-देखते अलायुधने भीमको अपने चंगुलमें फँसा लिया है। इसलिये पहले राक्षसराज अलायुधका ही वध करो, फिर कर्णको मारना। श्रीकृष्णकी बात सुनकर घटोत्कच कर्णको छोड़ अलायुधसे ही जा भिड़ा। फिर तो उस रात्रिके समय उन दोनों राक्षसोंमें तुमुल युद्ध होने लगा। अलायुध क्रोधमें भरा हुआ था, उसने एक बहुत बड़ा परिघ लेकर घटोत्कचके मस्तकपर दे मारा। उससे घटोत्कचको तनिक मूर्छा सी आ गयी, किंतु उस बलवान्‌ने अपनेको सँभाल लिया और अलायुधके ऊपर एक बहुत बड़ी गदा चलायी। वेगसे फेंकी हुई उस गदाने अलायुधके घोड़े, सारथी और रथका चूरन बना डाला।

घटोत्कच और अलायुध फिर से अकेले रह गए थे। अलायुध का मनोबल बहुत बढ़ गया। उसे लगा कि सारे पांडव उससे

भयभीत होकर उसे छोड़कर इधर-उधर भाग गए थे। एक घटोत्कच ही अपनी मूर्खतावश उससे उलझा हुआ था। अलायुध ने एक विशाल परिघ उठाकर घटोत्कच के मस्तक पर मारा। घटोत्कच लड़खड़ाकर कुछ पग पीछे हट गया। लगा कि वह अभी मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगा। किंतु वह तत्काल सँभल गया। उसने अपनी गदा उठा ली और उन्मत्त की भाँति बिना रुके, अलायुध के रथ पर एक के पश्चात् एक कर अनेक प्रहार किए। अलायुध ने अपना भयंकर खड्ग उठाया और घटोत्कच पर टूट पड़ा। घटोत्कच ने भी अपना खड्ग उठा लिया। कुछ क्षणों तक खड्ग एक-दूसरे से टकराकर रण संगीत उत्पन्न करते रहे और फिर जैसे किसी चमत्कार से दोनों के खड्ग हाथ से छूटकर दूर जा गिरे। दोनों परस्पर गुँथ गए और एक-दूसरे के केश पकड़कर शत्रु को पीड़ा पहुँचाने का प्रयत्न करने लगे। दोनों के शरीर से रक्त बह रहा था।

दुर्योधन देख रहा था। घटोत्कच ने यही अलंबुश के साथ किया था। यही वह अलायुध के साथ कर रहा था। घटोत्कच ने वैसे ही अलायुध के केश पकड़े और भूमि से अपना खड्ग उठाकर उसका मस्तक काट दिया।

उसने अलायुधको भी सरलतासे मार दिया। मध्यरात्रि के समय घटोत्कच ने सबके रोंगटे खड़े कर दिये और सबको भयभीत करते हुए अलायुध का वध कर दिया। भयाकुल कौरव-सैन्य अपने शस्त्रों को नचाते हुए आक्रोश करने लगा- हे दिग्विजयी अंगराज, इस राक्षस से हमें बचाइए। हे दानवीर कर्ण, हमें जीवनदान दीजिए।

अलायुध राक्षसी मायाका आश्रय ले उछलकर आकाशमें उड़ गया। उसके ऊपर जाते ही खूनकी वर्षा होने लगी। आकाशमें मेघोंकी काली घटा छा गयी, बिजली चमकने लगी, कड़ाकेकी आवाजके साथ वज्रपात होने लगा। उस महासमरमें बड़े जोरकी कड़कड़ाहट फैल गयी। उसकी माया देखकर घटोत्कच भी आकाशमें उड़ गया और दूसरी माया रचकर उसने अलायुधकी मायाका नाश कर दिया। यह देख अलायुध घटोत्कचके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। किंतु घटोत्कचने अपने बाणोंकी बौछारसे उन पत्थरोंको नष्ट कर डाला। फिर दोनों ही दोनोंपर नाना प्रकारके आयुधोंकी वर्षा करने लगे। लोहेके परिघ, शूल, गदा, मूसल, मुगदर, पिनाक, तलवार, तोमर, प्रास, कम्पन, नाराच, भाला, बाण, चक्र, फरसा लोहेकी गोलियाँ, भिन्दिपाल, गोशीर्ष और उलूखल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा पृथ्वीसे उखाड़े हुए शमी, बरगद, पाकर, पीपल और सेमर आदि बड़े-बड़े वृक्षोंसे वे परस्पर प्रहार करने लगे। नाना प्रकारके पर्वतोंके शिखर लेकर भी वे एक दूसरेको मारते थे। दोनोंने दौड़कर एक दूसरेकी चोटी पकड़ ली, फिर भुजाओंसे लड़ते हुए गुत्थमगुत्थ हो गये। इसी समय घटोत्कचने अलायुधको बलपूर्वक पकड़ लिया और बड़े वेगसे घूमाकर जमीनपर दे मारा। फिर उसके कुण्डलमण्डित मस्तकको काटकर उसने भयंकर गर्जना की और उसे दुर्योधनके सामने फेंक दिया। अलायुधको मारा गया देख दुर्योधन अपनी सेनाके साथ ही अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

घटोत्कच ने कर्ण को छोड़ दिया। कर्ण से पहले अलायुध से निबटना आवश्यक था। उसने वेग से अपनी ओर बढ़ते हुए अलायुध पर बाणों की धाराप्रवाह वर्षा की। पर वह जानता था कि बाणों का युद्ध न अलायुध को रास आएगा और न ही उसे। वे जब तक स्वतंत्र रूप से मतवाले हाथियों के समान लड़ नहीं लेंगे, तब तक उनको संतोष नहीं होगा।

दोनों ओर घमासान युद्ध हो रहा था। रणचण्डी का वहाँ नग्न नृत्य हो रहा था। रण भैरवी योद्धाओं के शरीर में उत्साह की बिजली-सी उत्पन्न कर देती। दोनों ओर के योद्धा प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहे थे। सभी को यही आशा थी- मरेंगे तो स्वर्ग मिलेगा, जीतेंगे तो जय प्राप्त होगी। कौरवों की ओर एक मायावी अलायुध राक्षस था और पांडवों की ओर भीम का पुत्र घटोत्कच था। दोनों राक्षस घोर मायावी, शूरवीर और रण से हटनेवाले नहीं थे। दोनों में घोर युद्ध हुआ और महाबली भीम के पुत्र घटोत्कच ने अलायुध को मार गिराया। पहिले घटोत्कच कर्ण से युद्ध कर रहे थे, किन्तु जब अलायुध ने भीम

को घेर लिया, तब घटोत्कच कर्ण को छोड़कर अपने पिता की रक्षा करने गये और अपनी राक्षसी माया से अलायुध की माया को खडित करके उसे मार डाला। अलायुध बड़ा भारी वीर था। दुर्योधन को उसका पूरा भरोसा था। भीम ने उसके भाई को मारा था, अत: उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं भीम को मार डालूँगा। किन्तु दैवगति से वह स्वयं भीम पुत्र के हाथों मारा गया। अब तो कौरव बड़े दुखी हुए। राक्षसों का बल रात्रि में बहुत बढ़ जाता है। दोनों राक्षस रात्रि में ही लड़ते रहे। अलायुध को मारकर घटोत्कच कौरव सेना की ओर मुड़ा, आज उसने विकराल रूप धारण कर लिया था। वह अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध कर रहा था। युद्ध क्या कर रहा था, उसने तो प्रलय-कालीन दृश्य उपस्थित कर रखा था। मानों वह आज कौरवों की समस्त सेना का संहार करके ही साँस लेगा। उसकी राक्षसी भयमर मार से कौरव सेना तिलमिला उठी और युद्ध छोड़कर भाग खड़ी हुई। घटोत्कच आकाश से निरन्तर भयमर अस्त्र-शत्र और गोलों की वर्षा कर रहा था। पृथ्वी पर खड़े हुए सैनिक उसके अस्त्रों से बुरी तरह मरने लगे। यह भागते वीरों का भी पीछा करने लगा। कौरव सेना में सर्वत्र हाहाकार मच गया। चारों ओर हे कर्ण बचाओ। हे कर्ण। हमारी रक्षा करो। यही आर्तनाद सुनाई पड़ने लगा। कर्ण ने आगे बढ़कर घटोत्कच को रोका और उससे युद्ध करने लगे, किन्तु यह राक्षस तो मानवीय युद्ध करता ही नहीं था। वह तो आकाश में कभी अदृश्य हो जाता, कभी भयंकर रूप बना लेता। कभी लाखों राक्षस पैदा करके अस्त्रों की वर्षा करता। कभी निरन्तर आकाश से प्रलयकारी अस्त्रों की वर्षा करने लगता। इसकी लड़ाई से कर्ण के आश्वासन देने पर भी कौरव सेना में भगदड़ मच गयी। कौरव सेना के वीर भय से अन्धे हो गये, परस्पर में ही मारकाट करने लगे। उन्हें अपने पराये का ज्ञान नहीं रहा। घोर आधि-रात्रि में यह भयमर, राक्षसी-घोर युद्ध हो रहा था। सोते हुए शिबिरों के सैनिकों पर भी वह गोला वर्षाने लगा। चारों ओर तूफ़ान सा आ गया। सैनिक कर्ण को ही दुहाई देने लगे- हे दानवीर। आप अपनी इन्द्रदत्त-शक्ति को छोड़कर इस दुष्ट की माया को नाश कीजिये। हमें इस घोर विपत्ति से बचाइये, हम बेमौत मर रहे हैं। कर्ण बड़ी देर तक उससे लड़ते रहे। अन्त में वे भी विचारशून्य से हो गये।

४) घटोत्कच वध- कर्ण को कुछ सूझ न पड़ा भगवान की माया से मोहित होकर वे अर्जुन को मारने की बात भूल गये। जिस इन्द्रदत्त अमोघ शक्ति को वे अर्जुन को मारने के लिये रखे हुए थे, जिसकी वे नित्य विधिपूर्वक आराधना करते थे, मोहवश सैनिकों के आर्तनाद को सुनकर वह शक्ति उन्होंने घटोत्कच के ऊपर छोड़ दी। कभी व्यर्थ न होनेवाली उस दिव्य शक्ति ने समस्त राक्षसी माया का क्षण भर में नाश कर दिया।

अपनी सेनाकी बहुत दुर्दशा देखकर दुर्योधनने फिर द्रोणाचार्यको उपालम्ब दिया। कर्णको भी प्रोत्साहित किया। द्रोण और कर्ण दोनों क्रोधमें आ गये तब पाण्डव सेनाको प्राण बचानेके लिए पलायनका पथ सूझा। बहुत कठिनाईसे भीम सेनाको लौटा सके। कर्णने आज दृढ़ स्वरमें कहा था- मैं इन्द्रके द्वारा दी शक्तिसे अर्जुनको मार दूँगा। यह नित्यका क्रम था। युद्धारम्भके प्रथम दस दिन तो भीष्म पितामहके सेनापति रहते कर्णने युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी किन्तु पितामहके शय्या लेते ही कर्ण प्रधान योधा हो गया था। पिछले तीन दिनसे कौरव शिबिरमें प्रत्येक रात्रिको मन्त्रणा सभा बैठती थी। उसमें दुर्योधन, दु:शासनादिका कर्णसे एक ही आग्रह रहता था- तुम कल प्रात: युद्धमें इन्द्र द्वारा प्राप्त अमोघ शक्तिसे अर्जुन अथवा श्रीकृष्णको अवश्य मार दो। दुर्योधनका तर्क था- श्रीकृष्ण ही पाण्डवोंके पराक्रमकी जड़ हैं। उन्हें समाप्त कर दिया जाय तो अर्जुन भी असहाय हो जायगा।

कर्ण जानता था कि दुर्योधन कितना अज्ञानी है। वह समझता था कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्णका कोई अस्त्र कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उनपर प्रयोग करके तो वह इन्द्रकी शक्ति खो देगा। स्वयं शक्र जिनसे संग्राममें हार गये, उनकी शक्ति कितनी भी अमोघ हो, कैटभारिका भला क्या बिगाड़ लेगी। अत: इस ओरसे मौन रहकर कर्ण सदा कह देता था- कल मैं

अर्जुनपर शक्ति-प्रयोग करूँगा।

श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं। वे कर्णके कुविचार तथा कौरव-शिबिरकी कुमन्त्रणासे अवगत थे। उनके लिए अर्जुनकी रक्षा अनिवार्य थी। उन्होंने बहुत कम अवसर दिया जब अर्जुनको कर्णसे युद्ध करना पड़े। द्रोणाचार्यके सेनापतित्वके प्रथम दिन वे अर्जुनको आचार्यसे संग्राममें ही उलझाये रहे या अन्यत्र व्यस्त रखा। दो दिन संशप्तकोंने दुर्योधनके कहनेसे अर्जुनको युद्धके लिए ललकारा और अर्जुन दोनों दिन उनसे युद्ध करते रहे।

केवल आज चतुर्थ दिनके युद्धमें अर्जुनने मुख्य भूमिका निभायी किन्तु कर्णको जयद्रथकी रक्षाका दायित्व दे दिया गया था। वहाँ भी अर्जुन पहुँचे तब भीम पीछेसे बढ़े आ रहे थे। कर्णको उन्हें रोकने बढ़ना पड़ा और भीमके साथ युद्धमें कर्ण इतना आहत हो गया था कि उसने स्वयं दुर्योधनसे कहा- मैं इस समय कोई अंग हिलानेमें भी बहुत कष्टका अनुभव कर रहा हूँ। इन चार दिनोंमें बहुत कम अवसर आये थे जब कर्णको अर्जुनसे युद्ध करना पड़ा। उस समय भी श्रीकृष्णका सम्मोहन कर्णको शक्तिके प्रयोगका स्मरण ही नहीं रहने देता था। शीघ्र ही कृष्ण अर्जुनको कहीं अन्यत्र हटा देते थे। अब इस रात्रि युद्धमें कर्ण बहुत उत्तेजित था। जयद्रथके मारे जानेसे और स्वयं भीम द्वारा अत्यन्त आहत किये जानेसे बहुत क्रुद्ध हो उठा था। वह प्रतीक्षा ही कर रहा था कि अर्जुन आगे आवें और उनपर शक्तिका प्रयोग करे। कौरवोंको विशेषत: दुर्योधनको उसने दृढ़ आश्वासन दे दिया था।

कर्ण को रात्रियुद्ध का भी अभ्यास था, अत: वह बार-बार अर्जुन को बिद्ध करने लगा। कर्ण के रूप में पाण्डव सेना में तप्त लौहरस का एक महानद ही अनिरुद्ध रूप से संचार करने लगा। उसका जैत्ररथ एक के बाद एक कैकेय, पांचाल आदि पथकों को रौंदता हुआ निरंकुश भ्रमण करने लगा। प्रबल प्रभंजन जिस प्रकार महासागर को मथ डालता है, उसी प्रकार कर्ण पाण्डव-सेनाओं को मथने लगा। भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, धृष्टद्युम्न, सात्यकि कोई भी उसके आगे टिक नहीं पा रहा था। सुबह होने तक यह राधेय पांडवों की सेना का शेष रहने देगा कि उसका नि:शब्द, रक्तमय नदी में रूपान्तरण करेगा? भयभीत युधिष्ठिर प्रत्येक योद्धा से यही प्रश्न पूछने लगा। ऐसा कठिन समय आया था कि यदि कर्ण को रोका नहीं गया तो पाण्डव-सेना कल का दिन देख ही नहीं पाएगी। धृष्टद्युम्न और सात्यकि तथा सभी पाण्डवों के आगे एक ही प्रश्न था- क्या करें?

कृष्णने भीम को अपने निकट बुलवा लिया। रात्रि युद्ध के कारण गुप्त बैठक बुलवाने का अवसर ही नहीं था। नन्दिघोष की वल्गाओं को सँभालते हुए उन्होंने आज पहली बार सबको सुनाई दे सके, ऐसी वाणी में भीम से कहा, भीम, अपने पुत्र घटोत्कच को उसकी आसुरी सेना सहित शीघ्र कर्ण से भिड़ने का आदेश दो।

जयद्रथ-वधके पश्चात् ही श्रीकृष्ण उसकी कौरवोंपर होनेवाली प्रतिक्रियाके प्रति सतर्क हो गये थे। वे अर्जुनको युद्धभूमिसे हटा ले गये थे। रात्रि-युद्धमें तो वे अर्जुनको कर्णके समीप किसी प्रकार नहीं जाने देना चाहते थे। अर्जुन बोला, केशव। कर्ण पांडव सेना का संहार कर रहा है। उसने कहा, उसकी उपेक्षा करते रहेंगे तो हमारी सेना की बहुत हानि होगी।

कृष्ण मुस्कराए, सत्य है; किंतु इस समय तुम्हारा उससे भिड़ना हितकर नहीं है। वह दिनभर में बहुत पिटा है, बहुत पराजित हुआ है, बहुत अपमानित हुआ है। उसे भी कुछ देर अपने अहंकार की तुष्टि कर लेने दो।

अर्जुन को कृष्ण की बात समझ में नहीं आई। अनेक बार कृष्ण उसकी बुद्धि से परे चले जाते हैं। उनके मन की थाह पाना बहुत कठिन है। जाने वे कितने स्तरों पर देखते और कितने धरातलों पर सोचते हैं। वैसे तो अर्जुन यह मानकर भी चुप रह सकता था कि कृष्ण कह रहे हैं तो इस समय कर्ण को भूल जाने में ही कोई हित होगा; किंतु कर्ण को युद्धक्षेत्र में इस प्रकार उन्मुक्त छोड़ देना तो किसी भी समस्या का समाधान नहीं था।

कृष्ण बोले, अपनी सेना का नाश करवा, कर्ण की क्षतिपूर्ति आवश्यक है क्या?

अर्जुन बोला, नहीं। मैं उसकी क्षतिपूर्ति नहीं करवा रहा। कृष्ण हँसे, मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि हमें कर्ण के सामर्थ्य का पता चल जाए। अर्जुन बोला, क्यों क्या अभी तक हमें उसके सामर्थ्य का पता नहीं लगा? कृष्ण बोले, तुम्हें स्मरण होगा अर्जुन कि युद्ध से पूर्व ही कर्ण द्वारा इंद्र से शक्ति प्राप्त हुई है। अर्जुन बोला, आपका विचार है कि उसके पास ऐसा शस्त्र है; किंतु वह उसे उस समय के लिए बचाए हुए है, जब उसके अपने प्राणों को वास्तविक संकट हो? किसी दूसरे की रक्षा के लिए वह उसका उपयोग नहीं करेगा? कृष्ण बोले, यदि वह संकट से भाग सके तो कदाचित् अपने प्राणों के लिए भी नहीं करेगा; और दुर्योधन की विजय के लिए तो कभी भी नहीं करेगा। कृष्ण मुस्कराए और बोले, वैसे ही मैं तुम्हारे विषय में भी सोचता हूँ। मान लो कि कर्ण के पास वैजयंती आ गई है। अपनी सेना की रक्षा के लिए तुम उससे युद्ध करने गए तो वह तुम्हारा वध कर देगा। उसके पश्चात् कौन बचाएगा पांडव सेना को कर्ण से? और यदि कोई और योद्धा उसे इतने संकट में डाल दे कि वह वैजयंती चलाने को बाध्य हो जाए, तो उस योद्धा के प्राण तो जाएँगे, किंतु उसके पश्चात् कर्ण तुम्हारा सामना नहीं कर पाएगा और पांडव सेना सदा के लिए सुरक्षित हो जाएगी। उन्होंने रुककर अर्जुन की ओर देखा, इसे तुम स्वार्थ कहोगे, कायरता कहोगे अथवा युद्धनीति? यह क्षात्रधर्म का पतन है अथवा सैन्य-संचालन की दक्षता?

कर्ण की ओर बढ़ने के स्थान पर धृष्टद्युम्न अंधकार का लाभ उठाकर वृक्षों के पीछे दुबक गया। उसे यहाँ छुपे नहीं रहना था। यह तो केवल वाहिनियों और योद्धाओं की स्थिति जानने मात्र के लिए था। अपने पक्ष के किसी योद्धा का रथ दिखाई देते ही वह उसके निकट चला जाएगा।

अर्जुन बोला, जो भी हो, समरभूमि में कर्ण जिस प्रकार निर्भय विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठ रथियों पर पीछे से बाणवर्षा कर उनको अपमानित कर रहा है, उसे मैं सहन नहीं कर सकता। आप रथ उसी के सम्मुख ले चलिए। आज या तो मैं उसे मार डालूँगा या वह ही मुझे मार डाले। कृष्ण बोले, पर कोई कर्म बिना विचार के नहीं होना चाहिए। शत्रु की नीति पर विचार किए बिना युद्ध नहीं करना चाहिए। विचार करो कि युद्ध में से सबसे पहले भाग जानेवाला कर्ण आज युद्धभूमि छोड़ना ही नहीं चाहता। क्यों? अकस्मात् ही ऐसा क्या हो गया है कि कर्ण इतना वीर हो गया है? जयद्रथ के वध से पहले उसका व्यवहार कुछ और था और इस समय उसका व्यवहार कुछ और है।

अपनी सेनाको भागते देख राजा युधिष्ठिर भी पलायन करनेका विचार करके अर्जुनसे बोले- धनंजय। तुम्हीं जिनके बन्धु एवं सहायक हो, उन हमारे सैनिकोंका यह आर्तनाद निरन्तर सुनायी दे रहा है; ये कर्णके बाणोंसे पीड़ित हो रहे हैं। अब इस समय कर्णका वध करनेके सम्बन्धमें जो कुछ भी कर्त्तव्य हो, उसे करो। यह सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- मधुसूदन। आज राजा युधिष्ठिर कर्णका पराक्रम देखकर भयभीत हो गये हैं। एक ओर द्रोणाचार्य हमारे सैनिकोंको आहत कर रहे हैं, दूसरी ओर कर्णका त्रास छाया हुआ है; इसलिये वे भाग रहे हैं, उन्हें कहीं ठहरनेको स्थान नहीं मिलता। मैं देखता हूँ, कर्ण भागते हुए योद्धाओंको भी मार रहा है। अत: अब आप जहाँ कर्ण है, वहीं चलिये; आज दोमेंसे एक बात हो जाय, चाहे मैं उसे मार डालूँ या वह मुझे।

कृष्ण बोले, युद्ध के लिए लगातार मचलने पर भी स्वयं को दुर्बल पानेवाला व्यक्ति जब कोई ऐसा शस्त्र पा जाता है, जिससे वह स्वयं को शत्रु से प्रबल मानने लगता है तो वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। कल के लिए भी नहीं। वह तत्काल युद्ध चाहता है। इस समय तुम्हारा कर्ण से भिड़ना ठीक नहीं है। घटोत्कच के पास दिव्यास्त्र भी हैं और राक्षसी माया भी। उसमें शारीरिक बल भी है और अस्त्र कौशल भी। राक्षस है तो उसे रात्रि युद्ध का अभ्यास भी है। उसे कर्ण का सामना करने दो। वह कर्ण को जय कर सकता है। यदि कर्ण के पास वैजयंती होगी तो वह उसको प्रकट किए बिना नहीं रहेगा। उस बीच आचार्य द्रोण को रोकने

के लिए तुम्हारी आवश्यकता है। कृष्ण ने अर्जुन की सहमति की प्रतीक्षा नहीं की। वे रथ को घटोत्कच के निकट ले आए। अब जब द्रोणाचार्य और कर्णने प्रचण्ड आक्रमण किया तो अर्जुनको लेकर श्रीकृष्ण घटोत्कचके पास पहुँचे।

क्रुद्ध कर्ण साक्षात् महाकाल बना हुआ था। पाण्डव सेनामें त्राहि-त्राहि मची थी। धर्मराज युधिष्ठिर भयभीत होकर अर्जुनसे कर्णको रोकनेको कहने आये थे किन्तु सब सुनकर श्रीकृष्ण रथको घटोत्कचके समीप ले आये।

श्रीकृष्ण बोले, अर्जुन। तुमको और राक्षस घटोत्कचको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो कर्णसे लोहा ले सकें। किंतु उसके साथ तुम्हारा युद्ध हो, इसके लिये अभी समय नहीं आया है। कारण, उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक देदीप्यमान शक्ति है, जो उसने केवल तुम्हारे लिखे ही रख छोड़ी है। मेरे विचारसे इस समय महाबली घटोत्कच ही कर्णका सामना करने जाय। उसके पास दिव्य, राक्षस और आसुर-तीनों प्रकारके अस्त्र हैं। अत: वह अवश्य ही संग्राममें कर्णपर विजयी होगा। श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनने घटोत्कचको बुलवाया। वह कवच, धनुष, बाण और तलवार आदिसे सुसज्जित होकर उनके सामने उपस्थित हुआ और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको प्रणाम करके श्रीकृष्णकी ओर देखते हुए बोला- मैं सेवामें उपस्थित हूँ; आज्ञा कीजिये, कौन-सा काम करूँ? कृष्णने हँसकर कहा- पुत्र घटोत्कच। मैं जो कहता हूँ, सुनो- आज तुम्हारे पराक्रम दिखानेका समय आया है। यह काम दूसरेके किये नहीं हो सकता; क्योंकि तुम्हारे पास कई प्रकारके अस्त्र हैं, राक्षसी माया तो है ही। हिडिम्बानन्दन। देखते हो न, जैसे चरवाहा गौओंको हाँकता है, उसी प्रकार कर्ण आज पाण्डवसेनाको खदेड़ रहा है। वह इस दलके प्रधान-प्रधान क्षत्रियोंको मारे डालता है। उसके बाणोंसे पीडित होकर हमारे सैनिक कहीं ठहर नहीं पाते। मैदानसे भागे जाते हैं। इस प्रकार कर्ण संहारमें प्रवृत्त हुआ है। इसे रोकनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। इस समय तुम्हारा बल असीम है और तुम्हारी माया दुस्तर; क्योंकि रात्रिके समय राक्षसोंका बल बहुत बढ़ जाता है, उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं रहती। शत्रु उन्हें दबा नहीं सकते। इस आधी रातमें तुम अपनी माया फैलाकर महान् धनुर्धर कर्णको मार डालो, फिर धृष्टद्युम्न आदि वीर द्रोणका भी वध कर डालेंगे।

कृष्ण बोले, घटोत्कच। तुम्हारे बंधु संकट में हैं। तुम्हारे पराक्रम को प्रकट करने का समय आ गया है। कर्ण पांडवों की सेना के श्रेष्ठ क्षत्रियों को नष्ट करता जा रहा है। दूसरी ओर द्रोण हैं। उन दोनों को तुम और अर्जुन ही रोक सकते हो। मैं चाहता हूँ कि द्रोण को अर्जुन रोकें और कर्ण को तुम। ठीक है?

भीमके उस अत्यंत पराक्रमी राक्षसपुत्रके कन्धेपर अपना हाथ रखकर श्रीकृष्णने कहा- वत्स। यह तुम्हारे पराक्रम प्रकट करनेका अवसर आ गया है। तुम्हारे ये पूज्यजन संकटके समुद्रमें डूब रहे हैं। तुम्हीं इनको बचा सकते हो। तुम्हारे समीप राक्षसी माया और असुर अस्त्र-शस्त्र हैं। देखते ही हो कि कर्ण किस प्रकार विनाश कर रहा है। अत: तुम अपने पिता तथा अपने तेजके अनुरूप युद्ध करके सूतपुत्रको रोको। हिडिम्बानन्दन। प्रत्येक पिता संकटमें सहायताके लिए पुत्रकी इच्छा करता है। तुम आज पाण्डवोंके परित्राता बनो। यह रात्रिका समय राक्षसोंका बलवर्द्धक है। इस अर्धरात्रिमें तुम कर्णको मार डालो। श्रीकृष्ण की बात समाप्त होनेपर अर्जुनने भी घटोत्कचसे कहा- पुत्र। मैं तुमको, सात्यकिको तथा भैया भीमको ही अपनी सेनाके प्रधान वीर मानता हूँ। इस रातमें तुम कर्णके साथ द्वैरथ युद्ध करो। महारथी सात्यकि पीछेसे तुम्हारी रक्षा करेंगे। सात्यकिकी सहायता लेकर तुम शूरवीर कर्णको मार डालो।

घटोत्कच बोला, ठीक है केशव। मुझे द्रोण से प्राणों का संकट है, धनंजय को कर्ण से। फिर आचार्य के पास जितने दिव्यास्त्र हैं, मेरे पास नहीं हैं। उनका सामना तो धनंजय ही कर सकते हैं।

कृष्ण हँसे और बोले, तुमने तो बहुत दूर तक देख लिया घटोत्कच। किंतु कर्ण इस समय सूर्य के समान तप रहा है और

धर्मराज उससे भयभीत हैं। तुम रात्रि युद्ध में उससे प्रबल सिद्ध हो सकते हो। पर उसके पास इंद्र की दी हुई कोई अमोघ शक्ति भी बताई जा रही है, जिसे उसने अर्जुन के लिए बचाकर रखा है।

घटोत्कच जोर से हँसा और बोला, या तो वह स्वयं को बचा ले या फिर उस अमोघ शक्ति को। यदि मुझसे युद्ध करते हुए भी उसे बचाकर रखेगा तो धनंजय पर उसका प्रहार करने के लिए, वह स्वयं नहीं बचेगा; और यदि मुझ पर उसका प्रहार करेगा तो धनंजय पर प्रहार करने के लिए शक्ति नहीं बजेगी। घटोत्कच ने अपने सारथी विरूपाक्ष को रथ हाँकने का संकेत किया, दोनों ही स्थितियों में धनंजय सुरक्षित हैं।

घटोत्कच बोला- भारत। मैं अकेला ही कर्ण, द्रोण तथा अन्य क्षत्रिय वीरोंके लिये काफी हूँ। आज रातमें मैं सूतपुत्रके साथ ऐसा युद्ध करूँगा, जिसकी चर्चा जबतक यह पृथ्वी रहेगी तबतक लोग करते रहेंगे। आज मैं राक्षसधर्मका आश्रय लेकर सम्पूर्ण कौरवसेनाका संहार करूँगा, किसीको जीता नहीं छोडूँगा। ऐसा कहकर महाबाहु घटोत्कच कौरव सेनाको भयभीत करता हुआ कर्णकी ओर बढ़ा। कर्णने भी हँसते-हँसते उसका सामना किया। फिर तो गर्जना करते हुए उन दोनों वीरोंमें घोर संग्राम छिड़ गया। अर्जुनने भी घटोत्कचको उत्साहित किया। उसे कर्णसे द्वैरथ युद्धको उकसाया। घटोत्कचने हाथ जोड़कर आज्ञा स्वीकार की- आप दोनोंके आदेशसे मैं कर्णसे युद्ध करने जा रहा हूँ। मैं राक्षस हूँ, युद्धमें लड़नेवालोंको तो दूर हाथ जोड़नेवालोंपर भी मुझे दया नहीं आती। मेरे आजके पराक्रमका पृथ्वीके लोग सदा स्मरण करेंगे।

दुर्योधन ने चिंतित स्वर में कहा, दु:शासन। यह घटोत्कच जिस गति से कर्ण पर आक्रमण कर रहा है, वह हमारे लिए घातक हो सकता है। आचार्य भी कर्ण की रक्षा के लिए चिंतित नहीं होंगे। जाओ, इस घटोत्कच को रोको। कर्ण की रक्षा करो। कहीं हमारे प्रमाद के कारण कर्ण मारा ही न जाए।

दु:शासन को भेजकर भी दुर्योधन को संतोष नहीं हुआ। दु:शासन उसका आज्ञाकारी तो था किंतु घटोत्कच का तोड़ नहीं था। और फिर दु:शासन के प्रति जो दृष्टिकोण भीम का होगा, वही उसके पुत्र घटोत्कच का भी होगा। घटोत्कच उसे अपना सबसे भीषण शत्रु मानेगा। वह भी उसका वक्ष फाड़कर उसका रक्त पीना चाहेगा। भीम फिर भी मनुष्य था, घटोत्कच तो था भी राक्षस। रक्त पीने के प्रति उसकी रुचि भीम से कुछ अधिक ही होगी। और कहीं वे पिता-पुत्र दोनों ही दु:शासन पर टूट पड़े तो दु:शासन को बचाना भी संभव नहीं होगा।

खूनसे भरे हुए उस मस्तकको लिये घटोत्कच दुर्योधनके पास गया और उसे उसके रथमें फेंककर बोला- यह है तेरा सहायक बन्धु, इसे मैंने मार डाला। देख लिया न इसका पराक्रम? अब तू अपनी तथा कर्णकी भी यही दशा देखेगा। यह कहकर घटोत्कच बाणोंकी वर्षा करता हुआ कर्णकी ओर चला। उस समय मनुष्य और राक्षसमें अत्यन्त भयंकर और आश्चर्यजनक युद्ध होने लगा।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। आधी रातके समय जब कर्ण और घटोत्कचका सामना हुआ, उस समय उन दोनोंमें किस प्रकार युद्ध हुआ? उसके रथ घोड़े और अस्त्र-शस्त्र कैसे थे?

घटोत्कच आया युद्ध करने लगा। दुर्योधन बोला, हे आचार्य यह इन पांडवों की सेना में दिन भर युद्ध करने के पश्चात भी इतनी शक्ति कहां से आ गई? द्रोण बोले, यह तो असुरों की युद्ध शैली दिखाई देती है। दुर्योधन बोला, असुर। यह असुर कहां से आ गये? कौरवों के महारथियों ने बाणों से प्रहार आरम्भ किया और घटोत्कच उन प्रहारों को बचाता रहा। दुर्योधन बोला, यह कौन यौद्धा है गुरुदेव। यह तो मेरी सेना को यों फाड़ रहा है जैसे बाण गले को फाड़ देता है और जैसे सौदामिनी छतनार वृक्षों को गिरा देती है। कृपाचार्य बोले, यह भीम पुत्र घटोत्कच के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता राजकुमार

दुर्योधन। जोरोंसे बाण वर्षा हो रही है पर घटोत्कच किसी के वश में नहीं आ रहा। घटोत्कच बोला, प्रणाम दानवीर कर्ण। आपकी वीरता की बडी कथायें सुनी है। भीम पुत्र घटोत्कच की ओर से यह पुरस्कार ग्रहण कीजिये और घटोत्कच ने बाण चला दिया। दुर्योधन बोला, गुरुदेव युद्ध की समाप्ति का शंख बजा दीजिये नहीं तो यह भीम पुत्र किसी को जीवित नहीं छोडेगा। द्रोण ने युद्ध समाप्ति का शंख बजा दिया।

कर्णने घटोत्कचका सामना किया। वह अपने दिव्यास्त्रोंमें उसकी आसुरी मायाको अनेक बार नष्ट करता रहा किन्तु कर्णके पास भी क्या उपाय था इसका कि मायावी राक्षस अनेक मुख बनाकर उसके दिव्यास्त्रोंको निगलता चला गया।

कर्ण ने धृष्टद्युम्न और शिखंडी, दोनों को ही अत्यंत घायल कर दिया था। युधामन्यु, उत्तमौजा और सात्यकि भी उसके सामने कुछ विशेष नहीं कर पा रहे थे। पांडव सेना किसी भी प्रकार स्वयं को सुरक्षित नहीं समझ सकती थी। वे सब युधिष्ठिर की सुरक्षित सेना में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे। पांडव सेना को हताश और युद्धविमुख देखकर घटोत्कच का रोष आकाश को छूने लगा।

घटोत्कच ने नया रथ लिया और कर्ण पर आक्रमण किया। कर्ण का मनोबल भी बहुत ऊँचा था। आज वह कुछ ऐसा अद्‌भुत करनेवाला था कि दुर्योधन का विषादपूर्ण मन भी हर्ष से उछल जाए। वे दोनों ही कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दंड, असन, वत्सदंत, वाराहकर्ण, विपाठ, सींग तथा क्षुरप्रों की वर्षा करते हुए, अपनी गर्जना से आकाश को कँपाने लगे। पर तभी कर्ण ने अपने दिव्यास्त्र से घटोत्कच के रथ को सारथी और घोड़ों सहित नष्ट कर दिया। घटोत्कच रथ से नीचे नहीं उतरा। वह पुन: अदृश्य हो गया था। अंधकार में उसको खोज पाना कौरवों के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। जाने वह कहाँ था और कहाँसे प्रकट होगा। वह कहीं से भी प्रकट होगा और कर्ण को मार देगा। कर्ण अलायुधके आनेपर अवकाश पाकर पाण्डव सेनाके संहारमें लग गया था। अलायुधको मारकर घटोत्कच फिर उसपर टूट पड़ा। कर्णने राक्षसकी मायाका बड़े साहससे निवारण किया, यद्यपि उसका रथ नष्ट हो गया और अश्व मारे गये। सब उद्योग करके भी कर्ण केवल अपनी ही रक्षा कर पा रहा था। राक्षस घटोत्कचने उसके दिव्यास्त्रोंका सामना करते हुए भी कौरव सेनाको कुचल डाला। सब कौरव महारथियोंको लगा कि आजकी रात्रिका प्रभात देखनेको उनके प्राण यह राक्षस रहने नहीं देगा।

घटोत्कच रात्रि बल पाकर प्रचण्डसे प्रचण्डतम होता जा रहा था। उसके प्रहार बढ़ते जा रहे थे। वह सम्पूर्ण दलपर शिला तथा शस्त्रोंकी वर्षा बढ़ाता ही जा रहा था। दूसरी ओर कर्ण दिनभरका घायल था। वह अपनेपर हुए राक्षसके आक्रमणको ही झेल लेता था, यही उसका अगाध साहस था।

द्रोण के शिबिर में द्रोण बोले, मैं तो घटोत्कच के विषय में सोचते सोचते थक गया किन्तु मेरी समझ में उसके लिये कोई उपाय नहीं आ रहा। दुर्योधन बोला, तो क्या आप यह कहना चाहते है गुरूवर कि हम जो अर्जुन और भीम से युद्ध करने आये है, क्या हम वो युद्ध उस राक्षस के हाथ हार जायेंगे? द्रोण बोले, मैं जय-पराजय की बात नहीं कर रहा हूँ दुर्योधन। यह समझ लो घटोत्कच एक अचूक अस्त्र है जो पांडवों के हाथ लग गया है उसे पराजित करने के लिये किसी दिव्यात्र की आवश्यकता होगी। दुर्योधन बोला, दिव्यास्त्र। कर्ण बोला, मेरी तरफ यों न देखो मित्र। इन्द्र की दी हुई शक्ति मैंने अर्जुन के लिये बचा रखी है। घटोत्कच का उपाय या तो तुम स्वयं करो या फिर आचार्य सोचे।

युद्धक्षेत्र में घटोत्कच के साथ घनघोर युद्ध। घटोत्कच मुंह में आग उगलकर कौरवों की सेना को भस्म करने लगा। घटोत्कच मुख से आंधी उगलने लगा और पर्वत के टुकड़े उठा-उठाकर मारने लगा कौरवसेना का संहार करने लगा। माया युद्ध का प्रयोग करने लगा। कर्ण के साथ घटोत्कच का युद्ध बाणों के प्रहार से होने लगे। कर्ण ने गदा चलायी। गदा के

टुकड़े-टुकड़े हो गये। दुर्योधन के बाणों को भी काट कर फेंकने लगा। दुर्योधन पर गदा फेंकी और दुर्योधन का रथ तोड दिया। दुर्योधन के सब शस्त्र निष्काम कर दिये।

संजय कहते हैं- महाराज। राक्षस अलायुधका वध करके घटोत्कच मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ और आपकी सेनाके सामने खड़ा हो सिंहनाद करने लगा। उसकी गर्जना सुनकर आपके योद्धाओंको बड़ा भय हुआ। इधर कर्णपर उसके शत्रु बाण बरसाते थे और वह धैर्यपूर्वक उनके अस्त्र-शस्त्रोंका नाश करता जाता था और उसने वज्रके समान बाणोंसे शत्रुओंका संहार आरम्भ किया।

अन्तरिक्षमें घटोत्कचकी भयंकर माया देखी। पहले वह लाल रंगके बादलोंके रूप में प्रकाशित हुई, फिर जलती हुई आगकी लपटके समान भयंकर दिखायी देने लगी। तत्पश्चात् उससे बिजली प्रकट हुई, उल्कापात होने लगा और हजारों दुन्दुभियोंके बजनेके समान भयंकर आवाज होने लगी। इसके बाद बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मूसल, फरसा, तलवार, पट्टिश, तोमर, परिघ, गदा, शूल और शतघ्नियोंकी वृष्टि होने लगी। हजारों की संख्यामें पत्थरोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें गिरने लगीं। वज्रपात होने लगा। आगके समान प्रज्वलित चक्र गिरने लगे। कर्णने बाणोंसे उस अस्त्र-वर्षाको रोकनेका बड़ा प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं मिली। बाणोंसे आहत होकर घोड़े गिरने लगे। वज्रोंकी मारसे हाथी धराशायी होने लगे और अन्य बहुत से अस्त्रोंके प्रहारसे बड़े-बड़े महारथियोंका संहार होने लगा। गिरते समय इनका महान् आर्तनाद चारों ओर फैल रहा था। घटोत्कचके छोड़े हुए नाना प्रकारके भयंकर अस्त्र शस्त्रोंसे आहत होकर दुर्योधनके सैनिक बड़ी घबराहटके साथ इधर-उधर भाग रहे थे। सब ओर हाहाकार मचा था। सभी लोग विषादमग्न और भयभीत हो गये थे। उस समय आपके पुत्रकी सेनापर भयंकर मोह छा रहा था। इस दशामें वे रणभूमिमें पड़े हुए थे। जगह-जगह चट्टानोंसे कुचले हुए घोड़े और हाथी दिखायी देते थे; रथ चकनाचूर हो गये थे।

उस समय कालकी प्रेरणासे क्षत्रियोंका विनाश हो रहा था। समस्त कौरव योद्धा घायल होकर भागते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे- कौरवों। भागो, यह सेना नहीं है; इन्द्र आदि देवता पाण्डवोंका पक्ष लेकर हमारा नाश कर रहे हैं। इस प्रकार जब कौरव विपत्तिके महासागरमें डूब रहे थे, उस समय सूतपुत्र कर्णने ही द्वीप बनकर उनकी रक्षा की। वह सारी शस्त्रवर्षाको अपनी छातीपर झेलता हुआ अकेला ही मैदानमें डटा रहा।

इसी समय उस भयंकर मायाका प्रभाव देख समस्त कौरवोंने मिलकर कर्णसे कहा- भाई। अब तुम इस राक्षसका तुरंत वध करो, नहीं तो ये सभी कौरव अभी नष्ट हुए जाते हैं। भीम और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे? इस समय आधी रातमें इस राक्षसका प्रताप बहुत बढ़ा हुआ है, अत: इसका ही नाश करो। हमलोगोंमेंसे जो इस भयंकर संग्रामसे छुटकारा पा जायगा, वही सेनासहित पाण्डवोंसे युद्ध करेगा। इसलिये तुम इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे इस भयंकर राक्षसका संहार कर डालो। कर्ण। सभी कौरव इन्द्रके समान बलवान् है; कहीं ऐसा न हो कि इस रात्रियुद्धमें ये सब-के-सब अपने सैनिकोंसहित मारे जायँ।

दुर्योधन बहुत डरा हुआ था। यदि आज का यह रात्रियुद्ध भी पांडवों को समाप्त नहीं कर पाया तो स्थिति और भी विकट हो जाएगी। उसे लगा कि उसके मन में कर्ण के प्रति भी गंभीर असंतोष पनप रहा था। पता नहीं, यह क्या कर रहा है। घटोत्कच दिखाई नहीं दे रहा है तो यह सभी दिशाओं में लक्ष्यहीन बाण क्यों चला रहा है। उस वैजयंती का प्रयोग क्यों नहीं करता कि वह घटोत्कच को खोजकर उसे मार डाले। पांडवों में से कोई एक तो समाप्त हो। अर्जुन नहीं मरता तो भीम को मारे। भीम नहीं मरता तो घटोत्कच को मारे। पर किसी को तो मारे। यह अपना बाण संधान का अभ्यास ही करता रहेगा क्या, अथवा शत्रु का वध भी करेगा।

दुर्योधन तथा उसके भाइयोंने व्याकुल होकर कर्णको पुकारा- महाबाहु कर्ण। इन्द्रसे प्राप्त अमोघ शक्तिसे इस राक्षसको मार दो। अर्जुन और भीमसे तो हम पीछे निबट लेंगे किन्तु आधी रातके समय यह राक्षस तो हमें अभी मार डालेगा। इस घोर रूपी राक्षससे प्राण बचेंगे तब हम प्रभातमें पाण्डवोंसे युद्ध करेंगे। इसे तो अविलम्ब मार दो।

दुर्योधन की सेना में पलायन ही पलायन था। सैनिक एक दिशा से दूसरी और दूसरी से तीसरी दिशा में भाग रहे थे। उनका हाहाकार ही सुनाई दे रहा था। न कहीं कोई वीर हुंकार और न कहीं कोई क्षात्र तेज। चारों ओर विषाद की मूर्तियाँ और कायर पलायन। क्यों नहीं कर्ण वैजयंती का प्रयोग करता? कर्ण अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़ा था। घटोत्कच की शस्त्रवर्षा को अपने वक्ष पर झेल रहा था और निरंतर बाणवर्षा कर रहा था; किंतु उसका लाभ क्या?

दुर्योधन और धैर्य नहीं कर सका। कर्ण के निकट आकर रोषपूर्वक बोला, वैजयंती का प्रयोग क्यों नहीं करते? घटोत्कच मारा नहीं गया तो हममें से कोई नहीं बचेगा। तुम भी नहीं। क्या करोगे उस वैजयंती का अपनी मृत्यु के पश्चात्? अरे भीम और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे। रात्रियुद्ध में सारी सेना को इस प्रकार त्रास देनेवाले इस पापी राक्षस को पहले मारो। हममें से कोई बचेगा तो पांडवों से युद्ध करेगा न।

दुर्योधन बोला, मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ मित्र स्वयं अपने रक्त में नहाये हुये यह मित्र कैसा लग रहा है। थोडी देर के पश्चात न तो तुम्हारा यह मित्र रहेगा और न ही उसकी सेना। फिर तुम इस रणभूमि में अर्जुन को ढूंढते रहना। यदि तुम्हारे लिये अर्जुन का महत्व तुम्हारे मित्र दुर्योधन से अधिक है जाओ मैं तुम्हे अपनी मित्रता के बन्धन से मुक्त करता हूँ। कर्ण बोला, ऐसा न कहो मित्र। कर्ण ने शंख फूंक इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति मंत्रोच्चार कर घटोत्कच पर फेंकी और उससे घटोत्कच को लगी। कर्णको भी दूसरा उपाय नहीं दीखता था। वह भी अबतक अनुभव कर चुका था कि घटोत्कचसे रात्रि युद्धमें अपने साथ औरोंकी भी रक्षा वह कर नहीं सकता। सचमुच यदि राक्षस अभी कौरवोंको मार देता है तो सबेरे शक्ति बची भी रही तो किस कामकी। अत: कर्णने वह अमोघ वैजयन्ती नामक शक्ति हाथमें ली।

निशीथका समय था, राक्षस कर्णपर निरन्तर प्रहार कर रहा था, सारी सेनापर उसका आतम छाया हुआ था; इधर कौरव वेदनासे कराह रहे थे। यह सब देख-सुनकर कर्णने राक्षसके ऊपर शक्ति छोड़नेका विचार किया। अब उससे संग्राममें शत्रुका आघात नहीं सहा गया, उसके वधकी इच्छासे कर्णने वह वैजयन्ती नामवाली असह्य शक्ति हाथमें ली।

दान। जीवन-भर आकर्षित करते आये उस शब्द से बँधा हुआ कर्ण द्रवित हो उठा। आँखे बन्द कर उसने कुछ चिन्तन किया। कवच-कुण्डल दान के समय इन्द्र से प्रसन्न होकर प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त वैजयंती शक्ति को अभिमन्त्रित कर कर्ण ने उसे घटोत्कच पर फेंका। उसकी अपनी सुरक्षा के लिए एकमात्र वही शक्ति उसके पास बची थी। उसे फेंकते ही उसका जीवन रिक्त तूणीर जैसा बन गया।

उस प्रज्वलित शक्तिको देखकर घटोत्कचने भागना चाहा किन्तु यह प्रयत्न व्यर्थ था। शक्तिका वेग अकल्पनीय था। उसके लगनेसे घटोत्कचका वक्ष विदीर्ण हो गया किन्तु उस अदम्य साहस मायावी राक्षसने मरते-मरते भी अपना शरीर इतना बड़ा कर लिया कि हाथ-पैर फैलाकर गिरा तो कौरवोंकी एक अक्षौहिणी सेना अश्व, गज, रथसहित उसके शरीरके नीचे पड़कर पिस गयी। भीमके उस पराक्रमी पुत्रने मरते-मरते भी इस प्रकार पाण्डवोंका हित-साधन किया।

मृत्युकी सगी बहिन अथवा लपलपाती हुई कालकी जिह्वाके समान वह शक्ति कर्णने घटोत्कचके ऊपर चला दी। उसे देखते ही राक्षस भयभीत हो गया और विन्ध्याचलके समान विशाल शरीर धारण कर वहाँसे भागा। रात्रिमें प्रज्वलित होती हुई उस शक्तिने राक्षसकी सारी माया भस्म करके उसकी छातीमें गहरी चोट की और उसे विदीर्ण करके ऊपर नक्षत्रमण्डलमें

समा गयी। घटोत्कच भैरव-नाद करता हुआ अपने प्यारे प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उस समय शक्तिके प्रहारसे उसके मर्मस्थल विदीर्ण हो गये थे तो भी शत्रुओंका नाश करनेके लिये उसने आश्चर्यजनक रूप धारण किया। अपना शरीर पर्वतके समान बना लिया। इसके बाद वह नीचे गिरा। यद्यपि मर गया था, तो भी उसने अपने पर्वताकार शरीरसे कौरव-सेनाके एक भागका संहार कर डाला। उसकी देहके नीचे एक अक्षौहिणी सेना दबकर मर गयी।

भीम बोला अपना आकार बढा पुत्र और शत्रु सेनापर गिर। घटोत्कच बोला, पिताश्री मेरा अन्तिम प्रणाम और शत्रु सेनापर गिरा जिससे कौरवसेना के बहुत से सैनिक दबकर मारे गये।

उसी समय कर्ण को पर्वताकार घटोत्कच का वृहत्काय शरीर दिखायी दिया। इन्द्रदत्तशक्ति उसके शरीर में लगी। शक्ति के लगते ही घटोत्कच के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये। मरते-मरते भी उसके शरीर ने हजारों लाखों सैनिकों को मार गिराया। घटोत्कच के मरने पर कौरव सेना में प्रसन्नता का सागर उमड़ने लगा। इधर पांडव सेना में सर्व शोक छा गया। क्रोध से कर्ण के दाँत भिंच गए। यह घटोत्कच सामने क्यों नहीं आता। दिखाई पड़े तो वह एक बाण से उसका मस्तक काटकर पृथ्वी पर गिरा देगा। पर यदि वह अदृश्य रहकर इस प्रकार शतघ्नियाँ छोड़ता रहा तो सेना के साथ-साथ कर्ण की अस्थियों का भी चूर्ण बन जाएगा। दुर्योधन ठीक कह रहा है उसे वैजयंती का प्रयोग करना चाहिए; किंतु फिर अर्जुन? दुर्योधन ने उसे इस रात्रियुद्ध के लिए बाध्य किया ही क्यों? न रात्रियुद्ध होता, न इस राक्षस को इस प्रकार अदृश्य रहकर युद्ध करने की सुविधा मिलती। पर अब? सामने से वह शतघ्नी आ रही थी। अनायास ही कर्ण का हाथ वैजयंती पर जा पड़ा।

कर्ण के हाथ से छूटकर वैजयंती, घटोत्कच का वक्ष गहराई तक चीरती हुई अंधकारपूर्ण आकाश में कहीं विलीन हो गई। अर्जुन ने हाथों से अपना मस्तक थाम लिया तो यह सत्य ही था कि कर्ण के पास वैजयंती थी। पर अर्जुन ने यह क्या किया; घटोत्कच को मरने दिया। उसके हाथ से गांडीव छूटा-छूटा जा रहा था।

कृष्ण ने लपककर अर्जुन को अपने वक्ष से लगा लिया, तुम बच गए अर्जुन। अब कर्ण तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसे युद्ध में मारा गया ही समझो। अर्जुन ने उनकी ओर देखा और बोला, मैं तो बच गया केशव। किंतु घटोत्कच। आपको तनिक भी शोक नहीं है घटोत्कच के मरने का।

घटोत्कच जैसे पराक्रमी वीरके मारे जानेपर पाण्डव तो व्याकुल हो ही उठे, उनकी सेनाका एक भी वीर नहीं था जो रो न उठा हो। लेकिन अकेले श्रीकृष्ण ऐसे थे जो हर्षसे सिंहनाद करने लगे थे और उछलकर उन्होंने अर्जुनका आलिंगन किया था। रथको रोककर गर्जना करते हुए हर्षसे झूमकर वे नृत्य करने लगे।

कृष्ण मुस्करा रहे है। भीम बोला, तुम मेरे वीर पुत्र के वीर गति प्राप्त होने पर हंस रहे हो कृष्ण। कृष्ण बोले, मैं उसके वीरगति को प्राप्त होनेपर नहीं हंस रहा हूं मझले भैया। मैं तो यह सोचकर प्रसन्न हो रहा था कि आज अर्जुन बच गया। जिस दिनसे यह युद्ध आरम्भ हुआ है उसी दिन से मैं चिन्ता में था।

कृष्ण बोले, कर्ण के पास दी हुई इन्द्र की शक्ति है जिसे कोई कवच नहीं रोक सकता और इसलिये मैं कई दिनों तक अर्जुन को कर्ण के सामने नहीं आने दे रहा था। अब आप ही बताइये मझले भैया कि यह शोक की घडी है या आनन्द की। आप के पुत्र ने तो वीर अभिमन्यु से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है और इसके लिये आनेवाले सारे युग वीर घटोत्कच को प्रणाम करते रहेंगे।

घटोत्कचके मारे जानेसे समस्त पाण्डव शोकमग्न हो गये। सबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। किंतु वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णको बड़ी खुशी थी, वे आनन्दमें डूब रहे थे। उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया और हर्षसे झूमकर नाचने लगे। फिर

अर्जुनको गले लगाकर उनकी पीठ ठोंकी और बारंबार गर्जना की। कृष्णको इतना प्रसन्न जान अर्जुन बोले- मधुसूदन। आज आपको बेमौके इतनी खुशी क्यों हो रही है? घटोत्कचके मारे जानेसे हमारे लिये शोकका अवसर उपस्थित हुआ है, सारी सेना विमुख होकर भागी जा रही है। जनार्दन बताईये, क्या वजह है इस प्रसन्नताकी? यदि बहुत छिपानेकी बात न हो, तो अवश्य बता दीजिये। मेरा धैर्य छूटा जा रहा है।

अर्जुन अपने सखाकी इस अद्‌भुत प्रसन्नतासे बहुत खिन्न होकर बोले- कृष्ण। हिडिम्बा-नन्दन घटोत्कचकी मृत्युने हम सबको शोकमग्न कर दिया है और प्रसन्न होकर आप इस अनवसरमें नाचने लगे हैं? हमारी विपत्तिमें तो आप प्रसन्न नहीं हुआ करते। आपके इस असाधारण प्रसन्नताका कोई बड़ा कारण होना चाहिए। वह कारण कितना भी गोपनीय हो, मुझे बतला दें। आपके इस हर्षसे मेरा धैर्य समाप्त हुआ जा रहा है। आपकी आजकी प्रसन्नता आश्चर्यजनक है।

पांडव सेना में रूदन का शब्द सुनाई देने लगा। धर्मराज के रोने पर सभी जोरों से रूदन करने लगे। शत्रुओं को मारकर लौटते हुए रथ पर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने यह समाचार सुना। सुनते ही भगवान वासुदेव ने जो उनके सारथी बने हुए रथ हाँक रहे थे, अर्जुन के रथ को खड़ा कर दिया। दौड़कर उन्होंने अर्जुन का बार-बार आलिंगन किया। वे बार-बार हँसते और फिर-फिर अर्जुन का आलिङ्गन करते। मारे प्रसन्नता के मधुसूदन थिरक-थिरक कर नाचने और गाने लगे। वे जोरों से हँसते और हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। अर्जुन ने आज तक श्रीकृष्ण की ऐसी दशा कभी नहीं देखी थी। वे आश्चर्यचकित होकर कृष्ण की ओर देखने लगे। जब कृष्ण की प्रसन्नता का आवेग कम हुआ और वे हँसते-हँसते आकर रथ पर बैठ गये तब हाथ जोड़े हुए कृष्ण से अर्जुन ने पूछा- प्रभो। मेरी ओर आज सर्वत्र रुदन की करुण-क्रन्दन ध्वनि सुनाई दे रही है। आप ताली बजा-बजाकर हँस रहे हैं। आप समुद्र की तरह गम्भीर हैं, हिमालय की तरह अटल प्रतिज्ञा हैं। संसार में आपके लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी आज आप पागलों की तरह हँस रहे हैं और नाच रहे हैं। इसका मैं कारण जानना चाहता हूँ। आपकी हँसी अकारण तो हो नहीं सकती। प्रभो मेरा प्राण प्यारा भतीजा, भीम का दुलारा पुत्र, महापराक्रमी घटोत्कच मारा गया है। उसकी मृत्यु पर आप शोक न करके इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हैं? यदि बताने योग्य बात हो तो कृपा करके मुझे बताइये। मैं अत्यन्त ही विस्मित हो रहा हूँ।

मैंने आज अपने सखा अर्जुनको सुरक्षित प्राप्त कर लिया, इससे बड़ा हर्षका अवसर मेरे लिए कौन-सा होगा? श्रीकृष्णने पुन: अर्जुनको हृदयसे लगाया- तुम नहीं समझ पाते हो कि इन्द्र द्वारा प्राप्त वह शक्ति कितनी भयंकर थी। उसका कोई प्रतिकार संभव नहीं था। कर्णने उसे तुम्हारे वधके लिए ही सुरक्षित रखा था। वह तुमपर उसके प्रयोगको कृतनिश्चय था। आज वह शक्ति उसके हाथसे चली गयी। आज मैं सुखपूर्वक सो सकूँगा। जबतक वह शक्ति कर्णके समीप थी, मुझे तुम्हारी चिन्ताके कारण ठीक निद्रा कभी नहीं आ सकी।

श्रीकृष्णने अर्जुनको विस्तारपूर्वक बतलाया कि किस प्रकार प्रतिदिन कौरव शिबिरमें सब तथा कर्ण भी शक्ति-प्रयोग करके प्रात: अर्जुनको मार देनेका निश्चय करते थे और प्रतिदिन उन सबको ही सम्मोहित करके श्रीकृष्णको संग्रामकी दूसरी ही योजना बनवानी पड़ती थी।

अन्तमें श्रीकृष्णने कहा- घटोत्कच युद्धमें न भी मरता तो मैं अपने हाथसे इसे मार देता। मैंने इसके पुत्र बर्बरीकको युद्धारम्भमें ही तुम सबके सामने ही मार दिया था। मैंने अब तक केवल तुम लोगोंके स्नेहका सम्मान रखनेके लिए ही इसे नहीं मारा था। अन्यथा यह धर्मका, वेदका, ब्राह्मणोंका और यज्ञका द्वेषी, इनका विनाशक था। मैं वेद, सत्य, दम, शौच, धर्म, क्षमाके ही साथ हूँ। श्रुति, संत, सुर तथा विप्रोंका विरोधी कोई भी हो, मुझे सह्य नहीं है। तुमको स्मरण नहीं है कि इन्हीं

कारणोंसे मैंने अपने पुत्र भौमासुरको भी मारा है।

कृष्ण का स्वर कठोर हो गया, वह पापी राक्षस था। युद्ध में न मरता तो मुझे भविष्य में किसी समय, अपने हाथों से उसका वध करना पड़ता। मेरा न कोई पुत्र है और न कोई पक्ष। मेरा तो बस एक धर्म है। कोई हमारा स्वार्थ सिद्ध कर दे तो वह हमें प्रिय नहीं हो जाना चाहिए। कोई हमारे परिवार में जन्म ले ले तो वह हमारा रक्षणीय नहीं हो जाता। मेरे लिए तो जैसे जरासंध, शिशुपाल, और एकलव्य थे, उसी प्रकार घटोत्कच भी था। जैसे वे अधर्मी मारे गए, वैसे ही घटोत्कच को भी मरना ही था। अर्जुन ने कुछ नहीं कहा। वह जानता था कि कृष्ण को समझना सरल नहीं था। उनके मन की थाह को कौन पा सकता था। पर सारे चराचर जीवों को अपनी ममता देनेवाले कृष्ण इतने निर्मम कैसे हो जाते हैं?

कौरवों का वेग बहुत बढ़ गया था। घटोत्कच के मारे जाने से वे अति उत्साहित हो उठे थे। इधर लगता था कि धर्मराज अचेत ही हो जाएँगे। उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे। धर्मराज और उनके भाई बन्धु तथा सम्बन्धी शोक सागर में निमग्न हो गये। पीछे से कर्ण को स्मरण आया, अरे। बड़ी भूल हो गयी, किन्तु शक्ति छूट गयी वह फिर लौटकर उनके पास आ तो सकती ही न थी। वह तो घटोत्कच को मारकर सीधी स्वर्ग में इन्द्र के पास चली गयी।

हिडिम्बा प्रार्थना करती है हे माता मेरे पुत्र को आपके आशीर्वाद की छाया दीजिये। माता लम्बी आयु का वरदान तो मैं नहीं मांग रही हूं क्योंकि लम्बी आयु तो कायरों की भी हो सकती है। मैं अपने पुत्र के लिये जीवन का एक ऐसा क्षण मांग रही हूं जिसे देखकर बडे-बडे शूरवीर लज्जा जाये। किसी दैत्य ने आकर हिडिम्बा को सूचना दी। भीमपुत्र घटोत्कच ने कौरवों के छक्के छुडा दिये। वे ऐसे समय पर पहुंचे जब युद्ध में दोनों सेना के दोनों पलडे समान थे। उनके पहुंचते ही पांडव सेना का पलडा भारी पडने लगा। उनके बाणों ने आचार्य द्रोण और दानवीर कर्ण तक को घायल किया। उनके हाथ पैर फूल गये और उन्होंने आचार्य द्रोण से कहकर युद्ध की समाप्ति करवादी। हिडिम्बा बोली, तो उसके पिताश्री तो अत्यन्त प्रसन्न हुये होंगे। दैत्य चर बोला, उनकी ओर तो मैं नहीं देख पाया किन्तु मैंने जो देखा उसपर असुर जाति सदा गर्व करेगी। वासुदेव कृष्ण ने कहा पुत्र जो तुम जैसे महावीर को जन्म दे वो आदरणीय नारी क्षत्राणि ना हो तो भी क्षत्राणि है क्योंकि नागमणि के पौधे पर चमेली का फूल नहीं आता और फिर उन्होने कहा हे पुत्र तुम वीरों की जाति के हो। किन्तु वासुदेव की एक बात मेरी समझ में नहीं आई। हिडिम्बा बोली, ऐसा क्या कह दिया उन्होने? दैत्य बोला हे पुत्र सबके आने और जाने का एक उचित समय होता है, तुम ठीक समय पर आये हो, भरत कुल कदापि तुम्हारा ऋण कभी नहीं चुका पायेगा। हिडिम्बा बोली, ऐसा कहा उन्होने। दैत्य चर बोला, यही बात तो मेरी समझ में नहीं आयी। उन्होंने ऐसा क्यों कहा? हिडिम्बा बोली, हे माता तुमने एक भक्तिनी की लाज रख ली। मेरी ममता का मान बढा दिया। मैं अपने पुत्र के लिये यही तो एक क्षण मांग रही थी। अब मैं भरतवंश की कुलवधुओं के साथ बैठ सकती हूं।

क्षत्रिय होता है कर्म से, बढे वंश की शान, वीर पुत्र से सर्वदा बढता मां का मान।

घटोत्कचकी मृत्युसे भी कौरवोंके लिए प्रसन्न होनेका कारण नहीं था। उनकी एक अक्षौहिणी सेना तो यह राक्षस अपने शरीरसे दबाकर मार गया। बहुत-सी पहिले मार चुका था। कठिनाईसे आधी अक्षौहिणी सेना बची थी और जिस शक्तिके बलपर अर्जुनके मारे जानेकी आशा थी, वह अब जा चुकी थी। अवश्य ही इस समय प्राण-रक्षा हो जानेसे कौरव कर्णका उत्साहपूर्वक सत्कार करनेमें लग गये थे।

उस शक्ति के वक्षभेद होते ही मायावी विकराल घटोत्कच विचित्र ध्वनि में चीखा। चीखते हुए नीचे गिरते समय उसने इतना विशाल शरीर धारण किया मानो आकाश की छत ही टूटकर गिर रही हो। अशोक-वृक्ष के गिरते ही जिस प्रकार

वल्मीक की असंख्य चीटियाँ उसके नीचे मसली जाती हैं, उसी प्रकार उसके विशाल शरीर के नीचे कुचलकर कई कौरव-सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए। रात्रि-युद्ध समाप्त हुआ।

कृष्ण बोले, तुम जानते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके (एक प्रकारसे) घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है। अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। संसारमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहनेपर उसके सामने ठहर सकता और यदि उसके पास कवच तथा कुण्डल भी होते तब तो वह देवताओंसहित तीनों लोकोंको भी जीत सकता था। उस अवस्थामें इन्द्र, कुबेर, वरुण अथवा यमराज भी युद्धमें उसका सामना नहीं कर सकते थे। हम और तुम सुदर्शन-चक्र और गाण्डीव लेकर भी उसे जीतनेमें असमर्थ हो जाते। तुम्हारा ही हित करनेके लिये इन्द्रने छलसे उसे कुण्डल और कवचसे हीन कर दिया। उनके बदलेमें जबसे इन्द्रने उसे अमोघ शक्ति दे दी थी, तबसे वह सदा तुमको मरा हुआ ही मानता था। आज यद्यपि उसकी ये सारी चीजें नहीं रहीं, तो भी तुम्हारे सिवा दूसरे किसीसे वह नहीं मारा जा सकता। कर्ण ब्राह्मणोंका भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रतधारी और शत्रुओंपर भी दया करनेवाला है; इसीलिये वह वृष (धर्म) कहलाता है। सम्पूर्ण देवता चारों ओरसे कर्णपर बाणोंकी वर्षा करें और दैत्य उसपर मांस और रक्त उछालें, तो भी वे उसे जीत नहीं सकते। कवच, कुण्डल तथा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे वञ्चित हो जानेके कारण आज कर्ण साधारण मनुष्य-सा हो गया है; तो भी उसे मारनेका एक ही उपाय है। जब उसकी कोई कमजोरी दिखायी दे, वह असावधान हो और रथका पहिया फँस जानेसे संकटमें पड़ा हो, ऐसे समयमें मेरे संकेतपर ध्यान देकर सावधानीके साथ इसे मार डालना। तुम्हारे हितके लिये ही मैंने जरासन्ध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला है तथा हिडिम्ब, किर्मीर, बक, अलायुध आदि राक्षसोंको भी मैंने ही मरवाया है। जरासन्ध और शिशुपाल आदि यदि पहले ही नहीं मारे गये होते, तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते। दुर्योधन अपनी सहायताके लिये उनसे अवश्य ही प्रार्थना करता और वे हमसे सर्वदा द्वेष रखनेके कारण कौरवोंका पक्ष लेते ही। दुर्योधनका सहारा लेकर वे सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लेते। जिन उपायोंसे मैंने उन्हें नष्ट किया है, उनको सुनो। जरासन्धका तिरस्कार किया। इससे क्रोधमें भरकर उसने हमलोगोंको मारनेके लिये सर्वसंहारिणी गदाका प्रहार किया। उस गदाको अपने ऊपर आते देख भैया बलरामने उसका नाश करनेके लिये स्थूणाकर्ण नामक अस्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके वेगसे प्रतिहत होकर वह गदा पृथ्वीपर गिर पड़ी, गिरते ही धरतीमें दरार पड़ गये और पर्वत हिल उठे। जिस स्थानपर गदा गिरी, वहाँ जरा नामक एक भयंकर राक्षसी रहती थी। गदाके आघातसे वह अपने पुत्र और बान्धवोंसहित मारी गयी।

श्रीकृष्णने बतलाया कि जरासन्ध, एकलव्य, शिशुपाल, शाल्व, दन्तवक्र प्रभृति कितने दुर्जय थे। वे जीवित होते तो दुर्योधनकी प्रार्थनापर उसकी सहायता करने अवश्य आते। तब पाण्डवोंकी विजय असम्भव हो जाती। इनमें-से प्रत्येक अमित पराक्रम और विश्व-विजयमें समर्थ था। इसलिए इनको अलग-अलग श्रीकृष्ण मारते आये। पाण्डवोंके इस दिनका ध्यान उन्हें सदासे रहा है। श्रद्धा-स्नेह विभोर अर्जुनके नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चलने लगा था।

इसी प्रकार तुम्हारा हित करने के लिये ही एकलव्यका अँगूठा अलग करवा दिया। चेदिराज शिशुपालको तुम्हारे सामने ही मार डाला। उसे भी देवता तथा असुर संग्राममें नहीं जीत सकते थे। उसका तथा अन्य देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है। हिडिम्बासुर, बक और किर्मीर- ये रावणके समान बली तथा ब्राह्मणों और यज्ञसे द्वेष रखनेवाले थे। लोक-कल्याणके लिये ही इन्हें भीमसे मरवा डाला। इसी प्रकार घटोत्कचके हाथसे अलायुधका नाश कराया और कर्णके द्वारा शक्ति प्रहार कराकर घटोत्कचका भी काम तमाम किया। यदि इस महासमरमें कर्ण अपनी शक्तिके द्वारा

घटोत्कचको नहीं मार डालता, तो मुझे इसका वध करना पड़ता। इसके द्वारा तुमलोगोंका प्रिय कार्य कराना था, इसीलिये मैंने पहले ही इसका वध नहीं किया। घटोत्कच ब्राह्मणोंका द्वेष और यज्ञोंका नाश करनेवाला था। यह पापात्मा धर्मका लोप कर रहा था, इसीसे इस प्रकार इसका विनाश करवाया है। जो धर्मका लोप करनेवाले हैं, वे सभी मेरे वध्य हैं। मैंने धर्म स्थापनाके लिये प्रतिज्ञा कर ली है। जहाँ वेद, सत्य, दम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमाका वास है, वहाँ मैं सदा ही क्रीडा किया करता हूँ। यह बात मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता हूँ। अब तुम्हें कर्णका नाश करनेके विषयमें विषाद नहीं करना चाहिये। मैं वह उपाय बताऊँगा, जिससे तुम कर्णको और भीम दुर्योधनको मार सकेंगे।

राजन्। यदि कर्ण श्रीकृष्णको मार डालता, तो निस्संदेह आज सारी पृथ्वी उसके वशमें हो जाती। उसने भी उनपर शक्ति-प्रहारका विचार किया था; पर युद्धमें श्रीकृष्णके निकट जाते ही उसपर ऐसा मोह छा जाता कि यह बात भूल जाती थी। उधरसे श्रीकृष्ण सदा ही बड़े-बड़े महारथियोंको कर्णसे लड़नेके लिये भेजा करते थे, वे निरन्तर इसी फिक्रमें रहते कि कैसे कर्णकी शक्तिको व्यर्थ कर दूँ। महाराज। जो कर्णसे अर्जुनकी इस प्रकार रक्षा करते थे, वे अपनी रक्षा क्यों नहीं करते? तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं हैं, जो जनार्दनपर विजय पा सके।

कृष्ण बोले, युयुधान सात्यकि, कर्ण भी उनसे ऐसा ही करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका था, उसके हृदयमें सदा अर्जुनके वध करनेका विचार रहा भी करता था, परंतु मैं ही उसे मोहमें डाल देता था। यही कारण है, जिससे उसने अर्जुनपर शक्तिका प्रहार नहीं किया। सात्यके। वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युरूप है- यह सोच-सोचकर मुझे रातमें नींद नहीं आती थी। अब वह घटोत्कचपर पड़नेसे व्यर्थ हो गयी- यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुखसे छूट गये। मैं युद्धमें अर्जुनकी रक्षा करना जितना आवश्यक समझता हूँ उतनी पिता, माता, तुम-जैसे भाइयों और अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं मानता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो, तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर जी उठे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। यही वजह है कि इस रात्रिमें मैंने राक्षसको ही कर्णसे लड़नेके लिये भेजा था; उसके सिवा दूसरा कोई कर्णको नहीं दबा सकता था।

कर न सकेगा कर्ण अब फिर से शक्ति प्रयोग, यही सोच हरि हंस दिये, दिखे दुःखी सब लोग,
अमर घटोत्कच ने दिया यह प्रमाण, कर्ण परीक्षित हो गया हुआ सुरक्षित पार्थ।

वीर घटोत्कचके वीरगति को प्राप्त होने के बाद युद्ध रुका नहीं। पांडव घटोत्कच के लिये बैठकर रोना चाहते थे लेकिन युद्ध को बीच में रोककर वे रो तो नहीं सकते थे इसलिये वे अपने आंसू पोछते जाते थे और लडते जाते थे। उधर घटोत्कच वध ने कौरवों का हौसला बढ़ा दिया था तो वो जमकर लड़ रहे थे किन्तु हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र को और ही चिन्ता खाये जा रही थी।

अर्जुनने मस्तक झुका लिया। इतने स्नेहमय, भक्तवत्सलके प्रति उनको अपना आक्रोश बहुत अनुचित लगा। ये श्रीहरि तो स्वभावसे असुर-नाशक हैं। घटोत्कच धर्मद्रोही था, यह तो वे जानते ही हैं।

कृष्ण बोले, अर्जुन। मुझे रात्रि-दिन तुम्हारी चिन्ता बनी रहती थी। कर्ण दिव्य कवच और कुण्डल धारण किये पैदा हुआ था। कर्ण बड़े यत्न से उसे तुम्हारे मारने के लिये सुरक्षित रखे हुए था। कर्ण महाबली है, परम धर्मात्मा है। उसे संसार में कोई जीत नहीं सकता। अब उसकी वह अमोघ शक्ति घटोत्कच को मारकर इन्द्र के पास चली गई। अब वह शक्तिहीन साधारण मनुष्य की भाँति हो गया। अब तुम उसे युद्ध में मार सकोगे। इतना होने पर भी अब भी उसमें इतना बल है कि धर्मयुद्ध से इन्द्र भी उसे परास्त नहीं कर सकता। तुम्हारी तो सामर्थ्य ही क्या? अब भी उसे छल से ही मारना होगा। जब तक उसके हाथ में शस्त्र रहेगा, उसे कोई मार नहीं सकता। जब वह शस्त्रहीन हो और दूसरे काम में लगा रहे, तब तुम मेरा

संकेत पाकर उसे अवश्य ही मार डालना। धर्म-अधर्म का ध्यान मत करना। प्रबल शत्रु जिस प्रकार भी मारा जाय वही ठीक है। यह कहकर भगवान ने अर्जुन का फिर से आलिंगन किया। अनिच्छा होने पर भी भगवान् की बात अर्जुन को माननी पड़ी। कर्ण युद्ध से लौट आये किन्तु आज वे सर्वस्व गँवाकर लौटे। फिर भी उस वीर का उत्साह कम नहीं हुआ। क्योंकि वह जय-पराजय को समान समझता था। वह धर्मात्मा और सच्चा शूर था। सच्चे शूर अपने प्राणों की कभी चिन्ता नहीं करते। मरना उनके लिये खेल है। वे मृत्यु को एक साधारण घटना समझते हैं।

संजयने कहा, महाराज। कर्णके द्वारा उस राक्षसके मारे जानेपर आपके सैनिक बड़े प्रसन्न हुए। वे ऊँचे स्वरसे गर्जना करने लगे और बड़े वेगसे इधर-उधर दौड़ने लगे। उधर उस घोर अन्धकारमयी रजनीमें पाण्डव-सेनाका संहार हो रहा था, इससे राजा युधिष्ठिरका मन बहुत छोटा हो गया। वे भीमसे बोले- महाबाहो। धृतराष्ट्रकी सेनाको रोको; मैं तो घटोत्कचके मरनेसे बहुत घबरा गया हूँ, मुझसे कुछ नहीं हो सकता। यह कहकर वे अपने रथपर बैठ गये। आँखोंसे आँसू बहने लगे। उच्छ्वास चलने लगा। उस समय कर्णका पराक्रम देखकर वे अत्यन्त अधीर हो गये।

कृष्ण बोले, महाराज। शत्रुओं की सेना में भयंकर गर्जना का शब्द बढ़ता जा रहा है। वे आपकी सेना का सर्वनाश कर रहे हैं। द्रोण भी बहुत प्रचंड हो उठे हैं। मूढ़ मनुष्यों के समान ऐसी व्याकुलता आपको शोभा नहीं देती। शोक के लिए अवकाश नहीं है। उठिए। युद्ध कीजिए। महासंग्राम का भार सँभालिए। आप ही घबरा जाएँगे तो हमें विजय कैसे मिलेगी।

भीम तो अपने अश्रु पीकर आँखों से अंगारे बरसाता हुआ, दुर्योधन को रोकने के लिए चला भी गया है; किंतु मेरा मन धनुष उठाने का भी नहीं हो रहा। युधिष्ठिर बोले, हम वन में थे तो घटोत्कच ने हमारी कितनी सहायता की थी। अर्जुन अस्त्र प्राप्ति के लिए अन्यत्र गया हुआ है, यह जानकर वह काम्यक वन में हमारी रक्षा के लिए, अर्जुन के लौटने तक हमारे साथ रहा। और आज कर्ण ने उसे मार दिया। सहसा उन्होंने रुककर कृष्ण की ओर देखा, अभिमन्यु का वध हुआ, तब भी मैंने कहा था कि उसके लिए बड़े अपराधी कर्ण और द्रोण हैं। किंतु अर्जुन ने उसके लिए जयद्रथ को दंडित किया। यदि तब अर्जुन ने कर्ण का वध कर दिया होता तो आज घटोत्कच जीवित होता।

युधिष्ठिर ने शंख बजाया और अपने धनुष की टंकार से युद्धभूमि को गूँजाते हुए चल पड़े। कृष्ण बोले, उसकी चिंता छोड़ो। अब धर्मराज की चिंता करो। उनका इस प्रकार अकेले कर्ण से युद्ध करने जाना उचित नहीं है।

उनको इस अवस्थामें देख श्रीकृष्णने कहा, कुन्तीनन्दन। आप खेद न कीजिये, आपके लिये यह व्याकुलता शोभा नहीं देती। यह तो अज्ञानी मनुष्योंका काम है। उठिये और युद्ध कीजिये। इस महासंग्रामका गुरुतर भार सँभालिये। आप ही घबरा जायँगे, तब तो विजय मिलनेमें संदेह ही रहेगा। श्रीकृष्णकी बात सुनकर युधिष्ठिरने आँखें पोंछते हुए कहा- महाबाहो। मुझे धर्मकी गति मालूम है। जो मनुष्य किसीके किये हुए उपकारोंको नहीं मानता, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जनार्दन। घटोत्कच अभी बालक था; तो भी उसने यह जानकर कि अर्जुन अस्त्रप्राप्तिके लिये तप करने गये हैं, वनमें हमलोगोंकी बड़ी सहायता की थी। इसी प्रकार इस महासमरमें भी उसने हमारे लिये बड़ा कठिन पराक्रम किया है। वह मेरा भक्त था, मुझसे प्रेम करता था तथा मेरा भी उसपर बड़ा स्नेह था। इसीलिये उसकी मृत्युसे मैं शोकसंतप्त हो रहा हूँ, रह-रहकर मूर्च्छासी आ रही है। कृष्ण, कौरव किस प्रकार हमारी सेनाको खदेड़ रहे हैं। तथा महारथी द्रोण और कर्ण कितने सावधान दिखायी दे रहे हैं। किस तरह हर्षनाद कर रहे हैं? जनार्दन। आपके और हमारे जीते-जी घटोत्कच कर्णके हाथसे क्योंकर मारा गया? अर्जुनके देखते-देखते उसकी मृत्यु हुई है। वीरवर। अब मैं स्वयं ही कर्णको मारनेके लिये जाऊँगा। यों कहकर अपना महान् धनुष टंकारते हुए वे बड़ी उतावलीके साथ चल दिये।

HHH(२२९)HHH

यह देखकर कृष्णने अर्जुनसे कहा- ये राजा युधिष्ठिर कर्णको मारनेके लिये चले जा रहे हैं। इस समय इन्हें अकेले छोड़ देना ठीक नहीं होगा। यह कहकर उन्होंने बड़ी शीघ्रताके साथ घोड़ोंको हाँका और दूर पहुँचे हुए राजाको पकड़ लिया। इतनेहीमें भगवान् व्यासजी उनके समीप प्रकट होकर बोले- कुन्तीनन्दन। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि कर्णके साथ कई बार मुठभेड़ होनेपर भी अर्जुन जीवित बच गये हैं। उसने अर्जुनको ही मारनेकी इच्छासे इन्द्रकी दी हुई शक्ति बचा रक्खी थी। द्वैरथ-युद्धमें उसका सामना करनेके लिये अर्जुन नहीं गये- यह बहुत अच्छा हुआ। यदि जाते तो आज कर्ण इनपर ही उस शक्तिका प्रहार करता, ऐसी दशामें तुम और भयंकर विपत्तिमें फँस जाते। सूतपुत्रके हाथसे घटोत्कचका ही मारा जाना अच्छा हुआ। कालने ही इन्द्रकी शक्तिसे उसका नाश किया है- ऐसा समझकर तुम्हें क्रोध और शोक नहीं करना चाहिये। युधिष्ठिर। सभी प्राणियोंकी एक दिन यही गति होती है। इसलिये तुम चिन्ता छोड़कर अपने सभी भाइयोंको साथ ले कौरवोंका सामना करो। आजके पाँचवे दिन इस पृथ्वीपर तुम्हारा अधिकार हो जायगा। सदा धर्मका ही चिन्तन करते रहो। दया, तप, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणोंका प्रसन्नतापूर्वक पालन करो। जिधर धर्म होता है, उसी पक्षकी विजय होती है। यह कहकर व्यास वहींपर अन्तर्धान हो गये।

प्रभद्रकों की सेना को साथ लेकर शिखंडी जाएँ धर्मराज की सहायता के लिए। प्रयत्न करें कि धर्मराज और कर्ण का सीधा टकराव न हो। भीम की सहायता के लिए धृष्टद्युम्न, द्रोण पर आक्रमण करें, और देखो अर्जुन। सैनिक और वाहन कैसे थक चुके हैं। महारथी निद्रा से अंधे हो रहे हैं। संग्राम में कोई विशेष चेष्टा भी नहीं हो रही है। यह तो दुर्योधन की हठ ही है। अर्जुन ने कहा, पर दुर्योधन तो युद्ध नहीं रोकेगा। कृष्ण ने कहा, सेनापति युद्ध रोकना नहीं चाहते किंतु सैनिकों को तो विश्राम चाहिए। तुम अपनी ओर से प्रयत्न करके देखो।

धृष्टद्युम्न ने कहा, तुम द्रोणाचार्यका सामना करो; क्योंकि उनका ही विनाश करनेके लिये तुम धनुष-बाण, कवच और तलवारके साथ अग्निसे प्रकट हुए हो। पूर्ण उत्साहके साथ द्रोणपर धावा करो। तुम्हें तो उनसे किसी प्रकार भय होना ही नहीं चाहिये। जनमेजय, शिखण्डी, यशोधर, नकुल, सहदेव, द्रौपदीके पुत्र, प्रभद्रकगण, द्रुपद, विराट, सात्यकि, केकयराजकुमार और अर्जुन ये सब-के-सब द्रोणको मार डालनेके लिये चारों ओरसे आक्रमण करें। इसी प्रकार हमारे रथी, हाथीसवार, घुड़सवार और पैदल योद्धा भी महारथी द्रोणको रणमें मार गिरानेका प्रयत्न करें।

फिर तो दोनों ओरके योद्धाओंमें युद्ध छिड़ गया। उस समय बड़े-बड़े महारथी भी नींदसे अंधे हो रहे थे। थकावटसे उनका बदन चूर-चूर हो रहा था। उनकी समझमें कुछ भी नहीं आता था कि क्या करना चाहिये। वह भयानक अर्धरात्रि निद्रान्ध सैनिकोंके लिये हजार पहरकी-सी जान पड़ती थी। किसीमें भी लड़नेका उत्साह नहीं रह गया था, सब शिथिल एवं दीन हो रहे थे। आपके तथा शत्रुओंके भी सैनिकोंके पास न कोई अस्त्र रह गया था, न बाण। तो भी क्षत्रियधर्मका खयाल करके वे सेनाका परित्याग नहीं कर सके थे। कुछ तो नींदसे इतने अंधे हो गये कि हथियार फेंककर सो रहे। कुछ लोग हाथियोंपर, कुछ रथोंपर और कुछ लोग घोड़ोंपर ही झपकियाँ लेने लगे। घोर अन्धकारमें नींदसे नेत्र बंद हो जाते थे, तो भी शूरवीर अपने शत्रुपक्षके वीरोंका संहार कर रहे थे। कुछ तो नींदमें इतने बेसुध हो रहे थे कि शत्रु उन्हें मार रहे थे और उनको पता नहीं चलता था।

अर्जुन ने उच्च स्वर में कहा, कौरव सैनिकों। तुम सब लोग अपने वाहनों सहित अत्यधिक थक चुके हो। सारी सेना अंधकार और धूल से ढँक गई है। लोग अपने शस्त्रों के साथ सो गए हैं अथवा नींद से अंधे होकर अपने ही पक्ष पर प्रहार कर रहे हैं। तुम्हारे सेनापति नहीं चाहते कि युद्ध थमे किंतु तुम लोग ठीक समझो तो युद्ध रोक दो और दो घड़ी के लिए इस रणभूमि में ही सो लो। विश्राम हो जाए, तुम्हारी आँखें कुछ खुल जाएँ, शरीर की जड़ता दूर हो जाए, तो फिर से युद्ध आरंभ

कर देना। मैं तुम्हें अपने सेनापतियों की अवज्ञा करने को नहीं कह रहा; किंतु यदि तुम लोग पांडव सेना के भय से युद्ध स्थगित नहीं कर रहे हो तो मैं पांडव सेना की ओर से तुम्हें वचन दे रहा हूँ कि जब तक तुम लोग स्वयं ही युद्ध के लिए प्रस्तुत नहीं हो जाओगे, हम तुम पर आक्रमण नहीं करेंगे।

सैनिकोंकी यह अवस्था देख अर्जुन समस्त दिशाओंको निनादित करते हुए ऊँची आवाजमें बोले, योद्धाओं। इस समय तुम्हारे वाहन थक गये हैं, तुमलोग भी नींदसे अंधे हो रहे हो। इसलिये यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो थोड़ी देरके लिये लड़ाई बंद कर दो और यहीं सो जाओ। फिर चन्द्रोदय होनेपर जब नींदका वेग कम हो और थकावट दूर हो जाय, तो दोनों दलोंके लोग पुन: युद्ध छेड़ेंगे। दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा, यह षड्यंत्र है। किसी सैनिक ने उत्तर दिया, नहीं। यह अर्जुन का धर्म और जीव-दया है। हम उसका कल्याण चाहते हैं। दुर्योधन बोला, तुम युद्ध नहीं करोगे और वे तुम्हें मार डालेंगे। हम युद्ध करेंगे तो भी मारे ही जाएँगे। उत्तर आया। मेरी बात मानो, वे थक गए हैं। युद्ध में असमर्थ हो चुके हैं। हम लड़ते रहे तो प्रात: तक युद्ध जीत भी जाएँगे। कौरव सैनिकों में अब कोई गतिविधि नहीं थी।

धर्मात्मा अर्जुनकी बात सबने मान ली और दोनों पक्षकी सेनाएँ युद्ध बंद कर विश्राम लेने लगीं। अर्जुनके उस प्रस्तावकी देवता और ऋषियोंने भी सराहना की। विश्राम मिल जानेसे आपके सैनिकोंको भी बड़ा सुख हुआ। वे अर्जुनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे- महाबाहु अर्जुन। तुममें वेद, अस्त्र, बुद्धि, पराक्रम और धर्म सब कुछ है। तुम जीवोंपर दया करना जानते हो। तुमने हमें जो आराम दिया है, इसके बदले हम भी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे सभी मनोरथ शीघ्र ही पूरे हों।

इसप्रकार पार्थकी प्रशंसा करते-करते वे नींदके वशीभूत हो सो गये। कोई घोड़ोंकी पीठपर लेटे थे तो कोई रथकी बैठकमें ही लुढ़क गये थे। कुछ लोग हाथीके कंधोंपर सोते थे और कुछ जमीनपर ही पड़ गये थे। नाना प्रकारके आयुध, गदा, तलवार, फरसा, प्रास और कवच धारण किए हुए ही लोग अलग-अलग पड़े हुए थे। राजन्। उस समय अत्यन्त थके हुए हाथी, घोड़े और सैनिक सभी युद्धसे विश्राम पाकर गाढ़ी नींदमें सो गये थे।

उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके पास गया और उनके उत्साह तथा तेजको उत्तेजना देनेके लिये क्रोधमें भरकर बोला- आचार्य। इस समय शत्रु थककर विश्राम ले रहे हैं उत्साह खो बैठे हैं और विशेषत: हमारे दाँवमें फँस गये हैं; ऐसी दशामें भी युद्धमें उनपर किसी तरहकी रियायत नहीं होनी चाहिये। आजतक हम ऐसे मौकोंपर आपको प्रसन्न रखनेके लिये सब तरहसे क्षमा करते आये हैं; उसका फल यह हुआ है कि पाण्डव थके होनेपर भी अधिक बलवान होते गये हैं। ब्रह्मास्त्र आदि जितने भी दिव्य अस्त्र हैं, वे सब-के-सब यदि किसी एकके पास हैं तो वे आप ही हैं। संसारमें पाण्डव या हमलोग- कोई भी धनुर्धर युद्धमें आपकी समानता नहीं कर सकते। द्विजवर। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि आप अपने दिव्य अस्त्रोंसे देवता, असुर और गन्धर्वोंसहित तीनों लोकोंका संहार कर सकते हैं। इतने शक्तिशाली होकर भी आप पाडवोंको अपना शिष्य समझकर अथवा मेरे दुर्भाग्यके कारण उनको क्षमा ही करते जाते हैं।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर आचार्य द्रोण कुपित होकर बोले- दुर्योधन। मैं बूढ़ा हो गया, तो भी संग्राममें अपनी शक्तिभर लड़नेकी चेष्टा करता हूँ। परंतु जान पड़ता है, तुम्हें विजय दिलानेके लिये अब मुझे नीच कर्म भी करना पड़ेगा। ये सब लोग उन अस्त्रोंको नहीं जानते और मैं जानता हूँ। बुरा या भला जो भी काम तुम कराना चाहो, तुम्हारे कहनेसे ही वह सब कुछ करूँगा; अन्यथा अपनी इच्छासे तो अशुभ कर्म मुझसे नहीं होगा। समस्त पाञ्चाल राजाओंका संहार करके युद्धमें पराक्रम दिखानेके बाद ही अब कवच उतारूँगा। इसके लिये मैं अपने हथियार छूकर सत्यकी शपथ खाता हूँ। परंतु तुम जो यह समझते हो कि अर्जुन

युद्धमें थक गये हैं, यह तुम्हारी भूल है। अर्जुनका सच्चा पराक्रम मैं सुनाता हूँ। सव्यसाचीके कुपित होनेपर देवता, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस भी उन्हें नहीं जीत सकते। खाण्डव-वनमें उन्होंने इन्द्रका सामना किया और अपने बाणोंसे उनकी वर्षा रोक दी तथा बलके घमंडमें फूले हुए यक्ष, नाग और दैत्योंको परास्त किया। घोषयात्राके समय जब चित्रसेन आदि गन्धर्व तुम्हें बाँधकर लिये जाते थे, उस समय अर्जुनने ही छुटकारा दिलाया था? देवताओंके शत्रु निवातकवच नामक दैत्योंको, जिन्हें स्वयं देवता भी नहीं मार सके थे, अर्जुनने ही परास्त किया। हिरण्यपुरमें रहनेवाले हजारों दानवोंको जिन्होंने जीत लिया था, उन पुरुषसिंह अर्जुनको मनुष्य कैसे हरा सकता है? हर तरहसे कोशिश करनेपर भी उन्होंने तुम्हारी सेनाका सर्वनाश कर डाला।

इस प्रकार जब द्रोणाचार्य अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, तो आपके पुत्रने कुपित होकर कहा- आज मैं, दु:शासन, कर्ण और मामा शकुनि सब मिलकर कौरव-सेनाको दो भागोंमें बाँटकर दो जगह मोर्चाबंदी करेंगे और युद्धमें अर्जुनको मार डालेंगे। यह सुनकर आचार्य मुसकराते हुए बोले, अच्छा जाओ, परमात्मा ही कुशल करें। कौन ऐसा क्षत्रिय है जो गाण्डीवधारी अर्जुनका नाश कर सके? दुर्योधन। मनुष्यकी तो बात ही क्या है- इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर तथा असुर, नाग और राक्षस भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकते। तुम जो कुछ कह रहे हो, ऐसी बातें मूर्ख किया करते हैं। संग्राममें अर्जुनसे लोहा लेकर कौन कुशलपूर्वक घर लौट सकता है? तुम तो निर्दयी हो और पापमें ही तुम्हारा मन बसता है; इसीलिये तुम्हारा सबपर संदेह रहता है तथा जो लोग तुम्हारे हित-साधनमें लगे हैं, उनके प्रति भी तुम अंट-संट बातें बक दिया करते हो। तुम भी तो खानदानी क्षत्रिय हो; जाओ न, अपने लिये खुद ही अर्जुनसे लड़ो और उन्हें मार डालो। इन सब निरपराध सैनिकोंकी जान क्यों मरवाना चाहते हो? तुम्हीं इस वैर-विरोधके मूल कारण हो; इसलिये स्वयं ही जाकर अर्जुनका सामना करो और साथमें जाय तुम्हारा यह मामा, जो कपटसे जूआ खेलनेमें बड़ा बहादुर है। यह धूर्त जुआरी, जिसने दूसरोंको धोखा देनेमें ही अपनी बुद्धिका परिचय दिया है, तुम्हें पाण्डवोंसे विजय दिलायेगा? तुम भी धृतराष्ट्रको सुना-सुनाकर कर्णके साथ बड़ी उमंगसे कहा करते थे, पिताजी। मैं, कर्ण और दु:शासन- तीनों मिलकर पाण्डवोंको जीत लेंगे। तुम्हारा यह डींग मारना मैंने सभामें कई बार सुना है। आज उन्हें साथ लेकर प्रतिज्ञा पूरी करो, कही हुई बात सत्य करके दिखाओ। वह देखो, तुम्हारा शत्रु अर्जुन निर्भीक होकर सामने ही खड़ा है; क्षत्रियधर्मका खयाल करके युद्ध करो। अर्जुनके हाथसे तुम्हारा मारा जाना जीत होनेसे कहीं अच्छा है। जाओ, निडर होकर लड़ो।

गान्धारी और कुन्ती पितामह भीष्म से मिलने रणभूमि में आती है। रास्ते में सैनिक किसी सैनिक का शव उठा रहे है। गांधारी बोली, क्या हुआ कुन्ती। कुन्ती बोली, सैनिक सैनिक का शव उठा रहे है। गान्धारी बोली, शव को नमस्कार कर बोली तुमने जिस ओर से भी युद्ध किया हो तुम मेरे अपने हो। भरतवंश की ये दोनों ही कुलवधुयें तुम्हारी ऋणी है सैनिक।

कुन्ती बोली, प्रणाम तातश्री। भीष्म बोले, मैं तुम्हे क्या आशीर्वाद दूं। मैं तुम दोनों ही का सामना नहीं कर सकता। ये जो कुछ हो रहा है उसके लिये मैं अपने आपको कहीं न कहीं उत्तरदायी मानता हूँ। कुन्ती बोली, किन्तु आप ऐसा क्यों कह रहे हैं तातश्री? भरतवंश के भाग्य में यही लिखा था तो फिर आप क्या करे। भीष्म बोले, भाग्य भी तो कर्मफल है पुत्री। पहिले मैंने एक प्रतिज्ञा करी थी। यह सब उसी का परिणाम है। मैं वो वर्तमान हूँ पुत्री जो अपने अतीत से भी लज्जित है और भविष्य से भी। और यह मेरा दंड है कि मैं इस बाणों की शैय्या पर लेटा लेटा उस भरतवंश के सर्वनाश का दृश्य देख रहा हूं जिसे बचाने के लिये मैंने अन्याय का पक्ष लिया और मेरी विवशता देखो पुत्री कि मेरी वही प्रतिज्ञा मुझे प्राण त्यागने की आज्ञा नहीं दे रही, क्योंकि जितना मेरा हस्तिनापुर आज अरक्षित है उतना अरक्षित पहिले कभी नहीं रहा। गान्धारी बोली, मैं आपकी विवशता समझती हूं तातश्री किन्तु मैं वासुदेव को कभी क्षमा नही करूंगी। यदि वो सचमुच चाहता तो

वो इस युद्ध को रोक सकता था। चाहे दुर्योधन वीरगति को प्राप्त हो चाहे युधिष्ठिर किन्तु आग तो मेरी ही कोख में लगनी है। आप ही बताइये तातश्री मेरी ममता कितने शवों का बोझ ढो सकती है? शोक चाहे मैं प्रकट करूं चाहे कुन्ती किन्तु हम दोनों की आंखों से एक ही आंसू बह रहे होंगे तातश्री। भीष्म बोले, परन्तु यह न भूलो पुत्री कि वासुदेव भरतवंश में सीमित नहीं है। कुन्ती बोली, भरतवंश में तो हममें से कोई भी सीमित नहीं है तातश्री। न आप, न ज्येष्ठश्री, न दीदी और न मैं। जैसे हर क्षण-क्षण ही होता है और काल के महासागर की एक बूंद भी वैसे ही एक व्यक्ति भी एक व्यक्ति ही नहीं होता। यदि मैं केवल कुन्ती होती तातश्री तो मैं आज अपने पुत्रों के शिबिर में होती। दीदी केवल गान्धारी होती तो दुर्योधन को विजयश्री का आशीर्वाद दे चुकी होती। हम सब एक श्रृंखला के बीच की कडी है। जो बीत गया हम उसके उत्तराधिकारी है और जो बीतनेवाला है उसके उत्तरदायी। हम वर्तमान हैं तातश्री। इसका आरम्भिक क्षण आप हैं और हम सभी बाणों की शैय्या पर है। आपको शैय्या दिखाई दे रही हैं तातश्री। मेरी बाणों को शैया दिखाई नहीं दे रही है इसलिये तो हम दोनों आपके पास इस पीडा का उपचार पूछने आई है तातश्री। आप वासुदेव की बात मत कीजिये उन्हे तो सुख-दु:ख का सागर भिगो ही नहीं सकता। किन्तु दीदी तो वासुदेव नहीं, मैं तो वासुदेव नहीं और यह पीडा हमारी सहनशक्ति की सीमायें पार कर चुकी है तातश्री। मैं क्या करूं तातश्री? दीदी क्या करे तातश्री। भीष्म बोले, तुम भी वही करो जो मैं कर रहा हूं। प्रतीक्षा। गान्धारी बोली, किसकी प्रतीक्षा तातश्री। भीष्म बोले, युद्ध के अन्त की, हस्तिनापुर की सुरक्षा की प्रतीक्षा करो और यह समझ लो न तो मेरा कोई महत्व है और न कोई तुम्हारा, न अर्जुन का, न ही दुर्योधन का। महत्व तो केवल हस्तिनापुर और उसकी सुरक्षा है पुत्री। यह मत सोचो विजय का अमृत कौन पियेगा और पराजय का विष कौन? केवल हस्तिनापुर के विषय में सोचो। पीडा कम हो जायेगी।

चिन्ता अपनी छोडकर रखें राष्ट्र का ध्यान, धन्य इस भूमि के भीष्म सपूत महान।
भारत भूमि अखंड हो, रहे सुरक्षित देश, युग-युग तक जीवित रहे, यही अमर सन्देश।

दुर्योधन गान्धारी के पास आता है और आकर प्रणाम करता है। गान्धारी बोली, आयुष्मान भव। दुर्योधन बोला, मुझे लम्बी आयु नहीं चाहिये माताश्री। मुझे विजय श्री का आशीर्वाद चाहिये। गान्धारी बोली, विजय तो मेरे पास नहीं है पुत्र। दुर्योधन बोला, क्या आप अब यह जानती है माताश्री कि आप कितने पुत्रों की माता रह गई है? गान्धारी बोली, मातायें अपने पुत्रों के शव नहीं गिनती। दुर्योधन बोला, अब आप केवल दो पुत्रों की माता रह गई है। गान्धारी बोली, अब मैं जो आशीर्वाद दे रही हूं पुत्र वो आशीर्वाद ले लो और जो आशीर्वाद मैं दे नहीं सकती उस आशीर्वाद को लेने की हठ छोड़ो। हे पुत्र यदि हस्तिनापुर है तो हम सब हैं और यदि हस्तिनापुर नहीं है तो हममें से कोई भी नहीं है। इसलिये पुत्र हस्तिनापुर के विषय में सोचना सीखो और हो सके तो अब भी सन्धि को खोजने के मार्ग का प्रयत्न करो। दुर्योधन बोला, कभी नहीं, कदापि नहीं माताश्री। यदि वे मेरे भाई होने के नाते कुछ मांगते तो सम्भवत: मैं उन्हें कुछ दे भी देता परन्तु यदि वे अपना अधिकार जताना चाहते हैं तो मैं उनके अधिकार को मानने के लिये तैयार नही हूँ और यदि आप भी सन्धि चाहती है माताश्री तो जाइये और हस्तिनापुर लौट जाइये। गान्धारी बोली, नहीं पुत्र अब तो मैं युद्ध के अन्त तक यही रहूंगी। दासी ने सूचना दी महारानी की जय हो। पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिर चरण स्पर्श के लिये आने की आज्ञा चाहते है।

गान्धारी बोली, उन्हें आने से क्यों रोका? माता के पास आने के लिये पुत्रों को आज्ञा की आवश्यकता नहीं होती। जाओ उन्हे तुरन्त ले आओ। इस बात का ध्यान रखना पुत्र कि वो तुम्हारे भाई है, लाठी मारने से पानी अलग नहीं होता। दुर्योधन बोला, लाठी मारने से पानी अलग होता है माताश्री और पानी अलग हो चुका है। गान्धारी बोली, युधिष्ठिर तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता है उसे

प्रणाम करना। युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित गान्धारी के पास आता है। दुर्योधनने ने युधिष्ठिर को प्रणाम कहा और युधिष्ठिर ने उसे आयुष्मान भव कहा और आकर माता गान्धारी के चरण स्पर्श किये। गान्धारी बोली, धर्म प्रतीक भव पुत्र। सभी ने प्रणाम किया। गान्धारी ने सबको आयुष्मान भव, यशस्वी भव का आशीर्वाद दिया। युधिष्ठिर बोले, अब हम अपने ९८ भाई और पौत्र अभिमन्यु की मृत्यु का शोक प्रकट करने आये हैं माताश्री। दुर्योधन बोला, मेरे भाई दु:शासन के पुत्रों पर भी शोक प्रकट कर लीजिये ज्येष्ठ भ्राताश्री क्योंकि क्या पता फिर शोक प्रकट करने का अवसर मिले या ना मिले और ध्यान रहे कि युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। भीम बोला, जब तक मेरी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो जाये तब तक युद्ध समाप्त हो भी नहीं सकता दुर्योधन और पांचाली के खुले हुये केश तब तक युद्ध को समाप्त होने नहीं देंगे। गान्धारी बोली, प्रिय भीम। भीम बोला, क्षमा चाहता हूं ज्येष्ठ माताश्री किन्तु मैं क्या करूं। दुर्योधन और दु:शासन में जब भी कोई मेरे सामने पड़ जाता है तो मुझे वो हस्तिनापुर राज्यसभा का अश्लील दृश्य याद आ जाता है।

युधिष्ठिर बोले, अपने क्रोध को जीतने का प्रयत्न करो अनुज भीम। अर्जुन बोला, नहीं भ्राताश्री। हर युद्ध में क्रोध भी एक शक्तिशाली शस्त्र है और हममें से कोई भी कुछ भी भूलने को तैयार नहीं है। क्या यह भूलने की बात है कि मेरे पितामह मेरे बाणों की शैय्या पर लेटे हुये है? क्या यह भूलने की बात है कि दुर्योधन के कारण हमें अपने ९८ भाईयों का वध करना पडा। क्या मैं यह भूल जाऊं कि सात महारथियों ने मिलकर मेरे निहत्थे और घायल पुत्र को घेरकर मार डाला। दुर्योधन बोला, भूलने की बात तो यह भी नहीं है अनुज कि क्षत्रिय के इतिहास में तुम ऐसे पांच क्षत्रिय हो जिन्होने अपनी पांचाली पत्नी को दांवपर लगाया था। नकुल बोला, यदि ज्येष्ठ माताश्री सामने नहीं होती भ्राता दुर्योधन तो यह कहने पर मैं तुम्हारी जिह्वा खींचकर तुम्हारे गले में लपेट देता। युधिष्ठिर बोला, अपनी इस धृष्टता के लिये अपने ज्येष्ठ माताश्री और भ्राता दुर्योधन से क्षमा मांगो। नकुल बोला, ज्येष्ठ माताश्री से तो मैं कुछ भी माँग लूँगा लेकिन इनसे तो मैं कुछ भी नहीं माँगूंगा न क्षमा, न आशीर्वाद। युधिष्ठिर बोले, तो शिबिर से बाहर जाकर मेरी प्रतीक्षा करो।

गान्धारी बोली, युधिष्ठिर तुम कौन होते हो मेरे प्रिय नकुल को मेरे शिबिर से बाहर निकालनेवाले? युधिष्ठिर बोले, क्षमा चाहता हूं बडी माँ। दुर्योधन बोला, मुझे आज्ञा दीजिये माताश्री। मुझे आचार्य द्रोण के साथ बैठकर कल के लिये रणनीति तैयार करनी है। प्रणाम माताश्री। प्रणाम ज्येष्ठ भ्राताश्री। यह कहकर दुर्योधन चला गया। युधिष्ठिर बोले, अब हमें भी आज्ञा दीजिये बड़ी मां। अभी हमने माताश्री के चरण स्पर्श नहीं किये हैं और उस युद्ध की आज्ञा दीजिये जिससे हमें भरतवंश और भारतवर्ष को बचाने का बड़ा प्रयत्न किया। गान्धारी बोली, क्या विजयश्री का आशीर्वाद नहीं मांगोगे पुत्र? युधिष्ठिर बोले, जी नहीं। गान्धारी बोली, क्यों? युधिष्ठिर बोले, क्योंकि मैं आपको धर्मसंकट में नहीं डालना चाहता। प्रणाम बड़ी माँ। प्रणाम ज्येष्ठ माताश्री और यह कहकर पांचों पांडव चले गये।

कुन्ती के पास पांचों पांडव आते हैं। कुन्ती बोली, यही तो धर्म संकट है पुत्र। मैं यह जानती हूं कि रणभूमि कुरुक्षेत्र के उस पार तुम्हारा शिबिर है किन्तु भरतवंश की मर्यादा मुझे उस शिबिर में जाने की आज्ञा नहीं देती पुत्र। यदि मैं भी चली जाऊँ तो दीदी बिल्कुल अकेली पड़ जायेगी पुत्र। हे पुत्र किसी माता के आंखों के पास भी सौ पुत्रों के रोने के लिये आंसू नहीं हो सकते तो मैंने अपनी आंखें और उनके आंसूओं का सारा कोष उनको दे दिया है पुत्र। हम दोनों मां ये अपने आंसुओं के दल-दल में धंसी खड़ी है पुत्र। तुम लोग अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन करो पुत्र और मुझे अपने धर्म और कर्त्तव्य का पालन करने दो। यह न भूलो पुत्र तुम्हारी माता होने से पहिले मैं भरतवंश की कुलवधू हूं और इस नाते हस्तिनापुर से बन्धी हुई हूं मेरी मुक्ति का मार्ग हस्तिनापुर से ही निकलेगा पुत्र इसलिये मेरी चिन्ता ना करो, हस्तिनापुर के विषय में सोचो और हे युधिष्ठिर रणभूमि में मेरे

सहदेव का अधिक ध्यान रखना। युधिष्ठिर बोले, पांचाली आपके चरण स्पर्श करना चाहती है माताश्री। कुन्ती बोली, नहीं पुत्र द्रौपदी का यहां आना उचित नहीं है। उसे तो मेरा आशीर्वाद देना और कहना कि उसे युद्ध की समाप्ति के पश्चात ही मिलना होगा। हे अर्जुन क्या तुम यह बता सकते हो कि युद्ध कब समाप्त होगा? अर्जुन बोला, यह तो नहीं बता सकता माताश्री किन्तु यह अवश्य कह सकता हूँ जब तक दुर्योधन, दु:शासन, गान्धार नरेश शकुनि, सूतपुत्र कर्ण इनमें से कोई एक भी जीवित है तब तक यह युद्ध समाप्त नहीं हो सकता और अधर्म और असभ्यता के इन चारों स्तम्भों का गिरना आवश्यक है माताश्री। कुन्ती बोली, कर्ण ने क्या किया है पुत्र, वो तो दुर्योधन का ऋणी है और वो तो वही ऋण उतारने का प्रयत्न कर रहा है। अर्जुन बोला, दुर्योधन का कोई भी ऋण उतारने के लिये द्रौपदी को वेश्या कहना आवश्यक नहीं था माताश्री।

७) पन्द्रहवें दिन का युद्ध

राजा द्रुपद, महाराज विराट व आचार्य द्रोणाचार्य का वध- सत्य क्या है? असत्य क्या है? इसका निर्णय कर लेना सरल नहीं है। हम जो कुछ जैसा जानते हैं, उसे वैसा ही कह देना सत्य नहीं है। इससे बहुत अनर्थ हो सकता है। चिकित्सक जानते हैं कि रोगीको उसके रोगकी गंभीरता बतला देना कितना अहितकर होता है। ऐसे ही अनेक बार अपनी जानकारीको ज्यों का त्यों कह देना अपने अथवा और किसीके लिए बहुत हानिका कारण हो सकता है। हम जो कुछ जैसा जानते हैं, उसके विपरीत बोल देना ही मिथ्या नहीं है। यदि ऐसा करनेमें अपना निजी स्वार्थ मात्र नहीं है, किसी एक अथवा समूहका हित उद्देश्य है तो वह वाणी अतथ्य होकर भी सत्य है। जिसमें प्राणियोंका आत्यन्तिक हित हो, जिससे कही जाय उसका भी परिणाममें मंगल हो तो तत्वदर्शी उस वाणीको सत्य ही मानते हैं।

धर्म केवल देह, वाणी, मनकी क्रियामें ही निहित नहीं है। धर्म भावनामें अधिक, क्रियामें कम है। वैसे तो अर्थ, धर्म, काम ये तीनों पुरुषार्थ त्रिवर्ग कहे जाते हैं। अपवर्ग, मोक्षके पथिकके लिए तीनोंका ही मोह त्याज्य है। उसके लिए अर्थ और कामका राग जितना बाधक है, धर्मका राग उससे कम बाधक नहीं है। इन तीनोंका राग त्यागकर ही श्रीकृष्णके चरणोंमें अनुराग होता है।

महाभारत युद्धके उस चतुर्दश दिनके बीत जानेपर रात्रि-युद्धमें दोनों दलके सैनिक बहुत थक गये थे। अर्जुनने युद्ध-विरामकी घोषणा करके सबको वहीं विश्राम करनेको कहा तो किसीने भी विरोध नहीं किया। कोई मुखसे भले न कहे, प्रतिपक्षके सैनिकोंके हृदयसे अर्जुनके लिए आशीर्वाद ही निकला। प्रथम दिनके प्रभावसे भी पूर्व जो युद्धमें आ गये थे, वे पूरे दिन और आधी रात तक युद्धका कठोर श्रम करते-करते अत्यन्त क्लान्त हो गये थे। बहुत आहत हो गये थे। सब वहीं रण-भूमिमें ही जैसे भी बना, सो गये। वह दो घड़ीका विश्राम भी बहुत सुखद लगा।

अभी सवेरा होना था। दोनों सेनाओं के थके हुए, श्रान्त सैनिक कुरुक्षेत्र के अलग-अलग सरोवरों में स्नान करने के लिए उतरे। वे अपने नित्यकर्मों से निवृत्त हो रहे थे। उस समय सात्यकि ने कृष्ण की आज्ञा के अनुसार युधिष्ठिर को उनके आगे उपस्थित किया। पन्द्रहवें दिन की युद्धनीति निश्चित करने के लिए बैठक बुलाने का भी अब अवसर नहीं था।

कृष्ण ने युधिष्ठिर को कर्ण से सावधान रहने को कहा। शर-शैया पर पड़े पितामह से एक बार मिल आने का निर्देश दिया। उन्होंने युधिष्ठिर को भिन्न-भिन्न सेना-दलों के लिए कल की सैनिकी गतिविधियों के बारे में सूचना दी। सात्यकि समझ नहीं पा रहा था कि यह सब कहने के लिए उन्होंने अकेले युधिष्ठिर को ही क्यों बुलाया है। सेनापति होते हुए भी धृष्टद्युम्न को उन्होंने क्यों नहीं बुलाया है। अन्तत: युधिष्ठिर अपने शिबिर में जाने के लिए निकला। तब कृष्ण ने उसके निकट जाकर, उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, हे युधिष्ठिर, जो मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ उसे भलीभाँति ध्यान में

रखो। कौरव-सेना में मालवराज इन्द्रवर्मा के गजदल में अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ कुंजर-गजराज है। कल भीम को उस कुंजर को मार डालने का आदेश देना है और रणभूमि में कोई भी इस विषय में तुमसे पूछे तो इतना ही कहना है- अश्वत्थामा हतो-नरो वा कुंजरो वा।

कुछ भी समझ में न आने से सात्यकि सम्भ्रमित हुआ था। युधिष्ठिर भी हड़बड़ाया-सा दिख रहा था। जैसा तुम कहो, वासुदेव। कहकर वह स्नान करने के लिए ब्रह्म सरोवर की ओर चला गया।

इसके बाद कौरव-सेना फिर दो भागोंमें विभक्त हो गयी और द्रोणाचार्यने दुर्योधनको साथ लेकर सोमक, पाण्डव तथा पाञ्चाल योद्धाओंपर आक्रमण किया। कौरवसेनाको दो भागोंमें विभक्त देखकर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- धनञ्जय। शत्रुओंको बायीं ओर करके आचार्य द्रोणको दाहिने रक्खो। अर्जुनने श्रीकृष्णकी आज्ञा स्वीकार करके वैसा ही किया। कृष्णका अभिप्राय भीम समझ गये और बोले अर्जुन। अर्जुन। मेरी बात सुनो। क्षत्रिय-माता जिस कामके लिये पुत्रको जन्म देती है, उसे कर दिखानेका यह अवसर आ गया है। इसलिये अब पराक्रम करके सत्य, लक्ष्मी, धर्म और यशका उपार्जन करो। इस शत्रुसेनाका संहार कर डालो।

इस समय द्रोणाचार्य संग्राममें उत्तर दिशाकी ओर जाकर खड़े हुए। उन्हें देखते ही पाण्डव-सेना थर्रा उठी। कितनोंपर आतंक छा गया, कुछ भाग चले और कुछ लोग मन उदास किये खड़े रहे। कितने हतोत्साह हो गये। कितने ही आश्चर्यचकित होकर देखने लगे। उनमें जो दिलेर थे, वे क्रोध और अमर्षमें भर गये। कुछ ओजस्वी वीर प्राणोंकी परवा न करके द्रोणाचार्यपर टूट पड़े। पाञ्चाल राजाओंपर द्रोणाचार्यके सायकोंकी अधिक मार पड़ी। वे अत्यन्त वेदना सहकर भी युद्धमें डटे हुए थे।

संजय बोला, मैं आपके पौत्र भीम पुत्र घटोत्कच की मृत्यु पर शोक प्रकट करता हूं महाराज। धृतराष्ट्र बोले, शोक तो ठीक है संजय। किन्तु दुर्योधन ने यह बड़ी ही मूर्खता का प्रदर्शन किया है। देवेन्द्र की दी हुई अचूक शक्ति इसने घटोत्कच पर चला दी। उसका प्रयोग तो वासुदेव पर या अर्जुन वध के लिये होना चाहिये था। यदि इन दोनों में से कोई एक भी वीरगति को प्राप्त हो जाये तो फिर मेरे दुर्योधन की विजय में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। संजय बोला, हे राजेन्द्र राजकुमार दुर्योधन वहां रणभूमि में है और आप यहां। उन्होंने इसे ही उचित जाना होगा कि घटोत्कच को सामने से हटा दिया जाये क्योंकि स्वयं आचार्य द्रोण उसके आगे विवश दिखाई दे रहे थे और उनकी विवशता सेना के उत्साह के लिए भारी पड़ रही थी। इसलिये रणनीति की दृष्टि से तो राजकुमार ने ठीक ही निर्णय लिया था और मैं देख रहा हूं महाराज घटोत्कच के सामने से हटते ही आचार्य बाढ़ पर आई हुई नदी की भांति लड़ रहे है जो किसी के रोके नहीं रूक रही। पांडव सेना को भागने का मार्ग नहीं मिल रहा। सेना कि यह दशा देख विराट नरेश आचार्य की ओर जा रहे है।

विराट और द्रोण का परस्पर घमासान घोर युद्ध हो रहा है। आचार्य ने शक्ति का आहवान किया। उसी समय इन्द्र प्रकट हुए। इन्द्र बोले, हे आचार्य दिव्यास्त्रों का प्रयोग आपको शोभा नहीं देता। द्रोण बोले, क्यों? क्यों इसलिये कि मैं अर्जुन की सेना के विरुद्ध में युद्ध कर रहा हूँ। मैं इन देवताओं को भलीभांति जानता हूँ। हे देवेन्द्र क्या मैं यह नहीं जानता हूं कि अंगराज कर्ण से सूर्यदेव का दिया हुआ कवच कुंडल मांगनेवाले आप ही थे। इन्द्र बोले, हे आचार्य मैं यहाँ सब देवताओं का प्रतिनिधि बनकर आया हूं मेरी और सबकी ओर से प्रार्थना है कि आप दिव्यास्त्रों का प्रयोग न कीजिये। यही सब ऋषियों की भी इच्छा है। दिव्यास्त्र केवल धर्म की रक्षा के लिये होते हैं। द्रोण बोले, आपने यह कैसे जान लिया कि मैं धर्म के मार्ग पर नहीं हूं। हे देवेन्द्र मैं अपने धर्म के मार्ग पर हूं और जिनसे युद्ध कर रहा हूं वे अपने धर्म के मार्ग पर है। ब्रह्मा बोले, ठहरो भारद्वाज पुत्र। द्रोण प्रणाम कर बोला परम पिता ब्रह्मा को भरद्वाज पुत्र द्रोण का प्रणाम स्वीकार हो। मैं इस

समय रण की एक नदी के बीच में हूं फिर भी आप आदेश दीजिये की मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं। ब्रह्मा बोले, आदेश कैसा भरद्वाज पुत्र? नारायण का नाम लो और दिव्यास्त्रों का प्रयोग ना करो इससे ब्राह्मण मर्यादा का उल्लंघन होगा। तुम्हारा मार्ग विद्यादान का मार्ग है। तुम अपने मार्ग को छोड़कर क्षत्रिय की भांति इस रक्त की नदी में स्नान करने कहां आ गये। द्रोण बोले, मेरे गुरु परशुराम भी ब्राह्मण हैं परम पिता और वे इस रक्त की नदी में २१ बार स्नान कर चुके है। जिसके हाथ में वेद है वही ब्राह्मण कहलाता है किन्तु जब वही व्यक्ति पोथी रखकर शस्त्र उठा ले तो वह क्षत्रिय हो जाता है। कौरव सेना का प्रधान सेनापति होने के नाते इस समय कौरव सेना और हस्तिनापुर शासन की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। मुझे अपने कर्त्तव्य पालन से ना रोकिये। ब्रह्मा बोले, हे आचार्य कहना मेरा धर्म है। यदि तुम ब्राह्मण मर्यादा का उल्लंघन करने पर तुल ही गये तो मैं तुम्हे रोक नहीं सकता तुम चाहे किसी भी शस्त्र का प्रयोग करो किन्तु तुम यह भली भांति जानते हो धृष्टद्युम्न ने क्यों जन्म लिया है। द्रोण बोले, परम पिता ब्रह्मा आपकी इच्छा की सीमा रेखा तो कोई पार नहीं कर सकता। मैंने तो द्रुपद से यह नहीं कहा था कि आश्रम से जाते-जाते मुझे कोई वचन देता जाये। मेरी पत्नी तो मेरे पुत्र अश्वत्थामा के होठोंपर पीसे हुये चावल का लेप लगा दिया करती थी ताकि वो अपने आयु के बालकों से जाकर कह सके कि वो दूध पीकर आया है। द्रुपद ने जो वचन मुझे दिया था उसका पालन स्वयं उसने तो नहीं किया था किन्तु उसके वचन का पालन मैंने अवश्य किया। मैंने उसे आधा राज्य देकर उसे बराबर कर दिया किन्तु मेरा वो कायर मित्र द्रुपद फिर भी अपने अहंकार के आकाश से नीचे नहीं उतरा। जिस अर्जुन ने उसे युद्ध में परास्त किया उसके साथ तो उसने अपनी पुत्री का विवाह कर दिया किन्तु वो यह भूल गया कि यह ब्राह्मण द्रोण उसका मित्र है। हे परम पिता यदि फिर भी अपराध मेरा ही सिद्ध होता है तो यही सही। उसने जब इन्द्रप्रस्थ में अपने पुत्र के लिये मुझसे आशीर्वाद मांगा था तो उसे भी मैंने इन्कार नहीं किया। क्या मैं यह नहीं जानता था कि उसके आशीर्वाद मांगने में क्या रहस्य है? मैं जानता था फिर भी मेरा मित्र अपने पुत्र के लिये मुझसे आशीर्वाद मांग रहा था। हे परमपिता मैं धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में उस आशीर्वाद से घबराकर महाराज धृतराष्ट्र का त्याग नहीं कर सकता। मैं उस राजपरिवार का ऋणी हूं। कल तक जिसकी गौशाला में एक गाय नहीं थी, आज उसकी गौशाला में सहस्त्रों गाये हैं। इसलिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि अन्त में विजय पांडवों की ही होनेवाली है। उनकी ही विजय होनी चाहिये किन्तु मैं इस हारनेवाली सेना का प्रधान सेनापति हूं और अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूं। ब्रह्मा को प्रणाम किया। ब्रह्मा अन्तर्ध्यान हो गये।

पन्द्रहवें दिन गुरु द्रोण ने अपनी सेना को श्येन पक्षी के आकार में खड़ा किया। इंगुदी तैल समाप्त हुए पलीतों से कड़वा-सा धुँआ निकल रहा था। कृष्ण और गुरु द्रोण के शंख फूँकते ही दोनों सेनाएँ आरूढ़... आक्रमण रण-गर्जना करती हुई आपस में भिड़ गयीं। रणभूमि पर अब न पाण्डवों का वर्चस्व था, न कौरवों का। वहाँ केवल निर्मम, विकराल मृत्यु का ही राज था।

इतनेहीमें राजा विराट और द्रुपदने द्रोणपर चढ़ाई की। द्रुपदके तीन पौत्रों और चेदिदेशीय योद्धाओंने भी उनका साथ दिया। यह देख द्रोणाचार्यने बाणोंसे द्रुपदके तीनों पौत्रोंके प्राण ले लिये। इसके बाद उन्होंने चेदि, केकय, सृञ्जय तथा मत्स्यदेशीय महारथियोंको भी परास्त किया। तब राजा द्रुपद और विराट क्रोधमें भरकर द्रोणपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे। द्रोणने उनकी बाणवर्षा रोक दी और अपने सायकोंसे उन दोनोंको आच्छादित कर दिया। अब उन दोनोंके क्रोधकी सीमा न रही, वे भी द्रोणको बाणोंसे बींधने लगे। यह देख द्रोणने क्रोध और अमर्षमें भरकर दो अत्यन्त तीखे भल्लोंसे उन दोनोंके धनुष काट दिये। धनुष कट जानेपर विराटने तोमर चलाये और द्रुपदने भयंकर शक्तिका प्रहार किया। द्रोणने भी भल्लोंसे उन दसों तोमरोंको काटकर सायकोंसे द्रुपदकी शक्ति भी काट गिरायी। फिर दो भालोंसे द्रुपद का काम तमाम कर दिया।

इतने में द्रुपद अपने सारथी से बोला रथ विराट नरेश की ओर ले चलो सारथी। मैं आज विराट युद्ध पर आचार्य तुम्हे

जीवित नहीं छोड़ूंगा। ऐसे वीर भारतवर्ष में ही नहीं हर युग के भाग्य में ही नहीं होते। तुमने वीरता के इस सूर्य का वध किया है द्रोण। द्रोण बोले, यदि तुम मेरे रथ के सामने से अपना रथ हटाकर नहीं ले गये मित्र तो मुझे वीरता के एक और सूर्य के अस्त का कारण बनना पडेगा। मित्र यह हमारी अन्तिम भेंट है। आओ एक-दूसरे को प्रणाम कर लें। द्रुपद बोले, तुम तो प्रणाम के योग्य भी नहीं हो द्रोण। द्रुपद और द्रोण में घमासान युद्ध होने लगा। द्रुपद ने द्रोण पर गदा फेंकी। दोनों में खड्ग युद्ध होने लगा। तलवारे खनकने लगी। द्रुपद की छाती में द्रोण ने तलवार भोंक दी और द्रुपद का वध कर दिया।

युद्ध आरम्भ हो गया। विराट बोले, हे ब्राह्मण तुम यहां क्या कर रहे हो? जाओ अपनी पाठशाला में जाओ और राजपुत्रों को शिक्षा दो। यही तुम्हारा धर्म है। द्रोण बोले, हे विराट नरेश वो कन्धेपर तूणीर और हाथ में धनुष सज्जा के लिये नहीं है, युद्ध करो। विराट बोले, तो अपने सारथी से कहो कि वो अभी से यह सोचना प्रारम्भ कर दे कि किस तरफ से भागना सहज होगा? वो तुम्हे और तुम्हारे रथ को किस ओर से ले जाने का यत्न करेगा। मेरे बाण तुम्हारे भागने का वो मार्ग भी बन्द कर देंगे। हे ब्राह्मण चला अपना ब्रह्मास्त्र। द्रोण बोले, यह ब्रह्मास्त्र तुम्हारी छाती खाने योग्य नहीं है। द्रोण ने ब्रह्मास्त्र लौटा दिया और जोर से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। विराट का धनुष तोडकर विराट की छाती में बाण मार गला घोंट दिया और विराट का वध कर दिया।

इस प्रकार विराट, द्रुपद, केकय, चेदि, मत्स्य, पाञ्चाल और तीनों द्रुपद-पौत्रोंके मारे जानेपर द्रोणका पराक्रम देख धृष्टद्युम्नको बड़ा क्रोध हुआ, साथ ही दुःख भी। उसने महारथियोंके बीचमें यह शपथ दिलायी कि आज जो द्रोणको जीवित छोड़कर लौटे या द्रोणसे अपमानित होकर बदला न ले, वह यज्ञ-यागादि करने तथा कुआँ, बावली बनवाने आदिके पुण्यको खो बैठें; उसका क्षत्रियत्व और ब्रह्मतेज नष्ट हो जाय। सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके बीचमें ऐसी घोषणा करके धृष्टद्युम्न अपनी सेनाके साथ द्रोणपर बाणवर्षा करने लगे तथा दूसरी ओर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि प्रधान वीर उनकी रक्षामें खड़े हो गये। पाञ्चालोंने अपने सभी महारथियोंके साथ द्रोणको दबानेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सके।

द्रोणाचार्य और अर्जुनको छोड़कर बाकी समस्त सेना विक्षिप्त, व्याकुल, भयभीत एवं आतुर हो रही थी। द्रोण और अर्जुन ही अपने-अपने पक्षके रक्षक और घबराये हुए लोगोंके आधार थे। शत्रुपक्षके लोग उन्हीं दोनोंके सामने आकर यमलोककी राह लेते थे। कौरव और पाञ्चालोंकी सेनाएँ अत्यन्त उद्विग्न हो गयी थीं। एक तो सारी सेना गुत्थमगुत्थ हो रही थी, दूसरे धूल उड़-उड़कर सबको ढक देती थी; इसलिये कौरव उस महासंहारमें कर्ण, द्रोण, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, नकुल-सहदेव, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, दुःशासन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, कृप, शल्य, कृतवर्मा तथा और किसी वीरको नहीं देख पाते थे। पृथ्वी, आकाश या अपना शरीरतक नहीं सूझता था ऐसा जान पड़ता था, फिर रात हो गयी। कौन कौरव हैं और कौन पाण्डव या पाञ्चाल, इसकी पहचान नहीं हो पाती थी।

इसी प्रकार महारथी द्रोण तथा अर्जुन भी विचित्र प्रकारसे युद्ध करने लगे। वे सेनाके बीच विचित्र गतियोंसे रथका संचालन करते हुए एक दूसरेको दायीं ओर लानेका प्रयत्न कर रहे थे। उस समय सभी योद्धा उन दोनोंका पराक्रम देखकर चकित हो रहे थे। अर्जुनको जीतनेके लिये आचार्य द्रोण जिस-जिस उपायको काममें लाते थे, अर्जुन हँसते हुए उस-उसका तुरंत प्रतीकार कर देते थे। तब द्रोणाचार्यने क्रमशः ऐन्द्र, पाशुपत, त्वाष्ट्र, वायव्य और वारुण अस्त्रको प्रकट किया; किंतु अर्जुनने द्रोणके धनुषसे छूटते ही उन अस्त्रोंको दिव्यास्त्रद्वारा शान्त कर दिया। यह देख द्रोणने मन-ही-मन अर्जुनकी प्रशंसा की और उनके-जैसे शिष्यको पाकर अपनेको सभी शास्त्रवेत्ताओंसे श्रेष्ठ समझा। उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिये आकाशमें हजारों देवता, गन्धर्व, ऋषि और सिद्धोंके समूह एकत्रित थे।

युधिष्ठिर बोले, आपको सूचना मिल गई होगी कि प्रातः से अब तक में आचार्य द्रोण के हाथों हमारे पूज्य महाराज द्रुपद और महाराज विराट दोनों ही महारथी वीरगति को प्राप्त हुए हैं। आचार्य ने महावीर धृष्टद्युम्न के पुत्रों के भी प्राण हर लिए हैं।

और उसके पश्चात् भी आचार्य प्रलय की अग्नि के समान धधक रहे हैं। हमारे सैनिक उनके ताप को सहन नहीं कर पा रहे। ऐसे में हम विजय की क्या सोचें, हमारे प्राण भी बच जाएँ तो बहुत है।

तदनन्तर द्रोणाचार्यने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया, वह अर्जुन तथा अन्य प्राणियोंको संताप देने लगा। उस अस्त्रके प्रकट होते ही पर्वत, वन और वृक्षोंसहित धरती डोलने लगी। समुद्रमें तूफान आ गया। दोनों ओरकी सेनाएँ भयभीत हो गयीं। परंतु अर्जुन इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने ब्रह्मास्त्रसे ही उस अस्त्रका नाश कर दिया। फिर सारे उपद्रव शान्त हो गये।

संजय कहते हैं- महाराज। उस समय दु:शासन धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगा। उसने धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे खूब पीडित किया। तब वह भी क्रोधमें भर गया और आपके पुत्रके घोड़ोंपर बाणवर्षा करने लगा। एक ही क्षणमें उसके बाणोंकी इतनी राशि जमा हो गयी कि दु:शासनका रथ उससे ढककर ध्वजा और सारथीसहित अदृश्य हो गया। धृष्टद्युम्नके सायकोंसे दु:शासनको बड़ी पीड़ा होने लगी। इसलिये वह अब उसके सामने ठहर न सका- पीठ दिखाकर भाग गया। इस प्रकार दु:शासनको विमुख करके धृष्टद्युम्न हजारों बाणोंकी वृष्टि करता हुआ द्रोणाचार्यके पास जा पहुँचा।

इतनेहीमें दुर्योधन तथा सात्यकिमें मुठभेड़ हुई। वे दोनों निर्भीक होकर लड़ने लगे। साथ ही बचपनकी बीती हुई बातोंको याद कर परस्पर प्रेमपूर्वक देखते हुए बारंबार हँसने लगते थे। राजा दुर्योधन अपने व्यवहारकी निन्दा करता हुआ प्रिय सखा सात्यकिसे बोला- सखे। क्रोध, लोभ, मोह, अमर्ष और क्षत्रिय-आचारको धिक्कार है, जिसके कारण आज तुम मुझपर और मैं तुमपर प्रहार कर रहा हूँ। तुम मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थे और मुझपर भी तुम्हारा ऐसा ही प्रेम था। पर आज इस रणभूमिमें हम सब कुछ भूल गये हैं। दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सात्यकिने कहा- राजन्। क्षत्रियोंका व्यवहार ही ऐसा है। वे अपने गुरुसे भी लड़ते हैं। यदि तुम मुझे प्रिय मानते हो तो जल्दी मार डालो, विलम्ब न करो। तुम्हारे कारण मैं पुण्यवानोंके लोकमें जाऊँगा। अब मैं जीवित रहकर अपने मित्रोंपर पड़ी हुई आपत्ति नहीं देखना चाहता। इस प्रकार स्पष्ट उत्तर दे सात्यकि अपने प्राणोंकी परवा न करके तुरंत दुर्योधनका सामना करने आ गया।

दुर्योधन वेदनासे कराहता हुआ दूसरे रथपर जा बैठा। थोड़ी देर बाद जब व्यथा कुछ कम हुई तो सात्यकिके रथपर बाण बरसाता हुआ वह पुन: आगे बढ़ा। इसी तरह सात्यकि भी दुर्योधनके रथपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। फिर दोनोंमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। वहाँ सात्यकिको ही प्रबल होते देख कर्ण आपके पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही आ पहुँचा। महाबली भीमसे यह नहीं सहा गया। वे भी बाणोंकी वृष्टि करते हुए तुरंत वहाँ आ धमके। कर्णने हँसते-हँसते बाण मारकर भीमका धनुष तथा बाण काट दिये और उनके सारथीको भी मार डाला। तब भीमके क्रोधकी सीमा न रही; उन्होंने गदा लेकर शत्रुके धनुष, ध्वजा, सारथी और रथके पहियेका नाश कर डाला। कर्ण इस बातको नहीं सह सका, वह तरह-तरहके अस्त्रों और बाणोंका प्रयोग करके भीमके साथ लड़ने लगा। इसी तरह भीम भी कुपित होकर कर्णसे युद्ध करने लगे। दूसरी ओर द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालोंको पीड़ा देने लगे। यह आचार्यके सेनापतित्वका पाँचवाँ दिन था। वे क्रोधमें भरे हुए थे और पाञ्चाल वीरोंका महान् संहार कर रहे थे। शत्रु भी बड़े धैर्यवान थे। वे उनसे युद्ध करते हुए तनिक भी भयभीत नहीं होते थे। पाञ्चाल वीरोंको मरते और द्रोणाचार्यको प्रबल होते देख पाण्डवोंको बड़ा भय हुआ। उन्होंने विजयकी आशा छोड़ दी। देख श्रीकृष्ण कहने लगे- पाण्डवों। द्रोणाचार्य धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इनके हाथमें धनुष रहनेपर इन्द्र आदि देवता भी इन्हें नहीं जीत सकते। जब ये हथियार डाल दें, तभी कोई मनुष्य इनका वध कर सकता है। मैं समझता हूँ, अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये युद्ध नहीं करेंगे; अत: कोई जाकर इन्हें अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार सुनावे।

कृष्ण बोले, धर्मराज ठीक कह रहे हैं। विजय की इच्छा हो तो पांडवों को भूलना होगा कि आचार्य द्रोण उनके गुरु हैं। युद्ध में विजय के लिए विरोधी पक्ष से लड़नेवाले गुरु का भी वध करना पड़ता है।

युधिष्ठिर ने कहा, आचार्य को सिवाय धनंजय के और कौन रोक सकता है? किंतु धनंजय मन लगाकर उनसे युद्ध करेगा नहीं। अब बताइए, मैं किसके पास जाऊँ? कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन अब भी सर्वथा उदासीन-सा बैठा था, जैसे इस चर्चा से उसका कोई संबंध ही न हो। कृष्ण कुछ देर मौन रहे और फिर बोले, धनंजय आचार्य का वध नहीं करना चाहता, न करे। उससे आचार्य अमर नहीं हो जाएँगे। महाकाल को तो अपना कार्य करना ही है। बस ऐसे में हमें युद्ध के स्थान पर युक्ति का आश्रय लेना होगा। शस्त्रों से भी बलवान होती है नीति।

किंतु हमें किसी का मोह भी नहीं पालना चाहिए। हमें निष्काम भाव से अपना कर्त्तव्य करना चाहिए। हम युद्ध में खड़े हैं तो हमारे सामने केवल दो ही पक्ष होने चाहिए, अपना और शत्रु का। जो हमारे पक्ष में लड़ रहा है, वह इस समय रक्षणीय है और जो हमारे विरुद्ध युद्ध कर रहा है, वह वध्य है। इससे आगे कुछ भी सोचना अनुचित है। अत: युद्ध में उतरना और जय की इच्छा मन में न रखना अथवा जय के लिए पूर्ण प्रयत्न न करना, पाप है। जीत के लिए जो भी युक्ति आवश्यक होगी, हम वह करेंगे। यह युद्धशास्त्र का आदेश हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा, कैसी युक्ति केशव ? कृष्ण बोले, युद्ध केवल कौशल और शौर्य से ही तो नहीं जीते जाते धर्मराज। उनके लिए युक्ति भी आवश्यक होती है। दुर्योधन ने युक्ति से शल्य का हरण कर लिया और महाराज शल्य उनके हो गए। आप द्रोणाचार्य के आत्मबल का हरण कर सकते हैं। एक बार उनका आत्मबल क्षीण कर दिया जाए तो वे स्वयं ही अपने शस्त्र त्याग देंगे। कृष्ण बोले, जहाँ तक मैं समझता हूँ, आचार्य की आत्मा एक तपस्वी की आत्मा है। उन्हें अपने लिए कदाचित कुछ नहीं चाहिए। किंतु उनके मन में बैठा पिता सांसारिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वाकांक्षी है। उन्होंने जीवन में जब भी किसी भी प्रकार की भौतिक संपदा चाही है, अपने एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा के लिए ही उसकी इच्छा की है। अब, यदि अश्वत्थामा ही न रहे? भीम ने गंभीर स्वर में कहा, मैं कृष्ण से सहमत हूँ। द्रोण के ही नहीं कृपाचार्य के प्राण भी अश्वत्थामा में ही बसते हैं। अश्वत्थामा का वध हो जाए तो आचार्य के लिए युद्ध का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाएगा। कृष्ण बोले, यह निश्चित है धर्मराज। अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार पाकर द्रोण युद्ध नहीं कर पाएँगे। वे कितने भी दुर्द्धर्ष योद्धा क्यों न हों, उनका मन ऐसा नहीं है कि वे पुत्र के वध का समाचार सुनकर स्थिर रह सकें। आप अश्वत्थामा के वध का प्रबंध कीजिए। इस कार्य में विलंब न हो, इसी का प्रबंध हमें करना है। शिखंडी अश्वत्थामा को मारने को प्रस्तुत है। शिखंडी उसका वध कर सके तो बहुत अच्छा, अन्यथा अश्वत्थामा को पूर्णत: अवरोध में रखने का कार्य शिखंडी करें। पूर्ण अवरोध का अर्थ जानते हैं न आप? कृष्ण ने रूककर शिखंडी की ओर देखा, अश्वत्थामा किसी भी प्रकार उस अवरोध से निकल न सके। उसका कोई समाचार न आचार्य को मिल सके, न दुर्योधन को। कोई न जान पाए कि वह कहाँ है और किस स्थिति में है। कर पाएँगे शिखंडी? तब महाराज। आप आचार्य तक यह सूचना पहुँचा दें कि अश्वत्थामा मारा गया है। अश्वत्थामा यदि शिखंडी के अवरोध में होगा तो आचार्य यह जान तो पाएँगे नहीं कि अश्वत्थामा जीवित है अथवा मारा जा चुका। कर पाएँगे?

भीम ने अर्जुन से कहा, तुम चुप रहो। कृष्ण से अधिक नहीं जानते हो, धर्म को तुम। हम धर्म पर ही चलते रहें और वे हमारे योद्धाओं का वध करते रहें। आचार्य ने कितनी बार लघु ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया है और किन लोगों पर? उन पर, जिन्हें दिव्यास्त्रों का तनिक भी ज्ञान नहीं था। यह धर्म है? वे धर्मसंगत युद्ध कर रहे हैं? युद्ध के किसी भी नियम का पालन किया है कौरवों ने? जब हम कुछ करने की सोचते हैं तो तुम हमारे हाथ बाँध देना चाहते हो। तुम अपने गुरु के मोह में यह भी भूल जाते हो कि इन्होंने ही अभिमन्यु का वध करवाया है और वह भी अधर्म से। तुम युद्ध कर रहे हो और शत्रु का वध नहीं कर रहे। यह धर्म है? तुम पितामह का वध नहीं करना चाहते थे। परिणामत: हमारे सहस्त्रों योद्धा कटवा दिए। अब तुम आचार्य का वध नहीं करना चाहते और अपने मित्रों का वध करवा रहे हो। प्रकारांतर से आचार्य की सहायता कर रहे हो तुम। अप्रत्यक्ष सहायता।

कृष्ण बोले, धर्मराज। यदि आप इस असत्य वचन को स्वीकृति नहीं देंगे तो हम सबके प्राण जाएँगे। हमारे प्राणों की रक्षा के लिए तो आप अनृत वचन बोल ही सकते हैं। उसमें कोई दोष नहीं है। किसी के प्राणों की रक्षा के लिए अनृत वचन बोलना पाप नहीं है; और यहाँ तो हम सबके प्राणों का प्रश्न है।

महाराज। अर्जुनको यह बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी, किंतु और सब लोगोंको जँच गयी। केवल राजा युधिष्ठिरने बड़ी कठिनाईसे यह बात स्वीकार की। मालवाके राजा इन्द्रवर्माके पास एक हाथी था, जिसका नाम था अश्वत्थामा। अपनी ही सेनाके उस हाथीको भीमने गदासे मार डाला और लजाते-लजाते द्रोणाचार्यके सामने जाकर जोर-जोरसे हल्ला करने लगे- अश्वत्थामा मारा गया। मनमें उस हाथीका खयाल करके भीमने यह मिथ्या बात उड़ा दी।

भीम ने कहा, हाँ। मालवा के राजा इंद्र वर्मा के पास एक भयंकर गज है, उसका नाम अश्वत्थामा है। मैं उसी का वध कर द्रोण को सूचना दूँगा कि मैंने अश्वत्थामा को मार दिया है।

धृतराष्ट्र बोले, हे संजय द्रोणाचार्य ने मेरी कृपाओं का ऋण आज चुका दिया है। एक ही दिन में विराट नरेश और महाराज द्रुपद का वध मेरे दुर्योधन के लिये अति शुभ है। अब यदि केवल एक वासुदेव को दुर्योधन के मार्ग से हटा दे तो मेरे पुत्र का भविष्य सुरक्षित हो जाये। अपने ९८ पुत्रों की मृत्यु पर रोनेवाला यह वृद्ध पिता आज प्रसन्न है संजय। देखो अब वे किसका वध कर रहे हैं। संजय बोला, इस समय तो राजकुमार दुर्योधन उनसे कुछ कह रहे है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, वो अवश्य उनकी प्रशंसा कर रहा होगा। सुनकर मुझे उनका एक-एक शब्द बताओ।

युद्धक्षेत्र में दुर्योधन बोला, गुरुदेव मैं विराट नरेश और द्रुपद के वध से प्रसन्न नहीं, मुझे पांडवों का शव चाहिये। द्रोण बोले, उनका वध सहज नहीं है दुर्योधन। दुर्योधन बोले, यदि उनका वध सहज होता तो मैं आपको कहता ही क्यों गुरुदेव? आपके पास तो दिव्यास्त्र है। आपसे तो देवलोक वाले भी युद्ध नहीं कर सकते और आप अपने ही सिखाये हुये पांच पांडवों का कुछ नहीं कर सकते। यदि इनका वध आपसे जागते हुये सम्भव नहीं तो इन्हे सोते हुये मार डालिये। द्रोण बोले, मैं कपट संग्राम नहीं कर सकता हूं दुर्योधन। जाओ और मुझे युद्ध करने दो। दुर्योधन बोला, पितामह की ही भांति युद्ध करना तो आप चाहते ही नहीं गुरुदेव। यह एक बात ध्यान रहे कि युद्ध केवल विजय के लिये ही किया जाता है और आप तो मेरी विजय के लिये युद्ध ही नहीं कर रहे है। मेरे ९८ भाई वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। वे पांच के पांच पांडव अभी तक जीवित हैं। द्रोण बोले, मैं योद्धा हूं दुर्योधन यमराज नहीं हूं।

इतना अथक प्रयास करनेपर भी जब आचार्य द्रोणके समीप दुर्योधन उपालम्भ देने पहुँचा तो उसकी कठोर बातें सुनकर आचार्य चिढ़ गये। उन्होंने खरी खरी सुना दी- तुम पापी हो, इसलिए तुम्हें सर्वत्र पाप ही दीखता है। पाण्डव पुण्यात्मा है, धर्मपरायण हैं, शीलवान हैं इसलिए कोई सत्पुरुष उनसे स्नेह न करे, यह सम्भव नहीं है। यह सत्य है कि मेरा उनपर स्नेह है, किन्तु युद्धमें स्नेह नहीं, कर्त्तव्य प्रधान होता है। युद्धमें भी पाण्डव मेरा सम्मान करते हैं और तुम्हारे लिए मैं प्राण देनेको भी प्रस्तुत हूँ तो भी तुम सन्देह करते हो, यह तुम्हारे पापिष्ठ अन्त:करणका द्योतक है।

तुमने पासोंके साथ छलपूर्ण क्रीड़ा करायी तो कुछ सोचा था? भरी सभामें पांचाल राजकुमारीका अपमान किया, उसे दुर्वचन कहे तो उन पापोंका परिणाम तुम नहीं भोगोगे, कोई दूसरा भोगेगा? हम सब भी तुम्हारा समर्थन करके मारे जायँगे, यह जानता हूँ। दुर्योधन। तुमने बार-बार कहा है कि तुम, कर्ण और शकुनि केवल तीन ही पाण्डवोंको पराजित कर सकते हो। तुम्हें ऐसा करनेसे किसने रोका है? तुम तीनों मिलकर पाण्डवोंसे युद्ध करो। मैंने प्रतिज्ञा की है कि परपक्षको पराजित करके ही कवच उतारूँगा अन्यथा समरभूमिमें सदाको सो जाऊँगा। अब मुझसे और कोई आशा मत करो। मेरे पास फिर उपालम्भ देने मत आना। कर्ण, शकुनि तथा और जो भी तुम्हें समर्थ सूझें, उन्हें लेकर अपना पराक्रम प्रकट करो।

चन्द्रोदय होनेपर पुन: युद्ध चल पड़ा। पृथक् मोर्चा खोलनेमें कौरव ही कठिनाईमें पड़े। द्रोणाचार्यके सम्मुख धृष्टद्युम्न डटा था पांचाल वीरों तथा सोमकोंको लेकर। स्वयं युधिष्ठिर, अर्जुन और भीम कर्णादिसे युद्ध करने पहुँच गये ओर चाहे जब द्रोणके समीप पहुँचने, अपने पक्षकी सहायता करनेको स्वतन्त्र हो गये। दुर्योधनके दोनों मोर्चे दूर-दूर हो गये। उनमें परस्पर सम्पर्क बनाये रखना संख्या बल कम होनेसे सम्भव नहीं रह गया।

द्रोणाचार्य आज अत्यन्त क्रुद्ध थे। वे बहुत आहत थे, थके थे और युद्धमें कवच न उतारनेका प्रण कर चुके थे। इससे वे सब मर्यादाएं भूल गये थे। सामान्य सैनिकोंके संहारके लिए भी दिव्यास्त्र ही नहीं ब्रह्मास्त्र तकका प्रयोग करने लगे थे। उनका वेग रोकनेको सभी पाण्डवोंको वहीं आना पड़ा। आज आचार्यने युधिष्ठिर तथा अर्जुनके विरुद्ध भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। ये दोनों अस्त्रज्ञ थे, ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्रको इन्होंने शान्त कर दिया, किन्तु द्रोणाचार्यने महाराज द्रुपदको मार दिया। पांचाल वीरोंपर अन्धाधुन्ध दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते चले गये।

संजय कहते हैं- महाराज। राजा द्रुपदने बहुत बड़ा यज्ञ करके प्रज्वलित अग्निसे जिसको द्रोणका नाश करनेके लिये प्राप्त किया था उस धृष्टद्युम्नने जब देखा कि आचार्य द्रोण बड़े ही उद्विग्न हैं और उनका चित्त शोकाकुल हो रहा है, तो उसने उस अवसरसे लाभ उठानेके लिये उनपर धावा कर दिया। धृष्टद्युम्नके एक विजय दिलानेवाला सुदृढ़ धनुष हाथमें ले उसपर अग्निके समान तेजस्वी बाण रक्खा। यह देख द्रोणने उसे रोकनेके लिये आङ्गिरस नामक धनुष और ब्रह्मदण्डके समान अनेकों बाण हाथमें लिये। फिर उन बाणोंकी वर्षासे उन्होंने धृष्टद्युम्नको ढक दिया , उसे घायल भी कर डाला तथा उसके बाण, धनुष और ध्वजा को काटकर सारथीको भी मार गिराया। तब धृष्टद्युम्नने हँसकर दूसरा धनुष उठाया और आचार्यकी छातीमें एक तेज किया हुआ बाण मारा। अब उन्होंने धारवाला भाला लिया और उससे उसके धनुषको पुन: काट डाला। केवल गदा और तलवारको रहने दिया। इसके बाद उन्होंने धृष्टद्युम्नको बाणोंसे बींध डाला। तब उस महारथीने अपने घोड़ोंको द्रोणके रथके घोड़ोंके साथ मिला दिया और ब्रह्मास्त्र छोड़नेका विचार किया। इतनेहीमें द्रोणने उसके ईषा, चक्र और रथका बन्धन काट दिया। इस भारी विपत्तिमें फँसकर धृष्टद्युम्नने गदा उठायी, किंतु आचार्यने तीखे सायकोंसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। अब उसने तलवार ले ली अपने रथसे द्रोणाचार्यके रथपर पहुँचकर उनकी छातीमें वह कटार भोंक देनेका निश्चय किया। यह देख द्रोणने शक्ति उठायी और घोड़ोंको मार डाला। इसी बीचमें एक हजार वैतस्तिक नामक बाण मारकर आचार्यने उसकी ढाल-तलवारके खण्ड-खण्ड कर डाले। उपर्युक्त बाण निकटसे युद्ध करनेमें उपयोगी होते हैं तथा बित्तेभरके होनेके कारण ही वैतस्तिक कहलाते हैं। द्रोण, कृप, अर्जुन, कर्ण, प्रद्युम्न, सात्यकि तथा अभिमन्युके सिवा और किसीके पास वैसे बाण नहीं थे।

पाण्डवोंमें सभी सशंक हो उठे। आचार्य महान अस्त्रवेत्ता हैं। वे कभी भी पाशुपत, नारायणास्त्र या ऐसा ही कोई अमोघास्त्र उठा ले सकते हैं। श्रीकृष्णने देखा कि उनके आश्रित पाण्डुपुत्र भयभीत हैं। अपने शरणागतोंका संकट उन्हें सह्य नहीं। उनके जन भय पावें, यह वे भव-भय-भंजन कैसे सह लें। आचार्य द्रोण पाण्डवोंको नष्ट कर देनेका निश्चय कर चुके हैं, यह भी उन सर्वज्ञने जान लिया। कोई कितना भी समर्थ हो, श्रीकृष्णके चरणाश्रितोंको नष्ट करनेका संकल्प करके वह अपना विनाश ही बुलाता है, यह सत्य प्रकट होनेका अवसर आ गया।

द्रोणाचार्य स्वयं अपने लिए भी अनर्थका सृजन करने लगे थे। जो दिव्यास्त्र नहीं जानते थे, उनपर दिव्यास्त्रका प्रयोग पाप था, पतनका हेतु था। अपने लिए पतनका पथ प्रशस्त करनेमें लगे, दूसरोंके लिए संहारके स्वरूप बने, पुण्यात्मा, भगवदाश्रित पाण्डवोंका विनाश करनेको उद्यत द्रोणाचार्यको देह-बन्धनसे विमुक्त कर देना अनिवार्य आवश्यकता बन गया। सारथी रथ आगे बढाओ। द्रोण पांडवों की सेना को खदेडने लगे। अर्जुन बोला, केशव वो देखिये। कृष्ण बोले, मैं

सब कुछ देख रहा हूं पार्थ, सब देख रहा हूं। आज के युद्ध में आचार्य द्रोण को कोई पराजित नहीं कर सकता। अर्जुन बोला, युद्ध में पराजित नहीं कर सकता क्यों? क्या हम आज का युद्ध हार जायेंगे केशव? कृष्ण बोले, मैंने यह तो नहीं कहा पार्थ किन्तु यह अवश्य कह रहा हूं कि युद्ध के सारे नियमों का पालन करते हुये आचार्य द्रोण को आज के युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकता। धर्म की रक्षा के लिये यदि धर्मेन्द्र का सहयोग लेना पड़े तो उसमें कोई क्षति नहीं है। अर्जुन बोला, यह आप क्या कह रहे है गिरधर? कृष्ण बोले, मैं तो केवल क्रियात्मक बात कह रहा हूं कौन्तेय। जो धर्म का विरोध कर रहा हो वो तो अधर्म का प्रतीक हुआ ना तो उसे अधर्म के मार्ग से हटाना तो सबका कर्त्तव्य ही हुआ ना। तो ऐसे व्यक्ति को धर्म के मार्ग से हटोनवाला धर्मेता तो धर्म ही हो गया ना पार्थ। अर्जुन बोला, यह तो कोरा तर्क है वासुदेव। कृष्ण बोले, तर्क ही जीवन का आधार है अर्जुन। विश्वास का कोई अंकुर यदि तर्क की भूमि से फूटे तभी जीवित रह सकता है। तुम यह तो मानते हो ना कि यह युद्ध तुम्हारे लिये धर्मयुद्ध है। अर्जुन बोला, अवश्य मानता हूं। कृष्ण बोले, और तुम यह भी अवश्य मानते हो कि आचार्य द्रोण धर्म के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। अर्जुन बोला, यह मैं अवश्य मानता हूं। कृष्ण बोले, तब तो तुम यह अवश्य मानोगे पार्थ कि धर्म की विजय के लिये आचार्य की पराजय अनिवार्य है और यह मान लो पार्थ धर्म का पालन कभी अधर्म नहीं हो सकता। पार्थ पितामह भीष्म के सामने शिखंडी को खडा करने में तो तुम जरा भी नहीं हिचकिचाये थे। अर्जुन बोला, तो अब क्या करना चाहिये केशव? कृष्ण बोले, बस एक ही उपाय है पार्थ, आचार्य द्रोण को यह विश्वास दिलाना पडेगा कि अश्वत्थामा वीरगति को प्राप्त हुआ है। उसका शोक उन्हें सहन नहीं हो पायेगा और वे शस्त्र रख देंगे। अर्जुन बोले, नहीं केशव मैं क्षमा चाहता हूं किन्तु इन दामों में युद्ध जीतना नहीं चाहता। कृष्ण बोले, युद्ध को जीतने या ना जीतनेवाले तुम कौन होते हो पार्थ? अधर्म के विरुद्ध युद्ध करना तुम्हारा धर्म है। तुम केवल अपना कर्म करो। कर्मफल तो तुम्हारे वश में हैं ही नहीं। अर्जुन बोला, किन्तु मैं असत्य के बाण चलाने की कला नहीं जानता मधुसुदन। कृष्ण बोले, धर्मराज युधिष्ठिर क्या आप भी धर्म का पक्ष नहीं लेंगे? युधिष्ठिर बोले, यदि धर्म की विजय का और कोई उपाय नहीं तो मैं इस पाप का बोझ उठाऊँगा वासुदेव। कृष्ण बोले, सागर मंथन के पश्चात केवल अमृत ही हाथ नहीं आता बडे भैया, साथ में विष भी आता है। और जो उस विष को पी जाये वो शिव कहलाता है। क्या बाली वध में पुरुषोत्तम राम ने युद्ध के नियमों का पालन किया था?

इतने में मालव देश के राजा इन्द्रदेव का अश्वत्थामा नाम का गज चिंघाडता हुआ युद्धभूमि में आया। कृष्ण बोले, क्या आप उस गजराज का नाम जानते हो बडे भैया। भीम बोले, उस गज का नाम अश्वत्थामा है वासुदेव। भीम को संकेत किया कृष्ण ने। भीम ने गदा उठाकर उस गज को मार दिया और जोरों से चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा। मैंने अश्वत्थामा का वध कर दिया है बडे भैया। कृष्ण बोले, सम्भलकर रहियेगा बडे भैया हो सकता है कि आचार्य मझले भैया की बात ना माने और आपसे पूछने चले आये।

दूसरे प्रहर तक गुरु द्रोण बड़े आवेश से युद्ध कर रहे थे। अचानक कहीं से कोई जोर से चीखा- अश्वत्थामा मारा गया... अश्वत्थामा मारा गया... वस्तुत: वह भीम द्वारा मारा गया मालवराज इन्द्रवर्मा का हाथी था।

भीमने एक उपाय निकाला। पाण्डवोंके अपने पक्षमें ही थे मालवाके राजा इन्द्रवर्मा। उनके विशाल हाथीका नाम अश्वत्थामा था। भीमने उसे मार डाला। इतनेपर भी बड़े संकोचसे, लज्जापूर्वक वे आचार्य द्रोणके समीप जाकर कह सके- अश्वत्थामा मारा गया।

आचार्यने भीमकी बात सुनी थी। ऋषियोंके वचन भी सुने। उनके मरणके लिए ही उत्पन्न सम्मुख था। उदास होकर उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे पूछा- मेरा पुत्र क्या सचमुच मारा गया?

द्रोण सोच रहे हैं...किसके लिए युद्ध कर रहा है तू द्रोण? क्या प्रयोजन है तेरा इतनी निरीह हत्याएँ करने का? धन के लिए

लड़ रहा है? राज्य के लिए? धर्म के लिए तो तू नहीं ही लड़ रहा। किसके लिए धन चाहिए तुझे? किसके लिए राज्य चाहिए? जिसको दूध के स्थान पर आटे का घोल पीते देख तूने धन प्राप्त करने का संकल्प किया था। अब वह ही इस संसार में नहीं है। तो फिर क्यों निरीह सैनिकों की हत्याएँ कर रहा है तू? जिनके हाथ में धातु का एक साधारण-सा खड्ग है, और जिन्हें किसी अच्छे शस्त्र गुरु से ढंग का सैन्य प्रशिक्षण भी नहीं मिला है, उनके प्राणों का हरण कर रहा है तू, अपने दिव्यास्त्रों से। क्या मिल जाएगा तुझे? और किसके लिए? इस वृद्धावस्था में क्या करना है तुझे इस राज्य का? और क्या करना है, धन और संपत्ति का? तू जिसके रूप में अपनी जाया के गर्भ से जन्मा था, वह अब संसार में नहीं है? तेरा यह शरीर और कितने दिन चलेगा? और तेरे जीवन का विस्तार अब नहीं है। अश्वत्थामा ही नहीं रहा तो किसके माध्यम से अब तू भोगेगा इस संसार के भोगों को? एक ही पुत्र था तेरा। वह भी नहीं रहा।

उनकी चेतना लौटी। उनके सम्मुख खड़ा भीम अब भी अपनी विजय के उपलक्ष्य में, पूरे वेग से अपना शंख फूँक रहा था। पौंड्र की ध्वनि से कान बहरे हो रहे थे। उसने अभी-अभी घोषणा की थी उसने अश्वत्थामा को मार गिराया है।

विचित्र स्थिति थी आचार्य के मन की। एक ओर मन कह रहा था कि यह संभव ही नहीं है; और दूसरी ओर वही इस संभावना से आतंकित हो थर-थर काँप रहा है।

सहसा द्रोण का स्वर ऊँचा हो गया, मैं तुम्हारा विश्वास नहीं करता भीम। तुममें अश्वत्थामा का वध करने का सामर्थ्य नहीं है। युधिष्ठिर से कहो कि वह यहाँ आकर अपने मुख से कहे कि अश्वत्थामा अब जीवित नहीं है।

सामने के सैनिक कुछ हटे और युधिष्ठिर का रथ उनके सामने आ खड़ा हुआ। तो भीम सचमुच ही बुला लाया था उसको। क्यों? इस सूचना की पुष्टि करने के लिए कि अश्वत्थामा अब इस संसार में नहीं है। यदि युधिष्ठिर को इस सूचना की पुष्टि न करनी होती तो वह उनके निकट आता ही क्यों? उसे तो उनसे दूर ही रहना चाहिए था। उनका युधिष्ठिर को बंदी करने का संकल्प अभी पूरा नहीं हुआ था। न ही उन्होंने उसे त्यागने की घोषणा की थी। द्रोण अत्यंत अधीर स्वर में बोले, धर्मराज। तुम असत्य नहीं बोलते। बताओ क्या अश्वत्थामा ने युद्ध में वीरगति पाई है?

श्रीकृष्ण बोले- द्रोणाचार्यने स्वयं युद्धारम्भमें महाराज युधिष्ठिरसे कहा है कि उनके हाथमें धनुष रहते इन्द्रादि देवता भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते। वे शस्त्र-त्याग कर दें तभी उनका कोई वध कर सकता है। युद्धमें बहुत अप्रिय समाचार मिलनेपर वे धनुष रख देते हैं, यह अपना स्वभाव भी उन्होंने बतलाया है। अत: किसीको जाकर उनसे कहना चाहिए कि अश्वत्थामा मारा गया। एकमात्र पुत्र आचार्यको अत्यन्त प्रिय हैं। उसकी मृत्युकी बात सुनकर वे शस्त्र त्याग कर देंगे।

आचार्य द्रोण ने ५ दिन बड़ी वीरता से सैन्य-संचालन और युद्ध किया। पांडव पक्ष के द्रुपद, विराट आदि बहुत से प्रधान-प्रधान वीरों का संहार किया। वे महारथियों के अग्रणी थे। कोई भी वीर उनका सामना करने में समर्थ नहीं था। कृष्ण को बड़ी चिन्ता हुई। पांडवों को बुलाकर उन्होंने कहा, जब तक आचार्य के हाथ में धनुष रहेगा। तब तक इन्हें देवताओं के सहित इन्द्र भी नहीं जीत सकते। ४ दिनों में तुम्हारे असंख्य योद्धाओं का इन्होंने संहार किया है। यदि आगे एक दिन भी और लड़ेंगे तो तुम्हारी सेना में एक भी वीर बाकी न बचेगा। इसलिये धर्म से, अधर्म से, छल से, बल से, कला से, कौशल से, सत्य से, असत्य से, जैसे भी आचार्य मारे जायँ वही उद्योग करना चाहिये। पांडवों की ओर विशेषकर अर्जुन को यह बात रूचिकर नहीं हुई। किन्तु वासुदेव की इच्छा को कौन रोक सकता है। बहुत समझाने-बुझाने पर धर्मराज झूठ बोलने पर राजी हुए। कृष्ण जानते थे कि आचार्य अपने पुत्र को बहुत प्यार करते हैं। पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनते ही ये शस्त्र त्याग देंगे। किन्तु इनके पुत्र को मारने की तो किसी में सामर्थ्य ही नहीं। वह तो अजर, अमर और अजेय है। इसलिये भीम से कहा, तुम झूठे ही जाकर आचार्य को समाचार दे दो कि अश्वत्थामा मारा गया। भीम ने

बड़ा कौशल रचा। मालव देश के इन्द्रवर्मा राजा के हाथी का नाम अश्वत्थामा था। उसे अपनी गदा से मारकर द्रोणाचार्य के रथ के सामने जोरों से चिल्लाने लगे कि अश्वत्थामा मारा गया।

अश्वत्थामा दुर्योधनके साथ दूर-दूसरे मोर्चेपर युद्ध कर रहा था। उसकी मृत्युके समाचारसे आचार्यके प्राण सूख गये; किन्तु उनका पुत्र तो अमर है और भीम इतने मन्द स्वरमें, इतने संकोचसे तो इतनी बड़ी विजयकी घोषणा करनेवाले नहीं हैं, इन कारणोंसे आचार्यके मनमें सन्देह हो गया। वे धृष्टद्युम्नपर प्रचण्ड वेगसे आक्रमण करनेमें जुट गये।

द्रोणाचार्यका विश्वास था कि युधिष्ठिर किसी प्रकार झूठ नहीं बोलेंगे। इस समय श्रीकृष्ण अपना रथ युधिष्ठिरके रथसे सटाये बैठे थे। उन्होंने कहा- आपको इस समय द्रोणके क्रोधसे अपने पक्षके वीरोंकी प्राण रक्षा करनी चाहिए। जो लोग स्वजन-परिवार त्यागकर आपकी सहायताके लिए युद्धमें मर मिटनेको उद्यत हैं, उनकी प्राण-रक्षाके लिए बोला गया झूठ पाप नहीं है। उससे बड़ा पाप है सचके भ्रममें पड़कर उन्हें मृत्युमुखमें डाल देना। आचार्य यदि ऐसे ही युद्ध करते रहे तो आधे दिनमें ही आपकी पूरी सेनाका विनाश कर डालेंगे।

महाराज। आपको सर्वथा मिथ्या नहीं बोलना है। भीमने समीप आकर धीरेसे कहा- अपनी सेनाके इद्रवर्माके महाराज अश्वत्थामा को मारकर मैंने आचार्यके सम्मुख जाकर कहा कि अश्वत्थामा मारा गया किन्तु मेरी बातपर विश्वास न करके वे आपसे पूछ रहे हैं। अत: आपको श्रीकृष्णकी आज्ञा स्वीकार कर लेनी चाहिए। युधिष्ठिरने हृदयमें बहुत व्यथाका अनुभव किया किन्तु श्रीकृष्णके आदेशको सर्वथा अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता था। उन्होंने उच्च स्वर से कहा- अश्वत्थामा मारा गया, फिर धीरेसे बोले- किन्तु हाथी। श्रीकृष्णने अपना पाँचजन्य शंख अधरोंसे लगा लिया था। युधिष्ठिरका किन्तु हाथी ये धीरेसे बोले गये शब्द उसके भयंकर निनादमें कोई कैसे सुनता। कहते हैं कि युधिष्ठिरके रथचक्र उनकी सत्यवादिताके प्रभावसे पृथ्वीसे सदा चार अंगुल ऊपर रहते थे। उनके मुखसे असत्य निकलते ही वे पृथ्वीसे सट गये। युधिष्ठिरके मुखसे यह सुनकर कि अश्वत्थामा मर गया, आचार्य द्रोणने अस्त्र नहीं फेंका था। वे युद्धमें लगे थे किन्तु दिव्यास्त्र उन्हें भूल गये। उनका त्रोण भी रिक्त होने लगा था। उनपर धृष्टद्युम्न प्रचण्ड आक्रमण कर रहा था। सात्यकि, भीम आदि भी उन्हींपर टूट पड़े थे।

इधर श्रीकृष्णने यह सोचा कि आचार्य द्रोण अब पृथ्वीपर पाण्डवोंका नाम-निशान भी नहीं रहने देंगे, तो उन्होंने धर्मराजसे कहा- यदि द्रोण क्रोधमें भरकर आधे दिन और युद्ध करते रहे, तो मैं सच कहता हूँ तुम्हारी सेनाका सर्वनाश हो जायगा। अत: तुम द्रोणसे हमलोगोंको बचाओ। दूसरोंकी प्राण-रक्षाके लिये यदि कदाचित् असत्य बोलना पड़े, तो उससे बोलनेवालेको पातक नहीं लगता। वे दोनों इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि भीम बोल उठे- महाराज। द्रोणके वधका उपाय सुनकर मैंने आपकी सेनामें विचरनेवाले मालवनरेश इन्द्रवर्माके अश्वत्थामा नामक हाथीको मार डाला है। उसके बाद द्रोणसे जाकर कहा है- अश्वत्थामा मारा गया। उन्होंने मेरी बातपर विश्वास नहीं किया, इसीलिये आपसे पूछते हैं। अत: आप श्रीकृष्णकी बात मानकर द्रोणसे कह दीजिये कि अश्वत्थामा मारा गया। आपके कहनेसे फिर वे युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि आप सत्यवादी हैं- यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है।

उनके अंतर्यामी ने कहा, पर धर्मराज। अनृत तो अनृत ही है। अनृत यह कहने में नहीं है कि अश्वत्थामा मारा गया, अनृत यह छुपाने में है कि जो मारा गया वह द्रोणपुत्र नहीं, एक युद्धक गज था।

तो क्या वे कह दें कि जिसे भीम ने मारा है, वह मालवराज का हाथी था? पर नहीं। भीम उन्हें यह कहने के लिए बुलाकर यहाँ नहीं लाया है। और कृष्ण ने क्या कहा था? कृष्ण ने कहा था धर्मराज। यदि आचार्य इस प्रकार आधा दिन भी और लड़ते रहे तो पांडव सेना पूर्णत: नष्ट हो जाएगी। हमारी रक्षा करो धर्मराज। किसी के प्राणों की रक्षा के लिए इतना-सा तथ्य छुपा जाना कोई पाप नहीं है। यह भी कहा था कृष्ण ने कि राजा जब युद्धभूमि में आता है तो उसे विजय को अपना लक्ष्य मानना चाहिए। युद्ध

के नियम विजय नहीं दिलाते, विजय प्राप्त होती है, रणकौशल से। युद्ध के नियम राजा का धर्म नहीं है, राजा का धर्म विजय है। आचार्य की रक्षा करते रहने से तो पांडवों को विजय नहीं मिलेगी। युधिष्ठिर अपने धर्मपालन के लिए पांडव सेना में खड़े उनके प्रति निष्ठावान इन सारे योद्धाओं के प्राण तो नहीं ले सकते। नहीं। अपने धर्म के लिए इन सबके प्राणों से मूल्य चुकाने का उन्हें कोइ अधिकार नहीं है। पर आचार्य पूछ रहे हैं कि क्या अश्वत्थामा ने युद्ध में वीरगति पाइ है? उस युद्धक गज के लिए वे यह तो नहीं कह सकते कि उसने युद्ध में वीरगति पाई है। वह तो मारा ही गया था। तो वे आचार्य के प्रश्न का उत्तर सीधे सरल ढंग से हाँ कहकर तो नहीं दे सकते। और वे उसे पूर्णत: छिपा भी नहीं सकते।

भीमकी बात सुनकर और श्रीकृष्णकी प्रेरणासे युधिष्ठिर वैसा कहनेको तैयार हो गये। वे असत्यके भयमें डूबे हुए थे, तो भी विजयमें आसक्ति होनेके कारण द्रोणाचार्यसे अश्वथामा मारा गया यह वाक्य उच्च स्वरसे कहकर धीरेसे बोले किंतु हाथी। इसके पहले युधिष्ठिरका रथ पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचा रहा करता था, उस दिन वह असत्य मुँहसे निकालते ही रथ जमीनसे सट गया। महारथी द्रोण युधिष्ठिरके मुखसे वह बात सुनकर पुत्रशोकसे पीडित हो जीवनसे निराश हो गये तथा ऋषियोंके कथनानुसार अपनेको पाण्डवोंका अपराधी मानने लगे।

गुरुदेव, अश्वत्थामा मारा गया यह सत्य है। किन्तु वह मनुष्य था अथवा हाथी, यह मुझे पता नहीं। युधिष्ठिर जीवन में पहली बार असत्य बोला। दूसरा वाक्य उसने इतने धीमे-से कहा कि वह स्वयं उसे भी सुनाई न दे।

सत्य जानने हेतु अपना रथ दौड़ाते हुए गुरु द्रोण युधिष्ठिर के पास पहुँचे। विह्वलता से उन्होंने पूछा, हे धर्मराज, क्या सचमुच मेरा प्रिय अशू मारा गया? बताइए युधिष्ठिर, तुम्हारी सत्यप्रियता पर मुझे पूरा विश्वास है।

आचार्य थोड़ी देर तो विचलित हुए, फिर समझ गये यह झूठे ही बकता है। संसार में मेरे पुत्र को कौन मार सकता है? इसलिये वे इस बात पर कुछ भी ध्यान न देकर और भीम को डाट-डपटकर फिर उसी भाँति भयमर युद्ध करने लगे। ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र आदि दिव्य अस्त्रों से वे एक-एक बाण में लाखों सैनिकों का संहार करते। वे बड़े वीर थे, मूर्तिमान धनुर्वेद थे। संसार में उनका सामना कर ही कौन सकता था? किन्तु उनकी मृत्यु समीप आ गई थी। ऋषियों ने इसकी सूचना उन्हें दे दी। द्रुपद ने यज्ञ करके धृष्टद्युम्न को उत्पन्न भी इसीलिये किया था कि वह द्रोणाचार्य का वध करे। इसीलिये वे धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगे। उन्हें रह-रहकर काल के प्रभाव से अपने पुत्र के मृत्यु के विषय में सन्देह होने लगा। पास में ही धर्मराज युद्ध कर रहे थे। आचार्य जानते थे धर्मराज त्रैलोक्य का राज्य पाने पर भी झूठ न बोलेंगे। इसीलिये उन्होंने धर्मराज से पूछा- युधिष्ठिर। भीम कहता है अश्वत्थामा मारे गये किन्तु मुझे भीम की इस बात पर विश्वास नहीं होता। वह तो झूठ भी बोल सकता है। तुमने जन्म से लेकर अब तक झूठ नहीं बोला, तुम सच-सच बताओ कि अश्वत्थामा मारा गया या जीवित है?

भीम द्रोण के पास आकर बोला मैंने अश्वत्थामा का वध कर दिया गुरुदेव मैंने। द्रोण के कानों में यह गूंजने लगा। द्रोण ने इस बात की सत्यता जानने के लिये सारथी को आदेश दिया कि सारथी रथ युधिष्ठिर की ओर ले चलो। युधिष्ठिर ने आचार्य द्रोण को प्रणाम किया। द्रोण बोले, मुझे तुम्हारा प्रणाम नहीं चाहिये धर्मराज युधिष्ठिर। मुझे सत्य चाहिये। क्या यह सच है कि मेरे पुत्र अश्वत्थामा का वध हो गया। युधिष्ठिर ने कृष्ण की ओर देखा तथा मौन रहे। द्रोण बोले, मेरे प्रश्न का उत्तर दो धर्मराज। युधिष्ठिर बोले, **अश्वत्थामा हनाय हत**... ने कोलाहल कर दिया बाकी शब्दों में कह दिया... **नरोवा व कुंजरा**।

युधिष्ठिर ने उच्च स्वर में कहा; आचार्य। अश्वत्थामा मारा गया है। किंतु उसके पश्चात् न तो उसका स्वर उतना प्रबल ही रह पाया और न हो वे पूर्णत: मौन ही रह सके। धीरे से अस्पष्ट स्वर में बोले, जो मारा गया, वह हाथी था।

उनके पहले वाक्य के पश्चात् ही भीम ने शंख फूँक दिया था। उसके साथ ही चारों ओर युद्धरत पांडव वाहिनियों ने भी विजय का भयंकर गर्जन किया था। युधिष्ठिर अपना दूसरा वाक्य स्वयं ही सुन पाए थे।

युधिष्ठिर का रथ मुड़ा और अपनी सेना के पीछे कहीं अदृश्य हो गया।

धर्मभीरु धर्मराज बड़े घबड़ाये। मधुसूदन बार-बार उन्हें उकसा रहे थे। किन्तु असत्य बोलने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। धीरे से भीम ने कहा- राजन्। कह दो, कह दो, मैंने अभी मालव देश के अश्वत्थामा नामक हाथी को मारा है। इसमें झूठ भी नहीं। धर्मराज ऐसा कहना नहीं चाहते थे, किन्तु पार्थ सारथी की इच्छा, देव की गति को कौन टाल सकता है? विजय के लोभ से धर्मराज ने कह दिया- अश्वत्थामा मारे गये। इसके अनन्तर धीरे से यह भी कह दिया, अश्वत्थामा हाथी मारा गया। धर्मराज ने ज्योंही यह पीछे का वाक्य कहा त्योंही मधुसूदन ने जोर से शफबजाकर बड़ा भारी कोलाहल करा दिया। इसलिये यह शब्द किसी को सुनाई नहीं दिया पुत्र की मृत्यु का निश्चय होने पर भी आचार्य ने धनुष नहीं छोड़ा। युद्ध करते ही रहे, तब भीम ने बड़े अपमानित शब्दों में कहा- ब्राह्मणों में ऐसे भी नीच पुरुष होते हैं? आचार्य आप केवल खाने के लोभ से ऐसा पाप क्यों कर रहे हैं? एक ही तुम्हारे पुत्र था, वह भी मरा पड़ा है। फिर भी तुम लड़ रहे हो। तुम्हारे ब्राह्मणपने को धिक्कार है। मेरी बात पर चाहे विश्वास मत भी करो, किन्तु तुम्हारे सामने सत्यवादी युधिष्ठिर ने भी अनुमोदन किया है, फिर तुम लड़ना बन्द क्यों नहीं करते? इस नरहत्या को अब छोड़ो। भगवान में मन लगाओ। क्यों और पाप सिर पर लादते हो?

धृतराष्ट्र बोले, यह तुमने क्या कहा संजय। एक युद्ध जीतने के लिये प्रिय युधिष्ठिर झूठ बोला। धर्मराज युधिष्ठिर, इस वासुदेव ने मेरे वत्सों को बिगाड दिया है संजय। संजय बोला, किन्तु उनका तर्क भी तो विचारणीय है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, तुम्हें तो उनके सारे तर्क विचारणीय ही लगते है संजय। जो मेरे और मेरे पुत्रों के हित को नकारनेवाले ही होते हैं। आचार्य की दशा बताओ। संजय बोला, जो आज्ञा महाराज। आचार्य ने अपने धनुष का त्याग कर दिया है और कौन्तेय भी उनसे कुछ कह रहे है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, क्या कह रहे है?

युद्धक्षेत्र में भीम बोले, ब्राह्मणों को शिक्षा देने का कार्य शोभा देता है गुरुदेव आप इन क्षत्रियों के क्षेत्र में कहां आ गये? द्रोण ने अस्त्रहीन हो रथ से नीचे उतर रणभूमि में बैठ गये और बोले ये तुम्हारे गुरु के शस्त्र हैं, कुन्तीनन्दन। कुचल डालो इन्हे अपने रथ के पहिये से किन्तु मुझे अभी भी विश्वास नहीं होता कि मेरा पुत्र अश्वत्थामा तुमसे पराजित हो गया होगा। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर कभी झूठ नहीं बोलता इसलिये मैं अब अपने शस्त्रों का त्याग कर रहा हूं। शिष्य भी पुत्र समान होता है और यदि तुम मेरे शिष्य न रहे होते तो पुत्र भीम इस समय तुम मेरे सामने न खडे होते, तुम्हारा शव पडा होता। द्रोण विलाप करने लगा।

अब भीमसे नहीं रहा गया। वे आचार्यके रथके पास जा उससे सटकर धीरे-धीरे बोले- यदि ब्राह्मण अपना कर्म छोड़कर युद्ध न करते, तो क्षत्रियोंका भीषण संहार न होता। प्राणियोंकी हिंसा न करना- यह सब धर्मोंमें श्रेष्ठ बताया गया है, उसकी जड़ है ब्राह्मण और आप तो उन ब्राह्मणोंमें भी सबसे उत्तम वेदवेत्ता हैं। ब्राह्मण होकर भी स्त्री, पुत्र और धनके लोभसे आपने चाण्डालकी भाँति म्लेच्छों तथा अन्य राजाओंका संहार कर डाला है। जिसके लिये आपने हथियार उठाया, जिसका मुँह देखकर जी रहे हैं, वह अश्वत्थामा तो आपकी नजरोंसे दूर मरा पड़ा है। इसकी आपको खबरतक नहीं दी गयी है। क्या युधिष्ठिरके कहनेपर भी आपको विश्वास नहीं हुआ? उनकी बातपर तो संदेह नहीं करना चाहिये।

भीमका कथन सुनकर द्रोणाचार्यने धनुष नीचे डाल दिया और अपने पक्षके योद्धाओंसे पुकारकर कहा- कर्ण। कृपाचार्य और दुर्योधन। अब तुम लोग स्वयं ही युद्धके लिये प्रयत्न करो- यही तुमसे मेरा बारंबार कहना है। अब मैं अस्त्रोंका त्याग करता हूँ। यह कहकर उन्होंने अश्वत्थामा का नाम ले-लेकर पुकारा। फिर सारे अस्त्र-शस्त्रोंको फेंककर वे रथके पिछले भागमें बैठ गये और सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देकर ध्यानमग्न हो गये।

इस प्रकार द्रोणाचार्यको क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये खड़ा देख अग्निदेवको आगे करके विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि ऋषि उन्हें ब्रह्मलोकमें ले जानेके लिये वहाँ पधारे। साथ ही सिकत, पृश्नि, गर्ग, वालखिल्य,

भृगु और अङ्गिरा आदि भी थे। ये सभी सूक्ष्मरूप धारण किये हुए थे। महर्षियोंने द्रोणाचार्यसे कहा- द्रोण। हथियार रख दो और यहाँ खड़े हुए हमलोगोंकी ओर देखो। अबतक तुमने अधर्मसे युद्ध किया है। अब तुम्हारी मृत्युका समय आया है। अबसे भी इस अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्मका त्याग करो। तुम वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान हो। सत्य और धर्ममें तत्पर रहनेवाले हो। सबसे बड़ी बात यह है कि तुम ब्राह्मण हो। तुम्हारे लिये यह काम शोभा नहीं देता। अपने सनातन धर्ममें स्थित हो जाओ। तुम्हारा इस मनुष्य-लोकमें रहनेका समय पूरा हो चुका है। जो लोग ब्रह्मास्त्र नहीं जानते थे, उन्हें भी तुमने ब्रह्मास्त्रसे दग्ध किया है; तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। फेंक दो ये अस्त्र-शस्त्र, अब फिर ऐसा पापकर्म न करो।

भीमने फिर आचार्यको धिक्कारा। तब आचार्यने धनुष डाल दिया। वे ध्यानस्थ होकर बैठ गये। ध्यान करते हुए उन्होंने देहत्याग किया। इसी अवस्थामें धृष्टद्युम्नने उनका मस्तक काट दिया। पाँच दिन युद्ध करके महाभारत युद्धके पन्द्रहवें दिन दोपहरको द्रोणाचार्य मारे गये। आचार्य द्रोणके मारे जानेपर कौरव सेना भाग खड़ी हुई। अश्वत्थामाको अपने पिताकी मृत्युका पता लगा तो वह क्रोधोन्मत्त हो उठा। उसे पाण्डवोंका धर्मात्मापन, युधिष्ठिरकी सत्यवादिता, सब पाखण्ड लगा। अश्वत्थामाने शपथपूर्वक समस्त पांचाल एवं पाण्डवोंको मारनेकी प्रतिज्ञा की।

पुत्र-वियोग के दु:ख से विह्वल हुए द्रोणाचार्य ने अपना धनुष फेंककर रथ में ही पद्मासन लगाया। धृष्टद्युम्नको यह एक मौका हाथ लगा। उसने धनुष और बाण तो रख दिया और तलवार हाथमें ले ली। फिर कूदकर वह सहसा द्रोणके निकट पहुँच गया। द्रोणाचार्य तो योगनिष्ठ थे और धृष्टद्युम्न उन्हें मारना चाहता था- यह देखकर सब लोग हाहाकार करने लगे। सबने एक स्वरसे उसे धिक्कारा।

इधर आचार्य शस्त्र त्यागकर परमज्ञानस्वरूपमें स्थित हो गये और योगधारणाके द्वारा मन-ही-मन पुराणपुरुष विष्णुका ध्यान करने लगे। उन्होंने मुँहको कुछ ऊपर उठाया और सीनेको आगेकी ओर तानकर स्थिर किया, फिर विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो हृदयकमलमें एकाक्षर ब्रह्मप्रणवकी धारणा करके देवदेवेश्वर अविनाशी परमात्माका चिन्तन किया। इसके बाद शरीर त्यागकर वे उस उत्तम गतिको प्राप्त हुए, जो बड़े-बड़े संतोंके लिये भी दुर्लभ है। जब वे सूर्यके समान तेजस्वी स्वरूपसे ऊर्ध्वलोकको जा रहे थे, उस समय सारा आकाशमण्डल दिव्य ज्योतिसे आलोकित हो उठा था। इस प्रकार आचार्य ब्रह्मलोक चले गये। और धृष्टद्युम्न मोहग्रस्त होकर वहाँ चुपचाप खड़ा था। महाराज। योगयुक्त महात्मा द्रोणाचार्य जिस समय परमधामको जा रहे थे, उस समय मनुष्योंमेंसे केवल कृपाचार्य, श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर ये ही चार उनका दर्शन कर सके थे। वे ध्यानस्थ हुए। तभी आरक्त नेत्रोंवाला धृष्टद्युम्न खड्ग उठाकर अपने रथ से कूद पड़ा। वह द्रोणाचार्य की ओर दौड़ने लगा। पाण्डव भी उसको रोकने के लिए उसके पीछे दौड़ने लगे। किन्तु उनके विरोध को अनसुना करते हुए एक ही छलाँग में वह द्रोणाचार्य के रथ पर चढ़ा और किसी के कुछ समझ में आए इससे पहले ही उसने द्रोणाचार्य के मस्तक पर बँधे केशों को मुट्ठी में कसकर एक ही प्रहार में उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। आँखें विस्फारिक कर वह चिल्लाया, मेरे पिता को बन्दी बनाकर उसकी दुर्दशा करनेवाले अधम, अश्वत्थामा नर था कि कुंजर यह अब स्वर्ग में जाकर इन्द्र के ऐरावत से ही पूछ ले। धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य का कटा हुआ मस्तक दोनों सेनाओं के बीच रणभूमि पर फेंक दिया।

इसके बाद धृष्टद्युम्नने द्रोणके शरीरमें हाथ लगाया। उस समय सब प्राणी उसे धिक्कार रहे थे। द्रोणके शरीरमें चेतना नहीं थी, वे कुछ बोल नहीं रहे थे। इस अवस्थामें धृष्टद्युम्नने तलवारसे उनका मस्तक काट लिया और बड़ी उमंगमें भरकर उस कटारको घुमाता हुआ सिंहनाद करने लगा। आचार्यके शरीरका रंग साँवला था, उनकी आयु पचासी वर्षकी हो चुकी थी, ऊपरसे लेकर कानतकके बाल सफेद हो गये थे; तो भी आपके हितके लिये वे संग्राममें सोलह वर्षकी उम्रवाले तरुणकी भाँति विचरते थे।

आचार्य ने अब अपना अन्तिम समय समझ लिया। उन्होंने धनुष रख दिया और रथ पर बैठकर नेत्र बन्द किये। पद्मासन लगाकर वे सनातन परम पुरुष प्रभु के ध्यान में मग्न हो गये। जब वे ध्यान में लगे थे, तभी पीछे से आकर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया। वे ऋषियों के साथ सनातन लोकों में गये। उनका मृत शरीर रथ से नीचे लुढ़क पड़ा। कौरव और पांडव दोनों ही दु:खित हुए। कौरव सेना में तो हाहाकार मच गया। सर्वत्र भगदड़ मच गई।

आचार्यने ऋषियोंकी यह बात सुनी, भीमके कहने पर भी विचार किया और धृष्टद्युम्नको सामने देखा; इन सब कारणोंसे वे बहुत उदास हो गये। अब उन्हें अश्वत्थामाके मरनेका संदेह हुआ। वे व्यथित होकर युधिष्ठिरसे पूछने लगे- वास्तवमें मेरा पुत्र मारा गया या नहीं? द्रोणके मनमें यह निश्चय था कि युधिष्ठिर तीनों लोकोंका राज्य पानेके लिये भी किसी तरह झूठ नहीं बोलेंगे। बचपनसे ही उनकी सच्चाईमें आचार्यका विश्वास था।

इतने में धृष्टद्युम्न वहां पर आता है और द्रोण को निहत्था जान कर प्रतिशोध की भावना से उस पर तलवार का वार कर द्रोण की गर्दन उडा देता है। अर्जुन और कृष्ण सब देख रहे होते हैं। अर्जुन चिल्ला रहा होता है और रथ से उतरकर धृष्टद्युम्न को पकडने के लिये भागता है। अर्जुन बोला, नहीं। धृष्टद्युम्न तुम्हारी इस कायरता के लिये मैं तुम्हें कभी क्षमा नही करूंगा? इसने मेरे निहत्थे गुरु का वध किया है। नकुल और सहदेव, तथा कृष्ण भी विचलित अर्जुन को पकडते हैं। अर्जुन बोला, धृष्टद्युम्न तुम कायर हो। युद्ध समाप्ति का शंख बजा।

कुन्तीनन्दन अर्जुन पुकारकर कहते ही रह गये कि द्रुपदकुमार। आचार्यका वध न करो, उन्हें जीते-जी ही उठा ले आओ। पर उसने नहीं सुना। आपके सैनिक भी न मारो, न मारो की रट लगाते ही रह गये। अर्जुन तो करुणामें भरकर धृष्टद्युम्नके पीछे-पीछे दौड़े भी, पर कुछ फल न हुआ। सब लोग पुकारते ही रह गये, किंतु उसने उनका वध कर ही डाला। खूनसे भीगी हुई आचार्यकी लाश तो रथसे नीचे गिर पड़ी और उनके मस्तकको धृष्टद्युम्नने आपके पुत्रोंके सामने फेंक दिया। उस युद्धमें आपके बहुत योद्धा मारे गये थे। अधमरे मनुष्योंकी संख्या भी कम नहीं थी।

अर्जुन का मन बहुत अशांत था। एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता उसे निरंतर विचलित कर रही थी। मन-ही-मन जैसे वह ऐंठ रहा था। उसके वक्ष में एक अजान-सी पीड़ा की लहरें उठ रहीं थीं। इधर पीड़ा की लहर उठती और उधर आचार्य का वध करते हुए धृष्टद्युम्न का चित्र मन पर छा जाता था। धृष्टद्युम्न ने उसके गुरु के केश पकड़कर उनका मस्तक काट लिया था। अर्जुन चिल्लाता ही रह गया था कि यह पाप है। ऐसा मत करो। धिक्कार है तुम्हें। अरे गुरु को जीवित ही पकड़ लो, उन्हें बंदी बना लो। उनका वध मत करो। पर धृष्टद्युम्न ने वध किया और वह भी कैसे? शस्त्र त्याग कर चुके, ध्यान में बैठे, आचार्य का जटाजूट पकड़कर उनका मस्तक काट लिया और उस मस्तक को उसने कौरव सेना की ओर उछाल दिया। कौरवों में भगदड़ मच गई और यह भी पता नहीं चला कि आचार्य द्रोण का धड़ कहाँ है और उनका मस्तक कहाँ गया। किसी झंझावात के पश्चात् किसी वन में से एक झड़े हुए पत्ते को खोजने जैसा असंभव था, आचार्य के शरीर को खोजना। श्मशान भूमि में आचार्य द्रोण की अन्त्येष्टि हो रही है। अर्जुन और अन्य पांडव धृष्टद्युम्न सहित वहां प्रणाम करने आते हैं। अश्वत्थामा बोला, कोई कायर मेरे पिता के शव को प्रणाम नहीं कर सकता। धर्मराज युधिष्ठिर तुमने जिसकी मृत्यु का समाचार मेरे पिता को दिया था वो मैं हूँ। कायर कुन्ती पुत्रों यह ध्यान से देख लो मैं तुम्हे इस कायरता के लिये कभी क्षमा नहीं करूंगा। मैं तुम्हें वचन देता हूं कि तुम सब कायरों को मेरे पिता के वध का मोल चुकाना होगा। अश्वत्थामा ने शव को आग दी।

रात्रि को शिबिर में अर्जुन धृष्टद्युम्न का वध करने तलवार लेकर निकलनेवाला होता है कि कृष्ण ने उसे रोक कर बोला,

पार्थ। अर्जुन बोला, मैं धृष्टद्युम्न को जीवित नहीं छोड़ूंगा मधुसूदन। जीवित नहीं छोड़ूंगा। इतने में द्रौपदी और धृष्टद्युम्न वहां आ जाते है। द्रौपदी बोली, धृष्टद्युम्न ने कौनसा ऐसा अपराध किया है सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर? अर्जुन चिल्लाकर बोला, पांचाली। द्रौपदी बोली, मारो और धृष्टद्युम्न के बीच में से मुझे हटा दो। पांडु परिवार में मेरा महत्व ही क्या है? हे महावीर मैं वही द्रौपदी हूं जिसे बालों से पकड़कर हस्तिनापुर राज्यसभा में घसीटकर लाया गया था। मैं वो ही द्रौपदी हूं जिसका वस्त्राहरण करने का प्रयत्न किया गया था और पांच शूरवीर कौन्तेय देखते रह गये थे। हे धनंजय जिन द्रोणाचार्य के वध पर तुम्हे इतना क्रोध है वो भी उस राजसभा में थे और थे ही नहीं चुप भी थे। जब मेरा निहत्था और घायल पुत्र अभिमन्यु मारा गया तो उसकी हत्या के नेता भी वो ही द्रोणाचार्य थे।

आचार्य द्रोणके मारे जानेके बाद कौरवोंको बड़ा शोक हुआ। उनकी आँखोंसे आँसू बह चले। लड़ने का सारा उत्साह जाता रहा। वे आर्तस्वरसे विलाप करते हुए आपके पुत्रको घेरकर बैठ गये। दुर्योधनसे अब वहाँ खड़ा नहीं रहा गया, वह भागकर अन्यत्र चला गया। इसप्रकार जब आपकी सेना भयभीत एवं अशक्त होकर भागी जा रही थी, उस समय अश्वत्थामाने दुर्योधनके पास जाकर पूछा- भारत। तुम्हारी यह सेना त्रस्त होकर भाग क्यों रहीं है? तुम इसे रोकनेका प्रयत्न क्यों नहीं करते? पहलेकी भाँति तुम्हारा मन आज स्वस्थ नहीं दिखायी देता। कर्ण आदि भी यहाँ नहीं ठहर पाते। और दिन भी भयानक युद्ध हुए हैं, पर सेनाकी ऐसी दशा कभी नहीं हुई। बताओ तो, किस महारथीकी मृत्यु हुई है जिससे तुम्हारी सेना इस अवस्थाको पहुँच गयी?

द्रोणपुत्रका यह प्रश्न सुनकर भी दुर्योधन उस घोर अप्रिय समाचारको मुँहसे नहीं निकाल सका। केवल उसकी ओर देखकर आँसू बहाता रहा। इसके बाद उसने कृपाचार्यसे कहा- आपही सेनाके भागनेका कारण बता दीजिये।

तब कृपाचार्य बारंबार विषादमग्न होकर अश्वत्थामासे द्रोणके मारे जानेका समाचार सुनाने लगे। उन्होंने कहा- तात। हमलोग आचार्य द्रोणको आगे रखकर पाञ्चाल राजाओंसे संग्राम कर रहे थे। उस युद्धमें जब बहुत-से कौरव-योद्धा मार डाले गये, तो तुम्हारे पिताने कुपित होकर ब्रह्मास्त्र प्रकट किया और भल्ल नामक बाणोंसे हजारों शत्रुओंका सफाया कर डाला। उस समय कालकी प्रेरणासे पाण्डव, केकय, मत्स्य और विशेषत: पाञ्चाल वीरोंमेंसे जो भी द्रोणके रथके सामने आये, वे सब नष्ट हो गये। फिर तो पाञ्चाल योद्धा भाग खड़े हुए। उनका बल और पराक्रम धूलमें मिल गया। वे उत्साह खो बैठे और अचेत-से हो गये।

उन्हें द्रोणके बाणोंसे पीडित देख पाण्डवोंकी विजय चाहनेवाले श्रीकृष्णने कहा, ये आचार्य द्रोण मनुष्योंसे कभी नहीं जीते जा सकते; औरोंकी तो बात ही क्या है, इन्द्र भी इन्हें नहीं परास्त कर सकते। मेरा ऐसा विश्वास है कि अश्वत्थामाके मारे जानेपर ये लड़ाई नहीं कर सकते; इस लिये कोई जाकर इन्हें अश्वत्थामाकी मृत्युका झूठा समाचार सुना दे। पर अर्जुनको पसंद नहीं आयी। युधिष्ठिरने भी बड़ी कठिनाईसे इसे स्वीकार किया। भीमने लजाते-लजाते जाकर कहा- अश्वत्थामा मारा गया; पर उन्होंने इसपर विश्वास नहीं किया। इसी बीचमें भीमने मालवाके राजा इन्द्रवर्माके अश्वत्थामा नामक हाथीको मार डाला। इसे युधिष्ठिरने भी देखा। द्रोणने सच्ची बातका पता लगानेके लिये राजा युधिष्ठिरसे पूछा- अश्वत्थामा मारा गया या नहीं? मिथ्या भाषणमें कितना दोष है, यह जानते हुए भी युधिष्ठिरने कह दिया अश्वत्थामा मारा गया। परंतु हाथी। अन्तिम वाक्य उन्होंने धीरेसे कहा, जिसे तुम्हारे पिता सुन नहीं सके। अब उन्हें तुम्हारे मरनेका विश्वास हो गया। वे संतापसे पीड़ित हो गये। अब युद्धमें पहलेका-सा उत्साह न रहा। उन्होंने दिव्यास्त्रोंका परित्याग कर दिया और समाधि लगाकर बैठ गये। उस समय धृष्टद्युम्नने पास जाकर बायें हाथसे उनके केश पकड़ लिये और उनका सिर धड़से अलग कर दिया। सब योद्धा पुकार-पुकारकर कह रहे थे- न मारो, न मारो। अर्जुन तो रथसे उतरकर उसके पीछे दौड़ पड़े

और बाँह उठाकर बारंबार कहने लगे- आचार्यको जीवित ही उठा लाओ, मारो मत। इस प्रकार सब लोग मना करते ही रह गये, परंतु उस नृशंसने तुम्हारे पिताको मार ही डाला। उनके मारे जानेपर हमारा उत्साह भी जाता रहा।

यह सुनकर अश्वत्थामा पहले तो रो पड़ा, उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे; मगर फिर वह रोषसे भर गया, उसका सारा शरीर क्रोधसे तमतमा उठा। बारंबार आँखोंसे आँसू पोंछता हुआ वह दुर्योधनसे बोला, राजन्। मेरे पिताने हथियार डाल दिया था, तो भी उन नीचोंने उन्हें मरवा डाला। इन धर्मध्वजियोंका किया हुआ पाप आज मुझे मालूम हो गया। युधिष्ठिरने भी जो नीचतापूर्ण क्रूर कर्म किया है, उसे भी सुन लिया। मेरे पिता रणमें मृत्युको प्राप्त होकर अवश्य ही वीरोंके लोकमें गये हैं, अत: उनके लिये मुझे शोक नहीं है। किंतु धर्ममें प्रवृत्त रहनेपर भी जो उनका केश पकड़ा गया, सब सैनिकोंके सामने उनका अपमान किया गया- यही मेरे मर्मस्थानोंको छेदे डालता है। मुझ-जैसे पुत्रके जीवित रहते भी उन्हें यह दिन देखना पड़ा। दुरात्मा धृष्टद्युम्नने मेरा अपमान करके जो यह महान् पाप किया है, इसका भयंकर परिणाम उसे जल्दी ही भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिरभी कितना झूठा है। उसने बहुत बड़ा अन्याय करके छलसे मेरे पिता का हथियार डलवा दिया है। अत: आज यह पृथ्वी उस धर्मराज कहलानेवालोका रक्तपान करेगी। आज मैं अपने सत्य तथा इष्टापूर्त्त कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि सम्पूर्ण पाञ्चालोंका संहार किये बिना मैं कदापि जीवित नहीं रहूँगा। हर तरहके उपायोंसे पाञ्चालोंके नाशका प्रयत्न करूँगा। कोमल या कठोर कर्म करके भी पापी धृष्टद्युम्नका नाश कर डालूँगा। पाञ्चालोंका सर्वनाश किये बिना मैं शान्ति नहीं पा सकूँगा। संसारके लोग पुत्रकी चाह इसीलिये करते हैं कि वह इहलोक तथा परलोकमें महान् भयसे पिताकी रक्षा करेगा। परंतु मैं जीवित ही हूँ और मेरे पिताकी पुत्रहीनकी-सी दुर्दशा हुई है। धिक्कार है मेरे दिव्य अस्त्रोंको, धिक्कार है मेरी इन भुजाओं और पराक्रमको, जो कि मेरे-जैसे पुत्रको पाकर भी मेरे पिताका केश खींचा गया। मैं परलोकवासी पिताके ऋणके उऋण हो जाऊँ। श्रेष्ठ पुरुषको अपनी प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिये; तथापि अपने पिताका वध मुझसे सहा नहीं जाता, इसलिये अपना पौरुष कहकर सुनाता हूँ। आज श्रीकृष्ण और पाण्डव मेरा पराक्रम देखें, उनकी सम्पूर्ण सेनाको मिट्टीमें मिलाकर प्रलयका दृश्य उपस्थित कर दूँगा। आज मुझे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी नहीं जीत सकते। संसारमें मुझसे या अर्जुनसे बढ़कर दूसरा कोई अस्त्रवेत्ता नहीं है। मैं एक ऐसा अस्त्र जानता हूँ जिसे न श्रीकृष्ण जानते हैं, न अर्जुन। भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकिको भी उसका ज्ञान नहीं है। पूर्वकाल की बात है, मेरे पिताने भगवान् नारायणको नमस्कार करके उनकी विधिवत् पूजा की थी। भगवान्ने उनका पूजन स्वीकार किया और वर माँगनेको कहा। पिताने उनसे सर्वोत्तम नारायणास्त्रकी याचना की। तब भगवान् बोले, मैं यह अस्त्र तुम्हें देता हूँ, अब युद्धमें तुम्हारा मुकाबला करनेवाला कोई नहीं रह जायगा। किंतु ब्रह्मन। इसका सहसा प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह अस्त्र शत्रुका नाश किये बिना नहीं लौटता। अवध्यका भी वध कर डालता है। इसको शान्त करनेके उपाय ये हैं- शत्रु अपना रथ छोड़कर उतर जाय, हथियार नीचे डाल दे और हाथ जोड़कर इसकी शरणमें चला जाय। और किसी उपायसे इसका निवारण नहीं होता। यह कहकर उन्होंने अस्त्र दिया और मेरे पिताने उसे ग्रहण करके मुझे भी सिखा दिया था। भगवान्ने अस्त्र देते समय यह भी कहा था कि तुम इस अस्त्रसे अनेकों प्रकारके दिव्यास्त्रोंका नाश कर सकोगे और संग्राममें बड़े तेजस्वी दिखायी दोगे। ऐसा कहकर भगवान् अपने परम धामको चले गये। यह नारायणास्त्र मुझे अपने पितासे मिला है। इसके द्वारा मैं युद्धमें पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य और केकयोंको मार भगाऊँगा। पाण्डवोंको अपमानित करके अपने सम्पूर्ण शत्रुओंका विध्वंस कर डालूँगा। ब्राह्मण और गुरुसे द्रोह करनेवाले पाञ्चालकुलकलम धृष्टद्युम्नको भी आज जीवित नही छोड़ूँगा।

अश्वत्थामाने कहा, मेरे पितापर प्रसन्न होकर भगवान नारायणने उन्हें अपना अमोघ अस्त्र दिया था। वह नारायणास्त्र

पिताने केवल मुझे दिया है। इसे सात्यकि, अर्जुन तो क्या, श्रीकृष्ण भी नहीं जानते। मैं इसका प्रयोग करके पाण्डवोंका अभी नाश कर दूँगा। केवल कर्ण अश्वत्थामाकी इस डींगसे प्रभावित नहीं हुआ। वह चुप था। कौरव सब प्रसन्न हो गये। अज्ञ अश्वत्थामा- उसे कहाँ पता था कि श्रीकृष्ण स्वयं ही नारायणास्त्रके अधिदेव हैं। उसे निष्प्रभाव करना उनके लिए कठिन हो नहीं सकता। अश्वत्थामाके वचन सुनकर कौरव सेनामें उत्साह छा गया। वहाँ नगाड़े गूँजने लगे।

अश्वत्थामाकी बात सुनकर कौरवोंकी भागती हुई सेना लौट पड़ी। सभी महारथियोंने बड़े-बड़े शंख बजाने शुरु किये। भेरी बज उठी, हजारों नगारे पीटे जाने लगे। उन बाजोंकी तुमुल ध्वनिसे आकाश ओर पृथ्वी गूँज उठी। मेघकी गम्भीर गर्जनाको सुनकर पाण्डव महारथी एकत्र हो परामर्श करने लगे। इसी बीचमें अश्वत्थामाने आचमन करके दिव्य नारायणास्त्रका प्रयोग कर दिया।

द्रुपद मारे गए, विराट ने वीरगति प्राप्त की- तो न आकाश टूटा, न धरती फटी। आचार्य तो लड़ ही विरोधी पक्ष से रहे थे। उनका वध तो होना ही था। कोई भी करता। स्वयं कृष्ण कितनी ही बार उसे आचार्य के वध के लिए प्रेरित कर चुके थे। धर्मराज उसे उपालंभ दे चुके थें भीम उत्तेजित कर चुका था। पर अर्जुन का मन था कि मानता ही नहीं था। वह आचार्य का वध कैसे कर सकता था। निश्चय ही आचार्य को भी पूर्ण विश्वास रहा होगा कि कुछ भी हो जाए, अर्जुन उनका वध नहीं करेगा। पर क्या हुआ उस विश्वास का और क्या हुआ अर्जुन के संकल्प का।

भीम की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी वह दुख और क्षोभ में डूबा बैठा था। उसकी आँखों में अश्रु आ गए थे। वह धृष्टद्युम्न से लड़ना नहीं चाहता था, किंतु वह उसे क्षमा भी तो नहीं कर पा रहा था।

अर्जुन बोले, जिस वीरने जन्म लेते ही उच्चै:श्रवाके समान हंसना आरम्भ किया था, जिसे सुनकर यह पृथ्वी हिल उठी और तीनों लोक थर्राने लगे थे, उस आवाजको सुनकर किसी अदृश्य रहनेवाले प्राणीने जिसका नाम अश्वत्थामा रख दिया था, यह वही शूरवीर अश्वत्थामा है; वही सिंहनाद कर रहा है। धृष्टद्युम्नने उस समय अनाथके समान जिनके केश पकड़कर मार डाला था, यह उन्हींका पक्ष लेकर उसके क्रूर कर्मका बदला लेनेके लिये आया है। आपने भी राज्यके लोभसे झूठ बोलकर गुरुको धोखा दिया। धर्मको जानते हुए भी यह महान पाप किया। अत: अन्यायपूर्णक वालीका वध करनेके कारण श्रीरामको जैसे अपयश मिला, उसी प्रकार आपके विषयमें भी झूठ बोलकर गुरुको मरवा डालनेका स्थायी कलंक तीनों लोकोंमें फैल जायगा। आचार्यने यह समझा था कि पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, मेरे शिष्य हैं; ये कभी झूठ नहीं बोलेंगे। इसी भरोसे उन्होंने आपका विश्वास कर लिया। परंतु आपने सत्यकी आड़ लेकर सरासर झूठ कहा। हाथी मरा था इसलिये अश्वत्थामाका मरना बता दिया। फिर वे हथियार डालकर अचेत हो गये; उस समय उन्हें जितनी व्याकुलता हुई थी, सो आपने भी देखी ही थी। पुत्रके स्नेहसे शोकमग्न होकर जो रणसे विमुख हो चुके थे, ऐसे गुरुको आपने सनातन धर्मकी अवहेलना करके शस्त्रसे मरवा डाला। अश्वत्थामा पिताकी मृत्युसे कुपित है, धृष्टद्युम्नको आज वह कालका ग्रास बनाना चाहता है। निहत्थे गुरुको अधर्मपूर्वक मरवाकर अब आप अपने मन्त्रियोंके साथ अश्वत्थामाका सामना करने जाइये, शक्ति हो तो धृष्टद्युम्नकी रक्षा कीजिये। मैं तो समझता हूँ, हम सब लोग मिलकर भी धृष्टद्युम्नको नहीं बचा सकते। मैं बार-बार मना करता रहा, तो भी शिष्य होकर इसने गुरुकी हत्या कर डाली। इसकी वजह यह है कि अब हमलोगोंकी आयुका अधिक अंश बीत गया, थोड़ा ही शेष रह गया है; इसीसे हमारा मस्तिष्क खराब हो गया, हमने यह महान् पाप कर डाला। जो सदा पिताकी भाँति हमलोगोंपर स्नेह रखते थे, धर्मदृष्टिसे भी जो हमारे पिता ही थे, उन गुरुदेवको इस क्षणभङ्गुर राज्यके कारण हमने मरवा दिया। धृतराष्ट्रने भीष्म और द्रोणको पुत्रोंके साथ ही सारा राज्य सौंप दिया था। वे

सदा उनकी सेवामें लगे रहते थे। निरन्तर सत्कार किया करते थे। तो भी आचार्य मुझे ही अपने पुत्रसे भी बढ़कर मानते थे। ओह। मैंने बहुत बड़ा और भयंकर पाप किया, जो राज्य-सुखके लोभमें पड़कर गुरुकी हत्या करायी। मेरे गुरुदेवको यह विश्वास था कि अर्जुन मेरे लिये पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, और प्राणोंका भी त्याग कर सकता है। किंतु मैं कितना राज्यका लोभी निकला। वे मारे जा रहे थे और मैं चुपचाप देखता रहा। एक तो वे ब्राह्मण, दूसरे वृद्ध और तीसरे आचार्य थे; इसपर भी उन्होंने अपना शस्त्र नीचे डाल दिया था और महान् मुनिवृत्तिसे बैठे हुए थे। इस अवस्थामें राज्यके लिये उनकी हत्या कराकर अब मैं जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ।

अर्जुनकी बात सुनकर वहाँ जितने महारथी बैठे थे, सब चुप रह गये; किसीने बुरा या भला कुछ भी नहीं कहा। तब महाबाहु भीम क्रोधमें भरकर बोले- पार्थ। वनवासी मुनि अथवा उत्तम व्रतका पालन करनेवाला ब्राह्मणकी भाँति तुम भी धर्मोपदेश करने बैठे हो। जो संकटसे अपनी तथा दूसरोंकी रक्षा करता है, संग्राममें शुत्रओंको क्षति पहुँचाना जिसकी जीविका है, जो स्त्रियों और सत्पुरुषोंपर क्षमाभाव रखता है, वह क्षत्रिय शीघ्र ही धर्म, यश तथा लक्ष्मीको प्राप्त करता है। क्षत्रियके सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त होते हुए आज मूर्खोंकी-सी बातें करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तात। तुम्हारा मन धर्ममें लगा हुआ है, तुम्हारे भीतर दया है- यह बहुत अच्छी बात है। किंतु धर्ममें प्रवृत्त रहनेपर भी तुम्हारा राज्य अधर्मपूर्वक छीन लिया गया, शत्रुओंने द्रौपदीको सभामें लाकर उसका केश खींचा और हम सब लोग वल्कल धारण कर तेरह वर्षके लिये वनमें निकाल दिये गये। क्या हमारे साथ यही बर्ताव उचित था? ये सब बातें सहन करने योग्य नहीं थीं, फिर भी हमने सह लीं। हमने जो कुछ किया है, वह क्षत्रियधर्ममें स्थित रहकर ही किया है। शत्रुओंके उस अधर्मको याद कर आज मैं तुम्हारी सहायतासे उन्हें उनके सहायकोंसहित मार डालूँगा। मैं क्रोधमें भरकर इस पृथ्वीको विदीर्ण कर सकता हूँ। पर्वतोंको तोड़-फोड़कर बिखेर सकता हूँ। अपनी भारी गदाकी चोटसे बड़े-बड़े पर्वतीय वृक्षोंको तोड़ डालूँगा। इन्द्र आदि देवता, राक्षस, असुर, नाग और मनुष्य भी यदि एक ही साथ लड़ने आ जायँ, तो उन्हें बाणोंसे मारकर भगा दूँगा। अपने भाईके ऐसे पराक्रमको जानते हुए भी तुम्हें अश्वत्थामासे भय नहीं करना चाहिये। अथवा तुम सब भाइयोंके साथ यहीं खड़े रहो, मैं अकेला ही गदा हाथमें लेकर शत्रुओंको परास्त करूँगा।

भीमके ऐसा कहनेपर धृष्टद्युम्न बोला, अर्जुन। वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना- ये ही छ: कर्म ब्राह्मणोंके लिये प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे किस कर्मका पालन द्रोणाचार्य करते थे? अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर उन्होंने क्षत्रिय धर्म स्वीकार किया था। ऐसी अवस्थामें यदि मैंने उनका वध किया, तो तुम मेरी निन्दा कर रहे हो? जो ब्राह्मण कहलाकर भी दूसरोंके प्रति मायाका प्रयोग करता है उसे यदि कोई मायासे ही मार डाले, तो इसमें अनुचित क्या है? तुम जानते हो, मेरी उत्पत्ति इसी कामके लिये हुई थी; फिर भी मुझे गुरुहत्यारा क्यों कहते हो? जो क्रोधके वशीभूत हो ब्रह्मास्त्र न जाननेवालोंको भी ब्रह्मास्त्रसे नष्ट करता है, उसे सभी तरहके उपायोंसे क्यों न मार डाला जाय? उन्होंने दूसरेके नहीं, मेरे ही भाइयोंका संहार किया था; अत: उसके बदले उनका मस्तक काट लेनेपर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ है। राजा भगदत्त तुम्हारे पिताके मित्र थे; उन्हें मारकर जैसे तुमने अधर्म नहीं किया, उसी प्रकार मैंने भी धर्मसे ही शत्रुका वध किया है। जब तुम अपने पितामहको भी युद्धमें मारकर धर्मका पालन समझते हो तो मैंने जो पापी शत्रुका संहार किया, उसे अधर्म क्यों मानते हो? बहिन द्रौपदी और उसके पुत्रोंका खयाल करके ही मैं तुम्हारी कठोर बातें सहे लेता हूँ; इसमें और कोई कारण नहीं है। अर्जुन? न तो तुम्हारे बड़े भाई असत्यवादी हैं और न मैं पापी। द्रोणाचार्य अपने ही अपराधके कारण मारे गये हैं; अत: चलकर युद्ध करो।

धृतराष्ट्र बोले, संजय। जिन महात्माने अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था, जिनमें साक्षात् धनुर्वेद प्रतिष्ठित था,

उन आचार्य द्रोणकी वह नीच, नृशंस एवं गुरुघाती धृष्टद्युम्न निन्दा करता रहा और किसी क्षत्रियने उसपर क्रोध नहीं किया? धिक्कार है इस क्षत्रियपनको। बताओ, वह अनुचित बात सुनकर पाण्डव तथा दूसरे धनुर्धर राजाओंने धृष्टद्युम्नसे क्या कहा? संजयने कहा- महाराज। उस समय अर्जुनने द्रुपदकुमारकी ओर तिरछी नजरसे देखा और आँसू बहाते हुए उच्छ्वास लेकर कहा- धिक्कार है। धिक्कार है। उस समय युधिष्ठिर, भीम, नकुल-सहदेव तथा श्रीकृष्ण आदि सब लोग संकोचवश चुप हो गये। केवल सात्यकिसे नहीं रहा गया, वह बोल उठा- अरे। क्या यहाँ ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जो अमङ्गलमयी बात बकनेवाले इस पापी नराधमको शीघ्र ही मार डाले? ओ नीच। श्रेष्ठ पुरुषोंकी मण्डलीमें बैठकर ऐसी ओछी बातें करते तुझे लज्जा नहीं आती? तेरी जीभके सैकड़ों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते? तेरा मस्तक क्यों नहीं फट जाता? गुरुकी निन्दा करते समय तू रसातलमें क्यों नहीं चला जाता? स्वयं ऐसा नीच कर्म करके उल्टे गुरुपर ही दोषारोपण करता है? तुझे तो मार ही डालना चाहिये। क्षणभर भी तेरे जीवित रहनेसे संसारका कोई लाभ नहीं है। तेरे सिवा दूसरा कौन ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य है, जो धर्मात्मा गुरु का केश पकड़कर उसका वध करनेको तैयार होगा? तूने बीती तथा आगे होनेवाली अपनी सात-सात पीढ़ियोंको नरकमें डुबो दिया। अब यदि पुन: मेरे समीप ऐसी बात मुँहसे निकालेगा, तो वज्रके समान गदा मारकर तेरा सिर उड़ा दूँगा। तू हत्यारा है, तुझे ब्रह्महत्याका पाप लगा है; इसलिये लोग तुझे देखकर प्रायश्चित्तके लिये सूर्यनारायणका दर्शन करते हैं।

इस प्रकार जब सात्यकिने द्रुपदकुमारका तिरस्कार किया, तो उसने भी क्रोधमें भरकर उसकी मखौल उड़ाते हुए कहा, सुन ली, सुन ली तेरी बात; और इसके लिये तुझे क्षमा भी करता हूँ। तेरे जैसे नीच लोगोंका सत्पुरुषोंपर आक्षेप करनेका स्वभाव ही होता है। यद्यपि संसारमें क्षमाकी बड़ी प्रशंसा की जाती है, तथापि पापीके प्रति क्षमा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह क्षमा करनेवालेको पराजित समझता है। तू सिरसे पैर तक दुराचारी, नीच और पापी है; स्वयं निन्दाके योग्य होकर भी दूसरोंकी निन्दा करना चाहता है। भूरिश्रवाका हाथ कट गया था, वह प्राणान्त अनशनका व्रत लेकर बैठा था; उस समय तूने सबके मना करनेपर भी जो उसका मस्तक काट लिया, इससे बढ़कर पाप और क्या हो सकता है? जो स्वयं ऐसा काम करे, वह दूसरोंको क्या कहेगा? तू बड़ा धर्मात्मा पुरुष था तो जब भूरिश्रवा तुझे लात मार जमीनपर पटककर घसीटने लगा, उस समय ही तूने क्यों न उसका वध किया? स्वयं पापी होकर मुझसे क्यों कठोर बातें कह रहा है? अब चुप रह, फिर कोई ऐसी बात मुँहसे न निकालना, नहीं तो बाणोंसे मारकर अभी तुझे यमलोक भेज दूँगा। चुपचाप युद्ध कर, कौरवोंके साथ ही प्रेतलोकमें जानेका उपाय न कर।

धृष्टद्युम्नके ऐसे कठोर वचन सुनकर सात्यकि क्रोधसे काँप उठा, उसकी आँखें लाल हो गयीं। हाथमें गदा ले उछलकर वह द्रुपदकुमारके सामने जा पहुँचा और बोला- अब मैं कोई कड़ी बात न कहकर केवल तुझे मार डालूँगा; क्योंकि तू इसीके योग्य है। इस प्रकार महाबली सात्यकिको धृष्टद्युम्नपर सहसा टूटते देख कृष्णके इशारेसे भीम अपने रथसे कूद पड़े और अपनी दोनों बाहोंसे सात्यकिको रोका, पर वह बलपूर्वक आगे बढ़ गया। भीमने दौड़कर सात्यकिको पकड़ा और अपने दोनों पैर जमाकर खड़े हो किसी प्रकार उसे काबूमें किया। इतनेहीमें सहदेव भी अपने रथसे कूदकर आ पहुँचा और बोला- नरश्रेष्ठ। अन्धक, वृष्णि तथा पाञ्चालोंसे बढ़कर हमारा कोई मित्र नहीं है। तुमलोग जैसे हमारे मित्र हो, वैसे हम भी तुम्हारे हैं। तुम तो सब धर्मोंके ज्ञाता हो, मित्रधर्मका खयाल करके अपने क्रोधको रोको। तुम धृष्टद्युम्नके अपराधको क्षमा करो और धृष्टद्युम्न तुम्हारे।

दोनों वीर अपनी-अपनी जगहपर साँड़के समान गरज रहे थे। यह देख श्रीकृष्ण और अर्जुन तुरंत ही बीचमें आ पड़े और बड़े यत्नसे उन्होंने उन दोनोंको शान्त किया। इस प्रकार क्रोधसे आँखें लाल किये उन दोनों धनुर्धर वीरोंको आपसमें लड़नेसे रोककर पाण्डव-पक्षके क्षत्रिय योद्धा शत्रुओंका सामना करनेके लिये आ डटे। अश्वत्थामाके उत्साह देखनेसे कौरव युद्ध करने आ गये थे। अश्वत्थामाके नारायणास्त्रसे सहस्त्र-सहस्त्र प्रज्वलित बाण, गोले, चक्र, गदा आदि प्रकट होकर

आकाशमें छा गये। इससे पाण्डव सेना भस्म होने लगी। अर्जुन अब भी उदासीन खड़े थे।

पाण्डव सशंक हो गये थे। आचार्यके वधसे दु:खी अर्जुन धर्मराज युधिष्ठिरकी भर्त्सना कर रहे थे। वे अपनेको भी धिक्कार रहे थे कि उनके देखते-देखते आचार्यका मस्तक काटा गया। केवल भीम क्रुद्ध थे। धृष्टद्युम्न तो अपना कर्म उचित ही मानता था। सात्यकि उसे डांटने लगे तो दोनोंमें विवाद हो गया। दोनों परस्पर मरने-मारनेपर उतर आये। श्रीकृष्ण-अर्जुनको मध्यमें पड़कर उन्हें शान्त करना पड़ा।

युधिष्ठिर यह देखकर बहुत दु:खी हुए। उन्होंने पुकारकर कहा- धृष्टद्युम्न। तुम पांचालोंकी सेनाके साथ भाग जाओ। सात्यकि। तुम भी यादवोंके साथ चल दो। मेरे आश्रय तो एकमात्र श्रीकृष्ण हैं। उनसे जो कुछ हो सकेगा, करेंगे। वे सम्पूर्ण जगतका कल्याण ही करते हैं तो अपने आश्रितोंकी उपेक्षा कैसे करेंगे। मैंने सदा ही अपनी कल्याण-कामना करनेवाले आचार्यका वध करवाया है, अत: अर्जुनकी मेरे प्रति जो शुभकामना है, उसे शीघ्र अग्नि-प्रवेश करके मैं पूरी करूँगा। मेरे भाई भी मेरे साथ अब भस्म होने जा रहे हैं।

फिर कौरव और पाण्डवोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। हजारों शंख और भेरियाँ बज उठीं। इसी समय अश्वत्थामाने पाण्डवों तथा पाञ्चालोंकी सेनाको लक्ष्य करके नारायणास्त्रका प्रयोग किया था। उससे हजारों बाण निकलकर आकाशमें छा गये, उन सबके अग्रभाग प्रज्वलित हो रहे थे। उनसे अन्तरिक्ष और दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। फिर लोहेके गोले, चतुश्चक्र, द्विचक्र, शतघ्नी, गदा और जिसके चारों ओर छुरे लगे हुए थे, ऐसे सूर्यमंडलाकार चक्र प्रकट हुए। इस प्रकार नाना प्रकारके शस्त्रोंसे आकाशको व्याप्त देख पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय घबरा उठे। पाण्डव महारथी ज्यों-ज्यों युद्ध करते, त्यों-त्यों उस अस्त्रका जोर बढ़ता जाता था। उससे पाण्डवसेना भस्म होने लगी। यह संहार देख धर्मराजको बड़ा भय हुआ। उन्होंने देखा- मेरी सेना अचेत-सी होकर भाग रही है और अर्जुन उदासीन भावसे चुपचाप खड़े हैं, तो सब योद्धाओंसे कहा- धृष्टद्युम्न। पाञ्चालोंकी सेनाके साथ तुम भाग जाओ। सात्यकि। तुम भी वृष्णि और अन्धकोंके साथ चल दो। अब धर्मात्मा श्रीकृष्णसे जो कुछ हो सकेगा, करेंगे। ये सारे जगत्के कल्याणका उपदेश देते हैं, तो अपना क्यों नहीं करेंगे? मैं सम्पूर्ण सैनिकोंसे कह रहा हूँ, कोई भी युद्ध न करो। भाइयोंको साथ लेकर मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। अर्जुनकी मेरे प्रति जो कामना है, वह शीघ्र ही पूरी हो जानी चाहिये; क्योंकि सदा ही अपना कल्याण करनेवाले आचार्यका मैंने वध करवाया है। अत: उनके लिये मैं भी बन्धुओंसहित मर जाऊँगा।

अश्वत्थामाके नारायणास्त्रका प्रयोग करते ही आकाश मेघाच्छन्न हो उठा। प्रचण्ड पवन चलने लगा। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया और समुद्र उद्वेलित हो उठा। पर्वतोंके शिखर टूट टूटकर गिरने लगे।

संजय कहते हैं- महाराज। नारायणास्त्रके प्रकट होते ही मेघसहित पवनके झकोरे उठने लगे। बिना बादलोंके ही गर्जना होने लगी, पृथ्वी डोल उठी, समुद्रमें तूफान आ गया और बड़ी-बड़ी नदियोंकी धारा उल्टी दिशाकी ओर बहने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। उस घोर अस्त्रको देखकर देवता, दानव और गन्धर्वोंपर भारी आतम छा गया; समस्त राजालोग भयसे थर्रा उठे। कौरव-सेनाका तुमुल नाद सुनकर युधिष्ठिर अर्जुनसे बोले- धनंजय। धृष्टद्युम्नके द्वारा आचार्य द्रोणके मारे जानेपर कौरव बहुत उदास हो विजयकी आशा छोड़ चुके थे और अपनी-अपनी जान बचानेके लिये भागे जा रहे थे।

इसी समय श्रीकृष्णने दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उच्च स्वरमें सबको सम्बोधित किया- सब योद्धा मेरी बात सुनें। अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दो और वाहनोंसे उतर जाओ। वाहनहीन, शस्त्रहीनपर नारायणास्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता। भूमिपर खड़े निहत्थे लोगोंको यह अस्त्र नहीं मारेगा। यदि कोई युद्ध करेगा तो प्रतिकारसे इसका तेज प्रचण्ड होता जायगा। जो इसका

मनमें भी सामना करना चाहेंगे, वे कहीं भी जायँ, यह उन्हें भस्म किये बिना नहीं छोड़ेगा।

तभी कृष्ण अपनी सेना की ओर घूमे और उच्च स्वर में आदेश देते हुए बोले, सैनिकों। अश्वत्थामा और उसके इस अस्त्र का विरोध मत करो। अपने अस्त्र-शस्त्र डाल दो और अपने वाहनों से नीचे उतर आओ। भूमि पर नि:शस्त्र खड़े हो जाओ। मन में विरोध मत रखो। हिंस्र भावों का त्याग कर दो। मन में श्रद्धा लाओ। यह नारायणास्त्र है। प्रभु का अंश मानकर इस अस्त्र को नमस्कार करो। प्रेम भाव से अस्त्र का स्वागत करो।

श्रीकृष्णकी बात सुनते ही योधाओंने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और वाहनोंसे उतरकर भूमिमें खड़े हो गये। अकेले भीमको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने सिंह-गर्जना की- कोई क्षत्रिय युद्धमें प्राण रहते अस्त्र त्याग दे, यह उचित नहीं है। अपने वाहनोंपर बैठे रहो। अस्त्र-शस्त्र उठाये रहो। मैं अपनी गदासे इस अस्त्रको नष्ट करूँगा।

जब भीम इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय श्रीकृष्णने दोनों भुजाएँ उठाकर सबको रोका और इस प्रकार कहा- योद्धाओं। अपने हथियार शीघ्र ही नीचे डाल दो और सवारियोंसे उतर जाओ; नारायणास्त्रकी शान्तिका यही उपाय बताया गया है। भूमि पर खड़े हुए निहत्थे लोगोंको यह अस्त्र नहीं मारेगा। इसके विपरीत, ज्यों-ही-ज्यों योद्धा इसके अस्त्रके सामने युद्ध करेंगे, त्यों-ही-त्यों कौरव अधिक बलवान होते जायँगे। जो इस अस्त्रका सामना करनेके लिये मनमें विचार भी करेंगे, वे रसातलमें चले जायँ तो भी यह अस्त्र उन्हें मारे बिना नहीं छोड़ेगा।

कृष्णकी बातें सुनकर सब योद्धाओंने हाथसे और मनसे भी शस्त्र त्याग देनेका विचार कर लिया। सबको अस्त्र त्यागनेके लिये उद्यत देख भीमने कहा- वीरों। कोई भी अस्त्र न फेंकना। मैं अपने बाणोंसे अश्वथामाके अस्त्रोंका वरण करूँगा। इस भारी गदासे उसके अस्त्रोंका नाश करके मैं उसके ऊपर भी कालकी भाँति प्रहार करूँगा। यदि इस नारायणास्त्रका मुकाबला करनेके लिये अबतक कोई योद्धा समर्थ नहीं हुआ, तो आज कौरव-पाण्डवोंके देखते-देखते मैं इसका सामना करूँगा। अर्जुन। अर्जुन। तुम अपने गाण्डीवको नीचे न डाल देना; नहीं तो चन्द्रमाकी भाँति तुममें भी कलम लग जायगा, जो तुम्हारी निर्मलताको नष्ट कर देगा।

उधर भीम की घोषणा सुनाई दी, हम शस्त्रसमर्पण नहीं करेंगे। कोई भी योद्धा शस्त्र न त्यागे। मैं अश्वत्थामा से भयभीत नहीं हूँ। तुम्हें भी उससे डरने का कोई कारण नहीं है। मैं उसके इस अस्त्र का निवारण करूँगा। इस एक अस्त्र के कारण हम शत्रु के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। यदि इस अस्त्र निवारण करनेवाला कोई योद्धा संसार में नहीं है, तो भी मैं इसका सामना करूँगा। अर्जुन। कहीं तुम अपना गांडीव मत डाल देना नहीं तो तुम्हारा निर्मल यश कलंकित हो जाएगा। तुम आज तक अजेय रहे हो। आज शत्रुओं के सामने अपना गांडीव समर्पित कर सदा के लिए अपयश मत मोल लेना। कृष्ण कुछ भी कहे, हम पराजित नहीं हुए हैं। हम शस्त्र समर्पित नहीं करेंगे।

अर्जुन ने ऊँचे स्वर में कहा, नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मण के सामने मेरा गांडीव नहीं उठता। मझले भैया। गौ, ब्राह्मण, साधु और नारायणास्त्रके सम्मुख अस्त्र-शस्त्र न उठानेका तो मैंने नियम कर रखा है।

रथमें ही धनुष, त्रोण रखकर अर्जुन भी नीचे आ गये। श्रीकृष्ण भी रथसे उतर गये। अकेले भीम गदा उठाये सिंह गर्जन कर रहे थे। वे अश्वत्थामाके सम्मुख पहुँचकर उसपर बाण-वृष्टि करने लगे। अश्वत्थामाने हँसकर उनसे बात की। जैसे वायुके झोंकेसे अग्नि बढ़ती है, भीमके प्रतिकारसे वह अस्त्र प्रचण्डतर होने लगा। उसका समस्त तेज भीमपर केन्द्रित हो गया क्योंकि पूरी पाण्डव सेनाके दूसरे सब लोग शस्त्र त्यागकर भूमिपर खड़े थे। भीम उस तेजसे आच्छादित होकर अदृश्य

प्राय हो गये। रथ, सारथी, अश्व सब दावाग्निसे घिरे पशुके समान उस अस्त्रतेजसे घिर गये।

भीम ने अपने सारथी को संकेत किया और उसका रथ अश्वत्थामा के रथ की ओर दौड़ पड़ा। भीम ने अपने चारों ओर नहीं देखा। उसको केवल और केवल अश्वत्थामा ही दिखाई दे रहा था- जैसे आज समरभूमि में और कोई योद्धा ही न हो। भीम उसका यह दर्प सहन नहीं कर सकता।

अर्जुन बोले- नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणोंके सामने अपने अस्त्रको नीचे डाल देनेका मेरा व्रत है। अर्जुनके ऐसा कहनेपर भीम अकेले ही मेघके समान गर्जना करते हुए अश्वत्थामाके सामने गये और उसपर बाण समूहोंकी वर्षा करने लगे। अश्वत्थामाने भी उनसे हँसकर बातकी और उनपर नारायणास्त्रसे अभिमन्त्रित बाणोंकी झड़ी लगा दी। भीम जब उस अस्त्रके सामने बाण मारने लगे, उस समय जैसे हवाका सहारा पाकर आग प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार उस अस्त्रका वेग बढ़ने लगा। उसे बढ़ते देख भीमके सिवा पाण्डव सेनाके सभी सैनिक भयभीत हो गये। सब लोग अपने दिव्य अस्त्रोंको नीचे डालकर रथ, हाथी और घोड़े आदि वाहनोंसे उतर गये। अब वह महाबली अस्त्र सब ओरसे हटकर भीमके मस्तकपर आ पड़ा। उसके तेजसे आच्छादित होकर भीम अदृश्य हो गये। इससे सभी प्राणी और विशेषत: पाण्डवलोग हाहाकार मचाने लगे। भीमके साथ ही उनके रथ, घोड़े और सारथि भी अश्वत्थामाके अस्त्रसे आच्छादित हो आगके भीत आ पड़े। जैसे प्रलयकालें संवर्तक अग्नि सम्पूर्ण चराचर जगत्को भस्म करके परमात्माके मुखमें प्रवेश कर जाती है, उसी प्रकार उस अस्त्रने भीमको दग्ध करनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। उसका तेज भीमके भीतर प्रविष्ट हो गया। यह देख अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों वीर तुरंत ही रथसे कूद पड़े और भीमकी ओर दौड़े। वहाँ पहुँचकर दोनों उस अस्त्रकी आग में घुस गये, किंतु अस्त्र त्याग देनेके कारण वह आग इन्हें जला न सकी। नारायणास्त्रकी शान्तिके लिये दोनों ही भीमको तथा उनके सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंको जोर लगाकर खींचने लगे। उनके खींचनेपर भीम और जोरसे गर्जना करने लगे; इससे वह भयंकर अस्त्र और भी उग्ररूप धारण करने लगा।

वह अग्नि में घिरता जा रहा है। वह उस अस्त्र का निवारण करने के लिए जैसे-जैसे बाण मारता जा रहा था, वैसे-वैसे ही वह अस्त्र प्रचंड होता जा रहा था। उसका ताप बढ़ता जाता था और सारी दिशाओं में ज्वाला फैलती जा रही थी, जैसे भीम ने बाण न मारा हो, पवन का वेग बढ़ाया हो। उसने एक बार मुड़कर देखा, पांडव सेना ने अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिए थे और उनमें से अधिकांश लोग अपने रथ, गज और अश्व छोड़कर भूमि पर खड़े हो गए थे। जो भूमि पर नहीं भी उतरे थे, वे जैसे अपने मानसिक द्वंद्व से जड़ हो चुके थे। सब किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े थे। युद्ध कोई भी नहीं कर रहा था।

सहसा उसका ध्यान नारायणास्त्र से उत्पन्न उस अग्नि की ओर गया, जो उसके अत्यन्त निकट आ गई थी। उसने उसके चारों ओर अग्नि और धुएँ का एक आवरण-सा बनाकर उसे ढँक लिया था। वह उस अग्नि के पार कुछ भी नहीं देख पा रहा था। अग्नि प्रचंड होती जा रही थी और भीम पांडव सेना से कटता जा रहा था।

कृष्ण बोले, मध्यम। अब ध्यान से मेरी बात सुनो, हठ छोड़ो और मन से क्रोध तथा आक्रोश को भी निकाल फेंको। हमारा विरोध अश्वत्थामा से है, नारायणास्त्र से नहीं। नारायणास्त्र हमारा शत्रु नहीं है। हम नारायण के सम्मुख नमन करते हैं तो इसका अर्थ अश्वत्थामा के सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं है। हम नारायणास्त्र पर प्रहार नहीं करेंगे तो वह हम पर प्रहार नहीं करेगा। वह मैत्री का सम्मान करता है। सारी सेना अपने शस्त्र त्याग चुकी है। सबने इस अस्त्र के प्रति अपनी मैत्री दर्शाई है। नारायणास्त्र ने किसी ऐसे योद्धा का अनिष्ट नहीं किया है, जिसने उसका विरोध नहीं किया है। तुम भी अपना विरोध छोड़ दो, नहीं तो तुम्हें इस अस्त्र से कोई नहीं बचा पाएगा। वे रुके, यदि युद्ध से ही इसे जीता जा सकता तो हम सब भी युद्ध ही कर रहे होते।

श्रीकृष्ण यह देखते ही दौड़े। अर्जुन भी उनके पीछे आये। दोनोंने उस अस्त्रतेजमें प्रवेश करके भीमको पकड़ा। भीम अब भी गर्जना कर रहे थे। इससे अस्त्रतेज उग्र होता जा रहा था। श्रीकृष्णने रथसे भीमको हाथ पकड़कर नीचे खींच लिया। अर्जुनने उनके हाथसे गदा छीनकर रथमें डाल दी। भीमको श्रीकृष्णने अपने शरीरसे छिपाया तो वे सिर झुकाकर खड़े हो गये। उनके शान्त होते ही नारायणास्त्र शान्त हो गया। दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। वायु शीतल चलने लगी।

तब श्रीकृष्णने भीमसे कहा- पाण्डुनन्दन। यह क्या बात है? मना करनेपर भी तुम युद्ध बंद क्यों नहीं करते? यदि इस समय युद्धसे ही कौरव जीते जा सकते तो हम तथा ये सभी राजा युद्ध ही करते। यहाँ हठसे काम नहीं चलेगा। तुम्हारे पक्षके सभी योद्धा रथसे उतर चुके हैं, तुम भी शीघ्र उतर जाओ। यह कहकर श्रीकृष्णने उन्हें रथसे नीचे खींच लिया। नीचे उतरकर ज्यों ही अपना अस्त्र धरतीपर डाला, त्यों ही नारायणास्त्र शान्त हो गया। अब तक भीम की समझ में भी बहुत कुछ आ गया था। उसने अपना धनुष भूमि पर रख दिया। मन को शांत किया और देखा कि नारायणास्त्र का वेग कम होने लगा है। अग्नि उसे चारों ओर से घेरे हुए थी; किंतु न वह उसकी ओर लपक रही थी और न ही भीम को उसके ताप का अनुभव हो रहा था। कृष्ण बोले, आओ। पहले धर्मराज के पास चलें। उन्हें इस समय अकेले छोड़ना उचित नहीं होगा; और फिर नारायणास्त्र के शांत हो जाने से युद्ध समाप्त नहीं हो जाएगा। अश्वत्थामा कोई दूसरा अस्त्र छोड़ेगा।

नारायणास्त्र का तेज शांत हो गया था। लगता था किसी ने वह धधकता हुआ दावानल समेटकर उसे किसी सुरक्षित स्थान पर बंद कर दिया था। वातावरण पर्याप्त निर्मल हो गया था। भीम को लेकर कृष्ण और अर्जुन, धर्मराज के निकट आए। सहसा धृष्टद्युम्न ने कहा, अश्वत्थामा नारायणास्त्र का प्रयोग दूसरी बार भी तो कर सकता है। कृष्ण मुस्कराए, नहीं। पुन: नहीं। दुर्योधन उसको कहेगा, आदेश देगा, आग्रह करेगा, किंतु नारायणास्त्र का प्रयोग दूसरी बार नहीं हो सकता।

दुर्योधन की विचित्र स्थिति थी। नारायणास्त्र का प्रभाव देखकर वह अपनी विजय के विषय में इतना निश्चित हो चुका था कि उसके मन में अपने विजयोत्सव का प्रारूप भी बनने लगा था। पर अकस्मात् ही नारायणास्त्र शांत हो गया और पांडव सेना सुरक्षित ही नहीं बच गई, पुन: रणसज्जित होकर कौरवों के सामने आ गई थी। जो पांचाल अब तक मर चुके होने चाहिए थे, वे कौरवों को मारने के लिए अत्यंत उत्साहित होकर दौड़ते हुए उनकी ओर बढ़ते चले आ रहे थे।

दुर्योधन बोला, तुम इसी अस्त्र का पुन: प्रयोग करो। इस बार उनमें से कोई भी नहीं बच पाएगा।

अश्वत्थामा ने निराशा में सिर हिलाया, नारायणास्त्र की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती।

दुर्योधन को निराशा हुई पता नहीं ये लोग कैसे-कैसे अस्त्र-शस्त्र रखते हैं, जो एक बार तो प्रहार करते हैं और दूसरी बार युद्धक्षेत्र से कहीं दूर भाग जाते हैं। पर यह समय अश्वत्थामा से विवाद करने का नहीं था। इतना तो दुर्योधन समझ ही गया था कि द्रोण के पश्चात् अब द्रोणपुत्र ही उसका सहारा हो सकेगा। आचार्य के मन में पांचालों के लिए जितना वैमनस्य था, आचार्यपुत्र के मन में उससे कम नहीं था। आचार्य अपने अपमान से पीड़ित थे; तो आचार्यपुत्र अपने पिता के अपमानजनक वध से। दुर्योधन बोला, पर गुरुपुत्र। तुम्हारी क्षमता का अंत नहीं है। तुम्हारे पास दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों का कोई अभाव तो है नहीं। मुझे तो लगता है कि सारे देवास्त्र या तो भगवान शंकर में प्रतिष्ठित हैं या फिर तुममें। यदि तुम मारने पर ही आ जाओ तो तुमसे देवराज इंद्र भी बचकर नहीं जा सकते। शस्त्रास्त्रों के क्षेत्र में तो तुम स्वयं भगवान शंकर के समकक्ष हो। इस प्रकार उस दु:सह तेजसे शान्त हो जानेपर सम्पूर्ण दिशाएँ साफ हो गयीं, ठंडी हवा चलने लगी तथा पशुपक्षियोंका कोलाहल बंद हो गया। हाथी और घोड़े आदि वाहन भी सुखी हो गये। पाण्डवोंकी जो सेना मरनेसे बच गयी

थी, वह अब कौरवोंकी सेनाका नाश करनेके लिये पुन: हर्षसे भर गयी। उस समय दुर्योधनने द्रोणपुत्रसे कहा- अश्वत्थामन्। एक बार फिर इस अस्त्रका प्रयोग करो; देखो, यह पाञ्चालोंकी सेना विजयकी इच्छासे पुन: संग्रामभूमिमें आकर डट गयी है। दुर्योधन के ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा दीनतापूर्ण उच्छ्वास लेकर बोला- राजन्। इस अस्त्रका दुबारा प्रयोग नहीं हो सकता। दुबारा प्रयोग करनेपर यह अपने ही ऊपर आकर पड़ता है। श्रीकृष्णने इसे शान्त करनेका उपाय बता दिया, नहीं तो आज सम्पूर्ण शत्रुओंका वध हो ही जाता। दुर्योधनने कहा- तुम तो सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो; यदि इस अस्त्रका दो बार प्रयोग नहीं हो सकता तो अन्य अस्त्रोंसे ही इनका संहार करो; क्योंकि ये सभी गुरुदेव द्रोणके हत्यारे हैं। तुम्हारे पास बहुत-से दिव्यास्त्र हैं; यदि मारना चाहो तो क्रोधमें भरे हुए इन्द्र भी तुमसे बचकर नहीं जा सकते।

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर पूरे वेग से आक्रमण किया था; किंतु धृष्टद्युम्न उससे तनिक भी आतंकित नहीं था। धृष्टद्युम्न का धनुष कुछ अधिक ही गतिशील हो उठा था। द्रोण के वध के पश्चात् भी उसे स्मरण था कि उसने किस शपथ को ग्रहण कर द्रुपद के घर यज्ञकुंड में से जन्म लिया था। वह शपथ तो पूरी हुई, किंतु अभी सारा वैर नहीं चुका था। द्रोण ने उसके पिता, भाइयों और पुत्रों का वध कर दिया था। उसका प्रतिशोध तो अभी शेष था। अश्वत्थामा मान रहा था कि उसे धृष्टद्युम्न से अपना प्रतिशोध लेना है। उसके ध्यान में यह बात नहीं आ रही थी कि अभी तो धृष्टद्युम्न को भी अपना शेष प्रतिशोध लेना है।

पिताकी मृत्यु याद आ जानेसे अश्वत्थामा पुन: क्रोधमें भरकर धृष्टद्युम्नकी ओर दौड़ा। निकट पहुँचकर उसने बाणोंसे उसे घायल किया। धृष्टद्युम्नने भी बाण मारकर अश्वत्थामाको बींध डाला। अश्वत्थामा बोला, मैं अपने सत्य और तपस्याकी शपथ खाकर कहता हूँ, समस्त पाञ्चालोंका नाश किये बिना चैन नहीं लूँगा। तुम पाण्डवों और वृष्णियोंकी जितनी भी सेना हो, सबको एकत्रित करलो; तो भी मैं सोमकोंका संहार कर ही डालूँगा।

यह देख सारथी उसे अश्वथामाके सामनेसे अन्यत्र हटा ले गया। तदनन्तर अर्जुन, भीम, बृहत्क्षत्र, चेदिराजकुमार, सुदर्शन ये पाँच महारथी आ पहुँचे और सबने चारों ओरसे अश्वत्थामाको घेर लिया।

यह देखकर भीमके क्रोधकी सीमा न रही, उन्होंने सैकड़ों बाणोंसे अश्वत्थामाको ढक दिया। परंतु अश्वत्थामाने अपने सायकोंसे उनकी बाणवर्षाका नाश कर दिया और क्रोधमें भरकर उन्हें भी घायल किया। उस युद्धमें कौरवोंको भीमके अद्भुत पराक्रम, अद्भुत बल, अद्भुत वीरता, अद्भुत प्रभाव तथा अद्भुत व्यवसायका परिचय मिला। उन्होंने द्रोणपुत्रका वध करने की इच्छासे बाणोंकी बड़ी भयंकर वृष्टि की। इधर अश्वत्थामा भी बड़ा भारी अस्त्रवेत्ता था, उसने अस्त्रोंकी मायासे उनकी बाणवर्षा रोक दी और उनका धनुष काट डाला; फिर क्रोधमें भरकर अनेकों बाणोंसे उन्हें घायल किया। धनुष कट जानेपर भीमने भयंकर रथशक्ति हाथमें ली और उसे बड़े वेगसे घुमाकर अश्वत्थामाके रथपर चलाया; किंतु उसने तेज बाण मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

विजयी अश्वत्थामा हर्षमें भरकर शफबजाने लगा और पाञ्चाल योद्धा तथा भीम भयभीत होकर इधर-उधर भाग निकले।

धृष्टद्युम्न के बाणों ने अश्वत्थामा को बींध दिया था। आज धृष्टद्युम्न के उत्साह का अंत नहीं था। उसने मन-ही-मन में संकल्प किया था कि आज अश्वत्थामा के वध के पश्चात् ही उसके युद्ध की समाप्ति होगी। उसने अश्वत्थामा के मस्तक पर बाणों का प्रहार किया। सात्यकि ने देख लिया था कि धृष्टद्युम्न संकट में है। उसने अपना रथ अश्वत्थामा की ओर बढ़ा दिया। दुर्योधन की दृष्टि अश्वत्थामा पर ही थी। वह अकेला ही पांडवों का काल हो सकता था; किंतु सात्यकि ने यह क्या कर दिया। दुर्योधन अश्वत्थामा की सहायता के लिए दौड़ा।

जिस समय से कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को द्रोण के वध का समाचार दिया था, वे तब से ही अश्वत्थामा के लिए चिंतित थे। वे समझ रहे थे कि अश्वत्थामा अपने पिता की मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाया है। युद्ध में जो मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, वह अपने शत्रु का सामना कर पाता है और वही अपने पक्ष के लोगों का प्रतिशोध भी ले सकता है। जो योद्धा मृत्यु को स्वीकार नहीं कर सकता, वह संतुलित नहीं रह पाता। अश्वत्थामा भी असंतुलित हो गया लग रहा था। वे जानते थे कि वह अधिक से अधिक क्रूर होने का प्रयत्न करेगा। सफलता को अंगीकार करेगा; किंतु असफलता का सामना होते ही उसके मस्तक में विस्फोट हो जाएगा। वे देख रहे थे कि वही हुआ था।

दुर्योधन, कृपाचार्य और कर्ण प्राय: एक साथ ही अश्वत्थामा की सहायता को आए और उन्होंने सात्यकि पर सामूहिक आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न पुन: असहाय हो गया था। अब तो वह पूर्णत: कौरवों की दया पर आश्रित था। जाने क्यों पांडव सेना की ओर से किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं आ रही थी।

अश्वत्थामाने चेदिदेशके युवराज, पुरुवंशी बृहत्क्षत्र और सुदर्शनको मार डाला तथा धृष्टद्युम्न, सात्यकि एवं भीमको भी पराजित कर दिया था- इन कई कारणोंसे विवश होकर अर्जुनने आचार्यपुत्रसे ये अप्रिय वचन कहे थे। उनके तीखे एवं मर्मभेदी वचनोंको सुनकर अश्वत्थामा श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर कुपित हो उठा; वह सावधान होकर रथपर बैठा और आचमन करके उसने आग्नेय अस्त्र उठाया। फिर उसे मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जितने भी शत्रु थे, उन सबको नष्ट करनेके उद्देश्यसे छोड़ा। वह बाण धूमरहित अग्निके समान देदीप्यमान हो रहा था। उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी घनघोर वृष्टि होने लगी। चारों ओर फैली हुई आगकी लपट अर्जुनपर ही आ पड़ी। उस समय राक्षस और पिशाच एकत्रित होकर गर्जना करने लगे। हवा गरम हो गयी। सूर्यका तेज फीका पड़ गया और बादलोंसे रक्तकी वर्षा होने लगी। तीनों लोक संतप्त हो उठे। उस अस्त्रके तेजसे जलाशयोंके गरम हो जानेके कारण उनके भीतर रहनेवाले जीव जलने तथा छटपटाने लगे। दिशाओं, विदिशाओं, आकाश और पृथ्वी- सब ओरसे बाणवर्षा हो रही थी। वज्रके समान वेगवाले उन बाणोंके प्रहारसे शत्रु दग्ध होकर आगके जलाये हुए वृक्षोंकी भाँति गिर रहे थे। बड़े-बड़े हाथी चारों ओर चिग्घारते हुए झुलस-झुलसकर धराशायी हो रहे थे। कुछ भयभीत होकर भाग रहे थे। महाप्रलयके समय संवर्तक नामवाली आग जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंको जलाकर खाक कर डालती है, उसी प्रकार पाण्डवोंकी सेना उस आग्नेय अस्त्रसे दग्ध हो रही थी। यह देख दुर्योधन विजयकी उमंगसे उल्लसित हो सिंहनाद करने लगे। हजारों प्रकारके बाजे बजाये जाने लगे।

अश्वत्थामा पहिले ही बहुत कुपित था। पिताकी मृत्युके कारण और अपने अमोघ अस्त्रके व्यर्थ कर दिये जानेके कारण भी। अब अर्जुनकी चुनौती सुनकर सावधान होकर रथपर बैठ गया। जल लेकर आचमन करके पवित्र हुआ। आग्नेयास्त्रको मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करनेके संकल्पसे उसने वह अस्त्र चलाया।

वह अस्त्र अग्निके समान प्रज्वलित था। छूटते ही उससे सहस्त्रों जलते हुए बाण निकलकर आकाशमें छा गये। चारों ओर धूमरहित आगकी ऊँची लपटें उठने लगीं। उन लपटोंने अर्जुनका रथ घेर लिया। वायु अत्यन्त उष्ण हो गया। दिशाएँ जलने लगीं, जलाशयोंका जल तप्त होकर खौलने लगा।

उस अस्त्रसे असंख्य बाण, दिशा, विदिशा और आकाशमें बरस रहे थे। वे सब बाण सर्वत्र अग्नि फैला रहे थे। मनुष्य, अश्व, हाथी सब चीत्कार करते इधर-उधर दौड़ रहे थे और भस्म होकर गिरते जा रहे थे। ऐसा लगता था कि महाप्रलय प्रारम्भ हो गयी है। दुर्योधन का मन प्रसन्नता से खिल उठा। आचार्यपुत्र के पास बहुत कुछ है। यह पांडवों और पांचालों का सर्वनाश करके ही रहेगा। पहले ही इसका अधिक उपयोग किया गया होता तो कदाचित् यह युद्ध इतना लंबा नहीं

खिंचता। पर जाने क्यों अपने पिता के जीवित रहते अश्वत्थामा ने कभी इन अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया।

अश्वत्थामा पहले ही क्रोध से जल रहा था। आजतक अर्जुन ने उससे इतनी कठोर बातें कहीं थीं। आज अर्जुन उसके प्रति कितना कठोर हो उठा था। उसने तत्काल आग्नेयास्त्र अपने हाथों में लिया। उसे मंत्रों से अभिमंत्रित किया और पांडव सेना पर छोड़ दिया। चारों ओर अग्नि ही अग्नि दिखाई पड़ रही थी। पवन जैसे तपने लगा और आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं। जहाँ-जहाँ पांडव सेना थी, उसे अग्नि ने घेर लिया था।

अर्जुनने देखा कि पाण्डवोंकी सेना भाग रही है, तो द्रोणपुत्रको जीतनेकी इच्छासे स्वयं आगे बढ़कर उसे रोका। फिर वे सोमक तथा मत्स्य राजाओंके साथ कौरवोंकी ओर लौटे। अर्जुनने अश्वत्थामाके पास पहुँचकर कहा- तुम्हारे अंदर जितनी शक्ति, जितना विज्ञान, जितनी वीरता और जितना पराक्रम हो, कौरवोंपर जितना प्रेम और हमलोगोंसे जितना द्वेष हो, वह सब आज हमारेपर ही दिखा लो। धृष्टद्युम्नका या श्रीकृष्णसहित मेरा सामना करने आ जाओ; तुम आजकल बहुत उद्दण्ड हो गये हो, आज मैं तुम्हारा सारा घमंड दूर कर दूँगा।

अर्जुन ने अपनी सेना को इस प्रकार जलते देखा तो उसने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया और उसे आग्नेयास्त्र पर चला दिया।

कौरव हर्षसे सिंहनाद करने लगे थे। अर्जुनका रथ तथा एक अक्षौहिणी सेना उन प्रचण्ड लपटोंमें अदृश्य हो गयी थी। चारों ओर घोर अन्धकर छा गया था। लेकिन अर्जुन अपने रथपर स्वस्थ बैठे थे। उन्होंने अश्वत्थामाके सम्पूर्ण अस्त्रोंके उपशमका संकल्प करके ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। उस समय इतना घोर अन्धकार छा रहा था कि अर्जुन और उनकी एक अक्षौहिणी सेनाको कोई देख नहीं पाता था। अश्वत्थामाने अमर्षमें भरकर उस समय जैसे अस्त्रका प्रहार किया था, पहले न तो कभी देखा था और न सुना ही था। तदनन्तर अर्जुनने अश्वत्थामाके सम्पूर्ण अस्त्रोंका नाश करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो क्षणभरमें ही सारा अन्धकार नष्ट हो गया। ठंड़ी-ठंड़ी हवा चलने लगी, समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं। सहसा वह आग्नेयास्त्र एवं उससे निकले सम्पूर्ण बाण अदृश्य हो गये। दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। वायु शीतल चलने लगा। जलका खौलना समाप्त हो गया, किन्तु पाण्डवोंकी एक अक्षौहिणी सेना इस प्रकार भस्म हो गयी थी कि वहाँ भूमिपर केवल श्वेत भस्म मात्र शेष थी। अश्व, रथ, गज अथवा सैनिकोंके अस्त्र-शस्त्रके चिन्ह भी नहीं बचे थे। लेकिन श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा उनके रथके किसी भागको कोई स्वल्प क्षति भी नहीं हुई थी। ज्वाला शान्त होनेपर नन्दिघोष रथ अपने ध्वजा, पताकादिसे वैसे ही सुशोभित था।

अंधकार दूर हो गया। पवन में शीतलता आ गई। अग्नि की दाहकता समाप्त होने लगी और दिशाएँ जैसे स्वच्छ हो गईं।

अश्वत्थामा ने देखा कि उसके अस्त्र का प्रभाव क्षीण होते-होते समाप्त हो गया है। पर कैसे? उसके अनुमान से तो पांडव सेना अब तक दग्ध हो जानी चाहिए थी; और कृष्ण तथा अर्जुन को भी जलकर समाप्त हो जाना चाहिए था। किंतु कृष्ण और अर्जुन तो उसके सामने खड़े थे। लगता था, उनको तो आँच ने छुवा भी नहीं था।

और सहसा अश्वत्थामा ने अपना धनुष फेंक दिया। वह अपने रथ से कूद पड़ा और एक दिशा में दौड़ता चला गया। भागते हुए भी वह चिल्ला रहा था, धिक्कार है। धिक्कार है। यह सब मिथ्या है।

आश्चर्यका आवेग समाप्त होते ही अश्वत्थामाने अपने हाथका धनुष फेंका और धिक्कार है। धिक्कार है। यह सब मन्त्र, दिव्यास्त्रादि मिथ्या हैं। यह चिल्लाता हुआ युद्धभूमिसे भाग खड़ा हुआ। अब उसमें अर्जुनकी ओर देखनेका भी साहस नहीं रहा था। उसे लगता था कि अब रुका तो अवश्य अर्जुन अपने किसी दिव्यास्त्रसे मार ही देगा।

आप अपने अपराधीको क्षमा कर दे सकते हैं, किन्तु जिसने आपका अपराध किया है, वह आपको क्षमा नहीं करेगा। पापीको उसका पाप ही भयभीत बना देता है। अश्वत्थामाको अपने दिव्यास्त्रोंका अत्यधिक गर्व था। इतने महान् अस्त्रको

निष्प्रभाव देखकर उसे अपनी मृत्युका भय लगा। कृष्ण और अर्जुन को आग्नेय अस्त्रसे मुक्त देख अश्वत्थामा दुखी और हक्का-बक्का सा होकर थोड़ी देरतक सोचता रहा कि यह क्या बात हुई? फिर अपने हाथका धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और धिक्कार है। धिक्कार है। यह सब कुछ झूठा है। ऐसा कहता हुआ वह रणभूमिसे भाग चला। इतने ही में उसे व्यासजी खड़े दिखायी दिये। उन्हें सामने पाकर उसने प्रणाम किया और अत्यन्त दीनकी भाँति गद्‌गद कण्ठसे कहा- भगवन्। इसे माया कहें या दैवकी इच्छा? मेरी समझमें नहीं आता- यह सब क्या हो रहा है। यह अस्त्र झूठा कैसे हुआ? मुझसे कौनसी गलती हो गयी हैं? अथवा यह संसारके किसी उलट-फेरकी सूचना है, जिससे श्रीकृष्ण और अर्जुन जीवित बच गये हैं? मेरे चलाये हुए इस अस्त्रको असुर, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, सर्प, यक्ष तथा मनुष्य किसी प्रकार अन्यथा नहीं कर सकते थे; तो भी यह केवल एक अक्षौहिणी सेनाको ही जलाकर शान्त हो गया। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी तो मरणधर्मा मनुष्य ही हैं, इन दोनोंका वध क्यों नहीं हुआ? पैदल भयाक्रान्त अश्वत्थामा भागता जा रहा था। अचानक भगवान् व्यास सामने मिल गये। उनको प्रणाम करके अत्यन्त दीन स्वरमें उसने पूछा- भगवन्। इसे माया कहें या देवेच्छा, मेरी समझमें कुछ नहीं आता है।

व्यासजीने हँसकर कहा- बात क्या है? तुम इतने व्याकुल क्यों भाग रहे हो?

कृपाचार्य ने उसे सरस्वती के तट पर वेदव्यास के आश्रय में जा पकड़ा। वह महर्षि वेदव्यास के चरणों पर गिरकर रो रहा था, ऋषिवर। मेरे इन अस्त्रों से देवता भी जीवित नहीं बच सकते थे; किंतु कृष्ण और अर्जुन ने उन्हें भी शांत कर दिया। अब मेरा तो इन अस्त्रों पर से विश्वास ही उठ गया है। यदि नारायणास्त्र और आग्नेयास्त्र कुछ नहीं कर सकते तो फिर कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अब मैं अपने पिता के हत्यारे से प्रतिशोध कैसे लूँगा।

अश्वत्थामाने पूछा, मेरे द्वारा प्रयुक्त अमोघ आग्नेयास्त्र केवल एक अक्षौहिणी सेनाको भस्म करके शान्त कैसे हो गया? मैंने उसे समस्त प्रत्यक्ष-परोक्ष शत्रुओंके संहारके संकल्पसे छोड़ा था। मुझसे कोई भूल हुई अथवा संसारके नियमोंमें किसी महान् परिवर्तनकी यह सूचना है? होना तो यह चाहिए था कि सभी पाण्डव सेना सहित भस्म हो जाते; किन्तु अस्त्राग्निके मध्यमें रहकर भी श्रीकृष्ण, अर्जुन अपने रथसहित सुरक्षित कैसे रह गये?

महर्षि ने मुस्कराती आँखों से कृपाचार्य को भी आया हुआ देखा और अश्वत्थामा को स्नेहपूर्वक उठाते हुए बोले, उठो पुत्र। तुमने अपना कर्त्तव्य किया। अस्त्रों ने भी अपना कर्म किया; किंतु जीवन और मृत्यु न तो तुम्हारे हाथ में हैं और न अस्त्र के हाथ में। सबसे अच्छा तो यह है कि प्रतिशोध की भावना त्याग कर मन को निर्मल करो।

भगवान व्यासने कहा, बात बहुत महत्वपूर्ण है। शान्त होकर सुनो। अर्जुनका नन्दिघोष रथ उन्हें अग्निदेवने अश्वोंके साथ दिया था। अग्निदैवत अस्त्रकी ज्वाला उसे कैसे जला देती? तुम्हें इतना भी पता नहीं कि उस रथकी ध्वजापर जो वानर बैठता है, वह कौन है? वे साक्षात् अनिलात्मज-सम्पूर्ण लंका उन्होंने त्रेतामें जला दी और उनका एक रोम भी नहीं जला।

व्यासजी बोले, तू जिसके सम्बन्धमें आश्चर्यके साथ प्रश्न कर रहा है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण विषय है। अपने मनको एकाग्र करके सुन। एक समयकी बात है, हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज विश्व-विधाता भगवान् नारायणने विशेष कार्यवश धर्मके पुत्ररूपमें अवतार लिया था। उन्होंने हिमालय पर्वत पर रहकर बड़ी कठिन तपस्या की। छाछठ हजार वर्षतक केवल वायुका आहार करके अपने शरीरको सुखा डाला। इसके बाद भी उन्होंने इससे दूने वर्षोंतक पुन: बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें दर्शन दिया। विश्वेश्वरकी झाँकी करके नारायण ऋषि आनन्दमग्न हो गये, उनको प्रणाम करके वे बड़े भक्ति-भावसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे- आदिदेव। जिन्होंने इस पृथ्वीमें समाकर आपके पुरातन

सर्गकी रक्षा की थी तथा जो इस विश्वकी भी रक्षा करते हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति भी आपसे ही प्रकट हुए हैं। देवता, असुर, नाग, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पक्षी, गन्धर्व तथा यक्ष आदि विभिन्न प्राणियोंके जो समुदाय हैं, इन सबकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है। इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पद, पितरोंका लोक तथा विश्वकर्माकी सुन्दर शिल्पकला आदिका आविर्भाव भी आपसे ही हुआ है। शब्द और आकाश, स्पर्श और वायु, रूप और तेज, रस और जल तथा गन्ध और पृथ्वीकी आपहीसे उत्पत्ति हुई है। काल, ब्रह्मा, वेद, ब्राह्मण तथा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही प्रकट हुआ है। जैसे जलसे उत्पन्न होनेवाले जीव उससे भिन्न दिखायी देते हैं परंतु नष्ट होनेपर उस जलके ही साथ एकीभूत हो जाते हैं, उसी प्रकार यह समस्त विश्व आपसे ही प्रकट होकर आपमें ही लीन होता है। इस तरह जो आपको सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और प्रलयका अधिष्ठान जानते हैं, वे विद्वान पुरुष आपके सायुज्यको प्राप्त होते हैं।

जिनका स्वरूप मन-बुद्धिके चिन्तनका विषय नहीं होता, वे पिनाकधारी भगवान् नीलकण्ठ नारायण ऋषिके इस प्रकार स्तुति करनेपर उन्हें वरदान देते हुए बोले, नारायण। मेरी कृपासे किसी प्रकारके शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले या सूखे पदार्थ और स्थावर या जङ्गम प्राणीके द्वारा भी कोई तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता। समरभूमिमें पहुँचनेपर तुम मुझसे भी अधिक बलिष्ठ हो जाओगे। इस प्रकार श्रीकृष्णने पहले ही भगवान् शंकरसे अनेकों वरदान पा लिये हैं। वे ही भगवान् नारायण मायासे इस संसारको मोहित करते हुए इनके रूपमें विचर रहे हैं। नारायणके ही तपसे महामुनि नर प्रकट हुए, अर्जुनको उन्हींका अवतार समझ। इनका प्रभाव भी नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्ममर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं। अश्वत्थामा। तूने भी पूर्वजन्ममें भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये कठोर नियमोंका पालन करते हुए अपने शरीरको दुर्बल कर डाला था, इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने तुम्हें बहुत-से मनोवाञ्छित वरदान दिये थे। जो मनुष्य भगवान शंकरके सर्वमय स्वरूपको जानकर लिङ्गरूपमें उनकी पूजा करता है, उसे सनातन शास्त्रज्ञान तथा आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है। जो शिवलिङ्गको सर्वभूतमय जानकर उसका अर्चन करता है, उसपर भगवान् शंकरकी बड़ी कृपा होती है।

वेदव्यासकी ये बातें सुनकर अश्वत्थामाने मन-ही-मन शंकरको प्रणाम किया और श्रीकृष्णमें उसकी महत्त्व-बुद्धि हो गयी। उसने रोमाञ्चित शरीरसे महर्षि व्यासको प्रणाम किया और सेनाकी ओर देखकर उसे शिबिरमें लौटनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर कौरव और पाण्डव दोनों पक्षकी सेनाएँ अपने-अपने शिबिरको चल दीं। इस प्रकार वेदोंके पारगामी आचार्य द्रोण पाँच दिनोंतक पाण्डवसेनाका संहार करके ब्रह्मलोकमें चले गये।

महर्षि वेदव्यासजी स्वेच्छासे घूमते हुए अकस्मात् अर्जुनके पास आ गये। उन्हें देखकर अर्जुनने पूछा- महर्षे। जब मैं अपने बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस समय देखा कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष मेरे आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही मेरे शत्रुओंका नाश करते थे, किंतु लोग समझते थे मैं कर रहा हूँ। मैं तो केवल उनके पीछे-पीछे चलता था। भगवन्। बताइये, वे महापुरुष कौन थे? उनके हाथमें त्रिशूल था, वे सूर्यके समान तेजस्वी थे, अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते थे। त्रिशूलका प्रहार करते हुए भी वे उसे हाथसे कभी नहीं छोड़ते थे। उनके तेजसी उस एक ही त्रिशूलसे हजारों नये-नये त्रिशूल प्रकट हो जाते थे।

व्यासजी बोले, अर्जुन। तुमने भगवान् शंकरका दर्शन किया है। वे तेजोमय अन्तर्यामी प्रभु सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर हैं। सबके शासक तथा वरदाता हैं। तुम उन भगवान् भुवनेश्वरकी शरण जाओ। वे महान् देव हैं, उनका हृदय विशाल है। सर्वत्र व्यापक होते हुए भी वे जटाधारी त्रिनेत्ररूप धारण करते हैं। उनकी रुद्र संज्ञा है। उनकी भुजाएँ बड़ी हैं। उनके मस्तक पर शिखा तथा

शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। वे सबके संहारक होकर भी निर्विकार हैं। किसीसे पराजित न होनेवाले और सबको सुख देनेवाले हैं। सबके साक्षी, जगत्‌की उत्पत्तिके कारण, जगत्‌के सहारे, विश्वके आत्मा, विश्वविधाता और विश्वरूप हैं। वे ही प्रभु कर्मोंके अधिष्ठाता- कर्मोंका फल देनेवाले हैं। सबका कल्याण करनेवाले और स्वयम्भू हैं। सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी तथा भूत, भविष्य और वर्तमानके कारण भी वे ही हैं। वे ही योग हैं, वे ही योगेश्वर हैं। वे ही सर्व हैं और वे ही सर्वलोकेश्वर। सबसे श्रेष्ठ, सारे जगत्‌से श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम परमेष्ठी भी वे ही हैं। वे ही तीनों लोकोंके स्रष्टा और त्रिभुवनके अधिष्ठानभूत विशुद्ध परमात्मा हैं। भगवान् भव भयानक होकर भी चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करते हैं। वे सनातन परमेश्वर सम्पूर्ण वागीश्वरोंके भी ईश्वर हैं। वे अजेय हैं; जन्म, मृत्यु और जरा आदि विकार उन्हें छू भी नहीं सकते। वे ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य तथा ज्ञान में सबसे श्रेष्ठ हैं। भक्तोंपर कृपा करके उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया करते हैं। भगवान् शंकरके दिव्य पार्षद नाना प्रकारके रूपोंमें दिखायी देते हैं। वे सब महादेवजीकी सदा ही पूजा किया करते हैं। तात। वे साक्षात् भगवान् शंकर ही वह तेजस्वी पुरुष हैं, जो कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चला करते हैं। उस घोर रोमाञ्चकारी संग्राममें अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कर्ण-जैसे महान् धनुर्धर जिस सेनाकी रक्षा करते हैं, उसे नानारूपधारी भगवान् महेश्वरके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है? और जब वे ही आगे आकर खड़े हो जायँ, तो उनके सामने ठहरनेका भी कौन साहस कर सकता है? तीनों लोकोंमें कोई ऐसा प्राणी नहीं हैं, जो उनकी बराबरी कर सके। संग्राममें भगवान शंकरके कुपित होनेपर उनकी गन्धसे भी शत्रु बेहोश होकर काँपने लगते हैं और अधमरे होकर गिर जाते हैं। जो भक्त मनुष्य सदा अनन्यभावसे उमानाथ भगवान् शिवकी उपासना करते हैं, वे इस लोकमें सुख पाकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होते हैं। इसलिये कुन्तीनन्दन। तुमभी उसी अनुसार उन शान्तस्वरूप भगवान् शंकरको सदा नमस्कार किया करो। जो नीलकण्ठ, सूक्ष्मस्वरूप और अत्यन्त तेजस्वी हैं। संसार-समुद्रसे तारनेवाले सुन्दर तीर्थ हैं, सूर्यस्वरूप हैं। देवताओंके भी देवता, अनन्त रूपधारी, हजारों नेत्रोंवाले और कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, परमशान्त और सबके पालक हैं, उन भगवान् भूतनाथको सदा प्रणाम है। उनके हजारों मस्तक, हजारों नेत्र, हजारों भुजाएँ और हजारों चरण हैं। कुन्तीनन्दन। तुम उन वरदायक भुवनेश्वर भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। वे निर्विकार भावसे प्रजाका पालन करते हैं, उनके मस्तकपर जटाजूट सुशोभित होता है। वे धर्मस्वरूप और धर्मके स्वामी हैं। कोटि-कोटि ब्रम्हाण्डोंको धारण करनेके कारण उनका उदर और शरीर विशाल हैं।

अब मैं महादेवजीके दिव्य कर्मोंको अपने ज्ञान और बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ। यदि वे कुपित हो जायँ तो देवता, गन्धर्व, असुर और राक्षस पातालमें छिप जानेपर भी चैनसे नहीं रहने पाते। एक समयकी बात है, दक्षने भगवान् शंकरकी अवहेलना की; इससे उनके यज्ञमें महान् उपद्रव खड़ा हो गया, सभी देवताओंपर भय छा गया। जब उन्हें उनका भाग अर्पण किया गया, तभी दक्षका यज्ञ पूर्ण हो पाया। तबसे देवता लोग भी सदा उनसे भयभीत रहते हैं।

पूर्वकालकी बात है, तीन बलवान् असुरोंने आकाशमें अपने नगर बना रक्खे थे। वे नगर विमानके रूपमें आकाशमें विचरा करते थे। उन तीन नगरोंमें एक लोहेका, दूसरा चाँदीका और तीसरा सोनेका बना था। जो सोनेका बना था, उसका स्वामी था कमलाक्ष। चाँदीके बने हुए पुरमें तारकाक्ष रहता था तथा लोहेके नगरमें विद्युन्मालीका निवास था। इन्द्रने उन पुरोंका भेदन करनेके लिये अपने सभी अस्त्रोंका प्रयोग किया, पर वे कृतकार्य न हो सके। तब इन्द्रादि सभी देवता दुखी होकर भगवान् शंकरकी शरणमें गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा- भगवन्। इन त्रिपुरनिवासी दैत्योंको ब्रह्माजीने वरदान दे रक्खा है, उसके अहंकारमें फूलकर ये भयंकर दैत्य तीनों लोकोंको कष्ट पहुँचा रहे हैं। महादेव। आपके सिवा दूसरा कोई

इनका नाश करनेमें समर्थ नहीं है, आप ही इन देवद्रोहियोंका वध कीजिये।

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् शंकरने उनका हित-साधन करनेके लिये तथास्तु कहा और गन्धमादन तथा विन्ध्याचल- इन दो पर्वतोंको अपने रथकी ध्वजा बनाया। समुद्र और वनोंके सहित सम्पूर्ण पृथ्वी ही रथ हुई। नागराज शेषको रथकी धुरीके स्थानमें रक्खा गया। चन्द्रमा और सूर्य- ये दोनों पहिये बने।

अपनी वैसी ही बाँह लिये इन्द्र देवताओंके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये तथा उनको प्रणाम करके बोले- भगवन्। पार्वतीजीकी गोदमें एक अपूर्व बालक था, हमने उसे नहीं पहचाना। उसने बिना युद्ध किये खेलहीमें हमलोगोंको जीत लिया। अत: आपसे पूछते हैं, वह कौन था? उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उस अमित तेजस्वी बालकका ध्यान किया और सारा रहस्य जानकर देवताओंसे कहा- उस बालकके रूपमें चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शंकर थे, उनसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। इसलिये अब तुम मेरे साथ चलकर उन्हींकी शरण लो। उस समय ब्रह्माजीके साथ सम्पूर्ण देवता भगवान् महेश्वरके पास गये। ब्रह्माजीने उन्हें ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ जानकर प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की- भगवन्। तुम ही यज्ञ हो, तुम्हीं इस विश्वके सहारे हो और तुम्हीं सबको शरण देनेवाले हो। सबको उत्पन्न करनेवाले महादेव तुम्हीं हो। परमधाम या परमपद तुम्हारा ही स्वरूप है। तुमने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रक्खा है। भूत और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर। ये इन्द्र तुम्हारे कोपसे पीडित हैं, इनपर कृपा करो।

ब्रह्माजीकी बात सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये, देवताओंपर कृपा करनेके लिये ही वे हँस पड़े। फिर तो देवताओंने पार्वतीसहित महादेवजीको प्रसन्न किया। शिवके कोपसे जो इन्द्रकी बाँह सुन्न हो गयी थी, वह ठीक हो गयी। वे भगवान् शंकर ही रुद्र, शिव, अग्नि, सर्वज्ञ, इन्द्र वायु और अश्विनीकुमार हैं। वे ही बिजली और मेघ हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, काल, मृत्यु, यम, रात, दिवस, मास, पक्ष, ऋतु, संवत्सर, संध्या, धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वकर्मा भी वे ही हैं। वे निराकार होकर भी सम्पूर्ण देवताओंके आकार धारण करते हैं। सब देवता उनकी स्तुति करते रहते हैं। वे एक, अनेक, सौ, हजार और लाख हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण उनके दो शरीर बताते हैं- शिव और घोर। ये दोनों अलग-अलग हैं। इन दोनोंके भी कई भेद हो जाते हैं। उनका घोर शरीर अग्नि और सूर्य आदिके रूपमें प्रकट है तथा सौम्य शरीर जल, नक्षत्र एवं चन्द्रमाके रूपमें। वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् महेश्वर ही हैं। अर्जुन। यह है महादेवजीकी महिमा। इतनी ही नहीं, वह अत्यन्त महान् तथा अनन्त है। मैं एक हजार वर्षतक कहता रहूँ, तो भी उनके गुणोंका पार नहीं पा सकता।

जो लोग सब प्रकारकी ग्रह-बाधाओंसे पीडित हैं और सब प्रकारके पापोंमें डूबे हुए हैं, वे भी यदि उनकी शरणमें आ जायँ तो वे प्रसन्न होकर उन्हें पाप-तापसे मुक्त कर देते हैं तथा आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुर भोग-सामग्री प्रदान करते हैं। कुपित होनेपर वे सबका संहार कर डालते हैं। महाभूतोंके ईश्वर होनेके कारण उन्हें महेश्वर कहते हैं। वेदोंमें भी इनकी शतरुद्रिय और अनन्तरुद्रिय नामकी उपासना बतायी गयी है। भगवान् शंकर दिव्य और मानव सभी भोगोंके स्वामी हैं। सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करनेके कारण वे ही विभु और प्रभु हैं। शिव-लिङ्गकी पूजा करनेसे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। यद्यपि उनके सब ओर नेत्र हैं, तथापि एक विलक्षण अग्निमय नेत्र अलग भी है, जो सदा प्रज्वलित रहता है। वे सब लोकोंमें व्याप्त होनेके कारण सर्व कहलाते हैं। वे सबके कर्मोंमें सब प्रकारके अर्थ सिद्ध करते हैं तथा सम्पूर्ण मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। महान् विश्वका पालन करनेसे महादेव, स्थितिके हेतु होनेसे स्थाणु और सबके उद्भाव होनेके कारण भव कहलाते हैं। कपि नाम है श्रेष्ठका और वृष धर्मका वाचक है; वे धर्म और श्रेष्ठ दोनों हैं, इसलिये उन्हें वृषाकपि कहते हैं। उन्होंने अपने दो नेत्रोंको बंदकर बलात्कारसे ललाटमें तीसरा नेत्र उत्पन्न किया, इसलिये वे त्रिनेत्र कहे जाते हैं।

अर्जुन जो तुम्हारे शत्रुओंका संहार करते हुए देखे गये थे, वे पिनाकधारी महादेवजी ही हैं। जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा करनेपर श्रीकृष्णने स्वप्नमें गिरिराज हिमालयके शिखरपर तुम्हें जिनका दर्शन कराया था, वे ही भगवान् शंकर यहाँ तुम्हारे आगे-आगे चलते हैं। उन्होंने ही वे अस्त्र दिये, जिनसे तुमने दानवोंका संहार किया है। यह भगवान् शिवका शतरुद्रिय उपाख्यान तुम्हें सुनाया गया है। यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है, परम पवित्र तथा वेदके समान है। भगवान शंकरका यह चरित्र संग्राममें विजय दिलानेवाले हैं। इस शतरुद्रिय उपाख्यानको जो सदा पढ़ता और सुनता है तथा जो भगवान् शंकरका भक्त है, वह मनुष्य सभी उत्तम कामनाओंको प्राप्त करता है। अर्जुन। जाओ, युद्ध करो, तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती; क्योंकि तुम्हारे मन्त्री, रक्षक और पार्श्ववर्ती भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

व्यासजीने कहा, बहुत पहिले भगवान ब्रह्मा सुरों और ऋषियोंके साथ भूभार हरणार्थ प्रार्थना करने मन्दराचलपर आये थे। उनपर कृपा करके भगवान नारायणने दर्शन दिया और उन्हें पृथ्वीपर अवतार लेकर धराका भार दूर करनेका आश्वासन दिया। श्रीकृष्ण साक्षात् परमपुरुष नारायण हैं और उनका प्रिय सखा अर्जुन नर है।

अश्वत्थामा। तुमने अपने पिता अथवा अन्य किसी महर्षिके मुखसे श्रीकृष्णका चरित नहीं सुना? ब्रजमें दो बार इन्होंने दावाग्नि पान कर लिया था। यह तो श्रीकृष्णका अनुग्रह है कि तुम्हारे अमोघास्त्रका सम्मान रखनेके लिए उन्होंने एक अक्षौहिणी सेनाको भस्म हो जाने दिया। यह भी उनके भू-भार हरणका ही कार्य था। अन्यथा वे संकल्प करते तो वह अस्त्र उसी समय तुमपर और तुम्हारी सेनापर भी उल्टा आ सकता था। वे अस्त्रोंके मन्त्र एवं देवताओंका सम्मान न रखते होते-उन साक्षात् नारायणके विरुद्ध उनके ही अस्त्रका उपयोग करनेकी धृष्टता करके तुम आग्नेयास्त्रका प्रयोग करनेको बचे रहते? श्रीकृष्ण अविनाशी हैं। उन परमपुरूषको पराभव देना संभव नहीं है। उनके आश्रित, उनके द्वारा संरक्षित जनोंको कोई दिव्यास्त्र अथवा देवता मार नहीं सकता। अश्वत्थामा चिल्लाकर बोला, ऐसा नहीं हो सकता।

ऋषि मुस्कराए और बोले, ऐसा नहीं हो सकता, तो वैसा भी नहीं हो सकता, जैसा तुम चाहते हो। तुम मेरा विश्वास कर सको तो इस सत्य को हृदय में धारण कर लो कि तुम चाहे किसी का भी वध कर लो किंतु न कृष्ण का वध कर सकोगे और न अर्जुन का। उनका धर्म उनकी रक्षा कर रहा है; और धर्म का वध शस्त्रों से नहीं होता।

अश्वत्थामाने भगवान व्यासके चरणोंमें प्रणाम किया। वह सिर झुकाये समर-भूमिकी ओर लौट पड़ा। अज्ञानी जीवका स्वभाव ही है कि वह परमात्माके प्रभाव, कृपा आदिको बार-बार सुनता है; किंतु उसका कोई भी अंश धारण नहीं कर पाता। वह शीघ्र ही सब भूल जाता है। अत: यदि अश्वत्थामा भी व्यासका उपदेश शीघ्र भूल गया तो आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है।

पारसंवी ने पूछा, यह हनुमान का चित्र अर्जुन की ध्वजा पर क्यों चित्रित है ? तो आप यह मानते हैं कि हनुमान अपने सूक्ष्म शरीर में अर्जुन की ध्वजापर वर्तमान हैं?

विदुर बोले, इसमें संदेह का कोई कारण नहीं हैं। सृष्टि में केवल स्थूल तत्त्व का ही तो अस्तित्व नहीं है। हाँ। हमारे पास शरीर के रूप में जो यंत्र है, वह सूक्ष्म को बहुत कम पहचानता है, इसलिए वायुमंडल में कहूँ, अंतरिक्ष में कहूँ, सृष्टि में कहूँ, जो सूक्ष्म सत्य हैं, उनका साक्षात्कार बहुत कम लोग कर पाते हैं। हम अपने इस अपर्याप्त यंत्र को ही सर्वज्ञ मानते हैं, इसलिए सूक्ष्मता से न्याय नहीं कर पाते।

इति द्रोण पर्व

*** संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से ही मिलते हैं।**

*** जब आदमी का अपना कोई बस नहीं चलता तो सब फैसलें तकदीर पर छोड़ने पड़ते हैं।**

*** रास्ते की वीरानी और जलती धूप से डरनेवालों को कभी मंझिल नहीं मिलती।**

कर्ण पर्व

* विषय उपक्रम *

हालात के कदमों पे कलंदर नहीं गिरता, टूटा तारा भी जमीं पे नहीं गिरता,
गिरते हैं समंदर में बड़े शौक से दरिया, लेकिन किसी दरिया में समंदर नहीं गिरता।

सोलहवें दिन का युद्ध	२६८ से २७९
१) कर्ण की भीष्म से भेंट	२६८
२) कर्ण का सेनापति पद पर प्रतिष्ठित होना	२७०
३) नकुल और कर्ण का युद्ध व नकुल को प्राणदान	२७५
सत्रहवें दिन का युद्ध	२७९ से ३९४
१) कर्ण का शल्य को अपना सारथी बनाना	२७९
२) शल्य का कर्ण को हतोत्साहित करना	२९१
३) दु:शासन वध	२९७
४) युधिष्ठिर को प्राणदान और युधिष्ठिर का कर्ण द्वारा अपमान	३०४
४) कर्ण और अर्जुन का संग्राम और कर्ण वध	३४८

आदमी, आदमी से डरता है, फिर भी जीने पे नाज करता है।
कितनी मुश्किल है पेट का भरना, कितनी मुश्किल से पेट भरता है।
कैसे हालात हैं जमाने के, अपने साये से भी वो डरता है।
रात रोकर गुजारनेवाला, सुबह होते ही काम करता है।
जाने क्या सोच है समंदर की, किन जमीनों से प्यार करता है।

कर्ण पर्व

सोलहवें दिन का युद्ध

१) कर्ण की भीष्म से भेंट- जिन्हें कार्य करने की सच्ची लगन है, वे पद, प्रतिष्ठा की परवाह नहीं करते। बहुधा देखा ऐसा ही जाता है कि सच्चे कार्यकर्ता प्रतिष्ठा के समय तो दूसरों को आगे कर देते हैं और कार्य करने के समय स्वयं जुट जाते हैं। उन्हें उत्तम पद मिले इसके लिये वे कभी चेष्टा नहीं करते। भरसक उससे बचते ही रहते हैं। पद-प्रतिष्ठा कभी-कभी तो कार्य में विघ्न स्वरूप हो जाती है। लोग पद-प्रतिष्ठा के चक्कर में पड़कर अकारण ही परस्पर में द्वेष करने लगते हैं, फिर असली काम तो रह जाता है और आपस में ही एक दूसरे को नीचा दिखाने के उद्योग में लग जाते हैं। प्रतिष्ठित किसी के बनाने से नहीं बनते। अच्छे काम स्वयं ही पुरुष की प्रतिष्ठा बढ़ा देते हैं। जो दूसरों को प्रतिष्ठा देता है, उसकी प्रतिष्ठा और बढ़ती है। जो स्वयं ही प्रतिष्ठित बनना चाहता है, अभिमान के कारण उसकी प्रतिष्ठा घट जाती है। कोई बनावे चाहे न बनावे संसार में प्रतिष्ठा उसी की होगी, जिसने जान पर खेलकर कार्य किया हो जो प्रतिष्ठित बनना चाहते हैं, वे किसी तरह षडयन्त्र से लोगों को मिलाकर प्रतिष्ठित पद पर आसीन तो हो जाते हैं, किन्तु काम पड़ने पर प्राणों के मोह से बहाना बना देते हैं और अन्त में उनकी निन्दा होती है। इसलिये सच्चे पुरुष जब तक विवश नहीं हो जाते, तब तक किसी पद को ग्रहण नहीं करते।

मृत्यु जिनके वश में है, ऐसे शान्तनु-सुत गङ्गातनय वसु के अवतार परशुराम से युद्ध में टक्कर लेनेवाले, संसार विजयी बालब्रह्मचारी, निखिल शास्त्रवेत्ता, धर्मात्मा, सत्यवादी, पितामह भीष्म शर-शैया पर आँख बन्द किये चुपचाप पड़े हैं। उनके शरीर में तिल भर भी ऐसी जगह नहीं है, जिसमें बाण न लगा हो। इरछे-तिरछे, सीधे, दायें-बायें, सर्वत्र बाण हैं। बाणों की शैया पर वे तपस्वी की तरह, योगी की तरह और मृगराज की तरह पड़े हुए हैं। उनका मन वासुदेव के चरणों में लगा हुआ है। अपने प्रधान सेनापति और कुरुकुल के सबसे श्रेष्ठ महापुरुष की ऐसी दशा देखकर कर्ण रो पड़े। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। हा। दैव की कैसी अद्भुत गति है, विधाता की कैसी विचित्र विडम्बना है, जो समर में संसार विजयी के नाम से विख्यात थे, जिनकी बराबरी देवता, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक तथा राक्षस भी नहीं कर सकते थे, जो देवराज इन्द्र को भी युद्ध में परास्त करने की शक्ति रखते थे, आज वे अनाथ की तरह साधारण मनुष्य की तरह समरभूमि में शर-शैया पर सुख से सो रहे हैं। कर्ण ने पितामह के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा- पितामह। मैं कर्ण आपके चरणों में प्रणाम कर रहा हूँ।

हे गङ्गानन्दन। मैं युद्ध के लिये आपकी आज्ञा लेने आया हूँ। आप मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखें। आप एक बार मुझे स्नेहपूर्वक आँखभर के ऊपर से नीचे तक देख लें। आपकी आज्ञा लेकर मैं पांडवों से युद्ध करना चाहता हूँ। अर्जुन को समरभूमि में परास्त करना चाहता हूँ। यद्यपि मैं जानता हूँ कि वासुदेव चराचर प्राणियों से अजेय हैं। उन्हें संसार में कोई जीत नहीं सकता। वे ही वासुदेव जिन पांडवों के पृष्ठपोषक, अङ्ग-रक्षक, सखा, सुहृद्, सारथी, मन्त्री और सम्मतिदाता हैं। जो पांडव असुरारी यदुनन्दन की आज्ञा के बिना कोई भी कार्य नहीं करते उन्हें जीतना सहज नहीं है। फिर भी मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार घनघोर युद्ध करना चाहता हूँ। अपने प्राणों की बाजी लगाकर दुर्योधन का भला करना चाहता हूँ। दुर्योधन जिस समय के लिये मुझसे आशा लगाये बैठे थे, वह समय अब प्रत्यक्ष आ उपस्थित हुआ है। अब मैं गान्धारी नन्दन के समस्त मनोरथों को पूर्ण करना चाहता हूँ। अब या तो मैं अपने बाणों से पांडवों को परास्त करूँगा या स्वयं धराशायी हूँगा। अब मुझे जीने की इच्छा नहीं। अब मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर, जान पर खेलकर युद्ध करना चाहता हूँ। या तो इन्द्र की

दी हुई अमोघ शक्ति से सव्यसाची अर्जुन का वध करूँगा या गांडीव धनुष से निकले हुए बाणों से आपकी ही भाँति रणभूमि में गिर पड़ूँगा। यदि जीतूँगा तो मित्र ऋण से उऋण होकर कृतज्ञ कहाऊँगा और समस्त पृथ्वी का सुख भोगूँगा। युद्ध में शत्रु के सम्मुख लड़ते-लड़ते शस्त्र से मारा जाऊँगा तो स्वर्ग में सुख भोगूँगा, दिव्य लोकोंको प्राप्त हूँगा। आप मेरे ऊपर कृपा करें। मुझे आज्ञा, आशीर्वाद, अनुमति और उपदेश दें।

भीष्म ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया- कर्ण। तुम संसार में अद्वितीय शूरवीर हो। हे सूर्यनन्दन। तुम्हारे समान योद्धा तुम ही हो। दुर्योधन की समस्त आशायें तुम्हारे में ही केन्द्रीभूत हैं। जैसे पांडवों के श्रीकृष्ण आधार हैं, उसी तरह कौरवों के तुम ही एकमात्र गति हो। पुत्र। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जाओ पांडवों से युद्ध करो। भगवान तुम्हारा कल्याण करें। तुम्हारा सर्वत्र मङ्गल ही होगा। संसार में तुम्हारी कीर्ति बनी रहेगी। निश्चय ही तुम पुण्यात्माओं के उत्तम लोकों को प्राप्त कर सकोगे। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम सव्यसाची, गांडीवधारी अर्जुन से जाकर युद्ध करो, अपने युद्ध कौशल से वासुदेव को सन्तुष्ट करो। उनके सम्मुख मरने से ही सद्गति मिलेगी।

भीष्म बोले, क्या आशीर्वाद लोगे पुत्र। तुम्हारे लिये विजयश्री का आशीर्वाद तो मेरे पास नहीं है। क्या लम्बी आयु का आशीर्वाद लेना चाहोगे। कर्ण बोला, नहीं पितामह। किसी हारनेवाली सेना का प्रधान सेनापति लम्बी आयु का आशीर्वाद लेकर क्या करेगा। दे सकें तो यह आशीर्वाद दीजिये पितामह कि मैं दुर्योधन के ऋण से मुक्त हो जाऊं। भीष्म बोले, प्रधान सेनापति। तो क्या आचार्य द्रोण... हे हस्तिनापुर तेरे भाग्य में कैसों कैसों से बिछुडना लिखा है। लगता है कि दुर्योधन का अन्तिम समय आते-आते कोई नहीं बचेगा। उसमें बहुत खोट है पुत्र किन्तु फिर भी मेरा हृदय उसके लिये दु:खता है पुत्र। परन्तु धृतराष्ट्रने उसकी आंखों पर अपनी महत्त्वकांक्षाओं की पट्टी न बांधी होती तो इस प्रकार कभी अपने सर्वनाश के मार्ग की ओर नहीं दौड़ता। तुम्हारे प्रधान सेनापति होने का यह अर्थ है पुत्र कि तुम भी अब उसे त्यागनेवाले हो। तुम उसके मित्र हो, जाकर उससे कहो कि वो एक क्षत्रिय है और क्षत्रिय को किसी का दास होना शोभा नहीं देता। कर्ण बोले, मुझे अब जाने की आज्ञा दीजिये। प्रणाम पितामह।

इतना कहकर पितामह चुप हो गये। कर्ण ने अपने देवतुल्य पितामह की चरण वन्दना की। सुवर्ण-मंडित, किरीटयुक्त मस्तक को उनके चरणों में रखकर उनका सम्मान किया, फिर तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करके तथा उनकी आज्ञा और अनुमति पाकर कर्ण ने रणभूमि की ओर प्रस्थान किया। उसके भयंकर सिंहनाद को सुनकर शत्र सेना में आतम छा गया तथा कौरव सेना में हर्ष का समुद्र उमड़ने लगा। कौरव पक्ष के वीर अपने हाथों से दुपट्टा उड़ा-उड़ाकर तथा शफदुन्दुभि और भेरी बजा-बजाकर वीर कर्ण का स्वागत करने लगे। धर्मराज जिसके बल को स्मरण करके रात्रि-दिन बेचैन रहते थे, वही वीर अब दिव्य कवच पहिनकर संग्राम में आ गया है। यह सुनकर शत्रु-सेना के छक्के छूट गये।

सत्यप्रतिज्ञ मनुष्य अपने वाक्य का सदा स्मरण रखते हैं। वीर पुरुष विपत्ति आने पर भी धर्म के पक्ष से विचलित नहीं होते। जय-पराजय तो समर में होती है, प्रशंसा उसीकी होती है जो समर में भी अपने धर्म की रक्षा करता है, अपनी प्रतिज्ञा का पूर्णरीत्या पालन करता है। वीर लोग वीरता के लिये लड़ते हैं। वे क्रोध के वशीभूत, द्वेष-बुद्धि से किसी का अहित नहीं करते हैं, कहना कुछ और करना कुछ। किन्तु इसे नीतिकारों ने भी गर्ह्य बताया है। कुटिल नीति का प्रयोग भी राजा तभी करते हैं, जब वे अन्य सभी उपायों से निराश हो जाते हैं। किन्तु जो कर्त्तव्य समझकर स्वर्ग की कामना से युद्ध करता है उसके लिये जय-पराजय दोनों समान हैं।

युद्ध के सोलहवें दिन का पौष शुद्ध द्वितीया का प्रभात स्वर्णिम किरणों के पारिजात-पुष्पों को कुरुक्षेत्र पर बिखेरते हुए उदित हो रहा था। आकाश को मानवों की क्रूरता और करुणा से कुछ लेना-देना नहीं था।

२) कर्ण का सेनापति पद पर प्रतिष्ठित होना

कर्ण ने कहा- राजन्। आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। उचित अनुचित बात को आप मुझसे अधिक सोच सकते हैं। आपकी सेना में अनेक वीर हैं। सभी कुलीन, धर्मात्मा और शास्त्रज्ञ हैं। उनमें से एक को चुनकर सेनापति बनाओगे तो दूसरे बुरा मानेंगे और अपना अपमान समझेंगे तथा मन लगाकर युद्ध न करेंगे। वे सेनापति का समय आने पर अपमान करेंगे और उसे मरवाने की चेष्टा में रहेंगे। इसलिये मेरी सम्मति से सेनापति ऐसा होना चाहिये जो वर्ण में, कुलीनता में सबसे श्रेष्ठ हो, वयोवृद्ध हो, जिसकी आज्ञा सब मान सकें, सभी का जिनमें पूज्यभाव हो।

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद अश्वत्थामा की सम्मति से दुर्योधन ने कर्ण को सेनापति बनाना चाहा। दुर्योधन अत्यन्त दुखी था। आचार्य की मृत्यु से उसे अब विजय की आशा बहुत कम रही थी। अब उसे एकमात्र कर्ण का ही सहारा था। उसे विश्वास था कि कर्ण सबसे श्रेष्ठ बली है और वह मेरे लिये अपने प्राणों को भी कुछ न समझेगा। उसने बड़ी नम्रता से कहा- मित्र कर्ण। अब तुम्हीं एकमात्र हमारे सहारे हो। तुमने यह प्रतिज्ञा की थी मैं भीष्म के जीते रहने पर युद्ध न करूँगा, लो पितामह शरशैया पर पड़े हैं। आचार्य द्रोण भी इस लोक से चल बसे। अब जय-पराजय सब तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है। तुमने प्रतिज्ञा की थी कि युद्ध में मैं अर्जुन को मारूँगा सो वह समय अब आ गया है। तुम मेरे सेनापति बनकर मेरे शत्रुओं का संहार करो। मेरी डूबती हुई नौका के एकमात्र अब तुम ही पतवार हो। इसे बचाना और पार लगाना तुम्हारे ही अधीन है।

दुर्योधन ने अब सेनापति के रूप में कर्ण का अभिषेक किया। सेनापति कर्ण ने एक ऊँची टेकरी पर चढ़कर अपनी सेना की व्यूह-रचना के लिए उचित स्थान निश्चित किया। कौरव-सेना विशाल मकर के आकार में युद्ध-सज्ज हो गयी। उस मकर के मुखाग्र पर स्वयं कर्ण खड़ा था।

प्रात: उसने कौरव सेनाओं के प्रधान सेनापति के रूप में कर्ण का अभिषेक किया था, तो उसका उत्साह आकाश को छू रहा था उसके मन में आज तक जो एक पीड़ा थी कि उसके प्रधान सेनापति शायद पांडवों का वध ही नहीं करना चाहते, वह कुछ मंद हो गई थी। कर्ण के मन में पांडवों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं थी। अपने शैशव से ही दुर्योधन ने कर्ण के मन में पलते हुए पांडवों के प्रति द्वेष को प्रोत्साहित किया था।

कर्ण के ऐसे आश्वासन और उत्साहपूर्ण वचन सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर कर्ण का प्रधान सेनापति के पद पर अभिषेक किया गया। ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों से कर्ण का अभिषेक किया। ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराके और उनका आशीर्वाद लेकर सिंहनाद करता हुआ वीर कर्ण आगे बढ़ा। कौरव सेना का उत्साह चौगुना बढ़ गया। जिस समय सेनापति के पद पर आसीन होकर कर्ण अपने रथ की घरघराहट से दिशाओं को गुँजाता हुआ और पृथ्वी को कँपाता हुआ आगे चला तो ऐसा प्रतीत होता था मानों बड़े जोर का बवण्डर आ रहा हो या प्रचण्ड रीति से प्रलयकालीन समुद्र उमड़ रहा हो। महावीर कर्ण को आता हुआ देखकर धर्मराज के रोंगटे खड़े हो गये। वे अर्जुन से बोले- भैया अर्जुन। तुम जानते ही हो कौरव दल के प्रधान-प्रधान महारथी पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण आदि तो मारे ही गये, उनकी सेना का भी तुमने अत्यधिक संहार कर डाला है। दुर्योधन के बहुत से भाई भी मारे गये। किन्तु कर्ण तो अभी तक जीवित है। कर्ण संसार में सबसे बड़ा शूरवीर है। इसे देवता, दैत्य, दानव कोई भी युद्ध में जीत नहीं सकते। किसी तरह इसे तुम मार सको, तब तो हमारी विजय ही है। मुझे भीष्म द्रोण से बढ़कर इसी का डर है। १२ वर्ष से यह मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा है। यदि कर्ण मारा गया तब तो दुर्योधन मरा ही हुआ है। दुर्योधन की समस्त आशायें कर्ण पर ही लगी हुई है। कर्ण है भी इसी योग्य। वह धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, दानी और पराक्रमी।

अर्जुन ने कहा- राजन्। आप चिन्ता न करें। मैं वासुदेव की माया से कर्ण को अवश्य जीतूँगा। आप संशय को छोड़ दें। इतना कहकर अर्जुन ने अर्धचन्द्राकार व्यूह की रचना की। उसने अपने प्रधान-प्रधान वीरों को बड़ी सावधानी से मोर्चों पर खड़ा किया। भीम, नकुल, सहदेव सभी-के-सभी ओठ चबाते हुए कर्ण का सामना करने को डट गये।

कर्ण जब सेनापति बने तब उन्होंने बड़ा युद्ध किया। १० दिन भीष्म पितामह, ५ दिन द्रोणाचार्य सेनापति के पद पर रहे, इस प्रकार १५ दिन तो युद्ध हो गया। अब सोलहवें दिन कर्ण सेनापति हुए। उन्होंने बाणों की वर्षा से पांडव सेना के छक्के छुड़ा दिये, अह्लातचक्र की भाँति वे इधर-से-उधर घूमते थे। उनका पुरुषार्थ अवर्णनीय था।

पांचो भाई और कृष्ण पितामह के पास आते हैं। अर्जुन बोला, यह सूतपुत्र यहां क्यों आया केशव? कृष्ण बोले, तुम कर्ण को बार-बार सूतपुत्र कहकर अपना अपमान मत किया करो पार्थ। यह वीरों की भाषा नहीं है, वीरों की शैली नहीं है। मैं अंगराज कर्ण की माता को जानता हूं कुन्तीपुत्र अर्जुन। वो अति आदरणीय हैं। नकुल बोला, तो क्या आप कर्णकी माता को जानते हैं? कृष्ण बोले, मातायें सब एकसी होती हैं प्रिय नकुल। मातायें चाहें किसी की भी हो सदैव आदरणीय ही हैं। सभीने आकर पितामह भीष्म को प्रणाम किया। कृष्ण बोले, वासुदेव का प्रणाम स्वीकार कीजिये गंगापुत्र पितामह भीष्म। क्या आशीर्वाद नही देंगे गंगापुत्र? भीष्म बोले, नहीं। तुम्हारे दर्शन का प्रसाद पाकर मैं धन्य हो गया। हे यशोदानन्दन गोकुल के घरोंसे चुराये गये माखन से एक अंगुली माखन मुझे भी चटा दो कि मेरा जीवन सफल हो जाये। कृष्ण बोले, हे महापुरुष सफलता और असफलता तो केवल दो शब्द हैं और आज आपसे अधिक यह सच्चाई कौन जानता है कि अपने आप में इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं। विजय, पराजय, सफलता, असफलता ये परिणामों के अलग-अलग नाम है गंगापुत्र और परिणाम तो कभी आपके हाथ में नहीं था। भीष्म प्रतिज्ञा करते समय क्या आप उसका परिणाम जानते थे? यदि जानते हो तो नि:सन्देह वो प्रतिज्ञा कभी नहीं करते। यदि ऋषि किन्दम का श्राप आडे ना आ गया होता तो महाराज पांडु ही राज कर रहे होते और महाराज धृतराष्ट्र को मुकुट पहिनने और राज सिंहासन पर बैठने का चस्का ही नहीं पडा होता और उनका पुत्र दुर्योधन उनकी महत्त्वाकांक्षा के नरक में न पडा होता और यदि यह सब कुछ न हुआ होता पितामह तो आप इन बाणों की शैया पर न होते। यह आपकी प्रतिज्ञा की कर्मभूमि है गंगापुत्र और आपकी वो प्रतिज्ञा आज यहां पर लहू लुहान हुई पडी है कि आप उसका परिणाम नहीं जानते थे गंगापुत्र। इसलिये जो कुछ हुआ और जो कुछ हो रहा है या जो कुछ होनेवाला है उसके लिये आप अपने को उत्तरदायी न समझिये। आपके मोक्ष पर आपका अधिकार सिद्ध है पितामह। भीष्म बोले, पुत्र युधिष्ठिर आज तुम भाइयों की गर्दने अपने सिरों का बोझ क्यों नहीं उठा पा रही। युधिष्ठिर बोले, आज हमसे एक घोर अपराध हो गया है पितामह। भीष्म बोले, अपराध? क्या तुमने पीठ पर बाण खाये हैं? युधिष्ठिर बोले, नहीं पितामह। भीष्म बोले, तो क्या तुममें से किसी ने निहत्थे योद्धा का वध किया है? कृष्ण बोले, यह अभिमन्यु की बात नहीं करने आये हैं गंगापुत्र। भीष्म बोले, तो इन्होने क्या किया है वासुदेव? कृष्ण बोले, यह तो इन्ही को बताने दीजिये। भीष्म बोले, फिर ये मौन हुये क्यों खडे है बोलते क्यों नहीं? इनका अपराध लाक्षागृह, द्यूतक्रीडा भवन, कुलवधू द्रौपदी के अपमान के अश्लील दृश्य से तो बडा नहीं हो सकता? युधिष्ठिर बोले, गुरु द्रोणाचार्य का वध मेरे एक झूठ ने किया है पितामह। भीष्म बोले, झूठ। धर्मराज युधिष्ठिर तुम झूठ बोले। तुम लोग जाओ यहां से। यदि ये मेरे वश में होता तो मैं इस क्षण को अपने जीवनकाल से निकाल देता जिसने मुझे यह सुनवाया है कि मेरा प्रिय युधिष्ठिर झूठ बोला। माता सत्यवती... कृष्ण बोले, यदि आप एक-एक करके अपने सारे अप्रिय क्षणों को जीवन काल से निकालते रहेंगे गंगापुत्र तो आपके पास तो कोई जीवनकाल ही नहीं बचेगा। आचार्य द्रोण को तो ये पांचो भाई मिलकर भी पराजित नहीं कर सकते

है तो ये क्या करते? क्या ये धर्म युद्ध हार जाते कि दुर्योधन इतिहासकारों से यह लिखवा लेता कि भरतवंश की कुलवधू द्रौपदी वेश्या थी? कि लाक्षागृह का षडयन्त्र रचा ही नहीं गया था? इस धर्मयुद्ध में क्या वो धर्म के पक्ष में था? आचार्य द्रोण ने महाराज धृतराष्ट्र के नमक को प्रधान माना और धर्म की उपेक्षा की। भीष्म बोले, परन्तु ये सब अकेले नहीं थे यशोदानन्दन, तुम भी इनके साथ थे। फिर चक्रधर तुम्हारे सामने खडा कोई भीष्म, कोई द्रोण कितने पल टिक सकता था? कृष्ण बोले, किन्तु मैं तो वचनबद्ध हूं गंगापुत्र कि इस युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊंगा। भीष्म बोले, क्या तुम मुझपर नहीं दौड़ पड़े थे? कृष्ण बोले, वो तो आपकी वीरता पर मेरा प्रणाम था गंगापुत्र भीष्म। भीष्म बोले, मैं भी प्रसन्न था कि तुमने अपना नटखटपन वहीं गोकुल में छोड़ दिया यशोदानन्दन। कृष्ण बोले, अर्थात आपने इन्हें क्षमा कर दिया है ना पितामह? भीष्म बोले, तुम्हारी अनुशंसा को कौन ना कर सकता है वासुदेव?

संजयने कहा, महाराज। कर्णकी सम्मति जानकर दुर्योधनने रणभेरी बजवायी और सेनाको तैयार हो जानेकी आज्ञा दी। उस समय बड़े-बड़े गजराजों, रथों, कवच बाँधनेवाले मनुष्यों तथा घोड़ोंका कोलाहल बढ़ने लगा। कितने ही योद्धा उतावले हो-होकर एक दूसरेको पुकारने लगे। इन सबकी मिली हुई ऊँची आवाजसे आसमान गूँज उठा। इसी समय सेनापति कर्ण एक दमकते हुए रथपर बैठा दिखायी पड़ा।

युधिष्ठिरकी बात सुनकर अर्जुनने शत्रुओंके मुकाबलेमें अपनी सेनाका अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाया।

तदनन्तर कर्ण तथा अर्जुन आमने-सामने आकर खड़े हुए और दोनों एक-दूसरेको देखते ही क्रोधमें भर गये। उनके सैनिक भी उछलते-कूदते हुए परस्पर जा भिड़े। फिर तो उनमें भयानक युद्ध छिड़ गया; हाथी, घोड़े और रथोंके सवार तथा पैदल योद्धा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे।

भीमने उसपर गदासे चोट की। उसके आघातसे क्षेमधूर्तिके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह तलवारके साथ ही हाथीके पास गिर पड़ा। महाराज। क्षेमधूति कुलूत देशका यशस्वी राजा था, उसे मारा गया देख आपकी सेना व्यथित होकर रणभूमिसे भागने लगी।

दुर्योधन के कान दिन भर यह सुनने के लिए तरसते रहे कि कर्ण अर्जुन से जा भिड़ा है; किंतु किसी संदेशवाहक ने यह समाचार नहीं दिया। पूरा दिन बीत गया किंतु कर्ण और अर्जुन एक-दूसरे के सामने ही नहीं पड़े। दुर्योधन को समाचार मिला कि भीम ने क्षेमधूर्ति को मार दिया है। फिर वह अश्वत्थामा से भिड़ गया है। अश्वत्थामा उससे लड़ा और अंत में दोनों के ही मूर्च्छित हो जाने का समाचार आया। दोनों के सारथी उन्हें युद्धक्षेत्र से हटाकर ले गए। श्रुतकर्मा ने चित्रसेन का वध कर दिया, प्रतिविंध्य ने चित्र का। मूर्च्छा समाप्त होने पर अश्वत्थामा ने वापस लौटकर पांड्य का वध कर दिया और फिर अर्जुन ने उसे पराजित कर समरभूमि से परे धकेल दिया। पांडवों ने पौंड्र, अंगराज और बंगराज को मार डाला। सहदेव ने दु:शासन को परास्त कर दिया। अर्जुन ने श्रुतंजय, सौश्रुति, चंद्रदेव और सत्यसेन का वध कर दिया। मकर के केन्द्र-स्थान से दुर्योधन द्वारा विदारक नामक शंख को फूँककर युद्धारम्भ का संकेत होते ही कर्ण ने अपनी पुष्पमालाओं से सुशोभित विजय धनुष ऊपर उठाकर उसे गरगराकर घुमाया। उसने अपनी कण्ठ की धमनियाँ फुलाकर हिरण्यगर्भ शंख को इतने जोर से फूँका कि रणभूमि के आसपास के गिद्धों जैसे मांसभक्षी पक्षी भयभीत होकर आकाश में उड़ गये।

कर्ण ने दुर्योधन को उत्साहित करते हुए कहा- राजन्। आप तनिक भी चिन्ता न करें। मैं श्रीकृष्ण सहित पांडवों को युद्ध में अवश्य ही पराजित करूँगा। मैं अर्जुन को मारकर तुम्हें प्रसन्न करूँगा। तुम चिन्ता, शोक, मोह, क्लेव्यता, दीनता और विषाद को तिलाञ्जलि दे दो। तुम्हारी आज्ञा से मैं अवश्य ही तुम्हारा सेनापति बनूँगा और प्राणों की बाजी लगाकर आपका प्रिय कार्य

करूँगा। मैं शत्रु सेना में खलबली मचा दूँगा और पांडवों के दाँत खट्टे कर दूँगा। आप प्रसन्न होकर युद्ध की तैयारियाँ कीजिये।

इधर कर्ण ने भी मत्स्य व्यूह बनाया। अपनी ओर से महारथियों को उसने प्रधान-प्रधान स्थानों पर खड़ा किया। स्वयं व्यूह के अग्रभाग में सबकी रक्षा के लिये खड़ा हुआ। जिस समय कवच पहिनकर धनुष बाण लेकर महावीर कर्ण युद्ध के लिये अपने पथ पर खड़े हुए उस समय वे साक्षात् मूर्तिमान वीररस ही जान पड़ते थे। उनकी दिव्य सुहावनी और उत्साहपूर्ण मूर्ति को देखकर कौरवों में आनन्द छा गया। वे द्रोणाचार्य की मृत्यु को भूल गये। अपने नवीन प्रधान सेनापति के नेतृत्व में वे पांडवों को पराजित करने के लिये उछल-कूद करते हुए सिंहनाद करने लगे। वे अपने प्रत्यक्ष शत्रुओं को तो हराने में समर्थ थे किन्तु जो मित्र रूप में अपने ही पक्ष में छिपे हुए शत्रु थे, उन्हें कैसे परास्त करें?

सबसे पहिले तो अपने भीतर के छिपे शत्रुओं को ही जीतना परम धर्म है, तभी बाहर के शत्रु जीते जा सकते हैं। नहीं तो घर का भेदिया लमा को ढाता है। यह लोकोक्ति अक्षरश: सत्य है।

जब मनस्वी पुरुषों पर विपत्तियों के ऊपर विपत्तियाँ आने लगती हैं, तो वे थोड़ी देर के लिये विचलित हो जाते हैं। क्षणभर में वे फिर अपने को सम्हालकर उस विपत्ति का सामना करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। जिसे भगवान् दु:ख या संकट देते हैं, उसे सहनशक्ति भी प्रदान करते हैं। तभी तो बड़े सुकुमार पुरुष बड़ी-बड़ी व्याधियों को चिरकाल तक सहते रहते हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा विचित्र है कि वह शक्तिभर किसी से दबना नहीं चाहता। मनुष्य क्या प्राणीमात्र का ही यही स्वभाव है। छोटी-सी चींटी को आप दबाइये, वह भी बाहर होने का शक्ति भर प्रयत्न करेगी और आपको जोरों से काट लेगी, अन्त में ऐसा करने से उसके प्राण ही क्यों न चले जायँ। मनुष्य जब सब ओर से निराश हो जाता है, जब उसे दूसरा कोई रास्ता नहीं दीखता तब वह परवश होता है। बहुत से ऐसे भी वीर होते हैं कि जीते जी किसी के सामने सिर झुकाते ही नहीं। वे पराधीन होने की अपेक्षा मर जाना उत्तम समझते हैं। महामना कर्ण उन्हीं आत्माभिमानी मनस्वी वीरों में से थे।

आरोहण... आक्रमण। कहकर कर्णने अपनी स्नायुबद्ध भुजाओं को ऊपर उठाकर कौरव-सेना को आक्रमण करने का आदेश दिया।

कौरव-सेना का विशाल मकर पाण्डवों को निगलने हेतु तेजी से आगे बढ़ा। अर्धचन्द्राकार व्यूह में पाण्डव-सेना भी आगे बढ़ी। कर्ण ने विषैले फलवाले बाणों की अविरत वर्षा से पाण्डवोंको प्रचण्ड गजदल को शीघ्र ही तितर-बितर कर दिया। सूर्य ऊपर चढ़ आया और भीमने क्षेमधूर्ती को मार गिराया। संशप्तकों से भिड़े अर्जुन ने दण्ड और दण्डधार इन राजाओं को धराशायी कर दिया। तब बौखलाये अश्वत्थामा ने उस पर आक्रमण किया। जिस पांचाल-दल में कर्ण घुस गया था, वहाँ सीधे-सीधे संकुलयुद्ध का आरम्भ हुआ।

अश्वत्थामाने पहले एक बाण मारकर भीमको बींध दिया। फिर उनके मर्मस्थानोंमें आघात किया। तब भीमने भी एक हजार बाणोंसे द्रोणपुत्रको आच्छादित करके सिंहके समान गर्जना की।

संशप्तकोंकी सेना समुद्रके समान दुर्लघ्य थी, तो भी अर्जुनने उसमें प्रवेश कर तूफान-सा खड़ा कर दिया। वे तेज किये हुए बाणोंसे कौरववीरोंके मस्तक काट-काटकर गिराने लगे।

इस प्रकार अश्वत्थामाने अपने सायकसमूहोंकी बौछारसे श्रीकृष्ण और अर्जुनको बींध डाला और अत्यन्त प्रसन्न होकर महामेघके समान भयंकर गर्जना की। यह देख अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग और निषाद देशोंके वीर अर्जुनको मार डालनेकी इच्छासे हाथियोंपर सवार हो वहाँ चढ़ आये।

इसी समय उत्तरकी ओर पाण्डवसेनामें बड़े जोरका आर्तनाद सुनायी पड़ा। वहाँ दण्डधार पाण्डवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका संहार

कर रहा था। यह देख कृष्णने रथको लौटाकर उधर ही घूमा दिया और अर्जुनसे कहा- मगधदेशका राजा दण्डधार बड़ा पराक्रमी है, वह कहीं भी अपना सानी नहीं रखता। इसके पास शत्रुओंका संहार करनेवाला एक महान् गजराज हैं, इसे युद्धकी उत्तम शिक्षा मिली है ओर बल तो सबसे अधिक है ही। इनमेंसे किसी भी दृष्टिसे यह राजा भगदत्तसे कम नहीं है। पहले तुम इसीका संहार कर डालो, फिर संशप्तकोंको मारना। इतना कहकर कृष्णने अर्जुनको दण्डधारके निकट पहुँचा दिया।

तब अर्जुनने भल्लोंसे उसके धनुष-बाण, प्रत्यञ्चा और ध्वजाको काट दिया। इससे कुपित हो दण्डधारने श्रीकृष्ण और अर्जुनको घबराहटमें डालनेकी इच्छासे अपने मदोमत्त गजराजको उनकी ओर बढ़ाया और तोमरोंसे उन दोनोंपर वार किया। यह देख पाण्डुनन्दन अर्जुनने तीन क्षुर चलाकर उसकी दोनों भुजाओं और मस्तकको एक ही साथ काट डाला।

युद्धमें दण्डधारके मारे जानेपर उसका भाई दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करनेके लिये चढ़ आया। आते ही वह श्रीकृष्णको और अर्जुनको तोमर मारकर भीषण गर्जना करने लगा। तब अर्जुनने उसकी दोनों बाँहें काट डालीं और उसके मस्तकपर एक अर्धचन्द्राकार बाण मारा। उसकी चोटसे दण्डका मस्तक कटकर हाथीपरसे जमीनपर जा पड़ा।

अर्जुनने मङ्गल ग्रहकी भाँति वक्र और अतिवक्र गतिसे चलकर बहुसंख्यक संशप्तकोंका संहार कर डाला।

उसी समय श्रीकृष्णने कहा- अर्जुन। तुम खिलवाड़ क्यों कर रहे हो? इन संशप्तकोंका अन्त करके अब कर्णका वध करनेके लिये शीघ्र तैयार हो जाओ। अच्छा, ऐसा ही करता हूँ- यह कहकर अर्जुनने शेष संशप्तकोंका संहार आरम्भ किया। अर्जुन इतनी शीघ्रतासे बाण हाथमें लेते, संधान करते और छोड़ते थे कि बहुत सावधानीसे देखनेवाले भी उनकी इन सब बातोंको देख नहीं पाते थे। अर्जुनका हस्तलाघव देख स्वयं श्रीकृष्ण भी आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने अर्जुनसे कहा- पार्थ। इस पृथ्वीपर दुर्योधनके कारण राजाओंका यह महाभयंकर संहार हो रहा है। आज तुमने जो पराक्रम किया है, वैसा स्वर्गमें केवल इन्द्रने ही किया था। इस प्रकार बातें करते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन चले जा रहे थे, इतनेहीमें उन्हें दुर्योधनकी सेनाके पास शफ, दुन्दुभि, भेरी और पणव आदि बाजोंकी आवाज सुनायी दी। तब श्रीकृष्णने घोड़ोंको बढ़ाया और वहाँ पहुँचकर देखा कि राजा पाण्ड्यके द्वारा दुर्योधनकी सेनाका विकट विध्वंस हुआ है। यह देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। राजा पाण्ड्य अस्त्रविद्या तथा धनुर्विद्यामें प्रवीण थे। उन्होंने अनेकों प्रकारके बाण मारकर शत्रु-समुदायका नाश कर डाला थां शत्रुओंके प्रधान-प्रधान वीरोंने उनपर जो-जो अस्त्र छोड़े थे, उन सबको अपने सायकोंसे काटकर वे उन वीरोंको यमलोक भेज चुके थे।

इस प्रकार पाण्ड्य समस्त राजाओं तथा सम्पूर्ण अस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे। वे कर्णकी सेनाका संहार कर रहे थे। उन्होंने सम्पूर्ण योद्धाओंको छिन्न-भिन्न कर दिया, हाथियों और उनके सवारोंको पताका, ध्वजा और अस्त्रोंसे हीन करके पादरक्षकोंसहित मार डाला। पुलिन्द, खस, बाह्लीक, निषाद, आन्ध्र, कुन्तल, दाक्षिणात्य और भोजदेशीय शूरवीरोंको शस्त्रहीन तथा कवचशून्य करके उन्होंने मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार उन्हें कौरवोंकी चतुरङ्गिणी सेनाका नाश करते देख अश्वत्थामा उनका सामना करनेके लिये आया। उसने राजा पाण्ड्यके ऊपर पहले प्रहार किया, तब उन्होंने एक कर्णी नामक बाण मारकर अश्वत्थामाको बींध डाला। इसके बाद अश्वत्थामाने मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देनेवाले अत्यन्त भयंकर बाण हाथमें लिये और राजा पाण्ड्यके ऊपर हँसते-हँसते उनका प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तेज की हुई धारवाले कई तीखे नाराच उठाये और पाण्ड्यपर उनका दशमी गतिसे प्रयोग किया। परंतु पाण्ड्यने बाण मारकर उन नाराचोंको काट डाला और उसके पहियोंकी रक्षा करनेवाले योद्धाओंको भी मार डाला।

उस समय उसका स्वरूप क्रोधसे भरे हुए यमराजके समान हो रहा था। जिन लोगोंने उसे देखा, वे प्राय: होश-हवास खो बैठे। अश्वत्थामाके चलाये हुए उन सभी बाणोंको पाण्ड्यने वायव्यास्त्रसे उड़ा दिया और उच्चस्वरसे गर्जना की।

अब तो क्रोधके मारे द्रोणकुमारके बदनमें आग लग गयी, उसने शत्रुको पीडा देनेवाले यमदण्डके समान भयंकर बाण हाथमें लिये। उनमेंसे हाथीको पैरोंसे लेकर सूँड़तक बींध डाला, और राजाकी दोनों भुजाओं और मस्तकको काट गिराया तथा पाण्ड्यके अनुयायी छ: महारथियोंको यमलोक पठाया।

इस प्रकार अङ्गदेशीय राजकुमारके मारे जानेपर वहाँके महावत क्रोधमें भर गये और हाथियोंसहित नकुलपर चढ़ आये। उनके साथ ही मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध तथा ताम्रलिप्त आदि देशोंके योद्धा भी नकुलको मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाणों और तोमरोंकी वर्षा करने लगे। उन सबके अस्त्रोंकी बौछारसे नकुलको ढक गया देख पाण्डव, पाञ्चाल और सोमक क्षत्रिय बड़े क्रोधमें भरकर वहाँ आ पहुँचे। फिर तो पाण्डवपक्षके रथी वीरोंका उन हाथियोंके साथ घोर युद्ध होने लगा। उन्होंने बाणोंकी झड़ी लगा दी और हजारों तोमरोंका वार किया। उनकी मारसे हाथियोंके कुम्भस्थल फूट गये, मर्मस्थानोंमें घाव हो गया, दाँत टूट गये और उनकी सारी सजावट बिगड़ गयी। उनमेंसे आठ बड़े-बड़े गजराजोंको सहदेवने बाण मारे, जिनकी चोटसे पीड़ित हो वे हाथी अपने सवारोंसहित गिरकर मर गये।

३) नकुल और कर्ण का युद्ध व नकुल को प्राणदान

मत्स्य और पांचाल वीरों को कर्ण के द्वारा धड़ाधड़ वीरगति को प्राप्त होते हुए देखकर कृष्ण उसको रोकने के लिए अपने पांचजन्य के विशिष्ट स्वरों से नकुल को कर्ण पर आक्रमण करने का संकेत बार-बार करने लगे।

वे शत्रुओं को मारते काटते आगे जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें नकुल मिल गये। महावीर कर्ण को देखकर नकुल क्रोध के मारे लाल पड़ गये और दाँतों से ओठ चबाते हुए बोले- अरे ओ नीच सूत पुत्र। उधर कहाँ भागा जा रहा है। आज भाग्य से तेरे दर्शन मुझे मिल गया। समस्त वैर भाव और हत्या की जड़ तू ही है। यह महाभारत तेरे ही कारण हुआ है। आज मैं तुझे मारकर धर्मराज को प्रसन्न करूँगा और पांडवों के कंटक को निकाल फेकूँगा। आ जा मुझसे युद्ध कर।

महावीर कर्ण हँस पड़े। उन्होंने हँसते-हँसते कहा- नकुल। मैं तुम्हारी बात से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुमने क्षत्रिय बालक के अनुरूप ही वचन कहे हैं, शत्रु से लड़ना ही वीर का परम धर्म है। युद्ध में शत्रु को ललकारना ही वीरों की शोभा है, किन्तु बड़बड़ाने की अपेक्षा कुछ करके दिखाना अधिक उपयुक्त है। यदि तुझमें कुछ बल पौरुष है तो सामने आकर दो-दो हाथ दिखा दे। मैं तुझे जान से मारूँगा नहीं, फिर भी तू अपनी इच्छा पूरी तो कर ही ले। अच्छा तो सम्हाल कर मेरे ऊपर बाणों की वर्षा कर।

इतना सुनते ही नकुल ने बहुत से बाण कर्ण के ऊपर छोड़े, कर्ण ने उन सभी बाणों को सहज ही में बीच से काटकर गिरा दिया। अब कर्ण ने भी नकुल पर बाण छोड़े। दोनों वीर दो सिंहों की तरह लड़ रहे थे। जैसें दो साँड़ लड़ते-लड़ते टक्कर मारकर कभी किसी को खदेड़ ले जाता है, कभी किसी को। इसी भाँति कर्ण और नकुल एक दूसरे को परास्त करने की चेष्टा करने लगे। उन दोनों वीरों के इस युद्ध को देखकर, बहुत से वीर उसे देखने के लिये इधर-उधर खड़े हो गये। कभी तो कर्ण अपने बाणों से नकुल को रथसहित ढक देते, कभी नकुल इतने बाण छोड़ते है कि कर्ण दिखाई ही नहीं देते। जैसे बादलों को फाड़कर भगवान सूर्य उदय होते हैं, वैसे ही वे वीर उन बाणों के जाल से निकलकर सामने आते। इस प्रकार बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। अवसर पाकर कर्ण ने बहुत से बाण मारकर नकुल के रथ को चूर-चूर कर दिया, घोड़ों को मार डाला और नकुल के अङ्ग-रक्षक तथा सारथियों को भी यमलोक पठा दिया। अब रथहीन नकुल ढाल तलवार लेकर रथ से कूदकर जमीन पर आ गये और वहाँ से युद्ध करने लगे। एक बाण से कर्ण ने नकुल की ढाल को भी काट गिराया।

तलवार की मूठ ही उनके हाथ में रह गयी। तब लोहे की एक परिधि लेकर नकुल कर्ण की ओर दौड़े। उसे भी कर्ण ने अपने बाणों से काट गिराया। रथहीन शस्त्रहीन होने पर नकुल युद्ध छोड़कर बड़ी तेजीसे भाग निकले। तब आगे बढ़कर कर्णने उन्हें पकड़ लिया और अपनी धनुष की डोरी उनके गले में डालकर बोले- अब भागकर कहाँ जाओगे? युद्ध का मजा तो चखते जाओ। बोलो, अब कुछ करना बाकी है?

इस प्रकार दु:शासनको परास्त करके सहदेवने दुर्योधनकी सेनापर दृष्टि डाली और उसका सब ओरसे संहार आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर नकुल भी कौरव-सेनाको पीछे भगा रहा था। यह देख कर्ण क्रोधमें भरा हुआ वहाँ आया और नकुलको रोककर सामना करने लगा। उसने नकुलका धनुष काटकर उसे बाणोंसे घायल किया। तब नकुलने भी दूसरा धनुष लेकर कर्ण और उसके सारथीको बाण मारे। फिर एक क्षुरप्रसे कर्णके धनुषको काटकर उसपर बाणोंका प्रहार किया। नकुलके द्वारा कर्णको इस तरह पीडित होते देख सभी रथियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ; देवता भी अत्यन्त विस्मित हो गये।

कर्ण कहने लगा- पाण्डुनन्दन। अब बलवानोंके साथ युद्ध करनेका साहस न करना। जो तुम्हारे समान हों, उन्हींसे भिड़नेका हौसला करना चाहिये। माद्रीकुमार। हार गये तो क्या हुआ? लजाओ मत। जाओ, घरमें जाकर छिप रहो अथवा जहाँ श्रीकृष्ण तथा अर्जुन हों, वहीं चले जाओ।

कृपाचार्य और धृष्टद्युम्न मे भयंकर युद्ध हो रहा है। दुर्योधन और युधिष्ठिर में युद्ध हो रहा है। युधिष्ठिर ने बाण चलाकर दुर्योधन को घायल कर दिया। कर्ण और नकुल का संग्राम हो रहा है। कर्ण बोला, युद्ध बराबर वालों से किया जाता है कौन्तेय नकुल। जाओ अपने शिबिर में लौट जाओ और अपने घावों पर स्नेह लेप लगाओ।

नकुल लज्जा के कारण नीचे निहार रहे थे। लज्जा और पराजय के कारण वे निरुत्तर खड़े हुए थे। तब कर्णने फिर कहा- देखो, मैं तुम्हारे प्राणों को न लूँगा। तुम्हें जीवित ही छोड़े देता हूँ किन्तु आज से यह प्रतिज्ञा करो कि अपने से बलवान् वीर से कभी न लड़ोगे। यह कहकर कर्ण ने नकुल को छोड़ दिया। अत्यन्त लज्जित हुए नकुल किसी दूसरे के रथ में बैठकर वहाँ से भाग गये। इस प्रकार वीरवर कर्ण ने अपने वश में आने पर भी माता को वरदान देने के कारण नकुल को मारा नहीं अपितु उन्हें प्राणदान दे दिया।

यह कहकर कर्णने नकुलको छोड़ दिया। यद्यपि उस समय कर्णके लिये नकुलको मारना सहज था, तो भी कुन्तीको दिये हुए वचनको याद करके उसने उसे जीवित ही छोड़ दिया; क्योंकि कर्ण धर्मका ज्ञाता था। नकुलको इस पराजयसे बड़ा दु:ख हुआ। वह उच्छ्वास लेता हुआ अत्यन्त संकोचके साथ जाकर युधिष्ठिरके रथपर बैठ गया।

कर्ण ने अपनी माता कुन्ती के सामने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं अर्जुन को छोड़कर तुम्हारे चार पुत्रों को वश में आने पर भी न मारूँगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने अक्षरश: किया। माता से यह प्रतिज्ञा न करते तो अर्जुन की बात तो कह नहीं सकते, किन्तु शेष चार भाई तो उनके वश में आ ही गये थे। वे चाहते तो इन्हें युद्ध में मार सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, वश में आने पर भी उन्हें प्राणदान दे दिया और बिना मारे ही पराजित करके छोड़ दिया। कर्ण को कुन्ती से मिलने का स्मरण आता है इसलिये उनका मिलन स्मरण कर उसने भीम को छोड दिया।

इतनेमें सूर्यदेव आकाशके मध्यभागमें आ गये। उस दुपहरीमें सूतपुत्र कर्ण चारों ओर चक्रके समान घूमता हुआ पाञ्चालोंका संहार करने लगा।

दूसरी ओर आपके पुत्र श्रुतकर्माने शतानीकके रथ, सारथी और घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब महारथी शतानीकने क्रोधमें भरकर उस अश्वहीन रथमेंसे ही आपके पुत्रपर एक गदा फेंकी। वह उसके रथ, सारथी और घोड़ोंको भस्म करके पृथ्वीपर

जा पड़ी। इस प्रकार ये दोनों ही वीर रथहीन होकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए रणाङ्गणसे खिसक गये।

इसी समय शकुनिने अत्यन्त पैने बाणोंसे सुतसोमको घायल कर दिया। किंतु इससे वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। उसने अपने पिताके परम शत्रुको सामने देखकर उसे हजारों बाणोंसे आच्छादित कर दिया। किंतु शकुनिने दूसरे बाण छोड़कर उसके सभी तीरोंको काट डाला। इसके बाद उसने सुतसोमके सारथी, ध्वजा और घोड़ोंको भी तिल-तिल करके काट डाला।

अब सुतसोम एक तलवार लेकर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्लुत, सृत, सम्पात और समुदीर्ण आदि चौदह गतियोंसे उसे सब ओर घूमाने लगा। इस समय उसपर जो बाण छोड़ा जाता था, उसे ही वह तलवारसे काट डालता था। इसपर शकुनिने अत्यन्त कुपित होकर उसपर सर्पोंके समान विषैले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। परंतु सुतसोमने अपने शस्त्रकौशल और पराक्रमसे उन सबको काट डाला।

दूसरी ओर शिखण्डी कृतवर्मासे भिड़ा हुआ था। उसने उसकी हँसलीमें बाण मारे। इसपर महारथी कृतवर्माने क्रोधमें भरकर उसपर बाण छोड़े और फिर हँसते-हँसते एक बाणसे उसका धनुष काट डाला।

इस समय अर्जुन कौरवोंकी सेनाका संहार कर रहे थे। कौरवोंकी ओरसे त्रिगर्त, शिबि, कौरव, शाल्व, संशप्तक और नारायणी सेनाके वीर उनसे टक्कर ले रहे थे। सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, सुतञ्जय, सौश्रुति, चित्रसेन, मित्रवर्मा और भाइयोंसे घिरा हुआ त्रिगर्तराज ये सभी वीर संग्रामभूमिमें अर्जुनपर तरह-तरहके बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे। योद्धालोग अर्जुनसे सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें टक्कर लेकर लुप्त हो जाते थे। इसी समय उनपर सत्यसेन, मित्रदेव, चन्द्रदेव, मित्रवर्मा, सौश्रुति, शत्रुञ्जय और सुशर्माने बाण छोड़े। इस प्रकार संग्राम भूमिमें अनेकों योद्धाओंके बाणोंसे बिंधकर अर्जुनने बदलेमें उन सभी राजाओंको घायल कर दिया। उन्ही बाणोंसे सौश्रुतिको, सत्यसेन, शत्रुञ्जय, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतसेन, मित्रवर्मा, सुशर्माको बींधकर अनेकों बाणोंसे शत्रुञ्जयको मार डाला, सौरुतिका सिर धड़से अलग कर दिया, इसके बाद फौरन ही चन्द्रदेवको अपने बाणोंसे यमराजके घर भेज दिया और फिर दूसरे महारथियोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

अब महारथी अर्जुनने ऐन्द्रास्त्र प्रकट किया। उसमेंसे हजारों बाण निकलने लगे, जिनकी चोटसे अनेकों राजकुमार, क्षत्रिय वीर और हाथी-घोड़े पृथ्वीपर लोट-पोट हो गये। इस प्रकार जब धनुर्धर धनञ्जय संशप्तकोंका संहार करने लगे तो उनके पैर उखड़ गये। उनमेंसे अधिकांश वीर पीठ दिखाकर भाग गये। इस प्रकार वीरवर अर्जुनने उन्हें रणाङ्गणमें परास्त कर दिया। दूसरी ओर महाराज युधिष्ठिर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे। उनका सामना स्वयं राजा दुर्योधनने किया। धर्मराजने उसे देखते ही बाणोंसे बींध डाला।

इसी समय सब पाण्डवलोग भी महाराज युधिष्ठिरको घेरकर संग्राम-भूमिमें बढ़ने लगे। बस, अब दोनों ओरसे खूब संग्राम होने लगा। दोनों ही पक्षके वीर वीरधर्मके अनुसार एक-दूसरेपर प्रहार करते थे; जो कोई पीठ दिखाता था, उसपर कोई चोट नहीं करता था। इस समय योद्धाओंमें बड़ी मुक्का-मुक्की और हाथा-पाई हुई। वे एक-दूसरेके केश पकड़कर खींचने लगे। युद्धका जोर यहाँतक बढ़ा कि अपने-परायेका ज्ञान भी लुप्त हो गया। इस प्रकार जब घमासान युद्ध होने लगा तो योद्धा लोग तरह-तरहके शस्त्रोंसे अनेक प्रकारसे एक-दूसरेके प्राण लेने लगे।

दुर्योधन को समाचार मिला कि कर्ण ने नकुल का वध नहीं करते हुए छोड़ दिया और कहा कि बच्चों को लड़ना चाहिए। नकुल अपने समतुल्य किसी योद्धा से युद्ध किया करे। कर्ण जैसे योद्धाओं से भिड़ना उसके वश का नहीं है, अत: वैसा दुस्साहस न करें।

दुर्योधन को लगा कर्ण युद्ध कर रहा है या गुरुकुल में छात्रों को शिक्षा और उपदेश दे रहा है। कर्ण ने नकुल का वध क्यों

नहीं किया? उसका प्रधान सेनापति बनते ही प्रत्येक योद्धा पांडवों का वध न करने का संकल्प क्यों कर लेता है? क्यों दया आ गई कर्ण को नकुल पर?

दुर्योधन का उत्साह पाताल में समाता जा रहा था और उत्तेजना आकाश को छूने लगी थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि या तो वह अपने शिबिर को आग लगा दे अथवा अपने-आपको मदिरा के भांड में डुबो दे। अपने सिर के केश नोच ले अथवा कर्ण को सामान्य सैनिकों के सम्मुख कोड़ों से पिटवाए।

पर कर्ण अर्जुन को सामने देखकर हट क्यों जाता है? और आज दिन भर में वह उससे युद्ध करने क्यों नहीं गया? क्या वह अर्जुन से भयभीत है? पर अर्जुन भी तो उससे लड़ने नहीं आया। वह भी तो जानता ही होगा कि अब कर्ण कौरवों का प्रधान सेनापति है। उसे पराजित करने का अर्थ है, सारी कौरवसेना को पराजित करना। क्यों नहीं आया वह युद्ध करने? अर्जुन संशप्तकों से लड़ता रहा। उसने अश्वत्थामा को पराजित किया। फिर वह दंडाधार और दंड जैसे योद्धाओं से लड़ने चला गया। श्रुतंजय, सौश्रुति, चंद्रदेव, सत्यसेन से लड़ता रहा। वह भी तो कर्ण को टालता ही रहता है। ये दोनों परस्पर लड़ क्यों नहीं लेते? अंतत: कर्ण लड़ा भी तो सात्यकि से। सात्यकि ने उसे पराजित ही कर दिया था कि कौरव महारथी कर्ण की सहायता को पहुँच गए। सात्यकि से वे उसे बचा लाए। यदि अर्जुन होता तो? और फिर अर्जुन सहित सारे पांडव योद्धा कर्ण पर ही पिल पड़े। कर्ण ने बहुत वीरता दिखाई; किंतु अर्जुन के आने के पश्चात् कौरव सेना को भागना ही पड़ा। उधर कर्ण दुर्बल पड़ता जा रहा था और दूसरी ओर सूर्य अस्ताचल को पार कर गए थे।

पर यदि कर्ण को बुलाकर दुर्योधन पूछे कि उसने नकुल का वध क्यों नहीं किया, तो क्या उत्तर देगा कर्ण? कदाचित् कहे कि नकुल कोई ऐसा वीर तो है नहीं कि उसका वध कर कर्ण गौरवान्वित हो सके। तो ऐसी निरीह हत्या क्यों की जाए? संभव है कि वह यह कहे कि नि:शस्त्र नकुल को मारने का क्या लाभ? उससे तो कर्ण कलंकित ही होगा। तो फिर कर्ण ने उसे उस समय क्यों नहीं मारा, जब उसके पास शस्त्र थे? उसका वध करने के स्थान पर उससे क्रीड़ा क्यों करता रहा वह? और वैसे भी क्या कर्ण अपने सामने पड़े शत्रु सैनिकों का वध नहीं करता? उससे गौरवान्वित होता है कर्ण? कर्ण को पांडवों के समान धर्म का रोग कब से लग गया? योद्धा केवल अपने गौरव के लिए लड़ता है, या अपने शत्रुओं को मारने के लिए, उनको हानि पहुँचाने के लिए, उनकी क्षमता को कम करने के लिए भी शस्त्र का प्रयोग करता है? वह अपने भय से मुक्त होने के लिए लड़ता है या योद्धाओं की सूची में अपना नाम अंकित करवाने के लिए शस्त्र धारण करता है? वह सत्ता और संपत्ति के लिए लड़ता है या धर्म नामक किसी काल्पनिक उपलब्धि के लिए? वह अपने मन की प्रतिहिंसा के आदेश का पालन करता है या किसी से अपने लिए प्रशंसा पाने का स्वप्न पूर्ण करता है। वह अपनी ईर्ष्या की अग्नि में समिधा डालता है अथवा अपने गौरव की चिंता करता है?

लज्जित नकुल सिर घूमाकर उसके आगे से हट गया। सन्ध्या समय, जब कुरुक्षेत्र के आसपास ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की लम्बी-लम्बी परछाइयाँ फैलने लगीं, कृष्ण ने पहली बार अर्जुन के नन्दिघोष रथ को कर्ण के जैत्ररथ के सम्मुख पहुँचाया। एक-दूसरे को देखते ही वे अत्यन्त क्षुब्ध हुए। अत्यन्त क्रोध से वे दोनों एक-दूसरे पर चिल्लाये। एक-दूसरे को बेधते हुए उन्होंने अपने धनुषों से ऐसी अविरल बाण-वर्षा की कि कुरुक्षेत्र का आकाश आच्छन्न हो गया। घण्टेभर तक उनके अमोघ, वेगवान, नादमय बाण आपस में टकराते रहे। उनसे निकलती चिनगारियों ने कर्णके सारथी सत्यसेन को झुलसा दिया। अर्जुन के बाणों से वह गतप्राण हुआ। अन्तत: पौष शुद्ध द्वितीया को युद्ध का अत्यन्त कठिन सोलहवाँ दिन समाप्त हुआ। रात्रि घने अन्धकार का आवरण कुरुक्षेत्र को ओढ़ाने लगी। कुछ क्षणों में सर्वत्र केवल अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया।

तब सारथी तुरंत ही उस रथको हाँककर धर्मराजके सामने ले गया। दुर्योधनने फौरन ही एक पैने बाणसे उनका धनुष काट डाला। इसपर महाराज युधिष्ठिरने दूसरे धनुष से दुर्योधनके धनुष और ध्वजाके टुकड़े कर दिये। तब दुर्योधनने भी दूसरा धनुष लेकर उन्हें घायल कर डाला। इस प्रकार वे दोनों ही वीर अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, दोनों ही एक-दूसरेपर वार करनेका मौका देखने लगे, दोनों ही बाणोंकी चोटोंसे घायल हो गये तथा दोनों ही बार-बार सिंहके समान गर्जना और शफ्ध्वनि करने लगे। राजा युधिष्ठिरने तीन वज्रके समान वेगवान् और दुर्धर्ष बाणोंसे दुर्योधनकी छातीपर चोट की। इसके बदलेमें आपके पुत्रने उन्हें बाणोंसे घायल कर दिया।

अब आपके पक्षके योद्धा कर्णको आगे करके पाण्डव सेनापर टूट पड़े और उनके साथ युद्ध करने लगे। कर्णने अनेकों चमचमाते हुए बाण सात्यकि पर छोड़े। इसपर सात्यकिने फौरन ही उसे तथा उसके रथ, सारथी और घोड़ोंको अनेकों तीखे तीरोंसे छा दिया। कर्णको इस प्रकार सात्यकिके बाणोंसे व्यथित देख आपके पक्षके अनेकों अतिरथी हाथी, घोड़े, रथी और पैदल सेनाएँ लेकर दौड़े। उनका सामना द्रुपदके पुत्र आदि अनेकों वीरोंने किया। इससे वहाँ हाथी, घोड़े, रथ और सैनिकोंका बड़ा भारी संहार होने लगा।

इस प्रकार आपके और पाण्डवोंके पक्षके योद्धा विजयकी लालसासे युद्धमें जुटे हुए थे कि इसी समय सूर्यदेव अस्ताचलके शिखरपर जा पहुँचे। सब ओर अन्धकार फैलने लगा तथा बड़े-बड़े धनुर्धर अपने-अपने योद्धाओंके सहित शिबिरकी ओर चलने लगे। कौरवोंको जाते देख विजयी पाण्डव भी अपने शिबिरोंको चल दिये। सब वीर बाजेगाजेके साथ सिंहनाद ओर गर्जना करते हुए चले गए और उन्होंने शिबिरमें जाकर रातभर विश्राम किया।

सत्रहवें दिन का युद्ध

१) कर्ण का शल्य को अपना सारथि बनाना

दैव अनुकूल हो तो बिगड़े हुए काम बन जाते हैं। इसके विपरीत दैव की प्रतिकूलता में बने हुए काम भी नहीं बनते। सब साधन अनुकूल होने पर भी हम पिछड जाते हैं। मित्र शत्रु हो जाते हैं, अपने पराये बन जाते हैं। सहायक ही अपने पथ में कंटक का काम करते हैं। कर्ण के जीवन में हम पग-पग पर इसका अनुभव करते हैं।

संसार में जिन्होंने अपनापन त्याग दिया है, उन्हें मान और अपमान समान हैं। किन्तु जिनमें थोड़ा भी अपनापन शेष है, वे अपने मान से सन्तुष्ट और अपने अपमान से असन्तुष्ट होते हैं। मैं, मेरा यही मान अपमान और सुख-दु:ख का कारण है। मेरा शरीर, मेरा कुल, मेरी जाति, मेरा सम्प्रदाय, मेरा देश यही ममत्व है। जिनमें ममत्व है मेरापन है उनकी अच्छाई से, उन्नति से हमें सन्तोष और सुख होता है। जिसमें परायापन है, उसके सम्बन्ध में हम उदासीन रहते हैं। जिसमें द्वेष बुद्धि है, उसकी अच्छाई से हमें असन्तोष और बुराई से सन्तोष होता है। जब हम किसी की प्रशंसा करने लगते हैं तो उसके सम्बन्ध के सभी अवगुण को भूल जाते हैं और उसके गुणों का ही बढ़ा-चढ़ाकर बखान करते हैं। इसके विपरीत जब हम किसी की निन्दा करने पर उतारू होते हैं तो उसके गुणों को एकदम भूल जाते हैं। उसके शरीर में, उसके परिवार में, उसकी जाति में, उसके सम्प्रदाय में, उसके देश में जो अवगुण होते हैं, उन्हें ही तिल का ताड़ बनाकर कहते हैं। नीच पुरुष झूठी भी निन्दा करते हैं, किन्तु साधारण लोग निन्दनीय बातों की निन्दा करके विपक्षी को चिढ़ाते हैं। निन्दास्पद बात हो और वह सत्य हो तो इससे विपक्षी को लज्जा आती है और अपमान के कारण क्रोध भी आता है।

देश-देश के आचार-विचारों का ज्ञान होता है। देशाचार और कुलाचार भिन्न-भिन्न होता है। किसी देश में जो बात

बुरी मानी जाती है, दूसरे देश में उसी को सब लोग करते हैं। सब देशों का आचार-विचार भिन्न-भिन्न होता है। बहुत से लोग किसी विशेष सम्प्रदाय वालों को दोष देते हैं कि अमुक सम्प्रदायवाले तो बड़े भ्रष्ट होते हैं, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो आचार-विचार का सम्बन्ध तो कुल और देश के ऊपर निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय को माननेवालों के एक से आचार-विचार होते हैं और एक ही सम्प्रदाय के लोगों के भिन्न भिन्न आचार-विचार देखे गये हैं। हमारे यहाँ जैनी हैं, वैदिक धर्म को नहीं मानते। हमारे वेद, पुराण, शास्त्र और देवताओं में उनका विश्वास नहीं। धार्मिक मान्यता के नाते वे हमसे उतने ही दूर हैं जितने अन्य धर्मावलम्बी। किन्तु उनका और हमारा आचार-विचार तथा संस्कृति एक है, इसीलिये वैदिक धर्म को माननेवालों के साथ उनकी रोटी-बेटी का सम्बन्ध हैं। भारत में अब बौद्ध नहीं रहे। यदि वे होते तो भारतीय बौद्ध और चीन जापान के बौद्धों के आचार-विचार में जमीन आसमान का अन्तर होता है। दक्षिण की यात्रा में एक ऐसे ईसाई परिवार को देखा, जिनका आचरण शुद्ध ब्राह्मणों जैसा था। पूछने पर मालूम हुआ आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व भगवान् शंकराचार्य से भी पहिले इधर कोई ईसाई सन्त आये थे। उनके उपदेश से कुछ ब्राह्मण ईसाई हो गये। उन ईसाईयों के आचार-विचार में और पश्चिमीय ईसाईयों के आचार की कोई तुलना ही नहीं। पंजाबियों और संयुक्त प्रान्त के मुसलमानों के आचार-विचार में बहुत कम अन्तर होगा। मनुष्य चाहे जिस धर्म को मान लें, कुल धर्म और आचार-विचार की बहुत-सी बातें बनी ही रहेंगी। संयुक्त प्रान्त में ऐसे बहुत से मुसलमान हैं, जो हिन्दुओं की तरह रहते हैं। उनके आचार-विचार हिन्दुओं के-से हैं। पंजाब और पंजाब के आसपास के प्रान्त सिन्ध, सीमाप्रान्त अफगानिस्तान आदि का आचार-विचार पहिले से ही गिरा हुआ था। भारतीय संस्कृति से भिन्न ही इनका आचार था, जब तक मुहम्मदीय सम्प्रदाय नहीं चला था। मुहम्मदीय सम्प्रदाय में दीक्षित होकर तो वे और भी आर्य संस्कृति से दूर हो गये। शल्य और कर्ण के सम्वाद को पढ़ने से पता चलता है वहाँ पहिले से ही लोग आचारहीन होते थे। कर्ण ने वहाँ के आचार की बड़ी-बड़ी निन्दास्पद बातें बताकर शल्य को लज्जित किया है। शल्य ने भी उन बातों को माना है, उनका विरोध नहीं किया है। बहुत से लोग पञ्चनन्द पंजाब और पांचाल देश को एक ही समझते हैं। बहुतों को द्रौपदी को पंजाब की कहते सुना है, किन्तु पंजाब और पांचाल देश में बड़ा अन्तर है। पंचनद (पंजाब) तो वह प्रान्त कहाता है जिसमें सतलज, रावी, चुनाव, झेलम और व्यास ये ५ नदी हों। पांचाल गंगाके पास हस्तिनापुर से पूर्व में बताया है। पांचाल देश की राजधानी कांपिल्य है। कांपिल्य का अपभ्रंश कोल है। अलीगढ़ का अब भी पुराना नाम कोल है। अत: पांचाल देश अलीगढ़, बुलंदशहर और एटा का कुछ हिस्सा तथा बदायूँ और बिजनौर जिले हैं। द्रोणाचार्य ने द्रुपद को हराकर गंगा जी के दक्षिण का हिस्सा बदायूँ (बिजनौर) उनसे छीन लिया। इसलिये पांचाल देश अलीगढ़ के आस-पास के प्रान्त को कहते हैं। मेरठ, देहली, हिसार, बीकानेर इस भाग को कुरुजाङ्गल देश कहते हैं। देहली कुरुक्षेत्र तक कुरुदेश और हिसार से आगे मरूदेश के कुछ भाग का नाम जाङ्गल देश है। बीकानेर के महाराज अब भी जाङ्गल नरेश कहलाते हैं। आयुर्वेद में सबसे अधिक स्वास्थप्रद जाङ्गल देश (राजपूताना) बताया है। महाभारत में आचार-विचार और पवित्रता में पांचाल देश और कुरू जाङ्गल को बताया है। स्मृतिकारों ने अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, दक्षिण के देश- सौराष्ट्र, मगध, पश्चिम के देश सिन्ध से लेकर समस्त अनार्य देशों को आचारहीन कहा है। शल्य जब कर्ण को बहुत चिढ़ाने लगे तब कर्ण ने उनके देश के निन्दनीय आचार-विचार का वर्णन करके उन्हें बहुत लज्जित किया।

संजय बोला, पहले जान-बूझकर भी आपने इसके औचित्य-अनौचित्यके विषयमें विचार नहीं किया। पाण्डवोंने तो आपसे बार-बार कहा था कि लड़ाई मत ठानिये, किंतु आपने मोहवश सुना ही नहीं। आपने पाण्डवोंके ऊपर बड़े-बड़े

जुल्म किये हैं। इस समय भी आपहीके कारण यह राजाओंका घोर संहार हो रहा है। परंतु अब जो बात बीत गयी, उसके विषयमें आप चिन्ता न करें।

कर्ण वीर था। सुप्रसिद्ध दानी था। जीवनमें किसी भी याचकको उसने नहीं कहकर लौटाया नहीं था। श्रीकृष्णके स्वरूपको वह जानता था। केवल अर्जुनसे उसके मनमें प्रबल स्पर्धा थी। इसे दोष नहीं कहा जा सकता; किन्तु भगवदाश्रित व्यक्तिका भक्तका विरोध कभी भी कल्याणकारी नहीं होता।

कर्णका एक बड़ा दोष था कि वह कुसंगमें पड़ गया था। दुर्योधनके सभी कुटिल कर्मोंका समर्थक रहा था। दूसरे वह अत्यन्त कटुभाषी था। तीसरा भक्तापराधी था। ये तीनों ही दोष भगवान्‌को उससे रूष्ट कर देनेके लिए पर्याप्त थे। वैसे वह भी भीष्मके समान श्रीकृष्णके सम्मुख मरना ही श्रेयस्कर मानता था।

माद्री के भाई मद्रदेश के राजा शल्य बड़े शूरवीर थे। वे पांडवों की ओर से लड़ने को आ रहे थे। रास्ते में दुर्योधन की आज्ञा से उनके सेवकों ने उनकी बड़ी भारी सेवा की। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने दुर्योधन से मनमाना वरदान माँगने को कहा। तब दुर्योधनने कहा- मामाश्री। आप पांडवों के सगे मामा हैं। मेरे ऊपर आपकी कृपा है और आप मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो यह वरदान दीजिये कि आप पांडवों की ओर से न लड़कर मेरी ओर से युद्ध करें। शल्य तो वचन-बद्ध हो चुके थे। उन्होंने दुर्योधन की इस बात को स्वीकार कर लिया और कौरवों की तरफ से लड़ने को उद्यत हुए।

पीछे धर्मराज युधिष्ठिर अपने मामा को प्रणाम करने और आशीर्वाद लेने गये। इस पर शल्य ने कहा, मैं लड़ने के लिये तो दुर्योधन को वचन दे चुका हूँ। लड़ाई को छोड़कर तुम और जो भी वरदान मुझसे माँगना चाहते हो माँग लो।

तब धर्मराज ने कहा- मामाश्री। आप बड़ी प्रसन्नतासे दुर्योधन की ओर से लड़ें, किन्तु एक काम आप मेरा भी कर दें। वह यह कि आपकी बराबर रथ और अश्वविद्या में प्रवीण कोई नहीं है। आप वासुदेव के समान हैं। कर्ण जब अर्जुन से युद्ध करेगा तो निश्चय ही आप उसे सारथी बनाओगे। उस समय आप कड़े वचन कहकर उसे हतोत्साहित करते रहें। उसकी बार-बार निन्दा करते रहेंगे तो वह तेजहीन होकर ठीक-ठीक युद्ध न कर सकेगा। बस यही वरदान मुझे दें।

शल्यने कहा- धर्मराज। मैं ऐसा ही करूँगा। सूतपुत्र कर्ण को मैं युद्ध के समय कड़ी-कड़ी बातें कहकर, बुरी-बुरी गालियाँ देकर उसके तेज, प्रभाव, बल और उत्साह को बराबर नष्ट करता रहूँगा। तुम इस बात पर विश्वास रखो। इतना सुनकर धर्मराज प्रसन्न होकर चले गये।

सोलहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ। कर्ण ने पूछा, मित्र। प्रसन्न तो हो? दुर्योधन का चिरधृष्ट मन अब मौन नहीं रह सका। बोला, किस बात की प्रसन्नता? हाँ। प्रसन्न होने का एक कारण तो है कि मेरा परम मित्र आज कौरव सेना का प्रधान सेनापति है; किंतु उसका पहला दिन कोई विशेष लाभदायक नहीं हुआ।

कर्ण का दर्प हुंकार उठा, क्या लाभ चाहते हो राजकुमार तुम?। हमने पांडव सेनाओं को बहुत क्षति पहुँचाई है। उलूक ने युयुत्सु को पराजित किया है। शकुनि के हाथों सुतसोम हारा है। कृपाचार्य के भय से धृष्टद्युम्न समरभूमि में टिक भी नहीं पाया। कृतवर्मा ने शिखंडी को पूर्णत: पराजित कर दिया।

दुर्योधन फुफकारकर बोला, पराजित तो तुमने भी नकुल को कर दिया। किंतु इनमें से किसी एक का भी वध नहीं हुआ। पांडवों की क्षति कहाँ हुई। और जहाँ तक पराजित होने की बात है, सात्यकि से तुम पराजित हुए, युधिष्ठिर से स्वयं मैं पराजित हुआ। अर्जुन से सारे कौरव पराजित हुए। पर मेरी रुचि इन सब बातों में नहीं है। दुर्योधन का स्वर कुछ कोमल हुआ, मुझे तो तुम यह बताओ कि तुम अर्जुन से द्वैरथ युद्ध कर उसका मस्तक काट पृथ्वी पर क्यों

लुढ़कने नहीं देते? मुझे तो लगता है कि तुम दोनों ही एक-दूसरे को टाल रहे हो। इधर-उधर के लोगों को मारते रहते हो और स्वयं आमने-सामने नहीं लड़ते।

मुझे लगता है कि तुम प्रहार तो करते हो किंतु किसी को घायल नहीं करते। कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी भी पांडव पर शस्त्र प्रहार करते हुए, तुम सचेत हो उठते हो कि यदि इस युद्ध में दुर्योधन पराजित हो गया तो हस्तिनापुर के राजा पांडव होंगे। ऐसे में तुम्हें उनको उत्तर देना होगा कि तुमने उनके किसी भाई का वध क्यों किया?

कर्ण तड़पकर बोला, मित्र होकर तुम ऐसी बात की कल्पना भी कैसे कर सकते हो? किंतु वह स्वयं अनुभव कर रहा था कि उसका आत्मबल कहीं क्षीण हो रहा है।

दुर्योधन बोला, तो फिर कल तुम अर्जुन से द्वैरथ युद्ध करो। मैं इस प्रसंग को और लंबा खींचना नहीं चाहता।

मैं अर्जुन से हीन नहीं हूँ। कर्ण का मुख किसी भीतरी अंतर्द्वंद्व से लाल हो गया, मैं अवस्था में उससे बड़ा हूँ। शौर्य और युद्ध के ज्ञान में उससे बढ़कर हूँ। दिव्यास्त्रों और युद्धाभ्यास में उससे कम नहीं हूँ। मेरे धनुष का नाम जय है। वह गांडीव से किसी भी प्रकार मृदु नहीं है। वह स्वयं विश्वकर्मा द्वारा इंद्र के लिए बनाया गया था, जो इंद्रसे गुरु परशुराम को और गुरु से मुझे प्राप्त हुआ। दुर्योधन बोला, तो फिर यह संकोच कैसा। कल द्वैरथ युद्ध हो और अर्जुन निष्प्राण होकर धरती पर गिरे। फिर हमें किसी का कोई भय नहीं है। इतना ही नहीं। कर्ण ने उसे और कुछ कहने नहीं दिया, वैसे तो उसके अश्व भी श्रेष्ठ हैं किंतु महत्त्वपूर्ण है उसका सारथी। कृष्ण के समान सारथी उपलब्ध हो तो किसी भी योद्धा का सामर्थ्य कई गुना बढ़ जाता है। कर्ण ने रुककर दुर्योधन की ओर देखा। दुर्योधन की वक्रता को कर्ण टाल गया। हाँ। वह भी विचारणीय है। किंतु मेरा संकेत कृष्ण की ओर नहीं, मद्रराज शल्य की ओर है। यदि कल वे मेरा सारथ्य करें तो मैं अर्जुन का वध किए बिना समरभूमि नहीं छोड़ूँगा।

कर्ण दुर्योधन से बोला, आज मेरी अर्जुनके साथ मुठभेड़ होगी; उसमें या तो मैं उस वीरका काम तमाम कर दूँगा या वह मुझे मार डालेगा। मैं इन्द्रकी दी हुई शक्ति खो बैठा हूँ; इसलिये आज अर्जुन अवश्य मेरे ऊपर धावा करेगा। मेरे और अर्जुनके दिव्य अस्त्रोंका प्रभाव तो समान ही है; किंतु शत्रुके पराक्रमको कुचलनेमें, हाथकी सफाईमें, युद्धकौशलमें और अस्त्र-संचालनमें अर्जुन मेरे समान नहीं है। इसके सिवा बल, वीर्य, विज्ञान, पराक्रम और निशाना साधनेमें भी वह मेरी बराबरी नहीं कर सकता। मेरा जो यह विजय नामका धनुष है, इसे विश्वकर्माने इन्द्रके लिये बनाया था। इसीके द्वारा इन्द्रने दैत्योंपर विजय प्राप्त की थी। इन्द्रने यह श्रेष्ठ धनुष परशुरामको दिया था और उन्होंने मुझे दिया। यह परशुरामका दिया हुआ प्रचण्ड धनुष गाण्डीवसे भी बढ़कर है। इसीके द्वारा परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको जीता था। आज संग्रामभूमिमें विजयी वीर अर्जुनको धराशायी करके मैं आपको और आपके बन्धु-बान्धवोंको आनन्दित करूँगा। जिस प्रकार धर्ममें पूर्ण अनुराग रखनेवाले संयमी पुरुषका कार्यमें सफलता पाना स्वाभाविक ही है, उसी प्रकार ऐसा कोई काम नहीं है जिसे मैं आपके लिये न कर सकूँ। परंतु जिस बातमें मैं अर्जुनसे कम हूँ, वह भी मुझे अवश्य बता देनी चाहिये। उसके धनुषकी डोरी दिव्य है, तरकस अक्षय हैं तथा उसके पास अग्निदेवका दिया हुआ दिव्य रथ है, जो किसी भी ओरसे तोड़ा नहीं जा सकता। इसके सिवा उसके घोड़े मनके समान वेगवान् हैं, ध्वजा भी दिव्य और दीप्तिमती है तथा उसपर बड़ा ही विस्मयमें डालनेवाला एक वानर बैठा हुआ है। इससे भी बढ़कर यह बात है कि जगत्की रचना करनेवाले स्वयं श्रीकृष्ण उसके सारथी और रक्षक हैं। इन सब बातोंकी मेरे पास कमी है; तो भी मैं अर्जुनके साथ युद्ध करना चाहता हूँ। हमारे पक्षमें महाराज शल्य अवश्य श्रीकृष्णकी बराबरी कर सकते हैं। यदि वे मेरे सारथी बन जायँ तो निश्चय ही आपकी विजय हो सकती है। अत: आप इन्हें मेरा सारथ्य करनेके लिये तैयार कर लीजिये।

महाराज शल्य श्रीकृष्णके समान ही अश्वविद्याके मर्मज्ञ हैं। यदि ये मेरे सारथी हो जायँ तो मेरा रथ श्रीकृष्णके रथसे भी बढ़ जाय। फिर तो इन्द्रके सहित देवताओंका भी मेरे सामने आनेका साहस नहीं होगा। मैं आपसे इतना प्रबन्ध कराना चाहता हूँ। फिर मैं संग्रामभूमिमें जो काम करके दिखाऊँगा, वह आप देखेंगे ही। फिर तो जो भी पाण्डव वीर संग्राममें मेरे सामने आवेंगे, उन्हें मैं सर्वथा परास्त करके ही छोड़ूँगा।

सत्रहवें दिन कर्ण ने दुर्योधन से कहा- राजन्। मैं आज युद्ध का अन्त कर देना चाहता हूँ। या तो युद्ध में मैं आज अर्जुन को मार दूँगा या स्वयं लड़ते-लड़ते मरकर वीरगति को प्राप्त हूँगा। अर्जुन से मैं बल में किसी प्रकार कम नहीं हूँ। वह मेरे बराबर वीर है ही नहीं, किन्तु तीन बातों में वह मुझसे बढ़कर है। एक तो उसका रथ दिव्य है। खांडव दाह के समय उस रथ को अग्निने उसे दिया था। वह किसी प्रकार के अस्त्र से कटता नहीं। उस पर वानर की ध्वजा है, घोड़े उसके सुन्दर और सुरक्षित हैं। दूसरे उसके पास गांडीव धनुष है और सबसे बढ़कर तीसरी बात यह है कि उसके सारथी देवकीनन्दन हैं। इन बातों में मैं उसे घट कर हूँ। धनुष तो मेरे पास भी एक गांडीव से बढ़कर है। रथ भी मैं अच्छे-से-अच्छे तैयार करा लूँगा, किन्तु यह मेरा सारथी मेरे मन का-सा नहीं हैं। आपके पक्ष में जो ये मद्रदेश के राजा शल्य है, ये अश्वविद्या में बड़े प्रवीण है। ये महाबलवान गुणी, कुलीन और सारथी कर्म में परम प्रवीण हैं। किसी तरह इन्हें तुम मेरा सारथी बनाना स्वीकार करा दो, तो मैं आज निश्चय ही अर्जुन को जीत लूँगा। इसमें आप तनिक भी सन्देह न करें, किन्तु शल्य का सारथी होना मुझे कठिन ही जान पड़ता है।

दुर्योधन ने कहा- मित्र कर्ण। तुम्हीं मेरे एकमात्र आधार हो। मेरी इतनी सेना का नाश हो गया है फिर भी मैं आपकी कृपा का भरोसा रखकर विजय अपनी ही समझ रहा हूँ। यदि आज तुम सव्यसाची अर्जुन को मार सको तो मेरे समस्त मनोरथ पूरे हो जायँ। फिर तो मेरी विजय ही है। मैं शल्य से जाकर अभी प्रार्थना करता हूँ, मुझे आशा है वे मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे। यह कहकर दुर्योधन शल्य के पास चला गया।

दुर्योधन का मन बड़े वेग से अपना काम कर रहा था। क्या शल्य को इस काम के लिए सहमत किया जा सकता है? दुर्योधन का भय कदाचित् वह अब न माने किंतु लोभ?

कर्ण बोला, मैं वचन दे रहा हूँ कि ऐसे में कल मैं अर्जुन का वध किए बिना समरभूमि नहीं छोड़ूँगा। दुर्योधन बोला, ठीक है। संभवत: ऐसा हो जाएगा। मैं प्रयत्न करता हूँ। तुम जाओ और कल के युद्ध की तैयारी करो। कर्ण को विदा कर दुर्योधन बाहर जाने के लिए उठा।

शल्य के पास जाकर दुर्योधन ने उन्हें प्रणाम किया। कुशल प्रश्न के अनन्तर उसने इधर-उधर की बातें बनाकर कहना आरम्भ किया- मामाश्री। आप जानते ही है मेरी सेना में सर्वश्रेष्ठ महारथियों में आप भी हैं। मैं आपको भीष्म, द्रोण, कर्ण के समान मानता हूँ। संसार में आप अद्वितीय योद्धा हैं। आपके टक्कर का वीर ढूँढने पर भी पांडव-दल में न मिलेगा। आज मैं आपसे एक प्रार्थना करने आया हूँ।

कर्णसे ऐसा कहकर आपका पुत्र बड़ी विनयसे महारथी शल्यके पास गया और उनसे प्रेमपूर्वक कहने लगा, मद्रेश्वर। आप सत्यव्रत, महाभाग और वक्ताओंमें अग्रगण्य हैं। मैं सिर झुकाकर अत्यन्त विनयके साथ आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। आप अर्जुनके नाश और मेरे हितके लिये केवल प्रेमके ही नाते कर्णका सारथ्य करना स्वीकार कर लीजिये। आपके सारथी बन जानेपर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओंको परास्त कर देगा। आपके सिवा कर्णके घोड़ोंकी रास पकड़ने योग्य कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। आप संग्राममें साक्षात् श्रीकृष्णके समान हैं। अत: जिस प्रकार त्रिपुर-युद्धके समय ब्रह्माजीने भगवान

शंकरकी सहायता की थी तथा जैसे श्रीकृष्ण सम्पूर्ण आपत्तियोंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजिये। आरम्भमें ही शत्रुओंकी सैन्यशक्ति कम होनेपर भी उन्होंने हमारी बहुत-सी सेनाको नष्ट कर डाला था, फिर इस समयकी तो बात ही क्या है? इसलिये अब आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे पाण्डवलोग मेरी रही-सही सेनाका संहार न कर सकें। पहले संग्रामभूमिमें अर्जुन इस प्रकार शत्रुओंका संहार नहीं कर सकता था, किंतु अब श्रीकृष्णका साथ हो जानेसे ही उसकी इतनी शक्ति बढ़ गयी है। अब पाण्डवोंकी सेनामें आपके और कर्णके हिस्सेका ही भाग रह गया है, उसे आप कर्णके साथ मिलकर आज एक साथ नष्ट कर दीजिये। आप कोई ऐसी युक्ति कीजिये, जिससे पाञ्चाल और सृञ्जयोंके सहित कुन्तीके पुत्र शीघ्र ही नष्ट हो जायँ। कर्ण रथियोंमें श्रेष्ठ है और आप सारथियोंमें सर्वोत्तम हैं। आप दोनोंका-सा संयोग संसारमें न कभी हुआ है न होगा ही। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सब अवस्थाओंमें अर्जुनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप कर्णकी रक्षा कीजिये। आपके सारथी बन जानेपर तो कर्ण इन्द्र और समस्त देवताओंके लिये भी अजेय हो जायगा, फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है?

दुर्योधन बोला, कर्ण कम वीर नहीं है अर्जुन से। बस उसको अर्जुन के ही समान युद्ध की सुविधाएँ मिलनी चाहिए। वह अपना अद्‌भुत शौर्य प्रकट करेगा। अब यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसे किसी बात की कमी न रहने दे। मैंने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि कर्ण को अर्जुन के समतुल्य युद्ध संबंधी सारी सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। उसने रुककर शल्य की ओर देखा, किंतु एक समस्या है। यदि उसका भी समाधान हो जाए तो हमारी विजय निश्चित है।

शल्य का मन बल्लियों उछल रहा था; कहो राजन्। किंतु वह उपालंभ के स्वर में बोला, आप जैसे शक्तिशाली सम्राट की मैं क्या सहायता कर सकता हूँ। दुर्योधन का स्वर भावावेग से कुछ भारी हो आया और बोला, कल महा रण है मामाश्री। कल का युद्ध विजय की दिशा का निर्णायक होगा।

शल्य ने कहा, यह तो बहुत शुभ समाचार है। युद्ध की शीघ्र समाप्ति की सूचना किसी को भी सुख ही देगी।

शल्य बोला, समस्या क्या है? ऐसा क्या है, जिसका प्रबंध कुरुराज दुर्योधन नहीं कर पा रहे हैं- वह भी अपने परम मित्र कर्ण के लिए? दुर्योधन बोला, आपने कभी ध्यान दिया है मामाश्री। कि इस युद्ध में प्राय: हम सबके ही एक या अनेक सारथी मारे गए हैं, किंतु अर्जुन का सारथी निरंतर युद्ध कर रहा है और आज तक एक बार भी घायल नहीं हुआ।

हम सबका विचार है कि कृष्ण की रक्षा अर्जुन नहीं कर रहा, वरन् अर्जुन की रक्षा कृष्ण कर रहा है। अर्जुन के युद्ध कौशल के कारण कृष्ण सुरक्षित नहीं है, वरन् कृष्ण के सारथ्य के कारण अर्जुन सुरक्षित है। तो हमें कर्ण के रथ के लिए एक असाधारण सारथी चाहिए। एक ऐसा सारथी, जो सारथ्य कला में कृष्ण की समकक्षता कर सके। अब हमारी विजय तो कर्ण के सारथी पर ही निर्भर है। आप सोचिए तो कि इतनी विशाल कौरव सेना अपनी विजय के लिए कर्ण के सारथी की शरण में खड़ी है। कल के युद्ध में कौरव सेना के प्रधान सेनापति के रथ का सारथ्य करने की मेरी प्रार्थना क्या आप स्वीकार करेंगे मामाश्री?

शल्य ने कहा- कहो क्या बात है? मैं तो तुम्हारे अधीन ही हूँ। तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा।

डरते-डरते दुर्योधन ने कहा- मामाश्री। कर्ण आज युद्ध का अन्त करना चाहते हैं। उनके अनुरूप कोई योग्य सारथी नहीं है। आप इस विद्या में परम प्रवीण हैं। यदि आप कृपा करके कर्ण के सारथी हो जायँ तो मेरी विजय निश्चित है।

शल्य पर जैसे वज्रपात हुआ। जो शल्य कौरव सेना का प्रधान सेनापति होने का स्वप्न पाल रहा था, जो शल्य आजीवन बड़े-बड़े युद्धों में सेनाओं का नेतृत्व करता रहा था, जो जरासंध की बराबरी करता आया था, उस शल्य को यह दुर्योधन, कर्ण का सारथी बना रहा है। यह दुर्योधन की मूर्खता है अथवा शल्य के तिरस्कार की पराकाष्ठा?

शल्य की स्मृति में वह दृश्य घूम गया, जब वह युधिष्ठिर को यह सूचना देने गया था कि वह पांडवों को छोड़कर दुर्योधन की सेना में जा रहा है; और युधिष्ठिर ने उससे कहा था कि जब दुर्योधन उसे कर्ण का सारथी बना देगा तो वह कर्ण का मनोबल तोड़ने का काम करे। युधिष्ठिर की बात पर शल्य ने गंभीरतापूर्वक विचार नहीं किया था। उसने उसे युधिष्ठिर की नासमझी अथवा तात्कालिक क्षोभ के रूप में ही स्वीकार किया था। पर दुर्योधन तो वस्तुत: उसे कर्ण का सारथ्य करने को कह रहा है। इसका अर्थ है कि युधिष्ठिर तब ही जानता था कि दुर्योधन की आँखों में शल्य का मूल्य क्या है। इतनी दूर तक देख सकता था युधिष्ठिर? जैसे वह दुर्योधन के मन में बैठा हो और उसके प्रत्येक श्वास से परिचित हो। तो क्या दुर्योधन ने उसका अपमान करने मात्र के लक्ष्य से उसे अपनी सेना में आने के लिए प्रेरित किया था। पर उसके अपमान से दुर्योधन को क्या मिलेगा?

दुर्योधन के ऐसे वचन सुनकर शल्य क्रोध के कारण लाल हो गये। उनके नेत्रों से अग्नि-सी निकलने लगी, ओठों को चबाते हुए, त्योरियाँ बदलते हुए, वे आवेश के साथ बोले- दुर्योधन। मैं तुमसे ऐसी आशा नहीं रखता था, तुम कुलीन होकर भी मेरा इतना अपमान करोगे, इस बात का मुझे स्वप्न में भी भरोसा नहीं था। क्या तुम जानते नहीं, मैं कुलीन क्षत्रिय हूँ। राजर्षि-कुल में मेरा जन्म हुआ है। क्षत्रिय ब्राह्मण की सेवा तो कर सकता है, किंतु अपने से हीन वर्ण की सेवा करते हुए तो हमने किसी आत्माभिमानी राजा को नहीं देखा। मैं मूर्धाभिषिक्त राजा हूँ। शास्त्र की विधि से मेरा राजसिंहासन पर अभिषेक हुआ है, तिस पर भी तुम मुझसे दास-वृत्ति करने के लिये कहते हो, तुम्हें शर्म नहीं आती? रथ हाँकना मेरा काम नहीं है। मैं युद्ध करने के लिये यहाँ आया हूँ। मुझसे युद्ध करा लो तुम सब चुपचाप बैठ जाओ, मैं अकेला ही युद्ध करूँगा और समस्त पांडवों को परास्त करूँगा।

शल्य ने स्वयं को संयत किया, शायद कुरुराज ने यह प्रस्ताव कुछ सोच-समझकर नहीं रखा। सेना में सबको उनकी योग्यता और महत्त्व के अनुसार दायित्व सौंपा जाना चाहिए। शल्य मद्रराज है, कुलीन राजाओं का वंशज है, किरीटधारी राजा है, कोई सूतपुत्र नहीं।

दुर्योधन बोला, मेरे मन में आपके प्रति बहुत आदर है मातुल। मैं जानता हूँ कि कोई योद्धा सारथी नहीं हो सकता। किंतु यह एक असाधारण स्थिति है। योद्धा के लिए उसका युद्ध कौशल जितना महत्त्वपूर्ण है, उतने ही महत्त्वपूर्ण उसके शस्त्र हैं, उतना ही महत्त्वपूर्ण उसका रथ है, उतना ही महत्त्वपूर्ण उसका सारथी भी है।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर शल्य एकदम क्रोधमें भर गये। उनकी भौंहोंमें बल पड़ गये तथा हाथ बार-बार काँपने लगे। उन्हें अपने कुल, ऐश्वर्य, विद्या और बलका बड़ा गर्व था इसलिये उन्होंने क्रोधसे आँखें लाल करके कहा, दुर्योधन। अवश्य ही तुम या तो मेरा अपमान कर रहे हो या तुम्हें मेरे प्रति संदेह है। इसीसे तुम मुझे सारथीका काम करनेकी आज्ञा दे रहे हो। तुम कर्णको हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ समझकर उसकी प्रशंसा करते हो। किंतु मैं उसे संग्राममें अपने समान नहीं समझता। तुम जो बड़े-से बड़ा वीर हो, उसे मेरे हिस्सेमें कर दो; मैं उसे संग्राममें जीतकर अपने घर चला जाऊँगा। अथवा आज मैं अकेला ही युद्ध करूँगा। तब तुम शत्रुओंका संहार करते समय मेरा पराक्रम देख लेना। मेरी इन वज्रके समान मोटी और गँठीली भुजाओंको तो देखो तथा मेरे विचित्र धनुष, सर्पके सदृश बाण और सुवर्णपत्रसे मढ़ी हुई गदापर तो दृष्टि डालो। मैं अपने तेजसे सारी पृथ्वीको फोड़ सकता हूँ, पर्वतोंको छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ और समुद्रोंको सुखा सकता हूँ। इस प्रकार शत्रुओंका दमन करनेमें पूर्णतया समर्थ होनेपर भी तुम मुझे इस नीच सूतपुत्रके सारथ्यका काम करनेकी आज्ञा कैसे दे रहे हो? मैं इस नीचकी अपेक्षा सभी प्रकार श्रेष्ठ हूँ, इसलिये उसका दासत्व करनेको कभी तैयार नहीं हो सकता। जो पुरुष

प्रेमवश अपने आश्रित हुए किसी श्रेष्ठ व्यक्तिको नीच पुरुषके अधीन कर देता है, उसे उच्चको नीच और नीचको उच्च करनेका पाप लगता है। ब्रह्माने ब्राह्मणोंको अपने मुखसे, क्षत्रियोंको भुजाओंसे, वैश्योंको जंघाओंसे तथा शूद्रोंको पैरोंसे उत्पन्न किया है- ऐसा श्रुतिका मत है। इनमें क्षत्रियजाति सब वर्णोंकी रक्षा करनेवाली, सबसे कर लेनेवाली और दान देनेवाली है। ब्राह्मणोंका काम यज्ञ कराना, पढ़ाना और विशुद्ध दान लेना है। कृषि, गोपालन और धर्मानुसार दान देना वैश्योंका कर्म है तथा शूद्रलोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके काममें नियुक्त किये गये हैं। यह बात तो मैंने बिल्कुल नहीं सुनी कि क्षत्रिय शूद्रकी सेवा करे। मैंने राजर्षियोंके वंशमें जन्म लिया है, मेरे मस्तकपर शास्त्रानुसार राज्याभिषेक किया गया है, लोग मुझे महारथी कहते हैं और बन्दीजन मेरी स्तुति किया करते हैं। ऐसा होकर भी मैं सूतपुत्रका सारथ्य करूँ- यह मेरे वशकी बात नहीं है। इस प्रकार अपमानित होकर तो मैं किसी प्रकार युद्ध नहीं कर सकूँगा। इसलिये अब मैं अपने घर जानेके लिये तुमसे आज्ञा माँगता हूँ।

मामाश्री। दुर्योधन ने अपना स्वर मधुर बनाने का प्रयत्न किया, यह युद्ध है। युद्ध हम सबका सामूहिक दायित्व है। इस यंत्र में कहीं कोई एक कील भी दुर्बल रह जाएगा तो सारा यंत्र ध्वस्त हो जाएगा। कर्ण की मान्यता है कि अर्जुन के युद्ध कौशल में उसके सारथी कृष्ण का सामान्य सारथी से कहीं अधिक योगदान है। वह न केवल सारथ्य करता है, वरन् युद्ध संबंधी परामर्श भी देता है। अनेक बार तो अर्जुन उसकी आज्ञा के अधीन लड़नेवाला एक सैनिक मात्र रह जाता है। अर्जुन लड़ नहीं रहा होता, कृष्ण उसे लड़वा रहा होता है। इसलिए उसे भी कृष्ण के समान एक सारथी चाहिए, जो उसका गुरु भी हो सके, उसका सेनापति भी हो सके और उसका नीतिनिर्धारक भी हो सके। कृष्ण क्या योद्धा नहीं है, किंतु वह अपने शस्त्र त्याग कर अर्जुन का सारथी बना बैठा है।

शल्य ने कहा, कृष्ण न कहीं का राजा है, न सम्राट्। उसकी क्या मर्यादा है? उसे क्या अंतर पड़ता है कि वह युद्ध में सैनिक है, सेनापति है अथवा सारथि है। दुर्योधन बोला, कह तो आप ठीक रहे हैं मामाश्री। कृष्ण की कोई मर्यादा नहीं है। किंतु मैं तो उसके सामर्थ्य की चर्चा कर रहा हूँ।

ममाश्री। यदि मैं कहूँ कि आप योद्धा बनकर कल के युद्ध में कितने भी सैनिकों का वध क्यों न कर दें, अर्जुन का वध नहीं कर पाएँगे और हमारी विजय नहीं होगी; किंतु यदि आप मात्र कल के लिए कर्ण के सारथी बन जाएँ तो कर्ण अर्जुन का वध कर देगा और हम विजयी हो जाएँगे- तो भी आप कल के युद्ध में कर्ण का सारथ्य नहीं करेंगे?

शल्य बोला, और यदि मैं कहूँ कि मैं सारथी बन जाऊँ, तो भी कल कर्ण पांडवों का वध नहीं कर पाएगा, जबकि यदि मैं कल प्रधान सेनापति बन जाऊँ और कर्ण मेरे नेतृत्व में, मेरी आज्ञा के अनुसार लड़े तो मैं कल पांडवों की संपूर्ण सेना को ध्वस्त कर दूँगा- तो तुम मुझे कल कौरवों का प्रधान सेनापति बना दोगे?

दुर्योधन ने गिड़गिड़ाते हुए कहा- मामाश्री। अपमान करने की मेरी स्वप्न में भी इच्छा नहीं थी। न मैं आपको कम बलवान समझता हूँ, किन्तु इस समय काम ही ऐसा आ पड़ा है।

दुर्योधन की बात काटते हुए शल्य बोले, कैसा भी काम आ पड़े। अपने से हीन वर्ण की सेवा क्या क्षत्रिय राजकुमार कर सकता है? तुम मुझसे सूत का सारथी बनने को कहते हो। कर्ण को मेरा सारथी बनना चाहिये था। मैं कर्ण से कम हूँ क्या? मुझे चाहे जिससे युद्ध करवा दो। मैं पीछे हटनेवाला थोड़े ही हूँ। तुम मुझे बुलाकर मेरा अपमान करते हो? तुम रखो अपनी लड़ाई को, मैं अपने घर जाता हूँ। ऐसा अपमान मैं कभी भी नहीं सह सकता। तुम उस नीच सूतपुत्र को सेनापति बनाकर विजय प्राप्त करो। क्षत्रिय कोई भी तुम्हारी ओर से अब न लड़ेगा।

इतना कहकर शल्य बड़ी तेजीसे उठकर चल दिये। उन्होंने चिल्लाकर अपने सारथी से कहा- जल्दी मेरा रथ तैयार करो। मद्रदेश की सेना शीघ्र ही सुसज्जित हो। मैं अपने देश को जाऊँगा।

दुर्योधन का मुँह फीका पड़ गया। उसके होश उड़ गये। उसने देखा- यह तो बनी बनाई बात बिगड़ रही है। जल्दी से दौड़कर उसने बड़े ही विनीत भाव से कहा- हे पुरुषसिंह। मेरा अभिप्राय कभी आपको अपमानित करने का नहीं था। आप मेरे रक्षक, गुरु और पूजनीय तथा वन्दनीय हैं। मुझे आपका ही सहारा है। मैं आपको कम बलवान नहीं मानता। न मैं आपसे कोई अनुचित कार्य करने को ही कहूँगा, किन्तु इस समय संकट में हूँ। अर्जुन के समान वीर से टक्कर लेने के लिये मैं कर्ण को ही उपयुक्त समझता हूँ। आप उस लड़के से लड़ें, यह मुझे अनुचित जान पड़ता है। अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण के समान बुद्धिमान, हितैषी, वीर, पराक्रमी और गुणी मैं आपको ही समझता हूँ। जैसे पांडवों के आश्रय श्रीकृष्ण हैं, वैसे ही हमारे आश्रय आप हैं। श्रीकृष्ण की बराबरी आप ही कर सकते हैं। जिस प्रकार कृष्ण की सहायता पाकर अर्जुन विजयी होते हैं, उसी प्रकार आपकी सम्मति, सहायता और सहयोग प्राप्त करके कर्ण भी निश्चय ही विजयी होंगे। जैसे कर्ण और अर्जुन समान बलवाले हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण और आप समान विद्या, बुद्धि, बल, वीर्य और पराक्रमवाले हैं।

पुरुषसिंह शल्य ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वहाँ जो राजा बैठे थे, क्रोधपूर्वक उनके बीचसे जाने लगे। तब दुर्योधनने बड़े प्रेम और मानसे उन्हें रोका और बड़े मीठे शब्दोंमें उन्हें समझाते हुए कहने लगा, राजन्। आप अपने विषयमें जैसा समझते हैं, नि:संदेह यह बात ऐसी ही है। परंतु मेरे कथनका जो अभिप्राय है, जरा उसे भी सुननेकी कृपा करें। आपके पूर्वपुरुष सर्वदा सत्यभाषण ही करते रहे हैं; मैं समझता हूँ, इसीसे आप आर्त्तायनि कहलाते हैं। तथा आप अपने शत्रुओंके लिये शल्य (काँटे) के समान हैं, इसीसे पृथ्वीतलमें शल्य नामसे विख्यात हैं। आप धर्मज्ञ हैं और पहले मेरा प्रिय करनेका वचन दे चुके हैं; अत: अब अपने उसी वचनका पालन करनेकी कृपा कीजिये। आपकी अपेक्षा न तो कर्ण बलवान् है और न मैं ही हूँ; तो भी अश्वविद्याके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता होनेके कारण मैं आपसे ऐसी प्रार्थना कर रहा हूँ। कर्ण शस्त्रविद्यामें अर्जुनसे श्रेष्ठ है और आप अश्वविद्यामें श्रीकृष्णसे बढ़-चढ़कर हैं।

आज मैं तुमसे पहली बार कह रहा हूँ राजन्। मैं माद्री के पांडु से विवाह के पक्ष में तनिक भी नहीं था। किंतु भीष्म अपने बल के भय से मुझसे यह कार्य करवाना चाहते थे। मैंने उसमें अड़चन डालने के लिए भीष्म से कन्या के शुल्क की बात कही थी। मैंने सोचा था कि भीष्म उसे स्वीकार नहीं करेंगे। किंतु भीष्म ने उसे स्वीकार कर लिया और शुल्क देकर माद्री को ले आए। यह तो संयोग ही है कि पांडु का देहांत हो गया और माद्री ने चितारोहण कर लिया, किंतु यदि वह जीवित भी रहती तो तुम्हारे कुटुंब से मेरा कैसा संबंध होता, मैं कह नहीं सकता। मैं अपने भाँजों को छोड़कर तुम्हारी सहायता के लिए आ गया तो इसलिए नहीं कि मैं कुरुवंश के महत्त्व से अभिभूत हूँ। शल्य का रोष मुखर होता जा रहा था, मेरी कुरुवंश से अपने संबंध की ऐसी ख्याति की कोई कामना नहीं है। कर्ण तुम्हारा सारथी ही नहीं, तुम्हारे वंश के सारथी का पुत्र होकर भी स्वयं को धन्य मानता है, किंतु मैं कर्ण नहीं हूँ। मुझे तुम्हारे वंश का सारथी होने में किसी गौरव का अनुभव नहीं होता।

दुर्योधन बोला, कर्ण का गौरव हमारे वंश के सारथी का पुत्र होने में नहीं, उसके अपने युद्ध कौशल में है। आपका गौरव भी आपके सारथ्य कौशल में है। सारथ्य कर्म इतना हीन नहीं है कि हम उसे अपने लिए अपमानजनक मानें। यह तो हमारी युद्धनीति है कि किस क्षण में कौन-सा व्यक्ति कहाँ और किस कर्म के लिए सबसे अधिक उपयुक्त होता है। कल के युद्ध में कर्ण का सारथी सारे युद्ध की धुरी के समान महत्त्वपूर्ण होगा।

दुर्योधन की ऐसी मीठी चापलूसीवाली बातें सुनकर शल्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा-

दुर्योधन। तुमने भरी सभा में सबके सामने मुझे देवकीनन्दन वासुदेव के बराबर बताया है इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। अब बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?

दुर्योधन की जान-में-जान आई। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। शल्य को बढ़ावा देते हुए कहने लगा- महाराज। मैं तो आपको गुणों में श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ समझता हूँ। आप सर्वसमर्थ हैं। आपका सामना युद्ध में कोई कर ही नहीं सकता। आप बली, शूर, गुणज्ञ, देशकाल की बातें जाननेवाले और परम नीतिज्ञ हैं। मैं आपसे वही कार्य कराना चाहता हूँ जो कार्य श्रीकृष्ण अर्जुन का कर रहे हैं। आपकी सहायता से आपकी छत्र-छाया में रहकर महामना कर्ण अर्जुन को परास्त करेंगे। आप ही हमारे प्रतिपालक, रक्षक, स्वामी और शरण्य हैं। आपकी सहायता से हम सनाथ हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। इस महान् संकट से हमें उबारिये।

दुर्योधन की यह बात स्वीकार करते हुए शल्य ने कहा- राजन्। मैं कर्ण का सारथी बनूँगा उसके रथ को हाँकूँगा। किन्तु मेरी एक शर्त कर्ण को भी माननी होगी। मैं उचित अनुचित जो भी कुछ कहूँगा, कर्ण को मेरी वह बात सहनी पड़ेगी। यदि यह शर्त तुम्हें मंजूर हो तो मैं सूतपुत्र का सारथी बनने को तैयार हूँ।

इसपर राजा शल्यने कहा- दुर्योधन। तुम सब सेनाके सामने मुझे श्रीकृष्णसे भी बढ़कर बता रहे हो, इससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अच्छा लो, मैं कर्णका सारथ्य करना स्वीकार किये लेता हूँ। किंतु कर्णके साथ मेरी एक शर्त रहेगी। वह यह कि युद्धके समय मैं उससे चाहे जैसी बात कह सकूँगा; उसमें वह किसी प्रकारकी आपत्ति न करे। इसपर कर्ण और आपके पुत्र दुर्योधनने बहुत अच्छा ऐसा कहकर शल्यकी शर्त स्वीकार कर ली।

दुर्योधन ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा- आप हमारे स्वामी हैं, पूज्य हैं। कर्ण भी आपको बड़ा मानते हैं। आप जो भी कुछ कहेंगे, कर्ण उन सब बातों को सहेंगे। आप तो हमारे कल्याण की ही बाते कहेंगे।

शल्य बोला, तो मुझे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है।

दुर्योधन बोला, आप मेरी बात से सहमत होंगे मामाश्री। सारथि तो उसी को बनाना चाहिए, जो रथी से श्रेष्ठ योद्धा हो। इसलिए मैंने आपका वरण किया है। वैसे कर्ण को भी मैं साधारण सूतपुत्र नहीं मानता हूँ। मेरी दृढ़ मान्यता है कि वह किसी उत्तम क्षत्रिय की ही संतान है। किन्हीं कारणों से उसकी माता ने उसे सूतवंश में भिजवा दिया है। नहीं तो उसे भगवान परशुराम ने धनुर्वेद सिखाया होता?

कर्णको स्वयं श्रीपरशुरामजीने धनुर्विद्या सिखायी है। यदि इसमें कोई दोष होता तो वे इसे कभी दिव्य अस्त्र न देते। मैं तो कर्णको क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ कोई देवपुत्र ही समझता हूँ। यह कवच और कुण्डल पहने उत्पन्न हुआ है तथा विशालबाहु और महारथी है; इसलिये इसका जन्म सूतकुलमें होना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

आप कर्णका अपमान न करें। वह समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण अस्त्रविद्यामें पारंगत है। यह बात प्रत्यक्ष ही है कि उस रात्रिमें घटोत्कचने सैकड़ों मायाएँ रची थीं, तब उसे कर्णने ही मारा था। इन दिनोंमें अर्जुन भी डरके मारे कभी डटकर कर्णके सामने खड़ा नहीं हुआ है। महाबली भीमको भी कर्णने धनुषकी नोकसे युद्धके लिये उत्तेजित किया था और किसी विशेष कारणसे ही उसे नहीं मारा था। कर्णने ही वृष्णिकुलतिलक सात्यकिको युद्धमें परास्त किया था और उसे बलात्कारसे रथहीन कर दिया था। उसने धृष्टद्युम्नादि सृञ्जय वीरोंको तो संग्रामभूमिमें हँसते-हँसते कई बार नीचा दिखाया था। भला, ऐसे महारथी कर्णको पाण्डवलोग कैसे परास्त कर सकते हैं। कर्ण तो कुपित होनेपर वज्रधर इन्द्रको भी मार सकता है। आप भी सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता और समस्त विद्याओंमें पारंगत हैं। पृथ्वीमें आपके समान किसीका भी बाहुबल

नहीं है। आप शत्रुओंके लिये शल्यके समान हैं, इसीसे आप शल्य नामसे प्रसिद्ध हैं। सारे यदुवंशी मिलकर भी आपके बाहुपाशमें पड़नेपर उससे छुटकारा नहीं पा सकते। राजन्। कृष्ण क्या आपके बाहुबलसे भी बलमें बढ़े-चढ़े हैं? जिस प्रकार अर्जुनके मारे जानेपर श्रीकृष्ण पाण्डवसेनाकी रक्षा करेंगे उसी प्रकार यदि कर्ण मारा गया तो आपको हमारी विशाल वाहिनीकी रक्षा करनी होगी। महाराज। मैं तो आपके बलसे ही अपने भाइयों और समस्त राजाओंके ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ। दुर्योधन की बात से शल्य की खीज बढ़ गई, तुम्हें यह तो स्मरण है राजन् कि कर्ण को भगवान परशुराम ने धनुर्वेद का ज्ञान दिया, किंतु यह भूल गए हो कि उसके झूठ और पाखंड से रुष्ट होकर उन्होंने उसे शाप भी दिया है। शाप का अर्थ समझते हो? दुर्योधन बोला, क्या कर्ण अपना सीखा हुआ ज्ञान भूल जाएगा?

शल्य बोला, वह तो मैं नहीं जानता, किंतु उस गुरु के हृदय में झाँककर देखो, जो अपने शिष्य को ज्ञान देकर पश्चात्ताप के मारे पीड़ित हो, जो अपना दिया हुआ ज्ञान लौटा लेना चाहता हो। वह नहीं जानता मैं। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि गुरु का यह पश्चात्ताप शिष्य के चरित्र के दूषित होने का प्रमाणपत्र है।

दुर्योधन बोला, होता रहे। प्रमाणपत्रों को कौन देखता है आज। गुरु द्रोण ने भी तो कर्ण को शिक्षा नहीं दी। अर्जुन से भी अधिक अश्वत्थामा को सिखाया; किंतु आज कर्ण और अर्जुन दोनों ही उससे श्रेष्ठतर योद्धा हैं। अश्वत्थामा युद्ध करे तो दोनों से ही पिट जाएगा। गुरु के प्रमाणपत्र अथवा भाव का क्या करना है किसी को। परशुराम से कर्ण को जय नाम का धनुष प्राप्त हुआ था। वैसा श्रेष्ठ धनुष कितने लोगों के पास है। अग्नि बरसाता है वह धनुष। यदि शाप है, तो रहे किसी के भी मन में। हाथ में तो धनुष ही रहेगा। देखें अर्जुन क्या कर लेता है अपने गांडीव से, जो कर्ण अपने जय से नहीं कर सकता। शल्य बोला, यह धनुष तो कर्ण के पास पहले भी था। क्या कर लिया कर्ण ने आज तक?

कृष्ण भूत, भविष्यकी सब बातोंको पूरी तरहसे जानते हैं। यह सब जानकर ही उन्होंने अर्जुनका सारथ्य ग्रहण किया है। यदि किसी प्रकार कर्णने अजुनको मार डाला तो उसे मरा देखकर श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध करने लगेंगे और जब वे कोप करेंगे तो दुर्योधन की सेनाका कोई भी राजा शत्रुओंकी सेनाका सामना नहीं कर सकेगा।

दुर्योधनने कर्ण से कहा, शल्यने सारथी पद ग्रहण कर लिया है। वह आपका सारथी बननेके लिये तैयार है।

कर्ण, शल्य को मैंने युद्धारम्भ से पहले ही अन्य राजाओं से अधिक सम्मान दिया है। वह पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होने हेतु ही मद्र देश से निकला था। किन्तु मार्ग में ही उसका हर प्रकार से स्वागत-सम्मान करते हुए बहुमूल्य उपहार देकर मैंने उसे अपने पक्ष में कर लिया है। युद्ध में कौरवों से एकनिष्ठ रहने की उसने प्रतिज्ञा की है। पिछले सोलह दिनों में उसने उसे निभाया भी है। शल्य अब पीछे नहीं हटेगा। क्षत्रिय कभी अपने शब्द से पीछे नहीं हटते- आवश्यकता पड़ने पर मृत्यु को भी स्वीकार करते हैं।

मद्रराज शल्य को कर्ण का सारथी नियुक्त किये जाने की सूचना पाण्डवोंके शिबिर में पहुँच गयी।

कृष्ण ने आज माद्रेय नकुल को शिबिरमें बुलाया। नकुल रात्रि में शिबिर में आया। कृष्ण बोले, नकुल तुम्हें इसी समय अपने मामा मद्रराज शल्यकी शिबिरमें जाना है। हम भी नहीं चाहते कि तुम्हारे मामा पाण्डवोंकी ओरसे युद्धमें उतरें। बस तुम अपने मामा से आशीर्वाद लेकर इतनी प्रार्थना करें कि कल के युद्ध में भी कर्णको उसके सूतपुत्र होना दुर्योधनका आश्रित होने का बार-बार अहसास दिलाते रहना। नकुल बोला, जो आज्ञा द्वारकाधीश और यह कहकर अपने मामा से मिलने गया और थोड़ी देर में अपने कार्य में सफल होकर लौटा।

कर्ण मद्र नरेश के शिबिर में आता है। कर्ण बोला, द्वारपाल मद्र नरेश से कहो कि राधेय उनके द्वारपर खडा उनकी

प्रतीक्षा कर रहा है। मद्र नरेश शल्य शिबिर से बाहर आकर कर्ण को प्रणाम कर बोला, विलम्ब के लिये क्षमा चाहता हूं प्रधान सेनापति। कर्ण बोला, मुझे लज्जित न कीजिये मद्र नरेश। मैं इस उत्तेजना में समय से पहिले आ गया कि आज आप मेरे सारथी बनकर मुझे सम्मानित करनेवाले है। उधर से वासुदेव और इधर से आप। शल्य बोले, अकेला सारथी क्या करेगा अंगराज? मैं तो केवल तुम्हे अर्जुन के अचूक बाणों से बचाने का प्रयत्न ही कर सकता हूँ। अकेला सारथी कर ही क्या सकता है। उधर से अर्जुन के अचूक बाण आयेंगे... कर्ण बोला, मैं जानता हूं महाराज किन्तु आप भी यह जान लीजिये कि इधर से राधेय के भी अचूक बाण जायेंगे। शल्य बोले, मैं यह सब जानता हूं अंगराज किन्तु तुम स्वयं भी तो विराट युद्ध में अर्जुन के अचूक बाणों की नोक देख ही चुके हो। अकेले अर्जुन के सामने तो पूरी की पूरी कौरव सेना नहीं टिक पायी थी और वो सेना जिसमें कैसे-कैसे महान योद्धा थे। गंगा पुत्र भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, तुम, दुर्योधन और फिर यह भी सोचो वो लडाई तो वो केवल विराटराज के लिये लड रहा था किन्तु यह युद्ध तो उसका अपना युद्ध है। लाक्षागृह, द्यूतक्रीडा, द्रौपदी अपमान और इन सभी घावों से बढकर कहीं अधिक गहरा घाव अभिमन्यु वध। उसने इतने सारे घावों के कवच पहिन रखे है अंगराज। इन कवचों को तो ब्रह्मास्त्र भी नहीं भेद सकता अंगराज।

कर्ण ने सरलता के साथ कहा- हाँ, मुझे यह बात मंजूर है। ये जो कुछ भी कहेंगे, मैं उसको सहन करूँगा। जैसे ये दुर्योधन के मामा हैं उसी तरह ये मेरे पूज्य हैं। इनकी सहायता से मैं अवश्य ही अर्जुन को मार सकूँगा। यह सुनकर शल्य ने सूखी हँसी हँसी और कहा- अच्छी बात है। मैं तैयार हूँ। तुम भी युद्धभूमि में चलने के लिये तैयार हो जाओ।

शल्य की स्वीकृति पाकर कर्ण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने निजी पुराने सूत को रथ तैयार करके लाने की सम्मति दी। सुवर्ण से मण्डित विशाल रथ बात-की-बात में सूत ने लाकर खड़ा कर दिया। वह एक नगर के समान था। सूर्य की भाँति चमचमा रहा था। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित था, जिसमें परम प्रवीण घोड़े जुते हुए थे। उस सुन्दर रथ को देखकर कर्ण ने शल्य से कहा- पहिले आप रथ पर सवार हों। तब मैं चढूँगा। ब्राह्मणों ने कर्ण को आशीर्वाद दिया।

शल्य बोले, अपनी या दूसरेकी निन्दा अथवा स्तुति करना श्रेष्ठ पुरुषोंका काम नहीं है। तो भी तुम्हारे विश्वासके लिये मैं अपने विषयमें जो प्रशंसाकी बातें कहीं है। मैं सावधानीसे घोड़ोंको हाँकने, उनके गुण-दोषोंको जानने तथा उनकी चिकित्सा करनेमें इन्द्रके सारथी मातलिके समान हूँ। अत: तुम चिन्ता न करो। अर्जुनके साथ युद्ध करते समय मैं तुम्हारा रथ हाँकूँगा। महाराज शल्यने घोड़ोंकी रासें सँभालीं और कर्ण रथपर बैठकर धनुषकी टंकार करने लगा।

युद्ध का सत्रहवां दिन उदित हुआ। सेनापति बना दानवीर कर्ण उष:काल के धुँधलके में दोनों सेनाओं की गतिविधियों का निरीक्षण करने हेतु चुनी हुई टेकरी पर खड़ा हुआ। पिछले कुछ दिनों से वह टेकरी सैनिकों में कर्ण का किला नाम से प्रसिद्ध हुई थी। डौंडी पिटवाने के कारण आज वह टेकरी कुरुक्षेत्र के आसपास के नगरों से आये याचकों से घिर गयी थी। आज वह मुक्तहस्त से याचकों को दान करने की इच्छा से खड़ा हुआ था।

राजपुरोहित के बताये हुए मुहूर्त पर उसने अपने दान-सत्र का आरम्भ किया। मुट्ठी भर-भरकर यह याचकों को हीरे, माणिक, मोती दान कर रहा था। किसी भी योद्धा के आगे न झुकनेवाला उसका मस्तक आज उन कृश याचकों के आगे आदरपूर्वक झुका हुआ था।

कर्णने दुर्योधनकी बात स्वीकार करके राजा शल्यसे कहा- महाबाहो। घोड़ोंको बढ़ाइये, जिससे कि मैं अर्जुन, भीम, नकुल-सहदेव और युधिष्ठिरको मार सकूँ। आज पाण्डवोंके नाश और दुर्योधनकी विजयके लिये मैं हजारों तीखे बाण छोड़ूँगा। शल्य ने घोड़ोंकी रास अपने हाथ में पकड़ी। उस समय वे सूर्य के सारथी अरुण की भाँति चमक रहे थे। ब्राह्मणों के स्वस्त्ययन करने पर महावीर कर्ण उस अपूर्व दिव्य रथ में सवार हुए। उस समय शल्यके साथ वे ऐसे प्रतीत होते थे मानों

दो सूर्य साथ ही जा रहे हो। शल्य ने घोड़ों को हाँक दिया। सबकी आशा थी कि रात्रि में अर्जुन को परास्त करके विजयी कर्ण को लेकर शल्य लौटेंगे। किन्तु शल्य तो सचमुच कर्ण के लिये असह्य शल्य-काँटे हुए। उन्होंने उनके मर्म को ऐसा बेधा कि वे फिर लौटकर शल्य के रथ पर नहीं आये। वहीं रणभूमि में सो गये। वे धर्म से नहीं जीते गये। पृथ्वी ने, शल्य ने, पार्थ ने और पार्थ के सारथी ने उनके साथ धोखा किया। विश्वासघात और अधर्म के कारण वे धराशायी हुए।

धृतराष्ट्र बोले, संजय यह तो खुला पक्षपात है। शल्य को इस प्रकार सारथी की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। संजय बोला, मर्यादाओं की बात न कीजिये महाराज। धृतराष्ट्र बोला, क्यों न करूं मर्यादाओं की बात? संजय बोला, ना ही अभी अभिमन्यु वध को बहुत दिन हुये है और न ही द्रोण वध को महाराज। भरत वंश में मर्यादाओं का मूल्य बहुत गिर चुका है महाराज। भरतवंशियों का चन्द्र ग्रहण में है और यह अन्धकार बहुत विषैला है। कौन जाने इस अन्धेरी रात का अन्त कब होगा? और कब हस्तिनापुर को सूर्य के दर्शन होंगे।

मर्यादायें मर मिट्टी, घिरी अन्धेरी रात, आदर्शों की अब कहीं सुने न कोई बात।

अब इस युद्ध ने अपनी आखिरी सांसे लेना शुरू कर दिया है। कहीं जब इतिहास का लेखाकार इस महायुद्ध का हिसाब करने बैठेगा तो सोच में पड जायेगा कि ये महायुद्ध भारत को ही नहीं इस सारे संसार को कितना महंगा पडा। तुला के दोनों पलडे ऊपर नीचे होते रहेंगे और वो यह सोचता रह जायेगा कि यह सौदा घाटे का हुआ या मुनाफे का। कैसे कैसे लोग खर्च हो गये शवों के इस बाजार में। तो वो इस नतीजे पर तो नि:सन्देह पहुंचेगा कि जीवन के नैतिक और सामाजिक मूल्य जिन दामों में मिले वे सस्ते है। इस बाजार में सबसे कम दाम चीज जीवन ही है। कुरुक्षेत्र में आज से कर्ण का दिन शुरू हो रहा है। समय के अतिरिक्त यह कोई नहीं जानता कि कर्ण का यह दिन कितने दिनों का होगा? तो समय अभी आपको यह क्यों बताये कि कर्ण का दिन कितने सूर्योदय और सूर्यास्त देखेगा? मद्र नरेश कर्ण के सारथी तो हैं ही किन्तु उसकी सुरक्षा की ध्यान देने की जगह वो कर्ण के व्यक्तित्व से साहस और आत्मविश्वास की परतें ऐसे उखाडने का प्रयत्न कर रहे हैं जैसे कोई प्याज के छिलके उतारता है।

कुरुक्षेत्र में सभी कौरव महारथी कर्ण के प्रधान सेनापतित्व में युद्ध के लिये तैयार हैं। मद्रनरेश शल्य कर्ण का सारथी है।

दुर्योधन कर्ण को बोला, भीष्म और द्रोण अपनी वृद्धावस्था के कारण जो कुछ नहीं कर सके, उसे तुम पूरा कर दो। मेरे लिए दो में से एक काम कर दो। या तो युधिष्ठिर को जीवित बाँध लाओ या फिर भीम और अर्जुन का वध कर दो। फिर मुझे किसी की चिंता नहीं है।

कर्ण का रथ समरभूमि में आ गया था। कौरवों की सेना आज कुछ अधिक ही उत्साह से रणक्षेत्र में उतरी थी। पांडवों का मकरव्यूह भी पर्याप्त दृढ़ लग रहा था।

रथारूढ़ होकर कृष्ण के अपने शुभ्र पांचजन्य शंख से युद्धप्रेरक, रोमहर्षक स्वर निकालते ही अर्जुन भी नन्दिघोष पर आरूढ़ हुआ। अपने देवदत्त शंख से वह कृष्ण के शंखनाद के स्वरों का अनुसरण करने लगा। दोनों सेनाएँ समझ नहीं पा रही थीं कि वह शंखनाद पांचजन्य का है कि देवदत्त का।

आज पहली बार दोनों सेनाओं ने दो ही नामों का जयघोष करते हुए कोलाहल मचाया। जयघोष की वह ध्वनि टेकरी से टकराकर फिर पाण्डव-सेना में गूँजने लगी- कुन्ती पुत्र अर्जुन की जय हो। दानवीर राधेय कर्ण की जय हो।

२) शल्य का कर्ण को हतोत्साहित करना

शल्य बोले- सूतपुत्र। तुम पाण्डवोंका अपमान क्यों करते हो? वे तो समस्त शास्त्रोंके पारगामी, महान् धनुर्धर, रणमें पीठ न दिखानेवाले, अजेय और अत्यन्त पराक्रमी हैं। वे साक्षात् इन्द्रको भी भयभीत कर सकते हैं। जिस समय तुम

गाण्डीव धनुषकी वज्रके समान भीषण टंकार सुनोगे उस समय इस प्रकार गाल बजाना भूल जाओगे। जिस समय भीम दाँत उखाड़-उखाड़कर हाथियोंकी सेनाका संहार करेगा उस समय तुम इस प्रकार बातें न बना सकोगे। जिस समय तुम धर्मराज युधिष्ठिर और नकुल-सहदेवको अपने पैने बाणोंसे शत्रुओंका संहार करते देखोगे उस समय ऐसी कोई बात नहीं कह सकोगे।

सञ्जयने कहा- राजन्। तब मद्रराजकी इन सब बातोंकी उपेक्षा करके कर्णने उनसे कहा, अच्छा अब रथ बढ़ाइये।

शल्य बोले, अपने धनुष को कस कर पकडे रखना अंगराज। यह अर्जुन के भय के कारण तुम्हारे हाथों से छूटकर भाग भी सकता है। अर्जुन तो फिर अर्जुन ही है अंगराज। उसका तो सामना स्वयं इन्द्र भी नहीं कर सकते क्योंकि अब तो सारे दिव्यास्त्र अर्जुन के पास है। वहां देव की तो मैं नहीं कह सकता किन्तु और तो कोई अर्जुन के सामने टिक नहीं सकता। कर्ण बोले, हे मद्र नरेश दुर्योधन के किये का दंड मुझे क्यों दे रहे है? मैंने आपसे तो कभी कोई छल नहीं किया। मैंने तो केवल आपसे प्रार्थना की और आपने अपनी स्वीकृति देकर मुझे सम्मानित किया। मैंने तब भी आपसे यही निवेदन किया कि अर्जुन के सारथी वासुदेव होंगे तो मुझे भी वैसा ही सारथी चाहिये। उस दिन तो आपने मुझसे यह नहीं कहा था नरेश कि अर्जुन से भला तुम क्या युद्ध कर पावोगे कर्ण क्योंकि उसके सामने तो स्वयं देवेन्द्र भी नहीं टिक सकते। क्या आप इस दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे कि मैं जब कौरव सेना का प्रधान सेनापति बन जाऊंगा तब आप मुझे ये सब बतायेंगे। हे नरेश मैं अर्जुन को आपसे कहीं अधिक जानता हूँ किन्तु मैं भी राधेय गंगापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण जैसे का गुरुभाई। मेरे गुरू ने मुझे भयभीत होना नहीं सिखाया। इसलिये कृपया आप रथ हांकिये। शल्य बोला, सारथी का यह भी कर्त्तव्य है अंगराज कि वो अपने रथी को उसके भले की समझाये। अर्जुन के सारथी ने भी बीच रणभूमि के उसे समझाया था कि नहीं। कहना मेरा कर्त्तव्य है। मानना या ना मानने का अधिकार तुम्हारा है।

जब महान् धनुर्धर कर्ण युद्धके लिये तैयार हो गया तो उसे देखकर समस्त कौरववीर हर्षध्वनि करने लगे। कर्णके प्रस्थान करते ही आपके पक्षके सब वीरोंने भी मृत्युका भय छोड़कर दुन्दुभि और भेरियोंके शब्दके साथ युद्ध भूमिके लिये कूच किया। कर्ण शल्यसे बोला, अब आप शत्रुओंकी सेनाकी ओर रथ बढ़ाइये। जहाँ सत्यप्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिर मौजूद हैं, जहाँ भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृञ्जय वीर और नकुल-सहदेव युद्धके मैदानमें डटे हुए हैं, वहाँ मेरे सिवा और कौन योद्धा इन सब वीरोंसे टक्कर ले सकता है? इसलिये मद्रराज। आप शीघ्र ही रणभूमिमें पाञ्चाल, पाण्डव और सृञ्जय वीरोंकी ओर रथ ले चलिये। इस श्रेष्ठ रथमें बैठकर मैं अवश्य ही अर्जुनको मार डालूँगा। यदि स्वयं काल भी अर्जुनको बचाना चाहेगा तो मैं उसे भी नष्ट कर डालूँगा अथवा भीष्मके समान स्वयं ही यमलोक चला जाऊँगा। अधिक क्या कहूँ, यदि उसकी रक्षाके लिये यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी अपने अनुयायियोंसहित एक साथ मिलकर युद्धभूमिमें आयेंगे तो मैं उसे उन सबके सहित परास्त कर दूँगा।

मद्रराज हँसे और उसका तिरस्कार करके बीचहीमें रोककर कहने लगे, कर्ण। बस अब चुप रहो। तुम जोशमें आकर बहुत बढ़ी-चढ़ी बातें कह गये हो। भला, कहाँ नरश्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ नराधम तुम। यह तो बताओ, अर्जुनके सिवा और ऐसा कौन है जो साक्षात् विष्णुभगवानसे सुरक्षित यादवोंके राजभवनको बलात्कारसे नीचा दिखाकर स्वयं पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी छोटी बहिनका हरण कर सके तथा तीनों लोकोंके अधीश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् शंकरको युद्धके लिये ललकार सके। जब विराट-नगरमें गोहरणके समय अर्जुनने तुम्हें सारी सेना और द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा एवं भीष्मके सहित परास्त किया था उस समय तुमने उसे क्यों नहीं जीत लिया? अब आज तुम्हारे वधके लिये ही यह दूसरा युद्ध

उपस्थित हुआ है। यदि तुम शत्रुके भयसे भाग न गये तो अवश्य ही मारे जाओगे।

मद्रराजके इस प्रकार कटुभाषण करनेपर कौरवसेनापति कर्ण अत्यन्त क्रोधमें भर गया और उनसे कहने लगा, रहने दो, रहने दो, इस प्रकार क्यों बड़बड़ाते हो, अब तो मेरा और अर्जुनका युद्ध होनेहीवाला है। यदि वह संग्राममें मुझे परास्त कर दे तो तुम्हारी ही बात सच मानी जायगी। इसपर मद्रराजने ऐसा ही हो इतना कहकर और कोई उत्तर नहीं दिया। तब कर्णने युद्धके लिये उत्सुक होकर उनसे कहा शल्य। रथ बढ़ाओ।

कर्ण की दृष्टि अर्जुन को खोज रही थी। कहाँ है वह? इतना बड़ा युद्धक्षेत्र था- योजनों में फैला हुआ। दोनों पक्षों की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी भी दिखाई देती थी; और दृष्टि से बहुत कुछ ओझल भी थीं। युद्धक्षेत्र में सरिता तट भी आता था और कुछ ऊँचे-नीचे टीले भी थे। रेत भी थी और दलदल भी। कहीं कुछ वृक्ष बीच में आ जाते थे; और कहीं धूलि-धूसरित नंगी धरती ही थी। वह सरोवर भी था, जहाँ अर्जुन और दुर्योधन का संघर्ष हुआ था। इस सारे क्षेत्र में किसी न किसी रूप में दोनों सेनाओं की वाहिनियाँ आमने-सामने खड़ी थीं। पर इनमें अर्जुन कहाँ होगा?

कर्ण बोला, कोई धावक भेजो। जाकर समाचार लाए कि अर्जुन कहाँ है। उनसे कह दो, जो अर्जुन का समाचार लाएगा, उसे मैं छकड़ा भर कर रत्न दूँगा। यदि वह चाहेगा तो उसे स्वर्णाभूषणों से लदी हुई संसार की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियाँ दूँगा- पूरा छकड़ा भर कर। जाओ, पता लगाओ, अर्जुन कहाँ है। आज मैं उसका वध किए बिना समरभूमि नहीं छोड़ूँगा।

शल्य बोला, जो आज्ञा सेनापति। जो तुम्हें अर्जुन का पता देगा, उसे तुम छकड़ा भरकर बहुमूल्य रत्न दोगे? रत्न क्या सरस्वती के तट पर की बालू है कि छकड़े में भरकर कहोगे, कि ले जा और हाट में रत्नों के मूल्य में बेच ले। मुँह खोलने से पहले अपना सामर्थ्य भी आँक लेना चाहिए। छकड़ा भर रत्न तो तुम्हारे स्वामी दुर्योधन के पास भी नहीं है कि उससे ही भिक्षा माँग लोगे। तुम कौरवों के प्रधान सेनापति हो कर्ण। यक्षराज कुबेर नहीं। तुम्हारे लिए चाहे न हो, किंतु अन्य लोगों के लिए वचन का कोई महत्त्व होता है। तुम्हें अनर्गल प्रलाप से बचना चाहिए।

मद्रराज शल्यने कहा तुम्हें इतना सारा धन देनेकी जरूरत नहीं अर्जुन तुम्हें स्वयं ही दिख जायेगा। तुम मूर्खता से अपना धन लुटा रहे हो। तुम जो बुद्धिहीन पुरुषों के समान अपना सारा धन देनेको तैयार हुए हो अपात्रको धन देनेमें जो दोष हैं उनका तुम्हें पता नहीं। तुम जो अपार धन देना चाहते हो उससे तो यज्ञादि करो। तुम व्यर्थ में ही कृष्ण और अर्जुन को मारने की इच्छा करते हो। कभी भी युद्धमें गीदड़ सिंहको नहीं मार सकता। तुम्हारा तो काल आ पहुँचा है। जो ऐसी ऊटपटांग बातें करते हो। तुम अपनी भुजाओं के बल से समुद्र पार करना चाहते हो अथवा पहाड़ी की चोटी से कूदना चाहते हो। तुम सव्यसाची अर्जुन को मारना चाहते हो जो कि असम्भव है। इसप्रकार कोई बालक चन्द्रमाको पकड़ना चाहे उसी प्रकार तुम अज्ञानसे ही रथमें तेजस्वी अर्जुनको परास्त करनेकी बात सोचते हो। जैसे कोई कुत्ता वनमें रहनेवाले सिंहको भौंकता है उसी प्रकार तुम अर्जुनके लिये बड़बड़ा रहे हो। वनमें खरगोश के साथ रहनेवाला गीदड़ भी जब तक सिंहको नहीं देखता तब तक अपने आपको सिंह समझता है। जिस समय तुम्हारी दृष्टि अर्जुनपर पड़ेगी तुम तत्काल ही गीदड़ बन जाओगे।

शल्य ने कहा, सूतपुत्र। नीच पुरुषों को हित की बात भी अच्छी नहीं लगती। तुमने वृद्धों की सेवा नहीं की है। तू सदा नीचों की सङ्गति में रहा है। तेरे विचार क्षुद्र हैं। जैसे बौना पुरुष अपने हाथ से चन्द्रमा को पकड़ना चाहे, उसी प्रकार तेरा विचार अर्जुन से लड़ने का है। तू यदि कुलीन, सच्चरित्र होता मेरी बात पर विश्वास करता, मेरा कृतज्ञ होता, किन्तु तेरे सिर पर तो काल मँडरा रहा है। तू मृत्यु का मेहमान है, इसलिये तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। तू मुझे भी मारना चाहता है। तभी

तो कहते हैं, नीच पुरुषों का साथ ठीक नहीं। मैं दुर्योधन के स्नेहवश तेरा रथ हाँक रहा हूँ, नहीं तो तुझ जैसे नीच, क्षुद्र, कुलहीन, अकृतज्ञ और सदाचार रहित व्यक्ति से तो मैं बातें भी नहीं करता।

रथपर चढ़कर महावीर कर्ण आगे बढ़ा। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि आज बिना अर्जुन को मारे न लौटूँगा, या तो मैं समर में अर्जुन को मार डालूँगा या अर्जुन मुझे सदा के लिये इस संसार से विदा कर देगा। इसलिये उन्होंने सेवकों को सुनाते हुए कहा, जो कोई आज मुझे अर्जुन को दिखा देगा, उसे मैं मुँह माँगा इनाम दूँगा। वह जो भी माँगेगा वही देने को मैं तैयार हूँ। आज मैं बिना अर्जुन को मारे न छोड़ूँगा।

शल्य तो सिखाये हुए थे। उन्हें तो कर्ण का तेज और घटाना ही अभीष्ट था। वे बोलें, अरे नीच सूतपुत्र। तू इतनी बढ़-बढ़कर बातें क्यों करता है? कहाँ खरगोश, कहाँ हाथी? गीदड़ कहीं सिंह से लड़ सकता है? बकरी का बच्चा भेड़िये से लड़ सकता है? तू अर्जुन से क्या लड़ेगा? जिस समय रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण सहित अर्जुन को देखेगा, उसी समय तू डरके मारे काँपने लगेगा। गाण्डीव धनुष की प्रत्यञ्चा के घोष से ही तू बेहोश हो जायगा। अग्निदत्त रथ की घरघराहट से ही तेरे कान बहरे हो जायँगे। पहले तू अर्जुन को देखकर अपने होश तो ठीक रख लेना, युद्ध करने की बात तो अलग रही। क्षण में हीं मैं तुझे सव्यसाची अर्जुन के पास लिये चलता हूँ। जैसे पतङ्ग ही मरने के लिये अग्नि की ओर दौड़ता है, वैसे ही तू काल के वशीभूत होकर अर्जुन की खोज कर रहा है। थोड़ी देर ठहर जा, मैं तुझे अभी अर्जुन से मिलाये देता हूँ। तुझे किसी को इनाम देने की आवश्यकता न पड़ेगी।

कर्ण ने कहा, तू नीच है, तुझमें बल नहीं। तू मित्ररूप में मेरा शत्रु है। तू मेरे बल पौरुष और उत्साह को घटाना चाहता है किन्तु मैं तेरे इन वचनों की कुछ परवाह नहीं करता। कुत्ते भौंकते रहते हैं, गजराज अपनी मस्त चाल से निकल जाते हैं। मैं अर्जुन को आज मारकर तुझ मित्र-घाती को भी मार डालूँगा। तू पहले अपनी खैर तो मना ले, मार तो मैं तुझे अभी डालता, किन्तु मैं दुर्योधन से वचनबद्ध हूँ। इसलिये तुझे क्षमा किये देता हूँ।

कर्ण स्तब्ध रह गया। यह शल्य क्या कह रहा है। यह क्या एक सारथी अपने रथी से कह रहा है इसका इतना साहस कैसे हुआ? शल्य बोला, और कोई अर्जुन का पता ला ही देगा तो क्या करोगे? शल्य के अधरों के कोनों पर जैसे विष की गाँठ रखी हुई थी, विपरीत दिशा में भागने का प्रयत्न करोगे? कर्ण के मुख से निकला, क्या प्रलाप कर रहे हो तुम।

शल्य ने जैसे उसे चिढ़ाया और बोला, प्रलाप लगता है तुम्हें यह सब? तुम्हारे जीवन का यथार्थ है यह। जब कभी अर्जुन तुम्हारे सामने पड़ा है, तुम समरभूमि छोड़कर भाग गए हो। आज क्यों खोज रहे हो उसे? ताकि रणभूमि से तुम्हारे भाग जाने के पश्चात् वह तुम्हारे शत्रुओं से दुर्योधन की रक्षा करे, जैसे उसने घोषयात्रा के अवसर पर, तुम्हारे भाग जाने के पश्चात् चित्रसेन से दुर्योधन के प्राण बचाए थे और कुरुकुल की स्त्रियों के सम्मान की रक्षा की थी?

कर्ण बोला, मैं नहीं जानता था शल्य कि मेरे सारथी होकर भी तुम अपनी तुच्छता का त्याग नहीं करोगे; और अपने रथी से ही नहीं, कौरवों के प्रधान सेनापति से भी ऐसी बातें करोगे।

शल्य बोला, तुम्हें तुम्हारे चरित्र का दर्पण दिखा दिया तो यह मेरी तुच्छता हो गई? तुम जो अर्जुन का पता बतानेवाले को पुरस्कारों की झूठी घोषणाएँ कर रहे हो, वह तुम्हारी तुच्छता नहीं है? तुम्हारा कोई मित्र नहीं है यहाँ, जो तुम्हें इस जलती आग में गिरने से रोके।

मैं सत्य कह रहा हूँ, कर्ण ने अपना सारा आत्मबल अपने शब्दों में ढाल दिया, मैं कृष्ण और अर्जुन दोनों को मार कर उनका सारा धन उनका पता बतानेवाले को दे दूँगा।

कृष्ण को मार देने की बात शल्य के वक्ष में ही कहीं अटक गई। उसे लगा, उसका श्वास ही जैसे रुक गया है। बोला, सूतपुत्र। तुम्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है। काल ने तुम्हें पका दिया है; और तुम शाखा से टपकने के लिए आतुर हो रहे हो। मेरा तो परामर्श है कि यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो व्यूहरचनापूर्वक खड़े हुए समस्त सैनिकों के साथ सुरक्षित रहकर अर्जुन से युद्ध करो। अर्जुन के तीखी धारवाले कंकपत्र विभूषित बाण जब तुम्हारे शरीर को विदीर्ण करने लगेंगे तो तुम्हें अर्जुन को खोजने का पश्चात्ताप होगा। शल्य ने सीधे कर्ण की आँखों में देखा, वत्स कर्ण। अपने घर में बैठे हुए कुत्ते का वन में विचरते हुए व्याघ्र की दिशा में भौंकने का कोई अर्थ नहीं होता।

कर्ण की आँखें क्रोध से लाल हो गईं शल्य उसे घर में बैठा हुआ कुत्ता कह रहा था।

कर्ण बोला, मुझे भयभीत करना चाहते हो। इधर देखो। मेरा यह अकेला ही बाण शत्रुओं का रक्त पीने को पर्याप्त है। बहुत दिनों से यह एक तूणीर में अकेला ही रखा जाता रहा है। इसे देखो, यह सर्पमय भयानक विषैला बाण।

शल्य बोला, एक बाण पर इतरा रहे हो; और वह भी सर्प के विष के कारण। और इसे वीरता कहते हो तुम। नागों के समान विषधर पाल रखे हैं तुमने भी, अवसर देखकर दंश करनेवाले। तुम्हारे जैसा तुच्छ योद्धा मैंने नहीं देखा। और फिर तुम स्वयं को कृष्ण और अर्जुन जैसा वीर भी मानते हो।

कर्ण और सहन नहीं कर सका ओर बोला, मेरी तुच्छता बता रहे हो और अपनी तुच्छता का स्मरण नहीं है तुम्हें। गुणों से शून्य रहे हो सदा, तुम किसी के गुण को क्या समझोगे और क्या उसका गुणगान करोगे।

शल्य ने हँसकर कहा, मैं गुणों से शून्य हूँ तभी तो मेरा मन जीतने के लिए, मुझे अपना मित्र बनाने के लिए, तुम्हारे राजा को इतने षड्यंत्र करने पड़े।

कर्ण भी उतनी ही कटुता से मुस्कराया और बोला, तुम्हारी मैत्री। कौन नहीं जानता कि मद्रनिवासी मित्रद्रोही; अकारणद्वेषी, मिथ्याभाषी और कुटिल होते हैं। कृतघ्नता, पराए धन का अपहरण करना, मदिरापान, गुरुपत्नीगमन, कटु संभाषण- ये सब गुण हैं, आरट्टों, वाहीकों और मद्रनिवासियों के। तुम कृष्ण और अर्जुन की जाने किस स्वार्थवश स्तुति कर रहे हो। आज समरभूमि में उन दोनों को मारकर मैं बंधु-बांधवोंसहित तुम्हारा भी वध कर दूँगा।

शल्य ने पलटकर उसकी ओर देखा, अकारणद्वेषी तुम हो, अन्यथा पांडवों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। पराए धन का हरण और मदिरापान तुम करते हो और करता है तुम्हारा स्वामी दुर्योधन। अन्यथा हस्तिनापुर का राज्य पांडवों का है। मिथ्याभाषण और कुटिलता, तुमसे और तुम्हारे मित्रों से अधिक कहीं पाई जाती है क्या? अपने वचन के इतने ही सच्चे हो तो पहले मेरा ही वध करके दिखाओ।

कर्ण दाँत पीसकर बोला, अब तक मैं तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर मांसभक्षी प्राणियों को खिला भी चुका होता। तुम अब तक जीवित हो नराधम मद्रनिवासी। क्योंकि मुझे दुर्योधन और धृतराष्ट्र का काम करना है; और उसके लिए तुम्हारी सहायता चाहिए। तुम जीवित हो क्योंकि मैं अपनी निन्दा से डरता हूँ। अपने ही सारथी का वध किसी वीर को शोभा नहीं देता। वैसे मैं जानता हूँ कि पांडवों ने तुम्हें हमारा भेद लेने के लिए यहाँ रख छोड़ा है, इसलिए तुम मित्र बनकर हमारे साथ शत्रु का सा व्यवहार कर रहे हो।

शल्य बोला, सूतपुत्र। मैं युद्ध में पीठ न दिखानेवाले यज्ञपरायण मूर्धाभिषिक्त नरेशों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ; और स्वयं भी धर्म में तत्पर रहता हूँ। तुम अधिक पीकर आए हो, अत: मदिरा में उन्मत्त होने के कारण, नहीं जानते हो कि क्या बक रहे हो। मैं तुम जैसे प्रमत्त की चिकित्सा कर अपने धर्म का ही निर्वाह कर रहा हूँ।

कर्ण ने कहा, हे नीच देश के रहनेवाले। इतनी बढ़-बढ़कर बातें मत कर। मद्र देशवालों का आचार-विचार मैं जानता हूँ। वहाँ की स्त्रियाँ कैसी स्वेच्छाचारिणी होती हैं, इसका मुझे पता है। वहाँ लोग घर-घर शराब बनाते हैं, मांस खाते हैं, एक ही बर्तन में मांस, सत्तू, शहद और शराब पी लेते हैं, उसी में दूसरा खाता है, फिर उसे कुत्ते भी चाटते रहते हैं, वहाँ के लोग वर्णसंकर होते हैं। स्त्रियाँ स्वेच्छाचार करती हैं। वहाँ कुल धर्म, जाति धर्म कुछ भी नहीं। वहाँ के लोग अखाद्य मांस भी खा लेते हैं। उसी देश का तू राजा है। उन्हीं के षष्टांश को लेकर तू अपना काम चलाता है, इसलिये तुझमें भी वे सब नीचतायें हैं।

शल्य ने कहा- कर्ण। अच्छे-बुरे सभी देशों में होते हैं। मुझमें बता क्या दोष हैं? मैं कुलीन, सदाचारी और दानी हूँ, मेरा विधिवत् राज्य सिंहासन पर अभिषेक हुआ है। मैंने गुरुजनों की श्रद्धा से सेवा की है। दान किये हैं, यज्ञ किये हैं, तू जो मद्रदेश की इतनी निन्दा कर रहा है, अपने अङ्ग देश की बात नहीं कहता। वहाँ के लोग कृतघ्नी और स्वार्थी होते हैं। मतलब पड़ने पर वे माता, पिता, भाई, बन्धु को छोड़ देते हैं। अपने सगे भाई को बीमार छोड़कर चले आते हैं, उसकी सेवा नहीं करते। समय पड़ने पर वे अपने सम्बन्धियों से घृणित व्यवहार करते हैं। उसी देश का रहनेवाला तू है। तू किस मुँह से मुझसे बातें कर सकता है। कोई पांचाल और कुरु जाङ्गल देश का कहता तो ठीक भी था क्योंकि इनके आचार-विचार शुद्ध हैं।

कर्ण ने कहा- मैंने अनेक ब्राह्मण और यात्रियों के मुख से मद्रदेशीय लोगों की निन्दा सुनी है। मद्रदेशीय पुरुष सब नीच होते हैं। बाह्लीक लोगों का कोई कुलगोत्र नहीं। उनके पिता का भी पता नहीं कौन है? शाकल नगर निवासी सब प्याज में पका बकरे का मांस खाते है। ऊँट, गधा, खच्चर, मुर्गा, सुअर आदि का अखाद्य मांस खाते हैं। वे मदिरा के मद में चूर रहते हैं। मद्रदेश पृथ्वी का मल है। वाह्लीक लोग सबसे नीच हैं। सज्जन लोग वाह्लीकों और शाकल नगर निवासियों से कभी भूलकर भी संसर्ग नहीं रखते। तू उसी देश का नीच राजा है। मेरा काम न होता तो मैं तुझे छूता तक भी नहीं।

यह वाद-विवाद बहुत देर तक होता रहा। तब दुर्योधन ने दोनों के हाथ पैर जोड़कर दोनों को इस झगड़े से रोका। तब वीर कर्ण आगे बढ़ा। सामने पांडव सेना व्यूह बनाये सुसज्जित खड़ी थी। शल्य ने घोड़ों को जोरों से हाँक दिया। पांडव सेना के सम्मुख रथ को खड़ा करके शल्य ने कहा- लो कर्ण। सम्हल जाओ। अब तुम्हें घोर युद्ध करना होगा।

कर्ण ने कहा, सम्हला हुआ हूँ, मैं केवल वासुदेव को खोज रहा हूँ।

शल्यके इसप्रकार अपमान करनेपर कर्ण क्रोधित हो बोला, शल्य। गुणवानोंके गुणोंको गुणीजन ही परख सकते हैं, गुणहीनोंको उनका पता नहीं लगता। तुममें तो कोई गुण है नहीं। अर्जुन के पराक्रम को जैसे मैं जानता हूँ वैसा तुम नहीं जानते हो। मेरा यह जय धनुष मनुष्य, घोड़े और हाथियोंका संहार करनेवाला है। मैं रोषमें भरनेपर इससे पर्वतराज मेरुको भी तोड़ सकता हूँ। समस्त पाण्डवोंकी विजय का आधार अर्जुन है। मेरे सिवा और ऐसा कौन है जो कृष्ण और अर्जुनसे संग्राम में मुकाबला कर सके। अर्जुनके पास गाण्डीव धनुष है और कृष्णके पास सुदर्शन चक्र है। किन्तु यह डरपोकोंको डरानेवाली चीजें है मुझे नहीं। तुम तो दुष्टस्वभाववाले मूर्ख और बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंसे अनभिज्ञ हो। इस समय भयसे पीडित हो डरके कारण ही बहुत-सी अनर्गल बातें बना रहे हो। तुम तो पापी देशमें उत्पन्न हुए हो। मैं तुम्हारा आज वध कर डालूँगा। तुम हमारे पक्ष में होकर मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुन से डरा रहे हो। मद्र देश का आदमी बड़ा ही दुष्टचित्त, असत्यभाषी होता है। तथा उस देशके लोग मरते दमतक दुष्टता नहीं छोड़ते। यह असभ्य लोग मदिरापान करते है और ऊठपटांग बोलते हैं। मनमाना अश्लील आचरण करते हैं। भला उनमें धर्म कैसे रह सकता है। वह लोग अपने घमंड और नीच कर्मोंके लिये प्रसिद्ध हैं। इनके साथ मित्रता या बैर कभी भी नहीं करना चाहिए। इनमें स्नेह तो होता ही नहीं। जब किसी मनुष्य को बिच्छू काटता है तो गुणी लोग उसका विष उतारनेके लिये मंत्र पढ़ते हैं। जिस प्रकार मद्रदेशके लोगोंसे

मित्रता नहीं होती उसी प्रकार तुमसे मित्रता नहीं हो सकती। मद्रदेशकी स्त्रियाँ भी बड़ी स्वेच्छाचारिणी होती है। उनके गर्भ से जन्म लेकर तुम धर्मकी बात कैसे कर सकते हो? मैं दुर्योधन का मित्र हूँ। मेरे प्राण और सारी सम्पत्ति उसीके लिये है। मालूम होता कि तुम्हें पाण्डवोंने अपनी ओर मिला लिया है। जिस प्रकार नास्तिक पुरुष किसी धर्मज्ञ व्यक्तिको विचलित नहीं कर सकते उसी प्रकार तुम मुझे संग्राम से विमुख नहीं कर सकते। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो मुझे युद्ध से हटा सके। मुझे तो अपने मित्र दुर्योधन और राजा धृतराष्ट्रके कामकी चिंता है। तुम्हें मारनेसे मेरी निन्दा ही होगी। मैंने दुर्योधन को तुम्हें क्षमा करने का वचन दिया है इसीलिये मैं तुम्हारा वध नहीं कर सकता। यदि तुम मुझे फिर ऐसा कहोगे तो अपनी गदासे तुम्हारा सिर पृथ्वीपर गिरा दूँगा। इसके बाद कर्णने कहाँ चलो आगे रथ बढ़ाओ।

अपने विजय धनुष को बार-बार ऊपर उठाकर आरोह... आक्रमण.. की घोषणा करता हुआ, क्षुब्ध सागर की भाँति गरजता हुआ वह अग्रसर होने लगा। वह आने लगा ज्वालामुखी बनकर। कुरुक्षेत्र को जलाने का सूर्य का कार्य पूरा करने के लिए प्रतिसूर्य बनकर वह आने लगा। उसको संरक्षण देते हुए उसके पुत्र वृषसेन, प्रसेन, चित्रसेन और अश्वत्थामा, शकुनि, दु:शासन, कृपाचार्य, दुर्योधन, कृतवर्मा आदि कौरव-योद्धा भी बड़े आवेश से पाण्डवसेना पर चढ़ते चले आये।

नन्दिघोष को सरंक्षण देते हुए भीम, उत्तमौजा, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव के रथ दौड़ने लगे। हाथियों की चिंघाड़, अश्वों की हिनहिनाहट, रथचक्रों की घर-घर और प्रत्यंचाओं की टंकार की सम्मिश्र ध्वनियाँ टेकरी से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगीं।

३) दु:शासन वध- क्या चाहते हैं केशव आप? अर्जुन के मन में तीव्र जिज्ञासा थी।

कृष्ण बोले, कि तुम आज ही अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य, और कृपाचार्य को मारकर पृथ्वी का निष्कंटक राज्य धर्मराज को दे दो। अर्जुन बोला, ऐसा ही होगा गोविंद। अर्जुन ने कह तो दिया; किंतु कृष्ण को अर्जुन अब भी अन्यमनस्क ही लग रहा था। कृष्ण बोले, मुझे लगता है अर्जुन कि अब भी तुम्हारे मन में कहीं यह है कि दुर्योधन से संधि हो जाए, कर्ण को समझा दिया जाए। क्या यह सत्य नहीं है?

अर्जुन बोला, सत्य है केशव। कौन नहीं चाहता कि यह तर्कहीन क्रूर विनाश बंद हो। अर्जुन ने एक अवसादपूर्ण दृष्टि कृष्ण पर डाली, शायद समझाने से कर्ण समझ जाए।

कृष्ण बोले, तुम कर्ण की आँखों के सम्मुख उसके पुत्र वृषसेन को मार डालो। उसकी समझ में सब कुछ आ जाएगा।

कृष्ण रथ को वहीं ले आए थे, जहाँ पांडव सेनाएँ कर्ण से जूझ रही थीं।

अर्जुन ने देखा धृष्टद्युम्न, धृष्टद्युम्न के पुत्र, शिखंडी, नकुल, सहदेव, शतानीक, सुधर्मा, सात्यकि और द्रौपदी के पाँचों पुत्र, प्राय: असहाय होकर कर्ण के वश में पड़ गए लगते थे।

कृष्ण बोले, अब भी कर्ण को समझाओगे तुम। अब भी यदि तुमने कर्ण को नहीं मारा तो सर्वनाश हो जाएगा अर्जुन।

सावधान अर्जुन। कर्ण ने तुम्हारे वध का व्रत ले रखा है।

अर्जुन ने कहा, जिस दुरात्मा ने मेरे वध का व्रत लिया है, उस पापी को इन बाणों से मारकर रथ से नीचे गिरा दूँगा। अच्छा किया आपने मुझे कर्ण का अवमूल्यांकन न करने की चेतावनी दे दी; किंतु धनुर्वेद में मेरी समानता करनेवाला इस संसार में और कोई नहीं है। पराक्रम में कर्ण मेरे समान नहीं है। अब तक मेरे मन में दया भाव था। मैं धर्मराज के समान ही क्षमा का पक्षधर हूँ, किंतु शत्रु सामने होने पर मुझ जैसा क्रोधी भी कौन है।

सहसा भीम को दु:शासन का रथ दिखाई दे गया। भीम का मन जैसे किसी तप्त तवे पर जा बैठा। सारी युद्धभूमि उसके लिए अदृश्य हो गई। भीम को केवल दु:शासन ही दिखाई पड़ रहा था। कर्ण की दाहकता कहीं नेपथ्य में चली गई, अर्जुन

की रक्षा भी विस्मृत हो गई। वह कर्ण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, दुर्योधन तथा कृपाचार्य के सम्मुख दु:शासन का वध कैसे करेगा- यह सब भीम को तनिक भी स्मरण नहीं रहा। उसके सामने तो बस दु:शासन था। और दु:शासन को देखते ही भीम की आँखों के सम्मुख द्यूतसभा जीवंत हो उठती थी। एकवस्त्रा, रजस्वला द्रौपदी को उसके केशों से पकड़कर घसीटकर लाता हुआ दु:शासन। द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करता हुआ दु:शासन। द्रौपदी के शरीर से राक्षसी क्रीड़ा करता हुआ दु:शासन। द्रौपदी के अंगों को घूर कर रस लेता हुआ दु:शासन। दु:शासन, जिसकी भुजा उखाड़ने और उसके वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी भीम ने। दु:शासन की अनदेखी नहीं कर सकता था भीम। और कोई कुछ कहे न कहे, उसका अपमान मन ही उसे धिक्कारने लगता था। युद्ध आरम्भ हो जाता है।

बहुत सौभाग्य की बात है दु:शासन। कि तू मुझे युद्ध में दिखाई पड़ गया। अब मुझे तेरे प्रासाद में घुसकर भय से पीछे पड़े, पलंग के नीचे छिपे हुए दु:शासन को घसीटकर बाहर नहीं निकालना पड़ेगा। तेरी हत्या अब तेरे वृद्ध माता-पिता की अंधी आँखों के सम्मुख नहीं होगी। निकट आने पर भीम ने कहा, द्यूतसभा में तूने द्रौपदी के केश खींचे थे। उस दिन से मुझ पर तेरा ऋण है। आज उसे ब्याज सहित चुका दूँगा। उसे ग्रहण कर।

दु:शासन का मन क्रूर तो हुआ ही कुछ अश्लील भी हो उठा। चिल्लाकर बोला, मैं अपना किया भूलता नहीं। तुम्हें प्रमाणकोटि में विष दिया था और नागों द्वारा डसे जाने के लिए गंगा में बहा दिया था। तुम लोगों को तुम्हारी माता सहित वारणावत में जला डाला था। तुम लोग बचकर कांपिल्य पहुँच गए तो जाने द्रौपदी ने किस भ्रम में अर्जुन का वरण कर लिया और तुम पाँचों ने उसके साथ ऐसा नीच कर्म किया कि उसे पाँचों की पत्नी बना लिया। क्यों नहीं करते। तुम्हारी माँ ने भी तो एक से अधिक पुरुष किए थे।

भीम और दु:शासन का युद्ध जोरों पर होता है। दु:शासन ने गदा उठायी। भीम को पूर्व स्मृति द्रौपदी के अपमान की याद आती है और उसकी की हुई प्रतिज्ञा। भीम बोला, इतनी दूर खडा बाण क्या चला रहा है कायर पास आकर लड कि तेरा लहू तो मुझ तक आये और मेरा लहू उडे तो तुझ तक जाये। दु:शासन और भीम दोनों रथों से उतरकर पैदल ही रणभूमि में गदा युद्ध करते है। गदायें टकराने लगी। उनमेंसे चिनगारियां निकलने लगी। दु:शासन ने दृष्टि घुमाकर देखा- कौन आ रहा है, उसकी सहायता को? कौन आता। निकट तो अनेक लोग थे। किंतु वहीं अर्जुन भी था, कर्ण उसकी ओर पीठ करने का साहस नहीं कर सकता था। कर्ण चाहता भी तो अर्जुन उसे वैसा करने नहीं देता। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन को साध रखा था। युधामन्यु, उत्तमौजा, सात्यकि, नकुल, सहदेव और पाँचों द्रौपदेय वहीं थे। उन सबको कर्ण ने रोक रखा था किंतु अब अर्जुन आ गया था और कर्ण जैसे उसके चंगुल में फँस गया था। दुर्योधन और कर्ण दु:शासन को देख भर सकते थे, वे न तो उसके लिए रथ ला सकते थे, न सारथी। इस भीम ने उसके सारथी का वध कर उसे संकट में डाल दिया था। यह युद्ध तो उसे स्वयं ही लड़ना था। भीम के शरीर पर जैसे उसके विवेक का नियंत्रण नहीं रह गया। वह अपनी प्राकृतिक स्थिति में पहुँचकर स्वत: ही निर्णय करने लगा।

दु:शासन निर्भय हो बाणोंकी वर्षा करता हुआ भीमपर चढ़ आया। उसे देखते ही भीम भी दौड़े और जिस प्रकार रुरु मृगपर सिंह आक्रमण करता है, वैसे ही वे उसके निकट जा पहुँचे। फिर तो शम्बरासुर और इन्द्रके समान क्रोधमें भरे हुए उन दोनों वीरोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ गया, दोनोंही प्राणोंकी बाजी लगाकर लड़ने लगे।

तब भीमने क्रोधमें भरकर दु:शासन पर एक भयंकर शक्ति चलायी। उसे सहसा अपने ऊपर आती देख दु:शासनने बाणोंसे काट डाला। उसके इस दुष्कर कर्मको देख सभी सैनिक हर्षमें भरकर उसकी प्रशंसा करने लगे। परंतु भीमका

क्रोध और बढ़ गया। वे उसकी ओर रोषभरी दृष्टिसे देख आगबबूला होकर कहने लगे- वीर दु:शासन। आज तूने तो मुझे बहुत घायल किया, किंतु अब तू भी मेरी गदाका आघात सहन कर। यों कहकर उन्होंने दु:शासनका वध करनेके लिये अपनी भयंकर गदा हाथमें ली और फिर कहा- दुरात्मन। आज इस संग्राममें मैं तेरा रक्त पान करूँगा।

भीमके ऐसा कहते ही दु:शासनने उनके ऊपर एक भयंकर शक्ति चलायी, इधरसे भीमने भी अपनी भयानक गदा घुमाकर फेंकी। वह गदा दु:शासनकी शक्तिको टूक-टूक करती हुई उसके मस्तकमें जा लगी। गदाके आघातसे दु:शासनका रथ दस धनुष पीछे हट गया। उसके शरीरपर भी बहुत सख्त चोट पहुँची थी, कवच टूट गया, आभूषण और हार बिखर गये, कपड़े फट गये तथा वह अत्यन्त वेदनासे व्याकुल हो छटपटाने लगा और काँपता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। इतना ही नहीं, उस गदासे दु:शासनके घोड़े मारे गये और उसके रथकी भी धज्जियाँ उड़ गयीं। दु:शासनको इस अवस्थामें देख पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा अत्यन्त प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे।

भीम ने दु:शासन को गिरा दिया। तूने मुझे बाणों से मारा है, ले अब मेरी गदा का प्रहार सहन कर। भीम ने चिल्लाकर कहा, दुरात्मन। आज इस संग्राम में मैं तेरा रक्त पिऊँगा। भीम को घायल होकर गिरते देख, दु:शासन पर्याप्त निर्भय हो चुका था। वह हँसा, पहले तू मेरी इस शक्ति को अपना रक्त पिला भीम।

दु:शासन ने शक्ति छोड़ी किंतु भीम की गदा ने उसे मार्ग में ही नष्ट कर दिया। गदा के आघात से दु:शासन का रथ कुछ पीछे घिसटा और ध्वस्त होकर पृथ्वी पर गिर गया। सारथी और घोड़े भी धराशायी हो गए। वे जीवित थे या नहीं, यह देख पाने की क्षमता, दु:शासन में नहीं थी। वह स्वयं धरती पर गिरा हुआ था। मन भय से काँप रहा था। शरीर वेदना से छटपटा रहा था। उसका कवच टूट गया था। आभूषण और हार छिन्न-भिन्न हो गए थे। वस्त्र फट गए थे। उसने उठने का प्रयत्न किया।

दु:शासन की गदा तोड डाली दोनों में मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ और भीम ने उसे उठाकर पटक दिया। भीम अपने रथ से कूद पड़ा और दु:शासन की ओर इस प्रकार दौड़ा, जेसे कोई आखेटक अपने बाण से बिंधे पक्षी को धरती पर गिरते देख उसकी ओर दौड़ता है। भीम के मन में वे सारे दृश्य साकार हो रहे थे, जिनकी चर्चा स्वयं दु:शासन ने की थी; और उसका क्रोध बढ़ता जा रहा था। भीम को लग रहा था कि दु:शासन के वध मात्र से उसके मन की पीड़ा शांत होनेवाली नहीं थी। उसका प्रतिशोध उतने भर से समाप्त कैसे हो सकता था।

भीम ने दौड़कर दु:शासन को धर दबोचा। उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर दो-तीन बार उठा-उठाकर धरती पर पटका और फिर अपने कोश में से लंबी और धारदार तलवार निकाल ली। उसने तलवार चलाने से पहले अपने पैर से दु:शासन के कंठ पर प्रहार किया। उसने देखा- दु:शासन की आँखों में भय था और वह थर-थर काँप रहा था। किंतु उसकी आँखों में कहीं भी पश्चात्ताप अथवा क्षमायाचना नहीं थी। उसका भय भी कितना हिंस्र था। वह अपनी रक्षा को ही पर्याप्त नहीं मानता, मुक्त हो जाता तो भीम के ही नहीं, जाने और कितने लोगों के प्राण ले लेता। कितनी पांचालियों को केशों से पकड़कर घसीटता हुआ सार्वजनिक स्थानों तक ले आता और उनके चीरहरण का प्रयत्न करता। वह भयभीत होकर क्रूरता से विरक्त नहीं होता, अपने भय का बंदी होकर भी किसी का वध कर सकता था। उसका भय भी बहुत भयंकर था।

तूने कर्ण और दुर्योधन के साथ मिलकर मुझे बैल कहा था। बहुत प्रसन्न था तू मुझे बैल कहकर। बोल, अब भी वैसे ही तालियाँ बजा, कह मुझे बैल। भीम की बर्बरता चाहती थी कि वह दु:शासन को कुछ और उत्तेजित करे, ताकि उसे और पीड़ित किया जा सके, उसे तड़पाया जा सके, नहीं तो मरकर यह दुष्ट बहुत सस्ते में छूट जाएगा।

बता। राजसूय यज्ञ में अवभृत स्नान से पवित्र हुए, महारानी द्रौपदी के केश तूने किस हाथ से खींचे थे। बोल। भीम ने

उसके कंठ को अपने पैर से दबाया।

इस प्रकार दु:शासन को गिराकर भीम हर्षमें भर गये और सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए जोर-जोरसे गर्जना करने लगे। वह भैरव-नाद सुनकर आस-पास खड़े हुए योद्धा मूर्च्छित होकर गिर गये। उस समय भीमको पिछली बातें याद हो आयीं देवी द्रौपदी रजस्वला थी, उसने कोई अपराध भी नहीं किया था, तो भी उसके केश खींचे गये और भरी सभामें वस्त्र उतारा गया। इसके साथ ही कौरवोंद्वारा दिये हुए और भी बहुत-से दु:खोंका स्मरण करके भीम क्रोधसे जल उठे तथा वहाँ खड़े हुए कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मासे कहने लगे- योद्धाओं। मैं पापी दु:शासनको अभी मारे डालता हूँ, तुम सब लोग मिलकर उसे बचा सको तो बचाओ।

यों कहकर भीम रथसे कूद पड़े और दु:शासनको मार डालनेकी इच्छासे दौड़ते हुए उसके पास जा पहुँचे। फिर सिंह जैसे बहुत बड़े हाथीको दबोच लेता है, उसी प्रकार उन्होंने कर्ण और दुर्योधनके सामने ही दु:शासनको धर दबाया। इसके बाद उसकी ओर आँखें गड़ाकर देखते हुए भीमने तलवार उठायी और एक पैरसे उसका गला दबा दिया। उस समय दु:शासन थर-थर काँप रहा था। अब उसकी ओर देख भीम बोले- दु:शासन। याद है न वह दिन, जब कि तूने कर्ण और दुर्योधनके साथ बड़े हर्षमें भरकर मुझे बैल कहा था। दुरात्मन्। राजसूय-यज्ञमें अवभृथस्नानसे पवित्र हुए महारानी द्रौपदीके केशोंको तूने किस हाथसे खींचा था? बता, आज भीम तुझसे इसका उत्तर चाहता है।

भीमका यह भयंकर वचन सुनकर दु:शासनने उनकी ओर देखा। उस समय उसकी त्यौरी बदल गयी, वह क्रोधसे जल उठा और बड़े आवेशमें आकर बोला- यह है वह हाथ, जो हाथीके शुण्ड-दण्डके समान बलिष्ठ है, जिसने सहस्त्रों गौओंका दान तथा कितने ही क्षत्रिय-वीरोंका संहार किया है। भीम। उस समय जब कि प्रधान-प्रधान कौरव, अन्यान्य सभासद् तथा तुम लोग भी बैठे-बैठे देख रहे थे, मैंने इसी दाहिने हाथसे द्रौपदीके केश खींचे थे।

दु:शासन के तेवर बदल गए, दमित रोष को मुस्कान में बदलकर बोला, यह देख, हाथी के सूंड के समान बलिष्ठ मेरी भुजा। इससे ही सहस्त्रों गोदान किए हैं मैंने। तुझ जैसे अनेक उद्धत क्षत्रियों के प्राण लिए हैं; और इसी से अप्सरा जैसी रमणियों और महारानियों के उरोजों का मर्दन किया है। भीम। इसी से मैंने तुम लोगों के सामने द्रौपदी के केश खींचे थे।

भीम ने उसकी उठी हुई बाँह थाम ली। वह एक झटके से उसे उखाड़ सकता था, किंतु वह तो केवल भीम और दु:शासन के मध्य की बात होती। उन्होंने तो सार्वजनिक अपमान किया था पांडवों का। दु:शासन का भी सार्वजनिक अपमान होना चाहिए। भीम का स्वर ऊँचा उठ गया, सुनो नीच दु:शासन के मित्रों। मैं इसकी यह भुजा उखाड़ रहा हूँ। अब यह अपने प्राण भी त्यागेगा। तुममें से जिसको इससे प्रेम हो और जिसमें साहस और सामर्थ्य हो, आकर इसकी रक्षा कर ले।

भीम ने कर्ण, दुर्योधन, कृतवर्मा, अश्वत्थामा और कृपाचार्य की ओर देखा, आज मैं पापी दु:शासन के प्राण लेने जा रहा हूँ। तुममें से जिसमें भी साहस और सामर्थ्य हो, वह आए और इसे बचा ले। उसकी भुजा खींच कर उखाड डाली। छाती पर घूंसों का प्रहार किया। दु:शासन मुख से रक्त वमन करने लगा।

भीम ने दु:शासन की भुजा उखाड़ ली। सबने देखा था कि भीम ने जीवित दु:शासन की भुजा काटी नहीं थी। अर्जुन ने भूरिश्रवा की भुजा काट दी थी, किंतु भीम ने तो दु:शासन की भुजा उखाड़ ली थी। वह उसी भुजा से दु:शासन को पीट रहा था, जैसे वह कोई साधारण दंड हो। भीम का मुखमंडल अत्यंत भयंकर हो उठा था। उसकी आँखों में पिशाच का सा आनन्द था। क्रोध में कोई इस प्रकार सुखी हो सकता है, यह तो दुर्योधन ने भी शायद पहली बार ही देखा था। दु:शासन की उस उखड़ी हुई भुजा में से रक्त के छींटे उड़ रहे थे, जो भीम, दु:शासन और धरती-तीनों पर गिर रहे थे।

भीम ने भूमि पर पड़े हुए दु:शासन के वक्ष को अपने हाथों से फाड़ना चाहा। दु:शासन ने उठने का प्रयत्न किया, किंतु भीम ने उसे फिर से पटक दिया, बहुत नाच रहे थे तुम कि हमारे देखते-देखते तुम द्रौपदी का अपमान कर रहे थे। अरे, हम तो धर्म के बंधन से बँधे थे, किंतु तुम्हारे सारे भाई, मित्र, संबंधी हमारे बल से बँधे हैं। मैं उन सबके सामने ललकार कर तुम्हारे वक्ष का रुधिर पियूँगा। जिसमें साहस हो, मुझे रोक ले और देख ले कि पांडव थोथे तिल हैं, या तुम लोग पापी और नपुंसक हो। भीम ने अपनी तलवार से दु:शासन का मस्तक काट लिया। उसमें से गर्म-गर्म रुधिर की धारा फूटी और भीम ने अपनी अंजलि में भरकर उस रक्त को अपने अधरों से लगा लिया।

मैंने अपनी माता का दूध पिया है, मधु और घी पिया है, दिव्य जल और अलौकिक रस पिए हैं, किंतु इन सबसे स्वादिष्ट है, मेरे इस शत्रु का रक्त। नराधम दु:शासन। देख मैं तेरे कंठ का रुधिर पी रहा हूँ। अब इस समय हर्ष में भर कर मुझे बैल बैल पुकार। भीम ने मुख उठाकर सेनाओं की ओर देखा। उसके हाथ और उसका मुख दु:शासन के रक्त से लाल थे। वह जिस ओर बढ़ा, उस ओर के सैनिक भाग खड़े हुए। कुछ भूमि पर गिर गए और अनेक हाथों से उनके शस्त्र छूट गए। भीम बोला, यही वो हाथ है ना दुष्ट जिससे तूने पांचाली के केश पकडे थे। अब मैं तेरी छाती का लहू पीऊंगा दु:शासन।

दु:शासनकी यह गर्वभरी बात सुनकर भीम उसकी छातीपर चढ़ बैठै और अपने दोनों हाथोंसे उसकी दाहिनी बाँह पकड़कर बड़े जोरसे दहाड़ने लगे। फिर सम्पूर्ण योद्धाओंको सुनाकर बोले- मैं दु:शासनकी बाँह उखाड़े लेता हूँ, अब यह प्राण त्यागना ही चाहता है। जिसमें ताकत हो वह आकर इसको मेरे हाथसे बचा ले। इस प्रकार समस्त वीरोंपर आक्षेप करके महाबली भीमने क्रोधमें भरकर उसकी बाँह उखाड़ ली। दु:शासनकी वह भुजा वज्रके समान कठोर थी, भीम उसीसे सब वीरोंके सामने उसको पीटने लगे। इसके बाद दु:शासनकी छाती फाड़कर वे उसका गरम-गरम रक्त पीने ले। तदनन्तर, उन्होंने तलवार उठायी और उसका मस्तक धड़से अलग कर दिया। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर दिखानेके लिये भीमने दु:शासनका रक्त पान किया। वे उसका स्वाद लेकर कहने लगे- मैंने माताके दूधका, शहद और घीका तथा दिव्य रसका भी आस्वादन किया है, दूध और दहीसे बिलोये हुए ताजे माखनका भी स्वाद लिया है। इनके अलावे भी संसारमें बहुत-से पान करने योग्य पदार्थ हैं, जिनमें अमृतके समान मधुर स्वाद हैं; परंतु मेरे शत्रुके इस रक्तका स्वाद तो उन सबसे विलक्षण है, इसमें सबसे अधिक रस है।

भानरहित हुए भीमने दु:शासन की ही गदा उठाकर एक ही प्रबल प्रहार से छटपटाते दु:शासन के उन्मत्त वक्ष को छिन्न-भिन्न कर दिया।

गगनभेदी आर्त चीत्कार करते हुए दु:शासन के प्राणपखेरू उड़ गये। गदा फेंककर, घुटने के बल भीम उसके शरीर के पास बैठ गया। दूर खड़े दुर्योधन, शकुनि, अश्वत्थामा, कर्ण आदि की ओर देखकर वह ऊँचे स्वर में चिल्लाया- किसी में साहस हो तो आगे आए और अपने आखेट का रक्त पीनेवाले इस वनराज को रोके।

दु:शासन के वक्ष से बहते हुए रक्त में मुँह डालकर वह उसे इस प्रकार पीने लगा मानो मैरेयक पी रहा हो। उसे देखकर सात्यकि सहित सभी योद्धाओं के शरीर के रोएँ खड़े हो गये।

कईयों ने आँखें बन्द कर लीं। कई मूर्च्छित हो गये। केवल कृष्ण ने नन्दिघोष से उतरकर भीम को नियन्त्रित किया। अब कहीं सात्यकि कि समझ में आ रहा था कि कृष्णने उसे पाण्डवों का सेनापति पद क्यों नहीं दिया था। भीम का रक्तसना मुख अपने नीले उत्तरीय से पोंछकर कृष्णने उसे द्रौपदी के शिबिर की ओर भेज दिया- दु:शासन के रक्त से उनके खुले केशों को धोने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने हेतु।

इधर, भीम दु:शासनके रक्तको अपनी अञ्जलिमें लेकर विकट गर्जना करते हुए सब वीरोंको सुनाकर बोले- नीच दु:शासन। मैं तेरे गलेका खून पी रहा हूँ। अब फिर आनन्दमें भरा हुआ तू मुझे बैल-बैल कहकर पुकार तो सही। उस दिन कौरव-सभामें जो लोग मुझे बैल-बैल कहकर खुशीके मारे नाच उठते थे, उन सबको आज बारंबार बैल बनाता हुआ मैं स्वयं नाचता हूँ। मुझे विष खिलाकर नदीमें डाल दिया गया, जहाँ काले साँपोंने डँसा। फिर हमलोगोंको लाक्षागृहमें जलानेका षड्यन्त्र किया और जूएमें सारा राज्य छीनकर हमें जंगलमें रहनेको मजबूर किया गया। सबसे घोर दु:ख तो इस बातका है कि भरी सभामें द्रौपदीका केश खींचा गया। युद्धमें हमें दु:खदायक बाणोंकी मार सहनी पड़ती है और घरमें भी कभी सुख नहीं मिला। राजा विराटके भवनमें जो क्लेश भोगना पड़ा- सो तो अलग है। शकुनि, दुर्योधन और कर्णकी सलाहसे हमें जो-जो कष्ट सहने पड़े, उन सबका मूल कारण तू ही था।

यों कहकर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए भीम श्रीकृष्ण और अर्जुनके पास गये। उस समय उनका शरीर खूनसे लथपथ हो रहा था। वे मुसकराते हुए बोले- वीरो। मैंने युद्धमें दु:शासनके विषयमें जो प्रतिज्ञा की थी, उसे आज पूर्ण कर दिया। अब इस रणयज्ञमें दुर्योधनरूपी यज्ञपशुका वध करके दूसरी आहुति डालूँगा और इन कौरवोंकी आँखोंके सामने ही जब उस दुरात्माका सिर पैरोंसे ठुकराकर कुचल डालूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी। ऐसा कहकर वे गरजने लगे।

धृतराष्ट्र बोला, तुम चुप क्यों हो गये संजय। भीम ने ऐसा क्या किया जो तुम... बोलो संजय। अपने पुत्रों के वीरगति को प्राप्त होने पर भी मैं तुम्हारा नरेश हूं संजय मेरे आदेश का पालन करो। संजय बोला, राजकुमार दु:शासन वीरगति को प्राप्त हो गये महाराज। धृतराष्ट्र बोले, नहीं। तुम कुछ छिपा रहे हो संजय। बताओ भीम ने क्या किया? संजय बोला, उन्होंने दु:शासन की छाती का लहू पीया महाराज फिर अपने मुखमंडल पर दु:शासन का लहू मला और फिर दु:शासन के शव के चारों ओर वो ही नृत्य किया जो हस्तिनापुर के राजकुमारों ने अभिमन्यु के शव के चारों ओर किया था। धृतराष्ट्र बोले, चुप ना रहो संजय। जो कुछ हो रहा है बताओ। फिर उस कुन्ती पुत्र ने क्या किया? संजय बोला, फिर उन्होंने अपनी अंजुलि में दु:शासन का लहू लिया और दौडकर शिबिर की ओर गये जहां द्रौपदी बैठी हुई थी।

भीम बोला, पांचाली लो मैं तुम्हारे इन अपमानित केशों के लिये दु:शासन की छाती का लहू लाया हूँ। पांचाली ने उस लहू को अपने केशों में लगाया। और उस रक्त से स्नान कर केशों को धो डाला।

सोचा था, दु:शासन की मृत्यु ही द्रौपदी के दु:ख को ऊना कर सकेगी। मरा है दु:शासन। कभी दु:शासन का रक्त स्नान करने को अपमान में तिलमिला कर कितनी व्याकुल हुई थी। भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दी। गदा की चोट से दु:शासन का उरूभंग किया। दुष्ट दु:शासन के अंजुरी भर गर्म खून से द्रौपदी के मुक्त केशों को पखारा है। अपमान में दहकते हृदय की ज्वाला प्रशमित हुई है, प्रशांत नहीं हो सकी।

द्रौपदी के केशों की नस-नस में वह लाल, ताजा रक्त छू गया। कंधे और चेहरे पर आदमी का रक्त बह आया। ताजा रक्त की आमिषी गंध से रोम-रोम खड़ा हो गया। एक बीभत्स उल्लास में मन की सारी कोमलता भस्म होती जान पड़ी। पर हृदय की जलन कम होने की जगह लपलपाती शिखा और तेज होती गई।

कभी सोचा था- दु:शासन का रक्त हृदय को शांत कर देगा। आज लगता है- रक्तपान पशु को ही तृप्त करता है। जिसमें जरा सी भी मानवीयता की भावना होगी, वह कभी मानव-रक्त की होली से शांति नहीं पा सकता। कितनी ही प्रतिहिंसा में डूबी होऊं, पर वह नारी थी- मानव-रक्त से शांति कैसे पा सकती थी। वरन् एक विवशता, वितृष्णा, जीवन के प्रति तुच्छता, अवदमित पश्चात्ताप और दु:ख में निढाल हो गई। भीम की वह विराट काया और दु:शासन का रक्त देख द्रौपदी

सिहर उठी। आदमी में छुपे पशुत्व को देख कांप उठी। ऐसा ही तो लाल रंग रहा होगा अभिमन्यु का रक्त। धरती कभी रक्तपात कर तुष्ट नहीं होती होगी। वह तो मां है, जीवनदात्री है, वीरप्रसू है।

वीरों के रक्त से धरती बार-बार सनती है। आदमी की संकीर्ण स्वार्थपरता के कारण। आदमी का रक्त झर जाता है उसके वक्ष पर। पर उसका दु:ख और वेदना यह अंधा आदमी कभी समझ पाता है? रक्तपात, भयंकरता कभी किसी को शांति नहीं दे पायेंगे। किसी की जलन शांत नहीं कर पायेंगे- आज दु:शासन का रक्तस्नान यही बता रहा है द्रौपदी को। भीम ने एक और अंजुरी रक्त लाकर द्रौपदी के केशों पर डाला- और द्रौपदी चीख उठी, बस, बस, मुझे जीने दो। मुझे किसी दूसरी पृथ्वी पर ले चलो। हे नाथ। मैं नहीं सह सकूंगी। दु:शासन के रक्त में मैं अभिमन्यु के रक्त की गंध पा रही हूँ- लगता है सारे संसार के आदमियों का रक्त एक ही जैसा आमिषी गंधवाला है- मुझे राक्षसी न बनाओ- द्रौपदी मूर्च्छित हो गई थी।

सखा कृष्ण द्रौपदी से कह रहे थे- सखी। धीरज रखो। दु:शासन का पाप-मोचन, अन्याय का नाश महाकाल का धर्म है। दु:शासन जैसे दुष्टों की मृत्यु से पृथ्वी पापशून्य होगी। पृथ्वी पर पुन: धर्म की स्थापना होगी। यह मेरे और तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है। महाकाल मेरे ही निर्देश पर दुष्ट संहार करता जा रहा है। तुम जैसी विदुषी रमणी का यों अधीर हो जाना शोभा नहीं देता।

धृतराष्ट्र बोले, मैं भीम को कभी क्षमा नही करूंगा संजय। यह तो युद्ध नहीं है। बर्बरता है। आज मेरा दुर्योधन अकेला पड गया संजय। संजय बोला, युद्धभूमि में तो किसी न किसी को अकेला जाना ही पडता है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, किन्तु मेरे दुर्योधन से यह शव वहन नहीं हो पायेगा। देखो तो बताओ उसके पास इस समय कौन है?

दुर्योधन दु:शासन के शव के समीप आकर विलाप कर रहा है। कर्ण बोला, यह कैसे हुआ मित्र दुर्योधन। दुर्योधन बोला, ये मेरे दु:शासन का हाथ है मित्र जिसे भीम ने खडग से नहीं काटा बल्कि धरती पर उखाड कर फेंक दिया। अश्वत्थामा बोला, हम सभी ने वो दृश्य देखा था युवराज फिर भी मैं कहता हूं पांडवों से सन्धि कर लो। दुर्योधन बोला, सन्धि कर लू किससे? उन कायर पांडवों से जिन्होंने आज तक हमारे सारे महायोद्धाओं को छल कपट से मारा, उनसे सन्धि करने की कह रहे हो। हे अश्वत्थामा तुम्हे तो मृत्यु छू नहीं सकती। तुम तो अमर हो किन्तु कायरों जैसी बातें क्यों कर रहे हो? यदि उनसे सन्धि करना चाहते हो जिन्होंने हमारे पितामह भीष्म को कपट से मारा। उनसे सन्धि करना चाहते हो जिन्होने तुम्हारे पिता आचार्य द्रोण को कपट से मारा। क्या तुमने उन्हे क्षमा कर दिया? क्या तुम अपने पिताश्री का वध भूल गये? अश्वत्थामा बोला, ना तो मैं उन्हें कभी क्षमा कर सकता हूँ और न ही कभी अपने पिताश्री का वध भूल सकता हूँ किन्तु यह मेरी व्यक्तिगत समस्या है। इस समय मैं सन्धि की बातें इसलिये कर रहा हूँ कि सन्धि राष्ट्र के हित में है। दुर्योधन बोला, कैसा राष्ट्र अश्वत्थामा? वो सोने चांदी का राजमुकुट राष्ट्र नहीं है, वो काठ का सिंहासन भी राष्ट्र नहीं है। राष्ट्र मैं हू मैं। राष्ट्र मेरा प्रिय दु:शासन था जिसका शव मेरे सामने पडा है। राष्ट्र मेरा प्रिय वो दु:शासन था जिसकी छाती का लहू भीम ने पीया। अब ये सन्धि की बात ना करना। सेनापति कर्ण मुझे पांडवों के शव चाहिये। आक्रमण करो। कर्ण बोला, चलो मद्र नरेश शल्य बोला, मैंने तो पहिले ही कहा था अंगराज कि अर्जुन और भीम से युद्ध करना कोई खेल नहीं है। अब सिकुडो मत। यदि सैनिकों ने उन्हें देख लिया कि उनके प्रधान सेनापति ही संकोच में है तब तो वे कर चुके युद्ध। तुम हस्तिनापुर सिंहासन के अन्तिम आशा बिन्दु हो अंगराज इसलिये अपने भय को छिपाओ। कर्ण बोला, आप रथ चलाइये मद्र नरेश। युद्ध की कला मैं भी जानता हूं। जब दो योद्धाओं में युद्ध होता है तो एक विजय प्राप्त करता है और दूसरा वीरगति को प्राप्त होता है। आप मेरे रथ को अर्जुन के रथ की ओर ले चलिये।

कर्ण का भाई चित्रसेन चिल्लाया, यह मनुष्य नहीं राक्षस है।

शल्य रथ आगे बढ़ाने में उतना तत्पर नहीं दीखा। पलटकर बोला, अंगराज। सुना तुमने कि मरने से पहले दु:शासन ने कौरवों की महारानी कुंती के विषय में क्या कहा? तुम तो मद्र देश की स्त्रियों के चरित्र को कलंकित कर रहे थे, कौरवों की कुलवधू के विषय में स्वयं कौरव महारथी ही क्या कह रहे हैं।

जब तुम मद्र देश की सारी स्त्रियों को वेश्याओं से भी हीनतर बता रहे थे, वह तुम्हारी भी तो नीचता ही थी। शल्य की वाणी में उसके मन का सारा विष सिमट आया था।

कर्ण क्रुद्ध स्वर में बोला, पहले युद्ध का निर्णय करना है या मेरी नीचता और महानता का। रथ आगे बढ़ाओ। मुझे लगता है कि तुमको अपने सारथी के रूप में माँग कर मैंने अपने लिए सुविधा कम और संकट अधिक पाया है।

भीम अभी घूमा भी नहीं था कि धृतराष्ट्र के दस पुत्र- निषंगी, कवची, पाशी, दंडधर, धनुर्ग्रह, अलोलुप, शल, संध, वातवेग और सुवर्चा, उससे दु:शासन का प्रतिशोध लेने के लिए आ खड़े हुए।

संजय कहते हैं- महाराज। दु:शासनके मारे जानेपर आपके पुत्र निषङ्गी, कवची, पाशी, दण्डधार, धनुधर, अलोलुप, सह षण्ढ, वातवेग ओर सुवर्चा ये दस महारथी एक साथ भीमपर टूट पड़े और उन्हें बाणोंकी वृष्टिसे आच्छादित करने लगे। इनको अपने भाईकी मृत्युके कारण बड़ा दु:ख हुआ था, इसलिये इन्होंने बाणोंसे मारकर भीमकी प्रगति रोक दी। इन महारथियोंको चारों ओरसे बाण मारते देख भीम क्रोधसे जल उठे, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे कोपमें भरे हुए कालके समान जान पड़ने लगे। उन्होंने भल्ल नामक बाण मारकर आपके पुत्रोंको यमराजके घर भेज दिया।

शल्य ने कहा, तब उन्होंने कर्णसे यह समयोचित बात कही- राधानंदन। भय न करो। तुम्हारे-जैसे वीरको यह शोभा नहीं देता। ये राजालोग भीमके भयसे घबराकर भागे जा रहे हैं, दुर्योधन भी भाईकी मृत्युसे दुखी होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है। भीम जब दु:शासनका रक्त पी रहे थे, तभीसे कृपाचार्य आदि वीर तथा मरनेसे बचे हुए कौरव दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं। सभी शोकसे व्याकुल हैं, सबकी चेतना लुप्त-सी हो रही है। ऐसी अवस्थामें तुम पुरुषार्थका भरोसा रक्खो और क्षत्रियधर्मको सामने रखकर अर्जुनका मुकाबला करो। दुर्योधनने सारा भार तुम्हारे ही ऊपर रक्खा है। तुम अपने बल और शक्तिके अनुसार उसका वहन करो। यदि विजय हुई तो बहुत बड़ी कीर्ति फैलेगी और पराजय होनेपर अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है।

शल्यकी बात सुनकर कर्णने अपने हृदयमें युद्धके लिये आवश्यक भाव (उत्साह-अमर्ष आदिको) जगाया। इधर, महान् वीर नकुलने वृषसेनपर चढ़ाई की और रोषमें भरकर अपने शत्रुको बाणोंसे पीडित करना आरम्भ किया। उसने वृषसेनके धनुषको काट डाला। तब कर्णके पुत्रने दूसरा धनुष लेकर नकुलको घायल कर दिया।

भीम ने ढेर सारे भल्ल अपने हाथ में लिए और धृतराष्ट्र पुत्रों के बाणों की बौछार की चिंता किए बिना उसने एक-एक कर उन दसों के मस्तक काट कर धरती पर लुढ़का दिए।

४) युधिष्ठिर को प्राणदान और युधिष्ठिर का कर्ण द्वारा अपमान

शल्य ने कहा, शोक न करो कर्ण। शोक करने का समय ही नहीं है। भीम के भय से कौरव सेना भाग रही है। दुर्योधन किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा है। भीम दु:शासन का रक्त पी रहा था तो कृपाचार्य आदि उसे रोकने के स्थान पर जाकर दुर्योधन को घेरकर खड़े हो गए कि कहीं भीम उसका रक्त भी न पी ले। पर वे भूल गए कि भीम की प्रतिज्ञा दुर्योधन का रक्त पीने की

नहीं, उसकी जंघा तोड़ने की है।

कर्ण ने झल्लाकर शल्य की ओर देखा, तुम चुप नहीं रह सकते शल्य? तुम यह नहीं देखते कि यहाँ कौरवों और पांडवों में भयंकर, निर्णयकारी युद्ध चल रहा है। तुम समझते हो कि यह तुम्हारा और मेरा द्वंद्व युद्ध है।

शल्य ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और बोला, तुम शायद इतनी हत्याएँ देखकर घबरा गए हो। मन ठिकाने नहीं है तुम्हारा। मैं तुमसे द्वंद्व युद्ध नहीं कर रहा हूँ, तुमको युद्ध के लिए प्रेरित कर रहा था। तुम ऐसे सिर पकड़कर बैठे रहोगे तो युद्ध कैसे करोगे; और उधर अर्जुन आदि योद्धा अपना लक्ष्य सिद्ध कर चुके हैं; और अब तुम्हारी ही ओर आ रहे हैं।

कर्ण के स्वर में स्पष्ट खीज थी, अर्जुन ने कौन-सा लक्ष्य सिद्ध कर लिया है? लक्ष्य भीम ने सिद्ध किया है अपना।

शल्य बोला, यही तो कह रहा हूँ कि दु:शासन के वध से घबरा गए हो। सोच रहे हो कि दु:शासन को द्रौपदी का अपमान करने के लिए तुमने ही उकसाया था। तुमने कहा था कि वह वेश्या है, उसे निर्वस्त्र कर देने में भी कोई अनौचित्य नहीं है। अब भीम बता रहा है कि उसमें अनौचित्य है। तुम यह तो नहीं सोच रहे कि कहीं भीम तुम्हारा भी वक्ष चीर कर रक्तपान तो नहीं करेगा। कर्ण ने उस पर अपने नेत्रों से अग्नि बरसाई और बोला, शल्य।

शल्य ने कहा, नहीं। वह तुम्हारा रक्त नहीं पिएगा। तुम्हारा मस्तक तो अर्जुन काटेगा। मैं तो इतना भर कह रहा था कि अर्जुन आदि का लक्ष्य था, भीम को दु:शासन के रक्तपान करने का अवसर देना। उतनी देर तक पांडव योद्धा कौरवों के अन्य सारे योद्धाओं को छेके खड़े रहे। कोई नहीं पहुँच पाया दु:शासन की सहायता को। भीम ललकारता रहा और तुम भी नहीं पहुँच पाए। चित्रसेन को भी नहीं बचा पाए। अब अर्जुन के लिए इधर-उधर किसी को रोकना आवश्यक नहीं है। वह तुम्हारी ही ओर आ रहा है। युद्ध का मन हो तो उसकी ओर चलें नहीं तो भाग चलें। मैंने यह नहीं कहा। मैं तो कह रहा हूँ कि अब अपने पुरुषार्थ का भरोसा कर, क्षत्रिय का सा आचरण करते हुए, अर्जुन पर आक्रमण करो। तुमको इस प्रकार किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा देखकर तुम्हारा पुत्र वृषसेन भीम पर आक्रमण कर रहा है। वह तुम्हें मोहग्रस्त न मानता तो व्यर्थ ही क्यों महाकाल के उस दूत से टकराने जाता।

कर्ण ने दृष्टि उधर फेरी। वह अभी चित्रसेन के वध को ही सहन कर पा रहा था, यदि वृषसेन को भी भीम ने उसी मार्ग पर भेज दिया तो कर्ण के मन की क्या स्थिति होगी।

अर्जुन ने दृष्टि उठाकर वृषसेन की ओर देखा, वह इस समय बहुत उग्र हो रहा था। उसने बाणों से शतानीक को भी घायल कर दिया था। यह भी कदाचित् नकुल को अधिक सताने के लिए था। वह वहीं तक नहीं रुका, उसने पुन: भीम और नकुल को बाणों का लक्ष्य बनाया और अर्जुन तथा कृष्ण को भी बाण मारे।

शल्य कर्ण के रथ को अर्जुन के पास लाता है। कर्ण और अर्जुन के बीच घमासान युद्ध हो रहा है। परस्पर बाणों की वर्षा हो रही है। कर्ण ने अर्जुन पर बाणों का प्रहार किया। युद्ध बन्द होने का शंख फूंक दिया। कर्ण बोला, आज तो तुम्हे सूर्यनारायण ने बचा लिया कुन्ती पुत्र अर्जुन। चलिये मद्र नरेश शिबिर की ओर ले चलिये।

गान्धारी कुन्ती के पास आती है। कुन्ती बोली, आपने मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया। गान्धारी बोली, यहां पर आकर बतानेवाली बात थी तो तुम्हे कैसे बुला लेती। कुन्ती बोली, बैठिये दीदी, आज आप किसका शोक प्रकट करने आई है। गान्धारी बोली, आज केवल मेरे प्रिय दु:शासन के शोक का दिन था। अब तो मेरी आंखों में आंसू भी नहीं आते कुन्ती। आंखें कहती है हे गान्धारी हम कहां तक रोये तेरी ओर से। आज मुझे वो दिन याद आ रहा है जब तातश्री आर्य पुत्र के लिये मेरा हाथ मांगने आये थे। पिताश्री सुबल और भ्राता शकुनि ने तो उन्हे ना कह दिया था किन्तु मैंने सोचा था कि

गंगापुत्र जैसे आदरणीय महापुरुष यदि कुछ मांग रहे हो तो उन्हे ना नहीं करना चाहिये तो मैंने उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया था और उसके उपरान्त आशीर्वाद मांगने के लिये उनके चरण स्पर्श किये। तो उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद दिया, उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा शतपुत्री भव और आज शतपुत्री भव आशीर्वाद से सज्जित यह गान्धारी केवल एक पुत्र की मां रह गई है। और मैं तो यह भी नहीं जानती की मैं एक पुत्र की मां कितने दिनों तक रह पाऊंगी? तातश्री ने न जाने कितने बाण खाये हो। उसकी गिनती तो मैं नहीं जानती किन्तु मैंने कुल कितने बाण खाये है इसकी गिनती मैं जानती हूँ। मैं अपने पुत्रों की बात करने तुमसे भागी भागी यहां नहीं आई हूं। दिनों पश्चात एक शुभ समाचार मिला तो अपने शिबिर में बैठी न रह सकी। कुन्ती बोली, क्या इस रणभूमि में कोई शुभ समाचार के लिये कोई स्थान रिक्त है दीदी? गान्धारी बोली, शुभ समाचार अपने लिये स्थान बना ही लेता है कुन्ती। आज सूर्यदेव ने बडी कृपा की। कुन्ती बोली, सूर्यदेव ने। तो क्या मेरा अर्जुन बच गया। गान्धारी बोली, हां आज... कुन्ती बोली, तो क्या आप इसे शुभ समाचार कह रही है। गान्धारी बोली, तो फिर और क्या कहूं? यदि यह सूर्य न ढक जाता तो मेरा प्रिय अर्जुन वीरगति को प्राप्त हो गया होता। मैं तो सूर्यदेव की ऋणी हो गई कुन्ती। कुन्ती बोली, किन्तु वो तो कल फिर उदय होंगे। युद्ध तो कल फिर भी होगा। गान्धारी बोली, तो हो जाने दो युद्ध देख लेना यह राधेय कल का सूर्यास्त नहीं देख पायेगा। कुन्ती बोली, उसे श्राप न दीजिये दीदी। उसके तो आगे पीछे यों ही दो-दो श्राप चलते हैं। गान्धारी बोली, मैं उसे तो श्राप नहीं दे रही हूँ कुन्ती। मैं तो अपने प्रिय पुत्र अर्जुन को आशीर्वाद दे रही हूं।

अर्जुन चिंतित हो अपने शिबिर में अपने कक्ष में बैठा है। कृष्ण वहां पर आता है। कृष्ण बोले, कोई समस्या पार्थ। अर्जुन उठकर खडा हुआ और बोला मैं अंगराज कर्ण के उपकार की छाया में नहीं जी सकता केशव। कृष्ण बोले, उपकार। कैसा उपकार। अर्जुन बोला, वो मेरा वध कर सकता था लेकिन उसने मेरा वध नहीं किया। जिसका सारा जीवन इस युद्ध की प्रतीक्षा में बीत गया हो उसे अपनी विजय के अन्तिम क्षण में अपना बाण रख दिया। यह उपकार नहीं तो क्या है केशव? कृष्ण बोले, तुम जैसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर को यह कहना शोभा नहीं देता पार्थ। अर्जुन बोला, शोभा नहीं देता। ये क्या कह रहे केशव? कृष्ण बोले, युद्ध की उत्तेजना में तुम यह नहीं देख पाये पार्थ कि कर्ण का वो बाण सूर्य के ऊपर बादल आने के पहिले अपने लक्ष्य अर्थात तुम्हारी छाती तक पहुंच ही नहीं सकता था। उसने अपना बाण रोक कर एक सन्देश भेजा था। अर्जुन बोला, सन्देश भेजा था, कैसा सन्देश भेजा था? कृष्ण बोले, उसने यह सन्देश भेजा था पार्थ कि अब तक युद्ध में जो कुछ हुआ उसके लिये वो उत्तरदायी नहीं है किन्तु अब वो प्रधान सेनापति है और जब तक वो सेनापति रहेगा तब तक उसकी सेना नियमों का उल्लंघन नहीं करेगी, जो नियम गंगापुत्र भीष्म ने बनाये थे। अर्जुन बोला, किन्तु उसने यह सन्देश क्यों भेजा केशव? कृष्ण बोले, यह प्रश्न तुम मुझसे क्यों कर रहे हो पार्थ? अर्जुन बोला, क्या वो यह कहना चाहता है कि हम कायर हैं। कृष्ण बोले, पार्थ तुम्हे तो कोई नेत्र हीन भी कायर नहीं कह सकता। इन हीन विचारों के दल-दल से बाहर निकलो पार्थ और इधर-उधर देखना भी बन्द करो। क्या तुम वो ही कुन्ती पुत्र अर्जुन हो जिसने गुरुकुल में द्रोण के प्रश्न के उत्तर में यह कहा था कि तुम्हे तो उस पंछी की एक आंख के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा है। तुम्हारी उन आंखों को क्या हो गया है सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर। अपने आपको व्यर्थ प्रश्नों के मरुस्थल में न भटकने दो और अपनी आंखों को लक्ष्य पर जमाये रखो और यह समझ लो तुम्हारे लक्ष्य के अतिरिक्त पृथ्वी और आकाश के बीच कुछ और है ही नहीं। कल जब अंगराज कर्ण से सामना हो पार्थ तो अपने ध्यान को आज की ओर मत जाने देना क्योंकि आज तो बीत चुका है और अंगराज तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य है।

कर्ण के शिबिर में कर्ण अपने घावों का उपचार कर रहा है। वहां दुर्योधन और शकुनि आते हैं। दुर्योधन बोला, आज विजय तुम्हारे हाथ में थी मित्र तुमने उसे निकल जाने दिया। कर्ण बोला, चिन्ता मत करो मित्र। यदि आज विजय मेरे हाथ

आ गई थी तो कल विजय फिर मेरे हाथ आ जायेगी। शकुनि बोला, तो आज तुमने अपने हाथ कैसे रोक लिये अंगराज? कर्ण बोला, मुझे आपके वीर होने में कोई सन्देह नहीं है मामाश्री पर आप उस बात को समझ नहीं सकते। शकुनि बोला, तो आप ही समझाओ। ये जो आपका मित्र दुर्योधन यहां खडा है वो अपने ९९ भाईयों को रो चुका है अंगराज और आपसे यह प्रश्न कर रहा है कि हे प्रधान सेनापति विजय आज आपके हाथ में थी फिर उसे अपने हाथ से निकल कैसे जाने दिया? हे सेनापति आपकी निष्ठा संशयात्मक नहीं किन्तु फिर भी इस प्रश्न का बिच्छू आपके मित्र को बार-बार डंक मार रहा है। कर्ण बोला, तुम्हारे लिये खाये हर घाव की सौगन्ध मित्र तुम मेरे इस दुर्भाग्य को नहीं समझ सकते कि मेरे और अर्जुन के बीच स्वयं सूर्यदेव आ गये थे। मैं जानता था कि मेरा वो बाण सूरज ढक जाने से पहिले अर्जुन की छाती नहीं भेद सकता था। इसलिये मैं वो बाण कैसे चला सकता था? शकुनि बोला, क्यों? सूर्यास्त से क्या होता है? क्या इसके पहिले सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध रुकता रहा है अंगराज। कर्ण बोला, जब सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध होता रहा तब मैं इस सेना का प्रधान सेनापति नहीं था गान्धार नरेश। आपने यह कैसे पूछा? जो नियम युद्ध आरम्भ होने से पहिले गंगापुत्र भीष्म ने बनाये थे मैं यह कैसे भूल जाऊं वो यह थे कि सूर्यास्त के उपरान्त युद्ध वर्जित है तो मैं बाण कैसे चलाता? दुर्योधन बोला, इस युद्ध में कई नियम उन्होने तोडे है और कई नियम हमने भी। तो टूट जाने देते नियम। समझ लेते कि यह मेरे प्रिय दु:शासन के लिये तुम्हारी वो श्रद्धांजलि हो जाती। कर्ण बोला, दु:शासन मेरा भाई था दुर्योधन। शकुनि बोला, हां किन्तु भाई तो वो उस भीम का भी था। जिस दिन उसकी बाहें उखाडकर दूर फेंक दी थी। जिसने उसकी छाती का लहू पीकर उसके शव के चारों ओर बर्बरता का नग्न नृत्य किया था अंगराज। कर्ण बोला, मैं इस रणभूमि में पहिले भी यह नाच देख सका हूं मामाश्री फिर भी भीम जैसे योद्धा को यह शोभा नहीं देता। मेरी समस्या समझो मित्र। तुम धृतराष्ट्र पुत्र हो, भरतवंशी हो, ययाति और पुरु जैसे महान योद्धाओं के उत्तराधिकारी हो। यही पृष्ठभूमि पांडवों की भी है। यदि तुम लोग कोई नियम तोडोगे तो तुम्हारी पृष्ठभूमि कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेगी किन्तु इस राधेय की सहायता के लिये कौन आयेगा मित्र? तुम्हारे पिताश्री के सारथी ने जिस बालक को बहती नदी से उठाकर बडा किया वो कौन है? उसकी पृष्ठभूमि क्या है? वो किसका उत्तराधिकारी है? किसका वंशज है? मैं इस रणभूमि में बिल्कुल अकेला हूं मित्र। मेरी भुजाओं और मेरे धनुष के अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है मित्र इसलिये मैं कोई नियम नहीं तोड सकता। ना तुम्हारे लिये और ना ही अपने लिये।

कर्णधार जब कर्ण हो नियम न होंगे भंग, दानवीर की वीरता सदा रहेगी संग।

इस महायुद्ध में स्वयं समय ने कई बार यह सोचा है कि जो यह समय ना रहा होता तो यहां से कहीं बहुत दूर चला गया होता लेकिन समय होने के नाते इस धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र के इन भयानक रातों और दिनों को देखने के लिये विवश है। समय तो यह चाह भी नहीं सकता कि यहां से कहीं और चले जाये। यहां चारों ओर इतने शव पडे हैं कि स्वयं समय के लिये पांव धरने की जगह मुश्किल से मिलती है। समय होने के बाद भी वो पंजे के बल खडा है और जब तक यह युद्ध समाप्त नहीं हो जाता तब तक यों ही खडा रहेगा क्योंकि समय ही तो इकलौता निष्पक्ष साक्षी है। नहीं तो यहां हर व्यक्ति या तो हारनेवालों के पक्ष में है या जीतनेवालों के पक्ष में। स्वयं नारायण भी निष्पक्ष नहीं है और उनका यह पक्षपात उनकी लीला भी नहीं है। लीलाओं का रंग तो कुछ और होता है। मानव जाति चाहे तो यह सीख ले कि सत्य और असत्य के महायुद्ध में जो निष्पक्ष हो वो असत्य के साथियों में गिना जायेगा। इस संघर्ष में जो निष्पक्ष है वो अपराधी है इसलिये हे मानव यदि अभिमन्यु का शव उठाना पडे तो उठा किन्तु ऐसे संघर्षों में निष्पक्ष न रह। यदि पितामह भीष्म के लिये शर शैया बनानी पडे तो बना किन्तु इस स्थिति में निष्पक्ष मत रह। गुरुश्रेष्ठ द्रोण भी सामने आजाये तो उन्हे केवल प्रणाम ही

न कर, उनका सामना भी कर। मातृभूमि और सत्य इन दोनों कसौटियों पर अपने विचारों अपने जीवन मूल्यों, अपनी राजनीति, अपना सामाजिक जीवन और अपनी आत्मा के सोने को घिस कर देख कही उसका खरापन खोटा तो नहीं हो गया है और उनका आदर करना सीख जो तेरे विरोधी हैं। क्या तूने यह नहीं देखा स्वयं नारायण भीष्म को प्रणाम कर रहे हैं? भीष्म द्रोण, कर्ण ये महापुरुष तो नाम के तख्ते हैं। नाम से अलग नहीं हो सकते। नाम के साथ डूब जाने को विवश हैं। भीष्म तो अब होकर भी नहीं है। द्रोण वीर गति को प्राप्त हो चुके हैं और उनकी चिता की लकड़ियां अब भी अश्वत्थामा के हृदय में धांस धांस करके सुलग रही है किन्तु कर्ण के हृदय में न कोई आग है न पानी। उसके हृदय में एक उदासी, अपने अकेलेपन की बेदर्द चेतना के सिवाय और कुछ नहीं है।

दुर्योधन बोला, फिर भी मेरे हाथ से आई हुई विजय निकल गई ना मित्र। मैं धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में नैतिकता के बाल की खाल निकालने नहीं आया हूं मित्र। मैं यहां एक युद्ध जीतने आया हूं और युद्ध में विजय से बडा धर्म तो कोई और हो ही नहीं सकता। और यह भी न भूलो मित्र कि मैंने पितामह और गुरु द्रोण की निष्ठा पर कभी भरोसा नहीं किया किन्तु तुम... कर्ण बोला, मैं आयु में गंगापुत्र भीष्म और आचार्य द्रोण से बहुत छोटा हूं मित्र दुर्योधन। इसलिये मैं वो सब बातें सहन नहीं कर सकता जो उन लोगों ने सहन करी। दुशासन के वध का दु:ख मुझे तुमसे कम नहीं है। आज तक तो तुम भी पांडवों का कुछ नहीं बिगाड पाये हो किन्तु तुमने अपने प्रति अपनी निष्ठा पर कभी सन्देह नहीं किया? दुर्योधन बोला, मैंने तुम्हारी निष्ठा पर कभी सन्देह नहीं किया मित्र? कर्ण बोला, इसी बात का तो दु:ख है कि कदाचित तुम यह चाहते नहीं परन्तु तुमने मेरी निष्ठा पर सन्देह प्रकट किया। यदि ऐसा नहीं है तो तुम बार-बार सूर्यदेव पर क्यों झल्ला रहे हो कि उन्होने अस्त होकर तुम्हारे हाथों से अर्जुन का शव छीन लिया। दुर्योधन बोला, क्या तुम नहीं जानते मित्र कि मैं कितने तनाव में हूँ। कर्ण बोला, जानता हूं, भलीभांति जानता हूं मित्र किन्तु तुम नहीं जानते कि मैं कितने दबाव में हूं परन्तु तुम घबराओ मत। मैं फिर युद्ध करूंगा और यह युद्ध इतिहास सदैव याद रखेगा। मित्र मैं तुम्हारे तूणीर का एक बाण हूं और जब भी चलूंगा तब तुम्हारे लक्ष्य की ओर ही चलूंगा।

अर्जुन के शिबिर में अर्जुन बोला, तुम अपने अपमान को बार-बार बीच में न लाओ द्रौपदी। यह युद्ध तुम्हारे अपमान से बहुत बडा है। इस पीडा को समझने का प्रयत्न करो कि हम रणभूमि में अपने पूर्वजों का लहू बहा रहे हैं। तुम अपने केशों के स्वाभिमान के लिये होनेवाले युद्ध समझने की भूल ना करो पांचाली। तुम्हारे केश अति सुन्दर हैं, लम्बे हैं, बहुत बड़े है किन्तु न वे हस्तिनापुर से अधिक सुन्दर हैं और न ही हस्तिनापुर से बडे हैं पांचाली। इसलिये अपने इन केशों में लगे हुये दु:शासन के लहू को धो डालो। रक्त धमनी में ही अच्छा लगता है। धमनी से निकल कर वो शर्णार्थी हो जाता है, असहाय, अनाथ। द्रौपदी बोली, क्या मेरे अपमान का कोई अर्थ नहीं धुनर्धर? अर्जुन बोला है, हे प्रिय द्रौपदी है। किन्तु उतना नहीं जितना तुम समझ रही हो। तुम द्रौपदी हो प्रिये, तुम हस्तिनापुर नहीं हो और यह कहकर मैं तुम्हारा महत्व कम नहीं कर रहा हूं। मैं तो तुम्हे यह समझाने का प्रयत्न कर रहा हूं कि हस्तिनापुर एक सागर है और तुम उस सागर की एक बूंद। तुम्हारे बिना वो सागर अधूरा है प्रिये और यही तुम्हारा महत्त्व है। अपने अपमान को बीच में लाकर अपना मूल्य कम ना करो। द्रौपदी बोली, अर्थात तुम कर्णवध नहीं करोगे। अर्जुन बोला, यह तुमसे किसने कह दिया? हस्तिनापुर की सुरक्षा के लिये कर्णवध आवश्यक है। तुम केवल द्रौपदी ना बनी रहो प्रिये। तुम हस्तिनापुर के स्वाभिमान का प्रतीक हो। अपमान तुम्हारा नहीं हुआ था, अपमान हुआ था हस्तिनापुर का। मुझे तुम्हे दिया हुआ वचन याद है प्रिये वो सूतपुत्र कर्ण सूर्यास्त नहीं देखेगा।

कर्ण सोया हुआ सपना देख रहा है... कर्ण बोला, बस, मुझे एक दिन के लिये अपने श्राप से मुक्त कर दीजिये। एक दिन के लिये। परशुराम बोले, कल का ही तो एक दिन है कर्ण। और इसी एक दिन के लिये ही तो मैंने तुम्हे श्राप दिया था। हे पुत्र इस युद्ध में विजयी होने से तुम्हे कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि वासुदेव कृष्ण के होते हुये तुम विजयी हो भी गये तब भी कंगाल ही रह जावोगे। हे दानवीर, विजय पर पांडवों का अधिकार है और तुम लेने के लिये प्रसिद्ध नहीं हो कर्ण। तुम देने के लिये प्रसिद्ध हो। अपने भाग्य से सन्धि कर लो। अभिमन्यु की हत्या में भाग लेकर तुम दुर्योधन के ऋण से मुक्त हो चुके हो। सब कुछ जानकर भी अनजान मत बनो। कर्ण बोला, प्रणाम गुरुदेव। परशुराम बोले, मेरे आशीर्वाद की छाया में जाओ कर्ण। मृत्युलोक हो चाहे स्वर्गलोक। जब भी वीरों और महावीरों की सभा में तुम्हारा नाम लिया जायेगा तब वे सब खडे होकर तुम्हारे नाम का जयजयकार करेंगे।

कुन्ती कर्ण के पास आती है। कर्ण की नींद खुल जाती है। कर्ण बोला, माता आप। कुन्ती बोली, आयुष्मान भव पुत्र। अर्जुन मेरा छोटा भाई है माते इस आशीर्वाद पर उसका अधिकार मुझसे अधिक है किन्तु आपने यहां आने का कष्ट कैसे किया। मुझे तो आपको दिया हुआ वचन याद है। कुन्ती बोली, मैं जानती हूं पुत्र। तुम अपना वचन भूल ही नहीं सकते। क्योंकि तुम तो कुछ भूल जाने को तैयार ही नहीं हो पुत्र। कर्ण बोला, कदाचित यह मेरी शक्ति भी है माताश्री और मेरा दुर्भाग्य भी। कुन्ती बोली, किन्तु पुत्र मैं तुम दोनों में से किसी को भी खोना नहीं चाहती। किसी पर रोना नहीं चाहती पुत्र। कर्ण बोला, ममता को इतनी लिप्तता शोभा नहीं देती माताश्री। यह हस्तिनापुर के होने या ना होने का युद्ध है आप तो भरतवंश की कुलवधू है आप को अपने कोष में से कुछ न कुछ तो देना ही पडेगा। माता गान्धारी तो अपने ९९ पुत्र दे चुकी है। यदि भरतवंश का इतिहास आपसे यह पूछे कि हे कुन्ती तुमने इस निर्णायक युद्ध में क्या दिया तो फिर आप क्या उत्तर देंगी? मैं नहीं चाहता कि आप भरतवंश के इतिहास के आगे लज्जित खड़ी दिखाई दें। आपको अपने एक न एक पुत्र के लिये तो रो ही लेना चाहिये। इसलिये अपने इस राधेय का प्रणाम स्वीकार कीजिये माते। कुन्ती फफक फफक कर रोकर वहां से चली जाती है।

धृतराष्ट्र बोले, संजय तुम चुपचाप बैठे-बैठे इतनी देर से क्या देख रहे हो? संजय बोला, ममता की विवशता देख रहा हूं राजन। धृतराष्ट्र बोले, हां गान्धारी के लिये मेरा हृदय भी बहुत दु:खता है संजय। उसे वहां जाना भी नहीं चाहिये था। यदि वो यहां होती तो मैं उसके आंसू पौंछ रहा होता और वो मेरे। किन्तु उसके वहां चले जाने में मेरे और उसके दोनों के आंसू अकेले ही रह गये। संजय बोला, वहां महारानी कुन्ती भी है राजन्। धृतराष्ट्र बोले, हां वहां कुन्ती भी है। संजय- और वो अपने पुत्रों के शिबिर में नहीं है महाराज। वो आपके शिबिर में है और उनकी आंखों में भी आंसू है। धृतराष्ट्र बोले, तुम्हारे देखने में अवश्य ही कोई भूल हुई होगी संजय। कुन्ती की आखों में तो आंसू होने का कोई कारण ही नहीं है। उसके पुत्र तो विजय यात्रा के मार्ग पर हैं। यह सब तातश्री का किया धरा है। ना वो बाणों की शैय्या पर लेटे होते ना ही हमें पराजय का मुंह देखना पडता।

रात्रि में कुन्ती पितामह के पास आती है। आकर चरण स्पर्श करती है। भीष्म बोले, कुन्ती मेरे सिरहाने आओ पुत्री। अपने पैरों तक अब मेरी दृष्टि नहीं जा सकती। तुम्हारे पुत्र ने अब मेरी दृष्टि सीमित कर दी है। कुन्ती बोली, तातश्री मैं क्या करूं तातश्री? भीष्म बोले, जिस प्रश्न का सामना तुम आज कर रही हो पुत्री उसी प्रश्न का सामना करते-करते मेरा सारा जीवन बीत गया है। जीवनभर मोह के दो राहे पर खडा यही सोचता रह गया कि एक ओर जाने का अर्थ यह है कि दूसरे को त्याग दिया किन्तु इस शैया पर लेटे-लेटे और तो कुछ कर नहीं सकता। इसलिये यही

सोचते रहता हूं कि क्या खोया क्या पाया? अब तक खोने पाने के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाया हूं पुत्री। दुर्योधन तो अब यहाँ आता नहीं। कर्ण आया था उसने बताया की आज दु:शासन भी वीरगति को प्राप्त हो गया। जिन बालकों को गोदियों में पाला था ये सब एक-एक करके वीरगति को प्राप्त होते जा रहे हैं। तुम्हे पता है पुत्री दु:शासन में भी केवल एक दोष था। उसे दुर्योधन से बहुत प्यार था। इतना अधिक प्यार था कि उसने अपने व्यक्तित्व को दुर्योधन की परछाई पर जाने दिया। यदि ऐसा ना होता तो उसके हाथ द्रौपदी के केश और फिर उसके वस्त्र तक कभी ना जाते इसलिये हो सके तो उसे क्षमा कर दो। अधिक प्रेम भी दृष्टि को धुंधला कर देता है और मैं तुमसे भी यह कह रहा हूं पुत्री कि अपने प्रेम से अपने संघर्ष को बचाओ। इस युद्ध में कोई किसी का भाई नहीं है। इस युद्ध में केवल दो प्रकार के लोग हैं। एक वे जो हस्तिनापुर के हित में हैं और एक वे जो हस्तिनापुर के हित में नहीं हैं। कल दो वीरोंके सामने का दिन है पुत्री। इनमें से किसी एक की विजय हस्तिनापुर की विजय है, दूसरे की विजय हस्तिनापुर की पराजय है इसलिये भूल जाओ पुत्री कि वे दोनों ही तुम्हारे पुत्र है। अपने शिबिर में जाकर हस्तिनापुर की विजय के लिये प्रार्थना करो। कुन्ती बोली, आप बडे भाग्यवान हैं तातश्री कि आप किसी की मां नहीं। यह युद्ध चाहे जिसके लिये भी हो रहा हो किन्तु इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त होनेवाले हमारे ही पुत्र हैं। कुन्ती प्रणाम करके वहां से चली जाती है।

अर्जुन अपने शिबिर में बाणों को छांट रहा है। नकुल आया और बोला आप सोये नहीं बड़े भैया। अर्जुन बोला, तुम भी तो नहीं सोये नकुल। आओ बैठो। ये बाण तो ठीक हैं। अर्जुन बोला, किन्तु यह अंगराज कर्ण के लिये ठीक नहीं हैं नकुल। नकुल बोला, वह सूतपुत्र आपका क्या बिगाडेगा छोटे भैय्या। अर्जुन बोला, वो चाहे किसी का भी पुत्र हो नकुल किन्तु यह न भूलो कोई साधारण व्यक्ति उस कौरव सेना का प्रधान सेनापति नहीं बन सकता। जिसके प्रधान सेनापति पितामह भीष्म और गुरुवर द्रोणाचार्य जैसे महारथी हो चुके हैं। दुर्योधन ने अश्वत्थामा को तो प्रधान सेनापति नियुक्त नहीं किया। मद्र नरेश को भी प्रधान सेनापति नहीं बनाया और उन जैसे योद्धाओं ने जिसके ध्वज तले युद्ध करना स्वीकार कर लिया हो नकुल वो साधारण व्यक्ति हो ही नहीं सकता। वो आचार्य द्रोण और पितामह का गुरु भाई भी है। उसके हाथ में परशुरामजी का विजय धनुष है जो उन्हे स्वयं महादेव ने दिया था। नकुल बोला, आप मुझे डरा रहे हो छोटे भैया। अर्जुन बोला, नहीं नकुल नहीं लेकिन यदि युद्ध में जीतना हो तो डरना सीखो क्योंकि भय ही योद्धा को चौकन्ना रखता है और रणभूमि में जो यौद्धा चौकन्ना नहीं रहेगा उसके भाग्य में तो विजयश्री आ ही नहीं सकती। नकुल मैं पितामह से भयभीत नहीं था, मैं गुरुवर द्रोण से भयभीत नहीं था किन्तु मैं कर्ण से भयभीत हूं और यही कारण है कि मैं उसके लिये सर्वोतम बाण चुन रहा हूं।

कर्ण अपने शयन कक्ष में सो रहा है। उसे सपने में ब्राह्मण का दिया हुआ श्राप स्मरण हो आता है। कर्ण बोला, हे ब्राह्मण किन्तु पाप की परिभाषा यह है कि वो जानबूझके किया हो। ब्राह्मण बोला, हे योद्धा पाप वह होता है जो किसी दूसरे के दु:ख का कारण बने। तुमने बाण जाने में चलाया हो या अनजाने में। परिणाम तो यही हुआ मेरी गाय वहां बिलख रही है उसका बछडा यहां मरा पडा है। क्या उसके थनों का दूध तुम्हें श्राप भी नहीं दे सकता। कर्ण बोला, मुझे श्राप न दो ब्राह्मण। ब्राह्मण बोला, तो तुम मेरी गाय को बछडा लौटा दो। योद्धा तुम तो दानवीर हो क्या यह जीवन दान दे सकते हो? हे महारथी जिस रथपर चढकर तुम इस ब्राह्मण और इस बछडे से ऊँचे हो जाते हो वही रथ एक दिन तुम्हे त्याग देता। जब तुम अपने जीवन का सबसे महत्वपूर्ण युद्ध कर रहे होंगे तब भय का राक्षस तुम्हारे चारों ओर घूम रहा होगा। भूमि तुम्हारे रथ के पहियों को निगल जायेगी। कर्ण का सपना टूटा। कर्ण जग गया। इतने में दूत आया और बोला प्रधान सेनापति की जय हो।

महारानी ने सन्देश भेजा है कि आप रणभूमि में प्रस्थान करने के पहिले उनकी सेवा में उपस्थित हो।

कर्ण गान्धारी के पास आता है। दासी ने आकर सूचना दी कि प्रधान सेनापति अंगराज कर्ण पधारे हैं। कर्ण बोला, प्रणाम महारानी। गान्धारी बोली, स्थान ग्रहण करो अंगराज राधेय। कर्ण बोला, आज्ञा हो महारानी। गान्धारी बोली, मैं केवल महारानी नहीं हूँ। मैं तुम्हारे सबसे प्रिय दुर्योधन की माता भी हूं। इसलिये यदि सम्भव हो तो कुछ क्षणों के लिये यह भूल जाओ कि मैं महारानी हूं। कुछ क्षणों के लिये मुझे माता भी मान सकते हो। कर्ण बोला, माता तो आप हैं ही, महारानी होने के नाते भी आप मुझे आदेश दे सकती हैं और दुर्योधन की माताश्री होने के नाते से भी। गान्धारी बोली, अभी तो मुझे दुर्योधन की माता ही रहने दो। तुम उसके मित्र हो इसलिये मैं तुम्हे पुत्र कहने का अधिकार रखती हूं। क्या यह नहीं। कर्ण बोला, यदि मैं दुर्योधन का मित्र न भी रहा होता तब भी आपको मुझे पुत्र कहने का अधिकार होता। गान्धारी बोली, आयुष्मान भव पुत्र। कर्ण बोला, अब इस आशीर्वाद का इस रणभूमि में कोई अर्थ नहीं रह गया है। यह आशीर्वाद तो आपने दु:शासन को भी दिया होगा। गान्धारी बोली, हां पुत्र किन्तु यह माताओं का सबसे प्रिय आशीर्वाद है। राधेय मेरा दुर्योधन अब रणभूमि में बिल्कुल अकेला है। यदि वो क्रोध में भी कोई कड़वी बात बोल दे तो उसकी बात का बुरा न मानना पुत्र और उसका साथ ना छोडना। कर्ण बोला, क्या छाया वृक्ष का साथ छोड सकती है माते, क्या धूप सूर्य को त्याग सकती है। हिम हिमालय को त्याग सकता है लेकिन ये राधेय जिसे दुर्योधन ने अंगराज बनाया था दुर्योधन को कभी भी नहीं त्याग सकता इसलिये अपने जीवन काल में तो दुर्योधन को वीरगति को प्राप्त होने के लिये मैंने सारे मार्ग अपनी निष्ठा से बन्द कर रखे है। मेरे वीरगति को प्राप्त होने के उपरान्त क्या होगा यह मैं नहीं कह सकता। गान्धारी बोली, तुम अपने वीरगति को प्राप्त होने की बात क्यों कर रहे हो पुत्र। कर्ण बोला, इसलिये माते कि अब मेरा अर्जुन से निर्णायक युद्ध होनेवाला है। आप हम दोनों में से किसे आज का सूर्यास्त देखने का आशीर्वाद देंगी। गान्धारी बोली मेरे पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है पुत्र। मैं दुर्योधन और अर्जुन दोनों को जीवित देखना चाहती हूं। कर्ण बोला, यह सम्भव नहीं है माते किन्तु मेरा प्रश्न यह नहीं था। मैंने पूछा था कि आप मेरे और अर्जुन में किसे जीवित देखना चाहती है। मुझे आज्ञा दीजिये माते पर इस प्रश्न का उत्तर मत दीजिये। कर्ण प्रणाम कर वहां से युद्धक्षेत्र में चला जाता है।

कर्ण बोला, शल्य। तुम यज्ञपरायण मूर्धाभिषिक्त वीर राजाओं की संतान नहीं हो, तुम मद्रदेश की उन व्यभिचारिणी स्त्रियों की संतान हो, जो किसी भी परिचित-अपरिचित पुरुष से संबंध स्थापित कर लेती हैं। दासों से भी समागम करनेवाली कुलटा स्त्रियों की संतान हो तुम। वे न पिता की चिंता करती हैं, न भाई की और न पुत्र की। वे गोमांस खाती हैं, मदिरा पीती हैं और अमर्यादित रूप से काम में प्रवृत्त होती हैं। वे उन्मत्त होकर निर्वस्त्र हो मर्यादा का त्याग कर नाचती हैं। संयम और मर्यादा छोड़कर मैथुन में प्रवृत्त होती हैं। वे स्वेच्छा से किसी भी पुरुष का वरण कर लेती हैं। तू उन स्त्रियों की संतान होकर मुझे धर्म सिखाता है मद्रनिवासी, जो ऊँटों और गधों के समान खड़ी होकर मूत्र त्याग करती हैं। ऐसी होती हैं मद्र की स्त्रियाँ और तुम जैसी होती हैं उनकी संतानें।

शल्य बोला, मद्र देश की स्त्रियाँ कैसी होती हैं, वह जानता हूँ मैं। उनके गुणों पर रीझकर ही भीष्म हस्तिनापुर से चलकर माद्री को लेने आए थे मद्रदेश में। शल्य ने अद्‌भुत संयम का परिचय दिया, तुमने जो कुछ कहा है, उससे मद्रदेश की स्त्रियों की नहीं, तुम्हारी अपनी वास्तविकता प्रकट हो रही है। स्त्रियों के विषय में कितने नीच और कुत्सित विचार हैं तुम्हारे। जहाँ किसी स्त्री की चर्चा आई, तत्काल उसे निर्वस्त्र करने लगता है तुम्हारा मन। लुच्चों के समान किसी का भी संबंध उसकी माँ और बहन से जोड़ने लगते हो। तनिक भी सम्मान नहीं है तुम्हारे मन में स्त्रियों के लिए। मुझे कुछ नहीं

कह सके, पुरुषों को कुछ नहीं कह सके तो स्त्रियों को निर्लज्ज और व्यभिचारिणी बताने लगे जो यहाँ हैं ही नहीं, और न उनकी कोई चर्चा है। मुझे सीधे-सीधे माँ-बहनों की गालियाँ नहीं दे सके तो इस प्रकार लांछित किया मद्र की स्त्रियों को। अब समझ में आया कि तुम लोग द्यूतसभा में पांचाली के साथ क्या कर रहे थे अपने कुलवृद्धों की उपस्थिति में। मद्र देश में कोई तुम्हारे समान अपने राजवशं की कुलवधुओं को सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र नहीं करता। तुम कहते हो कि मद्र की स्त्रियाँ अपने पुत्रों और भाइयों से भी संबंध स्थापित कर लेती हैं। क्या प्रस्ताव कर रहे थे, तुम लोग पांचाली से? किसी प्रदेश की स्त्रियों के चरित्र को लांछित करने से पहले इस बात पर भी विचार कर लिया करो सूतपुत्र? कि तुमको राधा ने जन्म नहीं दिया था। जिसने तुमको जन्म दिया था, उसने तुम्हें त्याग क्यों दिया? कैसी संतान हो तुम उसकी कि वह और उसका समाज तुम्हें स्वीकार नहीं करता। अपने जन्म में भी कहीं व्यभिचार दिखाई देता है तुम्हें?

कर्ण बोला, शल्य। तुम मेरी माँ को गाली दे रहे हो। कर्ण के मुँह में झाग आ गया।

शल्य ने कहा, और तुम मेरी माँ को ही नहीं, पूरे मद्र को, सारी वाहीक स्त्रियों को गालियाँ दे रहे थे। कितनी क्षुद्र और क्षेत्रीय बुद्धि है तुम्हारी। न तो तुम इस जंबूद्वीप को एक राष्ट्र मानते हो और न ही आर्यावर्त्त को। तुम क्षेत्र के आधार पर लोगों के चरित्र को आँकते हो। भूल जाते हो कि जिस अंगदेश के राजा बनकर इतराते फिरते हो तुम, वहाँ के लोगों के विषय में कहा जाता है कि वे अपने ही परिवार के व्यक्ति के रोगी और असहाय होने पर उसका त्याग कर देते हैं, अपनी पत्नी और बच्चों को हाट में बेच आते हैं। पर मैं तुम्हें दोष नहीं देता, विचार करने के लिए कहता हूँ। तुम यह नहीं मानते कि सभी क्षेत्रों में अच्छे और बुरे, धार्मिक और अधार्मिक, चरित्रवान और चरित्रहीन लोग होते हैं। शल्य ने मुस्कराकर कर्ण की ओर देखा, तुम जैसे लोग ही देश और राष्ट्र के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं, अपने कुत्सित विचारों से। ऐसे क्षुद्र विचार रखकर तुम इस सारे जंबूद्वीप में एक साम्राज्य और एक राष्ट्र की बात सोच भी कैसे सकते हो।

शल्य बोला, तुमने शायद उस कौवे की कथा नहीं सुनी, जिसे वैश्य कुल के बालकों ने अपनी जूठन खिला-खिला कर पाला था; और वह कौवा उनकी प्रशंसा से फूलकर आकाशचारी बलवान चक्रांग हंसों के साथ उड़ने की स्पर्धा करने लगा था।

समुन्दर के तट पर किसी धर्मप्रधान राजाके राज्यमें एक धनधान्यसम्पन्न वैश्य रहता था। उसके कई अल्पवयस्क पुत्र थे। वे एक कौएको अपना जूठा भात, दही, दूध और खीर आदि दे दिया करते थे। वह जूठन खाकर बहुत हृष्ट-पुष्ट हो गया व अहंकार में भरकर अपने जातिवाले पक्षोंका अपमान करने लगा। एक बार उस समुद्रतटपर गरुड़ के समान उड़ान भरनेवाले मान-सरोवरवासी हँस वहांपर आये। तब उस अहंकारी कौएने उन हंसोंसे कहा आओ आज हमारी उड़ान हो जाएं। तब हंसोंने कहा हम मानसरोवर में रहनेवाले हंस हैं और सारी पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। कोई पक्षी हमारी समानता नहीं कर सकता। तुम तो एक कौवा हो फिर उड़ान के लिये हमें क्यों चुनौती देते हो। तुम हमारे साथ कैसे उड़ पाओगे। हंस की बात सुनकर उस कौवे ने अपनी बड़ाई करते हुए कहां मैं एक-सौ प्रकार की उड़ाने उड़ सकता हूँ और प्रत्येक उड़ान सौ-सौ योजनकी होती है और वे सभी बड़ी अद्भुत और विचित्र हैं। उनमें से कुछ इसप्रकार है, उड्डीन (ऊंचा उड़ना), अवडीन (नीचा उड़ना), प्रडीन (चारों ओर उड़ना), डीन (साधारण उड़ना), निडीन (धीरे-धीरे उड़ना), संडीन (ललित गतिसे उड़ना), तिर्यग्डीन (तिरछा उड़ना), विडीन (दूसरोंकी चालकी नकल करते हुए उड़ना), परिडीन (सब ओर उड़ना), पराडीन (पीछेकी ओर उड़ना), सुडीन (स्वर्गकी ओर उड़ना), अभिडीन (सामनेकी ओर उड़ना), महाडीन (बहुत वेगसे उड़ना), निर्डीन (परोंको हिलाये बिना ही उड़ना), अतिडीन (प्रचण्डतासे उड़ना), संडीन डीन-डीन (सुन्दरगतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर नीचेकी ओर उड़ना), संडीनोड्डीनडीन (सुन्दर गतिसे आरम्भ करके फिर चक्कर काटकर ऊँचा उड़ना), डीनविडीन (एक प्रकारकी उड़ानमें

दूसरी उड़ान दिखाना), सम्पात (क्षणभर सुन्दरतासे उड़कर फिर पंख फड़फड़ाना), समुदीष (कभी ऊपरकी ओर और कभी नीचेकी ओर उड़ना), गतागत (किसी लक्ष्यतक उड़कर फिर लौट आना) और प्रतिगत (पलटा खाना) इत्यादि। मैं तुम्हारे सामने ये सब गतियाँ दिखाऊँगा; तब तुम्हें मेरी शक्तिका पता लगेगा। इनमेंसे किसी भी गतिसे मैं आकाशमें उड़ सकता हूँ। तुम जैसा उचित समझो कहो और बताओ कि मैं किस गतिसे उड़ूँ?

कौएके इस प्रकार कहनेपर एक हंससने हँसकर कहा, तुम तो सौ प्रकार की उड़ाने जानते हो मैं तो एक प्रकारकी गतिसे ही उड़ूँगा। हमें अन्य किसी गतिका ज्ञान नहीं तुम्हें जो उड़ान पसंद हो उसीसे उड़ो।

तब वह कौआ सौ प्रकार की उड़ानोंसे दर्शकों को लुभाने लगा। और हंस अपनी एक ही प्रकारकी गतिसे उड़ने लगा। कौएकी अपेक्षा उसकी गति बहुत मंद थी। तब सब कौओंने मिलकर हंसोंका तिरस्कार किया और कहने लगे यह हंस उड़ा तो सहीं, किंतु कौएके सामने उसकी गति तो इतनी मन्द है। इसी यात्रामें कौआ उड़ते-उड़ते थक गया। उसे विश्राम के लिये कहीं कोई टापू या वृक्ष दिखायी नहीं दिया। कौएको बड़ा भय हुआ और वह सोचने लगा कि मैं थककर कहीं इस समुद्रमें ही न गिर पड़ूं।

अन्तमें वह अत्यन्त श्रमित होकर हंसके पास आया और कौएने कहा, तुमने अपने अनेक प्रकारकी उड़ानोंका बखान किया परन्तु इस गति का उल्लेख नहीं किया। तब उस कौएने हंससे कहा, हम तो कौए हैं काँव काँव करते है। अब मेरे आश्रित तुम ही हो। किसी प्रकार मेरे प्राण बचाओ और ऐसा कहकर वह समुद्र में गिर गया। तब हँसको दया आ गयी और उसने पंजेसे पकड़कर उस कौएको पीठपर चढ़ा लिया। फिर वह उसी जगह पर पहुँच गए जहाँ से शर्यत शुरू हुई थी। कर्ण इसप्रकार जूठनसे पुष्ट हुआ वह कौआ अपने बल और विजय का घमंड भूलकर शान्त हुआ।

विराट नगर में द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और भीष्म सब कौरव भी तुम्हारी रक्षा कर रहे थे; उस समय तुमने अकेले अर्जुनका वध क्यों नहीं किया? उस समय तुम्हारा पराक्रम कहाँ चला गया? जब संग्रामभूमिमें अर्जुनने तुम्हारे भाईका वध किया उस समय समस्त कौरव योद्धाओंके सामने सबसे पहले तो तुम्हीं भागकर गये। इसीप्रकार गन्धर्वोंके आक्रमण करनेपर सारे कौरवोंको छोड़कर पहले तुम्हींने पीठ दिखलायी। उस समय भी अर्जुनने ही चित्रसेनादि गन्धर्वोंको युद्धमें परास्त करके दुर्योधन और उसकी रानियोंको छुड़ाया। जैसे जुगनू सूर्य और चन्द्रमाका तिरस्कार करते है उसी प्रकार तुम मूर्खतासे कृष्ण और अर्जुन का अपमान मत करो। और इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें बनाना छोड़ दो।

शल्य ने कर्ण को मौन देखकर कहा, धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तुम्हें भी जूठन खिला-खिला कर पाला है, इसी से तुम भी अपने समान और अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करते हो। अब समझ पाया हूँ मैं कि क्यों न कभी भीष्म तुम्हारी प्रशंसा कर पाए, न द्रोण, न विदुर, न व्यास और न ही कभी कृष्ण। तुम्हारा चरित्र ही ऐसा है कि कोई श्रेष्ठ पुरुष कभी तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर पाएगा। जाओ। अब भी समय है, कृष्ण और अर्जुन की शरण में चले जाओ। प्राण बच जाएँगे तुम्हारे।

कर्ण को कुछ नहीं सूझा। वह चिल्लाकर बोला, इंद्रसहित सारे देवता मुझसे युद्ध करने लगे तो भी मुझे उनसे कोई भय नहीं है। फिर कृष्ण और अर्जुन का क्या। तुम चुप बैठे रहो, अब कुछ कहा तो पहले तुम्हीं को मार कर, बाद में कृष्ण और अर्जुन का वध करूँगा।

कर्ण बोला, मैं कृष्ण और अर्जुन के साथ बेधड़क होकर युद्ध करूँगा। किन्तु परशुरामजीने जो श्राप मुझे दिया है वह मुझे आज भी याद है। उन्होंने कहा था तूने ब्राह्मण का वेश बनाकर मुझसे ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया है इसलिये आवश्यकता होने पर तुझे इस अस्त्र का स्मरण नहीं रहेगा। मैं संग्रामभूमिमें अर्जुन के साथ जय या मृत्युको सामने रखकर युद्ध करूँगा। तुम तो निरे मूर्ख और मूढ़चित्त हो। तुम मुझे अर्जुन के बल-पराक्रमकी बात क्या सुनाते हो। जो पुरुष अप्रिय, निष्ठुर, क्षुद्र, आक्षेप

करनेवाला और क्षमाशीलोंका तिरस्कार करनेवाला होता है, उसके-जैसे सैकड़ोंको भी मैं मिट्टीमें मिला देता हूँ किन्तु आज केवल मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ। तुम बड़े ही मित्रद्रोही हो। मित्रता तो सात पग साथ रहनेसे हो जाती है। मैं दुर्योधन की विजयेच्छासे यहाँ आया हूँ। और तुम अर्जुनकी ही गुणगाथा गाये जाते हो। आज मैं अर्जुनपर अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ूँगा। अत: मुझे श्रीकृष्ण और अर्जुनसे भी किसी प्रकारका भय नहीं है।

शल्यने कहा, कर्ण तुम अपने शत्रुओंके विषयमें जो कुछ कह रहे हो वह सब तो तुम्हारा बकवाद है। मैं सहस्त्रों कर्णोंकी सहायताके बिना भी युद्धमें शत्रुओंको जीत सकता हूँ।

कर्ण बोला, मद्रराज। एक बार एक बूढ़े ब्राह्मण ने वाहीक और मद्रदेशकी निन्दा करते हुये कहा। जो हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरुक्षेत्रसे बाहर तथा सिन्धु और उसकी पाँच सहायक नदियोंके बीचमें स्थित है वह वाहीक देश धर्मबाह्य और अपवित्र है। मैं एक गुप्त कार्यवश कुछ दिन वाहीक देशमें रहा था। उस समय मैंने उनके आचार-विचारके विषयमें बहुत-सी बातें जान ली थीं। जहाँ शाकल नामका नगर और आपगा नामकी नदी है वहाँ जर्तिका नामके वाहीक रहते हैं। उनका चरित्र बड़ा निन्दनीय होता है। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष उन दुश्चरित्र, संस्कारहीन और दुरात्मा वाहीकोंके साथ मुहूर्तभर भी रहना पसंद नहीं करेगा। उस ब्राह्मणने वाहीकोंको ऐसा दुराचारी बताया था। उनमें धर्म कैसे रह सकता है? वाहीक देशके लोग उपनयन आदि संस्कारोंसे रहित होनेके कारण पतित समझे जाते हैं; उनकी स्त्रियाँ घरके नौकरोंसे मैथुन कराकर उन्हें उत्पन्न करती हैं। वे धर्मभ्रष्ट तथा यज्ञके अधिकारसे वञ्चित होते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे उनके दिये हुए हव्य, कव्य और दानको देवता, पितर तथा ब्राह्मणलोग नहीं स्वीकार करते। एक विद्वान ब्राह्मणने तो यहाँतक कहा था कि वाहीकलोग काठ और मिट्टीकी बनी हुई कुंडियोंमें भोजन करते हैं। उनमें शराब लिपटा रहता है, कुत्ते उन बर्तनोंको चाटते रहते हैं, तो भी उनमें खाते समय उन्हें तनिक भी घृणा नहीं होती। वे भेड़, ऊँटनी और गदहीके दूध पीते हैं तथा उस दूधके दही, मक्खन और छाछ आदि भी खाते-पीते हैं। वे वर्णसंकर संतान उत्पन्न करनेवाले और दुराचारी होते हैं। शुद्ध-अशुद्धका विचार छोड़कर सब तरहका अन्न खा लेते हैं। इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि आरट्ट नामसे प्रसिद्ध उन वाहीकोंका संसर्ग त्याग दें।

इसी प्रकार कारस्कर, माहिषक, कलिङ्ग, केरल, कर्कोटक, वीरक और दुर्धर्म नामक देशोंका भी त्याग करना उचित है। प्रस्थल, मद्र, गान्धार, आरट्ट, खश, वसाति, सिन्धु तथा सौवीर देश प्राय: निन्दित और अपवित्र माने गये हैं। पाञ्चाल देशके लोग वेदोंका स्वाध्याय करते हैं, कुरु देशके निवासी धर्मका आश्रय लेते हैं। मत्स्य देशके लोग सत्यवादी ओर शूरसेननिवासी यज्ञ करनेवाले होते हैं। पूरबके लोग दासवृत्ति करते हैं, दक्षिणी लोगोंका बर्ताव शूद्रोंके समान होता है। वाहीक लोग चोर तथा सौराष्ट्र निवासी वर्णसंकर होते हैं। मगध देशके मनुष्य इशारेसे ही बात समझ लेते हैं, कोसलकी प्रजा दृष्टिके संकेतको समझती है, कुरु और पाञ्चालके लोग आधी बात कह देनेपर पूरी बात समझ पाते हैं तथा शाल्व देशके निवासी पूरी बात कहने से ही उसे हृदयङ्गम करते हैं। शिबिदेशकी प्रजा पहाड़ी लोगोंकी तरह मूर्ख होती है। यवन लोग सब बातोंको अनायास ही समझ लेते और विशेषत: शूरवीर होते हैं। म्लेच्छ जातिके लोग अपने संकेतके अनुसार बर्ताव करते हैं। दूसरे सभी लोग पूरी बात कहे बिना उसे नहीं समझ पाते। वाहीक और मद्रदेशके मनुष्य तो पूरे गँवार होते हैं, वे किसी रथीका मुकाबला नहीं कर सकते। शल्य। तुम भी ऐसे ही हो। तुममें उत्तर देनेकी भी योग्यता नहीं है। मद्रदेश पृथ्वीके समस्त देशोंका मल है। ऐसा समझकर तुम अपनी जबान बंद करो, मेरा विरोध न करो; नहीं तो पहले तुम्हारा ही वध करके पीछे श्रीकृष्ण और अर्जुनको मारूँगा।

शल्यने कहा, कर्ण तुम जिस देशके राजा हो उस अङ्गदेशमें क्या होता है? अपने ही सगेसम्बन्धी जब रोगसे पीड़ित हो जाते हैं तो उनका त्याग कर दिया जाता है। अपनी ही स्त्री और बच्चोंको वहाँके लोग सरे बाजार बेचते हैं। उस दिन रथी और अतिरथियोंकी गणना करते समय भीष्मने तुमसे जो कुछ कहा था, अपने उन दोषोंपर ध्यान दो और क्रोध छोड़कर शान्त हो जाओ। सभी देशोंमें ब्राह्मण हैं, सर्वत्र क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं तथा सब जगह सुन्दर व्रतका पालन करनेवाली सती साध्वी स्त्रियाँ भी हैं। सब देशोंमें अपने-अपने धर्मका पालन करनेवाले राजालोग हैं, जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं। इसी प्रकार धार्मिक मनुष्य भी सर्वत्र होते हैं। किसी देशके सभी निवासी पाप ही करते हों उसी देशमें ऐसे-ऐसे सच्चरित्र और सदाचारी मनुष्य भी होते हैं, जिनकी बराबरी देवता भी नहीं कर सकते। कर्ण। दूसरोंके दोष बतानेमें सभी लोग बड़े प्रवीण होते हैं, किंतु उन्हें अपने दोषोंका पता नहीं रहता। अथवा अपने दोष जानते हुए भी वे ऐसे भोले बने रहते हैं, मानो उन्हें कुछ पता ही न हो।

तभी दुर्योधन का रथ भी उनके साथ आ लगा। उसने दोनों के चेहरे देखे। उसे पहले से ही आशंका थी कि कुछ न कुछ होकर रहेगा। जाने क्यों कर्ण का मुँह खुलता है तो दूसरों को पीड़ित ही करता है; और उसका मुँह खुला ही रहता है।

दुर्योधन बोला, कर्ण। मामाश्री से झगडा मत करो मित्र। वह बोला, वे हमारे आश्रयदाता हैं। मैंने हाथ जोड़कर उनसे निवेदन किया था कि वे तुम्हारे सारथी बनें। अन्यथा मद्र देश का अधिपति क्या सारथ्य करने योग्य है। वे हमारे वैसे ही रक्षक हैं, जैसे पांडवों के रक्षक कृष्ण हैं।

दुर्योधन हाथ जोड़कर शल्य के सम्मुख खड़ा हो गया, मामाश्री। मैं अपने मित्र की ओर से आपसे क्षमा माँगता हूँ। वह भावुक है, वाणी का विस्फोट हो जाता है उससे। आपके प्रति दुर्भावना नहीं है उसके मन में। शत्रु सिर पर खड़ा है। कृपया युद्ध की ओर ध्यान दें।

कर्ण प्रयत्नपूर्वक हँसा और बोला, चलिए मद्रराज। अब शत्रुओं को भी देख लें।

कर्ण स्वयं को संयत कर रहा था। पहले कृष्ण और अर्जुन से निबट लें। इस शल्य को तो वह कभी नहीं छोड़ेगा। इसने उसकी माता को लांछित किया है। इसका मरना तो निश्चित है।

दुर्योधन लौट गया। उसके मन में चिंता बनी हुई थी। पता नहीं इन दोनों का संयोग इतना विस्फोटक क्यों है।

मनुष्य तो होता ही अपनी स्मृतियों का दास है।

अर्जुन हँसा और बोला, सुना है धर्मराज। उन्होंने प्रचार तो क्या, आज की घटनाओं की जैसे पूर्व घोषणा ही कर दी है कि कर्ण आज के युद्ध में अर्जुन को मार गिराएगा। भीम ने कहा, आप चिंता क्यों करते हैं महाराज। भंगी के कोसने से सांड नहीं मरा करते। झूठे प्रचार से सेनाएँ विजय प्राप्त कर सकतीं तो अब तक सिवाय कर्ण के और किसी की सेना जीवित दिखाई नहीं देती। जो भीतर से जितना अधिक डरा होता है, वह बाहर से उतना ही उग्र दिखाई पड़ता है।

कर्ण का ज्येष्ठ पुत्र वृषसेन उसका पृष्ठरक्षण कर रहा है। अन्य दो पुत्र सुषेण तथा चित्रसेन उसके रथचक्रों की रक्षा कर रहे हैं। भानुसेन भी सहायता के लिए उसके निकट ही है। दुर्योधन ने किसी और को कर्ण की रक्षा के लिए नियुक्त करने के स्थान पर स्वयं यह दायित्व सँभाला है।

कृष्ण बोले, क्योंकि वह मानता है कि पांडवों के लिए उसका वध संभव नहीं है। न वह मरेगा, न यह व्यूह ध्वस्त होगा।

कृष्ण मुस्कराकर अपने रथ की ओर बढ़ गए।

संदेशवाहक ने प्रकट होकर प्रणाम किया, महाराज। राजकुमार धनंजय शत्रुओं का संहार करते हुए, कौरवों के सेनापति कर्ण की ओर बढ़ रहे थे कि मार्ग में संशप्तकों ने उन्हें चुनौती दी। वे उनकी ओर मुड़ गए और उनका वध करने लगे। अंतिम सूचनाएँ

प्राप्त होने तक चौबीस सहस्त्र संशप्तकों ने उन पर आक्रमण कर दिया था और वे संशप्तकों के सागर में घिर गए थे।

कर्ण बोला, शल्य। अर्जुन का यहीं अंत हुआ समझो। वह संशप्तक योद्धाओं के समुद्र में डूब गया है।

शल्य ने मुस्कराकर कर्ण की ओर देखा और बोला, कौन ऐसा वीर है, जो जल से वरुण को और समिधा से अग्नि को मार सके। विजयाभिलाषी भीम खड़ा है, उसकी ओर चलें?

कर्ण ने शल्य की ओर देखा कर्ण को लगा, शल्य उसे भीम से डराने का प्रयत्न कर रहा था।

महारथी अर्जुनको आते देख शल्यने रणोन्मत्त कर्णसे पुन: इस प्रकार कहा- कर्ण। तुम जिन्हें बारंबार पूछते थे, वे कुन्तीनन्दन अर्जुन आ पहुँचे। उनके रथका तुमुल नाद सुनायी दे रहा है। इधर यह अपशकुन होने लगा। वह देखो, रोंगटे खड़े कर देनेवाला अत्यन्त भयंकर कबन्धाकार केतु नामक ग्रह सूर्यमण्डलको घेरकर खड़ा है। तुम्हारी ध्वजा हिल रही है, घोड़े थर-थर काँपते हैं। मुझे तो इन अपशकुनोंसे ऐसा जान पड़ता है कि आज सैकड़ों और हजारों राजा मरकर रणभूमिमें शयन करेंगे। श्रीकृष्ण घोड़ोंको हाँकते हुए इधर ही आ रहे हैं। गाण्डीव धनुषकी टंकार होने लगी। अर्जुनके छोड़े हुए बाण शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं। युद्धमें डटे हुए वीर राजाओंके मस्तकोंसे रणभूमि पटती जा रही है। ये पाण्डववीर दौड़-दौड़कर तुम्हारे पक्षके राजाओंका संहार करते हैं और हाथी, घोड़े, रथी तथा पैदलोंके समूहका नाश कर रहे हैं। अब महाबली अर्जुन संशप्तकोंकी ललकार सुनकर उधर ही बढ़ गये हैं और उन सभी शत्रुओंका संहार कर रहे हैं।

महाराज शल्यकी ऐसी बातें सुनकर कर्णने क्रोधमें भरकर कहा- शल्य। तुम भी देख लो संशप्तक वीरोंने क्रोधमें भरकर अर्जुनपर चारों ओरसे धावा किया है। अब उनका यहीं खात्मा समझो, वे रण-समुद्रमें डूब चुके हैं।

शल्यने कहा- अरे। जो दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा ले, क्रोध आनेपर सम्पूर्ण प्रजाको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखता हो और देवताओंको स्वर्गसे नीचे गिरा सके, वही अर्जुनपर विजय पा सकता है। बेचारे संशप्तकोंमें इतनी ताकत कहाँ है?

इसप्रकार कौरव सेना को अर्जुनकी मारसे पीड़ित होती देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, उलूक, शकुनि, दुर्योधन तथा उसके भाइयोंने आकर बचाया। कृपाचार्यने एक क्षुरप्र मारकर सुकेतु का मस्तक काट गिराया। सुकेतुके मारे जानेपर उसके अग्रगामी सैनिक भयभीत हो सब दिशाओंमें भाग गये। महाबली धृष्टद्युम्नने अपने बलवान शत्रुको जीतकर सायकोंकी वर्षासे कौरव-सेनाका बढ़ाव रोक दिया। तब कौरवोंके सैनिक सिंहनाद करके धृष्टद्युम्नपर टूट पड़े, फिर घमासान युद्ध होने लगा।

उस दिन अर्जुन संशप्तकोंमें, भीम कौरवोंमें और कर्ण पाञ्चालोंमें घुसकर क्षत्रियोंका संहार कर रहे थे। एक ओर दुर्योधन नकुल-सहदेवसे भिड़ा हुआ था। तदनन्तर कर्णने धृष्टद्युम्नपर धावा किया। उन दोनोंमें महान् युद्ध छिड़ गया। उस समय पाण्डवोंका या कौरवोंका कोई भी योद्धा पीछे पैर नहीं हटाता था। पाञ्चाल देशके लड़ाकू वीर विजयकी अभिलाषासे बड़ी फूर्तीके साथ कर्णपर टूट पड़े। उन्हें इस प्रकार विजयके लिये प्रयत्न करते देख कर्ण उनके अग्रगामी वीरोंको बाणोंसे मारने लग। उसने व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध, जय, शुक्ल, रोचमान तथा सिंहसेनको अपने बाणोंका निशाना बनाया। उपर्युक्त वीरोंने भी रथोंसे कर्णको घेर लिया।

उस महासंग्राममें कर्णको पाञ्चालसेनाका संहार करते देख राजा युधिष्ठिर बड़े क्रोधमें भरकर उसकी ओर दौड़े। साथ ही धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र तथा अन्य सैकड़ों वीरोंने पहुँचकर कर्णको चारों ओरसे घेर लिया। शिखण्डी, सहदेव, नकुल, जनमेजय, सात्यकि तथा बहुत-से प्रभद्रक योद्धा धृष्टद्युम्नके आगे होकर कर्णपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे। जैसे गरुड़ अकेला होकर भी बहुत-से सर्पोंको दबोच लेता है, उसी प्रकार कर्ण अकेला ही चेदि, पाञ्चाल और पाण्डववीरोंपर प्रहार कर रहा था।

जब कर्ण पाण्डवोंसे उलझा हुआ था, उसी समय भीम रणमें सब ओर विचरकर अपने यमदण्डके समान बाणोंसे वाहीक, केकय, वसातीय, मद्र तथा सिन्धुदेशीय योद्धाओंका संहार कर रहे थे। भीमके बाणोंसे मारे गये रथियों, घुड़सवारों, सारथियों, पैदल योद्धाओं तथा हाथीघोड़ोंकी लाशोंसे जमीन पट गयी थी। सारी सेना भीमके भयसे उत्साह खो बैठी थी। किसीसे कुछ करते नहीं बनता था। सबपर दैन्य छा रहा था। कर्ण पाण्डवसेनाको भगा रहा था और भीम कौरववाहिनीको खदेड़ रहे थे- इस प्रकार रणभूमिमें विचरते हुए उन दोनों वीरोंकी अद्‌भुत शोभा हो रही थी।

कर्ण का रथ बढ़ा। उसने पांचाल और चेदि सेना पर आक्रमण किया। सात्यकि को यह अवसर अपने अनुकूल लगा। वह कर्ण का सामना करने के लिए डट गया।

अर्जुन संशप्तक-सेनाका विनाश कर रहे थे। शत्रुओंको जीतकर विजयी अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- जनार्दन। ये संशप्तक तो अब युद्धमें मेरे बाणोंकी चोट न सह सकनेके कारण झुंड-के-झुंड भागे जा रहे हैं। दूसरी ओर सृञ्जयोंकी बहुत बड़ी सेना भी विदीर्ण हो रही है। उसकी पताका दिखायी देती हैं आप तो जानते ही है, कर्ण कितना बलवान और पराक्रमी है। दूसरे कोई महारथी उसे युद्धमें नहीं जीत सकते।

अब अर्जुनने पाश हाथमें लिये यमराजकी भाँति अपना भयंकर रूप प्रकट किया। वे संशप्तकोंका संहार करने लगे। उन्होंने बिजलीके समान चमकीले बाणोंसे वहाँके समूचे आकाशको ढक दिया।

तदनन्तर अश्वत्थामा अर्जुनका सामना करनेके लिये चढ़ आया। उस समय वह क्रोधमें भरे हुए कालके समान जान पड़ता था। रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णपर दृष्टि पड़ते ही उसने भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी।

यह देख श्रीकृष्णने प्रेममिश्रित क्रोधके साथ कहा- पार्थ। तुम्हारे विषयमें तो आज मैं बड़ी अद्‌भुत बात देख रहा हूँ। आज द्रोणकुमार तुमसे बहुत बढ़-चढ़कर पराक्रम दिखा रहा है। अब तुममें पहले-जैसी वीरता है या नहीं? तुम्हारी दोनों भुजाओंमें बलका अभाव तो नहीं हो गया है? हाथमें गाण्डीव है न? यह सब इसलिये पूछता हूँ कि आज द्रोणकुमार संग्राममें तुमसे बढ़ता दिखायी देता है। मेरे गुरुका पुत्र है यह सोचकर उसकी उपेक्षा न करो। यह उपेक्षा करनेका समय नहीं है।

इसप्रकार अर्जुनने संशप्तकोंका, भीमने कौरव-योद्धाओंका तथा कर्णने पाञ्चालोंका एक ही क्षणमें विनाश कर डाला। बड़े-बड़े वीरोंका संहार करनेवाले उस भयंकर संग्राममें असंख्यों धड़ उठ-उठकर दौड़ रहे थे।

दुर्योधनकी बात सुनकर श्रेष्ठ क्षत्रियोंने हर्षध्वनि की। फिर सब ओर बाजे बजने लगे। उस समय अश्वत्थामाने वहाँ पहुँचकर कौरवोंके योद्धाओंको हर्षित करते हुए कहा, आप सब लोगोंने तो देखा ही था कि मेरे पिता अस्त्र डालकर योगमें स्थित हो गये थे, तो भी उन्हें धृष्टद्युम्नने मारा। इसके कारण तो मुझे अमर्ष ही है, मित्र दुर्योधनका हित भी करना है। इसलिये क्षत्रियों। मैं आपके समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्नको मारे बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा। यदि मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो तो मुझे स्वर्ग न मिले। लड़ाईमें अर्जुन या भीम जो भी मेरा सामना करने आयेंगे, उन सबको कुचल डालूँगा- इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

और सहसा अश्वत्थामा को स्मरण हो आया कि यह वही युधिष्ठिर है, जिसे उसके पिता ने सत्यवादी माना और उसके कथन पर विश्वास कर अपने पुत्र की मृत्यु की बात सत्य मान ली। उन्होंने शस्त्र त्याग दिए और धृष्टद्युम्न ने उनका मस्तक काट लिया। यदि युधिष्ठिर ने इस प्रकार का अर्द्धसत्य न बोला होता तो उसके पिता का वध संभव नहीं था। इसी युधिष्ठिर के षड्‌यंत्र से उसके पिता का वध संभव हो सका।

युधिष्ठिर के प्राणों पर कर्ण से अधिक अधिकार है, अश्वत्थामा का।

अश्वत्थामा को लगा, उसके मन में बहुत कटुता है। युधिष्ठिर ने अर्द्धसत्य बोल कर उसके पिता को मरवाया था। यह सात्यकि क्यों आया पांडवों को बचाने? जब यादवों में से कोई नहीं आया युद्ध करने, तो यह ही क्यों आ गया। इसे ही पांडव इतने प्यारे क्यों हैं। बहुत इच्छा है इसकी पांडवों की रक्षा की तो यह भी मरे। और ये पाँचों द्रौपदेय ये पाँचों ही द्रौपदेय... ये पाँचों ही द्रौपदी के पुत्र हैं। बहुत प्रिय हैं ये धृष्टद्युम्न को। उसके भागिनेय जो हैं। इनकी मृत्यु होगी तो कितना रोएगी द्रौपदी। कितना तड़पेगा धृष्टद्युम्न। हवन कुंड में से जन्म लिया है इन दोनों ने- अश्वत्थामा के पिता द्रोण के वध के लिए। तो अपने इन पाँचों पुत्रों को युद्ध के हवनकुंड में जलते हुए देखे द्रौपदी। ये सब अश्वत्थामा के क्रोध रूपी अग्निकुंड की समिधाएँ हैं। उसी में जलकर मरें। दिव्यास्त्र ही ठीक हैं इनके लिए। अश्वत्थामा आज बाणों के छकड़े के छकड़े अपने साथ लेकर चला है, तो उनका उपयोग भी तो होना ही चाहिए।

युधिष्ठिर ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर अश्वत्थामा पर आक्रमण किया। उधर अश्वत्थामा ने श्रुतकीर्ति का धनुष काट दिया। युधिष्ठिर के धनुष की भी प्रत्यंचा अश्वत्थामा ने काट दी। युधिष्ठिर ने तत्काल दूसरा धनुष लेकर अश्वत्थामा को बींध डाला। इससे सात्यकि को अवसर मिल गया। उसने अर्द्धचंद्राकार बाणों से अश्वत्थामा का धनुष काट दिया।

इसी बीचमें श्रीकृष्णकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने अर्जुनसे कहा- पार्थ। वह देखो, अश्वत्थामा धृष्टद्युम्नको मारनेके लिये बड़ा भारी उद्योग कर रहा है। इसमें संदेह नहीं कि वह उसे मार सकता है। धृष्टद्युम्न अब कालके समान अश्वत्थामाका ग्रास बना ही चाहता है, इसलिये तुम इसे शीघ्र छुड़ाओ। ऐसा कहकर महाप्रतापी श्रीकृष्णने, जहाँ अश्वत्थामा था, उधर ही अपने घोड़े बढ़ाये। श्रीकृष्ण और अर्जुनको आते देख उसने धृष्टद्युम्नको मारनेका विशेष उद्योग किया। अर्जुनने जब देखा कि अश्वत्थामा द्रुपदकुमारको घसीट रहा है, तो उसके ऊपर बहुत-से बाण मारे। गाण्डीवसे छूटे हुए वे बाण, जैसे साँप अपनी बाँबीमें घुसते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थात्माके शरीरमें धँस गये। उनसे पीड़ित होकर द्रोणपुत्रने धृष्टद्युम्नको तो छोड़ दिया और अपने रथमें बैठकर धनुष हाथमें ले अर्जुनको बींधना आरम्भ कर दिया।

श्रीकृष्णने कहा- धृतराष्ट्रके पुत्रोंने घेरकर युधिष्ठिरपर आक्रमण कर दिया है। वे आतुर हो गये हैं, इस समय उन्हें विशेष सेवाकी आवशक्यता है। अब शीघ्रता करनेका समय है; किन्तु पाञ्चाल तथा पाण्डववीर उनकी सहायता को दौड़ पड़े हैं। हर्षकी बात है कि धर्मराज युधिष्ठिर जीवित हैं।

सेनापति धृष्टद्युम्नने अमर्षमें भरकर अश्वत्थामाको बाणसे बींध डाला। इससे अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने इतने बाणोंकी वर्षा की जिनसे धृष्टद्युम्नके चारों ओरकी दिशाएँ ढक गयीं। इसी प्रकार धृष्टद्युम्नने भी कर्णके देखते-देखते द्रोणकुमारको अपने सायकोंसे आच्छादित कर दिया तथा उसका धनुष भी काट डाला।

सात्यकि का संकट देखकर युधिष्ठिर समझ गए कि इस समय सात्यकि उनको सहायता देने के स्थान पर उनकी सहायता पाने का अधिकारी है। उन्होंने पूरे वेग से अश्वत्थामा पर बाण चलाए और बोले, गुरुपुत्र। हम जानते हैं कि तुम युद्ध में पराक्रमी, महाबली, अस्त्रवेत्ता, विद्वान और वीर हो। पर मुझे लगता है कि तुम धृष्टद्युम्न से कतराते हो। यदि तुम अपना बल धृष्टद्युम्न पर दिखा सको, तो हम तुम्हारे सामर्थ्य को सम्मान दे सकते हैं। मैं जानता हूँ कि धृष्टद्युम्न जब तुम्हें पीड़ित करने लगता है तो तुम उसे समझाने लगते हो कि तुम ब्राह्मण हो और ब्राह्मण को मारने से उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। तुम्हारा कवच हो जाता है, तुम्हारा स्वयं को ब्राह्मण कहना, जबकि न तो तुम्हारा स्वभाव ब्राह्मणों का सा है और न ही तुम्हारे कर्म ब्राह्मणों जैसे हैं। क्षत्रिय तो तुम हो ही नहीं सकते। न तुम ब्राह्मण हो न क्षत्रिय। देखो, मैं तुम्हारे देखते-देखते कौरवों को जीतूँगा। आओ, समर में पराक्रम प्रकट करो, स्वधर्मभ्रष्ट ब्राह्मण?

इसप्रकार धृष्टद्युम्नको संकटसे मुक्त और अश्वत्थामाको पीडित देख पाञ्चाल वीरोंने बड़े जोरसे गर्जना की। हजारों दिव्य बाजे बज उठे। सब लोग सिंहनाद करने लगे। तदनन्तर, अर्जुन श्रीकृष्णसे बोले- अब संशप्तकोंकी ओर चलिये, उनका संहार करना इस समय मेरे लिये प्रधान काम है। उनकी बात सुनकर कृष्ण अपने रथके द्वारा संशप्तकोंकी ओर चल दिये।

चलते समय राहमें श्रीकृष्णने अर्जुनसे युधिष्ठिरको दिखाते हुए कहा- पाण्डुनन्दन। ये हैं तुम्हारे भाई युधिष्ठिर देखो, इन्हें मारनेके लिये अत्यन्त बलवान और महान् धनुर्धर कौरवयोद्धा बड़ी तेजीके साथ इनका पीछा कर रहे हैं। साथ ही उनकी रक्षाके लिये पाञ्चालदेशीय वीर भी उनके पीछे-पीछे जा रहे हैं। यह राजा दुर्योधन भी रथियोंकी सेनासे घिरकर राजा युधिष्ठिरपर धावा कर रहा हैं इसका भी उद्देश्य यही है कि युधिष्ठिरको मार डालें। इस कार्यमें इसके भाई भी साथ दे रहे हैं। ये हाथीसवार, घुड़सवार, रथी और पैदल- सभी उन्हें पकड़नेके लिये जा रहे हैं। अब देखो, सात्यकि और भीमने पहुँचकर यद्यपि इन्हें बीचमें ही रोक दिया है, तो भी ये संख्यामें अधिक होनेके कारण राजाकी ओर बढ़े ही चले जाते हैं। शत्रुको संताप देनेवाले राजा युधिष्ठिर भी यद्यपि बड़े बलवान हैं, युद्धकी कलामें निपुण हैं, उनका हाथ भी फूर्तीसे चलता है, तथापि कर्णने उन्हें रणसे विमुख कर दिया है। धृतराष्ट्रके पुत्र शूरवीर हैं, उनकी सहायता मिल जानेपर कर्ण अवश्य ही हमारे महाराजको कष्ट पहुँचा सकता है। इनके तथा और भी बहुत-से शूरवीरोंके साथ ये युद्ध कर रहे थे। उन सब महारथियोंने मिलकर उन्हें परास्त किया है।

श्रीकृष्ण के मुखसे ये बातें सुनकर अर्जुनने भीमके दुष्कर पराक्रमपर दृष्टिपात किया। फिर अपने बचे-खुचे शत्रुओंको बाणोंसे मारना आरम्भ किया। संशप्तक योद्धा यद्यपि बड़े बलवान थे तो भी वे अर्जुनकी मारसे युद्धमें नहीं ठहर सके। भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग गये।

उस समय भीम और कर्ण का युद्ध हुआ। भीम के डर से भागती हुई कौरवों की सेनाको बड़ी कोशिश करके रोका और कर्ण पाण्डवोंकी ओर बढ़ा। यह देखकर पाण्डवोंके महारथी भीम, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, धृष्टद्युम्न तथा प्रभद्रक आदि भी क्रोधमें भरकर सेनाका संहार करनेके लिये उसपर चारों ओरसे टूट पड़े। अर्जुनका सामना महारथी अश्वत्थामाने किया। भीमने अकेले ही समस्त कौरवों की सेना का वेग रोका। शिखण्डीने रणभूमिमें निर्भय विचरते हुए कर्णको अपने बाणोंसे आगे बढ़ने से रोक दिया। उस समय राजा युधिष्ठिर बाणोंके प्रहारसे बहुत घायल हो गये। वे नकुल तथा सहदेवके बीचमें होकर धीरे-धीरे शिबिरकी ओर जा रहे थे, ऐसी अवस्थामें भी कर्णने दुर्योधनके हितकी इच्छासे युधिष्ठिर का पीछा किया और उन्हें बाणोंसे बींध डाला। मद्रराज शल्य बोले, कर्ण तुम्हें तो आज अर्जुन से युद्ध करना है। क्रोधमें भरकर धर्मराजसे किसलिये लड़ रहे हो? इन्हें मारनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा। इधर देखो, अर्जुन रथियोंकी सेनाका संहार कर रहे हैं। उधर भीम दुर्योधनको दबोचे हुए हैं, हमलोगोंके देखते-देखते वे उसे मार न डालें इसके लिये प्रयत्न करो। दुर्योधन का प्राण संकटमें है चलकर उसे बचाओ।

कर्णने धर्मराज पर धावा किया। उनपर नाना प्रकारके हजारों अस्त्रशस्त्र चलायें किन्तु उन सबके टुकड़े-टुकड़े हो गये। पांडव और पाञ्चाल सैनिकोंने उसे रोका अवश्य किन्तु कर्ण उन सबको रोककर युधिष्ठिरके पास जा धमका। युधिष्ठिर बोला, सूतपुत्र तू युद्धमें अर्जुनसे लाग-डाँट रखता है और दुर्योधनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर हमलोगोंको कष्ट पहुँचाया करता है। यह कहकर युधिष्ठिरने कर्णको बाणोंसे बींध डाला।

तदनन्तर दुर्योधनने बड़े स्नेहके साथ कर्णसे कहा, महाबाहो। देखो, पाण्डव हमारी इस विशाल सेनाको बड़ा कष्ट पहुँचा रहे है। तुम्हारे रहते हुए यह भयके कारण भागी जा रही है। यह जानकर जो उचित समझो, करो। पाण्डवोंके खदेड़े हुए हमारे हजारों योद्धा अब तुम्हें ही सहायताके लिये पुकार रहे हैं।

कर्णके बाणसे मारे जाते हुए सृञ्जयोंका आर्तनाद सुनकर कुन्तीनन्दन अर्जुनने वासुदेवसे कहा- महाबाहु श्रीकृष्ण। आप इस भार्गवास्त्रके पराक्रमको तो देखिये। युद्धमें किसी तरह भी इसका नाश नहीं किया जा सकता।

कर्ण को भीम के पीछे युधिष्ठिर का रथ भी दिखाई दे रहा था। उसने सात्यकि और भीम की उपेक्षा कर सीधे युधिष्ठिर को पीड़ा देने की सोची। राजा को संकट में देखकर अर्जुन स्वयं ही दौड़ा आएगा। नहीं आएगा तो और भी अच्छा है, उसका राजा बंदी हो जाएगा।

कर्ण ने पहले ही रेले में पांचाल और चेदि सैनिक रौंद डाले। अनेक प्रभद्रकों के शव भी भूमि पर आ गिरे। धृष्टद्युम्न की पांचाल वाहिनियाँ कर्ण को घेर कर खड़ी हो गईं। कर्ण ने प्रभद्रकों को छोड़ दिया और भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिंदु, तपन और शूरसेन पाँच प्रमुख पांचालों को मार गिराया।

केवल आधी घटिका में ही उसने पांचालों के अग्रवर्ती पथकों को नष्ट कर दिया। एक ही समय वह पाँच-पाँच, छह-छह बाण प्रक्षेपित कर रहा था। पलक झपकने से पहले ही अपने भारी विजय धनुष से वह चारों दिशाओं में बाण फेंक रहा था।

अपने बड़े भाई धर्मराज से प्रतिज्ञा करके अर्जुन कर्ण का वध करने के निमित्त पूरे उत्साह से चले। उधर कौरव सेना और पांडव की सेना में घमासान युद्ध हो रहा था। दोनों ओर के वीर अपने विपक्षियों को पराजित करने के लिये प्राणपन से प्रयत्न कर रहे थे। पांडव सेना के वीरों ने दुर्योधन को बुरी तरह से तङ्ग किया। सभी ने मिलकर एक साथ ही दुर्योधन पर प्रहार किया। सबका संयुक्त प्रहार न सह सकने के कारण दुर्योधन युद्ध-भूमि से हटने लगे। पाञ्चाल और पांडव वीर कौरव सेना को खदेड़ने लगे। अपनी सेना को इस तरह भागते देखकर सेनापति कर्ण अत्यन्त ही क्रूद्ध हुए। उन्होंने शल्य से कहा- महाराज। मेरे रथ को पाञ्चाल वीरों के सामने ले चलो। ये लोग मेरे सैनिकों को बुरी तरह भगा रहे हैं।

शल्य ने कहा- महाभाग कर्ण। तुम्हारा कल्याण हो। मैं अभी आपको धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, भीम, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के सामने पहुँचाता हूँ, जो आपकी सेना का संहार कर रहे हैं। यह कहकर शल्य ने बड़े कौशल से रथ को हाँका और क्षण भर में पांडव सेना के प्रमुख वीरों के सम्मुख पहुँच गये। कर्ण वीर थे। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा अपने सहायक सैनिकों के साथ उनकी सहायता कर रहे थे। उनके तीनों पुत्र सुषेण, सत्यसेन और वृषसेन उनके रथ के दायें-बायें और पृष्ठ भाग की रक्षा कर रहे थे। कर्ण ने ऐसा घमासान युद्ध किया कि पांडव सेना के छक्के छुड़ा दिये। पांडवों ने विजय की आशा छोड़ दी और सर्वत्र हाहाकार मच गया।

धृष्टद्युम्न का रक्त खौल उठा। यह सूतपुत्र... यही है पांडवों के सारे अपमान का कारण। इसी ने द्यूतसभा में धृष्टद्युम्न की बहन, पांचाल राजकुमारी कृष्णा के लिए वे सारे अपशब्द कहे थे।

धृष्टद्युम्न, सात्यकि, पाँचों द्रौपदेयों, भीम, शिखंडी, नकुल तथा सहदेव ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया।

युधिष्ठिर अपने महारथियों की आड़ से निकलकर सामने आ गए। उन्होंने अर्जुन को कर्ण से लड़ने के लिए भेजा था। अर्जुन मार्ग में कहीं भटक गया। वह अभी तक अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा था। युधिष्ठिर और धैर्य नहीं रख सकते। वे कर्ण से लड़ने स्वयं ही आ गए थे। कब तक वे अर्जुन के भरोसे बैठे रहेंगे।

वीरों की वीरता सम्मुख ही प्रकट होती है। पीठ पीछे तो निर्बल लोग भी अपनी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं, सभी को खरी-खोटी सुनाते हैं। जो सम्मुख लड़कर युद्ध में वीरता दिखावे वही यथार्थ में सच्चा वीर है। वीर हमेशा कर्त्तव्य करके दिखाते हैं वे बहुत बकते और बड़बड़ाते नहीं। वे दूसरे की निन्दा की भी परवाह नहीं करते। दूसरे कुछ भी कहते रहें, उन्हें अपने काम से काम।

शल्य ने हर प्रकार से कर्ण को निरुत्साहित किया किन्तु कर्ण पर उसका कुछ भी असर न पड़ा। वह अपने निश्चय से तिलभर भी नहीं हटा। अपनी समस्त सेना सुसज्जित करके और एक अमोघ व्यूह बनाकर वह पांडवों की सेना के सम्मुख डट गया। वीर वेष में सूर्यपुत्र कर्ण को महाराज युधिष्ठिर ने देखा। वह विशाल रथ पर बैठा हुआ कालांतक यमराज के सदृश दिखाई देता था। उनकी शोभा ऐसी मालूम पड़ती थी मानो आकाश से दूसरा सूर्य उतरकर रणभूमि में प्रकाश करने आ डटा है। मद्रराज शल्य उनका सारथ्य कर रहे थे। मद्रराज भी अद्वितीय धनुर्धर थे। दोनों महावीरों को एक साथ रथ पर ही देखकर, धर्मराज विस्मित हुए। उन्होंने अर्जुन से कहा- अर्जुन। वह सामने देखो, सूतपुत्र कर्ण अपनी समस्त सेना को सुसज्जित करके घोर संग्राम के लिये खड़ा है। बस, आज ही परीक्षा का दिन है। तुम इस मेरे सदा खटकने वाले कंटक को निकाल कर फेंक दो।

अर्जुन ने कहा, धर्मराज। मैं ऐसा ही करूँगा। आप कोई चिन्ता न करें। मैं कर्ण को अवश्य आज मार डालूँगा। आप बड़ी सावधानी से समस्त सेना की कर्ण के बाणों से रक्षा करें। यह दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके हमारी समस्त सेना को नष्ट करने पर उतारू है। आप ऐसा उद्योग करें कि सेना डरकर भागने न पावे।

राजा युधिष्ठिर बहुत लज्जित होकर तुरंत वहाँसे हट गये और श्रुतकीर्तिके रथपर बैठकर कर्णका पराक्रम देखने लगे। अपनी सेनाको खदेड़ी जाती हुई देख धर्मराजने योद्धाओंसे कुपित होकर कहा- अरे। क्यों चुप बैठे हो, मारो इन कौरवोंको। राजाकी आज्ञा पाते ही भीम आदि पाण्डव-महारथी धृतराष्ट्र के पुत्रोंपर टूट पड़े। उस समय रथ, हाथी और घोड़ोंपर सवार हुए योधाओं तथा शस्त्रोंका भयंकर शब्द होने लगा और उठो, मारो, आगे बढ़ो, दबोच लो- इस प्रकार कहते हुए वे आपसमें मारकाट करने लगे। उन आक्रमणकारियोंके प्रचण्ड वेगको सहन करनेकी अपनेमें शक्ति न देखकर कौरवोंकी विशाल सेना भागने लगी।

धर्मराज ने कहा- सब अपनी ओर के महारथी अपनी-अपनी जोड़ी के महारथी से बाँटकर युद्ध करो। तुम कर्ण से भिड़ जाओ। मैं कृपाचार्य का सामना करता हूँ। भीम दुर्योधन से युद्ध करें। इसी तरह पाञ्चाल देशीय मद्र-देशियों को रोकें। धर्मराज ऐसा कहकर घोर युद्ध के लिये वीरों को उत्साहित करने लगे। दोनों ओर के वीर प्राणों का मोह त्यागकर परस्पर एक-दूसरे को मारने की इच्छा से बाणों की वर्षा करने लगे। बाणों की वर्षा से सूर्यनारायण दिखायी नहीं देते थे। सर्वत्र, मारो, काटो, पकड़ लो। देखो, जाने न पावे, तू जीता नहीं जा सकता। मैं तुझे बिना मारे न छोड़ूँगा। अरे। मेरा साथी मर गया। मेरा रथ टूट गया। उधर से मेरा रथ लाओ। उस हाथी को वहाँ बढ़ाओ। देखो सावधान रहना, वह आगे न बढ़ने पावे। खबरदार पीछे मत हटना। हाँ वीरों आगे बढ़ते चलो, विजय हमारी है। बस, अब तो मार ली बाजी। आज संग्राम समाप्त हो जायगा। कोई पीछे पैर न हटाना। या तो मरकर स्वर्ग प्राप्त करो, या विजय-लक्ष्मी का आलिङ्गन करो। ये ही शब्द चारों ओर सुनाई पड़ते थे। वहाँ इतना कोलाहल हो रहा था कि कोई किसी की बात नहीं सुन सकता था। रथों की घड़घड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, वीरों की हुमार, घायलों की चीत्कार और धनुष की टंकारों से दशों दिशाएँ गूँज रही थीं। दोनों ओर के वीर आँखें बन्द करके युद्ध कर रहे थे। वीरता के मद में मदान्ध हुए शूरों को अपने पराये का ज्ञान नहीं रहा। अर्जुन उधर अन्य वीरों को परास्त करने में लगे हुए थे, कि सामने ही धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण को दिखायी दिये। धर्मराज को देखकर शल्य से कर्ण ने कहा- महाभाग आप मेरे रथ को धर्मराज के सम्मुख ले चलें। शल्य रथ को बढ़ाकर धर्मराज के समीप ले गये।

धर्मराज ने जब अपने सम्मुख युद्ध करने की इच्छा से कर्ण को देखा, तब तो उनके क्रोध का पारावार नहीं रहा। वे गरजकर बोले, अरे नीच, सूत-पुत्र। मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आज तेरी सूरत दिखायी दी। आज मैं तुझे अपने बाणों से मारकर अपने सभी दु:खों को भुलाऊँगा। नीच एकमात्र तू ही हमारी विपत्ति का कारण है। तेरे ही बल भरोसे पर तेरे ही

पराक्रम की आशा पर दुर्योधन ने हम पर भाँति-भाँति के अत्याचार किये और युद्ध आरम्भ किया। आज मैं दुर्योधन की आशा को तुझे मार कर विफल बना दूँगा। तू जल्दी से सम्हल जा।

कर्ण ने हँसते हुए कहा- धर्मराज। बहुत बड़बड़ाने से तो काम चलने का नहीं। मैं गीदड़-धमकियों में आनेवाला नहीं। बन्दर-घुड़की किसी दूसरे को देना। कर्ण बहुत बकता नहीं, वह पराक्रम दिखाकर उत्तर देता है। अच्छा मैं तैयार हूँ। तुम मेरे ऊपर प्रहार करो। इतना सुनते ही धर्मराज क्रोध में भरकर कर्ण के ऊपर बाण वर्षा करने लगे। कर्ण भयंकर बाणों को छोड़कर धर्मराज को व्यथित करने लगे। कुन्ती को दिये हुए वचनों को वे भूले नहीं थे। उन्हें धर्मराज की जान नहीं लेनी थी। किन्तु आज उन्हें परास्त करने की उसने ठान ली थी। धीरे-धीरे युद्ध ने भयमर रूप धारण कर लिया। धर्मराज ने कानों तक धनुष की डोरी खींचकर एक बाण ऐसा मारा कि उसके लगते ही कर्ण थोड़ी देर के लिये बेहोश हो गये। बुद्धिमान सारथी शल्य रथ को युद्धभूमि से हटा ले गये। चेतना होने पर कर्ण ने कहा- शल्य तुम इसी समय मेरे रथ को धर्मराज के सम्मुख ले चलो आज मैं उन्हें बिना परास्त किये मानूँगा नहीं।

धर्मराज को भागते देखकर पाञ्चाल वीरों ने कर्ण को रोका। किन्तु जैसे समुद्र के भयंकर तूफान को कोई रोक नहीं सकता, उसी तरह कर्ण को कोई रोक न सका। भागते हुए धर्मराज का उन्होंने पीछा किया। थोड़ी ही देर में कर्ण भागते हुए धर्मराज के टूटे रथ के समीप पहुँच गये। उन्होंने रथ से रथ भिड़ाकर एक पैर धर्मराज के रथ पर रखकर धर्मराज के कन्धे पर अपना हाथ रखा। आज भाई ने भाई के गले में हाथ डाल दिया। कर्ण की इच्छा धर्मराज को मारने की नहीं थी। उन्होंने सोचा- जीते ही इन्हें पकड़ लूँ, फिर छोड़ दूँगा। यही सोचकर धर्मराज को पकड़ने की इच्छा से उनके कन्धे को स्पर्श किया। शल्य बड़े घबड़ाये। उन्होंने सोचा मेरे भानजे को यह जीता ही पकड़ लेगा। अत: डाँटकर कर्ण से बोले- कर्ण। धर्मराज को बाँधने की उन्हें छूने की इच्छा मत करना। ये साक्षात् धर्म के अवतार है। अभी अपनी रोष भरी दृष्टि से तुझे और मुझे भी भस्म कर डालेंगे। इन्हें पकड़ना मत।

इधर शल्य भी बोल उठे- कर्ण महाराज युधिष्ठिरको हाथ न लगाओ, मुझे भय है कि कहीं पकड़ते ही ये तुम्हें मारकर भस्म न कर डालें।

कर्ण बोला, शल्य। युधिष्ठिर का पीछा करो। रथ उसके एकदम निकट ले चलो। मैं बलपूर्वक युधिष्ठिर को बंदी करूँगा।

कर्ण तत्काल सचेत भी हो गया। उसके आक्रोश का यह आकस्मिक विस्फोट कैसे हो गया। कुछ सँभलकर उसने कहा, युधिष्ठिर का रोष ही तुम्हें भस्म कर देगा।

शांतिप्रिय युधिष्ठिर के मुख से युद्ध की चुनौती सुनकर कर्ण को हँसी आ गई। वह युद्ध संबंधी ऐसी चुनौती और युधिष्ठिर में जैसे कोई संबंध ही नहीं जोड़ पा रहा था। उसने हँसकर दस वत्सदंत बाण युधिष्ठिर पर छोड़ दिए। युधिष्ठिर का कवच वत्सदंतों को रोक नहीं सका। कवच क्षतविक्षत हो गया और वे घायल हो गए।

युधिष्ठिर का धनुष कट गया। कवच छिन्न-भिन्न हो गया। उनका शरीर अपने रक्त से भीग गया था। युधिष्ठिर ने दृष्टि उठाकर कर्ण की ओर देखा। पर दोष कर्ण का तो नहीं था। वे ही तो उसकी ओर से असावधान हो गए थे। वह अचेत ही तो हुआ था, निष्प्राण तो नहीं हो गया था। चेतना का क्या है, कभी भी लौट सकती है। योद्धा गिरता है और फिर उठकर खड़ा हो जाता है। वे कर्ण को भूल क्यों गए थे?

युधिष्ठिर ने कर्ण पर शक्ति चलाई। कर्ण ने उसे काट डाला। युधिष्ठिर ने एक के पश्चात् एक कर चार तोमर चला दिए। तोमरों ने कर्ण के शरीर को पुन: घायल कर दिया। उसके शरीर से पुन: रक्त बहने लगा थां कर्ण को जैसे किसी आवेश ने

जकड़ लिया। उसने भल्लों की मार से युधिष्ठिर के रथ की ध्वजा काट डाली और रथ के भी टुकड़े कर दिए। युधिष्ठिर को कष्ट में देखकर उसे एक विचित्र प्रकार का सुख मिलता था।

वैद्य ने सलाह दी, राजन्। मेरा प्रस्ताव है कि रथ शिबिर की ओर ले चलें। इस स्थिति में आप युद्ध नहीं कर पाएँगे। रक्त का स्राव रुक तो जाएगा; किंतु युद्ध से रक्त पुन: स्रवित होने लगेगा। आज के लिए तो आप युद्ध स्थगित ही कर दें।

आगे चलिये मद्र नरेश। शल्य बोला, क्या तुमने नकुलको मेरा भान्जा समझकर छोड दिया उसे अंगराज? कर्ण बोला, बडे छोटों को डांट देते है परन्तु उनका वध नहीं करते। मेरे रथ को युधिष्ठिर के रथ की ओर ले चलिये। युधिष्ठिर और दुर्योधन का संग्राम हो रहा है।

शल्य जल्दी से फिर रथ को धर्मराज के सम्मुख ले गये। दोनों में फिर भयंकर युद्ध होने लगा। जैसे दो चील्हें आकाश में माँस के टुकड़े के लिये लड़ती है वैसे ही दोनों धर्मराज और कर्ण लड़ने लगे। पहिले सत्य के कारण धर्मराज का रथ हमेशा पृथ्वी से ४ अँगुल ऊपर आकाश में उड़ता था। जिस दिन उन्होंने द्रोणाचार्य के सम्मुख अश्वत्थामा मारा गया यह झूठ वचन बोला उसी दिन से उनका रथ सर्वसाधारण वीरों की तरह पृथ्वी पर ही चलने लगा। कर्ण ने अब धर्मराज को लक्ष्य करके अनेकों बाण छोड़े। धर्मराज भी बड़ी वीरता से कर्ण का सामना कर रहे थे, किन्तु कर्ण महाबली था। शनै: शनै: धर्मराज का पक्ष कमजोर पड़ने लगा। कर्ण ने अपने बाणों से रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया और धर्मराज के हृदय में ऐसे बाण मारे कि वे उन बाणों की असह्य वेदना से व्यथित होकर रण छोड़कर भाग खड़े हुए।

कर्ण ने कहा, युधिष्ठिर। क्षत्रिय युद्ध से भागते नहीं। तुम क्षत्रिय धर्म में निपुण नहीं हो। तुम ब्रह्मबल, स्वाध्याय और यज्ञकर्म में ही निपुण हो। अत: न युद्ध किया करो, न वीरों के सामने आया करो। अपने घर जाओ या वहाँ जाओ, जहाँ कृष्ण और अर्जुन हैं। कर्ण समरांगण में तुम्हारा वध नहीं करेगा।

कर्ण की इच्छा भी धर्मराज को तङ्ग करने की न थी। वह उन्हें केवल लज्जित करना चाहते थे। सो धर्मराज स्वयं ही बड़े लज्जित हो रहे थे। कर्ण ने उन्हें पकड़ने का विचार छोड़ दिया और हँसते हुए बोले- धर्मराज। आप युद्ध करना क्या जाने? जङ्गलों में पूजा-पाठ कीजिये और ब्राह्मणों को बहुत-सा दान दीजिये। यही काम आपके उपयुक्त हैं। धनुष बाण और गदा तलवार आपके हाथों में शोभा नहीं देती। आपके मुख से धर्म का व्याख्यान ही शोभा देता है। वीरता की बातें आपके मुख से लज्जास्पद प्रतीत होती हैं। आप तपस्या कीजिये शरीर को सुखाइये। अतिथियों को आप अपने सत्कार से सन्तुष्ट कर सकते हैं। शूरवीर योद्धाओं को रण में सन्तुष्ट करने में आप समर्थ नहीं हैं। आपको पैदल यात्रा ही शोभा देती है, रथ पर चढ़कर युद्ध यात्रा आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। जल्दी से प्राण लेकर भाग जाओ। फिर कभी मेरे जैसे वीर का सामना मत करना। यह कहकर कर्ण ने अपना रथ लौटा दिया। धर्मराज अपनी जान लेकर भाग गये।

कर्ण ने उसे बाणों से बींधना आरम्भ किया और युधिष्ठिर को पराजित किया। कर्ण को माता कुन्ती को दिया वचन स्मरण आया। कर्ण बोला, तुम तो आचार्य द्रोण की दी हुई युद्धकला की शिक्षा को बिल्कुल ही भूल चुके हो युधिष्ठिर तो फिर तुमसे मैं क्या युद्ध करूं? रथ आगे बढाइये मद्र नरेश और उसे छोडकर अर्जुन के सामने आ गया।

यह सुनकर कर्ण हँस पड़ा और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका उपहास करते हुए कहने लगा- युधिष्ठिर। जिसका उच्च कुलमें जन्म हुआ हैं, जो क्षत्रियधर्ममें स्थित है, वह भयभीत होकर प्राण बचानेके लिये युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता है? मेरा तो ऐसा विश्वास है, तुम क्षत्रियधर्मके पालनमें निपुण नहीं हो; क्योंकि सदा ब्राह्मणोचित स्वाध्याय और यज्ञोंमें ही लगे रहते हो। कुन्तीनन्दन। आजसे लड़ाईमें न आना, शूरवीरोंका सामना न करना तथा उनके लिये मुँहसे अप्रिय बातें भी न

निकालना। इतने बड़े समरमें तो कभी जानेका नाम न लेना। राजन। अपनी शिबिरमें जाओ अथवा श्रीकृष्ण और अर्जुन जहाँ हैं, वहाँ ही चले जाओ। ऐसा कहकर कर्णने युधिष्ठिरको छोड़ दिया और पाण्डवसेनाका संहार करने लगा।

शल्य ने कहा- तुम इतने वीर होकर धर्मराज को क्यों मारना चाहते हो? धर्मराज और नकुल को मारने से तुम्हें लाभ ही क्या होगा? इन्हें जान से मत मारो। देखो सामने महापराक्रमी भीम दुर्योधन को मारने पर उतारू हैं। वहाँ चलकर उनकी रक्षा करो। धर्मराज को और नकुल, सहदेव को मारने से तुम्हें कुछ भी हाथ न लगेगा। हाँ अर्जुन को मारकर तुम हम सबके राजा बन सकोगे। वह देखो, सफेद घोड़ों से युक्त रथ में बैठे हुए सव्यसाची वीर अर्जुन दिखाई देते हैं। तुम तो अर्जुन को दिखानेवाले को अपना सम्पूर्ण राज्य देने को तैयार थे। अब मैं तुम्हें उन महावीर अर्जुन को दिखाये देता हूँ, जिनके सारथी वासुदेव हैं। देवकीनन्दन जिस रथ को हाँक रहे हैं, वहाँ चलकर तुम अपनी वीरता दिखाओ। मैं भी अपनी रथ हाँकने की चातुरी दिखाऊँगा। अब यहाँ अधिक समय बिताना ठीक नहीं है। यदि यहीं तुम अपनी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त कर दोगे और बाणों को खाली कर दोगे तो अर्जुन के सामने तुम्हें लज्जित और पराजित होना पड़ेगा। बराबर के वीर के सम्मुख ही लड़ने में शोभा है। तुम्हारी प्रशंसा तो अर्जुन के मारने में ही है। तभी तुम्हारा नाम होगा और दुर्योधन का काम होगा। सबसे पहिला काम तुम्हारा दुर्योधन की रक्षा और अर्जुन को हराना है। उसमें अपनी पूरी शक्ति लगा दो धर्मराज को छोड़ दो।

बड़े लोगोंमें भी कभी-कभी बिना बात बतंगड़ बढ़ जाता है ओर वह बड़े भारी अनर्थका कारण हो जाता है। अत्यन्त उपेक्षणीय बातोंको कारण बनाकर विश्वमें अनेकों बार विनाशने महाताण्डव किया है। ऐसे महा अनर्थका अवसर पाण्डवोंके मध्य भी आ गया और अत्यन्त तुच्छ बातको लेकर ही आया; किन्तु श्रीकृष्ण जहाँ सदा सावधान संरक्षक हैं, वहाँ अनर्थ कभी अपने पैर जमा नहीं सका। उसके सब प्रपञ्च शीघ्र वायुमें विलीन हो जाते हैं।

महाभारत युद्धका सत्रहवाँ दिन था। कर्णके सेनापति बननेपर तो दो दिन ही वह युद्ध कर सका था। उसके सेनापतित्वका दूसरा दिन। धर्मराज युधिष्ठिरने युद्धके प्रारम्भमें ही कर्णको ललकार दिया। उन्होंने कर्णको अपने आघातसे मूर्च्छित भी कर दिया; किन्तु उसे फिर नहीं मारा। सचेत होकर कर्णने धर्मराजके रथके दोनों चक्ररक्षक मार दिये। युधिष्ठिरका धनुष तथा कवच काट दिये। कवच कटजानेपर बाणोंके द्वारा आहत होकर युधिष्ठिर रक्त स्नात हो गये। कर्णने उनका रथ भी नष्ट कर दिया।

युधिष्ठिर दूसरे रथपर चढ़कर भागे; किन्तु कर्णने उनका पीछा किया। उसने शस्त्र कवच हीन युधिष्ठिरके कन्धेपर हाथ रख दिया। कर्ण चाहता तो युधिष्ठिरको बन्दी बना लेता। दुर्योधनने उसे यह करनेको कहा भी था; किन्तु कर्णको कुन्तीको दिये अपने वचन स्मरण आ गये। शल्यने भी उसे रोका- धर्मराज तुम्हें दृष्टिसे भी भस्म कर सकते हैं।

कर्णमें जहाँ सब सद्गुण थे, वहाँ एक बड़ा दुर्गुण भी था। वह बोलनेमें वाणीपर नियंत्रण नहीं रख पाता था। इस सम्बन्धमें बहुत अशिष्ट था। अनेक बार उसे स्वयं अपनी अशिष्टतापर पश्चात्ताप हुआ है। उसने युधिष्ठिरका भी अपमान किया। उन्हें उल्टी-सीधी सुनाई उच्च कुलमें उत्पन्न होकर, क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर प्राण बचानेके लिए भाग कैसे रहे हो? तुम क्षत्रियधर्ममें निपुण नहीं हो। ब्राह्मणोचित स्वाध्याय तथा यज्ञ करना ही जानते हो। अब लड़ाईमें मत आना। वीरों को कभी भूलकर भी मत ललकारना। हम जैसोंसे कड़ी बात कहोगे तो उसका यही फल होगा। अब शिबिरमें अथवा अर्जुनके समीप चले जाओ।

युधिष्ठिर के मन में खीज जन्मी। इस व्यक्ति को कोई क्या कहे, जो बोलने से पहले कुछ भी सोचता नहीं है। अपने व्यवहार पर तो कभी उसकी दृष्टि जाती ही नहीं है। युद्धों से भागने का जिसने इतिहास रचा हो, वह दूसरों पर कटाक्ष कर रहा

है। अभी थोड़ी देर पहले जो उनके बाण से विद्ध हो अचेत पड़ा था, वह कर्ण तो वीर हो गया; और जिस युधिष्ठिर ने उसे असमर्थ जानकर उस पर प्रहार करना उचित नहीं समझा, वह क्षत्रिय समझे जाने योग्य भी नहीं रह गया।

युधिष्ठिर ने देखा कि कर्ण अब उनके पीछे नहीं आ रहा; किंतु उनके अपने रथ का वेग भी शिथिल होता जा रहा है।

सारथी ने कहा, महाराज। घोड़े बहुत थक गए हैं।

कर्णको आते देख भीम क्रोधमें भर गये। उन्होंने सूतपुत्रको मार डालनेका विचार करके वीरवर सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नसे कहा- अब तुमलोग महाराज युधिष्ठिरकी रक्षा करो। अभी मेरे देखते-देखते उन्हें बहुत बड़े संकटसे किसी तरह छुटकारा मिला है। दुरात्मा कर्णने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये मेरे सामने ही उनकी समस्त युद्धसामग्रीको तहस-नहस कर डाला है। इससे मुझे बड़ा दु:ख हुआ है; अब मैं उसका बदला चुकाऊँगा आज घोर संग्राम करके या तो मैं ही कर्णको मार डालूँगा या वही मेरा वध करेगा। राजाको मैं तुम्हें धरोहरके रूपमें देता हूँ; उनकी रक्षाके लिये सब प्रकारसे यत्न करना।

कर्ण को युद्ध में उलझा देख महापराक्रमी भीम समुद्र के ज्वार की भाँति कौरव सेना को ध्वस्त करता हुआ आगे बढ़ा। अपने शक्तिशाली पुत्र घटोत्कच के कर्ण द्वारा वध का प्रतिशोध लेने के लिए वह रणभूमि में कर्ण के पुत्र की खोज में था। और अब वह अवसर उसे मिल गया।

पराक्रमी कर्णपुत्र प्रसेन आधी घटिका भीम से लड़ा, किन्तु अन्त में भीम के फेंके एक चन्द्रमुख बाण से आहत होकर वह धरती पर गिर गया, और कुछ ही देर में छटपटाता हुआ गतप्राण हुआ। युधिष्ठिर ने बाण-वर्षा से कर्ण के रथ को ढँक दिया, किन्तु कर्ण ने बाणों के उस आवरण को क्षणभर में ही ध्वस्त कर डाला।

भीम का रथ सबसे पहले रुका। उसके साथ ही सात्यकि और धृष्टद्युम्न के रथ भी रुक गए। वे लोग कौरवों पर टूट पड़े। भीम इस समय बहुत ही उग्र हो रहा था। युधिष्ठिर के शरीर से बहता रक्त जैसे उसके अपने हृदय से रक्त टपका रहा था। शकुनि ने भीम को रोकने का प्रयत्न किया; किंतु वह उसके लिए संभव नहीं था। कर्ण की दृष्टि उधर गई। युद्ध का परिदृश्य जैसे एकदम बदल गया था। थोड़ी देर पहले तक युधिष्ठिर भाग रहे थे और इस समय दुर्योधन और उसके सैनिक भाग रहे थे। भीम का सामना करने का साहस कोई नहीं कर रहा था। उसने शल्य को संकेत किया, भीम के सामने चलो।

शल्य ने कर्ण की ओर देखा, भीम असाधारण रूप से क्रुद्ध दिखाई दे रहा है। इतना क्रुद्ध तो वह घटोत्कच और अभिमन्यु के मरने पर भी नहीं हुआ था।

कर्ण बोला, तुम शायद मुझे डराने के लिए यह सब कह रहे हो। पर अच्छा है कि वह क्रोध में है। क्रोध में ही मनुष्य असावधान हो जाता है। उसे भी उन्माद में लड़ने दो। मैं भीम का वध कर दूँगा तो अर्जुन मुझसे लड़ने अवश्य आएगा।

शल्य हँस पड़ा और बोला, तुम भीम का वध कर दो। अर्जुन अवश्य आएगा।

शल्य की हँसी कर्ण के हृदय में घाव कर गई। स्पष्टत: शल्य उसका विद्रूप बना रहा था। उसने आँखें तरेरीं, तुम चलो तो। भीम बोला, मैं कर्ण का वध नहीं करूँगा। यह कर्ण अपने शस्त्रों से तो कुछ कर नहीं पाता; किंतु अपनी जिव्हा से सबको अपमानित करता फिरता है। इसने इसी जिह्वा से धर्मराज को अपमानित किया। इसी से पांचाली को अकथनीय कहा। मैं इसकी जिह्वा काटकर इसे जीवित छोड़ देता हूँ, ताकि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ले।

उस महासंग्राममें कर्णको युद्धसे विमुख होते देख दुर्योधनने अपने भाइयोंसे कहा- तुम लोग शीघ्र जाकर कर्णकी रक्षा करो। वह भीमके भयके कारण अगाध संकट-समुद्रमें डूब रहा है। राजाकी आज्ञा पाकर वे क्रोधमें भर गये और जिस प्रकार पतंगे आगकी ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार भीमको मार डालनेकी इच्छासे उनपर टूट पड़े। श्रुतर्वा, दुर्धर, क्राथ,

विवित्सु, विकट, सम, निषंगी, कवची, पाशी, नद, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसध, शल ओर सह- ये लोग रथियोंसे घिरे हुए दौड़े और भीमको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। फिर तो उन्होंने नाना प्रकारके बाणोंकी झड़ी लगा दी। महाबली भीम उनके प्रहारोंसे पीडित हो रहे थे, तो भी उन्होंने आपके पुत्रोंके पाँच सौ रथोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं और पचास रथियोंको यमलोक भेज दिया।

कर्ण को समरभूमि से हटते देखकर दुर्योधन के अनेक भाई मिलकर भीम पर टूट पड़े। भीम ने देखो। कितने ही पहचान में आ रहे थे, श्रुतर्वा, दुर्धर, क्रथन, विवित्सु, विकट, सम, निषंगी, कवची, पाशी, नन्द, उपनन्द, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसंध, शल, सह। उन्होंने भीम पर आक्रमण किया था। उनका यह आक्रमण भीम के लिए जैसे वरदान सिद्ध हो रहा था। उसका क्रोध एक लक्ष्य पाकर प्रसन्न हो गया था।

भीम ने सबसे पहले विवित्सु को मारा। उसके पश्चात् विकट और सम आए। भीम के एक-एक बाण पर जैसे वे मर रहे थे, उससे भीम को लग रहा था कि वे युद्ध नहीं कर रहे थे, युद्ध का नाटक कर रहे थे। सूत्रधार की इच्छा पर जैसे युद्ध का स्वांग कर एक-एक बाण पर गिरते जा रहे थे। क्रथन भी मारा गया। नन्द और उपनन्द एक साथ आए और निमिष भर के अंतराल में वे दोनों भी धराशायी हो गए।

जब महापराक्रमी भीम ने यह देखा कि धर्मराज को इसने बहुत भयभीत किया है, तब वे दूसरों से युद्ध छोड़कर कर्ण से आकर भिड़ गये। दोनों वीरों में बहुत कहा सुनी और लड़ाई हुई। एक-दूसरे को परास्त करने के लिये बाज पक्षी की तरह झपट्टा मारने लगे। जैसे दो साँड़ गौ के लिये परस्पर लड़ते हैं उसी तरह विजय की इच्छा से वीर कर्ण और गदापाणि भीम आपस में युद्ध करने लगे। एक-दूसरे के ऊपर बाणों की वर्षा करते, भाँति-भाँति के पैतरे बदलते और आपस में खरी-खोटी सुनाते। बड़ी देर तक कर्ण और भीम का युद्ध होता रहा। धर्मराज आगे जाकर सैनिकों को उत्साहित करने लगे। दैव संयोग से फिर युधिष्ठिर और कर्ण में भिड़न्त हो गई। धर्मराज कर्ण के बाणों से व्यथित हुए। अन्य लोगों ने आकर धर्मराज की रक्षा की। इतने में ही नकुल सहदेव ने आकर कर्ण के ऊपर बाणों की वर्षा आरम्भ की। अपने दोनों छोटे भाइयों को कर्ण से लड़ते देखकर धर्मराज भी उनकी सहायता के लिये आ पहुँचे। तीनों भाई कर्ण से भिड़ गये। कर्ण तीनों में से किसी को भी जान से मारना नहीं चाहते थे, किन्तु आज वे अपना अस्त्र कौशल दिखा रहे थे। उन्होंने भयमर बाण वर्षा करके धर्मराज और नकुल को ढक दिया। उनके सारथी को मार डाला। रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये घोड़ों को भी मार गिराया। धनुष को तोड़ दिया, रथहीन और धनुषहीन होकर धर्मराज और नकुल बहुत घबड़ाये। कर्ण आगे बढ़े। अब शल्य के होश उड़ गये। उसने समझा अब कर्ण मेरे दोनों भानजों की जान लेना ही चाहता है। इसीलिये उन्हें समझाकर बोले- महावीर कर्ण। धर्मराज को जान से मारने में तुम्हारा क्या लाभ होगा? तुम्हारी प्रतिज्ञा तो अर्जुन को मारने की है। चलकर महावीर अर्जुन से युद्ध कीजिये। परन्तु कर्ण ने शल्य की बात पर कुछ भी ध्यान न दिया। वे धर्मराज की ओर बढ़ते ही गये। इस पर शल्य ने उनका ध्यान बँटाने के लिये इधर-उधर की बातें आरम्भ कर दी।

कर्णने पांडवों के वध के लिए अपना दिव्यास्त्र प्रकट किया। बाणों की पहली बौछार, युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न पर पड़ी। उनकी गति अवरुद्ध हो गई। युधिष्ठिर की सेना पर इतने बाण बरसो कि वह स्थिर नहीं रह सकी। अपनी सेना को कर्ण के इस प्रहार से बचाना युधिष्ठिर के लिए कठिन हो रहा था। उनकी सेना समरभूमि छोड़कर भाग चली। कर्ण बड़े प्रबल ढंग से अपने दिव्यास्त्रों का प्रदर्शन कर रहा था। उसे युधिष्ठिर को पीड़ित करने में रस आने लगा था। युधिष्ठिर के शरीर से टपकता रक्त उसको सुख दे रहा था। यही है युधिष्ठिर जिसने उससे कुंती जैसी माँ छीन ली। कुंती युधिष्ठिर की माँ हैं, और कर्ण की

नहीं है। यही है युधिष्ठिर... जिसने उससे द्रौपदी छीन ली। इसको उसका मूल्य चुकाना होगा। इसने जीवन में जितना सुख पाया है, उतना ही उसे अपना रक्त बहाना होगा।

शल्य ने देखा कि युधिष्ठिर पीड़ित होते जा रहे थे। युधिष्ठिर जितने दीन होते जाते थे, कर्ण उतना ही क्रूर होता जाता था। वह उनका वध नहीं करना चाहता था, उनके शरीर के रोम-रोम को अपने बाणों से गोदना चाहता था। युधिष्ठिर की कराह के साथ उसको किसी आनन्द की अनुभूति होती थी। युधिष्ठिर की पीड़ा और दीनता तो शल्य को कष्ट दे रही थी। कर्ण का बढ़ता हुआ दर्प उसके लिए असहनीय हो रहा था। कर्ण को रोकने के लिए उसे कुछ करना होगा।

पर तभी युधिष्ठिर का आत्मबल कुछ ऐसा प्रबल हुआ कि उन्होंने कर्ण का मुख अपने बाणों से बंद कर दिया। उनके बाणों ने कौरव सेना में हाहाकार मचा दिया। युधिष्ठिर जिस ओर अपनी क्रुद्ध दृष्टि डालते थे, उस दिशा में कौरव सेना छिन्न-भिन्न हो जाती थी, जैसे उनके बाण नहीं, उनका क्रोध ही विरोधियों का संहार कर रहा हो।

कौरव सेना में एक जोर का कोलाहल उठा, युधिष्ठिर को पकड़ लो।

कर्ण ने बाण मारे और जैसे युधिष्ठिर के घावों को और खोल दिया। बाध्य होकर युधिष्ठिर ने स्वयं को पुन: युद्ध के लिये तैयार किया। अपना धनुष उठाया और कर्ण को गंभीर चोट पहुँचाई। अश्वों और सारथी को भी घायल कर दिया। युधिष्ठिर को लग रहा था कि कर्ण उनसे युद्ध नहीं कर रहा था। वह केवल उन्हें अपमानित कर रहा था। वह उन्हें चिढ़ा रहा था। क्षत्रियों के इस क्षेत्र में उनका उपहास करने का प्रयत्न कर रहा था।

शल्य को युधिष्ठिर का यह पहला ही बाण लगा था। युधिष्ठिर ने सोच-समझकर उसे मारा है या उनका कोई बाण बहककर इधर आ गया है? शल्य ने सोचा जान-बूझकर ही मारा होगा। अपना क्रोध दिखाया होगा। क्यों वह कर्ण का रथ हाँक कर उनके पीछे ला रहा है।

कर्णके द्वारा अत्यन्त आहत तथा अपमानित होकर राजा युधिष्ठिर शिबिरमें लौट आये। उनका शरीर इस समय युद्ध करने योग्य नहीं था और अपमानके कारण अन्त:करण अतिशय क्षुब्ध था।

कर्ण के आगे से भागकर युधिष्ठिर सीधे अपने शिबिर में जा बैठा। उसे रणभूमि में न पाकर आशंकित हुए अर्जुन के बाण अपने लक्ष्य से चूकने लगे। उसे युधिष्ठिर की सुरक्षा का विश्वास दिलाने के लिए कृष्ण धीरे-धीरे नन्दिघोष को रणभूमि से बाहर निकालकर युधिष्ठिर के शिबिर के पास ले गये। रथचक्रों की ध्वनि सुनकर युधिष्ठिर दौड़ता हुआ बाहर आया।

पाण्डवों के अग्रवर्ती दलों को तितर-बितर करते हुए पाण्डव सेना में घुसे कर्ण का और युधिष्ठिर का सामना हुआ। लम्बे समय तक युधिष्ठिर को परेशान करके कर्ण ने उसके सारथी इन्द्रसेन को रथ से गिरा दिया।

इन्द्र तत्क्षण गतप्राण हुआ। असहाय होकर युधिष्ठिर रणभूमि से भाग खड़ा हुआ।

युधिष्ठिर भीम प्रभृतिको कौरवोंपर आक्रमण करनेके लिए उत्तेजित करके शिबिरमें आये थे। उस समय अर्जुन संशप्तकोंके साथ संग्राममें व्यस्त थे। भीमने कर्णपर आक्रमण किया। उनके आघातसे कर्ण मूर्च्छित हो गया। शल्य उसे वहाँसे हटा ले गया। संशप्तकोंके साथ युद्धमें लगे होनेपर भी श्रीकृष्णकी दृष्टि मुख्य युद्ध भूमिपर लगी थी। वे अर्जुनको मुख्य युद्धका समाचार देते जा रहे थे। उन्होंने राजा युधिष्ठिरके युद्धमें लगनेकी बात कही। उन्होंने यह भी कहा कि कर्ण धृतराष्ट्रके महारथी पुत्रोंको उत्तेजित कर रहा है कि वे युधिष्ठिरको मार डालें।

श्रीकृष्णने भीमके प्रबल पराक्रम तथा शत्रुसंहारकी बहुत प्रशंसा की। उनके युद्धका पूरे विस्तारसे वर्णन सुनाया।

कर्ण सम्भवत: युधिष्ठिरको पकड़ भी लेता; किन्तु शल्यने उसे उसी समय कह दिया- तुमको तो अर्जुनसे युद्ध करना है

और अर्जुन वहाँ सेनाका संहार कर रहे हैं। उसी समय दुर्योधनको भीमने आक्रान्त कर रखा था। कर्णको दुर्योधनकी सहायताके लिए दौड़ना पड़ा। उसके चले जानेपर युधिष्ठिर सहदेवके तीव्रगामी रथपर बैठकर शिबिरमें लौट आये थे।

शल्य ने कहा, अंगराज। तुम्हें अर्जुन से युद्ध करना है तो क्यों इनके पीछे पड़े हो। उसे क्यों नहीं खोजते। व्यर्थ ही स्वयं को और अपने घोड़ों को थका रहे हो। इन मरे हुओं को मारकर क्या पाओगे? अपना उपहास ही तो कराओगे।

शल्य ने पुन: प्रयत्न किया, दुर्योधन ने तुम्हारा चयन किया है, अर्जुन से लड़ने के लिए। युधिष्ठिर से तो कोई भी लड़ सकता है। और देखो, यह मर गया तो अर्जुन सारे कौरव महारथियों का काल बन जाएगा। यदि अर्जुन मारा गया तो ये तीनों कुछ नहीं कर पाएँगे। तुम जड़ उखाड़ने के स्थान पर पत्ते तोड़ रहे हो।

कृष्ण ने अर्जुन के पथकों को संशप्तकों की सेना से ला भिड़ाया। अर्जुन के अमोघ बाण सनसनाते हुए चारों दिशाओं में जा रहे थे। संशप्तकों में भगदड़ मची थी। अर्जुन की सेना उनका पीछा करते हुए उन्हें मार गिरा रही थी।

संशप्तकोंको पराजित करके अर्जुनने कर्णकी ओर ध्यान देना चाहा तो श्रीकृष्णने कहा- कर्णने राजा युधिष्ठिरको बहुत घायल कर दिया है। उनसे मिलकर, उन्हें धैर्य देकर तब कर्णसे युद्ध करना।

अब सेनामें ढूँढ़नेपर भी धर्मराज नहीं मिले। भीमके समीप पहुँचकर पूछनेपर पता लगा कि वे शिबिर लौट गये हैं और किसी प्रकार ही जीवित होंगे। अर्जुन चाहते थे कि भीम शिबिरमें जाकर बड़े भाईको देख आवें; किन्तु भीमने कह दिया- मैं यदि गया तो शत्रु भयभीत होकर भागा मानेंगे। मैं संशप्तकोंको भी रोके रहूँगा। तुम्हीं शिबिर हो आओ।

भीम की बात सुनकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, हृषीकेश। अब मैं राजा युधिष्ठिरका दर्शन करना चाहता हूँ आप शीघ्र ही घोड़े हाँकिये।

अर्जुनने कहा, जनार्दन। संशप्तक सेना के पाँव उखड़ गए हैं। वे अपने-अपने दल के साथ भाग रहे हैं। मैं देख पा रहा हूँ कि दूर सृंजयों की सेना इस महासमर में विदीर्ण हो रही है। वहीं मुझे कर्ण के रथ की ध्वजा दिखाई दे रही है। लगता है हमारे महारथी उसे रोक नहीं पा रहे हैं। वहीं चलिए, जहाँ कर्ण हमारी सेना को खदेड़ रहा है।

अर्जुन ने कहा- वासुदेव। मेरी सेना को सूतपुत्र कर्ण बहुत ही पीड़ित कर रहा है। आप मेरे रथ को आज उस महावीर कर्ण के रथ के पास ले चलिये। आज या तो मैं ही उसे मार डालूँगा या आपके सामने हँसते-हँसते मैं स्वयं ही उसके बाणों से मरकर स्वर्ग को जाऊँगा। आज मैं अवश्य ही सूतपुत्र से युद्ध करूँगा। मेरी सेना भागी जा रही है। कर्ण उसे बुरी तरह खदेड़ रहा है।

कृष्ण बोले, हाँ, अब अधिक विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरी जगह अपनी शक्ति का व्यय क्यों किया जाय? चलो, चलें। आज कर्ण का ही निर्णय हो जाना चाहिये। यह कहकर वासुदेव ने रथ को बढ़ाया।

कृष्ण बोले, पार्थ। दुर्योधन चाहता है कि ये त्रिगर्त मरते रहें और तुम उनको मारने में व्यस्त रहो। तुम थकते रहो और दुर्योधन की सेना सुरक्षित रहे। अंतत: कर्ण तुम पर आक्रमण करे और प्रबल सिद्ध हो।

अर्जुन ने चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। पांडव सैनिक भागते हुए दिखाई पड़ रहे थे और धर्मराज का ध्वज कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। कहाँ होंगे वे? दिन का एक तिहाई भाग ही शेष रह गया था और आज कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई थी। कोई महत्त्वपूर्ण कौरव महारथी उससे युद्ध करने भी नहीं आ रहा था, जैसे अर्जुन समरभूमि में हो ही नहीं। यह सब क्या है। संशप्तकों ने उसे ऐसा घेर रखा है कि अन्य लोगों के विषय में वह कुछ जान ही नहीं पाता।

अर्जुन ने कहा, केशव चलिए, जहाँ धर्मराज हैं। एक बार अपने भाइयोंसहित धर्मराज को देख लूँ तो पुन: युद्ध आरम्भ

करूँ। कृष्ण ने कहा, हाँ। धर्मराज दिखाई तो नहीं पड़ रहे हैं। शायद वे किसी और क्षेत्र में युद्ध कर रहे हों।

अर्जुन के स्वर में आग्रह था। तो वहीं चलिए। अर्जुन बोला, क्या बात है गोविन्द?

कृष्ण बोले, अर्जुन। धर्मराज संबंधी तुम्हारी चिंता को मैं समझता हूँ; किंतु मुझे पांडव सेनाएँ समरभूमि से पलायन करती लग रही हैं। यह शुभ लक्षण नहीं है। कोई महारथी उनकी सहायता के लिए भी नहीं आ रहा है। तुम्हें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। धर्मराज के कुशल क्षेम की सूचना मिल जाती तो।

अर्जुन कुछ खीज कर बोला, मेरे अतिरिक्त भी तो अनेक योद्धा हैं, पांडवों की सेना में।

कृष्ण बोले, यहाँ किसी एक को नियुक्त कर दो और फिर चलो धर्मराज की खोज में।

अर्जुन बोला, पशु है यह अश्वत्थामा। अपने पिता के वध से विक्षिप्त हो रहा है। आचार्य की मृत्यु का मुझे भी बहुत दुख है, किंतु प्रतिशोध के लिए कोई इस प्रकार तो अपने विवेक को तिलांजलि नहीं दे देता।

अर्जुन ने अश्वत्थामा पर बाण चलाये। उसके शरीर में अनेक बाण धँस गए। अश्वत्थामा समझ गया, यदि उसने धृष्टद्युम्न को नहीं छोड़ा तो अर्जुन या तो उसका वध कर देगा, या फिर भूरिश्रवा के समान उसकी भी भुजा काटकर धरती की भेंट कर देगा। उसकी समझ में आ गया था कि उसने अपने आवेश में रथ का त्याग कर भूल की थी। रथ में वह कहीं अधिक सुरक्षित था। हाथ में एक खड्ग लेकर वह रथारोही अर्जुन का सामना करने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। अब या तो वह धृष्टद्युम्न को छोड़ दे, अन्यथा अपने प्राण गँवाए।

अश्वत्थामा भागकर अपने रथ में जा चढ़ा।

कृष्ण को घायल देखकर अर्जुन का आवेश भी जागा। यह उसी की शिथिलता है कि उसकी रक्षा में होते हुए भी श्रीकृष्ण को इस प्रकार अपना रक्त बहाना पड़ता है। अर्जुन ने अश्वत्थामा पर नाराचों की वर्षा कर दी। अश्वत्थामा को उसक क्रूरता का फल मिलना ही चाहिए।

कर्ण ने अश्वत्थामा की यह गति देखी तो वह अर्जुन को रोकने के लिए उसकी ओर आया। दूसरी ओर से संशप्तकों के साथ सुशर्मा भी प्रकट हो गया। अश्वत्थामा का सारथी अवसर देखकर उसे हटा ले गया। अर्जुन बोला, कदाचित् युधिष्ठिर जीवित नहीं हैं। नहीं तो कौरवों के इस शंखनाद को भीम इस प्रकार चुपचाप सहन नहीं कर लेते। हमारे रथी भागे जा रहे हैं। महारथी भी खिसकने लगे हैं। कर्ण के बाणों से घायल होकर हाथी सब ओर भाग रहे हैं।

कृष्ण बोले, हाँ। और अब भीम उन पर भारी पड़ रहा है। दुर्योधन की सेना युद्ध से मुँह मोड़कर भागी जा रही है। कृष्ण ने पूछा, तो अब धर्मराज की ओर चलें। अर्जुन बोला, चलिए।

कर्ण दुर्योधन की रक्षा के लिए चला गया। युधिष्ठिर की समझ में नहीं आया कि यह अकस्मात् ही क्या हुआ कि उनका पीछा करता हुआ कर्ण अपना लक्ष्य पूरा किए बिना इस प्रकार चला गया। नकुल और सहदेव ने भी विलंब नहीं किया। वे युधिष्ठिर को लेकर तत्काल निकल गए।

अर्जुन ने जब चारों ओर देखा कि धर्मराज युधिष्ठिर दिखाई नहीं देते, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। उनका हृदय धड़कने लगा। पास में ही भीम युद्ध कर रहे थे। अर्जुन संसप्तक वीरों को पीड़ित कर रहे थे। अर्जुन ने धीरे से भीम से पूछा- महाराज धर्मराज दिखाई नहीं देते। उन्हें कहीं शत्रुओं ने घेर तो नहीं लिया? मेरा दिल धड़क रहा है।

भीम ने कहा, कुछ मत पूछो, यह क्षत्रिय धर्म बड़ा निन्दनीय है। भाई-भाई खून का प्यासा है। मैं धर्मराज की ऐसी दशा जानकर भी यहाँ युद्ध कर रहा हूँ। कर्ण ने आज धर्मराज को बुरी तरह से व्यथित किया है। कर्ण के बाणों से घायल और

दु:खी होकर वे मुमुर्षुदशा में शिबिर को चले गये हैं। वे शायद जीवित हों। उनके बचने की कोई आशा नहीं है। कर्ण ने उन्हें बार-बार पीड़ित किया है।

यह सुनकर अर्जुन को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने भीम से कहा, तुम अभी जाकर धर्मराज की खबर सुधि लेकर मुझे बताओ। मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं धर्मराज के बिना मैं जीवित न रहूँगा।

भीम ने कहा- अर्जुन। तुम्हीं जाकर देखो। मैं यदि युद्ध से हटता हूँ तो ये कौरव-पक्षीय वीर सभी ताली पीट-पीटकर मेरे ऊपर हँसेंगे, चिढ़ावेंगे और बार-बार कहेंगे डरकर भाग गया, भाग गया। तुम जाकर धर्मराज को देख आओ।

अर्जुन ने कहा, मझले भैया। तुम मुझसे बड़े हो यह तुम्हारा ही काम है। मैं सबको देख लूँगा, तुम जाओ तो सही।

भीम ने कुछ रोष में अर्जुन को डाँटते हुए कहा- तुम मुझसे अब बहुत बकवाद मत करो। मैंने धृतराष्ट्र के १०० पुत्रों को मारने की प्रतिज्ञा की है। एक आध तुम्हारे हाथ से मारा गया तो मेरी प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी। संसप्तकों का मैं सामना करूँगा, तुम जाकर महाराज का समाचार लाओ।

भीम बड़े थे। बड़ों की आज्ञा माननी चाहिये। कृष्णने ने भी कहा- हाँ ठीक है। भीम सब कुछ कर सकते हैं। चलो हम चलकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर के दर्शन करें। देखें, उनकी क्या दशा है?

युधिष्ठिर ने कर्ण पर आक्रमण किया। कदाचित् उनके पीछे हटने का समाचार पाकर ही धृष्टद्युम्न वहाँ आ गया था। पाँचों द्रौपदेय भी वहीं थे। उन्होंने कर्ण को प्राय: घेर ही लिया था। शिखंडी, सहदेव, नकुल, उसका पुत्र शतानीक और सात्यकि आकर सम्मुख खड़े हो गए थे। वे लोग अपने प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न और राजा युधिष्ठिर- दोनों की ही रक्षा करने के लिए डट गए थे।

सुशर्मा का उत्साह जैसे आकाश को छूने लगा। उसके इस आक्रमण का फल उसकी अपेक्षा को भी पार कर गया था।

अर्जुन मध्य सेना में संशप्तकों का नाश कर रहा था; किंतु उसका मन जानता था कि साधारण सैनिकों को इस प्रकार मारते रहना उसका अपनी ऊर्जा का अपव्यय करना ही था।

दुर्योधन ने अर्जुन को कौरव सेना में घुसा हुआ देखा, तो उसके मन में कर्ण और सुशर्मा दोनों के ही प्रति क्रोध जागा। पता नहीं ये दोनों मिलकर भी अर्जुन को रोक क्यों नहीं पाते हैं। सुशर्मा ने शपथपूर्वक युद्ध आरंभ किया है किंतु अभी तक अर्जुन जीवित है। कर्ण ने भी कितनी ही बार प्रतिज्ञा की है। आज तो वह अर्जुन के वध तक कवच न उतारने की शपथ लेकर निकला है, पर कोई लाभ नहीं। दोनों ने ही उसे खुला छोड़ रखा है कि वह किसी भी दिशा में चला जाए और कौरव सैनिकों को गाजरमूली के समान काटता रहे।

अश्वत्थामा ने अपने बाणों से कृष्ण और अर्जुन दोनों को ही पुन: घायल कर दिया। उत्तर में अर्जुन ने अश्वत्थामा को घायल किया और उसके सारथी को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया। दुर्योधन जल्दी से बोला, कर्ण। देखो तो, पांचालों ने मेरी सेना को पीड़ित कर रखा हैं। तुम्हारी उपस्थिति में भी मेरी सेना भागी जा रही है।

कर्ण ने अपने धनुष से दुर्योधन को आगे चलने का संकेत किया और बोला, मेरी भुजाओं और अस्त्रों का बल देखो। मैं अभी समस्त पांचालों और पांडवों का वध किए देता हूँ।

कर्ण ने अपने धनुष जय पर भार्गवास्त्र चढ़ाया और बोला, मेरी भुजाओं और अस्त्रों का बल देखो। में अभी समस्त पांचालों और पांडवों का वध किए देता हूँ।

कर्ण ने अपने धनुष जय पर भार्गवास्त्र चढ़ाया और उसे पांचाल सेना की ओर प्रेरित कर दिया। भार्गवास्त्र से असंख्य बाण

प्रकट होने लगे। इतनी बड़ी संख्या में बाणों का सामना करना पांचाल सेना के लिए कठिन था। कुछ ही समय में वहाँ हाहाकार गूँजने लगा।

अर्जुन ने कृष्ण की ओर देखा, कर्ण को यह दिव्यास्त्र भगवान् परशुराम से प्राप्त हुआ होगा। और किसी के पास यह भार्गवास्त्र है ही नहीं। इसे नष्ट नहीं किया जा सकता । यह तो अपने सारे बाण उगलकर ही रहेगा।

कृष्ण बोले, मनुष्य जीवित रहता है तो युद्ध में विजय और पराजय दोनों पाता है। मृत पुरुष विजय कहाँ से पाएगा। जब भार्गवास्त्र को रोका नहीं जा सकता तो उसके सम्मुख जाकर खड़े हो जाने में कौन-सी बुद्धिमत्ता है। इसे अपना क्रोध शांत कर लेने दो। यह भी युद्ध की नीति ही है। उस क्षेत्र से अपनी सेनाएँ हटा लो, जहाँ भार्गवास्त्र अपना अनियंत्रित क्रोध उगल रहा है।

शल्य ने पुन: कहा, अंगराज। अर्जुन और कृष्ण के शंखों की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। वे इधर ही आ रहे हैं। कहो तो भाग चलें ? शल्य ने पुन: कहा, युधामन्यु और उत्तमौजा उनके पृष्ठरक्षक हैं। सात्यकि उसके बाएँ चक्र और धृष्टद्युम्न उसके दाएँ चक्र की रक्षा कर रहा है। अर्जुन यहाँ आ गया तो क्या होगा। उधर भीम ने दुर्योधन को दबोच रखा है। चलकर उसको बचाओ। वह मर गया तो युधिष्ठिर और नकुल सहदेव का क्या करोगे तुम?

कर्ण ने कहा, चलो राजा दुर्योधन के पास चलें। शल्य ने मुस्कराकर रथ मोड़ लिया।

धर्मराज युधिष्ठिरका समाचार चिन्ताजनक था। उनको देखना आवश्यक था। अत: अर्जुनके कहनेसे श्रीकृष्णने रथ शिबिरकी ओर हाँक दिया। देवकी-नन्दन वासुदेव ने जोरों से रथ को बढ़ाया। शत्रु सेना को चीरता हुआ वह अग्निप्रदत्त रथ क्षणभर में धर्मराज के शिबिर के पास पहुँच गया। उनके सम्पूर्ण शरीर में घाव के निशान थे। रक्त से शरीर लथपथ था। वे लम्बी-लम्बी साँसे ले रहे थे। बार-बार कष्ट के साथ करवट बदलते थे। उनका मुख मलिन था; चेहरे पर चिन्ता के चिह्न स्पष्ट प्रकट हो रहे थे। उनके पास कोई सेवक नहीं था। वे बहुत व्यथित, उदास, दु:खी और पीड़ित थे।

शिबिरमें पहुँचकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने युधिष्ठिरके चरणस्पर्श किये तो धर्मराजने समझा कि धनंजय कर्णको मारकर आये हैं। उन्होंने दोनोंका स्वागत किया। कहा- तुम लोगोंने सकुशल रहकर कर्णको मार दिया, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। वह परशुरामसे अस्त्र-विद्या प्राप्त कर चुका था। कौरवोंका वही अग्रणी था। वह संसारका श्रेष्ठतम वीर था। हमारे पक्षके लिए तो कालरूप ही था।

युधिष्ठिर का जैसे पहली बार अपने आपसे सामना हुआ। वे अत्यंत अपमानित और हताश थे। सारा मान-सम्मान नष्ट हो गया था। शरीर टूट रहा था और मन पीड़ा से अशांत था। स्वप्नों के सारे प्रासाद जैसे धराशायी हो गए थे। उन्होंने तो माना था कि आज अर्जुन कर्ण का वध कर देगा और यह युद्ध यहीं समाप्त हो जाएगा। वे क्या जानते थे कि अर्जुन के मन में क्या है। वह तो दिन भर कर्ण के निकट फटका भी नहीं। जाने कहाँ फँस गया है या कहाँ भटक रहा है। उसके मन में बार-बार शंका होता है कि अर्जुन कर्ण से युद्ध करना नहीं चाहता, इसलिए बार-बार उसकी उपेक्षा कर जाता है। किंतु जैसे ही ध्यान आता है कि अर्जुन के सारथी कृष्ण हैं, तो उनके मन में अर्जुन के विरुद्ध कोई भाव ठहर नहीं पाता। कृष्ण कभी ऐसा कुछ नहीं कर सकते, जिससे पांडवों की हानि हो। पर वे क्यों नहीं आए? युधिष्ठिर के मन में भयंकर तर्क-वितर्क चल रहा है। वे अर्जुन का कितना भी पक्ष लेकर उसका बचाव कर लें। किंतु सत्य यही है कि युधिष्ठिर की रक्षा के लिए अर्जुन नहीं आया और धर्मराज को कर्ण के हाथों इस प्रकार अपमानित होना पड़ा।

ऐसे जीवन का क्या करना था धर्मराज को, जिसमें उनके अपने भाई ही उनके विरुद्ध हो जाएँ। इससे तो एक वीर क्षत्रिय की मृत्यु ही अधिक श्रेयस्कर थी।

युधिष्ठिर शिबिर में अपने बिस्तर पर लेटे हुए थे। वैद्य और शल्यचिकित्सक उनके शरीर के कष्टों का निवारण करने में जुटे हुए थे। युधिष्ठिर का ध्यान वैद्यों की ओर नहीं था। बीच-बीच में वैद्य कोई प्रश्न पूछ लेते तो युधिष्ठिर को उनसे संबोधित होना पड़ता था। अन्यथा वे प्राय: आत्मलीन ही थे, जैसे वह शरीर उनका न हो और उनकी चिकित्सा से प्राप्त सुख-दुख से उनका कोई संबंध ही न हो। उनकी आँखें बंद थीं और वे अपने आपसे ही वार्तालाप कर रहे थे।

राजकुमार अर्जुन और वासुदेव रथ में से उतरकर इधर की ओर आ रहे हैं।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने आगे बढ़कर धर्मराज के पैर छुये। धीरे-धीरे धर्मराज ने आँखें खोलीं, किन्तु कुछ बोले नहीं। तब अर्जुन ने पूछा- महाराज। अब आपका स्वास्थ्य कैसा हैं? आप स्वस्थ हैं न? हम और श्रीकृष्ण युद्ध से आपके दर्शन करने आये हैं। आप हमारी ओर प्रसन्न चित्त से चिन्ता छोड़कर स्नेह भरी दृष्टि से देखिये। वासुदेव के रहते हुए आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। आपका अप्रिय करनेवाला कभी पृथ्वी पर रह ही नहीं सकता। इतना वचन सुनते ही धर्मराज के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने समझा अर्जुन कर्ण को मारकर आये हैं। वे प्रसन्न होकर कहने लगे- हे अर्जुन। श्रीकृष्ण सहित मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम दोनों को देखकर मेरा दुख दूर हो गया। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। दुरात्मा कर्ण को संग्राम में मारकर तुम दोनों ने मेरा सबसे प्रिय कार्य किया है। मुझे न भीष्म की चिन्ता थी, न आचार्य द्रोण की। मुझे सबसे अधिक चिन्ता इस दुरात्मा कर्ण की ही थी। इसके डर के कारण मुझे न भूख लगती थी न प्यास। १२ वर्ष मुझे इसी सूत-पुत्र की चिन्ता में नींद नहीं आयी। वह मनुष्य था या साक्षात् दण्डधारी यम। उसे युद्ध में समस्त देवता, लोकपालोंसहित इन्द्र भी नहीं जीत सकते थे। श्रीकृष्ण की सहायता से आज तुमने उस संसार विजयी वीर को जीत लिया। तुमने उसका सिर धड़ से काटा था या बाणों से व्यथित करके उसे मार डाला?

जब मनुष्य की कामना पूर्ण नहीं होती, जिस चीज की जिससे हम आशा लगाये रहते हैं, वह आशा जब निराशा में परिणत हो जाती है, हमारी अभिलषित वस्तु हमें जब प्राप्त नहीं होती, तब हृदय में एक प्रकार की अग्नि-सी लग जाती है। जब उसे भीतर मन में नहीं रोक सकते तब वह वचनों द्वारा प्रकट हो जाती है। उलटी सीधी सुनाकर भी जब सन्तोष नहीं होता तो कर्म द्वारा हम अपने स्वार्थ में विघ्न समझनेवाले का अनिष्ट करने को उतारू हो जाते हैं। इस हृदय की अग्नि को क्रोध कहते हैं। इसका पिता काम है और पुत्र संमोह है। मनुष्य को जब क्रोध चढ़ता है, तब उसकी विवेकवती बुद्धि विभ्रम में पड़ जाती है। उसे अपने पराये का ज्ञान नहीं रहता। उस समय उसे कर्त्तव्य का भी विचार नहीं रहता। जो समय पर अच्छा बुरा सूझ जाता है, वही करने लगता है। समस्त अनर्थों का मूल क्रोध है। यदि हम ईश्वर को भूलकर उनके अस्तित्व का स्मरण न करके क्रोध करें, तो निश्चय ही हमारा सर्वनाश है। और यदि हमें यह स्मरण बना रहे कि घट-घट व्यापी प्रभु हमारे सम्मुख खड़े हैं, तब मनुष्य क्रोध करना भी चाहें, तो वे उसे सद्बुद्धि प्रदान करके अनर्थ करने से निवारण करते हैं। पाप सदा वही करेगा जो ईश्वर को भूल जायेगा। भगवत्-स्मृति जिसे सदा बनी रहती है, उससे न कभी पाप होता है और न उसे कभी भारी विपत्ति का सामना ही करना पड़ता है क्योंकि हरिस्मृति: सर्व विपद्विमोक्षणम् हरिस्मरण से सब विपत्तियों का नाश हो जाता है।

युधिष्ठिर के मन पर से एक बड़ा बोझ उतर गया। तो अंतत: कर्ण मारा ही गया। पांडवों का सबसे बड़ा विरोधी मारा गया। पांडवों का सबसे बड़ा अहितचिंतक मारा गया। जिसके भय से वे तेरह वर्षों तक रातों को सो नहीं पाए थे, दिन में किसी प्रकार के सुख का अनुभव नहीं कर पाए थे; जिसके द्वेष से वे आज तक निरंतर जलते रहे थे; आज तक भीष्म और द्रोण ने भी उन्हें जितना अपमानित नहीं किया था, उतना अपमानित करनेवाला कर्ण आज मारा गया था। अब कौन है,

दुर्योधन के पास जिसके भरोसे वह युद्ध कर सके। तो अब यह नृशंस युद्ध समाप्त हो जाना चाहिए। सैनिकों, युद्धक गजों, तथा अश्वों का यह अनर्गल संहार बंद होना चाहिए। मनुष्य की क्षमताओं और उपलब्धियों का युद्ध में यह अबाध होम बंद होना चाहिए। प्रजा को सुख और शांति से जीने का अवसर मिलना चाहिए। मानव समाज का विकास होना चाहिए।

युधिष्ठिर बोले, बधाई हो अर्जुन। मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम दोनों ने स्वयं कोई क्षति न उठाकर, स्वयं सकुशल रहते हुए, कर्ण को मार डाला। मैं तो भीम के प्रभाव से ही जीवित हूँ, नहीं तो उस सूतपुत्र ने तो कोई कसर नहीं उठा रखी थी। जैसे पतंगा जलने के लिए अग्नि में जा गिरता है, वैसे ही मैं भी मरने के लिए उस कर्ण का सामना करने चला गया था। वह सूतपुत्र मारा गया। यह परम आनन्द का अवसर है। यहाँ आओ। मेरे निकट बैठो और मुझे बताओ कि तुमने उसे कैसे मारा।

धर्मराज लेटे-ही-लेटे जोश में उठकर बैठ गये। उनकी आँखों से लज्जा और क्रोध के कारण आँसू बह रहे थे। वे अपनी बात कहते ही जाते थे, वासुदेव और अर्जुन चित्र लिखे से खड़े-खड़े उनकी बातें सुन रहे थे। उन्होंने उनकी बात को काटा नहीं। धर्मराज फिर भी चुप न हुए वे कहते ही गये- उस नीच ने हमें कितना तङ्ग किया। दुर्योधन को एकमात्र उसी का तो भरोसा था। उसी के बल पर तो उसने हमारी सती साध्वी पत्नी का भरी सभा में अपमान किया। हत्या की जड़ वही नीच क्रूर और नृशंस सूत-पुत्र था। उसके ही मारे मैं सदा दुखी रहता था, यद्यपि अब वह इस लोक में नहीं है, फिर भी वह मुझे अब तक स्पष्ट सामने दिखाई दे रहा है। संसार मुझे कर्णमय दिखाई दे रहा है, कर्ण साधारण वीर नहीं था। बताओ तो सही तुमने उसे किस तरह मारा? वासुदेव की सहायता न होती तो तुम उसे मार थोड़े ही सकते थे? उसे तो कोई जीत ही नहीं सकता था। मुझे जल्दी बताओ, वह सचमुच युद्ध में मारा गया या मैं स्वप्न ही देख रहा हूँ। मुझे भ्रम तो नहीं हो गया है? कहीं कर्ण सकुशल जीवित तो नहीं हैं? यह कहते-कहते धर्मराज हाँफने लगे और चुप होकर तकिये के सहारे लेट गये।

कर्णने कितनी पीड़ा दी थी आज, कैसा अपमान किया था, वह सब युधिष्ठिर कह गये। कर्ण मारा गया, इस अनुमानके कारण वे ऐसे प्रसन्न तथा आवेशमें आ गये थे कि देर तक बोलते ही गये। उन्होंने श्रीकृष्ण अथवा अर्जुनको न तो बोलनेका अवसर दिया, न दोनोंके मुखपर ही ध्यान दिया कि वहाँ विजय की प्रसन्नता है भी या नहीं।

जब बोलकर अन्तमें उन्होंने कहा- अब यह बतलाओ कि तुमने सूत पुत्रको किस प्रकार मारा? तब अर्जुनको बोलनेका अवकाश मिला। उन्होंने स्पष्ट कह दिया- कर्ण मारा नहीं गया है। हम तो आपको अत्यन्त आहत सुनकर देखने आ गये हैं। संशप्तकोंके साथ संग्राममें मैं लगा था और भाई भीम कर्णका सामना बड़े शौर्यसे कर रहे हैं।

धर्मराज अपने आपको भूल गये। जैसे वात के विकार में आदमी बकता जाता है, वैसे ही धर्मराज बिना विश्राम लिये कहते ही गये। वे बोले- क्या कहूँ। आज उसने मुझे जितना पीड़ित किया उतना न कभी भीष्म ने किया, न द्रोणाचार्य ने। आज तो उसने मेरे शरीर को बेध दिया, दयावश उसने मुझे जीता छोड़ दिया, यही उसकी बड़ी कृपा हुई। नहीं तो वह चाहता तो मुझे मार डालता। कितना पराक्रम था उस सूत-पुत्र में अब भी उसकी भयमर मूर्ति मेरे सामने नाच रही है। यद्यपि भीष्म ने उसे चिढ़ने के लिये अर्धरथी कहकर उसका अपमान किया था और इसलिये उसने १० दिनों तक शस्त्र नहीं उठाये थे, फिर भी उनके न रहने पर भी मुझे सर्वत्र कर्ण-ही-कर्ण दिखाई देता था। १२ वर्ष से मेरी आँखों के सामने कर्ण की मूर्ति सदा नाचती रहती थी। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते, दिन में, रात्रि में, सदा, सर्वदा, सर्वत्र कर्ण-ही-कर्ण दिखायी देता था। जब से वह संग्राम में आया, तब से मुझे कोई सैनिक दीखता ही नहीं था। जिधर दृष्टि घूमाता उधर कर्ण-ही-कर्ण दिखाई देता। उसकी दहाड़ को सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते। आज तो वह बुरी तरह मेरे पीछे पड़ा, घूम-फिरकर मेरे पास आ जाता और मुझे घायल करके और व्यथित कर उलटी-सीधी सुनाकर, फिर

भाग जाता। थोड़ी देर में मैं उसे फिर अपने सामने देखता। उसने मुझे ऐसी-ऐसी कड़ी बातें कहीं कि सुनते-सुनते मैं मारे लज्जा के जीवित ही मृतक तुल्य बन गया। मामा शल्य ने उससे मेरी खूब रक्षा की। मामा ने अपना प्रण खूब निभाया। वे न होते तो आज तुम मुझे इस दशा में जीवित न पाते।

तभी कृष्ण ने शिबिर में प्रवेश किया, किंतु धर्मराज। कर्ण का वध अभी हुआ ही कहाँ है? हम वहाँ से चले थे तो वह समरभूमि में भार्गवास्त्र प्रकट कर अपना सामर्थ्य प्रमाणित कर रहा था।

युधिष्ठिर के मुख से अनायास ही निकल गया। कर्ण जीवित है, भार्गवास्त्र से हमारी सेना का नाश कर रहा है?

अर्जुन ने कहा, हाँ महाराज।

जब कोई बहुत बड़ी आशा कर लेता है तो आशा-भंग होनेपर उसे बड़ा धक्का लगता है। कर्णके मारे जानेका अनुमान करके युधिष्ठिरने समझ लिया था कि अब विजय हो ही चुकी। यह आशा नष्ट हो गयी। कर्णके द्वारा किया गया अपमान और आघात जैसे फिर ताजा हो गया। अकेले भीमको उस दुर्दान्तके सम्मुख अर्जुन छोड़कर यहाँ आ गये, इससे भी बड़ी झल्लाहट हुई। इन सब कारणोंसे युधिष्ठिर अपनेको सम्हाल नहीं सके।

धर्मराज की बातें सुनकर अर्जुन ने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया- महाभाग। राजन्। कर्ण सचमुच बड़ा वीर है। आज तक मैंने उसका-सा पराक्रम कभी देखा ही नहीं। हमारी सेना में ऐसा एक भी वीर नहीं जो उससे भयभीत न हो। सब पर उसके नाम की धाक है। सैनिक उसका नाम सुनते ही भागते हैं। उसने आज हजारों राजा और राजकुमारों को मार डाला है। वह न तो थकता है, न पीछे हटता है। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा की सहायता से वह घास की तरह हमारी सेना को काट रहा है। हमारी सेना में सर्वत्र हाहाकार मचा है। मैंने अभी भीम के द्वारा आपका समाचार सुना। सुनते ही मैं यहाँ दौड़ा आया। जिस नीच सूत-पुत्र के कारण हमें १२ वर्ष वन-वन भटकना पड़ा। जिसने हमारी कुलवधू को न कहने योग्य वाक्य कहे,जो सदा हमारा अपमान करता था, जो दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये हमें हर तरह के दु:ख देने को तैयार रहता था, जिसने समस्त वीरों को भयभीत कर रखा है, जिसने मेरे प्रिय पुत्र अभिमन्यु को अन्य पाँच महारथियों के साथ मिलकर मरवा डाला है, जो सदा मुझसे लड़ने के लिये उतावला रहता है, जिसे जीतने की मुझे एकमात्र इच्छा है। वह अधिरथ का तनय राधेय नीच सूत-पुत्र कर्ण अभी मारा नहीं गया। राजन्। आपका समाचार सुनते ही मैं भीम को युद्ध का भार सौंपकर यहाँ दौड़ा आया हूँ। अभी वह कौरव सेना का प्रधान सेनापति वसुषेण युद्ध कर रहा है। आप सब मुझे आज्ञा दीजिये। मैं युद्ध में जाकर उस नीच को मार डालूँगा। आपके आशीर्वाद से और देवकीनन्दन की कृपा से आज मैं उस नीच, नराधम सूत-पुत्र को अवश्य ही यमपुर पहुँचा दूँगा। हे धर्मराज। आप मेरी मङ्गल कामना करें आप निश्चिन्त हो जायँ। कर्ण की अब आप चिन्ता छोड़ दें। आपको व्यथित करनेवाला कर्ण अब मरा ही हुआ है। उसे अब आप जीवित न समझें। उसे मृतक समझकर ही आप सुखी होइये।

यदि मैं आज बलपूर्वक कर्णको उसके बन्धु-बान्धवोंसहित न मार डालूँ तो प्रतिज्ञा करके उसका पालन न करनेवालोंको जो कष्टप्रद गति मिलती है, वही मुझे भी मिले। अब मैं आपसे युद्धमें जानेके लिये आज्ञा चाहता हूँ। आशीर्वाद दीजिये, जिससे रणमें मेरी विजय हो। राजन्। मैं सूतपुत्र कर्ण, उसकी सेना तथा सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार करूँगा।

युधिष्ठिर कर्णके बाणोंकी चोटसे बहुत कष्ट पा रहे थे, अर्जुनके मुखसे जब उन्होंने कर्णके जीवित रहनेका समाचार सुना तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और बोले, तुम्हारी सेना तो शत्रुओंसे तिरस्कृत होकर रणसे भाग गयी है तुम कर्णको नहीं मार सके तो भीम को अकेले ही छोड़कर यहाँ भाग आये। द्वैतवनमें तुमने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अकेले ही कर्णको मार डालूँगा।

आकाशवाणी हुई थी कि राजाओंके बीच मद्र, कलिंग केकय तथा कौरव वीरोंका संहार करेगा। संसार में इससे बढ़कर कोई धनुर्धर नहीं होगा। कोई भी प्राणी कभी युद्धमें इसे परास्त नहीं कर सकेगा। यह सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञाता तथा जितेन्द्रिय होगा। समस्त प्राणियों को अपने अधीन करेगा। सूर्य के समान तेजस्वी, कुबेरके समान धनी, इन्द्रके समान पराक्रमी और बलवान होगा। इससे वंश परम्परा का विस्तार होगा। मुझे पता नहीं था कि तुम कर्णके भयसे डरते हो। मुझे सभी कौरवोंके सामने आज सूतपुत्र के वश में होना पड़ा। मेरे जीवनको धिक्कार है। मुझे लगता है मेरे पूर्वजन्मके पाप बडे ही प्रबल है, तभी तो कर्ण ने मेरे साथ अपमान का व्यवहार किया जो किसी बन्धुहीन असमर्थ मनुष्यके साथ किया जाता है। यदि युद्ध में तुम कर्णका मुकाबला नहीं कर सकते तो तुम्हारा गाण्डीव धनुष किसीको दे डालो। धिक्कार है तुम्हारे इस गाण्डीव को। धिक्कार है तुम्हारे पराक्रम को। धिक्कार है तुम्हारे बाणों को। और धिक्कार है तुम्हारे इस अग्निरथ को।

युधिष्ठिर उबल पड़े- तुम्हारे पौरुषको, पराक्रमको, बार-बार की गयी कर्ण-वधकी प्रतिज्ञाको, अस्त्रज्ञानको और गाण्डीव धनुषको धिक्कार है। तुम अकेले भीमको वहाँ उस कराल कालके सम्मुख छोड़कर चले आये। तुमने कर्णको मारे बिना शिबिरकी ओर मुख ही कैसे किया? कर्ण तुमसे नहीं मारा जाता तो अपना गाण्डीव धनुष और किसीको दे दो। गाण्डीव और किसीको दे दो।

धर्मराज युधिष्ठिर ने जब सुना कि दुर्योधन का एकमात्र आधार- महाभारत का प्राण- मुझे लज्जित और पराजित करनेवाला, वीराग्रण्य कर्ण अभी जीवित है, अर्जुन अभी तक उसे मार नहीं सके हैं, तब तो उन्हें अर्जुन के ऊपर बड़ा क्रोध आया, उनकी भृकुटी टेढ़ी हो गयी। माथे में बल पड़ गया, चेहरा लाल पड़ गया, अङ्गों में एक प्रकार की बिजलीसी भर गयी। दाँतों को कटकटाते हुए, ओठों को चबाते हुए वे अर्जुन को सम्बोधित करके बोले- अर्जुन। मैं तुझे वीर समझता था। जैसे दुर्योधन को कर्ण का सहारा था, उसी तरह एकमात्र मुझे तुम्हारा सहारा था। तुमने बार-बार प्रतिज्ञा की थी, मैं कर्ण को मारूँगा। तुम्हारी वह प्रतिज्ञा झूठी हो गई। मुझे पता होता कि तुम युद्ध में कर्ण से डरकर भाग जाओगे, तुम उस वीर को न मार सकोगे तो मैं वन से लौटकर आता ही क्यों? मैं एक साल विराट के यहाँ गुप्त वेष से भाँति-भाँति के अपमान सहता ही क्यों? अपने को प्रकट करके फिर १२ वर्ष को वन चला जाता और फिर अज्ञातवास के दिनों में प्रकट होकर वन जाता। इस प्रकार समस्त आयु वन में ही काट देता। मैं इन पाञ्चाल, मत्स्य और अन्यान्य राजाओं को युद्ध के लिये निमन्त्रण ही क्यों देता? मैं तो सदा कर्ण की वीरता से डरता ही रहता था, किन्तु एकमात्र तुम्हारे विश्वास पर मैंने युद्ध आरम्भ किया। मैं जानता था, कर्ण बड़ा क्रोधी है, वह मुझे मार डालेगा। मेरे मार देने में कुछ कसर थोड़े ही रही थी। उसने दयावश मुझे छोड़ दिया। वह चाहता तो मेरे प्राणों को भी ले सकता था। इतना अनादर अपमान सहकर भी मैं इसी आशा से जी रहा हूँ कि मेरे अपकारी को मेरे अपमानकारी को मेरा अनुज अर्जुन अवश्य ही यमपुर पहुँचा देगा। तू कर्ण के भय से अकेले भीम को छोड़कर डर से युद्ध छोड़कर यहाँ चला आया। माता कुन्ती ने तुझे व्यर्थ ही जन्म दिया। जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता वह असभ्य निन्दनीय और उपेक्षणीय है। तुमने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। तू किसी तरह से भी अभी कर्ण को मार नहीं सका। कर्ण इस तरह हमारे सामने ही हमारे सैनिकों का निरन्तर वध करता रहे और तू खड़ा-खड़ा देखता रहे, यह शूरवीर के लिये कितना भारी कलम है। तुझसे अब हम और आशा ही क्या करें? अब न हम इधर के रहे न उधर के रहे। हमारे साथ विश्वासघात किया। पहिले से ही मुझे यह पता होता कि तू सचमुच नपुंसक है, तो मैं युद्ध के चक्कर में ही क्यों पड़ता? राज्य और विजय का मोह ही क्यों करता? मैंने तो तेरे विश्वास पर ही सब कुछ किया तेरी इतनी लम्बी-लम्बी भुजायें, पेड़ की निर्जीव शाखा मात्र ही हैं। तू संसार-विजयी गांडीव धनुष को व्यर्थ ही बाँधे

फिरता है। इसे किसी और को दे दे, जिससे इस अस्त्र का अपमान तो न हो। तू कर्ण को न मार सका। तेरे बल को धिक्कार है, तेरी वीरता को धिक्कार है, तेरे पराक्रम को धिक्कार है, तेरे अग्नि दत्त रथ को धिक्कार है और तेरे गांडीव धनुष को धिक्कार है। इतना कहते-कहते धर्मराज बेहोश से हो गये।

युधिष्ठिर के स्वर में मुख खीज थी, तो तुम यहाँ क्या करने आए हो? मैं तो घायल हो गया था। युद्ध के लिए असमर्थ हो चुका था। धनुष भी नहीं उठ रहा था मुझसे। चला आया मैं अपने शिबिर में ताकि युद्ध किए बिना ही मारा न जाऊँ, या कर्ण के हाथों बंदी न हो जाऊँ। मुझे बाँधकर दुर्योधन तुम लोगों पर दबाव डालकर अपनी मनमानी न करवा ले। और तुम समर्थ होते हुए भी कर्ण के भय से भाग आए? युधिष्ठिर के स्वर से धिक्कार बरस रहा था।

कर्ण अभी जीवित है इतना सुनते ही धर्मराज बेहोश हो गये। हाँ अर्जुन जैसा शूरवीर उस सूत-पुत्र को न जीत सका। मुझे बुरे वचन कहनेवाला, सबके सामने बुरी तरह से अपमानित करनेवाला कर्ण अभी जीवित है। इस बात से धर्मराज को अपार दु:ख हुआ। उन्हें सम्पूर्ण संसार अन्धकारमय दिखायी देने लगा।

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अर्जुनको बड़ा क्रोध आया। अर्जुन क्लान्त स्वर में बोला, नहीं महाराज। किसी से भयभीत होने की क्या बात है। मैं संशप्तकों से युद्ध कर रहा था, उस समय अश्वत्थामा विषधर सर्प के समान भयंकर बाणों का प्रहार करता हुआ, मेरे सामने आ खड़ा हुआ। युधिष्ठिर बोला, तुम कर्ण से युद्ध नहीं कर सकोगे तो हमने अपना कर्त्तव्य किसी और प्रकार से निश्चित किया होता। हमें यहाँ शत्रुओं के बीच पत्थर की वेदी पर ला पटकने की क्या आवश्यकता थी। दुर्योधनने पहले ही कहा था कि तुम कर्ण का सामना नहीं कर सकोगे, पर मैंने ही अपना मूर्खतावश उसका विश्वास नहीं किया। अर्जुन का स्वर और भी ऊँचा हो गया, मैं किसी से भयभीत नहीं हूँ धर्मराज। आपके स्नेह के कारण व्यथित होकर मैं यहाँ चला आया और आप ही इस प्रकार की बातें कर रहे हैं, जैसे मैं जान-बूझकर अपना समय इधर-उधर नष्ट करता रहता हूँ और आपकी चिंता मुझे नहीं होती है।

युधिष्ठिर बोले, तुम किसी से भयभीत हो या नहीं हो, मैं नहीं जानता। मैं तो इतना जानता हूँ कि मैं तुम्हारे प्रति अपनी अपेक्षाओं से भयभीत हूँ। हम सब युद्ध के पूर्व से ही जानते थे कि तुम हमारा शस्त्र हो और भीम हमारा बल है। पर आज लग रहा है कि एकमात्र भीम ही मेरे रक्षक हैं। अभिमन्यु जीवित होता, तो वह अवश्य ही शत्रुओं का वध करता। घटोत्कच जीवित होता तो भी मुझे इस प्रकार मुँह फेरकर भागना नहीं पड़ता।

कृष्ण बोले, आप बहुत थक गए हैं धर्मराज। कर्ण के हाथों अपने अपमान और अपने शारीरिक घावों से बहुत पीड़ित हो गए हैं। पर आप मेरा और अर्जुन का भरोसा कर सकते हैं। अर्जुन किसी से भी भयभीत क्यों होगा। वह किसी से भी अक्षम नहीं है। कर्ण को आज मरना है और वह अपने समय पर मरेगा आप आश्वस्त रहें।

युधिष्ठिर की आँखों में अश्रु आ गए और बोले, आप पर मुझे पूरा भरोसा है केशव। किंतु मैं अर्जुन की युद्धविमुखता से थक गया हूँ। आप स्वयं सोचें, युद्ध न करने का संकल्प करके भी आपको व्यग्र होकर पितामह से युद्ध करने के लिए रथ से कूदना पड़ा। क्यों? अर्जुन की इस शिथिलता का क्या अर्थ है, क्यों वह अपने शत्रुओं से इतना प्रेम करता है? क्यों उनके प्रति मोह है उसके मन में? क्यों भयभीत है वह उनसे? गांडीव धारण करनेवाले के लिए क्या इस प्रकार का व्यवहार शोभनीय है। अर्जुन कुछ खीजकर बोला, जाने आप इस प्रकार क्यों सोच रहे हैं। अपने बंधु से इस प्रकार बोल रहे हैं। मेरे स्नेह का यह प्रतिदान है।

युधिष्ठिर बोले, जो आपत्ति में पड़े मनुष्य को संकट से छुड़ा देता है, वही बंधु है और वही स्नेही सुहृद। धर्मराज किसी प्रकार भी शांत नहीं हो पा रहे थे, तुम्हारा रथ साक्षात् विश्वकर्मा का बनाया हुआ है, उसके धुरे से कोई अप्रिय शब्द नहीं

होता। उस पर वानर ध्वजा फहराती है। ऐसे शुभलक्षण रथ पर आरूढ़ हो, स्वर्णजटित खंग और चार हाथ के श्रेष्ठ गांडीव धनुष को लेकर और श्रीकृष्ण जैसा सारथि पाकर भी तुम कर्ण से भयभीत होकर कैसे भाग आए? अच्छा होता कि तुम अपना गांडीव श्रीकृष्ण को दे देते और स्वयं उनके सारथी बन जाते। धिक्कार है तुम्हारे इस गांडीव को। धिक्कार है तुम्हारी बलिष्ठ भुजाओं को। धिक्कार है तुम्हारे बाणों को और धिक्कार है तुम्हारे इस रथ को।

किन्तु अर्जुन का अभी कर्ण से सामना हुआ ही नहीं, यह सुनते ही वह शान्त, संयमी धर्मराज भी अपना विवेक खोकर उबल पड़ा- तब तुम अपने गाण्डीव को सूर्यकुण्ड में फेंक क्यों नहीं देते अर्जुन? यह सुनते ही क्षुब्ध होकर अर्जुन गाण्डीव उठाकर अपने पितृतुल्य, प्राणप्रिय ज्येष्ठ भ्राता की ओर लपका।

अर्जुन का हाथ अपनी तलवार पर चला गया। वह आज अपने इस भाई का वध ही कर डालेगा। अर्जुन ने धर्मराज को मार डालनेकी इच्छा से हाथमें तलवार उठायी।

अर्जुन अपने बड़े भाई का बहुत आदर करते थे। वे उनकी उचित अनुचित सब बातें सह सकते थे, किन्तु गाण्डीव धनुष की निन्दा उन्हें असह्य थी। उनकी प्रतिज्ञा थी, जो कोई मुझसे गांडीव धनुष को दूसरे को देने के लिये कहेगा, या उसकी निन्दा करेगा तो मैं उसका सिर धड़ से अलग कर दूँगा, उसे जीवित न छोड़ूँगा। प्रतिज्ञा के सामने अपने पराये का प्रश्न ही नहीं। वचनों की रक्षा के लिये धर्मात्माओं ने अपने सगे सम्बन्धियों स्त्रियों और पुत्रों तक का परित्याग कर दिया है। इसलिये अर्जुन को भी क्रोध आ गया। उन्होंने म्यान से तलवार निकाल ली और उससे धर्मराज युधिष्ठिर का वध करने को तैयार हो गये। यह सुनते ही अर्जुन क्रोधसे काँपने लगे। उनके नेत्र अंगार हो गये। उन्होंने तलवार कोषसे खींच ली।

श्रीकृष्ण बोले, यह क्या है अर्जुन। तुमने तलवार क्यों उठाई। यहाँ किसीसे युद्ध थोड़े ही करना है। फिर किसपर प्रहार करोगे। तुम पर कोई सनक तो सवार नहीं है। श्रीकृष्ण के इस तरह पूछने पर अर्जुन क्रोध में बोले, गोविन्द मैंने गुप्तरूप से प्रतिज्ञा की है कि जो कोई मुझे ऐसा कह देगा कि तुम अपना गाण्डीव दूसरे को दे डालो तो मैं उसका सिर काट दूँगा। राजाने आपके सामने ऐसी बात कहीं है इसलिए मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सका। राजन का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। आप इस जगत् के भूत और भविष्य के ज्ञाता हैं।

श्रीकृष्ण कभी असावधान नहीं होते। भ्रम, प्रमाद, करणापाटव विप्रलिप्सादि अवगुण एवं दुर्बलतायें पुरुषमें- जीवमें रहती हैं। ये उन पुरुषोत्तमका स्पर्श नहीं करती। उन्होंने अर्जुनसे कुछ कड़े स्वरमें कहा- परंतप। यहाँ तो कोई पर पक्ष है नहीं, फिर तुम यह शस्त्र किसपर उठा रहे हो?

वासुदेव अर्जुन के अभिप्राय को समझ गये। उन्होंने अनजान की तरह बड़े कोमल शब्दों में कहा- महाभाग अर्जुन। तुम यह तलवार किसलिये निकाल रहे हो? तुम यह जो शोर सुन रहे हो यह बहुत दूर है धृतराष्ट्र के पुत्र यहाँ नहीं आ सकते। कर्ण भी यहाँ क्यों आवेगा? तलवार तो शत्रु को मारने के लिये निकाली जाती है। यहाँ तुम्हारा कोई शत्रु तो दिखायी देता नहीं, फिर तुम यह युद्ध की-सी तैयारी क्यों कर रहे हो?

कृष्ण बोले, क्या कर रहे हो अर्जुन? उन्होंने अर्जुन की भुजा पकड़ ली, इस समय इस तलवार को कोष से बाहर निकालने का क्या प्रयोजन है। अर्जुन बोला, केशव। आप सुन रहे हैं, कि मेरे बड़े भाई मुझे क्या कह रहे हैं। यह सब सुनने के पश्चात् मुझे इनका वध ही नहीं कर देना चाहिए क्या?

अर्जुनने कहा- केशव। मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है कि जो कोई भी मुझे गाण्डीव दूसरेको देदेनेको कहेगा, उसे मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा। आप साथ ही हैं, आपने देखा है कि मैंने कहाँ पौरुष प्रकट करनेमें कोई त्रुटि की है। चराचर स्वामी वासुदेव

के ये वचन सुनकर अर्जुन ने कहा- अच्युत। मेरी पुरानी प्रतिज्ञा है कि जो मेरे गांडीव धनुष की निन्दा करेगा उसका मैं सिर धड़ से अलग कर दूँगा। ये धर्मात्मा पांडु के बड़े पुत्र पूज्य हैं, सदाचारी हैं, धर्मात्माओं में अग्रणी हैं, हमारे सर्वस्व हैं फिर भी इन्होंने गांडीव धनुष की निन्दा की है, उसे दूसरों को देने के लिये कहा है, अत: मैं इनका अवश्य ही वध करूँगा। पहिले इन्हें मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँ, तब कर्ण को मारूँगा। इस विषय में मुझे आप क्या सम्मति देते हैं?

यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा- धिक्कार है अर्जुन तुम्हें धिक्कार है। पार्थ आज मुझे मालूम हुआ है कि तुमने कभी वृद्ध पुरुषोंकी सेवा नहीं की है। जो धर्मको जानता है वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। इस समय तुमने ऐसा बर्ताव किया है उससे तुम्हारी धर्मभीरूता तथा अज्ञताका पता चलता है। जो नहीं करने योग्य काम करता है तथा करने योग्य नहीं करता, वह मनुष्य अधम है। जो स्वयं धर्म का आचरण करते शिष्योंद्वारा उपासना किये जानेपर उन्हें धर्मका उपदेश देते हैं; धर्मके संक्षेप और विस्तारको जाननेवाले उन गुरुजनोंका इस विषयमें क्या निर्णय है? इसे तुम नहीं जानते। उस निर्णयको नहीं जाननेवाला मनुष्य कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यके निश्चयमें तुम्हारी ही तरह असमर्थ एवं मोहित हो जाता है। क्या करना चाहिये और क्या नहीं? इसे जान लेना सहज नहीं है। इसका ज्ञान होता है शास्त्रसे और शास्त्रका तुम्हें पता ही नहीं है। अज्ञानवश अपनेको धर्मवेत्ता मानकर जो तुम धर्मकी रक्षा करने चले हो, उसमें जीवहिंसाका पाप हैं- यह बात तुम्हारे जैसे धार्मिककी समझमें नहीं आती। किसीकी प्राणरक्षाके लिये झूठ बोलना पड़े तो बोल दें, परंतु उसकी हिंसा न होने दें। तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ पुरुष अन्य साधारण मनुष्योंके समान अपने धर्मज्ञ भाई एवं चक्रवर्ती राजाको मारनेके लिये कैसे तैयार हो गया? जो युद्ध न करता हो, शत्रुता न रखता हो, रणसे विमुख होकर भागा जा रहा हो, हाथ जोड़कर पड़ा हो अथवा असावधान हो, ऐसे मनुष्यका वध करना श्रेष्ठ पुरुष का अच्छा कारण नहीं है। तुम्हारे बड़े भाईमें प्राय: उपर्युक्त सभी बातें हैं। तुमने नासमझ बालककी तरह पहले प्रतिज्ञा कर रखी है। इसलिये मूर्खतावश अधर्मयुक्त कार्य करनेको तैयार हो गये हो। धर्मके दुर्बोध एवं सूक्ष्म स्वरूपका अच्छी तरह विचार किये ही बिना अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध करने कैसे तैयार हुए? पाण्डुनन्दन। पितामह भीष्म, धर्मज्ञ युधिष्ठिर, विदुरजी अथवा यशस्विनी कुन्तीदेवी तुम्हें धर्मके जिस तत्त्वका उपदेश कर सकती हैं, उसको जानो। सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। फिर भी सत्यवादी को कभी-कभी सत्य के स्वरूपका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। सत्य का अनुष्ठान किस प्रकार होता है। जहाँ सत्य का परिणाम असत् और असत्यका परिणाम सत् होता हो वहाँ सत्य न बोलकर असत्य बोलना ही उचित है। विवाह कालमें, स्त्री-प्रसंगके समय, किसीके प्राणोंका संकट आनेपर, अपना सर्वस्वका अपहरण होनेपर, तथा ब्राह्मणकी भलाईके लिये असत्य बोलना पड़े तो भी बोल दें। इन पाँच अवसरोंपर झूठ बोलनेपर पाप नहीं लगता। जहाँ असत्य ही सत्य और सत्य ही असत्य हो जाता है। पहले सत्य और असत्य का अच्छी तरण निर्णय करके जो परिणाममें सत्य हो उसका पालन करो। केवल अनुष्ठानकी दृष्टिसे असत्यरूप सत्यका भाषण नहीं करना चाहिए। जिसकी बुद्धि निष्काम है वह मनुष्य अंधे पशुको मारनेवाले बलाक नामक व्याधकी भाँति अत्यन्त कठोर कर्म करके भी यदि महान् पुण्य प्राप्त कर ले तो क्या आश्चर्य है? इसी तरह जो धर्म पालनकी इच्छा तो रखता है, पर है मूर्ख और गँवार है। वह कौशिक मुनि की भाँति अज्ञानपूर्वक धर्म करके भी महान् पापका भागी है। जिसने शास्त्र बहुत कम पढ़ा है, जो गँवार है, धर्म के विभाग को ठीक-ठीक नहीं जानता, वह मनुष्य किसी यदि वृद्ध पुरुषोंसे अपने संदेह नहीं पूछेतो तो उसे महान् नरककी यातना भोगनी पड़ती है। कितने ही मनुष्य परम ज्ञान रूप धर्मको तर्कके द्वारा जानने का प्रयत्न करते हैं। बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि वेदोंसे ही धर्मका ज्ञान होता है। धर्मके सम्बन्धमें ऐसा निश्चय है कि जो अहिंसायुक्त है वही धर्म है। धर्म ही प्रजाको धारण करता है और धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते

हैं। इसलिये जो प्राणरक्षासे युक्त हो, जिसमें किसी भी जीवकी हिंसा न की जाती हो वही धर्म है। जो लोग स्वयं अन्यायपूर्वक धन छीन लेनेकी इच्छा रखते हुए दूसरोंसे सत्य भाषण कराना चाहते हैं, उस स्थान पर वहाँ यदि मौन रहनेसे छुटकारा मिल सकता हो किसी तरह बोले ही नहीं तो वैसा ही करें। किन्तु उस जगह बोलना अनिवार्य हो जाय तो न बोलने से धन छीनने वालोंको सन्देह होने लगे तो वहाँ असत्य बोलना ही ठीक है। जो मनुष्य किसी कामके लिये प्रतिज्ञा करके उसका भंग करता है। उसे उसका फल नहीं मिलता है। प्राण संकटमें, विवाहमें, समस्त कुटुम्बियोंके प्राणान्तका समय उपस्थित होनेपर या हँसी-परिहासमें यदि असत्य बोला गया हो तो वह असत्य नहीं माना जाता। धर्मका तत्व जाननेवाले विद्वान उक्त अवसरोंपर मिथ्या बोलनेपर पाप नहीं मानते। अत: धर्मके लिये झूठ बोलनेपर ही मनुष्यको झूठका दोष नहीं लगता।

कृष्ण ने अर्जुन को स्नेह भरी दृष्टि से देखा और बोले, विक्षिप्त हो गए हो। इतना-सा अपमान नहीं सह सकते तो धर्मराज जैसे भाई और अपने राजा का वध करके जीवित रह सकोगे क्या? धर्मराज का वध कर, दुर्योधन की विजय के लिए मार्ग प्रशस्त करना चाहते हो? कुछ नहीं। कृष्ण ने अर्जुन के क्रोध पर अपनी मुस्कान का लेप लगाया, सोचो प्रात: से कितनी बार वे अश्वत्थामा और कर्ण से पीड़ित हो चुके हैं। वे युद्ध नहीं कर रहे थे, फिर भी कर्ण उनको पीड़ित करता रहा। उनके शरीर से कितना रक्त बहा है। ऐसी शारीरिक और मानसिक स्थिति में क्या कोई अपना संतुलन बनाए रख सकता है। कृष्ण ने अर्जुन के हाथ से उसकी तलवार ले ली, उन्होंने यह भी सोचा होगा कि अर्जुन को क्रोध नहीं दिलाया तो आज भी कर्ण का वध नहीं हो पाएगा। कृष्ण ने पूछा, क्या सोच रहे हो?

धिक्कार हैं तुम्हें। श्रीकृष्णने कोई ध्यान नहीं दिया कि अर्जुनके नेत्रोंसे क्रोध एवं ग्लानिसे अश्रु टपकने लगे हैं। वे भर्त्सना करने लगे- यही बुद्धि है तुम्हारी? वृद्धोंकी सेवा करके यही सीखा है तुमने? तुम भी समझते हो कि तुम्हें धर्मका ज्ञान है? पिताके समान पूज्य ज्येष्ठ भ्राताके सम्मुख शस्त्र उठाते तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम इतने अज्ञानी हो कि एकसाधारण अपराधीके समान अपने सम्मान्य एवं चक्रवर्ती नरेशको मारनेको उद्यत हो गये और यह धृष्टता मेरे सामने करने चले हो?

कृष्ण यह सुनकर बड़े जोरों से हँसे और बड़े ही उत्तेजना के स्वर में दृढ़ता के साथ कहने लगे- अर्जुन। पहिले हम समझते थे, तुम बड़े बुद्धिमान हो, धर्म के रहस्य को जानते हो, किन्तु आज पता चला तुम निरे अबोध बालक हो, धर्म का तुम्हें किञ्चित भी ज्ञान नहीं। सनातन धर्म क्या है? इसे तुम अभी तक समझ नहीं सके हो। अक्षरों को प्रतिज्ञा नहीं कहते, प्रतिज्ञा का भाव देखा जाता है। फिर कहीं धर्म भी अधर्म हो जाता है और अधर्म प्रतीत होनेवाला भी परिणाम में धर्म ही समझा जाता है। इसलिये तुम मिथ्या प्रतिज्ञा की शमा से अपने पिता तुल्य ज्येष्ठ भाई की हत्या करके दूसरा पाप अपने सिर पर क्यों चढ़ा रहे हो? क्यों तुम संसार में उपहास्यास्पद बन रहे हो? तुम पहिले पूर्वापर का विचार करो, अपनी प्रतिज्ञा को भी सोचो और धर्मराज के वचनों को भी सोचो। तुम्हारी प्रतिज्ञा का भाव क्या था और धर्मराज ने किस भाव से गांडीव धनुष की निन्दा की। तुम्हारी प्रतिज्ञा का भाव यही था जो द्वेष से, शत्रुता और घृणा से तुम्हारे गांडीव की निन्दा करेगा उसे तुम मार डालोगे। धर्मराज तुमसे द्वेष नहीं करते, उनकी तुमसे शत्रुता नहीं है, वे तुमसे घृणा भी नहीं करते। इस समय वे कर्ण से पराजित अपमानित होने के कारण दुखी थे, पीड़ित थे। इसलिये क्षोभ में उन्होंने ऐसे वचन कह दिये। उनका भाव तुम्हें उत्तेजित करने का था। वे जानते हैं कर्ण को संसार में तुम्हारे सिवाय कोई मार नहीं सकता। इसीलिये तुम्हें उसे मारने के लिये जोश दिलाया है। कर्ण के ऊपर तुम्हें क्रोध आवे यही उनका अभिप्राय था। इतने पर भी उन्होंने तुम्हारी प्रतिज्ञा को भङ्ग किया। गांडीव की निन्दा करनेवाले का वध करना तुम्हारा कर्त्तव्य ही है। वध का अभिप्राय भी समझ लो। सबका वध एक-सा नहीं होता। सम्मानित पुरुष का अपमान कर देना ही वध है। कल तक जो सबके द्वारा सम्मानित हो, उसको तू,

तड़ाक कह देना, उसे अपमानित कर देना यही बड़ों का सबसे कठिन वध है। सम्मानित पुरुष को अपमानित होकर जीना वध से भी निन्दनीय है। इससे तुम धर्मराज को क्रोध में आप के कथन में तू कह दो, उनका वध हो गया। पीछे तुम इनसे अपने अपराध के लिये क्षमा माँग लेना। धर्मराज धर्म की सूक्ष्मगति को भली-भाँति जानते हैं। जब वे समझ जायँगे कि तुमने द्वेष से या शत्रुता के वश में उनका अपमान नहीं किया, अपितु अपनी प्रतिज्ञा के पालन के निमित्त ऐसा किया है तो वे तुम पर क्रोध न करेंगे। तुम्हारे अपराध को अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

अर्जुनने तत्काल अनुभव कर लिया कि उनसे बहुत बड़ी भूल हो गयी। अपने अपराधका आभास हो जानेपर भी अपनी प्रतिज्ञाका असमंजस तो था ही। भरे हुए कंठसे बहुत विनीत बनकर बोले, हृषीकेश। आप गुरु, पिता-माताके समान हम सबके हितैषी हैं। आपकी कृपा अपार है। आपके ही श्रीचरण हमारे आश्रय हैं। आप कोई ऐसा उपाय बतलावें कि मेरी प्रतिज्ञा भी भंग न हो और मुझे भ्रातृवधका अत्यन्त दारुण कर्म भी न करना पड़े।

अर्जुन बोला, सोचता हूँ कि मैंने कितना बड़ा मानसिक अपराध कर डाला है। धर्मराज जैसे अपने भाई के वध की बात सोच डाली। इसका प्रायश्चित्त कैसे होगा। ऐसा जघन्य अपराध करने के पश्चात् मुझे जीवित रहने का क्या अधिकार है।

श्रीकृष्ण। तुमने बहुत बड़ा विद्वान और बुद्धिमान मनुष्य इस प्रकार उपदेश दे सकता है तथा जिसके अनुसार आचरण करनेसे हमलोगोंका कल्याण होना सम्भव है वैसी ही बात आपने बतायी है। आप हमलोगोंके मातापिताके तुल्य हैं, आप ही परम गति हैं। तीनों लोकोंमें कहीं कोई भी ऐसी बात नहीं है, जो आपको विदित न हो। अब मैं राजा युधिष्ठिरको मारने योग्य नहीं समझता। मेरी इस प्रतिज्ञाके सम्बन्धमें आप ही अनुग्रह करके कुछ ऐसी बात बताइये, जिससे इसका पालन भी हो जाय और राजाका वध भी न होने पावे। आप तो जानते ही हैं कि मेरा व्रत क्या है? मनुष्योंमें जो कोई भी यह कह दे कि तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरे किसी वीरको दे डालो, जो अस्त्रविद्या और पराक्रममें तुमसे बढ़कर हो। तो मैं हठात् उसकी जान ले लेता हूँ। मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं देती है। संसार के लोगोंकी समझमें मेरी प्रतिज्ञा भी सच्ची हो और राजा युधिष्ठिरका तथा मेरा जीवन भी सुरक्षित रहे- ऐसी ही कोई सलाह दीजिये।

श्रीकृष्णने कहा- धनंजय। गुरुजनोंका शस्त्रसे वध नहीं किया जाता। जो सदासे अपने द्वारा सम्मानित होते आये हैं, उनका अपमान कर देना, उन्हें तू कह देना ही उनका वध है। तिरस्कारसे उनका गौरव गल गया, यह उनके मरण जैसा ही है। राजा युधिष्ठिर बहुत थके हुए है और बहुत दुःखी है। कर्णने अपने बाणोंसे उन्हें संग्राममें घायल कर दिया। कर्णने उनपर बाणोंका प्रहार किया। इस पापी कर्णको सिर्फ तुम ही मार सकते हो। उसके मारे जानेपर कौरवोंको शीघ्र ही जीत लिया जा सकता है। इसी विचार से उन्होंने यह बातें कही। उनका वध करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना है। जीवित रहते हुये मरे के समान हो जाये वह बात बताता हूँ। यही उपाय तुम्हारे अनुरूप होगा। सम्माननीय पुरुष संसार में जब तक सम्मान पाता है तब तक ही उसका जीवित रहना माना जाता है। जिस दिन उसका बहुत बड़ा अपमान हो जाए उस दिन वह जीते जी मरा समझा जाता है। आज तुम राजा युधिष्ठिरका अपमान कर दो। यद्यपि युधिष्ठिर पूज्य होनेके कारण आप कहने योग्य है। तथापि इन्हें तू कहकर सम्बोधित करो। इसके पश्चात् तुम उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हे सांत्वना दो और अपनी कही हुई अनुचित बात के लिये क्षमा माँग लो। युधिष्ठिर धर्म का त्याग करके तुमपर क्रोध नहीं करेंगे। इस प्रकार तुम भ्रातृवधके पापसे मुक्त हो जाओगे और प्रसन्नतापूर्वक तुम कर्णका वध कर देना।

अर्जुनने शस्त्र कोषमें कर लिया। सिर झुकाकर, बिना सामने देखे, किसी प्रकार बड़े भाईसे कह गये- तू बोल मत। मुझे क्रोध मत दिखा। तू स्वयं संग्रामसे पीछे हट आया है, फिर तू मुझे उपालम्भ कैसे दे सकता है।

तीन बार बड़े कष्टसे तू कहते-कहते अर्जुनका अन्त:करण इतना व्याकुल हो उठा जैसे विदीर्ण हो जायगा। असह्य ग्लानिसे वे अभिभूत हो गये। उन्होंने कवच उतार दिया और फिर तलवार कोषसे खींची। श्रीकृष्णने हँसकर हाथ पकड़ लिया अब फिर कोई बचपन सूझा है? फिर यह शस्त्र ग्रहण क्यों?

अर्जुन को यह बात युक्तियुक्त प्रतीत हुई। उन्होंने अब धर्मराज को कड़ी न कहने योग्य बातें कहकर उनका अपमान करना आरम्भ कर दिया। वे बोले- हे राजा। तू मुझे बुरा भला कह रहा है। पहले अपनी तरफ तो देख। तुमने जुआ खेलकर हमारा सर्वनाश कर दिया। तू हमारे कुल का घातक है। तेरे ही कारण हमारी स्त्री द्रौपदी का भरी सभा में अपमान हुआ। तू क्रोधी कृतघ्न और दीर्घसूत्री है। मैंने अपना सर्वस्व तेरे वचनों पर निछावर कर दिया, फिर भी तू मेरी निन्दा कर रहा है। तू राजा होने योग्य नहीं। सब भाइयों को तेरे ही कारण विपत्ति के सागर में डूबना पड़ा। तू स्वयं जुआरी होकर मेरी निन्दा कर रहा है। इस तरह की अनेक न कहने योग्य कठोर बातें कहते-कहते अर्जुन मारे लज्जा के गलने लगे। उन्हें स्वयं ही बड़ा दु:ख हुआ। वे आँखों में आँसू भरकर चुप हो गये। थोड़ी देर में उसने फिर म्यान से तलवार निकाल ली, अब जनार्दन बोले, अर्जुन। तुम धर्मराज का वध तो कर चुके, अब फिर से तलवार क्यों निकाल रहे हो? अब तुम किसका वध करना चाहते हो?

कृष्णका इसप्रकार वचन सुनकर वे धर्मराज को कहने लगे तू चुप रह, मत बोल। तू तो खुद लड़ाईसे भागकर आया है। तुझे मेरी निंदा करने का क्या अधिकार है? तू मेरे क्रोध को और न बढा।

अर्जुन धर्मभीरू थे, वे युधिष्ठिर को ऐसी कठोर बातें सुनाकर बहुत उदास हो गये। उनकी चित्त में क्षोभ हुआ। उन्होंने तलवार खींच ली। तब श्रीकृष्ण बोले, अर्जुन यह फिर क्या है? किसका वध करना चाहते हो?

तब अर्जुन ने कहा- हे विश्वम्भर। मैंने अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राता का अपमान किया है। इसलिये अब मैं आत्महत्या करूँगा। भाई की निन्दा करके मैं जीना नहीं चाहता। इस खड्ग से अपना ही गला काटूँगा।

अर्जुन फूटकर रो पड़े- जिन देव तुल्य अग्रजके लिए मैं सदा जीवन अर्पण कर देना अपना सौभाग्य मानता रहा हूँ, उनका अपमान करके जीवित रहना मेरे लिए सम्भव नहीं है। आप अपने इस अधम सखाको अब शरीर त्यागकी अनुमति दें। कोई भी आत्मघातसे कर्मका विकल्प मुझे शान्ति नहीं दे सकता।

तब आत्मघात कर लो हँसकर ही श्रीकृष्णने कहा इसमें शस्त्र सम्हालनेकी आवश्यकता क्या है? विषकी औषधि विष होता है। अत: एक दोषका मार्जन उसके समान दूसरे दोषसे हो सकता है। सत्पुरुषोंके लिए स्वयं अपनी प्रशंसा करना शास्त्रने आत्मघात माना है। तुमने वाणीसे ही बड़े भाईका अपमान किया है, अत: वाणीसे आत्मप्रशंसा रूप आत्मघात करके उस अपराधका मार्जन कर लो।

इस पर देवकीनन्दन ने कहा- तुम फिर मूर्खता करते हो। भाई का अपमान करने पर ही आत्महत्या करने को उद्यत हो, उन्हें खड्ग से मार डालते तो क्या होता? देखो। आत्मप्रशंसा से बढ़कर आत्महत्या कोई नहीं। जो अपने मुँह अपने कामों की प्रशंसा करता है, उससे बड़ा आत्महत्यारा कोई नहीं। तुम युधिष्ठिर के सामने अपनी प्रशंसा कर लो। बस, तुम्हारा भी मरण हो जायगा।

अर्जुन बोले, मैंने जिद्द में आकर भ्राताश्री का अपमान किया। इसलिये मैं अपने शरीर को नष्ट कर डालूँगा। तब कृष्ण बोले, पार्थ राजा युधिष्ठिर को तू कह देनेपर इतने घोर दु:खमें क्यों डूब गये? अर्जुन। श्रेष्ठ पुरुषोंने कभी ऐसा काम नहीं किया। धर्म का स्वरूप सूक्ष्म है और उसका समझना कठिन। अज्ञानियोंके लिये तो और भी मुश्किल है। भाई का वध करने से जिस नरक की प्राप्ति होती है उससे भी भयानक नरक तुम्हें अपनी प्रशंसा करने से मिलेगा। इसलिये अपनी मुख

से अपने गुणोंका बखान करो। ऐसा करनेसे यही समझा जायगा कि तुमने अपने ही हाथों अपनेको मार लिया।

अर्जुनने अपने शौर्य, बल, पराक्रमकी प्रशंसामें थोड़ेसे शब्द कहे और इससे इतनी लज्जाका इन्हें अनुभव हुआ कि दोनों हाथोंमें अपना मुँह छिपाकर बैठ गये। वे स्वयं अपनी प्रशंसा करके युधिष्ठिर अथवा श्रीकृष्णके सम्मुख खड़े रहने में अपने को असमर्थ अनुभव करने लगे। तब अर्जुन बोले, राजन्। भगवान शंकरको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरे समान धनुर्धर नहीं है। मेरी वीरताका उन्होंने भी अनुमोदन किया है। यदि मैं चाहूँ तो इस चराचर जगत्को एक ही क्षण में नष्ट कर डालूँ। मुझ-जैसा वीर यदि युद्धमें पहुँच जाय तो उसे कोई भी नहीं जीत सकता। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम- सभी दिशाओंके राजाओंका मैंने संहार किया है। मैं कर्णको अपने बाणोंसे नष्ट कर डालूँगा। आज या तो कर्ण की माता पुत्रहीन होगी या माता कुन्ती ही मुझसे हीन होगी। यह कहकर अर्जुनने तुरन्त अपने हथियार और धनुष नीचे डाल दियें। तलवार म्यान में रख दी फिर युधिष्ठिर के चरणों मे सिर झुकाया।

वासुदेव की यह सम्मति मानकर अर्जुन कहने लगे- महाराज। आप मुझे क्या समझते हैं? मैं संसार में सर्वश्रेष्ठ योद्धा हूँ। मैंने अकेले ही पृथ्वी की दिग्विजय की, विराट नगर में अकेले ही सब कौरवों को हराया, मैं चाहूँ तो संसार को जीत सकता हूँ। बेचारा कर्ण है क्या चीज? मैं उसे बात-की-बात में मार डालूँगा। मैंने स्वर्ग में यह किया, वह किया। इसे मारा, उसे काटा। मैंने नरक को स्वर्ग बना दिया। छोटों को सिंहासन पर बिठा दिया, बड़े-बड़ोंको धूल में मिला दिया। मैं जिसे चाहूँ राजा बना दूँ, जिसे चाहूँ भिखारी बना दूँ। महाराज। आप मेरा पुरुषार्थ देखें। मैं कर्ण को क्षणभर में मारता हूँ। आप मेरे बल को देखिये। सब लोकपाल भी मेरा सामना नहीं कर सकते। आज मैं कर्ण को मारकर तब मुँह दिखाऊँगा। इतना कहकर अर्जुन चुप हो गये। अब धर्मराज अपमानित से अपने स्वभाव में आ गये। फूट-फूटकर रोने लगे।

श्रीकृष्णका स्वर गम्भीर हो गया और बोले, धनंजय। अपने आवेशको सम्हालना सबसे बड़ा पौरुष है। तुम अपने जिस अग्रजका अपमान करके भी जीवित रहना नहीं चाहते, उनकी हत्या करके तुम्हारी क्या दशा होती?

रोते-रोते अर्जुनने दोनों चरण पकड़ लिये जनार्दनके- पुरुषोत्तम। मैं उस क्षण भी कृत निश्चय था कि अग्रजको मारकर तत्काल अपना सिर भी काट दूँगा। इन पूज्यका अपराध करके हम भाइयोंमें कोई जीवित नहीं रहना चाहेगा; किन्तु आप भक्तवत्सल हम अज्ञानियोंके अपराधका परिशोधन करने हमारे मध्य उपस्थित हैं, इतना महान सौभाग्य हमें मिला है।

धर्मराज युधिष्ठिर अर्जुनके क्रुद्ध होकर तलवार खींचते ही स्तब्ध हो गये थे। जीवनमें यह पहली बार कोई उनपर रुष्ट हुआ था। उन्होंने द्यूत खेलकर इन भाइयोंको वन-वन भटकाया, द्रौपदीका उतना अपमान हुआ, तब भी कोई एक शब्द नहीं बोला। उनके ये सब भाई उनके कितने अनुगामी, कितने विनम्र, कितने सुशील हैं। आज भी सब उनके ही लिए संग्राममें शत्रुओंके असह्य प्रहार सह रहे हैं। एक दिनके कर्णके आघातसे वे स्वयं इतने व्याकुल हो उठे और भीष्म, द्रोण, कर्णादि सबका सबसे भयंकर प्रहार हो तो अर्जुन पर ही होता है। ऐसे भाईकी इतने कटु शब्दोंमें भर्त्सना की उन्होंने।

अर्जुनने तू कहकर उनका अपमान किया, यह बात महत्त्वकी नहीं थी। प्रतिज्ञा रक्षाके लिए श्रीकृष्णके आदेशसे वह अपमान करके अर्जुन इतने व्याकुल हुए कि आत्महत्यापर उतर आये, यह बात महत्त्वकी थी। इतने श्रद्धालु, सुशील भाईको कठोर वचन कहनेका दु:ख युधिष्ठिरको अत्यन्त व्याकुल बना रहा था।

अर्जुन युधिष्ठिर से बोले, महाराज। मैंने जो कुछ कहा है उसे क्षमा करें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब मैं सब तरहसे प्रयत्न करके भीमको युद्धसे छुड़ाने और सूतपुत्र कर्ण का वध करने के लिये जा रहा हूँ। और अर्जुन रणभूमि की ओर जानेको उद्यत हुए।

रोते-रोते युधिष्ठिरने कहा मैं सदा तुम लोगोंको दुःख ही देता रहा हूँ। मैं स्वार्थी हूँ, दुर्व्यसनी हूँ, निष्ठुर हूँ। मेरे कारण तुम भाइयोंने बचपनसे ही बराबर क्लेश सहा है। द्यूत खेलकर तो मैंने अपनी अज्ञताकी सीमा कर दी। तुम लोगोंने शत्रुओंका अपमान सहा, वन-वन भटकनेका कष्ट भोगा। मेरे लिए तुम बृहन्नला बने और उग्र तप करने गये। आज भी मेरे ही लिए तुम सब भाई निरन्तर शराघात सह रहे हो। सब प्रपञ्चोंकी, विपत्तियोंकी जड़ मैं ही हूँ। मैंने कोई अच्छे काम नहीं किये है। इसीलिये तुमलोगोंपर घोर संकट आ पड़ा है। मेरी बुद्धि मारी गयी है, मैं आलसी और डरपोक हूँ, मेरे न रहनेपर सुख से रहना, महात्मा भीम ही राजा होनेके योग्य है। मैं तो क्रोधी और कायर हूँ। मुझमें तुम्हारी ये कठोर बातें सहन करनेकी शक्ति नहीं है। मेरे लिए इतना अपमान हो जानेपर मेरे जीवित रहनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। और युधिष्ठिर वन जानेको उद्यत हो गये।

धर्मराजने मुकुट उतार दिया था। वे अत्यन्त खिन्न बोले, तुम सब अब अपने इस अयोग्य, निष्ठुर, अधम अग्रजको क्षमा करना। सम्राट होने योग्य भीम ही हैं। विजय प्राप्त करके उनका अभिषेक कर देना। मैं अब वनमें जा रहा हूँ। वहाँ तपस्या करके पापोंका परिमार्जन करनेका प्रयत्न करूँगा।

युधिष्ठिर ने रोते-रोते कहा, अर्जुन। तुम जो कह रहे हो, सच कह रहे हो। मैं बड़ा नीच हूँ, मेरे समान पापी संसार में कौन होगा? तुम सब भाई छाया की तरह मेरे साथ रहे। वन-वन भटकते रहे। राजपुत्र होकर भिक्षा माँगकर लाते थे और मुझ पापी का पेट भरते थे। तुम भाइयों ने मुझे प्रसन्न करने के निमित्त कितने कठोर-कठोर काम किये। मैं ऐसा कृतघ्नी निकला कि तुम्हें अपने पास से अलग कर दिया। अपने स्वार्थ के लिये जीते-जी तुम्हें स्वर्ग भेज दिया। जूआ तो मैंने खेला था, तुम तो चुपचाप बैठे रहे, मेरी करतूत से तुम्हें वनवास का घोर क्लेश सहना पड़ा। भीम जूए के समय मेरे हाथों को जला रहे थे। अर्जुन। तुमने उसे उस समय रोक क्यों दिया? मेरे हाथों को भीम जला देते तो मुझे जूआ खेलने की सजा मिल जाती। सचमुच मेरे ही कारण देवी द्रौपदी नङ्गी की गई। जुआरियों ने उसे व्यभिचारिणी कहा और मैं पापी बैठा-बैठा सुनता रहा। मेरे जीवन को धिक्कार है। राज्य लोभ से मैंने कितने वीरों की हत्या कर दी। अपने स्वार्थ के लिये अपने गुरु और पितामह का वध करा दिया। सो भी धर्म से नहीं अधर्म से। मैं बड़ा स्वार्थी और नीच हूँ। मैं राज्य करने योग्य नहीं। तुम दुर्योधन, कर्ण को मारकर भीम को राजा बना देना। मैं तो अभी वन में तपस्या करने जाता हूँ। इतना कहते-कहते धर्मराज फूट-फूटकर रोने लगे और शीघ्र ही शैया से उठकर वन के लिये चल दिये। वन के लिये जाते हुए धर्मराज को देखकर आगे बढ़कर वासुदेव ने उनके चरण पकड़े। वे विनीत भाव से धर्मराज के चरणों में लेट गये और दीनता के स्वर में बोले, धर्मराज। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। अर्जुन ने मेरे ही कहने से आपको कटु वचन कहे। मेरी प्रेरणा से उन्होंने आपका अपमान किया। क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिये विवश थे। उन्हें विवश समझकर आप उन पर प्रसन्न हों और हम दोनों को आशीवाद दें कि हम कर्ण को मारकर भी आपके दर्शन करें।

युधिष्ठिर उठ खड़े हुए। उन्होंने उपचार करनेवाले चिकित्सकसे कुछ कहनेका प्रयास हाथके संकेतसे रोक दिया। अपनी शैय्यासे वे उठे ही थे कि श्रीकृष्णने उनके चरणपकड़ लिये- यदि मुझपर आपका कुछ भी स्नेह है तो चुपचाप शैय्यापर लेट जायँ और मेरी बात सुनें।

उनके नेत्रोंसे अजस्त्र अश्रुधारा चालू ही थी। कठिनाईसे वे कह सके- तुम्हारी बात सुननेके लिए जीवके कर्ण जब बधिर हो जाते हैं, तभी तो वह भवाटवीमें भटकता है। तुम्हारे शब्द श्रवणोंमें पड़े- उसका अहो भाग्य।

कृष्ण ने बीच में पड़कर दोनों कौन्तेयों का मेल करवाया। अर्जुन ने घोर प्रतिज्ञा की- कर्ण का वध किये बिना अब मैं शिबिर में नहीं लौटूँगा।

श्रीकृष्णने कहा, महाराज। आप अपने अनुजोंको जानते हैं। आप भली प्रकार जानते हैं कि यदि आप वनमें जाते हैं तो आपके शेष चारों भाई आपका पदानुसरण किये बिना रह नहीं सकते। इससे केवल आपके शत्रुओंका ही भला होगा। अत: आप यह विचार सर्वथा त्याग दें। तब अर्जुनको आज्ञा दें युद्ध भूमिमें जानेकी और आशीर्वाद दें। आप तो सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपने अर्जुनका अपमान किया। इसीलिये उन्होंने मेरे कहने से आपका अनादर किया है। गुरुजनोंका अपमान ही उनका वध कहलाता है। अब आप उसे क्षमा कर दें। हम दोनों ही आपकी शरण में आये हैं, इसमें मेरा भी अपराध है। आप मुझे भी क्षमा करें। आज यह पृथ्वी पापी कर्णका रक्तपान करेगी।

इतना कहकर कृष्ण ने संकेत से अर्जुन को क्षमा माँगने को कहा। कृष्ण का संकेत पाते ही अर्जुन ने दोनों हाथों से धर्मराज के चरण पकड़ लिये और रोते-रोते कहने लगे- महाराज। मैंने अज्ञान के वशीभूत होकर जो आपको कठोर वचन कहें हैं, उन्हें आप क्षमा करें। मैं आपका सेवक, आज्ञाकारी भृत्य और दास हूँ। मैं आपकी अप्रसन्नता को कभी सहन नहीं कर सकता। धर्म की रक्षा के लिये जो मैंने आपसे न कहने योग्य कठोर वचन कहे हैं, उन्हें आप भूल जायँ। राजन्। अब मैं कर्ण को बिना मारे आपको मुँह न दिखाऊँगा। आप मुझपर प्रसन्न होइये और विजय के लिये आशीर्वाद दीजिये।

सर्व समर्थ मधुसूदन ने धर्मराज से कहा- महाराज। अर्जुन आपके पुत्र के समान है। वह रो-रोकर अपने अपराधों की क्षमा माँग रहा है। आप प्रसन्न होकर उसे क्षमा कर दें और आशीर्वाद दें। वह कर्ण को जीतकर ही आपके दर्शन करेगा। हम दोनों आपके अधीन हैं, हम दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कर्ण बस आज मरा ही हुआ है। उसे आप मृतक ही समझें। जिसके जीवन को आप नहीं चाहते, वह पृथ्वी पर जीवित रह ही कैसे सकता है?

इतना सुनकर धर्मराज ने कहा- वासुदेव। आप जगदीश्वर हैं। आपने आज हम दोनों भाइयों को धर्म का मर्म समझाकर एक भयमर अधर्म कर्म से बचा लिया। नहीं आज हम दोनों यहीं मर जाते और महाभारत आज ही समाप्त हो जाता। अब मेरा अर्जुन के ऊपर का क्रोध जाता रहा। अब मैं आशीर्वाद देता हूँ कि युद्ध में अर्जुन की विजय हो। श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर धर्मराज ने अर्जुन से कहा- मेरे प्राण प्रिय बन्धु। आओ, मैं तुम्हें अपने हृदय से लगा लूँ। मैंने तुम्हें बहुत क्लेश पहुँचाया। सचमुच मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। उस समय कर्ण के द्वारा अपमानित होने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। हमारे एकमात्र अवलम्ब तुम्हीं हो। तुम्हारे ही बाहुबल से हम विजयी हो सकेंगे। तुमने ही हमें बड़े-बड़े समटों से उबारा है। जिनके वासुदेव सारथी हैं, उनकी पराजय हो ही नहीं सकती। तुम निश्चय ही कर्ण को मारकर विजय लाभ करोगे। आओ, मैं तुम्हें अपनी छाती से चिपटाकर इस आवेग को कम करूँ।

गोविन्द। आप जो कुछ कहते हैं बिल्कुल ठीक है। भूल तो मुझसे ही हुई है। आपने हम लोगोंकी भयंकर विपत्ति से रक्षा की। आप जैसे स्वामीको पाकर हम संकटके समुद्रसे पार हो गये। हमलोग अज्ञानवश मोहित हो रहे थे, आपकी ही बुद्धिरूप नौकाका सहारा ले हम शोकसागरके पार हुए हैं। हम आपसे ही सनाथ है।

धर्मराज के मुख से ऐसे प्रेमयुक्त वचन सुनकर श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा, धर्मराज युधिष्ठिर को तू कहने मात्र से तुम इसतरह शोक में क्यों डूब रहे हो? यदि तुम राजा का वध कर देते तो तुम्हारी क्या दशा होती। तुम यह अधर्म करके निश्चय ही घोर अं:धकार में पड़ते। भयंकर नरक की यातना भोगते। तब अर्जुन बहुत लज्जित होकर राजाके चरणों में गिर पड़े और बोले, राजन्। धर्म पालने की कामना से भयभीत होकर जो मैंने कुछ कह दिया है उसे क्षमा करें और मुझसे प्रसन्न होइये। मैं नकुल और सहदेव तथा भीम की शपथ लेकर कहता हूँ आज या तो मैं कर्णको मार डालूँगा या स्वयं ही रणभूमि में शयन करूँगा।

अर्जुनने बड़े भाईके चरणोंमें मस्तक रखा और प्रतिज्ञा की- आज कर्णको मारकर ही मैं सायंकाल श्रीकृष्णके साथ शिबिर लौटूँगा।

युधिष्ठिरने उठकर अर्जुनको हृदयसे लगाया। उन्हें विजयी होनेका आशीर्वाद दिया और युद्धभूमिकी ओर विदा करते हुए बोले- धनंजय। इन श्रीकृष्णकी सहायता, संरक्षण हमें प्राप्त हैं, अत: सफलता तुम्हारे चरण अवश्य चूमेगी।

यह कहते-कहते धर्मराज ने अर्जुन को अपनी छाती से चिपटा लिया। अर्जुन अबोध शिशु की तरह धर्मराज की छाती से चिपटे हुए आँसू बहा रहे थे। दोनों भाइयों के इस प्रेम मिलन को देखकर मधुसूदन मन-ही-मन मग्न हो रहे थे। काम क्रोध क्षण भर में मनुष्य को अपने से पराया कर सकता है और प्रेम पलभर में परायों को आत्मीय बना सकता है। क्रोध ही नाश है, प्रेम ही सुख है। क्रोध में पास रहने पर मनुष्य दूर हो जाता है, प्रेम में दूर होने पर भी सदा पास ही रहता है। प्रेम का बन्धन न होता, स्नेह की रज्जु में जगत् न बँधा होता तो इस संसार में सुख का लेश भी न रहता। यह रौरव नरक से भी गया बीता बन जाता। प्रेम ही बिछुड़ों को मिला देता है। भूले भटकों को राह पर लगा देता है, अपने से अपनों को मिला देता है और इस राग द्वेष पूर्ण संसार को स्वर्ग बना देता है। जिस संसार में मनुष्य, मनुष्य को निगलने को तैयार रहता है, जिसमें स्वार्थ बिना कोई किसी से बात नहीं करता, इन्द्रिय सुख के लिये पुरुष सब तरह के अनर्थ करता है, सगे सम्बन्धियों का जहाँ विश्वास नहीं, उस संसार में प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है जो समस्त अनर्थों का नाश करके मनुष्य को पशु से उठाकर देवताओं से ऊँचा बना देता है। मनुष्य पशु से भी नीचे गिर सकता है और ईश्वर से भी ऊपर उठ सकता है। ऐसा प्रेम जिसका किसी में भी हो गया है उसे प्रेमी और प्रेमास्पद के पादपद्मों में पुन:- पुन: प्रणाम है।

कृष्ण ने उसे डाँटा, मूर्ख हो तुम। मोहाक्रांत हो रहे हो। कभी भाई का वध करने की बात सोचते हो और कभी आत्महत्या ही कर लेना चाहते हो। तुम भी बहुत उद्विग्न लग रहे हो मुझे। अच्छा है कि धर्मराज से अनुमति लो और समरभूमि में लौटो। नहीं तो यहाँ कोई न कोई अनर्थ होकर ही रहेगा।

अर्जुन ने अपने अवसाद को संयत कर युधिष्ठिर की ओर देखा, युधिष्ठिर के चेहरे पर अब कहीं आक्रोश नहीं था। वे पहले की तुलना में पर्याप्त शांत लग रहे थे।

अर्जुन और कृष्ण ने आगे बढ़कर उनके चरण छुए, हमें आशीर्वाद दीजिए कि हम आपका मनोवांछित कर सकें।

कृष्ण ने पुन: झुककर धर्मराज के चरण छुए, हम दोनों आपकी शरण में हैं। आपके चरणों में गिरकर हम दोनों अपने आचरण के लिए आपसे क्षमायाचना करते हैं। आप हमारे अपराध क्षमा करें। आप समझिए कि आप जिसका वध चाहते हैं, उसका जीवन समाप्त हो गया है। अर्जुन ने हाथ जोड़ दिए। मुख से कुछ नहीं कहा। उसकी आँखें भी अश्रुओं से भर आई थीं। दोनों भाई स्वस्थ हुए। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि मैं आज कर्ण को अवश्य मारूँगा। धर्मराज ने अपने छोटे भाई को आशीर्वाद दिया। वासुदेव और अर्जुन ने धर्मराज की प्रदक्षिणा की, कृष्ण ने घोड़ों की रास पकड़ी। अर्जुन रथ पर सवार हुए। उन्होंने धर्मराज को फिर से प्रणाम करते हुए कहा- महाराज। कर्ण सूर्यास्त तक अवश्य मारा जायगा। देवकीनन्दन वासुदेव ने अर्जुन की बात का अनुमोदन किया। जिसकी मृत्यु के लिये वासुदेव अनुमोदन करते हैं, फिर संसार में ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो उसे बचा सके।

युधिष्ठिर बोले, धनंजय। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ जाओ कर्ण का नाश करो। अर्जुन बोले, महाराज युद्ध करो। तब अर्जुन बोले महाराज जिस कर्णने आपको बाणोंसे बींध दिया उस कर्णको पापों का भयंकर फल मिलेगा। आज उसे मारकर ही आपके दर्शन करूँगा। यह सुनकर युधिष्ठिर का मन प्रसन्न हुआ। उन्होंने अर्जुन से कहा, पार्थ। तुम्हें सदा ही अक्षय, यश, पूर्ण आयु, मनोवांछित कामना, विजय तथा बलकी प्राप्ति हो। तुम्हारे लिये मैं जो कुछ चाहता हूँ, वह सब कुछ तुम्हें मिले अब शीघ्र ही कर्ण का नाश करो। इसप्रकार धर्मराज को प्रसन्न करने के अनन्तर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, गोविन्द। अब

मुझे शीघ्र ही सूतपुत्र का वध करने के लिये उसके पास ले चलिये।

कृष्णने कहा, अर्जुन। मैं तुम्हारे उस पराक्रमको जानता हूँ, जिसका वारण करना देवता और असुरोंके लिये भी कठिन है। तुम शत्रुओंके लिये दुर्द्धर्ष हो, तुम्हारे ही आश्रयमें रहकर ये पाण्डव और पाञ्चाल रणमें डटे हुए हैं। तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हुए इन पाण्डव, पाञ्चाल, मत्स्य, करूष तथा चेदिदेशीय वीरोंने असंख्य शत्रुओंका संहार कर डाला है। तुम्हारे संरक्षणमें युद्ध करनेवाले पाण्डव-महारथियोंके सिवा दूसरा कौन है, जो संग्राममें कौरवोंको परास्त कर सके। तुम तो देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको युद्धमें जीत सकते हो, फिर कौरवसेनाकी तो बिसात ही क्या है? कोई इन्द्रके समान भी पराक्रमी क्यों न हो, तुम्हारे सिवा कौन राजा भगदत्तको जीत सकता था? अक्षौहिणी सेनाके स्वामी तथा युद्धमें कभी पीछे पैर न हटानेवाले भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य तथा दुर्योधन- जैसे महारथियोंपर तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन विजय पा सकता है? भयंकर पराक्रम दिखानेवाले तुषार, यवन, खश, दार्वाभिसार, दरद, शयक, माठर, तङ्गण, आन्ध्र, पुलिन्द, किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय तथा समुद्रके तटपर रहनेवाले योद्धा क्रोधमें भरकर दुर्योधनकी सहायताके लिये आये हैं, इन्हें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं जीत सकता।

अर्जुन। जिस समय भीष्म और द्रोणाचार्य मारे गये, तभीसे कौरवोंकी इस भयंकर सेनाका मानो सर्वस्व लुट गया। इसके प्रधान-प्रधान योद्धा नष्ट हो गये, इसमें घोड़ों, रथों और हाथियोंका अभाव हो गया। इस समय यह सेना सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंसेरहित आकाशकी भाँति श्रीहीन दिखायी दे रही है। इसके प्रमुख वीरोंमेंसे और सब तो मारे गये, केवल अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, शल्य तथा कृपाचार्य- ये ही पाँच महारथी बाकी रह गये हैं। इन पाँचों को मारकर तुम शत्रुहीन हो जाओ और राजा युधिष्ठिरको द्वीप, नगर, समुद्र, पर्वत, बड़े-बड़े वन तथा आकाश और पातालसहित समस्त पृथ्वी अर्पण कर दो। यदि अपने गुरु आचार्य द्रोणका सम्मान करनेके कारण तुम उनके पुत्र अश्वत्थामापर कृपादृष्टि रखते हो अथवा आचार्यका गौरव रखनेके लिये कृपाचार्यपर तुम्हें दया आती हो, यदि माताके बन्धुजनोंके प्रति आदर-बुद्धि होनेसे तुम कृतवर्माको सामने पाकर भी यमलोक नहीं भेजना चाहते तथा माता माद्रीके भाई मद्रराज शल्यको भी दयावश मारना नहीं चाहते तो न सही, किंतु पाण्डवोंके प्रति अत्यन्त नीचतापूर्ण बर्ताव करनेवाले इस पापी कर्णको तो आज बाणोंसे मार ही डालो। यह तुम्हारे लिये पुण्यका काम होगा। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ; कर्णका वध करनेमें कोई दोष नहीं है।

दुर्योधनने पाँचों पुत्रोंसहित माता कुन्तीको आधी रातके समय जो लाक्षाभवनमें जलानेकी कोशिश की तथा तुमलोगोंके साथ जो वह जुआ खेलनेमें प्रवृत्त हुआ, उन सब षड्यंन्त्रोंका मूल कारण यह दुष्टात्मा कर्ण ही था। दुर्योधनको सदासे ही यह विश्वास था कि कर्ण मेरी रक्षा करेगा, इसीलिये वह क्रोधमें भरकर मुझे भी बंदी करनेको तैयार हो गया था। उसने तुमलोगोंके साथ जो-जो बुराइयाँ की हैं, उन सबमें इस पापात्मा कर्णकी ही प्रधानता है। दुर्योधनके छ: निर्दयी महारथियोंने मिलकर जो सुभद्राकुमार अभिमन्युकी जान ली थी, उस भयंकर संग्राममें इस कर्णने ही अभिमन्युका धनुष काटा था। कर्णद्वारा धनुष कट जानेपर शेष पाँच महारथियोंने, जो छल-कपटमें बड़े प्रवीण थे, बाणोंकी बौछारसे उसे मार डाला। उस वीरके इस तरह मारे जानेपर प्राय: सबको दु:ख हुआ; केवल ये दुष्ट कर्ण और दुर्योधन ही जी भरकर हँसे थे। इतना ही नहीं, इसने कौरवोंकी भरी सभामें द्रौपदीको इस प्रकार कटुवचन सुनाये थे- कृष्णे। पाण्डव तो नष्ट होकर सदाके लिये नरकमें पड़ गये। अब तू दूसरा पति वरण कर ले। आजसे तू धृतराष्ट्रकी दासी हुई; अत: राजमहलमें जाकर अपना काम सँभाल। अब पाण्डव तुम्हारे स्वामी नहीं रहे। वे तेरे लिये कुछ कर भी नहीं सकते। तू दासोंकी स्त्री है और स्वयं भी दासी है।

इस तरह इस पापीने बहुत-सी बातें कहीं, जो तुमने भी सुनी थी। इसके अलावा भी इसने तुमलोगोंके साथ अन्याय करके जो-जो पाप किये हैं उन सबको तथा इसके जीवनको भी तुम्हारे बाण नष्ट करें। आज दुरात्मा कर्ण अपने शरीरपर गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए भयंकर बाणोंकी चोट सहता हुआ आचार्य द्रोण तथा भीष्मके वचन याद करे। तुम्हारे सायकोंसे पीड़ित हुए राजालोग आज दीन और विषादयुक्त होकर हाहाकार मचाते हुए कर्णको रथसे नीचे गिरता देखें। राजा शल्य भी आज तुम्हारे सैकड़ों बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए रथी और अश्वसे रहित रथको छोड़ भयभीत होकर भाग जायँ। पार्थ। यदि तुम सूतपुत्र कर्णके देखते-देखते अपनी प्रतिज्ञापूर्तिके लिये उसके पुत्रको मार डालो तो वह भीष्म, द्रोण और विदुरकी बातोंको याद करे। तुम्हारा मुख्य शत्रु दुर्योधन तुम्हारे हाथसे कर्णको मारा गया देख आज अपने जीवन तथा राज्यसे निराश हो जाय। जान पड़ता है, पञ्चालदेशीय वीर, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, धृष्टद्युम्नके पुत्र, शतानीक, नकुल-सहदेव, दुर्मुख जनमेजय, सुधर्मा तथा सात्यकि- ये कर्णके वशमें पड़ गये हैं। उनका घोर आर्तनाद सुनायी पड़ता है। जो अपने मित्रके लिये प्राणोंकी परवा न करके सामने डटकर लड़ रहे हैं, उन सैकड़ों पाञ्चाल वीरोंको कर्ण यमलोक भेज रहा है। वे कर्णरूपी अगाध महासागरमें नावके बिना डूब रहे हैं, अब तुम्हें ही नौका बनकर उनका उद्धार करना चाहिये। भीम सृञ्जय-योद्धाओंसे घिरे हुए हैं और उसके पैने बाणोंसे पीडित हो रहे हैं। मैं युधिष्ठिरकी सेनामें तुम्हारे सिवा और किसी वीरको ऐसा नहीं देखता, जो कर्णसे लोहा लेकर घर लौट आवे। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तेज किये हुए बाणोंसे आज कर्णको मारकर उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त करो। वीरवर। मैं सच कहता हूँ, एक तुम्हीं कर्णसहित कौरवोंको युद्धमें जीत सकते हो, दूसरा कोई नहीं। अत: महारथी कर्णको मारकर तुम अपना मनोरथ सफल करो।

उन्होंने केशवसे कहा- गोविन्द। जब आप मेरे स्वामी एंव संरक्षक हैं तो मेरी विजय निश्चित है। संसारके भूत और भविष्यका निर्माण आपके हाथमें है, जिसपर आप प्रसन्न हैं, उसकी विजयमें क्या संदेह है? कृष्ण कर्णकी तो बात ही क्या है? आपकी सहायता मिलनेपर तो मैं अपने सामने आये हुए तीनों लोकोंको परलोकका पथिक बना सकता हूँ। जनार्दन। मैं देखता हूँ- पाञ्चालोंकी सेना भाग रही है। यह भी देख रहा हूँ कि कर्ण रणभूमिमें निर्भय-सा विचरता है। उस प्रज्वलित भार्गवास्त्रकी ओर भी मेरी दृष्टि है, जिसे कर्णने प्रकट किया है। निश्चय ही, यह वह संग्राम है, जहाँ कर्ण मेरे हाथसे मारा जायगा और जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक समस्त प्राणी इस बातकी चर्चा करेंगे। आज मेरे गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाण कर्णको मौतके घाट उतारेंगे। कृष्ण। आज कर्णके मारे जानेसे दुर्योधन अपने राज्य और जीवन-दोनोंसे निराश हो जायगा। मेरे बाणोंसे कर्णके टुकड़े-टुकड़े हुए देख आज राजा दुर्योधन आपके उन वचनोंको स्मरण करे, जिन्हें आपने उसकी भलाईके लिये कहा था। कौरवोंकी सभामें पाण्डवोंकी निन्दा करते हुए कर्णने द्रौपदीसे जो कठोर बातें कहीं थीं, उनके लिये आज उसे खूब पश्चात्ताप होगा। आज कर्णके मारे जानेपर धृतराष्ट्रके सभी पुत्र राजा दुर्योधनके साथ इस तरह भयभीत होकर भागेंगे, जैसे सिंहसे डरे हुए मृग भागते हैं। कर्णके पुत्र और मित्रोंको भी आज जीवित नहीं रहने दूँगा। सूतपुत्रकी मौत देखकर राजा दुर्योधन अब अपने लिये चिन्ता करें। आज राजा धृतराष्ट्रको उनके पुत्र-पौत्र, मन्त्री तथा सेवकोंसहित राज्यकी ओरसे निराश कर दूँगा। आज मैं अकेला ही कौरवों तथा बाह्लीकोंको सेनासहित मारकर अपने बाणोंकी ज्वालामें जला डालूँगा। मेरे एक हाथमें बाणकी तथा दूसरेमें बाणसहित दिव्य धनुषकी रेखाएँ हैं, पैरोंमें भी रथ और ध्वजाके चिह्न हैं। मेरे-जैसे लक्षणोंवाले योद्धाको कोई भी युद्धमें नहीं जीत सकता।

कृष्णसे ऐसा कहकर अद्वितीय वीर अर्जुन क्रोधसे लाल आँखें किये रणभूमिमें जा पहुँचे। उस समय उनके मनमें दो संकल्प थे- भीमको संकटसे छुड़ाना और कर्णके मस्तकको धड़से अलग कर देना।

४) कर्ण और अर्जुन का संग्राम और कर्ण वध

संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ कोई मरा न हो।

मनुष्य अपने भ्रम से अज्ञानवश शुभ-अशुभ की कल्पना कर लेता है। सम्पूर्ण जगत में वे ही श्रीहरि क्रीड़ा कर रहे हैं। वे ही चराचर जगत् का सञ्चालन कर रहे हैं। उनकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, एक नन्हा-सा बीज भी नहीं उग सकता। जो लोग इस संसार में अपनी इच्छा पूर्ति चाहते हैं, वे ही दुखी होते हैं और जो अपनी इच्छा को श्रीहरि की इच्छा में मिला देते हैं, उन्हें न किसी घटना से दु:ख होता है न सुख, वे प्रत्येक बात में प्रसन्न रहते हैं। जिनका नाम शिव है, वे अशिव कार्य कैसे कर सकते हैं? जो मङ्गलभवन हैं उनके द्वारा अमङ्गल की कल्पना की ही कैसे जा सकती है। जो आनन्द स्वरूप है उनकी क्रीड़ा निरानन्द हो ही नहीं सकती। इसलिये सुख-दुख और लाभ-हानि में सन्तुष्ट रहना ही सच्चे वीरों का काम है। बस सामने से मनमोहन की मनमोहनी मनोहर मूर्ति लोप न होने पावे। उनका पुनीत पावन नाम विस्मरण न होने पावे फिर चाहे पूजास्थल हो या वधस्थल, दोनों समान हैं, दोनों ही मङ्गलमय के मङ्गल कार्य हैं।

वीर कर्ण की प्रतिज्ञा वज्रनिनादि की तरह चारों ओर आर्याव्रत: में फैल गई। मां कुंती दु:ख में म्रियमाण हो गईं। उनका कातर विलाप कृष्ण के कानों में पड़ा। कृष्ण तक दु:ख पहुंचने के बाद कोई चिन्ता नहीं रह जाती। अरण्यवासी पांचों पांडव कर्ण की प्रतिज्ञा से विमर्ष हो चुके थे।

मनुष्य हमेशा आवेश में आकर बड़े-बड़े काम कर डालता है। यदि मनुष्यों को प्रोत्साहन न मिले, यदि उनके शुभ कार्यो की प्रशंसा न हो, यदि लोग उनके शुभ कामों की सराहना न करें तो मनुष्य कुछ कर ही नहीं सकता, प्रोत्साहन से मनुष्य को बडी शक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य के गुणों का, उसके किये हुए शुभ कर्मों का स्मरण दिलाया जाय तो हृदय में एक प्रकार की स्फूर्ति पैदा हो जाती है। डरे हुए आदमी को भी साहस होता है। चोरों के पीछे भागनेवाले पुरुष की जब हिम्मत छूट जाती है और चोरों के प्रहार से वह भयभीत होने लगता है, तब यदि कोई पीछे से झूठ-मूठ भी यह कह दे घबड़ाने की कोई बात नहीं, हम आ रहे हैं तो उसका उत्साह और बढ़ जाता है। प्रोत्साहन ही कार्य करने का मन्त्र है, विजय का जादू है। इसलिये जनता का और बड़े लोगों का प्रोत्साहन प्रत्येक कार्य में अनिवार्य समझा जाता है।

कर्ण जैसे बली थे, वैसा उनके भाग्य ने साथ नहीं दिया। भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, अर्जुन और यहाँ तक कि वासुदेव के मुख से भी हम बार-बार यही सुनते हैं कि कर्ण के बराबर वीर त्रैलोक्य में कोई नहीं। इतना सब होने पर भी उन्हें सारथी ऐसा निकम्मा मिला कि बिना बात, समय हो या असमय उन्हें गाली ही देता रहता था। जिस सारथी को रथी के संकेत से काम करना चाहिये, उन्हें सदा खरी-खोटी ही सुनाता रहता। उनकी निन्दा करके और अर्जुन की प्रशंसा करके सदा उन्हें उत्साहहीन बनाने की ही चेष्टा करता रहता। इधर वासुदेव तो नीति के समुद्र ही थे। वे विजय के कारणों को रत्ती-रत्ती भर जानते थे किस समय कौन-सी बात कहने से मेरे रथी पर कैसा प्रभाव पड़ेगा।

महाराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर अर्जुन कर्ण से युद्ध करने चले। कर्ण की वीरता, उनकी हस्तलाघवता, शस्त्र कुशलता का स्मरण करते-करते अर्जुन का चेहरा उदास हो गया। वे बार-बार सोचते- इतना बड़ा वीर कर्ण कैसे जीता जायगा? वह न जीता गया तो धर्मराज को मैं क्या मुँह दिखाऊँगा। कर्ण बड़ा बली है। उसने अपने बाहुबल से समस्त क्षत्रियों को हराकर दिग्विजय की है। जरासन्ध को हराया है। उसे मैं कैसे जीत सकता हूँ? कर्ण की वीरता का स्मरण करके अर्जुन के रोंगटे खड़े हो गये। उसके शरीर से पसीना बहने लगा। सब अङ्ग शिथिल पड़ गये और गाण्डीव धनुष भी खिसकने लगा। सर्वज्ञ

मधुसूदन उसके भाव को ताड़ गये। घोड़ों को धीरे करके बोले- अर्जुन। तुम क्या सोच रहे हो? तुम्हें स्मरण नहीं कि अभी चलकर तुम्हें महाधनुर्धर कर्ण से युद्ध करना है। कर्ण को तुम साधारण वीर मत समझो। वह महाबलवान् है। हमारी सेना में तुम्हें छोड़कर और कोई उसका सामना नहीं कर सकता। तुम भी बड़ी सावधानी से लड़ो, तब उसके सम्मुख रण में ठहर सकते हो। मैं कर्ण को तुमसे अधिक बली मानता हूँ। वह संग्राम में समस्त लोकपालों को भी जीत सकता है। वह अभिमानी शूरवीर और दुर्योधन का भक्त है। दुर्योधन को एकमात्र उसी का भरोसा है। उसके मरते ही, दुर्योधन का सब उत्साह भंग हो जायगा फिर वह युद्ध न करेगा। कर्ण ही दुर्योधन के बाहरी प्राण हैं।

कृष्ण ने देखा अर्जुन कुछ और भी भयभीत से दिखाई देने लगे। तब उन्होंने अर्जुन की प्रशंसा आरम्भ की। अर्जुन के पुराने पौरुष और उत्तम कार्यों का स्मरण कराते हुए कहने लगे- यह ठीक है कि कर्ण बली है, किन्तु तुम चाहो तो उसे मार सकते हो। हमारी सेना में एक तुम ही ऐसे हो, जो कर्ण को मारने में, परास्त करने में समर्थ हो। तुम भी कोई साधारण वीर थोड़े ही हो। तुमने अपने बाहुबल से समस्त क्षत्रिय राजाओं को परास्त किया है। पितामह भीष्म को परशुरामजी भी परास्त नहीं कर सके, जिन्होंने सहस्त्रबाहु अर्जुन को मार डाला, उन परशुरामजीको युद्ध में प्रसन्न करनेवाले भीष्म का तुमने दस दिन बड़ी बहादुरी से सामना किया और अन्त में मार गिराया। द्रोणाचार्य के बाणों को रोकने की सामर्थ्य संसार में तुम्हारे सिवाय और किसमें है? युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में समस्त राजाओं ने तुम्हारे बाहुबल का लोहा मान लिया था। भीष्म, द्रोण को युद्ध में सन्तुष्ट करनेवाले अर्जुन के लिये यह सूत-पुत्र चीज ही क्या है? तुम यदि सावधानी से लड़ो तो उसे बात-की-बात में मार सकते हो।

वासुदेव के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर अर्जुन के अङ्ग फड़कने लगे। उनके चेहरे का रङ्ग बदल गया। मुख-मंडल पर वीरता के भाव झलकने लगे। जब मधुसूदन ने देखा मेरा प्रयोजन सिद्ध हुआ, अर्जुन के ऊपर मेरे वचनों का गहरा प्रभाव पड़ा, तब अर्जुन को उत्साहित करने और कर्ण के वध के लिये उत्तेजित करने के निमित्त वे कर्ण की निन्दा करने लगे।

वासुदेन ने कहा- अर्जुन। कौरव सेना में हत्या की जड़ कर्ण ही है। इस महाभारत का मूल कारण तुम इस सूतपुत्र को ही जानो। इसी की प्रेरणा से, इसी के बल भरोसे पर दुर्योधन युद्ध कर रहा है। दुर्योधन को यदि कर्ण का सहारा न मिलता तो वह सिर भी ऊपर न उठा सकता था। तुम्हारे ऊपर अन्याय और अनर्थ करने की तो उसकी हिम्मत होती ही नहीं। दुर्योधन ने अपने किये का फल भोग लिया। उसकी प्राय: सभी सेना समाप्त हो चुकी। उसकी ओर अब लड़ने को रहा ही कौन है? बड़े-बड़े सभी महारथी जिनकी पितामह भीष्म ने प्रशंसा की थी, जिन्हें अतिरथी और महारथी कहा था वे सब तो मारे ही गये। अब केवल ५ ही महारथी शेष रहे हैं। कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और शल्य। इन पाँचों को और मार डालो, बस समस्त पृथ्वी पर धर्मराज का अधिकार हो जायगा। इन पाँचों में भी कर्ण का मार देना अत्यावश्यक है। गुरु का पुत्र समझकर तुम अश्वत्थामा को छोड़ना चाहो तो छोड़ भी सकते हो। यह समझो कि शल्य हमारे मामा हैं तो उन्हें मत मारना। उनके बिना मारे कोई काम अटका न रहेगा। कृपाचार्य गुरु हैं। उन्हें मारो तो ऐसा, न मारो तो तैसा। कृतवर्मा कुन्ती के वंशज हैं। इस नाते उन्हें तुम छोड़ना चाहो तो छोड़ देना, किन्तु इस अधिरथ के पुत्र पर दया करना कभी भी उचित नहीं इसे यदि तुमने न मारा तो सब किया कराया चौपट ही हो जायगा। जब तक यह जीवित है, तब तक दुर्योधन की कभी पराजय नहीं हो सकती। यह सूत-पुत्र ही तुम्हें क्लेश देने में प्रधान कारण है। तुम स्मरण करो, परीक्षा के दिन रङ्गभूमि में सबके सामने इस सूत-पुत्र ने ही तुम्हारा अपमान किया था। लाक्षागृह में जला डालने की सलाह दुर्योधन को इसी दुष्ट ने दी थी। जूए का खेल इसी नीच की सलाह से हुआ था। द्रौपदी के वस्त्राहरण की आज्ञा इसी दुष्ट ने

दु:शासन को दी थी। द्रौपदी को दासी और व्यभिचारिणी इसी ने बताया था। दुर्योधन इसी की सम्मति से तुम्हें चिढ़ाने के लिये बन में गया था। इसीने मुझे पकड़कर कैद करने की सम्मति दुर्योधन को दी थी, जब मैं सन्धि दूत बनकर गया था। इसी के कहने से दुर्योधन ने धर्मराज को ५ गाँव भी नहीं दिये थे। इसी की दुर्मंत्रणा से मेरा भानजा और तुम्हारा प्रिय पुत्र अभिमन्यु मारा गया था। इसी दुष्ट ने उसके धनुष को काट डाला और अन्य ५ महारथियों ने मिलकर उस अकेले बालक को बुरी तरह से मार दिया। मैं सब कुछ भूल सकता हूँ, द्रौपदी के अपमान को क्षमा कर सकता हूँ, किन्तु अभिमन्यु के अन्यायपूर्वक वध को कभी क्षमा नहीं कर सकता। वह घटना मुझे रात्रि-दिन कष्ट देती रहती है। इस नीच ने हमारी कितनी सेना का संहार कर डाला है। हमारे प्रधान-प्रधान वीरों को इसने मार डाला। धर्मराज को अपमानित किया, फिर भी यह दुष्ट जीता है। यह सदा तुम्हें मारने की बात सोचता रहता है। धृतराष्ट्र के सब पुत्रों का विश्वास है कि यह मुझे और तुम्हें युद्ध में अवश्य ही मार डालेगा। तुम कौरवों के इस विश्वास को मिटा दो। अर्जुन के सामने कर्ण पतंगे के समान है। वह अर्जुन की लपट से जलकर भस्म हो जायगा। आज संसार देखे, कि कर्ण में और अर्जुन में, अर्जुन ही यथार्थ वीर है, कौरव आज कर्ण को औंधे मुख जमीन पर पड़ा हुआ देखें। आज संसार देख ले कर्ण नाम का ही वीर था। काम का वीर तो पाण्डु पुत्र कुन्तीनन्दन सव्यसाची अर्जुन ही है। आज तुम मेरा रथ कौशल देखना। आज तुम देखोगे कि कर्ण को मैं कैसा धोखा देता हूँ। शल्य मेरे सामने क्या रथ चला सकता है? कर्ण आज अपने को मरा हुआ समझेगा। कर्ण को मारकर तुम उसके सिर पर पैर रखो। उसे आज यमपुर पहुँचा दो। उसका बोलना और बड़बड़ाना बन्द कर दो। उसके मुँह को मोड़ दो, धनुष को तोड़ दो, पेट को फोड़ दो। आज तुम अपना पूरा पराक्रम दिखाओ। तुम निश्चय समझो विजय तुम्हारी ही होगी।

वासुदेव के ये उत्साहपूर्ण वचन सुनकर अर्जुन के रोम-रोम खिल उठे। वह वीर बड़े जोरों से गर्जन करने लगा। वह मूर्तिमान वीर रस की तरह दिखाई देने लगा। उसका मुख-मण्डल दमकने लगा। उसने प्रसन्नता के आवेश में कहा- मधुसूदन। आप आज दुष्ट कर्ण को मरा हुआ ही समझें। आपके आशीर्वाद से मैं निश्चय ही कर्ण को मार डालूँगा। सचमुच कर्ण ही हमारे दुखों का मूल कारण है। यह भरी सभा में सबके सामने गर्व से कहता था- मैं अर्जुन को मारूँगा। आज मैं समर में उसके गर्व को चूर्ण करूँगा। इस दुरात्मा ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं अर्जुन को मार न लूँगा तब तक किसी से पैर न धुलाऊँगा। आज मैं उसकी प्रतिज्ञा को तोड़ूँगा। यह बड़बड़ाता रहता था कि मैं समस्त वीरों का नाश कर दूँगा। आज मैं अपने बाणों से उसकी बोलती बन्द कर दूँगा। वह अपने बाहुओं को बार-बार ठोक-कर कहता था- इन बाहुओं के भरोसे मैं सबको परास्त करूँगा। उन्हीं बड़ी-बड़ी साखू के समान उसकी दोनों भुजाओं को मैं काटूँगा। वासुदेव। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ आपकी मेरे ऊपर इसी तरह कृपा बनी रही तो मैं आज कर्ण को अवश्य ही परास्त करूँगा। आप मेरे रथ को अब कर्ण के समीप ले चलिये। अब विलम्ब करने का काम नहीं। अब तो संसार में या तो कर्ण रहेगा या मैं ही रहूँगा। आपके आशीवार्द से मैं ही रहूँगा। कर्ण तो मारा ही जायगा। उसके शरीर को गिद्ध नोचेंगे, गीदड़ उसकी लोथ को घसीटेंगे। वह मरकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ अपने पुराने पापों को स्मरण करके यमपुर सिधारेगा।

अर्जुन के ऐसे वीरतापूर्ण वचन सुनकर वासुदेव ने उसका अभिनन्दन किया और बोले- हे कुन्तीनन्दन। ऐसा ही होगा। हे पांडव। तुम अवश्य ही विजयी होगे। लो, अब यह सामने भयमर युद्धभूमि आ गई। वह सामने ही कर्ण का विशाल रथ दिखाई दे रहा है। तुम्हारे मामा शल्य उसे बड़ी फूर्ती से हाँक रहे हैं। हाँ मारो तो एक हाथ। शाबाश, वीरवर अवश्य ही तुम जीतोगे, क्योंकि तुम्हारे रथ पर मैं हूँ। मैं जिसके रथ पर बैठ जाता हूँ, उसकी पराजय कभी नहीं होती।

अपने आत्म सुहृद् की प्रशंसा सभी करते हैं, किन्तु आदर्श पुरुष वे ही कहलाते हैं जिनकी प्रशंसा शत्रु भी पीठ पीछे करें। स्वपक्षीय योद्धा के बल वीर्य की प्रशंसा तो उसे उत्साहित करने के लिये ही की जाती है, किन्तु माननीय वीर तो वही है कि विपक्षी भी जिसका लोहा मान लें। यह संसार सदा से वीरों द्वारा प्रशंसित है। संसार में वीर न रहें तो नरक में और इसमें अन्तर ही क्या है? इस पृथ्वी की शोभा वीरों से ही है। उसका उपभोग वीर पुरुष ही कर सकते हैं। वीर भोग्या वसुन्धरा यह लोकोक्ति यथार्थ सत्य है। दानवीर, शूरवीर, धर्मवीर, कर्मवीर आदि वीरों से ही पृथ्वी सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। जब संसार में आत्माभिमानी वीर नहीं रहते, समस्त वीरों का जब नाश हो जाता है, तब क्षुद्र पुरुष छल, बल, कौशल, धूर्तता और नाना भाँति की कुटिल नीतियों का आश्रय लेकर बहुमत के बल पर जनता के अग्रणी बनकर पाप पूर्ण कार्यों के प्रचार से पाप कर्मों का प्रसार और पापियों को प्रोत्साहित करते हैं। सिंह को बहुमत की आवश्यकता नहीं। उसे कोई राजसिंहासन पर बिठाकर राजतिलक नहीं करता। वह तो अपने पराक्रम से मृगराज और अरण्यपति बन जाता है। जब भगवान् कलियुग के आने का समय देखते हैं तब अपनी माया से समस्त वीरों का संहार कर देते हैं। नहीं तो संसार में भीष्म, द्रोण और परशुराम तथा कर्ण जैसे वीरों को कौन संग्राम में परास्त कर सकता था? अर्जुन साधारण भीलों द्वारा लूटे गये, वे कहीं भीष्म और कर्ण को बाणों से मार सकते थे? अर्जुन में इतनी शक्ति कहाँ थी? यह सब तो वासुदेव की लीला थी। अर्जुन ने रण में स्पष्ट देखा कि एक भयमर मूर्ति पुरुष अर्जुन के आगे-आगे वीरों का संहार करता हुआ चलता हैं सब वीर तो उसी की गदा से मर रहे हैं। लोग समझते हैं ये सब अर्जुन के द्वारा मारे जा रहे हैं। जो जिलाने वाला है, वही मार सकता है, जो जिलाने की शक्ति नहीं रखता, उसे मारने की सामर्थ्य नहीं। अर्जुन तो निमित्त मात्र थे। मारनेवाले तो वे ही कालस्वरूप श्रीहरि हैं।

कर्ण का पुत्र अकेला ही इतने सारे पांडव योद्धाओं से जूझ रहा था और वे लोग उसकी कोई हानि नहीं कर पा रहे थे। कौरव सैनिक कुछ उत्साहित हो उठे। उनका मनोबल कुछ ऊँचा हो आया था।

आज कुरुक्षेत्र में भयावह प्रतिस्पर्धा थी। दोनों पक्षों ने अपने-अपने सर्वोत्तम धनुर्धर वीर दाँव पर लगा दिये थे। कौरव पक्ष की ओर से अंगराज कर्ण एवं पाण्डव पक्ष की ओर से अजेय धनुर्धर अर्जुन आमने-सामने खड़े थे। दोनों समान पराक्रमी। दोनों महान् धनुर्धर। दोनों ही अपने-अपने पक्षों की आशा के केन्द्रबिन्दु थे। युद्ध के उस महासागर में डूबती-उतराती अपनी-अपनी चतुरंगिणियों के वे ही प्रमुख आश्रयद्वीप थे। महासंग्राम था। दोनों निर्भीक, निडर, परम तेजस्वी वीर बलशाली सिंहों की भाँति खड़े थे। इसके पूर्व राधानन्दन कर्ण के सुतीक्ष्ण बाणों से धर्मराज युधिष्ठिर आहत एवं रथविहीन होकर पलायन कर चुके थे। नकुल एवं सहदेव भी कर्ण के कठोर प्रहारों से गम्भीर रूप से आहत हो चुके थे। द्रौपदी के पाँचों पुत्र और महाबली भीम भी उन तीक्ष्ण तीरों से व्याकुल हो चुके थे।

चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा था, मारो, काटो की गगनभेदी आवाज से सर्वत्र शोर हो रहा था। बाणों की वर्षा से युद्धभूमि में अन्धकार-सा छाया था। श्रीकृष्ण बड़ी चातुरी से रथ को हाँक रहे थे। कर्ण के समीप पहुँचने को उन्हें बहुत दूर तक युद्धभूमि के बीच से ही जाना था। चारों ओर मरे हुए और घायल सैनिकों की लाशें पड़ी हुई थीं। किसी का हाथ कट गया था, किसी का सिर कटा हुआ पड़ा था। कोई घायल ही पड़ा चिल्ला रहा था। किसी का कुंडल सहित कान ही कटा पड़ा हुआ था, कोई वस्त्रहीन उलटा पड़ा था। किसी के शरीर पर वस्त्र लिपटा हुआ था। कहीं दो वीरों की लाश साथ ही पड़ी थी, मानों एक-दूसरे का आलिङ्गन कर रहे हों। कहीं एक के ऊपर एक बहुत से मृतक

सैनिक पड़े थे। कभी-कभी तो इतने मृतक सैनिक मिलते कि रथ उनके ऊपर से ले जाना पड़ता। कहीं-कहीं गड्ढों में रक्त भरा हुआ था। रथ उसमें चला जाता। तब वासुदेव उतरकर उसके चक्र को निकालते। उनका आधा पीताम्बर रक्त में सराबोर था। कहीं-कहीं तो रक्त की बहती हुई नदियों के भीतर से वासुदेव रथ को बड़ी शीघ्रता से ले जा रहे थे। अर्जुन ने कहा- वासुदेव। बड़ा वीभत्स दृश्य है। कर्ण कहाँ छिप गया?

कृष्णने कहा- यह तो रणचंडी का दृश्य है। माँ काली को कभी-कभी प्यास लगती हैं उसका पेय रक्त ही है। जब उसे जोर की प्यास लगती है, तभी यह दृश्य उपस्थित होता है। तुम देख रहे हो न? सर्वत्र रक्त रञ्जित जगत् दीख रहा है। मांस मेदा और रक्त के भोजी सियार, गिद्ध तथा अन्य मांस भोजी जीव निर्भय होकर विचर रहे हैं। कर्ण बहुत दूर पर युद्ध कर रहा है। अभी तो सामने वह देखो कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा तुम्हें थकाने के लिये चले आ रहे हैं, तुम इनसे उलझ मत जाना। इन्हें मारना तो तुम्हें अभीष्ट है ही नहीं, फिर ये तीनों अमर हैं। इन्हें कोई संग्राम में मार भी नहीं सकता। तुम तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति आज कर्ण पर लगा दो।

यह सब जानकर ही अब कौरवसेना-रूपी घनघोर मेघघटा को छिन्न-भिन्न करते अर्जुन प्रलय-सूर्य से उग्र हो उठे एवं तप्त किरणों जैसे अपने तीक्ष्ण शरों की धुआँधार वर्षा से कौरवसेना को आकुल-व्याकुल किये डाल रहे थे, अभिमन्यु-वध का शूल उर में गहरा लगा था। उसका ताप अभी भी निरन्तर मन को दग्ध किये डाल रहा था और कर्णपुत्र वृषसेन को देखते ही उनका वह पुत्रशोक-विह्वल मन हाहाकार कर उठा।

दु:शासनने संशप्तकोंकी सेना लेकर भीमपर धावा किया था। उस संग्राममें उत्तमौजाने कर्णपुत्र सुषेणको अपने बाणोंका निशाना बनाकर उसका मस्तक काट गिराया। सुषेणका सिर पृथ्वीपर पड़ा देख कर्ण व्याकुल हो उठा।

जैसे देवराज इन्द्रने हाथमें वज्र लेकर जम्भासुरको मारनेके लिये यात्रा की थी, उसी प्रकार अर्जुनने भी रथमें बैठकर विजयके लिये यात्रा की। उन्हें आते देख कौरव-पक्षके नरवीर क्रोधमें भरकर रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंको साथ ले अर्जुनके सामने चढ़ आये। फिर तो त्रिलोकीका राज्य पानेके लिये जैसे असुरोंके साथ देवताओं और भगवान् विष्णुका युद्ध हुआ, उसी प्रकार उन योद्धाओंके साथ अर्जुनका संग्राम होने लगा। वह संग्राम देह, प्राण और पापोंका नाश करनेवाला था। उस समय कौरववीरोंने छोटे-बड़े जितने अस्त्रोंका प्रयोग किया, उन सबको क्षुर, अर्धचन्द्र तथा भल्लोंसे अर्जुनने अकेले ही काट डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने उनके मस्तक और भुजाएँ काटकर छत्र, चँवर, ध्वजा, घोड़े, रथ, पैदल तथा हाथी आदिको भी नष्ट कर दिया। वे सब विरूप हो-होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस प्रकार धनञ्जय अपने वज्रके समान बाणोंसे शत्रुओंके घोड़े, हाथी और रथ आदिकी धज्जियाँ उड़ाकर कर्णको मार डालनेकी इच्छासे तुरंत उसके पास जा पहुँचे। उन्हें वहाँ देख कौरवोंके सैनिक रथी, घुड़सवार, हाथीसवार तथा पैदलोंकी सेना साथ लेकर पुन: उनपर टूट पड़े और एक साथ होकर उन्हें पैने बाणोंसे बींधने लगे। उस समय उनके अलौकिक बलको देख कौरव सैनिकोंके होश उड़ गये।

तब भीमको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सुबल पुत्रपर लोहेकी बनी हुई एक शक्ति चलायी। पास आते ही शकुनिने उस शक्तिको हाथसे पकड़ लिया और उसे फिर भीमपर ही चला दिया। भीमकी बायीं भुजापर चोट करती हुई वह शक्ति जमीनपर जा पड़ी। अब भीमने प्राणोंकी परवा न करके अपने बाणोंसे शकुनिकी सेनाको आच्छादित कर दिया। फिर उसके चारों घोड़ों तथा सारथीको मारकर एक भल्लसे उसके रथकी ध्वजा भी काट डाली। शकुनि तुरंत ही रथसे कूदकर एक ओर खड़ा हो गया और धनुष टंकारता हुआ भीमपर चारों ओरसे बाणोंकी वृष्टि करने लगा। यह देख

प्रतापी भीमने बड़े वेगसे उसपर आघात किया, फिर उसका धनुष काटकर उसे बाणोंसे बींध डाला। बलवान् शत्रुके आघातसे अत्यन्त घायल होकर शकुनि पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित जानकर दुर्योधन आया और उसे अपने रथपर बिठाकर रणभूमिसे दूर हटा ले गया। अब तो कौरव-योद्धा भयभीत होकर चारों दिशाओंमें भागने लगे और भीम सैकड़ों बाणोंकी वर्षा करते हुए बड़े वेगसे उनका पीछा करने लगे। उनकी मारसे पीडित हो वे सब-के-सब योद्धा कर्णकी शरणमें गये। महाराज। उस समय कर्ण ही उनका रक्षक हुआ।

राधानन्दन कर्ण। स्मरण करो अपनी क्षुद्रता और अधर्म... जब तुम सब प्रौढ़ महारथियों ने मेरे किशोर बालक अभिमन्यु को एकाकी कर घेर लिया था। उसे नि:शस्त्र कर, अत्यन्त असहाय अवस्था में क्रूर राक्षसों की भाँति, उस निहत्थे बालक के प्राण ले डाले थे। नरपिशाच। तुम लोगों जैसा वह पैशाचिक कर्म मैं नहीं करूँगा। मैं क्षुद्र नहीं। आओ, आज अपने पुत्र वृषसेन की रक्षा मुझसे करो, यदि कर सकते हो तो। तुम्हारे सम्मुख ही, तुम्हारे देखते-देखते ही, आज उसका वध करूँगा। किन्तु वीरवर। तुम्हें पुत्ररक्षा का पूरा अवसर दे रहा हूँ। आमन्त्रण दे रहा हूँ।

अब अर्जुनको कुछ-कुछ क्रोध हुआ और उन्होंने मन-ही-मन वृषसेनको मार डालनेका निश्चय किया। बढ़ते हुए क्रोधके कारण उनके भौंहोंमें तीन जगह बल पड़ गया, आँखें लाल हो गयीं। उस समय मुस्कराते हुए वे कर्ण, दुर्योधन और अश्वथामा आदि सभी महारथियोंसे कहने लगे- कर्ण। मेरा पुत्र अभिमन्यु अकेला था और मैं उसके साथ मौजूद नहीं था, ऐसी दशामें तुम सब लोगोंने मिलकर उसका वध किया- इस कामको सब लोग गलत बताते हैं। किंतु आज मैं तुम लोगोंके सामने ही तुम्हारे पुत्र वृषसेनका वध करूँगा। रथियों। तुम सब मिलकर भी उसे बचा सको तो बचाओ। कर्ण। वृषसेनका वध करनेके पश्चात् तुम्हें भी मार डालूँगा। सारे झगड़ेकी जड़ तुम्हीं हो, दुर्योधनका आश्रय पाकर तुम्हारा घमंड बहुत बढ़ गया है, इसलिये आज मैं जबरदस्ती तुम्हारा वध करूँगा और दुर्योधनका वध भीमके हाथसे होगा।

अर्जुन ने अपना स्वर ऊँचा उठाया, कर्ण। जब तुम छह कायरों ने घेर कर शस्त्रहीन अभिमन्यु का वध किया, तब वह अकेला था। मैं उसके साथ नहीं था। तुम वृषसेन की पीठ पर हो। मैं तुम्हारे सामने उसका वध करूँगा। बचा सको तो अपने पुत्र को बचा लो। बचा सको तो अपने आपको भी बचा लो। मैं आज तुम्हारा भी वध करूँगा, क्योंकि इस सारी कलह के मूल में तुम ही हो। तुमने दुर्योधन को इतना भ्रमित न किया होता तो यह युद्ध न होता।

अर्जुन ने अपना धनुष पोंछा और वृषसेन पर प्रहार किया। बाणोंसे उसके मर्म पर आघात किया और फिर तीखे क्षुरों से उसके धनुष को काट दिया। कर्ण ने देखा, उसका प्रिय पुत्र अर्जुन के सम्मुख असहायत खड़ा था। अर्जुन ने वृषसेन को नया धनुष उठाने का अवसर दिया, न कर्ण को उसकी रक्षा के लिए पहुँचने का। उसने निमिष भर में एक के पश्चात् एक क्षुर मार कर वृषसेन की दोनों भुजाएँ काट दीं। कर्ण की टाँगें भय से काँप गईं। अर्जुन ने अगले ही क्षण वृषसेन का मस्तक भी काट दिया। वृषसेन रथ से नीचे गिर पड़ा।

इसके बाद अर्जुनने कर्णकुमारका धनुष और उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। फिर चार क्षुरोंसे उसका मस्तक उड़ा दिया। मस्तक और भुजाएँ कट जानेपर वृषसेन रथसे लुढ़कर जमीनपर जा पड़ा। पुत्रके वधसे कर्णको बड़ा दु:ख हुआ, वह रोषमें भरकर सहसा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ओर दौड़ा।

और राधानन्दन कर्ण के समस्त प्रयासों के उपरान्त भी सव्यसाची ने देखते-देखते वृषसेन का वध कर डाला।

अपने पुत्र वृषसेन को अर्जुन की बाण-वर्षा से बचाने हेतु जैसे ही कर्ण उसके चतुर्दिक् पड़े घेरे के समीप पहुँचा, हे

सूतपुत्र, जैसे तुम सबने मिलकर मेरे प्रिय अभि को मार डाला, वैसे ही आज मैं तुम्हारे पुत्र को तुम सबकी आँखों के आगे मारने जा रहा हूँ- ऊँचे स्वर से चिल्लाकर यह कहते हुए अर्जुन ने एक चन्द्रमुख बाण से वृषसेन को शिरच्छेद कर दिया।

पुत्रवध होते ही कर्ण पर जैसे संहार-भूत चढ़ गया। युद्धोन्मादी हो विकल मन उसने भीषण युद्ध छेड़ दिया।

उस समय कर्णको आते देख श्रीकृष्णने अर्जुनसे हँसकर कहा- धनञ्जय। आज तुम्हें जिसके साथ लोहा लेना है, वह महारथी कर्ण आ रहा है, अब सँभल जाओ।

अर्जुन बोले, मधुसूदन। सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मेरी विजय निश्चित है; इसमें तनिक भी संदेहके लिये गुंजायश नहीं है। हृषीकेश। घोड़े हाँककर रथको कर्णके पास ले चलिये। अब अर्जुन कर्णको मारे बिना पीछे नहीं लौट सकता। आज आप मेरे बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े हुए कर्णको देखिये, या मुझे ही कर्णके बाणोंसे मरा हुआ देखियेगा। आज तीनों लोकोंको मोहमें डालनेवाला यह भयंकर युद्ध उपस्थित हुआ है। जबतक पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक संसारके लोग इस युद्धकी चर्चा करेंगे।

श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर अर्जुन बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़े। वे चलते-चलते कहने लगे- हृषीकेश। घोड़ोंको तेज चलाइये, कर्णसे लड़नेका समय बीता जा रहा है। अर्जुनके ऐसा कहनेपर कृष्णने विजयका वरदान दे उनका सत्कार किया और घोड़ोंको हाँका। एक ही क्षणमें अर्जुनका रथ कर्णके सामने जाकर खड़ा हो गया।

अर्जुन की ओर बढ़ने की विशेष आवश्यकता नहीं रह गई थी। अर्जुन का रथ स्वयं ही उनकी ओर आ रहा था। उन दोनों के बीच बाधा के रूप में अड़ा हुआ वृषसेन अब वहाँ नहीं था। उसका शरीर भूमि पर पड़ा था और उसका सारथी खाली रथ को वहाँ से हटा ले गया था।

उधर जब कर्णने देखा कि वृषसेन मारा गया तो उसे बड़ा दु:ख हुआ; वह दोनों नेत्रोंसे आँसू बहाने लगा। फिर क्रोधसे लाल आँखें किये, कर्ण अर्जुनको युद्धके लिये ललकारता हुआ आगे बढ़ा। उस समय त्रिभुवनपर विजय पानेके लिये उद्यत हुए इन्द्र और बलिकी भाँति उन दोनों वीरोंको एक-दूसरेसे भिड़नेके लिये तैयार देख सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्चर्य होने लगा। कौरव और पाण्डव दोनों दलोंके लोग शफऔर भेरी बजाने लगे। शूरवीर अपनी भुजाएँ ठोंकने और सिंहनाद करने लगे। उन सबकी तुमुल आवाज चारों ओर गूँजने लगी।

अर्जुन का नन्दिघोष और कर्ण का जैत्ररथ एक-दूसरे के सम्मुख आ खड़े हुए।

एक क्षण के लिए सर्वत्र शान्ति छा गयी, किन्तु दूसरे ही क्षण कानों के पर्दे फाड़ देनेवाली रण-गर्जनाएँ करते हुए वे दोनों एक-दूसरे पर अविरत बाण वर्षा करने लगे। पिछले सोलह दिनों में चित्त को थर्रा देनेवाली ऐसी बाण-वर्षा कभी नहीं देखी थी। वे शत्रु पर सैकड़ों- सहस्त्रों कपिश बाणों की वर्षा करने लगे। जिह्म बाणों से एक-एक पथक-प्रमुख को धराशायी कर वे शत्रुसेना को क्षीण करने लगे। सैनिक समझ नहीं पा रहे थे कि बाण आ कहाँ से रहे हैं। कर्ण और अर्जुन के बाण धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र को आच्छादित कर रहे थे- दहला रहे थे।

अब वे दोनों अत्यंत श्रमपूर्वक प्राप्त किये दिव्यास्त्रों को एक-दूसरे पर प्रक्षेपित करने हेतु तैयार थे। अब जीवन के दो विरोधी ध्रुवों के छोर पर वे खड़े थे। वे केवल अपने शत्रु का शव देखना चाह रहे थे। केवल यही उनकी उत्सुकता थी।

वे दोनों वीर जब एक-दूसरेका सामना करनेके लिये दौड़े, उस समय यमराज और कालके समान प्रतीत होते थे तथा इन्द्र एवं वृत्रासुरके समान क्रोधमें भरे हुए थे। वे रूप और बलमें देवताओंके तुल्य थे, उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था

मानो सूर्य और चन्द्रमा दैवेच्छासे एकत्र हो गये हों। दोनों महाबली युद्धके लिये नाना प्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे। उन्हें आमने-सामने खड़े देख कौरवोंके योद्धाओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन दोनोंमें किसकी विजय होगी, इस विषयमें सब लोगोंको संदेह होने लगा।

कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, यक्ष, पक्षी, वेदवेत्ता, महर्षि, श्राद्धान्नभोजी पितर तथा तप, विद्या एवं औषधियोंके अधिष्ठाता देवता नाना प्रकारके रूप धारण किये अन्तरिक्षमें खड़े थे। वहाँ उनका कोलाहल सुनायी पड़ता था। ब्रह्मर्षियों और प्रजापतियोंके साथ ब्रह्माजी तथा भगवान् शंकर भी दिव्य विमानोंसे बैठकर वहाँ युद्ध देखने आये थे। देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछा- भगवन्। कौरव और पाण्डवपक्षके इन दो प्रधान वीरोंमें कौन विजयी होगा? देव। हम तो चाहते हैं इनकी एक-सी ही विजय हो। कर्ण और अर्जुनके विवादसे सारा संसार संदेहमें पड़ा हुआ है। प्रभो। इनमेंसे किसकी विजय होगी ?

यह प्रश्न सुनकर इन्द्रने देवाधिदेव पितामहको प्रणाम किया और कहा- भगवन्। आप पहले बता चुके हैं कि श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही विजय निश्चित है। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये।

तब ब्रह्माने कहा, संसारके स्वामी साक्षात् भगवान् नारायणने अर्जुनका सारथी होना स्वीकार किया है; वे मनस्वी बलवान्, शूरवीर, अस्त्रविद्याके ज्ञाता और तपस्याके धनी हैं। उन्होंने धनुर्वेदका पूर्ण अध्ययन किया है। इस प्रकार अर्जुन विजय दिलानेवाले सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त हैं; इसके अलावा, उनकी विजय देवताओंका ही तो कार्य है। अर्जुन मनुष्योंमें श्रेष्ठ एवं तपस्वी हैं। वे अपनी महिमासे दैवके विधानको भी उलट सकते हैं; यदि ऐसा हुआ तो निश्चय ही सम्पूर्ण लोकोंका अन्त हो जायगा। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके क्रोध करनेपर यह संसार कहीं नहीं टिक सकता। ये ही दोनों संसारकी सृष्टि करते हैं। ये ही प्राचीन ऋषि नर और नारायण हैं। इनपर किसीका शासन नहीं चलता और ये सबको अपने शासनमें रखते हैं। देवलोक या मनुष्यलोकमें इन दोनोंकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। देवता, ऋषि और चारणोंके साथ ये तीनों लोक एवं सम्पूर्ण भूत यानी सारा विश्वब्रह्मांड ही इनके शासनमें हैं; इनकी ही शक्तिसे सब लोग अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। अत: विजय तो श्रीकृष्ण और अर्जुनकी ही होगी। कर्ण वसुओं अथवा मरुतोंके लोकमें जायेगा।

सहसा कर्ण ने कुछ कोमल स्वर में पूछा, मद्रराज। यदि अर्जुन ने मुझे मार डाला, तो तुम क्या करोगे?

शल्य ने कुछ चकित होकर उसकी ओर देखा, अच्छा कर्ण भी कभी अपनी मृत्यु के विषय में सोचता है। यदि ऐसा हुआ तो मैं तुम्हारे इस एकमात्र रथ के द्वारा कृष्ण और अर्जुन दोनों का वध कर दूँगा।

तदनन्तर कर्ण शल्यसे हँसकर बोला, शल्य। यदि कदाचित् इस संग्राममें अर्जुन मुझे मार डालें तो तुम क्या करोगे? शल्यने कहा- कर्ण। यदि वे आज तुझे मार डालेंगे तो मैं श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंको ही मौतके घाट उतारूँगा।

इसी तरह अर्जुनने भी श्रीकृष्णसे पूछा; तब वे हँसकर कहने लगे- पार्थ। क्या यह भी सच हो सकता है? कदाचित् सूर्य अपने स्थानसे गिर जाय, समुद्र सूख जाय और आग अपना उष्ण-स्वभाव छोड़कर शीतलता स्वीकार कर ले- ये सभी बातें सम्भव हो जायँ; किन्तु कर्ण तुम्हें मार डाले, यह कदापि सम्भव नहीं है। यदि किसी तरह ऐसा हो जाय तो संसार उलट जायगा। मैं अपनी भुजाओंसे ही कर्ण तथा शल्यको मसल डालूँगा।

कर्ण अपनी और शल्य की समानता पर चकित रह गया। पर यह बहुत अपमानजनक स्थिति लगी उसे। वह अपनी तुलना इस मद्र से नहीं करना चाहता। वह भी तो स्वयं को कितना वीर समझता है कि जो अर्जुन कर्ण को मार देगा। किस

भ्रम में जी रहा है यह मूर्ख। यह नहीं सोचता कि कर्ण इस रथ पर न होता तो अब तक कब से भीम ने आकर गदा के प्रहार से इसकी खोपड़ी का गूदा निकालकर धरती को भेंट कर दिया होता।

कर्ण बोला, ठीक है वहीं करना। किंतु यह न भूलो कि कर्ण अभी जीवित और समर्थ है।

दोनों वीरों ने मन-ही-मन भगवान् को प्रणाम किया। दोनों के सारथियों ने दोनों को उत्साहित किया। दोनों युद्ध के लिये उद्यत हो गये। कर्ण ने शल्य से पूछा- कदाचित् मैं रण में मारा गया तो तुम क्या करोगे? शल्य ने कहा- तुम्हारे मरने पर मैं अकेला ही अर्जुन और श्रीकृष्ण को मार डालूँगा। तुम विश्वास रखो। कर्ण ने कहा, धन्यवाद।

अर्जुन ने भी यही प्रश्न वासुदेव से पूछा- मेरे पराजित होने पर तुम क्या करोगे नटवर?

श्यामसुन्दर बोले- असम्भव यदि सम्भव हो जाय तो मैं अभी प्रलय कर दूँगा। चराचर को भस्म कर डालूँगा।

हँसकर अर्जुन ने कहा, ऐसा नहीं होगा, मेरे मदनमोहन। मैं महावीर कर्ण को मार ही डालूँगा।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन से बोला, मैं कह रहा हूँ युवराज। भीष्म भी मारे गए और मेरे पिता भी। यह कर्ण भी अर्जुन के हाथों नहीं बचेगा। अब पैंतरा बदलने का समय है। समीकरण क्यों नहीं बदल देते। प्रसन्न हो जाओ, और पांडवों से संधि कर लो। विरोध से कोई लाभ नहीं है। पांडवों से मिल जाओ। उनके साथ मिलकर चिरकाल तक राज्य करो। नहीं तो तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। उस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा दुर्योधनके पास गया और बोला- दुर्योधन। अब प्रसन्न होकर पाण्डवोंसे संधि कर लो; विरोधसे कोई लाभ नहीं है। आपसके इस झगड़ेको धिक्कार है। तुम्हारे गुरुदेव अस्त्रविद्याके महान् पण्डित थे, किंतु इस युद्धमें मारे गये। यही दशा भीष्म आदि महारथियोंकी भी हुई। मैं और मामा कृपाचार्य तो अवध्य हैं, इसलिये अबतक बचे हुए हैं। अत: अब तुम पाण्डवोंसे मिलकर चिरकालतक राज्यशासन करो। मेरे मना करनेसे अर्जुन शान्त हो जायँगे। श्रीकृष्ण भी विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियोंके हितमें ही लगे रहते हैं, अत: वे भी मान लेंगे। बाकी रहे भीम और नकुल-सहदेव; सो ये भी धर्मराजके अधीन हैं, उनकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे। तुम्हारे साथ पाण्डवोंकी संधि हो जानेपर सारी प्रजाका कल्याण होगा। फिर तुम्हारी अनुमति लेकर ये राजालोग भी अपने-अपने देशको लौट जायँ और समस्त सैनिकोंको युद्धसे छुटकारा मिल जाय। राजन्। यदि मेरी यह बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही शत्रुओंके हाथसे मारे जाओगे और उस समय तुम्हें बहुत पश्चात्ताप होगा। आज तुमने और सारे संसारने यह देख लिया कि अकेले अर्जुनने जो पराक्रम किया है उसे इन्द्र, यमराज, वरुण और कुबेर भी नहीं कर सकते। अर्जुन गुणोंमें मुझसे बढ़कर हैं, तो भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे मेरी बात नहीं टालेंगे। यही नहीं, वे सदा तुम्हारे अनुकूल बर्ताव भी करेंगे। इसलिये राजन्। तुम प्रसन्नतापूर्वक संधि कर लो। अपनी घनिष्ठ मित्रताके कारण ही मैं तुमसे यह प्रस्ताव कर रहा हूँ। जब तुम इसे प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लोगे तो मैं कर्णको भी युद्धसे रोक दूँगा। विद्वानलोग चार प्रकारके मित्र बतलाते हैं। एक सहज मित्र होते हैं, जिनकी मैत्री स्वाभाविक होती है। दूसरे हैं संधि करके बनाये हुए मित्र। तीसरे वे हैं, जो धन देकर अपनाये गये हैं। किसीका प्रबल प्रताप देखकर जो स्वत: चरणोंके निकट आ जाते हैं- शरणागत हो जाते हैं, वे चौथे प्रकारके मित्र हैं। पाण्डवोंके साथ तुम्हारी सभी प्रकारकी मित्रता सम्भव है। वीरवर। यदि तुम प्रसन्नतापर्वूक पाण्डवोंसे मित्रता स्वीकार कर लोगे तो तुम्हारे द्वारा संसारका बहुत बड़ा कल्याण होगा।

इस प्रकार जब अश्वत्थामाने दुर्योधनसे हितकी बात कही तो उसने मन-ही-मन खिन्न होकर कहा- मित्र। तुम जो कुछ कहते हो, वह सब ठीक है; किंतु इसके सम्बन्धमें कुछ मेरी बात भी सुन लो। इस दुर्बुद्धि भीमने दु:शासनको मार डालनेके

पश्चात् जो बात कही थी, वह अब भी मेरे हृदयसे दूर नहीं होती। ऐसी दशामें कैसे शान्ति मिले? क्योंकर संधि हो? गुरुपुत्र। इस समय तुम्हें कर्णसे युद्ध बंद कर देनेकी बात भी नहीं कहनी चाहिये; क्योंकि अर्जुन बहुत थक गये हैं, अत: अब कर्ण उन्हें बलपूर्वक मार डालेगा।

दुर्योधन बोला, यह कैसी बोली बोल रहे हो अश्वत्थामा। अपने पिता का उन अपमानजनक स्थितियों में मस्तक कटना भूल गए? धृष्टद्युम्न को क्षमा कर दिया क्या?

अश्वत्थामा बोला, नहीं। न वह सब भूला हूँ न ही धृष्टद्युम्न को क्षमा किया है। तुम हमारे झगड़े में से कुछ अर्जित करने की बात मत सोचो। वैसे भी मेरा झगड़ा धृष्टद्युम्न से है, अर्जुन से नहीं। मेरे पिता की मृत्यु पर अर्जुन दुखी हुआ था। उसने धृष्टद्युम्न को उसके लिए धिक्कारा था। हमें पांडवों और पांचालों को पृथक्-पृथक् देखना चाहिए। मेरे समझाने पर अर्जुन शांत हो जाएगा। कृष्ण भी इस संधि का विरोध नहीं करेंगे। युधिष्ठिर तो वैसे ही सदा प्राणियों के हित में लगे रहते हैं। भीम, नकुल और सहदेव धर्मराज के अधीन हैं।

दुर्योधन आक्रोश से बोला, अरे इस संधि से मुझे क्या लाभ होगा? अपने लोगों का इतना रक्त बहाया, वह किसलिए। पितामह और आचार्य के बलिदान का क्या लाभ?

अश्वत्थामा बोला, तो कर्ण और हमारे बलिदान से ही तुम्हें कौन-सा लाभ होने जा रहा है। कर्ण अर्जुन को जीत नहीं पाएगा। पांडवों से संधि कर लो। सारी प्रजा का कल्याण होगा। जो मरने से बच गए हैं, तुम्हारे वे सगे-संबंधी अपने-अपने नगर को लौट जाएँगे। सैनिकों को युद्ध से छुट्टी मिल जाएगी। मेरी बात नहीं मानोगे तो निश्चय ही युद्ध में भीम के हाथों मारे जाओगे। मर कर न राज्य मिलेगा, न भोग। जीवित रहोगे तो धर्मराज से कहकर तुम्हें राज्य का उचित भाग दिलवा दूँगा।

दुर्योधन बोला, नहीं चाहिए मुझे भिक्षा में मिला हुआ राज्य। विजय नहीं मिलेगी तो वीरगति तो मिलेगी। इस अश्वत्थामा को जाने क्या हो गया था कि इस भयंकर युद्ध के मध्य में यह संधि का यह प्रस्ताव ले बैठा है।

अश्वत्थामा बोला, मृतकों को राज्य नहीं मिलता। संधि कर लो। कौरव कुल को बचा लो। जिसके भरोसे युद्ध कर रहे हो, वह कर्ण, नरव्याघ्र अर्जुन को कभी जीत नहीं पाएगा।

दुर्योधन कुछ और निकट आ गया। कर्ण की ओर से ध्यान हटाकर वह पूर्णत: अश्वथामा से संबोधित हुआ, सुनो अश्वत्थामा। इस दुर्बुद्धि भीम ने सिंह के समान हठपूर्वक दु:शासन का आखेट किया है। उसने जो कुछ किया और कहा, वह इस समय भी मुझे पीड़ा दे रहा है।

अश्वत्थामा ने कहा, हम लोगों ने भी तो उनके पुत्रों का आखेट किया है।

दुर्योधन बोला, हमने क्षत्रियों के समान उनका वध किया है, पशुओं के समान आखेट नहीं।

अश्वत्थामा बोला, तुमने भी अभिमन्यु का आखेट किया था। तुम लोगों ने द्रौपदी के साथ आखेट से भी नीचतर व्यवहार किया था और आखेट किसे कहते हैं? उसे क्या मनुष्य का-सा व्यवहार कहते हैं। तुम दु:शासन और कर्ण क्या पशुओं से कुछ श्रेष्ठ हो? दुर्योधन की आकृति बहुत कठोर हो गई, किंतु सहसा ही वह फिर सामान्य हो गया और बोला, संधि कैसे हो सकती है। कुंती के पुत्र मुझ पर विश्वास नहीं करेंगे और गुरुपुत्र। इस रण में अर्जुन कर्ण का वेग नहीं सह सकेगा, इसे निश्चित जानो। अर्जुन युद्ध के परिश्रम से थक गया है। कर्ण उसे अब बलपूर्वक मार डालेगा।

यह देख भीम क्रोधमें भरकर अर्जुनसे बोले, विजय। धर्मकी अवहेलना करनेवाले इस पापी कर्णने आज तुम्हारे सामने

ही पाञ्चालोंके प्रधान-प्रधान वीरोंको कैसे मार डाला? तुम्हें तो कालिकेय नामक दानव भी नहीं परास्त कर सके, साक्षात् महादेवसे तुम्हारी हाथापाई हो चुकी है; फिर भी इस सूतपुत्रने तुम्हें पहले ही बाण मारकर कैसे बींध डाला? तुम्हारे चलाये हुए बाणोंको इसने नष्ट कर दिया। यह तो मुझे एक अचंभेकी बात मालूम हो रही है। सभामें द्रौपदीको जो कष्ट दिये गये हैं, उनको याद करो; इस पापीने निर्भय होकर जो हमलोगोंको नपुंसक कहा तथा तीखी और कठोर बातें सुनायीं, उन्हें भी स्मरण करो। इन सारी बातोंको ध्यानमें रखकर शीघ्र ही कर्णका नाश कर डालो। तुम इतनी लापरवाही क्यों कर रहे हो? यह लापरवाहीका समय नहीं है।

तदनन्तर श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा- वीरवर। यह क्या बात है? तुमने जितने बार प्रहार किये, कर्णने प्रत्येक बार तुम्हारे अस्त्रको नष्ट कर दिया। आज तुमपर कैसा मोह रहा है? ध्यान नहीं देते? ये तुम्हारे शत्रु कौरव कितने हर्षमें भरकर गरज रहे हैं। जिस धैर्यसे तुमने प्रत्येक युगमें भयंकर राक्षसोंको मारा और दम्भोद्भव नामक असुरोंका विनाश किया है, उसी धैर्यसे आज कर्णको भी नष्ट करो।

शल्य बोला, मैं तो सोचता हूं कि अपने रथ को कहीं और निकाल कर ले चलूं प्रधान सेनापति। तुमने अब तक गांडीव की प्रत्यन्चा की टंकार नहीं सुनी अंगराज। कर्ण बोला, आपने भी मेरे विजय धनुष की टंकार नहीं सुनी है मद्र नरेश किन्तु सामने का दृश्य बडा ही सुन्दर है। चार श्वेत अश्वोंवाला रथ उसपर वासुदेव जैसा सारथी और अर्जुन जैसा रथी। यह सुन्दर दृश्य महादेव के अतिरिक्त किसी को भी भयभीत कर सकता है। शल्य बोला, तो क्या तुम भयभीत होने लगे अंगराज? कर्ण बोला, वो काठ के योद्धा होते हैं मद्र नरेश जो भयभीत नहीं होते।

अर्जुन ने कहा- वासुदेव। मुझे इन वीरों के बीच से ही ले चलो। ये मेरा कुछ भी न कर सकेंगे।

कृष्ण ने कहा- ऐसा ही होगा। तब उन्होंने बड़ी फूर्ती से घोड़ों को बढ़ाया। दोनों पक्ष के सैनिक प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध कर रहे थे। सभी के वस्त्र मुकुट रक्त में भीगे हुए थे। सभी के शरीरों से रक्त की धारायें बह रही थी। बहुतों के शरीर में तो बाण घुसे हुए थे और उनसे निरन्तर खून बह रहा था। अर्जुन ने रास्ते में किसी योद्धा से युद्ध नहीं किया। वह अपनी आत्मरक्षा करता हुआ कर्ण की ओर ही बढ़ रहा था। सामने से उसे कर्ण के रथ की ध्वजा दिखाई दी। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, अब मैं संसारका कल्याण और सूतपुत्रका वध करनेके लिये महान् भयंकर अस्त्र प्रकट कर रहा हूँ। इसके लिये आप, ब्रह्माजी, शंकरजी, समस्त देवता तथा सम्पूर्ण ब्रह्मवेत्ता मुझे आज्ञा दें। कृष्णसे ऐसा कहकर सव्यसाचीने ब्रह्माजीको नमस्कार किया और जिसका मन-ही-मन प्रयोग होता है, उस ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया। परंतु कर्णने अपने बाणोंकी बौछारसे उस अस्त्रको नष्ट कर डाला।

भीम बोला, सव्यसाचिन्। सब लोग जानते हैं कि तुम परम उत्तम ब्रह्मास्त्रके ज्ञाता हो, इसलिये अब और किसी अस्त्रका संधान करो। यह सुनकर अर्जुनने दूसरे अस्त्रको धनुषपर रक्खा; फिर तो उससे प्रज्वलित बाणोंकी वर्षा होने लगी, जिससे चारों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। कोना-कोना भर गया। केवल बाण ही नहीं; उससे भयंकर त्रिशूल, फरसे, चक्र, और नाराच आदि अस्त्र भी सैकड़ोंकी संख्यामें निकलकर सब ओर खड़े हुए योद्धाओंके प्राण लेने लगे। किसीका सिर कटकर गिरा तो कोई भयके मारे गिर पड़ा।

कर्ण युद्ध में बेसुध थे। आज वे मूर्तिमान यमराज बने हुए थे। जो भी उनके सामने आता वह या तो यमपुर को सिधार जाता या प्राण लेकर युद्धभूमि से भाग जाता। तब चिल्लाकर शल्य ने कहा- महावीर कर्ण। वह देखो, जिन्हें तुम खोज रहे थे, उन्हीं अर्जुन के रथ की ध्वजा दिखायी दे रही है?

कर्ण ने पूछा- कहाँ है? शल्य ने कहा- सामने देखते नहीं हो? अर्जुन का रथ तुम्हारी ही ओर बढ़ा आ रहा है। वासुदेव उसे कैसे कौशल से चला रहे हैं। ध्वजा पर बैठा कपि कितने जोर से दहाड़ मार रहा है। अभी अर्जुन दिखायी नहीं देते, उनकी ध्वजा ही दीख रही है। उधर ही चलूँ न? कर्ण ने कहा- पहिले इन पाञ्चालों को समाप्त कर लूँ, तब निश्चिन्त होकर उधर चलेंगे। शल्य ने कहा- सूत-पुत्र। तुम समझते नहीं। अर्जुन का सामना तुम्हारे सिवाय कोई नहीं कर सकता। तुम्हारी ओर के समस्त रथी, महारथी, अतिरथी अर्जुन की सूरत को ही देखकर भाग जायेंगे। पहिले तुम इसी से भिड़ जाओ। अर्जुन को तुमने जीत लिया तो मानों पृथ्वी को विजय कर लिया। वह देखो, श्रीकृष्ण और अर्जुन अब स्पष्ट दिखायी देने लगे, तुम्हारे सामने आ गये।

कर्ण ने कहा- आज मेरा अहोभाग्य। श्रीकृष्ण के सम्मुख मैं अर्जुन से युद्ध करूँगा और अपनी बहुत दिनों की इच्छा को पूर्ण करूँगा। शल्य ने कहा- राजन्। तुम्हारा कल्याण हो। अर्जुन का सामना तुम्हारे सिवाय संसार में कोई नहीं कर सकता। तुम्हीं उसे युद्ध में सन्तुष्ट कर सकते हो।

कर्ण का चेहरा प्रसन्नता से दमकने लगा। उसने अत्यन्त ही उल्लास के साथ कहा- महाभाग। शल्य। अब तुम्हारे होश-हवाश ठीक हुए। अब तुम्हारे मन से अर्जुन का भय जाता रहा। तुम जैसा कहते हो आज मैं युद्ध में अवश्य ही अर्जुन को मारूँगा। तुम आज मेरी वीरता देखना।

कर्णने शल्यसे कहा- अब मेरा रथ पाञ्चालोंकी ओर ही ले चलो। सेनापतिकी आज्ञा पाकर मद्रराजने अपने घोड़ोंको चेदि, पञ्चाल तथा करूषदेशीय वीरोंकी ओर बढ़ाया। कर्णका रथ देखते ही पाण्डव और पाञ्चाल वीर थर्रा उठे।

तब श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्ध करानेके लिये कौरवोंकी सेनामें कर्णकी ओर अपना रथ बढ़ाया। वे रथपर बैठे-ही-बैठे चारों ओर खड़ी हुई पाण्डव-सेनाको धीरज बँधाते जाते थे। वीरवर अर्जुन कौरवोंकी सेनाको परास्त करते हुए आगे बढ़ रहे थे। अर्जुनको आते देख मद्रराज शल्यने कर्णसे कहा- कर्ण। तुम दूसरे लोगोंसे जिनका पता पूछते फिरते थे वे कुन्तीनन्दन अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष लिये हुए सामने खड़े हैं, वह उनका रथ आ रहा है। यदि आज उन्हें मार डालोगे तो हमलोगोंका भला होगा। अर्जुनके धनुषकी प्रत्यञ्चामें चन्द्रमा एवं ताराओंके चिह्न हैं, उनकी ध्वजाके शिखरपर भयंकर वानर दिखायी पड़ता है, जो चारों ओर ताक-ताककर वीरोंका भी भय बढ़ा रहा है। ये अर्जुनके रथपर बैठकर घोड़े हाँकते हुए श्रीकृष्णके शङ्ख, चक्र, गदा तथा शार्ङ्ग धनुष दीख रहे हैं। यह गाण्डीव टंकार रहा है तथा अर्जुनके छोड़े हुए तीर शत्रुओंके प्राण ले रहे हैं। आज यह रणभूमि राजाओंके कटे हुए मस्तकोंसे पटी जा रही है। पुण्य क्षीण होनेपर स्वर्गसे गिरनेवाले प्राणियोंकी तरह ये नाना देशोंके नरेश अपने रथोंसे गिरकर धराशायी हो रहे हैं। जैसे सिंह हजारों हरिणोंके झुंडको घबराहटमें डाल देता है, उसी प्रकार अर्जुनने अपने शत्रुओंकी सेनाको अत्यन्त व्याकुल कर डाला है। अर्जुन तनिक-सी देरमें बहुसंख्यक शत्रुओंका अन्त कर देते हैं, इसीलिये उनके भयसे यह कौरव-सेना चारों ओरसे छिन्न-भिन्न हो रही है। अर्जुन सब सेनाओंको छोड़कर तुम्हारे पास पहुँचनेकी जल्दी कर रहे हैं। भीमको पीड़ित देख वे क्रोधसे तमतमा उठे हैं, इसलिये आज तुम्हारे सिवा और किसीसे युद्ध करनेके लिये नहीं रुक सकेंगे। तुमने धर्मराजको रथहीन करके उन्हें बहुत घायल कर डाला है, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र, सात्यकि, उत्तमौजा, नकुल तथा सहदेवको भी तुम्हारे हाथों बहुत चोट पहुँची है; यह सब देखकर अर्जुनकी आँखे क्रोधसे लाल हो गयी हैं, वे समस्त राजाओंका संहार करनेकी इच्छासे अकेले ही तुम्हारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं। कर्ण। अब तुम भी इनका सामना करनेके लिये आगे बढ़ो, क्योंकि तुम्हारे सिवा, दूसरा कोई धनुर्धर ऐसा नहीं है, जो अर्जुनसे लोहा ले सके। केवल तुम्हीं युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको परास्त करनेकी

शक्ति रखते हो, तुम्हारे ही ऊपर यह भार रक्खा गया है; अत: धनञ्जयका मुकाबला करो। तुम भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यके समान बली हो, इस महासमरमें आगे बढ़ते हुए अर्जुनको रोको। ये कौरव-सेनाके महारथी अर्जुनके भयसे भागे जाते हैं सूतनन्दन। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो इनका भय दूर कर सके। ये समस्त कौरव तुम्हें द्वीपके समान अपना रक्षक मानकर तुम्हारे ही पास आ रहे हैं और तुमसे शरण पानेकी आशा रखकर यहाँ खड़े हुए हैं।

कर्णने कहा- शल्य। अब तुम राहपर आये हो और मुझसे सहमत जान पड़ते हो। महाबाहो। अर्जुनसे भय न करो। आज मेरी इन भुजाओं और शिक्षाका बल देखना। मैं अकेला ही पाण्डवोंकी विशाल सेना तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनका वध करूँगा। उन दोनों वीरोंको मारे बिना आज मैं किसी तरह पीछे पैर नहीं हटाऊँगा। दोमेंसे एक काम करके कृतार्थ होऊँगा- या तो उन्हें मारूँगा या स्वयं मर जाऊँगा।

शल्यने कहा- कर्ण। महारथी लोग अर्जुनको अकेले होनेपर भी युद्धमें जीतना असम्भव मानते हैं, फिर जब वे श्रीकृष्णसे सुरक्षित हों, तब तो कहना ही क्या है? ऐसी दशामें यहाँ उन्हें जीतनेका साहस कौन कर सकता है?

कर्णने कहा- मैं मानता हूँ, अर्जुन-जैसा महारथी इस संसारमें कभी हुआ ही नहीं। उनके हाथ प्रत्यञ्चाके चिह्नसे अमित हैं, उनमें न कभी पसीना आता है और न वे काँपते ही हैं। अर्जुनका धनुष भी मजबूत है। वे बड़े कार्यकुशल और शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले हैं। पाण्डुनन्दन अर्जुनके समान दूसरा योद्धा कहीं है ही नहीं। उनके-जैसा योद्धा इस पृथ्वीपर कौन हो सकता है? अतिरथी वीर अर्जुनने केवल श्रीकृष्णकी सहायतासे खाण्डव वनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, जहाँ महात्मा श्रीकृष्णको चक्र मिला और पाण्डुनन्दनको गाण्डीव धनुष, श्वेत घोड़ोंसे जुता हुआ रथ, अक्षय तरकस तथा बहुत-से दिव्यास्त्र प्राप्त हुए। ये सभी वस्तुएँ अग्निदेवने भेंट की थीं। इसी प्रकार उन्होंने इन्द्रलोकमें जाकर असंख्य कालकेयोंका संहार किया था, जहाँ उन्हें देवदत्त नामक शफ्की प्राप्ति हुई। अत: इस भूमण्डलमें उनसे बढ़कर योद्धा कौन होगा? जिन महानुभावने अपनी सुन्दर युद्धकलाके द्वारा साक्षात् महादेवको प्रसन्न किया और उनसे अत्यन्त भयंकर पाशुपतनामक महान् अस्त्र प्राप्त किया, जो त्रिभुवनका संहार करनेमें समर्थ है। जिन्हें समस्त लोकपालोंने अलग-अलग अनेकों अनुपम दिव्यास्त्र प्रदान किये हैं तथा जिन्होंने विराटनगरमें अकेले ही हम सब महारथियोंको जीतकर सारा गोधन छीन लिया और महारथियोंके वस्त्र भी उतार लिये, ऐसे पराक्रम और गुणोंसे सम्पन्न अर्जुनको, जिनके साथ श्रीकृष्ण भी मौजूद हैं, युद्धके लिये ललकारना बहुत बड़े दु:साहसका काम है। इसके सिवा, समस्त संसार मिलकर जिनके गुणोंको दस हजार वर्षोंमें भी नहीं गिन सकता, जो शफ, चक्र और खड्ग धारण करनेवाले हैं, वे अनन्तपराक्रमी साक्षात् भगवान नारायण ही अर्जुनकी रक्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुनको एक रथपर बैठे देख मुझे भय लगता है, हृदय काँप उठता है। अर्जुन समस्त धनुर्धारियोंसे बढ़कर हैं तथा चक्रयुद्धमें नारायणस्वरूप श्रीकृष्णका मुकाबला करनेवाला भी कोई नहीं है। वे दोनों वीर ऐसे पराक्रमी हैं। हिमालय अपने स्थानसे हट जाय, पर श्रीकृष्ण और अर्जुन नहीं हट सकते। वे दोनों महारथी शूरवीर और अस्त्र विद्याके विद्वान हैं, दोनोंके ही अस्त्र-शस्त्र सुदृढ़ हैं। शल्य। बताओ तो सही, ऐसे पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुनका मुकाबला मेरे सिवा दूसरा कौन कर सकता है? आज ऐसा युद्ध होगा, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। या तो मैं ही इन दोनोंको मार गिराऊँगा या ये ही मेरा वध कर डालेंगे।

शल्य ने कहा- अर्जुन बड़े वीर हैं और वासुदेव उनकी रक्षा कर रहे हैं। तुम अर्जुन को जीत नहीं सकते। संसार में वासुदेव से रक्षित पार्थ-अर्जुन-अजेय हैं। कर्ण ने कहा- मामा। यह तो मैं भी जानता हूँ। जिसके रक्षक श्रीहरि हैं, उसे रण में कौन

परास्त कर सकता है? जिन वासुदेव की भ्रूकुटि-विलास से यह सृष्टि पल भर में उत्पन्न होती और विलीन हो जाती है उन्हें कौन जीत सकता है? जो विभु हैं, अजेय, अनादि, अनन्त, अजन्मा और अविनाशी हैं उन्हें कौन परास्त कर सकता है? फिर भी तुम मेरा उत्साह तो देखो। मैं उन्हें युद्ध के लिये ललकार रहा हूँ। मेरे लिये क्या यही कम गौरव की बात है? आज मैं पूरी शक्ति लगाकर अर्जुन से लड़ूँगा।

शल्य ने कहा- अर्जुन बड़े वीर हैं। श्रीकृष्ण उनके बाहरी प्राण हैं। श्रीकृष्ण उनको प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। उनसे युद्ध करके तुम पार न पा सकोगे। कर्ण ने कहा- यह तुम्हारा भ्रम है। मेरे मन में बड़ा उत्साह हो रहा है। मैं अवश्य ही अर्जुन को मारूँगा। मान लो उसने ही मुझे मार दिया तो यही मेरे लिये क्या कम है। श्रीकृष्ण से रक्षित अर्जुन के हाथ से मारे जाने पर मेरी निन्दा न होगी, मेरी प्रशंसा ही होगी। आज मैं प्राणों की बाजी लगा दूँगा। या तो विजय करके लौटूँगा या मेरे रथ को तुम खाली दुर्योधन के पास ले जाना। मेरी मृत्यु के बाद कौरव-दल में लड़नेवाला है ही कौन? युद्ध का आज सत्रहवाँ दिन है। बस, आज इसकी समाप्ति ही समझो। मैं मारा गया तो धर्मराज इस पृथ्वी के सम्राट होंगे और अर्जुन मारा गया तो दुर्योधन पहिले की भाँति इसका उपभोग करेगा। आज युद्ध का अन्तिम निर्णय हो जायगा।

शल्य और कर्ण की ये बातें हो रही थी कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को सामने लगाकर कर्ण के रथ के सम्मुख खड़ा कर दिया। दोनों वीरों को आमने-सामने देखकर त्रैलोक्य के प्राणी काँप उठे। दोनों ओर के वीर तमाशा देखने के लिये कर्ण और अर्जुन की ओर आ खड़े हुए। आकाश में देवताओं के असंख्य विमान शोभा दे रहे थे। यह एक अपूर्व घटना होने वाली थी। यह दो सगे भाइयों का अलौकिक युद्ध था। महाभारत में दोनों की शोभा का बड़ा ही सुन्दर अपूर्व जीता जागता चित्र वर्णन किया है। महर्षि व्यास ने दोनों के चरित्र-चित्रण और शोभा वर्णन में अपना पूरा पाण्डित्य प्रदर्शित किया है। आमने-सामने खड़े हुए दोनों वीर बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे।

बालकों की परीक्षावाली रङ्गभूमि में जो दृश्य उपस्थित हुआ था, वही दृश्य आज यहाँ कुरुक्षेत्र के रणाङ्गण में उपस्थित हुआ। पृथ्वी पर कर्ण और अर्जुन खड़े थे। आकाश में उन दोनों के पिता सूर्य और इन्द्र विराजमान थे। दोनों ही अपने-अपने पुत्रों की विजय के लिये मनोकामना कर रहे थे। कर्ण और अर्जुन दोनों ही समान बलशाली थे। सगे भाई ही थे। रङ्ग, रूप, आकार, प्रकार और बलवीर्य में वे समान थे। दोनों एक-दूसरे को मारने के लिये उद्यत थे। दोनों देव पुत्र थे। दोनों के कवच और रथ सुवर्ण मण्डित थे। दोनों छत्र, चँवर, किरीट, कुडल और राज चिन्हों से शोभित थे। एक के सारथी शल्य थे दूसरे के कृष्ण। एक सूर्य-पुत्र थे, दूसरे इन्द्र पुत्र। दोनों की माता कुन्ती थी। दोनों ही अपने-अपने पक्ष के प्राण थे। दोनों में अपार बल था। दोनों ने ही दिव्यास्त्रों की शिक्षा पाई थी। कर्ण ने अर्जुन को आँख भरकर देखा और शल्य से श्रीकृष्ण ने दृष्टि मिलायी। एक बार श्रीकृष्ण की जिस पर तिरछी दृष्टि पड़ जाय फिर वह संसार के काम का नहीं रहता। संसार से पार हो जाता है।

द्वेत में ही जगत् है। परस्पर सम्मिलन में ही सुख है। संयोग आनन्दवाले का उत्पात है। एक मन के, एक स्वभाव के, एक इच्छाओंवाले जब दो मिल जाते हैं, तभी सुख का स्त्रोत, आनन्द का सागर उमड़ने लगता है। अद्वैत में निर्गुणता है। रसास्वादन, सुखानुभव तो दो में ही है। तभी तो अनीह, आत्मा राम भगवान् भी एक से बहुत होते हैं रमण करने की इच्छा से, क्रीड़ा करने की इच्छा से जगत् की सृष्टि करते हैं। वे स्वयं आनन्दमय हैं, अत: उनकी क्रीड़ास्थली भी आनन्ददायिनी है। जो जगत् को निरानन्द और दुखमय बताते हैं, वे इसे सत्य समझते हैं वास्तव में तो यह प्रभु का विनोद है, उनकी लीला है। विनोद तो मन बहलाव के लिये होता है।

महावीर कर्ण और धनुर्धर अर्जुन दोनों एक-दूसरे के सम्मुख आये। कर्ण ने कहा- अर्जुन। मैं बहुत दिनों से तुमसे युद्ध करने के लिये इच्छुक था। आओ, आज तुम मुझसे युद्ध करके या तो स्वर्ग सिधारो या मुझे बाणों से गिरा दो।

अर्जुन ने कहा- वीरवर। आ जाओ, आज हमारा तुम्हारा युद्ध हो।

कर्ण ने अपने बाणों से अर्जुन को बींध डाला था। अर्जुन ने भी उसकी कांख में बाण मारे थे। अर्जुन ने अपनी दोनों भुजाओं तथा गांडीव को पोंछकर, नाराच, नालीक, वराहकर्ण, क्षुर, अंजलिक तथा अर्द्धचंद्र बाणों का प्रहार किया। किंतु वे बाण कर्ण के रथ में प्रवेश करते ही बिखर जाते थे। अर्जुन के बाणों को कर्ण नष्ट करता चल रहा था। अर्जुन ने झिल्लाकर कर्ण पर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। योद्धाओं के वस्त्र जलने लगे। अनेक वाहिनियाँ उस ताप से बचने के लिए दूर भाग गईं। कर्ण ने वारुणास्त्र का प्रयोग किया। ताप कम हुआ और धरती पर्याप्त गीली हो गई। कृष्ण मुस्कराए।

कर्ण ने भार्गवास्त्र का संधान किया।

अर्जुन के अग्निबाणों को निष्प्रभ करने हेतु कर्ण ने वरुणास्त्र के दिव्य मन्त्रों का उच्चारण किया। क्षण-भर में ही चारों ओर से रणभूमि पर कृष्णमेघ जमा हो गये। मूसलाधार वर्षा करते हुए उन्होंने आग्नेयास्त्र के साथ-साथ अर्जुन के मन की आग को भी बुझा दिया। उस दानवीर ने उस वर्षा से अपने अर्धमृत आहत वीरों को भी जीवनदान दिया।

अर्जुन के वायव्यास्त्र ने कर्ण के वरुणास्त्र के मेघों को इतस्तत: बिखेर दिया। कुरुक्षेत्र पुन: सूर्य-किरणों से आलोकित हो उठा। प्रसन्न हुए अर्जुन ने वज्रास्त्र को अभिमन्त्रित करके उसे कर्ण पर प्रक्षेपित किया। उसके प्रत्युत्तर में अविचलित कर्ण ने महेन्द्र पर्वत पर प्राप्त किये गये भार्गवास्त्र की तैयारी की। दोनों अस्त्रों के दिव्य संहारक शस्त्र खनखनाते हुए आपस में टकराये। वे चिनगारियाँ बरसाते हुए, असफल होकर धरती पर जा गिरे।

अर्जुन ने भार्गवास्त्र को देखा तो तत्काल इंद्र का महेन्द्रास्त्र निकाल लिया। किंतु भार्गवास्त्र के सम्मुख महेन्द्रास्त्र दुर्बल सिद्ध हुआ। उसे नष्ट होते देखकर अर्जुन से अधिक भीम क्रोध से भर उठा, इस अधर्मी और पापी कर्ण ने तुम्हारे सामने इतने सारे पांचाल वीरों को कैसे मार डाला। उसने तुम्हें भी बींध डाला है। तुम क्या कर रहे हो अर्जुन? द्यूतसभा में हुए अपने और द्रौपदी के अपमान को स्मरण करो। यही पापी था, जिसने उसे वेश्या कहा था और निर्वस्त्र कर देने का प्रस्ताव रखा था।

कौरवोंकी सेनाकी प्रेरणासे कर्णने पूरी शक्ति लगाकर लगातार बहुत-से बाणोंकी वर्षा की, इससे पाण्डव और पाञ्चाल सैनिकोंका नाश होने लगा। कर्ण और अर्जुन दोनों ही अस्त्र विद्याके ज्ञाता थे, इसलिये बड़े-बड़े अस्त्रोंका प्रयोग करके वे अपने-अपने शत्रुओंकी सेनाका संहार करने लगे। इतनेहीमें राजा युधिष्ठिर मन्त्र तथा औषधियोंके बलसे पूर्ण स्वस्थ होकर कर्ण और अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये वहां आये।

तदनन्तर भागे हुए कौरवसैनिक धनुषसे छोड़ा हुआ बाण जहाँतक पहुँचता है, उतनी दूरीपर जाकर खड़े हो गये। वहाँसे उन्होंने देखा कि अर्जुनका अस्त्र चारों ओर बिजलीके समान चमक रहा है। फिर यह भी देखनेमें आया कि कर्ण अपने भयंकर बाणोंसे उनके अस्त्रको नष्ट किये डालता है। अब अर्जुन प्रचण्ड रूप धारण कर कौरवोंको भस्म करने लगे। यह देख कर्णने आथर्वण अस्त्रका प्रयोग किया। वह शत्रुनाशक अस्त्र उसे परशुरामसे प्राप्त हुआ था। उसके द्वारा कर्णने अर्जुनके अस्त्रको शान्त कर दिया और उन्हें भी तेज किये हुए सायकोंसे बींध डाला। उस समय कर्ण और अर्जुनने इतनी बाण-वर्षाकी कि सारा आकाश ढक गया, उसमें तनिक भी जगह खाली नहीं रह गयी।

अर्जुनके छोड़े हुए बाण आकाशमें पहुँचकर फैले हुए जालके समान दिखायी देते थे। जहाँ पक्षियोंके झुंड उड़ा करते थे,

उस आकाशको बाणोंसे व्याप्त कर धनञ्जय कौरवोंके काल बन गये। भल्लों, क्षुरप्रों तथा उज्ज्वल नाराचोंसे शत्रुओंके अङ्ग-अङ्ग छेद डालते और मस्तक काट लेते थे। रणभूमि गिरे हुए और गिरते हुए योद्धाओंकी लाशोंसे ढक गयी थी।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हुई कौरव-सेना चारों ओर भाग चली। जब समस्त कौरव युद्धसे विमुख हो गये तो विजयी अर्जुनने भीमके पास पहुँचकर थोड़ी देर विश्राम किया। फिर, भीमसे मिलकर उन्होंने कुछ सलाह की और यह बताया कि राजा युधिष्ठिरके शरीरसे बाण निकाल दिये गये हैं; तथा इस समय वे अच्छी तरहसे हैं। इस प्रकार कुशल-मङ्गल कहकर भीमकी आज्ञा ले अर्जुन कर्णकी सेनाकी ओर चल दिये।

उस समय कौरवोंके सैनिकोंने गदाधारी भीमको देखकर यही समझा कि साक्षात् यमराज ही कालदण्ड लिये यहाँ आ पहुँचे हैं। अब भीमने हाथियोंकी सेनामें प्रवेश किया और अपनी बड़ी भारी गदा लेकर एक ही क्षणमें सबको यमलोक पहुँचा दिया। गजसेनाका संहार कर महाबली भीम पुन: अपने रथपर आ बैठे और अर्जुनके पीछे-पीछे चलने लगे।

तदनन्तर, कौरवोंमें बड़े जोरसे आर्तनाद होने लगा। हाथी, घोड़े तथा पैदलोंके प्राण लेनेवाले अर्जुनके बाणोंकी मारसे सब लोग हाहाकार मचा रहे थे, सबपर अत्यन्त भय छा गया था, सभी एक दूसरेकी आड़में छिपना चाहते थे। इस तरह कौरवोंकी सम्पूर्ण सेना उस समय अलातचक्रके समान घूम रही थी। उस युद्धमें कोई भी रथी, सवार, घोड़ा या हाथी ऐसा नहीं बचा था, जो अर्जुनके बाणोंसे घायल नहीं हुआ हो। उनका यह पराक्रम देख सभी कौरव कर्णके जीवनसे निराश हो गये। सबने गाण्डीवधारी के प्रहारको अपने लिये असह्य समझा और उनसे परास्त होकर सब पीछे हट गये। सायकोंसे बिंध जानेके कारण वे भयभीत हो रणभूमिमें कर्णको अकेला ही छोड़कर भाग चले। किंतु सहायताके लिये सूतपुत्र कर्णको ही पुकारते थे।

इसके बाद दुर्योधन कर्णके रथके पास गये। वे संकटके अगाध समुद्रमें डूब रहे थे, उस समय कर्ण ही द्वीपके समान उनका रक्षक हुआ। कर्म करनेवाले जीव, मृत्युसे डरकर जैसे धर्मकी शरण लेते हैं, उसी प्रकार दुर्योधन भी अर्जुनसे भयभीत हो कर्णकी शरणमें पहुँचे थे। कर्णने देखा, ये खूनसे लथपथ हो रहे हैं, बड़े संकटमें पड़े हैं और बाणोंकी चोटसे व्याकुल हैं, तो उसने उनसे कहा- मेरे पास आ जाओ, डरो मत। इसके बाद कर्णने खूब सोच-विचारकर मन-ही-मन अर्जुनके वधका निश्चय किया और उनके देखते-देखते उसने पाञ्चालोंपर आक्रमण किया। यह देख पाञ्चाल-राजाओंकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं, वे कर्णपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे।

कर्ण ने कृष्ण के समतुल्य सारथी प्राप्त करने का प्रयत्न किया था; किंतु उसका सारथी उसका उत्साह कम बढ़ा रहा था, उसे विक्षिप्त ही अधिक कर रहा था।

कृष्ण का ध्यान उनकी ओर गया। उन्होंने ध्यान से देखा और बोले, अर्जुन। ये कर्ण के धनुर्धर नहीं, मुझे तो तक्षकपुत्र अश्वसेन के विषधर प्रतीत हो रहे हैं। ये जो बचकर वापस कर्ण के पास जा रहे हैं। इन्हें मारो। साधु अर्जुन। साधु। यह क्षत्रियों के समान युद्ध हुआ। इस उत्साह को बनाए रखो, कर्ण बहुत देर नहीं टिक पाएगा।

कृष्ण ने एक विचित्र तिरछे ढंग से रथ को आगे बढ़ाया, जैसे वे कर्ण के रथ को टक्कर मारने जा रहे हों। शल्य ने टक्कर बचाने के लिए रथ पीछे ही नहीं हटा लिया, उसे तिरछा कर कुछ दूर सरका भी दिया।

कर्ण ने अपना विरोध प्रकट किया। क्या कर रहे हो शल्य? शल्य बोला, कृष्ण को देखो, वे अश्वों को भिड़ाना चाहते हैं या रथियों की भिड़ंत कराना चाहते हैं। अर्जुन का रथ अधिक शक्तिशाली है तो इसका यह अर्थ तो नहीं है कि वे उसको दूसरे रथों से भिड़ाते रहें। उनके सारथ्य की यह शैली मेरी समझ में नहीं आती।

कर्ण बोला, शैली समझो, न समझो, रथ सीधा रखो। कहीं कृष्ण युद्ध छोड़कर भागना तो नहीं चाहते। वैसे भी हम मुख्य समरभूमि से दूर चले आए हैं। उन्हें छेक कर रखो। वे हमारी पहुँच से बाहर न जा सकें।

दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हुआ। कर्ण कब बाण निकालते थे, कब उसे धनुष पर चढ़ाते थे, कब छोड़ते थे और कब दूसरा ग्रहण करते थे किसी को पता ही नहीं चलता था। जैसे आकाश में प्रलयकालीन गजसुण्ड के समान वर्षा होती है वैसे ही वे निरन्तर बाणों की वर्षा करने लगे। अर्जुन अपने दिव्य बाणों से उन्हें व्यर्थ करने की चेष्टा कर रहे थे, किन्तु उसमें सफल नहीं होते थे।

भीमने कहा- अर्जुन। तुम्हारा पराक्रम कहाँ गया? सूत-पुत्र हमारी सेना का संहार कर रहा है।

अर्जुन कुछ भी न बोले। वे क्रुद्ध सिंह की तरह अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर समर करने लगे। साधारण अस्त्रों से काम होते न देखकर उन्होंने अमोघ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और निश्चय कर लिया कि अब कर्ण मारा गया।

संसार चकित हो गया। आकाश स्थित देवगण विस्मय में मग्न हो गये। कर्ण ने अपने दिव्य बाणों से ब्रह्मास्त्र को भी शान्त कर दिया। यह वीर बिना विश्राम लिये बाणों को बरसाता ही रहा।

श्रीकृष्ण ने कहा- अर्जुन। अपने बल का स्मरण करो। सूत-पुत्र तुमसे बढ़ रहा है। कभी व्यर्थ न होनेवाले ब्रह्मास्त्र को भी इसने व्यर्थ कर दिया। अब क्या हो मधुसूदन। कुछ घबड़ाते हुए अर्जुन ने अपने सारथी श्यामसुन्दर से कहा। कृष्ण बोले, फिर ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग करो। तुम अपने दिव्यास्त्रों से इस अधम सूत-पुत्र को आज शरशैया पर सुला दो। आज इसे यमराज के यहाँ पहुँचा दो।

वासुदेव व्यथित होकर विचलित हो उठे। कर्ण जोरों से हँस पड़े। अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। अबके अर्जुन ने क्रोध में भरकर बाणों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। उसने इतने बाण वर्षाये कि आकाश बाणों से ढक गया। देवतागण विमानों से युद्ध को न देख सके। सूर्य नारायण अस्त से प्रतीत होने लगे। सर्वत्र अन्धकार छा गया। तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। कर्ण अत्यन्त कुपित हुए उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब मैं एक नाग बाण छोड़कर अर्जुन का सिर काट ही लूँगा। उनके ऐसे निश्चय से सूर्यदेव प्रसन्न हुए। देवराज इन्द्र डर गये। दिशाएँ गूँजने लगीं, पृथ्वी काँपने लगी। अबके कर्ण ने मन्त्र पढ़कर अपने तूणीर से एक दिव्य श्रेष्ठ बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाया। वे क्रोध में अन्धे हो रहे थे। दाँतों से ओठ चबाते हुए भृकुटी ताने हुए गर्दन मोड़कर सामने देखकर बाण को छोड़ना चाहते थे कि शल्य ने देखा बाण उलटा चढ़ा है।

असल में बाण दिव्य नाग बाण तो था ही, उस समय वह सजीव बना हुआ था। जब खाण्डव वन को अर्जुन जला रहे थे तब नागराज अश्वतर की माता अपने पुत्र को निगलकर आकाश से उड़ी जा रही थी। अर्जुन ने बाण मारकर उसका सिर काट दिया। वह तो मर गयी, किन्तु पेट में से निकलकर अश्वसेन नाग भाग गया। उसी दिन से वह अपने शत्रु अर्जुन को मारने की ताक में घूमा करता था। आज अच्छा अवसर पाकर वह कर्ण की तूणीर में घुस गया। कर्ण ने जिस बाण को अभी धनुष पर चढ़ाया था, उसमें वही अश्वसेन लिपटा हुआ था। वह ऐसा विषधर और अजेय था कि उसका प्रहार किसी तरह व्यर्थ हो ही नहीं सकता था, किन्तु कर्ण ने भूल में जिधर इसकी पूँछ थी उधर ही चढ़ाया। कर्ण को पता भी नहीं था कि अश्वसेन नाग उसमें लिपटा है। नहीं तो वह उसे कभी छोड़ता ही नहीं। शल्य ने उलटा बाण देख लिया, अत: वह बोला, कर्ण। बाण उलटा है, फिर से उतारकर सीधा चढ़ाकर छोड़ो।

उस समय मद्रराज शल्यने जब उस भयंकर बाणको धनुषपर चढ़ा हुआ देखा तो कहा- कर्ण। तुम्हारा यह बाण शत्रुके कण्ठमें नहीं लगेगा; जरा सोच-विचारकर फिरसे निशाना ठीक करो, जिससे यह मस्तक काट सके।

यह सुनकर कर्णकी आँखें क्रोधसे उद्दीप्त हो उठीं। वह शल्यसे कहने लगा- मद्रराज। कर्ण दो बार निशाना नहीं साधता। मेरे-जैसे वीर कपटपूर्वक युद्ध नहीं करते।

कर्णके धनुषसे छूटा हुआ वह बाण अन्तरिक्षमें पहुँचते ही प्रज्वलित हो उठा। उसे बड़े वेगसे आते देख श्रीकृष्णने खेल-सा करते हुए अपने रथको तुरंत पैरसे दबा दिया, भार पड़नेसे रथके पहिये कुछ-कुछ जमीनमें धँस गये। साथ ही घोड़े भी पृथ्वीपर घुटने टेककर जरा-सा झुक गये। कृष्णका यह कौशल देख आकाशमें उनकी प्रशंसासे भरी हुई दिव्य वाणी सुनायी देने लगी। कर्णका छोड़ा हुआ वह बाण रथ नीचा हो जानेके कारण अर्जुनके कण्ठमें न लगकर मुकुटमें लगा। वह मस्तकसे नीचे जा पड़ा। अर्जुनका वह मुकुट पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग और वरुणलोकमें भी विख्यात था। साक्षात् ब्रह्माजीने बड़े प्रयत्न और तपस्यासे उसको इन्द्रके लिये तैयार किया था। अर्जुनने दैत्योंको मारनेकी इच्छासे जब रणयात्रा की थी, उस समय इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें अपने हाथसे यह मुकुट पहनाया था। वही मुकुट कर्णके साथ युद्ध करते समय सर्पकी विषाग्निसे जीर्ण-शीर्ण होकर जलता हुआ जमीनपर जा गिरा। इससे अर्जुनको तनिक भी घबराहट नहीं हुई, वे अपने सिरके बालोंपर सफेद साफा बाँधकर धैर्यपूर्वक डटे रहे। उस समय वे मौतके मुखसे बचे थे।

कर्ण ने अपने तूणीर से सर्पमुख बाण निकाला। इसे वर्षों से उसने सँभालकर रखा था। सँभालकर तो उसने वैजयंती भी रखी थी, किंतु उसका प्रयोग घटोत्कच पर करना पड़ा था। उसका आकार, उसका वेग और उसका प्रभाव सब कुछ ही घातक था। बस इसे अर्जुन तक पहुँचना चाहिए, यह उसका मस्तक काटकर धरती पर फेंक देगा। उसने बाण को धनुष पर चढ़ा लिया।

शल्य ने टोका, बाण का लक्ष्य ठीक नहीं है कर्ण। उसे ठीक करो। फिर से संधान करो।

कर्ण बोला, कर्ण दो बार बाण संधान नहीं करता। न ही मेरे जैसे वीर कपट युद्ध करते हैं। उसने बाण चला दिया और चिल्लाकर कहा, अर्जुन। अब तू निश्चय ही मारा गया।

कृष्ण की दृष्टि उस बाण पर टिकी हुई थी। अर्जुन का धनुष भी बाण उगल रहा था; किंतु कर्ण का बाण वक्र होकर अर्जुन की ओर आ रहा था और निश्चित रूप से उसका मस्तक काटने के लक्ष्य से छोड़ा गया था। रथ स्थिर था और उसे तत्काल भगाकर कहीं और ले जाना संभव नहीं था। कृष्ण के हाथों ने वल्गा को एक ओर मोड़ा, पैरों ने रथ पर एक विशेष प्रकार से दबाव डाला। रथचक्र स्पष्टत: दलदल जैसी आर्द्रसिकता की पकड़ में आ गए थे। रथचक्र ही मिट्टी में नहीं धँस गए थे, रथ में जुते घोड़े भी अपने अगले पैरों के घुटनों पर आ गिरे थे।

कृष्ण बोले, चिंता मत करो अर्जुन। सब कुछ सुरक्षित है।

कर्ण का बाण अर्जुन के किरीट के ऊपरी भाग में टकराता हुआ निकल गया। अर्जुन का किरीट धरती पर जा गिरा था।

कृष्ण बोले, मस्तक के धरती पर जा गिरने से किरीट का गिरना अधिक हानिकारक नहीं है अर्जुन। हमारे अश्व भी गिरे नहीं हैं, न ही रथ कीचड़ में फँसा है। यह सब कुछ मैंने प्रयत्नपूर्वक इसीलिए किया है कि तुम्हारी ऊँचाई कम हो जाए और बाण ऊपर से निकल जाए।

अर्जुन ने पूछा, किंतु आपने मुझे झुकने के लिए न कहकर सारा रथ क्यों धरती में धँसा दिया? कृष्ण ने धीरे से कहा,

अपने केशों को किसी वस्त्र से बाँध लो और युद्ध करो। अभी इस अस्त्र का भी रहस्य खुल जाएगा।

श्रीकृष्ण बोले, पाण्डुनन्दन। यह लापरवाही कैसी? बुद्धिमान पुरुष संकटमें पड़े हुए शत्रुको मारकर धर्म और यश प्राप्त करते हैं। तुम भी इसका नाश करनेके लिये शीघ्रता करो; यदि यह पहलेहीके समान शक्तिशाली हो जायगा तो फिर तुमपर आक्रमण करेगा। तब अर्जुनने बहुत अच्छा। ऐसा ही करूँगा यों कहकर श्रीकृष्णका सम्मान किया और शीघ्र ही उत्तम बाणोंसे कर्णको बींधना आरम्भ किया।

अर्जुन से अपनी पुरातन प्रतिद्वन्द्विता की आज वह सदा के लिए इतिश्री करने को उद्यत था। अर्जुन-वध अनिवार्य है। द्रौपदी के स्वयंवर में अर्जुन की विजय को कर्ण कभी विस्मृत नहीं कर पाया। युद्धकौशल में गुरुवर द्रोणाचार्य की विशेष कृपा अर्जुन पर देख, उसने महाजटिल वीर परशुराम से छलपूर्वक प्रशिक्षण पाया था। धर्म के क्षेत्र में कर्ण की दानवीरता प्रसिद्ध थी तो अर्जुन की अथाह करूणा एवं धर्माचरण। अर्जुन उसका प्रतिद्वन्द्वी है। कर्ण भैरव-सा रूप धारे उन्मत्त हो उठा। कठोर आघातों से वास्तव में उसने अर्जुन को आहत कर डाला। यही नहीं, कुपित हो उसने पार्थ-सारथी श्रीकृष्ण पर भी प्रहार किये। अन्त में भलीभाँति विचार कर, बड़े यत्नों से सुरक्षित रखा अपना अत्यन्त विलक्षण सर्पबाण निकाला, जिसे वह अर्जुन के ही लिए बचाये हुए था।

अपने विराट धनुष पर चढ़ाकर, कर्ण ने समूची शक्ति से प्रत्यंचा को आकर्ण खींचते हुए वह सर्पमुखी बाण ठीक अर्जुन के मस्तक की ओर छोड़ा। प्रत्यंचा से विलग होते ही सर्पबाण प्रज्वलित हो धू-धू करती उल्काएँ छोड़ता अर्जुन के शीश की ओर लपलपा उठा।

परम-स्फूर्त पार्थ-सारथी ने तुरन्त अपने चरणबल से रथ का अग्रभाग भूमि में धँसाकर नीचा कर दिया। हेमाभूषणों से अलंकृत श्वेत-अश्व एकाएक झटके के साथ भूमि पर घुटने टेक आगे झुक गये। साधु-साधु के तुमुल कोलाहल से आकाश-पाताल एक हो गया।

युद्धरत अर्जुन जब तक कुछ समझें, वह भयंकर विषधर-सा फुफकारता हुआ नाग-बाण उनके स्वर्णकिरीट में लगा आकर। किन्तु वह कालमुखी बाण उस अद्भुत शिल्प-चित्राकित, मणिमय किरीट को ही पृथ्वी पर गिरा पाया। अर्जुन सुरक्षित थे। कुशल सारथी ऐसे प्राणरक्षा करता है। परम शक्तिवान स्वयं जिसका सारथी बन बैठा हो, उसे कोई कैसे क्षति पहुँचा सकता है।

नारायण श्रीकृष्ण के प्रचण्ड जयघोष के रव से कुरुक्षेत्र गूँज उठा। असंख्य मनुष्येतर जातियों द्वारा नारायण स्तुति से अन्तरिक्ष प्रकम्पित हो उठा।

कर्ण के प्रति उसके मन में भयंकर वितृष्णा थी। उसने भरी सभा में पांचाली को वेश्या कहा था। कुलटा कहा था। पूर्व तिरस्कार एवं घृणा की वह भावना अब द्विगुणित हो उसके अन्तर में उमड़ पड़ी।

आत्माभिमानी कर्ण को यह कब सह्य था। उसने कहा- शल्य। तुम चुप हो जाओ। कर्ण ने जिस बाण को एक बार चढ़ा लिया फिर उसे दुबारा नहीं चढ़ाता। उलटा-सीधा जैसा चढ़ गया ठीक है।

यह कहकर उसने कानों तक डोरी खींचकर बड़े वेग से बाण को छोड़ा। वह बाण ठीक लक्ष्य से लग जाता तो निश्चय ही अर्जुन के प्राण नहीं बच सकते थे। वह अवश्य ही अर्जुन को मार डालता, किन्तु सर्वज्ञ वासुदेव ने अश्वसेन को बाण पर देख लिया। सम्पूर्ण संसार जिनके उदर में है, उन्होंने रथ को तनिक जोरों से दबाया। दबाते ही रथ के पहिये जमीन में धँस

गये। घोड़े सधे हुए थे। कृष्ण के रास हिलाते ही वे घुटनों के बल बैठ गये। कर्ण का लक्ष्य कभी व्यर्थ नहीं होनेवाला था। वे जिसे लक्ष्य करके बाण छोड़ते, बाण वहीं लगता। अब देवकीनन्दन ने अपनी बुद्धिमानी से रथ को नीचा कर दिया। इससे वह बाण अर्जुन के सिर में न लगकर उनके दिव्य इन्द्रदत्त मुकुट में लगा और वह मुकुट टुकड़े-टुकड़े होकर जमीन पर गिर पड़ा। यह महान् आश्चर्य की बात थी, जो इन्द्र का अभेद्य मुकुट इस तरह टुकड़े-टुकड़े होकर गिर जाय।

अश्वसेन नाग ने जब देखा लक्ष्य ठीक निशाने पर नहीं बैठा श्रीकृष्ण ने चालाकी से रथ को जमीन में धँसा दिया तो वह बाण को छोड़कर क्रोध के साथ फिर कर्ण के समीप पहुँचा। अबके ज्यों ही वह कर्ण के तूणीर में घुसना चाहता था त्यों ही कर्ण ने उसे देख लिया। डाँटकर कर्ण ने पूछा- तुम कौन हो?

उसने कहा- मैं अश्वसेन नाग हूँ।

कर्ण ने पूछा, यहाँ क्यों आये? क्या करना चाहते हो?

नाग ने कहा- राजन्। मेरी माँ को दुष्ट अर्जुन ने खाण्डव दाह के समय मार दिया था। उसी से बदला लेने के लिये मैं तुम्हारे बाण पर चढ़कर उसे मारने गया था, किन्तु श्रीकृष्ण की चालाकी से मैं इनके मुकुट को ही तोड़ सका। अबके तुम मुझे फिर से बाण पर चढ़ाओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अब के मैं अर्जुन का अवश्य ही सिर काट लूँगा। मेरा प्रहार अमोघ है। अब संसार में अर्जुन को कोई बचा न सकेगा। आप निश्चय समझें, इसी बाण से अर्जुन मारा जायगा। देवराज इन्द्र, समस्त लोकपाल, प्रजापति ब्रह्मा भी रक्षा करना चाहें तो अर्जुन अबके बच नहीं सकता। बस, एक बार आप मुझे छोड़ दें।

कर्ण ने गरजकर कहा- नागराज। तुम ये क्या भूली-भूली बातें करते हो? मेरी असावधानी से तुम मेरे अनजान में मेरे बाण पर बैठकर चले गये। जान-बूझकर मैं ऐसी नीचता कभी न करता। कर्ण किसी के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहता, कर्ण को अपने भुजबल का भरोसा है। वह दूसरों के बल पर लड़ना नहीं चाहता। मैं तुम्हारी इस नीच सम्मति को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। तुम्हें जहाँ जाना हो चले जाओ। फिर कभी ऐसी ओछी बात मेरे सामने न कहना। नागराज यह सुनकर लज्जित हुआ।

धन्य वीर कर्ण तुम्हारी वीरता को, तुम्हारी सत्यप्रियता को, तुम्हारे बल को, तुम्हारे आत्मविश्वास को, बार-बार धन्यवाद है। तुम्हारे चरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है।

नागराज तक्षक का पुत्र अश्वसेन कर्ण से बोला, मैं अश्वसेन हूँ। उस विचित्र व्यक्ति ने कहा, तुम मुझे नहीं जानते। अर्जुन ने खांडव दाह के समय मेरी माता का वध कर दिया था। उसका प्रतिशोध चाहता हूँ मैं। अर्जुन मेरा और तुम्हारा समान रूप से शत्रु है। वह पहला विषाक्त बाण भी मैंने ही तुम्हारे तूणीर में रखा था। वह सर्पमुख बाण नहीं, सर्प ही था, अत्यन्त विषैला सर्प। पर तुमने ठीक से सोच-विचार कर सावधानी से वह बाण नहीं छोड़ा। तुम ठीक से लक्ष्य संधान क्यों नहीं करते। अभ्यास नहीं है क्या? वह अमूल्य बाण तुमने व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। अब या तो तुम लक्ष्य साध कर यह बाण छोड़ो, या फिर मेरे लिए अर्जुन तक पहुँचने का मार्ग बना दो। मैं अपने और तुम्हारे शत्रु का तत्काल वध कर दूँगा।

कर्ण को न तो वह व्यक्ति प्रीतिकर लग रहा था, न उसकी बातें। वह उससे ऐसे बात कर रहा था, जैसे कर्ण कोई दीनहीन साधारण सैनिक हो और उसे सहायता की आवश्यकता हो। वह उसके लक्ष्य संधान में दोष बता रहा था और स्वयं में अर्जुन के वध की क्षमता जता रहा था, जैसे कर्ण उससे शून्य हो।

कर्ण बोला, नाग। कर्ण पराए बल से अपने शत्रुओं को नहीं मारता। मेरे पास अपना सर्पमुख बाण है। मेरे मन में अर्जुन

के लिए पर्याप्त आक्रोश हैं; ओर मैं पूरा प्रयत्न कर रहा हूँ। तुम जाओ। मैं अपना वैर स्वयं ही चुकाऊँगा।

अर्जुन का हाथ रुक गया। कृष्ण बोले, प्रमाद मत करो पार्थ। बुद्धिमान लोग अपने दुर्बल से भी दुर्बल शत्रु को नष्ट करने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा नहीं करते। संकट में पड़े शत्रु को मार कर बुद्धिमान पुरुष धर्म और यश का भागी होता है। कर्ण सँभल कर तुम पर आक्रमण करे, उससे पहले ही उसे मार डालो।

कर्ण ने जब अश्वसेन को साफ जवाब दे दिया तब वह द्वेष के वशीभूत होकर स्वयं ही अस्त्र का रूप धारण करके अर्जुन को मारने चला। पापी पाप करते समय यही सोचता है कि उसे कोई देख नहीं रहा है, किन्तु घट-घट व्यापी प्रभु से किसी का कोई काम छिपा नहीं है। अन्तर्यामी प्रभु सबका हाल जानते हैं। आकाश में आते हुए उस नाग को देखकर वासुदेव ने अर्जुन से कहा- पार्थ। सामने जो चमचमाता हुआ टेढ़ा-मेढ़ा अस्त्र सा आ रहा है। इसे ठीक निशाना लगाकर नष्ट भ्रष्ट तो कर दो।

धनुष तानते हुए अर्जुन ने पूछा। क्या है यह मधुसूदन?

जिसकी माँ को तुमने खांडवदाह के समय मार दिया था, उसी का यह नीच पुत्र अश्वसेन नाग है। यह पूर्व का बदला लेने आ रहा है। इसे छोड़ना नहीं। इसका विष असह्य है। कोई इसके प्रहार को सहन नहीं कर सकता। वासुदेव यह कह ही रहे थे कि अर्जुन ने कान तक डोरी खींचकर एक ऐसा बाण मारा कि उस नाग के टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह मरकर पृथ्वी पर गिर गया। कृष्ण ने दौड़कर अर्जुन का आलिङ्गन किया और बोले- मेरे प्रिय। तुमने यह अन्तिम गढ़ विजय कर लिया। इस दुष्ट का मुझे बड़ा भय था। तुम्हारे सिवाय इसे कौन मार सकता था? यह कहकर कृष्ण ने स्वयं उतरकर पृथ्वी में धँसे हुए अपने रथ के पहिये को उखाड़ा और वे आगे बढ़े।

कर्ण ने दृष्टि उठाकर देखा। अनेक कौरव योद्धा तो भयभीत होकर अर्जुन के बाणों की मार की सीमा से बाहर भाग गए लगते थे। युद्ध हो पाए या न हो पाए, किंतु वे उस क्षेत्र के भीतर आने को प्रस्तुत नहीं थे। तो यह विचित्र द्वैरथ युद्ध था। जिसमें केवल अर्जुन था और कर्ण था। भीम भी तो किसी और को बीच में पड़ने से ही रोक रहा था, या उसका प्रयत्न यह था कि कर्ण की सहायता को कोई और न आए। अपने धरातल पर वह कर्ण से भी जूझने का प्रयत्न नहीं कर रहा था सामने से अर्जुन का दिव्यास्त्र बड़े वेग से उसकी ओर बढ़ रहा था। वह विद्युत के समान चमक रहा था। कर्ण का उससे परिचय नहीं था, जाने वह क्या था और उसका प्रभाव क्या था।

कर्ण ने परशुराम का अथर्वणास्त्र प्रकट किया और अर्जुन का वह दिव्यास्त्र आकाश में ही नष्ट कर दिया।

कर्ण समझ रहा था। यह अब साधारण सैनिकों अथवा साधारण महारथियों का युद्ध नहीं रह गया था। दोनों ही योद्धा अपने-अपने सिद्ध अस्त्रों से एक-दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। कभी किसी का पलड़ा भारी हो जाता था और कभी किसी का। किंतु कर्ण अभी तक अर्जुन को किसी भी प्रकार दीन नहीं कर पाया था। अर्जुन का बल क्षीण नहीं हुआ था। अब युद्ध को लंबा नहीं खींचना चाहिए। युद्ध ऐसा कर्म नहीं हैं, कि जिसमें अपनी विजय को टाला जाए। अभी कर्ण बलवान है तो अगले ही क्षण अर्जुन बलवान हो सकता है।

धन्य हो पार्थ- सारथे। समूचा वृत्तान्त सुनते ही पांचाली गद्‌गद कण्ठ से कह उठी। चलते समय लीलामय उसे आश्वस्त करके गये थे कि पार्थ कि रक्षा वे स्वयं करेंगे और वे केवल कहते ही नहीं, करते भी हैं।

अब कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं थी। कर्ण युद्ध तो कर ही रहा था। अर्जुन ने अपने बाण को महारौद्रास्त्र से अभिमंत्रित किया और कर्ण पर छोड़ दिया।

क्या कर रहे हो शल्य। उसके मन की व्याकुलता कटुता बनकर प्रकट हुई, रथ को डोला क्यों रहे हो। जानते नहीं कि ऐसे बड़े और भारी रथ स्थिर रहने चाहिए, नहीं तो उलट भी सकते हैं।

शल्य ने चिढ़कर कहा, बहुत जानते हो रथ के विषय में। पर सारथ्य के लिए थोड़ा-सा ज्ञान धरती का भी होना चाहिए। देख नहीं रहे कि धरती गीली है। मुझे तो यह क्षेत्र आर्द्रसिकता से ग्रसित लगता है। तुमने भी अपने वरुणास्त्र से इसे कच्छभू ही बना दिया है। कर्ण ने उसे डाँटा। तो रथ कहीं और हटा ले चलो। इसी धरती पर कृष्ण भी रथ चला रहे हैं, वे लोग तो हिचकोले नहीं खा रहे, जैसे भूचाला आया हो। स्वयं को कृष्ण से अच्छा सारथी समझते हो, तो वह क्यों नहीं कर सकते, जो कृष्ण कर सकते हैं।

कर्ण और अर्जुन में जोरों से बाणों का युद्ध होने लगा। अर्जुन बोला, कर्ण साधारण बाणों से रोके नहीं रुकेगा। अर्जुन ने दिव्यास्त्र को मन्त्र से अभिषिक्त कर कर्ण पर बाण चलाये। कर्ण के बाण टूटने लगे। कर्ण ने अर्जुन के धनुष को तोड दिया। कर्ण बोले, आप सच कह रहे थे मद्र नरेश कि अर्जुन फिर अर्जुन है। मेरे बाण चलाने से पहिले वो अपनी प्रत्यन्चा बदल लेता है परन्तु यह युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। अर्जुन ने अग्नि बाण चलाया। कृष्ण बोले, यह प्रतिद्वन्दी दिव्यास्त्रों के योग्य है पार्थ। दिव्यास्त्र चलाओ। अर्जुन बोला, जो आज्ञा केशव। अर्जुन ने बाण चलाया।

कर्ण ने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र से उसका प्रतिकार किया। कर्ण ने उसके बाण काट डाले और ऐन्द्रास्त्र नष्ट कर दिया।

तदनन्तर कर्ण धनुष उठाकर बड़े वेगसे अर्जुनके साथ युद्ध करने लगा। उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- तुम कर्णको दिव्यास्त्रसे ही घायल करके मार गिराओ। कृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुनको कर्णके अत्याचारोंका स्मरण हो आया। फिर तो उन्हें भयंकर क्रोध चढ़ा, उनके रोम-रोमसे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं- यह एक अद्‌भुत बात हुई। यह देख कर्णने अर्जुनपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उसके अस्त्रको दबा दिया। इसके बाद उन्होंने कर्णको लक्ष्य करके आग्नेय अस्त्र छोड़ा, जो अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा। किंतु कर्णने उसे वारुणास्त्रसे शान्त कर दिया; साथ ही आकाशमें बादलोंकी घटा घिर आयी, सम्पूर्ण दिशाओंमें अँधेरा छा गया। परंतु अर्जुन इससे विचलित नहीं हुए, उन्होंने कर्णके देखते-देखते वायव्यास्त्रसे उन बादलोंको उड़ा दिया।

कर्ण बड़ी फूर्ती से बाण छोड़ रहे थे। उनके उत्साह में कोई कमी नहीं थी। अर्जुन के बाणों को वे बड़े कौशल से बचा जाते और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण को ऐसे बाण मारते कि वे घबड़ा जाते। एक बार क्षण भर के लिये कर्ण को मूर्छा-सी आई और फिर वे सम्हल गये। उन का काल उनके समीप आ गया था। उन्हें प्रतीत हो गया कि मेरी मृत्यु मेरे निकट है। फिर भी उन्होंने न दीनता दिखायी न युद्ध ही बन्द किया। वे उसी वीरता के साथ बाण वर्षा करते रहे। अन्त में उन्होंने ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया। बहुत स्मरण करने पर भी उन्हें अब ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं हुआ। वे समझ गये कि भगवान परशुराम का शाप अब फलीभूत होनेवाला है। थोड़ी ही देर में ब्राह्मण के शाप के अनुसार पृथ्वी ने उनके रथ के चक्र को निगल लिया, कर्ण फिर भी विचलित नहीं हुए। वे उसी उत्साह के साथ युद्ध करते रहे। अर्जुन ने फिर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। कर्ण ने फिर उसे अपने दिव्य अस्त्रों से शान्त कर दिया और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के ऊपर बाण बरसाने लगे।

शल्य ने कहा, तुम भी तो स्वयं को अर्जुन से अच्छा योद्धा समझते हो, तो वह क्यों नहीं कर सकते, जो अर्जुन कर सकता है। रथ एक झटके के साथ रुक गया। कर्ण के शरीर को भी हिचकोले का अनुभव हुआ।

कर्ण चिल्लाकर बोला, अब यह क्या है?

शल्य ने उत्तर दिया, अब तक तो रथ डोल ही रहा था। अब वह खड़ा हो गया है। पीछे का बायाँ चक्र धरती ने ग्रस लिया है। यदि इस धरती में सचमुच ही आर्द्रसिकता का गुण हुआ, तो समझो कि हम धरती के ग्रास बन गए।

अपनी व्याकुलता में कर्ण सब कुछ ही भूल गया। उसने अमर्यादित होकर शल्य को डाँटा, यह षड्यंत्र किया है तुमने कृष्ण के साथ मिलकर। मुझे यहाँ कीलित कर मेरा वध करवाना चाहते हो। क्या समझते हो कि उसके लिए अर्जुन तुम्हें छोड़ देगा और युधिष्ठिर तुम्हें पुरस्कार देगा। अर्जुन तुम्हें छोड़ भी दे किंतु कृष्ण तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। तुम भी मरोगे।

शल्य ने कर्ण की ओर देखा उसकी स्थिति उन्मादी की सी हो रही थी। वह मृत्यु से डर गया था क्या। जिस सेना का प्रधान सेनापति विक्षिप्त हो गया हो, उसका क्या होगा।

कर्ण बोला, अब मेरी ओर देख क्या रहे हो। या तो घोड़ों को ऐसे हाँकों कि वे रथ को निकाल ले जाएँ, या फिर नीचे उतरो और चक्र को ही धक्का दो। संभव है, थोड़ा उठाना ही पड़े।

शल्य ने भी उतनी ही कटुता से कहा, कैसे अयोग्य सेनापति हो तुम, जिसके न चक्ररक्षक हैं, न पृष्ठरक्षक, न अग्ररक्षक, न पाद रक्षक। यह व्यूहरचना है तुम्हारी? जहाँ तक कृष्ण की बात है, उसका सारा जीवन ही मिट्टी, गारे, गायों और घोड़ों के बीच बीता है। मद्रराज और एक गोपाल में कुछ अंतर होना चाहिए या नहीं।

कर्ण आपे से बाहर हो रहा था और बोला, प्रलाप बंद करो और नीचे उतर कर चक्र को इस आर्द्रा भूमि से निकालने का प्रयत्न करो। शल्य ने कहा, धरती कितनी गीली है, तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है। कर्ण बोला, धरती कृष्ण के लिए भी गीली है। वह तो अपने रथ और घोड़ों को मनचाहे ढंग से घूमा रहा है। मुझसे चतुराई मत करो। मेरे मर जाने से तुम्हें कोई लाभ नहीं होनेवाला। शल्य ने उसकी ओर से मुँह घूमा लिया और बोला, पराजय की संभावना से तुम्हारा मस्तिष्क चल गया है।

कर्ण का मुख क्षोभ से रक्तिम हो उठा। कर्ण तड़पकर बोला, मद्रराज हो तो शाकल के राजप्रासाद में सिंहासन पर बैठकर अपनी आज्ञाएँ प्रचारित करो, यहाँ क्या करने आए हो। सारथी के तल्प पर बैठकर घोड़ों को नहीं हाँकोगे तो युद्ध कैसे होगा। सब को अपना धर्म स्मरण रखना चाहिए। सारथी के रूप में आए हो तो सारथी के धर्म का निर्वाह करो।

शल्य ने कहा, तुम धर्म की बात कर रहे हो। जिस व्यक्ति का जीवन ही अधर्म का आधार रहा हो, वह धर्म की बात कर रहा है। कर्ण बोला, मैंने आजीवन मैत्री धर्म का निर्वाह किया और आज इस समय दुर्योधन को है कोई चिंता कि कर्ण की भी रक्षा होनी चाहिए।

कर्ण बोला, धर्मवेत्ता लोग सदा कहा करते थे कि धर्म अवश्य ही मनुष्यकी रक्षा करता है। मैं भी शास्त्रमें जैसा सुना गया है और जैसी अपनी शक्ति है, उसके अनुसार धर्मपालनके लिये सदा ही प्रयत्न करता रहा हूँ किंतु आज वह भी मुझे मार ही रहा है, बचाता नहीं। इसलिये मेरी समझमें तो यही बात आती है कि धर्म भी अपने भक्तोंकी सदा रक्षा नहीं करता।

जब कर्ण ये बातें कह रहा था, उस समय उसके घोड़े और सारथी लड़खड़ा रहे थे। वह स्वयं भी अर्जुनके बाणोंकी मारसे विचलित हो उठा था। मर्मस्थानोंमें चोट लगनेसे वह शिथिल हो गया था, काम करनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी। अत: रह-रहकर धर्मकी निन्दा ही करता था। शल्य ने कहा, इसे मैत्री नहीं कहते कर्ण। तुम केवल अपना स्वार्थ साधते रहे। मित्र होते तुम दुर्योधन के तो उसे अधर्म के मार्ग पर चलने से रोकते। पराए धन और पराई स्त्री लूटने की योजनाएँ बना-बनाकर दुर्योधन को उकसाते नहीं रहते। कर्ण बोला, तुम चुप रहो मद्र। मैंने अपने जीवन में जितना धन ब्राह्मणों को दान किया है,

उतने से मैं मद्र का राज्य भी क्रय कर सकता था।

शल्य ने कहा, मद्र का राज्य अंगदेश के समान नहीं है कि कौड़ियों के मोल कोई भी पा ले। और जहाँ तक दान की बात है, तुमने उस दान से धर्म के स्थान पर सदा अहंकार रूपी पाप ही तो कमाया है। उसका विपुल भंडार है तुम्हारे पास।

कर्ण ने चिल्लाकर कहा, जब सारथी ही रथी का शत्रु हो तो धर्म किसी की रक्षा कर भी कैसे सकता है। धर्म किसी की रक्षा नहीं करता। क्या मिला मुझे आजीवन धर्म की रक्षा करके।

संकटमें धर्म और भगवान स्मरण आ जायँ तो विपत्ति चाहे जितनी बड़ी हो, विदीर्ण हो जाती है। कर्णके साथ उलटी बात हुई। उसको ब्रह्मास्त्र भूल गया। उसके रथका वाम चक्र भूमिमें धँसने लगा तो सारथी शल्य तथा रथके अश्व लड़खड़ाने लगे। कर्ण धर्मको रक्षार्थ पुकारता, इसके स्थानपर बुद्धि भ्रमके कारण धर्मको कोसने लगा। वह धर्मकी निन्दा करने लगा। धर्मकी निन्दा तो व्यक्तिके ओज, तेज, वीर्य, श्री सबको क्षय ही करती है।

कर्ण के रथ का पहिया धरती में धंस गया। कर्ण बोला, हे ब्राह्मण तुम मेरे रथ के पहिये धरती में धंसा सकते हो लेकिन मेरे धनुष से चलनेवाले ब्रह्मास्त्र को नहीं रोक सकते। कर्ण ने ब्रह्मास्त्र को आमंत्रित किया पर वह विद्या भी उसकी नष्ट हो गई। गुरु श्राप के कारण वह ब्रह्मास्त्र को भी आमंत्रित नहीं कर सका। कर्ण बोला, हे अर्जुन मेरे रथ का पहिया भूमि में धंस गया है। मैं उसे निकालने के लिये रथ से उतर रहा हूं। इसलिये अपने बाणों को रोके रहो। कर्ण रथ से उतरकर पहिया भूमि से निकाल रहा है।

अर्जुनने भी अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करके कर्णपर उनकी वर्षा आरम्भ कर दी। किंतु महारथी कर्णने सामने आते ही अर्जुनके बाणोंको नष्ट कर डाला। तब श्रीकृणने कहा- पार्थ। राधानन्दन कर्ण तुम्हारे बाणोंको नष्ट किये डालता है; अत: अब तुम किसी उत्तम अस्त्रका प्रयोग करो। यह सुनकर अर्जुन सावधान हो गये; उन्होंने मन्त्र पढ़कर अपने धनुषपर ब्रह्मास्त्रको चढ़ाया और बाणोंसे समस्त दिशाओंको आच्छादित करके कर्णको मारना आरम्भ किया। तब कर्णने तेज किये हुए बाणोंसे उनके धनुषकी डोरी काट दी। अर्जुनने दूसरी डोरी चढ़ायी; किंतु कर्णने उसे भी काट दिया।

इधर, श्रीकृष्णने जब अर्जुनको कर्णके बाणोंसे पीडित देखा तो कहा- अर्जुन। अस्त्र उठाओ और निकटसे प्रहार करो। तब उन्होंने मन्त्र पढ़कर रौद्रास्त्रको धनुषपर चढ़ाया और उसे कर्णपर छोड़नेका विचार किया। इतनेमें कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें अधिक धँस गया; यह देख वह तुरंत रथसे उतर पड़ा और दोनों भुजाओंसे पहियेको पकड़कर ऊपर उठानेका उद्योग करने लगा। कर्ण के बाणों से अर्जुन बुरी तरह व्यथित हुए। उन्हें अब विजय की आशा नहीं रही कर्ण ने उनके सभी मर्मों को वेध दिया था। कृष्ण को भी बुरी तरह घायल किया था। अर्जुन के उत्साह में कमी देखकर कृष्ण उन्हें प्रोत्साहित करते हुए बोले- घबराने की कोई बात नहीं। सूतपुत्र अब मरने ही वाला है। पृथ्वी उसके रथ के पहिये को ग्रस रही है, तुम हिम्मत न हारो और बराबर बाण छोड़ते ही रहो।

कर्ण के अचूक बाणों से नन्दिघोष की ध्वजा भी तार-तार हो गयी। दोनों ने पाश, तोमर, चक्र, त्रिशूल, भिन्दिपाल आदि शस्त्र एक-दूसरे पर फेंके। न दोनों में से कोई थका था, न युद्ध का कोई निर्णय हो रहा था। अब सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था। अन्तत: कर्ण ने अत्यन्त श्रमपूर्वक परशुराम से प्राप्त किया अथर्वण अस्त्र अर्जुन पर प्रक्षेपित किया। कृष्णने रथ को गर्र से घूमाकर उस अस्त्र की मार को विफल कर डाला।

श्रीकृष्ण अर्जुनको बारबार उत्तेजित कर रहे थे। कर्ण भी अत्यन्त क्रोधमें भरा उग्रतम आघात कर रहा था। इतनेमें

कर्णके रथका पहिया पृथ्वीमें और धँस गया। अब रथ गतिहीन हो गया। शल्य भले सारथी बन गये थे; किन्तु रथका पहिया निकालनेका उनसे कहा नहीं जा सकता था। कर्ण स्वयं रथसे कूदा और पहियेको निकालनेका प्रयत्न करने लगा।

कृष्ण बोले, पार्थ। कर्ण के रथ में लौट आने से पहले ही उसका मस्तक काट डालो।

अर्जुन ने ऐसा ही किया। वे बिना विश्राम किये बाणों की वर्षा करते रहे और कर्ण उन्हें अपने बाणों से व्यर्थ बनाते रहे। इतने में ही पृथ्वी ने उनके समस्त पहिये को ग्रस लिया। उनके बाण भी व्यर्थ हो गये। ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना भी भूल गये। उनकी मति भी अब ठीक-ठिकाने नहीं रही। अब वे धर्म की निन्दा करने लगे। उन्होंने कहा- सुनते हैं धर्म समट के समय काम आता है, किन्तु मेरे लिये तो यह प्रतिकूल नियम सिद्ध हुआ। मैंने शक्तिभर धर्म कार्य किये हैं, अतिथि सेवा की है, दान दिया है, दुखियों के दुख दूर किये हैं फिर भी धर्म मुझे धोखा दे रहा है। ठीक समय पर दैव मेरे प्रतिकूल हो रहा है। पृथ्वी ने अकारण मेरा रथ चक्र ग्रस लिया है। पुरुषार्थ व्यर्थ है, भाग्य ही सब कुछ है। पुरुषार्थ से मनुष्य भाग्य को अन्यथा नहीं कर सकता। आज मैं दैव द्वारा ठगा गया। भाग्य ने मुझे धोखा दिया। मालूम होता है, अर्जुन का मनोरथ सफल होगा। यह कहते-कहते वे रथ से कूद पड़े और दोनों हाथों से पकड़कर वे अपने पृथ्वी में धँसे हुए चक्र को निकालने लगे। किन्तु उसे तो पृथ्वी ने जान बूझकर विप्र शाप से प्रेरित होकर ग्रसा था। उस समय तो कर्ण का काल उसके सर पर मंडरा रहा था। वन पर्वत सहित यह पृथ्वी तो ४ अंगुल ऊपर उठ गयी किन्तु कहते हैं कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी से बाहर न निकला।

कर्ण के लिए यह स्वर्णिम अवसर था। वह रथ से कूद कर नीचे आ गया। दोनों हाथों से रथचक्र पकड़कर उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। किंतु धरती थी कि चक्र को छोड़ ही नहीं रही थी। कर्ण को लगा कि रथचक्र तो ऊपर नहीं ही उठा है, उसके अपने पाँव ही नीचे धँसने लगे हैं। उसे अपने श्रापों का स्मरण हो आया। कर्णने अपनेको ब्राह्मण बतलाकर भगवान परशुरामसे अस्त्र-ज्ञान प्राप्त किया था। पता लगनेपर उन्होंने शाप दे दिया था कि प्राणान्तका समय आनेपर उसे ब्रह्मास्त्र भूल जायगा। कर्णके प्रमादसे आखेटके समय उसका एक बाण मृगके स्थानपर एक ब्राह्मणकी गायको लग गया था। ब्राह्मणने शाप दिया था कि मरनेका समय आनेपर युद्धभूमिमें उसके रथका पहिया पृथ्वीमें धँस जायगा। कहीं ऐसा न हो कि वह स्वयं भी वहीं कीलित हो जाए।

कर्ण ने अर्जुन की ओर कातर दृष्टि से देखा। तुम किसी असहाय पर तनिक भी दया नहीं कर सकते कृष्ण?

कृष्ण हँसे, तुम्हें न भीम को विष दिलवाते दया आई, न अचेत भीम को नागों से डसवाने के लिए गंगा में डालते हुए। तुम्हें वारणावत में सोते हुए पांडवों और उनकी माता को जीवित जलाने के लिए अग्नि लगवाते हुए दया नहीं आई। अपनी लज्जा की रक्षा करने के लिए तड़पती हुई द्रौपदी पर दया नहीं आई तुम्हें। अभिमन्यु जैसे बालक की असहायता पर दया नहीं आई तुम्हें पापी। आज तू दूसरों से दया की अपेक्षा करता है। वे मुड़े। अर्जुन। मारो इसे।

बाणों के पिंजड़े में फँसने से शल्य कुछ कर नहीं पा रहा था। तब भी ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए वल्गाओं के संकेतों से अपने रथ के अश्वों को उत्तेजित करने का भरसक प्रयास किया। अश्वों ने भी अपने खुर भूमि में गड़ाकर रथ को हिलाने का प्रयास किया, किन्तु रथ अपने स्थान से तनिक भी नहीं हिला- टस-से-मस भी नहीं हुआ।

अर्द्ध-एक घटिका तक दलदल में धँसे उस रथ के चक्रों के आसपास की दलदल सूर्य-किरणों की उष्णता से जमकर थोड़ी कड़ी हो गयी थी।

शल्य की सूचना के अनुसार कर्ण भारी शस्त्रों को रथ से निकालकर फेंकने लगा। रथ को दलदल से निकालने का प्रयास

करते-करते अश्वों के मुख से झाग गिरने लगे। किन्तु रथ रत्ती-भर भी नहीं हिल सका। उसका बायाँ रथचक्र धरती में फँस गया था। पीठ पर लटके तूणीर और विजय धनुष को सँभालते हुए कर्ण रथ से कूद पड़ा। फिर पूरी शक्ति के साथ अपना दायाँ हाथ रथचक्र के सुदृढ़ आरे में डालकर वह उसे धरती से खींच निकालने का प्रयास करने लगा। उसकी भुजाओं के मत्स्याकार स्नायु फूल उठे। उसने एक बलशाली झटका दिया। रथचक्र तो हिला नहीं, केवल उसका वह सुदृढ़ आरा टूटकर उसके हाथ में आ गया।

कर्ण ने नीचे बैठकर धनुष के अग्रभाग को धरती से टिकाते हुए बाण चलाया। उसके फेंके अचूक बाण से अर्जुन मूर्च्छित हो गया। यह देखकर कर्ण ने क्षण-भर अपने धनुष को नीचे रखा और वह दोनों हाथों से रथचक्र को धरती से खींच निकालने का प्रयास करने लगा, किन्तु रथचक्र तनिक भी नहीं हिल रहा था- हिलनेवाला भी नहीं था।

महावीर कर्ण ने समझ लिया यह मेरा अन्तिम समय है। ठीक समय पर ब्रह्मास्त्र के भूलने से और पहिये के पृथ्वी में धँस जाने से वे कुछ घबड़ा से गये। उन्होंने अर्जुन से कहा- हे धर्मात्मा कुन्तीनन्दन। तुम धर्म को जानते हो, युद्ध के नियमों का भी तुम्हें पता है। तुम मेरी एक बात सुनोगे?

काल बली से कौन वीर बच सकता है? एक दिन सभी को काल का कवल बनना है। एक दिन सभी इस धरोधाम को त्यागकर चले जायेंगे। शरीरधारियों का शरीर सदा नहीं रहता केवल यश अपयश शेष रह जाते हैं। धर्मात्मा सदा धर्म पर अटल रहकर अक्षय कीर्ति लाभ करते हैं और स्वार्थी सदा स्वार्थों में रत रहकर विश्व में अपनी अपकीर्ति छोड़ जाते हैं। इस छोटे से जीवन के लिये किसी का अपकार क्यों किया जाय। इस नश्वर शरीर से विनश्वर कीर्ति क्यों न कमाई जाय। किन्तु स्वार्थी इसे समझ नहीं सकते, द्वेषी इसका महत्व नहीं जानते। तभी तो धर्माधर्म का विचार न करके वे सदा अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही रह रहते हैं।

किन्तु हे श्रीकृष्ण। मैं कहता हूँ जो तुम्हारे सामने मरता है उसकी भी कभी पराजय नहीं होती। पार्थ के सारथी, किस धोखे में हो? कृष्ण बोले, कृष्ण बोले, देख क्या रहे हो पार्थ। तुम कर्ण को जितना शिथिल समझ रहे हो, उतना शिथिल वह हुआ नहीं है। उसके लिए अभी उग्र अस्त्रों की आवश्यकता है। तुम कोमल पड़े तो यह जीता हुआ युद्ध भी तुम्हारे हाथ से निकल जाएगा। अति उत्तम अस्त्र का प्रयोग करो। अर्जुन ने रौद्रास्त्र का आधान किया।

कर्ण के प्राण उसके कंठ में आ अटके। अर्जुन उग्र होता जा रहा था और कर्ण का न तो रथ चल रहा था और न ही कहीं से कोई सहायता ही आ रही थी। कर्णने चिल्लाकर कहा, शल्य।

चिल्लाओ मत। शल्य ने उत्तर दिया, मैं जो कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। पर मैं रथ से नीचे नहीं उतरूँगा। नीचे उतरना सुरक्षित नहीं है। जब कृष्ण चक्र निकाल रहे थे तो तुमने उन्हें क्षमा नहीं किया था। पार्थ भी मुझ पर बाण चलाएगा ही। मैं मारा गया तो रथ को हाँकनेवाला भी कोई नहीं रह जाएगा। चक्र निकल भी गया तो क्या करोगे।

क्रोध मे मारे कर्ण की आँखों में आँसू आ गए। वह चिल्लाकर बोला, दो घड़ी प्रतीक्षा करो पार्थ। जो युद्ध के लिए प्रस्तुत न हो, जिसके पास शस्त्रास्त्र न हों, उस पर क्षत्रिय प्रहार नहीं करते।

कर्ण को नि:शस्त्र देख अर्जुन ने भी अपने गाण्डीव को नीचे कर लिया।

रथचक्र को निकालने में एकाग्र हुए उस महावीर की ओर अपने दायें हाथ की तर्जनी से निर्देश करते हुए कृष्ण ने कहा, अर्जुन, अर्धचन्द्राकार अंजलिक बाण। किन्तु वह नि:शस्त्र है- पदस्थ है। अर्जुन हड़बड़ाया- सम्भ्रमित हुआ। कृष्ण का

स्वर तीव्र, कठोर हुआ और वे बोले, अर्जुन, यह आज्ञा है।

आज्ञाकारी अर्जुन ने तूणीर से बाण खींचकर प्रत्यंचा की टंकार की। उस सूक्ष्म ध्वनि से भी सावधान होकर कर्ण ने अपनी आँखें नन्दिघोष की ओर घूमायीं। अर्जुन को रोकते हुए वह चिल्लाया, रुक जाओ अर्जुन। मैं नि:शस्त्र हूँ। नि:शत्र पर शस्त्र चलाना धर्मयुद्ध नहीं है। उस समय सम्भवत: उसने ब्रह्मास्त्र को स्मरण करने का प्रयास किया हो, किन्तु उसे वह स्मरण न हुआ हो। इस अवसरपर कर्णने कातर होकर अर्जुनसे कहा- धनञ्जय। तुम बहुत बड़े धनुर्धर हो। तुम्हें धर्मका सम्यक् बोध है। जब तक मैं यह पहिया निकाल लूँ, तब तक क्षणभरको रुक जाओ। युद्धमें भागते, भयातुर, शरणागत, प्राणरक्षाको पुकारते, शस्त्रहीन, कवच कट३ गये योधापर वीर पुरुष प्रहार नहीं करते। तुम दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता हो। उदार पुरुष हो। संसारके श्रेष्ठतम शूर हो। तुम रथपर हो, मैं भूमिपर हूँ। मैं आहत हूँ, मेरा कवच कट गया है, इस समय घबराया हूँ। अत: मेरे ऊपर प्रहार उचित नहीं है। कहो क्या कहते हो? धनुष ताने-ही-ताने अर्जुन ने कहा।

तब कर्ण बोले- देखो, मेरे रथ का पहिया दैवयोग से पृथ्वी में धँस गया है। इस समय तुम रथ पर बैठे हो, मैं पृथ्वी पर नीचे खड़ा हूँ। इसलिये तुम थोड़ी देर तक रूक जाओ। जब तक मैं अपने पहिये को निकाल न लूँ, तब तक तुम बाण मत छोड़ना इस समय विरथी के ऊपर बाण छोड़ना धर्म के विरुद्ध है। मैं तुमसे डरकर या भयभीत होकर नहीं कह रहा हूँ। मेरा पहिया निकल आने दो, मैं भी रथ पर चढ़ जाऊँ, तब तुम युद्ध करना। अब तुम रथ पर हो मैं नीचे खड़ा हूँ, यह धर्म सङ्गत नहीं। तुम धर्म को जानते हो, अत: अधर्म युद्ध मत करना।

जब अंगराज कर्ण का रथचक्र भूमि में धँस गया तो वे रथ से उतरकर उसे निकालने में संलग्न हो गये। तभी पार्थ-सारथी वासुदेव के परामर्श से जगद्विजयी महामना पार्थ ने उनकी ओर शरसन्धान किया। यह देख राधानन्दन कर्ण महावीर अर्जुन को तत्काल धर्मयुद्ध के नियम बताने लगे एवं उच्च स्वर में धर्म की मीमांसा करने लगे।

वह अर्जुनकी ओर देखकर बोला- कुन्तीनन्दन। तुम बड़े धनुर्धर हो; जबतक मैं अपना यह फँसा हुआ पहिया ऊपर निकाल न लूँ, तबतक क्षणभरके लिये ठहर जाओ। तुम्हें नीच पुरुषोंके मार्गपर नहीं चलना चाहिये। तुम्हारे लिये तो श्रेष्ठ आचरण ही उचित है। जिसके सिरके बाल बिखर गये हों, जो पीठ दिखाकर भागा जाता हो, ब्राह्मण हो, हाथ जोड़ रहा हो, शरणमें आया हो और प्राण-रक्षाके लिये प्रार्थना कर रहा हो, जिसने अपने हथियार रख दिये हों, जिसके पास बाण न हो, जिसका कवच कट गया हो, अस्त्र-शस्त्र गिर गये या टूट गये हों, ऐसे योद्धापर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले शूरवीर शस्त्र नहीं चलाते। तुम भी संसारके बहुत बड़े वीर और सदाचारी हो। युद्ध-धर्मको जानते हो। तुमने उपनिषदोंके गहन ज्ञानमें डुबकी लगायी है। तुम दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता और उदार हृदयवाले हो। युद्धमें कार्तवीर्यको भी मात करते हो। महाबाहो। जबतक मैं इस फँसे हुए चक्केको ऊपर उठा न लूँ, तबतक रुक जाओ। तुम रथपर हो और मैं जमीनपर। साथ ही मैं बहुत घबराया हुआ हूँ, इसलिये मेरे ऊपर प्रहार करना उचित नहीं है।

कर्णकी बात सुनकर रथपर बैठे हुए श्रीकृष्णने उससे कहा- राधानन्दन। सौभाग्यकी बात है कि इस समय तुम्हें धर्मकी याद आ रही है। प्राय: ऐसा देखनेमें आता है कि नीच मनुष्य विपत्तिमें फँसनेपर प्रारब्धकी ही निन्दा करते हैं, अपने किये हुए कुकर्मोंकी नहीं। कर्ण। पाण्डवोंके वनवासका तेरहवाँ वर्ष बीत जानेपर भी जब तुमने उनका राज्य नहीं लौटाने दिया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? तुम्हारी ही सलाह लेकर जब राजा दुर्योधनने भीमको जहर मिलाया हुआ भोजन कराया और उन्हें साँपोंसे डँसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? वारणावत नरगमें लाक्षाभवनके भीतर सोये हुए

पाण्डवोंको जलानेका जब तुमने प्रबन्ध किया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था? भरी सभाके अंदर दु:शासनके वशमें पड़ी हुई रजस्वला द्रौपदीको लक्ष्य करके जब तुमने उपहास किया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? तुमने द्रौपदीसे कहा था- कृष्णे। पाण्डव नष्ट हो गये, सदाके लिये नरकमें पड़ गये; अब तू किसी दूसरे पतिका वरण कर ले। यह कहकर जब तुम उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? फिर राज्यके लोभसे तुमने शकुनिकी सलाह लेकर जब पाण्डवोंको दुबारा जूएके लिये बुलवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? अभिमन्यु बालक था और अकेला भी; तो भी तुम अनेक महारथियोंने जब चारों ओरसे घेरकर उसे मार डाला था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? यदि उस समय यह धर्म नहीं था, तो आज भी धर्मकी दुहाई देकर अधिक बकवाद करनेसे क्या लाभ है? इस समय यहाँ कितने ही धर्म क्यों न कर डालो, अब जीते-जी तुम्हारा छुटकारा नहीं हो सकता। पुष्करने राजा नलको जूएमें जीत लिया था, किंतु उन्होंने अपने ही पराक्रमसे पुन: अपना राज्य भी पाया और यश भी। इसी तरह निर्लोभी पाण्डव भी अपनी भुजाओंके बलसे शत्रुओंका संहार करके फिर अपना राज्य प्राप्त करेंगे तथा इन महापुरुषोंके हाथसे ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंका नाश हो जायगा। वासुदेवके ऐसा कहनेपर कर्णने लज्जासे अपना सिर झुका लिया। उससे कोई जवाब देते नहीं बना।

अर्जुन बोला, मैं रथ पर हूं केशव और वो पैदल है। कृष्ण बोले, युद्ध में रथ तो टूटते रहते हैं पार्थ। वो महारथी है दूसरे रथ पर क्यों नहीं जाता। अर्जुन बोला, यह युद्ध के नियमों के विरुद्ध है केशव? कृष्ण बोले, अंगराज कर्ण ने भी क्या कभी युद्ध के नियमों का पालन किया था पार्थ? जो आज तुम युद्ध नियमों के पालन पर उतर आये हो। वो दुर्योधन के हर कपट का भागीदार है पार्थ। भूल गये वो दिन, भूल गये वो राज्यसभा जिसमें इसी अंगराज कर्ण ने भरतवंश कुलवधू द्रौपदी को वेश्या कहा था। भूल गये चार दिनों पहिले की वो दुर्घटना। युद्ध नियमों का पालन करने की बात करनेवाले इसी अंगराज कर्ण ने अभिमन्यु वध में सबका साथ दिया था। तब वो भी पैदल ही था पार्थ और इसी की भांति निहत्था भी था।

द्रौपदी अपने शिबिर में विस्मय से बोल पड़ी, अच्छा। तो कर्ण जैसे अधर्मी जन भी धर्म की मीमांसा करने लगे? ऐसे समय अधर्मियों के मुख से प्रचुर धर्मोपदेश नि:सृत हो पड़ते हैं मृत्युमुख में पहुँचते ही उन्हें धर्म का स्मरण आता है, उसके पूर्व नहीं। पांचाली को सहसा भीष्म पितामह द्वारा अन्तिम धर्म-मीमांसा का प्रसंग स्मरण आ गया।

कृष्ण की वाणी वक्र थी। जैसे तुमने अभिमन्यु पर प्रहार नहीं किया था।

कर्ण बोला, तुम तो धर्म के ज्ञाता हो कृष्ण। थोड़ी देर युद्ध स्थगित नहीं हो सकता? मैं अपना रथचक्र इस कीचड़ से निकाल लूँ। कृष्ण हंसे, तो तुम्हें धर्म याद आ गया। जल्दी ही आ गया। एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदी को जब केशों से खींचकर द्यूतसभा में लाया गया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? नीच कौरवों द्वारा क्लेश पाती हुई द्रौपदी के निकट जा, जब तुम अपनी आँखों से उसे निगल रहे थे, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था?

अर्जुन तो कर्ण की युक्ति-युक्त बात सुनकर चुप हो गये, छलियों के सरदार छैलछबीले घनश्याम कब चुप होनेवाले थे। वे बड़े जोर से हँस पड़े और व्यङ्ग के स्वर में बोले- अहा हाहाहा। धन्यवाद। साधुवाद। कोटिश: धन्यवाद। आज आपको भी धर्म का स्मरण आ गया। धर्मध्वजी महाराज नमस्कार। अच्छा अब भी तुम्हें धर्म का स्मरण है? बड़े भाग्य की बात है। सोचो तो सही धर्म हम ही करें या तुमने भी कभी किया है। हजार चूहे खाकर बिल्ली भगतिनि बनी। जो स्वयं अधर्म का आचरण करता है, उसे दूसरों को धर्म का उपदेश देना शोभा नहीं देता। आज तुम धर्म को याद करते हो। भीम

को जहर देकर तुमने बड़ा धर्म किया था? निरपराध पांडवों को जलाना महान् धर्म था? रजस्वला द्रौपदी को सभा में बुलाना उसे नग्न करने की चेष्टा करना, उसे कुवाक्य कहना, अपमानित करना यह धर्म तुमने किस शास्त्र से सीखा? बनवास की अवध पूरी करके धर्मराज का राज्य माँगना अधर्म था तुमने उसे न देकर महान् धर्म किया था। मेरे भानजे और अर्जुन के प्रिय पुत्र अभिमन्यु को तुमने धर्म से ही मारा था न? उन समयों पर तुम धर्म को भूल गये थे। आज तुम धर्म को याद करते हो। धर्म सदा धर्मात्माओं की रक्षा करता है। अधर्मी सदा अधर्म के ही कारण मारे जाते हैं। जो जिसके साथ जैसा बर्ताव करता है उसे उसका वैसा ही दंड मिलता है। तुमने तो सदा अधर्मी दुर्योधन का साथ दिया है। अपने किये का फल भोगो। जो क्रूर हो, आततायी हो, सब प्राणियों का नाशक हो, प्रजा को पीड़ा देनेवाला हो, उसे जिस तरह भी मारा जाय वही धर्म है। कर्ण बोला, वह एक भूल क्या मेरे जीवन भर के सारे धर्म का नाश कर देगी?

कृष्ण बोले, वैसे तो नारीत्व के अपमान जैसा एक पाप भी पूरे देश का धर्म नाश करने के लिए पर्याप्त है। पर वह तेरा एकमात्र पाप नहीं है। वह तो तेरे पापों का परिणाम हैं द्यूत में पांडवों से उनका राज्य छीना तो तेरा धर्म कहाँ था? तेरह वर्षों के पश्चात् जब पांडवो को उनका राज्य नहीं दिया, तो तेरा धर्म कहाँ था? निरस्त्र अकेले अभिमन्यु को जब घेर कर मारा, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? तुम धर्म की बात मत करो पापी। तुमने धर्म की रक्षा कभी नहीं की। पांडवों ने धर्म की रक्षा की; और धर्म उनकी रक्षा करेगा। धृतराष्ट्र के पुत्रों का सर्वनाश होगा और तू उनसे भी पहले मरेगा।

धन्यवाद। धन्यवाद सूत पुत्र। तुम्हें सौभाग्यसे धर्मका स्मरण तो आया। श्रीकृष्ण अत्यन्त व्यंगपूर्वक बोले, विपत्तिमें पड़नेपर कुपुरुष धर्मकी निन्दा करते हैं। अपने कुकर्मोंका भी कुछ स्मरण है तुम्हें? जो नीच पुरुष दूसरोंको अधर्मपूर्वक मारता है, उसे संकटमें पड़नेपर धर्मकी सहायता नहीं मिलती। उसे धर्म। धर्म। पुकारनेका कोई अधिकार नहीं।

धर्मके परम प्रभु अच्युतने गिनाना प्रारम्भ कर दिया- पाण्डव बारह वर्ष वनमें रहकर, एक वर्ष अज्ञात वास करके लौटे थे। उनका राज्य तुमने लौटाने नहीं दिया, तब तुम्हारा धर्मज्ञान कहाँ गया था? भीम को विष देने, सर्पोंसे डँसवानेमें तुमने सम्मति दी थी तो कहाँ गया था तुम्हारा धर्म? वारणावतके लाक्षागृहमें रातको सोते पाण्डवोंको अग्नि लगाकर जला डालनेका तुमने प्रबन्ध किया तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? तुम जब कौरवोंकी द्यूतसभामें द्रौपदीको कटुवचन कह रहे थे और उसे घूर-घूरकर देख रहे थे तो बड़े धर्मात्मा थे?

तुम आज युद्ध-धर्मकी बात कर रहे हो; किन्तु अभिमन्यु बालक था, अकेला था, तुम अनेक महारथियोंने उसका रथ नष्ट करके घेरकर मार डाला तो तुम्हारा धर्म कहाँ था? अब धर्मकी दुहाई देकर बकवाद करनेसे कोई लाभ नहीं। तुम धर्मकी कोई सहायता पाने योग्य नहीं हो और न ही किसी प्रकार दयाके पात्र हो।

धर्म। हे राधेय, क्या धर्म का अभिप्राय तुम जानते हो? हे सूतपुत्र, पाण्डवों को लाक्षागृह में जलाते समय, कौरवों की द्यूतसभा में पांचाली को वारांगना कहते समय, सोलह वर्ष के नवयुवा अभिमन्यु को छह-छह योद्धाओं द्वारा घेरकर मारते समय क्या तुम्हें धर्म का स्मरण हुआ था? कहाँ गया था तब तुम्हारा धर्म? अर्जुन, चलाओ बाण। कृष्णने तर्जनी से कर्ण के कण्ठ की ओर अचूक निर्देश किया।

श्रीनारायण वह सुनते ही तब भयंकर क्रोध से भर गये। कठोरतम शब्दों में अधिरथ पुत्र की भर्त्सना करते हुए उन्होंने पूछा, जब छल से युधिष्ठिर का राज्यहरण हुआ था तब तुझे धर्म स्मरण नहीं आया? जब महारानी द्रुपदनन्दिनी को द्यूतक्रीड़ा में जीता गया तब तेरा धर्मज्ञान कहाँ था मूढ़? जब उस सुमंगला राजपुत्री का केश-कर्षण किया गया तब तू धर्मविमुख नहीं था क्या? जब उस महासाध्वी को स्वयं तूने वेश्या कहा कुलटा कहा तब तू बड़े धर्मवचन बोल रहा था?

जब उस नि:सहाय अबला को चीरहरण की यातना सहनी पड़ी, तब तू ताल ठोक-ठोककर हँसता नहीं रहा था? और उस असहाय अवस्था में, उस पवित्रमना सती भारती को लोलुप दृष्टि से निहारते समय तुझे धर्म स्मरण न आया, अधम?

आज अर्जुन के काल-बाण से भयातुर हो, अचानक तू धर्म का प्रकाण्ड मर्मज्ञ बन गया। धर्म की मीमांसा करने को और कोई नहीं शेष क्या धरा पर, जो तू महाअधर्मी आज धर्मात्मा अर्जुन को धर्मशिक्षा दे रहा है? तेरे जैसे दुष्ट जब-जब आपत्ति में फँसते हैं तभी धर्म का आश्रय खोजते हैं। अधमजनों की इस प्रवृत्ति के कारण ही आज सधर्म दुष्टों के हाथ की क्रीड़ावस्तु बन गया है दुष्टों ने कुकर्मों को छिपाने के लिए धर्म को अपनी ढाल समझ लिया है क्या? धर्म दुर्जनों का आश्रय है क्या? दुष्टों की शक्ति है क्या? कुकर्म करने की अनुभूति है क्या मूढ़? नहीं। धर्म सज्जन की शक्ति है। तुझ जैसे अधर्मियों ने धर्म को महिमाखण्डित कर, उसे उसके श्रेष्ठ एवं पवित्र पद से ही च्युत कर दिया है। किन्तु मैं घोषणा किये दे रहा हूँ, मैं पुन: धर्म की स्थापना करूँगा। पुन: धर्म को महिमामण्डित करूँगा। धर्म को पुन: परम शक्तिवान बनाऊँगा।

अब कृष्ण की बातों का उत्तर कौन दे? नहीं ये तो सब बहानेबाजी थी। वास्तव में तो उस वीर को धर्म से जीतना असम्भव ही था। किसी तरह उसे मरवाना था। मरवाना क्या था उसकी कीर्ति को अमर करना था। नहीं तो कृष्ण जिसे परास्त करना चाहें, वह कैसे जीत सकता है? कर्ण ने बार-बार पहिये को पृथ्वी से निकालने का प्रयत्न किया। किन्तु वह निकला नहीं। इधर अर्जुन बिना विश्राम लिये बाण वर्षा रहा था। कर्ण उनका प्रतिवाद करते, उन्हें रोकते और अवसर पाकर बीच-बीच में अपने पहिये को भी निकालने का यत्न करते। किन्तु वह तो मृत्यु के लिये ही गड़ा था। सुनते हैं, बालि, सुग्रीव ही अबके कर्ण और अर्जुन के रूप में प्रकट हुए थे। पहिले भगवान् ने सुग्रीव को सहायता देकर बालि को मारा था। अबके उसी का बदला चुकाने के लिये अर्जुन का साथ देकर कर्ण को मरवाया। इस जन्म में बड़ा छोटा हुआ, छोटा-बड़ा हुआ। नटनागर की अद्भुत लीला को कौन जान सकता है। उसका पार कौन पा सकता है।

अर्जुन। कर्ण पर दया मत करो। इस पापी को दिव्यास्त्र से मार गिराओ।

अर्जुन जहाँ प्रसिद्ध वीर थे, वहीं अत्यन्त सदय तथा धर्म भीरु भी थे। उनके प्रेमके अतिरिक्त उनके सद्गुणोंने भी श्रीकृष्णको उनका समर्थक सखा बना दिया था। आहत, मूर्च्छित कर्णपर विजयने बाण वर्षा बन्द कर दी।

श्रीकृष्णने ललकारा- विजय। यह शिथिलता क्यों? जो धर्मयुद्धके नियम न मानते हो, जिसने शस्त्रहीन तुम्हारे पुत्र अभिमन्युको मारनेमें संकोच नहीं किया, उस शत्रुके ऊपर दया व्यर्थ है। उसे संकटमें देखकर रुको मत। मार डालो उसे।

अर्जुनने यह आज्ञा स्वीकार कर ली; किन्तु कर्णके रथको केवल बाणोंसे चारों ओरसे ढ़क दिया। चेतना लौटनेपर कर्णने इन बाणोंको काट दिया और अर्जुन तथा श्रीकृष्णपर प्रहार करने लगा।

इसी समय श्रीकृष्णने कहा- कर्ण जबतक रथपर नहीं चढ़ जाता, तबतक ही इसका मस्तक काट डालो। बहुत अच्छा कहकर अर्जुनने कृष्णकी आज्ञा स्वीकार की और कर्णकी ध्वजापर दहकते हुए बाणका प्रहार किया। ध्वजा टूट गयी और उसके गिरनेके साथ ही कौरवोंके यश, घमंड, विजय, मनोवाञ्छित कामनाओं तथा हृदयका भी पतन हो गया। उस समय बड़े जोरसे हाहाकार मचा। अब अर्जुन कर्णको मारनेके लिये बड़ी शीघ्रता करने लगे। उन्होंने अपने भाथेसे इन्द्रके वज्र और यमराजके दण्डके समान एक आञ्जलिक नामक बाण निकालकर हाथमें लिया। वह बाण सब ओर फैली हुई कालाग्निके समान घोर तथा पिनाक और सुदर्शन चक्रके समान भयंकर था। अर्जुनने उस अस्त्रको गाण्डीव धनुषपर चढ़ाया और उसे खींचकर कहा- यदि मैंने तप किया हो, गुरुजनोंको सेवासे प्रसन्न रक्खा हो, यज्ञ किया हो और हितैषी मित्रोंकी बातें ध्यान देकर सुनी हों तो इस सत्यके प्रभावसे यह बाण मेरे प्रचण्ड शत्रु कर्णका नाश कर डाले। ऐसा कहकर उन्होंने वह भयानक बाण कर्णका वध

करनेके उद्देश्यसे उसकी ओर छोड़ दिया। उनके हाथसे छूटते ही उस सूर्यके समान बाणने समस्त दिशाओं और आकाशमें प्रकाश फैला दिया। दिनका तीसरा पहर बीत रहा था।

जब कर्ण ने देखा कि अर्जुन मानता ही नहीं तब उन्होंने पृथ्वी पर खड़े ही अर्जुन और श्रीकृष्ण पर बाणों की वर्षा आरम्भ की। वे चाहते थे किसी तरह एक बार भी मेरा रथ निकल आता तो मैं अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरित करता। किन्तु वह पहिया निकलने के लिये थोड़े ही पृथ्वी में धँसा था। वह तो कर्ण के रक्त का प्यासा था। पृथ्वी उस गड्ढे में कर्ण का रक्त पीना चाहती थी। मनस्वी कर्ण ने हिम्मत नहीं हारी। वे अर्जुन के बाणों को बराबर विफल बनाते रहे। जब अर्जुन किसी तरह भी न रुका तब तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। एक अत्यन्त तीव्र बाण ताककर उन्होंने अर्जुन की छाती में ऐसा मारा कि बाण के प्रहार से अर्जुन बेहोश होकर रथ पर गिर पड़े। कर्ण ने देखा अर्जुन बेहोश पड़ा है। इसी बीच में उन्होंने फिर अपने रथ के पहिये को पृथ्वी से निकालने का प्रयत्न किया। बड़ी देर तक वे प्रयत्न करते रहे। दोनों हाथों से पकड़कर पूरी शक्ति लगाकर उन्होंने पहिये को खींचा, किन्तु वह टस-से-मस नहीं हुआ। इतने में अर्जुन को होश आ गया। श्रीकृष्ण ने जल्दी से कहा- अर्जुन। अर्जुन। देखते क्या हो। शत्रु अब असावधान है। कर्ण इस समय अपनी पूरी शक्ति पहिये को निकालने में लगाये हुए हैं। इसी समय तुम एक अमोघ बाण छोड़कर इसके सिर को धड़ से अलग कर दो। अब विलम्ब करने का समय नहीं है।

यह बोलते समय कृष्ण शक्तिवान प्रतीत हो रहे थे। उनके दोनों रक्ताभ नेत्रों से जैसे अग्निकण प्रस्फुटित हो रहे थे। भृकुटि ऐसी भयंकर तनी हुई थी कि जैसे वे पलभर में समूची पृथ्वी को ही नष्ट कर देंगे। ऐसा रौद्ररूप था उनका, जैसे साक्षात् महारुद्र ही अवतरित हो गये हों एवं तृतीय नेत्र खुलनेभर का विलम्ब हो। अंगराज कर्ण का मुखमण्डल लज्जा से आरक्त हो उठा था। महाप्राण, महामना श्रीकृष्ण ने उनके धर्माचरण के ढोंग की सबके समक्ष इतने स्पष्ट शब्दों में भर्त्सना की थी कि वे किसी से दृष्टि मिलाने का भी साहस संग्रह नहीं कर पा रहे थे। और तब पृथानन्दन वीरवर अर्जुन ने आंजलिक नामक विकट बाण से अंगराज कर्ण का मस्तक उच्छेद कर दिया।

श्रीकृष्णने अर्जुनको ललकारा- इसपर दया मत करो। दिव्यास्त्रसे ही इसे मार दो।

अर्जुन ने कहा- असावधान पर अस्त्र प्रहार अधर्म.. बीच में ही बात काटते हुए वासुदेव ने कहा- धर्म अधर्म है। तुम मारो तो सही, जल्दी से। देखो देर मत करना। समय चूकने पर यह अवसर फिर हाथ न लगेगा। मानों मेरी सीख और मार दो शत्रु के मस्तक पर अमोघ तीर। इसके धड़ को सिर से अलग कर दो।

वासुदेव की आज्ञा पाकर अर्जुन ने एक तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ाया। उसने अपने तप की, सत्य की, दान की, धर्म की दुहाई दी। समस्त देवताओं की मनौती मनाई। वासुदेव को प्रणाम किया और बड़े जोर से तककर बाण छोड़ दिया। दिशाओं में हाहाकार मच गया। दिन में ही आकाश के तारे टूटने लगे। नदियों का जल रुक गया। पृथ्वी काँपने लगी। पर्वत हिलने लगे। समस्त संसार के प्राणी हाय-हाय करने लगे। सूर्यदेव की प्रभा फीकी पड़ गयी, बाण जाकर असावधान कर्ण के गले में लगा। उसने उनके सिर को धड़ से अलग कर दिया। पृथ्वी के सूर्य कर्ण को अस्त देखकर धीरे-धीरे कर्ण के पिता भी अस्ताचल में प्रस्थान कर गये।

अर्जुन ने अवसर देखकर कर्ण पर बाण चला दिया। कर्ण मारा गया। कर्ण का मस्तक कट कर पृथ्वी पर गिर गया और फिर शरीर भी धराशायी हो गया। दूसरी ओर श्रीकृष्णके द्वारा उत्तेजना दिये जानेपर अर्जुनने यमदण्डके समान भयंकर आञ्जलिक नामक बाण धनुषपर चढ़ाया। वह कालाग्निके समान भयानक बाण चढ़ाकर अर्जुनने अपने तप, गुरुजनोंकी सेवा, यज्ञ तथा मित्र वात्सल्यकी शक्ति भी संकल्प पूर्वक उससे संयुक्त कर दी। उस बाणने कर्णका मस्तक काटकर पृथ्वीपर गिरा

दिया। महाभारत युद्धके सत्रहवें दिन अपने सेनापतित्वके दूसरे दिन, दिनके तीसरे प्रहर महावीर कर्ण का समर-भूमिमें छिन्न मस्तक सदाको सो गया। कर्ण के धराशायी होते ही कृष्णने युद्ध-समाप्ति का शंखनाद कर दिया। रक्तमांस के कीचड़ में पड़े कर्ण और उसके हिरण्यगर्भ शंख को देखते हुए सूर्य अस्त हुआ। आज का युद्ध रूक गया।

सब लोगोंने देखा कि कर्णके कबन्धसे एक तेज निकलकर दिशाओंको आलोकित करता हुआ सूर्यमण्डलमें जाकर विलीन हो गया। भीम का पौंड्र शंख सारी समरभूमि को कँपा गया।

अर्जुन ने आंजलिक बाण को अभिमंत्रित किया, मेरा छोड़ा हुआ यह अस्त्र कर्ण को यमलोक पहुँचा दे।

दानवीर का हो गया इस प्रकार बलिदान, पांचों पांडव पा गये जीवन का वरदान।

दैव की इच्छा पूरी होती है। मनुष्य की इच्छा व्यर्थ होती है। यह समझता हुआ भी मनुष्य पुरुषार्थ करने से रुक नहीं सकता। वह कर्म करने के लिये, सफलता प्राप्त करने के लिये विवश है, लाचार है, मजबूर है। वह करेगा, अवश्य करेगा। बिना करे मानेगा भी नहीं। करना कराना भी दैवाधीन है। यदि सभी देव के आधीन होकर हाथ-पर-हाथ रखे बैठे रहें तो यह संसार ही न चले। सृष्टि का सम्पूर्ण नाटक ही समाप्त हो जाय। समस्त प्राणी प्रजनन कार्य बन्द कर दें तो प्रजा की उत्पत्ति रुक जाय, किन्तु ऐसा होना असम्भव है। सभी स्वभाव से प्रेरित होकर प्रजनन कर्म में प्रवृत्त होंगे ही और यह संसार इसी तरह चलता रहेगा। अर्जुनने कर्णको मार गिराया- यह देख पाण्डवपक्षके योद्धा बड़े जोर-जोरसे शफ बजाने लगे। श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा नकुल-सहदेवने भी हर्षमें भरकर अपने-अपने शफबजाये। सोमकोंने सेनासहित सिंहनाद दिया। दूसरे योद्धाओंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर बाजा बजाना आरम्भ कर दिया। कितने ही राजा आकर अर्जुनसे गले मिले। कितने ही एक दूसरेको गले लगाकर नाचने लगे। कर्णके मरनेपर भीमने भयंकर सिंहनाद करके पृथ्वी और आकाशको कँपा दिया। वे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको डराते हुए ताल ठोंककर नाचने-कूदने लगे। सोमक, सृञ्जय तथा दूसरे क्षत्रिय भी अत्यन्त हर्षमें भरकर एक दूसरेको छातीसे लगाते हुए शफ्नाद करने लगे।

कर्ण से कौन सी बात छिपी थी। क्या वे यह नहीं जानते थे कि श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण के अवतार हैं? क्या उन्होंने यह बात अनेक बार नहीं कही थी कि मेरी मृत्यु अर्जुन के द्वारा होगी? सूर्य ने तो उन्हें पहिले ही सचेत कर दिया था कि दिव्य कवच कुंडल दे देने पर शत्रु तुझे मार डालेंगे। उन्होंने क्यों नहीं स्वीकार किया? ब्राह्मण ने तो उनके मुँह पर ही स्पष्ट कह दिया था कि युद्ध में पृथ्वी तेरे रथ के चक्र को ग्रस लेगी और उसी समय असावधानी में शत्रु तेरा सिर काट लेगा। उन्होंने पाण्डवों से सन्धि क्यों नहीं कर ली? परशुराम ने तो क्रोध में भरकर ही यह कहा था कि मृत्यु के समय तुझे ब्रह्मास्त्र भूल जायगा। फिर भी वे क्यों नहीं सम्हले। युद्ध के समय के अपशकुनों से स्पष्ट प्रतीत हो गया था कि युद्ध में कौरवों की विजय न होगी। फिर भी उन्होंने दुर्योधन को सन्धि करने की सम्मति नहीं दी और न वे इन सब कारणों को जानते हुए युद्ध से विरत हुए। उन्होंने सब जानते हुए भी बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और अन्त तक हतोत्साह न हुए। इच्छा होने पर भी हम भगवान की इच्छा के विरुद्ध एक तिल भर भी इधर-उधर नहीं जा सकते। दुर्योधन की भी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी, किन्तु वह राज्य देना नहीं चाहता था। पांडव सभी युद्ध के विरोधी थे। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य सभी ने युद्ध की निन्दा की। शक्ति भर हटाने का प्रयत्न किया। पृथ्वी के राजा भी इस भीषण युद्ध के पक्ष में नहीं थे। वेदव्यास, परशुराम, नारद तथा समस्त ऋषियों ने इसे टालना चाहा। चराचर में ऐसा कौन प्राणी था जो ऐसे सर्वनाशक महायुद्ध के पक्ष में हो? सभी इसके विपक्ष में थे। बस एक ही पक्ष में थे, एक ही इस युद्ध को चाहते थे। वे थे देवकीनन्दन वासुदेव। उनके बड़े भाई समर्षण उनके विरुद्ध हो गये। गान्धारी ने शाप दिया किन्तु उन्होंने किसी की सुनी ही नहीं। युद्ध हुआ और उसमें अरबों

खरबों प्राणियों का संहार हुआ। स्वयं कृष्ण नि:शस्त्र रहे और सबको मरवा दिया।

इधर, धृष्टद्युम्नके डरसे कौरवोंकी सैनिकोंमें भगदड़ पड़ गयी। चेकितान, शिखण्डी और द्रौपदीके पुत्र कौरवोंकी सेनाका संहार करके शफबजाने लगे। उन्होंने भागते हुए सैनिकोंका भी पीछा किया। इसके बाद अर्जुनने पुन: रथ-सेनापर चढ़ाई की और अपने विश्वविख्यात गाण्डीव-धनुषकी टंकार करते हुए उन्होंने सहसा सबको बाणोंसे ढक दिया। पृथ्वीसे धूल उठी और चारों ओर घना अन्धकार छा गया। किसीको कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था। उस समय कौरव-सेनामें फिरसे भगदड़ पड़ी- यह देख दुर्योधनने शत्रुओंपर धावा किया और पाण्डवोंको युद्धके लिये ललकारा। पाण्डव-सेना दुर्योधनपर टूट पड़ी। उसने भी क्रोधमें भरकर सैकड़ों और हजारों योद्धाओंको यमलोक पठा दिया।

शल्य ने शंखनाद सुना। पलटकर देखा- भूमि पर अलग-अलग पड़े हुए, कर्ण के सिर और शरीर को पहचाना। कर्ण सचमुच ही धराशायी हो गया था। अर्जुन ने उसका वध कर दिया था। इस अहंकारी को इसके पापों का दंड मिल गया था। मद्रराज को अपना सारथी बनाकर बहुत प्रसन्न था और सारी मद्र स्त्रियों को व्यभिचारिणी बता रहा था। कृष्ण ने ठीक ही कहा था, स्त्रीत्व के अपमान से सारे देश का धर्म नष्ट हो जाता है। अर्जुन ने बाण से उसका मस्तक काटा था, कहीं यह भीम के हाथों में पड़ा होता तो वह दु:शासन के ही समान इसकी भी दुर्दशा करता और उससे भी संतुष्ट नहीं होता।

शल्य को स्मरण हो आया, कर्ण ने पूछा था शल्य से कि यदि उसका वध हो जाए तो शल्य क्या करेगा? तब शल्य ने कहा था कि वह इस अकेले रथ से कृष्ण और अर्जुन दोनों का वध कर देगा। पर तब स्थिति और थी, इस समय और है। रथचक्र धरती में धँसा है। रथ की ध्वजा कट चुकी है। शस्त्रभंडार की स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। न चक्ररक्षक हैं, न अग्ररक्षक, न पृष्ठरक्षक, न पादरक्षक। आसपास कोई कौरव योद्धा नहीं है। सामने अर्जुन और कृष्ण हैं। उनकी पृष्ठरक्षा कर रहा है भीम। नहीं। यह युद्ध के लिए उपयुक्त समय नहीं है।

शल्य रथ से कूदा और सिर पर पाँव रखकर, अर्जुन की विपरीत दिशा में भाग गया।

उस समय मद्रराज शल्यका चित्त ठिकाने नहीं था, वे दुर्योधनके पास पहुँचकर आँसू बहाते हुए बड़े दु:खके साथ बोले- राजन्। तुम्हारी सेनाके हाथी-घोड़े, रथ और योद्धा नष्ट-भ्रष्ट हो गये, मानो उनपर यमराजका आधिपत्य हो गया है। आज कर्ण और अर्जुन में जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। कर्णने चढ़ाई करके श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा अन्य शत्रुओंको प्राय: काबूमें कर लिया था; किंतु कुछ फल नहीं हुआ। निश्चय ही दैव पाण्डवोंके अधीन होकर काम कर रहा हे। वह उनकी तो रक्षा करता है और हमारा नाश। यही कारण है कि तुम्हारे अर्थकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करनेवाले सभी वीर शत्रुओंके हाथसे बलपूर्वक मारे गये। तुम्हारे सेनाके प्रमुख योद्धा इन्द्र, यम और कुबेरके समान प्रभावशाली थे। उनमें पराक्रम, शौर्य, बल, तेज तथा और भी बहुत-से उत्तम गुण मौजूद थे। वे एक प्रकारसे अवध्य थे; तो भी उन्हें पाण्डव योद्धाओंने रणमें मार डाला। अत: भारत। तुम शोच न करो। यह सब प्रारब्धका खेल है। सबको सदा ही सिद्धि नहीं मिलती, ऐसा जानकर धैर्य धारण करो।

मद्रराजकी ये बातें सुनकर और मन-ही-मन अपने अन्यायोंका भी स्मरण करके दुर्योधन बहुत उदास हो गया। उसकी बुद्धि कुछ भी काम नहीं देती थी। दु:खसे अत्यन्त पीडित होकर वह बारंबार लंबी उसासें भरने लगा।

राजा शल्य इतना कहकर चुप हो गये। उनका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा था। उधर दुर्योधनकी भी बड़ी दयनीय अवस्था थी, वह आर्त होकर हा कर्ण। हा कर्ण। पुकार रहा था। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। अश्वत्थामा तथा दूसरे-दूसरे राजालोग आकर उसे बारंबार धीरज बँधाते और रक्तसे भीगी हुई रणभूमिको देखते हुए

शिबिरकी ओर लौट जाते थे। समस्त कौरव सूतपुत्रके वधसे दु:खी थे, अत: हा कर्ण। हा कर्ण। पुकारते हुए बड़ी तेजीके साथ शिबिरकी ओर लौट गये। देवता और ऋषि भी अपने-अपने स्थानको चल दिये। नभचर और थलचर जीव अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार आकाश और पृथ्वीके स्थानोंमें चले गये। दर्शक़ मनुष्य कर्ण और अर्जुनका अद्‌भुत संग्राम देखकर आश्चर्यमग्न हो दोनोंकी प्रशंसा करते हुए गये।

श्रीकृष्ण और अर्जुन शंखनाद करने लगे थे। पाण्डव पक्षके शूर हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे। विजय दुन्दुभि बजने लगी। बहुतसे योधा आकर अर्जुनको गले लगाने लगे। भीम भयंकर सिंहनाद करते हुए नाचने-कूदने लगे थे।

उस टूटी ध्वजावाले रथको लेकर शल्य दुर्योधनके पास समाचार देने चले गये। वे अत्यन्त दु:खी थे। दुर्योधनके आगे आकर पुकारने, ललकारने, समझानेपर भी उसकी सेनाके लोग अर्जुन तथा भीमके भयसे भाग गये। फलत: दुर्योधनको उस दिन युद्ध विरामकी घोषणा करनी पड़ी। उसकी सेना लौटी तो पाण्डव सेना भी अपने शिबिरकी ओर हर्षनाद करती लौटी।

मद्र नरेश शल्य दुर्योधन के शिबिर में आता है। शल्य बोला, युवराज। दुर्योधन बोला, आपका मुंह क्यों उतरा हुआ है नरेश। शल्य बोला, शोक प्रकट करने आया हूं युवराज दुर्योधन और इसीलिये नंगे सिर आया हूं। दुर्योधन बोला, आज रणभूमि में कोई भी इतना महत्वपूर्ण नहीं है मद्र नरेश जिसका शोक प्रकट करने के लिये मेरे मित्र राधेय को अकेला छोडकर चले आये। अपने स्थानपर किसे उसका सारथी बना कर आये हैं आप? क्या वो भी वासुदेव जैसा ही निपुण सारथी है। कृपया शोक प्रकट न कीजिये मद्र नरेश और जाइये मेरे मित्र के पास लौट जाइये। वो सारथी बिना कैसे युद्ध करेगा? शल्य बोला, किन्तु रथी बिना सारथी क्या करेगा युवराज दुर्योधन? दुर्योधन बोला, मद्र नरेश, कहदो यह झूठ है, वो पांडव इस तरह की बात बनाने में निपुण हैं नरेश। भूल गये आप कि गुरु द्रोण की हत्या करने के लिये गुरु पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की घोषणा कर दी थी। मद्र नरेश कह दो कि मेरा मित्र जीवित है, कह दो कि यह सूचना झूठी है मद्र नरेश। शल्य बोला, मैं सुनी सुनाई नहीं कह रहा युवराज। मैं अंगराज कर्ण का सारथी था। हे गान्धारी नन्दन मैं तुम्हारे मित्र तुम्हारे प्रधान सेनापति की रक्षा नहीं कर पाया किन्तु मैं उसकी वीरता और अर्जुन की कायरता का साक्षी हूं। हे वत्स भारतवर्ष ने आज से पहिले भी एक से बढ एक योद्धा देखे हैं और आज के पश्चात भी देखेगा किन्तु कर्ण जैसा महावीर केवल एक ही बार जन्म लेता है, दुर्योधन जोरों से चिल्लाता है नहीं और विलाप करता है। दुर्योधन बोला, क्या अब इस संसार में मुझे अपने मित्र कर्ण के बिना जीना पड़ेगा? मद्र नरेश मुझे अपने मित्र कर्ण केबिना जीना नहीं आता। मैं उन कायर पांडवों को अपने ९९ भाइयों के वध के लिये क्षमा कर सकता हूं परन्तु राधेय की हत्या पर कभी क्षमा नहीं करूंगा। दुर्योधन ने शल्य को अपनी सेना का प्रधान सेनापति पद पर अभिषिक्त किया और बोला मुझे खेद है कि आज के दिन मैं आपके ध्वज तले युद्ध करने का सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु यदि कोई कल हुआ तो मैं यह सम्मान अवश्य प्राप्त करूंगा परन्तु आज के दिन मुझे अपने प्रिय राधेय के शोक में रहने दीजिये।

उत्तम याचकोंके माँगनेपर जिसने सदा यही कहा कि मैं दूँगा, मेरे पास नहीं है, ऐसी बात जिसके मुँहसे कभी निकली ही नहीं, ऐसा सत्पुरुष कर्ण द्वैरथ युद्धमें अर्जुनके हाथसे मारा गया। जिसका सारा धन ब्राह्मणोंके अधीन था, ब्राह्मणोंके लिये जो अपना प्राणतक देनेमें आनाकानी नहीं करता था, जो महान् दानी और महारथी था, वही कर्ण अब धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी विजयकी आशा, भलाई और रक्षा- सब कुछ साथ लेकर स्वर्गको चला गया। कर्णके मारे जानेपर जब सूर्य अस्त हो गया तो मंगल तथा बुध वक्रगतिसे उदित हुए, पृथ्वीमें गड़गड़ाहट होने लगी, चारों दिशाओंमें आग लग गयी, उनमें धुआँ छा गया, समुद्रोंमें तूफान आ गया, गर्जनाएँ होने लगीं, समस्त प्राणी व्यथित हो उठे और बृहस्पति रोहिणीको घेरकर चन्द्रमा

तथा सूर्यके समान तेजस्वी रूपमें प्रकट हुए। उस समय पृथ्वी काँप उठी, उल्कापात होने लगा तथा आकाशमें खड़े हुए देवता सहसा हाहाकार कर उठे।

श्रीकृष्ण-अर्जुन शिबिरमें पहुँचे तो आहत युधिष्ठिर पलंगपर सो रहे थे। दोनोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उठकर युधिष्ठिरने दोनोंको हृदयसे लगाया। श्रीकृष्णने विस्तारसे युद्धकी घटना तथा कर्णका मारा जाना सुनाकर कहा- सौभाग्यकी बात है कि आप पाँचों भाई सकुशल हैं और आपके सब प्रधान शत्रु मारे गये। आपको जिसने आज इतना आहत किया था; वह सूत पुत्र छिन्न मस्तक पड़ा है। उसके शरीरमें कितने बाण लगे हैं।

युधिष्ठिरके नेत्र भर आये। श्रीकृष्णकी दाहिनी भुजा पकड़कर दो क्षण वे मूक बने रहे। फिर बोले- देवर्षि नारद तथा भगवान व्यासने भी मुझे बतलाया है कि आप साक्षात् नारायण हैं। आपने अर्जुनका सारथ्य स्वीकार किया, हमारी विजय तो तभी सुरक्षित हो गयी थी। आप सुरक्षाके लिए सावधान हैं, अत: अर्जुनका विजयी होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा- गोविन्द। आप सर्वेश्वर ही नहीं; मेरे अपने स्वामी हैं। आपकी कृपासे ही यह विजय हुई। वहाँसे वे लोग शिबिरमें लौट आये।

श्रीकृष्णने रणभूमिमें जो कुछ घटना घटित हुई थी, सब युधिष्ठिरको कह सुनायी, महाराज। बड़े सौभाग्यकी बात है कि आप, भीम, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव भी कुशलसे हैं। महारथी कर्ण मारा गया और आपकी विजय तथा अभिवृद्धि हो रही है- यह भी बड़े आनन्दकी बात है। आज सूतपुत्रके सारे शरीरमें बाण चुभे हुए हैं और वह भूतलपर पड़ा हुआ है; इस अवस्थामें आप अपने शत्रुको चलकर देखिये।

श्रीकृष्णका वचन सुनकर धर्मराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले- देवकीनन्दन। यह बड़े आनन्दकी बात हुई। आप सारथी थे, तभी अर्जुन कर्णको मार सके हैं। यह आपकी बुद्धिका ही प्रसाद है, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। यह कहकर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी दाहिनी बाँह पकड़ ली। फिर दोनोंसे कहा- नारदजीने मुझे बताया था कि अर्जुन और श्रीकृष्ण पुरातन नर-नारायण ऋषि हैं। तत्त्वज्ञानी श्रीव्यासजीने भी कई बार इस बातकी चर्चा की थी। कृष्ण। आपकी ही कृपासे ये पाण्डुनन्दन अर्जुन शत्रुओंका सामना करके विजय पाते गये हैं। जिस दिन आपने युद्धमें अर्जुनका सारथी होना स्वीकार किया उसी दिन यह निश्चय हो गया था कि हमारे पक्षकी विजय ही होगी, पराजय नहीं। जब भीष्म, द्रोण तथा कर्ण- जैसे वीर आपकी बुद्धिसे मारे जा चुके हैं तो बाकी लोगोंको, जो उन्हींके अनुयायी हैं, मैं मरे हुएके समान ही मानता हूँ।

इस प्रकार राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रशंसा की। उस समय नकुल, सहदेव, भीम, सात्यकि धृष्टद्युम्न और शिखण्डीने तथा पाण्डव, पाञ्चाल और सृञ्जय योद्धाओंने महाराजका अभ्युदय हो ऐसा कहकर युधिष्ठिरका सम्मान किया। फिर श्रीकृष्ण और अर्जुनका गुणगान करते हुए वे बड़ी प्रसन्नताके साथ शिबिरकी ओर चले गये।

कुरुक्षेत्र में दिन रहते एक सूरज डूब गया और शायद सूर्यदेव के सिवा किसी और ने उस अन्धेरे का अनुभव नहीं किया। सूर्यपुत्र कर्ण केवल एक योद्धा ही नहीं था वो दानवीर कर्ण भी था। जिन्दगी ने उसे कुछ नहीं दिया किन्तु उसने अपनी निष्ठा की ढहली पर अपनी बलि दे दी। कर्ण यही नहीं कि वीर गति को प्राप्त हुआ, रणभूमि में तो यह होता ही रहता है। कर्ण वो योद्धा था जिसने अपनी मृत्यु का स्वागत किया। इसलिये सूर्यदेव सूर्यपुत्र कर्ण की मृत्यु पर समय शोक प्रकट करते हैं।

शल्य, अश्वत्थामा, शकुनि, कृपाचार्य कर्ण के शव के पास आकर उसे प्रणाम करते हैं। शकुनि बोला, हे राधेय तुम वास्तव में बडे वीर थे परन्तु तुम्हारे जीवन का मैंने कभी आदर नहीं किया। केवल दुर्योधन के कारण तुम्हे अपने बराबर बैठाता आया और उसे अपना अपमान समझता रहा। उस अपमान को मैं सदैव सहता रहा। हे सूतपुत्र, हे राधेय, हे

अंगराज वीरगति को प्राप्त होने की इस अनोखी शैली ने तुम्हे आदरणीय बना दिया है। हे महारथी, हे दानवीर कर्ण मैं गान्धार नरेश शकुनि तुम्हे शत् शत् प्रणाम करता हूं।

दुर्योधन पितामह भीष्म के पास आकर विलाप करने लगा। दुर्योधन बोला, पितामह मैं आज बिल्कुल अकेला हो गया हूं। मेरा मित्र कर्ण, मेरा भाई राधेय मुझे अकेला छोड कर चला गया। भीष्म बोले, हे वत्स क्षत्रिय को यो रोना शोभा नहीं देता। मेरे पास आओ पुत्र। दुर्योधन उठकर भीष्म के सिरहाने के पास आकर बोला पितामह इतना तो मैं प्रिय दुःशासन के शव पर भी नहीं रोया परन्तु राधेय की मृत्यु ने मुझे कंगाल कर दिया पितामह। मैं कंगाल हो गया। भीष्म बोला, राधेय की मृत्यु तो उसके जीवन का इकलौता प्रसाद है पुत्र और उसे राधेय समझने की भूल मत करो। वो कौन्तेय था। दुर्योधन बोला, वो कौन्तेय। भीष्म बोला, हां और वो जानता था कि वो कौन्तेय है फिर भी वो तुम्हारे पक्ष में लडता रहा और तुम्हारे ही पक्ष में लडते-लडते वीरगति को प्राप्त हो गया। दुर्योधन बोला, वो कौन्तेय था पितामह। माता कुन्ती का पुत्र। उन पांडवों का भाई और फिर भी मेरे पक्ष में युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। भीष्म बोले, हां पुत्र तुम्हारे राधेय का सम्पूर्ण सत्य यही है कि वो कौन्तेय था और आज मैं अपने इन वृद्ध हाथों से ज्येष्ठ कुन्ती पुत्र को प्रणाम करता हूँ।

मनुष्य भ्रम के वशीभूत होकर ही सब अनर्थ करता है। छाया को भूत समझकर उससे बचने को भागता है। कहाँ तक कहें समस्त अनर्थ भ्रम से होते हैं। जब तक मनुष्य भ्रमवश इस संसार को सत्य समझता है तभी तक इसमें सुख की इच्छा रखता है। जब उसे इसके मिथ्यात्व का बोध हो जाता है तब वह सर्वज्ञ एक शाश्वत सत्ता का अनुभव करके शान्ति लाभ करता है। जिस समय मनुष्य समस्त प्राणियों में अपने को देखता है और अपने को सब प्राणियों में तो उसका शोक, मोह, भ्रम, अज्ञान सब दूर हो जाता है। परमार्थ विषय में ही यह बात नहीं लोक में भी देखा गया है। जब तक हम अज्ञानवश किसी को अपना शत्रु समझते हैं तब तक हमें उसमें सभी अवगुण-ही-अवगुण दिखाई देते हैं। जिस समय हमारा शत्रु भाव हट जाता है, तब उसके दोष भी गुण-ही-गुण प्रतीत होते हैं। वस्तुओं में गुण दोष नहीं होते। दोष-दृष्टि ही दुख का कारण है और गुण-दृष्टि ही सुख की जननी है।

धृतराष्ट्रको बड़ी व्यथा हुई, उनकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी, वे चिन्ता और शोकमें डूब गये। मोहाच्छन्न हो जानेके कारण उन्हें किसी भी बातकी सुध न रही। विदुर और सञ्जयके बहुत आश्वासन देनेपर प्रारब्ध और भवितव्यताको ही प्रधान मानकर वे चुपचाप बैठे रह गये।

कुंती को जैसे रात भर नींद नहीं आई। जो थोड़ी देर वह सोई भी, उसे लगता रहा कि वह सो नहीं रही, कठिन श्रम का कोई बहुत जटिल काम कर रही है। एक अनन्त यात्रा, अनवरत यात्रा। वह यात्रा भी बड़ी विचित्र थी। उसके पास न कोई अश्व था, न कोई रथ; किंतु वह निरंतर गतिशील थी। वह समझ नहीं पाई कि जब न उसके पास कोई वाहन था और न ही वह चल रही थी, तो वह गतिशील कैसे थी। उसे जैसे इच्छागति का कोई वरदान मिल गया था। उसका मन जहाँ, जिस ओर जाना चाहता था, वह उसी ओर प्रवाहित हो जाती थी, जैसे मनुष्य का शरीर न हो, पवन का कोई झकोरा हो। वह उन स्थानों पर घूम रही थी, जिन्हें वह पहचानती भी नहीं थी। वहां वह पहले कभी नहीं गई थी। फिर भी वह वहाँ इस प्रकार आ-जा रही थी, जैसे उस सारे क्षेत्र का उसे पूरा ज्ञान हो। उसके साथ मार्गदर्शक कोई नहीं था; किंतु फिर भी वह बिना किसी असुविधा के अपना मार्ग खोज लेती थी।

रात्रि में युद्धभूमि में कुन्ती कर्ण के शव के पास आती है और आकर विलाप करती है। फफक-फफक कर रोने लगती है।

युधिष्ठिर, अर्जुन और कृष्ण भी वहां पर आते हैं। युधिष्ठिर बोला, माताश्री हमारे शत्रु के प्रधान सेनापति के शव पर बैठी आप क्यों रो ही है? कृष्ण बोले, इन्हे रो लेने दीजिये बडे भैया। चलो। युधिष्ठिर बोला, नहीं वासुदेव माताश्री को इस प्रकार रोता छोडकर हम जा कैसे सकते है? माताश्री कृपया यह बताये आप कि अंगराज कर्ण के शव को आप अपने आंसुओं से क्यों सम्मानित कर रही है? कुन्ती बोली, यह लो पौंछ दिये। अब तुम जाओ। जाओ और जाकर अपने सैनिकों के शव उठवाओ। कुन्ती रोते-रोते कर्ण के शव पर गिर गई। अर्जुन बोला, किन्तु आप यह बताती क्यों नहीं माताश्री कि आप इस सूतपुत्र राधेय के शव पर विलाप क्यों कर रही है। कुन्ती बोली, जो बता दिया तो तुम्हारे कन्धे से वो गांडीव गिर पडेगा पुत्र, जिसके बाणों ने इसे छलनी किया है इसलिये अब जाओ पुत्र अपने भ्राता के साथ और मुझे अकेला छोड दो और रोने दो। यदि ये आंसू न बहे तो यह पृथ्वी मेरे आंसुओं में डूब जायेगी पुत्र। युधिष्ठिर बोला, वासुदेव आप माताश्री को समझाते क्यों नहीं। इस शत्रु पर विलाप कर अपने आंसुओं का अपमान न करे। ये राधेय... कुन्ती बोली, ये राधेय नहीं है। अर्जुन बोला, तो फिर ये कौन है।

कुन्ती ने उनके कान में कहा- पुत्र। कर्ण को भी जल दो। उन महावीर का भी तुम अपने सगे सम्बन्धी की ही तरह तर्पण करो। रोते-रोते धर्मराज ने कहा- मैं अपने सगे सम्बन्धियों को ही जल दूँगा। कर्ण का तर्पण और श्राद्ध किसी सूत जाति से अथवा ब्राह्मण से कराऊँगा।

माता ने धीरे से कहा, पुत्र। कर्ण तुम्हारे सम्बन्धी थे।

कर्ण मेरे सगे सम्बन्धी थे। धर्मराज को अपने कानों पर भ्रम हुआ। उन्होंने आश्चर्य चकित होकर माता से कहा- क्या कहा, कर्ण हमारे, सूत पुत्र कर्ण से हमारा यही सम्बन्ध था कि वह हमारे शत्रु का प्रधान पृष्टपोषक था, उसका कुल गौत्र और वर्ण तो हमसे पृथक था। रोते-रोते माता ने कहा- पुत्र। कर्ण सूत-पुत्र नहीं था। वह तुम्हारा सगा भाई और मेरा पुत्र था।

कुन्ती बोली, यह कौन्तेय है। युधिष्ठिर बोला, कौन्तेय। कुन्ती बोली, हां, यह मेरा ज्येष्ठ पुत्र, तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता। अर्जुन बोला, क्या यह मेरे ज्येष्ठ भ्राता है? युधिष्ठिर बोला, आपने हमसे इतनी बडी बात छिपायी माताश्री। कुन्ती बोली, हां छिपाई और छिपाने का भी पूछ ले एक-एक दिन में हजार-हजार बार मरती रही हूं पुत्र। जब भी कोई इसे सूतपुत्र कहकर पुकारता था तो मेरे हृदय में एक कटार सी चुभ जाती थी। मैं तडफ जाती थी पुत्र पर किसी को अपना तडफना नहीं देखने देती कि जो कोई पूछ बैठे हे कुन्ती तुम इस सूतपुत्र राधेय के लिये क्यों तड़फ रही हो? तो फिर मैं क्या उत्तर देती? मैं विवश थी पुत्र। युधिष्ठिर बोले, आपके मौन ने इतना बडा युद्ध करवा दिया माताश्री। हजारों-हजारों लाखो लाख सैनिक मरवा दिये। आपकी यह विवशता भारतवर्ष को बहुत महंगी पडी माताश्री। इस रणभूमि के हर शव के लिये आप उत्तरदायी हैं, केवल आप। आपके मौन ने हमें ज्येष्ठ भ्राताश्री का हत्यारा बना दिया माताश्री।

मेरा सगा भाई था यह सुनते ही धर्मराज पछाड़ खाकर गङ्गाजी में गिरकर बेहोश हो गये। उनके मुख से बार-बार निकलता था हा कर्ण। हा कर्ण। तुम कहाँ चले गये?

भाइयों ने धर्मराज को जल से बाहर किया। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। कर्ण का स्मरण करके वे बुरी तरह बिलख रहे थे। उनके चारों भाइयों ने उन्हें सावधान किया। तब अत्यन्त ही दु:ख के साथ धर्मराज ने कहा- माँ। कर्ण हमारे भाई कैसे थे? वे तुम्हारे गर्भ से कब पैदा हुए? इस बात को सच-सच मुझे बात बताओ। अपने सगे भाईकी हत्या करनेवाला मैं पापी अब जीने योग्य नहीं। मैं अभी प्राण त्यागकर, स्वर्ग में अपने भाई कर्ण से जाकर मिलूँगा और उनके चरणों में पड़कर अपने अपराधों की क्षमा माँगूंगा। मुझे आज कर्ण का सच-सच हाल बता दो।

कुन्ती ने कुछ लज्जित भाव से धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया- पुत्र। जब मैं कुमारी थी और पिता के घर में रहती थी, तब दुर्वासा ऋषि ने मुझे देवताओं को बुलाने का मन्त्र दिया। उसकी परीक्षा के लिये मैंने सूर्य भगवान् का आह्वान किया। उन्हीं सूर्यदेव से कन्यावस्था में ही मेरे गर्भ से कर्ण उत्पन्न हुए। उन्हें अधिरथ सूत ने अपना पुत्र माना और उनकी स्त्री राधा ने उनका पालन-पोषण किया। इसलिये वे सूतपुत्र राधेय कहाये।

धर्मराज के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने दाँत पीसकर क्रोध के स्वर में कहा- जननी। तूने मेरे साथ और कर्ण के साथ विश्वासघात किया। मुझे पहिले से क्यों नहीं बताया? मुझे पहिले ही पता होता तो मैं युद्ध ही क्यों करता? यह महाभारत ही क्यों होता? वे शूरवीर मेरे भाई थे? धर्मराज की आँखों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

माता ने डरते-डरते कहा- पुत्र। वह विषय बड़ा गोपनीय था। लज्जा के कारण तुमसे नहीं कहा।

धर्मराज ने कहा, तब तुम महात्मा कर्ण से तो कहती।

माता बोली, पुत्र मैंने उससे कहा था, तू मेरा पुत्र है, पांडव तेरे भाई हैं। इनसे युद्ध मत कर, किन्तु उसने मेरी बात मानी नहीं। वह अपनी प्रतिज्ञा पर अड़ा रहा। बड़ी उत्सुकता के साथ धर्मराज ने पूछा, अच्छा महात्मा कर्ण को पता था कि मैं उनका छोटा भाई हूँ। तुम्हारी बात सुनकर उन्होंने क्या उत्तर दिया?

माता ने कहा- मैंने उसे समझाया था। तू पांडवों से सन्धि कर ले, सब भाई मिलकर प्रेम से रहो, किन्तु उसने यही कहा- मैं दुर्योधन को अब नहीं छोड़ सकता। इसमें मेरी अपकीर्ति होगी, विश्वासघात का पता लगेगा, शरणागत को त्यागने का कलम लगेगा और मैं स्वार्थी, डरपोक, क्षुद्र और मित्रद्रोही समझा जाऊँगा।

धर्मराज ने कहा, ठीक ही कहा था। उनका कहना सच था। और क्या कहा था माँ। मेरे भाई कर्ण ने?

कुन्ती बोली, और यह भी कहा था कि तुम आई हो तो मैं तुम्हें निराश न लौटने दूँगा। अर्जुन को छोड़कर तुम्हारे चारों पुत्रों को वश में आने पर भी मैं न मारूँगा।

धर्मराज की आँखें चमकने लगीं। वे रो पड़े और रोते-रोते बोले- मैंने काँच के भ्रम में हीरे को गँवा दिया। हा। मेरे भाई कितने धर्मात्मा थे। कितने दानी थे, संसार में शूरवीर तो उनके समान कोई था ही नहीं। हमने उन्हें अधर्म से जीता है। वे अजेय थे। अपने वचन के कैसे सच्चे थे वे। हम चारों भाई उनके वश में आ गये थे। वे चाहते तो हमें मार सकते थे। किन्तु उन्होंने माता के सम्बन्ध से हम पर दया कर दी। हमारे प्राण हरण नहीं किये। ऐसे भाई को पाकर मैं धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ। अब मैं राज्य न करूँगा। अनशन करके अपने प्राणों को त्याग दूँगा। यह कहकर धर्मराज आसन मारकर अन्न-जल त्यागकर बैठ गये।

भाइयों ने समझाया। द्रौपदी ने जली कटी सुनाई। श्रीकृष्ण ने भाँति-भाँति के उपदेश दिये। धर्मराज पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। समस्त ऋषि आकर इकट्ठे हो गये। चारों ओर व्याकुलता-छा गई। विजय का परिणाम यही हुआ। धर्मराज मौन थे। वे किसी से बोलते ही नहीं थे।

भगवान् वेदव्यास, नारद, पर्वत तथा अन्यान्य हजारों लाखों ऋषियों की भीड़ लग गई। सबके सामने रोते-रोते करुण स्वर से धर्मराज फिर बोले- मैं बड़ा पापी हूँ। बड़ा नीच हूँ। मैंने राज्य के लोभ से अपने भाइयों को मरवा डाला। असंख्यों हाथी, घोड़े और सैनिकों का संहार कराया। मैं कुलद्रोही, पापी, नीच, स्वार्थी और हत्यारा हूँ। मुझे आज अपने ऊपर बड़ी ग्लानि हो रही है। सबसे अधिक दु:ख तो मुझे इस बात से हो रहा है कि संसार में अद्वितीय वीर, धर्मात्मा सत्यप्रतिज्ञ, दानी और महान्

चरित्रशाली अपने सगे भाई कर्ण को जब वे असावधान थे, अपने रथ का चक्र निकालने में संलग्न थे, तब उन्हें अधर्मपूर्वक, धोखे से अर्जुन द्वारा मैंने मरवा डाला। मुझे भीष्म पितामह की मृत्यु का उतना दु:ख नहीं है, न द्रोणाचार्य, अभिमन्यु, शल्य का ही उतना दु:ख है, जितना कि मुझे अपने भाई कर्ण की मृत्यु का दु:ख है। उस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी।

नारद मुनि ने तरह-तरह के उपदेशों से धर्मराज को शान्त किया, किन्तु धर्मराज का दु:ख दूर न हुआ। वे रोते-रोते कहने लगे- कर्ण सचमुच महात्मा थे। मैं उनके मुख की ओर नहीं देखता था। मुझे उनके चरण बहुत प्रिय थे। उनके चरणों को जब मैं देखता था, तब मुझे माता कुन्ती की याद आ जाती। उनके चरण एकदम देवी कुन्ती के से थे। इससे मुझे बार-बार सन्देह होता था, किन्तु मैं इस साम्य का कुछ अर्थ न समझ सका। मुझे अपने भाई कर्ण पर कभी क्रोध नहीं होता था। द्यूत-सभा में उन्होंने द्रौपदी के सम्बन्ध में कुछ अनुचित शब्द दुर्योधन को खुश करने के लिये कह दिये थे। उस समय मुझे थोड़ी देर के लिये कुछ क्रोध-सा हुआ। ज्योंही मैंने उनके चरणों की ओर देखा मेरा क्रोध शान्त हो गया। मैं माता द्वारा ठगा गया। मैं नीच उनके चरणों को कुन्ती के चरणों के सदृश देखता हुआ भी उन्हें पहिचान न सका। मेरे जीवन को धिक्कार है।

माता कुन्ती ने उदास मन से आँसुओं को रोकते हुए कहा- पुत्र। कर्ण के लिये अब शोक मत करो। दुष्टों की संगति से वह तुमसे सदा द्वेष करता था। वह अपने ही पाप से मारा गया।

धर्मराज यह सुनकर विषधर क्रोधित सर्प की तरह लम्बी लम्बी फुफकार छोड़ने लगे। उन्होंने अत्यन्त क्रोध के स्वर में कहा- माँ। तुमने मुझे और मेरे भाई कर्ण दोनों को धोखे में रखा। तुमने अपने पाप को छिपाने के लिये हम दोनों पर अन्याय किया। मेरे भाई को क्षत्रियत्व से, राज्य से, यश से और भाइयों से अलग कर दिया और मुझे तुमने कुलद्रोही, भ्रातृहन्ता और गुरुघाती बना दिया।

आज जिस रणभूमि में अपने ज्येष्ठ भ्राता के शव को साक्षी मानकर सारी नारी जाति को यह श्राप देता हूं कि आज के उपरान्त वो कभी कोई भेद अपने हृदय में न रख सकेगी और न छुपा सकेगी। आज मैं समस्त स्त्री जाति को शाप देता हूँ कि आज से कोई स्त्री अपने किसी भाव को गुप्त न रख सकेगी। इतना कहकर धर्मराज मूर्छित होकर गिर पड़े।

ऋषियों ने धर्मराज के पूछने पर कर्ण का समस्त वृत्तान्त सुनाया, तरह-तरह से उन्हें समझाया, कर्ण का गुणगान किया। किन्तु धर्मराज को तो अब रह-रहकर कर्ण के सभी गुण याद आने लगे। अब वे सूत-पुत्र न होकर उनके पूज्य, बड़े भाई और कुन्तीनन्दन हो गये थे। दृष्टि में ही सृष्टि है। सृष्टि बदलने से सब कुछ बदल जाता है। अब कर्ण नहीं रहे, किन्तु उनके अतुलनीय गुण सदा बने रहेंगे और उनकी पुण्य स्मृति तब तक रहेगी, जब तक पृथ्वी पर उसके पिता सूर्यदेव विद्यमान रहेंगे।

दुर्योधन अपनी माता गान्धारी के पास आता है। दुर्योधन बोला, सन्धि और मेरे बीच पिछले १७ दिन और अनगिनत शव है माताश्री। यदि मुझे मेरा प्रिय राधेय वापिस मिल जाये तो कदाचित मैं सन्धि कर भी लूं। यदि मुझे मेरा दु:शासन वापिस मिल जाये तो कदाचित मैं सन्धि कर भी लूं। यदि पितामह के वृद्ध शरीर से सारे बाण निकाल दिये जाये तो कदाचित मैं सन्धि कर भी लूं परन्तु जैसे ये सब सम्भव नहीं है माताश्री, उसी तरह अब सन्धि भी सम्भव नहीं है और अब मैं सन्धि करके अपने राधेय की निष्ठा और प्रिय दु:शासन के प्रेम, अपने गुरु द्रोणाचार्य की मृत्यु और पितामह के अनगिनत घावों का अपमान नहीं कर सकता माताश्री। मैं यह नहीं चाहता कि आनेवाला युग आपको कायर दुर्योधन की माता कहे इसलिये अब मेरे पास युद्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह गया माताश्री। हे माते क्या आप मुझे अस्त होते हुये चन्द्रमा को साक्षी मानकर विजयश्री का आशीर्वाद देंगी? गान्धारी बोली, नहीं पुत्र। यह आशीर्वाद तो मैं नहीं

दूंगी। अपने प्रिय पुत्रों के खो जाने के पश्चात भी। यह आशीर्वाद तो मैं तुम्हे नहीं दूंगी। किन्तु यह शिव भक्तिनी तुम्हे एक कवच पहिना सकती है। हे पुत्र गंगा जाकर स्नान कर आओ और गंगा तट से सीधे मेरे पास आओ किन्तु वैसे ही जैसे तुमने जन्म लिया था। दुर्योधन बोला, क्या नग्न माताश्री? गान्धारी बोली, मां के समक्ष कैसी लज्जा। माँ से ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाते। दुर्योधन बोला, जो आज्ञा माताश्री और दुर्योधन चला जाता है।

द्रौपदी ने सोचा था कर्ण की मृत्यु पर शायद यह शोक कुछ कम हो। कर्ण की मृत्यु का संवाद पहुंचा। कर्ण का रथचक्र धरती में धंस गया था, उठाने जा रहे थे तब कृष्ण के निर्देश पर निरस्त्र कर्ण की हत्या कर दी अर्जुन ने। अर्जुन ने ऐसा क्यों किया? मां कुंती के निरस्त्र ज्येष्ठपुत्र की हत्या हुई धर्मक्षेत्र में। कर्ण की मृत्यु का संवाद पुत्र अभिमन्यु के विच्छेद-दु:ख को कम नहीं कर सका- वरन् कर्ण के इस असहाय अवस्था में वध से दु:ख दूना हो गया।

हृदय पर पत्थर रखकर सहना पड़ा कर्ण की मृत्यु का शोक।

याद आ गई अर्जुन के मुंह से सुनी युद्धक्षेत्र की वह अभूतपूर्व घटना। कृष्ण ने सखा की जड़ता दूर करने के लिए उन्हें अपने विश्वरूप का दर्शन कराया। अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में ही देखा- कृष्ण के असंख्य मुख, असंख्य दीप्त, चक्षु, असंख्य कर-पग, असंख्य तीक्ष्ण दांत। उनका शरीर विशाल होकर आकाश तक व्याप्त गया है। प्रकाशवान हिरण्यमय शरीर तेजोद्दीप्त दिख रहा है। प्रलयानल की तरह कराल दांतों से युक्त मुख में दिख रहा है आकाश-आकाश में असंख्य जलते सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र। उसी मुख में सबको देख रहे थे अर्जुन। वह रूप दर्शन कर सिर चकरा गया था अर्जुन का। प्रार्थना की- हे वासुदेव। अपना यह रूप संवरण करें।

तो क्या कृष्ण महाकाल है। वे ही सृष्टिकर्त्ता हैं। संहारकर्त्ता हैं। स्वयं भगवान हैं। मां कुंती ने उन्हें ठीक पहचाना है। तभी बुआ होते हुए भी प्रणाम करती हैं। आत्मा यदि अमर है, शरीर की मृत्यु पर यदि आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है, तो मृत्यु के लिए शोक क्यों? द्रौपदी भी एक क्षण शोक भूल सखा के आगे नत खड़ी रही और फिर शोकाभिभूत हो गई थी। चिर-उपेक्षित अपने मानी पुत्र कर्ण को ढूंढ रही थी कुन्ती। युद्ध में वह वीरोचित गति पा गया, परन्तु भीष्म, शल्य, जयद्रथ ने बार-बार युद्धमें भी सूतपुत्र कहकर अपमानित किया। भीष्म जैसे ज्ञानी ने भी उपहास कर अधिरथी कह संबोधित किया। कुन्ती का निरस्त्र लाड़ला अर्जुन के हाथों मरण को प्राप्त हुआ।

कुन्ती की बात सुनकर लगा, जैसे कर्ण ही उनका एक पुत्र था, अर्जुन अपर पक्ष का कोई है। शतपुत्र जीवित रहें तो भी मृत पुत्र के लिए ही मां के मन में करुणा झरती है।

स्तब्ध, शोकाभिभूत सब देख रहे हैं कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि। कैसा भयंकर, हृदयविदारक है यह दृश्य। लाखों मृत देह, खंड-खंड, अंग-अंग। रक्तरंजित केश, खप्पर। सिर-हीन धड़, कहीं कटे मुण्ड, विदीर्ण वक्ष, मांस के लोथ, हाड़, अंतडियाँ- कैसा भयंकर दृश्य फैला है धरती पर। हाथी, घोड़े, आदमी सबका रक्त समुद्र की तरह एकाकार हो रहा है। जिधर देखो, सियारों, गीधों, कौओं की चीख-पुकार मची है। मांस नोंचना, रक्त पीना, लोथ झिंझोड़ना चल रहा है। हस्तिनापुर नरक बना हुआ है। विधवा, श्रीहीन नारियां उस बिखरे नरक के बीच अपने पति, पिता, पुत्र, भ्राता को ढूंढ रही हैं और उनकी लाश को पाकर छाती से लगा चीख उठती हैं।

युद्धभूमि के बीच में मृत्यु की बीभत्सता की उपेक्षा किए पड़े हैं द्वितीय सूर्य-समान तेजस्वी वीर कर्ण। सूर्य-सुत होनेके कारण मृत्यु का स्पर्श हुआ है, देह मलिन नहीं हुई, पूतिगंधमय नहीं हुई। मृत देह के पाँवों के पास खड़ी हैं कुन्ती। नारी

हृदय की सारी कुण्ठा, लज्जा, संकोच, लोकापवाद का भय, सबको मृत्यु बहा ले गई। पुत्र-शोक में अधीर जननी यह भूल गई कि कर्ण कुमारी-अवस्था की संतान है। कर्ण की मृतदेह को गोद में लेकर सबके सामने विलाप कर उठीं। गगन-पवन भेद गया वह विलाप। सूर्यदेव उसमें करुण, लोहित, मलिन, अस्तायमान हो चले।

युधिष्ठिर के नेत्रों में अनायास जल भर आया। सब स्तब्ध। विस्मित। मां कुन्ती ने क्रोध संवरण कर कहा, पुत्र, कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में तूने बहुत कष्ट सहा। पांडव परिवार के मुखिया के रूप में अनेक दायित्व तुझ पर आये। निबाहा भी। वास्तव में कुन्ती के ज्येष्ठपुत्र तुम नहीं। जो जीवन-भर कुन्तीपुत्र के गौरव से वंचित रहा, वही वास्तव में ज्येष्ठपुत्र था। आज तेरे आगे धरती पर पड़ा है वह। वह तेरा ज्येष्ठ भ्राता सूर्यनंदन, महावीरदाता कर्ण। मेरे कुमारी-वय में ऋषि के आशीर्वाद का फल होने पर भी यह पृथ्वी पर अभिशप्त जीवन जीता रहा। अंत में भाई के हाथों ही प्राण दे दिये।

पुण्य युद्धभूमि आज श्मशान-भूमि, शत्रु-मित्र, धनी-दरिद्र, ऊंच-नीच सबसे ऊपर है। सबको समान एक तल पर खड़ा कर दिया है, इस पवित्र धरती पर खड़ी कुन्ती अपने जीवन की चरम गोपनीयता पुत्रों के आगे प्रकट कर चुकी है। फिर विलाप कर उठी। अर्जुन भीगे नेत्रों से अस्तगामी सूर्य की तरह लेटे सौम्य वीर कर्ण को देखते स्वयं को धिक्कार रहे थे।

कृष्ण के शिबिर में आते ही उन्होंने सात्यकिसे कहा, मेरे साथ चलो, सखा सात्यकि।

सात्यकि चुपके से उनके पीछे हो लिया। अंगदेश के सशस्त्र सैनिकों से घिरा कर्ण का निष्प्राण शरीर युद्धभूमि में जहाँ पड़ा था, कृष्ण वहाँ आ गये। कर्ण का प्रिय अश्व वायुजित अपने स्वामी के शरीर की ओर देखता हुआ खड़ा था। कृष्ण के संकेत करने पर कर्ण की मृतदेह को घेरकर खड़े उसके सैनिक दूर हट गये। सात्यकि और कृष्णने ने कर्ण के निद्रित दिखनेवाले ऊँचे, स्वर्णवर्णी शरीर को उठाकर वायुजित की पीठ पर समतोल रख दिया।

कृष्णने सात्यकिसे कहा, दानवीर अंगराज की अन्तिम इच्छा थी कि मैं ही उसका दाहकर्म करूँ- कुमारी भूमि पर। इस टेकरी की चोटी के एक विशाल पाषाण-खण्ड पर कृष्ण अपने हाथों से उसका अग्निदाह करने जा रहा - अकेला ही। टेकरी के पादतल में ही। स्वयं कृष्ण आज पहली बार एक वीर का दाहकर्म करने निकले थे- वह भी कुमारी भूमि पर? सात्यकि को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। सात्यकि वहीं रुक गया। एक हाथ में पलीता और दूसरे हाथ में वायुजित की वल्गा लिये कृष्ण टेकरी चढ़ने लगे। कुछ देर बाद टेकरी के सिर पर एक सुलगी हुई चिता दिखने लगी। कौरवों के नारी शिबिर की ओर से कुन्ती को दौड़ते हुए उस ओर जाते देखा।

कर्ण की क्षणभंगुर काया सुलग उठीं। गर्व, अहंकार, दैवी शक्ति को लांघकर विजयी होने की भावना, सब कहीं उड़ गये थे। उनके पौरुष की जय-जयकार सबके मन में गूंजती रही।

जीवन अहंकार को नहीं लांघ सकता, पर मृत्यु अहंकार को भी लांघ जाती है। कर्ण का चेहरा अहंकारशून्य होकर चिता की शिखा में पूर्वाह्न के सूर्य की तरह उज्ज्वल, निर्मल, कोमल दिख रहा है। लगा जैसे चिताग्नि में देवदर्शन कर रहे हो। मां कुन्ती और पांडवों के आंसू बहते रहे। कृष्ण खड़े कुन्ती को समझा रहे थे, पांडवों को धीर बंधा रहे थे, देवी। शक्ति और पौरुष दोनों के बन्धन के बीच होता है मनुष्य। दोनों न हों तो आदमी कर्ण की तरह सब-कुछ होते हुए भी हर कार्य में असफल होता है। पौरुष का भी एक आह्वान है। कर्ण में वह था। पर पौरुष के साथ प्रार्थना के संयोग बिना अहंकार उसे ग्रस गया। मनुष्य जब तक जीवित रहता है, अहंकार उसमें रहेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि मृत्यु ही अहंकार-नाश का उपाय है। जीवन रहते-रहते अहंकार दूर करने का उपाय है- समाप्त हो जाना, स्वयं को समर्पण कर देना।

प्रयत्न और प्रार्थना, दोनों के समन्वय में आत्मसमर्पण कर दो। तब तुम रह सकोगे, नहीं तो समाप्त हो जाओगे।

अहंकारशून्य जीवन असंभव है। पर क्षुद्र अहंकार त्याग कर महान अहंकार का पोषण करो। अर्थात हे प्रभु। मैं आपका हूं, तभी तो मेरा अहंकार है। कर्ण का था क्षुद्र अहंकार, अर्थात आत्मशक्ति का अहंकार। अर्जुन भी अहंकार-शून्य नहीं है। उसका अहंकार महान है- तपशक्ति अभिमान यह है अर्जुन की भावना। कर्ण कहता है- मैं अपने कारण बड़ा हूं। अर्जुन कहता है, मैं आपके कारण बड़ा हूँ। बस, यही दोनों में अंतर है। वरना शौर्य, वीरता, पुरुषार्थ की दृष्टि से समान हैं। दोनों की काया भिन्न थी, शक्ति एक थी।

अहंकार के कारण ही कर्ण का विनाश हुआ। अहंकार का नाश कर अर्जुन विजयी बन जीवित रहे। अत: कर्ण के लिए दु:ख न करें। कोई किसी का नाश नहीं करता। आदमी कालस्त्रोत में स्वयं नाश को प्राप्त होता है।

कृष्णने बड़ी आत्मीयता से कहा, अकेले कर्ण का ही मैंने अग्निदाह किया। किन्तु उसकी इच्छा के अनुसार ही कुमारी-कोख से आये उसके शरीर को कुमारी भूमि में अपने हाथों दहन करके आया हूँ मैं। कर्णार्जुन के घोर युद्ध में दोनों ओर की सेनाएँ लगभग समाप्त हो चुकी हैं। अब कुछ सैकड़ों की संख्या में ही सैनिक शेष रहे हैं। इन सबकी जड़-अकेला दुर्योधन अब बचा है।

युधिष्ठिर पांडव कर्ण की अन्त्येष्टि कर रहे हैं। उसी समय दुर्योधन आकर बोला रुक जाइये भ्राताश्री। आप इसका दाह संस्कार नहीं कर सकते। मैं जानता हूं भ्राताश्री मेरा मित्र आपका ज्येष्ठ भ्राता था परन्तु ये शव आपके बडे भाई का नहीं है। ये शव मेरे प्रिय राधेय का है और राधेय की चिता पर आपका कोई अधिकार नहीं है। राधेय की चिता पर केवल मेरा अधिकार है। भीम बोले, यह बात तुमने सूर्योदय हो जाने के पश्चात कही होती दुर्योधन तो मैं तुम्हारा यहीं वध कर देता। दुर्योधन बोला, तो सूर्योदय की प्रतीक्षा करो भीम। किन्तु यह शव किसी कौन्तेय का नहीं है। ये शव मेरे प्रिय राधेय का है और इसका दाह संस्कार केवल मैं करूंगा। हे अर्जुन तुमने बाण अपने भाई पर चलाये थे या मेरे मित्र राधेय पर। कृष्ण बोले, दुर्योधन ठीक कह रहे हैं बडे भैया। राधेय के शव पर इनका अधिकार हम सबसे अधिक है। दुर्योधन ने कर्ण के शव को अग्निदान किया। दुर्योधन बोला, मैं तुम्हारा शव नहीं देखना चाहता था देखो किन्तु तुम्हारे न रहने से मैं बिल्कुल अकेला रह गया हूं मित्र। किन्तु जब मृत्यु मेरे सामने खडी होगी तो मुझे तुम याद आओगे और मेरे हृदय से मृत्यु का भय निकल जायेगा। हे मित्र अपने इस घायल और अकेले रह जानेवाले मित्र का प्रणाम स्वीकार करो। हे मित्र जब तक इस संसार में जीवन रहेगा तुम मित्रता का प्रतीक बनकर सदा जीवित रहोगे। तुम धन्य हो राधेय।

मरे मित्र के साथ ही, विजय आस, विश्वास, आंसू ही आंसू बचे दुर्योधन के पास।

कृष्ण गान्धारी के पास आता है। कृष्ण बोले, प्रणाम माता गान्धारी। गान्धारी बोली, आओ गिरधर, आओ मधुसूदन। आज मैं तुम्हे देवकीनन्दन कहूंगी। आओ देवकीनन्दन। कृष्ण बोले, आप जिस नाम से भी पुकारेगी माता, मैं बोलूंगा। गान्धारी बोली, ये तो तुम्हे याद ही होगा देवकीनन्दन कि १७ दिन पहिले मैं सौ पुत्रों की मां थी और आज केवल एक पुत्र की मां रह गई हूं। सौ और एक के बीच केवल शव ही शव हैं। देवकीनन्दन तुम तो उन शवों को पहिचानते होंगे। वे मेरे पुत्रों के शव थे। कृष्ण बोले, हां माते। उन शवों में एक शव ऐसा भी है जिसे आप पहिचानते हुये भी नहीं पहिचानती और वो शव है ज्येष्ठ कौन्तेय का। गान्धारी बोली, क्या युधिष्ठिर... कृष्ण बोले, नहीं माता। बडे भैया ज्येष्ठ कौन्तेय नहीं हैं। ज्येष्ठ कौन्तेय वो था जिसे हम सब राधेय के नाम से जानते थे और समझते थे। इसलिये ऐसा नहीं है माता कि शवों के इस

ढेर में मेरी बुआ का कोई योगदान ही नहीं हो। गान्धारी बोली, वो कुन्तीपुत्र था। कृष्ण बोले, हां माते इसलिये यह न सोचिये माता कि आपके दुर्योधन के पक्ष में मेरी बुआ के पक्ष से कोई युद्ध नहीं कर रहा था। दुर्योधन को महत्वाकांक्षा का रोग है, राधेय को निष्ठा का रोग था। वो सब कुछ जानते हुये भी आपके पुत्र दुर्योधन के पक्ष में स्वयं अपने भाइयों के विरुद्ध युद्ध करते हुये वीरगति को प्राप्त हो गया। इसलिये हे माता शव न गिनिये। गान्धारी बोली, यह तुम कह सकते हो देवकीनन्दन क्योंकि तुम मां नहीं हो। विजय के उपरान्त द्वारिका जाना तो देवकी से पूछना कि कोख उजड जाने की पीडा कैसी होती है? यह पीडा जन्म पीडा से कहीं अधिक होती है।

जितने दिन वे पृथ्वी पर रहे उतने दिन पृथ्वी पर भी उन्होंने सूर्य का काम किया। उनके विपक्षी सदा उनके भय से तपते ही रहे। वे पृथ्वी के भूषण थे। मनुष्य में रत्न थे। आज भी जब दान का प्रसङ्ग चलता है तो लोग कहते हैं ये तो कर्ण के समान दानी है। लोगों का विश्वास है कि अरुणोदय के समय कर्ण का पहरा रहता है। उस समय वे सुवर्ण की वृष्टि करते हैं। जो अरुणोदय में महादानी कर्ण का स्मरण करता है, सूर्यदेव को प्रणाम करता है उसे दारिद्र दु:ख कभी नहीं सताता। वह सदा सुखी रहता है। सूर्य स्वरूप प्रतापी कर्णके पुनीत चरणों में प्रणाम।

दुर्योधन ने पांडवों के साथ अधर्म किया, अत: हमेशा चिन्ता और दु:ख में रहकर उनकी विभूति से जलता रहा। प्रजा के साथ उसने धर्म का बर्ताव किया, उसका फल यह हुआ कि संसार के सभी बड़े राजाओं ने उसके कहने से अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। प्रजा ने उसका अन्त तक साथ न छोड़ा और धर्मपूर्वक क्षत्रिय-धर्म पालने के कारण मरकर उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

धर्मराज युधिष्ठिर ने धर्माचरण किया। इसका फल यह है कि आज वे प्रात:स्मरणीय बन गये। उनके स्मरण मात्र से ही धर्म की वृद्धि बताई जाती है। प्रात: उठते ही हम कहते हैं धर्मोविवर्धति युधिष्ठिर कीर्तनने। इतने धर्मात्मा साक्षात् धर्मावतार होने पर भी उन्होंने झूठ बोला। अश्वत्थामा की मृत्यु का असत्य समाचार कहकर अधर्माचरण किया तो उसके कारण उनका रथ आकाश में न चलकर पृथ्वी पर चलने लगा और अन्त में भी इसी अधर्म के कारण उन्हें नरक भी देखना पड़ा।

महात्मा कर्ण के जीवन में हम धर्माचरण को सर्वतोमुखी पाते हैं। वे ईश्वर भक्ति में, त्याग में, दान में, कृतज्ञता में अपने समान ही थे। उन्होंने अधर्मपूर्वक परशुरामजी से विद्या प्राप्त की, वह उनके काम न आई। द्रौपदी को भरी सभा में न कहने योग्य वचन कहे, उनका स्मरण दिलाकर कृष्ण ने उन्हें समरभूमि में लज्जित किया। इन एक-दो बातों को छोड़कर उनके सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वे एक आदर्श महात्मा थे। दानवीर तो संसार में तबसे आज तक ऐसा हुआ ही नहीं। महाभारत में उनका उल्लेख प्रसङ्गवश आया है। अन्य पुराणों में इनकी दानवीरता के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें आती है।

एक बार अर्जुन ने पूछा- कृष्ण। आप कर्ण की ही इतनी प्रशंसा क्यों किया करते हैं? संसार में और भी तो बहुत-से दानी हैं? कृष्णने कहा- हे पार्थ। कितने भी दानी क्यों न हों, कर्ण को कोई पा नहीं सकता। उसके यहाँ से कभी कोई याचक विमुख होकर नहीं लौटता। अर्जुन ने कहा, प्रभो। मैं उसकी दानवीरता देखना चाहता हूँ। कृष्णने उत्तर दिया, ठीक है।

अर्जुन के फिर दुबारा स्मरण दिलाने पर कृष्णने अर्जुन को कर्ण की दानवीरता की विशेषता दिखाने का निश्चय किया। दोनों ने ब्राह्मणों का वेष बनाया और सबसे पहले धर्मराज के यहाँ पहुँचे।

ब्राह्मण वेषधारी प्रभु ने द्वारपाल से कहा, दो ब्राह्मण आये हैं, धर्मराज को सूचना दे दो। द्वारपाल दौड़कर गया। धर्मराज से जाकर उसने निवेदन किया- महाराज की जय-जयकार हो। दो ब्राह्मण ड्योढ़ियों पर बैठे हैं। कुछ याचना करने आये

हैं, ऐसा प्रतीत होता है। उनके लिये क्या आज्ञा है? धर्मराज की आज्ञा हुई। उन्हें सत्कारपूर्वक ले आओ। जो आज्ञा कहकर द्वारपाल चला गया। थोड़ी देर में दो ब्राह्मणों ने प्रवेश किया। धर्मराज ने उनका यथोचित सत्कार किया। जब ब्राह्मण स्वस्थ हो गये, यात्रा का श्रम मिट गया, तब धर्मराज ने पूछा- आप लोगों ने मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ किया। यदि आपके पधारने का कोई विशेष कारण हो तो कृपया आप आज्ञा करें। विप्र-वेषधारी कृष्णने कहा- राजन्। हम आपसे कुछ याचना करने आये हैं। धर्मराज ने कहा, आज्ञा हो प्रभो। कृष्ण बोले, राजन्। हमें कई मन चन्दन की अभी आवश्यकता है, आप हमें दें। बहुत अच्छा प्रभो। मैं अभी प्रबन्ध करता हूँ। यह कहकर धर्मराज ने चारों ओर बाजार में सेवक दौड़ाये। कृष्ण की इच्छा ही तो थी, बाजार में चंदन मिला ही नहीं।

इधर-उधर देखते हुए कृष्ण बोले, महाराज, देर हो रही है।

उदास मन से धर्मराज ने कहा- विप्रवर। मुझे दु:ख है। आज नगर भर की दुकानें तलाश कर लीं, कहीं चन्दन मिलता ही नहीं। अब जैसी आप आज्ञा करें। कोई और वस्तु माँगिये। द्रव्य जितना कहें मैं दे दूँगा।

हमें द्रव्य नहीं चाहिये। चन्दन की ही आवश्यकता थी। नहीं है तो हम जाते हैं। यह कहकर दोनों ब्राह्मण खिन्न मन से चल दिये। धर्मराज को भी बड़ा दु:ख हुआ।

आज सात दिनों से बराबर वर्षा हो रही है। चारों ओर पानी-ही-पानी दिखाई देता है। दो ब्राह्मण जाड़े में आधी रात्रि के समय भीगते हुए कर्ण के यहाँ पहुँचे। कृष्ण ने आकाश में यह शब्द कहा, दानवीर कर्ण का यही भवन है क्या? भीतर से दौड़ते हुए वसुषेण कर्ण निकले- प्रभु। मैं धन्य हुआ पधारिये, सेवक की झोपड़ी यही है। कृष्ण बोले, हम बैठेंगे नहीं। कर्ण ने कहा- फिर प्रभो मैं पूजा कैसे करूँगा। एक काले से ब्राह्मण ने रूखे स्वर में कहा, जब तक हमें अपनी अभीष्ट वस्तु न मिलेगी, तब तक हम पूजा ग्रहण नहीं कर सकते। विनीत भाव से कर्ण बोले, विप्रवर। आपका स्वागत हैं। मैं ब्राह्मणों का दासानुदास हूँ। मेरा शरीर ही ब्राह्मणों के लिये अर्पित है। मेरा जीवन ही ब्राह्मणों के लिये है। कुछ क्रुद्ध स्वर में वे ही उत्पाती ब्राह्मण बोले, हमें शरीर नहीं चाहिये। हम बधिक नहीं कि किसी के प्राण लेते हों।

कर्ण ने कहा, आज्ञा कीजिये, क्या चाहिये? जल्दी से ब्राह्मण बोले, हमें अभी कई मन सूखा ईंधन चाहिये, जलाने के लिये। बिल्कुल सूखा हो- उसमें पानी का छींटा भी न पड़ा हो। देर होगी तो हम चले जायँगे।

सात दिन से लगातार वर्षा हो रही थी। सूखा ईंधन तो बहुत था। किन्तु वह महल से दूर था। अब भी वर्षा हो रही है। यहाँ तक लाने से भीग जायगा। क्षणभर में सोचकर कर्ण बोले, आप थोड़ी देर बैठें, मैं ईंधन का अभी प्रबन्ध किये देता हूँ पानी की उसमें एक छींट भी न पड़ेगी। यह कहकर जल्दी से कर्ण ने अपना धनुष उतारा। उस पर डोरी चढ़ाई। उनका शयन-भवन अत्यन्त सुन्दर था। वह दुमजला था। नीचे उसकी छत में चन्दन की लकड़ियाँ लगी थीं। उनकी किवाड़ें चन्दन की थीं। पलङ्ग के पाये चन्दन के थे। क्षणभर में बाण मारकर उन्होंने छत की कड़ियाँ गिरा दीं, चन्दन के खम्भे तोड़ दालें, किवाड़ें उखाड़ दीं, पलङ्ग तोड़ दिया। सेवकों को आज्ञा हुई, क्षणभर में इन्हें चीड़-फाड़ दो। बात-की-बात में पचासों मन चन्दन की लकड़ियाँ तैयार हो गईं। कर्ण ने कहा- प्रभो। ईंधन तैयार है?

झगड़ालू ब्राह्मण ने पूछा, इतनी जल्दी ईंधन कैसे आ गया? बाहर से आने से तो गीला हो गया होगा। कर्ण ने विनीत भाव से उत्तर दिया, नहीं प्रभो। ईंधन बाहर से नहीं आया। भवन में ही था। ब्राह्मण आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले, घर में। घर में इतना ईंधन कहाँ से आ गया? नीची दृष्टि करके कर्णने कहा, मेरी छत की कड़ियाँ, पलङ्ग सब लकड़ी ही के तो थे।

आश्चर्यचकित होकर ब्राह्मण ने कहा- यह तुमने कैसी मूर्खता का काम किया? इतनी बहुमूल्य चीजें तोड़-फोड़ डाली इतनी बड़ी हानि क्यों की? ऐसा कष्ट क्यों उठाया?

कर्ण ने आँखों में आँसू भरकर कहा- हे मेरे स्वामी। कष्ट तो तब होता जब मेरे द्वार से ब्राह्मण निराश होकर लौट जाते। उनकी अभिलषित वस्तु प्राप्त न होती। सबसे बड़ी हानि तो यह होती कि मैं ब्राह्मणों की मनोकामना पूर्ण न कर पाता, अब तो मुझे महान सुख है। मुझे तो परम लाभ हुआ। ये निर्जीव लकड़ियाँ किसी उपयोग में तो आ गईं, इनका इससे बड़ा उपयोग क्या हो सकता है कि मेरे पूजनीय अतिथि गुरु की इनके द्वारा सेवा हो और उन्हें सुख प्राप्त हो सके। मकान तो कल फिर बन जायगा, किन्तु अतिथि विमुख होकर लौट जाते, यह तो मुझे जीवन भर खलता रहता।

ब्राह्मण प्रसन्न हुए। उन्होंने कर्ण को आशीर्वाद दिया- तुम सदा, सर्वदा, सर्वत्र सबकी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हो। तुम्हारी रूचि सदा धर्म में रहे। तुम्हारे यहाँ से कोई याचक विमुख न लौटने पावे। संसार में तुम्हारा यश सदा रहे।

कर्ण बड़े विस्मित हुए, देखते-ही-देखते दोनों ब्राह्मण अन्तर्धान हो गये।

कृष्ण ने अर्जुन से पूछा- देखी तुमने कर्ण की दानवीरता? क्या ऐसी उदारता संसार में सम्भव हैं। धर्मराज के महलों में कितनी चन्दन की वस्तुएं थीं। उन्हें चन्दन माँगने पर भी चन्दन की चीजों की याद नहीं आई। कर्ण को ईंधन माँगने पर चंदन की लकड़ियाँ ईंधन ही दिखाई दीं। इसे ही सच्चा त्याग और दानवीरता कहते हैं। यह अभ्यास से आनेवाली चीज नहीं है। देने की शक्ति, मीठा बोलना, धीरता और उचितज्ञता ये चारों स्वाभाविक गुण हैं। इसी तरह दूसरा दृष्टान्त अर्जुन तुम्हें बताता हूँ।

कर्ण मारे गये, कृष्ण बड़े उदास से दिखाई देते थे। वे बार-बार लम्बी-लम्बी साँसे ले रहे थे। अर्जुन ने पूछा, प्रभो। आज आप दुखी से मालूम पड़ते हैं। कृष्ण बोले, हाँ दु:खी तो हूँ। अर्जुन ने कहा- इसका कारण जानना चाहता हूँ। कारण आज क्या जानोगे पार्थ। मेरा हृदय रो रहा है। आज संसार का एक अद्वितीय दानवीर उठ गया। कर्ण के बराबर त्यागी, दानी, शूरवीर संसार में अब कोई नहीं रहा। अर्जुन को मन-ही-मन बुरा लगा। अपने भाव को रोककर उन्होंने कहा- सचमुच वे शूर थे, किन्तु आप उनकी सदा इतनी प्रशंसा क्यों किया करते हैं? उनके पास अटूट धन था मनमाना खर्च करते थे, किन्तु संसार में ऐसा कोई और दानी और शूरवीर है ही नहीं, यह तो आपकी अत्युक्ति है।

कृष्ण ने कहा- पार्थ। मेरी अत्युक्ति नहीं, ध्रुव सत्य है। पास में पैसा हो और उससे खूब दान धर्म करे तो यह तो पैसे की शोभा है, इसमें कोई विशेषता नहीं। न होनेपर भी शक्ति भर याचक को विमुख न जाने दे, यही प्रशंसा की बात है। कर्ण में ये ही सब गुण थे। अर्जुन ने कहा- कर्ण में सब गुण हैं? दृढ़ता के साथ कृष्णने कहा, हाँ है। उत्सुकता के साथ अर्जुन ने पूछा, और वीरता में? कृष्ण ने आवेश के साथ कहा, शूरवीरता में, शूरवीरता में पूछते हो तो कहना तो नहीं चाहता था, किन्तु कहता हूँ- तुम उसके पासङ्ग भी नहीं हो? अर्जुन का चेहरा उतर गया उसने कहा, कृष्ण। मुझे आपकी बातों में सन्देह हो रहा है। कृष्ण ने कहा, अच्छा, चलो चलें। अभी कर्ण बिल्कुल मरे थोड़े ही हैं। अभी तक उनके शरीर में थोड़े प्राण शेष हैं। अभी वे जीवित हैं, तुम्हें मैं उनके गुणों को दिखाऊँगा। यह कहकर कृष्ण चलने को तैयार हुए।

कृष्ण ने अपना वही पुराना वृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाया। अर्जुन भी छिपकर उनके पीछे-पीछे चले। कमर झुकाकर लाठी टेकते हुए, खाँसते-खाँसते रणभूमि में पहुँचे। इधर-उधर भूले से भटके से चारों ओर देखने लगे और अपने आप ही कहते जाते थे- सुना है, आज अर्जुन ने दानवीर कर्ण को मार डाला है। संसार का एक महान् दानवीर उठ गया। संसार दानवीर से शून्य हो गया। पता नहीं यशस्वी कर्ण मर गये या जीवित हैं। मैं तो बड़ी आशा लगाकर उनके पास आया था।

कर्ण के कानों में ये शब्द पड़े। उस समय उनके सम्पूर्ण शरीर से रुधिर बह रहा था। उनका कटिदेश बिलकुल घायल हो रहा था। पैर निर्जीव थे। गला भी आधा कट गया था। थोड़े प्राण शेष थे। वे अन्तिम साँस ले रहे थे और बाणों के घाव से व्याकुल थे। उन्होंने बड़े कष्ट से अत्यन्त मृदुवाणी में कहा- ब्राह्मन। मैं अभी जीवित हूँ। कौन मुझे कृतार्थ करने यहाँ समर भूमि में पधारे हैं?

वृद्ध ब्राह्मण कर्ण के समीप पहुँच गए। हाँफते-हाँफते लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए बोले, स्वस्ति, राजन्। आपका कल्याण हो। बड़े भाग्य की बात है, जो आप मुझे जीते हुए मिले। आप बड़े कष्ट में हैं? कर्ण ने ब्राह्मण का आदर किया। मन-ही-मन प्रणाम किया। बड़े कष्ट से हाथ जोड़कर पूछा- इस ऐसी समरभूमि में आपने कैसे कष्ट किया?

ब्राह्मण अन्यमनस्क भाव से बोले, क्या बताऊं, मेरे भाग्य ही फूट गये। मैं बड़ी आशा लगाकर एक कामना से आपकी प्रशंसा सुनके ढूँढ़ता-ढूँढ़ता आया हूँ। अब आपको इस दशा में देखकर मेरी आशा निराशा में परिणत हो गई। आप स्वयं ही दु:खी हैं तो मेरी अभिलाषा क्या पूर्ण करेंगे?

कर्ण ने कष्ट से धीरे-धीरे रुक-रुककर कहा- ब्रह्मन। मैं आपकी इच्छा जान तो लूँ।

ब्राह्मण ने उदास मन से कहा, क्या करोगे जानकर राजन्। आपकी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती। मेरी लड़की सयानी हो गई हैं। कुछ धन की आशा से आपके निकट आया था। थोड़ा भी धन मिल जाता तो मेरा काम चल जाता। कर्ण ने विनीत भाव से कहा, ब्रह्मन। मेरे घर चले जायँ। मेरी स्त्री आपको यथेच्छ धन देगी। ब्राह्मण ने कहा, मुझमें इतनी शक्ति कहाँ? फिर मैं दूसरे से माँगना भी तो नहीं चाहता। मेरा समल्प तो केवल आपसे ही लेने का था। आपके पास नहीं है तो मैं जबरदस्ती थोड़े ही करता हूँ। कर्ण ने कहा, विप्रवर। मेरी स्त्री का धन मेरा है। आप जैसे बने तैसे चले जायँ, जितना आप माँगेंगे, उतना सुवर्ण मिलेगा। ब्राह्मण बोला, आप पर नहीं है तो सीधे से मनाकर दीजिये। मैं चला जाऊँगा। मैं लोभी ब्राह्मण थोड़े ही हूँ। मैं बहुत धन का भूखा भी नहीं हूँ। आपके हाथ से थोड़ा भी मिल जाता तो मैं सन्तुष्ट होकर चला जाता। मैं हर किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता। आप कष्ट न करें, मैं जाता हूँ।

कर्ण ने क्षणभर सोचा। मरते समय ब्राह्मण निराश होकर जाय। कर्ण तेरे जीवन को धिक्कार है। उन्हें याद आ गई। मेरे दाँतों में सुवर्ण लगा है। स्मरण आते ही उनका मुख-कमल खिल उठा। प्रसन्नता के स्वर में वे बोले, ब्रह्मन। आप निराश न हों। मेरे दांत में सुवर्ण लगा है। पास के इस पत्थर को उठाकर मेरे दाँतों में मारिये आपको सुवर्ण मिल जायगा। आज तक मेरे यहाँ से कोई भग्न-आशा नहीं लौटा है। आप निराश होकर मेरे मरने के समय न जायँ।

कानों पर हाथ रखते हुए बूढ़े ब्राह्मण गरजकर बोले, शिव, शिव। आप यह कैसा अनर्थ करने के लिये मुझसे कह रहे हैं। मैं ब्राह्मण हूँ या हत्यारा। आपके दाँत तोड़कर सुवर्ण लूँ। ऐसा हिंसा का दान मुझे नहीं चाहिये। आप मुझे जवाब दें। मैं लौट जाऊँगा। ऐसा पाप कर्म कभी न करूँगा।

कर्ण बड़े दुखी हुए। वे बोले, अच्छा आप नहीं तोड़ते तो वह पास में जो पत्थर का टुकड़ा पड़ा हैं, उसे ही मुझे उठाकर दे दीजिये। मैं तोड़कर आपको दे दूँगा।

ब्राह्मण ने झूठे आश्चर्य के साथ कहा, राजन्। लोग जो यह कहा करते हैं कि मृत्यु के समय मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, यह ठीक ही मालूम पड़ती है। आप धर्मात्मा होकर मुझे ऐसी आज्ञा दे रहे हैं। आपका काम करके तब मैं दान लूँ, ऐसी मजदूरी करना मैं नहीं चाहता।

कर्ण बड़े धर्म संकट में पड़े। उन्होंने हाथ से कटे अपने सिर को दबाया और बड़े कष्ट से धीरे-धीरे हिलते हुए, सरकते सरकते एक पत्थर के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने पत्थर पर जोर से मुँह मारा। सब दाँत टूटकर गिर पड़े। मुख से रक्त की धारायें बहने लगीं। रक्त में भीगा हुआ सुवर्ण निकालकर उन्होंने ब्राह्मण को देना चाहा। किन्तु ब्राह्मण ने हाथ नहीं बढ़ाया। वे ब्राह्मण साधारण ब्राह्मण थोड़े ही थे। दिवाला निकालनेवाले निर्दयी ब्राह्मण थे। उन्होंने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। कर्ण ने कहा, ब्रह्मन। इस सुवर्ण को ग्रहण कीजिये। ब्राह्मण अन्यमनस्क भाव से बोले, क्या बतावें राजन्। आपको इतना कष्ट भी दिया फिर भी मेरा मनोरथ सिद्ध होते नहीं दीखता? कर्ण ने कहा, क्यों क्या हुआ? इस सुवर्ण से आप अपना काम चलावें। क्या अधिक चाहिये? ब्राह्मण बोले, मुझे अधिक की आवश्यकता नहीं। काम तो मैं इतने से भी चला लूँगा। ब्राह्मण के हाथ पर उच्छिष्ट और रक्तरंजित सुवर्ण देकर आप पाप के भागी क्यों बन रहे हैं? मैं उच्छिष्ट सुवर्ण न लूँगा। कर्ण ने कहा, सुवर्ण क्या उच्छिष्ट, विप्रवर? सोना, चाँदी पानी से ही पवित्र हो जाते हैं?

हाँ ठीक हैं, धोने से पवित्र अवश्य हो जाते, किन्तु आप धोकर दें तब तो। अपने हाथ से धोइये, मुँह के सुवर्ण को जल में प्रक्षालन कीजिये। तब शुद्ध-चित्त से प्रेमपूर्वक दान करें।

कर्ण बड़े समट में पड़े। यहाँ समरभूमि में जल कहाँ। थोड़ी देर में उन्हें याद आई। उन्होंने जल्दी से कहा- ब्राह्मण। मेरा वह धनुष उठा दीजिये। मैं अभी धोता हूँ। ब्राह्मण जल्दी से बोल उठे- फिर वही बात। मुझ बूढ़े पर तुम्हारा धनुष कैसे उठेगा। तुम ब्राह्मण से धनुष उठाने को कहते हो लज्जा नहीं आती?

कर्ण ने यह उत्तर सुनकर क्रोध नहीं किया। उन्हें अपने ऊपर बड़ी लज्जा आई। बड़े कष्ट से वे सरकते हुए धनुष के समीप पहुँचे। एक हाथ उनका कुछ काम देने योग्य था। उससे धीरे-धीरे उन्होंने धनुष को उठाया। धनुष की एक नोंक जमीन पर रखी, दूसरी अच्छे हाथ से दूसरे सिरे को नवाया। दाढ़ों से डोरी चढ़ाई। एक सींक को मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दाढ़ों से उन्होंने उसे छोड़ा। देखते-ही-देखते पाताल से भगवती-गङ्गा निकल आई। उसमें उन्होंने हाथ धोये। उस सुवर्ण को उन्होंने ब्राह्मण के हाथ पर ज्यों ही रखा त्यों हीं आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। गन्धर्व गाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, देवता दुन्दुभी बजाने लगे। चारों ओर से दानवीर कर्ण की जय, महात्मा वसुषेण की जय, शूरवीर वृषभ की जय का गगन-भेदी शब्द सुनायी पड़ने लगा। कर्ण का यश संसार में छा गया।

भगवान् ने उन्हें साक्षात् अपने दर्शन दिये। सामने श्यामसुन्दर की मनोहर मूर्ति को देखकर कर्ण एकटक भाव से आँखें फाड़-फाड़कर देखते रहे। उनके पलक नहीं गिरते थे, वे अनिमेष भाव से मदनमोहन की रूपमाधुरी का पान करने लगे। उनकी आँखें ऐसी फटीं कि वे फटी-की-फटी ही रह गईं, फिर कभी बन्द नहीं हुई? महात्मा कर्ण का शरीर अब नहीं रहा, किन्तु उनकी धवलकीर्ति से दिशायें अब भी पूरित हैं और तब तक पूरित रहेंगी, जब तक पृथ्वी पर चन्द्र, सूर्य विद्यमान रहेंगे।

इति कर्ण पर्व

*** हर जलते दीपक तले अंधेरा होता है, हर रात के पीछे एक सबेरा होता है।**
लोग डर जाते हैं मुसीबत को देखकर, हर मुसीबत के पीछे सुख का सबेरा होता है।
*** संतोष का बांध जब टूटता है, तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है।**
*** सुखभोग की लालसा आत्मसम्मान का सर्वनाश कर देती है।**
*** मनुष्य में उच्च होने की आकांक्षा की कोई सीमा नहीं है।**
*** रक्त से कभी कोई पशु-पिशाच व मनुष्य की प्यास नहीं बुझती।**

शल्य पर्व

टूटी हुई दोस्ती जुड़ सकती है मगर कायम नहीं हो सकती।

* विषय उपक्रम *

अठारहवें दिन का युद्ध	३९६ से ४६८
१) शल्य की सेनापति पद पर नियुक्ति	३९६
२) शल्य का वध	४००
३) शकुनि का वध	४०५
४) दुर्योधन का सरोवर में छुप जाना	४१२
५) बलरामजीका तीर्थयात्रा से लौटकर आना	४२५
६) दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध और दुर्योधन का वध	४३४
७) पांडव कौरवोंके शिबिर में	४४९
८) कृष्ण का हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारी को सान्त्वना देना	४५८
९) अश्वत्थामा का सेनापति पद पर अभिषेक और दुर्योधन की मृत्यु	४६२

दर्पण में आदमी अपना चेहरा देख सकता है चरित्र नहीं।

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिंदगानी फिर कहां। जिंदगी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहां॥

ईश्वर उस प्राणी के खून या मांस से सन्तुष्ट नहीं होता जिसे बलि या कुर्बानी कहा जाता है, बल्कि वह जो तुम्हारी धर्म निष्ठा से प्रसन्न होता है।

शल्य पर्व

अठारहवें दिन का युद्ध

१) शल्य की सेनापति पद पर नियुक्ति

युद्ध का अठारहवाँ दिन कुरुक्षेत्र के शाश्वत क्षितिज पर उग आया। उस दिन हिमालय-यात्रा से लौटकर बलराम उद्धवदेव सहित कृष्ण के शिबिर में आये थे। कौरव पक्ष की सेना अब अत्यल्प रह गयी थी। पाण्डव-सेना की संख्या उससे भी कम थी। किसी भी प्रकार के चक्रव्यूह का अब प्रश्न ही नहीं उठ रहा था। कृष्ण की तीक्ष्ण बुद्धि का चक्रव्यूह पाण्डव-सेना की संख्या कम होते हुए भी विजय को पाण्डव पक्ष की ओर खींच लाया था। बचे-खुचे सैनिकों के समक्ष दुर्योधन ने मद्रराज शल्य का सेनापति पद के लिए अभिषेक किया। उसके विजिगीषु मन की ऐंठन इतनी दृढ़ थी कि अब भी उसे अपनी सफलता पर विश्वास था।

धृतराष्ट्रने पूछा- संजय। कौरव-सेनाका संचालन करनेवाले सूतपुत्रके मारे जानेपर मेरे पुत्रोंने क्या किया? क्या कारण है कि मेरे पुत्र जिस-जिसको सेनापति बनाते हैं, उसी-उसीको पाण्डवलोग थोड़े ही समयमें मार डालते हैं? तुम लोगोंके देखते-देखते भीष्म मारे गये, द्रोणकी भी यही दशा हुई और अब प्रतापी कर्ण भी जाता रहा। महात्मा विदुरने मुझसे पहले ही कह दिया था कि दुर्योधनके अपराधसे प्रजाका नाश हो जायगा। उन्होंने जो कुछ कहा वह ज्यों-का-त्यों आज सत्य हो रहा है। उस वक्त प्रारब्धवश मेरी बुद्धि मारी गयी थी, इसीलिये मैंने उनके कहनेके अनुसार काम नहीं किया। सञ्जय। अब मेरे उस अन्यायके फलका पुन: वर्णन करो। कर्णके मारे जानेपर कौन मेरी सेनाका प्रधान बना? किस महारथी ने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका सामना किया?

संजयने कहा- महाराज। कौरव और पाण्डवोंके आपसमें भिड़नेसे जो महान् जनसंहार हुआ, उसके बारेमें जान ले। नौकासे व्यापार करनेवाले व्यापारी जैसे अगाध जलमें नाव टूट जानेपर घबरा जाते हैं, उसी प्रकार कौरवोंके आश्रयभूत कर्णके मारे जानेपर आपके सैनिक थर्रा उठे। वे अनाथकी भाँति रक्षक ढूँढने लगे। संध्याके समय अर्जुनसे परास्त होकर जब आपकी सेना शिबिरमें लौटी, उस समय कर्णकी मृत्युसे डरकर आपके सभी पुत्र भाग रहे थे। उनके कवच नष्ट हो गये थे। किस दिशामें जाना है, इसका भी उन्हें पता नहीं था; वे सुध-बुध खो बैठे थे। वे आपसमें एक-दूसरेको ही मारने लगे। बहुत-से महारथी भयके कारण घोड़ों, हाथियों और रथोंपर सवार होकर इधर-उधर भागने लगे। उस भयंकर संग्राममें हाथियोंने रथ तोड़ डाले, महारथियोंने घुड़सवारोंको मार डाला तथा रणभूमिसे भागनेवाले पैदलोंको घोड़ोंने कुचल डाला।

कर्ण की मृत्यु के पश्चात् शल्य आया था दुर्योधन के पास। भयभीत मूषक के समान काँप रहा था। उसने कहा था, दैव पांडवों के अधीन होकर काम कर रहा है। तुम्हारी विजय के लिए प्रयत्न करनेवाले सारे योद्धा शत्रुओं के हाथों बलपूर्वक मारे गए। अब युद्ध बंद करो और सेना सहित शिबिर में चलो। शल्य के शब्दों की ध्वनि बहुत देर तक दुर्योधन के कानों में गूँजती रही थी। वे शब्द कह रहे थे कि शल्य मन-ही-मन डर रहा है कि यदि उसने भी दुर्योधन की विजय के लिए युद्ध किया तो वह भी वैसे ही मारा जाएगा, जैसे अन्य लोग मारे गए हैं।

इसी समय कृपाचार्य आकर दुर्योधनसे बोले, राजन्। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, महारथी कर्ण, जयद्रथ, तुम्हारे बहुत-से भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण ये सब तो मारे जा चुके; अब कौन बच गया है, जिसका हम आश्रय ग्रहण करें? जिन वीरोंपर युद्धका भार रखकर हम राज्य पानेकी आशा करते थे, वे तो शरीर छोड़कर वेदवेत्ताओंकी गतिको प्राप्त हो गये।

जब सब लोग जीवित थे, तब भी अर्जुन किसीके द्वारा परास्त नहीं हुए। कृष्ण-जैसे सारथीके होते हुए उन्हें देवता भी नहीं जीत सकते। भीमका सिंहनाद, पाञ्चजन्यकी भयंकर आवाज और गाण्डीव धनुषकी टंकार सुनकर कौरवोंका दिल बैठ जाता है। अर्जुन अस्त्रविद्यामें कुशल है; उन्होंने तुम्हारी सेनाको उसी प्रकार भस्म किया है, जैसे भयंकर आग घासकी ढेरीको जला डालती है। आज इस भयंकर संग्रामको प्रारम्भ हुए सत्रह दिन बीत गये। उस दिन जयद्रथको अर्जुनके बाणोंका निशाना बनते देखकर भी तुम्हारा कर्ण कहाँ चला गया था? अपने अनुयायियोंके साथ आचार्य द्रोण, मैं, तुम, कृतवर्मा तथा भाइयोंसहित दु:शासन ये लोग कहाँ गये थे? सब वहीं तो थे, पर अर्जुनपर किसीका जोर चला? तुम्हारे सम्बन्धियों, भाइयों, सहायकों तथा मामाओंको उन्होंने अपने पराक्रमसे जीत लिया और तुम्हारे देखते-देखते सबके सिरपर पैर रखकर जयद्रथको मार डाला। अब हम किसका भरोसा करें? यहाँ कौन ऐसा पुरुष है, जो अर्जुनपर विजय पा सकेगा? उधर सात्यकि और भीमका जो वेग है, वह समस्त पर्वतोंको विदीर्ण कर सकता है, समुद्रोंको सुखा सकता है। राजन्। द्यूतसभामें भीमने जो बात कही थी, उसे उन्होंने सत्य करके दिखा दिया; आगे भी वे ऐसा ही करेंगे। पाण्डव सज्जन हैं; किंतु तुमलोगोंने उनके साथ अकारण ही बहुत-से अनुचित व्यवहार किये; उन्हींका अब फल मिल रहा है। दुर्योधन। अब तुम अपनेको बचाओ। बृहस्पतिकी बतायी हुई यह नीति है कि जब अपना बल कम अथवा बराबर जान पड़े तो शत्रुके साथ संधि कर लेनी चाहिये। लड़ाई तो उस वक्त छेड़नी चाहिये, जब अपनी शक्ति शत्रुसे बढ़-चढ़कर हो। बल और शक्तिमें हम पाण्डवोंसे कम हो गये हैं, अत: मेरी रायमें तो अब उनसे संधि कर लेना ही उचित है। यदि राजा युधिष्ठिरके सामने झुकनेसे हमलोग राज्य पा जायँ तो इसीमें अपनी भलाई है। मूर्खतावश हार जानेमें कोई लाभ नहीं है। राजा धृतराष्ट्र और श्रीकृष्णके कहनेसे युधिष्ठिर तुम्हें राज्य दे सकते हैं। इसलिये मैं संधि करनेमें ही कुशल देखता हूँ, पाण्डवोंके साथ लड़नेमें कोई लाभ नहीं है। यदि इस समय मेरा कहना नहीं मानोगे तो मरते समय तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी।

दुर्योधनने कृपाचार्यसे कहा, विप्रवर। एक हितैषीको जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने कह सुनाया। यद्यपि हितचिन्तक होनेके नाते आपने मेरे भलेके लिये ही यह बात बतायी है, तब भी यह मुझे पसंद नहीं आती- ठीक उसी तरह, जैसे मरनेवाले रोगीको दवा अच्छी नहीं लगती। राजा युधिष्ठिर महान् धनी थे, मैंने उन्हें जूएमें जीतकर दर-दरका भिखारी बनाया और राज्यसे बाहर निकाल दिया; अब वे मुझपर कैसे विश्वास करेंगे? श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किंतु मैंने उनके साथ धोखा किया; अब वे भी मेरी बात कैसे मानेंगे? सभामें बलात्कारपूर्वक लायी हुई द्रौपदीने जो विलाप किया था तथा पाण्डवोंका जो राज्य छीन लिया गया था, उसके लिये श्रीकृष्णको अबतक अमर्ष बना हुआ है। जबसे श्रीकृष्णने अपने भानजे अभिमन्युका मरण सुना है, तबसे वे सुखकी नींद नहीं लेते। हमलोग उनके अपराधी हैं, फिर वे हमें क्षमा कैसे कर सकते हैं? भीमने भी भयंकर प्रतिज्ञा की है। सूखे काठकी तरह वह टूट भले ही जाय, झुक नहीं सकता। नकुल और सहदेव यमराज के समान भयंकर हैं, वे दोनों भी मुझसे वैर मानते हैं। धृष्टद्युम्न और शिखण्डीका भी मेरे साथ वैर है, फिर वे मेरे हितके लिये क्यों यत्न करेंगे? द्रौपदी एक वस्त्र पहने हुए थी, रजस्वला थी, उस अवस्थामें वह सभामें लायी गयी और दु:शासनने सबके सामने उसे क्लेश पहुँचाया। उसकी वह दीनावस्था पाण्डवोंको आज भी याद है। अब उन्हें युद्धसे रोका नहीं जा सकता। अभिमन्युका नाश करनेके बाद अर्जुनके साथ मेरा मेल कैसे हो सकता है? मैं आपकी बातोंका खण्डन या तिरस्कार नहीं करता; क्योंकि आपने स्नेहवश मेरे हितके लिये वे बातें कहीं हैं। मैं तो केवल अपना विचार प्रकट कर रहा हूँ। मेरे मनमें यही आता है कि अब संधिका अवसर नहीं रहा। मुझे अब युद्धमें ही सुन्दर नीति दिखायी दे रही है। मैं पाण्डवोंके सामने दीनतापूर्ण वचन नहीं कह सकता। मित्रों, भाइयों और दादाओंको मरवाकर यदि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा करूँ तो निश्चय

ही सारा संसार मेरी निन्दा करेगा। मित्रों और भाइयोंसे हीन होकर पाण्डवोंके पैरोंपर पड़नेसे जो राज्य मिलेगा, वह मेरे लिये किस कामका होगा? इसलिये अब मैं अच्छी तरह युद्ध करके स्वर्गको ही प्राप्त करूँगा, इसके सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब क्षत्रियोंने उसकी प्रशंसा की। सबने अपनी पराजयका शोक छोड़कर मन-ही-मन पराक्रम करनेकी ठान ली। युद्ध करनेके विषयमें सबका एक निश्चय हो गया। सबके हृदयमें उत्साह भर गया।

अश्वत्थामा युद्धकी सम्पूर्ण कलाओंका ज्ञाता था, संग्राममें तो वह यमराजके समान जान पड़ता था। सूर्यके समान तेजस्वी और शुक्राचार्यके समान बुद्धिमान् था। उसमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण थे, वह प्रत्येक कार्यमें निपुण और वैदिक ज्ञानका समुद्र था। शत्रुओंको वेगसे जीतनेवाला और स्वयं अजेय था। धनुर्वेद (व्रत, प्राप्ति, धृति, पुष्टि, स्मृति, क्षेप, अरिभेदन, चिकित्सा, उद्दीपन और कृष्टि- इन) दस अङ्गोंको तथा (दीक्षा, शिक्षा, आत्मरक्षा और इसका साधन- इन) चार पादोंको ठीक-ठीक जानता था। छः अङ्गोंसहित चारों वेदों तथा इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेदका भी उसे पूर्ण ज्ञान था।

अश्वत्थामाने दुर्योधनसे कहा- हमलोगोंमें राजा शल्य ही अब ऐसे हैं, जो उत्तम कुल, पराक्रम, तेज, यश, लक्ष्मी तथा समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं। ये ही हमारे सेनापति होने योग्य हैं। राजन्। इन्हींको सेनाध्यक्ष बनाकर हम शत्रुओंपर विजय पा सकते हैं।

तब दुर्योधन राजा शल्यके पास गया। राजा शल्यने कहा- कुरुराज। यदि तुम मुझे सेनापतिका सम्मान दे रहे हो, तो मैं तुम्हारे कथनानुसार सब कुछ करूँगा। मेरे प्राण, राज्य और धन सब कुछ तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ही हैं।

दुर्योधन बोला- मैं आपको अपना सेनापति स्वीकार करता हूँ। जैसे स्वामी कार्तिकेयने युद्धमें देवताओंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार आप भी हमारी रक्षा कीजिये।

शल्यने कहा- दुर्योधन। रथपर बैठे हुए जिन श्रीकृष्ण और अर्जुनको तुम महारथियोंमें श्रेष्ठ समझते हो, वे दोनों बाहुबलमें किसी तरह मेरी समानता नहीं कर सकते। यदि देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारा भूमण्डल ही मेरे विपक्षमें उठकर आ जाय तो मैं अकेला ही सबसे युद्ध कर सकता हूँ। फिर पाण्डवोंकी तो बात ही क्या है? निःसंदेह मैं तुम्हारी सेनाका संचालक बनूँगा और ऐसा व्यूह बनाऊँगा, जिसे शत्रु नहीं लाँघ सकते।

इस प्रकार सम्मान पाकर मद्रराज शल्य फूले नहीं समाये। उन्होंने दुर्योधनसे कहा- राजन्। आज मैं पाण्डवोंसहित समस्त पाञ्चालोंका संहार कर डालूँगा अथवा स्वयं ही मरकर स्वर्गलोकको चला जाऊँगा। आज सम्पूर्ण पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा पाञ्चाल, चेदि एवं प्रभद्रक योद्धा मेरे पराक्रमपर दृष्टिपात करें। आज मैं पाण्डव-सेनाको चारों ओर भगा दूँगा। तुम्हारा प्रिय करनेके लिये द्रोणाचार्य, भीष्म तथा कर्णसे भी अधिक पराक्रम दिखाता हुआ रणभूमिमें विचरूँगा।

अश्वत्थामाकी सम्मतिसे दुर्योधनने मद्रराज शल्यको अपना सेनापति बनाया। यह समाचार पाण्डव शिबिरमें पहुँचा तो युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा प्रमुख शूरोंके साथ श्रीकृष्णके समीप गये। इसमें एक संकोचकी बात थी; क्योंकि शल्य माद्रीके सगे भाई होनेके कारण नकुल-सहदेवके मामा थे।

वहाँ से उठकर दुर्योधन शल्य के शिबिर में आया, प्रणाम मामाश्री।

विजयी होओ राजन्। शल्य ने आगे कुछ नहीं कहा। जाने दुर्योधन के मन में क्या था। दुर्योधन बोला, आप जैसा सारथी पाकर भी कर्ण युद्ध में विजयी नहीं हो सका, यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

शल्य बोला, मैं सारथी अवश्य था किंतु योद्धा तो कर्ण ही था। शस्त्र मेरे हाथ में नहीं, उसके हाथ में था। एक बार मैंने कहा

भी लक्ष्यसंधान ठीक नहीं है, उसका संशोधन कर लो, तो उसने मुझे झिड़क दिया। बोला कि कर्ण दो बार लक्ष्यसंधान नहीं करता। मेरे जैसे अनुभवी योद्धा से इस प्रकार का व्यवहार। शल्य ने अपना क्षोभ प्रकट किया, उसकी रुचि शत्रु के वध में कम और...।

दुर्योधन ने चौंककर उसकी ओर देखा, क्या कर्ण की रुचि अर्जुन के वध में नहीं थी?

शल्य ने कहा, नहीं। ऐसा कुछ नहीं है। अर्जुन के वध में उसकी रुचि थी; किंतु उससे भी अधिक रुचि मद्र की स्त्रियों के विषय में अश्लील चर्चा करने में थी।

दुर्योधन के मन में एक धुँधला-सा चित्र उभर रहा था और बोला, तो आप लोगों में मतभेद और वाद-विवाद चलता ही रहा। कहीं रथचक्र इसलिए तो कीचड़ में नहीं फँस गया, क्योंकि रथी और सारथी वाद-विवाद में उलझे हुए थे। उनका ध्यान धरती और उसकी स्थिति की ओर गया ही नहीं।

दुर्योधन ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की, जो भी हो। मैं तो आपसे एक निवेदन करने आया था। शल्य बोला, बोलो राजन्। मैं प्रत्येक सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ। दुर्योधन बोला, माननीय नरेश। आप कल के युद्ध में कौरव सेना के प्रधान सेनापति का दायित्व सँभालें। संयत रहने का बहुत प्रयत्न करने पर भी शल्य के मुख और नेत्रों से प्रसन्नता का भाव प्रकट हो ही गया, जैसी कुरुराज की इच्छा।

श्रीकृष्णने युधिष्ठिरसे कहा, शत्रुको कभी अल्प शक्ति समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिए। आर्तायनके पुत्र शल्य अत्यन्त तेजस्वी तथा पराक्रमी हैं। उन्हें युद्धके अनेक अद्‌भुत कौशल ज्ञात हैं। मैं उन्हें भीष्म, द्रोण अथवा कर्णसे कम नहीं मानता। युद्धमें उनके सम-बल शूर मुझे आप ही लगते हैं। क्रोधमें भरे मद्रराज शल्यका सामना करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं। अत: मामा समझकर उनपर दया दिखाना उचित नहीं है। मेरी बात मानकर आप महारथी शल्यका सामना करें और क्षत्रिय धर्मपर स्थिर रहकर उन्हें मार डालें। आजके संग्राममें आपको अपना तपोबल और क्षात्रबल दिखलाना चाहिए।

कर्णके मारे जानेपर दोनों पक्षोंमें सेनाका बल कौरवोंका ही अधिक था। उनके पास पाण्डवोंसे दुगुनीसे भी अधिक सेना रह गयी थी; किन्तु पाण्डवोंमें जहाँ प्राय: सभी विद्यमान थे, कौरव सेनाके अधिकांश प्रसिद्ध महारथी मारे जा चुके थे।

मद्रराज शल्यको सेनाका नायक बनाकर महारथियोंने सम्पूर्ण सेनाके कई विभाग किये और सबको युद्धभूमिमें यथास्थान खड़ा किया। फिर कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शल्य, शकुनि तथा अन्य राजाओंने मिलकर यह शपथ ली कि हममेंसे कोई भी अकेला होकर पाण्डवोंसे न लड़े, जो अकेला ही उनसे लड़ेगा अथवा जो किसी लड़ते हुए योद्धाको अकेला छोड़ देगा, उसे पाँच महापातक और पाँच उपपातक लगेंगे। इसलिये सब एक दूसरेकी रक्षा करते हुए साथ रहकर युद्ध करें।

यह सुनकर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर बोले, भारत। मैं आर्तायनके पुत्र शल्यको बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। वे अत्यन्त पराक्रमी और महान् तेजस्वी हैं, युद्ध करनेके विचित्र-विचित्र ढंग उन्हें मालूम हैं। मेरा तो ऐसा खयाल है कि भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे योद्धा थे, वैसे ही मद्रराज शल्य भी हैं। युद्धमें उनके जोड़का दूसरा योद्धा मुझे आपके सिवा कोई नहीं दिखायी देता। इस भूमण्डलकी कौन कहे, देवलोकमें भी आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है, जो क्रोधमें भरे हुए मद्रराज शल्यको युद्धमें मार सके। दुर्योधनने जिनका सत्कार किया है, वे शल्य अजेय वीर हैं, उनके मारे जानेपर आप कौरवोंकी विशाल सेनाको भी मरी हुई ही समझिये। मेरी बात मानकर आप इस समय महारथी शल्यपर चढ़ाई कीजिये। मामा समझकर उनपर दया करने की आवश्यकता नहीं है, क्षत्रिय-धर्मको सामने रखकर उन्हें ही मार डालिये। आजके संग्राममें आप अपना तपोबल और क्षात्रबल दिखाइये। महारथी शल्यको अवश्य मार डालिये।

शल्यका सामना युधिष्ठिर कर रहे थे। भीम उनकी सहायता करने में लगे थे। कौरव पक्षसे महारथी द्रुमसेन शल्यकी सहायता करने आकर युधिष्ठिर द्वारा मारा गया।

२) शल्य का वध- युधिष्ठिर ने शल्य पर आक्रमण किया। अर्जुन आज फिर संशप्तकों, नारायणी सेना के गोपों और कृतवर्मा से भिड़ गया था। भीम ने कृपाचार्य और कांबोजों को रोक लिया। नकुल तथा सहदेव ने शकुनि से टकराना ही उचित समझा। शल्य को भी युधिष्ठिर से युद्ध अच्छा शगुन लगा। नकुल का ध्यान शकुनि से हट गया। कर्णपुत्र चित्रसेन, बार-बार उस पर प्रहार कर रहा था। नकुल ने उस पर आक्रमण किया।

इन लोगोंने शल्यकी सेनापर धावा किया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिर भी शल्यका वध करनेकी इच्छासे अपनी सेनाके साथ उन्हींपर जा चढ़े। अर्जुनने कृतवर्मा और संशप्तकोंपर चढ़ाई की। भीम और सोमकोंका कृपाचार्यपर धावा हुआ। नकुल-सहदेवने शकुनि तथा उलूकपर आक्रमण किया। इसी प्रकार कौरवोंके पक्षके कई हजार सैनिक भी पाण्डवोंपर जा चढ़े।

प्रात:काल सूर्योदय होते ही दोनों ओरके योद्धा एक दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे आगे बढ़े। फिर तो दोनों दलोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध छिड़ गया। हजारों घुड़सवार, पैदल, रथी और हाथीसवार पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरेसे भिड़ गये।

इतनेहीमें कर्णपुत्र चित्रसेनने एक भल्ल मारकर नकुलका धनुष काट दिया। फिर बाणोंसे उससे ललाटको बींधकर अनेकों तेज किये हुए बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी यमलोक भेज दिया।

किंतु नकुल विचित्र प्रकारसे युद्ध करनेवाला था, उसने चित्रसेनके बाणोंको ढालपर ही रोककर नष्ट कर दिया तथा सम्पूर्ण सेनाके सामने ही चित्रसेनके रथपर चढ़कर उसने उसके कुण्डल और मुकुटसे सुशोभित मस्तकको धड़से अलग कर दिया। चित्रसेनका मस्तक रथके पीछे भागमें गिर पड़ा। भाईको मरा देख सुषेण क्रोधमें भर गया और नकुलके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा। नकुलको रथहीन देख द्रौपदीकुमार सुतसोम दौड़कर वहाँ आ पहुँचा। नकुल उसके रथपर बैठ गया और दूसरा धनुष लेकर सुषेणसे युद्ध करने लगा।

तब तो नकुलने क्रोधमें भरकर बाणोंकी मारसे सुषेणको सब ओरसे ढक दिया और एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका मस्तक काट गिराया। यह देख कौरव-सेना भयभीत होकर भागने लगी।

शल्यने सचमुच प्रचण्ड पौरुष प्रकट किया। उनकी मारसे पाण्डव सेना युधिष्ठिरके पुकारनेपर भी मैदान छोड़कर भागने लगी। अब युधिष्ठिरने सम्राटके समान आदेश किया- नकुल और सहदेव मेरे रथ चक्रकी रक्षा त्यागकर अब अपने मामाके साथ अच्छी प्रकार युद्ध करें। मेरे रथके चक्रोंकी रक्षाका भार सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नपर रहा। अर्जुनको मेरा पृष्ठरक्षक रहना चाहिए। भीम मेरे आगे चलेंगे। इस प्रकार मैं अब शल्यको मारकर ही संग्रामसे पीछे हटूँगा।

सम्राटका आदेश सबने स्वीकार किया।

चित्रसेन के भाई उसका वध देखकर अपने स्थान से आगे बढ़ आए। उन्होंने तत्काल ही बदला चुका देने के लिए नकुल पर आक्रमण किया। पर नकुल इस समय बहुत प्रचंड हो चुका था, उसने उन दोनों का ही वध कर दिया।

तदनन्तर, अर्जुनने भी संशप्तकोंका संहार करके कौरव-सेनापर धावा किया। इसी प्रकार धृष्टद्युम्न आदि वीर भी तीखे सायकोंकी वर्षा करते हुए कौरवोंकी सेनापर चढ़ आये। उनकी मार पड़नेसे कौरव सैनिक मूर्च्छित हो गये। ऐसे ही धृतराष्ट्रके पुत्रोंने भी पाण्डव-पक्षके सैकड़ों और हजारों वीरोंका संहार कर डाला। पाण्डव बलवान थे, वे जब प्रहार करते तो उनका निशाना कभी खाली नहीं जाता था; इसलिये कौरव-सेना बहुत कष्ट पाने लगी। कौरवोंकी सेनाको क्लेशमें पड़ी देख राजा शल्य उसका उद्धार करनेके लिये आगे बढ़े। पाण्डव भी मद्रराजके पास पहुँचकर उन्हें बाणोंसे बींधने लगे।

HHH(४००)HHH

तब महाबली मद्रनरेशने युधिष्ठिरके सामने ही सैकड़ों बाण मारकर पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया। उस समय भाँति-भाँतिके अपशकुन होने लगे। पर्वतोंसहित पृथ्वी डोलने लगी। धीरे-धीरे युद्धका रूप बड़ा भयंकर हो गया। महाबली शल्यने द्रौपदीके सब पुत्रोंको, नकुल-सहदेवको और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी तथा सात्यकिको बींध डाला। उन्होंने इनमेंसे प्रत्येक वीरको बाण मारे। तत्पश्चात् शल्यने बाणोंकी झड़ी लगा दी। कितनोंको मूर्च्छा आ गयी और बहुतेरे चीखने-चिल्लाने लगे। उस समय महाबली मद्रनरेश सिंहके समान दहाड़ रहे थे।

शल्यके बाणोंसे पीड़ित हुई पाण्डव-सेना रक्षाके लिये महाराज युधिष्ठिरके पास भाग गयी। इस प्रकार सेनाको कुचलकर वे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे। यह देख युधिष्ठिरने तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके शल्यको आगे बढ़नेसे रोक दिया। तब शल्यने उनपर एक भयंकर बाण चलाया। वेगसे छूटा हुआ वह बाण युधिष्ठिरको घायल करके पृथ्वीपर जा पड़ा। अब भीमको क्रोध चढ़ा। उन्होंने शल्यको बाण मारकर बींध डाला। इसी तरह सहदेव और नकुलने बाणोंसे उन्हें घायल किया। द्रौपदीके पुत्रोंने भी बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वृष्टि की।

शल्यको बाण-वर्षासे पीड़ित होते देख कृतवर्मा, कृपाचार्य उलूक, शकुनि, अश्वत्थामा तथा धृतराष्ट्रके पुत्र ये सब एकत्रित होकर उनकी रक्षा करने लगे। कृतवर्माने बाणोंसे भीमको बींध डाला। फिर बाणोंकी बौछारसे धृष्टद्युम्नको घायल कर दिया। शकुनिने द्रौपदीके पुत्रोंका तथा अश्वत्थामाने नकुल-सहदेवका सामना किया। दुर्योधन श्रीकृष्ण और अर्जुनके मुकाबलेमें खड़ा हुआ और अपने बाणोंसे उन दोनोंको बींधने लगा। इस प्रकार कौरवोंके पक्षके योद्धाओं और शत्रुओंमें सैकड़ों द्वन्द्व युद्ध हुए। तब सहदेवने भी तलवार उठायी और शल्यके पुत्रका सिर धड़से अलग कर दिया। उधर अश्वत्थामाने किंचित मुस्कराकर द्रौपदीके पुत्रोंमेंसे प्रत्येकको बाण मारे और कृतवर्माने भीमके घोड़ोंको यमलोक पठा दिया। कृतवर्मा उस रथसे कूदकर भाग गया।

इधर, शल्य भी सोमक और पाण्डव योद्धाओंका संहार करते-करते बाणोंसे युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगे। इसी तरह भीमकी गदाका बारंबार आघात होनेपर भी शल्यको जरा भी घबराहट नहीं हुई। वे दोनों जब एक दूसरेपर गदाका प्रहार करते थे, उस समय चारों दिशाओंमें वज्रपातके समान आवाज सुनायी देती थी। उन दोनोंका पराक्रम अलौकिक था। उस समय धृतराष्ट्रके पुत्रने एक प्रास मारकर चेकितानकी छाती चीर डाली, वह खूनसे नहा उठा और प्राणहीन होकर रथकी बैठकमें गिर पड़ा। फिर चन्द्रसेनको और उनके सारथीको बाणोंसे घायल करके द्रुमसेनको बाणोंसे मार डाला।

शल्य ने अपना आक्रमण कुछ और कठोर किया। उसने युधिष्ठिर को घायल कर दिया था। युधिष्ठिर ने उसका प्रतिकार किया और शल्य को भी अनेक घाव दे दिए। पर युधिष्ठिर के शरीर से रक्त बहता देखकर भीम का मन अन्यत्र कहीं युद्ध करने से उचट गया। भीम ने शल्य को अपने बाणों से बींध डाला। नकुल और सहदेव भी युधिष्ठिर के पास आ गए। द्रौपदेय भी निकट घिर आए। सबने मिलकर शल्य और उसके रक्षकों पर आक्रमण किया। कृतवर्मा भाग गया और भीम के सम्मुख शल्य पड़ गया।

शल्यने युधिष्ठिर तथा भीमका भी कवच काट दिया। युधिष्ठिरका धनुष भी कट गया। कृपाचार्यने उनके सारथीको भी मार डाला। उनके रथके अश्व मारे गये। इस संकटमें भीमने सहायता की। उन्होंने शल्यका धनुष काट दिया और सारथीको मारकर रथ-अश्व सबको नष्ट कर दिया।

भीम उठ खड़ा हुआ और उसने गदा उठाकर शल्य को ललकारा। किंतु शल्य वहाँ नहीं था।

दुर्योधन ने एक प्रास से चेकितान को गहरी चोट पहुँचाई थी। लगा चेकितान मूर्च्छित हो गया है, किंतु वह उस मूर्च्छा

से कभी नहीं जागा। शल्य को कृपाचार्य पुन: लौटा लाए थे। उनके साथ शकुनि और कृतवर्मा भी थे। अर्जुन को अश्वत्थामा और सुशर्मा के संशप्तकों ने अब तक उलझा रखा था। जाने क्यों अर्जुन इन लोगों पर अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं करता था। कृष्ण भी उसे कुछ नहीं कहते थे। वह लौकिक बाणों से सुशर्मा को समाप्त करना चाहता था। परिणाम यह था कि वह और किसीसे युद्ध करने के लिए कभी खाली ही नहीं होता था। अन्यथा युधिष्ठिर को चार-चार महारथियों से घिरे हुए, उसे उनकी सहायता के लिए आना चाहिए था। शल्य ने युधिष्ठिर को बाणों से बींध डाला था। युधिष्ठिर ने भी शल्य पर नाराच चलाए थे।

युधिष्ठिर ने अपने भल्ल से शल्य का ध्वज काट दिया और शल्य ने फिर से युधिष्ठिर को अपने बाणों से ढँक दिया। युधिष्ठिर को कुछ नए घाव लगे तो वे पीड़ित हो उठे। सात्यकि, भीम, नकुल और सहदेव अपने राजा की रक्षा के लिए आगे आ गए। युद्ध क्षेत्र में शल्य युधिष्ठिर पर आक्रमण कर रहे है। शल्य बोला, सावधान धर्मराज युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोले, सावधान प्रधान सेनापति मद्र नरेश। युधिष्ठिर और शल्य में घोर संग्राम हो रहा। परस्पर भालों की टकराहट शुरू हुई। शकुनि और सहदेव के बीच घमासान युद्ध हो रहा है। शकुनि बोला, भान्जे सहदेव ये पांडवों ने कब से सावधान कहना सीख लिया। यह तो वीरों की परम्परा है भान्जे। सहदेव बोला, यह द्यूतक्रीडा भवन नहीं है गान्धार नरेश, यह रणभूमि है, यहां पांसे नहीं बाण चलते हैं। शकुनि बोला, कपट तो कपट ही होता ना भान्जे चाहे वह द्यूतक्रीडागृह हो या रणभूमि और सावधान भान्जे कहकर बाण वर्षा करता है। सहदेव ने भाला फेंककर शकुनि का रथ तोड दिया और दोनों ही तलवारों से पदाति युद्ध करने लगे। सहदेव ने वार कर शकुनि को घायल कर दिया जो बेहोश हो रथ के पास गिर जाता है।

युधिष्ठिर अपनी असमर्थता देखकर शिथिल होते जा रहे थे। कृष्ण ने कहा था कि वे आज शल्य का वध कर दें। वे भी मन में संकल्प लेकर आए थे कि उनके भाइयों ने बहुत कुछ किया है, आज युद्ध में यह उनका योगदान होगा। किंतु शल्य में न जाने कहाँ से इतना बल और कौशल आ गया था कि वह युधिष्ठिर के साथ-साथ सात्यकि, भीम, नकुल और सहदेव से भी युद्ध करता जा रहा था। कहीं ऐसा न हो कि जो काम भीष्म और द्रोण नहीं कर सकते, वह शल्य के हाथों हो जाए। उसका कोई बाण युधिष्ठिर के प्राण ले ले तो पांडवों का राजा ही मारा जाएगा।

तब युधिष्ठिर ने देखा कि उनकी उपस्थिति में ही कौरवों के भय से उनके सैनिक उन्हें छोड़कर भागे जा रहे हैं। शल्य का ऐसा तेज देखकर उस निराशा में भी युधिष्ठिर कुपित हो उठे। ऐसा भी क्या युद्ध और क्या पराश्रिता। वे इतने घायल होकर भी युद्ध के लिए खड़े हैं और उनके सैनिक उनकी उपस्थिति से तनिक भी उत्साहित नहीं होते। तो फिर वे किसी और पर निर्भर क्यों रहें। उन्हें अपने पुरुषार्थ का ही सहारा लेना पड़ेगा। अब चाहे विजय मिले या मृत्यु, पीछे नहीं हटना है। वे धर्म पर अपने प्राण दे देंगे। जीवन में ऐसा क्या है, जिसके लिए वे अपनी दुर्दशा करवाएँ।

वैसे भी उनके भाइयों के पुरुषार्थ से दुर्योधन के पक्ष में लड़नेवाले सारे योद्धा मारे गए थे। इस युद्ध में सब ने ही अपना योगदान किया था। एक युधिष्ठिर ही थे, जिन्होंने कोई महत्त्वपूर्ण क्षत्रिय कर्म नहीं किया था। यह संयोग ही है कि आज उनके सामने शल्य है। उन्हें मामाश्री मान कर तो पांडवों के लिए उचित है कि उनकी रक्षा की जाए, किंतु जो मामाश्री अपने भागिनेयों का वध कर राज्य उनके शत्रु को दे देना चाहता हो, वह मामाश्री भी कैसा। आज या तो युधिष्ठिर अपने इस मामाश्री का वध कर अपना दायित्व निभाएँगे या फिर उसके हाथों मारे जाकर वीरगति प्राप्त करेंगे।

युधिष्ठिर ने शल्य पर आक्रमण किया। शल्यसे भी आगे, उसकी रक्षा के लिए दुर्योधन आ गया। भीम उचित स्थान पर था। वह उल्लासपूर्वक दुर्योधन से भिड़ गया। युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य की धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया। शल्य ने सोचा भी नं

था कि युधिष्ठिर धनुर्विद्या का भी ऐसा सफल प्रदर्शन कर पाएँगे। उसने तो योद्धा के रूप में उन्हें बहुत ही साधारण मान रखा था। मद्रराजकी बाण-वर्षासे पाण्डव-सेनाको विचलित होती देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। युधिष्ठिर तथा भीम आदि महारथी यद्यपि बहुत घायल हो चुके थे, तो भी वे उस युद्धमें शल्यको छोड़कर न जा सके। उनसे लड़ते ही रहे।

दूसरी ओर, अश्वत्थामा तथा उसके पीछे चलनेवाले त्रिगर्त देशके महारथियोंने बहुत-से बाण मारकर अर्जुनको घायल कर दिया। तदनन्तर, अर्जुन भी कौरवोंकी सेनापर बाण-वर्षा करने लगे। उनके नामाक्षरोंसे अमित बाणोंकी मार खाते हुए कौरव सैनिकोंको सब कुछ अर्जुनमय ही प्रतीत होने लगा। अर्जुनरूपी आग कौरवोंके योद्धारूपी ईंधनोंको बड़े वेगसे भस्म करने लगी। जैसे प्रलयकालीन अग्नि इस चराचर जगत्‌को दग्ध करके धूमरहित होकर दमकने लगती है, उसी प्रकार पार्थ भी शत्रुओंका संहार करके देदीप्यमान हो रहे थे।

पाण्डुनन्दनका यह पराक्रम देख अश्वत्थामाने सामने आकर उन्हें आगे बढ़नेसे रोका। फिर तो उन दोनोंमें भीषण बाण-वर्षा होने लगी और बहुत देरतक एक-सा ही युद्ध चलता रहा।

अर्जुनके प्रहारसे अत्यन्त आहत हो जानेपर भी द्रोणकुमारको घबराहट नहीं हुई, वह अपने पुरुषार्थका भरोसा करके रणमें डटा रहा और पञ्चाल देशके महारथी सुरथपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। सुरथ भी अश्वत्थामाकी ओर दौड़ा और उसके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा। यह देख अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने धनुषपर कालदण्डके समान नाराच चढ़ाया और उसे सुरथको लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह नाराच सुरथकी छाती छेदकर भीतर घुस गया और सुरथ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। वीरवर सुरथके मारे जानेपर अश्वत्थामा उसीके रथपर जा बैठा और संशप्तकोंकी सेना साथ लेकर अर्जुनसे युद्ध करने लगा। दुपहरीका वक्त था, उस समय अर्जुनका शत्रुओंके साथ महान् संग्राम हुआ, जो यमलोककी आबादी बढ़ानेवाला था।

तदनन्तर शल्य युधिष्ठिरके बहुत निकट आ गये और उन्हें अपने बाणोंसे पीडित करके पुन: भीमपर टूट पड़े। उस समय शल्यकी फूर्ती तथा अस्त्र-संचालनकी कुशलता देखकर कौरवपक्षके योद्धाओंने उनकी बहुत प्रशंसा की। शल्यके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर जब पाण्डवयोद्धा बहुत कष्ट पाने लगे तो युधिष्ठिरके पुकारने और मना करनेपर भी वे युद्धका मैदान छोड़कर भाग चले। इससे धर्मराजको बड़ा अमर्ष हुआ, उन्होंने निश्चय कर लिया कि मेरी विजय हो या मृत्यु, युद्ध अवश्य करूँगा। फिर तो वे अपने पुरुषार्थका भरोसा करके शल्यको बाणोंसे पीडित करने लगे तथा श्रीकृष्ण और अपने सब भाइयोंको बुलाकर बोले- मेरे पहियोंकी रक्षा करनेवाले माद्रीकुमार नकुल और सहदेव अब क्षत्रियधर्मको सामने रखकर अपने मामासे अच्छी तरह लड़ें; आज या तो शल्य मुझे मार डालेंगे या मैं ही उनका वध करूँगा। इस समय पहियोंकी रक्षाका भार सात्यकि और धृष्टद्युम्नपर रहा। सात्यकि दायें पहियेकी रक्षा करें और धृष्टद्युम्न बायेंकी। अर्जुन पृष्ठभागकी रक्षामें रहे और भीम मेरे आगे-आगे चले।

फिर तो पाण्डव-सेनामें बड़ा उत्साह छा गया। पाञ्चाल, सोमक और मत्स्यदेशीय वीर अत्यन्त हर्षमें भर गये। युधिष्ठिरने विजय अथवा मृत्यु की प्रतिज्ञा करके मद्रराजपर चढ़ाई की। उस समय शफ और भेरियाँ बजने लगीं। पाञ्चाल योद्धा दुर्योधन तथा मद्रराज शल्यने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। अब शल्य युधिष्ठिरपर बाणोंकी बौछार करने लगे। दुर्योधन भी सायकोंकी वर्षा करता हुआ अपनी अस्त्रविद्याका परिचय देने लगा।

उधर, युधिष्ठिर तेज किये हुए भल्लोंसे हजारों कौरव योद्धाओंका संहार करने लगे। वे जिस सेनाकी ओर जाते उसीको बाणोंसे मार गिराते थे। घोड़े, सारथी, ध्वजा और रथके सहित रथियोंका, घुड़सवारोंसहित घोड़ोंका तथा हजारों पैदलोंका

उन्होंने सफाया कर डाला। फिर चारों ओर बाणोंकी झड़ी लगाते हुए वे मद्रराज शल्यकी ओर दौड़े।

युधिष्ठिरका ऐसा पराक्रम देख कौरवोंके सभी सैनिक थर्रा उठे। केवल शल्यने उनका सामना किया। वे दोनों क्रोधमें भरकर शफ बजाते और एक-दूसरेको ललकारते तथा डराते हुए पास आ गये। फिर शल्यने अपने बाणोंकी बौछारसे युधिष्ठिरको ढक दिया तथा युधिष्ठिरने भी शल्यपर बाणोंकी झड़ी लगा दी। उसी समय उन दोनों वीरोंको देखकर समस्त सैनिक इस बातका निश्चय नहीं कर सके कि इनमेंसे किसकी विजय होगी?

युधिष्ठिर बोले, खड़ा रह शल्य। शल्य ने अपनी रक्षा के लिए युधिष्ठिर पर आक्रमण किया किंतु अब उसके आक्रमण में वह वेग नहीं था। दूसरी ओर युधिष्ठिर अत्यंत प्रचंड हो उठे थे। युधिष्ठिर ने शल्य के सारथी और घोड़ों को मार डाला। उसके कवच को काट डाला और उसके शरीर को भी क्षतविक्षत कर दिया।

युधिष्ठिर बोले, ओ पापी। तू मारा गया।

तत्पश्चात् शल्य युधिष्ठिरकी ओर बढ़े और युधिष्ठिर शल्यकी ओर। युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके रत्नजटित सुवर्णमय दण्डवाली एक शक्ति हाथमें ली। फिर क्रोधसे जलती हुई आँखें उठाकर उन्होंने मद्रराजकी ओर देखा। उस समय मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरकी दृष्टि पड़नेसे भस्म नहीं हो गये- यही सबसे बड़े आश्चर्यकी बात मालूम हुई। तदनन्तर, युधिष्ठिरने उस दमकती हुई भयंकर शक्तिको मद्रराजके ऊपर बड़े वेगसे चलाया; जोरसे फेंकनेके कारण उससे आगकी चिनगारियाँ छूटने लगीं।

विश्वकर्माने ब्रह्मचर्यादि नियमोंका पालन करके शक्तिका निर्माण किया था, वह ब्रह्मद्रोहियोंका विनाश करनेवाली और लक्ष्य वेधनेमें अचूक थी। बल और प्रयत्नके द्वारा उसका वेग बहुत बढ़ गया था। युधिष्ठिरने उसे भयंकर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके बड़े यत्नके साथ अपने शत्रु मद्रराजपर छोड़ा था। एक तो वह पूरा बल लगाकर छोड़ी गयी थी, दूसरे उसकी शक्तिको रोकना किसीके लिये भी असम्भव था, तो भी उसकी चोट सहनेके लिये मद्रराज शल्य गरज उठे। किंतु वह शक्ति उनकी छाती छेदती हुई शरीरके मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर पृथ्वीमें समा गयी और राजाका विशाल यश भी अपने साथ ही लेती गयी। उनका सारा अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और वे लोहूलुहान होकर प्रेमसे पृथ्वीका आलिङ्गन करते हुए-से गिर पड़े।

शक्ति ने शल्य के मर्मस्थानों को विदीर्ण कर उसके वक्ष को चीर डाला। उसके नाक, कान, आँख और मुख से रक्त आने लगा। शल्य बाँहें फैलाए हुए, धरती पर आ गिरा।

पांचजन्य की ध्वनि को पीछे-पीछे पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्न ने भी अपने यज्ञदत्त नामक शंख को फूँका। कौरव-सेनापति शल्य ने भी शंख फूँककर उसे प्रत्युत्तर दिया। जिस प्रकार दावानल दण्डकारण्य के समान सघन अरण्यको चारों ओर से जलाकर शेष भूमि के हरे-भरे टुकड़ों से भी जा भिड़ता है, उसी प्रकार दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ गयीं। आज कौन्तेय युधिष्ठिर और कौरव-सेनापति शल्य में घोर युद्ध छिड़ा। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और उसके किये अपने पिता के निर्घृण वध से सन्तप्त अश्वत्थामा में भी घमासान युद्ध आरम्भ हुआ था। दोनों में से कोई भी हट नहीं रहा था। दूसरे प्रहर तक शक्तिशाली टक्कर देते हुए अन्ततः युधिष्ठिर ने अपने मामा मद्रराज शल्य का वध कर दिया।

शकुनि बड़ी तत्परता से दुर्योधन के पास आया, मद्र सेना सामने मारी जा रही है। उनका स्वामी अब जीवित नहीं है और हमने यह शपथ ली है कि हम किसी को अकेला नहीं छोड़ेंगे। युधिष्ठिर ने मद्र नरेश के साथ युद्ध कर अपने भाले पराजित कर शल्यका वध कर डाला।

आज दोपहर तक सारी कौरव सेनाएँ समरभूमि छोड़कर भाग गई थीं। शल्य के पतन के पश्चात् कौरव सेना युद्ध से अधिक पलायन में प्रवृत्त हुई थी। उनके किसी महारथी ने सैन्य संगठन का उत्साह नहीं दिखाया। यह भी पता नहीं चला

कि समरभूमि से भागनेवाली सेनाओं में से कितनी शिबिर में पहुँचीं और कितनी अपने-अपने राज्य की ओर भाग गईं। पांडव सैनिक कौरवों को खोज-खोज कर उनका विनाश कर रहे थे।

पहली बार दुर्योधन का रथ नष्ट हुआ तो उसने नए रथ की प्रतीक्षा नहीं की। वह घोड़े पर बैठकर शकुनि की शरण में चला गया। संदेशवाहक यह सूचना भी लाए थे कि अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा भी दुर्योधन को खोज रहे थे।

युधिष्ठिरके द्वारा शल्यके मारे जानेपर सब पाण्डव प्रसन्न हो शफबजाने लगे। सबने राजा युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। नाना प्रकारके बाजे बजाये गये, जिससे चारों ओरकी पृथ्वी गूँज उठी।

शकुनिने दुर्योधनसे कहा- संग्राममें आये हुए सैनिक जब क्रोधमें भर जाते हैं, तो वे स्वामीकी भी आज्ञा नहीं मानते; अत: इनके ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिये; यह इनकी उपेक्षा करनेका समय नहीं है। हम सब लोग एक साथ होकर चलें और यत्नपूर्वक मद्रराजके सैनिकोंकी रक्षा करें।

शकुनिके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधन बहुत बड़ी सेना साथ ले अपने सिंहनादसे पृथ्वीको कम्पायमान-सा करता हुआ चला। उधर पाण्डवों और मद्रराजके सैनिकोंमें युद्ध छिड़ा हुआ था। अभी एक मुहूर्त भी नहीं बीतने पाया था कि मद्रदेशीय योद्धा पाण्डवोंसे हाथापाई करके मौतके मुँहमें जा पड़े।

शल्यके मारे जानेसे सभी कौरव हतोत्साह हो गये थे। उस समय किसी भी योद्धाकी न तो सेना इकट्ठी करनेकी इच्छा होती थी और न पराक्रम दिखानेकी। भीष्म, द्रोण और कर्णके मरनेपर जैसा दु:ख और भय हुआ था, वही भय कौरवोंपर फिर सवार हो गया। विजयकी ओरसे पूर्ण निराशा हो गयी। कौरवोंके प्रधान-प्रधान वीर मारे जा चुके थे; इसलिये जो शेष थे वे भी तीखे बाणोंसे घायल होकर भागने लगे। कुछ लोग घोड़ोंपर चढ़कर भागे और कुछ लोग हाथियोंपर। बहुतेरे रथोंमें ही बैठकर रफूचक्कर हो गये। बेचारे पैदल योद्धा भयके मारे बड़े जोरसे पलायन कर रहे थे।

शल्यके मारे जाने और सब सेनाके समाप्त हो जानेपर दुर्योधनने देखा कि वह सर्वथा अकेला है। उसे पता नहीं था कि उसके पक्षमें कोई बचा भी है। जिधर भी दृष्टि जाय, चारों ओर दूर तक रक्त, टूटे रथ, कटे-फटे अश्वों, गजों, मनुष्योंके शवकी ढेरी ही दीखती थी। कुत्ते, गीध, श्रृंगाल, कौए, चीलोंके झुण्ड उतर आये थे। बड़ा भयंकर दृश्य था।

३) शकुनि का वध- दुर्योधनने पुकारकर कहा, इस तरह भागनेसे क्या लाभ है? अब तो शत्रुओंके पास बहुत थोड़ी सेना रह गयी है तथा श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बहुत घायल हो चुके हैं; ऐसी दशामें यदि साहस करके हमलोग रणमें डटे रहें, तो हमारी विजय अवश्य होगी। तुम पाण्डवोंके अपराध तो कर ही चुके हो, यदि विलग-विलग होकर भागोगे, तो पाण्डव पीछा करके तुम्हें अवश्य मार डालेंगे। इस प्रकार जब मरना अवश्यम्भावी है, तो युद्धमें मरनेसे ही हमलोगोंका कल्याण है। जब शूरवीर और कायर सबको ही मौत मार डालती है, तो कौन ऐसा मूर्ख है, जो क्षत्रिय कहलाकर भी युद्धसे मुँह मोड़े। संग्राममें क्षत्रिय-धर्मके अनुसार लड़ते-लड़ते यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह परिणाममें सुख देनेवाली है। युद्धके द्वारा मृत्युको वरण करना क्षत्रियके लिये सनातन धर्म है। यदि वह युद्धमें जीत जाय तो यहाँ ही सुख भोगता है और मारा गया तो परलोकमें जाकर महान फलका भागी होता है। अत: क्षत्रियके लिये युद्धसे उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

दुर्योधनकी बात सुनकर राजाओंने उसकी प्रशंसा की और पुन: पांडवोंपर धावा कर दिया। पाण्डव व्यूह बनाकर खड़े थे और प्रहार करनेको पहलेसे ही तैयार थे। कौरव सैनिकोंको आते देख वे क्रोधमें भर गये और उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े। अर्जुन अपने विश्वविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए रथपर बैठकर कौरवोंकी सेनापर टूट पड़े। नकुल, सहदेव और सात्यकिने शकुनिपर धावा किया। इस प्रकार ये सब लोग उत्साहमें भरकर कौरवोंकी सेनाकी ओर दौड़े।

तदनन्तर म्लेच्छोंका राजा शाल्व क्रोधमें भरकर पाण्डव सेनापर चढ़ आया।

इतनेहीमें सात्यकिने एक तीक्ष्ण भल्लसे शाल्वका सिर धड़से अलग कर दिया। तब वह म्लेच्छराज उस नागराजके साथ ही धरतीपर गिर पड़ा।

शाल्वके मारे जानेपर कौरवोंकी सेनाका व्यूह टूट गया। सब सैनिक तितर-बितर हो गये। यह देख महारथी कृतवर्माने आगे बढ़कर शत्रुओंकी सेनाको रोक दिया। उसे रणभूमिमें डटा हुआ देख कौरवोंके सैनिक भी लौट आये। कृतवर्मा अकेला होनेपर भी उसने समस्त पाण्डव-सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया। इतनेमें महाबाहु सात्यकि वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसकी राजा क्षेमधूर्तिसे मुठभेड़ हुई। सात्यकिने बाण मारकर उन्हें तत्काल यमलोक पहुँचा दिया।

इसी समय शकुनिने कौरव-योद्धाओंसे कहा- वीरों। तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ। इतनेहीमें पाण्डव फिर कौरवोंके सामने आये और बाण बरसाने लगे। थोड़ी ही देरमें मद्रराजकी सेना मारी गयी। यह देख दुर्योधनकी सेना फिर पीठ दिखाकर भागने लगी। तब शकुनिने कहा- पापियों। तुम्हारे भागनेसे क्या होगा? लौटकर युद्ध करो।

अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा- जनार्दन। आप घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्य सागरमें प्रवेश कीजिये। आज मैं बाणोंसे शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा। इस संग्रामके आरम्भ हुए आज अठारह दिन हो गये। कौरवोंके पास समुद्र जैसी अपार सेना थी, सो हम लोगोंके पास आकर अब गायके खुरकी-सी हो गयी। मुझे आशा थी कि पितामह भीष्मके मारे जानेपर दुर्योधन संधि कर लेगा, किंतु उस मूर्खने ऐसा नहीं किया। भीष्मने सच्ची और हितकर बात बतायी थी, किंतु बुद्धि मारी जानेके कारण उसने उसे भी नहीं स्वीकार किया। फिर क्रमश: आचार्य द्रोण, कर्ण और विकर्ण आदिके मारे जानेपर बहुत थोड़ी-सी सेना बच रही है, तो भी युद्ध बंद नहीं हुआ। भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व तथा अवन्तीके राजकुमार मारे गये, फिर भी इस मार-काटका अन्त न हो सका। जयद्रथ, बाह्लीक, राक्षस अलायुध, सोमदत्त, वीरवर भगदत्त, काम्बोजराज तथा दु:शासनकी मृत्यु हो जानेपर भी यह संहार न रुक सका। धृतराष्ट्रने भी पाण्डवोंसे संधि करनेके विषयमें उससे हितकारक वचन कहा था, किंतु वह दुर्योधनके मनमें नहीं बैठा। जब धृतराष्ट्रकी ही बातपर दुर्योधन ध्यान न दे सका तो दूसरेकी कैसे सुन सकता था? जिसने मूर्खतावश अपने बूढ़े पिताकी बात नहीं मानी, हितकी बात बतानेवाली माताका अपमान किया, उसे और किसीकी बात कैसे अच्छी लगेगी? निश्चय ही, दुर्योधनका जन्म इस कुलका अन्त करनेके लिये हुआ है। जिस मूर्खने परशुरामजीके मुखसे यथार्थ और हितकर वचन सुनकर भी उसकी अवहेलना कर दी, वह तो निश्चय ही विनाशके मुखमें स्थित है। दुर्योधनके जन्म लेते ही बहुतेरे सिद्ध पुरुषोंने कहा था कि इस दुरात्माके कारण क्षत्रियकुलका महान् संहार होगा। उनकी बात आज सत्य हो रही हैं; क्योंकि दुर्योधनके लिये ही यहाँ असंख्य राजाओं का संहार हुआ है। अत: आज मैं समस्त कौरव-योद्धाओंका वध करूँगा। आप मुझे दुर्योधनकी सेनामें ले चलिये, जिससे उसको और उसकी सेनाको मैं अपने बाणोंका निशाना बना सकूँ।

यद्यपि कौरव-योद्धा रणमें पीठ नहीं दिखानेवाले शूरवीर थे और पूरी शक्ति लगाकर लड़ रहे थे, तो भी अर्जुनने अपने गाण्डीवसे उनके विजयके संकल्पको व्यर्थ कर दिया। धनञ्जयके बाण वज्रके समान संकल्पको व्यर्थ कर दिया। धनञ्जयके बाण वज्रके समान असह्य और अत्यन्त तेजस्वी थे; उनकी मार पड़नेसे कौरवोंकी सेना साहस खो बैठी और दुर्योधनके देखते-देखते रणभूमिसे भाग चली। कोई-कोई अपने रथको रण-सामग्रीसे सजाकर पाण्डव-सेनामें प्रवेश करते थे।

हाथियोंके समुदायका नाश हो जानेपर भीम कौरवोंकी अन्य सेनाओंका संहार करने लगे। वे क्रोधमें भरे हुए दण्डधारी यमराजकी भाँति हाथमें गदा लिये रणभूमिमें विचर रहे थे। उस समय ढूँढ़नेपर भी जब दुर्योधनका कहीं पता न लगा तो

मरनेसे बचे हुए दुर्योधन भीमपर टूट पड़े। दुर्मर्षण, श्रुतान्त, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष तथा श्रुतर्वाने धावा करके भीमको चारों ओरसे घेर लिया। तब भीम पुन: अपने रथपर जा बैठे और कौरवोंके पुत्रोंके मर्मस्थलोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे। उन्होंने एक क्षुरप्र मारकर दुर्मर्षणका मस्तक काट गिराया। फिर एक भल्लके द्वारा श्रुतान्तका अन्त कर दिया। तत्पश्चात् हँसते-हँसते जयत्सेनपर नाराचका प्रहार किया और उसे रथकी बैठकसे भूमिपर गिरा दिया। गिरते ही उसके प्राण निकल गये।

जिस समय भीम धृतराष्ट्रके पुत्रोंका संहार कर रहे थे, उस समय कौरवोंके सैनिकोंका उनकी ओर आँख उठाकर देखनेका भी साहस नहीं होता था। उन्होंने समस्त कौरवों और उनके अनुचरोंको मार भगाया; फिर विकट आवाजसे वे बड़े-बड़े गजराजोंको भयभीत करने लगे। उस लड़ाईमें कौरवोंके बहुत-से सिपाही काम आये। जो बचे थे, उनकी भी हिम्मत टूट गयी थी।

भीम और अर्जुन ने मिलकर जब कौरवों की गजसेना नष्ट कर दी तो दुर्योधन किसी अज्ञात स्थान की ओर भाग गया। दुर्योधन के जीवित शेष भाई दुर्मर्षण, श्रुतांत, जैत्र, भूरिबल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह, दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष, महाबाहु तथा श्रुतवर्मा एक साथ मिलकर भीम पर टूट पड़े थे। किंतु भीम तो जैसे उनके साथ थोड़ी देर क्रीड़ा करता रहा। उसके पश्चात् उसने एक-एक कर उन सबको मार डाला। युद्ध में भीम को क्रीड़ा का-सा सुख मिलता था। उसे युधिष्ठिर के समान उससे वितृष्णा नहीं होती थी। वह क्रमश: उसमें निमग्न होता जाता था और अपने आपको भी विस्मृत कर बैठता था। धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करने में तो उसे जैसे परम सुख की अनुभूति होती थी।

फिर, सुशर्माको बाण मारकर उसके घोड़ोंको भी घायल किया, इसके बाद उन्होंने हँसते-हँसते सुशर्मापर यमदण्डके समान एक भयंकर बाण चलाया। उसे उसकी छाती छिद गयी और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। इस प्रकार सुशर्माको मारकर अर्जुनने उसके पैंतालीस पुत्रोंको भी मौतके घाट उतार दिया। फिर उसके समस्त अनुयायियोंको यमलोक भेजकर उन्होंने मरनेसे बची हुई कौरव-सेनामें प्रवेश किया।

दूसरी ओर भीमने हँसते-हँसते बाणोंकी वर्षा करके सुदर्शनको ढक दिया, अब वह दिखायी नहीं पड़ता था। प्रहार करते-करते उन्होंने एक तीखे क्षुरप्रसे सुदर्शनका मस्तक धड़से अलग कर दिया। यह देख उसके अनुचरोंने भीमको चारों ओरसे घेरकर उनपर बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। तब भीमने बाणोंकी वर्षा करके उन्हें सब ओरसे आच्छादित कर दिया और एक ही क्षणमें सबका संहार कर डाला।

इसी समय शकुनिने सहदेवके मस्तकपर प्रासका प्रहार किया और सहदेव मूर्च्छित-सा होकर रथकी बैठकमें बैठ गया। उसकी यह अवस्था देख प्रतापी भीमने क्रोधमें भरकर शकुनिकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और नाराचोंसे मारकर सैकड़ों एवं हजारों सैनिकोंका संहार कर डाला। इसके बाद उन्होंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया, जिसे सुनकर हाथी और घोड़ोंसहित समस्त सैनिक थर्रा उठे। डरके मारे वे सहसा भाग चले। उन्हें भागते देख राजा दुर्योधनने कहा- अरे पापियों। लौट आओ, भागनेसे क्या लाभ होगा? जो वीर लड़ाईमें पीठ न दिखाकर प्राण-त्याग करता है, वह संसारमें कीर्ति छोड़ जाता है और परलोकमें उत्तम सुख भोगता है।

तब सहदेवने एक भल्ल मारकर अपने सामने आये हुए उलूकका मस्तक काट डाला। उसकी लाश जमीनपर गिर पड़ी।

दुर्योधन ने एक प्रास के प्रहार से सहदेव को लहूलुहान कर दिया था। त्रिगर्त सैनिक फिर से अर्जुन पर टूट पड़े थे। सहदेव सचेत होकर पुन: युद्ध करने लगा; किंतु इस बार वह शकुनि और उलूक से भिड़ गया था। तभी भीम वहाँ आ गया। भीम

को देखते ही शकुनि के सैनिक मैदान छोड़कर भाग गए। उधर सहदेव ने एक भल्ल मारकर उलूक का मस्तक काट दिया। अपने पुत्र का शव देखकर शकुनि की आँखों में अश्रु आ गए।

पुत्रकी मृत्यु देखकर शकुनिको विदुरकी बात याद आ गयी। उसका गला भर आया, उच्छवास चलने लगा और वह अपनी आँखोंमें आँसू भरकर दो घड़ीतक चिन्तामें डूबा रहा। प्रतिशोध किसी के लिए भी मंगलकारी हो सकता है क्या? शकुनि कुरुओं से प्रतिशोध लेने के लक्ष्य से, सदा धर्म का विरोध कर, अधर्म का समर्थन करता रहा। तो उस अधर्म का मूल्य कौन चुकाएगा। कुरूवंश ने अपने पापों का फल पाया, किंतु शकुनि ने? उसने भी अपने ही पापों का फल पाया। विजय की कोई संभावना न देखकर शकुनि ने कपट युद्ध आरंभ कर दिया था। उसने पहले पांडव सेना पर पीछे से घात किया। उस पर भी सफल न हुआ तो भाग कर उसने धृष्टद्युम्न की सेना पर पार्श्व से आक्रमण किया। पर उसमें भी उसे कुछ उपलब्ध नहीं हुआ।

इसके बाद सहदेवके सामने जाकर उसने बाण मारे किंतु सहदेवने अपने सायकोंसे उन्हें काट गिराया और शकुनिके धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब शकुनिने सहदेवके ऊपर तलवारका वार किया, किंतु उसने हँसते-हँसते उस तलवारके भी दो टुकड़े कर दिये। अब शकुनिने गदा चलायी, पर उसका वार खाली चला गया, वह जमीनपर जा पड़ी। इससे उसका क्रोध बहुत बढ़ गया और उसने एक भयंकर शक्ति सहदेवके ऊपर छोड़ी- किंतु सहदेवने बाण मारकर उसके भी तीन टुकड़े कर डाले।

शकुनिको भी खिसका देख सहदेवने सोचा यह मेरा हिस्सा बाकी रह गया है- इसका नाश मुझे करना है। यह विचारकर अपना महान् धनुष टंकारते हुए उसने शकुनिका पीछा किया और तेज किये हुए बाण मारकर उसे अत्यन्त घायल कर दिया और कहने लगा, मूर्ख शकुनि। तू क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्ध कर, पराक्रम दिखाकर पुरुषत्वका परिचय दे। उस दिन सभामें पासा फेंकते समय तो तू बहुत खुश हो रहा था, उसका फल आज अपनी आँखों देख। जिन दुरात्माओंने पहले हमलोगोंका उपहास किया था, वे सब मारे जा चुके हैं। केवल कुलाङ्गार दुर्योधन और उसका मामा तू बाकी रह गया है। आज तेरा मस्तक अवश्य काट डालूँगा।

सहदेव से हारकर शकुनि भागा। सहदेव ने उसका पीछा किया। सहदेव ने उसका वध करते हुए कहा, पासे फेंककर द्यूत खेलते हुए, तू बहुत प्रसन्न था न। ले आज अपने उस कुकर्म का सुख भी तो भोग। सहदेव ने उसका मस्तक काट दिया। दुर्योधन उस समय तक बहुत घायल हो चुका था। उसके पास न तो सेना थी और न सवारी। अपने मरे हुए घोड़े को वहीं छोड़कर वह पूर्व दिशा की ओर भाग गया।

कौरवोंका अन्तिम सेनापति प्रभातके प्रथम प्रहरके अन्तमें ही मारा गया। युद्ध फिर भी चलता रहा। मद्रराज शल्यका छोटा भाई और उनके अनुचर भी खेत रहे। धृष्टद्युम्नके हाथों शाल्व मारा गया। शकुनिने घूमकर पाण्डवोंपर पीछेसे आक्रमण किया; सहदेवने उसे तथा उसके पुत्र उलूकको भी सेनाके साथ मार दिया।

शकुनि को होश आया और उठकर उसने सहदेव पर वार करने का प्रयत्न किया इतने में ही सहदेव ने उठकर तलवार उसकी छाती में घोप दी वो उसकी छाती में आर पार हो गई और शकुनि का वध हुआ।

सहदेवने शकुनिके उठाये हुए प्रासको तथा उसे पकड़नेवाली उसकी दोनों गोलाकार भुजाओंको तीन भल्ल मारकर एक ही साथ काट डाला। फिर बड़े जोरसे गर्जना की। तदनन्तर, खूब सावधानीके साथ एक मजबूत लोहेका भल्ल धनुषपर चढ़ाया और उसके प्रहारसे शकुनिका सिर धड़से अलग कर दिया। उसकी मस्तकसहित लाश जमीनपर गिर पड़ी।

HHH(४०८)HHH

युद्धभूमि के दक्षिण में रक्त-मांस के कीचड़ में शकुनि अपने शेष भ्राताओं को लेकर माद्रेय सहदेव से खड्गयुद्ध कर रहा था। दुर्योधन की प्रत्येक कुटिल चाल के पीछे शकुनि की ही ऊँट की भाँति चलनेवाली टेढ़ी, दुष्ट, निर्दय बुद्धि की चाल थी। आज सहदेव उसे समाप्त किये बिना रहनेवाला नहीं था। शकुनि के वक्ष पर सहदेव ने दो आड़े-टेढ़े प्रबल खड्ग-प्रहार किये। रक्त के फव्वारे छूट पड़े। लक्षावधि प्राणों की बलि का बकरा बनानेवाला गान्धार-नराधम रक्त-मांस के कर्दम में गिर पड़ा। एक कूटपर्व का अन्त हुआ।

इस प्रकार शकुनिके मारे जानेसे श्रीकृष्णके साथ ही समस्त पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने योद्धाओंका हर्ष और उत्साह बढ़ाते हुए शफ बजाने लगे। सभी लोग सहदेवके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे, वीरवर। तुमने इस कपटी एवं दुरात्मा शकुनिको पुत्रसहित मार डाला, यह बड़ा ही अच्छा हुआ।

यह युद्ध जब दो प्रहरके पश्चात समाप्त हुआ, भीमने दुर्योधनके अतिरिक्त धृतराष्ट्रके सब पुत्र मार दिये थे। कौरवोंके पक्षमें एकत्र पूरी ग्यारह अक्षौहिणी सेना समाप्त हो गयी थी। दुर्योधनके दलमें उसके अतिरिक्त कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये तीन ही बचे थे। वे भी दुर्योधनसे बहुत दूर पड़ गये थे।

कर्णके मारे जानेका समाचार राजा धृतराष्ट्रको सञ्जयने उसी रात्रिमें सुनाया था। देवी गान्धारी उस समय पतिके पास ही थी। उन्होंने सुनकर शोकमग्न राजाके सम्मुख ही कहा- सञ्जय। कर्ण ही मेरे पुत्रोंकी एक मात्र आशा था। उसके न रहनेपर दुर्योधन बहुत दु:खी होगा। अपनी ही दुर्मतिसे उसने पूरे वंशका नाश करवा दिया; किन्तु अब उसे स्वयं पाण्डवोंका सामना करना होगा। भीम बहुत क्रोधी है। उसने मेरे सब पुत्र मार दिये। वह दुर्योधनको सम्मुख समरमें पाकर छोड़ नहीं सकता। मैं सम्मति भी दूँ कि अब भी पाण्डवोंसे सन्धि कर ले तो उसे दुर्योधन नहीं सुनेगा।

सञ्जयने कहा- कृपाचार्यने यही सम्मति आज ही दी थी; किन्तु आपके ज्येष्ठ पुत्रका कहना है कि मैंने पाण्डवोंको इतना सताया है, इतना अपमानित किया है, इतनी अवज्ञा की है उनकी कि अब वे इस विजयको पाकर मेरी सन्धिकी बात सुन नहीं सकते। वे मेरा उपहास करेंगे और मैं भी अब उनके द्वारा उपकृत होकर कैसे जीवन धारण करूँगा। जिस भीमने मेरे सब भाई मार दिये, उसके व्यंग सुनते हुए जीवित रहनेसे मर जाना कहीं उत्तम है। यह शत्रुता तो इतनी बढ़ गयी है कि उसे मेरी या उनकी मृत्यु ही मिटा सकती है। युद्धके अतिरिक्त अब दूसरा मार्ग नहीं।

गान्धारीने कहा, वह अत्यन्त हठी है। दूसरेकी सम्मति मानना उसने सीखा ही नहीं। सञ्जय। मेरा मातृत्व मुझे अधीर बना रहा है। उससे जाकर कहो कि कल युद्धमें जानेसे पूर्व ही वह एक बार मेरे सामने सब वस्त्र उतारकर आ जाय। मैं उसे नेत्रोंकी पट्टी खोलकर देख लूँगी। पुत्रके शरीरको वज्रप्राय बना देनेके लिए एक क्षणको नेत्र बाँधे रहनेका आजीवन चलनेके लिए लिया गया नियम भंग करूँगी। जानती हूँ कि यह मोह है; किन्तु विपत्तिमें पड़े पुत्रको सुरक्षित करनेके लिए यह करूँगी। राजा धृतराष्ट्र तथा सञ्जय दोनोंने इसका अनुमोदन कर दिया। रात्रिमें ही सञ्जयने जाकर दुर्योधनको उसकी माताका सन्देश सुनाया। मद्रराज शल्यको सेनापति बनाकर दुर्योधन बहुत सबेरे- अन्धकार रहते ही रथमें बैठा और हस्तिनापुरकी ओर चल पड़ा। कुरु महारानी गान्धारीदेवी ने दुर्योधन को मिलने हेतु आमन्त्रित किया है। उन्होंने सन्देश भिजवाया शीघ्र मुझसे मिलने आओ उसी तरह मेरी कोख से जन्म लेते समय तुम जैसे थे, वैसे ही- आकाश की भाँति नग्न। दुर्योधन उनके पास जाने की तैयारी में था।

श्रीकृष्ण लीलामय हैं। वे कब क्या करेंगे, दूसरा कोई कैसे जान सकता है। कर्ण-वधके पश्चात् पाण्डवशिबिरमें सब निश्चिन्त सोये थे; किन्तु श्रीकृष्ण रात्रिमें ही उठे और दारुकको उन्होंने अपना रथ सज्जित करनेको कहा। अपने रथपर

बैठकर वे युद्धभूमिकी परिक्रमा करने निकल पड़े।

दुर्योधनको मार्गमें श्रीकृष्णका गरुड़ध्वज रथ मिला। उसने केशवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे हृषीकेश हँसकर बोले, मैं तो इस समय यह देखने निकला था कि इस भूमिका किधरका भाग आज युद्धके उपयुक्त है। अधिकांश भूमि तो मृतकों, टूटे रथों तथा शस्त्रोंसे पटी पड़ी हैं; किन्तु लगता है कि तुमने अब पाण्डवोंसे युद्धका विचार त्याग दिया है। तुम्हें ठीक समझ देरसे आती है। अपने पिताके पास जा रहे हो कि वे मध्यमें पड़कर युधिष्ठिरसे तुम्हारी सन्धि करा दें। बहुत उत्तम विचार हैं; किन्तु कह नहीं सकता कि भीम इसे मान लेंगे या नहीं।

दुर्योधनने चिढ़कर कहा- मुझे माताने बुलाया है। मैं प्राण रहते उस भीमसे सन्धि नहीं करूँगा।

दुर्योधन स्नान कर नग्न हो अपनी माता गान्धारी के पास आ रहा है बीच रास्ते में कृष्ण मिल जाते है। कृष्ण बोले, युवराज दुर्योधन तुम अपने वस्त्र कहां भूल आये? तुम्हारा मुंह तो माता गान्धारी के शिबिर की ओर है। क्या तुम अपनी माता के पास इस दशा में जा रहे हो? दुर्योधन बोला, माताश्री का यही आदेश था।

श्रीकृष्णने कहा- एक ही बात है। राजा धृतराष्ट्र मध्यस्थ बनें या देवी गान्धारी; किन्तु तुम पहले ही उन दोनोंमें-से किसीकी सुन लेते तो बेचारा दु:शासन भीमके हाथों उस प्रकार मारा न जाता।

केशव, आपका अनुमान सत्य नहीं है। अब उत्तेजनामें दुर्योधन कह गया- मेरी माता वीर माता हैं। वे मुझे समर विरत होनेका आदेश इस विषमावस्थामें नहीं देंगी। वे महासती तो एक बार मेरे अनावरित शरीरपर दृष्टिपात करके सम्पूर्ण देहको वज्र बना देना चाहती हैं जिससे उनका यह पुत्र अकेले ही सब पाण्डवोंका मान-मर्दन करनेमें समर्थ हो जाय।

हे कौरव, इतनी शीघ्रता से तुम कहाँ जा रहे हो, यह मुझे पता है। इस समय तुम दुविधा में पड़े हो, यह भी मैं जानता हूँ। इस समय माता गान्धारीदेवी ने तुम्हें स्वाभाविक अर्थात विवस्त्र अवस्था में मिलने के लिए बुलाया है। वे तो तुम्हें अब भी अबोध बालक ही समझती हैं। लगता है, अन्य ज्येष्ठ जनों की भाँति वे तुम्हें युद्ध-समाप्ति का उपदेश देना चाहती हैं। क्या तुम उसी प्रकार विवस्त्र अवस्था में उनसे मिलने जा रहे हो जैसा उन्होंने कहलाया है? उन्होंने तो अपने मातृधर्म का पालन किया है। तुम तो कुरु-युवराज हो। क्या तुम अपने पुत्रधर्म का पालन नहीं करोगे?

श्रीकृष्णने गम्भीर होकर कहा- बहुत उत्तम विचार हैं वे महासती विपत्तिमें पड़े पुत्रको इससे उपयोगी वरदान और क्या दे सकती हैं। वे सचमुच इसमें समर्थ हैं; किन्तु दुर्योधन। जिस माताने पतिगृह आनेपर सदाके लिए अपने अन्धे पतिके पदानुसरणमें अपने नेत्र बाँध लिये, जिसने अपने शिशुओंका भी शरीर कभी नहीं देखा, उस माताकी मर्यादा, उसके सतीत्वका भी तुम्हें कुछ ध्यान है? उन्होंने तो संसारको कभी देखा ही नहीं; किन्तु तुमने तो देखा है। युवा पुत्र माताके सम्मुख दिगम्बर खड़ा हो जाय, यह उचित लगता है तुम्हें? फिर ऐसी माताके सम्मुख जिसने तुम्हें शैशवमें भी नहीं देखा है। तुम समझदार हो, अत: माताके गौरवका भी ध्यान रखना।

कृष्ण बोले, किन्तु वो तुम्हारी माता है। उन्होने अनेक बार तुम्हे अपनी गोद में खिलाया होगा किन्तु तुम तो माता नहीं हो ना। तुम तो पुत्र हो और वो भी वयस्क और युवा पुत्र अपनी माता के सामने इस दशा में जायेगा पूर्ण नग्न। भरतवंश की तो यह परम्परा नहीं है युवराज और कृष्ण जोर से हंसने लगा तथा बोला भरतवंश की परम्पराओं का आदर करना तो तुमने कब का छोड दिया है। जाओ माता को प्रतीक्षा नहीं करवानी चाहिये।

श्रीकृष्ण इतना कहकर दारुकको रथ आगे बढ़ानेके लिए कहने लगे। दुर्योधनने ही उन्हें रोका- केशव। आप मेरे भी सम्बन्धी हैं। मुझे क्या करना चाहिए यह बतलाते जायँ। कृष्णकर्मों के लिए तो तुम विख्यात हो। तुम्हारे उपदेश से अर्जुन

के अतिरिक्त किसी का भी भला नहीं हुआ है। मुझे आशंका हो रही है कि तुम्हारे कथन में कुछ रहस्य है। विवस्त्र अवस्था में माता से मिलने कैसे जाऊँ, इस सम्भ्रम में ही पड़ा हूँ मैं। इससे निकलने का कोई मार्ग सूझ नहीं रहा है। अत: सोच रहा हूँ, उनसे मिलने ही न जाऊँ।

कृष्णने कहा, यह तुम्हारी बड़ी भूल होगी। उनकी अवज्ञा होगी यह। उनकी आज्ञा के अनुसार तुम्हें उनके दर्शन करने अवश्य जाना चाहिए- उनके मातृत्व का आदर करना चाहिए। दुर्योधन ने पूछा, कैसे? बिना कोई राजनीति लड़ाये, सीधे-सीधे बताओ। कृष्णने कहा, राजमाता के अन्त:कक्ष तक तुम इसी वेश में जाओ। केले का एक बड़ा-सा पत्ता अपने साथ लेते जाओ। उनके कक्ष में प्रवेश करने से पहले अपने राजवस्त्र उतारकर केले का पत्ता कटि में लपेट लो। राजामाता की आज्ञा के अनुसार तुम विवस्त्र भी होओगे और मातृभक्त के रूप में पीढ़ियों तक स्मरणीय रहोगे क्योंकि केले का पत्ता तो कोई वस्त्र है नहीं।

श्रीकृष्णने चलते-चलते कह दिया- कोई विशेष बात नहीं। माताके सम्मुख कच्छधारण करके जाना। इससे मर्यादा बनी रहेगी।

दुर्योधन ने कहा, सचमुच कुरु राजसभा में कर्ण और शकुनि मामा जैसे अनेक लोगों की अपेक्षा तुम होते तो मेरी सारी मनोकामनाएँ सफल हुई होतीं। अब तुम्हारे बताये अनुसार ही मैं राजमाता के दर्शन करने जाऊँगा।

दुर्योधन माताके सम्मुख कच्छ पहने, शेष सब वस्त्र उतारकर पहुँचा। माताको प्रणाम करके बोला- अम्ब। आपके आदेशानुसार मैं वस्त्रहीन होकर उपस्थित हुआ हूँ।

दुर्योधन अपने नीचे के भाग में केले के पत्ते बांधकर माता गान्धारी के सामने आ गया और आकर बोला मैं स्नान करके आ गया हूं माताश्री। गान्धारी बोली, मेरे सामने आकर खडे हो जाओ पुत्र। मैं क्षणभर के लिये अपनी आंखों पर बन्धी यह पट्टी खोलने जा रही हूं। मैंने तुम्हारे भाइयों को तो नहीं देखा मैं तुम्हें अब देखूंगी। गान्धारी ने अपनी आंखों की पट्टी खोली। आंखों से तेज निकला और दुर्योधन के शरीर में प्रवेश कर गया जिस स्थान पर वो नग्न था। गान्धारी बोली, यह तुमने क्या किया पुत्र? दुर्योधन बोला मैं आपके पास सम्पूर्ण नग्न कैसे आता माताश्री।

देवी गान्धारीने पट्टी सरकायी और नेत्र खोले। एक दृष्टि दुर्योधनके शरीरपर डालकर नेत्र बन्द करके पट्टी ठीक करते हुए पूछा- पुत्र। तुम्हें मार्गमें कोई मिल गया था?

दुर्योधन ने कहा, श्रीकृष्ण मिले थे माता। उन्होंने ही सम्मति दी कि मैं सर्वथा नग्न आपके सामने जाकर आपका असम्मान न करूँ। कच्छ मैंने इसीलिए शरीरपर रखा है।

और वह उसी प्रकार राजमाता गान्धारीदेवी के दर्शन करने गया। गान्धारीदेवीने अत्यन्त कठोर शब्दों में दुर्योधन को प्रताड़ित किया था- दुर्योधन मूर्ख तो तुम हो ही, अत्यन्त अभागे भी हो। अपनी जन्मदात्री माता की अपेक्षा तुमने श्रीकृष्ण के वचन पर विश्वास किया। अरे बावले, मेरे कहने के अनुसार यदि तुम आते तो मेरी खुली दृष्टि से तुम्हें वज्रदेह का आशीर्वाद प्राप्त हो जाता। किन्तु अब वह तुम्हें अधूरा ही प्राप्त हुआ है। मेरी दृष्टि की शक्ति से तुम्हारा अनावृत शरीर वज्र का बन गया है, किन्तु तुम्हारे शरीर का केले के पत्ते से ढँका भाग उस कवच से वंचित रह गया है। जाओ पुत्र, पुत्र भले ही कुपुत्र हो, माता कभी कुमाता नहीं हो सकती। मैंने तुम्हें आशीर्वाद दिया है।

गांधारीने कहा, वे सर्वेश्वर। उनकी इच्छा पूर्ण हो। तेरा कच्छसे ढका शरीरका भाग दुर्बल रह गया; किन्तु अब जा।

गान्धारी बोली, लेकिन मैंने तो तुम्हे यही आदेश दिया था। गान्धारी ने फिर से आंखों पर पट्टी बांध ली और बोली तुम्हारे

शरीर का वो भाग जिस पर मेरी दृष्टि पडी ही नहीं दुर्बल रह गया पुत्र। शरीर का शेष भाग वज्र समान कठोर हो गया। यदि तुम बडों का आदेश मानने की परम्परा भूले न होते तो अजेय हो गये होते पुत्र। दुर्योधन बोला, तो मैं यह केले के पत्ते हटा देता हूं माताश्री। गान्धारी बोली, मैं कोई मायावी नहीं हूं पुत्र। मैंने अपनी उस एक दृष्टि में अपनी भक्ति, अपना सतीत्व, अपनी तपस्या और अपनी ममता की सारी शक्ति मिला दी थी पुत्र।

स्वयं गान्धारीको यह क्षणभरका नियम भंग अधीर कर रहा था। अपना मोहवश किया गया कर्म उन्हें खिन्न किये था। वे चुप रह गयीं। दुर्योधन बोला, आप चिन्ता न करे माताश्री। मैं कल उस भीम से गदा युद्ध करूंगा और गदा युद्ध के नियम के अनुसार कमर के नीचे प्रहार करना वर्जित है। कल मैं उस निमूछिये भीम को इतनी मार मारूंगा कि वो घबराकर वीरगति की ओर चला जायेगा। फिर इस युद्ध का अन्त चाहे जो भी हो। दुर्योधन तुरन्त लौट आया।

अनंत है- अजेय है महाकाल। उसमें अठारह दिन कितने नगण्य हैं, कितने मामूली हैं। पलक गिरने-उठने की तरह अठारह दिन युद्ध की भयावहता में कितनी तेजी-से काल-स्त्रोत में बह गए।

समय-समुद्र के अठारह दिन का वह स्त्रोत सब-कुछ निश्चिह्न कर गया। सब-कुछ मिट गया। महाकाल के महासागर में छोटी-सी लहर कुरुक्षेत्र महासमर बह गई। समर समाप्त हो गया। एक ओर करुण पराजय, दूसरी ओर विकट विजय थी। विजयी फिर इतनी विकट, भयंकर, हाहाकारमय भी हो सकती है। जन-मानस-रहित वसुंधरा। शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, ज्ञानी-अज्ञानी, वीर-कापुरुष, युवक-वृद्ध, पिता, भाई, गुरु, मित्र, पति, पुत्र- सबको महासमर की लपलपाती जीभ निगल गई। अब किसे लेकर होगा विजय-महोत्सव? जिन्हें अधिक चाहा, उन्हें ही महाकाल छीन ले गया द्रौपदी के हाथ से। द्रौपदी के पिता द्रुपद, भ्राता शिखंडी, धृष्टद्युम्न के पुत्र, बंधु विराट और उनके पुत्र, द्रौपदी के प्राणप्रिय पुत्र अभिमन्यु, वक्ष में स्थित तिल-चिन्ह की तरह द्रौपदी के हृदय के एकांत की कोमल भावना- कुंती की परम दुर्बलता वीर कर्ण, आर्यावर्त्त की अगणित राजभक्त प्रजा, देशभक्त योद्धा, पुत्र घटोत्कच, इरावान, और अंत में द्रौपदी के पांच प्राणप्रिय बालक युद्ध में निहत हुए। निष्पाप कोमल शिशु खिलने से पहले ही समर-विलासी अंधे लोगों की रक्तपिपासा मिटाने के लिए समर-प्रांगण में सो गए। कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी और पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना युद्धभूमि की रक्तनदी में चिरनिद्रित हो गई। वीरों में कौरव पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और द्रौपदीके पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा, पांडव पक्ष के पंचपांडव, कृष्ण और सात्यकि युद्ध के अंत में जीवित हैं।

दुर्योधन स्वयं बहुत घायल हो चुका था। उसका कवच युद्धमें कट गया था। अश्व, सारथी मारे जा चुके थे। रथ नष्ट हो गया था। वह बहुत अधिक थका था। किसी भी क्षण पाण्डव आकर उसे धर दबोचेंगे, यह भय था ही। अत: अपनी गदा उठाये वह पैदल ही चल पड़ा। उसने सरोवरके जलमें जल-स्तंभन विद्याका आश्रय लेकर कुछ समय विश्राम करनेका विचार किया। उसे उस समय विश्राम सबसे अधिक आवश्यक था। कोई भी नवीन योजना सोचनेको भी समय चाहिए।

४) दुर्योधन का सरोवर में छुप जाना

राजा दुर्योधन जब अकेला हो गया और उसे समरभूमिमें कोई भी अपना सहायक नहीं दिखायी पड़ा तो अपने मरे हुए घोड़ोंको वहीं छोड़कर वह पूर्व दिशाकी ओर पैदल ही भागा। जो एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका मालिक था, वही दुर्योधन अब गदा लेकर पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था। अभी थोड़ी ही दूर गया था कि उसे धर्मात्मा विदुरकी कही हुई बातें याद आने लगीं। उसने सोचा, हमारा और इन क्षत्रियोंका जो यह महान् संहार हुआ है, इसे महाबुद्धिमान्, विदुरने पहले ही जान लिया था। इस प्रकारकी बातें सोचता हुआ वह सरोवरमें प्रवेश करनेके लिये बढ़ता चला गया। उस

समय अपनी सेनाका संहार देखकर उसका हृदय शोकसे संतप्त हो रहा था।

दुर्योधनकी सेनामें कई लाख वीर थे, किंतु उस समय अश्वत्थामा, कृतवर्मा तथा कृपाचार्यके सिवा कोई भी जीवित नहीं दिखायी पड़ता था। दुर्योधन उस महासंग्रामसे जीवित बचकर पानीसे भरे हुए सरोवरमें सो रहा है, वह बहुत घायल हो चुका है। यों कहकर दुर्योधनने उस सरोवरमें प्रवेश किया और मायासे उसका पानी बाँध दिया। इसके बाद कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा भी उधर ही आ निकले।

कर्ण की चिता में आग लगी तो सूर्यदेव अधीर होकर अपने दानवीर पुत्र के अन्तिम दर्शनों के लिये निकल आये। हे सूर्यदेव समय आपके इस पुत्र के वीरगति को प्राप्त होने पर शोक प्रकट कर रहा है। शोक इसका नहीं कि वो वीरगति को प्राप्त हुआ। ऐसे लोग तो वीर गति को प्राप्त होने के लिये ही जन्म लेते हैं। समय शोक प्रकट कर रहा है इस बात पर कि कर्ण को उसकी पहिचान नहीं मिली। उसकी माता मर्यादाओं की डोरी में बन्धी हुई थी और उसके पिता अपने रथ में बैठे उसके पहियों की देखभाल में लगे हुये थे। समय यह किससे पूछे कि कर्ण के जन्म में यदि कोई दोषी है तो वो कौन है? स्वयं कर्ण तो नि:सन्देह नहीं है किन्तु जीवन भर उसने उस अपराध का दंड भुगता जिससे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। सूतपुत्र होना अपने आप में कोई अपमान की बात नहीं है किन्तु यदि वो सूतपुत्र ही होता और जीवनभर क्षत्रिय कहा जाता तब भी उसकी माता की कोख का अपमान ही हुआ होता क्योंकि कोख की तो कोई जात ही नहीं होती। हे सूर्यदेव आनेवाले न जाने कितने युगों तक समाज के सामने एक प्रश्न चिन्ह बन कर खडा रहेगा कि जब अपने जन्मपर उसका वश नहीं तो फिर वो उसका दंड क्यों भुगते? और कभी न कभी आपको कुन्ती को, किसी और रूप, किसी और शक्ल, किसी और नाम के साथ समाज की आंखों में आंखे डालकर कहना पडेगा कि यह बालक नदी में नहीं बहाया जायेगा क्योंकि यह अनाथ नहीं है। यह तब होगा जब आप दोनों इसको इसकी वो पहिचान देंगे जिस पर इसका अधिकार है इसलिये हे सूर्यदेव समय आपके पुत्र कर्ण को प्रणाम करता हुआ रणभूमि की ओर चलता है। पांडव अपनी बची खुची सेना लेकर निकल चुके हैं और रणभूमि कुरुक्षेत्र में आते हैं पर सामने कौरवों की सेना को न देखकर युधिष्ठिर बोला सारथी रथ रोको। यह तो बडे ही आश्चर्य की बात है कौरव सेना आज शिबिर से बाहर क्यों नहीं निकली है? भीम बोला, तो क्या हुआ, हम उनके शिबिर की ओर चले जाते हैं ज्येष्ठ भ्राताश्री। धृष्टद्युम्न बोले, लगता है दुर्योधन अपने शिबिर से भाग गया है। कृष्ण बोले, दुर्योधन में हजार दोष हो सकते है युवराज धृष्टद्युम्न लेकिन वो कायर नहीं है, महावीर है। वो या तो जीतकर युद्धभूमि छोडेगा या वीरगति को प्राप्त होगा। वीर शत्रुओं का भी अपमान नहीं करना चाहिये प्रधान सेनापति। धृष्टद्युम्न बोला, तो क्या आपका यह कहना है कि हमें यहां खडे-खडे उनकी प्रतीक्षा करनी चाहिये? युधिष्ठिर बोले, हो सकता है कि वो सन्धि के विषय में सोच रहा हो। हे धृष्टद्युम्न यदि आज भी सन्धि हो जाये तो ज्येष्ठ पिताश्री बिल्कुल अकेले रहने से बच जायेंगे। सैनिक जाकर दुर्योधन के विषय में समाचार लेकर आओ।

भीम ने कहा, मैंने उसे बहुत खोजा है महाराज। किंतु उसका कुछ पता नहीं है। पता नहीं उसे धरती खा गई या आकाश निगल गया। यदि वह मारा जाकर शवों के बीच में कहीं पड़ा नहीं है तो भाग कर कहीं छुप गया है। कहाँ छिपा है, इसका हमें अभी तक कोई संकेत नहीं मिला है।

कृष्ण बोले, बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। उसे खोजना ही होगा। इस प्रकार का पराजित शत्रु छिपकर घात कर सकता है। दुर्योधन का शव जब तक अपनी आँखों से देख न लें, तब तक न युद्ध के समाप्त होने का भ्रम पालें, न वैर को समाप्त हुआ मानें; और न ही स्वयं को किसी भी प्रकार से सुरक्षित समझें।

भीम ने बताया, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य को भी न किसी ने मरते देखा है, न उनके शव मिले हैं; और न ही यह पता लगा है कि वे कहाँ हैं। बहुत संभव है कि वे चारों ही कहीं एक साथ छिपे हुए हों।

कृष्ण बोले, उसमें अभी कुछ समय शेष है। हम अभी पूर्णत: विजयी नहीं हुए हैं। पांचाल राजकुमार। तुम विशेष रूप से सावधान रहो। अश्वत्थामा अभी जीवित है। वह अपने पिता का प्रतिशोध लेने का प्रयत्न अवश्य करेगा। धर्मराज ठीक कह रहे हैं। हमें अपने शत्रुओं को खोजना भी है, उन्हें घेरना भी है; और उनको मारना भी है। इसमें न शिथिलता होनी चाहिए और न ही विलंब। बलराम के आने से क्या होगा, यह बताना मेरे लिए कठिन है, किंतु इतना स्पष्ट है कि उससे दुर्योधन का मनोबल बढ़ेगा। उसका सैन्यबल भी बढ़ सकता है और सबसे बड़ी बात यह है कि हम दुर्योधन के साथ अपना मनमाना व्यवहार करने के लिए स्वतंत्र नहीं रह जाएँगे।

कृपाचार्य के शिबिर में अश्वत्थामा और कृतवर्मा बैठे वार्तालाप कर रहे हैं। अश्वत्थामा बोला, मेरी समझ में ये नहीं आता कि अब यह दुर्योधन चला कहां गया? कृतवर्मा बोला, यदि कहीं जाना ही था तो किसी को प्रधान सेनापति नियुक्त करके जाता। बिना सेनापति के कौरवसेना शिबिर से बाहर नहीं निकल सकती। आचार्य आप ही किसी को सेनापति नियुक्त कर दीजिये। कृपाचार्य बोले, नहीं। मुझे इसका अधिकार नहीं। अश्वत्थामा बोला, तो क्या आप यह चाहते हैं कि पांडव सेना को हम शिबिर में घुस आने दें? कृपाचार्य बोले, लेकिन युधिष्ठिर ऐसा नहीं करेगा? कृतवर्मा बोला, आप ही हमारे सेनापति क्यों नहीं बन जाते? कृपाचार्य बोले, सेनापति बना नहीं जाता कृतवर्मा सेनापति बनाया जाता है। अश्वत्थामा बोला, तो क्या आप यह चाहते हैं कि हम यहां बैठे-बैठे उस अन्तिम अपमान की प्रतीक्षा करें जब पांडव सेना यहां घुस आयेगी। कृपाचार्य बोले, मैंने तुमसे कहा न वत्स् युधिष्ठिर धर्म का प्रतीक है। वो दुर्योधन के जीवन काल में यहां नहीं आयेगा। या वो तो वही रणभूमि में उसकी प्रतीक्षा करेगा या फिर वहां जायेगा जहां दुर्योधन है।

उधर धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयोंको साथ लेकर दुर्योधनका वध करनेके लिये इधर-उधर विचरने लगे, किंतु बहुत ढूँढनेपर भी वे उसका पता न पा सके।

कोई रहस्य तब रहस्य नहीं रह जाता, जब उसे दो से अधिक व्यक्ति जान लेते हैं। तब बहुत प्रयत्न और सावधानी रखनेपर भी उसकी गोपनीयताके भंग होनेका छिद्र निकल ही आता है। सञ्जयसे समाचार पाकर अश्वत्थामा आदि दुर्योधनसे मिलने सरोवरके समीप आये। उनसे बातचीत करने दुर्योधन जलसे ऊपर उठा। वनसे आखेट करके लौटते कुछ व्याधोंने दूरसे यह सब देख लिया। उन्हें दुर्योधनके छिपनेका स्थान ज्ञात हो गया।

भीमको आखेट बहुत प्रिय था। फलत: वनमें आखेट करनेवाले व्याधोंसे उनकी मैत्री थी। दुर्योधनका पता पाते ही वे व्याध सीधे पाण्डव शिबिरमें भीमको पूछते आये। उन्होंने पता बतला दिया, पुरस्कृत हुए। पाण्डवों तथा श्रीकृष्णको उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उस सरोवरके समीप पहुँचा दिया। पानीमें छिपे दुर्योधनको युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे ललकारा।

आखेटकोंमें से एक ने बड़ी दीनता से कहा। महाराज। हम कुछ माँगने नहीं आए, हम तो आपको एक सूचना देना चाहते हैं। महाराज। यहाँ से कुछ दूर एक सरोवर है द्वैपायन सरोवर।

व्याध बोला, महाराज। वह वार्तालाप सैनिक गतिविधि को लेकर था। हमें संदेह है कि वे लोग राजा दुर्योधन और उनके सहयोगी थे। इतने में चर के साथ आखेटक ने आकर युधिष्ठिर को सूचना दी यह आखेटक यह जानता है कि युवराज दुर्योधन कहां छिपे हैं। आखेटक बोला, महाराज की जय हो। मैंने सूर्योदय के पहिले युवराज को द्वैत सरोवर में प्रवेश करते देखा है। युधिष्ठिर बोले, तो क्या उसने आत्महत्या कर ली आखेटक? आखेटक बोला, नहीं महाराज लक्षण तो आत्महत्या

के नहीं है। कृष्ण बोले, चिन्ता मत कीजिये बडे भैया। वो निपुण मायावी भी है। वो जानता है अब उसके पास योद्धा नहीं रहे। यदि वो अपनी सेना के बाकी योद्धाओं को रणभूमिसे हटा भी ले तब भी आप पांच हैं और वो केवल चार। स्वयं दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कुलगुरु कृपाचार्य। इसलिये अवश्य ही वो सरोवर में विश्राम करने गया होगा। युधिष्ठिर बोले, रथ द्वैत सरोवर की ओर ले चलो सारथी।

उनमें से एक ने कहा कि हमें साहसपूर्वक युद्ध करना चाहिए; किंतु दूसरे ने कहा कि इस समय युद्ध का कोई लाभ नहीं है। सब लोग थके हुए हैं और बुरी तरह घायल हैं। सबको विश्राम की आवश्यकता है। वह स्वयं भी रात भर विश्राम करना चाहता है। वह सरोवर के जल को बाँधकर, उसमें छिपकर विश्राम करेगा। यहाँ कोई उसे खोज नहीं पाएगा। वे लोग भी कहीं सुरक्षित स्थान देखकर विश्राम करें। प्रात: युद्ध के विषय में सोचेंगे।

तो वह दुर्योधन ही था। भीम के मन में घंटियाँ बज गईं। वह द्वैपायन सरोवर को बाँधकर उसमें विश्राम कर रहा है।

अर्जुन ने कहा, वहाँ छिपा बैठा है दुर्योधन। तो वह हमें युद्धक्षेत्र में कहाँ से दिखाई देता।

कृष्ण ने पूछा, द्वैपायन सरोवर में जल को बाँधकर छिपने का अर्थ समझते हैं न धर्मराज।

युधिष्ठिर बोले, वह सारा क्षेत्र सरोवरों का ही है। उनसे लगकर ही, सरस्वती और ओघवती नदियों की धाराएँ भी बहती हैं। दुर्योधन को वहाँ खोजना कठिन होगा। वह अच्छा तैराक भी है। लंबे समय तक जल के नीचे बिना श्वास लिए छिपा भी रह सकता है।

अर्जुन बोला, वर्तमान स्थिति में भी दुर्योधन वहाँ सुरक्षित है और उसके साथी कहीं अन्यत्र छिपे हैं। वे बाहर-बाहर घूमते रहेंगे और उससे आज्ञा लेकर हमारी क्षति करते रहेंगे।

भीम बोला, वहाँ से निकालकर हम उसे घेर लें और फिर कुत्ते की मृत्यु दें। मेरी प्रतिज्ञा अभी पूरी नहीं हुई है।

पांडवों ने अपने रथ द्वैपायन सरोवर से कुछ दूर ही त्याग दिए। वे लोग कम से कम शब्द करते हुए, बाँध की ओर बढ़ रहे थे। आगे-आगे युधिष्ठिर थे। कृष्ण उनके साथ थे। शेष लोग उनसे थोड़ा पीछे; किंतु उनसे लगे-लगे ही चल रहे थे। वे सब ही थके हुए थे। उनके वाहन भी थक चुके थे। किंतु दुर्योधन को बंदी करने अथवा उसके वध का उत्साह सबको ही आगे चलाए चल रहा था। शस्त्र उनके पास थे और वे चौकन्ने थे कि किसी प्रकार का कोई आकस्मिक आक्रमण हो तो वे उसका सामना कर सकें।

कृष्ण ने उत्तर दिया। यदि वह मर जाने की ही बात सोच सकता तो युद्धभूमि से इस प्रकार भाग कर एकांत स्थान पर छुप जाने का कायरतापूर्ण कार्य नहीं करता। स्पष्ट है कि वह जीवित रहना चाहता है और उसे अपने जीवन की आशा है।

किंतु युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ था। दुर्योधन अभी जीवित था। भीम कौरवों के प्रति बहुत सदय नहीं था; किंतु उसकी प्रतिशोध की भावना भी विचित्र थी। कृष्णने कहा था, मेरी तो हार्दिक इच्छा है महाराज कि दुर्योधन जीवित रहे। दुर्योधन ही नहीं, सारे कौरव दास तुल्य होकर महाराज युधिष्ठिर की परिचर्या करते हुए अनुभव करें कि उनके कारण पांडवों ने कितना कष्ट सहा है।

भीम तड़पकर बोला, इस आशा का कोई आधार भी है? वह समझता है कि वह अकेला अथवा वह और उसके वे तीन साथी, हम सबका वध कर देंगे और उसे पुन: हस्तिनापुर का राज्य मिल जाएगा?

कृष्ण बोले, इसलिए आवश्यक है कि हम उसकी वह आशा पूरी होने से पहले ही उसका वध कर दें। उसे उसके छिपने के स्थान से बाहर निकालना होगा। वह उसकी अपनी इच्छा के बिना नहीं हो सकता। उसके मन में बाहर निकलने की

इच्छा उत्पन्न हो जाए, इसी पर हमारी सफलता निर्भर करती है। अब यह आप पर है धर्मराज कि आप किस युक्ति से उसे बाहर निकालते हैं।

कृष्ण बोले, धर्मराज सबसे अधिक विश्वसनीय हैं। पहली बात तो यह है कि धर्मराज राजा हैं। उनका आदेश सबके लिए समान रूप से मान्य होगा। दूसरे, हम सबकी तुलना में दुर्योधन को धर्मराज के विचार पर ही अधिक विश्वास होगा। इसलिए यह कार्य धर्मराज ही करें।

श्रीकृष्ण ने सदा ही बलराम को सँभाला है। ऐसे ही तो इनको हलधरशमनम् नहीं कहा गया। पर फिर भी इस समय के लिए कृष्ण की चेतावनी महत्त्वपूर्ण है। किसी का भी समय बदलते देर नहीं लगती। व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए। वे बोले, दुर्योधन और उसके तीन महारथी अभी जीवित हैं। बलराम की सहायता मिल गई तो वह और प्रबल हो उठेगा। बलराम और कृतवर्मा को दुर्योधन की सहायता में खड़े देखकर कुछ और यादव योद्धा भी उनके समर्थन में खड़े हो सकते हैं। हम न यादवों से लड़ना चाहते हैं, न रोहिणीनन्दन से। हम उनसे किसी भी प्रकार का वैर-विरोध नहीं चाहते। इसलिए अच्छा है कि उनके आने से पहले ही यह युद्ध समाप्त हो जाए।

कौरव-सेनापति शल्य और कुटिलताओं से अपनी महत्वाकांक्षा को निरन्तर प्रज्वलित रखनेवाले शकुनि मामा का पतन हुआ देख भयभीत दुर्योधन अपने रथ सहित रणभूमि से अदृश्य हो गया। आज तक लाखों योद्धाओं ने जिसमें स्नान किया था, ऐसे पवित्र माने गये सूर्यकुण्ड में जाकर वह छिप गया।

तदनन्तर कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा उस सरोवरपर गये, जहाँ दुर्योधन सो रहा था। वहाँ पहुँचकर वे उससे बोले, राजन्। उठो और हमलोगोंको साथ लेकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो या तो विजयी होकर पृथ्वीका राज्य भोगो या रणमें प्राण देकर स्वर्ग प्राप्त करो। हम सर्वथा तुम्हारी रक्षा करेंगे। इसलिये तुम युद्धके लिये तैयार हो जाओ।

दुर्योधन बोला, जहाँ इतना बड़ा नर-संहार हुआ है, वहाँसे आपलोगोंको बचकर आये देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। अवश्य ही हमलोग शत्रुओंपर विजय पायेंगे; किंतु यह तभी हो सकता है, जब कुछ समयतक विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें। आपलोग भी बहुत थक गये हैं और मैं भी विशेष घायल हो चुका हूँ। उधर पाण्डवोंका बल और उत्साह बढ़ा हुआ है। इसलिये इस समय उनके साथ युद्ध करना मुझे पसंद नहीं है। आज एक रात यहाँ विश्राम करके कल आपलोगोंको साथ लेकर शत्रुओंसे युद्ध करूँगा।

इधर दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ने की घोर प्रतिज्ञा करनेवाला गदावीर भीम दुर्योधन कहाँ हैं? कहाँ है दुर्योधन? चिल्लाता और गदा नचाता हुआ दोनों सेनाओं में उन्मादित होकर घूम रहा था।

दुर्योधन को कहीं न पाकर हताश भीम नन्दिघोष के समीप आया। आग उगलती हुई आँखों से, वह क्रोध से चिल्लाया, हे हृषीकेश, इस समस्त विनाश की जड़ को ही मैं उखाड़ना चाहता हूँ। कौरवों के उस कालसर्प-नीच दुर्योधन को मैं सबके समक्ष मार डालना चाहता हूँ। वह तो रणभूमि से पलायन ही कर गया है। कहाँ खोजूँ उसे?

आज पहली बार अर्जुन को, पीछे-पीछे आने का संकेत करते हुए कृष्ण नन्दिघोष से नीचे उतरे। झपाके से वे भीम के रथ के पास आये। उन्होंने भीम के सारथी विशोक को रथ के पार्श्वभाग में बैठने का निर्देश कर स्वयं सारथी का स्थान ग्रहण किया। युधिष्ठिर को भी अपने पीछे-पीछे आने को कहकर वे भीम सहित सूर्यकुण्ड के तट पर पहुँचे।

सभी भाई कृष्ण और युधिष्ठिर सहित सरोवर के पास आते हैं। आखेटक ने बताया यही से गये थे युवराज सरोवर में और प्रणाम कर वहां से चले जाता है। युधिष्ठिर बोले, हे वासुदेव मैं इस विजय के इस पल में एक अनोखे आनन्द के साथ-साथ

एक निर्दय उदासी का भी अनुभव कर रहा हूं। यह भला कौन सोच सकता था कि जिस शक्तिशाली सेना में पितामह भीष्म, गुरुवर द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, गुरु पुत्र अश्वत्थामा, महावीर ज्येष्ठ भ्राता कर्ण, कृतवर्मा, गान्धार नरेश, शकुनि, मद्र नरेश शल्य और दुर्योधन जैसे महावीर थे उस सेना का अन्त इस सरोवर के किनारे यों अकेला और असहाय खडा दिखाई देगा। कृष्ण बोले, नहीं बडे भैया नहीं। जब तक दुर्योधन जीवित है तब तक आप विजय से उतनी ही दूर है जितनी दूर आप इस युद्ध के आरम्भ के दिन थे। इसलिये अपने हृदय को पिघलने न दीजिये बडे भैया और उन वीरों को याद करके अपनी आंखों से आंसू भी न आने दीजिये जो इस रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हो चुके। विजय अन्तिम लक्ष्य नहीं है बडे भैया। अन्तिम लक्ष्य है एक स्वस्थ, उज्ज्वल और नवीन समाज की स्थापना और यही धर्म है। हे नरेश अपने कर्म का हाथ पकडकर धर्म की उस चरम सीमा की ओर बढिये। वहां तक पहुंचना महत्वपूर्ण नहीं है बडे भैया। महत्व है मात्रा की दिशा का। यदि दिशा ठीक है तो धर्म की कोई न कोई पीढी उस धर्म की शिखा तक पहुंच ही जायेगी।

वह मायासेन पान बाँधकर पोखरेमें सो रहा है। यह प्रिय समाचार सुनकर भाइयोंसहित युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और श्रीकृष्णको आगे करके तुरंत सरोवरकी ओर चल दिये।

उस समय अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, सात्यकि, द्रौपदीके पुत्र तथा शेष पाञ्चाल योद्धा हाथीसवार, घुड़सवार और सैकड़ों पैदलोंके साथ युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये। तदनन्तर, महाराज युधिष्ठिर सबके साथ उस अत्यन्त भयंकर द्वैपायननामक सरोवरके पास, जहाँ दुर्योधन छिपा था, जा पहुँचे।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को रास्तेमें एक बरगदका वृक्ष दिखायी पड़ा। वे थके तो थे ही, उसके नीचे बैठ गये और राजा दुर्योधनके विषयमें विचार करने लगे। अब युद्ध किस तरह होगा? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी? पाण्डवोंको दुर्योधनका पता कैसे लगेगा? यही सब सोचते-सोचते उन्होंने घोड़ोंको रथसे खोल दिया और सब-के-सब वृक्षके नीचे आराम करने लगे।

कृतवर्मा, अश्वत्थामा और कृपाचार्य दुर्योधन को ढूंढते हुये वहां सरोवर के पास एक वृक्ष के पीछे से छिपकर देख रहे थे। कृतवर्मा बोला, पांडव उस झील के किनारे क्या कर रहे हैं गुरुवर? कृपाचार्य बोले, दुर्योधन उसी सरोवर में छिपा हुआ है। अश्वत्थामा बोला, दुर्योधन जैसे महावीर के लिये छिपने जैसे शब्दों का प्रयोग न करे मामाश्री। वो भयभीत होकर छिप नहीं सकता। क्योंकि जो वीर होते है वो मृत्यु के साथ आंख मिचौली नहीं खेलते। वे दो पग आगे बढ़कर मृत्यु के हाथ वरण करते है और यह युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ है। वहां पांच पांडव है तो यहां हम चार है। कृतवर्मा बोला, यदि दुर्योधन इस सरोवर में है तो नि:सन्देह ही हमें उसकी सहायता के लिये जाना चाहिये। अश्वत्थामा बोला, नहीं। ऐसा करके हम उसके आत्मसम्मान को घायल नहीं कर सकते और वो भी ऐसी घडी में जब वो अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करने जा रहा है। हे कृतवर्मा दुर्योधन जैसे योद्धा हर युग में जन्म नहीं लेते। हां यदि पांडवों ने कायरता दिखलाई और सबके सब उस पर टूट पड़े तो हम अवश्य अपने राजा, अपने प्रधान सेनापति की सहायता के लिये युद्ध की इस चिता में कूद पडेंगे। कृपाचार्य बोले, अश्वत्थामा ठीक कह रहा है कृतवर्मा। यहीं रूककर प्रतीक्षा करे। दुर्योधन जानता है कि हम तीनों जीवित है यदि उसे हमारी सहायता की आवश्यकता होगी तो वो अवश्य पुकारेगा।

उस सरोवरपर पहुँचकर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा, माधव। देखिये तो सही दुर्योधनने जलके भीतर कैसी मायाका प्रयोग किया है? यह पानीको रोककर यहाँ सो रहा है। यह मायामें बड़ा निपुण है। किंतु यदि साक्षात् इन्द्र भी इसकी सहायता करने आवें, तो भी आज संसार इसे मरा हुआ ही देखेगा।

श्रीकृष्णने कहा, भारत। इस मायावीकी मायाको आप मायासे ही नष्ट कर डालिये; आप भी जलमें मायाका प्रयोग करके इसका वध कीजिये। राजन्। उद्योग ही सबसे अधिक बलवान है; और कुछ नहीं। उद्योग और उपायोंसे ही बड़े-बड़े दैत्य, दानव, राक्षस तथा राजा मारे गये हैं; इसलिये आप भी उद्योग कीजिये।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन दुर्योधन ने अपनी माया से सरोवर के जल को स्थिर और शान्त कर दिया है। आखेटक ने ठीक ही कहा था कि वो यहीं विश्राम कर रहा है। महादेव की सौगन्ध यदि आज उसकी सहायता के लिये इन्द्र भी अपना वज्र लेकर आ जाये तो मैं उन्हे भी देख लूंगा। कृष्ण बोले, अरे बडे भैया इन्द्र ने आपका क्या बिगाडा है। उन्होंने इस धर्म युद्ध में आपकी सहायता ही की है, यदि अंगराज कर्ण से वो उनका कवच और कुंडल भिक्षा में मांग कर न ले गये होते तो अंगराज कर्ण का वध असम्भव था। और यदि अंगराज कर्ण वीरगति को प्राप्त न हुये होते बडे भैया तो आज यह क्षण भी नहीं आया होता बडे भैया कि घायल, थका हुआ, असहाय अकेला दुर्योधन सरोवर में बैठा आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। दुर्योधन को गिराइये बडे भैया। जो अन्याय, अहंकार, अधर्म और अन्धकार की सबसे बडी विशाल दीवार है।

सरोवर के मध्य बीच-बीच में पानी के पृष्ठ पर आता और प्राणायाम के बल पर दीर्घकाल तक पानी के नीचे रहता दुर्योधन युधिष्ठिर के बार-बार पुकारने पर भी सरोवर से बाहर नहीं आ रहा था। अन्तत: कृष्ण ने युधिष्ठिर के कानों में कुछ फुसफुसाया। तब दुर्योधन को सरोवर से बाहर निकालने हेतु युधिष्ठिर ऊँचे स्वर में चिल्लाया, कृष्णके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने हँसते-हँसते पानीमें छिपे हुए दुर्योधन से कहा- सुयोधन। तुमने जलके भीतर किसलिये यह अनुष्ठान आरम्भ किया है? समस्त क्षत्रियों तथा अपने कुलका संहार कराकर अब अपनी जान बचानेके लिये पोखरेमें जा घुसे हो? तुम्हारा वह पहलेका दर्प और अभिमान कहाँ चला गया जो डरके मारे यहाँ आकर छिपे हो? सभामें सब लोग तुम्हें शूर कहा करते हैं, किंतु जब तुम पानीमें घुसे हो तो मैं तुम्हारा वह शौर्य व्यर्थ ही समझता हूँ। जो कौरव-वंशमें जन्म लेनेके कारण सदा अपनी प्रशंसा किया करता था, वही युद्धसे डरकर पानीमें कैसे छिपा बैठा है? अभी युद्धका अन्त तो हुआ नहीं, फिर तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा कैसे हो गयी? इस लड़ाईमें पुत्र, भाई, सम्बन्धी, मित्र, मामा तथा बान्धव-जनोंको मरवाकर अब तुम पोखरेमें क्यों सो रहे हो? कहाँ गया तुम्हारा पौरूष, कहाँ गया तुम्हारा अभिमान और कहाँ गयी तुम्हारी वज्रकी-सी गर्जना? तुम तो अस्त्रविद्याके बड़े ज्ञाता थे, कहाँ गया वह सारा ज्ञान, अब तालाबमें कैसे नींद आ रही है? भारत। उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार हमारे साथ युद्ध करो। हमलोगोंको परास्त करके पृथ्वीका राज्य करो अथवा हमारे हाथों मरकर सदाके लिये रणभूमिमें सो जाओ।

युधिष्ठिर आगे बढ़ गए। वे सरोवर तट की उस सीमा तक चले गए, जहाँ तक बिना संकट के जाया जा सकता था और जहाँ से उनकी बात दुर्योधन सुन सकता था।

युधिष्ठिर ने उच्च स्वर में कहा, दुर्योधन। भयभीत मूषक के समान अपनी बिल में छिपे क्या बैठे हो। बाहर निकलो और सच्चे क्षत्रिय के समान हमसे युद्ध करो। यह न समझना कि हम यह मानकर लौट जाएँगे कि तुम यहाँ नहीं हो। तुम्हें हम देख नहीं सकते; किंतु निश्चित रूप से जानते हैं कि यहाँ और कोई नहीं, कायर दुर्योधन ही छिपा बैठा है। स्वयं युद्ध आरम्भ कर, अपने पितामहों, गुरु, भाइयों और पुत्रों को मरवाकर अब तुम्हें अपने प्राण बहुत प्यारे हो गए। युद्ध के आरंभ में तो क्षत्रियत्व की बहुत दुहाई थी। अब इस भीत मूषक पर थूकेंगे क्षत्रिय। ओ कुलनाशी। नीच पाखंडी। यह मत समझ कि तू बाहर नहीं निकलेगा तो तेरे प्राण बच जाएँगे। हम तुझे चारों ओर से घेर चुके हैं। तुझे जीवित नहीं छोड़ेंगे। यदि तू बाहर नहीं आया तो हम जल में प्रवेश करेंगे। जानता हूँ। इसी माया के सहारे वहाँ छिपकर बैठे हो। हम जल में प्रवेश न भी करें तो क्या, अर्जुन के बाण तुझे वहीं सुला देंगे कायर। तू उसके बाणों की पहुँच से बाहर तो नहीं है।

कृष्ण धीरे से मुस्कराए, उसकी शांति भंग हो रही है। क्रोध जाग रहा है। यही क्रोध उसका नाश करेगा।

युधिष्ठिर ने कहा, तो फिर वहाँ क्यों छुपा बैठा है कायर। बाहर निकल और देख उन्हें। वे दोनों तेरी प्रतीक्षा में ही खड़े हैं।

धर्मराजके ऐसा कहनेपर दुर्योधनने पानीमेंसे ही जवाब दिया- किसी भी प्राणीको भय होना आश्चर्यकी बात नहीं है, किंतु मैं प्राणोंके भयसे यहाँ नहीं आया हूँ। मेरे पास न रथ है न भाथा। पार्श्वरक्षक और सारथी भी मारे जा चुके हैं। सेना नष्ट हो गयी और मैं अकेला रह गया; इस दशामें मुझे कुछ देरतक विश्राम करनेकी इच्छा हुई। राजन्। मैं प्राणोंकी रक्षाके लिये या और किसी भयसे बचनेके लिये अथवा मनमें विषाद होनेके कारण पानीमें नहीं घुसा हूँ; सिर्फ थक जानेके कारण ऐसा किया है। तुम भी कुछ देरतक सुस्ता लो, तुम्हारे अनुयायी भी विश्राम कर लें; फिर मैं उठकर तुम सब लोगोंके साथ लोहा लूँगा।

दुर्योधन बोला, युद्ध से नहीं डरता मैं। थक गया हूँ। थोड़ा सो लेना चाहता हूँ। तुम लोग भी जाओ। विश्राम करो। युद्ध फिर भी हो सकता है। युधिष्ठिरने कहा, सुयोधन। हम सब लोग सुस्ता चुके हैं और बहुत देरसे तुम्हें खोज रहे हैं, इसलिये तुम अभी उठकर युद्ध करो। संग्राममें समस्त पाण्डवोंको मारकर समृद्धिशाली राज्यका उपभोग करो अथवा हमारे हाथसे मरकर वीरोंको मिलने योग्य पुण्यलोकोंमें चले जाओ। अब तुझे सुलाकर ही सोएँगे। हम भी चाहते हैं कि तुझे चिर निद्रा दें, ताकि तेरी क्लांति समाप्त हो सके।

दुर्योधन बोला, राजन्। जिनके लिये मैं राज्य चाहता था, वे मेरे सभी भाई मारे जा चुके हैं। पृथ्वीके समस्त पुरुष रत्नों और क्षत्रियपुंगवोंका विनाश हो गया है; अब यह भूमि विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हो चुकी है; अत: इसके उपभोगके लिये मेरे मनमें तनिक भी उत्साह नहीं है। हाँ, आज भी पाण्डवों तथा पाञ्चालोंका उत्साह भंग करके तुम्हें जीतनेकी आशा रखता हूँ। किंतु जब द्रोण और कर्ण शान्त हो गये, पितामह भीष्म मार डाले गये, तो अब मेरी दृष्टिमें इस युद्धकी कोई आवश्यकता नहीं रही। आजसे यह सारी पृथ्वी तुम्हारी ही रहे, मैं इसे नहीं चाहता। मेरे पक्षके सभी वीर नष्ट हो गये; अत: अब राज्यमें मेरी रुचि नहीं रही। मैं तो मृगछाला धारण करके आजसे वनमें ही जाकर रहूँगा। मेरे अपने कहे जानेवाले जब कोई भी मनुष्य जीवित नहीं हरे, तो मैं स्वंय भी जीवित रहना नहीं चाहता। अब तुम जाओ और जिसका राजा मारा गया, योद्धा नष्ट हो गये तथा जिसके रत्न क्षीण हो चुके हैं, उस पृथ्वीका आनन्दपूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी आजीविका छीनी जा चुकी है।

युधिष्ठिरने कहा- तात। तुम जलमें बैठे-बैठे प्रलाप न करो। मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको तुम्हारे दानके रूपमें नहीं लेना चाहता। मैं तो तुम्हें युद्धमें जीतकर ही इसका उपभोग करूँगा। अब तो तुम स्वयं ही पृथ्वीके राजा नहीं रहे, फिर इसका दान कैसे करना चाहते हो? जब हमलोगोंने अपने कुलमें शान्ति कायम रखनेके लिये धर्मत: याचना की थी, उसी समय तुमने हमें पृथ्वी क्यों नहीं दे दी? एक बार श्रीकृष्णको कोरा जवाब देकर इस समय राज्य देना चाहते हो? अब न तो तुम पृथ्वी किसीको दे सकते हो और न छीन ही सकते हो, फिर देनेकी इच्छा क्यों हुई? पहले तो सुईकी नोक बराबर भी जमीन नहीं देना चाहते थे और आज सारी पृथ्वी देनेको तैयार हो गये। क्या बात है? तुमने हमलोगोंको जलानेकी कोशिश की थी, भीमको विष खिलाकर पानीमें डुबाया और विषधर साँपोंसे डँसवाया। इतना ही नहीं, तुमने सारा राज्य छीनकर हमें अपने कपट जालका शिकार बनाया। तुम्हारे ही आदेशसे द्रौपदीके केश और वस्त्र खींचे गये और स्वयं तुमने उसे गालियाँ सुनायीं। पापी। इन सब कारणोंसे तुम्हारा जीवन नष्ट-सा हो चुका है। अब उठो और युद्ध करो, इसीमें तुम्हारी भलाई है।

युधिष्ठिर पुकारता है हे अनुज दुर्योधन तुम्ही ने इस युद्ध को आमंत्रित किया था। तुम्ही ने शान्ति के सारे द्वार बन्द किये थे। तुम्हारे ही कारण आज पितामह भीष्म बाणों की शैयापर है। तुम्हारे ही कारण परशुराम शिष्य आचार्य द्रोण मृत है, तुम्हारे ही कारण ज्येष्ठ माताश्री के ९९ पुत्र वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं तुम फिर वीरों की भांति इस युद्ध का अन्तिम

स्वागत करने के लिये आगे क्यों नहीं बढते? ये न सोचो कि हम पानी के उस बुलबुले को तोड नहीं सकते की जिसके भीतर तुम अपने आपको सुरक्षित समझ रहे हो। हे महारथी या तो पराजय स्वीकार करो या सरोवर से निकलकर फिर युद्ध करो। हे दुर्योधन तुमने भरतवंश में जन्म लिया है। मृत्यु से भाग कर उसका अपमान मत करो। यदि राज्य चाहिये तब भी सरोवर से निकलकर युद्ध करो या अपने ज्येष्ठ भ्राता से राज्य मांग लो। ज्येष्ठ भ्राता के सामने हाथ फैलाने में अपमान नहीं होता है अनुज अधिकार सिद्ध होता है। हे दुर्योधन जन्म से कोई क्षत्रिय नहीं होता। क्षत्रिय तो केवल वो है जो अपने कर्मद्वारा यह सिद्ध कर सके कि वो क्षत्रिय है।

दुर्योधन जल के भीतर से बोला हे युधिष्ठिर तुम यह न समझो कि मैं अनजाने पिताओं के पांच पुत्रों के भय के कारण यहां आकर छिप गया हूँ। तुम भाइयों ने इस रणभूमि में अपनी कायरता का ही प्रदर्शन किया है। तुमने पितामह भीष्म को कपट से घायल किया। तुमने आचार्य द्रोण को छल से मारा, तुमने मेरी भाई की छाती का लहू पीकर यह सिद्ध किया कि तुम तो मानव जाति के हो ही नही और तुमने मेरे मित्र कर्ण को कपट से मारा। हे पांडवों तुम तो वीर कहलाने के योग्य भी नहीं हो। अरे कायरों तुम तो माता कुन्ती की कोख का अपमान हो। तुम सबों के प्रति घृणा की ताप से मेरा अंग अंग जल रहा है और मैं इसी अग्नि को ठंडा करने के लिये इस जल सरोवर में उतर आया था। हे कौन्तेय अब यह युद्ध केवल युद्ध के लिये होगा। यदि मैं वीरगति को प्राप्त हुआ तब तो तुम्हारी विजय हो ही जायेगी किन्तु यदि मैं विजयी हुआ तब भी मुझे हस्तिनापुर का सिंहासन नहीं चाहिये। अब मैं हस्तिनापुर का सिंहासन लेकर क्या करूंगा। जो मुझे उस सिंहासन पर बैठा देखकर प्रसन्न होते वे सब तो जा चुके हैं। मेरे सारे भाई मेरा मित्र राधेय, मेरे मामाश्री सब के सब जा चुके हैं। अब मुझे यह राज्य नहीं चाहिये युधिष्ठिर। जीतने के उपरान्त भी यह मैं तुम्हे दे दूंगा। किन्तु मैं तुम पांचों भाइयों से युद्ध अवश्य करूंगा युधिष्ठिर क्योंकि यह सिद्ध करना मेरा परम कर्त्तव्य है कि सर्वश्रेष्ठ वीर मैं हूँ तुम नहीं।

दुर्योधन युधिष्ठिरसे बोला, तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो, तुम्हारे रथ और वाहन भी मौजूद हैं। तुम्हारे पास बहुत-से अस्त्र-शस्त्र होंगे और मैं निहत्था हूँ, तुम रथपर बैठोगे और मैं पैदल हूं; यही नहीं, तुम्हारी संख्या बहुत है और मैं कहाँ अकेला ऐसी दशामें मैं तुम्हारे साथ कैसे युद्ध कर सकता हूँ? युधिष्ठिर। मैं तुमसे या भीमसे जरा भी नहीं डरता। श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा पाञ्चालोंका भी मुझे भय नहीं है। नकुल, सहदेव तथा सात्यकिकी भी मैं परवा नहीं करता, इनके अतिरिक्त भी तुम्हारे पास जो सैनिक हैं, उनको भी मैं कुछ नहीं समझता। मैं अकेला ही सबको परास्त कर दूँगा। आज भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके मैं बाह्लीक, द्रोण, भीष्म, कर्ण, जयद्रथ, भगदत्त, शल्य, भूरिश्रवा और शकुनिके तथा अपने पुत्रों, मित्रों, हितैषियों एवं बन्धु-बान्धवोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा।

दुर्योधन अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया। अब पांडव उसे देख सकते थे। उसका शरीर रक्त से भीगा था और वह अपने हाथ में भारी गदा पकड़े हुए था।

युधिष्ठिर बोले, तो आ जा बाहर। विलंब किस बात का है।

दुर्योधन बोला, मैं थका हूँ। अकेला हूँ। तुम्हारे साथ तुम्हारे भाई और संबंधी हैं। सेना है, रथ और हाथी घोड़े हैं। ऐसे में मुझे ललकार रहे हो। बहुत वीर हो तुम। यह कोई क्षत्रियों के समान लड़ना है।

हे दुर्योधन, सरोवर से बाहर आओ और हम पाँचों भ्राताओं में से किसी से भी- जिससे तुम चाहो- द्वन्द्वयुद्ध करो। यदि ऐसा न करोगे, तो जिस सूर्यकुण्ड में सूर्यग्रहण के दिन स्नान कर क्षत्रिय याचकों को दान देते आये हैं, उसी में हमारे सैनिकों को विष मिलाये पानी के कुम्भ-के-कुम्भ उँडेलने पड़ेंगे। तुम्हें तो बाहर निकलना ही होगा। किन्तु सरोवर के

निष्पाप जलचर व्यर्थ ही मर जाएँगे। युधिष्ठिर बोले, तो आ जाओ। क्षत्रियों के समान लड़ो। हम देंगे तुम्हें कवच। हम देंगे तुम्हें शस्त्र। रथ चाहो, रथ ले लो। जो चाहो वह शस्त्र ले लो और जिस योद्धा से लड़ना चाहो, उसे चुन लो। तुम जानते हो कि हम पाँचों के अपने-अपने शस्त्र हैं। जिस शस्त्र का चयन करोगे, उसी के योद्धा से युद्ध करना होगा। यदि तुम विजयी हुए तो राज्य तुम्हारा। हम फिर से वन में लौट जाएँगे।

अर्जुन बोला, दुर्योधन ये तुम नहीं बोल रहे हो दुर्योधन। ये तुम्हारी पराजय बोल रही है। जो राज्य तुम हमे देने की बात कर रहे हो वो ना तुम्हारा कभी था और ना तुम्हारा है। तुम हतभोगी थे। हमने हमारा राज्य तुमसे छीन लिया है। तुम्हारे पास देने के लिये तुम्हारे प्राणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं दुर्योधन।

दुर्योधन बोला, अपनी जिव्हा में गांठ दे अर्जुन। मुझे अकेला न समझ। मैं स्वयं नारायणी सेना से कहीं अधिक एक सशक्त सेना हूं और यह कहकर वह जल के ऊपर बाहर आ गया और बोला तुम लोग तो सचमुच कायर हो। तुम सबके सब अस्त्र-शस्त्र से लैस हो और मैं निहत्था हूं, घायल हूं और थका हुआ हूं। अपने ९९ भाइयों के शव उठा चुका हूं। राधेय जैसे मित्र का दाह संस्कार हो चुका है। गुरु द्रोण का शव उठा चुका हूं। मामाश्री शकुनि का शव उठा चुका हूँ। इतने आदरणीय और प्रिय शव उठाकर मेरे कन्धे टूट चुके हैं परन्तु हे वासुदेव अपने महारथियों से कहो कि मैं भयभीत नहीं हूं।

दुर्योधन बोला, हां लेकिन युद्ध के आरम्भ में नहीं। वार्तालाप में समय नष्ट न करो भ्राताश्री। मुझे यह बताइये कि आप सब कायर मुझसे एक साथ युद्ध करेंगे या अलग-अलग।

तब युधिष्ठिरने कहा- दुर्योधन। यह जानकर खुशी हुई कि तुम अभी युद्धका ही विचार रखते हो। यदि तुम्हारी इच्छा हममेंसे एक-एकके साथ ही लड़नेकी है, तो ऐसा ही करो। कोई भी एक हथियार, जो तुम्हें पसंद हो, लेकर मैदानमें उतरो और एकके ही साथ लड़ो। बाकी लोग दर्शक बनकर खड़े रहेंगे। इसके सिवा, तुम्हारी एक कामना और पूर्ण करता हूँ, हममेंसे एकको भी मार डालोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा और यदि खुद मारे गये तो स्वर्ग तो तुम्हें मिलेगा ही।

युधिष्ठिर बोला, हे अनुज मैं यह जान कर अति प्रसन्न हुआ कि तुम कायर नहीं हो। हे अनुज तुम सचमुच दुर्योधन हो। हे कुरु शिरोमणि तुम हम पांचों से भी एक साथ युद्ध कर सकते हो किन्तु मैं ऐसे नहीं होने दूंगा। तुम हममें से किसी एक को चुन लो और मैं तुम्हे वचन देता हूँ कि यदि तुमने उसे परास्त कर दिया तो मैं पराजय स्वीकार कर लूंगा। हे अनुज तुम अपने लिये शस्त्र भी चुन लो और प्रतिद्वन्दी भी।

दुर्योधनने कहा- यदि एकसे ही लड़ना है, तो मैं युद्धके लिये ललकारता हूँ। किसी भी शूरवीरको मेरा सामना करनेके लिये दे दो। तुम्हारे कथनानुसार मैं आयुधोंमें एकमात्र गदाको ही पसंद करता हूँ। तुममेंसे कोई भी एक वीर, जो मुझे जीतनेकी शक्ति रखता हो, गदा लेकर पैदल ही आ जाय और मेरे साथ युद्ध करे। युधिष्ठिर। इस गदासे मैं तुमको, तुम्हारे भाइयोंको, पाञ्चालों और सृञ्जयोंको तथा तुम्हारे अन्य सैनिकोंको भी परास्त कर सकता हूँ। डर तो मुझे इन्द्रसे भी नहीं लगता, फिर तुमसे क्या भय करूँगा?

दुर्योधन बोला, हे ज्येष्ठ भ्राताश्री आप वास्तव में उतने कुशल नहीं जितना मैं समझा करता था। मैं गदा युद्ध करूंगा।

युधिष्ठिर बोला, किससे। दुर्योधन बोला, मारना तो मुझे तुम पांचों भाइयों को ही है पर जो पहिले मरना चाहे वो सामने आ जाये। कृष्ण के सुझाये गये इस मन्त्र का उस निर्दयी पर प्रभाव हुआ।

युधिष्ठिर बोले, गान्धारीनन्दन। उठो तो सही, एक-एकके साथ ही गदायुद्ध करके अपने पुरुषत्वका परिचय दो। आओ, मेरे ही साथ लड़ो। यदि इन्द्र भी तुम्हारी सहायता करें तो भी आज तुम जीवित नहीं रह सकते।

दुर्योधन यह कैसे सह ले कि कोई उसे कायर, डरपोक कहे। उसका कहना था कि वह केवल कुछ काल विश्राम करना चाहता है; किन्तु उसे पाण्डव समय देनेको प्रस्तुत नहीं थे। दुर्योधनने यह भी कहा कि वह अब वनमें चला जायगा। राज्य युधिष्ठिर ले लें; किन्तु युधिष्ठिरने तथ्य सुना दिया- अब तुम्हें यह उदारता सूझी है? किस राज्यपर तुम्हारा अधिकार रह गया है कि हमें वह दे रहे हो? तुमने जो अन्याय, अपमान, अधर्म हमारे साथ किये हैं, वह सब स्मरण करो। अब तुम क्षमा पाने योग्य हो? निकलो और युद्ध करो।

युधिष्ठिरने कह दिया- तुम जो शस्त्र पसन्द हो ले लो। हममें-से जिससे चाहो, उससे द्वन्द्व-युद्ध करो। डरपोक बनकर जलमें छिपे मत रहो। हम तुमपर दया नहीं करेंगे।

युधिष्ठिरके इस कथनको दुर्योधन नहीं सह सका। वह कंधेपर लोहेकी गदा रखकर बँधे हुए जलको चीरता हुआ बाहर निकल आया। उस समय सब प्राणियोंने उसे दण्डधारी यमराजके समान ही समझा। उसे पानीसे बाहर आया देख पाण्डव तथा पाञ्चाल बहुत प्रसन्न हुए और एक दूसरेके हाथपर ताली पीटने लगे।

दुर्योधन क्रुद्ध होकर जलसे निकल आया। कोई उसे डरपोक कहे, दयाका पात्र बतलावे, यह उसे असह्य था। उसने कहा- तुममें-से जो चाहे वह आजाय। मेरी गदा मेरे साथ है। दूसरा आयुध मुझे पसन्द नहीं है।

दुर्योधनने इसे अपना उपहास समझा, क्रोधसे उसकी त्यौरियाँ चढ़ गयीं। दुर्योधन श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंकी ओर देखता हुआ बोला, पाण्डवों। इस उपहासका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा। तुम मेरे हाथसे मारे जाकर इन पाञ्चालोंके साथ शीघ्र ही यमलोकमें पहुँचोगे।

युधिष्ठिर बोले, दुर्योधन। जिस समय बहुत-से महारथियोंने मिलकर अकेले अभिमन्युको मार डाला था, उस समय तुम्हें यह न्याय-अन्यायकी बात क्यों नहीं सूझी? यदि तुम्हारा धर्म यही कहता है कि बहुत-से योद्धा मिलकर एकको न मारें, तो उस दिन तुम्हारी सलाह लेकर बहुत-से महारथियोंने अभिमन्युको क्यों मारा था? कवच पहनो और शिखा बाँध लो तथा और जो आवश्यक सामान तुम्हारे पास न हो, वह मुझसे लेलो। इसके सिवा, जैसा कि पहले कह चुका हूँ, तुम्हें एक वरदान और देता हूँ; तुम पाँचों पाण्डवोंमेंसे जिसके साथ युद्ध करना चाहो करो, यदि उसको मार डालोगे तो राज्य तुम्हारा ही होगा और यदि खुद मारे गये तो तुम्हारे लिये स्वर्ग तो है ही। इसके अतिरिक्त भी बताओ, हम तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करें? जीवनकी भिक्षा छोड़कर जो चाहो माँग सकते हो।

युधिष्ठिर बोला, मेरा अभिमन्यु भी अकेला था दुर्योधन। मेरा अभिमन्यु भी निहत्था था। मेरा अभिमन्यु भी घायल था। मेरा अभिमन्यु भी थका हुआ था दुर्योधन।

युधिष्ठिरने उसे कवच दिया। बोले- मैं एक वरदान तुम्हें और देता हूँ। तुम यदि हममें-से एकको भी मार दोगे तो सम्पूर्ण राज्य तुम्हारा हो जायगा। शेष हमारे सब भाई वनमें चले जायँगे।

कृष्ण कुछ विचलित होकर धीरे से अर्जुन के कान में बोले, धर्मराज ने यह क्या किया। यदि वह धर्मराज से ही लड़ना चाहेगा तो धर्मराज उसका वध कर पाएँगे।

उस समय श्रीकृष्ण कुपित होकर युधिष्ठिरसे बोले, राजन्। आपने यह कैसी दु:साहसपूर्ण बात कह डाली कि तुम हममेंसे एकको ही मारकर कौरवोंके राजा हो जाओ। अगर दुर्योधन अर्जुन, नकुल, सहदेव अथवा आपको ही युद्धके लिये चुन ले, तब क्या होगा? मैं आपलोगोंमें इतनी शक्ति नहीं देखता कि गदायुद्धमें दुर्योधनका मुकाबला कर सकें। इसने भीमका वध करनेके लिये उनकी लोहेकी मूर्तिके साथ तेरह वर्षोंतक गदायुद्धका अभ्यास किया है। दुर्योधनका सामना करनेवाला इस समय भीमके

सिवा दूसरा कोई नहीं है, आपने फिर पहलेहीके समान जुआ खेलना शुरू कर दिया। आपका यह जुआ शकुनिके जुएसे कहीं अधिक भयंकर है। अत: महाराज। आपने अपने शत्रुको समान मार्गपर ला दिया है। अपनेको विपत्तिमें फँसाया और हमलोगोंकी कठिनाई बढ़ा दी। यदि हम न्यायसे युद्ध करें तो भीमकी विजयमें भी संदेह है; क्योंकि दुर्योधनका अभ्यास इनसे अधिक है। तो भी आपने कह यह दिया कि हममेंसे एकको भी मार डालनेपर तुम राजा हो जाओगे।

श्रीकृष्णको युधिष्ठिरका यह वचन देना बहुत बुरा लगा। वे सदासे युधिष्ठिरका बहुत सम्मान करते थे; किन्तु इस अवसरपर भर्त्सना करते बोले- महाराज। आपका द्यूत-क्रीड़ाका व्यसन गया नहीं? एक बार जुआ खेलकर आपने अपने सब भाइयोंको वन-वन भटकाया बारह वर्ष और तब भी आपको संतोष नहीं हुआ? आज फिर आपने जुआ प्रारम्भ कर दिया? आप फिर दाव लगा रहे हैं?

दुर्योधनने चाहे जिससे युद्ध करनेकी इच्छा न व्यक्त करके आप, अर्जुन, नकुल या सहदेवमें-से किसीको ललकार दिया होता गदा युद्धके लिए तो क्या होता? आप चारोंमें-से कोई दो घड़ी भी उसके साथ टिक पाता? फिर आपने बड़ी उदारतासे वरदान दे दिया कि कोई एक भी मारा जाय तो शेष सब सारा राज्य देकर वनमें चले जायेंगे। यह क्या है? यह आपका जुआ खेलना नहीं है?

कृष्ण बोले, इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि राजा युधिष्ठिरने तुम्हारे ही भरोसे अपने शत्रुओंको मारकर उज्ज्वल राज्यलक्ष्मी प्राप्त की है। धृतराष्ट्रके सब पुत्र तुम्हारी ही हाथसे मारे गये हैं। कितने ही राजे, राजकुमार और हाथी तुम्हारे द्वारा मौतके घाट उतारे जा चुके हैं। कलिङ्ग, मगद, प्राच्य, गान्धार और कुरुदेशके राजाओंका भी तुमने संहार किया है। इसी प्रकार आज दुर्योधनको भी मारकर तुम समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी धर्मराजके हवाले कर दो। तुमसे भिड़नेपर पापी दुर्योधन अवश्य मारा जायगा।

कृष्णने युधिष्ठिर के कान में बोले बडे भैया कोई वचन देने से पहिले सोच लेना चाहिये था। आपमें से कोई भी दुर्योधन को हरा नहीं सकता मझले भैया भी नहीं। अपनी हाथ में आई हुई विजय पुरस्कार की भांति दुर्योधन को दे दी।

युधिष्ठिर बोले, अब तो मैंने वचन दे दिया है वासुदेव।

कृष्ण बोले, महादेव भी यही करते हैं और उनके वरदानों को सम्भालने के लिये क्या-क्या करना पड़ता है यह कोई नहीं जानता। युधिष्ठिर बोला, किन्तु मैं महादेव नहीं हूँ वासुदेव।

युधिष्ठिरने सिर झुका लिया। उन्होंने अपनी भूल समझ ली। उनको सचमुच क्या स्वत्व था सब भाइयोंके राज्य त्यागकर वन चले जानेका वचन देनेका। जो भाई सदा उनके लिए कष्ट भोगते रहे हैं, उनके लिए प्राणपर खेलकर संग्राममें शराघात सहते रहे हैं, उनके स्वत्व, प्राण, शरीरके साथ यह जुआ क्यों? वे सब समीप हैं और उनसे पूछा तक नहीं। स्वयं श्रीकृष्ण समीप हैं, वही पाण्डवोंके आश्रय दाता, रक्षक हैं और उनकी सम्मतिके बिना शत्रुको इतनी बड़ी सुविधा दे दी उन्होंने। भीमने युधिष्ठिरसे कहा, मैं रणमें दुर्योधनके साथ लड़ना चाहता हूँ, यह पापी मुझे कदापि नहीं परास्त कर सकता। मेरे हृदयमें इसके प्रति बहुत दिनोंसे क्रोध जमा हो रहा है, उसे आज इसके ऊपर छोड़ूँगा और गदासे इसका विनाश करके आपके हृदयका काँटा निकाल दूंगा, अब आप प्रसन्न होइये।

अर्जुन धीरे से बोला, वह धर्मराज से नहीं लड़ेगा। धर्मराज ने कहा है कि वह पांडवों में से जिससे युद्ध करना चाहेगा, उसी के शस्त्र से लड़ना होगा। धर्मराज का अपना शस्त्र भल्ल है। दुर्योधन को भल्ल से युद्ध का अभ्यास ही नहीं है। हाँ। जो यह कह दिया कि यदि वह हममें से किसी एक को भी जीत लेगा तो राज्य उसका होगा और हम वन चले जाएँगे- यह

तो फिर से द्यूत की सी स्थिति हो गई।

दुर्योधन ने तत्काल उत्तर नहीं दिया। वह कुछ क्षणोंतक सोचता रहा। फिर बोला, तुम्हारे शस्त्रों पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। तुम लोग कच्चे अप्रभावी शस्त्र दे सकते हो। मैं अपने शस्त्र से ही लडूँगा। मेरी गदा मेरे पास है। गदा युद्ध करूँगा, तो तुमसे या नकुल-सहदेव से तो नहीं लडूँगा। भीम से ही लड़ना होगा। वैसे भी तुमको मार भी दिया तो वह भीम तुम्हारे वचन का पालन नहीं करेगा। वह मारा गया तो तुम अपने वचन से पीछे नहीं हट सकते।

भीमने कहा, मधुसूदन। आप चिन्ता न कीजिये। आज युद्धमें दुर्योधनको मैं अवश्य मार डालूँगा। मुझे तो निश्चय ही धर्मराजकी विजय दिखाई देती है। भीम बोला, तुम चिन्ता ना करो। मैं दुर्योधन को मार-मार कर वीरगति के मार्ग की प्राप्ति की ओर भेज दूंगा। जीवन-भर शकुनि की अँगुलियों के संकेत पर नाचते रहनेवाले भीरु, द्यूतसभा में ज्येष्ठ कुरुओं के समक्ष मेरी प्रिय पत्नी को विवस्त्र करने की आज्ञा देनेवाले अधम, भरी सभा में उसे नग्न जंघा दिखानेवाले असभ्य, नीच, भीम ने तुम्हारे इस आह्वान को स्वीकार किया है।

दुर्योधन बोला, यदि अकेले ही युद्ध करने का साहस न हो रहा हो तो भ्राताश्री तो पांचों मिलकर आजाइये और यदि जी चाहे तो अर्जुन के सारथी यशोदानन्दन को भी ले आईये। आ जाओ।

अर्जुन बोला, दुर्योधन। भीम बोला, हट जाओ अर्जुन। दुर्योधन बोला, मुझे तेरे अतिरिक्त तेरे भाइयों में ऐसा कोई नहीं है जो क्षणभर भी मेरी गदा के सामने टिक सके। भीम उत्तेजित होकर गदा उठाकर उसे मारने दौडता है। दुर्योधन बोला, रुक जाओ। भ्राताश्री यह इस युद्ध का अन्तिम भाग है तो निर्णायक कौन होगा। भीम बोला, यह क्रीड़ा नहीं है दुर्योधन, कि यहां किसी निर्णायक की आवश्यकता होगी। यह युद्ध है और इस युद्ध में या तो तुम मुझे मारोगे या मैं तुम्हें किन्तु युद्ध आरम्भ होने से पहिले एक बात जान लो कि ये युद्ध मैं अकेला नहीं लड़ रहा हूं। मेरे दाये कन्धे की रक्षा के लिये लाक्षागृह की अग्नि है। मेरे बाये कन्धे की रक्षा के लिये कपटी शकुनि के पांसो की याद है और मेरी छाती की रक्षा के लिये द्रौपदी का अपमान है। मैं अब भी वो दृश्य देख सकता हूँ कि भरी राजसभा में अपनी जंघा पीट पीटकर द्रौपदी को आमंत्रित कर रहा है। तुमने रणभूमि में शव बोये हैं दुर्योधन। अब स्वयं अपना शव काट।

दुर्योधन उनकी ललकार न सह सका, वह तुरंत ही भीमका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया। उसे देखकर भीमने कहा, दुरात्मन। तूने तथा राजा धृतराष्ट्रने हमलोगोंपर जो-जो अत्याचार किये थे और वारणावतमें जो तुम्हारे द्वारा हमारा अहित किया गया, उन सबको याद कर ले। भरी सभामें तूने रजस्वला द्रौपदीको क्लेश पहुँचाया, शकुनिकी सलाह लेकर राजा युधिष्ठिरको कपटपूर्वक जूएमें हराया तथा निरपराध पाण्डवोंपर जितने-जितने अत्याचार तूने किये, उन सबका महान् फल आज अपनी आँखों देख ले। तेरे ही कारण हमलोगोंकेपितामह भीष्म आज शर-शय्यापर पड़े हुए हैं। द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य, तथा वैरका आदि स्रष्टा शकुनि- ये सब मारे गये हैं। तेरे भाई, पुत्र, योद्धा तथा कितने ही वीर क्षत्रिय मौतके घाट उतर चुके; अब इस वंशका नाश करनेवाला सिर्फ तू ही एक बाकी रह गया है। आज इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा- इसमें तनिक भी संदेह नही है।

दुर्योधन बोला, वृकोदर। बहुत बातें बनानेसे क्या होगा, मेरे साथ लड़ तो सही, आज युद्धका तेरा सारा हौसला पूरा कर दूँगा। पापी। देखता नहीं; मैं हिमालयके शिखरके समान भारी गदा लेकर युद्धके लिये खडा हुआ हूँ। मेरे हाथमें गदा होनेपर कौन शत्रु मुझे जीतनेका साहस कर सकता है। न्यायत: युद्ध हो तो इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकते। कुन्तीनन्दन। व्यर्थ गर्जना न कर; तुझमें जितना बल हो उसे आज युद्धमें दिखा।

दुर्योधन बोला, चिल्ला क्यों रहे हो भीम। मैं तो केवल यही चाहता था कि आचार्य द्रोण जीवित होते तो वे देखते कि युद्ध हार जाने के उपरान्त भी उनके शिष्य की युद्ध शैली वैसी ही सशक्त और लहू की प्यासी है किन्तु वे तो अब आ नहीं सकते तो फिर गुरु बलराम ही होते। तुम तो उनकी बुआ के पुत्र हो भीम किन्तु उन्होने स्वयं मुझसे कहा है कि तुम पांचो भाई भी मिलकर मुझे गदा युद्ध में हरा नहीं सकते। यदि वे होते तो तुम्हे मृत्यु के मार्ग पर भेजता देखकर अति प्रसन्न होते। युधिष्ठिर बोला, ठहरो दुर्योधन पहिले कवच पहिन लो। दुर्योधन बोला, भीम से युद्ध करने के लिये मुझे किसी कवच की आवश्यकता नहीं है भ्राताश्री। फिर भी यदि आप चाहे तो मेरा कवच और मुकुट मेरे शिबिर से मंगवा दीजिये। युधिष्ठिर बोला, अवश्य अनुज अवश्य और तुम्हारा कवच लाने के लिये मैं किसी दास को नहीं भेजूंगा। सहदेव कौरव शिबिर से दुर्योधन का कवच लेने तुम जाओ। अर्जुन बोला, भ्राताश्री? युधिष्ठिर बोला, दुर्योधन जैसे योद्धा का कवच उठाना सम्मान का विषय है अनुज। जाओ सहदेव। जो आज्ञा भ्राताश्री। सहदेव बोला, सारथी रथ को कौरव शिबिर की ओर ले चलो।

५) बलरामजीका तीर्थयात्रा से लौटकर आना

जब महाभारत-युद्ध आरम्भ होनेके पहले ही बलराम श्रीकृष्णकी सम्मति लेकर अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते-जाते यह कह गये कि मैं न तो दुर्योधनकी सहायता करूँगा, न पाण्डवोंकी। इसप्रकार सरस्वतीके तटवर्ती तीर्थोंमें बहुत-सा दान करके बलराम क्रमश: कुरुक्षेत्रमें आ पहुँचे।

इसी समय बलराम वहाँ आ गये। पाण्डवोंने, श्रीकृष्णने, दुर्योधनने भी उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने कहा- मैं तीर्थयात्रा करता निकला तो भीम और दुर्योधन युद्ध करनेवाले हैं, यह सुनकर यहाँ आया हूँ। मेरी सम्मतिमें तुम दोनों समान बली हो। भीम शरीर बलमें अधिक हैं तो दुर्योधन शिक्षा बलमें श्रेष्ठ है। अत: यह युद्ध व्यर्थ है। इसका कोई परिणाम नहीं दिखता। जहाँ दोनोंके ही आहत या हत होने की सम्भावना हो, वहाँ युद्ध नहीं करना चाहिए।

वो वहाँसे प्रभात क्षेत्रमें आये। दक्षप्रजापतिकी संतानोंमें अधिकांश कन्याएँ हुई थीं, उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका ब्याह उन्होंने चन्द्रमाके साथ कर दिया। उन सबकी नक्षत्र संज्ञा थी। चन्द्रमाके साथ जो नक्षत्रोंका योग होता है, उसकी गणनाके लिये वे सत्ताईस रूपोंमें प्रकट हुई थीं। वे सब-की-सब अनुपम सुन्दरी थीं। किंतु उनमें भी रोहिणीका सौन्दर्य सबसे बढ़कर था; इसलिये चन्द्रमाका अनुराग रोहिणीमें ही अधिक हुआ। वही उनकी हृदयवल्लभा हुई। वे सदा उसके ही सम्पर्कमें रहने लगे। जनमेजय। पूर्वकालमें चन्द्रमा रोहिणीनक्षत्रके संसर्गमें अधिक कालतक रहा करते थे; इसलिये अन्य नक्षत्र नामवाली दूसरी स्त्रियोंको बड़ी ईर्ष्या हुई, वे कुपित होकर अपने पिता प्रजापतिके पास चली गयी और बोली, प्रजानाथ। सोम सदा रोहिणीके ही पास रहते हैं, हम लोगोंपर उनका स्नेह नहीं है। अत: हमलोग अब आपके ही पास रहेंगी और नियमित आहार करके तपस्यामें लग जायँगी।

उनकी बातें सुनकर दक्षने चन्द्रमाको बुलाकर कहा, तुम अपनी सब स्त्रियोंमें समताका भाव रखो, सबके साथ एक-सा बर्ताव करो। ऐसा करनेसे ही तुम पापसे बच सकोगे।

तदनन्तर, दक्षने अपनी कन्याओंसे कहा- तुम सब लोग चन्द्रमाके पास जाओ, अब वे मेरी आज्ञाके अनुसार तुम सबके साथ समान भाव रक्खेंगे। पिताके विदा करनेपर वे पुन: पतिके घरमें चली गयीं। किंतु सोमके बर्तावमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। उनका रोहिणीके प्रति अधिकाधिक प्रेम बढ़ता गया और वे सदा उसीके पास रहने लगे। तब शेष कन्याएँ पुन: एक साथ होकर पिताके पास गयी और कहने लगी- पिताश्री। सोमने आपकी आज्ञा नहीं मानी, अब तो हम आपकी ही सेवामें रहेंगी। यह सुनकर दक्षने फिर सोमको बुलवाया और कहा- तुम सब स्त्रियोंके साथ समान बर्ताव करो, नहीं तो मैं शाप दे

दूँगा। परंतु चन्द्रमाने उनकी बातका अनादर करके रोहिणीके ही साथ निवास किया।

जब दक्षको पुन: इसका समाचार मिला तो उन्होंने क्रोधमें भरकर सोमके लिये यक्ष्माकी सृष्टि की, यक्ष्मा चन्द्रमाके शरीरमें घुस गया। क्षयरोगसे पीडित हो जानेके कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होने लगे। उन्होंने उससे छुटनेका यत्न भी किया, नाना प्रकारके यज्ञ आदि किये, किंतु दक्षके शापसे छुटकारा न मिला, वे प्रतिदिन क्षीण ही होते गये। जब चन्द्रमाकी प्रभा नष्ट हो गयी, तो अन्न आदि औषधियोंका पैदा होना भी बंद हो गया। जो पैदा भी होतीं, उनमें न कोई स्वाद होता, न रस। उनकी शक्ति भी नष्ट हो जाती। इस प्रकार अन्न आदिके न होनेसे सब प्राणियोंका नाश होने लगा। सारी प्रजा दुर्बल हो गयी।

तब देवताओंने चन्द्रमाके पास आकर कहा- यह आपका रूप कैसा हो गया? इसमें प्रकाश क्यों नहीं होता?

उनके इस प्रकार पूछनेपर चन्द्रमाने उन्हें अपनेको शाप मिलनेका कारण बताया और उस शापके रूपमें यक्ष्माकी बीमारी होनेका हाल भी कह सुनाया। देवता लोग उनकी बात सुनकर दक्षके पास गये और बोले, भगवन्। आप चन्द्रमापर प्रसन्न होकर शाप निवृत्त कीजिये। उनका क्षय होनेसे प्रजाका भी क्षय हो रहा है। तृण, लता, बेलें, औषधियाँ तथा नाना प्रकारके बीज- ये सब नष्ट हो रहे हैं। इनके न रहनेसे हमारा भी नाश ही हो जायगा। फिर हमारे बिना संसार कैसे रह सकता है?

देवताओंके ऐसा कहनेपर प्रजापति बोले, मेरी बात पलटी नहीं जा सकती, एक शर्तपर उसका प्रभाव कम हो सकता है, यदि चन्द्रमा अपनी सब स्त्रियोंके साथ समान बर्ताव करें तो सरस्वती नदीके उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे ये पुन: पुष्ट हो जायेंगे। फिर ये पंद्रह दिनोंतक बराबर क्षीण होंगे और पंद्रह दिनोंतक बढ़ते रहेंगे। पश्चिम-समुद्रके तटपर, जहाँ सरस्वती नदी सागरमें मिलती है, जाकर ये शंकरकी आराधना करें, इससे इन्हें इनकी खोयी हुई कान्ति मिल जायगी।

इसप्रकार प्रजापतिकी आज्ञा होनेसे सोम सरस्वतीके प्रथम तीर्थ प्रभासक्षेत्रमें गये। वहाँ अमावस्याको उन्होंने स्नान किया, इससे उनकी प्रभा बढ़ गयी, फिर वे समस्त संसारको प्रकाशित करने लगे। तब देवता लोग चन्द्रमाको साथ लेकर प्रजापतिके पास गये। उन्होंने देवताओंको तो विदा कर दिया और चन्द्रमासे कहा- पुत्र। आजसे अपनी पत्नियोंका तथा ब्राह्मणका कभी अपमान न करना।

चन्द्रमाको जिस प्रकार शाप मिला था, वह सारा प्रसंग बलरामको मालूम हो गया। साथ ही सब तीर्थोंमें प्रधान प्रभासतीर्थका प्रभाव भी बता दिया। उस तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् बलरामजी चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये, वहाँ विधिवत स्नान करके उन्होंने नाना प्रकारके दान किये और एक रात वहीं निवास भी किया। दूसरे दिन उदपान तीर्थमें गये, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। इस तीर्थमें सरस्वती नदीका जल जमीनके भीतर छिपा रहता है।

उदपान तीर्थमें पहुँचकर बलदेवने आचमन किया और वहाँके ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत-सा द्रव्य दानमें दिया। वहाँ जानेसे उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस तीर्थमें पहले त्रित मुनि रहा करते थे, वे बड़े तपस्वी और धर्मपरायण थे।

बलदेवने नदीके भीतर स्थित उदपान तीर्थका दर्शन करके उसकी बड़ी प्रशंसा की, फिर उसके जलसे आचमन करके वहाँके ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें नाना प्रकारके दान दिये। तत्पश्चात् वे विनशन तीर्थमें गये।

वहाँ सरस्वती नदी जमीनके भीतर अदृश्य रूपसे बहती हैं, इसलिये ऋषिगण उसे विनशन तीर्थ कहते हैं। बलदेव वहाँ आचमन करके आगे बढ़े और सरस्वतीके उत्तम तटपर सुभूमिक नामवाले तीर्थमें जा पहुँचे।

सत्ययुगकी बात है, नैमिषारण्यके तपस्वी ऋषियोंने मिलकर बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला एक महान् सत्र आरम्भ किया, उसमें सम्मिलित होनेके लिये बहुत-से ऋषि पधारे थे। जब सत्र समाप्त हुआ, उस समय भी तीर्थके कारण वहाँ बहुत-से ऋषि-महर्षियोंका शुभागमन हुआ। उनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि सरस्वतीके दक्षिण किनारेके तीर्थ

नगरोंके समान मनुष्योंसे भर गये। नदीके तीरपर नैमिषारण्यसे लेकर समन्तपञ्चकतक ऋषि-मुनि ठहरे हुए थे। वे वहाँ यज्ञ-होमादि करने लगे, उनके द्वारा उच्चारित वेद-मन्त्रोंके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। सब लोग मिट्टीकी वेदीपर सोते और नाना प्रकारके नियमोंमें लगे रहते थे। वे सब ऋषि सरस्वतीके निकट आकर उसकी शोभा बढ़ाने लगे, किंतु वहाँ तीर्थभूमिमें उन्हें रहनेकी जगह नहीं दिखायी दी। इससे वे निराश एवं चिन्तित हो गये। उनकी यह अवस्था देख सरस्वतीने दयावश उन्हें दर्शन दिया। वह अनेकों कुञ्जोंका निर्माण करती हुई पीछे लौट पड़ी और ऋषियोंके लिये तीर्थ-भूमि बनाकर फिर पश्चिमकी ओर मुड़ गयी। उस महानदीने ऋषियोंके आगमनको सफल बनानेका निश्चय कर लिया था, इसीलिये यह अत्यन्त अद्भुत कार्य कर दिखाया। सरस्वतीका बनाया हुआ वह निकुञ्जोंका समुदाय ही नैमिषीय नामसे विख्यात हुआ। वहाँके अनेकों कुञ्जों तथा पीछे लौटी हुई सरस्वती नदीको देखकर बलदेवको बड़ा विस्मय हुआ। वहाँ भी उन्होंने विधिवत् आचमन एवं स्नान किया और ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके भोज्य पदार्थ तथा बर्तन दान करके वे सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें चले गये; जहाँ वायु, जल, फल अथवा पत्ता खाकर रहनेवाले बहुत-से महात्मा थे। उनके स्वाध्यायका गम्भीर घोष सब ओर गूँज रहा था। वहाँ अहिंसक एवं धर्मपरायण मनुष्य निवास करते थे।

सरस्वती नामसे प्रसिद्ध सात नदियाँ हैं, ये सारे जगत्में फैली हुई हैं। इनके विशेष नाम हैं- सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु तथा विमलोदका। शक्तिशाली महात्माओंने भिन्न-भिन्न देशोंमें एक-एक सरस्वतीका आवाहन किया है। एक समयकी बात है, पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजीका एक महान् यज्ञ हो रहा था, यज्ञशालामें सिद्ध ब्राह्मण विराजमान थे। पुण्याह-घोष हो रहा था, सब ओर वेदमन्त्रोंकी ध्वनि फैल रही थी, समस्त देवता यज्ञ-कार्यमें लगे हुए थे, स्वयं ब्रह्माजीने यज्ञकी दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय सबकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो रही थीं। धर्म और अर्थमें कुशल मनुष्य मनमें जिस वस्तुका चिन्तन करते थे, वही उन्हें प्राप्त हो जाती थी। उस समय ऋषियोंने पितामहसे कहा- यह यज्ञ अधिक गुणोंसे सम्पन्न नहीं दिखायी देता; क्योंकि अभीतक यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका ही प्रादुर्भाव नहीं हुआ। यह सुनकर ब्रह्माजीने सरस्वतीका स्मरण किया। उनके आवाहन करते ही सुप्रभा नामवाली सरस्वती पुष्कर तीर्थमें प्रकट हो गयी। पितामहके सम्मानार्थ वहाँ सरस्वती नदीको प्रकट देख मुनियोंने उस यज्ञकी बड़ी प्रशंसा की।

इसी तरह नैमिषारण्यमें भी वेदके स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले मुनियोंने सरस्वतीका आवाहन किया, उनके चिन्तन करते ही वहाँ काञ्चनाक्षी नामवाली सरस्वती नदी प्रकट हो गयी। ऐसे ही, जब राजा गय यज्ञ कर रहे थे, उस समय उनके यहाँ भी सरस्वतीका आवाहन किया गया था। वहाँ विशाला नामवाली सरस्वतीका आविर्भाव हुआ। उसकी गति बड़ी तेज है। वह हिमालयकी घाटीसे निकली हुई है। एक समयकी बात है, उत्तर कोसल प्रान्तमें उद्दालक मुनि यज्ञ कर रहे थे, उन्होंने भी सरस्वतीका स्मरण किया। ऋषिके कारण वह नदी उस देशमे भी प्रकट हुई, जिसका मुनियोंने पूजन किया। वह मनोरमा नामसे विख्यात हुई; क्योंकि ऋषियोंने पहले उसका अपने मनमें ही स्मरण किया था।

सुरेणु नामवाली सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव ऋषभ द्वीपमें हुआ। जिस समय राजा कुरु कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उसी समय वहाँ सरस्वती प्रकट हुई। गङ्गाद्वारमें यज्ञ करते समय दक्ष प्रजापतिने जब सरस्वतीका स्मरण किया था तो वहाँ भी सुरेणु ही प्रकट हुई। इसी प्रकार महात्मा वसिष्ठजी भी एक बार कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, वहाँपर उन्होंने सरस्वतीका आवाहन किया; उनके आवाहनसे ओघवती का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीने एक बार हिमालयपर्वतपर भी यज्ञ किया था, वहाँ जब उन्होंने सरस्वतीका स्मरण किया तो विमलोदका प्रकट हुई। इन सातों सरस्वतियोंका जल जहाँ एकत्र हुआ है, उसे सप्तसारस्वत कहते हैं।

दूसरे दिन प्रात:काल उठकर तीर्थके जलमें स्नान किया और सब ऋषि-मुनियोंकी आज्ञा लेकर वे औशनस तीर्थमें जा पहुँचे। उसे कपालमोचन तीर्थ भी कहते हैं। पूर्वकालमें रामने यहाँ एक राक्षसको मारकर उसका सिर दूर फेंका था, वह सिर (कपाल) महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा था। वहींपर उस मुनिने मुक्ति पायी थी तथा वहीं शुक्राचार्यजीने तप किया था, जिससे उनके हृदयमें सम्पूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई थी। बलरामजीने उस तीर्थमें पहुँचकर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धनका दान किया।

वहीं यज्ञ करके ययातिने ऊपरके लोकोंमें गमन किया था। सरस्वतीने राजा ययातिकी उदारता तथा अपने प्रति उनकी सनातन भक्ति देखकर उनके यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंकी सारी कामनाएँ पूर्ण की थीं। राजाका यज्ञवैभव देखकर देवता और गन्धर्व बहुत प्रसन्न थे, परंतु मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य होता था। उस तीर्थमें भी नाना प्रकारके दान करके बलरामजी वसिष्ठापवाह तीर्थमें गये। वहीं स्थाणु तीर्थ है, जहाँ वसिष्ठ और विश्वामित्रने तपस्या की थी तथा जहाँ देवताओंने कार्तिकेयजीका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था। इसी तीर्थमें स्नान करनेसे देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्याके पापसे छुटकारा मिला था।

ब्रह्माजीने कहा- इन्द्र। तुम अरुणा नदीके तटपर जाओ। पूर्वकालमें सरस्वतीने गुप्तरूपसे जाकर अरुणाको अपने जलसे पूर्ण किया था, अत: वह अरुणा तथा सरस्वतीका पवित्र संगम है। वहाँ जाकर यज्ञ और दान करो। उसमें गोता लगानेसे इस भयंकर पापसे मुक्त हो जाओगे।

बलरामने उस तीर्थमें स्नान करके नाना प्रकारके दान किये और वहाँसे सोम तीर्थकी ओर यात्रा की। पूर्वकालमें सोमने वहाँ राजसूय यज्ञ किया था, जिसमें अत्रि मुनि होता बने थे। उस यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर दानव, दैत्य तथा राक्षसोंका देवताओंके साथ भयंकर युद्ध हुआ, जिसे तारक-संग्राम कहते हैं, उसमें स्वामी कार्तिकेयने तारकासुरको मारा था। उसी तीर्थमें कार्तिकेयजी देवसेनाके सेनापति बनाये गये तथा सदाके लिये उन्होंने वहाँ अपना निवास बना लिया। वहीं वरुणका भी जलके राज्यपर अभिषेक हुआ था। बलदेवजीने उस तीर्थमें स्नान करके स्वामी कार्तिकेयका पूजन किया और ब्राह्मणोंको सुवर्ण, वस्त्र तथा आभूषण दान किये। फिर एक रात वहाँ निवास करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

समस्त देवता वरुणके पास जाकर बोले, भगवन्। देवराज इन्द्र जैसे सदा हमलोगोंकी भयसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकाार आप भी सब सरिताओंका पालन कीजिये। समुद्रमें आपका निवास होगा और समुद्र सदा आपके अधीन रहेगा। चन्द्रमाके घटने-बढ़नेके साथ ही आपकी भी हानि और वृद्धि होगी।

वरुणने एवमस्तु कहकर देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर सबने एकत्र होकर उनको जलका राजा बनाया और उनका अभिषेक करके पूजन किया। तत्पश्चात् वे अपने-अपने धामको चले गये। फिर इन्द्र जैसे देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार वरुण भी नदी, नद, सरोवर तथा समुद्रोंकी रक्षा करने लगे।

उस तीर्थमें पहुँचकर बलरामने स्नान किया और ब्राह्मणोंको दान देकर वहाँसे वे अग्नितीर्थमें गये। वहीं शमीके भीतर छिप जानेके कारण अग्निदेव किसीको दिखायी नहीं पड़ते थे। उस समय जब संसारका प्रकाश नष्ट हो गया तो सब देवता ब्रह्माजीके पास उपस्थित हुए और बोले, प्रभो। भगवान् अग्निदेव नहीं दिखायी पड़ते, इसका क्या कारण है? कहीं ऐसा न हो कि अग्निके अभावमें सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश हो जाय। अत: आप अग्निदेवको प्रकट कीजिये।

महर्षि भृगुने अग्निदेवको शाप दे दिया था, इससे अत्यन्त भयभीत होकर वे शमीके भीतर छिप गये। उनके अदृश्य हो जानेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने अत्यन्त दुखी होकर उनकी खोज आरम्भ की। खोजते-खोजते अग्नितीर्थमें आकर उन्होंने अग्निदेवको शमीके भीतर छिपे देखा। उन्हें पाकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। अग्निदेव भी ब्रह्मवादी भृगुके शापके अनुसार सर्वभक्षी हो गये। फिर उसी तीर्थमें स्नान करनेसे उन्हें ब्रह्मत्वकी प्राप्ति हुई। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भी सब देवताओंके साथ अग्नितीर्थमें डुबकी लगायी थी तथा यहाँ भिन्न-भिन्न देवताओंके तीर्थोंका

उद्घाटन किया था।

बलरामजी वहाँ स्नान-दान करके कौबेर तीर्थमें गये, जहाँ बड़ी भारी तपस्या करके कुबेर धनके स्वामी हुए थे। वहाँ स्नान करके बलरामजीने ब्राह्मणोंको धन दान किया, इसके बाद कुबेरवनमें जाकर उस स्थानका दर्शन किया, जहाँ कुबेरने तप किया था। यक्षराजने वहाँ बहुत-से वरदान प्राप्त किये थे। धनका प्रभुत्व, शंकरजीके साथ मित्रता, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर-जैसा पुत्र यह सब कुछ कुबेरने वहीं तपस्या करके पाया था। वहीं मरुद्गणोंने एकत्रित होकर कुबेरका लोकपालके पदपर अभिषेक किया और उन्हें यक्षोंका राज्य तथा हंसोंसे जुता हुआ पुष्पकविमान प्रदान किया बलदेवने वहाँ भी स्नान करके बहुत कुछ दान किया। इसके बाद वे बदरपाचन नामक तीर्थमें गये। वहाँ पूर्वकालमें भरद्वाजकी अनुपम रूपवती कन्या श्रुतावतीने इन्द्रको अपना पति बनानेके लिये उग्र तपस्या की थी। उसने ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए बहुत-से कठोर नियमोंका पालन किया था। उसका सदाचार, तप और भक्ति देखकर इन्द्र उसके ऊपर प्रसन्न हो गये तथा उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्होंने कहा- शुभे। मैं तुम्हारी तपस्या, नियमपालन और भक्तिसे बहुत संतुष्ट हूँ, इसलिये तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा और यह शरीर त्याग कर तुम मेरे साथ स्वर्गलोकमें निवास करोगी।

यह कहकर भगवान् शंकरने अपना स्वरूप प्रकट किया और ऋषियोंसे उस महत्त्वपूर्ण घाटीमें रहकर जिस तपका उपार्जन किया है और इस अरुन्धतीने यहीं रहकर जो तप किया है, इन दोनोंमें कोई समानता नहीं है। अरुन्धतीका ही तप श्रेष्ठ है। इसने बारह वर्षोंतक बिना भोजन किये बेर पकाते हुए दुष्कर तपका अनुष्ठान किया है। इसके बाद उन्होंने पुन: अरुन्धतीसे कहा- कल्याणि। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वरदान माँग लो। तब वह बोली- भगवन्। यदि आप प्रसन्न हैं तो यह स्थान बदरपाचन नामक तीर्थ हो जाय और सिद्धों तथा देवर्षियोंको यह बहुत प्रिय जान पड़े। जो मनुष्य इस तीर्थमें पवित्रतापूर्वक तीन रात्रि निवास तथा उपवास करे, उसे बारह वर्षोंतक तीर्थसेवन एवं उपवास करनेका फल प्राप्त हो।

इसप्रकर अरुन्धतीने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की थी, तुमने भी मेरे लिये अरुन्धतीकी ही भाँति उत्तम व्रतका पालन किया है। मैं तुम्हारे नियमसे संतुष्ट होकर इस तीर्थके सम्बन्धमें एक विशेष वरदान देता हूँ- जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक रात भी यहाँ निवास करेगा, वह देह त्यागनेके पश्चात् दुर्लभ लोकोंमें जायगा।

उसी समय श्रुतावती भी शरीर त्याग कर स्वर्ग चली गयी और वहाँ इन्द्रकी पत्नीके रूपमें रहने लगी। बलराम उस बदरपाचनतीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दानकर इन्द्रतीर्थमें चले गये।

इन्द्रतीर्थमें देवराजने सौ यज्ञ किये थे, जिनमें बृहस्पतिजीको बहुत-सा धन दिया गया था। इस प्रकार सौ यज्ञ पूर्ण करनेके कारण इन्द्र शतऋतु के नामसे विख्यात हुए और उन्हींके नामपर वह परम पवित्र, कल्याणकारी एवं सनातन तर्थि इन्द्रतीर्थ कहलाने लगा। वहाँ स्नान-दान करनेके पश्चात् बलरामजी रामतीर्थमें पहुँचे, जहाँ परशुरामजीने अनेकों बार क्षत्रियोंका संहार करके इस पृथ्वीपर विजय पायी और कश्यप मुनिको आचार्य बनाकर वाजपेय तथा सौ अश्वमेध यज्ञ किये। उन्होंने समुद्रसहित सम्पूर्ण पृथ्वी ही दक्षिणाके रुपमें दे दी थी तथा और भी नाना प्रकारके दान देकर वे वनमें चले गये थे। उस पावन तीर्थमें रहनेवाले मुनियोंको सादर प्रणाम करके बलरामजी यमुनातीर्थमें आये, जहाँ वरुणने राजसूय यज्ञ किया था। वहाँ ऋषियोंकी पूजा करके उन्होंने सबको संतुष्ट किया तथा दूसरे याचकोंको भी उनके इच्छानुसार दान दिया। इसके बाद वे आदित्यतीर्थमें गये, जहाँ भगवान सूर्यने परमात्माका यजन करके ज्योतियोंका आधिपत्य तथा अनुपम प्रभाव प्राप्त किया था। इनके सिवा, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता, विश्वेदेव, मरूद्गण, गन्धर्व, अप्सरा, द्वैपायन व्यास, शुकदेव तथा दूसरे अनेकों योगसिद्ध महात्माओंने भी सरस्वतीके उस पवित्र तीर्थमें सिद्धि प्राप्त की है।

पूर्वकालमें वहाँ देवलमुनि गृहस्थ-धर्मका आश्रय लेकर रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा तथा तपस्वी थे। मन, वाणी तथा

क्रियासे भी समस्त जीवोंके प्रति समान भाव रखते थे। क्रोध तो उन्हें छू नहीं गया था। उनकी कोई निन्दा करे या स्तुति, वे सबको समान समझते थे, अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुकी प्राप्ति होनेपर उनकी वृत्ति एकसी ही रहती थी। वे धर्मराजके समान समदर्शी थे। सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेको एक ही नजरसे देखते थे। देवता, अतिथि तथा ब्राह्मणोंकी सदा पूजा किया करते और प्रतिदिन ब्रह्मचर्यकी रक्षा करते हुए धर्माचरणमें संलग्न रहते थे।

एकदिन जैगीषव्य मुनि उस तीर्थमें आये और अपनी योगशक्तिसे भिक्षुकका वेष बनाकर देवलके आश्रमपर रहने लगे। महर्षि जैगीषव्य सिद्धिप्राप्त योगी थे और सदा योगमें ही उनकी स्थिति रहती थी। यद्यपि जैगीषव्य देवलके आश्रमपर ही रहते थे, तो भी देवल मुनि उन्हें दिखाकर योग-साधना नहीं करते थे। इस तरह दोनोंको वहाँ रहते हुए बहुत समय बीत गया।

तदनन्तर, कुछ कालतक ऐसा हुआ कि जैगीषव्य मुनि सदा नहीं दिखायी देते, केवल भोजनके समय ही देवलके आश्रमपर उपस्थित होते थे। उस समय देवल अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रीय विधिसे उनका पूजन एवं आतिथ्यसत्कार करते थे। यह नियम भी बहुत वर्षोंतक चला। एक दिन जैगीषव्य मुनिको देखकर देवलके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा इनकी पूजा करते-करते कितने ही वर्ष बीत गये; मगर ये भिक्षु आजतक मुझसे एक बात भी नहीं बोले।

यही सोचते हुए वे कलश हाथमें ले आकाशमार्गसे समुद्रतटकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर देखा तो भिक्षु महोदय पहलेसे ही समुद्रतटपर मौजूद थे। अब तो उन्हें चिन्ताके साथ-ही-साथ आश्चर्य भी हुआ। सोचने लगे- ये पहले ही कैसे आ पहुँचे? इन्होंने तो स्नान भी समाप्त कर लिया है। तदनन्तर, महर्षि देवलने भी विधिवत् स्नान करके गायत्री-मन्त्रका जप किया। जब नित्य-नियम समाप्त हो गया तो वे पुन: आश्रमकी ओर चले। वहाँ पहुँचते ही उन्हें जैगीषव्य मुनि बैठे दिखायी पड़े। अब देवल मुनि पुन: विचारमें पड़ गये- मैंने तो इन्हें समुद्रतटपर देखा है, ये आश्रमपर कब और कैसे आ गये।

यह सोचकर उनके मनमें जैगीषव्यको ठीक-ठीक जाननेकी इच्छा हुई, फिर तो वे उस आश्रमसे आकाशकी ओर उड़े। ऊपर जाकर उन्हें बहुत-से अन्तरिक्षचारी सिद्धोंका दर्शन हुआ, साथ ही, उन सिद्धोंके द्वारा पूजे जाते हुए जैगीषव्य मुनि भी दिखायी पड़े। इसके बाद देवलने उन्हें स्वर्गलोक जाते देखा, वहाँसे पितृलोकमें, पितृलोकसे यमलोकमें, वहाँसे चन्द्रलोकमें तथा चन्द्रलोकसे एकान्तमें यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्रियोंके उत्तम लोकोंमें उन्हें गमन करते देखा। इसी तरह दर्श-पौर्णमास याग करनेवालोंके लोकोंमें तथा अन्य बहुतेरे लोकोंमें भी वे जाते दिखायी पड़े। रुद्रों, वसुओं तथा बृहस्पतिके स्थानपर भी वे पहुँचे पाये गये।

तत्पश्चात्, वे पतिव्रताओंके लोकोंमें जाकर अन्तर्धान हो गये। फिर देवल मुनि उन्हें न देख सके। तब उन्होंने जैगीषव्यके प्रभाव, व्रत और अनुपम योगसिद्धिके विषयमें विचार करते हुए सिद्धोंसे पूछा- अब मुझे महान् तेजस्वी जैगीषव्य नहीं दिखायी देते, आपलोग उनका पता बतावें। सिद्धोंने कहा- देवल। जैगीषव्य ब्रह्मलोकमें चले गये, वहाँ तुम्हारी गति नहीं है।

सिद्धोंकी बात सुनकर देवल मुनि क्रमश: नीचेके लोकोंमें होते हुए भूमिपर उतरने लगे। जब अपने आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ पहलेसे ही बैठे हुए जैगीषव्यपर उनकी दृष्टि पड़ी। वे उनके तप और योगका प्रभाव देख चुके थे, इसलिये अपनी धर्मयुक्त शुद्ध बुद्धिसे कुछ देर विचार किया; फिर विनयावत होकर वे मुनिकी शरणमें गये और बोले- भगवन्। मैं मोक्षधर्मका आश्रय लेना चाहता हूँ। उनकी बात सुनकर और संन्यास लेनेका विचार जानकर जैगीषव्यने उन्हें ज्ञानोपदेश किया; साथ ही योगकी विधि बताकर शास्त्रके अनुसार कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका भी उपदेश दिया।

मुनिवर देवलने भी गृहस्थ-धर्मका परित्याग करके मोक्ष-धर्ममें प्रीति लगायी और परा सिद्धि एवं परम योगको प्राप्त

किया? जैगीषव्य और देवल दोनों महात्माओंका जहाँ आश्रम था, वह उत्तम स्थान ही तीर्थ बन गया। बलराम उस तीर्थमें पहुँचे, जहाँ पूर्वकालमें जब बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई थी, उस समय सरस्वती-पुत्र सारस्वत मुनिने ब्राह्मणोंको वेद पढ़ाया था। सारस्वतमुनिके नामसे प्रसिद्ध हुए उस तीर्थमें धन दान करके बलराम वहाँसे आगे बढ़े और जहाँ वृद्धकन्याने तप किया था, उस प्रसिद्ध तीर्थमें जा पहुँचे।

प्राचीन कालमें एक कुणिगर्ग नामक महान् यशस्वी ऋषि हो गये हैं; उन्होंने बड़ी तपस्या करके अपने मनसे ही एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। पुत्रीको देखकर मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। कुछ कालके पश्चात् वे इस शरीरका त्याग करके स्वर्गमें चले गये। अब आश्रमका भार उस कन्याके ही ऊपर आ पड़ा। वह बहुत क्लेश उठाकर उग्र तपस्यामें संलग्न हुई और निरन्तर उपवास करती हुई पितरों तथा देवताओंकी पूजा करने लगी। उसे उग्र तपस्या करते बहुत समय बीत गया। वह बूढ़ी और दुबली हो गयी। तब उसने परलोक में जानेका विचार किया। उसकी देहत्यागकी इच्छा देख नारदजीने आकर कहा- देवि। तुम्हारा तो अभी संस्कार (विवाह) ही नहीं हुआ है, फिर तुम्हें उत्तम लोकोंपर अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता।

नारदकी बात सुनकर वह ऋषियोंकी सभामें जाकर बोली जो कोई मेरा पाणिग्रहण करेगा, उसे मैं अपनी तपस्याका आधा भाग दे दूँगी। उसके ऐसा कहनेपर गालवके पुत्र श्रृङ्गवानने कहा- कल्याणी। मैं इस शर्तपर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा कि विवाह हो जानेपर तुम एक रात मेरे साथ निवास करो।

वृद्धा कुमारीने हाँ कहकर अपना हाथ मुनिके हाथमें दे दिया। गालवन्दनने शास्त्रीय विधिके अनुसार हवन आदि करके उसका पाणिग्रहण संस्कार किया। रात्रिके समय वह सुन्दरी तरुणी बनकर मुनिके पास गयी। उस समय उसके शरीरपर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभा पा रहे थे। दिव्य हार तथा दिव्य अङ्गरागोंकी सुगन्ध फैल रही थी। उसकी छविसे चारों ओर प्रकाश-सा हो रहा था। उसे देखकर श्रृङ्गवान ऋषिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक रात उसके साथ निवास किया। सबेरा होते ही वह मुनिसे बोली- विप्रवर। आपने जो शर्त की थी, उसके अनुसार मैं आपके साथ रह चुकी, अब आज्ञा दीजिये, मैं जाती हूँ।

यह कहकर वह वहाँसे चल दी। जाते-जाते उसने फिर कहा- जो अपने चित्तको एकाग्र कर देवताओंको तृप्त करके इस तीर्थमें एक रात निवास करेगा, उसे अट्ठावन वर्षोंतक ब्रह्मचर्य पालन करनेका फल मिलेगा। ऐसा कहकर वह साध्वी देह त्यागकर स्वर्गमें चली गयी और मुनि उसके दिव्य रूपका चिन्तन करते हुए बहुत दुखी हो गये। उन्होंने प्रतिज्ञाके अनुसार उसके तप का आधा भाग ले लिया और उससे अपनेको सिद्ध बनाकर फिर उसीकी गति का अनुसरण किया। राजन्। यही वृद्धकन्याका परिचय है, जो तुम्हें सुना दिया। बलरामने इसी तीर्थमें आनेपर शल्यकी मृत्युका समाचार सुना था। वहाँ भी उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान किया। तत्पश्चात् समन्तपञ्चक द्वारसे निकलकर उन्होंने ऋषियोंसे कुरुक्षेत्र-सेवनका फल पूछा। तब उन महात्माओंने बलरामसे उस क्षेत्रके सेवनका ठीक-ठीक फल बताया।

समन्तपञ्चक क्षेत्र सनातन है, यह प्रजापतिकी उत्तर वेदी कहलाता है। प्राचीन कालमें देवताओंने यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ किया था। तथा बुद्धिमान महात्मा राजर्षि कुरुने पहले बहुत वर्षोंतक इस क्षेत्रकी जमीन जोती थी, इसलिये उन्हींके नामपर यह कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा।

इन्द्रने स्वर्गसे आकर कुरुसे इसका कारण पूछा- राजन्। आप इतना बड़ा प्रयास क्यों कर रहे हैं? यहाँकी जमीन जोतनेसे आपका क्या अभिप्राय है? कुरुने कहा- इन्द्र। जो लोग इस क्षेत्रमें मरेंगे वे पुण्यवानोंके लोकमें जायँगे।

कुरुने भी कठोर तपस्याके साथ हल जोतना आरम्भ किया। तब इन्द्रने उनका मनोभाव देवताओंसे कह सुनाया। सुनकर देवता बोले, अगर सम्भव हो तो राजर्षिको वरदान देकर राजी कर लीजिये। नहीं तो यदि वे अपने प्रयत्नमें सफल

हो गये और मनुष्य यज्ञ किये बिना ही स्वर्गमें आने लगे तो हमलोगोंका यज्ञभाग नष्ट हो जायगा।

तब इन्द्रने कुरुके पास आकर कहा- राजन्। अब आप कष्ट न उठाइये, मैं वरदान देता हूँ कि जो मनुष्य अथवा पशु यहाँ निराहार रहकर या युद्धमें मारे जाकर शरीर त्याग करेंगे, वे स्वर्गके अधिकारी होंगे। राजा कुरुने बहुत अच्छा कहकर इन्द्रकी आज्ञा स्वीकार की और इन्द्र भी राजाकी अनुमति ले प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको चले गये।

इस प्रकार शुभ उद्देश्यसे राजर्षि कुरूने इस क्षेत्रको जोता था। पृथ्वीपर इससे बढ़कर कोई पवित्र स्थान नहीं है। जो मनुष्य यहाँ तप करेंगे, वे देहत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जायँगे। जो दान करेंगे उनका दिया हुआ हजार गुना होकर फल देगा। जो सदा यहाँ निवास करेंगे, उन्हें यमराजके राज्यमें नहीं जाना पड़ेगा। यदि राजा लोग यहाँ आकर बड़े-बड़े यज्ञ करें तो जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी तबतकके लिये उन्हें स्वर्गमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। साक्षात् इन्द्रने भी कुरुक्षेत्रके विषयमें यह उद्गार प्रकट किया है- कुरुक्षेत्रकी धूल भी यदि हवासे उड़कर किसी पापीके ऊपर पड़ जाय तो वह उसे उत्तम लोकमें पहुँचाती है। यहाँ बड़े-बड़े देवता, उत्तम ब्राह्मण तथा नृग आदि नरेश भी यज्ञ करके उत्तम गतिको प्राप्त हो चुके हैं। तरन्तुकसे लेकर आरन्तुक तक तथा रामह्रदसे आरम्भ करके यमचक्र तकके बीचका जो स्थान है, वही कुरूक्षेत्र एवं समन्तपञ्चक तीर्थ है। इसे प्रजापतिकी उत्तर वेदी भी कहते हैं। यह क्षेत्र बहुत ही पवित्र एवं कल्याणकारी है, देवताओंने भी इसका सम्मान किया है। यह सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं; अत: यहाँ मरे हुए सब क्षत्रिय अक्षय गतिको प्राप्त होंगे। इस प्रकार साक्षात् इन्द्रने यह बात कही और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंने इसका समर्थन किया था।

तदनन्तर, कुरुक्षेत्रका दर्शन और वहाँ बहुत-सा दान करके बलराम एक दिव्य आश्रमके निकट गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुनियोंसे पूछा- यह सुन्दर आश्रम किसका है? तब उन्होंने कहा- बलरामजी। पहले तो यहाँ भगवान् विष्णु तपस्या कर चुके हैं, फिर अक्षय फल देनेवाले कई यज्ञ भी इस आश्रमपर हुए हैं। बाल्यकालसे ही ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाली एक सिद्ध ब्राह्मणी भी यहाँ तपस्या कर चुकी है। वह शाण्डिल्य मुनिकी पुत्री थी।

ऋषियोंकी बात सुनकर बलभद्रने उन्हें प्रणाम किया और हिमालयके समीप स्थित उस आश्रममें गये। वहाँके उत्तम तीर्थका तथा सरस्वतीके उद्गमभूत स्त्रोतका दर्शन करके उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद कारपवन तीर्थमें जाकर उन्होंने वहाँके स्वच्छ, शीतल एवं पवित्र जलमें डुबकी लगायी तथा देवताओं और पितरोंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको दान दिया। फिर एक रात वहाँ निवास करके वे ब्राह्मणों और संन्यासियोंके साथ मित्रावरुणके पवित्र आश्रमपर गये। वह स्थान यमुनाके तटपर है। सर्वप्रथम उस स्थानपर आकर इन्द्र, अग्नि तथा अर्यमा बहुत प्रसन्न हुए थे। बलराम वहाँ स्नान-दान करके ऋषियों और सिद्धोंके साथ बैठकर उत्तम कथाएँ सुनने लगे।

उसी समय देवर्षि नारदजी दण्ड, कमण्डलु और मनोहर वीणा लिये वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आते देख बलराम उठकर खड़े हो गये और उनका विधिवत् पूजन करके उनसे कौरवोंका समाचार पूछने लगे। नादरजीने, जिस प्रकार कौरवोंका महासंहार हुआ था, वह सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

नारदजीने कहा, भीष्मजी तो पहले ही मारे गये। उनके बाद द्रोणाचार्य, जयद्रथ, कर्ण और उसके पुत्र भी परलोक पहुँच गये। भूरिश्रवा, शल्य तथा दूसरे महाबली राजाओंकी भी यही दशा हुई है। ये सब राजा और राजकुमार दुर्योधनकी विजयके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे चुके हैं। अब जो मरनेसे बचे हैं वे इसप्रकार है। दुर्योधनकी सेनामें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा- ये ही तीन प्रधान वीर बचे हुए हैं। किंतु जब शल्य मारे गये तो ये भी डरके मारे पलायन कर गये। उस समय दुर्योधन बहुत दुखी हुआ और भागकर द्वैपायन सरोवरमें जा छिपा। मायासे सरोवरका पानी बाँधकर वह उसके भीतर सो

रहा था, इतनेहीमें पाण्डवलोग श्रीकृष्णके साथ वहाँ जा पहुँचे और उसे कड़वी बातें सुनाकर कष्ट पहुँचाने लगे। वह भी बलवान् ही ठहरा, इनके ताने क्यों सहता? हाथमें गदा लेकर उठ पड़ा और भीमसे युद्ध करनेके लिये उनके पास जाकर खड़ा हो गया। अब उन दोनोंमें भयंकर युद्ध छिड़नेवाला है, यदि आप भी देखनेको उत्सुक हों तो शीघ्र जाइये, विलम्ब न कीजिये। अपने दोनों शिष्योंका युद्ध देखिये।

सरस्वतीके तटपर निवास करनेमें जो सुख है, आनन्द है, वह अन्यत्र कहाँ मिल सकता है? उसमें जो गुण हैं वे और कहाँ हैं? सरस्वतीका सेवन करके स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए मनुष्य उसका सदा ही स्मरण करते रहेंगे। सरस्वती सब नदियोंमें पवित्र है, वह संसारका कल्याण करनेवाली है; सरस्वतीको पाकर मनुष्य इहलोक और परलोकमें पापोंके लिये शोक नहीं करते। बारंबार सरस्वतीकी ओर देखते हुए बलराम सुन्दर रथपर सवार हुए और शिष्योंका युद्ध देखनेके लिये तेज चालसे चलकर द्वैपायन सरोवरके तटपर जा पहुँचे।

भीम और दुर्योधन का महाभयंकर संग्राम छिड़नेहीवाला था कि अपने दोनों शिष्योंके युद्धका समाचार पाकर बलरामजी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने निकट जाकर उनका चरण-स्पर्श किया और विधिवत् उनकी पूजा की।

तदनन्तर्, राजा युधिष्ठिरने बलरामको गलेसे लगाकर उनकी कुशल पूछी, श्रीकृष्ण और अर्जुन भी प्रणाम करके उनसे गले मिले। नकुल-सहदेव तथा द्रौपदीके पुत्रोंने भी उन्हें प्रणाम किया। फिर भीम और दुर्योधनने गदा ऊँची करके उनके प्रति सम्मान प्रकट किया। इसप्रकार सबसे सम्मानित होकर बलरामने सृञ्जय-पाण्डवोंको गलेसे लगाया तथा सब राजाओंका कुशल-समाचार पूछा।

कृतवर्मा बोला, आपके विचार में इस युद्ध का परिणाम क्या होगा कुलगुरु? कृपाचार्य बोले, आज इस संसार में कदाचित बलराम के अतिरिक्त इस गदा युद्ध में और कोई पराजित नहीं कर सकता। अर्थात युद्ध में पराजित होने के उपरान्त विजयश्री दुर्योधन को ही मिलेगी। यह न भूलो वत्स उनके साथ वासुदेव कृष्ण हैं और भीम उनकी कृपा छाया में हैं।

सहदेव गान्धारी के पास आता है और आकर चरण स्पर्श कर प्रणाम कर बोला प्रणाम ज्येष्ठ मां श्री। गांधारी बोली, आयुष्मान भव पुत्र। वहां रणभूमि में क्या हो रहा पुत्र। सहदेव बोला, मझले भैया भीम और दुर्योधन के बीच गदा युद्ध होने जा रहा है, मैं भ्राता दुर्योधन का कवच और उनकी गदा लेने आया था। गान्धारी बोली, हे पुत्र युद्ध का चाहे कोई भी परिणाम क्यों न रहे किन्तु यह न भूलना मेरे पुत्र भी तुम्हारे भाई ही थे। क्या कुन्ती से मिले? सहदेव बोला, उनसे तो हम युद्ध के उपरान्त ही मिलेंगे ज्येष्ठ माताश्री। इधर आया था सोचा आपके भी दर्शन करते चलूं। वहां मेरी सब प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मुझे आज्ञा दीजिये। गान्धारी बोली, जीवित रहो पुत्र। यह हस्तिनापुर की माताओं का दुर्भाग्य है कि उनके पास इस आशीर्वाद के अतिरिक्त और कोई आशीर्वाद रह ही नहीं गया है। और यह भी आशीर्वाद कम है। उनकी आशा का प्रतीक अधिक है पुत्र। सहदेव दुर्योधन की गदा और कवच लेकर चले जाता है।

बलराम वहां पर आया और बोला सारथी रथ रोको। दुर्योधन ने प्रणाम गुरुदेव कहा। मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था। कृष्ण बोले, दाऊ और आकर चरण स्पर्श कर प्रणाम किया और बलराम से गले मिले और बोले आप ठीक समय पर आये। आपके दोनों शिष्यों में गदा युद्ध होने जा रहा है। बलराम बोला, देवर्षि नारद से यही सुनकर तो मैं सीधा यहां चले आ रहा हूं क्योंकि ये मेरे दोनों ही शिष्य गदा युद्ध की नीति में निपुण हैं।

क्षत्रियों की दृष्टि में पवित्र उस सूर्यकुण्ड के तट पर उन दो युद्धोन्मत्त चान्द्रवंशी राजपुत्रों का भयंकर गदायुद्ध आरम्भ

हुआ। युधिष्ठिर बोले, मुझे स्वीकार है। बाहर आओ। कृष्ण कुछ निश्चिंत दीखे। पीछे सेना में कुछ गतिविधि हुई, कुछ कोलाहल हुआ। सैनिकों ने एक ओर हटकर जैसे मार्ग बनाया। युधिष्ठिर ने देखा, सामने से वासुदेव बलराम आ रहे थें।

सारी स्थिति परिवर्तित हो गई। दुर्योधन अपने स्थान से बाहर निकल आया था, जैसे वह पूर्णत: सुरक्षित हो गया हो। पांडवों के शस्त्र ढीले पड़ गए थे और वे बलराम का स्वागत करने में व्यस्त हो गए थे। कृष्ण और युधिष्ठिर भी जाकर बलराम से मिले। बलराम बहुत सहज नहीं थे।

बलराम बोले, क्या चल रहा है यहाँ ? कृष्ण ने बलराम के चरण स्पर्श कर पूछा। अकस्मात ही आप इस समय इस स्थान पर कैसे? बलराम कुछ अटपटा गए और बोले, क्यों? मैं तुम लोगों से मिलने नहीं आ सकता? युद्ध का समाचार जानने की मुझमें उत्सुकता नहीं हो सकती?

कृष्ण मुस्कराए, हो क्यों नहीं सकती। किंतु यह पांडवों का शिबिर तो है नहीं, जहाँ आप उनसे मिलने आ गए हों। इस द्वैपायन सरोवर में छिपे हुए दुर्योधन को खोजने में हमें ही कठिनाई हुई तो आप तीर्थयात्रा से सीधे यहीं कैसे लौट आए? वह भी उस समय, जब यह निर्णायक युद्ध होनेवाला है। कृष्ण रुके, और आपके साथ यात्रा पर गए हुए अन्य लोग कहाँ हैं?

तीर्थयात्रा में भी मुझे तुम लोगों की चिंता सताती रही। जाने तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो। प्रयत्न करता रहा कि तुम लोगों का समाचार मिलता रहे। बलराम कुछ सहज होने का प्रयत्न कर रहे थे।

कृष्ण कुछ वक्र होकर बोले, तीर्थ में भी ध्यान यदि घर की ओर ही लगा रहे तो तीर्थ का क्या पुण्य। तीर्थ तो वह होता है, जिसे देखकर मनुष्य को ब्रह्म का स्मरण हो आए।

सरोवर के जलमें से ही दुर्योधन ने युधिष्ठिर से पूछा, क्या सचमुच तुम मुझे द्वन्द्वयुद्ध करने का अवसर दोगे? स्वीकृति में युधिष्ठिर की ग्रीवा हिलते ही उसने अपेक्षा-भरी दृष्टि से तट पर खड़े गुरुदेव बलराम की ओर देखा। उनके सम्मति देते ही तैरता हुआ दुर्योधन सरोवर-तट पर आया। उसने अपने सेवक द्वारा लाया गया गदायुद्ध का वेश धारण किया। अपने निन्यानवे भ्राताओं को यमसदन पहुँचानेवाले भीम की ओर देखकर अत्यधिक क्रोध से उसने द्वन्द्वयुद्ध के लिए भीम को ललकारते हुए कहा, मेरे निन्यानवे सहोदरों का वध करनेवाले इस नीच भीम का वक्ष विदीर्ण किये बिना मेरे भ्राताओं को तर्पण का जल प्राप्त नहीं होगा। जब तक मैं इसके भग्न नक्ष का उष्ण रक्त मैरेयक मद्य की भाँति प्राशन नहीं करूँगा, मेरे अत्यन्त प्रिय भ्राता दु:शासन की आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। मैं-कुरु- युवराज दुर्योधन- इस भीम को निर्णायक द्वन्द्वयुद्ध के लिए आह्वान करता हूँ।

६) दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध और दुर्योधन का वध

दुर्योधन ने आकर अपने गुरु को प्रणाम किया, मैं आपकी शरण में हूँ गुरुवर। बलराम ने आशीर्वाद देकर पूछा, कैसे हो दुर्योधन? दुर्योधन बोला, आपकी कृपा चाहिए गुरुदेव। मैं भीम के साथ गदायुद्ध करने जा रहा हूँ। आपके आशीर्वाद से विजय मेरी ही होगी; और तब धर्मराज के वचनानुसार हस्तिनापुर का राज्य भी मेरा होगा और ये लोग पुन: वन में चले जाएँगे। जय माता कुन्तीदेवी, जय वासुदेव श्रीकृष्ण की.. जय गुरुदेव बलभद्र, भीम ने इतने तेज स्वर में जयघोष किया कि शान्त दिखते उस सूर्य सरोवर के जल में भी लहरें उठने लगीं। भयभीत हुए, हाथ-भर लम्बे मत्स्यों ने ढलती धूप में अपने रुपहले पेट दिखाते हुए छलाँगे लगायीं और पुन: वे पानी में अदृश्य हो गये।

दुर्योधन बोला, धृतराष्ट्र पुत्र होने के नाते आपका चरण स्पर्श करने का सम्मान पहिले मुझे मिलना चाहिये। बलराम

बोला, अवश्य। तुम तो यों भी मेरे चहेते शिष्य हो किन्तु मैं तुम्हे विजय का आशीर्वाद नही दूंगा कुमार। दुर्योधन बोला, मैंनें आज तक इस युद्ध में विजयश्री का कवच पहिना ही नहीं गुरुदेव। परन्तु आज का युद्ध तो विशेष है और मैं यह युद्ध बिना विजयश्री के आशीर्वाद से ही जीतना चाहता हूं परन्तु गुरुवर आप विजयश्री का आशीर्वाद इस भीम को अवश्य पहिना दीजिये। भीम बोला, यह युद्ध आप बिना विजयश्री के आशीर्वाद होने दीजिये दाऊ। दोनों ने प्रणाम किया।

बलराम बोला, गदा युद्ध प्रारम्भ हो। सरोवर किनारे युद्ध शुरु हुआ। दो परस्पर गदायें टकराने लगी। गदा युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों परस्पर मतवाले हाथी की तरह जुझ पड़े। एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। पैतरे बदल-बदल कर मंडकार युद्ध करने लगे। एक-दूसरेपर भारी होने लगे। दुर्योधन ने भीम को परास्त किया इतने में ही कृष्ण अर्जुन से बोले, अर्जुन। यहां दुर्योधन का पलडा भारी होता दिखाई दे रहा है। कृष्ण बोले, यह रणभूमि है पार्थ यहां व्यापारियों की भाषा मत बोलो किन्तु यदि यह युद्ध नियमानुसार चलता रहा तो मझले भैया की पराजय निश्चित है; मझले भैया के पास बाहुबल अधिक है।

दुर्योधनने मेघके समान गर्जना करके जब भीमको युद्धके लिये ललकारा, उस समय अनेकों भयंकर उत्पात होने लगे। बिजलीकी गड़गड़ाहटके साथ आँधी चलने लगी। धूलकी वर्षा शुरू हो गयी और चारों दिशाओंमें अंधकार छा गया। आकाशसे सैकड़ों उल्काएँ टूट-टूटकर गिरने लगीं। बिना अमावस्याके ही सूर्यपर ग्रहण लग गया। वृक्षों तथा वनोंके साथ धरती डोलने लगी। पर्वतोंके शिखर टूट-टूटकर जमीनपर पड़ने लगे। कुओंके पानीमें बाढ़ आ गयी। किसीका शरीर नहीं दिखायी देता तो भी देहधारीकी-सी आवाजें सुनायी पड़ती थीं।

इन सब अपशकुनोंको देखकर भीमने धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा- आपके हृदयमें जो काँटा कसकता रहता है, उसे आज निकाल फेकूंगा। इस पापीको गदासे मारकर इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। अब यह पुन: हस्तिनापुरमें नहीं प्रवेश करने पायेगा। इस दुष्टने मेरे बिछौनेपर साँप छोड़ा, भोजनमें विष मिलाया, प्रमाणकोटिमें ले जाकर मुझे पानीमें गिरवाया, लाक्षाभवनमें जलानेका प्रयत्न किया, सभामें हँसी उड़ायी, हमलोगोंका सर्वस्व छीना तथा इसीके कारण हमें वनवास एवं अज्ञातवासका कष्ट भोगना पड़ा। आज सबका बदला चुकाकर मैं उन दु:खोंसे छुटकारा पा जाऊँगा। इसे मारकर अपने आत्माका ऋण चुकाऊँगा। इस दुष्टकी आयु पूरी हो गयी है। अब इसे माता-पिताका दर्शन भी नहीं मिलेगा। आज यह कुलकलंक अपने राज्य, लक्ष्मी तथा प्राणोंसे हाथ धोकर सदाके लिये जमीनपर सो जायगा।

युधिष्ठिर का स्वर पहली बार कुछ दुर्बल हो आया था और बोला, क्या यह संभव है कि दुर्योधन भीम को पराजित कर दे?

कृष्ण बोले, युद्ध में तो कुछ भी संभव है धर्मराज। भीम दुर्योधन से कहीं अधिक शक्तिशाली है, पर संभव है कि दुर्योधन ने अभ्यास अधिक किया हो। अपने वनवास में मध्यम पांडव को न तो गदायुद्ध का कोई गुरु मिला और न ही कोई दक्ष प्रतिद्वंद्वी। अभ्यास करते भी तो किसके साथ करते? हमें सावधान रहना है।

सब वहाँसे समन्तक पंचक तीर्थके पास पहुँचे। यहाँ भीम और दुर्योधनका गदा युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसी समय अर्जुनने पूछा- पुरुषोत्तम। आप इन दोनों वीरोंमें किसे श्रेष्ठ समझते हैं। श्रीकृष्णने कहा, सीधे युद्धमें मुझे भीमकी विजय सन्दिग्ध लगती है। वैसे भीमने दुर्योधनकी जंघा तोड़ देनेकी प्रतिज्ञा की है।

कृष्ण बोले, शिक्षा तो इन दोनोंको एक-सी मिली है, किंतु भीम बलमें अधिक हैं और अभ्यास तथा प्रयत्नमें दुर्योधन बढ़ा-चढ़ा है। यदि भीम धर्मपूर्वक युद्ध करेंगे तो नहीं जीत सकते; इन्होंने जूएके समय यह प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्धमें गदा मारकर दुर्योधनकी जाँघें तोड़ डालूँगा। आज ये उस प्रतिज्ञाका पालन करें। अर्जुन। मैं फिर भी यह कहे बिना नहीं रह सकता कि धर्मराजके कारण हमलोगोंपर पुन: भय आ पहुँचा है। बहुत प्रयास करके भीष्म आदि कौरव वीरोंको मारकर

हमें विजय और यशकी प्राप्ति हुई थी, किंतु युधिष्ठिरने उस विजयको फिरसे संदेहमें डाल दिया है।

भीम ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहा, तुम चिंता मत करो कृष्ण। मैं दुर्योधन का वध कर डालूँगा। हमने अट्ठारह दिनों का यह युद्ध देखा है। इससे पहले भी अनेक युद्ध लड़े गए हैं। क्या हम अब तक यह समझ नहीं पाए कि युद्ध में कोई नियम नहीं होता। नियमानुसार तो बस क्रीड़ा ही होती है। युद्ध तो युद्ध ही होता है। उसका एकमात्र धर्म है विजय। उसका एकमात्र नियम है बल। नियम, न्याय और धर्म की बात करनेवालों को इतना तो समझ ही लेना चाहिए कि न्याय से लोगों को उनका अधिकार दे दिया जाए तो फिर युद्ध ही क्यों हो? मेरी गदा दुर्योधन की गदा से डेढ़ गुना भारी है। दुर्योधन इसे उठाकर चले, तो भी थक जाए। यह मेरे बल का प्रमाण है। युद्ध बल से ही जीते जाते हैं, नियमों से नहीं।

कृष्ण बोले, ठीक है। आप उसकी दोनों जंघा तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करें। पर दुर्योधन को सामान्य योद्धा मानकर, उसकी उपेक्षा मत कीजिएगा। उससे प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना होगा। वह अभ्यासकुशल है, और युद्धकला में चतुर है। ऐसा न हो कि उसकी धूर्त्तता ही आपको पराजित कर दे।

भीम बोला, ऐसा नहीं होगा। मैं दीर्घकाल से संचित अपना क्रोध उस पर छोड़ूँगा तो उसकी फुत्कार से ही वह मर जाएगा।

बलराम बोले, धर्मराज। मेरी बात ध्यान से सुनो। यह गदायुद्ध वैसा नहीं होगा, जैसा युद्ध पिछले अट्ठारह दिनों से होता आ रहा है। दुर्योधन और भीम दोनों ही मेरे शिष्य हैं। उन्हें मैंने गदायुद्ध की शिक्षा दी है। वे उसकी नियमावली को जानते हैं। मेरे अखाड़े में जैसे गदायुद्ध होता है, वैसे ही, उन्हीं नियमों के अधीन, यहाँ भी युद्ध होगा।

कृष्ण उनके निकट आ गए और बोले, नियम केवल क्रीड़ा में होते हैं। युद्ध में कोई नियम नहीं होता। युद्ध के नियमों को केवल दुर्बल पक्ष मानता है। अन्यथा युद्ध का एकमात्र नियम और धर्म बल है; और उसका एकमात्र न्याय विजय है। दुर्योधन ने पिछले अट्ठारह दिनों में ही नहीं, आजीवन यही किया है, अन्यथा पांडवों द्वारा अज्ञातवास पूरा कर लेने पर वह पांडवों को उनका राज्य दे देता। द्रौपदी के साथ द्यूतसभा में किया गया व्यवहार क्या किसी राजसभा की द्यूतक्रीड़ा के नियमानुसार था। पांडवों के लिए वह क्रीड़ा थी, इसलिए उसके कुछ नियम थे, जिन में वे बंधे हुए थे; किन्तु दुर्योधन के लिये युद्ध था इसलिए वह केवल अपने बल का प्रदर्शन कर रहा था। अट्ठारह दिनों के युद्ध की अंतिम परिणति, इस गदायुद्ध को, आप क्रीड़ा में परिवर्तित कर देना चाहते हैं। यह युद्ध है तो युद्ध ही रहेगा।

बलराम ने अपना स्वर ऊँचा उठाया, अब गदायुद्ध आरंभ हो। दुर्योधन को कवच और शिरस्त्राण दिया जाए।

दुर्योधन का अभ्यास ही उसकी शक्ति है। बलराम भीम के गुणों को बाँधते जा रहे हैं और दुर्योधन की क्षमताओं को महत्त्वपूर्ण बनाते जा रहे हैं। अध्यक्ष के रूप में वे तनिक भी तटस्थ नहीं हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि दुर्योधन उनका शरणागत है। तो यह न युद्ध है, न क्रीड़ा। यह तो स्पष्ट रूप से भीम के वध का षडयंत्र है। इसी प्रतिस्पर्धा पर इस युद्ध का परिणाम निर्भर करता है। ओह। क्या कर दिया भैया बलराम ने। क्या होगा इस युद्ध का परिणाम।

कृष्ण देख रहे थे कि दुर्योधन के प्रति क्रोध से भरे हुए पांडव योद्धा बँधे खड़े थे। उनकी भुजाओं की मछलियाँ फड़क रही थीं। मन उबल रहे थे। शस्त्र तड़प रहे थे। वे किटकिटाकर दुर्योधन पर टूट पड़ना चाहते थे। उनको मुक्त छोड़ दिया जाता तो इस समय दुर्योधन के शरीर की बोटी-बोटी हो जाती। किंतु बलराम आ गये थे। वे अपनी अध्यक्षता में धर्मसंगत द्वंद्व करवा रहे थे। भीम और दुर्योधन के मध्य कोई तीसरा आ ही नहीं सकता था।

सहसा बलराम ने घोषणा सी करते हुए उच्च स्वर में कहा, यह धर्मयुद्ध है। इसका अर्थ है कि तुम लोग न तो रात्रि के समय दुर्योधन के वध का प्रयत्न करोगे और न ही उसे अकेला पाकर घेर कर मारोगे।

अर्जुन ने धीरे से कृष्ण से पूछा, यह कैसा युद्ध है?

कृष्ण मुस्कराए और बोले, तुम्हें युद्ध जैसा कुछ भी लग रहा है यहाँ? यह तो जैसे कोई उत्सव हो रहा है, जिसमें दर्शकों के मनोरंजन के लिए दो योद्धाओं का दंगल हो रहा है। बलराम भैया द्वारिका में इस प्रकार के दंगल करवाने के अभ्यस्त हैं।

बलराम ने युद्ध आरम्भ करने का संकेत दे दिया।

दुर्योधन। वारणावतमें राजा धृतराष्ट्रने और तूने जो पाप किये थे, उन्हें आज याद कर ले। तूने भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको जो क्लेश पहुँचाया, जूएके समय तूने और शकुनिने मिलकर जो राजा युधिष्ठिरके साथ वञ्चना की- उन सबका बदला चुकाऊँगा। खुशीकी बात है कि आज तू सामने दिखायी दे रहा है। तेरे ही कारण पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कर्ण तथा शल्य-जैसे वीर मारे गये। तेरे भाई तथा और भी बहुत से क्षत्रिय यमलोक पहुँच गये। सबसे पहले वैरकी आग लगानेवाला शकुनि और द्रौपदीको दु:ख देनेवाला प्रातिकामी भी चल बसा, अब तू ही रह गया है, इसलिये तुझे भी इस गदासे मौतके घाट उतारूँगा- इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

दुर्योधन बोला, वृकोदर इतनी शेखी बघारनेसे क्या होगा? चुपचाप लड़ाई कर, आज तेरा युद्धका सारा हौसला मिटाये देता हूँ। दुर्योधनको तू दूसरे साधारण लोगोंके समान मत समझ, यह तेरे-जैसे किसी भी मनुष्यकी धमकीसे नहीं डरता। मैं तो इसे सौभाग्य समझता हूँ, मेरे मनमें बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि तेरे साथ गदायुद्ध होता, सो आज देवताओंने उसे पूर्ण कर दिया। अब बहुत बड़बड़ानेसे कोई लाभ नहीं है, पराक्रमके द्वारा अपनी वाणीको सत्य करके दिखा; विलम्ब न कर। भीम उछलकर सामने आया और बोला, अब यह फिर कभी अपने पैरों पर चलकर हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं करेगा। मैं इसकी सारी युद्धश्रद्धा अभी शांत कर दूँगा।

भीम की उस भारी भरकम गदा और उसके उग्र रूप को देखकर भी दुर्योधन विचलित नहीं हुआ। वह आत्मविश्वास ही नहीं हर्ष से भी भरापूरा लग रहा था, जैसे उसे अपनी सफलता का कोई असाधारण अवसर उपलब्ध हो गया हो।

दुर्योधन बोला, आज भी मैं एक-एक कर तुम सारे भाइयों को युद्ध में पराजित करनेका सामर्थ्य रखता हूँ। तुम देखो तो सही, कौन किसकी युद्धश्रद्धा को तृप्त करता है। तो गदा उठाकर प्रहार कर। बातें क्या बना रहा है।

भीम बोला, तुझे बता रहा हूँ मंदबुद्धि कुलनाशी। तेरे उस परम प्रिय भाई दु:शासन को तुम सबकी आँखों के सम्मुख पटककर मारा है मैंने। उसका हाथ उखाड़कर उसी से पीटा है उसको। उसका वक्ष फाड़कर उसका रक्त पिया है मैंने। आज तेरी जंघाएँ तोड़कर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।

भीम ने उछलकर दुर्योधन पर आक्रमण किया। धर्मराज ने देखा, युद्ध आरंभ करने से पहले भीम ने अपने गुरु बलराम के प्रति तनिक भी श्रद्धा का प्रदर्शन नहीं किया था। आशीर्वाद नहीं लिया था। प्रणाम नहीं किया था। वह अपने भाई के इस आचरण से तनिक भी प्रसन्न नहीं था। उन्हें स्मरण था कि जिन द्रोणाचार्य को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा कर अर्जुन युद्ध में आगे बढ़ा था, उन्हीं आचार्य को अपशब्द कहते हुए, उनके रथ को उठाकर फेंक दिया था भीम ने। यदि उसे गुरु का आचरण दंभपूर्ण लगे तो वह उनका तनिक भी सम्मान नहीं कर पाता था। युधिष्ठिर के मन में एक आशंका घर करती जा रही थी। कहीं ऐसा न हो कि बलराम की किसी बात से रूष्ट होकर भीम उनपर ही प्रहार कर बैठे। उसका क्रोध आज अपनी पराकाष्ठा पर था। इस समय भीम को मर्यादित करने का प्रयत्न अत्यंत विस्फोटक भी हो सकता था।

फिर तो भीम कवच पहनकर हाथमें बड़ी नोकवाली गदा ले युद्धके लिये तैयार हो गये। दुर्योधन भी सिरपर टोप लगाये सोनेका कवच बाँधे भीमके सामने डट गया। फिर दोनों भाई क्रोधमें भरकर एक-दूसरेको देखने लगे। दुर्योधन की आँखें

लाल हो रही थीं। उसने भीमकी ओर देखकर अपनी गदा सँभाली और उन्हें ललकारा। भीमने भी गदा ऊँची करके दुर्योधनको ललकारा। दोनों ही क्रोधमें भरे थे। दोनों की गदाएँ ऊपरको उठी थीं और दोनों ही भयंकर पराक्रम दिखानेवाले थे। उस समय वे राम-रावण और बालि-सुग्रीवके समान जान पड़ते थे।

दोनों एक-दूसरेसे भिड़कर अपनी-अपनी बचावका प्रयत्न करते थे। तरह-तरहके पैंतरे बदलना, चक्कर देना, शत्रुपर प्रहार करना, उसके प्रहारको बचाना या रोकना तथा आगे बढ़कर पीछे हटना, वेगसे शत्रुपर धावा करना, उसके प्रयत्नको निष्फल कर देना, सावधानीपूर्वक एक स्थानपर खड़ा होना, सामने आते ही शत्रुसे युद्ध छेड़ना, प्रहारके लिये चारों ओर घूमना, पास जाकर और दूर हटकर शत्रुके ऊपर प्रहार करना इत्यादि बहुत सी क्रियाएँ दिखाते हुए दोनों लड़ रहे थे। दोनों ही प्रहार करते हुए एक-दूसरेको चकमा देनेकी कोशिश करते थे। युद्धका खेल दिखाते हुए सहसा गदाओंकी चोट कर बैठते थे। इस प्रकार उनमें इन्द्र और वृत्रासुरकी भाँति भयंकर युद्ध चल रहा था। दोनों ही अपने-अपने मण्डलमें खड़े थे। दायें मण्डलमें दुर्योधन था और बायेंमें भीम। उस समय दुर्योधनने भीमकी पसलीमें गदा मारी, परंतु भीमने उसके प्रहारको कुछ भी न गिनकर यमदण्डके समान भयंकर गदा घूमायी और उसे दुर्योधनपर दे मारा। यह देख दुर्योधनने भी अपनी भयंकर गदा उठाकर पुन: भीमपर प्रहार किया। गदा प्रहार करते समय बड़े जोरका शब्द होता और आगकी चिनगारियाँ छूटने लगती थीं।

दोनों की प्रचण्ड गदाएँ खनखनाती हुई आपस में टकराने लगीं। सन्ध्या समय होने से अपने नीड़ों को लौटनेवाले पक्षी वह ध्वनि सुनकर चीखते हुए पुन: अरण्य को लौटने लगे। दोनों योद्धाओं के प्रबल प्रहारों से उनकी गदाओं से चिनगारियाँ छूटने लगीं। देखनेवालों के हृदयों को कँपकँपा देनेवाला उनका भयावह गदायुद्ध एक प्रहर तक चलता रहा। उनकी चपल गतिविधियों से उनके पैरों-तले की घास उद्ध्वस्त होने लगी। दोनों के सुपुष्ट, विशाल शरीरों से स्वेद और रक्त की धाराएँ बहने लगीं। एक-दूसरे के प्रहारों को निष्फल करते हुए उनके शिरस्त्राण लुढ़ककर धूल में गिर पड़े। उनके मुक्त, घने केश कन्धों पर झूलने लगे। अवसर पाते ही भीम दाँत पीसते हुए कभी दुर्योधन के चौड़े वक्ष पर, कभी उसकी गँठीली भुजाओं पर तो कभी विशाल पीठ पर गदा-प्रहार कर रहा था। पाण्डव चिल्ला-चिल्लाकर उसे उत्तेजना दे रहे थे। साधु गदावीर साधु... साधु... महाबली।

दुर्योधनके ऊपर अपनी लोहमयी गदाका प्रहार किया। उसकी चोटसे दुर्योधनकी नसनस ढीली हो गयी। वह काँपता हुआ पृथ्वीपर जा पड़ा। यह देख पाण्डव हर्षमें भरकर सिंहनाद करने लगे। कुछ ही देरमें दुर्योधनको होश हुआ तो वह उछलकर खड़ा हो गया और रणभूमिमें विचरने लगा। घूमते-घूमते मौका पाकर उसने सामने खड़े हुए भीमको गदासे मारा। उसकी चोट खाकर उनका सारा शरीर शिथिल हो गया और वे धरती चूमने लगे। भीमको गिराकर दुर्योधन दहाड़ने लगा। उसकी गदाके आघातसे भीमके कवचके चिथड़े उड़ गये थे। उनकी ऐसी अवस्था देख पाण्डवोंको बड़ा भय हुआ। किंतु एक ही मुहूर्तमें भीमकी चेतना पुन: लौट आयी। उन्होंने खूनसे भीगे हुए अपने मुखको पोंछा और धैर्य धारण करके आँखें खोलीं। फिर बलपूर्वक अपनेको सँभालकर वे खड़े हो गये।

किन्तु दुर्योधन पर उन प्रहारों का तनिक भी प्रभाव नहीं हो रहा था। होनेवाला भी नहीं था। विकराल हँसता हुआ वह भीम को ललकारता रहा था- हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करनेवाली तुम्हारी लौह भुजाओं की वह सामर्थ्य कहाँ गयी? दिन-रात खाते रहनेवाले भीम, कहाँ गयी तुम्हारी वह सहस्त्र हाथियों की शक्ति?

दुर्योधनकी बात सुनकर सबने उसकी प्रशंसा की और भीम गदा उठाकर बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े। दुर्योधनने भी गर्जना करते हुए आगे बढ़कर उनका सामना किया। फिर दोनों दो साँड़ोंकी तरह एक-दूसरेसे भिड़ गये। प्रहार-पर-प्रहार

होने लगा। उस समय गदाकी चोट पड़नेपर वज्रपातके समान भयंकर आवाज होती थी। दोनों खूनसे नहा उठे। उनके रक्तरञ्जित शरीर खिले हुए ढाकके वृक्षों-जैसे दिखायी देने लगे। लड़ते-लड़ते दोनों ही थक गये, फिर दोनोंने घड़ीभर विश्राम किया। इसके बाद दोनों ही अपनी-अपनी गदाएँ उठाकर आपसमें युद्ध करने लगे।

घात-प्रतिघात होते रहे और दोनों अपनी-अपनी भारी गदा घूमाते हुए स्वयं को थकाते रहे। भीम रुका। उसे विश्राम की आवश्यकता पड़ गई थी। दुर्योधन के लिए यह अवसर था, जब वह भीम पर आक्रमण कर सकता था; किंतु यही वह अवसर भी था जब वह भी विश्राम कर सकता था। यदि इस समय वह नहीं रुकता और भीम पुन: आक्रामक हो उठता तो दुर्योधन को श्वास लेने का भी अवकाश नहीं मिलता। शत्रु को थकाकर स्वयं भी विश्राम कर लेना चाहिए- यही उचित था।

भीम युद्ध के मुहाने पर वाम मंडल में विचर रहा था कि दुर्योधन ने उसकी पसली पर गदा मारी। जिस आघात को देखकर बलराम को लग रहा था कि उससे भीम की पसलियाँ चूर हो जाएँगी और वह भूमि पर जा गिरेगा, उसकी भीम ने तनिक भी चिंता नहीं की और अपनी भारी गदा घूमाई। दुर्योधन ने उसका प्रहार रोकने के लिए बड़े कौशल से उसकी गदा पर अपनी गदा दे मारी। जोर का शब्द हुआ और गदाओं में से अग्नि स्फुलिंग फूटे।

धृष्टद्युम्न ने कुछ हताश स्वर से कहा, भीम अपनी ही गदा के भार से थकते जा रहे हैं।

शिखंडी का चेहरा भी उद्विग्न हो चला था और बोला, मुझे तो भय लग रहा है कि हमारा सारा परिश्रम कहीं इस द्यूत में ध्वस्त ही न हो जाए।

धृष्टद्युम्न बोला, पहले तो धर्मराज ही थे। अब बलराम भी आ गए हैं। उससे क्या। बलराम तो पहले दिन से दुर्योधन के पक्षधर हैं। हमने अपना इतना रक्त इसलिए तो नहीं बहाया है कि युद्ध का निर्णय बलराम का अखाड़ा करे। उनका क्या है। दुर्योधन जो भी करेगा, वह धर्मसंगत होगा; और यदि भीम उसे धराशायी कर देंगे तो बलराम उसे अन्याय घोषित कर देंगे।

शिखंडी ने कहा, और नहीं तो क्या। यह युद्ध है, कौशल की प्रदर्शनी नहीं। बलराम को नियम और विधान इतना ही प्यारा है तो न जाते तीर्थयात्रा करने। जहाँ-जहाँ जिसने नियम भंग किया, उसे दंडित करते। स्वयं तो भाग गए यह मानकर कि दुर्योधन जीत ही जाएगा। अब जब कौरव पराजित हो गए हैं तो आ गए हैं धर्म बघारने। हम मूर्ख हैं क्या, जिन्होंने अपना रक्त बहाया और अपने बंधु-बांधवों के प्राणों की बलि दी। महाराज द्रुपद ने इसलिए तो अपने प्राण नहीं दिए कि अंत समय में बलराम आकर सबके स्वामी बनकर अपना आदेश सब पर थोप देंगे।

सात्यकि का स्वर कड़वा हो उठा था, यह तो स्पष्ट रूप से दुर्योधन की सहायता का प्रयत्न है। और कुछ भी नहीं। बने हैं बड़े धर्मधुरंधर। उपप्लव्य में इन्होंने पहले ही कह दिया था कि कौरवों और पांडवों के लिए वे मध्यस्थ हैं। कौरव भी उन्हें उतने ही प्रिय हैं, जितने कि पांडव। उन्होंने तो धर्मराज को ही द्यूत का पापी घोषित कर दिया था। यह इनके जैसे लोगों के वक्तव्यों का ही परिणाम है कि साधारण जन धर्मराज को द्यूतव्यसनी मानने लगा है। इन्होंने यह नहीं देखा कि किस प्रकार धर्मराज को छलकर, उन्हें धर्म के बंधन में बाँधकर उनसे उनका राज्य, उनके भाई और उनकी पत्नी को छीना गया। इन्होंने तो बस यह देखा कि धर्मराज ने एक पाप कृत्य किया।

धृष्टद्युम्न ने सात्यकि से कहा, जहाँ मोह और स्वार्थ प्रबल हों, वहाँ न्याय कैसे टिक सकता है।

दुर्योधन फुफकारता हुआ उठ खड़ा हुआ। वह गदा लेकर भीम की ओर दौड़ा। इस बार उसकी गति में युद्ध का कोई कौशल नहीं था। न ही वह मंडलों में चल रहा था कि विपक्षी के प्रहार से सुरक्षित रहता। यह तो शुद्ध उन्माद ही था। उसने भीम के ललाट पर प्रहार किया। भीम स्थिर खड़ा रहा। उसके मस्तक से रक्त की धारा बहती हुई शिरस्त्राण से बाहर प्रकट

न होती तो किसी को यह पता भी न चलता कि भीम को मस्तक पर कैसी चोट लगी है।

भीम ने अपनी गदा से लौटते हुए दुर्योधन पर प्रहार किया। इस प्रहार से दुर्योधन के शरीर की जैसे नस-नस ढीली हो गई। वह काँपता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

दुर्योधन जैसे आपे से बाहर हो गया था। वह किसी सिंह के समान दहाड़ रहा था, कौन है जो मुझसे लड़ेगा। आओ। एक-एक कर सारे कुंतीपुत्र आ जाएँ। आज मैं उन सबको मारकर एक बार ही हस्तिनापुर में प्रवेश करूँगा।

भीम मंडलों में चक्र काटता हुआ आया और उसने दुर्योधन पर प्रहार कर दिया, तूने सुना नहीं कुलांगार कि मैंने कहा था कि तू अपने इन पैरों पर चलकर कभी हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं करेगा।

गदायुद्ध लंबा खिंचे तो उसकी क्लांति से बल क्षीण होता जाता है और प्रहार कम प्रभावी होने लगते हैं। दूसरी और प्रशिक्षित योद्धा युद्ध के उस अनुभव से अपने प्रशिक्षण को और प्रखर कर लेता है और वह अपने विपक्षी पर भारी पड़ने लगता है। कृष्ण बोले, भीम को युद्ध करना चाहिए। वे नियममुक्त होकर लड़ेंगे तो अभी दुर्योधन का वध कर डालेंगे।

अर्जुन बोला, मझले भैया ने दुर्योधन की जंघा तोडने की प्रतीज्ञा की थी लेकिन यह गदा युद्ध है केशव। कृष्ण बोले, तो मझले भैया क्या उनके शव की जंघा तोड़ेगे पार्थ उन्हे उनकी प्रतीज्ञा याद करवाओ। फिर वो जाने और उनका काम। अर्जुन बोला, मैं ऐसा नहीं कर सकता। कृष्ण बोले, तो फिर युद्ध देखो। परन्तु दुर्योधन के पास माता गान्धारी का आशीर्वाद भी है। यदि ये युद्ध न होता पार्थ तो मैं दुर्योधन की गदा का सौन्दर्य देखता रहता लेकिन यह क्रीडा नहीं युद्ध है।

कृष्ण बोले, ओह मझले भैया बहुत। ओह मझले भैया। बलराम बोला, चिल्ला क्यों रहे हो कृष्ण। युद्ध देखो। कृष्ण बोले मैं तो मझले भैया की प्रशंसा कर रहा था। यह पैंतरा उनका देखने लायक था।

गदाके भयंकर प्रहारसे दोनोंके शरीर जर्जर हो रहे थे, दोनों ही खूनमें लथपथ थे। अर्जुनने भीमको जो इशारा किया, उसे दुर्योधन भी कुछ-कुछ समझ गया था; इसलिये वह सहसा उनके पाससे दूर हट गया। जब वह निकट था, उसी समय भीमने बड़े वेगसे उसपर गदा चलायी; किंतु वह अपने स्थानसे एकाएक हट गया, इसलिये गदा उसे न लगकर जमीनपर जा पड़ी। इस प्रकार उनके प्रहारको बचाकर दुर्योधनने भीमपर स्वयं गदाका वार किया। भीमको गहरी चोट लगी। उनके शरीरसे खूनकी धारा बह चली और वे मूर्च्छित-से हो गये। किंतु दुर्योधनको उनकी मूर्च्छाका पता न चला; क्योंकि भीम अत्यन्त वेदना सहकर भी अपने शरीरको सँभाले हुए थे। दुर्योधनने यही समझा कि अब भीम प्रहार करेंगे, इसीलिये उसने उनके ऊपर पुन: प्रहार नहीं किया, वह अपने बचावकी फिक्रमें पड़ गया।

भीम चकराकर ललाट पर उभरे स्वेद को पोंछने के निमित्त बार-बार कृष्ण की ओर देख रहा था। कृष्ण तो कब से जंघा थपथपाकर उसे संकेत दे रहे थे; किन्तु भीम के ध्यान में ही वह संकेत नहीं आ रहा था।

वे चक्राकार घूम रहे थे। क्रमश: दुर्योधन की अर्जुन की ओर पीठ हो गई। भीम उसके सामने थे। अर्जुन ने प्रयत्नपूर्वक भीम को दिखाते हुए अपनी बाईं जंघा को ठोका।

दुर्योधन के गदा-प्रहारों को झेलते हुए वह क्षण-क्षण अधिकाधिक लहूलुहान होता जा रहा था। कृष्ण बार-बार जंघा क्यों थपथपा रहे हैं, यह संकेत उसे समझ में ही नहीं आ रहा था। ऐसा ही चलता रहा तो दुर्योधन भीम का वध करने से नहीं चूकेगा, इस आशंका से सभी पाण्डव भयभीत हो रहे थे।

दुर्योधन आगे नहीं बढ़ा तो भीम ने गदा उठा ली और लगातार दुर्योधन पर आक्रमण करता रहा। दुर्योधन स्वयं को बचाता तो रहा, किंतु आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका। भीम ने अपने निकट आए दुर्योधन पर आक्रमण किया।

यह कुछ ऐसा ही था कि पहले आघात का परिणाम देखे बिना ही भीम दूसरा प्रहार कर रहा था। दुर्योधन ने उस प्रहार को बचाना चाहा। भीम को छलने के लिए अपने स्थान पर स्थिर रहने का विचार कर, तत्काल दुर्योधन ने उछलकर हट जाने की इच्छा की। भीम की समझ में आ गया कि दुर्योधन अभी उछलेगा और फिर उसकी जंघाएँ भीम की गदा के सामने होंगी। भीम को पुन: अपना आघात रोकना पड़ेगा। भीम ने अपनी गदा को पूरे वेग से चलाया। दुर्योधन उछला और भीम की गदा ने दुर्योधन की दोनों जंघाएँ तोड़ दीं।

मझले भैया को द्रौपदी वस्त्राहरण पर की हुई प्रतिज्ञा याद दिलवाओ और हाथ से भीम को संकेत किया कि दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करे। भीम ने युद्ध की मर्यादा भंग कर दुर्योधन की कमर के नीचे जंघा पर प्रहार किया। दुर्योधन की उरू टूट गई। दुर्योधन भीम पर गिर गया। दुर्योधन बोला, भीम तूने मुझे छल से मारा। भीम बोला, मैं अपनी प्रतिज्ञा भूला नहीं हूं दुर्योधन। यह वही जंघा है न जहाँ तू द्रौपदी को बैठाना चाहता था और भीम क्रोधित हो दुर्योधन को पैर से दबाकर मार रहा था इतने में युधिष्ठिर ने चिल्लाकर कहा नहीं भीम नहीं। यह भाई ही नहीं यह राजा भी है।

अब कृष्ण ने अपनी स्नायुबद्ध जंघा पर से पीताम्बर को तनिक हटाया और खुली जंघा पर सांकेतिक मुष्टि-प्रहार किया। कृष्ण क्या कहना चाह रहे हैं, भीम को इसका अब बोध हुआ। उसने ऊँचे स्वर में गर्जना की, जय वासुदेव। जय इडादेवी। दूसरे ही क्षण महाकाय भीम ने दाँत पीसते हुए दुर्योधन की जंघा पर अपनी प्रचण्ड गदा का वज्र-प्रहार किया।

थोड़ी ही देरमें जब भीम पूरी तरह सँभल गये तो उन्होंने दुर्योधनपर बड़े वेगसे आक्रमण किया। उन्हें क्रोधमें भरकर आते देख दुर्योधनने पुन: उनके प्रहारको व्यर्थ करनेका विचार किया और अवस्थान नामक दाँव खेल भीमको धोखेमें डालनेके लिये ऊपर उछल जाना चाहा। भीम उसका मनोभाव ताड़ गये थे; इसलिये सिंहके समान गर्जना करके उसके ऊपर टूट पड़े। अब वह कूदना ही चाहता था कि भीमने उसकी जाँघोंपर बड़े वेगसे गदा मारी। उस वज्र-सरीखी गदाने दुर्योधनकी दोनों जाँघें तोड़ डालीं और वह आर्तनाद करता हुआ जमीनपर गिर पड़ा। दुर्योधन धरती पर गिर पड़ा।

हे माता चिल्लाता हुआ जंघा-भग्न दुर्योधन अपनी गदा को दूर फेंकते हुए धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। भान रहित हुए भीम ने वैसा ही एक वज्र प्रहार दुर्योधन की बायीं जंघा पर किया। रक्त का फव्वार छूटा। उसकी बायीं जंघा भी चूर-चूर हो गयी। दोनों जंघाएँ टूट जाने से दुर्योधन धरती पर औंधा पड़ा था।

जो एक दिन सम्पूर्ण राजाओंका राजा था, उस वीरवर दुर्योधनके गिरते ही बड़े जोरकी आँधी चली, बिजली कौंधने लगी। धूलकी वर्षा शुरू हो गयी तथा वृक्षों और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी। धूलके साथ रक्तकी भी वर्षा होने लगी। आकाशमें यक्षों, राक्षसों तथा पिशाचोंका कोलाहल सुनायी देने लगा। बहुत-से हाथ-पैरोंवाले भयंकर कबन्ध नाचने लगे। इस तरह नाना प्रकारके अद्‌भुत उत्पात दिखायी देने लगे। देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध तथा चारण लोग धृतराष्ट्रके दोनों पुत्रोंके अद्‌भुत संग्रामकी चर्चा करते हुए जहाँसे आये थे वहीं चले गये।

पर भीम का आवेश शांत नहीं हुआ था। होता भी कैसे। वह चिल्लाकर बोला, दुर्मति। तूने एकवस्त्रधारिणी रजस्वला द्रौपदी को सभा लें लाकर अपमानित किया और मुझे बैल कहकर उपहास किया। आज उस उपहास का तू आस्वाद कर।

तदनन्तर, प्रतापी भीम दुर्योधनके पास जाकर बोले- अरे मूर्ख। पहले भरी सभामें तूने जो एकवस्त्रा द्रौपदीकी हँसी उड़ायी थी और हमलोगोंको बैल कहकर अपमानित किया था, उस उपहासका फल आज भोग ले। यों कहकर उन्होंने बायें पैरसे दुर्योधनके मुकुटको ठुकरा दिया और उसके सिरको भी पैरसे दबाकर रगड़ डाला। पांडवोंने शत्रुओंको दबानेके लिये छल-कपटसे काम नहीं लिया, आगमें जलानेकी कोशिश नहीं की, न जुआ खेला, न और कोई धोखा-धड़ी की;

केवल अपने बाहुबलके भरोसे दुश्मनोंको पछाड़ा है।

ऐसा कहकर भीम खूब हँसे; फिर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा सृञ्जयवीरोंसे धीरे-धीरे बोले, आपलोग देखते हैं न? जो रजस्वला-अवस्थामें द्रौपदीको सभाके भीतर घसीट लाये थे और जिन्होंने उसे नंगी करनेका प्रयत्न किया था, वे धृतराष्ट्रके सभी पुत्र पाण्डवोंके हाथसे मारे गये। यह द्रुपदकुमारीकी तपस्याका फल है। जिन्होंने हमें तैलहीन तिलके समान सारहीन एवं नपुंसक कहा था, उन सबको सेवकों तथा सम्बन्धियोंसहित मौतके घाट उतार दिया गया।

बलराम अपने स्थान से उठ खड़े हुए।

भीम का बायाँ पैर उठा और उसके आघात से दुर्योधन का मुकुट दूर जा गिरा। उसने दूसरी ठोकर दुर्योधन के मस्तक पर मारी, देख। द्रौपदी की तपस्या से पांडवों ने धृतराष्ट्रपुत्रों को रणभूमि में मार गिराया है।

युधिष्ठिर अपने स्थान से चिल्लाए, भीम। तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। अब इस कर्म से विरत हो जाओ। दुर्योधन तुम्हारा विपक्षी अवश्य है किंतु वह राजा भी है और हमारा भाई भी। वह इस व्यवहार के योग्य नहीं है।

इसके बाद भीमने दुर्योधनके कंधेपर रक्खी हुई गदा ले ली और उसे कपटी कहकर पुन: उसके मस्तकको अपने बायें पैरसे दबाया। किंतु उनके इस बर्तावको धर्मात्मा सोमकोंने पसंद नहीं किया। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरने भी उनसे कहा- भीम। तुमने अपने वैरका बदला ले लिया, तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गयी; अब तो शान्त हो जाओ। दुर्योधनके मस्तकको पैरसे न ठुकराओ, धर्मका उल्लङ्घन न करो। एक दिन यह ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, कौरवोंका राजा था और अपना कुटुम्बी रहा है; अत: पैरसे इसका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इसके भाई और मन्त्री मारे गये, सेना भी नष्ट हो गयी और स्वयं भी युद्धमें मारा गया; अत: यह सब प्रकारसे शोचनीय है, दयाका पात्र है, इसकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिये। सोचो तो, इसकी संतानें नष्ट हो गयीं; अब इसे पिण्ड देनेवाला भी कोई न रहा। इसके सिवा अपना भाई ही तो है, क्या इसके साथ यही बर्ताव उचित था? इसे पैरोंसे ठुकराकर तुमने न्याय नहीं किया है। भीम। तुम्हें तो लोग धार्मिक बताते हैं, फिर तुम क्यों राजाका अपमान करते हो?

भीम ने एक लात और जमा दी, द्रौपदी भी उस व्यवहार के योग्य नहीं थी, जो इसने उसके साथ किया।

युधिष्ठिर निकट आ गए, यही अंतर है हममें और दुर्योधन में। वह मार डाला गया है। अब उसके साथ दुर्व्यवहार मत करो। वह शोक के योग्य है, उपहास का पात्र नहीं।

भीमसे ऐसा कहकर युधिष्ठिर दुर्योधनके निकट गये और बहुत दु:ख प्रकट करते हुए गदगद कण्ठसे बोले, तात। तुम हमलोगोंपर क्रोध न करना, अपने लिये भी शोक न करना; क्योंकि सब प्राणियोंको अपने पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका ही भयंकर परिणाम भोगना पड़ता है। तुमने अपने ही अपराधसे इतना बड़ा संकट मोल लिया है। लोभ, मद और मूर्खताके कारण मित्रों, भाइयों, चाचाओं, पुत्रों तथा पौत्रोंको मरवाकर अन्तमें तुम स्वयं भी मौतके मुखमें जा पड़े। तुम्हारे ही अपराधसे हमें तुम्हारे महारथी भाइयों तथा अन्य कुटुम्बियोंका वध करना पड़ा है। वास्तवमें प्रारब्धको कोई टाल नहीं सकता। तुम्हें अपने आत्माके कल्याणके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये; तुम्हारी मृत्यु इतनी उत्तम हुई है, जिसकी दूसरे लोग इच्छा करते हैं। इस समय तो हम ही लोग सब तरहसे शोकके योग्य हो गये; क्योंकि अब हमें अपने प्रिय बन्धुओंके वियोगमें बड़े दु:खके साथ जीवन बिताना होगा। जब भाइयों, पुत्रों और पौत्रोंकी विधवा स्त्रियां शोकमें डूबी हुई हमारे सामने आयेंगी, उस समय हम कैसे उनकी ओर देख सकेंगे? राजन्। तुमने तो अकेले स्वर्गकी राह ली है, निश्चय ही तुम्हें स्वर्गमें स्थान मिलेगा। यह कहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर शोकसे आतुर हो गये और लंबी-लंबी साँसे भरते हुए देरतक विलाप करते रहे।

HHH(४४२)HHH

भीमने दुर्योधनकी जाँघोंमें प्रहार किया - यह देख महाबली बलरामको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सब राजाओंके बीच अपना हाथ ऊपर उठाकर भयंकर आर्तनाद करते हुए कहा- भीम। तुम्हें धिक्कार है। धिक्कार है। बड़े अफसोसकी बात है कि इस धर्मयुद्धमें भी नाभिसे नीचेके अङ्गमें गदाका प्रहार किया गया। आज भीमने जैसा अन्याय किया है, यह गदायुद्धमें पहले कभी नहीं देखा गया। शास्त्रने यह निर्णय कर दिया है कि गदायुद्धमें नाभिसे नीचे नहीं प्रहार करना चाहिये। किंतु यह तो मूर्ख है, शास्त्रको बिल्कुल नहीं जानता, इसीलिये मनमाना बर्ताव करता है।

बलराम बोला, धिक्कार है तुमको भीम। धिक्कार है। गदायुद्ध में नाभि के नीचे कभी प्रहार नहीं किया गया। ठीक है। किंतु अपने आघात के वेग को स्वयं ही न रोक पाना अकुशलता का प्रमाण है। यह धर्मयुद्ध नहीं है। शस्त्रज्ञान से शून्य मूर्ख भीम। तुमने स्वेच्छाचार किया है।

भीम ने कहा, दुर्योधन ने भी अपने जीवन में बहुत सारा स्वेच्छाचार ही किया था। उससे तो आप इस प्रकार कभी रुष्ट नहीं हुए। अभिमन्यु को धर्मयुद्ध में मारा था कौरवों ने? हमारा राज्य धर्मपूर्वक छीना था, दुर्योधन ने?

दो विपक्षियों में से एक को अपना शरणागत मानकर तो द्वंद्वयुद्ध की अध्यक्षता नहीं की जाती वासुदेव बलराम। आप अपना पाप अपने ही मुख से स्वीकार कर रहे हैं। भीम ने सीधे उनकी आँखों में देखा और जहाँ तक अपमान और तिरस्कार की बात है, कभी हमारे हृदय में भी झाँककर देखिए। जितना तिरस्कार हमारी पत्नी का और हमारा हुआ है, उतना संसार में कभी किसी का नहीं हुआ। आपने अभी तिरस्कार देखा ही कहाँ है। जानते भी हैं कि तिरस्कार होता क्या है?

बलराम न तो भीम का तर्क सुनना चाहते थे, न ही उसका उत्तर देने का उनका कोई विचार था। उनकी पीड़ा उनके मुख पर उभर आई, बलराम बोले, दुर्योधन मेरे समान बलवान था। गदा युद्ध में उसकी समकक्षता करनेवाला कोई नहीं था। मैंने उसे शरण दी थी तो वह द्वैपायन सरोवर से बाहर आया था। तूने उसका अपमान कर मेरा भी तिरस्कार किया है मूर्ख।

इसके बाद उन्होंने दुर्योधनकी ओर दृष्टिपात किया, उसकी दशा देख उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं; वे फिर कहने लगे- कृष्ण। दुर्योधन मेरे समान बलवान है, इसकी समानता करनेवाला कोई योद्धा नहीं है। आज अन्याय करके केवल दुर्योधन ही नहीं गिराया गया है, मेरा भी अपमान किया गया है। शरणागतकी दुर्बलता देखकर शरण देनेवालेका तिरस्कार किया जा रहा है। यह कहकर वे अपना हल ऊपरको उठाये भीमकी ओर दौड़े। बलराम क्रोध से भीम को देखते रहे, अभी दुर्योधन मरा नहीं है। उसका उपचार हो सकता है। वह पुन: उठ खड़ा हो सकता है। वह फिर भी तुमसे युद्ध कर सकता है। बलराम ने कुछ नहीं कहा। वे थोड़ी देर भीम को घूरते रहे, जैसे अपना आवेश संचित कर रहे हों; और फिर अकस्मात ही वे अपना हलायुद्ध उठाकर भीम की ओर झपटे, जैसे वे उसका वध ही कर डालेंगे।

बलराम बोला, यह अब कुछ करने को जीवित ही नहीं रहेगा और क्रोधित ही भीम को मारने दौडे और बोले, कौन्तेय भीम आज तूने अपने गुरुजनों का अपमान किया है। क्या आचार्य द्रोण और मैंने तुम्हे यह शिक्षा नहीं दी थी कि गदा युद्ध में कमर से नीचे नहीं उतरना। यह पीडा से तफड़ता हुआ दुर्योधन नहीं, ये तेरे गुरु की मर्यादा यहां पडी है जिसे केवल तेरे कायर रक्त का स्नेह लेप ही ठीक कर सकता है और बलराम भीम को मारने दौडे।

दोनों गदावीरों के गुरु बलराम भैया गदा उठाकर क्रोध से भीम की ओर लपके। वे चिल्लाये कटि के नीचे प्रहार करते हुए गदायुद्ध का नियम भंग करनेवाले मूढ़। अब तुम्हारा वध करके ही मुझे अपने प्रिय शिष्य को न्याय दिलाना होगा- जय इडादेवी। कृष्ण ने दोनों हाथों से उन्हें रोकते हुए कहा- दाऊ, भरी द्यूतसभा में द्रौपदी को असभ्यता से खुली जंघा दिखानेवाले दुर्योधन की जंघा तोड़ने के बदले क्या भीम को अपनी पत्नी को लाकर उसकी जंघा पर बैठाना चाहिए था?

दाऊ, यदि इस समय आपके स्थान पर मैं होता तो अपनी कौमोदकी गदा भीम को प्रदान करते हुए उसका सम्मान करता। आप अपने क्रोध पर नियन्त्रण पाइए- शान्त हो जाइए।

बलरामने हाथका हल छोड़ दिया। वे शान्त हो गये। लेकिन उन्हें पूरा सन्तोष नहीं हुआ था। वहाँ उपस्थित लोगोंकी ओर मुख करके बोले भीमने अधर्मपूर्वक प्रहार किया है, अत: संसारमें सदा कपटयुद्ध करनेवाला कहा जायगा। इसने अपना यश कलंकित कर लिया। सरलतापूर्वक धर्मयुद्ध करते हुए मारे जानेके कारण दुर्योधन सद्गति प्राप्त करेगा।

इतने में ही कृष्ण दौड कर बीच में आ गये और बलराम को पकडकर बोले दाऊ। बलराम बोला, हट जाओ कृष्ण मैं आज इस कायर को जीवित नही छोडूंगा।

कृष्ण बोले, नहीं। पहिले मेरी बात सुन लीजिये दाऊ, फिर आप जो आज्ञा देंगे मैं उसका पालन करूंगा। बलराम बोले, क्या कहोगे तुम, तुम कह भी क्या सकते हो? कृष्ण बोले, आपका क्रोध सिर आंखों पर दाऊ। यदि आप फिर भी आज्ञा देंगे तो मझले भैया अपना सिर काट कर आपके चरणों में रख देंगे किन्तु पहिले मेरी बात तो सुनो। बलराम बोला, मैं जानता था कि तुम कोई न कोई किन्तु अवश्य बीच में लाओगे। तुम यह भी जानते हो किसन तुम इसके बचाव में अब कुछ भी नहीं कह सकते। कृष्ण बोले, यदि कुछ न कह सकता तो आपके बीच में आता ही क्यों? मैं यह नहीं कहता कि मझले भैया ने इसकी जंघा तोड़कर युद्ध की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया है। अवश्य किया है; किन्तु आप यह भी सोचिये कि दुर्योधन कितनी मर्यादाओं का उल्लंघन कर चुका है। पांडवों के साथ तो उसने कपट किया उसके अतिरिक्त तो उसने कुछ किया ही नहीं। लाक्षागृह में आग इसी ने लगवाई। द्यूतक्रीड़ा मे गान्धार नरेश शकुनि के पासों ने कपट किया यह आप जानते ही हैं। भरत कुलवधू द्रौपदी भरी सभा में बालों से पकड़कर घसीट कर लाई गई यह आप जानते है और इस योद्धा ने उसे जंघा खोलकर उस पर बैठने को आमंत्रित किया था क्या यह नहीं जानते आप? किन्तु दाऊ आपने कभी दुर्योधन को तो नहीं टोका? क्या मर्यादायें भी कभी पक्षपात करती है दाऊ? यदि दुर्योधन किसी मर्यादा का उल्लंघन करे तो वो ठीक और यदि मझले भैया भीम से किसी मर्यादा का उल्लंघन हो जाये तो उनके लिये मृत्युदंड ये तो कोई न्याय नहीं हुआ दाऊ? टूटना ही था इस जंघा को क्योंकि मझले भैया प्रतिज्ञाबद्ध थे। मुझे यह बताइये दाऊ यदि मझले भैया के स्थान पर आप रहे होते तो आप क्या करते? हे दाऊ यह मत भूलिये जब अर्जुन और दुर्योधन दोनों जब इस युद्ध का निमन्त्रण लेकर आपके पास आये थे उस समय आपने समय की चुनौती को स्वीकार नहीं किया था, आप तो तीर्थयात्रा पर निकल गये थे दाऊ, तीर्थयात्रा पर। जब धर्म और अधर्म के बीच युद्ध होने जा रहा हो तो केवल एक तीर्थस्थान रह जाता है दाऊ केवल एक तीर्थस्थान रणभूमि। जिस युद्ध से आप भाग गये थे दाऊ उसके अन्तिम क्षणों में आकर उस पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न मत कीजिये दाऊ। वैसे आप दाऊ है फिर भी यदि आप भीम का वध करना चाहते हैं तो लीजिये फिर मैं हट जाता हूं बीच से।

यह देख श्रीकृष्णने बड़ी विनती और बड़े प्रयत्नके साथ अपनी दोनों भुजाओंसे बलरामको पकड़ लिया और उन्हें शान्त करते हुए कहा- भैया। कृष्ण असावधान नहीं थे। वे पहले से ही समझ रहे थे कि ऐसी भी स्थिति आ सकती है। उन्होंने झपटकर बलराम को अपनी शक्तिशाली भुजाओं में जकड़ लिया। क्या कर रहे हैं भैया। धर्म-अधर्म की बात भूलकर आप केवल पक्षपात कर रहे हैं। वे बोले, दुर्योधन आपका शिष्य और शरणागत था तो पांडव कौन हैं। अपनी उन्नति छ: प्रकारकी होती है। अपनी वृद्धि और शत्रुकी हानि, अपने मित्रकी वृद्धि और शत्रुके मित्रकी हानि तथा अपने मित्रके मित्रकी वृद्धि और शत्रुके मित्रके मित्रकी हानि। अपने या मित्रको जब विपरीत दशा आ घेरती है, तो मनमें ग्लानि होती है ही। आप जानते हैं पाण्डव हमलोगोंके स्वाभाविक मित्र हैं; ये विशुद्ध पुरुषार्थका भरोसा रखनेवाले हैं, बुआके लड़के होनेके कारण

हर तरह से अपने है। शत्रु हैं ये मेरे। बलराम छूटने के लिए कसमसा रहे थे। पहले कौरवोंने बहुत कष्ट पहुँचाया है। सभाभवनमें भीमने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी गदासे दुर्योधनकी जाँघें तोड़ डालूँगा। प्रतिज्ञा-पालन क्षत्रियके लिये धर्म है और भीमने उसीका पालन किया है। महर्षि मैत्रेयने भी दुर्योधनको यह शाप दिया था कि भीम अपनी गदासे तेरी जाँघें तोड़ डालेगा। इस प्रकार यही होनहार थी, मैं भीमका इसमें कोई दोष नहीं देखता। इसलिये आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। बुआ और बहनके नाते पाण्डवोंके साथ हमलोगोंका यौन सम्बन्ध भी है; मित्र तो ये हैं ही। अत: इनकी उन्नतिमें ही हमलोगोंकी भी उन्नति है। इसलिये अब आप क्रोध न कीजिये।

कृष्ण बोले, नहीं। शुद्ध पुरुषार्थ का आश्रय लेनेवाले पांडव हमारे सहज मित्र हैं। हमारी सगी बूआ के पुत्र होने के कारण हमारे अपने हैं। आत्मीय हैं हमारे। सुभद्रा का पति है अर्जुन। हमारे अभिमन्यु का पिता। ये भी तो आपकी शरण में आए थे, किंतु आपने कभी इन्हें अपनी शरण दी ही नहीं। क्यों नहीं दी शरण? शरण क्या अपराधियों और पापियों को ही दी जाती है? बलराम चिल्लाए, इन्होंने धर्म किया है? छल किया है भीम ने।

कृष्ण बोले, शत्रुओं ने इनके साथ बहुत छल-कपट किया था। भीम को अपनी प्रतिज्ञा का भी पालन करना था। वह क्षत्रियों का धर्म है। बलराम बोले, तुम जिस धर्म की बात कह रहे हो, वह अर्थ और काम के लोभ में सर्वथा कलुषित हो गया है। तुम धर्म की मनमानी व्याख्या मत करो।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर धर्मको जाननेवाले बलदेवने कहा- सत्पुरुषोंने धर्मका अच्छी तरह आचरण किया है, किंतु वह अर्थ और काम- इन दो वस्तुओंसे संकुचित हो जाता है। अत्यन्त लोभीका अर्थ और अधिक आसक्ति रखनेवाला काम- ये दोनों ही धर्मको हानि पहुँचाते हैं। जो मनुष्य कामसे धर्म और अर्थको, अर्थसे धर्म और कामको तथा धर्मसे काम और अर्थको हानि न पहुँचाकर धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनोंका सेवन करता है, वही अत्यन्त सुखका भागी होता है। भीमने तो धर्मको हानि पहुँचाकर इन सबको विकृत कर डाला है।

श्रीकृष्णने कहा, भैया। संसारके सब लोग आपको क्रोधरहित और धर्मात्मा समझते हैं; इसलिये शान्त हो जाइये, क्रोध न कीजिये। समझ लीजिये कि कलियुग आ गया। भीमकी प्रतिज्ञाको भी भूला न दीजिये। पाण्डवोंको वैर और प्रतिज्ञाके ऋणसे मुक्त होने दीजिये।

कृष्ण की भुजाओं की जकड़ कुछ कस गई, दुर्योधन अधर्मी था, अत: स्वेच्छाचार के लिए स्वतंत्र था? धर्म के सारे बंधन क्या केवल पांडवों के लिए ही हैं? भीम ने अपने शत्रु से युद्ध किया है और उसका वध किया है। उसमें कुछ भी अधर्म नहीं है। दुर्योधन जैसे लोग जब धर्म का सर्वथा विनाश कर देते हैं, युद्ध का आरंभ ही वहाँ से होता है। युद्ध के श्मशान में आप धर्म की बात करने क्यों आए? क्यों नहीं युद्ध के पूर्व अथवा युद्ध के आरंभ के समय धर्म की चर्चा की? भीम की प्रतिज्ञा तेरह वर्षों से चल रही थी भैया। वह सर्वविदित थी। युद्ध करते हुए दुर्योधन ने उसे स्मरण क्यों नहीं रखा। सदा ही उछल-उछलकर प्रयत्नपूर्वक, उसकी गदा के सम्मुख अपनी जंघाएँ लाता रहा। जिस समय भीम ने उसे मारा था, दुर्योधन न किसी स्थान में था और न ही किसी मंडल में। वह स्वयं ही युद्धशास्त्र का अतिक्रमण कर उसकी मर्यादा से बाहर निकल गया था।

अपने वन्दनीय गुरुदेव बलराम की ओर देखते हुए उसने कहा, हे गुरुदेव, मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें। सभी अर्थों में आपसे छोटे अपने इस भ्राता को- इस ग्वाले को द्वन्द्वयुद्ध के नियम समझा दीजिए।

अब तक वीरासन में बैठकर दुर्योधन का हाथ अपने हाथों में थामे हुए बलराम भैया तड़ाक् से उठे। उन्होंने कृष्ण से कहा, भीम ने दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करके द्वन्द्वयुद्ध के नियमों का भंग किया है।

दाऊ, बचपन में भीम को मिष्टान्न में विष मिलाकर खिलानेवाले आपके इस परमशिष्य ने कौन-से भ्रातृधर्म का पालन किया था? कुरुओं की द्यूतसभा में अपनी भाभी द्रौपदी को विवस्त्र करने का आदेश देते हुए युवराज कहलानेवाले आपके इस शिष्य ने किस राजधर्म का निर्वाह किया था? क्या दूरदर्शिता से वंचित आपके इस पट्टशिष्य ने शकुनि द्वारा पाण्डवों से पुनर्द्यूत खेलने की माँग नहीं की थी? छह वीरों ने मिलकर हमारे प्रिय अभिमन्यु को घेरने का साहस किसके आधार पर किया था? दाऊ, भाग्य ही समझिए- जिस प्रकार वनराज मत्त वन्य वराह का रक्त-प्राशन करता है, उसी प्रकार इस वीर कुन्तीपुत्र भीम ने दुर्योधन की टूटी जाँघ का रक्त-प्राशन नहीं किया। दुर्योधन की मृत्यु के आसन्न होने से प्रसन्न हृषीकेश ने शान्तिपूर्वक बलभद्र से कहा।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर बलदेवको बहुत संतोष नहीं हुआ, उन्होंने राजाओंकी सभामें फिरसे कहा- धर्मात्मा राजा दुर्योधनको अधर्मपूर्वक मारनेके कारण भीम संसारमें कपटपूर्ण युद्ध करनेवाला कहा जायगा। दुर्योधन सरलतासे युद्ध कर रहा था, उस अवस्थामें वह मारा गया है; अत: वह सनातन सद्गतिको प्राप्त करेगा। यह कहकर रोहिणीनन्दन बलराम द्वारिकाकी ओर चल दिये।

बलराम बोला, मैं फिर भी तुमसे सहमत नहीं हूं किसन। मैं सदैव इस बात पर लज्जित रहूंगा कि स्वयं मेरी बुआ का पुत्र मेरा शिष्य भी है और मैं सदा इस बात पर गर्व करूंगा कि मैं दुर्योधन का गुरु हूं। इसकी जड़ तो तुम ही हो छोटे। वास्तव में भीम से पहले तुम्हें ही दण्डित करना चाहिए। किन्तु क्या करूँ- मैं ज्येष्ठ जो ठहरा। असहाय होकर बलराम भैया अपने प्रिय, आहत और छटपटाते हुए शिष्य की ओर दौड़ पड़े। कृष्ण ने बलराम को प्रणाम किया और बलराम वहां से चला गया।

जो भी हो छोटे, यह युद्ध-नियमों का भंग है और वह मेरे समक्ष हुआ है। तुम्हारे ही कारण भीम ने यह नियम भंग किया है। अत: मैं तुम दोनों का मुख भी नहीं देखना चाहता- मैं द्वारिका जा रहा हूँ। अपने स्वभाव के अनुसार कृष्ण को झिड़ककर बलराम, कुरुक्षेत्र में जैसे अचानक आये थे, वैसे ही चले गये।

बलराम अपने रथ में बैठे और चल गए। जाते-जाते उन्होंने दुर्योधन की ओर देखा भी नहीं। जैसे वह वहाँ था ही नहीं।

बलराम का रथ दूर निकल गया तो कृष्ण धर्मराज के निकट आए, बलराम भैया तो इसलिय दुखी थे कि उनकी सर्वाधिक प्रिय पुत्रवधू लक्ष्मणा का पिता युद्ध में पराजित हुआ था। उन्होंने लक्ष्मणा को दुर्योधन की रक्षा का वचन दे रखा था। आप इतने अवसन्न क्यों है महाराज। आप अपने इस मौन से बलराम भैया के विचारों का अनुमोदन तो नहीं कर रहे।

कृष्ण बोला, दाऊ की बात का क्या बुरा मानना मझले भैया। वो मर्यादा को अलग तत्व में देखते है। किन्तु मर्यादाशून्य में नहीं उठती इसलिये आप अपना मन मैला मत कीजिये। दुर्योधन को उसकी मृत्यु के साथ अकेला छोड दीजिये। क्योंकि इसकी मृत्यु उसके पराजय से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यह धर्म की विजय और अधर्म की पराजय का दिन है। सूर्यास्त भी सामने है और विजय की पहली रात तो कौरव शिबिर में ही बितानी चाहिये ना। चलिये।

रण पूरा कर भीम ने, जंघा डाली तोड, माता का वरदान ही गया दुष्ट को छोड,
समझाया श्रीकृष्ण ने, क्रुध न हो बलराम, ये तो है फल पाप का, यही न्याय का काम।

बलराम वहाँसे चल पड़े। उन्होंने पाण्डवोंकी शिबिर चलनेकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। उनके चले जानेपर भीमने दुर्योधन को देखा। वे अब तक उसके समीप ही सिर झुकाये खड़े थे। उनका क्रोध फिर भड़क उठा। उन्होंने दुर्योधनको बहुत कठोर वचन कहे। समीप जाकर बायें पैरसे उसके मुकुटको ठुकरा दिया और उसके सिरको पैरसे दबाकर रगड़ा। उसके कन्धेपर रखी गदा लेली। उसे कपटी कहकर बार-बार उसका सिर पैरसे दबाते, रगड़ते रहे।

भीम ने कहा, तुम जानते ही हो केशव। धर्मराज उन लोगों में से हैं, जो अपने दुष्ट से दुष्ट शत्रु के मारे जाने पर भी प्रसन्न नहीं होते। वे यह तो चाहते हैं कि उनके शत्रु उनके मार्ग से हट जाएँ; किंतु वे उनका वध कर प्रसन्न नहीं होते। उनका विश्वास क्षमा में है प्रतिशोध में नहीं। कठिनाई यह है कि इनकी समस्त क्षमा के होते हुए भी हमें दुर्योधन से न्याय नहीं मिल सकता था।

मेरे क्रोध से धर्मराज का सात्विक मन आहत होता है; किंतु क्या करूँ, मेरे क्रोध के बिना दुर्योधन और दु:शासन जैसे लोग मारे भी तो नहीं जाते।

कृष्ण बोले, और जहाँ तक कुल के संहार की बात है महाराज। जो नष्ट हुआ, वह आपका नहीं था। उस नाश के कर्त्ता भी आप नहीं है। जिसे आप नष्ट होना कहते हैं, वस्तुत: वह प्रकृति द्वारा किया गया सृष्टि का समाहार है।

तुम्हारा मोह भी अभी समाप्त नहीं हुआ है अर्जुन। आसक्ति कभी उन्मुक्त चिंतन नहीं करने देती।

अर्जुन ने धीरे से कहा, नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं है। बस बलराम भैया का इस प्रकार रुष्ट होकर जाना मेरे मन को खिन्न कर गया है।

कृष्ण हँसे और बोले, उनको प्रसन्न करने के लिए तुम महावीर भीम की बलि तो नहीं दे सकते। उनके रोष का निदान आज तक मैं भी नहीं कर पाया तो तुम क्यों दुखी होते हो।

भीम ने अपने हाथ जोड़े और आकर युधिष्ठिर के सम्मुख खड़ा हो गया, महाराज। आज यह सारी पृथ्वी आपकी हो गई। सारी चिंताएँ छोड़कर अब आप इसका पालन करें।

युधिष्ठिर ने स्वयं को सँभाला। उनके चेहरे पर हल्की मुस्कान आई, सौभाग्य से तुमने इस वैर का अंत कर दिया। श्रीकृष्ण की शरण में आकर हमने यह पृथ्वी जीत ली। सौभाग्य से तुम अपनी माता और अपने क्रोध के ऋण से उऋण हो गए। भीम ने कहा, आप द्रौपदी को भूल रहे हैं महाराज। पंचाल राजकुमारी की तपस्या से ही हमने धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करने में सफलता पाई है। आज मैं पांचाली के ऋण से भी उऋण हो गया हूँ।

कृष्ण बोले, सत्य कह रहे हैं मध्यम पांडव। भीम के शौर्य के पीछे पांचाली की तपस्या भी है।

युधिष्ठिरने कहा, कृष्ण। भीम क्रोधमें भरकर जो इसके मस्तकको पैरोंसे ठुकराया है, यह मुझे भी अच्छा नहीं लगा है। अपने कुलका संहार हो जानेसे मैं खुश नहीं हूँ। किंतु क्या करूँ? धृतराष्ट्रके पुत्रोंने सदा ही हमें अपने कपट-जालका शिकार बनाया, कटु वचन सुनाये और वनवास दिया; भीमके हृदयमें इन सब बातोंके लिये बड़ा दु:ख था, यही सोचकर मैंने उनके इस कामकी उपेक्षा की है।

श्रीकृष्णने कहा, अच्छा, ऐसा ही सही। दुर्योधनको धराशायी कर भीम बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने युधिष्ठिरके सामने खड़े हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विजयोल्लासके साथ कहा, महाराज। आज यह सम्पूर्ण पृथ्वी आपकी हो गयी, इसके काँटें दूर हुए और यह मंगलमयी हो गयी। अब आप अपने धर्मका पालन करते हुए इसका शासन कीजिये। कपटसे प्रेम करनेवाले जिस मनुष्यने कपट करके ही वैरकी नींव डाली थी, वह धराशायी होकर पृथ्वीपर पड़ा हुआ है। जिन्होंने आपसे कटु वचन कहे थे वे दु:शासन, कर्ण तथा शकुनि भी नष्ट हो गये। अब सारा राज्य आपका है।

उन्हीं की भाँति कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा भी नियमभंग-नियमभंग चिल्लाते हुए भीम की ओर लपके थे। किन्तु सात्यकि और सभी पाण्डवों ने मिलकर उन्हें रोक लिया था। तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, चलो अर्जुन, अहंकार का महावृक्ष दिखाता हूँ तुम्हें। उनके पीछे चारों पाण्डव, दायीं ओर उद्धव और बायीं ओर सात्यकि दुर्योधन के पास गये।

कृष्ण ने झुककर उस अहंकारी ज्येष्ठ कौरव से पूछा, हे दुर्योधन, क्या तुम्हें अपने पापकर्मों का रत्ती भर भी पश्चात्ताप हो रहा है? हो रहा हो तो कहो, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा।

कृष्ण ने दुर्योधन से कहा, तुझे अपने पाप दिखाई नहीं देते? अपने अधर्म के प्रति अंधा हो गया है तू? आततायी सदा अपने पाप से ही मारा जाता है। तू भी अपने पापों से ही मारा गया है। तू उसी दिन वध के योग्य हो गया था, जिस दिन तूने रजस्वला द्रौपदी का अपमान किया था। तू पांडवों के जितने भी कर्मों को अनुचित बता रहा है, वे सब तेरे ही पापों के कारण किए गए हैं। अपने इन सारे कष्टों का अपराधी तू स्वयं है और तेरे वे अपने लोग हैं, जो अपने स्वार्थ और मोह में तुझे पाप मार्ग पर चलने से रोक नहीं सके और तेरे साथ तेरे मार्ग पर चलते रहे।

ऊरुभंग होकर औंधे पड़े उस अभिमानी कौरव ने कुहनियों के बल अपने शरीर का कटि से ऊपर का भाग नागफन की भाँति ऊपर उठाया। ग्रीवा टेढ़ी करते हुए कृष्ण की ओर अत्यन्त तिरस्कार से देखकर अपनी वक्र और घनी भौंहों को और भी वक्र करते हुए उसने कहा, अरे जा। रणभूमि में मृत्यु को प्राप्त होना क्षत्रिय के लिए कितना गौरवशाली होता है, यह तुम जैसा गायों के मलमूत्र से सने पैरोंवाला ग्वाला क्या जाने।

युधिष्ठिरने कहा, सौभाग्यकी बात है कि राजा दुर्योधन मारा गया और आपसके वैरका अन्त हो गया।

दुर्योधनका नाश हो जानेपर श्रीकृष्णसहित पाण्डवों, पाञ्चालों तथा सृञ्जयोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपने दुपट्टे उछाल-उछालकर सिंहनाद करने लगे। किसीने धनुष टंकारा तो कोई शफबजाने लगा। किसी-किसीने ढिंढोरा पीटना शुरू किया। बहुतेरे तो हँसने और खेलने लगे। कुछ लोग भीमसे बारंबार यों कहने लगे- दुर्योधनने गदायुद्धमें बड़ा परिश्रम किया था, उसको पतन कर आपने बहुत बड़ा पराक्रम कर दिखाया।

पाञ्चाल और पाण्डव भी प्रसन्न होकर उनके सम्बन्धमें अलौकिक बातें सुना रहे थे। उस समय श्रीकृष्णने कहा- राजाओं। मरे हुए शत्रुको अपनी कठोर बातोंसे फिर मारना उचित नहीं है। यह पापी तो उसी समय मर चुका था, जब लज्जाको तिलाञ्जलि दे लोभमें फँसा और पापियोंकी सहायता लेकर हित चाहनेवाले सुहृदोंकी आज्ञाका उल्लंघन करने लगा। विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म और सृञ्जयोंने अनेकों बार अनुरोध किया; तो भी इसने पाण्डवोंको उनकी पैतृक सम्पत्ति नहीं दी। अब तो यह न मित्र कहने योग्य है, न शत्रु; यह महानीच है। काठके समान जड है। इसे वचनरूपी बाणोंसे बेधनेमें कोई लाभ नहीं है। सब लोग रथोंपर बैठो, अब शिबिरमें चलें।

सूर्य डूब गया। पाण्डव सब शिबिरों की ओर लौटे। रात्रि-बैठक में कृष्ण धृष्टद्युम्न को सूचना दे रहे थे, दुर्योधन के अन्त के साथ युद्ध समाप्त हो चुका है। कल हमें अपने शिबिर उठाकर कुरुक्षेत्र को छोड़ना है।

युधिष्ठिर सिर झुकाये चिन्तामग्न थे। उन्हें श्रीकृष्णने सावधान किया- राजन्। आप चुपचाप अधर्मका अनुमोदन क्यों कर रहे हैं?

मुझे भी यह अच्छा नहीं लगा। युधिष्ठिरने खिन्न कण्ठसे कहा- किन्तु दुर्योधनके द्वारा दिये गये बार-बारके कष्ट एवं अपमानके कारण भीमके हृदयमें जो उसके लिए भयंकर क्रोध था, उसका ध्यान करके मैंने उनके इस समयके कर्मकी उपेक्षा की। उनके क्रोधको निकल जाना चाहिए था।

श्रीकृष्णको बहुत खेद हुआ। वे उदासीन होकर एक ओर हट गये। भीमने विजयोल्लासमें उल्लसित होकर जब युधिष्ठिरके सम्मुख आकर उन्हें प्रणाम करते हुए बधाई दी तो धर्मराजने उन्हें हृदयसे लगाया। कहा- यह इन केशवकी कृपा है कि तुम माताके ऋणसे उऋण हुए। शत्रु का नाश हुआ और तुम्हारी विजय हुई।

HHH(४४८)HHH

सब भाइयोंने अंकमाल दी भीमको; किन्तु श्रीकृष्णने इसका अवसर नहीं दिया। वे उठे और रथकी ओर जाते हुए बोले- अब यहाँ देर तक नहीं रुकना चाहिए। सूर्यास्तका समय समीप है। शीघ्र चलकर कौरव-शिबिरको अभी ही अधिकृत कर लेना उचित है।

वीरों। अब इस मरे हुए अहंकारी राजा को और न मारो। यह तो वस्तुत: उस दिन ही मर गया था, जिस दिन धर्म की ओर से आँखें बंद कर, लोभ और काम का बंदी हो, यह पापियों के निर्देशानुसार आचरण करने लगा था। आप लोग शिबिर में चलें और अपनी क्लांति दूर करने के लिए थोड़ा विश्राम करें।

७) पांडव कौरवोंके शिबिर में- श्रीकृष्णकी बात सुनकर सब नरेश अपने-अपने शफबजाते हुए शिबिरकी ओर चल दिये। भीम ने जोर का शंखनाद दिया। अन्य सारे लोगों के शंख भी उनके अधरों से जा लगे। आगे-आगे पाण्डव थे; उनके पीछे सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे-दूसरे धनुर्धर योद्धा चल रहे थे। सब लोग पहले दुर्योधनकी शिबिरमें गये, जो राजाके न होनेसे श्रीहीन दिखायी दे रही थी। दुर्योधनके सेवक उपस्थित हुए। कौरव-शिबिर श्रीहीन, शान्त था। युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर युयुत्सु वहाँसे रानियोंको तथा अन्य लोगोंको पहिले ही राजधानी हस्तिनापुर ले गया था। वहाँ शिबिरको सविधि विजेता पाण्डवोंको सौंपनेके लिए कुछ वृद्ध मन्त्री बैठे थे।

तदनन्तर, स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए वृद्ध पुरुषोंने राजरानियोंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेका विचार किया। बेचारी रानियाँ पतियोंके मरणका समाचार सुनकर कुररीके समान विलाप करने लगीं।

युयुत्सु शोकसे मूर्च्छित हो मन-ही-मन सोचने लगा- भयंकर पराक्रम करनेवाले पाण्डवोंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको परास्त कर दिया, उसके सब भाइयोंको मार डाला और भीष्म एवं द्रोण-जैसे कौरव वीर भी मौतके घात उतर गये। भाग्यवश केवल मैं बच गया हूँ। दुर्योधनके मन्त्री रानियोंको साथ लेकर नगरकी ओर भागे जा रहे हैं। अब उचित यही होगा कि मैं भी युधिष्ठिर तथा भीमसे पूछकर उनके साथ नगरमें चला जाऊँ। यह सोचकर उसने युधिष्ठिर और भीमसे अपना मनोभाव प्रकट किया। राजा युधिष्ठिर बड़े दयालु हैं, युयुत्सुकी बात सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसे छातीसे लगाकर उन्होंने जाने की आज्ञा दे दी।

तब युयुत्सुने अपने रथमें बैठकर राजरानियोंको भी साथ लेकर नगरमें प्रवेश किया। उसके आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। इसी अवस्थामें उसे विदुर मिल गये, उसे देखते ही विदुरजीके नेत्रोंसे भी अश्रुप्रवाह जारी हो गया। विदुरने युयुत्सुसे बोला, पुत्र। इस कुरुवशंका संहार हो जानेपर भी तुम अभी जीवित हो- यह बड़े सौभाग्यकी बात है? किंतु राजा युधिष्ठिरके नगरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे आ गये? इसका कारण विस्तारपूर्वक बताओ।

युयुत्सुने कहा, तात। अपने जाति, भाई और पुत्रके साथ जब मामा शकुनि मारे गये, उस समय राजा दुर्योधन रक्षकोंसे रहित हो जानेके कारण अपने मरे हुए घोड़ोंको वहीं छोड़ डरके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गये। तब मैं भी राजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्णसे पूछकर भागते हुए लोगोंकी रक्षाके लिये हस्तिनापुरतक आ गया।

युयुत्सुकी बात सुनकर विदुरने सोचा, इसने वही काम किया, जो ऐसे अवसरपर उचित था। अत: वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, पुत्र। यह ठीक ही हुआ है। दयालु होनेके कारण तुमने अपने कुलधर्मकी रक्षा की है। अपने अन्धे पिताके तुम्हीं लाठीके सहारे हो। विपत्तिमें डूबकर दु:ख पाते हुए राजा धृतराष्ट्रको धैर्य देनेके लिये केवल तुम्हीं जीवित हो। आज यहाँ रहकर विश्राम करो, कल सवेरे ही युधिष्ठिरके पास चले जाना।

राजमहलकी यह अवस्था देख विदुरको बड़ा कष्ट हुआ। वे वहाँसे लौटकर नगरमें चले गये। युयुत्सुने वह रात अपने ही घरमें रहकर व्यतीत की।

पाण्डव भी दुर्योधनकी शिबिरमें जाकर अपने-अपने रथोंसे उतर गये। हे धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र अब तो समय ही यह युद्ध देखते-देखते थक गया है। भगवान के लिये तू भी चिल्लाकर यह कह दे कि अब यह युद्ध बन्द करो। समय जिधर भी देखता है शवों के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। रिश्ते नातों के शव, जीवन मूल्यों के शव, क्षितिज से क्षितिज तक शवों के सिवा कुछ भी नहीं। धृतराष्ट्र हस्तिनापुर में अकेला है। दुर्योधन सरोवर तट पर, गान्धारी अपने शिबिर में। सभी अपने दु:खों, अपने दर्द अपने आंसुओं के साथ अकेले हैं इसलिये समय इनमें से किसी के पास नहीं जाना चाहता और द्रौपदी के पास जाता है जो अपना व्यक्तिगत युद्ध जीत चुकी है और हस्तिनापुर की पटरानी बनी हुई कौरव शिबिर के सबसे शानदार खेमे में बैठी हुई है।

सुदेष्णा और द्रौपदी कौरव शिबिर में। द्रौपदी बोली, आप जानती हैं महारानी यह किसका शिबिर है। सुदेष्णा बोली, यह कौन नहीं जानता कि यह कौरवों का शिबिर है। परास्त कौरवों का शिबिर। द्रौपदी बोली, यह मेरी घायल यादों का शिबिर है। यह मेरे अपमान का शिबिर है। यह भरतवंश की लहू लुहान मर्यादा का शिबिर है। यह उनका शिबिर है जिनकी राजसभा में मैं बालों से पकडकर घसीटती हुई लाई गई थी और जहां मुझे वेश्या कहा गया था, जहां असमय राजनीति ने मेरे वस्त्र पर असभ्य हाथ लगाया था और जहां सब चुपचाप बैठै मेरे अपमान का दृश्य देख रहे थे। ये मृतकों का शिबिर है महारानी सुदेष्णा। और यहां बैठना मुझे बडा अटपटा लग रहा है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि यहां बैठकर मुझे हंसना चाहिये या रोना।

श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- तुम स्वयं उतरकर अपने अक्षय तरकस और धनुषको भी रथसे उतार लो, इसके बाद मैं उतरूँगा। ऐसा करनेमें ही तुम्हारी भलाई है।

सदाका नियम है कि सारथी पहिले रथसे उतरता है और रथीको हाथका सहारा देकर उतारता है। अब तक श्रीकृष्ण इस नियमका बराबर पालन करते आ रहे थे। आज उन्होंने कहा- अर्जुन। आज तुम पहिले रथसे उतर जाओ। अपना धनुष और अक्षय त्रोण भी साथ ले लो।

अच्छी बात। अर्जुनने अपने सखाकी बात स्वीकार कर ली। श्रीकृष्ण अकारण ऐसी बात नहीं करते, यह वे जानते थे। यह उन्हें अवश्य लगा कि कुछ अकल्पनीय घटित होनेवाला है। उनके ये लीलामय मित्र कुछ करनेवाले हैं; किन्तु ये जो कुछ करेंगे, उसमें अपना हित ही होगा, इसमें कहने-सोचनेकी तो कुछ बात नहीं है।

यहाँ नहीं, यहाँसे थोड़ी दूर हटकर खड़े हो। अर्जुन रथपरसे उतरकर धनुष लिये समीप खड़े त्रोण बाँधने लगे तो श्रीकृष्णने कहा, संशक होनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हें शस्त्रसज्ज नहीं होना पड़ेगा।

अर्जुनने वैसा ही किया। फिर श्रीकृष्णने घोड़ोंकी बागडोर छोड़ दी और स्वयं भी रथसे उतर पड़े। समस्त प्राणियोंके सुहृदय श्रीकृष्णके उतरते ही उस रथपर बैठा हुआ दिव्य कपि अन्तर्धान हो गया; फिर वह विशाल रथ, जो द्रोणाचार्य और कर्णके दिव्यास्त्रोंसे दग्ध सा ही हो चुका था, बिना आग लगाये ही प्रज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण, जूआ, धुरी, लगाम और घोड़े- सब जलकर खाक हो गये। वह राखकी ढेरी होकर धरतीपर बिखर गया। यह देख पाण्डवोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुनके दूर हटते ही रथ-रश्मि छोड़कर श्रीकृष्ण रथसे कूदे और अर्जुनके पास जाकर खड़े हो गये। इसी समय पूरे रथमें-से ज्वालाएँ उठने लगीं। रथके ध्वजदण्डके समीप बैठा दिव्य वानर श्रीकृष्णके कूदते ही आकाशमें उछलकर अन्तर्हित हो गया था। उस विशाल रथके सब उपकरण पहिये, धुरी, जुआ आदि अश्वोंके साथ कुछ ही पलोंमें भस्म हो गये। वहाँ पृथ्वीपर उसकी भस्म मात्र रह गयी।

अर्जुनने हाथ जोड़कर कृष्णके चरणोंमें प्रणाम करके पूछा- गोविन्द। यह क्या आश्चर्यजनक घटना हो गयी? एकाएक रथ क्यों जल गया? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो इसका कारण बताइये।

श्रीकृष्णने कहा, अर्जुन। लड़ाईमें नाना प्रकारके अस्त्रोंके आघातसे यह रथ तो पहले ही जल चुका था, सिर्फ मेरे बैठे रहनेके कारण भस्म नहीं हुआ था। जब तुम्हारा सारा काम पूरा हो गया है, तब अभी-अभी इस रथको मैंने छोड़ा है; इसीलिये यह अब भस्म हुआ है। यों तो ब्रह्मास्त्रके तेजसे यह पहले ही दग्ध हो चुका था। श्रीकृष्णने कहा, विजय। यह रथ आज नहीं जला है। यह तो आचार्य द्रोणके दिव्यास्त्रसे ही जल चुका था। कर्णने भी इसे भस्म करनेका कम प्रयत्न नहीं किया; किंतु उसे पता नहीं था कि भस्मकी ढेरीको भस्म नहीं किया जा सकता।

भस्मकी ढेरी? अर्जुन तथा दूसरे भी भूमिपर बिखरी भस्मकी ढेरीको घूरकर देखने लगे। इतनी शीघ्र जलकर रथ भस्मकी ढेरी बन गया और वह निर्धूम भस्म-राशि शीतल सम्मुख पड़ी हैं, क्षणोंमे ही उसमें से अग्निकी कणिका तक समाप्त हो गयी, यह तो सम्मुख था। अर्जुनने आश्चर्यसे पूछा, हम दोनों तबसे इस भस्मकी ढेरीपर बैठते थे?

हाँ श्रीकृष्णने कहा- इसे मैंने तबसे तुम्हारे प्रयोजनकी पूर्ति पर्यन्तके लिये अपने संकल्प-बलसे जल जानेसे रोक रखा था। तुम्हारे रथका कोई अश्व मारा जाय तो उसके स्थानपर दूसरा अश्व स्वत: प्रकट हो जाता था; किन्तु तुम स्मरण कर सकते हो कि द्रोण-युद्धके पश्चात् तुम्हारे रथका कोई अश्व मारा ही नहीं गया। आज तुम्हारे प्रयोजनकी पूर्ति हो गयी। यदि मैं आज रथसे तुमसे पहिले उतर जाता- रथ तो मेरे बैठे रहने तक ही भस्म होनेसे बचा था।

अर्जुन नीचे उतर आया तो कृष्ण भी रथ त्यागकर उसके निकट आ गए, यह रथ अग्नि का था। अब इसकी उपयोगिता हमारे लिए भी समाप्त हो गई है। हमने इसे पुन: अग्नि को सौंप दिया। वे इसे स्वीकार करें। कृष्णने अर्जुन को उसकी भुजा से पकड़ लिया, चलो मित्र। अब पलटकर इस रथ की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद कृष्णने किंचित मुस्कराकर राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया और कहा- कुन्तीनन्दन। आपके शत्रु परास्त हुए और आपकी विजय हुई- यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव तथा स्वयं आप इस विनाशकारी संग्रामसे कुशलपूर्वक बच गये- यह और भी खुशीकी बात है।

श्रीकृष्णने हँसते हुए राजा युधिष्ठिरको हृदयसे लगाया। बोले- महाराज। आपके शत्रु समाप्त हो गये। आप विजयी हुए। आप अपने भाइयोंके साथ इस संग्रामसे सकुशल बच गये। यह सब आपके पुण्योंका प्रताप है। उपप्लव्य शिबिरमें युद्धारम्भसे पूर्व जब अर्जुनके साथ मैं आपके पास आया था, तब आपने कहा था- कृष्ण। अर्जुन आपका भाई तथा मित्र है। इसे प्रत्येक विपत्तिसे बचाना। मैंने उस दिन आपका आदेश स्वीकार कर लिया था। मैंने उस समय दिये गये अपने वचनोंको पूरा कर दिया है।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरको रोमाञ्च हो आया, वे कहने लगे- जनार्दन। द्रोण और कर्णने जिस ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया था, उसे आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था? वज्रधारी इन्द्र भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। आपकी ही कृपासे संशप्तक परास्त हुए हैं। अर्जुनने इस महासमरमें कभी पीठ नहीं दिखायी- यह भी आपके ही अनुग्रहका फल है। आपके द्वारा अनेकों बार हमारे कार्य सिद्ध हुए हैं। उपप्लव्यमें महर्षि व्यासने मुझसे पहले ही कहा था- जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं, और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।

युधिष्ठिर क्या कहें। इन अच्युतने अकेले अर्जुन की ही नहीं,, उन सबकी सदा संकटके समय रक्षा की है। धर्मराजको सब विपत्तियोंके अवसर स्मरण आ गये। अपनोंकी रक्षा- यह तो श्रीकृष्णका शाश्वत व्रत है। ये न बचाते, वनमें दुर्वासाके

कोपसे पाण्डव युद्ध करनेको बचे होते? द्रोणाचार्य और कर्णने कितनी ही बार तो ब्रह्मास्त्र तकका उपयोग किया था। अश्वत्थामाके नारायणास्त्रका निवारण कौन जानता था? पाण्डुपुत्रोंकी, अर्जुनकी पल-पलकी सुरक्षा और सफलता इनका कृपा-प्रसाद ही तो है।

तदनन्तर, उन सभी वीरोंने दुर्योधनके शिबिरमें घुसकर खजाना, रत्नोंकी ढेरी तथा भंडार-घरपर अधिकार कर लिया। चाँदी, सोना, मोती, मणि, अच्छे-अच्छे आभूषण, बढ़िया कम्बल, मृगचर्म तथा राज्यके बहुत-से सामान उनके हाथ लगे। साथ ही असंख्य दास-दासियोंको भी उन्होंने अपने अधीन किया। उस समय दुर्योधनके अक्षय धनका भंडार पाकर पाण्डव खुशीके मारे उछल पड़े, किलकारियाँ मारने लगे। इसके बाद उसके वाहनोंको खोलकर वे वहीं विश्राम करने लगे। विश्राम के समय श्रीकृष्णने कहा- आजकी रातमें हमलोगोंको अपने मंगलके लिये शिबिरके बाहर ही रहना चाहिये। बहुत अच्छा कहकर पाण्डव श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ शिबिरसे बाहर निकल गये। उन्होंने परम पवित्र ओघवती नदीके किनारे वह रात व्यतीत की।

श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पाण्डवोंने कौरव-शिबिरमें प्रवेश किया। वहाँ चाँदी, सोना, हीरा आदि रत्न-मणियोंकी अपार राशियाँ थीं। उत्तम आभूषण, वस्त्र, अन्न, अस्त्र-शस्त्र प्रभृतिका अपार भण्डार था। असंख्य दास-दासियाँ थीं। अक्षय धनका यह भण्डार पाण्डवोंकी कल्पनासे परे था। सब लोग वह देखकर आनन्दके मारे उछलने लगे।

वे लोग शिबिर के द्वार पर आए। वहाँ न कोई द्वारपाल था। लगता था, सब लोग शिबिर छोड़कर भाग गए हैं। यद्यपि उन्हें युधिष्ठिर की सेना से भयभीत नहीं होना चाहिए था। वीर लोग शिबिरों पर आक्रमण नहीं करते। न ही शिबिर के गुल्मनायक किसी सेना का सामना करने में समर्थ होते हैं। वे तो केवल सूचना देने का कर्म करते हैं। किंतु पराजित सेनाओं की दुर्दशा का कोई अंत नहीं होता है।

युद्धके समय क्या कब आवश्यकता पड़ेगी, यह कहा नहीं जा सकता। किसी भी क्षण किसी सेवक अथवा सम्मान्य पुरुषको विशेष-बहुत विशेष उपहार देकर पुरस्कृत अथवा सम्मानित करना पड़ सकता है। सैनिकोंके लिये आहार, वस्त्र, अस्त्र, चिकित्साके अतिरिक्त भी बहुत-सी सामग्री आवश्यक होती है और वह सर्वोत्तम होनी चाहिए। युद्ध कब तक चलेगा, कुछ पता नहीं होता। दुर्योधन राजा था। वह तो पाण्डवोंके वन जानेके दिनसे उनसे युद्धकी योजना बनानेमें लग गया था। पूरे तेरह वर्षसे वह युद्धोपकरण तथा उपयोगी सामग्री संग्रह करनेमें सतत संलग्न था। उसके शिबिरमें अपार सम्पत्ति थी। अस्त्र-शस्त्र औषधियां, रत्न, वस्त्रका अक्षय भण्डार था वहाँ और उसमें दुर्लभतम वस्तुयें बहुत अधिक थी।

सेना जब विजय करके शत्रु-शिबिरमें प्रवेश करती है, उच्छृंखल हो जाती है। उस समय उसपर अंकुश नहीं रखा जा पाता; किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। सब हर्षसे उछलते, सिंहनाद करते रहे; किन्तु न तो कोई कुछ लूटनेमें लगा, न किसी दास-दासीको किसीने तंग किया। सब लोग बहुत थके थे। अब सबको विश्रामकी अत्यधिक आवश्यकता थी। शत्रुशिबिरपर अधिकार करके सब अपने शिबिर पहुँचे और रथोंको खोलनेमें लग गये।

प्रतिविंध्य के साथ सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन भी चले। उन्होंने यौद्धेय, सर्वग, निरमित्र और सुहोत्र को भी साथ ले लिया।

पांडव, दुर्योधन के शिबिर की ओर बढ़ गए। आगे-आगे युधिष्ठिर और कृष्ण थे। उनके पीछे भीम और अर्जुन थे। नकुल और सहदेव सबके पीछे चल रहे थे। वे लोग दुर्योधन के शिबिर के सम्मुख आ खड़े हुए थे।

युधिष्ठिर बोले, ठीक कहते हो। जिन स्त्रियों की इच्छा युद्धक्षेत्र में अपने मृतक पतियों, पुत्रों और भाइयों को ढूँढने की है,

उनसे कहो, वे प्रात: युद्धक्षेत्र में जा सकती हैं। हमारे सैनिक उनकी सहायता करेंगे।

दुर्योधन के शिबिर में रखे हुए अथाह धन की सूचना युधिष्ठिर को दी गई। दास-दासियों की भी कोई संख्या नहीं थी। जाने कोई हस्तिनापुर में भी छूटा था, या सारे यहीं ले आए गए थे। भंडार में और भी बहुत कुछ था। युधिष्ठिर सुनते रहें, किंतु उनके मुख पर जैसे प्रसन्नता की कोई किरण नहीं फूटी।

मंत्री ने कहा, धन और शस्त्र मृतकों के साथ नहीं जाते राजकुमार। यहाँ जो कुछ भी है, वह सब आपका है। उसकी रक्षा भी आप ही करेंगे। कृष्ण बोले, आप प्रसन्न नहीं है धर्मराज। देखिए अपने शत्रुओं को जीतकर और उनके धन पर अपना अधिकार पाकर मध्यम पांडव भीम कितने प्रसन्न हैं।

कृष्ण ने गंभीर दृष्टि से युधिष्ठिर की ओर देखा और बोले, सामान्यत: तो हम यही कहेंगे कि युद्ध राज्य के लिए ही हुआ। ऐसा न होता तो विजय पाकर भी आप राज्य को त्याग देते। किंतु धर्मराज। मुझे तो राज्य नहीं चाहिए था, फिर भी मैंने युद्ध किया।

धर्मराज का स्वर कृतज्ञता से बोझिल हो गया और बोले, जहाँ धर्म होता है, वहीं कृष्ण होते हैं। और जहाँ कृष्ण होते हैं वहीं जय होती है। कृष्ण बोले, इस प्रश्न को कुछ पलटकर पूछिए धर्मराज। पूछिए कि ये कैसे लोग होते हैं, जो अपना वध करवाने के लिए अधर्म के समर्थन में जा खड़े होते हैं। हम जानते हैं कि अधर्म किसी की रक्षा नहीं करता।

कृष्ण मुस्कराए, मनुष्य का संचित पुण्य उसे धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण देने की प्रेरणा देता है। वह धर्म के लिए अपने प्राण देकर और भी पुण्य अर्जित करता है और अपना पुण्य क्षीण होने पर मनुष्य अधर्म के पक्ष से लड़ता है। यह एक जीवन ही तो सारी सृष्टि का अंत नहीं है। जो एक कण से भी छोटा है, उसे ही तो समग्र सृष्टि मत मानो। आपने तो यह युद्ध राज्य के लिए नहीं किया। क्यों आपको द्रौपदी के अपमान का प्रतिशोध नहीं चाहिए था? इस प्रतिशोध के माध्यम से द्रौपदी की प्रसन्नता नहीं चाहिए थी। उसका प्रेम नहीं चाहिए था? नारीत्व का अपमान करनेवाले दुर्योधन, दु:शासन और कर्ण का वध कर धरती पर न्याय और धर्म स्थापित नहीं करना था? अधर्म का नाश लक्ष्य नहीं था आपका? तो फिर युद्ध केवल राज्य के लिए ही तो नहीं हुआ। हाँ। राज्य उसका निमित्त अवश्य बना।

युधिष्ठिर बोले, आप ठीक कहते हैं केशव। किंतु मेरा मन तो इस ग्लानि से पीडित है कि मैं प्रभु के बनाए इतने जीवों के विनाश का कारण बना। बाध्य होकर ही सही, किंतु हिंसा मैंने की। मेरे मन में रागद्वेष था। उसने यह सब करवाया। वे रुके, अष्टावक्र ने कहा है न कि रागद्वेषौ मनोधर्मो न मनस्ते कदाचन्। मेरे मन में भी रागद्वेष है और यह मन मेरा नहीं है। मैं क्यों उसके बहकावे में आकर इस विनाश में प्रवृत्त हुआ।

कृष्ण हँसे और बोले, यह ग्लानि भी तो मन की ही है, और यह मन भी आपका नहीं है। आपके उसी अष्टावक्र ने ही कहा है; निर्विकल्पो असि बोधात्मा निर्विकार: सुखं चर। हम चैतन्य ही नहीं साक्षात् चेतना हैं, द्वंद्वों से उदासीन हैं, विकारों से मुक्त हैं। तो फिर हम प्रसन्न क्यों नहीं रहते।

धर्मराज थोड़ी देर मौन रहकर बोले, मेरी समस्या यही है केशव। कि यह सब जानते हुए भी आपके समान मेरा अपने मन पर नियंत्रण नहीं है। मुझे निरंतर लगता है कि जो कुछ जीवनभर दुर्योधन करता रहा, अंतत: हमने भी वही किया। हम थोड़ा और त्याग क्यों नहीं कर पाए? यदि मैं और मेरे भाई, मेरा यह परिवार, थोड़ा कष्ट और सह लेता, अपना शेष जीवन भी कुछ कष्ट में यापित कर लेता तो इतना संहार न होता। हम कुछ लोगों के कष्ट से सारी मानवता सुखी होती। मैं वह सात्विक कर्म क्यों नहीं कर सकता। रजोगुण में बँधकर यह राजनीति मैंने क्यों की?

कृष्ण बोले, हमने भी वही किया है। आप केवल इतना ही जानते हैं कि दुर्योधन ने आप पाँच भाइयों और आपकी माता

को बार-बार मारने का प्रयत्न किया। आप कदाचित् भूल गए कि दुर्योधन ने अपने शैशव में ही आपके सारथी को सार्वजनिक रूप से पीट-पीटकर मार डाला था। आप समझते हैं कि दुर्योधन और उसके मित्रों ने और निरीह हत्याएँ नहीं की हैं? उनके संरक्षण में रहनेवाले अन्य लोगों ने हत्याएँ नहीं की हैं? आप जानते हैं कि दुर्योधन, दु:शासन और कर्ण ने देवी पांचाली का जघन्य अपमान किया। आप समझते हैं कि अन्य स्त्रियाँ उनके हाथों सुरक्षित थीं? उनके राज्य में स्त्री के अपमान का प्रचलन नहीं था? दुर्योधन अपनी ही पत्नी के साथ दुर्व्यवहार नहीं करता था? शकुनि के माध्यम से केवल आपकी ही संपत्ति नहीं छीनी गई थी, अन्य भी सहस्त्रों लोग हैं, जिनकी संपत्ति छीनी गई। वह राजा था किंतु राजधर्म को तो नहीं जानता था। वह केवल सत्ताकर्मी था। वह स्वेच्छाचारी पापी था। उसकी सत्ता को नष्ट कर, उसकी शक्ति का विनाश कर, स्वयं उसका वध कर, आपने ईश्वर की सृष्टि को अभयदान किया है। इस पुण्य के भागी होकर भी आप ग्लानि का अनुभव कर रहे हैं? कृष्ण का स्वर प्रखर हो गया, आपसे किसने कहा कि दुर्योधन को अधर्मपूर्वक मारा गया है?

युधिष्ठिर बोले, बलराम ने कहा नहीं कि दुर्योधन को अधमपूर्वक मारा गया है। दुर्योधन भी तो निरंतर यही कह रहा था।

कृष्ण बोले, धर्म वह है, जो आपके मन में है, वह नहीं जो बलराम की वाणी में है। वे तो दुर्योधन को भी धर्मात्मा कह रहे थे। आप मान लेंगे उनकी बात? धृतराष्ट्र के चारण उसे पृथ्वी पर साक्षात् धर्मराज कहते हैं, तो क्या हम इस पृथ्वी पर पाप के उस मूल को धर्मराज स्वीकार कर लेंगे? दुर्योधन हो या कोई कौरव, वह तो आपको पापी ही सिद्ध करेगा, चाहे अपने अज्ञान के कारण, चाहे अपने पाखंड के कारण। धर्मराज। यह इन लोगों की राजनीति है कि अपने पक्ष की दुर्बलता, उसके दोष और पापों को कभी स्वीकार मत करो। उसके विपरीत अपने विरोधी पक्ष की किसी बात का समर्थन मत करो। उसे सदा पापी और अधर्मी कहो। यह जानते हुए भी कि वह झूठ है, उसे पूरी निष्ठा से प्रचारित करो।

तुम किसी कौरव से पूछ लो वह यही कहेगा कि भीष्म को पांडवों ने अधर्म से मारा है। वह कहेगा कि द्रोण को अधर्म से मारा गया। भूरिश्रवा को अधर्म से मारा गया। जयद्रथ को अधर्म से मारा गया। कर्ण को अधर्म से मारा गया। दुर्योधन को अधर्म से मारा गया। दु:शासन को अधर्म से तो नहीं मारा गया, किंतु उसके साथ मध्यम पांडव ने जो व्यवहार किया, वह अधर्म था।

कृष्ण ने धर्मराज की ओर देखा और बोले, वे कहेंगे कि पांडवों ने भीष्म से पूछा कि हम आपको कैसे मारें? भीष्म ने बता दिया कि शिखंडी को आगे कर दो। मैं उसे नहीं मारूँगा और तुम मुझे मार देना। क्या यह सत्य है? सत्य यह है कि अर्जुन पितामह से शक्तिशाली था। उसने विराटनगर के युद्ध में यह प्रमाणित भी कर दिया था; और पितामह ने अपने मुख से भी इस तथ्य को कितनी ही बार स्वीकार किया है। फिर भी अर्जुन अपने वृद्ध पितामह का वध करना नहीं चाहता था। धर्मराज कितने पीड़ित थे इस बात से कि अर्जुन अपनी सेना को कटता देखता है किंतु पितामह का वध नहीं करता। यदि अर्जुन समर्थ न भी होता तो हम पहले ही दिन से पितामह की प्रतिज्ञा को जानते थे। हम युद्ध के आरंभ में ही शिखंडी को सामने खड़ा कर पितामह का वध कर सकते थे। किंतु हमने वह नहीं किया। शिखंडी पितामह पर आक्रमण करने जाते थे, तो कौरवों के बीसियों योद्धा उन पर टूट पड़ते थे। उस समय यदि अर्जुन उनको तनिक भी संरक्षण देता तो शिखंडी ने पहले ही दिन पितामह का वध कर दिया होता। क्या कोई कौरव पांडवों के इस धर्म को स्वीकार करेगा? हम प्रतीक्षा करते रहे। पितामह प्रतिदिन हमारे सहस्त्रों योद्धाओं को काटते रहे, हमने फिर भी उनका वध नहीं किया। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि युद्ध की भयावहता और उसकी निरर्थकता देखकर दुर्योधन पांडवों से संधि कर ले। और हम प्रतीक्षा कर रहे थे कि पितामह किसी निर्णय तक पहुँच लें। अंतत: जब पितामह ने स्वयं देख लिया कि संधि संभव नहीं है और कौरव वंश का नाश होना ही है तो उन्होंने अपनी मृत्यु की इच्छा प्रकट की। उन्होंने देखा कि जिसके पक्ष से वे युद्ध कर रहे हैं, वह दुर्योधन भी

चाहता है कि उनकी मृत्यु हो जाए और वह दूसरा सेनापति लाए। वे चाहे सहस्त्रों सैनिकों का वध कर रहे थे, किंतु पांडवों का वध वे भी नहीं कर रहे थे। धर्मराज भी अपनी सेना के विनाश से तंग आ चुके थे और चाहते थे कि अब पितामह या तो स्वयं ही युद्ध से हट जाएँ या हटा दिए जाएँ। इस भाव को जानकर ही पितामह ने अर्जुन का आह्वान किया कि वह उनको युद्धक्षेत्र से हटा दे। यह पांडवों का अधर्म था क्या?

कृष्ण बोले, अश्वत्थामा कितनी बार कह चुका है कि उसके पिता को अधर्म से मारा गया है। जिस समय धृष्टद्युम्न ने उनका मस्तक काटा, उस समय तक उन्होंने शस्त्रों का त्याग कर दिया था और वे अनशन पर बैठ गए थे। अश्वत्थामा ही नहीं, सारे कौरव भूल जाते हैं कि युद्ध में जितने भी योद्धा मारे जाते हैं, वे तभी मारे जाते हैं, जब उनके शस्त्र असमर्थ हो जाते हैं। पहले ही दिन से यही क्रम चल रहा है। विराट के पुत्रों को कैसे मारा गया? उनके धनुष कट गए। रथ व्यर्थ हो गए। वे खड्ग लेकर धरती पर उतर आए। उनके खड्ग को बाणों से काट दिया गया। उनकी ढाल के टुकड़े कर दिए गए और फिर उनका मस्तक काटा गया। इसे तो अधर्म नहीं माना गया, इसे युद्ध की रीति माना गया। इसलिए सारे युद्ध में दोनों ही पक्षों के जिन योद्धाओं के रथ व्यर्थ हो गए, अथवा जिनके शस्त्र समाप्त हो गए, उनके मित्रों द्वारा उन्हें तत्काल युद्धक्षेत्र से हटा लिया गया। तभी उनके प्राण बचे। आचार्य ने यदि अपने शस्त्र त्याग दिए थे तो उन्हें या तो स्वयं युद्धक्षेत्र से हट जाना चाहिए था, या फिर कौरवों को चाहिए था कि वे अपने योद्धा की सुरक्षा के लिए उन्हें युद्धक्षेत्र से दूर ले जाते। जब हमारे रथ का चक्र धरती में फँस गया था, तो हमने तो कर्ण से प्रार्थना नहीं की थी कि वह हम पर प्रहार न करे; और न ही कर्ण ने अपनी बाणवर्षा रोक ली थी। वह भी अपने रथ से तब ही उतरा था, जब उसने मान लिया था कि अर्जुन मूर्च्छित हो गया है और अभी वह बाण चलाने में अक्षम है। अब यदि अर्जुन सचेत हो गया तो यह अधर्म हो गया? मैंने सारथी के रूप में रथ को कुछ नीचा कर अर्जुन को महानागास्त्र से बचा लिया तो वह अधर्म हो गया। वैसे भी अर्जुन ने कर्ण के चक्ररक्षकों को मारा, उसके पृष्ठरक्षकों को मारा, उसके अग्ररक्षकों को मारा। किसलिए? इसलिए कि वह कर्ण के लिए उसके इन सारे नए रक्षकों के आने की प्रतीक्षा करता। यदि कर्ण का सारथी उसके रथ को सँभाल नहीं सका, अथवा कर्ण के लिए वह रथ से नीचे उतरकर चक्र निकालने में असमर्थ रहा तो इसमें हमारा दोष है? जो योद्धा धरती पर आ गया, क्या उस पर आक्रमण रोक दिया गया था? कर्ण ने तो रणक्षेत्र छोड़कर दूर जाते हुए धर्मराज का पीछा कर उन पर निरंतर आक्रमण किए। यदि वह सब अधर्म नहीं था तो कर्ण को मारना ही क्यों अधर्म हो गया?

युद्ध और शांति में यही तो अंतर है। शांति का एक विधान है एक अनुशासन है। जो उसका उल्लंघन करे, उसके लिए दंडित किया जाए, जबकि दुर्योधन को कभी उसके लिए भी दंडित नहीं किया गया। और युद्ध का अर्थ ही है केवल बल। कोई नियम नहीं। कोई विधान नहीं। कोई अनुशासन नहीं। जो जिसको चाहे, जैसे चाहे मार ले। नहीं तो हमारी सात अक्षौहिणी के विरुद्ध दुर्योधन के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना क्यों थी? यह कहाँ का धर्म है कि सात से ग्यारह अक्षौहिणी को लड़ा दिया जाए? फिर भी हमने युद्ध के नियमों को माना। अभिमन्यु का वध प्रमाण है इसका। नियम उन्होंने तोड़े। अवसर का लाभ उन्होंने उठाया। हमने उनसे सीख कर, और धर्म के साक्षात् रूप श्रीकृष्ण के निर्देश को मानकर, युद्ध किया तो हम पापी कैसे हो गए?

भीम बोला, हमारी माता ने भी तो कम कष्ट नहीं पाए। वे तेरह वर्षों से शत्रुओं के नगर में बैठी हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं। क्या किया दुर्योधन और उसके भाइयों ने हमारी माता के लिए?

धर्मराज बोले, वह सब मैं भी समझता हूँ। किंतु न मैं दुर्योधन हूँ, न मेरे भाई दुर्योधन के भाई हैं। न हमें वह बनना है।

माता कुंती का बल बढ़ा है। वे प्रसन्न होंगी। उनके कष्ट के दिन समाप्त हुए। महाराज और माता गांधारी को तो अपना भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई देता होगा। वे हमारी ओर से आशंकित भी होंगे। भयभीत भी होंगे। वे न केवल वृद्ध और असहाय हैं, नेत्रहीन भी हैं। वैसे हमें तपस्विनी माता गांधारी की हाय भी नहीं लेनी है।

उस समय राजा युधिष्ठिरने समयोचित कर्त्तव्यका विचार करके कहा- माधव। एक बार क्रोधमें भरी हुई गान्धारी देवीको शान्त करनेके लिये आपको हस्तिनापुर जाना चाहिये, यही उचित जान पड़ता है।

शिबिर पहुँचते ही श्रीकृष्णने कहा- अपने मंगलके लिए आजकी रात हमलोगोंको यहाँसे बाहर ही रहना चाहिए।

अच्छी बात बिना तर्क किये अच्युतका आदेश मान लेनेमें ही मंगल है, यह पाण्डव समझते थे। सात्यकि, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरादि पाँचों भाइयोंने वह रात्रि ओघवती नदी के किनारे व्यतीत की।

गान्धारी द्रौपदी के पास आती है। गान्धारी बोली, हस्तिनापुर की महारानी द्रौपदी की जय हो। द्रौपदी बोली, ज्येष्ठ माताश्री। क्या आप मेरा प्रणाम स्वीकार नहीं करेंगी। द्रौपदी ज्येष्ठ माताश्री कहकर चरणस्पर्श करती है। गान्धारी बोली, अपनी विजय के शुभ अवसर पर रोना अच्छा नहीं पुत्री। किन्तु इस शिबिर में ना रहो। ये टूटे हुये अहंकार का शिबिर है। एक मरी हुई महत्वाकांक्षा का शिबिर है। पता है पुत्री मैं देख तो नहीं सकती बस सुन सकती हूँ। कल से अपने सैनिकों के भागने की आहट भी सुन रही हूं। तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री की महत्वाकांक्षा और तुम्हारे देवर दुर्योधन के अहंकार का यह सुनसान शिबिर है। यहां रात न बिता अपने प्रियजनों को लेकर अपने ही शिबिर में लौट जा पुत्री। द्रौपदी बोली, मैं विजयश्री में नहीं आई हूं माताश्री। मैं तो अपनी ससुराल आई हूं। मुझे आशीर्वाद दीजिये। गान्धारी बोली, इस समय मेरा मन भटका हुआ है पुत्री। इस समय मुझसे कुछ न मांग। इस समय मेरा दुर्योधन अपने लहूं में स्नान किया हुआ रणभूमि में पडा मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। वो वहां अपनी सारी पीड़ाओं के साथ अकेला है, कोई भी तो नहीं जो उसके माथे का पसीना पौछे। इस समय मेरा हृदय एक शून्य है। मेरे पास न तो कोई आशीर्वाद है और न ही श्राप। यदि कुन्ती होती तो मैं तुम्हारे पास ना आती पुत्री किन्तु वो तो कर्णवध के उपरान्त ही हस्तिनापुर लौट गई। हम दोनों वृद्ध मातायें एक-दूसरे की पीड़ा भलीभांति समझती थी। हे महारानी, हे कुलवधू यदि सम्भव हो तो मेरे दुर्योधन और दु:शासन को क्षमा कर दे। उन्हे अपनी घृणा से मुक्त कर दे पुत्री। अपने अपमान के बदले मेरा अपमान कर दे पुत्री। मेरे बालों को पकड़कर घसीटती हुई हस्तिनापुर राजसभा में ले चल। मेरे दुर्योधन को क्षमा कर दे पुत्री। गान्धारी जोरों से रोने लगती है।

ओघवती नदीके किनारे पहुँचकर युधिष्ठिरने कहा- माधव। देवी गान्धारी सती हैं और सम्पूर्ण जीवन उन्होंने तपस्या की है। वे चाहें तो शाप देकर त्रिभुवनको नष्ट कर सकती हैं। भीमने उनके सब पुत्र मार दिये हैं और दुर्योधनको तो अन्यायपूर्वक मारा है, यह उन्होंने सुन ही लिया होगा। उनको आपके अतिरिक्त दूसरा कोई शान्त नहीं कर सकता। वे क्रोधमें आकर हम सबको नष्ट कर दे सकती हैं। इस समय महर्षि व्यास वहीं होंगे। आपही इस विपत्तिसे वहाँ जाकर हमें बचावें।

गांधारी के क्रोध, रोष और तपस्या से हमारी हानि होने की संभावना है। जिसके सौ पुत्र मारे गए हों, उस अंधी माता की पीड़ा की कल्पना कर ही उसके सम्मुख जाने का मेरा साहस नहीं होता। उन्हें कोई सांत्वना दे भी तो किन शब्दों में दे। क्या कहें, यह ईश्वर की इच्छा थी या यह कि हमने दुर्योधन को उसके अपराधों के लिए दंडित किया है। वे लोग मेरी बात सुनेंगे भी क्या? उससे पहले ही शाप नहीं दे देंगे। आप सबके समझाने पर भी मैं अपने मन से यह विचार निकाल नहीं पाता कि उनके इस दुख का कारण मैं भी हूँ। कितना भी कम दोष क्यों न हो किंतु मेरा योगदान भी उसमें है। मैं उनके सामने खड़ा नहीं हो सकता। पर किसी समय तो उनके सामने पड़ना ही होगा। वे रुक गए, श्रीकृष्ण। आप यह कर सकते हैं। आपके

मन में दीनता नहीं है। आप धर्म को भी जानते हैं। आप पीड़ा के अथाह सागर में से भी किसी को निकाल लेने का सामर्थ्य रखते हैं। आप जाएँ और उनको सांत्वना दें। उन्हें कहे कि वे अनाथ नहीं हैं। हम भी उनके ही पुत्र हैं। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट हम नहीं होने देंगे। वे अपने पुत्रों की मृत्यु का शोक न करें।

भीमने गदायुद्धके नियमका उल्लंघन करके महाबली दुर्योधनको मारा था- यह देखकर महाराज युधिष्ठिरको बड़ा भय हुआ। उन्होंने सोचा दुर्योधनकी माता गान्धारी बड़ी तपस्विनी हैं, उन्होंने जीवनभर घोर तपस्या की है। वे चाहें तो तीनों लोकोंको भस्म कर सकती हैं, इसलिये सबसे पहले उन्हें ही शान्त करना चाहिये। अन्यथा हमलोगोंके द्वारा जब वे अपने पुत्रका अन्यायपूर्वक वध सुनेंगी तो क्रोधमें भरकर अपने मनसे अग्नि प्रकट करके हमें भस्म कर डालेंगी। यह सब सोच-विचारकर धर्मराजने श्रीकृष्णसे कहा- गोविन्द। आपकी ही कृपासे हमने अकण्टक राज्य पाया है, अपने पुरुषार्थसे तो हम इसे पानेकी बात भी नहीं सोच सकते थे। आपने ही सारथी बनकर हमारी सहायता और रक्षा की है। यदि आप इस युद्धमें अर्जुनके कर्णधार न होते, तो ये समुद्र जैसी कौरव-सेनाको जीतकर उसके पार कैसे पहुँच पाते? हमलोगोंके लिये आपने कौन-कौन-सा कष्ट नहीं उठाया? गदाओंके प्रहार, परिघोंकी मार, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर और फरसोंकी चोटें सहीं तथा शत्रुओंकी कठोर बातें भी सुनीं। किंतु दुर्योधनके मारे जानेसे सब सफल हो गया। इस प्रकार यद्यपि हमलोगोंकी विजय हुई है, तथापि अभी हमारा चित्त संदेहके झूलेमें झूल रहा है। माधव। जरा, आप गान्धारीके क्रोधका तो खयाल कीजिये।

अत: उन्हें शान्त करनेके लिये एक बार आपका वहाँ जाना उचित मालूम होता है। आपहीसे इस जगत्का प्रादुर्भाव होता है और आपहीमें प्रलय। अत: आप ही यथार्थ कारणोंसे युक्त समयोचित बात कहकर गान्धारीको शीघ्र शान्त कर सकेंगे। महर्षि व्यासजी भी वहीं होंगे। आपको पाडवोंके हितकी दृष्टिसे हर एक उपाय करके गान्धारीका क्रोध शान्त कर देना चाहिये।

कृष्ण बोले, अच्छा। ठीक है। मैं हस्तिनापुर जा रहा हूँ। किंतु ऐसा न हो कि आप लोग जाकर अपने शिबिर में सुख की नींद सो जाएँ और यह धन-धान्य से भरा हुआ दुर्योधन का शिबिर असुरक्षित छोड़ दें। अब यह दुर्योधन का नहीं, आपका है। इसकी रक्षा आवश्यक है, अन्यथा प्रात: तक इसे अनाम दस्यु और भगोड़े सैनिक ही लूटकर ले जाएँगे। संभव है कि दुर्योधन के जीवित बचे साथी ही अपने राजा के इस धन के अधिग्रहण का प्रयत्न करें। उसके लिए आवश्यक होगा कि वे इसे आपके हाथ न लगने दें।

कृष्ण ने कहा, बहुत संभव है। वे मानते हैं कि गांधारी बहुत पीड़ित है; और उसकी पीड़ा का कारण है स्वयं धर्मराज।

हाँ। धृतराष्ट्र से तो नहीं, किंतु धर्मराज गांधारी से डरते हैं। यह भय गांधारी की शक्ति के कारण नहीं, धर्मराज की अपनी सात्विकता के कारण है। वे मानते हैं कि यद्यपि युद्ध उन्होंने आरंभ नहीं किया था; किंतु युद्ध में गांधारी के पुत्रों के वध में पांडवों से कुछ अधिक ही क्रूरता हो गई है।

जैसे आपके द्वारा जीवित दु:शासन की भुजा उखाड़कर उससे उसको पीटना। उसका रक्त पान करना। दुर्योधन की जंघाएँ तोड़कर उसे जीवित ही गिद्धें और गीदड़ों के खाने के लिए छोड़ना। अपनी इस ग्लानि के कारण वे गांधारी के सामने जाने का साहस नहीं जुटा पा रहे। जैसे किसी बालक को हितकर मार्ग पर लाने के लिए कोई पिता उसे दंडित तो कर दे; किंतु उस दंड की कठोरता से प्रसन्न न हो। वह पिता जब तक बालक को मना नहीं लेगा, उसे शांति नहीं मिलेगी। धर्मराज के साथ भी वही हो रहा है। उन्होंने धृतराष्ट्र के पुत्रों को दंडित तो कर दिया है; किंतु अब वे धृतराष्ट्र और देवी गांधारी को मनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। अनुमान है कि जब धर्मराज हस्तिनापुर का शासन सँभालेंगे, धृतराष्ट्र और गांधारी उनके सम्मानित अतिथि होंगे।

८) कृष्ण का हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्र और गान्धारी को सान्त्वना देना

प्रासाद के अनुचर, कृष्ण को एक विजेता के रूप में सीधे धृतराष्ट्र और गांधारी के पास ले गए। कृष्ण के मन में किसी प्रकार की कोई ग्लानि नहीं थी और न ही उन्होंने किसी प्रकार की दीनता प्रकट की। वे जानते थे कि धृतराष्ट्र के पक्ष का प्रत्येक व्यक्ति उन पर इस युद्ध की प्रेरणा और गांधारीपुत्रों के वधिक होने का आरोप लगाएगा। किंतु कृष्ण मानते थे कि यह सत्य नहीं था। गांधारी के पुत्र अपने पापों द्वारा दंडित हुए थे। न्याय के लिए यह कठोर कर्म करने के पश्चात् अब दीनता प्रकट करना बहुत घातक होगा। उसका अर्थ होगा, पुन: धृतराष्ट्र की सत्ता को प्रतिष्ठित करना। पर यह भी सत्य है कि धृतराष्ट्र को असहाय पाकर उसके प्रति क्रूर होने से भी बचना था। युधिष्ठिर दीन हो सकते थे; और भीम क्रूर हो सकता था। युधिष्ठिर की सात्विकता उन्हें कठोर नहीं होने देती और भीम की राजसिकता, उसकी कोमलता के मार्ग की बाधा है।

राज्यकी राजधानी तो हस्तिनापुर ही थी; किन्तु नगर-प्रवेशसे पूर्व आवश्यक था कि देवी गान्धारीकी ओरसे आश्वस्त हो जाया जाय। श्रीकृष्णने दारुकको बुलाकर अपना रथ प्रस्तुत कराया। वे रात्रिके प्रारम्भमें ही हस्तिनापुर पहुँचे। धृतराष्ट्रको अपने आगमनकी सूचना देकर राज-सदनमें उन्होंने प्रवेश किया। भगवान व्यास उस समय वहीं थे। श्रीकृष्णने महर्षि व्यास, धृतराष्ट्र तथा गान्धारीके चरणोंमें प्रणाम किया।

कृष्णने धृतराष्ट्रको अपने आने की सूचना देकर उनके महलमें गये। जाते ही व्यासजीका दर्शन हुआ, जो पहलेसे ही वहाँ पधारे हुए थे। कृष्ण को यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि धृतराष्ट्र और गांधारी को सांत्वना देने के लिए महर्षि वेदव्यास पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। वेदव्यास को प्रणाम कर कृष्ण धृतराष्ट्र के निकट जा बैठे। उन्होंने धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में लिया और उनकी आँखों से टपककर अश्रु धृतराष्ट्र की हथेली पर गिरे। कृष्ण के आने का अर्थ ही था कि अब केवल संधि और प्रेम की बात होगी। युद्ध नहीं होगा। हत्या नहीं होगी, कारागार नहीं होगा। अब उन्हें कोई और वंचित नहीं करेगा?

श्रीकृष्णने व्यासजी तथा राजा धृतराट्रके चरण छूए और गान्धारीको भी प्रणाम किया। फिर वे धृतराष्ट्रका हाथ अपने हाथ में ले फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने दो घड़ीतक शोकके आँसू बहाये। फिर जलसे आँखें धोकर विधिवत् आचमन किया और धृतराष्ट्रसे कहा, भारत। आप वृद्ध हैं। इसलिये कालके द्वारा जो कुछ संघटित हुआ और हो रहा है, वह आपसे छिपा नहीं है। पाण्डव सदासे ही आपके इच्छानुसार बर्ताव करते रहे हैं। उन्होंने बहुत चाहा कि किसी तरह हमारे कुलका नाश न हो। वे सर्वथा निर्दोष थे; तो भी उन्हें कपटपूर्वक जुएमें हराकर वनवास दिया गया। नाना प्रकारके वेष बनाकर उन्होंने अज्ञातवासका कष्ट भोगा। इसके अलावा भी उन्हें असमर्थ पुरुषोंकी तरह बहुतसे क्लेश सहने पड़े। जब युद्ध छिड़नेका अवसर आया, तो मैं स्वयं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ और यह झगड़ा मिटानेके लिये मैंने सब लोगोंके सामने आपसे केवल पाँच गाँव माँगे थे। किंतु कालकी प्रेरणासे आप भी लोभमें फँस गये और मेरी प्रार्थना ठुकरा दी गयी। इस तरह सिर्फ आपके अपराधसे सम्पूर्ण क्षत्रियोंका संहार हुआ है। भीष्म, सोमदत्त, बाल्हीक, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और विदुर भी आपसे सदा संधिके लिये प्रार्थना करते रहे; किंतु आपने किसीका कहना नहीं माना। आप पाण्डवोंपर दोषारोपण न कीजियेगा, उन बेचारोंका तनिक भी अपराध नहीं है। वे न कभी धर्मसे गिरे हैं, न न्यायसे। आपके प्रति उनका स्नेह भी कम नहीं हुआ और अब तो आपको तथा गान्धारीदेवीको पाण्डवोंसे ही पिण्डा-पानी मिलनेवाला है। उन्हींसे आपका वंश बढ़ेगा। पुत्रसे मिलनेवाला सारा फल अब पाण्डवोंसे ही मिलेगा। इसलिये आपलोग पाण्डवोंके प्रति मनमें मैल न रक्खें, उनकी बुराई न सोचें। अपना ही अपराध या भूल समझकर उनका कल्याण मनावें, उनकी रक्षा करें। आप तो जानते ही हैं,

धर्मराज युधिष्ठिरकी आपके चरणोंमें कितनी भक्ति है। कितना स्वाभाविक स्नेह है आप और गान्धारीके लिये तो वे बहुत शोक करते हैं, उनके हृदयमें शान्ति नहीं है। लज्जाके मारे उन्हें आपके सामने आनेकी हिम्मत नहीं पड़ती।

राजा धृतराष्ट्रसे इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण गान्धारीसे बोले- कल्याणी। आज संसारमें तुम्हारी जैसी तपस्विनी स्त्री दूसरी कोई नहीं है। तुम्हें याद होगा, उस दिन सभामें मेरे सामने ही तुमने दोनों पक्षोंका हित करनेवाला धर्म और अर्थयुक्त वचन कहा था; किंतु तुम्हारे पुत्रोंने उसे नहीं माना। दुर्योधन विजयका अभिलाषी था, उससे तुमने रुखाईके साथ कहा- ओ मूर्ख। जिधर धर्म होता है, उसी पक्षकी जीत होती है। राजकुमारी। तुम्हारी वही बात आज सत्य हुई है, ऐसा समझकर मनमें शोक न करो। तुममें तपस्याका बहुत बड़ा बल है, तुम अपनी क्रोधभरी दृष्टिसे चराचर जगत्‌को भस्म कर डालनेकी शक्ति रखती हो; तो भी तुम्हें पाण्डवोंके नाशका विचार कभी मनमें नहीं लाना चाहिये।

कृष्ण बोले, राजन्। समस्त पांडव आपके आज्ञाकारी हैं। उन्होंने अपने कुल और क्षत्रिय समाज की रक्षा के लिए, जितना प्रयत्न संभव था, वह किया। जितना कष्ट और अपमान वे सह सकते थे, वह सहा। आप की ओर से तो अत्याचार की कोई मर्यादा भी नहीं थी। अब आप उन्हें अपने किसी भी कष्ट के लिए दोषी न मानें। पांडवों का इसमें तनिक भी अपराध नहीं है। धर्म, न्याय और स्नेह की दृष्टि से पांडवों में कहीं कोई न्यूनता नहीं है। वे शुद्ध भाव से आपके पास आए थे; किंतु आप ही उन्हें स्वच्छ रूप में ग्रहण नहीं कर सके। आपने कपट द्यूत किया। वे उसी शुद्ध भाव से आज पुन: आपके द्वार पर खड़े हैं। आप अब भी उन्हें अपना सकते हैं। अब आपका वंश और राज्य पांडवों से ही चलनेवाला है। अब पुन: आप अपने कुल के शत्रु न बनें।

धर्मराज युधिष्ठिर को बहुत चिंता है कि आजकल आपका स्वास्थ्य कैसा है। आपका भोजन कैसा है। आपको अपना प्रीतिकर भोजन मिल रहा है अथवा युद्धजनिक अव्यवस्था के कारण आप कष्ट पा रहे है। अब आपका दायित्व उन पर है, इसलिये वे जानना चाहते हैं कि भविष्य में भी आप इसी प्रासाद में रहना चाहेंगे अथवा आप दुर्योधन के सर्वसुखसंपन्न प्रासाद में जाना चाहेंगे। या आप अपने लिए कोई और सुंदर और विशाल प्रासाद बनवाना चाहेंगे?

धृतराष्ट्रका हाथ पकड़कर वे दयामय फूट-फूटकर देरतक रोते रहे। व्यासजीने ही उन्हें आश्वासन दिया। तब जल लेकर नेत्र धोकर, आचमन करके धृतराष्ट्रसे बोले, कालने जो कुछ किया, आपसे अविदित नहीं है। पाण्डुपुत्र तो सदासे आपके आज्ञानुवर्ती रहे हैं। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया इस कुलको विनाशसे बचानेका। वे निर्दोष थे, फिर भी उन्हें कपट-द्यूतमें लगाकर वनवास दिया गया। उन्होंने असमर्थ पुरुषोंके समान भटकते हुए अनेक कष्ट सहे। अज्ञातवास भी पूरा हो गया तो मैं स्वयं युद्ध टालने आपकी सेवामें उपस्थित हुए और केवल पाँच गाँव मैंने माँगे; किंतु मेरी प्रार्थना ठुकरा दी गयी। यह कालकी ही प्रेरणा थी कि आप भी उस समय लोभमें आ गये।

भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, सोमदत्त, बाल्हीक आदि सबने आपको बहुत समझाया, वे सब संधिके लिये प्रार्थना करते रहे; किन्तु आपने किसीका कहना नहीं माना। युद्ध प्रारम्भ हो गया, तब भी आप सावधान नहीं हुए। काल इसी प्रकार मनुष्यको मोहान्ध कर देता है।

महाराज। पाण्डवोंका कोई अपराध नहीं है। वे धर्म या न्यायसे गिरे नहीं है। उनके प्रति मनमें कोई दुर्भाव हो भी तो उसे दूर कर दीजिये। अब उनके ही हाथों आप दोनोंको पिण्ड प्राप्त होनेवाला है। उन्हींसे आपको पुत्रकी सेवा मिलेगी और उन्हींसे वंश चलेगा।

आप धर्मराज युधिष्ठिरका स्वभाव जानते हैं। यह भी जानते हैं कि आपके चरणोंमें उनकी कितनी भक्ति है। वे इतने शोक-संतप्त हैं कि मुझे उनके लिए चिन्ता है। उन्हें रात-दिन कभी शान्ति नहीं। आप तथा देवी गान्धारीके लिए वे बहुत शोक करते हैं। लज्जाके कारण आपके सम्मुख आनेका साहस उनको नहीं हो रहा है।

राजन्। सहसा वेदव्यास ने उनकी चर्चा में हस्तक्षेप किया, तुम अपने मुख में विष लेकर अमृत के सागर में भी तैरोगे तो उस अमृत का तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। दूसरी ओर, यदि मुख में अमृत का एक घूँट भी हो तो विष का सागर सुरक्षित रहकर तैरा जा सकता है। अब यह तुम पर है कि तुम पांडवों का स्नेह स्वीकार करते हो या अब भी उन्हें अपना शत्रु मानकर उनकी हानि करना चाहते हो।

धृतराष्ट्र बोला, मैंने उनकी हानि कभी नहीं चाही।

वेदव्यास शांत भाव से मुस्कराए और बोले, तुम्हारा कपट अब भी तुम्हें त्याग नहीं रहा धृतराष्ट्र। कपट का फल तुम अच्छी तरह चख चुके हो। अब भी उसी की खेती करना चाहते हो, तो तुम्हारी इच्छा। यह युधिष्ठिर की महानता है कि उसने तुम्हारे लिए बधिक न भेजनर श्रीकृष्ण को भेजा है।

कृष्ण बोले, महाराज। युधिष्ठिर के राज्य में आपको अपने उपभोग के लिए वह सारा धन-वैभव और अधिकार प्राप्त होगा, जो आपको अपने अथवा दुर्योधन के राज्य में प्राप्त था। पांडव आपकी उससे कहीं अधिक सेवा करेंगे, जितनी दुर्योधन करता था। दुर्योधन ने आपके आदेशों की सदा उपेक्षा की और युधिष्ठिर आपके आदेश पर द्यूतविद्या से अनभिज्ञ होते हुए भी शकुनि जैसे चतुर खिलाड़ी के साथ द्यूत खेलने बैठ गए। उन्होंने अपने धन और राज्य के साथ अपनी पत्नी, अपने भाइयों तथा स्वयं अपने आपको दाँव पर लगाया; किंतु आपके आदेश की अवहेलना नहीं की। कितना अंतर है। आप युधिष्ठिर के मन में एक बार झाँककर तो देखिए। आप पांडवों को अपने पुत्रों के रूप में अंगीकार कीजिए। बुआ कुंती भी आपकी सेवा करेंगी। अब आपका और है ही कौन? धर्मराज के मन में आपके प्रति कितनी भक्ति और कितना स्वाभाविक स्नेह है- इसको परखकर तो देखिए। ऐसा न हो कि इस बार आप अपनी आशंकाओं के मारे ही उनसे दूर होते चले जाएँ।

आपके पुत्रों के अत्याचार उनके साथ गए। युधिष्ठिर तो स्वयं को भी आपका पुत्र ही मानते हैं। आपको अपने माता-पिता समझते हैं। आपकी भक्ति इसलिए नहीं करते कि आपमें वे गुण हैं। भक्ति वे इसलिए करते हैं, क्योंकि उनमें वह गुण है। आप स्त्री की ओर इसलिए आकृष्ट नहीं होते, क्योंकि वह बहुत सुंदर है। आप तो वह सौन्दर्य देख भी नहीं पाते। आप आकृष्ट इसलिए होते हैं, क्योंकि आपके अपने मन में काम है। आपके मन में अब भी दुराव है। पर आप इसे स्पष्ट समझ लें कि अब आपसे उनको कोई भौतिक उपलब्धि नहीं होनेवाली। न उनकी वैसी कोई अपेक्षा ही है। यह राज्य और धन संपत्ति- सब कुछ अब उनका ही है। आप उनके प्रासाद में बैठे हैं और ये दास और अनुचर भी उनके ही हैं, जो आपकी सेवा कर रहे हैं। मैं उनका दूत बनकर आया हूँ। उनकी ओर से मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वे सात्विक भाव से वृद्ध सेवा करेंगे। वे माता गांधारी और बुआ कुंती में कहीं कोई अंतर नहीं देखते। युधिष्ठिर ने मुझे आपके पास भेजा है, अपनी माता के पास नहीं। वे आपके दुख से दुखी हैं और चाहते हैं कि किसी प्रकार आपका दुख कम हो सके।

धृतराष्ट्र बोला, पर क्या कुंती उन्हें हमसे सौहार्दपूर्ण व्यवहार करने देगी?

वेदव्यास बोले, तुम कुंती की उदारता को नहीं जानते धृतराष्ट्र। पिछले तेरह वर्षों से वह तुम्हारे नगर में निवास कर रही है। तुमने सदा उसकी उपेक्षा की किंतु क्या उसने कभी तुम्हारे सम्मान में कमी की?

कृष्ण बोले, वे छोटी बहन बनकर माता गांधारी की सेवा करेंगी। इसलिए नहीं कि माता गांधारी ने उनका कोई उपकार किया है। इसलिए कि कुंती बुआ अपने मन की घृणा को जीतने की साधना करती हैं। वे पाप से घृणा करती हैं। आप जैसे दीन और असहाय लोगों से घृणा कर उन्हें क्या मिलेगा। सूर्य अपने स्वभाव के कारण संसार के प्रत्येक जीव को प्रकाश देता है, उनसे कुछ पाने के लोभ में वह कुछ नहीं करता।

कृष्ण बोले, उन्होंने आपके पुत्रों का वध नहीं किया। उन्होंने तो केवल अपने अपराधी शत्रुओं का वध किया है। नहीं तो वे शत्रु उनका वध कर देते। अपने मोह को तनिक-सा शिथिल कर सोचिए, संसार में ऐसा और कौन है, जो अपने अपराधी शत्रुओं का संहार करके भी प्रसन्न होने के स्थान पर शोक की ज्वाला में जलता हो। चैन न पाता हो। अपने पुत्रों से उनके चरित्र की तुलना कीजिए। आपके पुत्र ने छलपूर्वक द्यूत में उनको जीता था तो उनकी पत्नी को राजसभा में घसीट मँगवाया था और उसको निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया था। पांडवों ने सम्मुख युद्ध में आपके पुत्रों और उनके सहयोगी मित्रों का वध किया है। वे विजेताओं के दर्प से भी हस्तिनापुर आ सकते थे; किंतु वे उस युद्ध और उसमें हुए रक्तपात के लिए लज्जित हैं, जिसके लिए उन्हें बाध्य किया गया। आपके पुत्र ने और सारे कुरुवृद्धों के सम्मुख पांचाली को अपमानित किया किंतु उसे तनिक लज्जा नहीं आई। पांडव आपके सामने आने में संकोच कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने युद्ध में आपके पुत्रों का वध किया है, जबकि आपके पुत्र वध्य ही थे।

कृष्ण ने गान्धारी से कहा, आपने ही दुर्योधन को ताड़ना देते हुए कहा था माता। आपके ही शब्द हैं, ओ मूढ़। मेरी बात सुन ले। जहाँ धर्म होता है, उसी पक्ष की विजय होती है। आपकी वह बात सत्य प्रमाणित हुई है। अब शोक न करें और न ही अपने दुख के लिए पांडवों को दोषी मानें। पांडवों के प्रति विरोध का भाव त्यागें।

गान्धारीसे श्रीकृष्ण बोले, देवि। आज संसारमें तुम्हारे समान तपस्विनी स्त्री दूसरी नहीं है। तुम्हारे समान पुण्यवती स्त्रीने उस दिन सभामें दोनों पक्षोंका हित करनेवाला वचन कहा; किन्तु दुर्भाग्यकी प्रेरणासे दुर्योधनने उसे नहीं माना। तुमने ही कहा था- मूर्ख। जिधर धर्म होता है, विजय उसी पक्षकी होती है। तुम्हारी बात असत्य नहीं हो सकती थी। अत: मनमें शोक मत करो। पाण्डवोंके प्रति कोई दुर्भाव मनमें मत लाना।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर गान्धारीने कहा- केशव। तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है अबतक मेरे मनमें बड़ी व्यथा थी, मैं चिन्ताकी आगमें जल रही थी; इसलिये मेरी बुद्धि विचलित हो गयी थी- मैं पाण्डवोंके अनिष्टकी बात सोच रही थी। किंतु अब तुम्हारी बातें सुननेसे मेरी बुद्धि स्थिर हो गयी- क्रोधका आवेश जाता रहा। जनार्दन। ये राजा अंधे हैं, बूढ़े हैं और इनके पुत्र मारे गये हैं- इसके कारण शोकसे पीडित भी हैं; अब वीरवर पाण्डवोंके साथ तुम्हीं इनको सहारा देनेवाले हो। उन्होंने मेरे पुत्रों का वध किया, क्योंकि युद्ध में शत्रु का वध करने की ही परंपरा है; किंतु उनकी इतनी दुर्दशा क्यों की? उन्हें इतना अपमानित क्यों किया? किसी और का भी रक्त पिया है इस युद्ध में भीम ने? दु:शासन के साथ ही ऐसा व्यवहार क्यों? क्या यह उनका अन्याय नहीं है?

कृष्ण बोले, यह अन्याय नहीं है माता। यह रोष है, प्रतिशोध है भीमका। अन्याय तो द्रौपदी को केशों से पकड़, घसीटकर सभा में लाना था। अन्याय तो उसे दुर्योधन द्वारा अपनी जंघा पर बैठने का संकेत करना था। अन्याय तो दु:शासन द्वारा उसे निर्वस्त्र करने का प्रयत्न करना था। भीम ने जो कुछ किया, वह तो मात्र प्रतिक्रिया थी। वैसे प्रतिक्रिया तो प्रकृति का गुण है, व्यक्ति को तो उस कर्म का श्रेय व्यर्थ ही दे दिया जाता है। तुम्हारे पुत्रों के अपने कर्मों ने उनकी यह

दुर्दशा करवाई है। महाराज। अपने किए कर्म किसी को क्षमा नहीं करते। अपने पुत्रों के विषय में आप बहुत चिंतित हैं; किंतु मेरा परामर्श है कि आपको अपने विषय में भी विचार करना चाहिए। अपने किए कर्मों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए।

गान्धारीने बहुत खिन्न स्वरमें कहा- केशव। आप ठीक कहते हैं। अबतक मेरे मनमें बहुत व्यथा थी। मेरा वात्सल्य मुझे क्रोधसे जला रहा था। पाण्डवोंके अनिष्टकी बात मैं सचमुच सोच रही थी; किन्तु तुम्हारी बातें सुनकर मेरा आवेश जाता रहा। मेरी बुद्धि थिर हो गयी। मैं क्रोधमें अपना ही अनिष्ट कर लेती। आपने मुझे बचा लिया। ये राजा अंधे हैं, वृद्ध हैं और सब पुत्रोंके मारे जानेसे शोक-संतप्त हैं। अब पाण्डवोंके साथ इनके भी आप ही संरक्षक हैं।

इतना कहते-कहते गान्धारी अञ्चलसे मुँह ढाँपकर फूट-फूटकर रोने लगी। पुत्रोंके शोकसे उसे बड़ा संताप होने लगा। उस समय श्रीकृष्णने कितने ही कारण बताकर, कितनी ही युक्तियाँ देकर गान्धारीको सान्त्वना दी- धीरज बधाया। धृतराष्ट्र तथा गान्धारीको आश्वासन देनेके पश्चात् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके भीषण संकल्पका स्मरण किया; फिर तो वे तुरंत उठकर खड़े हो गये और व्यासके चरणोंमें मस्तक झुकाकर राजा धृतराष्ट्रसे बोले- महाराज। अब मैं यहाँसे जानेकी आज्ञा चाहता हूँ, आप शोक न करें। इस समय अश्वत्थामाके मनमें पापपूर्ण विचार जाग्रत हुआ है, इसीलिये सहसा उठ पड़ा हूँ। उसने आजकी रातमें पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय किया है। अचानक श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए। उनका इस प्रकार उठ खड़ा होना व्यासजीको भी अद्भुत लगा। धृतराष्ट्रने तो टटोलकर उनका हाथ पकड़ा। कोई कुछ पूछे, इससे पहिले ही कृष्णने व्यासके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करके वे धृतराष्ट्रसे बोले- महाराज। मैं जानेकी आज्ञा चाहता हूँ। इस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके मनमें बहुत पापपूर्ण विचार उठा है। वह रात्रिमें सोते हुए असावधान पाण्डवोंको मार देना चाहता है। कृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया, चलता हूँ ऋषिवर। अच्छा महाराज। अनुमति दें।

जनार्दन। आप शीघ्र जाकर उनकी रक्षा करें। धृतराष्ट्र और गान्धारी दोनोंने एक साथ कहा- अब हमारे भी वही सहारे रह गये हैं। उनकी रक्षा करके हमें फिर आप अवश्य दर्शन दें। श्रीकृष्ण वहाँसे पाण्डवोंके समीप आ गये। वे समीप हों तो किसीका कुविचार कोई अनिष्ट करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है।

यह सुनकर धृतराष्ट्र और गान्धारीने कहा- जनार्दन। यदि ऐसी बात है, तो जल्दी जाओ और पाण्डवोंकी रक्षा करो। हम फिर तुमसे शीघ्र ही मिलेंगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण दारुकके साथ तुरंत चल दिये। उनके जानेके बाद व्यास धृतराष्ट्रको आश्वासन देने लगे। शिबिरके पास पहुँचकर श्रीकृष्ण पाण्डवोंसे मिले और हस्तिनापुरका सारा समाचार उन्हें कह सुनाया।

९) अश्वत्थामा का सेनापति पद पर अभिषेक और दुर्योधन की मृत्यु

रात हो गई। चन्द्रोदय हो गया। दुर्योधन पडा कराह रहा है और बोला हे चन्द्रदेव आपके वंश में पांडवों जैसे कायरों ने जन्म कैसे लिया? आपके वंश के सिर पर यह कलंक सदा रहेगा और यह कलंक न तो मेरे लहू से धुलेगा और न ही उन पांडवों के।

जाँघ टूट जानेपर जब दुर्योधन धरतीपर गिरा तो धूलमें सन गया। फिर बिखरे हुऐ बालोंको समेटता हुआ वह दसों दिशाओंकी ओर देखने लगा। तत्पश्चात् बड़ी कोशिशसे किसी तरह बालोंको बाँधकर अपनी दोनों भुजाओंको धरतीपर रगड़कर उच्छ्वास लेते हुए कहा, शान्तनुनन्दन भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, शकुनि, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और कृतवर्मा जैसे वीर मेरे रक्षक थे, तो भी मैं इस दशाको आ पहुँचा। निश्चय ही कालका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता। जो एक दिन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, उसकी आज यह अवस्था। सञ्जय। मेरे पक्षके योद्धाओंमें जो लोग जीवित हों, उनसे कहना कि भीमने गदायुद्धके नियमको तोड़कर दुर्योधनको मारा है। क्रूर कर्म करनेवाले पाण्डवोंने भीष्म,

द्रोण, भूरिश्रवा और कर्णको कपटपूर्वक मारनेके पश्चात् मेरे साथ छल करके कलंकित हुए। उन्हें इस कुकर्मके कारण सत्पुरुषोंके समाजमें पछताना पड़ेगा। कौन ऐसा विद्वान होगा, जो मर्यादाका भंग करनेवाले मनुष्यके प्रति सम्मान प्रकट करेगा? आज पापी भीम जैसा खुश हो रहा है, अधर्मसे विजय पानेपर दूसरा कौन बुद्धिमान् पुरुष ऐसी खुशी मनायेगा? मेरी जाँघें टूट गयी हैं; ऐसी दशामें भीमने जो मेरे सिरको पैरोंसे दबाया है, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या होगी? मेरे माता-पिता बहुत दुखी होंगे, उनसे यह संदेश कहना- मैंने यज्ञ किये; जो भरण-पोषण करने योग्य थे, उनका पालन किया और समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर अच्छी तरह शासन किया। शत्रु जीवित थे, तो भी उनके मस्तकपर पैर नहीं रक्खा और शक्तिके अनुसार मित्रोंका प्रिय किया। अपने बन्धु-बान्धवोंका आदर तथा वशमें रहनेवालोंका सत्कार किया। धर्म, अर्थ तथा कामका सेवन किया; दूसरे राष्ट्रोंपर आक्रमण करके उन्हें जीता और दासकी भाँति राजाओंपर हुक्म चलाया। जो अपने प्रिय व्यक्ति थे, उनकी सदा ही भलाई की। फिर मुझसे अच्छा अन्त किसका हुआ होगा? विधिवत् वेदोंका स्वाध्याय किया, नाना प्रकारके दान दिये और आयुभरमें मुझे कभी रोग नहीं हुआ। मैंने अपने धर्मसे लोकोंपर विजय पायी है तथा धर्मात्मा क्षत्रिय जैसी मृत्यु चाहते हैं, वही मुझे प्राप्त हो गयी। इससे अच्छा अन्त किसका होगा? संतोषकी बात है कि मैं पीठ दिखाकर भागा नहीं, मेरे मनमें कोई दुर्विचार नहीं उत्पन्न हुआ। तो भी जैसे सोये अथवा पागल हुए मनुष्यको जहर देकर मार डाला जाय, उसी तरह उस पापीने युद्धधर्मका उल्लंघन करके मेरा वध किया है।

व्याख्यान देनेमें कुशल और संन्यासीके वेषमें चारों ओर घूमने-फिरनेवाले चार्वाकको यदि मेरी हालत मालूम हो जायगी तो अवश्य ही वे मेरे वैरका बदला लेंगे। मैं तो त्रिभुवनमें प्रसिद्ध इस पवित्र तीर्थ समन्तपञ्चकमें प्राण त्याग कर रहा हूँ, इसलिये मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होगी।

कृपाचार्य का मन उचटता जा रहा था। अट्ठारह दिनों के इस निरर्थक युद्ध से उनका मन बुरी तरह ऊब चुका था। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि किस बात के लिए संसार के ये इतने सारे क्षत्रिय एक स्थान पर एकत्रित होकर एक-दूसरे का रक्त बहाने पर तुले हुए थे। उन्हें तो आचार्य द्रोण की द्रुपद से शत्रुता भी सदा एक निरर्थक हठ के सिवाय और कुछ प्रतीत नहीं होती थी। इन सबके पास अपने रहने के स्थान थे। सबके पास भोजन के लिए पर्याप्त व्यवस्था थी। सबके घरों में वस्त्रों की भरमार थी। सबके बच्चे गुरुकुलों में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे और सबको रुग्णावस्था में वैद्य उपलब्ध थे। फिर यह छीना-झपटी किसके लिए थी?

एक दुर्योधन बचा था; किंतु वह समरभूमि छोड़कर कहीं भाग गया था। उसे बहुत खोजा था उन लोगों ने; किंतु वह कहीं नहीं मिला। स्वयं वे, अश्वत्थामा और कृतवर्मा कौरव नहीं थे। उन्होंने कौरव पक्ष से युद्ध अवश्य किया था। पर अब जब कोई कौरव ही नहीं बचा था और जो बचा था, वह युद्ध से पलायन कर गया था तो यह अश्वत्थामा और कृतवर्मा युद्ध के लिए इतने व्यग्र क्यों थे। वे क्यों चाहते थे कि दुर्योधन को खोजा जाए और पांडवों से युद्ध किया जाए। जिनका युद्ध था, वे ही समाप्त हो चुके तो अश्वत्थामा पांडवों को अपना शत्रु क्यों मानता है। पांडव तो उसके शत्रु नहीं थे। और यह कृतवर्मा क्यों शांति से द्वारिका जाकर अपने परिवार के साथ सुख से नहीं रहता? दुर्योधन अपने योद्धाओं को खोजता तो फिर भी कृप उसका कारण समझ सकते थे; किंतु ये अश्वत्थामा और कृतवर्मा दुर्योधन को खोजकर उसका क्या करेंगे?

कृपाचार्य पांडवों के गुरु हैं, अश्वत्थामा पांडवों का गुरुपुत्र और शैशव का मित्र है; कृतवर्मा द्वारिकावासी है, यादव है और श्रीकृष्ण का समधि है। जब तक कौरव थे, उनका राज्य था, उनके प्रति निष्ठा के कारण ये लोग लड़े। अब लड़कर

क्या होगा? क्या ये लोग सोचते हैं कि यदि दुर्योधन इनको मिल गया तो ये लोग हस्तिनापुर का राज्य उसको दिलवा देंगे? या यह राज्य इनको मिल जाएगा?

कृपाचार्य भली प्रकार जानते हैं कि क्षत्रिय की मर्यादा क्या है। वह अंत तक युद्ध करता है। जय-पराजय उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखती। किंतु यह उस क्षत्रिय की मर्यादा है, जो धर्म की रक्षा के लिए लड़ रहा हो, अपने देश की रक्षा के लिए लड़ रहा हो, अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ रहा हो। अश्वत्थामा तो क्षत्रिय ही नहीं है। यदि वह अपने स्वभाव तथा कर्म से स्वयं को क्षत्रिय मानता हो तो ठीक है, वह क्षत्रिय की मर्यादा का पालन करे; किंतु फिर वह ब्राह्मण का सम्मान और अधिकार क्यों चाहता है? युद्ध उसका व्यवसाय है, तो उसे व्यवसाय तक ही रखे, वह उसका धर्म नहीं हो सकता। कृतवर्मा अवश्य क्षत्रिय है वंश से, स्वभाव से तथा अपने कर्म और व्यवसाय से। किंतु वह धर्म के लिए नहीं लड़ रहा। जाने वह किस-किसकी शत्रुता अपने मन में पाले हुए हैं; और घृणा से प्रेरित होकर वेतनभोगी सैनिक के समान लड़ रहा है। वेतनभोगी सैनिक अब किस बाध्यता से युद्ध के लिए इतने आतुर हैं, जब उन्हें कोई वेतन देनेवाला ही नहीं रहा?

दुर्योधन द्वैपायन सरोवर की ओर जाता हुआ देखा गया था। यहीं से उनकी दुर्योधन संबंधी खोज और भी सघन हो गई थी।

संदेशवाहकोंके मुखसे दुर्योधनके मारे जानेका समाचार सुनकर बचे हुए कौरव महारथी अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा- जो स्वयं भी बाण, गदा, तोमर और शक्तियोंके प्रहारसे विशेष घायल हो चुके थे- रथपर सवार हो तुरंत युद्धभूमिमें गये। वहाँ पहुँचकर देखा कि दुर्योधन धरतीपर गिरा हुआ छटपटा रहा है और उसका सारा शरीर खूनसे भीगा हुआ है। क्रोधके मारे उसकी भौहें तनी और आँखें चढ़ी हुई थीं, वह अमर्षमें भरा दिखायी देता था।

दूत ने सन्देश दिया, नहीं महाराज। उनका युद्ध समंतपंचक में वासुदेव बलराम की अध्यक्षता में हुआ था। वे वहीं पड़े हैं। मै। उनसे मिला तो उन्होंने कहा कि मेरे योद्धाओं को खोजकर उनको मेरा समाचार दो।

वे लोग दुर्योधन के निकट पहुँच गए। दुर्योधन को अपनी उस अर्द्धचेतनावस्था में भी आभास हो गया कि कोई आया है। उसने आँखें खोल दीं। हाथों को भूमि पर टिकाकर प्रयत्नपूर्वक अपना सिर उठाया और आहत सर्प के समान फूत्कार कर बोला, देख रहे हो गुरुपुत्र। उन्होंने मेरे साथ क्या किया है। अधर्म से विजय प्राप्त करके किस बुद्धिमान पुरुष को हर्ष होगा, जैसा कि उस पांडुपुत्र भीम को हो रहा है? हर्ष की बात है कि मैं युद्ध में पीठ दिखाकर भागा नहीं। निम्न श्रेणी के मनुष्यों के समान हार मानकर वैर से कभी पीछे नहीं हटा।

अपने राजाको इस अवस्थामें पड़ा देख कृपाचार्य आदिको बड़ा मोह हुआ। वे रथोंसे उतरकर दुर्योधनके पास ही जमीनपर बैठ गये। उस समय अश्वत्थामाकी आँखोंमें आँसू भर आये, वह सिसकता हुआ कहने लगा- राजन्। निश्चय ही इस मनुष्यलोकमें कुछ भी सत्य नहीं है, जहाँ तुम्हारे जैसा- राजा धूलमें लोट रहा है। अन्यथा जो एक दिन समस्त भूमण्डलका स्वामी था, जिसने सबपर हुक्म चलाया, वही आज इस निर्जन वनमें अकेला कैसे पड़ा हुआ है। आज मुझे दु:शासन नहीं दिखायी देता, महारथी कर्ण तथा सम्पूर्ण हितैषी मित्रोंका भी दर्शन नहीं होता। वास्तवमें कालकी गतिको जानना बड़ा कठिन है। तुम मूर्धाभिषिक्त राजाओंके अग्रगण्य होकर भी आज तिनकोंसहित धूलमें लोट रहे हो। महाराज। तुम्हारा वह श्वेत छत्र कहाँ है? चँवर कहाँ है? और वह विशाल सेना कहाँ चली गयी? किस कारणसे कौन-सा काम होगा, इसको समझना बड़ा मुश्किल है; क्योंकि तुम समस्त प्रजाके माननीय राजा होकर भी आज इस दशाको पहुँच गये। तुम तो इन्द्रसे भी सामना करने का हौसला रखते थे; जब तुमपर भी यह विपत्ति आ गयी तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता

है कि किसी भी मनुष्यकी सम्पत्ति स्थिर नहीं होती।

इतने में अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आता है। दुर्योधन बोला, तुम रोते क्यों हो गुरुपुत्र? यह घाव, इनसे बहता हुआ लहू, और यह पीडा यही तो वीरों की सम्पत्ति है मित्र। मुझे बधाई दो मित्र कि तुम्हारा मित्र दुर्योधन भी कपट और अनैतिकता के उसी शस्त्र से मारा गया जिससे गुरुदेव मारे गये थे। अर्जुन अवश्य ही उनका प्रिय शिष्य था किन्तु उनकी मृत्यु का उत्तराधिकारी मैं निकला। मेरे लिये पीडा के यह क्षण गर्व के क्षण है मित्र इसलिये रोओ मत मित्र और मुझे बधाई दो।

दुर्योधन को देखते ही अश्वत्थामा परम प्रसन्न हो गया था। और फिर जैसे वह युद्ध के किसी अपदेवता से आविष्ट हो गया था। वह भूल गया कि दुर्योधन उसका राजा था। उसने जैसे उसे आदेश देते हुए कहा था, हमारे साथ चलो और पांडवों से युद्ध करो। विजयी होकर पृथ्वी का राज्य भोगो या मारे जाकर स्वर्ग लोक प्राप्त करो।

दुर्योधन बोला, अभी पराक्रम प्रकट करने का समय नहीं है। इस समय पांडवों का बल बढ़ा हुआ है।

अश्वत्थामा ने कहा, भूल है तुम्हारी राजन्। पांडवों की सेना का संहार हो चुका है। जो शेष बचे हैं, वे हमसे भी अधिक घायल हैं। हम आपकी रक्षा करेंगे। आप हमसे सुरक्षित होकर उन पर आक्रमण करें। वे आपका वेग नहीं सह पाएँगे।

दुर्योधन ने भयभीत-सी दृष्टि उस पर डाली, जैसे कह रहा हो, क्यों मुझे मृत्यु के मुख में धकेलना चाहते हो? और फिर धीरे से बोला, नहीं। अभी नहीं।

अत्यन्त दु:खी हुए अश्वत्थामाकी बात सुनकर दुर्योधनकी आँखोंमें शोकके आँसू उमड़ आये। उसने कृपाचार्य आदिसे यह समयोचित वचन कहा- मित्रो। इस मर्त्यलोकका ऐसा ही नियम है, यह विधाताका बनाया हुआ धर्म है; इसलिये काल-क्रमसे एक-न-एक दिन समस्त प्राणियोंका मरण होता है। वही आज मुझे भी प्राप्त हुआ है, जिसे आपलोक अपनी आँखों देख रहे हैं। एक दिन मैं इस भूमण्डलका पालन करनेवाला राजा था और आज इस अवस्थाको पहुँचा हुआ हूँ। तो भी मुझे इस बातकी खुशी है कि युद्धमें बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी मैं कभी पीछे नहीं हटा। पापियोंने मुझे मारा भी तो छलसे। मैंने युद्धमें सदा ही उत्साह दिखाया और अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर स्वयं भी युद्धमें ही प्राण-त्याग कर रहा हूँ; इससे मुझे विशेष संतोष है। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंको इस नरसंहारसे मुक्त देख रहा हूँ।

इतना कहते-कहते दुर्योधनकी आँखोंमें फिरसे आँसू उमड़ आये। इसलिये अब आगे कुछ न बोल सका, चुप हो रहा। राजाकी यह दशा देख अश्वत्थामाकी आँखें भर आयीं, उसे बड़ा दु:ख हुआ। साथ ही शत्रुओंपर अमर्ष भी हुआ। और कहने लगा, उन पापियोंने क्रूरकर्म करके ही मेरे पिताको भी मारा था; किंतु उसका मुझे उतना संताप नहीं है, जितना आज तुम्हारी दशा देखकर हो रहा है। मैंने जो यज्ञ किये, कुएँ-तालाब आदि बनवाये तथा और जो दान, धर्म एवं पुण्य किये हैं, उन सबकी तथा सत्यकी भी शपथ खाकर कहता हूँ- आज मैं श्रीकृष्णके देखते-देखते हर एक उपायसे काम लेकर समस्त पाञ्चालोंको यमलोक भेज दूँगा। आज किसी भी प्रकार से सब पांडवों का वध करूँगा, इसके लिये सिर्फ तुम आज्ञा दे दो।

दुर्योधन का विलाप चल रहा था, जैसे कोई निश्चिंत सोए अथवा प्रमत्त मनुष्य को मार दे, धोखे से विष देकर किसी की हत्या कर डाले, उसी प्रकार धर्म का उल्लंघन करनेवाले पापी भीमने गदायुद्ध की मर्यादा का उल्लंघन कर, मुझे मारा है। भगवान की भी कैसी लीला है। मनुष्य दूसरों को तो धर्म, अनुशासन, नियम, विधि-विधान में बाँधना चाहता हैं; किंतु स्वयं परम स्वतंत्र और स्वेच्छाचारी बना रहना चाहता है।

दुर्योधन को इस प्रकार आहत पशु के समान भूमि पर लेटे देख, अश्वत्थामा की आँखों में अश्रु आ गए। बोला तो उसकी

वाणी में चीत्कार करती वेदना थी, मैं आज समझ पाया हूँ राजन्। कि इस संसार में कुछ भी सत्य नहीं है। सब कुछ नाशवान है। सब निस्सार है। आपके जैसा राजा भी आज धूल में लोट रहा है तो किसकी संपत्ति को स्थिर माना जा सकता है। दुर्योधन बोला, पापियों ने मुझे छल से मारा है। मैंने सदा क्षत्रिय धर्म का पूर्ण पालन किया है। दुर्योधन की आँखो में अश्रु आ गए।

अश्वत्थामा बोला, मैं अपने इष्ट, अपूर्त, दान, धर्म तथा अन्य शुभ कर्मों की शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज श्रीकृष्ण के देखते-देखते सभी पांचालों को सभी उपायों से यमपुर भेज दूँगा। आप इसके लिए मुझे अनुज्ञा दें।

अश्वत्थामा को उससे संतोष नहीं हुआ। वह कुछ आवेश में बोला, मेरा विश्वास करो राजन्। मैं अपने इष्टपूर्त कर्म, दान, सत्य और जप की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं आज सोमकों का संहार कर डालूँगा। यदि यह रात बीतते ही प्रात: रणभूमि में शत्रुओं को न मार डालूँ, तो मुझे अपने पुण्यों का सुख प्राप्त न हो। मैं समस्त पांचालों का संहार किए बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा।

कृपाचार्य को इस आकस्मिक आक्रमण से कुछ हतप्रभ हुए, सँभलकर बोले, अश्वत्थामा। मैं तो तुम्हारे स्नेह के कारण तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारी रक्षा के लिए तुम्हारे साथ हूँ। मेरे लिए और क्या कारण हो सकता है? मेरी न तो पांडवों से कोई शत्रुता है और न ही पांचालों से। दुर्योधन का पक्ष धर्म का पक्ष भी नहीं है कि मैं उसके लिए निरीह लोगों का रक्त बहाऊँ। उसका राज्य भी नहीं है कि मैं राज्यनिष्ठा के कारण शस्त्र परिचालन करूँ। कृपाचार्य ने उसकी ओर देखा, किंतु तुम अब किसलिए युद्ध के लिए इतने व्यग्र हो? मैं तो सोचता हूँ कि हमें अब युधिष्ठिर के सम्मुख शस्त्रसमर्पण कर देना चाहिए और जो दायित्व वे हमें दें, उसे स्वीकार करना चाहिए।

अश्वत्थामा बोला, इस समय तो प्रतिशोध ही मेरा धर्म है। और मैं उसी का निर्वाह कर रहा हूँ।

आचार्य। महाराज दुर्योधन का मध्यम पांडव भीम से गदायुद्ध हुआ है और भीम ने उनकी दोनों जंघाएँ तोड़ दी हैं।

पाण्डवों को कोई चिन्ता नहीं कि उन्हें दुर्योधन के जीवित बचे साथियों की ओर से तनिक भी आशंका नहीं है? शायद नहीं है। दुर्योधन को जिस रूप और जिस अवस्था में वे छोड़ गए हैं, उससे तो लगता है कि वे चाहते हैं कि दुर्योधन के जीवित बचे साथी ही नहीं, अन्य सामान्य जन भी देखें और सावधान हों कि पाप का अंत क्या होता है। यह चेतावनी थी अश्वत्थामा के लिए भी कि यदि उसने युद्ध बंद नहीं किया तो उसकी भी यही दशा हो सकती है।

कृपाचार्य का मन भय से काँप उठा। अश्वत्थामा कुछ सोचता क्यों नहीं। अब स्थितियाँ पहले जैसी नहीं हैं। पांडवों ने अपने अधिकारों के लिए युद्ध किया है किंतु प्रतिशोध का दायित्व केवल भीम पर है। भीम का प्रतिशोध कितना भयंकर हो सकता है, यह उसने दिखा दिया है। दु:शासन और दुर्योधन दोनों की ही मृत्यु जितनी अपमानजनक और पीड़ादायक है, उससे भीम का विरोध करने से पहले दस बार सोचना चाहिए।

अश्वत्थामाकी बात सुनकर दुर्योधन मन-ही-मन प्रसन्न हुआ और कृपाचार्यसे बोला, आचार्य। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो द्रोणकुमारका सेनापतिके पदपर अभिषेक कर दीजिये। राजाकी आज्ञासे कृपाचार्यने अश्वत्थामाका- अभिषेक किया। इसके बाद वह दुर्योधनको हृदयसे लगाकर सम्पूर्ण दिशाओंको सिंहनादसे प्रतिध्वनित करता हुआ वहाँसे चल दिया। दुर्योधन खूनमें डूबा हुआ रातभर वहीं पड़ा रहा। युद्धभूमिसे दूर जाकर वे तीनों महारथी आगेके कार्यक्रमपर विचार करने लगे।

दुर्योधन बोला, द्विजश्रेष्ठ। मेरी आज्ञा से अश्वत्थामा का कौरव सेना के सेनापति पद पर अभिषेक कीजिए।

अश्वत्थामा बोला, युद्ध में विजय हो चाहे पराजय मित्र, मैं विजय में भी तुम्हारे साथ था और पराजय में भी तुम्हारे साथ

हूं और तुम यह ना समझो मित्र कि तुम्हारे पास अब सेना नहीं है। तुम्हारी सेना में अभी भी तीन महारथी है। मामाश्री कृपाचार्य, महारथी कृतवर्मा और स्वयं मै। दुर्योधन बोला, वे दोनों कहां है। कृतवर्मा और कृपाचार्य भी वहा आ जाते हैं। कृपाचार्य बोले, हम दोनों यहीं है युवराज। दुर्योधन बोला, अब वो राज्य नहीं रह गया कुलगुरु जिसका हाँ मैं युवराज था। दुर्योधन को पकड़कर कृपाचार्य ने अपनी गोद में उठाकर रखा। दुर्योधन बोला, जब तक मैं जीवित हूं यह युद्ध समाप्त नहीं हो सकता और अपने रक्त से गुरु पुत्र अश्वत्थामा को अपना प्रधान सेनापति नियुक्त करता हूं।

अभिषेक हो जानेपर अश्वत्थामा ने दुर्योधन को गले से लगाया और सिंहनाद कर अपने रथ की ओर चल पड़ा। कृतवर्मा तब से मौन ही था। उसने दुर्योधन से कोई बात भी नहीं की थी। दुर्योधन ने भी उससे कुछ नहीं कहा था। उनमें केवल दृष्टि का ही आदान-प्रदान हुआ था।

दुर्योधन ने तिलमिलाकर उससे मिलने आये कृपाचार्य से अश्वत्थामा का कौरवों के अन्तिम सेनापति के रूप में अभिषेक करने की प्रार्थना की थी। यद्यपि उसकी दोनों जंघाएँ टूट गयी थीं, किन्तु उसका अशरण, सन्तप्त राज-मन टूटा नहीं था। अब भी वह अपनी पराजय स्वीकार करने को तैयार नहीं था। और वह प्रतिशोध का दिवास्वप्न देख रहा था।

कृपाचार्य के हाथों अभिषिक्त हुए अश्वत्थामा के सिर पर दुर्योधन ने अपने हाथों से सेनापति का मुकुट रखा। अपने प्रति उसके विश्वास को देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा गद्‌गद हो उठा। उसकी आँखों में आँखें गड़ाकर दुर्योधन ने कहा, हे गुरुपुत्र, कौरव-सेनापति अश्वत्थामा, तुम हमारे अन्तिम सेनापति हो। यद्यपि कृष्ण के पास सुदर्शन चक्र है, किन्तु लम्बे समय तक उसका प्रयोग न करने के कारण वह उसके दिव्य मन्त्रों को भूल गया है। ऐसा न होता तो पिछले कई वर्षों में ऐसी घटनाएँ घटित हो चुकी हैं कि उस समय वह सुदर्शन का प्रयोग अवश्य करता। उसकी स्थिति कवच-कुण्डल दान किये शापदग्ध कर्ण के समान- और इस समय जो मेरी स्थिति है, उसी के समान- अर्थात् नाखून कटे वनराज के समान है। तुम्हारे पास अपने पिता और हमारे गुरुदेव द्रोणाचार्य का दिया हुआ ब्रह्मास्त्र है। तुम ही हमारी विजय के अन्तिम उद्‌गाता होंगे। अन्तिम कुरु के नाते मैं तुम्हें निर्देश दे रहा हूँ और मित्र के नाते प्रार्थना कर रहा हूँ कि पाण्डवों का आमूल विनाश करो।

दुर्योधनकी दशा देखकर अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध आया। उसने पाञ्चालोंके वधकी प्रतिज्ञा की। दुर्योधनने कृपाचार्यको जल लानेको कहा और उनके द्वारा ही अश्वत्थामाका सेनापति पदपर अभिषेक कराया।

अश्वत्थामा ने कहा, हे कौरव, जैसी तुम्हारी इच्छा है, वैसा ही होगा। मैं पाण्डवों का सम्पूर्ण विच्छेदन कर डालूँगा। अपने हाथ में थामे हुए दुर्योधन के हाथ को दबाते हुए गुरुपुत्र ने आश्वासन दिया।

अश्वत्थामा बोला, क्या आदेश है राजन? दुर्योधन बोला, मुझे पांडवों के कटे हुये शीश दिखला दे अश्वत्थामा। मैं तब तक किसी न किसी तरह अपने जीवन की डोरी को पकडे रखूंगा किन्तु अब मेरी बाहों में अब उतना बल नहीं रह गया जितना हुआ करता था। मैं जीवन को देर तक पकडकर नहीं रख सकता। अश्वत्थामा बोला, चिन्ता न करो राजन। मैं इसी समय आक्रमण करूंगा। कृपाचार्य बोला, इस समय, यह तुम क्या कह रहे हो? तुम युद्ध की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकते। अश्वत्थामा बोला, यदि वे युद्ध की मर्यादा का उल्लंघन कर सकते हैं तो फिर मैं क्यों नहीं कर सकता? क्या आप भूल गये कि उन्होने किस प्रकार मेरे पिताश्री को निहत्था करके मारा था? और क्या आप उनकी कपटी रणनीति के प्रतीक को नहीं देख रहे? इस युद्ध में हम सभी मर्यादाओं को बहुत पीछे छोड़ आये हैं। पांडव मेरे ऋणी हैं और उन्हे अपने शवों से मेरा ऋण चुकाना पडेगा। मुझे आज्ञा दो मित्र। दुर्योधन बोला, विजयी भव मित्र। दुर्योधनने पीडा से कराहकर

अपने पिताश्री को याद कर प्राण त्याग दिया।

दुर्योधन के रूप में आज मरा अन्याय, पाप श्राप सन्ताप का हुआ अन्त अध्याय।

जय गान्धारी... माता कहने से पहले ही अश्वत्थामा के हाथ में हाथ रखे दुर्योधन का प्राणान्त हो गया।

युद्ध चल रहा था। पाण्डव वीर निरन्तर विजय की ओर अग्रसर हो रहे थे। अभिमन्यु के वध का प्रतिशोध परमवीर अर्जुन ले चुके थे जयद्रथ-वध करके। शकुनि-वध में पांचाल राजपुत्र धृष्टद्युम्न एवं पाँचों द्रौपदेयों ने अभूतपूर्व वीरता दिखायी थी। दु:शासन वध भीम ने अपनी पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार किया एवं उसके रक्तपान का रोमहर्षक अभिनय कर सबको आतंकित भी कर दिया।

युद्धपूर्व पांडवों के लिए यह जरूरी था।

दुर्योधन की मृत्यु सुनकर धृतराष्ट्र फफक फफक कर रो पडा। धृतराष्ट्र बोला, क्या मेरे पुत्र दुर्योधन का शव बिल्कुल अकेला है संजय। संजय बोला, मैं नहीं जानता राजन। धृतराष्ट्र बोला, तुम देखकर बताओ। संजय बोला, अब मेरे पास दिव्य दृष्टि नहीं है राजन। युवराज की आंखों के साथ ही साथ मेरी भी आंखे बन्द हो गई। धृतराष्ट्र बोले, हे संजय क्या तुम अन्धकार के उस अजगर को देख सकते हो जिसने मुझे जकड लिया है। संजय बोला, मैं देख भी रहा हूं और समझ भी रहा हूं राजन। हे राजन इस पीडित क्षण का सत्य यह है कि युद्ध समस्याओं का समाधान नहीं है। वो केवल सर्वनाश के ध्वज की भांति हृदय में गड सकता है। इस युद्ध को आप रोक सकते थे। धृतराष्ट्र बोला, हां मैं चाहता तो रोक सकता था पर जब भी मैंने इस युद्ध को रोकने के लिये अपना हाथ उठाना चाहा मेरी अपनी महत्वाकांक्षा और मेरे अपने मोह ने मेरा हाथ पकड़ लिया किन्तु अब तो न वो महत्वाकांक्षा ही है और न वो पुत्र ही रहा। अपने सपनों के खंडहर में अकेला खडा हूं संजय। जो युद्ध मेरे पुत्र की मृत्यु के साथ समाप्त हो गया वो युद्ध मेरे भीतर मेरे हृदय के कुरुक्षेत्र में अब भी हो रहा है। मैं ही तलवार भी हूं और मैं ही ढाल भी, मैं स्वयं अपने आप पर आक्रमण करता हूं और स्वयं अपना बचाव भी किन्तु ये द्वन्द युद्ध बड़ा अनूठा है संजय। यदि मैं विजयी हूं तब भी मेरे हाथ तो पराजय ही आयेगी हे पुत्र दुर्योधन मैंने तेरे साथ बडा अन्याय किया है। लोग अपने पुत्रों को मधु चटाकर पालते हैं किन्तु मैंने तुम्हें अपनी महत्वकांक्षा का विष चटा चटा कर पाला है और परिणाम यह है कि तेरा शव रणभूमि में आज अकेला पडा हुआ है।

अनंत है- अजेय है महाकाल। उसमें अठारह दिन कितने नगण्य हैं, कितने मामूली हैं। पलक गिरने-उठने की तरह अठारह दिन युद्ध की भयावहता में कितनी तेजी-से काल-स्त्रोत में बह गए।

समय-समुद्र के अठारह दिन का वह स्त्रोत सब-कुछ निश्चिह्न कर गया। सब कुछ मिट गया। महाकाल के महासागर में छोटी-सी लहर कुरुक्षेत्र महासमर बह गई। समय समाप्त हो गया। एक ओर करुण पराजय, दूसरी ओर विकट विजय थी। विजय फिर इतनी विकट, भयंकर, हाहाकारमय भी हो सकती है। जन-मानस-रहित वसुंधारा। शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, ज्ञानी-अज्ञानी, वीर-कापुरुष, युवक-वृद्ध, पिता, भाई, गुरु, मित्र, पति, पुत्र- सबको महासमर की लपलाती जीभ निगल गई।

दुर्योधन का उरुभंग हो चुका है। चोट खाकर वह मृत्यु की घड़ियां गिन रहा है। युद्ध समाप्त।

इति शल्य पर्व

*** प्रेम पर ऐश्वर्य, सौन्दर्य और वैभव का कोई अधिकार नहीं है।**

*** वासना की भूमिपर कभी भी स्वतन्त्रता अंकुरित नहीं होती, स्वतन्त्रता तो ज्ञान केबीच उदित होती है।**

*** जिन्दगी ऐसा दीपक है जो हवा में रखा हुआ है और कभी भी बुझ सकता है।**

*** जो अधर्म करते हैं उन्हें उसका फल चाहे तत्काल न मिले, पर धीरे-धीरे उनकी जड़ काट डालता है।**

सौप्तिक पर्व

* विषय उपक्रम *

१) अश्वत्थामाका पाण्डवोंका और

पाञ्चालोंका वध करने का क्रूर विचार ४७०

२) अश्वत्थामा का पाण्डवपुत्रों और पांचाल वीरोंका नृशंस संहार ४७३

३) द्रौपदी का अपने पुत्रोंकी मृत्यु पर विलाप ४७८

४) अर्जुन का अश्वत्थामा को बन्दी बनाकर सिर से मणि लेना ४८९

५) अश्वत्थामा का अपमान से पाण्डवोंकी ओर ब्रह्मास्त्र का संधान ४९०

५) उत्तरा के गर्भ पर अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र का संधान और

कृष्ण द्वारा मृत बालक को जीवनदान ५०२

** अगर हमें आज शान्ति नसीब नहीं है तो हम एक दूसरे को भूल चुके है।*
** व्यक्ति केवल तभी बदलता है जब वह स्वयं बदलना चाहता है।*
** मानव का मानव के प्रति अत्याचार असंख्य मनुष्यों को दु:ख में डाल देता है।*
** जीवन की बाजी में हार जीत तो हमारे हाथ नहीं पर बाजी खेलना हमारे हाथ में है।*
** जिस घर में उद्योग की तालीम नहीं है वह परिवार जल्दी ही तबाह हो जाता है।*
** जब चूहा बिल्ली पर हंसता है तो समझ लेना चाहिये कि पास ही में उसका बिल है।*
** फूलों में तो सभी मुस्करा लेते है, काँटों में मुस्कराये वही तो असली जीवन है।*
** पुरुष को देखकर उसके पास धरोहर रखी जाती है उसके घर का माप देखकर नही।*

सौप्तिक पर्व

१) अश्वत्थामाका पाण्डवोंका और पाञ्चालोंका वध करने का क्रूर विचार

दुर्योधनके समीपसे तीनों कौरव-शिबिरकी ओर चले थे; किंतु तभी शफ एवं वाद्यघोष करते पाण्डव उस शिबिरपर अधिकार करने आ गये। तीनोंको लगा कि उनपर ही आक्रमण करते वे आ रहे हैं। तीनों एक साथ भागे और भागते चले गये। बहुत दूर वनमें जाकर एक खूब सघन वट-वृक्षके नीचे तीनोंने रात्रि व्यतीत करनेका निश्चय किया।

तीनों ही बहुत थके थे। बहुत अधिक घायल भी हो चुके थे आज दोपहरतकके युद्धमें। उनको विश्रामकी आवश्यकता थी। कृपाचार्य और कृतवर्मा सो गये; किंतु अश्वत्थामा चिन्ता तथा क्रोधके कारण जागता रहा।

कोई भी निमित्त किसके हृदयके सद्भाव अथवा दुर्भावको कब जगा देगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। अश्वत्थामा सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता था। धनुर्वेदके सब अङ्गोपाङ्गोंका उसे ज्ञान था। द्रोणाचार्यने उसके अतिरिक्त केवल अर्जुनको ब्रह्मास्त्रका वह श्रेष्ठतम महास्त्र प्रदान किया था जो अमोघ था। साथ ही तप करके आचार्यने भगवान शमरसे अपने इस पुत्रके लिए अमरत्वका वरदान प्राप्त कर लिया था। वेद-वेदांगका ज्ञान, अद्वितीय अस्त्रवेत्ता होना तथा अमरत्वका वरदान भी अश्वत्थामाके हृदयके ओछेपनको मिटा नहीं सका। जहाँ वह अत्यन्त उच्चाभिलाषी था, वहीं बहुत अधिक क्रूर तथा कायर भी था। युद्धमें जब भी कठिनाईमें पड़ा, भाग खड़ा हुआ। उसके हृदयमें धर्मपर दृढ़ रहनेका बल कभी नहीं आया और अकरणीय करनेमें भी उसका क्रूर हृदय कभी हिचका नहीं।

सभी मनुष्य दैव और पुरुषार्थ दो प्रकारके कर्मोंसे बँधे हुए हैं। इन दोके सिवा और कुछ नहीं है। अकेले दैव या पुरुषार्थसे कार्यसिद्धि नहीं होती। सफलताके लिये दोनोंका सहयोग आवश्यक है। इन दोनोंमें दैव ही फलका निश्चय करके स्वयं उसे देनेके लिये प्रवृत्त होता है, तो भी बुद्धिमान् लोग कुशलतापूर्वक पुरुषार्थमें लगे रहते हैं। मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य और प्रयोजन इन्हीं दोनोंसे सिद्ध होते हैं। उनके किये हुए पुरुषार्थकी सिद्धि भी दैवके ही अधीन है और दैवकी अनुकूलतासे ही उन्हें फलकी प्राप्ति होती है। कार्यकुशल मनुष्य दैवके अनुकूल न होनेपर जो कार्य हाथमें लेते हैं, बहुत सावधानीसे करनेपर भी उसका कोई फल नहीं होता। इसके विपरीत जो लोग आलसी और अमनस्वी होते हैं, उन्हें तो किसी कामको आरम्भ करना ही अच्छा नहीं लगता। किंतु बुद्धिमानोंको यह बात नहीं रुचती; क्योंकि संसारमें कोई भी कर्म प्राय: निष्फल नहीं देखा जाता, परंतु कर्म न करनेपर तो दु:ख ही दिखायी देता है। जो प्रयत्न न करनेपर भी दैवयोगसे ही सब प्रकारके फल प्राप्त कर लेते हैं अथवा जिन्हें चेष्टा करनेपर भी कोई फल नहीं मिलता- ऐसे लोग तो विरले ही होते हैं। तथापि तत्परतापूर्वक कार्यमें लगे हुए मनुष्य आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं और आलसियोंको कभी सुख नहीं मिलता। इस जीवलोकमें प्राय: तत्परताके साथ कर्म करनेवाले ही अपना हितसाधन करते देखे जाते हैं। यदि उन्हें कार्य आरम्भ करनेपर भी कोई फल नहीं मिलता तो उनकी किसी प्रकारकी निन्दा नहीं की जा सकती। परंतु जो बिना कुछ किये ही फल पा लेता है, उसकी लोकमें निन्दा होती है और प्राय: लोग उससे द्वेष करने लगते हैं। इस प्रकार जो पुरुष दैव और पुरुषार्थ दोनोंके सहयोगको न मानकर केवल दैव या पुरुषार्थके ही भरोसे पड़ा रहता है, वह अपना अनर्थ ही करता है- यही बुद्धिमानोंका निश्चय है।

कई बार उद्योग करनेपर भी जो फल नहीं मिलता, उसमें पुरुषार्थकी न्यूनता और दैव- ये दो कारण हैं। परंतु पुरुषार्थ न करनेपर तो कोई कर्म सिद्ध हो ही नहीं सकता। अत: जो पुरुष वृद्धोंकी सेवा करता है, उनसे अपने कल्याणका साधन पूछता है

और उनके बताये हुए हितकारी वचनोंका पालन करता है, उसका यह आचरण ठीक माना जाता है। कार्यका आरम्भ कर देनेपर वृद्धजनोंद्वारा सम्मानित पुरुषोंसे बार-बार परामर्श लेना चाहिये। कार्यकी सफलतामें वे परम कारण माने जाते हैं तथा सिद्धि उन्हींके आश्रित कही जाती है। जो पुरुष वृद्धोंकी बात सुनकर कार्य आरम्भ करता है, उसे अपने कार्यका फल बहुत जल्द प्राप्त हो जाता है। किंतु जो पुरुष राग, क्रोध, भय या लोभसे किसी कार्यमें प्रवृत्त होता है वह उसमें सफलता पानेमें असमर्थ रहता है और तुरंत ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है। दुर्योधन भी लोभी और ओछी बुद्धिका पुरुष था। उसने असमर्थ होनेपर भी मूर्खताके कारण बिना विचार किये अपने हितैषियोंका अनादर करके दुष्टजनोंकी सलाहसे यह काम आरम्भ किया था। पाण्डवलोग गुणोंमें उससे बढ़े-चढ़े थे, तथापि बहुत रोकनेपर भी उसने उनसे वैर ठाना। वह पहलेसे ही बड़ा दुष्ट स्वभाव था, इसलिये धीरज धारण न कर सका और न उसने अपने मित्रोंकी ही बात सुनी। इसीसे अपने प्रयासमें विफल होकर उसे पश्चात्ताप करना पड़ा। हमलोगोंने उस पापीका पक्ष लिया था, इसलिये हमें भी यह महान अनर्थ भोगना पड़ा। मैं बहुत सोचता हूँ, तथापि इस कष्टसे संतप्त होनेके कारण मेरी बुद्धिको तो आज भी कोई हितकी बात नहीं सूझती। मनुष्य जब स्वयं हिताहितका विचार करनेमें असमर्थ हो जाय तो उसे अपने सुहृदोंसे सलाह लेनी चाहिये। वहीं इसे बुद्धि और विनयकी प्राप्ति हो सकती है और वहीं इसे अपने हितका साधन भी मिल सकता है। पूछनेपर वे लोग जैसी सलाह दें, वही इसे करनी चाहिये।

कृपाचार्य के इस समय ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा शोकसे दहकती हुई अग्निके समान जलने लगा। फिर उसने मनको कड़ा करके कृप और कृतवर्मा दोनोंसे कहा- प्रत्येक मनुष्यमें जो अलग-अलग बुद्धि होती है, उसीसे वे संतुष्ट रहते हैं। सब लोग अपनेको ही विशेष बुद्धिमान समझते हैं। सबको अपनी ही समझ अच्छी जान पड़ती है। वे बार-बार दूसरोंकी बुद्धिकी निन्दा और अपनी बुद्धिकी बड़ाई करते हैं। यदि किसी कारणवश किन्हींका विचार बहुत-से मनुष्योंसे मिल जाता है तो वे एक दूसरेसे संतुष्ट रहते हैं और बार-बार एक-दूसरेका सम्मान करते हैं। किंतु समयके फेरसे फिर उन्हीं मनुष्योंकी बुद्धियाँ विपरीत होकर एक-दूसरीसे विरुद्ध हो जाती हैं। मनुष्योंके चित्त प्राय: भिन्न भिन्न प्रकारकी बुद्धियाँ पैदा होती हैं। एक मनुष्य युवावस्था में एक प्रकारकी बुद्धिसे मुग्ध-सा हो जाता है, मध्यम अवस्थामें उसपर दूसरे प्रकारकी बुद्धि सवार होती है और वृद्धावस्थामें उसे अन्य ही प्रकारकी बुद्धि अच्छी लगने लगती है। जब मनुष्यपर बड़ा भारी संकट आता है या जब उसे महान् वैभवकी प्राप्ति होती है तो उसकी बुद्धिमें विकार आ जाता है। इस प्रकार एक ही मनुष्यमें समय-समयपर भिन्न-भिन्न बुद्धियाँ होती रहती हैं और उस समय उसको अपनी पहली बुद्धि अरुचिकर हो जाती हैं। किंतु जो मनुष्य अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय करके जिस बातको अच्छी समझता है वैसा ही अपना भाव बना लेता है, उसीकी बुद्धि और समझका आश्रय लेकर तरह-तरहकी चेष्टाएँ करते हैं और उन्हींमें अपना हित मानते हैं।

संयमहीन ब्राह्मण बुरा है, तेजोहीन क्षत्रिय निकम्मा है, अकुशल वैश्य निन्दनीय है और अन्य वर्णोंके प्रतिकूल आचरण करनेवाला शूद्र अधम है। मैं तो ब्राह्मणोंके अत्यन्त पूजनीय उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। मन्दभाग्य होनेसे ही इस क्षात्रधर्मका अनुष्ठान कर रहा हूँ। यदि क्षात्रधर्मको जानकर भी मैं ब्राह्मणत्वकी ओट लेकर इस महान् कर्मको न करूँ तो मेरा यह आचरण सत्पुरुषोंको अच्छा नहीं लगेगा। मैं रणक्षेत्रमें दिव्य धनुष और दिव्य शस्त्र धारण करता हूँ। ऐसी स्थितिमें पिताश्रीको युद्धमें मारा गया देखकर अब मैं किस मुँहसे सभामें बोलूँगा? अत: आज मैं क्षात्रधर्मका आश्रय लेकर अपने पिता और राजा दुर्योधनके ही मार्गका अनुसरण करूँगा। आज विजयश्रीसे देदीप्यमान पाञ्चालवीर बड़े हर्षसे कवच उतारकर बेखटके सो रहे होंगे। अत: आज रात्रिमें उन सोते हुओंपर ही मैं धावा करूँगा और नींदमें बेहोश पड़े हुए उन

शत्रुओंको शिबिरके भीतर ही तहस-नहस कर डालूँगा। तभी मुझे चैन पड़ेगा। दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और जयद्रथने जो दुर्गम मार्ग पकड़ा है उसीसे आज मैं पाञ्चालोंको भी भेजकर छोड़ूँगा। आज रात्रिमें ही मैं पशुके समान बलात्कारसे पाञ्चालराज धृष्टद्युम्नका सिर कुचल डालूँगा। आज रात्रिमें ही मैं अपनी तलवारसे सोये हुए पाञ्चाल और पाण्डववीरोंके सिर उड़ा दूँगा तथा आज रात्रिमें ही मैं सोयी हुई पाञ्चालसेनाको नष्ट करके सुखी और सफलमनोरथ होऊँगा।

कृपाचार्य बोले, तुम अपने स्वभावसे टलनेवाले नहीं हो। आज पाण्डवोंसे बदला लेनेके लिये तुम्हारा ऐसा विचार हुआ है। कल सबेरा होनेपर हम दोनों भी तुम्हारे साथ चलेंगे। आज तुम बहुत देरतक जगते रहे हो, इसलिये आजकी रात तो सो लो। इससे तुम्हें कुछ विश्राम मिल जायगा, तुम्हारी नींद पूरी हो जायगी और तुम्हारा चित्त भी ठिकानेपर आ जायगा। इसके बाद यदि तुम शत्रुओंका सामना करोगे तो अवश्य ही उनका वध कर सकोगे। हमलोग भी रातभर सोकर नींद और थकानसे छूट जायँगे। रात बीतनेपर हम शत्रुओंका संहार करेंगे। फिर जो भी शत्रु हमारा सामना करेंगे, उन्हें हम तीनों मिलकर मारेंगे। जब संग्रामभूमिमें मेरा और तुम्हारा साथ होगा और कृतवर्मा भी तुम्हारी रक्षा करेगा तो साक्षात् इन्द्र भी हमारे पराक्रमको सहन नहीं कर सकेगा। कृतवर्मा और मैं पाण्डवोंको युद्धमें परास्त किये बिना कभी पीछे पाँव नहीं रक्खेंगे। या तो हम संग्रामभूमिमें पाण्डवोंके सहित क्रोधातुर पाञ्चालोंका संहार करके ही लौटेंगे या वहीं प्राणोंकी बलि देकर स्वर्ग प्राप्त करेंगे।

अश्वत्थामा आँखे लाल कर बोला, जो पुरुष दु:खी है, क्रोध में भरा हुआ है, किसी अर्थके चिन्तन में लगा हुआ है, किसी कार्यसिद्धिकी उधेड़-बुनमें व्यस्त हैं, उसे नींद कैसे आ सकती है। मेरी नींदको तो क्रोधने ही हराम कर दिया है। इन पापियोंने जिस प्रकार मेरे पिताश्रीका वध किया है, वह बात रात-दिन मेरे हृदयको जलाती रहती है। मेरे मर्मस्थानोंमें पीड़ा होती रहती है। इसलिए अब मैं धृष्टद्युम्नको मारे बिना जीवित नहीं रह सकता। राजा दुर्योधनकी जंघाएँ टूट गयीं। उनकी वे दु:खभरी बातें सुनकर ऐसा कौन कठोरचित्त है, जिसकी आँखोंसे आँसू नहीं निकलेंगे? मेरे जीवित रहते मेरी मित्रमण्डलीकी ऐसी दुर्दशा हुई इससे मेरा शोक बहुत बढ़ गया है।

कृपाचार्य बोले, पुत्र अश्वत्थामा। तुम बहुत थके हुए हो, इसीलिए बहुत उत्तेजित भी हो। ऐसी मन:स्थिति में प्रबल शत्रु से युद्ध करना हितकर नहीं है। <u>जिस मनुष्य की बुद्धि ठीक नहीं है, इन्द्रियोंपर जिसका संयम नहीं है, वह धर्म और अर्थको पूरी तरहसे नहीं जान कसता। मूर्ख योद्धा बहुत समयतक पण्डितोंकी सेवामें रहकर भी धर्मका रहस्य नहीं जान सकता।</u> जो पुरुष धर्मश्रवणकी इच्छावाला, बुद्धिमान और संयतेन्द्रिय होता है वह सब शास्त्रोंको जानता है। परंतु जो दुरात्मा और पापी मनुष्य बतलाये हुए अच्छे कामको छोड़कर दु:खरूप फल देनेवाले कर्मोंको किया करता है, उसे किसी प्रकार दुष्कर्म से नहीं रोका जा सकता है। उसको उसके सुहृदगण ऐसे कर्म करनेसे रोकते हैं। जिस प्रकार विक्षिप्त पुरुष को भला बुरा कहकर काबूमें किया जाता है उसी प्रकार सुहृदगण भी समझा-बूझाकर डाँट-डपटकर वशमें करते हैं; नहीं तो वह वशमें नही आ सकता और उसे दु:ख ही उठाना पड़ता है। तुम भी मनको वशमें करके कल्याणसाधन में लगाओ ताकि तुम्हें बादमें पश्चाताप न करना पड़े। जो सोये हुए हो, जिन्होंने शस्त्र त्याग दिये हो, जो शरणागत हो, जिनके बाण नष्ट हो गये हो, लोक में ऐसे लोगोंका वध करना धर्मत: अच्छा नहीं समझा जाता।

अश्वत्थामा बोला, मेरे पिता का वध कर धृष्टद्युम्न जीवित नहीं बच सकता। वह मेरा वध्य है। मैं तो आज सोते हुए अपने शत्रुओं का संहार करके निश्चिंत होने पर ही विश्राम करूँगा।

वह कृपाचार्य का उत्तर सुनने के लिए भी नहीं रुका। उसने अपने घोड़े रथ में जोत लिए और रथारूढ़ होकर बोला, मैं प्रयत्न करूँगा कि पापी धृष्टद्युम्न मेरे द्वारा एक पशु की भाँति मारा जाए। उसे किसी भी प्रकार शस्त्रों से हताहत क्षत्रिय को

मिलनेवाले लोकोंकी प्राप्ति न हो।

शस्त्रहीन अश्वत्थामा यह अत्यन्त अद्‌भुत दृश्य देखकर बड़ा ही दुखी हुआ और आचार्य कृपके वचन याद करके कहने लगा, जो पुरुष अप्रिय किंतु हितकी बात कहनेवाले अपने सुहृदोंकी सीख नहीं सुनता, वह मेरी ही तरह आपत्तिमें पड़कर शोक करता है। जो मूर्ख शास्त्र जाननेवालोंकी बातका तिरस्कार करके युद्धमें प्रवृत्त होता है, वह धर्ममार्गसे भ्रष्ट होकर कुमार्गमें जानेसे उलटे मुँहकी खाता है। मनुष्यको गौ, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, दुर्बल, मूर्ख, अंधे, सोये हुए, डरे हुए, नींदसे उठे हुए, मतवाले, उन्मत्त और असावधान पुरुषोंपर हथियार नहीं चलाना चाहिए। गुरुजनोंने पहलेहीसे सब पुरुषोंको ऐसी शिक्षा दे रक्खी है। किंतु मैं उस शास्त्रीय सनातन मार्गका उल्लंघन करके उलटे रास्तेसे चलने लगा था। इसीसे इस घोर आपत्तिमें पड़ गया हूँ। जब मनुष्य किसी कामको आरम्भ करके भयके कारण उसे बीचहीमें छोड़ देता है तो बुद्धिमान लोग इसे उसकी मूर्खता ही कहते हैं। नि:संदेह इस समय मुझे जो युद्धसे हटना पड़ रहा है, वह दैवका ही विधान है। सचमुच दैवकी अनुकूलताके बिना आरम्भ किया हुआ मनुष्यका कोई भी काम सफल नहीं हो सकता।

२) अश्वत्थामा का पाण्डवपुत्रों और पांचाल वीरोंका नृशंस संहार

अश्वत्थामा को तो इस समय न कोई भूख थी न प्यास। उसकी धमनियों में दौड़ता रक्त केवल प्रतिशोध का ही उद्‌घोष कर रहा था। उसने अपना रथ अपने शिबिर के मार्ग पर डाल दिया। पूरे नगर का सा बसा शिबिर इस समय एकदम उजाड़ हो गया होगा। द्वारपाल, शिबिर-रक्षक तथा दास दासियों का भी पता नहीं था। कौन वहाँ है और कौन सबकुछ छोड़-छाड़कर भाग गया है। उन पर शासन करनेवाला भी तो वहाँ कोई नहीं था। पर अपने शिबिर के निकट उसे उतनी निर्जनता भी दिखाई नहीं दी, जितनी उसने अपेक्षा की थी। वह दूर से ही देख सकता था कि वहाँ कुछ गतिविधि थी। उसने रथ की गति कम की और फिर रथ रोक लिया।

सहसा उसने आँखें खोल दीं और आकाश की ओर ताकने लगा, जैसे वहाँ कहीं उसकी समस्या का समाधान लिखा हो। योगियों के विषय में उसने पढ़ा था कि जब वे किसी समस्या से अत्यधिक ग्रस्त हो जाते हैं तो उनको तो उनका अपना मन ही गुरु बनकर समस्या का समाधान कर देता है, या फिर उन्हें अपनी समस्या का समाधान आकाश पर लिखा हुआ दिख जाता है। पर अश्वत्थामा की समस्या का समाधान आकाश पर लिखा हुआ नहीं था। वहाँ तो असंख्य तारे थे। उनका लेख पढ़ना अश्वत्थामा के वश का नहीं था। न तो वह वैसा योगी ही था, न वैसा ज्योतिषाचार्य। उसकी आँखें आकाश से उतरकर वट वृक्ष की शाखाओं पर टिक गईं। उसने अब तक ध्यान नहीं दिया था कि उसकी शाखाओं पर असंख्य नीड़ बने हुए थे। जाने कितने पक्षी यहाँ रहते थे। वे सब एक ही प्रकार के पक्षी होंगे। कदाचित् ये कौओं के ही घोंसले थे। वे सब शांत मन से अपने-अपने नीड़ों में सोए हुए थे और अश्वत्थामा उनका प्रहरी बना हुआ ऊपर ताक रहा था।

अश्वत्थामा की रुचि बढ़ गई। यह किसी भी पक्षी की साधारण गतिविधि नहीं थी। वह अवश्य ही किसी विशेष प्रयोजन से यहाँ आया है। और तभी उस उल्लू ने एक भयंकर शब्द किया और अत्यंत स्फूर्ति से कौओं के घोंसलों पर आक्रमण किया। कौए नींद में थे। उन्हें रात को वैसे भी दिखाई नहीं दे रहा था। पर उल्लू था कि किसी सिद्ध योद्धा के समान अपना काम करता जा रहा था। वह एक घोंसले पर झपटता था और उसके पंख, उसकी चंचु और उसके पंजे किन्हीं तीक्ष्ण शस्त्रों के समान कौओं का संहार करने लगते। किसी के पंख नोच दिए, किसी का कंठ काट दिया, किसी के पैर तोड़ डाले। वह किसी को खा नहीं रहा था, बस संहार मचा रहा था। कौओं में हाहाकार मचा हुआ था किंतु न तो कोई कौआ उससे लड़ने आया, न किसी ने अपने बचाव में उस पर चोंच मारी। विधवाविलाप वाली स्थिति थी। अश्वत्थामा को आश्चर्य हो रहा था

कि पंख होते हुए भी कौए उड़कर कहीं जा नहीं रहे थे। पर हाहाकार मचा रहे थे और मरते जा रहे थे। इससे उसने प्रेरणा ली कि मैं रात को कौरवोंके शिबिर में पाण्डवोंपर इसी तरह आक्रमण करूँगा।

जिसके हृदयमें जैसे संस्कार होंगे, बाहरी निमित्तोंसे वह वैसी ही तो प्रेरणा लेगा। वटवृक्षपर बहुतसे कौए सो रहे थे। रात्रिमें कोई उलूक आकर उन्हें मारने लगा। यह निमित्त अश्वत्थामाको उत्तेजित करनेके लिए पर्याप्त था। उसने कृपाचार्य तथा कृतवर्माको जगाकर बतलाया कि उसने उलूकके द्वारा यह शिक्षा ली है कि रात्रिमें असावधान सोते हुए पाण्डवों और पाञ्चालोंपर आक्रमण करके उन्हें मार डालना चाहिए।

अश्वत्थामा ने कृपाचार्य और कृतवर्मा को झकझोरकर जगाया, उठो। हम यहाँ सोने के लिए नहीं आए हैं। हमारा युद्ध चल रहा है। हमें युद्ध करना है। हमें अपने शत्रुओं का वध करना है।

अश्वत्थामा कृपाचार्य से बोला, संकट में पड़ने से जो बुद्धि मेरे भीतर उत्पन्न हुई है, वह मेरे शोक का नाश करनेवाली है। मैं अपने दिव्य धनुष और देवास्त्रों के होते हुए भी, अपने पिता के वध का प्रतिशोध न ले सकूँ, तो वीरों को क्या मुँह दिखाऊँगा। अश्वत्थामा का मुख आवेश से विकृत हो रहा था, आज मैं किसी नियम, किसी अनुशासन, किसी मर्यादा को नहीं मानूँगा। आज तो मेरा धर्म प्रतिशोध ही है। कृष्ण हस्तिनापुर में हैं। पांडव दुर्योधन के शिबिर की रक्षा कर रहे हैं। पांचाल अपने कवच उतारकर, रथों में जुते हुए घोड़ों को खोल, निश्चिंत सो रहे होंगे, जैसे ये कौए अपने घोंसलों में सोए हुए थे। वे दिन भर के परिश्रम से इतने चूर होंगे कि उन्हें जगाऊँगा तो भी नहीं जागेंगे। मैं उनके शिबिर में घुसकर उनका सर्वनाश कर दूँगा। पांचालों के टुकड़े कर अपने पिता का प्रतिशोध, तथा पांडवपुत्रों को कुचलकर दुर्योधन का प्रतिशोध लूँगा। ऐसा अवसर फिर कभी नहीं आएगा। मैं आज की रात पितृऋण तथा मित्रऋण दोनों से एक साथ ही मुक्ति पा जाऊँगा। मैं सोए हुए धृष्टद्युम्न के सिर को पशु के मस्तक के समान बलपूर्वक मरोड़ दूँगा। पांचालों और पांडवों के पुत्रों को अपने खड्ग से टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।

अश्वत्थामा बोला, पांडव ही हैं। उन्होंने शिबिर पर अधिकार कर लिया है। हमारा धन, शस्त्र भंडार और दास-दासियों को उन्होंने अपना लिया है। कृष्ण को हस्तिनापुर भेजा है उन्होंने। कदाचित् वहाँ की व्यवस्था सँभालने के लिए, ताकि जब युधिष्ठिर हस्तिनापुर में प्रवेश करे तो वहाँ सब ठीक-ठाक हो।

कृपाचार्यने उसे बहुत समझाया। उसे धर्म तथा नीतिका उपदेश किया; किंतु जब कोई किसी असत्कार्यको करनेपर उतारू हो जाता है, अपने समर्थनके लिए तर्कोंका अभाव तो उसके समीप रहता नहीं। अश्वत्थामाने कृपाचार्यका प्रतिवाद किया और रथ जोड़कर अकेले ही जानेको उद्यत हो गया। अन्ततः कृपाचार्य तथा कृतवर्मा अपने इस महासेनापतिका अनुगमन करनेको धर्मतः बाध्य थे।

अश्वत्थामा का शरीर थककर चूर हो चुका था किंतु उसे नींद नहीं आ रही थी। थकान नींद से भी परे जा चुकी थी। उसने दृष्टि फेरी कृपाचार्य और कृतवर्मा सो चुके थे। ऐसी अवस्था में भी कोई सो सकता है? उसे कुछ आश्चर्य हुआ। पर आश्चर्य की क्या बात थी। पता नहीं, वे सो रहे थे या फिर थकान ने उन्हें बेसुध ही कर दिया था। अच्छा है, वे सो लें। नहीं तो प्रश्न पूछ-पूछकर वे उसे विक्षिप्त ही कर देते। अश्वत्थामा को तो नींद आएगी नहीं। वह सर्पके समान लंबी साँसें ले रहा था। करवटें बदल-बदलकर भी थक गया था। पर उसके मन की अग्नि मंद ही नहीं हो रही थी।

पाण्डव-शिबिरके महाद्वारपर साक्षात् भगवान रुद्र मूर्तिमान उपस्थित थे। वे महाकाल अपने आप आये थे और श्रीकृष्णके स्नेहवश वहाँ द्वारपर खड़े हो गये थे। वस्तुतः वे वहाँ असमंजसमें खड़े थे। इस समय पाण्डव-शिबिरमें जो सो

रहे थे, सबका जीवन-काल समाप्त हो चुका था। उन्हें आत्मसात करने आये थे भगवान महाकाल; किंतु स्वयं सीधे श्रीकृष्णके अपने कहे जानेवालोंको मारना उन्हें स्वीकार नहीं था। अत: वे द्वार-रक्षक होकर खड़े हो गये थे।

अश्वत्थामा आवेशमें था। उसने उन रुद्रपर ही आक्रमण कर दिया; किंतु उन्होंने केवल यह किया कि अश्वत्थामाने जो भी आयुध उनपर चलाये उसे वे निगलते चले गये। अपनी ओरसे अश्वत्थामापर कोई आघात उन्होंने नहीं किया। अश्वत्थामाके सब अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तब वह स्तुति करने लगा। इसपर भी जब भगवान रुद्र चुप खड़े रहे तो अश्वत्थामाने उन्हें आत्मबलि देनेका निश्चय किया।

भगवान शिवने ही उसे अमरत्वका वरदान दिया था। अग्नि उनकी एक मूर्ति ही हैं। अत: अग्निसे अश्वत्थामा भस्म नहीं हो सकता था। उसके इस शरीरार्पणसे वे महाकाल प्रसन्न हो गये। उनके यहाँ आनेका उद्देश्य भी पूरा हो रहा था। उन्होंने अश्वत्थामाको माध्यम बनाना निश्चित किया। उसे अग्निसे उठाया। एक तलवार दी और स्वयं उसके शरीरमें रात्रि-भरके लिये आविष्ट हो गये। अश्वत्थामाने कृपाचार्य और कृतवर्माको बाहर नियुक्त किया- जो भी भागनेका प्रयत्न करे, उसे आप दोनों मार दें।

स्वयं अश्वत्थामा शिबिरमें चला गया। वैसे ही वह निसर्गक्रूर था और इस समय तो उसमें रुद्रावेश था। शिबिरमें महासंहार उस रात्रि वह करता रहा। किसी भागते, हाथ जोड़तेपर भी उसने कृपा नहीं की। सेवकों तकको वह मारता गया। उसने देखा ही नहीं कि कौन सेवक है और कौन सैनिक है। कृपाचार्य, कृतवर्माने शिबिरमें आग लगादी। इस अग्निके प्रकाशमें भयमर भूतके समान अश्वत्थामा संहार करता रहा। जिसने भी भागनेका प्रयत्न किया, वह कृपाचार्य अथवा कृतवर्माके हाथों मारा गया। रात्रिके तीसरे प्रहरके अन्ततक यह संहार चलता रहा। तीनों जब वहाँसे चले तो शिबिर जल रहा था और वहाँ कोई जीवित नहीं बचा था। कौरवों के शिबिर में रात्रि के समय अश्वत्थामा आया और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा से बोला आप यहां रूकिये, यह मेरा युद्ध है किन्तु आप दोनों से मैं यह आशा अवश्य करता हूँ कि आप यहां से किसी को भागने का अवसर नहीं देंगे। यह युद्ध दुर्योधन की पराजय पर समाप्त नहीं होगा। यह युद्ध समाप्त होगा एक सन्नाटे पर, एक शून्य पर। यदि दुर्योधन नहीं तो पांडव भी नहीं होंगे। इसी रणभूमि में दुर्योधन के शव के साथ-साथ उन पांडवों के शव भी होंगे। अश्वत्थामा अकेले पांडवों के शिबिर में गया जहां धृष्टद्युम्न सो रहा था और सोते हुये धृष्टद्युम्न के पेट में तलवार घोप कर उसे मौत की नींद सुला दिया।

शिबिरमें उसने प्रवेश किया। वहाँ उसने देखा सब योद्धा शिबिरमें थक-हारकर अचेत होकर सोये पड़े हुए है। उनके पास रेशमी शय्यापर उसे धृष्टद्युम्न सोता हुआ दिखायी दिया। उसने धृष्टद्युम्नके बाल पकड़कर उसे धरती पर पटक दिया। उसकी छाती और गले पर अपने घुटने टेक दिये। धृष्टद्युम्न बहुत चिल्लाया पर अश्वत्थामा उसे पशुकी तरह घसीटता रहा और बोला अरे कुरुकलंक। अपने आचार्यकी हत्या करनेवालोंको पुण्यलोक नहीं मिल सकते और ऐसा कहकर उसने कुपित होकर पैरोंकी चोटोंसे धृष्टद्युम्नके मर्मस्थानोंपर प्रहार किया।

इसके पश्चात् अश्वत्थामाने उत्तमौजा और युधामन्यु का वध किया। इसीप्रकार नींदमें पड़े हुए अन्य महारथियोंपर भी आक्रमण किया। इसके बाद उसने तरह-तरह की शत्रुओंसे शिखण्डी और प्रभद्रक वीरोंको मारना आरम्भ किया। अश्वत्थामाको पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकिसे भय रहता था। इससमय उनके पास न रहनेसे उसने यह नृशंस कर्म कर डाला।

बाहर सैनिक पहरा दे रहे होते हैं वे आपस में बाते कर रहे होते हैं। सैनिक बोला अरे भाइयों का प्रेम इसे कहते हैं विजय

की पहली रात है और पांचो भाई एक साथ एक ही शिबिर में सोये हुये है। अश्वत्थामा चोरों छिपे से पांडवों के शिबिर में चले आता है जहां पर पांचों द्रौपदेय सो रहे होते हैं वह इस भ्रम में था कि पाँचों पाण्डव यहाँ सो रहे हैं और बाण चलाकर एक-एक करके उन पांचों का वध किया और सिर काट डाला और भाग जाता है। पहरेदारों ने अश्वत्थामा को देख लिया। अग्नि बाण चला कर पहरेदारों को भी मार दिया।

केवल धृष्टद्युम्नका सारथी किसी प्रकार कृतवर्माकी दृष्टि बचाकर निकल भागा था।

फिर उसने कृपाचार्य और कृतवर्मासे हर्षमें भरकर कहा, मैंने समस्त पाञ्चालोंको, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको और संग्रामसे बचे हुए सभी मत्स्य एवं सोमक वीरोंको नष्ट कर डाला। अब हमारा काम पूरा हो गया। इसलिये जहाँ राजा दुर्योधन हैं, वहीं चलना चाहिये। वे तीनों वीर सम्पूर्ण पाञ्चालवीरों और द्रौपदीके पुत्रोंको मारकर जहाँ राजा दुर्योधन मरणासन्न अवस्थामें पड़ा था, उस स्थानपर आये। उन्होंने जाकर देखा तो इस समय उसमें कुछ ही प्राण शेष था। वह जैसे-तैसे अपने प्राण बचाये हुए था। उसके मुखसे रक्तका वमन होता था तथा उसे चारों ओरसे अनेकों भेड़िये और दूसरे हिंस्र जीव घेरे हुए थे।

तीनों वहाँसे सीधे दुर्योधनके समीप पहुँचे। अश्वत्थामाने बड़े गर्वसे पाण्डव-शिबिरमें सबको मार देनेका अपना पराक्रम सुनाया। कृपाचार्यने कहा, ईश्वर के लिये कोई काम कठिन नहीं है। जो ग्यारह अक्षोहिणी सेनाका स्वामी था वह राजा दुर्योधन इस प्रकार खूनमें तथपथ पृथ्वीपर पड़ा है। कालकी कुटिलता तो देखो जो शत्रुसदन सम्राट किसी समय मूर्द्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, आज वहीं भूमिमें पड़ा धूल फाँक रहा है। जिसके आगे सैकड़ों राजा लोग भयसे सिर झुकाते थे, वही आज वीरशय्यापर पड़ा हुआ है। पहले जिसे अनेकों ब्राह्मण अर्थप्राप्तिके लिये घेरे रहते थे, उसीको आज मांसके लोभसे मांसाहारी प्राणियोंने घेर रक्खा है।

अश्वत्थामा बोला, राजन्। आप तो समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ हैं। आप सब कर्मोंके ज्ञाता हैं। फिर क्षुद्र और पापी भीमने आपको किस प्रकार धोखेसे घायल कर लिया। अवश्य ही कालकी गतिसे पार पाना बडा कठिन है। भीमने आपको अधर्मपूर्वक गदासे आपकी जांघें तोड़ डाली। धिक्कार है भीमको उन्होंने आपको कपट से गिराया। क्षत्रियोंके लिये उत्तम गति है वह आपने प्राप्त कर ली। मुझे महाराज धृतराष्ट्र और महारानी गांधारी की चिन्ता है। आपके सभी भाई मृत्युमुख में चले गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन को धिक्कार है जिन्होंने धर्मका ज्ञान बड़े अभिमान से रखकर भीमको इस अनुचित कार्य करने से रोका नहीं। न जाने ऐसा हमारा कौनसा कर्म है जो हमें आपका साथ देनेसे रोक रहा है। राजन आपके न रहनेपर हमें शान्ति और सुख कैसे मिल सकती है। अब आप सुनिये इससे आपको आनन्द होगा। पाण्डवोंके सात वीर बचे है पाँचों भाई पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि। और कौरवों की ओर से हम तीन- अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा। पाण्डवोंके सब पुत्रोंका हमने वध कर दिया है। आज वापिस धृष्टद्युम्न को भी पशुकी तरह मार गिराया, साथमें शिखंडी भी मारा गया।

दुर्योधन प्रसन्न हुआ- आचार्य पुत्र। धन्य हैं आप। आपने हमारे सब शत्रुओंको समाप्त कर दिया। मेरा प्रतिशोध पूरा कर दिया आपने।

अश्वत्थामाने कहा- यदि श्रीकृष्ण, सात्यकि तथा पाण्डवोंके साथ वहाँ होते तो मैं कदाचित सफल नहीं होता। मैंने पाञ्चालोंको ही नहीं मारा, पाञ्चालीके सभी पुत्रोंको मारकर पाण्डवोंका वंश समाप्त कर दिया।

दुर्योधन बोला, यह तुमने क्या किया आचार्य पुत्र। तुमने हमें जल देनेवाला भी कोई नहीं रखा। दुर्योधनने सिरपर हाथ पटक दिया। हर्ष और शोकके सङ्गममें ही उसकी मृत्युका विधान था। अत: इस समय दोनोंके मिलनेसे उसके प्राण शरीरसे विदा हो गये।

अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आया। अश्वत्थामा बोला, हे मित्र यह शुभ समाचार देने के लिये तो रुक गये होते कि मेरा प्रतिशोध पूर्ण हुआ। हे मित्र पहिले मैंने धृष्टद्युम्न को मारा। फिर उन पांच पांडवों को। मुझे बधाई दो मित्र। मैंने तुम्हारे प्रेम में यह कार्य तो कायरता का ही किया। इसका प्रायश्चित तो करना ही होगा मित्र। वे सब सो रहे थे और वे निहत्थे भी थे इसलिये हे मित्र मुझे कह दो कि मैं महर्षि व्यास के आश्रम में जाकर अपना प्रायश्चित आरम्भ करूं किन्तु हे मित्र तुम्हे इस दशा में छोडकर जाया भी तो नहीं जाता। अश्वत्थामा ने दुर्योधन का दाह संस्कार किया।

महाराज धृतराष्ट्र इस प्रकार पुत्र मृत्यु का समाचार सुनकर चिन्तामें डूब गए और लंबी-लंबी श्वास लेने लगे।

कृपाचार्यके लिए अधिक भय नहीं था। वे हस्तिनापुरमें अपने घर आ गये। उन आचार्यका कोई अपराध भी हो तो पाण्डव उनका अपमान नहीं करेंगे। कृतवर्माको स्वयं श्रीकृष्णने दुर्योधनको दी जानेवाली सेनाका सेनापति बनाकर भेजा था। जबतक दुर्योधन जीवित रहा, उसके हितका पूरा प्रयत्न कृतवर्माका कर्त्तव्य था। अब जब दुर्योधन मर गया, उसकी सेनाका अन्तिम विजर्सन हो गया, कृतवर्माका यहाँ कर्त्तव्य समाप्त हो गया। वह द्वारिकाके लिए चल पड़ा। उसे कोई दोष या उपालम्भ नहीं दे सकता था। उसके लिए कोई भय नहीं था।

धृष्टद्युम्नका सारथी किसी प्रकार भागकर बचा था। उसने जाकर धर्मराज युधिष्ठिरसे पुकार की रोते-चिल्लाते, महाराज। अश्वत्थामाने क्रूर पशुकी भाँति सबको सोते समय मार दिया। आपके शिबिरमें कोई नहीं बचा।

उसने कहा महाराज राजा द्रुपदके पुत्रोंसहित सब द्रौपदी पुत्र शिबिर में निश्चिन्त होकर सो रहे थे। वे सभी अश्वत्थामा के हाथों मारे गये।

सारथीकी यह अमङ्गल वाणी सुनकर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर पुत्रशोकसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उस समय सात्यकि, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेवने उन्हें सँभाला। होश आनेपर वे विलाप करते हुए कहने लगे, हाय। हम तो शत्रुओंको जीत चुके थे, किंतु आज उन्होंने हमें जीत लिया। हमने भाई, समवयस्क, पिता, पुत्र, मित्र, बन्धु, मन्त्री और पौत्रोंकी हत्या करके तो जय प्राप्त की; किंतु इस प्रकार जीतकर भी आज हम जीत लिये गये। कभी-कभी अनर्थ अर्थ-सा जान पड़ता है तथा अर्थ-सी दिखायी देनेवाली वस्तु अनर्थके रूपमें परिणत हो जाती है। इसी प्रकार हमारी यह विजय पराजय-सी हो गयी है और शत्रुओंकी पराजय भी विजय-सी हो गयी। इस मनुष्यलोकमें प्रमादसे बढ़कर मनुष्यकी कोई और मृत्यु नहीं है। प्रमादी मनुष्यको अर्थ सब प्रकार त्याग देते हैं तथा उसे अनर्थ सब ओरसे घेर लेते हैं। वह विद्या, तप, वैभव और यश किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता।

इसप्रकार अत्यन्त दीनतासे विलाप करते-करते वे नकुलसे कहने लगे, तुम जाओ और मन्दभागिनी द्रौपदीको उसके मातृपक्षकी स्त्रियोंके सहित यहाँ लिवा लाओ। धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल रथपर सवार हो जहाँ पाञ्चालराजकी महिलाएँ और महारानी द्रौपदी थी वहाँ गया। नकुलको भेजकर महाराज युधिष्ठिर शोकाकुल सुहृदोंके सहित रोते-रोते उस स्थानपर आये, जहाँ उनके पुत्र मरे पड़े थे। उस भीषण स्थानमें पहुँचकर उन्होंने अपने खूनमें लथपथ सुहृद और सखाओंको पृथ्वीपर पड़े देखा। उनके अंग-प्रत्यंग कटे हुए थे और बहुतों के सिर भी काट लिये गये थे। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिर बहुत ही खिन्न हुए और फूट-फूटकर रोने लगे। अपने पुत्र, पौत्र और मित्रोंको संग्राममें मरे देखकर वे अत्यन्त दु:खातुर हो गये। उनकी आँखोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ गयी, शरीर काँपनें लगा और बार-बार मूर्च्छा आने लगी। तब उनके सुहृदगण अत्यन्त उदास होकर उन्हें धीरज बँधाने लगे। इसी समय शोकाकुल द्रौपदीको रथमें लेकर वहाँ नकुल पहुँचा।

कृष्ण का रथ आकर शिबिर के सम्मुख रुका ही था कि वे समझ गए कि उनकी अनुपस्थिति में कुछ न कुछ असाधारण घटित हो गया था। लक्षण अच्छे नहीं लग रहे थे। जिस शिबिर में इस समय गतिविधि का भूचाल और विजयोत्सव का उल्लास होना चाहिए था, जिस शिबिर में इस समय सारी सत्ता का केन्द्र स्थापित हो जाना चाहिए था, उस शिबिर पर किसी भयानक शोक की छाया मँडरा रही थी। सारा शिबिर जैसे किसी भयंकर रुदन में लिपटा हुआ था। इतनी नि:स्तब्धता तो पराजित कौरवों के उस समय के शिबिर में भी नहीं थी, जब कृष्ण पांडवों के साथ इस पर अधिकार करने आए थे।

युधिष्ठिर बोले, अनर्थ हो गया गोविंद। मैं शत्रुओं को पूर्णत: जीतकर अंत में फिर उनसे पराजित हो गया। प्रमाद से बड़ा कोई शत्रु नहीं होता। मनुष्य के लिए प्रमाद उसकी मृत्यु ही है। हमें भी प्रमाद रूपी इस नाग ने डस लिया। रात्रि भर में ही तो प्रलय हो गया श्रीकृष्ण। आकाश से गाज गिरी और सर्वनाश हो गया। पांचालों के शिबिर पर रात को आक्रमण हुआ और हमारे सारे बंधु-बांधव और पुत्र मारे गए। सब लोग मारे गए। यदि कुछ सैनिक बचे होंगे तो वे इस ओर नहीं आए। कहीं भाग गए होंगे। हम तक तो बस धृष्टद्युम्न का एक सारथी ही पहुँचा। उसने बताया है कि रात को किसी समय शिबिर में होनेवाले चीत्कारों से उसकी नींद टूटी थी। उसने रात को काफी मदिरा पी ली थी, इसलिए सचेत होने में कुछ समय लगा। लगता था कि कुछ लोग शिबिर के भीतर घुस आए हैं। वे सामने पड़नेवाले प्रत्येक व्यक्ति की हत्या कर रहे हैं। जो सामने पड़ा, खड्ग से उसके टुकड़े कर दिए गए, जो बचकर भागा, उसे बाण से मार दिया गया। शिबिर में तीन ओर से आग लगा दी गई। किसी ने हाथी और घोड़े खोल दिए। भगदड़ में किसने किसको कुचला और कौन अग्नि में दग्ध होकर मर गया कुछ पता ही नहीं चला।

भीम बोला, युधामन्यु और उत्तमौजा को भी ठीक वैसे ही बिना शस्त्र के कंठ दबा कर मारा गया है। उसके पश्चात् कदाचित् शिबिर में लोग जाग गए थे। पाँचों पाण्डव पुत्रोंके सोते हुए सिर काट दिये।

कृष्ण बोले, हम दुर्योधन के माता-पिता के दुख की चिंता कर रहे थे और वे हमारे शिबिर पर रात्रि को आक्रमण कर उसे अग्निसात कर रहे थे। कृष्ण की आँखें क्रोध की लालिमा लिए हुए थी, और शिखंडी?

अर्जुन ने कहा, दो खंडों में कटा शिखंडी का शव भी प्रभद्रकों के शवों के मध्य पड़ा है।

कृष्ण ने पूछा, द्रौपदी को सूचना दे दी गई?

३) द्रौपदी का अपने पुत्रोंकी मृत्यु पर विलाप

अर्जुन ने बताया, उपप्लव्य जाकर नकुल उसे ले आया है। वह शिबिर में ही है। पल-पल में अचेत हो रही है। उसका उपचार करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उसके मातृपक्ष की कुछ स्त्रियाँ भी आ गई हैं।

द्रौपदी राजा युधिष्ठिरके पास पहुँचकर पृथ्वीपर गिर पड़ी।

पिता की मृत्यु के बाद पांचाल देशवासी कातर हो चुके हैं। मैं उस दिन पांचाल देश गई थी, बस, यह बता देने के लिए कि वे अनाथ नहीं हैं। मेरे वीर भ्राता, द्रोणहंता धृष्टद्युम्न शत्रु को जीतकर जीवित बचे हुए हैं। हस्तिना में शांति स्थापित होते ही वह लौटकर प्रजापालन करेगा। भाभी को धृष्टद्युम्न का कुशल क्षेम देकर संतोष हुआ। भाई के लिए वे कातर बनी प्रतीक्षा कर रही थीं।

रात-भर दोनों भाभी-ननद सारा दु:ख भूले आगामी सुख के सपने संजोती रहीं। अभिमन्यु, घटोत्कच, बेलालसेन, वगैरह सौतों के सारे पुत्र मृत हैं, फिर भी ईश्वर की कृपा से मेरे पांचों पुत्र सकुशल हैं, उन्हें देखकर और पुत्र गंवाने का दु:ख शायद भुलाने की चेष्टा करूं। वे शैशव से ही मातृसुख से वंचित रहे। उनके जन्म के कुछ दिन बात ही तो मैं वन चली गई थी। अब जी-भरकर वात्सल्य दूंगी और इसके अलावा इस जीवन में और किस सुख-भोग की आकांक्षा रह गई।

राज्य के लिए युद्ध, रक्तपात, मृत्यु, हाहाकार देख-देखकर राज-पाट, धन-दौलत से मन का मोह टूट गया है। रानी बनने में और कोई आनंद नहीं रहा। बेटे बड़े हो जायें, उन्हें राज्यभार सौंपकर राजमाता बनकर रहूंगी। पंचपति की पत्नी बनकर तो जीवनभर झमेले में पड़ी रही। पंचपुत्र की जननी बनकर अब कुछ दिन तो चैन की सांस लूंगी। उनकी हंसी-खुशी में ही जीवन को तलाशने की चेष्टा करूंगी... मेरे प्राण-धन अभिमन्यु को।

रातभर नींद में सपने देखती रही- हंसते-खेलते बच्चों का मुंह, उनके विवाह का दृश्य, राज्याभिषेक और उनके बेटों को खिलाने, लाड़ करने का दृश्य। पुष्पहार लिए स्वर्ग की अप्सराएं उन्हें पहनाने उतर रही हैं शायद मेरी बहुएं अप्सरा जैसी दिख रही हैं सपना टूट गया। हृदय कांप उठा। यह सब क्या देखा? कैसा होगा इसका फल?

चौंककर जाग गयी वह। हुआ क्या, समझ न पायी। उर-स्पन्दन तीव्र हो गया। अकारण ही क्या? सब कुछ तो कुशल है। महासमर समाप्त हो चुका था। सत्य की विजय हुई। धर्म की विजय हुई। पाण्डवों को विजयश्री उपलब्ध हुई थी। फिर मन में ऐसा आतंक क्यों? कभी-कभी पूर्व में उसने ईश्वरीय न्याय पर सन्देह प्रकट किया था, किन्तु अब वह दैवीय न्याय से अभिभूत थी। तो फिर आज अचानक यह व्याकुलता क्यों? भाँति-भाँति के दु:स्वप्न नयनों में रात्रिभर करवट बदलते रहे थे, और वह व्याकुल मीन-सी अपनी शय्या में छटपटाती रही। स्वप्न क्या थे, स्मरण नहीं। उर-स्पन्द और भी तीव्र हुआ जा रहा है। कुछ आतंकित, कुछ आशंकित-सी उठकर बैठ गयी। कहाँ क्या हो गया प्रभु? अन्तर में विचित्र-सी शून्यता, एक घातक-सी रिक्तता उभरी चली आ रही है। दक्षिण नेत्र रह-रहकर फड़क रहा है। सब द्वार बन्द थे। उसे घुटन हो रही थी, श्वास अवरुद्ध हो रहा था। उठकर गवाक्ष-पट खोल दिये। वातायन से बाहर झाँका.. और वह सिहर उठी। बाहर वायु करुण-क्रन्दन कर रही थी। नख से शिख तक तन में सिहरन दौड़ गयी। ध्यान दिया- केवल वायु नहीं रो रही, हृदय दहलानेवाले स्वर में कोई वन-विडाल भी विलाप कर रहा था। उसका रुदन-स्वर, वायु के क्रन्दन-स्वर के साथ-साथ चढ़ता था, साथ-साथ उतरता था। नहीं। केवल वन-विडाल ही नहीं श्वान रो रहे थे- श्वानों के सामूहिक क्रन्दन ने जैसे उसके अन्तस्तल को झझकोर डाला और अब श्रृगालों के भी रुदन-स्वर उठ चले। कितने श्रृगाल। कितने... कितने... कितने श्रृगालों का समवेत रुदन-स्वर ऊँचा उठ गया... और ऊँचा... और तीव्र, और ऊँचा। भगवन्, नहीं... नहीं.. भगवन्।

उसकी जिह्वा तालु से चिपक गयी जैसे। कण्ठ सूख गया। हाथ ठण्डे पड़ गये। भाल पर बड़े-बड़े स्वेदबिन्दु छलछला आये। हृदय जैसे फट जाएगा, और अथाह पीड़ा से वह शय्या के किनारे हाँफती हुई- सी बैठी ही थी कि प्रकोष्ठ के बाहर टँगे स्वर्णपिंजरों में शुक-सारिका वेग से चीत्कार करके फड़फड़ा उठे। वह थरथराते चरणों से दौड़ पड़ी।

पक्षी फड़फड़ा रहे थे। स्वर्णपिंजर वेग से डोल रहे थे और... और वायु रो रही थी। श्वान रो रहे थे। वन-मार्जारी लयबद्ध स्वर में रोये जा रही थी। श्रृंगाल-स्वर और ऊँचा हो चला था।

छाया। छाया... छाया। चारों ओर छायाएँ। हिलती... डोलती... काली काली भयावनी छायाएँ। कौन है? कहीं कोई नहीं? दीप प्रकम्पित थे। काँपती.. थरथराती दीपशिखा से- स्तम्भों की छायाएँ हिल रही थीं। शाखाओं-सी डोल रही थीं झूल रही थीं। सब कुछ हिल रहा था अधर में जैसे कुछ भी स्थिर नहीं। कुछ भी स्थायी नहीं। और वायु रो रही थी।

उसके हाथ-पाँव काँप रहे थे। हृदय कँपकँपा रहा था। स्वर्ण-पिंजर काँप रहे थे। पक्षी थरथरा रहे थे। शुक भयातुर हो स्वर्णदण्ड को चंचु से कसकर दबाये था और व्याकुल हो, रह-रहकर चीत्कार किये जा रहा था। सारिका पूरे पिंजन में आकुल हो फड़फड़ाती हुई चक्कर पर चक्कर काटे जा रही थी और वायु... रो रही थी।

छायाएँ चारों ओर छायाएँ। विकराल काली छायाएँ। कुरुक्षेत्र से उठी प्रेतात्माएँ। रणक्षेत्र से उठीं मृतात्माएँ। भयावह।

दैत्याकार। प्रेतमात्माओं-सी छायाएँ।

वातायन के निकट झूलती वृक्ष-शाखा पर अचानक किसी भयंकर उलूक की विकराल खनखनाती-सी हँसी गूँज गयी और वायु धाड़ें मारकर रो पड़ी। पांचाली ने दोनों हाथों से अपना प्रकम्पित हृदय थाम लिया। हे कृष्ण। हे गोविन्द। हे मुरारे। पाण्डव-आर्यपुत्र चिंरजीवी हों, वासुदेव। आज विजय शिखर पर चढ़कर मेरे चरण क्यों काँप उठे? असंख्य कष्टों में धीर मन शान्त रहा। अब सुखद प्रहर में विकल हो-हो उठता है। कितने अपशकुन। ये अपशकुन मेरा आत्मबल छीन ले रहे हैं जनार्दन। इन्हें रोको। मेरा धीरज हरे ले रहे हैं रोको। जनार्दन, इन्हें रोको। उसके मुख से चीत्कार निकल गया।

जनार्दन इन्हें रोको। जनार्दन, इन्हें रोको। शुक-सारिका दोनों चीत्कार कर उठे। वह नखशिख से काँप रही थी। क्या अमंगल घटेगा? कितनी दीर्घ यह रात्रि।

कहाँ हैं पार्थ? धर्मराज? वृकोदर? सहदेव नकुल कहाँ हैं कहाँ हैं सब? मैं एकाकिनी क्यों? गोविन्द कहाँ हो तुम? वह भयातुर हो बोले जा रही थी। अचानक उसका पूरा प्रकोष्ठ विकल विडाल-रुदन से गूँजकर काँप उठा। उस बूढ़ी मार्जारी ने प्रकोष्ठ में आकर लयबद्ध भयंकर विलाप प्रारम्भ कर दिया। पांचाली कँपकँपा गयी। अन्तर तक। हाड़ तक कँपकँपा गये। हृदय थामकर खड़ी रह गयी जड़वत्। मार्जारी के विकल रुदन से रोम-रोम में जैसे क्रन्दन भर गया।

और फिर ठनठनाता हुआ हँस पड़ा उलूक, और वायु रो रही थी।

कैसी आहट? पगध्वनि? नहीं। भ्रम। कोई नहीं। निपट एकान्त। पर छाया विराट यह तो बढ़ती आ रही है। विकराल उँगलियाँ फैलायें... मृत्यु। मृत्यु। मेरे गृह में। ओह भगवन। रक्षा... रक्षा... मेरे सौभाग्य की रक्षा। उसने पर्यंक का अवलम्ब ले स्वयं को सँभाला।

सूर्योदयसे पूर्व समाचारही यह मिला। श्रीकृष्णके साथ सब पाण्डव सीधे शिबिर आये। सात्यकिने उपप्लव्यके शिबिरमें जाकर समाचार दिया। सब स्त्रियाँ वहीं थीं। वे रोती-क्रन्दन करती वहाँसे किसी प्रकार आ गयीं।

कौन? कौन है वहाँ... स्तम्भ की आड़ में? सामने क्यों नहीं आते? वह काँपते स्वर में कड़क उठी।

कोई उत्तर नहीं। उत्तर में बूढ़ी मार्जारी पुन: चीत्कार कर बिलख पड़ी। ठण्डी-सी कँपकँपी ने उसे पुन: जकड़ लिया। शुक-सारिका व्याकुल हो चीत्कार कर उठे। वायु विकल हो उठी।

काँपते हाथ उसने दीप-स्तम्भ की काँपती शिखा को बढ़ाया... परछाइयाँ। स्तम्भित परछाइयाँ।

कौन हो तुम लोग? सामने क्यों नहीं आते? छिपकर वहाँ कौन खड़ा है?

वृक्ष-शाखा पर उलूक वेग से खनखनाकर हँस पड़ा और हँसता चला गया। वायु पुन: धाड़ें मार उठी।

धर्मराज। नहीं-नहीं। कोई नहीं। अरे। धर्मराज आप। यहाँ इस वेला में। ऐसे अशक्त। निढाल। क्या हुआ धर्मराज? किसको क्या हुआ? आर्य अर्जुन?

सकुशल हैं देवी। पीछे आ ही रहे हैं धर्मराज भर्राये से स्वर में बोले।

द्रौपदी बोली, आर्य भीम? युधिष्ठिर बोले, स्वस्थ हैं।

द्रौपदी बोली, आर्य नकुल आर्य सहदेव? युधिष्ठिर बोले, सब कुशल हैं देवी। द्रौपदी बोली, तो आप अन्धकार में स्तम्भ की ओट में छिपकर क्यों खड़े हैं प्रकाश में क्यों नहीं आते? युधिष्ठिर बोले, देवी के समक्ष आने योग्य नहीं।

द्रौपदी बोली, ऐसा क्या हुआ किन्तु ? क्या हो गया? क्या हो गया? क्या हो गया? शुक-सारिका, फड़फड़ाकर चीत्कार कर उठे। बूढ़ी मार्जारी शीश झुकाकर एक पंजे से आँखें ढँककर फूट-फूटकर हृदयविदारक विलाप कर उठी।

कोई उत्तर भी नहीं देता। कौन। माधव। आप यहाँ, क्या कारण है? क्या हुआ है? जनार्दन? धर्मराज का कण्ठ क्यों अवरुद्ध है? धर्मराज के मुख पर विषाद की काली छाया क्यों हैं? नेत्र क्यों भरे हैं? बोलो माधव, बोलो क्या हो गया है?

कृष्ण बोले, कृष्णे, धीरज रखो। साहस रखो भारती। तुम क्षत्राणी हो वीर पतियों की पत्नी हो।

द्रौपदी बोली, पहेलियाँ न बुझाएँ लीलामय। मेरे प्राण कण्ठ तक आ गये हैं।

कृष्ण बोले, धीरज पांचाली। पाँचों पाण्डव बन्धु सकुशल यहीं खड़े हैं, अन्धकार में। तुम्हारे समक्ष आने का साहस नहीं उनमें। द्रौपदी बोली, आह.... मधुसूदन। क्यों मेरे धैर्य की परीक्षा ले रहे हैं इस प्रकार?

कृष्ण बोले, कृष्णे। द्रौपदी। तुम.. तुम वीरपत्नी ही नहीं, वीरपुत्री भी हो, वीरमाता भी हो। तुम वास्तव में भारती नहीं, महाभारती हो। कुमार प्रतिविन्ध्य वीरगति को प्राप्त... द्रौपदी बोली, युवराज। प्रतिविन्ध्य, मेरा ज्येष्ठ वत्स। कृष्ण बोले, धीरज रखो कृष्णे। कुमार सुतसोम भी। द्रौपदी बोली, नहीं, नहीं, गोविन्द असम्भव। कृष्ण बोले, सुनना पड़ेगा याज्ञसेनी। वीरपुत्र श्रुतकर्मा, वीर शतानीक और वीर श्रुतकीर्ति भी वीरगति को प्राप्त हुए हैं।

और एकाएक उलूक वेग से अट्टहास कर उठा। मार्जारी चीत्कार कर पड़ी। वज्रपात। वज्रपात।

द्रौपदी बोली, पाँचों पुत्र। पाँचों वत्स। यह असम्भव है। अविश्वसनीय। कहाँ चले गये? क्यों चले गये? कैसे चले गये? मेरी गोद सूनी करके अचानक? उत्तर दो मधुसूदन उत्तर दो।

उत्तर दो मधुसूदन उत्तर दो। शुक-सारिका चीत्कार कर उठे।

सम्भवत: मध्यरात्रि हो गयी थी। कहीं से एक स्त्री की हृदय-विदारक चीखें सुनाई देने लगीं। तीक्ष्ण बोल सुनाई दे रहे थे- हे अच्युत, हे माधव, हे मिलिन्द, मधुसूदन, मेरे साथ घात हुआ है। मैं लुट गयी। मेरे सारे अंकुरों को उस नीच ने निद्रितावस्था में ही काट डाला। जब सारा जग सोया हुआ होता है तब मैं जागता रहता हूँ। कहनेवाले हृषीकेश, आज ही कैसे सो गये तुम? उठो कृष्ण, उठो।

सात्यकि तड़ाक से आस्तरण पर उठ बैठा। आक्रोश करनेवाली स्त्री कोई अन्य नहीं साक्षात् पाण्डवपत्नी द्रौपदी थी। शिबिर में भक-भक करता हुआ एक पलीता उठाकर सात्यकि उस चीत्कार की दिशा में दौड़ने लगा। शिरस्त्राण धारण करने का सात्यकि को भान ही नहीं रहा। सात्यकि के यादव-सैनिक भी सात्यकि के पीछे-पीछे दौड़ने लगे। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हुआ है। सात्यकि को आभास हुआ कि शीघ्र गति से वह आक्रोश कृष्ण के शिबिर की ओर बढ़ा जा रहा था। सात्यकि भी दौड़ता हुआ कृष्ण के शिबिर में पहुँचा। वहाँ काषाय वस्त्रधारी उद्धव भी उपस्थित थे। आक्रोश करती द्रौपदी को दोनों सान्त्वना दे रहे थे। कृष्ण उनसे पूछ रहे थे, क्या हुआ कृष्णे? पांचाली। क्या हुआ है?

पांचाली स्तम्भ में शीश मारकर फूट-फूटकर रो पड़ी। उसके साथ सब रो रहे थे। श्रृगाल हो रहे थे। श्वान रो रहे थे। शुक-सारिका रो रहे थे। बूढ़ी मार्जारी रो रही थी और वायु रो रही थी।

धर्मराज व्यथित स्वर में बोले, अर्जुन आगे आओ देवी द्रौपदी को ऐसे दु:खमें सान्त्वना देना मेरे वश में नहीं.. तुम ही आगे बढ़ो, उन्हें सँभालो, धीरज बँधाओ।

अर्जुन निढाल खड़े थे- स्तम्भ पर तन का भार डाले। शाल-स्कन्ध झुके हुए थे। मुखमण्डल पर विषाद की कालिमा पुती हुई थी। नेत्रों में गंगा-यमुना उमड़ रही थीं। एक ही दिन में जैसे तरुणाई गँवा बैठे हों- असक्त, दुर्बल, दु:खी।

पांचाली दु:ख विक्षिप्त थी। भूमि पर व्याकुल हो छटपटा रही थी, ओ री पुत्रहीना। अभागी द्रौपदी, तू ही क्यों न मर गयी। हतभागा। दूसरी ओर थे भग्नहृदय सव्यसाची। वे कहाँ से उसे सँभालते? निढाल स्कन्ध। शिथिल बाहु। मन में पीड़ा का

अथाह उमड़ता सागर। अभिमन्यु-वध का आघात तो हृदय को वज्र बनाकर उन्होंने सह लिया था। अभिमन्यु शत्रुओं के चक्रव्यूह में मृत्युमार्ग द्वारा मुक्त हो गया, किन्तु अर्जुन आघातों के चक्रव्यूह में फँसे थे। सुभद्रा की वेदना। अबोध बालवधू उत्तरा का दारुण विलाप उनके कानों में सतत गूँजता रहता। अभिमन्यु के वध से प्रतिशोध-उन्मत्त होकर उन्होंने साक्षात् भयंकर रुद्रदेव की भाँति रणक्षेत्र में संहार-ताण्डव कर डाला था। तब उनका मन पराजित नहीं हुआ था। किन्तु अब कालपक्षी भयंकर डैने फड़फड़ाता आया और सबकी असावधान स्थिति में झपटकर पाँचों पुत्ररत्न ले उड़ा। अर्जुन हाथ मलते रह गये। अर्जुन जो पाण्डवों के मेरूदण्ड थे, जिन पर सब कुछ निर्भर था, जिनके शौर्य की प्रशंसा सर्वत्र हो रही थी, जिनको विजय का श्रेय मिला था, जिनके कण्ठ में विजयश्री वैजयन्ती-माल्य-सी झूल रही थी। वे हारे-थके अर्जुन हाथ मल रहे थे।

अर्जुन विकल होकर आर्तनाद कर उठे, अरे माधव, हम विजयी होकर भी आज पराजित हो गये हम लुट गये, माधव।

पार्थ टूट रहे हैं। पांचाली अर्जुन के आर्तनाद से काँप उठी। यह उचित नहीं। वह पार्थ को टूटने न देगी, झुकने न देगी। फिर कौन गाण्डीव धारण करेगा, कौन शरसन्धान करेगा? कौन प्रत्यंचा चढ़ाएगा? पुत्रवधू का प्रतिशोध कौन लेगा? वह विकल हो रोती जा रही थी और मन में पार्थ महामेघ के समान घुमड़ रहे थे।

धर्मराज कभी पांचाली को देखते, कभी पार्थ को देखते।

श्रीकृष्ण गम्भीर हो उठे, अर्जुन, तुम भी विचलित हो गये। तुम्हारे और कृष्णा जैसे वीर-धीर जन जब टूटेंगे तो धर्म धारण करनेवाला कौन बचेगा? तुम वीर क्षत्रिय माता हो भारती। और तुम क्षात्रधर्म के मेरुदण्ड हो भारत। संयत हो बन्धु, संयत हो।

पांचाली विकल हो विलाप किये जा रही थी, अहो माधव। यह कालरूपी प्रभंजन कैसा जिसके एकही झोंके से पाँचों कुलदीपक बुझ गये? उन अबोध बालकों को युद्धक्षेत्र क्यों भेजा धर्मराज? उनकी मृत्यु का समाचार अब तक क्यों छिपाये रहे मुझसे धर्मराज। स्वयं कर्ण के प्रहारों से आहत हो शिबिर में बैठे रहे और अबोध बालकों को युद्धरत कर दिया? पाण्डववंश निर्मूल कर दिया धर्मराज? समस्त दीप एकसाथ बुझ गये? मेरी दीपमाला खण्ड-खण्ड टूट गयी। अरे कौन दस्युराज मेरे पंचरत्नों को लूट ले गया?

द्रौपदी बोली, गहन निद्रा में सोते वे किशोर। युद्ध के पश्चात? हमारी विजय को पराजय में बदलनेवाला कौन है वह क्रुरकर्मा? किसने कायरों की भाँति पुत्रवध कर हमारा वध कर डाला मधुसूदन? कौन है वह अधम, नीच, घृणित और पाशविक क्षत्रिय जो क्षत्रिय होने योग्य नहीं? कौन है वह कापुरुष- बालघाती?

कृष्ण बोले, वह क्षत्रिय नहीं देवी। वह ब्राह्मण है। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने यह नृशंस कुकृत्य पाण्डव-शिबिर में अर्धरात्रि के समय किया। द्रौपदी बोली, अश्वत्थामा। गुरुवर आचार्य द्रोण का पुत्र। इतना नीच। अधम। ब्राह्मण और ऐसा पतित। बालघाती ब्राह्मण। शिशुघाती ब्राह्मण। किसी ने सुना क्या कभी? अविश्वसनीय। असम्भव।

किसे पूछूं फल? प्रभात में देर है। पर तभी संवाद आ गया- द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने रात में आक्रमण कर धृष्टद्युम्न और मेरे पांचों शिशुओं का सोते समय वध कर डाला है। मैं और भाभी एक-साथ मूर्च्छित हो गईं। कौन सांत्वना देता?

विजय-घड़ी में ऐसी पराजय। भाग्य का क्रूर अट्टहास। इस शोक को कैसे सहूं? पहले ही अभिमन्यु, घटोत्कच आदि के शोक से कातर थी। इस दारुण संवाद ने तो मानो मेरे प्राण ही ले लिए। पुत्रशोक से बड़ा कोई शोक शायद ही हो। इसके लिए कोई भी शब्द पूरा नहीं पड़ता। मृत्यु ही इस शोक की एकमात्र महौषधि है।

अहोऽ वह ब्राह्मण नहीं वह चाण्डाल है। चाण्डाल। जिसने हमारे अबोध निद्रामग्न शिशुओं को सदा के लिए सुला दिया। बालघाती। चाण्डाल। शिशुघाती ब्राह्मण। पाशविक ब्राह्मण। नीच। अधम। पार्थ, उसके मस्तक को खण्ड-खण्ड कर दें जिसने यह अमानुषिक कार्य किया। वह नरपिशाच है मनुष्य नहीं। वह राक्षस है, ब्राह्मण नहीं। पार्थ, उस हत्यारे को भी सदा के लिए सुला दें। अन्यथा वह पूरी पृथ्वी पर बालकों के प्राण हरता फिरेगा। वह अवश्य उन्मादी है, विक्षिप्त है अन्यथा बालहत्या न करता बालवध न करता अरे धर्मराज। उस नरपिशाच को पकड़ा भी या करुणावश छोड़ दिया ऐसे ही?

युधिष्ठिर बोला, देवी। रात्रि के गहन अन्धकार में छिपकर भागने में वह सफल हुआ।

द्रौपदी बोली, धिक्कार। धिक्कार है। आपके निर्दोष पुत्रों का निर्मम वध कर वह क्रूर-हृदय भाग सका और आप निद्रामग्न रहे। और वह अधम भाग सका। उन वीर पुत्रों की माता को यह संवाद देते हुए आपको लज्जा भी अनुभव नहीं हो रही कि पुत्रघाती भागने में सफल हुआ? अरे आर्य सव्यसाची। ऐसे विकल कब तक रहेंगे। जब एक धेनु वत्स पर सिंह ने आक्रमण किया था तो द्वैतवन में मुझे एकाकी छोड़ कैसे व्याकुल हो दौड़ पड़े थे उसकी रक्षा को।

द्रौपदी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। नयनों से सहस्त्रधारा प्रवाहित थी। शब्द नहीं, श्वास नहीं, वाणी नहीं, सब अन्तर में घुमड़ रहा था। और आज एक नहीं पार्थ। मेरे पाँचों गोवत्स उस नराधम आततायी के आखेट हो गये। मेरे मृगछौनों को उस कायर ब्राह्मण ने चोरों की भाँति घुसकर मार डाला और आप शिथिल खड़े हैं, निढाल खड़े हैं?

द्रौपदी अपने पांचों पुत्रों की मृत्यु सुनकर उस शिबिर में आई जहां वे सब शव पडे थे। सब भाई और कृष्ण वहां खड़े आंसू बहा रहे है। द्रौपदी विलाप कर रही है और बोली तुममें से कोई यह बताता क्यों नहीं कि ये बाण किसके हैं जो मेरे हृदय के आर-पार हो गये। इन्हे पहिचानो क्योंकि मुझे उस धनुर्धर का शव चाहिये। किसके हैं ये बाण? अर्जुन ने बाण उठाकर देखा और बोला ये बाण गुरुपुत्र अश्वत्थामा के हैं। समझी। अपने आंसू पोंछने के लिये उनके मृतक वस्त्र चाहिये और जब तक तुम मुझे उसका शव नहीं दिखलाओगे तब तक मैं अपने भाई धृष्टद्युम्न और पुत्रों का शव लिये यही बैठी रहूंगी।

द्रौपदी बोली, पार्थ। हमारे पंख काट डाले नराधमों ने। जीवन के सुरम्य नीलाकाश में हम अब कभी उमंग से, उल्लास से निश्चिन्त न उड़ सकेंगे। पूर्व की भाँति स्वच्छन्द नहीं आनन्दमग्न नहीं। हृदय में बोझिल वेदना सदा बनी रहेगी। कैसी विधि की विडम्बना। जीवन में कभी पुत्र-सुख का आनन्द ही न ले पायी। पथ-पथ भटके हम लोग। और जब नीड़ मिला तो उसकी ऊष्मा नहीं रही। हमारे नन्हें शावक सदा के लिए हमसे विलग हो गये अहो दुर्भाग्य। जब तेरहवर्षीय वनवास हमारा प्रारम्भ हुआ था, तब मेरा श्रुतसेन मात्र डेढ़-दो वर्ष का था। उस दुधमुँहे को छोड़ गयी थी। नन्हें-नन्हे वे बालक तब कोई घुटनों चलता था, कोई तुतलाकर बोलता था और अब। सब समाप्त।

द्रौपदीको गिरते देख महापराक्रमी भीमने लपककर अपनी दोनों भुजाओंमें पकड़ लिया और उसे ढाढ़स बँधाया। तब वह रो-रोकर राजा युधिष्ठिरसे कहने लगी, राजन्। अपने वीर पुत्रोंको क्षात्र-धर्मके अनुसार मारा गया सुनकर आप तो उपप्लव्य नगरमें मेरे साथ रहकर याद भी नहीं करेंगे। परंतु पापी अश्वत्थामाने उन्हें सोते हुए ही मार डाला- यह सुनकर मुझे तो उनका शोक आगकी तरह जला रहा है। यदि आप आज ही साथियोंके सहित उस पापीके जीवनका अन्त नहीं कर देंगे और वह अपने कुकर्मका फल नहीं पायेगा तो मैं यहीं आजीवन अनशनव्रत आरम्भ कर दूँगी।

मैंने सुना है कि अश्वत्थामा के सिरमें जन्मके साथ ही उत्पन्न हुई एक मणि है। सो संग्राममें उस पापीका वध करके उस मणिको ले आना चाहिये। मेरा यही विचार है कि उसे आपके सिरपर धारण कराकर ही मैं जीवन धारण करूँगी। धर्मराजसे

ऐसा कहकर फिर द्रौपदीने भीमके पास आकर कहा, भीम। आप क्षात्रधर्मकी ओर देखकर मेरी रक्षा करें। इन्द्रने जैसे शम्बरासुरको मारा था, उसी प्रकार आप उस पापीका वध करें। यहाँ आपके समान पराक्रमी और कोई पुरुष नहीं है। वारणावत नगरमें जब पाण्डवोंपर बड़ा संकट आ पड़ा था, तब आपहीने इन्हें सहारा दिया था। हिडिम्बासुरसे पाला पड़नेपर भी आप ही इनके रक्षक हुए थे। विराट नगरमें जब कीचकने मुझे बहुत तंग किया था, तब भी आपहीने उस दु:खसे मेरा उद्धार किया था। आपने जिस प्रकार ये बड़े-बड़े काम किये हैं, उसी प्रकार इस द्रोणपुत्रको मारकर भी प्रसन्न होइये।

कृष्ण बोले, नहीं कृष्णे। वे वीर बालक रणक्षेत्र में नहीं मारे गये। युद्ध में भी नहीं मारे गये। वे छल से मारे गये हैं। रात की गहन निद्रा में निमग्न। युद्ध समाप्ति के पश्चात्।

अर्जुन संयत हो रहे थे। हाँ, प्रतिशोध तो लेना ही होगा। अर्जुन का कण्ठ अवरुद्ध हो चला, हाँ, पांचाली। उस आततायी को दण्ड दिया जाएगा। जिसने हमारे प्रवंश दीपक एक बार में बुझा दिये। जिसके कारण हम विजयी होकर भी आज पराजित हो गये। यह सब किसके लिए? कौन शेष रहा। हमारा उत्तराधिकारी? कौन राज करेगा? हमारे बाद पाण्डवकुल का क्या होगा? किन्तु पांचाली। उस दुखदायी नराधम को दण्डित किया जाएगा।

द्रौपदी बोली, केवल दण्डित नहीं धनंजय, जिसने मेरे पुत्रों को परशु से मस्तकोच्छेदन करके मेरी लहलहाती शस्य काट ली मुझे जीवित ही मार डाला पार्थ। उसे जीवित न छोड़ना। उस दुराचारी का कटा मुण्ड एक बार मुझे दिखा देना नहीं तो मैं जीवित न रह सकूँगी पार्थ।

अचानक युधिष्ठिर सतेज हो उठे। नहीं। नहीं। ऐसा न कहो पांचाली। ऐसा कठोर दुराग्रह नहीं। अश्वत्थामा ब्राह्मण है, अवध्य है। ब्राह्मण का वध करने को कह रही हो? हम क्षत्रिय होकर ब्राह्मणवध करेंगे। ब्राह्मण हमारे पूज्य हैं। नहीं। पांचाली। यह अनुचित होगा, अनीतिपूर्ण होगा, अधर्म होगा। यह क्षत्रिय धर्म का उल्लंघन होगा।

नेत्रों में लहराता अश्रुसिन्धु क्षणभर में वह कण्ठ उतार गयी। पांचाली जैसे अचानक अगस्त्य मुनि बन बैठी। उसके विशाल नेत्रों में अब जल नहीं था, अब अग्नि थी- प्रखर अग्नि। अश्वत्थामा वहाँ होता तो भस्म हो गया होता। ऐसी दाहक शक्ति थी उसकी आग्नेय दृष्टि में। उसका हृदय दहका रहा था। वाणी दहक रही थी। नेत्रों से अग्निबाण छूट रहे थे। वह सम्पूर्ण ज्वालामयी हो उठी।

द्रौपदी बोली, धर्मराज। क्या आप सदा ही क्षत्रिय धर्म का प्रतिपालन करते आये हैं? आप तो युद्धविमुख थे, जबकि युद्ध ही क्षत्रिय का धर्म है। और सूतपुत्र कर्ण की बाणवर्षा से घायल हो आप शिबिर में नहीं भाग आये थे? स्वयं पराजित होकर अपनी कायरता छिपाने को आपने पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन को ताड़ना नहीं दी कि वे यदि कर्ण वध नहीं कर सकते तो गाण्डीव किसी और को सौंप दे? यही था क्षत्रिय धर्म। और आपका क्षत्रियोचित आचरण? सौभद्र की रक्षा का भार लेकर भी उसकी रक्षा नहीं की। आज पाँचों पुत्रों की जघन्य हत्या हो गयी तो आप कितने सहज भाव से कह रहे हैं कि बालघाती भाग गया। धिक्कार है आपको। यही है वीरोचित धर्म ? आपका सारा धर्म केवल शब्दजाल है, जिसमें कहीं कर्म को स्थान नहीं, कर्मठता को स्थान नहीं, कर्त्तव्य को स्थान नहीं। शब्दजाल- कोरा और थोथा शब्दजाल।

और धर्मराज। इतने भयंकर युद्ध का फल भी तो सर्वाधिक आप ही को उपलब्ध होगा। राज्यारोहण आपका होगा। और जिन पुत्रों ने आपके लिए प्राणों की आहुति दे डाली, उन्हें क्या मिला? द्रौपदी की आँखें डबडबा आयी। वे वीर पुत्र वीरता से लड़े, ताकि आपको खोयी राजलक्ष्य पुन: उपलब्ध हो सके। आपके अनुज आपके लिए संग्रामरत रहे मृत्यु से जूझते रहे। अब विजय प्राप्त हो गयी तो उन वीर बालकों के जघन्य वध को भी विस्मृत कर देंगे?

अर्जुन उससे हाथ जोड़कर अनुनय कर रहे थे। पांचाली। पांचाली। बस देवी। भीम हाथ बढ़ाकर रुकने का अनुरोध कर रहे थे। गोविन्द ने कहा, नहीं धनंजय, कृष्णा को बोल लेने दो। वह दु:खी है। भीम। उठो जाकर अश्वथामा को पकड़ लाओ। सबसे अधिक चिन्ताजनक स्थिति द्रौपदी की थी। उनके पाँचों पुत्र मार दिये गये थे। वे बार-बार उनके शवोंके समीप मूर्छित होकर गिरती थीं- हाय। इन्होंने मेरी कुक्षिसे जन्म लेकर भी यह अपमृत्यु प्राप्त की। श्रीकृष्णके सम्मुख मरते, इन सर्वेशकी सेवा करते, इनका स्मरण करते, यह सौभाग्य भी इन्हें नहीं मिला।

रक्त-समुद्र में छिन्न-मस्तक सोये हैं निष्पाप पुष्प की तरह मेरे पांचों कोमल शिशु प्रातविद्य, स्वत:सोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतासन। होठों से हंसी बुझी नहीं, रात का कोई मीठा-सा सपना भी पलकों से पुंछा नहीं।

पुत्रों के शव बार-बार गोद में लेकर विलाप करती रही। कभी किसी का छिन्न-मस्तक, कभी किसी का धड़, छाती से लगाकर बेहोश हो जाती। एक-साथ पांच-पांच पुत्र खो बैठनेवाली जननी का हृदय कैसे धीर धरता।

भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, सभी द्रौपदीको आश्वासन दे रहे थे। सहसा वह सिंहनीके समान दहाड़ उठी- मेरे पुत्रोंको मारनेवाला जीवित है और आप सब मुझे शोक-त्यागका उपदेश करते हैं।

मेरे पंचपति सब शोकाभिभूत। आज विधाता ने सबको पुत्रहीन कर दिया है। एक-दूसरे से आंख चुराते नीचे देख रहे हैं। बेटों के रुधिर में आंसू मिल रहे हैं। सिर्फ गोविंद सबको सांत्वना दे रहे हैं।

द्रौपदीदेवी के बचपन के विविध रूप पांचालों ने देखे थे। यौवन-काल के उनके भिन्न-भिन्न रूप पाण्डवों ने देखे थे। इस समय का उनका रूप हम तीनों यादव- कृष्ण उद्धव और सात्यकि देख रहे थे। अनिवार्य वेदना से वह कुलस्त्री ठीक से बोल भी नहीं पा रही थी। वे निरन्तर आक्रोश करती जा रही थीं- मेरा प्रतिविन्ध्य मेरा सुतसोम- मेरा श्रुतकीर्ति- मेरा शतानीक-मेरा श्रुतसेन हम इतना ही समझ पा रहे थे कि अपने पाँचों पुत्रों के नाम ले-लेकर वे आक्रोश करती जा रही थीं। किन्तु क्यों? किसलिए? उनका आक्रोश थम नहीं रहा था और हमारा सम्भ्रम मिट नहीं रहा था। कृष्ण ने ममतापूर्वक उनके केशों पर हाथ फिराते हुए पूछा, सखि श्यामले। क्या हुआ? शान्त हो जा- सँभल जा क्या हुआ तुम्हारे पुत्रों को?

सिसक-सिसककर और अश्रुधारा बहाते हुए द्रौपदी ने कहा, उस नीच ने मेरे सोये हुए पाँचों पुत्रों का वध किया है। मेरे धृष्ट भैया को भी उसने नींद में ही मार डाला है।

द्रौपदी के पीछे-पीछे अब तक कृष्ण के शिबिर में पहुँचे पाण्डव अपनी पत्नी के चतुर्दिक् खड़े हो गये। भीम अपना सुदृढ़ हाथ उनकी पीठ पर फिराते हुए बार-बार पूछ रहा था-शान्त हो जाओ द्रौपदी। बताओ किसने किया है- यह पापकर्म? गद्‌गद हुई द्रौपदी ने बड़ी आशा से भीम की ओर देखकर छटपटाते हुए कहा, तुम जैसे एक से बढ़कर एक पाँच सामर्थ्यवान पतियों के होते हुए भी मैं विधवा ही हूँ। क्या आग लगानी है, तुम्हारे पराक्रम को। भरी द्यूतसभा में कौरवों ने मेरे वस्त्र पर हाथ डाला, फिर भी मैं चुप रही। इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन के बदले उन्होंने मुझे वनवास दिलाया, उसे भी मैंने सह लिया। आज एक माता कि प्राणप्रिय अंकुरों को- तुम्हारे पुत्रों को- उस निर्दय वधिक ने काट डाला है। फिर भी तुम मुझसे शान्त होने को कह रहे हो? कैसे शान्त हो जाऊँ? वीरपत्नी, एक महाराज्ञी शान्त हो सकती है, किन्तु पाँचों पुत्रों की माता? नहीं- कदापि नहीं। अपने हृदय के उबाल को नियन्त्रित करते हुए, सिसक-सिसककर द्रौपदी ने कहा- तुम्हारे- तुम्हारे गुरु-द्रोण के पुत्र उस पापी अश्वत्थामा ने।

कुछ समय बाद मैं अपनापन भूल गई। राक्षसी की तरह भयंकर चीख के साथ गरजी- उस पापी अश्वत्थामा का संहार कर मैं पुत्र-हंता से प्रतिशोध लिए बिना चैन से मर भी नहीं सकूंगी।

HHH(४८५)HHH

कृष्ण बोले, अश्वत्थामा का वध असम्भव है कल्याणी उसके पास अमर होने का वरदान है। युधिष्ठिर बोला, किन्तु उसे हम तुम्हारे पास ले आते है पांचाली फिर तुम जो चाहो उसे दंड दे देना। द्रौपदी बोली, द्रोण पुत्र को दंड दिये बिना मैं विलाप नहीं करूंगी। भीम बोला, तुम प्रतीक्षा करो कल्याणी। युधिष्ठिर पुन: बोल उठे। अश्वत्थामा को पकड़ लाओ। उसका वध नहीं किया जाएगा, किन्तु दण्ड अवश्य दिया जाएगा।

पुन: अग्नि में मनों घृत की आहुत पड़ गयी हो जैसे, पांचाली भभक उठी और बोली, क्यों नहीं वध किया जा सकता? किस शास्त्र के अनुसार ब्राह्मण आततायी का अपराध क्षम्य है? ब्राह्मण आततायी किस धर्म-नियम से अवध्य है धर्मराज? धर्म के अनुसार जो ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से हीन हो जाये एवं राक्षसी कर्मों में लिप्त होकर आततायी हो जाये, वह निर्विवाद रूप से वध्य है। स्मरण नहीं, पुलस्त्यवंशी वेदपाठी रावण ब्राह्मण था। किन्तु उसके ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाने के कारण श्रीराम ने उसका वध किया था। अश्वत्थामा ने जो जघन्य पाप कर्म किया है, वह पैशाचिक कर्म है। मनुष्य एवं देवता उसकी निन्दा करेंगे। तीनों लोकों में उसके छल-कपटपूर्ण राक्षसी कुकर्म की निन्दा होगी। जो उसने किया, वह क्या ब्राह्मणत्व का द्योतक है? वह तर्कबाला पुन: सतेज हो प्रदीप्त हो उठी।

युधिष्ठिर बोला, परन्तु पांचाली। तुम उत्तेजना के वशीभूत हो भूल रही हो कि अश्वत्थामा केवल ब्राह्मण ही नहीं, वह गुरुपुत्र भी है। भरद्वाजपुत्र आचार्य द्रोण हमारे लिए पितृतुल्य थे। गुरुपुत्र का वध कदापि नहीं हो सकता।

द्रौपदी बोली, धर्मराज। यह समय उपदेशों का नहीं। तर्क का नहीं। जिस माता के आँचल में से काल-श्येन पाँचों नन्हे शावकों को झपट ले गया हो, उसे आप धर्मोपदेश दे रहे हैं? जिसकी झोली से काल-दस्यु उसकी समस्त पूँजी लूट ले गया और जो रिक्त आँचल लिये लुटी-सी खड़ी रह गयी, उसे आप तर्क से समझा रहे हैं? ऐसे भावशून्य न बनिए धर्मराज ऐसे वीतराग न बनिए। कृष्णा माँ है। उसका मातृहृदय इस समय सहानुभूति चाहता है, उसे सान्त्वना दें, स्नेह दें। उसके खण्डित हृदय को इस घड़ी आपकी धर्म-विवेचना शान्ति पहुँचा सकेगी क्या?

पर द्रौपदी पर जैसे उनकी उदासीसनता का प्रतिकूल प्रभाव ही हुआ। उसका स्वर वैसे ही प्रचंड था, आपने स्वयं सशकुल रहकर, सारी पृथ्वी का राज्य पा लिया है। अब कभी आपको अभिमन्यु का भी स्मरण नहीं आएगा। द्रौपदी की दीनता नष्ट हो गई। उसके स्वर का तेज लौट आया और बोली, वह सब बाद में। यदि आज आप रणभूमि में पराक्रम प्रकट कर, उस पापाचारी अश्वत्थामा के प्राण नहीं हर लेते तो मैं यहीं अनशन कर अपने जीवन का अंत कर दूँगी।

कृष्ण बोले, पांचाल राजकुमारी। मेरी बात सुनो। अट्ठारह दिनों के असाधारण परिश्रम से प्राप्त की गई हमारी विजय अंतत: दैवयोग से एक प्रकार की पराजय में परिणत हो गई है; किंतु उसका यह अर्थ नहीं है कि युद्ध समाप्त हो गया है। यह महासमर ऐसे ही तो समाप्त नहीं हो जाएगा। धर्मराज युधिष्ठिर प्रतिशोध के समर्थक न होते हुए भी युद्ध से भागने के पक्षधर नहीं हैं। युद्ध को समाप्त किए बिना वे हिमालय की ओर मुँह नहीं कर सकते। तुम मेरे वचन का विश्वास करो, अश्वत्थामा अदंडित नहीं रहेगा। उसे उसके कृत्य का दंड दिया जाएगा।

द्रौपदी बोली, आचार्य द्रोण को मेरे भाई ने मारा था। पांडव तो अपने गुरु की रक्षा ही करते रहे। अब न मेरे भाई हैं, न पुत्र। अब यदि ये यही मानते रहे कि वह पापी अश्वत्थामा इनका गुरुपुत्र है, तो ये उसका वध कैसे करेंगे?

युधिष्ठिर बोले, नहीं। ऐसा नहीं होगा प्रिये। उसे अदंडित कैसे छोड़ा जा सकता है। अश्वत्थामा न अपने शिबिर में हैं, न युद्ध क्षेत्र में, न समंतपंचक में। वह भागकर कहीं छिप गया है। उसे खोज कर उसका वध किया जाएगा।

HHH(४८६)HHH

श्रीकृष्ण उद्विग्न हो उठे थे और बोले, कृष्णा। दु:खी मत हो भारती। अश्वत्थामा ने जो नृशंस कुकृत्य किया है, उसे उसका दण्ड भुगतना होगा। अश्वत्थामा के मस्तक में स्थित प्रदीप्त मणि तुझे प्रमाणस्वरूप लाकर दे दी जाएगी। भीम, जाओ, कार्य पूर्ण करो।

द्रौपदी ने भीम की ओर देखा और बोली, उसका मस्तक नहीं ला सकते तो उसकी मस्तक मणि लाइए। मैं जानती हूँ कि वह अपने मस्तक पर एक मणि धारण करता है। वह उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। कहते हैं कि वह प्राण दे सकता है, किंतु वह मणि नहीं दे सकता। उस मणि को मैं धर्मराज को धारण करवा कर ही जीवन धारण कर सकती हूँ। मध्यम पांडव। मेरे जीवन की रक्षा करो।

क्रोधसे काँपते भीमने गदा उठायी और बोला, वह जीवित नहीं रहेगा। मैं उसे मार दूँगा, भले वह पातालमें भी जाकर छिपा हो। वे उसी समय रथपर बैठकर चल पड़े। अश्वत्थामाके रथ-चक्रके चिह्नोंका अनुगमन करनेको उन्होंने सारथीसे कह दिया। द्रौपदीका यह तरह-तरहका विलाप और भीषण दु:ख देखकर भीम सह न सके। वे अश्वत्थामाको मारनेका निश्चय कर एक धनुष लेकर रथपर सवार हो गये तथा नकुलको अपना सारथी बनाया। उन्होंने बाण चढ़ाकर धनुषकी टंकार की और शीघ्र ही घोड़ोंको हँकवा दिया। शिबिरसे निकलकर उन्होंने अश्वत्थामाके रथका चिन्ह देखते हुए बड़ी तेजीसे उसका पीछा किया।

भीम समझ गए। अन्न-जल त्याग कर मेरा दृढ़-संकल्प देखकर वे खड़े हो गए। तभी खबर आई कि पंचपुत्रों के वध की बात सुन दुर्योधन की प्राणवायु उड़ चुकी है। भीम इस संवाद पर कुछ सजग हो उठे। अश्वत्थामा को पकड़ लाने चल पड़े। फिर एक बार वह भीम रूप देख मैं सहम गई। क्या पृथ्वी प्रलय के द्वार पर है? मृत्यु का क्या कहीं अंत नहीं?

भीम उठकर चले। नहीं आर्य। नहीं... पांचाली की मर्मान्तक, कातर, विह्वल-प्राण पुकार सुन भीम के स्तम्भसम बलिष्ठ पाँव भी थरथराकर थम गये। वह गम्भीर थी। सब अवाक् थे। वह निश्चल थी प्रस्तरप्रतिमा- सी सुदूर कहीं कुछ देखती हुई-सी। और वे सब विस्मय से एकटक उसे निहार रहे थे। इतना उग्र विवाद। इतना प्रबल आग्रह। इतनी धर्माधर्म की चर्चा। और अब यह क्या। यह कैसी विडंबना। अचानक वह वेग से फूट-फूटकर रो पड़ी। सब किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े थे। कितनी रहस्यमय है यह नारी- सब सोच रहे थे। किस ऊहापोह में पड़ी है पांचाली- अर्जुन विचार रहे थे। अवश्य कोई अन्तर्द्वन्द्व इस भग्नहृदया का हृदय-मन्थन कर रहा है- श्रीकृष्ण सोच रहे थे। बिना एक भी शब्द बोले वह वैसे ही अवश-असहाय-सी व्याकुल हो रोती रही। उसके इस निराले अकस्मात् क्रन्दन से पाण्डवपति आक्रान्त थे।

अश्वत्थामा को कहाँ खोजोगे मध्यम? वह जाने कहाँ छिपा होगा। मूषक के समान कहीं अपनी बिल खोद कर उसमें बैठा होगा। भीम बोला, उसके बिल को खोद कर भी निकालूँगा उसे। उसका पता स्वयं धरती बताएगी। धरती पर बने उसके रथचक्रों के चिह्नों को कोई नहीं छिपा सकता। वे न भी मिले तो मैं पवन में से उसकी गंध ढूँढ लूँगा। कैसा पवनपुत्र हूँ, यदि इतना भी न कर पाऊँ। भीम कुछ भावुक हो गया था, तुम उसकी चिंता मत करो पांचाली। बस इस अनशन का विचार त्याग दो। तपस्या ने तुम्हें पहले ही बहुत दुर्बल कर रखा है। मन को स्वस्थ करो। अन्न जल ग्रहण करो। मैं अश्वत्थामा को मार कर ही लौटूँगा। भीम के जाते ही कृष्ण जैसे कुछ विचलित हो उठे। उन्होंने युधिष्ठिर की ओर देखा, जिनका वध हुआ, वे क्या पांचाली के ही बंधु थे? हमारे कुछ नहीं थे? जो रात को मारे गए, वे क्या भीम के ही पुत्र थे? आपके पुत्र नहीं थे? और क्या भीम आपका कोई नहीं है?

पाँचों पाण्डव सिहरकर एक साथ चीख उठे, क्या? भीम तो अपने पुत्र के वधिक का नाम सुनते ही, अपनी प्रचण्ड गदा पुष्ट कन्धे पर उठाकर शिबिर से दौड़ता हुआ निकल भी पड़ा। कृष्ण तीव्र गति के साथ उसके पीछे-पीछे गये। सात्यकि और उद्धव भी खिंचे-से उनके पीछे दौड़े।

भीम पहले धृष्टद्युम्न के शिबिर में आया। वहाँ मति सुन्न कर देनेवाला दृश्य उसे दिखई दिया। धृष्टद्युम्न का सिर कटा और धड़ रक्त में सना हुआ पड़ा था। उसके दोनों ओर सोये पाँचों पाण्डवपुत्रों के शव रक्त से लथपथ होकर अस्त-व्यस्त पड़े थे। सबके वक्षपर खड्ग के क्रूर धाव दिखाई दे रहे थे। केवल अपने मामा के वक्ष पर हाथ रखकर निश्चिन्त औंधे सोये प्रतिविन्ध्य की पीठ पर खड्ग का लम्बा घाव दिख रहा था। सभी पाण्डव-पुत्र निद्रावस्था में ही गतप्राण हुए थे। सर्वत्र जमे हुए लाल-काले रक्त के थप्पे पसरे हुए थे। पर्वत के समान दृढ़ भीम भी अपने पुत्रों और सेनापति की वह दशा देखकर खड़ा नहीं रह सका और हथेलियों में अपना मुँह छिपाकर झट से नीचे बैठ गया। फिर दूसरे ही क्षण कण्ठ की नसें फुलाकर कहाँ है वह निर्दय वधिक अश्वत्थामा? कोई दिखा दे मुझे- वह कहाँ है। चिल्लाता हुआ वह अश्वत्थामा को ढूँढने हेतु उष:काल के धुँधले प्रकाश में ही रणभूमि की पश्चिम दिशा में चल पड़ा। उसके पैरों के नीचे हाथियों की सूँड़ें, अश्वों की पूँछें, मृत योद्धाओं के सिर, मानव-शरीरों के विविध अंग रौंदे जा रहे हैं, इसका भी उसे भान नहीं था। क्रोध में कहाँ है अश्वत्थामा? गरजता हुआ वह रणभूमि में घूमता रहा। सात्यकि भी उसके पीछे-पीछे खिंचे जा रहे थे। अश्वत्थामा कहीं भी दिखाई नहीं दिया। अन्तत: श्रान्त हुआ भीम हताश होकर एक तमाल-वृक्ष के नीचे पाषाण-खण्ड पर बैठ गया। उसे रूआँसा देखकर कृष्ण ने कहा, हे वायुपुत्र, शान्त हो जाओ। तुम्हारे क्रोध को मैं समझ सकता हूँ। अश्वत्थामा का समय अभी नहीं आया है।

कृष्ण बोले, तो फिर अश्वत्थामा को दंडित करने के लिए और भीम की रक्षा के लिए, आप लोग जाते क्यों नहीं? आप जानते नहीं कि अश्वत्थामा में अब केवल पशुता ही बची है। उसका ब्राह्मणत्व और मनुष्यत्व तो जाने कब का समाप्त हो चुका। अश्वत्थामा क्रोधी, दुष्ट, चपल और क्रूर है। उससे भीम की रक्षा आवश्यक है। अश्वत्थामा के पास आचार्य द्रोण का दिया हुआ ब्रह्मशिर नामक देवास्त्र है। उस देवास्त्र के सामने भीम क्या कर लेंगे? अश्वत्थामा मध्यम पांडव के वश का नहीं है। हाँ। उसे बाँधकर भीम को सौंप दें तो शेष वे कर लेंगे।

उसके पास एक मणि है, जिसे वह सदा अपने मस्तक पर धारण करता है। कहते हैं कि वह अत्यंत मूल्यवान मणि है। किसी बड़े से बड़े साम्राज्य से भी अधिक मूल्यवान। उसका प्रभाव अमोघ है। उसे धारण कर लेने पर शस्त्र, व्याधि, क्षुधा, देवता, दानव और नाग किसी का भी भय नहीं रहता।

अर्जुनने भी प्रतिज्ञा की- देवि। द्रोणपुत्रका सिर ला दूँगा मैं तुम्हारे समीप। उसपर पैर रखकर तब पुत्रोंकी अन्त्येष्टि कर तुम स्नान करना। कृष्ण युधिष्ठिरसे बोले, महाराज। अकेले भीमका इस प्रकार जाना बहुत भयमर है। द्रोणपुत्र अत्यन्त क्रूर है और उसे धर्माधर्मका कोई विचार नहीं रहता। उसके पास अमोध, त्रिभुवन भयमर ब्रह्मास्त्र है और वह उसका उपयोग करनेमें एकक्षण भी नहीं हिचकेगा। भीम इस अस्त्राग्निमें रुईके समान भस्म हो सकते हैं। अत: मैं अर्जुनके साथ जा रहा हूँ। केवल अर्जुनके समीप वह ब्रह्मशिरास्त्र है। दूसरा कोई अश्वत्थामा के अस्त्रका प्रतिकार कर नहीं सकता।

सचमुच अश्वत्थामाने उस अमोघास्त्रका प्रयोग करनेमें कोई हिचक नहीं दिखलाई। उसके रथके अश्व तो दौड़ते-दौड़ते थककर गिरे ओर मर गये थे। वह पैदल ही वनमें जाकर छिपा था। भीमको उसके समीपतक पहुँचनेमें बहुत देर लगी, यही कुशल हुई। भीमके सारथीको अश्वत्थामा के रथ-चक्र-चिह्नोंका पीछा करते पहिले समन्तक-पञ्चक क्षेत्रमें दुर्योधनके शवतक जाना पड़ा। वहाँसे फिर वनकी ओर वह मुड़ा। इस समय अर्जुनको लिए अपने गरुड़ध्वज रथपर बैठे श्रीकृष्ण भी भीमके समीप आ गये।

HHH(४८८)HHH

४) अर्जुन का अश्वत्थामा को बन्दी बनाकर सिर से मणि लेना

पौष शुद्ध पंचमी का दिन कुरुक्षेत्र पर उग आया था। भीम को सँभालकर शिबिर की ओर ले आते कृष्ण को दूर पर्वत की ढलान पर एक लहलहाये पलाश-वृक्ष की छाया में पाषाण-खण्ड पर बैठी एक मनुष्याकृति दिखाई दी। उन्होंने भीम से कहा, हे पाण्डव, रणभूमि में लहलहाये पलाश-वृक्ष के समान दिखनेवाले तुम आज साग-वृक्ष के तने जैसे काले क्यों पड़ गये हो? निस्तेज क्यों दिख रहे हो? देखो, वह पलाश-वृक्ष कैसे खिल उठा है।

डबडबायी विशाल आँखों से भीम ने ऊपर देखा। रक्तवर्ण पुष्पों से लहलहाये पलाश-वृक्ष पर घूमकर भीम की दृष्टि उसके नीचे पाषाण-खण्ड पर बैठी मानवाकृति की ओर गयी। उसने दूर से ही अश्वत्थामा को पहचान लिया। वह उच्च स्वर में चिल्लाया, हमारे निद्रित पुत्रों का वध करनेवाले नीच वधिक अश्वत्थामा। तुम्हें अपने पिता की सौगन्ध वहीं रुक जाओ। सामर्थ्य हो तो इस भीम के वक्ष पर खड्ग चलाकर देखो।

इस समय भीम क्रोधातुर होकर शत्रुका संहार करनेके लिये तुले हुए थे; इसलिये इन महारथियोंके रोकनेपर भी वे रुके नहीं। वे इनके देखते-देखते अपने घोड़े दौड़ाते गङ्गाजीके तटपर पहुँच गये, जहाँ उन्होंने अश्वत्थामाको बैठा सुना था। किंतु उस स्थानपर पहुँचकर उन्होंने गङ्गाकी धारके पास ही परमयशस्वी व्यासको अनेकों ऋषियोंके साथ बैठै देखा। उनके पास ही क्रूरकर्मा अश्वत्थामा भी मौजूद था।

वे लोग अन्त:पुर में आए। द्रौपदी इस समय तक कुछ सचेत हो चुकी थी। वह शैया पर बैठी हुई थी और अनेक स्त्रियाँ उसे सांत्वना देने का प्रयत्न कर रही थीं।

द्रौपदी का स्वर काँप गया और उसकी आँखों में अश्रु आ गए और वह बोली, गोविन्द। मनुष्य मरणशील है, यह तो मैं जानती हूँ किंतु मृत्यु का यह कौन-सा रूप हुआ?

कृष्ण का स्वर गंभीर था, महाकाल की लीला को कौन जान सका है सखि। यह सब मनुष्य को स्तब्ध कर देने के लिए है; किंतु महाकाल को कुछ भी तो स्तब्ध नहीं करता। उसके लिए तो यह सब कुछ ही स्वाभाविक है। यह सब होना ही था, इसलिए हुआ। सहसा द्रौपदी की आँखें युधिष्ठिर पर जा ठहरीं, राजन्। सौभाग्य की बात है कि आप क्षत्रिय धर्म के अनुसार यमराज को अपने पुत्रों की भेंट चढ़ा सारी पृथ्वी का राज्य पा गए। अब आप इसका सुखपूर्वक भोग करेंगे।

धर्मराज का स्वर अत्यंत उदासीन था। अपने भाई-बंधुओं तथा अपने पुत्रों को इस प्रकार यमराज को समर्पित कर कोई पृथ्वी के राज्य का उपभोग कर सकता है?

रक्त से सना खड्ग रणभूमि पर ही फेंककर, उस अमूल्य मणि को लेकर भीम पाण्डव-शिबिर की ओर लौटा। प्रिय पत्नी द्रौपदी के हाथ में वह मणि देकर भीम ने पूरी घटना उसे सुनायी। कृष्ण ने भी द्रौपदीदेवी को अश्वत्थामा के चिरंजीव होने के विषय में बताकर उनका पुत्रशोक कम किया।

अश्वत्थामा वेदव्यास के आश्रम में प्रायिश्चत करने आ गया। वेदव्यास बोले, प्रायश्चित तो तुम्हे अवश्य करना चाहिये अश्वत्थामा क्योंकि नि:सन्देह तुमने अपने कुल को कलंकित किया है किन्तु पांडव अभी जीवित हैं। जिन पांचों को पांडव समझे वे तो द्रौपदी पुत्र थे। तब तो मुझे आज्ञा दीजिये ऋषिवर। प्रायश्चित तो मैं पांडवों के वध के उपरान्त ही करूंगा।

महाराज धृतराष्ट्र हस्तिनापुर से बाहर निकलकर, अपने पुत्रों का तर्पण करने के लिए गंगातट की ओर जा रहे थे। मार्ग में ही उन्हें कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और कृतवर्मा मिल गए। उन्हें सारा समाचार देकर वे लोग पांडवों के भय से विचलित होकर एक-दूसरे से पृथक् हो गए। कृपाचार्य तो वापस हस्तिनापुर चले गए। कृतवर्मा ने द्वारिका की राह पकड़ी

और अश्वत्थामा महर्षि वेदव्यास के आश्रम की ओर गए हैं। भीम भी उनका पीछा करते हुए उसी ओर चले गए हैं।

भीम ने कहा, पांचाली ने ठीक ही कहा था कि वह किसी मूषक के समान अपना बिल खोद कर उसमें छुपा बैठा होगा। अब उसे हम कहाँ खोजें।

सबकी आँखें उस ओर चली गईं। भीम ने भी देखा उन संन्यासियों के मध्य अश्वत्थामा वेदव्यास के आश्रम में संन्यासियों के मध्य में छिपा बैठा था। हाँ। वेश तो उसने बहुत परिवर्तित कर लिया था। पर कृष्ण ने ठीक ही पहचाना था। भीम उसकी ओर दौड़ा और बोला, खड़ा तो रह तू पापी। ऋषिवर के पीछे न छिप कायर, सामने आ। आकर सबने ऋषि व्यास को प्रणाम किया। ऋषि ने सबको आशीर्वाद दिया आयुष्मान भव।

कृष्ण हँसे, उसकी मस्तक मणि से। केवल उसके सिर पर ही वस्त्र लपेटा हुआ है। कहते हैं कि इस मणि को धारण करनेवाले को शत्रु का भय नहीं रहता; किंतु अश्वत्थामा को तो उसी मणि ने पकड़वा दिया है।

इधर युधिष्ठिर, अर्जुन एवं कृष्ण भी अश्वत्थामा को ढूंढने निकल पड़े। अचानक हृदय में हल्की-सी भाव लहर उठी। द्रोण-पत्नी कृपी अभी-भी जीवित हैं। उनके जीवन में अश्वत्थामा ही एकमात्र जीने का सहारा है। द्रोण परलोक जा चुके हैं। अश्वत्थामा के मरने के बाद हरिता भी पुत्रशोक की बलि हो जायेंगी। हां, अश्वत्थामा पापात्मा है। पर, कृपी तो मेरी जननी जैसी हैं। जो पुत्रशोक नहीं जानतीं, वह प्रतिशोध के वश होकर किसी और के पुत्र की हत्या करेंगी। मैं कैसे कर सकूंगी? एक पल पहले तो रो रही थी- हे भगवान। शत्रु को भी पुत्रशोक न देना। और अब कैसे अश्वत्थामा की हत्या कर कृपी को पुत्रशोक में डुबो सकूंगी। अश्वत्थामा के वध से मेरे पांचों बेटे तो लौटने से रहे। तो जीता रहे पापी अश्वत्थामा। सारे कष्ट सहकर दीर्घजीवी बने। हस्तिना में कम-से-कम एक मां कृपी तो पुत्रशोक से रक्षा पाये।

५) अश्वत्थामा का अपमान से पाण्डवोंकी ओर ब्रह्मास्त्र का संधान

अश्वत्थामा ने देखा कि उसे पहचान लिया गया है। भीम उसकी ओर आ रहा है। भीम की सहायता के लिए अर्जुन भी खड़ा है, कृष्ण और युधिष्ठिर भी निकट ही हैं। अश्वत्थामा उनसे युद्ध नहीं कर सकता। वे उसे मार डालेंगे। उसकी बुद्धि जैसे जड़ हो गई। इस समय वह और कुछ नहीं सोच सकता था। उसके मन में एक ही बात थी, पांडवों का विनाश। अब उसका मूल्य चाहे जो भी हो।

उसने आँखें बंद कर मन को एकाग्र किया और ब्रह्मशिर का स्मरण किया। मन की तरंगों ने जाकर ब्रह्मशिर को जाग्रत किया। अश्वत्थामा ने उसे मन की विद्युत तरंगों के संकेत भेजे, समस्त पांडवों का विनाश करो।

अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र को अभिमंत्रित किया और बोला हे ब्रह्मास्त्र पांडवों का सर्वनाश कीजिये और ब्रह्मास्त्र चला दिया।

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा यह देखकर कि धनुर्धर भीम तथा उसके पीछे राजा युधिष्ठिर और अर्जुन भी मेरी ओर आ रहे हैं, बहुत डर गया और उसने निश्चय किया कि अब ब्रह्मास्त्रके प्रयोगका समय आ गया है। तुरंत ही उसने उस दिव्य अस्त्रका चिन्तन किया और अपने बायें हाथसे एक सींक उखाड़ ली; फिर ऐसा संकल्प करके कि पृथ्वी पाण्डवहीन हो जाय उसने क्रोधमें भरकर सम्पूर्ण लोकोंको मोहमें डालनेके लिये वह प्रचण्ड अस्त्र छोड़ दिया। इससे उस सींकमें आग पैदा हो गयी और वह प्रलयकालकी अग्निके समान मानो तीनों लोकोंको भस्म करने लगी।

अश्वत्थामा युद्ध करनेकी स्थितिमें नहीं था। उसने क्रुद्ध भीमका सिंह-गर्जन सुना और गाण्डीव चढ़ाये अर्जुनको आते देखा तो जलसे आचमन करके अमोघ ब्रह्मास्त्रका संधान किया। उस अस्त्रके प्रलयकारी तेजको देखकर अर्जुन भी काँप उठे। उन्होंने पूछा, मधुसूदन। यह प्रचण्ड तेज कैसा है जो हमारी ओर बढ़ा आ रहा है? मैं इसे समझ नहीं पाता हूँ। आप

ही अब हमारी रक्षा करें।

श्रीकृष्ण बोले, अर्जुन सावधान। यह अश्वत्थामा द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र है। वह इसे लौटाना नहीं जानता। तुमने कभी उपयोग नहीं किया, इसलिये इसे पहिचानते नहीं हो। केवल इसी अस्त्रसे इसका प्रतिकार सम्भव है। तुम भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करो और फिर दोनोंको लौटा लो।

श्रीकृष्ण अश्वत्थामाकी चेष्टा देखकर ही उसके मनके भावको ताड़ गये थे। उन्होंने अर्जुनसे कहा, अर्जुन। अर्जुन। आचार्य द्रोणका सिखाया हुआ दिव्य अस्त्र तो तुम्हारे हृदयमें विद्यमान है, अब उसके प्रयोगका समय आ गया है। अपनी और अपने भाइयोंकी रक्षाके लिये तुम भी इस समय उसीका प्रयोग करो; क्योंकि ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही रोका जा सकता है। श्रीकृष्णके इस प्रकार कहते ही अर्जुन धनुष-बाण लेकर तुरंत रथसे कूद पड़े। उन्होंने पहले आचार्यपुत्रका मङ्गल हो और फिर मेरा और मेरे भाइयोंका मङ्गल हो ऐसा कहकर देवता और गुरुजनोंको नमस्कार किया। इसके बाद इस ब्रह्मास्त्रसे शत्रुका ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय ऐसा संकल्प करके सम्पूर्ण लोकोंके मङ्गलकी कामनासे अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। तब वह अर्जुनका छोड़ा हुआ अस्त्र प्रलयानलके समान अग्निकी बड़ी-बड़ी ज्वालाओंसे प्रज्वलित हो उठा। इसी प्रकार महातेजस्वी अश्वत्थामाका अस्त्र भी तेजोमण्डलसे घिरकर आगकी भीषण लपटें उगलने लगा। उनके आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको बड़ा भय मालूम होने लगा। आकाशमें बड़ा शब्द होने लगा और सर्वत्र अग्निकी लपटें फैल गयीं तथा पर्वत, वन और वृक्षोंके सहित सारी पृथ्वी डगमगाने लगी।

अश्वत्थामा सत्पुरुष नहीं था। वह स्वभावसे स्वार्थी और क्रूर था। अत: लज्जा और ग्लानिके आगन्तुक भाव बहुत शीघ्र दब गये। उसके हृदयमें अपनी मणिका जो मोह था, वह क्रोध बनकर बढ़ता गया। अन्तमें उसने आचमन किया और जिसको व्यर्थ नहीं किया जा सकता, जिसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं, वह ब्रह्मशिरास्त्र उसने पाण्डव-विहीन पृथ्वी करनेके समल्पसे प्रयोग किया। वही दिव्यास्त्र पञ्चधा होकर पाण्डवोंकी ओर बढ़ा आ रहा था।

दोनों के ब्रह्मशिर जैसे आकाश में आकर स्थिर हो गए थे। वे निरंतर अग्नि उगल रहे थे। उनकी प्रक्रिया आरंभ हो गई थी और वे लक्ष्य को साध रहे थे। ऐसे लग रहा था जैसे संसार एक भयंकर अग्नि सागर में स्नान करने की तैयारी में है। आकाश पर उल्काएँ उड़ रही थीं और वज्रपात हो रहे थे।

कृष्ण ने पुकार कर भीम को कहा रूक जाओ मध्यम और अर्जुन से संबोधित हुए। अर्जुन। आचार्य द्रोणद्वारा तुम्हें दिए गए दिव्यास्त्र के प्रयोग का समय आ गया है। अब संकोच मत करना, अन्यथा अश्वत्थामा के अस्त्र का निवारण नहीं हो पाएगा। अर्जुन ने भी अभिमंत्रित कर अपना ब्रह्मास्त्र चला दिया। दोनों के ब्रह्मास्त्र आपस में टकराने लगे। वेदव्यास ने दोनों ब्रह्मास्त्रों को अपने हाथों में झेल लिया।

यह देखकर अर्जुन और अश्वत्थामाको शान्त करनेके लिये वहाँ देवर्षि नारद और महर्षि व्यासने एक ही साथ दर्शन दिया। दोनों मुनिश्रेष्ठ देवता और मनुष्योंके पूजनीय और अत्यन्त यशस्वी हैं। ये सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे उन दोनों अस्त्रोंको शान्त करानेके लिये उनके बीचमें आकर खड़े हो गये और कहने लगे, पूर्वकालमें जो तरह-तरहके शस्त्रोंको जाननेवाले महारथी हो गये हैं, उन्होंने इन अस्त्रोंका प्रयोग मनुष्योंपर कभी नहीं किया। फिर वीरों। तुम दोनोंने ही यह महान् अनिष्टकारी साहस क्यों किया है?

वेदव्यास बोले अर्जुन, अश्वत्थामा यह वो अस्त्र है जो भूमंडल को नष्ट कर देगा। लौटाओ इन अस्त्र को। क्या द्रोणाचार्य ने तुमको यह नहीं बताया था कि ऐसी शक्तियां युद्ध के लिये नहीं होती। हे वासुदेव तुमने क्यों नहीं अर्जुन को रोका।

अर्जुनको यही करना पड़ा। श्रीकृष्णकी सन्निधने ही भीम और उनको आज बचाया।

सहसा अर्जुन की एकाग्रता में बाधा पड़ी। उसने आँखें खोलीं। देखा, उसके और अश्वत्थामा के मध्य देवर्षि नारद और महर्षि वेदव्यास आकर खड़े हो गए, यह क्या हो रहा है?

महर्षि व्यास उसी समय अश्वत्थामाके सम्मुख आ खड़े हुए- धिक्कार है, तुझे। तू ब्राह्मण होकर इतना क्रूर कर्मा है।

वेदव्यास बोले, यह क्या हो रहा है अर्जुन। आज तक तो किसी ने इन अस्त्रों का प्रयोग मनुष्यों पर नहीं किया। तुम लोगों ने यह विनाशकारी साहस कैसे कर लिया? अश्वत्थामा क्रोधपूर्वक बोला, सुरेन्द्रका समस्त वैभव मेरी मणिके सम्मुख तुच्छ था। उसे छीनकर जिन्होंने मेरा अपमान किया, उन्हें मैं जीवित नहीं छोड़ सकता।

अर्जुन ने हाथ जोड़कर दोनों ऋषियों को प्रणाम किया और अपने देवास्त्र के उपसंहार की प्रक्रिया आरंभ कर दी।

अर्जुन बोला, मैंने किसी के विनाश के लिए इस देवास्त्र का प्रयोग नहीं किया। उसने कहा, मैं तो इससे अश्वत्थामा के देवास्त्र का तेज हम सबको अवश्य ही नष्ट कर देगा। आप दोनों ही मेरे पूज्य हैं। संसारके हित में जो भी करने का आदेश करेंगे, वही करूँगा।

नारद बोले, द्रोणपुत्र। तुम्हें क्या हुआ है? तुम क्यों संसार के विनाश में तत्पर हो?

महर्षि व्यास बोले, मूर्ख। तू पहिले अपने प्राणोंकी चिन्ता कर। तू ब्राह्मण है या वैश्य, अर्थका-मणिका इतना लोभ है तुझे कि उसके लिए मरनेको उद्यत हो गया है।

अश्वत्थामा बोले, मरनेको? वह सदाका डरपोक, प्रलयकालीन दुर्धर्ष तेज उसे अपनी ओर बढ़ता आता दीखा।

महर्षि व्यास बोले, तू क्या समझता है कि श्रीकृष्णको पराभव देकर उनके आश्रितोंको तू मार सकता है? शीघ्र अपना अस्त्र शान्त कर, अन्यथा श्रीकृष्णका चक्र तुझे मिले शिवके अमरत्वके वरदानकी भी मर्यादा नहीं मानेगा।

अश्वत्थामा बोला, महर्षि। मेरा यह अस्त्र अमोघ है। इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं है। अश्वत्थामाका स्वर काँप रहा था - मैं इसे शान्त करना भी नहीं जानता।

महर्षि व्यासने समझाया, जो सचराचर सम्पूर्ण सृष्टिके सञ्चालक, पालक, प्रलयकर्ता हैं, उन सर्वेशके सम्मुख कोई सृष्टिका अस्त्र अमोघ नहीं हो सकता। पाडवोंकी रक्षामें वे सावधान हैं। उनको मारनेका समल्प नहीं त्यागता तो तेरा अस्त्र तुझे ही भस्म करके अपनी अमोघता सार्थक करनेवाला है।

उन अग्निके समान तेजस्वी महर्षियोंको देखते ही अर्जुन बड़ी फूर्तीसे अपना दिव्य अस्त्र लौटाने लगा। फिर उसने हाथ जोड़कर कहा, भगवन्। मैंने तो इसी उद्देश्यसे यह अस्त्र छोड़ा था कि इसके द्वारा शत्रुका छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र शान्त हो जाय। अब इस अस्त्रको लौटा लेनेपर तो पापी अश्वत्थामा अवश्य ही अपने अस्त्रके प्रभावसे हम सबको भस्म कर देगा। इसलिये इस समय जैसा करनेसे हमारा और सब लोकोंका हित हो, उसीके लिये आप हमें सलाह दें। ऐसा कहकर अर्जुनने उस ब्रह्मास्त्रको वापस लौटा लिया। उसे लौटा लेना तो देवताओंके लिये भी कठिन था। संग्राममें एक बार छोड़ देनेपर उसे लौटानेमें तो अर्जुनके सिवा स्वयं इन्द्र भी समर्थ नहीं था। वह अस्त्र ब्रह्मतेजसे प्रकट हुआ था। असंयमी पुरुष उसे छोड़ तो सकता था; किंतु उसे लौटानेका सामर्थ्य ब्रह्मचारीके सिवा और किसीमें नहीं था।

कृष्ण बोले, अश्वत्थामा अपना ब्रह्मास्त्र चला चुका था ऋषिवर। उसका अस्त्र काटने के लिये अर्जुन अपना ब्रह्मास्त्र चलाने के लिये विवश था। व्यास बोले, अर्जुन, अश्वत्थामा लौटा लो इन अपने अस्त्र को। अर्जुन बोला, जो आज्ञा ऋषिवर। अर्जुन ने अपना अस्त्र लौटा लिया। व्यास बोले, देख क्या रहे हो अश्वत्थामा, लौटाओ अपना यह अस्त्र।

अश्वत्थामा बोला, मुझे यह अस्त्र लौटाना नहीं आता ऋषिवर। व्यास बोले, यदि लौटाना नहीं आता तो फिर इसे चलाया क्यों था मूर्ख। दिशा बदलो अपने अस्त्र की। क्या तुम स्वयं अपने अस्त्र की शक्ति भी नहीं जानते। क्या तुम यह भी नहीं जानते कि ब्रह्मास्त्र जब चलेगा तो क्या असर पड सकता है। क्या तुम यह चाहते हो कि परम पिता ब्रह्मा को किसी और भूमंडल की यात्रा करनी पडे। बालकों के रक्त में सने ब्राह्मण दिशा बदलो अपने अस्त्र की। अरे मूर्ख यदि पांडव न होते तो क्या तू कल्याण करेगा उस समाज का जहां पर लोगों का आत्मसम्मान सुरक्षित रहेगा। क्या तेरी यह लहू भरी आंखे मानव जाति को किसी उज्ज्वल भविष्य का सपना दिखा सकेगी। नहीं इसलिये दिशा बदलो अपने अस्त्र की। अश्वत्थामा बोला, दिशा तो अवश्य बदल दूंगा ऋषिवर किन्तु जायेगा तो यह फिर भी पांडवों की ही ओर, यदि उनका नाश नहीं कर सकता तो उनके बीज को तो अवश्य नष्ट कर दूंगा। अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र की दिशा बदल दी।

अश्वत्थामा बोला, मैंने भीम के भय से ही इसका प्रयोग किया है, नहीं तो वह अभी मेरे प्राण ले लेता। अश्वत्थामा जैसे घबराकर रो पड़ा, उसने भयंकर अधर्म किया है। उस पापात्मा ने छलपूर्वक दुर्योधन का वध किया है। वह मेरा भी वध कर देगा। अश्वत्थामाने भी जब उन ऋषियोंको अपने अस्त्रके सामने खड़े देखा तो उसे लौटानेका बड़ा प्रयत्न किया, किंतु वह वैसा कर न सका। तब वह मनमें अत्यन्त व्याकुल होकर श्रीव्याससे कहने लगा, मुने। मैं भीमके भयसे जब बहुत बड़ी आपत्तिमें पड़ गया था, तब अपने प्राणोंको बचानेके लिये ही मैंने यह अस्त्र छोड़ा है। भीमने दुर्योधनका वध करनेके उद्देश्यसे संग्रामभूमिमें नियमविरुद्ध आचरण करके अधर्म किया था। इसीसे संयमी न होनेपर भी मैंने यह अस्त्र छोड़ दिया है। अब इसे लौटानेमें तो मैं समर्थ नहीं हूँ। मैंने अग्निमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके यह दुर्दम्य दिव्य अस्त्र पाण्डवोंका नाश करनेके लिये छोड़ा है। अत: आज यह सभी पाण्डवोंके प्राण ले लेगा। इस प्रकार क्रोधमें भरकर पाण्डवोंके वधके लिये यह अस्त्र छोड़कर अवश्य ही मैंने बड़ा पाप किया है।

व्यास बोले, तूने तो कल रात पुण्य ही पुण्य किया है। तू उसे पापी बता रहा है और अपने कर्मों पर दृष्टि भी नहीं डालता। तू भी धृतराष्ट्र के समान आत्ममोह में अंधा हो गया है क्या? अपने प्राण बचाने के लिए तूने ब्रह्मशिर देवास्त्र का प्रयोग किया। तू जानता नहीं कि यह देवास्त्र ब्रह्मतेज से उत्पन्न हुआ है। यदि अजितेन्द्रिय पुरुष द्वारा इसका प्रयोग होगा तो उसके लिए इसे लौटाना असंभव होगा।

महर्षि व्यासने कहा, अश्वत्थामा। ब्रह्मास्त्रका ज्ञान तो अर्जुनको भी है। किंतु उसने क्रोधमें भरकर या तुम्हें मारनेके लिये उसे नहीं छोड़ा है। उसने तो अपने ब्रह्मास्त्रसे तुम्हारे ब्रह्मास्त्रको शान्त करनेके लिये ही उसका प्रयोग किया है और अब उसे लौटा भी लिया है। ब्रह्मास्त्रको पाकर भी तुम्हारे पिताका उपदेश मानकर महाबाहु अर्जुन क्षात्र-धर्मसे विचलित नहीं हुआ है। यह ऐसा धीर, वीर, साधु और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाला है; फिर भी तुम्हें इसे भाइयोंके सहित मार डालनेकी कुबुद्धि क्यों हुई है? जिस देशमें एक ब्रह्मास्त्रको दूसरे ब्रह्मास्त्रसे दबा दिया जाता है, वहाँ बारह वर्षतक वर्षा नहीं होती। इसीसे प्रजाका हित करनेके लिये अर्जुनने तुम्हारे ब्रह्मास्त्रको नष्ट नहीं किया है। तुम्हें पाण्डवोंकी, अपनी और राष्ट्रकी रक्षा करनी ही चाहिये। इसलिये अब तुम इस दिव्य अस्त्रको लौटा लो। अब तुम्हारा क्रोध शान्त हो जाना चाहिये और पाण्डव भी स्वस्थ रहने चाहिये। राजर्षि युधिष्ठिर किसीको भी अधर्मसे जीतना नहीं चाहते। तुम्हारे सिरमें जो मणि है, वह तुम इन्हें दे दो और उसे लेकर पाण्डवलोग तुम्हें प्राणदान दे दें।

नारद बोले, तुम जानते हो कि युद्ध में इसे लौटा लेना देवताओं के लिए भी दुष्कर है। उस दिव्यास्त्र को छोड़ देने के पश्चात् एक अर्जुन ही उसे लौटाने में समर्थ है। इंद्र भी उसे नहीं लौटा सकते। बिना ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के उसे लौटाया

नहीं जा सकता। अर्जुन ने बड़े-से-बड़े संकट में भी आज तक उसका प्रयोग नहीं किया था और आज तुमने उसे भी इसका प्रयोग करने को बाध्य कर दिया। अब इसे लौटाओ।

व्यास बोले, धनंजय ने तो कभी रोष में भरकर तेरे प्राण लेने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। नहीं तो तू आज तक यह कुकृत्य करने के लिए जीवित ही न बचा होता। यह ऐसा धैर्यवान, साधु, संपूर्ण अस्त्रों का ज्ञाता, तथा सत्पुरुष है। तू इसके वध की इच्छा ही क्यों रखता है? तू मरना नहीं चाहता, इसलिए तू सारे संसार को नष्ट कर देगा? इतना मूल्यवान है तेरा जीवन? क्या तू नहीं जानता कि जिस देश में एक ब्रह्मास्त्र का दूसरे उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र से तिरस्कार किया जाता है, उस देश में बारह वर्षों तक वर्षा नहीं होती? प्रजा के हित का ध्यान कर, शक्तिशाली होते हुए भी, अर्जुन तेरे इस अस्त्र को नष्ट नहीं कर रहा। उसने अपने ही अस्त्र का उपसंहार करना आरंभ कर दिया है। तुझे अपनी रक्षा करनी है तो पांडवों की भी रक्षा कर। इस देश की रक्षा कर। अपने इस अस्त्र को शीघ्र लौटा। तू यदि पांडवों का विनाश करना चाहेगा तो अर्जुन तेरे देवास्त्र का निराकरण करने में समर्थ है। निराकरण हो गया तो भी तू मार डाला जाएगा। पांडव नष्ट हो गए तो कृष्ण तुझे मार डालेंगे। सात्यकि तेरे प्राण ले लेगा। पांडवों की इच्छा के बिना तू जीवित नहीं रह सकता। तुझें प्राणदान करेंगे तो ये ही करेंगे। हत्या युधिष्ठिर का लक्ष्य नहीं है। वे धर्म की स्थापना चाहते हैं। किसी और को जीतने के स्थान पर धर्मराज सदा आत्मजय की ओर अग्रसर हुए हैं। तूने ही अपने पशुत्व में अंधे होकर उनके देवत्व को नहीं पहचाना। वे तुझे क्षमा कर देंगे। अपने पुत्रों का वध भी क्षमा कर देंगे।

युधिष्ठिर बोले, शस्त्र त्याग दो और अपनी यह मणि हमें दे दो, जिसे तुमने सिर पर धारण कर रखा है। हम तुम्हें तुम्हारे प्राणों की भिक्षा दे देंगे। अश्वत्थामा बोला, पाण्डवोंने कौरवोंका जितना धन और जो-जो रत्न प्राप्त किये हैं, मेरी यह मणि उन सबसे अधिक कीमती है। इसे बाँध लेनेपर शस्त्र-व्याधि या क्षुधासे अथवा देवता, दानव, नाग, राक्षस या चोरोंसे होनेवाला किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता। इस मणिका ऐसा अद्‌भुत प्रभाव है, इसलिये मुझे इसका त्याग तो किसी भी प्रकार नहीं करना चाहिये। तो भी आपने जो कुछ आदेश मुझे दिया है वह मुझे करना ही होगा। किंतु मेरा छोड़ा हुआ वह दिव्य अस्त्र व्यर्थ तो हो नहीं सकता। इसे एक बार छोड़कर फिर लौटानेकी मुझे सामर्थ्य नहीं है। इसलिये अब मैं इस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ता हूँ। आपकी आज्ञाका मैं कभी उल्लंघन न करता; परंतु क्या करूँ, इसे लौटाना तो मेरे वशकी बात नहीं है। व्यास ने कहा, तो मणि दे दे। अश्वत्थामा बोला, मैं भी आपके सम्मुख उपस्थित हूँ और मणि भी यही हैं; किंतु इस देवास्त्र का क्या होगा? मैं इसे लौटा नहीं सकता। यह तो पांडवों का विनाश करेगा ही। तो यह विकसित पांडवों को नहीं, उनके रक्त को पहचान कर उनके गर्भस्थ शिशुओं को नष्ट करेगा। यह अस्त्र अमोघ है। मैं इसे लौटा नहीं सकता। किसी के कुछ कहने और करने से पहले ही भीम आगे बढ़ा। उसके हाथ में उसका खड्ग था। उसने उसी खड्ग से अश्वत्थामा के सिर पर बने जटाजूट पर लपेटे गए वस्त्र को चीरकर उसके केशों में से मणि प्रकट कर ली, और हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया।

कृष्ण बोले, इस दिव्य अस्त्रका वार तो अवश्य अमोघ ही होगा। किंतु वह गर्भ मरा हुआ उत्पन्न होनेपर भी फिर दीर्घजीवन प्राप्त करेगा। हाँ, तुम्हें अवश्य सभी समझदार पापी और कायर ही समझते हैं; क्योंकि तुम बार-बार पाप ही बटोरते हो और बालकोंकी हत्या करते हो। इसलिये तुम्हें इस पापका फल भोगना ही पड़ेगा। तुम तीन हजार वर्षतक इस पृथ्वीमें भटकते रहोगे और किसी भी जगह किसी पुरुषके साथ तुम्हारी बातचीत नहीं हो सकेगी। तुम्हारे शरीरमेंसे पीब और लोहूकी गन्ध निकलेगी। इसलिये तुम मनुष्योंके बीचमें नहीं रह सकोगे। दुर्गम वनोंमें ही पड़े रहोगे। परीक्षित तो दीर्घायु प्राप्त करके वेदव्रत धारण करेगा और फिर आचार्य कृपसे सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करेगा। इस प्रकार उत्तम-उत्तम अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके वह क्षात्रधर्मका अनुसरण करते हुए साठ वर्षतक पृथ्वीका राज्य करेगा। दुरात्मन्। देखना,

यह परीक्षित नामका राजा तुम्हारी आँखोंके सामने ही कुरूवंशकी गद्दीपर बैठेगा। वह तुम्हारे शस्त्रकी ज्वालासे जल अवश्य जायगा, परंतु मैं उसे पुन: जीवित कर दूँगा। नराधम। उस समय तुम मेरे तप और सत्यका प्रभाव देख लेना।

अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे ही शान्त करके अर्जुनने उसे पकड़ लिया और अपने उत्तरीयसे ही उसे रथपर बाँध दिया। श्रीकृष्णका स्वभाव भी अद्भुत है। ये कब ठीक कहते हैं और कब किसीकी परीक्षा लेते हैं, कहना कठिन है। इस समय अर्जुनकी धर्म-परीक्षा लेनेकी आपको सूझ गयी। बोले- धनंजय। मार दो इसे। इसने सोये हुए तुम सबके पुत्रोंको व्यर्थ मारा है। उनकी हत्यासे न इसका कुछ लाभ हुआ, न इसके स्वामी दुर्योधनका ही कोई भला हुआ। यह आततायी है और तुम्हारे प्रियजनोंका हत्यारा है। इसपर दया मत करो। तुमने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की है इसका सिर लाने की।

भीमने गर्जना की, द्रौपदी क्या निर्णय करेगी। इसे मरना है। मैं इसे जीवित नहीं छोड़ सकता।

गुरुपत्नी ने मुझे छाती से लगा लिया। कहा- कृष्णा, मेरे पति को क्षमा करना। गुरु एवं ब्राह्मण होते हुए भी अपना उचित कर्म नहीं किया। सभा में तेरा इतना अपमान चुपचाच देखते रहे। उनके सारे पुण्य क्षय हो गये इसीसे। तुम्हारे अभिशाप से उनका वंशनाश हो जायेगा, यह जान लो। कौरवों का अन्न खाते हैं अत: अन्याय को देखते रहे। उनके सारे अपराध मैं स्वीकार कर रही हूं। मेरे एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा को कृपया शाप न देना। भगवान तुम्हारा मंगल करें। मेरे नि:संग जीवन की अंतरंग सखी हो।

मैं भी हरिता के हृदय पर सिर रखकर दो बूंद आंसू झरा बैठी। कहा- प्राणसंगिनी, हरिता। अश्वत्थामा जैसे आपका पुत्र है, वैसे मेरे लिए भी पुत्रतुल्य है। मैं आपकी मंगल कामना करती हूं। पर सखी, गुरु द्रोण को क्षमा करनेवाली मैं कौन होती हूं? मैं तो एक नारी हूं- विद्वान और ज्ञानी लोगों की आंखों में नारी की अपनी कोई सत्ता नहीं,- मानापमान, व्यक्तित्व, महानता आदि कुछ नहीं कुरुसभा में मेरी लांछना ने सिद्ध कर दिया। मैं जिसे क्षमा कर दूंगी, ईश्वर क्या उसे क्षमा कर देंगे।

लेकिन निर्णय यही रहा कि अपराधीके रूपमें अश्वत्थामाको राजा युधिष्ठिरके सम्मुख उपस्थित किया जाना चाहिए। अश्वत्थामाकी कान्ति नष्ट हो गई थी। वह सिर झुकाये हुए था। अब किसीकी ओर देखनेका भी उसमें साहस नहीं था। अर्जुनने इसी रूपमें उसे ले जाकर द्रौपदीके सम्मुख खड़ा कर दिया- यह है तुम्हारे पुत्रोंका हत्यारा।

भक्तके स्वभावमें बदला लेना नहीं होता। वह भक्त ही नहीं, जिसका स्वभाव भगवानके स्वभावसे एक न हो गया हो। भगवान यदि प्राणीके अपराध देखने लगें, किसीका भी कभी उद्धार सम्भव नहीं। उन करुणावरुणालयको तो कृपा ही करनी आती है। द्रौपदी भक्त थी। उसके सब पुत्र जिसने मारे थे, पुत्रोंके शव सामने पड़े थे; किन्तु अश्वत्थामाका वह श्रीहीन लज्जासे झुका मस्तक देखना उसे असह्य हो गया। उसके हृदयमें कृपा उमड़ पड़ी।

द्रौपदीने अश्वत्थामाके चरणोंमें सिर झुकाया और बोली, ये आचार्य पुत्र। इन्हें छोड़ दीजिये। शीघ्र छोड़ दीजिये। पुत्रके रूपमें स्वयं द्रोणाचार्य ही तो हैं यहाँ सम्मुख, जिनकी कृपासे आप सबने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्त की है। मैं माता हूँ, अपने पुत्रोंके मारे जानेसे कैसी मर्मान्तक पीड़ा होती है, इसका अनुभव कर रही हूँ। वैसी ही पीड़ा इनकी माता कृपाचार्यकी बहिन कृपी को भी होगी, यदि इनको भी मार दिया गया तो मेरे पुत्र अब जीवित नहीं हो सकते। जगतमें दूसरी कोई माता मेरे कारण मेरे समान दुखिया नहीं बननी चाहिये। इनका बन्धन शीघ्र खोल दीजिये। ये हम सबके लिए सम्मान्य हैं। द्रौपदी बोली, नहीं। वध नहीं। कोमलहृदया गुरु-पत्नी का क्या होगा आर्यपुत्र?

अहो। अहो। सबके मुख से विस्मय से निकल पड़ा, तो यह गुरु-पत्नी के सम्भावित पुत्रशोक से आक्रान्त हैं?

वह अभी भी वैसे ही प्रस्तरप्रतिमा-सी भरे नयनों से सुदूर कहीं कुछ देख रही थी।

द्रौपदी बोली, गुरूपत्नी नितानन्त निराश्रित हो जाएँगी... अवलम्बहीन। परम स्नेहशीला देवी का दोष क्या है? किन्तु वे

क्यों इस कठोर दण्ड की भागी बनें? नहीं। वध नहीं... आर्यपुत्र। अश्रुपूरित उसकी दृष्टि माधव पर टिक गयी।

माधव। गुरुपत्नी का वैधव्य ही अत्यन्त दारुण है। उनकी गोद सूनी करके मैं आजीवन पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसना नहीं चाहती। वासुदेव। गुरुपत्नी माँ हैं, कैसे-कैसे कष्टों से उन्होंने अपने एकमात्र नयनतारक को पाला है, यह क्या किसी से छिपा है? घोर विपन्नावस्था में, विकट दरिद्रावस्था में पुत्र की दुग्धपान की हठ कैसे पूरी की थी। हृदय पर पाषाण रखकर उन्होंने तन्दूलचूर्ण को जल में मिलाकर अपने लाल को दुग्ध कहकर दिया था पीने को। आह रे माँ का कोमल मन। उन्होंने रो-रोकर यह मिथ्यावादन किया था- अपने नन्हे शिशु का मन रखने के लिए क्योंकि वे उसका मन तोड़ नहीं सकती थीं बालक को कैसे-कैसे बहला-बहलाकर उन्होंने पाला। और मैं ऐसी निर्मम हो जाऊँ कि उनके उसी एकमात्र लाड़ले पुत्र को सदा के लिए उनसे छीन लूँ? नहीं-नहीं, वासुदेव। वध नहीं।

पाण्डवगण अश्रु पोंछ रहे थे। वासुदेव का हृदय भर आया।

और वासुदेव। गुरुपत्नी आर्या कृपी मेरी भाँति कठोर हृदय नहीं, जो दारुण पुत्रशोक सह सकें। मुझे देखो पाँच-पाँच पुत्र खोने के पश्चात् भी कैसी पाषाण-हृदय बनी जीवन धारण किये हुए हूँ। वे किन्तु कोमल हृदय हैं, वे पतिहीना हैं, उन्हें पुत्रहीन न करें। वे पुत्रशोक नहीं सह सकेंगी। तत्काल प्राण त्याग देंगी नहीं वासुदेव। वध नहीं। ईश्वर न करे, कभी किसी माँ को पुत्रशोक सहना पड़े। मैं रो रही हूँ किन्तु किसी अन्य की माँ न रोए। अश्वत्थामा की माँ न रोए इस प्रकार। गुरुपत्नी पूजनीया कृपी का एकमात्र पुत्र शतशत वर्ष जिए। अश्वत्थामा दीर्घायु हो। अश्वत्थामा चिरायु हो। उसका वध करने से मेरे पुत्र जीवित नहीं हो जाएँगे।

तुमलोगोंका वंश बड़ा यशस्वी है, कहीं उसे ब्राह्मणवधका कलंक न लग जाय। ब्राह्मण पूजा करनेके योग्य हैं, वध करनेके योग्य नहीं। मैं अपने पुत्रोंकी मृत्युसे दु:ख होकर रो रही हूँ, अश्वत्थामाकी माता गौतमीको भी मेरे ही समान रोना न पड़े। धर्मराज युधिष्ठिरने द्रौपदीके वचनोंका समर्थन किया; परन्तु भीमने उनका विरोध करके अश्वत्थामाके मारनेका ही समर्थन किया। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा- तुम इसके सिरकी मणि निकाल लो, इससे दोनों ही बातें बन जाती हैं। अर्जुनने वैसा ही किया। अश्वत्थामा उदास होकर चला गया।

हे कौन्तेय, सावधान होकर सुनो- अश्वत्थामा चिरंजीव है, वह मरनेवाला नहीं है। किन्तु मनुष्य की मृत्यु दो प्रकार की होती है - शारिरिक और लौकिक। अश्वत्थामा के मस्तक पर जो जन्मजात मांसल मणि है, उसे काटकर निकाल दो। उसके मस्तक का घाव कभी भरेगा नहीं, लहूलुहान ही रहेगा- जैसे तुम्हारे पुत्रों के शव रहे। कभी भी न भरनेवाला घाव लेकर ही अश्वत्थामा जीता रहेगा। लौकिक अर्थ में वह उसकी मृत्यु ही होगी। शीघ्रता करो और काट लो उसके मस्तक की मांसल मणि को। कृष्ण को बुलाया। मंद स्वर में कहा- उस पापात्मा को क्षमा कर दो। भीम से कह दो, अब अश्वत्थामा को पकड़कर मारने की कोई जरूरत नहीं रही। अपने कर्म का फल वह पापी खुद भोगे। कोई अदृष्ट देखता है, फिर मैं दंड देनेवाली कौन हूं? कृष्ण ने कहा- पांचाली। क्षमा की अपरूप करुणा की मूर्ति को शतबार प्रणाम।

भीम की आवाज आयी- पांचाली। लो, यह दुष्ट अश्वत्थामा खड़ा है। हृदय फाड़कर रक्त पी जाओ। पुत्रशोक की ज्वाला बुझाओ। भीम ने कहा, भद्रे। तुम्हारे पुत्रों का कायरतापूर्वक वध करनेवाले अश्वत्थामा की यह मस्तक मणि है। तुम्हारे उस शत्रु को हमने जीत लिया है। जिस वंश का नाश करने के लिए तुम यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई थीं, जिसके नाश के लिए कांपिल्य के राजवंश ने वर्षों तक साधना की, उस वंश का सर्वनाश हो गया है। अब शोक त्यागकर उठो और क्षत्रिय धर्म का स्मरण करो। द्रौपदी ने बारी-बारी सबकी ओर देखा और बोली, अश्वत्थामा मारा गया?

कृष्ण बोले, नहीं। बस उसके प्राण नहीं लिए शेष सब कुछ ले लिया। उसका यश ले लिया, उसका बल ले लिया,

उसका धन ले लिया, उसकी चेतना ले ली। वह एक घायल पशु के समान अपना दीर्घ जीवन तड़प-तड़पकर काटेगा।

भीम ने आश्वस्त स्वर में कहा, मरकर मनुष्य पीड़ा से मुक्त हो जाता है राजरानी। मैंने दु:शासन का वध कर दिया था, इसलिए वह दुर्दशा से बच गया। दुर्योधन को जीवित तो छोड़ा किंतु ऐसी दशा कर दी कि वह एक रात भी कष्ट नहीं झेल पाया, या शायद वन्य-पशुओं से अपनी रक्षा नहीं कर पाया। अश्वत्थामा को कृष्ण ने एक घायल पशु के समान सहस्त्रों वर्ष जीने के लिए श्राप दिया है। उसके आधे मस्तिष्क का वध कर दिया है मैंने। मनुष्य की-सी चेतना नहीं रहेगी अश्वत्थामा में। वह पशु के समान ही वन्य पशुओं से अपनी रक्षा करता रहेगा; किंतु मरकर सुखी भी नहीं हो पाएगा।

बन्दी अवस्था में उस ओर आंख भी नहीं उठायी मैंने। मुंह फेरकर कहा- इस पापी को देखना तक नहीं चाहती। इसके स्पर्श से आत्मा कलुषित हो जायेगी। पति। दया करें। मेरे सामने से ले जायें। इसे राज्य की सीमा से बाहर कर दें। इस राज्य में इसका कोई स्थान नहीं। जीभ आग बरसा रही थी, परन्तु आंखे वर्षा कर रही थीं। आंसुओं की। मैं कुछ भी न सह सकी और चेतनाशून्य हो गिर पड़ी। रोमांचित हो उठे सब। अश्रु पोंछते हुए युधिष्ठिर गद्‌गद कण्ठ से कह उठे, धन्य हो महादेवी। वासुदेव बाहुएँ उठा भावविह्वल हो कह उठे। धन्य है महादेवी। तूने जयद्रथ पर भी कृपा की थी, भगिनी दु:शला के वैधव्य की कल्पना से काँपकर। आज तूने एक जघन्य पातकी, एक बालघाती को अभयदान दे दिया। वृद्धा गुरुपत्नी को अपनी करुणा की सरिता से तार दिया। धन्य है कृष्णे। धन्य है तू महाभारती।

तेरे वचन का सम्मान कर रहा हूँ कृष्णे। किन्तु अश्वत्थामा को इतिहास एवं भावी पीढ़ियाँ क्षमा नहीं करेंगे। उसके दुष्कर्म को मैं भी क्षमा न करूँगा। वह जीवित अवश्य रहेगा सहस्त्रों वर्ष तक, लेकिन अपने ब्रह्मतेज से वंचित होकर। उसने ब्राह्मणत्व की गरिमा गिरायी। ब्रह्मतेज का दुरुपयोग किया। वह इस प्रकार ब्रह्मराक्षस सिद्ध हुआ। कौरव महारथियों ने केवल एक अभिमन्यु का वध किया था किन्तु इस नरपिशाच ने तो कितने ही अभिमन्युओं को छल से सदा के लिए सुला दिया। अश्वत्थामा अक्षम्य है। वह सहस्त्रों वर्ष पृथ्वी पर हा-हा करता भटकेगा। जनशून्य स्थलों में ही विचरेगा। कुष्ठरोग एवं अन्य भयंकर व्याधियों से ग्रस्त होकर भटकता रहेगा; उसे कहीं सुख प्राप्त न होगा। उसे कहीं शान्ति प्राप्त न होगी। वासुदेव का मुखमण्डल रोष से तमतमा उठा था। भृकुटियों में बल पड़े हुए थे।

द्रौपदी बोली, अहो। नहीं माधव। आपके शाप से भी क्या मेरा स्वप्न जुड़ सकता है कभी, जो दर्पण की भाँति चूर-चूर हो गया। मेरा स्वप्न सदा के लिए भंग हो गया यही शूल मुझे अधिक त्रासदायक है।

युधिष्ठिर बोला, हाँ, द्रुपदसुते। हर राजरानी स्वप्न पालती है कि उसका युवराज राजपद पर कभी अभिषिक्त होगा। स्यात् इसीलिए महाराज धृतराष्ट्र से तुमने सर्वप्रथम मेरी मुक्ति माँगी थी दासत्व से, ताकि कुमार प्रतिविन्ध्य दासपुत्र न कहलाए एवं उसके सिंहासनारूढ़ होने में उस पर उस अस्थायी दासता का लांछन न लग सके। किन्तु पांचाली। वह स्वप्न तो हमारा-सबका स्वप्न था। अपने समस्त प्रिय पुत्रों को अकस्मात् खो देने से हमारा- हम सबका स्वप्न भंग हुआ है। हम सभी तो दु:खी हैं अत: धैर्य धारण करो और अब इस विषय पर अधिक सन्ताप न करो। युधिष्ठिर ने समझाने का साहस भर प्रयास किया।

द्रौपदी बोली, नहीं धर्मराज। मेरा स्वप्न इससे कहीं अधिक मनोरम था। मेरे जीवनभर की हार्दिक आकांक्षा उसी स्वप्न में निहित थी। वह स्वप्न ही मेरी उपासना था, मेरी साधना था। मैंने स्वप्न सँजोया था अपने पाँचों पुत्रों को वासुदेव को समर्पित कर देने का, ताकि वे भी वासुदेव के पथप्रदर्शन में धर्म- अधर्म का विवेक सीख सकें। ताकि वे दृढ़ता से धर्मध्वजा उठाकर निर्भीकतापूर्वक वासुदेव के पदचिन्हों का अनुसरण कर सकें। मैंने उन्हें वासुदेव का अनुयायी एवं भक्त बनाना चाहा था। हृदय के उन अंशों को नारायण के श्रीचरणों में पुष्पवत् अर्पित करने का मैंने स्वप्न देखा था। उन्हें भागवत बनाने का स्वप्न देखा था किन्तु माधव। मेरा वह मनोरम स्वप्न भंग हो गया सदा के लिए भंग हो गया। मैं उन्हें

भागवत न बना पायी। हा कष्ट। हा कष्ट पांचाली की स्वरमाला गुँथ गयी अश्रुमाला में।

अहो। अहो। का उद्‌गार छह पुरुषों के भावारुद्ध कण्ठों से एकसाथ नि:सृह हो उठा।

युधिष्ठिर ने कहा, किन्तु पांचाली। तुम्हें दूसरा भी हृदयविदारक संवाद अभी सुनना है। हृदय कठोर करो देवी। अश्वत्थामा रात्रि के निविड़ अन्धकार में उन्मादी-सा पाण्डव शिबिर में घुसा एवं बिना पहचाने अन्धाधुन्ध उसने निद्रामग्न जनों पर परशु चलाया। हमारी ओर अपूरणीय क्षति हुई है। मात्र हमारे पुत्र ही नहीं पांचाली धीर धरो। उस अन्धे अभियान में उसने समस्त पाँचालों का वध कर डाला है। युधिष्ठिर का स्वयं का ही स्वर प्रकम्पित हो उठा यह दारुण संवाद देते हुए।

काष्ठवत् खड़ी थी वह। नि:शब्द। अचल-शिला सी। विस्फारित नेत्रों से कुछ भी न देखती हुई।

युधिष्ठिर बोले, हाँ पांचाली। अत्यन्त शोकपूर्ण घटना हुई है। हम अपने परम आदरणीय मित्रों एवं सम्बन्धियों को खो चुके हैं। तुम्हारे वृद्ध पिता पूज्य महाराज द्रुपद नहीं रहे पांचाली। तुम्हारी वीर एवं प्रतापी भ्राता धृष्टद्युम्न भी नहीं रहे तुम्हारे वीर भ्राता शिखण्डी भी... तुम्हारे इन भ्राताओं के समस्त किशोर पुत्र भी अश्वत्थामा के परशु के आखेट हुए देवी। पांचालवंश निर्मूल हुआ।

पांचाली के मुखमण्डल को जैसे ग्रहण की काली छाया ने राहु-सा ग्रस लिया था। कटे कदली-वृक्ष सी वह अचेत होकर गिर गयी। यही आशंका थी। यही भय था। धनंजय ने अपनी बलिष्ठ आजानुबाहुओं में प्रबल झंझावातों से पीड़ित उस वनमाधवी को सँभाला।

कृष्ण चले आये इस एकान्त प्रकोष्ठ में। यहाँ एकान्त में दीपशिखा मद्धिम कर वे शय्या पर लेट गये। एक बाहु नेत्रों पर थी। दूसरा हाथ आन्दोलित हृदय पर। अन्तर में भीषण झंझा थी चक्रवात था, क्रन्दन था। सब कुछ घुमड़ रहा था। वे पीड़ा से आकुल-व्याकुल थे।

पांचाली निकट बैठकर अपना सुकुमार हाथ आघात-भरे उस पराक्रमी अर्जुन के गात पर फेरने लगी। पुत्रहीन वीर पिता। जिनके पराक्रम एवं शौर्य की दुन्दुभी चहुँ ओर बज रही थी, जिनकी वीरगाथाएँ सुदूर लोक तक प्रचलित हो गयी थीं- उन वीर पिता की शूरता, वीरता धरी रह गयी। और छह कुलदीपक अरक्षित रहकर असमय ही क्रूर काल के मुख में समा गये। पश्चात्ताप की अग्नि से उनका पूरा शरीर उत्तप्त था। पांचाली उन्हें भलीभाँति समझती थी। पुत्रहीन वीर पिता। कितना आहत। कितना एकाकी। कितना दु:खी।

अहो। कितने आघात आर्यपुत्र। कितने अधिक। सम्पूर्ण ही तो तन भरा हुआ है। वह विगलित स्वर में कह उठीं।

भर जाएँगे सब। एक दीर्घ नि:श्वास के साथ वे बोले, मात्र इसके। कहकर उन्होंने पांचाली का हाथ अपने पीडित हृदय पर रख लिया। और दीर्घ गहन निश्वास के साथ नेत्रों पर से बाहु हटाय तो वे जो वहाँ नयन-कोर में अब तक दबे सहमे सिमटे बैठे थे, रुक न सके और अवश से हौले-हौले कपोलों पर ढुलक आये। वे अर्जुन के आँसू थे। वीर पाण्डुनन्दन के। पांचाली विचलित हो उठी।

अर्जुन ने कहा, किन्तु अब क्या होगा पांचाली। अब क्या होगा, वे सब चले गये। अभिमन्यु कहाँ से पाऊँगा? अब हमारे आगे कौन है। अब क्या होगा? और वह वीर पुरुष बालक की भाँति वेग से फूट-फूट रो पड़ा। वीर पुरुष रो रहा था। ऐसा दारुण था वह विलाप कि पृथ्वी का कठोर मर्मस्थल काँप जाये। कठोर पर्वतों के पाषाणहृदय फट जाएँ। आकाश द्रवित हो चूने लगे और मेघ थराथरा जाएँ।

अहो। भाग्यवान थे रघुकुलनरेश महाराज दशरथ जो पुत्र-वियोग बिना सहे ही प्राण त्याग गये और एक मैं हूँ, पाषाणहृदय अहो। हम लड़े क्यों? अहो हम किसलिए लड़े?

द्रौपदी गम्भीर हो कह उठी। धर्म के लिए आर्यपुत्र। कर्त्तव्य के लिए।

उस असहाय-से बिलखते पुरुषसिंह की वेदना से हृदय द्रवित हो आया। हृदय में चिरसंचित ममत्व उमड़ आया। वह पार्थ को वैसे ही सँभाल रही थी जैसे माँ अपने दुखी बालक को सँभालती है। स्वयं पीड़ाकातर होते हुए भी अर्जुन की यह स्थिति देख वह स्वयंमेव संयत हो गयी।

द्रौपदी बोली, भारत। धर्मधुरीण। यह तो धर्मयुद्ध था। आपने अपना दायित्व पूर्ण किया। धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष किया आपने। धर्म की पुन:स्थापना के लिए अधर्मियों को दण्ड देना आवश्यक था, पार्थ। सव्यसाचिन्। मेरे साथ जो दुष्टों ने दुर्व्यवहार किया था उसका प्रतिशोध लेने के लिए आपने संघर्ष किया। वह प्रतिशोध लिया गया। स्मरण नहीं आर्यपुत्र। उन दुष्ट आततायियों को दण्ड मिला, आपको प्रसन्नता नहीं होती आर्यपुत्र? भारत। भूल गये, कुरुक्षेत्ररूपी धर्मक्षेत्र में यदुकुलभूषण वासुदेव ने कहा था कि कर्मपथ ही धर्मपथ है। कर्म करो, फल को न विचारो। आप सत्य ही कर्मयोगी निकले पार्थ। और मुझे देखें कितना कुछ नहीं गँवा दिया मैंने? पुत्र खोये, पिता को खोया, भाई खोये किन्तु कर्मपथ से विचलित न हुई। आर्यपुत्र। कर्त्तव्यपथ से न हटी हटूँगी भी नहीं। वही क्योंकि श्रेष्ठ पथ है। उत्तम मार्ग है। संयत होइए आर्यपुत्र। अभी तो बहुत कार्य शेष हैं। अभी तो कर्म प्रारम्भ मात्र हुआ है।

स्वयं अश्रुविगलित हुई जा रही थी किन्तु पार्थ से छिपाकर। स्निग्ध सान्त्वना के सुशीतल मेघों से पार्थ घिरे जा रहे थे, दाह क्षीण पड़ रहा था। और युद्धक्लान्त तन को, दु:खउत्तप्त मन को जब शान्ति मिली तो वे वैसे ही बालक की भाँति प्रगाढ़ निद्रामग्न हो गये और वह ममतामयी रात्रिभर वैसी ही बैठी रही, सजग प्रहरी-सी-भारतश्रेष्ठ की रक्षा में रत। पुन: कहीं पार्थ का अमूल्य अश्रु न ढुलक पड़े कपोलों पर। पुन: कहीं कोई दीर्घ नि:श्वास न निकले।

भोर होते ही वह उद्विग्न-सी उठी। अर्जुन गहन निद्रा में थे। एक पल उसने खड़े होकर उनके क्लान्त और निरीह मुखमण्डल को निहारा। फिर एक दीर्घ नि:श्वास ले चल दी- मधुसूदन को खोजने।

अश्वत्थामाके नेत्रोंसे भी अश्रु झरने लगे। इस महनीयके पुत्र मारे उसने। लेकिन भीमके नेत्र अङ्गार हो रहे थे। उन्होंने गर्जना की, इस नराधम पापीको क्षमा नहीं किया जा सकता।

धर्मराज युधिष्ठिर तथा दूसरे सब लोग द्रौपदीकी कृपासे द्रवित हो गये थे। उन्होंने कहा- धन्य पाञ्चाली।

अर्जुनने श्रीकृष्णकी ओर सिर उठाया तो ये लीलामय बोले, गुड़ाकेश। शास्त्र मेरी ही वाणी है। उसमें दोनों आज्ञा हैं कि आततायीको मार ही देना चाहिए तथा वेदज्ञ ब्राह्मण अपने गर्हित कर्मोंसे पतित भी हो जाय तो उसे शरीर-दण्ड नहीं देना चाहिए। तुमको अपनी अश्वत्थामाको मार देनेकी प्रतिज्ञा भी सत्य करनी है। द्रौपदीको भी प्रसन्न करना है तथा भीमकी भी बात रखनी है।

संकेत पर्याप्त था। ब्राह्मणको शरीर दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए, यह विधान जहाँ शास्त्रमें किया गया है, वहीं विधान है कि प्राण-दण्डका अपराध करनेपर ब्राह्मणका धन छीनकर, उसके केश मुँड़वाकर अपमानपूर्वक उसे निकाल दिया जाय। अश्वत्थामाका धन था उसके सिरके केशमें लगी रहनेवाली मणि। यह मणि किसी सम्राटके सम्पूर्ण कोषसे भी अधिक मूल्यवान थीं। अर्जुनने अश्वत्थामाके केशोंको, दाढ़ी, मूँछ तथा सिरके केश भी तलवारसे काटकर उसे कुरुप कर दिया। उसकी मणि ले ली और बन्धन खोलकर उसे अपमानपूर्वक चले जानेको कह दिया। अश्वत्थामा वहाँसे सिर झुकाये चला गया।

अब द्रौपदी प्रभृति स्त्रियोंके साथ पाण्डवोंने अश्वत्थामाके द्वारा मारे गये लोगोंकी अन्त्येष्टि क्रिया की। गङ्गा किनारे सैकड़ों चिंताएँ सजायी गयीं। जो भी शरीर जल जाने अथवा कट-फट जानेसे पहिचाने नहीं जा सके, उनको एक ही विशाल चितामें चढ़ा दिया गया।

पुत्र, पौत्र, सगे-सम्बन्धी सबकी चिताएँ वहाँ धू-धू करके जल रही थी। पाण्डव-पक्षमें वे पाँच ही भाई तो बचे थे सात्यकि और श्रीकृष्णके साथ। अनेकोंकी स्त्रियोंने सहमरण किया। बहुत थोड़ी थीं; जिन्हें किसी प्रकार समझाकर सती होनेसे रोका जा सकता।

द्रौपदी सोच रही, अब किसे लेकर होगा विजय-महोत्सव? जिन्हें अधिक चाहा, उन्हें ही महाकाल छीन ले गया मेरे हाथ से। मेरे पिता द्रुपद, भ्राता शिखंडी, धृष्टद्युम्न के पुत्र, बंधु विराट और उनके पुत्र, मेरा प्राणप्यारा पुत्र अभिमन्यु, वक्ष में स्थित तिल-चिन्ह की तरह मेरे हृदय के एकांत की कोमल भावना- कुंती की परम दुर्बलता वीर कर्ण, आर्यावर्त्त की अगणित राजभक्त प्रजा, देशभक्त योद्धा, पुत्र घटोत्कच, इरावान, और अंत में मेरे पांच प्राणप्रिय बालक युद्ध में निहत हुए। निष्पाप कोमल शिशु खिलने से पहले ही समर-विलासी अंधे लोगों की रक्तपिपासा मिटाने के लिए समर-प्रांगण में सो गए। कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी और पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना युद्धभूमि की रतनदी में चिरनिद्रित हो गई। वीरों में कौरव पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और मेरे पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा, पांडव पक्ष के पंचपांडव, कृष्ण और सात्यकि युद्ध के अंत में जीवित हैं।

बात यह थी कि अश्वत्थामा पाण्डव-शिबिरसे अपमानित करके निकाला गया तो दूर तक सिर झुकाये चलता गया। उसे पता नहीं था कि कहाँ जा रहा है। उसके हृदयमें विचारोंका अन्धड़ चल रहा था। कभी उसे द्रौपदीके शब्द स्मरण आते और अपने कर्मपर अत्यन्त ग्लानि होती। दूसरी ओर मणिका छीना जाना और केश काटकर कुरूप बनाकर अपमानपूर्वक निकाला जाना उसे अत्यधिक क्रुद्ध करता था और तब मुट्ठियाँ बाँधकर, दाँत पीसकर वह बड़बड़ाने लगता था।

कृष्ण बोले, जाओ अश्वत्थामा पांडवों ने तुम्हें जीवन की भिक्षा दी। उन्होंने तुम्हारे प्राण नहीं लिए। तुम्हारी मणि ले ली; और तुम्हें एक घाव दे दिया। सभी मनीषी तुम्हें कायर, पापी और बालहत्यारा समझते हैं। तुम इस पृथ्वी पर एक घायल पशु के समान भटकते फिरोगे। तुम्हें किसी का संग नहीं मिलेगा। अकेले निर्जन स्थानों पर अपने शरीर की पीड़ा से चट्टानों पर सिर पटकोगे। मृत्यु माँगोगे किंतु तुम्हें मृत्यु प्राप्त नहीं होगी। तुम्हारे शरीर से पीप और लहू की दुर्गंध आएगी और तुम किसी जनसमुदाय में स्थान नहीं पाओगे। पापात्मन्। तू सभी रोगों से पीडित होगा, तड़पेगा; किंतु मर नहीं सकेगा। तुझे अपने प्राण बहुत प्रिय हैं, जा अपने इन नीच प्राणों को लेकर कहीं चला जा।

कृष्ण बोले, तुम अति घिनौने व्यक्ति हो जिसका स्पर्श कीचड को भी मैला कर देगा। क्या तुम यह समझते हो कि तुम अपने अस्त्रके दुरूपयोग से अभिमन्यु पुत्र उत्तरा के गर्भ में ही हत्या कर सकते हो तो कोई उसे जीवित नहीं कर सकता। यह वासुदेव कृष्ण उसे जीवनदान देगा और तुम समय की चरम सीमा पर पृथ्वीपर कभी समाप्त न होने वाले जीवन का शव उठाये भटकते रहोगे वो भी अकेले। अपने इस घोर पाप का बोझ उठाये समवेदना के स्नेह लेप के लिये तरसते हुये रहोगे। और आज तुम्हारे सिर पर जो मणि दमक रही हे अश्वत्थामा वहां एक घाव होगा जो सदा रिसता और दु:खता रहेगा। बडे भैया इसके माथे की यह मणि निकाल दीजिये क्योंकि यह मानव जाति की धरोहर है। अश्वत्थामा बोला, ठहरिये। यह मणि ले लीजिये वासुदेव। इसे स्वयं मै ही निकाले देता हूँ। अश्वत्थामा ने कटार से अपने सिर की मणि काट कर दी। हे वासुदेव यह मणि स्वीकार कीजिये परन्तु अपने श्राप से मुझे मुक्त कर दीजिये। ये श्राप नहीं था अश्वत्थामा कि मैं इससे मुक्त कर दूं। ये तो तेरे पापों का भुगतान है और समाज के इस ऋण से मुक्त करनेवाला मैं कौन होता हूँ। अश्वत्थामा बोला, ऋषिवर अनुशंसा और दया की याचना करता है। कृष्ण बोले, यह मणि ले लीजिये बडे भैया हमें उत्तरा के पास भी जाना है। युधिष्ठिर ने आगे बढकर मणि ले ली वे सब वहां से चले गये।

अश्वत्थामाने सिर झुका लिया श्रीकृष्ण यह करनेमें समर्थ हैं, इसमें उसे सन्देह नहीं था। इसी समय उन कैटभारिके स्वरमें शाप-वाणी प्रकट हुई- अश्वत्थामा। तू कायर है। पापी है। बाल-हत्यारा है। मुझे अपने पापका फल भोगना पड़ेगा। तीन

सहस्त्र वर्ष तक तुम पृथ्वीमें भटकते फिरोगे और कहीं किसी पुरुषसे तुम्हारी कोई बात नहीं होगी। तुम्हारे सर्वांगसे रक्त तथा पीवकी गन्ध निकलती रहेगी। तुम मनुष्योंके सम्मुख जानेका साहस भी नहीं कर सकोगे। दुर्गम वनोंमें एकाकी रहोगे।

वेदव्यास बोले, अश्वत्थामा। तूने हम सब लोगों का अनादर कर, यह भयंकर कर्म किया है। ब्राह्मण होकर भी तेरा आचरण इतना पतित रहा है। जा। श्रीकृष्ण का वचन सत्य होकर रहेगा। भीम के खड्ग ने तेरे मस्तिष्क की जिन शिराओं को काटा है, उनके अभाव में तू पशु, घायल पशु होकर ही जी सकेगा।

द्रोणपुत्र तुमने मेरी भी बात न मानकर ऐसा क्रूर कर्म किया है और ब्राह्मण होकर भी तुम्हारा आचरण ऐसा खोटा है इसलिये देवकीनन्दन श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह अवश्य ठीक होगी, क्योंकि इस समय तुमने स्वधर्मको छोड़कर क्षात्रधर्म स्वीकार कर रक्खा हैं।

श्रीकृष्णने महर्षि व्यासको मस्तक झुकाया और रथपर बैठ गये। उनके चले जानेपर व्यासने अश्वत्थामासे कहा- तुमने मेरी भी बात नहीं मानी। ब्राह्मण होकर तुमने भ्रूण-हत्याका प्रयास किया है, अत: वासुदेवका शाप अवश्य सत्य होगा। तुमने क्षात्रधर्मको स्वीकार कर लिया और उससे भ्रष्ट हो गये, अत: तुम्हारे पास तुम्हारी रक्षा करनेवाला ब्रह्मतेज नहीं है।

अश्वत्थामा मरे मनसे बोला- श्रीकृष्णकी बात सत्य हो। अब मैं मनुष्योंमें केवल आपके साथ रहूँगा।

महर्षि व्यासने अश्वत्थामाको सर्वथा निराश कर दिया और बोले, यह भी सम्भव नहीं हैं। श्रीकृष्णके शापको सत्य होनेके लिये तुम्हारी स्वीकृति आवश्यक नहीं है। अपने शरीरकी ओर देखो। सम्पूर्ण शरीरमें तुम्हारे फफोले उठने लगे हैं। ये शीघ्र ही दुर्गन्धि-भरे घाव बन जानेवाले हैं। उन सर्वात्मा वासुदेवका विरोध करके कोई त्रिभुवनमें किसीकी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सकता। तुम्हें ब्रह्मलोक अथवा कैलासमें भी शरण नहीं मिलनेवाली है। मैं तुम्हें अपने साथ रखनेका साहस कैसे कर सकता हूँ। श्रीकृष्णने तुम्हें मनुष्योंसे ही दूर रहनेका शाप दिया है; किन्तु तुम किसी सुर-असुर या महर्षिके समीप जाना चाहोगे तो केवल अपमान मिलेगा तुम्हें।

अश्वत्थामाके नेत्र भर आये, भगवन्। तीन सहस्त्र वर्ष थोड़े नहीं होते। इसके पश्चात् यह अधम शाप-मुक्त होकर आपके समीप आवे तो आप इसे आश्रय देनेका अनुग्रह करें, यह प्रार्थना है।

महर्षि व्यासने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली- अश्वत्थामा। श्रीकृष्ण किसीको दण्ड नहीं देते। अज्ञ जीव जब अपने कर्मोंसे अत्यधिक कलुष लपेट लेता है, तब उसके परिमार्जनका ही विधान वे दयामय करते हैं। तुम्हारे लिये भी उन्होंने कृपापूर्वक ही यह विधान किया है। इस अवधिको भोगकर तुम परिपूत हो जाओगे। तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जायगा इससे।

युधिष्ठिर बोले, मध्यम। वह दिव्य मणि पांचाल राजकुमारी को दे दो।

इसके बाद अश्वत्थामा पाण्डवोंको मणि देकर उन सबके सामने ही उदास मनसे वनमें चला गया। इधर पाण्डव भी श्रीकृष्ण, नारद और व्यासको आगे करके बड़ी तेजीसे मनस्विनी द्रौपदीके पास आये, जो इस समय अन्न त्याग किये बैठी थी। वहाँ वे सब उसे चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। फिर राजा युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमने द्रौपदीको वह दिव्य मणि दी और उससे कहा, भद्रे। लो यह मणि है, तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेवालेको हमने जीत लिया है। अब उठो और शोक त्यागकर क्षात्रधर्मका विचार करो।

यह सुनकर द्रौपदीने कहा- गुरुपुत्र तो मेरे लिये गुरुहीके समान है, मैं तो केवल उससे अपने अनिष्टका बदला ही लेना चाहती थी। हमने उसकी मणि छीन ली है और अस्त्र पृथ्वीपर डलवा लिये हैं।

तब राजा युधिष्ठिरने उस मणिको गुरुका प्रसाद समझकर द्रौपदीके कहनेसे उसी समय अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसके बाद पुत्रशोकातुरा द्रौपदी उठकर अपने स्थानपर चली गयी।

६) उत्तरा के गर्भ पर अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र का संधान और कृष्ण द्वारा मृत बालक को जीवनदान

अश्वत्थामाने समल्प परिवर्तित किया- मैं इसे उत्तराके गर्भपर प्रयुक्त करता हूँ। पाण्डव-वंशका एकमात्र बीज है उस गर्भमें। उसके नष्ट होनेपर भी पृथ्वी पाण्डवोंसे रहित हो जायगी।

अश्वत्थामा बिगड़कर बोला- आप सर्वशक्तिमान अवश्य हैं और आपने पाण्डवोंपर प्रयुक्त मेरे अस्त्रको व्यर्थ कर दिया; किन्तु मेरे इस अस्त्रको आप भी व्यर्थ नहीं कर सकते। यह उत्तराके गर्भको अवश्य नष्ट कर देगा।

द्रोणपुत्र। मैं इसे भी नष्ट कर सकता हूँ। श्रीकृष्णका क्रुद्ध स्वर गूँजा और महर्षि व्यास तक काँप गये; किन्तु उन्हें कोई प्रार्थना नहीं करनी पड़ी। सर्वेश्वरने स्वयं कहा- किन्तु इस अस्त्रको नष्ट कर देनेसे सृष्टिकी सम्पूर्ण मर्यादा नष्ट हो जायगी। अत: तेरा अस्त्र अमोघ बना रहे। सृष्टिकर्ताके स्वरूपभूत इस अस्त्रको मैं नष्ट नहीं करूँगा, यह उत्तराके गर्भपर तब गिरेगा जब गर्भस्थ बालक उत्पन्न हो रहा होगा। बालक मरा हुआ उत्पन्न होगा और उसे मैं पुन: जीवित कर दूँगा।

पापात्मा अश्वत्थामा क्षमा के भी योग्य नहीं था। द्रौपदी से क्षमा पाकर वह डरकर अरण्य में भाग गया। अन्त में उत्तरा के गर्भ से मुक्ति की प्रतीक्षा में स्थित पांडवों के एकमात्र वंशधर अभिमन्यु की भावी संतान को निश्चिन्ह कर देने के लिए उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। आपद्बन्धु कृष्ण ने ही चक्र भेज कर उत्तरा के गर्भ की संतान की रक्षा की। श्मशान-भूमि पर हरी दूब की तरह महानाश में पांडवों की अंतिम आशा कृष्ण की करुणा-वारि से पुत्र बनकर उत्तरा के गर्भ में बढ़ती रही।

विराट राजकुमारी अभिमन्युकी पत्नी उत्तराके प्रसव-कालका समय आ गया था। अचानक राजभवनसे मङ्गल वाद्य गूँजा और तत्काल ही वह बन्द भी हो गया। शोक-सूचक तुरही बोलने लगी। श्रीकृष्णने सुना तो तत्काल सात्यकिको लेकर पाण्डवोंके अन्त:पुरमें पहुँचे।

अचानक उत्तरा दौड़ती हुई आई और श्रीकृष्णके सम्मुख पृथ्वीपर गिर पड़ी। यह शील, सौजन्यकी साक्षात्मूर्ति। अभी महाभारत युद्धके पूर्व ही विवाह हुआ था उसका और युद्धमें विधवा हो गयी। बालिका उत्तरा अवश्य सती हो गयी होती; किन्तु कृष्णने रोक दिया था उसे यह कहकर कि उसके उदरमें अभिमन्युका अंश है। अब तो उत्तराका यह गर्भ ही पाण्डुके वंशका बीज था। द्रौपदीके सब पुत्र मारे ही जा चुके थे। पाण्डवोंका दूसरी पत्नियोंसे भी कोई वंशधर नहीं बचा था।

कृष्ण को प्रणाम करके काँपते हुए उसने कहा, स्वामी, बड़ा भारी संकट आ पड़ा है। अरण्य में चले जाने से पहले आहत अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रक्षेपण किया है।

उत्तरा प्रसव पीडा में है उसी समय उसे ब्रह्मास्त्र जाकर लगा। उत्तरा प्रसव पीडा झेल रही है। वैद्य ने आकर बताया सन्तान की मृत्यु गर्भ में ही हो चुकी है महारानी। यदि गर्भपात न हुआ तो सुतिका का बचना असम्भव हो जायेगा। उसी समय कृष्ण वहां आते है। सन्तान उत्पन्न हुई और मरा हुआ बच्चा गर्भ में निकाला गया। उत्तरा बोली, मामाश्री मेरे जीवन की अन्तिम ज्योति भी चली गई। कृष्ण बोले, नहीं पुत्री रोओ नहीं। प्रकाश की कभी मृत्यु नहीं होती। अन्धकार तो केवल यह समझता है कि उसने प्रकाश को निगल लिया किन्तु वो प्रकाश को कभी निगल नहीं सकता।

तब भी क्या पाण्डवकुल का यह एकमात्र आशादीप पुन: दीप्तिवान न हो उठेगा अम्ब? उत्तरा ने कातर-अबोध प्रश्नदृष्टि टिका दी कृष्ण-सखी के तेजस्वी मुखमण्डल पर।

श्रीकृष्ण को देखते ही पाण्डुपत्नी देवी कुन्ती व्याकुल हो आर्त्तनाद कर उठी।

श्रीकृष्ण। वासुदेव दौड़ो। दौड़ो द्वारिकानाथ। पुकारती हुई वृद्धा कुन्तीदेवी खुले मस्तक अत्यन्त व्याकुल भागती सामनेसे आती मिली। द्रौपदी, सुभद्रादि सभी कुरुकुलकी महिलाएँ उनके साथ दौड़ी आ रही थी। वासुदेव। हमारे आश्रय, हमारे आधार तुम्हीं हो। देवी कुन्तीने श्रीकृष्णको देखते ही अत्यन्त दीन भावसे रोते-रोते कहना प्रारम्भ किया- इस कुलके

तुम्हीं रक्षक हो। तुम्हारे भागिनेय अभिमन्युका पुत्र मरा हुआ उत्पन्न हुआ है। अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र उसे मारनेमें सफल हो गया; किंतु तुमने तो अश्वत्थामासे कहा था कि तुम इसे जीवित कर दोगे। अब इसपर अमृत दृष्टि डालो और इस वंशके बुझ गये दीपको फिर जला दो जनार्दन। यह बालक नहीं रहा तो मैं जीवित नहीं रहूँगी। मेरे कोई पुत्र जीवित नहीं रहेंगे। मेरे श्वसुरका पिण्डलोप हो रहा है, उसे बचा लो वासुदेव। बेचारी विधवा बालिका उत्तरासे कभी अभिमन्युने कहा होगा- कल्याणी। तुम्हारा पुत्र मेरे मामाके यहाँ जाकर मेरे भाई प्रद्युम्नसे सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा तथा दिव्यास्त्र प्राप्त करेगा। उत्तरा इसे बार-बार दुहराती रही है। अपने दिवंगत भागिनेयकी यह बात सत्य कर दो श्रीकृष्ण।

कुन्ती यह कहते-कहते भूमिपर गिर पड़ी। श्रीकृष्णने उन्हें सहारा देकर बैठाया और बोले- बुआजी। व्याकुल मत हो।

अरे श्रीकृष्ण यह क्या हो गया। अभिमन्यु के पुत्र होगा, इसी आशा से तो मैं आठ पौत्रों को खोकर भी टूट नहीं गयी। यही बालक तो मेरी, द्रौपदी, सुभद्रा एवं अपनी बाल-माता उत्तरा के जीवन का आधार था। अपने पाँचों पाण्डव-पितामहों का सम्बल था। वासुदेव। परम पराक्रमी पाण्डवकुल के स्वर्णिम भविष्य का विराट स्वप्नमहल जिस पर आधारित था वह आशास्तम्भ ही ढह गया। उसे देखो शोकातुर मेरी पौत्रवधु उत्तरा को जिसने पति भी खोया एवं अब मृत शिशु को जन्म देकर स्वयं भी मृतप्राय हो गयी है आघात से।

वासुदेव गम्भीर हो अपनी बुआ को सान्त्वना दे ही रहे थे कि कातर कपिला-सी उनकी प्रिय अनुजा सुभद्रा व्याकुल हो चरणों में गिर पड़ी आकर।

भैया। मेरा एक मात्र पुत्र अभिमन्यु युद्धमें मारा गया तो मैंने सन्तोष कर लिया कि उसने तुम्हारी सेवा की है, तुम्हारा स्नेह पाया है। उसका मङ्गल तुम उचित सोचते हो; किंतु उसकी अबोध विधवा पत्नी उत्तराकी व्यथा मुझसे नहीं देखी जाती। अभिमन्युका पुत्र तुम्हारे श्रीचरणोंका दर्शन भी न पा सके और मर जाय, इतना अपयश सह लेना मेरे वशमें नहीं है। तुम्हारे सब सखा प्रवासमें गये हैं। वे सुनेंगे कि तुम्हारे यहाँ होते अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र विजयी हो गया तो उन्हें कितना धक्का लगेगा? वे कैसे सह पावेंगे अपने कुलका समाप्त हो जाना।

मैं तुम्हारे पौरुषसे परिचित हूँ। ऐसा कुछ नहीं है जो तुम कर न सकते हो। ये मेरी पूजनीया सास तथा तुम्हारी सखी पाञ्चाली तुम्हारे पदोंमें पड़ी रो रही हैं। मैंने कभी तुमसे कुछ नहीं माँगा है। आज हाथ जोड़कर भिक्षुकीके समान माँगती हूँ- अपनी इस पुत्रहीना बहिनके इस पौत्रको जीवन-दान दे दो।

भैया। तुमने इस शिशुको जीवित कर देनेकी प्रतिज्ञा की है सबके सामने। अब यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा सत्य नहीं करते तो सुभद्रा तुम्हारा अयश सह नहीं सकेगी। वह तुम्हारे पैरोंपर मस्तक रखकर आज ही प्राण त्याग देगी। मैं तुम्हारा प्रभाव जानती हूँ। तुम सम्पूर्ण लोकोंको भी जीवन दे सकते हो- दे रहे हो, अत: इस शिशुको जीवित करो।

श्रीकृष्णने बहिनकी ओर विशाल नेत्र उठाये और कहा- तुम भी निराश और व्याकुल मत हो।

अहो महात्मन्। यह कैसा वज्रपात पाण्डवकुल पर। दस्युराज अश्वत्थामा ने आर्या द्रौपदी के कण्ठ की पंचरत्न माला लूट ली। और मेरे अभिमन्यु के एकमात्र चिह्न इस शिशु को भी न छोड़ा। अरे आज तो द्रोणपुत्र ने पाण्डववंश का सर्वस्व हर लिया कुछ न शेष छोड़ा। अरे तात। आपके होते हुए। यह क्या अनर्थ घटित हो रहा है कि पाण्डववंश निर्मूल हो गया आज?

जिसके जन्म की प्रतीक्षा गत कई माह से आतुरता, अधीरता एवं आशा तथा उत्साह से की जा रही थी, जिसके स्वागत में इतनी सज्जा हुई थी उत्तरा का वह पुत्र, किन्तु मृत जन्मा था। उत्साहभरे उस राजप्रासाद में सहसा हाहाकार मच गया और वह हाहाकार दावानल का रूप धारण कर तुरन्त पूरे हस्तिनापुर एवं इन्द्रप्रस्थ राज्य में फैल गया। पाण्डव-बन्धु राज्य

में नहीं थे। अश्वमेघ यज्ञ हेतु धनसंग्रह करने बाहर गये हुए थे। राजकुल की स्त्रियाँ कठोर वज्रपात को सहन करने में असमर्थ थीं। पाण्डव कुल का आशादीप प्रज्वलित ही न हो पाया, बुझा ही रह गया। भारत-युद्ध में अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा था, उसी का यह दुष्प्रभाव था। उस भयंकर ब्रह्मास्त्र से प्रस्फटित होने वाली सैकड़ों विषैली, विध्वंसकारी किरणों एवं उल्काओं से सम्पूर्ण वातावरण अस्वास्थ्यकारक एवं विषाक्त हो गया था। उस समय ही सब इस तथ्य के प्रति सचेत थे कि इसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भयंकर पड़ेगा। अश्वत्थामा को विदित था कि वीरगति प्राप्त अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा गर्भवती है एवं वह विषप्रभावित परिसर के अन्तर्गत ही है। उसने तत्काल दम्भोक्ति कर दी थी कि उत्तरा अब स्वस्थ तो क्या, जीवित शिशु को भी जन्म देने में असमर्थ रहेगी। तत्क्षण वासुदेव ने उत्तर दिया था कि यदि ऐसा हुआ तो वे अपनी योगशक्ति से मृत शिशु को जीवित कर देंगे।

आज वही अवसर उपस्थित था। पति-मृत्यु से आहत एवं व्याकुल उत्तरा ने समय से पूर्व मृत शिशु को जन्म दिया और समूचा राजकुल इस आघात से विकल हो उठा। पांचाली कभी माता कुन्ती को सँभालती, कभी सुभद्रा को, तो कभी बेसुध बाललतिका उत्तरा को। अश्रुविह्वल होते हुए भी वह स्वयं कठोर संयम धारे हुए थी।

पांचाली बोली, माधव। यदि उत्तरा का यह शिशु जीवित न हुआ तो मुझे भय है, पाण्डव-कुटुम्ब में इस अकस्मात् आघात से ही कई जन प्राणोत्सर्ग कर बैठेंगे। देख रहे हैं, क्या स्थिति है दु:ख विह्वला माता कुन्ती की। आपकी अनुजा सुभद्रा की। और इस बाल तपस्विनी उत्तरा का दारुण दु:ख तो देखा नहीं जाता। और महाभाग। जब वे पाण्डव बन्धु लौटकर यह दारुण संवाद पाएँगे कि जग-यात्रा में उनके कुल का दीपक प्रज्वलित कर चलनेवाला कोई नहीं शेष नाम लेनेवाला कोई नहीं शेष तर्पण एवं तिलांजलि देनेवाला कोई नहीं शेष तो उनके मर्मस्थल पर कैसा कठोर आघात लगेगा? अच्युत आपके परमप्रिय सखा, भावुक-मन आर्य अर्जुन तो अभी तक पुत्रशोक से पीड़ित हैं, क्या वे पुन: एक नव आघात सह सकेंगे? कोमल-मन महाराज युधिष्ठिर अपने वशं के अन्त की इस करुण गाथा से कितने न विचलित हो उठेंगे। दारुण है अत्यन्त यह कल्पना। अब तो पाण्डवकुल का यदि कोई उद्धार कर सकता है तो आप ही गोविन्द। पाण्डवों के भिक्षापात्र को आपने अपनी योगमाया के कितने चमत्कारिक रत्नों से भरा है। अच्युत। इस पौत्र-रत्न को बचाएँ किसी भी प्रकार इस पराक्रमी कुल की दीपशिखा निमीलित होने से भी आप ही बचा सकते हैं। बोलें माधव। इतना धर्मशील धर्मानुयायी कुल क्या ऐसे ही तिरोहित हो जाएगा?

श्रीकृष्ण बोले, मैं उस शिशुको देखना चाहता हूँ और श्रीकृष्ण सुभद्रा के साथ सूतिका-गृहमें पहुँचे।

उत्तरा मूर्छित पड़ी थी। द्रौपदीने उसके समीप शीघ्रतासे पहुँचकर कहा- बहू। तुम्हारे श्वसुर तुल्य अमित प्रभाव भगवान मधुसूदन तुम्हारे समीप आ रहे हैं। उत्तराने अपने वस्त्र सम्हाले। द्रौपदीने उसकी सहायता की और उसे उठकर बैठनेसे रोका। वह तपस्विनी व्यथित बालिका लेटे-लेटे ही हाथ जोड़कर रोते-रोते बोलीं- आप आ गये जनार्दन। अब मैं आपका दर्शन करते-करते शान्तिसे मर सकूँगी। आपके भागिनेय तो मुझ अभागिनीको त्यागकर पहिले ही परलोक चले गये थे। उनकी धरोहर भी बची नहीं। उनका वंश समाप्त हो गया। अब उत्तरा क्यों जीवित रहे?

तुम अभिमन्युके शिशुका पालन करनेके लिए जीवित रहोगी। श्रीकृष्ण बोल न उठते तो उत्तरा कदाचित उसी क्षण प्राण-त्याग देती।

उसमें आश्वासनने शक्ति दी। कातर कण्ठसे कहने लगी- बड़ी साध थी कि इसे अममें लेकर आपके पावन पदोंमें प्रणाम करूँगी; किन्तु सबपर अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने पानी फेर दिया। अब आप मुझे अपने स्वामीके समीप जानेसे क्यों रोकते हैं? मैं इसका पालन करूँगी- आपकी आज्ञा कौन अस्वीकार कर सकता है, परन्तु इसे जीवन-दान दीजिये।

उत्तरा इतना कहकर मूर्छित हो गई। द्रौपदी तथा चिकित्सक नारियाँ उसे सम्हालनेमें लग गयीं। उसे चेतना प्राप्त हुई तो उन्मादिनीके समान अपने शिशुके शवकी ओर देखकर बोली- वत्स। तू तो धर्मज्ञ पिताका पुत्र है। तेरे समीपमें सर्वेश्वर तेरे पिताके भी पूज्य पुरुषोत्तम खड़े हैं, तू इन्हें प्रणाम क्यों नहीं करता? उठ और इनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम कर।

श्रीकृष्णने द्रौपदीसे संकेतके द्वारा ही जल माँगा और वही आचमन करके मृत शिशुके शवके समीप बैठ गये।

उत्तराको यह सब कुछ पता नहीं था। उसको तो एक अनिर्वचनीय सुधाधाराने परिप्लुत कर दिया था। वह ऐसे आल्हादकारी स्पर्शका अपने भीतर अनुभव करके विभोर हो उठी थी कि वह किसी भी प्रकार वाणीमें नहीं आ सकता। उसका सन्तुष्ट, स्मितशोभित श्रीमुख और अलौकिक कान्ति, पाण्डवोंको, द्रौपदीको, सुभद्राको, सभीको आश्वस्त कर चुकी थी। उस बालिकाने पुन: पृथ्वीमें मस्तक रखकर प्रणाम किया अपने श्वसुर तुल्य श्रीकृष्णको और वहाँसे संकोचपूर्वक चली गयी।

अरे। तू भूमि पर पड़ा-पड़ा सो रहा है देखता नहीं। कौन तेरे समक्ष खड़ा है? स्वयं योग-योगेश्वर द्वारकाधीश वासुदेव खड़े हैं और तू उठकर उन्हें प्रणाम तक नहीं करता। कैसा तू बालक है मेरा, जो महायोगी का आशीर्वाद पाने के लिए तनिक उपक्रम भी नहीं करता। उत्तरा की वेदनासिक्त कातर वाणी सहसा प्रकोष्ठभित्तियों को कँपा गयी। महिलाएँ फूट-फूटकर रो पड़ीं। उत्तरा यह कहने के साथ ही अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी।

कैसा करुण दृश्य था। मर्मस्पर्शी। अल्पवयस माता, दो-दो पितामही एवं वयोवृद्धा प्रपितामही, सब दु:ख-व्याकुल थीं। सबकी आशाओं का केन्द्र था वह निर्जीव, अचेतन, निष्प्राण शिशु। वासुदेव का विशाल हृदय करुणा-विगलित हो उठा। सत्य एवं धर्म के अनुयायी पाण्डवकुल की ऐसी अपूरणीय क्षति। हृदय उनका हृदय नहीं, दयासिन्धु हो उठा। वे झुके, उस नन्हे प्राणी के शीश के मध्य भाग पर एवं हृदयस्थल पर हाथ फेरा।

अश्वत्थामाका ब्रह्मास्त्र उत्तराके गर्भमें पूरे नौ महीने इस शिशुके आस-पास घूमता रहा था। वह अमोघ अस्त्र प्रयोक्ताके समल्पको पूरा किये बिना तो शान्त होता नहीं; किन्तु गर्भमें वह शिशुतक पहुँचनेमे सफल नहीं हो सका। वहाँ ये चतुर्भुज कमल-लोचन श्रीकृष्ण अंगुष्ठ परिणाम रूप धरे नौ महीने प्रज्वलित गदा घुमाते शिशुके चारों ओर सुरक्षाके लिए सावधान रहे थे। इनके गदाके अखण्ड-मण्डलाकार तेजका भेदन करनेमें ब्रह्मशिरास्त्र भी असमर्थ रहा था।

जब बालकके प्रसवका समय आया, गर्भमेंसे श्रीकृष्ण तिरोहित हो गये। शिशुके भूमि-स्पर्शके क्षणमेंही ब्रह्मास्त्रको समय मिला और उसने शिशुको निष्प्राण कर दिया। अब भी वह अस्त्र अदृश्य रूपसे वहीं था और उसके तेजसे शिशुका शरीर दग्ध होकर काला पड़ता जा रहा था।

एक दीर्घ नि:श्वास की भाँति प्रकोष्ठ में सन्नाटा खिंचा रह गया। श्वासरोधक निस्तब्धता छायी हुई थी। श्रीकृष्ण मौन खड़े थे। गम्भीर। विचारमग्न। एकटक निहार रहे थे भूमि पर रखे रेशमी वस्त्रों में आवृत उस नि:स्पन्दन, प्राणहीन नवजात शिशु को।

श्रीकृष्णने आचमन करके ब्रह्मास्त्रको करके संकेतसे शान्त कर दिया। वह अस्त्र वहाँसे ब्रह्मलोक चला गया। शिशुका शरीर जो काला पड़ता जा रहा था, सहसा कान्तिमान होने लगा। उसमें मानों जीवनका तेज लौटनेवाला हो।

श्रीकृष्णने उस शिशुके शरीरपर अपना कर-स्पर्श करके कहा- यदि मुझे धर्म और ब्राह्मण विशेष प्रिय हों, यदि मैंने धृतराष्ट्र और पाण्डुके पुत्रोंको सदा समान समझा हो, यदि मुझमें शाश्वत सत्य प्रतिष्ठित हो तो यह अभिमन्युका पुत्र जीवन-प्राप्त करे। यदि मैंने केशी और कंसको भी धर्म-पूर्वक मारा हो तो यह उत्तराका पुत्र जीवित हो जाय। यदि मेरे मनमें शत्रुओंके प्रति भी सदा स्नेह ही रहा हो तो यह शिशु जीवित हो जाय।

श्रीकृष्णको इतनी शपथ करनेकी आवश्यकता नहीं थी। शिशुमें तो उनके कर-स्पर्शके साथ जीवन लौट आया था। उसके हृदयने धड़कना प्रारम्भ कर दिया था। श्रीकृष्णके शपथ समाप्त करनेके साथ तो शिशुने नेत्र खोल दिये और

अपलक उन्हींकी ओर देखने लगा था। उसने अपने सुकुमार दोनों नन्हें कर उठा लिये थे।

कृष्ण को अपने साथ लेकर उद्धव दृषद्वती के पाट के समीप गये। उन्होंने एक छोटा-सा आस्तरण बिछाया। कृष्ण पद्मासन लगाकर उस पर बैठ गये। उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। उद्धव द्वारा उनकी अँजुली में उँडेले जल की धाराओं को तीन बार भूमि पर छोड़ते हुए, सबको स्पष्ट सुनाई दे सके, ऐसे शब्दों में वे बोलने लगे- यदि मैं पुण्यपुरुष वसुदेव महाराज और देवकी माता का पुत्र हूँ, यदि मुझे नन्दबाबा और यशोदा माता का पुत्र कहलाने का अधिकार है, यदि मैं पुण्यश्लोक आचार्य सान्दीपनि और तपस्वी घोर-आंगिरस का सभी अर्थों में योग्य शिष्य हूँ, यदि बिना किसी स्वार्थ के मैंने आर्यावर्त के न्याय-मार्ग को मुक्त करने हेतु अन्याय का निर्दलन किया है, यदि जीवन-भर-दिन में अथवा रात्रि में मैंने कोई असत्य, पापकर्म नहीं किया है, तो मेरे इस आचमन के साथ उत्तरा का गर्भांकुर प्रणव का हुँकार करके अपने जीवित हो जाने का प्रमाण देगा। नारायण ने हथेली में जल लेकर आचमन किया, आँखें खोली। उद्धव की ओर देखकर मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, सखा उठो, इसी समय पाण्डव-स्त्रियों के शिबिर में जाओ और उत्तरा के गर्भ की क्या स्थिति है, यह मुझे शीघ्र बताओ।

मा भै:। श्रीकृष्णका मेघ गम्भीर स्वर गूँजा और उनका दाहिना हाथ उत्तराके ऊपर छाया करता फैल गया।

कृष्ण समाधि में चले गये और बोले, यदि मेरा सत्यवादन, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, साधना एवं तपश्चर्या निष्कलंक है, पूर्ण शुद्ध है, शक्तिमान है तो इस शिशु में अवश्य प्राण संचरित हो उठेंगे।

गुरुगम्भीर स्वर में घोषणा करने के साथ ही वे योगासन में लीन हो गये।

प्रकोष्ठ में अपूर्व शान्ति छा गयी। उत्तरा अचेत पड़ी थी। वृष्णिकुलनिन्दनी पृथा दु:ख से मूर्च्छितप्राय बैठी थीं। सुभद्रा हृदय थामे नेत्र मूँदे बैठी थी और पांचाली निहार रही थी अपलक उस महामुनि को। योगासन लगाये उस महासाधक को। आत्मविस्मृत हो निहार रही थी महातपस्वी को। चातक की भाँति स्वाति को। एकटक निहार रही थी उस श्यामल मेघ-सघन को जो तृषित-पिपासित दग्ध अन्तरों का ताप हर लेता और अमृतबिन्दु बरसा कर उन्हें शीतलरस से सिंचित कर देता।

उत्तरा उठी। अत्यन्त भय-विह्वल होकर उसने पीछे देखा और चीत्कार कर उठी- यह प्रज्वलित बाण। यह मेरे उदरकी ओर ही आ रहा है। शरणदाता। आप मेरे स्वामीकी इस धरोहरको बचा लें। उत्तराको मरनेका भय नहीं है। यह अधमा तो मरकर धन्य ही होगी। अपने आराध्यके चरणोंमें पहुँचेगी; किन्तु यह बाण- यह तो उनके इस अंशको भस्म करने आ रहा है। वह बाण दूसरे किसीको दीख नहीं रहा था। वह तो अश्वत्थामाका ब्रह्मशिरास्त्र था- दिव्यतम अस्त्र। केवल उत्तरा उसे देख रही थी। लेकिन श्रीकृष्णके अभय हस्तके फैलते ही उसे लगा कि वह बाण उसके उदरमें प्रविष्ट हो गया है। एक भयंकर जलन- असहनीय ज्वाला; किन्तु केवल क्षणार्धके लिये। श्रीकृष्णने कमल-लोचन बन्द किये, कुछ ध्यानस्थसे हुए और उत्तराको लगा कि उसके उदरमें उठी ज्वाला शान्त हो गयी है।

उत्तराका सर्वाङ्ग अद्भुत तेजसे उद्भासित हो उठा। उसका वह दीन, खिन्न वदन, मुरझाया मन क्षणार्धमें परिवर्तित हो गया। उसे लगा कि उसके भीतर आनन्दका अपार स्त्रोत फूट पड़ा है।

यह तो उत्तराके गर्भमें स्थित परीक्षितने देखा था कि एक महातेज इन्हें दग्ध करने पहुँचा ही था कि अचानक एक कमल-लोचन, चतुर्भुज नवघन सुन्दर, पीताम्बर परिधान, अंगुष्ठ परिमाण ज्योर्तिमय अद्भुत पुरुष वहाँ गर्भमें आ गया। वह उत्तराके गर्भमें आया पुरुष- परीक्षितके पश्चात् माताके उस उदरमें आया उनका अनुज- अत्यन्त तीव्रवेग था। उल्मुकके समान वह अपने हाथकी गदा घुमाते परीक्षितके चारों ओर अविराम घूमने लगा। उसकी गदा इतनी तेजोमय कि वह भस्म करनेको बढ़ा आता तेज गदाके तेजके पास आकर अन्धकार जैसा लगता था। अथक था वह तेज। वह प्रध्वन्सको धावित तेज असह्य था और पता नहीं कितना अगाध था; किन्तु यह गदा घुमाता चारों ओर घूमनेवाला अत्यन्त

सुकुमार सुन्दर अंगुष्ठ जितना बड़ा पुरुष भी थकनेवाला नहीं था। यह भी उसी तीव्र गतिसे बराबर घूमता ही रहता था।

बाहर पूरे राजमहल में भव्य शान्ति थी। कौतूहल, जिज्ञासा एवं प्रतीक्षा में रत जनसमूह अनोखी नीरवता में मूर्तिवत् खड़ा था। बेसुध, अचेत, आत्मविस्मृत सब। शिशु-कण्ठ से धीमी-सी घरघराहट की ध्वनि निकली। वे सब चौंक पड़ीं। देखा-शिशु दोनों हाथ उठाकर हिला रहा था। हर्षातिरेक से वे बावली हो उठीं। क्या करें। क्या न करें। कुछ सूझता न था कि शिशु पूरी शक्ति लगा वेग से रो पड़ा। वे आल्हादित हो नाच पड़ी जैसे। वेगवान शिशुक्रन्दन की ध्वनि बाहर पहुँची, लोग रोमांचित हो थिरक उठे।

अश्रु-गद्‌गद कण्ठों से मंगलगीत नि:सृत हो उठे। थिरकते पाँवों ने मंजीरों का साथ लिया, और मृदंगों की ताल पर नृत्यरत हो उठे। हस्तिनापुर के सुन्दर मार्गों पर, सुशोभित चतुष्पथों पर, वीथिकाओं पर, हर्षित उन्मादित हो नट-टोलियाँ निकल पड़ीं। यत्र-तत्र वीणा, वेणु, मृदंग आदि मंगलवाद्य बज उठे। धर्मराज युधिष्ठिर की जय। महापराक्रमी अर्जुन की जय। प्रचण्ड वीर स्वर्गीय अभिमन्यु की जय। योगिराज वासुदेव की जय। तुमुल जयघोष से दिग्‌दिगन्त रोमांचित हो उठे।

उत्तराने पुत्रको अंकमें उठाया। सुभद्रा और द्रौपदीने उसे सहारा दिया। उसने श्रीकृष्णके चरणोंमें सद्योजीवन-प्राप्त शिशु के साथ मस्तक रखा। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन दिया। श्रीकृष्णने बहुत अधिक रत्न उस बालकको भेंट किए।

सूर्य के डूबते-डूबते काषाय वस्त्रधारी ऊँची कद-काठीवाले प्रसन्नवदन उद्धव शीघ्रगति से आते दिखाई दिये। उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ शीघ्रता से कहा, उत्तरा के गर्भ का चलन-वलन पुन: आरम्भ हुआ है। पाण्डव-वंश का अंकुर सुरक्षित है महायुद्ध में केवल दस योद्धा बचे हैं। कौरव पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तथा पाण्डव पक्ष के पाँचों पाण्डव और महारथी सात्यकि। वंश की रक्षा होने की जानकारी पाकर, निश्चिन्त होकर नि:श्वास छोड़नेवाले पाण्डवों में से किसी के भी ध्यान में नहीं आया कि दसवाँ योद्धा कौन है। सात्यकि तो उसे भूल ही नहीं सकता था। उद्धव के मुख से सभी उसका नाम सुनें इस हेतु सात्यकि ने पूछा, उद्धव, आपने नौ ही योद्धाओं के नाम गिनाये। दसवाँ कौन है? उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया, दूसरा योद्धा है युगन्धर श्रीकृष्ण।

कृष्ण ने उस मृत बालक पर अपना हाथ रखा और बोले जागो प्रिय परीक्षित जागो और बालक में चेतना का संचार हो जाता है, प्राण आ जाते है।

वंश नाश करने चला सब मर्यादा खोये, बाल न बांका कर सके जो कृपा कृष्ण की होये।

उत्तराके गर्भमें स्थित बालक तो उत्पन्न होकर दीर्घायु प्राप्त करेगा। वह सम्पूर्ण वेद-वेदांगका ज्ञाता होगा और तुम्हारे मामा कृपाचार्य ही उसे अस्त्र-शस्त्रोंका समस्त ज्ञान देंगे। दुरात्मन। वह तुम्हारे नेत्रोंके सम्मुख कुरुवंशके सिंहासनपर बैठेगा और साठ वर्षतक पृथ्वीका पालन करेगा। तुम्हारे अस्त्रकी ज्वालासे दग्ध उसके शरीरमें मेरा सत्य अमृतसिंचन करेगा।

हर्ष-गद्‌गद वृद्धा बुआ कुन्ती ने नवजात शिशु को वासुदेव के चरणों में रख दिया। अत्यन्त स्नेह से उन्होंने उसके सुकोमल केश सहलाये, आयुष्मान हो परीक्षित।

परीक्षित। पांचाली के मुख से विस्मय से निकला। कृष्ण बोले, हाँ कृष्णे। मैंने सोचा, नाम-कर्म में सम्मिलित होने पुन: द्वारिकापुरी से आना पड़ेगा तो अभी ही क्यों न अपना वह दायित्व भी पूर्ण कर डालूँ। शुभस्य शीघ्रम्। यह परीक्षित है। कुरुकुल के परिक्षीण हो जाने के उपरान्त इसका जन्म हुआ है, इसलिए यह परीक्षित है। यह भलीभाँति परीक्षित है। अत: जीवन में सफल होगा, उत्तीर्ण होगा हर क्षेत्र में, हर दिशा में। परीक्षित दीर्घायु होगा एवं पराक्रमी पाण्डवकुल की कीर्तिध्वजा फहराएगा। वे प्रसन्नवदन बाहर आकर जनसमूह का अभिनन्दन स्वीकारने लगे।

इति सौप्तिक पर्व

HHH(५०७)HHH

स्त्री पर्व

* विषय उपक्रम *

१) धृतराष्ट्र को पुत्र शोक से सान्त्वना ५०९

२) पाण्डवोंद्वारा मृतकों की तर्पण क्रिया व प्रेत कर्म ५१४

३) पाण्डवों का हस्तिनापुर में प्रवेश और

धृतराष्ट्रद्वारा भीम की लौहमूर्ति का नाश ५२१

४) कृष्ण को गान्धारी का श्राप ५३५

५) युधिष्ठिरका राज्याभिषेक ५३९

* डरपोक व्यक्ति ही हमेशा भाग्य को दोष देता है।

* आदमी वही श्रेष्ठ है जो पराये को भी अपना बना ले।

* ऐसे राम विरोधी नेता को, शरण देते सत्ताधारी, राम के देश में राज कर रहे, रावण के पुजारी।

* जिससे मनुष्यत्व का अपमान होता है वह किसी भी दशा में उन्नति का रास्ता नहीं हो सकता।

* किसी भी महान लोकतन्त्र को प्रगतिशील होना चाहिये वरना जल्द ही वह महान नहीं रहेगा।

* जीवन विकास का सिद्धान्त है, स्थिर रहने का नहीं।

* संकुचित और स्वार्थी स्वभाव मनुष्य की प्रगति में बाधक है।

* यदि कोई मनुष्य लगातार अशुभ आचरण करे तो उसका अन्त:करण बुरे संस्कारोंसे मलिन हो जायगा।

* कायरता मनुष्य की सबसे बड़ी अयोग्यता है और वीरता सबसे बड़ा बल है।

* जिसकी बुद्धि ने विश्व के व्यापार में नियम को नहीं पहचाना
वह जीवन के हर विषय में अशक्त, अकृतार्थ और पराभूत है।

स्त्री पर्व

१) धृतराष्ट्र को पुत्र शोक से सान्त्वना

हे मानव तेरा समय स्वयं तेरे जीवन मूल्यों का खंडहर में खडा। तुझे उस महायुद्ध का आंखों देखा हाल सुना रहा था जो समाप्त होकर भी समाप्त नहीं हुआ क्योंकि समय ने तो पहिले दिन ही बता दिया था कि ये युद्ध हर वर्तमान और हर भविष्य की तकदीर है और इसीलिये समय कभी ऋषि कभी गुरु, कभी मां और कभी कवि बन कर मानव को यह कथा सुनाता चला आ रहा है। यह कथा केवल अतीत नहीं यह वर्तमान भी है और भविष्य भी इसलिये अब हस्तिनापुर चल और देख ऐसे युद्ध के उपरान्त क्या होता है।

भयावह रात्रि कुरुक्षेत्र पर उतर आयी। चालीस योजन की रणभूमि के पश्चिमी ओर का केवल आधे योजन का भूमिखण्ड ही कुछ सूखा बचा था। शेष सम्पूर्ण रणभूमि दोनों सेनाओं के लगभग चालीस लक्ष योद्धा, लाखों गज, अश्व, उष्ट्र आदि के रक्त से लांछित हो गयी थी। उस विशाल रणभूमि पर प्रतिदिन कई चिताएँ जली थीं। वीरगति को प्राप्त हुए योद्धाओं के शरीरों की राख विसर्जित होने से कुरुक्षेत्र की दृषद्वती, सरस्वती आदि नदियों और ब्रह्म, सूर्य, ज्योति आदि सरोवरों का जल मटमैला हो गया था। सम्पूर्ण रणभूमि पर जहाँ-तहाँ टूटे रथों के चक्र, खण्डित खड्ग, भग्न गदाएँ, शूल, तोमर आदि शस्त्रों, मानवी देहों के विविध अंग, हाथियों, अश्वों आदि के अंगों के ढेर लगे थे। कुरुक्षेत्र का सम्पूर्ण परिसर गृध, लकड़बग्घों, श्रृगाल, भेड़ियों आदि की आवाजों से भर गया था। बचे-खुचे वृक्षों के खोंडरों में उल्लुओं का भयावह घुघुआना गूँज रहा था। जलते पलीतों में तैल डालने को कोई रहा ही नहीं था, अत: उनका प्रकाश धीमा पड़ गया था। बुझे पलीतों का कसैला धुआँ सर्वत्र फैल रहा था। कुरुक्षेत्र अब धर्मक्षेत्र नहीं रहा था- वह एक विराट श्मशान-क्षेत्र बन गया था।

अपने सौ पुत्रोंका संहार हो जानेसे महाराज धृतराष्ट्र बड़े दुखी हुए; पुत्रशोकसे उनका हृदय जलने लगा और वे चिन्तामें डूब गये। उस समय सञ्जयने उनके पास जाकर कहा, महाराज। आप चिन्ता क्यों करते है? शोकको कोई बँटा तो सकता नहीं। राजन्। इस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेना मारी गयी, यह पृथ्वी निर्जन होकर सूनी-सी हो गयी है। अब आप क्रमश: अपने चाचा-ताऊ, बेटों-पोतों, सम्बन्धियों-सुहृदों और गुरुजनोंकी प्रेतक्रिया कराइये।

राजा धृतराष्ट्र पुत्र-पोतोंके वधसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सावधान होनेपर वे बोले, मेरे पुत्र, मन्त्री और सभी सुहृज्जन मर चुके हैं। अब तो इस पृथ्वीपर भटक-भटककर मेरे लिये दु:ख ही उठाना बाकी रह गया है। ऐसी जिंदगीसे भला, मुझे क्या लाभ है? मेरा राज्य नष्ट हो गया, भाई-बन्धु सब युद्धमें काम आ गये और आँखें तो पहलेहीसे नहीं है। मैंने अपने हितैषी परशुराम, नारद और भगवान् कृष्णद्वैपायनकी भी बात नहीं सुनी। श्रीकृष्णने सारी सभाके बीचमें मेरे भलेके लिये कहा था कि राजन्। व्यर्थ वैर मत बाँधो, अपने पुत्रको रोको। किंतु मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि मैंने उनकी बात नहीं मानी। इसी तरह मैंने भीष्मकी धर्मानुकूल सलाह भी नहीं सुनी। इसीसे आज बुरी तरह पछताना पड़ रहा है। सञ्जय। इस जन्ममें किया हुआ कोई ऐसा पाप आज याद तो नहीं आता, जिसके कारण मुझे यह फल भोगना पड़ा। अवश्य ही पूर्वजन्मोंमें मुझसे कोई बड़ा अपराध हुआ है। इसीसे विधाताने मुझे इन दु:खमय कर्मोंमें नियुक्त कर दिया। अब मेरी आयु ढल चुकी है, सब भाई-बन्धु समाप्त हो चुके हैं और दैववश मेरे हितैषी और मित्रोंका भी नाश हो चुका है। भला, अब संसारमें मुझसे बढ़कर दुखी और कौन होगा। अत: पाण्डवलोग मुझे आज ही ब्रह्मलोकके खुले हुए मार्गपर बढ़ते देखें।

तब सञ्जयने राजाके शोकको शान्त करनेके लिये ये शब्द कहे, राजन्। आपका पुत्र दुर्योधन बड़ी ही गलत बुद्धिवाला

था। दु:शासन, कर्ण, शकुनि, चित्रसेन, और शल्य जिन्होंने सारे संसारको कण्टकाकीर्ण कर दिये थे- ये सब उसके सलाहकार थे। उसने पितामह भीष्म, माता गान्धारी, चाचा विदुर, गुरु, द्रोण, आचार्य कृप और महामति नारदकी भी बात नहीं सुनी। यहाँतक कि उसने दूसरे-दूसरे ऋषि और अतुलिततेजस्वी महर्षि व्यासका भी कहा नहीं माना। उसे सदा युद्धकी ही लगन लगी रही। इसके कारण उसने कभी आदरपूर्वक धर्मानुष्ठान भी नहीं किया और न कभी क्षत्रियोंके ही किसी धर्मका आदर किया। उसने तो व्यर्थ ही क्षत्रियोंका संहार कराया।

मनुष्यको यथाशक्ति पहले ही ऐसा काम करना चाहिये, जिससे अपने पिछले कर्मके लिये उसे पछताना न पड़े। आपने तो पुत्रस्नेहमें फँसकर उसीका प्रिय करना चाहा, इसीसे अब आपको पश्चात्ताप करना पड़ रहा है; अत: इसके लिये कोई शोक नहीं करना चाहिये। शोक करनेसे न तो धन मिलता है, न फल प्राप्त होता है, न ऐश्वर्य मिलता है और न परमात्माकी ही प्राप्ति होती है। जो पुरुष स्वयं अग्नि पैदा करके उसे कपड़ेमें लपेटकर जलने लगता है और फिर पछतावा करने बैठता है, वह बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता। इस समय आपके पुत्रों और आपने ही पाण्डवरूप अग्निको अपने वाक्यरूप वायुसे सुलगाया था और उसे लोभरूप घृत छोड़कर प्रज्वलित किया था।

अत: आप बुद्धिके द्वारा मनको सावधान करके शोक और रोषको छोड़ दीजिये।

संसारमें सब जीवोंकी अन्तमें यही तो गति होनी है। जितने संचय हैं, उनका पर्यवसान क्षयमें ही होगा; सारी भौतिक उन्नतियोंका अन्त पतनमें ही होना है; सारे संयोग वियोगमें ही समाप्त होनेवाले हैं। इसी प्रकार जीवनका अन्त भी मरणमें ही होना है। मृत्यु आनेपर तो कोई नहीं जी सकता। जितने प्राणी हैं आरम्भमें वे नहीं थे और अन्तमें भी नहीं रहेंगे, केवल बीचमें ही दिखायी देते हैं। इसलिये उनके लिये शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है। शोक करनेसे मनुष्य न तो मरनेवालेके साथ जा सकता है और न मर ही सकता है। इस प्रकार जब लोककी यही स्वाभाविक स्थिति है तो आप किसलिये शोक करते हैं?

जन्मसे पूर्व ये सभी लोग अदृश्य थे और अब फिर अदृश्य हो गये हैं। न तो वे आपके थे न आप ही उनके हैं। फिर इसमें शोक करनेका क्या कारण है? युद्धमें तो जो मनुष्य मारा जाता है, उसे स्वर्ग मिलता है और जो मारता है, उसे कीर्ति मिलती है। इस प्रकार हमारी दृष्टिसे तो दोनों ही प्रकार बड़ा भारी लाभ है, युद्धमें निष्फलता तो है ही नहीं। मनुष्य दक्षिणायुक्त यज्ञ और तपस्यासे भी उतनी सुगमतासे स्वर्ग प्राप्त नहीं कर सकते जैसे कि युद्धमें मारे जानेपर शूरवीरलोग प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार क्षत्रियके लिये तो इस लोकमें धर्मयुद्धसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है।

संसारमें बार-बार जन्म लेकर आप हजारों माता-पिता और स्त्री-पुत्रादिका सङ्ग कर चुके हैं। परंतु वास्तवमें किसके वे हुए और किसके हम। शोकके हजारों स्थान हैं और भयके भी सैकड़ों स्थान हैं। किंतु इनका सर्वदा मूर्ख पुरुषोंपर ही प्रभाव पड़ता है, बुद्धिमानोंपर नहीं।

कुरुश्रेष्ठ। कालका तो न कोई प्रिय है न अप्रिय और न किसीके प्रति उसका उदासीनभाव ही है। वह तो सभीको मृत्युकी ओर खींचकर ले जाता है। काल ही प्राणियोंको बूढ़ा करता है और काल ही उन्हें नष्ट कर देता है। जब सब जीव सो जाते हैं, उस समय भी काल जागता रहता है। नि:संदेह कालसे पार पाना बड़ा ही कठिन है। यौवन, रूप, जीवन, धनका संग्रह, आरोग्य और प्रियजनोंका सहवास ये सभी अनित्य हैं।

आप अकेले शोक न करें। यद्यपि प्रियजनोंका अभाव होनेपर दु:ख दबाता ही है, तथापि शोक करनेसे वह दूर नहीं होता; क्योंकि चिन्तन करनेपर दु:ख कभी नहीं घटता, इससे तो वह और बढ़ जाता है। जो लोग थोड़ी बुद्धिवाले होते हैं, वे ही अनिष्टकी प्राप्ति और इष्टका वियोग होनेपर मानसिक दु:खसे जला करते हैं। शोक करनेसे मनुष्य कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता

है तथा अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्गसे भी वञ्चित रहता है। भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थितियोंमें पड़नेपर असंतोषी पुरुष तो घबरा जाते हैं, किंतु विचारवानोंको सभी अवस्थाओंमें संतोष रहता है।

मनुष्यको चाहिये कि मानसिक दु:खको विचारसे और शारीरिक कष्टको औषधियोंसे दूर करे। इसे ही विज्ञानका बल कहते हैं। उसे मूर्खोंका-सा व्यवहार नहीं करना चाहिये। मनुष्यका पूर्वकृत कर्म उसके सोनेपर सो जाता है, उठनेपर उठ बैठता है और दौड़नेपर भी साथ लगा रहता है। वह जिस-जिस अवस्थामें जैसा-जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्थामें उसका फल भी पा लेता है। मनुष्य आप ही अपना बन्धु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने पाप-पुण्यका साक्षी है। वह शुभ कर्मसे सुख पाता है और पापसे दु:ख भोगता है। इस प्रकार सर्वदा किये हुए कर्मका ही फल मिलता है, बिना कियेका नहीं।

इस प्रकार जब लोकका स्वरूप स्वभावसे ही आगमापायी (आने-जानेवाला) है तो आप किसलिये शोक करते हैं। इस संसारमें जो लोग बुद्धिमान्, सत्वगुणसे युक्त, सबका हित चाहनेवाले और प्राणियोंके समागमको कर्मानुसार जाननेवाले हैं, वे ही परमगति प्राप्त करते हैं।

जब गर्भाशयमें वीर्य और रजका संयोग होता है, तभीसे जीवोंकी क्रियाएँ दीखने लगती हैं। आरम्भमें जीव कलिल (वीर्य और रजके संयोग) में रहता है; फिर कुछ दिन बाद पाँचवाँ महीना बीतनेपर वह चैतन्यरूपसे प्रकट होकर पिण्डमें निवास करने लगता है। इसके बाद वह गर्भस्थ पिण्ड सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है। इस समय उसे मांस और रुधिरसे भरे हुए अत्यन्त अपवित्र गर्भाशयमें रहना पड़ता है। फिर वायुके वेगसे उसके पैर ऊपरकी ओर हो जाते हैं और सिर नीचेकी ओर। इस स्थितिमें योनिद्वारके समीप आ जानेसे उसे बड़े दु:ख सहने पड़ते हैं। फिर वह योनिमार्गसे पीडित होकर उससे बाहर आ जाता है और संसारमें आकर अन्यान्य प्रकारके उपद्रवोंका सामना करता है। अब यह जैसे-जैसे बढ़ने लगता हे, वैसे-वैसे इसे नयी-नयी व्याधियाँ भी घेरने लगती हैं। इस प्रकार अपने कर्मोंसे पीडित होकर यह जीवन व्यतीत करता रहता है। जिनमें आसक्ति होनेसे ही रसकी प्रतीति होती है, वे विषय इसे घेरे रहते हैं तथा उनके कारण यह इन्द्रियरूप पाशोंसे बँधा रहता है। ऐसी स्थितिमें इसे तरह-तरहके व्यसन घेर लेते हैं। उनसे बँध जानेपर तो इसे तृप्ति ही नहीं होती। उस समय भले-बुरे कर्म करनेपर भी इसे उनका कुछ ज्ञान नहीं होता। केवल ध्याननिष्ठ पुरुष ही अपने चित्तको कुमार्गमें फँसनेसे बचा सकते हैं। साधारण जीव तो यमलोकके द्वारपर पहुँचकर भी उसे नहीं पहचान पाता। इतनेहीमें काल इसे मृत्युके मुखमें डाल देता है और यमदूत शरीरसे बाहर खींच लेते हैं। इसे बोलनेकी शक्ति नहीं रहती। उस समय इसका जो कुछ पाप या पुण्य किया होता है, वह सामने आता है; किंतु देहबन्धनमें बँध जानेपर यह फिर अपने उद्धारका प्रयत्न नहीं करता। लोभके पंजेमें फँसकर संसार स्वयं ही ठगा जा रहा है। यह लोभ, क्रोध और भयमें पागल होकर अपनी सुधि ही नहीं लेता। यदि यह कुलीन होता है तो अकुलीनोंको हेयदृष्टिसे देखता हुआ अपनी उस कुलीनतामें ही मस्त रहता है और धनी होनेपर धनके घमंडमें भरकर निर्धनोंकी निन्दा करता है। यह दूसरोंको तो मूर्ख बताता है, किंतु अपनी ओर कभी नहीं देखता। इसी तरह दूसरोंके दोषोंकी तो निन्दा करता रहता है, किंतु अपनेको काबूमें रखनेका कभी विचार भी नहीं करता। जब बुद्धिमान और मूर्ख, धनी और निर्धन, कुलीन और अकुलीन तथा प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित सभी श्मशानभूमिमें जाकर वस्त्रहीन अवस्थामें पड़ते हैं, तब किसी भी व्यक्तिको उनमें कोई ऐसा अन्तर दिखायी नहीं देता, जिससे वे उनके कुल या रूपकी विशेषताका पता लगा सकें। जब मरनेके पश्चात् सभी जीव समान भावसे पृथ्वीकी गोदमें सोते हैं तो ये मूर्ख एक-दूसरेको धोखा क्यों देते हैं? इस नाशवान लोकमें जो पुरुष इस वेदोक्त उपदेशको साक्षात् या किसीके द्वारा सुनकर जन्मसे ही धर्मका आचरण

करता है, वह अवश्य परमगति प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति समस्त प्राणियोंको अभयदान करता है, वह भगवान विष्णुके निर्विकार परमपदको प्राप्त होता है। अभयदानसे पुरुषको जो फल प्राप्त होता है, वह हजारों यज्ञ और नित्यप्रति उपवास करनेसे भी नहीं मिल सकता। यह बात निर्विवाद है कि प्राणियोंको अपने आत्मासे अधिक प्रिय कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि मरण किसीको भी इष्ट नहीं है। इसलिये बुद्धिमान पुरुषको सभी जीवोंपर दया करनी चाहिये। जो बुद्धिहीन पुरुष तरह-तरहके माया-मोहमें फँसे हुए हैं और जिन्हें बुद्धिके जालने बाँध रक्खा है, वे भिन्न-भिन्न योनियोंमें भटकते रहते हैं। सूक्ष्मदृष्टि महापुरुष तो सनातन ब्रह्मको ही प्राप्त कर लेते हैं।

तब महर्षि व्यासने उनसे कहा, धृतराष्ट्र। तुमने सब शास्त्र सुने हैं। तुम बुद्धिमान हो। तथा धर्म और अर्थके साधनमें कुशल हो। मनुष्योंका जीवन सदा रहनेवाला नहीं है- यह तो तुम नि:संदेह जानते ही हो। यह मर्त्यलोक अनित्य है, परमपद नित्य है और जीवनका पर्यवसान मरणमें ही होता है- यह सब जानकर भी तुम शोक क्यों करते हो? इस वैरका प्रादुर्भाव तो तुम्हारे सामने ही हुआ था। तुम्हारे पुत्रको कारण बनाकर कालने ही इसे अंकुरित किया था। राजन्। यह कौरवोंका विध्वंस तो होना ही था। फिर तुम उन शूरवीरोंके लिये क्यों शोक करते हो? उन सबने तो परमगति प्राप्त कर ली है। पुराने समयकी बात है, एक बार मैं इन्द्रकी सभामें गया था। वहाँ मैंने सब देवताओंको इकट्ठे हुए देखा। उस समय एक विशेष प्रयोजनसे पृथ्वी उनके पास आयी और उनसे कहने लगी, देवगण। आपलोगोंने मेरा जो काम करनेके लिये ब्रह्माजीकी सभामें प्रतिज्ञा की थी, उसे अब शीघ्र ही पूरा कर दीजिये। उसकी यह बात सुनकर भगवान विष्णुने कहा, राजा धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमें जो सबसे बड़ा दुर्योधन है, वह तेरा काम करेगा। उसके निमित्तसे अनेकों राजा कुरुक्षेत्रमें आकर अपने सुदृढ़ शस्त्रोंके प्रहारसे एक-दूसरेका संहार कर डालेंगे। इस प्रकार उस युद्धमें तेरा सारा भार उतर जायगा। अब तू शीघ्र ही जा और सब लोकोंको धारण कर।

पांडवोंने कौरवोंके साथ युद्ध रोकनेका इतना प्रयत्न किया था। परंतु दैव बड़ा प्रबल है। इस जगत्के चराचर प्राणियोंके साथ कालका जो सम्बन्ध है, उसे कोई टाल नहीं सकता। राजन्। तुम तो बड़े धर्मात्मा और बुद्धिमान हो, तुम्हें प्राणियोंके जन्म-मरणके रहस्यका भी पता है। फिर मोहमें क्यों फँसते हो? राजा युधिष्ठिरको यदि मालूम हो गया कि तुम अत्यन्त शोकातुर हो और बार-बार घबराकर अचेत हो जाते हो तो वे प्राण त्याग देंगे। वीरवर युधिष्ठिर तो सर्वदा पशु-पक्षियोंपर भी कृपा करते हैं, फिर वे तुम्हारे प्रति दयाभाव क्यों नहीं रक्खेंगे। अत: मेरी आज्ञा मानकर और विधिका विधान टल नहीं सकता- ऐसा समझकर तथा पाण्डवोंपर करुणा करके तुम अपने प्राण धारण करो। ऐसा बर्ताव करनेसे संसारमें तुम्हारी कीर्ति होगी, धर्म और अर्थकी प्राप्ति होगी और दीर्घकालिक तपस्याका फल मिलेगा। तुम्हें जो प्रज्वलित अग्निके समान पुत्रशोक उत्पन्न हुआ है उसे विचाररूप जलसे सर्वदा शान्त करते रहो।

उस समय विदुरने उनसे कहा, भरतश्रेष्ठ। उठिये, इस प्रकार क्यों पड़े हैं? शोक न कीजिये। संसारमें सब जीवोंकी अन्तमें यही गति होनी है। प्राणी न तो जन्मसे पहले होते हैं और न अन्तमें ही रहते हैं, केवल बीचमें ही उनकी प्रतीति होती है; इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय? तथा इस युद्धमें मरे हुए जिन राजाओंके लिये आप शोक करते हैं; वे तो वस्तुत: शोकके योग्य हैं भी नहीं; क्योंकि उन सबने स्वर्गलोक प्राप्त किया है। शूरवीरोंको संग्राममें शरीर त्यागनेसे जैसी स्वर्गप्राप्ति होती है, वैसी तो बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करनेसे, तपस्यासे और विद्याभ्याससे भी नहीं हो सकती। इन्होंने युद्धमें शत्रुओंका सामना करते हुए प्राण त्यागे हैं, इसलिये इनके लिये क्या शोक किया जाय? राजन्। यह बात तो मैंने पहले भी आपसे कही थी कि क्षत्रियके लिये युद्धसे बढ़कर इस लोकमें स्वर्ग-प्राप्तिका कोई और साधन नहीं है। इसलिये

आप अपने मनको धैर्य बँधाइये और शोक करना छोड़िये।

हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के महल में धृतराष्ट्र रो रहा है। इतने में ही विदुर वहाँ आ जाता है। धृतराष्ट्र बोला, तबके गये अब आये हो अनुज विदुर। अपने भ्राताश्री का आँसुओं से भरा यह मुख मंडल देखो। तुम तो निश्चय ही शोक प्रकट करने आये होंगे। लम्बी आयु का आशीर्वाद लोगे प्रिय अनुज। विदुर बोले, नहीं ज्येष्ठ भ्राताश्री नहीं। धृतराष्ट्र बोला, तो फिर शोक प्रकट करो और चले जाओ। मुझे मेरे आंसुओं के साथ अकेला छोडकर चले जाओ। कदाचित तुम तक अभी तो यह समाचार पहुंचा ही नहीं कि मेरा दुर्योधन वीरगति को प्राप्त हुआ है। और हे विदुर गदा युद्ध में भीम ने उसकी जंघा तोडी है। विदुर बोला, भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोले, क्या शोक भी प्रकट नहीं करोगे। विदुर बोला, हे भ्राताश्री क्या हमारी राजनीति इस योग्य थी कि उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट किया जाये? धृतराष्ट्र बोला, मेरा दु:शासन राजनीतिज्ञ नहीं था विदुर। अनेक गान्धारी नन्दन राजनीतिज्ञ नहीं थे विदुर। वो सब मेरे पुत्र थे विदुर। विदुर बोला, वो आपके पुत्र थे भ्राताश्री किन्तु वो आपकी राजनीति की चौसर पर गोटियों की भांति जी रहे थे। आगे बढे और पिटकर बिछात से हट गये। यह न भूलिये भ्राताश्री कि दांव आप ही ने लगाया था और आप हार गये। द्यूत में जय और पराजय का चक्र तो चलता ही रहता है। दु:खी तो मैं हूं भ्राताश्री जो मौन की डोरियों से बंधा हुआ न्याय और अन्याय के बीच होता हुआ यह निर्णायक खेल देखता रहा और कुछ नहीं कर सका। धृतराष्ट्र बोले, इस युद्ध में मेरे सौ पुत्र वीरगति को प्राप्त हुये है उसे तुम खेल कह रहे हो विदुर। क्या तुम्हारी छाती में हृदय के स्थान पर नीति का एक गर्त है? क्या तुम एक उल्टी गागर हो? जिस पर मेरे आंसू टिक नहीं पा रहे। क्या यही तुम्हारा धर्म है? विदुर बोला, धर्म की बात मत कीजिये भ्राताश्री। धर्म वो तोता नहीं है जो वही बोलता रहे जो आप उसे सिखाते रहे। आप अपने हितों के पिंजरे में धर्म को नहीं पाल सकते क्योंकि धर्म का फैलाव तो त्रिलोक को अपने में समेटे हुये है। और उनसे भी बाहर है। सांसों के लिये वायु को शुद्ध रखना भी धर्म है भ्राताश्री। जलाशयों में जल को शुद्ध रखना भी धर्म है भ्राताश्री। वृक्षों की रक्षा करना भी धर्म है भ्राताश्री और इस युद्ध में आपके विरुद्ध युद्ध करना भी धर्म ही था भ्राताश्री इसलिये पांडु पुत्रों को आशीर्वाद दीजिये। उन्होंने बडे कठिन और टेढे मेढे रास्तों से चल कर अपने धर्म का पालन किया है। धृतराष्ट्र बोले, तो क्या मैं ही एक अधर्मी था? क्या वो धृतराष्ट्र अधर्मी है जिसकी शक्तिशाली बांहों का फैलाव अपने पुत्रों के शवों को नहीं समेट पा रहा है। विदुर बोला, यदि आप धर्म के मार्ग पर रहे होते भ्राताश्री तो केवल आप अपने पुत्रों के शवों को याद नहीं कर रहे होते। परीक्षा की इस निर्णायक घडी में आप राजा नहीं, आप केवल एक पिता सिद्ध हुये भ्राताश्री, केवल एक पिता। यही हस्तिनापुर और आप दोनों का दुर्भाग्य है। आपने अपने पुत्र मोह और महत्वाकांक्षाओं से धक्के मरवाकर धर्म को भरी सभा से बाहर निकलवा दिया। हे भ्राताश्री धर्म देश के विभाजन का नाम नहीं है और आपने देश का विभाजन किया। धर्म हृदय और हृदय के बीच दीवार उठाने का नाम नहीं है और आपने यही किया। धर्म तो हृदय और हृदय के बीच उठी हुई दीवार को गिराने का नाम है और आपने यही नहीं किया। धर्म मोह के अधीन होकर नहीं जी सकता। हे भ्राताश्री धर्म आपके लिये एक कड़वा सत्य है। आज भी उसे मान लीजिये, स्वीकार कर लीजिये क्योंकि अब भी आपने सब कुछ नहीं खोया है। धृतराष्ट्र बोला, हे कडवे सत्यों के भक्त मेरे पास मेरे प्रियजनों के शवों के अतिरिक्त अब क्या रह गया है? विदुर बोला, अभी आपके पास आपकी आत्मा है। आपकी अन्दर आपकी अन्तरात्मा है भ्राताश्री। इन दोनों को बचाने का प्रयत्न कीजिये। इस राजभवन से निकल हस्तिनापुर के किसी चौराहे पर खड़े होकर चीख चीख कर कहिये हे हस्तिनापुर मुझे क्षमा कर। धृतराष्ट्र बोला, क्या मैं उस हस्तिनापुर से क्षमा मांगू विदुर जो मेरे सौ पुत्रों के वीरगति को प्राप्त होने के पश्चात भी मेरे पास शोक प्रकट करने नहीं आया। विदुर बोला, वो क्यों आता

भ्राताश्री। आप जाकर शोक प्रकट कीजिये क्योंकि आपने तो केवल सौ पुत्र खोये है किन्तु हस्तिनापुर ने तो अनगिनत पुत्रों की बलि दी है और आप जिन वीरों को अपना सौ पुत्र कह रहे है वे भी तो हस्तिनापुर के ही पुत्र थे। धृतराष्ट्र बोला, क्या धर्म मुझसे मेरे पुत्र भी छीन लेगा विदुर? क्या धर्म मुझे अपने पुत्रों पर रोने का अधिकार भी नहीं देगा। विदुर बोला, अवश्य देगा किन्तु धर्म नदी की जलधारा है और उस जलधारा में हर खेत, आसपास की भूमि, आसपास रहनेवाले हर व्यक्ति सभी को उसकी प्यास पर जल देता है किन्तु वो जलधारा किसी की सम्पत्ति नहीं। पुत्र से प्रेम करना तो पिता का कर्त्तव्य अवश्य है किन्तु धर्म का कोई पुत्र या परिवार होता ही नहीं। आपने यही नहीं सोचा। आपने अपनी महत्वाकांक्षा का अंगार दुर्योधन की हथेली पर रख कर कहा ये अंगार नहीं चन्द्रमा है और वह अपने चाहनेवाले पिता की बात क्यों न मानता? हे भ्राताश्री आपने उसकी हथेली पर इतने अंगार रखे कि उसकी हथेली स्वयं एक अंगार बन गई और उसी अंगार ने उसे भस्म भी कर दिया। हे भ्राताश्री वो आपकी महत्वाकांक्षा थी जो उसे खेंचती हुई कुरुक्षेत्र तक ले गई, इसीलिये हे भ्राताश्री इस युद्ध के लिये इतिहास आपको ही उत्तरदायी ठहरायेगा। आप ही को भ्राताश्री। आप वो अतीत हैं भ्राताश्री जिसने भविष्य का मार्ग रोकने के लिये अपने पुत्रों के शवों की दीवार खडी कर दी। धृतराष्ट्र बोले, तुम बात तो सदैव की भांति कडवी बोल रहे हो विदुर किन्तु तुम्हारे स्वर आंसुओं से भीगे हुये क्यों लग रहे है? विदुर बोला, मेरे स्वर आंसुओं से भीगे हुये इसलिये लग रहे है भ्राताश्री क्योंकि मैं रो रहा हूं। मेरी एक विनती है भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोला, कहो अनुज, क्योंकि अब तो मुझसे कुछ कहनेवाला रह ही नहीं गया है। क्या चाहते हो कह डालो। विदुर बोला, विजयी पांडु पुत्र हस्तिनापुर में प्रवेश कर चुके हैं। चरणस्पर्श के लिये आयें तो उन्हे आशीर्वाद देकर वन की ओर प्रस्थान कीजिये। धृतराष्ट्र बोला, फिर हस्तिनापुर विदुर एक रोती बिलखती आंखों का एक वन भी लग रहा होगा। विदुर बोला, आप हस्तिनापुर का अतीत हैं भ्राताश्री और यह आपका परम कर्त्तव्य है कि स्वयं उठकर वर्तमान के लिये द्वार खोले उसे स्थान ग्रहण करवाने के उपरान्त बीते हुये समय के अन्धकार में चले जाये। इसलिये अपनी महत्वाकांक्षाओं के टुकडों को समेटना आरम्भ कीजिये भ्राताश्री। भाभीश्री और राजमाता कुन्ती ने भी आपके साथ ही हस्तिनापुर त्यागने का निर्णय लिया है भ्राताश्री। धृतराष्ट्र बोले, नहीं मैं उन दोनों का सामना नहीं कर सकता विदुर। धृतराष्ट्र बोला, उन दोनों का सामना किये बिना तो आपको मोक्ष प्राप्त हो ही नहीं सकता भ्राताश्री यही आपका दंड भी है और प्रायश्चित भी। वे दोनों ऐसी मातायें है भ्राताश्री जो रणभूमि कुरुक्षेत्र के दोनों छोरोंपर अपने अपने भाग्य का शव लिये खड़ी है। उन दोनों के साथ होने पर ही आपको यह ज्ञान मिलेगा कि आपने उस हस्तिनापुर के साथ क्या किया जो आपको अतिप्रिय था। उन दोनों का आपके साथ होना ही आपको यह बतायेगा कि आपकी महत्वाकांक्षा आपके हस्तिनापुर को कितनी महंगी पड़ी।

२) पाण्डवोंद्वारा मृतकों की तर्पण क्रिया व प्रेत कर्म

धृतराष्ट्रने कहा, गान्धारीको और भरतवंशकी सब स्त्रियोंको जल्दी ही ले आओ तथा वधू कुन्तीको साथ लेकर वहाँ जा दूसरी स्त्रियाँ हों, उन्हें भी बुला लो। धर्मज्ञ विदुरसे ऐसा कहकर वे रथपर सवार हुए। उस समय भी शोकके कारण वे संज्ञाशून्य-से हो रहे थे। गान्धारीका भी पुत्रशोकके कारण बुरा हाल था। पतिकी आज्ञा पाकर वह कुन्ती तथा दूसरी स्त्रियोंके साथ उनके पास आयी। वहाँ पहुँचकर वे सब अत्यन्त शोकातुर होकर एक-दूसरीसे विदा लेकर वहाँ आयीं और बड़े जोरसे विलाप करने लगी। इस आर्तनादने विदुरको यद्यपि उनसे भी अधिक शोकाकुल कर दिया था, तो भी उन्होंने उन्हें धीरज बँधाया और सब स्त्रियोंको रथपर चढ़ाकर नगरसे बाहर आये। अब तो कुरुवंशियोंके सभी घरोंमें कोलाहल मच

गया तथा बूढ़ेसे लेकर बालकतक सभी शोकाकुल हो गये। जिन स्त्रियोंपर पहले कभी देवताओंकी भी दृष्टि नहीं पड़ी थी, अब पतियोंके मारे जानेपर वे सामान्य पुरुषोंके भी सामने आ गयीं।

सञ्जयने ही धृतराष्ट्रको दुर्योधनकी मृत्युका समाचार दिया। उसीने शोकमग्न उन अन्धे राजाको सुझाया कि अब युद्धमें मारे गये लोगोंका प्रेतकर्म कराया जाना चाहिए।

अत्यन्त शोकाकुल धृतराष्ट्रको किसी प्रकार विदुरने समझाया और फिर गान्धारीके साथ सभी स्त्रियोंको लेकर वे लोग कुरुक्षेत्रकी ओर चल पड़े। देवी कुन्तीको भी धृतराष्ट्रने साथ ले लिया था; क्योंकि गान्धारीको वही सम्हाल सकती थीं।

सहस्त्रों विधवा नारियोंका वह आर्तक्रन्दन करता समूह- विदुर जैसे तत्त्वज्ञ भी व्याकुल हो गये वहाँ। उसमें वृद्धाएँ थीं, युवा थीं, बालिकाएँ तक थीं। युद्धमें पितामह, पिता, पुत्र, पौत्र सभी मारे गये थे। उन सबकी विधवाएँ थीं। कौन किसे समझावे और क्या समझावे। सब समान दु:खी। सब चाहे जिसके कण्ठसे लिपटकर या पृथ्वीपर पछाड़ खाती विलाप कर रही थीं।

लगभग मध्याह्नके समय धृतराष्ट्रके हस्तिनापुरसे कुरुक्षेत्रकी ओर जानेका समाचार मिला था। युधिष्ठिर अविलम्ब भाइयोंके साथ रथोंमें बैठकर चल पड़े थे। युद्धमें जो भी मारे गये थे, वे किसी भी पक्षसे मारे गये हों, अब सबके अन्तिम संस्कारका दायित्व पाण्डवोंपर था। उनके पक्षके लोग भी कम नहीं मरे थे वहाँ और मरा हुआ शत्रु भी सत्पुरुषके लिए पराया नहीं होता, दुर्योधनादि तो उनके स्वजन ही थे।

महायज्ञ की भाँति अठारह दिनों तक धधकते रहे महायुद्ध की परिसमाप्ति पर अब एक ही कार्य शेष था- कौरव-पाण्डव-सेनाओं के वीरगति को प्राप्त हुए योद्धाओं को तर्पण करने का कार्य। उसके लिए कृष्ण के आमन्त्रित किये गये पाण्डव-पुरोहित धौम्य ऋषि अपने शिष्यगणों सहित धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में उपस्थित हुए थे। ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर को तर्पण-विधि का यह कार्य करना था। उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुए अपने आप्तों को तिलांजलि देने हेतु द्रौपदी सहित सभी पाण्डव-स्त्रियाँ और गान्धारीदेवी के अतिरिक्त अन्य कौरव-स्त्रियाँ कुरुक्षेत्र पर उपस्थित हुई थीं। उचित मुहूर्त में धौम्य ऋषि ने तर्पण-विधि का आरम्भ किया। प्रथम सभी पितरों को स्मरण करते हुए युधिष्ठिर ने उनको पिण्डदान किया। महायुद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए आचार्य द्रोण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच आदि प्रमुख योद्धाओं को पिण्डदान किया गया। तत्पश्चात् अन्य सभी के लिए समवेत पिण्डदान किया गया। वहाँ उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषों ने तिलांजलियाँ अर्पित कीं। पितामह भीष्म अभी तक शरशैया पर ही पड़े हुए थे।

उन्हें कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये तीनों महारथी मिले। कृपाचार्यने कहा, भरतश्रेष्ठ दुर्योधनकी सेनामें केवल हम तीन ही बचे हैं। बाकी आपकी सारी सेना नष्ट हो गयी। इसके बाद कृपाचार्यने गान्धारीसे कहा, गान्धारी। तुम्हारे पुत्रोंने निर्भय होकर युद्ध किया है और अनेकों शत्रुओंको रणभूमिमें सुलाया है। इस प्रकार अनेकों वीरोचित कर्म करते हुए ही वे संग्राममें काम आये हैं। अब वे तेजोमय शरीर धारण करके स्वर्गमें देवताओंके समान विहार करते हैं। उनके शत्रु पाण्डवलोग चैनसे रहे हों ऐसी बात भी नहीं है। अश्वत्थामा आदि हम तीन महारथियोंने जो काम किया है, वह भी सुन लो। जिस समय हमने सुना कि भीमने अधर्मपूर्वक तुम्हारे पुत्र दुर्योधनको मारा है तो हम पाण्डवोंके नींदमें बेहोश हुए शिबिरमें घुस गये और वहाँ भीषण मार-काट मचा दी। इस प्रकार हमने धृष्टद्युम्नादि सभी पाञ्चालोंको तथा द्रुपद और द्रौपदीके पुत्रोंको मार डाला है। इस तरह तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका संहार करके हम भागे जा रहे हैं, क्योंकि हम तीन ही पाण्डवोंके सामने संग्राममें नहीं ठहर सकेंगे। पाण्डव बड़े शूरवीर और महान् धनुर्धर हैं। इस समय अपने पुत्रोंकी मृत्युका समाचार पाकर वे क्रोधमें भरकर हमारे पैरोंके चिन्ह देखते हुए इस वैरका बदला चुकानेके लिये बड़ी तेजीसे हमारा पीछा करेंगे। उन

सबका संहार करके अब हमारी यह हिम्मत नहीं है कि पाण्डवोंका सामना कर सकें। इसलिये रानी। तुम हमें यहाँसे जानेकी आज्ञा दो और अपने मनको शोकाकुल मत करो। राजन्। आप भी हमें जानेकी आज्ञा दीजिये और क्षात्रधर्मपर विचार करके अच्छी तरह धैर्य धारण कीजिये।

कृपाचार्य हस्तिनापुरको चल दिये, कृतवर्मा अपने देशकी ओर चला गया और अश्वत्थामाने व्यासाश्रमकी राह ली। इस प्रकार महात्मा पाण्डवोंका अपराध करनेके कारण भयभीत होकर वे तीनों वीर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए भिन्न-भिन्न स्थानोंको चले गये।

गङ्गातटपर पहुँचकर राजा युधिष्ठिरने कुररीकी तरह विलाप करती हुई स्त्रियोंके अनेकों यूथ देखे। वहाँ हाथ उठाकर आर्त्तस्वरसे रोती हुई हजारों स्त्रियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। वे कहने लगीं, राजन्। आज आपकी धर्मज्ञता और दयालुता कहाँ चली गयी जो इस तरह अपने चाचा, ताऊ, भाई, गुरु, पुत्र और मित्रोंको भी मार डाला। इन सबको और अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पुत्रोंको भी खोकर अब आप इस राज्यको लेकर क्या करेंगे?

इसी समय महर्षि व्यासकी आज्ञासे महाराज धृतराष्ट्र तथा श्रीकृष्णको आगे करके सब पाण्डव वहाँ एकत्र स्त्रियोंको लेकर युद्धभूमिकी ओर चल पड़े। वहाँ उन विधवाओंने अपने पति, पिता, भाई, पुत्र आदिका शव देखा तो दिशायें उनके चीत्कारसे भर गयीं।

वे सबकी सब नारियाँ ऐसी थीं कि स्वस्थ दशामें इस भूमिका वर्णन सुनकर भी चीत्कार करके अवश्य मूर्छित हो जातीं; किन्तु इस समय वे सब उन्मादिनी हो गयी थीं। उसी रक्त-जमे दलदलमें वे हाहाकार करती पिशाचिनियोंकी भाँति दौड़ने लगी थीं। अपने स्वजनोंका शरीर अथवा सिर ढूँढ़ती वे भागती थीं, भटकती थीं, ठोकरें खा-खाकर गिरती थीं। उनके पद, वस्त्र, शरीर रक्तसे सनते जा रहे थे; किन्तु उन्हें अपनी सुधि ही कहाँ रही थी।

कोई पति अथवा पुत्र या भाईका सिर पा जाती थी तो उसे गोदमें लिए उसका शरीर ढूँढ़ रही थी और किसीने शरीर पहिचान लिया तो उसे सिर नहीं मिल रहा था। वे सुकोमल राजकुलवधुएँ, उनकी वह दशा, उनका वह क्रन्दन- उसकी कल्पना भी अत्यन्त दारुण है।

देवी गान्धारीने श्रीकृष्णको अपने समीप बुला लिया और वे कहने लगीं- ये मेरी विधवा बहुएँ बाल बिखेरे व्याकुल भाग रही हैं और विलाप कर रही हैं। इस युद्धस्थलको देखकर मैं तो शोकसे भस्म हुई जा रही हूँ। पता नहीं पूर्व जन्मोंमें मैंने कितने पाप किये थे कि मुझे अपने पुत्र, पौत्र, भाइयोंका यह महासंहार देखना पड़ा।

दुर्योधनका शव समन्तक-पञ्चक क्षेत्रसे वहीं सेवक उठा लाये। वह राजा था, अत: उसके लिए एक अकेली चिता सजायी गयी। जब गान्धारी को उसके ज्येष्ठ पुत्रके शवके समीप पहुँचाया गया तो वह मूर्छित होकर भूमिमें गिर पड़ी। वह बोली- मधुसूदन। जब यह बन्धु-विध्वंसक संग्राम प्रारम्भ हो गया तो मेरे इस पुत्रने हाथ जोड़कर मुझसे कहा था- माताजी। मुझे युद्धमें विजयी होनेका आशीर्वाद दो।

मैंने मां होकर भी कहा था- विजय वहीं होती है, जहां धर्म रहता है; किंतु यदि तुम बिना घबड़ाये सम्मुख युद्धमें मारे गये तो तुम्हें देवताओंके समान उत्तम गति अवश्य प्राप्त होगी।

यह मेरा पुत्र मूर्धाभिषिक्त राजाओंके आगे चलता था और उनको आज्ञा देता था। इसके लिये मुझे शोक नहीं है। शोक तो मुझे नेत्रहीन महाराजके लिए है कि उनका कोई सहारा ही नहीं रह गया।

धृतराष्ट्र ने अपना मुख फेरा, मृतकों के दाह के विषय में क्या सोचा है धर्मराज?

युधिष्ठिर ने कहा, हाँ। वह अत्यावश्यक है। मैंने आदेश दे दिया है। वह सब धौम्य मुनि की देखरेख में होगा।

वीरगति को प्राप्त हुए सभी योद्धाओं को तर्पण देने का धर्म-कार्य करना अभी शेष था। उसके लिए सात्यकि और कृष्ण दृषद्वती नदी के तट पर आ गये। कृष्ण ने धौम्य ऋषि से तर्पण-विधि की तैयारी करने को कहा। अब महायुद्ध समाप्त हुआ, यह सोचकर सबने मुक्ति की साँस ली। युग-युग से बहती आयी दृषद्वती नदी शान्त थी। तट पर हुए मानवी प्रलय से उसे कुछ लेना-देना नहीं था।

अब महर्षि व्यास आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर आदि सब पाण्डव महाराज धृतराष्ट्र और श्रीकृष्णको आगे कर कुरुकुलकी सब स्त्रियोंको लेकर रणक्षेत्रकी ओर चले। कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर उन विधवा स्त्रियोंने युद्धमें मरे हुए अपने भाई, पुत्र, पिता और पति आदिको देखा। उस भीषण संहारभूमिको देखकर वे राजमहिलाएँ चीत्कार करती हुई अपने बहुमूल्य रथोंसे गिर पड़ीं। इस अभूतपूर्व दृश्यको देखकर वे दु:खसे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। उनमेंसे किन्हींके तो शरीर मुरझा गये और कोई पृथ्वीपर पछाड़ खाने लगीं। वे बहुत थकी हुई थीं और अनाथ हो चुकी थीं। इस समय उन्हें कुछ भी होश-हवास नहीं था। पाञ्चाल और कुरुकुलकी स्त्रियोंके लिये यह बड़ा ही करुणापूर्व प्रसंग था।

दुर्योधनको मरा हुआ देखते ही शोकातुरा गान्धारी कटे हुए केलेके समान सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। होश आनेपर जब उसने दुर्योधनको खूनमें लथपथ हुए पृथ्वीपर पड़ा देखा तो वह उससे लिपटकर हा पुत्र। हा पुत्र। ऐसा कहकर रोने लगी। फिर उसे अपने आँसुओंसे सींचती हुई श्रीकृष्णसे कहने लगी, वार्ष्णेय। जब यह बन्धुओंका विध्वंस करनेवाला संग्राम ठन गया तो दुर्योधनने हाथ जोड़कर मुझसे कहा था, माताश्री। मुझे आशीर्वाद दो कि इस युद्धमें मेरी विजय हो। तब मैंने यही कहा था कि जय तो वहीं रहती है, जहाँ धर्म रहता है; किंतु यदि तुम युद्ध करनेमें घबराये नहीं तो तुम्हें देवताओंके समान शस्त्रोंसे मरनेपर प्राप्त होनेवाले लोक अवश्य मिलेंगे। इसलिये मुझे इसके लिये शोक नहीं है। मुझे तो महाराजके लिये चिन्ता है, जिनके सभी सम्बन्धी संग्राममें काम आ गये हैं। जो दुर्योधन मूर्द्धाभिषिक्त राजाओंके आगे-आगे चलता था, आज वही धूलिमें पड़ा हुआ है। आज वह वीरशय्यापर शत्रुके सामने मुँह किये पड़ा है। जो ग्यारह अक्षोहिणी सेनाको लेकर युद्धके मैदानमें उतरा था, वह दुर्योधन अपने अन्यायसे ही आज मारा गया। यह अभागा बड़ा मूर्ख था। इसने अपने पिता और विदुरजी-जैसे वृद्ध पुरुषोंका अपमान किया, इसीसे आज कालके गालमें चला गया। जिसने तेरह वर्षतक पृथ्वीका निष्कण्टक राज्य किया, वही मेरा पुत्र आज मरकर पृथ्वीपर सो रहा है। श्रीकृष्ण। मेरी यह पुत्रवधू बड़े उदार हृदयकी है। पता नहीं इसकी स्थिति कैसी है। यह अपने पतिके लिये शोकाकुल है या पुत्रके लिये? कभी यह पतिकी ओर देखती है तो कभी पुत्रकी ओर देखने लगती है। किंतु कुछ भी हो, यदि वेद और शास्त्र सच्चे हैं तो दुर्योधनने अवश्य ही अपने बाहुबलके प्रतापसे अविनाशी लोक प्राप्त किये होंगे।

इधर देखो, यह दु:शासन पड़ा हुआ है। शत्रुसूदन महावीर भीमने इसे युद्धमें पछाड़कर इसके शरीरका खून पिया है। द्रौपदीके कहनेसे और जुएके समय सहे हुए दु:खोंको याद करके भीमने मेरे इस पुत्रकी कैसी दुर्गति की है। कृष्ण। मैंने तो दुर्योधनसे उसी समय कहा था कि तू मौतकी फाँसीमें बँधे हुए शकुनिका साथ छोड़ दे। अपने इस कुबुद्धि मामाको तू पूरा कलहप्रिय समझ। तू इसे अभी त्यागकर पाण्डवोंके साथ संधि कर ले। मूर्ख। क्या तू नहीं जानता भीम असहनशील है, जो हाथीको उल्कासे जलानेके समान तू उसे अपने वाग्बाणोंसे बींधा करता है? आज उसीका फल है कि भीमका पछाडा हुआ दु:शासन अपनी लंबी-लंबी भुजाओंको फैलाये पृथ्वीपर सो रहा है। क्रोधी भीमने दु:शासनको युद्धमें मारकर इसका खून पिया, यह तो उसका बड़ा ही भीषण काम था।

श्रीकृष्ण। देखो, वह अनेकों महारथियोंको धराशायी करके खूनमें लथपथ हुआ कर्ण रणाङ्गणमें पड़ा हुआ है। यह बड़ा ही

असहनशील, महान् क्रोधी, प्रचण्ड धनुर्धर और बड़ा बली था। किंतु आज अर्जुनके हाथसे मारा जाकर यह पृथ्वीपर सोया हुआ है। मेरे महारथी पुत्र भी पाण्डवोंके भयसे इसे ही आगे करके युद्ध करते थे। धर्मराज युधिष्ठिर इससे सदा ही घबराये रहते थे, इसकी ओरसे चिन्तित रहनेके कारण तेरह वर्षतक उन्हें सुखसे नींद भी नहीं आयी। यह प्रलयकालिक अग्निके समान तेजस्वी और हिमालयके समान निश्चल था और यही दुर्योधनका प्रधान अवलम्ब था। किंतु देखो, आज यह वायुद्वारा उखाड़े हुए वृक्षके समान पृथ्वीपर पड़ा है। इसकी पत्नी वृषसेनकी माता पृथ्वीपर पड़ी है और तरह-तरहसे विलाप करती बड़ा ही करुणक्रन्दन कर रही है। हाय। बड़े खेदकी बात है। महाबाहु कर्णको रणभूमिमें अचेत पड़ा देखकर सुषेणकी माता अत्यन्त आतुर होकर मूर्च्छित हो गयी है। देखो, कुछ होश होनेपर उठकर वह फिर पृथ्वीपर गिर गयी है और पुत्रके वधसे अत्यन्त आतुर होकर बड़ा ही विलाप कर रही है।

उधर राजा जयद्रथ पड़ा हुआ है। इसे तो अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये ग्यारह अक्षौहिणी सेनाको पार करके मारा था। जनार्दन। जिस समय वह वनमेंसे द्रौपदीको हरकर ले गया था, पाण्डवलोग तो इसे तभी मार डालते; उस समय केवल दु:शलाकी ओर देखकर ही उन्होंने इसे छोड़ दिया था। हाय एक बार फिर उन्होने दु:शलाका मान क्यों नहीं रक्खा? देखो, मेरी बच्ची दुखी होकर कैसा विलाप कर रही है। कृष्ण। बताओ, मेरे लिये इससे बढ़कर दु:ख क्या होगा कि मेरी अल्पवयस्का पुत्री विधवा हो गयी और बहुओंके पति मारे गये। हाय। तनिक मेरी दु:शलाकी ओर तो देखो। पतिका सिर न मिलनेके कारण वह शोक और भयसे रहित-सी होकर उसे इधर-उधर ढूँढती फिर रही है।

इधर ये नकुलके मामा राजा शल्य मरे पड़े हैं। इन्हें धर्मको जाननेवाले स्वयं धर्मराजने ही संग्राममें मारा था। इनकी तुम्हारे साथ सदासे स्पर्धा रहती थी। युद्धस्थलमें कर्णका सारथ्य करते समय ये पाण्डवोंको विजय दिलानेके लिये उसका तेज क्षीण करते रहे थे। इन्हें, चारों ओरसे इनकी रानियोंने घेर रक्खा है। उधर वे पर्वतीय राजा भगदत्त हाथमें हाथीका अंकुश लिये पृथ्वीपर मरे पड़े हैं। इनके साथ अर्जुनका बड़ा ही प्रचण्ड, रोमाञ्चकारी और भीषण युद्ध हुआ था। एक बार तो इनके युद्धकौशलको देखकर अर्जुन भी दंग रह गया था, किंतु अन्तमें ये उसीके हाथसे मारे गये। जिनके समान बल और पराक्रममें संसारभरमें कोई नहीं था, वे ही भीषण कर्म करनेवाले भीष्म इधर शरशय्यापर शयन कर रहे हैं। केशव। इस प्रतापी नर-सूर्यने शत्रुओंको अपने शस्त्रोंके तापसे झुलसा डाला था। हाय। आज यह अस्त होना चाहता है। आज वीरोचित शरशय्यापर पड़े हुए ये अखण्ड ब्रह्मचारी भीष्म है। ये आजतक अपने व्रतसे नहीं डिगे।

युद्धमें इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं था। ये बड़े ही धर्मात्मा और सर्वज्ञ हैं तथा मनुष्य होनेपर भी तत्त्वज्ञानके प्रभावसे देवताओंके समान प्राण धारण किये हुए हैं। आज जब भीष्म भी बाणोंके लक्ष्य बनकर रणक्षेत्रमें पड़े हुए हैं तो मुझे यही निश्चय होता है कि वास्तवमें न कोई युद्धकुशल है, न पराक्रमी है और न विद्वान है। विधाता जिसे जीवनमें सफलता दे देता है, उसीको लोग श्रेष्ठ कहने लगते हैं। माधव। जब ये देवतुल्य भीष्म स्वर्गको सिधार जायँगे तो कुरुकुलके लोग धर्मके विषयमें अपना संदेह किससे पूछेंगे?

इधर देखो, ये कौरवोंके मानवीय आचार्य द्रोण पड़े हुए हैं। चार प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान जैसा इन्द्रको है, वैसा या तो परशुरामको है या आचार्य द्रोणको था। जिनकी कृपासे अर्जुनने अनेकों दुष्कर कार्य किये, वे ही द्रोण आज मरे पड़े हैं; इनकी शस्त्रविद्या भी इन्हें नहीं बचा सकी। इनके जिन वन्दनीय चरणोंका सैकड़ों शिष्य पूजन किया करते थे, देखो। आज उन्हींको गीदड़ खींच रहे हैं। इनके मरणकी व्यथासे कृपी अचेत-सी हो गयी है और अत्यन्त दीन-सी होकर इनके पास बैठी है। इनके शिष्योंने चितामय अग्नि स्थापित करके उसे सब ओरसे प्रज्ज्वलित कर दिया है तथा उसपर आचार्यके शवको रखकर वे सामगान करते हुए रो रहे हैं। अब वे कृपीको आगे रखकर चिताकी प्रदक्षिणा

करके गङ्गाजीकी ओर जा रहे हैं।

यह सहदेवका मारा हुआ गान्धारराज महाबली शकुनि है। आज यह भी लड़ाईके मैदानमें सोया हुआ है। यह बड़ा मायावी था। इसको सैकड़ों-हजारों प्रकारके रूप बनाने आते थे। किंतु आज पाण्डवोंके प्रतापसे इसकी सारी माया भस्म हो गयी है। इस कपटीने द्यूतसभामें अपनी मायाके प्रभावसे ही युधिष्ठिरका विशाल साम्राज्य जीत लिया था, किंतु आज यह अपना जीवन भी हार बैठा। कृष्ण। देखो, यह दुर्धर्ष वीर काम्बोजनरेश पड़ा है। यह काम्बोजदेशके गलीचोंपर सोनेयोग्य था, किन्तु आज मौतके मुखमें पड़कर धूलिकी शय्यापर सो रहा है। वह कलिंगराज पड़ा है। उसके पास ही मगधदेशका राजा जयत्सेन है। उसकी स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर अत्यन्त विह्वल होकर रो रही है। इधर कोसलनरेश राजकुमार बृहद्बलको भी उसकी स्त्रियोंने घेर रक्खा है और वे फूट-फूटकर रो रही हैं। ये धृष्टद्युम्नके वीर पुत्र पड़े हैं और उधर आचार्यहीके गिराये हुए पाञ्चालराज द्रुपद सोये हुए हैं। ये बूढ़े पाञ्चालराजकी दुःखिनी स्त्रियाँ और बहुएँ उनका अग्निसंस्कार कर बायीं ओरसे प्रदक्षिणा करके जा रही हैं।

माधव। निश्चय ही विधाताके लिये कोई काम कर डालना विशेष कठिन नहीं है। क्षत्रियोंने ही इन शूरवीर क्षत्रियोंका बात-की-बातमें संहार कर डाला। मेरे पुत्रोंका नाश तो उसी दिन हो चुका था, जब तुम अपने संधिके प्रयत्नमें असफल होकर उपप्लव्यकी ओर लौटे थे। महामति भीष्म और विदुरने मुझसे उसी समय कह दिया था कि अब अपने पुत्रोंकी मोह-ममता छोड़ दो। उनकी वह दृष्टि मिथ्या हो सकती थी। आज इसीसे इतनी जल्दी मेरे पुत्र भस्मीभूत हो गये।

राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने कौरवोंके पुरोहित सुधर्मा और अपने पुरोहित धौम्यको तथा सञ्जय, विदुर, युयुत्सु, इन्द्रसेन आदि सेवक और सब सारथियोंको आज्ञा दी कि आपलोग विधिपूर्वक इन सभीके प्रेतकर्म कराइये, जिससे कोई भी शरीर अनाथकी तरह नष्ट न हो। धर्मराजकी आज्ञा पाते ही ये सब लोग चन्दन, अगरू, काष्ठ, घी, तेल, सुगन्धित द्रव्य और रेशमी वस्त्र आदि सब सामग्री जुटानेमें लग गये। उन्होंने टूटे-फूटे रथ और तरह-तरहके शस्त्रोंके ढेर लगा दिये। फिर बड़ी तत्परतासे चिताएँ तैयार कर उनपर मुख्य-मुख्य राजाओंके शव रखकर शास्त्रोक्त विधिसे उनका दाहकर्म कराया। राजा दुर्योधन, उसके निन्यावे भाई, राजा शाल्व, शल, भूरिश्रवा, जयद्रथ, दुःशासनके पुत्र, लक्ष्मण, धृष्टकेतु, बृहन्त, सोमदत्त, सैकड़ों सृञ्जयवीर, राजा क्षेमधन्वा, विराट, द्रुपद, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, युधामन्यु, उत्तमौजा, कोलसराज, द्रौपदीके पुत्र, शकुनि, अचल, वृषक, भगदत्त, कर्ण, कर्णके पुत्र, केकयराज, त्रिगर्तराज, घटोत्कच, अलम्बुष और जलसन्ध इन सबका तथा और भी हजारों राजाओंका उन्होंने घृतकी धाराओंसे प्रज्ज्वलित हुई अग्निमें दाह कराया। किन्हीं-किन्हींके लिये श्राद्धकर्म भी कराये गये, किन्हींके लिये सामगान कराया गया और किन्हींके लिये उनके सम्बन्धियोंको बहुत शोक भी हुआ। उस रात्रिमें सामगानकी ध्वनि और स्त्रियोंके रुदनसे सभी जीवोंको बड़ा कष्ट हुआ। इसके बाद वहाँ अनेकों देशोंसे आये हुए जो अनाथ लोग मारे गये थे, उन सबकी हजारों ढेरियाँ कराकर उन्हें विदुरजीने घीमें भीगी हुई लकड़ियोंसे जलवा दिया। इस प्रकार सब राजाओंका दाहकर्म करके कुरुराज युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्रको लेकर गङ्गाजीकी ओर चले।

सब लोग साधुजनसेवित पुण्यतोया भागीरथीके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपने आभूषण और दुपट्टे उतार दिये। फिर कुरुकुलकी स्त्रियोंने अत्यन्त दुःखित होकर रोते-रोते अपने पुत्र और पतियोंको जलाञ्जलि दी तथा धर्मविधिको जाननेवाले पुरुषोंने भी अपने सुहृदोंको जलदान किया।

महाराज युधिष्ठिरके लिए बहुत दुःखद-बहुत कठिन अवसर था उनके गङ्गा-किनारे पहुँचनेपर सहस्त्रों क्रन्दन करती विधवाओंने उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। सबका एक ही स्वर-आप धर्मराज हैं? अपने पितामह, चाचा, ताऊ, गुरु, भाई, पुत्र, मित्र सबको मरवा डाला आपने और द्रौपदीके पुत्रों तथा अभिमन्युको भी खोकर अब धर्मराज्यकी स्थापना करेंगे आप?

बड़ी कठिनाईसे उन रोती, पृथ्वीपर पछाड़ खाती नारियोंके अपार समूहको युधिष्ठिरने भाइयोंके साथ पार किया। सबने सिर झुका रखा था और इन लोगोंके हृदयकी वेदनाका भी अन्त नहीं था। किसी प्रकार ये लोग धृतराष्ट्र तक पहुँचे।

द्रौपदी ने पूछा, हमलोग अपनी माता से मिलने कब जाएँगे? और लगता है कि आप तो भूल ही गए हैं कि आपकी एक माता भी हैं। तेरह वर्षों से वे हस्तिनापुर में बैठी अपने पुत्रों द्वारा अपने मुक्त कराए जाने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

युधिष्ठिर बोले, नहीं। भूला तो नहीं हूँ। किंतु युद्ध के इस परिवेश में।

युद्ध के इस परिवेश में आपको यह तो स्मरण रहा कि हस्तिनापुर में दुर्योधन की माता गांधारी रहती हैं।

युधिष्ठिर बोले, उनके सौ के सौ पुत्र मारे गए हैं इस युद्ध में। इसलिए उनकी पीड़ा।

द्रौपदी बोली, गांधारी के सौ पुत्र मारे गए, अपने पापों के कारण। उसके लिए हम दोषी नहीं हैं। हम आतुर नहीं थे, इस युद्ध के लिए। माता कुंती के भी सारे के सारे पौत्र मारे गए हैं। एक भी नहीं बचा है। वे किसी धर्मात्मा के हाथों अपने पापों के कारण नहीं मारे गए, वे पापी अश्वत्थामा के हाथों आपराधिक ढंग से मारे गए हैं। उनकी हत्या हुई है।

युधिष्ठिर बोले, ठीक कहती हो देवि। पीड़ा तुम्हारी भी है और माता कुंती की भी। पर माता कुंती को तो हम उनके पुत्रों की विजय का समाचार देना चाहते हैं। उनके पौत्रों की मृत्यु का नहीं।

द्रौपदी बोली, ठीक है। वही सही। पर हम कब जाएँगे?

हस्तिनापुर के बाहर गंगातट पर बहुत भीड़ लगी हुई थी। सहस्रों की संख्या में स्त्रियाँ वहाँ एकत्रित थीं और अपने पुत्रों, पतियों और भाइयों के शोक में निमग्न युद्धक्षेत्र तक जाने अथवा अपने परिजनों के शवों के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। उनका करुण विलाप युधिष्ठिर के हृदय के टुकड़े किए दे रहा था। वे उनको सांत्वना देने के लिए भी कुछ नहीं कर सकते थे। सांत्वना देने के लिए कृष्ण उनसे कहीं अधिक उपयुक्त पात्र थे। जाने क्या बात थी कि कृष्ण को सामने पाते ही शोक अपने पैर समेटने लगता था और मन में शांति का सा अनुभव होने लगता था।

युधिष्ठिर ने आज गृहस्थ-वेश धारण किया था। उसने आज कृष्ण के पीताम्बर जैसा कटिवस्त्र और नीलवर्ण उत्तरीय धारण किया हुआ था। उसकी शंखाकार गौरवर्णी ग्रीवा में यज्ञोपवीत लिपटा हुआ था। ललाट पर तिलक लगा हुआ था। कन्धे पर झूलते उसके विपुल, घने केश अब आधे से अधिक श्वेत हो चले थे। अन्य चारों पाण्डव अभी भी युद्धवेश में ही थे। भीम के कन्धे पर उसकी प्रचण्ड यशस्विनी गदा थी। अर्जुन के वृषस्कन्ध पर उसका पुष्पमण्डित अजेय गाण्डीव धनुष था। नकुल की कटि में उसका प्रिय खड्ग था और सहदेव के कन्धे पर उसका लम्बा, चिकना मूसल था। अग्निकुण्ड के एक ओर वृद्ध, श्रान्त, श्वेतवस्त्रा और शुभ्रकेशा बुआजी-राजमाता कुन्तीदेवी बैठी थीं। उनकी बायीं ओर द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, चित्रांगदा, उलूपी, पौरवी, विजया, हिडिम्बा आदि पाण्डव-स्त्रियाँ बैठी थीं। उद्धव और कृष्ण पुरोहित धौम्य ऋषि के निकट दर्भासन पर बैठे थे। सात्यकि युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए यादव-योद्धाओं के विधिवत् तर्पण के विषय सात्यकि दूतों द्वारा अमात्य विपृथु को सन्देश भिजवाने के प्रबन्ध में लगा हुआ था।

जब सारे क्रिया-कर्म समाप्त हो गये तो युधिष्ठिर अग्निकुण्ड के पास से उठा। धौम्य ऋषि के संकेत के अनुसार वह मृत योद्धाओं को अन्तिम जलांजलि देने हेतु दृषद्वती की ओर चलने लगा। उसके हाथ में जलते नीराजन, अक्षत, गन्ध-कुंकुम और पुष्पों से सजी स्वर्णथाली थी। पहले उसे जलमाता दृषद्वती का पूजन करना था। अनेक वीरों के स्मरण से उसका मन भर आया था। धौम्य ऋषि ने उसको बताया था कि पहले वह लोकमाता दृषद्वती का पूजन करे। तत्पश्चात् अपने सगे-सम्बन्धी वीर योद्धाओं को ज्येष्ठता के अनुसार क्रमशः जलांजलि दे। उसके बाद अन्य सभी योद्धाओं को

उनके विभाग-प्रमुखों के नाम का स्मरण करके एक-एक जलांजलि अर्पित कर दे।

उद्धव, कृष्ण, सात्यकि महात्मा विदुर के निवास के आगे आ गये। कोई अग्रसूचना मिले बिना ही महात्मा विदुर हाथ जोड़कर कृष्ण के स्वागत के लिए खड़े थे। वे शीघ्रता से गरुड़ध्वज के समीप आये। कृष्ण ने उनसे कहा, सखा विदुर, आप भी रथ में बैठिए। हमें कुरु-महाराज से मिलना है। आप उनके महामन्त्री हैं। जो आज्ञा द्वारिकाधीश- कहकर विदुर रथ पर चढ़े।

३) पाण्डवों का हस्तिनापुर में प्रवेश और धृतराष्ट्रद्वारा भीम की लौहमूर्ति का नाश

पाण्डवों सहित द्वारिकाधीश के आगमन की सूचना महाराज धृतराष्ट्र को देने के लिए स्वयं विदुर उनके कक्ष की ओर चले गये। उनके जाते ही कृष्णने पाण्डवों को अपने समीप बुलाकर मेरे समक्ष निर्देश दिया- मेरे प्रिय भ्राताओं, तुम्हें दूर से ही प्रणाम कर अपने काका के दर्शन करने हैं- उनके निकट नहीं जाना है। भीम। विशेषत: तुम्हें सबसे अलग-दूर रहना है। अपने सौ पुत्रों की मृत्यु से विह्वल होकर वे यदि शाप भी देंगे तो शान्तिपूर्वक उसे सुन लेना है।

पश्चिम दिशा में एकमात्र लौहमूर्ति खड़ी थी- गदाधारी भीम की साक्षात् प्रतिकृति। कृष्ण हम सबको लेकर सीधे उस मूर्ति के आगे खड़े हुए। भीम अपने कुतूहल को रोक नहीं पाया। उसने पूछा, कौरवों के शस्त्रागार के प्रांगण में मेरी लौहमूर्ति कैसे? किसने बनवायी है यह श्रीकृष्ण?

मुस्कराकर उसकी ओर देखते हुए कृष्ण ने कहा, कोई भी भ्रान्त धारणा मत बनाओ कौन्तेय। तुम्हारी पूजा करने हेतु अथवा तुम पर पुष्प चढ़ाने हेतु यह लौहमूर्ति नहीं बनवायी गयी है। स्वयं दुर्योधन ने अपने कुशल लोहारों द्वारा इसे तुम्हारे आकार के साँचे में ढालकर गढ़ लिया था- गदायुद्ध के प्रतिदिन के अभ्यास के लिए। अपने दु:शासन दुर्मुख, दुर्धर्ष आदि भ्राताओं सहित दुर्योधन यहाँ नित्य घण्टों गदायुद्ध का अभ्यास किया करता था। जब-जब उसे अपने प्रतिस्पर्धी पर प्राणघातक प्रहार करने का अवसर प्राप्त होता था, भूल करनेवाले अपने भ्राता पर हलका सा गदा-प्रहार कर वह उसे छोड़ देता था और रोष से भीम चिल्लाता हुआ वह उसी प्रकार तुम्हारी इस मूर्ति पर प्रहार किया करता था। निकट जाकर देखो। उस मूर्ति पर तुम्हें स्थान-स्थान पर गदा-प्रहारों के चिन्ह दिखाई देंगे।

भीम तो सुन ही रहा था। अन्य पाण्डव भी चकित होकर सुन रहे थे।

श्रीकृष्णने एक सावधानी की थी। दुर्योधनने भीमकी एक लौह-मूर्ति सर्वथा भीमके समानाकारकी ही बनवा रखी थी और वह उसपर गदा मार-मारकर गदा-युद्धका अभ्यास करता रहा था। मूर्ति इतनी सुदृढ़ थी कि वर्षोंतक दुर्योधनके गदाघातसे भी उसका कुछ बिगड़ा नहीं था। जब सायंकाल ओघवती नदीके तटसे युधिष्ठिरके कहनेसे श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गान्धारीको शान्त करने गये तो वहाँसे लौटते समय राजभवनके द्वारपर खड़ी वह मूर्ति अपने रथमें रख लाये थे। वह मूर्ति उनके रथमें ही अब भी थी और इस यात्रामें भी साथ थी। उसकी ओर ध्यान देनेका अवसर ही नहीं मिला था।

प्रजा ने चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर की जय की घोषणा की। विदुर बोला अपने आंसू पोंछ डालिये भ्राताश्री और क्षत्रियों की भांति अपने विजयी पुत्रों का स्वागत कीजिये। हां भ्राताश्री।

युधिष्ठिरने अपने भाइयों सहित कृष्ण सहित राजमहल में प्रवेश किया। विदुर बोला, इस रोते बिखलते राजभवन में आपका स्वागत है पांडुपुत्र चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोला, चरण स्पर्श नहीं करने देंगे काकाश्री। विदुर बोले, पहिले चलकर अपने ज्येष्ठ पिताश्री के चरण स्पर्श कर लीजिये। मेरे चरण कहां भागे जा रहे हैं पुत्र। आइये वासुदेव। कृष्ण बोले, आप कैसे हो महात्मा विदुर। विदुर बोले, वर्तमान हस्तिनापुर में अब इस प्रश्न का कोई महत्व नहीं है वासुदेव किन्तु

प्रश्न आपने किया है तो मेरी समझ धोखा खा रही होगी क्योंकि आप तो अर्थहीन कोई बात कह ही नहीं सकते। हे वासुदेव मैं नहीं जानता कि मैं कैसा हूं किन्तु मेरा हृदय वो शोकभवन है जहां कोई शोक प्रकट करने आया ही नहीं। मेरी एक प्रार्थना है ज्येष्ठ भ्राताश्री से पहिले आप ही मिल ले। कृष्ण बोले, जो आपकी इच्छा।

उसी समय आइए-आइए- महाराज, इधर से उधर से कहते हुए महाराज धृतराष्ट्र का हाथ थामकर महामन्त्री विदुर शस्त्रागार के प्रांगण में प्रविष्ट हुए। कृष्ण के संकेत पर सब हटकर चारों ओर फैल गये। केवल कृष्ण ही भीम की लौहमूर्ति के सम्मुख खड़े रहे। हाथ थामकर वहाँ लाये अन्धे कुरु-महाराज से महामन्त्री विदुर ने कहा, कुरुक्षेत्र से लौटे द्वारिकाधीश आपके चरणस्पर्श कर रहे हैं महाराज। कृष्ण ने झट से आगे बढ़कर वीरासन में बैठते हुए महाराज के चरणस्पर्श किये। उस कुशल राजनीतिज्ञ अन्धे महाराज ने बोली पहचानने के लिए पूछा- कौन? बैठे-बैठे ही कृष्ण ने कहा, मैं द्वारिका के वसुदेव-देवकी का पुत्र कृष्ण हूँ, महाराज। धूर्त महाराज ने कृष्ण के मुकुट को टटोलकर उसमें मोरपंख लगा है, यह देख लिया। फिर अपनी आदत के अनुसार मन की बात छिपाते हुए उन्होंने बनावटी बात की- श्रीकृष्ण? तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम तो नि:शस्त्र थे- सारथी थे। हे श्रीकृष्ण, मेरे सौ पुत्र एक बार मुझसे मिलकर गये और फिर लौटकर नहीं आये। इसीलिए तुम मुझे सान्त्वना देने आये हो, यह मैं जानता हूँ। किन्तु क्या यादव और क्या कुरु, हम तो ठहरे क्षत्रिय। रणभूमि में हुए संहार के लिए क्षत्रिय कभी खेद अथवा शोक नहीं करते। जो कुछ होता है, उसे वे रणदेवी के चरणों में अर्पित कर देते हैं- मैंने भी वही किया, तुम भी वही करते होगे। वह धूर्त राजा कृष्ण के मन को टटोलने के लिए क्षणभर रूक गया।

कृष्ण ने भी उनके भ्रम को बनाये रखा और कह दिया- मैं आपको सान्त्वना देने ही आया हूँ महाराज। पहले राजमाता गान्धारीदेवी के दर्शन करना आवश्यक था। किन्तु सौ पुत्रों के वियोग से आप कितने व्याकुल हैं, यह मैं जानता हूँ, इसीलिए पहले आपके पास आया हूँ। वैसे भी आप इस प्राचीन सिंहासन के स्वामी हैं, यह सोचकर भी मुझे प्रथम आपका ही दर्शन करना उचित लगा। हे महाराज, अब आप शान्तचित्त हो जाइए।

धृतराष्ट्र ने कहा, मैं स्थिरचित्त ही हूँ। हस्तिनापुर के सिंहासन पर मेरे प्रिय भ्राता सम्राट पाण्डु के पुत्र आसीन हों अथवा मेरे पुत्र हों- एक ही बात है। मैं मानता हूँ कि युद्ध के साथ-साथ शत्रुता भी समाप्त हो गयी। पाण्डवों से मिलने के लिए- विशेषत: भीम को वक्ष से लगाने के लिए मैं कब से तड़प रहा हूँ। पिता होने के नाते मूढ़ दुर्योधन और अपने अन्य पुत्रों की मृत्यु का मुझे दु:ख हुआ है, यह सत्य है; किन्तु मैंने उसे गंगार्पण कर दिया है। मरणान्तानि वैराणि- यही तो हमें ऋषि-मुनियों ने सिखाया है।

महाराज धृतराष्ट्र ने पूछा, प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण, तुम अकेले ही आये हो? विदुर ने तो कहा था कि तुम्हारे साथ मेरे प्रिय पाण्डव भी आये हैं। कहाँ हैं वे? मेरा प्रिय भीम कहाँ हैं?

धृतराष्ट्र बोले, एक-एक करके आओ ताकि मैं तुम लोगों को पहिचान सकूं। वासुदेव टूटे हुये इस वृक्ष की छाया में तुम्हारा स्वागत है वत्स। कृष्ण बोले, हस्तिनापुर नरेश की सेवा में वासुदेव कृष्ण का सादर प्रणाम। धृतराष्ट्र बोले, मैंने सोचा था कि पहले तुम मेरे पुत्रों के वीरगति को प्राप्त होनेपर शोक प्रकट करोगे। कृष्ण बोले, मैं औपचारिकता में विश्वास नहीं रखता महाराज। वीरगति को प्राप्त होनेवालों ने वो मार्ग स्वयं ही चुना था और फिर शोक प्रकट करने से घाव खुल भी जाते है महाराज। धृतराष्ट्र बोले, ये बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो। क्या तुम यह नहीं जानते हो कि युद्ध में मेरी पराजय हो चुकी है। महाराज तो अब मेरा प्रिय युधिष्ठिर है। शान्ति प्रस्तावाले दिन तुमने ठीक ही कहा था कि इस युद्ध के लिये इतिहास मुझे ही उत्तरदायी ठहरायेगा। कृष्ण बोले, इतिहास आपको उत्तरदायी इसलिये ठहरायेगा क्योंकि आप

उत्तरदायी हैं महाराज। धृतराष्ट्र बोले, मुझे बार बार महाराज ना कहो वासुदेव। जब मैं महाराज था तब मेरे दाहिने हाथ तातश्री बैठे हुआ करते थे और फिर आचार्य द्रोण और फिर कुलगुरु कृपाचार्य। युवराज के स्थान पर मेरा प्रिय दुर्योधन विराजमान होता था और राज्यसभा मेरे सौ पुत्रों की उपस्थिति से किसी अमृत कलश की भांति छलकती रहती थी। अब यदि मैं महाराज हूं तब भी किसी शून्य में किन्तु इस राज्य पर अधिकार मेरा ही था वासुदेव और मेरे उपरान्त इस सिंहासन पर मेरे दुर्योधन का अधिकार होता। मैंने क्षत्रिय की भांति पराजय के उपरान्त यह सिंहासन रिक्त किया है किन्तु इसका अर्थ यह न निकालना कि पुत्र युधिष्ठिर के लिये मेरे पास कोई आशीर्वाद ही नहीं है।

युधिष्ठिर ने झुककर धृतराष्ट्र के चरण छुए और कहा, महाराज। मैं आपका पुत्र युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूँ।

धृतराष्ट्र न केवल स्वयं खड़ा हो गया, उसने युधिष्ठिर को भी खड़ा कर अपने वक्ष से लगा लिया; किंतु सारे प्रयत्न के बाद भी धृतराष्ट्र अपनी अप्रसन्नता छुपा नहीं पाया। उसके चेहरे की मलिनता सब कुछ कहे दे रही थी।

युधिष्ठिर धीरे से बोले, प्रभु की लीला है महाराज। नहीं तो कहीं भाई भी इस प्रकार परस्पर युद्ध करते हैं।

धृतराष्ट्र बोला, हे हस्तिनापुर नरेश आपके राजभवन में आपका स्वागत है। युधिष्ठिर बोला, महाराज तो आप ही हैं ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र बोला, मैं तो ज्येष्ठ पिता होने के साथ साथ एक क्षत्रिय भी हूं अनुज पुत्र। मुझे दान में राज देकर मेरा अपमान मत करो। अपने अनुजों को बुलाओ भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव। भीम मेरे निकट आओ पुत्र।

युधिष्ठिरने बड़े आदरपूर्वक अपने पिताके बड़े भाई धृतराष्ट्रके चरणोंमें अपना नाम लेकर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र पुत्र-शोकसे बहुत अधिक व्याकुल थे। उन्होंने उदासीन भावसे युधिष्ठिरको गले लगाया; किंतु तभी उनके ललाटपर क्रोधसे आकुञ्चन आ गया। उनकी भौंहे कठोर हो गयीं। इसे श्रीकृष्णने देख लिया। प्रणाम करनेके लिए युधिष्ठिरके पश्चात् भीमको जाना था, वे बढ़े तो श्रीकृष्णने हाथ पकड़कर उन्हें रोक लिया। दारुकको संकेतसे बुलाकर रखी लौह-मूर्ति उतार लानेको कह दिया। धृतराष्ट्र ने स्वयं को युधिष्ठिर से पृथक करते हुए कहा, ठीक कहते हो। कहाँ है भीम? भीम कहाँ है?

महाराज धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे अत्यन्त व्याकुल थे। उन्होंने उदास चित्तसे युधिष्ठिरको गले लगाया। फिर उनका चित्त एकदम कठोर हो गया और वे अग्निके समान भीमको भस्म कर डालनेका विचार करने लगे। श्रीकृष्ण पहले ही उनका अभिप्राय ताड़ गये थे। इसलिये उन्होंने भीमको हाथोंसे पकड़कर रोक लिया और भीमकी एक लोहेकी मूर्त्ति आगे कर दी।

कृष्ण ने धीरे से आगे बढ़कर भीम की भुजा थाम ली और उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। भीम ने उनकी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा- क्यों रोक रहे हैं कृष्ण? कृष्ण ने उसे मौन ही रहने का संकेत किया। सब देख रहे थे कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। नहीं देख पा रहा था तो एक धृतराष्ट्र ही।

कृष्ण ने विदुर की ओर देखा। विदुर ने हाथ से संकेत किया। चार-पाँच सेवक एक प्रतिमा को ठेलकर आगे ला रहे थे। भीम ने पहचाना। यह उसी की प्रतिमा थी आकृति में भी उसके समान और कद काठ में भी एकदम भीम। पर यह कहाँ कैसे थी। उसने तो यह प्रतिमा नहीं बनवाई, तो हस्तिनापुर में किसने उसकी यह प्रतिमा बनवाई थी? और उसे यहाँ क्यों लाया जा रहा है? क्या यह प्रतिमा भीम को प्रसन्न करने के लिए उसे उपहार में दी जाएगी?

किंतु कृष्ण ने वह मूर्ति धृतराष्ट्र के सामने रखवा दी, महाराज। ये रहे मध्यम पांडव भीम।

कृष्ण ने संकेत से उसे रोक कर कक्ष में खडी भीम की कांसे की मूर्ति आगे कर दी। धृतराष्ट्र बोले, चरण स्पर्श नहीं आलिंगन करो। भीम ने वह मूर्ति कृष्ण के संकेत से आगे सरका दी। धृतराष्ट्र ने क्रोधित हो अपनी पूरी शक्ति से उसे भीम समझकर उस मूर्ति को अपने हाथों से मसल डाला।

कृष्ण चपलता से भीम की लौहमूर्ति के पीछे चले गये। वहीं से उन्होंने कहा, हे महाराज, आपसे अभयदान मिलते ही उसका भय दूर हुआ है। वह चुपचाप आपके सम्मुख ही खड़ा है। आप उसे अपने ममतामय आलिंगन में ले लीजिए। आपका आशीर्वाद पाने के लिए वह लालायित है।

यह सुनते ही महाराज धृतराष्ट्र ने झट से विदुर का हाथ छोड़ दिया। उन्होंने अपनी पुष्ट भुजाएँ फैलाकर खनखनाते स्पष्ट शब्दों में कहा, आओ प्रिय भीम। पुत्र, मुझे दृढ़ आलिंगन दो। आँखें विस्फारित करते हुए सब ऐसा नाटक चुपचाप देखते रहे, जो हस्तिनापुर में पहले कभी घटित नहीं हुआ था।

सौ पुत्रों के वध से शोक-व्याकुल हुए उस वृद्ध पिता ने भीम समझकर उसकी लौहमूर्ति को अपने आलिंगन में इस प्रकार कस लिया कि उस मूर्ति की भुजा जोड़ से टूटकर नीचे गिर पड़ी। उसकी खनखनाहट से भीम के हाथ से गदा छूटकर गिर गयी है, इस भ्रम में उस व्याकुल पिता ने उस लौहमूर्ति को पुन: अपने आलिंगन में इतनी दृढ़ता से कस लिया कि उसकी दूसरी भुजा भी टूट गयी। भीम- पुत्र भीम कहते हुए उस वृद्ध शोकमग्न पिता द्वारा बार-बार कसकर दबाने के कारण लौहमूर्ति के कटि के ऊपर के भाग के टुकड़े-टुकड़े होकर खनखनाते हुए भूमि पर गिर पड़े।

लौहमूर्ति के टुकड़े करते-करते उस वृद्ध कुरु की देह भी लहूलुहान हो गयी अपनी ही रक्त का उष्ण-स्पर्श होने पर कुछ सँभलकर उसकी चेतना जागी। शुभ्र-धवल दाढ़ी-मूँछोंवाला अपना मुख हथेली में छिपाकर नीचे बैठते हुए वह वृद्ध पिता विचित्र-सी ध्वनि करते हुए चिल्लाया- मेरे सौ पुत्रों, तुम्हारा वध करनेवाले उस क्रूर भीम के मैंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। आकर देख लो उनको- कहाँ हो तुम मेरे पुत्रों।

राजा धृतराष्ट्र बड़े बली थे। उन्होंने लोहेके भीमको ही सच्चा भीम समझकर अपनी भुजाओंसे दबोचकर तोड़ डाला। धृतराष्ट्रमें दस हजार हाथियोंका बल था; इसलिये उन्होंने लोहेके भीमको तोड़ तो डाला, परंतु इससे उनकी छातीपर बहुत दबाव पड़नेसे उनके मुँहसे खून निकलने लगा और वे खूनमें लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर गये। उस समय सञ्जयने उन्हें थामकर शान्त किया। क्रोध शान्त होते ही वे अत्यन्त शोकाकुल हुए और हा भीम। हा भीम। कहकर रोने लगे।

वे आगे बढ़ते, उससे पहले ही धृतराष्ट्र ने बड़ी आतुरता से उस प्रतिमा को अपनी भुजाओं में थाम लिया, जैसे वह वस्तुत: भीम ही हो। युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि धृतराष्ट्र को अपने स्पर्श से यह समझ में नहीं आया कि वह मनुष्य का शरीर नहीं, लोहे की एक प्रतिमा थी। धृतराष्ट्र ने प्रतिमा को बड़ी तत्परता से अपनी भुजाओं में जकड़ लिया। वह जैसे बहुत उत्साह से भीम से मिल रहा था। वह उत्साह कुछ असाधारण ही था। जैसे-जैसे धृतराष्ट्र की पकड़ कसती गई, उसका आलिंगन भी प्रगाढ़ होता गया। धृतराष्ट्र का मुख लाल होता गया, जैसे वह उस प्रतिमा को अपनी जकड़ में तोड़ देना चाहता हो। उसकी वह जकड़ और चेहरे की लाली- दोनों ही असाधारण थी। और तभी वह मूर्ति को छोड़कर पीछे हट गया। उसने अपने दोनों हाथों से अपने वक्ष को पकड़ लिया, जैसे किसी भयंकर पीड़ा का अनुभव कर रहा हो। उसके मुख से रक्त निकल आया था।

वे आये हैं। कहकर श्रीकृष्णने वह लौह-मूर्ति आगे बढ़ा दी। धृतराष्ट्रने उस मूर्तिको भुजाओंमें भरकर पूरे बलसे अपने वक्षसे क्रोधमें दबाया। वे इस वृद्धावस्थामें भी इतने बलवान थे कि जो मूर्ति वर्षोंतक दुर्योधनके गदाघातसे नहीं टूटी थी, वह उनके दबावसे कड़कड़ाकर खण्ड-खण्ड हो गयी। लेकिन इस अतिशय दबावके कारण उनके मुखसे रक्त निकलने लगा। संजय ने आगे बढ़कर धृतराष्ट्र को सँभाला, आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था महाराज। आपके मन से अपने इन पुत्रों के प्रति दुर्भावना जाती क्यों नहीं। अश्वत्थामा ने जब आपको यह सूचना दी थी कि उसने रात को पांचालों के शिबिर पर आक्रमण कर, सोए हुए पांचालों और द्रौपदी के पुत्रों को मार डाला है, तो भी आपने बहुत प्रसन्न होकर उससे पूछा

था कि उसने यह महान् कार्य पहले ही क्यों नहीं किया था।

उसने कहा था कि वह ऐसा कर सका क्योंकि उस समय कृष्ण और पांडव उस शिबिर से बहुत दूर चले गए थे। उनकी उपस्थिति में वैसा कुछ करना उसके लिए संभव नहीं था। संजय ने कहा, इसीलिए उस महान् वीरता के पश्चात् वह भयभीत मूषक के समान भाग भी गया था। सहसा धृतराष्ट्र के कंठ से स्वर फूटा, भीम। हा भीम। यह मैंने क्या किया?

हाय भीम। मुझ अधमने यह क्या किया। क्रोधका आवेश शान्त होते ही धृतराष्ट्र फूट पड़े- मैंने अपने ही पराक्रमी पुत्रकी हत्या कर दी। मुझे धिक्कार है। मैं इस जीवनको बचाकर अब क्या करूँगा।

धृतराष्ट्र रोकर बोला, हे प्रिय अनुज पांडु मुझे क्षमा कर देना। मैंने तुम्हारे पुत्र भीम की हत्या कर दी। कृष्ण बोले, नहीं राजन् मैं जानता था कि आप कितने क्रोध में है इसलिये भीम को तो मैंने आपके निकट ही नहीं आने दिया। धृतराष्ट्र बोले, तो क्या मेरा भीम जीवित है। भीम बोला, मैं आपके आशीर्वाद की प्रतीक्षा कर रहा ज्येष्ठ पिताश्री। यदि अब भी आपके क्रोध की अग्नि शान्त न हुई हो तो स्वयं मैं आपकी बाहों में आ जाता हूँ। धृतराष्ट्र बोले, नहीं ऐसा ना कहो। अपने सौ पुत्रों को खो देनेवाला यह पिता अब अपने अनुज पुत्रों को नहीं खोना चाहता। भीम बोला, आज्ञा हो तो आपकी छाती से बहता हुआ यह लहू पोंछ दूं। धृतराष्ट्र बोले, आयुष्मान हो पुत्र। अन्य सब भाइयों ने आकर ज्येष्ठ पिताश्री कहकर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने सबको आयुष्मान भव का आशीर्वाद दिया।

कृष्ण स्वयं ही आगे बढ़ आए। उन्होंने धृतराष्ट्र के कंधे पर हाथ रखा, शांत हों महाराज। शोक न करें। भीम जीवित हैं। जिसकी अस्थियों का चूर्ण बनाने का प्रयत्न आप कर रहे थे, वह मध्यम पांडव नहीं थे, उनकी लोहे की प्रतिमा थी। यह प्रतिमा आपके पुत्र दुर्योधन ने अपने युद्धाभ्यास और भीम के अपमान के लिए बनवाई थी। मैंने उसे महात्मा विदुर से कहकर यहाँ मँगवा लिया था।

श्रीकृष्णने शान्त गम्भीर स्वरमें कहा- महाराज आप शोक न करें। आप अत्यन्त क्रुद्ध हैं, यह मैंने देख लिया था। अत: मैंने भीमको आपके समीप जानेसे रोक लिया। मैं जानता था कि आपकी भुजाओंके मध्य पहुँचकर वे जीवित नहीं बचेंगे। आप मेरी धृष्टता क्षमा करें। आपके पुत्रने जो भीमकी लौह-मूर्ति बनवा रखी थी, वही मैंने इस समय आपके आगे कर दी। वह मूर्ति टूट गयी। पुत्र-शोकने आपके मनको धर्मसे विचलित कर दिया था; किंतु मैं जानता था कि आप सत्पुरुष हैं और यदि आपके हाथसे भीमका वध हो गया तो आप अपनेको क्षमा नहीं कर पावेंगे।

यह विनाश तो आपके प्रमादसे हुआ। आपने समझानेपर भी मेरी बात उस समय नहीं मानी। आपने भीष्म, द्रोण, विदुर और शुभैषियोंकी सलाह भी अनसुनी कर दी। अत: आप भीमपर क्रोध क्यों करते हैं। भीमने तो उस अपराधका बदला ही लिया है, जिसे आपके पुत्रोंने आपके समक्ष, आपके संरक्षणमें भरी सभामें द्रौपदीको अपमानित करके किया था। आप अपने और अपने दुष्ट पुत्रोंके अपराधोंपर दृष्टि ही नहीं देते? पाण्डवोंका कुछ अपराध था कि आपने उन्हें राज्यसे निर्वासित करके वनमें भेज दिया था? पाण्डुके पुत्र आपको पूज्य मानकर आपका सम्मान करते रहे, इसलिए आपको उस सम्मानका दुरुपयोग करनेका स्वत्व हो गया और आपने उन्हें द्यूत खेलनेको आज्ञा देकर विवश किया? अब भी आप उनके सम्मानका दुरुपयोग ही करनेपर उतारू हैं?

धृतराष्ट्र बोला, कृष्ण। मेरे साथ परिहास मत करो। मैंने यह क्या किया। अपने देवताओं जैसे बलवान पुत्र को मैंने अपने हाथों मार डाला। कृष्ण ने कहा, आप अपने प्राणों के लिए चिंतित न हों महाराज। मध्यम पांडव की मृत्यु नहीं हुई है। वैसे उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। धर्मराज आपको दंडित करना चाहें तो मध्यम पांडव का वध करने के प्रयत्न के लिए भी

आपके प्राण लिए जा सकते है। किंतु वे ऐसा कुछ नहीं कर रहे, और भीम जीवित हैं। भीम ने जैसे धृतराष्ट्र को चिढ़ाते हुए हँसकर कहा, मैं जीवित हूँ महाराज। आप चाहें तो मुझे फिर से अपने वक्ष से लगा सकते हैं।

अश्वत्थामा का अधूरा काम पूरा करना चाहते हैं? ये तो क्षमावान पांडव हैं इसलिए आप इस प्रकार पाखंड करने के लिए सुरक्षित बैठे हैं, कोई और होता तो सारी मर्यादाओं को एक ओर रखकर अब तक आपके शरीर के टुकड़े कर चुका होता। आप नहीं चाहते कि हस्तिनापुर में कभी शांति स्थापित हो?

जब श्रीकृष्णने देखा कि अब इनका क्रोध उतर गया है और भीमका वध कर डालनेकी आशमासे ये बहुत व्याकुल हो रहे हैं तो उन्होंने कहा, राजन्। आप शोक न करें। आपके हाथसे भीमका वध नहीं हुआ है। यह तो उनकी लोहेकी मूर्त्ति ही है, इसीको आपने कुचल डाला है। आपको क्रोधके वशीभूत देखकर मैंने भीमको आपके पास जानेसे रोक लिया था। जिस प्रकार कालके पास पहुँचकर कोई जीता नहीं बच सकता, उसी प्रकार आपकी भुजाओंके बीचमें पड़कर किसीके प्राण नहीं बच सकते। यही सोचकर, आपके पुत्रने भीमकी जो लोहेकी मूर्त्ति बनवा रक्खी थी वही मैंने आपके आगे कर दी थी। पुत्रशोककी आगने आपके मनको धर्मसे विचलित कर दिया है, इसीसे आपको भीमका वध करनेकी इच्छा हुई थी। किंतु आपके लिये यह उचित नहीं है कि आप भीमका वध करें। अत: हमने सर्वत्र शान्ति स्थापित करनेके उद्देश्यसे जो कुछ किया है उसका आप भी अनुमोदन करें, मनको व्यर्थ शोकाकुल न करें। राजन्। आपने वेद और शास्त्रोंका अध्ययन किया है तथा पुराण और सब प्रकारके राजधर्म भी सुने हैं। ऐसे विद्वान और बुद्धिमान होकर भी आप अपने ही अपराधसे होनेवाले इस कुटुम्बनाशको देखकर इतने कुपित क्यों होते हैं। मैंने तो आपसे पहले ही निवेदन किया था और भीष्म, द्रोण, विदुर, एवं सञ्जयने भी बहुत कुछ समझाया था; किंतु उस समय तो आपने हमारी बात मानी नहीं। जो पुरुष हितकी बात समझानेपर भी अपने हिताहितको नहीं परख पाता, वह अन्यायका आश्रय लेनेसे आपत्तियोंके आनेपर शोक ही करता है। इस आपत्तिमें तो आप अपने ही अपराधसे पड़े हैं, फिर भीमपर क्रोध क्यों करते हैं। दुर्योधनने ईर्ष्यावश द्रौपदीको सभामें बुलवाया था, उस वैरका बदला लेनेके लिये ही तो भीमने उसे मारा है। आप अपने और अपने दुष्ट पुत्रके अपराधोंकी ओर तो देखिये। आपहीने तो निर्दोष पाण्डवोंको राज्यसे निकलवाया था।

कृष्ण बोले, पांडवों के आने से पहले मैं हस्तिनापुर आकर आपसे क्यों मिला था? क्या समझाया था आपको? शांति स्थापित करने में सहयोग करें महाराज। अपने मन के विष का अब त्याग करें। देख नहीं चुके कि आपके मन के विष ने क्या-क्या करवा डाला। अब आपकी कामनाएँ पूरी नहीं हो सकतीं। दुर्योधन अब राजा नहीं हो सकता। आप अपने पुत्रों के वध का प्रतिशोध लेने में समर्थ नहीं हैं। वैसा कोई प्रयत्न कर स्वयं को और भी दीन बनाने का प्रयत्न न करें। कृष्ण रुके, और यदि अपने पुत्रों के वध का प्रतिशोध ही लेना है तो आप अपना वध कर लें। अपने पुत्रों के वध के लिए एकमात्र दोषी आप ही हैं। धृतराष्ट्र ने बहुत मंद और शांत स्वर में कहा, नहीं केशव। मैं इस समय शांत हूँ। मेरे क्रोध का शमन हो चुका है। मैं अपने वीर पुत्र मध्यम पांडव से मिलना चाहता हूँ। उसने अपनी भुजाएँ फैला दीं, मैं समझ गया हूँ कि मेरे पुत्र मारे जा चुके हैं, अब पांडव ही मेरे पुत्र हैं।

श्रीकृष्णका स्वर बहुत कठोर हो गया था। उनके स्वरमें भर्त्सना थी, चेतावनी थी। धृतराष्ट्र इतने अज्ञानी नहीं थे कि इस चेतावनीको न समझ सकें। वे अन्धे हैं, सभी पुत्रोंके मारे जानेसे अनाश्रित हैं, उन्हें अब पाण्डवोंकी कृपापर ही अवलम्बित रहना है, अब वे यह क्रोध किस बलपर दिखाते हैं? उन्हें अपने स्वजनोंकी अन्त्येष्टिके लिए भी युधिष्ठिरकी अनुमति तथा सहायता अपेक्षित है और वे हैं कि पाण्डवोंके शीलका दुरुपयोग करके दुष्टता ही किये चले जा रहे हैं?

यह कठोर स्वर चेतावनी थी कि धृतराष्ट्रको अब और क्षमा नहीं किया जायगा। युधिष्ठिर अपने सौजन्यके कारण भले कुछ न कहें, कुछ न करें किंतु श्रीकृष्ण किसीको भी दण्ड देनेमें कभी असमर्थ नहीं होते और अब धृतराष्ट्रको अपने अपराध समझना चाहिए। उन्हें अधिक उद्दण्डता नहीं करने दी जायगी।

राजन्। इस प्रकार श्रीकृष्णने जब साफ-साफ सब बातें कहीं तो राजा धृतराष्ट्र कहने लगे, माधव। तुम जैसा कहते हो, वह सब ठीक है। यह अच्छा ही हुआ कि तुम्हारे रोक लेनेसे भीम मेरी भुजाओंके बीचमें नहीं आया। अब मैं स्वस्थ हूँ, मेरा क्रोध शान्त हो गया है और मैं पाण्डुके शूरवीर मध्यम पुत्रको देखना चाहता हूँ। मेरे सब पुत्र और प्रधान-प्रधान राजालोग तो मारे गये। अब तो मेरी शान्ति और प्रीतिके आश्रय ये पाण्डुपुत्र ही हैं।

माधव। तुम ठीक ही कहते हो। धृतराष्ट्रका स्वर ढीला हो गया- भीमको बचाकर तुमने मेरी भी प्राणरक्षा कर ली। मेरा क्रोध शान्त हो गया। मैं तो अब तुम्हारे और पाण्डवोंके ही आश्रित हूँ। मुझ अन्धेका अपराध तुम्हें क्षमा करना चाहिए।

युधिष्ठिरके, विदुरके, कुन्तीके नेत्र भर आये थे। इन वासुदेवने यहाँ भी अकल्पित विपत्तिसे भीमको बचाया।

भीम आगे बढ़ आया। धृतराष्ट्र ने उसे अपने वक्ष से लगा लिया; किंतु न उसे दबाने का प्रयत्न किया, न किसी और प्रकार की युक्ति भिड़ाई। चुपचाप उसे वक्ष से लगाकर प्यार किया।

अपने अन्ध भ्राता की पीठ पर अपना प्रेमल हाथ रखकर विदुर ने प्रथम उसे थपथपाया। फिर अपने हाथ का आधार देते हुए उसे अपने कक्ष की ओर ले जाने लगे। उसके लौटते चरणों को हस्त-स्पर्श कर पाँचों पाण्डव उसे मौन वन्दन करने लगे- उनमें भीम भी था।

भूमि पर पड़े भीम की लौहमूर्ति के एक टुकड़े को उद्धवने उठाया। उस पर रक्त की कुछ बूँदें थीं। एक दु:खी पिता के रक्त की बूँदें थीं वे। लौह के उन टुकड़ों की ओर देखते हुए उद्धवने कहा, भारतीय महायुद्ध के अठारह दिनों में एक-एक महान योद्धा का वध करवाते समय आपने जो बुद्धि-कौशल दिखाया है, उसके बारे में मैंने सात्यकि के मुख से सुना है। किन्तु आज कृष्णकी बुद्धिमत्ता के अत्युच्च अध्याय को तो मैंने प्रत्यक्ष देखा है। यदि आप न होते तो आज क्या स्थिति होती महाबली भीम की? कृष्ण, एक बार मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ कि सचमुच आप हैं कौन?

उस रात्रि हम सबने महात्मा विदुर के भवन में निवास किया।

विदुरपत्नी पारसंवीदेवी पाकगृह में अपने सेवक-सेविकाओं सहित हमारे लिए भोजन बनवाने में जुट गयीं। हम सब बैठक-कक्ष में बैठे थे। कक्ष के मध्यस्थान पर रखे स्वर्णिम आसन पर कृष्ण बैठ गये। विदुर उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए। पाण्डव, कुन्ती बुआ और द्रौपदी सहित अन्य स्त्रियाँ विश्राम करने हेतु विश्राम-कक्ष में चले गये थे।

कृष्ण ने विदुर से कहा, सखा विदुर, कई वर्ष आपने कुरुओं के महामन्त्री-पद का निर्वाह किया है। बड़ी निष्ठा से आपने अपना दायित्व निभाया है। इसके आगे भी आपको पाण्डवों के लिए यही कार्य करना है। सर्वप्रथम युधिष्ठिर के राज्याभिषेक की तैयारी करवा लीजिए। अभी पितामह भीष्म देह-त्याग करने के लिए कुरुक्षेत्र में उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके देह-त्याग करते ही मुझे-द्वारिका-सूचना भिजवाइए। महामन्त्री विदुर ने तनिक झुककर आदरपूर्वक कहा, जो आज्ञा द्वारिकाधीश। मुझको सौंपे कार्य में तनिक भी त्रुटि नहीं रहेगी।

ऋषिवर व्यास राजमहल में गान्धारी के पास पधारे। गान्धारी ने प्रणाम ऋषिवर कहा। व्यासने अखंड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। गान्धारी बोली, मेरा भाग्य तो सौ टुकड़ों में कटा कुरुक्षेत्र में पडा है मुनीश्वर। व्यास बोले, जिस क्रोध की अग्नि में तुम जल रही हो पुत्री वह तुम्हे शोभा नहीं देता। जिस गान्धारी ने अपने पुत्र दुर्योधन को विजयश्री का

आशीर्वाद देना इसलिये मना कर दिया कि वो धर्म के मार्ग पर नहीं था। आज वही गान्धारी पांडवों को श्राप देने के विषय में कैसे सोच सकती है? गान्धारी बोली, जिस गान्धारीने दुर्योधन को विजयश्री का आशीर्वाद नहीं दिया था वो हस्तिनापुर की पटरानी थी और जो गान्धारी पांडवों को श्राप देने के विषय में सोच रही है ऋषिवर वो केवल एक मां है जिसके सौ पुत्र एक ही युद्ध में वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं ऋषिवर। व्यास बोले- अभिमन्यु और द्रौपदेयों के मृतक पर अपने आंसू पोंछ डालो। धर्म और अधर्म के बीच होनेवाले युद्ध के भूमिपर पडे हुये शवों को पहचानने का प्रयत्न मत करो पुत्री क्योंकि रणभूमि में पडा हुआ हर शव तुम्हारा अपना शव है। गान्धारी बोली, किन्तु धर्म युद्ध तो धर्मानुसार होना चाहिये था ना ऋषिवर। मैं दुशासन के वध पर क्रोधित नहीं हूं लेकिन भीम को उसका लहू तो नहीं पीना चाहिये था ना। व्यास बोले, उलाहनों के लेखाकरण के लिये यह समय उचित नहीं है गान्धारी। लेखाकरण इतिहास पर छोडो, वो गणित में निपुण है उससे भूल चुक नहीं होती फिर भी यदि तुम उन्हे श्राप देना ही चाहती हो तो अवश्य दो। वो भी तुम्हारा आशीर्वाद ही समझेंगे। गान्धारी ने ऋषि व्यास को प्रणाम किया और व्यास चले गये।

गान्धारीके मनमें भी कम क्रोध नहीं था पाण्डवोंके प्रति; किन्तु महर्षि व्यासने उसे समझाया। उसने भी भीमके प्रति ही अधिक आक्रोश प्रकट किया; क्योंकि भीमने दुर्योधनको अन्यायपूर्वक मारा था; किन्तु जब भीमने कहा- मैंने यह काम इसलिए किया कि आपका पुत्र मुझे मार ही न डाले। वह सदा हमें दु:ख देता रहा था और मैंने तभी उसकी जंघा तोड़नेकी प्रतिज्ञा की थी, जब सभामें द्रौपदीको उसने जाँघ दिखायी थी।

कृष्ण गान्धारीके पास जाकर उससे कहने लगे, गान्धारी। तुम पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर क्रोध मत करो, शान्त हो जाओ। तुम जो बात मुँहसे निकालना चाहती हो, उसे रोक लो और मेरी बातपर ध्यान दो। गत अठारह दिनोंमें तुम्हारा विजयाभिलाषी पुत्र नित्य ही तुमसे यह प्रार्थना करता था कि मैं शत्रुओंके साथ संग्राम करनेके लिये जा रहा हूँ माताश्री। मेरे कल्याणके लिये आप मुझे आशीर्वाद दीजिये। उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तुम हर बार यही कहती थीं कि जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। इस प्रकार पहले तुम्हारे मुँहसे जो सच्ची बात निकलती थी, वह मुझे याद आती है। यों भी तुम सब प्राणियोंका हित चाहनेवाली हो। इस समय पाण्डवोंने विजय पायी है और इसमें संदेह नहीं कि युधिष्ठिर ही अधिक धर्मनिष्ठ भी हैं। तुम तो सदासे ही बड़ी क्षमावती हो, फिर इस समय तुमने क्षमाको क्यों छोड़ दिया है? धर्मज्ञे। तुम अधर्मको छोड़ दो; क्योंकि तुमने अपने धर्मपर दृष्टि रखकर ही ये शब्द कहे थे कि जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। अत: तुम अपने क्रोधको शान्त करो। तुम सत्य-भाषण करनेवाली हो, तुम्हारा ऐसा आचरण नहीं होना चाहिये।

गान्धारीने कहा- कृष्ण। पाण्डवोंके प्रति मेरा कोई दुर्भाव नहीं है और न मैं इनका नाश ही चाहती हूँ। किंतु पुत्रशोकके कारण मेरा मन जबरदस्ती व्याकुल-सा हो रहा है। इन कुन्तीपुत्रोंकी रक्षा करना जैसा कुन्तीका कर्त्तव्य है, वैसा ही मेरा भी है और जैसा यह मेरा कर्त्तव्य है, वैसा ही महाराजका भी है। यह कौरवोंका संहार तो दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दु:शासनके अपराधसे ही हुआ है। इसमें अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव या युधिष्ठिरका कोई भी दोष नहीं है। कौरवोंने अभिमानमें भरकर युद्ध किया और वे अपने दूसरे साथियोंके सहित आपसहीमें लड़ मरे। किंतु साहसी भीमने दुर्योधनको गदायुद्धके लिये बुलाकर फिर श्रीकृष्णके सामने ही उसकी नाभिके नीचे गदाकी चोट की- इस अनुचित कार्यने ही मेरे क्रोधको भड़का दिया है; धर्मज्ञ महापुरुषोंने जिसे धर्म कहा है, उसे क्या शूरवीर अपने प्राणोंके लोभसे भी रणभूमिमें छोड़ सकते हैं?

वे गांधारी के कक्ष में पहुँचे तो उसने उनको प्रणाम भी नहीं करने दिया और झपटकर भीम से बोली, मेरे सौ पुत्रों में से जिसने तुम्हारा कुछ कम अपराध किया था, उस एक को तो जीवित छोड़ देते। सौ के सौ मार दिए।

क्षणभर के लिए भीम कुछ संकुचित हुआ किंतु स्वयं को सँभालने में उसे अधिक समय नहीं लगा और बोला, मैंने आपके किसी पुत्र का वध नहीं किया है देवि। मैंने तो केवल उन राक्षसों को मारा है, जो अपनी रक्षा के लिए नहीं, पराया धन और पराया राज्य छीनने के लिए भयंकर शस्त्र लेकर मनुष्यों और मनुष्यता का संहार कर रहे थे। जो स्त्री का सम्मान करना नहीं जानते थे।

गांधारी का तेज भीम को संकुचित करता जा रहा था और बोली, दुर्योधन को अन्यास से क्यों मारा?

भीम अपनी वीरता का बखान नहीं कर सका, मैं डर गया था। दुर्योधन मुझे मार देता तो? युद्ध में किसी के भी प्राण जा सकते हैं। इससे पहले कि वह मेरे प्राण ले लेता, मैंने ही उसके प्राण ले लिए।

गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमने बहुत डरते-डरते उससे विनयपूर्वक कहा, माताश्री। यह धर्म हो अथवा अधर्म, मैंने तो डरकर अपनी रक्षाके लिये ही ऐसा किया था, सो अब आप क्षमा करें। आपके उस महाबली पुत्रको धर्मयुद्धमें तो कोई भी नहीं मार सकता था। किंतु पहले उसने भी तो अधर्मसे ही राजा युधिष्ठिरको जीता था और हमें बार-बार तंग किया था। इस समय भी मुझे डर था कि कहीं दुर्योधन गदायुद्धमें मुझे मार न डाले, इसीसे मैंने यह काम कर डाला। आपके पुत्रने तो हमारा बहुत ही अप्रिय किया था। उसने भरी सभामें द्रौपदीको अपनी बायीं जाँघ दिखायी थी। हमें तो उसी समय उसे मार डालना चाहिये था, किंतु धर्मराजकी आज्ञासे हम चुपचाप बैठे रहे। पीछे उसने वैरको बहुत ही बढ़ा दिया और वनमें रहते समय हमें सदा ही दु:ख देता रहा। इसीसे मुझसे भी ऐसा काम हो गया।

गान्धारीने कहा, तुम मेरे पुत्रकी ऐसी प्रशंसा कर रहे हो, इसलिये यह तो उसका वध ही नहीं कहा जा सकता। परंतु तुमने जो संग्रामभूमिमें दु:शासनका खून पिया, उस कामकी तो सभी सत्पुरुष निन्दा करेंगे ऐसा काम आर्यपुरुष तो कभी नहीं करते। तुमने यह बड़ा ही क्रूर कर्म किया, ऐसा करना उचित नहीं था।

भीम बोले, जब द्यूतक्रीड़ाके समय दु:शासनने द्रौपदीके केश पकड़े थे, उसी समय क्रोधमें भरकर मैं ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका था। यदि मैं उसे पूरा न करता तो अनन्त वर्षोंतक क्षात्रधर्मसे पतित समझा जाता। इसीसे मैंने यह काम किया था।

गान्धारीने कहा- भीम। हम अब बूढ़े हो गये हैं, हमारा राज्य भी तुमने छीन लिया। ऐसी स्थितिमें हम दोनों अंधोंके सहारेके लिये लकड़ीके समान तुमने एक भी पुत्रको जीवित क्यों नहीं छोड़ा? यदि तुम मेरे एक पुत्रको भी छोड़ देते तो तुम्हारे कारण मैं इतना दु:ख न पाती, यही समझ लेती कि तुमने अपने धर्मका पालन किया है।

भीमकी विनय तथा स्पष्टीकरण किसी पुत्रहीना माताके शोकको कैसे समाप्त कर देते। जिसके सौ पुत्र थे, उनमें से एक भी शेष नहीं रहा, उसे क्रोध नहीं आवेगा? उसने क्रुद्ध स्वरमें कहा- राजा युधिष्ठिर कहाँ है?

युधिष्ठिर यहाँ इतनी विधवाओंका आर्तनाद सुनकर, उनका उलाहना पाकर स्वयं बहुत व्यथित थे। वे हाथ जोड़े सामने आकर बोले- देवि। आपके पुत्रोंका संहार करानेवाला क्रूरकर्मा युधिष्ठिर आपके सामने है। पृथ्वीके सब राजाओंका विनाश कराके राज्य चाहनेवाला यह अधम आपके शापका पात्र है। मैं अपने सुहृदोंका शत्रु हूँ। अपने ही स्वजनोंको मरवाकर अब मुझे राज्य, सुख या जीवन, किसीकी भी इच्छा नहीं है। आप मुझे शाप दें।

भीमसे ऐसा कहकर अपने पुत्र-पौत्रोंके नाशसे पीडिता गान्धारी क्रोधमें भरकर बोली, राजा युधिष्ठिर कहाँ हैं? यह सुनते ही धर्मराज भयसे काँपते हुए हाथ जोड़े उसके सामने आये और बड़ी मीठी वाणीमें बोले, देवि। आपके पुत्रोंका संहार करानेवाला मैं क्रूरकर्मा युधिष्ठिर सामने खड़ा हूँ। पृथ्वीभरके राजाओंका नाश करानेमें मैं ही हेतु हूँ, इसलिये शापके योग्य हूँ, आप मुझे शाप दीजिये। मैं अपने सुहृदोंका शत्रु हूँ; अत: ऐसे-ऐसे बन्धुओंका संहार कराकर अब मुझे जीवन, राज्य या

धन किसीकी भी इच्छा नहीं है।

गान्धारी क्रोधके कारण लम्बी श्वास ले रही थी। उसने पट्टीमें भीतर नेत्र खोल लिए थे। युधिष्ठिर उसके चरणोंमें गिरना चाहते थे, तभी गान्धारीकी दृष्टि उनके हाथके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर नख काले पड़ गये। यह देखकर अर्जुन भयके कारण श्रीकृष्णके पीछे हो गये। भीम, नकुल, सहदेव भी छिपने लगे।

दीर्घदर्शिनी गान्धारीकी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर उनके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखते ही अर्जुन तो श्रीकृष्णके पीछे सरक गये तथा और भाई भी इधर-उधर छिपने लगे। गांधारी का मुख क्षोभ से लाल हो गया। वह अपना चेहरा इधर-उधर घुमा रही थी, जैसे किसी को खोज रही हो। अर्जुन को लगा कि भीम के पश्चात् अब उसकी ही बारी थी। कदाचित ताई उसे ही खोज रही हैं। अपने शैशव में जब कभी वह अपनी माता के साथ ताई से मिलने आया करता था, तो वह जैसे उसे दबोचकर अपनी गोद में बैठा लेती थीं। अर्जुन उससे बचने के लिए अपनी माँ के पीछे दुबक जाया करता था। आज माँ नहीं थीं वहाँ। कहाँ छिपे वह। अर्जुन बिना कुछ सोचे-समझे, अपने किसी अभ्यास के कारण कृष्ण के पीछे छिप गया।

अपने शतपुत्रों के संहार पर धृतराष्ट्र पत्नी गान्धारी शोक से अर्धविक्षिप्त हो उठी थीं। क्रोध एवं क्षोभ से युक्त वाणी में उन्होंने श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर एवं पाण्डवों की कटु भर्त्सना की। वे इतनी क्रोधोन्मादित थीं कि यदि उनकी दृष्टि उस समय किसी पर पड़ती तो वह वहीं जलकर भस्म हो जाता। नेत्रों पर बँधे वस्त्र-पट्टी के नीचे से उनकी दृष्टि युधिष्ठिर के चरण-नखों पर ही पड़ी और वे क्षणभर में काले पड़ गये। उन्हें समझाने में सब असमर्थ थे। पुत्रशोक से दग्ध अन्तर से क्रोध की ज्वालाएँ लपलपा रही थीं जैसे।

सहसा गांधारी ने आक्रोशशून्य स्वर में कहा, अर्जुन कहाँ है? आज कुंती यहाँ नहीं है तो वह किसके पीछे छिपा खड़ा है कृष्ण के? कुंती से भेंट कर आए तुम लोग? युधिष्ठिर बोले, नहीं माता। हम पहले आपसे मिल लेना चाहते थे। अपना अपराध क्षमा करा लेना चाहते थे। आपकी विह्वलता में कुछ सांत्वना दे लेना चाहते थे, कुछ सांत्वना पा लेना चाहते थे।

इस बार गांधारी का स्वर सचमुच विह्वल था, जाओ पुत्रो। जाकर माँ से मिलो। बहुत कष्ट पाया है, तुम्हारी माँ ने; और बहुत लंबी प्रतीक्षा की है।

इन माताओं से बढ़े सदा देश का मान, धन्य करे आशिष दे ममता मूर्ति महान।

इस प्रकार पाण्डु-पुत्रोंका भयातुर होना लक्षित करके गान्धारीको दया आ गयी। उसने सबको आश्वासन दिया। इसके अनन्तर सब माता कुन्तीके समीप गये। देवी कुन्ती पाण्डव जब वनमें गये थे, तबसे ही हस्तिनापुरमें ही थीं। युद्धकालमें भी वे वहीं थीं। वर्षोंके पश्चात् इतनी विपत्ति भोगकर युद्धमें विजयी पुत्र मिले थे; किन्तु यह विजय भी नीरस, उल्लासहीन हो चुकी थी। द्रौपदी, सुभद्रादि पुत्र-वधुएँ अपने पुत्रोंके मारे जानेसे शोककातरा थीं। चारों ओर जो सहस्त्रश: विधवाएँ क्रन्दन कर रही थीं, वे भी अपने ही स्वजनोंकी स्त्रियाँ थीं।

दृषद्वती के तट से हम सीधे पाण्डव-स्त्रियों के शिबिर-संकुल में आये। हमारे वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले सिसकती हुई सुभद्रा दौड़ी-दौड़ी हमारे पास आयी। उसको सँभालने के लिए उसके पीछे-पीछे द्रौपदी भी आयी। वस्तुत: पाँचों पुत्रों को गँवा बैठी द्रौपदी का दु:ख पाण्डव-स्त्रियों में सबसे अधिक था। जीवन में एक के बाद एक आये संकटों की कसौटी पर वह खरी उतरी थी। सबसे पहले उसने ही अपने-आप को सँभाला था।

भैया। कहाँ गया मेरा अभिमन्यु... एक बार तो उसका दर्शन कर दो मुझे। कहती हुई भैया के गले लगकर सुभद्रा

बिलखने लगी। भैया की लम्बी-लम्बी नीलवर्णी अँगुलियाँ मौन ममता से उसकी पीठ पर घूमती रहीं। मानो वे मौन रहकर ही उससे कह रही थीं- सुभद्रे... प्रिय बहन, शान्त हो जा... मैं जो कह रहा हूँ, उसे शान्तिपूर्वक सुन ले।

अत्यन्त शान्त, स्थिर स्वर में उन्होंने कहा, सुभद्रे, हमारा अभि कीर्तिशिखिर पर पहुँच चुका है। इस महायुद्ध में सबसे छोटा होते हुए भी सबसे अधिक पराक्रम केवल उसीने किया है। केवल पाण्डवों के कुरुवंश का ही नहीं, बल्कि हमारे यादव-वंश का भी नाम उसने अमर कर दिया है। आँसू मत बहा, उस पर गर्व कर। उनके शब्दों में, और विशेषत: उनके अलौकिक स्पर्श में इतनी सामर्थ्य थी कि सिसक-सिसककर रोनेवाली सुभद्रा शीघ्र ही शान्त हो गयी। उद्धवने कहा, बहन सुभद्रा, तुम वीरमाता हो, इस पर मुझे बड़ा गर्व है- और आर्यों की भावी पीढ़ियों को भी तुम पर गर्व होगा। अब तो तुम शान्त हो गयी हो- इडादेवी का स्मरण करके अब अपने मन को भी निर्लिप्त कर लो।

देवी कुन्तीका हृदय भर आया था। वे अञ्चलसे मुख ढककर बार-बार फूटकर रो उठती थीं। पुत्रोंने साश्रुनेत्र माताको प्रणाम किया तो उन्होंने भी सबके अङ्गोंपर स्नेहवश बार-बार हाथ फेरा। सबके ही अङ्ग शस्त्रोंके आघातसे आहत थे।

पुत्र-वधुओंने भी कुन्तीको प्रणाम किया और सब फफककर रो पड़ीं। इस व्यथाके समय गान्धारीने समझाया- तुम सब मेरी ओर देखो। जैसी तुम हो, वैसी ही मैं भी पुत्रहीना हूँ। अब कौन किसे धैर्य दे। यह सब कालकी ही प्रेरणासे हुआ। तुम सब यही मानकर सन्तोष करो कि मेरे अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका संहार हुआ।

उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध ठंडा पड गया और उसने माताके समान उन्हें धीरज दिया। फिर उसकी आज्ञा पाकर वे अपनी माता कुन्तीके पास गये। कुन्तीने अपने पुत्रोंको बहुत दिनोंपर देखा था, इसलिये उनके कष्टोंका स्मरण करके उसका हृदय भर आया और वह अञ्चलसे मुख ढाँककर आँसू बहाने लगी। उसके साथ पाण्डवोंकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। उसने प्रत्येक पुत्रके अङ्गोंपर बार-बार हाथ फेरकर देखा। सभीके शरीर शस्त्रोंकी चोटोंसे घायल हो रहे थे। पुत्रहीन द्रौपदीको देखकर तो उसे बड़ा ही अनुताप हुआ। उसने देखा कि पाञ्चालकुमारी पृथ्वीपर पड़ी-पड़ी रो रही है।

अन्तत: पाण्डुपत्नी कुन्ती आगे बढ़ीं। उन्होंने द्रौपदी को ले जाकर गान्धारी के सम्मुख खड़ा कर दिया और स्वयं पौत्र-शोक से आहत मर्मस्पर्शी वाणी में बोल उठीं-

आर्या देवी गान्धारी। युद्ध तो टाला जा सकता था। तुम अपने पुत्रों को क्यों नहीं सत्मार्ग पर ले आयीं? समस्त सन्धिप्रस्ताव वे ही तो ठुकराते गये थे। युद्ध के मध्य भी दुर्योधन को समझाया गया किन्तु उसकी हठधर्मिता के समक्ष, खेद है देवी, तुम और तात धृतराष्ट्र दोनों ही अवश होकर झुक गये। देखो। कैसा दारुण सामूहिक क्रन्दन हो रहा है। उन्हीं की हठवादिता के कारण।

जीवन से मृत्यु उदार है। जीवन से मृत्यु प्रशांत है। कल जो शत्रु थे आज उनकी शत्रु मन को कोमल करुण भावना में सिक्त कर देती है। कल तक जो दुष्ट, कामुक, दुराचारी थे, मृत्यु ने उन्हें प्रशांत, स्थिर, निर्विकार कर दिया है।

युद्धभूमि पर जिन्हें शत्रु कह वध किया, सहोदर के रूप में उनका शव-संस्कार कर गंगास्नान करना होगा, तिलांजलि देनी होगी। प्रेत-कर्म कर उनकी आत्मा की सद्गति के लिए सारे क्रियाकर्म करने होंगे।

युद्धभूमि में दोनों विच्छिन्न परिवारों के मिलन का वह करुण दृश्य। कैसे वर्णन हो सकता है उस शोक-सागर का। सौ पुत्र, उनके अनेकानेक पुत्र, भ्राता, सहोदर, सबको खोकर धृतराष्ट्र, गांधारी, कौरव पत्नियां शवों में अपने-अपने आत्मीयों को ढूंढ रहे हैं। उनके साथ हैं मां कुन्ती। पाँचों पांडव और कृष्ण भी ढूंढ रहे हैं आत्मीयों को। वही मां गांधारी और कुन्ती हैं। एक-दूसरे के गले लगकर रो रही हैं।

सारी कौरव रमणियां शोक-विह्वल, पुत्र-शोक, पति-शोक, बंधु-सहोदरों के शोक में विलाप कर रही हैं। हस्तिनापुर की सारी स्त्रियां शोकाभिभूत, श्रीहीन हो गई हैं वैधव्य और वंश-नाश के शोक में सब म्रियमाण हैं।

इस दृष्टि से द्रौपदी का शोक उनसे कुछ कम है। द्रौपदी के पंचपति जीवित हैं। विजयी बने हैं, यद्यपि इस विजय का पालन कर रहे हैं श्मशान में चिता पर अग्निमहोत्सव के पास।

कुंती ने अपने पुत्रों को आते देखा तो अपने स्थान पर बैठी की बैठी रह गईं। डबडबाई आँखों से उनको देखा और उनके निकट आने की प्रतीक्षा करती रहीं। युधिष्ठिर ने आकर चरण स्पर्श कर प्रणाम किया तो उनके कंठ से न स्वर निकला और न ही उनका स्नेह भरा हाथ आगे बढ़ा। उन्होंने अपने उत्तरीय को जैसे अपने मुख से लगाकर अपनी सिसकियों को रोका।

पांडव अपनी माँ को घेर कर बैठ गए।

कुंती ने अपने अश्रु पोंछे और उनका हाथ कृष्ण के शरीर पर फिरने लगा, तुमने युद्ध में शस्त्र नहीं उठाया, फिर भी वैरियों ने तुम्हें नहीं छोड़ा। सारा शरीर रक्ताक्त हुआ पड़ा है।

कृष्ण मुस्कराए, शस्त्र नहीं उठाया था किंतु न्याय का पक्ष तो ग्रहण किया ही था, तो फिर घाव कैसे न लगते।

द्रौपदी निकट आई तो कुंती ने उसे अपनी बाँहों में भरकर जैसे अपनी गोद में समेट लिया।

द्रौपदी के कंठ से रुदन के मध्य कुछ अस्पष्ट शब्द भी फूटें, आर्ये। अभिमन्यु सहित आपके सारे पौत्र कहाँ चले गए। उन बच्चों के बिना हमें हस्तिनापुर के राज्य का भी क्या करना है। द्रौपदी कह रही थी- आर्ये। अभिमन्युके सहित आज आपके सभी पौत्र कहाँ चले गये। अब जब मेरे बच्चे ही नहीं बचे तो मैं राज्यको लेकर क्या करूँगी?

मां कुन्ती को देखते ही द्रौपदी फफक उठीं। छाती पर सिर रखकर कहा- मां, मेरे लाल, मेरे पुत्र। मेरा अभिमन्यु। कहां गए वे? क्या वे नहीं दिखेंगे अब? क्या करूंगी मैं राज्य का? जिसके संतान नहीं, क्या करेगा वह राज्य का? धन-संपदा का? मां ने द्रौपदी का सिर सहलाया- पुत्री। तेरा जो दु:ख है, मेरा भी वही दु:ख है।

माता कुन्ती अपनी पीडित पुत्रवधू को अंक में लिये उस पर हाथ फेरती हुई सान्त्वना दे रही थीं। और उसका रुदन स्वर उनसे पूछे जा रहा था बार-बार आर्ये। कहाँ हैं आपके सब पौत्र? वे जो स्नेहमयी पितामही को देखने को लालायित रह गये कहाँ सो रहे हैं उठकर आते नहीं आपके चरण-स्पर्श करने?

और फूटकर रो रही थीं- आर्या कुन्ती। बिलखकर रो रही थी वृष्णिनन्दिनी सुभद्रा। और साश्रुनयन नतमस्तक खड़े थे पाँच पुरुषसिंह। वे सब पुत्रहीन थे।

पाण्डवपत्नी पृथा पौत्रहीना थीं। सुभद्रा का एकमात्र यशस्वी पुत्र शौर्य का अनूठा दृष्टान्त रखकर सो गया था कुरुक्षेत्र में। वह पुत्रहीना थी। पांचाली की परिपक्व लहलहाती शस्य, रात्रि को चौर्यवृत्ति से प्रेरित अश्वत्थामा ने अपने परशु से काट डाली थी। पाँचों पुत्रों को काट डाला था। वह पुत्रहीना थी। वह पितृहीना था। वह भ्रातृहीना थी।

कुन्ती का स्वर जैसे कुछ सँभल गया, तुम्हारा अपमान करनेवालों को अपने पाप का उचित दंड मिला पुत्री। शोक मत कर। नारीत्व का सम्मान किसी भी साम्राज्य से अधिक मूल्यवान है। जो न्याय के लिए मूल्य चुकाने से चूक जाता है, उसे न्याय कभी नहीं मिलता। मैंने ही तो युधिष्ठिर से कहा था कि जिस दिन के लिए क्षत्राणी पुत्र को जन्म देती है, वह दिन आ गया है। कुंती का हाथ द्रौपदी की पीठ को सहला रहा था, तुम्हारा अपमान करनेवालों को जब तक दंडित नहीं किया गया था, तब तक तुम्हें भी लगता रहा होगा कि न तुम्हारे पति हैं, न पुत्र। तुमने स्वयं को अनाथ पाया होगा। तुमने भी चाहा होगा कि तुम्हारे पति और पुत्र तुम्हारा अपमान करनेवालों को दंडित करें। उनको ये आदर्श हमने ही तो दिए हैं। उठ पुत्रि।

तू भूमि पर लोटकर विलाप करनेवाली कोमल हृदया साधारण नारी नहीं है। तू यज्ञकुंड से उत्पन्न हुई तेजपुंज क्षत्राणी है। तू पाप का नाश करने इस पृथ्वी पर आई है। अपने सखा कृष्ण से पूछ कि तेरे पुत्र कहाँ गए हैं, तो वह तुझे बताएगा कि केवल अदृश्य हो गए हैं। नश्वर तो केवल शरीर है। यहाँ मरता कोई नहीं, केवल पंचभूत मिलते और बिखरते हैं। उनका रूप परिवर्तित होता है, वे नष्ट नहीं होते। उठ पुत्री। इस प्रकार रोकर अपने पिता, भाइयों, और पुत्रों का अपमान मत कर। उनकी वीरता के गौरव को अंगीकार कर। जब मूल्य चुकाया है, तो उसके गौरव को भी ग्रहण कर।

द्रौपदी का रुदन रुक गया। उसने अपनी सास को देखा.. कैसी धैर्यमयी हैं। और कैसी वीर माता। सच कहती हैं उसकी सास। कृष्ण की माता ने भी तो छह-छह पुत्रों को बलि चढ़ाकर ही कृष्ण को पाया है। त्याग के मूल्य को कम नहीं करना चाहिए। शौर्य का गौरव जीने का सुख, राज्य के सुख से भी बड़ा है। राज्य का सुख तो कोई कीट-पतंग भी पा सकता है; किंतु तप और त्याग महानता के लक्षण हैं। ठीक कहती हैं उसकी सास। वे मूल्य चुकाने को प्रस्तुत थीं, तभी तो युद्ध के लिए भेजा था अपने पुत्रों को, अपने पतियों को।

कुंती उठकर खड़ी हो गई। उन्होंने सहारा देकर द्रौपदी को भी उठाया। कुंती ने कहा, चलो पुत्रि। हमें गांधारी से मिलने भी जाना है। उनके पुत्रों की शत्रुता उनके साथ गई। इस समय तो वे दोनों ही बहुत दुखी और पीडित हैं। हमारे मन में उनके प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। दंडित तो ईश्वर ने उन्हें कर ही दिया है। कृष्ण बोले, ठीक कहती हैं बूआ। नाश की घड़ी बीत गई, अब कुछ निर्माण भी होना चाहिए। वे लोग पुन: गांधारी के कक्ष में लौट आए।

दासियों ने सूचना पहले ही दे दी थी। उनकी आहट पाकर गांधारी ने सिर उठाया। द्रौपदी तो उसके पास तेरह वर्षों बाद आई थी। कुंती भी इधर एक लंबे समय से उसके प्रासाद की ओर नहीं आई थी। आज इस शोक में भी शायद कुंती के लिए कहीं लेश भर ही सही किंतु सुख निहित था। उसके पाँचों पुत्र जीवित थे।

पांडवों के साथ कुन्ती गान्धारी के पास आती है। गान्धारी बोली, आओ कुन्ती। कुन्ती बोली, दीदी मेरे साथ आपके पांचों पुत्र और वासुदेव भी आये है। युधिष्ठिर बोला, प्रणाम ज्येष्ठ माताश्री। गान्धारी बोली, सुखी रहो पुत्र युधिष्ठिर। युधिष्ठिर बोला, सुखी रहना तो मेरे वश में नहीं है ज्येष्ठ माताश्री किन्तु हम भाइयों में से यह बात कोई नहीं भूल सकता कि अनुज भीम ने दु:शासन की छाती का लहू पिया और उसकी गदा ने अनुज दुर्योधन की जंघा तोडी। गान्धारी बोली, किन्तु वो वचनबद्ध था पुत्र। उन दोनों को द्रौपदी, भरतवंश और मानवता का अपमान करने का कम से कम इतना दंड तो मिलना ही चाहिये था। मेरे भीम ने उनका वध नहीं किया था, उसने तो उन्हें केवल दंड दिया था पुत्र और दंड देना कोई अपराध नहीं।

द्रौपदी जाकर गांधारी के निकट बैठी। वह स्वयं ही समझ नहीं पाई कि जाने कैसे गांधारी के प्रति उसके मन की दूरी कहीं विलीन हो गई। उसका मस्तक गांधारी के वक्ष से जा लगा। उसने अपना माथा वहीं टेक दिया और सिसक पड़ी।

यह तुम्हारे सम्मुख खड़ी है पांचाली। जिसके साथ गान्धारकुमार शकुनि एवं दुर्योधन तथा दु:शासन ने क्या अन्याय नहीं किया। कितने अन्याय नहीं किये। कितनी उसे दारुण यन्त्रणा दी। उसका कैसा घोर अपमान भरी सभा में कियां उसे विवस्त्र तक करना चाहा। वह सब तुम्हारी मौन स्वीकृति से ही तो हुआ। तब देवी, तुम्हें इस कल्याणी पुत्रवधू की दुर्दशा पर दया न आयी? यह सुकुमार पांचाल-राजकुमारी वन-वन भटकी तुम्हारे पुत्रों के कारण। तुम्हारे जामाता जयद्रथ ने एकाकी पा इसका काम्यकवन से अपहरण किया। एक उज्ज्वल वंश की राजपुत्री, दूसरे उच्चकीर्ति वंश की राजवधू और सैरन्ध्री तक बनवा डाला तुमने इसे। तब तुम्हारे हृदय में क्यों नहीं ममता उमड़ पड़ी? क्या यह इसी योग्य थी?

पृथा का शान्त-धीर सिन्धु-सा विशाल उर आज बड़वाग्नि से दहक उठा था।

और आर्ये। मेरी इस दु:खित पुत्रवधू के कष्टों का अन्त नहीं तुम्हारे ही पुत्रों के कारण। देखो, अपने सौन्दर्य से समस्त राजपुत्रों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाली यह अपूर्व सुन्दरी कृष्णा कैसी कृशकाय एवं म्लानमुखी हो गयी है। इसके केशों में तेरह वर्षों से तेल नहीं पड़ा देवी। इसके जगतविख्यात सुन्दर नीलकान्ति कुन्तल जटाबद्ध हो गये हैं, जिन्हें अगरुधूप से विगत सुदीर्घ तेरह वर्षों से सुगन्धित नहीं किया गया।

इस व्याकुलमना पर कैसा दुर्भाग्य का पर्वत टूट पड़ा है। यह पुत्रहीना, पितृहीना, बन्धुहीना है आज। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने दस्युराज की भाँति इसके हृदय पर झूलती पंचरत्नमाला हर ली। यह क्या तुमसे कम दुखी है? इसके पुत्र तो निष्पाप थे, अबोध थे; किशोर थे। कैसी पैशाचिक विधि से उनका वध किया गया, उसे सुनकर तुम्हारा हृदय नहीं काँप उठा? तुम तो भाग्यवती थी देवी, जो इस दीर्घायु तक पुत्र-सुख भोगा। इसे देखो, जो असहाय कातर हिरणी-सी खड़ी है। जिसके पाँचों नन्हे शावक मदान्ध व्याघ्र के आखेट हो गये। इसके पितृकुल में भी कोई बचा क्या? वृद्ध पिता महायशस्वी पांचालनरेश द्रुपदराज को भी नहीं छोड़ा क्रूरकर्मा अश्वत्थामा ने। उनके अबोध पौत्रों को भी न छोड़ा। देवी। समूचा पांचालवंश समाप्त हो गया इसकी व्यथा-कथा तुम्हें रोमहर्षक नहीं लगती क्या? पृथा वाग्देवी बनी धाराप्रवाह बोल रही थीं। हृदय का क्षोभ और समूची पीड़ा जैसे अजस्र धारा में निनाद करती हुई बही जा रही थी।

आर्ये। और सुनो अपने अहंकारी, निरंकुश एवं उच्छृंखल पुत्रों के कुकर्मों की गाथा। यह खड़ी है मेरी दूसरी पुत्रवधू वृष्णिकुलनन्दिनी सुभद्रा। इसके एक मात्र तेजस्वी पुत्र का वध तुम्हारे क्रूर पुत्रों ने कैसे अधर्मपूर्वक किया, उसका वृत्तान्त तो विस्तार में सुना होगा। उससे भी तुम्हारा हृदय विचलित नहीं हुआ था? उस देवकुमार से अपूर्व सुन्दर बालक अभिमन्यु को एकाकी, असहाय एवं नि:शस्त्र कर छह प्रौढ़ महाबलियों, महारथियों ने घेरकर, उसके सुकुमार तन को विदीर्ण कर डाला। वृकोदर का परमवीर पुत्र घटोत्कच मारा गया। अर्जुनपुत्र इरावान भी मारा गया। राजमद में उन्मत्त घोर अनाचारी तुम्हारे पुत्रों ने अपने विशाल राजरथ के विराट चक्रों तले मेरे आठ कोमल, अबोध, निर्दोष, मृगछौने से पौत्रों को रौंद डाला तब तुम न रोयीं। आर्ये गान्धारी। यह सब क्यों हुआ? इसके मूल में कौन थे? क्यों नहीं तभी दुर्योधन को समझा लिया तुमने?

अहो। कैसा हृदय कँपा देनेवाला कातर कुररी- सा विलाप। सुनो। पहचानो, यह तुम्हारी पौत्र-वधू कोमलांगी उत्तरा का वेदना-व्याकुल स्वर है। अहो। कैसी वह बालवधू व्याकुल प्राण अपने किशोर पति अभिमन्यु के क्षत-विक्षत शव पर पछाड़ें खा-खाकर क्रन्दन कर रही है। देवी। कष्ट क्या तुम्हें ही हुआ है? शेष सब सुखी हैं? पूछो तनिक पांचाली से। पूछो तनिक सुभद्रा से। पूछो मेरी बाल-लतिका सी पौत्रवधू से, जिसका सुदीर्घ जीवन भयंकर दुर्गम पर्वत सा उसके समक्ष खड़ा है। और मैं खड़ी हूं तुम्हारे समक्ष। मुझे भी देखो, मेरी भी अन्तर्व्यथा समझो। पाण्डववंश के दीप कैसे काल-प्रभंजन से एक के बाद एक बुझ गये। यदि प्रारम्भ में ही तुम दुर्योधन को समझा लेती आर्ये तो यह दु:ख किसी पर न टूटता, किसी को क्लेश न होता। मेरे तो परम तपस्वी साधु-पुत्र केवल पंचग्राम से ही सन्तुष्ट हो जाते यह सब किसका खेल रहा?

और देवी। भूल गयीं क्या कि बार-बार दुर्योधन से तुमने क्या कहा? यतो धर्मस्ततो जय: यही तो तुम बार-बार कहती रहीं। युद्धवेला में जब दुर्योधन तुमसे आशीर्वाद लेने आया, तब भी तुमने आशीर्वाद न देकर कहा, यतो धर्मस्ततो जय:। तो आज अधर्म की पराजय पर ऐसा क्षोभ क्यों? धर्म की विजय पर देवी धर्मप्राण इन पाण्डवों पर ऐसा रोष क्यों?

महारानी गान्धारी निस्तब्ध थीं। निश्चल। बोलने में असमर्थ। जड़वत्। कपोलों पर वर्षाकालीन जलप्रपात-सा अश्रुपात झर रहा था। नेत्रों पर बँधा वस्त्रपट्ट पूर्णत: अश्रुसिंचित था। दोनों दुर्बल हाथ हृदय पर बँधे रह गये थे।

गांधारी ने कहा, इस प्रकार शोक से व्याकुल मत होओ पुत्री। आज जैसी मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हम दोनों को कौन धैर्य

बँधाएगा। मैं अपने पुत्रों के वध के लिए तेरे पतियों को दोषी मान रही थी। पता नहीं, उसमें कितना सत्य है; किंतु तेरे पुत्रों के वध के लिए निश्चित रूप से मेरा पुत्र दोषी है। मैं तेरे सामने कैसे सिर उठाऊँ। फिर यह भी सोचती हूँ कि मेरे ही अपराध से इस श्रेष्ठ कुल का संहार हुआ। मेरे पुत्र तो उसी दिन काल के ग्रास बन गए थे, जिस दिन कृष्ण। तुम अपूर्णमनोरथ होकर उपप्लव्य लौट गए थे।

गान्धारीका सौभाग्य ही था कि वह युद्धभूमि देख नहीं सकती थीं। उन्होंने पति-गृह आनेके क्षणसे जो अपने नेत्रोंपर पट्टी बाँध ली थी, वह महान पुण्य ही उनको इस दारुण दृश्यको देखनेसे बचाये था। लेकिन उनके श्रवण अधिक सतेज हो गये थे, जैसे अन्धोंके हो जाया करते हैं। यह विशेषता आज उनके लिए अभिशाप बन गयी थी। वे अपनी सभी पुत्रवधुओंका चीत्कार पृथक-पृथक पहिचान सकती थीं। विधवा पुत्री दु:शलाका दारुण क्रन्दन भी कानोंमें पड़ रहा था।

गान्धारीने श्रीकृष्णसे इन पुत्र-वधुओंकी, पुत्रीकी व्यथाका उल्लेख किया, उसने अन्य सम्बन्धी नरेशोंकी नारियोंका आर्तनाद सुनकर उनके भी पतियोंके मारे जानेका वर्णन किया। यह सब करते हुए उसका हृदय फटा जा रहा था। अन्तमें उसे क्रोध आ गया। उसका क्रोध किञ्चित भी अस्वाभाविक नहीं था।

४) कृष्ण को गान्धारी का श्राप

पुत्रशोक में अधीर मां गांधारी कृष्ण की तत्त्ववाणी सुनकर क्रोध से कह उठीं- हे कृष्ण। आप शास्त्रज्ञ हैं। अलौकिक शक्ति के अधिकारी हैं, पुरुवंश के परम आत्मीय हैं। आपसे क्या असंभव है। आप चाहते तो कौरव इस विनाश से बच सकते थे। शत्रु का विनाश कर राज्य भोगने में कोई आनंद नहीं मिलता। पराजित शत्रु के आगे ही राज्यभोग में गौरव मिलता है। युधिष्ठिर ने राज्य तो प्राप्त कर लिया है। पर कौरव समेत आत्मीयों को खोकर कैसे कोस रहे हैं स्वयं को। मेरे पुत्रों के विनाश के लिए आप ही उत्तरदायी हैं।

गान्धारी ने कहा, कृष्ण देवकी अपने पुत्रों पर रो चुकी है। वो मेरी पीडा समझ जायेगी और वो यह भी समझ जायेगी कि आज मैं तुम्हे श्राप क्यों दे रही हूं। कृष्ण बोले, माते। गान्धारी बोली, हे वासुदेव कृष्ण इस युद्ध का उत्तरदायित्व तुम्हारा है। यदि तुम चाहते तो यह युद्ध नहीं होता। यदि तुम चाहते तो इस युद्ध को रोक सकते। कृष्ण बोले, अवश्य रोक सकता था माते। किन्तु यह युद्ध आवश्यक था माता। गान्धारी बोली, हे यदुनन्दन सुनो मैं शिवभक्तिनी गान्धारी आज तुम्हे यह श्राप देती हूं कि मेरे ही परिवार की भांति यदुवंश का भी विनाश हो जाये।

गांधारी ने कृष्ण को संबोधित किया और बोली, जनार्दन। दोष मेरा भी था; किंतु मैं किसी को रोकने में असमर्थ थी। दोष मेरे पति का भी है वे अपने मोह को मर्यादित नहीं कर पाए। दोष मेरे पुत्रों का भी है कि वे अपने लोभ को त्याग नहीं पाए। हाथ में आए राज्य को इस प्रकार छोड़ना उनके लिए संभव नहीं था। वे सब दुर्बल मानव थे। किंतु तुम तो दुर्बल नहीं हो। तुम तो समर्थ थे। पांडव और धार्तराष्ट्र परस्पर लड़कर नष्ट हो रहे थे। तुम उन्हें देख रहे थे। फिर भी तुमने उनकी उपेक्षा क्यों कर दी? कैसे कर दी? तुम शक्तिसंपन्न थे। तुम्हारे पास सेना थी। तुम्हारे पास सेवक थे। तुम में सामर्थ्य था। तुम दोनों दलों को अपनी बात मानने के लिए बाध्य कर सकते थे।

कृष्ण बोले, मैं तो आया था महारानी। किंतु आपके पुत्र ने ही तो मेरी बात नहीं मानी। पांडवों को पाँच ग्राम तो आप भी दे सकती थी। इतनी भूमि तो आप जैसी महारानियाँ अपने पुरोहित को भी दान कर देती हैं। क्यों नहीं आपने पांडवों की बात मान ली। क्यों नहीं आपने अपने पुत्र को बाध्य किया। प्रजा राजा को बाध्य नहीं कर सकती; किंतु माता-पिता तो अपने पुत्र को बाध्य भी कर सकते हैं।

गान्धारी बोली, तुम बलप्रयोग कर सकते थे। तब यह महासमर नहीं होता। इतना विनाश तो न होता। मैं तुम्हें असमर्थ नहीं मानती। तुमने स्वेच्छा से कुरुओं का नाश करवाया। तुम चाहते थे कि ऐसा हो। उनको उनके कर्मों का फल मिले। तुम सबको उनके कर्मों का फल देते हो तो तुम अपने कर्मों के फल से कैसे बच सकते हो। सबको अपने कर्मों का फल मिलता है तो तुम्हें भी मिलेगा।

गांधारी जैसे कुछ और ही हो गई थी, मैंने अपने पति की सेवा से जो कुछ भी तप कमाया है, उस तपोबल से तुम्हें शाप देती हूँ कि तुम्हारे कुटुंबी भी इसी प्रकार आपस में लड़कर मर जाएँ। तुम भी मेरे ही समान अपने बंधु-बान्धवों, अपने पुत्रों से हीन, सर्वथा एकाकी होकर सागर की लहरों से अपना सिर फोड़ो। तुम भी जब अपने अंत को प्राप्त करो तो तुम्हारे निकट कोई अपना न हो। कोई तुम्हें जानने वाला न हो, कोई पहचाननेवाला न हो। तुम्हारे वंश की स्त्रियाँ भी कुरुकुल की स्त्रियों के समान अपने सगे-सम्बन्धियों के शवों पर पछाड़ खा-खाकर गिरें, अपनी छाती पीटें और कोई उनके अश्रु पोंछनेवाला भी न हो।

कृष्ण मुस्कराए और बोले, क्षत्राणी। आप अपना अपराध स्वीकार करके भी, अपने पुत्रों के पापों को जानते हुए भी, मुझे ही दोषी बताकर शाप दे रही हैं। इतना बड़ा दंड पाकर भी क्षमा नहीं सीखी आपने? तो ठीक है, आपका शाप स्वीकार करता हूँ मैं। मैं जानता हूँ कि ऐसा ही होनेवाला है। आपके तपोबल से नहीं होगा, तो यादवों के अपने पापों से होगा। आप तो वही शाप दे रही हैं, जो नियति ने पहले से ही निश्चित कर रखा है। जो दूसरों से अवध्य हो जाता है, वह अपनों से लड़कर ही मरता है। कृष्ण ने निकट आकर गांधारी की भुजा पकड़कर उसे उठाया। उनका स्वर बदल गया था। उनका संबोधन बदल गया था। उनका व्यवहार बदल गया था और बोले, अब उठो महारानी। कौरवों का नाश तुम्हारे ही अपराधों से हुआ है; तुमने और तुम्हारे भाईने पाण्डवों से प्रतिशोध चाहा था। तुमने यह नहीं सोचा था कि इस जीवन रूपी संघर्ष में दृश्य अथवा अदृश्य एक दूसरा पक्ष भी होता है। दूसरे को नष्ट करने गया मनुष्य स्वयं भी नष्ट हो सकता है। तुम ही समय-समय पर कभी क्रोध में, कभी मोह में और कभी लोभ में डूबी थीं। अपना दोष मुझ पर मत मढ़ो। अब भी समय है, अपने दोषों को पहचानो, उन्हें स्वीकार करो, और उनसे मुक्त होने का प्रयत्न करो। किसी से मुँह मोड लेना अथवा किसी को शाप दे देना किसी समस्या का समाधान नहीं है। समाधान तो एक ही है, अपने मन को निर्मल करो, देवत्व को पहचानो। तुम ही वह अंभोधि हो, जिसमें कामना का ज्वार उठता है और सहस्त्रों विश्व जन्म लेते हैं। कामना को जीत लो तो कहीं कोई संसार नहीं है, इसलिए कहीं कोई विनाश भी नहीं है। अपने मन के अधीन मत रहो, क्योंकि मन तुम्हारा नहीं है। यादव अपने पाप से नष्ट होंगे; किंतु उनके विनाश से न तो कौरव जी उठेंगे न तुम्हारे पापों का विगलन होगा। तुम केवल अपने लिए उत्तरदायी हो, यादव अपना किया स्वयं भोगेंगे।

गांधारी बोली, आपका कथन ठीक है गोविन्द। तपस्या तो मुझे अपने लिए ही करनी है। युद्ध भी मुझे अपने आपसे ही करना है। बाहर का युद्ध समाप्त हो गया। भीतर का महासमर तो अभी भी चल ही रहा है। यह विनाश।

गान्धारी अत्यन्त क्रोधमें भरकर बोली- कृष्ण। कौरव और पाण्डव परस्परकी फूटके कारण ही नष्ट हुए; किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी इनकी उपेक्षा क्यों कर दी? मेरी और महाराजकी बुद्धि मानलो मारी गयी थी या मेरे पुत्रने हमारी नहीं सुनी तो भी तुम तो उसे बलपूर्वक रोक सकते थे। तुम स्वयं अतुल पराक्रमी हो। तुम्हारे पास अत्यन्त सशक्त सेना थी। तुम सर्वसमर्थ ही। अपने समल्पसे, सैन्यबलसे तुम उन्हें दबा सकते थे। तुमने जानबूझकर मेरे वंशका विनाश होने दिया, इसे रोका नहीं तो तुम भी इसका फल भोगो।

श्रीकृष्ण शान्त खड़े रहे। गान्धारीने शाप दिया- तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे स्वजन इसी प्रकार लड़कर मरेंगे, जैसे मेरे स्वजन

मरे हैं। तुम स्वयं उनका संहार करोगे। तुम्हारे सामने तुम्हारे कुलकी स्त्रियाँ विधवा हो जायँगी। आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम भी अनाथके समान आहत होकर देहत्याग करोगे। इन भरतकुलकी स्त्रियोंके समान ही तुम्हारे कुलकी स्त्रियाँ भी रोती बिलखती पतियोंका शव ढूँढ़ती फिरेंगी।

मेरे सौ पुत्रों का निर्दय, निर्मम अंत करनेवाले महायुद्ध को तुमने ही प्रज्ज्वलित किया है। तुमने ही मेरे कुरुवंश को निर्वंश कर दिया। मेरी सभी पुत्रवधुओंको तुमने ही विधवा बनाया। केवल तुम्हें भस्मीभूत कर मेरे मातृहृदय को मेरी आत्मा को कभी शान्ति नहीं मिलेगी। अत: मैं- गान्धारपुत्री, कौरव-माता, शिव-भक्तिणी गान्धारी- हे द्वारिका के यादव-नायक, वसुदेव-देवकी के पुत्र मैं तुम्हें शाप देती हूँ, आज से छत्तीस वर्ष बाद इसी प्रकार तुम्हारे वंश का विनाश होगा। इसी प्रकार तुम्हारे यादवकुल की स्त्रियाँ भी विधवा बनेंगी। युद्ध में मारे जाओगे तो स्वर्ग प्राप्त करोगे, और युद्ध में विजय पाओगे तो राजा बनकर हस्तिनापुर के राज्य का उपभोग करोगे। अर्जुनको ऐसा उपदेश देनेवाले श्रीकृष्ण, तुम तो कभी राजा थे ही नहीं। सौ पुत्रोंकी माता तुम्हें शाप देती है कि तुम किसी भी युद्ध में वीरगति को प्राप्त नहीं होगे। किसी वन में एकाकी मर जाओगे और किसी को पता भी नहीं चलेगा। पुत्र-शोक से जिस प्रकार आज मैं तिल-तिल मर रही हूँ, उसी प्रकार पुत्र-शोक से तुम्हारी दोनों माताएँ- देवकी और रोहिणी भी तिल-तिल करके मरेंगी। मेरी पुत्रवधुओं की भाँति तुम्हारी आठों रानियाँ विधवा होंगी। हे यादवों के सुपुत्र, मैं तुम्हें यही शाप देती हूँ।

श्रीकृष्णसे यह सब कहकर गान्धारी शोकसे अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। दु:खकी अधिकतासे उसकी विचारशक्ति नष्ट हो गयी और उसका धैर्य टूट गया। जब उसे चेत हुआ तो पुत्रशोककी प्रबलतासे उसके अङ्ग-अङ्ग क्रोधसे भर गये और श्रीकृष्णपर दोषदृष्टि करके वह कहने लगी, कृष्ण। पाण्डव और कौरव आपसकी फूटके कारण ही नष्ट हुए हैं। किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी इनकी उपेक्षा क्यों कर दी। तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना थी। तुम दोनोंहीको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे। किंतु तुमने अपनी इच्छासे ही इस कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी थी। सो अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पतिकी सेवा करके जो तप संचय किया है, उसीके प्रभावसे मैं तुम्हें शाप देती हूँ- तुमने कौरव और पाण्डव दोनों भाइयोंके आपसमें प्रहार करते समय उनकी उपेक्षा कर दी थी। इसलिये तुम भी अपने बन्धु-बान्धवोंका वध करोगे। आजसे छत्तीसवें वर्ष तुम भी बन्धु-बान्धव, मन्त्री और पुत्रोंका नाश हो जानेपर एक साधारण कारणसे अनाथकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ विलाप कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोवेंगी।

कृष्ण बोले, हे माता सोचा था कि आज्ञा लेने से पहिले चरण स्पर्श करूंगा किन्तु अब चरण स्पर्श करके मैं आपको धर्मसंकट में नहीं डालना चाहता। क्योंकि अब जो मैंने चरण स्पर्श किया माते तो आप आशीर्वाद देने के लिये विवश हो जायेगी। गान्धारी बोली, कृष्ण तुम्हें पहचानना बड़ा ही दुष्कर है। कोई अन्य होता तो इतना भयंकर शाप मिलने के बाद मुझसे आशीर्वाद न माँगता। हे कृष्ण, मेरे सौ पुत्रों में से एक भी तुम्हारे जैसा क्यों नहीं हुआ? फिर भी मैं आशीर्वाद देती हूँ हे देवकीपुत्र, तुम यावच्चन्द्र दिवाकरौ कीर्तिशाली रहोगे।

कृष्ण बोले, इसलिये हे माते आपका यह पुत्र केवल जाने की आज्ञा मांग रहा है। कृष्ण हाथ जोड़कर वहां से चला जाता है। कृष्ण का स्वर शांत था- देवी। पर-धन में आसक्ति, दूसरों का राज्य अपहरण करना, ईर्ष्या करना, मातृजाति का अपमान करने के कारण आपके पुत्रों का विनाश हुआ। द्यूतक्रीड़ा में आसक्ति के कारण युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा राजा ने कितना कष्ट भोगा? इसमें मुझे क्या करना था? मैं तो अंत तक शांति-स्थापना करने के प्रयास में लगा रहा। युद्ध की परिणति सदा ही जनक्षय, धनक्षय, सभ्यता के ध्वंस और मानव के अकल्याण में होती है। इसमें दोषी-निर्दोष, शांतिप्रिय

और युद्धखोर दोनों क्षतिग्रस्त होते हैं। मेरे शांति-प्रस्ताव की अवज्ञा करने पर कौरवों का नाश हुआ?

पुत्रों की चिता के पास खड़ी गांधारी क्षोभ में कह उठीं। हे कृष्ण, आप कितनी ही सफाई दें, आप ही सब कारणों के कारण हैं। मुझमें तनिक भी पुण्यबल है तो मैं शाप देती हूँ- जैसे आज भरतवंश का नाश हुआ है, कभी वैसे ही आपके भी वंशका नाश होगा। तुम्हारे भी कुटुंबीजन परस्पर कलह कर आज से छतीस वर्ष बाद विनाश हो जायेंगे। कौरव ललनाओं की तरह यादव रमणियाँ भी पतिहीना, पुत्रहीना, कुटुंबहीना होकर रोदन करेंगी। द्वारिका रसातल में चली जायेगी?

परम सती गान्धारी का शाप सुनकर अविचलित स्वस्थ स्वरमें कुछ भर्त्सनासे करते श्रीकृष्ण बोले- राजपुत्री। तुमने शाप देकर अपना सञ्चित तप व्यर्थ नष्ट कर लिया। यह सब तो होनेवाला ही था। मैंने यदुकुलके इस अंतको भी पहिलेसे वैसे ही अनुमोदित कर दिया है जैसे कुरुकुलके ध्वंसको स्वीकार किया। गान्धारी उस प्रलयके भी अनुमोदककी वाणी सुनकर सिर पकड़ कर बैठ गयी। वे पुरुषोत्तम-मोहसे सर्वथा परे। उन्हें कहीं भय या शोक स्पर्श करता है।

यह श्राप सुनकर द्रौपदी स्तम्भ रह गयी। वंशनाश का शोक जानकर, नारी होते हुए भी वे किसी दूसरे को शाप कैसे दे सकीं? फिर यदुकुल-प्रदीप पूर्णपुरुष कृष्ण को शाप दे बैठीं मां गांधारी। यही क्या उनके मातृत्व की उदारता है? सौ पुत्रों को जन्म देकर नारी जननी नहीं बन जाती, जननी का हृदय तो आकाश की तरह उदार होता है। धरती की तरह सहनशील होता है, सागर की तरह ममता के रत्न छुपाये रहता है।

उधर सुनाई पड़ी माँ कुन्ती की अनुच्च स्वर में प्रार्थना- हे वासुदेव। आपके सिवा यदुकुल का विनाश किसी भी अभिशाप से नहीं हो सकेगा। हे मधुसूदन। शत्रु को भी वंशनाश, पुत्रनाश का शोक न हो- बस यही प्रार्थना है।

कृष्ण मुस्करा उठे मरघट में, देवी गांधारी। आपका कुछ पुण्य बल है, इतना सुख जरूर मिलेगा। क्योंकि मेरे परिवार-कुटुंबी लोग सुरासक्त हो आपस में लड़-कट मरेंगे। धर्मस्थापना के लिए, अधर्म का ध्वंस आवश्यक है। अत: मेरे पुत्र यदि धर्मपथ का त्याग करते हैं, तो काल के ग्रास बनकर समूल नष्ट हो जायेंगे। ठीक छतीस वर्ष बाद काल-स्त्रोत में एक युग-परिवर्तन होगा और आपका शाप फलीभूत होगा।

स्वयं भगवान भी एक नारी का पुण्य बल प्रतिपादित करके निर्मम अभिशाप को धारण कर लेते हैं।

मृत्युकामी शोकाभिभूत हृदय में जाग्रत जीवन काभाग जगा रहा था। मानो ऊर्ध्वगार्मी। चितानल चेतावनी दे रहा है- विशाल बनो। परमात्मा के अस्तित्व में खो जाओ। तब शोक-दु:ख जो हो , जीत सकोगे। जीवन की सार्थकता उपलब्ध होगी।

प्रेमपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर कृष्णने कहा, मुझे क्षमा कीजिए बुआजी। मुझे उसी के स्थान पर मानकर क्षमा कीजिए। हममें से कोई भी उनके कहने का अभिप्राय जान नहीं पाया। सम्भवत: बुआजी उनका तात्पर्य जान गयी हों। उन्होंने कहा, तुम क्यों क्षमा माँग रहे हो? क्या तुम्हें क्षमा करने की मेरी योग्यता है? तुमने तो कोई भूल नहीं की।

द्वारिका से लौटे सात्यकि को कृष्णने पाण्डव-स्त्रियों को कुरुक्षेत्र से सुरक्षित हस्तिनापुर भिजवाने की आज्ञा दी। पाण्डवों सहित उनकी स्त्रियों ने हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया। कृतवर्मा तो कब का द्वारिका चला गया था। भीम द्वारा मांसल मणि निकाली जाने के कारण माथे पर अपने रिसते हुए घाव को लेकर अश्वत्थामा किस अरण्य में चला गया, यह किसी को पता भी नहीं चला।

दूसरे दिन सूर्योदय के साथ हमने गरुड़ध्वज सहित हस्तिनापुर की सीमा में प्रवेश किया। कृष्ण जब सन्धि का प्रस्ताव लेकर यहाँ आये थे, हस्तिनापुर के नगरवासियों ने हर्षोत्फुल्ल होकर उनका स्वागत किया था। किन्तु इस समय हस्तिनापुर के मार्ग सुनसान थे। हस्तिनापुर के प्रत्येक घर में से कोई-न-कोई कुरुक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ था। पीछे रह गये थे केवल वद्ध, स्त्रियाँ और बालक-वे भी बैठे थे बन्द द्वारों के पीछे, दु:ख में डूबे हुए।

५) युधिष्ठिरका राज्याभिषेक

विदुर वहां पर धृतराष्ट्र को राजमहल में लेकर आता है। धृतराष्ट्र बोले, अपराधी तो मैं हूं गान्धारी। मुझे श्राप दो और जब श्राप देने के पश्चात तुम्हारा मन हल्का हो जाये तो वन की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करो। अर्जुन बोला, वन की ओर क्यों ज्येष्ठ पिताश्री? कुन्ती बोली, इसलिये पुत्र जब तक अतीत स्थान रिक्त नहीं करेगा तब तक वर्तमान अपना स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। अर्जुन बोला, क्या आप यह कह रही है माताश्री कि ज्येष्ठ पिताश्री के साथ आप भी जायेगी। कृष्ण बोले, उन्हे तो जाना पडेगा पार्थ। वो भी तो अतीत ही हैं। अब किसी वृक्ष को काटने से पहिले सोच अवश्य लेना कि क्या पता उस वृक्ष की छाया में बुआ या माता गान्धारी या ज्येष्ठ पिताश्री विश्राम कर चुके हो। विदुर बोले, मेरा नाम लेना क्यों भूल गये वासुदेव। युधिठिर बोला, आप भी काकाश्री। विदुर बोले, मैं भी तो अतीत ही हूं पुत्र। कृष्ण बोले, किन्तु बडे भैया के राज्याभिषेक तक तो आप लोगों को रूकना ही पडेगा महात्मा विदुर। अतीत के आशीर्वाद के बिना कोई वर्तमान पनप नहीं सकता। यह रहस्य आप सब भलीभांति जानते है। धृतराष्ट्र बोले, किन्तु इस शुभ अवसर पर मेरा होना उचित नहीं है वासुदेव। मैं वो राजा हूं जिसने देश पर अपने पुत्र और समाज कल्याण पर अपने पुत्र कल्याण को अधिक महत्व दिया। मैं अशुभ हूं वासुदेव। युधिष्ठिर बोले, ये आप क्या कह रहे है ज्येष्ठ पिताश्री। किसी के राज्याभिषेक का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि हस्तिनापुर का राजसिंहासन रिक्त तो नहीं है, आप विराजमान हैं और... धृतराष्ट्र बोले, पुत्र। तुम धर्मराज हो, तुम सत्य के प्रतीक हो। तुम भगवान से यह न मांगो। मैं तो केवल तुम्हारे पिता मेरे प्रिय अनुज पांडु का प्रतिनिधि था। अब तुम आ चुके हो, अब तुम सिंहासन के उत्तराधिकारी हो और फिर मैं अब बहुत थक भी चुका हूं। तुम्हारे साथ हस्तिनापुर में न्याय का युग फिर से आरम्भ हो रहा है। धर्म का सूर्य उदय होगा। यह नेत्रहीन धृतराष्ट्र धूप में तो रहना जानता ही नहीं इसे अपना अन्धेरा समेट कर चले जाने दो। हे पुत्र मैं देख तो नहीं सकता किन्तु अनुमान अवश्य लगा सकता हूँ कि तुम सिंहासन पर बहुत अच्छे लगोगे।

महाराज युधिष्ठिरने देवताओं तथा हजारों ब्राह्मणोंका पूजन किया। सूत, मागध और बंदिजनोंने स्तुति की। प्रजाजनोंने कहा, महाराज बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने धर्म और बल के सौभाग्यसे पुन: अपना खोया हुआ राज्य पा लिया। इसप्रकार राज्यद्वारपर सभीने मांगलिक वचनोंसे उनका स्वागत सत्कार किया। महाराज युधिष्ठिर रोष और संताप से मुक्त होकर द्रौपदीके साथ सुवर्णसिंहासनपर विराजमान हो गये। पास में ही सात्यकि और श्रीकृष्ण बैठे। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, माता कुन्ती और कृष्ण युधिष्ठिरके पास बैठे। कौरवोंके पुरोहित सुधर्मा, विदुर, धौम्य, कुरुराज और धृतराष्ट्र भी अलग-अलग सिंहासनोंपर विराजमान हुए। युयुत्सु, संजय और गान्धारीने भी आसन ग्रहण किया। फिर श्रीकृष्णकी आज्ञासे पुरोहित धौम्यने शास्त्रोक्त विधिसे बेदी बनाई और वेद मंत्रोंद्वारा विधिपूर्वक हवन करवाया। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन कराया और बोले राजन्। बड़े सौभाग्य की बात है कि आप धर्म की रक्षा करनेमें समर्थ हुए। युधिष्ठिर बोले, महाराज धृतराष्ट्र मेरे पिता हैं। हमारे परिवार के लिये वो इष्टदेवके समान हैं। जो लोग मेरा प्रिय करना चाहते है वे सब उनकी आज्ञा में रहे और उनके प्रति पहलेके समान भाव रखें। युधिष्ठिरने भीमको युवराज बनाया, महामन्त्री विदुर को प्रधान राजमंत्री, आय-व्यय का हिसाब रखनेके लिये संजय को नियुक्त किया, सेना की देखभाल करना, उनको भोजन और वेतन देना यह नकुल के जिम्मे किया। देश की रक्षा के लिये अर्जुन की नियुक्ति हुई। ब्राह्मणा और देवताओंके कार्यपर धौम्य मुनिको नियुक्त किये और सहदेव को प्रजाके साथ सम्पर्क करनेके लिये रखा।

राज्यसभा में सम्राट युधिष्ठिर का जयघोष हुआ। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो रहा है। द्रौपदी और युधिष्ठिर राज सिंहासन पर बैठे हैं। महर्षियों ने स्वस्तिवाचन किया। कृष्ण ने युधिष्ठिर को मुकुट पहिनाया। चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर की जय। युधिष्ठिर बोले, सबसे पहिले मैं हस्तिनापुर को सादर प्रणाम करता हूँ जिसने मुझे अपना राजा स्वीकार किया है। फिर मैं

अपने पूर्वजों को सादर प्रणाम करता हूँ कि मैं हस्तिनापुर और उसके राज सिंहासन की रक्षा करूंगा। मैं वासुदेव कृष्ण को सादर प्रणाम करता हूँ और उन्हे यह वचन देता हूँ कि मैं न्याय और अन्याय में अन्तर करने का प्रयास करूंगा और एक समाजसेवक की भांति अपना सारा समय मानव कल्याण के कार्यों में व्यतीत करूंगा। मैं उन्ही को साक्षी मानकर जनसमुदाय को यह अधिकार देता हूँ कि यदि वो देखे मैं अपने हितों को उनके हितोंपर अभिमान दे रहा हूं तो वे मुझे यह कह दे कि मैं इस राज्य सिंहासन के योग्य नहीं हूँ। फिर मैं रिक्त स्थानों को सादर प्रणाम कर दूं। इनमें से कोई स्थान पितामह जैसे महापुरुष का है, तो कोई आचार्य गुरु द्रोण जैसा और कोई अंगराज कर्ण जैसी महान आत्मा का। इस राजसभा में ये स्थान हमें याद दिलाने के लिये सदैव रिक्त रहेंगे कि इस युद्ध में हमने क्या खोया है, ज्ञान और निष्ठा के मूल्यों की परिभाषा खोई है हमने और नवीन परिभाषायें बनाने में न जाने कितने दिन, कितने वर्ष और कितने युग लग जायेंगे। इस युद्ध ने अतीत से हमारा नाता तोड दिया है और वर्तमान के लिये बडे नुकसान घाटे की बात है। इसलिये मैं काकाश्री महात्मा विदुर से यह प्रार्थना करता हूँ कि वे इस राजसभा में अतीत का प्रतिनिधित्व करें। मैं उन्हे अतीत से निकलकर वर्तमान में आने के लिये आमंत्रित करता हूँ और उन्हे प्रधान मन्त्री नियुक्त करता हूँ। अनुज भीम युवराज होंगे। अनुज अर्जुन सीमाओं की रक्षा का दायित्व सम्भालेंगे। प्रिय नकुल और सहदेव मेरे प्रधान अंगरक्षक होंगे। अन्त में मै ज्येष्ठ पिताश्री कुरु शिरोमणि धृतराष्ट्र के चरणस्पर्श करता हूँ और चरण स्पर्श करने पर कहता हूं कि वे केवल मेरे ज्येष्ठ पिताश्री ही नहीं वे मेरे गुरु भी है। नीति का एक अध्याय मैंने उनसे भी पढा है। मेरे हृदय में कोई किसी के प्रति भी कडवाहट नहीं और आज मैं यह घोषित करता हूँ कि हस्तिनापुर में कडवाहटों का युग समाप्त हुआ। राजा का कर्त्तव्य है कि वो भविष्य की ओर देखे क्योंकि जनसमुदाय को लेकर उसे भविष्य की ओर ही जाना है। यदि कोई राजा अपना सारा समय अतीत की कड़वाहटों की तुला में तौलने में ही गंवा देगा तो वो राजा देश के लिये दृष्टान्त नहीं होगा। हस्तिनापुर और हमारे प्रजाजनों ने बडी से बडी कठिनाइयां देखी है, उन्हे भोगा है और अब उनका अधिकार है कि उन्हें वे सुख और समृद्धि का स्वाद चखे, एक नये युग की स्थापना करे और यह तभी सम्भव है जब हस्तिनापुर का प्रत्येक नागरिक यह सोचे कि उसने देशने के लिये क्या किया है और उसे देश के लिये क्या करना चाहिये। किन्तु कभी यह न सोचे कि देश उसके लिये क्या किया है क्योंकि राजा देश के लिये होता है, प्रजा देश के लिये होती है किन्तु देश राजा या प्रजा के लिये नहीं होता।

राजतिलक यह धर्म का नया सुखद वरदान, होगा अब इस देश में नवयुग का निर्माण।

गान्धारी, कुन्ती, विदुर और धृतराष्ट्र वानप्रस्थ आश्रम में जाने के लिये तैयार है उसी समय सभी पांडवों ने आकर प्रणाम किया। धृतराष्ट्र बोले, आओ पुत्रों आयुष्मान भव, द्रौपदी नहीं आई। युधिष्ठिर बोला, वो द्वार पर खडी भीतर आने के लिये आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है। गान्धारी बोली, हस्तिनापुर की पट्टरानी को आज्ञा की आवश्यकता नहीं है पुत्र। धृतराष्ट्र बोले, हां पुत्र। हस्तिनापुर का भाग्य बहुत वर्षों के उपरान्त जागा है। अब उसके सिंहासन पर ही ऐसा राजा विराजमान है जो देख सकता है और उसे ऐसी पट्टरानी मिली जिसकी आँखों पर पट्टी नहीं बन्धी। हे पुत्र मैं अब जाकर यह समझ पाया हूं कि विदुर ने जब मेरे राजा होने का विरोध किया था तो सर्वथा ठीक ही था। यह नेत्रहीन धृतराष्ट्र जब अपने अन्धे हाथ बढाता तो केवल प्रिय दुर्योधन को छूकर रह जाता तो मैंने यह समझ लिया कि दुर्योधन ही हस्तिनापुर है। दुर्योधन ही संसार है। और जब भी कोई राजा मेरे जैसे पुत्र मोह में पडेगा तब अपने देश से कटकर अकेला रह जायेगा। गान्धारी तुम द्वार तक जाकर कुलवधू द्रौपदी को भीतर ले आओ। कुन्ती बोली, उसे मैं ही ले आती हूं ज्येष्ठश्री। धृतराष्ट्र बोले, नहीं कुन्ती। वर्तमान पट्टरानी का स्वागत भूतपूर्व पट्टरानी को ही करना चाहिये। जाओ। गान्धारी द्रौपदी के पास बाहर आती है। द्रौपदी बोली, आप ना जाइये ज्येष्ठ माताश्री। आप तो इस राजभवन की आत्मा हैं। गान्धारी बोली, आत्मा

को भी एक न एक दिन शरीर को त्यागना पडाता है पुत्री। यह वो हस्तिनापुर नहीं है जिसके राजभवन में मैं रहा करती थी। ये एक नवीन हस्तिनापुर है। हम लोग तो बीती हुई रात की परछाइयां है जो जीवन भर हमें डराती रही। जो हुआ उसे भूल जाओ पुत्री और न्याय पर आधारित एक नवीन युग का शुभ आरम्भ करो। आओ तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। गान्धारी द्रौपदी को लेकर आती है। द्रौपदी ने धृतराष्ट्र के चरणस्पर्श किये और बोली मुझे क्षमा कर दीजिये ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र बोले, क्षमा तो मुझे मांगनी चाहिये पुत्री। मेरे कारण तुम्हारा अपमान हुआ, मेरे कारण तुम्हारी कोख उजडी, मेरे कारण हजारों बालक अनाथ हुये। मैं अपने दोषों की दलदल में धंसा खड़ा हूं। प्रार्थना करो पुत्री कि हस्तिनापुर मुझे क्षमा कर दे। द्रौपदी बोली, मैं तो आपके और हस्तिनापुर के बीच में नहीं पड़ सकती ज्येष्ठ पिताश्री। किन्तु यदि आपने मुझे क्षमा कर दिया है तो अपने पुत्रों को छोड़कर मत जाइये। धृतराष्ट्र बोले, ये अब हमे यहां से नहीं जाने देगी कुन्ती। पुत्री द्रौपदी तुम हमें रोकने की अभिसन्धि में सफल हो गई। किन्तु तुम अपने अपमान के इस घर प्रतीक को क्यों रोकना चाहती हो। द्रौपदी बोली, मैं कुलवधू हूं ज्येष्ठ पिताश्री। मैं परिवार का विभाजन नहीं चाहती। मेरा जो अपमान हुआ भी था वो मेरा कब था। वो तो भरत वंश का अपमान हुआ था और मैं अपनी सेवा के पलकों से आपके व्यक्तित्व पर जमी हुई आपकी वही धूल तो झाडना चाहती हूं ज्येष्ठ पिताश्री। धृतराष्ट्र बोले, सौभाग्य भव पुत्री। मैं आज तेरा ऋणी हो गया पुत्री। द्रौपदी बोली, कर्त्तव्य पालन ऋणी नहीं होता ज्येष्ठ पिताश्री। गान्धारी बोली, हे आर्यपुत्र अब चलकर तातश्री को बता दीजिये कि युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के उपरान्त उनका हस्तिनापुर चहुं ओर से सुरक्षित है। धृतराष्ट्र बोले, नहीं मुझमें उनका सामना करने का साहस नहीं है गान्धारी। फिर उनके अन्तिम क्षणों में उनको अपना यह अशुभ मुख क्यों दिखलाऊं? यह बात वो भी जानते हैं और मैं भी कि वास्तव में बाणों की शैय्या पर उन्हे मैंने लिटाया है।

कर्ण की मृत्यु के पश्चात् ही एक प्रकार से युद्ध समाप्त-सा हो गया। एक दिन नाममात्र के लिये लड़ाई और हुई किन्तु उसमें उतनी उग्रता नहीं थी। दुर्योधन ने अठारहवें दिन अश्वत्थामा की सम्मति से शल्य को सेनापति बनाया। कृष्ण के कहने पर युधिष्ठिर ने अपने मामा शल्य को मार डाला। शल्य के मरने पर भी थोड़ी देर युद्ध हुआ। धृष्टद्युम्न से पराजित होकर दुर्योधन घोड़े पर चढ़कर युद्ध-भूमि से भागकर एक सरोवर में जा छिपा। पांडवों ने बड़ी कठिनता से उसका पता लगाया और वह भीम के हाथों गदायुद्ध में मारा गया। इसके पश्चात् महाभारत में भगवान् व्यास ने करुणा का जो स्रोत बहाया है। उसको पढ़ते-पढ़ते हृदय फटने लगता है। आँखें आँसू बरसाते-बरसाते थक जाती हैं, उस नर-संहार के पश्चात् अश्वत्थामा ने ऐसा क्रूर कर्म किया कि उसे स्मरण करके रोंगटे खड़े होते हैं। दुर्योधन को प्रिय करने की इच्छा से तथा होनहार के अधीन होकर अश्वत्थामा ने रात्रि में सोती हुई समस्त पाण्डव सेना को पशुओं की तरह मार डाला। केवल बच रहे पाँचों पाण्डव और छठे नारायण। इधर कौरवों की तरफ तीन वीर बचे, कृपाचार्य, कृतवर्मा और गुरुपुत्र अश्वत्थामा।

कुरुकुल का विनाश हो गया। समस्त धृतराष्ट्र के पुत्रों की पत्नियाँ विधवा हो गयीं। सभा में जिस तरह द्रौपदी के केश खोले गये थे, आज उस सती के शाप से समस्त कुरुकुल स्त्रियाँ केश खोले विधवा वेष में हा-हा करके चिल्लाने लगीं। इस पर्व में रुदन-ही-रुदन है। शोक-ही-शोक है। विलाप की हद है। मनुष्य कितना क्रूर प्राणी है। रोने-धोने से अब क्या होता है? होना था, सो हो गया। मरे हुए लौटकर नहीं आ सकते। सबको शान्ति दे दिलाकर धर्मराज गङ्गा तट पर गये। मरे हुए समस्त राजाओं का यथा विधि दाह संस्कार कराया गया और सभी को अन्तिम तिलाञ्जलि दी, धर्मराज ने रोते-रोते अपने हाथों से अपने बन्धु-बान्धव, सगे सम्बन्धियों का तर्पण किया। गङ्गाजल में अश्रु-जल मिलाकर बिलखते हुए, शोक करते हुए, धर्मराज अपने भाइयों का नाम ले-लेकर सबको जलदान देने लगे।

युद्ध का परिणाम दु:ख है। युद्ध में जो हार गया, वह मर गया, जो जीत गया, वह हार गया। यह संसार ही युद्धभूमि है।

पग-पग पर मनुष्य को अपनी वृत्तियों के साथ युद्ध करना पड़ता है। हमारी सद् और असद् वृत्तियों में सदा द्वंद्व युद्ध होता रहता है। कभी मन की विजय हो जाती है, कभी बुद्धि की। मन की विजय से सांसारिक सुख मिलता है और बुद्धि की विजय से स्वर्ग-सुख। किन्तु जो बुद्धि से परे हैं, जिसे साधारण बुद्धि नहीं पा सकती, वहाँ पहुँचने के लिये मन और बुद्धि दोनों से ऊपर उठना होगा, संसार में सुख कहाँ? भोगों में शान्ति कहाँ? संसार में सुख होता तो बड़े-बड़े योगिराज जिनके वश में मृत्यु है, स्वेच्छा से संसार को क्यों छोड़ते? यदि भोगों में ही शान्ति होती तो बड़े-बड़े चक्रवर्ती महाराजा अपने अतुल ऐश्वर्य महान् राज्य और असंख्य इन्द्रिय सुखों के साधनों को त्यागकर बीतरागी होकर अरण्यों में जाकर भूख प्यास को सहन करके शरीर को क्यों सुखाते? संसारी भोगों की प्राप्ति अप्राप्ति क्षणभर का दु:ख-सुख है। असल में तो जिन्हें सच्ची तुष्टि हो गयी है, जो विषय सुखों से ऊपर उठ गये हैं, उन्हें सच्ची शान्ति है। जिन्होंने तुच्छ सुखों को तिलाञ्जलि दे दी है, वे ही सच्चे सुखी हो सकते हैं।

राजा युधिष्ठिरने युद्धमें मरे हुए अपने कुटुम्बियोंके अलग-अलग श्राद्ध करवाये। धृतराष्ट्रने अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, धन, गौएँ तथा बहुमूल्य रत्न दान किये। स्वयं राजा युधिष्ठिरने द्रौपदीको साथ लेकर कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, घटोत्कच, विराट आदि मित्र राजाओं तथा द्रुपद एवं द्रौपदेयोंका श्राद्ध किया। इसके सिवा जिन राजाओंके कोई पुत्र आदि सम्बन्धी जीवित नहीं थे, उनका भी श्राद्ध सम्पन्न किया। इसप्रकार सबके और्ध्वदैहिक संस्कार करके वे उनके ऋणोंसे मुक्त हुए और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए कृतार्थताका अनुभव करने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि अर्जुन, युधिष्ठिरकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, श्रद्धालु तथा श्रेष्ठ अधिकारी थे। अकारण श्रीकृष्णने उन्हें सखाके रूपमें नहीं अपनाया था। धर्मकी प्रतिष्ठा धर्मराजमें ही भले हो; किंतु स्वजनोंका वध सम्मुख देखकर जो संताप अर्जुनके मनमें युद्धारम्भमें ही जागा था, वही संताप युधिष्ठिरके मनमें सबकी मृत्युके पश्चात् शवोंकी राशि, सहस्त्रों जलती चिताएँ तथा लाख-लाख रोती विधवा स्त्रियोंको देखकर जागा।

कुरुक्षेत्रके रणस्थल-श्मशान-स्थान कहना अधिक उपयुक्त है। वहाँ से लौटकर युधिष्ठिर अत्यन्त व्याकुल हो गये। उस मरण-भूमिमें उन शोकोन्मत्त विधवा महिलाओंसे मिले उपालम्भ-वचनोंने बाणोंके समान उनके मर्मको विद्ध कर डाला था। अब अपने स्वजनोंके संहारके पश्चात् राज्य, सम्पत्ति, सुख किसीमें कोई रस नहीं रह गया था। युधिष्ठिरको शान्ति पानेका एक ही मार्ग उचित लगता था कि वनमें जाकर तप करते हुए शरीरको सुखा दिया जाय। यह प्रायश्चित्त सफल हो या असफल, दूसरा मार्ग दीखता नहीं था।

युधिष्ठिर वनमें चले जायँ तो उनके भाइयोंमें कोई भी नगरमें रहकर राज्य-पालन करनेको प्रस्तुत नहीं था। वे सभी सदासे अग्रजके पदानुगामी रहे थे और युद्धमें परपक्षके संहारमें उनमें किसने कमी रखी थी कि धर्मराजको प्रायश्चित्तकी आवश्यकता है तो उसे नहीं है।

युधिष्ठिर कभी भाइयोंकी स्थितिपर विचार न करनेवालोंमें रहे हैं। उन्होंने सदा अपने सम्बन्धमें, अपने कर्त्तव्यको लेकर ही सोचा है। अत: इस समय भी उनकी व्याकुलताका आधार अपना अपराध-ज्ञान ही था।

वृद्ध अन्धे धृतराष्ट्र तथा नेत्रोंपर पट्टी बाँधे रहनेवाली महासती गान्धारी- इन दोनोंके सब पुत्र मारे गये। इनको सहारा, सहायताका मिलना आवश्यक है। लाख-लाख अनाथ, विधवायें जो अनाश्रिता हो गयी हैं, उनका पालन होना चाहिये। देशके अधिकांश राज्योंके राजा, युवा राजकुमार तथा सैनिक मारे जा चुके। वहाँ अव्यवस्था न उत्पन्न हो, प्रजा दस्युओंसे उत्पीड़ित न हो, यह इस समय सबसे बड़ा कर्त्तव्य सिरपर आ गया है, इन सब बातोंकी ओर युधिष्ठिरका ध्यान नहीं था। जैसे युद्धारम्भमें अर्जुन मोहग्रस्त होकर कर्त्तव्य-विस्मृत हो गया था, अब युधिष्ठिर शोक-संतप्त होकर कर्त्तव्य भूल बैठे।

इति स्त्री पर्व

HHH(५४२)HHH

शान्ति पर्व

* विषय उपक्रम *

१) राज्य ग्रहण करने के लिये युधिष्ठिर का नैराश्य व उदासीनता ५४४

२) युधिष्ठिरका भीष्म के पास आना और भीष्मसे राजधर्म,
राजनीति का उपदेश ग्रहण करना ५६५

३) द्रौपदीकी व्यंग्यपूर्ण हँसी ५७१

४) भीष्मका युधिष्ठिर को धर्मोपदेश ५७३

५) भीष्म का युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश ५७६

६) मोक्षधर्म का वर्णन ६२८

७) पराशय गीता ६३५

८) सांख्य (ज्ञान) और योग ६४२

९) व्यासजीका शुकदेव मुनिको वैराग्य का उपदेश ६५०

** मौत को टाला तो नहीं जा सकता; परंतु सुधारा तो जा सकता है।*
** मन में सन्देह रखकर आरम्भ किये गये कार्य में सफलता हासिल नहीं होती।*
** मनुष्य किसी लोभ के वशीभूत होकर ही झूठ बोलता है।*
** जमीन पर गिरनेवाली आग स्वत: बुझ जाती है।*

शान्ति पर्व

१) राज्य ग्रहण करने के लिये युधिष्ठिर का नैराश्य व उदासीनता

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय, युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होनेपर वे कृष्णसे बोले, भगवन् आपकी कृपा, नीति, बल, बुद्धि और पराक्रमसे मुझे अपने पूर्वजोंका राज्य प्राप्त हुआ। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। पवित्र अन्त:करणवाले ब्राह्मण आपकी अनेकों नामोंद्वारा स्तुति किया करते हैं। यह सम्पूर्ण विश्व आपकी लीला है, आपहीसे इसकी उत्पत्ति हुई है और आप ही इसके आत्मा हैं; आपको सादर नमस्कार है। आप सर्वत्र व्यापक होनेके कारण विष्णु और विजयी होनेसे जिष्णु कहलाते हैं, हरे। आप ही सच्चिदानन्दनस्वरूप श्रीकृष्ण, विकुण्ठधामके अधिपति वैकुण्ठ और क्षर-अक्षर पुरुषसे उत्तम पुरुषोत्तम हैं। आप पुराणपुरुष परमात्माने ही सात बार अदितिके गर्भसे अवतार लिया है। आप ही पृश्निगर्भके नामसे प्रसिद्ध हैं। विद्वान लोग तीनों युगोंमें प्रकट होनेके कारण आपको त्रियुग कहते हैं। आपकी कीर्ति बड़ी पवित्र है, आप इन्द्रियोंके प्रेरक और यज्ञस्वरूप हैं। आप हंस (शुद्ध आत्मा) कहलाते हैं। तीन नेत्रोंवाले भगवान् शंकर और आप एक ही हैं। आप ही विभु तथा दामोदर हैं। वाराह, अग्नि, बृहद्भानु (सूर्य), वृषभ (धर्म), गरुडध्वज, अनीकसाह (शत्रुसेनाका वेग सह सकनेवाले), पुरुष (अन्तर्यामी), शिपिविष्ट, यज्ञमूर्ति और उरुक्रम (वामन) आदि आपहीके नाम हैं। आप सबसे श्रेष्ठ और उग्रसेनापति हैं। सत्यस्वरूप, अन्नदाता तथा स्वामी कार्तिकेय भी आप ही हैं। आप स्वयं रण से कभी भी विचलित न होकर शत्रुओंको पीछे हटानेवाले हैं। वैदिक संस्कारोंसे युक्त द्विज और संस्कारशून्य द्विजेतर मनुष्य भी आपहीके स्वरूप हैं। आप ही कामनाओंकी वर्षा करनेवाले वृष (धर्म) हैं। कृष्णधर्म (यज्ञस्वरूप), वृषदर्भ (इन्द्रका दर्प दलन करनेवाले) और वृषाकपि (हरि-हर) भी आप ही हैं। आप ही सिन्धु (समुद्र), निर्गुण परमात्मा तथा सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप त्रिविध तेज हैं; ऊपर, नीचे और मध्य- ये तीन दिशाएँ भी आप ही हैं। आपने अपने वैकुण्ठधामसे आकर इस पृथ्वीपर अवतार धारण किया है। आप सम्राट, विराट, स्वराट और देवराज इन्द्र हैं। यह संसार आपहीसे प्रकट हुआ है। आप सर्वत्र व्यापक, नित्य सत्तारूप और निराकार परमात्मा हैं। आप ही कृष्ण (सबको अपनी ओर खींचनेवाले) और कृष्णवर्त्मा (अग्नि) हैं। आपहीको लोग अभीष्टसाधक, अश्विनीकुमारोंके पिता, कपिल मुनि, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड तथा यज्ञसेन कहते हैं। आप मोरपंखधारी और प्राणियोको मायासे बाँधनेवाले हैं। आप ही सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करनेवाले महेश्वर और पुनर्वसु नक्षत्र हैं। सुबभृ (अत्यन्त पिङ्गलवर्ण), रुक्मयज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि (कालचक्र), श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारी, ऋभु, विभु, अत्यन्त सूक्ष्म और सदाचारी इन नामोंसे आपका ही कीर्तन किया जाता है। आप ही जलनिधि समुद्र, ब्रह्मा, पवित्र धाम तथा धामके ज्ञाता हैं। केशव। विद्वान पुरुष आपको ही हिरण्यगर्भ तथा स्वधा, स्वाहा आदि नामोंसे पुकारते हैं। कृष्ण। आप ही इस जगत्के आदि कारण हैं। आप ही इसकी सृष्टि करते हैं और आपहीमें इसका प्रलय होता है। विश्वयोने। यह सम्पूर्ण विश्व आपके ही अधीन है। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले परमात्मन्। आपको मेरा बारबार प्रणाम है।

युधिष्ठिरने कृष्णकी इसप्रकार स्तुति की तो कृष्णने राजा युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया और धर्मराजने सभी प्रजाजनोंको विदा किया और अपने भाइयोंको भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेवको रात्रि विश्राम करनेके लिये भेज दिया। तत्पश्चात् धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिरने दुर्योधनका महल भीमको अर्पण किया। दु:शासन का महल अर्जुन को दिया। दुर्मर्षणका महल नकुल को तथा दुर्मुख का महल सहदेवको दिया। युयुत्सु, विदुर, संजय, सुधर्मा और धौम्यमुनि अपने-अपने स्थान में चले गये। कृष्ण और सात्यकि अर्जुन के महल में ठहरे।

नारद व्यास आदि मुनियोंने राजा युधिष्ठिरसे कहा- राजन्। आपने अपने बाहुबल और कृष्णकी कृपा से सम्पूर्ण पृथ्वी धर्मपूर्वक जीती है। अब क्षत्रिय धर्मके पालनमें तत्पर रहो। युधिष्ठिर बोले, मुनिवर। आपकी कृपासे, कृष्णकी कृपासे हमलोगोंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय पा ली परन्तु मेरे हृदयमें प्रतिदिन एक महान दुख बना हुआ है। मैंने लोभवश अपने कुलका संहार करा दिया। अभिमन्यु और द्रौपदेयोंको मरवाकर मेरी तो विजय ही पराजय हो गयी। द्रौपदी के सब पुत्र और भाई मारे गये। यह सब देखकर मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। मेरी माता कुन्तीने हमारे ज्येष्ठ भ्राता कर्णका रहस्य छिपाया और हमारे हाथों हमारे सहोदर भाई कर्ण का वध हुआ। अब राज्य करना मेरे लिये मुमकिन नहीं है।

एक बार पुन: धर्मराज युधिष्ठिर ने पाण्डव परिवार के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। याज्ञसेनी हत्प्रभ थी। यह बारम्बार धर्मराज को होता क्या है? भीषण रक्तपात एवं नरसंहार के उपरान्त वे अब सिंहासन पर आरूढ़ होना अस्वीकार कर रहे हैं। पाण्डवश्रेष्ठ महापराक्रमी धनंजय पर ऐसे आक्षेप किये जा रहे हैं जैसे सम्पूर्ण रक्तपात एवं नरसंहार के लिए केवल वे ही उत्तरदायी हों। जैसे धनंजय ने यह सब स्वयं के लिए सिंहासन पाने को किया हो। धनंजय विकल हो नतमस्तक बैठे थे। किन्तु युधिष्ठिर की बात सुनते-सुनते उनकी मांसपेशियाँ खिंचने लगी थीं। मस्तक पर गहन रेखाएँ उभर आयी थीं। भावों में बल पड़ गये थे।

कुन्ती बोली, पुत्र। कर्णके लिये शोक मत करो। चिन्ता छोड़ो और मेरी बात सुनो। मैंने और भगवान सूर्यने कर्णको यह बताने की बहुत कोशिश की कि युधिष्ठिर तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता है। परंतु हमलोग अपने प्रयत्न में असफल रहे। वह मृत्युके वशीभूत होकर प्रतिशोध लेनेको तैयार था। इसलिये वह दैवके अधीन था।

युधिष्ठिर अर्जुन को बोले, अर्जुन। यदि हमलोग वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, यदुवंशी क्षत्रियोंके नगर में रहकर जीवन-निर्वाह कर रहे थे तो आज अपने कुटुम्बका सर्वनाश नहीं देखना पड़ता। हमारे क्षत्रिय के आचार, उसके बल, पौरुष तथा अमर्षको भी धिक्कार है। क्षमा, दम, शौच, वैराग्य, मात्सर्यका अभाव, अहिंसा और सत्य बोलना ये वनवासियोंके धर्म ही श्रेष्ठ हैं। किन्तु हमलोग तो लोभ और मोहके कारण राज्य पानेकी इच्छासे दम्भ और मानका आश्रय ले इस दुर्दशामें फँस गये हैं। इस समय तीनों लोकोंका राज्य भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकता। हमने इस पृथ्वीपर अधिकार पाने के लिये हमारे पक्षके राजाओंकी हत्या करवा दी। हम अपने बन्धु-बान्धवोंके बिना अर्थभ्रष्ट राज्यका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनका शोक हमें चैन नहीं लेने देता। मनुष्यका किया हुआ पाप शुभकर्मोंके आचरणसे, दूसरोंको कहकर सुनानेसे, पश्चात्ताप तथा दान, तप, त्याग, तीर्थयात्रा एवं श्रुति-स्मृतियोंका पाठ करनेसे भी मुश्किलसे नष्ट होता है। श्रुतियोंमें कहा गया है त्यागी पुरुषको जन्म-मरण की प्राप्ति नहीं होती। वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। मैं शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित हो मुनिवृत्तिसे रहकर वनमें जाना चाहता हूँ और वहाँ रहकर ज्ञानोपार्जन करना चाहता हूँ। इसलिये मैंने सारा संग्रह, सम्पूर्ण राज्य तथा सुख-भोग त्यागनेका निश्चय किया है। अब मैं ममतारहित और शोकरहित होकर सब बन्धनोंसे छूटकर वनमें चला जाऊँगा। मुझे राज्य तथा भोगोंसे कोई मतलब नहीं।

युधिष्ठिर निरन्तर अर्जुन की ओर देख उन्हें सम्बोधित कर रहे थे, अर्जुन। हम लोग वृष्णिअन्धक नगरी में भिक्षा माँगकर भी जीवन-यापन कर सकते थे। इस प्रकार कुटुम्बघाती तो न होते। राज्यलोभ एवं मात्र दम्भ के कारण हम अपने समस्त बन्धु-बान्धवों के ही काल नहीं बन बैठे क्या? इसमें किसका लाभ हुआ फाल्गुन? किसकी विजय हुई सव्यसाची? किसका सफल मनोरथ हुआ? वास्तव में यह न हमारी विजय है, न उनकी। हम विजयी होकर भी पराजित से हैं। दुख-क्लेश शोक हमारे मन को मथे डाल रहा है। हम क्या इस धरा का उपभोग कर सकेंगे? न ही कौरवों ने इस धरा का उपभोग किया। वे

न स्त्री-सुख देख पाये न नृत्यगीत-वाद्य आदि का ही आनन्द ले पाये और उन अपने ही कुटुम्बियों का क्रूरता से वध करके क्या हम स्वयं आनन्दित हैं? शास्त्रों के अनुसार राजा अवध्य है और हमने कितने नरेशों का वध कर डाला। यह अपकीर्ति हम कहाँ छिपाते फिरेंगे? हम लोक में निन्दा के पात्र हो गये अपने कर्मों से धनंजय। मैं मूढ़मति, तुम सबके कहने से परिग्रह में फँस गया। किन्तु मैं ऐसे रक्तरंजित राजसिंहासन पर नहीं आरूढ़ हो सकता। मैं सांसारिकता त्याग, दूर कहीं जाऊँगा, कहीं निर्जन वन में। भारत महान्। तुम ही इस राज्य का उपभोग करो निष्कण्टक होकर राज्य के सुख भोगो।

अर्जुन विकट रूप से क्षुब्ध हो उठे। ऐसा आक्षेप। क्या यह राज्य उनको चाहिए था? गोविन्द अन्तर्यामी। मुहूर्त भर के लिए भी तो मन में कभी यह कामना जाग्रत् नहीं हुई। स्वभाव के प्रतिकूल अर्जुन उग्र हो उठे। उनका स्वर ऊंचा था, सतेज था। उनका निर्भीक एवं स्पष्ट वक्तृत्व व्यंग्यपूर्ण एवं ओजयुक्त था।

अहो राजन्। कैसा हतप्रभ कर डाला हम सबको। आपकी विकलता इस चरम सीमा पर पहुँच गयी कि अटूट परिश्रम से उपलब्ध राजलक्ष्मी का परित्याग किये दे रहे हैं। यह कैसा बुद्धिलाघव आपका?

यह तो आपकी कायरता है। जो अलौकिक पराक्रम करके उत्तम राज्य-लक्ष्मीको ठुकरा देनेके लिये उद्यत हुए हैं। यदि त्याग ही देना था तो आपने अन्य राजाओंकी हत्या क्यों करवाई। अपने समृद्धिशाली राज्यका परित्याग करके हाथमें भिक्षापात्र लेकर आप घर-घर में भिक्षा माँगते फिरेंगे उस समय संसार आपको क्या कहेगा। यह मूर्खता नहीं तो क्या है। सर्वस्व त्यागकर अकिञ्चन हो जाना, यह मुनियोंका धर्म नहीं है, राजाओंका धर्म नहीं है, राज्यधर्मका पालन तो धनसे ही होता है। धनसे धर्म भी होता है, लौकिक कामनाएँ भी पूर्ण होती हैं, और स्वर्गका साधनभूत यज्ञ भी सम्पन्न होता है; धन के बिना तो संसारकी जीविका ही नहीं चल सकती। जिसके पास धन होता है, उसीके बहुत-से मित्र तथा बन्धुबान्धव होते हैं, वही मर्द समझे जाने योग्य होता है वही विद्वान माना जाता है। निर्धन मनुष्य धन चाहे तो भी उसे बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। धनवान का धन सदा ही बढ़ते रहता है। धन को धन ही खींच लाता है। धन से धर्मका पालन, कामना की पूर्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, आनन्द तथा शास्त्रोंका अभ्यास यह सब कुछ सम्भव है। धन से वंश की मर्यादा बढ़ती है और धन से धर्म की बढ़ती होती है। निर्धन व्यक्ति को न ही इस लोक में सुख है और न ही परलोक में। क्योंकि धन के बिना मनुष्य धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं कर सकता। जिसके पास धनकी कमी है, उसके पास गौओं और सेवकोंका अभाव होगा उसके यहाँ अतिथियोंका आना-जाना नहीं होता, वही मनुष्य दुर्बल कहा जाता है। केवल शरीरकी दुर्बलतासे कोई दुर्बल नहीं होता। इसलिये राजाको हर तरह से धन संग्रह करना चाहिए यही सनातन कालसे वेदोंकी भी आज्ञा है। धन से ही मनुष्य यज्ञ करते हैं, अध्ययन करते है और सम्पन्न होते हैं। प्रत्येक राजा के पास ऐसा धन है जो दूसरोंके यहाँसे आया है। यह पृथ्वी आज आपके अधीन हुई है। अत: आप भी समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये यज्ञ कीजिये। क्षत्रियोंके लिये यही सनातन मार्ग है, यही अभ्युदयका पथ है और यदि यही करना था तो फिर इन असंख्य महीपालों का क्रोधमूर्च्छित हो-होकर क्यों वध कराया था? स्मरण है महाराज, अंगराज तात कर्ण का वध न करने पर आपने मुझे क्या-क्या उपालम्भ दिये थे? मैं उस पीड़ापूर्ण प्रसंग का उल्लेख नहीं करना चाहता क्योंकि अब हम सबको ज्ञात हो चुका है कि दानवीर कर्ण हमारे ही ज्येष्ठ भ्राता थे। अपना समृद्धिशाली राज्य छोड़कर कापालिक की भाँति द्वार-द्वार भिक्षा माँगना क्या बड़ा सम्मानपूर्ण है? गौरवपूर्ण है? दूसरे के फेंके हुए अन्नपिण्ड पर पाण्डुपुत्र का जीवन निर्वाह होगा। धन्य है महाराज। आलस्य एवं क्लीबता इसी पलायनवाद को कहते हैं। यदि हमें यह पूर्व ही ज्ञात हो जाता तो हम व्यर्थ में किसी का भी वध क्यों करते? किन्तु राजन्। हमारी शिक्षा-दीक्षा क्षत्रिय राजपुत्रों की भाँति हुई है। हमारे पूज्य पिता स्वर्गीय महाराज पाण्डु ने हमें क्षत्रिय की

भाँति जीवन एवं क्षत्रिय की भाँति मरण सिखाया था। हमारी वीर भारती माता की भी हमसे यही अपेक्षा रही कि हम पराक्रम से अपने पूर्वजों का राज्य प्राप्त करें, न कि भिक्षापात्र लेकर द्वारिकापुरी में द्वार-द्वार भटकें।

तब युधिष्ठिर बोले, मैं तो सांसारिक सुखोंका त्याग कर योगियों के मार्गपर चलूँगा और वनमें फल-मूल खाकर कठोर तपस्या करूँगा। प्रात: और शाम को सन्ध्या करूँगा। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी का कष्ट सहन करूँगा और तप करके अपने शरीरको सूखा डालूँगा। प्रिय और अप्रियका विचार छोड़कर वृक्षके नीचे निवास करूँगा। किसीके लिये शोक नहीं करूँगा। न ही हर्ष निन्दा तथा स्तुतिको समान समझूँगा। आशा और ममताको छोड़कर निर्द्वद्व हो जाऊँगा। कभी किसी भी वस्तुका संग्रह नही करूँगा। अपनी ही आत्मामें ही रमण करता हुआ सदा प्रसन्न रहूँगा। किसी देश या विदेश में जानेकी इच्छा नहीं रखूँगा। चित्त में कोई विकार नहीं होगा। घर-घर भिक्षा मांगूंगा। सब ओर से स्नेह का बन्धन तोड़कर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरता रहूँगा। न जीवन से राग होगा और न ही मृत्यु से द्वेष। न किसीका मंगल चाहूँगा और न किसीका अमंगल। इसप्रकार वीतराग होकर इस पृथ्वीपर विचरूंगा जिससे मुझे अक्षय शान्ति मिलेगी। इस अपार संसार में जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि आदि का आक्रमण होता ही रहता है। इसके कारण जीवन कभी स्वस्थ नहीं रहता इसके त्यागने में ही सुख है।

तब तक महाबली भीम उत्तेजित हो असहिष्णु हो उठे। क्रोधपूर्ण स्वर में गरज उठे, भरतश्रेष्ठ। यह हमारा ही दोष रहा जो आप जैसे मन्दबुद्धि व्यक्ति की आज्ञा का पालन अग्रज सोचकर अब तक करते आये। सारा जगत् हमें धिक्कारता रहा, हमें नपुंसक एवं कायर कहता रहा और हम इतने पराक्रमी एवं शूरवीर होकर भी अपने क्लीब एवं कापुरुष अग्रज की प्रत्येक अनुचित, अधर्मपूर्ण आज्ञा का पालन मूढ़ों की भाँति करते रहे। धर्म के आवरण में अपनी दुर्बलता एवं कायरता छिपाकर क्या लाभ? यदि वन में रहने से ही किसी का विकास हो सकता होता तो मृग, वराह एवं पक्षीगण क्यों नहीं देवलोक पा सके? श्रेष्ठ पुरुष कभी वनवास को उत्तम नहीं मानते। इस धरित्री के प्रति जो कर्त्तव्य है, जों दायित्व हैं, उन्हें भलीभाँति पूर्ण करना ही श्रेष्ठ धर्म है। और यह बिना धन-सम्पत्ति के सम्भव नहीं, राजन्। दान-पुण्य, यज्ञ-अनुष्ठान, प्रजापालन आदि श्रेष्ठ कर्म हैं, श्रेष्ठ धर्म हैं। राज्य को मात्र सुखभोग का साधन क्यों मानने लगे धर्मराज? यह तो लोकसुख, लोकउन्नति का साधन मात्र है। यदि सभी क्षत्रिय आप जैसे विचार करने लगें तब तो पृथ्वीपालन ही असम्भव हो जाएगा। तब तो प्रजा असुरक्षित हो जाएगी एवं चारों ओर अराजकता फैल जाएगी। शान्ति-सुख एवं व्यवस्था तो राजदण्ड से ही सम्भव है भारत।

भीम बोले, जब आपने राजधर्म की निन्दा करके आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका निश्चय कर लिया तो हमसे यह महानाश क्यों करवाया? इसप्रकार राजाओंके साथ यह भयंकर संग्राम तो नहीं होता। दुष्ट कौरव भी हमारे लिये राज्यप्राप्ति में बाधक रहे। आप धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका उपभोग करें। अन्यथा हमलोगों का सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा। जैसे कोई मनुष्य मन में किसी तरह की आशा लेकर बहुत बड़ी मंझिल तय कर ले और वहाँ पहुँचनेपर उसे निराश लौटना पड़े यही दशा हमलोगोंकी हो रही है। जो पुत्र-पौत्रोंको पालने में असमर्थ हो, देवता, पित्रोंका तर्पण न कर सके, अतिथियों को भोजन करानेकी शक्ति न रखता हो ऐसा ही मनुष्य जंगलोंमें जाकर मौजसे अकेला जीवन व्यतीत कर सकता है। आप जैसे शक्तिशाली सम्राट का यह काम नहीं है। राजाको तो कर्म करना चाहिए; जो कर्मोंको छोड़ बैठता है, उसे कभी सिद्धि नहीं मिलती। तब अर्जुनने ऋषियोंको सनातन धर्मकी व्याख्या पक्षियोंके द्वारा सुनाया हुआ आख्यान बताया। चौपायोंमें गौ, धातुओंमें सोना, शब्दोंमें प्रणव आदि मन्त्र और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणके लिये जातकर्मादि संस्कार शास्त्रविहित हैं; ब्राह्मण जबतक जीवित रहे, समय-समयपर उसका संस्कार होता रहना चाहिये। मरनेके पश्चात् भी उसका श्मशानभूमिमें अन्त्येष्टि-संस्कार तथा घरपर श्राद्ध आदि वेदविधिके अनुसार होना उचित है। वेदोक्त यज्ञ-यागादि

कर्म ही उसके लिये स्वर्गमें पहुँचानेवाले उत्तम मार्ग हैं। वैदिक कर्म ही सिद्धिका क्षेत्र है, सभी प्राणी इसकी इच्छा रखते हैं। जहाँ इन कर्मोंका विधिवत् सम्पादन होता है, वह गृहस्थ-आश्रम ही सबसे बड़ा आश्रम है। जो कर्मकी निन्दा करते हैं, उन्हें कुमार्गगामी समझना चाहिये। उन्हें बड़ा पाप लगता है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ ये ही तीन सनातन मार्ग हैं। जो मूर्ख इनका परित्याग करके और किसी मार्गसे चलते हैं, वे वेदविरुद्ध पथका आश्रय लेनेवाले हैं। हवनके द्वारा देवताओंको, स्वाध्यायद्वारा ऋषियोंको और श्राद्धद्वारा पितरोंको तृप्त करना- यह सनातन धर्म है; इसका पालन करते हुए गुरुजनोंकी सेवा करना ही कठोर तप है। इस दुष्कर तपस्याको करके ही देवताओंने बहुत बड़ी विभूति पायी है। जिनकी किसीके प्रति ईर्ष्या नहीं हैं, जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित हैं, ऐसे ब्राह्मण इसीको तप मानते हैं। संसारमें व्रतको ही तप कहते हैं, किंतु वह इसकी अपेक्षा मध्यम श्रेणीका है। जो यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करते हैं, उन्हें अविनाशी पदकी प्राप्ति होती है। देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा परिवारके अन्य लोगोंको अन्न देकर जो स्वयं सबसे पीछे खाते हैं, वे ही यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करनेवाले कहे गये हैं। अपने धर्मपर आरूढ़ होकर सुन्दर व्रतका पालन और सत्य-भाषण करते हुए वे इस जगत्के गुरु समझे जाते हैं। अत: आप भी धैर्य धारण करके सम्पूर्ण भूमण्डलका अकण्टक राज्य कीजिये।

नकुलने कहा महाराज देवता भी वैदिक कर्मों और उनके फलों में विश्वास करते हैं। वैदिक कर्मोंका परित्याग करके कोई भी स्वर्गमें नहीं जा सकता। विद्वान कहते हैं- गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। जो धर्मपूर्वक उपार्जन किये हुए धनका यज्ञादि कर्मोंमें उपयोग करता है, वह शुद्धात्मा मनुष्य ही त्यागी है। जो ब्राह्मण क्रोध और हर्ष नहीं करता, किसीकी चुगली नहीं करता, प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करता है तथा कभी अन्न नहीं पकाता वह त्यागी कहलाता है। तीनों दूसरे आश्रम एकतरफ और गृहस्थाश्रम अकेला एक तरफ महत्त्वपूर्ण है। घर छोड़कर जंगल में चले जानेसे कोई त्यागी नहीं होता। शम, दम, धैर्य, क्षेत्र, शौच, सरलता, यज्ञ, धारणा तथा धर्म इन सबका पालन ही ऋषियोंका सनातन धर्म है। पितरों, देवताओं, अतिथियों और सैनिकोंका पोषण तो गृहस्थाश्रम में ही होता है। केवल इसी आश्रम में धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। ऐसे त्यागी का कभी विनाश नहीं होता और वह पारलौकिक उन्नति से कभी वंचित नहीं होता। कुछ ऋषि लोग स्वाध्यायरूप में यज्ञ करते हैं, कुछ ज्ञान यज्ञ में तत्पर रहते हैं और कुछ लोग ध्यान करके महान यज्ञ करते हैं। चित का एकाग्र करनेवाला जो साधना करता है वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। देवता भी उसके दर्शनोंके लिये लालायित होते हैं। जिस राजा पर कुटुम्ब का भार हो उस राजा के लिये गृह-त्यागका विधान नहीं देखनेमें आता। राजा के प्रमाद से चोर, डाकू प्रबल होकर प्रजाको लूटने लगते हैं। ऐसे में कलियुग का प्रवेश होता है। जो दान नहीं देते, शरणागतियोंकी रक्षा नहीं करते वे राजा पाप के भागी होते हैं, उन्हें दु:ख-ही-दु:ख भोगना पड़ता है। सुख तो कभी नसीब नहीं होता। जो शास्त्रीय विधान का पालन करता है उसकी कभी हानि नहीं होती। राजन। आपको स्वधर्ममें स्थित होना चाहिए।

तदनन्तर सहदेव बोले, बाह्य पदार्थोंका त्याग करनेसे सिद्धि नहीं मिलती। बाहरी पदार्थोंका त्याग करके दैहिक सुख-भोगोंमें आसक्त रहनेवालोंको धर्म या सुख प्राप्त होता है वह तो शत्रुओंको प्राप्त होता है। दैहिक स्वार्थ में आनेवाली भोग विलास की वस्तुओंका ममता छोड़कर अनासक्त भाव से पृथ्वीका राज्यशासन करो। यह मेरा है और यह मेरा नहीं है ऐसा भाव अमृत सनातन ब्रह्म है। यदि जीव नित्य है इसका अविनाशी होना निश्चित है, तो प्राणियोंके शरीरका वध करनेमात्रसे वास्तवमें उनकी हिंसा नहीं होगी। शरीरके साथ ही जीवकी उत्पत्ति या उसके नष्ट होनेके साथ ही जीवका भी नाश माना जाय, तब तो सारा वैदिक कर्म ही व्यर्थ हो जायगा। राजन्। वनमें विचरता हुआ वहाँके कन्द-मूल से अपनी जीविका चलाता हुआ जो द्रव्योंमें ममता रखता है, वह मौतके ही मुखमें है। प्राणियोंका बाह्य स्वरूप कुछ और होता है और

आन्तरिक स्वरूप और। जो अपने अन्दर आत्मा को स्थित देखते हैं वह महान भय से छुटकारा पाते हैं।

भारतीय महायुद्धमें सगे-सम्बन्धियों, हित-मित्रोंकी मृत्युसे युधिष्ठिरको बड़ा शोक हुआ। विशेष करके इसलिये कि इस युद्धका निमित्त उन्हींको बनना पड़ा। वे इतने शोकग्रस्त हो गये कि राज्य करनेकी बात तो अलग रही, मृत व्यक्तियोंकी अन्त्येष्टि-क्रियासे भी निरत हो गये। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेवने समझाया कि अब शत्रुओंका नाश हो गया, आप अकण्टक पृथ्वीका राज्य भोगें। परंतु युधिष्ठिरके चित्तमें किसीकी बात नहीं बैठी।

युधिष्ठिर मोहग्रस्त हो सदा की भाँति ऊहापोह में निढाल पड़े थे। सदा की भाँति वनवास की रट लगा रखी थी। सभी भ्राता क्षुब्ध थे, लज्जित थे एवं स्वयं को अपमानित अनुभव कर रहे थे। प्रत्येक अपने-अपने मन में स्मरण कर रहा था कि उसके हाथों किस-किसका वध हो चुका है युद्ध में और वे वध अब जब निष्फल होंगे, निष्प्रयोजन हो जाएँगे तो अवश्य उनका पाप सहना होगा।

तभी चिरपरिचित सुदृढ़ तेजपूर्ण नारी-कण्ठ गूँज उठा। दु:खपीड़ित पांचाली का स्वर आज भी वैसा ही ओजपूर्ण था।

कैसी विचित्र चिन्तनधारा है महाराज आपकी। आपकी धर्म की व्याख्या सदा ही लोक से निराली होती है। सदा ही धर्मज्ञों के विपरीत होती है। इतना बड़ा निर्णय लेते समय आप किसी का परामर्श भी नहीं चाहते। जिन लोगों ने आपके लिए अपना सर्वस्व त्यागा; सुख, वैभव, शान्ति छोड़ी; प्राणों का उत्सर्ग तक कर दिया, उनकी स्मृति भी आपके हृदय को आन्दोलित नहीं करती महाभाग? कभी आपने यह भी सोचा कि आपके इन अनुजों ने सदा ही आपके लिए कितने कष्ट झेले हैं, कितने दु:ख उठाये हैं? इनके परिश्रम, कर्मठता, त्याग एवं अभूतपूर्व बलिदान का यही पुरस्कार दे रहे हैं इन्हें? इनके शौर्य एवं विलक्षण पराक्रम पर पानी फेरकर आपको मोक्ष मिल जाएगा? आपको मुक्ति मिलेगी? कैसा भ्रम है आपका धर्मराज। कैसी भीषण भ्रान्ति।

कितनी बार इन तेजस्वी पाण्डुनन्दनों के हृदय में आपके विरुद्ध, आपकी दुर्बल नीतियों के विरुद्ध, विद्रोह प्रस्फुटित हुआ है किन्तु सदा ये लोग उस विद्रोह की अग्नि को आत्मसात् कर गये यही सोचकर कि आप ज्येष्ठ भ्राता हैं, पितृतुल्य हैं। ये सभी खुलकर आपका विरोध नहीं कर पाये- अपनी सज्जनता के कारण, अपनी अतिशय धर्मोन्मुखता के कारण, तो उसी का पुरस्कार आज आप इतनी उदारता से दे रहे हैं?

यदि राज्यारूढ़ न होना था तो इतना रक्तपात क्यों कराया धर्मराज? हमारे उन प्रचण्ड वीर आठों किशोर-पुत्रों का रक्त क्या ऐसा ही मूल्यहीन था जो उसे व्यर्थ में भूमि पर फैलाकर अब सूख जाने देंगे? उनका प्राणोत्सर्ग निष्प्रयोजन हुआ। उन्हें हमने सदा-सदा के लिए खो दिया इसीलिए कि अब हम सब वनवासी जीवन व्यतीत करेंगे? मेरे वृद्ध पिता परमपराक्रमी पांचालनरेश द्रुपदराज क्या स्वयं अपने राज्यविस्तार के लिए लड़े थे? धृष्टद्युम्न एवं शिखण्डी तथा उनके किशोर पुत्र किसके लिए लड़े थे युद्ध में? क्यों प्राणों की आहुति दे डाली? आपके लिए। धर्मराज, आपके लिए। सम्पूर्ण युद्ध आपका नाम लेकर, आपके नाम के लिए हुआ है। अब जब दायित्व निभाने का समय आया तो कायर की भाँति पलायन करके भागना चाहते हैं?

मेरा सुन्दर पंचमुखी प्रदीप बुझाकर आप कैसी सरलता से कह रहे हैं कि अब जो हुआ, मैं वन को चला। सुभद्रा से पूछिए, जिसका एकमात्र पुत्र ऐसी शौर्यगाथा लिख गया है कुरूक्षेत्र में, जो सहस्त्रों वर्ष पर्यन्त भी मिटेगी नहीं। इस सुभद्रा के अश्रु सूखते नहीं धर्मराज। इसका आँचल सूखता नहीं। और आप ऐसे मोहग्रस्त हो गये हैं कि उस बालवधू उत्तरा का कातर विलाप भी आपके कोमल हृदय को आन्दोलित नहीं कर पाता। भाग्यहीना हमारी पुत्रवधू। उसी से क्या शत्रुता थी आपको जो विवाह के छह माह में ही उसे सौभाग्य-वंचित कराया और अब कहते हैं कि वनवास सर्वोत्तम है। वनवास में

आपको सभी समस्याओं का निदान दिखता है? सभी व्याधियों का उपचार, ताकि हाथ हिलाकर तनिक भी परिश्रम न करना पड़े? ताकि कर्म न करना पड़े और आलस में वृक्ष-छाँह में पड़े-पड़े जीवन व्यतीत हो जाये? ताकि परिवार के भरण-पोषण एवं भविष्य की चिन्ता न करनी पड़े? धन्य है आपकी चिन्तनधारा। कोई क्षत्रिय इस धरा पर कभी ऐसा न हुआ, न होगा।

भरतश्रेष्ठ। कैसे निर्ममहृदय हो गये हैं आज आप? आपकी तो दया एवं ममता की गाथाएँ प्रचलित हैं। अपने दुष्ट कौरव भाइयों के प्रति तो आपका हृदय क्रन्दन कर रहा है और अपने अनुज इन पराक्रमी धनंजय के युद्धक्लान्त तन पर दृष्टि भी न डाली कि कितने संग्रामचिन्ह हैं इस पर? पूरे तन पर कोई भी आघातविहीन स्थल तो दिखाइए। इतना कष्ट सहने की इन्हें क्या आवश्यकता थी? ये तो आपको छोड़कर मणिपुर में सुख से अपनी पत्नी चित्रांगदा व पुत्र राजा बभ्रुवाहन के पास जीवन काट सकते थे। इन्हें युद्ध की क्या आवश्यकता थी। स्वयं के लिए? क्या ये स्वयं सिंहासन पाना चाहते थे? और इन्हें देखिए, आर्यपुत्र भीमको, जो एकचित्त होकर आपके लिए संघर्षरत रहे और जिन्होंने अधर्मी दु:शासन दुर्योधन के भार से पृथ्वी को मुक्ति दिलायी। कितनी बार ये आपकी अनुचित नीतियों के कारण क्षुब्ध होकर एकान्त में रोये हैं। किन्तु आपकी अवज्ञा न की कभी। सतत आपकी सेवा में लगे रहे। आर्य नकुल और आर्य सहदेव सदा के सुकुमार राजपुत्र तो भी आपके लिए प्राण करतलों पर रख करके लड़े हैं इन सबके कष्ट-दु:ख नहीं देखते? केवल अपना ही दु:ख आपको महान् लग रहा है? अपनी ही पीड़ा से व्यथित हैं?

हम सब अपने हृदय पर पाषाण नहीं रखे हैं क्या? हम सब बड़े प्रसन्न हैं क्या? मैं ही इतनी अधम हूँ क्या, जो पुत्रहीना होने पर भी जीवन की अभिलाषा धारण किये हूँ? हमें आप हेय दिखाना चाहते हैं? राजन्। हम सब दु:खी हैं। किन्तु हमारा कर्त्तव्य हमें पुकार रहा है। धर्म पुकार रहा है। धर्म एवं कर्त्तव्य के लिए पीड़ा दमन करके भी पुन: खड़ा होना पड़ेगा। आपका कर्त्तव्य प्रजापालन है, और कुछ नहीं। यह एक पुण्य कार्य है। इस दायित्व से मुख मोड़कर अपयश के भागी न बनें धर्मराज। प्रजा क्या कहेगी? जिन कुलों के कुलदीपक बुझ गये आपके लिए इस युद्ध में, वे भग्न-हृदय आपको शाप देंगे। धर्म का आचरण करके प्रजा का पालन कीजिए। प्रजा के दु:ख दारिद्र्य को दूर करिए। पुण्य अर्जित करिए, महाराज। यह मानव-जीवन देव-दुर्लभ है, इसे वन में वृक्ष की भाँति व्यर्थ सुखाकर नष्ट न करिए। इस मानव-देह से जितनी लोकसेवा हो सके, करिए। नहीं तो जितने लोग अभी दु:खी हैं, उनसे कहीं सहस्त्रगुणा अधिक तब दु:खी होंगें। प्रजा की असुरक्षा के दोषी होंगे। आततातियों द्वारा निर्दोषों की हत्या के दोषी होंगे। पृथ्वी पर पापाचार-अनाचार एवं दुराचार की वृद्धि के दोषी होंगे। आप पितरों द्वारा निन्दित होंगे। लोक द्वारा निन्दित होंगे एवं भावी वंशजों द्वारा निन्दित होंगे। राज करिए धर्मराज। अराज नहीं। धर्म करिए महाराज। अधर्म नहीं। कर्म मुक्ति देगा, भ्रम नहीं।

कुल-कामिनियोंमें श्रेष्ठ धर्मदर्शिनी द्रौपदी धर्मराजके पास जाकर बड़े मीठे स्वरसे समझाने लगी- स्वामिन्। तुम्हारे भाई बड़े शोकग्रस्त हो रहे हैं, इन लोगोंने तुम्हारे साथ कितना कष्ट उठाया है। सर्दी, हवा और अनेकों प्रकारके दु:ख सहते समय आप इनसे कहा करते थे कि हम युद्धमें शत्रुओंको जीतकर सारी पृथ्वीका शासन करेंगे। आपके सारे शत्रु मारे गये और अब जब राज्य करनेका समय आया, तब आप इस प्रकार उदास हो गये हैं। क्या इन वीरोंके जीवनमें दु:ख-ही-दु:ख बदा है? क्या हम अपने जीवनमें सुखका दिन कभी नहीं देखेंगे? यह पृथ्वी वीरोंकी भोग्या कही गयी है। दण्डहीन राजा पृथ्वीका उपभोग नहीं कर सकता। उसकी प्रजा भी सुखसे नहीं रह सकती, इसलिये क्षत्रिय-धर्म और प्रतापका आश्रय लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना और पृथ्वीका उपभोग करना तो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आपमें क्षमाके साथ क्रोध, दानके साथ ग्रहण, भयके साथ अभय और निग्रहके साथ अनुग्रह विद्यमान है। यह राज्य आपको विद्या, दान, संधि, याचना

और यज्ञसे नहीं प्राप्त हुआ है। बड़े-बड़े वीरोंको मारकर यह राज्य मिलता है, इसपर शासन करना ही आपका कर्त्तव्य है। आपने बहुत समयतक पृथ्वीका शासन किया है। सारी प्रजा आपको राजाके रूपमें देखनेके लिये लालायित है। मेरी सास कुन्तीने मुझसे कहा था कि विजय प्राप्त होनेके बाद तुम्हारी ये सब विपत्तियाँ दूर हो जायँगी और तुम बड़े सुखसे रहोगी। सो आप मेरी चिरसंचित आशापर पाला डाल रहे हैं; आप अपने भाइयोंकी बात मानिये, मेरा आग्रह अस्वीकार मत कीजिये। आप मान्धाता और अम्बरीषकी भाँति निखिल भूमण्डलके शासक होकर शोकको छोड़कर धर्मके अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन, प्रजाका पालन, शत्रुओंपर विजय और नाना प्रकारके यज्ञ करके ब्राह्मणोंको भोजन-वस्त्र आदिका दान कीजिये। मेरे स्वामी। हमलोगोंको निराश मत कीजिये।

देवर्षि नारदने समझाया, अर्जुनने अग्रजके सब कुछ त्यागकर वनमें जानेका विरोध किया। भीम बड़े भाईके वनवासी, मुनि अथवा संन्यासी होनेके कट्टर विरोधी थे। नकुल, सहदेव तथा द्रौपदीने भी समझाया। अर्जुन तथा भीमने दण्डनीतिका समर्थन किया; किंतु युधिष्ठिर बड़े थे। उन्होंने भीमकी भर्त्सना की। उन्हें फटकार दिया। अर्जुनका समझाना भी प्रभावहीन रहा। भगवान व्यासके उपदेश करनेपर भी जिनका हृदय शान्त नहीं हो रहा था, वे अर्जुनकी बात सुनकर कैसे शान्त हो जाते।

द्रौपदीके समझानेके बाद अर्जुन, व्यास, श्रीकृष्ण आदिने समझाया, जिससे युधिष्ठिरका शोक कम हुआ और उन्होंने युद्धमें मृत व्यक्तियोंका अन्त्येष्टि संस्कार किया। उनका राजसिंहासनपर अभिषेक हुआ और वे धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करने लगे। कृषकाय, दु:खमलिना पांचाली क्लान्त हो चली युधिष्ठिर को समझाते। निरुपाय एवं अशक्त हो उसने अपने हाथों में शीश थाम लिया। कहाँ गये गोविन्द मधुसूदन। यह क्या घटा जा रहा है यहाँ। सँभालो अपनी लीला।

द्रौपदी बोली, आपके भाई सदा आपके लिये दु:ख ही दु:ख उठाते आये हैं। जब आप द्वैतवनमें थे जब सब भाई आपके साथ सर्दी-गर्मी और आंधी-पानीका कष्ट भोग रहे थे तब आपने उनसे कहा था हमलोग युद्धमें दुर्योधन को मारकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगेंगे। धर्मराज आपको यही करना था तो उस समय ऐसी बातें क्यों कहीं। अब क्यों हमलोगोंका हृदय तोड़ रहे हो। अब आपको दण्ड धारण करके पृथ्वीका पालन करना चाहिए। राजाओंका परम धर्म तो यही है कि वे दुष्टोंको दण्ड दें, सत्पुरुषोंका पालन करें और युद्धमें कभी पीठ न दिखायें।

जो अवसर देखकर क्षमा भी करता है और क्रोध भी, दान देता और कर लेता है, शत्रुओंका भय दिखाता और शरणागतोंको निर्भय बनाता है तथा दुष्टोंको दण्ड देता और दीनोंपर अनुग्रह करता है, वह राजा धर्मात्मा कहलाता है। आपको यह पृथ्वी न तो शास्त्र सुनानेसे मिली है, न दानमें; न आपने किसीको समझा-बुझाकर इसे हड़प लिया है; न यज्ञमें प्राप्त किया है और न भीख माँगकर ही पाया है। आपने तो शत्रुओंकी प्रबल सेनाका संहार करके इसपर विजय पायी है, इसलिये आप इस पृथ्वीका उपभोग कीजिये महाराज। अनेकों देशोंसे युक्त सम्पूर्ण जम्बूद्वीपपर आपने कर लगाया; जम्बूद्वीपके समान ही जो मेरुगिरिके पश्चिम क्रौञ्चद्वीपके समान ही जो शाकद्वीप है, उसपर भी कर लगाया तथा मेरुसे उत्तर और जो शाकद्वीपके बराबर ही भद्राश्वद्वीप है, उसके ऊपर भी शासन किया है। इनके अतिरिक्त भी जो बहुत-से देशोंके आश्रयभूत द्वीप और अन्तर्द्वीप हैं, समुद्र लाँघकर उनपर भी आपने अधिकार प्राप्त किया। भाइयोंकी सहायतासे ऐसे अनुपम पराक्रम करके द्विजातियोंद्वारा सम्मानित होकर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते? मेरे अनुरोधसे अपने इन भाइयोंका अभिनन्दन कीजिये।

महाराज। मेरी सास कुन्ती कभी झूठ नहीं बोलीं, वे सर्वज्ञ हैं और सब कुछ उनकी दृष्टिके सामने है। उन्होंने मुझसे कहा था पाञ्चालराजकुमारी। राजा युधिष्ठिर बड़े पराक्रमी हैं, ये हजारों राजाओंका संहार करके तुम्हें बड़े सुखसे रक्खेंगे। किंतु आज आपका मोह देखकर उनकी बात भी व्यर्थ होती दिखायी देती है। जब ज्येष्ठ भाई उन्मत्त हो जाता है, तो छोटे भी

उसीका अनुसरण करने लगते हैं। आपके उन्मादसे सब पाण्डव भी उन्मत्त हो गये हैं। जो उन्मत्तताका काम करता है, उसका कभी भला नहीं होता; उन्मार्गसे चलनेवालेकी तो दवा करानी चाहिये। मैं ही संसारकी समस्त स्त्रियोंमें नीच हूँ, जो पुत्रोंके मारे जानेपर भी जीवित रहना चाहती हूँ। ये सब लोग समझानेका प्रयत्न कर रहे हैं, फिर भी आप मानते नहीं। आप सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य छोड़कर अपने लिये स्वयं विपत्ति बुला रहे हैं। राजन्। आप मान्धाता और अम्बरीषके समान तेजस्वी हैं; सम्पूर्ण प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते हुए पर्वत, वन तथा द्वीपोंसहित इस पृथ्वीका शासन कीजिये। उदास न होइये। नाना प्रकारके यज्ञ करके ब्राह्मणोंको दान दीजिये।

तब अर्जुन बोले, राजन्। दण्ड ही समस्त प्रजाओंका शासन और उनकी रक्षा करता है, सबके सो जानेपर भी दण्ड जागता रहता है; इसलिये विद्वानोंने दण्डको राजाका धर्म बताया है। दण्डसे ही धर्म, अर्थ और कामकी रक्षा होती है। दण्ड ही धन और धान्यकी रखवाली करता है। कितने ही पापी दण्डके भयसे पाप नहीं करते। दण्डसे ही सारी व्यवस्था ठीक-ठीक चलती है। यदि दण्डसे रक्षा नहीं हो तो संसार के प्राणी घोर अन्ध:कार में डूब जायेंगे। यह उच्छृंखल मनुष्य का दमन और दुष्टोंको दण्ड देता है। इसलिये आप दण्ड धारण करें। ब्राह्मण अपराध करे तो वाणीसे अपमान करना उसका दण्ड है। क्षत्रियको भोजनमात्रके लिये वेतन देना और उसकी सेवा करना उसका दण्ड है, वैश्यके ऊपर जुर्माना वसूल करना उसका दंड है, शूद्रोंसे सेवा लेना उसका दण्ड है। मनुष्योंको प्रमादसे बचाने और धर्मकी रक्षा करनेके लिये जो एक मर्यादा रखी गयी है उसीका नाम दण्ड है।

रुद्र, कार्तिकेय , इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, वायु, मृत्यु, कुबेर, रवि, वसु, साध्य तथा विश्वेदेव ये सभी देवता दण्ड देनेवाले हैं। संसार में ऐसा कोई नहीं जो अहिंसासे जीविका चलाता हो। जो विधाता का विधान है उसमें ज्ञानी पुरुष को मोह नहीं होता। जिस जातिमें आपका जन्म हुआ है, उसीके अनुसार आपको अपने धर्मका पालन करना चाहिए। जबसे जगत में दण्डनीतिका प्रचार शुरू हुआ है तबसे सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कार्य सुचारू रूपसे होने लगे हैं। संसारमें भले-बुरेका विभाग करनेवाला दण्ड यदि न हो तो सब जगह अन्धेरा होगा। जो धर्मकी मर्यादा नष्ट करके वेदोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक मनुष्य हैं, वो ही दण्डसे सीधे रास्तेपर आ जाते हैं। इस जगत में सर्वथा शुद्ध मनुष्य मिलना कठिन है। दण्डके भयसे ही लोगोंकी मर्यादा पालन में प्रवृत्ति होती है। यदि दण्डका विधान ना होता तो चारों ओर धर्म-कर्मोंका लोप हो जाता और सारी मर्यादायें टूट जाती हैं। आश्रम-धर्मका ठीक-ठीक पालन नहीं होता और कोई विद्या अध्ययन नहीं कर पाता। यदि डण्डे पड़ने का डर ना हो तो रथ में जुते हुए ऊँट, बैल, घोड़े, खच्चर तथा गधे उन्हें खींचते नहीं। सेवक अपने स्वामी का, बालक अपने माता-पिता का कहना नहीं मानते और स्त्री अपने सतीधर्मपर स्थिर नहीं रहती। दण्डके भयसे ही सारी प्रजा सुव्यवस्थित है। इससे छल, पाप और ठगी देखनेमें नहीं आती। इससे मनुष्य के सब कार्य दण्डके अधीन है। लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये धर्मका प्रतिपालन किया गया है। प्रत्येक कार्य में अच्छाई और बुराई दोनों देखनेमें आती है। इसलिये विचार करके आप भी अपने धर्मका पालन कीजिये, यज्ञ कीजिये, दान दीजिये तथा प्रजा एवं अपने सम्बन्धियोंकी रक्षा करें। तत्पश्चात् भीम बोले आप तो सब धर्मोंके ज्ञाता है। आपका अत्यन्त मोह देखकर हमलोग व्याकुल और निर्बल हो रहे हैं। आप संसारकी गति और अगति दोनोंको जानते हैं। भविष्य और वर्तमान का भी आपसे कुछ छिपा नहीं है। मनुष्य को दो प्रकारकी व्याधियाँ होती है एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। एकके बिना दूसरीका होना सम्भव नहीं है। जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक अथवा मानसिक दु:खके लिये शोक करता है, वह एक दु:खसे दूसरे दु:खको प्राप्त होता रहता है। उसे दोनों प्रकारके अनर्थोंसे कभी छुटकारा नहीं मिलता। मनको जीते बिना आपकी क्या दशा होगी, मन पर विजय पाइये आप अवश्य कृतार्थ होंगे और अपनी बुद्धि को स्थिर कीजिये और अपने पैतृव्य आज्ञाका पालन कीजिये।

भीम की बात सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले, भीम। असन्तोष, प्रमाद, मद, राग, अशान्ति, बल, मोह, अभिमान तथा उद्वेग- इन प्रबल पापोंने तुम्हारे मनको वशीभूत कर लिया है। तुमको राज्यकी इच्छा हो रही है। भोगोंकी आसक्ति छोड़ो और बन्धनमुक्त होकर शान्त एवं सुखी हो जाओ। आग कितनी ही धधकती क्यों न हो; अगर उसमें ईंधन न डाला जाय तो शान्त हो जायेगी। जो भोगोंसे रहित और तुम्हारी अपेक्षा बहुत दुर्बल हैं, वे ऋषि-मुनि ही सर्वोत्तम पदको प्राप्त करते हैं। एक ओर सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करनेवाला राजा हैं और दूसरी ओर पत्थर और सोनेको एक समझनेवाला मुनि । इन दोनोंमें मुनि ही श्रेष्ठ है राजा नहीं। आशा तथा ममता न रक्खो। जिन्होंने भोगोंकी आसक्ति छोड़ दी है, वे कभी शोक नहीं करते। सम्पूर्ण भोगोंका परित्याग कर दो तो मिथ्यावादसे छूट जाओगे। महर्षिगण, तप, ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्यायके बल पर ऐसे राज्यमें पहुँच जाते हैं जहाँ मृत्युका प्रवेश नहीं। राजा जनक भी समस्त द्वन्द्वोंसे रहित होकर जीवनमुक्त पुरुष हुए हैं, उन्होंने आत्माका साक्षात्कार किया। बुद्धिमान और तपस्वी ही उस उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो जड और अज्ञानी हैं, जिनमें शुद्ध बुद्धि तथा तपका अभाव है, ऐसे लोगोंकी वहाँ पहुँच नहीं है। तब अर्जुनने राजा जनक और उनकी राणी सुनैना का सम्वाद उन्हें सुनाया और बोले, एक दिन राजा जनक का मन विचलित हुआ। वे धन, सन्तान, स्त्री, नाना प्रकारके रत्न तथा अग्निहोत्रका त्याग करके भिक्षा पर निर्वाह करने लगे। तब रानी सुनैना बोली राजन्। आपको भिक्षुकका अन्न नहीं खाना चाहिए। यह महान् राज्य छोड़कर थोड़ेसे अन्नमें संतोष कर रहे हो। तो इतने से अन्न में, अतिथि, देवता, ऋषि और पितरोंका भरण-पोषण कैसे किया जा सकता है? आपका यह सारा परिश्रम व्यर्थ है। आपने कर्मोंका त्याग कर दिया है। इसलिये देवता, अतिथि, पितरोंने भी आपका परित्याग कर दिया है। आप वस्त्राभूषण छोड़कर किसलिये सन्यासी हो रहे हैं? क्यों अपना निष्क्रिय जीवन व्यतीत कर रहे है? सब कुछ छोड़कर फिर आप मुठ्ठीभर जौ के लिये क्यों हाथ फैला रहे हैं? ऐसे त्याग और राज्य में क्या अन्तर है। जब आपको जौकी आवश्यकता बनी ही रह गयी तो सर्वत्यागकी क्या आवश्यकता है। मेरी समझमें आप इस पृथ्वीका पालन कीजिये। राजमहल, शय्यासवारी, वस्त्राभूषण उपयोग में ले। यदि दान करनेवाला राजा ही नहीं रहे तो मोक्ष चाहनेवाले महात्माओंका जीवन-निर्वाह कैसे होगा? अन्न से प्राणोंकी पुष्टि होती है, अन्नदान करनेवाला प्राण दाता होता है। गृहस्थाश्रम से अलग होकर त्यागी लोग भी गृहस्थोंके सहारे जीवन यापन करते है। आप साधु-महात्माओंका पालन-पोषण करते हुए इन्द्रियोंको जीतकर पुण्य लोकपर अधिकार प्राप्त करें। इसतरह रानीके समझानेपर राजा जनक ने सन्यास जानेका विचार छोड़ दिया। राजा जनक संसार में तत्त्ववेत्ता के रूप में जाने जाते हैं किन्तु उन्हें भी मोह हो गया। इसलिये उनकी भाँति आप भी मोहमें न पड़े।

राजा युधिष्ठिर बोले, तुम तो केवल शास्त्रविद्या के जानकार हो और वीरोंका धर्मपालन करते हो। शास्त्र के यथार्थ मर्मको तुम नहीं जानते। जो लोग शास्त्रके सूक्ष्म रहस्य को जानते हैं वो धर्मका निश्चय करनेमें कुशल हैं वह ऐसे उपदेश नहीं देंगे। फिर भी तुमने स्नेहवश जो कुछ कहा है वह न्यायसंगत और उचित ही है। इससे मुझे अति प्रसन्नता हुई। तुम तो ऐसा समझते हो कि धनसे बढ़कर कोई चीज ही नहीं है। वास्तव में धनका कोई महत्त्व नहीं है। योग ही सब साधनोंमें प्रधान माना गया है पर उसका स्वरूप जानना बहुत कठिन है। विद्वानलोग सारासार वस्तुका विवेक करनेकी इच्छासे निरन्तर शास्त्रका अध्ययन करते हैं। यह आत्मतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है, जो नेत्रोंसे दिखाई नहीं देता और वाणीसे कहा नहीं जा सकता। तत्त्वज्ञलोग तो तप, ज्ञान और त्यागसे उस नित्य महान् सुखको प्राप्त कर लेते हैं।

युधिष्ठिर की बात सुनकर वहाँपर एक देवस्थान नामक तपस्वी बैठे थे उन्होंने कहा, हे अजातशत्रु। आपने धर्मानुसार यह सारी पृथ्वी जीत ली है। ये चारों आश्रम ब्रह्मको प्राप्त करने की चार सीढ़ियाँ हैं जिनका वेदमें प्रतिपादन किया गया है।

आप अभी बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करें। स्वाध्याय यज्ञ तो ऋषि लोग करते हैं और कोई-कोई तो ज्ञानयज्ञ भी करते हैं। ब्रह्माने यज्ञके लिये ही धनकी आवश्यकता बतायी है। इससे शीघ्र ही कामना की सिद्धि होती है। राजन्। राजा मरुत्तने बड़ी धूम-धामसे इन्द्रका यजन किया। उनके यज्ञ में लक्ष्मीदेवी स्वयं पधारी और उनके यज्ञपात्र सुवर्णके थे। राजा हरिश्चन्द्रनेभी बड़ा धन खर्च करके इन्द्रका यज्ञ किया। मनुष्यके मनमें संतोष होना स्वर्गसे भी बढ़कर है। सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोषसे बढ़कर संसारमें कोई बात नहीं है। जब मनुष्य किसीसे भय नहीं मानता तो उससे भी किसीको कोई डर नहीं रहता। वह काम और द्वेषको जीत लेता है तथा आत्माका साक्षात्कार कर लेता है।

कोई-कोई लोग तो शान्ति की प्रशंसा करते हैं, तो कोई पुरुषार्थ के गुण गाते हैं। कोई राज्य पाकर प्रजाका पालन करते रहना ही अच्छा समझते हैं। इन सब बातोंपर विचार करते बुद्धिमानोंने यही निश्चय किया कि किसीसे द्रोह मत करो, सत्य भाषण करो। दान दो, सबपर दया-दृष्टि रखो, इन्द्रियोंका दमन करो, अपनी ही स्त्रीसे पुत्रोत्पत्ति करो तथा मृदुता, लज्जा और अचञ्चलता यही प्रधान धर्म है ऐसा ही स्वायम्भुव मनुने भी कहा है। प्रिय और अप्रिय में समान रहे, यज्ञानुष्ठानसे जो बचे उसी अन्नका सेवन करे, शास्त्रके रहस्यको जानें, दुष्टोंका दमन करें, साधुओंकी रक्षा करें, प्रजाके साथ धर्मानुसार व्यवहार करें, अन्त में पुत्रको राजगद्दी सौंपकर वानप्रस्थ आश्रम में चले जाये। जो राजा इसप्रकार का बर्ताव करता है वहीं धर्मको जाननेवाला है और सदा प्रजा पालन में तत्पर रहता है। इसतरह का व्यवहार करनेवाले अनेकों राजा उत्तमगतिको प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और अनेकों राजर्षियोंने इसी धर्मका आश्रय लिया और अपने पवित्र कर्मोंद्वारा स्वर्ग प्राप्त किया। राजन्। इस प्रकार देवमुनि का वक्तव्य बताया। अर्जुन बोले, महाराज फिर यह सब जानकर इतने दु:खी क्यों हैं। आप क्षात्रधर्मका विचार करें। क्षत्रियके लिये तो धर्मयुद्धमें मर जाना भी अनेक यज्ञोंसे बढ़कर है। तप और त्याग तो ब्राह्मणोंका धर्म है। दूसरे के धन से अपनी जीविका चलाना यह क्षत्रियका धर्म नहीं है। आप तो सब धर्मोंको जाननेवाले धर्मात्मा है, बुद्धिमान है, कर्मकुशल हैं। आप अपने इच्छासे धर्मके अनुसार निष्कंटक राज्य करें। अत: जो कुछ हो चुका है उसके लिये आप शोक न करें। मारे गये हुए सभी वीर क्षात्र-धर्मके अनुसार वीरगति को प्राप्त होकर परमगतिको प्राप्त हुए हैं।

इतनेमें वहाँपर मुनि व्यास आये और बोले, राजन्। गृहस्थधर्म बहुत उत्तम है। तुम अपने स्वधर्मका ही आचरण करो तुम्हारे लिये घर छोड़कर वनमें जाने का विधान नहीं है। पशु-पक्षी और समस्त प्राणियोंका निर्वाह भी गृहस्थ के कारण ही होता है। तुम्हें वेदका पूरा ज्ञान है और तुमने तपस्या भी बड़ी की है इसलिये अपने पैतृक राज्यका भार उठाओ। क्षत्रियोंके धर्मको तुम जानते हो- यज्ञ, विद्याभ्यास, शत्रुओंपर चढ़ाई करना, राजलक्ष्मीकी प्राप्ति से कभी सन्तुष्ट न होना, दण्ड धारण करना, सब पर अपना दबदबाव बनाये रखना, प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करना, समस्त वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना, तप, सदाचार, द्रव्योपार्जन और सुपात्रको दान देना वे ही सब क्षत्रियोंके कर्म समस्त लोकोंकी प्राप्ति कराते हैं। राजन्। दण्डधारण करो। तुम नहुषपुत्र ययातिके समान पृथ्वीका पालन करो। अपने भाइयोंसहित धर्म, अर्थ और काम का सेवन करो। तत्पश्चात् वनमें चले जाना। पहले अतिथियों, पितरों और देवताओंके ऋणसे अपने आपको मुक्त करो। अभी तो सर्वमेध, अश्वमेघ यज्ञोंका रक्षण करो। जो राजा करका छठा भाग लेकर भी राष्ट्रकी रक्षा नहीं करता वह अपनी प्रजाके चतुर्थांश पापका भागी बनता है। यदि राजा धर्मशास्त्रकी आज्ञा का उल्लंघन करता है तो पतित हो जाता है और यदि उसका अनुसरण करे तो निर्भय रहता है। शास्त्रोक्त बुद्धिका आश्रय लेनेपर उसे किसी प्रकार का कष्ट प्राप्त नहीं होता। शत्रुओंका अपने तेज और बुद्धिके बलसे विनाश करना चाहिये। पापियोंके साथ कभी मेल नहीं करना चाहिए। अपने राज्यमें पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान कराना चाहिए। सत्कर्म करनेवाले विद्वान, वेदपाठी ब्राह्मण और धनवानोंकी विशेष रक्षा

करनी चाहिये। एक व्यक्तिमें चाहे वह कैसा ही गुणवान हो, कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता विनयहीन है, मानी है, मान्य पुरुषोंका सत्कार नहीं करता और गुणोंमें भी दोषदृष्टि करता है, वह पापी और क्रूर है। कई बार प्रजा भी राजाकी ओरसे सुरक्षित न होनेके कारण अनावृष्टि आदि दैवी आपत्तियोंसे नष्ट हो जाते हैं तथा चोरोंके उपद्रवादिसे दु:ख पाते है, उसमें राजा का ही दोष होता है।

युधिष्ठिर बोले, ऋषिवर। इस पृथ्वीका राज्य के भोगोंसे मेरे मनको प्रसन्नता नहीं है और मुझे शोक खाये जा रहा है। तब महर्षि व्यास बोले, जो लोग मारे गये हैं वे तो अब किसीभी प्रकार किसी कर्म या यज्ञादि से या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो उन्हें वापिस लाकर दे सके। बुद्धि या शास्त्र अध्ययन के द्वारा असमय ही किसी विशेष वस्तुको पा लेना मनुष्यके वशकी बात नहीं है। कभी-कभी तो मूर्ख मनुष्यको भी उत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। वास्तव में कार्य की सिद्धि में काल ही प्रधान है। शिल्प, मन्त्र और औषधियां भी दुर्भाग्य के समय अपना फल नहीं देती है। समय की अनुकूलता होनेपर ही सौभाग्यका उदय होता है और सफलता वृद्धिकी निमित्त बन जाती है। समय आनेपर ही मेघ जल बरसाते हैं, बिना समयके वृक्षोंमें भी फल-फूल नहीं आते। इसलिये जबतक अनुकूल समय नहीं आता तबतक पक्षी सब मृग हाथी और हरिणोंमें स्त्रियाँभी गर्भ धारण नहीं करती। जाड़ा, गर्मी और वर्षा ऋतुएं समय आनेपर ही होती है। किसीका जन्म-मरण समय पर ही होता है। समय पर ही बालक बोलना आरम्भ करता है। समयपर ही मनुष्य को यौवन आता है। और बोया हुआ बीज अंकुरित होता है। सूर्योदय और सूर्यास्त, चन्द्रमाके वृद्धि और ऱ्हास, समुद्रका उतार और चढ़ाव भी बिना उचित समय नहीं होता। यह दु:सह कालचक्र सभी मनुष्योंपर अपना प्रभाव डालता है। पृथ्वीके सभी पदार्थ समय आनेपर जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं। धन, स्त्री, पुत्र तथा पिताके नष्ट हो जानेपर पुरुष हाय। कैसा शोक है, कैसा दु:ख है ऐसा सोचकर उस दु:खकी निवृत्तिका उपाय करता है। तुम मूर्ख बनकर किसलिये शोक कर रहे हो? जो शोकरूप थे उनके लिये शोक क्या करना। तुम्हारे दु:ख मानने से तो दु:खोंकी और भय माननेसे भयोंकी वृद्धि ही होगी। न तो यह शरीर मेरा है न सारी पृथ्वी मेरी है। यह जैसी मेरी है वैसी ही सबकी है ऐसी दृष्टि रखनेवाला जीव कभी मोहमें नहीं फँसता। शोकके हजारों स्थान हैं और हर्षके भी सैकड़ों अवसर हैं। किंतु उनका प्रभाव मूर्खोंपर ही पड़ता है विद्वानोंपर नहीं। संसारमें तो केवल दु:ख ही दु:ख है, सुख तो है ही नहीं। इसलिये लोगोंको दु:खही उपलब्ध होता है। यहाँ सुखके पीछे दु:ख और दु:खके पीछे सुख लगा रहता है। सुखका अन्त तो दु:खमें ही होता है। कभी-कभी दु:खसे सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये जिसे नित्यसुखकी इच्छा हो वह सुख-दु:ख दोनोंका ही त्याग कर दे। सुख या दु:ख अथवा प्रिय या अप्रिय जो कुछ प्राप्त हो उसे हृदयमें अवसाद न लाकर प्रसन्नतासे स्वीकार करे। जिस पुरुष को दु:ख सता रहा है उससे उसे कभी शान्ति मिलनेवाली नहीं है। दु:खोंका अन्त कभी नहीं आता। एकके पीछे दूसरा दु:ख पैदा होता रहता है। सुख-दु:ख, उत्पत्ति-नाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण यह क्रमश: चलते ही रहते हैं। अत: धीर पुरुषोंको इनके कारण हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये। राजाओंका योग तो युद्ध की दीक्षा लेना, युद्ध करना, दंडनीति का पालन करना, यज्ञ में दक्षिणा और धन देना इत्यादि है। इसीसे उनकी शुद्धि होती है। जो राजा बुद्धिमानीसे न्यायपूर्वक, अहंकाररहित होकर राज्यशासन करता है, वह सब प्रजाको धर्मके अनुसार चलाता है, युद्धमें विजय पाकर राष्ट्रकी रक्षा करता है, युक्तिपूर्वक दण्डविधान करता है, वेद-शास्त्रोंका अच्छी तरह अभ्यास करता है और चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थित रखता है, वह अंत में स्वर्गका सुख भोगता है वही राजा श्रेष्ठ है।

व्यासजीका कथन सुनकर युधिष्ठिरने अर्जुन से कहा, तुम्हारी समझमें धनसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है तथा निर्धन को स्वर्ग, सुख और अर्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती उसे मैं नहीं मानता। अनेकों ऋषि-मुनियोंने तपस्यामें लगे रहकर ही सनातन

लोकोंको प्राप्त किया है। जो लोग स्वाध्यायनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ तथा धर्मनिष्ठ हैं उन्हींको तुम ऋषि समझो। राज्यके सब काम भी ज्ञाननिष्ठोंके ही हाथमें रक्खे हैं। अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु नामके ऋषिगणोंने स्वाध्यायके द्वारा ही स्वर्ग प्राप्त कर लिया। दान, अध्ययन, यज्ञ और निग्रह ये सभी कार्य बहुत कठिन हैं। प्राचीन कालके विद्वान उत्तरमार्गकी ही प्रशंसा करते हैं। वास्तवमें संतोष ही सबसे बड़ा स्वर्ग है, संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोष से बढ़कर कोई चीज नहीं है। जिन पुरुषोंने क्रोध और हर्षको अच्छी तरह वशमें कर लिया है, उन्हींको वह उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। राजा ययातिने कहा था, जब यह पुरुष किसीसे नहीं डरता तब उसे किसीका भी भय नहीं होता। तथा किसी वस्तुकी इच्छा या किसीसे द्वेष नहीं करता उस समय वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जब वह कर्म, मन और वाणीसे सभी जीवोंके प्रति दुर्भावनाओंका त्याग कर देता है उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। जिसके मान, मोह नष्ट हो गये हैं, जिसने अन्य पुरुषोंका सङ्ग करना छोड़ दिया उस महात्मा के लिये मोक्ष सुलभ हो जाता है। यह मनुष्य तो धर्मके पीछे पड़ा हुआ है। उसके द्वारा त्याज्य कर्मोंका छुटना बड़ा ही कठिन है। साधुता भी उसके लिये दुर्लभ है। वह शोक और भयसे रहित होनेपर भी सदाचार से टिका हुआ है। वह थोड़े धन की तृष्णा में दूसरोंसे ऐसा बैर ठान लेना है कि उसे पापकी कोई परवाह नहीं होती। ब्रह्माने तो यज्ञके लिये धन उत्पन्न किया, यज्ञ की इच्छाके लिये ही मनुष्य की रक्षा की है। इसलिये सारे धनका उपयोग यज्ञके लिये करना चाहिये उसे भोग-विलास से लगाना अच्छा नहीं है। यह धन तो किसी एक का होता नहीं है। दान देनेमें कुपात्रके पास धन न पहुँचे और सुपात्रको धन की प्राप्ति होनी चाहिये। सब सुहृदोंके मृत्युका कारण मैं हूँ इस कारण की मैं ही जड़ हूँ। मैं बड़ा ही राज्यलोलुप और क्रूर हूँ। मैंने अप ने कुटुम्ब का मूलोच्छेद कर डाला। मैं कैसा मूर्ख हूँ, गुरुद्रोही हूँ। मैंने राज्यके लोभमें पड़कर अपने पितामह भीष्म और आचार्य द्रोणका वध करवा दिया। मेरी किसी लोकमें गति होगी? मुझसे बड़ा पापी कौन होगा? मैंने तो अपने ज्येष्ठ भ्राता कर्णको भी मरवा डाला। मैंने ही इस राज्यके लोभसे बालक वीर अभिमन्यु को कौरवोंकी सेनामें भेज दिया। बेचारी द्रौपदीके पाँचों पुत्र मारे गयें। उनका भी शोक मुझे बार-बार सता रहा है। इसलिये मुझे तो अब प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

महर्षि व्यास बोले, राजा जनक ने दु:ख और शोक के वशीभूष होकर महामति विप्रवर अश्मासे पूछा था कि अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुष को कैसा व्यवहार करना चाहिए। तब अश्माने कहा, राजन्। यह पुरुष जैसे जन्म लेता है उसके साथ ही दु:ख और सुख इसके पीछे लग जाते हैं। वे इसके ज्ञानको उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे वायु बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देता है। इसीसे मनुष्यके हृदयमें मैं कुलीन हूँ, सिद्ध हूँ, कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ ये तीन बातें घुस बैठती हैं। इनके नशेमें भरकर वह अपने बाप-दादोंसे प्राप्त हुई पूँजीको लुटाकर कंगाल हो जाता है और फिर दूसरोंके धनपर मन ले जाता है। उसे मर्यादाका कोई ख्याल नहीं रहता। वह अनुचित उपायोंसे धन जुटाने लगता है। यह देखकर राजालोग उसे दण्ड देते हैं। इसलिये मनुष्यके ऊपर सुख या दु:ख जो कुछ आ पड़े उसे सहना ही चाहिये, क्योंकि उसे दूर करनेका कोई उपाय भी तो नहीं है। अप्रियोंका संयोग, प्रेमियोंका वियोग, इष्ट, अनिष्ट और सुख-दु:ख इनकी प्राप्ति प्रारब्धानुसार ही होती है। इसी प्रकार जन्म-मरण और हानि-लाभ दैवाधीन ही हैं। वैद्योंको भी रोगी होते देखा जाता है, बलवान भी कभी-कभी निर्बल हो जाते हैं तथा श्रीमान् भी कंगाल होते देखे गये हैं। यह कालका उलट-फेर बड़ा ही अद्‌भुत है। अच्छे कुलमें जन्म, पुरुषार्थ, आरोग्य, रूप, सौभाग्य और ऐश्वर्य ये सब प्रारब्धसे ही मिलते हैं। जो कंगाल हैं और चाहते भी नहीं हैं, उनके तो कई-कई पुत्र हो जाते हैं और जो सम्पन्न हैं, उन्हें एक भी नसीब नहीं होता; विधाताकी करनी बड़ी ही विचित्र है। रोग, अग्नि, जल, शस्त्र, भूख-प्यास, आपत्ति, विष, ज्वर, मृत्यु और ऊँची स्थितिसे गिरना- ये सब जीवके जन्मके समय ही निश्चित हो जाते हैं। उसी नियमके अनुसार इसे इन स्थितियोंमें जाना पड़ता है। आजतक न तो कोई इनसे छूट सका है

और न अब छूट सकता है। इस प्रकार कालके प्रभावसे जब जीवोंका इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके साथ सम्बन्ध होता है। वायु, आकाश, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिन, रात, नक्षत्र, नदी और पर्वतोंको भी कालके सिवा और कौन बनाता और स्थिर रखता है? सर्दी, गर्मी और वर्षाका चक्र भी कालहीके योगसे चलता है। यही बात मनुष्योंके सुख-दु:खके विषयमें भी है। राजन्। जब मनुष्यपर मृत्यु या वृद्धावस्थाकी चढ़ाई होती है तो औषधि, मन्त्र, होम और जप कोई भी उसे बचा नहीं सकते। जिस प्रकार समुद्रमें दो लक्कड़ कभी मिलते और कभी बिछुड़ जाते हैं, इसी प्रकार यहाँ जीवोंका समागम होता है। इस संसारमें हमारे हजारों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री, पुत्र हो चुके हैं। परंतु सोचो तो वास्तवमें वे किसके हुए और हम अपनेको किसका कहें? इस जीवका न तो कभी कोई सम्बन्धी हुआ है और न होगा ही। रास्तेमें चलते हुए बटोहियोंके समान ही हमारा स्त्री-बन्धु और सुहृद्गणसे समागम हो जाता है। अत: विवेकी पुरुषको अपने मनमें इसीपर विचार करना चाहिये कि- मैं कहाँ हूँ? कहाँ जाऊँगा? कौन हूँ? यहाँ किस कारणसे आया हूँ और किसलिये किसका शोक करूँ? यहाँ जीव अकेला आता है और अकेला जाता है। यह संसार अनित्य है और चक्रके समान घूमता रहता है। इसमें माता-पिता, भाई और मित्रोंका समागम रास्तेमें मिले हुए बटोहियोंके समान ही है।

कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि शास्त्राज्ञाका उल्लंघन न करके उसमें श्रद्धा रक्खे, पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन करे, यज्ञोंका अनुष्ठान करे तथा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करे। यह सारा संसार अगाध कालसमुद्रमें डूबा हुआ है। उसमें जरा-मृत्यु-जैसे विशाल ग्राह भरे हुए हैं, किंतु इसे कुछ ज्ञान ही नहीं है। वैद्यलोग भी बड़े कड़वे-कड़वे काढ़े और तरह-तरहके घृत पीते रहते हैं; तो भी, समुद्र जैसे अपने तटका उल्लंघन नहीं करता, उसी प्रकार मृत्युको वे भी पार नहीं कर पाते। जो रसायनोंके जाननेवाले वैद्य तरह-तरहके रासायनिक द्रव्योंका सेवन करते रहते हैं, किंतु उन्हें भी बुढ़ापेसे जर्जर होते देखा ही जाता है। इसी प्रकार तपस्वी, स्वाध्याय-शील, दानी और बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले भी जरा और मृत्युको पार नहीं कर सकते। जन्म लेनेवाले सभी जीवोंके दिन-रात, मास-वर्ष और पक्ष एक बार बीतकर फिर कभी नहीं लौटते। मृत्युका यह लंबा रास्ता सभी जीवोंको तय करना पड़ता है। अत: ऐसा कोई भी मरणधर्मा मनुष्य नहीं है, जिसे कालके वशीभूत होकर इसमेंसे निकलना न पड़े। इस मार्गमें स्त्री आदिके साथ जो समागम होता है, वह राहगीरोंके समान कुछ ही क्षणोंका है। इनमेंसे किसीके भी साथ मनुष्यका नित्य सहवास नहीं हो सकता। जब अपने शरीरके साथ ही इसका बहुत दिनोंतक सम्बन्ध नहीं रहता तो दूसरे सम्बन्धियोंके साथ तो रह ही कैसे सकता है? राजन्। आज तुम्हारे बाप-दादे कहाँ गये? अब न तो तुम ही उन्हें देखते हो और न वे ही तुम्हें देखते हैं। स्वर्ग और नरकको तो मनुष्य इन नेत्रोंसे देख नहीं सकता। उन्हें देखनेके लिये तो सत्पुरुष शास्त्ररूपी नेत्रोंसे ही काम लेते हैं। अत: तुम शास्त्रके अनुसार ही आचरण करो।

मनुष्यको पहले ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। उसके बाद वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करके पितर और देवताओंके ऋणसे मुक्त होनेके लिये संतानोत्पादन और यज्ञानुष्ठान करे। ऐसे सूक्ष्मदर्शी गृहस्थको अपने हृदयका शोक त्यागकर इहलोक, स्वर्गलोक अथवा परमात्माकी आराधना करनी चाहिये। जो राजा शास्त्रानुसार धर्मका आचरण और द्रव्य-संग्रह करता है उसका सम्पूर्ण चराचर लोकमें सुयश फैल जाता है। अश्मामुनि से इसप्रकार धर्मका रहस्य जानकर राजा जनक की बुद्धि शुद्ध हो गयी और वो शोकरहित होकर अपने महल में चला गया। इसीप्रकार राजन् तुम भी शोक का त्याग करो, मन प्रसन्न करो और अपने जीते हुए इस पृथ्वी का राज्य भोगो। महर्षि व्यासजीका यह उपदेश सुनकर राजा युधिष्ठिरने कुछ भी नहीं कहा। तब अर्जुन ने श्रीकृष्णसे कहा, माधव। धर्मराज युधिष्ठिर बन्धुशोकसे अत्यन्त पीड़ित है; ये शोकसागर में डूबे जा रहे है आप उन्हें धैर्य बंधाये। तब श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे बोले, राजन्। आप शोक न करे, यह आपके शरीर को

सुखा देगा। जो इस युद्धमें मारे गये उनका तो वापिस लौटना सम्भव नहीं है। जिसप्रकार जागनेपर स्वप्नमें जो कुछ देखा हुआ वो सब लाभ व्यर्थ हो जाते हैं। उसीप्रकार इस महायुद्धमें जो क्षत्रिय मारे गये हैं वे तो स्वर्गको चले गये हैं आप उनके लिये शोक न करें। उन्होंने वीरोंके योग उत्तम गति पायी है। जिस प्रकार नारदजीने राजा सृञ्जय के पिता राजा सुहोत्र की मृत्यु पर सांत्वना दी थी। शिबी और उशीनर का प्रसंग सुनाया था। दुष्यन्त के पुत्र भरत तुम्हारे पूर्वज भी इस पृथ्वीसे विदा हुये। दशरथनन्दन राम भी इस धरासे चले गये। राजा भगीरथ, गय, और दिलीप भी इस धरा पर नहीं रह सके। युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता भी मर ही गये। नाभागके पुत्र परम धार्मिक राजा अम्बरीष भी अपना शरीर त्यागकर गये है। चित्ररथका पुत्र शशबिन्दु भी मृत्युको प्राप्त हुआ, इक्ष्वाकुके वंशके राजा सगर भी इस संसार में नहीं रहे। वेनके पुत्र राजा पृथुका जिन्होंने पूरी पृथ्वीका दोहन किया और पृथ्वीको अपनी पुत्री माना वे राजा पृथु भी नहीं रहे। इसलिये राजन आप शोक न करें। इसलिये अपने पैतृक राजसिंहासनपर बैठकर शासन का भार सम्भालें।

व्यासजीने राजा युधिष्ठिरको राजधर्मका उपदेश दिया। महर्षि व्यासने कहा, युधिष्ठिर। राजाओंका धर्म तो प्रजाका पालन करना है। वेदोंमें तपको ब्राह्मणोंका नित्य धर्म बताया है। क्षत्रिय तो सब प्रकारके धर्मकी रक्षा करनेवाला ही है। जो मनुष्य विषयासक्त होकर धर्मविधिका उल्लंघन करता है, वह लोकमर्यादा का विघातक है, क्षत्रियको अपने बाहुबलसे उसका दमन करना चाहिये। जो व्यक्ति मोहवश शास्त्रप्रमाणको न माने फिर वह चाहे अपना सेवक हो, पुत्र हो, तपस्वी हो अथवा कोई भी क्यों न हो उस पापी का सब प्रकार दमन करे और उसे नष्ट कर दें। जो राजा इसके विपरीत आचरण करता है, उसे पाप लगता है। जो राजा नष्ट होते हुए धर्मकी रक्षा नहीं करता, वह तो धर्मका घात करनेवाला है। इसलिये तुम अपने धर्ममें ही स्थित रहकर फिर शोक क्यों कर रहे हो? राजाका तो यही धर्म है कि दुष्टोंका वध करे, सुपात्रोंको दान दे और प्रजाकी रक्षा करे। उद्धत पुरुषोंको दण्ड देना तो राजाका कर्त्तव्य है। शास्त्रोंमे जो पापकर्मोंके प्रायश्चित्त बताये हैं, उन्हें करने चाहिए। शरीर छोड़देनेपर तो वे नहीं किये जा सकते। अत: राजन्। अपने जीवित रहते अपने पापका प्रायश्चित्त कर डालो। प्रायश्चित्त किये बिना यदि शरीर छूट गया तो तुम्हारे हाथ केवल पश्चात्ताप ही होगा। तुम क्षत्रियोंमें अग्रगण्य हो। तुमने अपने धर्मके अनुसार ही इन सब क्षत्रियोंको मारा है। वे सब तो अपने ही अपराध से मारे गये हैं। तुम, भीम, अर्जुन या नकुल-सहदेव उन्हें मारनेवाले नहीं हो। इनका संहार तो कालने ही किया है। कालका तो कोई न माता है न पिता, न वह किसीपर दया करता है, वह तो प्रजाके कर्मोंका साक्षीमात्र है। तुम्हारा युद्ध तो केवल निमित्तमात्र है। सह संहारकर्मके लिये भगवान का स्वरूप ही उत्तरदायी है। यह सारा जगत् कालाधीन कर्मकी प्रेरणासे प्रवृत्त हो रहा है। फिर भी तुम्हारे चित्तमें इन सबके मरनेका व्यर्थ संताप हो रहा है। इसके दोषके छूटनेके लिये तुम प्रायश्चित्त कर डालो। जो लोग धर्मका नाश करना जानते हैं और अधर्म को फैलानेवाले हैं उनपर क्रोध करना उचित ही है। यदि एक पुरुष को मारकर कुटुम्बके शेष व्यक्तियोंको सुख मिले अथवा एक कुटुम्बका वध करनेसे जैसे शान्ति स्थापित हो तो उसे नष्ट करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। राजन। किसी समय अधर्म दिखाई देनेवाला कर्म भी धर्म हो जाता है और धर्म दिखाई देनेवाला अधर्म बन जाता है। इसप्रकार बुद्धिमान पुरुष को धर्म और अधर्म का रहस्य अच्छी तरह जानना चाहिये। पूर्वकालमें देवताओंका जो धर्ममार्ग था उसीका तुमने अनुसरण किया है। तुम जैसे धर्मप्राण पुरुष कभी नरक में नहीं जायेंगे। जो पुरुष हृदयमें पापकी भावना रखकर किसी कुकर्ममें प्रवृत्त होता है उस कर्मको करके भी किसी प्रकार लज्जित नहीं होता उसे तो उस भयंकर पापका भागी होना पड़ता है। इसप्रकार के पाप का न कोई प्रायश्चित्त है न ही ऐसा पाप कभी नाश होता है। तुम्हारा हृदय तो शुद्ध है। युद्धकी इच्छा नहीं होनेपर भी शत्रुके अपराध के कारण तुम्हें युद्ध करना पड़ा। इसे तुम्हारा पाप नहीं कहा

जाता। फिर भी तुम इस कर्मके लिये पश्चात्ताप कर रहे हो। इसके लिये तो अश्वमेध यज्ञ करना सबसे अच्छा प्रायश्चित्त है। उसी यज्ञका अनुष्ठान करो। तुम निष्पाप हो जाओगे। इन्द्रने भी मरूतोंकी सहायतासे अपने शत्रुओंको परास्त करके एक-के-बाद एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसलिये इन्द्रका नाम शतक्रतु नामसे प्रसिद्ध हुआ। तुमने भी इस वसुन्धराको अपने बाहुबल से प्राप्त किया है और समस्त राजाओंको परास्त किया है। अब तुम अपने मित्रोंके साथ भाई, पुत्र या पौत्रोंको अपने-अपने राज्यपर अभिषिक्त करो और प्रजाको समझा-बूझाकर सांत्वना दो। प्रजा का मनोरंजन करते हुए पृथ्वीका राज्यपालन करो। इस तरह सारे राज्यमें शान्ति स्थापित कर अश्वमेधयज्ञद्वारा भगवान का यजन-पूजन करो। राजन्। इस युद्धमें जो क्षत्रिय मारे गये हैं उनके लिये शोक मत करो। वे तो कालके शक्तिसे मोहित होकर अपने ही कर्मोंके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं। उन्हें क्षात्रधर्मके पालन का पूरा फल प्राप्त हुआ। तुम्हें यह निष्कण्टक राज्य मिला। इसका पालन कर धर्मकी रक्षा करो। जो मनुष्य शास्त्रविहित कर्मोंका आचरण न करके निषिद्ध कर्म कर बैठता है। उसे ऐसा विपरीत आचरण करनेसे प्रायश्चित्तका भागी बनना पड़ता है। जो ब्रह्मचारी सूर्योदय या सूर्यास्तके समय सोता रहे, जिस पुरुष के नख या दाँत काले हों उन्हें प्रायश्चित करना चाहिए। बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए छोटा भाई विवाह करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, निंदक, बड़ी बहन के अविवाहित रहते हुए छोटी बहन से विवाह करनेवाला व्रतभंगी, अपात्रको दान देनेवाला, सुपात्रको दान नहीं देनेवाला, सारे गांव को नाश करानेवाला, मांस बेचनेवाला, आग लगानेवाला, वेतन लेकर वेद पढ़ानेवाला, गुरु और स्त्रीका वध करनेवाला, दूसरोंका घर जलानेवाला, झूठ बोलकर पेट पालनेवाला, गुरु का अपमान और सदाचारकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाला ये सभी पापी और आततायी माने जाते हैं। इन्होंने प्रायश्चित करना चाहिये।

इसके सिवा जो लोक और वेदसे विरुद्ध दूसरे न करने योग्य कर्म, अपने धर्मको त्यागना, दूसरेके धर्मका आचरण करना, अनाधिकारीसे यज्ञ कराना, अभक्ष्य का भक्षण करना, शरणागतको त्यागना, माता-पिता और भरण-पोषणके अधिकारी सेवक आदिका भरण-पोषण न करना, गोरस बेचना, पशु-पक्षियोंकी हत्या करना, दान न देना, ब्राह्मणोंको दक्षिणा न देना, ब्राह्मणोंका धन छीन लेना धर्मतत्त्वके जाननेवालोंने ये सभी कर्म न करने योग्य बताया है।

जो पुरुष पिताके साथ झगड़ा करता है, गुरुपत्नीके साथ समागम करता है और ऋतुकाल होनेपर अपनी स्त्रीके साथ समागम नहीं करता वह तो धर्मका त्याग करनेवाला है। उस मनुष्य को प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है। अब जिन कर्मोंको करनेसे मनुष्यको पाप नहीं लगता वह इसप्रकार हैं। युद्धस्थलमें कोई-वेद-वेदान्तोंका पारगामी ब्राह्मण शस्त्रग्रहण करनेसे उसका वध करनेसे ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। यदि कोई पुरुष अपने धर्मसे डिगकर आततायी ब्राह्मण को मार डाले वह ब्रह्महत्यारा नहीं कहा जाता। अंजान में अथवा प्राण संकटके समय मदिरापान करले उसी प्रकार अन्य सब भक्ष्य और अभक्ष्यके विषयमें जानना चाहिए। यदि कभी ऐसी गलती हो जाये तो प्रायश्चित्त करके उसकी सिद्धि हो सकती है। चोरी सर्वदा निषिद्ध है, परन्तु आपत्तिके समय ऐसे गुरु कार्यके लिये चोरी की जाय तो उसमें दोष नहीं है। यदि चोरी करनेमें किसी प्रकार की कामना न हो, उससे प्राप्त हुई वस्तुको स्वयं न भोगा जाय और आपत्कालमें ब्राह्मणके सिवा किसी अन्यका धन ले लिया जाय तो भी चोरीका पाप नहीं लगता। अपने या किसी दूसरेके प्राणोंकी रक्षाके लिये, गुरुके लिये, एकान्तमें स्त्रीके साथ अथवा विवाहके प्रसंग में झूठ बोलना पड़े, तो भी उसे पाप नहीं लगता। यदि बड़ा भाई किसी कारणवश सन्यास ले ले तो छोटे भाईको विवाह करना पड़े तो इसमें दोष नहीं है। व्यभिचारिणी स्त्री का तिरस्कार करने में भी कोई दोष नहीं है। जो सेवक कामकाज करने में असमर्थ है उसे त्याग देनेमें दोष नहीं है तथा गायोंके लिये वनमें आग लगानेमें दोष नहीं है।

दान के द्वारा और व्रतके द्वारा मनुष्य अपने सभी पापोंसे छूट सकता है। जब वह फिर से पाप न करे तो। यदि किसीने

ब्रह्महत्या की है तो वह एक समय भिक्षा माँगकर भोजन करे, अपना काम स्वयम् करें, नित्य ब्रह्मचर्यव्रतसे रहे, किसीसे ईर्ष्या न करे, भूमिपर शयन करे और लोकमें अपने कर्मको प्रकट करें। इसप्रकार १२ वर्षतक करने से उसके पापकी शुद्धि होती है। या कोई शस्त्रधारी विद्वान इसका वध कर दे, या स्वयं जलती आग में गिर जायँ अथवा नीचे सिर किये किसी वेदका पाठ करते हुए, अपना सर्वस्व किसी वेदपाठी ब्राह्मणको दान कर दे इसप्रकार गो और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाले पुरुषकी ब्रह्महत्या से मुक्ति हो सकती है। अश्वमेधयज्ञ करनेसे नि:सन्देह सभी पाप छूट सकते हैं। जो लोग यज्ञस्नान करते हैं वो सभी पापोंसे मुक्त हो जाते है। जो पुरुष ब्राह्मण के लिये युद्ध में प्राण देता है वह भी ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। जो व्यक्ति किसी पुरुष को उसका मनोरथ पूर्ण होने योग्य दान देता है और उसका वर्णन किसीके सम्मुख नहीं करता वह पापोंसे मुक्त होता है। जो पुरुष गुरुपत्नी के साथ समागम करता है वह जलती हुई लोहे के शीला पर पड़ जाय या अपनी जननेंद्रियों को काट दे, या अपना शरीर त्याग दे वह उस पापसे छूट सकता है। जो ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दे देता है या गुरुके लिये युद्धमें अपने प्राणोंकी आहुति दे देता है वह इस पाप से मुक्त हो जाता है। झूठ बोलकर आजीविका चलानेवाला अथवा गुरु का अपमान करनेवाला पुरुष गुरुको मनचाहे वस्तु देकर प्रसन्न करने से पाप में छूट जाता है। यदि कोई मनुष्य किसीका धन चुराले और किसी उपाय से उतना ही धन उसे वापिस लौटादे तो वो उस पाप से मुक्त हो जाता है। पशु-पक्षियोंका वध करनेवाला, तरह-तरह के पेड़ काटनेवाला, वायु भक्षण कर अपना कुकर्म प्रकट कर दे तो वह शुद्ध हो जाता है। अन्य सब प्रकारके पापोंके लिये ब्राह्मणोंने धर्माधर्म के निर्णय में शास्त्रोंको ही प्रमाणभूत माना है। मनुष्य को अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्मोंका फल मरनेके बाद भोगना पड़ता है। इसलिये दान, तप और शुभ कर्मोंके द्वारा पुण्यकी वृद्धि करनी चाहिए। सर्वदा शुभ कर्मों का आचरण करे, पाप कर्मसे दूर रहे, सुपात्र को धन-दान दे ऐसे करना से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है। इसीतरह भक्ष और अभक्ष्य के पापोंका भी प्रायश्चित्त बताया है। जो पाप जान-बूझकर किया जाता है वह बडा होता है और अंजान में किया हुआ पाप छोटा माना जाता है। जो पुरुष मरकर सुख भोगना चाहता है उसे श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरण और धर्मका सेवन करना चाहिये। राजन्। तुमने अपने प्राणोंकी रक्षा के लिये, अपने स्वधर्म का पालन करनेके लिये ही यह युद्ध किया इसलिये तुम पापसे सर्वथा मुक्त हो। फिर भी यदि तुम्हें कुछ पश्चात्ताप है तो प्रायश्चित्त करो। इस विषयमें मनुने कहा, शास्त्रमें जिन पापोंके प्रायश्चित्तका उल्लेख नहीं हैं, उनकी निवृत्तिके लिये मन्त्र-जप, होम और उपवास करें, आत्मज्ञान प्राप्त करें, पवित्र नदियोंमें स्नान करें। इन पुण्य कर्मोंसे ब्रह्मगिरि आदि पवित्र पर्वतोंपर रहनेसे, सुवर्णभक्षण करनेसे, जिनमें रत्न हों उन नदियों या सरोवरों में स्नान करनेसे, घृत पान करनेसे अवश्य ही मनुष्यकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। बिना दी हुई वस्तुको न लेना, दान, अध्ययन और तपमें तत्पर रहना, अहिंसा, सत्य, अक्रोध और यज्ञ ये सब धर्मके लक्षण हैं। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि अधर्म भी विशेष अवस्थामें धर्म माने गये हैं। विवेकी लोग जानते हैं कि धर्म और अधर्म ये दोनों ही देशकालके विचारसे अधर्म और धर्म दोनों हो सकते हैं। लोक और वेदमें धर्मके दो भेद कहे गये हैं- प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म। इसमें निवृत्तिधर्मका फल मोक्षरूप अमृतत्व है और प्रवृत्तिधर्म का फल जन्म-मरण है। अशुभ कर्मसे अशुभ कर्म मिलता है और शुभ कर्म से शुभ। यदि जानबूझकर कोई अशुभ कर्म हो जाय तो उसके लिये शास्त्रने प्रायश्चितका विधान किया है। जो पुरुष अपनी जाति, आश्रम या कुलके धर्मको त्याग देता है, उसकी शुद्धि किसी भी प्रायश्चितसे नहीं हो सकती। यदि धर्मनिर्णयमें कोई विवाद हो तो वेद और धर्मशास्त्रको जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उसका निर्णय करायें। प्रेतके निमित्त बनाया हुआ अन्न, सूतिकाका अन्न दस दिनसे पूर्व नहीं खाना चाहिये इसीतरह प्रसव की हुई गो का दूध दस दिन तक नही पीवे। यह सब अन्न राजाके तेजको नष्ट

करता है। शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाशक है तथा सुनार और पतिहीन या पुत्रहीन स्त्रीका अन्न आयुका क्षय करता है। ब्याजखोरका अन्न विष्ठाके समान है और वेश्याके यहाँका अन्न वीर्यके समान। कायर, यज्ञविक्रेता, बढ़ई, मोची, व्यभिचारिणी स्त्री, धोबी, वैद्य और चौकीदार इन सबका अन्न भी खाये योग्य नहीं है। जिन्हें समाज या गाँवने दोषी ठहराया हो, जो नर्तकीके द्वारा अपनी जीविका चलाते हों और जिन्होंने अपने बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए अपना विवाह कर लिया हो, बन्दीजन और जुआरियोंका अन्न भी खाने योग्य नहीं है। जो बांये हाथसे लाया गया हो, बासी अन्न हो, जिस अन्नपर शराब के छींटे पड़ गये हो, जो झूठा हो, जो कुटुम्ब से छिपाकर रखा गया हो वह अन्न भी खानेयोग्य नहीं होता। इसप्रकार जो पदार्थ आटे, शाक या दूधको बिगाड़कर बनाये गये हो वह भी खानेयोग्य नहीं है। खीर, खिचड़ी और मालपुए यदि देवताओंके निमित्त नहीं बनाये जाय तो उन्हें भी नहीं खाना चाहिए। गृहस्थ पुरुष देवता, ऋषि, अतिथि, पितर और कुलदेवताओंको नैवेद्य समर्पण करनेके बाद ही भोजन कर सकता है। जो अनुकूल स्त्रीके साथ घर में रहता है, वह धर्मका पूरा फल प्राप्त कर लेता है। धर्मात्मा पुरुष को चाहिये यशके लोभसे, भयके कारण या अपना उपकार करनेवालेको दान न दे। नाचने-गानेवाले, हँसी-मजाक करनेवाले (भाँड़ आदि) मदमत्त, उन्मत्त, चोर, निन्दा करनेवाले, गूँगे, तेजोहीन, अङ्गहीन, बौने, दुष्ट, कुलहीन या संस्कारशून्य हो उन्हें भी दान न दें। जिस ब्राह्मण ने वेदाध्ययन नही किया हो उसे भी दान देना उचित नहीं। विधिहीन दान लेना या दान देना दोनों ही ठीक नहीं है। इससे दाता और गृहीता दोनों ही नरकमें डूब जाते हैं। जिस प्रकार लकड़ी गीली होनेपर अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं कर सकती, उसी प्रकार दान लेनेवालेमें तप, स्वाध्याय और सदाचारका अभाव हो वह अच्छा नहीं होता। दुराचारीके संसर्गसे शास्त्राभ्यास दूषित हो जाता है। जो ब्राह्मण वेदहीन है और अशास्त्रज्ञ है, दूसरोंके गुणोंमें दोष नहीं देखता उसे दान देना चाहिए ऐसा करनेसे पुण्य होता है। बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण तो केवल नामका ही होता है। जिस प्रकार जलहीन कुआँ व्यर्थ होता है, और राखमें किया हुआ हवन व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मूर्खको दिया हुआ दान भी निष्फल है। इन सबको दान देनेवाला दाता पुण्य लोकोंको प्राप्त नहीं कर सकता।

फिर व्यासजीने युधिष्ठिर को चारों वर्णोंके बारेमें बताया। वे बोले, यदि तुम धर्मका पूरा रहस्य जानना चाहते हो तो तुम कुरुश्रेष्ठ पितामह भीष्म के पास जाओ। गंगापुत्र सर्वज्ञ हैं और सब धर्मका मर्म जाननेवाले हैं। वे तुम्हें धर्म का उपदेश करेंगे और तुम्हारी सभी समस्याओंका समाधान करेंगे। जिस धर्मशास्त्र को शुक्राचार्य और देवगुरु बृहस्पति जानते हैं उसीको कुरुश्रेष्ठ भीष्मने शुक्राचार्य और च्यवनमुनि से पूरा प्राप्त किया है। उन्होंने वेदोंका अध्ययन किया है। ब्रह्माजीके पुत्र सनतकुमारसे अध्यात्मविद्या पायी है, मार्कंडेय से यतिधर्म सीखा है और परशुराम और इन्द्रसे अश्वविद्या पायी है। पिता के वरदान से उन्होंने मृत्यु को इच्छा के अधीन कर लिया है। वे धर्म और अर्थका सूक्ष्मतत्व जानते है। वे तुम्हें धर्मका उपदेश करेंगे। वे कुछ समय में अपने प्राण त्यागनेवाले हैं अत: तुम उसके पहिले उनसे धर्मका उद्देश्य लो।

महर्षि व्यासने विस्तृत दृष्टान्त देकर युधिष्ठिरको प्रजापालनके लिए प्रोत्साहित किया। लेकिन युधिष्ठिरको एक ही धुन थी- राज्य और भोग रक्त-सने हैं। पति पुत्रहीना अबलाओंका विलाप मुझे चैन नहीं लेने देता।

जब अर्जुनने देखा कि महर्षि व्यासका प्रयत्न भी असफल हो रहा है, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा- माधव। हमारे अग्रज शोक-सागरमें डूबे जा रहे हैं। आप ही अब कर्णधार बननेकी कृपा करें।

युधिष्ठिरकी श्रीकृष्णमें दृढ़ आस्था थी। वे इन पुरुषोत्तमकी आज्ञा अत्यन्त धर्म-संकटमें भी टाल नहीं सके थे। श्रीकृष्ण उनके समीप जाकर बैठ गये और प्रेमपूर्वक उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बोले- महाराज। शरीरको तथा चित्तको सुखा

देनेवाले, बुद्धिको भ्रान्त कर देनेवाले शोकका आप त्याग कर दें। शोक तो धर्म नहीं है। यह तमोगुणका कार्य है और घोर तमसमें ले जानेवाले है।

युधिष्ठिर को लगा कि वे कहीं भूल कर रहे हैं। श्रीकृष्ण कहते गये- अच्छा या बुरा, पुण्य या पाप जो हो गया, वह अब अनहुआ तो हो नहीं सकता। जो मारे जा चुके, वे आपके शोक करनेसे जीवित नहीं हो जायँगे। आप वनमें जाकर तप करेंगे तो उन मृत लोगोंकी विधवाओं तथा उनके अबोध बालकोंका विलाप बन्द हो जायगा? उनका कोई हित होगा? अथवा इस समय बुद्धिको स्थिर करके उन सबके पालन-पोषण-रक्षणकी व्यवस्था अधिक आवश्यक है?

आप तपस्या करके प्रायश्चित्त करना चाहते हैं, यह विचार बहुत उत्तम है। अपनेसे कोई अपराध हो जाय तो सत्पुरुष उसका परिमार्जन करना ही चाहते हैं; किन्तु अपकर्मके अनुसार उसका प्रायश्चित्त होता है। आपने अपने शरीरके द्वारा युद्धमें बहुत कम भाग लिया और किसीका भी भोग छीनकर सुख नहीं भोगा है। तब शरीरको व्रत करके कृश करनेसे लाभ? आप वनमें एकान्तमें जाकर इन विधवाओं, अनाथ बालकोंके व्यंग-बाण तथा तिरस्कारसे बचकर रहेंगे, यह तप होगा अथवा इनके मध्य इनकी उपेक्षा सहते हुए इनके पालन-संरक्षणको सदा सचिन्त रहेंगे, यह तप होगा? जिनके प्रति अपराध हुआ है, उनके शेष स्वजनोंकी सेवा कर्त्तव्य है अथवा उन सबकी उपेक्षा करके वनमें जाकर समय व्यतीत कर देना।

महाराज। आप एक सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। सामान्य व्यक्तिके कार्योंका प्रभाव भी उसके स्वजन सम्बन्धियोंपर पड़ता है। आप तो इस समय सम्पूर्ण राज्यके सम्राट हैं। अत: आप केवल अपनेको लेकर क्यों विचार करते हैं? सम्पूर्ण प्रजाको भी लेकर आप सोचें। युधिष्ठिर रो पड़े- हृषीकेश। मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। शोकने मुझे दृष्टिहीन बना दिया है। आप परम प्रकाशस्वरूप हैं। आप मुझे प्रकाश प्रदान करें। मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

श्रीकृष्णके लिये यह समर्पण पर्याप्त है। उन्होंने युधिष्ठिरको दृष्टान्त देकर समझाया- युद्धमें शत्रुके शस्त्रोंसे मारे गये शूर उत्तम गति प्राप्त करते हैं, यह आप जानते हैं। अत: उनके सम्बन्धमें कोई चिन्ता आपको नहीं करनी चाहिए। राजा सृञ्जय पूर्वकालमें पुत्रके मरनेसे शोकसंतप्त थे। उन्हें देवर्षि नारदने जो कुछ सुनाया था, देवर्षिने राजा सृञ्जयसे कहा था-

सुख-दु:खसे कोई मुक्त नहीं है। कालने किसीको नहीं छोड़ा। सृञ्जय। प्राचीन कालमें राजा सुहोत्र अत्यन्त अतिथि-वत्सल थे। उनके राज्यमें इन्द्रने सरिताओंमें स्वर्ण बहाया था और कछुए, केकड़े, मगर, घड़ियाल, मछलियाँ तक स्वर्णकी बना दी थीं, अबतक इन प्राणियोंके सुनहले वंशधर बचे हैं और नदियोंकी रेणुकामें कुछ स्वर्ण मिलता है। राजा सुहोत्रने वह सब स्वर्ण यज्ञमें दान कर दिया था। वे तथा उनका पुत्र, अर्थ, धर्म काम तथा मोक्षमें भी तुमसे बहुत श्रेष्ठ थे परन्तु वे भी मर गये।

उशीनरके पुत्र राजा शिबिकी बात तुमने सुनी होगी। वैसा उदार दानी भी अजर नहीं हुआ। काल उन्हें भी खा गया।

दुष्यन्तके पुत्र भरतने सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे। सम्पूर्ण पृथ्वीका वह एकछत्र शासक भी अन्तमें मृत्युसे नहीं बचा। दूसरोंकी बात तो दूर, मर्यादापुरुषोत्तम दशरथ-नन्दन भगवान राम प्रजाको पुत्रसे भी प्रिय मानते थे। उनके राज्यमें न कोई विधवा थी, न अनाथ। मेघ समय पर वर्षा करते थे। अन्न समयपर पकता था। अकाल, अग्नि, जल, रोग आदिका भय लोग भूल ही गये थे। सबकी आयु स्वस्थ सबल रहते सहस्रों वर्षकी हो गयी थी। विवाद स्त्रियोंमें भी नहीं होता था। प्रजा धर्म तत्पर थी। सब लोग सदा निर्भय, पूर्णकाम, सन्तुष्ट, सत्यवादी तथा सत्कर्ममें लगे रहते थे। वृक्ष सब ऋतुओंमें पुष्प-फलोंसे लदे रहते थे। गायें भरपूर दूध देती थीं। बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये उन्होंने। ग्यारह सहस्र वर्ष उन दूर्वादलश्याम, अरुणनयन, आजानुबाहु, नित्यकिशोर, सिंहस्कन्ध श्रीरामने अयोध्याका राज्य किया; किन्तु उन्हें भी अन्तमें पृथ्वीको छोड़ना पड़ा।

राजा भगीरथने गङ्गाजीको अपनी पुत्री बनाकर पृथ्वीपर उतारा। यज्ञानुष्ठान करते इतना दान किया कि उसकी गणना ही कठिन है; किंतु वे भी अन्तमें परलोक पधारे।

सृञ्जय। उन राजा दिलीपका भी अब नाम ही सुना जाता है। जिनके महान कर्मोंका ब्राह्मण अब तक वर्णन करते हैं। उनके यज्ञमें देवता प्रत्यक्ष भाग लेने आते थे। यज्ञयूप तथा सब पात्र स्वर्णके थे। उनके यज्ञमें छ: सहस्त्र देवता, गन्धर्व तो नृत्य करते थे। वे सत्यवादी दिलीप, जिनके भवनमें वेदध्वनि, धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष और याचकोंका कोलाहल कभी विरमित नहीं होता था, स्वर्ग सिधार गये।

राजा मान्धाताका नाम सब जानते हैं। इन्द्रने अपनी तर्जनीसे झरती सुधा पिलाकर उन्हें पाला था। उस महान् पराक्रमीने अङ्गार, मरुत्तगण, अङ्ग और वृहद्रथ को भी परास्त कर दिया था। सूर्यके उदय होनेसे अस्त होने तककी समस्त पृथ्वी मान्धाताकी थी। सैकड़ों अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञ उन्होंने किये। दस योजन लम्बे और एक योजन ऊँचे स्वर्णके मत्स्य बनवाकर उन्होंने दान किये। ऐसे महान पराक्रमीको भी मृत्युने नहीं छोड़ा।

परम भागवत नाभागके पुत्र राजा अम्बरीषका नाम किसने नहीं सुना होगा। उनके यज्ञमें मूधाभिषिक्त नरेश सहर्ष सेवकोंका कार्य करते थे। उस यज्ञमें किंचित सेवा भी जिन्हें मिली, वे भी देवयान मार्गसे हिरण्यगर्भके लोकमें जानेके अधिकारी हो गये। ऐसे महत्पुरुषको भी कालने नहीं छोड़ा।

चित्ररथके पुत्र शशबिन्दुके एक लाख रानियाँ थीं और प्रत्येकके दस-दस पुत्र थे। उन कुमारोंने भी सौ-सौ विवाह किये। अपार दहेज आया पुत्रोंके विवाहमें और वह सब धन राजाने अश्वमेध यज्ञ करके दान कर दिया। इतना काम-भोग, इतना अर्थ और धर्म; किंतु मृत्युसे वह भी बचा नहीं।

अमूर्तरयके पुत्र राजा गयके ऊपर प्रसन्न होकर अग्निदेवने उन्हें अक्षय धन तथा धर्ममें अविचल श्रद्धाका वरदान दिया था। सहस्त्र वर्षतक पूर्णिमा, अमावस्या तथा चातुर्मास्यमें गयने अखण्ड यज्ञ तथा दान किया। प्रतिदिन प्रात:काल वे असंख्य गोदान करते थे। उनके धन-दानकी कोई तुलना नहीं; किन्तु मरना उनको भी पड़ा।

राजा सगरके साठ सहस्त्र पुत्र थे। सम्पूर्ण पृथ्वीपर उनका शासन था। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी उन्होंने खाईके समान खुदवा डाली, इसीसे वह सागर कहलाता है। अपने यज्ञोंमें उन्होंने शुद्ध स्वर्णसे बने सौध दान किये। वे सगर भी मर गये।

वेन-पुत्र आदिराज पृथुने पुत्री बनाया पूरी धरित्रीको। इसीसे यह पृथ्वी कहलाती है। समस्त प्रजाका रञ्जन करनेके कारण वे राजा कहे गये। पृथ्वी बिना जोते, बोये उनके राज्यमें अन्न देती थी। औषधियोंमें रस भरा था। समुद्रके किनारे मोती और पर्वतोंपर ऊपर ही रत्न बिखरे रहते थे। मनुष्य इच्छानुसार घरोंमें या खेतोंमें रहें, उन्हें आतप, वर्षा, वायु, कष्ट नहीं देते थे। पृथुके जाते समय नदियाँ बहना बन्द करके मार्ग देती थीं और समुद्रका जल स्थिर होकर उनके रथको जाने देता था। उनके अश्वमेध-यज्ञके अन्तमें साक्षात श्रीहरि पधारे। कालने उन पृथुको भी पृथ्वीपर कहाँ छोड़ा।

देवर्षि नारदका यह उपदेश सुनाकर श्रीकृष्णने कहा- राजन्। आप जिनका भी स्मरण करके शोक कर रहे हैं, उनमें-से भीष्म, द्रोण, कर्णादि कोई इन ऊपर कहे गये लोकोत्तर पुरुषोंकी तुलनाके किसी अंशमें नहीं आते और जब वे ही अमर नहीं रहे तो दूसरे कैसे रह सकते हैं।

आपने कुरुक्षेत्रमें उस बर्बरीकके सिरका कथन सुना है। मनुष्यको केवल काल ही मारता है। युद्धमें जिनका काल आ गया था, वही मारे गये। उनको कोई बचा नहीं सकता था। आप अपनेको निमित्त मानकर व्यर्थ दु:खी हो रहे हैं।

आप अब इस अविचारसे उत्पन्न शौकका त्याग करें। यह तामस भाव किसीका कभी कल्याण नहीं करता। तपस्या

उत्तम है; किंतु वह जब शोक, मोह, लोभ या क्रोधके आवेशवश की जाती है तो कर्त्ताको कुपथमें लगाकर नरकका हेतु बनती है। आपको यह शोक इस समय कर्त्तव्यसे पराङ्मुख कर रहा है। अत: आप इसे त्यागकर नगर-प्रवेश करें और राज्यका शासन सम्हालकर पीड़ितोंको संरक्षण दें।

युधिष्ठिरको आश्वासन प्राप्त हुआ। महर्षि व्यासने उन्हें प्रायश्चित्त-विधान बतलाया और भीष्मके समीप जाकर धर्मका रहस्य जाननेको कहा। धर्मराजने शासन सम्हालना स्वीकार किया। धर्मराज युधिष्ठिरने महर्षि व्यास तथा श्रीकृष्णकी सम्मति स्वीकार की। युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र-गान्धारी तथा विदुरकी सेवामें सारा राज्य ही समर्पित कर दिया था। वे इनके आदेशानुसार ही शासनका सञ्चालन करते थे। धृतराष्ट्रको उनके पुत्रोंने कभी इतना सम्मान नहीं दिया था। वे कठपुतली मात्र रह गये थे; किन्तु अब उनका संकेत भी उल्लङ्घनीय हो गया था।

युधिष्ठिर तथा उनके सभी भाइयोंके लिए श्रीकृष्ण सर्वस्व थे। उनकी अनुकम्पासे ही राज्य मिला था और विपत्ति विदा हुई थी। लेकिन वे अच्युत इतने अपने थे कि किसी सम्मान-सत्कारकी औपचारिकताको उसमें स्थान नहीं था।

धर्मराज कृष्णके समीप आये और कहने लगे- भगवन्। आपकी कृपासे हमारे सब समट कट गये। आपने हमें राज्य दिलाया और आपके अनुग्रहसे हम विजयी हुए। अचानक बोलते-बोलते युधिष्ठिर चुप हो गये। श्रीकृष्णके समीप पहुँचकर सभीको सदा एक कठिनाई होती है कि इनका सर्वाङ्ग दर्शन प्राय: नहीं होता। नेत्र इनके जिस अङ्गपर पहुँचते हैं, वहींके होकर रह जाते हैं और तब पता कैसे लगे कि ये सौन्दर्य-सिन्धु कर क्या रहे हैं।

युधिष्ठिर आये थे तो एक दृष्टिमें देख लिया था कि शय्यापर श्रीकृष्ण बैठै हैं; किंतु नेत्र उसी समय इनके श्रीचरणोंमें लग गये। वैसे ही हाथ जोड़े धर्मराज समीप आ गये और बोलने- स्तुति करने लगे थे।

अब सहसा चौंक गये। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि युधिष्ठिरके आनेपर श्रीकृष्ण शय्यापर चुपचाप बैठे रहें। ये तो युधिष्ठिरके आनेपर उठ जाते हैं, अभिवादन करते हैं; आदरपूर्वक आसन देते हैं और बैठाकर तब बैठते हैं। आज क्या बात है? आज बोलते क्यों नहीं। युधिष्ठिरने नेत्र उठाये और देखकर शान्त खड़े रह गये।

अद्भुत छवि है। भगवान पुरुषोत्तम सीधे शय्यापर सिद्धासन लगाये बैठे हैं। क्रोड़ीमें विकच कमलके समान करद्वय पड़े हैं। श्रीविग्रह सीधा है। नेत्र बन्द हैं; किंतु उनसे बड़े-बड़े बिन्दु गिर रहे हैं। सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित है और उससे स्वेद-प्रवाह चल पड़ा है। ये निखिल ब्रह्माण्ड-नायक ध्यान कर रहे हैं? युधिष्ठिर आश्चर्यसे स्तब्ध देखते रह गये। भला इन भुवनेश्वरको किसका ध्यान करना है?

पुरुषोत्तम। सब योगीन्द्र, मुनीन्द्र आपका ध्यान करते हैं। श्रीकृष्णके शरीरमें कुछ गति आनेपर, उनके नेत्र खोलनेपर युधिष्ठिरने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की- सर्वथा काष्ठ या पाषाण मूर्तिके समान स्थिर, निष्कम्प, पुलक प्रफुल्ल आपका श्रीविग्रह अभी था। आप जगतके आदि कारण, सर्वेश्वरेश्वर किसका ध्यान कर रहे थे? मैं आपका शरणागत हूँ।

श्रीकृष्णने बहुत शिथिल भावसे दो-चार बार पलकें झपकायीं। इस प्रकार क्रोड़ीसे कर उठाये जैसे इसमें भी उन्हें प्रयत्न करना पड़ रहा है। बहुत शिथिल स्वरमें बोले- शरशय्यापर पड़े भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं, अत: मेरा मन भी उनमें ही लग गया है।

अब भीष्मका मनमें स्मरण है, उनकी चर्चा प्रारम्भ हो गयी तो श्रीकृष्णको यह भी स्मरण नहीं रहा कि युधिष्ठिर हाथ जोड़े खड़े हैं। उनको बैठनेके लिए भी कहना चाहिए। भक्तको भगवद्गुणगानमें यह तन्मयता भले न प्राप्त हो, इन भोले भगवानको तो भक्तका स्मरण भर आना चाहिए। भक्ति देवी वास्तविक रूपमें तो भगवानमें ही रहती हैं। भगवान भक्ति करते हैं- सच्ची भक्ति अपने भक्तोंकी। भक्तमें तो बड़े भाग्यसे भक्तिका अवतरण कभी हो पाता है।

श्रीकृष्ण भीष्मकी भक्तिमें विभोर बोलते रहे- भगवान परशुरामसे निरन्तर तेईस दिन युद्ध करके भी जो अपराजित रहे, भगवती भागीरथीने जिन्हें गर्भमें धारण किया, सृष्टि-कर्त्ताके साक्षात् पुत्र ब्रह्मर्षि वशिष्ठसे जिन्होंने साङ्ग सम्पूर्ण वेदोपवेदोंकी शिक्षा प्राप्त की, महर्षि च्यवन तथा शुक्राचार्यसे जिन्होंने यथावत् धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र सीखा, सनत्कुमार एवं मार्कण्डेयसे जिनको अध्यात्म-विद्या तथा यति-धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ, परशुराम और देवराज इन्द्रके धनुर्वेदके उन शिष्य आजन्म ब्रह्मचारी, मृत्युञ्जयी, धर्मात्माओंके शिरोमणि, त्रिकालज्ञ भीष्मका मन मुझमें लगा था, अत: मैं भी मनसे उनके समीप पहुँच गया था।

श्रीकृष्णको इस समय केवल भीष्मकी सुधि थी। उन्होंने कहा- धर्मराज। गङ्गातनय भीष्मके साथ धर्मका सूर्य अस्त होने जा रहा है। आप चलकर उनके चरणोंमें प्रणाम करें और आपको धर्म, अर्थ, नीति, अध्यात्म आदिके सम्बन्धमें जो कुछ पूछना हो, उनसे पूछ लें। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि ऐसा अवसर फिर नहीं आवेगा। भीष्मके समान समस्त पुरुषार्थोंका परमोपदेष्टा संसारमें दूसरा नहीं मिलेगा।

युधिष्ठिर हाथ जोड़े हुए बोले, आप जो कुछ कह रहे हैं, पितामह भीष्मके सम्बन्धमें महर्षि व्यासने भी मुझसे यही कहा है। अन्य विद्वानोंसे भी मैंने ऐसा ही सुना है। अत: आप यदि मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं तो मेरे साथ चलनेकी कृपा करें। आपको आगे करके ही मैं भाइयोंके साथ पितामहका दर्शन करना चाहता हूँ। सूर्यके उत्तरायण होते ही वे देह-त्याग करेंगे, अत: उनको भी आपका दर्शन होना चाहिए।

वहाँ शरशय्यापर पड़े भीष्मने अपना मन एकान्त भावसे श्रीकृष्णमें लगा रखा था और वे स्तुति कर रहे थे। उनके आस-पास वेदोंके ज्ञाता, तपस्वी, श्रद्धा-संयम-सम्पन्न ऋषि-मुनियोंका समुदाय एकत्र था। उन संसारके सम्मान्य प्रसिद्धतम महर्षियोंके मध्य पड़े भीष्म स्पष्ट स्वरमें वासुदेवकी स्तुति कर रहे थे।

तब युधिष्ठिर बोले, महर्षि मैंने अपने बन्धु-बान्धवोंका भीषण और रोमांचकारी संघर्ष किया है। मैं सभी लोकोंका अपराधी और पृथ्वीका सत्यानाश करनेवाला हूँ। वे सदा निष्कपट भाव से युद्ध करते रहे किन्तु मैंने छलसे उनका संहार किया है। ऐसी स्थितिमें मैं उनसे कैसे धर्मोपदेश प्राप्त करूँ। तब श्रीकृष्ण बोले, राजन्। आप शोक न करें। जैसा महर्षि व्यास कह रहे हैं वैसा ही करें। वे अतुलित, तेजस्वी और आपके गुरुके समान हैं। इनकी आज्ञा मानकर आप ब्राह्मणों अपने बन्धु-बान्धवोंसहित द्रौपदी को लेकर उनके पास जायें और सम्पूर्ण लोकोंका हित करें।

२) युधिष्ठिरका भीष्म के पास आना और भीष्मसे राजधर्म, राजनीति का उपदेश ग्रहण करना

युधिष्ठिरने कृष्णसे पूछा, भगवन आप किसका ध्यान कर रहे हैं। आप तो क्षर और अक्षर पुरुष हैं। आपका न आदि है न अन्त। आप सबके आदि कारण हैं। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और मुझे ध्यानका रहस्य बताये। तब कृष्ण बोले, धर्मराज। इस समय बाणशय्यापर गंगापुत्र भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं इसलिये मेरा भी मन उनमें लग गया है। भगवती गङ्गाने उन्होंने विधिवत् अपने गर्भमें धारण किया और महर्षि वसिष्ठसे शिक्षा पायी जो सम्पूर्ण दिव्यास्त्रोंद्वारा चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार हैं, भूत, भविष्य, वर्तमान जिनकी दृष्टिके सामने हैं, मैं उन भीष्मके बारेमें सोच रहा हूँ। भीष्मके स्वर्ग पधारने पर यह पृथ्वी श्रीहीन हो जायेगी। इसलिये आप गंगानंदन भीष्म के पास चलकर उनके चरणोंमें प्रणाम करें और आपके मन में जितने संदेह हो उन सबको उनसे पूछे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यज्ञादि कर्मोंके बारे में तथा चारों आश्रम और राजाओं के समस्त धर्मोंका विवरण उनसे पूछे। तब धर्मराज बोले, भगवन्। आप कृपा करके हमारे साथ चले। सूर्य के उत्तरायण में आते ही वे देवलोक चले जायेंगे। तब युधिष्ठिर धृतराष्ट्र और अपने भाइयोंके सहित द्रौपदीको लेकर श्रीकृष्णके साथ भीष्म पितामह

के पास जानेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओर चले। चलते-चलते रास्तेमें श्रीकृष्णने कहाँ यह सामने जो पाँच सरोवर दिखायी पड़ रहे है वे रामह्रद के नामसे प्रसिद्ध हैं। परशुरामजीने २१ बार इस भूमण्डलके क्षत्रियोंका संहार करके इन कुण्डोंको उनके खूनसे भरा था और युधिष्ठिरके पास कृष्णने परशुरामजीका चरित्र सुनाया। परशुरामजीने सारी पृथ्वी कश्यप को दान में दी। कश्यप ने परशुरामजीसे कहा, परशुराम तुम दक्षिण समुद्र किनारे चले जाओ। अब मेरे राज्यमें कभी निवास न करना। समुद्र ने उनके लिये जगह खाली कर दी जो शूर्पारक देशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसे अपरान्त-भूमि भी कहते है।

कश्यपजीने परशुराम की दी हुई पृथ्वी स्वीकार करके उसे ब्राह्मणोंके सुपुर्द कर दिया और स्वयं भी वनमें चले गये। उस समय कोई बलवान रक्षक न होनेके कारण सब ओर अराजकता फैल गयी। बली दुर्बलोंको सताने लगे। ब्राह्मणोंमेंसे किसीकी प्रभुता कायम न रही। कालक्रमसे पापियोंका प्रभाव बढ़ा और पृथ्वी कष्ट पाने लगी। यह देख कश्यपजीने अपने ऊरुओंसे सहारा देकर इसे रोका, इसलिये यह ऊर्वी कहलाने लगी। तब इस पृथ्वीने अपनी रक्षाके लिये कश्यपजीको प्रसन्न करके वरदान माँगा- ब्रह्मन्। मैंने बहुत-से हैहयवंशी क्षत्रियोंको स्त्रियोंमें छिपा रक्खा है, वे मेरी रक्षा करे। उनके सिवा पुरुवंशी विदूरथका भी एक पुत्र जीवित है, जिसे ऋक्षवान् पर्वतपर रीछोंने पालकर बड़ा किया है। इसी तरह महर्षि पराशरने दयावश राजा सौदासके पुत्रोंकी जान बचायी है। राजा शिबिका भी एक तेजस्वी पुत्र है, जिसका नाम है गोपति, उसे वनमें गौओंने पाल-पोसकर बड़ा किया है। राजा प्रतर्दनका पुत्र वत्स भी जीवित है, जिसे गोशालामें बछड़ोंने पाला है। दिविरथके पुत्रको महर्षि गौतमने गङ्गातटपर छिपा रक्खा है। महान् तेजस्वी बृहद्रथ भी जीवित हैं, जिन्हें गृध्रकूट पर्वतपर लंगूरोंने बचाया है तथा मरुत्तके वंशमें उत्पन्न हुए बहुत-से क्षत्रिय बालकोंकी समुद्रने रक्षा की है। ये राजपूत-बालक भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मौजूद हैं, यदि ये मेरी रक्षा करें तो मैं स्थिर रह सकती हूँ। इन बेचारोंके पूर्वज परशुरामजीके द्वारा युद्धमें मारे गये हैं। मैं धर्मकी मर्यादाको लाँघनेवाले क्षत्रियद्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहती। धार्मिक पुरुषके संरक्षणमें ही रहूँगी। आप शीघ्र इसका प्रबन्ध कीजिये।

पृथ्वीकी प्रार्थना सुनकर कश्यपजीने ऊपर बताये हुए राजकुमारोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंसे एकत्रित किया और उन्हें पृथ्वीके विभिन्न देशोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। आज जिनके वंश कायम हैं, ये उन्हींके पुत्र-पौत्रोंमेंसे हैं। राजन्।

मार्गमें समन्तक-पञ्चक क्षेत्र पड़ा। श्रीकृष्णने उन पाँचों सरोवरोंकी उत्पत्ति, परशुरामका इक्कीस बार पृथ्वीके क्षत्रियों का संहार करके इनको उनके रक्तसे भरनेकी बात बतलायी। युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्गमें उन्हें पूरा परशुराम चरित सुनाया।

तब युधिष्ठिर सब ऋषियोंको महाराज धृतराष्ट्र और द्रौपदीको और अपने बन्धु-बान्धवोंसहित भीष्म पितामह के पास आये। ओघवती नदीके परम पावन तटके समीप भीष्मको शरशय्यापर पड़े दूरसे देखते ही सब रथोंसे उतर गये। समीप आकर पहिले वहाँ बैठे महर्षियोंको प्रणाम किया, फिर भीष्मके चारों ओर बैठ गये।

तभी महामुनि वेदव्यास के साथ महाबाहु वासुदेव ने प्रवेश किया। सबके भाल से चिन्तारेखाएँ लुप्त हो गयीं। तनावग्रस्त मुखाकृतियाँ सहज हो मुस्करा उठीं। बोझिल एवं श्वासरोधक उस वातावरण में सबने निश्चिन्तता का गहन श्वास लिया। सबके आशापूरित नेत्र वैसे ही टिक गये महानुभाव श्रीकृष्ण पर जैसे अनावृष्टि-पीड़ित कृषक घनश्यामल वारिदों की ओर याचना से निहारते हैं। दक्षिणायन समाप्त होनेको आया। सूर्य उत्तर मार्ग पर आ गये। उस समय भीष्मने ध्यानमग्न होकर अपने मनको परमात्मा में लगाया। उनके आस-पास आनेको ब्राह्मण और वेदोंके ज्ञाता व्यास, देवर्षि, नारद, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शाण्डिल्य, देवल, मैत्रेय, वसिष्ठ, कौशिक (विश्वामित्र), हारीत, लोमश, दत्तात्रेय, बृहस्पति, शुक्र, च्यवन, सनत्कुमार, कपिल, वाल्मीकि, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य, परशुराम, तृणविन्दु, पिप्लाद, वायु, संवर्त, पुलह, कच, कश्यप, पुलस्त्य, ऋतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतम, गालव, धौम्य, विभाण्ड,

माण्डव्य, धौम्र, कृष्णानुभौतिक, उलूक, मार्कण्डेय, भास्करि और पूरण- ये तथा और भी बहुत-से सौभाग्यशाली मुनि, जो श्रद्धा, शम, दम आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, भीष्मको घेरे हुए थे। इन ऋषियोंके बीचमें भीष्म ग्रहोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। शरशय्यापर पड़े-ही-पड़े वे हाथ जोड़कर पवित्र भावसे श्रीकृष्णका ध्यान करने लगे।

भीष्म बोले, मैं जानता हूं माते हस्तिनापुर अब चहुं ओर से सुरक्षित हो गया है और अब मैं अपने शरीर को त्याग सकता हूं किन्तु मैं वासुदेव की प्रतीक्षा कर रहा हूं माते। मैं चाहता हूं कि जब मैं इस शरीर को त्यागुं तब मेरी दृष्टि उनके मुखडे पर रहे। मैं स्वर्गलोक के लिये पृथ्वी से यही उपहार लेकर जाना चाहता हूं माते। इतने में कृष्ण युधिष्ठिर व अन्य सभी भाइयों को लेकर पितामह भीष्म के पास धर्मोपदेश व राजधर्म का उपदेश कराने आते है।

कृष्ण बोले, प्रणाम गंगापुत्र। भीष्म बोले, मैं जानता था कि तुम अवश्य आओगे देवकीनन्दन। तुम्हारे दर्शन ने स्नेहलेप का कार्य किया है। जैसे बालू जल को चूस लेती है, तुम्हारे दर्शन ने मेरी सारी पीडा चूस ली है। मेरी दृष्टि वर्षाकाल के धुले हुये आकाश की भांति स्वच्छ हो गई है। यादों की वो डोरियां जो बिल्कुल उलझी हुई थी वो ऐसी सुलझी है मानो कभी उलझी ही न हो। हे गिरधर, हे गोपाल, हे देवकीनन्दन मुझे तो जीते जी ही मोक्ष मिल गया।

श्रीकृष्ण भीष्म से बोले, महाराज आपको बाणोंकी चोट सहनेका जो कष्ट उठाना पड़ा इससे आपके शरीरमें पीड़ा तो नहीं हो रही है? क्योंकि मानसिक दु:ख से शारीरिक दु:ख अधिक प्रबल होता है। उसे सहन करना मुश्किल हो जाता है। शरीरमें एक छोटा-सा काँटा भी चुभ जाय तो वह बड़ा कष्ट देता है; फिर जो बाणोंके समूहपर ही सो रहा है, उस आपके शरीरकी पीड़ाके विषयमें तो कहना ही क्या है? प्राणियोंके जन्म और मरण होते ही रहते हैं; अत: इस कष्टको दैवका विधान समझकर आप घबराते न होंगे। आप तो देवताओंको भी उपदेश देनेकी शक्ति रखते हैं; आपका ज्ञान सबसे बड़ा है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ आपकी आँखोंके सामने हैं। प्राणियोंका संहार कब होता है, धर्मका क्या फल है और कब उसका उदय होता है? ये सारी बातें आपको ज्ञात है; क्योंकि आप धर्मके भाण्डार हैं। आप एक समृद्धिशाली राज्यके अधिकारी थे, आपके शरीरमें न तो कोई कमी थी, न किसी तरहका रोग था; आप पूर्ण स्वस्थ हैं और अखण्ड ब्रह्मचारी हैं। तीनों लोकोंमें आप जैसा सत्यवादी, धर्मपरायण, शूरवीर तथा महापराक्रमी कोई नहीं है। बाणोंकी शय्यापर सोकर अपने तपोबलसे शरीरके लिये स्वभावसिद्ध मृत्युको रोक देना सफल है। सत्य, तप, दान और यज्ञके आचरणमें, वेद, धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्रके ज्ञानमें और कोमलताका बर्ताव, बाहर-भीतरकी शुद्धि, मन और इन्द्रियोंका दमन तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका हितसाधन करनेमें मैंने आपके समान दूसरे किसी महारथी को नहीं देखा है। आप सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको अकेले ही जीत सकते हैं; इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आप गुणोंमें वसुओंसे तनिक भी कम नहीं हैं, इसलिये ब्राह्मण लोग आपको नवम वसु कहते हैं। आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं और अपनी शक्तिसे देवताओंमें भी प्रसिद्ध हैं। इस पृथ्वीपर आपके समान गुणोंसेयुक्त मनुष्य न तो मैंने कहीं देखा है और न सुना ही है। आप अपने सम्पूर्ण गुणोंके कारण देवताओंसे भी बढ़-चढ़कर हैं और अपनी तपस्यासे चराचर लोकोंकी सृष्टि करनेमें समर्थ है। ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियों और सगे-सम्बन्धियोंका नाश होनेसे बहुत दुखी हो रहे हैं। आप इनका शोक दूर कीजिये। शास्त्रोंमें चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके जो-जो धर्म बताये गये हैं, वे सब आपको विदित हैं। चारों विद्याओंमें जिन धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, चार प्रकारके होताओंके जो कर्त्तव्य हैं तथा योग और सांख्यमें जो सनातन धर्मका वर्णन है, वह सब आप व्याख्यासहित जानते हैं। देश, जाति और कुलके धर्मसे भी आप परिचित हैं। वेदोंमें कहा हुआ धर्म और शिष्ट पुरुषोंका बताया हुआ सदाचार भी आपसे अज्ञात नहीं है। इतिहास और पुराणोंके अर्थ आपको पूर्ण रूपसे ज्ञात हैं। धर्मशास्त्र तो सदा आपके

हृदयमें स्थित रहते हैं। संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। युधिष्ठिरके हृदयमें जो शोक उमड़ उठा है, उसे आप अपनी बुद्धिसे शान्त कीजिये।

भीष्मने श्रीकृष्णकी स्तुति की और कहा, सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारण भूत भगवान श्रीकृष्ण। आपको नमस्कार है। हृषीकेश। आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले और आप ही सबके संहारकर्ता हैं। आप किसीसे परास्त नहीं होते। यह विश्व आपकी ही रचना है, आप ही इसके आत्मा और आप ही इसकी उत्पत्तिके स्थान हैं। आप पाँचों भूतोंसे परे और प्राणियोंके लिये मोक्षस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है और तीनों लोकोंसे परे विराजमान आप प्रभुको प्रणाम है। योगीश्वर। आप ही सबको शरण देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम। आपने मेरे सम्बन्धमें जो बातें कही हैं उनके ही प्रभावसे इस समय मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान आपके दिव्य भावोंको देख रहा हूँ और आपके उस सनातन स्वरूपका भी मुझे साक्षात्कार होने लगा है। आपने ही अमित तेजस्वी वायुके रूपसे ऊपरके सातों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है। आकाश आपके मस्तकसे और पृथ्वीदेवी आपके पैरोंसे व्याप्त हैं। समस्त दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य नेत्र तथा शुक्राचार्य वीर्य हैं। आपका अलसीके फूलके समान श्याम विग्रह पीताम्बर पहने रहनेसे बिजली-सहित मेघके समान जान पड़ता है। कमलके समान नेत्रोंवाले देवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और अभीष्ट गति पाना चाहता हूँ। जिससे मेरा कल्याण हो, वह उपाय आप ही सोचिये।

श्रीकृष्णने कहा, पुरुषश्रेष्ठ। मुझमें आपकी पराभक्ति हैं, इसीलिये मैंने आपको अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया है। भारत। आप मेरे भक्त तो हैं ही, आपका स्वभाव भी बहुत सरल है, साथ ही आप जितेन्द्रिय, तपस्वी, सत्यवादी, दानी तथा परम पवित्र हैं। इसलिये आप अपनी तपस्याके बलसे मेरा दर्शन पानेके अधिकारी हैं। आपकी सेवाके लिये वे दिव्यलोक प्रस्तुत हैं, जहाँ जाकर फिर इस लोकमें नहीं आना पड़ता। अब आपके जीवनके कुल छप्पन दिन शेष हैं, इसके बाद आप इस शरीरका त्याग करके अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप उत्तम लोकोंमें जायँगे। ये देवता और वसु विमानोंमें बैठकर आकाशमें अदृश्यरूपसे रहते हुए उत्तरायण सूर्य होनेपर आपके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ज्ञानी पुरुष जिन लोकोंमें जाकर फिर इस संसारमें नहीं आते, आप भी वहीं जाइयेगा। वीरवर। इस लोकसे आपके चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; अत: ये सब लोग धर्मका विवेचन करानेके लिये आपके पास आये हैं।

कृष्ण बोले, धर्मराज मानते हैं कि राज्य के लोभ के कारण वे अपने भाई बंधुओं के नाश के निमित्त बने। वे बहुत लज्जित हैं। वे आपसे भी डरते है; और शाप से भी। इसीसे आपके निकट नहीं आ रहे।

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, जैसे दान, अध्ययन और तप ब्राह्मण का धर्म है, उसी प्रकार समरभूमि में शत्रुओं के शरीर को मार गिराना, क्षत्रिय का धर्म है। जो असत्य के मार्ग पर चलनेवाले पिता, दादा, भाई, गुरुजन, संबंधी तथा बंधु-बांधवों को संग्राम में मार डालता है, वह धर्म का ही प्रतिपादन करता है। जो क्षत्रिय, धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले पापाचारी गुरुजनों का युद्ध में वध करता है, वही धर्म को जानता है। लोभवश सनातन धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले स्वजनों को जो क्षत्रिय युद्ध में मार गिराता है, वही निश्चित रूप से धर्म को जानता है। संग्राम में शत्रु के ललकारने पर क्षत्रिय को सदा ही युद्ध के लिए उद्यत रहना चाहिए। मनु ने कहा है कि युद्ध क्षत्रिय के लिए धर्म का पोषक, स्वर्ग प्राप्ति का साधन और लोक में यश फैलाने का माध्यम है।

युधिष्ठिर की आँखों में अश्रु आ गए। उन्होंने पितामह के दोनों चरण पकड़ लिए, मेरी बुद्धि यह सब स्वीकार करती है। मैंने अपना कर्त्तव्य मानकर युद्ध किया भी है; किंतु मेरे मन की खिन्नता नहीं जाती।

भीष्म बोले, उसे चाहिए कि वह अपने प्रिय बंधुओं के हित में नहीं, जनहित में कार्य करे। जो अपराधियों को दंड देने में

संकोच नहीं करता और सदा धैर्य रखता है, उस राजा को कभी कोई भय नहीं होता।

युधिष्ठिर बोले, आप ठीक कहते हैं पितामह। किंतु मेरे मन में अनेक शंकाएँ हैं। मैंने अपने लोभ में अपने भाई बंधुओं को नष्ट करवा दिया। आप सोचिए, मैंने छल से आपका वध किया, अपने सहोदर महावीर कर्ण को भी मरवा दिया।

भीष्म बोले, युधिष्ठिर। सोचो मेरे पुत्र। इसी प्रकार मैं भी सदा दोनों पक्षों का हित चाहने के कारण, दोनों ही ओर से कष्ट पाता रहा हूँ। दोनों की रक्षा करने का प्रयत्न करता रहा हूँ। परिणाम तुम्हारे सामने है। तुमने क्या छल किया पुत्र। छल तो मैंने अपने साथ किया। अपने प्राण तुम्हें सौंप दिए और दुर्योधन के पक्ष से युद्ध करने लगा। युद्ध के पहले ही दिन से तुम भी जानते थे और अर्जुन भी कि शिखंडी के सामने आने पर मैं बाण नहीं चलाऊँगा, फिर भी तुम लोग दस दिनों तक शिखंडी से मेरी रक्षा करते रहे। तुम्हारे स्थान पर दुर्योधन होता तो मैं पहले ही दिन इस स्थिति में पहुँच गया होता। उन्होंने युधिष्ठिर की ओर देखा, इसे छल कहते हो तुम? वे रुके, यदि मैंने पांडवों और धार्तराष्ट्रों दोनों को ही अपना स्वजन न माना होता, केवल धर्म का पक्ष लिया होता, तो कदाचित इतना बड़ा नरसंहार न होता।

भीष्म पितामह बोले, हे जगदीश्वर। आज आपकी बात सुनकर मैं आनन्दनिमग्न हो गया हूँ। आपके समक्ष मैं क्या कहूँगा। आप ही वेदरूप वाणीमें स्थित है। जो मनुष्य देवराज इन्द्रके निकट देवलोकका वृत्तान्त बतानेका साहस कर सके, वही आपके सामने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी बात कह सकता है। मधुसूदन। इन बाणोंके गड़नेसे जो कष्ट हो रहा है, उससे मेरे मनमें बड़ी वेदना है; सारा शरीर पीड़ाके मारे शिथिल हो गया है। बुद्धि काम नहीं देती। अब मुझमें कुछ भी कहनेकी प्रतिभा नहीं है। विष और आगके समान ये बाण मुझे निरन्तर पीड़ा दे रहे हैं। बल कम होता जा रहा है। प्राण निकलनेको उतावले हो रहे हैं। कमजोरीके कारण जीभ तालूमें सट जाती है; ऐसी दशामें में कैसे बोल सकता हूँ। भगवन्। आप मुझपर प्रसन्न होइये। क्षमा कीजिये, मैं कुछ बोल नहीं सकता। आपके पास धर्मोपदेश करते समय बृहस्पतिको भी हिचक हो सकती है, मेरी तो बिसात ही क्या है? मुझे न दिशाओंका ज्ञान है, न आकाश और पृथ्वीका ही भान हो रहा है। केवल आपकी शक्तिसे जी रहा हूँ। इसलिये आप ही जिसमें धर्मराजका हित हो, वह बात बताइये; क्योंकि आप शास्त्रोंके भी शास्त्र हैं। श्रीकृष्ण। आप जगत्के कर्ता और सनातन पुरुष हैं, आपके रहते मेरे-जैसा कोई भी मनुष्य कैसे उपदेश कर सकता है? क्या गुरुके होते हुए शिष्य उपदेश देनेका अधिकारी है?

श्रीकृष्णने कहा, गङ्गानन्दन। आपने जो बात कही है, वह सर्वथा आपके योग्य है; क्योंकि आप सब विषयोंके ज्ञाता हैं, इसके सिवा बाणोंके प्रहारसे होनेवाले कष्टके विषयमें जो कहा है, उसके लिये मैं प्रसन्न होकर आपको वर देता हूँ; उसे स्वीकार कीजिये। अबसे आपको न ग्लानि होगी न मूर्च्छा, न दाह होगा न रोग। भूख और प्यासका कष्ट भी जाता रहेगा। आपके अन्त:करणमें सब प्रकारके ज्ञान भासित होंगे। आपकी बुद्धि किसी भी विषयमें कुण्ठित न होगी। मन सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहेगा। उसपर रजोगुण और तमोगुणका असर न होगा। आप जिस किसी धर्म या अर्थयुक्त विषयका चिन्तन करेंगे, उसमें आपकी बुद्धि सफलतापूर्वक आगे बढ़ती जायगी। आप दिव्य दृष्टि पाकर स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज इन चारों प्रकारके प्राणियोंको देख सकेंगे और अपनी ज्ञानदृष्टिसे संसारबन्धनमें पड़नेवाले जीवोंका भी साक्षात्कार कर सकेंगे।

कृष्ण बोले, यही तो मैं चाहता था गंगापुत्र और अब मैं यह चाहता हूँ कि आप अपने पौत्र युधिष्ठिर को अन्तिम शिक्षा दीजिये। भीष्म बोले, हे ओंकार तुम्हारे होते हुये शिक्षा देनेवाला मैं कौन? कृष्ण बोले, नहीं पितामह। मेरे पास ज्ञान है पर अनुभव नहीं है। अपना अनुभव देकर इन्हे धन्य कीजिये।

तब युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा, मधुसूदन। आपके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो पितामहसे प्रश्न कर सके।

हमलोगोंमेंतो आप ही सबसे बड़े धर्मज्ञ हैं। श्रीकृष्णने भीष्मसे पूछा, आप स्वस्थ्य है ना। आपकी बुद्धिका विवेक जाग्रत हो गया ना। आपके हृदयमें सब प्रकारके ज्ञान भासित हो रहे हैं न? भीष्मने कहा, वासुदेव। मेरे शरीरकी जलन, मनका मोह, थकावट, विकलता, शोक और रोग ये सब आपकी कृपासे तत्काल दूर हो गये थे। अब मैं हाथपर रक्खे हुए फलकी भाँति भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालकी बातें स्पष्ट देख रहा हूँ। वेदोंमें जो धर्म बताये गये हैं तथा वेदान्तद्वारा जिनको जाना गया है, उन सब धर्मोंको मैं आपके वरदानके प्रभावसे जानता हूँ। जनार्दन। शिष्ट पुरुषोंने जिस धर्मका उपदेश किया है, वह भी मेरे मनमें स्फुरित हो रहा है; इस समय सम्पूर्ण राजधर्मोंको भी मैं जानता हूँ। जिस विषयमें जो कुछ भी कहने योग्य बाते हैं, उन सबका मैं वर्णन करूँगा। आपकी कृपासे अब मेरे मनमें कल्याणमयी बुद्धिका प्रवेश हुआ है। आपके ध्यानसे मेरा बल बढ़ गया है। आपके प्रसादसे मुझमें अब कल्याणकारी उपदेश देनेकी शक्ति हो गयी है; तो भी मैं पूछता हूँ कि आप स्वयं ही युधिष्ठिरको कल्याणका उपदेश क्यों नहीं देते?

श्रीकृष्णने कहा, यश और श्रेयकी जड़ मैं ही हूँ। संसारमें जो भी सत्-असत् पदार्थ हैं, वे सब मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं। अत: मैं तो यशसे परिपूर्ण हूँ ही। अब आपके यशको बढ़ाना है, इसीलिये मैंने आपको प्रचुर बुद्धि प्रदान की है। राजन्। जबतक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तबतक सम्पूर्ण लोकोंमें आपकी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी। युधिष्ठिरके पूछनेपर आप जो कुछ भी उपदेश करेंगे, वह वैदिक सिद्धान्तकी भाँति इस भूमण्डलमें मान्य होगा। जो आपके उपदेशको प्रमाण मानकर उसे अपने जीवनमें उतारेगा, वह मृत्युके बाद सब प्रकारके पुण्योंका फल प्राप्त करेगा। संसारमें आपके सुयशका अधिकाधिक विस्तार कैसे हो, यह सोचकर ही मैंने आपको दिव्य बुद्धि प्रदान की है। राजन्। ये मरनेसे बचे हुए भूपाल आपके पास धर्मकी जिज्ञासासे बैठे हैं, आप इन्हें उपदेश कीजिये। मैं आयुमें युधिष्ठिर से छोटा हूँ मेरी बातका उनपर कोई असर नहीं होगा। आपकी अवस्था सबसे बड़ी है, आपने शास्त्रोंका अध्ययन और सदाचारका पालन किया है, साथ ही राजधर्म तथा अन्य धर्मोंके भी विशेषज्ञ हैं। जन्मसे लेकर आजतक किसीने भी आपमें कोई दोष नहीं देखा है। सब राजा इस बातको स्वीकार करते हैं कि आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं। आपने सदा देवताओं और ऋषियोंकी उपासना की है, इसलिये आपको अवश्य ही धर्मका उपदेश करना चाहिये। मनीषी पुरुषोंने यह धर्म बताया है कि विद्वानसे जब प्रश्न किया जाय तो उसको उचित है कि सुननेकी इच्छावाले लोगोंसे धर्मका उपदेश करे। <u>जो प्रश्न करनेपर भी उपदेश नहीं देता, उसको बड़ा दोष लगता है;</u> अत: जिज्ञासुभावसे पूछनेपर आप इन लोगोंको अवश्य ही उपदेश करें।

भीष्म बोले, गोविन्द। आपके प्रसादसे इस समय मेरा मन स्थिर है और वाणीमें भी बल आ गया है। अब धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझसे धर्मविषयक प्रश्न करें; इससे मुझे प्रसन्नता होगी और मैं सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश कर सकूँगा। जिनमें धैर्य, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धर्म, ओज और तेज सदा वर्तमान रहते हैं, जो सम्बन्धियों, अतिथियों, सेवकों तथा शरणागतोंका सदा सम्मान करते हैं, सत्य, दान, तप, शूरता, शान्ति, दक्षता तथा स्थिरता आदि समस्त सद्गुण जिनमें सदा मौजूद रहते हैं, जो कामनासे, क्रोधसे, भयसे अथवा किसी स्वार्थके लोभसे भी कभी अधर्म नहीं करते, यज्ञ, वेदाध्ययन और धर्ममें जिनकी सदा प्रवृत्ति रहती है, जिन्होंने शास्त्रोंका रहस्य श्रवण किया है तथा जो नित्य शान्त रहते हैं, वे पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर ही मुझसे प्रश्न करें।

श्रीकृष्णने कहा, राजन्। धर्मराज। युधिष्ठिरको आपके निकट आनेमें संकोच हो रहा है, ये अपनेको अपराधी मानकर भयभीत हैं। जो पूज्य थे, आदरके पात्र थे, जिनकी इनमें भक्ति थी तथा जो गुरुजन, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव एवं अर्घ्य पानेयोग्य थे, उन सबको इन्होंने बाणोंसे विदीर्ण किया है; इसी डरसे आपके पास नहीं आते हैं।

भीष्म बोले, तनिक मेरे आंसू पोंछ दो वासुदेव कि मैं हस्तिनापुर नरेश पांडु पुत्र चक्रवर्ती महाराज धर्मराज युधिष्ठिर के

दर्शन तो कर सकूं। कृष्ण बोले, पितामह। भीष्म बोले, हस्तिनापुर नरेश की जय हो और अब मुझे स्वर्गलोक की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दो महाराज। जो नहीं देखना था वो भी देखा और जो देखने के लिये जी रहा था वो भी देख लिया। अर्जुन रोने लगा और बोला नहीं पितामह मैं आपको जाने नही दूंगा पितामह। भीष्म बोले, तुमने ऐसे बाण नहीं मारे वत्स जिनके घाव भर जाये। यह घाव तो मेरे सारे जीवन की कमाई है वत्स जीवन की कमाई। देख अब मुझे जाने दे, हठ ना कर वत्स और मेरी एक सेवा कर दे वत्स। मेरे माथे पर मेरी मातृभूमि की थोडी सी मिट्टी लगा दे। अर्जुन बोला, नहीं। नहीं मैं आपको जाने नहीं दूंगा। भीष्म बोले, अरे वत्स रोओ मत। अरे यह तो बड़े हर्ष की घडी है। तेरा पितामह आज अपनी मातृभूमि के ऋण से मुक्त हुआ है। हे पुत्र, हे राजन मैं पराजित यौद्धा भी हूं और एक पराजित नागरिक भी। मुझसे यह सीखो पुत्र एक अच्छे योद्धा को, एक अच्छे नागरिक को क्या नहीं करना चाहिये? विदुर ने मुझसे बार-बार कहा है, बार-बार मेरे सामने गिडगिडाया हे तातश्री हस्तिनापुर के राजसिंहासन की ओर न देखिये। हस्तिनापुर की ओर देखिये क्योंकि यदि हस्तिनापुर ही नही होगा तो यह राज सिंहासन कहां से होगा? किन्तु अपनी प्रतिज्ञा की मर्यादा में जकडा मैं हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठे हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र में अपने पिता की छवि देखता रहा। देश से बडा कोई भी नही होता पुत्र, कोई नहीं, न योद्धा, न पिता, न पुत्र और न कोई प्रतिज्ञा। मेरी अपनी प्रतिज्ञा मुझे देश के हितों से दूर करती चली गई और अपनी उस प्रतिज्ञा को अपनी छाती से लगाये रहा और मैं देश को सर्वनाश के मार्ग की ओर जाते देखता रहा। अपनी प्रतिज्ञा के प्रति मेरी निष्ठा मुझे देश द्रोह के मार्ग पर ले गई पुत्र। बाणों की शैया पर लेटा यह एक देशद्रोही है।

श्रीकृष्णने कहा- तात। आप सब विषयोंके ज्ञाता हैं, अत: आपकी बात आपके ही योग्य है। आपने बाणोंके लगनेसे होनेवाली वेदनाकी बाधा ठीक बतलायी है। मैं वरदान देता हूँ- इसे आप अस्वीकार मत करना। अब आपको न वेदना होगी, न दाह। मूर्छा, पीड़ा तथा क्षुधा-पिपासाका कष्ट भी आपको नहीं होगा। आपकी बुद्धि सम्पूर्ण जागृत रहेगी। सब प्रकारके ज्ञान आपके अन्त:करणमें प्रकाशित रहेंगे। आप जो कुछ कहना-सोचना चाहेंगे, आपकी मेधा कहीं कुण्ठित नहीं होगी। आपका चित्त शुद्ध सत्त्वगुणमें स्थित रहेगा। रजस-तमसकी छाया भी वहाँ नहीं पड़ेगी। आप बन्धन तथा मोक्षका भी दिव्य दृष्टिसे साक्षात्कार कर सकेंगे। पाण्डुनन्दन धर्मराज युधिष्ठिर के आग्रह पर पितामह ने शान्त एवं सुस्थिर स्वर में धर्म-मीमांसा प्रारम्भ की। जनसमूह शान्त हो सुन रहा था।

३) द्रौपदीकी व्यंग्यपूर्ण हँसी- श्रीकृष्णकी प्रेरणासे द्रौपदीके साथ सभी लोग भीष्मपितामहके पास गये। वहाँ उन्होंने भीष्मपितामहके मुँहसे नाना प्रकारके इतिहास, पुराण, उपदेश सुने। उस समय उपदेशके अथसे इतितक द्रौपदी वहाँ उपस्थित थी। एक दिन उपदेशके समय ही द्रौपदीको हँसी आ गयी।

भीष्मपितामहसे वह छिपी न रही, उन्होंने द्रौपदीसे कहा, पुत्री। मैं जानता हूँ कि तुम बड़ी साध्वी, सदाचारपरायणा और मर्यादामें स्थित हो। तुम्हें अकारण हँसी नहीं आ सकती। हँसनेका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होगा। इस समय तुम्हें किस कारणसे हँसी आयी है?

पितामह ने कहा, धर्मराज जहाँ कहीं भी अन्याय हो रहा हो उसका प्रतिकार करो, अगर स्वयं में प्रतिकार करने की सामर्थ्य न हो तो उस पुरुष को वहाँ से हठ जाना चाहिए और वह सभा छोड़ देनी चाहिए। अनायास एक नारी-कण्ठ से नि:सृत दबी हुई व्यंग्यमिश्रित हँसी की ध्वनि से नीरवता भंग हो गयी। भीष्म पितामह का धर्मोपाख्यान रुक गया। अचम्भे और कौतूहल से सबकी दृष्टि गयी जहाँ से वह असमय हास्य निर्झरित हुआ था। कौन है वह धृष्टा जिसे समय-असमय, वेला-कुवेला का ज्ञान नहीं? क्रोधशून्य युधिष्ठिर के मुख पर आक्रोश छा गया। किन्तु उसने आँचल से मुख दबा लिया

एवं विनय से नेत्र झुका लिये। पितामह की दृष्टि उसी पर टिक गयी।

भीष्म बोले, क्यों वत्से। द्रुपदनन्दिनी। इस वेला अचानक हास्य कैसा?

द्रौपदी बोली, क्षमा करें पितामह। मेरा ध्यान अतीत में भोगी हुई अपनी पीड़ा की ओर था अत: आपके अभी के उपदेश मुझे अत्यन्त अप्रासंगिक प्रतीत हुए, इसलिए हँसी आ गयी किन्तु आपकी अवमानना करने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं, तात। पितामह। उपदेश सुनते-सुनते मेरा मन दूसरी जगह चला गया था। मैं सोचने लगी कि जब पितामह ऐसे तत्त्वज्ञानी हैं, तब इन्होंने दु:शासनके वस्त्र खींचते समय उसे रोका क्यों नहीं? जुआ ही क्यों नहीं बंद करा दिया, हँसी इस बातपर आयी कि उस दिन तो बार-बार एक प्रश्न पूछनेपर आपने मेरा उत्तर नहीं दिया। उस दिन आपका ज्ञान न जाने कहाँ चला गया था। आज यह उपदेश सुनकर एकाएक मुझे उस दिनकी बातें याद हो आयीं। इसीसे हँसी आ गयी।

पितामह ने स्नेह से आग्रह किया। नहीं राजपुत्री, तुमने स्पष्ट नहीं कहा कुछ। तुम उच्च कुल में जन्मी, उच्च कुल में विवाहित एक श्रेष्ठ नारी हो। कुलाचार एवं शील तुम्हारे विशिष्ट गुण हैं। तुम्हारी कोई भी प्रतिक्रिया किसी भी अवसर पर अकारण नहीं हो सकती, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। तुम्हारी स्पष्टवादिता, सत्यवादिता एवं निर्भीकता विश्वविख्यात है। कहो वत्से। संकोच छोड़कर स्पष्ट कहो, यह असामयिक हँसी तुम्हें क्यों आयी? अन्यथा यह उपस्थित जनसमूह तुम्हारी गुणशीलता पर सन्देह करेंगे। देवी। सन्देह का अवसर न दो किसी को, नि:संकोच कहो।

द्रौपदी बोली, पितामह। क्षमा करें जो यह अपराध मुझसे हुआ। किन्तु महात्मन। आज, जीवन की अन्तिम वेला में तो आप धर्माचरण एवं नैतिकता पर प्रवचन कर रहे हैं। किन्तु जब भरी राजसभा में स्वर्गीय महाराज पाण्डु की इसी उच्चवंशीय, शीलयुक्त, साध्वी पुत्रवधू के साथ अत्यन्त निम्न कोटि का अधर्मपूर्ण, अनैतिक एवं निर्लज्जतापूर्ण व्यवहार हुआ तब आपका यह धर्मज्ञान कहाँ लुप्त हो गया था? तात। आप उस राजसभा के अत्यन्त गणमान्य, महासम्मानित एवं पूज्य व्यक्ति थे। मैं कितनी आपसे आशा लगाये रही कि आप महातत्त्वज्ञानी हैं, आप धर्म की मीमांसा करके अधर्मियों से मेरी रक्षा करेंगे। मैं आपसे याचना करती रही, और आप धर्म को तिलांजलि दिये तब मौन बैठे रहे। उस अवसर पर आपकी भूमिका एवं आज के आपके उपदेश दोनों में कहीं साम्य न पा मैं विवश हो हँस दी थी। मेरा अपराध क्षमा हो धर्मप्रवर।

पांचाली सच्चे हृदय से, कातरमुख से क्षमायाचना कर उठी। भीष्म पितामह का गम्भीर मुखमण्डल एक अनोखी आभा से आलोकित हो उठा। विशाल अधमुँदे नेत्रों से अश्रुधारा बह चली।

भीष्म बोले, धन्य हो महाभारती। तुम मरणासन्न पूजनीय व्यक्ति के अधर्मपूर्ण आचरण की सही-सही टीका कर सकती हो, तुम्हारी यह सत्यवादिता, यह स्पष्टवादिता अनुपम है। ऐसा दृष्टान्त कहीं न मिलेगा पुत्री। और वत्से। तुम ज्ञान-विशारदा हो, विदुषी हो, जो तुमने मेरे आचरण में विरोधाभास, आत्मविरोध अथवा द्वैत को पकड़ लिया। किन्तु तुम्हें मेरी तब की स्थिति और अभी की स्थिति में कुछ अन्तर नहीं प्रतीत हुआ? तुम स्वयं धर्ममर्मज्ञ हो, यदि तुम मेरी तब की और अब की स्थिति पर ध्यान दो तो मेरा तब का आचरण भी धर्मयुक्त घोषित करोगी और अब का भी। याज्ञसेनी। तब मैं दुर्योधन के अन्न से जीवन-यापन कर रहा था। मेरा शरीर-धर्म उसी अन्न से निभ रहा था। मेरे तन का पोषण कौरवों के अन्नपिण्डों से हो रहा था। जब उसी अन्न से निमित रक्त मेरी धमनियों में प्रवाहित हो रहा था, तब क्या मैं उनके विरुद्ध कुछ कह सकता था? अन्नदाता के विरुद्ध कहना क्या धर्मयुक्त होता? वह क्या उत्तम दृष्टान्त होता?

भीष्मपितामहने कहा- पुत्री। उन दिनों मैं कौरवोंका अन्न खाता था; उसी अन्नसे मेरे शरीरका खून और मन बनता था, उसके प्रभावसे मेरे मन-बुद्धि दूषित हो गये थे, इसीसे मैं ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सका। अब युद्धमें अर्जुनके बाणोंके

लगनेसे मेरे शरीरका दूषित रक्त निकल गया है और कई दिनोंतक उपवास करनेके कारण मन शुद्ध हो गया। श्रीकृष्णने मेरी बुद्धिमें तत्त्वज्ञान प्रकाशित कर दिया है, इससे मैं इन प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर दे रहा हूँ। द्रौपदीका समाधान हो गया।

द्रौपदी बोली, किन्तु पितामह। आज तो आप कह रहे हैं।

भीष्म बोले, हाँ पुत्री। आज कह सकता हूँ। आज स्थिति मेरी दूसरी है। आज मैं मुक्त हूँ। स्वतन्त्र हूँ। स्वच्छन्द हूँ। मैंने दुर्योधन का अन्न अपने जीवन, अपने प्राणों से चुका दिया है। अब मुझ पर किसी का ऋण शेष नहीं। अब मैं स्वतन्त्र रूप से निष्पक्ष एवं तटस्थ भाव से धर्म की व्याख्या कर सकता हूँ। वत्से। द्रुपदसुते। देखा नहीं अर्जुन के इन असंख्य बाणों की कृपा से मेरे शरीर का वह सारा रक्त बह चुका है। अब मेरे तन में दुर्योधन के अन्न से निर्मित बिन्दु भर भी रक्त शेष नहीं। पार्थ ने मुझे उऋण कर दिया।

पांचाली के नयन सजल हो चले। क्षणभर निस्तब्धता रही। शान्तनुपुत्र महात्मा भीष्म ने कुछ दीर्घ साँसें लीं और पुन: द्रौपदी पर अपनी स्नेहसिक्त दृष्टि टिका दी।

स्पष्टवादी व्यक्ति बहुधा एकाकी रह जाता है और जीवन में उसे असंख्य कष्ट झेलने पड़ते हैं।

सजलनयना पांचाली आर्त हो रो पड़ी महापुरुष के उद्‌गारों से।

लौटकर वहाँ से वह फूट-फूटकर रोयी। जलहीन मीन की भाँति छटपटाती हुई। शोकाकुल द्रौपदी का जैसे रोम-रोम विकल हो उठा था। सर्वप्रथम वज्रपात हुआ तो महामहिम भीष्म पितामह पर ही। उसकी अन्तरात्मा उसे रह-रह कचोटती। जो दोषी थे, क्रूरकर्मा थे, वे जीवित थे, और सज्जन की क्षति हुई। अपराध क्षम्य हो पितामह। अपराध क्षम्य हो मेरा। वह बिलख रही थी, अभी और आगे क्या-क्या होगा भगवन्? मुझे निमित्त बनाकर और कितने धर्मात्माओं की आहुति चढ़ेगी? इस महासंहार में और कितने सज्जनों के प्राण जाएँगे? कहीं यह अन्त का ही तो आदि नहीं प्रभु?

४) भीष्मका युधिष्ठिर को धर्मोपदेश

शास्त्रने और सत्पुरुषोंने भी कहा है कि विद्वान पुरुषसे जब कोई विनम्रतापूर्वक पूछे तो उसे उचित अधिकारीको धर्मोपदेश करना चाहिए। अधिकारी व्यक्तिके पूछनेपर भी उपदेश न करनेवालेको बहुत दोष लगता है।

आप बोलनेकी स्थितिमें हैं। जानते हैं और इस समय दूसरा कोई आवश्यक कार्य आपको नहीं है। आपने मौन रहनेका नियम भी नहीं ले रखा है। ये ऋषि-मुनि तथा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ जिज्ञासु बनकर आए हैं। ये उपदेश-श्रवणके अधिकारी हैं। आपमें इनका आदर भाव है। ये अपने सब आवश्यक कार्योंको त्याग कर यहाँ आ बैठे हैं। सब संयमी हैं। सदाचारी हैं। इनपर विश्वास किया जा सकता है कि प्राप्त ज्ञानका सदुपयोग ही करेंगे। अत: आप इन्हें अवश्य उपदेश करें।

वक्ता कैसा होना चाहिए और श्रोतामें- जिज्ञासुमें क्या विशेषता होनी चाहिए, यह भी श्रीकृष्णने स्पष्ट कर दिया- भीष्मके लिए तो इन ज्ञान-धनकी अनुमति- इनका आदेश ही पर्याप्त था। उपदेश तो इन्हींको करना है। भीष्मके मुखसे ये बोलना चाहते हैं तो इनकी इच्छा पूर्ण हो। इन निखिल नियामकके हाथका यन्त्र बन जानेमें ही तो प्राणीका परम कल्याण है।

शरीर प्राण न रहनेपर बिखर जाता है। इसे अग्निकी आहुति बना दिया जाता है। कुछ थोड़ी अस्थियाँ बचती हैं- वे फूल सुरसरिको समर्पित कर दिये जाते हैं। जो लोग शरीरको समाधि देकर सुरक्षित रखते हैं, वे देहके आधारपर ही कल्पान्त तक आत्माको वहाँ रहनेवाला माननेवाले आसुर परम्परा में आते हैं। वे शरीरका स्मारक बनावें अथवा इसकी स्मृति सुरक्षित करें; किंतु जो श्रुति-शास्त्रमें श्रद्धा रखनेवाले हैं, श्रीकृष्णके चरणोंकी जिनके चित्तमें प्रीति है, वे जानते हैं कि शरीरके साथ उसकी स्मृतिका पूर्ण विसर्जन आवश्यक है।

पुनर्जन्म प्राणीका प्राप्य नहीं है। वह जीवका कर्म-बन्धन है। प्राणीका दौर्बल्य है। उसका उच्छेद, उससे परित्राण उद्देश्य है। मनुष्यका परम प्राप्य- चरमोद्देश्य है निर्वाण अर्थात् नाम-रूपका सर्वथा नि:शेष हो जाना। व्यक्तित्वका सर्वथा निर्मूलन। भीष्ममें कहाँ अपने नामका मोह था। रूपका-शरीरका मोह होता तो वे शरशय्या स्वीकार करते? किन्तु श्रीकृष्णको अपनी सृष्टिके सुमङ्गलकी भी चिन्ता करनी रहती है। ये सर्वेश्वर सभी प्राणियोंके कल्याणके लिए जैसे समय-समयपर स्वयं अवतरित होते हैं, वैसे ही अपने भुवन-पावन भक्तोंका यश-विस्तार भी करते रहते हैं। इनका अपना चरित, अपनी लीलाका स्मरण जहाँ जीवका मङ्गल करता है, इनसे अभिन्न इनके भक्तोंका स्मरण भी जीवको इनके ही प्रति तो समर्पित करता है।

यशेच्छा बन्धन तो तब है, जब वह अपने हृदयमें हो। भीष्म अत्यधिक भाव-विभोर हो गये। कई क्षणों तक वे मौन बने रहे। उनके बाण-विद्ध शरीरमें रोमाञ्च लक्षित नहीं हो सकता था; किंतु उनके अपलक नेत्रोंका अश्रु-प्रवाह उनके कपोलोंको आर्द्र कर रहा था। श्रीकृष्णने आगे बढ़कर अपने पटुकेसे उनके अश्रु पोंछ दिये। भीष्मको जो सुख मिला, उसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती।

ये सर्वेश्वर सौन्दर्यधन श्रीकृष्ण भीष्मने भरित कण्ठसे कहा- युधिष्ठिर। तुमने नहीं देखा कि मैं अपने सबसे तीक्ष्ण बाण पूरी शक्तिसे इनके श्रीविग्रहपर ही मारता रहा और ये मेरे आराध्य हैं, इसमें तो दुर्योधनको भी सन्देह नहीं था। संग्राममें शर ही सुमन होते हैं और उनसे ही सम्मुख आये सम्मान्यकी सम्यक पूजा उचित है। तुमने कोई अपराध या अनुचित कार्य नहीं किया। जैसे ये मेरे सर्वस्व मेरी उस अर्चासे सुप्रसन्न हैं, मैं भी तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम समोंच मत करो। तुम्हें जो पूछना हो, पूछो।

युधिष्ठिरने पूछना प्रारम्भ किया और उनके प्रश्नोंका उत्तर भीष्म विस्तारसे, नाना कथा, आख्यान, उदाहरण देकर विस्तारपूर्वक देने लगे। यह क्रम पूरे पचपन दिन चलता रहा। प्रात:काल स्नान-सन्ध्या करके सब ऋषि-मुनि पाण्डव तथा श्रीकृष्ण आ जाते थे और सायंकाल वहाँसे विदा हुआ करते थे।

युधिष्ठिरके प्रश्नोंके उत्तर-क्रममें राजोचित शिष्टाचारके वर्णनसे भीष्मने प्रारम्भ किया। राजाका नीतिपूर्ण व्यवहार, राज्य-शासनके साधन, नीतिशास्त्र, चारों वर्णों एवं आश्रमोंके धर्म, साधारण धर्म, राजधर्म तथा उसमें सभी आश्रमोंके धर्मोंका समावेश, राजाकी आवश्यकता, राजाके प्रधान कर्तव्य, दण्डनीतिका प्राधान्य, राजाके विशेष गुण, राजाके लिए पुरोहितकी आवश्यकता, विविध प्रकारके लोगोंसे राजाके व्यवहारका आदर्श, आपद्धर्म, मित्र-अमित्रके लक्षण, मन्त्रीकी जाँच, सभासदोंके लक्षण, राजाकी व्यवहार-नीति, नगरका आदर्श, राष्ट्र-रक्षा तथा उसकी उन्नतिके उपाय कर लेनेका ढंग, धर्म-पालनके लाभ, युद्धनीति, युद्धमें हुई हिंसाका प्रायश्चित्त, युद्धमें मरनेवालोंकी गति, सैन्य-सञ्चालनरीति, योद्धाके लक्षण, विजयके चिन्ह, असहाय स्थितिमें पड़े शासकका कर्त्तव्य, कूटनीति आदि राजधर्मोंका विस्तारपूर्वक भीष्मने पहिले अनेक दृष्टान्त देकर वर्णन किया।

इसके अनन्तर माता-पिता-गुरुकी सेवा, सत्यासत्य-निर्णय दु:खोंसे छूटनेके उपाय, मनुष्य-स्वभावकी पहिचान, शील-निरूपण, शरणागत-रक्षा, लोभके दोष, शिष्ट पुरुषके लक्षण, अज्ञानके दोष, इन्द्रिय-दमन, तप-सत्यकी महिमा, काम-क्रोधके दोष, पाप और उनके प्रायश्चित्त, मित्र-लक्षण आदि धर्मोंका निरूपण हुआ।

कल्याण-कामी पुरुषके कर्त्तव्य, सुख-दु:खका विवेचन, त्यागकी महिमा, सन्तके आचरण, संसारके मूल तत्त्वोंका प्रसंख्यान, जीवकी नित्यता, आचार-विधि, अध्यात्म-ज्ञान, ध्यानयोग, जपका माहात्म्य, परमात्म-तत्वका निरूपण, आत्मदर्शनके साधनका बहुत गम्भीर निरूपण किया भीष्मने। अन्तमें भीष्मने भगवान नारायणसे विश्व की उत्पत्तिका वर्णन करके उन श्रीहरिके वाराह, वामनादि अवतारोंका चरित सुनाया। सदाचारका वर्णन किया। दोषोंसे छूटनेका उपाय, ज्ञान,

वैराग्य, ब्रह्मचर्य, दम, तपका वर्णन करके कालकी महिमा कही। कालका स्वरूप, सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रलयका वर्णन किया।

योग, ध्यान, नाना प्रकारकी धारणाएँ, ज्ञान द्वारा मोक्ष, ज्ञानके साधन, कर्म-ज्ञानका अन्तर, बतलाते हुए विस्तारसे मोक्ष-पुरुषार्थके सभी साधनोंका निरूपण किया।

भीष्मके उपदेशमें स्त्रीधर्म, राजधर्म, वर्णाश्रमधर्म, आपद्धर्म तथा विभिन्न परिस्थितियोंमें पड़े सभी लोगोंके धर्मोंका यथावत वर्णन दृष्टान्तसहित विस्तारसे आ गया। धर्म-पुरुषार्थका कोई अङ्ग छूटा नहीं।

वर्णाश्रमधर्मके निरूपणमें सबके अर्थ एवं कामका वर्णन भी आ गया; क्योंकि सनातन धर्म धर्मानुकूल ही अर्थोपार्जन तथा इन्द्रिय-भोगको श्रेयस्कर मानता है। धर्म पुरुषार्थ ही अर्थ-कामका नियामक है। धर्मको त्यागकर अर्थ एवं कामका अर्जन-उपयोग सर्वथा ही पतनका हेतु माना गया है।

भीष्मने प्रवृत्ति-प्रधान तथा निवृत्ति-प्रधान दोनों प्रकारके धर्मोंका पूरा निरूपण किया। निवृत्ति प्रधान धर्मकी श्रेष्ठता स्वीकार की; क्योंकि ब्रह्मज्ञानमें सबका अधिकार है और मोक्ष ही मनुष्यका परम प्राप्य- अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। मोक्ष-धर्मके निरूपणमें संन्यासीके स्वभाव, आचरण, धर्मका विस्तारसे वर्णन किया।

ब्राह्मी स्थितिके वर्णनमें भीष्मने वृत्रासुरकी कथा सुनाई। उसके विपरीत कर्म-प्रवृत्तिमें लगनेसे होनेवाली गतिका वर्णन करते हुए प्रजापति दक्षके यज्ञका ध्वंस सुनाया। मोक्षके विस्तारसे निरूपणमें अनेक तत्त्वज्ञोंके उपदेश-उद्धृत किये।

सांख्य, योग, क्षर-अक्षर विवेक, आत्मा-अनात्मा-विवेक, इनका वर्णन हुए बिना तो तत्त्व-ज्ञानका निरूपण ही सम्भव नहीं था। मोक्षके साधनोंका वर्णन करते हुए भगवद्भक्तिका वर्णन किया भीष्मजीने। भगवान नारायणके स्वरूप, उनके वैकुण्ठ, श्वेत द्वीप आदि धामोंका वर्णन करके अन्तमें श्रीकृष्णकी महिमाका बहुत विस्तारसे वर्णन किया।

भीष्म बोले, जैसे दान, अध्ययन और तप यह ब्राह्मणोंका धर्म है, उसी प्रकार युद्धमें विपक्षीके शरीरको मार गिराना भी क्षत्रियोंके लिये धर्म ही है। ताऊ, चाचा, बाबा, भाई, गुरु, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी क्यों न हो, यदि वह असत्यके मार्गपर चल रहा है तो युद्धमें उसे मार डालना धर्म ही है। गुरु भी यदि लोभसे फँसकर पापका साथ देता हो और अपने नियत आचारका त्याग कर चुका हो तो उसे जो युद्धमें मार डालता है, वह क्षत्रिय धर्मज्ञ ही है। जो लोभवश धर्मकी सनातन मर्यादापर दृष्टि नहीं रखता, उसको युद्धमें मारनेवाले क्षत्रियको धर्मज्ञ ही समझना चाहिये। युद्धमें खूनकी नदी बहा देनेवाला क्षत्रिय धर्मज्ञ ही माना जाता है। संग्राममें शत्रुके ललकारनेपर क्षत्रियके लिये लड़ना अनिवार्य हो जाता है। मनुने कहा है कि युद्ध क्षत्रियके लिये धर्मका पोषक, स्वर्ग प्रदान करनेवाला और लोकमें यश फैलानेवाला है।

हस्तिनापुर के विभाजन का कारण मैं हूं। लाक्षागृह का उत्तरदायी मैं हूं। द्रौपदी का वस्त्रहरण करनेवाले ये ही मेरे हाथ है, जिसे मेरे अर्जुन के बाणों ने इस देश की भूमि में ठोक दिया। हर बाण मुझसे कह रहा है, हर घाव मुझसे कह रहा है कि इस भूमि को पहचान। हे गंगापुत्र देवव्रत अपनी इस भूमि को पहिचान, अपने पिता की छवि के लिये तुमने इसे छोड दिया। हे पुत्र मैं वो क्षत्रिय हूं जो अपनी प्रतिज्ञा का दास बनकर जिया। मेरे साथ मेरी मातृभूमि के यह अपमान का अध्याय भी समाप्त हो जायेगा। हे पुत्र मेरे श्वेत वस्त्रोंपर कहीं न कहीं मेरे अहं का धब्बा लगा हुआ है जिसे पश्चाताप का कोई आंसू नहीं पौंछ सकता इसलिये हे पुत्र तुम भी कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करना जो कटार बनकर काट कर तुम्हे अपने देश से अलग कर दे और यदि तुमने ऐसी भूल की ना पुत्र तो तुम्हारा अन्त भी बाणों की ऐसी शय्यापर ही होगा क्योंकि जब जब कोई देवव्रत देश के हितों का मार्ग रोककर खडा होगा तब तब उसे बाणों की शैय्या पर लिटाने के लिये कोई न कोई अर्जुन अवश्य सामने आयेगा। यही तो राजनीति का मूलतत्व है। हे पुत्र देश के हित से बढकर तो राजा का कोई हित हो ही नहीं

सकता। हे पुत्र यदि तुम्हे यह दिखाई दे कि तुम्हारा ऐसा कोई हित है तो समझ लो कि तुम भी राजधर्म से भटक गये हो। देश राजा के लिये नहीं होता पुत्र। राजा देश के लिये होता है और वो राजा कभी देश के लिये शुभ नहीं होता पुत्र जो अपने देश के आर्थिक और सामाजिक रोगों के लिये अपने अतीत को उत्तरदायी ठहराकर सन्तुष्ट हो जाये। यदि अतीत ने तुमे एक निर्बल और सामाजिक, आर्थिक ढांचा दिया है तो उसे सुधारो, उसे बदलो पुत्र क्योंकि अतीत तो यों भी वर्तमान की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता क्योंकि यदि अतीत स्वस्थ होता और उसमें देश को प्रगति के मार्ग की ओर ले जाने की शक्ति होती तो फिर परिवर्तन ही क्यों होगा? और एक बात अच्छी तरह से सुन लो पुत्र किसी समाज की कुशलता की सही कसौटी यही है कि जहां नारी जाति का मान होता है या उसका अपमान किया जाता है। देश की सीमा माता की वस्त्र की भांति आदरणीय है। उसकी सदैव रक्षा करना पुत्र।

युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और भीष्मको प्रणाम किया और पूछा, पितामह। राजाका धर्म श्रेष्ठ हैं; अत: आप मुझे राजधर्मोंको विस्तारसे बताइये। जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समावेश हो। समस्त संसारको मर्यादाके भीतर रखनेके लिये राजधर्म रस्सीका काम देता है। प्राचीन राजर्षियोंने जिसका सेवन किया है, उस राजधर्ममें यदि राजा मोहवश प्रमाद कर बैठे तो संसारकी व्यवस्था ही गड़बड़ा जायेगी और सब लोक व्याकुल हो जायँगे। जैसे सूर्य उदय होते ही अन्ध:कार का नाश कर देता है उसी प्रकार राजधर्म मनुष्योंकी अशुभ गतिका निवारण करता है। कृष्ण बोले, इन्हे धर्म और राजधर्म के विषय में भी कुछ बताये पितामह।

५) भीष्म का युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश

भीष्म बोले, धर्म विधियों और औपचारिकताओं का अधीन नहीं है पुत्र युधिष्ठिर। धर्म अपने कर्त्तव्यों और दूसरों के अधिकारों के संतुलन का नाम है इसलिये धर्म का पालन अवश्य करो पुत्र। राजधर्म भी यही है किन्तु राजा का दायित्व नागरिक के दायित्व से कही अधिक होता है। यदि कोई परिस्थिति देश के विभाजन की मांग कर रही हो तो कुरुक्षेत्र में आजाओ किन्तु देश का विभाजन कभी मत होने दो। क्या तुम पांचो भाई माता कुन्ती को काटकर आपस में बांट सकते हो? यदि नहीं तो फिर मातृभूमि का विभाजन कैसे सम्भव हो सकता है। मैं यह पाप कर चुका हूं इसीलिये यह सब कह रहा हूं। युद्ध को टालने के लिये मैंने अपने देश के विभाजन तक को स्वीकार कर लिया किन्तु तुम यह कभी न करना पुत्र युधिष्ठिर।

राजाके लिये सबसे पहले प्रजाका रञ्जन करना- उसे प्रसन्न रखना आवश्यक है। इसके लिये वह देवताओंका विधिवत् पूजन और ब्राह्मणोंका पूर्ण सम्मान करे; क्योंकि देवताओं और ब्राह्मणोंके पूजनसे वह धर्मके ऋणसे मुक्त होता है और सारी प्रजा उसका आदर करती है। पुत्र। तुम विजयके लिये सदा पुरुषार्थ करते रहना; पुरुषार्थके बिना केवल दैवसे राजाओंका काम नहीं सिद्ध होता। यद्यपि कार्यकी सिद्धिमें दैव और पुरुषार्थ दोनों साधारण कारण हैं, तथापि मैं इनमेंसे पुरुषार्थको ही श्रेष्ठ मानता हूँ। यदि आरम्भ किया हुआ काम खराब हो जाय तो इसके लिये मनमें दु:ख न मानना, अपनेको सदा प्रयत्नमें ही लगाये रखना- यही राजाओंकी प्रधान नीति है।

सत्यके सिवा दूसरी कोई भी चीज राजाओंको सिद्धि प्रदान करनेवाली नहीं है, सत्यपरायण राजा इस लोकमें और परलोकमें भी सुख पाता है। ऋषियोंके लिये भी सत्य ही परम धन है। इसी प्रकार राजाओंके लिये भी सत्यके सिवा दूसरा कोई साधन विश्वास दिलानेवाला नहीं है। जो राजा गुणवान्, शीलवान, मनपर काबू रखनेवाला, कोमल स्वभाववाला, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, प्रसन्नमुख और बहुत देनेवाला है, वह कभी राज्य-लक्ष्मीसे भ्रष्ट नहीं होता। कुरुनन्दन। सदा कोमल बर्ताव करनेवाले राजाकी बात कोई नहीं मानता और सदा कठोरतापूर्ण शासन करनेवालेसे भी सब लोग उद्विग्न हो

उठते हैं; इसलिये तुम्हें समयानुसार कोमलता और कठोरता दोनोंका आश्रय लेना चाहिये। पुत्र। तुम ब्राह्मणोंको कभी दण्ड न देना। मनुने कहा है, अग्नि जलसे, क्षत्रिय ब्राह्मणसे और लोहा पत्थरसे प्रकट हुआ है; इन सबका तेज दूसरी जगह काम देता है, मगर अपनेको उत्पन्न करनेवाले कारणमें जाकर शान्त हो जाता है। जब लोहा पत्थर पर मारा जाता है, आग पानीपर लगायी जाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणसे द्वेष करने लगता है तो ये तीनों ही दुर्बल पड़ जाते- दु:ख उठाते हैं। यह सोचकर तुम्हें ब्राह्मणोंको सदा नमस्कार ही करना चाहिये। यद्यपि ऐसी बात है, तथापि यदि ब्राह्मण भी तीनों लोकोंको हानि पहुँचाने लगें तो उनको भी बाहुबलसे परास्त करके दण्ड देनेमें कोई हर्ज नहीं है। शुक्राचार्यने कहा, ब्राह्मण वेदान्तका विद्वान ही क्यों न हो, यदि वह शस्त्र उठाकर युद्धमें सामना करनेके लिये आ रहा हो तो धर्मपालन करनेवाले राजाको उसे स्वधर्मानुसार अवश्य कैद करना चाहिये। उसके द्वारा नष्ट होते हुए धर्मकी जो रक्षा करता है, वही धर्मज्ञ है; आततायीको मारनेसे वह धर्मका नाशक नहीं माना जाता। क्रोधमें भरे हुए आततायीको तो उसका क्रोध ही नष्ट करता है। ब्राह्मण अपराध करे तो उसे देशनिकालेका ही दण्ड देना चाहिये; उसे शारीरिक दण्ड देनेका विधान नहीं है। जैसे वसन्त ऋतुका सूर्य न तो अधिक ठंडक पहुँचाता है और न कड़ी धूप ही करता है, उसी प्रकार राजाको भी न बहुत कोमल होना चाहिये, न अधिक कठोर। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम इन चार प्रमाणोंके द्वारा अपने-परायेकी पहचान करनी चाहिये। तुम सब प्रकारके व्यसनोंका परित्याग कर देना; क्योंकि व्यसनमें आसक्त हुए मनुष्यका संसारमें अपमान होता है। प्रजाके साथ राजाका बर्ताव गर्भिणी स्त्रीके समान होना चाहिये। जैसे गर्भिणी स्त्री अपने मनको अच्छे लगनेवाले भोजन आदिका त्याग करके केवल गर्भस्थ बालकके हितका ध्यान रखती है, उसी प्रकार धर्मात्मा राजाको भी अपनी भलाईका खयाल न करके जिसमें सब लोगोंका हित हो, वही काम करना चाहिये।

हे कुन्तीपुत्र। तुम धैर्यका भी कभी त्याग न करना। जो अपराधियोंको दण्ड देनेमें संकोच नहीं करता और सदा धैर्य रखता है, उस राजाको कभी भय नहीं होता। नौकरोंके साथ अधिक हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये; नौकरलोग अधिक मुँहलगे हो जानेसे मालिकका अपमान कर बैठते हैं, अपनी मर्यादापर कायम नहीं रहते और स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करने लगते हैं। यही नहीं, वे राजापर भी हुकुम चलाने लगते हैं और रिश्वत लेकर जालसाजी करके राजकार्यमें विघ्न डाला करते हैं। बनावटी आज्ञापत्र निकालकर राजाके सारे राज्यको चूस लेते हैं। रनवासके पहरेदारोंसे मिलकर अन्त:पुरमें जाने लगते हैं और राजाके समान वेष-भूषा बनाये फिरते हैं। यहाँतक कि स्वामीके निकट निर्लज्जताका व्यवहार करते और उसकी गुप्त बातें भी प्रकट कर देते हैं। हँसी-मजाक करनेवाले और कोमल स्वभाववाले राजाको पाकर भृत्यगण उसकी अवहेलना करने लगते हैं और उसकी सवारीमें रहनेवाले वाहन का इस्तेमाल करते हैं। राज दरबारमें बैठकर दोस्तोंकी तरह बराबरीका बर्ताव करते हुए कहते हैं राजन्। आपसे इस कामका होना कठिन है, आपका यह बर्ताव बुरा है। राजाको कुपित होते देख हँस देते हैं और उससे सम्मानित होकर भी विशेष प्रसन्न नहीं होते। राजकीय गुप्त बातों तथा राजाके दोषोंको दूसरोंपर प्रकट कर देते हैं और उसकी आज्ञाको अवहेलनापूर्वक खिलवाड़ करते हुए पूरी करते हैं। पास ही खड़ा होकर राजा सुनता रहता है और वे निर्भय होकर उसके आभूषण पहनने, खाने, नहाने आदिकी दिल्लगी उड़ाया करते हैं। उनके अधिकारमें जो काम सौंपा गया होता है, उसको वे बुरा बताते और छोड़ भी देते हैं; उन्हें जितनी तनख्वाह दी जाती है, उतनेसे संतोष नहीं होता। जैसे लोग डोरेमें बँधी हुई चिड़ियाके साथ खेलते हैं, उसी तरह वे भी राजाके साथ खेलना चाहते हैं और साधारण लोगोंसे कहते फिरते हैं कि राजा तो हमारे ही हाथमें है, उसपर हमारा ही हुक्म चलता है। युधिष्ठिर। राजा जब परिहासशील और कोमल स्वभावका हो जाता है, तो ऊपर बताये हुए तथा दूसरे भी बहुत-से दोष प्रकट हो जाते हैं।

राजाको उद्योगी होना चाहिये। जो स्त्रीकी भाँति बेकार बैठा रहता है, उस राजाकी प्रशंसा नहीं होती। शुक्राचार्यने कहा है, जैसे साँप बिलमें रहनेवाले चूहोंको निगल जाता है, उसी प्रकार दूसरे राजाओंसे लड़ाई न करनेवाले राजा और घर न छोड़नेवाले ब्राह्मण- इन दोनोंको पृथ्वी निगल जाती है। अर्थात वे पुरुषार्थ-साधन किये बिना ही मर जाते हैं। जो संधि करनेके योग्य हों, उनसे संधि करो; जो विरोधके पात्र हों, उनसे विरोध करो। राज्यके सात अङ्ग हैं- राजा, मन्त्री, मित्र, खजाना, देश, किला और सेना। इनमेंसे किसीके भी विपरीत यदि कोई आचरण करे तो वह गुरु हो या मित्र, मार डालनेके ही योग्य है। महाराजा मरुत्तने कहा, जो बृहस्पतिके मतानुसार राजाके अधिकारपर प्रकाश डालता है। घमंड में भरकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका ध्यान न रखनेवाला और कुमार्गपर चलनेवाला मनुष्य यदि अपना गुरु हो, तो भी उसको दण्ड देनेका विधान है। राजा सगरने तो अपने पुत्र असमञ्जस को त्याग दिया। अत: प्रजावर्गको प्रसन्न रखना ही राजाका सनातन धर्म है। सत्यकी रक्षा और व्यवहारमें सरलता भी राजोचित कर्त्तव्य है। दूसरोंका धन चौपट न करे; जिसको जो कुछ देना हो, समयपर देनेकी व्यवस्था करे। पराक्रमी, सत्यवादी और क्षमाशील बना रहे। ऐसा करनेवाला राजा कभी सन्मार्गसे भ्रष्ट नहीं होता।

जो मनपर अधिकार रखता है, जिसने क्रोधको जीत लिया है, शास्त्रके तात्पर्यको जानता है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके प्रयत्नमें लगा रहता है और अपने गुप्त विचार दूसरोंपर प्रकट नहीं होने देता, वही राजा होने योग्य है। राजाको चारों वर्णोंके धर्मोंकी रक्षा करनी चाहिये। संसारको धर्मसंकरतासे बचाना उसका सनातनधर्म है। राजा किसीपर भी विश्वास न करे, विश्वसनीय व्यक्तिका भी अत्यन्त विश्वास न करे। राजनीतिके छ: गुण होते हैं- संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय; इन सबके गुण-दोषोंपर सदा दृष्टि रक्खे। यमराजके समान न्यायकर्ता हो और कुबेरके सदृश धनका भंडार इकट्ठा करे। स्थान, वृद्धि तथा क्षयके हेतुभूत दशवर्गोंका सदा ज्ञान रक्खे। जिनके भरण-पोषणका प्रबन्ध न हो, उनका पोषण करे। राजाको सदा प्रसन्नवदन रहना और हँसकर बातें करनी चाहिये। वृद्धोंकी सेवा करे। आलस्य और लोभको त्याग दे। सत्पुरुषोंके व्यवहारमें मन लगावे, संतुष्ट होनेयोग्य स्वभाव बनाये रक्खे। श्रेष्ठ पुरुषोंका धन न छीने। दुष्टोंसे धन लेकर सत्पुरुषोंको दान करे। स्वयं दण्ड और कर ले तथा दूसरोंको भी दान दे, मनको वशमें रक्खे। समयपर दान करे और सदा शुद्ध सदाचारी रहे।

जो शूरवीर और भक्त हों, जिन्हें दुश्मन फोड़ न सकें, जो कुलीन, नीरोग और शिष्ट हों तथा शिष्ट पुरुषोंसे सम्बन्ध रखते हों, अपने सम्मानके रक्षक हों, दूसरोंका अपमान न करते हों, धर्मपरायण, साधु और पर्वतोंके समान अटल रहनेवाले हों, शास्त्रोंके विद्वान, लोक-व्यवहारके ज्ञाता और शत्रुओंकी गति-विधिपर दृष्टि रखनेवाले हों- ऐसे लोगोंको ही सहायक बनावे। उन्हें अपने समान ही सुख-भोगकी सुविधा दे। सिर्फ राजोचित छत्र-धारण और हुकूमत करना- इन्हीं दो बातोंका अधिकार अपने पास उनसे अधिक रक्खे। सामने अथवा परोक्षमें उनके प्रति एक-सा ही बर्ताव करे। ऐसा करनेवाले राजाको कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता। जो सब पर संदेह करता और सबके धनका अपहरण करता है, वह लोभी और कुटिल राजा एक दिन अपने ही लोगोंके हाथ मारा जाता है। जो भूपाल बाहर-भीतरसे शुद्ध रहकर प्रजाके हृदयको अपनानेका प्रयत्न करता है, वह शत्रुओंका आक्रमण होनेपर भी उनके वशमें नहीं पड़ता। यदि कहीं परास्त हुआ, तो भी पीछे उन्हीं प्रजाओंकी सहायतासे पूर्ववत् अपना स्थान प्राप्त कर लेता है। जो क्रोध नहीं करता, किसी व्यसनमें नहीं फँसता, हल्का कर लगाता और इन्द्रियोंपर काबू रखता है, वह सब लोगोंका विश्वासपात्र बन जाता है। जो बुद्धिमान, त्यागी, शत्रुओंकी कमजोरी समझने में प्रवीण, चारों वर्णोंके न्याय-अन्यायको जानेनवाला, शीघ्र काम करनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, उदारचित्त, कोमल स्वभाववाला, काम करनेमें संलग्न और आत्मप्रशंसासे दूर रहनेवाला है, जिसके राज्य में मनुष्य निर्भय होकर विचरते हैं वही राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ है।

जिसके राज्यमें रहनेवाले नागरिक न्याय-अन्यायको समझते हों, जिसके देशके लोग अपने धर्म-कर्मोंमें संलग्न, शरीरमें आसक्ति न रखनेवाले, जितेन्द्रिय, वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक, कलहसे दूर रहनेवाले और दानमें रुचि रखनेवाले हों, वही वास्तवमें राजा है। जिस राजाके राज्यमें छल, कपट, कूटनीति, माया और मात्सर्यका सर्वथा अभाव हो, उसीके सनातन धर्मका निर्वाह होता है। जो विद्वानोंका आदर करता और शास्त्रीय अर्थके चिन्तन तथा परोपकारी कार्यमें लगा रहता है, जो सत्पुरुषोंके मार्गपर चलता और दान किया करता है, शत्रु जिसके गुप्त विचारोंको न जान सकें, जासूसोंको न पहचान सकें, वही राजा राज्य चलाने योग्य समझा जाता है। राज्य चाहनेवाले राजाओंके लिये प्रजाओंकी रक्षासे बढ़कर और कोई सनातन धर्म नहीं है। मनुने कहा, जैसे समुद्रकी यात्रामें टूटी हुई नौकाका त्याग कर दिया जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह उपदेश न देनेवाले आचार्य, वेद मन्त्रका उच्चारण न करनेवाले ऋत्विक, रक्षा न करनेवाले राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, गाँवमें रहनेकी इच्छावाले ग्वाले और जंगलमें रहना पसंद करनेवाले नाई-इन छ:को त्याग दो।

युधिष्ठिर। यह प्रजापालन समस्त धर्मोंका सार है। भगवान बृहस्पति भी इस न्यायानुकूल धर्मकी प्रशंसा करते हैं। उनके सिवा भगवान विशालाक्ष, तपस्वी, शुक्राचार्य, इन्द्र, दक्ष, मनु, भरद्वाज, मुनिवर गौरशिरा और राजधर्मकी रचना करनेवाले अन्यान्य वेदवादियोंने भी प्रजापालनकी ही प्रशंसा की है। गुप्तचर (जासूस) रखना, दूसरे राष्ट्रोंमें अपना प्रतिनिधि (राजदूत) नियुक्त करना, समयपर वेतन और भत्ता देना, युक्तिके साथ कर लेना, अन्यायसे प्रजाको न चूसना, सत्पुरुषोंसे मेल करना, वीरता, कार्यकुशलता, सत्य, प्रजाका हितचिन्तन, सत्पुरुषोंको न त्यागना, कुलीन मनुष्योंको पास रखना, संग्रहयोग्य धान्यादिको जमा करना, बुद्धिमानोंको अपना सहायक बनाना, सेनाको उत्साहित करना, प्रजाकी स्वयं देख-भाल करना, काम करनेमें कष्टका अनुभव न करना, कोषकी वृद्धि करना, स्वयं नगरकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध करना, इस विषयमें दूसरोंके विश्वासपर न रहना, पुरवासियोंने कोई गुट्ट बना लिया हो तो उसमें फूट डलवा देना, शत्रु, मित्र और मध्यस्थोंपर यथोचित दृष्टि रखना, सेवकोंमें गुटबंदी न होने देना, अपने-आप नगरका निरीक्षण करना, नीतिधर्मका पालन करना और दुष्टोंको देशसे बाहर निकाल देना- ये सब बातें राजधर्मकी मूल हैं। बलवान पुरुषको अपने दुर्बल शत्रुको भी छोटा न समझना चाहिये। आग थोड़ी-सी हो तो भी जला डालती है और विष बहुत कम मात्रामें हो तो भी मार डालता है। जो राजा क्रूर होते हैं वे अपने विशाल राज्यको काबूमें नहीं रख सकते और जो बहुत कोमल प्रकृतिके होते हैं वे इस उच्च पदका भार नहीं सँभाल सकते। इसलिये राजामें क्रूरता और कोमलता दोनोंहीका मेल रहना चाहिये। भीष्मका वक्तव्य सुनकर भगवान व्यास, देवस्थान, अश्म, वासुदेव, कृप, सात्यकि और सञ्जय बड़े प्रसन्न हुए।

सब लोगोंमे मोहमें पड़नेसे उनका विवेक नष्ट हो गया और विवेक नष्ट हो जानेसे धर्मबुद्धि जाती रही और काम सताने लगा। कामके अधीन होकर रागने भी अपना आधिपत्य जमा लिया। इससे वे सब लोग अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यको भूल गये। इसलिये गम्य-अगम्य, वाच्य-अवाच्य, भक्ष्य-अभक्ष्य का कोई त्याज न रहा। इसप्रकार मानव समाजमें धर्मविप्लव हो गया और वेद लुप्त होने लगे। वेदोंका लोप होनेसे धर्ममर्यादा जाती रही। जिससे देवताओंको बड़ा त्रास हुआ। तब ब्रह्माने देवताओंसे कहा, कि मैं एक नीतिशास्त्र रचता हूँ इसमें अर्थ, धर्म, काम का वर्णन है जिसमें राजाके गुण, धर्म अर्थ और कामके साधन, उनके गुण-दोष, अपने आश्रितोंकी आजीविकाका विचार, प्रमादसे बचना, जो वस्तु न मिली हो उसे पाना और प्राप्त वस्तु की वृद्धि करना इन सब बातों का उल्लेख किया है। काम और क्रोधसे होनेवाले उग्र व्यसनोंका भी इसमें उल्लेख है। नीतिशास्त्रमें मृगया, द्यूत, मद्यपान और स्त्रीप्रसंग ये चार कामजनित तथा वाणीकी कटुता, उग्रता, मारपीट, शीरको कैद कर लेना क्रोधसे होनेवाले वस्तुओंका उल्लेख किया है। पुरानी इमारतों को, वृक्षोंको काटना, कृषि,

सेनाकी सामग्री इत्यादि के बारे में बताया है। सत्पुरुषोंका सत्कार, विद्वानोंके साथ मेल-जोल बढ़ाना, दान और होम की विधि, भोजनकी व्यवस्था, सत्यता, मधुरभाषण तथा उत्सव और समाज आदिके अवसरपर होनेवाली कुटुम्बसंबंधी सभी बातों का इस सभीका इस शास्त्रमें निरूपण हुआ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थोंके प्राप्त करने के उपाय और जिन साधनोंसे आर्यधर्मसे पतन न हो, इन सभीका वर्णन किया है। वास्तवमें दण्ड से ही राजव्यवस्था चलती है। महाराज पृथु के राज्यमें बुढ़ापा, दुष्काल, आधि-व्याधि तथा सर्प, चोर या आपसमें एक-दूसरे का भय नहीं था। पृथुने इस लोकमें धर्म की वृद्धि की थी और सारी प्रजाका मनोरंजन किया। ब्राह्मणोंका क्षतिसे त्राण करनेपर क्षत्रिय हुआ। उसने धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन किया। राजन्। तुम्हें सर्वदा दण्डनीतिका पालन करना चाहिये। राजा यदि शुभ कर्म करता है तो वह प्रजाके भलेके लिये ही होता है। जिससे सारा देश एक व्यक्तिके अधीन रहे वही राजा होता है। राजा भी अन्य मनुष्योंके समान ही है। सारा लोक उसकी आज्ञामें बँधा रहता है। राजाके दण्डसे राष्ट्रमें नीति और न्यायका आचरण होता है।

धर्मकी महिमा महान है। अक्रोध, सत्यभाषण, धनको बाँटकर भोगना, क्षमा, अपनी स्त्रीसे संतान उत्पन्न करना, शौच, अद्रोह, सरलता और अपने पालनीय व्यक्तियोंका पालन करना यह सभी वर्णोंके लिये समान है। ब्राह्मणके लिये इन्द्रियोंका दमन, स्वाध्यायका अभ्यास आवश्यक है। अपने धर्ममें स्थित, शान्त और ज्ञान-विज्ञानसे तृप्त ब्राह्मणको किसी प्रकारके असत्कर्मका आश्रय लिये बिना ही धन प्राप्त हो जाये तो उस धन को उसे दान या यज्ञमें लगा देना चाहिये। सत्पुरुषोंमें धन बाँटकर ही उसका उपभोग करना चाहिये। ब्राह्मण केवल स्वाध्यायसे ही कृतकृत्य हो जाता है उसे दूसरे कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। क्षत्रियको दान करना चाहिये पर माँगना नहीं चाहिये। यज्ञ करना चाहिये पर कराना नहीं चाहिये। वह वेदोंका अध्ययन करे परन्तु वेदोंका अध्यापन न करावें। प्रजाका पालन करे तथा चोर डाकू, लुटेरों से प्रजा की रक्षा करें। जिस प्रकार दान, स्वाध्याय और यज्ञ राजाओंके कल्याणमें सहायक है उसीप्रकार युद्ध करना भी राजाके लिये नि:श्रेयसका साधन है। अत: धर्मोपार्जनके लिये राजाको युद्ध अवश्य करना चाहिये। राजा में बलकी प्रधानता है, इसलिये वह प्रजाका इन्द्र कहा जाता है। वैश्य का धर्म है पशुपालन, यदि वह किसी शास्त्रविरुद्ध कर्म का आचरण करता है तो उसे विकर्म कहते हैं। शूद्रका धर्म तीनों वर्णोंकी सेवाके लिये है। शूद्रको धन संचय कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि धन पाकर वह पापमें प्रवृत्त हो जाता है। तीनों वर्णोंको शूद्रका भरण-पोषण करना चाहिये। शूद्रको अपने स्वामीका किसी प्रकारके आपत्तिकालमें भी त्याग नहीं करना चाहिये। शूद्रके लिये मन्त्रहीन यज्ञकी विधि है। तीन वर्ण जो भी यज्ञ करते है उसका फल शूद्र को भी मिलता है। शूद्रको तीनों वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। सब वर्णोंको सर्वथा जैसे बने वैसे यज्ञ अनुष्ठान करना चाहिये। तीनों लोकोंमें यज्ञ के समान कोई धर्म नहीं है।

चार आश्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम इन सबमें गृहस्थाश्रम की महिमा विशेष है। सन्यासी को चाहिये कि मन और इन्द्रियोंका संयम करे और जहाँ सूर्यास्त हो जाय वहीं ठहर जाय। किसी वस्तुकी इच्छा न करें, अपने लिये किसी कुटिया का निर्माण न करें, और जो कुछ मिल जायँ उसका निर्माण करें। हृदयमें किसी प्रकार का विकार न आने दे। गृहस्थाश्रम में पुरुष वेदोंका अध्ययन करें। सब प्रकारके कर्म करते हुए सन्तान उत्पन्न करें। गृहस्थ को चाहिए कि अपनी ही स्त्री में सन्तुष्ट रहें, शास्त्राज्ञाका पालन करें, शठता और कपटसे दूर रहें, परिमित आहार करें, देवताओंकी आराधना करें, दूसरोंके उपकारोंको याद रखें, सत्य और मृदु का भाषण करें, देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करें, निरन्तर अन्नदान करें और मत्सरसे दूर रहें।

जो पुरुष जिस प्रकार का कर्म करता है उसमें वैसा ही गुण आ जाता है। ब्राह्मण को राजसेवा, खेतीके धन, व्यापारकी आजीविका, कुटिलता, परस्त्रीगमन और व्याज इनसे सर्वदा दूर रहना चाहिये। जो ब्राह्मण दुश्चरित्र, धर्महीन, चुगलखोर,

नाचनेवाला, राजसेवक अथवा कोई विकर्म करनेवाला हो वो तो अधम ब्राह्मण है उसे तो शूद्र ही समझना चाहिए और उसे शूद्रोंकी पंक्तियोंमें बिठाकर भोजन कराना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणोंको देवपूजन आदि कार्यसे दूर रखना चाहिये। जो ब्राह्मण मर्यादाशून्य, अपवित्र, क्रूर स्वभाववाला और धर्मको त्यागकर चलनेवाला हो उसे किसीप्रकार दान नहीं देना चाहिये। क्षत्रियको चाहिये कि धर्मानुसार प्रजा का पालन करे और यज्ञोंका अनुष्ठान करे। गृहस्थधर्मोंका त्याग कर देनेपर भी क्षत्रियको संन्यासधर्मका पालन करते हुए जीवनरक्षाके लिये ही भिक्षाका आश्रय लेना चाहिये। क्षत्रियके लिये तो राजधर्मकी ही प्रधानता है। राजा का धर्म सब धर्मोंमें प्रधान है। इसीके द्वारा सब वर्णोंका पालन होता है। राजधर्मोंमें सब प्रकारके दानोंका समावेश हो जाता है। समस्त लोकोंका पुण्यकर्मोंका आधार राजधर्म में ही है। इन्द्रने भी मान्धाता से कहा था, क्षात्रधर्मके द्वारा ही क्षत्रियोंका दमन करके देवता और ऋषियोंकी रक्षा हो सकती है। इस सनातन धर्मका कई बार नाश हो चुका है किन्तु क्षात्रधर्मने उसे पुन:जीवित कर दिया। इसलिये सनातन धर्मको मनुष्योंमें सबसे श्रेष्ठ धर्म माना गया है। युद्धमें शरीरकी बलि देना, लोकव्यवहार का ज्ञान प्राप्त करने, भयसे प्रजाकी रक्षा करना और दु:खी लोगोंके दु:खसे छुडाना यह सब बातें राजाओंकी क्षात्रमें बतायी है। राजाकी देखरेख में सब प्राणी सबलोकमें निर्भय होकर विचरते हैं। राजा अपनी प्रजाका पालन करता है। इसप्रकार संसारमें क्षात्रधर्म ही सबसे श्रेष्ठ सनातन नित्य, अविनाशी और सब जीवोंका उपकार करनेवाला है। इसका पर्यावसन मोक्षमें ही होता है। इस धर्म का पालन न करने से सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसीमें सारे धर्म समाये हुए हैं। जो ब्राह्मण अधर्ममें प्रवृत्त है वह कभी सम्मानका पात्र नहीं हो सकता। यह भील जाति यवन, किरात, गन्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, आन्ध्र, मद्र, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि शूद्रोंकी संताने हैं, जो लूटपाट करके अपनी जीविका चलाते हैं, उनसे अपने माता-पिता, आचार्य, गुरु, आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करानी चाहिये। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, शौच, अद्रोह, यज्ञ-यागादि कराके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। मानव समाज में दस्यु तो सभी वर्ण और सभी आश्रमोंमें पाये जाते हैं, जब दण्डनीति नष्ट हो जाती है तो राजधर्म की उपेक्षा होने लगती है तब सभी प्राणी अपने कर्त्तव्य से डिग जाते हैं। राजा सभी लोकोंके सम्मानका पात्र है। जो पुरुष उसका अपमान करता है, उसके दान, यज्ञ और श्राद्ध कभी सफल नहीं होते। राजा मनुष्योंका अधिपति, सनातन देवस्वरूप और धर्मकी रक्षा करनेवाला होता है। सदाचार में प्रवृत्त होकर चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करनेवाले लोगोंको जिन फलोंकी प्राप्ति होती है वे राग-द्वेष छोड़कर दण्डनीति के अनुसार बर्ताव करनेवाले राजाको प्राप्त होते हैं। जो राजा समस्त प्राणियोंका तथा अपने राष्ट्रका पालन, नित्यप्रति वेदोंका अध्ययन, क्षमा आचार्यका पूजन और गुरुसेवा करता है उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो राजा सब प्राणियोंके प्रति निष्कपट और सरल व्यवहार करता है, वृद्ध और समस्त प्राणियोंके प्रति दया करता है उस राजाको सभी प्रकारके पुण्य लोक प्राप्त होते हैं। जो पुरुष दण्ड और क्रोधको त्यागकर समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझता है वह इस लोकमें और मृत्यु उपरान्त परलोकमें सुख पाता है। युधिष्ठिर यदि तुम प्रजाके पालन में तत्पर रहोगे तो चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्माचरणका फल प्राप्त करोगे।

राजा को राज्य पदपर अभिषेक करना राष्ट्रका प्रधान कर्त्तव्य है। जिस देशमें कोई राजा नहीं होता, उसमें धर्मकी भी स्थिति नहीं होती। वहाँकी प्रजा नष्ट हो जाती है, देशमें अराजकता फैल जाती है। उसपर कोई राज्यलोलुप प्रबल शत्रु आक्रमण कर देता है, अत: अपने देशमें उन्नति की इच्छासे हमेशा राजा बनाये रखना चाहिये राजाके बिना वहाँके लोग धन और स्त्रीका सुख नहीं भोग सकते। दूसरा उसका धन-धान्य चोर लुटेरे लूट लेते हैं और मनुष्य को दास बना लिया जाता है, स्त्रियोंको बलात्कारसे छीन लिया जाता है। मनुने भी कहा कि राजाका कर्त्तव्य बड़ा कठिन है। क्योंकि मनुष्योंका

आचरण सर्वथा असत्यपूर्ण होता है। तब ब्रह्माने मनुसे कहा, तुम किसी बातसे डरो मत, पापतो करनेवालोंको लगेगा, तुम बड़े बलवान और प्रतापी राजा होवोगे, तुमसे सुरक्षित रहकर प्रजा तो धर्म करेगी उसका चतुर्थांश तुम्हें मिलेगा।

मनुने पापियोंका दमन किया और प्रजाको अपने कर्मोंमें नियुक्त किया। राजाका दूसरोंके द्वारा तिरस्कार होना सभीके लिये दु:खदायी है। प्रजा अगर मान्यता दे तो राजामें प्रजा की रक्षा करने में शक्ति आ जाती है। बृहस्पतिने वसुमनाको बताया, राजन् लोकमें जो धर्म देखा जाता है उसका मूल कारण राजा ही है। राजाके भयसे प्रजा एक-दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचाती। जब प्रजा मर्यादाके छोड़ने लगती है और लोभके वशीभूत हो जाती है तो राजा ही दण्ड और धर्म के द्वारा शान्ति स्थापित करता है। यदि राजा न हो तो बलवान लोग निर्बलोंकी बहू-बेटियोंको छीन लें और उसके प्राणोंके ग्राहक बन जायें। मनुष्योंके पास जब वाहन, वस्त्र, अलंकार और तरह-तरह- के रत्न हों उन्हें पापी लोग लूट लें। अधर्म का प्रचार होने लगे पापी लोग माता-पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंकी भी दु:ख देने लगे, धनवानोंको मौत और बन्धनका क्लेश भोगना पड़े, लोक अकालमें ही कालके गालमें जाने लगे; देशमें दस्युओंकी ही प्रधानता हो जाएँ, कृषि नष्ट हो जाय, व्यापार बन्द हो जाय, नीति और कर्मकाण्ड का लोभ हो जाय, न विवाह की सामाजिक रीति हो, समाज का कोई संगठन न रहे, यदि राजा प्रजा का पालन न करें तो सारे संसार में त्रास फैल जाय और पूरी स्थिति डाँवाडौल हो जाय। धर्मकी सारी मर्यादा टूट जाय, जगत्में अन्याय फैल जाय, प्रजा वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न करनेवाली हो, देशमें दुर्भिक्ष और अकाल पड़ने लग जायँ, राजासे लोग सुरक्षित और निर्भय रहते है। राजासे सुरक्षित स्त्रियाँ सभी प्रकारके आभूषण विभूषित होकर बिना किसी पुरुषके सड़कपर बेखटके चली जाती है। लोग धर्मका आचरण करेंगे, आपसमें किसीको कष्ट नहीं देंगे। इस जगत् का भरण-पोषण, खेतीबारी और व्यापारसे ही होता है। राजा मनुष्य है ऐसा समझकर राजाका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। वास्तवमें तो वे मनुष्यरूप में देवता ही होता है। राजा समय-समयपर अग्नि, सूर्य, मृत्यु, कुबेर और यम इन पाँचों देवताओंका रूप धारण करता है। जो पुरुष कार्यकुशल, पुण्यकर्मा और ईर्ष्याशून्य हो तथा धर्म की वृद्धि चाहता हो, उसे अपनी राजा की निंदा कभी नहीं करना चाहिए। राजा के विरुद्ध चलकर कोई कभी सुख नहीं पा सकता। राजद्रव्यका स्पर्श करने पर मनुष्यके प्राण संकटमें पड़ जाते हैं। अत: जो पुरुष उन्नति चाहता हो, संयमी हो, जितेन्द्रिय हो, मेधावी हो, चतुर हो उसे तो सर्वदा राजाके पक्षमें रहना चाहिये। राजा का भी मन्त्री ऐसा होना चाहिए जो कृतज्ञ हो, बुद्धिमान, उदाराशय, सुदृढ़ भक्ति रखनेवाला, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ और सर्वदा नीतिका अनुसरण करनेवाला हो। जो बुद्धिमान हो, धर्मज्ञ हो, शूरवीर हो, सब काम करनेको तैयार हो ऐसा पुरुष राजाको अवश्य रखना चाहिये। जो राजासे विरुद्ध है उसे सुख कैसे प्राप्त हो सकता है। राजाको तो अपने शरणापन्नको सुखी करना है। राजा प्रजाका गौरवपूर्ण हृद्य है तथा वही उसकी गति, प्रतिष्ठा और प्रधान सुख है। राजा भी दमन, सत्य और सौहार्द्रसे पृथ्वीका शासन करता है। इसप्रकार बृहस्पतिने राजाके गुण-धर्म महामना कौशलराज वसुमनाको सुनाये।

राजाको पहले तो अपने मनको जीतना चाहिये उसके बाद शत्रुओंको भी परास्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जो राजा जितेन्द्रिय है वही शत्रुओंका दमन कर सकता है। जिन लोगोंकी अच्छी तरह परीक्षा कर ली और जो देखनेमें मूर्ख, अन्धे, लंगड़े, बहिरे जान पड़ते हो, भूख और प्यास सहनेकी सामर्थ्य रखते हो उन्हें गुप्तचर बनाना चाहिये। अपने गुप्तचरोंके द्वारा राजाको बाजारों, विहारों, समाजों, संन्यासियों, बगीचों, पण्डितोंकी सभाओं, प्रान्तों, चौराहों, सभास्थानों

और धर्मशालाओंमें रहनेवाले अपने शत्रुके गुप्तचरोंका पता लगाना चाहिये। यदि राजाको अपना पक्ष निर्बल जान पड़े तो वह शत्रुके साथ सन्धि कर ले। यदि राजाको अपनी स्थिति संकटपूर्ण दिखायी दे तो जिन अपराधियोंको पहले छोड़

दिया हो और जिनसे जनता द्वेष मानती हो, उन लोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे तथा जिससे किसी भी प्रकारके उपकार या अपकारकी सम्भावना न हो और जो स्वयं भी सिर उठानेकी सामर्थ्य न रखता हो उस पुरुषकी उपेक्षा करे। जिस राजामें शत्रुको दबानेकी सामर्थ्य हो और जिसकी सेना मजबूत हो वह अपनी राजधानीके प्रबन्धकी व्यवस्था करके जिस समय शत्रु दूसरेके साथ युद्धमें संलग्न, असावधान अथवा दुर्बल हो, अपनी सेनाको उसपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दे दे। यदि शत्रु अपनेसे बलवान हो तो भी सर्वदा उसकेअधीन न रहे। दुर्बल होनेपर भी गुप्तरूपसे उसकी शक्तिको नष्ट करनेका प्रयत्न करता रहे तथा उसके मन्त्री और प्रीतिपात्र पुरुषोंमें भेद डलवा दे।

राजाको प्रजाकी आय का छठा भाग उसकी रक्षाके लिये कर रूपसे लेना चाहिये। न्यायके समय प्रेमवश पक्षपात नहीं करना चाहिये। न्याय करते समय वादी और प्रतिवादीकी बातें सुननेके लिये सब विषयोंको समझानेवाले विद्वानोंकी नियुक्ति करना चाहिये। खान, नमक, चुंगीधर, नावके घाट और सेनापर कर लेनेके लिये अपने विश्वासपात्र और हितचिंतक पुरुषोंको मन्त्री बनाकर नियुक्त करना चाहिये। राजाका न्यायनिष्ठ होनाही प्रधान धर्म है। उसे वेद-वेदाङ्गोंका ज्ञाता, तपोनिष्ठ, दानशील और यज्ञ-परायण भी होना चाहिये। नगर के चारों ओर परकोटा बनवाये उसके चारों ओर खाईको जलसे भरवा दे। किलेके अन्दर बहुत सा ईंधन इकट्ठा कर ले और नये कुएँ खुदवावे। राजमार्गोंको चौड़ा करादे तथा यथोचित रीतिसे बाजारोंकी व्यवस्था कराये। तथा सब प्रकारके शस्त्र, शक्ति, ऋष्टि, प्रास और कवच तैयार करवायें। राजाको जिन सेवक, मन्त्री, पुरवासी या सामन्तोंकी ओरसे संदेह हो, उन्हें अपने नियन्त्रण में करे। राजाको अपना शरीर, मन्त्री, कोष, सेना, मित्र, राष्ट्र और नगर इनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। जिस समय राजा दण्डनीतिका उपयोग करता है तब पृथ्वीपर पूर्णत: सत्ययुग रहता है। सत्ययुगमें धर्म ही धर्म होता है अधर्म का नाम भी दिखाई नहीं देता। सर्वत्र वैदिक गुणोंका विस्तार होता है। सभी ऋतुएँ सुख और स्वास्थ्य की वृद्धि करती है। लोगोंके मन प्रसन्न होते हैं। मनुष्य की आयु लम्बी होती है। कोई स्त्री विधवा नहीं होती। न ही कोई कृपण होता है। पृथ्वीमें बिना जोते-बोये ही अन्न पैदा होता है। औषधियाँ शुरु हो जाती है, तथा छाल, पत्र, फल और वनस्पति में रस आ जाता है। कलियुग में अधर्म की प्रधानता होती है धर्म कहीं देखनेको भी नहीं मिलता। सभी वर्णोंका मन अपने धर्म में च्युत हो जाता है। वर्णसंकरता फैल जाती है, वैदिक कर्म विधिवत् सम्पन्न नहीं होते, ऋतुएँ सुखकारी नहीं रहती, वे सब रोगका ही कारण होती है। मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मन मलिन हो जाते हैं, सर्वत्र तरह-तरहके रोग फैल जाते हैं, असमयहीमें मरने लगते हैं, देशमें विधवाओंकी अधिकता हो जाती है, प्रजा क्रूर हो जाती है, वर्षा भी अल्प होती है। सब युगोंका निर्माण करनेवाला राजा ही होता है।

राजामें यह गुण होने चाहिये- धर्मका आचरण करे, किंतु कटुता न आने दे। आस्तिक रहते हुए दूसरोंके साथ प्रेमका बर्ताव न छोड़े। क्रूरताका आश्रय लिये बिना ही अर्थसंग्रह करे। मर्यादाका अतिक्रमण न करते हुए ही विषयोंको भोगे। दीनता न लाते हुए ही प्रिय भाषण करे। शूरवीर बने, किंतु बढ़-बढ़कर बातें न बनावे। दान दे, परंतु अपात्रको नहीं। स्पष्ट व्यवहार करे, पर कठोरता न आने दे। दुष्टोंकेसाथ मेल न करे। बन्धुओंसे कलह न ठाने। जो राजभक्त न हो ऐसे दूतसे काम न ले। किसीको कष्ट पहुँचाये बिना ही अपना कार्य करे। दुष्टोंसे अपनी बात न कहे। अपने गुणोंका वर्णन न करे। साधुओंका धन न छीने। नीचोंका आश्रय न ले। अच्छी तरह जाँच किये बिना दण्ड न दे। गुप्त मन्त्रणाको प्रकट न करे। लोभियोंको धन न दे। जिन्होंने कभी अपकार किया हो उनमें विश्वास न करे। किसीसे ईर्ष्या न करे और स्त्रियोंकी रक्षा करे। शुद्ध रहे और किसीसे घृणा न करे। स्त्रियोंका बहुत अधिक सेवन न करे। स्वादिष्ट होनेपर भी जो अहितकर हो उसे न खाय। निरभिमान होकर माननीयोंका आदर करे। गुरुकी निष्कपटभावसे सेवा करे। दम्भहीन होकर देवपूजन करे।

अनिन्दित उपायसे लक्ष्मी प्राप्त करनेकी इच्छा रक्खे। स्नेहपूर्वक बड़ोंकी सेवा करे। कार्यकुशल हो, किंतु अवसरका विचार रक्खे। केवल पिण्ड छुड़ानेके लिये किसीसे चिकनी-चुपड़ी बातें न करे। किसीपर कृपा करते समय आक्षेप न करे। बिना जाने किसीपर प्रहार न करे। शत्रुओंको मारकर शोक न करे। अकस्मात् क्रोध न करे। जिन्होंने अपना अपकार किया हो, उनके प्रति कोमलताका बर्ताव न करे।

राजाको चाहिये कि वह सरलस्वभाव होकर धैर्य तथा बुद्धिके बलसे सत्यके आश्रय ले और काम-क्रोधका परित्याग कर दे। जो राजा काम और क्रोधका आश्रय लेकर धन पैदा करना चाहता है, वह मूर्ख धर्मको तो छोड़ ही बैठता है। धन भी उसके हाथ नहीं लगता। मूर्खको अधिकार दे देनेपर वह कार्य करना तो ठीक-ठीक जानता नहीं, इसलिये काम और क्रोधके वशीभूत होकर अनुचित उपायोंसे प्रजाको कष्ट पहुँचाता है। राजाको धर्मानुसार कर लेना चाहिये और शास्त्रोक्त नीतिसे काम लेकर अपने राज्यमें प्रजाके योग्यक्षेमकी व्यवस्था करनी चाहिये। लोभवश अधर्मसे धन पैदा करनेकी कभी इच्छा नहीं करना, क्योंकि अनुचित रीतिसे लिया हुआ धन बुरे कामोंमें नष्ट होता है। जो धर्मका लोभी राजा मोहवश प्रजासे शास्त्रविरुद्ध अधिक कर लेकर उसे कष्ट पहुँचाता है, वह अपने ही हाथों अपना नाश करता है। अन्यायपूर्वक प्रजापर अधिक कर लगाने से राष्ट्रकी उन्नति नहीं होती है। जो घरपर गौका पालन करता है उसीको रोज दूध मिलता है। समय-समयपर प्रजाको उन्नतिशील बनाना चाहिये। धर्मानुकूल बर्ताव करते हुये तुम प्रजाका पालन करो इससे तुम्हे कभी पश्चात्ताप नहीं होगा। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया और उनकी रक्षा करनेसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। राजाको एक विद्वान पुरोहित की नियुक्ति करनी चाहिये जो धर्मविषयक और राज्यविषयक गूढ़ विचारोंका जाननेवाला हो, समय-समय पर उचित सलाह दे।

जैसे सूखी लकड़ियोंके साथ मिली होनेसे गीली लकड़ी भी जल जाती है, उसी तरह पापियोंके सम्पर्कमें रहनेसे धर्मात्माओंको भी उनके समान दण्ड भोगना पड़ता है; इसलिये पापियोंका संग कभी नहीं करना चाहिये। वहाँ न मृत्युका प्रवेश है, न वृद्धावस्थाका। उनमें किसीको कोई दु:ख भी नहीं होता। ब्रह्मचारी लोग मृत्युके पश्चात् उन्हीं लोकोंमें जाकर आनन्दका अनुभव करते हैं। पापियोंका लोक है नरक, जहाँ सदा अँधेरा छाया रहता हैं। पापात्मा पुरुष वहाँ बहुत वर्षोंतक कष्ट भोगते हुए दौड़ते फिरते हैं, उन्हें अपने लिये बहुत शोक होता है।

कुन्तीनन्दन। राजाको सदाही दान, यज्ञ, उपवास और तपस्या आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हुये धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करना चाहिये। यदि वे प्रजा की रक्षा नहीं करता तो उसके राज्यमें जो कुछ प्राप्त होता है उसका चौथाई फल राजाको ही भोगना पड़ता है। जो राजा कामी, क्रूर और लोभी होता है वह प्रजाका पालन नहीं कर सकता। नीरे कोमल स्वभावका मनुष्य राज्यका शासन नहीं कर सकता। युधिष्ठिर तुम तो अत्यन्त धार्मिक, कोमल और दयालु हो। तुम्हें देखकर लोग तुमको कायर समझेंगे। तुम्हारे प्रति उनकी महत्त्वबुद्धि नहीं होगी। इसलिये अपने पिता-पितामहोंके व्यवहारको अपनाओ। इसप्रकार विकलता और कोमलता का आश्रय लेकर तुम धर्मके फलको नहीं पा सकोगे। भयसे डरा हुआ मनुष्य जिससे शान्ति प्राप्त करे वहीं स्वर्गका सबसे बड़ा अधिकारी है। सुहृद् और सज्जन पुरुष तुम्हारे आश्रित होकर जीविका चलावें, जो राजा धृष्ट, शूर, प्रहार करनेवाला, दयालु, प्रजापर स्नेह करनेवाला और दानी होता है उसीके साथ आश्रय लेकर मनुष्य जीवन-निर्वाह करते हैं।

राजाको मित्रोंकी रक्षा करनी चाहिये। असावधान राजाका सबलोग तिरस्कार करते हैं। मनुष्यका चित्त चंचल होता है। भला मनुष्य बुरा और बुरा भला हो जाया करता है। शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है। किसी दूसरे पर अपना कार्य नहीं छोड़ना चाहिये और अपने सामने ही उसे पूरा कराना चाहिये। किसी पर पूरा-पूरा विश्वास करनेसे धर्म और अर्थ दोनोंका नाश होता है। राजाको कुछ लोगोंपर ही विश्वास करना चाहिये और उनकी ओरसे सतर्क भी रहना चाहिये यही सनातन

राजनीति है। जो मनुष्य राजाका अभ्युदय देख उसकी और भी अधिक उन्नति चाहे और अवनति होनेपर बहुत दुखी हो जाय, वही राजाका उत्तम मित्र है। जब अपने धर्मकी वृद्धि हो तो यथाशक्ति उसको भी समृद्धिशाली बनाना चाहिये। नुकसान चाहनेवाले तो शत्रु ही है। मित्र की उन्नति देखकर जो जलता नहीं और विपत्ति देखकर घबरा उठता है, वह मित्र अपने आत्मा के समान है। जिसकी बुद्धि अच्छी और स्मरणशक्ति तीव्र हो, जो कार्य करने में कुशल और स्वभावमें दयालु हो, कभी मान-अपमान को हृदय में दुर्भाव नहीं करता ऐसा मनुष्य यदि ऋत्विज, आचार्य अथवा अत्यन्त सम्मानित मित्र हो तो उसे अपना मन्त्री बनाकर रखना चाहिये। एक काम पर एक ही व्यक्ति नियुक्त करना चाहिये। जो कीर्तिको प्रधानता देता और मर्यादाके भीतर कायम रहता है, शक्तिशाली पुरुषोंसे द्वेष और अनर्थ नहीं करता, कामना, भय, लोभ अथवा क्रोधसे भी जो धर्मका त्याग नहीं करता, जिसमें कार्यकुशलता तथा आवश्यकताके अनुरूप बातचीत करनेकी पूरी योग्यता हो, उसे तुम अपना प्रधान मन्त्री बनाना। जो कुलीन, शीलवान, सहनशयील, डींग न मारनेवाले, शूरवीर, आर्य, विद्वान तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यको समझनेमें कुशल हों, उन्हें अमात्यके पदपर बिठाना एवं सुख और सुविधा देना। एक कुटुम्बी दूसरे कुटुम्बियोंका अभ्युदय नहीं देख सकता। जिसके कुटुम्बी या सगे-सम्बन्धी नहीं है तो उसको सुख भी नहीं मिलता। इसलिये कुटुम्बिजनोंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। बन्धु-बान्धवसे हीन मनुष्यको बाहरके लोग दबाते हैं। बाहरके लोगोंको दबानेपर अपने भाई-बन्धुही सहारा देते हैं। यदि कोई गैर आदमी अपने जातिवालोंका अपमान कर रहा हो, तो सजातीय बन्धु उसे कभी बरदाश्त नहीं करेंगे। अपनी जाति का अपमान अपना ही अपमान है। परिवार का व्यक्ति अपना कोई अनुग्रह नहीं मानता है। परिवार वालोंमें भलाई-बुराई दोनों देखनेमें आती है। जो कुटुम्बी, सगे-सम्बन्धी, मित्र, शत्रु तथा उदासीन व्यक्तियोंके साथ इस नीतिके अनुसार व्यवहार करे उसका सुयश चिरकाल तक रहता है। जो मन्त्री खजानेसे धनकी चोरी करता हो, धन हड़पनेवाले मन्त्री अक्सर ऐसे ही राजाको मार डालते हैं। जो राजाका धन अपहरण करते हैं उनके साथ कठोरता से बर्ताव करें।

जो लज्जावान, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल और किसी विषयपर अच्छी तरह बोल सकता हो, उन्हींको तुम सभासद बनाना। जो कुलीन हो, अपनी शक्तिको छिपाता न हो, सुखमें, दु:खमें, बीमारी में कभी अपना साथ न छोड़ता हो वहीं सुहृद बनाने योग्य है। जो अपने देशमें और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुये हो। बुद्धिमान, रूपवान, बहुज्ञ, निर्भय तथा प्रेम रखनेवाले हो, उन्हें सेनापति पद देने योग्य है। स्वामीका हित चाहनेवाले मनुष्यको अपने कार्यमें मन्त्री बनाना। जिनमें विनययुक्त बुद्धि, सुन्दर, स्वभाव, तेज, धीरता, क्षमा, प्रेम और स्थिरता हो, उनके इन गुणोंकी परीक्षा करके यदि वे राजकीय कार्यभारको सँभालनेमें सिद्ध हों तो उन्हें मन्त्री बनाना चाहिये। जिसकी बुद्धि शुद्ध और धारणा शक्ति प्रबल हो, शुद्ध आचरणवाला और विद्वान हो, उसकी सब प्रकार की परीक्षा करनेपर ईमानदार साबित हो, वह गुप्त सलाह सुननेका अधिकारी है। नगर और देशके लोग जिसपर धर्मसे विश्वास करते हो वह नीतिका विद्वान हो, वह गुप्तचर बननेके योग्य है। राजदूत राज्यकी जड़ है और गुप्त मन्त्रणा उसका बल है। यदि मन्त्री मद, क्रोध, मान और ईर्ष्या त्यागकर राजाका अनुसरण करते हैं तो वे सुखी होते हैं। मन्त्रीमण्डल के सदस्योंकी आयु लगभग पचास वर्षकी हो। सारा मण्डल निर्भीक, किसीकी निन्दा न करनेवाला, अधिकार के अनुसार श्रुति-स्मृतियोंका विद्वान, विनयशील, लोभरहित तथा दुर्व्यसनोंसे दूर रहनेवाला होना चाहिये। जो राजा प्रजाके साथ अन्यायपूर्ण बर्ताव करता है। न्याय ही राजा की जड़ है। पापियोंको उनके अपराधके अनुसार दण्ड देना चाहिये। जो राजाका खून करनेका प्रयत्न करे, घरमें आग लगाये, चोरी करे ऐसे व्यक्तिको कठोर दण्ड देना चाहिये। इसतरह राजाका सनातन-धर्मका पालन होता है। राजा किसी भी आपत्तिमें हो पर दूतका वध निषेध है। राजा दूसरोंका अपने ऊपर विश्वास पैदा करे, पर स्वयं किसीका विश्वास न करे। राजाको ऐसे नगर में रहना

चाहिये जहाँ विद्वान और कारीगर बसे हों, आवश्यक वस्तुओंका भंडार हो, चौराहे और बाजार जिसकी शोभा बढ़ा रहे हों, व्यापारके लिये प्रसिद्ध स्थान हो, कहींसे भी भय आनेकी सम्भावना न हो, सामाजिक उत्सव और देवपूजनका क्रम चलता हो, ऐसे नगरमें राजाको स्वयं निवास करना चाहिये।

राजाको अन्न भंडार तथा अस्त्र और शस्त्र के भण्डार को बढ़ाना चाहिये। सब प्रकारके कारखानों की उन्नति करना चाहिये। काष्ट, लोहा, धान की भूसी, कोयला, बाँस, तेल-घी, शहद, औषध आदि सामग्रियों का संग्रह करे। पीनेवाले जलाशयों और वृक्षोंकी रक्षा करे। आचार्य, पुरोहित, कारीगर, ज्योतिषी और वैद्यों का सम्मान करे। विद्वान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, कार्यकुशल, शूर, बहुज्ञ तथा साहसी मनुष्यों को ही काम में लगावें और पापियों को दण्ड दे। दण्ड देने का कार्य राजाको अपने हाथमें रखना चाहिए। गुप्तचरों के द्वारा राज्यमें होनेवाली गतिविधि का ध्यान रखें। प्रजाजन की रक्षा करें और कोई काम ऐसा न करे जिससे धर्ममें बाधा आये। दीन, अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओं की जीविका का प्रबन्ध करे। राजाको तपस्वियोंका सत्कार करना चाहिये और आपत्ति के समय जब राजा शरणार्थी होकर उनके पास आता है तब वे उसे आश्रय देते हैं।

अपने राज्य को छोटे-छोटे गाँवों में बाँट देना चाहिये और हर एक गाँव का एक जिलाधीश बनाना चाहिये तथा ऐसे जिलाधीश के समूह के ऊपर एक राज्यपाल नियुक्त करना चाहिये जो ग्रामव्यवस्था देखे। राजाको माल की खरीदी विक्री, रास्तेकी दूरी, उसपर पड़नेवाले खर्च का विचार करना चाहिये। इतना अधिक कर भी न लगावे कि देनेवाले को विशेष कष्ट हो। उनका काम और मुनाफा देखकर ही कर लगाना चाहिये। अधिक लोभ के कारण अपने आधारभूत राज्य व प्रजाओंके जीवनभूत खेती आदि को नष्ट न करे। प्रजावर्ग को अधिक दोहन न करे जिससे प्रजा दरिद्र हो जाय। फिर प्रजा से कोई बड़ा काम नहीं हो सकता। जो राजा अपने राष्ट्रपर अनुग्रह करके उसकी रक्षा करता है और उसकी उचित आमदनीसे अपनी जीविका चलाये वह सफल राजा होता है। राजाको अपने निर्यात का धन बढ़ाना चाहिये। जब कोई संकट आवे और धनकी आवश्यकता पड़ने पर देशको राष्ट्रपर आये हुए भय का ज्ञान कराना चाहिये। प्रजासे धन लेना चाहिये और यह आश्वासन देना चाहिये कि आपत्ति काल समाप्त होने पर लिया हुआ ऋण वापस किया जायगा। प्रजा की सुख-शांति के लिये राज्यकी चारों ओर चार दिवारी बनानी चाहिये। सेवकों का भरण-पोषण करना, युद्धके भयको टालना, तथा सबके योग-क्षेमकी चिन्ता करनी चाहिये। जो राजा व्यापारियोंके हानि-लाभकी चिन्ता छोड़कर उन्हे सताता है वो प्रजा राज्यको छोड़कर चली जाती है। प्रजाके साथ कठोरता का नहीं कोमलताका व्यवहार करना चाहिये। व्यापारियों को सान्त्वना देनी चाहिये।

धर्म की इच्छा रखनेवाले राजाको देश कालकी परिस्थितिका विचार कर अपनी बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाके हितसाधनमें संलग्न रहना चाहिये। शराबखाना खोलनेवाले, वेश्याएँ, कुट्टनियाँ, जुआरी ऐसे ही बुरे कर्म करनेवाले जितने लोग हों, वे राष्ट्रके पतन में सहभागी होते हैं उनको दण्ड देकर दबायें रखना चाहिये अन्यथा वे ही लोग राज्यमें रहकर अच्छे लोगोंको तबाह कर देते हैं। जो राजा प्रजाको मर्यादाके भीतर नहीं रखता उसे प्रजावर्गके पापका चौथाई भाग खुद भोगना पड़ता है। मदिरालय तथा वेश्यालय, जुआ घर, द्यूतगृह का निषेध करना चाहिये। आसक्ति के वशीभूत हुआ मनुष्य मांसाहारी, मदिरा पान, परधन और पर स्त्री का अपहरण करता है। जो जीवोंपर अनुग्रह करें और प्रजाके अभ्युदयमें सहायक हो ऐसे लोगों की संख्या राज्यमें बढ़ानी चाहिये। भ्रष्टाचारी, अधिकारियों को दण्ड देना चाहिये। उनका निरीक्षण जाँच पड़ताल करवानी चाहिये। प्रजा को खेती, गौरक्षा, वाणिज्य अन्य व्यवसायोंमें लोगोंको अधिक-से अधिक लगाना चाहिये। धनी लोग राष्ट्रके प्रधान अङ्ग व आधार होते हैं। वृक्षोंको कोई काँटने न पावे। राजाका कर्त्तव्य है कि ब्राह्मण की जीविका का प्रबन्ध करें। ब्राह्मणों को प्रसन्न रखे। तुम शत्रुओंको जीतो, प्रजाकी रक्षा करो, नाना प्रकारके यज्ञ करो, सदा

युद्ध के लिये तैयार रहो। किसानलोग अधिक लगान लगानेसे कष्ट न पावे।

यह राजधर्म के बारे में उतथ्य ऋषिने माधान्ता को जो उपदेश दिया वह इसप्रकार है। राजा धर्मकी रक्षा और प्रजाके लिये होता है, विषय-सुखोंका उपभोग करनेके लिये नहीं। राजा सम्पूर्ण जगत्का रक्षक है। धर्मके ही ऊपर सम्पूर्ण भूतोंकी स्थिति है और धर्म राजाके आश्रयसे रहता है। परम धर्मात्मा एवं श्रीसम्पन्न राजा धर्मका साक्षात् स्वरूप कहलाता है, यदि वह धर्मका पालन नहीं करता तो देवता उसकी निन्दा करते हैं और वह पापकी मूर्ति समझा जाता है। जो अपने धर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनके ही अभीष्टकी सिद्धि देखी जाती है, सारा संसार उस मङ्गलमय धर्मका ही अनुसरण करता है। यदि राजा पापको नहीं रोकता है तो देशमें धार्मिक बर्तावका उच्छेद हो जाता है और सब ओर महान् अधर्म फैल जाता है, जिससे प्रजाको दिन-रात भय बना रहता है। यह मेरी वस्तु है, यह मेरी नहीं है ऐसा कहना कठिन हो जाता है। सत्पुरुषोंकी बनायी हुई कोई भी धार्मिक व्यवस्था रहने नहीं पाती। जब पापका बल बढ़ जाता है तो मनुष्योंके लिये अपनी स्त्री, अपने पशु और अपने खेत या घरका ठिकाना नहीं रहता। देवताओंकी पूजा बंद हो जाती है, पितरोंका श्राद्ध रुक जाता है, अतिथियोंका सत्कार नहीं होता, द्विजलोग व्रतधारण (ब्रह्मचर्यपालन) पूर्वक वेदाध्ययन नहीं करते। ब्राह्मण यज्ञ नहीं करते।

इहलोक और परलोक दोनोंपर दृष्टि रखकर ऋषियोंने स्वयं ही राजाकी सृष्टि की। राजाका कर्त्तव्य है कि वह धर्मका पालन एवं प्रसार करे। धर्मके बढ़नेसे सम्पूर्ण प्राणियोंका अभ्युदय होता है और उसकी हानिसे सबकी हानि होती है, इसलिये धर्मका लोप नहीं होने देना चाहिये। ब्रह्माजीने प्राणियोंके कल्याणार्थ ही धर्मकी सृष्टि की है, इसलिये अपने देशमें धर्मका प्रचार कराना चाहिये, यह प्रजाजनोंपर महान् अनुग्रह होगा। राजा वही है, जो धर्माचरणपूर्वक प्रजाका पालन करता है। इसलिये तुम भी काम और क्रोधको त्यागकर धर्मकी ही रक्षा करो। धर्म ही राजाओंके लिये सबसे बढ़कर कल्याण करनेवाला है।

राजन्। सम्पत्तिका पुत्र है दर्प, जो अधर्मके अंशसे उत्पन्न हुआ है। उसने बहुत-से देवताओं, असुरों और राजर्षियोंका विनाश कर डाला है। उसको जो जीत लेता है, वही राजा होता है; दर्पसे पराजित हो जानेपर तो वह दास ही कहलाता है। कृपणता, अभिमान, दम्भ तथा क्रोधका सर्वथा परित्याग करे। वन्ध्याओं, वेश्याओं, परस्त्रियों और कुमारी कन्याओंके साथ समागम न करे। जब राजा धर्मकी ओरसे असावधान रहता है तो उत्तम कुलोंमें वर्णसंकर मनुष्योंके अंशसे पापी और राक्षस जन्म लेते हैं। नपुंसक, काने, लँगड़े, लूले, गूँगे तथा बुद्धिहीन बालकोंकी उत्पत्ति होती है।

राजाओंके प्रमादसे और भी बहुतसे बड़े-बड़े दोष प्रकट होते हैं। वर्णसंकरोंको जन्म देनेवाले पापकर्मोंकी वृद्धि होती है। गर्मीके मौसममें ठंडक और सर्दीमें गर्मी पड़ने लगती है। कभी सूखा पड़ जाता है, कभी अधिक वर्षा होती है। प्रजामें तरह-तरहके रोग फैल जाते हैं। आकाशमें धूमकेतु आदि तारे उगते हैं, भयंकर ग्रह दिखायी देते हैं तथा राजाके विनाशकी सूचना देनेवाले नाना प्रकारके उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं। जो राजा अपनी रक्षा नहीं करता, वह प्रजाकी भी रक्षा नहीं कर सकता। प्रथम तो उसकी प्रजाका नाश होता है, उसके बाद वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है। राजा धर्म छोड़कर जब प्रमादमें पड़ जाता है तो कोई भी मनुष्य अपने धनको अपना नहीं कह सकता।

जब राजा धर्मका आचरण करे और समयपर वर्षा हो तो उससे जो धन-धान्यादि सम्पत्ति होती है, उसके द्वारा प्रजाका बड़े आनन्दसे पालन-पोषण होता है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब-के-सब राजाके आचरणमें स्थित है; राजा ही युगका प्रवर्तक होनेके कारण युग कहलाता है। चारों वर्ण, चारों वेद और चारों आश्रम- ये सब राजाके प्रमादसे नष्ट हो जाते हैं। जब राजा धर्मकी ओरसे असावधान हो जाता है तो गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि ये तीन अग्नि, ऋक्, साम और यजु- ये तीन वेद और दक्षिणाओंके साथ सम्पूर्ण यज्ञ भी विकृत हो जाते हैं। राजा ही प्राणियोंको जन्म देनेवाला

और राजा ही उनका नाश करनेवाला है। धर्मात्मा होनेपर वह जीवनदाता है और पापी होनेपर विनाशकारी। राजाके प्रमादग्रस्त हो जानेपर उसकी स्त्री, पुत्र, बान्धव तथा मित्र सब मिलकर शोक करते हैं। उसके हाथी, घोड़े, गौ, ऊँट, खच्चर और गदहे आदि पशु दु:ख पाते हैं। विधाताने दुर्बल प्राणियोंकी रक्षाके लिये ही बलसम्पन्न राजाकी उत्पत्ति की है। निर्बल प्राणियोंका महान् समुदाय राजाके ही ऊपर टिका हुआ है। दुर्बलोंको सताने पर वे कुलको अपनी क्रोधाग्निसे जला डालते हैं। झूठे अपराध लगाये जानेपर जब दीन-दुर्बल मनुष्य रोने-बिलखने लगते हैं, उस समय उनकी आँखोंसे जो आँसू गिरते हैं, वे कलम लगानेवालेके पुत्रों और पशुओंका नाश कर डालते हैं। जैसे पृथ्वीमें बोया हुआ बीज तुरंत फल नहीं देता, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी तत्काल फल नहीं देता (समय आनेपर ही उसका फल मिलता है)। जहाँ निर्बल मनुष्य मारा जाता है और उसे कोई रक्षक नहीं मिलता, वहाँ उस सतानेवाले पापीको दैवकी ओरसे भयंकर दण्ड प्राप्त होता है।

यदि राजा काम या लोभवश किसी गरीबकी दीनताभरी प्रार्थनाको ठुकराकर उसके धनको अन्यायपूर्वक छीन ले तो समझना चाहिये उसका महान् विनाश निकट है। जब राज्यकी प्रजा राजाका गुणगान करती हुई धर्मका आचरण तथा वैदिक संस्कारोंका विधिवत् अनुष्ठान करती है, उस समय राजा पुण्यका भागी होता है और वही प्रजा जब धर्मके स्वरूपको न समझकर अधर्ममें प्रवृत्त हो जाती है तो राजाको पापका भागी होना पड़ता है। जहाँ पापी मनुष्य प्रकट रूपसे अत्याचार करते हुए विचरते हैं, सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें उस राज्यके भीतर कलियुग प्रकट हुआ समझा जाता है। परंतु जब राजा दुष्ट मनुष्योंको दण्ड देता है, तो उसके राज्यमें सर्वत्र अभ्युदय होने लगता है।

अपने आश्रितोंको बाँटकर खाना, मन्त्रियोंका अनादर न करना और बलके घमंडमें चूर रहनेवालोंका दमन करना राजाका धर्म है। मन, वाणी और शरीरसे समस्त प्रजाकी रक्षा करना तथा अपराध करनेपर पुत्रको भी क्षमा न करना राजाका धर्म कहा गया है। राष्ट्रकी रक्षा, लुटेरोंका मूलोच्छेद और संग्राममें विजय- राजाके लिये धर्म माना गया है। अपना प्रियसे भी प्रिय व्यक्ति क्यों न हो, यदि वह क्रियाद्वारा अथवा वाणीसे भी पाप करे तो राजाका कर्त्तव्य है कि वह उसे क्षमा न करके दण्ड ही दे। शरणागतोंका पुत्रकी भाँति पालन करे और धर्मकी मर्यादा भंग न होने दे। जिस समय राज्यमें रहनेवाले लोग राग-द्वेषका त्याग करके श्रद्धापूर्वक यज्ञ करें और उसमें प्रचुर दक्षिणा दें, उस समय राजाके द्वारा धर्मपालन हुआ समझा जाता है। दीन-दुखी, वृद्ध तथा अनाथोंके आँसू पोंछकर उन्हें प्रसन्न करना, मित्रोंको बढ़ाना, शत्रुओंका संहार करना, साधु पुरुषोंका पूजन, सत्यका पालन, भूमिदान, अतिथियोंका सत्कार और सेवकोंका पोषण करना राजाका धर्म है। जिसमें निग्रह और अनुग्रह दोनों प्रतिष्ठित हैं- जो दुष्टोंको दण्ड देता और सत्पुरुषोंपर कृपा रखता है, उस राजाको इस लोकमें और परलोकमें भी सुख मिलता है। राजा दुष्टोंको दण्ड देनेके कारण यम और धार्मिकोंपर अनुग्रह करनेसे उनके लिये परमेश्वरके समान है। जब वह अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखता है, तो राज्यशासनमें समर्थ होता है और जब उनको वशमें नहीं रखता तो अपनी मर्यादासे नीचे गिरता है। जैसे यमराज सभी प्राणियोंपर समान रूपसे शासन करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी बिना किसी भेदभावके सभी प्राणियोंको नियन्त्रणमें रखना चाहिये। प्रमाद छोड़कर क्षमा, विवेक, धैर्य और सद्बुद्धिकी शिक्षा लेनी चाहिये। सब प्राणियोंकी सामर्थ्यका ज्ञान रखना चाहिये। मीठे वचन बोलना तथा नगर और देशके लोगोंकी रक्षा करते रहना चाहिये।

राज्यकी रक्षा तो वही कर सकता है, जो बुद्धिमान और शूरवीर होनेके साथ ही दण्ड देनेका ढंग जानता हो। जो दण्ड देनेसे हिचकता है, वह मूर्ख और कायर मनुष्य क्या राज्यकी रक्षा करेगा? तुम्हें सुन्दर, कुलीन, राजभक्त एवं बहुज्ञ मन्त्रियोंको साथ लेकर आश्रमवासी तपस्वियों तथा दूसरे लोगोंकी भी बुद्धिकी परीक्षा करनी चाहिये। इससे तुमको सम्पूर्ण भूतोंके परमधर्मका ज्ञान हो जायगा, फिर स्वदेशमें रहो या परदेशमें, कहीं भी तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं होगा। इस तरह विचार

करनेसे धर्म ही अर्थ और कामसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। धर्मात्मा पुरुष इस लोकमें तथा परलोकमें भी सुख उठाता है। यदि मनुष्योंको सम्मान दिया जाय तो वे सम्मानदाताके हितके लिये अपने पुत्रों और स्त्रियोंको भी निछावर कर देते हैं। प्राणियोंको अपने पक्षमें मिलाये रखना, उन्हें कुछ देना, मीठी बोली बोलना, प्रमादका त्याग करना और पवित्र रहना ये राजाका ऐश्वर्य बढ़ानेके महान् साधन हैं। इन्द्र, वरुण, यम तथा सम्पूर्ण राजर्षियोंने ऐसा ही बर्ताव किया है। राजा धर्मका आचरण करता है, उसके सुयशको देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व सदा गाते रहते हैं।

महात्मा वामदेवने वसुमना राजाको इसप्रकार उपदेश दिया- तुम धर्मका ही अनुष्ठान करो, धर्मसे बढ़कर कोई भी चीज नहीं है। जो राजा धर्ममें स्थित रहते हैं, वे इस सारी पृथ्वीको अपने नियंत्रण कर लेते हैं। जिसकी दृष्टिमें अर्थसिद्धिकी अपेक्षा भी धर्मका विशेष महत्त्व है और जो उसीको बढ़ानेका विचार करता है, धर्मके कारण उसकी बड़ी शोभा होती है। इसके विपरीत जो राजा अधर्मोन्मुख होकर बलात्कारसे उसीका आचरण करता है, जो दुष्ट अपने पापी मन्त्रीकी सहायतासे धर्मकी हानि करता है, वह अपने परिवारके सहित प्रजाका वध्य हो जाता है; उसका सर्वनाश होनेमें देरी नहीं लगती। किंतु जो हितकारी बातोंको ग्रहण करनेवाला, ईर्ष्याशून्य, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् होता है, उस राजाकी इसी प्रकार वृद्धि होती है राजाको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि और मित्रोंसे सम्पन्न होनेपर भी अपनेको कभी पूर्ण न समझे। ये धर्मादि ही राजाकी लोकयात्राके आधार हैं। इन्हींके द्वारा उसे यश, कीर्ति, वैभव और प्रजाकी प्राप्ति होती है। किंतु जो राजा कृपण, स्नेहशून्य, दण्डके द्वारा प्रजाको दु:ख देनेवाला और बुद्धिहीन होता है तथा जिसे अपराधीकी भी पहचान नहीं होती, उसकी लोकमें अपकीर्ति होती है और मरनेपर नरकमें जाना पड़ता है तथा जो दूसरोंका मान करनेवाला, दानी, मधुरभाषी, धर्मके विषयमें गुरुकी सम्मतिसे चलनेवाला, अपने अर्थको स्वयं समझनेवाला और धर्मको ही सबसे बड़ा लाभ माननेवाला होता है, वह राजा बहुत दिनोंतक सुख भोगता है।

जिस राज्यमें अपने बलके घमंडसे राजा दुर्बलोंपर अत्याचार करने लगता है, वहाँ उसके अनुयायी भी इसी प्रकारके आचरणको अपनी जीविकाका साधन बना लेते हैं। वे लोग तो उस पापी राजाका ही अनुसरण करते हैं।

राजाको चाहिये कि यदि किसीका अप्रिय किया हो तो फिर उसका प्रिय भी करे। इस प्रकार यदि अप्रिय पुरुष भी प्रिय करने लगता है तो थोड़े ही समयमें वह प्रिय हो जाता है। मिथ्या भाषण न करे; बिना कहे ही दूसरोंका प्रिय करे; किसी कामनासे, क्रोधमें आकर अथवा द्वेषवश धर्मका त्याग न करे, किसी काममें जल्दबाजी न करे और किसीमें भी दोष-दृष्टि न करे। ऐसे आचरणसे शत्रु भी अपने वशमें हो जाता है। यदि अपना प्रिय हो जाय तो बहुत प्रसन्न न हो और अप्रिय हो जाय तो घबरावे नहीं। यदि आमदनीमें कमी पड़ जाय तो दुखी न हो। उस समय भी प्रजाके ही हितका विचार करे। जो बड़े-बड़े काम हों, उनपर जितेन्द्रिय, अत्यन्त अनुगत, पवित्रात्मा, सामर्थ्यवान् एवं प्रीतिमान् पुरुषोंको नियुक्त करे। इसी प्रकार जिसमें ये सब गुण हों और जो राजाको प्रसन्न भी रख सकता हो तथा स्वामीका काम करनेमें सदा सावधान रहता हो, उसे धनकी व्यवस्थाका काम सौंपे। जो राजा मूर्ख, इन्द्रियलोलुप, लोभी, दुराचारी, दुष्ट, कपटी, हिंसक, दुष्टबुद्धि, अविद्वान, अनुदार, मद्यपी, जुआरी, स्त्रीलम्पट और आखेटप्रिय पुरुषको महत्वपूर्ण कार्योंपर नियुक्त करता है, उसकी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो जाती है। जो राजा अपने शरीरकी रक्षा और अपने रक्षणीयोंकी रक्षाका ठीक प्रबन्ध करता है, उसकी प्रजाकी वृद्धि होती है।

राजन्। इस जगतमें सभी पदार्थ नाशवान् हैं, कोई भी वस्तु निरापद नहीं है; इसलिये राजाको धर्मपर स्थित रहकर धर्मानुसार ही प्रजाका पालन करना चाहिये। दुर्गकी रक्षाके साधन, युद्धकी सामग्री, न्यायकी व्यवस्था, मन्त्रियोंके सत्परामर्श और प्रजाको यथासमय सुख पहुँचाना- इनसे राज्यकी उन्नति होती है। जो पुरुष दानशील, मृदुलस्वभाव, पवित्रचरित्र और दु:खके समय अपने आदमियोंको न छोड़नेवाला होता है, उसीको लोग राजा बनाते हैं। किंतु जो मनके

प्रतिकूल होनेके कारण अपने हितैषीकी बात नहीं सुनता, सर्वदा लापरवाह-सा रहता है और बुद्धिमानोंके आचरणोंका अनुसरण नहीं करता, वह क्षात्रधर्मसे पतित हो जाता है। जो प्रधान मन्त्रियोंका त्याग करके निम्नश्रेणीके लोगोंको अपना प्रिय बनाता है, द्वेषवश अपने सद्गुणी सम्बन्धियोंका भी सम्मान नहीं करता तथा जो चञ्चलचित्त और अत्यन्त क्रोधी है, वह तो सर्वदा मृत्युके ही पड़ोसमें रहता है। असमयमें कभी कर न लगावे; अप्रिय हो जानेपर कभी दुखी न हो; प्रिय होनेपर हर्षसे फूल न जाय; सदा शुभकर्मोंमें लगा रहे। जो लोग पापबुद्धि होते हैं, वे अपने सर्वगुणसम्पन्न और प्रियभाषी स्वामीसे भी द्रोह करनेमें नहीं चूकते, इसलिये ऐसे लोगोंका कभी विश्वास न करे।

यदि राज्यकी जड़ मजबूत न हो तो राजाको अनधिकृत देशोंपर अधिकार करनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जिसके मूलमें ही दुर्बलता है, उस राजाको इस प्रकारका लाभ होना सम्भव नहीं है। किंतु जिस राजाका देश प्रशस्त, धन-धान्यसे पूर्ण, राजभक्त और संतुष्ट हो तथा जिसके मन्त्री सुयोग्य हों और सैनिक संतुष्ट, सुशिक्षित एवं शत्रुओंको खदेड़नेमें समर्थ हों, वह थोड़ी-सी सेनासे भी विजय प्राप्त कर सकता है। जिस राजाके पुरवासी और देशवासी जीवोंपर दया करनेवाले और धनसम्पन्न होते हैं, उसकी जड़ मजबूत कही जाती है। जिसका वैभव दिनोंदिन बढ़ रहा हो, जो सब प्राणियोंपर दया रखता हो, काम करनेमें फुर्तीला हो और अपने शरीरकी रक्षाका ध्यान रखता हो, उस राजाके राज्यकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। बुद्धिमान् राजाको ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये जिसे भले आदमी बुरा समझते हों, उसे ऐसे काममें ही मन लगाना चाहिये जिससे सबका हित हो। जो राजा इस प्रकारका बर्ताव करता है, वह इस लोक और परलोक दोनोंको सुधारकर विजय प्राप्त करता है।

राजाको एक पुरुषके साथ अकेला ही युद्ध करना चाहिये। यदि शत्रु कपटसे युद्ध करे तो स्वयं भी कपटसे युद्ध करें। यदि धर्मसे युद्ध करें तो स्वयं भी धर्मसे उसका सामना करे। यदि शत्रु किसी संकटमें पड़ जाय, शरणागत हुए परास्त शत्रु, डरा हुआ शत्रु बलहीन हो, जिसने शस्त्रोंका त्याग किया हो, चिकित्सा रोगी, जिसका वाहन नष्ट हो गया हो, उसपर कभी प्रहार न करे। यही सनातन धर्म है। सत्पुरुषोंमें सदासे ही सज्जनोंका धर्म रहा है। जो क्षत्रिय धर्मयुद्धमें अधर्मके द्वारा विजय प्राप्त करता है, वह पापी है और स्वयं ही अपना नाश करता है। धर्मपूर्वक तो मर जाना भी अच्छा है बल्कि पापके द्वारा विजय पानी भी अच्छी नहीं है। अधर्मका फल तत्काल नहीं मिलता परंतु वह मूल और शाखा दोनोंहीको जलाकर दम लेता है। पापी पुरुषकी धर्ममें श्रद्धा नहीं रहती इसलिये वह अन्तमें विनाशको प्राप्त होता है। अधर्म से पायी हुई विजय अस्थायी और स्वर्गसे गिरानेवाली होती है। वह राजा और राज्य दोनोंहीको नष्ट कर देता है। दोनों ओरकी सेनाओंके युद्धमें संधि करानेके लिये ब्राह्मण आ जाय, तो सनातन कालकी मर्यादाको ध्यानमें रखकर सन्धि कर लेनी चाहिये। जो विजय धर्मयुद्धसे प्राप्त होती है उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। जिस राजाके सेवक और मन्त्री संतुष्ट है उसकी जड़ मजबूत होती है। पापियोंको दण्ड और सत्पुरुषोंको आश्रय देनेसे तथा यज्ञानुष्ठान और दान करनेसे राजालोग सबप्रकारके दोषों और पापोंको छूटकर शुद्ध हो जाते हैं। विजय प्राप्त कर लेनेपर वे प्रजाकी उन्नति करते हैं। जो राजा प्रजाको धनक्षय, प्राणनाश और दुःखोंसे बचाता है तथा लुटेरोंसे उसके प्राणोंकी रक्षा करता है वह धनदायक और सुखप्रद माना जाता है। सच्चा क्षत्रिय सदाही युद्धमें शस्त्रोंसे मरना चाहता है वह कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाता और अपने प्राणोंकी परवाह न करके पूरी शक्तिसे युद्ध करता है उसे अक्षयलोकोंकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें भीष्मने युधिष्ठिरको राजा प्रतर्दन और मिथिलेश्वर जनकके युद्धका उल्लेख बताया। शौर्यसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई वस्तु नहीं है। शूरवीर ही सबका पालन करता है और उसीके आश्रित यह सारा जगत् है। जिस सेनाके वाहन और सैनिक उत्साहयुक्त दिखायी दें, उसकी विजय अवश्य होती है। शंखोंकी गम्भीर ध्वनि, रणभेरीकी ऊँची आवाज और योद्धाओंका अपने अनुकूल रहना भी भविष्यमें होनेवाली विजयके शुभ लक्षण हैं। जबतक सन्धि

होनेकी सम्भावना हो तब तक युद्ध नहीं करना चाहिये। पहले सामनीतिका आश्रय लेकर शत्रुओंको समझानेका प्रयत्न करना चाहिये। फिर भेदनीतिके अनुसार उनमें फूट डालनेका प्रयत्न करे, इसमें भी सफलता न मिले तो दाननीतिका प्रयोग करे। राजा यदि उग्र स्वभावका हो तो सब प्राणी उससे द्वेष करने लगते हैं और कोमल हुआ तो सब उसकी अवहेलना करते है। इसलिये आवश्यकतानुसार उग्रता और कोमलता दोनोंसे काम लेना चाहिये। अपने बहादुर सैनिकोंकी प्रशंसा करते रहे।

प्राचीन कालकी बात है, एक बार कौशल प्रदेशका राजा क्षेमदर्शी धनके अभाव में बड़ी कठिन अवस्थामें आ गया। उसकी सैनिक शक्ति नष्ट हो गयी। वह कालकवृक्षीय मुनिके पास गया और उसे अपना सब हाल सुनाया। उसके पास बहुत धन था और सब सपनेकी सम्पत्तिकी तरह नष्ट हो गया। जो अपनी भारी सम्पत्तिका त्याग कर देते हैं वो बड़ा मुश्किल काम करते हैं। मेरे पास तो धनके नामपर कुछ भी नहीं रहा। मैं राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट, दीन और आर्त हूँ, इस शोचनीय अवस्थामें यहाँ पड़ा हूँ। अब मुझे किसप्रकार सुख और शान्ति नसीब हो, उसप्रकार मुझे उपदेश करें।

तो कालकवृक्षीय मुनि बोले, कोई भी वस्तु इस संसार में तुम्हारी नहीं है। जो बुद्धिमान ऐसी समझ रखता है उसे कठिन से कठिन आपत्तिमें पड़नेपर भी शोक नहीं होता। जो वस्तु पहले बहुत बड़े समुदायके अधिकारमें रह चुकी है वह तुम्हारी नहीं है। जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी होता है। तुम्हारे शोकमें इतनी शक्ति नहीं है कि वह नष्ट होनेसे उसे बचा ले। फिर ऐसी दशामें शोक करना व्यर्थ है। यह शरीर अनित्य है। एक दिन तुम भी नहीं रहोगे। मैं, तुम, तुम्हारे मित्र, शत्रु, तुम्हारे सम्बन्धी इनमेंसे कोई भी रहनेवाला नहीं है। एकदिन सबका अन्त होना निश्चित है। सब इस दुनियासे उठ जायेंगे। ऐसी अवस्थामें यदि मनुष्य अपनी ममता को त्याग दे। यह चीज मेरी नहीं है ऐसा समझकर अपना कल्याण करे, प्रारब्ध ही सबसे प्रबल है, वही देता और वही छीन लेता है, ऐसा ज्ञान रखनेवाला मनुष्य विद्वान है और उसका सत्पुरुषोंमें स्थान है। राजकुमार क्षेमदर्शीने कहा, यह मैं भलीभाँति जानता हूँ कि यह सारा राज्य मुझे दैवेच्छासे प्राप्त हो गया और महाबली कालने वह सब-का-सब छीन लिया। पर फिर भी मैं धैर्यधारण नहीं कर पा रहा हूँ।

तब कालकवृक्षीय मुनि बोले, यथार्थ तत्त्वका निश्चय हो जानेपर मनुष्य किसी भी बातके लिये भूत और भविष्यको लेकर शोक नहीं करता। क्या तुम दैववश जो कुछ मिल जाय उससे उतने ही आनन्दके साथ रह सकोगे? आज राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित होनेपर भी क्या तुम शुद्ध हृदयसे शोकका परित्याग कर दोगे? पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके फलस्वरूप जब मनुष्यकी भोग-सामग्री छिन जाती है तो अपनी दुर्बुद्धिके कारण वह विधाताको कोसने लगता है और स्वत: प्राप्त हुए परिमित पदार्थोंसे उसे संतोष नहीं होता। संसारके मनुष्य प्राय: ईर्ष्या और अहंकारसे भरे होते हैं। सहसा दूसरोंकी सम्पत्ति देख तुम्हारे मनमें डाह तो नहीं होती? योगधर्मको जाननेवाले धर्मात्मा एवं धीर मनुष्य अपनी राज्यलक्ष्मी तथा पुत्र-पौत्रोंका भी स्वयं ही त्याग कर देते हैं। यद्यपि धन परम दुर्लभ है तथापि यह अस्थिर है, ऐसा समझकर साधारण मनुष्य भी इसका परित्याग कर देते हैं। तुम्हें मालूम है कि भोग प्रारब्धके अधीन और अस्थिर हैं, तो भी नहीं चाहने योग्य विषयोंको चाहते हो और उनके लिये अत्यन्त दीनता दिखाते हुए शोक कर रहे हो। इन कामनाओंको छोड़ो और उस बुद्धिको जाननेका प्रयत्न करो जिससे जीवका कल्याण होता है। जो तुम्हें अर्थके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं, ये सब-के-सब अनर्थ ही हैं। तुम अर्थों को अनर्थरूप ही समझो। इन भोग-पदार्थोंके पीछे कितने ही लोगोंका सारा धन नष्ट हो जाता है। दूसरे लोग भोगजनित सुखको अक्षय मानकर उसके ही लिये धनकी इच्छा करते हैं। कितने ही मनुष्य धन-सम्पत्तिमें इस तरह रम जाते हैं कि उन्हे उससे बढ़कर सुखका साधन और कुछ जान ही नहीं पड़ता। किन्तु बड़े कष्टसे कमाया हुआ उनका वह अभीष्टधन यदि नष्ट हो जाता है तो उनके सम्मानका सारा किला ही ढह जाता है। कुछ ही मनुष्य ऐसे हैं, जो अपना

वास्तविक कल्याण चाहते हैं और परलोकमें सुख पानेकी इच्छासे लौकिक भोगोंसे विरक्त हो धर्मकी शरण लेते हैं। कुछ तो ऐसे हैं, जो धनके लोभमें पड़कर अपने प्राणतक गँवा देते हैं; वे धनके सिवा जीवनका दूसरा कोई उद्देश्य ही नहीं समझते। जो इस अनित्य जीवनके लिये मोहवश धनमें ही दृष्टि गड़ाये रहते हैं। संग्रहका अन्त विनाश है, जीवनका अन्त मरण है और संयोगका अन्त वियोग है- यह जानकर भी कौन इनमें अपना मन लगायगा? राजन्। चाहे मनुष्य धनको छोड़ता है या धन मनुष्यको छोड़ देता है; एक-न-एक दिन ऐसा अवश्य होता है- इस बातको जाननेवाला कौन-सा मनुष्य है, जो धनके लिये चिन्ता करेगा?

दूसरोंके भी धन और मित्र नष्ट होते हैं- ऐसा जानकर अपने मन, वाणी और इन्द्रियोंपर काबू रक्खो। तुम तो उत्तम ज्ञानसे परितृप्त हो, तुम्हारे जैसे व्यक्तिको शोक नहीं करना चाहिये। तुम्हारी इच्छा बहुत थोड़ी है। तुममें चञ्चलताका दोष नहीं है, तुम्हारा हृदय कोमल और बुद्धि एक निश्चयपर डटी रहनेवाली है तथा तुम जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी हो; तुम्हारे-जैसा मनुष्य शोक नहीं करता। तुम्हें कपटसे भरी हुई और शास्त्रके विरुद्ध वृत्तिका आश्रय नहीं लेना चाहिये। क्रूरताका भी त्याग करना चाहिये। ये बड़ी ही दूषित और पापपूर्ण वृत्तियाँ हैं, कायर मनुष्य ही इनका आश्रय लेते हैं। तुम तो फल-मूलसे ही जीविका चलाते हुए अकेले वनमें विचरते रहो। वाणीका संयम करके मनको वशमें रक्खो और सम्पूर्ण प्राणियोंके हित-साधनमें लग जाओ। सबपर दया करो। जंगली फल-मूलोंसे ही संतुष्ट होकर जंगलोंमें अकेले विचरना ही विद्वानके योग्य वृत्ति है।

काम, क्रोध, हर्ष, भय और दम्भ छोड़कर शत्रुकी भी सेवा करो, उसके सामने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाओ। उत्तम तथा विशुद्ध व्यवहारसे उसका विश्वासपात्र बनो। विदेहराज जनक यद्यपि तुम्हारे शत्रु हैं तथापि यदि तुम उन्हें प्रसन्न कर सके तो तुम्हें बहुत-सा धन देंगे; क्योंकि वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। यदि ऐसा हुआ तो तुमको बहुत-से शुद्ध हृदयवाले, दुर्व्यसनोंसे रहित तथा उत्साही सहायक मिल जायँगे। जो मनुष्य शास्त्रके अनुकूल आचरण करता हुआ अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखता है, वह अपना तो उद्धार करता ही है, प्रजाको भी प्रसन्न कर लेता है। राजा जनक बड़े धीर और श्रीसम्पन्न हैं, जब वे तुम्हारा सत्कार करेंगे तो सभी लोग तुमपर विश्वास करने लगेंगे। फिर तुम मित्रोंकी सेना इकट्ठी करना और अच्छे-अच्छे मन्त्रियोंसे सलाह लेना। इसके बाद शत्रुके शत्रुसे मिलकर शत्रुसेनाका विध्वंस करा डालना। तुम अपने शत्रुको दुर्व्यसनोंमें आसक्त करना। उसे पशु-पक्षी पालनेका शौक पैदा करना। उसका अधिक धन खर्च होनेके कारण शत्रुकी आर्थिक स्थिति नष्ट हो जायगी। शत्रुसे इतने बड़े कार्य करवाना जिनका पूरा होना बहुत कठिन हो। बलवानोंके साथ उसका विरोध करा दो। उसका खजाना खाली करा दो। शत्रुका कोष क्षीण होते ही वह वशमें आ जायगा। इससे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। उसे ऐसा उपदेश कराओ जिससे वह राज्यके परित्यागकी इच्छा करे। यदि उसका शरीर नीरोग हो तो ऐसी औषधिका प्रयोग करके उसको मरवा डालो। कृत्रिम उपायोंसे उसे मौतके घाट उतारो। इसीतरह मनुष्य शत्रुका सर्वनाश कर सकता है।

राजकुमार प्रतर्दन ने कहा, मुनिवर। मैं कपट और दम्भ का आश्रय लेकर जीवित रहना नहीं चाहता। आश्रय से मुझे बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल भी जाय तो भी मैं उसकी इच्छा नहीं करता। यह सब दुर्गुण मैंने पहले ही त्याग दिये हैं। क्रूरताका बर्ताव करके मुझे इस जगत्में रहनेकी इच्छा नहीं है। अत: मैं अधर्म का आचरण नहीं कर सकता। मुनि बोले, राजकुमार। तुम सभी गुणोंसे युक्त हो। स्वभावसे ही तुम धर्मात्मा हो और ज्ञानी हो। मैं राजा जनक से तुम्हारे कल्याण के लिये स्वयं ही बात करूँगा और तुम दोनोंमें ऐसा सम्बन्ध करा दूँगा जो स्वाभाविक चिरस्थायी होगा। तुम्हारा जन्म उच्चकुल में हुआ है। तुम विद्वान, दयालु तथा राज्यसंचालन करानेमें निपुण हो। तुम्हे वह अपना मन्त्री बनायेगा। तुम योग्य पुरुष होते हुए राज्यसे भ्रष्ट कर दिये गये हो। बहुत बड़ी विपत्ति में फँसे हुये हो। तो भी तुमने क्रूरता ग्रहण नहीं की और दयायुक्त आचरण से ही जीवन बिताना चाहते

हो। मैं विदेहराज जनक को मेरे आश्रमपर बुलाऊँगा और उन्हें आज्ञा दूँगा कि वे तुम्हें अपना मन्त्री बनावें।

मुनिने राजा जनक को अपने यहाँ बुलवाया और कहा, यह राजकुमार उच्च वंशमें उत्पन्न हुआ है। इसको मैं भलीभाँति जानता हूँ। इसका हृदय दर्पण के समान शुद्ध और स्वच्छ है। आचरण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है। मैंने हर प्रकारसे इसकी परीक्षा कर ली है, इसमें दुर्भावना का नाम नहीं है। इसलिये तुम इसके साथ सन्धि कर लो। इस बुद्धिमान पुरुष को तुम अपना मन्त्री बनाओ। यह राजकुमार महात्मा है। इसने सत्पुरुषोंके मार्गका आश्रय लिया है। मुनिके इस प्रकार कहनेपर राजा जनकने उनका पूर्ण सम्मान किया और कहा आपकी जो आज्ञा हो, उसे स्वीकार करनेमें ही मेरा कल्याण है। तदनन्तर मिथिलानरेशने कोसल राजकुमार प्रतर्दन को पास बुलाया और कहाँ मैंने धर्म और नीति का आश्रय लेकर सम्पूर्ण जगत्पर विजय पायी है। आप मेरे यहाँ पधारे हैं आपका स्वागत है। विदेहराज जनकने उसके साथ अपनी पुत्रीका ब्याह कर दिया। यही राजाओंका परम धर्म है; उन्हें परस्पर मेल करके ही रहना चाहिये।

युधिष्ठिर। माता-पिता तथा गुरुजनोंकी पूजा ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। इसका पालन करनेवाला मनुष्य पुण्यलोकोंपर विजय पाता है। उसे संसारमें महान सुयश प्राप्त होता है। माता-पिता और गुरुजन जिस कामके लिये आज्ञा दे वह धर्मके अनुकूल हो या विरुद्ध, उसका पालन करना ही चाहिये। जिस कामके लिये उनकी आज्ञा हो वह धर्म ही है।

माता, पिता और गुरु ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नि हैं। पिता गार्हपत्य, अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि हैं। लौकिक अग्नियोंसे माता-पिता आदि त्रिविध अग्नियोंका गौरव अधिक है। इन तीनोंकी सेवामें यदि भूल न करोगे तो तुम तीनों लोकोंको जीत लोगे। पिताकी सेवासे इस लोकको, माताकी सेवासे परलोकको और गुरुकी सेवासे ब्रह्मलोकको तर जाओगे। ऐसा करनेसे तुम्हें उत्तम यश, परम कल्याण और महान् फल देनेवाले धर्मकी प्राप्ति होगी। इनको भोजन करानेके पहले स्वयं भोजन न करे, इनपर कोई दोषारोपण न करे और सदा इनकी सेवामें संलग्न रहे। इसीके आचरणसे तुम कीर्ति, पवित्र यश तथा उत्तम लोकोंपर विजय पाओगे। जिसने इन तीनों का आदर किया उसने मानो सम्पूर्ण जगत्का आदर कर लिया और जिसके द्वारा इनका अनादर हुआ, उसके सम्पूर्ण शुभकर्म व्यर्थ हो जाते हैं। जिसने इन तीनों गुरुजनोंका सम्मान नहीं किया, उसके लिये न यह लोक है न परलोक। न इस लोकमें यश मिलता है न परलोकमें सुख।

गुरु (आचार्य) का दर्जा माता-पिता से बढ़कर है। माता-पिता तो केवल इस शरीरको जन्म देते हैं, किंतु आत्मतत्त्वका उपदेश देनेवाले आचार्यके द्वारा जो जन्म प्राप्त होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है। माता-पिता यदि कोई अपराध भी करें तो भी उनपर कभी हाथ नहीं उठाना चाहिये। शिष्य का धर्म है गुरुकी सेवा करना। मनुष्य जिस धर्मसे पिताको प्रसन्न करता है, उसके द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी भी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्तावसे वह माताको प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीकी पूजा हो जाती है। परंतु जिस व्यवहारसे शिष्य अपने गुरुको प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म परमात्माकी पूजा सम्पन्न होती है; इसलिये गुरु माता-पितासे भी बढ़कर पूज्य है। गुरुओंकी पूजासे देवता, ऋषि और पितरोंको भी प्रसन्नता होती है, इसलिये गुरु परम पूजनीय है। माता, पिता और गुरु कभी भी अपमानके योग्य नहीं है, उनके किसी भी कार्यकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। गुरुजनोंके ही सत्कारको देवता और महर्षि स्वीकार करते हैं। जो लोग मनसे अथवा क्रियाके द्वारा उपाध्याय, पिता और मातासे द्रोह करते हैं तथा जो पिता-माताके द्वारा अपना पालन-पोषण कराकर बड़े होनेपर उनका पालन-पोषण नहीं करते, उन्हें गर्भहत्याका पाप लगता है; जगत्में उनसे बढ़कर कोई पापी नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीहत्यारा और गुरुका वध करनेवाला इन चार प्रकारके पापियोंका उद्धार करनेके लिये कोई

प्रायश्चित्त नहीं है। अत: माता, पिता और गुरुकी सेवा ही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा धर्म है, यही कल्याणका साधन है; इससे बढ़कर कोई कार्य नहीं है।

सत्य बोलना ही उत्तम है, सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है। मगर संसारके मनुष्य सत्य-असत्यको ठीक-ठीक समझ नहीं पाते। जहाँ असत्यका परिणाम सत्य और सत्यका परिणाम असत्य होता हो वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है। ऐसे अवसरपर जो सत्य बोलता है, वह मूर्ख माना जाता है। अत: परिणामके द्वारा सत्य-असत्यका निश्चय करके जो सत्य बोलता है, वही धर्मज्ञ है। प्राणियोंके अभ्युदय और कल्याणके लिये ही धर्मकी व्याख्या की गयी है, जिससे इस उद्देश्यकी सिद्धि होती हो, वही धर्म है। धर्मका नाम धर्म इसलिये पड़ा है कि वह सबको धारण करता है- अधोगतिमें जानेसे बचाता और जीवनकी रक्षा करता है; धर्मसे ही सम्पूर्ण प्रजा जीवन धारण कर रही है; अत: जिस कर्मसे प्राणियोंके जीवनकी रक्षा हो, वही धर्म है। अत: जो कर्म अहिंसासे युक्त हो, वही धर्म है।

यदि चोर किसी धनीका धन लूटनेकी इच्छासे उसका पता पूछते हों और न बतानेसे उस धनीका बचाव हो जाता हो तो कुछ भी उत्तर नहीं देना चाहिये। किंतु यदि नहीं बतानेपर चोरोंके मनमें संदेह होता हो और इसके लिये कुछ-न-कुछ बताना आवश्यक हो जाय तथा शपथ खानेसे भी पापियोंके हाथसे छुटकारा मिलता हो तो वहाँ सत्यकी अपेक्षा असत्य बोलना ही अच्छा है। ऐसे अवसरके लिये शास्त्रकारोंने यही विचार किया है। अपनी शक्ति रहते पापियोंको धन नहीं देना चाहिये। जो कर्जदारको अपने अधीन करके- उससे शारीरिक सेवा कराकर धन वसूल करना चाहता है, उसके दावेको ही सही साबित करनेके लिये यदि कुछ लोगोंको गवाही देनी पड़े और वे गवाह कहने योग्य सत्य बातको छिपा लें तो वे सब-के-सब मिथ्यावादी होते हैं। किंतु प्राणसंकटके समय, विवाहके अवसरपर और धन तथा दूसरोंके धर्मकी रक्षाके लिये आवश्यकता पड़नेपर असत्य बोला जा सकता है। कोई नीच मनुष्य भी यदि दूसरोंकी कार्यसिद्धिकी इच्छासे धर्मके लिये भीख माँगने आवे तो उसे देनेकी प्रतिज्ञा करके अवश्य ही दान देना चाहिये। जो कोई मनुष्य धार्मिक आचारसे भ्रष्ट हो पापमार्गका आश्रय ले, उसे अवश्य दण्ड देना चाहिये। जो दुष्ट धर्ममार्गसे हटकर सदा आसुरी प्रवृत्तिमें लगा रहता है और धर्म त्यागकर पापसे जीविका चलाना चाहता है, उस कपटी पापात्माको हर एक उपायसे मार डालना चाहिये; क्योंकि सभी पापियोंका यही सिद्धान्त होता है कि जैसे भी हो धनका संग्रह करना चाहिये। ऐसे लोग दूसरोंको असह्य कष्ट देते हैं। छल-कपटके मन्दिरमें ही निवास करते हैं। उन्हें न देवलोक प्राप्त होता है न मनुष्यलोक। प्रेतोंकी जो गति होती है, वही उनकी भी होती है। जो यज्ञ न करते हों, तपस्यासे दूर रहते हों, ऐसे मनुष्योंका सङ्ग कदापि न करना।

पापियोंका तो यही निश्चय होता है कि धर्म कोई चीज नहीं है। ऐसे लोगोंको जो मार डाले, उसे पाप नहीं लगता। कपटसे जीविका चलानेवाले मनुष्य कौए और गिद्धोंके समान होते हैं। मरनेके बाद वे इन्हीं योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो मनुष्य जिसके साथ जैसा बर्ताव करे, वह भी उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे- यह धर्म (न्याय) है। कपटीके साथ कपट और सदाचारीके साथ सदाचारका व्यवहार करे।

जो दम्भ नहीं करते, जिनकी जीविका नियमित है, जो विषयोंकी ओर बढ़ती हुई इच्छाको रोकते हैं, दूसरोंके कटुवचन सुनकर भी उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी किसीको मारते नहीं, स्वयं देते हैं पर दूसरोंसे माँगते नहीं, अतिथियोंको सदा आश्रय देते हैं, कभी किसीकी निन्दा नहीं करते, नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करते हैं, धर्मको जानते हैं, माता-पिताकी सेवामें लगे रहते हैं तथा दिनमें सोते नहीं, वे दु:खोंसे छुटकारा पा जाते हैं। जो मन, वाणी और कर्मसे कभी पाप नहीं करते, किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुँचाते, राजा होकर लोभवश प्रजाका धन नहीं लेते और देशकी सब ओरसे रक्षा करते हैं, उन्हें कभी दु:ख

नहीं उठाना पड़ता। जो अपनी ही स्त्रीके साथ धर्मानुकूल समागम करते हैं तथा जो युद्धमें मृत्युका भय छोड़कर धर्मपूर्वक विजय पाना चाहते हैं, वे दु:खोंसे पार हो जाते हैं। जो लोग प्राण जानेके अवसर आनेपर भी झूठ नहीं बोलते, उनपर सम्पूर्ण प्राणियोंका विश्वास होता है और वे कभी दु:ख नहीं उठाते। जिनके शुभकर्म दिखावेके लिये नहीं होते, जो सदा मीठे वचन बोलते हैं, जिनका धन धर्मके काममें लगता है, वे दुस्तर विपत्तिके भी पार हो जाते हैं। जो तपस्यामें लगे रहते हैं, बचपनसे ही ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और वेद, विद्या तथा व्रतमें निष्णात होते हैं, जिनके रजोगुण और तमोगुण शान्त हो गये हैं, जिनकी सदा सत्त्वगुणमें स्थिति रहती है, जिनसे दूसरे प्राणियोंको भय नहीं होता तथा जो दूसरे प्राणियोंसे स्वयं भय नहीं करते और सम्पूर्ण जगत्‌को आत्माके समान देखते हैं, वे कठिन-से-कठिन विपत्तिके भी पार हो जाते हैं।

परायी सम्पत्ति देखकर जिनके मनमें जलन नहीं होती, जो सत्पुरुष हैं और ग्राम्य विषय-भोगोंसे दूर रहते हैं, जो सब देवताओंको प्रणाम करते तथा सब धर्मोंको सुनते हैं, जिनमें श्रद्धा और शान्ति विद्यमान है, जो स्वयं आदर नहीं चाहते और दूसरोंका आदर करते हैं, जिनमें अपने क्रोधको रोक लेनेकी शक्ति है, जो दूसरोंका भी क्रोध शान्त कर देते हैं और कभी किसीपर कोप नहीं करते, वे सब प्रकारके दु:खोंसे पार हो जाते हैं। जो जन्मकालसे ही मधु-मांस और मदिराका सेवन नहीं करते, जो स्वादके लिये नहीं जीवनकी रक्षाके लिये भोजन करते हैं, विषय-वासनाकी तृप्तिके लिये नहीं संतानकी इच्छा से मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, जो सत्य बात बतानेके लिये ही बोलते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके अधीश्वर भगवान् नारायणकी भक्ति करते हैं, विषय-वासनाकी तृप्तिके लिये नहीं संतानकी इच्छा से मैथुनमें प्रवृत्त होते हैं, जो सत्य बात बतानेके लिये ही बोलते हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके अधीश्वर भगवान् नारायणकी भक्ति करते हैं, वे दुस्तर दु:खों से भी पार हो जाते हैं। नारायणकी शरण लेनेवाले भक्त दु:खोंसे मुक्त हो जाते हैं। जिससे मनुष्योंके लिये वह कर्त्तव्य बताया गया है, जिससे वे इस लोकमें और परलोकमें भी विपत्तिके बन्धनसे छुकारा पा जाते हैं।

पौरिक नामका एक राजा था। वह बडा ही क्रूर और नीच था। सदा दूसरे प्राणियोंकी हिंसामें लगा रहता था। मरनेके बाद उसने अपने पूर्व कर्मोंके कारण सियारकी योनिमें जन्म लिया। किन्तु उसे पूर्वजन्मका भी स्मरण बना रहा। सियारकी योनिमें उसने जीवोंकी हिंसा करना छोड़ दिया और सत्य बोलनेका नियम लिया और संसारमें रहने लगा। सियारके अच्छे आचार-विचार की चर्चा चारों ओर फैल गयी। एक वनके व्याघ्रने स्वयं आकर उसका विशेष सम्मान किया और उसे शुद्ध व बुद्धिमान समझकर अपना मन्त्री बना लिया। सियारने व्याघ्रसे कहा, जिन्हें नीतिका ज्ञान हो, जो संधि करानेमें कुशल, विजयाभिलाषी, लोभरहित, बुद्धिमान, हितैषी तथा उदार हृदयवाले हों ऐसे व्यक्तिको अपना मन्त्री बनाकर पिता और गुरुके समान उसका आदर करें। मैं सुख, भोग तथा उस आधारभूत ऐश्वर्यको नहीं चाहता। आपके पुराने सेवकोंके साथ मेरा स्वभाव भी नहीं मिलेगा। वे दुष्ट प्रकृति के जीव हैं, सदा आपको मेरे विरुद्ध भड़काया करेंगे अत: उनको मेरे अधीन होकर रहना अच्छा नहीं लगेगा। मैं स्वयं कृतार्थ हूँ और प्रत्येक कार्य सफलताके साथ कर सकता हूँ। किसीकी सेवा करनेका मुझे बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। स्वच्छन्दतापूर्वक वनमें विचरता हूँ। राजाके पास रहनेमें सदा भय-ही-भय है। झूठे कलंकके कारण बहुतसे लोग राजाके हाथसे मारे जाते हैं। उतने सच्चे अपराधोंके कारण नहीं। मृगराज। यदि आप मुझे मन्त्री बनाना चाहते हैं तो आपको मेरे अनुसार बर्ताव करना पड़ेगा। मैं आपके दूसरे मन्त्रियोंके साथ कभी परामर्श नहीं करूँगा। व्याघ्र बोला, ऐसा ही होगा और सियारने उसका मन्त्रीपद स्वीकार किया। उसकी प्रशंसा देखकर उसके पहलेके सेवक और मन्त्री जल भुन गये। सब उसके साथ द्वेष करने लगे। वे सियार को अपने धर्मसे डिगाना चाहते थे और बहुत सा धन देनेका लोभ दिखाते थे। सियार बड़ा बुद्धिमान था वह उनके चक्कर में नहीं आया। उसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। एक दिन उन्होंने, शेरके खानेके लिये जो मांस

तैयार करके रखा था उसे चुरा लिया और सियारकी माँदमें ले जाकर रख दिया।

जब शेरको भूख लगी और खानेके लिए रखा हुआ मांस नहीं दिखायी दिया। उसने सेवकोंको आज्ञा दी। तब सबने सियार की शिकायत की कि बड़ा ही बुद्धिमान और अपने आपको पण्डित माननेवाले सियार ने आपके मांस का अपहरण किया है। शेर यह सुनकर गुस्सेमें भर गया। पुराने मन्त्री कहने लगे मृगराज वह बड़ा ही धर्मात्मा बना हुआ है। स्वभावका बड़ा कुटिल है। भीतरका पापी है, ऊपरसे धर्मका ढोंग करता है। उसके आचार-विचार दिखावे के लिये है और शेरको सियार की माँद में ले जाकर वह मांस दिखाया। तब शेरने उनकी बातें सुनी। उसे मार डालनेकी आज्ञा दी। शेरकी माताको यह बात मालूम पड़ी। वह शेरसे बोली पुत्र इसमें कुछ कपटपूर्ण षडयंत्र जान पड़ता है। जो अपने को निर्दोष बताते है असल में उन्हीं लोगोंको ईर्ष्या हो जाया करती है और वे किसीकी उन्नति नहीं सह सकते। लोभी शुद्ध स्वभाववाले व्यक्तियोंसे और आलसी तपस्वियोंसे द्वेष करते हैं। इसीप्रकार मूर्ख लोग पंडितोंसे, दरिद्र धनियोंसे, पापी धर्मात्माओंसे और कुरुप व्यक्ति रूपवानोंसे डाह करते हैं। संसार में बहुत से असभ्य प्राणी सभ्य की तरह और सभ्य प्राणी असभ्य की तरह देखे जाते हैं अत: उन सबकी परीक्षा कर लेना ही उचित है। इसलिये प्रत्यक्ष वस्तुकी जाँच करनी चाहिये। राजाके लिये किसीको मरवा डालना कठिन काम नहीं है उसमें उसकी कोई बड़ाई नहीं होती। शक्तिशाली पुरुषमें यदि क्षमा हो तो उसकी प्रशंसा की जाती है। यह सियार तुम्हारा बड़ा ही हितैषी मन्त्री है। जो दूसरोंके मिथ्या कलंक लगानेपर निर्दोषको भी अपराधी मानकर दण्ड देता हैवह राजा दुष्ट मन्त्रियोंके साथ रहनेके कारण शीघ्र ही मौत के मुखमें पड़ता है।

शेर की माता जिस समय शेरको यह उपदेश दे रही थी उसी समय सियार का एक गुप्त जासूस आया और उसने भंडाफोड़ कर दिया। सियार नीतिका शास्त्रज्ञाता था। उसने शेरकी आज्ञा लेकर उपवास करके प्राण त्याग देनेका विचार किया। शेरने उसे इस कार्यसे रोका और बड़े स्नेहके कारण उसका आदर-सत्कार किया। सियार बोला, राजन्। पहले तो आपने मुझे बहुत सम्मान दिया और पीछे अपमानित कर दिया। अब मैं आपके पास रहने योग्य नहीं हूँ। जो अपने पदसे हटाये गये हों, सम्मानित स्थानसे नीचे गिरा दिये गये हों, जिनका सर्वस्व छीन लिया गया हो, जो दुर्बल, लोभी, क्रोधी और डरपोक हों, जिन्हें धोखेमें डाला गया हो, जिनका धन लूटा गया हो तथा जिन्हें क्लेश दिया गया हो- ऐसे सेवक शत्रुओंका काम सिद्ध करते हैं। आपने परीक्षा लेकर योग्य समझकर मुझे मन्त्रीके आसनपर बिठाया था और फिर अपनी की हुई प्रतिज्ञाको तोड़कर मेरा अपमान किया है। ऐसी दशामें अब आपका मुझपर विश्वास नहीं रहेगा और मैं भी आपपर विश्वास न होनेसे उद्वेगमें पड़ा रहूँगा। आप मुझपर संदेह करेंगे और मैं सदा आपसे डरता रहूँगा। प्रेमका बन्धन जब एक बार टूट जाता है तो उसका जुड़ना मुश्किल हो जाता है और जो जुड़ा हुआ होता है वह बड़ी कठिनाईसे टूटता है। किंतु जो बारंबार टूटता और जुड़ता रहता है, उसमें स्नेह नहीं होता। राजाओंका चित्त चञ्चल होता है, उनके लिये सुयोग्य व्यक्तिको पहचानना बहुत कठिन है। सैकड़ोंमें कोई एक ही ऐसा मिलता है, जो सब तरहसे समर्थ हो और किसीपर भी संदेह न करता हो। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तथा युक्तियोंसे युक्त सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर सियारने शेरको प्रसन्न किया और फिर स्वयं वनमें चला गया। वह बड़ा बुद्धिमान था, इसलिये शेरकी अनुनय-विनय न मानकर मृत्युपर्यंत निराहार रहनेका व्रत ले एक स्थानपर बैठ गया और अन्तमें शरीर त्याग कर स्वर्गधाममें जा पहुँचा।

एक बार गंगाजीने समुद्रसे कहा, हे नाथ। जो वृक्ष अपने स्थानपर अकड़कर खड़े रहते हैं, हमारे प्रबल प्रवाहके सामने सिर नहीं झुकाते, इस प्रतिकूल बर्तावके कारण ही उन्हें अपना स्थान छोड़ना पड़ता है। किंतु बेंतके वृक्ष नदीके वेगको देखकर झुक जाता है, वह समयके अनुसार बर्ताव करता है, सदा हमारे अधीन रहता है, अत: अपने अनुकूल आचरणके

कारण उसको स्थान छोड़कर नहीं आना पड़ता। इसी प्रकार जो राजा बलमें बढ़े-चढ़े तथा विनाश करनेमें समर्थ शत्रुके पहले वेगको सिर झुकाकर नहीं सह लेते, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो बुद्धिमान् अपने तथा शत्रुके सार, असार, बल और पराक्रमको जानकर उसके अनुसार बर्ताव करता है उसकी कभी पराजय नहीं होती। जो सामने गुण गाता और परोक्षमें निन्दा करता है, वह तो कुत्तेके समान है; उसके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो चुके है; इसलिये बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि ऐसे पापीका तुरंत त्याग कर दे।

जिसके सभी सेवक ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हितैषी, कुलीन तथा प्रेमी हों, उसी राजाको राज्यका सुख मिलता है। जो कुलीन, जिन्हें धनका लोभ दिखाकर शत्रु फोड़ न सकें, जो राजाके साथ रहते और उन्हें अच्छी बुद्धि देते हों, जो अच्छे स्वभावके हों और भविष्यका प्रबन्ध करनेवाले, समयको जाननेवाले तथा बीती हुई बातके लिये शोक न करनेवाले हों- ऐसे मन्त्री जिस राजाके पास रहते हों, वही राज्यका फल भोगता है। जिस राजाके सहायक उसके सुखमें सुखी और दु:खमें दुखी रहते हों, उसकी आर्थिक उन्नतिकी चिन्तामें लगे रहनेवाले और सत्यवादी हों, वही राज्यका फल भोगता है। जिसका देश दुखी न हो, जो स्वयं खोटे विचारका न होकर सदा सन्मार्गपर चलनेवाला हो, वही राजा राज्यका भागी होता है। विश्वासपात्र, संतोषी तथा खजाना बढ़ानेका प्रयत्न करनेवाले खजांचियोंके द्वारा जिसके कोषकी सदा वृद्धि हो रही हो, वही राजा उत्तम है। यदि लोभवश फूट न सकनेवाले, संग्रही, सुपात्र, विश्वासनीय एवं निर्लोभ मनुष्य अन्नादि-भंडारकी रक्षामें नियुक्त हों, तो उसकी विशेष उन्नति होती है। जिसके नगरमें कर्मके अनुसार फल देनेवाले शफ्मुनिके बनाये हुए न्यायका पालन देखा जाता हो, वही राजा अपने धर्मका फल पाता है। जो अपने यहाँ अच्छे लोगोंको जुटाता है और अवसरके अनुसार राजनीतिके संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा समाश्रय नामक छ: गुणोंका उपयोग करता है, उसीको धर्मका फल मिलता है।

बुद्धिमान् राजाको चाहिये कि पहले अपने सेवकोंकी सच्चाई, शुद्धता, सरलता, स्वभाव, शास्त्रीय ज्ञान, सदाचार, कुलीनता, जितेन्द्रियता, दया, बल, पराक्रम, प्रभाव, विनय तथा क्षमा आदि गुणोंकी जानकारी प्राप्त करे। फिर जो जिस कार्यके योग्य जान पड़े, उन्हें उसी कामपर लगावे और उनकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध कर दे। बिना जाँचे-बूझे किसीको मन्त्री न बनावे; क्योंकि नीच कुलके मनुष्यका सहवास हो जानेपर राजाको न सुख मिलता है, न उसकी उन्नति होती है। यदि राजा अपराध न होनेपर भी किसी कुलीन पुरुषका तिरस्कार कर दे तो वह अपनी कुलीनताके ही कारण राजाका अनिष्ट करनेका विचार नहीं करता। किंतु एक नीच कुलका मनुष्य साधु स्वभावके राजाका आश्रय पाकर यद्यपि दुर्लभ ऐश्वर्यका उपभोग करता है, तथापि यदि एक बार भी राजाने उसकी निन्दा कर दी तो वह उसका शत्रु बन जाता है। इसलिये मन्त्री उसे बनावें जो कुलीन, शिक्षित, बुद्धिमान, ज्ञान-विज्ञानमें निपुण, सब शस्त्रोंका तत्त्व जाननेवाला, सहनशील, अपने देशका निवासी, कृतज्ञ, बलवान, क्षमावान, जितेन्द्रिय, निर्लोभ, जितना मिल जाय उतनेहीसे संतुष्ट रहनेवाला, अपने स्वामी तथा मित्रोंकी उन्नति चाहनेवाला, देश-कालका ज्ञान रखनेवाला, वस्तुओंका संग्रह करनेवाला, सदा मनको वशमें रखनेवाला, हितैषी, आलस्यसे रहित, संधि और विग्रहका अवसर जाननेवाला, नगर और देशके लोगोंका प्रेमभाजन, खाईं और सुरंग खुदवाने तथा व्यूह-निर्माणकी कलामें कुशल, अपनी सेनाका उत्साह बढ़ानेमें प्रवीण, चेष्टा और शकल देखकर मनुष्यके मनका भाव समझनेवाला, अहंकाररहित, निर्भीक, कार्यदक्ष, बलवान, उचित काम करनेवाला, शुद्ध, राजनीतिमें चतुर, गुणवान्, उद्योगशील, जड़तासे रहित, दूरतक विख्यात, अच्छे स्वभाववाले, मीठे वचन बोलनेवाला, धीर, शूरवीर तथा देश-कालके अनुसार काम करनेवाला हो।

जो राजा ऐसे योग्य पुरुषको मन्त्री बनाता और कभी उसका अनादर नहीं करता है, उसका राज्य चन्द्रमाकी चाँदनीकी

तरह चारों ओर फैल जाता है। राजाको भी उपर्युक्त गुणोंसे विभूषित होना चाहिये। साथ ही उसमें शास्त्रज्ञान, धर्मपरायणता और प्रजापालन आदि गुण भी रहने चाहिये। राजा धीर, क्षमावान्, पवित्र, मनुष्य और समयको पहचाननेवाला, बड़ोंकी सेवा करनेवाला, शास्त्रका ज्ञाता, बुद्धिमान्, स्मरणशक्तिसे सम्पन्न, न्यायके अनुसार कार्य करनेवाला, जितेन्द्रिय, प्रिय बोलनेवाला, शत्रुको भी क्षमा करनेवाला, श्रद्धालु और दुखियोंको हाथका सहारा देनेवाला हो। वह अहंकार न करे, कर्त्तव्य परायण बने, अपने भक्तोंपर प्रेम रक्खे, अच्छे मनुष्योंका संग्रह करे, जड़ताको त्याग दे, सदा प्रसन्नमुख बना रहे, सेवकोंका सर्वदा खयाल रक्खे, क्रोध न करे, हृदयको उदार बनावे, राजदण्डका कभी त्याग न करे, किंतु उसका न्यायके अनुसार उपयोग करे, गुप्तचररूपी नेत्रोंके द्वारा प्रजाकी प्रत्येक अवस्थापर दृष्टि रक्खे तथा धर्म और अर्थके विषयमें सर्वदा कुशल रहे। ऐसे सैकड़ों गुणोंसे युक्त राजा ही प्रजाके लिये वाञ्छनीय होता है।

राजन्। राज्यकी रक्षामें सहायता पहुँचानेवाले समस्त सैनिक भी इसी प्रकार अच्छे गुणोंसे सम्पन्न होने चाहिये। इसके लिये अच्छे पुरुषोंकी ही तलाश करनी चाहिये और उनका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जिसके योद्धा युद्धमें वीरता दिखानेवाले, कृतज्ञ, शस्त्र चलानेकी कलामें कुशल, निर्भय, धर्मशास्त्रके ज्ञाता तथा धनुर्विद्यामें प्रवीण होते हैं, उसी राजाके अधीन इस भूमण्डलका राज्य होता है।

जो राजा सेवकोंके गुण और स्वभावको जानकर उन्हें योग्य कार्योंमें नियुक्त करता है, उसे ही राज्यका फल मिलता है। मन्त्रीके पदपर भी उन्हींको बिठाना चाहिये, जिनमें उस पदके अनुरूप गुण और उस कामको सँभालनेकी योग्यता हो। जो भृत्योंको उनकी योग्यताके अनुकूल काम सौंपता है, वह राजा राज्यसे फायदा उठाता है; इसलिये मूर्ख, क्षुद्र, बुद्धिहीन, अजितेन्द्रिय तथा नीच कुलके मनुष्योंको राज्यके काममें नहीं लगाना चाहिये। जो सज्जन, कुलीन, शूर, ज्ञानी, किसीकी निन्दा न करनेवाले, उत्तम, पवित्र तथा कार्यदक्ष हों, वे ही लोग राजाके पार्श्ववर्ती (मन्त्री) होनेयोग्य हैं। ऐसे सहायकोंको पाकर सारी पृथ्वी जीती जा सकती है। राजाको यत्नपूर्वक अपने खजानेकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि वही राज्यकी जड़ है, उसीसे राजाका अभ्युदय होता है। युधिष्ठिर। भंडार-घरोंको भी अच्छे-अच्छे अनाजोंसे भरे रक्खो और उनकी रक्षाका भार सत्पुरुषोंके ऊपर छोड़ो। इस प्रकार धन और धान्य दोनोंका संग्रह करते रहो। अपने युद्धकुशल योद्धाओंको सदा अभ्यासमें लगाये रक्खो। भाई-बन्धुओंकी भी देख-भाल करो। मित्रों और सम्बन्धियोंके साथ रहकर पुरवासियोंके कार्य सिद्ध करो और उनके हित-साधनमें लगे रहो। राजाको बोलना ही पड़े तो मीठी वाणीसे बोले और वह भी बहुत कम।

राजा सबका प्रिय करे, किंतु धर्ममें बाधा न आने दे। जिसके सद्व्यवहारसे प्रसन्न होकर सारी प्रजा उसे अपना मानने लगती है, वह राजा पर्वतके समान अचल हो जाता है। जैसे सूर्य सबपर समान भावसे अपनी किरणें फैलाता है, उसी तरह राजा न्याय करते समय किसीका पक्षपात न करे। प्रिय और अप्रियको समान समझकर केवल धर्मकी ही रक्षा करे। जो कुलधर्म, प्रकृतिधर्म और देशधर्मको जाननेवाले तथा मीठे वचन बोलनेवाले हों, जिनपर जवानीमें कोई कलंक न लगा हो, जो हित-साधनमें लगे रहनेवाले, धैर्यवान्, निर्लोभ, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ तथा धर्म और अर्थकी रक्षा करनेवाले हों, ऐसे ही पुरुषोंको राज्यके सब कामोंमें लगाना चाहिये। मनमें संतोष रक्खे और गुप्तचरोंकी सहायतासे राष्ट्रकी सारी बातें जानता रहे। जिसके क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं जाते, जिसकी दया सबपर विदित हो, जो यथार्थ कारणोंसे ही दण्ड देता हो तथा अपनी और अपने देशकी रक्षा करता हो, वही राजा राजधर्मका ज्ञाता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे संसारको देखता है, उसी तरह राजा भी सदा अपने नेत्रोंसे राष्ट्रका निरीक्षण करे। राज्यमें भ्रमण करनेवाले चरोंकी बातें जाने और स्वयं अपनी बुद्धिसे भी विचार करे। जैसा समय आवे, उसके अनुसार काम करे और अपने अर्थ-संग्रहको दूसरोंपर प्रकट न करे। शास्त्रज्ञ राजाको, जहाँतक सम्भव

हो, खजानेका धन नहीं खर्च करना चाहिये। शत्रुको छोटा न समझे, बुद्धिसे अपनी स्थितिको समझता रहे और मूर्खोंपर कभी विश्वास न करे। शत्रु बालक, जवान अथवा बूढ़ा ही क्यों न हो, सावधान न रहनेवाले मनुष्यका नाश कर डालता है। इसलिये जो समयका ज्ञान रखता है वही राजाओंमें श्रेष्ठ है। हानि, लाभ, रक्षा और संग्रह आदिको समझकर बुद्धिमान पुरुष शत्रुके साथ संधि या विग्रह करे। बुद्धिसे विचारनेके बाद जो काम किया जाता है वही उत्तम होता हैं। लोभी मनुष्य दूसरोंके धन, भोग-सामग्री, स्त्री, पुत्र तथा समृद्धि सब कुछ हड़प लेना चाहता है। उसमें सब प्रकारके दोष प्रकट होते हैं। जिस राजाने धर्मात्मा ब्राह्मणोंसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, जो मन्त्रियोंसे सुरक्षित है, प्रजाका विश्वासपात्र है, वह अपनेको कर देनेवाले राजाओंको अपने वशमें रखता है। जिसको सुख, भोग, हठ, अन्याय तथा कानूनके पबलपर स्थित देखा जाता है उस राजाको परलोकमें उत्तम गति नहीं मिलती और उसका वह राज्यसुख भी अधिक दिनोंतक कायम नहीं रहता।

लोकमें किसी तरह धर्म और न्यायका लोप न होने पावे इसके लिये दण्ड आवश्यक है। व्यवहारकी रक्षाके कारण ही न्याय करना पड़ता है। मनुका उपदेश है जो राजा प्रिय और अप्रिय को समान समझकर पक्षपात न करके दण्डके विधान का ठीक-ठीक उपयोग करता हुआ प्रजाका पालन करे वही उसके लिये धर्म है। इससे सदा धर्म, अर्थ और कामकी सत्ता कायम रहती है। दण्डका स्वरूप प्रज्वलित अग्निके समान है। दण्ड सर्वत्र व्यापक होनेके कारण भगवान विष्णु हैं, मनुष्योंका अयन होनेसे नारायण है। सनातन स्वरूपको धारण करनेवाला है। अर्थ-अनर्थ, सुख-दु:ख, धर्म-अधर्म, बल-अबल, दुर्भाग्य-सौभाग्य, गुण-दोष, काम-अकाम, ऋतु-मास, रात-दिन, क्षण, प्रमाद-अप्रमाद, हर्ष-क्रोध, शम-दम, दैव-पुरुषार्थ, बन्ध-मोक्ष, भय-अभय, हिंसा-अहिंसा, तप, यज्ञ, संयम, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ, धैर्य, नीति-अनीति, शक्ति-अशक्ति, मान-अपमान, व्यय-अव्यय, विनय, दान, काल-अकाल, सत्य-असत्य, ज्ञान, श्रद्धा-अश्रद्धा, अकर्मण्यता-उद्योग, लाभ-हानि, जय-पराजय, कठोरता-कोमलता, मृत्यु, आना-जाना, विरोध-अविरोध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, असूया-अनसूया, लज्जा-अलज्जा, सम्पत्ति-विपत्ति, स्थान, तेज, कर्म, पाण्डित्य, वाक्शक्ति तथा तत्त्वबोध- ये सब दण्डके ही अनेकों रूप हैं।

युधिष्ठिर। संसारमें यदि दण्डकी व्यवस्था न होती तो सबलोग एक-दूसरेको पीस डालते। दण्डके ही भयसे कोई किसीपर हाथ नहीं उठाता। दण्डसे सुरक्षित रहकर ही प्रजा अपने राजाकी दिन-दिन उन्नति करती है, इसलिये दण्ड ही सबको आश्रय देनेवाला है। वही इस जगत्को शीघ्र सत्यमें स्थापित करता है। सत्यमें ही धर्मकी स्थिति है और धर्म ब्राह्मणोंमें रहता है। धर्मात्मा ब्राह्मण वेदोंका स्वाध्याय करते हैं, वेदोंसे ही यज्ञ प्रकट हुआ है, यज्ञसे देवता प्रसन्न होते हैं, प्रसन्न हुए देवता इन्द्रसे प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं, इससे इन्द्र प्रजाजनोंपर अनुग्रह करके (समयपर वर्षाके द्वारा खेती उपजाकर) उन्हें अन्न देता है और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण अन्नपर ही अवलम्बित रहते हैं। इसलिये दण्डसे ही प्रजाकी स्थिति कायम है, वही उसकी रक्षाके लिये सदा जाग्रत रहता है। वह सदा सावधान रहनेवाला और अविनाशी है तथा रक्षारूपी प्रयोजन सिद्ध करनेके कारण वह क्षत्रिय है। ईश्वर, पुरुष, प्राण, सत्त्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा तथा जीव ये दण्डके ही आठ नाम हैं।

ईश्वरने प्रयास करके जगत्की रक्षाके लिये क्षत्रियके हाथमें दण्डका अधिकार दिया है। सबके प्रति समान भावसे (पक्षपातरहित होकर) उपयोग करनेपर ही दण्डके स्वरूपकी रक्षा होती है। संसारका सनातन व्यवहार दण्डके ही अधीन है। राजाके लिये दण्डरूप धर्मसे बढ़कर और कोई पूज्य नहीं है। ब्रह्माजीने स्वधर्मकी स्थापना तथा लोकरक्षाके लिये ही दण्ड नीतिमय धर्मका उपदेश किया है। जो दण्ड है वही सनातन व्यवहार है, जो व्यवहार है वही वेद है, जो वेद है वही धर्म है और जो धर्म है वही सत्पुरुषोंका मार्ग है। सत्पुरुष हैं लोकपितामह ब्रह्माजी, जो सबसे प्रथम प्रकट हुए हैं। उन्होंने पहले देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य तथा सर्प आदिसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंकी रचना की। फिर वादी-प्रतिवादीके विवादका निर्णय

करनारूप जो व्यवहार (न्याय) हैं, उसका उपदेश किया। ब्रह्माजीने न्याय करते समय न्याय-कर्ताके समक्ष यह आदर्श रक्खा है कि यदि माता, पिता, भाई, स्त्री तथा पुरोहित भी अपने धर्ममें स्थिर नहीं रहते तो राजाको चाहिये कि उन्हें भी दण्ड दे, उसके लिये कोई भी अदण्डनीय नहीं है।

दण्ड न होनेसे प्रजामें वर्णसंकरता (व्यभिचार) की मात्रा बढ़ने लगी। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय तथा गम्य-अगम्यका विचार उठ गया। सब एक-दूसरेके प्राण लेने लगे। अपना और दूसरेका धन एक-सा समझा जाने लगा। जैसे कुत्ते मांसके टुकड़ेको आपसमें छीनते और नोचते-खसोटते हैं, उसी तरह मनुष्य भी एक-दूसरेका धन लूटने लगे। बलवान निर्बलोंको मौतके घाट उतारने लगे। सर्वत्र उच्छृङ्खलताका बोलबाला हो गया। दण्ड ही सबको वशमें रखता है। यह कालरूप दण्ड सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें भी जागरूक रहता है। यही सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर तथा प्रजापति है। यह साक्षात् महादेवजीका स्वरूप है। धर्मज्ञ राजाको चाहिये कि वह न्यायके अनुसार दण्डका उपभोग करे।

संसारमें जब मनुष्योंका चित्त शुद्ध होता है और वे धर्मपूर्वक किसी अर्थकी प्राप्तिका निश्चय करके प्रवृत्त होते हैं, उस समय उचित काल, कारण तथा सम्यक् कर्मानुष्ठानवश धर्म, अर्थ और काम तीनों एक साथ मिले हुए प्रकट होते हैं। इनमें धर्म तो अर्थका कारण है और काम अर्थका फल कहलाता है। परंतु इन तीनोंका मूल कारण है संकल्प। संकल्प है विषयरूप और सम्पूर्ण विषय इन्द्रियोंके उपभोगमें आनेके लिये हैं। यही धर्म, अर्थ और कामका मूल है। इससे निवृत्त होना ही मोक्ष है। फलेच्छाको त्याग कर त्रिवर्गका सेवन किया जाय तो उसका पर्यवसान भी मोक्षमें ही होता है। यदि मनुष्य उसे प्राप्त कर सके तो बड़े सौभाग्यकी बात है। अर्थसिद्धिके लिये समझ-बूझकर धर्मानुष्ठान करनेपर भी कभी अर्थकी सिद्धि होती है, कभी नहीं होती है; इसके सिवा, कभी दूसरे-दूसरे कामोंसे भी अर्थकी सिद्धि हो जाती है और कभी अर्थ नष्ट भी हो जाता है। अपने जिस किसी कार्य या पुरुषार्थसे दूसरोंका हित न होता हो तथा जिसे करनेमें संकोचका सामना करना पड़े-वह सब किसी तरह नहीं करना चाहिये। जिस कामको जिस तरह करनेसे मानव-समाजमें प्रशंसा हो वह काम उसी तरह करना चाहिये। थोड़ेमें यही शीलका स्वरूप है।

मनुष्य तप करे, बाहर-भीतरसे पवित्र रहे और सदा सत्यभाषणरूप धर्मका पालन किया करे। उसे प्रतिदिन माता-पिताकी सेवामें संलग्न रहना चाहिये इससे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। सामर्थ्यशाली पुरुषोंका धर्म दूसरा है और विपत्तिग्रस्त मनुष्योंका दूसरा। आपत्तिकालमें राजा और राज्यकी प्रजा दोनोंको एक-दूसरेकी रक्षा करनी चाहिये। यही सदाका धर्म है। जैसे प्रजापर संकट आ जाय तो राजा राशि-राशि धन लुटाकर जैसे आपत्तिसे बचाता है, उसी तरह राजाके ऊपर संकट पड़नेपर प्रजाको भी उसकी रक्षा करनी चाहिये। राजा जीविकाके लिये कष्ट पानेपर भी खजाना, राजदण्ड, सेना, मित्र तथा अन्य संचित साधनोंको कभी राज्यसे दूर न करे। भोजनके अन्नमेंसे भी बचाकर बीजकी रक्षा करनी चाहिये- यही धर्मज्ञोंकी भी राय है। जिसके राज्यकी प्रजाको अन्नका कष्ट हो और वहाँके मनुष्य जीविकाके लिये विदेशमें मारे-मारे फिरते हों, उस राजाको धिक्कार है। राजाकी जड़ हैं खजाना और सेना, इनमें सेनाकी जड़ है खजाना, सेना सब धर्मों (की रक्षा) का मूल और धर्म प्रजाका मूल है; इसलिये सबके मूलभूत खजानेको बढ़ावे। खजाना ही न हो तो सेना कैसे रह सकती है? अत: आपत्तिकालमें धन-संग्रहके लिये प्रजाको कुछ दबाना भी पड़े तो राजाको दोष नहीं लगता। राजाके लिये राज्यकी रक्षासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है; यही राजाका मुख्य धर्म बताया गया है।

राजाको चाहिये कि अपने और शत्रुके राज्यसे धन लेकर अपने खजानेको भरे; खजानेसे धर्मकी वृद्धि होती है और इसीसे राज्यकी जड़ भी फैलती है। कोषकी रक्षा करना और उसे बढ़ाना राजाका सदाका धर्म है, किंतु यदि राजा बलहीन हो तो

उसके पास कोष कैसे रह सकता है? कोषहीनके पास सेना कैसे रह सकती है? बिना सेनाके राज्य कैसे टिक सकता है? और राज्यहीनके पास लक्ष्मी कैसे रह सकती है? अत: राजाको सदा ही कोष, सेना और सुहृदोंको बढ़ाते रहना चाहिये। जिस प्रकार सूखी लकड़ी टूट जाती है, किंतु कभी झुकती नहीं, उसी प्रकार राजा नष्ट भले ही हो जाय, उसे कभी दबना नहीं चाहिये। राजाको ऐसी लोकमर्यादा स्थापित करनी चाहिये जो प्रजाके चित्तको प्रसन्न करनेवाली हो। लोकमें साधारण काममें भी मर्यादाका ही मान होता है। संसारमें ऐसे भी लोग हैं जो इहलोक, परलोक दोनोंहीको नहीं मानते। ऐसे नास्तिकोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। युद्ध न करनेवालेको मारना, परस्त्रीपर बलात्कार करना, कृतघ्नता, ब्राह्मणका धन लेना, किसीका सर्वस्व छीनना, स्त्रीका अपरहरण करना तथा किसी ग्रामादिपर आक्रमण करके स्वयं उसका स्वामी बन बैठना- ये सब बातें डाकुओंमें भी निन्दनीय मानी जाती हैं। भिन्न-भिन्न कार्योंका ऐसा प्रभाव होता है, जिसके कारण कभी शत्रु मित्र बन जाता है तो कभी मित्रका भी मन बिगड़ जाता है। वास्तवमें यह शत्रु-मित्रकी परिस्थिति सदा एक-सी नहीं रहती। अत: अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य तथा देश-कालका विचार करके किसीपर विश्वास और किसीके साथ युद्ध करना चाहिये। यदि प्राण संकटमें आ पड़े तो शत्रुओंसे भी मेल करके उनकी रक्षा करनी चाहिये।

किसी वनमें एक वटका वृक्ष था। उसपर अनेकों पक्षियोंने बसेरा कर रखा था। उस वृक्षपर अनेकों सर्प और जंगली जीव विश्राम करते थे। उसीपर एक पलित नामका बुद्धिमान् चूहा रहता था और उस वृक्षकी एक शाखापर लोमश नामका एक बड़ा बिलाव था। वह बिलाव बहुत से पक्षियोंको खाकर बड़े आनन्दसे अपना समय बिता रहा था। एक बार एक चाण्डालने वनमें जाल फैलाया और वह बिलाव उस जालमें फंस गया। तब चूहा बिलाव से निर्भय होकर वनमें आहार खोजने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि हरिण नामक नेवला पर पड़ी जो वहीं पृथ्वीमें बिल बनाकर रहता था। वह चूहेको देखते ही अपने बिलसे बाहर निकल आया। चूहेने ऊपर की ओर देखा एक चन्द्रक नाम का उल्लू उस पेड़की शाखापर बैठा था। चूहेने सोचा जब कोई जीव आपत्तिमें पड़कर विनाशके समीप पहुँच जाय तो उसे जैसे-तैसे बने अपने प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये। यदि मैं पृथ्वीपर उतरकर भागता हूँ तो नेवला मुझे खा जायगा, यहीं रहता हूँ तो उल्लू अपनी चोंचमे उठा ले जायगा और यदि जाल काट देता हूँ तो यह बिलाव नहीं छोड़ेगा। बिलाव इस समय विपत्तिमें पड़ गया है। विपत्तिग्रस्त होनेके कारण हो सकता है वह इस समय मुझसे मेल कर ले। विपत्ति आ पड़नेपर जीवनरक्षाके लिये बलवान व्यक्तिको अपने शत्रुसे मेल कर लेना चाहिये। बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा होता है और मूर्ख मित्र भी किसी काम का नहीं होता। तब चूहा बिलाव को समझाते हुए बोला, इस समय तुमसे एक मित्रकी भाँति समझा रहा हूँ और चाहता हूँ कि तुम्हारे जीवन की रक्षा हो जाय। तुम आनन्दसे जीवित रह सकते हो। यदि तुम मुझे नहीं खाओ तो मैं तुम्हारा उद्धार कर सकता हूँ। यह नेवला और उल्लू मेरे ऊपर घात लगाये बैठे है। सत्पुरुषोंमें तो सात पग साथ रहनेसे ही मित्रता हो जाती है; तुम मेरे मित्र बनो, मुझे तुमसे कोई भय नहीं है। मेरी सहायताके बिना तुम इस जालको काट नहीं सकोगे। मैं तुम्हारा बन्धन काट सकता हूँ। हम दोनोंमें प्रीति बढ़े, हम दोनोंका मेल हो सकता है। मैं तुम्हें इस विपत्ति से पार कर दूंगा और तुम मुझे इस आपत्ति से बचा लोगे। तब बिलाव ने उसकी बड़ी सराहना की और बोला, तुम्हारे कहने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तुमपर भी बड़ी विपत्ति आ गयी है अत: हम दोनों आपत्तिग्रस्तोंमें शीघ्र ही सन्धि हो जानी चाहिये। लोमश बिलाव के इस प्रकार कहनेपर पलित चूहा बोला, मुझे नेवले से बहुत डर है इसलिये मैं तुम्हारे नीचे छिप जाऊँगा, तुम मेरी रक्षा करना, मुझे मत मारना। इस चन्द्र उल्लू से बचाओ जो मेरे प्राणोंका ग्राहक बना हुआ है। इसके तत्पश्चात् मैं तुम्हारा जाल काट दूँगा यह मैं सत्यवचन कहता हूँ। लोमश बिलाव ने कहा तुम मेरे नीचे आ जाओ। इसप्रकार बिलाव उसका अपना स्वार्थ जानकर

चूहा आनन्दसे उसकी गोद में जा बैठा। जब नेवले और उल्लूने चूहेको उस बिलाव की गोदी में छिपा हुआ देखा तो वे निराश हो गये और अपने-अपने स्थानको चले गये। चूहा देश-कालकी गतिको अच्छी तरह जानता था, वह बिलावके शरीरपर चढ़कर चाण्डालके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा। बिलाव बन्धनके खेदसे ऊब रहा था। बिलाव बोला तुम जाल को जल्दी काटो कहीं चाण्डाल आ जायगा। मैं समय को खूब समझता हूँ ठीक अवसर आनेपर कभी नहीं चूकूंगा। जो काम असमयमें किया जाता है उससे करनेवालेका हित नहीं होता, किंतु यदि वह ठीक समयपर किया जाय तो उससे बड़ा लाभ होता है। इसलिये तुम समय की प्रतीक्षा करो। जिस समय चण्डाल हथियार लेकर इधर आयेगा मैं तुम्हारे बन्धन काट दूँगा। उस समय तुम्हें भयवश वृक्षपर चढ़ना ही सूझेगा और मैं अपने बिलमें प्रवेश कर जाऊँगा। चूहेकी बात सुनकर बिलाव बोला, मैंने तुम्हें आपत्तिसे बचा लिया। अब तुम जल्दीसे मेरा हित करो। चूहा बड़ा बुद्धिमान् और नीतिज्ञ था। उसने बिलाव से कहा, जिस मित्रसे भयकी सम्भावना हो, जो व्यक्ति बलवानके साथ संधि करके अपनी रक्षाका ध्यान नहीं रखता, उसका वह मेल अपथ्य भोजनके समान हितकर नहीं होता। थोड़ी ही देरमें परिघ नामका चाण्डाल हाथमें शस्त्र लिये आता दिखायी दिया। उसे देखते ही बिलाव भयसे व्याकुल हो गया। उसी समय चूहेने तुरंत ही जाल काट दिया। जालसे छूटते ही बिलाव उसी पेड़पर चढ़ गया और चूहा बिलमें घुस गया। वह चाण्डाल भी चला गया।

अब लोमश बिलावने पलित चूहेसे कहा, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया और तुम मुझसे कोई बातचीतके बिना ही सहसा बिल में घुस गये। मैं तो तुम्हारा बड़ा ही कृतज्ञ हूँ, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। तुम्हें मेरी ओरसे कोई शंका है? तुम्हीने तो विपत्ति के समय मेरा विश्वास किया और मुझे जीवनदान दिया। अब मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ। मेरे जो भी मित्र और बन्धु-बान्धव है वे सब तुम्हारी सब प्रकारसे सेवा करेंगे। ऐसा कौन कृतज्ञ होगा जो अपने जीवनदाता का सत्कार न करना चाहेगा। तुम मेरे शरीरके और मेरे घरके स्वामी हो। मेरी जो कुछ सम्पत्ति है वह तुम्हारी होगी। तुम बड़े बुद्धिमान हो, आजसे तुम मेरे मन्त्री बन जाओ। मुझसे किसी प्रकार का भय मत मानो। लोमश बिलाव की चिकनी चुपड़ी बातें सुनकर पलित चूहेने कहा, जिसका जीवन रहते हुए पुरुष अपना स्वार्थ सधता देखता है और जिसके मर जानेसे अपनी हानि मानता है, वही उसका मित्र बन सकता है और यह मित्रता भी तभीतक निभती है, जबतक अपने स्वार्थसे विरोध नहीं आता। मित्रता कोई स्थायी रहनेवाली चीज तो है नहीं और शत्रुता भी सदा नहीं बनी रहती। स्वार्थकी अनुकूलता और प्रतिकूलतासे ही मित्र और शत्रु बनते रहते हैं। कभी-कभी समयके फेरसे मित्र भी शत्रु बन जाता है और शत्रुसे भी मित्रता हो जाती है। जो व्यक्ति मित्रोंका सर्वदा विश्वास करता है और शत्रुओंसे सदा सशंक बना रहता है, नीतिशास्त्रपर दृष्टि रखकर किसीसे प्रेम नहीं करता, उसका किसी समय सर्वथा मूलोच्छेद हो जाता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे तथा और सब सगे-सम्बन्धी स्वार्थके लिये ही एक-दूसरेसे बँधे रहते हैं। अपना प्रिय पुत्र भी यदि पतित हो जाता है तो माँ-बाप उसे त्याग देते हैं। संसारमें सब लोग सर्वदा अपनी ही रक्षा करना चाहते हैं, इसलिये तुम स्वार्थको ही सबका सार समझो। सब जीव स्वार्थके ही साथी हैं। संसारमें मुझे तो किसीका भी प्रेम अकारण नहीं जान पड़ता। यद्यपि कभी-कभी क्रोधवश भाइयोंमें और पति-पत्नियोंमें भी फूट पड़ जाती है, तथापि स्वभावत: उनमें प्रेम रहता ही है। दूसरे लोगोंसे इस प्रकारकी प्रीति नहीं हो सकती। दूसरोंसे तो कुछ मिलनेसे अथवा मीठी-मीठी बातें सुननेसे ही प्रेम होता है। हमारी प्रीति भी एक विशेष कारणसे ही हुई थी। अब जब वह कारण नष्ट हो गया तो प्रीति भी नहीं रही। बताओ, अब किस कारणको लेकर मैं यह समझूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो? मित्रता और शत्रुताकेभाव तो बादलोंके समान क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं। आज ही तुम मेरे शत्रु हो सकते हो और आज ही मित्र बन सकते हो। पहले भी हमारी प्रीति तभीतक थी, जबतक उसका कारण बना हुआ था। वह

काम पूरा होनेपर अब हम फिर आपसमें शत्रु हो गये हैं। तुम्हारा काम पूरा हो चुका और मेरी भी विपत्ति टल गयी। अब तो मुझे खा जानेके सिवा तुम्हारा मुझसे कोई और प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। मैं तुम्हारा भक्ष्य हूँ और तुम मुझे खानेवाले हो, मैं दुर्बल हूँ और तुम बलवान हो। हमारी शक्ति समान नहीं है, इसलिये अब अलग हो जानेपर हमारी संधि नहीं हो सकती। तुम्हें भूख लगी हुई है और यह तुम्हारा भोजन करनेका समय है। इसलिये मुझे फुसलाकर तुम अपना भक्ष्य पाना चाहते हो। इसीसे अपने स्त्री-पुत्रोंके बीचमें बैठकर तुम मुझसे मेल करने चले हो। परंतु मित्र। तुम मेरी जो सेवा करना चाहते हो, उसे करानेकी मुझमें योग्यता नहीं है। जब तुम्हारे प्रिय पुत्र और स्त्री मुझे तुम्हारे पास बैठा देखेंगे तो वे मुझे चट करनेमें क्यों चूकेंगे? इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। हमारे समागमका जो कारण था वह तो बीत चुका। जो अपना शत्रु हो, दुष्ट हो, कष्टमें पड़ा हुआ हो, भूखा हो और भोजनकी तलाशमें हो उसके पास थोड़ी-सी भी बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति कैसे जा सकता है? इसलिये तुम्हारा कल्याण हो; लो मैं तो जाता हूँ, मुझे तो दूरसे भी तुम्हारा भय लगा हुआ है। अब, तुम भी लौट जाओ। यदि तुम्हें मेरे किये हुए उपकारका ध्यान है तो सर्वदा सख्यभाव बनाये रहना, कभी अवसर पाकर मुझे दबोच मत बैठना। यदि वास्तवमें स्वार्थपर तुम्हारी दृष्टि नहीं है तो बताओ, मैं तुम्हारा क्या काम करूँ? मैं तुम्हें सब कुछ दे सकता हूँ परंतु अपने-आपको नहीं दे सकता। अपनी रक्षा करनेके लिये तो संतान, राज्य, रत्न और धनादि सभीका त्याग किया जा सकता है। सारा सर्वस्व लुटाकर भी जीवको अपनी रक्षा करनी चाहिये; जीवित रहनेवालेको ये फिरभी मिल जाते हैं। पलितने जब इस प्रकार खरी-खुरी सुनायी तो बिलावने लज्जित होकर कहा, मैं सत्यकी सौगन्ध खाता हूँ, मित्रसे द्रोह करना तो बड़ी बुरी बात है। तुमने मेरी भलाई की इसे तो मैं तुम्हारी बुद्धिमानी ही समझता हूँ। तुमने बड़ी नीतियुक्त बात कही है, तुम्हारा विचार मुझसे पूरा-पूरा मिलता है, किंतु इस विषयमें तुम्हें मेरी ओरसे कोई विपरीत बात नहीं समझनी चाहिये। तुमने प्राणदान देकर मेरे साथ मित्रता की है और मैं भी धर्मको जाननेवाला, गुणग्राही और कृतज्ञ हूँ। इसलिये तुम्हें भी मेरे साथ ऐसा ही बर्ताव करना चाहिये। अत: तुम्हें मेरे ऊपर कोई शंका नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार बिलावने जब बहुत प्रशंसा की तो चूहेने कहा, आप वास्तवमें बड़े साधु हैं। आपके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है वह बहुत ठीक है। परंतु मैं आपमें विश्वास नहीं कर सकता।

जब दो शत्रुओंपर एक-सी विपत्ति आ पड़े तो निर्बलको सबल शत्रुके साथ मेल करके बड़ी सावधानी और युक्तिसे काम करना चाहिये और जब काम हो चुके तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। जो अविश्वासपात्र हो उसमें कभी विश्वास न करे और जो विश्वसनीय हो उसमें भी अत्यन्त विश्वास न करे तथा अपने प्रति तो सर्वदा दूसरोंका विश्वास पैदा करे, किंतु स्वयं दूसरोंका विश्वास न करे। नीतिशास्त्रका भी संक्षेपमें यही सार है कि किसीका विश्वास न करना ही अच्छा है। अत: शत्रुके प्रति विश्वास न रखनेमें ही जीवका विशेष हित माना गया है। लोमश। आप जैसोंसे तो मुझे सर्वदा अपनी रक्षा करनी ही चाहिये।

जो पुरुष भय आनेसे पहले ही उससे सशम रहता है, उसके सामने प्राय: भयका अवसर नहीं आता। परंतु जो निशम होकर दूसरोंमें विश्वास कर लेता है, उसे बड़े भारी भयका सामना करना पड़ता है। जो मनुष्य निर्भय विचरता है, वह किसी प्रकार दूसरोंकी सलाह भी नहीं सुनता, किंतु जो अपनेको अज्ञानी समझता है, वह बार-बार आप्तपुरुषोंके पास जाता है। अत: मनुष्यको निर्भयता दिखाते हुए भी डरते रहना चाहिये और विश्वास प्रदर्शित करते हुए भी दूसरोंका विश्वास नहीं करना चाहिये। इस प्रकार संधि और विग्रहके समयका विचार करके संकटसे छूटनेका उपाय करें। जब अपने और शत्रुके ऊपर समानरूपसे आपत्ति आ पड़े तो बलवान शत्रुके साथ मेल कर लें। उसके साथ रहते हुए बड़ी युक्तिसे काम करें और काम पूरा हो जानेपर फिर उसका विश्वास न करें। यह नीति अर्थ, धर्म और काम तीनोंको सिद्ध करनेवाली है। इसके

अनुसार आचरण करके तुम अभ्युदय प्राप्त करो और अपनी प्रजाका पालन करो। ब्राह्मणोंके साथ तुम सर्वदा संसर्ग रखना। उनका साथ इहलोक और परलोक दोनों ही जगह परमकल्याणकारी है।

इसी प्रसंगमें एक सम्वाद पूजनी नामकी चिड़िया और राजा ब्रह्मदत्तका काम्पिल्य नगरमें हुआ। काम्पिल्य नगरके महलमें बहुत दिनोंसे पूजनी नामककी चिड़िया रहती थी। वह प्राणियोंकी बोली समझती थी। जिस दिन चिड़ियाके बच्चे पैदा हुआ उसी दिन रानीके भी यहाँ एक कुमारने जन्म लिया। पूजनी नित्यप्रति समुद्रतटपर जाती और वहाँसे दो फल लाती थी एक राजकुमारको देती और दूसरे अपने बच्चेका पोषण करती। थोड़े ही दिनोंमें राजपुत्र और पूजनी के बच्चे बड़े हुये। दोनों साथ-साथ खेलते थे। एक दिन धाय उसे गोदमें लिये घूम रही थी, इतनेहीमें वह धायकी गोदसे सरक गया और पूजनीके बच्चेके साथ खेलने लग गया। वहाँ अकेलेमें पूजनीके बच्चेको दबोचकर उसने उसे मार डाला। पूजनी फल लेकर लौटी तो उसने देखा की राजकुमारने उसका बच्चा मार डाला। बदलेकी भावना से उसने अपने पैरोंकी चोंचसे उस राजकुमारके दोनों नेत्र फोड़ दिये। राजा ब्रह्मदत्तने विचार किया कि पूजनीने राजकुमारसे उसके कुकर्मका बदला लिया तब राजा पूजनीसे बोला यह अपराध हमाारी गलती से हुआ और तूने इसका बदला ले लिया। अब हम दोनों बराबर है। अब तुम यहाँसे किसी दूसरी जगह मत जा। पूजनी बोली राजन जब किसीसे बैर बन जाय तो उसकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आकर विश्वास नहीं करना चाहिये ऐसा करनेसे बैर तो दूर होता नहीं, वह विश्वास करनेवाला ही मारा जाता है। जब एक बार बैर बन जाता है तो उसकी सन्तान उसका बदला लिये बिना नहीं छोड़ती। इसलिये जिसने विश्वासघात किया हो उसका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। जो अविश्वसनीय हो उसका विश्वास न करे और जो विश्वसनीय हो उसका भी अत्यन्त विश्वास न करे। विश्वासके कारण उत्पन्न होनेवाली विपत्ति जीवका समूल नाश कर डालती है। अत: जब आपसमें वैर बँध गया तो हमारा मेल होना सम्भव नहीं है। मैं जिस निमित्तसे यहाँ रहती थी अब वह नष्ट हो गया। मैं बहुत दिनोंतक बड़े आदरसे आपके महलमें रही। किंतु अब हमारा वैर ठन गया; इसलिये मुझे शीघ्र ही यहाँसे जाना होगा। जिसका अपकार किया जाता है और जो अपकार करता है, उनका मेल नहीं हो सकता। वह बात दोनोंहीके हृदयोंमें खटकती रहती है। इसप्रकार वैर कभी दूर नहीं होता और यह समझकर कि शत्रुने मुझे सान्त्वना दी है, उसका विश्वास भी नहीं करना चाहिये। ऐसे अवसर पर विश्वास करनेसे प्राणोंसे भी हाथ धोना पड़ता है, इसलिये फिर मुँह न दिखाना ही अच्छा है।

राजा ब्रह्मदत्त बोला, यदि आपसमें वैर रखनेवाले भी साथ-साथ रहें तो उनमें स्नेह हो जाता है, फिर उनमें वैर नहीं रहता। पूजनी बोली, पण्डितलोग अच्छी तरह जानते हैं, वैर पाँच कारणोंसे हुआ करता है- स्त्रीके कारण, घर और जमीनके कारण, कठोर वाणीके कारण, आपसकी लाग-डाँटके कारण और अपराधके कारण। जिस प्रकार बड़वानल किसी भी प्रकार शान्त नहीं होता वैसे ही क्रोधाग्नि भी धनसे, समझानेसे या डाँटने-डपटनेसे ठंडी नहीं पड़ती। वैरके कारण उत्पन्न होनेवाली आग एक पक्षको स्वाहा किये बिना कभी शान्त नहीं होती। जिसने पहले अपकार किया हो वह धन और मानद्वारा बहुत सत्कार करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। राजा ब्रह्मदत्त बोले, पूजनी। संसारमें तरह-तरहकी क्रियाएँ कालके ही कारण होती हैं, कालकी प्रेरणासे ही लोग विविध कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। इनमें कौन किसका अपराध करता है। जन्म और मृत्युका प्रेरक भी समानरूपसे काल ही है। कालके कारण ही जीवके जीवनका अन्त होता है। इसलिये जो कुछ हुआ है, उसमें मैं तेरा कोई अपराध नहीं समझता। तू यहाँ आनन्द से रह, तुझे कोई कष्ट नहीं पहुँचावेगा। तुझसे जो अपराध बन गया है, उसे मैंने क्षमा किया, अब तू भी मुझे क्षमा कर दे।

पूजनी बोली, यदि आप कालको ही सब क्रियाओंका कारण मानते हैं तो किसी का किसीके साथ वैर नहीं होना चाहिये। फिर

अपने सगे-सम्बन्धियोंके मारे जानेपर लोग उनका बदला क्यों लेते हैं और शोकाकुल होकर इतनी हाय-हाय क्यों करते हैं? वास्तवमें दु:खके कारण ही सबको उद्वेग होता है, सुख तो सभीको प्रिय है और दु:खके अनेकों रूप हैं। बुढ़ापा दु:ख है, धनक्षय दु:ख है, अप्रिय पुरुषोंके साथ रहना दु:ख है और प्रियजनों से बिछुड़ना दु:ख है। वध और बन्धनसे भी सबको दु:ख होता है तथा स्त्रीके कारण और स्वाभाविक रूपसे भी दु:ख होता ही है। राजन्। आपने मेरा जो अपकार किया है और मैंने आपका जो अपराध किया है, उन्हें हम सौ वर्षमें भी नहीं भूल सकते। इस प्रकार आपसमें एक-दूसरेका अपकार करनेके कारण अब हमारा मेल नहीं हो सकता। आप जैसे-जैसे अपने पुत्रकी दुर्गतिको याद करेंगे वैसे-वैसे ही आपका वैर ताजा होता रहेगा। अब इस मरणान्त वैरके ठन जानेपर आप जो प्रीति करना चाहते हैं, वह इसी प्रकार असम्भव है जैसे मिट्टीका घड़ा एक बार फूट जानेपर फिर नहीं जुड़ता। जब किसी कुलमें दु:खदायी वैर बँध जाता है तो वह शान्त नहीं होता।

राजा ब्रह्मदत्तने कहा- अविश्वास करनेसे तो मनुष्य संसारमें कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। यदि मनमें एक प्रकारका भी भय बना रहे तो उसका जीवन ही मिट्टी हो जायगा।

पूजनी बोली, राजन्। जिसके दोनों पैरोंमें चोट लगी हो और फिर भी वह पैरोंसे ही चलता रहे तो चाहे कैसी ही सावधानीसे चले उसे पैरोंमें घाव हो ही जायगा। जो पुरुष अपने रोगी नेत्रोंको हवाके सामने खुले रखता है उसके नेत्रोंमें वायुके कारण अवश्य ही बहुत पीड़ा बढ़ जायगी। जो पुरुष अपनी शक्तिका विचार न करके अज्ञानवश भयानक मार्गमें चल पड़ता है, उसका जीवन उस मार्गमें ही समाप्त हो जाता है। जो किसान वर्षाके समयका विचार न करके खेत जोतता है, उसका परिश्रम व्यर्थ होता है और उसे अनाज नहीं मिलता। जो पुरुष हितकारी भोजन करता है उसके लिये वह अन्न अमृतरुप हो जाता है। परंतु जो परिणामका विचार न करके कुपथ्य सेवन करता है उसके जीवनका अन्त तो उस अन्नके साथ ही समझो। दैव और पुरुषार्थ- ये दोनों एक-दूसरेके आश्रयसे रहते हैं, किंतु उदार पुरुष सर्वदा शुभकर्म किया करते हैं और नपुंसक दैवके भरोसे पड़े रहते हैं। जो पुरुष कर्मको छोड़ बैठता है, वह दरिद्रताके चंगुलमें फँसकर सदा अनर्थोंका शिकार बना रहता है। अत: मनुष्यको सर्वस्वकी बाजी लगाकर भी अपना हित करना चाहिये। विद्या, शूरवीरता, दक्षता, बल और धैर्य- ये पाँच मनुष्यके स्वाभाविक मित्र हैं। बुद्धिमान्लोग सर्वदा इनके सहवासमें रहते हैं। घर, सोना, चाँदी, पृथ्वी, स्त्री और सुहृद्गण ये मध्यम कोटिके मित्र हैं; ये मनुष्यको सभी जगह मिल सकते हैं। जो मनुष्य बुद्धिमान होता है, वह सभी जगह आनन्दमें रहता है। बुद्धिमानके पास थोड़ा-सा धन हो तो वह भी बढ़ता रहता है। वह दक्षतापूर्वक काम करते हुए संयमके द्वारा सर्वत्र प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है। किंतु बुद्धिहीन पुरुष घर, धरती, स्वदेश और स्वजनोंकी चिन्तामें ग्रस्त रहकर सदा दुखी बना रहता है। यदि अपनी जन्मभूमिमें भी रोग और दुर्भिक्षादिका कष्ट हो तो वहाँसे अन्यत्र चला जाय; यदि रहना हो तो सदा सम्मानपूर्वक ही रहे। इसलिये अब मैं दूसरी जगह जाऊँगी, यहाँ रहना मेरे लिये सम्भव नहीं है। दुष्टा भार्या, दुष्ट पुत्र, कुटिल राजा, दुष्ट मित्र, दूषित सम्बन्ध और दुष्ट देशको तो दूरसे ही छोड़ देना चाहिये। कुपुत्रपर भला कैसे विश्वास हो सकता है, दुष्टा भार्यामें प्रेम होना कैसे सम्भव है? कुराज्यमें शान्ति मिलना असम्भव ही है और दुष्ट देशमें भी कैसे निर्वाह हो सकता है? कुमित्रका स्नेह कभी स्थिर नहीं रहता, इसलिये उससे मेल बना रहना कठिन ही है। स्त्री तो वही है जो मधुर भाषण करे, पुत्र वही है जिससे सुख मिले, मित्र वही है जिसमें विश्वास हो और देश वही है जहाँ निर्वाह हो सके तथा राजा उसे ही समझना चाहिये जिसके शासनमें किसी प्रकारका बलात्कार न होता हो, लोग निर्भय हों और गरीबोंका पालन होता हो। जिस देशका राजा गुणवान और धर्मपरायण होता है वहाँ स्त्री, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी और बन्धु-बान्धव सभीकी अनुकूलता हो जाती है। अधर्मी राजाके अत्याचारसे तो प्रजाका सत्यानाश हो जाता है। वास्तवमें धर्म,

अर्थ, काम- इन तीनोंका मूल राजा ही है; इसलिये उसे सर्वदा अपनी प्रजाका पालन करना चाहिये। राजाको कररूपसे प्रजाकी आमदनीका छठा भाग लेकर उसे उचित कर्मोंमें खर्च करना चाहिये। जो राजा प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा नहीं करता वह तो चोरके समान है। प्रजाको अभयदान देकर यदि राजा धनके लोभसे वैसा बर्ताव नहीं करता तो सारी प्रजाका पाप बटोरकर अन्तमें नरकमें जाता है और यदि वह अभय देकर वैसा ही आचरण भी करता है तो प्रजाका धर्मानुसार पालन करनेके कारण वह सबको सुख देनेवाला समझा जाता है। प्रजापति मनुने गुणोंकी दृष्टिसे राजाको माता, पिता, गुरु, रक्षक, अग्नि, कुबेर और यमरूप बताया है। प्रजापर प्रेम रखनेके कारण वह राष्ट्रका पिता है। वह प्रजाका पालन करता है और दीन-दुखियोंकी भी सुधि लेता रहता है इसलिये माताके समान है। प्रजाका अनिष्ट करनेवालोंको वह अग्निके समान जलाता रहता है और यमराजके समान दुष्टोंका दमन करता है। अपने प्रीतिभाजनोंको धन देनेके कारण वह कुबेरके समान है, धर्मोपदेश देनेके कारण गुरु है और प्रजाकी रक्षा करनेके कारण रक्षक है। जो राजा अपने गुणोंसे सब नागरिकोंको प्रसन्न रखता है उसके राज्यका कभी नाश नहीं होता। जिसे पुरवासी और देशवासियोंको प्रसन्न रखनेकी कला आती है वह राजा इहलोक और परलोकमें सुख पाता है। जिस राजाकी प्रजा सर्वदा करके भारसे पीडित और तरह-तरहके अनर्थोंसे दुखी रहती है, उसे जरूर नीचा देखना पड़ता है। इसके विपरीत जिसकी प्रजा सरोवरमें कमलोंके समान विकसित होती रहती है, वह सब प्रकारके पुण्यफलोंका भागी होता है और स्वर्गलोकमें भी सम्मान पाता है।

इसी तरह एक नगरके ब्राह्मण और गाँव के एक साँप में बड़ी घनिष्ठ मित्रता थी। ब्राह्मण प्रतिदिन गाँवमें जाकर साँपके बिलपर मन्त्र उच्चारण करता और सांप बाहर आता। घण्टोंभर वे दोनों आपसमें मित्रता की बात करते हैं। जब साँप वापस अपने बिलमें लौटता उस समय ब्राह्मणको वह प्रतिदिन अपनी मणिसे दो भार सोना देता। इसतरह से ब्राह्मण और साँप में घनिष्ट मित्रता थी। एक बार ब्राह्मणको किसी कार्यवश नगरसे शहर जाना पड़ा। उसने अपने पुत्र से कहा मैं किसी कारण से शहर जा रहा हूँ पर गाँव में मेरा मित्र एक साँप है तुम नित्य-प्रतिदिन उसके बिलपर जाकर मन्त्रसे पूजा करना वह बाहर आयेगा और जब वह वापस बिलमें लौट जायगा तब अपनी मणिसे दो भार सोना हमे देगा। इसको नियमपूर्वक पालन करना। ऐसाही साँपसे कहा कि मैं एक महीने के लिए शहर में जा रहा हूँ। इस बीच मेरा पुत्र मेरी तरह तुम्हारे पास आयेगा। नित्य-प्रतिदिन तुम्हारी पूजा करेगा और लौट जायगा। साँप ने कहा ठीक है। ब्राह्मण शहर चला गया। ब्राह्मणकुमार अब ब्राह्मण की अनुपस्थिति में प्रतिदिन साँपके बिलके पास जाता, उसकी पूजा करता। साँप बाहर निकलता और उसे दो भार सोना देता। ब्राह्मणकुमार आलसी था उसे प्रतिदिन गाँवमें जाना अच्छा नहीं लगा क्योंकि गाँव नगर से बहुत दूर था। एक दिन उसने सोचा कि साँप का तो पेट ही बहुत छोटा है क्यों नहीं उसको मारकर उसके पेटमें का पूरा सोना एकसाथ ले लूँ। इस पापपूर्ण विचार से वह एक चाकू लेकर साँपके बिलके पास गया और मन्त्र उच्चारण किया और साँप बाहर आया। उसी समय उसने साँपपर चाकूसे वार किया। ब्राह्मणकुमार का यह कृत्य देखकर साँपने उसी समय ब्राह्मणकुमार को गुफी डालकर अपनी गिरफ्त में किया और उसे डस लिया और वापस बिलमें प्रवेश कर गया। ब्राह्मणकुमार साँपके डसनेसे मर गया। ब्राह्मणको शहर में इस बात की सूचना मिल गयी कि उसके पुत्रने साँप पर प्रहार किया और साँपने उसे काट दिया जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। ब्राह्मण एक महिने के पश्चात् अपने नगर को लौटा और पूरा हाल नगरवासियोंसे मालूम हुआ। ब्राह्मणने सोचा अपराध तो मेरे पुत्र का ही है फिर साँपसे तो मुझे दो भार सोना प्रतिदिन मिलता है उससे दोस्ती क्यों बिगाड़ी जाय। उसकी यह मित्रता स्वार्थपर आधारित थी। यह विचार कर ब्राह्मण फिरसे उस गाँवमें गया और साँपके बिलके पास आकर मन्त्र पढ़कर उसे बुलानेका प्रयत्न किया। पर साँप बाहर नहीं निकला। उसने एकबार फिर प्रार्थना की

और कहा कि मित्र अपराध तो मेरे पुत्रका था इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। इसलिये उसके अपराध के कारण क्यों हम अपनी मित्रता तोड़ें। साँप बाहर निकला और बोला, मित्र मैं तुम्हारा विश्वास नहीं कर सकता क्योंकि जिन्दगीभर मेरे ऊपर तुम्हारे पुत्रके किये हुए वारको नहीं भुला सकता और मेरे काटने से तुम अपने पुत्रकी मृत्युको नहीं भुला सकते। अब यह तुम्हारी इस मित्रता का आधार केवल स्वार्थ है और स्वार्थ पर टिकी हुई मित्रता कभी स्थायी नहीं हो सकती।

शरणागतकी रक्षा करना बड़ा भारी धर्म है। शिबि आदि राजाओंने तो शरणागतोंकी रक्षा करके ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त की। पूर्वकालमें राजा मुचुकुन्दने परशुरामजीसे एक कथा सुनी- एक जंगल में एक बहेलिया रहता था। उसका नित्यका यही काम था कि जाल लेकर वनमें जाता और बहुत-से पक्षियोंको मारकर उन्हें बाजारमें बेच आता। यही उसकी जीविका का साधन था। जंगलमे शीतसे ठिठुरकर एक कबूतरी उसके जालमें फँस गयी। बहेलिया जाड़ेसे बहुत ठिठुरने लगा। वह कबूतर उस वृक्षपर बैठा था अपनी कबूतरी का विलाप कर रहा है। उसकी कबूतरी सबेरेसे ही चुगा लेने गयी थी और अभी तक नहीं आयी और बोला, आज तो बड़ी आँधी-वर्षा थी और मेरी प्यारी कबूतरी अभीतक नहीं आयी। अभीतक उसके नहीं लौटनेका क्या कारण हो सकता है? वनमें न जाने वह कुशलसे भी होगी या नहीं? उसके बिना तो आज मेरा यह घोंसला उजड़ा-सा जान पड़ता है। वास्तवमें घरको घर नहीं कहते- गृहिणीको घर कहते हैं। जिस घरमें गृहिणी न हो वह तो वनके ही समान है। यदि आज मेरी मधुरभाषिणी-प्रिया न लौटी तो मैं इस जीवनको रखकर भी क्या करूँगा? वह बड़ी ही पतिव्रता, पतिके आश्रित और पतिका प्रिय करनेमें तत्पर रहनेवाली थी। पुरुष के धर्म, अर्थ और काममें स्त्री ही प्रधानतया सहायता करनेवाली होती है। विदेशमें भी वही विश्वसनीय मित्रका काम करती है। पुरुषकी सर्वोत्तम सम्पत्ति उसकी भार्या ही कही जाती है। पुरुषका स्त्रीके समान न तो कोई बन्धु है और कोई न धर्मसाधनमें कोई वैसा सहायक है। जब कबूतर इस प्रकार विलाप कर रहा था तो बहेलियेके जालमें फँसी हुई कबूतरी बोली, स्त्री का इष्टदेव तो पति ही है। आप एक शरणागत की रक्षा कीजिये। यह बहेलिया ठंड और भूखसे व्याकुल है, आप इसका सत्कार कीजिये। जगन्माता गौ और ब्राह्मणका वध करनेवालेको जो पाप लगता है वही शरणागतकी हिंसा करनेवालेको भी लगता है। जो गृहस्थ यथाशक्ति अपने आश्रमधर्मका पालन करता है, वह मरनेके पश्चात् अक्षयलोक प्राप्त करता है। अपनी पत्नीकी यह धर्मानुसार और युक्तियुक्त बात सुनकर कबूतरको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उस बहेलियेको देखकर उसका यथोचित सत्कार कर कहा, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? घर आयेका आतिथ्य करना तो सभीका कर्त्तव्य है। आपकी जो इच्छा हो कहिये। तब बहेलियेने कहाँ मुझे शीतसे बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरे लिये ठंड से बचनेका उपाय करो। कबूतरने पृथ्वीपर पत्ते इकट्ठे किये और लुहारके घरसे अङ्गारा लाकर सूखे पत्तोंमे आग लगा दी। बहेलिया आग तपाने लगा। फिर बहेलियेने कबूतरसे कहा, मुझे बड़ी भूख लगी है मुझे कुछ भोजन भी दो। कबूतर बोला, अच्छा थोड़ी देर ठहरिये मैं अभी आपकी तृप्तिका उपाय कर देता हूँ। वह कबूतर अग्निकी तीन परिक्रमाएँ करके उस अग्निमें कूद पड़ा। तब बहेलियेको ज्ञान हुआ यह कबूतर कैसा महात्मा है? इसने अपने आपको अग्निमें होमकर मुझे खानेके लिये अपना मांस दिया। ऐसा कहकर इसने मुझे धर्मका उपदेश दिया। बहेलियेने जाना मनुष्यका सर्वोत्तम आश्रय धर्म ही है। ऐसा सोचकर उसने लाठी, शलाका, जाल और पिंजड़ेको फेंककर उस कबूतरीको छोड़ दिया और महाप्रस्थानका निश्चय करके वहाँसे तप करनेके लिये चल दिया। कबूतरी पतिको स्मरण करके बहुत शोकाकुल हो गयी और विलाप करने लगी। स्त्रीको पिता, भाई और पुत्रसे तो थोड़ा-सा ही सहारा मिलता है, उसे अपार सुख देनेवाला तो पति ही है। फिर ऐसी कौन नारी है जो अपने पतिका आदर न करेगी। स्त्रीके लिये तो पतिके समान कोई स्वामी नहीं और पतिके समान कोई सुख नहीं। उसके लिये तो धन और सर्वस्वको

छोड़कर पति ही एकमात्र गति है। ऐसी कौन स्त्री सती स्त्री होगी जो पतिके बिना जीवित रहना चाहेगी? इसी प्रकार विलाप करते हुए वह जलती हुई आगमें कूद पड़ी। इसतरह वह कबूतर अपनी पत्नीसहित स्वर्ग सिधारा और वहाँ अपने पुण्यकर्मा प्रतापसे सत्कृत होकर पत्नीसहित आनन्दपूर्वक विहार करने लगा। इसलिये युधिष्ठिर शरणागतकी रक्षा करना बड़ा ही पुण्य काम है।

यदि राजा दुश्चरित्र हो तो अवश्य ही वह सारे राष्ट्रको संतप्त कर डालता है। सम्पूर्ण मनुष्य कृपण या तपस्वी कुछ भी हो सकता है। किन्तु यदि बिना विचार किये कोई काम किया जाय तो उसे दु:ख ही प्राप्त होता है। प्रत्येक काम सोच-समझकर करना ही अच्छा है। यज्ञ, दान, दया, वेद और सत्य ये पाँचों ही पवित्र हैं और तप भी परमपवित्र है और राजाको पूर्णतया पवित्र करनेवाला है। पवित्र क्षेत्रोंकी यात्रासे भी बड़ा पुण्य होता है। कुरुक्षेत्र पवित्र स्थान है, उसकी अपेक्षा सरस्वती नदी पवित्र है। यदि मनुष्यसे कोई अपराध बन जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करनेसे वह पापसे मुक्त हो जाता है। पवित्रभावसे तीर्थोंमें भ्रमण करता रहे वह अनेकों पापोंसे छूट जाता है। सूर्य जिस प्रकार प्रात:काल उदित होकर रात्रिके सारे अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार शुभकर्म करके मनुष्य अपने सभी पापोंका अन्त कर देता है। जो व्यक्ति दुर्बल होनेपर अपने बलवान शत्रुसे विरोध करता है वह तो मूर्ख है। बलवान शत्रुओंसे कभी वैर नहीं ठानना चाहिये। बुद्धि और बलके समान मनुष्य के पास दूसरी कोई चीज नहीं है।

लोभ एक बड़ा भारी ग्राह है और लोभसे ही पापकी प्रवृत्ति होती है। लोभसे ही पाप, अधर्म और दु:खका जन्म होता है तथा जिसमें फँसकर मनुष्य पापी बनते हैं, उस कपटका मूल भी लोभ ही है। लोभसे ही काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान और अनम्रताकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ही अक्षमा, निर्लज्जता, श्रीनाश, धर्मक्षय, चिन्ता और अपकीर्तिका जन्म होता है तथा लोभसे ही कृपणता, अत्यन्त तृष्णा, विकर्मोंमें प्रवृत्ति, कुलाभिमान, रूप और ऐश्वर्यका मद, समस्त प्राणियोंसे द्रोह, सबका तिरस्कार, सबके प्रति अविश्वास और सभीके प्रति निष्ठुरता आदि दोषोंका प्रादुर्भाव होता है। दूसरेके धनको चुरा लो, दूसरोंकी बहू-बेटियोंका शील नष्ट करना, वाणी और मनकी चञ्चलता, निन्दामें रुचि होना, काम तथा स्वादेन्द्रियकी प्रबलता, मिथ्याभाषणकी दुर्निवार प्रवृत्ति, दूसरोंसे घृणा करना और डींग मारना, मत्सरता और न करने योग्य कामोंको कर बैठना- इन सब दुर्गुणोंका कारण भी लोभ ही है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है तब भी लोभमें शिथिलता नहीं आती। जिस प्रकार अनेकों नदियोंकी जलराशिको अपनेमें लीन करके भी समुद्रकी पूर्ति नहीं होती, उसी तरह कितने ही धन और भोग्य पदार्थ मिल जायँ लोभका पेट नहीं भरता। इसके वास्तविक स्वरूपको तो देवता, गन्धर्व, असुर, नाग तथा संसारके अन्य प्राणियोंमेंसे भी कोई नहीं जान सकता। अत: संयतचित्त पुरुषको किसी प्रकार मोह और लोभको ही काबूमें करना चाहिये। लोभी मनुष्यमें दम्भ, द्रोह, निन्दा, चुगली और मत्सर ये सभी दोष रहते हैं। बहुश्रुत लोग बड़े-बड़े शास्त्रोंको कण्ठस्थ कर लेते हैं और सब प्रकारकी शमाओंका भी समाधान कर सकते हैं, किंतु इस पापीके चंगुलमें फँसकर वे सदा दु:ख भोगते रहते हैं। उनमें द्वेष और क्रोधकी अधिकता रहती है, शिष्टाचारसे वे दूर पड़ जाते हैं, बोलचालमें बड़े मीठे किंतु भीतरसे बड़े कठोर हो जाते हैं। उनकी स्थिति घास-फूँससे ढके हुए कुएँके समान होती है। वे बड़े क्षुद्र और धर्मके नामपर संसारको धोखा देनेवाले हो जाते हैं। सत्पुरुषोंके स्थापित किये मार्ग और धर्मोंका नाश करनेपर तुले रहते हैं। इन लोभग्रस्त दुरात्मा पुरुषोंके कारण समाजके जिस-जिस अङ्गमें विकार आता है, वह भी ऐसे ही कुकर्म करने लगता है।

उनका सङ्ग करनेसे मनुष्यको पुनर्जन्म अथवा परलोकका भय नहीं रहता। इन लोगोंकी मांसभक्षणमें प्रवृत्ति नहीं होती, ये प्रिय और अप्रिय को समान समझते हैं, इन्हें शिष्टाचार और इन्द्रियसंयम प्रिय होता है, सुख और दु:खमें इनकी समान दृष्टि होती है तथा सत्य ही इनका परम लक्ष्य होता है। ये देते हैं, लेते नहीं। स्वभावसे बड़े दयालु एवं पितर, देवता और अतिथियोंके सेवक

होते हैं तथा दूसरोंका हित करनेके लिये सर्वदा उद्यत रहा करते हैं। ये सभीका उपकार करनेवाले, सब प्रकारके धर्मोंका पालन करनेवाले, दूसरोंके लिये सर्वस्व निछावर कर देनेवाले और बड़े वीर होते हैं। इन्हें कोई भी पुरुष अपने निश्चयसे डिगा नहीं सकता तथा इनके आचरणमें पूर्ववर्ती सत्पुरुषोंके आचरणसे कोई भेद नहीं आता। ये किसीको आतमित करनेवाले, चपलस्वभाव या क्रूर भी नहीं होते और सर्वदा सन्मार्गपर स्थित रहते हैं। सत्पुरुषोंको सदा ही इनका सङ्ग करना चाहिये। इनमें अहिंसावृत्तिकी प्रधानता होती है, काम-क्रोधका अभाव रहता है तथा ममता और अहंकार भी नहीं पाये जाते। ये सदाचरणशील और मर्यादाका पालन करनेवाले होते हैं। उनका धर्म धन या यश बटोरनेके लिये नहीं होता। वे शरीरकी आवश्यक क्रियाओंके समान उसे भी अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझते हैं। उनमें भय, क्रोध, चपलता और शोकका अभाव होता है। वे धर्मका ढोंग नहीं रचते और न धर्मपालनमें उनका कोई छिपा हुआ स्वार्थ ही रहता है। वे लोभ और मोहसे रहित तथा सत्य और सरलताका पालन करनेवाले होते हैं। ऐसे पुरुषोंसें तुम सर्वदा प्रेम रखना। ये सर्वदा सत्त्वगुणमें स्थित और समदर्शी होते हैं। इनकी दृष्टिमें लाभ-हानि, सुख-दु:ख, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन और मरणमें भी कोई भेद नहीं होता। वे दृढ़ पराक्रम, उन्नतिशील और सत्त्वमय मार्गका अनुसरण करनेवाले होते हैं। तुम अपनी इन्द्रियोंको जीतकर बड़ी सावधानीसे उन धर्मप्रिय और दिव्यगुणसम्पन्न महानुभावोंकी सेवा करना। ये सब बड़े गुणवान होते है। दूसरे लोग तो केवल बातें बनानेवाले ही होते हैं।

जो मनुष्य अज्ञानवश पाप करता है और उससे होनेवाली अपनी ही हानिको नहीं समझता तथा साधु पुरुषोंसे द्वेष करता है, उसकी संसारमें निन्दा होती है। अज्ञानसे ही जीव नरकमें पड़ता है, अज्ञानसे ही उसकी दुर्दशा होती है तथा अज्ञानसे ही वह क्लेश उठाता और आपत्तिमें फँसता है। राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अत्यन्त अभिमान, काम, क्रोध, दर्प, तन्द्रा, आलस्य, इच्छा, संताप, दूसरोंकी उन्नति देखकर जलना और पाप करना- यह सब अज्ञानके अन्तर्गत बताया गया है। अज्ञान और लोभ- एक ही है; क्योंकि इनसे एक-सा परिणाम निकलता- एक-सी बुराई पैदा होती है। लोभसे ही अज्ञान प्रकट होता है और लोभके बढ़नेपर अज्ञान भी बढ़ता है। जबतक लोभ रहता है, अज्ञान भी बना रहता है और लोभके क्षयसे अज्ञानका भी क्षय हो जाता है। अज्ञान और लोभके ही कारण जीवको नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है। अज्ञानसे लोभ और लोभसे अज्ञान- इस प्रकार इनकी उत्पत्ति अन्योन्याश्रित है। लोभसे ही समस्त दोष प्रकट होते हैं; इसलिये लोभका परित्याग कर देना चाहिये। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा अन्य अनेकों राजाओंने लोभ त्याग देनेसे ही दिव्यलोक प्राप्त किया था।

जैसे अमृत पीनेसे तृप्ति हो जाती है, उसी प्रकार इस ज्ञानको पाकर तुम तृप्त हो जाओगे। धर्मके बहुत-से विधान हैं, जिनका महर्षियोंने अपने-अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन किया है। उन सबका आधार है दम-मन और इन्द्रियोंका संयम। धार्मिक सिद्धातन्तको जाननेवाले वृद्ध पुरुष दमको मुक्ति का साधन बतलाते हैं। विशेषत: ब्राह्मणके लिये तो दम ही सनातन धर्म है। इससे ही उसके शुभ कर्मोंकी यथावत् सिद्धि होती है। दम ब्राह्मणके लिये दान, यज्ञ और स्वाध्याय से भी बढ़कर है। दम तेजकी वृद्धि करता है, वह बड़ा पवित्र साधन है। दमसे पापरहित हुआ तेजस्वी पुरुष परमपदको प्राप्त कर लेता है। संसारमें दमके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। इन्द्रियसंयम तथा मनोनिग्रहसे युक्त मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुख पाता है। उसे महान् धर्मका फल प्राप्त होता है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है। जिसकी इद्रियाँ और मन वशमें नहीं है, उसे बारंबार दु:ख उठाना पड़ता है तथा वह अपने ही दोषोंसे बहुत-से दूसरे-दूसरे अनर्थ भी पैदा कर लेता है। चारों ही आश्रमोंमें दमको उत्तम बताया गया है। जिन मनुष्योंके अन्त:करणमें दम (संयम) का उदय हुआ है, यह इसप्रकार है- क्षमा, धीरता, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोधका अभाव, संतोष, मीठे वचन बोलना, किसीको कष्ट न देना और दूसरोंके दोष न देखना- ये सब गुण

जिनमें उपलब्ध हों, उन पुरुषोंमें संयमका उदय समझना चाहिये। वे गुरुजनोंका आदर और सब प्राणियोंपर दया करते हैं।

संयमी पुरुष चुगुली, असत्यभाषण, दूसरोंकी निन्दा-स्तुति, काम, क्रोध, लोभ, दर्प, डींग हाँकना, रोष, ईर्ष्या और दूसरोंका अपमान इन दुर्गुणोंका कभी सेवन नहीं करता। संयम रखनेवालेकी कभी निन्दा नहीं होती, उसके मनमें कोई कामना नहीं होती। मैं तेरा हूँ, तू मेरा, मुझमें उनका स्नेह है और उनमें मेरा- इस प्रकारके पहलेके सम्बन्धोंको वह मनमें नहीं रखता। जो दूसरोंकी निन्दा और प्रशंसासे दूर रहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। जो सबके प्रति मित्रताका भाव रखेनवाला और सुशील है, जिसका मन नाना प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त है, उसे मृत्युके पश्चात् महान फलकी प्राप्ति होती है। सदाचारी, सुशील, प्रसन्नचित्त और आत्माके स्वरूपको जाननेवाला विद्वान पुरुष इस लोकमें सम्मान और परलोकमें सद्गत प्राप्त करता है। इस जगतमें जो केवल शुभ (कल्याणकारी) कर्म हैं, जिनका सत्पुरुषोंने आचरण किया है, वे ही ज्ञानी मुनिके मार्ग हैं। वह स्वभावसे ही उनका आचरण करता है, उन्हें त्यागता नहीं। ज्ञानसम्पन्न जितेन्द्रिय पुरुष घरसे निकलकर एकान्त वनका आश्रय लेता है और वहाँ देह-त्यागके समयकी प्रतीक्षा करता हुआ निर्द्वन्द विचरता रहता है। जिसको स्वयं प्राणियोंसे भय नहीं है तथा जिससे दूसरे प्राणी भी भय नहीं पाते, वह देहाभिमान से रहित महात्मा किसीसे भी नहीं डरता। वह सभी प्राणियोंमें समान भाव रखता और सबको मित्रकी भाँति अभयदान देता हुआ विचरता है। जैसे आकाशमें पक्षियोंकी और जलमें जलचर जीवोंकी गति नहीं दिख पड़ती, उसी प्रकार ज्ञानीकी गति भी जाननेमें नहीं आती। जो घरबारको छोड़कर मोक्षके लिये उद्योग करता है, वह तेजोमय लोकोंको प्राप्त होता है।

ब्रह्मराशिसे उत्पन्न हुआ जो पितामह (ब्रह्माजी) का उत्तम धाम है, वह मन और इन्द्रियोंके संयमसे ही प्राप्त होता है। जिसका किसी भी प्राणीसे विरोध नहीं है, जो ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही रमता रहता है, ऐसे ज्ञानीको इस लोकमें पुन: जन्म लेनेका भय ही नहीं रहता, फिर उसे परलोकका भय कैसे हो? संयममें एक ही दोष है, दूसरा नहीं, वह यह कि क्षमाशील होनेके कारण लोग उसे असमर्थ समझने लगते हैं। मगर इसमें गुण बहुत बड़ा है, क्षमा धारण करनेसे अनेकों उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है; क्योंकि क्षमासे मनुष्यमें सहनशक्ति आ जाती है। संयमी पुरुषको वनमें जानेकी आवश्यकता नहीं है और असंयमीको वनमें रहनेसे कोई लाभ नहीं है। संयमशील पुरुष जहाँ वास करता है, वही वन है, वही आश्रम है।

इस सम्पूर्ण जगतका मूल कारण है तप। जिस मूर्खने कभी तप नहीं किया, उसे अपने कर्मोंमें सफलता नहीं मिलती। प्रजापतिने तपसे ही समस्त संसारकी सृष्टि की है तथा ऋषियोंने तपसे ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया है। विधाताने जितने फल और मूल हैं उनको तथा अन्नको भी तपसे ही उत्पन्न किया है। तप:सिद्ध महात्मा पुरुष तीनों लोकोंको प्रत्यक्ष देखते हैं। प्रत्येक साधनकी जड़ तपस्या ही है। संसारमें जो दुर्लभ वस्तु है, वह भी तपस्यासे सुलभ हो जाती है। शराबी, चोर, गर्भहत्यारा और गुरु-पत्नीसे समागम करनेवाला पापी मनुष्य भी अच्छी तरह तपस्या करके ही पापसे छुटकारा पा सकता है।

तपस्याके अनेकों स्वरूप हैं, पर उनमें निराहार रहनेसे बढ़कर कोई तप नहीं है। दानसे बढ़कर कोई दुष्कर धर्म नहीं है, माताकी सेवासे बड़ा कोई आश्रम नहीं है, तीनों वेदोंके विद्वानोंसे श्रेष्ठ कोई मनुष्य नहीं है और संन्यास तो महान् तप है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य तथा दूसरे जो चराचर जीव हैं, वे सब तपस्यामें ही लगे रहते हैं। तपस्यासे ही सबको सिद्धि प्राप्त होती है। देवताओंको भी तपस्यासे ही इतनी बड़ी महिमा मिली है।

सत्पुरुष सदा ही सत्यरूप धर्मका पालन करते हैं। सत्य सनातन धर्म है। सत्यको ही आदर देना चाहिये; क्योंकि सत्य ही जीवकी परम गति है। सत्य ही धर्म, तप, योग और सनातन बह्म है। सत्य ही परम यज्ञ है। सत्यपर ही सब कुछ टिका हुआ है। सम्पूर्ण लोकोंमें सत्यके (अतिरिक्त उसके) तेरह भेद माने गये हैं- सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा,

लज्जा, तितिक्षा (सहनशीलता), दूसरोंके दोष न देखना, त्याग, ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), धैर्य, अहिंसा, और दया- ये सब सत्यके स्वरूप हैं।

झूठ बोलनेवाले मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है न परलोकमें। वह अपने पूर्वजोंको भी नहीं तार सकता; फिर आनेवाली पीढ़ीका तो उद्धार कर ही कैसे सकता है? परलोकमें सत्यसे जिस प्रकार जीवका उद्धार होता है, उस तरह यज्ञ, दान और नियमोंसे नहीं। लोगोंने अबतक जितनी तपस्याएँ की हैं और भविष्यमें वे जितनी करेंगे, उन सबको अगर सैकड़ों और लाखोंकी तादादमें इकट्ठा किया जाय, तो भी उनका महत्त्व सत्यसे बढ़कर नहीं सिद्ध हो सकता। एकमात्र सत्य ही अविनाशी ब्रह्म है, सत्य ही क्षय तप है, सत्य ही अविनाशी यज्ञ तथा सत्य ही सनातन वेद है। वेदोंमें सत्यकी ही महिमा गायी गयी है। सत्यसे ही श्रेष्ठ फलकी प्राप्ति होती है। सत्यके ही आधारपर सब कुछ टिका हुआ है। सत्य ही वेद, वेदाङ्ग, विद्या, विधि, व्रत और ॐकाररूप है। सत्यके ही प्रभावसे प्राणियोंका जन्म और उन्हें संतानकी प्राप्ति होती है। सत्यके बलसे ही हवा चलती, सूर्य तपते और आग जलती है। स्वर्ग भी सत्यपर ही स्थित है। यज्ञ, तप, वेद, स्तोभ, मन्त्र तथा सरस्वती- ये सब सत्यके ही स्वरूप हैं। किसी समय धर्म और सत्यको तराजूपर रखकर तौला गया तो जिधर सत्य था, उधरका ही पलड़ा भारी हुआ। जहां धर्म है, वहाँ सत्य है। सत्यसे ही सबकी वृद्धि होती है। युधिष्ठिर असत्यका बर्ताव कभी न करना। धर्म और इन्द्रिय-संयमकी सिद्धि भी सत्यसे ही होती है।

नित्य, अविनाशी और अविकारी होना ही सत्यका लक्षण है। किसीसे भी विरोध नहीं करना यह योग कहा जाता है और इसीसे सत्यकी प्राप्ति होती है। राग-द्वेष तथा काम-क्रोधको मिटाकर अपनेमें, अपने प्रिय मित्रमें तथा शत्रुमें भी समानभाव रखना समता है। किसी दूसरेकी वस्तुकी इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धीरता रखना तथा निर्भय एवं (मनके) रोगोंसे रहित रहना- यह सब दम (मन और इन्द्रियोंके संयम) का लक्षण है। दान और धर्मके समय अपने मनको काबूमें रखना- इसे विद्वान लोग मत्सरताका अभाव कहते हैं। सदा सत्यका पालन करनेसे ही मनुष्य मत्सरताका त्याग कर सकता है। सहने और न सहने योग्य प्रिय तथा अप्रिय वचन सुनकर भी जो क्षमा कर देता है, वह सत्पुरुष माना जाता है। सत्य बोलनेवालेमें ही क्षमाका गुण आता है। जो बुद्धिमान भलीभाँति दूसरोंका कल्याण करता है और मनमें कभी खेद नहीं करता, जिसकी मन और वाणी सदा शान्त रहती है; वह लज्जावान माना जाता है। यह लज्जा नामक गुण धर्मके आचरणसे प्राप्त होता है। धर्मके लिये कष्ट सहना तितिक्षा (सहनशीलता) कहलाती है। तितिक्षाकी प्राप्ति धैर्यसे होती है। आसक्ति और विषयोंका जो त्याग है, वही वास्तविक त्याग है। राग-द्वेषसे मुक्त हुए बिना त्यागकी सिद्धि नहीं होती। जो मनुष्य अपनेको प्रकट न करके आसक्तिरहित होकर प्रयत्नपूर्वक जीवोंकी भलाईका काम करता रहता है, उसके उस श्रेष्ठ आचरणका नाम ही आर्यता है। सुख या दु:ख प्राप्त होनेपर मनमें विकार न होना धैर्य कहलाता है। जो अपनी उन्नति चाहता हो, उस बुद्धिमानको सदा धैर्य धारण करना चाहिये। सदा क्षमा करे, सत्य बोले तथा हर्ष, भय और क्रोधका परित्याग कर दे। ऐसे आचरणवाले विद्वान पुरुषको धैर्य प्राप्त होता है। मन, वाणी तथा क्रियासे किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना, सबपर अनुग्रह रखना तथा दान देना- यह मनुष्योंका सनातन धर्म है। सत्यके गुणोंका पार पाना असम्भव है; इसीलिये ब्राह्मण, पितर और देवता भी सत्यकी प्रशंसा करते हैं। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्य ही धर्मका आधार है, अत: सत्यका लोप नहीं करना चाहिये। सत्यसे दानका, दक्षिणाओंसहित यज्ञका, त्रिविध अग्नियोंमें हवनका और धर्मनिर्णय करनेवाले वेदोंके स्वाध्यायका भी फल मिल जाता है। यदि एक ओर एक हजार अश्वमेघयज्ञोंका और दूसरी ओर सत्यका फल तराजूपर रखकर तौला जाय तो एक हजार अश्वमेघयज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही फल अधिक होगा।

क्रोध लोभसे उत्पन्न होता है और दूसरेमें दोष देखनेसे बढ़ता है। क्षमासे उसका बढ़ाव रुक जाता है और धीरे-धीरे उसीसे दूर भी हो जाता है। कामकी उत्पत्ति संकल्पसे होती है, वह सेवन करनेसे बढ़ता है और आसक्तिरहित होकर सेवन छोड़ देनेसे तत्काल नष्ट हो जाता है। दूसरोंके दोष देखनेका नाम है असूया। यह क्रोध तथा लोभसे उत्पन्न होती है और सब प्राणियों पर दया, मनमें वैराग्य तथा आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेसे नष्ट हो जाती है। मोह उत्पन्न होता है अज्ञानसे। वह पापके अभ्याससे बढ़ता है और महात्मा पुरुषोंके सत्संग से शीघ्र नष्ट हो जाता है। जब मनुष्य आत्मज्ञानके विरोधी शास्त्रोंका अवलोकन करते हैं, तो उन्हें (स्वर्गादिकी कामनासे) नये-नये कर्म आरम्भ करनेकी इच्छा (विधित्सा) होती है, किंतु तत्त्वज्ञान होनेपर उसकी निवृत्ति हो जाती है। जिसपर प्रेम हो उसके वियोगसे शोक होता है, किंतु जब मनुष्य यह समझ ले कि शोक व्यर्थ है- इससे कोई लाभ नहीं है, तो तुरंत उसकी शान्ति हो जाती है।

परासुता अर्थात कठोर कर्म करनेमें प्रवृत्ति होती है क्रोध, लोभ और अभ्यासके कारण तथा उसकी निवृत्ति होती है, सब प्राणियोंपर दया करने और मनमें वैराग्य होनेसे। सत्यका त्याग और दुष्टोंका साथ करनेसे मात्सर्य दोषकी उत्पत्ति होती है तथा सत्पुरुषोंकी सेवामें रहनेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। अपने उत्तम कुल, अधिक जानकारी और ऐश्वर्य का अभिमान होनेसे मनुष्यपर मद सवार हो जाता है, किंतु इनकी असलियत समझमें आ जानेसे वह तुरंत उतर जाता है। मनमें कामना होने और दूसरोंकी हँसी-खुशी देखनेसे ईर्ष्या पैदा होती है तथा विवेकशील बुद्धिके द्वारा उसका नाश होता है। समाजसे भ्रष्ट हुए नीच मनुष्योंके द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनोंको सुनकर भ्रममें पड़ जानेसे निन्दा करनेकी आदत होती है, किंतु अच्छे लोगोंके बर्तावोंपर दृष्टि डालनेसे वह मिट जाती है। जो लोग अपनी बुराई करनेवाले बलवान् मनुष्यसे बदला लेनेमें असमर्थ होते हैं, उनके हृदयमें बड़ी प्रबल असूया (दोष देखनेकी प्रवृत्ति) पैदा होती है, किंतु दयाका भाव जाग्रत होनेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। हमेशा कृपण मनुष्योंको देखनेसे अपनेमें भी कृपणता आ जाती है, परंतु जब मनुष्य धर्ममें स्थित होकर उसके दोषको समझ लेता है तो वह अपने-आप शान्त हो जाती है। प्राणियोंका भोगोंके प्रति जो लोभ देखा जाता है, वह अज्ञानके ही कारण है। भोगोंकी क्षणभंगुरताको देखने और जाननेसे उसकी निवृत्ति हो जाती है। शान्ति धारण करनेसे उपर्युक्त सभी दोष जीत लिये जाते हैं।

नृशंस मनुष्यके मनमें बड़ी घृणित इच्छाएँ रहती हैं, वह हिंसा प्रधान कर्मोंका आरंभ करना चाहता है। स्वयं तो दूसरोंकी निन्दा करता है और दूसरे उसकी निन्दा करते हैं। (यदि उसके इच्छानुसार काम नहीं हुआ तो) वह अपनेको वञ्चित समझता है। दिये हुए दान का बारंबार बखान करता है तथा बेईमानी, नीचता, धोखेबाजी और शठता करनेमें कभी नहीं चूकता। भोग्य, वस्तुका अकेले उपभोग करता है, उसे अपने आश्रितोंको नहीं देता। अभिमानी और विषयासक्त होता है, व्यर्थ ही डींग हाँका करता है। सबके प्रति संदेह रखता और वञ्चना किया करता है। अपने वर्गमें रहनेवालोंकी तारीफ करता और द्वेषवश आश्रयोंपर लाच्छन लगाया करता है। उसमें वर्णसंकरताका दोष होता है। नृशंस कर्म करनेवाला मनुष्य सदा हिंसाके लिये घूमता फिरता है, गुण-अवगुणको समान समझता है, झूठ अधिक बोलता है तथा बहुत ही लालची और तंगदिल होता है। वह धर्मात्मा और गुणवान मनुष्यको ही पापी समझता है और अपने स्वभावके अनुसार किसीपर भी विश्वास नहीं करता। जहाँ दूसरोंकी बदनामी होती हो, वहाँ उनके गुप्त दोषोंको भी प्रकट कर देता है और अपने तथा दूसरेके अपराध बराबर होनेपर भी वह आजीविकाके लिये दूसरेका ही सर्वनाश करता है। जो उसका उपकार करता है, उसको वह अपने जालमें फँसा हुआ समझता है और उपकारीको भी यदि कभी धन देता है तो उसके लिये बहुत दिनोंतक पश्चात्ताप करता रहता है। जो मनुष्य दूसरोंके देखते रहनेपर भी उत्तम भोजनकी सामग्री अकेले चट कर जाता है, उसको भी नृशंस

ही कहना चाहिये। जो पहले ब्राह्मणको देकर पीछे अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह इस लोकमें सुखी होता है और मरनेके बाद स्वर्गमें जाता है।

सम्पूर्ण वेद और उपनिषदोंका पारंगत विद्वान ब्राह्मण यदि यज्ञ करनेवाला हो और उसका धन चोर चुरा ले गये हों अथवा वह निर्धन हो तो राजाका कर्त्तव्य है कि वह उसे आचार्यकी दक्षिणा देने, पितरोंका श्राद्ध करने तथा अध्ययन करनेके लिये धन दे। ब्राह्मण इस जगत्का कर्त्ता, शासक, रक्षक और देवता कहलाता है, अत: उसके प्रति अमङ्गलसूचक एवं कटु वचन नहीं कहना चाहिये। क्षत्रिय अपने बाहुबलसे, वैश्य और शूद्र धनके बलसे और ब्राह्मण मन्त्र तथा हवनकी शक्तिसे आपत्तिके समय अपनी रक्षा करे। कन्या, युवती, मन्त्र न जाननेवाला, मूर्ख और संस्कारहीन पुरुष- ये अग्निमें हवन करनेके अधिकारी नहीं हैं। ये जिसके यज्ञमें हवन करते हैं, उसके साथ ही स्वयं भी नरकमें पड़ते हैं। मनुष्य जो कुछ भी पुण्य कर्म करे उसे श्रद्धापूर्वक और इन्द्रियोंको काबूमें रखकर करे। बिना पूर्ण दक्षिणा दिये यज्ञ न करे। बिना दक्षिणाका यज्ञ प्रजा और पशुका नाश करता है तथा स्वर्गकी प्राप्तिमें भी बाधा डालता है। यही नहीं, वह इन्द्रिय, यश, कीर्ति तथा आयुको भी क्षीण करता है।

जो ब्राह्मण रजस्वला स्त्रीसे समागम करते हैं, जिन्होंने घरमें अग्निकी स्थापना नहीं की है तथा जो अवैदिक रीतिसे हवन करते हैं, वे सभी पापी हैं। परिहासमें, स्त्रीके पास, विवाहके अवसरपर, गुरुके हितके लिये अथवा अपने प्राण बचानेके उद्देश्यसे झूठ बोलनेमें दोष नहीं है। इन पाँच स्थलोंपर असत्य बोलना पाप नहीं माना गया है। नीच वर्णके पास भी उत्तम विद्या हो तो उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिये। सोना अपवित्र स्थानमें भी पड़ा हो तो उसे बिना किसी हिचकिचाहटके उठा लेना चाहिये तथा विषके स्थानसे भी अमृत मिले तो उसे पी लेना चाहिये।

गौ और ब्राह्मणोंका हित, वर्णसंकरताका निवारण तथा अपनी रक्षा करनेके लिये वैश्य भी हथियार उठा सकता है। मदिरापान, ब्रह्महत्या तथा गुरुपत्नीगमन- इन महापापोंके लिये कोई प्रायश्चित्त ही नहीं बताया गया है। किसी भी उपायसे अपने प्राणोंका अन्त कर देनेपर ही इनसे छुटकारा मिलता है। यही शास्त्रोंका निर्णय है। दूसरेका सोना हड़प लेना, चोरी करना और ब्राह्मणका धन छीन लेना- यह महान् पाप है। शराब पीनेसे, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेसे, पतितोंके सम्पर्कमें रहनेसे और ब्राह्मणेतर होकर ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है।

विदुरजीने युधिष्ठिरको समझाया, बहुत-से शास्त्रोंका अनुशीलन, तप, त्याग, श्रद्धा, यज्ञ, क्षमा, भावशुद्धि, दया, सत्य और संयम- ये सब आत्माकी सम्पत्ति हैं। तुम इन्हींको प्राप्त करो। धर्मसे ही ऋषियोंने संसारसमुद्रको पार किया है, धर्मके ही आधारपर सम्पूर्ण लोक टिके हुए हैं, धर्मसे ही देवताओंकी उन्नति हुई है और धर्ममें ही अर्थकी भी स्थिति है। मनीषी विद्वान धर्मको उत्तम, अर्थको मध्यम और काम को लघु बतलाते हैं। अत: मनको वशमें रखकर धर्मको ही अपना प्रधान ध्येय बनाना चाहिये और सम्पूर्ण प्राणियोंके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये, जैसा हम अपने लिये चाहते हैं।

अर्जुनने कहा, महाराज युधिष्ठिर। यह कर्मभूमि है। जहाँ जीविकाके साधनभूत कर्मोंकी ही प्रशंसा होती है। खेती, व्यापार, गोपालन तथा भाँति-भाँतिके शिल्प- ये सब अर्थ-प्राप्तिके ही साधन हैं। अर्थ ही समस्त कर्मोंकी मर्यादा है। अर्थ (धन) के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते। धनवान् मनुष्य धनके द्वारा उत्तम धर्मका पालन और दुर्लभ कामनाओंकी प्राप्ति भी कर सकता है। सब प्रकारके संग्रहसे रहित, संकोचशील, शान्त एवं गेरुआ वस्त्र पहने, दाढ़ी-मूँछ बढ़ाये विद्वान पुरुष भी धनकी अभिलाषा करते पाये जाते हैं। कई ऐसे हैं, जो स्वर्गके इच्छुक हैं और कुलपरम्परागत नियमोंका पालन करते हुए अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके धर्मोंका अनुष्ठान कर रहे हैं। फिर भी उन्हें धनकी चाह बनी हुई है। धनवान वही है जो अपने भृत्योंको उत्तम भोग और शत्रुओंको दण्ड देकर उन्हें वशमें रखता है।

नकुल और सहदेवने कहा, मनुष्यको बैठते, सोते, उठते और चलते-फिरते समय भी छोटे-बड़े हर तरहके उपायोंसे दृढ़तापूर्वक धन कमानेका उद्योग करना चाहिये। धन दुर्लभ और अत्यन्त प्रिय वस्तु है, इसकी प्राप्ति हो जानेपर मनुष्य संसारमें अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। धर्मयुक्त अर्थ और अर्थयुक्त धर्म- ये अमृतके समान लाभदायक हैं; इसलिये हम धर्म और अर्थ- दोनोंको आदर देते हैं। निर्धन मनुष्यकी कामना नहीं पूर्ण हो सकती और धर्महीन मनुष्यको धन भी कैसे मिल सकता है? अत: पहले धर्मका आचरण और फिर धर्मके अनुसार अर्थका संग्रह करे। इसके बाद कामनाओंका सेवन करना चाहिये। इस प्रकार त्रिवर्गका संग्रह करनेसे मनुष्य सफलमनोरथ होता है।

भीम बोला, धर्मराज। जिसके भीतर कामना नहीं है, उसे न धन कमानेकी इच्छा होती है, न धर्म करनेकी। कामनाके बिना तो कोई काम (भोग) भी नहीं चाहता। इसलिये त्रिवर्गमें काम ही सबसे बढ़कर है। कोई-न-कोई कामना रखकर ही ऋषिलोग कठोर तपस्यामें संलग्न होते हैं; फल, मूल और पत्ते चबाकर, वायु पीकर सावधानीके साथ संयम करते हैं। कामनासे ही लोग वेदोंका स्वाध्याय करते, श्राद्ध-यज्ञादि क्रियाओंमें प्रवृत्त होते तथा दान देते और प्रतिग्रह स्वीकार करते हैं। बनिये, किसान, ग्वाले, कारीगर और शिल्पकार तथा देवतासम्बन्धी कार्य करनेवाले लोग भी कामनासे ही अपने-अपने धंधोंमें लगते हैं। सारा कार्य ही कामनासे व्याप्त है। अत: धर्म, अर्थ और काम- तीनोंका एक ही साथ सेवन करना चाहिये। जो इनमेंसे एकको ही स्वीकार करता है, वह अधम है, दोका आश्रय लेनेवाला मध्यम है और जो तीनोंके सेवनमें संलग्न है वह मनुष्य उत्तम है।

युधिष्ठिर बोले, जो न पापमें लगा हो, न पुण्यमें; न अर्थोपार्जनमें प्रवृत्त हो, न धर्म या कामके सेवनमें; जिसकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना एक समान हो, वह सब प्रकारके दोषोंसे रहित मनुष्य दु:ख और सुख देनेवाली सिद्धियोंसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीका कहना है कि जिसके मनमें आसक्ति है, उसकी कभी मुक्ति नहीं होती। किंतु जो धर्म, अर्थ और काम- इस त्रिवर्गसे रहित है, वही दुर्लभ पुरुषार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करता है; इसलिये गूढ़तत्त्वका ज्ञान ही संसारका हित करनेवाला है।

भीष्म बोले, युधिष्ठिर। जो लोभी, क्रूर, धर्मत्यागी, कपटी, शठ, क्षुद्र, पापी, सबपर संदेह करनेवाला आलसी, दीर्घसूत्री, कुटिल, निन्दित, गुरुस्त्रीसे व्यभिचार करनेवाला, संकटके समय साथ छोड़कर चल देनेवाला, दुरात्मा, निर्लज्ज, नास्तिक, वेदोंकी निन्दा करनेवाला, झूठा, सबके द्वेषका पात्र, चुगुलखोर, पापपूर्ण विचार रखनेवाला, धूर्त, मित्रोंकी बुराई करनेवाला, दूसरोंका धन लेनेकी इच्छा रखनेवाला, बेमौके क्रोध करनेवाला, चञ्चलचित्त, अकस्मात वैर बाँध लेनेवाला, अपना काम बनानेके लिये ही मित्रोंसे मेल रखनेवाला, वास्तवमें मित्रोंका द्वेषी, मुँहसे मित्रताकी बातें करके भीतरसे शत्रुभाव रखनेवाला, टेढ़ी नजरसे देखनेवाला, शराबी, द्वेषी, क्रोधी, निर्दयी, दूसरोंको कष्ट देनेवाला, मित्रद्रोही, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, कृतघ्न तथा नीच हो, उसके साथ कभी संधि नहीं करनी चाहिये।

जो कुलीन, बोलनेमें पटु, ज्ञान-विज्ञानमें कुशल, रूपवान, गुणवान्, लोभहीन, काम करनेसे कभी न थकनेवाले, कृतज्ञ, सर्वज्ञ, मधुर स्वभाववाले, सत्यप्रतिज्ञ तथा जितेन्द्रिय हों, उन्हीं लोगोंको राजा अपना मित्र बनावे। जो अपनी शक्तिके अनुसार कर्त्तव्यका ठीक-ठीक पालन करते और संतुष्ट रहते हैं, जिन्हें बेमौके क्रोध नहीं आता, जो उदासीन हो जानेपर भी मनसे बुराई करना नहीं चाहते, अर्थके तत्त्वको समझते हैं और अपनेको कष्टमें डालकर भी हितैषी पुरुषोंका कार्य सिद्ध करते हैं। जैसे रँगा हुआ ऊनी कपड़ा अपना रंग नहीं छोड़ता उसी प्रकार जो मित्रोंकी ओरसे विरक्त नहीं होते, जो सबके विश्वासपात्र और धर्मानुरागी हैं, जिनकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला और सोना एक-से हैं तथा जो सदा अपने स्वामीका काम बनानेमें लगे रहते हैं- ऐसे उत्तम पुरुषोंके साथ जो राजा संधि (मेल) करता है, उसका राज्य उसी तरह बढ़ता है, जैसे

चन्द्रमाकी चाँदनी। जो सदा शास्त्रका स्वाध्याय करते हैं, क्रोधको काबूमें रखते हैं और युद्धमें प्रबल रहते हैं, जिनका उत्तम कुलमें जन्म हुआ है, जो शीलवान् और उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष ही मित्र बनानेके योग्य होते हैं।

कृतघ्न मनुष्यको यश, स्थान और सुख कैसे नसीब हो सकता है? कृतघ्नपर तो किसीका विश्वास ही नहीं होता। कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। मनुष्यको मित्रद्रोहके पापसे बचना चाहिये; क्योंकि जो मित्रसे द्रोह करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिये, लोगोंको मित्र बनानेकी इच्छा रखनी चाहिये। कारण कि मित्रसे सब कुछ प्राप्त होता है। मित्रकी सहायता पाकर मनुष्य आपत्तियोंसे छुटकारा पा जाता है, इसलिये बुद्धिमान मनुष्यको मित्रोंका सत्कार और पूजन करना चाहिये। जो कृतघ्न, पापी, निर्लज्ज, मित्रद्रोही, कुलाङ्गार तथा पापाचारी हों, ऐसे लोगोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

वेदमें सर्वत्र धर्मका ही विधान है। धर्मके अनेकों द्वार है। संसारमें ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसका कोई फल न हो। मनुष्य जैसे-जैसे संसारके पदार्थोंको सारहीन (क्षणभंगुर) समझता है, वैसे-वैसे इनमें उसका वैराग्य होता जाता है। अत: यह प्रपञ्च अनेकों दोषोंसे पूर्ण है- ऐसा निश्चय करके बुद्धिमान पुरुषको अपने मोक्षके लिये यत्न करना चाहिये।

इस संसार में उत्तम, मध्यम और अधम-सभी प्राणी दु:खमें ग्रस्त हैं तथा तरह-तरहके कर्मोंमें फँसे हुए हैं। मैं इस शरीर या पृथ्वीको अपनी नहीं मानता। ये जैसी मेरी है वैसी ही दूसरोंकी भी है- यही सोचकर इनके कारण मुझे व्यथा नहीं होती और इस बुद्धिको पाकर ही मैं हर्ष-शोकसे रहित रहता हूँ। जिस प्रकार समुद्रमें दो लकड़ियाँ मिलती हैं और फिर अलग-अलग भी हो जाती हैं, इसी प्रकार इस लोकमें प्राणियोंका समागम होता है तथा इसी तरह यह पुत्र, पौत्र, जाति, बन्धु और सम्बन्धियोंकी कल्पना हो जाती है। अत: उनमें विशेष स्नेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन उनसे बिछोह होना निश्चित है। किसीका पुत्र किसी अज्ञात स्थानसे आया था और अब अज्ञात देशको ही चला गया है। न तो वह अपने पिता को जानता था और न उसका पिता उसे जानता था। अत: उसका पिता कौन है, जो उसके लिये शोक कर रहा हो। संसारमें विषयतृष्णासे जो व्याकुलता होती है, उसीका नाम दु:ख है और उस दु:खका नाश हो जाना ही सुख है। उस सुखसे बार-बार दु:ख उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार सुखके बाद दु:ख और दु:खके बाद सुख- यह सुख-दु:खका चक्र घूमता ही रहता है। इस समय तुम्हें सुखकी स्थितिसे दु:खमें आना पड़ा है, इसलिये अब तुम सुख प्राप्त करोगे। किसी प्राणीको सर्वदा सुख या सर्वदा दु:खकी ही प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य स्नेहकी अनेक प्रकारकी फाँसियोंमें बँधे हुए हैं और जलमें बालूका पुल बनानेवालोंके समान अपने कार्योंमें असफल होनेसे दु:ख पाते रहते हैं। तेली लोग तैलके लिये जैसे तिलोंको कोल्हूमें पेरते हैं, उसी प्रकार सब लोग अज्ञानजनित कष्टोंसे पिस रहे हैं। मनुष्य स्त्री-पुत्र आदि कुटुम्बके लिये संसारमें तरह-तरहके पाप बटोरता है, किंतु इस लोकमें और परलोकमें उसे अकेले ही उनका क्लेशमय फल भोगना पड़ता है। जिस प्रकार बूढ़ा हाथी दलदलमें फँसकर प्राण खो बैठता है, उसी प्रकार सब लोग पुत्र, स्त्री और कुटुम्बकी आसक्तिमें फँसकर शोक-समुद्रमें डूबे रहते हैं। जब पुत्र, धन या बन्धु-बान्धवोंमेंसे किसीका नाश हो जाता है तो वे दावानलके समान भीषण दु:खमें पड़ जाते हैं, परंतु सुख-दु:ख और जन्म-मृत्यु आदि सब कुछ दैवके अधीन है। मनुष्य हितैषियोंसे युक्त हो या न हो, वह शत्रुओंसे घिरा हो या मित्रोंसे तथा बुद्धिमान हो अथवा बुद्धिहीन- दैवकी अनुकूलता होनेपर ही सुख पा सकता है। अन्यथा न तो हितैषी सुख देनेमें समर्थ हैं और न शत्रु दु:ख देनेमें। न बुद्धि धन दे सकती है और न धन सुख पहुँचा सकता है। वास्तवमें संसारकी गतिको कोई बुद्धिमान ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं।

जिन्हें बुद्धियोगका सुख प्राप्त हो, जो द्वन्द्वोंसे अतीत हैं और जिनमें मत्सरताका भी अभाव है, उन्हें अर्थ या अनर्थ कभी

व्यथा नहीं पहुँचाते। किंतु जिन्हें बुद्धियोग प्राप्त नहीं हुआ है, वे ऐसी परिस्थिति आनेपर अत्यन्त हर्ष और अत्यन्त शोकके अधीन हो जाते हैं। अत: बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि सुख या दु:ख, प्रिय अथवा अप्रिय जो-जो प्राप्त हो जाय, उसका उत्साहके साथ सामना करे, कभी हिम्मत न हारे। शोकके हजारों स्थान हैं और भयके सैकड़ों अवसर हैं, किंतु वे दिन-दिन मूर्खोंपर ही प्रभाव डालते हैं, बुद्धिमानोंपर नहीं। जो बुद्धिमान, विचारशील, शास्त्राभ्यासी, ईर्ष्याहीन, संयमी और जितेन्द्रिय होता है, उस मनुष्यको शोक छू भी नहीं सकता। बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि इस निश्चयपर डटा रहकर संयम चित्तसे व्यवहार करे। जो पुरुष उत्पत्ति विनाशके तत्त्वको जानता है, उसे शोक स्पर्श नहीं कर सकता। मनुष्य जब किसी पदार्थमें ममत्व कर बैठता है तो वही उसके दु:खका कारण बन जाता है। वह विषयोंमेंसे जिस-जिसकी आसक्तिको त्यागता जाता है, उसी-उसीसे सुखकी वृद्धि होती जाती है। किंतु जो पुरुष विषयोंके पीछे पड़ा रहता है, वह तो उन्हींके साथ नष्ट हो जाता है। लोकमें जितना भी विषयसुख है और जो कुछ दिव्य स्वर्गीय आनन्द है, वे सब तृष्णाक्षयके सुखकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। मनुष्य बुद्धिमान हो, मूर्ख हो अथवा शूरवीर हो- अपने पूर्वजन्ममें उसने जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म किया होता है उसका उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। इस प्रकार जीवोंको बारी-बारीसे प्रिय-अप्रिय और सुख-दु:खकी प्राप्ति होती ही रहती है। ऐसे विचारका आश्रय लेकर कामनाओंके त्यागरूपी गुणसे युक्त हुआ मनुष्य सुखसे रहता है। अत: सब प्रकारके भोगोंमें दोष-दृष्टि करे और उन्हें स्वेच्छासे त्याग दे। हृदयसे उत्पन्न होनेवाला यह काम हृदयमें ही पुष्ट होकर मृत्युरूपमें परिणत हो जाता है। (जब इसकी सिद्धिमें कोई बाधा आती है तो) विद्वानोंद्वारा यही प्राणियोंके शरीरके भीतर क्रोधके नामसे पुकारा जाता है। जब यह किसीसे भय नहीं मानता और इससे भी कोई नहीं डरता तथा जब यह किसी वस्तुकी इच्छा या किसीसे द्वेष नहीं करता तो इसे ब्रह्मत्वकी प्राप्ति हो जाती है। जब यह सत्य और असत्य, शोक और आनन्द, भय और अभय तथा प्रिय और अप्रिय दोनोंको त्याग देता है, तो परम शान्तचित्त हो जाता है। जब पुरुष-मन-वचन और कर्मसे किसी प्राणीके प्रति दूषित भाव नहीं करता, उस समय वह ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। दुष्टचित्त पुरुषोंके लिये जो अत्यन्त दुस्त्यज है, मनुष्यके जीर्ण हो जानेपर भी जिसमें शिथिलता नहीं आती तथा जो प्राणोंके साथ जानेवाला रोग है, उस तृष्णाको जो त्याग देता है, वह सुखी हो जाता है।

मृत्यु मनुष्य को अत्यन्त ताडित कर रही है, जरावस्थाने इसे सब ओरसे घेर रक्खा है और दिन-रात इसमें नित्य पतित होते (आते-जाते) रहते हैं? अमोध रात्रियाँ नित्य ही आती हैं और चली जाती हैं। मौत मेरे कहनेसे क्षणभर भी नहीं रुकेगी। यह सब जानकर भी मैं अपने कल्याणसाधनमें किस प्रकार ढील डाल सकता हूँ? जबकि प्रत्येक रात्रिके बीतनेके साथ आयु क्षीण हो रही है तो समझदार मनुष्यको यही समझना चाहिये कि उसका दिन व्यर्थ ही गया; ऐसी स्थितिमें छिछले जलमें रहनेवाली मछलीके समान कौन सुख मान सकता है? मनुष्यकी कामनाएँ पूर्ण होने भी नहीं पातीं कि मृत्यु उसे दबोच लेती है, इसलिये जो काम कल्याणकारक हो उसे आज ही कर डालो, समयको हाथसे मत निकलने दो; क्योंकि मृत्यु तो काम पूरे न होनेपर भी प्राणियोंको खींच ही ले जायगी। जो काम कल करना हो उसे आज करो और जो दोपहर बाद करना हो उसे पहले ही पूरा कर लो; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ है या नहीं। यह कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु हो जायगी। अत: युवावस्थामें ही मनुष्यको धर्मका आचरण करना चाहिये; क्योंकि जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। धर्माचरण करनेसे मनुष्यका यश होता है और उसे इहलोक तथा परलोकमें सुख मिलता है। जो मनुष्य मोहमें डूबा रहता है, वही पुत्र और स्त्रीके लिये खटपटमें लगा रहता है और कार्य-अकार्य कुछ भी करके उनका पोषण करता है। उसके पास पुत्र और पशुओंकी अधिकता होती है और उन्हींमें उसका चित्त आसक्त रहता है। वह

निरन्तर भोगोंके ही संग्रहमें लगा रहता है फिर भी उनसे उसकी तृप्ति नहीं होती। किंतु ऐसी स्थितिमें ही मौत उसे इस प्रकार उठा ले जाती है जैसे व्याघ्री अपने सोते हुए शिकारको। वह सोचता है कि यह काम तो पूरा हो गया, यह अभी करना है और यह अधूरा ही पड़ा है किंतु इस धुनमें मस्त हुए उस पुरुषको मौत झट अपने वशमें कर लेती है। मनुष्य अपने खेत, दुकान और घरके ही चक्करमें पड़ा रहता है; उनके लिये तरह-तरहके कर्म करता है। परंतु उनका फल मिलने भी नहीं पाता कि मौत उसे उठाकर ले जाती है। मनुष्य दुर्बल हो या बलवान, शूरवीर हो या डरपोक, अथवा मूर्ख हो या विद्वान, मौत उसकी समस्त कामनाओंके पूर्ण होनेसे पहले ही उसे उठा ले जाती है। जब इस शरीरमें मृत्यु, जरा, व्याधि और अनेकों कारणोंसे होनेवाले दु:खोंका ताँता लगा ही रहता है। मौत और बुढ़ापा- ये दोनों तो जीवके जन्मके साथ लगे हुए हैं। इन दोनोंका सभी स्थावर जङ्गमोंसे सम्बन्ध है। अत: ग्राम या नगरमें रहकर स्त्री पुत्रोंमें आसक्ति रखना तो जीवको बाँधनेवाली रस्सीके ही समान है। केवल पुण्यात्मा पुरुष ही इसे काटकर निकल पाते हैं, पापी पुरुष इसे नहीं काट सकते। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे जीवोंको कष्ट नहीं पहुँचाता, वे जीव भी उसके जीवन और अर्थकी हानि नहीं करते। सत्यके बिना कोई भी मनुष्य मृत्युकी सेनाका सामना नहीं कर सकता, इसलिये असत्यको त्याग देना चाहिये; क्योंकि अमृतत्व सत्यमें ही है। अत: मनुष्यको सत्यव्रतका आचरण करना चाहिये, सत्ययोगमें तत्पर रहना चाहिये और इन्द्रियोंका दमन करना चाहिये। इस प्रकार सत्यके द्वारा ही वह मृत्युपर विजय प्राप्त करे। अमृत और मृत्यु ये दोनों इस शरीरमें ही विद्यमान हैं। मोहसे मृत्यु होती है और सत्यसे अमरत्व प्राप्त होता है। अत: मनुष्य को हिंसासे दूर रहना चाहिये और सत्यकी खोज करे, सुख-दु:खमें समान रहे, जिसमें दूसरोंको सुख मिले ऐसा आचरण करे और मृत्युके भयसे मुक्त हो जाय। (निवृत्तिपरायण होकर) शान्तियज्ञका अनुष्ठान करे, इन्द्रियोंका दमन करे, मननशील होकर ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहे, तथा जपरूप वाग्यज्ञ, ध्यानरूप मनोयज्ञ और गुरु-सुश्रूषादिरूप कर्मयज्ञका आचरण करे। जिसकी वाणी और मन सदा एकाग्र रहते हैं तथा जो तप, त्याग और सत्यमें तत्पर रहता है, वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संसारमें ज्ञानके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके समान कोई तप नहीं है, रागके समान कोई दु:ख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। एकान्तवास, समता, सत्यभाषण, सदाचार, अहिंसा, सरलता और सब प्रकारके काम्यकर्मोंसे निवृत्ति- इनके समान ब्राह्मणका कोई और धन नहीं है। जब एक दिन आपको मरना ही है तो इस धन, स्वजन अथवा स्त्री आदिसे क्या लेना है? आप अपने अन्त:करणमें स्थित आत्माको खोजिये।

इस संसार मे जो भी मनुष्य उत्पन्न होता है (वह धनी हो या निर्धन) उसे जन्मसे ही सुख-दु:ख घेर लेते हैं। संसारमें अकिंचनतामें ही आनन्द है, यही हितकारक, कल्याणमय और निरापद है तथा इस मार्गमें किसी प्रकारके खटका नहीं है। धनवान पुरुष सर्वदा इस प्रकार घबराया रहता है मानो मौतके मुंहमें पड़ा हो। जो मनुष्य धनको त्याग कर मुक्तस्वरूप हो गया है उसे अग्नि, अरिष्ट, मृत्यु या चोर किसीका भी भय नहीं रहता। वह स्वेच्छासे विचरता है और शान्तिसे जीवन बिताता है। धनवान तो क्रोध और लोभ के कारण अपने आपको भूल जाता है। उसे पाप-ही-पाप सूझता है और कठोर भाषण करता है। वह सर्वदा लक्ष्मीकी ही गोदमें रहता है और लक्ष्मी उस मूर्खको मोहमें डाले रहती है। वह अपनेको बड़ा रूपवान और धनवान समझता है और ऐसा मानता है कि मैं बड़ा कुलीन और सिद्ध हूँ, मेरे समान कोई दूसरा मनुष्य नहीं है। वह बाप-दादोंके जोड़े हुए धनको उड़ा देता है और धनहीन हो जानेपर दूसरोंका धन छीननेका विचार करता है। इसप्रकार उस पुरुषको तरह-तरह के दु:खोंका सामना करना पड़ता है। कोई भी मनुष्य त्यागके बिना न तो सुख पा सकता है न परमात्माको पा सकता है और न निर्भय होकर सो सकता है। अत: त्याग ही सबसे श्रेष्ठ माना गया है। सबके प्रति समता का भाव रखना, धन इत्यादि के लिये विशेष खटपटमें न पड़ना, सत्यभाषण करना, भोगोंसे विरक्त रहना और काममें

आसक्त न होना इन सबके होनेसे मनुष्य सुख पा सकता है। ममि मुनिने बताया, मनुष्य कैसा ही चतुर हो, किंतु उसके भाग्यमें जो नहीं होता वह प्रयत्न करनेपर भी उसे धन नहीं मिल सकता। जिस सुखकी इच्छा हो, उसे वैराग्यका आश्रय लेना चाहिये। जो पुरुष धनोपार्जन की चिन्ता छोड़कर उपरत हो जाता है, वह सुखकी नींद सोता है। यों तो धनके संकल्पमें ही सुख नहीं है, पर वह मिल जाय तो भी चिन्ता बढ़ती है और यदि एक बार मिलकर नष्ट हो जाय तब तो मौत ही आ जाती है तथा उद्योग करनेपर यह निश्चय नहीं होता कि वह मिलेगा या नहीं। मिल जाय तो उसे सन्तोष नहीं होता फिर और पानेकी तृष्णा बढ़ती है। धनका नाश होनेपर जो दु:ख होता है वह सबसे बढ़कर है। अर्थलोलुपता दु:खरुप ही है। अत: सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सर्वभूतदया को प्राप्त करो और काम, लोभ, तृष्णा और कपटता का त्याग करो। मनुष्य जिस-जिस कामनाको छोड़ देता है उसीकी ओरसे वह सुखी हो जाता है। कामनाके वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दु:ख पाता है। दु:ख, निर्लज्जता और असंतोष ये काम और क्रोधसे उत्पन्न होते है। अवधूत दत्तात्रयने प्रल्हादको उपदेश दिया, उसने चौबीस गुरु बनाये। आशा बड़ी प्रबल है, सुख तो निराशा में है। बहुत लोग साथ-साथ रहते है और परस्पर उनमें कलह होता है। अवधूत दत्तात्रयने जो प्रल्हाद को उपदेश दिया उसीके अनुसार मनुष्य को शुद्धचित्त और निर्विकार होकर पृथ्वीपर विचरना चाहिये। जितने संयोग हैं उनका वियोग होगा ही। जितने संचय है उनका पर्यवसान विनाशमें ही है। आकाश में जितने नक्षत्र है, कालकी अवधि आनेपर गिरते हुए दिखायी देंगे। दत्तात्रय मुनि कभी भी दुर्लभ भोगकी इच्छा नहीं करतेथे और सर्वदा अजगर-वृत्तिसे रहते थे। कृपणलोग अर्थसंग्रहके लिये हमेशा भले-बुरे आदमियोंकी सेवा करते रहते है। सुख-दु:ख, लाभ हानि, जीवन-मरण, प्रीति-अप्रीति विधाताके हाथमें है, ऐसा जानकर भय, राग, मोह और अभिमानको त्याग देना चाहिये। धैर्य और बुद्धिसे काम लेना चाहिये तब पूर्णतया शान्ति प्राप्त होगी। जो महापुरुष राग, भय, लोभ, मोह और क्रोधको त्यागकर निर्विकार होकर इस पृथ्वीपर विचरता है वह इस लोकमें आनन्द उठाता है।

प्राणियोंका प्रधान आश्रय उनकी बुद्धि है। बुद्धि ही संसार में मनुष्य का कल्याण करनेवाली है। संसार में बुद्धिसे बढ़कर कुछ नहीं है। ईश्वर ने जिनको दो हाथ दिये है, वे वर्षा, शीत और घामसे अपनी रक्षा कर सकते हैं। जो दु:ख बिना हाथके दीन, दुर्बल और बेजबान प्राणी सहते हैं, गीदड़, कीड़ा, चूहा, साँप, मेंढ़क इनके पास हाथ नहीं है। मनुष्य धनी हो जानेपर राज्य चाहने लगता है, राज्य मिलनेपर देवत्वकी इच्छा करता है और फिर इन्द्रपद पाना चाहता है। इसप्रकार उसकी तृष्णा बढ़ती रहती है और तृप्ति नहीं होती। तृष्णाकी आग पानीसे नहीं बुझती; बल्कि वह और भी प्रज्ज्वलित हो जाती है। बुद्धि और इन्द्रियाँ ही समस्त कामना और कर्मोंकी मूल हैं। मायाका चक्र ऐसा ही है कि भंगी और चाण्डाल भी अपनी योनियोंमें प्रसन्न रहते हैं, ये ही नहीं कीड़े-कीट-पतंग, लंगड़े-लूले और पक्षाघातादि रोगोंसे पीड़ित मनुष्य भी अपनी योनिमें प्रसन्न रहते है। जो श्रद्धावान, जितेन्द्रिय, धनाढ्य पुरुष यज्ञ, दानादि शुभकर्म करते है उन्हें अधिकाधिक वैभव और सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्मकी ऐसी गति है कि वह सोते-बैठते, चलते-फिरते और क्रिया करते समय छायाके समान कर्ताके साथ लगा रहता है। जिस मनुष्यने अपने पूर्वजन्मोंमें जैसे-जैसे कर्म किये है, कर्मविधानके अनुसार वैसे ही फल भोगता है।

भीष्म पितामहने युधिष्ठिरको ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविद्या, जीवकी उत्पत्ति, उसके कर्म, कालधर्म व मोक्षका वर्णन किया। मनुष्यको चाहिये कि शौचसंतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए ऐसे स्थानोंपर ईश्वर का ध्यान करे, जहाँ स्त्री आदिका संग न हो, जहाँ मनमें पूर्णतया शान्ति हो। फिर अपने मनको एकाग्र करके ध्यानमें स्थित हो जावे। साधक को घबराकर अपना प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये और अपने मनको शान्त करना चाहिये। इससे मनुष्य को दिव्यसुख प्राप्त होता है।

मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर नियमपूर्वक जप करना चाहिये। इससे धर्म स्वयं उसके पास आता है तथा काल, मृत्यु और यम भी उसके साथ आयेंगे। क्षत्रिय केवल दान देते हैं, दान लेते नहीं।

मनुने बृहस्पतिजीसे कहा, जो कामनाओंके बन्धनसे मुक्त होता है, वही परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है। कर्मसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि फलोंकी प्रशंसा करनेवाले वचन तो कामनाओंमें आसक्त पुरुषोंपर ही अपना प्रभाव डालते हैं। नित्यकर्मोंके अनुष्ठानसे रागादि दोष दूर हो जानेके कारण अन्त:करण शुद्ध रहता है और उसमें ज्ञानका प्रकाश छा जाता है और मनुष्य अपने कर्मोंके अगोचर कामनातीत परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। मन और कर्मसे ही संसारकी सृष्टि हुई है। पर इन दोनोंके ब्रह्मप्राप्तिके मार्ग है। वेदविहित कर्म अक्षय फल (मोक्ष) भी देता है और नश्वर फलकी भी प्राप्ति करता है। मनके द्वारा फलेच्छाको त्याग देना ही अक्षय फलकी प्राप्तिमें कारण हैं। विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण, यज्ञका अनुष्ठान, दक्षिणा, अन्नका दान और मनकी समाधि- इन पाँच अङ्गोंसे सम्पन्न होनेपर ही कर्मफल देनेमें समर्थ होता है। शब्द, रूप, पवित्र रस, सुखद स्पर्श और सुन्दर गन्ध ये ही कर्मोंके फल हैं, किन्तु मनुष्य इसी कर्मकरनेवाले शरीरसे इन फलोंको प्राप्त करनेकी शक्ति नहीं रखता। कर्मोंके फलरूपसे जो लोक या शरीर प्राप्त हुये हैं उन्हींमें यह फल भोगने पड़ते है। जीव एक शरीरसे जो-जो शुभाशुभ कर्म करता है, दूसरा शरीर धारण करके ही उसके फलोंको भोगता है, क्योंकि शरीर ही सुख और दु:ख भोगनेका साधन है। मनुष्य शुभकर्मोंका फल पाकर प्रसन्न होता है और अशुभ कर्मोंके फलसे दुखी होता है। जिससे इस सम्पूर्ण जगतकी उत्पत्ति हुई है, ऐसा जानकर वह महात्मा इस संसार-समुद्रसे पार हो जाता है। वेदमन्त्रभी जिसके पदका प्रतिपादन भी नहीं कर पाते, उस अनिर्वचनीय परमात्मतत्त्वके विषयमें जानो। परब्रह्म परमात्मा भाँति-भाँतिके रसों और गन्धोंसे रहित तथा शब्द, स्पर्श एवं रूपसे पृथक है। वे मन-बुद्धिके अगोचर, अव्यक्त तथा निर्गुण हैं। वे न स्त्री है, न पुरुष हैं, न नपुंसक, न सत् हैं, न असत् हैं, न उभयरूप हैं। ज्ञानी पुरुष ही उनका साक्षात्कार करते हैं। उनका कभी क्षरण (नाश) नहीं होता, इसीलिये उन्हें अक्षर ब्रह्म कहते हैं। उन्हींसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी प्रकट हुई है, इस पृथ्वीसे ही पार्थिव जगत्की उत्पत्ति होती है। परमात्मा की प्राप्ति हो जानेपर जीवोंका पुनर्जन्म नहीं होता। वह परमात्मा न ठंडा है न गरम, न कोमल है न कठोर, न खट्टा है न कसैला और न मधुर है न तिक्त। शब्द, गन्ध और रूपसे भी वह रहित है। उसका स्वरूप सबसे विलक्षण है। अध्यात्म ज्ञानसे रहित अज्ञानी मनुष्य को परमात्मतत्त्वका अनुभव नहीं होता। कोई भी मनुष्य आत्माका दर्शन नहीं कर सकता क्योंकि वह शरीरसे भिन्न है। आत्माको न आँखोंसे देखा जाता, न उसे कोई स्पर्श कर सकता, न अपनी इन्द्रियोंसे उसका अनुभव किया जाता। अपने शरीरका त्याग करके जब दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है तो पहलेके शरीरके पाँचों भूत इसके पहिले शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरका आश्रय ले उसीके अनुसार अपना स्वभाव व स्वरूप बना लेता है। मनुष्यका शरीर तो मरनेपर उसके पाञ्चभौतिक अंश मिल जाते हैं। इन्द्रियाँ मनकी अनुगामिनी हैं, मन बुद्धिके आश्रित है और बुद्धि आत्माका आश्रय लेकर स्थित है। मनुष्य आत्मा को आँखोंसे नहीं देख सकता और कानोंसे सुन नहीं सकता। आत्मा सर्वज्ञ और सबका साक्षी है। ज्ञानस्वरूप आत्माको ज्ञानसे ही ग्रहण किया जा सकता है। जीवात्मा शरीरमें आता या उसे छोड़कर जाता हुआ जान नहीं पड़ता। बुद्धिके द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं होता। अज्ञान से अविद्या आती है पर अविद्या से मन रागादि दोषोंमें फँस जाता है। इसप्रकार मनके दूषित होनेसे, आत्माका साक्षात्कार नहीं होता। इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धिसे ज्ञान श्रेष्ठ है और ज्ञानसे परमात्मा श्रेष्ठ है। उस अव्यक्त परमात्मा से ज्ञान उत्पन्न हुआ है और उसीसे बुद्धि और मन प्रकट हुआ है। सकाम कर्म करनेवाला पुरुष बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर सुखादि कर्मफलको भोगता है। इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेसे

पुरुषके विषय तो छूट जाते हैं परन्तु उनमें उसकी आसक्ति बनी रहती है। परब्रह्म स्पर्श, श्रवण, रसन, दर्शन, घ्राण और संकल्प सभी प्रकारके कर्मोंसे रहित है; इसलिये उसतक केवल विशुद्ध बुद्धिकी ही पहुँच हो सकती है। विषयोंका मनमें लय होता है, मनका बुद्धिमें, बुद्धिका ज्ञानमें और ज्ञानका परमात्मामें लय होता है। इन्द्रियाँ मनको नहीं जानतीं, मन बुद्धिको नहीं जानता और बुद्धि अव्यक्त आत्माको नहीं जानती; किंतु अव्यक्त इन सबको जानता है। स्वपरमात्मा अधर्म है, पुण्यवानोंकी परमगति है, स्वयंसिद्ध है, सबकी उत्पत्ति और लयका स्थान है, अविनाशी है, सनातन है, आदि, मध्य और अन्तसे रहित है तथा अविचल है। उसे जान लेनेपर जीव अमृतत्व प्राप्त कर लेता है।

एक बार एक शिष्यने अपने गुरु से मोक्षधर्म के बारेमें प्रश्न किया और उसे मोक्षधर्म समझाया। भीष्मने युधिष्ठिरको मोक्षधर्मका उपदेश दिया जो पंचशिखमुनिने राजा जनक को दिया था। पंचशिख मुनिने कहा, जो एक दिन नष्ट होनेवाला है, जिसके जीवनका कुछ ठिकाना नहीं हैं, ऐसे अनित्य शरीरको इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादिसे क्या लाभ है? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षणभरमें त्यागकर चल देता है, उसे मृत्युके बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु ये सदा इस शरीरकी रक्षा करते रहते हैं- इस बातको अच्छी तरह समझ लेनेपर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है? जो एक दिन मौतके मुखमें पड़नेवाला है, उस शरीरको सुख कहाँ? पञ्चशिखका यह उपदेश, जो भ्रम और वञ्चनासे रहित, सर्वथा निर्दोष और आत्माका ज्ञान करानेवाला था, सुनकर राजा जनकको बड़ा विस्मय हुआ। मुक्तावस्थामें आत्माका न तो नाश होता है और न वह किसी विशेष आकारमें ही परिणत होता है। यह जो प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला संघात है, यह भी शरीर, इन्द्रिय और मनका समूहमात्र है। यद्यपि ये पृथक-पृथक हैं, तो भी एक दूसरेका आश्रय लेकर कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। प्राणियोंके शरीरमें उपादानके रूपमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँच धातु हैं। ये स्वभाव से ही एकत्र होते और बिलग हो जाते हैं। इन्हीं पाँच तत्त्वोंके मेलसे नाना प्रकारके देहोंका निर्माण हुआ है। आँख, कान, नाक, रसना और त्वचा ये पाँच इन्द्रियाँ कहलाती हैं; इनकी उत्पत्तिका कारण मन है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तथा मूर्त द्रव्य ये छ: गुण जीवकी मृत्युके पहलेतक इन्द्रियजन्य ज्ञानके साधक होते हैं। इनके साथ इन्द्रियोंका संयोग होनेपर ही भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान होता है।

जो लोग गुणोंके संघातरूप इस शरीरको ही आत्मा समझ लेते हैं, उन्हें मिथ्याज्ञानके कारण अनन्त दु:खोंकी प्राप्ति होती है और उनकी परम्परा कभी शान्त नहीं होती। इसके विपरीत जिनकी दृष्टिमें यह दृश्य प्रपञ्च अनात्मा सिद्ध हो चुका है, उनकी इसके प्रति न ममता होती है न अहंता; फिर उन्हें दु:ख कैसे प्राप्त हो? क्योंकि अब तो दु:खोंके लिये कोई आधार ही नहीं रह जाता। जो लोग मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हों, उन सबको चाहिये कि सकाम कर्म और द्रव्य आदिका त्याग करें। जो लोग त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत होनेका दावा करते हैं, उन्हें क्लेश-पर-क्लेश उठाने पड़ते हैं। शास्त्रोंमें द्रव्यका त्याग करनेके लिये यज्ञ आदि कर्म, भोगका त्याग करनेके लिये व्रत, दैहिक सुखोंके त्यागके लिये तप और सब कुछ त्यागनेके लिये योगके अनुष्ठानकी आज्ञा दी गयी है। यही त्यागकी सीमा है। सर्वस्वत्यागका यह एकमात्र मार्ग ही दु:खोंसे छुटकारा पानेके लिये उत्तम बताया गया है। इसका आश्रय न लेनेवालोंको दुर्गति भोगनी पड़ती है। तब राजा जनकने कहा कि अगर मिथिला नगरी जल भी जाय। इस नगरके जलनेसे मेरा कुछ भी नहीं जाता।

मनुष्यको तप और उपवास करना चाहिये। एक दिन, दो दिन नहीं खाकर उसे व्रत या उपवास कहते है वह व्रत या उपवास नहीं है। जो सिर्फ सबेरे और शामको ही भोजन करता है, बीचमें कुछ नहीं खाता, उसे नित्य उपवास करनेवाला ही समझना चाहिये। जो द्विज केवल ऋतु-स्नानके समय ही पत्नीके साथ समागम करता, सत्य बोलता तथा ज्ञानमें स्थित

रहता है, वह सदा ब्रह्मचारी ही है। नित्य दान करनेवाला पवित्र माना जाता है। जो दिनमें कभी नहीं सोता, उसे सदा जागनेवाला ही समझना चाहिये। जो सदा भरण-पोषण करनेके योग्य पिता-माता आदि व्यक्तियों तथा अतिथियोंके भोजन कर लेनेपर ही खाता है, वह केवल अमृत भोजन करता है। अपने इस नियमके द्वारा वह स्वर्गलोकपर विजय पाता है। शास्त्रज्ञ पुरुष उसीको विघसाशी (यज्ञशिष्ट अन्नका भोक्ता) कहते हैं। ऐसे पुरुषोंको अक्षयलोक प्राप्त होते हैं, वे ब्रह्माजीके साथ उनके धाममें निवास करते हैं तथा अप्सराओंसहित समस्त देवता उनकी परिक्रमा किया करते हैं। देवता और पितरोंके साथ रहकर वे पुत्र-पौत्रोंसहित आनन्द भोगते हैं। उन्हें बड़ी उत्तम गति प्राप्त होती है।

पुरुष जब कल्याणमें मन लगाता है तब उसके सम्पूर्ण अर्थ सिद्ध होते हैं। जगतका शासन करनेवाला एक ही है दूसरा कोई नहीं है। पुरुषको जो वस्तु जिस प्रकार प्राप्त होनेवाली होती है वह उसे उसी प्रकार मिल जाती है। जिस वस्तुकी जैसी होनहार होती है, वह वैसी होती ही है। जीव अपनी इच्छानुसार कहीं आ-जा नहीं सकता। इस तरहका भाव रखकर जो परिस्थिति मिलती है उसे सहर्ष स्वीकार कर लेनी चाहिये और उसपर मोह नहीं करना चाहिये। बारी-बारीसे सबपर कष्ट आते रहते है। उसके लिये किसीपर दोष नहीं लगाया जा सकता। जिन्हें सत्-असत् का ज्ञान है वे मोहमें नहीं पड़ते। विद्वान पुरुष कभी क्रोध नहीं करते, किसी विषयमें आसक्त नहीं होते, दु:ख पानेपर खेद नहीं करते। आर्थिक कठिनाई या संकटके समय भी शोकग्रस्त नहीं होते। वे कभी धैर्य नहीं खोते। वे धर्मके तत्त्वको समझकर उसीके अनुसार बर्ताव करते हैं। जो वस्तु प्राप्त नहीं होनेवाली है उसको कोई मन्त्र, बल, पराक्रम, बुद्धि, पुरुषार्थ, शील, सदाचार और धन-सम्पत्तिसे भी नहीं पा सकता। जीव के प्रारब्ध में जितने सुख और दु:खका भोग लिखा है उतना वह पाता ही है। इसलिये सब दु:खोंसे निश्चिन्त होकर जो मोहित नहीं होता वही सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है। जिनके स्त्री-पुत्र की मृत्यु हो गयी हो तथा सुख छीन गया हो, धन नष्ट हो गया हो इन कारणोंसे जो कठिन विपत्तिमें फँस गया हो; उसका तो धैर्य धारण करनेमें ही कल्याण है। जो बुद्धिमान सदा सात्त्विक वृत्तिका सहारा लिये रहता है, उसीको ऐश्वर्य और धैर्यकी प्राप्ति होती है तथा वही कार्य करनेमें कुशल होता है।

देवासुर-संग्राममें दैत्य और दानवोंका बड़ा संग्राम हुआ। भगवान विष्णुने वामन रूपका अवतार धारण कर तीनों लोकोंको अपने पैरोंसे नापकर पूरी पृथ्वी अपने अधिकार में कर ली और राजा बलिका सर्वस्व छीन लिया। इसी समयकी बात है एकबार इन्द्र अपने धन, वैभव और राज्यलक्ष्मी के अहंकार में ऐरावत पर चढ़कर वज्र हाथमें लेकर राजा बलिके पास गये। उनके साथ वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, ऋषिगण, गन्धर्व, नाग, सिद्ध तथा विद्याधर आदि भी थे। उन्होंने बलिसे पूछा, हे विरोचनकुमार। अपने शत्रुकी समृद्धि देखकर तुम्हें व्यथा नहीं होती, पराक्रम, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा अथवा तपसे अन्त:करण शुद्ध हो जानेके कारण तुम्हें शोक नहीं होता? तुम शत्रुओंके वशमें पड़े और स्वर्गके राज्यसे भ्रष्ट हुए इस प्रकार शोचनीय दशामें पड़कर भी तुम्हें शोक नहीं होता? लक्ष्मी और धनको खोकर भी दु:ख न मानना बड़ा कठिन कार्य है फिर तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है जो त्रिभुवनका राज्य नष्ट हो जानेपर भी जीवित रहनेका उत्साह करे। इसीप्रकार कठोर बातें सुनाकर इन्द्रने बलिका तिरस्कार किया। तब बलिने उत्तर दिया, देवराज। मैं कालके बन्धन में आ गया हूँ। तुम मेरे सामने वज्र उठाये खड़े हो। यह भी प्रारब्ध ही है। इसी कारण से तुममें शक्ति आ गयी और तुम डींग हाँक रहे हो। जो समर्थ होकर भी अपने हाथमें पड़े हुए वीर शत्रुपर दया करता है, वही महापुरुष माना जाता है। जब दो व्यक्तियोंमें युद्ध होता है तो एककी जीत और दूसरेकी हार निश्चित होती है। इसलिये तुम ऐसा न समझ लो कि मैंने अपने बल और पराक्रमसे ही विजय पायी है। आज जो तुम्हारी दशा अच्छी और मेरी इसके विपरीत है- यह तुम्हारे या मेरे प्रयत्नका फल नहीं है। अत: तुम मेरा अपमान न करो। समय-समयपर जीवको कभी सुख और कभी दु:ख मिलता ही रहता है। जैसे

कालने इस समय तुम्हें राजाके पदपर पहुँचाया है, इसी तरह कभी वह मुझे भी पहुँचायगा। जब खराब समय आता है तो कालसे पीडित मनुष्यको विद्या, तप, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव भी छोड़ जाते है। सैकड़ों आघात करके भी कोई आनेवाले अनर्थको नहीं रोक सकता। इन्द्र। तुम जो अपनेको इस परिस्थितिका कर्ता मानते हो- यह अभिमान तुम्हारे ही दु:खका कारण होगा। यदि पुरुष स्वयं ही कर्ता होता तो उसको दूसरा कोई उत्पन्न करनेवाला न होता; किंतु वह तो दूसरेके द्वारा उत्पन्न होता है, इसलिये ईश्वरके सिवा और कोई कर्ता नहीं है।

देवराज। तुम्हारी बुद्धि गँवारोंकी-सी है, इसलिये एक-न-एक दिन अवश्य होनेवाले अपने नाशकी ओर तुम्हारी दृष्टि नहीं जाती। संसारमें कुछ मूर्ख भी हैं, जो तुम्हें अपने ही पराक्रमसे उत्तम पदवीको प्राप्त हुए समझकर बहुत बड़ा मानते हैं। किंतु मेरे-जैसा मनुष्य, जो संसारकी स्थितिको जानता हो, समयके प्रभावसे आपत्तिमें पड़कर भी शोक, मोह अथवा भ्रममें कैसे पड़ सकता है? मैं, तुम या दूसरे लोग, जो देवताओंके स्वामी होनेवाले हैं, एक दिन उसी मार्गपर जायँगे, जिसपर पहलेके सैकड़ों इन्द्र जा चुके हैं।

यद्यपि आज तुम दुर्द्धर्ष हो और अत्यन्त तेजसे देदीप्यमान हो रहे हो; किंतु समय आनेपर तुम भी मेरी ही तरह कालके शिकार बन जाओगे। अबतक देवताओंके हजारों इन्द्र कालके गालमें चले गये हैं। कालपर किसीका वश नहीं चलता। तुम इस शरीरको पाकर सब प्राणियोंको जन्म देनेवाले सनातन देव भगवान् ब्रह्माजीकी भाँति अपनेको बहुत बड़ा मानते हो, किंतु तुम्हारा यह इन्द्रपद आजतक किसीके लिये भी अविचल या अनन्तकालतक रहनेवाला नहीं साबित हुआ- इसपर कितने ही आये और चले गये। केवल तुम्हीं मूर्खताके कारण इसे अपना मानते हो।

देवराज। नाशवान् होनेके कारण जो विश्वासके योग्य नहीं, उस राज्यपर तुम विश्वास करते हो, जो टिकनेवाला नहीं, उसे स्थिर मानते हो; इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि कालने जिसे घेर रक्खा हो, वह सदा ऐसा ही समझता है। जिस राज्यलक्ष्मीको मोहवश अपनी मानते हो, यह न तुम्हारी है, न मेरी है और न दूसरेकी ही है। यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती। बहुतसे राजाओंके उपभोगमें आ चुकी है और उनको छोड़कर अब तुम्हारे पास आयी है। इसका स्वभाव चञ्चल है, अत: कुछ कालतक तुम्हारे पास भी रहकर फिर दूसरेके यहाँ चली जायगी। अबतक इसने जितने राजाओंका परित्याग किया है, उनकी गणना नहीं हो सकती। तुम्हारे बाद भी बहुत-से राजे इसका उपभोग करेंगे। पूर्वकालमें इसे जिन-जिन राजाओंने भोगा है, वे आज कहीं दिखायी नहीं देते। पृथु, पुरुरवा, मय, भीम, नरकासुर, शम्बरासुर, अश्वग्रीव, पुलोमा, स्वर्भानु, अमितध्वज, प्रल्हाद, नमुचि, दक्ष, विप्रचित्ति, विरोचन, ह्लीनिषेव, सुहोत्र, भूरिहा, पुष्पवान, वृष, सत्येषु, ऋषभ, बाहु, कपिलाक्ष, विसूयक, बाण, कार्तस्वर, वह्नि, विश्वदंष्ट्र, नैऋति, संकोच, वरीताक्ष, वराहाश्व, रुचिप्रभ, विश्वजित्, प्रतिरूप, विषाण्ड, विष्कर, मधु, हिरण्यकपिशु और कैटभ ये तथा और भी बहुत-से दैत्य, दानव और राक्षस आदि पूर्वकालमें पृथ्वीके स्वामी हो चुके हैं। जिन-जिन पूर्ववर्ती नरेशोंके आज हमलोग नाम सुनते हैं, वे सभी कालकी मार पड़नेसे इस पृथ्वीको छोड़कर चले गये; क्योंकि काल ही सबसे बड़ा बलवान है।

केवल तुमने ही सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया हो, यह बात भी नहीं है। उन सभी राजाओंने सौ यज्ञ किये थे, सभी धर्मात्मा थे और सब-के-सब निरन्तर यज्ञमें संलग्न रहनेवाले थे। तुम्हारी ही तरह वे भी आकाशमें विचरते थे, सैकड़ों मायाएँ जानते थे और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। उनके भी तेज और प्रताप बढ़े हुए थे। किंतु कालने उनका भी संहार कर ही डाला। जिस दिन तुम्हें इस पृथ्वीको उपभोगके बाद त्यागना पड़ेगा, उस दिन तुम अपने प्रबल शोकको न दबा सकोगे; इसलिये विषयभोगकी इच्छा छोड़ दो, राज्य-लक्ष्मीके घमंडको त्याग दो। ऐसा करनेसे तुम अपने राज्यके नष्ट हो जानेपर

भी उसके शोकको धैर्यपूर्वक सह सकोगे। शोकके समय शोक न करो और हर्षका अवसर आनेपर हर्षसे फूल न उठो। इन्द्र। इस कटु सत्यके लिये क्षमा करना, अब देर नहीं है, तुमपर भी कालका आक्रमण होनेहीवाला है, तुम्हें भी उससे भय प्राप्त होगा। इस समय तुम अपने तीखे वचनोंसे मुझे छेदे डालते हो। मैं शान्त होकर बैठा हूँ, इसलिये तुम अपनेको बहुत बड़ा मान रहे हो। जिस कालका मुझपर धावा हुआ था, वही तुमपर भी चढ़ाई करेगा। देवताओंके एक हजार वर्ष पूर्ण होनेतक ही तुम्हें इन्द्र होकर रहना है।

देवेन्द्र। तुम मुझे जानते हो और मैं तुमको जानता हूँ। फिर मेरे सामने लाज छोड़कर इतनी डींग क्यों हाँकते हो? जब मैं राजा था, उस समय जो पुरुषार्थ दिखा चुका हूँ, उससे तुम अपरिचित नहीं हो। कई बारके युद्धोंमें तुम मेरा पराक्रम देख चुके हो; एक ही दृष्टान्त देना काफी होगा। पहले जब देवासुर-संग्राम हुआ था, उस समयकी बात तुमने भूली न होगी; मैंने अकेले ही समस्त आदित्यों, रुद्रों, साध्यों, वसुओं तथा मरुद्गणोंको परास्त किया था। मेरे वेगसे देवताओंमें भगदड़ पड़ गयी थी। तुम्हारे सिरपर भी पर्वतोंके कितने शिखर फोड़ डाले थे; कालका उल्लंघन करना कठिन है। तुम्हारे हाथमें वज्र रहनेपर भी मैं केवल मुक्केसे मारकर तुम्हें मौतके घाट उतार सकता हूँ; किंतु मेरे लिये यह पराक्रम दिखानेका नहीं, क्षमा करनेका समय है। इसीलिये तुम्हारे सब अपराध चुपचाप सहे लेता हूँ और यही वजह है कि तुम अपनी झूठी बड़ाई किये जा रहे हो। जैसे मनुष्य रस्सीसे किसी पशुको बाँध लेता है, उसी प्रकार भयंकर काल मुझे अपने पाशमें बाँधे खड़ा है। पुरुषको लाभ-हानि, सुख-दुःख, काम-क्रोध, जन्म-मरण और बन्धन-मोक्ष ये सब कालसे ही प्राप्त होते हैं। जो कालके प्रभावको जानता है वह उससे कष्ट पाकर भी शोक नहीं करता; क्योंकि दुःख दूर करनेमें शोकसे कोई सहायता नहीं मिलती, यही सोचकर मैं शोक नहीं करता। शोकग्रस्त मनुष्यका शोक उसकी विपत्तिको तो टालता नहीं, उलटे उसकी शक्तिको क्षीण कर देता है; इसीलिये मैं शोक नहीं करता।

इन्द्र बोले- दैत्यराज। मेरे हाथको वज्रसहित ऊपर उठे देखकर मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्युका भी दिल दहल जाता है, फिर दूसरा कौन है जो व्यथित न हो; किंतु तुम्हारी बुद्धि तत्त्वको जाननेवाली और स्थिर है, इसलिये तनिक भी विचलित नहीं होती। इसमें संदेह नहीं कि धैर्यके ही कारण तुम्हें घबराहट नहीं होती। वास्तवमें कालका कोई परिहार नहीं है, उसके उल्लघंनका कोई उपाय नहीं है। काल सब प्राणियोंके साथ एक-सा बर्ताव करता है। वह दिन, रात, मास, क्षण, काष्ठा, लव और कलातकका हिसाब कर प्राणीको पीड़ा पहुँचाता रहता है। जैसे नदीमें अचानक आयी हुई बाढ़, अपने वेगसे किनारेके वृक्षको तोड़-उखाड़कर बहा ले जाती है, उसी प्रकार यह काम आज करूँगा, उसे कल पूरा करना है ऐसा कहते हुए मनुष्यको काल सहसा आकर दबोच लेता है। उसको तो अभी-अभी देखा था, वह मर कैसे गया? इस तरह कालके वेगमें बहते हुए मनुष्योंके प्रलाप सुनायी पड़ते हैं। धन, ऐश्वर्य, भोग और स्थान- ये सब कालके द्वारा नष्ट होते हैं। काल ही आकर प्राणियोंका जीवन हर ले जाता है। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना और जन्मका परिणाम है मृत्यु। जो कुछ देखनेमें आता है, सब नाशवान है, अस्थिर है; तो भी निरन्तर इस बातका स्मरण रहना कठिन हो जाता है। अवश्य ही तुम्हारी बुद्धि तत्त्वको जाननेवाली तथा स्थिर है, इसलिये उसे घबराहट नहीं होती। काल अत्यन्त प्रबल है, वह सम्पूर्ण जगत्पर आक्रमण करके सबको अपनी आँचमें पका रहा है। काल इस बातको नहीं देखता कि कौन बड़ा है और कौन छोटा; वह सबको अपनी आगमें झोंकता जाता है, फिर भी किसीको चेत नहीं होता। लोग ईर्ष्या, अभिमान, लोभ, काम, क्रोध, भय, स्पृहा और मोहमें फँसकर अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। किंतु तुम विद्वान, ज्ञानी और तपस्वी हो, कालकी लीला और उसके तत्त्वको जानते हो, सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हो तथा तत्त्वके विवेचनमें कुशल और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो।

तुमने अपनी बुद्धिसे सम्पूर्ण लोकोंका तत्त्व जान लिया है। तुम सर्वत्र विचरते हुए भी सबसे मुक्त हो, कहीं भी तुम्हारी आसक्ति नहीं है। तुमने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, इसलिये रजोगुण और तमोगुण तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकते। तुम हर्ष और शोकसे रहित आत्माकी उपासना करते हो। सब प्राणियोंके प्रति तुम्हारा सौहार्द्र है, किसीके प्रति वैर नहीं है। तुम्हारे चित्तमें सदा शान्ति बनी रहती है। तुम्हें देखकर मेरे मनमें दयाका संचार हो आया है। मैं तुम्हारे-जैसे ज्ञानीको बन्धनमें रखकर मारना नहीं चाहता। अब मेरी ओरसे तुम्हें कोई बाधा नहीं पहुँचेगी; तुम स्वस्थ और सुखी रहो। इन्द्र ऐसा कहकर गजराजपर बैठकर चले गये।

एक बार लक्ष्मीजी इन्द्रके पास आयी। इन्द्र और नारदने उठकर उनका स्वागत किया, प्रणाम किया और पूछा देवि। तुम कौन हो, कहाँसे आयी हो, और कहाँ जा रही हो? लक्ष्मीजी बोली, मैं सम्पूर्ण प्राणियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिये कमल से प्रकट हुई हूँ। मुझे लोग पद्मा, श्री और पद्ममालिनी कहते हैं। मैं ही लक्ष्मी, भूति, श्री, श्रद्धा, मेधा, संनति, विजिति, स्थिति, धृति, सिद्धि, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, नियति त्तथा स्मृति हूँ। धर्मशील पुरुषोंके देशमें, नगर और घरमें मेरा निवास है। शूरवीर राजाके शरीरमें निवास करती हूँ। नित्य धर्माचरण करनेवाले, बुद्धिमान, ब्रह्मभक्त, सत्यवादी, विनयी तथा दानशील पुरुषोंमें भी सदा निवास करती हूँ। मैं सत्य और धर्मसे पहले असुरोंमें रहती थी, किन्तु अब उन्हें धर्मके विपरीत देखकर तुम्हारे यहां रहनेका विचार करके आयी हूँ। जो अपने धर्मका पालन करते और धैर्यसे कभी विचलित नहीं होते हैं; ऐसे प्राणियोंके भीतर मेरा निवास होता है। पहले दैत्यलोग दान, अध्ययन और यज्ञमें संलग्न रहते थे। देवता, पितर, गुरु और अतिथियोंकी पूजा करते थे। उनमें सदा सत्य बोलनेकी प्रवृत्ति थी। वे अपना घर-द्वार झाड़-बुहारकर साफ रखते थे। प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे और गुरुसेवी, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणभक्त तथा सत्यवादी थे। उनमें श्रद्धा थी, क्रोध नहीं था। वे दानी थे,किंतु किसीकी निन्दा नहीं करते थे। ईर्ष्या छोड़कर स्त्री, पुत्र और मन्त्री आदि सेवकोंका भरण-पोषण करते थे। उनमें अमर्ष और लाग-डाँट नहीं थी, सबका स्वभाव अच्छा था, सभी दयालु थे, सबमें सरलता, सुदृढ़ भक्ति तथा इन्द्रिय-संयमका गुण था। सब अपने भृत्यों और मन्त्रियोंको संतुष्ट रखनेवाले, कृतज्ञ तथा मधुर-भाषी थे। वे सबका समुचितरूपसे सम्मान करते, धन देते, लज्जा रखते और व्रत एवं नियमोंका पालन करते थे। उपवास और तपमें लगे रहते थे। सबके विश्वासपात्र थे। प्रतिदिन सूर्योदयके पहले जागते। प्रात:काल घी तथा दूसरी-दूसरी माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन करते और ब्राह्मणोंकी पूजा किया करते थे। सदा धर्मकी चर्चामें लगे रहते और प्रतिग्रहसे दूर रहते थे। रातके आधे भागमें ही सोते थे; दिनमें तो वे कभी सोनेका नाम भी नहीं लेते थे।

कृपण, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी और स्त्रियोंपर दया करते तथा उनके लिये अन्न और वस्त्र बाँटते थे। व्याकुल, विषादग्रस्त, उद्विग्न, भयभीत, रोगी, दुर्बल और पीडितको तथा जिसका सर्वस्व लुट गया हो उस मनुष्यको सदा ढाढ़स बँधाया करते थे। धर्मका ही आचरण करते थे, एक-दूसरेकी जान नहीं लेते थे। कार्यके समय परस्पर अनुकूल और गुरुजनों तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें दत्तचित्त रहते थे। पितरों, देवताओं और अतिथियोंकी विधिवत् पूजा करते थे तथा उन्हें अर्पण करनेके पश्चात् बचे हुए अन्नको ही प्रतिदिन प्रसादरूपमें ग्रहण करते थे, सभी सत्यवादी और तपस्वी थे। वे उत्तम भोजन बनवाकर उसे अकेले ही नहीं खाते थे, पहले दूसरोंको देकर पीछे अपने उपभोगमें लाते थे। सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर उनपर दया रखते थे। चतुरता, सरलता, उत्साह, अहंकारहीनता, परमसौहार्द, क्षमा, सत्य, दान, तप, पवित्रता, दया, कोमल वाणी तथा मित्रोंसे प्रगाढ़ प्रेम- ये सभी सद्गुण उनमें सदा मौजूद रहते थे। निद्रा, आलस्य, अप्रसन्नता, दोषदृष्टि, अविवेक, असंतोष, विषाद और कामना आदि दोष उनके भीतर नहीं प्रवेश करने पाते थे। इस प्रकार

उत्तम गुणोंवाले दानवोंके पास मैं सृष्टिकालसे लेकर अबतक अनेकों युगोंसे रहती आयी हूँ।

जो व्यक्ति मधुर बोलनेवाले, अपने कार्य में तत्पर, क्रोधहीन, ईश्वर भक्त तथा उदार हों, उनके घर में लक्ष्मी निवास करती हैं। सदाचारी, धर्मज्ञ, माता-पिता की सेवा करनेवाले, क्षमा करनेवाले, बुद्धिमान तथा दयावान व्यक्तियों के घर में लक्ष्मी निवास करती है। जिनके घर में कलह नहीं होती, उनके घरमें लक्ष्मी निवास करती हैं। जो अतिथि का स्वागत-सत्कार करते हैं, उनके घर में लक्ष्मी निवास करती हैं। जो स्वच्छ वस्त्र धारण करते हैं, शुद्ध भोजन करते हैं, उनके घर में लक्ष्मी निवास करती हैं। जो दान देते हैं, गरीबों की सहायता करते हैं, उनके घर लक्ष्मी निवास करती हैं। जिसके घर में नित्य उत्सव होता है, जो भगवान की पूजा करते हैं, उनके घर में लक्ष्मी निवास करती हैं।

किंतु अब समयके उलट-फेरसे उनके गुणोंमें विपरीतता आ गयी है। दैत्योंमें धर्म नहीं रह गया है, वे काम और क्रोधके वशीभूत हो गये हैं। जब बड़े-बूढ़े लोग सभामें बैठकर कोई बात कहते हैं तो गुणहीन दैत्य भी उनमें दोष निकालते हुए उनकी हँसी उड़ाया करते हैं। वृद्ध पुरुषोंके आनेपर भी नवयुवक लोग अपने आसनपर बैठे ही रह जाते हैं; पहलेकी भाँति अब उठकर खड़े नहीं होते और न प्रणाम आदिके द्वारा उनका सत्कार ही करते हैं। पिताके रहते ही बेटा मालिक बन बैठता है। पुत्र पिताकी तथा स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञा नहीं मानतीं। माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंका आदर उठ गया। संतानोंके लालन-पालनपर भी ध्यान नहीं दिया जाता। देवता, पितर, अतिथि तथा गुरुजनोंका पूजन और उन्हें अन्नदान किये बिना ही सब लोग भोजन करने लगे हैं। उनके रसोइये भी पवित्र नहीं रहते। दैत्योंके यहाँ दूधको बिना ढके छोड़ दिया जाता है; घीको अब वे जूठे हाथोंसे छूने लगते हैं। पशुओंको घरमें बाँध देते हैं, किंतु चारा और पानी देकर उनका आदर नहीं करते। छोटे बालक आशा लगाये देखते रहते हैं और दानव लोग खानेकी चीजें अकेले चट कर जाते हैं। सेवकोंको भूखे छोड़कर स्वयं खा लेते हैं। वे सूर्योदयतक सोते हैं और प्रभातको भी रात ही समझते हैं। उनके घर-घरमें दिन-रात कलह मचा रहता है। वे आश्रमवासी महात्माओंसे तथा आपसमें भी द्वेष रखते हैं।

अब उनके यहाँ वर्णसंकर संतानें होने लगी हैं; किसीमें भी पवित्रता नहीं रह गयी है। वेदवेत्ता ब्राह्मणों अथवा मूर्खोंका आदर या अनादर करनेमें वे कोई अन्तर नहीं रखते। उनकी दासियाँ सुन्दर गहने पहनकर दुराचारिणी स्त्रियोंकी भाँति चलने, फिरने, बैठने और कटाक्ष करने लगी हैं। क्रीड़ाके समय स्त्रियाँ पुरुषोंके और पुरुष स्त्रियोंके वेष धारण करते हैं। कितने ही दानव पूर्वकालमें अपने पूर्वजोंद्वारा सुयोग्य ब्राह्मणोंको दानके रूपमें दी हुई जागीरें नास्तिकताके कारण छीन लेते हैं। उनमें जो व्यापारी हैं, वे सदा दूसरोंका धन ठग लेनेका ही विचार रखते हैं। शिष्योंमें तो गुरुकी सेवाका भाव ही नहीं रहा, अब तो उलटे गुरु लोग ही शिष्योंकी सेवा-टहल करने लगे हैं। बहू अपने सास-ससुरके सामने ही नौकरोंपर हुक्म चलाती है। पत्नी ही पतिपर शासन करती और उसका नाम ले-लेकर पुकारती है। जिन्हें हितैषी और मित्र समझा जाता था, वे ही लोग जब अपने सम्बन्धीके धनको आग लगने, चोरी हो जाने अथवा राजाके द्वारा छिन जानेसे नष्ट हुआ देखते हैं तो द्वेषवश उसकी खिल्लियाँ उड़ाते हैं। सब-के-सब कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी तथा गुरुस्त्रीगामी हो गये हैं। वे भक्ष्य अभ्यक्ष का विचार नहीं करते और धर्मकी मर्यादा तोड़कर मनमाने आचरण करते हैं। इसीलिये अब उनके बदनपर वह पहलेका-सा तेज नहीं रहा।

देवेन्द्र। जबसे इन दैत्योंने धर्मके विपरीत आचरण शुरू किया है, तबसे मैंने यह निश्चय किया है कि अब इनके घरमें नहीं रहूँगी। आलसी, ईश्वर में विश्वास न करनेवाले, चोर व कपटी के घर लक्ष्मी नहीं जातीं। जो व्यक्ति व्यर्थ ही हंसता रहता है, जो खाते-खाते हंसता है, जो चलते-चलते पानी पीता है, जो बीती हुई बात पर चिंता या दुःख प्रकट करता है, जो उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं करता, जब दो व्यक्ति बात कर रहे हों, तब बिना पूछे उनके पास चला जाता है, उसके घर में लक्ष्मी नहीं

रहती। जो दूसरों के दुख में दुखी नहीं होते, उनके घरमें लक्ष्मी नहीं रहतीं। जो व्यक्ति पुरुषार्थहीन और अकर्मण्य होते हैं, उनके घर में लक्ष्मी नहीं रहती। जो अनावश्यक व्यय करते हैं, जो केवल भोग में ही सुख समझते हैं, उनके घर में लक्ष्मी नहीं रहतीं। जिनके घर में कलह होती है, जो पत्नी का बात-बात पर अपमान करते हैं, उनके घर में लक्ष्मी नहीं रहती।

यही वजह है, जिससे उन्हें त्यागकर मैं स्वयं तुम्हारे पास आयी हूँ, तुम मुझे स्वीकार करो। जहाँ मैं रहूँगी, वहाँ आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, संनति, क्षमा तथा जया- ये आठ देवियाँ भी मेरे साथ निवास करेंगी। इन आठोंमें जया ही सबसे प्रधान है। मेरे साथ ये सभी देवियाँ असुरोंको त्यागकर तुम्हारे पास आयी है। देवताओंका मन धर्ममें लगा होता है, इसलिये अब हमलोग इन्हींके यहाँ निवास करेंगी।

भीष्मने युधिष्ठिरसे कृष्ण और अपने नाना उग्रसेन का सम्वाद सुनाया। उग्रसेनने कहा जनार्दन नारदजीके गुणोंका बखान करके मुझे बताओ। तब कृष्णने कहा, वे जैसे विद्वान हैं वैसे ही सच्चरित्र भी हैं, किंतु अपनी सच्चरित्रताका उनके मनमें तनिक भी अभिमान नहीं है। इसीलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। नारदजीमें असंतोष, क्रोध, चपलता और भय आदि दुर्गुण नहीं हैं। वे किसी कामना या लोभके कारण अपनी बात नहीं पलटते; अत: सबके पूज्य हैं। अध्यात्मशास्त्रके विद्वान, क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी होनेके कारण उनकी सब जगह पूजा होती है। तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनय, उत्तम कुल और तपस्यामें भी वे सबसे बढ़े हुए हैं। उनका स्वभाव बहुत अच्छा है, वे सबका आदर करते, पवित्र रहते और अच्छी बातें कहते हैं तथा किसीसे भी ईर्ष्या नहीं रखते। इन्हीं गुणोंके कारण उनका सर्वत्र सम्मान होता है। वे सबकी भलाई करते हैं, उनके मनमें जरा भी मैल नहीं है, उनकी सहनशक्ति भी बढ़ी हुई है तथा वे सबको समान दृष्टिसे देखते हैं, इसलिये उनका न कोई प्रिय है न अप्रिय। उन्हें अनेकों शास्त्रोंका ज्ञान है और उनका कथा कहनेका ढंग भी बड़ा विचित्र है। उनमें पूर्ण पाण्डित्य होनेके साथ ही लालसा और शठताका अभाव है। कृपणता, क्रोध और लोभ आदि दोष तो उन्हें छू भी नहीं गये हैं। मुझमें उनकी दृढ़ भक्ति है। उनका हृदय शुद्ध है, वे शास्त्रोंके ज्ञाता, दयालु और मोह आदि दोषोंसे रहित हैं। उनकी बुद्धिमें संदेहके लिये स्थान नहीं है, वे बड़े अच्छे वक्ता हैं। उनका मन विषयभोगोंकी ओर नहीं जाता, वे कभी अपनी प्रशंसा नहीं करते। ईर्ष्यासे दूर रहते और मीठी वाणी बोलते हैं, इसलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। वे किसी शास्त्रमें दोषदृष्टि नहीं करते, समयको व्यर्थ नहीं खोते और अपने मनको वशमें रखते हैं। उनकी बुद्धि पवित्र है, उन्हें समाधिसे कभी तृप्ति नहीं होती, वे कर्त्तव्यपालनके लिये सदा उद्यत रहते हैं और कभी प्रमाद नहीं करते। लोग उन्हें अपनी भलाईके कामोंमें सदा लगाये रखते हैं। वे किसीके गुप्त रहस्यको नहीं प्रकट करते। धन मिलनेसे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती और न मिलनेसे दु:ख नहीं होता। उनकी बुद्धि स्थिर और मन आसक्तिरहित है, इसलिये सब जगहके लोग उनकी पूजा करते हैं। वे सम्पूर्ण गुणोंसे सुशोभित, कार्य-कुशल, पवित्र, नीरोग, समयका मूल्य समझनेवाले और परम प्रिय आत्मतत्वके ज्ञाता हैं।

भीष्मने युधिष्ठिरको काल का महत्त्व और उसकी गणना बतायी। यही उपदेश महर्षि व्यासजीने पुत्र शुकदेवजी को दिया था। सृष्टिके प्रारम्भमें अनादि, अनन्त, अजन्मा, दिव्य, अजर अमर, अविकारी, अतर्क्य और ज्ञानातीत ब्रह्म ही था। वह कालस्वरूप है। कालके कला, काष्ठा आदि जितने भेद हैं सब उसीके अवयव है। महर्षियोंने पंद्रह निमेषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कला और तीन काष्ठाका एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तका एक रात-दिन माना है। तीस दिन-रातका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। एक वर्षमें दो अयन होते हैं, जिन्हें दक्षिणायन और उत्तरायण कहते हैं। मनुष्यलोकके दिन-रातका विभाग सूर्य करते हैं। रात सोनेके लिये है और दिन काम करनेके लिये। मनुष्योंके एक मासमें पितरोंका एक दिन-रात होता है। शुक्ल पक्ष उनका दिन है और कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि। मनुष्योंका एक वर्ष

देवताओंके एक दिन-रातके बराबर है। उत्तरायण उनका दिन है और दक्षिणायन रात्रि। मनुष्योंके जो रात-दिन बताये गये हैं, उन्हींके हिसाबसे अब मैं ब्रह्माके दिन-रातका मान जानो, साथ ही चारों युगोंकी वर्ष-संख्या भी अलग-अलग बतायी गयी है। देवताओंके चार हजार वर्षोंका एक सत्ययुग होता है। यह मानव के १७ लाख २८ हजार वर्षके बराबर होता है। इसमें चार सौ दिव्य वर्षोंकी संध्या होती है उतने ही वर्षोंका संध्यांश भी होता है। इसप्रकार सत्ययुगकी पूरी आयु अड़तालीस सौ दिव्य वर्षोंकी है। शेष तीन युगोंमें यह संख्या क्रमश: एक-एक चौथाई घटती जाती है अर्थात् संध्या और संध्यांशोंसहित त्रेतायुग छत्तीस सौ वर्षोंका, द्वापर चौबीस सौ वर्षोंका और कलियुग बारह सौ वर्षोंका होता है। ये चारों युग प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले लोकोंको धारण करते हैं। यह युगात्मक काल ब्रह्मवेत्ताओंके सनातन ब्रह्मका ही स्वरूप है। सत्ययुगमें धर्म और सत्यके चारों चरण मौजूद रहते हैं- उस समय धर्म और सत्यका पूरा-पूरा पालन होता है। कोई भी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होता। अन्य युगोंमें क्रमश: धर्मका एक-एक चरण नष्ट होता जाता है और चोरी, असत्य तथा छल-कपट आदिके द्वारा अधर्मकी वृद्धि होती रहती है। सत्ययुगके मनुष्य नीरोग और पूर्णकाम होते हैं, उनकी आयु चार सौ वर्षोंकी होती है। त्रेतामें उनकी आयु एक चौथाई घटकर तीन सौ वर्षोंकी रह जाती है। इसी प्रकार द्वापरमें दो सौ और कलियुगमें सौ वर्षोंकी पूरी आयु होती है। त्रेतादि युगोंमें वेदोंका स्वाध्याय कम होने लगता है, मनुष्योंकी आयु घटती जाती है, कामनाओंकी पूर्तिमें बाधा पहुँचने लगती है और वेदाध्ययनके फलमें भी न्यूनता आ जाती है। युगोंके ऱ्हासके अनुसार सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगमें मनुष्योंके धर्म भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सत्ययुगमें तपस्याको सबसे बड़ा धर्म माना गया है, त्रेतामें ज्ञानको उत्तम बताया गया है, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें एकमात्र दान और भगवान का कीर्तन ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। जो कि मानव के ४३ लाख २० हजार वर्ष के बराबर होता है। एक हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन पूरा होता है। इतने ही युगोंकी उनकी एक रात्रि भी होती है। भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके आरम्भमें संसारकी सृष्टि करते हैं और रातमें जब प्रलयका समय होता है तो सबको अपनेमें लीन करके योगनिद्राका आश्रय लेकर सो जाते हैं। फिर प्रलयका अन्त होने अर्थात् रात बीतनेपर वे जाग उठते हैं। इस प्रकार एक हजार चतुर्युगका जो ब्रह्माका एक दिन बताया गया है और उतनी ही बड़ी जो उनकी रात्रि बतलायी गयी है, उसको जो लोग ठीक-ठीक समझे हुए हैं वे ही कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं। रात्रि समाप्त होनेपर जाग्रत हुए ब्रह्माजी पहले महत्तत्त्वको उत्पन्न करते हैं, फिर उससे स्थूल जगत्को धारण करनेवाले मनकी उत्पत्ति होती है।

ब्रह्मके दो स्वरूप हैं- एक शब्दब्रह्म और दूसरा परब्रह्म। इन दोनोंका ज्ञान होना आवश्यक है। जिसे शब्दब्रह्मका पूर्ण ज्ञान हो जाता है वह सुगमतासे परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। सत्ययुगके लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें बतलाये हुए सकाम यज्ञोंको आत्मासे पृथक् देखकर ध्यानयोगरूप तपका अनुष्ठान करते थे। उसके बाद त्रेतामें जो महाशक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हुए, उन्होंने सम्पूर्ण चराचर जगत्को नियमके अंदर रखा। उस समय वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और वर्णाश्रम- धर्मके पालनकी सुन्दर व्यवस्था थी। परंतु द्वापरयुगमें आयुकी न्यूनताके कारण लोगोंमें उपर्युक्त बातोंकी कमी होने लगी। कलियुग आनेपर तो वेदोंका कहीं दर्शन होता है और कहीं नहीं होता। उस समय अधर्मसे पीड़ित होकर यज्ञ और वेद लुप्त हो जाते हैं।

भीष्मने युधिष्ठिरसे लय, प्रलय और महाप्रलय के बारेमें बताया। यदि मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो मनुष्य को ज्ञानवान होना चाहिये। प्राणियोंके स्थूल-सूक्ष्म या छोटे-बड़ेका भेद बुद्धिसे ही जाना जाता है। बुद्धिही सबकी परम गति है। प्रत्येक कार्य में देरतक विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचनेवालेको पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता।

मनुष्य का जिस विषय में राग होता है उसे पानेके लिये वह बहुत से उचित व अनुचित काम करता है। वह अपने प्रियरूप विषयोंका बारबार सेवन करना चाहता है। उसपर द्वेष, लोभ और मोह का अधिकार हो जाता है। इससे उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त नहीं होती। वह केवल कपटसे ही धर्मका आचरण करता है और कपटसे ही धन कमाना चाहता है। इससे उसकी पापमेंही रुचि हो जाती है। राग और मोहके कारण उसका तीन प्रकार का अधर्म बढ़ता है। वह पापका चिन्तन करता है, पाप की वाणी बोलता है और पापका ही कर्म करता है। उसे तो इस लोकमें सुख नहीं मिलता, फिर परलोक की तो बात ही क्या है? धर्मात्मा पुरुष सर्वदा कल्याणकारी धर्मोंका आचरण करता है इसलिये उसका कल्याण ही होता है। जो पुरुष सुख-दु:खकी पहचानमें कुशल है, पहलेसे ही वे राग-द्वेषादि दोषोंको देख लेता है तथा सत्पुरुषोंकी सेवा करता है। उसकी बुद्धि, साधुओंकी सेवा और सत्कर्मोंके अभ्यास से विकास होता है तथा उसे धर्ममें ही आनन्द आता है और धर्म ही उसके जीवनका आधार बन जाता है। उसका मन केवल धर्म के प्राप्त हुए धनमें ही जाता है। वह जहाँ गुण देखता है, उसीके मूलको सींचता है। इस प्रकार पुरुष धर्मात्मा बनता है और धर्मनिष्ठ सुहृद् प्राप्त होते हैं। वह सच्चे मित्र और धन पाकर इस लोकमें सुखी रहता है और परलोकमें भी सुख पाता है। जब उसका मन विषयोंमे नहीं फँसता तब वह सब कामनाओंसे मुक्त हो जाता है और धर्मको नहीं छोड़ता। सम्पूर्ण लोकोंको नाशवान समझकर वह धर्मके फलभूत स्वर्गादिकी भी इच्छा नहीं करता और धीरे-धीरे उसकी वैराग्यमें प्रवृत्ति हो जाती है और वह मोक्ष भी प्राप्त करता है।

६) मोक्षधर्म का वर्णन- मुमुक्षु पुरुषको चाहिये कि क्षमासे क्रोधका, संकल्प त्यागसे कामनाओंका, भगवद्ध्यानादि सात्त्विक गुणोंके सेवनसे निद्राका, अप्रमादसे भयका, आत्माके चिन्तनसे स्वासप्रश्वासका तथा धैर्यसे इच्छा, द्वेष और कामका नाश करे। भ्रम, मोह और संशयरूप आवरणका शास्त्रके अभ्याससे तथा लक्ष्यकी विस्मृति और चित्तका अन्य विषयमें चला जाना- इन दोनों दोषोंका ज्ञानाभ्याससे दमन करे। वातपित्तादिजनित उपद्रव और रोगोंका हितकारी, सुपाच्य और परिमित आहारसे, लोभ और मोहका संतोषसे तथा विषयों का तत्त्वदृष्टिसे निराकरण करे। अधर्मको दयासे, धर्मको पालन करके, आशाको भविष्य-चिन्तनका त्याग करके और अर्थको आसक्तिके त्यागसे जीते। वस्तुओंकी अनित्यताका चिन्तन करके स्नेहका योगाभ्यासके द्वारा क्षुधाका, करुणाके द्वारा अभिमानका और संतोषसे तृष्णाका त्याग करे। तन्द्राको खड़ा होकर, तर्क-वितर्कको निश्चयद्वारा, बहुभाषणको मौनद्वारा और भयको शूरवीरताके द्वारा काबूमें करे। वाणी आदि बाह्य इन्द्रियोंका मनमें, मनका बुद्धिमें, बुद्धिका आत्मामें, उसका शुद्ध चेतन परमात्मामें निरोध करे। इस प्रकार मनुष्यको शान्त और पवित्रकर्मा होकर इस परमात्मपदका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये वह काम, क्रोध, लोभ, भय और निद्रा- इन पाँच दोषोंको छोड़कर वाणीका संयम रखते हुए योगाभ्यास करे। ध्यान, अध्ययन, दान, सत्य, लज्जा, नम्रता, क्षमा, शौच, आहारशुद्धि और इन्द्रियसंयम- इन सबके द्वारा मनुष्यका तेज बढ़ता है और उसका पाप नष्ट हो जाता है। उसके संकल्प सिद्ध होने लगते हैं और हृदयमें विज्ञानका आर्विभाव हो जाता है। इस प्रकार जब वह निष्पाप और तेजस्वी हो जाय तो मिताहार करते हुए इन्द्रियोंको जीतकर तथा काम-क्रोधको काबूमें रखकर अपने शुद्धस्वरूपको परब्रह्मपदमें स्थित करनेका संकल्प करे। अमूढ़ता, अनासक्ति, काम-क्रोधको त्यागना, दीनता, गर्व और उद्वेगसे दूर रहना तथा निष्कामभावसे मन, वाणी और शरीरका संयम करना- यही मोक्षका शुद्ध और निर्मल मार्ग है।

राजा जनकने माण्डव्यमुनीको बताया, इस जगमें मेरी कोई वस्तु नहीं है, इसलिये मैं प्रसन्नतासे जीवन व्यतीत करता हूँ। जो ज्ञानी होते हैं उन्हें समृद्धिसम्पन्न विषय भी दु:खरूप ही जान पड़ते हैं, अज्ञानियोंको तो तुच्छ विषय भी मोहमें डाल देते हैं। लोकमें जो कामजनित सुख है और परलोकका जो दिव्य सुख है, वे दोनों तृष्णाके क्षय होनेसे चले जाते हैं। धनके

साथ तृष्णाकी भी वृद्धि हो जाती है। यदि थोड़ी-सी वस्तु भी अपनी मान ली जाय तो नष्ट होनेपर वही दु:खका कारण बनती है, इसलिये कभी कामनाओंकी वृद्धि नहीं करनी चाहिये। कामनाओंकी आसक्ति दु:खरूप ही है। यदि किसी प्रकार धन मिल जाय तो उसे धर्ममें ही लगा दे, भोगोंकी सामग्री इकट्ठी न करे। ज्ञानी, विद्वान सब प्राणियोंको अपने समान देखता है। वह कृतकृय और शुद्धचित्त होकर सब वस्तुओंका त्याग देता है। वह सत्य-असत्य, हर्ष-शोक, प्रिय-अप्रिय, भय-अभय आदि सभी द्वन्द्वोंको त्याग कर अत्यन्त शान्त और निर्विकार हो जाता है। तृष्णाका त्याग दूषित अन्त:करणवालोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वह कभी भी शिथिल नहीं होती तथा वह जीवनपर्यन्त रहनेवाले रोगके समान है। जो पुरुष मोक्षधर्ममें तत्पर, स्वल्पाहार करनेवाला और जितेन्द्रिय होता है, वह उस प्रकृतिसे अतीत अविनाशी पदको प्राप्त कर लेता है।

वृत्रासुरने शुक्राचार्यजीसे कहा, मैंने सत्य और तपके प्रभावसे जीवोंके जन्म-मरणका रहस्य जान लिया है। जीव कालके अधीन होकर अपने पापोंके कारण बलात्कारसे नरकमें गिरते हैं और कोई अपने पुण्योंके प्रभावसे दिव्यलोकोंमें जाकर आनन्द मनाते है। अपने कर्मोंके भोगके लिये बार-बार इस लोकमें जन्मते-मरते रहते हैं। कामनाके बन्धनमें बँधे हुए अनेकों जीव नरकमें पड़कर फिर विवश होकर पशु-पक्षियोंकी सहस्त्रों योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। उसी समय महामुनि सनत्कुमार वहाँ पधारे और शुक्राचार्यने उनका पूजन किया और कहा भगवन्। वृत्रासुरको विष्णुका श्रेष्ठ माहात्म्य सुनाइये। सनत्कुमारने परमात्मा प्राप्तिका विषय बताया और भगवान कृष्ण ही अपने स्वरूपमें स्थित हुए अपनी शक्तिसे अनेकों प्रकारके पदार्थ रचते हैं। वे अविनाशी भगवान् महान शक्तिमान और सबके अधीश्वर हैं। कल्पका अन्त होनेपर वे जलपर शयन करते हैं। वे सनातन और अनन्त परमात्मा अपनी सत्तास्फूर्तिणसे ही समस्त कार्य-कारणको पूर्ण कर देते हैं और सर्वदा एकरस होकर भी इस श्रीकृष्णरूपसे लोकोंमें विचर रहे हैं; किंतु इस स्वरूपमें भी वे उपाधिसे बँधे हुए नहीं है और वे अपनेहीमें स्थित इस अनेक प्रकारके सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं।

एक बार नारदजीने समङ्ग मुनिसे पूछा, कि मनुष्य शोकहीन कैसे होता है? तब समङ्ग मुनिने कहा, मैं भूत,वर्तमान और भविष्यके स्वरूप तथा उसके तत्त्वको जानता हूँ, इसीसे मेरे मनमें कभी विषाद नहीं होता। मुझे कर्मोंके आरम्भका तथा उनके फलोदयकालका भी ज्ञान है और लोकमें जो भाँति-भाँतिके कर्मफल प्राप्त होते हैं, उनको भी मैं जानता हूँ, इसीसे कभी उदास नहीं होता। जगत्में गम्भीर विद्वान, मूर्ख, अंधे और जड भी जीवित रहते हैं तथा स्वस्थ शरीरवाले देवता, बलवान और निर्बल- सभी अपने कर्मानुसार जीवन धारण करते हैं, इसी तरह हम भी जी रहे हैं। हजार रुपयेवाले भी जीवित है और सौ रुपयेवाले भी; तथा कुछ लोग साग खाकर ही जीवन धारण करते हैं, इसी तरह हमें भी जीवित समझिये। मनुष्य जिसके कारण किसीको प्राज्ञ (बुद्धिमान्) कहते हैं, उस प्रज्ञा (बुद्धि) की जड़ है इन्द्रियोंकी प्रसन्नता। जिस मूढ़ इन्द्रियवाले पुरुषकी इन्द्रियाँ शोक और मोहमें पड़ी हैं, उसको प्रज्ञाकी प्राप्ति नहीं होती। मूर्खको गर्व होता है, उसका गर्व मोहरूप ही है। मूढ मनुष्यके लिये न यह लोक सुखद होता है, न परलोक। किसीको भी न तो सदा दु:ख ही उठाना पड़ता है और न हमेशा सुख ही मिलता है। संसारके स्वरूपको परिवर्तित होता देख हमारे जैसे मनुष्य कभी संताप नहीं करते, अनुकूल भोग या सुख पाकर उसका अभिनन्दन नहीं करते तथा प्रतिकूल दु:ख प्राप्त होनेपर भी कभी चिन्तित नहीं होते। जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वह दूसरोंका धन नहीं चाहता, बहुत-सी सम्पत्ति पाकर हर्षसे फूल नहीं उठता और धनके नष्ट हो जानेपर भी खेद नहीं करता; क्योंकि बन्धु-बान्धव, धन, उत्तम कुल, शास्त्राध्ययन, मन्त्र और वीर्य- इनमेंसे कोई भी दु:खसे छुटकारा नहीं दिला सकते। मनुष्य अपने शील-गुणके कारण ही परलोकमें शान्ति पाता है। जिसका चित्त योगयुक्त नहीं

है, उसे समत्वबुद्धि नहीं प्राप्त होती, योगके बिना सुख भी नहीं मिलता। दुःखों (के प्रति प्रतिकूल-बुद्धि) का त्याग और धैर्य- ये ही दोनों सुखके मूल हैं। प्रिय वस्तु प्राप्त होनेपर हर्ष होता है, हर्षसे अभिमान बढ़ता है और अभिमान नरकमें ले जानेवाला है, इसलिये मैं उन तीनोंका त्याग करता हूँ। शोक, भय और अभिमान- ये प्राणियोंको सुख-दुःखमें डालकर मोहित करनेवाले हैं; इसलिये जबतक यह देह चेष्टा कर रहा है, तबतक मैं इन सबको साक्षीकी भाँति देखता हूँ तथा अर्थ, काम, शोक, संताप, तृष्णा और मोहका परित्याग करके- निर्द्वन्द्व होकर इस पृथ्वीपर विचरता हूँ। जैसे अमृत पीनेवालेको मृत्युसे भय नहीं होता, उसी प्रकार मुझे भी इहलोक या परलोकमें मृत्यु, अधर्म, लोभ तथा दूसरे किसीसे भय नहीं है। नारदजी। मैंने महान् और अक्षय तप करके यही ज्ञान पाया है, इसलिये शोक उपस्थित होकर भी मुझे दुःखमें नहीं डालता।

भीष्म बोले, युधिष्ठिर। सर्वदा गुरुजनोंकी पूजा, वृद्ध पुरुषोंकी उपासना और शास्त्रोंका श्रवण ये तीन कल्याणके अमोघ साधन है। विभिन्न शास्त्रोंके द्वारा भाँति-भाँतिके उपदेश पाकर मनुष्य नाना प्रकारके शास्त्रीय कर्मोंमें स्थित हैं और सभी अपने-अपने शास्त्रोंकी प्रशंसा करते है। तुम चारों आश्रमोंके स्वरूप और गुण आदि भिन्न-भिन्न ऐसा जानो- स्थूल दृष्टिसे विचार करनेपर वे सर्वोत्तम अभीष्ट अर्थात श्रेयमार्गका निश्चयात्मक ज्ञान नहीं करा पाते। कुछ सूक्ष्मदर्शी विद्वानोंने ही आश्रमोंके परम तत्त्वको ठीक-ठीक समझा है। जो अच्छी तरह कल्याण करनेवाला और संशयसे रहित हो, उसे ही श्रेय कहते हैं। सुहृदोंपर अनुग्रह करना, शत्रुभाव रखनेवाले दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देना तथा धर्म, अर्थ और कामका संग्रह करना- इन सबको विद्वान पुरुष श्रेय कहते हैं। पाप कर्मसे दूर रहना, पुण्यकर्मोंका निरन्तर अनुष्ठान करना, सत्पुरुषोंके साथ रहकर सदाचारका ठीक-ठीक पालन करना, सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति कोमल और व्यवहारमें सरल होना, मीठी वाणी बोलना, देवताओं, पितरों और अतिथियोंको उनका भाग देना तथा भरण-पोषण करने योग्य व्यक्तियोंका त्याग न करना- यह श्रेयका निश्चित साधन है। सत्य बोलना भी श्रेयस्कर है; किंतु सत्यको यथार्थरूपसे जानना कठिन है। मैं तो उसे ही सत्य कहता हूँ, जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो। अहंकारका त्याग, प्रमादको रोकना, संतुष्ट होना, अकेले रहकर धर्मका पालन, धर्माचरणपूर्वक वेद और वेदान्तोंका स्वाध्याय तथा उनके सिद्धान्तको जाननेकी इच्छा कल्याणका अमोघ साधन है। जिसे कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा हो उस मनुष्यको शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गन्ध इन विषयोंका अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। रातमें घूमना, दिनमें सोना, आलस्य, चुगली, गर्व, अधिक परिश्रम करना तथा परिश्रमसे बिल्कुल दूर रहना- ये सब बातें श्रेय चाहनेवालेके लिये त्याज्य हैं। दूसरोंकी निन्दा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करनेका प्रयत्न न करे। साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा जो अपनेमें विशेषता है, वह उत्तम गुणोंद्वारा ही प्रकट होनी चाहिये। गुणहीन मनुष्य ही अधिकतर अपनी तारीफके पुल बाँधा करते हैं। वे अपनेमें गुणोंकी कमी देख दूसरे गुणवान पुरुषोंके दोष बताकर उनपर आक्षेप किया करते हैं। यदि कहीं वे कुछ पढ़ जायँ तब तो गर्वमें आकर अपनेको महापुरुषोंसे भी अधिक गुणी मानने लगें, किंतु जो दूसरे किसीकी निन्दा तथा अपनी प्रशंसा नहीं करता, ऐसा सर्वगुणसम्पन्न विद्वान ही महान् यशका भागी होता है। मूर्ख मनुष्य केवल अपनी प्रशंसा करनेसे ही संसारमें ख्याति नहीं पा सकता, किंतु विद्वान पुरुष गुफामें छिपा रहे तो भी उसकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो जाती है। बुरी बात जोर-जोर से कही जाय तो भी वह शान्त हो जाती है अर्थात लोकमें उसका आदर नहीं होता; किंतु अच्छी बात धीरेसे कहनेपर भी संसारमें प्रकाशित होती रहती है-उसका सबके ऊपर प्रभाव पड़ता है। घमंडी मूर्खोंकी कही हुई बहुत-सी असार बातें उनके दूषित हृदयका ही परिचय देती है; इस कारण अच्छे लोग प्रज्ञा (ज्ञान) की खोज करते हैं, मुझे तो सब प्राणियोंके लिये

ज्ञानकी प्राप्ति ही अच्छी जान पड़ती है। बुद्धिमान पुरुष ज्ञानवान होनेपर भी बिना पूछे किसीको कोई उपदेश न करे, अन्यायपूर्वक पूछनेपर भी किसीके प्रश्नका उत्तर न दे, जड़की भाँति चुपचाप बैठा रहे।

मनुष्यको सदा धर्ममें लगे रहनेवाले साधु-महात्माओं तथा स्वधर्मपरायण उदार पुरुषोंके समीप निवास करनेका विचार करना चाहिये। जहाँ चारों वर्णोंके धर्मोंका परस्पर सम्मिश्रण होता हो, वहाँ श्रेयकी इच्छावाले पुरुषको नहीं रहना चाहिये। किसी कर्मका आरम्भ न करनेवाला और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहनेवाला पुरुष भी पुण्यात्माओंके साथ रहनेसे पुण्य और पापियोंके संसर्गमें रहनेसे पापका भागी होता है। जैसे जल और अग्निके संसर्गसे क्रमश: शीत और उष्ण स्पर्शका अनुभव होता है, उसी प्रकार पुण्यात्मा और पापियोंके सङ्गसे पुण्य एवं पाप- दोनोंका संयोग हो जाता है। विघसाशी (भृत्य-वर्ग और अतिथि आदिको भोजन करानेके बाद भोजन करनेवाले) पुरुष रसास्वादनकी ओर दृष्टि न रख करके ही भोजन करते हैं; किंतु जो अपनी रसनाका विषय समझकर स्वादु-अस्वादुका विचार रखते हुए भोजन करते हैं, उन्हें कर्मपाशमें बँधे हुए समझना चाहिये। जहाँ ब्राह्मण अन्यायपूर्वक प्रश्न करनेवाले पुरुषोंको धर्मका उपदेश करता हो, आत्मज्ञानीको उस देशका परित्याग कर देना चाहिये। जहाँके लोग बिना किसी आधारके ही विद्वानोंपर दोषारोपण करते हों, वहाँ कौन रहेगा? जहाँ लालची मनुष्योंने प्राय: धर्मकी मर्यादा तोड़ डाली हो, उस देशको कौन नहीं त्याग देगा?

परंतु जहाँके लोग मात्सर्य और शमासे रहित होकर धर्माचरण करते हों, वहाँ पुण्यशील महात्माओंके पास अवश्य निवास करना चाहिये। जिस देशमें मनुष्यधनके लिये धर्मका अनुष्ठान करते हों, वहाँ कभी न रहे; क्योंकि वहाँके निवासी पापी होते हैं। जहाँ जीवनरक्षाके लिये लोग पापकर्मसे जीविका चलाते हों, जहाँ राजा और उसके सेवकोंमें कोई अन्तर न हो तथा जहाँके मनुष्य अपने कुटुम्बीजनोंके पहले ही भोजन कर लेते हों, उस राष्ट्रको ज्ञानी पुरुष त्याग दे। जहाँ धर्ममें श्रद्धा रखनेवाले सनातनधर्मी श्रोत्रिय ब्राह्मण ही यज्ञ कराने और पढ़ानेके कार्यमें नियुक्त हो तथा उन्हीं लोगोंको पहले भोजन कराया जाता हो, उस देशमें निवास करना उचित है। जहाँ स्वाहा (अग्निहोत्र), स्वधा (श्राद्ध) तथा वषट्कार (इन्द्रयाग) का भलीभाँति अनुष्ठान होता हो, जहाँके लोग बिना माँगे ही भिक्षा देते हों, जहाँ दुष्टोंको दण्ड दिया जाता और साधु पुरुषोंका सम्मान किया जाता हो, वहाँ पुण्यशील महात्माओंके बीच निवास करना चाहिये। जो जितेन्द्रिय पुरुषोंपर क्रोध और साधु महात्माओंके प्रति अत्याचार करते हों, उन लोभी और उद्दण्ड पुरुषोंको जिस देशमें अत्यन्त कठोर दण्ड दिया जाता हो तथा जहाँका राजा सदा धर्मपरायण होकर धर्मानुसार ही राज्यका पालन करता हो और सम्पूर्ण कामनाओंका स्वामी (सम्पत्तिमान) होकर भी विषय-भोगसे विमुख रहता हो, वहाँ बिना विचारे ही निवास करना चाहिये, क्योंकि राजाके शील-स्वभाव जैसे होते हैं, वैसी ही उसकी प्रजा भी होती है। वह अपने कल्याणका समय उपस्थित होनेपर अपनी प्रजाका भी कल्याण करता है।

इस बारेमें यही उपदेश तार्क्ष्य (अरिष्टनेमि) मुनिने राजा सगरको दिया। संसारमें मोक्षका ही सुख वास्तविक सुख है, परंतु जो धन और धान्यके उपार्जनमें व्यग्र तथा पुत्र और पशुओंमें आसक्त हो रहा है, उस मूर्ख मनुष्यको उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त है, उसका मन अशान्त होता है। ऐसे पुरुषकी चिकित्सा करनी कठिन है। स्नेह-बन्धनमें बँधे हुए अज्ञानीका मोक्ष नहीं हो सकता। तुम न्यायपूर्वक इन्द्रियोंसे विषयोंका अनुभव करके उनसे अलग हो जाओ और आनन्दके साथ विचरते रहो; इस बातकी परवा न करो कि संतान हुई है या नहीं? इन्द्रियोंका विषयोंके प्रति जो कौतूहल है, उसे मिटाकर मुक्तकी भाँति विचरो और दैवेच्छासे जो भी लौकिक पदार्थ प्राप्त हों, उनमें समान भाव रक्खो- राग-द्वेष न करो। मुक्त पुरुष सुखी होते और संसारमें निर्भय होकर विचरते हैं; किंतु जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त

होता है, वे चींटियों और कीड़ोंकी तरह आहारका संग्रह करते-करते ही नष्ट हो जाते हैं। अत: जो आसक्तिसे रहित हैं, वे ही इस संसारमें सुखी है; आसक्त मनुष्योंका तो नाश ही होता है। यदि तुम्हारी बुद्धि मोक्षमें लगी हुई है तो तुम्हें स्वजनोंके लिये ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि ये मेरे बिना कैसे रहेंगे? प्राणी स्वयं जन्म लेता है, स्वयं बढ़ता है और स्वयं ही सुख-दु:ख तथा मृत्युको प्राप्त होता है। मनुष्य पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार ही भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिताके द्वारा संग्रह किया हुआ धन प्राप्त करते हैं। संसारमें जो कुछ मिलता है, वह पूर्वकृत कर्मोंके फलके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। भूमण्डलके समस्त जीव अपने कर्मोंसे सुरक्षित होकर जगत्में विचरते हैं और विधाताने उनके प्रारब्धके अनुसार जो कुछ भोग नियत कर दिया है, उसे प्राप्त करते हैं। जो स्वयं ही (शरीरकी दृष्टिसे) मिट्टीका लोंदा, परतन्त्र तथा अस्थिर है, वह स्वजनोंकी रक्षा और पोषण करनेका अभिमान क्यों करता है? तुम देखते हो और बचानेका भारी-से-भारी यत्न भी करते हो तो भी जब मौत तुम्हारे स्वजनको मारे बिना नहीं छोड़ती तो तुम्हारी क्या बिसात है? तुम्हारे ये सगे-सम्बन्धी जीवित भी रहें और इनके भरण-पोषण का कार्य समाप्त न भी हुआ हो तब भी तो तुम एक दिन इन्हें छोड़कर मर जाओगे। अथवा जब कोई स्वजन मरकर इस लोकसे चला जायगा, उस समय वहाँ वह सुखी होगा या दु:खी? तुम मर जाओ या जीवित रहो, तुम्हारे कुटुम्बका प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्मका ही फल भोगेगा- ऐसा जानकर तुम्हें अपने कल्याण-साधनमें लग जाना चाहिये। संसारमें कौन किसका है?

जिसने क्षुधा, पिपासा, क्रोध, लोभ और मोह आदि भावोंपर विजय पा ली है, उस सत्त्वसम्पन्न पुरुषको मुक्त ही समझना चाहिये। जो मोहवश प्रमादके कारण जुआ, मद्यपान, स्त्रीसंसर्ग तथा मृगया आदिमें प्रवृत्त नहीं होता, वह भी मुक्त ही है। जो सदा योगयुक्त होकर स्त्रीमें भी आत्मदृष्टि ही रखता है- उसे भोग्य-बुद्धिसे नहीं देखता, वही यथार्थ मुक्त है। जो प्राणियोंके जन्म, मृत्यु और कर्मोंके तत्त्वको ठीक-ठीक जानता है, वह भी इस संसारमें मुक्त ही है। जो हजारों और करोड़ों गाड़ी अन्नमेंसे एक प्रस्थ (सेरभर) को ही पेट भरनेके लिये पर्याप्त समझता है (उससे अधिक संग्रह करना नहीं चाहता) तथा बड़े-से-बड़े महलमें भी एक शय्या बिछाने भरकी जगहको ही अपने लिये आवश्यक मानता है, वह मुक्त हो जाता है। जो थोड़े-से लाभमें ही संतुष्ट रहता है- जिसे मायाके अद्भुत भाव छू नहीं सकते, जिसके लिये पलंग और भूमिकी शय्या एक-सी है जो रेशमी वस्त्र, कुशके बने कपड़े, ऊनी वस्त्र और वल्कलको समान भावसे देखता है, संसारको पाञ्चभौतिक समझता है तथा जिसके लिये सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, इच्छा-द्वेष और भय-उद्वेग बराबर हैं, वह सर्वथा मुक्त ही है। जो इस देहको रक्त, मल, मूत्र तथा बहुत-से दोषोंका खजाना समझता है और इस बातको कभी नहीं भूलता कि बुढ़ापा आनेपर झुर्रियाँ पड़ जायँगी, बाल पक जायँगे, देह दुबला-पतला एवं सौन्दर्यहीन हो जायगा, कमर भी झुक जायगी, पुरुषार्थ नष्ट हो जायगा, आँखोंसे सूझ नहीं पड़ेगा, कान बहरे हो जायँगे और प्राणशक्ति क्षीण हो जायगी; वह पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है। ऋषि, देवता और असुर सब इस लोकसे परलोकको चले गये; हजारों प्रभावशाली राजाओंको पृथ्वी छोड़कर जाना पड़ा है- इस बातको जो सदा याद रखता है, वह मुक्त हो जाता है।

संसारमें धन दुर्लभ है और क्लेश सुलभ। कुटुम्बके पालन-पोषणमें भी यहाँ बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इतना ही नहीं, गुणहीन संतान तथा विपरीत गुणोंवाले मनुष्योंसे भी पाला पड़ता है। इस प्रकार संसारमें अधिकांश कष्ट ही दिखायी देता है- यह जानकर भी कौन मनुष्य मोक्षका आदर नहीं करेगा? शास्त्रोंके अवलोकनसे ज्ञानवान होकर जो सम्पूर्ण मानव-जगत्को असार समझता है, वह सब प्रकारसे मुक्त ही है। मेरे इस वचनको सुननेके पश्चात् तुम्हारी बुद्धि गृहस्थाश्रममें स्थित हो या संन्यासाश्रममें; वहाँ ही रहकर मुक्तकी भाँति आचरण करो।

एक बार प्रजापति ब्रह्मा हंसके स्वरूप में विचर रहे थे। वे साध्यगणोंको मोक्षधर्मका उपदेश दे रहे थे। उन्होंने कहा,

तप, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम हैं। हृदयकी गाँठें खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने वशमें करे (अर्थात उनके लिये हर्ष और विषाद न करे)। किसीके मर्ममें आघात न पहुँचावे, दूसरोंसे निष्ठुर बात न बोले, नीच मनुष्यसे शास्त्रका रहस्य न समझे तथा जिसे सुनकर औरोंको उद्वेग हो ऐसी नरकमें डालनेवाली अमङ्गलमयी बात भी न कहे। वचनरूपी बाण जब मुँहसे निकल पड़ते हैं तो उनकी चोट खाकर मनुष्य रात-दिन शोकमें डूबा रहता है। वे दूसरोंके मर्मपर ही आघात पहुँचाते हैं, इसलिये विद्वान पुरुषको किसीपर वाग्बाणका प्रयोग नहीं करना चाहिये। दूसरा कोई भी यदि विद्वानको कटुवचनरूपी बाणोंसे खूब घायल करे तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये। दूसरोंके क्रोध करनेपर भी जो बदलेमें प्रसन्न ही रहता है वह उनके पुण्यको ग्रहण कर लेता है। जो जगत्में निन्दा करानेवाले और आवेशमें डालनेवाले प्रज्ज्वलित क्रोधको रोक लेता है, जिसका चित्त शान्त एवं प्रसन्न रहता है तथा जो दूसरोंके दोष नहीं देखता, वह पुरुष अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके पुण्य ले लेता है। मुझे कोई गाली दे तो भी चुप रह जाता हूँ, कोई मारे तो भी उसे क्षमा करता हूँ। आर्यजन क्षमा, सत्य, सरलभाव और दयाको ही श्रेष्ठ बताते हैं। वेदाध्ययनका फल है सत्यभाषण, उसका फल है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष। यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका आदेश है। जो वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, उदर तथा जनेन्द्रियके प्रचण्ड वेगको सह लेता है, उसीको मैं ब्राह्मण और मुनि मानता हूँ। क्रोधीसे क्रोध न करनेवाला, असहनशीलसे सहनशील, अमानवसे मानव तथा अज्ञानीसे ज्ञानी श्रेष्ठ है। जो दूसरे की गाली सुनकर भी बदलेमें उसे गाली नहीं देता, उस क्षमाशील मनुष्यका दबा हुआ क्रोध ही गाली देनेवालेको भस्म कर सकता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है। दूसरेके मुँहसे अपने लिये कड़वी बात सुनकर भी जो उसके प्रति कठोर या प्रिय कुछ भी नहीं कहता तथा किसीकी मार खाकर भी धैर्यके कारण बदलेमें न तो उसे मारता है और न उसकी बुराई ही चाहता है, उस महात्मासे मिलनेके लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं। पाप करनेवाला अपराधी अवस्थामें अपनेसे बड़ा हो या बराबर, उसके द्वारा अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा ही कर देना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त होगा।

मुझपर न तृष्णाका जोर चलता है, न क्रोधका। मैं लोभवश धर्मका अतिक्रमण नहीं करता और न विषयोंकी इच्छासे ही कहीं आता-जाता हूँ। कोई मुझे शाप दे दे तो भी मैं उसे शाप नहीं देता; मैं इन्द्रियसंयमको ही मोक्षका द्वार मानता हूँ। मनुष्ययोनिसे बढ़कर दूसरी कोई उत्तम योनि नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमा बादलोंके आवरणसे अलग होकर प्रकाशमान दिखायी देता है, उसी प्रकार पापोंसे मुक्त होकर शुद्धचित्त हुआ धीर पुरुष धैर्यपूर्वक कालकी प्रतीक्षा करता रहे, इससे वह सिद्धिको प्राप्त होता है। जो अपने मनको वशमें करके आधार-स्तम्भकी भाँति सबके आदरका पात्र होता है तथा जिसके प्रति सब लोग प्रसन्नतायुक्त मधुर वचन बोलते हैं, वह मनुष्य देवभावको प्राप्त हो जाता है। किसीसे डाह रखनेवाले मनुष्य जिस तरह उसके दोषोंका वर्णन करना चाहते हैं, उस तरह उसके कल्याणकारी गुणोंका बखान करना नहीं चाहते। जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर परमात्माके जप तथा चिन्तनमें लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग इन-सबके फलको पा जाता है।

इसलिये समझदार पुरुषको चाहिये कि वह कटुवचन कहने और अनादर करनेवाले अज्ञानियोंको उनके दोष बताकर समझानेका प्रयत्न न करे, न दूसरोंको बढ़ावा दे और न अपनी हिंसा करे। विद्वानको चाहिये कि वह अपमान पाकर अमृत पीनेकी भाँति संतुष्ट हो; क्योंकि अपमानित पुरुष तो सुखसे सोता है, किंतु अपमान करनेवालेका नाश हो जाता है। क्रोधी

मनुष्य जो यज्ञ करता, दान देता और तपस्या अथवा हवन करता है, उन सब कर्मोंके फलको यमराज हर लेते हैं। क्रोध करनेवालेका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है। देवताओं। जो पुरुष अपने उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी- इन चार द्वारोंको पापसे बचाये रखता है, वही धर्मज्ञ है। जो सत्य, इन्द्रियसंयम, सरलता, दया, धैर्य और क्षमाका विशेष सेवन करता है, स्वाध्यायमें लगा रहता है, दूसरेकी वस्तु नहीं लेना चाहता तथा एकान्तमें निवास करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। सत्यसे बढ़कर पवित्र कुछ भी नहीं है। जैसे जहाज समुद्रसे पार होनेका साधन है, उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गमें पहुँचनेका द्वार है।

पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका सङ्ग करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही होता है। जैसे सफेद कपड़ेको जिस रंगमें रँगा जाय वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य भी साधु, असाधु, तपस्वी या चोर जिसकी सङ्गति करता है, उसीके वशमें हो जाता है। देवतालोग सदा सत्पुरुषोंका सङ्ग करते हैं- उन्हींकी बातें सुनते हैं, इसीलिये वे मनुष्योंके क्षणभङ्गुर भोगोंकी ओर देखने भी नहीं जाते। जो विषयोंके बढ़ने-घटनेवाले स्वरूपको ठीक-ठीक जानता है, उसकी समानता न चन्द्रमा कर सकते हैं, न वायु। जो दोषोंका परित्याग करके हृदयान्तर्वर्ती परमात्माके ध्यानमें स्थित रहता है, वही सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाला है। उसीके साथ देवता प्रेम करते हैं। जो सदा पेट पालने और उपस्थ-इन्द्रियके भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने और कठोर वाणी बोलनेवाले हैं, वे यदि (प्रायश्चित्त आदिके द्वारा) उक्त कर्मोंके दोषसे छूट भी जायँ तो भी देवतालोग उन्हें पहचानकर दूरसे ही त्याग देते हैं। सत्त्वगुणसे रहित और सब कुछ भक्षण करनेवाले पापाचारी मनुष्य देवताओंको संतुष्ट नहीं कर सकते; देवता तो सत्यवादी, कृतज्ञ और धर्मपरायण पुरुषोंके ही साथ प्रेम करते हैं। बोलनेसे न बोलना ही अच्छा है। किंतु यदि बोलना ही पड़े तो सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है, धर्मयुक्त बात कहना तीसरी और प्रिय बोलना चौथी विशेषता है।

इस लोकको अज्ञानने आवृत्त कर रक्खा है। परस्पर डाहके कारण इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता। मनुष्य लोभवश मित्रोंका त्याग करता है और आसक्तिके कारण वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता। जो ज्ञानी है, एकमात्र वही परम सुखी है। ज्ञानी ही बहुतोंके साथ रहकर भी मौन रहता है। वही दुर्बल होकर भी बलवान है और वही किसीके साथ भी कलह नहीं करता। ब्राह्मणोंमें वेद-शास्त्रोंका अध्ययन ही देवत्व है, व्रतोंका पालन करना उनमें साधुता है, दूसरोंकी निन्दा करना असाधुता है और मृत्युको प्राप्त होना मनुष्यता है।,

ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, अज्ञानसे नहीं। उस ज्ञानका अनुसंधान करना चाहिये यथार्थ ज्ञानका जिसके द्वारा अपनेको जन्म-मृत्युरूप बन्धनसे छुटकारा मिल सके। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा नीच योनिमें उत्पन्न हुए पुरुषसे भी यदि ज्ञान मिल सके तो प्राप्त करते मनुष्य उसपर सदा श्रद्धा रक्खे, क्योंकि श्रद्धालुमें जन्म और मृत्युका प्रवेश नहीं होता। ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण सभी वर्ण ब्राह्मण हैं। ब्रह्मके ही मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्रकी उत्पत्ति हुई है; अत: किसी भी वर्णको ब्रह्मसे भिन्न नहीं समझना चाहिये। मनुष्य अज्ञानके कारण ही कर्मानुसार योनियोंमें जन्म लेते और मरते हैं। उनका भयंकर अज्ञान ही उन्हें नाना प्रकारकी प्राकृत योनियोंमें गिराता है। अत: सब ओरसे ज्ञान प्राप्त करनेका ही प्रयत्न करना चाहिये। ज्ञान सबसे उत्तम साधन है, यज्ञ इसकी समानता नहीं कर सकते। मनुष्य ज्ञानके सहारे इस दुर्गम भवसागरके पार हो जाते हैं। यज्ञके द्वारा वे इसके पार नहीं जा सकते। अत: तुम प्रकृतिसे पर, महत्, पवित्र, कल्याणमय, निर्मल तथा मोक्षस्वरूप ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञान-यज्ञकी उपासना करनेसे तुम निश्चय ही तत्त्वज्ञानी ऋषि बन जाओगे।

७) पराशय गीता- भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को कहा, जिस कर्मके करनेसे इस लोक और परलोक में परम कल्याणकी प्राप्ति होती है यह बात राजा जनक ने पराशय मुनि से पूछा और पराशय मुनिने जो उपदेश दिया उसीको पराशय गीता कहते है।

धर्मका आचरण ही इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला है। धर्मकी शरण लेनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। सभी आश्रमवाले धर्ममें आस्था रखकर अपने-अपने कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। संसारमें-जीवन-निर्वाहके लिये चार प्रकारकी जीविकाका विधान है (ब्राह्मणके लिये दान लेना, क्षत्रियके लिये रक्षा करना, वैश्यके लिये खेती आदि और शूद्रके लिये सेवा)। मनुष्य जिस वर्णमें उत्पन्न होते हैं, उसके अनुकूल जीविका भी इच्छानुसार प्राप्त हो जाती हैं, जिसने पूर्वजन्ममें शुभ कर्मोंका अनुष्ठान नहीं किया है, उसे सुख नहीं मिलता। देहत्यागके पश्चात् मनुष्यको पुण्यकर्मोंसे ही सुखकी प्राप्ति होती है। पहले जन्ममें जो कर्म नहीं किया गया है, उसका फल नहीं मिलता। लोग सदा इस बातको याद रखते हैं कि (मन, वाणी, चक्षु और हाथोंके द्वारा किये हुए) चार प्रकारके कर्म ही दूसरे जन्ममें फलकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं। लोकयात्राके निर्वाह और मनकी शान्तिके लिये वैदिक वचनोंको प्रमाण माना गया है। मनुष्य नेत्र, मन, वाणी और क्रियाके द्वारा चार प्रकारके कर्म करते हैं; उनमें जिसका जैसा कर्म होता है, उन्हें वैसे ही फलकी प्राप्ति होती है। कर्मके फलरूपसे कभी केवल सुख, कभी केवल दु:ख और कभी दोनों एक साथ प्राप्त होते हैं। पुण्य या पाप कोई भी कर्म क्यों न हो, फल भोगे बिना उसका नाश नहीं होता। जबतक मनुष्य पापके फलरूप दु:खके भोगसे छुटकारा नहीं पा जाता, तबतक उसका पुण्य अक्षयकी भाँति स्थित रहता है। जब पापजनित दु:खका भोग समाप्त हो जाता है, तब पुरुष अपने पुण्यकर्मके फलका उपभोग आरम्भ करता है। जब पुण्यका भी क्षय हो जाता है, तब फिर वह पापका फल भोगता है।

इन्द्रियसंयम, क्षमा, धैर्य, तेज, संतोष, सत्यभाषण, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनका अभाव तथा चतुरता- ये सब गुण सुख देनेवाले हैं। मनुष्यको जीवनपर्यन्त पाप या पुण्यमें ही आसक्त न होकर अपने मनको परमात्माके ध्यानमें लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। जीव दूसरेके किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मको नहीं भोगता। वह स्वयं जैसा करता है, वैसा फल पाता है। मनुष्य दूसरेके जिस कर्मकी निन्दा करता है, उसे स्वयं भी वह कर्म नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो दूसरे की तो निन्दा करता है, किंतु स्वयं वैसे ही कर्ममें लगा रहता है; उसका जगत्में उपहास होता है। डरपोक क्षत्रिय, (भक्ष्याभक्ष्यका विचार न करके) सब कुछ खानेवाला और सत्यसे भ्रष्ट हुआ ब्राह्मण, सदाचारका पालन न करनेवाला कुलीन, दुराचारिणी स्त्री, विषयासक्त योगी, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला मनुष्य, मूर्ख वक्ता, राजासे हीन राष्ट्र तथा अजितेन्द्रिय होकर प्रजाके प्रति स्नेह न रखनेवाला राजा- ये सब शोकके योग्य हैं।

राजन। आयु दुर्लभ वस्तु है, इसे पाकर आत्माको नीचे नहीं गिराना चाहिये; अपितु, पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करते हुए ऊँचे उठनेका प्रयत्न करना चाहिये। पुण्यकर्मसे ही मनुष्य उत्तम वर्णमें जन्म पाता है; पापीके लिये वह अत्यन्त दुर्लभ है। वह उसे न पाकर अपने पापके द्वारा अपना ही नाश कर लेता है। अनजानमें जो पाप बन जाय, उसे तपस्याके द्वारा नष्ट कर दें; क्योंकि अपना किया हुआ पाप पापरूप ही फल देता है। अत: दु:ख देनेवाले पापकर्मका कभी सेवन न करे। पापका फल कितना कष्टप्रद है, उससे प्रभावित मनुष्य अनात्मामें ही आत्मबुद्धि करने लगता है। बिना रँगा हुआ वस्त्र धोनेसे स्वच्छ हो जाता है, किंतु जो काले रंगमें रँगा हो वह सफेद नहीं होता। इसी तरह पापको ही काले रंगके समान ही समझना चाहिये। जो स्वयं जान-बूझकर पाप करनेके पश्चात् उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये पुन: शुभ कर्मका अनुष्ठान करता है; वह उन दोनोंका पृथक्-पृथक् फल भोगता है। अनजानमें जो हिंसा होती है, वह अहिंसाव्रतका पालन करनेसे दूर हो जाती है; किंतु स्वेच्छासे किये हुए पापको वह

भी नहीं दूर कर सकती- ऐसा वेद-शास्त्रोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंका कथन है। पुण्य या पाप जान-बूझकर हो या अनजानमें, उसका कुछ-न-कुछ फल होता ही है। देवता और मुनियोंने जो कर्म किये हैं, धर्मात्मा पुरुषको उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये तथा सुनकर उन कर्मोंकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य मनमें खूब सोच-विचारकर यह काम मुझसे हो सकेगा या नहीं? इस बातका निश्चय करके शुभकर्मका अनुष्ठान करता है, वह अवश्य ही अपनी भलाई देखता है।

अत: राजाको चाहिये कि अपने उन्नतिशील शत्रुओंको जीते। प्रजाका न्यायपूर्वक पालन करे, नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके अग्निदेवको तृप्त करे तथा वैराग्य होनेपर मध्यम अवस्था या अन्तिम अवस्थामें वनमें जाकर रहे। राजन्। प्रत्येक पुरुषको इन्द्रियसंयमी और धर्मात्मा होकर समस्त प्राणियोंको अपने ही समान समझना चाहिये तथा जो विद्या, तप और अवस्थामें अपनेसे बड़े हों उनकी यथाशक्ति पूजा करनी चाहिये। नरेन्द्र। सत्यभाषण तथा अच्छे बर्तावसे ही सबको सुख मिलता है।

श्रेष्ठ पुरुषको दिया हुआ दान और श्रेष्ठ पुरुषसे प्राप्त हुआ प्रतिग्रह- इन दोनोंका महत्त्व बराबर है, तो भी प्रतिग्रह स्वीकार करनेकी अपेक्षा दाता होकर दान देना ही अधिक पवित्र माना गया है। जो धन न्यायसे प्राप्त हुआ हो और न्यायसे ही बढ़ाया गया हो, उसे धर्मके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिये- यह धर्मशास्त्रका निश्चय है। धर्म चाहनेवालेको क्रूर-कर्मके द्वारा धनका उपार्जन नहीं करना चाहिये। अधर्मसे सम्पत्ति बढ़ानेका विचार भी मनमें नहीं लाना चाहिये। जो (मौसमका विचार करके) अतिथिको ठंडा या गरम किया हुआ जल पवित्र भावसे अर्पण करता है, उसे भूखेको भोजन देनेके समान फल प्राप्त होता है। महात्मा राजा रन्तिदेवने फल-मूल और पत्तोंसे ऋषियोंका पूजन किया था और इसीसे उन्हें वह सिद्धि प्राप्त हुई, जिसकी सब लोग अभिलाषा करते हैं। महाराज शैव्यने भी फल और पत्तोंसे ही माठर मुनिको संतुष्ट किया था, जिससे उन्हें उत्तम लोक मिला। प्रत्येक मनुष्य देवता, अतिथि, भृत्यवर्ग और पितरोंका तथा अपना भी ऋणी होकर जन्म लेता है; अत: उसे उस ऋणसे मुक्त होनेका यत्न करना चाहिये। वेदोंका स्वाध्याय करके ऋषियोंके, यज्ञके अनुष्ठानसे देवताओंके, श्राद्धसे पितरोंके तथा स्वागत-सत्कारसे अतिथियोंके ऋणसे छुटकारा होता है। इसी प्रकार वेदवाणीके श्रवण-मनन, यज्ञशेष अन्नके भोजन तथा जीवोंकी रक्षा करनेसे मनुष्य अपने ऋणसे मुक्त होता है। पुत्रादि भृत्यवर्गके पालन-पोषणका आरम्भसे ही प्रबन्ध करना चाहिये; इससे उनके ऋणसे भी मुक्ति हो जाती है।

ऋषि-मुनियोंके पास धन नहीं था, फिर भी वे अपने प्रयत्नसे ही सिद्ध हो गये। उन्होंने विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके सिद्धि प्राप्त की थी। असित, देवल, नारद, पर्वत, कक्षीवान्, जमदग्निनन्दन, परशुराम, आत्मज्ञानी ताण्ड्य, वसिष्ठ, जमदग्नि, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधार तथा श्रुतश्रवा आदि महर्षियोंने एकाग्रचित्त होकर ऋग्वेदकी ऋचाओंसे विष्णुका स्तवन किया तथा उन्हींकी कृपासे तपस्या करके उत्तम सिद्धि पायी। जो पूजाके योग्य नहीं थे, वे भी विष्णुका स्तवन करके पूजनीय संत होकर उन्हींको प्राप्त हो गये। इस लोकमें निन्दनीय आचरण करके किसीको भी अपने अभ्युदयकी आशा नहीं रखनी चाहिये। धर्मका पालन करते हुए जो धन प्राप्त होता है, वही सच्चा धन है। पापाचारसे प्राप्त होनेवाला धन तो धिक्कारके योग्य है। धनकी इच्छासे सनातन धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। राजेन्द्र। जो प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है, वही धर्मात्मा है और वही पुण्य करनेवालोंमें श्रेष्ठ है; क्योंकि सम्पूर्ण वेद (दक्षिण, आहवनीय तथा गार्हपत्य-इन) तीन अग्नियोंमें ही स्थित हैं। जिसका सदाचार कभी लुप्त नहीं होता, वह ब्राह्मण (अग्निहोत्र न करनेपर भी) अग्निहोत्री ही है। सदाचार सम्पादित होनेपर अग्निहोत्र न हो सके तो भी अच्छा है, किंतु सदाचारका त्याग करके केवल अग्निहोत्र करना कदापि कल्याणकारक नहीं है। अग्नि, आत्मा,

माता, जन्म देनेवाले पिता तथा गुरु- इन सबकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। जो अभिमानका त्याग करके वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करता, विद्वान एवं कामनाहीन होकर सबको प्रेमभावसे देखता, चालाकीसे रहित हो धर्मका आचरण करता और दूसरोंका दमन नहीं करता है, वह इस लोकमें श्रेष्ठ है तथा सत्पुरुष भी उसका आदर करते हैं।

शूद्रके लिये तीनों वर्णोंकी सेवा ही उत्तम वृत्ति है। यदि वह प्रेमके साथ उसका पालन करे तो वह उसे धर्मिष्ठ बनाती है। धर्मके जाननेवाले सत्पुरुषोंके संसर्गमें रहना हर हालातमें अच्छा है, किंतु दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग किसी भी दशामें उत्तम नहीं है। साधु पुरुषोंके समीप रहनेसे नीच वर्णका मनुष्य भी प्रतिभाशाली हो जाता है। श्वेत वस्त्रको जैसे रंगमें रँगा जाता है, वैसा ही उसका रूप हो जाता है; इसी प्रकार जैसा सङ्ग किया जाता है, वैसा ही रंग अपने ऊपर चढ़ता है। इसलिये गुणोंमें ही अनुराग करना चाहिये, दोषोंमें नहीं; क्योंकि मनुष्योंका जीवन अनित्य और चञ्चल है। जो विद्वान सुख और दुःख दोनों अवस्थाओंमें शुभ कर्मका ही अनुष्ठान करता है, वही शास्त्रके तत्त्वको जानता है। धर्मके विपरीत कर्म यदि लोकमें बहुत लाभदायक हो तो भी बुद्धिमान पुरुषको उसका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि उससे अपना हित नहीं होता। जो राजा दूसरोंकी हजारों गौएँ छीनकर दान करता है और प्रजाकी रक्षा नहीं करता, वह नाममात्रके लिये ही दानी है, उसे उसका कुछ फल नहीं मिलता। वास्तवमें तो वह राजा नहीं, लुटेरा है। जो राजा प्रतिदिन ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके उतना दान करता है, उसको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। स्वयं ही ब्राह्मणके पास जाकर उसे संतुष्ट करते हुए जो दान दिया जाता है, वह सर्वोत्तम माना गया है। याचना करनेपर दिये हुए दानको विद्वानोंने मध्यम बताया है और अवहेलना तथा अश्रद्धाके साथ जो कुछ दिया जाता है, उस दानको सत्यवादी मुनि अधम कहते हैं। मनुष्य संसार-सागरमें डूब रहा है उसे नाना प्रकारके उपायोंद्वारा सदा इसके पार उतरनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिस तरह भी बन्धनसे छुटकारा मिले, वैसा उद्योग करना उचित है। ब्राह्मण इन्द्रियसंयमसे, क्षत्रिय युद्धमें विजय पानेसे, वैश्य धनसे और शूद्र सेवा-कार्यमें चतुराई रखनेसे शोभा पाता है।

ब्राह्मणके यहाँ प्रतिग्रहसे मिला हुआ, क्षत्रियके घर युद्धसे जीतकर लाया हुआ, वैश्यके पास न्यायपूर्वक (खेती आदिसे) कमाया हुआ और शूद्रके यहाँ सेवासे प्राप्त हुआ थोड़ा भी धन हो तो उसे उत्तम माना गया है। उस धनका यदि धर्म-कार्यमें उपयोग किया जाय तो वह महान् फल देनेवाला होता है। ब्राह्मण यदि जीविकाके अभावमें क्षत्रिय अथवा वैश्यके धर्मसे जीवन-निर्वाह करे तो पतित नहीं होता; किंतु जब वह शूद्रके धर्मको अपनाता है तो तत्काल पतित हो जाता है। जब शूद्र सेवावृत्तिसे जीविका न चला सके तो उसके लिये भी व्यापार, पशुपालन तथा शिल्पकला आदिसे जीवन-निर्वाह करनेकी आज्ञा है। रंगमञ्चपर नाचना या खेल दिखाना, बहुरूपियेका काम करना, मदिरा और मांस बेचकर जीविका चलाना तथा लोहे और चमड़ेकी विक्री करना- ये सब काम निन्दनीय हैं, शूद्र भी यदि पूर्व परम्परासे उसके घरमें ये काम न होते आये हों तो स्वयं इनका आरम्भ न करे और जिसके यहाँ पहलेसे इनके करनेकी प्रथा हो वह भी छोड़ दे तो महान् धर्म होता है। यदि सिद्धि प्राप्त करनेके पश्चात् कोई पुरुष अहंकार में आकर पापाचरण करने लगे तो उसका अनुकरण नहीं करना चाहिये। पुराणोंमें सुना जाता है कि पहले अधिकांश मनुष्य संयमी, धार्मिक और न्यायका अनुसरण करनेवाले थे। उस समय अपराधियोंको धिक्कार-मात्रका ही दण्ड दिया जाता था। संसारके मनुष्योंमें सदा धर्मकी ही प्रशंसा होती थी। धर्ममें बढ़े-चढ़े लोग सद्गुणोंका ही सेवन करते थे; किंतु धर्मका यह प्रचार असुरोंसे नहीं सहा गया। वे क्रमशः बढ़कर सम्पूर्ण प्रजाके शरीरमें व्याप्त हो गये। तब प्रजाओंमें धर्मको नष्ट करनेवाले दर्प (घमंड) का प्रादुर्भाव हुआ। दर्प के बाद क्रोध उत्पन्न हुआ। क्रोधसे आक्रान्त होनेपर उनकी लाज छूट गयी और विनययुक्त सदाचारका लोप हो गया। फिर मोह

प्रकट हुआ। मोहसे अब उनें पहलेकी भाँति विचारशक्ति न रही और सब लोग अपने-अपने सुखके लिये दूसरोंको कष्ट पहुँचाने लगे। अब उन्हें राहपर लानेमें धिक्कारका दण्ड सफल न हो सका। सभी मनुष्य देवता और ब्राह्मणोंका अपमान करके मनमाना व्यवहार करने लगे।

मनुष्यको सिद्धि तो अवश्य प्राप्त करनी चाहिये, किंतु हिंसात्मक कर्म त्याग देना चाहिये। बुद्धिमान् धर्म करनेके लिये न्यायका त्याग कर पापमिश्रित मार्गसे धनका संग्रह न करे; क्योंकि उससे कल्याण नहीं होता। राजन्। तुम भी इसी तरह जितेन्द्रिय क्षत्रिय बनकर बन्धु-बान्धवोंसे प्रेम रखते हुए प्रजा, भृत्य और पुत्रोंका स्वधर्मके अनुसार पालन करो। इष्ट-अनिष्टकी प्राप्ति, वैर और प्रेमका अनुभव करते-करते जीवके हजारों जन्म बीत जाते हैं। इसलिये तुम (यदि कल्याण चाहते हो तो) सद्गुणोंमें ही अनुराग करो। दोषोंमें नहीं। महाराज। मनुष्योंमें जैसी धर्म-अधर्मकी प्रवृत्ति होती है, वैसी मनुष्येतर प्राणियोंमें नहीं होती। धर्मपरायण विद्वान सबको आत्मभावसे देखता हुआ संसारमें विचरता रहे। किसी भी जीवकी हिंसा न करे। जब मनुष्यका मन कामना और संस्कारोंसे रहित तथा असत्यसे दूर हो जाता है, उस समय वह कल्याणको प्राप्त होता है।

गृहस्थाश्रममें मनुष्यका गौ, खेती-बारी, धन-दौलत, स्त्री-पुत्र और भृत्योंसे सम्बन्ध हो जाता है और इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें रहकर वह प्रतिदिन इन वस्तुओंको देखता है; किंतु इनकी अनित्यताको नहीं जानता, इसलिये उसके मनमें राग और द्वेष बढ़ने लगते हैं। राग-द्वेषके वशीभूत होकर जब मनुष्य द्रव्यमें आसक्त हो जाता है, तो मोहकी कन्या रति आकर उसे अपने वशमें कर लेती है। रतिकी उपासना करनेवाले सभी लोग भोगीको ही कृतार्थ समझते हैं और रतिके द्वारा जो विषय-सुख प्राप्त होता है, उससे बढ़कर वे दूसरा कोई सुख नहीं मानते। फिर उनके मनपर लोभका अधिकार हो जाता है और वे आसक्तिवश अपने परिजनोंकी संख्या बढ़ाने लगते हैं। इसके बाद उनके पालन-पोषणके लिये धनकी इच्छा होती है। यद्यपि मनुष्य जानता है कि अमुक काम करना पाप है, फिर भी वह धनके लिये उसे कर ही डालता है तथा बाल-बच्चोंके स्नेहमें डूबे रहनेके कारण, जब उनमेंसे कोई मर जाता है तो उनके लिये वह बारंबार संतप्त होता है। धनसे जब लोकमें सम्मान बढ़ता है तो वह सदा इस बातका प्रयत्न करता है कि कभी अपनी हेठी न होने पावे। भोग-विलासकी सामग्रियोंसे सम्पन्न होनेके लिये जो कुछ आवश्यक समझता है, उसे ही वह करता है और उसीसे एक दिन नष्ट हो जाता है। वास्तवमें जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और उनसे सुख पानेकी इच्छा नहीं रखते, उन समत्वबुद्धिसे युक्त ब्रह्मवादी पुरुषोंको ही सनातन पदकी प्राप्ति होती है। संसारी जीवोंको तो जब उनके स्नेहके आधारभूत स्त्री-पुत्र आदिका नाश हो जाता, धन चला जाता और रोग तथा चिन्तासे कष्ट उठाना पड़ता है, तभी वैराग्य होता है। वैराग्यसे आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा होती है, जिज्ञासासे शास्त्रोंके स्वाध्यायमें मन लगता है, स्वाध्यायसे उसके मनमें यह बात बैठ जाती है कि तप ही कल्याणका साधन है। राजन्। संसारमें ऐसा विवेकी मनुष्य दुर्लभ है, जो स्त्री-पुत्र आदि प्रेय-सुखोंकी ओरसे उदासीन होकर (श्रेयकी प्राप्तिके लिये) तपमें प्रवृत्त होनेका ही निश्चय करता है। तपमें सबका अधिकार है, हीन वर्णके लिये भी (अपने अधिकारके अनुसार) तपका विधान है; तप ही जितेन्द्रिय एवं मनोनिग्रहसम्पन्न पुरुषको स्वर्गकी राहपर लानेवाला है। पूर्वकालमें प्रजापतिने ब्रह्मपरायण और व्रतमें स्थित होकर तपके द्वारा ही संसारकी सृष्टि की थी। आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, साध्य, पितर, मरूद्गण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध तथा दूसरे स्वर्गवासी देवता तपसे ही सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिन (मरीचि आदि) ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, वे तपके ही प्रभावसे पृथ्वी और आकाशको पवित्र करते हुए सर्वत्र विचरते थे। मर्त्यलोकमें जो गृहस्थ राजे-महाराजे उत्तम कुलोंमें उत्पन्न देखे जाते हैं, वह सब उनकी तपस्याका ही फल है। त्रिभुवनमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो तपस्यासे दुष्प्राप्य हो।

अत: मनुष्य सुखमें हो या दु:खमें; मन और बुद्धिसे शास्त्रका विचार करके लोभका परित्याग कर दे। असंतोषसे दु:ख होता है। लोभसे मन और इन्द्रियोंमें भ्रान्ति होती है। भ्रान्ति होनेपर अभ्यासरहित विद्याकी भाँति मनुष्यकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धिका नाश हो जानेपर वह विवेक खो बैठता है; इसलिये दु:खकी अवस्थामें मनुष्यको उग्र तपस्या करनी चाहिये। जो अपनेको प्रिय जान पड़ता है, उसे सुख कहते हैं तथा जो मनके प्रतिकूल होता है, वह दु:ख कहलाता है। तपस्या करनेसे सुख और न करनेसे दु:ख होता है। इस प्रकार तप करने और न करनेका जो फल है, उसको तुम भलीभाँति समझ लो। जो पापरहित तपका अनुष्ठान करता है, वह सदा कल्याणका भागी होता है तथा जिस पुरुषको धर्म, तप और दान करनेकी इच्छा नहीं होती, वह पापका ही आचरण करता और नरकमें पड़ता है। मनुष्य सुखमें हो या दु:खमें, जो सदाचारसे कभी विचलित नहीं होता, वही शास्त्रदर्शी माना जाता है। बाणको धनुषसे छूटकर पृथ्वीपर गिरनेमें जितनी देर लगती है, उतना ही समय स्पर्शेन्द्रिय, रसना, नेत्र, नासिका और कानके विषयोंका सुख अनुभव करनेमें लगता है तथा जब वह सुख नष्ट हो जाता है तो उसके लिये मनमें बड़ी वेदना होती है। इतनेपर भी अज्ञानी पुरुष (विषयोंके सुखमें ही लिप्त रहते हैं; वे) सर्वोत्तम मोक्ष-सुखकी प्रशंसा नहीं करते। सदा धर्म-पालन करनेवाले मनुष्यको कभी धन और भोगोंकी कमी नहीं होती; अत: गृहस्थ पुरुषको बिना प्रयत्नके प्राप्त हुए विषयका ही सेवन करना चाहिये। प्रयत्न तो स्वधर्मोपाजनके लिये ही करना उचित है। जब उत्तम कुलमें उत्पन्न, सम्मानित तथा शास्त्रके अर्थको जाननेवाले पुरुषोंका और असमर्थताके कारण कर्म-धर्मसे रहित एवं आत्मतत्त्वसे अनभिज्ञ मनुष्योंका भी लौकिक कर्म नष्ट हो जाता है तो तपके सिवा दूसरा कोई कर्म नहीं है, जो उन्हें अक्षय फल देनेवाला हो। गृहस्थको सर्वथा अपने कर्त्तव्यका निश्चय करके स्वधर्मका पालन करते हुए कुशलतापूर्वक यज्ञ तथा श्राद्ध आदि कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जैसे सम्पूर्ण नदियाँ और नद समुद्रमें जाकर मिलते हैं, उसी प्रकार समस्त आश्रमी गृहस्थके ही सहारे जीवन धारण करते हैं।

राजन्। दान लेना, यज्ञ कराना और विद्या पढ़ाना- ये ब्राह्मणके विशेष धर्म हैं। प्रजाकी रक्षा करना क्षत्रियके लिये उत्तम है। खेती, गोरक्षा और व्यापार- ये वैश्यके प्रधान कर्म हैं तथा द्विजातियोंकी सेवा शूद्रका मुख्य धर्म है। ये वर्णोंके विशेष धर्म बताये गये हैं। अब इनके सामान्य धर्मोंका वर्णन इसप्रकार है- दया, अहिंसा, सावधानी, दान, श्राद्धकर्म, अतिथि-सत्कार, सत्य, अक्रोध, अपनी ही पत्नीमें संतुष्ट रहना, पवित्रता रखना, किसीके दोष न देखना, आत्मज्ञान तथा सहनशीलता- ये सामान्य धर्म हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य- इन तीन वर्णोंको द्विजाति कहते हैं; उपर्युक्त धर्मोंमें इन तीनोंका समान अधिकार है। उक्त तीनों वर्ण विपरीत कर्मका आचरण करनेपर नीचे गिरते हैं और अपने वर्णोचित कर्ममें स्थित रहकर उन्नति प्राप्त करते हैं। शूद्र-जातिके लिये किसी वैदिक संस्कारका विधान नहीं है। उसे वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानका भी अधिकार नहीं है; किंतु पूर्वोक्त साधारण धर्मोंका उसके लिये भी निषेध नहीं किया गया हैं हीन वर्णके मनुष्य यदि अपना उद्धार करना चाहे तो सदाचारका पालन करते हुए आत्माको उन्नत बनानेवाली समस्त क्रियाओंका अनुष्ठान करें; किंतु वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण न करें- ऐसा करनेसे वे दोषके भागी नहीं होते। इतरजातीय मनुष्य भी ज्यों-ज्यों सदाचारका अनुष्ठान करते हैं, त्यों-ही-त्यों सुख पाकर इहलोक और परलोकमें भी आनन्द भोगते हैं।

महाराज। इसमें संदेह नहीं कि कर्म और जाति दोनों ही दोषकारक होते हैं। जाति और कर्ममेंसे किसीका भी आश्रय लेकर बुरे कर्मोंका सेवन नहीं करना चाहिये। जातिसे दूषित (चाण्डाल आदि) होकर भी जो पाप नहीं करता, वह पुरुष दोषका भागी नहीं होता। किंतु जो जातिसे उत्तम होकर भी निन्दाके योग्य कर्म करता है, उसका वह कर्म उसको दूषित बना देता है; अत: नीच जातिकी अपेक्षा नीच कर्म ही बुरा है।

महाराज। जो कर्म अहिंसाके अनुकूल तथा सदा मनुष्यकी रक्षा करनेवाले हैं- जो लोग अग्निहोत्रको त्याग संन्यास धारण कर उदासीनभावसे सब कुछ देखते रहते हैं, वे सब प्रकारकी चिन्ताओंसे रहित हो क्रमश: कल्याणपथपर आ जाते हैं और प्रश्रय, विनय, इन्द्रियसंयम तथा उत्तम व्रतोंसे युक्त हो समस्त कर्मोंका परित्याग करके जरा-मृत्युसे रहित अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। राजन्। सभी वर्णके लोग यदि हिंसाप्रधान कर्मोंको त्यागकर धर्मका पालन और सत्यभाषण करने लगें तो वे नि:संदेह स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं।

जो पिता, मित्र, गुरु तथा धर्मपत्नीके प्रति यथायोग्य प्रेम नहीं रखते, उन गुणहीन मनुष्योंको पिता आदिसे कोई सुख नहीं मिलता; परंतु जो उनके अनन्य भक्त, प्रियवादी, हितसाधनमें तत्पर और उनके वशमें रहनेवाले हैं, उन्हें पिता आदिके सेवनका यथायोग्य फल अवश्य प्राप्त होता है। पिता मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ देवता है, ज्ञानकी प्राप्ति सबसे बड़ा लाभ है तथा जिन्होंने इन्द्रियों और उनके विषयोंको जीत लिया है, वे ही परमात्माको प्राप्त करते हैं। क्षत्रियका बालक यदि रणाङ्गणमें घायल होकर बाणोंकी चितापर भस्म होता है तो वह देवदुर्लभ लोकोंमें जाता है और वहाँ आनन्दपूर्वक रहकर स्वर्गीय सुख भोगता है। राजन्। जो युद्धमें थका हुआ हो, भयभीत हो, जिसने हथियार नीचे डाल दिया हो, जो रोता हो, पीठ दिखाकर भाग रहा हो, जिसके पास युद्धका कोई भी सामान न रह गया हो, जो युद्धका उद्योग छोड़ चुका हो, रोगी हो, प्राणोंकी भिक्षा चाहता हो तथा बालक या वृद्ध हो; उसका वध नहीं करना चाहिये। जिसके पास लड़ाईका सामान हो, जो युद्ध करनेके लिये तैयार हो और अपने बराबरका हो, उस क्षत्रियको जीतनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। अपने समान या अपनेसे बड़े वीरके हाथसे मरना अच्छा माना गया है। अपनेसे हीन, कातर अथवा दीन पुरुषके हाथ होनेवाली मृत्यु निन्दित है; क्योंकि पाप करनेवाले पापी और अधम श्रेणीके मनुष्यके हाथसे जो वध होता है, वह पापरूप ही माना जाता है तथा वह नरकमें गिरानेवाला है- यही शास्त्रका निश्चय है। मौतके वशमें पड़े हुएको कोई बचा नहीं सकता तथा जिसकी आयु शेष है, उसे कोई मार भी नहीं सकता। मरनेकी इच्छावाले गृहस्थोंके लिये तो वही मृत्यु सबसे उत्तम मानी गयी है, जो किसी पवित्र नदीके तटपर शुभकर्मोंका अनुष्ठान करते हुए प्राप्त हो।

संसारके समस्त प्राणियोंमें चलने-फिरनेवाले जीव श्रेष्ठ माने गये हैं। इनमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी द्विज उत्तम हैं। द्विजोंमें बुद्धिमान तथा बुद्धिमानोंमें भी विचार-कुशल श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उनमें भी जो अहंकाररहित हैं, उन्हें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। सूर्यके उत्तरायण होनेपर उत्तम नक्षत्र तथा पवित्र मुहूर्तमें जिसकी मृत्यु हो, उसे पुण्यात्मा जानना चाहिये। वह किसीको भी कष्ट न देकर (प्रायश्चित्तके द्वारा) अपने पापको नष्ट कर डालता और शक्तिके अनुसार शुभकर्म करके स्वेच्छासे मृत्युको अङ्गीकार करता है। विष खा लेनेसे, गलेमें फाँसी लगानेसे, आगमें जलनेसे, लुटेरोंके हाथसे तथा दाढ़वाले पशुओंके आघातसे जो वध होता है, वह भी अधम श्रेणीका माना जाता है। पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य इस तरहके उपायोंसे प्राण नहीं देते तथा ऐसे ही दूसरे-दूसरे अधम उपायोंसे भी उनकी मृत्यु नहीं होती। राजन्। पुण्यात्मा का भाग आधा ही है अर्थात् जो पाप-पुण्य दोनोंसे युक्त हैं, उनके प्राण मध्य द्वार (मुख, नेत्र आदि) से बाहर होते हैं तथा जिन्होंने केवल पाप ही किया है, उनके प्राण अधोमार्ग (गुदा या शिश्न) से निकलते हैं।

पुरुषका एक ही शत्रु है, उसके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है, वह है अज्ञान; जिससे आवृत और प्रेरित होकर मनुष्य अत्यन्त घोर और कठोर कर्म करने लगता है। उस शत्रुको पराजित करनेमें वही समर्थ हो सकता है, जो वेदोक्त धर्मके पालनपूर्वक वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करके प्रज्ञा (स्थिरबुद्धि) प्राप्त कर ले; क्योंकि अज्ञानमय शत्रुको जीतना प्रयत्नसाध्य है, वह प्रज्ञारूपी बाणकी चोट खाकर ही नष्ट होता है। द्विजको पहले ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहकर वेदाध्ययन एवं तपस्या करनी चाहिये। फिर गृहस्थाश्रममें

प्रवेश करके अपनी शक्तिके अनुसार इन्द्रियसंयमपूर्वक पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तत्पश्चात अपने पुत्रको घरबारकी रक्षामें नियुक्तकर कल्याण-मार्गमें स्थित हो धर्मपालनकी इच्छासे वनमें प्रवेश करना चाहिये।

राजन्। मनुष्यकी योनि ही वह अद्वितीय योनि है, जिसे पाकर शुभकर्मोंके अनुष्ठानसे आत्माका उद्धार किया जा सकता है। कौन-सा ऐसा उपाय करें, जिससे हमें इस मनुष्ययोनिसे नीचे न गिरना पड़े यह सोचकर और वैदिक प्रमाणोंपर विचार करके सब लोगोंको धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर भी जो दूसरोंसे द्वेष और धर्मका अनादर करता है तथा कामनाओंमें आसक्त हो जाता है, वह महान् लाभसे वञ्चित होता है। जो मनुष्य समस्त प्राणियोंको स्नेहभरी दृष्टिसे देखता है तथा सब लोगोंको सान्त्वना और अन्न देकर सबसे मीठे वचन बोलकर सभीके सुख-दु:खमें समान-भावसे हाथ बँटाता है, वह परलोकमें सम्मानित स्थान प्राप्त करता है। राजन्। सरस्वती नदी, नैमिषारण्यक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र तथा और भी जो पृथ्वीके पावन तीर्थ हैं, उनमें जाकर दान और त्याग करे, शान्तभावसे रहे तथा तपस्या और तीर्थके जलसे अपने शरीरकी शुद्धि करे। मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार इष्टि, पुष्टि (शान्तिकर्म), यजन, याजन, दान, पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान तथा श्राद्ध आदि जो भी उत्तम कार्य करता है, वह सब यह अपने ही लिये करता है। धर्मशास्त्र और षडङ्गोंसहित वेद पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषके कल्याणके ही लिये धर्मका उपदेश करते हैं।

राजन्। आसक्तिका अभाव तथा ज्ञान- ये श्रेयकी जड़ है। ज्ञानसे प्राप्त होनेवाली गति ही सबसे उत्तम गति है। स्वयं किया हुआ तप तथा सुपात्रको दिया हुआ दान- ये कभी नष्ट नहीं होते। जो अधर्ममय बन्धनका उच्छेद करके धर्ममें अनुरक्त हो जाता और सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान कर देता है, उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। जो एक हजार गौ तथा एक सौ घोड़े दान करता है तथा जो सब भूतोंको अभयदान देता है- इनमें अभयदान करनेवाला गौ और अश्वदान करनेवालेसे सदा बढ़ा-चढ़ा रहता है। विशुद्ध बुद्धिवाला पुरुष विषयोंके बीचमें रहता हुआ भी (असङ्ग होनेके कारण) उनमें नहीं रहनेके बराबर है; किंतु जिसकी बुद्धि दूषित होती है, वह विषयोंके निकट न होनेपर भी सदा उन्हींमें रहता है। जैसे पानी कमलके पत्तेमें नहीं सटता, उसी प्रकार अधर्म ज्ञानी पुरुषको नहीं लिप्त कर सकता; किंतु जिस तरह लाह काठमें अधिक चिपट जाती है, वैसे ही पाप अज्ञानी मनुष्यको विशेषरूपसे बाँधता है। अधर्म केवल फलप्रदानके अवसरकी प्रतीक्षा करता रहता है, वह कर्ताका त्याग नहीं करता। कर्ताको समय आनेपर उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। जो प्रमादवश ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले पापोंपर विचार नहीं करता तथा शुभ और अशुभमें आसक्त रहता है, उसे महान् भयकी प्राप्ति होती है। परंतु जो वीतराग होकर क्रोधको जीत लेता है और सदाचारका पालन करता है, वह विषयोंमें रहकर भी पाप नहीं करता। जैसे प्रवाहके सामने सुदृढ़ बाँध बाँध देनेपर जल बढ़ता है, उसी प्रकार जो धर्मकी बाँध बाँधकर मर्यादाके भीतर आबद्ध रहता है, उसका शक्ति-संचय बढ़ता ही रहता है, उसे कभी दु:ख नहीं उठाना पड़ता। जिस प्रकार शुद्ध सूर्यकान्तमणि सूर्यके तेजको ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार साधक समाधिके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको ग्रहण करता है। जैसे तिलका तेल भिन्न-भिन्न प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे वासित होकर अत्यन्त मनोरम गन्ध ग्रहण करता है, वैसे ही शुद्धचित्त पुरुषोंका सत्त्वगुण सत्पुरुषोंके सङ्गके अनुसार बढ़ता है; परंतु जिसकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त हो जाती है, उसे किसी तरह अपने हितका ज्ञान नहीं रहता। जैसे मछली काँटेमें गुँथे हुए मांसपर आकृष्ट होती है, उसी प्रकार वह सब प्रकारकी वासनाओंसे वासित चित्तके द्वारा विषयोंकी ओर आकृष्ट होकर दु:ख भोगता है। पुरुषके लिये धर्म करनेका कोई खास समय नियत नहीं है; क्योंकि मृत्यु किसीकी बाट नहीं जोहती। जब मनुष्य हमेशा मौतके मुखमें ही है, तो सदा धर्मका आचरण करते रहना ही उसके लिये शोभाकी बात है। जैसे अंधा प्रतिदिनके अभ्याससे ही सावधानीके साथ बाहरसे अपने घरमें आ जाता है,

उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य योगयुक्त चित्तके द्वारा उस परम गतिको प्राप्त कर लेता है। जन्ममें मृत्यु और मृत्युमें जन्म निहित है। जो मोक्ष-धर्मको नहीं जानता, वह अज्ञानी संसारमें आबद्ध होकर जन्म-मृत्युके चक्रमें घूमता रहता है। ज्ञानमार्गसे चलनेवालेको इहलोकमें भी सुख मिलता है और परलोकमें भी। विस्तार (अर्थात् अग्निहोत्र और बृहत्यज्ञ- यागादि कर्म) क्लेशसाध्य हैं तथा संक्षेप (यानी त्याग आदि साधन) सुखपूर्वक होनेवाले हैं। इनमेंसे कर्मविस्तार तो परार्थ हैं- अनात्मभूत स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं; किंतु त्याग आत्माका कल्याण करनेवाला माना गया है।

जैसे (पानीसे निकालते समय) कमलकी नालमें लगी हुई कीचड़ तुरंत धुल जाती है, उसी प्रकार त्यागी पुरुषका आत्मा मनके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मन आत्माको योग की ओर ले जाता है और योगी इस मनको योगयुक्त (आत्मामें लीन) करता है। इस प्रकार जब वह योगमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है तो उसे परमात्माका साक्षात्कार होने लगता है। जो परके लिये अर्थात् इन बाह्य इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये विषय-भोगोंमें प्रवृत्त होकर इसे अपना मुख्य कार्य समझता है, वह अपने वास्तविक कर्त्तव्यसे च्युत हो जाता है। जो विषय-भोगोंमें आसक्त है, वह कदापि मुक्त नहीं हो सकता। किंतु जो भोगोंको त्याग देता है, वही मुक्त होनेका निश्चय करता है। जैसे जन्मका अंधा रास्तेको नहीं देखता, वैसे ही शिश्नोदरपरायण एवं अज्ञानसे आवृत जीव मायारूप कुहासासे आच्छन्न होनेके कारण मोक्षके मार्गको नहीं समझ पाता। जैसे वैश्य समुद्रमार्गसे व्यापार करने जाकर अपने मूलधनके अनुसार द्रव्य कमाकर लाता है, उसी प्रकार संसार-सागरमें व्यापार करनेवाला जीव अपने कर्म और विज्ञानके अनुरूप उत्तम गति पाता है। दिन और रात्रिमय संसारमें बुढ़ापाका रूप धारण करके घूमती हुई मृत्यु समस्त प्राणियोंको उसी प्रकार खाती रहती है, जैसे साँप हवा पीया करता है। जीव जगत्में जन्म लेकर अपने पूर्वकृत कर्मोंका ही फल भोगता है। पूर्वजन्ममें कुछ किये बिना यहाँ किसीको इष्ट या अनिष्टकी प्राप्ति नहीं होती। मनुष्य सोता हो, बैठा हो, चलता हो या विषयभोगमें लगा हो, उसके शुभाशुर्भ कर्म हर समय साथ लगे रहते हैं। बीच समुद्रसे किनारे पहुँचकर फिर कोई उसमें तैरनेका साहस नहीं करता, उसी प्रकार संसार-सागरमे पार हुए जीवका फिर उसमें पड़ना असम्भव दिखायी देता है। जैसे समुद्रमें सब ओरसे बहुत-सी नदियाँ आकर मिलती हैं, उसी प्रकार मन योगके वशीभूत होकर मूलप्रकृतिमें लीन हो जाता है।

जिनका मन नाना प्रकारके स्नेहबन्धनमें जकड़ा हुआ है, वे अज्ञानके वशमें पड़े हुए जीव बालूके मकानकी तरह ढहकर नष्ट हो जाते हैं। जो देहधारी इस शरीरको ही घर और बाहर-भीतरकी पवित्रताको ही तीर्थ समझकर ज्ञानमार्गसे चलता है, उसे इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई-न-कोई संकल्प (मनोरथ) लेकर ही लोग मित्र बनते हैं, कुटुम्बीलोग भी किसी हेतुसे ही नाता रखते हैं, और तो क्या, स्त्री, पुत्र और सेवक भी अपने धनके ही भूखे होते हैं। माता-पिता भी किसीको कुछ नहीं देते। अपना किया हुआ दान ही परलोकके मार्गमें पाथेय (राहखर्च) का काम देता है। प्रत्येक जीव अपने कर्मका ही फल भोगता है। पूर्वजन्मके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म जीवनका अनुसरण करते हैं। कर्मफलको उपस्थित जानकर अन्तरात्मा अपनी बुद्धिको तदनुकूल प्रेरणा देता है। जो पूर्ण उद्योगका सहारा लेकर तदनुकूल सहायकोंका संग्रह करता है, उसका कोई भी कार्य अधूरा नहीं रहता।

८) सांख्य (ज्ञान) और योग- सांख्यमतके माननेवाले इसप्रकार बताते है कि सब प्रकारकी गतियोंको जानकर जो विषयोंसे विरक्त हो जाता है, वही देह-त्यागके अनन्तर मुक्त होता है, दूसरे किसी उपायसे मोक्ष मिलना असम्भव है। योग्य विद्वान प्रधानतया प्रत्यक्ष प्रमाणको ही माननेवाले होते है। दोनों ही मतोंका शिष्ट पुरुषोंने आदर किया है। दोनों ही परमगतिकी प्राप्ति करानेवाले है। बाहर-भीतरकी पवित्रता, तप, प्राणियोंपर दया और व्रतोंका पालन आदि बातें दोनों मतोंमें समान रूपसे स्वीकार की गयी है। योगी पुरुष केवल योगबलसे राग, मोह, स्नेह काम और क्रोध इन पाँच दोषोंपर

विजय प्राप्त कर परम पदको प्राप्त करता है। योगी अपने पापोंका नाश करनेवाले परमात्मापदको प्राप्त करते है। योगबल से सम्पन्न पुरुष लोभके बन्धन तोड़कर परम निर्मल कल्याणमय मार्ग (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं। निर्बल योगी महान योगके साधनसे दबकर नष्ट हो जाता है। योगीका भी योगबल बढ़ जानेसे जब वह महाशक्तिसम्पन्न हो जाता है तो उसका तेज प्रकाशित होने लगता है । तो उसमें भी समस्त जगत्को सुखा डालनेकी शक्ति आ जाती है। दुर्बल योगी विषयोंसे विचलित हो जाता है। योगका महान बल पाकर योगी भी समस्त विषयोंको रोक लेता है। योगशक्तिसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक प्रजापति, ऋषि, देवता और पञ्च महाभूतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। अमित तेजस्वी योगीके ऊपर क्रोधमें भरे हुए यमराज, अन्तक और भयंकर पराक्रम दिखानेवाली मौतका भी जोर नहीं चलता। वह योगबल पाकर अपने हजारों रूप बना सकता है और उन सबके द्वारा इस पृथ्वीपर विचर सकता है। फिर तेजको समेट लेनेवाले सूर्यकी भाँति वह उन सभी रूपोंको अपनेमें लीन करके उग्र तपस्यामें प्रवृत्त हो जाता है। बलवान् योगी बन्धन तोड़नेमें समर्थ होता है। जो योगी मनको परमात्माके ध्यानमें लगा देता है, वह निस्संदेह मोक्षको प्राप्त करता है। योगी भी योगयुक्त होकर आत्माको परमात्मामें स्थिर करता है। उस समय उसका आत्मा अत्यन्त निर्मल तथा सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है। योगके अनुसार तत्त्वको जाननेवाला पुरुष समाधिके द्वारा मनको परमात्मामें लगाकर देहका त्याग करनेके अनन्तर परम धाम को प्राप्त होता है। धारणाओंमें एकाग्रचित्त हुआ योगी परम पदको प्राप्त होता है। जो योगी समाधिके द्वारा आत्माको परमात्मामेंस्थित देख स्थिरभावसे बैठा रहता है, वह अपने पापको नष्ट करके पवित्र पुरुषोंको मिलनेवाले अविनाशी पदको प्राप्त होता है। योगके महान् व्रतमें एकाग्रचित्त रहनेवाला जो योगी नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षःस्थल, नाक, कान और नेत्र आदि स्थानोंमें धारणाके द्वारा आत्माको परमात्माके साथ युक्त करता है, वह अपने शुभाशुभ कर्मोंको शीघ्र ही भस्म कर डालता है और इच्छा करते ही उत्तम योगका आश्रय लेकर मुक्त हो जाता है। काम, क्रोध, शीत, उष्ण, वर्षा, भय, शोक, श्वास मनुष्योंको प्रिय लगनेवाले विषय, दुर्जय असंतोष, घोर तृष्णा, स्पर्श, निद्रा तथा आलस्यको जीतनेवाले वीतराग महाप्राज्ञ महात्मा पुरुष स्वाध्याय तथा ध्यानका सम्पादन करके बुद्धिके द्वारा परमात्माके सूक्ष्म स्वरूपका प्रकाश (साक्षात्कार) करते हैं। विद्वानोंने योगके इस महान पथको बहुत दुर्गम बताया है। यह बहुत सर्पों, कीड़े-मकोड़ों, गड्ढों और काँटोंसे भरे हुए निर्जल वनकी भाँति दुर्गम है, कोई-ही-कोई इस मार्गपर कुलशपूर्वक चल पाता है; किन्तु जिनका चित्त शुद्ध नहीं है ऐसे मनुष्योंका योगी धारणाओंमे स्थिर रहना नितान्त कठिन है। जो विधिपूर्वक योग-धारणाओंमें स्थिर रहता है, वह जन्म-मृत्यु, सुख और दुःखके बन्धनोंसे छुटकारा पा जाता है। योगसिद्ध महात्मा पुरुष यदि चाहे तो तुरंत ही मुक्त होकर परब्रह्मके स्वरूपको प्राप्त हो जाते है, वह अपने योग-बलसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, धर्म, कार्तिकेय तथा ब्रह्मपुत्र सनकादिकोंके विग्रहमेंप्रवेश कर सकता है। इसी प्रकार चन्द्रमा, विश्वेदेव, सर्प, पितर, वन, पर्वत, समुद्र, नदी, मेघ, नाग, वृक्ष, यक्ष, दिशा, गन्धर्व तथा स्त्री और पुरुषोंमेंसे प्रत्येकका स्वरूप धारण कर सकता है।

आत्मतत्त्वको जाननेवाले सांख्यशास्त्रके विद्वानोंका कहना है- कपिलमुनिके अनुसार, जो ज्ञानके द्वारा मनुष्य, पिशाच, राक्षस, यक्ष, सर्प, गन्धर्व, पितर, तिर्यग्योनि, गरुड, मरूद्गण, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, असुर, विश्वेदेव, देवर्षि, योगी, प्रजापति तथा ब्रह्माजीके भी सम्पूर्ण विषयोंको सदोष जानकर संसारके मनुष्योंकी परमायु तथा सुखके परम तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और विषयोंकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको समय-समय पर जो दुःख प्राप्त होते हैं उसको, तिर्यग्योनि और नरकमें पड़नेवाले जीवोंके दुःखको, स्वर्ग तथा वेदकी फलश्रुतियोंके गुण-दोषोंको जानकर ज्ञान, सांख्य और योगमार्गके गुण-दोषको भी समझ लेते हैं। प्रकृतिके तीनों गुणोंको ठीकसे जान लेते है। वे ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न और

मोक्षोपयोगी साधनोंके अनुष्ठानसे शुद्धचित्त हुए सांख्ययोगी परम मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। नेत्र रूपका, नासिका गन्धका, श्रोत्र शब्दका, जिव्हा रसका और त्वचा स्पर्शका आश्रय है। इसी प्रकार वायुका आश्रय आकाश, मोहका आश्रय तमोगुण और लोभका आश्रय इन्द्रियोंके विषय है। गतिका आधार विष्णु, बलका इन्द्र, उदरका अग्नि तथा पृथ्वीका आधार जल है। जलका तेज, तेजका वायु, वायुका आकाश, आकाशका महतत्त्व और महतत्त्वका अधिष्ठान बुद्धि है। बुद्धिका आश्रय तमोगुण, तमोगुणका आश्रय रजोगुण और रजोगुणका आश्रय सत्त्वगुण है। सत्त्वगुण प्रकृतिके आश्रयमें रहता है, प्रकृति जीवात्मामें और जीवात्मा परम तेजस्वी भगवान नारायणमें स्थित है। नारायणका आश्रय मोक्ष है, किंतु मोक्षका कोई आश्रय नहीं है। काम, क्रोध, भय, निद्रा और श्वास ये पाँच दोष समस्त शरीरधारियोंके भीतर देखे जाते है। सत्पुरुष क्षमासे क्रोधका, संकल्पके त्यागसे कामका, सत्त्वगुणके सेवनसे निद्राका, प्रमादके त्यागसे भयका तथा अल्पआहारके सेवनद्वारा श्वास-दोषका नाश करते हैं। संतानादिकी आसक्तिको दूर करके तप और विवेकरूपी शस्त्रसे राजस, तामस और सात्त्विक गंध आदि विषयों तथा स्पर्शेन्द्रियके देहाश्रित भोगोंकी आसक्तिको काट डालते हैं। वे जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकर परम निर्मल आकाशस्वरूप परमात्मामें प्रवेश कर जाते हैं। फिर वहाँसे संसारमें नहीं लौटते। यही उनकी परम गति है। जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित, सत्यवादी, सरल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले हैं, उन महात्माओंको ही ऐसी गति प्राप्त होती है। जो सांख्ययोगी पुण्य और पाप से रहित होकर प्रकृतिका भी अतिक्रमण करके मायासे परे, अविनाशी भगवान् नारायणको प्राप्त होता है। वे नारायण निर्विकार और निर्गुण परमात्मा है। उन्हें प्राप्त हो जानेपर जीवको फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। जो इस ज्ञानको जान लेता है उसको उत्तम गति प्राप्त होती है। इस ज्ञान के समान दूसरा कोई ज्ञान नहीं है। इसमें अक्षर, ध्रुव एवं पूर्ण सनातन ब्रह्मका ही प्रतिपादन हुआ है। वह ब्रह्म आदि, मध्य और अन्तसे रहित, द्वन्द्वोंसे अतीत, शाश्वत, कूटस्थ और नित्य है। उसीसे जगत्की उत्पत्ति और प्रलयरूप विकार होते हैं। समस्त ब्राह्मण, देवता और शान्तचित्त पुरुष उसी अनन्त, अच्युत परब्रह्म परमात्माकी प्रार्थना और स्तुति करते हैं। योगमें उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए योगी तथा अपार ज्ञानवाले योगी पुरुष भी उसीका गुणगान करते हैं। सांख्यज्ञानी शरीरत्यागके पश्चात् ब्रह्ममें प्रवेश करते हैं। सांख्यज्ञान अत्यन्त विशाल और परम प्राचीन है।

योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और योगको एक समझता है वही बुद्धिमान है। जैसे बीजसे बीजकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार द्रव्यसे द्रव्य, इन्द्रियसे इन्द्रिय और देहसे देहकी प्राप्ति होती है। परमात्मा तो देहसे रहित निर्गुण है। आकाश आदि गुण सत्त्वादि गुणोंसे उत्पन्न होते और उन्हींमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सत्त्वादि गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होते हैं। आत्मा तो जन्म-मृत्युसे रहित, अनन्त, सबका द्रष्टा और निर्विकार है। निर्गुण आत्मामें गुण कैसे रह सकते हैं? अत: सांख्य और योगके विद्वान कहते हैं जो सत्त्वादि गुणोंसे रहित, अव्यक्त, नियामक, निर्गुण, अन्तर्यामी, नित्य और सबका अधिष्ठाता है, वह परमात्मा प्रकृति और उसके गुणोंसे विलक्षण तत्त्व हैं। जिस समय ज्ञानी पुरुष इस अव्यक्त तत्त्वको ठीक-ठीक समझ लेते हैं, उस समय उन्हें ब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है। सदा एक रूपमें स्थित रहनेवाला परमात्मा अक्षर है और नाना रूपमें प्रतीत होनेवाला जगत् क्षर कहलाता है।

योगका प्रधान कर्त्तव्य है ध्यान, यही योगियोंका परम बल है। योगके विद्वान मनकी एकाग्रता और प्राणायाम- ये ध्यानके दो भेद बतलाते हैं। प्राणायाम भी सगुण और निर्गुणभेदसे दो प्रकारका है। मलत्याग, मूत्रत्याग और भोजन- इन तीन कालोंको छोड़कर बाकी समयमें योगाभ्यास करना चाहिये। योगका साधक मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर शुद्धभावसे स्थित हो जाय और मनीषी पुरुषोंने जिन्हें चौबीस तत्त्वोंसे परे अविनाशी बतलाया है, उस परमात्माका ध्यान

करे। उसे सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके मिताहारी और जितेन्द्रिय होना चाहिये तथा रात्रिके पहले और पिछले भागमें मनको आत्मामें एकाग्र करना चाहिये। जब योगी मनके द्वारा सम्पूर्ण इन्द्रियोंको और बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर करके पत्थरकी भाँति अविचल हो जाय, सूखे काठकी भाँति निष्कम्प और पर्वतकी तरह स्थिर रहे, तभी वह योगयुक्त कहलाता है। जिस समय उसे सुनने, सूँघने, स्वाद लेने, देखने और स्पर्श करनेका ज्ञान नहीं रहता, जब मनमें किसी प्रकारका संकल्प नहीं उठता तथा काष्ठकी भाँति स्थित होकर वह किसी भी वस्तुका अभिमान या सुध-बुध नहीं रखता, उसी समय उसे अपने शुद्ध स्वरूपको प्राप्त एवं योगयुक्त कहते हैं। उस अवस्थामें वह वायुरहित स्थानमें बिना हिले-डुले जलनेवाले दीपककी भाँति निश्चलभावसे प्रकाशित होता है। लिङ्गशरीरसे उसका कोई सम्पर्क नहीं रहता। ऐसे योगसिद्ध पुरुषकी ऊपर-नीचे अथवा मध्यमें कहीं भी गति नहीं होती। ध्याननिष्ठ योगीको अपने हृदयमें धूमरहित अग्नि, किरणमालाओंसे मण्डित सूर्य और बिजलीके समान तेजस्वी आत्माका साक्षात्कार होता है।

अब सांख्यका वर्णन इसप्रकार है- प्रकृतिवादी विद्वान मूल प्रकृतिको अव्यक्त कहते हैं, उससे दूसरा तत्त्व प्रकट हुआ जिसे महत्तत्त्व कहते हैं, महत्तत्त्वसे अहंकार नामक तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति हुई है, अहंकारसे सूक्ष्म भूतोंकी पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) प्रकट हुई हैं। इन आठोंको प्रकृति कहते हैं, इनसे सोलह तत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है, जिन्हें विकार या विकृति कहते हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और पाँच स्थूल भूत- ये ही सोलह विकार हैं। सांख्यशास्त्रके विद्वानोंका कहना है कि ये प्रकृति और उसके विकार ही सांख्यशास्त्रके चौबीस तत्त्व हैं। जो तत्त्व जिससे उत्पन्न होता है, उसका उसीमें लय भी होता है। प्रकृति परमात्माके संनिधानसे अनुलोमक्रमके अनुसार तत्त्वोंकी रचना करती है (अर्थात् प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे सूक्ष्म भूत आदिके क्रमसे सृष्टि होती है); किंतु उनका संहार विलोमक्रमसे होता है (अर्थात् पृथ्वीका जलमें, जलका तेजमें, तेजका वायुमें लय होता है, इस तरह सभी तत्त्व अपने-अपने कारणमें लीन होते हैं)। जैसे समुद्रसे उठी हुई लहरें फिर उसीमें शान्त हो जाती हैं, उसी तरह सम्पूर्ण तत्त्व अनुलोमक्रमसे उत्पन्न होकर विलोमक्रमसे लीन होते हैं। इस प्रकार प्रकृतिसे ही जगत्की उत्पत्ति और उसीमें उसका लय होता है, इतना ही सृष्टि और प्रलयका विषय है। तत्त्ववेत्ता पुरुषको इसी प्रकार प्रकृतिके एकत्व और नानात्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये (प्रलयकालमें तो वह एक रूपमें रहती है और सृष्टिके समय नाना रूप धारण करती है)। इसी तरह पुरुष भी प्रलयकालमें एक ही रूपमें रहता है, किंतु सृष्टिके समय प्रकृतिको प्रेरित करनेके कारण उसकी ही अनेकतासे वह स्वयं भी अनेक-सा प्रतीत होता है। परमात्मा ही प्रकृतिको नाना रूपोंमें परिणत करता है। प्रकृति और उसके विकारको क्षेत्र कहते हैं। समस्त क्षेत्रोंका अधिष्ठान होनेके कारण ही उसे अधिष्ठाता कहते हैं। वह अव्यक्तसंज्ञक सम्पूर्ण क्षेत्रोंको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ कहलाता है और प्राकृत शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट है, इसलिये पुरुष नाम धारण करता है; वास्तवमें क्षेत्र अन्य वस्तु है और क्षेत्रज्ञ अन्य। क्षेत्र अव्यक्त (प्रकृति) है और क्षेत्रज्ञ उसका ज्ञाता पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा है। यही सांख्यदर्शन है। सांख्यवादी प्रकृतिको ही जगत्का कारण मानते हैं और इसके चौबीस तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करते हैं, फिर उससे भिन्न जो पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा है, उसका ज्ञान होता है। जिस समय पुरुष अपनेको प्रकृतिसे भिन्न जान लेता है, उस समय वह केवल ब्रह्मरूपमें स्थित हो जाता है। जो इसे इस प्रकार जानते हैं वे समस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। इसके अनुसार ज्ञान प्राप्त करनेवालोंकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती, वे परापरस्वरूप अविनाशी अक्षरभावको प्राप्त होते हैं। जिनकी बुद्धि नानात्वका दर्शन करती है, वे सम्यग् ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते, ऐसे लोगोंको बारंबार शरीर धारण करना पड़ता है। सम्पूर्ण जगत्को अव्यक्त कहते हैं और पच्चीसवाँ तत्त्व आत्मा उससे भिन्न हैं, जो उसे जानते हैं उन्हें आवागमनका भय नहीं रहता।

धर्म ही सत्पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा धर्म ही उनका आश्रय है। तीनों लोकके चराचर प्राणी धर्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। जैसे ज्ञानका फल चाहनेवालेके लिये ज्ञानसे परिचित होना आवश्यक है, उसी प्रकार धर्मका फल चाहनेवालेको भी धर्मका परिचय प्राप्त करना चाहिये। दुष्ट पुरुष यदि धर्मकी इच्छा करे तो भी उसके द्वारा विशुद्ध कर्मका सम्पादन होना कठिन हो जाता है और साधुपुरुष यदि धर्मानुष्ठानकी इच्छा करे तो उसके लिये कठिन-से-कठिन कर्म भी सहज हो जाते हैं। वनमें रहकर भी जो ग्रामीण सुखका उपभोग करना चाहता है, उसको ग्रामीण ही समझना चाहिये तथा गाँवमें रहकर भी जो वनवासी मुनियोंके-से बर्ताव में ही सुख मानता है, उसकी गिनती वनवासियोंमें ही करनी चाहिये। प्रतिदिन नियम और पवित्रताका पालन करते हुए अच्छे देश और कालमें साधु पुरुषोंको प्रार्थना और सत्कारपूर्वक अधिकसे अधिक दान करना चाहिये। और उनमें दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये, शुभकर्मोंद्वारा प्राप्त हुआ धन सत्पात्रको अर्पण करना चाहिये, क्रोध त्याग कर दान देना चाहिये, देनेके बाद पश्चात्ताप अथवा दानका बखान नहीं करना चाहिये। दयालु, पवित्र, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, सरल, योनि और कर्मसे शुद्ध वेदवेत्ता ब्राह्मण ही दानके लिये उत्तम पात्र है। अपनी ही जातिके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई पतिद्वारा सम्मानित पतिव्रता स्त्री उत्तम योनि मानी गयी है। इसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका विद्वान होकर सदा छः कर्मों (यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह) का अनुष्ठान करनेवाला ब्राह्मण कर्मसे शुद्ध एवं उत्तम पात्र बताया गया है। इस प्रकार देश, काल और पात्रका विचार करके दिये हुए दानसे धर्म होता है और देश-कालादिका विचार न करनेपर पात्र और क्रियाकी विशेषतासे वही दान दाताके लिये अधर्मके रूपमें परिणत हो जाता है। जो मनुष्य अपने दोषोंका नाश करके धर्मका आचरण करता है, उसको धर्म परलोकमें सुख पहुँचाता है, सभी प्राणियोंके मनमें अच्छे और बुरे विचार रहते हैं, मनुष्यको चाहिये कि चित्तको अशुभ विचारोंकी ओरसे हटाकर शुभ विचारोंमें लगावे। अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सबके द्वारा सब जगह किये जानेवाले सब प्रकारके कर्मोंका आदर करे, अपने मनको स्थिर करो, बुद्धिमान और शान्त बनो तथा प्राज्ञ पुरुषोंके समान आचरण करो। जो सत्पुरुषोंका सङ्ग करता है उसे उन्हींके प्रतापसे ऐसे उपायकी प्राप्ति हो सकती है जो इस लोक और परलोकमें भी कल्याण करनेवाला हो। धृति (मनकी स्थिरता) ही कल्याणका मूल है, राजर्षि महाभिष धृतिमान न होनेके कारण ही स्वर्गसे नीचे गिरे और राजा ययाति पुण्य क्षीण हो जानेके बाद भी धृतिके ही बलसे उत्तम लोकोंको प्राप्त हुए। तुम भी धर्मज्ञ एवं तपस्वी विद्वानोंकी सेवा करो, इससे तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी और तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति हो जायगी।

याज्ञवल्क्यमुनिने राजा जनकसे कहा, प्रकृतियाँ आठ हैं और उनके विकार सोलह। अध्यात्मशास्त्रके विद्वानोंने अव्यक्त, महत्तत्त्व, अहंकार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज इन आठ तत्त्वोंको प्रकृति बतलाया है। अब प्रकृतिके विकारोंको जानो- आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, वाक्, हाथ, पैर, गुदा, लिङ्ग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध- इनमेंसे हस्तपादादि कर्मेन्द्रियाँ और शब्द-स्पर्शादि विषय विशेष कहलाते हैं तथा नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियोंको सविशेष कहते हैं, ये सब मिलकर पंद्रह हैं और इनके साथ सोलहवाँ मन हैं, ये ही सोलह विकार कहे गये हैं। अव्यक्त प्रकृतिसे महतत्त्व (समष्टिबुद्धि) की उत्पत्ति होती है, इसे विद्वान पुरुष पहली और प्राकृत सृष्टि कहते हैं। महत्तत्त्वसे अहंकार प्रकट होता है, यह दूसरा सर्ग है, जिसे बुद्ध्यात्मक सृष्टि कहते हैं। अहंकारसे मन प्रकट होता है, जिसे तीसरी आहंकारिक सृष्टि कहते हैं। मनसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए हैं, इसे चौथी मानसी सृष्टि कहते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध- ये पाँच विषय पञ्चभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण भौतिक सर्ग कहलाते हैं, यह पाँचवी सृष्टि हैं। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राणेन्द्रियको छठा सर्ग कहते हैं, यह बहुचिन्तात्मक (मानस) सृष्टि है। श्रोत्र आदिके बाद कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, यह सातवाँ

सर्ग है। यह ऐन्द्रियक सृष्टि है। तदनन्तर, प्राणवायुके साथ ही समान, व्यान और उदानका ऊपरी भाग प्रकट हुआ, यह आठवाँ सर्ग है। तत्पश्चात् अपानवायुके साथ समान, व्यान और उदारका निम्न भाग उत्पन्न हुआ, इसे नवम सर्ग कहते हैं। आठवें और नवें सर्गका नाम आर्जवक सृष्टि है।

ब्रह्माजी जब देखते हैं कि मेरे दिनका अन्त हो गया तो उनके मनमें रातको शयन करनेकी इच्छा होती है, इसलिये वे अहंकारके अभिमानी देवता रुद्रको संहारके लिये आज्ञा देते हैं, उस समय वे रुद्रदेव ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर प्रचण्ड सूर्यका स्वरूप धारण करते हैं और अपने बारह स्वरूप बनाकर अग्निके समान प्रज्वलित हो उठते हैं। तत्पश्चात् अपने तेजसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज- इन चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए सम्पूर्ण जगत्को भस्म कर डालते हैं। पलक मारते-मारते चराचर विश्वका नाश हो जाता है। इसके बाद अमित बलवान रुद्र जलनेसे बची हुई पृथ्वीको जलके महान प्रवाहमें डुबो देते हैं। तदनन्तर, कालाग्निकी लपटमें पड़कर सारा जल सूख जाता है। पानीके सूखते ही आग अत्यन्त भयानक रूप धारण करती है और सब ओर बड़े जोरसे प्रज्ज्वलित हो उठती है। तब अत्यन्त बलवान वायुदेव अपने आठों रूपोंमें प्रकट होकर उस प्रचण्ड वेगसे जलती हुई आगको निगल जाते हैं और ऊपर-नीचे तथा बीचमें सब ओर प्रवाहित होने लगते हैं। तदनन्तर, वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको अहंकार, अहंकारको महत्तत्त्व और महत्तत्त्वको प्रजापति शम्भु अपना ग्रास बना लेते हैं। ये शम्भु अणिमा, लघिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियोंसे सम्पन्न, सबके ईश्वर, ज्योति:स्वरूप तथा अविकारी हैं। वे सब ओर हाथ-पैरोंवाले, सब ओर आँख, मस्तक और मुखवाले तथा सब ओर कानवाले हैं, ये सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं। ये सब प्राणियोंके हृदयस्थित आत्मा, अनन्त, परम महान् और सर्वेश्वर हैं तथा ये ही सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें लीन करते हैं। इस प्रकार सबके अन्तमें सर्वस्वरूप, अक्षय, अव्यय, छिद्ररहित, भूत-भविष्य-वर्तमानके स्रष्टा और सब प्रकारके दोषोंसे रहित परमेश्वर ही शेष रहते हैं।

प्रकृति स्वतन्त्रतापूर्वक खेल करनेके लिये अपनी ही इच्छासे सैकड़ों और हजारों गुणोंको उत्पन्न करती हैं। जैसे मनुष्य एक दीपकसे हजारों दीपक जला लेते हैं, उसी प्रकार प्रकृति पुरुषके एक-एक गुणसे अनेकों गुण उत्पन्न कर देती है। आनन्द, प्रीति, मन और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, सुख, शुद्धि, आरोग्य, संतोष, श्रद्धा, दीनता और क्रोधका अभाव, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य उऋण होना, मृदुता, लज्जा, चपलताका अभाव, शौच, सरलता, सदाचार, अलोलुपता, हृदयमें सम्भ्रमका न होना, इष्ट-अनिष्टके वियोगका बखान न करना, दानके द्वारा मनको वशमें रखना, किसी वस्तुकी इच्छा न करना, परोपकार तथा सब प्राणियोंपर दया करना- ये सब गुण सत्त्वगुणसे उत्पन्न होते हैं। रूप, ऐश्वर्य, विग्रह, त्यागका अभाव, निर्दयता, सुख-दु:खके सेवनमें आसक्ति, पर-निन्दामें प्रीति, झगड़े मोल लेनेका स्वभाव, अहंकार, माननीय पुरुषोंका सत्कार न करना, चिन्ता, वैर बाँधना, संताप करना, दूसरोंका धन हड़प लेना, निर्लज्जता, कुटिलता, भेदबुद्धि, कठोरता, काम, मद, दर्प और द्वेष ये रजोगुणके कार्य बतलाये गये हैं। मोह, अप्रकाश (अज्ञान), तामिस्र (क्रोध), अन्धतामिस्र (मरण), बहुत तरहकी खानेकी चीजोंमें रुचि रखना, भोजनसे संतोष न होना, पीने योग्य वस्तुओंसे मन न भरना, सुगन्ध, वस्त्र, शय्या, आसन, विहार, दिनमें शयन, अधिक बकवाद और प्रमादमें मन लगाना, नाचगान और बाजेमें प्रेम रखना तथा धर्मसे द्वेष करना- ये सब तामस गुण समझने चाहिये।

सत्त्व, रज और तम- ये तीन प्रकृतिके गुण है। सात्त्विक पुरुषको उत्तम, रजोगुणीको मध्यम और तमोगुणी को अधम स्थानकी प्राप्ति होती है, केवल पुण्य करनेसे मनुष्य ऊर्ध्वलोकमें गमन करता है, पुण्य और पाप दोनोंके अनुष्ठानसे मर्त्यलोकमें जन्म लेता है तथा केवल पापाचार करनेपर उसे अधोगति (नरक) में गिरना पड़ता है। सत्त्वगुणके साथ

रजोगुण, रजोगुणके साथ तमोगुण अथवा तमोगुणके साथ सत्त्वगुणका मेल देखा जाता है। केवल सत्त्वगुणसे युक्त मनुष्यको देवलोककी प्राप्ति होती है, रजोगुण और सत्त्वगुण दोनोंसे युक्त होनेपर वह मनुष्य-योनिमें जन्म पाता है तथा रजोगुण और तमोगुणसे युक्त जीवको तिर्यग्योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जिसमें तीनों गुणोंका संयोग रहता है, उसका भी मनुष्ययोनिमें ही जन्म होता है; किंतु जो पुण्य और पापसे रहित होते हैं, उन महात्माओंको अक्षय, अविकारी, अमृतमय एवं सनातन स्थानकी प्राप्ति होती है। वह उत्तम पद ज्ञानियोंको ही सुलभ होता है।

तत्त्वदर्शी महात्मा कहते हैं, जिसका गुणोंके साथ सम्यक हैं वह गुणवान् है तथा जो गुणोंके संसर्गसे रहित है, वह निर्गुण कहलाता है। अव्यक्त प्रकृति स्वभावसे ही गुणवती है, वह गुणोंका अतिक्रमण नहीं कर सकती। उसे किसी वस्तुका ज्ञान नहीं होता। इसके विपरीत पुरुष स्वभावसे ही ज्ञानी है, वह सदा इस बातको जानता रहता है कि मेरे सिवा दूसरा कोई चेतन पदार्थ नहीं है। अत: क्षर होनेके कारण प्रकृति अचेतन (जड़) है और नित्य तथा अक्षर होनेके कारण पुरुष चेतन है। किंतु जबतक वह अज्ञानवश बारंबार गुणोंका संसर्ग करता और अपने असङ्ग स्वरूपको नहीं जानता है, तबतक उसकी मुक्ति नहीं होती है। वह अपनेको प्रकृति (प्रजा) का कर्ता माननेके कारण प्रकृतिधर्मी कहलाता है। स्थावर पदार्थोंके बीजोंको उत्पन्न करनेके कारण उसे बीजधर्मा कहते हैं तथा वह गुणोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयका कर्ता होनेसे गुणधर्मा कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्रको जाननेवाले सिद्ध यति साक्षी और अद्वितीय होनेके कारण पुरुषको केवल (प्रकृतिके सङ्गसे रहित) मानते हैं। उसे सुख-दु:खका अनुभव तो अभिमानके कारण होता है, वह कारणरूपसे नित्य और अव्यक्त है तथा कार्यरूपसे नित्य और व्यक्त है। सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले और केवल ज्ञानका सहारा लेनेवाले कुछ सांख्यके विद्वान प्रकृतिको एक और पुरुषको अनेक मानते हैं। पुरुष प्रकृतिसे भिन्न और नित्य है तथा अव्यक्त (प्रकृति) पुरुषसे भिन्न एवं अनित्य है। जो प्रकृति और पुरुषको एक-दूसरेसे भिन्न नहीं जानते, वे बारंबार घोर नरकमें पड़ते हैं।

सांख्यके समान कोई ज्ञान नहीं है और योगके समान दूसरा कोई बल नहीं है, दोनोंका लक्ष्य एक है और दोनों ही मृत्युका नाश करनेवाले हैं। जो इन दोनों शास्त्रोंको सर्वथा भिन्न मानते हैं, वे अज्ञानी हैं। योगी जिस तत्त्वका साक्षात्कार करते हैं, सांख्यके विद्वान भी उसीका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो सांख्य और ज्ञानको एक समझता है वही तत्त्ववेत्ता है। योग-साधनामें रुद्र (प्राणशक्ति) की प्रधानता है; प्राणको अपने वशमें कर लेनेपर योगी इसी शरीरसे सब दिशाओंमें स्वच्छन्द विचरण कर सकते हैं। जबतक योगीका स्थूल शरीर रहता है तबतक वह योगबलसे सूक्ष्म शरीरके द्वारा लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करता है। स्थूल देहको त्याग देनेपर उसे परम सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। मनीषी पुरुषोंका कहना है कि वेदमें स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारके योगोंका वर्णन है। स्थूल योग अणिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है और सूक्ष्म योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- इन) आठ गुणों (अंगों) से युक्त है। योगका प्रधान कर्त्तव्य है प्राणायाम, जो सगुण और निर्गुणभेदसे दो प्रकारका होता है। मनकी धारणाके साथ किया जानेवाला प्राणायाम सगुण है और प्राणों (इन्द्रियों) के निग्रहपूर्वक मनको समाधिमें एकाग्र करना निर्गुण प्राणायाम कहलाता है। सगुण प्राणायाम मनको निर्गुण (वृत्तिशून्य) करके स्थिर करनेमें सहायक होता है। इस तरह (प्राणायामके द्वारा) मनको वशमें करके शान्त और जितेन्द्रिय होकर एकान्तमें करनेवाले आत्माराम ज्ञानीको परमात्माका ध्यान करना चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध- ये इन्द्रियोंके पाँच दोष हैं, इन दोषोंको दूर करे। फिर सम्पूर्ण इन्द्रियोंको मनमें स्थिर करके लय और विक्षेपको शान्त करे। मनको अहंकारमें, अहंकारको बुद्धिमें और बुद्धिको प्रकृतिमें स्थापित करे। इस

प्रकार सबका लय करके केवल उस परमात्माका ध्यान करना चाहिये, जो रजोगुणसे रहित, निर्मल, नित्य, अनन्त, शुद्ध, छिद्ररहित, कूटस्थ, अन्तर्यामी, अभेद्य, अजर, अमर, अविकारी, सबका शासन करनेवाला और सनातन ब्रह्म है।

योगयुक्त पुरुषके चित्तमें सदा प्रसन्नती बनी रहती हैं। वह समाधिसे विरत नहीं होना चाहता, यही उसकी प्रसन्नता की पहचान है। समाधिनिष्ठ योगी भी स्थिर होता है। अनेकों विक्षेप आनेपर भी योगी विचलित नहीं होता। शोरगुल, तरह तरहके गाने बजाने, ध्वनि इत्यादि से उसका ध्यान भंग नहीं होता। एकाग्रचित्त योगी इन्द्रियोंकी स्थिरताके कारण समाधिसे विचलित नहीं होता। जो अच्छी प्रकार समाधिमें स्थिर हो जाता है वह अविनाशी परब्रह्मका साक्षात्कार करता है।

एक समय वेदान्त ज्ञानमें कुशल विश्वावसु नामक गन्धर्व को याज्ञवल्क्य मुनिने बताया- समस्त भूत जिससे उत्पन्न होते और जिसमें ही लीन हो जाते हैं, उस वेदप्रतिपाद्य ज्ञेय परमात्माको जो नहीं जानते, वे बारंबार जन्म लेते और मरते रहते हैं। साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़कर भी जिसे वेदवेद्य परमेश्वरका ज्ञान नहीं हुआ तथा वेदवेत्ता होकर भी जिसने वेद्य-अवेद्यका तत्त्व नहीं जाना, वह मूर्ख केवल शास्त्र-ज्ञानका बोझ ढोनेवाला है। पुरुषको तत्पर होकर बुद्धिके द्वारा प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये; जिससे बारंबार उसे जन्म-मरणके चक्करमें न पड़ना पड़े। संसारमें जन्म-मरणकी परम्परा कभी नहीं टूटती और वैदिक कर्मकाण्डमें बताये हुए सभी कर्म नश्वर हैं- यह सोचकर नाशवान् कर्मोंको त्याग दें और अक्षयधर्मके सेवनमें संलग्न हो जाय। जो पुरुष सदा परमात्माके स्वरूपका विचार करता है, वह प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त होकर छब्बीसवें तत्त्वरूप परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। अज्ञानी मनुष्य पच्चीसवें तत्त्वरूप जीवात्मा और सनातन परमात्माको भिन्न-भिन्न मानते हैं; किंतु साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें दोनों एक हैं। परमपदकी इच्छा रखनेवाले सांख्यके विद्वान और योगी भी जन्म और मृत्युके भयसे जीवात्मा और परमात्मामें भेददृष्टि नहीं रखते।

विश्वावसुने याज्ञवल्क्य मुनिसे कहा, मुझे आपने जीवात्माको परमात्मासे अभिन्न बतलाया है। जीवात्मा परमात्मा है या नहीं इस विषय में संदेह है। मैंने मुनिवर जैगीव्यय, असित देवल, पराशन, वार्षगण्य, भृगु, पञ्चशिख, कपिल, शुक्र, गौतम, आर्ष्टिषेण, गर्ग, नारद, आसुरि, पुलस्त्य, सनत्कुमार तथा अपने पिता कश्यपजीके मुखसे भी पहले इस विषयका प्रतिपादन सुना था। उसके बाद रुद्र, विश्वरूप, अन्यान्य देवता, पितर तथा दैत्योंसे इसका ज्ञान प्राप्त किया। ये सब विद्वान ज्ञेय तत्त्वको पूर्ण और नित्य बतलाते हैं। आप विद्वानोंमें श्रेष्ठ, शास्त्रोंके वक्ता व अत्यन्त बुद्धिमान हैं। वेदोंमें आप निष्णात हैं। आपने सम्पूर्ण सांख्य और योगशास्त्रका ज्ञान प्राप्त किया है। मेरा संदेह दूर करने में आप समर्थ हैं।

याज्ञवल्क्य मुनिने कहा, प्रकृति जड़ है, उसे पच्चीसवाँ तत्त्व- जीवात्मा जानता है, किंतु वह जीवात्माको नहीं जानती। सांख्य और योगके विद्वान प्रकृतिको प्रधान कहते हैं। साक्षी पुरुष विवेकदृष्टिसे चौबीसवें तत्त्व- प्रकृतिको, पच्चीसवें अपनेको और छब्बीसवें परमात्मा को देखता है। किंतु यदि जीवात्मा यह अभिमान करता है कि मुझसे बढ़कर कोई नहीं है, तो वह देखता हुआ भी परमात्माको नहीं देख पाता; किंतु परमात्मा सदा देखते रहते हैं। जब जीवात्माको यह ज्ञान हो जाता है कि मैं भिन्न हूँ और प्रकृति मुझसे सर्वथा भिन्न है, तब वह उससे असङ्ग होकर छब्बीसवें तत्त्वरूप परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है और जब उसे परमात्माका दर्शन हो जाता है, उस समय वह सर्वज्ञ विद्वान होकर पुनर्जन्मके बन्धनसे सदाके लिये छुटकारा पा जाता है।

जिसे अव्यक्त प्रकृतिका ज्ञान न हो, उस पुरुषको यज्ञोंका अनुष्ठान और तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। स्वाध्याय, तप अथवा यज्ञसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, (ये तो उनके तत्त्वको जाननेमें सहायक होते हैं)। इनके द्वारा परमात्माको जानकर मनुष्य महिमान्वित होता है। महत्तत्त्वकी उपासना करनेवाले महत्तत्त्वको और अहंकारके उपासक अहंकारको प्राप्त

होते हैं; किंतु महत्तत्त्व और अहंकारसे भी श्रेष्ठ कोई स्थान है, जिसको प्राप्त करना सबके लिये आवश्यक है। जो शास्त्रके अनुसार चलनेवाले हैं, वे ही प्रकृतिसे पर, नित्य, जन्म-मरणसे रहित, मुक्त एवं सदसत्स्वरूप परमात्माका ज्ञान प्राप्त करते हैं।

९) व्यासजीका शुकदेव मुनिको वैराग्य का उपदेश

शुकदेवको सर्वथा निर्भय और सामान्य पुरुषोंका-सा आचरण करते देख महर्षि व्यासने उन्हें सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कराया और कहा, पुत्र। तुम सर्वदा जितेन्द्रिय रहकर धर्मका सेवन करो; गर्मी-सर्दी और भूख-प्यासको सहन करते हुए प्राणोंपर विजय प्राप्त करो; सत्य, सरलता, अक्रोध, अदोषदर्शन, जितेन्द्रियता, तपस्या, अहिंसा और अक्रूरता आदि धर्मोंका विधिवत् पालन करो; सत्यपर डटे रहो तथा सब प्रकारकी कुटिलता छोड़कर धर्ममें अनुराग करो। देवता और अतिथियोंका सत्कार करके जो अन्न बचे उसीसे अपने प्राणोंकी रक्षा करो। यह शरीर जलके फेनकी तरह क्षणभङ्गुर है, इसमें जीव पक्षीकी तरह बसा हुआ है और यह प्रियजनोंका सहवास भी सदा रहनेवाला नहीं है; फिर भी तुम क्यों सोये पड़े हो? तुम्हारे शत्रु सर्वदा सावधान, जगे हुए और तुम्हारे छिद्रोंको देखनेमें लगे हुए हैं; परंतु तुम्हें बच्चोंकी तरह कुछ होश ही नहीं है। दिन बीते जा रहे हैं और तुम्हारी आयु भी प्रतिदिन क्षीण हो रही है; इस तरह जीवन समाप्त हो रहा है, फिर भी तुम सावधान नहीं होते। नास्तिकलोग परलोकसम्बन्धी कार्योंकी ओरसे तो सोये पड़े रहते हैं, वे सर्वदा मांस और रक्तको बढ़ानेवाले संसारी धंधोंमें ही लगे रहते हैं। जो बुद्धिके व्यामोहमें डूबे हुए पुरुष धर्मसे द्वेष करते हैं और सदा कुपथमें ही चलते हैं, उनके अनुयायियोंको भी दु:ख भोगना पड़ता है। इसलिये जो धर्मबलसे सम्पन्न महापुरुष संतुष्ट और श्रुतिपरायण रहकर सर्वदा धर्मपथपर ही आरूढ़ रहते हैं, तुम तो उन्हींकी सेवा करो और उन्हींसे अपना कर्त्तव्य पूछो। उन धर्मदर्शी विद्वानोंका मत मालूम करके तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे अपने कुपथगामी मनको काबूमें करो। जिनकी केवल वर्तमान सुखपर ही दृष्टि रहती है, उसका भावी परिणाम जिनके लिये बहुत दूर है और जिन्हें किसी प्रकारका भय नहीं है, वे सर्वभक्षी बुद्धिहीन पुरुष कर्त्तव्याकर्त्तव्यको नहीं देख पाते। तुम धर्मरूप सीढ़ीके पास पहुँचकर धीरे-धीरे उसपर चढ़ते जाओ। यदि तुम रेशमके कीड़ेकी तरह अपनेको वासनाओंसे लपेटते रहोगे तो कभी चेत नहीं सकोगे। जो नास्तिक और धर्ममर्यादाका भंग करनेवाला हो, उस पुरुषको तुम नि:शम होकर उखाड़े हुए बाँसकी तरह त्याग दो। काम, क्रोध, मृत्यु और जिसमें पाँच इन्द्रियरूप जल भरा हुआ है, ऐसी विषयआशारूप नदीको तुम सात्त्विकी धृतिरूप नौकापर चढ़कर पार कर लो और इस प्रकार जन्मरूप दुर्गम पथसे पार हो जाओ। सारा संसार मृत्युसे व्याप्त और वृद्धावस्थासे परिपीड़ित है, इसे तुम धर्ममयी नौकापर चढ़कर पार कर लो। मनुष्य बैठा हो अथवा सो रहा हो, मृत्यु उसे खोज ही लेती है। इस प्रकार जब मृत्यु अकस्मात् तुम्हारा नाश करनेवाली है तो तुम चैनसे कैसे बैठे हो? मनुष्य भोगसामग्रियोंके संचयमें लगा ही रहता है, उससे उनकी तृप्ति होने भी नहीं पाती कि भेड़िया जैसे भेड़के बच्चेको उठा ले जाय, उसी प्रकार मौत उसे उठा ले जाती है। यदि तुम्हें इस संसाररूप अन्धकारमें प्रवेश करना है तो हाथमें धर्मबुद्धिरूप प्रज्ज्वलित दीपक ले लो। जीवको अनेकों योनियोंमें जाते-जाते जैसे-तैसे मानवयोनिमें आकर यह ब्राह्मण-शरीर मिलता है; इसलिये पुत्र। इसे सफल करना चाहिये। ब्राह्मणका शरीर भोगनेके लिये नहीं होता। उसे यहाँ तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और मरनेपर अनन्त सुख भोगनेके लिये रचा गया है। ब्राह्मण-शरीर बहुत समयतक तपस्या करनेपर मिलता है। वह मिल जाय तो विषयानुरागमें फँसकर उसे बर्बाद नहीं करना चाहिये; बल्कि सर्वदा स्वाध्याय, तपस्या और इन्द्रियनिग्रहमें तत्पर रहकर कुशल कर्मोंमें लगे रहना चाहिये। मनुष्योंका आयुरूप घोड़ा दौड़ा चला जा रहा है। इसका स्वभाव अव्यक्त है, कलाकाष्ठादि इसके शरीर हैं, इसका स्वरूप

अत्यन्त सूक्ष्म है, क्षण, त्रुटि, निमेष आदि इसके रोम हैं, शुक्ल और कृष्णपक्ष नेत्र हैं और मास अङ्ग हैं। यदि तुम्हारी ज्ञानदृष्टि अंधोंके समान दूसरोंका अनुसरण करनेवाली नहीं है तो इसे निरन्तर बड़े वेगसे दौड़ता देखकर तुम्हारा मन धर्ममें ही लगना चाहिये। जो लोग यहाँ धर्ममार्गको छोड़कर यथेच्छ आचरण करते हैं और दूसरोंको बुरा-भला कहते हुए निरन्तर कुमार्गमें ही चलते हैं, उन्हें मरनेके पश्चात् यातनादेह पाकर अनेक प्रकारकी नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती है। जो राजा सर्वदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधर्म प्रजाका यथायोग्य पालन करता है, वह पुण्यात्माओंके लोकोंको प्राप्त होता है और अनेक प्रकारका धर्माचरण करनेके कारण उसे दुर्लभ एवं निर्दोष सुख प्राप्त होता है; किंतु जो गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करते हैं, वे असत् पुरुष ऐसे लोकोंमें जाते हैं जहाँ मनुष्योंको पीड़ित किया जाता है और उन्हें भयंकर यातना मिलती है। जो मनुष्य मनमानी चालसे चलकर स्वायम्भुव मनुकी बाँधी हुई धर्मकी दस प्रकारकी मर्यादाको (धृति, क्षमा, मनोनिग्रह, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध) तोड़ता है, वह पापात्मा पितृलोकके असिपत्र वनमें (नरक) जाकर अत्यन्त दु:ख भोगता है। जो पुरुष अत्यन्त लोभी, असत्यसे प्रेम करनेवाला और सर्वदा कपटकी बातें बनानेवाला होता है तथा जो तरह-तरहके कूट साधनोंसे दूसरोंको दु:ख देता है, वह पापात्मा घोर नरकमें पड़कर अत्यन्त दु:ख भोगता है। उसे अत्यन्त उष्ण महानदी वैतरणीमें गोता लगाना पड़ता है, असिपत्र वनमें उसके अङ्ग छिन्न-भिन्न होते हैं और परशु वनमें उसे शयन करना पड़ता है। इस प्रकार यह महानरकमें पड़कर अत्यन्त आतुर हो उठता है। तुम ब्रह्मलोक आदि बड़े-बड़े स्थानोंकी बात तो करते हो, परंतु परमपदपर तुम्हारी दृष्टि ही नहीं है। भविष्यमें जो मृत्युकी परिचारिका वृद्धावस्था आनेवाली है, उसका तो तुम्हें पता ही नहीं है। इस प्रकार हाथ-पर-हाथ धरे क्यों बैठे हो? तुम्हारे ऊपर बड़ी आपत्ति आनेवाली है; इसलिये तुम परमानन्द-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करो। तुम्हे मरनेपर यमराजकी आज्ञासे उनके सामने उपस्थित किया जायगा; इसलिये कृच्छ्रादि तप करके तुम धर्मोपार्जनपूर्वक निरतिशय सुख पानेका उपाय कर लो। जिस समय तुम्हारे सामने यमराजका प्रचण्ड पवन चलेगा, उस समय वह अकेले तुम्हींको यमके सामने ले जायगा; अत: तुम परलोकमें सुख देनेवाले धर्मका आचरण करो। पूर्वजन्ममें तुम्हारे सामने जो प्राणनाशक पवन चल रहा था, आज वह कहाँ है? अब भी जब मृत्युरूप महाभय उपस्थित होगा तो तुम्हें सब दिशाएँ घूमती दिखायी देंगी। पुत्र, जब तुम यह शरीर छोड़कर चलने लगोगे तो व्याकुलताके कारण तुम्हारी श्रवणशक्ति भी नष्ट हो जायगी। इसलिये तुम सुदृढ़ समाधि प्राप्त कर लो। तुम्हारे देखते-देखते वृद्धावस्था तुम्हारे शरीरको जर्जर कर डालेगी, फिर रोग जिसका सारथी है, वह कालभगवान आकर तुम्हारे शरीरको नष्ट कर देगा; इसलिये इस जीवनके नष्ट होनेसे पहले ही तुम खूब तपस्या कर लो। इस मनुष्यदेहमें रहनेवाले काम-क्रोधादि भयंकर भेड़िये चारों ओरसे तुमपर आक्रमण करेंगे, इसलिये तुम पुण्यसंचयका प्रयत्न कर लो। मरनेके समय तुम्हें पहले तो घोर अन्धकार दिखायी देगा, फिर पर्वतके शिखरपर सुनहले वृक्ष दिखेंगे; अत: तुम आत्मकल्याणके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करो। ये इन्द्रियाँ, जो तुम्हें मित्रके समान जान पड़ती है, वास्तवमें तुम्हारी शत्रु हैं, ये अपनी दृष्टिमात्रसे तुम्हारी बुद्धिको बिगाड़ देंगी। इसलिये तुम परम पुरुषार्थके लिये प्रयत्न करो। जिस धनको न राजाका भय है और न चोरका और जो मरनेपर भी साथ नहीं छोड़ता, उसीको प्राप्त करनेका तुम उद्योग करो। अपने कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए उस पुण्यरूप धनको परलोकमें किसीको बाँटकर नहीं देना पड़ता। वहाँ तो जो जिसकी धरोहर है, वह उसीको मिल जाती है। अत: तुम ऐसा धन दो जो अक्षय और अविनाशी हो और स्वयं भी उसी धनको इकट्ठा करो।

पुत्र। जीव अपने जीवनकालमें जो कुछ शुभाशुभ कर्म करता है, यहाँसे जानेपर वही उसके साथ रहता है। माता, पुत्र, बन्धु-बान्धव या प्रियजनोंमेंसे कोई भी उसके साथ नहीं जाता। जिन सुवर्ण और रत्नादिको वह भले-बुरे कर्म करके इकट्ठे

करता है, वे शरीर छूटनेपर उसके किसी काम नहीं आते। इस लोकमें अग्नि, वायु और सूर्य- ये तीन देवता जीवके शरीरका आश्रय करके रहते हैं, वे ही उसके धर्माचरणको देखनेवाले हैं और वे ही परलोकमें उसके साक्षी बनते हैं। दिन सब पदार्थोंको प्रकाशित करता है और रात्रि उन्हें छिपा लेती है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं और सभी वस्तुओंको स्पर्श करते हैं। अत: तुम सर्वदा अपने धर्मका ही पालन करो। परलोकमें किसीके भी कर्मका बँटवारा नहीं होता। वहाँ तो अपने किये हुए कर्मोंका ही फल भोगना होता है। वहाँ पुण्यात्मा लोग विमानोंपर चढ़कर यथेच्छ विहार करते हैं। इस प्रकार शुद्धचित्त पुरुष इस लोकमें जैसा-जैसा शुभ कर्म करते हैं; परलोकमें उसका वैसा-वैसा ही फल प्राप्त करते हैं। जो गार्हस्थ-धर्मका पालन करते हैं, वे प्रजापति, बृहस्पति अथवा इन्द्रके लोकमें जाते हैं।

पुत्र। तुम्हारी आयुके चौबीस वर्ष बीत गये, अब तुम्हारी अवस्था पच्चीस सालकी है। इसी प्रकार सारी आयु बीती जा रही है, तुम धर्मसंचय कर लो। काल तुम्हारी इन्द्रियोंकी शक्तिको शिथिल कर रहा है; उसके नष्ट होनेसे पहले ही तुम धर्मोपार्जनके लिये शीघ्रता करो। जिस समय तुम शरीर छोड़कर जाओगे, उस समय तुम्हारे आगे-पीछे भी तुम्हारे सिवा और कोई नहीं होगा। जब तुम्हें इस प्रकार अकेले ही जाना है तो अपने या पराये शरीरोंसे तुम्हारा क्या प्रयोजन है?

पुत्र। मैंने अपने शास्त्रज्ञान और अनुमानके द्वारा तुम्हें इस समय जो उपदेश दिया है, तुम उसीके अनुसार आचरण करो। जो पुरुष अपने कर्मोंद्वारा केवल शरीरका ही पोषण करता है और किसी-न-किसी फलकी आशासे दान देता है, वह तो अज्ञान और मोहजनित गुणोंसे ही बँधता है; किंतु जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करता है, वह परम पुरुषार्थरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार कृतज्ञ पुरुषको जो भी उपदेश किया जाता है, वही सफल होता है। मनुष्य जो गाँवमें रहकर वहींके पदार्थोंसे प्रेम करने लगता है यह उसे बाँधनेवाली रस्सी ही है। पुण्यात्मालोग इसे काटकर उत्तम लोकोंको प्राप्त होते हैं, किंतु पापियोंसे यह नहीं कट पाती। पुत्र। जब तुम्हें मरना ही है तो धन, बन्धु और पुत्रादिसे तुम क्या लोगे? अत: तुम बुद्धिरूप गुहामें छिपे हुए आत्मतत्त्वका अनुसंधान करो। आज तुम्हारे सारे पूर्वज कहाँ चले गये? जो काम कल करना हो उसे आज कर लेना चाहिये और जो दोपहर बाद करना हो उसे सबेरे ही कर डालना चाहिये; क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि अभी इसका काम पूरा हुआ है या नहीं। जब मनुष्य मर जाता है तो सब सगे-सम्बन्धी और जातिवाले श्मशानतक साथ जाकर इसे अग्निमें झोंककर लौट आते हैं। अत: तुम परमतत्त्वकी प्राप्तिके इच्छुक बनो तथा प्रमाद और संशयको त्याग कर नास्तिक, निर्दय और पापबुद्धिमें स्थित पुरुषोंको बाँयें रक्खो; कभी भूलकर भी उनका साथ मत दो। इस प्रकार जब सारा संसार कालके अधीन है और उसके पंजेमें पड़कर दु:ख भोग रहा है, तो तुम अत्यन्त धैर्य धारणकर सब प्रकार धर्मका आचरण करो।

जो पुरुष परमात्माके साक्षात्कारके इस साधनको अच्छी तरह जानता है, वह इस लोकमें स्वधर्मका पूर्णतया साधनकर परलोकमें सुख भोगता है। जो धर्ममार्गका ठीक-ठीक अनुसरण करता है, उसे कभी हानि नहीं होती। जो धर्मकी वृद्धि करता है, वही पण्डित है और जो धर्मसे च्युत होता है, वह मोहग्रस्त है। जो पुरुष स्वधर्मका आचरण करता है, वह अपने कर्मके अनुसार फल पाता है। इस प्रकार जो धर्मका पारगामी है, वह स्वर्ग पाता है और जो कर्त्तव्यच्युत हो जाता है, उसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो व्यक्ति भोगोंको त्यागकर इस शरीरसे तपस्या करता है, उसे कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता। इस संसारमें तुम्हारे हजारों माँ-बाप और सैकड़ों स्त्री-पुत्रादि हो चुके हैं और आगे भी होंगे। परंतु वास्तवमें किसके वे और किसके हम? मैं तो अकेला ही हूँ, मेरा कोई नहीं है और न मैं ही किसी दूसरेका हूँ। ऐसा तो मुझे कोई भी दिखायी नहीं देता जिसका मैं होऊँ अथवा जो मेरा हो। तुम्हें अपने उन अतीत माता-पितादिसे अब कोई प्रयोजन नहीं है और न उन्हें ही तुमसे कोई प्रयोजन है। वे अपने-अपने कर्मानुसार उत्पन्न हुए थे, तुम भी अपने कर्मोंके अनुसार ही उत्पन्न हुए हो और

अब जैसा कर्म करोगे वैसी ही गति प्राप्त करोगे। इस लोकमें धनी पुरुषोंके स्वजन तो स्वजन बने रहते हैं, किंतु दरिद्रियोंके स्वजन तो उन्हें जीवित रहनेपर भी छोड़ देते हैं। मनुष्य स्त्री-पुत्रादिके लिये ही पाप बटोरता है और उनके कारण ही इस लोक और परलोकमें दु:ख भोगता है। अत: पुत्र। मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है उसीके अनुसार तुम आचरण करो।

जो लोग देवता और अतिथियोंसे प्रेम करते हैं अथवा उदार, साधुप्रेमी या यज्ञोंमें दक्षिणा देनेवाले हैं, वे आत्मज्ञानियोंके कल्याणप्रद मार्गको प्राप्त होते हैं। जैसे तन्दुलहीन धानकी भूसी व्यर्थ हो जाती है वैसे ही धर्मको छोड़ देनेवाले मनुष्य व्यर्थ है। पाप-पुण्य मनुष्यका सङ्ग कभी नहीं छोड़ते। वह खड़ा होता है तो खड़े रहते हैं, दौड़ता है तो दौड़ने लगते हैं और काम करता है तो ये भी काम करने लगते हैं। इस प्रकार ये छायाके समान उसका अनुसरण करते रहते हैं। पहले जिस-जिसने जैसे-जैसे कर्म किये होते है, वह उनका उस-उस प्रकारसे अवश्य फल भोगता है। मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा ही अपने सुख-दु:खका विधान करता है। वह जबसे गर्भमें आता है तभीसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका फल भोगने लगता है। जिस प्रकार बछड़ा हजारों गौओंमेंसे भी अपनी माताको पहचान लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया हुआ कर्म अपने कर्ताके पास पहुँच जाता है। जैसे मैला वस्त्र पानीसे धोनेपर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार उपवासके द्वारा तपे हुए मनुष्यका चित्त स्वच्छ हो जाता है और उसे दीर्घकालीन अनन्त सुख प्राप्त होता है। जो लोग दीर्घकालतक तप करते हैं उनके पाप दूर हो जाते हैं और उनकी सब कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। जिस प्रकार आकाशमें पक्षियोंके और जलमें मछलियोंके चरणचिन्ह दिखायी नहीं देते, वैसे ही पुण्य करनेवालोंकी गतिका पता नहीं लगता। दूसरोंके उपालम्भ या कहनेसे खोटा कर्म करना ठीक नहीं, जो अपने लिये प्रिय, अनुरूप और हितकर हो वही कर्म करना चाहिये।

शुकदेवजीके जन्मसे ही उन्हें रहस्य और संग्रहके सहित सब वेद इसी प्रकार उपस्थित हो गये जैसे उन्हें व्यासजीने सिखाया। बृहस्पतिजीको उन्होंने अपना गुरु बनाया और उन्हींसे सम्पूर्ण वेद, इतिहास और राजनीतिका शिक्षा प्राप्तकर, उन्हें दक्षिणा देकर वे घर लौट आये। वहाँ ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए महान् तपस्या करने लगे। वे बाल्यावस्थामें ही अपने ज्ञान और तपस्याके कारण देवता और ऋषियोंके माननीय एवं संशय-छेदन करनेवाले बन गये थे। शुकदेवजी मोक्षका विचार करते हुए उसकी प्राप्तिकी इच्छासे अपने पिता व्यासजीके पास गये और बोले आप मोक्ष धर्ममें निपुण हैं अत: मुझे मोक्षधर्म का उपदेश दे। तब महर्षि व्यास बोले, तुम मेरे शिष्य मिथिला नरेश जनकके पास जाओ वे तुम्हें सम्पूर्ण मोक्षधर्मका ज्ञान सुनायेंगे। जिस मार्गसे साधारण मनुष्य जाते हों उसीसे तुम भी जाना; अपनी योगशक्तिका आश्रय लेकर आकाशमार्गसे कदापि यात्रा न करना। रास्तेमें सुख और सुविधाकी तलाशमें नहीं पड़ना। राजा जनक मेरे शिष्य है उनके पास किसी बातका अहंकार न प्रकट करना। वे तुम्हारी सब शंकाओंका समाधान करेंगे। पिताके ऐसा कहनेपर शुकदेवजी जनककी राजधानी मिथिला में पहुँचे और राजा जनक से भेंट की।

शुकदेवजी इन्द्रियों और क्रोधपर विजय पा चुके थे। राजा जनकने पूछा, मुने। किस निमित्तसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है? शुकदेवजीने कहा, आप मोक्षधर्म के ज्ञाता हैं। आप धर्मात्माश्रेष्ठ हैं अत: मुझे मोक्षका क्या स्वरूप है, उसकी प्राप्ति तपसे होती है या ज्ञान से तथा ब्राह्मण का क्या कर्त्तव्य है यह सब मुझे समझाइये। तब राजा जनकने कहा,

यज्ञोपवीत संस्कार हो जानेके बाद ब्राह्मण-बालकको वेदाध्ययन करना चाहिये। अध्ययन-कालमें गुरुकी सेवा, तपका अनुष्ठान और ब्रह्मचर्यका पालन- ये तीन उसके परम कर्त्तव्य हैं। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा वह पितरोंके ऋणसे मुक्त होनेका यत्न करे, किसीकी निन्दा न करे और इन्द्रियसंयमपूर्वक रहे। जब वेदाध्ययन समाप्त हो जाय तो गुरुको दक्षिणा दे, उनकी आज्ञा लेकर समावर्तन संस्कारके पश्चात् घर लौटे। घर आनेपर विवाह करके गार्हस्थ-धर्मका पालन करे और

अपनी ही स्त्रीके साथ सम्बन्ध रक्खे। किसीसे ईर्ष्या न रखकर न्यायानुकूल बर्ताव करे तथा अग्निकी स्थापना करके नित्य अग्निहोत्र करता रहे। तत्पश्चात् जब पुत्र-पौत्र उत्पन्न हो जायँ तो वनमें रहकर वानप्रस्थ धर्मका पालन करे। उस समय भी शास्त्रविधिके अनुसार अग्निहोत्र करे और अतिथियोंसे प्रेम रक्खे। इसके बाद धर्मज्ञ पुरुष शास्त्रानुसार अग्निहोत्रकी अग्नियोंका अपनेमें ही आरोप करके निर्द्वन्द्व हो जाय और वीतराग होकर ब्रह्मचिन्तनसे सम्बन्ध रखनेवाले संन्यासाश्रममें प्रवेश करे।

जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसारसागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञानको पाकर भवसागरसे पार और कृतकृत्य हो जाता है। पहलेके विद्वान लोकमर्यादा तथा कर्म परम्पराकी रक्षा करनेके लिये चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन करते थे। इस तरह क्रमश: नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मोंकी आसक्तिका परित्याग करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। अनेकों जन्मोंसे कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं तो शुद्ध अन्त:करणवाला मनुष्य पहले ही आश्रममें मोक्षरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसे पाकर जब ब्रह्मचर्याश्रममें ही तत्त्वका साक्षात्कार हो जाय तो परमात्माको चाहनेवाले जीवन्मुक्त विद्वानके लिये शेष तीन आश्रमोंमें जानेकी क्या आवश्यकता है? विद्वानको चाहिये कि वह राजस और तामस दोषोंका परित्याग कर दे और सात्त्विक मार्गका आश्रय लेकर बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन करे। जो सम्पूर्ण भूतोंमें अपनेको और अपनेमें सम्पूर्ण भूतोंको देखता है, वह संसारमें कहीं भी आसक्त नहीं होता। वह तो घोंसलेको छोड़कर उड़ जानेवाले पक्षीकी भाँति इस देहसे पृथक् हो निर्द्वन्द्व एवं शान्त होकर परलोकमें अक्षयपद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है। अपने भीतर ही आत्मज्योतिका प्रकाश है, अन्यत्र नहीं। वह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर समान रूपसे स्थित है। समाधिमें अपने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करनेवाला पुरुष उसको स्वयं देख सकता है। जिससे दूसरा कोई प्राणी भय नहीं करता, जो स्वयं दूसरे किसी प्राणीसे भयभीत नहीं होता तथा जो इच्छा और द्वेषसे रहित है वह तत्काल ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। जब मनुष्य मन, वाणी तथा क्रियाकेद्वारा किसीकी बुराई नहीं करता उस समय वह ब्रह्मरूप हो जाता है। जब मोहमें डालनेवाली ईष्या, काम और मोहका त्याग करके पुरुष अपने मनको आत्मामें लगा देता है, उस समय उसे ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है। जब सुनने और देखने योग्य विषयोंमें तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके ऊपर मनुष्य का समान भाव हो जाय और सुख-दु:खादि द्वन्द उसके चित्तपर प्रभाव न डाल सके, उस समय वह साक्षात् ब्रह्म हो जाता है। जिस समय निन्दा-स्तुति, लोहा-सोना, सुख-दु:ख, शीत-उष्ण, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरणमें समान दृष्टि हो जाती है, उस समय मनुष्यको ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जाती है। अज्ञानसे आवृत आत्माका साक्षात दर्शन हो सकता है। आपका विज्ञान, आपकी गति और आपका ऐश्वर्य ये सब अधिक हैं। आपको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका है, आपकी बुद्धि भी स्थिर है, आप सुख-दु:खमें कोई अन्तर नहीं करते, आपके मनमें तनिक भी लोभ नहीं है, आपका कहीं भी राग द्वेष नहीं है। न बन्धुओंके प्रति आसक्ति है, न भयदायक पदार्थोंसे भय। महाभाग। आपकी दृष्टिमें मिट्टीका ढेला, पत्थर और सुवर्ण सब एकसमान है। यही मोक्षका स्वरूप है उसीमें आपकी स्थिति है।

राजा जनकके यहाँसे लौटकर शुकदेवजी अपने पिता व्यासके आश्रमपर आ गये। जो उसी समय सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनी तथा पैलको वेद पढ़ा रहे थे। व्यासजीने अपने शिष्योंको और अपने पुत्रको कहा तुम वेदोंका विस्तार करो और उनको स्वाध्यायकी विधि बतलायी। यह सब शिष्य वहाँसे अध्ययन करके पृथ्वीपर चले गये। गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथ वैश्योंके यज्ञ कराते हुए वे बड़े आनन्दसे रहने लगे। उसी समय महातपस्वी नारद उस आश्रममें व्यासजीसे मिले और व्यासजीसे पूछा आप क्यों चिंतित है। व्यासजी बोले, देवर्षे। आप सर्वज्ञ हैं, सब कुछ देखनेवाले और सर्वत्रकी बात

जाननेवाले हैं। तीनों लोकोंकी बात तो आपको मालूम है। अपने प्रिय शिष्योंसे बिछोह होनेके कारण आज मेरा मन उदास है।

नारदजीने कहा, आप अपने बुद्धिमान पुत्रके साथ सदा वेदोंका स्वाध्याय करते रहें। व्यासजीके पुत्र शुकदेवभी अध्ययनके लिये पिताश्री की आज्ञा लेकर आकाशगंगाके तटपर चले गये। शुकदेवजीके पास देवर्षि नारद पधारे। शुकदेवजीने कहा, इस लोकमें जो परम कल्याणका साधन हो उसीका मुझे उपदेश करे। नारदजीने कहा, जो उपदेश सनत्कुमारने कहा था वही उपदेश मैं तुमको कहूँगा।

विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है, सत्यके समान कोई तप नहीं है, रागके समान कोई दु:ख और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, साधु-पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना, यह सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण) का साधन है। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है- ऐसे इस मानव-शरीरको पाकर जो विषयोंमें आसक्त होता है वह मोहको प्राप्त होता है। विषयोंका संयोग दु:खरूप ही है, वह दु:खोंसे छुटकारा नहीं दिला सकता। विषयासक्त पुरुषकी बुद्धि चञ्चल होती है, वह मोहजालका विस्तार करती है और मोहजालसे बँधा हुआ पुरुष इस लोक तथा परलोकमें भी दु:ख ही भोगता है। जिसे कल्याण-प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक उपायसे काम और क्रोधको दबाना चाहिये; क्योंकि ये दोनों दोष कल्याणका नाश करनेके लिये उद्यत रहते हैं। मनुष्यको चाहिये कि तपको क्रोधसे, लक्ष्मीको डाहसे, विद्याको मान-अपमानसे और अपनेको प्रमादसे बचावे। क्रूर स्वभावका परित्याग सबसे बड़ा धर्म है, क्षमा सबसे बड़ा बल है, आत्माका ज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है और सत्यसे बढ़कर कुछ है ही नहीं। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ हैं; किंतु हितकारक बात कहना सत्यसे भी बढ़कर है। जिससे प्राणियोंका अत्यन्त हित होता हो, उसीको मैं सत्य मानता हूँ। जो नये-नये काम आरम्भ करनेका संकल्प छोड़ चुका है, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जो किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता तथा जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान है और वही पण्डित है। जो अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा अनासक्त भावसे विषयोंका अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है तथा जो आत्मीय कहलानेवाले देह और इन्द्रियोंके साथ रहकर भी उनसे एकाकार न होकर विलग-सा ही रहता है, वह मुक्त है और उसे बहुत शीघ्र परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। जिसकी किसी प्राणीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, जो किसीका स्पर्श तथा किसीसे बातचीत नहीं करता, वह परम कल्याणको प्राप्त होता है। किसीकी हिंसा न करे, सबके साथ मित्रताका भाव रक्खे और यह मनुष्य-जन्म पाकर किसीके साथ वैर न करे। जो आत्मतत्त्वका ज्ञाता तथा मनको वशमें रखनेवाला है, उसे चाहिये कि किसी वस्तुका संग्रह न करे, संतोष रक्खे और कामना तथा चञ्चलताका त्याग कर दे; इससे परम कल्याणकी सिद्धि होगी। तात शुकदेव। तुम संग्रहका त्याग करके जितेन्द्रिय हो जाओ तथा उस पदको प्राप्त करो जो इहलोक और परलोकमें भी निर्भय तथा सर्वथा शोकरहित हो। जिन्होंने भोगोंका परित्याग कर दिया है, वे कभी शोकमें नहीं पड़ते; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भोगासक्तिका त्याग करना चाहिये। सौम्य। जो भोगासक्तिका त्याग कर देता है, वह दु:ख और संतापसे छूट जाता है। जो अजित (परमात्मा) को जीतनेकी इच्छा रखता हो, उसे तपस्वी, जितेन्द्रिय, मननशील, संयतचित्त और विषयोंमें अनासक्त रहना चाहिये। जो ब्राह्मण त्रिगुणात्मक विषयोंमें आसक्त न होकर सदा एकान्तवास करता है, वह बहुत शीघ्र सर्वोत्तम सुख (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जो मुनि मैथुनमें सुख माननेवाले प्राणियोंके बीचमें रहकर भी अकेले रहनेमें ही आनन्द मानता है, उसे ज्ञानानन्दसे तृप्त समझना चाहिये; जो ज्ञानानन्दसे तृप्त होता है, वह कभी शोकमें नहीं पड़ता। जीव सदा कर्मोंके अधीन रहता है, वह शुभ कर्मोंके अनुष्ठानसे देवता होता है, शुभ-अशुभ दोनोंके आचरणसे मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है और केवल अशुभ कर्मोंसे पशु-पक्षी आदि नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उन-उन योनियोंमें जीवको सदा

जरा, मृत्यु तथा नाना प्रकारके दु:खोंका शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी संतापकी आगमें पकाया जाता है- यहाँ विभिन्न वस्तुओंके संग्रहकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि संग्रहसे महान दोष प्रकट होता है। रेशमका कीड़ा अपने संग्रहके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। स्त्री, पुत्र और कुटुम्बमें आसक्त रहनेवाले जीव उसी प्रकार कष्ट पाते हैं, जैसे जंगलके बूढ़े हाथी तालाबके दलदलमें फँसकर दु:ख उठाते हैं। जिस प्रकार महान् जालमें फँसकर पानीके बाहर आये हुए मत्स्य तड़पते हैं, उसी प्रकार स्नेहजालमें फँसकर अत्यन्त कष्ट उठाते हुए इन प्राणियोंकी ओर दृष्टि डालो। संसारमें कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, शरीर और संग्रह सब कुछ पराया है, सब नाशवान है; इसमें अपना क्या है- सिर्फ पाप और पुण्य। जहाँ ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं, कोई सहारा देनेवाला नहीं, राहखर्च नहीं तथा अपने देशका कोई साथी नहीं है, जो अन्धकारसे व्याप्त और दुर्गम है, उस मार्गपर तुम अकेले कैसे चल सकोगे? जब तुम परलोककी राह लोगे, उस समय कोई तुम्हारे पीछे नहीं जायगा, केवल तुम्हारा किया हुआ पुण्य या पाप ही वहाँतक साथ देगा। अर्थ (परमात्मा) की प्राप्तिके लिये ही विद्या, कर्म, पवित्रता और अत्यन्त विस्तृत ज्ञानका सहारा लिया जाता है; जब अर्थकी सिद्धि (परमात्माकी प्राप्ति) हो जाती है तो मनुष्य मुक्त हो जाता है। गाँवमें रहनेवाले मनुष्यकी विषयोंके प्रति जो आसक्ति होती है, वह उसे बाँधनेवाली रस्सीके समान है, पुण्यात्मा पुरुष उस रस्सीको काटकर आगे- परमार्थके पथपर बढ़ जाते हैं; किंतु जो पापी हैं वे उसे नहीं काट पाते। यह संसार एक नदीके समान है, रूप इसका किनारा, मन स्रोत, स्पर्श द्वीप और रस ही प्रवाह है। गन्ध उस नदीकी कीचड़, शब्द जल और स्वर्गरूपी दुर्गम घाट है। शरीररूपी नौकाकी सहायतासे उसे पार किया जा सकता है। क्षमा इसको खेनेवाली लग्गी और धर्म इसको स्थिर करनेवाली रस्सी (लंगर) है। यदि त्यागरूपी पवनका सहारा मिले तो इस नदीको शीघ्र पार किया जा सकता है। यह देह पञ्चभूतोंका घर है, इसमें हड्डियोंके खंभे लगे हैं, यह नस-नाड़ियोंसे बँधा हुआ, रक्त-मांससे लिपा हुआ और चमड़ेसे मढ़ा हुआ है। इसमें मल-मूत्र भरा है, जिसके कारण दुर्गन्ध आती रहती है। यह जरा और शोकसे व्याप्त, रोगोंका आश्रय, आतुर, रजोगुणरूपी धूलसे ढका हुआ और अनित्य है, अत: तुम्हें इसकी आसक्तिका त्याग कर देना चाहिये। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुआ है, इसलिये उनसे भिन्न नहीं है। पञ्चमहाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, बुद्धि और सत्त्वादि गुण- इन सत्रह तत्त्वोंके समुदायको अव्यक्त कहते हैं। इनके साथ ही (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द तथा बुद्धि और अहंकारके आश्रयभूत) सम्पूर्ण विषयोंको मिलानेसे जो चौबीस तत्त्वोंका समूह होता है, उसे व्यक्ताव्यक्त-समुदाय कहते हैं। जो इन सब तत्त्वोंसे युक्त है, उसका नाम पुरुष है। जो पुरुष धर्म, अर्थ, काम, सुख-दु:ख और जीवन-मरणके तत्त्वको ठीक-ठीक समझता है, वही उत्पत्ति और प्रलयके तत्त्वको भी यथार्थरूपसे जानता है। जो पदार्थ इन्द्रियोंद्वारा जाने जाते हैं, वे व्यक्त कहलाते हैं और जो इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण अनुमानसे जाननेमें आते हैं, उनको अव्यक्त कहते हैं। जिनकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं वे उसी प्रकार संतुष्ट रहते हैं, जैसे वर्षाकी धारासे प्यासे हुए जीव। ज्ञानी पुरुष लोकमें अपनेको और अपनेमें लोकको विस्तृत देखते हैं, उन्हें भूत और भविष्यका भी ज्ञान होता है तथा उनकी वह ज्ञानशक्ति कभी नष्ट नहीं होती। उसीके प्रभावसे वे सब अवस्थाओंमें सम्पूर्ण भूतोंका दर्शन करते हैं। जो ज्ञानके बलसे मोहजनित नाना प्रकारके क्लेशोंके पार हो गया है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंके सहवासमें आकर भी कभी अशुभ कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। किंतु अज्ञानी मनुष्य मथानीकी भाँति कर्मोंसे बँधता और मथित होता रहता है। वह प्रारब्धकर्मके उदय होनेपर नाना प्रकारके कष्ट भोगता हुआ संसारमें चक्रकी भाँति घूमता रहता है। इसलिये तुम कर्मोंसे निवृत्त, सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त, सर्वज्ञ, सर्वविजयी सिद्ध और भाव-अभावसे रहित हो जाओ। बहुत-से ज्ञानी पुरुष संयम और तपस्याके बलसे नवीन बन्धनोंका उच्छेद करके अनन्त सुख देनेवाली अबाध सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त हो चुके हैं।

शोकके हजारों और भयके सैकड़ों स्थान हैं, वे प्रतिदिन मूढ़ पुरुषोंपर ही अपना प्रभाव डालते हैं; बुद्धिमान मनुष्योंपर उनका जोर नहीं चलता। यदि बुद्धि अपने वशमें रहे तो शोक सदाके लिये दूर हो जाता है। बुद्धिहीन मनुष्य ही अप्रिय वस्तुकी प्राप्ति और प्रिय वस्तुका वियोग होनेपर मन-ही-मन दुखी होते हैं। जो वस्तु भूतकालके गर्भमें छिप गयी (नष्ट हो गयी), उसके गुणोंका स्मरण नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो आदरपूर्वक उसके गुणोंका चिन्तन करता है, उसकी आसक्ति नहीं छूटती। जहाँ चित्तकी आसक्ति बढ़ने लगे उस वस्तुको अनिष्टकारी समझकर उसमें दोषदृष्टि कर लेनी चाहिये। ऐसा करनेपर उससे शीघ्र ही वैराग्य हो जाता है। जो बीती बातके लिये शोक करता है, उसे अर्थ, धर्म और यशकी प्राप्ति नहीं होती; वह उसके अभावका दु:खमात्र उठाता है, उससे अभाव दूर नहीं होता। सभी प्राणियोंको उत्तम पदार्थोंसे संयोग और वियोग प्राप्त होते रहते हैं; किसी एकपर ही यह शोकका अवसर नहीं आता। जो मनुष्य भूतकालमें मरे हुए किसी व्यक्ति अथवा नष्ट हुई वस्तुके लिये निरन्तर शोक करता रहता है, वह एक दु:खसे दूसरे दु:खको प्राप्त होता है; इस प्रकार उसे दो अनर्थ भोगने पड़ते हैं। जो अपनी बुद्धिसे विचारकर संसारमें सदा होनेवाले जन्म-मरणके प्रवाहपर दृष्टि रखते हैं, वे कभी उसके लिये आँसू नहीं बहाते। जो सबको सम्यक् दृष्टिसे देखता है, उस ज्ञानीको कभी अश्रुपात होता ही नहीं। यदि कोई शारीरिक या मानसिक दु:ख उपस्थित हो जाय और उसे दूर करनेमें कोई उपाय काम न दे सके तो उसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दु:ख दूर करनेकी सबसे अच्छी दवा यही है कि उसके लिये चिन्ता न की जाय। चिन्ता करनेसे वह घटता नहीं बल्कि और बढ़ता जाता है। इसलिये मानसिक दु:खको बुद्धिसे और शारीरिक कष्टको औषध-सेवनके द्वारा नष्ट करना चाहिये। शास्त्रज्ञानके प्रभावसे ही ऐसा होना सम्भव है। दु:ख पड़नेपर बालकोंकी तरह रोना उचित नहीं। रूप, यौवन, जीवन, धनसंग्रह, आरोग्य और प्रियजनोंका सहवास- ये सब अनित्य हैं, विद्वान पुरुषको इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये। सारे देशपर आये हुए संकटके लिये किसी एक व्यक्तिको शोक करना उचित नहीं है। यदि उस संकटको टालनेका कोई उपाय दिखलायी दे तो शोक छोड़कर उसे ही करना चाहिये। जीवनमें सुख की अपेक्षा दु:ख ही अधिक होता है; किंतु जो सुख और दु:ख दोनोंकी ही चिन्ता छोड़ देता है, वह अक्षय ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। धनके उपार्जनमें बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षामें भी सुख नहीं है तथा उसे खर्च करनेमें भी क्लेश ही होता है, अत: धनको प्रत्येक अवस्थामें दु:खदायक समझकर उसके नष्ट होनेपर चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मनुष्य धनका संग्रह करते-करते पहलेकी अपेक्षा ऊँची स्थितिको प्राप्त होकर भी कभी तृप्त नहीं होते, वे और अधिककी आशा लिये हुए ही मर जाते हैं; इसलिये विद्वान पुरुष सदा संतुष्ट रहते हैं। तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता, संतोष ही परम सुख है, अत: विवेकी पुरुष संतोषको ही परम धन मानते हैं। आयु लगातार बीत रही है, वह क्षणभर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है तो दूसरी किस वस्तु को नित्य समझा जाय? जो मनुष्य सब प्राणियोंके भीतर मनसे परे परमात्माका चिन्तन करते हैं, वे अपनी संसारयात्रा समाप्त करके परमपदका साक्षात्कार करते हुए शोकके पार हो जाते हैं। कामनाओंकी खोजमें लगे हुए अतृप्त मनुष्यको मौत उठा ले जाती है। जो शोक छोड़कर कार्य आरम्भ करता है और किसी व्यसनमें आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकालमें ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि विषयोंमें किंचित सुखका अनुभव होता है, उसके बाद उनमें कुछ भी नहीं रहता। प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयोग होनेके पहले कोई दु:ख नहीं रहता; जब संयोगके बाद वियोग होता है, तभी सबको दु:ख हुआ करता है; इसलिये विवेकी पुरुषको अपने स्वरूपमें स्थित होकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिये। धैर्यके द्वारा शिश्न और उदरकी, नेत्रके द्वारा हाथ और पैरकी, मनके द्वारा आँख और कानकी तथा सद्विद्याके द्वारा मन और वाणीकी रक्षा करनी चाहिये। जो पूजनीय तथा अन्य

मनुष्योंमें आसक्तिको हटाकर शान्तभावसे विचरण करता है तथा जो अध्यात्मविद्यामें परायण, निष्काम और लोभहीन रहकर एकाकी विचरता रहता है, वही सुखी और विद्वान है।

जब मनुष्य सुखको दु:ख और दु:खको सुख समझने लगता है, उस अवस्थामें बुद्धि, नीति अथवा पुरुषार्थसे भी उसकी रक्षा नहीं होती। अत: मनुष्यको ज्ञान-प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्न करते रहना चाहिये; क्योंकि यत्न करनेवाला पुरुष कभी दु:खमें नहीं पड़ता। आत्मा सबसे बढ़कर प्रिय है, उसे जरा, मृत्यु और रोगसे बचाना चाहिये। शारीरिक और मानसिक रोग सुदृढ़ धनुष धारण करनेवाले वीर पुरुषके छोड़े हुए तीखे बाणोंकी तरह शरीरको पीड़ित करते हैं। तृष्णासे व्यथित, दु:खी एवं विवश होकर भी जीनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यका शरीर विनाशकी ओर ही खिंचता चला जाता है। जैसे नदियोंका प्रवाह आगेकी ओर ही बढ़ता जाता है, पीछेकी ओर नहीं लौटता, उसी प्रकार रात और दिन भी मनुष्योंकी आयुका अपहरण करते हुए बीतते चले जा रहे हैं। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंका यह परिवर्तन देहधारी जीवोंको जरा-जीर्ण कर रहा है, वह एक क्षणके लिये भी विश्राम नहीं लेता। सूर्य स्वयं अजर हैं, किंतु प्रतिदिन उदय और अस्त होकर प्राणियोंके सुख और दु:खका नाश करते रहते हैं। ये रात्रियाँ कितनी ही अपूर्व तथा असम्भावित प्रिय-अप्रिय घटनाएँ लिये आती और चली जाती हैं। यदि जीवके किये हुए कर्मोंका फल पराधीन न होता तो वह जो चाहता, उसकी वही कामना पूरी हो जाती। बड़े-बड़े संयमी, चतुर और बुद्धिमान मनुष्य भी अपने कर्मोंके फलसे वञ्चित होते देखे जाते हैं। तथा गुणहीन, मूर्ख और नीच पुरुष भी किसी के आशिर्वाद के बिना ही समस्त कामनाओंसे सम्पन्न दिखाई देते हैं। कोई-कोई मनुष्य तो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता और संसारको धोखा दिया करता है, फिर भी वह सुख ही भोगता है। कितने ही ऐसे हैं, जो कोई काम न करके चुपचाप बैठे रहते हैं, फिर भी उनके पास लक्ष्मी अपने आप पहुँच जाती है और कुछ लोग काम करके भी मनचाही वस्तु नहीं पाते। यह सब पुरुषके प्रारब्धका दोष है। वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। कभी तो वह योनिमें पहुँचकर गर्भधारण करानेमें समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कभी-कभी आमकी बौरके समान व्यर्थ ही झड़ जाता है। कितने ही लोग पुत्र-पौत्रकी इच्छा रखकर उसकी सिद्धिके लिये यत्न करते रहते हैं तो भी उनके संतान नहीं होती और बहुत-से मनुष्य संतानको क्रोधमें भरे हुए साँप समझकर सदा उससे डरते रहते हैं तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है। कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्राभिलाषी दीन स्त्री-पुरुषोंद्वारा देवताओंकी पूजा और तपस्या करके दस महीनेतक सुरक्षित रहनेके बाद भी पैदा होनेपर कुलाङ्गार निकल आते हैं तथा बहुत-से ऐसे हैं जो आमोद-प्रमोदमें ही जन्म धारण करके पिताके संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगोंके अधिकारी होते हैं। कुछ गर्भ माताके पेटसे गिर जाते हैं, कुछ जन्म लेते हैं और कितने ही जन्म लेकर भी मर जाते हैं।

जब मनुष्योंको नाना प्रकारके रोग पीड़ित करते हैं तो उन्हें उठने-बैठनेकी भी शक्ति नहीं रह जाती। व्याधिके सताये हुए मनुष्य वैद्योंको बहुत-सा धन देते हैं और वैद्यलोग रोग दूर करनेकी बहुत चेष्टा करते हैं तो भी वे उनकी पीड़ा नहीं खींच पाते। बहुत-सी औषधियोंका संग्रह करनेवाले चतुर-चालाक वैद्य भी व्याधोंके मारे हुए मृगोंकी भाँति रोगोंके शिकार हो जाते हैं। वे तरह-तरहके काढ़े और घृत पीते रहते हैं तो भी जैसे हाथी किसी पेड़को झुका देता है, वैसे ही वृद्धावस्था उनकी कमर टेढ़ी कर देती है। इस पृथ्वीपर मृग, पक्षी, शिकारी जन्तु और दरिद्र मनुष्योंको जब रोग सताता है तो कौन उनकी चिकित्सा करने जाते हैं? प्राय: उन्हें रोग होता ही नहीं। किंतु बड़े-बड़े पशु जैसे छोटे पशुओंपर आक्रमण करके उन्हें दबा देते हैं, उसी प्रकार प्रचण्ड तेजवाले दुर्धर्ष राजाओंको भी बहुत-से रोग घेरे रहते हैं। इस प्रकार सब लोग भवसागरके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए मोह-शोकमें डूब रहे हैं। देहधारी मनुष्य धन, राज्य तथा कठोर तपस्याके प्रभावसे प्रकृतिका उल्लंघन

नहीं कर सकते। यदि प्रयत्नका फल अपने हाथमें होता तो कोई भी मनुष्य न बूढ़ा होता, न मरता। सबकी सब कामनाएँ पूरी हो जातीं और किसीको अप्रिय नहीं देखना पड़ता। सब लोग संसारमें सर्वोपरि होना चाहते हैं और इसके लिये यथाशक्ति यत्न भी करते हैं; किंतु उसमें सफलता नहीं प्राप्त होती। प्रमादरहित, शूरवीर एवं पराक्रमी पुरुष भी ऐश्वर्य तथा मदिराके मदसे उन्मत्त मनुष्योंकी सेवा करते हैं। कितने ही लोगोंके क्लेश ध्यान दिये बिना ही निवृत्त हो जाते हैं तथा दूसरोंको अपना ही धन समयपर नहीं मिलता। कर्मोंके फलमें बड़ी भारी विषमता देखनेमें आती है। कुछ लोग पालकी ढोते हैं और दूसरे लोग उसी पालकीमें बैठकर चलते हैं। कितने ही मनुष्य स्त्रीके मर जानेपर एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं और बहुतोंके पास अनेकों स्त्रियाँ रहती हैं। सभी प्राणी सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें रम रहे हैं, मनुष्य उनमेंसे एक-एकका अनुभव करते हैं अर्थात् किसीको सुखका अनुभव होता है और किसीको दुःखका। इसप्रकार नारदजीका उपदेश सुनकर शुकदेवजीने अपने धर्मकी कल्याणमयी गतिका निश्चय किया और वे सोचने लगे मैं सब प्रकारकी उपाधियोंसे मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त करूँगा, जहाँसे फिर संसार-सागरमें लौटना न पड़े। जहाँ जानेपर जीवकी पुनरावृत्ति नहीं होती, सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग करके मनके द्वारा उत्तम गति पानेका निश्चय किया है। जहाँ आत्माको शान्ति मिलेगी, जहाँ अक्षय, अविकारी और सनातनरूपसे मैं स्थित रहूँगा। यह गति योगके सिवाय सम्भव नहीं है। योगका आश्रय लेकर मैं सूर्यमण्डलमें प्रवेश करूँगा क्योंकि चन्द्रमण्डल सदाही क्षीण होनेवाला और बढ़नेवाला है। अपने मोक्षका विचार करते हुए अपने पिता व्यासको छोड़कर योगमें प्रवृत्त हुए। फिर वायुका रूप धारण कर अन्तरिक्षमें विचरने लगे। तत्पश्चात् वे ब्रह्मपदमें स्थित हो गये।

भीष्मने युधिष्ठिरसे कहा, मैं तुम्हें नारायण और नारद के बीच जो सम्वाद हुआ वह सुनाता हूँ। स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें उनके चार स्वायम्भुव अवतार हुए थे, जिनके नाम हैं- नर, नारायण, हरि और कृष्ण। उनमेंसे नर और नारायण बदरिकाश्रममें जाकर घोर तपस्या करने लगे। एक समय नारदजी घूमते-घूमते बदरिकाश्रममें पहुँचे और नर, नारायणके दर्शन करने लगे। ये सम्पूर्ण प्राणियोंके पिता, ये ही दोनों परमधाम, देवता और परम यशस्वी हैं। नारदजीने नारायणकी स्तुति की और कहा, आप अजन्मा सनातन माता-पिता और सर्वोत्तम अमृतरूप हैं। आपहीमें भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित हैं। आप ही सनातन गुरु हैं। आप किसकी आराधना कर रहे हैं बताने की कृपा करे। तब नारायणने कहा, जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इन्द्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतोंसे परे है तथा विद्वानोंने जिसे सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, त्रिगुणातीत तथा अन्तर्यामी बतलाया है, उस परमात्मासे ही त्रिगुणमय अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है, जिसे प्रकृति कहते हैं। वह सत्असत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है। हम दोनों उसीकी पूजा करते और उसीको देवता तथा पितर मानते हैं। उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पिता नहीं है। वह हमलोगोंका आत्मा है, इसीलिये हम उसकी पूजा करते हैं। ब्रह्मन। उसीने लोकको उन्नतिके पथपर ले जानेवाली धर्ममर्यादा स्थापित की है। देवता और पितरोंकी पूजा करनी चाहिये, यह उसीकी आज्ञा है। ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कर्दम, क्रोध और विक्रीत- ये प्रजापति उसी परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं और उसीकी बनायी हुई सनातन मर्यादाका पालन करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृसम्बन्धी कर्मोंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करते हैं। स्वर्गमें रहनेवाले प्राणियोंमेंसे जो कोई उस परमात्माको प्रणाम करते हैं, वे उसकी कृपासे उत्तम गति प्राप्त करते हैं। जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धिरूप सत्तरह गुणोंसे, सब कर्मोंसे तथा पंद्रह कलाओंसे अपनेको पृथक समझते हैं, वे ही मुक्त हैं; यह शास्त्रका सिद्धान्त है। मुक्त पुरुषोंकी गति परमात्मा है, जिसे शास्त्रोंमें

क्षेत्रज्ञ कहा है। वह परमात्मा सर्वगुणसम्पन्न तथा निर्गुण भी कहलाता है। ज्ञानयोगके द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। हम दोनोंका प्रादुर्भाव उसीसे हुआ है, ऐसा जानकर हम उस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं। चारों वेद, चारों आश्रम तथा नाना प्रकारके मतोंका आश्रय लेनेवाले लोग भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करते हैं और वह इन सबको उत्तम गति प्रदान करते है।

तब नारदजी बोले, मैं श्वेतद्वीपमें प्रस्थान करता हूँ। मैंने वेदोंका स्वाध्याय और तप किया है। मैं सदा गुरुजनोंका आदर करता हूँ, किसीकी गुप्त बात दूसरोंपर प्रकट नहीं करता। शत्रु और मित्र मेरा समान भाव है। मेरा अन्त:करण शुद्ध हैं मैं उस अनन्त परमेश्वरके दर्शन करना चाहता हूँ। नारदजीने उन ऋषियोंकी पूजा की और योगका आश्रय लेकर श्वेतद्वीप में उन परम परमेश्वर के दर्शन के लिये गये। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और महातेजस्वी यह सात ऋषियों ने मिलकर तन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति की। ये सब ऋषि एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, संयमपरायण, भूत-भविष्य व वर्तमान के ज्ञाता तथा सत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने यह सोचकर कि अमुक साधन से संसार का कल्याण होगा और परमात्माकी प्राप्ति होगी। उस शास्त्रकी रचना की। उसमें धर्म, अर्थ काम और मोक्षका वर्णन और नाना प्रकारकी मर्यादाओं और स्वर्ग एवं मर्त्यलोककी स्थितिका भी वर्णन किया गया। इन ऋषियोंने एक हजार दिव्य वर्षतक भगवान् नारायणकी तपस्या की। इसमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषयमें ज्ञान दिया। नारायणने कहा तुम्हारा यह उत्तम शास्त्र भी प्रामाणिक शास्त्र माना जायगा। स्वायम्भुव मनु ऋषिके अनुसार प्रजाको उपदेश करेंगे। जब शुक्राचार्य और बृहस्पति प्रकट होंगे तो इस शास्त्रका प्रवचन करेंगे। तदनन्तर धर्मका प्रचार और लोकोंको धर्म मर्यादाके भीतर रखनेवाले सभी ऋषिगण तपस्याका निश्चय करके वहाँसे चले गये। भगवान नारायण सबसे महान देवता हैं एकमात्र वे ही हव्य-कव्यके भोक्ता और संसार की रचना करनेवाले है। उनका आदि और अन्त नहीं है। उन अव्यक्त परमेश्वरकी देवता और दानव भी पूजा करते हैं। नारदजी भगवान के दर्शन की इच्छासे उनके नामका जप करने लगे और अपनी दोनों बाँहें उठाकर एकाग्रचित्त हो भगवान नारायण की स्तुति इसप्रकार की- हे देवदेवेश्वर। आपको नमस्कार है। आप निष्क्रिय, निर्गुण और समस्त जगत्के साक्षी हैं। क्षेत्रज्ञ, पुरुषोत्तम (क्षर-अक्षर पुरुषसे उत्तम), अनन्त, पुरुष, महापुरुष, पुरुषोत्तम (परमात्मा), त्रिगुण, प्रधान, अमृत, अमृताख्य, अनन्ताख्य, व्योम, सनातन, सदसद्व्यक्ताव्यक्त, ऋतधामा, आदिदेव, वसुप्रद, प्रजापति, सुप्रजापति, वनस्पति, महाप्रजापति, ऊर्जस्पति, वाचस्पति, जगत्पति, मनस्पति, दिवस्पति, मरुत्पति, सलिलपति, पृथ्वीपति, दिक्पति, पूर्वनिवास (महाप्रलयके समय जगत्के आधाररूप), गुह्य, ब्रह्मपुरोहित, ब्रह्मकायिक, महाराजिक, चातुर्महाराजिक, भासुर (प्रकाशमान), महाभासुर, सप्तमहाभाग, याम्य, महायाम्य, संज्ञासंज्ञ, तुषित, महातुषित, प्रमर्दन (मृत्युरूप), परिनिर्मित, अपरिनिर्मित, वशवर्ती, अपरिनिन्दित, अपरिमित (अनन्त), वशवर्ती, अवशवर्ती, यज्ञ, महायज्ञ, यज्ञसम्भव, यज्ञयोनि, यज्ञगर्भ, यज्ञहृदय, यज्ञस्तुति, यज्ञभागहर, पञ्चयज्ञ, पञ्चयज्ञकालकर्तृपति (अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और संवत्सररूप कालके स्वामी), पाञ्चरात्रिक, वैकुण्ठ, अपराजित, मानसिक, नामनामिक (सम्पूर्ण नामोंके नामी), परस्वामी, (परमेश्वर), सुस्नात, हंस, परमहंस, महाहंस, परमयाज्ञिक, सांख्ययोग, सांख्यमूर्ति, अमृतेशय, हिरण्येशय, देवेशय, कुशेशय, ब्रह्मेशय, पद्मेशय, विश्वेश्वर और विष्वक्सेन आदि आपहीके नाम हैं। आप ही जगदन्वय जगत्में ओत-प्रोत तथा जगत्की प्रकृति हैं। अग्नि आपका मुख है, आप ही वडवानल, आहुति, सारथी, वषट्कार, ॐकार, तप, मन, चन्द्रमा, नेत्र, आज्य (घृत), सूर्य, दिग्गज, दिग्भानु (दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले), विदिग्भानु (कोणोंको प्रकाशित करनेवाले) तथा हयग्रीव हैं। आप प्रथम त्रिसौपर्णमन्त्र, ब्राह्मणादि वर्णोंको धारण करनेवाले तथा पञ्चाग्निरूप हैं। नाचिकेत नामसे प्रसिद्ध त्रिविध अग्नि भी आप ही हैं। आप शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्यौतिषनामक छ: अङ्गोंके भण्डार हैं। प्राग्यौतिष, ज्येष्ठसामग,

सामिकव्रतधारी, अथर्वशिरा, पञ्चमहाकल्प, फेनपाचार्य, बालखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग (पूर्णयोग), अभग्नपरिसंख्यान (पूर्णविचार), युगादि, युगमध्य, युगान्त, आखण्डल (इन्द्र), प्राचीनगर्भ, कौशिक, पुरुष्टुत, पुरुहूत, विश्वकृत (विश्वकर्मा), विश्वरूप, अनन्तगति, अनन्तभोग, अनन्त, अनादि, अमध्य, अव्यक्तमध्य, अव्यक्तनिधन, व्रतावास, (व्रतके आश्रय), समुद्रवासी, यशोवास (यशके निवास), तनोवास (तपके अधिष्ठान), दमावास (संयमके आधार), लक्ष्मीनिवास, विद्यावास, कीर्त्यावास, श्रीवास, सर्वावास (सबके निवासस्थान), वासुदेव, सर्वच्छन्दक (सबकी इच्छा पूर्ण करनेवाले), हरिहय, हरिमेध (भगवद्भक्त), यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र, सर्वकृच्छ्र, नियमधर, निवृत्तभ्रम (भ्रमरहित), प्रवचनगत (व्याख्यान-परायण), पृश्निगर्भप्रवृत्त, प्रवृत्तवेदक्रिय (वैदिक कर्मोंके प्रवर्तक), अज, सर्वगति, सर्वदर्शी, अग्राह्य, अचल, महाविभूति, महात्म्यशरीर, पवित्र, महापवित्र, हिरण्यमय, बृहद्, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, प्रजाकी सृष्टि करनेवाले, प्रजाका अन्त करनेवाले, महामायाधारी, चित्रशिखण्डी, वरद्, पुरोडाश ग्रहण करनेवाले, गताध्वर (समाप्तयज्ञ), छिन्नतृष्ण (तृष्णारहित), छिन्नसंशय, सर्वतोवृत्त (सर्वव्यापक), निवृत्तरूप, ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्ति, महामूर्तिबान्धव, भक्तवत्सल तथा ब्रह्मण्यदेव आदि नामोंसे पुकारे जानेवाले परमेश्वर। आपको नमस्कार है। मैं आपका भक्त हूँ और आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। एकान्तमें दर्शन देनेवाले आप परमात्माको बारंबार नमस्कार है।

तब भगवान नारायणने उन्हें अपने विराट स्वरूपसे दर्शन दिया। उनके हजारों नेत्र, हजारों मस्तक, हजारों पैर, हजारों उदर और हजारों हाथ थे तथा कहीं-कहीं उनकी आकृति स्पष्ट नहीं जान पड़ती थी। वे एक मुखसे ॐकारसहित गायत्रीका जप तथा अन्यान्य मुखोंसे चारों वेदों और आरण्यकोंका गान कर रहे थे। वे अपने हाथोंमें वेदी, कमण्डलु, उज्ज्वलमणि, कुश, मृगचर्म, दण्ड और धधकती हुई आग लिये हुए थे। उनके चरणोंमें चरण-पादुकाएँ शोभा पा रही थीं। भगवानका मुख प्रसन्न दिखायी देता था। उनका दर्शन पाकर नादरजीका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा और वे चुपचाप उनके चरणोंमें पड़ गये। तब देवताओंके आदिकारण उन अविनाशी परमात्माने नारदजीसे कहा- देवर्षे। महर्षि एकत, द्वित और त्रित भी मेरे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आये हुए थे, किंतु उन्हें मेरा दर्शन न हो सका। वास्तवमें मेरे अनन्य भक्तके सिवा और कोई मुझे नहीं देख सकता। तुम तो मेरे अनन्य भक्तोंमें श्रेष्ठ हो, इसीलिये मेरा दर्शन कर सके हो। विप्रवर। धर्मके घरमें जिन्होंने अवतार लिया है, वे नर-नारायण आदि मेरे ही स्वरूप है; तुम सदा उनका भजन किया करो। आज मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।

नारदजीने कहा- भगवन्। जब आपका दर्शन हो गया तो मुझे तप, यम और नियम सबका फल मिल गया। आपका दर्शन ही मेरे लिये सबसे बड़ा वरदान है।

भगवानने कहा- नारदजी। मुझे कोई नेत्रोंसे नहीं देख सकता। तुम जो मुझे देख रहे हो, यह मेरी रची हुई मायाका प्रभाव है। मैं सर्वत्र व्यापक और सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्तरात्मा हूँ। प्राणियोंके शरीरोंका नाश हो जानेपर भी मैं नहीं नष्ट होता। मुनिवर। जो लोग मेरे एकान्त भक्त हो चुके हैं, वे बड़े सौभाग्यशाली और सिद्ध हैं; क्योंकि रजोगुण और तमोगुणसे मुक्त होकर वे मुझमें ही प्रवेश करेंगे। मुनिवर। मेरे दाहिने भागमें ग्यारह रुद्र और वाम भागमें बारह आदित्य विराजमान हैं। मेरे अग्रभागमें आठ वसु और पृष्ठभागमें दोनों अश्विनीकुमार स्थित हैं। सम्पूर्ण प्रजापति, सात ऋषि, वेद, यज्ञ, अमृत, ओषधि तथा नाना प्रकारके यम-नियम भी मेरे शरीरमें मूर्तिमान दिखायी देते हैं। आठ प्रकारके ऐश्वर्य भी यहाँ साकाररूपसे प्रकट हैं। श्री, लक्ष्मी, कीर्ति, पृथ्वी तथा वेदमाता सरस्वती देवी भी मेरे भीतर विराजमान हैं, उनका दर्शन करो। ये नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ ध्रुव दिखायी दे रहे हैं। बादल, समुद्र, सरोवर और नदियोंको भी मूर्तिमान देख लो। ये चार प्रकारके पितृगण शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। इनके साथ ही मेरे अंदर रहनेवाले सत्त्वादि गुणोंका भी अवलोकन करो। मैं ही देवताओं और पितरोंका

पिता हूँ तथा हयग्रीवरूप धारण करके समुद्रके भीतर वायव्य कोणमें रहता हूँ। सांख्यके आचार्य मुझे विद्याशक्तिसे सम्पन्न एवं सूर्यमण्डलमें स्थित कपिल कहते हैं। वेदमें जिनकी स्तुति की गयी है, वह हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ तथा योगीलोग जिसमें रणम करते हैं, वह योगशास्त्रप्रसिद्ध ब्रह्म भी मैं ही हूँ। इस समय मैं व्यक्तरूप धारण करके आकाशमें स्थित हूँ; फिर हजार युग बीतनेपर इस जगत्का संहार करूँगा और सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको अपनेमें लीन करके मैं अकेला ही अपनी विद्याशक्तिके साथ विहार करूँगा। तदनन्तर, सृष्टिका समय आनेपर फिर उस विद्याशक्तिके ही द्वारा संसारकी सृष्टि करूँगा तथा कुछ काल पश्चात् त्रेता और द्वापरके संध्यांशके समय मैं दशरथनन्दन राम के रूपमें अवतार लूँगा। उस समय समस्त संसारके लिये कण्टकरूप पुलस्त्यकुलघातक राक्षसराज रावणका उसकेअनुयायियोंसहित नाश करूँगा। फिर द्वापर और कलिकी संधिमें कंसको मारनेके लिये मथुरामें अवतार धारण करूँगा और देवताओंके लिये काँटा बोनेवाले बहुत-से दानवोंका वध करके द्वारिकापुरीमें निवास करूँगा। वहाँ रहते समय देवमाता अदितिका अप्रिय करनेवाले भूमिपुत्र नरकासुर, मुर तथा पीठनामक दानवका संहार करूँगा और उनके प्राग्ज्योतिषपुरनामक नगरका धन-धान्य द्वारिकामें उठवा ले जाऊँगा। तदनन्तर, वाणासुरका प्रिय तथा हित चाहनेवाले विश्ववन्दित देवता महादेव और कार्तिकेयको युद्धमें परास्त करूँगा और शाल्वादि वीरोंको मौतके घात उतारूँगा। इतना ही नहीं, महर्षि गर्गके तेजसे शक्तिशाली बने हुए कालयवनका भी मेरे ही द्वारा नाश होगा। उस समय गिरिव्रज (राजगृही) में जरासन्धनामक एक बहुत बलवान असुर राजा होगा, जो दूसरे राजाओंसे वैर मोल लेता फिरेगा। उसका भी मेरी ही बुद्धिके प्रयत्नसे नाश होगा। इसी प्रकार धर्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें भेंट लेकर आये हुए समस्त बलवान राजा-महाराजाओंके बीच शिशुपालका मस्तक काटूँगा। महाभारतमें सबको परास्त करके भाइयोंसहित युधिष्ठिरको उनके राज्यपर बिठाऊँगा। उस समय संसारके लोग यही कहेंगे कि श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें ये नर और नारायण ऋषि जगत्का कल्याण करनेके लिये क्षत्रियकुलका संहार कर रहे हैं। इस प्रकार पृथ्वीका भार उतारकर मैं द्वारिकाके समस्त यादवोंका भी भयंकर संहार करूँगा। नारदजी। तुम्हारी भक्तिके कारण यह भूत और भविष्यका सारा रहस्य मैंने तुमसे बतलाया है। तब नारदजी भगवान का अनुग्रह पाकर नर-नारायणका दर्शन पानेके लिये बदरिकाश्रमकी ओर चल दिये।

वैशम्पायन बोले, जनमेजय। भगवान कृष्णने अर्जुन पर प्रसन्न होकर उनके गुण और कर्मके अनुसार स्वयं उनके नामोंकी व्याख्या की। एक समय अर्जुनने कृष्णसे पूछा, भगवन। आप भूत और भविष्य के स्वामी सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि करनेवाले, अविनाशी, जगत्के आश्रय, ईश्वर और अभय देनेवाले हे देवदेव। वेद और पुराणोंमें महर्षियोंने आपके कर्मानुसार जो-जो गूढ़ नाम बतलाये हैं, वह मैं सुनना चाहता हूँ।

कृष्ण बोले, अर्जुन। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, उपनिषद्, पुराण, ज्योतिष, सांख्य, योगशास्त्र तथा आयुर्वेदमें महर्षियोंने मेरे बहुत-से नाम बतलाये हैं, उनमेंसे कुछ नाम तो गुणोंके अनुसार हैं और कुछ कर्मोंके अनुसार। जिनके प्रसादसे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्र प्रकट हुए हैं, उन निगुण-सगुणरूप विश्वात्मा भगवान नारायणको नमस्कार है। वे ही सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं। उनसे ही सृष्टि, प्रलय आदि सम्पूर्ण विकारोंकी उत्पत्ति होती है। वे ही तप, यज्ञ और यजमान हैं। पुराण-पुरुष और विराट-पुरुष भी उन्हींके नाम है। जब प्रलयकी रात बीती थी, उस समय उन अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल प्रकट हुआ तथा उन्हींकी कृपासे उस कमलमेंसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माका दिन बीतनेपर क्रोधके आवेशमें आये हुए भगवान्के ललाटसे संहारकारी रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार ये दोनों देवता- ब्रह्मा और रुद्र भगवान्के प्रसाद और क्रोधसे प्रकट हुए हैं तथा उन्हींके बताये हुए मार्गसे सृष्टि और संहारका कार्य पूर्ण करते हैं। समस्त प्राणियोंको वर देनेवाले ये दोनों देव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं। वास्तवमें तो वह सब कुछ नारायणकी

इच्छासे ही होता है। इनमेंसे संहारकारी रुद्रके कपर्दी (जटाजूटधारी), जटिल, मुण्ड, श्मशानगृहका सेवन करनेवाले, कठोर व्रतका पालन करनेवाले, रुद्र, योगी, परम दारुण, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस करनेवाले तथा भग देवताकी आँख फोड़नेवाले आदि कई नाम हैं। पाण्डुनन्दन। ये भगवान रुद्र भी नारायणके ही स्वरूप हैं। इन देवदेव महेश्वरकी पूजा करनेसे भगवान् नारायणकी भी पूजा हो जाती है। मैं सम्पूर्ण जगत्का आत्मा हूँ, इसलिये मैं पहले अपने आत्मारूप रुद्रकी ही पूजा करता हूँ। यदि मैं वरदाता भगवान् शिवकी पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकरका पूजन नहीं करेगा; क्योंकि मेरे कार्यको ही आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं। जो रुद्रको जानता है, वह मुझे जानता है। जो उनका भजन करता है, वह मेरा भी भजन करता है। रुद्र और नारायणकी एक ही सत्ता है, जो दो स्वरुप धारण करके संसारमें विचर रही है। मुझे रुद्रके सिवा दूसरा कोई वर देनेमें समर्थ नहीं है, यह सोचकर ही मैंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अपने आत्मारूप भगवान् रुद्रकी आराधना की थी। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवता और ऋषि भी भगवान नारायणकी पूजा करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें जो प्राणी रहते हैं, उन सबके नेता और सेव्य भगवान् विष्णु ही हैं, वे सदा सबकी पूजाके योग्य हैं। अर्जुन। तुम हव्य-कव्यको स्वीकार करने तथा सबको शरण देनेवाले उन भगवान्को सदा नमस्कार किया करो। चार प्रकारके मनुष्य मेरे भक्त होते हैं। उनमेंसे जो मेरे अनन्य भक्त हैं- मेरे सिवा किसी दूसरे देवताका भजन नहीं करते, वे ही श्रेष्ठ हैं; मैं ही उनकी परमगति हूँ। वे कर्म करते हुए भी फलकी इच्छा नहीं रखते। शेष तीन प्रकारके जो भक्त हैं, उन्हें मैं फलकी कामनावाला ही मानता हूँ और फलकी कामनावालोंको नीचे गिरना पड़ता है। किंतु जो कामनाका त्याग करनेवाले ज्ञानी भक्त हैं उन्हें सर्वोत्तम फलकी प्राप्ति होती है। ज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, शिव तथा दूसरे देवताओंकी सेवा करते हुए भी अन्तमें मुझे ही प्राप्त होते हैं। अर्जुन। यह मैंने तुमसे भक्तोंका अनन्तर बतलाया है। तुम और मैं- दोनों नर-नारायण ऋषि हैं और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये हमने मनुष्य-शरीरमें प्रवेश किया है। मैं अध्यात्मयोगको जानता हूँ तथा मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ इस बातका भी मुझे ज्ञान है। लौकिक अभ्युदयका साधक प्रवृत्तिधर्म और नि:श्रेयस प्रदान करनेवाला निवृत्तिधर्म मुझसे अज्ञात नहीं है। एकमात्र मैं ही सम्पूर्ण मनुष्योंका आश्रयभूत सनातन परमात्मा हूँ।

नर (पुरुष) से उत्पन्न होनेके कारण जलको नार कहते हैं, वह नार (जल) पहले मेरा अयन (निवासस्थान) था इसलिये मैं नारायण कहलाता हूँ। (जो आच्छादित करे अथवा जो किसीका निवासस्थान हो, उसको वासु कहते हैं।) मैं ही सूर्यरूप धारण करके अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण जगत्को आच्छादित करता हूँ तथा मुझमें ही समस्त प्राणी निवास करते हैं, इसलिये मेरा नाम वासुदेव हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंकी गति और उत्पत्तिका स्थान हूँ, मैंने आकाश और पृथ्वीको व्याप्त कर रक्खा है, मेरी कान्ति सबसे बढ़कर है, समस्त प्राणी अन्तमें मुझे ही पानेकी इच्छा करते हैं तथा मैं सबको आक्रान्त करता हूँ; इन्हींसब कारणोंसे लोग मुझे विष्णु कहते हैं। मनुष्य दम (इन्द्रियसंयम) के द्वारा सिद्धि पानेकी इच्छा करते हुए मुझे पाना चाहते हैं, इसलिये मैं दामोदर कहलाता हूँ। अन्न, वेद, जल और अमृतको पृश्नि कहते हैं, ये सदा मेरे गर्भमें रहते हैं, अत: मेरा नाम पृश्निगर्भ है। जगत्को तपानेवाले सूर्य और अग्निकी तथा चन्द्रमाकी जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे मेरा केश कहलाती हैं; उस केशसे युक्त होनेके कारण सर्वज्ञ विद्वान मुझे केशव कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा मेरे नेत्र हैं और इनकी किरणें केश कहलाती हैं। ये दोनों जगत्को शान्ति और ताप देकर हर्षित करते हैं; इसलिये हृषी कहे गये हैं तथा वे ही मेरे केश हैं; इस कारण मैं हृषीकेश कहलाता हूँ। यज्ञमें इलोपहूता सह दिवा आदि मन्त्रसे आवाहन करनेपर मैं अपना भाग हरण (स्वीकार) करता हूँ तथा मेरे शरीरका रंग भी हरित (श्याम) है, इसलिये मुझे हरि कहते हैं। प्राणियोंके सार या बलका नाम है धाम और ऋतका अर्थ है सत्य। मेरा धाम ऋत है- ऐसा विचारकर ब्राह्मणोंने मुझे ऋतधामा कहा है।

(गोविन्दका अर्थ है पृथ्वीको प्राप्त करनेवाला) पूर्वकालमें जब पृथ्वी पानीमें डूबकर रसातलमें चली गयी थी, तो मैंने (वाराह अवतार धारण करके) इसे प्राप्त किया था; इसलिये देवताओंने गोविन्द कहकर मेरा स्तवन किया है। मेरे शिपिविष्ट नामकी व्याख्या इस प्रकार है- रोमहीन प्राणीको शिपि कहते हैं- यह निराकारका उपलक्षण हैं तथा विष्टका अर्थ है व्यापक। मैंने निराकाररूपसे समस्त जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है, इसलिये मुझे शिपिविष्ट कहते हैं। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाला साक्षी आत्मा हूँ। मैंने न तो पहले कभी जन्म लिया है, न अब जन्म लेता हूँ और न आगे कभी जन्म लूँगा; इसलिये मेरा नाम अज है। मैंने कभी असत्- ओछी या अश्लील बात मुँहसे नहीं निकाली है; सत्यस्वरूपा ब्रह्मपुत्री सरस्वती मेरी वाणी है तथा सत् और असत् (सत् और सत्य) मेरे ही भीतर स्थित हैं; इस कारण मेरे नाभिकमलरूप ब्रह्मलोकमें रहनेवाले ऋषिगण मुझे सत्य कहते हैं। मैं पहले कभी सत्त्वसे च्युत नहीं हुआ हूँ, सत्त्व मुझसे ही उत्पन्न हुआ है, सत्त्वके कारण मैं पापसे रहित हूँ तथा सात्त्वतज्ञान (पाञ्चरात्रादि वैष्णव तन्त्र) से मेरे स्वरूपका बोध होता है; इन सब कारणोंसे मुझे सात्त्वत कहते हैं। अर्जुन। धर्म ही सबसे उत्कृष्ट है, वही शान्तिमय परब्रह्म है, उस धर्म या ब्रह्मसे मैं कभी च्युत नहीं होता; इसलिये अच्युत कहलाता हूँ। (अध:का अर्थ है पृथ्वी, अक्षका अर्थ है आकाश और जा का अर्थ है इनको जीतने या धारण करनेवाला) पृथ्वी और आकाश दोनोंको धारण करनेके कारण मुझे अधोक्षज कहते हैं। महर्षिलोग अधोक्षज शब्दको अलग-अलग तीन पदोंका समूह मानते हैं- अ का अर्थ लयस्थान, धोक्ष का अर्थ पालन-स्थान और ज का अर्थ उत्पत्तिस्थान है। उत्पत्ति, स्थिति और लयके स्थान एकमात्र नारायण ही हैं; अत: उनके सिवा दूसरा कोई अधोक्षज नहीं कहला सकता।

प्राणियोंके प्राणोंकी पुष्टि करनेवाला घृत मेरे स्वरूपभूत अग्निदेवकी अर्चिष, अर्थात् ज्वालाको जगानेवाला है; इसलिये वेदज्ञोंने मुझे घृतार्चि कहा है। जीव वात, पित्त और कफ- इन तीन धातुओंसे जीवन धारण करते हैं और इन्हीं तीनोंके क्षीण होनेपर नष्ट हो जाते हैं; इसलिये आयुर्वेदके विद्वान मुझे त्रिधातु कहते हैं। मेरे स्वरूपभूत भगवान धर्म संसारमें वृष नामसे विख्यात हैं तथा वैदिक शब्दकोषमें जहाँ पदोंकी व्याख्या की गयी है वहाँ भी धर्मरूपसे मुझे ही वृष कहा गया है; इसी प्रकार कपिशब्दका अर्थ श्रेष्ठ है, इसलिये प्रजापति कश्यपने मुझे वृषाकपि बतलाया है। मैं जगत्‌का साक्षी और सर्वव्यापक ईश्वर हूँ, देवता तथा असुर भी मेरे आदि, मध्य और अन्तका कभी पता नहीं पाते, इसलिये मैं अनादि, अमध्य और अनन्त कहलाता हूँ। धनञ्जय। जो शुचि-पवित्र एवं श्रवण करने योग्य हैं, उन्हीं वचनोंको मैं श्रवण करता हूँ; इसीलिये मेरा नाम शुचिश्रवा है। पूर्वकालमें मैंने एक सींगवाले वाराहका रूप धारण करके इस पृथ्वीको पानीसे निकाला था; अत: मेरा नाम एकशृङ्ग हुआ। वाराह अवतारके ही समय मेरे शरीरमें तीन ककुद् (ऊँचे स्थान) थे, इसलिये मैं त्रिककुद नामसे विख्यात हुआ। सांख्यशास्त्रका विचार करनेवाले विद्वानोंने जिसे विरञ्चि कहा है वह प्रजापति विरञ्चि मैं ही हूँ। तत्त्वका निश्चय करनेवाले सांख्यशास्त्रोंके आचार्योंने मुझे आदित्यमण्डलमें स्थित, विद्याशक्तिसे सम्पन्न, सनातन देवता कपिल कहा है। वेदोंमें जिनकी स्तुति की गयी है तथा योगीजन सदा जिनकी पूजा करते हैं, वह तेजस्वी हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ। वेदके विद्वान मुझे ही इक्कीस हजार ऋचाओंसे युक्त ऋग्वेद और एक हजार शाखाओंवाला सामवेद कहते हैं। आरण्यकोंमें ब्राह्मणलोग मेरा ही गान करते हैं। वे मेरे परम भक्त दुर्लभ हैं। जिसमें एक सौ एक शाखाएँ मौजूद हैं, उस यजुर्वेदमें भी मेरा ही गान किया गया है। अथर्ववेदके विद्वान मुझे ही आभिचारिक प्रयोगोंसे युक्त पञ्चकल्पात्मक अथर्ववेद मानते हैं। वेदोंमें जो भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, उन शाखाओंमें जितने गीत हैं तथा उन गीतोंमें स्वर और वर्णके उच्चारण करनेकी जितनी रीतियाँ हैं, उन सबको मेरी ही बनायी हुई समझो। मैं ही वरदाता हयग्रीव हूँ। प्राचीनकालमें मैं धर्मके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुआ था, इसलिये धर्मज कहलाता हूँ। जिन्होंने

गन्धमादन पर्वतपर अखण्ड तपका अनुष्ठान किया है, वे नर और नारायण मेरे ही स्वरूप हैं।

यह भगवान नारायण सब प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले और सबके ईश्वर हैं। नारायणका तेज अद्भुत हैं, उसका साक्षात्कार होना कठिन है। कल्पके अन्तमें जहाँ ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व और समस्त चराचर प्राणी लीन होते हैं, उनसे उत्कृष्ट और पावन दूसरा कोई नहीं है। नारदने बदरिकाश्रममें नर-नारायणका दर्शन किया। नर-नारायणने नारदसे कहा, श्वेतद्वीप में भगवान नारायणका साक्षात दर्शन किया वे प्रभु अव्यक्त प्रकृतिके मूल कारण है। किसीके लिये भी उनका दर्शन मिलना कठिन है। वे सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाले तथा उन्हींसे रस प्रकट हुआ जो जलका गुण है, उन्हींसे रूपगुणविशिष्ट तेजका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे संयुक्त होनेके कारण सूर्यदेव इस जगतमें् प्रकाशित हो रहे हैं। उन्हीं पुरुषोत्तमसे स्पर्शकी उत्पत्ति हुई। वे ही लोकेश्वर सबको सार्थक करनेमें समर्थ है, जिससे आकाशका नित्य संयोग है। सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर स्थिर रहनेवाले मनकी उत्पत्ति भी उन्हींसे हुई है। नारदजी एक हजार वर्षतक नर और नारायणके आश्रम में रहे। वैशम्पायन ने यह सब प्रसंग जनमेजय को सुनाया और यज्ञ पूर्ण करने का कार्य आरम्भ किया। परम ऋषि नारायण सम्पूर्ण मनुष्यों और लोकोंके स्वामी हैं। इस पृथ्वीको उन्होंने ही धारण कर रखा है। वे ही वैदिक धर्म और विनयका पालन करनेवाले, शम और दमकी निधि, यम-नियममें परायण, देवताओंका हित साधनेवाले, असुरविनाशक, तपके भण्डार, महान यशके भाजन, मधु-कैटभका वध करनेवाले, तथा यज्ञमें भाग ग्रहण करनेवाले, जो सम्पूर्ण जगतके साक्षी, अजन्मा, अन्तर्यामी, पुराणपुरुष, सूर्यके समान तेजस्वी, ईश्वर है। अपने मनको वशमें रखनेवाले सांख्ययोगी उन्हींको बुद्धिके द्वारा प्राप्त करते हैं।

एक समय मधु और कैटभ नामके दैत्यने वेदोंको चुराकर रसातल में ले गये। तब वेदोंका अपहरण हो जानेपर ब्रह्माजीको बड़ा खेद हुआ। उस समय भगवान नारायण ने हयग्रीव अवतार धारण कर वेदोंको उबारा और दोनों दैत्योंको मारा। नारायण वेद और तपस्याकी निधि है तथा सांख्य, योग, ब्रह्म एवं हविष्यरूप वे ही हैं। वेदोंका पर्यवसान नारायण में ही है। यज्ञ नारायण के ही स्वरूप है, तप नारायणकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। ऋत और सत्य भी नारायणके ही स्वरूप है। निवृत्तिप्रधान धर्म भी नारायणको ही लक्ष्य करनेवाला है। प्रवृत्तिधर्म भी नारायणका ही स्वरूप है। मन, कालन, नक्षत्र, मण्डल, कीर्ति, श्री, लक्ष्मी, सम्पूर्ण देवता तथा सांख्य और योगशास्त्र ये सब नारायणही के स्वरूप हैं। पुरुष, प्रधान, प्रभाव, कर्म तथा दैव, ये जिन वस्तुओंके कारण हैं, वे भी नारायण के ही स्वरूप हैं। जो लोग सर्वव्यापक हेतुओंसे तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये महायोगी नारायण ही एकमात्र ज्ञातव्य तत्त्व हैं। समस्त विश्वमें जो लोग देवताओंके लिये यज्ञ और पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, दान देते हैं और महान् तप करते हैं उन सबके भोक्ता भगवान् विष्णु है। वे अपने ऐश्वर्ययोगमें स्थित रहते हैं। उन महात्माके गमनागमनको कोई नहीं जानता। जो ज्ञानी महर्षि हैं, वे ही उन नित्य अन्तर्यामी परमात्माका साक्षात्कार करते हैं।

सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब सत्ययुगका आरम्भ होनेपर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिको जिस धर्मका उपदेश दिया, उसी उपदेशको दक्षने अपने ज्येष्ठ दौहित्र आदित्य जो सविता (विवस्वान) से बड़े थे, यह धर्म बतलाया। उनसे त्रेतायुगके आरम्भमें मनुने अपने कल्याणके लिये अपने पुत्र इक्ष्वाकुको उस धर्मका उपदेश किया। इक्ष्वाकुके उपदेश से इसका विश्वव्यापी प्रचार हो गया। जब संसारका प्रलय होगा तो फिर यह धर्म भगवान नारायणमें ही लीन हो जायगा। इसप्रकार यह महान धर्म सबसे प्रथम तथा सनातन है। इसतरह भीष्मने युधिष्ठिरको उपदेश दिया।

इति शान्तिपर्व

*** बड़ा बनने के लिये पहले स्वयं को छोटा बनना पड़ता है।**

*** जिन्दगी में बड़ा आदमी बनना अच्छी बात है लेकिन अच्छा आदमी बनना उससे भी बड़ी बात है।**

अनुशासन पर्व

* विषय उपक्रम *

१)	ब्रह्मगीता	६७०
२)	कन्यादान	६८१
३)	वर्णसंकर सन्तान	६८३
४)	गंगाका माहात्म्य	६८५
५)	गौओंका माहात्म्य	६८७
६)	दान की महिमा	६९१
७)	श्राद्धकर्म	६९६
८)	शिष्टाचार और सदाचार	६९९
९)	जीव के आवागमन का चक्र	७०५
१०)	धर्म, ईश्वर, जीव, संसार, प्रकृति	७०६
११)	स्त्री का पतिव्रत धर्म	७११
१२)	स्वर्ग-नरक की प्राप्ति	७१३
१३)	कल्याणका साधन	७१५
१४)	श्रीकृष्णका माहात्म्य	७१६
१५)	भगवान शंकरके माहात्म्य का वर्णन	७१९
१६)	विष्णुसहस्त्रनाम	७२०
१७)	गायत्री मन्त्रका जाप	७३०
१८)	भीष्म का प्राण त्याग और भीष्म की अन्त्येष्टि	७३२

HHH(६६६)HHH

अनुशासन पर्व

भीष्म पिताके उपदेश देनेपर भी युधिष्ठिरको अपने पापोंकी याद आती रही और उसे जरा भी चैन नहीं मिला। तब भीष्म ने उसे गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके संवादका वर्णन किया। गौतमी ब्राह्मणीके एकलौते पुत्रको सांपने डँस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। इतनेहीमें अर्जुनक नामके बहेलियेने उस साँपको जालमें फँसा लिया और उस सर्पको ब्राह्मणीके पास लाकर बोला, तुम्हारे पुत्रको काटनेवाला यही सर्प है। तुम कहो तो इसको जलती आगमें फेंक दूँ या इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालो। गौतमी ब्राह्मणी बोली, यह मारनेके योग्य नहीं है क्योंकि होनहार को कोई टाल नहीं सकता। इसको मार डालनेसे मेरा पुत्र जीवित नहीं होगा और उसको जीवित छोड़नेसे मेरी कोई हानि नहीं होगी। इस बालक की मृत्यु इसीसे होनेवाली थी। तू इस सर्पको क्षमा कर इसे छोड़ दे। व्याध बोला, गौतमी यदि यह सर्प जीवित रहेगा तो अपने स्वभाववश बहुतसे मनुष्योंको काटेगा। अनेकोंकी जान लेकर एक जीवकी रक्षा करना कदापि उचित नहीं है। तब वह सर्प मनुष्यवाणी में बोला, इसमें मेरा क्या दोष है? मैं तो पराधीन हूँ। मृत्युने मुझे प्रेरित किया। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं यही कोई अपराध है तो मृत्युका। वास्तवमें मृत्यु ही अपराधी है। तब मृत्युने कहा, कालकी प्रेरणासे ही मैंने तुझे प्रेरित किया, इसलिये इस बालकके मारने में न तो कारण मैं हूँ और न तू ही है। मैं भी कालके वशमें हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस जो भी भाव है वे सब प्राणियोंको कालकी ही प्रेरणासे प्राप्त होते है। पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकमें जितने भी स्थावर जङ्गम पदार्थ है सभी कालके अधीन है। यह सारा जगत् ही कालका अनुसरण करनेवाला है। संसारमें जितने प्रकारके प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म तथा उनके फल हैं, वे सब कालके ही वशमें हैं। सर्पने कहा, मृत्यो। न तो तुम दोषी हो न ही तुम निर्दोष हो। मृत्युने कहा, व्याध। हम दोनों कालके अधीन है। जगतमें जो कोई काम हो रहा है वह सब तो कालकी प्रेरणासे ही हो रहा है। तब काल वहाँ पहुँचा और कहा, न तो मैं, मृत्यु तथा सर्प कोई भी अपराधी नहीं है। प्राणियोंकी मृत्युमें हमलोग प्रेरक नहीं हैं। इस बालकने जो कोई कर्म किया था उसीसे उसकी मृत्यु हुई है। इसके विनाश में इसका कर्म ही कारण है। मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही नाना प्रकारके फल भोगता है। तब गौतमी ब्राह्मणी बोली, व्याध। सचमुच इस बालकके मरनेमें काल, सर्प या मृत्यु कारण नहीं है, बल्कि यह अपने ही कर्मसे मरा है। यह उदाहरण देकर भीष्म युधिष्ठिरसे बोले, तुम शान्ति धारण करो। शोकमें न पड़ो। सब मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाले लोकोंमे जाते हैं। तुमने दुर्योधन का कुछ नहीं बिगाड़ा यह सब तो काल की ही करतूत है, उसीने समस्त राजाओंका संहार किया और सब कुरुवंशियोंका संहार हुआ।

गृहस्थ पुरुष के लिये अतिथिसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यदि अतिथि पूजित होकर मन-ही-मन गृहस्थके कल्याणका चिन्तन करे तो उससे जो फल मिलता है, उसकी सौ यज्ञोंसे भी तुलना नहीं हो सकती, ऐसा मनीषी विद्वानोंका कथन है। जो गृहस्थ सुपात्र और सुशील अतिथिके आनेपर उसका सत्कार नहीं करता, वह अतिथि उस गृहस्थको अपना पाप दे उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

पूर्वकालमें जह्नु ऋषि हुए थे, जिन्होंने गङ्गाको अपनी पुत्री बनाया। उन्हींके पुत्र सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका पुत्र बलाकाश्व, उनके पुत्र हुआ कुशिक और कुशिक से हुए महाराज गाधि। गाधिके एक पुत्र और पुत्री उत्पन्न हुए। पुत्री सत्यवती ऋचीक मुनिको ब्याही गयी। ऋचीक मुनि च्यवनऋषि के पुत्र थे। गंगाका तट कन्नौजके पास है जो आज भी लोगोंमें अश्वतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। सत्यवतीके पुत्र हुए जमदाग्नि ऋषि और उनसे पुत्र हुआ परशुराम। गाधिसे पुत्र हुए विश्वामित्र। तदनन्तर विश्वामित्र ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए और उनके पुत्र बड़े तपस्वी, ब्रह्मवेत्ता, ब्राह्मणवंशको बढ़ानेवाले और गोत्रके प्रवर्तक थे। मधुच्छन्दा, देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्रु, कालपथ, याज्ञवल्क्य, स्थूण, उलूक, यमूदत,

सैन्धवायन, वल्गुजङ्घ, गालव, वज्र, सालंकायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्चामुख, वादुलि, मुसल, वक्षोग्रीव, आङ्घ्रिक, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जाबालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर, पौरव, तन्तु, कपिल, ताडकायन, उपगहन, आसुरायण, मार्दमर्षि, हिरण्याक्ष, जङ्गारि, बाभ्रवायणि, भूति, विभूति, सूत, सुरकृत, अरालि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु, वकनख, सेयन, यति, अम्भोरुह, चारुमत्स्य, शिरीषी, गार्दभि, ऊर्जयोनि, उदापेक्षी और नारदी- ये सब ऋषि विश्वामित्रके पुत्र थे तथा विश्वामित्रजी यद्यपि क्षत्रिय थे तथापि ऋचीक मुनिने उनमें ब्रह्मतेजका आधान किया था।

काशीराजके राज्यकी बात है, एक व्याध विषमें बुझाया हुआ बाणको एक मृगके ऊपर चला रहा था। उसका निशाना चूक जानेपर वह बाण एक हरे-भरे वृक्षमें धँस गया और उसका तीक्ष्ण विष सारे वृक्षमें फैल गया। जिससे उसके सारे पत्ते झड़ गये और वृक्ष धीरे-धीरे सूखने लगा। उसके कोटरेमें एक तोता रहता था। उसका उस वृक्षके साथ बड़ा प्रेम था। वृक्ष सूखनेपर भी उसे छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता था। उसने चारा चुगना छोड़ दिया और अस्वस्थ हो गया। यह देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और ब्राह्मण वेष में आकर तोतेसे बोला, हे शुकदेव। तुम इस वृक्षको छोड़ क्यों नहीं देते। तब तोता बोला मैंने अपने तपोबलसे आपको पहचान लिया है देवराज। तब इन्द्रने कहा, शुक। इस वृक्षपर न पत्ते हैं, न फल और अब तो इसके ऊपर कोई पक्षी नहीं रहता। तुम इस सूखे वृक्षपर क्यों रह रहे हो? इस वृक्षकी आयु समाप्त हो गयी है। यह नि:सार और श्रीहीन है। इस ठूठे पेड़को तुम छोड़ दो। तब वह तोता बोला, देवराज। मैंने इसी वृक्षपर जन्म लिया और यहीं रहकर मैंने अच्छे गुण सीखे। इस वृक्षने बालक के समान मेरी रक्षा की। इस वृक्षमें मेरी बड़ी भक्ति है। अब मैं इसे छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता। साधु पुरुषोंके लिये दूसरोंपर दया करना ही सबसे महान धर्म बतलाया गया है। अत: मुझे इस वृक्षको त्यागने के लिये क्यों कह रहे है? तोतेके वचन सुनकर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने तुरंत ही अमृत की वर्षा करके उस वृक्षको हरा-भरा कर दिया। इसी प्रकार अपनेमें भक्ति रखनेवाले पुरुषका सहारा पाकर प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध कर लेता है।

बिना बीज के कोई चीज पैदा नहीं होती। बीज से बीज पैदा होता है और बीज से ही फल उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जो पुण्य या पाप जैसा कर्म किया जाता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। प्रारब्ध भी पुरुषार्थ के बिना काम नहीं देता। कर्म करनेवाला मनुष्य अपने भले या बुरे कर्मका फल स्वयम् भोगता है। शुभ कर्म करनेसे सुख और पाप करनेसे दु:ख मिलता है। पुरुषार्थी मनुष्य सर्वत्र सम्मान पाता है; किंतु जो निकम्मा और आलसी है वह असह्य दु:ख भोगता है। कर्मसे सब कुछ मिल सकता है परन्तु भाग्यके भरोसे बैठै रहनेवाले आलस्यहीन को कुछ नहीं मिलता। इस जगत्में पुरुषार्थ करनेसे स्वर्ग, भोग, प्रतिष्ठा और विद्वत्ता इन सबकी उपलब्धि होती है। नक्षत्र, नाग, यक्ष, चन्द्रमा, सूर्य और वायु आदि देवता पुरुषार्थ करके ही मनुष्यलोकसे देवलोकको गये हैं। जो लोग उद्योग नहीं करते उन्हें धन, मित्र, ऐश्वर्य अथवा दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति नहीं हो सकती। कंजूस, नपुंसक, उद्योगहीन, कामसे जी चुरानेवाले तथा शौर्य एवं तपस्यासे हीन पुरुषको धन नहीं मिलता। निकम्मा मनुष्य बहुत बड़े धनका भण्डार, तरह-तरह के भोग और रमणियाँ पाकर भी उनका उपभोग नहीं कर सकता। जो दान के कारण निर्धन हो गया, ऐसे सत्पुरुषके पास उसके सत्कर्मके कारण देवता भी पहुँच जाते हैं। उसका घर मनुष्यलोककी अपेक्षा श्रेष्ठ देवलोक-सा बन जाता है। परंतु जहाँ दान नहीं होता, वे घर यदि अनन्त समृद्धिसे भरे हों तो भी देवताओंकी दृष्टिमें श्मशानके बराबर ही है। जगत्में उद्योगहीन मनुष्य फूलता-फलता नहीं है। दैवमें इतनी ताकत नहीं है कि वह कुमार्गमें पड़े हुए पुरुषको सन्मार्गपर पहुँचा दे। संचित किया हुआ पुरुषार्थ ही दैवको जहाँ चाहता है वहाँ ले जाता है।

मनुष्यने जिस कार्यसे पिताको प्रसन्न किया उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं। जिस कर्मसे माताको सन्तुष्ट करता है उससे पृथ्वीकी पूजा हो जाती है। जिस कर्मसे उपाध्यायको तृप्त करता है उसके द्वारा ब्रह्मकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। जिसने इनका अनादर किया उसकी सम्पूर्ण यज्ञादिक क्रियाएँ निष्फल हो जाती है।

जो विनीतभावसे विद्याध्ययन करते, इन्द्रियोंका संयम रखते और मीठी-मीठी बातें करते हैं; जो शास्त्रके विद्वान, सदाचारी, अक्षर-तत्त्वके ज्ञाता और सत्पुरुष हैं, उनके मुँहसे मेघके समान गम्भीर और कल्याणमयी मनोहर वाणी सुनायी देती है। यदि राजा उन महात्माओंकी बातें सुने तो वे उसे इहलोक और परलोकमें भी सुख पहुँचानेवाली होती हैं। जो प्रतिदिन उनके वचनोंको श्रवण करते हैं, वे विज्ञानगुणसे सम्पन्न होते हैं। जो लोग पवित्र भावसे ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये उन्हें अच्छे ढंगसे बनाये हुए शुद्ध और स्वादिष्ट अन्न परोसते हैं, वे भी मेरे बड़े प्रिय हैं। पुत्र। कुलीन, धर्मात्मा, तपस्वी और विद्वान ब्राह्मण होनेकी बात कौन कहे, यदि मैं साधारण ब्राह्मण भी होता तो अपनेको धन्य समझता। इस संसारमें तुमसे बढ़कर मेरा प्रिय कोई नहीं है, किंतु ब्राह्मण मुझे तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। और तो क्या, अपने पिता, पितामह और सुहृदोंको भी मैंने कभी ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं समझा। मेरे द्वारा ब्राह्मणोंका कभी किंचित भी अपकार नहीं होता। मैंने मन, वाणी और कर्मसे ब्राह्मणोंका जो थोड़ा-बहुत उपकार किया है, उसीके प्रभावसे आज बाणशय्यापर पड़े रहनेपर भी मुझे पीड़ा नहीं होती। ब्राह्मणोंकी सेवा ही सबसे बढ़कर पवित्र कार्य हैं।

जैसे स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही संसारमें सबसे बड़ा धर्म है, पति ही उनका देवता तथा वही परमगति माना गया है, उसी प्रकार क्षत्रियके लिये ब्राह्मणकी सेवा ही परम धर्म तथा ब्राह्मण ही देवता और परमगति है। क्षत्रिय सौ वर्षकी अवस्थाका और ब्राह्मण दस वर्षकी उम्रका हो तो भी उन दोनोंको परस्पर पुत्र और पिताके समान समझना चाहिये। उनमें ब्राह्मण पिता है और क्षत्रिय पुत्र। अत: ब्राह्मणोंकी पुत्रके समान रक्षा, गुरुकी भाँति उपासना तथा अग्निकी भाँति परिचर्या करनी चाहिये। सरल, सत्यवादी और समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सदा ही सेवा करनी चाहिये। किसीको ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मणसे कोई अपराध भी हो जाय तो उसे क्षमा कर देना चाहिये। बालक, दरिद्र अथवा दीन होनेपर भी किसी ब्राह्मणका अपमान नहीं करना चाहिये। पहले तो उन्हें किसी बातकी आशा नहीं देनी चाहिये और यदि दे दी तो पूरी करनी चाहिये; क्योंकि पहलेकी दी हुई आशाके भङ्ग होनेपर ब्राह्मण क्रोधमें भरकर जिसकी ओर देखता है उसे उसी प्रकार भस्म कर डालता है, जैसे घास-फूसको आग। किंतु वही ब्राह्मण जब आशा-पूर्तिसे संतुष्ट होकर आशीर्वाद देता है तो वह दाताके लिये औषधके समान हो जाता है तथा उसके पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, पशु, मन्त्री, नगर और देशका कल्याण करके उन्हें शक्तिशाली बनाता है। इस पृथ्वीपर सहस्त्रों किरणोंवाले सूर्यदेवके प्रचण्ड तेजकी भाँति ब्राह्मणका तेज भी देखनेमें आता है। इसलिये जो उत्तम योनिमें जन्म लेना चाहता हो, उसे ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा की हुई वस्तु अवश्य दे डालनी चाहिये। इस लोकमें ब्राह्मणको दान देनेसे देवता और पितर तृप्त होते हैं; इसलिये विद्वान पुरुष ब्राह्मणोंको अवश्य दान दें। ब्राह्मण महान् तीर्थ माने जाते हैं। वे किसी भी समय घरपर आ जायँ तो बिना सत्कार किये उन्हें नहीं जाने देना चाहिये।

किसी नीच जातिके मनुष्यको उपदेश नहीं देना चाहिये, क्योंकि इससे उपदेश देनेवालेको महान दोष की प्राप्ति होती है। धर्मपालन की इच्छा रखनेवाले विद्वान पुरुषको खूब सोच समझकर उपदेश करना चाहिये। रोजगारकी दृष्टिसे उपदेश देनेवाला मनुष्य अपने ही धर्मकी हानि करता है। नीचको उपदेश देनेसे महान क्लेशका सामना करना पड़ता है। हिंसा, चोरी और परस्त्रीगमन ये तीन शरीरसे होनेवाले पाप हैं, इनका सर्वथा परित्याग करना उचित है। व्यर्थ बकवाद करना, निष्ठुर वचन कहना, चुगली खाना और झूठ बोलना ये चार वाणीद्वारा होनेवाले पाप हैं। इन्हें न कभी जबान पर लाना चाहिये और न मनमें ही सोचना चाहिये। दूसरोंका धन हड़पनेकी इच्छा न करना, सब प्राणियोंपर प्रेम रखना और कर्मोंका फल अवश्य मिलता है- इस बात पर विश्वास करना- ये तीन मनसे आचरण करने योग्य कार्य हैं। इन्हें सदा करना चाहिये और इनके विपरीत दूसरोंके धनका लालच करना, सम्पूर्ण प्राणियोंसे वैर रखना और कर्मोंके फलपर विश्वास न करना- ये तीन मानसिक पाप हैं, इनसे सदा बचे रहना चाहिये। इसलिये मनुष्यका कर्त्तव्य है कि वह मन, वाणी या शरीरसे कभी अशुभ कर्म न करे; क्योंकि वह

शुभ या अशुभ जैसा कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना पड़ता है। यज्ञ-होमादि देवकार्यकी सिद्धि ब्राह्मणके अधीन नहीं, देवताके अधीन है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यजमान लोग देवताओंकी कृपासे ही यज्ञ करते हैं। किंतु श्राद्ध-कर्मकी सिद्धि ब्राह्मणके अधीन है। उसमें सदा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रित करना चाहिये।

१) ब्रह्मगीता- ब्राह्मण जन्म और जाति से नहीं होता। ब्राह्मण उसे कहते है जिसे ब्रह्मका ज्ञान हो। उसका कर्म है याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह। वेदोंको जाननेवाला हो तो ब्राह्मणोंमें सारे दुष्कर्मोंका लय हो जाता है। जो ब्राह्मण शीलसे रहित है, उसे छहों अङ्गोंसहित वेद, सांख्य और पुराणका भी ज्ञान हो, तथा उत्तम कुलमें जन्म लिया हो फिर भी यह सब मिलकर उसे उत्तम गति प्रदान नहीं कर सकते। जो ब्राह्मण अध्ययन करके अपनेको बहुत बड़ा पंडित मानता हो और अपनी विद्वत्तापर गर्व करने लगता है, जो अपनी विद्याके बल से दूसरोंके यश का नाश करता है, वह धर्मसे भ्रष्ट होकर सत्यका पालन नहीं करता अत: उसे नाशवान लोकोंकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मण ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाला होना चाहिये। ऐसे वेदके पारंगत ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन नहीं करते। क्रियानिष्ठ, तपस्वी, पञ्चाग्निका सेवन करनेवाले, ब्रह्मचारी तथा माता-पिताके भक्त ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण श्राद्ध कराने योग्य है। ऐसा करनेसे श्राद्धका कर्ता पुण्यका भागी होता है। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कोमलता, इन्द्रियसंयम और सरलता- ये धर्मके निश्चित लक्षण हैं। जो मूर्ख बलिवैश्वदेवके समय आये हुए ब्रह्मचारी ब्राह्मणको अन्न नहीं देते, वे पापमय लोकोंमें जाते हैं। मांस और मदिराका त्याग उत्तम ब्रह्मचर्य है और ब्रह्मचर्य से भी श्रेष्ठ है वेदोक्त मर्यादामें स्थित रहना सबसे श्रेष्ठ धर्म है। मन और इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाये रखना ही सर्वोत्तम पवित्रता है। ब्राह्मणों और आचार्योंका आदर-सत्कार करना चाहिये। वेदोंके स्वाध्याय और अग्निहोत्रका त्याग न करे तथा ब्राह्मणकी निन्दा से दूर रहे। जो क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ और इन्द्रियसंयममें लगे रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको साधु पुरुष समझना चाहिये और उन्हींको दान देनेसे महान् भक्ति प्राप्त होती है। जिनका विचार दृढ़ है, जो जितेन्द्रिय, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी तथा सबके साथ मित्रताका भाव रखनेवाले ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान कभी निष्फल नहीं होता। जो निर्लोभ, पवित्र, विद्वान, संकोची, सत्यवादी और अपने कर्त्तव्यका पालन करनेवाले ब्राह्मणको दान देनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मणोचित कर्मों में (अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान-प्रतिग्रह) में प्रवृत्त रहता है, उसे ऋषिलोग दानका उत्तम पात्र मानते हैं। यदि उत्तम बुद्धि शास्त्रका विद्वान, सदाचार और सुशीलता आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण दान स्वीकार कर ले तो वह दाताके सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर देता है। एक भी उत्तम ब्राह्मण सारे कुलको तार सकता है। असमयका दान राक्षसोंका भाग है। जो दान तिरस्कारपूर्वक दिया गया हो, वह अन्न भी राक्षसोंका ही भाग है। मन्त्रज्ञानसे रहित, शस्त्रधारी तथा दुराचारी पुरुषोंका खाया हुआ, दूसरोंका जूँठा किया हुआ, देवता, पितर, अतिथि एवं बालक आदिको अर्पण किये बिना अपने उपभोगमें लाया हुआ जो अन्न है, उसे भी राक्षसी भोजन ही समझना चाहिये। जो ब्राह्मण पतित, जड़ या उन्मत्त हो गये हो, वे देवकार्य या पितृकार्यमें निमन्त्रण पानेके योग्य नहीं। जो कोढ़ी, नपुंसक, तपेदिक, रोगी, अन्धा, अपंग उसे भी श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये। वैद्य, पुजारी, पाखण्डी, सोमरस बेचनेवाले, गाने-बजाने और नाचनेवाले, खेल-कूदकर तमाशा दिखानेवाले, बकवादी पहलवान, शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले, शूद्रोंको पढ़ानेवाले ऐसे ब्राह्मण भी श्राद्धके योग्य नहीं है। अग्निहोत्र न करनेवाले, शव ढोनेवाले, चोरी करनेवाले, अन्यायी, पतित, अपरिचित, पुत्रीका धर्म पालनेवाले ब्राह्मण श्राद्धके अधिकारी नहीं है। जो ब्राह्मण कर्ज या व्याज लेकर तथा प्राणियोंको बेचकर जीविका चलाता हो, स्त्री का गुलाम, वेश्याका पति और संध्यावन्दन न करता हो, उसे भी श्राद्धमें निमन्त्रण नहीं देना चाहिये।

जो ब्राह्मण खेतीसे जीविका चलाते हुए भी व्रतका पालन करनेवाले, सद्गुणसम्पन्न, क्रियानिष्ठ और गायत्रीमन्त्रके ज्ञाता हों, उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रण दिया जा सकता है। जो युद्धमें क्षात्र-धर्मका पालन करता हुआ भी कुलीन हो, अग्निहोत्र करता हो, एक गाँवका रहनेवाला हो, चोरी न करता हो तथा अतिथि सत्कारमें प्रवीण हो, उसे भी निमन्त्रण देना चाहिये। जो तीनों

समय गायत्रीका जप करता है, भिक्षासे जीविका चलाता है, क्रियानिष्ठ है, जो सबेरे धनी और शामको गरीब तथा शामको धनी और सबेरे गरीब हो जाता है, किसी जीवकी हिंसा नहीं करता तथा जिसमें दोषोंकी कमी है, उसे भी श्राद्धमें भोजन कराया जा सकता है। जो दम्भरहित, व्यर्थ तर्क-वितर्क न करनेवाला और योग्य स्थानसे भिक्षा लेनेवाला है, वह श्राद्धमें निमन्त्रण देने योग्य है। जिसने पहले कठोर कर्म करके धनका संग्रह किया हो, किंतु पीछे अतिथिसेवाका व्रत धारण कर लिया हो, वह श्राद्धमें सम्मिलित करने योग्य हो जाता है। जो धन वेद बेचकर या स्त्रीकी कमाईसे प्राप्त हुआ हो अथवा जो लोगोंके सामने दीनता दिखाकर माँग लाया गया हो, वह श्राद्धमें ब्राह्मणको देने योग्य नहीं है।

ब्राह्मणके यहाँ श्राद्ध समाप्त होनेपर अस्तु स्वधा इस वाक्यका उच्चारण करनेपर पितरोंको प्रसन्नता होती है, क्षत्रियके यहाँ श्राद्धकी समाप्तिमें पितर: प्रीयन्ताम् (पितर तृप्त हो जायँ) इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये और वैश्यके घर अक्षय्यमस्तु (श्राद्धका दान अक्षय हो) कहना चाहिये। इसी तरह जब ब्राह्मणके यहाँ देवकार्य होता हो तो उसमें ॐकारसहित पुण्याहवाचन का विधान है। क्षत्रियके यहाँ ओंकाररहित पुण्याहवाचनकी विधि है (अर्थात केवल पुण्याहम का उच्चारण करे) तथा वैश्यके घर देवकार्यमें देवता: प्रीयन्ताम् (देवता प्रसन्न हों) इस वाक्यका प्रयोग करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य- इन तीनों वर्णोंके जात-कर्मादि संस्कार वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक कराने चाहिये।

ब्राह्मणको झूठ बोलनेपर जितना पाप लगता है, उससे चौगुना क्षत्रियको और आठगुना वैश्यको लगता है। यदि किसी ब्राह्मणने पहलेसे ही श्राद्धका निमन्त्रण दे रक्खा हो तो निमन्त्रित ब्राह्मणको दूसरी जगह जाकर भोजन नहीं करना चाहिये। यदि करता है तो उसको ओछा समझा जाता है और उसे पशु-हिंसाका पाप लगता है। इसी प्रकार यदि उसे किसी क्षत्रिय या वैश्यने पहलेसे निमन्त्रण दे रक्खा हो और वह कहीं अन्यत्र जाकर भोजन कर ले तो छोटा समझा जानेके साथ ही वह पशु-हिंसाके आधे पापका भागी होता है। राजन्। जो ब्राह्मण तीनों वर्णोंके यहाँ देव-यज्ञ अथवा श्राद्धमें स्नान किये बिना ही भोजन करता है अथवा जो लोभवश जान-बूझकर अपने घरमें अशौच रहते हुए भी दूसरेके यहाँ श्राद्धका अन्न ग्रहण करता है, उसको गौकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है। जो किसी कामका बहाना करके दूसरोंसे धन माँगते हैं, उन्हें झूठ बोलनेका पाप होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वेद-व्रतका पालन न करनेवाले ब्राह्मणोंको श्राद्धमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक अन्न परोसता है, उसे भी गायकी झूठी शपथ खानेका पाप लगता है।

जो सदाचारी हों, भोजन न मिलनेके कारण दुर्बल हो गये हों तथा जिनकी जीविका क्षीण हो गयी हो, ऐसे लोग यदि याचक होकर आते हैं तो उन्हें दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। जो सदाचारके भक्त हैं, जिनके घरमें सदाचारका ही पालन होता है, जो सदाचारको ही बल और सदाचारको ही परलोकमें सहारा देनेवाला मानते हैं तथा विशेष आवश्यकता पड़नेपर ही याचना करते हैं, उनको दान देनेसे महान् फल होता है। चोर और शत्रुओंके भयसे पीड़ित होकर जो केवल भोजनकी याचना करनेके लिये आते हैं, देशमें विप्लव होनेके समय जिनके धन और स्त्रियाँ छिन गयी हों, ऐसे ब्राह्मण यदि धनकी याचनाके लिये आवें तो उन्हें देनेसे महान् पुण्य होता है। जो व्रत और नियममें लगे हुए ब्राह्मण व्रतके उद्यापनके लिये धन चाहते हों तथा जो पाखण्डियोंके धर्मसे दूर रहकर अन्न न मिलनेके कारण दुर्बल एवं निर्धन हो गये हों ऐसे ब्राह्मणोंको भी धन देनेसे बड़ा भारी पुण्य होता है। निर्दोष होनेपर भी बलवान् मनुष्योंद्वारा जिनका सर्वस्व लूट लिया गया हो, फिर भी जो खानेके लिये अन्नमात्र चाहते हों तथा जो तपस्वी, तपोनिष्ठ और तपस्वियोंके लिये भीख माँगनेवाले हों, ऐसे याचकोंको जो कुछ दिया जाय, उसका महान् फल होता है।

जो मनुष्य गुरुको लाभ पहुँचाने अथवा किसीको भयसे मुक्त करनेके अतिरिक्त और किसी उद्देश्यसे झूठ बोलते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। दूसरोंकी स्त्री चुरानेवाले, परायी स्त्रीका सतीत्व नष्ट करनेवाले, दूत बनकर परस्त्रीको दूसरोंसे मिलानेवाले, दूसरोंके धनको हड़पने या नष्ट करनेवाले और दूसरोंकी चुगली खानेवाले मनुष्योंको भी नरकमें गिरना पड़ता है। जो

पौंसलों, धर्मशालाओं, पुलों और दूसरोंके घरोंको नष्ट करते हैं, जो अनाथ, बूढ़ी, तरुणी, बालिका, भयभीत और तपस्विनी स्त्रियोंको धोखेमें डालते हैं तथा जो दूसरोंकी जीविका नष्ट करते, घर उजाड़ते, पति-पत्नीमें बिछोह डालते, मित्रोंमें विरोध पैदा कराते और किसीकी आशा भंग करते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। चुगली खानेवाले, कुल या धर्मकी मर्यादा नष्ट करनेवाले, दूसरोंकी जीविका पर गुजारा करनेवाले, मित्रोंद्वारा किये गये उपकारको भूला देनेवाले, पाखण्डी, निन्दक, धार्मिक नियमोंके विरोधी तथा एक बार संन्यास लेकर फिर गृहस्थ-आश्रममें लौट आनेवाले पुरुष भी नरकमें पड़ते हैं। जिनका व्यवहार सबके विरुद्ध पड़ता है, जो लाभ और वृद्धिमें विषम दृष्टि रखते हैं, जो दूतका काम करते और किसी मनुष्यकी परख करनेमें असमर्थ होते हैं, जिनकी सदा जीवहिंसामें प्रवृत्ति होती है तथा जो वेतन पर रक्खे हुए परिश्रमी नौकरको कुछ देनेकी आशा देकर और देनेका समय नियत करके उसके पहले ही भेदनीतिके द्वारा उसे मालिकके यहाँसे निकलवा देते हैं, उन्हें नरकमें जाना पड़ता है। जो पितरों और देवताओंकी पूजाका त्याग करके अग्निमें आहुति दिये बिना ही अतिथि, पोष्यवर्ग तथा स्त्री-बच्चोंसे पहले ही भोजन कर लेते हैं, जो वेद बेचते, वेदोंकी निन्दा करते, आश्रममर्यादाके बाहर रहते, वेदविरुद्ध कार्य करते, अधर्मसे जीविका चलाते, केश, विष और दूधकी बिक्री करते, ब्राह्मण, गौ तथा कन्याओंके कार्यमें विघ्न डालते, हथियार बेचते, धनुष-बाण बनाते तथा जो पत्थर रखकर, काँटे बिछाकर और गड्ढे खोदकर रास्ता रोकते हैं, वे भी नरकगामी होते हैं। जो शुद्ध हृदयवाले अध्यापकों, भृत्यों और भक्तोंका त्याग कर देते हैं, जो बैलोंको कुटवाते (बधिया करते), नाथते और पशुओंको कठघरेमें बंद करते हैं, जो राजा होकर भी प्रजाकी रक्षा नहीं करते और उसकी आमदनीके छठे भागको लगानके रूपमें लूटते रहते हैं तथा जो समर्थ होनेपर भी दान नहीं करते, वे भी नरकमें जाते हैं। जो क्षमाशील, जितेन्द्रिय, विद्वान तथा बहुत दिनोंसे अपने साथ रहनेवाले पुरुषोंको काम निकल जानेपर त्याग देते हैं तथा जो बच्चों, बूढ़ों और नौकरोंको दिये बिना ही पहले स्वयं भोजन कर लेते हैं, उन्हें भी नरकमें जाना पड़ता है।

जो दान, तपस्या और सत्यके द्वारा धर्मका अनुसरण करते हैं, गुरुसुश्रूषा और तपस्यापूर्वक विद्याध्ययन करके प्रतिग्रहसे राग नहीं रखते, जिनके प्रयत्नसे मनुष्य भय, पाप, बाधा, दरिद्रता तथा रोगसे छुटकारा पा जाते हैं, जो क्षमावान, धीर, धर्मकार्यमें उत्साह रखनेवाले और मांगलिक आचारसे सम्पन्न हैं तथा जो मधु, मांस, मदिरा और परस्त्रीसे दूर रहते और आश्रम, कुलधर्म, देश तथा नगरोंकी रक्षा करते हैं, वे पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। जो वस्त्र, आभूषण, भोजन, पानी तथा अन्नदान करते हैं, दूसरोंका ब्याह करा देते हैं, सब प्रकारकी हिंसासे अलग रहते हैं, सब कुछ सहन करते और सबको आश्रय देते हैं, जो जितेन्द्रिय होकर माता-पिताकी सेवा करते और भाइयोंपर स्नेह रखते हैं, जो धनी, बलवान और नौजवान होकर भी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, जो अपराधियोंपर भी दया करते हैं, जिनका स्वभाव मृदुल होता है तथा जो मृदुल स्वभाववाले व्यक्तियोंपर प्रेम रखते हैं, जिन्हें दूसरोंकी आराधना (सेवा) में ही सुख मिलता है और जो हजारों मनुष्योंको भोजन परोसते, हजारोंको धन देते तथा हजारोंकी रक्षा करते हैं, उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो सुवर्ण, गौ, पालकी, सवारी, वैवाहिक सामान, दास-दासी तथा वस्त्र दान करते हैं, जो दूसरोंके लिये आश्रय, गृह, उद्यान, कुआँ, बगीचा, धर्मशाला, पौंसला तथा चहारदीवारी बनवाते हैं, जो याचकोंको घर, खेत और गाँव प्रदान करते हैं, जो स्वयं ही पैदा करके रस, बीज, और अन्न दान करते हैं तथा जो किसी भी कुलमें उत्पन्न हो बहुत-से पुत्रों और सौ वर्षकी आयुसे युक्त होकर दूसरोंपर दया करते और क्रोधको काबूमें रखते हैं, वे स्वर्गमें जाते है।

जिसके पास कोई आजीविका नहीं है ऐसे ब्राह्मणको जो स्वयं भिक्षा देनेके लिये बुलाकर पीछे देनेसे इन्कार कर देता है, उसको ब्रह्महत्यारा समझो। जो दुष्ट बुद्धिवाला मनुष्य तटस्थ रहनेवाले विद्वान ब्राह्मणकी जीविका छीन लेता है और प्याससे कष्ट पाती हुई गौओंके पानी पीनेमें विघ्न डालता है, उसको भी ब्रह्महत्यारा ही समझना चाहिये। जो उत्तम कर्त्तव्यका विधान करनेवाली श्रुतियों और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंपर बिना समझे-बूझे दोषारोपण करते हैं, जो अपनी रूपवती कन्याकी बड़ी उम्र हो

जानेपर भी उसका योग्य वरके साथ विवाह नहीं करते, उन्हें भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो पापपरायण मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणको व्यर्थ ही मर्मभेदी शोकका शिकार बनाता है, जो अंधे, लूले और गूँगे मनुष्योंका सर्वस्व हरण कर लेता है तथा जो मोहवश आश्रम, वन, गाँव अथवा नगरमें आग लगा देता है, उसे भी ब्रह्मघाती ही समझना चाहिये।

जो मनुष्य काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थोंमें निवास करता है, उसे उस तीर्थयात्राके पुण्यसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। जो समस्त तीर्थोंके दर्शनकी इच्छा रखता हो, वह दुर्गम और अगम्य होनेके कारण जिन तीर्थोंमें शरीरसे न जा सके वहाँ मानसिक यात्रा ही फलदायक है। तीर्थ सेवन का कार्य परम पवित्र, पुण्यप्रद, स्वर्गका उत्तम साधन और वेदोंका गुप्त रहस्य और स्नानके योग्य होता है।

बुद्धिमें बृहस्पति, क्षमामें ब्रह्माजी, पराक्रममें इन्द्र और तेजमें सूर्यके समान गङ्गानन्दन भीष्म जब वीर-शय्यापर पड़े हुए कालकी बाट जोह रहे थे और राजा युधिष्ठिर उनसे तरह-तरहके प्रश्न कर रहे थे, उसी समय बहुत-से दिव्य महर्षि भीष्मजीको देखनेके लिये आये। अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रमति, दम, बृहस्पति, शुक्राचार्य, व्यास, च्यवन, काश्यप, ध्रुव, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, भरद्वाज, रैभ्य, यवक्रीलत, त्रित, स्थूलाक्ष, शबलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृश, नारद, पर्वत, सुधन्वा, एकत, नितम्भू, भुवन, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, परशुराम और कच। ये सभी महात्मा जब वहाँ पधारे तो भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिरने उनकी विधिवत् पूजा की।

भृगुऋषिने राजा वीतहव्यको क्षत्रियसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कराया।

कृष्णने देवर्षि नारदसे पूछा, आप किसको नमस्कार करते हैं। आपके हृदयमें किसके प्रति बहुत बड़ा आदर है? तब नारदने कहा, गोविन्द। जो लोग वरुण, वायु, आदित्य, पर्जन्य, अग्नि, रुद्र, स्वामी, कार्तिकेय, लक्ष्मी, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी और सरस्वतीको सदा प्रणाम करते हैं, वे मेरे प्रणम्य हैं। तपस्या ही जिनका धन है, जो वेदोंके ज्ञाता और सदा वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करनेवाले हैं, उन परमपूजनीय पुरुषोंकी ही मैं सर्वदा पूजा करता रहता हूँ। जो भोजनसे पहले देवताओंकी पूजा करते, अपनी झूठी बड़ाई नहीं करते, संतुष्ट रहते और क्षमाशील होते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो क्षमावान, जितेन्द्रिय और मनपर काबू रखनेवाले हैं, जो विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान और सत्य, धर्म, पृथ्वी तथा गौओंकी पूजा करते हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो वनमें फल-मूलका भोजन करते हुए तपस्यामें लगे रहते हैं, किसी प्रकारका संग्रह नहीं रखते और क्रियानिष्ठ होते हैं, उनके सामने मैं सदा मस्तक झुकाता हूँ। जो माता-पिता आदि पोष्यवर्गका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हैं, जिन्होंने सदा अतिथि-सेवाका व्रत ले रक्खा है तथा जो देवयज्ञसे बचे हुए अन्नका ही भोजन करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वेदका अध्ययन करके दुर्द्धर्ष और बोलनेमें कुशल होते हैं, ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं और यज्ञ कराने तथा वेद पढ़ानेमें लगे रहते हैं, उनकी मैं सदा पूजा किया करता हूँ। जो नित्यशः सम्पूर्ण प्राणियोंपर प्रसन्न रहते और सबेरेसे दोपहरतक वेदका स्वाध्याय करते हैं, वे मेरे पूज्य हैं। जो गुरुको प्रसन्न रखने और स्वाध्याय करनेके लिये सदा यत्नशील रहते हैं, जिनका व्रत कभी भंग नहीं होने पाता, जो गुरुजनोंकी सेवा करते और किसीके भी दोष नहीं देखते, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सुन्दर व्रतका पालन करनेवाले, मननशील, सत्यप्रतिज्ञ और हव्य-कव्यको ग्रहण करनेवाले हैं, वे मेरे नमस्कारके योग्य हैं। जो गुरुकुलमें रहकर भिक्षासे जीवननिर्वाह करते हैं, तपस्यासे जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो कभी धन और सुखकी चिन्ता नहीं करते, उनको मैं प्रणाम करता हूँ।

यदुनन्दन। जिनके मनमें ममता नहीं है, जो द्वन्द्वोंसे परे हो गये हैं, जिन्होंने सर्वस्वके साथ लज्जाका भी परित्याग कर दिया है, जिन्हें इस संसारमें कोई प्रयोजन नहीं है, जो वेदकी शक्ति पाकर दुर्द्धर्ष, प्रवचन करनेमें कुशल और ब्रह्मवादी हैं, जिन्होंने अहिंसा और सत्यका व्रत ले रक्खा है तथा जो इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहके साधनमें संलग्न रहते हैं, वे मेरे प्रणामके योग्य हैं,

जो गृहस्थ ब्राह्मण कपोत-वृत्तिसे रहते हुए सदा देवता और अतिथियोंकी पूजामें संलग्न रहते हैं, उनके चरणोंमें मैं मस्तक झुकाता हूँ। जिनके कार्योंमें धर्म, अर्थ और काम तीनोंका निर्वाह होता है, किसी एककी भी हानि नहीं होने पाती तथा जो सदा शिष्टाचारमें संलग्न रहते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ब्राह्मण शास्त्रज्ञानसे सम्पन्न त्रिवर्गका सेवन करनेवाले, लोभहीन और पुण्यशील होते हैं, वे मेरे वन्दनीय हैं। जो नाना प्रकारके व्रतोंका पालन करते हुए केवल पानी या हवा पीकर रह जाते हैं तथा जो सदा यज्ञशेष अन्नका ही भोजन करते हैं, उनके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। जो जो स्त्री-परिग्रहसे रहित हैं, जिन्होंने अग्निहोत्रका आश्रय लिया है, वेद ही जिनका सबसे बड़ा सहारा है तथा जो सब प्राणियोंको आश्रय देते हैं, उन्हें मैं वन्दनीय मानता हूँ। जो लोकका कल्याण करनेवाले, संसारमें सबसे श्रेष्ठ, कुलमें उत्तम, अज्ञानका नाश करनेवाले तथा सूर्यके समान जगत्‌को ज्ञानालोक प्रदान करनेवाले हैं, उनके सामने भी मैं सदा मस्तक झुकाता हूँ।

आप भी सदा ब्राह्मणोंकी पूजा कीजिये। जो सबका अतिथि-सत्कार करते हैं, गौ, ब्राह्मण और सत्यपर प्रेम रखते हैं, वे बड़े-से-बड़े संकटके पार हो जाते हैं। जो सर्वदा मनको वशमें रखते किसीके दोषपर दृष्टि नहीं डालते और प्रतिदिन स्वाध्यायमें संलग्न रहते हैं, उनका महान् संकटसे उद्धार हो जाता है। जो सब देवताओंको प्रणाम करते, एकमात्र वेदका आश्रय लेते, श्रद्धा रखते और इन्द्रियोंको वशमें कर लेते हैं, उनको भी बहुत बड़ी विपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है। जो व्रतका पालन करते हैं और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नमस्कार करके उन्हें दान देते हैं, वे दु:खसे मुक्त हो जाते हैं। तपस्वी, आबाल, ब्रह्मचारी, तपस्यासे शुद्ध अन्त:करणवाले, देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग तथा पितरोंका पूजन करनेवाले और यज्ञशेष अन्नके भोक्ता पुरुष भी दुर्गम विपत्तियोंसे छूट जाते हैं। जो अग्निकी स्थापना करके विधिपूर्वक नमस्कार करते हुए सदा उसे प्रज्ज्वलित रखते हैं तथा जो सोम-यज्ञमें विधिवत् आहुति करते हैं, वे संकटके पार हो जाते हैं तथा जो आपहीकी भाँति सदा माता, पिता और गुरुजनोंका आदर करते हैं, उनका भी दु:ख छूट जाता है। शरणागतकी रक्षा करनेमें भी महान फल है। जो मनुष्य अपने भक्त, प्रेमी और शरणागत पुरुषोंकी रक्षा करता है तथा सब प्राणियोंपर दया रखता है वह परलोक में सुख पाता है। प्रत्येक राजाको वेदज्ञ ब्राह्मणोंका आदर, सत्कार करना चाहिये। राजा जिस प्रकार अपनी प्रजा की रक्षा करता है उसी प्रकार ब्राह्मणोंकी करें। ब्राह्मण के शान्त रहने पर ही सारा राष्ट्र शान्त एवं सुखी रह सकता है। जगत्‌की जीवनयात्रा ब्राह्मणोंपर ही अवलम्बित है। ये जिस समय क्रोधमें भर जाते हैं उस समय दावानलकी लपटोंके समान दाहक दृष्टिसे देखते हैं। बड़े-बड़े साहसी भी इनका भय मानते हैं। कोई ब्राह्मण खेती और गोरक्षासे जीवन चलाते हैं और कोई भिक्षाज्ञपर जीवन-निर्वाह करते हैं। धर्मज्ञ एवं सत्पुरुष ब्राह्मणोंका सदा गुण गाना चाहिये। प्राचीन कालसे ही देवता, पितर, मनुष्य, नाग और राक्षसोंके पूजनीय है। इनमेंसे कोई भी ब्राह्मणको नहीं जीत सकता। ब्राह्मण यदि चाहे तो वो इनको देवता बना सकते हैं और चाहे तो वो इनको देवत्वसे भ्रष्ट कर सकते हैं। जो मूर्ख मनुष्य ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है उसका नि:संदेह नाश हो जाता है। ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करते हैं, उसका अभ्युदय होता है और जिसको वे शाप दे देते हैं, उसका एक क्षणमें विनाश हो जाता है। शक, यवन, काम्बोज आदि जातियाँ पहले क्षत्रिय ही थीं, किंतु ब्राह्मणोंके श्रापसे उन्हें म्लेच्छ होना पड़ा। द्रविड़, कलिङ्ग, पुलिन्द, उशीनर, कोलिसर्प और माहिषक आदि क्षत्रिय जातियाँ भी ब्राह्मणोंकी ही कुदृष्टि पड़नेसे शूद्र हो गयी। ब्राह्मण को हराना कदापि अच्छा नहीं। इस पृथ्वीपर कोई भी मनुष्य न पैदा हुआ और न होगा, जो ब्राह्मणके साथ विरोध करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। अत: युधिष्ठिर तुम्हारे राज्य में ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ब्राह्मण अवश्य रहना चाहिये। ब्राह्मणोंको ही दिये हुए हविष्य देवतालोग स्वीकार करते हैं। ब्राह्मण जिसका अन्न नहीं खाते, उसके अन्नको पितर भी स्वीकार नहीं करते। यदि ब्राह्मण सन्तुष्ट हो जायँ तो देवता, पितर भी सदा प्रसन्न रहेंगे। जिसे समस्त प्रजा उत्पन्न होती है, वह यज्ञ आदि कर्म ब्राह्मणोंसे सम्पन्न होता है।

जीव जहाँसे उत्पन्न होता है और मरनेके पश्चात जहाँ जाता है उस परमात्माको, स्वर्ग और नरकके मार्गको तथा भूत और भविष्यको ब्राह्मण ही जानते हैं। ब्राह्मणके वचन को स्वीकार करते हैं, वे महात्मा कभी पराभव को प्राप्त नहीं होते।

क्षत्रियोंके बल और तेज ब्राह्मणको देखकर शान्त हो जाते है। ऐश्वर्य, कीर्ति और उत्तम बुद्धि भी ब्राह्मणसे ही प्राप्त होती है। महाभाग्यशाली ब्राह्मण जन्मसे ही समस्त प्राणियोंके वन्दनीय, अतिथि और प्रथम भोजन पानेके अधिकारी हैं। तथा वे देवताओंके मुख हैं। विद्वान ब्राह्मणको शूद्रोचित कर्म नहीं करना चाहिये। शूद्रके कर्म करनेसे उसका धर्म नष्ट होता है। स्वधर्मका पालन करनेसे लक्ष्मी, बुद्धि, तेज और प्रतापयुक्त ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। स्वाध्यायका अत्यधिक माहात्म्य उपलब्ध होता है। मनुष्य लोकमें तथा देवलोकमें जो कुछ भी भोग्य वस्तु है यह सब ज्ञान, नियम और तपस्यासे प्राप्त होनेवाली हैं। मेकल, द्रविड़, लाट, पौण्ड्र, कान्वशिरा, शौण्डिक, दरद, दार्व, चौर, शबर, बर्बर, किरात और यवन- ये सब पहले क्षत्रिय थे; किंतु ब्राह्मणोंके अमर्षसे नीच हो गये। दानसे ब्राह्मणोंका तेज शान्त हो जाता है। ब्राह्मणोंसे तुम्हे अपने कुलकी रक्षा करनी चाहिये। इस विषयमें शम्बरासुर ने इन्द्रसे कहा, मैं ब्राह्मणोंमें कभी दोष नहीं देखता, उनके मतको ही अपना मत समझता हूँ और शास्त्रोंकी बात बतानेवाले विप्रोंका सदा सम्मान करता हूँ- उन्हें सुख देनेकी चेष्टा करता हूँ। सुनकर उनके वचनोंकी अवहेलना नहीं करता, कभी उनका अपराध नहीं करता, उनकी पूजा करके कुशल पूछता हूँ और उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। ब्राह्मण भी अत्यन्त विश्वस्त होकर मेरे साथ बातचीत करते और मेरी कुशल पूछते हैं। ब्राह्मणोंके असावधान रहनेपर भी मैं सदा सावधान रहता हूँ। उनके सोते रहनेपर भी मैं जागता रहता हूँ। वे मुझे शास्त्रीय मार्गपर चलनेवाला, ब्राह्मणभक्त तथा दोषदृष्टिसे रहित जानकर अपने सदुपदेशके अमृतसे सींचते रहते हैं। संतुष्ट होकर वे मुझसे जो कुछ कहते हैं, उसे मैं अपनी बुद्धिके द्वारा ग्रहण करता हूँ। मेरा मन सदा ब्राह्मणोंमें लगा रहता है और मैं सदा उनके अनुकूल विचार रखता हूँ। उनकी वाणीसे जो उपदेशका मधुर रस प्रवाहित होता है, उसका आस्वादन करता रहता हूँ। इसीलिये नक्षत्रोंपर चन्द्रमाकी भाँति मैं अपनी जातिवालोंपर शासन करता हूँ। ब्राह्मणके मुखसे शास्त्रका उपदेश सुनकर उसके अनुसार बर्ताव करना ही पृथ्वीपर सर्वोत्तम अमृत और सर्वोत्तम दृष्टि है।

सम्पूर्ण ब्राह्मण तपस्यासे ही सिद्ध हुए हैं। इनका बल इनकी वाणीमें होता है। पहले गुरुके घरमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्लेशसहनपूर्वक निवास करके प्रणवसहित वेदका अध्ययन करना चाहिये। फिर अन्तमें क्रोध त्याग कर शान्तभावसे संन्यास ग्रहण करना चाहिये। संन्यासीको सर्वत्र समानदृष्टि रखनी चाहिये। जो सम्पूर्ण वेदोंको अपने पिताके घरमें रहकर पढ़ता है, वह ज्ञानसम्पन्न और प्रशंसनीय होनेपर भी विद्वानोंके द्वारा ग्रामीण (गँवार) ही समझा जाता है (वास्तवमें गुरुके घर रहकर वेद पढ़नेवाला ही श्रेष्ठ है)। जैसे साँप बिलमें रहनेवाले छोटे जीवोंको निगल जाता है, उसी प्रकार युद्ध न करनेवाले क्षत्रिय और प्रवास न करनेवाला ब्राह्मणको यह पृथ्वी निगल जाती है। मन्दबुद्धि पुरुषके भीतर जो अभिमान होता है, वह उसकी लक्ष्मीका नाश करता है। गर्भ धारण करनेसे कन्या और सदा घरमें रहनेसे ब्राह्मण दूषित समझे जाते हैं।

कुटुम्बके मनुष्य को कष्ट न देकर दान करना चाहिये। जिनके भरण-पोषणका भार अपने ऊपर है, उनको कष्ट देकर दान करनेवाला मनुष्य अपनेको नीचे गिराता है।

ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, शिष्य, सम्बन्धी, बान्धव, विद्वान और दोषदृष्टिसे रहित पुरुष- ये सभी पूजनीय और माननीय हैं। इनके विपरीत बर्ताव करनेवाले पुरुष सत्कारके योग्य नहीं हैं। अत: खूब सोच-विचारकर योग्य पुरुषोंकी परख करनी चाहिये। अक्रोध, सत्यभाषण, अहिंसा, इन्द्रियसंयम, सरलता, द्रोह और अभिमानका अभाव, लज्जा, सहनशीलता और मनोनिग्रह- ये गुण जिनमें स्वभावत: दिखायी दें और कोई बुराई न जान पड़े, वे दान और सम्मानके उत्तम पात्र हैं। जो पुरुष बहुत दिनोंतक अपने साथ रहा हो, वह भी दानका पात्र है तथा जो तुरंत आया हो, वह परिचित हो या अपरिचित, दान और सम्मान पानेके योग्य है। वेदोंको अप्रामाणिक मानना, शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन करना और सर्वत्र अव्यवस्था फैलाना अपने ही विनाशका कारण है। जो ब्राह्मण अपने पाण्डित्यका अभिमान करके व्यर्थके तर्कका आश्रय लेकर वेदोंकी निन्दा करता है, सत्पुरुषोंकी सभामें कोरी तर्ककी बातें कहकर विजय पाता, शास्त्रानुकूल युक्तियोंका

प्रतिपादन नहीं करता, जोर-जोरसे शोर मचाता और बहुत अधिक बोलता है, जो सबपर संदेह करता, बालकों और मूर्खोंका-सा व्यवहार करता तथा कठोर वचन बोलता है, ऐसे पुरुषको अस्पृश्य समझना चाहिये। विद्वानोंकी दृष्टिमें वह मनुष्योंमें कुत्तेके समान है। जैसे कुत्ता भूँकने और काटनेके लिये दौड़ता है, इसी प्रकार वह बहस करने और शास्त्रोंका खण्डन करनेके लिये इधर-उधर दौड़ता फिरता है (ऐसे लोग दानके पात्र नहीं हैं)। मनुष्यको जगत्के व्यवहारपर दृष्टि डालनी चाहिये, धर्म और अपने कल्याणके उपायोंपर विचार करना चाहिये, ऐसा करनेवाला पुरुष सदा ही उन्नतिशील होता है। जो (यज्ञ-यागादि करके) देवताओंके, (वेदोंका स्वाध्याय करके) ऋषियोंके, (सत्पुत्रकी उत्पत्ति तथा श्राद्ध करके) पितरोंके, (दान देकर) ब्राह्मणोंके और (आतिथ्य-सत्कार करके) अतिथियोंके ऋणसे मुक्त होता और क्रमश: विशुद्ध (निष्काम) एवं विनययुक्त भावसे शास्त्रोक्त कर्मका अनुष्ठान करता है, वह गृहस्थ कभी धर्मसे भ्रष्ट नहीं होता।

दिन-रात और ऋतुएं पुरुषके पाप-पुण्यको सदा जानती रहती है। यत्नपूर्वक तुम्हें स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये; स्त्रियाँ साध्वी एवं पतिव्रता हों तो सौभाग्यशालिनी होती हैं। संसारमें उनका आदर होता है और वे सम्पूर्ण जगत्की माता समझी जाती हैं। वे अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे वन और सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण किये रहती है। किन्तु दुराचारिणी स्त्रियाँ कुलका नाश करनेवाली होती है। उनके मनमें सदा पाप ही बसता है। मनुष्य को स्त्रियोंके प्रति न तो विशेष आसक्त होना चाहिये और न उनसे ईर्ष्या ही करनी चाहिये। उदासीनभावसे रहकर धर्मपर दृष्टि रखकर उनका उपभोग करना चाहिये।

कश्यपने राजा पुरुरवासे कहा, जहाँ ब्राह्मण क्षत्रियसे विरोध करता है, वहाँ क्षत्रियका राज्य नष्ट हो जाता है। जब क्षत्रिय ब्राह्मणको त्याग देते हैं तो उनका वेदाध्ययन रुक जाता है, उनके पुत्रोंकी वृद्धि नहीं होती, ब्राह्मणोंका परित्याग करनेवाले क्षत्रियोंके घर धनकी बढ़ती नहीं होती, उनकी संतान न पढ़ती है न यज्ञ करती है। वे क्षत्रिय अपने पदसे भ्रष्ट होकर डाकुओंकी भाँति लूट-पाट करने लगते हैं। इसलिये दोनोंको मिलकर रहना चाहिये। मिले रहनेपर दोनों एक-दूसरेकी रक्षामें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणकी उन्नतिका आधार क्षत्रिय होता है और क्षत्रियके अभ्युदयका आधार ब्राह्मण। दोनों जातियाँ जब एक-दूसरेके आश्रित रहती हैं तो इनका विशेष गौरव बढ़ता है और यदि इनकी प्राचीन कालसे चली आती हुई मैत्री टूट जाती है, तो सब कुछ नष्ट हो जाता है, उसे अपना कर्त्तव्य नहीं सूझता। इससे वह नष्ट होने लगता है। ब्राह्मणरूपी वृक्ष यदि सुरक्षित रहे तो वह सुख और सुवर्णकी वर्षा करता है और यदि उसकी रक्षा नहीं की गयी तो उससे निरन्तर दु:ख और पापकी वृद्धि होती है। जहाँ ब्रह्मचारी ब्राह्मण लुटेरोंके उपद्रवसे विवश हो वेदकी शाखाके स्वाध्यायसे वञ्चित होता और उसके लिये अपनी रक्षा चाहता है (फिर भी कोई रक्षक न होनेके कारण उसकी रक्षा असम्भव हो जाती है), उस देशमें पानी नहीं बरसता और महामारी तथा दुर्भिक्ष आदि दु:सह उपद्रव बढ़ जाते हैं।

ब्राह्मण क्षत्रियमें परस्पर वैमनस्य होनेपर प्रजाको दु:सह उठाना पड़ता है। इसलिये राजाको पुरोहितका वरण कर लेना उचित है। राज्यकी वृद्धि और रक्षा राजाके अधीन है। राजाका अभ्युदय पुरोहितके अधीन है। जहाँ ब्राह्मण अपने तेजसे प्रजाका अदृष्ट भय दूर करता है, राजा अपने बाहुबलसे उसके प्रत्यक्ष भयका निवारण करता है, उसके राज्यमें सुख और शान्ति बढ़ती है। ब्राह्मणोंमें तप और मन्त्र का बल होता है और क्षत्रियोंमें अस्त्र तथा भुजाओंका।

जो विद्वान और उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिनकी सर्वत्र समान दृष्टि है, ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मा के समान हैं। जो सब वेदोंका अध्ययन करके अपने कर्मोंमें लगे रहते हैं वे ब्राह्मणोंमें देवता के समान हैं। जो कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होकर ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो चुके हैं, वे ब्राह्मण शूद्रोंके समान हैं। राजा ब्राह्मणके सिवाय अन्य सभी वर्णोंके धनका स्वामी होता है। राजा कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणको किसी तरह क्षमा न करे, धर्मात्मा ब्राह्मणोंकी श्रेणीसे उसे अलग कर दे। यदि ब्राह्मण चोरी करने लगे तो राजाका कर्त्तव्य है कि उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध करे। जीविका मिल जानेपर भी चोरी करे तो उसे कुटुम्बसहित राज्यसे बाहर निकाल दे। यदि राज्यमें ब्राह्मण चोरी करे तो वह राजाका ही अपराध समझा जाता है। जो गौ, ब्राह्मण तथा प्रजाकी रक्षा

करते हैं उन राजाओंको राक्षसोंसे भय नहीं होता। ब्राह्मण अपनी जीविका नष्ट होनेपर संकटके समय क्षत्रियधर्मसे जीवन निर्वाह करनेमें असमर्थ हो जाय तो वैश्यधर्मके अनुसार खेती करके और गौ पालन करके अपना जीवन निर्वाह कर सकता है। ब्राह्मणको मदिरा, मांस, शहद, नमक, तिल, पकाया हुआ अन्न, घोड़ा, बैल, गाय, बकरा, भेड़ और भैंस आदि इन वस्तुओंका तो हर हालतमें व्यापार नहीं करना चाहिये। बकरा, अग्नि, भेड़ वरुण, घोड़ा, सूर्य, पृथ्वी, विराट तथा गौ यज्ञ एवं सोमका स्वरूप है। कच्चा अन्न देकर पकाया हुआ अन्न लेनेसे अधर्म नहीं होता। जिनमें वेद-शास्त्रोंका बल हो, वे ब्राह्मण सब ओरसे उठकर राजाकी ताकत बढ़ावे। जिस राजाकी शक्ति क्षीण हो रही हो, उस राजाको ब्राह्मणके बलका आश्रय लेकर ही अपनी उन्नति करनी चाहिये। जब चोर, डाकू लुटेरे प्रजामें वर्णसंकरता फैला रहे हो और धर्ममर्यादाका उल्लंघन कर रहे हो, तब ब्राह्मण शस्त्र उठावें तो उस समय ब्राह्मणोंको कोई दोष नहीं लगता। ब्राह्मण अपने तपसे ब्रह्मचर्य, हथियारसे, बलसे, सद्व्यवहारसे अथवा कष्टसे जैसे भी हो उसी तरह क्षत्रिय जातिको दबानेका प्रयत्न करें, जब क्षत्रिय ही प्रजाके ऊपर अत्याचार करने लगे। जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है। जब लोहा पत्थर को काटता है, अग्नि जलके पास जाती है और क्षत्रिय ब्राह्मणसे द्वेष करता है तो यह तीनों ही अपने तेजसे नष्ट हो जाते हैं। ब्राह्मणको अपनी रक्षाके लिये शस्त्र ग्रहण करनेका अधिकार है। यदि वह तीनों वर्णोंकी रक्षाके लिये शस्त्र ग्रहण करें तो उसे कोई दोष नहीं लगता। अपनी रक्षाके लिये, दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये, ब्राह्मणका शस्त्र ग्रहण करना दोषरहित है। अपार संकटसे पार लगा दे, बिना नावके डूबते हुए नाव बनकर सहारा दे, वह शूद्र हो या कोई और सर्वथा सम्मानके योग्य है। डाकुओंके आक्रमणका शिकार होकर कष्ट पाती हुई अनाथ प्रजाको जिसकी शरणमें जानेसे सुख मिले। दूसरोंका भय दूर करनेवाला मनुष्य चाहे कोई भी क्यों ना हो, काठका हाथी, चमड़ेका हिरन, हिंजड़ा मनुष्य, अपढ़ ब्राह्मण, और रक्षा न करनेवाला राजा यह सब निरर्थक है। जो सदा सत्पुरुषोंकी रक्षा करे और दुष्टोंको दण्ड दे वही राजा मानने योग्य है। जो विद्वान द्रोह और अभिमान से रहित, लज्जा-क्षमा-शम-दम आदि गुणोंसे युक्त बुद्धिमान, सत्यवादी, धीर, अहिंसक, कुलीन, शास्त्रज्ञ, सदाचारी और ज्ञानसे सन्तुष्ट ऐसा व्यक्ति ब्रह्माके आसनपर बैठनेका अधिकारी है। वे सभी ऋत्विज महान एवं सम्मानके योग्य है। धर्मका मूल है ब्राह्मण; इसलिये ब्राह्मणोंका सदा ही सम्मान करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण न करनेसे राजाके ऊपर भय आता है।

जो ब्राह्मण कभी क्रोध नहीं करते, जिनके मनमें लोभ नहीं होता और जो सदा मीठे वचन बोलते हैं वे ही परमपूज्य हैं। ब्राह्मण नि:स्पृह होनेके कारण धनके लिये कोई कार्य नहीं करते। ब्राह्मण, ऋत्विक, पुरोहित और आचार्य ये कोमल स्वभाववाले और वेदोंको धारण करनेवाले होते हैं। हमारी गति ब्राह्मणोंके अधीन है। अगर हम ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करेंगे तो ब्राह्मण भी हमारा परित्याग कर देंगे। ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी है, ब्राह्मण स्वभावत: सत्यवादी और सत्यधर्मका पालन करनेवाले रहते हैं किन्तु जब ये क्रोधित होते हैं तो विषैले सर्पोंके समान भयंकर होते है। क्षत्रियोंके तप और तेज ब्राह्मणोंसे ही शान्त होते है। ब्राह्मण धीर, संतोषी और विद्वान होते हैं, वे देवताओंको प्रसन्न कर सकते है। तपस्यासे देदीप्यमान रहनेवाले वे ब्राह्मण यदि पूजित न हो तो वे सारी पृथ्वीको भस्म कर सकते है। जो ब्राह्मण ज्ञान-विज्ञान और तपस्यासे युक्त एवं पूजनीय है उनका सत्कार करना चाहिये। जो ब्राह्मण विद्या और वेदव्रतमें निष्णात है, जो किसीके आश्रित न रहकर अपनी जीविका चलाते है। जिनका स्वाध्याय और तपस्या गुप्त है। जो उत्तम व्रतका पालन करते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको ब्रह्मदान करो। वे धर्मज्ञ सूक्ष्मदर्शी ब्राह्मण तुम्हारे श्रद्धायुक्त दानको कर्त्तव्यबुद्धिसे किया हुआ मानकर अवश्य स्वीकार करेंगे। जिन ब्राह्मणोंका आचरण निन्दित न हो, वे यदि जीविकाके बिना कष्ट पा रहे हो तो उनका गुप्त या प्रकट रूप में जीविकाका प्रबन्ध करके सदा उनका पालन करते रहना चाहिये। ऐसे करनेसे प्राणी पापोंसे मुक्त और पवित्र होकर स्वर्गलोग में जाता है। ब्राह्मणोंके पास बहुत धन इकट्ठा हो जाय तो यह उनके लिये अनर्थका कारण होता है क्योंकि लक्ष्मीका निरन्तर सहवास उन्हें दर्प और मोहमें डाल देता है। ब्राह्मण जो

मोहग्रस्त होते हैं तो निश्चय ही धर्मका नाश हो जाता है और धर्मका नाश होनेपर प्राणियोंका नाश हो जाता है। यदि कोई विद्वान ब्राह्मण नित्य कष्ट पा रहा हो तो राजाको उसके पापका फल भोगना पड़ता है।

किसी भी अवस्थामें ब्राह्मणके धनका अपहरण न करें और उनकी स्त्रियोंपर कुदृष्टि न डालें। जो जन्मसे लेकर मृत्युकालतक ब्रह्मचारी बना रहता है उसके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ब्रह्मलोकमें ऐसे करोड़ों ऋषि निवास करते हैं, जो इस लोकमें सदा सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ऊर्ध्वरिता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) थे। ब्राह्मणको तो विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, क्योंकि तपस्वी ब्राह्मण अग्निका स्वरूप समझा जाता है। ब्रह्मचारीके कुपित होनेपर इन्द्रभी डरते हैं।

केवल उपवास करनेवाला न तपस्वी है, न धर्मज्ञ। त्यागका सम्पादन ही सबसे उत्तम तपस्या है। ब्राह्मणको सदा उपवासी, व्रतपरायण, ब्रह्मचारी, मुनि और वेदोंका स्वाध्यायी होना चाहिये। धर्मपालनकी इच्छासे ही उसको स्त्रभ आदि कुटुम्बका संग्रह करना चाहिये (विषय-भोगके लिये नहीं)। ब्राह्मणको उचित है कि वह सत्य भाषण करे और इन्द्रियोंको संयममें रक्खें और अतिथिप्रिय होना चाहिये। जो मनुष्य केवल प्रात:काल और सायंकालमें भोजन करता है बीचमें कुछ नहीं खाता उसे सदा उपवास ही समझना चाहिये। जो दिनमें नहीं सोता वह सदा जाग्रत रहनेवाला कहलाता है। जो सदा भृत्यों और अतिथियोंके भोजन करनेके बाद ही स्वयं भोजन करता है वह केवल अमृत भक्षण करनेवाला अमृताशी है। मनुष्यको चाहिये कि प्रत्येक अवस्थामें लोभका परित्याग करे, यही सबसे बड़ा धर्म है।

ब्राह्मणको ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यके यहाँ अन्न ग्रहण करना चाहिये। शूद्रका अन्न उनके लिये निषिद्ध है। ब्राह्मणको वेदोंके स्वाध्याय और मनुष्योंके कल्याणकारी कार्यमें संलग्न रहना चाहिये। जो ब्राह्मण चिकित्सा करनेवाले, शस्त्र बेचकर जीविका चलानेवाले, ग्रामाध्यक्ष, पुरोहित, ज्योतिषी हैं वे सब शूद्रके ही समान हैं।

संसारमें ब्राह्मण इस पृथ्वीके देवता माने गये हैं। उपवास करना उनका परम धर्म है। धर्मार्थसम्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। उसे धर्मका अनुष्ठान और विधिवत् ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। व्रतके पालनपूर्वक उपनयन-संस्कारका होना उसके लिये परम आवश्यक है। गुरु और देवताओंकी पूजा, स्वाध्याय और अभ्यासरूप धर्मका पालन ब्राह्मणको अवश्य करना चाहिये। धर्मका रहस्य सुनना, वेदोक्त व्रतका पालन, होम और गुरुसेवा करना, भिक्षासे जीवननिर्वाह करना, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहना, प्रतिदिन वेदका स्वाध्याय करना और ब्रह्मचर्य-आश्रमके नियमोंका पालन करना ब्राह्मणका प्रधान धर्म है। ब्रह्मचर्यकी अवधि समाप्त होनेपर द्विज अपने गुरुकी आज्ञा लेकर समार्वतन करे और घर आकर अपने अनुरूप स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। सदाचार का पालन उसका परम धर्म है। उपवास, ब्रह्मचर्य-पालन, अग्निहोत्र, स्वाध्याय, हवन, इन्द्रियसंयम, अतिथि और भृत्योंको भोजन करानेके बाद अन्न-ग्रहण, आहार-संयम, सत्यभाषण, पवित्र रहना, अतिथि-सत्कार करना, गार्हपत्य आदि त्रिविणध अग्नियोंकी परिचर्या करना, यज्ञ करना, किसी भी जीवकी हिंसा न करना और घरमें पहले भोजन न करके कुटुम्बके लोगोंको भोजन करानेके बाद ही भोजन करना- यह गृहस्थ ब्राह्मणका विशेषत: श्रोत्रियका परम धर्म है।

इस पृथ्वीपर ब्राह्मण ही पवित्र वाक्, पवित्र बुद्धि और पवित्र कर्मवाले होते हैं। वास्तवमें ब्राह्मण होना दुर्लभ है। ब्राह्मण होनेपर ऋषि होना और ऋषि होनेपर तपस्वी होना वह सबसे अधिक दुर्लभ है। अच्छे ब्राह्मण सदा ही इस धर्मका पालन करते हैं। ब्रह्माजीने सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये वैदिक, स्मार्त और शिष्टाचार- इन तीन प्रकारके धर्मोंका विधान किया है। धर्मके ये तीनों ही भेद सनातन हैं। जो तीनों वेदोंका ज्ञाता और विद्वान हो, पढ़ने-पढ़ानेका काम करके जीविका न चलाता हो, दान, अध्ययन और यज्ञ- इन तीन कर्मोंका सदा अनुष्ठान करता हो, काम, क्रोध और लोभ- इन तीनोंको त्याग चुका हो तथा सब प्राणियोंपर दया रखता हो, वही वास्तवमें ब्राह्मण माना गया है। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंकी जीविकाके लिये यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना- ये छ: कर्म बतलाये

हैं। ये ब्राह्मणोंके सनातन धर्म हैं। इनमें भी सदा स्वाध्यायशील होना, यज्ञ करना और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दान देना- ये तीन कर्म ब्राह्मणोंके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं।

ब्राह्मण होना बहुत कठिन है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- ये चारों वर्ण प्राकृतिक (स्वभावसिद्ध) हैं। इतना अवश्य है कि द्विज पापकर्म करनेसे अपने स्थानसे- अपनी महत्तासे नीचे गिर जाता है, अत: द्विजको उत्तम वर्णमें जन्म पाकर अपने पदकी रक्षा करनी चाहिये। यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मण धर्मका पालन करते हुए ब्राह्मणत्वका सहारा लेता है तो वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जो ब्राह्मण स्वधर्मका त्याग करके क्षत्रिय-धर्मका सेवन करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेता है। इसी प्रकार जो दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर अपनी मन्दबुद्धिताके कारण लोभ-मोहका आश्रय ले सदा वैश्योंके कर्म करता है, वह वैश्य-योनिमें जन्म लेता है अथवा यदि वैश्य शूद्रके कर्म अपनाता है तो वह भी शूद्रत्वको प्राप्त होता है। ब्राह्मण-जातिका पुरुष यदि शूद्रके कर्म अपनाता है तो जीतेजी ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होता है और मृत्युके पश्चात वह ब्रह्मलोककी प्राप्तिसे वञ्चित होकर नरकमें पड़ता है। उसके बाद वह शूद्रकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य कोई भी अपने कर्मको छोड़कर शूद्रका काम करने लगे तो वह अपनी जातिसे भ्रष्ट होकर वर्णसंकर हो जाता है और दूसरे जन्ममें शूद्रकी योनिमें जन्म लेता है। जो पुरुष अपने वर्ण-धर्मका पालन करते हुए बोध प्राप्त करता है और ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न, पवित्र तथा धर्मज्ञ होकर धर्ममें ही लगा रहता है, वही धर्मके वास्तविक फलका उपभोग करता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषोंको अध्यात्मज्ञानका सम्पादन करना चाहिये। उग्र स्वभावके मनुष्यका अन्न निन्दित माना गया है। किसी समुदायका, श्राद्धका, जननाशौचका, दुष्ट पुरुषका और शूद्रका अन्न भी निषिद्ध है, उसे कभी नहीं खाना चाहिये- यदि पेटमें शूद्रका अन्न पड़ा हो और उसी अवस्थामें मृत्यु हो जाय तो वह ब्राह्मण अग्निहोत्री अथवा यज्ञ करनेवाला ही क्यों न रहा हो, उसे शूद्रकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो उत्तम और दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर उसकी अवहेलना करता है और नहीं खाने योग्य अन्न खाता है, वह निश्चय ही ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट हो जाता है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, क्षुद्र कर्म करनेवाला, चोर, व्रतभंग करनेवाला, स्वाध्यायहीन, पापी, लोभी, कपटी, शठ, व्रतका पालन न करनेवाला, शूद्र-जातिकी स्त्रीका स्वामी, कुण्डाशी (जिस बर्तनमें भोजन बनावे उसीमें खानेवाला), सोम-रस बेचनेवाला और नीच जातिके मनुष्यकी सेवा करनेवाला ब्राह्मण अपनी जातिसे भ्रष्ट हो जाता है। जो गुरुकी शय्यापर पैर रखता, गुरुसे द्रोह करता और गुरुकी निन्दामें ही लगा रहता है, वह ब्रह्मवेत्ता होनेपर भी ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है। इसी प्रकार शुभ कर्मोंके आचरणसे शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है। साक्षात् ब्रह्माजीका वचन है कि शूद्र भी यदि जितेन्द्रिय होकर पवित्र कर्मोंके अनुष्ठानसे अपने अन्त:करणको शुद्ध बना लेता है, तो वह द्विजकी ही भाँति सेव्य होता है। यदि शूद्रके स्वभाव और कर्म दोनों ही उत्तम हों तो वह द्विजातिसे भी बढ़कर मानने योग्य है। केवल योनि, संस्कार, शास्त्रज्ञान और संतति- ये ही ब्राह्मणत्वकी प्राप्तिके कारण नहीं है, ब्राह्मणत्वका प्रधान हेतु तो सदाचार ही है। सदाचारमें स्थिर रहनेवाला शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो सकता है। ब्रह्मका स्वरूप सर्वत्र समान है। जिसके भीतर उस निर्गुण और निर्मल ब्रह्मका ज्ञान है, वही वास्तवमें ब्राह्मण हैं। अपना कल्याण चाहनेवाले ब्राह्मणको उचित है कि वह सज्जनोंके मार्गका अवलम्बन करके सदा अतिथि और पोष्यवर्गको भोजन करानेके बाद अन्न ग्रहण करे। वेदोक्त पथका आश्रय लेकर उत्तम बर्ताव करे। गृहस्थ ब्राह्मण घरमें रहकर प्रतिदिन संहिताका पाठ और शास्त्रोंका स्वाध्याय करे। अध्ययनको जीविकाका साधन न बनावे। जो ब्राह्मण सन्मार्गपर स्थित हो अग्निहोत्र और स्वाध्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। शूद्र धर्माचरण करनेसे जिस प्रकार ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है तथा ब्राह्मण स्वधर्मके त्यागसे जातिभ्रष्ट होकर जिस प्रकार शूद्र हो जाता है।

ब्राह्मणोंका अपमान देवताओंकोभी दु:खमें डाल सकता है, अत: राजाको चाहिये कि वह ब्राह्मणोंकी पूजा और उनको नमस्कार करे तथा ब्राह्मणोंके निकट पुत्रकी भाँति विनययुक्त बर्ताव करे; क्योंकि ब्राह्मण समस्त जगत्की धर्ममर्यादाका

संरक्षण करनेवाले सेतुके समान हैं। वे धनका त्याग करके प्रसन्न होते और वाणीका संयम रखते हैं। वे उत्तम निधि, व्रतका पालन करनेवाले, लोक और शास्त्रके निर्माता और परम यशस्वी हैं। तपस्या उनका धन और वाणी उनका महान बल है। वे धर्मोंके कारण, धर्मज्ञ, सूक्ष्मदर्शी, धर्मकी इच्छा रखनेवाले, पुण्य-कर्मोंद्वारा धर्ममें स्थित रहनेवाले और धर्मके सेतु हैं। उन्हींका आश्रय लेकर चार प्रकारकी प्रजा जीवन धारण करती है। ब्राह्मण ही सबके पथप्रदर्शक, नेता, यज्ञका भार वहन करनेवाले और सनातन हैं। वे देवता, पितर और अतिथियोंके मुख तथा हव्य-कव्यमें प्रथम भोजनके अधिकारी हैं। ब्राह्मण सबको उपदेश देनेवाले हैं। वेद ही उनका धन है। वे शास्त्रज्ञानमें कुशल, मोक्षधर्मके ज्ञाता, सब जीवोंकी गतिको जाननेवाले और अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करनेवाले हैं। उन्हें आदि, मध्य और अवसानका ज्ञान होता है। उनके संशय दूर हो गये होते हैं। वे ऊँच-नीच या भूत-भविष्यके ज्ञाता और परम गतिको जाननेवाले हैं। सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त और निष्पाप हैं। उनके चित्तपर द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वे सब प्रकारके परिग्रहका त्याग करनेवाले और सम्मान पानेके योग्य हैं। ज्ञानी महात्मा उन्हें सदा ही आदर देते रहते हैं। वे भोजन और उपवास में तथा रेशमी वस्त्र और मृगछालामें समान दृष्टि रखते हैं। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर स्वाध्याय करते हुए शरीरको सुखा सकते हैं और जो देवता नहीं है उसको देवता बना सकते हैं और यदि वे क्रोधित हो जायँ तो देवताओंको भी देवत्वसे भ्रष्ट कर सकते हैं, दूसरे-दूसरे लोक और लोकपालोंकी रचना कर सकते हैं। उनके शापसे समुद्रका पानी पीने योग्य नहीं रहा। उनकी क्रोधाग्नि से दण्डकारण्यमें आजतक शान्ति नहीं हुई। वे देवताओंके देवता, कारणोंके कारण और प्रमाणके भी प्रमाण है। ब्राह्मणमें वृद्ध और बालक सभी सम्मानके योग्य है। विद्याहीन भी ब्राह्मण देवताके समान और परम पवित्र माना जाता है, फिर विद्वान तो उनसे श्रेष्ठ है। एक बार माहिष्मती नगरीके राजा सहस्त्र भुजाधारी कार्तवीर्य अर्जुन को दत्तात्रयने उपदेश दिया। ब्राह्मण क्षत्रियसे भी श्रेष्ठ है। ब्राह्मणकी सहायतासे ही क्षत्रिय इस लोकमें प्रजाका शासन कर सकते है। तब कार्तवीर्यने कहा, ब्राह्मण क्षत्रियोंके आश्रित रहकर जीविका चलाते हैं किंतु क्षत्रिय कभी भी ब्राह्मणोंके आश्रयमें नहीं रहता। प्रजा-पालनरूप धर्म क्षत्रियोंपर ही अवलम्बित है। क्षत्रियसे ही ब्राह्मणको जीविका प्राप्त होती है फिर ब्राह्मण क्षत्रियसे श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं जो मुझे राज्यसे भ्रष्ट कर सके, अत: मैं ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ हूँ। तब अन्तरिक्षमें स्थित हुए वायुदेवताने कहा, कार्तवीर्य। तू इस दूषित भावनाको अपने मनसे त्याग दे और ब्राह्मणोंका सम्मान कर। ब्राह्मण महान शक्तिशाली होते हैं, वे क्रोधित होकर तुझे नष्ट कर देंगे। कार्तवीर्यने कहा, मुझे ऐसे कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण बताइये जो पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और सूर्यके समान हो। तब वायुदेवताने बताया ब्राह्मण मर्त्यलोक और स्वर्गमें भी अजेय हैं। अंगिरा मुनि एक बार पृथ्वीका सारा जल पी गये और पृथ्वीको बहा दिया। उन्होंने बहुत दिनोंतक अग्निहोत्रकी अग्निमें निवास किया।

महर्षि गौतमने इन्द्रको अहिल्यापर आसक्त होनेके कारण शाप दे दिया था; केवल धर्मकी रक्षाके लिये उनके प्राण नहीं लिये। समुद्र पहले मीठे जलसे भरा रहता था, किंतु ब्राह्मणोंके शापसे उसका पानी खारा हो गया। अग्निका रंग पहले सोनेके समान था, उसमेंसे धुआँ नहीं उठता था और उसकी लपट सदा ऊपरकी ओर ही उठती थी; किंतु क्रोधमें भरे हुए अङ्गिरा ऋषिने उसे शाप दे दिया, इसलिये अब उसमें पूर्वोक्त गुण नहीं रह गये। ब्रह्मर्षि कपिलके शापसे दग्ध हुए सगरपुत्रोंकी, जो यज्ञसम्बन्धी अश्वकी खोज करते हुए यहाँ समुद्रतक आये थे, यह राखकी ढेरी पड़ी हुई है। इसलिये राजन्। तू ब्राह्मणोंकी समानता कदापि नहीं कर सकता, उनसे अपने कल्याणका उपाय जाननेका यत्न कर। राजा तो गर्भमें स्थित हुए ब्राह्मणोंको भी प्रणाम करते हैं। दण्डकारण्यका विशाल साम्राज्य ब्राह्मणोंने ही नष्ट कर दिया। तालजङ्घ नामवाले महान क्षत्रिय-वंशका अकेले महात्मा और्वने संहार कर डाला। तुम्हें भी जो परम दुर्लभ विशाल राज्य, बल, धर्म तथा शास्त्रज्ञानकी प्राप्ति हुई है, वह विप्रवर दत्तात्रेयजीकी कृपाका ही फल है। श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रत्येक जीवकी रक्षा करनेवाला और जीव-जगत्की सृष्टि करनेवाला है, इस बातको जानकर भी तू क्यों मोहमें पड़ा हुआ है? जिन्होंने इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि की है,

वे अव्यक्तस्वरूप अविनाशी प्रजापति ब्रह्माजी भी ब्राह्मण ही हैं।

क्षत्रिय कश्यपने अपने योगके आश्रय से पृथ्वीमें प्रवेश किया और पृथ्वीको अपनी पुत्री माना। इसलिये पुथ्वीका एक नाम काश्यपी हो गया। वायुने कार्तवीर्य अर्जुन से पूछा, तू कश्यपसे भी श्रेष्ठ किसी क्षत्रियको जानता हो तो मुझे बता। वायुने कहा, महर्षि अगस्त्यने दैत्योंके प्रति बड़ा क्रोध किया और वे प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्ज्वलित हो उठे। महर्षि वसिष्ठने देवताओंको अभयदान दिया। महर्षि अत्रिने अन्धकारको नष्ट करनेवाले चन्द्रमा और सूर्यका स्वरूप धारण किया और सम्पूर्ण जगतको अन्धकारशून्य आलोकित किया और अपने तेजसे असुरोंको परास्त किया। पूर्वकालमें च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया।

ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं वे इहलोक और परलोकमें सुख देनेमें समर्थ हैं। ब्राह्मणोंमें शान्तभावकी प्रधानता होती है। ब्राह्मणोंको सम्मान देनेसे आयु, कीर्ति, यश और बलकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण लोक और लोकेश्वर ब्राह्मणोंकी पूजा करते है। धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये, मोक्षकी प्राप्तिके लिये और यश, लक्ष्मी तथा आरोग्यकी उपलब्धिके लिये एवं देवता और पितरोंकी पूजाके समय ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना चाहिये। यदि ब्राह्मण क्रोधमें भर जाय तो वे जगत्को भस्म कर सकते हैं।

२) कन्यादान- सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे पहले वरके स्वभाव, आचरण, विद्या, कुल-मर्यादा और कार्योंकी जाँच करें। फिर यदि वह सभी दृष्टियोंसे सुयोग्य प्रतीत हो तो उसे कन्या प्रदान करें। इस प्रकार योग्य वरको बुलाकर उसके साथ कन्याका ब्याह करना उत्तम ब्राह्मणोंका धर्म- ब्राह्म-विवाह है। जो दहेज आदिके द्वारा वरको अनुकूल करके कन्यादान किया जाता है, यह श्रेष्ठ क्षत्रियोंका सनातन धर्म- क्षात्रविवाह कहलाता है। अपने (माता-पिताके) पसंद किये हुए वरको छोड़कर कन्या जिसे पसंद करती हो तथा जो कन्याको चाहता हो ऐसे वरके साथ कन्याका विवाह करना वेदवेत्ताओंके द्वारा गान्धर्वविवाह कहा गया है। कन्याके बन्धु-बान्धवोंको लोभमें डाल, बहुत-सा धन देकर जो कन्याको खरीद लिया जाता है, इसे मनीषी पुरुष असुरोंका धर्म (आसुर विवाह) कहते हैं। इसी प्रकार कन्याके अभिभावकोंको मारकर उनके मस्तक काटकर रोती हुई कन्याको घरमेंसे जबर्दस्ती पकड़ लाना राक्षसोंका काम (राक्षस-विवाह) है। इन पाँच (ब्राह्म, क्षात्र, गान्धर्व, आसुर और राक्षस) विवाहोंमेंसे पूर्वके तीन विवाह धर्मानुकूल हैं और शेष दो पापमय हैं। आसुर और राक्षस-विवाह कदापि नहीं करने चाहिये।

जिस कन्याके पिता और भाई न हों, उसके साथ कभी विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह पुत्रिका धर्मवाली मानी जाती है। (यदि पिता-भ्राता आदि ऋतुमती होनेके पहले कन्याका विवाह न कर दें तो) ऋतुमती होनेके पश्चात् तीन वर्षतक कन्या अपने विवाहकी बाट देखे, चौथा वर्ष लगनेपर वह स्वयं ही किसीको अपना पति बना ले, ऐसा करनेसे उसकी संतान निकृष्ट नहीं मानी जाती। जो इसके विरुद्ध आचरण करती है, उसकी निन्दा होती है। जो कन्या माताकी सपिण्ड और पिताके गोत्रकी न हो, उसीके साथ विवाह करना मनुजीने धर्मानुकूल बताया है।

कन्याके भाई-बन्धु जिस कन्याको धर्मपूर्वक पाणिग्रहणकी विधिसे दान कर देते हैं अथवा जिसे शुल्क लेकर दे डालते हैं, उस कन्याको धर्मपूर्वक विवाह करनेवाला अथवा शुल्क देकर खरीदनेवाला यदि अपने घर ले जाय तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता। कन्याके कुटुम्बीजनोंकी अनुमति मिलनेपर वैवाहिक मन्त्र और होमका प्रयोग करना चाहिये, तभी वे मन्त्र सफल होते हैं। जिसका पिता-माताके द्वारा दान नहीं किया गया, उसके लिये किये गये मन्त्र-प्रयोग सिद्ध नहीं होते। पति और पत्नीमें जो परस्पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रतिज्ञा होती है, वही श्रेष्ठ मानी जाती है और यदि उसके लिये बन्धु-बान्धवोंका समर्थन प्राप्त हो, तब तो और उत्तम है।

शुल्क देनेमात्रसे ही कोई कन्या किसीकी पत्नी नहीं हो जाती। शुल्क देनेवाला भी इस बातको समझकर ही शुल्क देता

है। इसके सिवा जो कन्याका शुल्क लेते हैं, वे वास्तवमें उसका दान नहीं (विक्रय) करते हैं। कन्याके भाई-बन्धु जब वरको किसी विपरीत गुण (वृद्धत्व आदि) से युक्त देखते हैं, तभी शुल्क माँगते हैं। यदि वरको बुलाकर कहा जाय कि तुम मेरी कन्याको गहने पहनाकर विवाह कर लो और ऐसा कहनेपर वह कन्याको आभूषण देकर विवाह करे तो यह भी धर्मानुकूल ही है। इस प्रकार कन्याके लिये आभूषण लेकर जो कन्यादान किया जाता है, वह न तो शुल्क है और न विक्रय ही। कन्याके लिये कोई वस्तु स्वीकार करके उस (कन्या) का दान करना सनातन धर्म है। जो लोग भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंसे कहते हैं कि मैं आपके साथ कन्याका विवाह करूँगा, आपको अपनी कन्या न दूँगा और आपको अवश्य दूँगा उनकी ये सभी बातें कन्या देनेके पहले नहीं कहेके ही बराबर हैं। महर्षियोंका मत है कि अयोग्य वरको कन्या नहीं देनी चाहिये; क्योंकि सुयोग्य पुरुषको कन्यादान करना ही काम-सम्बन्धी सुख तथा सुयोग्य संतानकी उत्पत्तिका कारण है। कन्याके क्रय-विक्रयमें बहुत तरहके दोष हैं। केवल कीमत देने या लेनेसे ही कोई कन्या किसीकी पत्नी नहीं हो सकती। शुल्कसे ही पत्नीत्वका निश्चय होता है, केवल पाणिग्रहणसे नहीं तो यह कथन ठीक नहीं है; क्योंकि इसके विरुद्ध स्मृतिका वचन है- जिसने शुल्क ले लिया हो वह पिता भी दूसरा सुयोग्य वर मिलनेपर उसीका आश्रय ले- उसीके साथ कन्या ब्याहे। जो लोग शुल्कसे ही पत्नीत्वका निश्चय होना स्वीकार करते हैं, पाणिग्रहणसे नहीं, उनके कथनको धर्मज्ञ पुरुष प्रमाण नहीं मानते। कन्याका दान ही लोकमें प्रसिद्ध है, खरीदकर या जीतकर लाना नहीं। कन्यादान ही विवाह कहलाता है। जो लोग कीमत देकर खरीदने या बलात्कारपूर्वक हर लानेको ही पत्नीत्वका कारण मानते हैं, वे धर्मको नहीं जानते। खरीदनेवालोंको कन्या नहीं देनी चाहिये। तथा जो बेची जा रही हो, ऐसी कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि पत्नी खरीदने-बेचनेकी वस्तु नहीं है। जो दासियोंकी खरीद-बिक्री करते हैं, वे बड़े लोभी और पापात्मा हैं; ऐसे ही लोग पत्नीको भी खरीदने-बेचनेका विचार करते हैं। इस विषयमें पूर्वकालके लोगोंने सत्यवानसे प्रश्न किया- महाप्राज्ञ। यदि कन्याका शुल्क देनेके पश्चात् शुल्क देनेवालेकी मृत्यु हो जाय तो उसका दूसरेके साथ विवाह हो सकता है या नहीं? उनका यह प्रश्न सुनकर सत्यवानने कहा- जहाँ उत्तम पात्र मिलता हो वहीं कन्या देनी चाहिये। शुल्क देनेवाला जीवित हो तो भी सुयोग्य वरके मिलनेपर सज्जन पुरुष उसीके साथ कन्याका ब्याह करते हैं। फिर उसके मर जानेपर अन्यत्र करें। कन्याका पाणिग्रहण होनेसे पहलेका वैवाहिक मङ्गलाचार हो जानेपर भी यदि दूसरे सुयोग्य वरको कन्या दे दी जाय तो दाताको केवल मिथ्याभाषणका पाप लगता है (पाणिग्रहणसे पूर्व कन्या विवाहित नहीं मानी जाती है)। सप्तपदीके सातवें पदमें वैवाहिक मन्त्रोंकी समाप्ति होती है अर्थात् सप्तपदीकी विधि पूर्ण होनेपर ही कन्यामें पत्नीत्वकी सिद्धि होती है। जिस पुरुषको जलसे संकल्प करके कन्या दी जाती है, वही उसका पाणिग्रहीता पति होता है और उसीकी वह पत्नी कहलाती है। यदि संतानहीन धनीसे शुल्क लिया गया है तो पिताका कर्त्तव्य है कि वह उसके परदेस से लौटनेतक कन्याकी हर तरहसे रक्षा करे। खरीदी हुई कन्याका शुल्क जबतक लौटा नहीं दिया जाता, तबतक वह कन्या शुल्क देनेवालेकी ही मानी जाती है।

पुत्र अपनी आत्माके समान है और कन्या तथा पुत्रमें कोई अन्तर नहीं है। फिर आत्मस्वरूप पुत्रीके रहते हुए दूसरा कोई उसका धन कैसे ले सकता है? माताको जो दहेजमें धन मिला होता है, उसपर कन्याका ही अधिकार है। अत: जिसके कोई पुत्र नहीं है, उसके धनको पानेका अधिकारी उसका दौहित्र ही है; क्योंकि वह अपने पिता और नानाको भी पिण्ड देता है। धर्मकी दृष्टिसे पुत्र और दौहित्रमें कोई भेद नहीं है। यदि पहले कन्या उत्पन्न हुई और वह पुत्ररूपमें स्वीकार कर ली गयी तथा उसके बाद पुत्र भी पैदा हुआ तो वह पुत्र उस कन्याके साथ ही पिताके धनका अधिकारी होता है। (किंतु औरस पुत्रको उस धनका अधिक अंश मिलता है।) यदि दूसरेका पुत्र गोद लिया गया हो तो उस दत्तक पुत्रकी अपेक्षा अपनी सगी बेटी ही श्रेष्ठ मानी जाती है। (अत: वह पैतृक धनके अधिक अंशकी अधिकारिणी है) जो कन्याएँ शुल्क लेकर बेच दी गयी हों, उनसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र केवल अपने पिताके ही उत्तराधिकारी होते हैं। उन्हें दौहित्रके रूपमें अपने धनका

अधिकारी बनाना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता; क्योंकि आसुर-विवाहसे जिन पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है, वे दूसरोंके दोष देखनेवाले, पापाचारी, पराया धन हड़पनेवाले, शठ तथा धर्मके विपरीत बर्ताव करनेवाले होते हैं। जो किसी कुमारी कन्याको बलपूर्वक अपने वशमें करके उसका उपभोग करते हैं, वे पापी अन्धकारपूर्ण नरकमें पड़ते हैं। अपनी संतानकी बात तो दूर रही, किसी दूसरे मनुष्यको भी नहीं बेचना चाहिये। अधर्मके रास्तेसे जो-जो धन आता है, उससे कोई धर्म नहीं होता।

(विवाहके समय कन्याकी ससुरालवालोंकी तरफसे) कुमारी-पूजन (कन्याके सत्कार) के रूपमें जो वस्त्र और आभूषण आदि प्राप्त होते हैं, उन्हें स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है; किंतु वे सब-के-सब कन्याको दे डालने चाहिये। अपना विशेष कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, श्वसुर और देवरोंको चाहिये कि वे कन्याको वस्त्र, आभूषण आदि देकर उसका सम्मान करें। यदि स्त्रीकी रुचि पूर्ण न की जाय तो वह पुरुषको प्रसन्न नहीं कर सकती और उस अवस्थामें पुरुषकी संतान-वृद्धि नहीं हो सकती, इसलिये स्त्रियोंका सदा सत्कार और प्यार करना चाहिये। जहाँ स्त्रियोंका आदर होता है, वहाँ देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। जिस घरमें स्त्रियोंका अनादर होता है, वहाँकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जिस कुलकी बहू-बेटियोंको दु:ख मिलनेके कारण शोक होता है, उस कुलका नाश हो जाता है। ये नाराज होकर जिन घरोंको शाप दे देती हैं, वे कृत्याद्वारा नष्ट हुएके समान उजाड़ हो जाते हैं; उनकी शोभा, समृद्धि और सम्पत्तिका नाश हो जाता है। महाराज मनुने स्त्रियोंको पुरुषोंके अधीन करके कहा था- मनुष्यों। स्त्रियाँ अबला, ईर्ष्यालु, मान चाहनेवाली, कुपित होनेवाली, पतिका हित चाहनेवाली और विवेकशक्तिसे हीन होती हैं, तथापि ये सम्मानके योग्य हैं; अत: तुमलोग सदा इनका सत्कार करना; क्योंकि स्त्री जाति ही धर्मकी प्राप्तिका कारण है। तुम्हारी परिचर्या और नमस्कार स्त्रियोंके ही अधीन हैं। संतानकी उत्पत्ति, उसका लालन-पान और लोकयात्राका प्रसन्नतापूर्वक निर्वाह भी उन्हींपर निर्भर है।

स्त्रीके लिये यज्ञ आदि कर्म, श्राद्ध और उपवास करना आवश्यक नहीं है; उसका धर्म है केवल अपने पतिकी सेवा करना। नारी पति-सेवासे ही स्वर्गपर विजय प्राप्त करती है। कुमारावस्थामें स्त्रीकी रक्षा उसका पिता करता है, यौनमें पति उसका रक्षक है और वृद्ध होनेपर पुत्रपर उसकी रक्षाका भार रहता है; अत: स्त्रीको कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिये। युधिष्ठिर। स्त्रियाँ ही घरकी लक्ष्मी हैं, पुरुषको उनका भलीभाँति सत्कार करना चाहिये। अपने वशमें रखकर पालन करनेसे स्त्री लक्ष्मीका स्वरूप बन जाती है।

३) वर्णसंकर सन्तान- सब वर्णोंमे अधम शूद्र यदि अपनेसे श्रेष्ठ वर्णोंकी स्त्रियोंके साथ समागम करता है तो उससे उत्पन्न होनेवाला पुत्र चारों वर्णोंसे अलग और अत्यन्त निन्दनीय (चाण्डाल आदि) समझा जाता है। क्षत्रिय यदि ब्राह्मण-जातिकी स्त्रीके साथ संसर्ग करता है तो उससे वर्णबाह्य सूतजातिकी उत्पत्ति होती है, जिसका काम है स्तुति आदि करना। वैश्य जातिका पुरुष ब्राह्मणकी स्त्रीसे समागम करके जिस पुत्रको जन्म देता है, वह सब वर्णोंसे पृथक् वैदेहक और मौद्गल्य कहलाता है। (उससे अन्त:पुरकी रक्षा आदिका काम लिया जाता है)। शूद्रद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाला चाण्डाल होता है। वह गाँवके बाहर बसता है और उससे वध्य पुरुषोंको प्राणदण्ड आदि देनेका काम लिया जाता है। ये सभी कुलांगार मनुष्य नीच वर्णोंद्वारा ब्राह्मणीके गर्भसे जन्म धारण करते और वर्णसंकर कहलाते हैं। वैश्यके द्वारा क्षत्रियजातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र वंदी और मागध कहलाता है। यह लोगोंकी प्रशंसा करके अपनी जीविका चलाता है। इसी प्रकार यदि शूद्र क्षत्रिय-जातिकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो उससे मछली मारनेवाले निषाद जातिकी उत्पत्ति होती है और यदि वह वैश्य जातिकी स्त्रीसे संसर्ग करता है तो आयोगव-जातिका पुत्र उत्पन्न होता है, जो बढ़ईका काम करके जीविका चलाता है। वर्णसंकर भी जब अपनी जातिकी स्त्रीके साथ समागम करते हैं तो अपने ही समान वर्णवाले पुत्रोंको जन्म देते हैं और जब अपनेसे हीन जातिकी स्त्रियोंसे

संसर्ग करते हैं तो नीच संतानोंकी उत्पत्ति होती हैं। ये संताने अपनी माताकी जातिवाली समझी जाती हैं। इस प्रकार वर्णसंकर मनुष्य भी यदि परस्पर विभिन्न जातिकी स्त्रियोंसे संसर्ग करते हैं तो उनसे निन्दनीय संतानोंकी ही उत्पत्ति होती है। जैसे शूद्र ब्राह्मणीके गर्भसे चाण्डाल नामक बाह्य जातिवाले पुत्रको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार बाह्यजातिका मनुष्य भी ब्राह्मण आदि चारों वर्णकी स्त्रियोंके साथ संसर्ग करके अपनी अपेक्षा भी नीच जातिवाला पुत्र पैदा करता है, वह बाह्यतर कहलाता है। इस प्रकार बाह्य और बाह्यतर जातियोंसे क्रमश: पंद्रह प्रकारके अत्यन्त निकृष्ट वर्ण पैदा होते हैं। अगम्या स्त्रीसे समागम करनेपर वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। जिस जातिके पुरुष राजाओंके श्रृङ्गार आदिका कार्य जानते और दास न होकर भी दासवृत्तिसे जीविका चलाते हैं, वे सैरन्ध्र हैं; उनकी स्त्रियाँ सैरन्ध्री कहलाती हैं। मागध जातिकी सैरन्ध्री स्त्रीसे यदि बाह्य जातीय आयोगव पुरुष समागम करे तो उससे आयोगव जातिका सैरन्ध्र पुत्र उत्पन्न होता है, उसी (मागधी सैरन्ध्री) का यदि वैदेह जातिके पुरुषसे संसर्ग हो तो मदिरा बनानेवाले मैरेयक जातिके पुरुषकी उत्पत्ति होती है। निषादके वीर्य और मगधजातीय सैरन्ध्रीके गर्भसे मद्गुर जातिका पुरुष उत्पन्न होता है, जिसे दास भी कहते हैं। वह नावसे अपनी जीविका चलाता है। चाण्डाल और मागधी सैरन्ध्रीके संयोगसे श्वपाक नामसे प्रसिद्ध अधम चाण्डालकी उत्पत्ति होती है, यह मुर्दोंकी रखवालीका काम करता है। इस प्रकार मगध जातिकी सैरन्ध्री स्त्री आयोगव आदि चार जातियोंसे समागम करके मायासे जीविका चलानेवाले चार प्रकारके क्रूर मनुष्योंको उत्पन्न करती है। आयोगव जातिकी पापिनी स्त्री वैदेह जातिके पुरुषसे समागम करके अत्यन्त क्रूर मायाजीवी पुत्र उत्पन करती है, निषादके संयोगसे मद्रनाभ नामक जातिको जन्म देती है और चाण्डालके संसर्गसे पुल्कस जातिको उत्पन्न करती है। मद्रनाभ जातिके मनुष्य गदहेकी सवारी करते हैं और पुल्कस जातिवाले मुर्दोंपर चढ़े हुए कपड़े लेकर पहनते और फूटे हुए बर्तनोंमें भोजन करते हैं। इस प्रकार ये तीन नीच जातिके मनुष्य आयोगवकी संतान हैं। निषादजातिकी स्त्रीका यदि वैदेहक जातिके पुरुषसे संसर्ग हो तो क्षुद्र, अन्ध्र और कारावरनामक चमारोंकी उत्पत्ति होती है, ये तीनों जातियाँ गाँवके बाहर रहती हैं। चाण्डाल पुरुष और निषादजातिकी स्त्रीके संयोगसे पाण्डुसौपाक जातिका जन्म होता है, यह जाति बाँसकी डलिया आदि बनाकर जीविका चलाती है। वैदेह जातिकी स्त्रीके साथ निषादका सम्पर्क होनेपर आहिण्डक और चाण्डालका संसर्ग होनेपर सौपाककी उत्पत्ति होती है। सौपाक और चाण्डालोंकी एक ही वृत्ति हैं निषादजातिकी स्त्रीमें चाण्डाल (सौपाक) के वीर्यसे अन्तेवसायी नामक जातिका जन्म होता है, इस जातिके लोग सदा श्मशानमें ही रहते हैं। निषाद आदि बाह्यजातिके लोग भी उन्हें अछूत समझते हैं।

इस प्रकार माता-पिताके वर्ण-व्यक्तिक्रमसे वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न होती हैं। उनमेंसे कुछ प्रकट होती है और कुछ गुप्त। इनके कर्मोंसे ही इनकी पहचान करनी चाहिये। शास्त्रमें चारों वर्णोंके ही धर्मका निश्चय किया गया है, औरोंके नहीं। धर्महीन वर्णों (वर्णसंकर जातियों) मेंसे किसीकी भी कोई नियत संख्या नहीं है। जो जातिका विचार न करके स्वेच्छानुसार अन्य वर्णकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं तथा जो यज्ञोंके अधिकार और साधु पुरुषोंसे बहिष्कृत हैं, ऐसे वर्णबाह्य मनुष्योंसे ही वर्णसंकर सन्तानें उत्पन्न होती हैं और वे अपनी रुचिके अनुकूल कार्य करके भिन्न-भिन्न प्रकारकी आजीविका तथा आश्रयको अपनाती हैं। ऐसे लोग लोहेके आभूषण पहनकर चौराहोंमें, मरघटमें, पर्वतोंपर और वृक्षोंके नीचे निवास करते हैं। इन्हें चाहिये कि गहने तथा अन्य उपकरणोंको बनावें और अपने कर्मोंसे जीविका चलाते हुए प्रकटरूपमें निवास करें। यदि ये गौ और ब्राह्मणोंकी सहायता करें, कठोरतापूर्ण कर्म त्याग दें, सबपर दया करें, सत्य बोलें, दूसरोंके अपराध क्षमा करें और अपने शरीरको कष्टमें डालकर भी दूसरोंकी रक्षा करें तो इन वर्णसंकर मनुष्योंकी भी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है।

जो (सज्जनोंके विपरीत) नाना प्रकारकी चेष्टाओंसे युक्त हो, उस कलुषित योनिसे उत्पन्न मनुष्यकी उसके कर्मोंसे ही पहचान हो सकती है। सज्जनोचित आचरणोंसे योनिकी शुद्धताका निश्चय करना चाहिये। इस जगत्में अनार्यता, अनाचार क्रूरता और अकर्मण्यता आदि दोष मनुष्यको कलुषित योनिसे उत्पन्न (वर्णसंकर) सिद्ध करते हैं। वर्णसंकर

पुरुष अपने पिता या माता अथवा दोनोंके ही स्वभावका अनुसरण करता है। वह किसी तरह अपनी असलियतको छिपा नहीं सकता। जैसे बाघ अपनी चित्र-विचित्र खाल और रूपके द्वारा माता-पिताके समान ही होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी योनिका ही अनुसरण करता है। अमुक व्यक्ति किस कुलमें और किसके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है यह बात अत्यन्त गुप्त होनेपर भी जिसका जन्म संकर-योनिसे हुआ है, वह मनुष्य थोड़ा- बहुत अपने पिताके स्वभावको पाता ही है। जो कृत्रिम मार्गका आश्रय लेकर श्रेष्ठ पुरुषोंके अनुरूप आचरण करता है वह वास्तवमें शुद्ध वर्णका है या संकरवर्णका, इसका निश्चय करते समय उसका स्वभाव ही सब कुछ बता देता है। संसार में प्राणी नाना प्रकारके आचार-व्यवहारमें लगे हुए हैं। आचरणके सिवा दूसरी कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो जन्मके रहस्यको साफ तौरपर प्रकट कर सके। वर्णसंकरको शास्त्रीय बुद्धि प्राप्त हो जाय तो भी वह उसके शरीरको नीचमार्गसे नहीं हटा सकती। उत्तम, मध्यम या निकृष्ट जिस प्रकारके स्वभावसे उसके शरीरका निर्माण हुआ है, वैसा ही स्वभाव उसे आनन्ददायक जान पड़ता है। ऊँची जातिका मनुष्य भी शीलसे रहित हो तो उसका सत्कार नहीं करना चाहिये और शूद्र भी यदि धर्मज्ञ और सदाचारी हो तो उसका विशेष आदर करना चाहिये। मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्म, शील, आचरण और कुलके द्वारा अपना परिचय देता है। यदि उसका कुल नष्ट भी हो गया हो तो अपने कर्मोंके द्वारा वह फिर उसे शीघ्र ही उज्जीवित कर देता है।

माता-पिताने जिसे रास्तेपर त्याग दिया हो और पता लगानेपर भी जिसके माता-पिताका ज्ञान न हो सके, उस बालकका जो पालन करता है, उसीका वह कृतक पुत्र समझा जाता है। वर्तमान समयमें जो उस अनाथ बच्चेका वारिस बनकर पोषण कर रहा हो, उस मनुष्यका वर्ण ही उस बालकका वर्ण होता है। जिसको माता-पिताने त्याग दिया है, वह अपने स्वामी- पालक पिताके वर्णको प्राप्त होता है। इसलिये उसके पालन करनेवालेको चाहिये कि वह अपने ही वर्णके अनुसार उसका संस्कार करे तथा अपनी ही जातिकी कन्यासे उसका ब्याह भी कर दे।

४) गंगाका माहात्म्य- भीष्मने बताया, गङ्गाजीका सेवन करके जीव जिस उत्तम गतिको प्राप्त करता है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ और त्यागसे भी नहीं मिल सकती। जिन देहधारियोंके शरीर गङ्गाजीके जलसे भीगते हैं, वे कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरते। जिन मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं, वे मरनेके बाद पृथ्वीका निवास छोड़कर स्वर्गमें विराजमान होते हैं। जो जीवनकी पहली अवस्थामें पापकर्म करके पीछे भी गङ्गाजीका सेवन करते हैं, वे भी उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं। गङ्गाके पवित्र जलसे स्नान करके जिनका अन्त:करण शुद्ध हो गया है, उन पुरुषोंके पुण्यकी जैसी वृद्धि होती है, वैसी सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी नहीं हो सकती। मनुष्यकी अस्थि जितने वर्षतक गङ्गाजलमें पड़ी रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गङ्गाजलमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है। जो देश और दिशाएँ गङ्गाजीके कल्याणमय जलसे वंचित हैं, वे बिना चाँदनीकी रात और पुष्पहीन वृक्षकी भाँति शोभा नहीं पातीं। जैसे सूर्यके बिना आकाशकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार गङ्गासे रहित देश और दिशाएँ भी श्रीहीन जान पड़ती हैं। तीनों लोकमें जो कोई प्राणी हैं, वे सभी गंगाके उत्तम जलसे तर्पण करनेपर अत्यन्त तृप्त होते हैं। जो मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए गङ्गाजलका पान करता है, वह गायके गोबरसे निकले हुए जौकी लप्सी खानेवाले पुरुषसे अधिक पवित्र माना जाता है। एक हजार युगोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करनेवाला पुरुष एक महीनेतक गंगास्नान करनेवाले पुरुषकी बराबरी कर सकता है या नहीं, इसमें संदेह है। एक मनुष्य दस हजार युगोंतक नीचे सिर करके वृक्षमें लटका रहे और दूसरा इच्छानुसार गङ्गाजीके तटपर निवास करे तो पहलेकी अपेक्षा दूसरा ही श्रेष्ठ है। जैसे आगमें डाली हुई रुई-तुरंत जलकर भस्म हो जाती है, उसी तरह गङ्गामें गोता लगानेवाले मनुष्यके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं। इस संसारमें जो लोग दु:खोंसे व्याकुल होकर अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़ रहे हैं, उन सबके लिये गङ्गाके समान

दूसरा कोई सहारा नहीं है। जैसे गरुड़को देखते ही सम्पूर्ण सर्पोंके विष झड़ जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। जगत्‌में जिनका कहीं आधार नहीं है तथा जिन्होंने धर्मकी शरण नहीं ली है, उनका आधार और उन्हें शरण देनेवाली श्रीगङ्गाजी ही हैं। वे ही उसका कल्याण करनेवाली तथा वे ही कवचकी भाँति उसे सुरक्षित रखनेवाली हैं। जो नीच अनेकों बड़े-बड़े अशुभ पापोंसे ग्रस्त होकर नरकमें पड़नेवाले हैं, वे भी यदि गंगाकी शरणमें आ जाते हैं तो ये मरनेके बाद उनका उद्धार कर देती हैं। जो सदा गङ्गामें स्नान करने जाया करते हैं, वे निश्चय ही मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंके समान माने जाते हैं। विनय और सदाचारसे हीन, अमङ्गलकारी तथा नीच मनुष्य भी गङ्गाकी शरणमें जानेपर शिवस्वरूप हो जाते हैं। जैसे देवताओंको अमृत, पितरोंको स्वधा और नागोंको सुधा तृप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्योंके लिये गङ्गाजल ही पूर्ण तृप्तिका साधन है। जैसे भूखे हुए बच्चे माताके पास जाते हैं, उसी प्रकार कल्याण चाहनेवाले प्राणी गङ्गाजीकी उपासना करते हैं। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंसे श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसे ही स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये गङ्गा ही सब नदियोंमें श्रेष्ठ कही गयी हैं। जो मनुष्य गङ्गाके तीरकी मिट्टी अपने मस्तकमें लगाता है, वह अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये सूर्यके समान निर्मल स्वरूप धारण करता है। गङ्गाकी तरङ्गमालाओंका चुम्बन करके बहनेवाली वायु जब मनुष्यके शरीरका स्पर्श करती है, उसी समय वह उसके सारे पापोंको नष्ट कर देती है। दुःखोंसे संतप्त होकर मृत्युकी घड़ियाँ गिननेवाला मनुष्य भी यदि गङ्गाजीका दर्शन करे तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है कि उसकी सारी पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती है। गंगाके तटपर निवास करनेसे जो सुख जो आनन्द मिलता है, वह स्वर्गमें रहकर सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव करनेसे भी नहीं मिल सकता। मन, वाणी और क्रियाद्वारा होनेवाले पापोंसे ग्रस्त मनुष्य भी यदि गङ्गाजीका दर्शन करे तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है कि उसकी सारी पीड़ा तत्काल नष्ट हो जाती है। गंगाके तटपर निवास करनेसे जो सुख-जो आनन्द मिलता है, वह स्वर्गमें रहकर सम्पूर्ण भोगोंका अनुभव करनेसे भी नहीं मिल सकता। मन, वाणी और क्रियाद्वारा होनेवाले पापोंसे ग्रस्त मनुष्य भी यदि गङ्गाजीका दर्शन करे तो वह परमपवित्र हो जाता है। गङ्गाजीका दर्शन, उनके जलका स्पर्श तथा उनके भीतर डुबकी लगानेसे मनुष्य सात पीढ़ीतक आगे होनेवाली संतानोंको और सात पीढ़ी तथा उससे भी ऊपरके पितरोंका उद्धार कर देता है।

जो पुरुष गङ्गाजीका माहात्म्य सुनता, उनके तटपर जानेकी अभिलाषा करता, उनका दर्शन करता, जल पीता, स्पर्श करता तथा उनके भीतर गोते लगाता है, उसके दोनों कुलोंका भगवती गङ्गा उद्धार कर देती हैं। गङ्गाजी अपने दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा नामकीर्तनमात्रसे सैकड़ों और हजारों पापियोंको तार देती हैं। जो पुरुष अपना जन्म, जीवन तथा अपनी विद्याको सफल करना चाहता हो उसे गङ्गाके तटपर जाकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। मनुष्य गङ्गास्नान करके जिस अक्षय फलको प्राप्त करता है वह पुत्र, धन तथा किसी क्रियाके द्वारा नहीं मिल सकता। जो शक्ति रहते हुए भी पवित्र जलवाली कल्याणमयी गङ्गाका दर्शन नहीं करते, वे जन्मके अंधे और मुर्देके समान हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं और विद्वान ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी भी जिनकी शरण लेते हैं, ऐसी गङ्गाजीका कौन मनुष्य आश्रय न लेगा? जो मनुष्य प्राण निकलते समय मन-ही-मन गङ्गाजीका स्मरण करता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। जो जीवनपर्यंत गङ्गाकी उपासना करता है, उसे भय देनेवाले पापोंसे तनिक भी भय नहीं होता। आकाशसे गिरती हुई जिन परमपवित्र गङ्गाजीको भगवान शंकरने अपने सिरपर धारण किया तथा जिन्होंने तीन निर्मल मार्गोंसे प्रवाहित होकर तीनों लोकोंकी शोभा बढ़ायी है, उनके जलका सेवन करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। (गंगाजीमें भक्ति रखनेवाले पुरुषको) माता, पिता, पुत्र, स्त्री और धनका वियोग होनेसे भी उतना दुःख नहीं होता जितना गङ्गाके विछोहसे होता है। गंगाजीके दर्शनसे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी वनमें भ्रमण करने, अभीष्ट विषयोंको भोगने तथा पुत्र और धन पानेसे भी नहीं होती। जो गङ्गाजीमें श्रद्धा रखता, उन्हींमें मन लगाता, उन्हींके पास रहता, उन्हींका आश्रय लेता तथा भक्तिपूर्वक उन्हींका अनुसरण करता है, वह भगवती भागीरथीका प्रिय होता है।

पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्ग में रहनेवाले छोटे-बड़े सभी प्राणियोंको सदा गङ्गाजीमें स्नान करना चाहिये। यही सत्पुरुषोंका सबसे उत्तम कार्य है। आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, दिशा और विदिशाओंमें भी जिनकी ख्याति फैली हुई है, सरिताओंमें श्रेष्ठ उन भगवती भागीरथीके जलका सेवन करके सभी मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं। जो दूसरे मनुष्योंको ये गङ्गाजी है ऐसा कहकर उनका दर्शन कराता है, उसके लिये भगवती भागीरथी ही प्रतिष्ठा (अक्षय पद प्रदान करनेवाली) हैं। वे कार्तिकेय और सुवर्णको अपने गर्भमें धारण करनेवाली, पवित्र जलकी धारा बहानेवाली और पाप दूर करनेवाली हैं। वे आकाशसे पृथ्वीपर उतरी हुई हैं। उनका जल सम्पूर्ण जगत्के लिये पेय है। उनमें प्रात:काल स्नान करनेसे धर्म, अर्थ, काम तीनों वर्गोंकी सिद्धि होती है। गङ्गाजी गिरिराज हिमालयकी कन्या, भगवान् शंकरकी पत्नी तथा स्वर्ग और पृथ्वीकी शोभा हैं। वे भूमण्डलपर निवास करनेवाले प्राणियोंका कल्याण करनेवाली, परम सौभाग्यवती तथा तीनों लोकोंको पुण्य प्रदान करनेवाली हैं। श्रीभागीरथी मधुका स्त्रोत एवं पवित्र जलकी धारा बहाती हैं। जलते हुए घीकी ज्वालाके समान उनका प्रकाश है। वे अपने भीतर स्नान-संध्या आदि करनेवाले ब्राह्मणों और उत्ताल तरंगोंके द्वारा सुशोभित होती हैं। वे सबसे पहले स्वर्गलोकसे नीचेकी ओर चलीं, उस समय भगवान् शंकरने उन्हें अपने सिरपर धारण किया। फिर हिमालय पर्वतपर आकर वहाँसे वे इस पृथ्वीपर उतरी हैं। श्रीगङ्गाजी स्वर्गकी जननी हैं। सबका कारण, सबसे श्रेष्ठ, रजोगुणसे रहित, अत्यन्त सूक्ष्म, मरे हुए प्राणियोंके लिये सुखद शय्या, पवित्र जलका स्त्रोत बहानेवाली, यश देनेवाली, जगत्की रक्षा करनेवाली, सत्स्वरूपा तथा सिद्धगणोंकी अभीष्ट देवी भगवती गङ्गा अपने भीतर स्नान करनेवालोंके लिये स्वर्गका मार्ग बन जाती हैं। क्षमा, रक्षा तथा धारण करनेमें पृथ्वीके समान और तेजमें अग्नि तथा सूर्यके समान शोभा पानेवाली गङ्गाजी स्वामी कार्तिकेयकी माननीया माता हैं और ब्राह्मणजातिपर अनुग्रह करनेके कारण ब्राह्मण भी उनका सदा सम्मान करते हैं। ऋषियोंके द्वारा जिनकी स्तुति होती है, जो भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अत्यन्त प्राचीन तथा परम पावन जलसे भरी हुई हैं, उन भगवती भागीरथीकी मनसे भी शरण लेनेवाले मनुष्य ब्रह्मधामको प्राप्त होते हैं। जैसे माता अपने पुत्रोंको स्नेहभरी दृष्टिसे देखती है, वैसे ही गङ्गाजी सर्वात्मभावसे अपने आश्रयमें आये हुए प्राणियोंको कृपादृष्टिसे देखकर उन्हें सर्वगुणसम्पन्न लोक प्रदान करती हैं। इसलिये जो ब्रह्मलोकको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उन्हें अपने मनको वशमें करके सदा मातृभावसे गङ्गाजीकी उपासना करनी चाहिये। जो अमृतमयी, दूध देनेवाली गौके समान सबको पुष्ट करनेवाली, सब कुछ देखनेवाली, सम्पूर्ण जगत्के उपयोगमें आनेवाली, अन्न देनेवाली तथा पर्वतोंको धारण करनेवाली हैं, श्रेष्ठ पुरुष जिनका आश्रय लेते हैं और जिन्हें ब्रह्माजी भी प्राप्त करना चाहते हैं, उन भगवती गङ्गाजीका मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको अवश्य आश्रय लेना चाहिये। राजा भगीरथ अपनी उग्र तपस्यासे भगवान् शंकरसहित सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न करके गङ्गाजीको इस पृथ्वीपर ले आये। उनकी शरण जानेसे मनुष्यको इस लोक और परलोकमें भय नहीं रहता।

५) गौओंका माहात्म्य- इस संसारमें गौओंके समान दूसरा कोई धन नहीं हैं गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन करना, सुनना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना- यह सबसे उत्तम धर्म है। यह सब कार्य सम्पूर्ण पापोंको दूर करके परम कल्याण करनेवाले है। गौएँ लक्ष्मीकी जड़ हैं, उनमें पापका लेश भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको अन्न और देवताओंको उत्तम हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। गौएँ ही यज्ञका संचालन करनेवाली और उसका मुख है। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करती और दुहनेपर अमृत ही देती है। वे अमृतका आधार होती हैं। इस पृथ्वीपर गौएँ अपने तेज और शरीरमें अग्निके समान हैं। वे महान तेजकी राशि और समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाली हैं। गौओंका समुदाय जहाँ बैठता है वहाँके सारे पाप नष्ट हो जाते हे। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं। गो-दान सबसे बड़ा दान है।

जो सोनेसे मढ़ी हुई सींगोंवाली कपिला गायका काँसके बने हुए दुग्ध-पात्र और बछड़ेसमेत दान करता है, उस पुरुषके

पास वह गौ उन्हीं गुणोंसे युक्त कामधेनु होकर आती है। उस गौके शरीरमें जितने रौएँ होते हैं, उतने वर्षतक मनुष्य स्वर्गमें सुख भोगता है। वह गौ उसके पुत्र-पौत्र आदि सात पीढ़ियोंतकका उद्धार कर देती है। अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्ध:कार नरक में पड़ते हुए मनुष्यको गोदान ही पार करता है। भार ढोनेमें समर्थ बैल और गाय का दान करनेसे वसुलोककी प्राप्ति होती है।

गौएँ सम्पूर्ण तपस्वियोंसे बढ़कर हैं, गौएँ चन्द्रमाके साथ निवास करती है। ये अपने दूध, दही, घी, गोबर, चमड़ा, हड्डी, सींग और बालोंसे भी जगत्का उपकार करती है। इन्हें सर्दी-गर्मी और वर्षाका कष्ट विचलित नहीं करता। ये ब्राह्मणोंके साथ ब्रह्मलोक में जाकर निवास करती है। गौ और ब्राह्मणको विद्वान पुरुष एक बताते हैं। जो मनुष्य उत्तम ब्राह्मणोंको गोदान करता है वह संकटमें पड़ा हो तो भी कठिन विपत्तिसे मुक्त हो जाता है। गौओंका दुग्ध अमृत है। गोदुग्धके हविष्यका यदि अग्निमें हवन किया जाय तो वह अविनाशी फल देनेवाला होता है। बैल स्वर्गका मूर्तिमान् स्वरूप है। उसे धर्म कहा गया है। जो गुणवान ब्राह्मणको बैल दान करता है, उसका स्वर्गलोकमें सम्मान होता है। जो दूध देनेवाली गौ दान देता है, वह मानो प्राण-दान करता है। जो धेनु दान करता है, वह सबको शरण देनेवाला है। नास्तिक, कसाई तथा गौसे जीविका चलानेवालेको भी गौ कभी नहीं देनी चाहिये। वैसे पापियोंको गौ देनेवाला पुरुष अक्षय नरकमें पड़ता है। जो गाय दुबली हो, जिसका बछड़ा मर गया हो तथा जो बांझ, रोगिणी, अपंग और बूढ़ी हो, ऐसी गौ का कभी दान नहीं करना चाहिये।

गौएँ सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता है, वे सबको सुख देनेवाली है। अपना अभ्युदय चाहनेवाले मनुष्यको सदा गौओंकी पूजा करनी चाहिये। गौओंको कभी लात नहीं मारना चाहिये तथा गौओंके बीचसे होकर न निकले। गौएँ प्याससे पीड़ित हो उस समय उन्हें जो पानी नहीं पिलाता उसका बन्धु-बान्धवोंसहित नाश हो जाता है। जिनके गोबर से लीपनेपर देवताओंके मन्दिर और पितरोंके श्राद्धके स्थान पवित्र होते हैं, उनसे बढ़कर पावन और क्या सकता है? मनुष्य को एक मुट्ठीभर घास गौओंको प्रतिदिन खिलानी चाहिये। दुराचारी, पापी, लोभी, असत्यवादी तथा देवयज्ञ और श्राद्धकर्म में विश्वास न रखनेवाले ब्राह्मणको किसी तरह गौ नहीं देनी चाहिये। सुपात्र ब्राह्मण को गोदान करने से जितना पुण्य होता है उतना ही उसका धन लेनेपर पाप लगता है।

किसी समय ब्राह्मणका धन लेनेसे राजा नृगको महान कष्ट उठाना पड़ा। पहलेकी बात है, द्वारिकापुरीमें रहनेवाले यदुवंशी बालक पानीकी इच्छासे इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेहीमें उन्हें एक महान् कूप दिखायी पड़ा, जिसका ऊपरी भाग घास और लताओंसे ढका हुआ था। उन बालकोंने बहुत परिश्रम करके जब कुएँके ऊपरका घास-फूस हटाया तो उन्हें उसके भीतर बैठा हुआ एक बहुत बड़ा गिरगिट दिखायी दिया। बालक हजारोंकी संख्यामें थे, सब मिलकर उस गिरगिटको वहाँसे निकालनेके यत्नमें लग गये। किंतु गिरगिटका शरीर चट्टानके समान था, लड़कोंने उसे रस्सियों और चमड़ेकी पट्टियोंसे बाँधकर खींचनेके लिये बहुत जोर लगाया, पर वह टस-से-मस न हुआ। जब बालक उसे निकालनेमें सफल न हो सके तो श्रीकृष्णके पास जाकर बोले- हमलोगोंने एक बहुत बड़ा गिरगिट देखा है, जो कुएँका सारा आकाश घेरकर बैठा है; उसे कोई निकालनेवाला नहीं है।

यह सुनकर श्रीकृष्ण उस कुएँके पास गये और उन्होंने उसे बाहर निकालकर उसके पूर्वजन्मका वृत्तान्त पूछा। तब उसने कहा- भगवन्। पूर्वजन्ममें मैं राजा नृग था, जिसने हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। श्रीकृष्ण बोले- राजन्। आपने तो सदा पुण्यके ही काम किये हैं, आपके द्वारा कभी भी पाप नहीं हुआ; फिर आपको ऐसी दुर्गति क्यों मिली? आपने पहले कई बार मिलाकर इक्यासी लाख दो सौ गौएं ब्राह्मणोंको दान की है; उस गोदानका फल कहाँ गया?

नृगने श्रीकृष्णसे कहा- प्रभो। एक अग्निहोत्री ब्राह्मण परदेश चला गया था। उसके पास एक गाय थी, जो एक दिन अपने स्थानसे भागकर मेरी गौओंके झुंडमें आ मिली। मेरे ग्वालोंने दानके लिये मँगायी हुई एक हजार गौओंमें उसकी भी गिनती करा दी और मैंने उसे एक ब्राह्मणको दान कर दिया। कुछ दिनों बाद जब वह ब्राह्मण परदेशसे लौटा तो अपनी गाय ढूँढ़ने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह गाय जब उसे दूसरेके घर मिली तो उसने उस ब्राह्मणसे कहा- यह मेरी गौ है (अत: मैं इसे ले जाता हूँ) इसपर

दोनोंमें झगड़ा होने लगा और दोनों ही क्रोधमें भरकर मेरे पास आये। एकने कहा- महाराज। यह गौ आपने मुझे दानमें दी है (और यह ब्राह्मण इसे अपनी बता रहा है)। दूसरेने कहा- महाराज। वास्तवमें यह मेरी गाय है, तुमने इसे चुरा लिया है। तब मैंने दान लेनेवाले ब्राह्मणसे कहा- भगवन् मैं इस गायके बदले आपको दस हजार गौएँ देता हूँ (आप इनकी गाय वापस दे दीजिये)। ब्राह्मण बोला- महाराज। यह गौ देश, कालके अनुरूप, पूरा दूध देनेवाली, सीधी-सादी और अत्यन्त दयालु स्वभाव की है। इसका दूध बहुत मीठा होता है। धन्य भाग, जो यह मेरे घर आयी। यह अपने दूधसे प्रतिदिन मेरे मातृहीन दुर्बल बच्चेका पालन करती है; मैं इसे कदापि नहीं दे सकता। यह कहकर वह वहाँसे चल दिया। तब मैंने दूसरे ब्राह्मणसे प्रार्थना की भगवन्। आप उसके बदलेमें एक लाख गौ ले लीजिये। वह बोला- महाराज। मैं राजाओंका दान नहीं लेता, मुझे तो मेरी वही गौ शीघ्र ला दीजिये। मैंने उसे सोना, चाँदी, रथ और घोड़े सब कुछ देना चाहा, पर वह कुछ न लेकर चुपचाप चला गया। इसी बीचमें कालकी प्रेरणासे मुझे शरीर त्यागना पड़ा और पितृलोकमें पहुँचकर मैं यमराजसे मिला। उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया और कहा- राजन्। तुम्हारे पुण्यकर्मोंकी तो गिनती ही नहीं है; किंतु अनजानमें तुमसे एक पाप भी हो गया है। उस पापको पहले भोग लो या पीछे, जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो। तब मैंने धर्मराजसे कहा- प्रभो। पहले मैं पाप ही भोग लूँगा, उसके बाद पुण्यका उपभोग करूँगा। इतना कहना था कि मैं पृथ्वीपर गिरा। उस समय ऊँचे स्वरसे बोलते हुए धर्मराजकी यह बात कानोंमें पड़ी राजन्। एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर तुम्हारे पापकर्मका भोग समाप्त होगा, उस समय श्रीकृष्ण आकर तुम्हारा उद्धार करेंगे और तुम अपने पुण्य कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त हुए अक्षय लोकोंमें जाओगे। कुएँमें गिरनेपर मैंने देखा मुझे तिर्यग्योनि मिली है और मेरा सिर नीचेकी ओर है। इस योनिमें भी मेरी स्मरणशक्तिने मेरा साथ नहीं छोड़ा था। श्रीकृष्ण। आज आपने मेरा उद्धार कर दिया। अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं स्वर्गको जाऊँगा।

श्रीकृष्णने उन्हें आज्ञा दे दी और वे उनको प्रणाम करके दिव्य मार्गसे स्वर्गलोकको चले गये। श्रीकृष्णने कहा- समझदार मनुष्य को ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। चुराया हुआ ब्राह्मणका धन चोरका उसी भाँति नाश कर देता है, जैसे ब्राह्मणकी गौने राजा नृगका सर्वनाश किया था। कुन्तीनन्दन। यदि सज्जन पुरुष साधु-महात्माओंका सङ्ग करें तो उनका वह सङ्ग व्यर्थ नहीं जाता। साधुसमागमके कारण राजा नृगका नरकसे उद्धार हो गया। गौओंका दान करनेसे जैसे उत्तम फल मिलता है, वैसे ही गौओंसे द्रोह करने या उन्हें सतानेपर बहुत बड़ा कुफल भोगना पड़ता है; इसलिये गौओंको कभी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शुद्धचेत्ता ब्रह्मर्षि अपने शुभ कर्मोंके प्रभावसे गोलोक में पहुँचते है जहाँ काल, बुढ़ापा, अग्निका जोर नहीं चलता, वहाँपर न रोग है न शोक। वहाँ अमंगल नहीं है। वहाँकी गौएं अपने मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करती है वह उन्हें प्राप्त हो जाती है। बावड़ी, तालाब, नदियाँ तरह-तरहके वन, पर्वत आदि सभी वस्तुएँ वहाँ उपलब्ध है। यह अत्यन्त विशाल लोक है। सहनशील पुरुष क्षमाशील, दयालु, गुरुजनोंकी आज्ञा में रहनेवाले और अहंकाररहित लोगोंको गोलोकमें प्रवेश मिलता है। जिसका हृदय पवित्र भावोंसे भरा हुआ हो, जो धर्मात्मा, माता-पिताके भक्त, सत्यवादी, ब्राह्मणोंके सेवामें संलग्न, निंदासे रहित, धर्मपरायण, गुरुसेवक, जीवनभर सत्यका व्रत लेनेवाला दानी, अपराधीको क्षमा देनेवाला, मृदुल, जितेन्द्रिय, देवपूजक ऐसे गुणोंवाला मनुष्य उस सनातन एवं अविनाशी गोलोकमें जाता है। परस्त्रीगामी, गुरुहत्यारा, असत्यवादी, बकवादी, ब्राह्मण द्रोही, मित्रद्रोही, ठग, कृतघ्न, शठ, कुटिल, धर्मद्वेषी और ब्रह्महत्यारा इन सब दोषोंवाला मनुष्य कभी गोलोकका दर्शन नहीं कर पाता। जो पुरुष अपनी पैतृक सम्पत्तिसे प्राप्त हुए धनद्वारा गौएँ खरीदकर दान करता है, वह उस धनसे धर्मपूर्वक उपार्जित किये हुए अक्षय लोकोंको प्राप्त होता है। मनसे भी गौओंकी बुराई नहीं करनी चाहिये। गौओंको घास आदि खिलाता है और सत्य एवं धर्ममें परायण रहता है, उसे गोदान का फल मिलता है। नित्यप्रतिदिन भोजन के समय गो-ग्रास अर्पण करना चाहिये। गौओंके रोम-रोममें अक्षयलोकोंका निवास है। गोदान करनेवाले व्यक्तिको ऐसे व्यक्तिको गोदान करना चाहिये

जो इसको आगे बेचे नहीं, उसका पालन करे और धूप और आगसे इसे कष्ट नहीं पहुँचने दे। स्वाध्यायसम्पन्न शुद्धयोनि, शान्तचित्त, यज्ञपरायण, पापसे डरनेवाला, क्षमाका भाव रखनेवाला, मृदुलस्वभाव, शरणागतवत्सल ब्राह्मण ही गोदान का उत्तम पात्र है। हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सादी, जवान और उत्तम गन्धवाली गाय प्रशंसनीय मानी गयी है। जैसे गङ्गा सब नदियोंमें श्रेष्ठ है उसी प्रकार कपिला गौ सब गौओंमें श्रेष्ठ है। गौओंके दान के साथ उनके हृष्ट-पुष्ट बछड़े भी साथमें होने चाहिये।

उशीनर, विश्वगश्व, नृग, भगीरथ, यौवनाश्व (मान्धाता), मुचुकुन्द, भूरिद्युम्न, नैवध, सोमक, पुरुरवा, चक्रवर्ती भरत और राजा दिलीप इन सबने गोदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया। यह उपदेश सुनकर युधिष्ठिरने अपने रथमें बैलोंको कभी नहीं जोता और बैलगाड़ीकी सवारी ही छोड़ दी। हृष्ट-पुष्ट, सीधी-सुलक्षणा, जवान गौ की सभी ओर प्रशंसा करते है। सुरभि गौ दक्ष प्रजापतिसे प्रकट हुई। सुरभि गौ ने बहुत-सी कपिला गौएँ उत्पन्न कीं। महादेवजीने वृषभ बैलको अपना वाहन बनाया और उसीके नामसे महादेव वृषभद्वज कहलाये। कपिला गौएं अत्यन्त तेजस्वी और शान्त वर्णोंवाली होती है। दानमें इसीको प्रथम स्थान दिया गया है। गो-दान करनेवाला कलियुग के दोषोंसे मुक्त हो जाता है और उसे पुत्र, लक्ष्मी, धन तथा पशु आदिकी सदा प्राप्ति होती है। गोदान करनेवालेको हव्य, कव्य, तर्पण और शान्ति-कर्मका फल तथा वाहन, वस्त्र एवं बालकों और वृद्धोंका संतोष प्राप्त होता है।

गुरु वशिष्ठ ने राजा सौदास से कहा, गौएँ प्राणियोंका आधार तथा कल्याणकी निधि हैं। भूत और भविष्य गौओंके हाथमें है। वे ही लक्ष्मीकी जड़ है। देवताओंको उत्तम हविष्य वही देती है। श्राद्ध और इन्द्रयाग भी सदा गौओंपर ही अवलम्बित है। गौएँ ही यज्ञका फल देनेवाली हैं और यज्ञ भी उन्हींमें प्रतिष्ठित है। गौ दान करते समय दूध दुहनेके लिये एक काँसीका पात्र भी देना चाहिये। गौओंका कभी अपमान न करें। प्रतिदिन शरीरमें गोबर लगाकर स्नान करे। गोबर पर कभी थूक न फेंके और उसमें मल-मूत्र न त्यागे। गौओंको तिरस्कारसे बचाना चाहिये और अग्निमें गायके घृतका हवन करे। समस्त चराचर प्राणी गोबरसे बढ़कर पवित्र हो जाते है। संसारमें गौसे बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट प्राणी नहीं है।

महर्षि व्यासने अपने पुत्र शुकदेवको बताया, गौएं सम्पूर्ण भूतोंकी प्रतिष्ठा और परम आश्रय हैं। वे हव्य और कव्य प्रदान करनेवाली है। जो सत्पुरुष मात्सर्यका त्याग करके गौओंका दान करते हैं, वे पवित्र गोलोकमें जाते हैं। वहाँ पुण्यात्मा पुरुष ही सुखपूर्वक निवास करते हैं। गोलोकवासी शोक और क्रोधरहित तथा पूर्णकाम होते हैं। गौएँ यज्ञका प्रधान अङ्ग है। एक समय की बात है लक्ष्मी मनोहर रूप धारण करके गौओंके पास आयी तब गौओंने लक्ष्मीसे पूछा हे देवी तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो? लक्ष्मीने उत्तर दिया, गौओं तुम्हारा कल्याण हो, मैं इस जगत्में लक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हूँ। सारा जगत मेरी कामना करता है। मैंने दैत्योंका त्याग कर दिया। मेरी ही शरण में इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण तथा अग्नि आदि देवता सब आनन्द भोग रहे हैं। देवता और ऋषियोंको मेरी शरण में आनेसे सिद्धि मिलती है। धर्म, अर्थ और काम मेरा सहयोग होनेसे सुख दे सकते हैं। ऐसा मेरा प्रभाव है। हे गौ अब मैं तुम्हारे शरीर में निवास करना चाहती हूँ। तुम लोग मेरा आश्रय पाकर श्रीसम्पन्न हो जाओगी। तब गौओंने लक्ष्मीसे कहा, तुम तो बड़ी चंचला हो। कहीं भी स्थिर नहीं रहती। हमने तुमको आमंत्रित किया नहीं है। हमको तुम्हारी इच्छा नहीं है। इसलिये तुम्हारी जहाँ इच्छा हों वहां चली जाओ। लक्ष्मीने कहा हे गौओ। मैं दुर्लभ सती हूँ फिर भी तुम लोग मुझे स्वीकार नहीं कर रही हो। मुझे मालूम पड़ा बिना बुलाये किसीके पास जानेसे अनादर होता है यह अक्षरश: सत्य है। देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस और मनुष्य बड़ी उग्र तपस्या करके मेरी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। इस चराचर जगतमें कोई भी मेरा अपमान नहीं करता। इसलिये मेरे प्रभावसे अनुरोध है कि तुम मुझे स्वीकार करो। गौओंने कहा, हम तुम्हारा अपमान नहीं कर रहे है। तुम जहाँ जाना चाहो वहाँ चली जाओ।

लक्ष्मीने कहा, यदि तुम मुझे त्याग दोगी तो सारा जगत् मेरा अनादर करेगा। तुम महान सौभाग्यशालिनी और सबको शरण देनेवाली हो, मुझमें कोई दोष नहीं है। मैं तुम्हारी सेविका हूँ, मेरी रक्षा करो- मुझे अपनाओ। मैं तुम्हारे शरीरके किस भागमें निवास करूँ? गौओंने स्वीकृति दी और कहाँ अच्छा तुम हमारे गोबर और मूत्रमें निवास करो। तबसे गौओंके गोबर

और मूत्रमें लक्ष्मी निवास करती है। सब प्रकारके विघ्नोंकी शान्तिके लिये गौकी सेवा की जाती है।

ब्रह्माने इन्द्रसे कहा, गायके बिना यज्ञ किसी तरह नहीं हो सकता। ये अपने दूध और घी से प्रजाका पालन-पोषण करती है। और इनके पुत्र बैल खेतीके काम आते और बोझा ढोनेके काम में आते है। इनके व्यवहार में शठता या कपटता नहीं होता। इसीलिये ये देवताओंके भी ऊपर के लोक गोलोक में निवास करते हैं। सुरभि गौ दक्षकी पुत्री है। उसने ११ हजार वर्षतक कठोर तपस्या की। ब्रह्माने उसे अमर होनेका वरदान दिया। सुरभि की सभी सन्तानें मनुष्यलोकमें प्राणियोंका हितकार्य करती हुई यहाँ निवास करती है। सुरभिके लिये सब प्रकार का सुख सर्वथा सुलभ है। गोलोक में मृत्यु, बुढ़ापा और अग्निका प्रभाव नहीं होता और कोई भी अशुभ कर्म नहीं होता।

गौएँ महान सौभाग्यशालिनी है, ये परम पावन है। देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोकोंको गौओंने धारण किया है। इनकी सेवा करनेसे बहुत बड़ा पुण्य और महान् फल प्राप्त होता है। प्रतिदिन गौओंको चारा देनेवाला मनुष्य महान धर्मका उपार्जन करता है। वे वरदायिनी है, वे उपासना करनेपर अभीष्ट वरदान देती हैं। जो एकदिन भी गायको चारा खिलाता है, उसे शुभ कर्मोंका फल मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रात: गौ का सुदर्शन करना चाहिए व गौका धाराप्रवाह निकलता हुआ दुग्धपान करना चाहिए। शिशु जन्म पर व मृतक की शौच अवस्था में, किसी अनुष्ठान में गौ-दान करना चाहिए।

गाय को माता का दर्जा दिया गया है क्योंकि यह ऐसी ईश्वरीय देन है जो मानवता की सेवा में लगी है। इसलिए पूरी मानवजाति का कर्त्तव्य है कि वे मां के समान गाय को पूज्य मानें और उसके धार्मिक पहलू के साथ-साथ आध्यात्मिक व आर्थिक महत्व को भी समझें।

गाय धार्मिक दृष्टि से ही नहीं आर्थिक दृष्टि से भी महत्व है। गाय हमारी माता है, गाय को आर्थिक आधार पर यदि प्रस्तुत किया जाए तो गाय माता की रक्षा भी होगी। जरूरी है कि लोगों को गौमूत्र और गोबर का महत्व समझाया जाए। गाय का दूध: पथ्य, रसायन, बलवर्धक, हृदय के लिए हितकर, मेधा बुद्धि को बढ़ानेवाला, आयुप्रद, पुष्टिकारक, वात तथा रक्तपित के विकार को नष्ट करनेवाला होता है। सफेद गाय का दूध वातनाशक, काली गाय का दूध पित्तनाशक तथा लाल गाय का दूध कफनाशक होता है। गाय के घी को तो नेत्रों के लिए हितकारी, वृष्य, अग्निदीपक, पाक में मधुर, शीतल, वात-पित्त-कफ नाशक, बुद्धि, लावण्य, कांति, ओज तथा तेज की वृद्धि करनेवाला, कुरूपता तथा पापनाशक, आस्थापक बताया गया है। मक्खन को हितकारी, वृष्य, रंग को उत्तम करनेवाला, बलकारी, अग्निदीपक, ग्राही और वात-पित्त, रक्त विकार, क्षय, बवासीर, कलवा तथा खांसी को नष्ट करनेवाला बताया गया है वहीं गाय के दही को रोगनाशक बताया गया है।

गाय हमारे लिए अत्यन्त उपयागी पशु है। चूंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है अत: गाय के गोबर एवं बैल आदि से हमें खेती में बहुत मदद मिलती है। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि गाय के जन्म भर के दूध से २४,९६० मनुष्य एक बार में तृप्त होते हैं। गाय की एक पीढ़ी से ४,७५,६०० मनुष्यों को सुख पहुंचता है, ऐसे पशु को न मारें, न मारने दें। ऐसे उपयोगी पशु का वध करना मानव जाति का वध करना है। गाय ही नहीं किसी भी निर्दोष, मूक, असहाय, लाचार प्राणि की अपने स्वार्थ, स्वाद एवं स्वास्थ्य के लिए हत्या करना अनैतिकता है, अमानवीयता है।

६) दान की महिमा- तपस्यासे स्वर्ग मिलता है, तपस्यासे सुयशकी प्राप्ति होती है तथा तपस्यासे ही दीर्घायु, ऊंचा पद और तरह-तरहके भोग प्राप्त होते हैं। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति और सौभाग्य भी तपस्याके ही फल हैं। तप करनेसे मनुष्य धन पाता है, मौन व्रतके आचरणसे सबपर हुक्म चलाता है, दानसे उपभोग और ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घायु प्राप्त करता है। व्रतकी दीक्षा लेनेसे उत्तम कुलमें जन्म होता है, फल-मूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता चबाकर रहनेवालोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। दूध पीकर रहनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाता है और दान देनेसे अधिक धन मिलता है। गुरुकी सेवासे विद्या और नित्य श्राद्ध करनेसे संतानकी वृद्धि होती है। जो केवल शाकाहार करके रहता है,

उसे गोधनकी प्राप्ति होती है। तिनके खानेवाले स्वर्गमें जाते हैं और हवा पीकर रहनेवाले यज्ञका फल पाते हैं। जो द्विज नित्य स्नान करके दोनों समय संध्योपासन करते हैं, वे दक्ष प्रजापतिके समान होते हैं। अन्न और जलका त्याग करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं तथा खुले मैदान वेदीपर शयन करनेवालोंको गृह और शय्याकी प्राप्ति होती है। चीथड़े और वल्कल पहननेवालोंको उत्तम-उत्तम वस्त्र और आभूषण मिलते हैं, जलमें बैठकर जप करनेवाला राजा होता है तथा सत्यवादी पुरुष स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। दानसे यश, अहिंसासे आरोग्य तथा ब्राह्मणोंकी सेवासे राज्य और ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। लोगोंको पानी पिलानेसे सदा रहनेवाली कीर्ति मिलती है तथा अन्नदानसे समस्त कामनाओं और उपभोगोंकी प्राप्ति होती है। जो समस्त प्राणियोंको सान्त्वना देता है, वह सब प्रकारके शोकोंसे छूट जाता है। देवताओंकी सेवासे राज्य और दिव्य रूप मिलते हैं। मन्दिरमें दीपदान करनेसे मनुष्यका नेत्र नीरोग रहता है। दर्शनीय (सुन्दर) वस्तुओंके दानसे बुद्धि और स्मरणशक्ति प्राप्त होती है। बारह वर्षोंतक उपवास, दीक्षा और त्रिकाल स्नानका नियम पालन करनेसे वीरोंसे भी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। यज्ञ और उपवाससे स्वर्ग मिलता है। जो मनुष्य अपनी कन्याका ब्राह्मविधिसे विवाह करता, ब्राह्मणको भूमिदान देता और विधिवत् अन्न दान करता है, उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सुवर्णका दान स्वर्ग देनेवाला है। अन्न, जल और रस दान करनेवाला पुरुष इच्छानुसार सब भोगोंको प्राप्त करता है।

जहाँका दृश्य सुन्दर हो, अन्नकी उपज अधिक हो, जो नाना प्रकारके धातुओंसे विभूषित एवं विचित्र दिखलायी देती हो तथा सब प्रकारके प्राणी निवास करते हों, वही भूमि उत्तम मानी गयी है। उसमें तालाब एवं सब प्रकारके जलाशय बनवाना तीर्थके समान है। इससे धर्म, अर्थ और कामरूप फलकी प्राप्ति होती है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस व समस्त स्थावर प्राणी जलाशयका उपयोग करते हैं। जलाशय बनवाने से अग्निहोत्रका फल प्राप्त होता है। गर्मीमें जल पिलानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जल दुर्लभ पदार्थ है, परलोकमें तो उसका मिलना और भी कठिन है। जलदान सबको तृप्त करता है। यह दान सब दानोंसे भारी और श्रेष्ठ है अत: जलदान अवश्य करना चाहिये।

वृक्ष लगानेवाले मनुष्यकी इस लोकमें कीर्ति बनी रहती है और परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। संसारमें उसका नाम होता है। देवलोकमें भी उसका नाम अमर रहता है। वृक्ष लगानेवाला अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। राहगिरोंको छाया और फल देते हैं। किन्नर, नाग, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य और ऋषि ये सभी वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। फूले-फले वृक्ष इस जगत्में मनुष्योंको तृप्त करते हैं। जो तालाब बनवाता, वृक्ष लगाता, यज्ञोंका अनुष्ठान करता वह सत्य बोलता है, वह स्वर्गको प्राप्त करता है। सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान दे, संकटके समय उनपर दया करे और जलका दान करे।

सुवर्ण, गौ और पृथ्वी इन तीन वस्तुओंका दान बड़ा पवित्र माना गया है। इससे पापियोंका उद्धार होता है। दान मनुष्यको पापसे मुक्त कर देता है। सत्पुरुषको दिया हुआ दान अक्षय होता है। जो आसक्तिरहित और अकिंचन पुरुषके याचना करनेपर भी अहंकारवश अपनी शक्तिके अनुसार उसका सत्कार नहीं करता, वह क्रूर है। शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय उसपर दया करनी चाहिये। वही मनुष्य श्रेष्ठ है। विद्वान होनेपर भी जिसकी आजीविका क्षीण हो गयी है, जो दीन-दुर्बल और दु:खी है ऐसे मनुष्यकी सहायता करनेवाले पुरुषके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है। जो देवताओं और मनुष्योंसे किसी वस्तुकी कामना नहीं करते, सदा संतुष्ट रहते हैं और जो कुछ मिल जाय उसीपर निर्वाह करते हैं, ऐसे पुरुष सत्पुरुष हैं। विद्वान, व्रतका पालन करनेवाले, किसीका आश्रय लियेबिना जीवन निर्वाह करनेवाले, अपने स्वाध्याय और तपको गुप्त रखनेवाले, कठोर नियमोंमें संलग्न, शुद्ध, जितेन्द्रिय और अपनी ही स्त्रीसे समागम करनेवाले उत्तम ब्राह्मणोंको दान करनेसे कल्याण ही है।

याचना करनेवालेकी अपेक्षा याचना न करनेवालेको दिया हुआ दान विशेष कल्याणकारी है तथा अधीर हृदयवाले कृपण मनुष्यकी अपेक्षा धैर्य धारण करनेवाला ही विशेष सम्मानका पात्र है। दरिद्रकी याचना उसके लिये तिरस्कार का कारण

है। याचक मर जाता है किन्तु दाता कभी नहीं मरता। याचक को जो दान दिया जाता है वह दयालु परमधर्म है।

क्षत्रियको सदा कठोर कर्म करने पड़ते हैं, अत: यज्ञ और दान ही उसे पवित्र करनेवाले कर्म हैं। साधु पुरुष पाप करनेवाले राजाका दान नहीं लेते, इसलिये राजाओंको पर्याप्त दक्षिणा देकर यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये। साधु पुरुष यदि दान स्वीकार करे तो राजाको बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रतिदिन दान देना चाहिये; क्योंकि श्रद्धापूर्वक किया हुआ दान आत्मशुद्धिका सर्वोत्तम साधन है।

सब दानोंमें पृथ्वीदान सबसे बढ़कर माना गया है। पृथ्वी अचल और अक्षय है, वह मनुष्योंकी समस्त उत्तम कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। वस्त्र, रत्न, पशु और धान-जौ आदि नाना प्रकारके अन्न पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हैं। अत: पृथ्वीका दान करनेवाला मनुष्य बहुत कालतक समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता है। जबतक पृथ्वी कायम रहती है तबतक भूमिदान करनेवाला मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति करता ही रहता है। इस जगत्में भूमिदानसे बढ़कर और कोई दान नहीं है। जिन लोगोंने थोड़ी-सी भी पृथ्वी दान की है, वे भूमिदानका पूर्ण फल पाकर उसका उपभोग करते हैं। जो इस अक्षय पृथ्वीका दान करता है, वह दूसरे जन्ममें मनुष्य होकर पृथ्वीका स्वामी होता है। जैसा दान किया जाता है वैसा भोग मिलता है। संग्राममें शरीरका त्याग करे अथवा इस पृथ्वीको दान दे ये दोनों ही कार्य क्षत्रियोंको उत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाले हैं। दानमें दी हुई पृथ्वी दाताको पवित्र कर देती है। कितना ही बड़ा पापी, ब्रह्महत्यारा और असत्यवादी क्यों न हो, दानमें दी हुई पृथ्वी दाताके पापको धो-बहाकर उसे सर्वथा निष्पाप कर देती है। साधु पुरुष पापी राजाओंसे भी पृथ्वीका दान ले लेते हैं; किंतु और किसी वस्तुका दान स्वीकार नहीं करते। अयोग्य पात्रको भूमिदान लेनेका अधिकार नहीं है। जिस भूमिको दानमें दे दिया जाय, उससे स्वयं काम नहीं लेना चाहिये। जीविका न होनेके कारण मनुष्य क्लेशमें पड़कर जो कुछ पाप कर डालता है, वह सारा पाप गोचर्मके बराबर भी भूमिदान करनेसे धुल जाता है। जो राजा कठोर कर्म करनेवाले और पापपरायण हैं, उन्हें पापमुक्त होनेके लिये इस परम पावन पृथ्वीदानका उपदेश करना चाहिये। प्राचीन कालके लोग ऐसा मानते थे कि जो अश्वमेध-यज्ञ करता है अथवा जो साधु पुरुषको पृथ्वी-दान करता है, उसे तप, यज्ञ, विद्या, सुशीलता, लोभका अभाव, सत्यवादिता, गुरु-सुश्रूषा और देवाराधनका भी फल मिल जाता है। जो अपने स्वामीका भला करनेके लिये रणभूमिमें मारे जाकर शरीर त्याग देते हैं और जो सिद्ध होकर ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं, वे भी भूमिदान करनेवाले पुरुषसे आगे नहीं बढ़ते। जैसे माता अपने बच्चेको सदा दूध पिलाकर पालती है, उसी प्रकार पृथ्वी सब प्रकारके रस देकर भूमिदाताके ऊपर अनुग्रह करती है। मृत्यु, काल, दण्ड, तमोगुण, दारुण, अग्नि और भयंकर पाश- ये भूमिदान करनेवालेके पास नहीं फटकने पाते। पृथ्वीका दान करनेवाला शान्तचित्त मनुष्य देवता और पितरोंको भी तृप्त कर देता है। दुर्बल, जीविकाके बिना दुखी और भूखके कष्टसे मरते हुए ब्राह्मणको उपजाऊ भूमिदान करनेवाला मनुष्य यज्ञका फल पाता है। यह पृथ्वी भूमिदान करनेवालेको सुख पहुँचाती है। जो मनुष्य जोती, बोयी और उपजी हुई खेतीसे भरी भूमिदान करता है अथवा विशाल भवन बनवाकर देता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो सदाचारी अग्निहोत्री और उत्तम व्रतमें संलग्न ब्राह्मणको भूमिदान करता है, उसे कभी विपत्तिग्रस्त नहीं होना पड़ता। जैसे चन्द्रमाकी कला प्रतिदिन बढ़ती है, उसी प्रकार दान की हुई पृथ्वीमें जितनी बार फसल पैदा होती है उतनी ही उसके दानका फल बढ़ता जाता है।

पृथ्वी कहती है मुझे दान दो और मुझे ही दानके रूपमें ग्रहण करो। मुझे देकर मुझे ही पाओगे; क्योंकि मनुष्य इस लोकमें जो कुछ दान करता है वही उसे परलोकमें मिलता है। जो मनुष्य श्राद्धकालमें पृथ्वीका दान करता है वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। भूमि दान करके मनुष्य अपने आगे-पीछेकी पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। पृथ्वी सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति का स्थान है और अग्नि इसका अधिष्ठाता देवता है। जिनका राजा धर्मको न जाननेवाला और नास्तिक होता है उसकी प्रजा न सुखसे सोती है और न सुखसे जागती है। उस राजाके दुराचारसे सदा उद्विग्न रहतेहैं। ऐसे राजाके राज्यमें योग-क्षेम नहीं

प्राप्त होता। जिस राजाकी प्रजा राज्य-व्यवस्था से सुखी और सन्तुष्ट होती है उस राज्यमें समयपर वर्षा होती है तथा वहाँकी प्रजा शुभकर्मोंसे समृद्धिशालिनी होती है। जो पृथ्वी दान करता है वही कुलीन, वही बन्धु, वही पुण्यात्मा, वही दाता और वही परमात्मा है। भूमिदान करनेसे सब प्रकारकी कामनाएँ सफल होती है। आदित्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान शंकर ये सभी भूमिदान करनेवालेका आदर करते हैं। समस्त जीव पृथ्वीसे ही उत्पन्न और पृथ्वीमें ही लीन होते हैं। अण्डज, पिण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज- इन चार प्रकारके प्राणियोंका शरीर पृथ्वीका ही कार्य है। पृथ्वी ही इस जगत्की माता-पिता है। एकबार बृहस्पतिने इन्द्रसे पूछा- किस वस्तुका दान करनेसे स्वर्गका सुख प्राप्त होता है और किसका फल अक्षय और महत्त्वपूर्ण है। तब बृहस्पतिने कहा, इन्द्र। जो स्वर्ण, गौ और पृथ्वीका दान करता है वह सब पापोंमें से मुक्त हो जाता है और पृथ्वीदान से बढ़कर कोई दान नहीं है। पृथ्वीदान करनेवाला प्राणी अपने भूत और भविष्यकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। भूमिदान करनेवालेको परलोकमें मधु, घी, दूध और दहीकी नदियाँ तृप्त करती है। जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको जीतकर ब्राह्मणको दान दे देता है, उसकी कीर्ति संसारके लोगोंमे अक्षुण्ण रहती है। जिस राजाको ऐश्वर्य और सुख चाहिये, उसे सदा सुपात्र ब्राह्मणको भूमिदान करना चाहिये। जो दान देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं देता है तथा जो देकर वापस ले लेता है वह भविष्यमें तरह-तरह के कष्ट पाता है। जिस भूमिमें खजाना गड़ा हुआ हो, सब प्रकारके रत्नमय उपकरणोंसे अलंकृत हो, ऐसी भूमिको राजा दान करे उसे अक्षयलोक मिलते हैं, उसका वह दान भूमियज्ञ कहलाता है। पृथ्वीदान करनेवाले मनुष्यको अमृत उत्पन्न करनेवाली भूमि प्राप्त होती है। भूमि-दानके समान दान, माताके समान गुरु, सत्यके समान धर्म और दानके समान कोई खजाना नहीं है। विद्वान पुरुषको चाहिये कि श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंको भूमिदान करे। जो भूमि ऊसर, जली हुई और श्मशानके निकट हो, जहाँ पापी पुरुष निवास करते हैं उस भूमिको दान नहीं करना चाहिये। जो दूसरोंकी भूमिमें श्राद्ध करता है अथवा दूसरोंकी भूमि दानमें दे देता है, उसके श्राद्ध और दानका फल पितरोंके द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। अपनी जमीनमें दिया हुआ पिण्ड अक्षय होता है। वन, पर्वत, नदी और तीर्थोंका कोई स्वामी नहीं होता अत: वहाँ श्राद्ध करना अतिउत्तम है।

नारदजीने दानके बारेमें कहा, देवता और ऋषि अन्नकी ही प्रशंसा करते हैं, अन्नसे ही लोकयात्राका निर्वाह होता है और उसीसे बुद्धिमें स्फूर्ति आती है। अन्न ही सबका आधार है। अन्नके समान कोई दान नहीं है। अन्न बलको बढ़ानेवाला है, अन्नके ही आधारपर सबके प्राण है। सम्पूर्ण जगत्को अन्ननेही धारण कर रखा है। संसार गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी भी अन्न से ही जीते हैं। जो याचना करनेवाले सुपात्र ब्राह्मणको अन्नदान करता है वह परलोकमें सुखी होता है। चाण्डाल और कुत्तेको दिया हुआ अन्न भी कभी व्यर्थ नहीं जाता। जो देवताओं, पितरों, ऋषियों, ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्न देकर सन्तुष्ट करता है वह विशेष पुण्यफलका भागी होता है। अन्नका दान ब्राह्मणको और शूद्रको देनेसे महान फल प्राप्त होता है। किसीको अन्नदान करते समय उसके गोत्र, शाखा, वेदाध्ययन और निवासस्थान के बारेमें परिचय न पूछे। जो मनुष्य लोकमें सदा अन्नका दान करता है वह देवताओंसे सम्मानित होकर स्वर्गलोकमें निवास करता है। अन्नका दान ही एक ऐसा दान है, जो दाता और भोक्ता दोनोंको प्रत्यक्षरूपसे संतोष देनेवाला होता है। इसके अलावा जितने भी दान हैं, उनका फल तो परोक्ष है। अन्नसे ही संतानकी उत्पत्ति होती है, अन्नसे ही धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है और अन्न ही रोगोंके नाशका कारण बनता है। प्रजापतिने अन्नको अमृत बतलाया है। अन्नका आहार न मिलनेपर शरीरमें रहनेवाले पाँचों तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। अन्नके बिना आमन्त्रण, विवाह और यज्ञ भी नहीं हो सकते। अन्नदान करनेवाले मनुष्यके बल, ओज, यश और कीर्तिका तीनों लोकोंमें विस्तार होता है। राजा रन्तिदेवने अन्नका दान करके ही स्वर्गलोक प्राप्त किया। पराशर मुनि कहते हैं, जो मनुष्य सदा अन्नका दान करता है, उसपर कभी दु:ख नहीं पड़ता। अन्नदाता मनुष्य कठिन-से-कठिन आपत्तिमें पड़नेपर भी सब पापोंसे मुक्त होकर सारी बुराइयोंको त्याग देता है।

अत्रि मुनिने कहा, जो सुवर्णका दान करते हैं वे याचककी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करते हैं। ये पितरोंको अक्षयगति प्रदान करनेवाला है। सुवर्णकी दक्षिणा सबसे श्रेष्ठ है। मनुष्य के लिये हाथपर पिण्ड देनेका वेदमें विधान नहीं है। पितर कभी मनुष्यके हाथसे पिण्ड लेते भी नहीं है। शास्त्रोंकी आज्ञा है कुशोंपर पिण्डदान करना चाहिये। वसिष्ठ, नारद, अगत्स्य और कश्यपने महर्षि परशुराम को बताया कि सुवर्णका दान अतिउत्तम है। इसकी उत्पत्ति अग्निसे हुई है। सारे जगत्का मन्थन करके जो तेजकी राशि प्रकट हुई वही सुवर्ण है। सुवर्ण अक्षय तथा पावन द्रव्य है। सब प्रकारकी दक्षिणाओंमें सुवर्ण देनेका विधान है। सुवर्ण देनेवाले मानव देवताका दान करते हैं। सुवर्णदानसे ज्योतिर्मय लोकोंकी प्राप्ति होती है।

मनुने कहा है, जलका दान सब दानोंसे बढ़कर है। जिस जलाशयमें सदा गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष पानी पीते हैं, उसके समस्त कुलका उद्धार हो जाता है। जो घी से मिलाया हुआ खीर ब्राह्मणको भोजन कराता है उसपर बुरी शक्तियोंका कभी प्रभाव नहीं पड़ता। अन्नकी उत्पत्ति जलसे ही होती है। पानी के बिना कुछ भी नहीं है। ग्रहोंके स्वामी भी भगवान सोम जलसे ही प्रकट हुए है। अमृत, सुधा, स्वधा, अन्न, ओषधि, तृण और लताएँ भी जलसे ही उत्पन्न होती है। जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो उसे प्रतिदिन जलका दान करना चाहिये। यह धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला है। जलदाता पुरुषकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती है और मरनेके पश्चात् अक्षय आनन्द का अनुभव करता है।

भीष्मने कहा, तिल के दान का भी बहुत महत्त्व है। वह पितरोंका सर्वश्रेष्ठ भोजन है। इसलिये तिल दान करनेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। जो व्यक्ति तिल दान करता है उसे नरक नहीं देखना पड़ता। तिल पौष्टिक पदार्थ है, वह सुन्दर रूप देनेवाला और पापनाशक है।

इन्द्रियनिग्रह करनेवाले पुरुषोंकी समस्त कामनाएँ सर्वत्र पूर्ण होती है। दमनशील पुरुष क्षमावान होते हैं। दानसे दमका दर्जा ऊँचा है। दमका पालन करनेवाला मनुष्य कभी क्रोध नहीं कर सकता। दान करते समय क्रोध आ जाय तो वह दानके फलको नष्ट कर देता है। जो क्रोधरहित होकर दान करता है, उसे सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है। वेदाध्ययन, यज्ञ और दान-कर्ममें तत्पर रहनेवाला तथा युद्ध करके दूसरोंकी रक्षा करनेवाला क्षत्रिय भी स्वर्गमें पूजा जाता है। अपने कर्ममें लगा हुआ वैश्य दान देनेसे महत्-पदको प्राप्त होता है तथा स्वकर्मानुष्ठानमें लगा हुआ शूद्र उच्च वर्णोंकी सेवासे स्वर्गमें जाता है। सत्यके प्रभावसे सूर्य तपता है, अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और वायुका संचार होता है। यह संसार सत्य पर टिका हुआ है। पितर और ब्राह्मण सत्यसे ही प्रसन्न होते हैं। सत्य सबसे बड़ा धर्म बताया गया है अत: सत्यका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। ऋषि-मुनि सत्यपरायण, सत्यपराक्रमी और सत्यप्रतिज्ञ होते हैं, इसलिये सत्य सबसे श्रेष्ठ है। सत्य बोलनेवाले मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं। जिसका हृदय विनयशील है, वह नि:संदेह स्वर्गमें सम्मानित होता है।

महर्षि व्यासने मैत्रेय मुनिको बताया, दान करना, तीर्थस्नान और वैदिक व्रतकी पूर्तिसे भी बढ़कर है। जितने पवित्र कर्म है उन सबमें दान ही सबसे बढ़कर पवित्र और कल्याणकारी है। दान में ही धर्म प्रतिष्ठित है। जैसे वेदोंका स्वाध्याय, इन्द्रियोंका संयम और सर्वस्वका त्याग उत्तम है उसीप्रकार दान भी इस संसारमें अत्यन्त उत्तम माना गया है। बुद्धिमान मनुष्य दान करके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सुख प्राप्त करता है। आप जैसे लोग धन प्राप्त करनेपर दान और यज्ञ करके सुखी होते है। किन्तु जो मूर्ख विषय सुखोंमें आसक्त है वे सुखसे दु:खमें पड़ते है और क्लेश उठाते हैं। किसी-किसीमें पुण्य होता है, किसीसे पाप होता है और इसीमें दोनोंका अभाव रहता है। ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका आचरण न पुण्यमय माना गया है न पापमय। जो यज्ञदान और तपस्यामें प्रवृत रहते हैं, वे पुण्यकर्म करनेवाले है। जो प्राणियोंसे द्रोह करते हैं, दूसरोंके धन को चुराते है वे पापाचारी समझे जाते है। और वे दु:खमें प्राप्त होकर नरक में पड़ते है। मैत्रेय मुनि बोले, आपके दर्शनसे मेरा अभ्युदय हुआ। ब्राह्मणत्वोंके तीन कारण होते है, तपस्या, शास्त्रज्ञान और ब्राह्मण कुलमें जन्म। जो इन तीन गुणोंसे युक्त है वही सच्चा ब्राह्मण है। ऐसे ब्राह्मण के तृप्त होनेपर देवता और पितर भी तृप्त हो जाते हैं। ब्राह्मण न हो तो यह सारा जगत् अज्ञान, अन्ध:कार से ढक जाय और चारों वर्णोंकी स्थिति धर्म-

अधर्म, सत्य-असत्य कुछ भी नहीं रहेगा। यदि विद्या और सदाचारसे सम्पन्न ब्राह्मण दानका प्रतिगृह न स्वीकार करे तो धनवानोंका धन ही व्यर्थ में चला जाय। मूर्ख मनुष्य यदि किसीका अन्न खाता है, वह उस अन्नको नष्ट कर देता है। जो सुपात्र होनेके कारण अन्नकी रक्षा करता है अन्न भी उसकी रक्षा करता है। जो मूर्ख दानके फलका हनन करता है वह स्वयं भी मारा जाता है। अयोग्य व्यक्तिको दान लेनेसे सूक्ष्म दोषकी प्राप्ति होती है। उसे किसीका दान नहीं लेना चाहिये। विद्वान और सदाचारी ब्राह्मण को दिया हुआ दान इहलोक और परलोक को सुधारता है। सत्पुरुषोंने जिस मार्गका निर्माण किया है, उससे चलनेवालेको कोई मोह नहीं होता। तब महर्षि व्यास बोले आप बड़े सौभाग्यशाली ऋषि हैं। जो इस तरह का ज्ञान रखते हैं। मनुष्य तप और विद्यासे महान पदको प्राप्त होता है। तपके प्रभावसे ही वे अपने पापोंका नाश करता है। जिससे संयोग होना, जिसको पराजित करना और जिसे टालना अत्यन्त कठिन है वह सब तपस्यासे साध्य हो जाता है। तपस्याका फल सबसे बढ़ा है। शराबी, जुआउरी, चोर, गर्भहत्यारा, गुरु-स्त्रीसे समागम करनेवाला पापी भी तपस्यासे तर जाता है। जो विद्याके धनी और तपस्वी हैं वे सब पूज्य हैं तथा दान लेनेवाले भी इस लोकमें धन और परलोकमें सुख पाते हैं। दान और तपस्यासे मनुष्य का सारा पाप नष्ट हो जाता है।

दानके पाँच हेतु हैं- धर्म, अर्थ, भय, कामना और दया। दान करनेवाला मनुष्य इहलोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम सुख पाता है। जो ईर्ष्यारहित होकर ब्राह्मणोंको दान करता है वह धर्ममूलक दान कहलाता है। याचकोंके मुँहसे अपनी कीर्तिकी इच्छासे जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अर्थमूलक दान है। जो भय मानकर विद्वान पुरुष किसी मूर्खको दान देता है, वह भयनिमित्तक दान है। बुद्धिमान मनुष्य अपने मित्रको प्रिय मानकर जो कुछ देता है वह कामनामूलक दान है। जो दान दयाकेनिमित्त दिया जाता है वह दयानिमित्तक दान कहलाता है। सबको अपनी शक्तिके अनुसार दान अवश्य करना चाहिये।

७) श्राद्धकर्म- पितृयज्ञ (श्राद्ध) धन, यश तथा पुत्रकी प्राप्ति करानेवाला है। देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पिशाच और किन्नरोंको भी सदा पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। सभी दिनोंमें श्राद्ध करनेसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। श्राद्धमें तिल, चावल, जौ, उड़द, जल और फल-मूल देनेसे पितरोंकी एक मासतक तृप्ति बनी रहती है। मनुजीने कहा है जिस श्राद्धमें तिलोंका अधिक उपयोग किया जाता है वह अक्षय होता है। ब्राह्मणको श्राद्धमें घृतमिश्रित खीर देनेका विधान है। श्राद्धके समय पिण्डोंका दान कर देना चाहिये। पिताकी मृत्युतिथिको जल, मूल, फल और अन्न आदि जो कुछ दिया जाता है वह सब मधु मिलाकर देनेसे पितरोंको अनन्त कालतक तृप्ति रहती है। देवकार्यमें ब्राह्मणकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये किन्तु श्राद्धमें उनकी परीक्षा करना आवश्यक है। विद्वान पुरुष श्राद्धके समय ब्राह्मणका कुल, शील, अवस्था, रूप, विद्या और पूर्वजोंके निवासस्थान इत्यादिका पता लगाये। जिन ब्राह्मणोंको श्राद्धमें नहीं बुलाना चाहिये वह इसप्रकार-जुवारी, गर्भहत्यारा, राजयक्ष्माका (टी.बी.) रोगी, ग्वालेका काम करनेवाला, अपढ़, गाँवभरका हरकारा, सूदखोर, गवैया, सब तरहकी चीजें बेचनेवाला, दूसरोंका घर फूँकनेवाला, विष देनेवाला, जारज मनुष्यके घरका अन्न खानेवाला, सोमरसका विक्रय करनेवाला, सामुद्रिक विद्या (हस्त-रेखा) से जीविका चलानेवाला, राजाका नौकर, तेल बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, पितासे झगड़ा करनेवाला, जिसके घरमें जार पुरुषका प्रवेश हो वह, कलंकित, चोर, शिल्पजीवी, बहुरूपिया, चुगलखोर, मित्रद्रोही, परस्त्री-लम्पट, शूद्रोंका अध्यापक, हथियार बनाकर जीविका चलानेवाला, कुत्ते साथ लेकर घूमनेवाला, जिसके छोटे भाईका विवाह हो गया हो ऐसा अविवाहित पुरुष, चर्मरोगी, गुरुस्त्रीगामी, नटका काम करनेवाला, मन्दिरकी पूजासे जीविका चलानेवाला, नक्षत्रोंका फल बताकर जीनेवाला (ज्योतिषी) ये सभी ब्राह्मण पंक्तिसे बाहर रखने योग्य हैं। ब्रह्मवादी पुरुषोंका कहना है कि उपर्युक्त प्रकारके लोगोंको श्राद्धमें जो अन्न भोजन कराया जाता है, वह राक्षसोंको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण श्राद्धका अन्न भोजन करके फिर उस दिन वेद पढ़ता है तथा जो शूद्रा स्त्रीसे समागम करता है, उसके पितर उस दिनसे लेकर उसीकी विष्ठामें पड़े रहते हैं। सोमरस बेचनेवालेको दिया हुआ

श्राद्धका अन्न विष्ठाके समान और वैद्यको जिमाया हुआ श्राद्धान्न रक्त एवं पीबके समान समझा जाता है। मन्दिरके पुजारीको दिया हुआ अन्न नष्ट हो जाता है। सूदखोरको दिया हुआ दान स्थिर नहीं रहता और व्यापार करनेवाले ब्राह्मणको जो कुछ दिया जाता है वह न तो इस लोकमें काम आता है न परलोकमें। जो दूसरी बार ब्याही हुई स्त्रीके पेटसे पैदा हुआ हो ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ हव्य और कव्य राखमें हवन करनेके समान निष्फल होता है। जो लोग धर्महीन और दुराचारी ब्राह्मणोंको हव्य-कव्य अर्पण करते हैं, उनका वह दान परलोकमें कोई फल नहीं देता। जो मूर्ख जान-बूझकर ऐसे लोगोंको श्राद्धका दान देते हैं उनके पितर परलोकमें विष्ठाका भोजन करते हैं। इन अधम ब्राह्मणोंको अपांक्तेय (पंक्तिदूषक) समझना चाहिये। जो मन्दबुद्धि ब्राह्मण शूद्रोंको उपदेश देते हैं, उनको भी इसी कोटिमें समझना चाहिये। यदि श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें कोई काना बैठा हो तो वह उस पंक्तिके ब्राह्मणोंको दूषित करता है। इसी तरह नपुंसक ब्राह्मणोंको और कोढ़ी जितने लोगोंपर दृष्टि डालता है, उन सबको अपवित्र कर देता है। सिरपर पगड़ी रखकर, दक्षिणाभिमुख होकर तथा जूते पहनकर खानेवाले ब्राह्मण श्राद्धका जितना अन्न भोजन करते हैं वह सब असुरोंका भाग समझना चाहिये। जो ईर्ष्या और पंक्तिदूषक ब्राह्मण किसी तरह श्राद्धपर दृष्टि न डालने पावें, इसके लिये चारों ओरसे घिरे हुए स्थानमें श्राद्ध-दानकी व्यवस्था करनी चाहिये और सब ओर रक्षाके उद्देश्यसे तिल छींटने चाहिये। तिलोंके बिना और क्रोधके वशमें होकर जो श्राद्ध किया जाता है, उसके हविष्यको यातुधान और पिशाच नष्ट कर डालते हैं। पंक्तिदूषक ब्राह्मण पंक्तिमें बैठकर भोजन करते हुए जितने ब्राह्मणोंको देख लेता है उतने ब्राह्मणोंके भोजनसे मिलनेवाले फलसे वह दाताको वञ्चित कर देता है।

जिन ब्राह्मणोंको श्राद्धमें भोजन करवाना चाहिये वो ब्राह्मण वेदव्रतमें निष्णात और सदाचारपरायण होने चाहिये। वे सबको पवित्र करनेवाले हो। उन्हींको पंक्तिमे बिठाने योग्य है वे इस प्रकार है- जो त्रिणाचिकेत मन्त्रका अध्ययन करनेवाले, गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंके उपासक, त्रिसुपर्णमन्त्रोंके ज्ञाता, षडङ्गोंके विद्वान, ब्रह्मवेत्ताओंके वंशमें उत्पन्न, सामवेदके ज्ञाता, ज्येष्ठ सामका गान करनेवाले और माता-पिताकी आज्ञामें रहनेवाले हैं, जो ऋतुकालमें अपनी ही स्त्रीके साथ समागम करते हैं, ऐसे वेदविद्या और व्रतमें प्रवीण ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करनेवाले समझे जाते हैं। अथर्ववेदके ज्ञाता, ब्रह्मचारी, नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले, सत्यवादी, धर्मात्मा तथा अपने कर्त्तव्यमें तत्पर रहनेवाले पुरुष भी पंक्तिपावन हैं। जिन्होंने पुण्यतीर्थोंमें गोते लगानेके लिये परिश्रम किया है, वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान करके अवभृथ-स्नान किया है; जो क्रोधरहित, गम्भीर, क्षमाशील, मनको वशमें रखनेवाले, जितेन्द्रिय और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं, उन्हीं ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये; क्योंकि ये पंक्तिपावन हैं और उन्हें दिया हुआ दान अक्षय होता है। इनके सिवा जो मोक्षधर्मको जाननेवाले यति और उत्तम प्रकारसे व्रतका पालन करनेवाले योगी हैं, जो शुद्धचित्त होकर उत्तम ब्राह्मणोंको इतिहास सुनाते हैं, जो महाभाष्य और व्याकरणके विद्वान हैं तथा जो पुराण और धर्मशास्त्रोंका न्यायपूर्वक अध्ययन करके उनकी आज्ञाके अनुसार विधिवत् आचरण करनेवाले हैं, जिन्होंने नियमित समयतक गुरुकुलमें निवास करके वेदाध्ययन किया है, जो परीक्षाके सहस्त्रों अवसरोंपर सत्यवादी सिद्ध हुए हैं तथा जो चारों वेदोंके पढ़ने-पढ़ानेमें अग्रगण्य हैं, ऐसे ब्राह्मण पंक्तिको जितनी दूर देखते हैं उतनी दूरमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको पवित्र कर देते हैं। पंक्तिको पवित्र करनेके कारण ही उन्हें पंक्तिपावन कहा जाता है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि वेदकी शिक्षा देनेवाले एवं ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंके वंशमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण अकेला ही वह स्थान पवित्र कर सकता है, इसलिये सब प्रकारके प्रयत्नोंसे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करके ही उन्हें श्राद्ध में निमन्त्रित करना चाहिये। जिसके द्वारा किये हुए श्राद्धके भोजनमें मित्रोंकी प्रधानता रहती है, उसके उस श्राद्धसे पितरोंको तृप्ति नहीं होती तथा जो मनुष्य श्राद्धमें भोजन देकर दूसरोंसे मित्रता जोड़ता है, वह मृत्युके बाद देवयानमार्गसे नहीं जाने पाता। जैसे पीपलका फल डंठलसे टूटकर नीचे गिर जाता है वैसे ही श्राद्धको मित्रताका साधन बनानेवाला पुरुष स्वर्गलोकसे भ्रष्ट हो जाता है; इसलिये श्राद्धकर्ताको चाहिये कि

वह श्राद्धमें मित्रोंको निमन्त्रण न दे। मित्रोंको संतुष्ट करनेके लिये धन देना उचित है। श्राद्ध और यज्ञमें भोजन तो उसे ही कराना चाहिये जो शत्रु या मित्र न होकर मध्यस्थ हो। जैसे ऊसरमें बोया हुआ बीज न तो जमता है और न बोनेवालेको उसका कोई फल ही मिलता है, उसी प्रकार अयोग्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया हुआ श्राद्धका अन्न न इस लोकमें लाभ पहुँचाता है, न परलोकमें कोई फल देता है। स्वाध्यायहीन ब्राह्मण तेजहीन होता है, अत: उसे श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये। जो लोग एक-दूसरेके यहाँ श्राद्धमें भोजन करके परस्पर दक्षिणा देते और लेते हैं, उनकी वह दान-दक्षिणा पिशाचदक्षिणा कहलाती है। वह न देवताओंको मिलती है, न पितरोंको। जिसका बछड़ा मर गया है ऐसी पुण्यहीना गौ जैसे दुखी होकर गोशालामें ही चक्कर लगाती रहती है, उसी प्रकार आपसमें दी और ली हुई दक्षिणा इसी लोकमें रह जाती है, वह पितरोंतक नहीं पहुँचने पाती। जैसे आग बुझ जानेपर जो घृतका हवन किया जाता है उसे न देवता पाते हैं न पितर; उसी प्रकार नाचनेवाले, गवैये और झूठ बोलनेवाले अपात्र ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल होता है। अपात्र पुरुषको दी हुई दक्षिणा न दाताको तृप्त करती है न दान लेनेवालेको; प्रत्युत दोनोंका ही नाश करती है। यही नहीं, वह विनाशकारिणी निन्दित दक्षिणा दाताके पितरोंको देवयान-मार्गसे नीचे गिरा देती है। जो सदा ऋषियोंके बताये हुए धर्ममार्गपर चलते हैं, जिनकी बुद्धि एक निश्चयपर पहुँची हुई है तथा जो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता है, उन्हींको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। ऋषि-मुनियोंमें कोई स्वाध्यायनिष्ठ, कोई ज्ञाननिष्ठ, कोई तपोनिष्ठ और कोई कर्मनिष्ठ होते हैं। उनमें ज्ञाननिष्ठ महर्षियोंको ही श्राद्धका अन्न जिमाना चाहिये। जो लोग ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते, वे ही श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो बात-चीतमें ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें श्राद्धमें भोजन नहीं कराना चाहिये।

अत्रि ऋषि के पुत्र महर्षि दत्तात्रय हुए, दत्तात्रयके निमि और निमिके पुत्र हुआ श्रीमान। वह अकाली मृत्युको प्राप्त हुआ। महर्षि निमिको पुत्रशोक के कारण बड़ा संताप हुआ। उन्होंने पुत्रका श्राद्ध विधिकर्म करने का विचार किया। उन्होंने अन्न आदि भोजन पदार्थ बनाये। तथा उनमें जो-जो पदार्थ उनके पुत्रको प्रिय थे उन सबका संग्रह किया। तदनन्तर महर्षि निमिने सात ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की और कुशके आसनपर बिठाया। फिर महर्षिने अपने पुत्र श्रीमान का गोत्र उच्चारण कर कुशोंपर पिण्डदान किया। उसी समय उन्होंने अत्रि ऋषिका स्मरण कर उन्हें बुलाया। अत्रि ऋषिने बताया इसको स्वयं ब्रह्माजीने पहले श्राद्धकर्म किया है और वे ही इसके प्रवर्तक है। श्राद्धके द्वारा स्वयम्भू की पूजा करनेसे श्राद्धकर्ताके पिता, पितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार होता है। सब देवोंका मुख अग्नि ही है। सभी देवता लोग इस श्राद्धकर्म में भाग प्राप्त करनेके अधिकारी है। बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान, वीर्यवान, ह्रीमान, कीर्तिमान, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्य, सावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाथ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्ता, कृति, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्मकृत, गणित, पंचवीर्य, आदित्य, रश्मिवान, सप्तकृत, विश्वकृत, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर। इस प्रकार सनातन विश्वेदेवोंके नाम बतलाये गये।

श्राद्धमें हींग, लहसुन और प्याज, कचनार, गाजर, आँवला और लौकी, काला नमक, काला जीरा, सिंघाड़ा यह सब वर्जित है। सब प्रकारके फल, तथा छौंक श्राद्धमें त्याग देने चाहिये। इनके हविष्य से देवता और पितर नहीं प्रसन्न होते। श्राद्ध आरम्भ करनेके समय उस स्थानसे चाण्डाल और श्वपचोंको हटा देना चाहिये। कोढ़ी, मनुष्य, पतित ब्रह्महत्यारा श्राद्धभूमिके पाससे हटाना चाहिये। पिण्डदानके समय इन सबको दूर कर देना ही उचित है।

अत्रि ऋषि के बाद धीरे-धीरे चारों वर्णोंके लोग श्राद्धमें देवता और पितरोंको अन्न देने लगे। अग्निने देवता और ब्राह्मणोंको कहा, तुम सबलोग मेरे साथ श्राद्धमें भोजन किया करो। श्राद्धमें पहले अग्निका भाग देना चाहिये जिससे आपको

अजीर्ण नहीं होगा। अग्निमें हवन करनेके बाद पितरोंके निमित्त जो पिण्डदान दिया जाता है उसे ब्रह्मराक्षस दूषित नहीं करते। श्राद्धमें अग्निदेवको उपस्थित देखकर राक्षस वहाँसे भाग जाते हैं। सबसे पहले पिताको, उसके बाद पितामहको और उसके बाद प्रपितामहको पिण्डदान देना चाहिये। यही श्राद्धकी विधि है। तर्पण करते समय पिता, पितामह आदिके नामका उच्चारण करे। किसी नदीके किनारे पहुँचकर पिण्डदान और तर्पण करें। पहले अपने कुलके पितरोंको जलसे तृप्त करने के लिये जलांजलि दे। पितर हमेशा तर्पण अभिलाषा रखते हैं। अमावस्या तिथिको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। पितरोंकी भक्तिसे मनुष्यको पुष्टि, आयु, वीर्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी, पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, अङ्गिरा, ऋतु और महर्षि ये योगेश्वर और पितर माने गये हैं।

श्राद्ध करनेवाले को श्राद्ध के दिन मैथुन नहीं करना चाहिए। श्राद्धमें तीन पिण्ड दिये जाते है। श्राद्धमें तीन पिण्डोंका दान करने का विधान है। पहला पिण्ड जलमें डाल देना चाहिए। दूसरा पिण्ड पत्नीको खिला देना चाहिए और तीसरा अग्निमें डाल देना चाहिए जिससे धर्मका लोप न होता हो। पितरोंका बताया हुआ है, पहला पिण्ड पानीमें डालनेपर वह पितरोंको सन्तुष्ट करता है। दूसरा पिण्ड पत्नी भक्षण करती है उसे पुत्रकी कामनावालोंकी पुरुषको पुत्र का प्रदान होता है। तीसरे पिण्डसे पितर तृप्त होकर मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण करते हैं।

ब्राह्मणको भोजन करानेके लिये श्राद्धके एक दिन पहले निमन्त्रण देना चाहिये, जिससे वे श्राद्धमें भलीभाँति भोजन कर सके। किसी मरणाशौच मनुष्यके यहाँ दस दिन तक अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये।

८) शिष्टाचार और सदाचार- पृथ्वीने श्रीकृष्णसे कहा, गृहस्थ को सदाचार का पालन करना चाहिये। गृहस्थ पुरुषको देवता, पितर, ऋषि और मनुष्योंका सदा ही पूजन एवं सत्कार करना चाहिये। प्रतिदिन यज्ञ-होमके द्वारा देवताओंका, (श्राद्ध-तर्पण करके पितरोंका), अतिथि-सत्कारके द्वारा मनुष्योंका और वेदका स्वाध्याय करके पूजनीय ऋषि-महर्षियोंका पूजन करना चाहिये। स्वाध्यायसे ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता होती है। नित्यप्रति भोजनके पहले ही अग्निहोत्र एवं बलिवैश्वदेव कर्म करना आवश्यक है। ऐसा करनेसे देवता भी संतुष्ट होते हैं। पितरोंकी प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन अन्न, जल, दूध अथवा फल-मूलके द्वारा श्राद्ध करना उचित है। सिद्ध अन्न (तैयार हुई रसोई) मेंसे अन्न लेकर उसके द्वारा विधिपूर्वक बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणको भिक्षा दें। यदि ब्राह्मण न मिल सके तो अन्नमेंसे थोड़ा-सा अग्रगास निकालकर उसका अग्निमें होम कर दे। जिस दिन पितरोंका श्राद्ध करनेकी इच्छा हो, उस दिन पहले श्राद्धकी ही क्रिया पूरी करे। उसके बाद पितृतर्पण और बलिवैश्वदेव करके ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक भोजन करावे। फिर विशेष अन्नके द्वारा अतिथियोंको भी संतुष्ट करें। <u>जो नित्य अपने घरमें स्थित नहीं रहता, वह अतिथि कहलाता है</u>। आचार्य, पिता, विश्वासपात्रमित्र और अतिथिसे सदा यह निवेदन करे कि सब वस्तुएँ घरमें मौजूद है, उसे आप स्वीकार करें। इससे धर्मका पालन होता है। गृहस्थ पुरुषको सदा यज्ञशिष्ट अन्नका ही भोजन करना चाहिये। कुत्तों, चाण्डालों और पक्षियोंके लिये भूमिपर अन्न रख देना चाहिये। यह वैश्वदेव नामक कर्म है। प्रात:काल और सायंकालमें इसका अनुष्ठान किया जाता है। जो मनुष्य दोषदृष्टिका परित्याग करके इन गृहस्थोचित धर्मोंका पालन करता है, उसे इस लोकमें ऋषिमहर्षियोंका वरदान प्राप्त होता है और मृत्युके पश्चात् वह पुण्यलोकोंमें सम्मानित होता है।

दीपक ऊर्ध्वगामी तेज है, वह कीर्तिका विस्तार करनेवाला है। दीप दान करनेसे मनुष्यका तेज बढ़ता है। अन्धकार अन्धतामिस्रनामक नरकरूप है। दक्षिणायन भी अन्धकारसे ही आच्छन्न रहता है। उत्तरायण प्रकाशमय है, इसलिये वह श्रेष्ठ माना गया है। अन्धकारमय नरककी निवृत्तिके लिये दीप-दानकी प्रशंसा की गयी है। दीपककी शिखा ऊर्ध्वगामिनी होती है, वह अन्धकारको दूर करनेकी दवा है। जो दीप-दान करता है उसे ऊर्ध्वगतिकी प्राप्ति होती है। देवताओंके निमित्त दीप-दान दिया जाता है। दीपदान करनेसे मनुष्यके आँखोंकी रोशनी बढ़ती है और वह स्वयं भी तेजस्वी होता है।

दीपकोंको प्रज्ज्वलित करने पर न बुझाना चाहिये, न उठाकर अत्यन्त्र ले जायें और न ही नष्ट करें। दीपक चुरानेवाला मनुष्य अंधा और श्रीहीन होता है। घी का दीपक जलाकर दान करना प्रथम श्रेयका दीपदान है। तिल, सरसों आदि तेलसे जलाकर किया हुआ दीप-दान दूसरी श्रेणीका है। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको प्रतिदिन पर्वतीय झरनेके पास, वनमें, देवमन्दिरोंमें और चौराहोंपर दीप-दान करना चाहिये। दीप-दान करनेवाला पुरुष अपने कुलको उद्दीप्त करनेवाला, शुद्धचित्त तथा श्रीसम्पन्न होता है। सदा अनशन व्रतका पालन करते हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। तपसे बढ़कर कोई साधन नहीं है। तपस्याओंसे अनशन व्रत ही श्रेष्ठ है।

भीष्मने कहा, युधिष्ठिर। किस प्रकार आयुकी वृद्धि होती है वह बता रहा हूँ। सदाचारसे ही मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा इस लोक और परलोकमें कीर्तिकी प्राप्ति होती है। दुराचारी पुरुष, जिससे समस्त प्राणी डरते और तिरस्कृत होते हैं, इस संसारमें बड़ी आयु नहीं पाता; अत: यदि मनुष्य अपना कल्याण करना चाहता हो तो उसे सदाचारका पालन करना चाहिये। सदाचार उसकी बुरी प्रवृत्तियोंको दबा देता है। सदाचार धर्मका और सच्चरित्रता सत्पुरुषोंका लक्षण है। साधु पुरुष जैसा बर्ताव करते हैं, वही सदाचारका स्वरूप है। जो मनुष्य धर्मका आचरण करता और लोक-कल्याणके कार्यमें लगा रहता है, उसका दर्शन न हुआ हो तो भी मनुष्य केवल नाम सुनकर उससे प्रेम करने लगते हैं। नास्तिक, क्रियाहीन, गुरु और शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले तथा धर्मको न जाननेवाले दुराचारी मनुष्योंकी आयु क्षीण हो जाती है। जो मनुष्य शीलहीन, धर्मकी मर्यादाको भंग करनेवाले तथा दूसरे वर्णकी स्त्रियोंसे सम्पर्क रखनेवाले हैं, वे इस लोकमें अल्पायु होते और मरनेके बाद नरकमें पड़ते हैं। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे हीन होनेपर भी जो सदाचारी, श्रद्धालु और ईर्ष्यारहित होता है, वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जो क्रोधहीन, सत्यवादी, प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला, दोषदृष्टिसे रहित और कपटशून्य है, उस पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी होती है। जो मनुष्य पत्थर फोड़ता, तिनके तोड़ता, नख चबाता तथा सदा ही अशुद्ध एवं चञ्चल रहता है, उसे दीर्घायु नहीं प्राप्त होती।

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें (अर्थात् सूर्योदयसे पहले) जागकर धर्म और अर्थके विषयमें विचार करें। फिर शय्यासे उठकर शौच-स्नानके पश्चात् आचमनपूर्वक दोनों हाथ जोड़े हुए प्रात:कालकी संध्या करें। इसी प्रकार सायंकालमें भी मौन होकर संध्योपासना करनी चाहिये। उदय, अस्त, ग्रहण और मध्याह्नके समय सूर्यकी ओर कभी दृष्टि न डाले। जलमें भी उसकी परछाई न देखे। ऋषिलोग प्रतिदिन संध्योपासन करनेसे ही दीर्घजीवी हुए हैं; अत: द्विज मात्रको मौन रहकर प्रात:काल और सायंकालकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो द्विज दोनों समयकी संध्या नहीं करते, उनसे धार्मिक राजा शूद्रोंके काम करावे। किसी भी वर्णके पुरुषको परायी स्त्रीसे संसर्ग नहीं करना चाहिये। परस्त्री सेवनसे मनुष्यकी आयु जल्दी ही समाप्त हो जाती है। इसके समान आयु नष्ट करनेवाला संसारमें दूसरा कोई कार्य नहीं है। स्त्रियोंके शरीरमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक व्यभिचारी पुरुषोंको नरकमें रहना पड़ता है।

केशोंको सँवारना, आँखोंमें अंजन लगाना, दाँत-मुँह धोना और देवताओंकी पूजा करना- ये सब कार्य दिनके पहले पहरमें ही करने चाहिये। मल-मूत्रकी ओर न देखे, उसपर कभी पैर न रक्खे। अत्यन्त सबेरे, दोपहरको और सायंकालमें कहीं बाहर न जाय। न तो अपरिचित पुरुषोंके साथ यात्रा करे, न शूद्रके साथ और न अकेले ही। ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल और बोझ लिये हुए मनुष्य यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर उन्हें जानेका मार्ग देना चाहिये। प्रात:काल, सायंकाल, मध्याह्न, रात और विशेषत: आधीरात के समय कभी चौराहोंपर न रहे। दूसरोंके पहने हुए वस्त्र और जूते न पहने। सदा ब्रह्मचर्यका पालन करे। पैरपर पैर न रक्खे। दूसरोंकी निन्दा, बदनामी और चुगली न करे। किसीके मर्मपर आघात न करे। क्रूरताभरी बात न बोले। औरोंको नीचा न दिखावे। जिसके कहनेसे दूसरोंको उद्वेग होता हो, वह रुखाईसे भरी हुई बात पापलोकमें ले जानेवाली होती है। वचनरूपी बाण मुँहसे निकलते हैं, जिनकी चोट खाकर मनुष्य रात-दिन शोकमें पड़ा रहता

है। अत: जिनसे दूसरे मनुष्यके मर्मपर आघात लगता हो, विद्वान पुरुषको ऐसे वचनोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये। हीनाङ्ग (अंधे-काने आदि), अधिकाङ्ग (छाँगुर आदि), अपढ़, निन्दित, कुरुप, धनहीन और असत्यवादी मनुष्योंकी खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिये। नास्तिकता, वेदोंकी निन्दा, देवताओंके प्रति अनुचित आक्षेप, द्वेष, उद्दण्डता और कठोरता- इन दुर्गुणोंका त्याग कर देना चाहिये। क्रोधमें आकर पुत्र या शिष्यके सिवा और किसीको डंडे मारना अथवा जमीनपर गिराना उचित नहीं है। शिक्षाके लिये पुत्र और शिष्यको ताडना देना शास्त्रसम्मत है। ब्राह्मणकी निन्दासे दूर रहें। घर-घर घूमकर नक्षत्र और तिथि न बताया करे। इन सब नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती।

मल-मूत्र त्यागने और रास्ता चलनेके बाद तथा स्वाध्याय और भोजनके पहले पैर धो लेने चाहिये। जिसपर किसीकी दूषित दृष्टि न पड़ी हो, जो जलसे धोया गया हो तथा जिसकी ब्राह्मण प्रशंसा करते हों- ये ही तीन वस्तुएँ देवताओंने ब्राह्मणोंके उपयोगमें लाने योग्य और पवित्र बतायी हैं। गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन अग्निहोत्र करे; संन्यासियोंको भिक्षा दे। सबेरे सोकर उठनेके बाद पहले माता-पिता, आचार्य तथा अन्य गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये, इससे दीर्घायु प्राप्त होती है। सदा सावधान रहकर (दिनमें) उत्तरकी ओर मुँह करके ही मल-मूत्रका त्याग करे। दन्तधावन किये बिना देवताओंकी पूजा न करे और देवपूजा किये बिना गुरु, वृद्ध, धार्मिक तथा विद्वान पुरुषको छोड़कर दूसरे किसीके पास न जाय।

बुद्धिमान मनुष्य मलिन दर्पणमें मुँह न देखे। गर्भिणी स्त्रीके साथ समागम न करे तथा उत्तर और पश्चिमकी ओर सिरहाना करके न सोये; केवल पूर्व अथवा दक्षिण दिशाकी ओर ही सिर करके सोना उचित है। टूटी और ढीली खाटपर नहीं सोना चाहिये। अँधेरेमें पड़ी हुई शय्यापर भी सहसा शयन करना उचित नहीं है (उजाला करके उसे अच्छी तरह देख लेना चाहिये)। इसी तरह पलंगपर कभी भी तिरछा होकर नहीं, सदा सीधे ही सोना चाहिये। नास्तिक मनुष्योंके साथ काम पड़नेपर भी न जायें; उनके साथ कोई प्रतिज्ञा भी न करे। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। कभी भी नंगा होकर अथवा रातमें न नहाय। स्नानके पश्चात् अपने अङ्गोंमें (तैल आदिकी) मालिश न करावे। बोये हुए खेतमें, गाँवके आस-पास तथा पानीमें कभी मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। भोजन करनेवाला मनुष्य पहले तीन बार जलसे आचमन करे, फिर भोजनके पश्चात् भी तीन आचमन करके दो बार मुँह धोवे। सदा पूर्वकी ओर मुँह करके मौन होकर भोजन करना चाहिये। परोसे हुए अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। भूसा, भस्म, बाल और मुर्देकी खोपड़ी आदिपर कभी न बैठै। दूसरेके नहाये हुए जलका दूरसेही परित्याग कर दे। शान्ति, होम और गायत्रीका जप करे। बैठकर ही भोजन करे; चलते-फिरते कभी भोजन नहीं करना चाहिये। खड़ा होकर पेशाब न करे। राखमें और गोशालामें भी मूत्र-त्याग न करे। भीगे पैर भोजन तो करे, परंतु शयन न करे। भीगे पैर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवन धारण करता है। भोजन करके हाथ-मुँह धोये बिना मनुष्य उच्छिष्ट (अपवित्र) रहता है, ऐसी अवस्थामें उसे अग्नि, गौ तथा ब्राह्मण- इन तीन तेजस्वियोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस प्रकार आचरण करनेसे आयुका नाश नहीं होता। उच्छिष्ट पुरुषको सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र- इन त्रिविध तेजोंकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालनी चाहिये। वृद्ध पुरुषोंके आनेपर तरुण पुरुषके प्राण ऊपरकी ओर उठने लगते हैं; ऐसी दशामें जब वह खड़ा होकर वृद्ध पुरुषोंका स्वागत और उन्हें प्रणाम करता है तो वे प्राण पुन: पूर्वावस्थामें आ जाते हैं। इसलिये जब कोई वृद्ध पुरुष अपने पास आवे तो उसे प्रणाम करके बैठनेको आसन दे और स्वयं हाथ जोड़कर उसकी सेवामें उपस्थित रहें।

फटे हुए आसनपर न बैठे। फूटी हुई काँसीकी थालीको काममें न ले। एक ही वस्त्र (केवल धोती) पहनकर भोजन न करे, साथमें गमछा भी लिये रहे। उच्छिष्ट अवस्थामें भी शयन करना निषिद्ध है। जूँठे हाथसे मस्तकका स्पर्श न करे; क्योंकि समस्त प्राण उसीके आधारपर स्थित हैं। सिरके बाल पकड़कर खींचना और मस्तकपर प्रहार करना वर्जित है। दोनों हाथ सटाकर उनसे अपना सिर न खुजलावे। बारंबार मस्तकपर पानी न डाले। इन बातोंके पालनसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। सिरपर तेल लगानेके बाद उसी हाथसे दूसरे अङ्गोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये और तिलके बने हुए पदार्थ नहीं खाना

चाहिये- ऐसा करनेसे आयुका नाश नहीं होता। जूँठे मुँह पढ़ना-पढ़ाना कदापि उचित नहीं है और यदि दुर्गन्धित हवा चले तब तो मनमें भी स्वाध्यायका चिन्तन नहीं करना चाहिये। यमराज कहते हैं- जो मनुष्य जूँठे मुँह उठकर दौड़ता और स्वाध्याय करता है, मैं उसकी आयु नष्ट कर देता हूँ और उसकी संतानोंको भी उससे छीन लेता हूँ। जो द्विज मोहवश अनध्यायके समय भी अध्ययन करता है, उसके वैदिक ज्ञान और आयुका नाश हो जाता है। अत: सावधान पुरुषको निषिद्ध समयमें कभी अध्ययन नहीं करना चाहिये।

जो सूर्य, अग्नि, गौ तथा ब्राह्मणोंकी ओर मुँह करके पेशाब करते हैं और बीच रास्तेमें मूत्र-त्याग करते हैं, वे सब गतायु हो जाते हैं। मल और मूत्रका त्याग दिनमें उत्तराभिमुख और रातमें दक्षिणाभिमुख होकर करनेसे आयुका नाश नहीं होता। जिसे दीर्घकालतक जीवित रहनेकी इच्छा हो, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्प- इन तीनोंको दुर्बल होनेपर भी न छेड़े; क्योंकि ये सभी बड़े जहरीले होते हैं। क्रोधमें भरा हुआ साँप जहाँतक आँखोंसे देख पाता है, वहाँतक धावा करके काटता है। क्षत्रिय भी कुपित होनेपर अपनी शक्तिभर शत्रुको भस्म करनेकी चेष्टा करता है; किंतु ब्राह्मण जब क्रुद्ध होता है तो वह अपनी दृष्टि और संकल्पसे अपमान करनेवाले पुरुषके सम्पूर्ण कुलको दग्ध कर डालता है। इसलिये समझदार मनुष्यको यत्नपूर्वक इनकी सेवा करनी चाहिये। गुरुके साथ कभी हठ नहीं ठानना चाहिये। यदि गुरु अप्रसन्न हों तो उन्हें हर तरहसे मान देकर मनाकर प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। गुरु प्रतिकूल बर्ताव करते हों तो भी उनके प्रति अच्छा ही बर्ताव करना उचित है। गुरुकी निन्दा मनुष्योंकी आयु नष्ट कर देती है। दूसरोंके पहने हुए कपड़े न पहने। सभी पर्वोंके समय ब्रह्मचर्यका पालन करना आवश्यक है। जिस अन्नको रजस्वला स्त्रीने स्पर्श किया हो उस अन्नको कदापि भक्षण न करे। बुद्धिमान मनुष्यको चाहिये कि किसी अपवित्र मनुष्यके निकट अथवा सत्पुरुषोंके सामने बैठकर भोजन न करे। धर्मशास्त्रमें जिसका निषेध किया गया हो, ऐसे अन्नको कभी छिपाकर भी न खाय। सावधानीके साथ केवल सबेरे और शामको भोजन करे, बीचमें कुछ भी खाना उचित नहीं है। शत्रुके साथ श्राद्धमें कभी अन्न ग्रहण न करे। भोजनके समय मौन रहना ही उचित है। पतितोंके लिये दर्शन और उनके स्पर्शका परित्याग कर देना ही उचित है। कुमारी कन्या, कुलटा या वेश्यासे संसर्ग न करे। बूढ़े, कुटुम्बी और दरिद्र मित्रको अपने घरपर आश्रय देना चाहिये; इससे धन और आयुकी वृद्धि होती है। तोता और मैना आदि पक्षियोंका पालना घरमें अभ्युदकारी एवं मङ्गलमय है। गृध्र, कपोत (जंगली कबूतर) तथा भ्रमर नामक पक्षी यदि कभी घरमें आ जायँ तो शान्ति करानी चाहिये; क्योंकि ये अमङ्गलकारी होते है। महात्माओंकी निन्दासे भी मनुष्यका अकल्याण होता है। अच्छे बनाये हुए घरमें निवास करना चाहिये। गोधूलिके समय नींद लेना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध है। अपना कल्याण चाहनेवालेके लिये रातमें श्राद्ध करना, नहाना और सत्तू खाना मना है। निषिद्ध पदार्थोंके सिवा जितनी खाने-पीनेकी वस्तुएँ हैं, उनका उचित मात्रामें सेवन करना चाहिए। रात्रिके समय डटकर भोजन न करे। उत्पन्न कुलमें उत्पन्न और यौग्यअवस्थाको प्राप्त हुई सुलक्षणा कन्याके साथ विवाह करे। उसके गर्भसे संतान उत्पन्न करके वंशपरम्पराकी रक्षा करे और ज्ञान तथा कुलधर्मकी शिक्षा पानेके लिये पुत्रोंको विद्वान गुरुके आश्रयमें भेज दें। कन्या उत्पन्न होनेपर कुलीन एवं बुद्धिमान वरके साथ उसका ब्याह कर दे। जिस नक्षत्र में अपना जन्म हुआ हो उसमें श्राद्ध करना वर्जित है। दूसरोंकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। जो कन्या किसी अङ्गसे हीन अथवा अपंग हो उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके कुलका पता न हो, जो नीच कुलमें पैदा हुई हो, जिसका शरीर पीले रंग का हो, कुष्ठरोगवाली हो, उसके साथ भी विवाह करना निषिद्ध है। जिसके कुलमें किसीको मिरगी, सफेद कोढ़ तथा तपेदिक की बीमारी हो, उस कुलकी कन्यासे विवाह नहीं करनी चाहिये। जो सुलक्षणा, उत्तम आचरणवाली और देखनेमे सुन्दरी हो, उसीके साथ ब्याह करना उचित है। अपनेसे श्रेष्ठ या समान कुलमें विवाह करना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको नीच जातिवाली एवं पतित कन्याका पाणिग्रहण कदापि नहीं करना चाहिये। स्त्रियोंसे ईर्ष्या रखना

उचित नहीं है। प्रत्येक उपायसे अपनी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये। ईर्ष्या करनेसे आयु क्षीण होती है, इसलिये उसे त्याग देना ही उचित है। दिनमें सोनेसे आयुका नाश होता है। अपवित्रावस्थामें वेदाभ्यासका त्याग करे। ब्राह्मणोंकी पूजा, देवताओंको नमस्कार और गुरुजनोंको प्रणाम स्नान के बाद ही करना चाहिये। मन्दिर, यज्ञ, गुरुद्वार इत्यादि में बिना निमन्त्रणके भी जानेमें कोई हर्ज नहीं है। जहाँ अपना आदर न होता हो वहाँ जानेका कोई अर्थ नहीं है। अकेले परदेश जाना और रातमें यात्रा करना वर्जित है। यदि किसी कामके लिये बाहर जाय तो रात्रि होनेके पहले घर लौट आना चाहिये। माता-पिता और गुरुजनोंकी आज्ञाका अविलम्ब पालन करना चाहिये। सदा उद्योगशील बने रहना चाहिये; क्योंकि उद्योगी मनुष्य ही सुखी और उन्नतिशील होता है। शत्रु, भृत्य और स्वजन भी ऐसे मनुष्य का पराभव नहीं कर सकते। जो राजा सदा प्रजाकी रक्षामें संलग्न रहता है, उसे कभी हानि नहीं उठानी पड़ती। संगीत और समस्त कलाओंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। सजातीय बन्धु, सम्बन्धी और मित्रोंका सदा आदर करना चाहिये। सदाचार ही कल्याणका जनक और कीर्तिको बढ़ानेवाला है, उसीसे आयुकी वृद्धि होती है और वही बुरे लक्षणोंका नाश करता है। सम्पूर्ण आगमोंमें सदाचार ही श्रेष्ठ बताया गया है। सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्मके प्रभावसे आयुकी वृद्धि होती है।

ज्येष्ठ भ्राता अपनी अच्छी नीतिसे कुलको उन्नतिशील बना सकता है और वहीं कुनीतिका आश्रय लेकर उसे विनाशके गर्तमें डाल देता है। अपने गलत विचार से वह अपने समस्त कुलको चौपट कर देता है। जो बड़ा होकर अपने छोटे भाइयोंके साथ कुटिलतापूर्ण बर्ताव करता है वह बड़ा कहलानेके योग्य नहीं है। जिस कुलमें पापी पुरुष जन्म लेता है उसके लिये वह सम्पूर्ण अनर्थोंका कारण बन जाता है। पापी मनुष्य कुलमें कलंक लगाता है और उसके सुयशका नाश करता है। छोटे भाइयोंको उनका न्यायोचित भाग दिये बिना बड़े भाईको पैतृक सम्पत्तिका अधिकार नहीं है। यदि बड़ा भाई पैतृक कुटुम्ब धनकी सहायता लिये बिना अपने परिश्रमसे धन अर्जित करे तो वह उस धनका स्वतन्त्र मालिक है। यदि भाइयोंके हिस्सेका बँटवारा न हुआ हो और सबने साथ ही साथ व्यापार आदिके द्वारा धनकी उन्नति की हो, उस अवस्थामें यदि पिताके जीते-जी सब अलग होना चाहें तो वह पिता अपने पुत्रोंको बराबर-बराबर हिस्सा दे। धर्म ही कल्याणका श्रेष्ठ साधन है। पिताकी मृत्यु हो जानेपर बड़े भाईको ही पिताके समान समझना चाहिये। बड़े भाईको भी उचित है कि अपने छोटे भाइयोंकी परवरिश उचित ढंग से करे। बड़ी बहिनको माताके समान समझना चाहिये।

उपवास के समान कोई तप नहीं है। देवताओंने विधिवत उपवास करके ही स्वर्ग प्राप्त किया है तथा ऋषियोंकोभी उपवाससे ही उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। क्षमावान महर्षियोंको उपवास करके ही दिव्य लोकोंकी प्राप्ति हुई है।

इस पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब मनीषी पुरुषके लिये गुणकारी होते हैं; उनमेंसे परम पवित्र प्रधान तीर्थोंका वर्णन किया गया है- जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानसतीर्थमें सदा सत्त्वगुणका आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। कामनाका अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, क्रूरताका अभाव, इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह- ये ही इस मानसतीर्थके सेवनसे प्राप्त होनेवाली पवित्रताके लक्षण हैं। जो ममता, अहंकार, द्वन्द्व और परिग्रहका सर्वथा त्याग करके भिक्षासे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्त:करणवाले महात्मा पुरुष तीर्थस्वरूप हैं। जिसकी बुद्धिमें अहंकारका नाम भी नहीं है, वह तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है। जिनके मनसे तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण दूर हो गये हैं, वो बाहरी पवित्रता-अपवित्रतापर ध्यान न देकर अपने कर्त्तव्य (बाह्यविचार) में परायण रहते हैं, जिन्हें सर्वस्वके त्यागमें ही प्रसन्नता होती है, जो सर्वज्ञ, समदर्शी तथा शौचाचारका पालन करनेवाले हैं, वे संत पुरुष ही परम पवित्र तीर्थस्वरूप है। शरीरको केवल पानीसे भिगो लेना ही स्नान नहीं कहलाता; सच्चा स्नान तो उसीने किया है, जो इन्द्रियसंयममें निष्णात है। जितेन्द्रिय पुरुष ही बाहर और भीतरसे शुद्ध माना गया है। जो नष्ट हुए विषयोंकी परवा नहीं करते, प्राप्त हुए पदार्थमें ममता नहीं रखते तथा जिनके मनमें कोई इच्छा पैदा ही नहीं होती,

वे ही परम पवित्र हैं। इस जगत्‌में प्रज्ञान ही शरीरशुद्धिका विशेष साधन है। इसी प्रकार अकिंचनता और मनकी प्रसन्नता भी शरीरको शुद्ध करनेवाले हैं। शुद्धि चार प्रकारकी है- आचारशुद्धि, मन:शुद्धि, तीर्थशुद्धि और ज्ञानशुद्धि; इनमें ज्ञानसे प्राप्त होनेवाली शुद्धि ही सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है। मानसतीर्थमें प्रसन्न मनसे ब्रह्मज्ञानरूपी जलके द्वारा जो स्नान किया जाता है, वही तत्त्वज्ञानियोंका स्नान है। जो सदा शौचाचारसे सम्पन्न, विशुद्ध भावसे युक्त और सद्‌गुणोंसे विभूषित है, उस मनुष्यको सदा शुद्ध ही समझना चाहिये।

कोई मनुष्य सामसे प्रसन्न होता है कोई दानसे। अत: पुरुषकी प्रकृति को समझकर किसी एकका प्रयोग करना चाहिये। सामके द्वारा भयानक-से-भयानक प्राणी भी वशमें किये जा सकते हैं। साम व्यक्ति के अनुरूप बातें करने का और वशमें करने की विद्या है।

दुर्जन पुरुष दुराचारी, दुर्धष (उद्दण्ड) और दुर्मुख होते हैं तथा सज्जन मनुष्य सुशील हुआ करते हैं। धर्मात्मा पुरुष सड़कपर, गौओंके बीचमें तथा अनाजकी ढेरीपर मल-मूत्रका त्याग नहीं करते। सत्पुरुष देवता, पितर, भूत (प्राणी), अतिथि और कुटुम्बी- इन पाँचोंको भोजन देकर शेष अन्नका स्वयं आहार करते हैं, भोजन करते समय बातचीत नहीं करते तथा भीगे हाथ लिये शयन नहीं करते हैं। जो लोग अग्नि, वृषभ, देवता, गोशाला, ब्राह्मण, धार्मिक और वृद्ध पुरुषोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, जो बड़े-बूढ़ों, बोझसे कष्ट पाते हुए मनुष्यों और स्त्रियोंको तथा अनेकों गाँवोंके अधिपति, ब्राह्मण, गौ और राजाको सामनेसे आते देखकर जानेके लिये मार्ग देते हैं, उन सबको साधु पुरुष समझना चाहिये। सत्पुरुषको चाहिये कि वह सब अतिथियों, सेवकों, स्वजनों तथा शरण चाहनेवाले मनुष्योंकी स्वागतपूर्वक रक्षा करे। देवताओंने मनुष्योंके लिये सबेरे और सायंकाल दो ही समय भोजन करनेका विधान किया है, बीचमें भोजन करनेकी विधि नहीं देखी जाती। इस नियमका पालन करनेसे उपवासका ही फल होता है। जो पुरुष ऋतुकालके अतिरिक्त समयमें स्त्रीके साथ समागम नहीं करता, उसके द्वारा ब्रह्मचर्यका ही पालन होता है।

अमृत, ब्राह्मण और गौ- ये तीनों एक समान हैं, अत: गौ और ब्राह्मणोंका सदा विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। मनुष्य स्वदेशमें हो या परदेशमें, यदि उसके पास कोई अतिथि आ जाय तो उसे भूखा न रहने दे। गुरुने जिस कामके लिये आज्ञा दी हो, उसे पूरा करके उन्हें सूचित कर देना चाहिये। गुरुके आनेपर उन्हें प्रणाम करे और उनकी विधिवत् पूजा करके बैठनेके लिये आसन दे। गुरुकी पूजा करनेसे आयु, यश और लक्ष्मी- इन सबकी वृद्धि होती है। वृद्ध पुरुषोंका कभी अपमान न करे, उन्हें कोई काम करनेके लिये न भेजे तथा यदि वृद्ध पुरुष खड़े हों तो स्वयं भी बैठा न रहे, ऐसा करनेसे मनुष्यकी आयु क्षीण नहीं होती। मैथुन और भोजन- ये दोनों कार्य सदा एकान्त स्थानमें ही करे। तीर्थोंमें गुरु ही सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है, पवित्र वस्तुओंमें हृदय ही अधिक पवित्र है, ज्ञानोंमें परमात्माका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है और संतोष सबसे उत्तम सुख है। सायंकाल और प्रात:कालमें वृद्ध पुरुषोंकी बातें सुननी चाहिये। जो सदा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगा रहता है उसे शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त होता है। स्वाध्याय और भोजनके समय दाहिना हाथ उठाना चाहिये तथा मन, वाणी और इन्द्रियोंको सदा अपने अधीन रखना चाहिये। अच्छे ढंगसे बनाये हुए खीर, हलुवा, खिचड़ी और हविष्य आदिके द्वारा देवताओं तथा पितरोंका अष्टकाश्राद्ध करना चाहिये। नवग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। मूँछ और दाढ़ी बनवाते समय मङ्गल-सूचक शब्दका उच्चारण करना, छींकनेवालेको (शतं जीव आदि कहकर) आशीर्वाद देना तथा रोगग्रस्त पुरुषोंका उनके दीर्घायु होनेकी शुभ कामना करते हुए अभिनन्दन करना चाहिये।

युधिष्ठिर तुम बड़े-से-बड़े संकटमें पड़नेपर भी किसी श्रेष्ठ पुरुषके प्रति तुम का प्रयोग न करना। विद्वानोंके लिये तुम कहकर पुकारना अथवा उनका वध करना एक-सा ही माना गया है। जो अपने बराबरके हों, अपनेसे छोटे हों, अथवा शिष्य हों, उनको तुम कहनेमें कोई हर्ज नहीं है। पाप करनेवाले पुरुषका हृदय ही उसके पापको प्रकट कर देता है। दुराचारी मनुष्य जान-बूझकर किये हुए पापको भी दूसरोंसे छिपानेका प्रयत्न करते हैं, किंतु महापुरुषोंके सामने अपने किये हुए

पापको गुप्त रखनेके कारण वे नष्ट हो जाते हैं। पापी मनुष्य यह सोचकर अपने पापपर पर्दा डालना चाहते हैं कि मुझे पाप करते समय न मनुष्य देख पाते हैं न देवता, किंतु यह उनकी भूल है; क्योंकि पापके द्वारा छिपाया हुआ पाप नये-नये पापकी ही वृद्धि करता है। इसलिये पापको छिपाना नहीं चाहिये; क्योंकि छिपानेसे वह बढ़ता है। यदि कभी पाप बन जाय तो उसे साधु पुरुषोंपर प्रकट कर देना चाहिये। वे उस पापको शान्त कर देते हैं। विद्वान पुरुषोंका कहना है कि धर्म सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय है, इसलिये सबको धर्ममें ही लगना चाहिये। मनुष्यको उचित है कि वह अकेला ही धर्मका आचरण करे; किंतु धर्मध्वजी न बने। जो धर्मको उपभोगका साधन बनाते हैं- उसके नामपर जीविका चलाते हैं, वे धर्मके व्यवसायी हैं। दम्भका परित्याग करके देवताओंकी पूजा करे। छल-कपट छोड़कर गुरुजनोंकी सेवा करे और दान करके परलोककी यात्राके लिये धर्मरूपी धनका खजाना संग्रह करे।

९) जीव के आवागमन का चक्र- बृहस्पतिने युधिष्ठिरको बताया- प्राणी अकेला ही जन्म लेता, अकेला ही मरता, अकेला ही दु:खसे पार होता है तथा अकेला ही दुर्गति भोगता है, पिता, माता, भाई, पुत्र, गुरु सजातीय, सम्बन्धी और मित्रोंमेंसे कोई उसका सहायक नहीं होता। लोग उसके मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी तरह फेंककर थोड़ी देरतक रोते हैं और फिर उसकी ओरसे मुँह फेरकर चल देते हैं। उस समय केवल धर्म ही जीवके पीछे-पीछे जाता है; अत:धर्म ही सच्चा सहायक है। इसलिये मनुष्योंको सदा धर्मका ही सेवन करना चाहिये। धर्मयुक्त प्राणी स्वर्गमें जाता है और अधर्मपरायण जीव नरकमें पड़ता है। अत: विद्वान पुरुषको चाहिये कि न्यायसे प्राप्त हुए धनके द्वारा धर्मका अनुष्ठान करे। एकमात्र धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक होता है। अविवेकी मनुष्य ही लोभ, मोह अथवा भयसे दूसरोंके लिये पाप करता है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, यम, बुद्धि और आत्मा- ये सब एक ही साथ सदा मनुष्यके धर्मपर दृष्टि रखते हैं। दिन और रात भी सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं। इन सबके साथ धर्म जीवका अनुसरण करता है। तत्पश्चात् धर्माधर्मसे युक्त प्राणी (परलोकमें अपने कर्मोंका भोग समाप्त करके) दूसरा शरीर धारण करता है। उस समय उस शरीरमें स्थित पञ्चभूतोंके अधिष्ठाता देवता पुन:उसके शुभाशुभ कर्मोंको देखने लगते हैं। इस शरीरमें स्थित पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और मनके अधिष्ठाता देवता जो अन्न भक्षण करके पूर्ण तृप्त होते हैं उसीसे स्थूल वीर्यकी उत्पत्ति होती है। फिर स्त्री-पुरुषका संयोग होनेपर वही वीर्य गर्भका रूप धारण करता है। यदि प्राणी इस लोकमें जन्मसे ही पुण्यकर्ममें लगा रहता है तो वह धर्मके फलका आश्रय लेकर उसके अनुसार सुख भोगता है। मनुष्य धर्मके बीचमें अधर्म का भी आचरण कर बैठता है तो उसे सुखके बाद दु:ख भी भोगना पड़ता है। अधर्मपरायण मनुष्य यमलोकमें जाता है और वहाँ महान कष्ट भोगकर पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेता है। जीव मोहके वशीभूत होकर जिस कर्मका अनुष्ठान करनेसे नाना योनियोंमे जन्म धारण करता है। मनुष्य इस लोकमें पाप करनेपर मृत्युके पश्चात् यमराजके भयंकर लोकमें जाता है।

जो मनुष्य सब जीवोंको अपने समान समझकर किसीपर प्रहार नहीं करता और क्रोधको अपनी नियन्त्रण में रखता है वह मृत्युके पश्चात् सुखी होता है। जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है सबके सुखदु:ख को अपना समझता है उस ज्ञानीकी गतिका पता लगानेमे देवता भी मोहमें पड़ जाता है। जो बात अपनेको अच्छी न लगे, वह दूसरोंके प्रति भी नहीं करनी चाहिये। माँगनेपर देनेसे और इन्कार करनेसे सुख और दु:ख तथा प्रिय और अप्रिय करनेसे पुरुषको स्वयं जैसे हर्ष-शोकका अनुभव होता है, उसीप्रकार दूसरोंके लिये समझे। मन, वाणी तथा कर्मसे हिंसा न करना और मांस भक्षण न करना यह अहिंसा धर्मका पालन है। प्राण त्याग करना कितना कठिन है, मरना कोई भी नहीं चाहता। इस संसारमें प्राणी किसी भी दशा में हो उसीमें सुख मानते है। एकसमय महर्षि व्यास कहीं जा रहे थे, उन्होंने एक बैलगाड़ीके चलनेके रास्तेमें एक कीड़ेको तेजीसे भागते हुए देखा। व्यासजी सम्पूर्ण प्राणियोंकी गतिके ज्ञाता और भाषाको समझनेवाले है। उन्होंने उस कीड़ेसे

पूछा, कीट आज तुम बहुत डरे हुए हो और शीघ्रतासे कहाँ दौड़े जा रहे हो? यह भय तुम्हें कहाँसे प्राप्त हुआ। उस कीटने कहा, महर्षि कल बहुत बड़ी बैलगाडी आ रही है। इसकी घरघराहट सुनकर मुझे भय हो रहा है। कहीं यह गाडी आकर मुझे कुचल न डाले। इसीलिये तेजीसे भाग रहा हूँ। मौत प्रत्येक प्राणीके लिये दु:खदायिनी होती है। अपना जीवन सबको दुर्लभ जान पड़ता है। महर्षि व्यासने पूछा, फिर सुख कहाँ है? तुम तो तिर्यकयोनिमें पड़े हुए जीव हो। मेरी समझमें मर जाना ही तुम्हारे लिये सुखकी बात है। तुम शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध तथा भोगोंका अनुभव भी नहीं कर सकते। कीड़ेने कहा, मुझे तो इस योनिमें सुख मिलता है और यही सोचकर मैं जीवित रहना चाहता हूँ। इस शरीरके अनुसार मुझे सब प्रकारके विषय उलपब्ध होते है। मनुष्य और स्थावर प्राणियोंके भोग अलग है। जीव सभी योनियोंमें सुखका अनुभव करता है। मेरे पिछले जन्म के कारण ही मुझे यह योनि प्राप्त हुई। अब मैं कोई शुभ कर्म करके भविष्यमें सुख पाना चाहता हूँ। अत: जिससे मेरा कल्याण हो वह उपाय बतायें- महर्षि व्यासने कहा, तुम्हारे शुभ कर्मके प्रभावसे तुम्हे मेरा दर्शन हुआ। मैं अपने तपोबल से उद्धार कर दूँगा। तपोबलसे बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ बल नहीं है। इतनेहीमें विशाल छकड़ा आ गया और उसके पहियेसे दबकर उस कीड़ेने अपना प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् वह सुअर, मृग, ऋषि, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ, क्षत्रिय जातिमें उत्पन्न हुआ, वह महर्षि व्यासजीका वनमें दर्शन करके उन्हें पहचान कर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। और बोला मुझे आज वो स्थान प्राप्त हुआ है जिसकी कोई तुलना नहीं। आपकी कृपासे ही मैं अपने दोषसे पीड़ा होकर आज राजकुमार हो गया। आप महान तेजस्वी और सत्यप्रतिज्ञ है। व्यासजी बोले, तुमने अपनी मधुर वाणीसे मेरा स्तवन किया है। कीट योनियमेंजन्म लेकर जो तुमने दर्शन किया उसी पुण्यके फल प्रति तुम क्षत्रिय हुए हो। अब मेरे दर्शनसे तुम्हें ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती। तुम नानाप्रकारके सुख भोगकर अन्तमें गौ, ब्राह्मणोंकी रक्षा के लिये युद्धभूमिमें अपने प्राणोंकी आहुति दोगे। थोड़े ही दिनोंमे उस क्षत्रिय ने शरीर त्याग दिया और दूसरे जन्ममें वह ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ। उत्तम क्रम करनेवाला, उत्तम जातिमें पाप कर्म करनेवाला पापयोनिमें जन्म लेता है। मनुष्य जैसा पाप करता है उसके अनुसार उसे वैसा फल भोगना पड़ता है। इसलिये हे कीट तुम धर्मका लोप मत करो और उत्तम धर्मका आचरण करो। वही कीट क्षत्रियसे ब्राह्मण हुआ और वही मैत्रेय मुनिके नाम से जाना गया। जो महर्षि व्यासके चचेरे भाई हुए।

१०) धर्म, ईश्वर, जीव, संसार, प्रकृति- ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ जीवन का स्त्रोत है। ईश्वरप्राप्ति ही जीवन का सार है। ईश्वर ही सम्पूर्ण सुखों का आधार है। ईश्वर ही समाधि की अवस्था में अनुभव किया जा सकता है। संसार का कोई भी मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करके सर्वथा दु:खमुक्त हो सकता है। पद, धन एवं बौद्धिक स्तर के प्रभाव से कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। संसार में सब कुछ नश्वर है, शाश्वत केवल एक परमात्मा है। जो संतों के द्वारा जाना जाता है। संतोंको प्रेम करके आप अपनी आत्मा को जान सकते है। संसार में जीवनयापन के जितने भी व्यवस्थित विभाग हैं। उन विभागों के सर्वोपरि पद पर आसीन व्यक्ति भी दु:ख एवं चिन्ताओं से मुक्त नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति ही मानव-जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का हल है।

प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्त: प्रकृति को वसीभूत करके अपने निज स्वरूप ब्रह्म भाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म योग, भक्ति योग, राजयोग, ज्ञानयोग, इनमें से एक या सभी योगों का सहारा लेकर अपने ब्रह्म भाव को व्यक्त करो और मुक्त (मोक्ष) हो जाओ। यही धर्म का सर्वस्व है, धर्म मत, अनुष्ठानपद्धति, धर्मशास्त्र, मन्दिर, अथवा अन्य बाह्य क्रिया कलाप तो शाश्वत धर्म के ब्योरे मात्र हैं।

जो धर्म अनुभूति की प्रतिष्ठा पर स्थित है संसार के समस्त धर्म प्रत्यक्ष अनुभव पर स्थापित है जो ज्ञान की सार्वभौमिक सुदृढ़ भित्ति है जिन धर्माचार्य ने ईश्वर को देखा था उन सभी ने आत्मदर्शन किया था, अपने अनन्त स्वरूप का ज्ञान सभी को प्राप्त हुआ था। उसी का उन्होंने प्रचार किया। सभी दृष्टा ऋषि संत महापुरुष, पैगम्बर मसीहा, ने सत्य आहिंसा दया, क्षमा, शान्ति, सद्भाव का प्रचार किया। धर्म के सत्य का जब तक कोई अन्वेषक नहीं कर लेता है तब तक धर्म की बात

करना ही वृथा है। भगवान के नाम पर इतनी लडाई विरोध और झगडा क्यों? भगवान के नाम पर जितना खून बहा है उतना और किसी कारण से नहीं। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए की कोई भी व्यक्ति मूक परमतत्व तक नहीं गया। सभी लोग पूर्वजों के कुछ बाह्य आचरण का अनुमोदन कर सन्तुष्ट हो गये हैं।

मनुष्य कहां सत्य को चाहता है? बहुत कम ही सत्य मार्ग पर आरूढ़ होते हैं, और उनमें भी कम ही सत्य का साक्षात्कार कर पाते हैं और जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया उसी को सत्य पर कहने का अधिकार है उनकी ही ओजशक्तिमय वाणी से सत्य एवं शान्ति का प्रसार होगा।

जिसने हृदय के अन्तरतम में सत्य स्वरूप आत्मा का अनुभव कर लिया है। उसी के हृदय की सम्पूर्ण ग्रन्थियां छिन्न-भिन्न हो जाती हैं उसी के सारे सन्देह दूर हो जाते हैं उसी के संपूर्ण कर्म संस्कार नष्ट हो जाते हैं। जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया है कितना भी उपदेश प्रदान किया जाय किन्तु बिना स्वयं साधना के कोई भी कभी-भी धार्मिक नहीं बन सकता है। अज्ञान व अपूर्ण वासना ही समस्त दुख का मूल कारण है। आत्मज्ञान ही वासना एवं अज्ञान के तम को नष्ट कर देता है। जो एकाग्रता से सुलभ है। मन की शक्ति को एकाग्र करने के सिवा और किस तरह परम ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है?

प्रकृति के द्वार कैसे खटखटाना चाहिए? उस पर कैसे आघात देना चाहिए? केवल यह ज्ञात हो जाय तो प्रकृति अपना सारा रहस्य खोल देती है। उस आघात की शक्ति एवं तीव्रता केवल एकाग्रता से आती है मानव मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है वह जितना ही एकाग्र होता है उतना ही उसकी शक्ति एक लक्ष्य पर केन्द्रित होती है यही रहस्य है। राजयोग से मन की एकाग्रता का साधना कर आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करना ही वैज्ञानिक विधि है।

आनन्द आत्मा का स्वभाव है। आनंद स्वरूप आत्मा है यह आत्मा संत स्वरूप है, यह आत्मा चैतन्य स्वरूप है, यह आत्मा आनंद स्वरूप है। मन जब अन्तर्मुखी प्राण के साथ आत्मा में लीन होता है तो स्वत: आनंद का प्रसव होने लगता है। आनंद निर्विषय होता है सुख विषय से सनित होता है।

आनंद को प्राप्त करने के लिए बाहर भटकना नहीं है जब मन बाह्य विषयों को त्याग कर साँस के साथ अंतर्मुखी आत्मा में समाने लगता है तो आनंद का प्राकट्य होने लगता है यही मन जब बाह्य मुखी इंद्रियों के साथ विषयों से संयोग करता है तो सुख उत्पन्न होने लगता है। सुख एवं दु:ख इंद्रियों की संवेदना से उत्पन्न होता है, यह क्षणिक होता है। शाश्वत सुख को आनंद कह सकते हैं, यह बृहद होता है। जीवनी शक्ति केंद्रित होती चली जाती है। वह ऊर्जा का केंद्र हो जाता है। उपनिषद में अन्नमय प्राण मयकोष, मनोभय कोष, विज्ञान मयकोष व आनंद मयकोष का वर्णन है। इसमें भी अंत में आनंद मयकोष को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आनंद स्वरूप परंब्रह्म ही माना गया है। यह जीव परंब्रह्म परमात्मा का अंश है। परमात्मा अविनाशी है। जीव भी अविनाशी है जीव अविनाशी शाश्वत सुख प्राप्त करने पर ही तृप्त हो सकता है।

इंद्रियों के क्षणिक सुख को प्राप्त करने में ही जीव भटकता रहता है। जीव काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मत्सर रूपी अवगुणों की डोर में बंधकर आत्मिक आनंद को खो देता है। इंद्रिय सुखों की अभिलाषा को पूरा करने में देव दुर्लभ मानव तन को नष्ट कर रहा है। चित्त में अशांत कर बैठता है। धन संचय, वस्तु संचय व पद प्राप्त करना जीव का लक्ष्य बन जाता है। इसी में सुख खोजते हुए जीव निज स्वरूप की प्राप्ति के परम लक्ष्य में भटक जाता है।

जिसके करनेसे देवता, पितर, ऋषि, प्रमथ, लक्ष्मी, चित्रगुप्त और दिग्गज प्रसन्न होते हैं, जिसमें महान फल देनेवाले ऋषि-धर्मका रहस्यसहित समावेश हुआ है तथा जिसके अनुष्ठानसे बड़े-बड़े दानों और सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिलता है, उस धर्मको जो जानता और जानकर उसके अनुसार आचरण करता है, वह पापी रहा हो तो भी पापमुक्त होकर सद्गुणसम्पन्न हो जाता है। जो मनुष्य अतिथियोंकी पूजा करता है, गो-दान और यज्ञ अनुष्ठान करता है, श्रद्धाके साथ धर्म-शास्त्रोंका श्रवण करता हैं तथा

जिनका हृदय शुद्ध हो गया है, वे अवश्य ही पुण्य-लोकोंपर विजय प्राप्त करते हैं। भविष्यमें भी वह पाप नहीं करता वह नित्यप्रति धर्मका अनुष्ठान करता है और उसे मरनेके बाद उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

जिस घरमें बर्तन फूटे, आसन फटे और पात्र इधर-उधर बिखरे हो और स्त्रियोंकी दुर्दशा होती हो, स्त्रियोंपर हाथ उठाया जाता हो वह घर पापके कारण दूषित होता है। वहाँसे उत्सव और पर्वके अवसरोंपर देवता भी निराश हो जाते हैं। सदा अतिथियोंका सत्कार करे, यज्ञशालामें दीप जलावे, दिनमें कभी न सोये, मांसाहारी न बने, गौ और ब्राह्मण की हत्या न करे, तीर्थोंका पूजन करे यह रहस्यमय धर्म सर्वश्रेष्ठ और महान फल देनेवाला है। श्राद्धमें, यज्ञमें, तीर्थमें और पर्वोंके दिन देवताओंका भाग निकाले। घरमें फूटे बर्तन, टूटी खाट, मुर्गा, कुत्ता और वृक्षको होना अच्छा नहीं माना गया है। टूटे बर्तनोंमें कलियुगका वास माना गया है अर्थात घरमें लड़ाई-झगड़ा लगा रहता है। टूटी खाट रखनेसे धनकी हानि होती है। कुत्ता और मुर्गा पालनेसे देवतालोग उस घरका हविष्य ग्रहण नहीं करते और घरमें वृक्ष बड़ा होनेपर उसकी जड़के अंदर साँप, बिच्छु आदि जन्तुओंका समावेश हो जाता है, इसलिये घरके अंदर कभी भी पेड़ नहीं रहना चाहिये।

श्रद्धाविहीन, अभिमानी, ब्रह्मघाती और गुरुस्त्रीगामी इन चार प्रकारके मनुष्योंसे दूर रहना चाहिये। यह धर्मके तत्वसे अनभिज्ञ है। ब्रह्महत्यारा, गोहत्यारा, परस्त्री लम्पट, श्रद्धाहीन और स्त्रीसे जीविका चलानेवाला ये पाँच प्रकारके दुराचारी नराधम सर्वथा त्याग कर देने योग्य है। इनके पापोंका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। जिनकी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहती है और जो परम श्रद्धालु है उसीको इस धर्मका उपदेश करना चाहिये।

जो इन्द्रियसंयमपूर्वक उनके मार्मिक फलोंका पारायण करता है उसके ऊपर कभी पापका प्रभाव नहीं पड़ता। वह सदा पापसे निर्लिप्त रहता है। श्रद्धाहीन, नास्तिक, धर्मत्यागी, निर्दयी, युक्तिवादका सहारा लेकर दुष्टता करनेवाले, गुरुद्रोही तथा अनात्मीय व्यक्तिको इस धर्मका उपदेश नहीं करना चाहिये।

एक बार पार्वतीने महादेवसे धर्मका स्वरूप पूछा तब भगवान शिवने कहा, किसी भी जीवकी हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियोंपर दया करना, मन और इन्द्रियोंपर काबू रखना तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान देना यह गृहस्थ-आश्रमका उत्तम धर्म है। परायी स्त्रीके संसर्गसे दूर रहना, धरोहर और स्त्रीकी रक्षा करना, बिना दिये किसीकी वस्तु न लेना तथा मांस और मदिराका त्याग करना ये सब सुखको प्राप्त करानेवाले साधन हैं। क्षत्रियका सबसे पहला धर्म है प्रजाका पालन करना। प्रजाकी आयके छठे भागका उपभोग करनेवाला राजा धर्मका फल पाता है। जो धर्मपूर्वक अपनी प्रजाकी रक्षा करता है, उस राजाको उसके प्रजापालनरूपी धर्मके प्रभावसे उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। राजाका परम धर्म हैं- इन्द्रियसंयम, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, यज्ञोपवीत-धारण, यज्ञानुष्ठान, धार्मिक कार्य करना, पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना, आरम्भ किये हुए कर्मको सफल बनाना, अपराधके अनुसार उचित दण्ड देना, वेदोक्त यज्ञोंका अनुष्ठान करना, व्यवहारमें न्यायकी रक्षा करना और सत्यभाषणमें प्रेम रखना। जो राजा दुखी मनुष्योंको हाथका सहारा देता है, वह इस लोक और परलोकमें भी सम्मानित होता है। जो गौ और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये संग्राममें पराक्रम दिखाकर प्राण त्याग करता है, वह परलोकमें अश्वमेधयज्ञसे प्राप्त होनेवाले उत्तम लोकोंपर अधिकार प्राप्त करता है।

पशुओंका पालन, खेती, व्यापार, अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, सदाचारका पालन, अतिथि-सत्कार, शम, दम, ब्राह्मणोंका स्वागत और त्याग- यह वैश्योंका सनातन धर्म है। व्यापार करनेवाले सदाचारी वैश्यको तिल, चन्दन और रसकी बिक्री नहीं करनी चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य- इन सबका यथायोग्य आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये।

शूद्रका परम धर्म है तीनों वर्णोंकी सेवा। जो शूद्र सत्यवादी, जितेन्द्रिय और घरपर आये हुए अतिथिकी सेवा करनेवाला है, वह महान् तपका संग्रह करता है। उसे उत्तम तपस्वी समझना चाहिये। नित्य सदाचारका पालन और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले बुद्धिमान शूद्रको धर्मका मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है।

प्रवृत्ति धर्म- सब प्रकारके विषयोंसे उपराम होना शम कहलाता है, यह सत्पुरुषोंमें सदा दृष्टिगोचर होता है। इसका पालन करनेसे शुद्ध चित्तवाले गृहस्थोंको महान् धर्मकी प्राप्ति होती है। गृहस्थ पुरुषको पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने मनको शुद्ध बनाना चाहिये। जो गृहस्थ सदा सत्य बोलता, किसीके दोष नहीं देखता, दान देता, ब्राह्मणोंका सत्कार करता, अपने घरको झाड़-बुहारकर साफ रखता, अभिमानका त्याग करता, सदा सरल भावसे रहता, स्नेहयुक्त वचन बोलता, अतिथि और अभ्यागतोंकी सेवामें मन लगाता, यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करता और अतिथिको शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार पाद्य, अर्घ्य, आसन, शय्या, दीपक तथा ठहरनेके लिये गृह प्रदान करता है, उसे धार्मिक समझना चाहिये। शूद्र गृहस्थको अपनी शक्तिके अनुसार सदा सबका आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य- इन तीन वर्णोंकी परिचर्यामें रहना उसके लिये प्रधान धर्म बतलाया गया है। प्रवृत्तिरूप धर्मका विधान गृहस्थोंके लिये किया गया है, वह सब प्राणियोंका हितकारी और उत्तम है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सदा अपनी शक्तिके अनुसार दान, यज्ञ तथा पुष्टिजनक कार्य करते रहना चाहिये। धर्ममार्गका आश्रय लेकर धनका उपार्जन करना चाहिये और उसका तीन विभाग करके एक अंशसे धर्म और अर्थकी सिद्धि करनी चाहिये, दूसरे अंशको उपभोगमें लगाना चाहिये और तीसरे अंशको बढ़ाना चाहिये।

निवृत्ति धर्म- मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। हमेशा एक ही गाँवमें नहीं रहना चाहिये और अपने आशारूपी बन्धनोंको तोड़नेका यत्न करना चाहिये। मुमुक्षुके लिये यही प्रशंसाकी बात है। उसे कमण्डलु, जल, कौपनी, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और घरपर ममता या आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। मुमुक्षुको अध्यात्मज्ञानका ही चिन्तन और मनन करना चाहिये तथा सदा उसीमें स्थित रहना चाहिये। निरन्तर योगाभ्यास में प्रवृत्त होकर तत्त्वका विचार करते रहना चाहिये। संन्यासी ब्राह्मणको उचित है कि वह सब प्रकारकी आसक्तियों और स्नेहबन्धनोंसे मुक्त होकर सर्वदा वृक्षके नीचे, सूने गृहमें अथवा नदीके किनारे रहता हुआ अपने अन्त:करणमें परमात्माका ध्यान करे। जो युक्तचित्त होकर संन्यास ग्रहण करता है और मोक्षोपयोगी कर्म- श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिके द्वारा समय व्यतीत करता हुआ ठूठे काठकी भाँति स्थिर रहता है, उसको सनातन धर्मका मोक्षरूप फल प्राप्त होता है। संन्यासी पुरुष किसी एक स्थानपर आसक्ति न रक्खे, एक ही गाँवमें न रहे तथा एकही नदीके किनारेपर सर्वदा शयन न करे। उसे सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरना चाहिये। यह मोक्ष-धर्मके ज्ञाता सत्पुरुषोंका धर्म और वेद-प्रतिपादित सन्मार्ग है। जो इस मार्गसे चलता है, उसके लिये कोई सीमित स्थान नहीं रहता (वह मुक्त एवं सर्वव्यापक हो जाता है)। संन्यासी चार प्रकारके होते हैं- कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। इस परमहंस-धर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले आत्मज्ञानसे बढ़कर दूसरा कुछ भी नहीं है। यह दु:ख-सुखसे रहित, सौम्य, अजर, अमर और अविनाशी पद है।

ऋषियोंका धर्म- सभी आर्ष धर्मोंमें इन्द्रियसंयमपूर्वक आत्मज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। फिर काम और क्रोधको भी जीतना चाहिये। प्रत्येक ऋषिको अग्निमें घृतका होम, धर्म-सत्रका अनुष्ठान, सोमयज्ञद्वारा यजन, यज्ञ-विधिका ज्ञान और यज्ञमें दक्षिणा देना- ये पाँच कर्म अवश्य करने चाहिये। नित्य यज्ञका अनुष्ठान और धर्मका पालन करना चाहिये तथा देवपूजा और श्राद्धमें अनुराग रखना चाहिये। उच्छवृत्तिसे उपार्जित किये हुए अन्नके द्वारा सबका आतिथ्य-सत्कार करना ऋषियोंका परम कर्त्तव्य है। वे विषयभोगोंसे निवृत्त रहे, गो-रसका आहार करें, शमके साधनमें प्रेम रक्खें, खुले मैदान चबूतरे-पर सोवें, योगका अभ्यास करें, साग-पात, फल-मूल, वायु-जल और सेवाका आहार करके रहें- ये ऋषियोंके नियम हैं। इनका पालन करनेसे वे अजित (सर्वश्रेष्ठ) गतिको प्राप्त करते हैं। जब गृहस्थोंके घरमें रसोई-घरका धुआँ निकलना बंद हो जाय, मूसलसे धान कूटनेकी आवाज न आये- सन्नाटा रहे, चूल्हेकी आग बुझ जाय, घरके सब लोग भोजन कर चुकें, बर्तनोंका इधर-उधर ले जाना रुक जाय और भिक्षुक भीख लेकर लौट गये हों ऐसे समयतक ऋषिको अतिथिकी बाट जोहनी चाहिये और उसके भोजनसे बचे खुचे अन्नको स्वयं ग्रहण करना चाहिये। जो गर्व और अभिमान नहीं करता, अप्रसन्न और विस्मित नहीं होता,

शत्रु और मित्रको समान समझता तथा सबके प्रति मैत्रीका भाव रखता है, वही धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषि हैं।

वानप्रस्थ धर्म- महादेवजीने पार्वतीसे कहा, वानप्रस्थीको जीविकाके लिये नीवार और फल-मूलका सेवन तथा दीप आदि जलानेके लिये इङ्गुदी और रेंड़ीके तेलका उपयोग करना उचित है। वे योगका अभ्यास और काम-क्रोधका त्याग करें, वीरासनसे बैठें और वीरस्थान (जहाँ भीरु मनुष्योंको रहनेकी हिम्मत न पड़े ऐसे घने जंगल) में निवास करें। धर्ममें बुद्धि रखनेवाले वनवासी मुनियोंको वेदीपर सोना, सर्दीके मौसममें जलके भीतर अधिक कालतक बैठना, वर्षाकालमें खुले मैदानमें सोना और ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्निका सेवन करना चाहिये। वे वायु अथवा जल पीकर रहें, सेवारका भोजन करें, पत्थरसे अन्न या फलको कूटकर खायँ अथवा दाँतोंसे चबाकर ही भक्षण करें। सम्प्रक्षालके नियमसे रहें अर्थात दूसरे दिनके लिये आहार संग्रह करके न रक्खें। चीर, वल्कल और मृगछाला ये ही उनके वस्त्र होने चाहिये। उन्हें समयके अनुसार धर्मके उद्देश्यसे विधिपूर्वक तीर्थ आदि स्थानोंमें यात्रा करनी चाहिये। वानप्रस्थीको सदा वनमें ही रहना, वनमें ही विचरना, वनमें ही ठहरना, वनके ही मार्गपर चलना और वनमें ही जीवन-निर्वाह करना चाहिये। होम, पञ्चयज्ञका सेवन, पञ्चयज्ञसे बचे हुए अन्नका आहार, वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान, अष्टका श्राद्ध, चातुर्मास्य यज्ञ, दर्श, पौर्णमास आदि याग और नित्य यज्ञका अनुष्ठान करना उनका धर्म है। वानप्रस्थी मुनि स्त्री-समागम, सब प्रकारके संकट तथा सम्पूर्ण पापोंसे दूर रहकर वनमें विचरते रहते हैं। स्रुवा ही उनका पात्र है। वे सदा आहवनीयादि त्रिविध अग्नियोंकी परिचर्यामें ही लगे रहते हैं और नित्य सन्मार्गपर चलते हैं। इस प्रकार मुनिवृत्तिसे रहनेवाले वे वानप्रस्थी संत परम गतिको प्राप्त होते हैं। वे सत्य-धर्मका आश्रय लेनेवाले और सिद्ध होते हैं, अत: महान पुण्यमय ब्रह्मलोक तथा सनातन सोमलोकमें गमन करते हैं।

वानप्रस्थका नियम पालन करनेवाले इन तपस्वियोंमें कुछ तो तपस्यामें संलग्न रहकर सदा स्वच्छन्द विचरनेवाले होते हैं और कुछ अपनी-अपनी स्त्रीके साथ रहते हैं। स्वच्छन्द विचरनेवाले मुनि सिर मुड़ाकर गेरुए वस्त्र पहनते हैं। उनका कोई एक स्थान नहीं होता; किंतु जो स्त्रीके साथ रहते हैं, वे रात्रिको अपने आश्रममें ही ठहरते हैं। दोनों ही प्रकारके ऋषि तीनों समय जलमें स्नान करते, प्रतिदिन अग्निमें आहुति डालते, ऋषियोंके बताये हुए महान् धर्मका पालन करते, समाधि लगाते, सन्मार्ग पर चलते और शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। जो मुनि स्त्रीको साथ लिये रहते हैं, वे उसके साथ ही इन्द्रिय-संयमपूर्वक वेदविहित धर्मका आचरण करते हैं। उन धर्मात्माओंको ऋषियोंके बताये हुए धर्मके पालन करनेका फल मिलता है। धर्मपर दृष्टि रखनेवाले मुनिको कामनावश किसी भोगका सेवन नहीं करना चाहिये। जो हिंसादोषसे मुक्त होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान कर देता है, उसीको धर्मका फल प्राप्त होता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करता, सबके साथ सरलताका बर्ताव रखता और समस्त प्राणियोंको आत्मभावसे देखता है, वही धर्मका फल पाता है। चारों वेदोंमें निष्णात होना और सब जीवोंके प्रति सरलताका बर्ताव करना- ये दोनों एक समान समझे जाते हैं; बल्कि सरलताका बर्ताव ही विशेष फल देनेवाला है। सरलता धर्म है और कुटिलता अधर्म। सरलभावसे युक्त मनुष्यको ही धर्मका वास्तविक फल मिलता है। जो सरल बर्तावसे प्रेम रखता है, वह देवताओंके समीप निवास करता है; इसलिये जो अपने धर्मका फल पाना चाहता हो, उसे सरलतापूर्ण बर्तावसे युक्त होना चाहिये। क्षमाशील, जितेन्द्रिय, क्रोधको जीतनेवाले, धार्मिकभावसे युक्त, हिंसारहित और धर्ममें मन लगानेवाले मनुष्यको ही धर्मका वास्तविक फल प्राप्त होता है। जो पुरुष आलस्यरहित, धर्मात्मा, सन्मार्गगामी, सच्चरित्र और ज्ञानी होता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

अहिंसा, सत्य, क्रोधका अभाव और दान ये चार सनातन धर्म हैं। जो मनुष्य प्रमाणको भी अप्रमाण मानता है वह अज्ञानी है। जो मनुष्य रजोगुण और तमोगुणसे चित्त मलिन होनेके कारण धर्मसे द्रोह करते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं तथा जो सदा सरलता और सत्यभाषणमें तत्पर होकर धर्मका पालन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकका सुख भोगते हैं। आचार्यकी सेवा करनेसे जिन्हें एकमात्र धर्मका ही सहारा रहता है तथा जो सदा धर्ममें स्थित रहते हैं, वे देवलोकमें जाते हैं। मनुष्य हों या देवता, जो शरीरको

कष्ट देकर भी धर्माचरणमें लगे रहते हैं तथा लोभ और द्वेषका त्याग कर देते हैं, उन्हें सुखकी प्राप्ति होती है।

भाग्यहीन मनुष्य बलवान हो उसे धन नहीं मिलता और जो भाग्यवान हैं, दुर्बल होनेपर भी बहुत सा धन प्राप्त कर लेता है। जब तक धन की प्राप्ति का समय नहीं आता तबतक विशेष प्रयत्न करनेपर फिर कुछ हाथ नहीं लगता। किन्तु लाभ का समय आनेपर बिना यत्न के बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल जाती है। यदि प्रयत्न करनेपर सफलता मिलनी अनिवार्य होती तो मनुष्य सब कुछ पा लेता। किंतु जो वस्तु प्रारब्धवश मनुष्यके लिये अलभ्य है, वह उद्योग करनेपर भी नहीं मिल सकती। बहुत-से मनुष्य यत्न करके भी विफल होते देखे जाते हैं। कितने ही लोग धनके लिये अनेकों बार कुकर्म करके भी धनहीन रह जाते हैं। कितने ही अपने धर्मानुकूल कर्त्तव्यका पालन करके धनी हो जाते है और कई निर्धन ही दिखायी देते हैं। कोई मनुष्य नीतिशास्त्रका अध्ययन करके भी नीतिज्ञ नहीं देखा जाता और कोई नीतिसे अनभिज्ञ होनेपर भी मन्त्रीके पदपर पहुँच जाते हैं। कभी-कभी विद्वान और मूर्ख दोनोंकी एकसी स्थिति होती है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्य धनवान होते है और अच्छी बुद्धि रखनेवाले विद्वानको फूटी कौड़ी भी नसीब नहीं होती। यदि विद्या पढ़कर मनुष्य अवश्य ही सुख पा लेता तो विद्वानको जीविकाके लिये किसी मूर्ख धनीका आश्रय नहीं लेना पड़ता। जिसकी मृत्युका समय नहीं आया वह सैकड़ों बाणोंसे बिंध जानेपर भी नहीं मरता। किन्तु जिसके जीवनकी अवधि पूरी हो चुकी है, वह एक तिनकेसे छू जानेपर भी प्राण त्याग देता है। यदि किताबों और ग्रन्थोंसे ही ज्ञान मिल जाता तो इस संसार में गुरुओंकी पूछ नहीं होती। धन प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको उग्र तपस्या करनी चाहिये। क्योंकि बीज बोये बिना अंकुर नहीं पैदा होता। मनुष्य दान देनेसे उपभोगकी सामग्री पाता है। बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करनेसे उसको उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है और अहिंसा-धर्मके पालनसे वह दीर्घजीवी होता है। इसलिये वो दान दे, दूसरोंसे याचना न करे, धर्मनिष्ठ पुरुषोंकी पूजा करे, मधुर वाणी बोले, सबका कल्याण करे, शान्तभावसे रहे और किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। शुभ कर्मका अनुष्ठान करनेसे प्रसन्नता प्राप्त होती है और अशुभ कर्म हो जानेपर उसे किसी अच्छे फलकी प्राप्ति नहीं होती। जब धर्मका फल देखकर मनुष्यकी बुद्धिमें धर्मकी श्रेष्ठताका निश्चय हो जाता है तभी उसका धर्मके प्रति विश्वास बढ़ता है और तभी उसका मन धर्ममें लगता है। जबतक धर्ममें बुद्धि दृढ़ नहीं होती तबतक कोई उसके फलपर विश्वास नहीं करता। जिसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य दोनोंका ज्ञान है उसे धर्मका आचरण करना चाहिये। जो अतुल ऐश्वर्यके स्वामी हैं, जन्म-मृत्युके चक्करमें न पड़े, रजोगुणमें प्रवृत न हो, धर्मका अनुष्ठान करते हुए अपने ही प्रयत्नसे आत्माको महत पदकी प्राप्ति करावे। काल किसी तरह धर्मको अधर्म नहीं बना सकता अर्थात् धर्म करनेवालेको दु:ख नहीं देता। काल सब ओरसे रक्षा करता है। अत: अधर्ममें इतनी शक्ति नहीं कि वह धर्मको छू भी सके। विशुद्धि और पापके स्पर्शका अभाव- ये दोनों धर्मके कार्य हैं। धर्म विजयकी प्राप्ति करानेवाला और तीनों लोकोंमें प्रकाश फैलानेवाला है। सब लोग अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए एकत्वको प्राप्त हों। जब धर्मका संकल्प नित्य होता है अर्थात् अनित्य कामनाओंका त्याग करके निष्काम भावसे धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, ऐसे धर्मसे सनातन लोक (नित्य परमात्मा) की प्राप्ति होती है।

११) स्त्री का पतिव्रत धर्म- सब प्रकारके तत्त्वोंको जाननेवाली, सर्वज्ञ एवं मनस्विनी शाण्डिली देवीने स्वर्गलोकमें सुमना को बताया, मैंने अपने पतिदेवके प्रति मुँहसे कभी अहितकर और कठोर वचन नहीं निकाले हैं। मैं सदा सास-ससुरकी आज्ञामें रहती और देवता, पितर तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें प्रमाद नहीं करती थी। किसीकी चुगली नहीं खाती थी। चुगली की आदत मुझे बिल्कुल पसंद न थी। मैं घरका दरवाजा छोड़कर अन्यत्र नहीं खड़ी होती और देरतक किसीसे बात नहीं करती थी। मैंने कभी छिपकर या सामने किसीसे अश्लील परिहास नहीं किया तथा मेरे द्वारा किसीका अहित भी नहीं हुआ है। यदि मेरे स्वामी किसी कामसे बाहर जाकर फिर घरको लौटते तो मैं उठकर उन्हें बैठनेके लिये आसन देती और एकाग्रचित्तसे उनकी पूजा करती थी। जो अन्न मेरे स्वामी नहीं खाना चाहते, जिस भक्ष्य, भोज्य या लेह्य (चटनी)

आदिको वे नहीं पसंद करते, उन सबको मैं भी त्याग देती थी। सारे कुटुम्बके लिये जो कुछ कार्य आ पड़ता, वह सब मैं सबेरे ही उठकर कर-करा लेती थी। यदि किसी आवश्यक कार्यवश मेरे स्वामी परदेश जाते तो मैं नियमसे रहकर उनके कल्याणके लिये नाना प्रकारके मांगलिक कार्य किया करती थी। स्वामीके बाहर चले जानेपर मैं श्रृङ्गार नहीं करती थी। जब वे सुखसे सोये रहते उस समय आवश्यक कार्य आ जानेपर भी मैं उन्हें नहीं जगाती थी और ऐसा करके मेरे मनको विशेष संतोष होता था। परिवारके पालन-पोषणके कार्यके लिये भी मैं उन्हें कभी तंग नहीं करती थी। घरकी गुप्त बातोंको सदा छिपाये रहती और घर-द्वारको सदा झाड़-बुहारकर साफ रखती थी। जो स्त्री सदा सावधान रहकर इस धर्म-मार्गका पालन करती है, वह स्त्रियोंमें अरुन्धतीके समान आदरणीय होती है और स्वर्गलोकमें भी उसकी विशेष प्रतिष्ठा होती है।

विवाहके समय कन्याके भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्मका उपदेश कर देते हैं जब कि वह अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हो; जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो; जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देवतुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवताके समान सेवा-सुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, जो पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये इस मङ्गलमय दाम्पत्य-धर्मको सुनकर जो स्त्री धर्मपरायण हो जाती है, वह पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको देवताके समान देखती है। पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना) रूप धर्म परम मङ्गलमय है। जो अपने हृदयके अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखनेमें सुखदायक- सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूर दृष्टिसे देखनेपर भी प्रसन्नतासे मुस्कराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर देखना तो दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य करनेमें कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने प्राण समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्न चित्तसे पतिकी सेवा-सुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी-धर्मका फल पाती है। जिसके हृदयमें पतिके लिये जैसी चाह होती है वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये भी नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें रुचि रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको झाड़-बुहारकर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर न्याय और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन करती है तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही स्त्री नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती

और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर नि:शम भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये।

१२) स्वर्ग-नरक की प्राप्ति- जो मनुष्य धर्मसे उपार्जित किये हुए धनको भोगते और सत्यधर्ममें परायण रहते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं। जिनके सब प्रकारके संदेह दूर हो गये हैं, जो प्रलय और उत्पत्तिके तत्त्वको जाननेवाले, सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा हैं, जिनकी आसक्ति दूर हो गयी है तथा जो मन, वाणी और कर्मसे किसी जीवकी हिंसा नहीं करते, वे ही पुरुष कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होते हैं। उन्हें न धर्म बाँधता है न अधर्म। जो कहीं आसक्त नहीं होते, किसीके प्राणोंकी हत्यासे दूर रहते हैं तथा जो सुशील और दयालु हैं, वे भी कर्मोंके बन्धनमें नहीं पड़ते। जो शत्रु और मित्रको समान समझनेवाले हैं, वे जितेन्द्रिय पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, सबके विश्वासपात्र तथा हिंसामय आचरणोंको त्याग देनेवाले हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो दूसरोंके धनपर ममता नहीं रखते, परायी स्त्रीसे सदा दूर रहते और धर्मके द्वारा प्राप्त किये हुए अन्नका ही भोजन करते हैं, जिनका दूसरोंकी स्त्रियोंके प्रति माता, बहिन और बेटीके समान भाव रहता है; जो सदा अपने ही धनसे संतुष्ट रहकर चोरी-चमारीसे अलग रहते हैं, जिन्हें सदा अपने भाग्यका ही भरोसा रहता है, जो अपनी ही स्त्रीसे संतुष्ट रहते, ऋतुकालमें ही स्त्री-समागम करते और ग्रामीण सुख-भोगोंमें लिप्त नहीं होते हैं; जो अपनी सच्चरित्रताके कारण परस्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर देखतेतक नहीं, जिनकी इन्द्रियाँ काबूमें रहती हैं तथा जो शीलको ही श्रेष्ठ समझकर उसमें स्थित रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। यह देवताओंका बनाया हुआ मार्ग है। राग और द्वेषको दूर करनेके लिये इस मार्गकी प्रवृत्ति हुई है। विद्वान पुरुषोंको सदा ही इसका सेवन करना चाहिये। यह मार्ग दान, धर्म और तपस्यासे युक्त है। शील, शौच और दया इसका स्वरूप है। मनुष्यको जीविका, धर्म एवं आत्मोद्धारके लिये सदा ही इस मार्गका आश्रय लेना चाहिये (क्योंकि निष्कामभावसे सेवन किया हुआ धर्म परम कल्याणदायक होता है)।

जो मनुष्य अपने या दूसरेके लिये हँसी-परिहासमें भी झूठ नहीं बोलते, आजीविका, धर्म अथवा किसी कामनाके लिये असत्यभाषण नहीं करते, जिनकी वाणी मनको प्रिय लगनेवाली, किसीको दु:ख न पहुँचानेवाली, पापपूर्ण विचारोंसे रहित तथा स्वागत-सत्कारके भावसे युक्त रहती है तथा जो कभी रूखी, कड़वी और निष्ठुरतापूर्ण बात मुँहसे नहीं निकालते, वे सज्जन पुरुष स्वर्गमें जाते हैं। जो मनुष्य दूसरोंसे तीखी बात बोलना और द्रोह करना छोड़ देते हैं, सब प्राणियोंको समान भावसे देखते और इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, जिनके मुँहसे कभी शठतापूर्ण बात नहीं निकलती, जो विरोधयुक्त वाणीका परित्याग करते हैं तथा क्रोधमें आनेपर भी जिनके मुँहसे हृदयको विदीर्ण करनेवाली बात नहीं निकलती- जो उस समय भी सान्त्वनापूर्ण वचन ही बोलते हैं, वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं। विद्वानोंको सर्वदा शुभ और सत्य वचन बोलना तथा मिथ्याका त्याग करना उचित है।

जो मनुष्य दूसरोंका प्राण लेनेके लिये हाथमें डंडा लिये सदा भयंकर रूप धारण किये रहता है, जो प्रतिदिन हथियार लेकर प्राणियोंकी हत्या किया करता है, जिसके भीतर दया नहीं होती, जो समस्त प्राणियोंको सर्वदा उद्विग्न करता रहता है, जिसकी निर्दयता पराकाष्ठाको पहुँचती हुई होती है तथा जो चींटी और कीड़ोंको भी शरण नहीं देता, वह घोर नरकमें पड़ता है। जिसका स्वभाव इसके विपरीत है, वह पुरुष धर्मात्मा और रूपवान होता है। हिंसाप्रेमी मनुष्य अपने पाप-कर्मके कारण दूसरोंका वध्य,

सब प्राणियोंका अप्रिय तथा अल्पायु होता है। जिसका चित्त हिंसामें लगा होता है, वह नरकमें गिरता है और जो हिंसा नहीं करता, वह स्वर्गमें जाता है। नरकमें पड़े हुए जीवको बड़ी कठोर और भयानक यातना भोगनी पड़ती है। यदि कभी कोई नरकसे छुटकारा पाता है तो मनुष्य-योनियों में जन्म लेता है; किंतु उसकी आयु थोड़ी ही होती है; क्योंकि जिसकी हिंसामें रुचि होती है, वह अपने पाप-कर्मसे बद्ध होनेके कारण सब प्राणियोंका अप्रिय और अल्पायु होता है। इसके विपरीत जो शुद्ध कुलमें उत्पन्न और जीवहिंसासे अलग रहनेवाला है, जिसने शस्त्र और दण्डका परित्याग कर दिया है, जिसके द्वारा कभी किसीकी हिंसा नहीं होती, जो न मारता, न मारनेकी आज्ञा देता और न मारनेवालेका अनुमोदन करता है, जिसके मनमें सब प्राणियोंके प्रति स्नेह बना रहता है तथा जो अपने ही समान दूसरोंपर भी दयादृष्टि रखता है, ऐसा पुरुष देवत्वको प्राप्त होता है अथवा यदि कदाचित् मनुष्यका जन्म मिल जाय तो वह दीर्घायु और सुखी होता है। यह सत्कर्मका अनुष्ठान करनेवाले सदाचारी एवं दीर्घजीवी मनुष्योंका मार्ग है। जीवहिंसाका परित्याग करनेसे इसकी उपलब्धि होती है।

जो मनुष्य ब्राह्मणोंका सम्मान और दान करता है; दीन, दुखी और दरिद्र मनुष्योंको भक्ष्य-भोज्य, अन्न-पान और वस्त्र प्रदान करता है; ठहरनेके स्थान, धर्मशाला, कुआँ, प्याऊ और बावड़ी आदि बनवाता है; लेनेवाले लोगोंकी इच्छा पूछ-पूछकर नित्य देने योग्य वस्तुएँ दान करता है; आसन, शय्या, सवारी, गृह, रत्न, धन-धान्य, गौ, खेत और कन्याओंका प्रसन्नतापूर्वक दान करता है, वह देवलोकमें निवास करता है और पुण्यकर्मोंका भोग समाप्त होनेपर वहाँसे मनुष्यलोकमें आकर सुख-सामग्रियोंसे सम्पन्न उत्तम कुलमें जन्म लेता है। उसके पास धन-धान्यकी कमी नहीं होती। दान देनेवाले प्राणी ही ऐसे महान सौभाग्यसे युक्त होते हैं। दाता पुरुष सबके प्रिय होते हैं। इनके सिवा बहुत-से मनुष्य ऐसे होते है, जो किसीको कुछ देनेमें कंजूसी करते हैं। वे मन्दबुद्धि पुरुष ब्राह्मणोंके माँगनेपर अपने पास धन होते हुए भी कुछ नहीं देते। दीनों, अंधों, दरिद्रों, भिखमंगों और अतिथियोंको देखते ही हट जाते हैं। उनके याचना करनेपर भी जिह्वाकी लोलुपताके कारण अन्न नहीं देते। कभी भी धन, वस्त्र, भोग, सुवर्ण, गौ और अन्नकी बनी हुई नाना प्रकारकी खाद्य वस्तुओंका दान नहीं करते। इस प्रकारके अधर्मी, लोभी, नास्तिक एवं दानसे जी चुरानेवाले मूर्ख मनुष्य नरकमें पड़ते हैं। यदि कालचक्रके फेरसे वे पुन: मनुष्य-योनिमें जन्म लेते हैं तो निर्धन कुलमें ही उत्पन्न होते हैं। वे हमेशा भूख-प्यासका कष्ट सहते हैं, सब लोग उन्हें अपने समाजसे बाहर कर देते हैं तथा वे सब प्रकारके भोगोंसे निराश होकर पापाचारसे जीविका चलाते हैं अथवा वे थोड़े-से वैभववाले कुलमें उत्पन्न होते और थोड़ेसे ही भोग भोगते हैं।

इनके सिवा, दूसरे भी ऐसे मनुष्य हैं जो सदा गर्व और अभिमानमें फूले और पापमें परायण रहते हैं। जो मूर्ख मार्ग देने योग्य पुरुषोंको जानेके लिये मार्ग नहीं देते, पाद्य अर्पण करने योग्य पूजनीय व्यक्तियोंको पाद्य (पैर धोनेके लिये जल) नहीं देते, अर्घ्य देने योग्य पुरुषोंका विधिवत् सत्कार और पूजन नहीं करते अथवा उन्हें अर्घ्य और आचमनीय नहीं देते, गुरुके आनेपर प्रेमपूर्वक उनकी पूजा नहीं करते तथा अभिमान और लोभके वशीभूत होकर सम्माननीय पुरुषोंका अपमान एवं वृद्धजनोंका तिरस्कार करते हैं, इस प्रकारके आचरण करनेवाले सभी लोग नरकगामी होते हैं और जब वे नरकसे छुटकारा पाते हैं तो बहुत वर्षोंके बाद अत्यन्त निन्दित कुलमें उत्पन्न होते हैं। गुरु और बड़े-बूढ़ोंका अपमान करनेवाले मनुष्योंका मूर्ख एवं घृणित चाण्डालोंके कुलमें जन्म होता है। जिसमें गर्व और अभिमानका नाम नहीं होता, जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, संसारके लोग जिसे पूज्य मानते हैं, जो बड़ोंको प्रणाम करनेवाला, विनयी, मीठे वचन बोलनेवाला, सब वर्णोंका प्रिय और सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाला है, जिसका किसीके साथ द्वेष नहीं है, जिसका मुख प्रसन्न और स्वभाव कोमल है, जो स्वागतपूर्वक स्नेहभरी वाणी बोलता है, किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करता तथा सबका सत्कार और पूजन करता है, जो मार्ग देने योग्य पुरुषको मार्ग देता, गुरुका यथोचित सत्कार करता है और अतिथियोंको आमन्त्रित करके उनकी पूजा करता है- ऐसा मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। फिर वहाँका भोग समाप्त होनेपर मनुष्य-योनिमें आकर वह उत्तम कुलमें उत्पन्न होता है। वहाँ सब प्राणी उसका आदर

करते हैं और सब लोग उसके सामने मस्तक झुकाते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने कर्मोंका फल सदा स्वयं ही भोगता है। धर्मात्मा मनुष्य सर्वदा उत्तम कुल, उत्तम जाति और उत्तम स्थानमें जन्म धारण करता है।

जिस मनुष्यका आचरण क्रूरतासे भरा हुआ है, जो समस्त जीवोंके लिये भयंकर है, जो हाथ, पैर, रस्सी, डंडे और ढेलेसे मारकर, खंभेमें बाँधकर तथा घातक शस्त्रोंका प्रहार करके जीव-जन्तुओंको सताता और भयावह रूप धारण करके उनपर आक्रमण करता है, ऐसे स्वभाववाले मनुष्यको नरकमें गिरना पड़ता है और कालचक्रमें पड़कर यदि वह मनुष्ययोनिमें आता है तो अनेकों प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे कष्ट उठानेवाले अधम कुलमें उत्पन होता है, ऐसा मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार जगत्में नीच समझा जाता है और सब लोग उससे द्वेष रखते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य सब प्राणियोंके प्रति दयादृष्टि रखता है, सबको मित्र समझता है, सबके ऊपर पिताके समान स्नेह रखता है, किसीके साथ वैर नहीं करता और इन्द्रियोंको वशमें किये रहता है, जो हाथ-पैर आदिको अपने अधीन रखकर किसी भी जीवको न उद्वेगमें डालता और न मारता ही है, सब प्राणी जिसपर विश्वास करते हैं, जो रस्सी, डंडे, ढेले और हथियारसे भी किसी प्राणीको दु:ख नहीं पहुँचाता, जिसका कर्म मृदु होता है तथा जो सदा ही दयाभावसे युक्त रहता है, ऐसे स्वभाव और आचरणवाला पुरुष स्वर्गलोकके दिव्य भवनमें देवताओंकी भाँति आनन्दपूर्वक निवास करता है। फिर पुण्यकर्मोंके क्षीण होनेपर यदि वह मृत्युलोकमें जन्म लेता है तो उसके ऊपर बाधाओंका आक्रमण कम होता है। वह निर्भय, सुखी तथा आयास और उद्वेगसे रहित जीवन व्यतीत करता है। यह सज्जन पुरुषोंका मार्ग है, जहाँ किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा नहीं आने पाती।

१३) कल्याणका साधन- मनुष्य दिन-रात, सुबह-शाम अपने इन्द्रियोंके द्वारा जाने-अनजाने में जो पाप करता है उससे छुटकारा पानेके लिये देवर्षि वंशका कीर्तन करनेवाला होना चाहिये। ऐसा पुरुष कभी अंधा और बहरा न होकर सदा कल्याणका भागी होता है। वह तिर्यग्योनि और नरकमें नहीं पड़ता, संकरयोनियोंमें जन्म नहीं लेता, कभी दु:ख से भयभीत न होता और मृत्युके समय व्याकुल नहीं होता। देवता और ऋषियों का कीर्तन हमेशा करना चाहिये।

सर्वभूतनमस्कृत देवासुरगुरु स्वयम्भू भगवान ब्रह्माजी, उनकी पत्नी सती सावित्री देवी, वेदोंके उत्पत्तिस्थान जगत्कर्ता भगवान नारायण, तीन नेत्रोंवाले उमापति महादेव, देवसेनापति स्कन्द, विशाख, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य, खचीपति इन्द्र, यमराज, उनकी पत्नी धूमोर्णा, अपनी पत्नी गौरीके साथ वरुण, ऋद्धिसहित कुबेर, सौम्य स्वभाववाली सुरभी गौ, महर्षि विश्रवा, संकल्प, सागर, गङ्गा आदि नदियाँ, मरुद्गण, तप:सिद्ध बालखिल्य ऋषि, श्रीकृष्णद्वैपायन, व्यास, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत, सौभाग्यशालिनी देवकन्याएँ, उर्वशी, मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, विश्वाची, घृताची, पञ्चचूडा और तिलोत्तमा आदि दिव्य अप्सराएँ, बारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, अश्विनीकुमार, पितर, धर्म, शास्त्रज्ञान, तपस्या, दीक्षा, व्यवसाय, पितामह, रात, दिन, मरीचिनन्दन कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, राहु, शनैश्चर, नक्षत्र, ऋतु, मास, पक्ष, संवत्सर, विनताके पुत्र गरुड़, समुद्र, कद्रूके पुत्र सर्पगण, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा, महानदी, वेणा, कावेरी, नर्मदा, कुलुम्पुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी, महानद शोणभद्र, ताम्रा, अरुणा, वेत्रवती, पर्णाशा, गौतमी, गोदावरी, वेण्या, कृष्णवेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, चक्षु, मन्दाकिनी, प्रयाग, नैमिषारण्य, विश्वेश्वरका स्थान, (काशी), विमल सरोवर, स्वच्छ सलिलसे युक्त पुण्यतीर्थ, कुरुक्षेत्र, उत्तम समुद्र, तपस्या, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, वेदस्मृति, वेदवती, मालवा, अश्ववती, पवित्र, भूभाग, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), ऋषिकुल्या, समुद्रगामिनी पवित्र नदियाँ, चर्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी, बाहुदा, माहेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, नन्दा, अपरनन्दा, तीर्थभूत महान ह्रद, गया, फल्गुतीर्थ, देवताओंसे युक्त धर्मारण्य, पवित्र देवनदी, तीनों लोकोंमें विख्यात, पवित्र एवं पापनाशक ब्रह्मनिर्मित सरोवर (पुष्कर-

तीर्थ), दिव्य औषधियोंसे युक्त हिमवान पर्वत, नाना प्रकारके धातुओं, तीर्थों और औषधोंसे सुशोभित विन्ध्यगिरि, मेरू, महेन्द्र, मलय, चाँदीकी खानोंसे युक्त श्वेतगिरि, श्रृङ्गवान, मन्दर, नील, निषध, दुर्दर, चित्रकूट, अजनाभ, गन्धमादन, सोमगिरि तथा अन्यान्य पर्वत, दिशा, विदिशा, भूमि, वृक्ष, विश्वेदेव, आकाश, नक्षत्र और ग्रहगण- ये सदा हमारी रक्षा करें तथा जिनके नाम लिये गये हैं और जिनके नहीं लिये गये हैं, वे सम्पूर्ण देवता हमलोगोंकी रक्षा करते हैं। जो मनुष्य उपर्युक्त देवता आदिका कीर्तन, स्तवन और अभिनन्दन करता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त हो जाता है। देवताओंकी स्तुति और अभिनन्दन करनेवाला पुरुष सब प्रकारके संकीर्ण पापोंसे छूट जाता है।

देवताओंके अनन्तर समस्त पापोंसे मुक्त करनेवाले तप- सिद्ध ब्रह्मर्षियोंके नाम इसप्रकार है- यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान, औशिज, भृगु, अङ्गिरा, कण्व, मेधातिथि और सर्वगुण-सम्पन्न बर्हि- ये पूर्व दिशामें रहते हैं। उल्मुचु, प्रमुचु, मुमुचु, स्वस्त्यात्रेय, मित्रावरुणके पुत्र महाप्रतापी अगस्त्य और परम प्रसिद्ध ऋषिश्रेष्ठ दृढ़ायु तथा ऊर्ध्वबाहु- ये दक्षिण दिशामें निवास करते हैं। अब पश्चिम दिशाके ऋषि- अपने सहोदर भाइयोंसहित उषङ्गु, शक्तिशाली परिव्याध, दीर्घतमा, गौतम, काश्यप, एकत, द्वित, त्रित, महर्षि दुर्वासा और सारस्वत। इसी प्रकार अत्रि, वसिष्ठ, शक्ति, पराशरनन्दन व्यास, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, परशुराम, उद्दालकपुत्र श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेत, लोमहर्षिण, उग्रश्रवा और भृगुनन्दन च्यवन- ये उत्तर दिशामें निवास करते हैं। यह देवता और ऋषियोंका मुख्य समुदाय अपने नामका कीर्तन करनेपर मनुष्यको सब पापोंसे मुक्त करता है।

यह है राजर्षि- राजा नृग, ययाति, नहुष, यदु, शक्तिशाली पुरु, धुन्धुमार, दिलीप, प्रतापी सगर, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान, दुष्यन्त, महायशस्वी चक्रवर्ती राजा भरत, पवन, जनक, दृष्टरथ, नरश्रेष्ठ रघु, दशरथ, राक्षसहन्ता वीरवर राम, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, दृढ़रथ, महोदर्य, अलर्क, ऐल (पुरुरवा), करन्धम, कम्बोर, दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, महायशस्वी रैवत, कुरु, संवरण, सत्यपराक्रमी मान्धाता, राजर्षि मुचुकुन्द, गङ्गाजीसे सेवित राजा जह्नु, आदिराजा वेननन्दन पृथु, सबका प्रिय करनेवाले मित्रभानु, त्रसद्दस्यु, राजर्षिश्रेष्ठ श्वेत, प्रसिद्ध राजा महाभिष, निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, राजा कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, कोसलनरेश सुदास, राजर्षि नल, प्रजापति मनु, हविर्ध्र, पृषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीनबर्हि, महायशस्वी इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ, राजर्षि कक्षसेन तथा इनके अतिरिक्त पुराणोंमें जिनका अनेकों बार वर्णन हुआ है, वे सब पुण्यात्मा राजा स्मरण करने योग्य हैं।

१४) श्रीकृष्णका माहात्म्य- भगवान गौरीशंकरने ऋषियोंको बताया, भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ है। वे सनातन पुरुष श्रीहरि कहलाते हैं। उनका तेज महान है। वे देवताओंके शत्रु दैत्योंका नाश करनेवाले हैं। वे इन्द्रियोंके स्वामी होनेके कारण हृषीकेश कहलाते हैं। सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते हैं। ब्रह्माजी उनके उदरसे और रुद्र उनके मस्तकसे प्रकट हुए। उनके सिरके बालोंसे नक्षत्र और ताराओंका प्रादुर्भाव हुआ। देवता और असुर उनके शरीरकी रोमावलियोंसे प्रकट हुए। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रहसे उत्पन्न हुए। वे सम्पूर्ण देवताओं और ब्रह्माके धाम हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीके स्रष्टा और तीनों लोकोंके स्वामी है। वे ही समस्त चराचर प्राणियोंका संहार करते हैं। वे देवताओंमें श्रेष्ठ, देवताओंके रक्षक, शत्रुओंको संताप देनेवाले, सर्वज्ञ, सबमें ओतप्रोत, सर्वव्यापक और सब ओर मुखोंवाले है। वे ही परमात्मा, इन्द्रियोंके प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर है। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वे ही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द आदि नामोंसे जाने जाते है। सज्जनोंको आदर देनेवाले श्रीकृष्ण महाभारत-युद्धमें सम्पूर्ण राजाओंका संहार करानेवाले, देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीपर मानव-शरीर धारण करनेके लिये प्रकट हुए है। उनकी शक्ति और सहायताके बिना सम्पूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण ही सब प्राणियोंके नेता हैं, इसलिये

समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। देवताओंकी रक्षा और उनके कार्यमें संलग्न रहनेवाले वासुदेव ब्रह्मस्वरूप है। वे ब्रह्मर्षियोंको सदा शरण देते हैं। शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र और नन्दक नामक खड्ग उनके आयुध हैं। उनकी ध्वजामें गरुडका चिह्न हैं। वे उत्तम शील, शम, दम, पराक्रम, वीर्य, सुन्दर शरीर, उत्तम दर्शन, सुडौल आकृति, धैर्य, सरलता, कोमलता, रूप और बल आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न है। उनके पास सब प्रकारके दिव्य और अद्भुत अस्त्र-शस्त्र है। वे योगमायासे सम्पन्न और हजारों नेत्रोंवाले हैं। वे उदार हृदयवाले, वीर, मित्रजनोंके प्रशंसक, जाति एवं बन्धु-बान्धवोंके प्रिय, अहंकाररहित, ब्राह्मणभक्त, वेदोंका उद्धार करनेवाले, निर्भीक, अविनाशी, अभय देनेवाले और मित्रोंका आनन्द बढ़ानेवाले है। सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले, दीनोंकी रक्षामें तत्पर, शास्त्रोंके ज्ञाता, अर्थसम्पन्न, सम्पूर्ण जगतके वन्दनीय, शरणागत को वर देनेवाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, नीतिमान, ब्रह्मवादी और जितेन्द्रिय है। वे महान तेजस्वी है। उन्ही से सनत्कुमार ऋषि उत्पन्न हुए और गन्धमादन पर्वतपर तपस्यामें संलग्न है। धर्मको जाननेवाले वासुदेवको सदा प्रणाम करना चाहिये। वे नारायण देवलोकमें सबसे श्रेष्ठ हैं। वन्दनीय है, आदरणीय है। सज्जन पुरुष सदा ही उनके व्रतका आचरण करते हैं। वे सनातन देवता है, जो उनके अनन्य भक्त है, वे उत्तम पद प्राप्त करते हैं। वे ही महावराहरूप धारण करनेवाले, सर्वलोकपितामह जगदीश्वर ही वन्दनीय है। पृथ्वी या स्वर्गमें कोई ऐसी आश्चर्य कि बात नहीं जो कृष्णको ज्ञात न हो। इन्द्र आदि तैंतीस देवता इन्हींके स्वरूप हैं। ये ही सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेवाले है। इनका न आदि है न अन्त। ये अव्यक्तस्वरूप महातेजस्वी नारायण देवताओंके कार्य सिद्धि करनेवाले यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। ये दुर्बोध तत्त्वके वक्ता और कर्ता हैं। आज दुर्योधन अपने पुत्र, भाई और सम्बन्धियोंसहित शोकके योग्य हो गया क्योंकि उस मूर्खने क्रोधके आवेशमें आकर श्रीकृष्ण और अर्जुन से युद्ध किया। सत्त्व (धैर्य), शक्ति और बल आदिमें स्वभावत: हीन मनुष्य युद्धमें श्रीकृष्णका मुकाबला नहीं कर सकते। अर्जुन भी योगशक्तिसे सम्पन्न और युगान्तकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं। कृष्णने अपने तेजसे दुर्योधनकी सारी सेनाका संहार कर डाला। जिस पुरुषको अपने कल्याणकी इच्छा हो, उस पुरुषको जनार्दनकी शरण लेनी चाहिये। महाबाहु श्रीकृष्णने तो शैशव काल में ही अपने बन्धु-बान्धवोंकी रक्षाके लिये कंसका घोर संहार किया। ये सनातन पुराणपुरुष हैं, इनके लीलाचरित्रोंकी कोई सीमा या संख्या नहीं। दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण और शकुनि- इन्हीं चारोंके अपराधसे समस्त कौरव मारे गये।

श्रीकृष्णने ही इस पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है। ये ही भयंकर बलवाले वाराहके रूपमें प्रकट हुए थे तथा इन्हीं पुराणपुरुषने पर्वतों और दिशाओंको उत्पन्न किया है। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, चारों दिशाएँ और चारों कोण- ये सब भगवान श्रीकृष्णसे नीचे हैं। इन्हींसे इस सृष्टिकी परम्परा प्रचलित हुई तथा इन्होंने ही इस प्राचीन विश्वका निर्माण किया है। सृष्टिके आरम्भमें इनकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ और उसीके भीतर अमित तेजस्वी ब्रह्माजी स्वत: प्रकट हुए। इन्होंने ही प्राचीन कालमें दैत्योंका संहार किया और ये ही दैत्य-सम्राट बलिके रूपमें प्रकट हुए। समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है। भूत और भविष्य इनका ही स्वरूप है और ये ही सम्पूर्ण जगतकी रक्षा करते हैं। जब धर्मका ऱ्हास होने लगता है, उस समय ये श्रीकृष्ण देवताओं तथा मनुष्योंके वंशमें अवतार लेकर स्वयं धर्मका आचरण करते हुए उसकी स्थापना और पर-अपर सब लोकोंकी रक्षा करते हैं। ये त्याज्य वस्तुका त्याग करके असुरोंका वध करनेके लिये स्वयं कारण बनते हैं। कार्य और कारण इन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकर्मा, विश्वरूप, विश्वभोक्ता, विश्वविधाता और विश्वविजेता भी ये ही हैं। ये ही एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें रक्तसे भरा खप्पर लिये हुए विकराल रूप धारण करते हैं। अपने नाना प्रकारके चरित्रोंसे जगत्में विख्यात हुए इन श्रीकृष्णकी ही सब लोग स्तुति करते हैं। सैकड़ों गन्धर्व, अप्सराएँ तथा देवता सदा इनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। राक्षस भी इनसे सम्मति लिया करते हैं। एकमात्र ये ही धनके रक्षक और विश्वविजयी हैं। यज्ञमें स्तोतालोग इन्हींकी स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले विद्वान रथन्तर सामके द्वारा इन्हींका गुण-गान करते हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदके मन्त्रोंसे इन्हींका स्तवन करते हैं और अध्वर्युलोग यज्ञमें इन्हींको हविष्यका भाग देते हैं। पृथ्वी,

आकाश और स्वर्गलोक सब इन सनातन पुरुष श्रीकृष्णके वशमें रहते हैं। ये ही सर्वत्र विचरनेवाले वायु हैं, सर्वव्यापक हैं और प्रचण्ड किरणोंसे सुशोभित आदिदेव सूर्य हैं। इन्होंने ही समस्त असुरोंपर विजय पायी है तथा इन्होंने ही अपने तीन पगोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया था। ये श्रीकृष्ण सम्पूर्ण देवताओं, पितरों और मनुष्योंके आत्मा हैं। इन्हींको याज्ञिक पुरुषोंका यज्ञ कहा गया है। ये ही दिन और रातका विभाग करते हुए सूर्यरूपमें उदित होते हैं। उत्तरायण और दक्षिणायान इन्हींके दो मार्ग हैं। ये प्रत्येक मासमें यज्ञ करते हैं और वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हींके गुण गाते हैं। ये महातेजस्वी और सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले श्रीकृष्ण अकेले ही सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं। युधिष्ठिर। तुम इन्हींको अन्धकारनाशक सूर्य समझो। ये पञ्चमहाभूतोंके केन्द्र हैं। इन्होंने ही आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, वन और पर्वतोंकी सृष्टि की है। ये इन्द्रियोंके नियन्ता और अत्यन्त प्रज्ज्वलित अग्निके समान तेजस्वी हैं। बड़े-बड़े यज्ञोंमें विप्रोंद्वारा ऋग्वेदकी सहस्रों पुरातन ऋचाओंसे एकमात्र इन्हींकी स्तुति की जाती है। इन श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो महातेजस्वी दुर्वासाको अपने घरमें ठहरा सके। इनको ही अद्वितीय पुरातन ऋषि कहते हैं। ये विश्वके रचयिता हैं और अपने स्वरूपसे ही अनेकों पदार्थोंको उत्पन्न करते रहते हैं। ये देवताओंके देवता होकर भी वेदोंका अध्ययन और प्राचीन विधियोंका पालन करते हैं। लौकिक और वैदिक कर्मका जो फल है, वह सब श्रीकृष्ण ही हैं। ये ही सम्पूर्ण लोकोंकी शुक्ल ज्योति हैं तथा तीनों लोक, तीनों लोकपाल, त्रिविध अग्नि, तीनों व्याहृतियाँ और सम्पूर्ण देवता भी ये देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं। संवत्सर, ऋतु, पक्ष, दिन-रात, कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त, लव और क्षण- इन सबको श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, अमावस्या, पूर्णिमा, नक्षत्र, योग और ऋतु- इन सबकी उत्पत्ति श्रीकृष्णसे ही हुई है। रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, विश्वेदेव, मरुदगण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि भी श्रीकृष्णसे ही प्रकट हुए हैं। ये विश्वरूप श्रीकृष्ण ही वायुरूप धारण करके संसारको चेष्टा प्रदान करते, अग्निरूप होकर सबको भस्म करते, जलका रूप धारणकर जगत्‌को डुबाते और ब्रह्मा होकर सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। ये स्वयं वेद्यस्वरूप होकर भी वेदवेद्य तत्त्वको जाननेका प्रयत्न करते हैं। विधिरूप होकर भी विहित कर्मोंका आश्रय लेते हैं। ये ही धर्म, वेद और बलको विषय करनेवाले हैं। तुम समस्त चराचर जगत्‌को श्रीकृष्णका ही स्वरूप समझो। ये परम ज्योतिर्मय सूर्यका रूप धारण करके पूर्व दिशामें प्रकट होते हैं, जिनकी प्रभासे सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो उठता है। ये समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं। इन्होंने पूर्वकालमें पहले जलकी सृष्टि करके फिर सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न किया था। ऋतु, नाना प्रकारके उत्पात, अनेकों अद्‌भुत पदार्थ, मेघ, बिजली, ऐरावत और सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की इन्हींसे उत्पत्ति हुई है। इन्हींको समस्त जगत्‌का आत्मा-विष्णु समझो। ये विश्वके आवासस्थान और निर्गुण हैं। इन्हींको वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध कहते हैं। ये आत्मयोनि परमात्मा सबको अपनी आज्ञाके अधीन रखते हैं। इन्होंने ही इस विश्वको उत्पन्न किया है और ये ही आत्मशक्तिसे सबको जीवन प्रदान करते हैं। देवता, असुर, मनुष्य, लोक, ऋषि, पितर, प्रजा और सम्पूर्ण प्राणियोंको इन्हींसे जीवन मिलता है। ये ही सदा सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि तथा पालन करते हैं। शुभ-अशुभ और स्थावर जङ्गमरूप यह सारा जगत् श्रीकृष्णसे ही उत्पन्न हुआ है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। प्राणियोंका अन्तकाल आनेपर साक्षात् श्रीकृष्ण ही मृत्युरूप बन जाते हैं। ये धर्मके सनातन रक्षक हैं। जो बात बीत चुकी है तथा जिसका अभी पता नहीं है, उन सबके कारण श्रीकृष्ण ही हैं। तीनों लोकोंमें जो कुछ है वह सब श्रीकृष्णका ही स्वरूप है। श्रीकृष्णसे भिन्न कोई वस्तु है, ऐसा सोचना अपनी विपरीत बुद्धिका परिचय देना है। भगवान श्रीकृष्णकी ऐसी ही महिमा है, बल्कि वे इससे भी अधिक प्रभावशाली हैं। ये परम पुरुष नारायण और विकाररहित हैं। ये ही स्थावर-जङ्गमरूप जगत्‌के आदि, मध्य और अन्त हैं। संसारमें जन्म लेनेवाले प्राणियोंके कारण भी ये ही हैं। इन्हींको अविनाशी परमात्मा कहते हैं।

१५) भगवान शंकरके माहात्म्य का वर्णन

कृष्णने युधिष्ठिरको भगवान शंकरका स्वरूप और माहात्म्य बताया। विद्वान पुरुष महादेवजीको अग्नि, स्थाणु, महेश्वर, एकाक्ष, त्रम्बक, विश्वरूप और शिव आदि अनेकों नामोंसे पुकारते हैं। वेदमें उनके दो स्वरूप बताये गये हैं, जिन्हें वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। उनका एक स्वरूप तो घोर है और दूसरा शिव है। इन दोनोंके भी अनेकों भेद हैं। इनकी जो घोर मूर्ति है, वह भय उपजानेवाली है। उसके अग्नि, विद्युत और सूर्य आदि अनेकों रूप हैं। इससे भिन्न जो शिव नामवाली मूर्ति है, वह परम शान्त एवं मंगलमयी है। उसके धर्म, जल और चन्द्रमा आदि कई रूप हैं। महादेवजीके आधे शरीरको अग्नि और आधेको सोम (चन्द्रमा) कहते हैं। उनकी शिवमूर्ति ब्रह्मचर्यका पालन करती है और जो अत्यन्त घोर मूर्ति है, वह जगत्का संहार करती है। उनमें महत्त्व और ईश्वरत्व होनेके कारण वे महेश्वर कहलाते हैं। वे सबको दग्ध करनेवाले, अत्यन्त तीक्ष्ण, उग्र और प्रतापी हैं, इसीसे उन्हें रुद्र कहते हैं। वे देवताओंमें महान् हैं और इस महान् विश्वकी रक्षा करते हैं, इसलिये महादेव कहलाते हैं। सब प्रकारके कर्मोंद्वारा सदा सब लोगोंकी उन्नति करते और सबका कल्याण चाहते हैं, इस कारण उनका नाम शिव है। वे ऊर्ध्वभागमें स्थित होकर देहधारियोंके प्राणोंका नाश करते हैं और सदा स्थिर रहते हैं, इस कारण उन्हें स्थाणु कहा गया है। भूत, भविष्य और वर्तमान कालमें स्थावर और जङ्गमोंके आकारमें उनके अनेकों रूप प्रकट होते हैं, इसलिये वे बहुरूप कहलाते हैं। उनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास है, इससे उनको विश्वरूप कहते हैं। उनके नेत्रसे तेज प्रकट होता है और उनके नेत्रोंका अन्त नहीं है, इसलिये वे सहस्राक्ष, अजिताक्ष और सर्वतोक्षिमय कहलाते हैं। वे सब प्रकारसे पशुओंका पालन करते और उनके साथ रहनेमें सुख मानते हैं तथा पशुओंके अधिपति हैं, इसलिये उनका नाम पशुपति है। मनुष्य यदि ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए प्रतिदिन स्थिर शिवलिङ्गकी पूजा करता है तो इससे महात्मा शंकरको बड़ी प्रसन्नता होती है और वे संतुष्ट होकर अपने भक्तोंको सुख देते हैं। भगवान शंकर ही अग्निरूपसे शवको दग्ध करते हुए श्मशानभूमिमें निवास करते हैं। जो लोग वहाँ उनकी पूजा करते हैं, उन्हें वीरोंको प्राप्त होनेवाले उत्तम लोग मिलते हैं। वे प्राणियोंके शरीरमें रहनेवाले और उनकी मृत्युरूप हैं तथा वे ही प्राण, अपान आदि वायुके रूपसे देहके भीतर निवास करते हैं। उनके अनेकों भयंकर एवं उद्दीप्त रूप हैं, जिनकी जगत्में पूजा होती है। विद्वान ब्राह्मण ही उन सब रूपोंको जानते हैं। उनकी महत्ता, व्यापकता तथा दिव्य कर्मोंके अनुसार देवताओंमें उनके बहुत-से यथार्थ नाम प्रचलित हैं। वेदके शतरुद्रिय-प्रकरणमें उनके सैकड़ों उत्तम नाम हैं, जिन्हें वेदवेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। ये सम्पूर्ण लोकोंको अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। यह महान् विश्व उन्हींका स्वरूप बताया गया है। ब्राह्मण और ऋषि उन्हें सबसे ज्येष्ठ कहते हैं। वे देवताओंमें प्रधान हैं। उन्होंने अपने मुखसे अग्निको उत्पन्न किया है। वे नाना प्रकारकी ग्रह-बाधाओंसे ग्रस्त प्राणियोंको दु:खसे छुटकारा दिलाते हैं। पुण्यात्मा और शरणागतवत्सल तो वे इतने हैं कि शरणमें आये हुए किसी भी प्राणीका त्याग नहीं करते। वे ही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और सम्पूर्ण कामनाएँ प्रदान करते और वे ही पुन: उन्हें छीन लेते हैं। इन्द्र आदि देवताओंके पास उन्हींका दिया हुआ ऐश्वर्य है। तीनों लोकोंके शुभाशुभपर उनकी सदा ही दृष्टि रहती है। समस्त कामनाओंके अधीश्वर होनेके कारण उन्हें ईश्वर कहते हैं और महान् लोकोंके ईश्वर होनेसे उनका नाम महेश्वर हुआ है।

आकाशमें नीलिमा प्रत्यक्ष दिखाई देनेपर भी वह मिथ्या है। अत: केवल प्रत्यक्ष बलसे सत्यका निर्णय नहीं किया जा सकता। धर्म, ईश्वर और परलोक आदिके विषयमें शास्त्र-प्रमाण ही श्रेष्ठ है; क्योंकि अन्य प्रमाणोंकी वहाँतक पहुँच नहीं। जब सारे तर्क समाप्त हो जाते हैं तभी उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वह ज्ञान ही सम्पूर्ण जगतके लिये उत्तम ज्योति है। कोरे तर्कसे जो ज्ञान होता है, वह वास्तवमें ज्ञान नहीं है, अत: उसे प्रामाणिक नहीं माना जाता। जिसका वेदके द्वारा प्रतिपादन नहीं किया गया हो, उस ज्ञानका परित्याग कर देना ही उचित है।

जब बलवान पुरुष दुराचारी होकर धर्मको हानि पहुँचाने लगते हैं तो साधारण मनुष्योंके द्वारा उसकी रक्षाका यत्न होनेपर भी समयानुसार उसमें विकृति आ ही जाती है। इससे सदाचारका ऱ्हास होने लगता है और आचारहीन,धर्मद्रोही तथा वेद-शास्त्रोंका त्याग करनेवाले मन्दबुद्धिवाले पुरुष धर्मकी मर्यादा भंग करने लगते हैं। जिनकी बुद्धि आगमप्रमाणको ही श्रेष्ठ मानती हो, जो सदा संतुष्ट रहते तथा लोभ-मोहका अनुसरण करनेवाले अर्थ और कामकी उपेक्षा करके धर्मको ही उत्तम समझते हैं, उन संतोंके सदाचार, यज्ञ और स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंके अनुष्ठानमें कभी कोई अन्तर नहीं आता। उनमें आचार, वेदशास्त्र तथा धर्म- तीनोंकी एकता होती है। तर्कका सहारा लेकर धर्मकी जिज्ञासा करना कदापि उचित नहीं है।

१६) विष्णुसहस्त्रनाम- युधिष्ठिर। स्थावर-जङ्गमरूप संसारके स्वामी, ब्रह्मादि देवोंके देव, देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न क्षर-अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका सहस्त्र नामोंके द्वारा निरन्तर तत्पर रहकर गुण-संकीर्तन करनेसे पुरुष सब दु:खोंसे पार हो जाता है तथा उसी विनाशरहित पुरुषका सब समय भक्तिसे युक्त होकर पूजन करनेसे, उसीका ध्यान करनेसे तथा पूर्वोक्त प्रकारसे सहस्त्रनामोंके द्वारा स्तवन एवं नमस्कार करनेसे पूजा करनेवाला सब दु:खोंसे छूट जाता है। उस जन्म-मृत्यु आदि छ- भावविकारोंसे रहित, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण लोकोंको महेश्वर, लोकाध्यक्ष देवकी निरन्तर स्तुति करनेसे मनुष्य सब दु:खोंसे पार हो जाता है। जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण, तप और श्रुतिके हितकारी, सब धर्मोंको जाननेवाले, प्राणियोंकी कीर्तिको (उनमें अपनी शक्तिसे प्रविष्ट होकर) बढ़ानेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, समस्त भूतोंके उत्पत्ति-स्थान एवं संसारके कारणरूप परमेश्वरका स्तवन करनेसे मनुष्य सब दु:खोंसे छूट जाता है। मनुष्य अपने हृदयकमलमें विराजमान कमलनयन भगवान वासुदेवका भक्तिपूर्वक तत्परतासहित गुण-संकीर्तन-रूप स्तुतियोंसे सदा अर्चन करे। जो देव परम तेज, परम तप, परम ब्रह्म और परम परायण है, वही समस्त प्राणियोंकी परम गति है। पृथ्वीपते। जो पवित्र करनेवाले तीर्थादिकोंमें परम पवित्र है, मङ्गलोंका मङ्गल है, देवोंका देव है तथा जो भूत-प्राणियोंका अविनाशी पिता है, कल्पके आदिमें जिससे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और फिर युगका क्षय होनेपर महाप्रलयमें जिसमें वे विलीन हो जाते हैं, उस लोकप्रधान, संसारके स्वामी, भगवान विष्णुके पाप और संसारभयको दूर करनेवाले हजार नामोंको जान। जो नाम गुणके कारण प्रवृत्त हुए हैं, उनमेंसे जो-जो प्रसिद्ध हैं और मन्त्रद्रष्टा मुनियोंद्वारा जो जहाँ-तहाँ सर्वत्र भगवत्कथाओंमें गाये गये हैं, उस अचिन्त्यप्रभाव महात्माके उन समस्त नामोंको पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये बताता हूँ।

ॐ सच्चिदानन्दस्वरूप, विश्वम- समस्त जगत्के कारणरूप, विष्णु- सर्वव्यापी, वषट्कार- जिनके उद्देश्यसे यज्ञमें वषट् क्रिया की जाती है, ऐसे यज्ञस्वरूप, भूतभव्यभवत्प्रभु:- भूत, भविष्यत् और वर्तमानके स्वामी, भूतकृत- रजोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण भूतोंकी रचना करनेवाले, भूतभृत- सत्वगुणका आश्रय लेकर सम्पूर्ण भूतोंका पालन-पोषण करनेवाले, भाव:- नित्यस्वरूप होते हुए भी स्वत: उत्पन्न होनेवाले, भूतात्मा- सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा अर्थात अन्तर्यामी, भूतभावन: - भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले।

पूतात्मा- पवित्रात्मा, परमात्मा- परमश्रेष्ठ नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, मुक्तानां परमा गति:- मुक्त पुरुषोंकी सर्वश्रेष्ठ गतिस्वरूप, अव्यय: - कभी विनाशको प्राप्त न होनेवाले, पुरुष: - पुर अर्थात शरीरमें शयन करनेवाले, साक्षी- बिना किसी व्यवधानके सब कुछ देखनेवाले, क्षेत्रज्ञ: - क्षेत्र अर्थात् समस्त प्रकृतिरूप शरीरको पूर्णतया जाननेवाले, अक्षर: - कभी क्षीण न होनेवाले।

योग: - मनसहित सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके निरोधरूप योगसे प्राप्त होनेवाले, योगविदां नेता- योगको जाननेवाले भक्तोंके योगक्षेमादिका निर्वाह करनेमें अग्रसर रहनेवाले, प्रधानपुरुषेश्वर: - प्रकृति और पुरुषके स्वामी, नारसिंहवपु - मनुष्य और सिंह दोनोंके-जैसा शरीर धारण करनेवाले, नरसिंहरूप। श्रीमान- वक्ष:स्थलमें सदा श्रीको धारण करनेवाले, केशव: - (क) ब्रह्मा, (अ), विष्णु और (ईश) महादेव- इस प्रकार त्रिमूर्तिस्वरूप, पुरुषोत्तम- क्षर और अक्षर इन दोनोंमें सर्वथा उत्तम।।

सर्व: - असत् और सत्- सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान, शर्व: - सारी प्रजाका प्रलयकालमें संहार करनेवाले, शिव:- तीनों गुणोंसे परे कल्याणस्वरूप, स्थाणु: - स्थिर, भूतादि: - भूतोंके आदि कारण, निधिरव्यय: - प्रलयकालमें सब प्राणियोंके लीन होनेके अविनाशी स्थानरूप, सम्भव: - अपनी इच्छासे भली प्रकार प्रकट होनेवाले, भावन: - समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न करनेवाले, भर्ता- सबका भरण करनेवाले, प्रभव: - उत्कृष्ठ

(दिव्य) जन्मवाले, प्रभु: - सबके स्वामी, ईश्वर- उपाधिरहित ऐश्वर्यवाले।।

स्वयम्भू: - स्वयं उत्पन्न होनेवाले, शम्भु: - भक्तोंके लिये सुख उत्पन्न करनेवाले, आदित्य: - द्वादश आदित्योंमें विष्णुनामक आदित्य, पुष्कराक्ष:- कमलके समान नेत्रवाले, महास्वन: - वेदरूप अत्यन्त महान् घोषवाले, अनादिनिधन: - जन्म-मृत्युसे रहित, धाता- विश्वको धारण करनेवाले, विधाता- कर्म और उसके फलोंकी रचना करनेवाले, धातुरुत्तम: - कार्यकारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेवाले एवं सर्वश्रेष्ठ।

अप्रमेय: - प्रमाणादिसे जाननेमें न आ सकनेवाले, हृषीकेश: - इन्द्रियोंके स्वामी, पद्मनाभ: - जगत्के कारणरूप कमलको अपनी नाभिमें स्थान देनेवाले, अमरप्रभु: - देवताओंके स्वामी, विश्वकर्मा- सारे जगतकी रचना करनेवाले, मनु: - प्रजापति मनुरूप, त्वष्टा- संहारके समय सम्पूर्ण प्राणियोंको क्षीण करनेवाले, स्थविष्ठ: - अत्यन्त स्थूल, स्थविरो ध्रुव:- अति प्राचीन, एवं अत्यन्त स्थिर।।

अग्राह्य: - मनसे ग्रहण न किये जा सकनेवाले, शाश्वत: - सब कालमें स्थित रहनेवाले, कृष्ण: - सबके चित्तको बलात्कारसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर सच्चिदानन्दमय भगवान श्रीकृष्ण, लोहिताक्ष: - लाल नेत्रोंवाले, प्रतर्दन: - प्रलयकालोंमें प्राणियोंका संहार करनेवाले, प्रभूत: - ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, त्रिककुब्धाम- ऊपर नीचे और मध्यभेदवाली तीनों दिशाओंके आश्रयरूप, पवित्रम- सबको पवित्र करनेवाले, मङ्गलं परम्- परम मङ्गल।।

ईशान: - सर्वभूतोंके नियन्ता, प्राणद: - सबको प्राण देनेवाले, प्राण: - सबको जीवित रखनेवाले प्राणस्वरूप, ज्येष्ठ: - सबके कारण होनेसे सबसे बड़े, श्रेष्ठ: - सबमें उत्कृष्ट होनेसे परम श्रेष्ठ, प्रजापति: - ईश्वररूपसे सारी प्रजाओंके मालिक, हिरण्यगर्भ: - ब्रह्माण्डरूप हिरण्यमय अण्डके भीतर ब्रह्मारूपसे व्याप्त होनेवाले, भूगर्भ: - पृथ्वीको गर्भमें रखनेवाले, माधव: - लक्ष्मीके पति, मधुसूदन: - मधुनामक दैत्यको मारनेवाले।।

ईश्वर: - सर्वशक्तिमान ईश्वर, विक्रमी- शूरवीरतासे युक्त, धन्वी- शार्ङ्गधनुष रखनेवाले, मेधावी- अतिशय बुद्धिमान, विक्रम: - गरुड़ पक्षीद्वारा गमन करनेवाले, क्रम: - क्रम-विस्तारके कारण, अनुत्तम: - सर्वोत्कृष्ट, दुराधर्ष: - किसीसे भी तिरस्कृत न हो सकनेवाले, कृतज्ञ: - अपने निमित्तसे थोड़ा-सा भी त्याग किये जानेपर उसे बहुत माननेवाले यानी पत्र-पुष्पादि थोड़ी-सी वस्तु समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे देनेवाले, कृति: - पुरुष-प्रयत्नके आधाररूप, आत्मवान्- अपनी ही महिमामें स्थित।।

सुरेश: - देवताओंके स्वामी, शरणम्- दीन-दु:खियोंके परम आश्रय, शर्म- परमानन्दस्वरूप, विश्वरेता: - विश्वके कारण, प्रजाभव: - सारी प्रजाको उत्पन्न करनेवाले, अह: - प्रकाशरूप, संवत्सर: - कालस्वरूपसे स्थित, व्याल: - सर्पके समान ग्रहण करनेमें न आ सकनेवाले, प्रत्यय: - उत्तम बुद्धिसे जाननेमें आनेवाले, सर्वदर्शन: - सबके द्रष्टा।।

अज: - जन्मरहित, सर्वेश्वर: - समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर, सिद्ध: - नित्यसिद्ध, सिद्धि: - सबके फलरूप, सर्वादि: - सब भूतोंके आदि कारण, अच्युत: - अपनी स्वरूप-स्थितिसे कभी त्रिकालमें भी च्युत न होनेवाले, वृषाकपि: - धर्म और वराहरूप, अमेयात्मा- अप्रमेयस्वरूप, सर्वयोगविनि:सृत: - नाना प्रकारके शास्त्रोक्त साधनोंसे जाननेमें आनेवाले।।

वसु: - सब भूतोंके वासस्थान तथा सब भूतोंमें बसनेवाले, वसुमना: - उदार मनवाले, सत्य: - सत्यस्वरूप, समात्मा- सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक आत्मारूपसे विराजनेवालेू, असम्मित:- समस्त पदार्थोंसे मापे न जा सकनेवाले, सम: - सब समय समस्त विकारोंसे रहित, अमोघ: - भक्तोंके द्वारा पूजन, स्तवन अथवा स्मरण किये जानेपर उन्हें वृथा न करके पूर्णरूपसे उनका फल प्रदान करनेवाले, पुण्डरीकाक्ष: - कमलके समान नेत्रोंवाले, वृषकर्मा- धर्ममय कर्म करनेवाले, वृषाकृति: - धर्मकी स्थापना करनेके लिये विग्रह धारण करनेवाले।।

रुद्र: - दु:ख या दु:खके कारणको दूर भगा देनेवाले, बहुशिरा: - बहुत-से सिरोंवाले, बभ्रु: - लोकोंका भरण करनेवाले, विश्वयोनि: - विश्वको उत्पन्न करनेवाले, शुचिश्रवा: - पवित्र कीर्तिवाले, अमृत: - कभी न मरनेवाले, शाश्वतस्थाणु: - नित्य-सदा एकरस रहनेवाले एवं स्थिर, वरारोह: - आरूढ़ होनेके लिये परम उत्तम अपुनरावृत्तिस्थानरूप, महातपा: - प्रताप (प्रभाव) रूप महान तपवाले।।

सर्वग: - कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, सर्वविद्भानु: -सब कुछ जाननेवाले तथा प्रकाशरूप, विष्वक्सेन: - युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालनेवाले, जनार्दन: - भक्तोंके द्वारा अभ्युदय-नि:श्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी याचना किये जानेवाले, वेद: - वेदरूप, वेदवित्- वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् जाननेवाले, अव्यङ्ग: - ज्ञानादिसे परिपूर्ण अर्थात् किसी प्रकार अधूरे न रहनेवाले सर्वाङ्गपूर्ण, वेदाङ्ग: - वेदरूप अङ्गोंवाले, वेदवित्- वेदोंको विचारनेवाले, कवि: - सर्वज्ञ।।

लोकाध्यक्ष: - समस्त लोकोंकेअधिपति, सुराध्यक्ष: - देवताओंके अध्यक्ष, धर्माध्यक्ष: - अनुरूप फल देनेके लिये धर्म और अधर्मका निर्णय करनेवाले, कृताकृत: - कार्यरूपसे कृत और कारणरूपसे अकृत, चतुरात्मा- सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके लिये चार पृथक् मूर्तियोंवाले, चतुर्व्यूह: - उत्पत्ति, स्थिति, नाश और रक्षारूप चार व्यूहवाले, चतुर्दंष्ट्र: - चार दाढ़ोंवाले नरसिंहरूप, चतुर्भुज: - चार भुजाओंवाले वैकुण्ठवासी भगवान विष्णु।।

भ्राजिष्णु: - एकरस प्रकाशस्वरूप, भोजनम्- ज्ञानियोंद्वारा भोगने योग्य अमृतस्वरूप, भोक्ता- पुरुषरूपसे भोक्ता, सहिष्णु: - सहनशील, जगदादिज: - जगत्के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे स्वयं उत्पन्न होनेवाले, अनघ: - पापरहित, विजय: - ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि गुणोंमें सबसे बढ़कर, जेता- स्वभावसे ही समस्त भूतोंको जीतनेवाले, विश्व योनि: - विश्वके कारण, पुनर्वसु: - पुन: पुन: शरीरोंमें आत्मरूपसे बसनेवाले।।

उपेन्द्रः - इन्द्रको अनुजरूपसे प्राप्त होनेवाले, वामनः - वामनरूपसे अवतार लेनेवाले, प्रांशुः - तीनों लोकोंको लाँघनेके लिये त्रिविक्रमरूपसे ऊँचे होनेवाले, अमोघः - अव्यर्थ चेष्टावाले, शुचिः - स्मरण, स्तुति और पूजन करनेवालोंको पवित्र कर देनेवाले, ऊर्जितः - अत्यन्त बलशाली, अतीन्द्रः - स्वयंसिद्ध ज्ञान-ऐश्वर्यादिके कारण इन्द्रसे भी बढ़े-चढ़े हुए, संग्रहः - प्रलयके समय सबको समेट लेनेवाले, सर्गः - सृष्टिके कारणरूप, धृतात्माः - जन्मादिसे रहित रहकर स्वेच्छासे स्वरूप धारण करनेवाले, नियमः - प्रजाको अपने-अपने अधिकारोंमें नियमित करनेवाले, यमः - अन्तःकरणमें स्थित होकर नियमन करनेवाले।।

वेद्यः- कल्याणकी इच्छावालोंके द्वारा जाननेयोग्य, वैद्यः - सब विद्याओंके जाननेवाले, सदायोगी- सदा योगमें स्थित रहनेवाले, वीरहा- धर्मकी रक्षाके लिये असुर योद्धाओको मार डालनेवाले, माधवः - विद्याके स्वामी, मधुः - अमृतकी तरह सबको प्रसन्न करनेवाले, अतीन्द्रियः - इन्द्रियोंसे सर्वथा अतीत, महामायः - मायावियोंपर भी माया डालनेवाले महान् मायावी, महोत्साह- जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये तत्पर रहनेवाले परम उत्साही, महाबलः - महान् बलशाली।।

महाबुद्धिः - महान बुद्धिमान्, महावीर्यः - महान पराक्रमी, महाशक्तिः - महान सामर्थ्यवान, महाद्युतिः - महान कान्तिमान, अनिर्देश्यवपुः - अनिर्देश्य विग्रहवाले, श्रीमान- ऐश्वर्यवान, अमेयात्मा- जिसका अनुमान न किया जा सके ऐसे आत्मावाले, महाद्रिधृक्- अमृतमन्थन और गोरक्षणके समय मन्दराचल और गोवर्धन नामक महान् पर्वतोंको धारण करनेवाले।।

महेष्वासः - महान धनुषवाले, महीभर्ता- पृथ्वीको धारण करनेवाले, श्रीनिवासः - अपने वक्षःस्थलमें श्रीको निवास देनेवाले, सतां गतिः - सत्पुरुषोंके आश्रयरूप, अनिरुद्धः - सच्ची भक्तिके बिना किसीके भी द्वारा न रूकनेवाले, सुरानन्दः - देवताओंको आनन्दित करनेवाले, गोविन्दः - वेदवाणीके द्वारा अपनेको प्राप्त करा देनेवाले, गोविदां पतिः - वेदवाणीको जाननेवालोंके स्वामी।।

मरीचिः - तेजस्वियोंके भी परम तेजरूप, दमनः - प्रमाद करनेवाली प्रजाको यम आदिके रूपसे दमन करनेवाले, हंसः - पितामह ब्रह्माको वेदका ज्ञान करानेके लिये हंसरूप धारण करनेवाले, सुपर्णः - सुन्दर पंखवाले गरुडस्वरूप, भुजगोत्तमः - सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनागरूप, हिरण्यनाभः - हितकारी और रमणीय नाभिवाले, सुतपाः - बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे सुन्दर तप करनेवाले, पद्मनाभः - कमलके समान सुन्दर नाभिवाले, प्रजापतिः - सम्पूर्ण प्रजाओंके स्वामी।।

अमृत्युः - मृत्युसे रहित, सर्वदृक्- सब कुछ देखनेवाले, सिंहः - दुष्टोंका विनाश करनेवाले, संधाता- पुरुषोंको उनके कर्मोंके फलोंसे संयुक्त करनेवाले, संधिमान्- सम्पूर्ण यज्ञ और तपोंको भोगनेवाले, स्थिरः - सदा एकरूप, अजः - भक्तोंके हृदयोंमें जानेवाले तथा दुर्गुणोंको दूर हटा देनेवाले, दुर्मर्षणः - किसीसे भी सहन नहीं किये जा सकनेवाले, शास्ता- सबपर शासन करनेवाले, विश्रुतात्मा- वेद-शास्त्रोंमें विशेष रूपसे प्रसिद्ध स्वरूपवाले, सुरारिहा- देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले।।

गुरुः - सब विद्याओंका उपदेश करनेवाले, गुरुतमः- ब्रह्मा आदिको भी ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले, धाम- सम्पूर्ण प्राणियोंकी कामनाओंके आश्रय, सत्यः - सत्यस्वरूप, सत्यपराक्रमः - अमोघ पराक्रमवाले, निमिषः - योगनिद्रासे मुँदे हुए नेत्रोंवाले, अनिमिष- मत्स्यरूपसे अवतार लेनेवाले, स्रग्वी- वैजयन्ती माला धारण करनेवाले, वाचस्पतिरुदारधीः - सारे पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाली बुद्धिसे युक्त समस्त विद्याओंके पति।।

अग्रणीः - मुमुक्षुओंको उत्तम पदपर ले जानेवाले, ग्रामणीः - भूतसमुदायके नेता, श्रीमान- सबसे बढ़ी-चढ़ी कान्तिवाले, न्यायः - प्रमाणोंके आश्रयभूत तर्ककी मूर्ति, नेता- जगतरूप यन्त्रको चलानेवाले, समीरणः - श्वासरूपसे प्राणियोंसे चेष्टा करानेवाले, सहस्रमूर्धा- हजार सिरवाले, विश्वात्मा- विश्वके आत्मा, सहस्राक्षः - हजार आँखोंवाले, सहस्रपात- हजार पैरोंवाले।।

आवर्तनः - संसारचक्रको चलानेके स्वभाववाले, निवृत्तात्मा- संसारबन्धनसे मुक्त आत्मस्वरूप, संवृतः - अपनी योगमायासे ढके हुए, सम्प्रमर्दनः - अपने रुद्र आदि स्वरूपसे सबका मर्दन करनेवाले, अहःसंवर्तकः - सूर्यरूपसे सम्यक्तया दिनके प्रवर्तक, वह्नि- हविको वहन करनेवाले अग्निदेव, अनिलः - प्राणरूपसे वायुस्वरूप, धरणीधरः - वराह और शेषरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले।।

सुप्रसादः - शिशुपालादि अपराधियोंपर भी कृपा करनेवाले, प्रसन्नात्मा- प्रसन्न स्वभाववाले अर्थात् करुणा करनेवाले, विश्वधृक्- जगतको धारण करनेवाले, विश्वभुक्- विश्वको भोगनेवाले अर्थात् विश्वका पालन करनेवाले, विभुः - सर्वव्यापक, सत्कर्ता- भक्तोंका सत्कार करनेवाले, सत्कृतः - पूजितोंसे भी पूजित, साधुः - भक्तोंके कार्य साधनेवाले, जह्नु- संहारके समय जीवोंका लय करनेवाले, नारायणः - जलमें शयन करनेवाले, नरः - भक्तोंको परम धाममें ले जानेवाले।।

असंख्येयः - नाम और गुणोंकी संख्यासे शून्य, अप्रमेयात्मा- किसीसे भी मापे न जा सकनेवाले, विशिष्टः - सबसे उत्कृष्ट, शिष्टकृत्- शासन करनेवाले, शुचिः - परम शुद्ध, सिद्धार्थः - इच्छित अर्थको सर्वथा सिद्ध कर चुकनेवाले, सिद्धसंकल्पः - सत्य संकल्पवाले, सिद्धिदः - कर्म करनेवालोंको उनके अधिकारके अनुसार फल देनेवाले, सिद्धिसाधनः - सिद्धिरूप क्रियाके साधक।।

वृषाही- द्वादशाहादि यज्ञोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, वृषभः - भक्तोंके लिये इच्छित वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, विष्णुः - शुद्ध सत्त्वमूर्ति, वृषपर्वा- परम धाममें आरुढ़ होनेकी इच्छावालोंके लिये धर्मरूप सीढ़ियोंवाले, वृषोदरः - अपने उदरमें धर्मको धारण करनेवाले, वर्धनः - भक्तोंको बढ़ानेवाले,

वर्धमानः - संसाररूपसे बढ़नेवाले, विविक्तः- संसारसे पृथक रहनेवाले, श्रुतिसागरः - वेदरूप जलके समुद्र ।।

सुभुजः - जगतकी रक्षा करनेवाली अति सुन्दर भुजाओंवाले, दुर्धरः - दूसरोंसे धारण न किये जा सकनेवाले पृथ्वी आदि लोकधारक पदार्थोंको भी धारण करनेवाले और स्वयं किसीसे धारण न किये जा सकनेवाले, वाग्मी- वेदमयी वाणीको उत्पन्न करनेवाले, महेन्द्रः - ईश्वरोंके भी ईश्वर, वसुदः - धन देनेवाले, वसुः - धनरूप, नैकरूपः - अनेक रूपधारी, बृहद्रूपः - विश्वरूपधारी, शिपिविष्टः - सूर्यकिरणोंमें स्थित रहनेवाले, प्रकाशनः - सबको प्रकाशित करनेवाले ।।

ओजस्तेजोद्युतिधरः - प्राण और बल, शूरवीरता आदि गुण तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, प्रकाशात्मा- प्रकाशरूप, विग्रहवाले, प्रतापनः - सूर्य आदि अपनी विभूतियोंसे विश्वको तप्त करनेवाले, ऋद्धः - धर्म, ज्ञान और वैराग्यादिसे सम्पन्न, स्पष्टाक्षरः - ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, मन्त्रः - ऋक, साम और यजुरूप मन्त्रोंसे जाननेयोग्य, चन्द्रांशुः - संसारतापसे संतप्तचित्त पुरुषोंको चन्द्रमाकी किरणोंके समान आह्लादित करनेवाले, भास्करद्युतिः - सूर्यके समान प्रकाशस्वरूप ।।

अमृतांशूद्भवः - समुद्रमन्थन करते समय चन्द्रमाको उत्पन्न करनेवाले समुद्ररूप, भानुः - भासनेवाले, शशबिन्दुः - खरगोशके समान चिन्हवाले चन्द्रमाकी तरह सम्पूर्ण प्रजाका पोषण करनेवाले, सुरेश्वरः - देवताओंके ईश्वर, औषधम्ः - संसाररोगको मिटानेके लिये औषधरूप, जगतः सेतुः - संसारसागरको पार करानेके लिये सेतुरूप, सत्यधर्मपराक्रमः - सत्यस्वरूप धर्म और पराक्रमवाले ।।

भूतभव्यभवन्नाथः - भूत, भविष्य और वर्तमान सभी प्राणियोंके स्वामी, पवनः - वायुरूप, पावनः - दृष्टिमात्रसे जगत्को पवित्र करनेवाले, अनतः - अग्निस्वरूप, कामहा- अपने भक्तजनोंके सकामभावको नष्ट करनेवाले, कामकृत- भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, कान्तः - कमनीयरूप, कामः - (क) ब्रह्मा, (अ) विष्णु, (म) महादेव- इस प्रकार त्रिदेवरूप, कामप्रदः - भक्तोंको उनकी कामना की हुई वस्तुएँ प्रदान करनेवाले, प्रभुः - सर्वोत्कृष्ट सर्वसामर्थ्यवान स्वामी ।।

युगादिकृत- युगादिका आरम्भ करनेवाले, युगावर्त- चारों युगोंको चक्रके समान घुमानेवाले, नैकमाय - अनेकों मायाओंको धारण करनेवाले, महाशन- कल्पके अन्तमें सबको ग्रसन करनेवाले, अदृश्य- समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके अविषय, व्यक्तरूप- स्थूलरूपसे व्यक्त स्वरूपवाले, सहस्त्रजित्- युद्धमें हजारों देवशत्रुओंको जीतनेवाले, अनन्तजित- युद्ध और क्रीडा आदिमें सर्वत्र समस्त भूतोंको जीतनेवाले ।।

इष्ट- परमानन्दरूप होनेसे सर्वप्रिय, अविशिष्ट - सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित सर्वश्रेष्ठ, शिष्टेष्ट- शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, शिखण्डी- मयूरपिच्छको अपना शिरोभूषण बना लेनेवाले, नहुष- भूतोंको मायासे बाँधनेवाले, वृष- कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, क्रोधहा- क्रोधका नाश करनेवाले, क्रोधकृत्कर्ता- दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले और जगत्को उनके कर्मोंके अनुसार रचनेवाले, विश्वबाहु- सब ओर बाहुओंवाले, महीधर- पृथ्वीको धारण करनेवाले ।।

अच्युत- छः भावविकारोंसे रहित, प्रथित- जगत्की उत्पत्ति आदि कर्मोंके कारण, प्राण- हिरण्यगर्भरूपसे प्रजाको जीवित रखनेवाले, प्राण- सबको प्राण देनेवाले, वासवानुज- वामनावतारमें कश्यपजी द्वारा अदितिसे इन्द्रके अनुजरूपमें उत्पन्न होनेवाले, अपांनिधि- जलको एकत्रित रखनेवाले समुद्ररूप, अधिष्ठानम्- उपादानकारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय, अप्रमत्त- अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार फल देनेमें कभी प्रमाद न करनेवाले, प्रतिष्ठित- अपनी महिमामें स्थित ।।

स्कन्दः- स्वामिकार्तिकेयरूप, स्कन्दधर- धर्मपथको धारण करनेवाले, धुर्य- समस्त भूतोंके जन्मादिरूप धुरको धारण करनेवाले, वरद- इच्छित वर देनेवाले, वायुवाहन- सारे वायुभेदोंको चलानेवाले, वासुदेव- समस्त प्राणियोंको अपनेमें बसानेवाले तथा सब भूतोंमें सर्वात्मारूपसे बसनेवाले, दिव्यस्वरूप, बृहद्भानु - महान किरणोंसे युक्त एवं सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाले, आदिदेव- सबके आदि कारण देव, पुरन्दर- असुरोंके नगरोंका ध्वसं करनेवाले ।।

अशोक- सब प्रकारके शोकसे रहित, तारण- संसारसागरसे तारनेवाले, तार- जन्म-जरा मृत्युरूप भयसे तारनेवाले, शूर- पराक्रमी, शौरिः - शूरवीर श्रीवसुदेवजीके पुत्र, जनेश्वर- समस्त जीवोंके स्वामी, अनुकूल- आत्मारूप होनेसे सबके अनुकूल, शतावर्त- धर्मरक्षाके लिये सैकड़ों अवतार लेनेवाले, पद्मी- अपने हाथमें कमल धारण करनेवाले, पद्मनिभेक्षण- कमलके समान कोमल दृष्टिवाले ।।

पद्मनाभ- कमलको अपनी नाभिमें स्थित रखनेवाले, अरविन्दाक्ष- कमलके समान आँखोंवाले, पद्मगर्भ- हृदयकमलमें ध्यान करनेयोग्य, शरीरभृत्- अन्नरूपसे सबके शरीरोंका भरण करनेवाले, महर्द्धि- महान् विभूतिवाले, ऋद्ध- सबमें बढ़े-चढ़े, वृद्धात्मा- पुरातन आत्मवान, महाक्ष- विशाल नेत्रोंवाले, गरुडध्वज- गरुडके चिह्नसे युक्त ध्वजावाले ।।

अतुल- तुलनारहित, शरभ- शरीरोंको प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशित करनेवाले, भीम- जिससे पापियोंको भय हो ऐसे भयानक, समयज्ञ- समभावरूप यज्ञसे प्राप्त होनेवाले, हविर्हरि- यज्ञोंमें हविर्भागको और अपना स्मरण करनेवालोंके पापोंको हरण करनेवाले, सर्वलक्षणलक्षण्य- समस्त लक्षणोंसे लक्षित होनेवाले, लक्ष्मीवान्- अपने वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीको सदा बसानेवाले, समितिञ्जय- संग्रामविजयी ।।

विक्षर- नाशरहित, रोहित- मत्स्यविशेषका स्वरूप धारण करके अवतार लेनेवाले, मार्ग- परमानन्द-प्राप्तिके साधनस्वरूप, हेतु- संसारके निमित्त और उपादान कारण, दामोदर- यशोदाजीद्वारा रस्सीसे बँधे हुए उदरवाले, सह- भक्तजनोंके अपराधोंको सहन करनेवाले, महीधर- पर्वतरूपसे पृथ्वीको

धारण करनेवाले, महाभाग- महान् भाग्यशाली, वेगवान- तीव्रगतिवाले, अमिताशन- सारे विश्वको भक्षण करनेवाले।।

उद्भव- जगत्की उत्पत्तिके उपादानकारण, क्षोभण- जगत्की उत्पत्तिके समय प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध करनेवाले, देव- प्रकाशस्वरूप, श्रीगर्भ- सम्पूर्ण ऐश्वर्यको अपने उदरगर्भमें रखनेवाले, परमेश्वर- सर्वश्रेष्ठ शासन करनेवाले, करणम्- संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, कारणम्- जगत्के उपादान और निमित्तकारण, कर्ता- सब प्रकारसे स्वतन्त्र, विकर्ता- विचित्र भुवनोंकी रचना करनेवाले, गहन- अपने विलक्षण स्वरूप, सामर्थ्य और लीलादिके कारण पहिचाने न जा सकनेवाले, गुह- मायासे अपने स्वरूपको ढक लेनेवाले।।

व्यवसाय- ज्ञानमात्रस्वरूप, व्यवस्थान- लोकपालादिकोंको, समस्त जीवोंको, चारों वर्णाश्रमोंको एवं उनके धर्मोंको व्यवस्थापूर्वक रचनेवाले, संस्थान- प्रलयके सम्यक स्थान, स्थानद- ध्रुवादि भक्तोंको स्थान देनेवाले, ध्रुव- अविनाशी, परर्द्धि- श्रेष्ठ विभूतिवाले, परमस्पष्ट- ज्ञानस्वरूप होनेसे परम स्पष्टरूप, अवतार विग्रहमें सबके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होनेवाले, तुष्ट- एकमात्र परमानन्दस्वरूप, पुष्ट- सर्वत्र परिपूर्ण, शुभेक्षण- दर्शनमात्रसे कल्याण करनेवाले।।

राम- योगीजनोंके रमण करनेके लिये नित्यानन्दस्वरूप, विराम- प्रलयके समय प्राणियोंको अपनेमें विराम देनेवाले, विरत- रजोगुण तथा तमोगुणसे सर्वथा शून्य, मार्ग- मुमुक्षुजनोंके अमर होनेके साधनस्वरूप, नेय- उत्तम ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्य, नय- सबको नियममें रखनेवाले, अनय- स्वतन्त्र, वीर- पराक्रमशाली, शक्तिमतां श्रेष्ठ- शक्तिमानोंमें भी अतिशय शक्तिमान, धर्म- श्रुतिस्मृतिरूप धर्म, धर्मविदुत्तम- समस्त धर्मवेत्ताओंमें उत्तम।।

वैकुण्ठ- परमधाम स्वरूप, पुरुष- विश्वरूप शरीरमें शयन करनेवाले, प्राण- प्राणवायुरूपसे चेष्टा करनेवाले, प्राणद:- सर्गके आदिमें प्राण प्रदान करनेवाले, प्रणव- ॐकारस्वरूप, पृथु- विराट रूपसे विस्तृत होनेवाले, हिरण्यगर्भ- ब्रह्मारूपसे प्रकट होनेवाले, शत्रुघ्न- शत्रुओंको मारनेवाले, व्याप्त- कारणरूपसे सब कार्योंको व्याप्त करनेवाले, वायु- पवनरूप, अधोक्षज- अपने स्वरूपसे क्षीण न होनेवाले।।

ऋतु- कालरूपसे लक्षित होनेवाले, सुदर्शन- भक्तोंको सुगमतासे ही दर्शन दे देनेवाले, काल- सबकी गणना करनेवाले, परमेष्ठी- अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेके स्वभाववाले, परिग्रह- शरणार्थियोंके द्वारा सब ओरसे ग्रहण किये जानेवाले, उग्र- सूर्यादिके भी भयके कारण, संवत्सर- सम्पूर्ण भूतोंके वासस्थान, दक्ष- सब कार्योंको बड़ी कुशलतासे करनेवाले, विश्राम- विश्रामकी इच्छावाले मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाले, विश्वदक्षिण- बलिके यज्ञमें समस्त विश्वको दक्षिणारूपमें प्राप्त करनेवाले।।

विस्तार- समस्त लोकोंके विस्तारके कारण, स्थावरस्थाणु- स्वयं स्थितिशील रहकर पृथ्वी आदि स्थितिशील पदार्थोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, प्रमाणम- ज्ञानस्वरूप होनेके कारण स्वयं प्रमाणरूप, बीजमव्ययम्- संसारके अविनाशी कारण, अर्थ- सुखस्वरूप होनेके कारण सबके द्वारा प्रार्थनीय, अनर्थ- पूर्णकाम होनेके कारण प्रयोजनरहित, महाकोश- बड़े खजानेवाले, महाभोग- सुखरूप महान् भोगवाले, महाधन- यथार्थ और अतिशय धनस्वरूप।।

अनिर्विण्ण- उकताहटरूप विकारसे रहित, स्थविष्ठ- विराटरूपसे स्थित, अभू- अजन्मा, धर्मयूप- धर्मके स्तम्भरूप, महामख- अर्पित किये हुए यज्ञोंको निर्वाणरूप महान फलदायक बना देनेवाले, नक्षत्रनेमि- समस्त नक्षत्रोंके केन्द्रस्वरूप, नक्षत्री- चन्द्ररूप, क्षम- समस्त कार्योंमें समर्थ, क्षाम- समस्त विकारोंके क्षीण हो जानेपर परमात्मभावसे स्थित, समीहन- सृष्टि आदिके लिये भलीभाँति चेष्टा करनेवाले।।

यज्ञ- सर्वयज्ञस्वरूप, इज्य- पूजनीय, महेज्य- सबसे अधिक उपासनीय, ऋतु- यूपसंयुक्त यज्ञस्वरूप, सत्रम- सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले, सतां गति- सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, सर्वदर्शी- समस्त प्राणियोंको और उनके कार्योंको देखनेवाले, विमुक्तात्मा- सांसारिक बन्धनसे रहित आत्मस्वरूप, सर्वज्ञ- सबको जाननेवाले, ज्ञानमुत्तमम- सर्वोत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप।।

सुव्रत- प्रणतपालनादि श्रेष्ठ व्रतोंवाले, सुमुख- सुन्दर और प्रसन्न मुखवाले, सूक्ष्म- अणुसे भी अणु, सुघोष- सुन्दर और गंभीर वाणी बोलनवाले, सुखद- अपने भक्तोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले, सुहृत् -प्राणिमात्रपर अहैतुकी दया करनेवाले परम मित्र, मनोहर- अपने रूपलावण्य और मधुर भाषणादिसे सबके मनको हरनेवाले, जितक्रोध- क्रोधपर विजय करनेवाले अर्थात् अपने साथ अत्यन्त अनुचित व्यवहार करनेवाले पर भी क्रोध न करनेवाले, वीरबाहु- अत्यन्त पराक्रमशील भुजाओंसे युक्त, विदारण- अधर्मियोंको नष्ट करनेवाले।।

स्वापन- प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको अज्ञाननिद्रामें शयन करानेवाले, स्ववश- स्वतन्त्र, व्यापी- आकाशकी भाँति सर्वव्यापी, नैकात्मा- प्रत्येक युगमें लोकोद्धारके लिये अनेक रूप धारण करनेवाले, नैककर्मकृत- जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंमें मनोहर लीलारूप अनेक कर्म करनेवाले, वत्सर- सबके निवास-स्थान, वत्सल- भक्तोंके परम स्नेही, वत्सी- वृन्दावनमें बछड़ोंका पालन करनेवाले, रत्नगर्भ- रत्नोंको अपने गर्भमें धारण करनेवाले समुद्ररूप, धनेश्वर- सब प्रकारके धनोंके स्वामी।।

धर्मगुप- धर्मकी रक्षा करनेवाले, धर्मकृत- धर्मकी स्थापनाके लिये स्वयं धर्मका आचरण करनेवाले, धर्मी- सम्पूर्ण धर्मोंके आधार, सत- सत्यस्वरूप, असत्- स्थूल जगत्स्वरूप, क्षरम्- सर्वभूतमय, अक्षरम्- अविनाशी, अविज्ञाता- क्षेत्रज्ञ जीवात्माको विज्ञाता कहते हैं, उनसे विलक्षण भगवान विष्णु, सहस्त्रांशु- हजारों किरणोंवाले सूर्यस्वरूप, विधाता- सबको अच्छी प्रकार धारण करनेवाले, कृतलक्षण- श्रीवत्स आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले।।

गभस्तिनेमि- किरणोंके बीचमें सूर्यरूपसे स्थित, सत्त्वस्थ- अन्तर्यामीरूपसे समस्त प्राणियोंके अन्त:करणमें स्थित रहनेवाले, सिंह- भक्त प्रल्हादके

लिये नृसिंहरूप धारण करनेवाले, भूतमहेश्वर- सम्पूर्ण प्राणियोंके महान ईश्वर, आदिदेव- सबके आदि कारण और दिव्यस्वरूप, महादेव- ज्ञानयोग और ऐश्वर्य आदि महिमाओंसे युक्त, देवेश- समस्त देवोंके स्वामी, देवभृद्गुरु- देवोंका विशेषरूपसे भरण-पोषण करनेवाले उनके परम गुरु ।।

उत्तर- संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाले और सर्वश्रेष्ठ, गोपति- गोपालरूपसे गायोंकी रक्षा करनेवाले, गोप्ता- समस्त प्राणियोंका पालन और रक्षा करनेवाले, ज्ञानगम्य- ज्ञानके द्वारा जाननेमें आनेवाले, पुरातन- सदा एकरस रहनेवाले सबके आदि पुराणपुरुष, शरीरभूतभृत्- शरीरके उत्पादक पञ्चभूतोंका प्राणरूपसे पालन करनेवाले, भोक्ता- निरतिशय आनन्दपुञ्जको भोगनेवाले, कपीन्द्र- बंदरोंके स्वामी श्रीराम, भूरिदक्षिण- श्रीरामादि अवतारोंमें यज्ञ करते समय बहुत-सी दक्षिणा प्रदान करनेवाले ।।

सोमप- यज्ञोंमें देवरूपसे और यजमानरूपसे सोमरसका पान करनेवाले, अमृतप- समुद्रमन्थनसे निकाला हुआ अमृत देवोंको पिलाकर स्वयं पीनेवाले, सोम- औषधियोंका पोषण करनेवाले चन्द्रमारूप, पुरुजित- बहुतोंपर विजय लाभ करनेवाले, पुरुसत्तम- विश्वरूप और अत्यन्त श्रेष्ठ, विनय- दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, जय- सबपर विजय प्राप्त करनेवाले, सत्यसंध- सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले , दाशार्ह- दाशार्हकुलमें प्रकट होनेवाले, सात्वतां पति- यादवोंके और अपने भक्तोंके स्वामी यानी उनका योगक्षेम चलानेवाले ।।

जीव- क्षेत्रज्ञरूपसे प्राणोंको धारण करनेवाले, विनयितासाक्षी- अपने शरणापन्न भक्तोंके विनयभावको तत्काल प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले, मुकुन्द- मुक्तिदाता, अमितविक्रम- अपारपराक्रमी, अम्भोनिधि- जलके निधान समुद्रस्वरूप, अनन्तात्मा अनन्तमूर्ति, महोदधिशय- प्रलयकालके महान समुद्रमें शयन करनेवाले, अन्तक- प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्युस्वरूप ।।

अज- जन्मविकाररहित, महार्ह- पूजनीय, स्वाभाव्य- नित्य सिद्ध होनेके कारण स्वभावसे ही न उत्पन्न होनेवाले, जितामित्र- रावण-शिशुपालादि शत्रुओंको जीतनेवाले, प्रमोदन- स्मरणमात्रसे नित्य प्रमुदित करनेवाले, आनन्द- आनन्दस्वरूप, नन्दन- सबको प्रसन्न करनेवाले, नन्द- सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, सत्यधर्मा- धर्मज्ञानादि सब गुणोंसे युक्त, त्रिविक्रम- तीन डगमें तीनों लोकोंको नापनेवाले ।।

महर्षि: कपिलाचार्य- सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान कपिलाचार्य, कृतज्ञ- किये हुएको जाननेवाले यानी अपने भक्तोंकी सेवाको बहुत मानकर अपनेको उनका ऋणी समझनेवाले, मेदिनीपति- पृथ्वीकेस्वामी, त्रिपद- त्रिलोकीरूप तीन पैरोंवाले विश्वरूप, त्रिदशाध्यक्ष- देवताओंके स्वामी, महाश्रृङ्ग- मत्स्यावतारमें महान सींग धारण करनेवाले, कृतान्तकृत- स्मरण करनेवालोंके समस्त कर्मोंका अन्त करनेवाले ।।

महावराह- हिरण्याक्षका वध करनेके लिये महावराहरूप धारण करनेवाले, गोविन्द- वेदवाणीसे जाननेमें आनेवाले, सुषेण- पार्षदोंके समुदायरूप सुन्दर सेनासे सुसज्जित, कनकाङ्गदी- सुवर्णका बाजूबंद धारण करनेवाले, गुह्य- हृदयाकाशमें छिपे रहनेवाले, गंभीर- अतिशय गम्भीर स्वभाववाले, गहन- जिनके स्वरूपमें प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन हो- ऐसे, गुप्त- वाणी और मनसे जाननेमें न आनेवाले, चक्रगदाधर- भक्तोंकी रक्षाके लिये चक्र और गदा आदि दिव्य आयुधोंको धारण करनेवाले ।।

वेधा- सब कुछ विधान करनेवाले, स्वाङ्ग- कार्य करनेमें स्वयं ही सहकारी, अजित- किसीके द्वारा न जीते जानेवाले, कृष्ण- श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, दृढ़- अपने स्वरूप और सामर्थ्यसे कभी भी च्युत न होनेवाले, संकर्षणोऽच्युत- प्रलयकालमें एक साथ सबका संहार करनेवाले और जिनका कभी किसी भी कारणसे पतन न हो सके- ऐसे अविनाशी, वरुण- जलके स्वामी वरुणदेवता, वारुण- वरुणके पुत्र वसिष्ठस्वरूप, वृक्ष- अश्वत्थवृक्षरूप, पुष्कराक्ष- कमलनयन, महामना- संकल्पमात्रसे उत्पत्ति, पालन और संहार आदि समस्त लीला करनेकी शक्तिवाले ।।

भगवान- उत्पत्ति और प्रलय, आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जाननेवाले एवं सर्वेश्वर्यादि छहों भागोंसे युक्त, भगहा- अपने भक्तोंका प्रेम बढ़ानेके लिये उनके ऐश्वर्यका हरण करनेवाले और प्रलयकालमें सबके ऐश्वर्यको नष्ट करनेवाले, आनन्दी- परमसुखस्वरूप, वनमाली- वैजयन्ती वनमाला धारण करनेवाले, हलायुध- हलरूप शस्त्रकोधारण करनेवाले बलभद्रस्वरूप, आदित्य- अदितिपुत्र वामन भगवान, ज्योतिरादित्य- सूर्यमण्डलमें विराजमान ज्योति:स्वरूप, सहिष्णु- समस्त द्वन्द्वोंको सहन करनेमें समर्थ, गतिसत्तम- सत्पुरुषोंके परम गन्तव्य और सर्वश्रेष्ठ ।।

सुधन्वा- अतिशय सुन्दर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, खण्डपरशु- शत्रुओंका खण्डन करनेवाले फरसेको धारण करनेवाले परशुरामस्वरूप, दारुण- सन्मार्गविरोधियोंके लिये महान् भयंकर, द्रविणप्रद- अर्थार्थी भक्तोंको धन-सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, दिव:स्पृक्- स्वर्गलोकतक व्याप्त, सर्वदृग्व्यास- सबके द्रष्टा एवं वेदका विभाग करनेवाले श्रीकृष्ण-द्वैपायन-स्वरूप, वाचस्पतिरयोनिज- विद्याके स्वामी तथा बिना योनिके स्वयं ही प्रकट होनेवाले ।।

त्रिसामा- देवव्रत आदि तीन साम-श्रुतियोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है- ऐसे परमेश्वर, सामग- सामदेवका गान करनेवाले, साम- सामवेदस्वरूप, निर्वाणम्- परम शान्तिके निधान परमानन्दस्वरूप, भेषजम्- संसाररोगकी औषध, भिषक- संसार रोगका नाश करनेके लिये गीतारूप उपदेशामृतका पान करानेवाले परमवैद्य, संन्यासकृत- मोक्षके लिये संन्यासाश्रम और संन्यास-योगका निर्माण करनेवाले, शम- उपशमताका उपदेश देनेवाले, शान्त- परम-शान्ताकृति, निष्ठा- सबकी स्थितिके आधार अधिष्ठानस्वरूप, शान्ति- परम शान्तिस्वरूप, परायणम्- मुमुक्षु पुरुषोंके परम प्राप्यस्थान ।।

शुभाङ्ग- अति मनोहर परम सुन्दर अङ्गोंवाले, शान्तिद- परम शान्ति देनेवाले, स्रष्टा- सर्गके आदिमें सबकी रचना करनेवाले, कुवलेशय- जलमें शेषनाग की शय्यापर शयन करनेवाले, गोहित- गोपालरूपसे गायोंका और अवतार धारण करके भार उतारकर पृथ्वीका हित करनेवाले, गोपति- पृथ्वीके और गायोंके स्वामी, गोप्ता- अवतार धारण करके सबके सम्मुख प्रकट होते समय अपनी मायासे अपने स्वरूपको आच्छादित करनेवाले,

वृषभाक्ष: - समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाली कृपादृष्टिसे युक्त, वृषप्रिय- धर्मसे प्यार करनेवाले।।

अनिवर्ती- रणभूमिमें और धर्मपालनमें पीछे न हटनेवाले, निवृत्तात्मा- स्वभावसे ही विषय वासनारहित नित्य शुद्ध मनवाले, संक्षेप्ता- विस्तृत जगत्को क्षणभरमें संक्षिप्त यानी सूक्ष्मरूपमें करनेवाले, क्षेमकृत- शरणागतकी रक्षा करनेवाले, शिव- स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले कल्याणस्वरूप, श्रीवत्सवक्ष- श्रीवत्स नामक चिह्नको वक्ष:स्थलमें धारण करनेवाले, श्रीवास- श्रीलक्ष्मीजीके वासस्थान, श्रीपति- परमशक्तिरूपा श्रीलक्ष्मीजीके स्वामी, श्रीमतां वर- सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्यसे युक्त ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंसे श्रेष्ठ।।

श्रीद: भक्तोंको श्री प्रदान करनेवाले, श्रीश- लक्ष्मीके नाथ, श्रीनिवास- श्रीलक्ष्मीजीके अन्त:करणमें नित्य निवास करनेवाले, श्रीनिधि- समस्त श्रियोंके आधार, श्रीविभावन- सब मनुष्योंके लिये उनके कर्मानुसार नाना प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, श्रीधर- जगज्जननी श्रीको वक्ष:स्थलमें धारण करनेवाले, श्रीकर- स्मरण, स्तवन और अर्चन आदि करनेवाले भक्तोंके लिये श्रीका विस्तार करनेवाले, श्रेय- कल्याणस्वरूप, श्रीमान्- सब प्रकारकी श्रियोंसे युक्त, लोकत्रयाश्रय- तीनों लोकोंके आधार।।

स्वक्ष- मनोहर कृपाकटाक्षसे युक्त परम सुन्दर आँखोंवाले, स्वङ्ग-अतिशय कोमल परम सुन्दर मनोहर अङ्गोंवाले, शतानन्द- लीलाभेदसे सैकड़ों विभागोंमें विभक्त आनन्दस्वरूप, नन्दी- परमानन्दविग्रह, ज्योतिर्गणेश्वर- नक्षत्रसमुदायोंके ईश्वर, विजितात्मा- जीते हुए मनवाले, अविधेयात्मा- जिनके असली स्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सके- ऐसे अनिर्वचनीयस्वरूप, सत्कीर्ति- सच्ची कीर्तिवाले, छिन्नसंशय- हथेलीमें रक्खे हुए बेरके समान सम्पूर्ण विश्वको प्रत्यक्ष देखनेवाले होनेसे सब प्रकारके संशयोंसे रहित।।

उदीर्ण- सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ, सर्वतश्चक्षु- समस्त वस्तुओंको सब दिशाओंमें सदा-सर्वदा देखनेकी शक्तिवाले, अनीश- जिनका दूसरा कोई शासक न हो- ऐसे स्वतन्त्र, शाश्वतस्थिर- सदा एकरस स्थिर रहनेवाले निर्विकार, भूशय- लंकागमनके लिये मार्गकी याचना करते समय समुद्रतटकी भूमिपर शयन करनेवाले, भूषण-स्वेच्छासे नाना अवतार लेकर अपने चरणचिन्होंसे भूमिकी शोभा बढ़ानेवाले, भूति- सत्तास्वरूप और समस्त विभूतियोंके आधारस्वरूप, विशोक- सब प्रकारसे शोकरहित, शोकनाशन- स्मृतिमात्रसे भक्तोंके शोकका समूल नाश करनेवाले।।

अर्चिष्मान- चन्द्र-सूर्य आदि समस्त ज्योतियोंको देदीप्यमान करनेवाली अतिशय प्रकाशमय अनन्त किरणोंसे युक्त, अर्चित:- समस्त लोकोंके पूज्य ब्रह्मादिसे भी पूजे जानेवाले, कुम्भ- घटकी भाँति सबके निवासस्थान, विशुद्धात्मा- परम शुद्ध निर्मल आत्मस्वरूप, विशोधन- स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका नाश करके भक्तोंके अन्त:करणको परम शुद्ध कर देनेवाले, अनिरूद्ध- जिनको कोई बाँधकर नहीं रख सके- ऐसे चतुर्व्यूहमें अनिरुद्धस्वरूप, अप्रतिरथ- प्रतिपक्षसे रहित, प्रद्युम्न- परमश्रेष्ठ अपार धनसे युक्त चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्नस्वरूप, अमितविक्रम- अपार पराक्रमी।।

कालनेमिनिहा- कालनेमि नामक असुरको मारनेवाले, वीर- परम शूरवीर, शौरि- शूरकुलमें उत्पन्न होनेवाले श्रीकृष्णस्वरूप, शूरजनेश्वर- इन्द्रादि शूरवीरोंके भी अतिशय शूरवीरताके कारण इष्ट, त्रिलोकात्मा- अन्तर्यामीरूपसे तीनों लोकोंके आत्मा, त्रिलोकेश- तीनों लोकोंके स्वामी, केशव- सूर्यकी किरणारूप केशवाले, केशिहा- केशी नामके असुरको मारनेवाले, हरि- स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका और समूल संसारका हरण करनेवाले।।

कामदेव-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन चारों पुरुषार्थोंको चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, कामपाल- सकामी भक्तोंकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले, कामी- स्वभावसे ही पूर्णकाम और अपने प्रियतमोंको चाहनेवाले, कान्त- परम मनोहर श्यामसुन्दर देह धारण करनेवाले गोपीजनवल्लभ, कृतागम- समस्त शास्त्रोंको रचनेवाले, अनिर्देश्यदपु- जिनके दिव्य स्वरूपका किसी प्रकार भीवर्णन नहीं किया जा सके- ऐसे अनिर्वचनीय शरीरवाले, विष्णु- शेषशायी भगवान विष्णु, वीर- बिना ही पैरोंके गमन करने आदि अनेक दिव्य शक्तियोंसे युक्त, अनन्त- जिनके स्वरूप, शक्ति, ऐश्वर्य, सामर्थ्य गौर गुणोंका कोई भी पार नहीं पा सकता- ऐसे अविनाशी गुण, प्रभाव और शक्तियोंसे युक्त, धनञ्जय- अर्जुनरूपसे दिग्विजयके समय बहुत-सा धन जीतकर लानेवाले।।

ब्रह्मण्य- तप, वेद, ब्राह्मण और ज्ञानकी रक्षा करनेवाले, ब्रह्मकृत- पूर्वोक्त तप आदिकी रचनावाले, ब्रह्मा- ब्रह्मारूपसे जगत्को उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्म- सच्चिदानन्दस्वरूप, ब्रह्मविवर्धन- पूर्वोक्त ब्रह्मशब्दवाची तप आदिकी वृद्धि करनेवाले, ब्रह्मवित- वेद और वेदार्थको पूर्णतया जाननेवाले, ब्राह्मण- समस्त वस्तुओंको ब्रह्मरूपसे देखनेवाले, ब्रह्मी- ब्रह्मशब्दवाची तपादि समस्त पदार्थोंके अधिष्ठान, ब्रह्मज्ञ- अपने आत्मस्वरूप ब्रह्मशब्दवाची वेदको पूर्णतया यथार्थ जाननेवाले, ब्राह्मणप्रिय- ब्राह्मणोंके परम प्रिय और ब्राह्मणोंको अतिशय प्रिय माननेवाले।।

महाक्रम- बड़े वेगसे चलनेवाले, महाकर्मा- भिन्न-भिन्न अवतारोंमें नाना प्रकारके महान् कर्म करनेवाले, महातेजा- जिसके तेजसे समस्त तेजस्वी देदीप्यमान होते हैं- ऐसे महान तेजस्वी, महोरग- बड़े भारी सर्प यानी वासुकिस्वरूप, महाऋतु- महान यज्ञस्वरूप, महायज्वा- बड़े यजमान यानी लोकसंग्रहके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, महायज्ञ- जपयज्ञ आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप समस्त यज्ञ जिनकी विभूतियाँ हैं- ऐसे महान यज्ञस्वरूप, महाहवि- ब्रह्मरूप अग्निमें हवन किये जाने योग्य प्रपञ्चरूप हवि जिनका स्वरूप है- ऐसे महान हवि:स्वरूप।।

स्तव्य- सबके द्वारा स्तुति किये जाने योग्य, स्तवप्रिय- स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले, स्तोत्रम- जिसके द्वारा भगवानके गुण-प्रभावका कीर्तन किया जाता है वह स्त्रोत, स्तुति- स्तवनक्रियास्वरूप, स्तोता- स्तुति करनेवाले, रणप्रिय- युद्धसे प्रेम करनेवाले, पूर्ण- समस्त ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और गुणोंसे परिपूर्ण, पूरयिता- अपने भक्तोंको सब प्रकारसे परिपूर्ण करनेवाले, पुण्य-स्मरणमात्रसे पापोंका नाश करनेवाले पुण्यस्वरूप, पुण्यकीर्ति- परमपावन

कीर्तिवाले, अनामय- आन्तरिक और बाह्य सब प्रकारकी व्याधियोंसे रहित।।

मनोजव- मनकी भाँति वेगवाले, तीर्थकर- समस्त विद्याओंके रचयिता और उपदेशकर्ता, वसुरेता- हिरण्यमय पुरुष (प्रथम पुरुष-सृष्टिका बीज) जिनका वीर्य है- ऐसे सुवर्णवीर्य, वसुप्रद- प्रचुर धन प्रदान करनेवाले, वसुप्रद- अपने भक्तोंको मोक्षरूप महान धन देनेवाले, वासुदेव- वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, वसु- समस्त प्राणियोंके वासस्थान और सबके अन्त:करणमें निवास करनेवाले, वसुमना- समानभावसे सबमें निवास करनेकी शक्तिसे युक्त मनवाले, हवि- यज्ञमें हवन किये जाने योग्य हवि:स्वरूप।

सद्गति- सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जाने योग्य गतिस्वरूप, सत्कृति- जगत्की रक्षा आदि सत्कार्य करनेवाले, सत्ता- सदा-सर्वदा विद्यमान सत्तास्वरूप, सद्भूति- बहुत प्रकारसे बहुत रूपोंमें भासित होनेवाले, सत्परायण- सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, शूरसेन- हनुमानादि श्रेष्ठ शूरवीर योधाओंसे युक्त सेनावाले, यदुश्रेष्ठ- यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ, सन्निवास- सत्पुरुषोंके आश्रय, सुयामनु- जिनके परिकर यमुना तटनिवासी गोपालबाल आदि अति सुन्दर हैं, ऐसे श्रीकृष्ण।।

भूतावास- समस्त प्राणियोंके मुख्य निवासस्थान, वासुदेव- अपनी मायासे जगत्को आच्छादित करनेवाले परमदेव, सर्वासुनिलय- समस्त प्राणियोंके आधार, अनल- अपार शक्ति और सम्पत्तिसे युक्त, दर्पहा- धर्मविरुद्ध मार्गमें चलनेवालोंके घमण्डको नष्ट करनेवाले, दर्पद- अपने भक्तोंको विशुद्ध गौरव देनेवाले, दृप्त- नित्यानन्दमग्न, दुर्धर- बड़ी कठिनतासे हृदयमेंधारित होनेवाले, अपराजित- किसी प्रकार भी जीतनेमें न आनेवाले।।

विश्वमूर्ति- समस्त विश्व ही जिनकी मूर्ति है- ऐसे विराटस्वरूप, महामूर्ति- बड़े रूपवाले, दीप्तमूर्ति- स्वेच्छासे धारण किये हुए देदीप्यमान स्वरूपसे युक्त, अमूर्तिमान- जिनकी कोई मूर्ति नहीं- ऐसे निराकार, अनेकमूर्ति- नाना अवतारोंमें स्वेच्छासे लोगोंका उपकार करनेके लिये बहुत मूर्तियोंको धारण करनेवाले, अव्यक्त- अनेक मूर्ति होते हुए भी जिनका स्वरूप किसी प्रकार व्यक्त न किया जा सके- ऐसे अप्रकटस्वरूप, शतमूर्ति- सैकड़ों मूर्तियोंवाले, शतानन- सैकड़ों मुखोंवाले।।

एक- सब प्रकारके भेदभावोंसे रहित अद्वितीय, नैक- उपाधिभेदसे अनेक, सव- जिसमें सोमनामकी ओषधिका रस निकाला जाता है- ऐसे यज्ञस्वरूप, क- सुखस्वरूप, किम- विचारणीय ब्रह्मस्वरूप, यत- स्वत:सिद्ध, तत्- विस्तार करनेवाले, पदमनुत्तमम- मुमुक्षु पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य अत्युत्तम परमपद, लोकबन्धु- समस्त प्राणियोंके हित करनेवाले परम मित्र, लोकनाथ- सबके द्वारा याचना किये जानेयोग्य लोकस्वामी, माधव- मधुकुलमें उत्पन्न होनेवाले, भक्तवत्सल- भक्तोंसे प्रेम करनेवाले।।

सुवर्णवर्ण- सोनेके समान पीतवर्णवाले, हेमाङ्ग- सोनेके समान सुडौल चमकीले अङ्गोंवाले, वराङ्ग- परम श्रेष्ठ अङ्ग-प्रत्यङ्गोंवाले, चन्दनाङ्गदी- चन्दनके लेप और बाजूबन्दसे सुशोभित, वीरहा- धर्मकी रक्षाके लिये असुरवीरोंको मारनेवाले, विषम- जिनके समान दूसरा कोई नहीं- ऐसे अनुपम, शून्य- समस्त विशेषणोंसे रहित, घृताशी- अपने आश्रित जनोंके लिये कृपासे सने हुए द्रवित संकल्प करनेवाले, अचल- किसी प्रकार भी विचलित न होनेवाले अविचल, चल- वायुरूपसे सर्वत्र गमन करनेवाले।।

अमानी- स्वयं मान न चाहनेवाले अभिमानरहित, मानद- दूसरोंको मान देनेवाले, मान्य- सबके पूजनेयोग्य माननीय, लोकस्वामी- चौदह भुवनोंके स्वामी, त्रिलोकधृक्- तीनों लोकोंको धारण करनेवाले, सुमेधा- अति उत्तम सुन्दर बुद्धिवाले, मेधज- यज्ञमें प्रकट होनेवाले, धन्य- नित्य कृतकृत्य होनेके कारण सर्वथा धन्यवादके पात्र, सत्यमेधा- सच्ची और श्रेष्ठ बुद्धिवाले, धराधर- अनन्त भगवान्के रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले।।

तेजोवृष- आदित्यरूपसे तेजकी वर्षा करनेवाले और भक्तोंपर अपने अमृतमय तेजकी वर्षा करनेवाले, द्युतिधर- परम कान्तिको धारण करनेवाले, सर्वशस्त्र भृतां वर- समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, प्रग्रह- भक्तोंके द्वारा अर्पित पत्र-पुष्पादिको ग्रहण करनेवाले, निग्रह- सबका निग्रह करनेवाले, व्यग्र- अपने भक्तोंको अभीष्ट फल देनेमें लगे हुए, नैकशृङ्ग- नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूप चार सींगोंको धारण करनेवाले शब्दब्रह्मस्वरूप, गदाग्रज- गदसे पहले जन्म लेनेवाले।।

चतुर्मूर्ति- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नरूप चार मूर्तियोंवाले, चतुर्बाहु- चार भुजाओंवाले, चतुर्व्यूह- वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध- इन चार व्यूहोंसे युक्त, चतुर्गति-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्यरूप चार परम गतिस्वरूप, चतुरात्मा- मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार अन्त:करणवाले, चतुर्भाव- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन चारों पुरुषार्थोंके उत्पत्तिस्थान, चतुर्वेदवित्- चारों वेदोंके अर्थको भलीभाँति जाननेवाले, एकपात- एक पादवाले यानी एक पाद (अंश) से समस्त विश्वको व्याप्त करनेवाले।।

समावर्त-संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, निवृत्तात्मा- स्वभावसे ही विषय-वासनारहित मनवाले, दुर्जय- किसीसे भी जीतनेमें न आनेवाले, दुरतिक्रम- जिनकी आज्ञाका कोई उल्लंघन नहीं कर सके ऐसे, दुर्लभ- बिना भक्तिके प्राप्त न होनेवाले, दुर्गम- कठिनतासे जाननेमें आनेवाले, दुर्ग- कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, दुरावास- बड़ी कठिनतासे योगीजनोंद्वारा हृदयमें बसाये जानेवाले, दुरारिहा- दुष्ट मार्गमें चलनेवाले दैत्योंका वध करनेवाले।।

शुभाङ्ग- सुन्दर अङ्ग-प्रत्यङ्गोंवाले, लोकसारङ्ग- लोकोंके सारको ग्रहण करनेवाले, सुतन्तु- सुन्दर विस्तृत जगत्रूप तन्तुवाले, तन्तुवर्धन- पूर्वोक्त जगत्-तन्तुको बढ़ानेवाले, इन्द्रकर्मा- इन्द्रके समान कर्मवाले, महाकर्मा- बड़े-बड़े कर्म करनेवाले, कृतकर्मा- जो समस्त कर्त्तव्यकर्म कर चुके हों, जिनका कोई कर्त्तव्य शेष न रहा हो- ऐसे कृतकृत्य, कृतागम- आगमरूप वेदोंको बनानेवाले।।

उद्भव- स्वेच्छासे श्रेष्ठ जन्म धारण करनेवाले, सुन्दर- सबसे अधिक भाग्यशाली होनेके कारण परम सुन्दर, सुन्द- परम करुणाशील, रत्ननाभ- रत्नके समान सुन्दर नाभिवाले, सुलोचन- सुन्दर नेत्रोंवाले, अर्क- ब्रह्मादि पूज्य पुरुषोंके भी पूजनीय, वाजसन- याचकोंको अन्न प्रदान करनेवाले, शृङ्गी- प्रलयकालमें सींगयुक्त मत्स्यविशेषका रूप धारण करनेवाले, जयन्त- शत्रुओंको पूर्णतया जीतनेवाले, सर्वविज्जयी- सर्वज्ञ यानी सब कुछ जाननेवाले और सबको जीतनेवाले।।

सुवर्णबिन्दु- सुन्दर अक्षर और बिन्दुसे युक्त ओंकारस्वरूप नाम ब्रह्म, अक्षोभ्य- किसीके द्वारा भी क्षुभित न किये जा सकनेवाले, सर्ववागीश्वरेश्वर- समस्त वाणीपतियोंके यानी ब्रह्मादिके भी स्वामी, महाह्रद- ध्यान करनेवाले जिसमें गोता लगाकर आनन्दमें मग्न होते हैं, ऐसे परमानन्दके महान सरोवर, महागर्त- मायारूप महान् गर्तवाले, महाभूत- त्रिकालमें कभी न नष्ट होनेवाले महाभूतस्वरूप, महानिधि- सबके महान् निवास-स्थान।।

कुमुद- कु अर्थात् पृथ्वीको उसका भार उतारकर प्रसन्न करनेवाले, कुन्दर- हिरण्याक्षको मारनेके लिये पृथ्वीको विदीर्ण करनेवाले, कुन्द- कश्यपजीको पृथ्वी प्रदान करनेवाले, पर्जन्य- बादलकी भाँति समस्त इष्ट वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, पावन-स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले, अनिल- सदा प्रबुद्ध रहनेवाले, अमृतास- जिनकी आशा कभी विफन न हो- ऐसे अमोघसंकल्प, अमृतवपु- जिनकी देह कभी नष्ट न हो- ऐसे नित्य-विग्रह, सर्वज्ञ- सदासर्वदा सब कुछ जाननेवाले, सर्वतोमुख- सब ओर मुखवाले यानी जहाँ कहीं भी उनके भक्त भक्तिपूर्वक पत्र-पुष्पादि जो कुछ भी अर्पण करें, उसे भक्षण करनेवाले।।

सुलभ- नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवालेको और एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको बिना ही परिश्रमके सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, सुव्रत- सुन्दर भोजन करनेवाले यानी अपने भक्तोंद्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादि मामूली भोजनको भी परम श्रेष्ठ मानकर खानेवाले, सिद्ध- स्वभावसे ही समस्त सिद्धियोंसे युक्त, शत्रुजित- देवता और सत्पुरुषोंके शत्रुओंको अपने शत्रु मानकर जीतनेवाले, शत्रुतापन- शत्रुओंको तपानेवाले, न्यग्रोध- वटवृक्षरूप, उदुम्बर- कारणरूपसे आकाशके भी ऊपर रहनेवाले, अश्वत्थ- पीपल-वृक्षस्वरूप, चाणूरान्ध्रनिषूदन- चाणूर नामक अन्ध्रजातिके वीर मल्लको मारनेवाले।।

सहस्रार्चि- अनन्त-किरणोंवाले, सप्तजिह्व- काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फलिङ्गिनी और विश्वरूचि इन सात जिह्वावाले अग्निस्वरूप, सप्तैधा- सात दीप्तिवाले अग्निस्वरूप, सप्तवाहन- सात घोड़ोंवाले सूर्यरूप, अमूर्ति- मूर्तिरहित निराकार, अनघ- सब प्रकारसे निष्पाप, अचिन्त्य- किसी प्रकार भी चिन्तन करनेमें न आनेवाले, भयकृत- दुष्टोंको भयभीत करनेवाले, भयनाशन- स्मरण करनेवालोंके और सत्पुरुषोंके भयका नाश करनेवाले।।

अणु- अत्यन्त सूक्ष्म, बृहत- सबसे बड़े, कृश- अत्यन्त पतले और हलके, स्थूल- अत्यन्त मोटे और भारी, गुणभृत- समस्त गुणोंको धारण करनेवाले, निर्गुण- सत्त्व, रज और तम- इन तीनों गुणोंसे रहित, महान्- गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और ज्ञान आदिकी अतिशयताके कारण परम महत्त्वसम्पन्न, अधृत- जिनको कोई भी धारण नहीं कर सकता- ऐसे निराधार, स्वधृत- अपने-आपसे धारित यानी अपनी ही महिमामें स्थित, स्वास्य- सुन्दर मुखवाले, प्राग्वंश- जिनसे समस्त वंशपरम्परा आरम्भ हुई है-ऐसे समस्त पूर्वजोंके भी पूर्वज आदि पुरुष- वंशवर्धन- जगत प्रपञ्चरूप वंशको और यादव-वंशको बढ़ानेवाले।।

भारभृत- शेषनाग आदिके रूपमें पृथ्वीका भार उठानेवाले और अपने भक्तोंके योगक्षेमरूप भारको वहन करनेवाले, कथित- वेद-शास्त्र और महापुरुषोंद्वारा जिनके गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और स्वरूपका बारंबार कथन किया गया है, ऐसे सबके द्वारा वर्णित, योगी- नित्य समाधियुक्त, योगीश- समस्त योगोंके स्वामी, सर्वकामद- समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, आश्रम- सबको विश्राम देनेवाले, श्रमण- दुष्टोंको संतप्त करनेवाले, क्षाम- प्रलयकालमें सब प्रजाका क्षय करनवोले, सुपर्ण- सुन्दर पक्षवाले गरुडस्वरूप, वायुवाहन- वायुको गमन करनेके लिये शक्ति देनेवाले।।

धनुर्धर- धनुषधारी श्रीराम, धनुर्वेद- धनुर्विद्याको जाननेवाले श्रीराम, दण्ड- दमन करनेवालोंकी दमनशक्ति, दमयिता- यम और राजा आदिके रूपमें दमन करनेवाले, दम- दण्डका कार्य यानी जिनको दण्ड दिया जाता है उनका सुधार, अपराजित- शत्रुओंद्वारा पराजित न होनेवाले, सर्वसह- सब कुछ सहन करनेकी सामर्थ्यसे युक्त, अतिशय तितिक्षु, नियन्ता- सबको अपने-अपने कर्त्तव्यमें नियुक्त करनेवाले, अनियम- नियमोंसे न बँधे हुए जिनका कोई भी नियन्त्रण करनेवाला नहीं ऐसे परमस्वतन्त्र, अयम- जिनका कोई शासक नहीं अथवा मृत्युरहित।

सत्त्ववान- बल, वीर्य, सामर्थ्य आदि समस्त सत्त्वोंसे सम्पन्न, सात्त्विक- सत्त्वगुणप्रधानविग्रह, सत्य- सत्यस्वरूप, सत्यधर्मपरायण- यथार्थ भाषण और धर्मके परम आधार, अभिप्राय- प्रेमीजन जिनको चाहते हैं- ऐसे परम इष्ट, प्रियार्ह- अत्यन्त प्रियवस्तु समर्पण करनेके लिये योग्य पात्र, अर्ह- सबके परम पूज्य, प्रियकृत- भजनेवालोंका प्रिय करनेवाले, प्रीतिवर्धन- अपने प्रेमियोंके प्रेमको बढ़ानेवाले।।

विहायसगति- आकाशमें गमन करनेवाले, ज्योति- स्वयंप्रकाशस्वरूप, सुरुचि- सुन्दर रूचि और कान्तिवाले, हुतभुक्- यज्ञमें हवन की हुई समस्त हविको अग्निरूपसे भक्षण करनेवाले, विभु- सर्वव्यापी, रवि- समस्त रसोंका शोषण करनेवाले सूर्य, विरोचन- विविध प्रकारके प्रकाश फैलानेवाले, सूर्य- शोभाको प्रकट करनेवाले, सविता- समस्त जगत्को प्रसव यानी उत्पन्न करनेवाले, रविलोचन- सूर्यरूप नेत्रोंवाले।।

अनन्त- सब प्रकारसे अन्तरहित, हुतभुक्- हवन की हुई सामग्रीको खानेवाले, भोक्ता- प्रकृतिको भोगनेवाले, सुखद- भक्तोंको दर्शनरूप

परम सुख देनेवाले, नकज- धर्मरक्षा, साधुरक्षा आदि परम विशुद्ध हेतुओंसे स्वेच्छापूर्वक अनेक जन्म धारण करनेवाले, अग्रज- सबसे पहले जन्मनेवाले आदिपुरुष, अनिर्विण्ण- कभी किसी प्रकार भी न उकतानेवाले, सदामर्षी- सत्पुरुषोंपर क्षमा करनेवाले, लोकाधिष्ठानम्- समस्त लोकोंके आधार, अद्भुत- अत्यन्त आश्चर्यमय ।।

सनात्- अनन्तकालस्वरूप, सनातनतम- सबके कारण होनेसे ब्रह्मादि पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम पुराणपुरुष, कपिल- महर्षि कपिल, कपि- सूर्यदेव, अप्यय- सम्पूर्ण जगतके लयस्थान, स्वस्तिद- परमानन्दरूप मङ्गल देनेवाले, स्वस्तिकृत-आश्रितजनोंका कल्याण करनेवाले, स्वस्ति- कल्याणस्वरूप, स्वस्तिभुक- भक्तोंके परम कल्याणकी रक्षा करनेवाले, स्वस्तिदक्षिण- कल्याण करनेमें समर्थ और शीघ्र कल्याण करनेवाले ।।

अरौद्र- सब प्रकारके रुद्र (क्रूर) भावोंसे रहित शान्तमूर्ति, कुण्डली- सूर्यके समान प्रकाशमान मकराकृति कुण्डलोंको धारण करनेवाले, चक्री- सुदर्शन चक्र को धारण करनेवाले, विक्रमी- सबसे विलक्षण पराक्रमशील, ऊर्जितशासन- जिनका श्रुति-स्मृतिरूप शासन अत्यन्त श्रेष्ठ है ऐसे अति श्रेष्ठ शासन करनेवाले, शब्दातिग- शब्दकी जहाँ पहुँच नहीं, ऐसे वाणीके अविषय, शब्दसह- समस्त वेद-शास्त्र जिनकी महिमाका बखान करते हैं, ऐसे। शिशिर- त्रितापपीड़ितोंको शान्ति देनेवाले शीतलमूर्ति, शर्वरीकर- ज्ञानियोंकी रात्रि संसार और अज्ञानियोंकी रात्रि ज्ञान- इन दोनोंको उत्पन्न करनेवाले ।।

अक्रूर- सब प्रकारके क्रूरभावोंसे रहित, पेशल- मन, वाणी और कर्म- सभी दृष्टियोंसे सुन्दर होनेके कारण परम सुन्दर, दक्ष- सब प्रकारसे समृद्ध, परमशक्तिशाली और क्षणमात्रमें बड़े-से-बड़ा कार्य कर देनेवाले महान कार्यकुशल, दक्षिण- संहारकारी, क्षमिणांवर- क्षमा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, विद्वत्तम- विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ परम विद्वान, वीतभय- सब प्रकारके भयसे रहित, पुण्यश्रवणकीर्तन- जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपका श्रवण और कीर्तन परम पुण्य यानी परमपावन हैं ऐसे ।।

उत्तारण- संसार सागरसे पार करनेवाले, दुष्कृतिहा- पापोंका और पापियोंका नाश करनेवाले, पुण्य- स्मरण आदि करनेवाले समस्त पुरुषोंको पवित्र कर देनेवाले, दु:स्वप्ननाशन- ध्यान, स्मरण, कीर्तन और पूजन करनेसे बुरे स्वप्नोंका और संसाररूप दु:स्वप्नका नाश करनेवाले, वीरहा- शरणागतोंकी विविध गतियोंका यानी संसारचक्रका नाश करनेवाले, रक्षण- सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले, सन्त- विद्या और विनयका प्रचार करनेके लिये सन्तरूपसे प्रकट होनेवाले, जीवन- समस्त प्रजाको प्राणरूपसे जीवित रखनेवाले, पर्यवस्थित- समस्त विश्वको व्याप्त करके स्थित रहनेवाले ।।

अनन्तरूप- अनन्त अमितरूपवाले, अनन्तश्री- अनन्तश्री यानी अपरिमित पराशक्तियोंसे युक्त, जितमन्यु- सब प्रकारसे क्रोधको जीत लेनेवाले, भयापह- भक्तभयहारी, चतुरश्र- चार वेदरूप कोणोंवाले मङ्गलमूर्ति और न्यायशील, गंभीरात्मा- गम्भीर मनवाले, विदिश- अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार विभागपूर्वक नाना प्रकारके फल देनेवाले, व्यादिश- सबको यथायोग्य विविध आज्ञा देनेवाले, दिश- वेदरूपसे समस्त कर्मोंका फल बतलानेवाले।

अनादि- जिसका आदि कोई न हो ऐसे सबके कारणस्वरूप, भूर्भुव- पृथ्वीके भी आधार, लक्ष्मी-समस्त शोभायमान वस्तुओंकी शोभा, सुवीर- आश्रित जनोंके अन्त:करणमें सुन्दर कल्याणमयी विविध स्फुरणा करनेवाले, रुचिराङ्गद- परम रुचिकर कल्याणमय बाजूबंदोंको धारण करनेवाले, जनन- प्राणीमात्रको उत्पन्न करनेवाले, जनजन्मादि- जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूलकारण, भीम- दुष्टोंके लिये भयानक, भीमपराक्रम- अतिशय भय उत्पन्न करनेवाले पराक्रमसे युक्त।

आधारनिलय- आधारस्वरूप पृथ्वी आदि समस्त भूतोंके स्थान, अधाता- जिसका कोई भी बनानेवाला न हो ऐसे स्वयंस्थित, पुष्पहास- पुष्पकी भाँति विकसित हँसीवाले, प्रजागर- भली प्रकार जाग्रत रहनेवाले नित्यप्रबुद्ध, ऊर्ध्वग- सबसे ऊपर रहनेवाले, सत्पथाचार- सत्पुरुषोंके मार्गका आचरण करनेवाले मर्यादापुरुषोत्तम, प्राणद- परीक्षित आदि मरे हुओंको भी जीवन देनेवाले, प्रणव- ॐकारस्वरूप, पण- यथायोग्य व्यवहार करनेवाले ।।

प्रमाणम- स्वत: सिद्ध होनेसे स्वयं प्रमाणस्वरूप, प्राणनिलय- प्राणोंके आधारभूत, प्राणभूत- समस्त प्राणोंका पोषण करनेवाले, प्राणजीवन- प्राण वायुके सञ्चारसे प्राणियोंको जीवित रखनेवाले, तत्वम- यथार्थ तत्वरूप, तत्त्ववित्त- यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, एकात्मा- अद्वितीयस्वरूप, जन्ममृत्युजरातिग- जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा आदि शरीरके धर्मोंसे सर्वथा अतीत।

भूर्भुव:स्वस्तरु- भू:भुव: स्वरूप तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले और संसारवृक्षस्वरूप, तार- संसारसागरसे पार उतारनेवाले, सविता- सबको उत्पन्न करनेवाले पितामह, प्रपितामह- पितामह ब्रह्माके भी पिता, यज्ञ- यज्ञस्वरूप, यज्ञपति- समस्त यज्ञोंके अधिष्ठाता, यज्वा- यजमानरूपसे यज्ञ करनेवाले, यज्ञाङ्ग- समस्त यज्ञरूप अंगोवाले, यज्ञवाहन- यज्ञोंको चलानेवाले ।।

यज्ञभृत- यज्ञोंका धारण-पोषण करनेवाले, यज्ञकृत- यज्ञोंके रचयिता, यज्ञी- समस्त यज्ञ जिसमें समाप्त होते हैं- ऐसे यज्ञशेषी, यज्ञभुक्-समस्त यज्ञोंके भोक्ता, यज्ञसाधन- ब्रह्मयज्ञ, जपयज्ञ आदि बहुतसे यज्ञ जिसकी प्राप्तिके साधन हैं ऐसे, यज्ञान्तकृत्- यज्ञोंका अन्त करनेवाले यानी उनका फल देनेवाले, यज्ञगुह्यम- यज्ञोंमें गुप्त ज्ञानस्वरूप और निष्काम यज्ञस्वरूप, अन्नम्- समस्त प्राणियोंके अन्न यानी अन्नकी भाँति उनकी सब प्रकारसे तुष्टि-पुष्टि करनेवाले तथा अन्नाद- समस्त अन्नोंके भोक्ता भी ।।

आत्मयोनि- जिनका कारण दूसरा कोई नहीं ऐसे स्वयं योनिस्वरूप, स्वयंजात- स्वयं अपने-आप स्वेच्छापूर्वक प्रकट होनेवाले, वैखान- पातालवासी हिरण्याक्षका वध करनेके लिये पृथ्वीको खोदनेवाले, सामगायन- सामवेदका गान करनेवाले, देवकीनन्दन- देवकीपुत्र, स्रष्ट- समस्त लोकोंके

रचयिता, क्षितीश- पृथ्वीपति, पापनाशन- स्मरण, कीर्तन, पूजन और ध्यान आदि करनेसे समस्त पापसमुदायका नाश करनेवाले।।

शर्ङ्गभृत्- पांचजन्य शंखको धारण करनेवाले, नन्दकी- नन्दकनामक खड्ग धारण करनेवाले, चक्रील- सुदर्शननामक चक्र धारण करनेवाले, शार्ङ्गधन्वा- शार्ङ्गधनुषधारी, गदाधर- कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले, रथाङ्गपाणि- भीष्मकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये सुदर्शन चक्रको हाथमें धारण करनेवाले, अक्षोभ्य- जो किसीके द्वारा भी क्षुभित- भयभीत नहीं किये जा सके ऐसे, सर्वप्रहरणायुध- ज्ञात और अज्ञात जितने भी युद्धादिमें काम आनेवाले हथियार हैं, उन सबको धारण करनेवाले।।

जो मनुष्य विष्णुसहस्रनामका सदा श्रवण करता है या पाठ करता है या कीर्तन करता है उसका इस लोकमें तथा परलोकमें कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य व्यापारमें धन कमाता है और शूद्र सुख पाता है। धर्मकी इच्छावाला धर्म को पाता है, अर्थकी इच्छावाला अर्थ पाता है, भोगोंकी इच्छावाला भोग पाता है, राजा अच्छी प्रजा पाता है। इसका पाठ करनेवाला महान यश पाता है। जातिमें महत्व पाता है, अचल सम्पत्ति पाता है और अति उत्तम कल्याण प्राप्त करता है उसे कहीं भय नहीं होता। वह आरोग्य, वीर्य और तेज प्राप्त करता है, वह कान्तिमान, बलवान, रूपवान और सर्वगुणसम्पन्न होता है। रोगातुर पुरुष रोगसे छूट जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ पुरुष बन्धनसे छूट जाता है, भयसे छूट जाता है और आपत्तिमें पड़ा हुआ आपत्तिसे छूट जाता है। वह शीघ्र ही समस्त संकटोंसे पार हो जाता है और सनातन ब्रह्म को प्राप्त करता है। कृष्णके भक्तोंका कहीं कभी अशुभ नहीं होता। उनको जन्म-मृत्यु, जरा और व्याधिका भय नहीं रहता। ऐसा पुरुष आत्मसुख, क्षमा, लक्ष्मी, धैर्य, स्मृति और कीर्तिको प्राप्त करता है। पुण्यात्मा भक्त क्रोधरहित होते हैं, ईर्ष्यारहित, लोभरहित और उनकी बुद्धि कभी अशुद्ध नहीं होती। स्वर्ग, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रसहित आकाश, दस दिशाएँ, पृथ्वी और महासागर- ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्य हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष और राक्षससहित यह स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण जगत श्रीकृष्णके अधीन है। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सत्त्व, रज, बल, धीरज, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ ये सब श्रीवासुदेवके रूप हैं, ऐसा वेदोंने कहा है। सब शास्त्रोंमें आचारको प्रथम माना है, आचारसे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मके स्वामी भगवान अच्युत हैं। ऋषि, पितर, देवता, पंचमहाभूत, धातुएँ और स्थावर-जंगमात्मक, सम्पूर्ण जगत् ये सब नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। योग, ज्ञान, सांख्य, विद्याएँ, शिल्प आदि कर्म, वेद, शास्त्र और विज्ञान- ये सब विष्णुसे उत्पन्न हुए हैं। वे समस्त विश्वके भोक्ता और अविनाशी विष्णु ही एक ऐसे हैं, जो अनेक रूपोंमें विभक्त होकर भिन्न-भिन्न भूतविशेषोंके अनेकों रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा त्रिलोकीमें व्याप्त होकर सबको भोग रहे हैं। जो पुरुष परम श्रेय और सुख पाना चाहता है वह इस विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। जो विश्वके ईश्वर जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले जन्मरहित विष्णुका भजन करते हैं, वे कभी पराभव नहीं पाते हैं।

१७) गायत्री मन्त्रका जाप

यह मन्त्र तत्काल ही पापसे छुटकारा देनेवाला है। जो इसको सुनता है वह दीर्घजीवी होता है, उसकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती है और वह इहलोक तथा परलोकमें आनन्द भोगता है। प्राचीन कालमें क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले और सदा सत्यव्रतके आचरणमें संलग्न रहनेवाले राजर्षिगण इस मन्त्रका जप करते थे।

अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर- ये ग्यारह रुद्र विख्यात हैं, जो तीनों लोकोंके स्वामी हैं। वेदके शतरुद्रिय-प्रकरणमें रुद्रके सैकड़ों नाम बताये गये हैं। अंश, भग, मित्र जलेश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र तथा विष्णु- ये बारह आदित्य कहलाते हैं। ये सब-के-सब कश्यपके पुत्र हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास- ये आठ वसु कहे गये हैं। नासत्य और दस्र- ये दोनों अश्विनीकुमारके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति भगवान सूर्यके वीर्यसे हुई है। ये अश्वरूपधारिणी संज्ञादेवीकी नाकसे प्रकट हुए थे (ये सब मिलाकर तैंतीस देवता हैं)।

जगत्‌के कर्मपर दृष्टि रखनेवाले तथा यज्ञ, दान और सुकृतको जाननेवाले देवताओंका परिचय देता हूँ। ये देवगण स्वयं अदृश्य रहकर समस्त प्राणियोंके शुभाशुभ, कर्मोंको देखते रहते हैं। इनके नाम ये हैं- मृत्यु, काल, विश्वेदेव और मूर्तिमान पितृगण। इनकेसिवा तपस्वी मुनि तथा तप एवं मोक्षमें संलग्न सिद्ध महर्षि भी सम्पूर्ण जगत्‌पर दृष्टि रखते हैं। ये सब अपना नाम-कीर्तन करनेवाले मनुष्योंको शुभ फल देते हैं। प्रजापति ब्रह्माजीने जिन लोकोंकी रचना की है, उन सबमें ये अपने दिव्य तेजसे निवास करते हैं तथा शुद्धभावसे सबके कर्मोंका निरीक्षण करते हैं। ये सबके प्राणोंके स्वामी हैं। जो मनुष्य शुद्ध भावसे इनका कीर्तन करता है, उसे प्रचुर मात्रामें धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा वह लोकनाथ ब्रह्माजीके रचे हुए मङ्गलमय पवित्र लोकोंमें जाता है। यह तैंतीस देवता सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं। इसी प्रकार नन्दीश्वर, महाकाय, ग्रामणी, वृषभध्वज, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी गणेश, विनायक, सौम्यगण, रुद्रगण, योगगण, भूतगण, नक्षत्र, नदियाँ, आकाश, पक्षिराज गरुड, पृथ्वीपर तपसे सिद्ध हुए महात्मा, स्थाव, जङ्गम, हिमालय, समस्त पर्वत, चारों समुद्र, भगवान शंकरके तुल्य पराक्रमवाले उनके अनुचरगण, विष्णु, जिष्णु, स्कन्द और अम्बिका- इन सबके नामोंका शुद्ध भावसे कीर्तन करनेवाले मनुष्यके सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

ये है श्रेष्ठ महर्षि- यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, उशिजके पुत्र कक्षीवान, अङ्गिरानन्दन बल और मेधातिथिके पुत्र कण्वऋषि- ये सब ऋषि ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और लोकस्रष्टा बतलाये गये हैं। इनका तेज रुद्र, अग्नि तथा वसुओंके समान है। ये पृथ्वीपर शुभ कर्म करके अब स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्दपूर्वक रहते और शुभ फलका उपभोग करते हैं। ये सातों महर्षि महेन्द्र (इन्द्र) के गुरु (ऋत्विज) हैं और पूर्व दिशामें निवास करते हैं। जो पुरुष शुद्ध चित्तसे इनका नाम लेता है, वह इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उन्मुचु, प्रमुचु, स्वस्त्यात्रेय, दृढ़व्य, ऊर्ध्वबाहु, तृण सोमाङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र महाप्रतापी अगस्त्य मुनि- ये सात धर्मराज (यम) के ऋत्विज हैं और दक्षिण दिशामें निवास करते हैं। दृढ़ेयु, ऋतेयु, परिव्याध, एकत, द्वित, त्रित तथा अत्रिके पुत्र सारस्वत मुनि- ये सात वरुणके ऋत्विज हैं और पश्चिम दिशामें इनका निवास है। अत्रि, भगवान वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीकनन्दन जमदग्नि- ये सात उत्तर दिशामें रहनेवाले और कुबेरके गुरु (ऋत्विज) हैं। इनके सिवा सात महर्षि और हैं जो सम्पूर्ण दिशाओंमें निवास करते हैं। वे जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले हैं। ये महर्षि मनुष्योंकी कीर्ति बढ़ाते और उनका कल्याण करते हैं। धर्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल- ये सात पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं। ये महात्मा इस जगत्‌में शान्ति और कल्याणका विस्तार करनेवाले और दिशाओंके पालक कहलाते हैं। ये जिस-जिस दिशामें निवास करें उसी दिशाकी ओर मुँह करके इनकी शरण लेनी चाहिये। ये सम्पूर्ण भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन बताये गये हैं। संवर्त, मेरुसावर्ण, मार्कण्डेय, सांख्य, योग, नारद और महर्षि दुर्वासा- ये सात ऋषि अत्यन्त तपस्वी, जितेन्द्रिय और त्रिभुवनमें विख्यात हैं। इन सब ऋषियोंके अतिरिक्त बहुत-से महर्षि रुद्रके समान प्रभावशाली और ब्रह्मलोकके निवासी हैं। इनका कीर्तन करनेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि होती है।

पूर्वकालमें यह पृथ्वी जिनकी पुत्री हुई थीं, उन वेननन्दन महाराज पृथुके नाम और गुणोंका कीर्तन करना चाहिये। जिन्होंने सूर्यवंशमें जन्म लेकर इन्द्रके समान पराक्रम दिखलाया था, जो इलाके गर्भसे उत्पन्न और बुधके प्रिय पुत्र थे, उन त्रिलोकविख्यात राजा पुरुरवाका भी नाम लेने योग्य है। इसी प्रकार त्रिभुवनमें प्रसिद्ध वीर भरतका और जिन्होंने सत्ययुगमें विश्वजित यज्ञका अनुष्ठान किया था, उन तपस्वी राजा रन्तिदेवका भी नाम-कीर्तन करना चाहिये। परम कान्तिमान राजर्षि श्वेत और गङ्गाजलके द्वारा सगरपुत्रोंका उद्धार करनेवाले महाराज भगीरथका नाम भी स्मरण करने योग्य है। ये सभी राजा अग्निके समान तेजस्वी, महान धीर और अपनी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे। इन सबका कीर्तन करना चाहिये। श्रुतियोंके

आधारभूत परब्रह्म परमात्माका कीर्तन सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये मङ्गलमय है। मनुष्यको प्रतिदिन सबेरे और शामके समय भगवत्कीर्तनके साथ ही उपर्युक्त देवताओं, ऋषियों और राजाओंका भी नाम लेना चाहिये। ये देवता ही जगत्की रक्षा करते, पानी बरसाते, प्रकाश और हवा देते तथा प्रजाकी सृष्टि करते हैं। ये ही विघ्नोंके राजा विनायक, श्रेष्ठ, दक्ष, क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं। ये महात्मा सबके पाप और पुण्योंके साक्षी हैं, इनका नाम लेनेपर ये मनुष्योंके अमङ्गलका नाश करते हैं। प्रतिदिन इन देवताओंका कीर्तन करनेसे मनुष्योंके दु:स्वप्न नष्ट हो जाते हैं और वे सब पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। जो द्विज प्रत्येक दीक्षाके समय नियमपूर्वक रहकर इन पवित्र नामोंका पाठ करता है, वह न्यायवान, आत्मनिष्ठ, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और दोषदृष्टिसे रहित होता है। रोग-व्याधिसे ग्रस्त मनुष्य इसका पाठ करनेपर पापमुक्त एवं नीरोग हो जाता है। जो अपने घरके भीतर इन नामोंका पाठ करता है, उसके कुलका कल्याण होता है। यात्रा करते समय जो इस नामावलीका पाठ करता है, उसका मार्ग सकुशल समाप्त होता है। जो देवयज्ञ और श्राद्धके समय उपर्युक्त नामोंका पाठ करता है, उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर सहर्ष स्वीकार करते हैं। जो मनुष्य विदेशमें अथवा राजदरबारमें जानेपर मन-ही-मन गायत्री-मन्त्रका जप करता है, उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। गायत्रीका जप करनेसे राजा, पिशाच, राक्षस, आग, पानी, हवा और साँप आदिसे भय नहीं होता। गायत्रीमन्त्रका जप करनेवाला पुरुष चारों वर्णों और चारों आश्रमोंमें शान्ति स्थापित करता है। जिस घरमें प्रतिदिन गायत्रीका जप होता है वहाँ आग नहीं लगती, बालकोंकी मृत्यु नहीं होती और साँप नहीं ठहरते। जो परब्रह्मस्वरूप गायत्रीके गुणोंका कीर्तन सुनते हैं, उनके दु:ख दूर हो जाते हैं और वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। सावित्री-मन्त्र सत्य सनातन ब्रह्मरूप है। यह सम्पूर्ण भूतोंका हृदय और सनातनी श्रुति है। चन्द्र, सूर्य, रघु और पुरुके वंशमें उत्पन्न हुए सभी राजा पवित्र भावसे प्रतिदिन गायत्री-मन्त्रका जप करते थे। गायत्री संसारके प्राणियोंकी परम गति है। काश्यप, गौतम, भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अगस्त्य और बृहस्पति आदि वृद्ध ब्रह्मर्षियोंने सदा ही गायत्री-मन्त्रका सेवन किया है। भृगुका नाम लेनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। वसिष्ठ मुनिको नमस्कार करनेसे वीर्य बढ़ता है। राजा रघुको प्रणाम करनेसे संग्राममें विजय प्राप्त होती है और अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कभी रोग नहीं सताता।

भीष्म बोले युधिष्ठिर जो कुछ मैंने बताना था वह सब कुछ बता दिया। तुम सब गुणोंसे सम्पन्न हो और क्षत्रिय धर्मका पालन करते हुए अपने राज्य का पालन करो। अपनी मानसिक चिन्ताका त्याग करो, प्रजाको प्रसन्न रखो। मन्त्री, सेनापति आदि प्रकृतियोंको सान्त्वना दो। तुम्हारे मित्र व हितैषी तुम्हारे आश्रय में रहकर जीवन निर्वाह करे। धर्मराज युधिष्ठिरको इसप्रकार उपदेश देकर पितामह भीष्म चुप हो गए।

कृपाचार्य बोले, मेरी तो पाण्डवों से कभी कोई शत्रुता थी ही नहीं। युद्ध में युधिष्ठिर के विपक्ष की ओर से लड़ा अवश्य; किंतु मैं पांडवों का विरोधी तो कभी नहीं था गंगानंदन।

१८) भीष्म का प्राण त्याग और भीष्म की अन्त्येष्टि

भीष्म कृष्ण से बोले, हे लीलामय, मधुसूदन। कृष्ण लीलामय हो गए और भीष्म से बोले, आप मुझे इस नाम से क्यों पुकार रहे हैं? भीष्म बोले, ठीक कहते हो। किंतु यही निर्णय कहीं हमने कुछ पहले कर लिया होता तो कदाचित् मानवता का कुछ हित ही होता। उनकी दृष्टि फिर से आकर कृष्ण पर टिक गई, आपने बहुत कृपा की श्रीकृष्ण कि इस अंत समय में मुझे दर्शन देने चले आए। कृष्ण बोले, ये कष्ट तो शरीर का धर्म है। आत्मा को उसका अनुभव भी नहीं होता। आप जानते हैं कि आपका शरीर इन सबसे मुक्त होनेवाला है।

कृष्ण बोले, युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कर दिया। मध्यम पांडव भीम युवराज हैं। आय-व्यय दायित्व संजय को दिया

है। वे ही देखेंगे कि कौन-सा कार्य पूर्ण हुआ और कौन-सा अभी शेष है। नकुल सेना की गणना और पंजीकरण इत्यादि देखेंगे। उसके भोजन तथा वेतन का दायित्व सँभालेंगे। शत्रुओं पर आक्रमण और दुष्टदलन का कार्य अर्जुन करेंगे। सहदेव सदा राजा के साथ रहेंगे और उनकी रक्षा के दायित्व का वहन करेंगे। महाराज धृतराष्ट्र और माता गांधारी की सेवा और देखभाल का दायित्व महात्मा विदुर, युयुत्सु तथा संजय को दिया गया है। दीन-दुखियों और अपंगों के लिए आवास, भोजन तथा वस्त्र आदि की देखभाल महाराज युधिष्ठिर स्वयं कर रहे हैं। महात्मा विदुर को महामन्त्री बनाया है।

भीष्म बोले, उचित ही किया वासुदेव। आवास के लिए पांडवों ने कौन-सा स्थान चुना है?

कृष्ण बोले, धर्मराज तो राजप्रासाद में रहेंगे। मध्यम पांडव भीम को दुर्योधन का राजमहल दिया गया है। अर्जुन, दु:शासन के भवन में निवास करेंगे। मैं और सात्यकि आजकल वहीं हैं। दुर्मर्षण के महल में नकुल हैं; और सहदेव को दुर्मुखवाला महल दिया गया है। भीष्म बोले, युधिष्ठिर। सजातीय बंधुओं और सगे-सम्बन्धियों के समुदाय को स्पर्धा और ईर्ष्या के कारण, वश में करना असंभव हो जाए, मित्र ही शत्रु हो जाएँ तो राजा को कठोर होना ही पड़ता है। तुमने कुछ भी अनुचित नहीं किया है। तुम सदा धर्म पर चलते रहे हो। और एक बात सदा स्मरण रखो, जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहीं धर्म है, और जहाँ धर्म है, वहीं जय है। अपनी ग्लानि से मुक्त होकर उत्साह को धारण करो पुत्र। राजन्। अब तुम नगर में प्रवेश करो। चिंता का त्याग करो। अपने कर्त्तव्यों को यज्ञकर्म मान कर उनको पूरा करो। क्षत्रिय धर्म में स्थित रहकर देवताओं और पितरों को तृप्त करो। तुम अवश्य कल्याण के भागी होगे। प्रजा को प्रसन्न रखो, मंत्रियों को सांत्वना दो। सुहृदों का सत्कारपूर्वक सम्मान करो। मंदिर के आस पास के फले हुए वृक्ष पर, बहुत से पक्षी आकर आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मित्र और हितैषी, तुम्हारे आश्रय में रहकर जीवन निर्वाह करें। यही मेरी कामना है। वे रुके, जब सूर्यनारायण दक्षिणायन से निवृत्त होकर, उत्तरायण पर आ जाएँ, तब मेरे पास आना। मुझे संसार से विदा करने आना। मेरा प्रेतकर्म भी तुम्हें ही करना है। मैं उस समय संसार से विदा होना नहीं चाहता, जब सूर्यास्त हो चुका हो, अंदर बाहर अँधेरा हो, तेजोमयी प्रज्ज्वलित अग्नि अपना तेज खोकर धुंधुआ रही हो, प्रसन्न और उल्लसित चंद्रमा के स्थान पर कृष्ण पक्ष का क्षीण चंद्रमा हो। मैं संसार से उस समय विदा होना चाहता हूँ, जब अग्नि अपने पूरे तेज से प्रज्ज्वलित हो, सूर्य चमक रहा हो, शुक्ल पक्ष का चंद्रमा बढ़ रहा हो। आकाश निरभ्र और सुंदर हो। हाँ उत्तरायण में। मैं उस समय विदा होना चाहता हूँ, जब मेरा मन प्रसन्न हो, निर्मल हो। मैं उस समय विदा होना चाहता हूँ, जब मेरी बुद्धि प्रकाशित हो रही हो। मैं अवसाद में, रोते हुए, आसक्ति के मेघों के अज्ञान में लिपटा हुआ, इस संसार से विदा होना नहीं चाहता। मैं मुक्त होकर यहाँ से जाना चाहता हूँ, ताकि लौटकर फिर न आना पड़े। आजीवन स्वयं को बाँधे रखा है, अब निर्बंध होकर जाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं प्रकृति के उत्तरायण की भी प्रतीक्षा करूँगा और अपने शरीर के उत्तरायण की भी। अब तुम जाओ पुत्र। बहुत सारे लोग तुम्हारी प्रतीक्षा में होंगे।

कृष्ण बोले, तो फिर उनकी ही बात मानें, हम धर्म की ओर थे। पितामह अधर्म के पक्ष से लड़े, तो भी उनके मन में ग्लानि नहीं है, क्योंकि उन्होंने जिसे अपना धर्म माना, वही किया; जब स्वयं को असमर्थ अथवा अनावश्यक पाया, स्वयं को समरभूमि से हटा लेने का प्रबंध कर लिया। आजीवन स्वयं को बाँधे रखनेवाले उस महापुरुष ने इस समय स्वेच्छा से स्वयं को मुक्त कर लिया। यही इच्छामुक्ति है। आप उनके ही आदर्श पर चलें। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बस इस बात को स्वीकार कर लें कि आपने केवल अपना कर्म किया। आपने कोई अपराध नहीं किया। तो आप भी अपने अवसाद को तिलांजलि दीजिए, ग्लानि का त्याग कीजिए। आपको अपार निर्माण करना है। इस युद्ध में हुए नाश की क्षतिपूर्ति करनी है। इसलिए इस हताशा से स्वयं को बंधनमुक्त कीजिए। धर्म किसी को बाँधता नहीं, वह मुक्त करता है। वह जीवन में अवसाद नहीं उत्सव लाता है। पितामह प्राण त्यागने के लिए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, किंतु उत्तरायण केवल मृत्यु

के लिए ही नहीं होता, वह जीने के लिए भी परम उपयोगी है। आप जीवन के लिए अपने मन में उत्तरायण अवतरित करें।

भीष्मने देह त्याग करने के पहिले श्रीकृष्णकी स्तुति की। जो स्वत: शुद्ध हैं, जिनकी प्राप्तिका मार्ग भी सर्वथा शुद्ध है, जो सबसे विलक्षण हंसस्वरूप हैं और प्रजाओंका पालन करनेवाले परमेष्ठी हैं, उन परमात्माकी मैं शरण लेता हूँ। सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाले श्री हरि परब्रह्म परमात्मा हैं उनका न आदि है न अन्त हैं। उन्हें न देवता जान पाते हैं न ऋषि। एकमात्र वे नारायण ही सबको जानते हैं। नारायणसे ही ऋषि प्रकट हुए हैं, सिद्धों और बड़े-बड़े नागोंका भी उन्हींसे प्रादुर्भाव हुआ है। देवता और देवर्षि भी उनके विषयमें इतना ही जानते हैं कि वे अविनाशी परमात्मा हैं। किंतु वे भगवान् नारायण कौन हैं, कहाँसे आये हैं- इन बातोंका यथार्थ ज्ञान देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्पोंमें से किसीको नहीं है। उन्हींमें सम्पूर्ण प्राणी स्थित होते हैं और उन्हींमें उनका लय होता है। जैसे डोरेमें मनके पिरोये होते हैं, उसी प्रकार उन भूतेश्वर परमात्मामें सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक भूत पिरोये हुए हैं। भगवान् कभी नष्ट न होनेवाले एक तने हुए लंबे सूतके समान हैं; उनमें यह कार्य-कारणरूप जगत् उसी प्रकार गुँथा हुआ है, जैसे सूतमें माला। सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आधारपर टिका हुआ है, यह उन्हींकी रचना है। उन श्रीहरिके हजारों मस्तक, हजारों पैर तथा हजारों नेत्र हैं; हजारों भुजाओं, हजारों मुकुटों तथा हजारों मुखोंसे वे देदीप्यमान रहते हैं। वे ही इस जगतके परम आधार हैं, उन्हींको नारायण कहते हैं। वे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और स्थूलसे भी स्थूल हैं, भारीसे भारी और उत्तमसे भी उत्तम हैं। वाक और अनुवाकोंमें (मन्त्र और ब्राह्मणोंमें) तथा कर्म और ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंमें जिस सत्यका प्रतिपादन किया गया है, वह सत्यकर्मा भगवान वासुदेव ही हैं, वे ही साम संज्ञक ऋचाओंके परमार्थ तत्त्व हैं। विशुद्ध अन्त:करणमें उनका नित्य निवास (साक्षात्कार) होता है, वे अपने भक्तोंका सदा पालन करते रहते हैं। श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन चार स्वरूपोंमें वे ही प्रकट होते हैं और भक्तजन उक्त चार दिव्य नामोंसे उन्हींकी पूजा किया करते है। भगवान वासुदेवकी ही प्रसन्नताके लिये नित्य तप (नैतिक्य कर्म) का अनुष्ठान किया जाता है, वे ही सबके भीतर विराजमान हैं। वे सबके आत्मा, सबको जाननेवाले, सर्वस्वरूप एवं सबको उत्पन्न करनेवाले हैं। जैसे अरणी अग्नि प्रकट करती है, उसी प्रकार देवकी देवीने इस भूमण्डलपर रहनेवाले ब्राह्मणों, वेदों और यज्ञोंकी रक्षाके लिये जिन्हें वसुदेवके सकाशसे प्रकट किया था, सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग कर अनन्यभावसे स्थित रहनेवाला साधक मोक्षके उद्देश्यसे अपने विशुद्ध अन्त:करणमें जिन शुद्ध-बुद्ध आत्मारूप गोविन्दका ज्ञानदृष्टिसे साक्षात्कार करता है, जिनका पराक्रम इन्द्र और वायुसे बहुत बढ़कर है जिनके तेजके सामने सूर्यकी कोई हस्ती नहीं है और जिनके स्वरूपतक मनुष्यके मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंकी पहुँच नहीं हो पाती, उन प्रजापालक परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ।

पुराणोंमें जिनका पुरुष नामसे वर्णन किया गया है, जो युगोंके आरम्भमें ब्रह्म और युगान्तके समय संकर्षण कहे गये हैं, उन उपासनीय परमेश्वरकी मैं उपासना करता हूँ। जो एक होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हैं, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, यज्ञादि कर्मोंमें लगे हुए अनन्य भक्त जिन परमात्माका यजन करते हैं, जिन्हें संसारका कोषागार कहते हैं, जिनमें ही सम्पूर्ण प्रजाएँ स्थित हैं, पानीके ऊपर तैरनेवाले जल-पक्षियोंकी तरह जिनके ही ऊपर इस सम्पूर्ण जगत्‌की चेष्टाएँ हो रही हैं, जो परमार्थ सत्यस्वरूप और एकाक्षर ब्रह्म (प्रणव) हैं, सत् और असत्‌से विलक्षण हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जिन्हें न देवता ठीक-ठीक जानते हैं न ऋषि, अपने मन और इन्द्रियोंको वशीभूत करके सम्पूर्ण देवता, असुर, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि तथा नागगण जिनकी सदा पूजा किया करते हैं, जो संसाररूपी दु:खसे छुड़ानेके लिये सबसे बड़ी औषधि हैं, जो जन्म-मरणसे परे स्वयम्भू एवं सनातन देवता हैं तथा जो इन नेत्रों और बुद्धिकी पहुँचके बाहर हैं, उन भगवान् नारायणकी मैं शरण लेता हूँ। जो इस विश्वके विधाता और चराचर जगत्‌के स्वामी हैं, जिन्हें संसारका साक्षी तथा अविनाशी परमपद कहते हैं, उन परमात्माकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

जो सुवर्णके समान कान्तिवाले और दैत्योंके संहारक हैं, एक होनेपर भी जिन्हें अदिति देवीने अपने गर्भसे बारह आदित्योंके रूपमें प्रकट किया, उन सूर्यस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो अपनी अमृतमयी कलाओंसे शुक्लपक्षमें देवताओंको और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करते हैं तथा जो सम्पूर्ण द्विजोंके राजा हैं, उन चन्द्रमाके रूपमें प्रकट हुए परमात्माको प्रणाम है। जो अज्ञानमय महान् अन्धकारसे परे और ज्ञानलोकसे अत्यन्त प्रकाशित होनेवाले आत्मा हैं, जिन्हें जान लेनेपर मनुष्य मौतके चंगुलसे छूट जाता है, उन ज्ञेयरूप परमेश्वरको नमस्कार है। उक्थ नामक बृहत् यज्ञके समय, अग्न्याधानकालमें तथा महायागमें ब्राह्मणवृन्द जिनका ब्रह्मके रूपमें स्तवन करते हैं, उन वेदभगवान्‌को नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद जिसके आश्रय हैं, पाँच प्रकारका हविष्य जिसका स्वरूप है, गायत्री आदि सात छन्द ही जिसे सात सन्तु हैं, उस यज्ञके रूपमें प्रकट हुए परमात्मा को प्रणाम है। चार, चार, दो, पाँच और दो अक्षरोंवाले मन्त्रोंसे जिन्हें हविष्य अर्पण किया जाता है, उन होमस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो यजु: नाम धारण करनेवाले वेदरूपी पुरुष हैं, गायत्री आदि छन्द जिनके हाथ-पैर आदि अवयव हैं, यज्ञ ही जिनका मस्तक है तथा रथन्तर और बृहत् नामक साम ही जिनकी सान्त्वनाभरी वाणी है, उन स्तोत्ररूपी भगवान्‌को प्रणाम है। जो हजार वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले प्रजापतियोंके यज्ञमें सोनेकी पाँखवाले पंछीके रूपमें प्रकट हुए थे, उन हंसरूपधारी परमेश्वरको प्रणाम है। पदोंके समूह जिनके अङ्ग हैं, संधि जिनके शरीरकी जोड़ है, स्वर और व्यञ्जन जिनके लिये आभूषणका काम देते हैं तथा जिन्हें दिव्य अक्षर कहते हैं, उन परमेश्वरको वाणीके रूपमें नमस्कार है। जिन्होंने तीनों लोकोंका हित करनेके लिये यज्ञमय वराहका स्वरूप धारण करके इस पृथ्वीको रसातलसे ऊपर उठाया था, उन वीर्यस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है। जो अपनी योगमायाका आश्रय लेकर शेषनागके हजार फनोंसे बने हुए पलंगपर शयन करते हैं, उन निद्रास्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिनका सारा व्यवहार केवल धर्मके ही लिये है, उन वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा जो मोक्षके साधनभूत वैदिक उपायोंसे काम लेकर संतोंकी धर्ममर्यादाका प्रसार करते हैं, उन सत्स्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो भिन्न-भिन्न धर्मोंका आचरण करके अलग-अलग उनके फलोंकी इच्छा रखते हैं, ऐसे पुरुष पृथक् धर्मोंके द्वारा जिनकी पूजा करते हैं, उन धर्ममय भगवान्‌को प्रणाम है। जिस अनङ्गकी प्रेरणासे सम्पूर्ण अङ्गधारी प्राणियोंका जन्म होता है, जिससे समस्त जीव उन्मत्त हो उठते हैं, उस कामके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वरको नमस्कार है। जो स्थूल जगत्‌में अव्यक्तरूपसे विराजमान है, बड़े-बड़े महर्षि जिसके तत्त्वका अनुसंधान करते रहते हैं, जो सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञके रूप में बैठा हुआ है, उस क्षेत्ररूपी परमात्माको प्रणाम है। जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंके भेदसे त्रिविध प्रतीत होते हैं, गुणोंके कार्यभूत सोलह विकारोंसे आवृत होनेपर भी अपने स्वरूपमें ही स्थित हैं, सांख्यमतके अनुयायी जिन्हें उक्त सोलह विकारोंके साक्षी और उनसे निर्लिप्त सत्रहवाँ तत्त्व (पुरुष) मानते हैं, उन सांख्यरूप परमात्माको नमस्कार है। जो नींदको जीतकर प्राणोंपर विजय पा चुके हैं और इन्द्रियोंको अपने वशमें करके शुद्ध सत्त्वमें स्थित हो गये हैं, वे निरन्तर योगाभ्यासमें लगे हुए योगीजन समाधिमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उन योगरूप परमात्माको प्रणाम है। पाप और पुण्यका क्षय हो जानेपर पुनर्जन्मके भयसे मुक्त हुए शान्तचित्त संन्यासी जिन्हें प्राप्त करते हैं, उन मोक्षरूप परमेश्वरको नमस्कार है। सृष्टिके एक हजार युग बीतनेपर प्रचण्ड ज्वालाओंसे युक्त प्रलयकालीन अग्निका रूप धारण कर जो सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं, उन उग्ररूपधारी परमात्माको प्रणाम है। इस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका भक्षण करके जो इस जगत्‌को जलमय कर देते हैं और स्वयं बालकका रूप धारण कर अक्षयवटके पत्तेपर शयन करते हैं, उन मायामय बालमुकुन्दको नमस्कार है। जिसपर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्डकमल जिन पुण्डरीकाक्ष भगवान्‌की नाभिसे प्रकट हुआ है, उन कमलरूपधारी परमेश्वरको प्रणाम है।

जिनके हजारों मस्तक हैं, जो अन्तर्यामीरूपसे सबके भीतर विराजमान हैं, जिनका स्वरूप किसी सीमामें आबद्ध नहीं है,

जो चारों समुद्रोंके मिलनेसे एकार्णव हो जानेपर योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं, उन योगनिद्रारूप भगवान्‌को नमस्कार है। जिनके मस्तकके बालोंकी जगह मेघ हैं, शरीरकी संधियोंमें नदियाँ हैं और उदरमें चारों समुद्र हैं, उन जलरूपी परमात्माको प्रणाम है। सृष्टि और प्रलयरूप समस्त विकार जिनसे उत्पन्न होते हैं और जिनमें ही सबका लय होता है, उन कारणरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जिन्हें कोई काम करनेमें रुकावट नहीं होती, जो धर्मका कार्य करने को सर्वथा उद्यत रहते हैं, तथा जो वैकुण्ठधामके स्वरूप हैं उस कार्यरूप भगवान को नमस्कार है। जो प्रत्येक युगमें योगमायाके बलसे अवतार धारण करते हैं और मास, ऋतु, अयन तथा वर्षोंके द्वारा सृष्टि और प्रलय करते रहते हैं, उन कालरूप परमात्माको प्रणाम है। ब्राह्मण जिनके मुख हैं, सम्पूर्ण क्षत्रिय-जाति भुजा है, वैश्य जंघा एवं उदर हैं और शूद्र जिनके चरणोंके आश्रित हैं, उन चातुर्वर्ण्यरूप परमेश्वरको नमस्कार है। अग्नि जिनका मुख है, स्वर्ग मस्तक है, आकाश नाभि है, पृथ्वी पैर है, सूर्य नेत्र हैं और दिशाएँ कान हैं, उन लोकरूप परमात्माको प्रणाम है।

जो कालसे परे हैं, यज्ञसे भी परे हैं और परेसे भी अत्यन्त परे हैं, जो सम्पूर्ण विश्वके आदि हैं, किंतु जिनका आदि कोई भी नहीं है, उन विश्वात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। वैशेषिक दर्शनमें बताये हुए रूप, रस आदि गुणोंके द्वारा आकृष्ट हो जो लोग विषयोंके सेवनमें प्रवृत्त हो रहे हैं, उनकी उन विषयोंकी आसक्तिसे जो रक्षा करनेवाले हैं, उन रक्षकरूप परमात्माको प्रणाम है। जो अन्न-जलरूपी ईंधनको पाकर शरीरके भीतर रस और प्राण-शक्तिको बढ़ाते तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करते हैं, उन प्राणात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य-चार प्रकारके अन्नोंका भोग लगाते हैं और स्वयं ही पेटके भीतर अग्निरूपमें स्थित भोजनको पचाते हैं, उन पाकरूप परमेश्वरको प्रणाम है। जिनका नरसिंह रूप दानवराज हिरण्यकशिपुका अन्त करनेवाला था, उस समय जिनके नेत्र और कंधेके बाल पीले दिखायी पड़ते थे, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और नख ही जिनके आयुध थे, उन दर्परूपधारी भगवान् नरसिंहको प्रणाम है। जिन्हें न देवता, न गन्धर्व न दैत्य और न दानव ही ठीक-ठीक जान पाते हैं, उन सूक्ष्मस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो सर्वव्यापक भगवान् श्रीमान् अनन्तनामक शेषनागके रूपमें रसातलमें रहकर सम्पूर्ण जगत्‌को अपने मस्तकपर धारण करते हैं, उन वीर्यरूप परमेश्वरको प्रणाम है। जो इस सृष्टि-परम्पराकी रक्षाके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंको स्नेहपाशमें बाँधकर मोहमें डाले रखते हैं, उन मोहरूप भगवान्‌को नमस्कार है। अन्नमयादि पाँच कोषोंमें स्थित आन्तरतम आत्माका ज्ञान होनेके पश्चात् विशुद्ध बोधके द्वारा विद्वान पुरुष जिन्हें प्राप्त करते हैं, उन ज्ञानस्वरूप परब्रह्मको प्रणाम है।

जिनका स्वरूप किसी प्रमाणका विषय नहीं है, जिनके बुद्धिरूपी नेत्र सब ओर व्याप्त हो रहे हैं तथा जिनके भीतर अनन्त विषयोंका समावेश है, उन दिव्यात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जो जटा और दण्ड धारण करते हैं, लम्बोदर शरीरवाले हैं तथा जिनका कमण्डलु ही तूणीरका काम देता है, उन ब्रह्माजीके रूपमें भगवान्‌को प्रणाम है। जो त्रिशूल धारण करनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो महात्मा हैं तथा जिन्होंने अपने शरीरपर विभूति रमा रक्खी है, उन रुद्ररूप परमेश्वरको नमस्कार है। जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट और शरीरपर सर्पका यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है, जो अपने हाथमें पिनाक और त्रिशूल धारण करते हैं, उन उग्ररूपधारी भगवान् शंकरको प्रणाम है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा और उनकी जन्म-मृत्युके कारण हैं, जिनमें क्रोध, द्रोह और मोहका सर्वथा अभाव है, उन शान्तात्मा परमेश्वरको नमस्कार है। जिनके भीतर सब कुछ रहता है, जिनसे सब उत्पन्न होता है, जो स्वयं ही सर्वस्वरूप हैं, सब ओर व्यापक हो रहे हैं और सर्वमय हैं, उन सर्वात्माको प्रणाम है।

इस विश्वकी रचना करनेवाले परमेश्वर। आपको प्रणाम है। विश्वके आत्मा और विश्वकी उत्पत्तिके स्थानभूत जगदीश्वर।

आपको नमस्कार है। आप पाँचों भूतोंसे परे हैं और सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये मोक्षस्वरूप ब्रह्म हैं। तीनों लोकोंमें व्याप्त हुए आपको नमस्कार है, त्रिभुवनसे परे रहनेवाले आपको प्रणाम है, सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक आप प्रभुको नमस्कार है। आप सब पदार्थोंसे पूर्ण भंडार हैं। संसारकी उत्पत्ति करनेवाले अविनाशी भगवान् विष्णु। आपको नमस्कार है। हृषीकेश। आप सबके जन्मदाता और संहारकर्ता हैं। आप किसीसे पराजित नहीं होते। मैं तीनों लोकोंमें आपके दिव्य जन्म-कर्मका रहस्य नहीं जान पाता; मैं तो तत्त्वदृष्टिसे आपका जो सनातन रूप है, उसीकी ओर लक्ष्य रखता हूँ। स्वर्गलोक आपके मस्तकसे, पृथ्वीदेवी आपके पैरोंसे और तीनों लोक आपके तीन पगोंसे व्याप्त हैं, आप सनातन पुरुष हैं। दिशाएँ आपकी भुजाएँ, सूर्य आपके नेत्र और प्रजापति शुक्राचार्य आपके वीर्य हैं; आपने ही अत्यन्त तेजस्वी वायुके रूपसे ऊपरके सातों लोकोंको व्याप्त कर रक्खा है। जिनकी कान्ति अलसीके फूलकीतरह साँवली है, शरीरपर पीताम्बर शोभा देता है, जो अपने स्वरूपसे कभी च्युत नहीं होते, उन भगवान् गोविन्दको जो लोग नमस्कार करते हैं, उन्हें कभी भय नहीं होता। श्रीकृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला होता है। इसके सिवा प्रणाममें एक विशेषता है- दस अश्वमेध करनेवालेका तो पुन: इस संसारमें जन्म होता है, किंतु श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला मनुष्य फिर भव-बन्धनमें नहीं पड़ता। जिन्होंने श्रीकृष्ण-भजनका ही व्रत ले रक्खा है, जो श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करते हुए ही रातको सोते हैं और उन्हींका स्मरण करते हुए सबेरे उठते हैं, वे श्रीकृष्णस्वरूप होकर उनमें इस तरह मिल जाते हैं, जैसे मन्त्र पढ़कर हवन किया हुआ घी अग्निमें मिल जाता है।

जो नरकके भयसे बचानेके लिये रक्षा-गृहका निर्माण करनेवाले और संसाररूपी सरिताकी भँवरसे पार उतारनेके लिये काठकी नावके समान हैं, उन भगवान विष्णुको नमस्कार है। जो ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, जिनसे समस्त विश्वका कल्याण होता है, उन सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् गोविन्दको प्रणाम है। हरि ये दो अक्षर दुर्गम पथमें संकटके समय प्राणोंके लिये राह-खर्चके समान हैं, संसाररूपी रोगसे छुटकारा दिलानेके लिये औषधके तुल्य हैं तथा सब प्रकारके दु:ख-शोकसे उद्धार करनेवाले हैं। जैसे सत्य विष्णुमय है, जैसे सारा संसार विष्णुमय है, जिस प्रकार सब कुछ विष्णुमय है, उस प्रकार इस सत्यके प्रभावसे मेरे सारे पाप नष्ट हो जायँ। देवताओंमें श्रेष्ठ कमलनयन श्रीकृष्ण। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ और अभीष्ट गतिको प्राप्त करना चाहता हूँ; जिसमें मेरा कल्याण हो, वह आप ही सोचिये। जो विद्या और तपके जन्मस्थान हैं, जिनको दूसरा कोई जन्म देनेवाला नहीं है, उन भगवान् विष्णुका मैंने इस प्रकार वाणीरूप यज्ञसे पूजन किया है। इससे वे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों। नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तप हैं, नारायण ही सबसे बड़े देवता हैं और भगवान नारायण ही सदा सब कुछ हैं।

भीष्मने श्रीकृष्णसे कहा, कृष्ण अब आप मेरे नेत्रोंके सम्मुख खड़े रहें। मैं आपके सुप्रसन्न श्रीमुख तथा इस चतुर्भुज श्रीविग्रहका दर्शन करते हुए देहत्याग करना चाहता हूँ। युधिष्ठिरको उनके भाइयोंके साथ फिरसे आश्वासन दिया और तब एकाग्र मनसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

सबको अपना आराध्य रूप ही प्रिय होता है। अन्तिम समय उस आराध्य रूपमें ही चित्तका लगाना श्रेयस्कर है। भीष्मके सम्मुख स्वस्थ, सुप्रसन्न श्रीकृष्ण खड़े थे। नेत्रोंसे उनका दर्शन करते हुए भी भीष्मका चित्त श्रीकृष्णके उस रूपमें तन्मय हो गया जो उनका चिन्त्य-आराध्य रूप था। भीष्मकी प्रेम-भरी वाणीका स्पष्ट स्वर गूँजने लगा।

भगवन्। अपने सुखके लिए जब आप क्रीड़ा करनेकी इच्छासे प्रकृतिकी ओर देखते है, तब यह संसारका प्रवाह आरम्भ होता है। इसमें सात्वत-शिरोमणि होकर अवतीर्ण आप भूमामें समस्त तृष्णाओंको त्यागकर मेरी बुद्धि ऐसी ही लगी रहे।

त्रिभुवनसुन्दर, तमाल-नीलवर्ण, रविरश्मि-उज्ज्वल, ज्योतिर्मय, पीताम्बर-परिधान, अलकोंसे आवृत अब्जानन आप अर्जुनके सखामें मेरी अव्याहत प्रीति बनी रहे। युद्धभूमिमें अश्वोंके खुरोंकी उड़ी धूलिसे आच्छन्न अलकें जिनके स्वेदसुशोभित श्रीमुखके चारों ओर छायी हैं, मेरे तीक्ष्ण शरोंसे बराबर भिन्न होते त्वचावाले, कवचधारी वे श्रीकृष्ण मेरी आत्मा हैं। अपने सखा अर्जुनकी बात सुनकर अपने और शत्रु-पक्षकी सेनाके मध्य रथ लाकर खड़ा करके जो अपनी आँखोंसे ही शत्रु-सैनिकोंकी आयुका अपहरण कर रहे हैं, उन पार्थ-सखामें मेरी प्रीति अविचल हो।

सम्मुख समुपस्थित सेनाको देखकर स्वजनोंके संहारकी आशंकासे समरमें दोष-दृष्टि करके विमुख होते सखाकी कुबुद्धिका जिन्होंने अध्यात्मज्ञानसे अपहरण कर लिया, वे परमपुरुष मेरे रहें।

अपनी मर्यादा मिटाकर, मेरी प्रतिज्ञा सत्य करनेके लिये रथसे कूदकर चक्र उठाये जैसे सिंह हाथीको मारने दौड़े, वैसे मेरी ओर दौड़ते, उत्तरीय-रहित श्रीकृष्णके वे दौड़ते चरण मेरे चित्तमें स्थिर रहें। अत्यन्त तीक्ष्ण शराघातसे कवच कट गया था। सम्पूर्ण श्रीविग्रह क्षतोंसे भर गया था। मुझ आततायीको ऐसी अवस्थामें मार देनेको आवेशमें भरे दौड़े आते भगवान मुकुन्द मेरी गति हैं।

विजयके रथके सारथी बने, करोंमें रथ-रश्मि तथा चाबुक लिए वह दर्शनीय शोभा देखते जो भी मारे गये, वे सब इनके स्वरूपको प्राप्त हुए, मुझ मरणासन्नकी भी इन्हींमें प्रीति हो। इनकी ललित गति, मन्द मुस्कान, प्रणय-भरी दृष्टिसे अत्यन्त सम्मानिता गोपियाँ उन्मत्तके समान इनकी लीलाओंका अनुकरण करती हुई इनमें तन्मय हो गयीं। समस्त मुनिगण एवं नृप-श्रेष्ठ युधिष्ठिरके राजसूयमें एकत्र थे। उनमें जिन्होंने अग्रपूजा स्वीकार की- वे साक्षात् मेरे नेत्रोंके सम्मुख ये परम दर्शनीय आत्मा उपस्थित हैं। प्रत्येक नेत्रमें जैसे एक ही सूर्य नेत्राधिष्ठाता है, वैसे ही प्रत्येक देहधारीके हृदयमें अधिष्ठित पृथक-पृथक देही रूपसे प्रतीयमान इन एक ही पुरुषोत्तममें सम्यक् अवस्थिति प्राप्त करके मेरी भेद-दृष्टि-मोह-अविद्या नष्ट हो गयी।

भीष्म भगवान श्रीकृष्णसे बोले- भगवन्। आप देवताओंके भी देवता हैं। देवता और असुर सभी आपके चरणोंमें शीश झुकाते हैं। अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले भगवान वामन। आपको प्रणाम है। आप शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले हैं, वासुदेव, हिरण्यात्मा, पुरुष, सविता, विराट, अनुरूप जीव और सनातन परमात्मा भी आप ही हैं। कमलके समान नेत्रोंवाले पुरुषोत्तम। आप मेरा उद्धार करें। श्रीकृष्ण अब आप मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये और सदा आपकी शरणमें रहनेवाले इन पाण्डु-पुत्रोंकी रक्षा करते रहिये। मैंने दुर्बुद्धि दुर्योधनको यह कहकर समझाया था कि जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है उसी पक्षकी जीत होनी निश्चित है, इसलिये पुत्र दुर्योधन। भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे तुम पाण्डवोंके साथ संधि कर लो, यह संधिके लिये बड़ा अच्छा अवसर हाथ आया है। इस प्रकार बार-बार कहनेपर भी उस मूर्खने मेरी बात नहीं मानी और सारी पृथ्वीके वीरोंका नाश कराकर अन्तमें वह स्वयं भी कालके गालमें चला गया। भगवन्। मैं आपको जानता हूँ। आप वे ही पुरातन ऋषि नारायण हैं, जो नरके साथ चिरकालतक बदरिकाश्रममें निवास करते रहे हैं। देवर्षि नारद और महातपस्वी व्यासजीने भी मुझसे कहा था कि ये श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् भगवान नारायण और नर हैं, जो मानव-शरीरमें अवतीर्ण हुए हैं। श्रीकृष्ण। अब आप आज्ञा दीजिये, मैं इस शरीरका परित्याग करूँगा। आपकी आज्ञा मिलनेपर मुझे परमगतिकी प्राप्ति होगी।

भीष्मने पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र आदि सभी सुहृदोंसे कहा- अब मैं प्राणोंका त्याग करना चाहता हूँ, तुम सब लोग मुझे इसके लिये आज्ञा दो। तुम्हें सदा सत्यधर्मके पालनका प्रयत्न करते रहना चाहिये; क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा बल है। तुम लोगोंको सबके साथ कोमलताका बर्ताव करना, सदा अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति करना तथा धर्मनिष्ठ एवं

तपस्वी होना चाहिये। यह कहकर भीष्मने अपने सब सुहृदोंको गलेसे लगाया और युधिष्ठिरसे पुन: इस प्रकार कहा- राजन्। तुम सामान्यत: सभी ब्राह्मणोंकी, विशेषत: विद्वानोंकी और आचार्य तथा ऋत्विजोंकी सदा ही पूजा करते रहना।

अब मैं थक गया हूं वासुदेव। वैसे भी मुझे अब और कुछ नहीं कहना। हे पुत्र अर्जुन अब तो मेरे माथे पर मेरे देश की मिट्टी का तिलक लगा दे। कृष्ण बोले, यह सौभाग्य मुझे प्राप्त करने दीजिये गंगापुत्र। भीष्म बोले, जी तो मेरा भी यही चाहता था देवकीनन्दन पर मैं तुम्हे आदेश तो नहीं दे सकता। कृष्ण ने मातृभूमि की मिट्टी से तिलक किया। भीष्म बोले बस अब जाने की आज्ञा दो वासुदेव। हे मातृभूमि अब मुझे अपने माताश्री के पास जाने की आज्ञा दीजिये, हे आकाश मेरे देश को धूप, छांव, वर्षा की कभी कमी ना रहे, उसके वृक्ष सदा फलों से लदे रहे, उसके कमल खिले रहे, उसकी नवमल्लिकायें अपने सुगन्ध के बिछौनों पर बैठी रहे, उसके जलाशय स्वस्थ और निरन्तर बहते रहे, उसकी राजनीति के सूर्य को कभी ग्रहण नहीं लगे। और यह कहकर पितामह भीष्म ने प्राणों का त्याग किया। अर्जुन डाढ मारकर विलाप करने लगा।

यह स्तुति समाप्त करके भीष्मकी वाणी शान्त हो गयी। उनका श्वास भला शरीरसे बाहर कहाँ जाता। वे तो सर्वात्मा, सर्वव्यापक श्रीकृष्णमें लीन हो चुके थे। कुछ देर श्रीकृष्ण वैसे ही उनके समीप स्थिर खड़े रहे। जैसे वे भी भीष्ममें समाहित हो रहे हों।

राजन्। आपके पितामह अब नहीं रहे। कुछ देरमें भीष्मके समीपसे हटने पर श्रीकृष्णने कहा। इसका अनुमान सबने कर लिया था; क्योंकि गगनमें देववाद्य बजने लगे थे और आकाशसे अनवरत भीष्मके शरीर पर सुरोंने सुमनवृष्टि की थी। युधिष्ठिर अत्यन्त शोक-विह्वल हो गये। उन्हें भगवान व्यासने आश्वासन दिया। श्रीकृष्णने समझाया। ऋषि-मुनिगण श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर वहाँसे अपने आश्रमोंको चले गये।

जिंदगी से हजारों झमेला जुडा, हा झमेला जुडा, हंस जब भी उड़ा वो अकेला उड़ा।
ना वो राजा रहा ना वो राणी रही, ना बुढ़ापा रहा ना जवानी रही, अंत में लखपति ना रहा।
राज सारे के सारे धरे रह गये, कोठी बंगले खड़े की खड़े रह गये।
पत्नी से पति का ना भी जोड़ा रहा, हंस जब भी उड़ा वो अकेला उड़ा।

फिर पाण्डवोंने विधिपूर्वक समयोचित पितृमेध किया और भीष्मके शवका संस्कार करते हुए अग्निमें बहुत-सी आहुतियाँ डालीं। उस समय सामवेदके विद्वान ब्राह्मण सामगान करने लगे और धृतराष्ट्रने उनकी चितामें आग लगा दी। फिर धृतराष्ट्र आदि सब कौरवोंने उस जलती हुई चिताकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार भीष्मका दाह-संस्कार करके समस्त कौरव अपने कुलकी स्त्रियोंको साथ लेकर ऋषि-मुनियोंसे सेवित परत पवित्र भगीरथीके तटपर गये। उनके साथ महर्षि व्यास, देवर्षि नारद, असित देवल, भगवान श्रीकृष्ण तथा नगरनिवासी मनुष्य भी थे। वहाँ पहुँचकर सब लोगोंने विधिपूर्वक महात्मा भीष्मको जलाञ्जलि दी।

ऐसा जीवन और ऐसा मरण संसारमें सदा दुर्लभ रहेगा, जैसा भीष्मने पाया। श्रीकृष्णने स्वयं अपने करोंसे उनके लिए वहीं परमपुण्यसलिला ओघवतीके पुलिन पर चिता सजायी और उनके शरीरको अन्तिम स्नान करानेमें पाण्डवोंके साथ सम्मिलित हुए। भीष्मकी उत्तर क्रिया युधिष्ठिरने सविधि सम्पन्न की; किंतु श्रीकृष्णने भीष्मके निमित्त तिलाञ्जलि दी- उन श्रीकृष्णने, जिन्होंने अपने कुलमें किसीको यह सम्मान नहीं दिया। भीष्मके लिए दी गयी वह सत्य समल्पकी जलांजलि- वह तो सदाके लिए सबके श्राद्ध की विधि बन गयी। किसीका भी श्राद्ध भीष्मको अञ्जलि दिये बिना आज भी पूरा नहीं हुआ करता।

भीष्म को जलांजलि देनेका कार्य पूर्ण होनेपर उसी समय भगवती गंगा जलके ऊपर प्रकट हो गई और शोक विह्वल होकर कहने लगी, भीष्म राजोचित सदाचारसे सम्पन्न थे, उनकी बुद्धि बड़ी पवित्र थी और उनका जन्म भी बहुत उत्तम कुलमें हुआ

था। वे कुरुकुलके वृद्ध पुरुषोंका सत्कार करनेवाले और अपने पिताके बड़े भक्त थे। उन्होंने अपने जीवनमें महान व्रतका पालन किया था। जमदग्निकुमार परशुरामजी भी अपने दिव्य अस्त्रोंके द्वारा उन्हें परास्त नहीं कर सके थे; किंतु वे ही महापराक्रमी भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे गये, यह कितने दु:खकी बात है। अवश्य ही मेरा हृदय पत्थरका बना हुआ है, तभी तो अपने प्रिय पुत्रको जीवित न देखकर भी यह फट नहीं जाता। काशीपुरीके स्वयंवरमें समस्त क्षत्रिय राजा एकत्र हुए थे; किंतु भीष्मने अकेले ही उन सबको जीतकर काशिराजकी कन्याओंका अपहरण किया था। बलमें जिनकी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कोई वीर नहीं है, उन्हींको शिखण्डीके हाथसे मारे गये सुनकर आज मेरी छाती क्यों नहीं फट जाती? जिन्होंने कुरुक्षेत्रके मैदानमें युद्ध करके परशुरामको भी अनायास ही कष्टमें डाल दिया था, उन्हींकी मृत्यु शिखण्डीके हाथ से हुई।

ऐसी बातें कहकर जब गङ्गाजी बहुत विलाप करने लगीं तो भगवान श्रीकृष्णने उन्हें समझाते हुए कहा- कल्याणी। धैर्य धारण करो, शोक त्याग दो। तुम्हारे पुत्र भीष्म अत्यन्त उत्तम लोकमें गये हैं, इसमें तनिक भी संदेह न करो। वे महातेजस्वी वसु थे। वसिष्ठ मुनिके शापसे उन्हें मनुष्य-योनिमें जन्म लेना पड़ा था। उनके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। उन्होंने समराङ्गणमें क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध किया था। वे अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं; शिखण्डीके हाथसे उनकी मृत्यु नहीं हुई है। देवि। तुम्हारे पुत्र कुरुश्रेष्ठ भीष्म जब हाथमें धनुष-बाण लिये रहते, उस समय साक्षात् इन्द्र भी उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। वे तो अपनी इच्छासे ही शरीर त्यागकर दिव्य लोकमें गये हैं। सम्पूर्ण देवता मिलकर भी युद्धमें उन्हें मारनेकी शक्ति नहीं रखते थे, इसलिये तुम कुरुनन्दन भीष्मके लिये शोक न करो। वे वसुओंके स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, उनकी चिन्ता छोड़ दो। वैशम्पायन बोले, राजन जनमेजय। इसप्रकार गंगा शोक छोड़कर पानीमें चली गयी और यहीं पर महाभारत का पर्व समाप्त हुआ।

कृष्ण बोले, धन्य है वे आंखे जो नश्वर के अनश्वर होने का दृश्य देख रही है।

महाभारत का युद्ध ना हो, न हो अन्याय की कोई बात।
चलो हम हो ले उसके साथ, करे कृष्ण के जैसी बात।
यह कर्म है गीता का उपदेश, महाभारत है शान्ति सन्देश।

महर्षि वेदव्यास का काव्य आज समाप्त हुआ इसीलिये हे मानव तेरे वर्तमान से यह समय की अन्तिम भेंट है अब तू इस अमर कथा की मशाल लेकर अपने भीतर और बाहर के अन्धकार से जुझ क्योंकि यह कथा तेरा कवच भी है और शस्त्र भी। इस कथा की मशाल अपने युग के धृतराष्ट्रों, दुर्योधनों और शकुनियों को पहचानने में तेरी सहायता करेगी। इस मशाल के प्रकाश में तू यह देख सकेगा कि अन्याय आज भी उतना ही है जितना प्राचीन हस्तिनापुर में था। तू देख सकेगा कि धर्म ने अधर्म की चादर ओढ रखी है और तेरे द्रोणाचार्य भी अधर्म और अन्याय के शिबिर में बैठे एकलव्यों के अंगूठे काट रहे है और उनका मौन साक्षी है कि वो द्रौपदी वस्त्राहरण में भागीदार है। हे मानव तू इनसे हटकर अपना रास्ता बना नहीं तो ये सूर्यपुत्र कर्ण की भांति तुझे ही अपने अंधकार में घसीट लेंगे। तू प्रकाश का उत्तराधिकारी बन, तू न्याय का उत्तराधिकारी बन, तू धर्म का उत्तराधिकारी बन और अपने भीतर के कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बना। यही मोक्ष है।

जो कुछ है संसार में, जो कुछ है संसार, इसी कथा में कह दिया वेदव्यास ने सार।
याद रखे हम आप सब कर्मों के परिणाम, विदा ले रहे आज हम करते हुये प्रणाम।

इति अनुशासन पर्व

*** अगर पैसा बनाना ही आदमी का मकसद हो जाये तो उसमें इन्सानी जज्बा कम हो जाता है।**

आश्वमेधिक पर्व

* विषय उपक्रम *

१)	अनुगीता	७४६
२)	श्रीकृष्णका द्वारिकागमन	७६७
३)	युधिष्ठिरका अश्वमेध-यज्ञ	७६९
३)	शूरभक्त सुधन्वा	७७७
४)	श्रीकृष्ण अर्जुन युद्ध	७८४
५)	कृष्णका युधिष्ठिरको उपदेश	७८८

* व्यक्ति स्वार्थ की अपेक्षा समूह स्वार्थ श्रेयस्कर है। भारत के इतिहास में अब तक गणमत ही ग्राह्य होता आया है।

* नारी जब जननी बन जाती है, तो उदार और कोमल हो जाती है।

* चिकित्सा से सुश्रूषा ज्यादा प्रभावी होगी।

* शरीर अस्वस्थ होने पर भी मन स्वस्थ रह सकता है, पर मन अस्वस्थ होने पर शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता।

* पति-पत्नी के बीच गुस्से और मान का अर्थ प्रेम-शून्यता नहीं होता।

* गार्हस्थ जीवन में भी संयम और नियम की जरूरत पड़ती है।

* जीवन का पल-पल मूल्यवान है। परन्तु यौवन का हर पल अमूल्य।

* पुरुष हर तरह की विफलता सह सकता है, पर नारी द्वारा उपेक्षा नहीं सह सकता।

* जोर कर किसी से राजसिंहासन लिया जा सकता है, पर हृदय सिंहासन जोर-जबरदस्ती से नहीं मिलता।

* आदमी कितना महान होता है। खुद को न पहचान वह स्वयं को कितना छोटा बना लेता है?

आश्वमेधिक पर्व

भीष्मकी मृत्युके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर उनको जलांजलि करके शोकसे व्याकुल हो रहे थे। तब भगवान श्रीकृष्णने कहा, राजन् यदि मरे हुए प्राणीके लिये अपने मन में अधिक शोक करता है तो उसके परलोकवासी पूर्वज आदि बहुत संतप्त होते हैं। इसलिये आप यज्ञ और श्राद्ध करके अपने पितरोंको तृप्त कीजिये। अतिथियोंको अन्न और जल देकर उनकी इच्छाएं पूर्ण करके संतुष्ट कीजिये। आपने भीष्म, व्यास, नारद और विदुरके मुँह से राजधर्म और नीति का श्रवण किया है। अत: आपको मूढ़ पुरुषोंके समान शोक नहीं करना चाहिये और अपने राज्यका भार सँभालें। जैसी होनहार थी वैसा ही सब कुछ हुआ है। जो युद्धमें मारे गये है उन्हें तो आप फिरसे देख नहीं सकते। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब युधिष्ठिर बोले, गोविन्द। आपका मेरे ऊपर जो प्रेम है, आप स्नेह और सौहार्दवश सदा ही मुझपर कृपा करते आये हैं। प्रसन्नतापूर्वक आप मुझे तपोवन में जानेकी आज्ञा दें। मैंने पितामह भीष्म और कर्णका वध करवाया है। मुझे अपने इस क्रूरतापूर्ण पापसे छुटकारा मिले, जिस कामके करनेसे मेरा चित्त शुद्ध हो, वही उपाय कीजिये।

तब महर्षि व्यास बोले, तुम्हारी बुद्धि अभी शुद्ध नहीं हुई। हम लोगोंका बार-बार समझाना व्यर्थ सिद्ध हुआ। मैंने तुम्हें सम्पूर्ण मोक्ष धर्मोंका वर्णन बताया। तुम सम्पूर्ण राजधर्म और दानधर्म जान चुके हो। तुम धर्मोंके सम्पूर्ण ज्ञाता और शास्त्रोंके विद्वान हो। तो भी अज्ञानवश बार-बार मोह में पड़ रहे हो। तुम अपने आपको युद्धरूप पापकर्मको जड़ मानते हो। अब मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूँ जिससे उस पाप का नाश हो। जो मनुष्य पाप करते है, वे तपस्या, यज्ञ और दानके द्वारा अपना कल्याण करते है इन्हीं कर्मोंसे पापियोंकी शुद्धि होती है। इसलिये तुम अश्वमेध यज्ञ करो।

युधिष्ठिर बोले, महर्षि। अपने जातिभाइयोंका महान संहार करानेके बाद अब मेरा राजकोष खाली हो गया है। अब मैं दान देने में असमर्थ हूँ। दुर्योधन के अपराध से यह पृथ्वी व अधिकांश राजा नष्ट हो गये। दुर्योधन ने धनके लोभसे समस्त भूमंडलका संहार कराया। इसलिये आप ही कोई उपाय बताइये। तब महर्षि व्यास बोले, धर्मराज। तुम्हारा खजाना इतना खाली हो गया तो भी यह बहुत शीघ्र भर जायगा। प्राचीन समयमें महात्मा मरूत्तने बड़ा भारी यज्ञ करके उसमें ब्राह्मणोंको बहुत-सा सुवर्ण दान किया। वह इतना अधिक था कि ब्राह्मणलोग उसे उठा न सके और वहीं छोड़कर चले गये। यह सारा धन आज भी हिमालय पर्वतपर पड़ा है। तुम उसे मँगवा लो, वह तुम्हारे यज्ञके लिये पर्याप्त होगा। युधिष्ठिरने पूछा, महर्षि। मरूतको यह धन किस प्रकार प्राप्त हुआ।

तब व्यास बोले, पुत्र। सत्ययुगमें राजदण्ड धारण करनेवाले वैवस्वत मनु हुए। उन्हींके पुत्र इक्ष्वाकु हुये। जो बड़े धार्मिक थे। उन्हें इस पृथ्वीका राज्य प्राप्त हुआ। उन्हींके पुत्र सुवर्चा हुए। वे सदा धर्मका पालन किया करते थे। यही राजा करन्धमके नामसे विख्यात हुए। उनका पुत्र अविक्षित हुआ। वह सदा यज्ञ करनेवाला, धर्मपरायण, कान्तिमान और जितेन्द्रिय था। वह पृथ्वीके समान क्षमाशील, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान और हिमालय के समान स्थिर रहनेवाला था। उसने विधि-विधानसे सौ बार अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और अङ्गिरा मुनिने उनके यज्ञ करवायें। उन्हींके पुत्र महाराज मरूत्त हुए। जिन्हें धर्मके तत्त्वका ज्ञान था। वे महान यशस्वी चक्रवर्ती राजा थे। वे दूसरे विष्णुके समान थे। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था। उन्होंने यज्ञ करनेकी इच्छासे स्वर्णके हजारों बर्तन बनवायें। महर्षि अंगिरा के दो पुत्र हुए- बृहस्पति और संवर्त मुनि। दोनों में आपसमें बड़ी लाग-डाँट थी। बड़े भाई बृहस्पति के अनुचित बर्ताव से तंग आकर संवर्त धन, दौलत का पूजन आदि क्रम बृहस्पतिने अपने अधिकार में कर लिया। मरुत्तने पहले बृहस्पतिको पूछा यज्ञ कराने के लिये पर वे मरुत्तको अपना यजमान नहीं बनाये। मैं इन्द्रका यजमान हूँ इसलिये मैं मनुष्योंका यज्ञ नहीं कराऊँगा और इन्द्रने भी मना किया है कि आप मरुत्तका यज्ञ न कराइये।

अब मैं संवर्त के पास यज्ञ कराना चाहता हूँ। मेरा बृहस्पतिके पास जानेका विचार नहीं है। तब संवर्त मुनि बोले, मैं तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा और इन्द्र, बृहस्पति दोनों ही कुपित होकर मेरे साथ द्वेष करेंगे। मरुत्तने कहा, ब्रह्मन। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि मैं आपका साथ नहीं छोड़ूँगा और यदि मैं आपका साथ छोड़ दूँ तो मुझे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति नहीं हो। संवर्त ने कहा, मेरे मन में तुम्हारा यज्ञ करानेकी इच्छा है इसलिये तुम्हें अक्षय धन की प्राप्ति का उपाय बताऊँगा। उस धनसे तुम गन्धर्वोंसहित देवता और इन्द्रको नीचा दिखा सकते हो। मैं तुम्हारा प्रिय कराना चाहता हूँ और तुम्हें इन्द्रके समान बिठाऊँगा। तुम हिमालयके पृष्ठभागमें जाओ वहाँ मुञ्जवान नामक एक पर्वत है। वहाँ भगवान शंकर तपस्या करते है। उस पर्वत पर रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेदेव, वसुगण, यमराज, वरुण, अनुचरोंसहित कुबेर, भूत, पिशाच, अश्विनीकुमार, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य, मरुत और यातुधानगण सब ओरसे घेरकर उमापति महादेवजीकी आराधना करते है। उनका विग्रह तेजषे जाज्वल्यमान रहता है। संसारका कोई भी प्राणी अपने चर्म-चक्षुओंसे उनके स्वरूपको नहीं देख सकता। उस पर्वतके ऊपर किसीको भूख और प्यास नहीं सताती, बुढ़ापा और मृत्युका प्रवेश नहीं होता दूसरा कोई भय भी नहीं रहता। तुम वहाँ भगवान शंकरको नमस्कार करके फिर उनकी इसप्रकार स्तुति करो।

हे रुद्र (दु:खके कारणको दूर करनेवाले), शितिकण्ठ, (गलेमें नील चिन्ह धारण करनेवाले), पुरुष (अन्तर्यामी), सुवर्चा (अत्यन्त तेजस्वी), कपर्दी (जटाजूटधारी), कराल (भयंकर रूपवाले), हर्यक्ष (हरे नेत्रोंवाले), वरद (भक्तोंको अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले), त्र्यक्ष (त्रिनेत्रधार), पूषाके दाँत उखाड़नेवाले, वामन, शिव, याम्य (यमराजके गणस्वरूप), अव्यक्तरूप, सद्वृत्त (सदाचारी), शंकर, क्षेम्य (कल्याणकारी), हरिकेश (भूरे केशोंवाले), स्थाणु (स्थिर), पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, क्रुद्ध, उत्तरण (संसार-सागरसे पार उतारनेवाले), भास्कर (सूर्यरूप), सुतीर्थ (पवित्र तीर्थरूप), देवदेव, रंहस (वेगवान), उष्णीषी (सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले), सुवक्त्र (सुन्दर मुखवाले), सहस्त्राक्ष (हजारों नेत्रोंवाले), मीढ़वान् (कामपूरक अथवा नन्दिकेश्वर वृषभ), गिरिश (पर्वतपर शयन करनेवाले), प्रशान्त, यति (संयमी), चीरवासा (चीरवस्त्र धारण करनेवाले), बिल्वदण्ड (बेलका डंडा धारण करनेवाले), सिद्ध सर्वदण्डधर (सबको दण्ड देनेवाले), मृगव्याध (आर्द्रा नक्षत्ररूप), महान्, धन्वी (पिनाकनामक धनुष धारण करनेवाले), भव (संसारकी उत्पत्ति करनेवाले), वर (श्रेष्ठ), सोमवक्त्र (चन्द्रमाके समान मुखवाले), सिद्धमन्त्र (जिन्होंने सभी मन्त्र सिद्ध कर लिये हैं, ऐसे), चक्षुष (नेत्ररूप), हिरण्यबाहु (सुवर्णके समान सुन्दर भुजाओंवाले), उग्र (भयंकर), दिशाओंके पति, लेलिहान (अग्निरूपसे अपनी जिह्वाओंके द्वारा हविष्यका आस्वादन करनेवाले), गोष्ठ (गौ अथवा वाणीके निवास्थान), सिद्धमन्त्र, वृष्णि (कामनाओंकी वृद्धि करनेवाले), पशुपति, भूतपति, वृष, (धर्मस्वरूप), मातृभक्त, सेनानी (कार्तिकेयरूप), मध्यम, स्त्रुवहस्त (हाथमें स्त्रुवा ग्रहण करनेवाले ऋत्विजरूप), पति (सबका पालन करनेवाले), धन्वी, भार्गव, अज (जन्मरहित), कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, वैश्वानरमुख (अग्निरूप मुखवाले), महाद्युति, अनङ्ग (निराकार), सर्व, विशाम्पति (सबके स्वामी), विलोहित (रक्तवर्ण), दीप्त (तेजस्वी), दीप्ताक्ष (देदीप्यमान नेत्रोंवाले), महौजा (महाबली), वसुरेता (हिरण्यवीर्य अग्निरूप), सुवपुष (सुन्दर शरीरवाले), पृथु (स्थूल), कृत्तिवासा (मृगचर्म अथवा भोजपत्र धारण करनेवाले), कपालमाली (मुण्डमाला धारण करनेवाले), सुवर्णमुकुट, महादेव, कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप), त्र्यम्बक (त्रिनेत्रधारी), अनघ (निष्पाप), क्रोधन (दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले), अनृशंस (कोमल स्वभाववाले), मृदु, बाहुशाली, दण्डी, तत्पतपा (तपस्वी), अक्रूरकर्मा (कठोर कर्मसे दूर रहनेवाले), सहस्त्रशिरा (हजारों मस्तकवाले), सहस्त्रचरण, स्वधास्वरूप, बहुरूप और दंष्ट्री नाम धारण करनेवाले हैं। आपको मेरा प्रणाम है। इस प्रकार उन पिनाकधारी महादेव, महायोगी, अविनाशी, हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले, वरदायक, त्र्यम्बक, भुवनेश्वर, त्रिपुरासुरको मारनेवाले, त्रिनेत्रधारी, त्रिभुवनके स्वामी,

महान बलवान, सब जीवोंकी उत्पत्तिके कारण, सबको धारण करनेवाले, पृथ्वीका भार सँभालनेवाले, जगत्के शासक, कल्याणकारी, सर्वरूप, कल्याणस्वरूप, विश्वेश्वर, जगत्को उत्पन्न करनेवाले, पार्वतीकेपति, पशुओंके पालक, विश्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, दस भुजाधारी, अपनी ध्वजामें दिव्य वृषभका चिन्ह धारण करनेवाले, उग्र, स्थाणु, शिव, रुद्र, शर्व, गौरीश, ईश्वर, शितिकण्ठ, अजन्मा, शुक्र, पृथु, पृथुहर, वर, विश्वरूप, विरूपाक्ष, बहुरूप, उमापति, कामदेवको भस्म करनेवाले, हर, चतुर्मुख एवं शरणागतवत्सल महादेवजीको सिरसे प्रणाम करके उनके शरणापन्न हो जाना। राजन्। वे महान् देवता, महावेगवान और महामना हैं। उनके चरणोंमें मस्तक झुकानेसे तुम्हें सुवर्णकी प्राप्ति होगी।

संवर्तका यह वचन सुनकर राजा मरूत्तने वैसा ही किया। इसीसे वे यज्ञका सारा सम्भार अलौकिक रूपसे करने लगे। उधर बृहस्पतिने सुना कि राजा मरुत्तको देवताओंसे बढ़कर सम्पत्ति प्राप्त हुई है तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे चिंता में पड़ गये मेरा शत्रु संवर्त बहुत धनी हो जायगा। देवराज इन्द्रने जब सुना कि बृहस्पति अत्यन्त संतप्त हो रहे हैं तो वे देवताओंको बृहस्पतिके पास लेकर गये और पूछे, विप्रवर। आप को यह मानसिक और शारिरीक दु:ख कैसे प्राप्त हुआ। बृहस्पति बोले, इन्द्र। तुम जानते होंगे महाराज मरुत्त एक महान यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं और मेरा छोटा भाई संवर्त ही आचार्य होकर यज्ञ करायेंगे। इसलिये किसी तरह यह यज्ञ रुकना चाहिये। इन्द्रने कहा, गुरुदेव आप तो देवताओंके पुरोहित है, आपने जरा और मृत्यु दोनोंका जीत लिया है, फिर संवर्त आपका क्या बिगाड़ सकते है। बृहस्पति बोले, शत्रुओंकी समृद्धि ही दु:ख का कारण होती है। मेरा शत्रु संवर्त समृद्धिशाली होना चाहता है। तुम कोई न कोई उपाय करके संवर्त या राजा मरुत्तको बन्दी बना लो। यह सुनकर इन्द्रने अग्निदेवको बुलाया और कहा, तुम मरुत्त के पास जाओ और कहो कि बृहस्पतिही आपका यज्ञ करायेंगे और नहीं तो वे आपका अमंगल कर देंगे। वे अग्निदेव मरुत्तके पास गये। तब मरुत्तने संवर्तसे कहा, मुने। आश्चर्य की बात है अग्निदेव मूर्तिमान होकर मेरे पास आ रहे है। अग्नि उनके पास आये और बोले, देवराज इन्द्र बड़े सुखसे है और आपके साथ अटूट मैत्री करना चाहते है। सम्पूर्ण देवता भी उनके अधीन है। उन्होंने कहा है बृहस्पति आपके गुरु है, वे आपका यज्ञ करायेंगे और नही तो आपका अमंगल भी कर देंगे। मरुत्तने कहा, हे देव। मैंने यज्ञ करनेके लिये संवर्त के लिये वरण किया है। बृहस्पति तो देवराज इन्द्रके पुरोहित है। अग्निने कहा, यदि बृहस्पतिजी आपका यज्ञ करायेंगे तो इन्द्र बहुत प्रसन्न होंगे और देवलोकके भीतर जितने बड़े-बड़े लोक हैं, वे सब आपके लिये सुलभ हो जायँगे। दिव्यलोक, प्रजापतिलोक और देवताओंके राज्यपर भी आपका पूरा अधिकार हो जायगा।

संवर्तने कहा, मरुत्त। बृहस्पतिको कभी भी यज्ञ के लिये नहीं बुलाना नहीं तो मैं अपनी दारुण दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर दूँगा। तब अग्निने बृहस्पतिके सामने इन्द्रको पूरा संदेश दिया और मरुत्तने कहा है संवर्त ही मेरा यज्ञ करायेंगे। आपको तो राजा शर्यातिके यज्ञका स्मरण होगा कि क्रोधमें भरकर मुनि च्यवन ने अपने तेजके प्रभावसे अश्विनीकुमारोंको सोम-रसका पान कराया। उस समय आप अत्यन्त भयंकर वज्र लेकर मुनिके ऊपर प्रहार करने लगे। तो मुनिने कुपित होकर अपने तपोबलसे आपकी बाँहको स्तम्भित रोग (लकवा) से जकड़ लिया। फिर महर्षि की शरण से ही ठीक हो पाये। अत: उन्होंने जान लिया क्षात्रबलसे ब्रह्मबल ही तेज है। अब मैं ब्रह्मबल को अच्छी तरह जानता हूँ अतएव मुझे संवर्तके पास जानेका साहस नहीं होता। इन्द्र बोले कुछ भी हो मरुत्तके ऊपर वज्रका प्रहार करूँगा। और उन्होंने गन्धर्वराज धृतराष्ट्र को मरुत्तके पास जानेकी आज्ञा दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धृतराष्ट्र गन्धर्व मरुत्तके पास गये और इन्द्रका संदेश सुनाया। मरुत्तने कहा, गन्धर्वराज आप, इन्द्र, विश्वेदेव, वसु और अश्विनीकुमार भलीभांति इस बातको जानते है कि मित्रके साथ द्रोह करना ब्रह्महत्याके समान महान पाप लगता है। अत: मेरा यज्ञ तो संवर्त मुनि ही करायेंगे। धृतराष्ट्र गन्धर्वने कहा, इन्द्र आकाशमें गर्जना कर रहे हैं। उनके सिंहनाद से लगता है कि अब वे आपके ऊपर वज्र छोड़ना चाहते है; अत: आप अपनी

रक्षा कर लीजिये। तब मरुत्त संवर्त मुनिसे बोले, विप्रवर। मैं आपकी शरणमें हूँ मेरी रक्षा करें। यह वज्रधारी इन्द्र दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चले आ रहे हैं। संवर्त मुनि बोले, राजन्। इन्द्रसे भय मत करो। मैं स्तम्भिनी विद्याका प्रयोग करके तुम्हारे ऊपर आनेवाले भयंकर संकट को दूर कर देता हूँ। मैं अभी उन्हें स्तम्भित रोग देता हूँ ताकि वो वज्रका प्रहार ना कर सके। मैं अभी वायुका रूप धारण करके इन्द्रके वज्रको निष्फल कर दूँगा और इन्द्र लकवा रोग से पीड़ित हो जायगा। मरुत्तने कहा, ब्रह्मर्षे। आप कुछ ऐसा करे इन्द्र यहाँ आकर अपना भाग ग्रहण करे और सब देवता लोग सोमपान करें। तब संवर्तने यज्ञ कराना शुरू किया और अपने मन्त्रबल से समस्त देवताओंका आव्हान किया। इन्द्र भी सोमपानकी इच्छा से सब देवताओंको साथ लेकर मरुत्तके यज्ञशालामें पहुँचे। संवर्त मुनिने कहा, देवराज आपका स्वागत है। आपके आनेसे हमारे यज्ञ की शोभा बढ़ गयी है। अब यह सोमरस प्रस्तुत हैं। इसका पान कीजिये।

मरुत्तने कहा, हे देवेन्द्र। मेरा आपको प्रणाम है। आपके पधारनेसे मेरा यज्ञ और जीवन सफल हो गया। इन्द्रने कहा, यह संवर्त ही बृहस्पतिजीके छोटे भाई और तपस्या के धनी है। इनका तेज दुस्सह है। अब मेरा सारा क्रोध दूर हो गया है और इन्द्रने देवताओंको आज्ञा दी कि तुम सब यज्ञशालामें यज्ञको भलीभांति पूर्ण कराओ और मरुत्तके द्वारा हविष्य ग्रहण करो। तब महात्मा संवर्तने मन्त्रोंका उच्चारण किया और अग्निमें हविष्य का हवन किया। इसके बाद इन्द्र और अन्य देवताओंने सोमरस का पान किया। इससे सब देवताओंको तृप्ति और प्रसन्नता हुई। मरुत्तने सभी देवताओंको और ब्राह्मणोंको बहुत सा धन-धान्य दिया। ब्राह्मणोंसे धन ले जानेके पश्चात् जो धन बच गया उसे मरुत्तने एक स्थान पर एकत्रित कर दिया। युधिष्ठिर तुम उसी धन और सुवर्ण को मँगवाकर यज्ञके द्वारा देवताओंको तृप्त करो। महर्षि व्यासके वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने यज्ञ करनेका विचार किया।

भगवान श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिर को समझाना आरम्भ किया। कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली है। इस समय आपको अकेले में अपने मनके साथ युद्ध करना है। अपने कर्तव्य का पालन करते हुये योगके द्वारा मनको वशीभूत करके आप इस मायामय जगतको पार कर परम ब्रह्म को प्राप्त करे। समस्त प्राणी यों ही आते-जाते जन्मते-मरते रहते हैं। ऐसा निश्चय करके आप अपने पूर्वजोंका बर्ताव पालन करते हुये उचित रीतिसे राज्यका शासन कीजिये। धर्मराज बाह्य पदार्थोंका (राज्य आदि) त्याग करनेसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती। जो शारीरिक सुख विलासमें आसक्त है, जिसे धर्म और सुखकी प्राप्ति है वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो। मेरा है यह सब तो मृत्युको प्राप्त करानेवाले है। न मम् अर्थात मेरा नहीं है यह सनातन ब्रह्मके प्राप्तिका कारण है। ममता मृत्यु है और उसका त्याग अमृतत्व। चराचर जगत् प्राणियोंसहित समूची पृथ्वीको पाकर भी जिसकी उसमें ममता नहीं होती उस पुरुष की कोई हानि नहीं। किंतु वनमें रहकर भी फल-मूलोंसे जीवन निर्वाह करते हुये जिसकी द्रव्यमें ममता है वह तो मरा हुआ ही है। जो मायिक पदार्थोंसे ममत्वकी दृष्टिसे नहीं देखता, वह महान् भयसे छुटकारा पा जाता है। जिसका मन कामनाओंमें आसक्त है उसकी संसार में प्रतिष्ठा नहीं होती। समस्त कामनाएं मनसे ही प्रकट होती है। विद्वान पुरुष कामनाओंको दुःखका कारण जानकर उनका परित्याग कर देते हैं। योगी पुरुष अनेक जन्मोंके अभ्यास से योगको ही मोक्ष का मार्ग निश्चित करके कामनाओंका नाश करता है। वह दान, वेदाध्ययन, तप, वेदोक्त-कर्म, व्रत, यज्ञ, नियम और ध्यानयोग आदिसे कामनापूर्वक अनुष्ठान नहीं करता। और जिस क्रमसे वह कुछ कामना रखता है वह धर्म नहीं है। कामनाओंका निग्रह ही धर्म है और मोक्ष का बीज है। कामगीता में इसका वर्णन किया गया है। कोई भी प्राणी निर्ममता और योगाभ्यास का आश्रय लिये बिना कामनाका नाश नहीं कर सकता। जो वेद और वेदांतके स्वाध्यायरूप साधनोंके द्वारा कामनाको दबानेकी कोशिश करता है उसके मनमें स्थावर प्राणियोंमें जीवात्माकी भाँति अव्यक्तरूपसे निवास करती है। जो

सत्यपराक्रमी पुरुष धैर्यके बलसे कामनाको मिटानेका प्रयत्न करता है उसके मानसिक भावोंके साथ कामना इतनी घुल-मिल जाती है कि वह इसे पहचान नहीं पाता। जो उत्तम व्रतका आचरण करनेवाला पुरुष तपस्याके द्वारा कामनाके अस्तित्वको मिटानेका प्रयास करता है, उसकी तपस्यामें ही कामना प्रकट हो जाती है। वह मोक्षकी अभिलाषा रखकर कामनाका विनाशका यत्न करता है, उसे मोक्ष नहीं मिलता। इसलिये राजन् अपनी कामनाको धर्ममें लगा दीजिये इससे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। आप अश्वमेध तथा अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठान करे इससे आपकी लोकमें उत्तम कीर्ति होगी और परलोक में सद्गति प्राप्त होगी। इसप्रकार कृष्ण, वेदव्यास, देवस्थान मुनि, नारद मुनि, भीष्म, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों और शास्त्रवेत्ता ब्राह्मणोंके समझाने पर युधिष्ठिरका शोकजनित दु:ख फिर भी दूर नहीं हुआ। उन्होंने मरे हुए बन्धु-बान्धवोंका श्राद्ध कर किसी तरह वे सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य करने लगे। मनमें ग्लानि रखकर उन्होंने ऋषियोंसे कहा, मैं आप लोगोंके सामने ही यज्ञ आरम्भ करूँगा। इससे महर्षि बहुत प्रसन्न हुए और महर्षि अन्तर्ध्यान हुए।

पाण्डवोंके विजयी होनेपर राज्य में सब ओर शान्ति स्थापित होगी। तब श्रीकृष्ण अर्जुनसे बोले, पार्थ धर्मराज युधिष्ठिरने तुम्हारे बाहुबल का सहारा लेकर भीम, नकुल, सहदेव की सहायता से समूची पृथ्वीपर विजय पा ली है। आज वे शत्रुहीन भूमण्डलका राज्य भोग रहे हैं। यह अकण्टक राज्य उन्हें धर्म के बल से प्राप्त हुआ है। धृतराष्ट्र के पुत्र अधर्ममें रहनेवाले, लोभी, कटुवादी और दुरात्मा थे, इसलिये वे सब-के-सब अपने बन्धु-बान्धवोंसहित मारे गये। अब मेरा तुम्हारे साथ रहते हुए बहुत दिन बीत गये। मैंने बहुत दिनोंसे पिताश्री वसुदेवजी, बलराम भैया और अन्यान्य वृष्णिवंशीयोंको नहीं देखा है अब मैं द्वारिकापुरी जाना चाहता हूँ। तुम भी मेरे इस विचारसे सहमत होगे। तुम यदि उचित समझो तो मेरे विचार को युधिष्ठिर के पास जाकर मेरे द्वारिका जानेका प्रस्ताव करो। अब यहा मेरे रहनेका प्रयोजन पूरा हो चुका है। धर्मराज मेरे परमप्रिय और माननीय है। कृष्णके ऐसा कहनेपर पराक्रमी अर्जुनने बड़े दु:खके साथ उनके द्वारिका जानेका प्रस्ताव स्वीकार किया।

अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा, देवकीनन्दन। जब युद्धका समय उपस्थित था उस समय मुझे आपने जो ज्ञान दिया था और ईश्वरीय स्वरूपका दर्शन हुआ था; वह मैं अपने बुद्धिके दोषसे भूल गया हूँ। अत: पुन: आप उस विषय में मुझे ज्ञान दे। श्रीकृष्ण बोले, मैंने तुम्हें पुरुषोत्तम तत्वका परिचय दिया। शुक्ल-कृष्ण गतिका निरुपण किया। नित्य लोकोंका वर्णन किया किन्तु तुमने उन उपदेशोंका याद नहीं रखा। अब उन बातोंका पूरा-पूरा स्मरण होना मुझे सम्भव नहीं। इसलिये मेरा उस उपदेश को ज्यों का त्यों दुहरा देना कठिन है। मेरे पास एक ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे आये। उनसे मैंने मोक्षधर्म के विषय में प्रश्न किया वहीं तुम्हें मैं बताता हूँ। वह ब्राह्मण किसी सिद्ध ब्रह्मर्षिके पास गये जो धर्मके विषयमें सम्पूर्ण रहस्योंको जाननेवाले, भूत और भविष्य के वेता, ज्ञान-विज्ञानमें प्रवीण, लोक-तत्त्वके ज्ञानमें कुशल, सुख-दु:खके रहस्य जाननेवाले, जन्म-मृत्युके तत्त्वज्ञ, पाप-पुण्यके ज्ञाता और ऊंच-नीच प्राणियोंको कर्मानुसार प्राप्त होनेवाली गतिके प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। वे सिद्ध, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान, सर्वत्र गतिशील और अन्तर्धान होनेकी विद्याको जाननेवाले। सिद्धोंको साथ अदृश्य होकर विचरनेवाले सिद्धमुनि थे। महर्षि कश्यप उनकी उपर्युक्त महिमा सुनकर उनके पास गये और उन मेधावी तपस्वी, धर्माभिलाषी महर्षिने न्यायानुसार उन महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया। वह अद्भुत सन्त थे। उनमें हर प्रकारकी योग्यता थी। उन्हें गुरु मानकर कश्यपने उनसे उपदेश प्राप्त किया। यही उपदेश अनुगीता कहलाया।

१) अनुगीता- वह उपदेश इस प्रकार है, हे कश्यप। मनुष्य नाना प्रकारके शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके केवल पुण्यके संयोगसे इस लोकमें उत्तम फल और देवलोकमें स्थान प्राप्त करते हैं। तपस्या आदिके द्वारा कितने ही कष्ट सहकर बड़े-से-बड़े स्थानको क्यों न प्राप्त किया जाय, उससे भी बार-बार नीचे आना ही पड़ता है। मैंने भी काम-क्रोधसे युक्त और तृष्णासे मोहित होकर अनेकों बार पापकर्म किये है और इससे मैंने कष्ट देनेवाली अशुभ गतियोंको भोगा है। बार-बार जन्म और मृत्युका

क्लेश उठाया है। तरह-तरहके पदार्थ भोजन किये और अनेकों स्तनोंका दूध पिया है। बहुत-से पिता और भाँति-भाँतिकी माताएँ देखी हैं। विचित्र-विचित्र सुख-दु:खोंका अनुभव किया है। कितनी ही बार प्रियजनोंका वियोग और अप्रिय मनुष्योंका संयोग हुआ है। जिस धनको मैंने बहुत कष्टसे कमाया था वह मेरे देखते-देखते नष्ट हो गया। अत्यन्त दु:सह शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ सहनी पड़ी। नरकमें पड़कर यमलोककी यातनाएँ सही हैं। इस लोकमेंजन्म लेकर बार-बार बुढ़ापा, रोग और राग-द्वेष आदि द्वंद्वोंके दु:खोंका अनुभव किया है। मैंने दु:खोंसे घबराबर परमात्मा की शरण ली तथा समस्त लोक व्यवहारका परित्याग कर लिया। अब मैं पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करूँगा। जब तक यह सृष्टि कायम रहेंगी तब तक मैं अपनी दूसरे प्राणियोंकी शुभ गतिका अवलोकन करूँगा। इसप्रकार मुझे उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई। अब मैं मृत्यु लोकमें नहीं आऊँगा। तुम्हारे मेरे पास आनेका उद्देश्य मैं जानता हूँ। उत्तम आचरणसे मुझे बड़ा संतोष है। तुम अपने कल्याणकी बात पूछो।

काश्यपने पूछा, महात्मन्। यह शरीर किस प्रकार गिर जाता है? फिर दूसरा शरीर कैसे प्राप्त होता है? संसारी जीव किस तरह इस दु:खमय संसारसे मुक्त होता है? वह मूल अविद्या और उससे उत्पन्न होनेवाले शरीरका कैसे त्याग करता है? और एक शरीरसे छूटकर दूसरेमें वह किस प्रकार प्रवेश करता है? मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल कैसे भोगता है? और शरीर न रहनेपर उसके कर्म कहाँ रहते हैं?

सिद्धने कहा, काश्यप। मनुष्य इस लोकमें आयु और कीर्तिको बढ़ानेवाले जिन कर्मोंका सेवन करता है, वे शरीर-प्राप्तिमें कारण होते हैं। शरीर-गृहणके अनन्तर जब वे सभी कर्म अपना फल देकर क्षीण हो जाते हैं, उस समय जीवकी आयुका भी क्षय हो जाता है। उस अवस्थामें वह विपरीत कर्मोंका सेवन करने लगता है और विनाशकाल निकट आनेपर उसकी बुद्धि उलटी हो जाती है। वह अपने सत्त्व (धैर्य), बल और अनुकूल समयको जानकर भी मन-पर अधिकार न होनेके कारण असमयमें तथा अपनी प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करता है। अत्यन्त हानि पहुँचानेवाली जितनी वस्तुएँ हैं, उन सबका सेवन करता है। कभी बहुत अधिक खा लेता है और कभी बिल्कुल ही भोजन नहीं करता। कभी दूषित अन्न-पानको भी ग्रहण कर लेता है। कभी एक दूसरेसे विरुद्ध गुणवाले पदार्थोंको एक साथ खा लेता है। किसी दिन गरिष्ठ अन्न और वह भी बहुत अधिक मात्रामें चट कर जाता है। कभी-कभी एक बारका खाया हुआ अन्न पचने भी नहीं पाता कि दुबारा भोजन कर लेता है। अधिक मात्रामें व्यायाम और स्त्री-सम्भोग करता है। काम करनेके लोभसे सदा मल और मूत्रके वेगको रोके रहता है। रसीला अन्न भोजन करता और दिनमें सोता है तथा कभी-कभी खाये हुए अन्नके पचनेके पहले असमयमें भोजन करके स्वयं ही अपने शरीरमें स्थित वात-पित्तादि दोषोंको कुपित कर देता है। उन दोषोंके कुपित होनेपर वह अपने लिये प्राणनाशक रोगोंको बुला लेता है और इन्हीं सब कारणोंसे उसका शरीर नष्ट हो जाता है। इस प्रकार संसारके सभी जीव वेदनाओंसे ग्रस्त और जन्म-मरणके भयसे सदा उद्विग्न रहते हैं।

देहधारी जीव जिन इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस आदि विषयोंका अनुभव करता है, उनके द्वारा वह भोजनसे परिपुष्ट होनेवाले प्राणोंको नहीं जान सकता। इस शरीरके भीतर रहकर जो सब कार्य करता है, वह सनातन जीव है। अन्तकाल उपस्थित होनेपर तम (अविद्या) के द्वारा जीवकी ज्ञानशक्ति लुप्त हो जाती है। उसके मर्मस्थान अवरुद्ध हो जाते हैं। उस समय जीवके लिये कोई आधार नहीं रह जाता और वायु उसे अपने स्थानसे विचलित कर देती है। तब वह जीवात्मा बारंबार लंबी साँस छोड़कर बाहर निकलते समय सहसा इस जड़ शरीरको कम्पित कर देता है। शरीरसे अलग होनेपर वह अपने किये हुए पुण्य अथवा पाप-कर्मोंसे घिरा रहता है। जिन्होंने वेद-शास्त्रके सिद्धान्तोंका यथावत् अध्ययन किया है, वे ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण लक्षणोंके द्वारा यह जान लेते हैं कि अमुक जीव पुण्यात्मा रहा है और अमुक जीव पापी। जिस तरह आँखवाले मनुष्य अँधेरेमें इधर-उधर उगते-बुझते हुए खद्योतको देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष अपनी ज्ञानमयी दिव्य दृष्टिसे जन्मते-मरते तथा गर्भमें प्रवेश करते हुए जीवको सदा देखते रहते हैं। शास्त्रके अनुसार जीवके तीन स्थान देखे गये हैं

(मर्त्यलोक, स्वर्गलोक और नरक)। यह मर्त्यलोककी भूमि, जहाँ बहुत-से प्राणी रहते हैं, कर्मभूमि कहलाती है। यहीं शुभ और अशुभ कर्म करके सब मनुष्य उसका यथायोग्य फल प्राप्त करते हैं। यहीं पुण्य कर्म करनेवाले जीव (स्वर्गमें जाकर) अपने कर्मानुसार उत्तम भोग प्राप्त करते हैं और यहीं पाप-कर्म करनेवाले मनुष्य कर्मानुसार नरकमें पड़ते हैं। यह जीवकी अधोगति है, जो घोर कष्ट देनेवाली है। इसमें पड़कर पापी मनुष्य नरकाग्निमें पकाये जाते हैं। उसकी यातनासे छुटकारा मिलना बहुत कठिन है। इसलिये पाप-कर्मसे अलग रहकर अपनेको नरकसे बचानेका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

जहाँ ये समस्त ताराएँ हैं, उन सबको तुम पुण्य कर्म करनेवाले मनुष्योंके स्थान समझो। (पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं लोकोंमें जाकर अपने पुण्यका फल भोगते हैं।) जब जीवोंके पुण्य-कर्मोंका भोग समाप्त हो जाता है तब वे वहाँसे नीचे गिरते हैं। यह आवागमनकी परम्परा बराबर लगी रहती है। ऊपरके लोकोंमें भी ऊँच, नीच और मध्यमका भेद रहता है, इसलिये वहाँ निवास करनेवालोंको भी दूसरोंका तेज और ऐश्वर्य अपनेसे अधिक देखकर मनमें संतोष नहीं होता।

सिद्धने कहा, कश्यप। इस लोकमें किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल भोगे बिना नाश नहीं होता। वे कर्म एकके बाद एक शरीर धारण कराकर अपना फल देते रहते हैं। शुद्ध हृदयसे किये हुए पुण्यका फल अधिक होता है तथा कलुषित चित्तसे किये हुए पापके फलमें भी वृद्धि होती है; क्योंकि जीवात्मा मनको आगे करके ही प्रत्येक कार्यमें प्रवृत्त होता है। काम-क्रोधसे घिरा हुआ मनुष्य जिस प्रकार कर्म-जालमें आबद्ध होकर गर्भमें प्रवेश करता है वह बताता हूँ। जीव पहले पुरुषके वीर्यमें प्रविष्ट होता है। फिर स्त्रीके गर्भाशयमें जाकर उसके रजसे मिल जाता है। तत्पश्चात् उसे कर्मानुसार शुभ या अशुभ शरीरकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म और अव्यक्त होनेके कारण वास्तवमें वह जीवात्मा शरीरको पाकर भी उसके दोषोंसे कभी लिप्त नहीं होता। वही सम्पूर्ण भूतोंका बीज है। उसीके द्वारा सब प्राणी जीवित रहते हैं। ऐसा होनेपर भी वह अज्ञानवश जीवभावसे विभक्त होकर गर्भके प्रत्येक अवयवमें व्याप्त हो जाता है और इन्द्रियोंके स्थानों (गोलकों) में स्थित होकर चित्तके द्वारा सबको धारण करता है। जीवके प्रवेश करनेसे गर्भ चेतन हो जाता है और उसके द्वारा सब अङ्गोंमें चेष्टा होने लगती है। जीवका गर्भमें प्रवेश होता है अर्थात जीव भी जिस तरहके शरीरमें प्रवेश करता है उसी आकारका दिखायी देता है। जैसे आग लोहेके गोलेमें प्रविष्ट होनेसे सारा शरीर चेतन एवं जीवमय जान पड़ता है। जीवकी चैतन्यशक्ति शरीरके सब अवयवोंको प्रकाशित करती है। देहधारी जीव जो-जो शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसको दूसरे जन्ममें भोगता है। पूर्वजन्मके शरीरसे किये हुए समस्त कर्मोंका फल उसे निश्चय ही भोगना पड़ता है। भोगनेसे प्राचीन कर्म तो क्षीण होते हैं और नये-नये कर्मोंका संचय बढ़ता जाता है। जीवको जबतक मोक्ष-धर्मका ज्ञान नहीं होता तबतक यह कर्मोंकी परम्परा चालू रहती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न योनियोंमें भ्रमण करनेवाला जीव जिनके अनुष्ठानसे सुखी होता है, उन कर्मोंके विषयमें जानो। दान, व्रत, ब्रह्मचर्य, शास्त्रोक्त रीतिसे वेदाध्ययन, इन्द्रिय निग्रह, शान्ति, समस्त प्राणियोंपर दया, चित्तका संयम, कोमलता, दूसरोंके धन लेनेकी इच्छाका त्याग, संसारके प्राणियोंका मनसे भी अहित न करना, माता-पिताकी सेवा, देवता, अतिथि और गुरुकी पूजा, दया, पवित्रता, इन्द्रियोंका निग्रह करना तथा शुभ कर्मोंका प्रचार करना- यह सब श्रेष्ठ पुरुषोंका बर्ताव कहलाता है। इनके अनुष्ठानसे धर्म होता है, जो सदा ही प्रजावर्गकी रक्षा करता है। सत्पुरुषोंमें सदा ही इस प्रकारका धार्मिक आचरण देखा जाता है। उन्हींमें धर्मकी अटल स्थिति होती है। सदाचारसे ही धर्मके स्वरूपका परिचय मिलता है। शान्तचित्त महात्मा पुरुष सदाचारमें ही स्थित रहते हैं। उन्हींमें पूर्वोक्त दान आदि कर्मोंकी स्थिति है। वे ही कर्म सनातन धर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो उस सनातन धर्मका आश्रय लेता है, उसे कभी दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती। इसीलिये धर्ममार्गसे भ्रष्ट होनेवाले लोगोंका नियन्त्रण किया जाता है। योगी और मुक्त पुरुष केवल आचार-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। जो धर्मके अनुसार बर्ताव करता है, उसको अपने कर्मानुसार उत्तम फलकी प्राप्ति होती है और वह धीरे-धीरे अधिक काल बीतनेपर संसार-समुद्रसे तर जाता है। इस प्रकार जीव सदा अपने पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका

फल भोगता है। यह आत्मा निर्विकार ब्रह्म होनेपर भी जीवरूपमें विकृत होकर इस जगत्‌में जो जन्म धारण करता है, उसमें कर्म ही कारण है। सम्पूर्ण जगत्‌के पितामह ब्रह्माजीने सबसे पहले स्वयं ही शरीर धारण किया।

उसके बाद स्थावर-जंगमरूप समस्त त्रिलोकीकी रचना की। उन्होंने प्रधान नामक तत्त्वकी उत्पत्ति की, जो देहधारी जीवोंकी प्रकृति कहलाती है, जिसने सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है यह प्राकृत जगत् क्षर कहलाता है। इससे भिन्न जीवात्माको अक्षर कहते हैं पितामहने जीवके लिये नियत समयतक शरीर धारण किये रहने, भिन्न-भिन्न योनियोंमें भ्रमण करने और परलोकसे लौटकर फिर इस लोकमें जन्म ग्रहण करने आदिकी भी व्यवस्था की है। जिसने पूर्वजन्ममें अपने आत्माका साक्षात्कार कर लिया हो ऐसा कोई मेधावी पुरुष संसारकी अनित्यताके विषयमें जो है वह इसप्रकार। मेरी कही हुई सारी बातें यथार्थ और संगत होंगी। जो मनुष्य सुख और दु:ख दोनोंको अनित्य, शरीरको अपवित्र वस्तुओंका समूह और मृत्युको कर्मका फल समझता है तथा सुखके रूपमें प्रतीत होनेवाला यह सब कुछ दु:ख-ही-दु:ख है ऐसा मानता है, वह घोर एवं दुस्तर संसार सागरसे पार हो जाता है।

सिद्ध ब्राह्मणने कहा- काश्यप। जो मनुष्य (स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरोंमेंसे क्रमश:) पूर्व-पूर्वका अभिमान त्यागकर कुछ भी चिन्तन नहीं करता और मौनभावसे रहकर सबके एकमात्र अधिष्ठान परब्रह्म परमात्मामें लीन रहता है, वही संसार-बन्धनसे मुक्त होता है। जो सबका मित्र, सब कुछ सहनेवाला, मनोनिग्रहमें तत्पर, जितेन्द्रिय, भय और क्रोधसे रहित तथा मनस्वी है; जो नियमपरायण और पवित्र रहकर सब प्राणियोंके प्रति अपने जैसा बर्ताव करता है, जिसके भीतर सम्मान पानेकी इच्छा नहीं है तथा जो अभिमानसे दूर रहता है, वह सर्वथा मुक्त ही है। जीवन-मरण, सुख-दु:ख, लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रियमें जिसकी समान दृष्टि है; जो किसीके द्रव्यका लोभ नहीं रखता, किसीकी अवहेलना नहीं करता; जिसके मनपर द्वन्द्वोंका प्रभाव नहीं पड़ता, जिसके चित्तकी आसक्ति दूर हो गयी है; जो किसीको अपना मित्र, बन्धु या संतान नहीं मानता; जिसे धर्म, अर्थ और कामका परित्याग कर दिया है, जो सब प्रकारकी आकांक्षाओंसे रहित हो गया है; जिसकी न धर्ममें आसक्ति है, न अधर्ममें; जो पूर्वके संचित कर्मोंको त्याग चुका है; वासनाओंका क्षय हो जानेसे जिसका चित्त अत्यन्त शान्त हो गया है तथा जो सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित है, वह मुक्त हो जाता है। जो काम्य कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, जिसकी दृष्टिमें यह जगत् अश्वत्थके ऊपर के समान आज है कल नहीं रहनेवाला है, जो सदा इसे जन्म, मृत्यु और जरा-अवस्थासे युक्त अस्थिर देखता है; जिसकी बुद्धि वैराग्यमें लगी रहती है; जो सदा अपने दोषोंपर दृष्टि रखता है, वह शीघ्र ही अपने बन्धनका नाश कर देता है। जो आत्माको गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, परिग्रह और रूपसे रहित तथा अज्ञेय मानता है; जिसकी दृष्टिमें आत्मा पाञ्चभौतिक गुणोंसे हीन, निराकार, कारणरहित, निर्गुण तथा गुणोंका भोक्ता है, वह मुक्त हो जाता है। जो बुद्धिसे विचार करके शारीरिक और मानसिक सब संकल्पोंका त्याग कर देता है, वह बिना ईंधनकी आगके समान धीरे-धीरे शान्ति को प्राप्त हो जाता है। जो सब प्रकारकी वासनाओंसे छूटकर द्वन्द्व और परिग्रहसे रहित हो गया है तथा जो तपस्याके द्वारा इन्द्रियसमूहको अपने वशमें करके अनासक्त भावसे विचरता है, उसे मुक्त ही समझना चाहिये; क्योंकि वासनाओंके बन्धनसे छूट जानेपर मनुष्य शान्त, अचल, नित्य, अविनाशी एवं सनातन परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

योग साधन करनेवाले, योगी पुरुष अपने आत्माका साक्षात्कार कर लेते हैं। जिनके द्वारा चित्तको वशीभूत एवं अन्तर्मुख करके योगी अपने नित्य आत्माका दर्शन करता है। इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर मनमें और मनको आत्मामें स्थापित करे। पहले तीव्र तपस्या करके फिर मोक्षोपयोगी उपायका अवलम्बन करना चाहिये। मनीषी पुरुषको चाहिये कि वह सदा तपस्यामें प्रवृत्त एवं यत्नशील होकर योगशास्त्रोक्त उपायका अनुष्ठान करे। इससे वह मनके द्वारा अपने अन्त:करणमें आत्माका साक्षात्कार करता है। एकान्तमें रहनेवाला साधक पुरुष यदि अपने मनको आत्मामें लगाये

रखनेमें सफल हो जाता है तो वह अवश्य ही अन्त:करणमें आत्माका दर्शन करता है। जो साधक सदा संयमपरायण, योगयुक्त, मनको वशमें करनेवाला और जितेन्द्रिय है, वही आत्मासे प्रेरित होकर बुद्धिके द्वारा उसका साक्षात्कार कर सकता है। जैसे मनुष्य सपनेमें किसी अपरिचित पुरुषको देखकर जब पुन: उसे जाग्रत अवस्थामें देखता है तो तुरंत पहचान लेता है कि यह वही है। उसी प्रकार साधनपरायण योगी समाधि-अवस्थामें आत्माको जिस रूपमें देखता है, उसी रूपमें उसके बाद भी देखता रहता है। जैसे कोई मनुष्य मूँजसे सींकको अलग करके दिखा है, वैसे ही योगी पुरुष आत्माको इस देहसे पृथक् करके देखता है। यहाँ शरीरको मूँज कहा गया है और आत्माको सींक। योगवेत्ताओंने देह और आत्माके पार्थक्यको समझनेके लिये यह बहुत उत्तम दृष्टान्त दिया है। देहधारी जीव जब योगके द्वारा आत्माका यथार्थरूपसे दर्शन कर लेता है, उस समय उसके ऊपर त्रिभुवनके अधीश्वरका भी आधिपत्य नहीं रहता। बुढ़ापा और मृत्यु उसके पास नहीं फटकने पाते, शोक और हर्ष उसे नहीं छू सकते। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला योगी पुरुष देवताओंका भी देवता हो सकता है। वह इस अनित्य शरीरका त्याग करके अविनाशी ब्रह्मको प्राप्त होता है। सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश देखकर भी उसे भय नहीं होता। सबके क्लेश उठानेपर भी उसको किसीसे क्लेश नहीं पहुँचता। शान्तचित्त एवं नि:स्पृह योगी आसक्ति और स्नेहसे प्राप्त होनेवाले भयंकर दु:ख, शोक तथा भयसे कभी विचलित नहीं होता। उसे शस्त्र नहीं काट सकते मृत्यु उसके पास नहीं पहुँच पाती, संसारमें उससे बढ़कर सुखी कहीं कोई भी नहीं दिखायी देता। वह मनको आत्मामें लीन करके आत्मनिष्ठ हो जाता है तथा बुढ़ापाके दु:खोंसे छुटकारा पाकर सुखसे सोता- अक्षय आनन्दका अनुभव करता है। अच्छी तरह योगका अभ्यास करके जब योगी अपनेमें ही आत्माका साक्षात्कार करने लगता है, उस समय वह साक्षात् इन्द्रके पदको भी पानेकी इच्छा नहीं करता।

एकान्तमें ध्यान करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार योगकी प्राप्ति होती है, जो उपदेश पहले श्रुतिमें देखा गया है, उसका चिन्तन करके शरीरके जिस भागमें जीवका निवास माना गया है, उसीमें मनको भी स्थापित करे। उसके बाहर कदापि न जाने दे। फिर निर्जन वनमें, जहाँ किसी प्रकारका शब्द न सुनायी देता हो, इन्द्रियसमुदायको वशमें करके एकाग्रचित्तसे अपने अन्त:करणमें परमात्मतत्त्व का चिन्तन करे। प्रमादको सर्वथा त्याग दे। इस प्रकार सदा ध्यानके लिये प्रयत्न करनेवाले पुरुषका चित्त शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता और परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है। परमात्मा इन चर्म-चक्षुओंसे नहीं देखा जा सकता। सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी उसको अपना विषय नहीं बना सकतीं। केवल मनरूपी दीपककी सहायतासे ही उस महान् आत्माका दर्शन होता है। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। जो इस प्रकार परमात्माका दर्शन करता है, वह उसीका आश्रय लेकर मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्ण कहते हैं- अर्जुन। मोक्ष-धर्मका आश्रय लेनेवाले वे ब्राह्मणश्रेष्ठ सिद्ध मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये। पार्थ। क्या तुमने मेरे बताये हुए इस उपदेशको एकाग्रचित्तसे सुना है? जिसका अन्त:करण शुद्ध है, वही इसे जान सकता है। जिसका चित्त दुविधामें पड़ा हुआ है, वह इसे अच्छी तरह नहीं समझ सकता। सनातन ब्रह्म ही जीवकी परम गति है। ज्ञानी मनुष्य देहको त्यागकर उस ब्रह्ममें ही अमृतत्वको प्राप्त होता और सदाके लिये सुखी हो जाता है। स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि- चाण्डाल आदि भी इस धर्मका आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं; फिर जो अपने धर्ममें प्रेम रखते और सदा ब्रह्मलोककी प्राप्तिके साधनमें लगे रहते हैं, उन बहुश्रुत ब्राह्मणों और क्षत्रियोंकी तो बात ही क्या है? जो कोई बुद्धिमान, श्रद्धालु और पराक्रमी मनुष्य लौकिक सुखको सारहीन समझकर उसका परित्याग कर देता है, वह इसी उपायके द्वारा बहुत शीघ्र परम गतिको प्राप्त हो जाता है।

एक बार मन ने इन्द्रियोंसे कहा, मैं सब विषयोंमें श्रेष्ठ और सनातन हूँ। मेरे बिना समस्त इन्द्रियाँ सूने घरकी भाँति है। संसारके सभी जीव इन्द्रियोंके यत्न करने पर भी मेरे बिना विषयोंका अनुभव नहीं कर सकते। तब इन्द्रियाँ बोली, हमारा लय हो जानेपर भी आप तृप्त रह सकें, जीवन धारण कर सकें और सब प्रकारके भोग भोग सकें तो आप जैसा कहते और मानते

हैं, वह सब सत्य हो सकता है। अथवा हम सब इन्द्रियाँ लीन हो जायँ या विषयोंमें स्थित रहें, यदि आप अपने संकल्पमात्रसे विषयोंका यथार्थ अनुभव करनेकी शक्ति रखते हैं और आपको ऐसा करनेमें सदा ही सफलता प्राप्त होती है तो जरा नाकके द्वारा रूपका तो अनुभव कीजिये, आँखसे रसका तो स्वाद लीजिये और कानके द्वारा गन्धको तो ग्रहण कीजिये। इसी प्रकार अपनी शक्तिसे जिह्वाके द्वारा स्पर्शका, त्वचाके द्वारा शब्दका और बुद्धिके द्वारा स्पर्शका तो अनुभव कीजिये। आप-जैसे बलवान लोग नियमोंके बन्धनमें नहीं रहते, नियम तो दुर्बलोंके लिये होते हैं। हमलोगोंकी जूठन खाना आपको शोभा नहीं देता। जैसे शिष्य श्रुतिके अर्थको जाननेके लिये उपदेश करनेवाले गुरुके पास जाता है और उनसे श्रुतिके अर्थका ज्ञान प्राप्त करके फिर स्वयं उसका विचार करता है, वैसे ही आप सोते और जागते समय हमारे ही दिखाये हुए भूत और भविष्य विषयोंका उपभोग करते हैं। भले ही हमलोगोंकी अपने-अपने गुणोंके प्रति आसक्ति हो और भले ही हम परस्पर एक दूसरेके गुणोंको न जान सकें; किंतु यह बात सत्य है कि आप हमारी सहायताके बिना किसी भी विषयका अनुभव नहीं कर सकते। आपके बिना तो हमें केवल हर्षसे ही वञ्चित होना पड़ता है। इसी प्रकार प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान में संघर्ष छिड़ गया। प्राण ने ब्रह्मा से पूछा हममें से जो कोई श्रेष्ठ है उसका नाम बताइये। ब्रह्मा बोले, प्राणधारियोंके शरीरमें तुम लोगों में से जिसका लय हो जानेपर सभी प्राण लीन हो जाय और जिसके संचरित होनेपर सब-के-सब संचार करने लगें, वहीं श्रेष्ठ है। तब प्राणवायु ने अन्य सभी प्राणोंसे कहा, मेरे लीन हो जानेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राण लीन हो जायेंगे तथा मेरे संचरित होनेपर सबके सब संचार करने लगते हैं। इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। यह कहकर प्राणवायु थोड़ी देर के लिये लीन हो गया। तब समान और उदान वायुने उसे कहा प्राण तुम हमारी तरह इस शरीरमें व्याप्त होकर नहीं रहते, इसलिये तुम हम लोगों में से श्रेष्ठ नहीं हो। केवल अपान तुम्हारे वशमें है। तुम्हारे लय होनेसे हमारी कोई हानि नहीं हो सकती। तब अपान ने कहा, मेरे लीन हो जानेपर प्राणियोंके शरीरमें स्थित सभी प्राणोंका लय हो जाता है तथा मेरे संचारित करने पर पुन: सबके-सब चलने लगते हैं, इसलिये मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। तब व्यान और उदान ने उत्तर दिया, अपान। केवल प्राण तुम्हारे अधीन है, इसलिये तुम सबसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। व्यान बोला, मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरे लीन होनेपर प्राणियोंके देहमें स्थित समस्त प्राणोंका लय हो जाता है। तब इसीप्रकार समानने कहा, मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मेरे लीन होनेपर प्राणधारियोंके शरीरमें स्थित सब प्राणोंका लय हो जाता है अत: मैं श्रेष्ठ हूँ। इसी प्रकार उदान बोला। तब ब्रह्माजी ने कहा, वायुगण। तुम सभी श्रेष्ठ हो अथवा तुममेंसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं है। तुम सबका धारण करना एक दूसरे पर अवलंबित है।

इस जगत्का शासक एक ही है, जो हृदयके भीतर विराजमान है, वही परमात्मा सबका शासक है। वही सबका गुरु है। वही सबका बन्धु है। उससे भिन्न कोई दूसरा बन्धु नहीं है। जो सबके जीवन में स्थित है। उसीसे सप्तर्षि लोग आकाशमें प्रकाशित होते है। वही श्रोता है। उन्हें सम्पूर्ण लोकोंका साम्राज्य और अमरत्व प्राप्त हुआ। इसप्रकार हृदयमें प्रकट होनेवाला परमात्मा ही गुरु, ज्ञानी श्रोता और द्रष्टा है। संसारमें जो पाप करते हुए विचरता है, वह पापाचारी और जो शुभ कर्मोंका आचरण करता है, वह शुभाचारी कहलाता है। इसी तरह कामनाओंके द्वारा इन्द्रियसुखमें परायण मनुष्य कामचारी और इन्द्रियसंयममें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचारी कहलाता है। जो व्रत और कर्मोंका त्याग करके ब्रह्ममें स्थित है और ब्रह्मस्वरूप होकर संसारमें विचरता रहता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है। ब्रह्म ही उसकी समिधा है, ब्रह्म ही अग्नि है, ब्रह्मसे ही वह उत्पन्न हुआ है। ब्रह्म ही उसका जल और ब्रह्म ही गुरु है। उसकी चित्तवृत्तियाँ सदा ब्रह्ममें ही लीन रहती हैं। विद्वानोंने इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य बतलाया है। आत्मज्ञानी पुरुष इस ब्रह्मचर्यके स्वरूपको जानकर सदा उसका पालन करते रहते हैं। इसके बाद जीव ब्रह्मवन में प्रवेश करता है।

उस वनमें न भेद है न अभेद- वह इन दोनोंसे अतीत है। वहाँ लौकिक सुख और दु:ख दोनोंका अभाव है। उससे अधिक छोटी, उससे अधिक बड़ी और उससे अधिक सूक्ष्म भी दूसरी कोई वस्तु नहीं है। उसके समान सुखरूप भी कोई नहीं है। उस वनमें प्रविष्ट हो जानेपर द्विजातियोंको न हर्ष होता है, न शोक। न तो वे स्वयं किन्हीं प्राणियोंसे डरते हैं और न उन्हींसे

दूसरे कोई प्राणी भय मानते हैं। वहाँ (महत्तत्व, अहंकार और पाँच तन्मात्रारूप) बड़े-बड़े वृक्ष हैं, (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, संशय और निश्चय- ये) सात उन वृक्षोंके फल हैं तथा (महत्-अहंकार आदि पूर्वोक्त तत्त्वोंके अधिष्ठाता देवतारूप) सात ही उन फलोंके भोक्ता अतिथि हैं। (मन, बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ- ये) उन अतिथियोंके सात आश्रम हैं, वहाँ सात प्रकारकी समाधियाँ हैं और सात प्रकारकी ही दीक्षाएँ हैं। यही उसका वनका स्वरूप है। वहाँ मनरूपी वृक्ष शब्दादि विषयोंके अनुभवरूप पाँच प्रकारके दिव्य पुष्पों और उनसे उत्पन्न प्रीति आदिरूप पाँच प्रकारके फलोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर व्याप्त हो रहे हैं। चक्षुरूप वृक्ष उस वनमें श्वेत-पीतादि वर्णरूप पुष्प और उन्हें देखनेसे प्राप्त होनेवाले सुख-दु:खरूपी फल उत्पन्न करते हुए सब ओर फैल रहे हैं। यज्ञादिरूपी वृक्ष पुण्य-पापरूपी पुष्प और स्वर्ग-नरक आदिरूप फल प्रदान करते हैं। ध्यानादिरूपी वृक्ष केवल सुखरूप फूल और फल देते हैं। मन और बुद्धिरूपी दो वृक्ष मन्तव्य और बोद्धव्यरूप नाना प्रकारके फूलों और फलोंकी सृष्टि करते हुए सब ओर फैले हैं। उस वनमें आत्मा ही अग्नि है, जीव ब्राह्मण है, मन और बुद्धि स्रुक एवं स्रुवा हैं और पाँच इन्द्रियाँ समिधाएँ हैं। मन-बुद्धिसहित पाँचों इन्द्रियोंके आत्माग्निमें पृथक-पृथक हवन करनेपर जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह अपादान-भेदसे सात प्रकारका है। इस यज्ञकी दीक्षाका फल अवश्य होता है; किंतु वह फल गौण माना गया है। इन्द्रियाधिष्ठाता देवता ही उस फलकी आशा करते हैं (यज्ञकर्ता पुरुष नहीं, उसकी तो मुक्ति हो जाती है)। महर्षिगण (इन्द्रियोंके अधिदेवता) इस आत्मयज्ञमें आतिथ्य ग्रहण करते हैं और पूजा स्वीकार करते ही उनका लय हो जाता है। तत्पश्चात् वह ब्रह्मरूप विलक्षण वन प्रकाशित होता है। उसमें प्रज्ञारूपी वृक्ष शोभा पाते हैं, मोक्षरूपी फल लगते हैं और शान्तिमयी छाया फैली रहती है। ज्ञान वहाँका आश्रय स्थान और तृप्ति जल है। उस वनके भीतर आत्मारूपी सूर्यका प्रकाश छाया रहता है। जो साधु पुरुष उस वनका आश्रय लेते हैं, उन्हें फिर कभी भय नहीं होता। वह वन ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर सब ओर व्याप्त है। उसका कहीं भी अन्त नहीं है। वहाँ घ्राणादि वृत्तिरूप सात स्त्रियाँ निवास करती हैं, जो जीवन्मुक्त पुरुषको अपने वशमें न कर सकनेके कारण लज्जाके मारे अपना मुँह नीचेकी ओर किये रहती हैं। वे चिन्मयज्योतिसे प्रकाशित होती हैं और उस वनमें रहनेवाली प्रजाको सब प्रकारके उत्तम रस-उत्कृष्ट आनन्द प्रदान करती हैं। जैसे सत्य और असत्यमें महान् अन्तर होता है, उसी प्रकार बद्ध और मुक्तके आनन्दमें भी होता है। यश, प्रभा, भग (ऐश्वर्य), विजय, सिद्धि, (ओज) और तेज ये सात ज्योतियाँ उपर्युक्त आत्मारूपी सूर्यका ही अनुसरण करती हैं। उस ब्रह्ममें ही गिरि, पर्वत, नदी और झरने आदि स्थित हैं। नदियोंका संगम भी उसीके अत्यन्त गूढ़ हृदयाकाशमें होता है। वही साक्षात् पितामहका स्वरूप है। आत्मज्ञानसे तृप्त पुरुष उसीको प्राप्त होते हैं। जिनकी आशा क्षीण हो गयी है, जो उत्तम व्रतके पालनकी इच्छा रखते हैं, तपस्यासे जिनके सारे पाप दग्ध हो गये हैं, वे ही पुरुष अपनी बुद्धिको आत्मनिष्ठ करके परब्रह्मकी उपासना करते हैं। विद्या (ज्ञान) के ही प्रभावसे ब्रह्मरूपी वनका स्वरूप समझमें आता है।

महर्षि परशुरामने २१ बार पृथ्वीको क्षत्रियविहीन कर दिया। सभी क्षत्रिय कर्मोंका त्याग कर धीरे धीरे अपने कर्म भूलकर शूद्र हो गये। इसप्रकार द्रविड़, आभीर, पुण्ड्र और शबरोंकी उत्पत्ति हुई। क्षत्रिय वीरोंके मारे जानेपर ब्राह्मणोंसे उनकी स्त्रियोंको नियोगकी विधिके अनुसार सन्तान उत्पन्न हुई। परशुरामजीने २१ बार क्षत्रियोंका संहार किया और आकाशवाणी हुई तुम इस हत्याके कामसे निवृत्त हो जाओ इस काममें तुम्हारा कोई भला नहीं है। परशुरामजीके पितामह ऋचीक मुनिने भी उन्हें समझाया। पुत्र यह काम छोड़ दो। क्षत्रियोंको मत मारो। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे हाथसे राजाओंका वध होना उचित नहीं है। प्राचीन समय में अलर्क नाम के राजा हुये। जिनका समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राज्य था और उनका मन सूक्ष्म उत्पत्ति की खोज में लगा। वे एकाग्रचित्त होकर विचार करने लगे। वे ध्यानयोगके द्वारा आत्मामें प्रवेश करके परासिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हो गये। ऋचीक मुनिने कहा, पुत्र परशुराम। तुम क्षत्रियोंका नाश मत करो और घोर तपस्या में लग जाओ उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। फिर परशुरामजीने घोर तपस्या की और परम दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की।

संसारमें सत्त्व, रज और तम- ये तीन मेरे शत्रु हैं। ये गुणोंके भेदसे नौ प्रकारके गुण हैं; तृष्णा, क्रोध और अभिनिवेश- ये तीन राजस गुण हैं और श्रम, तन्द्रा तथा मोह- ये तीन तामस गुण हैं। शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, आलस्यहीन और धैर्यवान पुरुष शम-दम आदि बाणसमूहोंके द्वारा इन पूर्वोक्त गुणोंका उच्छेद करके दूसरोंको जीतनेका उत्साह करते हैं। पहले कभी शान्तिपरायण महाराज अम्बरीषने बताया, जब दोषोंका बल बढ़ा और अच्छे गुण दबने लगे, उन्होंने बलपूर्वक राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ली। उन्होंने अपने दोषोंको दबाया और उत्तम गुणोंका आदर किया। इससे उन्हें बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने कहा- मैंने बहुत-से दोषोंपर विजय पायी और समस्त शत्रुओंका नाश कर डाला; किंतु एक सबसे बड़ा दोष रह गया है। यद्यपि वह नष्ट कर देने योग्य है तो भी अबतक मै। उसका नाश कर न सका। उसीकी प्रेरणासे प्राणीको वैराग्य नहीं होता। उसके वशमें पड़ा हुआ मनुष्य नीच कर्मोंकी ओर दौड़ता है और उसे अपनी अवस्थाका भान नहीं होता। उससे प्रेरित होकर वह नहीं करने योग्य काम भी कर डालता है। उस दोषका नाम है लोभ। उसे ज्ञानरूपी तलवारसे काट डालो। लोभसे तृष्णा और तृष्णासे चिन्ता पैदा होती है। लोभी मनुष्य पहले राजस गुणोंको पाता है और उनकी प्राप्ति हो जानेपर उसमें तामसिक गुण भी अधिक मात्रामें आ जाते हैं। उन गुणोंके द्वारा देह-बन्धनमें जकड़कर वह बारंबार जन्म लेता और तरह-तरहके कर्म करता रहता है। फिर जीवनका अन्त समय आनेपर उसके देहके तत्त्व विलग-विलग होकर बिखर जाते हैं और वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इसके बाद फिर जन्म-मृत्युके बन्धनमें पड़ता है; इसलिये इस लोभके स्वरूपको अच्छी तरह समझकर इसे धैर्यपूर्वक दबाने और आत्मराज्यपर अधिकार पानेकी इच्छा करनी चाहिये। यही वास्तविक राज्य है। यहाँ दूसरा कोई राज्य नहीं है। आत्माका यथार्थ ज्ञान हो जानेपर वही राजा है।

एक समय राजा जनकने किसी अपराधमें पकड़े हुए ब्राह्मण को दण्ड देते हुए कहा, ब्रह्मन। आप मेरे राज्यसे बाहर चले जाइये। ब्राह्मण बोला, महाराज बताइये आपके अधिकार में कितना राज्य है। तो मैं इसके बाहर जा सकता हूँ। जनक इसका कोई जवाब नहीं दे सके फिर थोड़े विचारकर ब्राह्मण से बोले, यद्यपि बाप-दादाओंके समय से ही मिथिला राज्यपर मेरा अधिकार है तो भी पूरी पृथ्वीपर खोजनेपर भी मुझे अपना राज्य दिखाई नहीं देता। मिथिला में भी मुझे अपने अधिकारका निश्चय नहीं हुआ। इससे मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि कहीं भी मेरा राज्य नहीं है अथवा सर्वत्र मेरा ही राज्य है। यह शरीर मेरा नहीं है। ब्राह्मण बोला, जब बाप-दादाओंके समय से ही मिथिला प्रान्तके राज्यपर आपका अधिकार है तो किस विचारसे आपने इसके प्रति अपनी ममता को त्याग दिया? किस बुद्धिका आश्रय लेकर आप सर्वत्र अपना ही राज्य मानते हैं और किस तरह कहीं भी अपना राज्य नहीं मानते।

जनक बोले, ब्रह्मन। इस संसारमें कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली सभी अवस्थाओंका एक-न-एक दिन अन्त हो जाता है। वेद भी कहता है- यह किसकी वस्तु है? यह किसका धन है? (अर्थात् किसीका नहीं है) इसलिये जब मैं अपनी बुद्धिसे विचार करता हूँ तो कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जान पड़ती, जिसे अपनी कह सकें। इसी विचारसे मैंने मिथिलाके राज्यसे अपना ममत्व हटा लिया है। अब जिस बुद्धिका आश्रय लेकर मैं सर्वत्र अपना ही राज्य समझता हूँ, मैं अपनी नासिकामें पहुँची हुई सुगन्धको भी अपने सुखके लिये नहीं ग्रहण करना चाहता। इसलिये मैंने पृथ्वीको जीत लिया है और वह सदा मेरे वशमें रहती है। मुखमें पड़े हुए रसोंका भी मैं अपनी तृप्तिके लिये नहीं आस्वादन करना चाहता, इसलिये जल-तत्त्वपर भी मैं विजय पा चुका हूँ और वह सदा मेरे अधीन रहता है। इसी प्रकार नेत्रके विषयभूत रूप और ज्योतिका, त्वक्-इन्द्रियको प्राप्त हुए स्पर्शका, श्रवणगोचर शब्दोंका और मनमें आये हुए मन्तव्य विषयोंका भी मैं अपने सुखके लिये अनुभव करना नहीं चाहता। इसलिये मैंने तेज, वायु, आकाश और मनको भी जीत लिया है तथा वे सभी सदा मेरे वशमें रहते हैं। मेरे प्रत्येक कार्यका आरम्भ देवता, पितर, भूत और अतिथियोंके निमित्त होता है।

मैं जीवनमुक्त महात्मा, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी सब कुछ हूँ। इस भूतलपर जो कुछ दिखायी देता है, वह सब मेरे द्वारा

व्याप्त है। ज्ञान ही मेरा धन है, यही ब्रह्मवेत्ताओंका एकमात्र मार्ग है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमोंमेंसे किसीमें भी रहें, वे ज्ञानमार्गके द्वारा ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। जिनकी बुद्धि शान्तिके साधनमें लगी हुई है, वे अन्तमें एकमात्र सत्स्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। यह मार्ग बुद्धिगम्य है, शरीरके द्वारा इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता।

क्षेत्रज्ञ वास्तवमें देह-सम्बन्धसे रहित और निर्गुण है, क्योंकि उसके सगुण और साकार होनेका कोई कारण नहीं है। कृष्णने अर्जुनको अनुगीता का उपदेश दिया। उन्होंने बताया, एक बार गुरु और शिष्य में मोक्षविषयक संवाद हुआ। किसी बुद्धिमान शिष्यने अपने गुरुसे निवेदन किया, गुरुदेव। मैं कल्याण मार्गमें प्रवृत्त होकर आपकी शरणमें आया हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि श्रेय क्या है? जगतके चराचर जीव कहाँसे उत्पन्न हुए? किससे जीवन धारण करते हैं? अधिक से अधिक आयु कितनी है? सत्य और तप क्या है? सत्पुरुषोंने किन गुणोंकी प्रशंसा की है? कौन-कौन से मार्ग कल्याण करनेवाले है? सर्वोत्तम सुख क्या है? और पाप किसे कहते हैं?

तब गुरुने उत्तर दिया- मैं ज्ञानको ही परब्रह्म और संन्यासको उत्तम तप मानता हूँ। जो अबाधित ज्ञान-तत्त्वको निश्चयपूर्वक जानकर अपनेको सब प्राणियोंके भीतर स्थित देखता है, वह सर्वगति (सर्वज्ञ अथवा सर्वव्यापक) माना जाता है। जो किसी वस्तुकी कामना नहीं करता तथा जिसके मनमें किसी बातका अभिमान नहीं होता, वह इस लोकमें रहता हुआ ही ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। जो माया और सत्त्वादि गुणोंके तत्त्वको जानता है, जिसे सब भूतोंके कारणका ज्ञान है और जो ममता तथा अहंकारसे रहित हो गया है, उसकी मुक्तिमें तनिक भी संदेह नहीं है। यह देह एक वृक्षके समान है, अज्ञान इसका मूल अमुर (जड़) है, पञ्चमहाभूत उसके विशेष अवयव हैं और उन भूतोंके विशेष भेद उसकी टहनियाँ हैं। इसमें सदा ही संकल्परूपी पत्ते उगते और कर्मरूपी फूल खिलते रहते हैं। शुभाशुभ कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखादि ही उसमें सदा लगे रहनेवाले फल हैं। इस प्रकार ब्रह्मरूपी बीजसे प्रकट होकर प्रवाहरूपसे सदा मौजूद रहनेवाला देहरूपी वृक्ष समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। जो इसके तत्त्वको भलीभाँति जानकर ज्ञानरूपी तलवारसे इसे काट डालता है, वह अमरत्वको प्राप्त होकर जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य आदिके तथा धर्म, अर्थ और कामके स्वरूपका निश्चय किया गया है, जिसको सिद्धोंके समुदायने भलीभाँति जाना है, जिसका पूर्वकालमें निर्णय किया गया था और मनीषी पुरुष जिसे जानकर सिद्ध हो जाते हैं, उस परम उत्तम सनातन ज्ञानका वर्णन इसप्रकार है- प्रजापति दक्ष, भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन शुक्र, वसिष्ठ, कश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि महर्षि अपने कर्मोंद्वारा समस्त मार्गोंमें भटकते-भटकते जब बहुत थक गये तो एकत्रित हो आपसमें जिज्ञासा करते हुए परम वृद्ध अङ्गिरा मुनिको आगे करके ब्रह्मलोकमें गये और वहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए ब्रह्माजीका दर्शन करके उन्होंने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। फिर अपने परम कल्याणके विषयमें पूछा।

तब ब्रह्माजीने कहा, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षियो। चराचर जीव सत्य (परमात्मा) से उत्पन्न हुए हैं और तपस्या (कर्म) से जीवन धारण करते हैं। ब्रह्म सत्य है, तप सत्य है और प्रजापति भी सत्य है। सत्यसे ही सम्पूर्ण भूतोंका जन्म हुआ है। यह भौतिक जगत् सत्यरूप ही है। इसलिये सदा योगमें लगे रहनेवाले, क्रोध और संतापसे दूर रहनेवाले और नियमोंका पालन करनेवाले धर्मसेवी ब्राह्मण सत्यका आश्रय लेते हैं। जो परस्पर एक दूसरेको नियमके अंदर रखनेवाले, धर्म-मर्यादाके प्रवर्तक और विद्वान हैं, उन ब्राह्मणोंके प्रति मैं लोककल्याणकारी सनातन धर्मोंका उपदेश करता हूँ। प्रत्येक वर्ण और आश्रमके लिये पृथक्-पृथक् चार विद्याओंका वर्णन करूँगा। मनीषी विद्वान चार चरणोंवाले एक धर्मको नित्य बतलाते हैं। द्विजवरो। पूर्वकालमें मनीषी पुरुष जिसका सहारा ले चुके हैं और जो ब्रह्मभावकी प्राप्तिका सुनिश्चित साधन है, उस परम मङ्गलकारी कल्याणमय मार्गका उपदेश करता हूँ, यह सारा-का-सारा उपदेश परमपदका साधन है। आश्रमोंमें ब्रह्मचर्यको प्रथम आश्रम बतलाया गया है। गार्हस्थ्य दूसरा और वानप्रस्थ तीसरा आश्रम है, इसके बाद संन्यास

आश्रम है। इसमें आत्मज्ञानकी प्रधानता होती है, अत: इसे परम पदस्वरूप समझना चाहिये। जबतक अध्यात्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती तभीतक ज्योति, आकाश, वायु, सूर्य, इन्द्र और प्रजापति आदिके पृथक-पृथक दर्शन होते हैं। आत्मज्ञान होनेपर इनका नानात्व नहीं दृष्टिगोचर होता, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य- इन तीन द्विजातियोंके लिये वानप्रस्थ-आश्रमका विधान है। वनमें रहकर मुनिवृत्तिका सेवन करते हुए फल-मूल और वायुके आहारपर जीवन-निर्वाह करनेसे वानप्रस्थ-धर्मका पालन होता है। गृहस्थ आश्रमका विधान सभी वर्णोंके लिये है। विद्वान पुरुषोंने श्रद्धाको ही धर्मका मुख्य लक्षण बतलाया है। धैर्यवान् संतमहात्मा अपने कर्मोंसे धर्म-मर्यादाका पालन करते हैं। जो मनुष्य उत्तम व्रतका आश्रय लेकर उपर्युक्त धर्मोंमेंसे किसीका भी दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं, वे कालक्रमसे सम्पूर्ण प्राणियोंके जन्म और मरणको प्रत्यक्ष देखते हैं। अव्यक्त प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्च महाभूत और उनके शब्द आदि विशेष गुण तथा जीवात्मा- इस प्रकार तत्त्वोंकी संख्या पचीस बतलायी गयी है। जो इन सब तत्त्वोंकी उत्पत्ति और लयको ठीक-ठीक जानता है, वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें धीर है और कभी मोहमें नहीं पड़ता। जो सम्पूर्ण तत्त्वों, गुणों तथा समस्त देवताओंको यथार्थ रूपसे जानता है, उसके पाप धुल जाते हैं और वह बन्धनसे मुक्त होकर सम्पूर्ण दिव्यलोकोंके सुखका अनुभव करता है।

जब तीनों गुणोंकी साम्यावस्था होती है, उस समय उनका नाम अव्यक्त प्रकृति होता है। अव्यक्त समस्त प्राकृत कार्योंमें व्यापक, अविनाशी और स्थिर होता है। उपर्युक्त तीन गुणोंमें जब विषमता आती है तो वे पञ्चभूतका रूप धारण करते हैं और उनसे नौ द्वारवाले नगर (शरीर) का निर्माण होता है। इस पुरमें जीवात्माको विषयोंकी ओर प्रेरित करनेवाली ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इसकी अभिव्यक्ति मनके द्वारा हुई है। बुद्धि इस नगरकी स्वामिनी है। इसमें जो तीन स्रोत (चित्तरूपी नदीके प्रवाह) हैं, वे सदा भरे रहते हैं। इन्हें भरनेके लिये तीन गुणमयी नाड़ियाँ हैं। सत्त्व, रज और तम- ये तीन गुण कहलाते हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके आश्रित और एक दूसरेके सहारे टिकनेवाले हैं। जहाँ तमोगुणको रोका जाता है वहाँ रजोगुण बढ़ता है और जहाँ रजोगुणको दबाया जाता है वहाँ सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है। तमको अन्धकाररूप समझना चाहिये। उसका दूसरा नाम मोह है। वह अधर्मको लक्षित करानेवाला और पाप करनेवाले लोगोंमें निश्चित्तरूपसे विद्यमान रहनेवाला है। तमोगुणका यह स्वरूप दूसरे गुणोंसे मिश्रित भी दिखायी देता है। रजोगुणको प्रकृतिरूप बतलाया गया है, यह सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण है। सम्पूर्ण भूतोंमें इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसीसे इस दृश्य-जगत्की उत्पत्ति हुई है। सब भूतोंमें प्रकाश, लघुता (गर्वहीनता) और श्रद्धा- यह सत्त्वगुणका रूप है। गर्वहीनताकी साधु पुरुषोंने प्रशंसा की है। मोह, अज्ञान, त्यागका अभाव, कर्मोंका निर्णय न कर सकना, निद्रा, गर्व, भय, लोभ, शोक, शुभ कर्मोंमें दोष देखना, स्मरण-शक्तिका अभाव, परिणाम न सोचना, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, निर्विशेषता (अच्छे-बुरेके विवेकता अभाव), इन्द्रियोंकी शिथिलता, हिंसा आदि निन्दनीय दोषोंमें प्रवृत्त होना, अकार्यको कार्य और अज्ञानको ज्ञान समझना, शत्रुता, काममें मन न लगाना, अश्रद्धा, मूर्खतापूर्ण विचार, कुटिलता, नासमझी, पाप करना, अज्ञान, आलस्य आदिके कारण देहका भारी होना, भाव-भक्तिका न होना, अजितेन्द्रियता और नीच कर्मोंमें अनुराग- ये सभी दुर्गुण तमोगुणके कार्य बतलाये गये हैं। इनके सिवा और भी जो-जो बातें इस लोकमें निषिद्ध मानी गयी हैं, वे सब तमोगुणी ही हैं। देवता, ब्राह्मण और वेदकी निन्दा करना, दान न देना, अभिमान, मोह, क्रोध, असहनशीलता और मात्सर्य ये सब तामस बर्ताव हैं। (विधि और श्रद्धासे रहित) व्यर्थ कार्योंका आरम्भ करना, देश-काल-पात्रका विचार न करके अश्रद्धा और अवहेलनापूर्वक दान देना तथा देवता और अतिथिको दिये बिना भोजन करना भी तामसिक कार्य है। अतिवाद, अक्षमा, मत्सरता, अभिमान और अश्रद्धाको तमोगुणका फल माना गया है। संसारमें ऐसे बर्तावाले और धर्मकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले जो भी पापी मनुष्य हैं, वे सब तमोगुणी माने गये हैं। ऐसे पापी मनुष्योंके लिये दूसरे जन्ममें जिन योनियोंमें जाना अनिवार्य होता है, वो सब बताता हूँ। उनमेंसे कुछ तो नीचे नरकोंमें ढकेले जाते हैं और कुछ तिर्यग्योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं। स्थावर (वृक्ष-पर्वत आदि) जीव, पशु,

वाहन, राक्षस, सर्प, कीड़े-मकोड़े, पक्षी, अण्डज प्राणी, चौपाये, पागल, बहरे, गूँगे तथा अन्य जितने पापमय रोगवाले (कोढ़ी आदि) मनुष्य हैं, वे सब तमोगुणमें डूबे हुए हैं। अपने कर्मोंके अनुसार लक्षणोंवाले ये दुराचारी जीव सदा दुःखमें निमग्न रहते हैं। उनकी चित्तवृत्तियोंका प्रवाह निम्न दिशाकी ओर होता है, इसलिये उन्हें अवाक् स्रोता कहते हैं। ये सब-के-सब तमोगुणी हैं। तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), क्रोध नामवाला तामिस्र और मृत्युरूप अन्धतामिस्र- यह पाँच प्रकारकी तामसी प्रकृति बतलायी गयी है। वर्ण, गुण, योनि और तत्त्वके अनुसार तमोगुणका पूरा-पूरा वर्णन किया। यह विपरीत दृष्टि ही तमोगुणकी पहचान है। इस प्रकार तमोगुणके स्वरूप और उसके कार्यभूत नाना प्रकारके गुणोंका यथावत् वर्णन किया गया। जो मनुष्य इन गुणोंको ठीक-ठीक जानता है, वह तामसिक गुणोंसे सदा मुक्त रहता है।

संताप, रूप, आयास, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, ऐश्वर्य, विग्रह, संधि, हेतुवाद, मनका प्रसन्न न रहना, बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या, इच्छा, चुगली खाना, युद्ध करना, ममता, कुटुम्बका पालन, वध, बन्धन, क्लेश, क्रय-विक्रय, छेदन, भेदन और विदारणका प्रयत्न, उग्रता, निष्ठुरता, चिल्लाना, दूसरोंके छिद्र बताना, लौकिक बातोंकी चिन्ता करना, पश्चात्ताप, असत्यभाषण, मिथ्या दान, संशयपूर्ण विचार, तिरस्कारपूर्वक बोलना, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा, प्रताप, बलात्कार, स्वार्थके लिये सेवा, तृष्णा, दूसरोंके आश्रित रहना, व्यवहार-कुशलता, नीति, प्रमाद (अपव्यय), परिवाद और परिग्रह- ये सभी रजोगुणके कार्य हैं। संसारमें जो स्त्री, पुरुष, भूत, द्रव्य और गृह आदिके पृथक्-पृथक् संस्कार होते हैं, वे भी रजोगुणकी ही प्रेरणाके फल हैं। संताप, अविश्वास, सकामभावसे व्रत-नियमोंका पालन, काम्यकर्म, नाना प्रकारके पूर्त (वापी, कूप-तड़ाग आदि पुण्य) कर्म, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, याजन, अध्यापन, यजन, अध्ययन, दान, प्रतिग्रह, प्रायश्चित्त और मङ्गलजनक कर्म भी राजस माने गये हैं। मुझे यह वस्तु मिल जाय, वह मिल जाय इस प्रकार जो विषयोंको पानेके लिये आसक्तिमूलक उत्कण्ठा होती है, उसका कारण रजोगुण ही है। द्रोह, माया, शठता, मान, चोरी, हिंसा, घृणा, परिताप, जागरण, दम्भ, दर्प, राग, विषयप्रेम, प्रमोद, द्यूतक्रीड़ा, लोगोंके साथ विवाद करना, स्त्रियोंके लिये सम्बन्ध बढ़ाना, नाच-बाजा और गानमें आसक्त होना- ये सब राजस गुण हैं। जो इस पृथ्वीपर भूत,वर्तमान और भविष्य पदार्थोंकी चिन्ता करते, धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्गके सेवनमें लगे रहते, मनमाना बतार्व करते और सब प्रकारके भोगोंकी समृद्धिसे आनन्द मानते हैं, वे मनुष्य रजोगुणसे आवृत्त हैं, उन्हें अर्वाक्स्रोता कहते हैं। ऐसे लोग इस लोकमें बार-बार जन्म लेकर विषयजनित आनन्दमें मग्न रहते हैं और इहलोक तथा परलोकमें सुख पानेका यत्न किया करते हैं। जो मनुष्य इन गुणोंको जानता है, वह सदा इनके बन्धनोंसे दूर रहता है।

जो जगत्में सम्पूर्ण प्राणियोंका हितकारी और साधु पुरुषोंका प्रशंसनीय धर्म है। आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति, प्रकाश, सुख, कृपणताका अभाव, निर्भयता, संतोष, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, किसीके दोष न देखना, पवित्रता, चतुरता और पराक्रम ये सत्त्वगुणके कार्य हैं। जो इन धर्मोंका आचरण करता है, वह परलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ममता, अहंकार और आशाका परित्याग करके सर्वत्र समान दृष्टि रखना और सर्वथा निष्काम हो जाना ही साधु पुरुषोंका सनातन धर्म है। विश्वास, लज्जा, तितिक्षा, त्याग, पवित्रता, आलस्यरहित होना, कोमलता, मोहमें न पड़ना, प्राणियोंपर दया करना, चुगली न खाना, हर्ष, संतोष, विस्मय, विनय, सद्बर्ताव, शान्तिकर्ममें शुद्धभावसे प्रवृत्ति, उत्तम बुद्धि, आसक्तिसे छूटना, जगत्के भोगोंसे उदासीनता, ब्रह्मचर्य, सब प्रकारका त्याग, निर्ममता, फलकी कामना न करना तथा धर्मका निरन्तर पालन करते रहना- ये सब सत्त्वगुणके कार्य हैं। जो उपर्युक्त बर्तावका पालन करते हुए इस जगत्में सत्यका आश्रय लेते हैं और वेदकी उत्पत्तिके स्थानभूत परब्रह्म परमात्मामें निष्ठा रखते हैं, वे ही धीर और साधुदर्शी माने गये हैं। वे धीर पुरुष सब पापोंका त्याग करके शोकसे रहित हो जाते हैं और स्वर्गलोकमें जाकर अनेकों शरीरोंकी सृष्टि करते हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न महात्मा स्वर्गवासी देवताओंकी भाँति ईशित्व, वशित्व और लघिमा आदि सिद्धियोंको प्राप्त करते हैं। वे ऊर्ध्वस्रोता और वैकारिक देवता

माने गये हैं। (योगबलसे) स्वर्गेको प्राप्त होनेपर उनका चित्त भोगजनित संस्कारसे विकृत होता है। उस समय वे जो-जो चाहते हैं, उस-उस वस्तुको पाते और बाँटते हैं। जो इस विषयको अच्छी तरह जानता है, उसे मनोवाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है तथा वह गुणोंका सेवन करता हुआ भी उनके बन्धनमें नहीं पड़ता।

सत्त्व, रज और तम इन गुणोंका सर्वथा पृथक् रूपसे वर्णन करना असम्भव है; क्योंकि ये तीनों गुण अविच्छिन्न (मिले हुए) देखे जाते हैं। ये सभी परस्पर रेंगे हुए, एक दूसरेसे अनुप्राणित, अन्योन्याश्रित तथा एक-दूसरेका अनुसरण करनेवाले हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि इस जगत्में जबतक तमोगुण और सत्त्वगुण है तबतक रजोगुण की भी सत्ता रहती ही है। ये गुण सदा साथ रहते, साथ-ही-साथ विचरते, समूह बनाकर यात्रा करते और संघात (शरीर) में मौजूद रहते हैं। ऐसा होनेपर भी कहीं इनमेंसे किसीकी न्यूनता देखी जाती है और कहीं अधिकता। तिर्यग्योनियोंमें जहाँ तमोगुणकी अधिकता होती है, वहाँ रजोगुण और सत्त्वगुणकी कमी समझनी चाहिये। मध्यस्त्रोता अर्थात् मनुष्य-योनिमें, जहाँ रजोगुणकी मात्रा अधिक होती है, वहाँ तमोगुण और सत्त्वगुणकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। इसी प्रकार ऊर्ध्वस्त्रोता यानी देव-योनियोंमें जहाँ सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है वहाँ तमोगुण और रजोगुणकी कमी देखी जाती है। सत्त्वगुण इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका कारण है, उसे वैकारिक हेतु मानते हैं। वह इन्द्रियों और उनके विषयोंको प्रकाशित करनेवाला है। सत्त्वगुणसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित पुरुष मध्यमें अर्थात मनुष्यलोकमें ही रहते हैं और तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद एवं आलस्य आदिमें स्थित हुए तामस मनुष्य अधोगतिको प्राप्त होते -नीच योनियों अथवा नरकोंमें पड़ते हैं। शूद्रमें तमोगुणकी, क्षत्रियमें रजोगुणकी और ब्राह्मणमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है। तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुण ये सर्वथा पृथक-पृथक हों, ऐसा कभी नहीं सुना गया। सूर्यका प्रकाश सत्त्वगुण हैं, उनका ताप रजोगुण है और अमावस्याके दिन जो उनपर ग्रहण लगता है वह तमोगुणका कार्य है। इस प्रकार सभी ज्योतियोंमें तीनों गुण क्रमश: प्रकट होते और विलीन होते रहते हैं। गुणोंके भेदसे दिनको भी तीन प्रकारका समझना चाहिये। रात भी तीन प्रकारकी होती है तथा मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु और संध्याके भी तीन-तीन भेद होते हैं। तीन प्रकारसे दान दिये जाते हैं। तीन प्रकारका यज्ञानुष्ठान होता है। लोक, देव, विद्या और गति भी तीन-तीन प्रकारकी होती है। भूत, वर्तमान, भविष्य, धर्म, अर्थ, काम, प्राण अपान और उदान- ये सब त्रिगुणात्मक ही हैं। इस जगत्में जो कोई भी वस्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे उपलब्ध होती है, वह सब त्रिगुणमय है। सर्वत्र तीनों गुणोंकी ही सत्ता है। ये तीनों अव्यक्त स्वरूप हैं। सत्त्व, रज और तम इनकी सृष्टि सनातन है। प्रकृतिको तम, अव्यक्त, शिव, धाम, रज, योनि, सनातन, प्रकृति, विकार, प्रलय, प्रधान, प्रभव, अप्यय, अनुद्रिक्त, अन्यून, अकम्प, अचल, ध्रुव, सत्, असत् और त्रिगुणात्मक कहते हैं। अध्यात्मतत्त्वका चिन्तन करनेवाले लोगोंको इन नामोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो मनुष्य प्रकृतिके इन नामों, सत्त्वादि गुणों और सम्पूर्ण गतियोंको ठीक-ठीक जानता है, वह गुण-विभागके तत्त्वका ज्ञाता है। उसके ऊपर सांसारिक दु:खोंका प्रभाव नहीं पड़ता। वह देह-त्यागके पश्चात् सम्पूर्ण गुणोंके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।

परमात्वतत्त्वको जाननेवाला विद्वान ब्राह्मण भी मोहमें नहीं पड़ता। परमात्मा सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है। सबके हृदयमें विराजमान पुरुष (परमात्मा) का प्रभाव बहुत बड़ा है। अणिमा, लघिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियाँ उसीके स्वरूप हैं। वह सबका शासन करनेवाला, ज्योर्तिमय और अविनाशी है। संसारमें जो मनुष्य बुद्धिमान्, सद्भावपरायण, ध्यानी, योगी, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, ज्ञानवान, लोभहीन, क्रोधको जीतनेवाले, प्रसन्न चित्त, धीर तथा ममता और अहंकारसे रहित हैं, वे सब मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त होते हैं। जो महान् आत्माकी महिमाको जानता है उसे पुण्यदायक उत्तम गति मिलती है। जब पञ्चमहाभूतोंके विनाशके समय प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय समस्त प्राणियोंको महान् भयका सामना करना पड़ता है; किंतु आत्मज्ञानी धीर

पुरुष उस समय भी मोहित नहीं होता। जो इस प्रकार बुद्धिरूपी गुहामें स्थित, विश्वरूप, पुराण-पुरुष, हिरण्मय देव और ज्ञानियोंकी परम गतिरूप परम प्रभुको जानता है, वह बुद्धिमान बुद्धिकी सीमाके पार पहुँच जाता है।

अहंकारसे पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज- ये पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं पञ्चमहाभूतोंमें अर्थात् इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धनामक विषयोंमें समस्त प्राणी मोहित रहते हैं। महाभूतोंका नाश होनेके समय जब प्रलयका अवसर आता है उस समय समस्त प्राणियोंको महन् भयका सामना करना पड़ता है। जो भूत जिससे उत्पन्न होता है उसका उसीमें लय हो जाता है। ये भूत अनुलोमक्रमसे एकके बाद एक प्रकट होते हैं और विलोमक्रमसे इनका अपने-अपने कारणमें लय होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर भूतोंका लय हो जानेपर भी स्मरण-शक्तिसे सम्पन्न धीरहृदय योगी पुरुष नहीं लीन होते। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा इनको ग्रहण करनेकी क्रियाएँ- ये करणरूपसे (अर्थात् सूक्ष्म मन:स्वरूप होनेके कारण), नित्य हैं, अत: इनका भी प्रलयकालमें लय नहीं होता। स्थूल पदार्थ अनित्य हैं और उनको मोहके नामसे पुकारा जाता है। शरीरके बाह्य अङ्ग रक्त-मांसके संघात आदि स्थूल एवं अनित्य हैं। इसीलिये ये दीन और कृपण माने गये हैं। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान- ये पाँच वायु नियतरूपसे शरीरके भीतर निवास करते हैं; अत: ये सूक्ष्म हैं। मन, वाणी, और बुद्धिके साथ गिननेसे इनकी संख्या आठ होती है। ये आठ इस जगतके उपादान कारण हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कान, आँख, रसना और वाक् ये इन्द्रियाँ वशमें हों, मन शुद्ध हो और बुद्धि एक निश्चयपर स्थिर रहनेवाली हो; जिसके मनको उपर्युक्त इन्द्रियादिरूप आठ अग्नियाँ संतप्त न करती हों, वह पुरुष कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त होता है।

अहंकारसे उत्पन्न हुई जो ग्यारह इन्द्रियाँ बतलायी जाती हैं, उसके बारे में जानो, कान, त्वचा, आँख, रसना, नाक, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ और वाक्- ये दस इन्द्रियाँ हैं। मन ग्यारहवीं इन्द्रिय हैं। मनुष्यको पहले इन इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। तत्पश्चात् उसे ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। इन इन्द्रियोंमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं और पाँच कर्मेन्द्रिय। कान आदि पाँच इन्द्रियोंको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं और शेष पाँच इन्द्रियाँ कर्मेन्द्रिय कहलाती हैं। मनका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंसे है और बुद्धि बारहवीं इन्द्रिय है। इस प्रकार क्रमश: ग्यारह इन्द्रियोंका वर्णन किया गया। इनके तत्त्वको अच्छी तरह जाननेवाले विद्वान अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

अब समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके भूत, अधिभूत आदि विविध विषयोंका वर्णन किया जाता है। आकाश पहला भूत है। कान उसका अध्यात्म (इन्द्रिय), शब्द उसका अधिभूत (विषय) और दिशाएँ उसकी अधिदैवत (अधिष्ठातृ देवता) हैं। वायु दूसरा भूत है, त्वचा उसका अध्यात्म, स्पर्श उसका अधिभूत और विद्युत उसका अधिदैवत है। तीसरे भूतका नाम है तेज; नेत्र उसका अध्यात्म, रूप उसका अधिभूत और सूर्य उसका अधिदैवत है। जलको चौथा भूत समझना चाहिये; रसना उसका अध्यात्म, रस उसका अधिभूत और चन्द्रमा उसका अधिदैवत है। पृथ्वी पाँचवाँ भूत है; नासिका उसका अध्यात्म, गन्ध उसका अधिभूत और वायु उसका अधिदैवत है। इन पाँच भूतोंमें जो अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव हैं, उसके बारे में बताया गया। अब कर्मेन्द्रियों के सम्बन्धमें जानो। तत्त्वदर्शी ब्राह्मण दोनों पैरोंको अध्यात्म कहते हैं और गन्तव्य स्थानको उनके अधिभूत तथा विष्णुको उनके अधिदैवत बतलाते हैं। गुदा अध्यात्म है और मलत्याग उसका अधिभूत तथा मित्र उसके अधिदेवता है। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला उपस्थ अध्यात्म है और वीर्य उसका अधिभूत तथा प्रजापति उसका अधिष्ठाता देवता हैं। दोनों हाथ अध्यात्म बतलाये गये हैं; कर्म उनके अधिभूत और इन्द्र उनके अधिदेवता हैं। वाणी अध्यात्म है और वक्तव्य उसका अधिभूत तथा अग्नि उसका अधिदैवत है। पञ्चभूतोंका संचालन करनेवाला मन अध्यात्म कहा गया है; संकल्प उसका अधिभूत है और चन्द्रमा उसके अधिष्ठाता देवता माने गये हैं। सम्पूर्ण संसारको जन्म देनेवाला अहंकार अध्यात्म है और अभिमान उसका अधिभूत तथा रुद्र उसके अधिष्ठाता देवता हैं। विचार करनेवाली बुद्धि अध्यात्म मानी गयी है; मन्तव्य उसका अधिभूत और ब्रह्मा उसके अधिदेवता हैं। प्राणियोंके

रहनेके तीन ही स्थान हैं- जल, थल और आकाश। चौथा स्थान सम्भव नहीं है। देहधारियोंका जन्म चार प्रकारका होता है- अण्डज, उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुज। तपस्या और पुण्यकर्मका अनुष्ठान- यही विद्वानोंका कर्त्तव्य है। कर्मके अनेकों भेद हैं, उनमें यज्ञ और दान- ये प्रधान हैं। विद्वानों का कहना है कि द्विजोंके कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषके लिये वेदोंका अध्ययन अत्यन्त पुण्यका कार्य है। जो मनुष्य इस विषयको विधिपूर्वक जानता है, वह योगी होता है तथा उसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। ज्ञानी पुरुषोंको इस विषयका सम्यक् ज्ञान होता है। इन्द्रियों, उनके विषयों और पञ्चमहाभूतोंकी एकताका विचार करके उसे मनमें अच्छी तरह धारण कर लेना चाहिये। मनके क्षीण होनेके साथ ही सब वस्तुओंका क्षय हो जानेपर मनुष्यको जन्मके सुख (लौकिक सुख-भोग आदि) की इच्छा नहीं होती। जिनका अन्त:करण ज्ञानसे सम्पन्न होता है, उन विद्वानोंको उसीमें सुखका अनुभव होता है।

जहाँ गुण होते हुए भी नहींके बराबर हैं, जो अभिमानसे रहित और एकान्तचर्यासे युक्त है तथा जिसमें भेद-दृष्टिका सर्वथा अभाव है, वही ब्रह्ममय बर्ताव बतलाया गया है, वही समस्त सुखोंका एकमात्र आधार है। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको संकुचित करके रजोगुणसे रहित हो जाता है, वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त एवं सुखी होता है। जो कामनाओंको अपने भीतर लीन करके तृष्णासे रहित, एकाग्रचित्त और सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् होता है, वह ब्रह्मप्राप्तिका पात्र हो जाता है। विषयोंकी अभिलाषा रखनेवाली समस्त इन्द्रियोंको रोककर जनसमुदायके स्थानका परित्याग करनेसे मुनिका अध्यात्मज्ञानरूपी तेज अधिक प्रकाशित होता है। जैसे ईंधन डालनेसे आग प्रज्ज्वलित होकर अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देती है; उसी प्रकार इन्द्रियोंका निरोध करनेसे परमात्माके प्रकाशका विशेष अनुभव होने लगता है। जिस समय योगी प्रसन्नचित्त होकर सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने अन्त:करणमें स्थित देखने लगता है, उस समय वह स्वयं ज्योति:स्वरूप होकर सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म परमात्माको प्राप्त होता है। जिसने इस लोकमें तीन गुणोंवाले पाञ्चभौतिक देहका अभिमान त्याग दिया है उसे अपने हृदयाकाशमें परब्रह्मरूप उत्तम पदकी उपलब्धि होती है- वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसमें पाँच इन्द्रियरूपी बड़े कगारे हैं, जो मनोवेगरूपी महान् जलराशिसे भरी हुई है और जिसके भीतर मोहमय कुण्ड हैं, उस देहरूप नदीको लाँघकर जो काम और क्रोध दोनोंको जीत लेता हूँ वही सब दोषोंसे मुक्त होकर परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार करता है। जो मनको हृदयकमलमें स्थापित करके अपने भीतर ही ध्यानके द्वारा आत्मदर्शनका प्रयत्न करता है, वह सम्पूर्ण भूतोंमें सर्वज्ञ होता है और उसे अन्त:करणमें परमात्मतत्त्वका अनुभव होने लगता है। जैसे एक दीपसे सैकड़ों दीप जला लिये जाते हैं उसी प्रकार एक ही परमात्मा यत्र-तत्र अनेकों रूपोंमें उपलब्ध होता है। ऐसा निश्चय करके ज्ञानी पुरुष सबरूपोंको एकसे ही उत्पन्न देखता है। वास्तवमें वही विष्णु, मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, प्रभु, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हृदय तथा महान् आत्मा है। ब्राह्मणसमुदाय, देवता, असुर, यक्ष, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, भूत और सम्पूर्ण महर्षि भी सदा उस महात्माकी स्तुति करते हैं।

बरगद, जामुन, पीपल, सेमल, शीशम, मेषश्रृङ्ग (मेढ़ासिंगी) और पोले बाँस- ये इस लोकमें वृक्षोंके राजा हैं। हिमवान्, पारियात्र, सह्य, विन्ध्य, त्रिकूट, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र, माल्यवान् ये पर्वतोंके अधिपति हैं। सूर्य ग्रहोंके, चन्द्रमा नक्षत्रोंके, यमराज पितरोंके, समुद्र सरिताओंके, वरुण जलके और इन्द्र मरुद्गणोंके स्वामी हैं। उष्णप्रभाके अधिपति सूर्य हैं, ताराओंके स्वामी चन्द्रमा हैं और भूतोंके अधीश्वर अग्निदेव हैं। ब्राह्मणोंके स्वामी बृहस्पति, औषधियोंके सोम, बलवानोंके विष्णु, रूपोंके त्वष्टा तथा पशुओंके अधिपति भगवान् शिव हैं। दीक्षा ग्रहण करनेवालोंके यज्ञ और देवताओंके इन्द्र अधिपति हैं। दिशाओंकी स्वामिनी उत्तर दिशा है, ब्राह्मणोंके प्रतापी राजा सोम हैं, सब प्रकारके रत्नोंके स्वामी कुबेर और प्रजाओंके स्वामी प्रजापति हैं। ब्रह्मा सम्पूर्ण प्राणियोंका महान् अधीश्वर और ब्रह्ममय हैं। ब्रह्मासे अथवा विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्ममय महाविष्णु ही सबके राजाधिराज हैं, उन्हींको ईश्वर समझना चाहिये। वे श्रीहरि सबके कर्ता हैं; किंतु उनका

कोई कर्ता नहीं है। वे मनुष्य, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, देव, दानव और नाग सबके अधीश्वर हैं।

राजा धर्म-पालनके इच्छुक होते हैं और ब्राह्मण धर्मके सेतु हैं; अत: राजाको चाहिये कि वह सदा ब्राह्मणोंकी रक्षाका प्रयत्न करे। जिन राजाओंके राज्यमें साधु-पुरुषोंको कष्ट होता है, वे अपने समस्त राजोचित गुणोंसे हीन हो जाते और मरनेके बाद नरकमें पड़ते हैं। जिनके राज्यमें साधु-ब्राह्मणोंकी सब प्रकारसे रक्षा की जाती है, वे इस लोकमें आनन्दके भागी होते हैं और परलोकमें भी सुख भोगते हैं।

अहिंसा सबसे श्रेष्ठ धर्म है और हिंसा अधर्मका लक्षण (स्वरूप) है। प्रकाश देवताओंका, यज्ञ आदि कर्म मनुष्योंका, शब्द आकाशका, वायु स्पर्शका, रूप तेजका, रस जलका और गन्ध सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वीका लक्षण है। स्वर-व्यञ्जनकी शुद्धिसे युक्त वाणीका लक्षण शब्द है। सोच-विचार मनका और निश्चय बुद्धिका लक्षण हैं; क्योंकि मनुष्य इस जगत्में मनके द्वारा सोची हुई बातोंका बुद्धिसे ही निश्चय करते हैं। साधु-पुरुषका लक्षण बाहरसे व्यक्त नहीं होता (वह स्वसंवेद्य हुआ करता है)। योगका लक्षण प्रवृत्ति और संन्यासका लक्षण ज्ञान है। इसलिये बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि वह ज्ञानका आश्रय लेकर संन्यास ग्रहण करे। ज्ञानयुक्त संन्यासी मौत और बुढ़ापाको लाँघकर सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे परे हो अज्ञानान्धकारके पार पहुँचकर परम गतिको प्राप्त होता है।

पृथ्वीका जो गन्ध नामक गुण है उसका नासिकाके द्वारा ग्रहण होता है और नासिकामें स्थित वायु उस गन्धका अनुभव करानेमें सहायक होती है। जलका गुण रस है जिसको जिह्वाके द्वारा ग्रहण किया जाता है और जिह्वामें स्थित चन्द्रमा उस रसके आस्वादनमें सहायक होता है। तेजका गुण रूप है और वह नेत्रमें स्थित सूर्यदेवताकी सहायतासे नेत्रके द्वारा देखा जाता है। वायुका गुण स्पर्श है, जिसका त्वचाके द्वारा ज्ञान होता है और त्वचामें स्थित वायुदेव उस स्पर्शका अनुभव करानेमें सहायक होते हैं। आकाशके गुण शब्दका कानोंके द्वारा ग्रहण होता है और कानमें स्थित सम्पूर्ण दिशाएँ शब्दके श्रवणमें सहायक बतायी गयी हैं। मनका गुण चिन्तन है जिसका बुद्धिके द्वारा ग्रहण किया जाता है और हृदयमें स्थित चेतन (आत्मा) मनके चिन्तन कार्यमें सहायता देता है। निश्चयके द्वारा बुद्धिका और विशुद्ध बुद्धिके द्वारा महत्तत्त्वका ग्रहण होता है। इनके कार्योंसे ही इनकी सत्ताका निश्चय होता है और इसीसे इन्हें व्यक्त माना जाता है; किंतु वास्तवमें तो अतीन्द्रिय होनेके कारण ये बुद्धि आदि अव्यक्त ही हैं। क्षेत्रज्ञ आत्माका कोई ज्ञापक लिङ्ग नहीं है; क्योंकि वह (स्वयंप्रकाश और) निर्गुण है। अत: क्षेत्रज्ञ अलिङ्ग (किसी विशेष लक्षणसे रहित) है; केवल ज्ञान ही उसका लक्षण (स्वरूप) माना गया है। गुणोंकी उत्पत्ति और लयके कारणभूत अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र कहते हैं। आत्मा उसे जानता है, इसलिये वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्रज्ञ आदि, मध्य और अन्तसे युक्त समस्त चेतन गुणोंको जानता है; किंतु वे उसे नहीं जान पाते। क्षेत्रज्ञको कोई नहीं जानता, परंतु वह सबको जानता है। इन्द्रियोंके भोगमें आनेवाले जो गुण हैं, उनसे परे विराजमान परब्रह्म परमात्माको क्षेत्रज्ञके सिवा कोई नहीं जानता। अत: इस लोकमें जिनके दोषोंका क्षय हो गया है, वह गुणातीत पुरुष सत्त्व (बुद्धि) और गुणोंका परित्याग करके क्षेत्रज्ञके शुद्धस्वरूप परमात्मामें प्रवेश कर जाता है। क्षेत्रज्ञ सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंसे रहित, अचल और अनिकेत है। वही सर्वव्यापक परमात्मा है।

पहले दिन है फिर रात्रि (अत: दिन रात्रिका आदि है इसी प्रकार) शुक्लपक्ष महीनेका, श्रवण नक्षत्रोंका और शिशिर ऋतुओंका आदि है। गन्धोंका आदि कारण भूमि, रसोंका बल, रूपोंका ज्योतिर्मय आदित्य, स्पर्शोंका वायु और शब्दका आदि कारण आकाश है। ये गन्ध आदि पञ्चभूतोंसे उत्पन्न गुण हैं। सूर्य समस्त ग्रहोंका और जठरानल सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि बतलाया जाता है। सावित्री सब विद्याओंकी और प्रजापति देवताओंके आदि हैं। ॐकार सम्पूर्ण वेदोंका और प्राण वाणीका आदि है। इस संसारमें जो नियत उच्चारण है, वह सब गायत्री कहलाता है। छन्दोंका आदि गायत्री और प्रजाका आदि सृष्टिका प्रारम्भकाल है। गौएँ चौपायोंकी, ब्राह्मण मनुष्योंके, बाज चिड़ियोंके, उत्तम आहुति यज्ञोंकी, साँप रेंगकर

चलनेवाले जीवोंका और सत्ययुग सम्पूर्ण युगोंका आदि है। रत्नोंमें सुवर्ण, अन्नोंमें जौ और भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंमें अन्न श्रेष्ठ है। बहनेवाले और पीने योग्य पदार्थोंमें जल उत्तम है। समस्त स्थावर भूतोंमें सामान्यत: ब्रह्माजीका क्षेत्र-पाकर नामवाला वृक्ष श्रेष्ठ एवं पवित्र माना गया है। सम्पूर्ण प्रजापतियोंका आदि ब्रह्मा हैं और ब्रह्मा के आदि अचिन्त्यात्मा भगवान् विष्णु हैं। उन्हींको स्वयम्भू कहते हैं। पर्वतोंमें सबसे पहले मेरुगिरिकी उत्पत्ति हुई है। दिशा और विदिशाओंमें पूर्वदिशा प्रधान मानी गयी है। सब नदियोंमें त्रिपथगा गङ्गा ज्येष्ठ हैं। सरोवरोंमें सर्वप्रथम समुद्रका प्रादुर्भाव हुआ है। वेद, दानव, भूत, पिशाच, सर्प, राक्षस, मनुष्य, किन्नर और समस्त यक्षोंके स्वामी भगवान शंकर हैं। सम्पूर्ण जगत्के आदि कारण ब्रह्मस्वरूप महाविष्णु हैं। तीनों लोकोंमें उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। सब आश्रमोंमें गृहस्थ-आश्रमको प्रधानता दी गयी है। जगत्का आदि और अन्त अव्यक्त प्रकृति ही है। दिनका अन्त है सूर्यास्त और रात्रिका अन्त है सूर्योदय। सुखका अन्त सदा दु:ख है और दु:ख का अन्त सदा सुख है। संग्रहका अन्त है विनाश, ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना, संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मृत्यु। जिन-जिन वस्तुओंका निर्माण हुआ है उनका नाश अवश्यम्भावी है। जो जन्म ले चुका है उसकी मृत्यु निश्चित है। इस जगत्में स्थावर या जङ्गम कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है। यज्ञ, दान, तप, अध्ययन, व्रत और नियम- इन सबका अन्त होता है, केवल ज्ञानका अन्त नहीं होता। इसलिये विशुद्ध ज्ञानके द्वारा जिसका चित्त शान्त हो गया है, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हो चुकी हैं तथा जो ममता और अहंकारसे रहित हो गया है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मनके समान वेगवाला (देहरूपी) मनोरम कालचक्र निरन्तर चल रहा है। यह महत्तत्त्वसे लेकर स्थूल भूतोंतक चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ है। इसकी गति कहीं भी नहीं रूकती। यह संसार-बन्धनका अनिवार्य कारण है। बुढ़ापा और शोक इसे घेरे हुए हैं। यह रोग और दुर्व्यसनोंकी उत्पत्तिका स्थान है। देश और कालके अनुसार विचरण करता रहता है। बुद्धि इस कालचक्रका सार, मन खम्भा और इन्द्रियाँ बन्धन हैं। यह पञ्चमहाभूतोंके समूहसे बना हुआ है। श्रम तथा व्यायाम इसके शब्द हैं। रात और दिन इस चक्रका संचालन करते हैं। सर्दी और गर्मी इसका घेरा है। सुख और दु:ख इसकी संधियाँ (जोड़) हैं। भूख और प्यास इसके कीलक तथा धूप और छाया इसकी रेखा हैं। आँखोंके खोलने और मीचनेसे इसकी व्याकुलता (चञ्चलता) प्रकट होती है। घोर मोहरूपी जल (शोकाश्रु) से यह व्याप्त रहता है। यह सदा ही गतिशील और अचेतन है। मास और पक्ष आदिके द्वारा इसकी आयुकी गणना की जाती है। यह कभी भी एक-सी अवस्थामें नहीं रहता। ऊपर, नीचे और मध्यवर्ती लोकोंमें सदा चक्कर लगाता रहता है। तमोगुणके वशमें होनेपर इसकी पाप-पममें प्रवृत्ति होती है और रजोगुणका वेग इसे भिन्न-भिन्न कर्मोंमें लगाया करता है। यह महान् दर्पसे उद्दीप्त रहता है। तीनों गुणोंके अनुसार इसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। मानसिक चिन्ता ही इस चक्रकी बन्धनपट्टिका है। यह सदा शोक और मृत्युके वशीभूत रहनेवाला तथा क्रिया और कारणसे युक्त है। आसक्ति ही उसका दीर्घविस्तार (लंबाई-चौड़ाई) है। लोभ और तृष्णा ही इस चक्रको ऊँचे-नीचे स्थानोंमें गिरानेके हेतु हैं। अद्भुत अज्ञान (माया) इसकी उत्पत्तिका कारण है। भय और मोह इसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। यह प्राणियोंको मोहमें डालनेवाला, आनन्द और प्रीतिके लिये विचरनेवाला तथा काम और क्रोधका संग्रह करनेवाला है। यह राग-द्वेषादि द्वन्द्वोंसे युक्त जड़ देहरूपी कालचक्र ही देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि और संहारका कारण है। तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका भी यही साधन है। जो मनुष्य इस देहमय कालचक्रकी प्रवृत्ति और निवृत्तिको अच्छी तरह जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता तथा सम्पूर्ण वासनाओं, सब प्रकारके द्वन्द्वों और समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है।

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चार आश्रम शास्त्रोंमें बताये गये हैं। गृहस्थ आश्रम ही इन सबका मूल है। इस संसारमें जो कोई भी विधि-निषेधरूप शास्त्र है, उसमें पारंगत विद्वान होना गृहस्थ द्विजोंके लिये उत्तम बात है। इसीसे सनातन यशकी प्राप्ति होती है। पहले सब प्रकारके संस्कारोंसे सम्पन्न होकर वेदोक्त विधिसे अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। तत्पश्चात् समावर्तन-संस्कार करके उत्तम गुणोंसे युक्त कुलमें विवाह करना चाहिये।

अपनी ही स्त्रीपर प्रेम रखना, सदा सत्पुरुषोंके आचारका पालन करना और जितेन्द्रिय होना गृहस्थके लिये परम आवश्यक है। उसे श्रद्धापूर्वक पञ्च महायज्ञोंके द्वारा देवता आदिका यजन करना चाहिये। गृहस्थको उचित है कि वह देवता और अतिथिको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नका स्वयं आहार करे। वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहे। हाथ, पैर, नेत्र, वाणी तथा शरीरके द्वारा होनेवाली चपलताका परित्याग करे अर्थात् इनके द्वारा कोई अनुचित कार्य न होने दे। यही सत्पुरुषोंका बर्ताव (शिष्टाचार) है। सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहे, स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम व्रतका पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य-अहिंसा आदि नियमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति दान करता रहे। शिष्टाचारका पालन करते हुए जिह्वा और उपस्थको काबूमें रक्खे। सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। बाँसकी छड़ी और जलसे भरा हुआ कमण्डलु सदा साथ रक्खे। ब्राह्मणको अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन और दान तथा प्रतिग्रह इन छः वृत्तियोंका आश्रय लेना चाहिये। इनमेंसे तीन कर्मयाजन (यज्ञ कराना), अध्यापन (पढ़ाना) और श्रेष्ठ पुरुषोंसे दान लेना- ये ब्राह्मणकी जीविकाके साधन हैं और शेष तीन कर्म-दान, अध्ययन तथा यज्ञानुष्ठान करना-ये धर्मोपार्जनके लिये हैं। धर्मज्ञ ब्राह्मणको इनके पालनमें कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इन्द्रियसंयमी, मित्रभावसे युक्त, क्षमावान, सब प्राणियोंके प्रति समान भाव रखनेवाला, मननशील, उत्तम व्रतका पालन करनेवाला और पवित्रतासे रहनेवाला गृहस्थ ब्राह्मण सदा सावधान रहकर अपनी शक्तिके अनुसार पालन करता है तो वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपने धर्ममें तत्पर रहे, विद्वान बने, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रक्खे, मुनिव्रतका पालन करे, गुरुका प्रिय और हित करनेमें लगा रहे, सत्य बोले तथा धर्मपरायण एवं पवित्र रहे, गुरुकी आज्ञा लेकर भोजन करे। भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करे। भिक्षाके अन्नको हविष्य मानकर ग्रहण करे। एक स्थानपर रहे। एक आसनसे बैठे और नियत समयमें भ्रमण करे। पवित्र और एकाग्र चित्त होकर दोनों समय अग्निमें हवन करे। सदा बेल या पलाशका दण्ड लिये रहे। रेशमी अथवा सूती वस्त्र या मृगचर्म धारण करे। अथवा ब्राह्मणके लिये सारा वस्त्र गेरुए रंगका होना चाहिये। ब्रह्मचारी मूँजकी मेखला पहने, जटा धारण करे, प्रतिदिन स्नान करे, यज्ञोपवीत पहने, वेदके स्वाध्यायमें लगा रहे तथा लोभहीन होकर नियमपूर्वक व्रतका पालन करे। जो ब्रह्मचारी सदा नियम-परायण होकर श्रद्धाके साथ शुद्ध जलसे सदा देवताओंका तर्पण करता है, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

वानप्रस्थी पुरुष भी उत्तम लोकोंपर विजय पाता है। वह उत्तम स्थानको पाकर फिर इस संसारमें जन्म धारण नहीं करता। वानप्रस्थी मुनिको घरकी ममता त्यागकर गाँवसे बाहर निकलकर वनमें निवास करना चाहिये। वह मृगचर्म अथवा वल्कल-वस्त्र पहने। प्रातः और सायंकालके समय स्नान करे। सदा वनमें ही रहे। गाँवमें कभी प्रवेश न करे। अतिथिको आश्रय दे और समयपर उनका सत्कार करे। जंगली फल, मूल, पत्ता अथवा सावाँ खाकर जीवन-निर्वाह करे। वनके सिवा अन्यत्रकी जल-वायुतकका सेवन न करे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो फल-मूलकी भिक्षा देकर उसका सत्कार करें। कभी आलस्य न करें। जो कुछ भोजन अपने पास उपस्थित हो, उसीमेंसे अतिथिको भिक्षा दें। मौन होकर पहले देवता और अतिथियोंको भोजन दें, उसके बाद स्वयं अन्न ग्रहण करें। किसीके साथ लाग-डाँट न रक्खे, हल्का भोजन करे, देवताओंका सहारा ले, इन्द्रियोंका संयम करे, सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे, क्षमाशील बने, समयपर अग्निहोत्र, वेदोंका स्वाध्याय और सत्य-धर्मका पालन करे। शरीरको सदा पवित्र रक्खे। धर्म-पालनमें कुशलता प्राप्त करें। सदा वनमें रहकर चित्तको एकाग्र किये रहें। इस प्रकार उत्तम धर्मोंका पालन करनेवाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी स्वर्गपर विजय पाता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ कोई भी क्यों न हो, जो मोक्ष पाना चाहता हो उसे उत्तम वृत्तिका आश्रय लेना चाहिये।

(वानप्रस्थकी अवधि पूरी करके) सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान देकर कर्म-त्यागरूप संन्यास-धर्मका पालन करें। सब प्राणियोंके सुखमें सुख माने। सबके साथ मित्रता रक्खे। समस्त इन्द्रियोंका संयम और मुनि-वृत्तिका पालन करें। बिना

याचना किये, बिना संकल्पके दैवात् जो अन्न प्राप्त हो जाय, उस भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करे। गृहस्थोंके यहाँ रसोई-घरसे जब धुआँ निकलना बंद हो जाय, घरके सब लोग खा-पी चुकें और बर्तन धो-माँजकर रख दिये गये हों, उस समय मोक्ष-धर्मके ज्ञाता संन्यासीको भिक्षा लेनेकी इच्छा करनी चाहिये। भिक्षा मिल जानेपर हर्ष और न मिलनेपर विषाद न करे। (लोभवश) बहुत अधिक भिक्षाका संग्रह न करे। जितनेसे प्राण-यात्राका निर्वाह हो उतनी ही भिक्षा लेनी चाहिये। संन्यासी जीवन-निर्वाहके ही लिये भिक्षा लेनी चाहिये। संन्यासी जीवन-निर्वाहके ही लिये भिक्षा माँगे। उचित समयतक उसके मिलनेकी बाट देखे। चित्तको एकाग्र किये रहे। साधारण लाभकी भी इच्छा न करे। जहाँ अधिक सम्मान होता हो, वहाँ भोजन न करे। मान-प्रतिष्ठाके लाभसे संन्यासीको घृणा करनी चाहिये। वह जूँठे, तिक्त, कसैले तथा कड़वे अन्नका स्वाद न ले। मधुर रसका भी आस्वादन न करे। केवल जीवन-निर्वाहके उद्देश्यसे प्राण-धारणमात्रके लिये उपयोगी अन्नका आहार करे। दूसरे प्राणियोंकी जीविकामें बाधा पहुँचाये बिना ही यदि भिक्षा मिल जाती हो, तभी उसे स्वीकार करे। भिक्षा माँगते समय दिये जानेवाले अन्नके सिवा दूसरा अन्न लेनेकी कदापि इच्छा न करे। उसे अपने धर्मका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। रजोगुणसे रहित होकर निर्जन स्थानमें विचरते रहना चाहिये। रातको सोनेके लिये सूनेघर, जंगल, वृक्षकी जड़, नदीके किनारे अथवा पर्वतकी गुफाका आश्रय लेना चाहिये। गाँवमें एक रातसे अधिक नहीं रहना चाहिये; किंतु वर्षाके चार महीने किसी एक ही स्थानपर रहकर व्यतीत करने चाहिये। जबतक सूर्यका प्रकाश रहे तभीतक संन्यासीके लिये रास्ता चलना उचित है। वह कीड़ेकी तरह धीरे-धीरे समूची पृथ्वीपर विचरता रहे और यात्राके समय जीवोंपर दया करके पृथ्वीको अच्छी तरह देख-भालकर आगे पाँव रक्खे। किसी प्रकारका संग्रह न करे और किसीके स्नेह-बन्धनमें बँधकर कहीं निवास न करे।

मोक्ष-धर्मके ज्ञाता संन्यासीको उचित है कि सदा पवित्र जलसे काम ले। तुरंत निकाले हुए जलसे स्नान करे (बहुत पहलेके भरे हुएसे नहीं)। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, दोष-दृष्टिका त्याग, इन्द्रियसंयम और चुगली न खाना- इन आठ व्रतोंका सावधानीके साथ पालन करे। इन्द्रियोंको वशमें रक्खे। उसका बर्ताव सदा पाप, शठता और कुटिलतासे रहित होना चाहिये। जो अन्न अपने आप प्राप्त हो जाय, उसको ग्रहण करना चाहिये; किंतु उसके लिये भी मनमें इच्छा नहीं रखनी चाहिये। प्राणयात्राका निर्वाह करनेके लिये जितना अन्न आवश्यक है उतना ही ग्रहण करे। धर्मत: प्राप्त हुए अन्नका ही आहार करे। मनमाना भोजन न करे। खानेके लिये किसी वस्तुका संग्रह न करे। भिक्षा भी, जितनी एक समय भोजनके लिये आवश्यक हो उतनी ही ग्रहण करे; उससे अधिक नहीं। दूसरोंके लिये भिक्षा न माँगे। स्वयं भी किसीको न दे। बिना प्रार्थनाके किसीकी कोई वस्तु स्वीकार न करे। किसी अच्छी वस्तुका उपभोग करके फिर उसके लिये लालायित न रहे। मिट्टी, जल, अन्न, पत्र, पुष्प और फल ये वस्तुएँ यदि किसीके अधिकारमें न हों तो आवश्यकता पड़नेपर संन्यासी इन्हें काममें ला सकता है। वह शिल्पकारी करके जीविका न चलावे, सुवर्णकी इच्छा न करे। न किसीसे द्वेष करे और न किसीको उपदेश दे। सदा निर्विकार रहे। श्रद्धासे प्राप्त हुए पवित्र अन्नका आहार करे। मनमें कोई निमित्त न रक्खे। सबके साथ अमृतके समान मधुर बर्ताव करे, कहीं भी आसक्त न हो और किसी भी प्राणीके साथ परिचय न बढ़ावे। कामना और हिंसासे युक्त कर्मका न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरोंसे करावे। सब प्रकारके पदार्थोंकी आसक्तिका उल्लंघन करके थोड़ेमें संतुष्ट हो सब ओर विचरता रहे। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके प्रति समान भाव रक्खे, किसी दूसरे प्राणीको उद्वेगमें न डाले और स्वयं भी किसीसे उद्विग्न न हो। जो सब प्राणियोंका विश्वासपात्र बन जाता है, वह सबसे श्रेष्ठ और मोक्ष-धर्मका ज्ञाता कहलाता है। संन्यासीको उचित है कि भविष्यके लिये विचार न करे, बीती बातकी चिन्ता छोड़ दे और वर्तमानकी भी उपेक्षा कर दे। केवल कालकी प्रतीक्षा करता हुआ, चित्त-वृत्तियोंको रोकनेका प्रयत्न करे। नेत्रसे, मनसे और वाणीसे किसी वस्तुको दूषित न करे। सबके सामने या दूसरोंकी आँख बचाकर कोई बुराई न करे। इन्द्रिय, मन और बुद्धिको दुर्बल करके निश्चेष्ट हो जाय। सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करे। द्वन्द्वोंसे प्रभावित न हो, किसीके

सामने माथा न टेके। स्वाहाकार (अग्निहोत्र आदि) का परित्याग करे। ममता और अहंकारसे रहित हो जाय, योगक्षेमकी चिन्ता न करे। मनपर विजय प्राप्त करे। जो निष्काम, निर्गुण, शान्त, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण और तत्त्वका ज्ञाता होता है, वह नि:संदेह मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य हाथ, पैर, पीठ, मस्तक और उदर आदि अङ्गोंसे रहित, गुण-कर्मोंसे हीन, केवल, निर्मल, स्थिर, रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्दसे रहित, ज्ञेय, अनासक्त, मानसे हीन, निश्चिन्त, अविनाशी, दिव्य और सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित आत्माको देखते हैं, उनकी कभी मृत्यु नहीं होती। उस आत्मतत्त्वतक बुद्धि, इन्द्रिय और देवताओंकी भी पहुँच नहीं होती। वेद, यज्ञ, लोक, तप और व्रतका भी वहाँ प्रवेश नहीं होता। वहाँ केवल ज्ञानवान महात्मा किसी प्रकारका बाह्य चिन्ह धारण किये बिना ही जा सकते हैं। इसलिये बाह्य चिन्होंसे रहित धर्मको जानकर उसका यथार्थरूपसे पालन करना चाहिये। विद्वान पुरुषको उचित है कि वह विज्ञानके अनुरूप आचरण करे। मूढ़ न होकर भी मूढ़के समान बर्ताव करे; किंतु अपने किसी व्यवहारसे धर्मको कलमित न करे। जिस कामके करनेसे समाजके दूसरे लोग अनादर करें, वैसा ही काम सदा करता रहे; किंतु सत्पुरुषोंके धर्मकी निन्दा न करे। जो इस प्रकारका बर्ताव करते हुए धर्मका पालन करता है, वह श्रेष्ठ मुनि कहलाता है। जो मनुष्य इन्द्रिय, उनके विषय, पञ्च महाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष- इन सबका विचार करके इनके तत्त्वका यथावत् निश्चय कर लेता है तथा एकान्तमें बैठकर परमात्माका ध्यान करता है, वह आकाशमें विचरनेवाले वायुकी भाँति सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटकर पञ्चकोशोंसे रहित, निर्भय तथा निराश्रय होकर मुक्त एवं परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

संन्यासको तप कहते हैं और ज्ञानको ही परब्रह्मका स्वरूप मानते हैं। वह ब्रह्म अज्ञानियोंसे अत्यन्त दूर, निर्द्वन्द्व, निर्गुण, नित्य, अचिन्त्य और श्रेष्ठ है। धीर पुरुष ज्ञान और तपस्याके द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं। जिनके मनकी मैल धुल गयी है, जो परम पवित्र हैं, जिन्होंने रजोगुणको त्याग दिया है, जिनका अन्त:करण निर्मल है, जो संन्यासपरायण तथा ब्रह्मके ज्ञाता हैं, वे तपस्याके द्वारा कल्याणमय पथका आश्रय लेते हैं- परमेश्वरको प्राप्त होते हैं। ज्ञानी पुरुषोंका कहना है कि तपस्या (परमात्वतत्त्वको प्रकाशित करनेवाला), दीपक है, आचार धर्मका साधक है, ज्ञान परब्रह्म का स्वरूप है और संन्यास ही उत्तम तप है। जो तत्त्वका पूर्ण निश्चय करके सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माको जान लेता है, वह सर्वत्र विचरनेवाला एवं सर्वज्ञ हो जाता है। जो किसी वस्तुकी कामना तथा किसीकी अवहेलना नहीं करता, वह इस लोकमें रहकर भी ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है। जो सब भूतोंमें प्रधान प्रकृतिको तथा उसके गुण एवं तत्त्वको भलीभाँति जानकर ममता और अहंकारसे रहित हो जाता है, उस समय उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

जो मनुष्य अन्तकालमें आत्माका ध्यान करके, साँस लेनेमें जितनी देर लगती है उतनी देर भी, समभावमें स्थित होता है, वह अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। जो एक निमेष भी अपने मनको आत्मामें एकाग्र कर लेता है, वह अन्त:करणकी प्रसन्नताको पाकर विद्वानोंको प्राप्त होनेवाली अक्षय गतिको पा जाता है। प्राणायामके द्वारा पुन:-पुन: प्राणोंका संयम करनेवाला पुरुष भी परमात्मा को प्राप्त होता है। इस प्रकार जो पहले अपने अन्त:करणको शुद्ध कर लेता है, वह जो-जो चाहता है उसी-उसी वस्तुको पा जाता है। सत्त्व (चित्तशुद्धि) के महत्त्वको जाननेवाले विद्वान इस जगत्में सत्त्वसे बढ़कर और किसी वस्तुकी प्रशंसा नहीं करते। अन्तर्यामी परमात्मा सत्त्वमें ही स्थित हैं। सत्त्वके सिवा दूसरे किसी मार्गसे उनके पास पहुँचना असम्भव है। क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग (दान) तथा संन्यास- ये सात्त्विक बर्तावके अन्तर्गत माने गये हैं (इनसे भी परमात्माकी प्राप्ति होती है)।

जो लोग प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, नास्तिक-वृत्तिका आश्रय लेते हैं और लोभ तथा मोहमें फँसे हुए हैं, उन्हें नरकमें गिरना पड़ता है। जो विद्वान आलस्य छोड़कर श्रद्धाके साथ वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और उनके फलमें आसक्त नहीं होते, वे धीर और उत्तम दृष्टिवाले माने गये हैं।

पुरुष तो विषयी है और सत्त्व विषय। मनीषी पुरुष सत्त्वको द्वन्द्वयुक्त बतलाते हैं और क्षेत्रज्ञ निर्द्वन्द्व, निष्कल, नित्य और निर्गुण है। विद्वान पुरुष समस्त गुणोंसे सम्बन्ध रखते हुए भी किसीसे लिप्त नहीं होता। अत: क्षेत्रज्ञ पुरुष असङ्ग है।

जिसकी बुद्धि अच्छी नहीं है उसे हजार उपाय करनेपर भी ज्ञान नहीं होता और जो बुद्धिमान् है वह चौथाई प्रयत्नसे भी ज्ञान पाकर सुखका अनुभव करता है। उपायको जाननेवाला मेधावी पुरुष अत्यन्त सुखका भागी होता है। यही बात कर्मके सम्बन्धमें जाननी चाहिये (अर्थात् शुभ कर्मरूपी पाथेयके बिना परलोकका मार्ग सुखपूर्वक नहीं तय किया जा सकता)। बुद्धिमान् मनुष्य जहाँतक रथ जानेका मार्ग है वहाँतक रथसे जाता है और जब रथका रास्ता समाप्त हो जाता है तब वह उसे छोड़कर पैदल यात्रा करता है; इसी प्रकार तत्त्व और योग-विधिको जाननेवाला बुद्धिमान एवं गुणज्ञ पुरुष अच्छी तरह समझ-बूझकर उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जाता है। जैसे कोई पुरुष यदि मोहवश बिना नावके ही भयंकर समुद्रमें प्रवेश करता है और दोनों भुजाओंसे ही तैरकर उसके पार होनेका भरोसा रखता है तो निश्चय ही वह अपनी मौत बुलाना चाहता है (उसी प्रकार ज्ञान-नौकाका सहारा लिये बिना मनुष्य भवसागरसे पार नहीं हो सकता)। जिस तरह बुद्धिमान पुरुष नावकी सहायतासे अनायास ही पानीमें प्रविष्ट हो जाता और शीघ्र ही तैरकर फिर उससे बाहर निकल आता है तथा पार हो जानेपर नावकी ममता छोड़कर चल देता है (उसी प्रकार संसार-सागरसे पार हो जानेपर बुद्धिमान् पुरुष पहलेके साधनोंकी ममता छोड़ देता है); परंतु स्नेहवश मोहको प्राप्त हुआ मनुष्य ममतासे आबद्ध होकर नावपर सदा बैठे रहनेवाले मल्लाहकी भाँति वहीं चक्कर काटता रहता है।

जो गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दसे रहित है तथा मुनिलोग बुद्धिके द्वारा जिसका मनन करते हैं, वह प्रधान कहलाता है; उसका दूसरा नाम अव्यक्त है। अव्यक्तका कार्य महत्तत्व और महत्तत्वका कार्य अहंकार है। अहंकारसे पञ्च महाभूतोंको प्रकट करनेवाले गुणकी उत्पत्ति हुई है। पञ्च महाभूतोंके कार्य हैं रूप, रस आदि विषय। वे पृथक्-पृथक् गुणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं; अव्यक्त प्रकृति कारणरूपा भी है और कार्यरूपा भी। इसी प्रकार महत्तत्त्वके भी कारण और कार्य दोनों ही स्वरूप सुने गये हैं। अहंकार भी कारणरूप तो है ही, कार्यरूपमें भी बारंबार परिणत होता रहता है। पञ्च महाभूतोंमें भी कारणत्व और कार्यत्व दोनों धर्म हैं। उन भूतोंके विशेष कार्य शब्द आदि विषय भी बीजधर्मी (कारण) कहलाते हैं, साथ ही वे कार्यरूपमें भी उपस्थित होते हैं। पञ्च महाभूतोंमेंसे आकाशमें एक ही गुण माना गया है। वायुके दो गुण बतलाये जाते हैं। तेज तीन गुणोंसे युक्त कहा गया है। जलके चार गुण हैं और पृथ्वीके पाँच गुण समझने चाहिये। वह स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसे भरी हुई, समस्त जीवोंको जन्म देनेवाली तथा शुभ और अशुभका निर्देश करनेवाली है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध- ये ही पृथ्वीके पाँच गुण हैं। इनमें भी गन्ध उसका खास गुण है। गन्ध अनेकों प्रकारकी होती है। इष्ट (सुगन्ध), अनिष्ट (दुर्गन्ध), मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी (दूरतक फैलनेवाली), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष और विशद- ये पार्थिव गन्धके आठ भेद समझने चाहिये। शब्द, स्पर्श, रूप और रस- ये जलके चार गुण माने गये हैं (इनमें रस ही जलका मुख्य गुण है)। रसके बहुत-से भेद हैं- मीठा, खट्टा, कड़ुआ, तीता, कसैला और नमकीन। इस प्रकार छ: भेदोंमें जलमय रसका विस्तार बताया गया है। शब्द, स्पर्श और रूप ये तेजके तीन गुण हैं। इनमें रूप ही तेजका मुख्य गुण है। रुपके भी कई भेद हैं- शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, छोटा, बड़ा, मोटा, दुबला, चौकोना और गोल। इस तरह तैजस रूपका बारह प्रकारसे विस्तार बताया गया है। शब्द और स्पर्श ये वायुके दो गुण हैं। इनमें भी स्पर्श ही वायुका प्रधान गुण है। स्पर्श भी कई प्रकारका माना गया है- रूखा, ठंडा, गरम, स्निग्ध, विशद, कठिन, चिकना, श्लक्ष्ण (हल्का), पिच्छिल, कठोर और कोमल। इन बारह प्रकारोंसे वायुके गुण स्पर्शका विस्तार बतलाया गया है। आकाशका एक ही गुण शब्द है। शब्दके बहुत-से गुण हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, धैवत, इष्ट (प्रिय), अनिष्ट (अप्रिय) और संहत (श्लिष्ट) ये आकाशजनित शब्दके दस भेद हैं। आकाश सब भूतोंमें श्रेष्ठ है। उससे श्रेष्ठ अहंकार, अहंकारसे श्रेष्ठ बुद्धि, बुद्धिसे श्रेष्ठ आत्मा (महत्तत्त्व), उससे श्रेष्ठ अव्यक्त प्रकृति और प्रकृतिसे श्रेष्ठ पुरुष है। जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतोंके भूत भविष्यका ज्ञाता, समस्त

कर्मोंकी विधिका जानकार और सब प्राणियोंको आत्मभावसे देखनेवाला है, वह अविनाशी परमात्माको प्राप्त होता है।

जैसे सारथी अच्छे घोड़ोंको अपने काबूमें रखता है, उसी प्रकार मन सम्पूर्ण इन्द्रियोंपर शासन करता है। इन्द्रिय, मन और बुद्धि- ये सदा क्षेत्रज्ञके साथ संयुक्त रहते हैं। जिसमें इन्द्रियरूपी घोड़े जुते हुए हैं, जिसका बुद्धिरूपी सारथीके द्वारा नियन्त्रण हो रहा है, उसे देहरूपी रथपर सवार होकर वह भूतात्मा (क्षेत्रज्ञ) चारों ओर दौड़ लगाता रहता है। ब्रह्ममय रथ सदा रहनेवाला और महान् है, इन्द्रियाँ उसके घोड़े, मन सारथी और बुद्धि चाबुक है। जो विद्वान इस ब्रह्ममय रथकी सदा जानकारी रखता है, वह समस्त प्राणियोंमें धीर है और कभी मोहमें नहीं पड़ता। विश्वकी सृष्टि करनेवाले मरीचि आदि ब्राह्मण समुद्रकी लहरोंके समान बारंबार पञ्चभूतोंसे उत्पन्न होते और फिर समयानुसार उन्हींमें लीन हो जाते हैं। प्रजापतिने अपने तप:शक्तिसम्पन्न मनके ही द्वारा सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है तथा ऋषि भी तपस्यासे ही देवत्वको प्राप्त हुए हैं। फल-मूलका भोजन करनेवाले सिद्ध महात्मा तपस्याके प्रभावसे ही चित्तको एकाग्र करके तीनों लोकोंकी बातें प्रत्यक्ष देखते हैं। आरोग्यकी साधनभूत औषधियाँ और नाना प्रकारकी विद्याएँ तपसे ही सिद्ध होती हैं। सारे साधनोंकी जड़ तपस्या ही है। जिसको पाना, जिसका अभ्यास करना, जिसे दबाना और जिसकी संगति लगाना नितान्त कठिन है, वह सब तपस्याके द्वारा साध्य हो जाता है; क्योंकि तपका प्रभाव दुर्लङ्घ्य है। शराबी, ब्रह्महत्यारा, चोर, गर्भ नष्ट करनेवाला और गुरुपत्नीकी शय्यापर सोनेवाला महापापी भी भलीभाँति तपस्या करके ही उस महान् पापसे छुटकारा पा सकता है। मनुष्य, पितर, देवता, पशु, मृग, पक्षी तथा अन्य जितने चराचर प्राणी हैं, वे सब सदा तपस्यामें संलग्न होकर ही सिद्धि प्राप्त करते हैं। तपस्याके बलसे ही महामायावी देवता स्वर्गमें निवास करते हैं।

जो लोग आलस्य त्यागकर अहंकारसे युक्त हो सकाम कर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे प्रजापतिके लोकमें जाते हैं। जो ध्यानयोगका आश्रय लेकर सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं, वे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुरुष सुखकी राशिभूत अव्यक्त परमात्मामें प्रवेश करते हैं, किंतु जो ध्यानयोगसे पीछे लौटकर अर्थात् ध्यानमें असफल होकर ममता और अहंकारसे रहित जीवन व्यतीत करता है, वह अव्यक्त प्रकृतिमें लीन होता है। फिर स्वयं भी अव्यक्त-संज्ञाको प्राप्त होकर अव्यक्तसे ही प्रकट होता है और केवल सत्त्वका आश्रय लेकर तमोगुण एवं रजोगुणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। जो सब पापोंसे मुक्त रहकर सबकी सृष्टि करता है, उसे अखण्ड ब्रह्म एवं क्षेत्रज्ञ समझना चाहिये। जो मनुष्य उसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वही वेदवेत्ता है। मुनिको उचित है कि चिन्तनके द्वारा चेतना (सम्यग्ज्ञान) पाकर मन और इन्द्रियोंको एकाग्र करके परमात्माके ध्यानमें स्थित हो जाय; क्योंकि जिसका चित्त जिसमें लगा होता है, वह निश्चय ही उसका स्वरूप हो जाता है- यह सनातन गोपनीय रहस्य है।

दो अक्षरका पद मम (यह मेरा है- ऐसा भाव) मृत्युरूप है और तीन अक्षरका पद न मम (यह मेरा नहीं है- ऐसा भाव) सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। कुछ मन्दबुद्धि मनुष्य (स्वर्गादि फल प्रदान करनेवाले) काम्य कर्मोंकी प्रशंसा करते हैं, किंतु वृद्ध महात्माजन उन्हें उत्तम नहीं बतलाते; क्योंकि सकाम कर्मके अनुष्ठानसे जीवको सोलह विकारोंसे निर्मित स्थूल शरीर धारण करके जन्म लेना पड़ता है और वह सदा अविद्याका ग्रास बना रहता है। इतना ही नहीं, कर्मठ पुरुष देवताओंके भी उपभोगका विषय होता है। इसलिये पारदर्शी विद्वान कर्मोंमें आसक्त नहीं होते; क्योंकि यह पुरुष (आत्मा) ज्ञानमय है, कर्ममय नहीं। जो इस प्रकार आत्माको अमृतस्वरूप, नित्य, इन्द्रियातीत, सनातन, अक्षर, जितात्मा एवं असङ्ग समझता है, वह कभी मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता। जिसकी दृष्टिमें आत्मा अपूर्व (अनादि), अकृत (अजन्मा), नित्य, कूटस्थ, अग्राह्य और अमृताशी है, वह इन गुणोंका चिन्तन करनेसे स्वयं भी अग्राह्य (इन्द्रियातीत) एवं अमृतस्वरूप हो जाता है। जो चित्तको शुद्ध करनेवाले (मैत्री-करुणा आदि) सम्पूर्ण संस्कारोंका सम्पादन करके मनको आत्माके ध्यानमें लगा देता है, वही उस कल्याणमय ब्रह्मको प्राप्त करता है, जिससे बड़ा कोई नहीं है। ज्ञाननिष्ठ जीवन्मुक्त महात्माओंकी यही परमगति है, यही विरक्त पुरुषोंकी गति है, यही सनातन धर्म है और यही ज्ञानियोंका प्राप्तव्य स्थान है। जो सम्पूर्ण भूतोंमें समान भाव रखता है, लोभ और कामनासे रहित

है तथा जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि रहती है, वह ज्ञानी पुरुष भी इस गतिको प्राप्त कर सकता है। श्रीकृष्णने अर्जुन से कहा, मैंने तुम्हें अध्यात्म ज्ञान का वर्णन किया यही अनुगीता है।

२) श्रीकृष्णका द्वारिकागमन- अब मैं द्वारिका जाना चाहता हूँ और पिताश्री के दर्शन करना चाहता हूँ। मैं महाराज युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर द्वारिकापुरी को जाना चाहता हूँ। इसप्रकार बातचीत करते हुए अर्जुन और कृष्ण महाराज युधिष्ठिर के पास गये। कृष्णके आनेसे महाराज युधिष्ठिर को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब अर्जुन ने धर्मराज से कहा, महाप्रतापी देवकीनन्दन कृष्णको यहाँ रहते हुए बहुत दिन हो गये है। अभी आपकी आज्ञा से अपने पिताश्री का दर्शन करना चाहते हैं और द्वारिकापुरी लौट जाना चाहते है। तब सम्राट युधिष्ठिर बोले, आनर्तदेशकी प्रजा, अपने माता-पिता तथा वृष्णिवंशी बन्धु-बान्धवोंसे मिलकर पुन: मेरे अश्वमेध-यज्ञमें पधारियेगा। केशव। आपहीकी कृपासे हमारे शत्रु मारे गये और सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य हमलोगोंको प्राप्त हुआ। फिर युधिष्ठिर ने उनको जानेकी आज्ञा प्रदान की। श्रीकृष्णने अपनी बुआ कुन्तीके पास जाकर बातचीत की। युधिष्ठिर और कुन्तीकी आज्ञा से अपनी बहन सुभद्रा को लेकर द्वारिका की ओर प्रस्थान किया। मार्गमें महाबाहु श्रीकृष्ण मारवाड़ देशमें गुजर रहे थे। उस समय उन्होंने उत्तंग मुनिका दर्शन एवं पूजन किया।

उत्तंग मुनिने पूछा क्या कृष्ण तुम कौरव और पाण्डवोंमें मेल कराकर आ रहे हो? क्या वे अविचल भ्रातृ-भाव में स्थापित हो गये है? वे तुम्हारे सम्बन्धी और परम प्रिय है। मेरी आशा कभी असफल नहीं होगी उनमें सन्धि हो गयी होगी। तब कृष्णने कहा, महर्षे। मैंने कौरवोंको समझाने और शान्त करने का बड़ा प्रयत्न किया। पर वे किसी प्रकार सन्धिके लिये तैयार नहीं हुए। इसी कारण से वे सब अपने पुत्र-बान्धवोंसहित युद्ध में मारे गये। <u>प्रारब्धके विधान को कोई बुद्धि और बलसे नहीं मिटा सकता</u>। पाण्डव पक्ष में भी युधिष्ठिर और उनके चारों भाई बचे है। उनके सभी पुत्र युद्ध में मारे गये हैं। श्रीकृष्णकी बात सुनकर उत्तंग मुनि बड़े क्रोध में भर गये और बोले, अरे मधुसूदन। कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और प्रेमी थे, तथापि शक्ति रहते हुए भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की। तब श्रीकृष्णने कहा, आप तपस्वियों में श्रेष्ठ हैं। आपकी तपस्याका तेज बहुत है। आप ब्रह्मचर्य का पालन करते है। महर्षि। आपको पता होगा कि तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण ये सभी भाव मेरे आश्रित है। रुद्र और वसुभी मुझसे ही उत्पन्न हुए है। सम्पूर्ण भूत मुझमें है और मैं सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण दैत यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंका मुझसे ही प्रादुर्भाव हुआ है। विद्वानलोग जिसे सत-असत्, व्यक्त-अव्यक्त और क्षर-अक्षर कहते हैं, वह सब मेरा ही स्वरूप हैं। चारों आश्रमोंके जो चार धर्म प्रसिद्ध हैं तथा वेदोक्त जितने कर्म हैं, वे कोई मुझसे भिन्न नहीं हैं। असत्, सदसत् तथा उससे परे जो अव्यक्त जगत् है, वह भी मुझ सनातन देवाधिदेवसे पृथक नहीं है। ॐकारस आरम्भ होनेवाले चारों वेद मुझे ही समझिये। यज्ञमें यूप, सोम, चरु, देवताओंको तृप्त करनेवाला होम, होता और हवन सामग्री भी मैं ही हूँ। अध्वर्यु, कलपक और संस्कार किया हुआ हविष्य ये सब मेरे ही स्वरूप हैं। बड़े-बड़े यज्ञोंमें उद्गाता उच्च स्वरसे साम-गान करके मेरी ही स्तुति करते हैं। प्रायश्चित्त-कर्ममें शान्ति-पाठ तथा मङ्गलपाठ करनेवाले ब्राह्मण मुझ विश्वकर्माका ही सदा स्तवन करते हैं। सब प्राणियोंपर दया करनारूप जो धर्म है उसको मेरा ज्येष्ठ पुत्र समझिये, वह मेरे मनसे प्रकट हुआ है। मैं धर्मकी रक्षा तथा स्थापनाके लिये अनेकों योनियोंमें अवतार धारण करता हूँ और भिन्न-भिन्न रूप तथा वेष बनाकर तीनों लोकोंमें विचरता रहता हूँ। मैं ही विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंकी सृष्टि और संहार मुझसे ही होते हैं। जब-जब युगका परिवर्तन होता है तब-तब मैं प्रजाकी भलाईके लिये भिन्न-भिन्न योनियोंमें प्रविष्ट होकर धर्म-मर्यादाकी स्थापना करता हूँ। जब देव-योनिमें अवतार लेता हूँ, उस समय देवताओंकी ही भाँति सारे आचार-विचारका पालन करता हूँ। गन्धर्व-योनिमें अवतार लेनेपर मेरा

सारा आचार-व्यवहार गन्धर्वोंके ही समान होता है। इसी प्रकार नागयोनिमें नागोंकी तरह और यक्ष-राक्षसकी योनियोंमें उन्हींकी भाँति यथावत् आचरण करता हूँ। इस समय मैंने मनुष्य अवतार धारण किया है, इसलिये कौरवोंपर अपनी शक्तिका प्रयोग न करके पहले दीनतापूर्वक ही उनसे प्रार्थना की थी; किंतु मोहग्रस्त होनेके कारण उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। इसके बाद क्रोधमें भरकर मैंने बड़े-बड़े भय दिखाये और उन्हें बहुत डराया-धमकाया, परंतु वे अधर्मसे युक्त एवं कालग्रस्त होनेके कारण मेरी बात माननेको राजी न हुए। अत: युद्धमें प्राण देकर इस समय स्वर्गमें पहुँचे हुए हैं।

उत्तंग मुनिने कहा, मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत्के कर्ता हैं अब मेरा चित्त प्रसन्न होकर आपकी भक्तिसे परिपूर्ण हो गया है। इसलिये मैं आपको श्राप नहीं देता हूँ। यदि आपकी थोड़ीसी कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे अपना विराट ईश्वरीय स्वरूप दिखा दीजिये।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय। मुनिके इसप्रकार प्रार्थना करनेपर कृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें अपने उसी सनातन विराट स्वरूपका दर्शन कराया, जिसे युद्धके प्रारम्भमें अर्जुनको कराया था। तब उत्तंग मुनि स्तुति करके बोले, हे विश्वात्मन। आपको नमस्कार है। आपहीसे सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति हुई है। पृथ्वी आपके दोनों चरणोंसे और आकाश आपके मस्तकसे व्याप्त है। सम्पूर्ण दिशाएँ आपकी भुजाओंमें समायी हुई हैं। यह सारा दृश्य-प्रपंच आपहीका स्वरूप है। हे देवेश्वर। अब आप अपने इस उत्तम एवं अविनाशी स्वरूपको संवरण कर लीजिये। मैं आपको सौम्य रूपमें देखना चाहता हूँ। कृष्ण बोले, महर्षे। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। अपनी इच्छानुसार कोई वर माँग लीजिये क्योंकि मेरा दर्शन अमोघ है। उत्तंग मुनिने कृष्णसे मारवाड़ मरूत्सर में जल प्राप्त हो सके ऐसा वरदान माँगा। कृष्ण बोले, महर्षि। जब भी जल की आवश्यकता हो मेरा स्मरण कर लीजिये और वे यह कहकर द्वारिका को चले गये।

कृष्णने इन्द्रको आज्ञा दी कि मारवाड़ मरुत्सर भूमिमें जब उत्तंग मुनि जल की चाह करे उस समय तुम उन्हें जल प्रदान करना। इन्द्र चाण्डाल के वेश में मुनिके पास आया और अमृत पिलाने के इरादे से उत्तंग मुनिसे कहा, आओ मुझसे पानी लेकर पी लो। चाण्डाल के कहनेपर उत्तंग मुनिने उस जलको स्वीकार नहीं किया और यह कहा कि यह अपवित्र जल है। उनके मना करनेपर चाण्डाल कुत्तोंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गया। उत्तंग मुनि कृष्णपर क्रोधित हुए। तब कृष्ण बोले, मैंने इन्द्रको तुम्हारे पास भेजा था कि जलके रूपमें तुम्हें अमृत प्रदान करे। पर इन्द्रने बारंबार यह कहा, मनुष्य कभी अमर नहीं हो सकता। मेरे आग्रह करने पर उसने तुम्हे अमृत प्रदान करने का निश्चय किया। तब इन्द्र चाण्डाल के रूप में उपस्थित हुए किंतु आपने उसे ग्रहण नहीं किया। अत: मैं आपकी पिपासाको शान्त करने जलकी इच्छाको पूर्ण करने के लिये वरदान देता हूँ जब भी आपको पानी पीने की इच्छा होगी तब-तब आप मरुभूमि के आकाश में जलसे भरे हुए मेघोंकी घटा घिर आयेगी। वो मेघ आपको जल अर्पण करें और उत्तंग मेघ के नामसे इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध होगी।

कृष्णका द्वारिकापुरी में पहुँचकर अपने पिता वसुदेवजी के पास सबकुशल मंगल पूछकर महाभारत युद्धका विस्तृत वर्णन किया और अपने भान्जे अभिमन्यु के युद्धमें वीरगति प्राप्त होनेका समाचार दिया। इससे वसुदेवजी बहुत विह्वल हुए और विलाप करने लगे। कृष्ण उनको सान्त्वना देते हुए बोले, अभिमन्यु अकेला ही चक्रव्यूह में लड़ रहा था और उसने अकेले ही प्रत्येक वीर के साथ युद्ध किया। वज्रधारी इन्द्र भी उसको नहीं मार सकते थे। अर्जुनको बहकावेमें डालकर संशप्तकोंके साथ युद्ध करते हुए रणभूमिसे बहुत दूर हट गये कौरव। इस अवसर का लाभ उठाकर द्रोणाचार्य आदि सब महारथियोंने उसको चारों ओरसे घेर लिया और अन्त में वह दु:शासन के हाथसे मारा गया। अभिमन्युको निश्चय ही स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई अत: आप उसके लिये शोक मत कीजिये। मृत्युलोक में जन्म लेनेवाले मनुष्योंका धर्म ही ऐसा है- उन्हें एक-न-एक दिन मृत्युके वशमें होना ही पड़ता है।

३) युधिष्ठिरका अश्वमेघ-यज्ञ

महर्षि व्यासकी आज्ञा से युधिष्ठिरने अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी की। अपने भाइयोंसे बोले, महर्षि व्यासने और श्रीकृष्णने सौहार्द्रवश जो बातें बतायी हैं वे सब तुम लोगोंको ज्ञात है। व्यासजी ब्रह्मवादी महात्मा हैं, उनकी बात परिणाममें हमारा कल्याण करनेवाली है। हमारी आर्थिक कठिनाई दूर करनेके लिये व्यासजीने हमें मरुत्तके धनका पता बताया है। अत: तुम्हारा क्या विचार है। सब भाई बोले, धर्मराज यदि हमें मरुत्तका धन प्राप्त हो जाय तो हमारा सारा काम ही बन जायगा। हम देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न कर उस धनकी प्राप्ति करेंगे। यह सुनकर राजा युधिष्ठिरको बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी पाण्डवोंने रत्न और धन लानेका निश्चय करके शुभ दिन एवं ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रमें प्रस्थान करनेका निश्चय किया और हिमालय की तराई में पहुँचे। उस पर्वत के पास पहुँचे जहाँ राजा मरुत्तका रखा हुआ उत्तम द्रव्य संचित था। वहाँ राजा युधिष्ठिरने तप, विद्या और इन्द्रिय-संयम से धौम्य मुनिको आगे रखकर शान्तिपाठ किया और शंकरकी उपासना की। ब्राह्मणोंने कहा, आप भाइयोंके सहित उपवास करके शंकरकी पूजा कीजिये। युधिष्ठिरने शंकरकी पूजा की तत्पश्चात् उनके पार्षदोंकी पूजा करके कुबेरकी पूजा की। उन्होंने उस धनको खोजना आरम्भ किया। थोड़ी देर में स्वर्ण के भरे हुए सुन्दर पात्र वहाँ निकल आये जिन्हें संदूकमें बन्द कर साठ हजार ऊँट, एक करोड़ बीस लाख घोड़े, एक लाख हाथी, एक लाख रथ गधों और मनुष्योंकी तो गिनती ही नहीं थी। इन सब वाहनोंपर धन लदवाकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरने हस्तिनापुरकी ओर प्रस्थान किया।

अश्वमेघ यज्ञ के समय कृष्ण द्वारिका से आये। महर्षि व्यासकी आज्ञा से युधिष्ठिरने अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी की। महर्षि व्यासने कहा, चैत्र की पूर्णिमा को तुम यज्ञकी दीक्षा लो। अश्वविद्याके ज्ञाता सूत और ब्राह्मण यज्ञके लिये पवित्र अश्वकी परीक्षा करें और उसे शास्त्रीय विधिके अनुसार छोड़ा जाय और वह तुम्हारे देदीप्यमान यशको फैलाता हुआ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीपर फिरे। युधिष्ठिरने अश्वयज्ञ तैयार किया और घोड़े को छोड़ दिया। अर्जुन उस घोड़े के पीछे-पीछे उसकी रक्षामें नियुक्त किये गये। भीम और नकुल दोनों राज्यकी रक्षा करने में नियुक्त किये गये। सहदेव कुटुम्ब व अतिथियोंकी देखरेख में नियुक्त किये गये और अतिथियों, राजाओं को उस यज्ञ में आमंत्रित किया गया और यज्ञकी दीक्षा ली। यह अश्व पाण्डवोंके द्वारा अस्त्र-शस्त्र से जीती हुई पृथ्वीके सब देशोंमें इच्छानुसार विचरने लगा। यज्ञका घोड़ा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता हुआ उत्तर दिशा में गया। फिर अनेकों राज्यमें घूमता हुआ पूर्व दिशाकी ओर गया। बहुतसे किरात, यवन और म्लेच्छ युद्धमें पराजित हुए। उनपर अर्जुनने अधिकार किया।

त्रिगर्त देशके संसप्तकोंके सम्बन्धी और सन्तति तो अर्जुनसे बैर बाँधे ही थे। पांडवोंका यज्ञीय अश्व उनके देशकी सीमामें पहुँचा तो वे अश्वको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। अर्जुनने उन्हें रोका और जब वे नहीं माने तो युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्धमें अपने अठारह प्रधान महारथियोंके मारे जानेपर त्रिगर्तके लोगोंने हथियार डाल दिया और पाण्डवोंका शासन स्वीकार कर लिया।

प्राग्ज्योतिषपुरमें भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तसे घोर युद्ध करना पड़ा अर्जुनको; किंतु जब वज्रदत्तका हाथी मारा गया और वह स्वयं भी भूमिमें गिर पड़ा तो गाण्डीवधन्वाने उसे अभय दिया। उसने अश्वमेघ यज्ञमें आना स्वीकार कर लिया।

बड़ा विकट युद्ध छिड़ा सिन्धु देशमें। यहाँके राजा जयद्रथको अर्जुनने प्रतिज्ञा करके महाभारतके युद्धमें मारा था। इससे वहाँके लोग अत्यन्त क्रोधमें भरकर अर्जुनको घेरकर उनपर आक्रमण कर रहे थे। सव्यसाची भी आहत होकर क्रुद्ध हो उठे थे और उनके धनुषसे मेघकी झड़ीके समान बाण-वर्षा हो रही थी।

अन्तमें दुर्योधनकी बहिन दु:शला अपने पुत्र सुरथके बालकको रथमें बैठाकर रणभूमिमें आई। अर्जुनके समीप जाकर

वह रोने लगी। अर्जुनने उसका सत्कार किया। धृतराष्ट्र तथा पाण्डुकी सन्तानोंमें एक ही कन्या थी दु:शला। अत: पाण्डव भी अपनी इस बहिनसे बहुत प्रेम करते थे। दु:शलाने बालककी ओर संकेत करके कहा- भैया। अपनी विधवा बहिन के इस पौत्रकी ओर देखो। अर्जुनने पूछा, इसके पिता कहाँ हैं?

दु:शलाने जो कुछ सुनाया- वह बहुत दु:खद था। उसने कहा- मेरे पुत्र सुरथने सुन रखा था कि उसके पिताकी मृत्यु तुम्हारे ही हाथों हुई। वह तभीसे तुम्हारा नाम सुनकर काँपने लगता था। उसने जब सुना कि तुम अश्वके पीछे सेना लेकर यहाँ आ पहुँचे हो तो आतमके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके प्राण चले गये। मैं उसका शव छोड़कर अबोध पौत्रको लेकर शरण ढूँढ़ती तुम्हारे पास आयी हूँ।

दु:शला विलाप करने लगी- भैया। मन्दबुद्धि दुर्योधन और उसके अधम बहनोईको भूल जाओ। अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्के समान ही यह तुम्हारा पौत्र है। इस शिशुपर कृपा करो। सब योद्धा शान्त हो जायँ और तुम भी क्रोधका त्याग करो।

दु:शलाके राजसदन जाकर अर्जुनने उसके पुत्रकी अन्त्येष्टिमें योग दिया। वहाँसे अश्व आगे बढ़ा। असंख्य छोटे-बड़े युद्ध हुए; किंतु उनमें उल्लेखनीय है मणिपुरका महायुद्ध। मणिपुरका नरेश बभ्रुवाहन अर्जुनका ही पुत्र था। वह चित्राङ्गदाका पुत्र पिताके आगमनका समाचार पाकर ब्राह्मणोंके साथ बहुत-सा धन लेकर स्वागत करने आया।

धनञ्जयने पुत्रका स्वागत स्वीकार करनेके स्थानपर उसे धिक्कार- दुर्मति। तू क्षत्रिय-धर्मसे बहिष्कृत क्यों हो रहा हैं? मैं राजा युधिष्ठिरके यज्ञीय अश्वकी रक्षा करता तेरे राज्यमें आया हूँ और तू अपनेको पराधीन बनाने आयेको पिता मानकर उसका स्वागत करने चला है। धिक्कार है तुझे। मैं अस्त्र रखकर पुत्रसे मिलने आता तो तेरा स्वागत करना उचित होता। मैं तो युद्ध करने निकला हूँ और तुझमें कोई पौरुष नहीं है?

अर्जुनका आगमन जानकर उनकी पत्नी नागकन्या उलूपी भी पतिदर्शन करने नागलोकसे आ गई थी। उससे धनञ्जयका पुत्रको धिक्कारना सहा नहीं गया। उसने वभ्रुवाहनको युद्धके लिये उत्तेजित किया।

वभ्रुवाहन स्वागत-सम्भार लिए नगरमें लौट गया। वहाँसे युद्धकी सज्जा करके लौटा और अश्व उसके सेवकोंने पकड़ लिया। पिता-पुत्रमें युद्ध प्रारम्भ हो गया। ऐसा युद्ध अर्जुनको भी कभी नहीं करना पड़ा था। इस युद्धमें उनका सब युद्ध-कौशल समाप्त हो गया।

वहाँसे अर्जुन अनेक देशोंमें अश्वके पीछे गये। सर्वत्र विजयश्रीने उनका वरण किया। वे अन्तमें अश्वके साथ हस्तिनापुर लौटे। श्रीकृष्णने ही अर्जुनके लौटनेका समाचार दिया युधिष्ठिरको। वे धनञ्जयकी यात्राका पूरा पता बराबर रखते थे। उन्होंने धर्मराजसे कहा- महाराज। मेरे पास द्वारिकावासी एक विश्वासपात्र व्यक्ति आया था। अर्जुनको उसने अपनी आँखों देखा है। वे अनेक स्थानोंपर युद्ध करनेके कारण बहुत दुर्बल हो गये हैं। अब वे निकट आ पहुँचे हैं।

द्वारिकावासी विश्वास-पात्र व्यक्ति अचानक नहीं आ गया था। ऐसे अनेक विश्वास-पात्र सेवक श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ भेजे थे और वे स्थान-स्थानसे आकर अपने स्वामीको समाचार देते रहते थे। श्रीकृष्णके स्वभावमें ही किसीको अपना स्वीकार करके फिर उसे त्यागना अथवा विस्मृत कर देना नहीं है। उन्हें कोई भले भूला रहे, एक बार जिसे उन्होंने अपना लिया, उसकी क्षण-क्षणकी सुध वे सदा रखते हैं। अपनी यात्रामें युद्ध-व्यस्त अर्जुनने अपने इन हृषीकेश सखाको कभी स्मरण किया अथवा नहीं, कहना कठिन है; किंतु श्रीकृष्णने अर्जुनका समाचार बराबर रखा था।

अश्वमेघ-यज्ञ सविधि सम्पन्न हुआ। जहाँ श्रीकृष्ण संरक्षक हों और योगीश्वर याज्ञवल्क्यके साथ भगवान व्यास आचार्य हों, वहाँ निर्विघ्न यज्ञके सम्पन्न होनेमें सन्देह ही नहीं था। धर्मराजने दान-दक्षिणा देकर आगत ऋषियों, ब्राह्मणों तथा कला-जीवियों, याचकोंको भी परम सन्तुष्ट कर दिया। आगत राजाओं तथा अन्य वर्णके लोगोंको भी पूरे उत्साहसे उपहार देकर सत्कार किया। भीष्मकी मृत्युके अनन्तर पाण्डवोंने अश्वमेघ महायज्ञ किया, उसमें द्रौपदीका प्रधान हाथ था।

उसीकी सम्मतिसे उलझे हुए काम सुलझ जाया करते थे। वह छोटे-से-छोटे कामको भी अपनी दृष्टिके सामने रखती थी। कोई कठिन समस्या उपस्थित होनेपर स्वयं श्रीकृष्णको याद करती थी और पाण्डवोंको भी उन्हें याद करनेको कहती थी। उसके स्मरण करते ही श्रीकृष्ण आ जाते थे और किसी भी विषम समस्याके हल होते विलम्ब नहीं होता था। सच्ची बात कही जाय तो यही कहना होगा कि द्रौपदीका जीवन श्रीकृष्णमय था। वह विपत्तिके दिनोंमें जिस प्रकार श्रीकृष्णकी याद करती थी, वैसे ही सम्पत्तिके दिनोंमें भी श्रीकृष्णकी स्मृतिमें ही तन्मय रहती थी।

अर्जुन ने अपने लिए कभी कुछ नहीं सोचा। स्वयं के लिए कुछ नहीं चाहा। राज्य, सिंहासन, सुख-सुविधा पार्थ को किसी की चाह न थी। सदा दूसरों के लिए कर्मरत रहे। अग्रज युधिष्ठिर के प्रति सेवा का भाव कैसा प्रबल था उनमें कि उनकी आज्ञा के बिना तृण भी न हिलाया। मातृभक्ति में उनका जैसा दृष्टान्त त्रिलोकदुर्लभ था। अग्रज को सिंहासनारूढ़ कराने, उनको खोयी राजलक्ष्मी दिलाने के लिए अर्जुन ने जितना श्रम किया, कष्ट सहा, और किसी ने न किया। स्वयं राज्य नहीं भोगा। जीतकर ज्येष्ठ भ्राता महाराज युधिष्ठिर के चरणों में चढ़ा दिया। पुत्र खो दिये महायुद्ध में, निज पराक्रम से उपलब्ध पत्नी तक स्वयं ही समर्पित कर दी थी चारों अन्य भ्राताओं को भी।

सर्वाधिक परिश्रमी होने के कारण अब भी वे सतत युद्धरत रहते हैं। अथक परिश्रम करते रहते हैं। अन्य भ्रातागण अपेक्षाकृत सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। देश-विदेश में युद्धरत हैं सव्यसाची, हस्तिनापुर की सीमा-वृद्धि एवं महाराज युधिष्ठिर की श्रीवृद्धि हेतु।

समाचार मिल रहे थे कि बल-विक्रम के धनी पाण्डुनन्दन अर्जुन आश्वमेधिक यज्ञ हेतु छोड़े गये सुलक्षण अश्व की रक्षा करते हुए विभिन्न राज्यों को अपने पराक्रम से रौंदते हुए विजय पर विजय प्राप्त करते जा रहे हैं। त्रिगर्त पराजित कर दिये। प्राग्ज्योतिपुर के राजा वज्रदन्त को पराजित किया। सैन्धवों को हराया। मगधराज मेघसन्धि को हराया। गान्धारराज शकुनि-पुत्र को पराजित किया। स्वयं अपने पुत्र मणिपुर महाराज बभ्रवाहन से संघर्ष करके विजयी हुए। अर्जुन मगध, चेदि, काशी, कोशल आदि देशोंके राजाओंको परास्त करते हुए गान्धार देश में पहुँचे। गान्धार राज को परास्त करके अर्जुन हस्तिनापुर को लौटे। हस्तिनापुर वीरवर सव्यसाची की विजयगाथाओं का अभिभूत हो-होकर हार्दिक स्वागत कर रहा था।

इन संवादों को पाकर गम्भीरमना राजमहिषी विचारमग्न हो गयी। भूल गयी निकट बैठे धर्मराज युधिष्ठिर को। भूल गयी वृष्णिकुलशिरोमणि श्रीकृष्ण को जो बड़ी सूक्ष्मता से उसके मनोभावों का अध्ययन कर रहे थे। भूल गयी सबके मध्य क्या चर्चा चल रही थी, क्या विषयवस्तु थी। बैठी रह गयी वह चिबुक पर हाथ रखे, सूदूर युद्धरत अपने परमतेजस्वी प्रियतम की स्मृति में मग्न। तभी संवाद आया कि अर्जुन शीघ्र ही हस्तिनापुर लौटकर आ रहे हैं। यह भी संवाद था कि स्थान-स्थान पर निरन्तर युद्ध करते-करते पाण्डुनन्दन सव्यसाची अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं।

द्रौपदी तो पहले ही उमड़ी-घुमड़ी बैठी थी। वीरवर धनंजय के कष्ट सुनते ही नयन छलछला पड़े। वह उनकी समुचित सेवा नहीं कर पाती तो अन्य कोई राजपुत्री क्यों नहीं आगे बढ़ जाती। गत समय तो ऐसे ही क्लान्त क्षणों में मणिपुरराजपुत्री चित्रांगदा ने सव्यसाची के कष्ट दूर किये थे। तब उसे चित्रांगदा से ईर्ष्या हुई थी। अब उसे किसी चित्रांगदा से इर्ष्या नहीं। अहा। कैसा दुर्भाग्य। अब क्यों नहीं सुदूर अंचलों में उसके संघर्षरत प्रियतम की सेवा हेतु कोई रमणी मिली? कितने दारुण कष्ट पाता है उनका वीर गात। कैसा असुरक्षित जीवन व्यतीत कर पाते हैं पार्थ। यदि कोई उसे यह संवाद दे कि किसी तरुणी ने पार्थ को वरा है- उनकी सेवा करके उन्हें विश्राम, शान्ति एवं सुख दिया है तो वह उस अपरिचिता के प्रति कृतज्ञता से भर जाएगी। भरे मेघ से नयनों के छलकते आँसू सबकी दृष्टि से छुपाकर उसने पोंछ लिये। अन्तर पुकार उठा किन्तु, हा कष्ट। हा कष्ट।

अश्व सर्वत्र घूमकर लौटा। धर्मराजका अश्वमेघयज्ञ सविधि समाप्त हुआ।

महाराज युधिष्ठिर भी खिन्न मन हो उठे वीरवर पार्थ के दुर्बल हो जाने के संवाद से। युधिष्ठिर बोले, जनार्दन। मैं कभी

समझ नहीं पाता कि महापराक्रमी पाण्डुनन्दन अर्जुन सतत ही अतीव दुखभागी क्यों रहते हैं सदा सुख-वंचित क्यों रहते हैं। अनुज फाल्गुन तो उत्तम शारीरिक लक्षणों से विभूषित हैं, हृषीकेश। तो भी कितना कष्ट उठाते हैं। तो क्या उनके इस वीरगात्र में ऐसा भी कोई लक्षण है जो उन्हें कष्ट देता रहता है?

वार्ष्णेय बड़े अभिनयपूर्वक कुछ अवधि तक घोर गम्भीर बने बैठे रहे। मननशील, चिन्तनशील-से। पांचाली की अश्रुपूरित दृष्टि उत्कण्ठा से उनके नलिनमुख पर टिकी हुई थी- क्या कहते हैं केशव।

कृष्ण बोले, उस पुरुष-व्याघ्र के शरीर में कोई दोष प्रतीत तो नहीं होता राजशार्दूल। केवल पाँवों की पिण्डलियाँ। औरों से कुछ अधिक पुष्ट हैं। इसीलिए स्यात् उन्हें सदा यात्रा व युद्धरत रहना पड़ता है, दु:ख भोग करने पड़ते है। और कोई तो आपत्तिजनक लक्षण उस सुन्दर सौष्ठवयुक्त तन में नहीं दिखा मुझे।

युधिष्ठिर ने दीर्घ श्वास खींचा। तो यही दोष होगा नारायण।

केशव की दृष्टि मिली कृष्णा की दृष्टि से। और उस कठोर गाम्भीर्यरूपी पर्वत के पीछे से सूर्य-किरणों-सी असंख्य मुस्कान-रश्मियाँ उद्भासित हो उठीं। कृष्णा के वंकिम कटाक्ष से वे प्रेम-गद्गद् हो उठे। अब कृष्णा ठीक दीख रही है, जैसी उन्हें सदा भाती है। कटाक्ष से विहँसती। नयनों में अश्रुकण और अश्रुकणों पर आह्लादित मुस्कान। यही तो प्रमुख लक्षण है इस महाभारती का। यही तो वास्तविक स्वरूप है महाभारती का।

उत्तेजित भीम उतावली से द्रौपदी के निकट आये और बोले, देवी पांचाली। महाऐश्वर्यशाली महाराज यौवनाश्व अपनी अत्यन्त रूपसम्पन्न भार्या महारानी प्रभावती देवी सहित पधार रहे हैं। तुम अन्य महिलाओं के साथ तुरन्त स्वागत हेतु तत्पर हो। और राजमहिषी देवी प्रभावती के ऐश्वर्यमय रूप के समकक्ष ही तुम्हारा भी श्रृंगार होना चाहिए। यह प्रतिष्ठा का प्रश्न है पांचाली। किन्तु यह क्या? गोविन्द नहीं दिखाई पड़ रहे। नहीं हैं क्या? तब तो तुम्हारा अपूर्व विस्मयकारी श्रृंगार सम्भव नहीं प्रतीत होता, भामिनी।

भीम की बात से पांचाली स्मितहास्य से पुलकित हो उठी। नहीं आर्यपुत्र। महाप्राण गोविन्द अन्तर्गृह में हैं और मेरे श्रृंगार के प्रति भी आप आशंकित न हों, चिन्तित न हों। जैसे समय पर धीरज रखना और समय पर प्रतिशोध लेना मुझे भलीभाँति आता है, उसी प्रकार अवसर के अनुकूल श्रृंगार करना भी मुझे भलीभाँति आता है आप निश्चिन्त रहें आर्य।

और वास्तव में जब वह अपूर्व मणिमय अलंकारों से विभूषित श्रृंगार करके स्वागत हेतु प्रस्तुत हुई तो पाण्डवमहाराज्ञी लावण्यमयी देवी द्रौपदी के तेजयुक्त, श्रीसम्पन्न रूप-श्रृंगार से महाराज यौवनाश्व एवं सौन्दर्यशालिनी रानी प्रभावती निष्प्रभ रह गये।

अश्वमेघ यज्ञ हेतु समागम प्रारम्भ हो गया था। मणिपुर के महाराजा अर्जुनपुत्र बभ्रुवहन अपनी माता चित्रांगदा एवं विमाता नागराजकन्या उलूपी के साथ आ रहे थे। द्वारिकापुरी से माता देवकी सहित श्रीकृष्ण पत्नियों का आगमन होनेवाला था। पाण्डव की राजधानी में हर्ष-उल्लास समारोह आदि का वातावरण था। पांचाली उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी, चित्रांगदा एवं इरावान् की माता उलूपी की वर्षों से उन्हें देखने की उसे हार्दिक उत्कण्ठा थी। विशेषरूप से चित्रांगदा को देखने को सदा-सदा से आतुर रही थी।

वह उस समय राजभण्डारगृह के निरीक्षण में व्यस्त थी। सूचना मिली कि मणिपुर के शासक की मण्डली आ गयी है। किन्तु भूल गयी कि चित्रांगदा एवं उलूपी को देखने को वह कितनी आतुर रही है। बभ्रुवाहन। अर्जुननन्दन। अर्जुनपुत्र। बभ्रुवाहन। वह बेसुध-सी व्याकुल हो दौड़ पड़ी, वत्सल गौ-सी धेनुवत्स से मिलने। बभ्रुवाहन का स्वागत उस राजकुल में अभूतपूर्व हुआ था। पितामही आर्या कुन्ती उसे क्षणभर विलग न होने दे रही थीं। महातेजमयी द्रौपदी के प्रवेश करते ही बभ्रुवाहन समझ गया- यही है गाण्डीवधारी की प्रियतमा। वृष्णिनन्दन की अनन्य सखी। यही है वह लौहनारी जिसने

अन्याय का प्रतिकार किया। जो निरंकुश तन्त्र के सक्षम झुकी नहीं। यही है वह महाभारती जिसने आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए अपने पाँचों पुत्र बलि चढ़ा दिये। धन्य है महादेवी। बभ्रुवाहन आर्द्रकण्ठ हो उसके चरणों में नत हुआ। पांचाली ने वात्सल्य विभोर हो उसे अंक में भर लिया-उसके मुख पर, ललाट पर हाथ फेरती ढूँढ़ती रही उसमें खोये हुए प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, शतानीक, श्रुतकीर्ति, श्रुतसेन, अभिमन्यु सबको। सबको। सभी खोये हुए पुत्ररत्नों को।

मणिपुर की राजमाता चित्रांगदा एवं नागराजकन्या उलूपी उस महिमामयी महाराज्ञी के प्रताप से अभिभूत थीं। उसके चरणस्पर्श कर प्रार्थना कर रही थीं कि उनको भी इस महान् नारी जैसा धीरज, साहस एवं तेज उपलब्ध हो।

सत्यभामा द्रौपदी को बोली, किन्तु इसमें सन्देह नहीं द्रुपदनन्दिनी कि तुमने वास्तव में हमारे भोले-भाले, सरल-हृदय वासुदेव को अपनी बौद्धिक प्रतिभा से चमत्कृत कर दिया है। यही है तुम्हारा वशीकरण मन्त्र। तुम ठहरीं ज्ञान-विशारदा। प्रखर वक्ता। शास्त्र-पण्डिता। हमें तो वासुदेव वज्रमूर्ख समझते हैं। हैं भी हम लोग अल्पबुद्धि। हम तो उनकी मात्र मनोरंजन-गीतिकाएँ हैं। विजयगीत तो तुम हो उनका। वैसे भी याज्ञसेनी। तुम्हारी अनुकम्पा व मित्रता के लिए तो कितने वीर पुरुष लालायित रहे हैं। दुर्योधन और कर्ण तो इसीलिए एक विचित्र हीन भाव से आजीवन ग्रस्त रहे और वही लालसा उर में लिये ही परलोकवासी हुए। वासुदेव क्यों न तुम्हारी मनुहारों में लिप्त रहें। पत्नी के मनोरथ पूर्ण करना तो नीरस कर्त्तव्य है। किन्तु सखी की स्वप्नमाला गूँथने में जो अनूठी, अद्भुत रसभरी अनुभूति है, उसे हमारे रसिक प्रियतम भलीभाँति जानते हैं।

द्रौपदी बोली, सत्यभामे। मुझे भलीभाँति स्मरण है, तुमने मुझसे पूर्व में कोई अभिचार और तन्त्र-मन्त्र आदि जानना चाहा था ताकि वासुदेव श्रीकृष्ण तुम्हारे ही वश में रहें। और तब मैंने कहा था कि मन्त्र एवं अभिचार का अवलम्ब लेकर पति को वश में करने का कुविचार त्याग दो क्योंकि यह अत्यन्त तुच्छ विचार है। वास्तव में देवी। तुम्हारा मन हरिसेवा में लगता नहीं। तुम्हारा चंचल मन गोविन्द की किसी न किसी अन्य प्रियतमा का पीछा करता रहता है। सदा शंकाकुल और सन्देहयुक्त बना रहता है। इसीलिए तुम मनोयोग से पति-सेवा भी नहीं कर पातीं और उनका मन भी नहीं जीत पातीं। बल्कि इसके विपरीत तुम्हारा व्यवहार माधव को त्रासदायी हो जाता है। और तुम तो विख्यात कलह-निपुण हो। किसी न किसी सपत्नी से तुम्हारा मनोमालिन्य चलता ही रहता है। तुम ऐसा नहीं सोच पातीं क्या सत्यभामा कि तुमसे अपमानित हो, तिरस्कार पा, वासुदेव द्वारिकापुरी के अशान्तिमय, कलहयुक्त वातावरण से निकलकर यहाँ शान्ति पाते हैं? और सत्यभामे। बुद्धि एवं ज्ञान में तुम किसी से कम नहीं। किन्तु तुमने अपनी शक्ति व बुद्धि अनुचित दिशा में प्रवाहित कर दी है, इसीलिए गोविन्द का मन तुमसे विमुख हो उठता है। देवि। मेरे आश्रय में वासुदेव को कलह नहीं देखनी पड़ती। तिरस्कार नहीं सहना पड़ता। व्यंग्य नहीं सुनने पड़ते। वे यहाँ महान् आदर के पात्र हैं- हमारे पूज्य हैं। मैं उन्हें भला क्या दे सकती हूँ- केवल स्नेह के? और मेरे उस स्नेह से वे गद्गद होकर अपनी अन्तर्वेदना मेरे समक्ष उँडेलकर हार्दिक सन्तोष प्राप्त करते हैं। वे स्नेह के भिक्षुक हैं। प्रेम के याचक हैं। सत्यभामे। वैसे मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ कि यदि तुमसे दु:खी न होते गोविन्द तो क्यों मेरे पास आते।

वे ही एकमात्र पुरुष हैं, जिन्होंने भरी सभा में अक्षय चीर देकर मेरी लाज बचायी थी। मैं तो उनकी ऋणी हूँ। जो कुछ मुझसे हो सकेगा, उस महापुरुष की सेवा के लिए, उनके आनन्द के लिए, उनकी प्रसन्नता के लिए, अवश्य करूँगी। वे तो प्रेम पिपासु हैं। नेह-क्षुधित हैं। तुम्हारा कौन-सा मनोरथ उन्होंने पूर्ण न किया देवी? तुमने देवलोक का पारिजात-वृक्ष तक तो माँग लिया। और उन्होंने तुम्हारे कोमल मन की भावना का आदर करके वह दुर्लभ माँग तक पूर्ण की। किन्तु देवसम्पत्ति पाकर भी तो तुम असन्तुष्ट एवं रुष्ट बनी रहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वे मेरे अग्रज हैं, उनका आशीर्वाद पाकर ही मैं विभिन्न आघातों को सहने में समर्थ हूँ। किन्तु इन ही कारणों से यदि मेरा उनके प्रति प्रेम लगभग श्रद्धा एवं भक्ति की सीमा पर पहुँच जाये तो आश्चर्य कैसा?

धीरे से हाथ रखा उसने सत्यभामा के कन्धे पर और अग्रजा की भाँति नेह-स्निग्ध वाणी में समझाती हुई बोली, नहीं,

सत्यभामे, नहीं। यही तो अभी समझा रही थी तुम्हें। समय पर कठोर और समय पर मृदुल होकर ही मैंने पाँचों पतियों को नियन्त्रित किया है। वेला-कुवेला का तो ध्यान रखो देवी। पति की मर्यादा, पद एवं गरिमा के अनुकूल आचरण करना ही पत्नी को शोभा देता है। समर से लौटे पति का ऐसे भी अभिनन्दन किया जाता है- यह मुझे आज ज्ञात हुआ और फिर यदि मधुसूदन तुमसे विमुख हो उठें तो असम्भव क्यो देवि? आर्यपुत्र पार्थ तो प्रमीला को साथ लाये हैं तोभी मैं अथवा सुभद्रा उन्हें उपालम्ब नहीं दे रहीं। और मधुसूदन तो कोई नारी-रत्न नहीं लाये- यह जानते हुए भी तुम व्यंग करके उन्हें अनावश्यक त्रास क्यों पहुँचा रही हो?

श्रीकृष्ण विक्षुब्ध हो चल दिये तो द्रौपदी भी उनके साथ-साथ आयी। हृदय में माधव के प्रति अपार सहानुभूति थी किन्तु नयनों में चपलता की लहरें हिलोरें मार रही थीं। वासुदेव भाँप गये, तनिक मुड़कर उन्होंने पूछ लिया, क्या बात है बड़ी गद्‌गद हो रही हो? इस प्रसन्नता का क्या कारण कृष्णे?

पहिली बार अर्जुनकी दोनों पत्नियाँ उलूपी और चित्रांगदा आयी थीं हस्तिनापुर और वभ्रुवाहन तो सबके अत्यन्त स्नेहभाजन थे; क्योंकि अब वे अकेले पाण्डवोंके पुत्रोंमें बचे थे। भले वे अपने नानाके उत्तराधिकारी होकर मणिपुरमें रहनेवाले थे और उनसे नानाका गोत्र चलनेवाला था; किंतु द्रौपदी, सुभद्रा आदि सबको वे अपने ही पुत्र लगते थे। सबका वात्सल्य पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न थे। अवभृथ स्नानके पश्चात् जब ऋषि-मुनि विदा हो गये, धीरे-धीरे राजाओंने भी युधिष्ठिरसे अनुमति ली अपने राज्यमें लौटने की। सबसे अन्तमें बभ्रुवाहनको उनकी माता चित्राङ्गदा तथा विमाता उलूपीके साथ पाण्डवोंने बहुत सत्कृत करके विदा किया।

अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण हुआ। व्यासने उनके अभ्युदय का आशीर्वाद दिया। महाराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक स्वर्णमुद्रायें दक्षिणा में दी और सम्पूर्ण पृथ्वी व्यासजीको दान कर दी। व्यासने कहा, धर्मराज युधिष्ठिर। इस पृथ्वीको मैं तुम्हें तुम्हारे अधिकार में छोड़ता हूँ क्योंकि ब्राह्मण धन के इच्छुक होते है राज्यके नहीं। तब महाराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसे अश्वमेध यज्ञमें पर्याप्त दक्षिणा दी और ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया। पृथ्वीके दान के बदले उन्होंने ब्राह्मणोंको स्वर्णदान दिया और पृथ्वी अपने अधीन रखी। महाराज मरुत्तके मार्गका अनुसरण करनेवाले युधिष्ठिरने उस समय जैसा महान त्याग किया वैसा इस संसार में दूसरा किसीने नहीं किया। ब्राह्मणोंको सोने का दान दिया और स्वर्णपात्र दिये। ब्राह्मणोंके लेनेके बाद जो धन वहाँ पड़ा रह गया, उसे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा म्लेच्छ जातिके लोग उठाकर ले गये। यज्ञके अन्तमें अवभृत-स्नान करके राजा युधिष्ठिर पापरहित हुए। तदनन्तर पाण्डवोंने यज्ञमें आये हुए राजा और अतिथियोंको तरह-तरह के रत्न, हाथी, घोड़े, आभूषण, स्त्रियाँ, वस्त्र और उसे बहुत-सा धन देकर विदा किया। दु:शलाके पौत्र को सिन्धुदेशके राज्यपर अभिषिक्त किया। इसप्रकार धर्मराज युधिष्ठिरका यज्ञ पुरा हुआ। उसमें अन्न, धन और रत्नोंकी ढेरी लगी हुई थी। धर्मराजने उस यज्ञमें धनको पानी के समान बहाया। इससे युधिष्ठिरके दानकी चारों ओर प्रसन्नता होने लगी।

युधिष्ठिरकी प्रसन्नता सुनकर उसी समय एक नेवला आया। जिसकी आँखे नीली थीं और आधा शरीर स्वर्णका था। वह मनुष्य की भाषा में बोलने लगा, तुम्हारा यह यज्ञ कुरुक्षेत्र निवासी उदार ब्राह्मणके सेरभर सत्तू दान के बराबर भी नहीं हुआ है। नेवलेकी बात सुनकर ब्राह्मणोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उससे पूछने लगे हे नेवले । इस यज्ञमें तो साधु पुरुषोंका तो समागम हुआ। तुम कहाँसे आ रहे हो। तुम कौन हो? तुममें कौनसा बल है और कितना शास्त्रज्ञान है? तुम किसके सहारे रहते हो, तुम्हारा परिचय दो। तुम हमारे इस यज्ञकी निन्दा क्यों कर रहे हो? शास्त्र और न्यायके अनुसार प्रत्येक कर्मका पालन किया गया है। अग्निमें मन्त्र पढ़कर आहुति दी गयी है और ईर्ष्यारहित होकर दान किया गया है। श्राद्धके द्वारा पितामहोंको, रक्षाके द्वारा वैश्योंको, सम्पूर्ण स्त्रियोंकी कामनाओंकी पूति की गयी, दयासे शूद्रोंको, और सम्बन्धियोंको सन्तुष्ट किया गया है। यह सब होनेपर भी तुमने क्या देखा और क्या सुना जिससे तुम इस यज्ञपर आक्षेप कर रहे हो। तब

नेवलेने हँसकर कहा, आपका यह यज्ञ उच्छवृत्तिवाले ब्राह्मणके द्वारा किये गये सेरभर सत्तू दानके बराबर भी नहीं है। कुरुक्षेत्रमें एक उच्छवृत्तिधारी दानी ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही उत्तम एवं अद्‌भुत था। वह ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र था और न्यायसे प्राप्त हुए थोड़ेसे अन्नका दान भी अत्यन्त उत्तम फलका साधक हुआ। कबूतरके समान अन्नका दाना चुनकर लाते और उसीसे कुटुम्बका पालन करते थे। वह ब्राह्मण अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्रवधूके साथ रहकर तपस्यामें संलग्न था। एक बार कुरुक्षेत्रमें बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। उस समय ब्राह्मणके पास अन्नका संग्रह नहीं था और खेतोंका अन्न भी सूख गया उसके पास द्रव्यका बिल्कुल अभाव हो गया और उसे समय पर भोजन नहीं मिलता था। बिचारे सब-के-सब भूखे रह जाते थे। एक दिन ज्येष्ठके शुक्लपक्षमें दोपहरीके समय वे तपस्वी ब्राह्मण भूख और गर्मीका कष्ट सहते हुए अन्नकी खोज में निकले। पर उन्हें अन्नका एक दाना भी नसीब नही हुआ। इसतरह प्रति दिन उपवास करके दिन बिताने लगे। उनकी प्राण-शक्ति क्षीण हो गयी। एक दिन उन्हें भिक्षा में सेरभर जौ मिल गया। ब्राह्मण का परिवार तपस्वी था। उन्होंने उस जौका सेरभर सत्तू तैयार किया और थोड़ा-थोड़ा सत्तू चार भागोंमें बाँटकर भोजन के लिये बैठे। इतने में ही एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचा। वहाँ उस ब्राह्मणने कहा, भगवन्। आपके लिये अर्घ्य, पाद्य और आसन मौजूद है तथा न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए भिक्षा में मिले उस परम सत्तू आपकी सेवामें उपस्थित हैं। मैंने इसे आपको अर्पण किया इसे आप स्वीकार करे। अतिथिने ब्राह्मण का वह भाग सत्तू खा लिया उतनेसे उसकी भूख शान्त न हुई। तब ब्राह्मण की पत्नीने कहा, हे नाथ। आप अतिथिको मेरा भाग दे दीजिये। अपनी पतिव्रता पत्नीकी बात सुनकर ब्राह्मणने विचार किया स्वयं जो भूखका कष्ट उठा रहे थे, यह बेचारी तो खुद ही क्षुधासे दु:ख पा रही है। इसके अलावा वह तपस्विनी बूढ़ी, थकी हुई और अत्यन्त दुर्बल है। अत: उसको क्षुधातुर जानकर ब्राह्मणको उसके हिस्सेका सत्तू लेना उचित नहीं जान पड़ा और बोले, हे कल्याणी। अपनी स्त्रीकी रक्षा और पालन पोषण करना कीट, पतंग और पशुका भी कर्त्तव्य है और पुरुष होकर भी जो स्त्रीके द्वारा अपना पालन-पोषण और संरक्षण करता है, वह मनुष्य दयाका पात्र है। वह उज्ज्वल कीर्तिसे भ्रष्ट हो जाता है और उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति नहीं होती। धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्य, सेवा-शुश्रूषा, वंश-परम्पराकी रक्षा, पितृ-कार्य और स्वधर्मका अनुष्ठान ये सब स्त्रीके ही अधीन हैं। जो पुरुष स्त्रीकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, वह संसारमें महान् अपयशका भागी होता है और परलोकमें जानेपर उसे नरकमें गिरना पड़ता है।

तब ब्राह्मणी बोली, प्राणनाथ। हम दोनोंके धर्म और अर्थ एक ही हैं, मेरे हिस्सेका यह पावभर सत्तू लेकर अतिथिको दे दें। स्त्रियोंका सत्य, धर्म, रति, अपने गुणोंसे मिला हुआ स्वर्ग तथा उनकी सारी अभिलाषा पतिके ही अधीन है। माताका रज और पिताका वीर्य- इन दोनोंके मिलनेसे ही वंश-परम्परा चलती है। स्त्रीके लिये पति ही सबसे बड़ा देवता है। स्त्रीको जो रति और पुत्ररूप फलकी प्राप्ति होती है, वह पतिका ही प्रसाद है। आप पालन करनेके कारण मेरे पति, भरण-पोषण करनेसे भर्ता और पुत्र प्रदान करनेके कारण वरदाता हैं, इसलिये मेरे हिस्सेका सत्तू अतिथिदेवताको अर्पण कीजिये। आप भी तो जरा-जीर्ण वृद्ध, क्षुधातुर, अत्यन्त दुर्बल, उपवाससे थके हुए और क्षीणकाय हो रहे हैं (फिर आप जिस तरह भूखका क्लेश सहन करते हैं उसी प्रकार मैं भी सह लूँगी)।

पत्नीके कहनेपर ब्राह्मणने सत्तू लेकर अतिथिसे कहा- द्विजवर। यह सत्तू भी ग्रहण कीजिये। अतिथि वह सत्तू भी लेकर खा गया फिर भी उसका पेट नहीं भरा। तब उसके पुत्रने कहा पिताश्री मेरा सत्तू लेकर आप इस अतिथिको दे डालिये इसीमें हमारा पुण्य है। साधु पुरुष बूढ़े माता-पिताके पालन-पोषणकी सदा अभिलाषा करते है। पुत्र होनेका यही फल है कि वह वृद्धावस्थामें पिताकी रक्षा करे। श्रुतिकी यह सनातन आज्ञा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है।

ब्राह्मण बोला, पुत्र। तुम हजार वर्षके हो जाओ तो भी मेरे लिये बालक ही हो। पिता पुत्रको जन्म देकर ही उससे अपनेको कृतकृत्य समझता है। मैं जानता हूँ, बच्चोंकी भूख प्रबल होती है; मैं तो बूढ़ा हूँ, भूखे रहकर भी प्राण धारण कर सकता हूँ। जीर्ण

अवस्था हो जानेके कारण मुझे भूखसे अधिक कष्ट नहीं होता। इसके सिवा, मैं दीर्घ कालतक तपस्या कर चुका हूँ, अत: अब मुझे मरनेका भय नहीं है। तुम अभी बालक हो, इसलिये पुत्र। तुम्हीं यह सत्तू खाकर अपने प्राणोंकी रक्षा करो।

पुत्र बोला, पिताजी। मैं आपका पुत्र हूँ। पुरुषका त्राण करनेके कारण ही संतानको पुत्र कहा गया है। इसके सिवा पुत्र पिताका अपना ही आत्मा माना गया है, अत: आप अपने आत्मभूत पुत्रके द्वारा अपनी रक्षा कीजिये।

ब्राह्मणने कहा, पुत्र। तुम रूप, सदाचार और इन्द्रियसंयममें मेरे ही समान हो। तुम्हारे इन गुणोंकी मैंने अनेकों बार परीक्षा कर ली है। अब मैं तुम्हारा सत्तू लेकर अतिथिको देता हूँ। यह कहकर ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक वह सत्तू ले लिया और हँसते-हँसते अतिथिको परोस दिया। उसे खा लेनेपर भी अतिथि देवताका पेट न भरा। उनकी पुत्रवधू बड़ी सुशीला थी। वह अपने हिस्से का सत्तू लेकर अपने ससुर के पास गयी और बोले पिताजी आप मेरे हिस्से का सत्तू लेकर अतिथि देवताको दीजिये।

तब ब्राह्मण बोले, पुत्री। हवा और धूपके मारे तुम्हारा सारा शरीर सुख रहा है। तुम्हारी कान्ति फीकी पड़ गयी है। उत्तम व्रत और आचारका पालन करते-करते तुम अत्यन्त दुर्बल हो गयी हो। भूखके कष्टसे तुम्हारा चित्त व्याकुल है, तुम्हें ऐसी अवस्थामें देखकर भी तुम्हारे हिस्सेका सत्तू कैसे ले लूँ? ऐसा करनेसे मेरे धर्ममें बाधा आयेगी। तुम प्रतिदिन शौच, सदाचार और तपस्यामें संलग्न रहकर दिनके छठे भागमें आहार करती हो। आज अन्न न मिलनेके कारण तुम्हें उपवास करती कैसे देख सकूँगा? तुम भूखसे व्याकुल हुई बालिका एवं अबला हो, उपवासके कारण बहुत थक गयी हो और सेवा-सुश्रूषाके द्वारा बन्धु-बान्धवोंको सुख पहुँचाती हो, इसलिये तुम्हारी तो मुझे सदा ही रक्षा करनी चाहिये।

पुत्रवधू बोली- भगवन्। आप मेरे गुरुके भी गुरु और देवताके भी देवता हैं, अत: मेरा दिया हुआ सत्तू अवश्व स्वीकार कीजिये। मेरा यह शरीर, प्राण और धर्म सब कुछ बड़ोंकी सेवाके लिये ही है। आपकी प्रसन्नतासे ही मुझे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है, अत: आप मुझे अपनी दृढ़ भक्त, रक्षणीय अथवा कृपापात्र समझकर अतिथिको देनेके लिये मेरा यह सत्तू स्वीकार कीजिये।

श्वसुरने कहा, पुत्री। तुम पतिव्रता हो और सदा ऐसे ही उत्तम शील एवं सदाचारका पालन करनेमें तुम्हारी शोभा है। तुम धर्म तथा व्रतके आचरणमें संलग्न होकर हमेशा गुरुजनोंकी सेवापर दृष्टि रखती हो, इसलिये तुम्हें पुण्यसे वञ्चित न होने दूँगा और श्रेष्ठ धर्मात्माओंमें तुम्हारी गिनती करके तुम्हारा दिया हुआ सत्तू अवश्य स्वीकार करूँगा। और ब्राह्मणने वह पुत्रवधू के हिस्से का सत्तू अतिथि को परोस दिया। वह अतिथि और कोई नहीं था साक्षात धर्मका स्वरूप था। वह धर्मके रूपमें प्रकट होकर बोला, हे विप्रवर। तुमने अपनी शक्तिके अनुसार धर्मपर दृष्टि रखकर न्यायोपार्जित अन्नका शुद्ध हृदयसे दान किया है मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी तुम्हारे दान की घोषणा करते है। देवता, ऋषि, गन्धर्व और देवदूत भी तुम्हारे दानसे विस्मित होकर खड़े-खड़े तुम्हारे स्तुति कर रहे है।

ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले ब्रह्मर्षि विमानपर बैठकर तुम्हारे दर्शनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तुम दिव्यलोकको जाओ। पितृलोकमें तुम्हारे जितने पितर थे, उन सबको तुमने तार दिया तथा अनेकों युगोंतक भविष्यमें होनेवाली जो संतानें हैं, वेभी तुम्हारे ब्रह्मचर्य, दान, तपस्या और शुद्ध धर्मके अनुष्ठानसे तर जायँगी। तुमने बड़ी श्रद्धाके साथ तप किया है, उसके प्रभावसे और दानसे सब देवता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुए हैं। संकटके समय भी तुमने शुद्ध हृदयसे यह सारा-का-सारा सत्तू दान किया है। भूख मनुष्यकी बुद्धिको चौपट कर देती है, उसके धार्मिक विचारोंका लोप हो जाता है; किंतु ऐसे समयमें भी जिसकी दानमें रुचि होती है, उसके धर्मका ह्रास नहीं होता। तुमने स्त्री और पुत्रके स्नेहकी उपेक्षा करके धर्मको ही श्रेष्ठ माना है और उसके सामने भूख-प्यासको भी कुछ नहीं गिना है। मनुष्यके लिये सबसे पहले न्यायपूर्वक धनकी प्राप्तिका उपाय जानना ही सूक्ष्म विषय है। उस धनको सत्पात्रकी सेवामें अर्पण करना उससे भी श्रेष्ठ है। साधारण समयमें दान देनेकी अपेक्षा उत्तम समय पर दान देना और भी अच्छा है, किंतु श्रद्धाका महत्त्व कालसे भी बढ़कर है। राजा रन्तिदेवके पास जब कुछ नहीं रह गया था तो

उन्होंने शुद्ध हृदयसे केवल जलका दान किया था। अन्यायपूर्वक प्राप्त हुए द्रव्यके द्वारा महान् फल देनेवाले बड़े-बड़े दान करनेसे धर्मको प्रसन्नता नहीं होती। धर्म देवता तो न्यायोपार्जित थोड़े-से अन्नका भी श्रद्धापूर्वक दान करनेसे ही संतुष्ट होते हैं। राजा नृगने ब्राह्मणोंको हजारों गौएँ दान की थीं; किंतु एक ही गौ उन्होंने दूसरेकी दान कर दी, जिससे अन्यायत: प्राप्त द्रव्यका दान करनेके कारण उन्हें नरकमें जाना पड़ा। उशीनरके पुत्र राजा शिबि श्रद्धापूर्वक अपने शरीरका मांस देकर भी पुण्यात्माओंके लोकमें आनन्द भोगते हैं। न्यायपूर्वक एकत्रित किये हुए धनका दान करनेसे जो लाभ होता है, वह बहुत-सी दक्षिणावाले अनेकों राजसूययज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे भी नहीं होता। तुमने सेरभर सत्तूका दान करके अक्षय ब्रह्मलोकपर विजय पायी है, बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ भी तुम्हारे इस दानके फलकी समानता नहीं कर सकते। अत: द्विजश्रेष्ठ। तुम रजोगुणसे रहित ब्रह्मधामको सुखपूर्वक पधारो। तुम सब लोगोंके लिये दि व्य विमान उपस्थित है। इसपर सवार हो जाओ। मेरी ओर दृष्टि डालो, मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुमने अपने शरीरका उद्धार कर दिया। संसारमें तुम्हारा यश सदा ही कायम रहेगा।

नेवलेने कहा, अपने स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधूके साथ वे सब विमानमें बैठकर ब्रह्मलोकको चले गये। मैं भी वहाँ पर अपने बिलसे बाहर आया और जहाँपर अतिथिने भोजन किया था और झूठन पड़ी हुई थी उसपर लौटने लगा। तब मेरा आधा शरीर स्वर्णका हो गया। उसके तपका प्रभाव आप लोगोंने देख लिया। जब मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया तब मुझे चिन्ता हुई कि मेरा बाकी आधा शरीर किस उपायसे स्वर्णमय हो सकता है। इसी उद्देश्यसे मैं बारंबार अनेकों तपोवनों और यज्ञस्थलोंमें भ्रमण करता रहा। महाराज युधिष्ठिरके यज्ञका भारी प्रसन्नता सुनकर मैं यहा आया फिर भी मेरा यहाँ भूमिपर लौटनेपर मेरा शरीर सोनेका नहीं हो सका। इसीलिये मैंने कहा, यह यज्ञ ब्राह्मणके दिये हुए सेरभर सत्तूके बराबर भी नहीं है। परन्तु यह महान यज्ञ मुझे वैसा नहीं बना सका और यह कहकर वह नेवला वहाँसे चला गया। किसी भी प्राणीसे द्रोह न करने, संतोष, शील, सरलता, तप, इन्द्रियसंयम यह सब बड़े-बड़े गुण यज्ञोंकी समानता करनेवाले है। इसीप्रकार का एक यज्ञ महर्षि अगस्त्य ने १२ वर्षों में समाप्त होनेवाला यज्ञ किया था। महर्षि अगस्त्य इसप्रकार यज्ञ कर रहे थे उस समय इन्द्रने पृथ्वीपर पानी बरसाना बन्द किया। फिर भी महर्षि का यज्ञ १२ वर्षोंतक चलता रहा। महर्षि अगस्त्य के तप के प्रभाव से, देवराज इन्द्रने पानी बरसाना आरम्भ किया।

३) शूरभक्त सुधन्वा- अश्वमेघयज्ञका अश्व सभी राज्योंमें जाय, यह आवश्यक नहीं है। उस मन्त्रपूत अश्वको कोई कहीं हाँककर तो ले नहीं जाता। वह स्वेच्छापूर्वक चलता है और रक्षक-समूह उसका अनुगमन करता है। एक वर्षमें अश्वका लौट आना आवश्यक माना जाता है। जो नरेश अश्वको रोकनेमें समर्थ हैं; प्राय: अश्व वहीं जाता है। मार्गके राज्य तो मार्गमें सहज ही आते हैं।

राजसूय यज्ञमें दिग्विजय करना आवश्यक होता है; किंतु बहुत छोटे राज्य उस समय भी छोड़ दिये जाते हैं; क्योंकि किसीको अपमानित करना अथवा कहीं व्यर्थ संहार करना किसी धर्मात्माको प्रिय नहीं होता। जो बहुत छोटे राज्य हैं, उनके शासक मानधनी हुए, अपने सम्मानकी रक्षाके लिए ही युद्ध करनेपर उतर आये तो व्यर्थ हत्याके अतिरिक्त क्या हाथ लगेगा। अत: जो बहुत प्रख्यात वीर हैं, दिग्विजयके समय उनका कर दे देना ही आवश्यक माना जाता है। छोटोंकी उपेक्षाको दोष नहीं माना जाता।

चम्पकपुरी (चम्पा) छोटा-सा पर्वतीय राज्य था। समृद्ध था और वहाँके शासक बहुत शान्तिप्रिय थे। वहाँके राजा हंसध्वजकी कोई कामना राज्य-विस्तारकी नहीं थी। अपनी प्रजा प्रसन्न है, सुखी-सन्तुष्ट है और धार्मिक है, यह उनके लिए पर्याप्त था। इस छोटे पर्वतोंके द्वारा सुरक्षित राज्यकी ओर आँख उठानेका लोभ किसीको नहीं हुआ। मगधराज जरासन्ध जैसा दुर्दम एवं असहिष्णु भी इधर नहीं आया तो दूसरा कोई क्यों आता। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके लिए उनके

भाइयोंने जो दिग्विजय-यात्रा की, उसमें इस राज्यकी उन्होंने उपेक्षा कर दी। दुर्गम वन तथा पर्वतोंमें बसे छोटे-छोटे राज्योंको विजय करनेमें व्यर्थ श्रम, सैनिक तथा समय कौन लगाता। इससे कोई लाभ नहीं था। बहुत कठिन यात्रा करके सफल हो जानेपर भी कोई बड़ा सुयश मिलनेकी सम्भावना नहीं थी। इस राज्यमें महाराज उग्रसेनके राजसूय यज्ञकी दिग्विजय-यात्रामें प्रद्युम्न नहीं आये थे और न उनके अश्वमेघके समय अश्वके पीछे अनिरुद्ध ही पहुँचे थे। महाराज युधिष्ठिरके भी दो अश्वमेघ यज्ञ हो चुके थे; किंतु उनका अश्व यहाँ नहीं आया था।

चम्पकपुरी-नरेश राजा हंसध्वज परम धार्मिक थे। भगवद्भक्त थे और उनके मनमें श्रीकृष्ण-दर्शनकी उत्कट अभिलाषा थी; किंतु उनका निश्चय था राजा सब सम्पूर्ण प्रजासे कर लेता है, सबके पाप-पुण्यमें भाग पाता है तो उसको अकेले अपने कल्याणकी चिन्ता क्यों करनी चाहिए। समस्त प्रजाको जो प्राप्त नहीं हो सकता, उसको पानेकी इच्छा मैं कैसे कर सकता हूँ। भक्तवत्सल, अनन्त करुणावरूणालय प्रभु जब पृथ्वीपर पधारे हैं परमधामसे तो यदि इस अपने अत्यन्त उपेक्षणीय क्षुद्र दासपर दया करना चाहेंगे तो यहीं आवेंगे। प्रजाके साथ ही मैं उनके भुवन-पावन पदोंके दर्शन करूँगा।

राजा कालस्य कारणम्। शासक यदि सद्धर्मका पालक है तो प्रजा स्वयं धर्माचरणमें लगेगी। जो नरेश प्रजाके बिना अपने आराध्य श्रीहरिका भी दर्शन नहीं करना चाहते, उनकी इच्छाके पीछे प्रजाका बच्चा-बच्चा प्राण देनेको सदा समुत्सुक रहेगा ही। फलत: पूरे राज्यमें सब आबाल वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सदाचारी, धर्मात्मा और भगवद्भक्त थे। सब पुरुष एक पत्नीव्रतका पालन करते थे। सब स्त्रियाँ परमसती थीं।

ब्राह्मण वेदज्ञ, तपस्वी, सन्तोषी, याज्ञिक थे। क्षत्रिय प्रचण्डधनुर्धर शूर थे। वैश्य विनयी, परसेवी, उदार, ईमानदार व्यापारी थे और शूद्र सेवाको अपना सौभाग्य मानते थे। पर्वतीय राज्य होनेसे सब श्रमशील थे। सुन्दर थे और धर्माचरणने सबको सुखी, सम्पन्न, सन्तुष्ट बनाया था।

महाराज हंसध्वजने सुना कि धर्मराज युधिष्ठिरका अश्वमेघीय अश्व इस बार उनकी राज्य-सीमामें आ गया है तो उन्हें लगा कि उनके अन्तर्यामी आराध्यने उनके हृदयकी पुकार सुन ली है। यज्ञीय अश्व तो स्वयं यज्ञपुरुषका स्वरूप होता है। वे यज्ञपुरुष भगवान नारायण इस रूपमें अनुकम्पा करने ही पधारे हैं।

अश्वको पकड़ लो और बहुत आदरपूर्वक लाकर सावधानीसे उसकी सेवा करो। महाराज हंसध्वजने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी- धर्मराज युधिष्ठिर अखिलेश्वर श्रीकृष्णके सहारे ही यज्ञ करते हैं। अत: यदि दूसरे अश्वको हमसे लेनेमें असमर्थ हो जायँ तो भगवान वासुदेवको स्वयं आना पड़ेगा। वे जनार्दन पधारें, इस प्रयत्नमें उनके पुत्र, परिजन अथवा सखा पाण्डवोंके बाणसे हममें सबको ही समर-शय्या प्राप्त हो जाय तो भी सद्गति हमारा स्वत्व है और कहीं हम सफल हो गये तब तो उन पुरुषोत्तम के पादपद्मोंसे यह भूमि पवित्र हो ही जायगी। हमें उनकी अर्चाका अवसर मिलेगा।

स्मृतिकार, प्रसिद्ध विद्वान, वेदवेत्ता, कर्मके कुशल रहस्यज्ञाता, ऋषियोंसे सम्मानित राजपुरोहित मुनिवर्य शफ और लिखित दोनों भाइयोंने महाराज हंसध्वजकी प्रशंसा की। दोनोंने राजाकी योजनाको अनुमति दे दी।

अश्वमेघीय अश्व इस प्रदेशमें आकर दौड़ पड़ा था। जैसे वह यहाँसे पूर्व परिचित हो। उसके रक्षक पीछे रह गये। चम्पकपुरीके राजकुमारोंने अश्व पकड़ा तो वह उनके साथ बड़े प्रेमसे चल पड़ा। उसने हिनहिनाकर भी किसीको सूचना नहीं दी और न बाँधे जानेका विरोध किया।

अर्जुन तथा उनके साथियोंको आश्चर्य हुआ था, जब अश्व पर्वतीय प्रदेशकी ओर चल पड़ा था। कोई प्रसिद्ध राज्य इधर नहीं था। साथ आये महर्षि याज्ञवल्क्यके शिष्यने ध्यानस्थ होनेके पश्चात् बतलाया था- अश्वको अवरुद्ध करनेवाला कोई पराक्रमी वीर इधर है। अश्व अकारण इस अपने सञ्चरणके अयोग्य दुर्गम प्रदेशमें नहीं बढ़ रहा है। अत: आप सबको सावधान रहना चाहिए। पर्वतोंके पथ समीर्ण होते हैं। वैसे अश्वमेघयज्ञके अश्व-रक्षक सब प्रकारकी परिस्थितिका सामना करनेको प्रस्तुत

होकर ही चलते हैं; किंतु अश्व जब सहसा तीव्र गतिसे दौड़ चला तो सब पिछड़ गये। आगे आनेपर पता लगा कि अश्वको पकड़ लिया गया है। चम्पकपुरी जैसे बहुत छोटे राज्यके शासकने अश्वको पकड़वाया है, यह जानकर सबको आश्चर्य हुआ। अर्जुनने सन्देश भेजा कि ऐसी धृष्टताका परिणाम बहुत भयंकर होगा। अत: अश्वको लौटा देनेकी बुद्धिमानी करनी चाहिए।

महाराज हंसध्वजका उत्तर स्पष्ट था- संसारमें गाण्डीवधन्वासे अपरिचित भला कौन होगा। हमको पता है कि इस समय उनके साथ उनके अपराजित शिष्य सात्यकि, द्वारिकाकी नारायणी सेनाके उपसेनापति कृतवर्मा तथा श्रीहरिके ज्येष्ठ पुत्र सुरेन्द्रजयी शम्बरको भी मार देनेवाले प्रद्युम्न हैं, किंतु हम पर्वतीय लोगोंको भी धनुष पकड़ना आता है। पार्थ चाहें तो अश्वके मस्तकपर बँधा स्वर्ण-पत्रमें अमित घोषणा-पत्र खोलकर अश्व ले जा सकते हैं। अन्यथा हम प्राण रहते अश्वार्पण नहीं करेंगे। युद्ध अनिवार्य हो गया। सायंकाल हो चुका था, अत: अर्जुनको सेनाके साथ नगरसे दूर शिबिरकी स्थापना करनी पड़ी। उधर चम्पकपुरी नगरमें राजाज्ञा प्रसारित हो रही थी- कल प्रात: सूर्योदयके पश्चात् एक घड़ीके भीतर युद्धकी आयुका जो क्षत्रिय शस्त्रसज्ज राजद्वारपर उपस्थित नहीं हो जायगा, उसे खौलते हुए तैलपूर्ण कढ़ाहमें डाल दिया जायगा। महाराज हंसध्वजसे मनका भाव पूरी प्रजाकी वाणीमें बोलने लगा था- हमने चतुष्पाद हरि (अश्व) बाँध लिया है। अब इसके द्वारा साक्षात् पधारे श्रीहरिकी अर्चा करके रहेंगे। अर्जुन उनके इतने प्रिय सखा हैं कि ये प्राण-संकटमें पड़े तो वे मयूर-मुकुटी प्रकट हुए बिना रह नहीं सकते। हमें कभी-न-कभी मरना तो है ही। पार्थके बाणोंसे मरे हमारे शरीरपर भी उन पार्थ-सारथीकी दृष्टि पड़ गयी तो कृतकृत्य हो गए हम।

सब आ गये? महाराज हंसध्वज अपने दोनों राजपुरोहितों तथा मन्त्रियोंके साथ पधारे। उन्होंने मन्त्रीसे पूछा। तैल भरा कढ़ाह अग्निपर चढ़ा था। तैल खौल रहा था। दण्डकी घोषणा की गयी तो उसके उपकरणको प्रस्तुत रहना ही चाहिए।

मन्त्रीने आगे बढ़कर एकत्र पंक्तिबद्ध समूहके दल-नायकोंसे पूछा और लौट आये। महाराजके सम्मुख आकर मस्तक झुकाकर कुछ शिथिल स्वरमें निवेदन किया- सब आ गये। आपके राजकुमार सुबल, सुरथ, सम, सुदर्शन भी उपस्थित हैं; किंतु। मन्त्रीसे आगे बोला नहीं गया। महाराजका स्वर उग्र हुआ- किंतु क्या? कौन नहीं आया? तुमने छोटे राजकुमार सुधन्वाका नाम नहीं लिया, वह उपस्थित नहीं है? मन्त्रीने सखेद कहा- मैं उनको नहीं देख सका।

उसे बन्दी बनाकर ले आओ। राजा बहुत क्रुद्ध हो उठे थे- उसने राजाज्ञा सुनकर भी अवहेलनाका साहस कैसे किया? ऐसे परम दुर्लभ अवसरपर भी प्रमाद। एक सेनानायक कुछ सैनिकोंके साथ चल पड़े। राजकुमार सुधन्वा उन्हें अपने सदनके द्वारपर कवच पहिने रथमें चढ़नेको उद्यत ही मिले; किंतु राजाज्ञा थी। वे बन्दी बनाये गये। उनकी परम सती पत्नी प्रभावती अभी पतिको तिलक करके मुड़ी ही थी। उसने पतिको बन्दी बनाये जाते देखा और दौड़कर आराधना-कक्षमें पहुँचकर गिर पड़ी। प्रभावतीके प्राण क्रन्दन कर उठे- मेरे अपराधसे स्वामी बन्दी हुए। मैंने उन्हें विलम्बित किया। सर्वेश्वर। सर्वसाक्षी। आप धर्मके प्रभु हो। पुरुषोत्तम। यदि मैंने धर्मका अपमान नहीं किया है, यदि मैं सती हूँ, यदि आपके श्रीचरणोंमें मेरी श्रद्धा है तो मेरे स्वामीको राजदण्डसे बचाइये। मेरे इन सर्वस्वके पौरुषसे प्रसन्न होनेका अवसर उपस्थित होने दीजिये और आपका दर्शन इनके प्रसादसे चम्पकपुरीको प्राप्त हुआ, यह सुयश दीजिये। वह सती अत्यन्त आर्त पुकार करती एकाग्र हो गयी। उसे शरीरकी, संसार की, संग्राम की कोई सुधि नहीं रही। उसे तो पूरे दिन बाह्य चेतना नहीं आयी।

सुधन्वाने ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर स्नान-सन्ध्या कर लिया था। कवच पहिन कर, शस्त्र-सज्ज होकर मातासे आशीर्वाद प्राप्त किया। बहिन कुबलाने उनके ललाटपर कुंकुम लगाकर अक्षत लगाया। अन्तमें पत्नीसे बिदा लेने पहुँचे तो वह बालिका हठ करने लगी- स्त्रीकी सफलता स्वामीसे सन्तान पानेमें है और मुझे आपका अंग-स्पर्श भी नहीं मिला है। यह असन्दिग्ध है कि श्रीहरिके सम्मुख जाकर आपको लौटना नहीं है। मेरा ऋतुकाल सफल करके आप पधारें। मैं आपके सफल-सकाम होनेमें सार्थक होऊँगी। पत्नीकी प्रार्थना धर्म-संगत थी। उसे अभी पतिगृह आनेके पश्चात् मिलनेका भी अवसर नहीं मिला

था। इतना विषम समय न होता तो वह बोल भी नहीं पातीं। रात्रिमें युद्ध-चर्चामें उससे मिलना स्मरण नहीं रहा; किंतु अब उसकी विनयको अस्वीकार करना अधर्म था। युद्धसे सचमुच लौटनेकी सम्भावना नहीं थी। जिसका अग्निकी साक्षीमें पाणिग्रहण किया और श्रुति-मन्त्रोंसे जिसे अपने धर्ममें सहचरी बनानेकी शपथ ली, उसकी जीवनके इस विकट अवसरमें पहिली और सम्भवत: अन्तिम प्रार्थना भी अस्वीकार कर देना किसी भी प्रकार उचित नहीं था।

सुधन्वाको कवच तथा शस्त्र उतारने पड़े। वे पत्नीकी प्रार्थना पूर्ण करके, आगमन करके पुन: कवच धारण करके रथपर बैठने ही जा रहे थे कि बन्दी बना लिए गये। उन्हें विलम्ब हो चुका था। महाराज हंसध्वजने पुत्रके विलम्बका कारण सुना तो अत्यधिक क्रुद्ध होकर बोले- कुलांगार। श्रीहरिके स्वागतका अवसर सम्मुख देखकर भी तुझे काम सूझता है। धिक्कार है तुझे। इसका क्या किया जाना चाहिए? महाराजने राजपुरोहितसे पूछा। प्रश्न सुनते ही महामुनि शंख और लिखित दोनों क्रोधमें भरकर बोले- दूसरा कोई होता तो उसे राजाज्ञाके अनुसार दण्ड देते आप और अपना पुत्र है तो हमसे विधान पूछते हैं? मोहवश पुत्रके कारण धर्मकी मर्यादा भंग करनेवाले अधर्मीके राज्यमें हम नहीं रह सकते।

दोनों वहांसे जाने लगे तो रथसे कूदकर राजाने दोनोंके चरण पकड़ कर क्षमा माँगी। अनुनय करके उन्हें रोका। सुधन्वाको खौलते तैलके कढ़ाहमें डाल देनेकी आज्ञा दे दी। राजकुमार सुधन्वा अत्यन्त उदार और सर्वप्रिय थे। उनको यह दण्ड सुनकर सब रो पड़े। कोई भी सैनिक उन्हें उस कढ़ाहमें उठाकर डालने आगे नहीं बढ़ा; किंतु सुधन्वाने स्वयं शिरस्त्राण, कवच तथा आभूषण उतार दिये। शस्त्र दूर रख दिया। वे उस कढ़ाहके समीप पहुँचे।

हाथ जोड़कर रोते हुए सुधन्वा प्रार्थना कर रहे थे- अन्तर्यामी। आप जानते ही हैं कि मैं आज प्राण-त्यागको प्रस्तुत होकर ही आया हूँ; किंतु सब लोग सदा कहेंगे कि सुधन्वा विषयी था। तप्त तैलमें जलकर उसकी अपमृत्यु हुई। उस कलंकसे मेरी रक्षा कर लो मेरे सर्वस्व। आपके श्रीमुखका दर्शन करते हुए अर्जुनके बाणसे उड़ा मेरा सिर आपके पावन पदोंमें पड़े, यह मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दो प्रणतपाल। बहुत बड़ी बाहें हैं आपकी ब्रजेन्द्र-नन्दन। इस अपने शरणागतकी सुन लो। कभी आपने प्रल्हादकी भी रक्षा की है, आज सुधन्वाको भी बचा लो।

सुधन्वा प्रार्थना करते हुए उस कढ़ाहकी परिक्रमा कर रहे थे। उन्होंने तीन परिक्रमा पूरीकी और भक्तवत्सल भगवानकी जय। कहकर कढ़ाहमें कूद पड़े।

भगवानकी जय। भक्त सुधन्वाकी जय। सहसा सम्पूर्ण उपस्थित समुदाय पुकार उठा। सुधन्वा उस कढ़ाहके खौलते तेलमें मजेसे बैठै थे और नेत्र बन्द किये प्रणतपाल गोपाल। गिरिधारी नन्दलाल की ध्वनिमें तन्मय हो रहे थे।

यह क्या जादू है? शफलिखित दोनों नैष्ठिक कर्म-तत्पर धर्मात्मा थें दोनों उस कढ़ाहके पास पहुँचे। उन्होंने पहिली पूछताछ प्रारम्भ की- सुधन्वाने शरीरमें कोई ताप-रोधक औषधि मली है? किसी मन्त्रका जप किया है अग्नि-स्तम्भनके लिए? इसे कोई सिद्धि है?

सबको यह पूछताछ अखर गयी। सेनापति समीप आकर हाथ जोड़कर बोले; किंतु उनका स्वर रूक्ष था- राजकुमारसे आप दोनों भली प्रकार परिचित हैं। वे आपके सम्मुख ही कवच उतारकर कढ़ाहमें कूदे हैं। वे जिस मन्त्रका जप कर रहे हैं, वह तो आप दोनों भी सुन ही रहे हैं।

दोनोंको लगा कि उन्होंने अनावश्यक प्रश्न किया। दूसरा सन्देह किया- कढ़ाहका तैल उष्ण नहीं है।

आप परीक्षा कर लें। सेनापति अलग गये; किंतु दोनोंने परीक्षा करनेका निश्चय किया। नारियल मंगवाया उन्होंने और उसे कढ़ाहके तेलमें डाल दिया। बिना फोड़े नारियल खौलते तेलमें पड़ा तो बड़े शब्दके साथ फूटा और दो टुकड़े उसके हो गये। दोनों टुकड़े उछले। एक शफ्के सिरमें लगा, दूसरा लिखितके सिरपर पड़ाकसे पड़ा।

नारियलके टुकड़ोंके लगनेकी जो चोट लगी, वह तो लगी ही, खौलते तेलमें भीगे नारियलके टुकड़े लगे तो लगभग

मुखका पूरा वह भाग भस्म होकर भुर्ता हो गया। वहाँ माँस लटक आया। भली प्रकार पता लग गया कि तैल कितना उष्ण है। धिक्कार है हमारे धर्मज्ञानको। नारियलका टुकड़ा सिरमें लगते ही महामुनि शंखकी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो गयी- हमने भक्तापराध किया है। इसका प्रायश्चित है अविलम्ब प्राणोत्सर्ग।

शंख वैसे ही कूद पड़े उसी कढ़ाहमें। उन्हें लगा कि जो दण्ड सुधन्वाको उन्होंने दिलवाया, उसे स्वयं स्वीकार करके ही अपराध-मुक्त होंगे। उनके भाई लिखित भी कूदते; किंतु सुधन्वाने शंखको पकड़ लिया था भुजाएँ बढ़ाकर और उस भक्तके स्पर्शसे शंखके लिए भी कढ़ाहका तैल शीतल हो गया था। वे भी उसके समीप स्वस्थ खड़े थे। अब शंखने कहा- वत्स। अब तुम यहाँसे निकलो। तुम्हारे पिताकी आज्ञा पूरी हो गयी और तुम्हारे जैसा पुत्र पाकर वे धन्य हो गये। हम सब तुम्हारे दर्शनसे कृतकृत्य हुए।

सुधन्वाने साग्रह पहिले शंखको निकाला और फिर स्वयं निकले। शंख हाथ पकड़कर सुधन्वाको राजाके समीप ले गये। सब लोग जय-ध्वनि कर रहे थे। महाराज हंसध्वजने पुत्रको हृदयसे लगाकर गदगद स्वरमें कहा- पुत्र। मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हारी भक्ति श्रीकृष्णको यहाँ आनेको अवश्य बाध्य कर देगी। तुम हमारे प्रधान-सेनापति अब ऐसा करो कि पार्थ प्राण-संकटमें पड़कर अपने सखाको पुकारनेके लिए विवश हो जायँ। सुधन्वाने पिताको प्रणाम करके कवच धारण किया। वे रथारूढ़ हुए और शंख ध्वनिकी उन्होंने चम्पकपुरीकी पूरी सेना उनके साथ हो गयी।

अर्जुनको आशा नहीं थी कि उनके सम्मुख कोई अल्पवयस्क बालक युद्ध करने आवेगा। सुधन्वाको देखकर उन्होंने कहा- बच्चे। अभी तो तुम खेलने योग्य हो। युद्ध ही करना है तो किसी वीरको आगे करो। तुम नगरमें चले जाओ। मैं बच्चोंका वध नहीं करता। सुधन्वाने कहा- आप भूल ही गये कि आपके बाल पुत्र बभ्रुवाहनने आपको मार ही दिया था। वीरोंकी आयु नहीं देखी जाती, यह भी आपको स्मरण नहीं।

अर्जुन समझते थे कि इस पर्वतीय सुन्दर युवकको दो-चार बाण लगेंगे तो यह भाग जायगा। वे उपेक्षापूर्वक ही युद्धमें प्रवृत्त हुए; किंतु शीघ्र समझ गये कि पूरी सावधानी यदि उन्होंने नहीं रखी तो यहाँ उलटे उन्हींको पराजित होना पड़ेगा।

चम्पकपुरीके लोग प्राणपर खेलकर लड़ रहे थे। कृतवर्मा, सात्यकि, प्रद्युम्न आदिमेंसे कोई भी अवसर नहीं पा सकता कि वह अर्जुनकी सहायताको आगे बढ़ सके और सचमुच सुधन्वाकी बाण-वृष्टिने गाण्डीव-धन्वाको समटकी स्थितिमें शीघ्र पहुँचा दिया। उनके दिव्यास्त्रोंका भी प्रयोग उनके किसी काम नहीं आ सका।

धर्मयुद्धका एक नियम है। भले प्राण-संकट उपस्थित हो; किंतु प्रतिपक्षीको जिस दिव्यास्त्रका ज्ञान नहीं है, उसका उपयोग नहीं किया जायगा। अर्जुनने पूरे महाभारत युद्धमें पाशुपतास्त्रका उपयोग नहीं किया था। इस समय भी वे ब्रह्मास्त्र अथवा अन्य किसी असाधारण दिव्यास्त्रका उपयोग नहीं कर सकते थे। उन्हें साधारण बाणोंसे ही युद्ध करना था। उनके जैसे प्रसिद्ध धनुर्धरके लिए यही लज्जाकी बात थी कि एक साधारण पर्वतीय युवक साधारण बाणोंसे उनके साथ युद्ध कर रहा था और वे उसे पराजित नहीं कर पा रहे थे।

यह संकट तब बहुत बढ़ गया, जब सुधन्वाने अर्जुनके सारथीको मार दिया। अर्जुनको स्वयं अपने रथकी रश्मि दाँतोंसे दबाकर युद्ध करनेको विवश होना पड़ा। दूसरा सारथी उनकी सेनाके लोग उनतक पहुँचानेमें सफल नहीं हो रहे थे। इससे अर्जुन बहुत विषम स्थितिमें पड़ गये।

सुधन्वाने अपनी बाण-वर्षा और बढ़ाते हुए कहा- पार्थ। अपने नित्य सारथीको छोड़कर आपने अच्छा नहीं किया। मरणधर्मी सारथी आपका कबतक साथ दे सकता था। अब भी अपने उस सारथीका स्मरण करो, अन्यथा अश्व ले जाना तो दूर प्राण-बचाना भी कठिन हो जायगा आज।

अर्जुनके शरीरमें सुधन्वाके पैने बाण बराबर प्रवेश कर रहे थे। रथ-रश्मि दाँतोंमें लेकर धनुष चलाते हुए सव्यसाची

किसी भी प्रकार सुधन्वाके सब बाणोंको काट नहीं पा रहे थे। इस संकटमें उन्हें श्रीकृष्णका स्मरण हुआ। मन-ही-मन उन्होंने पुकारा- वासुदेव। अब तो सचमुच तुम्हीं मुझे बचा सकते हो।

कैसे, कहाँसे श्रीकृष्ण आये, यह प्रश्न व्यर्थ है। उन सर्वव्यापीको कहीं भी प्रकट होनेमें क्या बाधा है। अचानक आकर उन्होंने अर्जुनके रथकी रश्मि उनके मुखसे झपट ली और बोले- धनंजय। तुम अब युद्धकी ओर पूरा ध्यान दो।

सुधन्वाने अर्जुनके रथपर आगे रथ-रश्मि करमें सम्हाले उन मयूरमुकुटी, नवघनसुन्दर, वनमाली श्रीकृष्णको देखा। मस्तक झुकाकर उसने प्रणाम किया और अर्जुनको ललकारा- गाण्डीवधन्वा। अब तो तुम्हारे सर्वसमर्थ सखा आ गये तुम्हारे समीप। अब तुम मेरे जैसे उद्घतके वधकी कोई प्रतिज्ञा कर सकते हो।

बहुत आहत हो गये थे अर्जुन। बड़ा क्रोध आया उन्हें कृतकृत्य सुधन्वाके स्वर जो जीवनको धन्य कर लेनेके पश्चात् मरणको पुनीत करने की त्वरा थी, इसे वे पहिचान नहीं सके। इसे उन्होंने अपने पौरुषको चुनौती मान लिया। अपने त्रोणमेंसे तीन दिव्य बाण निकालकर दिखलाते हुए बोले- यदि मैं इन तीन बाणोंसे ही तेरा सुन्दर मस्तक न काट दूँ तो मेरे पूर्वज उत्तम लोकोंसे पतित हों और मैं भी पुण्यात्माओंका कोई लोक न प्राप्त कर सकूँ।

अर्जुनकी प्रतिज्ञा सुनकर सुधन्वाने एक बार उनको और श्रीकृष्णको भी देखा। उसने भी प्रतिज्ञा करते पुकार कर कहा- सव्यासाची। तुम्हारे रथके ये सारथी ही मेरे भी सर्वस्व हैं। मैं इन्हींके बलपर इनके सम्मुख कह रहा हूँ कि यदि मैं तुम्हारे इन तीनों ही बाणोंको काट न दूँ तो मुझे कभी इनके श्रीचरणोंकी प्राप्ति न हो।

श्रीकृष्णने दोनोंकी प्रतिज्ञा सुनकर अर्जुनसे कहा- विजय। बहुत बुरी बात है कि मेरे समीप रहते तुम मुझसे पूछे बिना ही प्रतिज्ञा कर बैठे हो। इस राज्यमें सबके सब पुरुष एकपत्नी व्रती हैं। हम तुम दोनों इस विषयमें बहुत दुर्बल हैं। तुमको सब ओर सोचकर कोई शपथ करनी चाहिए। पहिले भी तुम शपथ करके बहुत बड़ा संकट बुला चुके हो।

अब शपथ तो की जा चुकी थी। अर्जुनने सखाके उपालम्भका इतना ही उत्तर दिया- आप सर्वसमर्थ समीप हो तो मुझे चिन्ता क्या है। शपथ-पूर्तिका भार श्रीकृष्णपर है, यह सूचित करके अर्जुनने उन तीन बाणोंमेंसे एक धनुषपर चढ़ाया। श्रीकृष्णने स्पष्ट स्वरमें संकल्प किया- मैंने गोवर्धन धारण करके गायों, गोपोंकी रक्षाका जो पुण्य किया था- वह तुम्हारे इस बाणको प्रदान किया। बाण धनुषसे छूटते ही अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा। सुधन्वा पहिलेसे धनुषपर बाण चढ़ाये प्रस्तुत था। उसने कहा- जय गोविन्द। और बाण छोड़ दिया।

भगवानका पुण्य भी उनके नामसे प्रबल तो नहीं हो सकता। अर्जुनका वह बाण जो सुर-असुर सबके लिए असह्य था, सुधन्वाके बाणसे कटकर गिर पड़ा। पृथ्वी काँपने लगी और दिशाओंमें आतंक छा गया। स्वयं पार्थके मस्तकपर पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें झलकने लगीं

अर्जुनको अब लगा कि प्रतिज्ञा करके उन्होंने सचमुच भूल की है; किंतु सुधन्वाकी ललकार सुनाई पड़ी- गुड़ाकेश। दूसरा बाण भी सन्धान कर देखो। मैं श्रीकृष्णका तुच्छ सेवक उसे भी काट दूँगा। अर्जुनने दूसरा बाण धनुषपर चढ़ाया तो श्रीहरिने संकल्प किया- मैं अपने रामावतारका समस्त पुण्यपार्थके इस बाणको देता हूँ।

राम। केवल एक शब्द निकला सुधन्वाके मुखसे और उसके बाणने इस बार भी अर्जुनके बाणको काट फेंका। पृथ्वी और आकाशमें सब ओर अग्निकी लपटें उठने लगीं। देवताओंके लोकतक अस्त-व्यस्त हो उठे। सब अलक्ष्य सिद्ध हाहाकार कर उठे। अर्जुनका पूरा शरीर पसीनेसे भीग गया। वे लड़खड़ा उठे। किसी प्रकार रथका डण्डा पकड़कर अपनेको उन्होंने सम्हाला। ओह। अब केवल एक बाण बचा और सुधन्वा हँसता स्वस्थ सम्मुख खड़ा उस शरको भी उठानेको ललकार रहा है। बहुत व्याकुल होकर बाण उठाते हुए अर्जुनने श्रीकृष्णकी ओर देखा। उनके नेत्रोंमें कातर प्रार्थना प्रत्यक्ष थी। श्रीकृष्णने एक बार पलकें बन्द कीं। उन्होंने बाणके पुच्छ भागमें प्रजापति ब्रह्माको, मध्यमें कालको स्थापित किया और

बाणकी नोकपर स्वयं बैठे।

धनंजय तुम धन्य हो। सुधन्वाने पुकारा। भक्त भगवानका मर्मज्ञ हो जाता है। उस भक्तको जो कुछ हो रहा था, प्रत्यक्ष दीख रहा था। उसने कहा- तुम्हारे बाणको ये सर्वेश्वरेश्वर अपना पुण्य ही नहीं देते, स्वयं उसपर विराजमान होते हैं। मैं सनाथ हुआ कि तुम्हारे शराग्रपर बैठकर ये स्वयं आ रहे हैं मेरा मस्तक लेने; किंतु अर्जुन सावधान। सुधन्वा इनके श्रीचरणोंकी कृपासे तुम्हारे इस बाणको भी अवश्य काट देगा।

करुणावरुणालय श्रीकृष्ण की जय। अर्जुनके बाण छोड़ते ही सुधन्वा के कण्ठसे गूँजा और उसका बाण भी छूट गया। बेचारा बाणके मध्य बैठा काल प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ। उसमें भक्तके भगवन्नाम घोषको सहन करनेकी शक्ति अथवा साहस कभी नहीं आवेगा। वह जानता था कि वह रुके तो सुधन्वाका बाण उसे अवश्य काट फेंकेगा। काल तो भाग गया; किंतु सुधन्वाके बाणने अर्जुनके बाणको वहीं मध्यसे काट दिया।

अर्जुनके हाथसे गाण्डीव छूटकर गिर पड़ा और स्वयं वे रथमें मूर्छित होकर गिरे, जैसे ही उनका यह तीसरा बाण कटकर गिरा। सुधन्वाकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी। भले ब्रह्मलोकतक प्रलयका हाहाकार गूँज उठा और पातालतक प्रकम्पित हो गया। दिक्पालोंके लिए भी अपने स्थानोंपर बने रहना बहुत कठिन हो गया। पृथ्वीमें कितना विध्वंस हुआ उस प्रचण्ड भूकम्पसे, कोई गणना नहीं। सुधन्वाकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई थी। अब अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी होनी थी। उनके कटकर गिरे बाणका अग्रभाग ऊपरको उछला और सुधन्वाके कण्ठमें लगा। सुधन्वाका सिर कटकर सीधे अर्जुनके रथमें बैठे श्रीकृष्णके चरणोंपर ही गिरा। रथ-रश्मि छोड़कर श्रीकृष्णने दोनों हाथोंसे वह मस्तक उठा लिया। उसी समय उस सिरसे एक ज्योति निकली और वह श्रीकृष्णके मुखमें प्रवेश कर गयी।

अर्जुनको कुछ क्षण लगे सचेत होनेमें। श्रीकृष्ण आ गये। इस समाचारको सुनते ही चम्पकपुरी नरेश महाराज हंसध्वजने अपनी सेनाको युद्ध रोकनेका आदेश दे दिया था। उनकी ओर श्वेत झण्डा उड़ा दिया गया था। वे अपने आराध्यसे युद्ध नहीं करना चाहते थे। इन श्रीद्वारिकाधीशके दर्शन करके इनकी अर्चा करनेको ही वे उत्सुक थे। श्रीकृष्णके आते ही सुधन्वाने अर्जुनको उत्तेजित न कर दिया होता तो यह परमगति पानेका अवसर उसे मिलना नहीं था।

भगवान वासुदेवकी जय। भक्तवत्सल गोविन्दकी जय। पुकारते महाराज हंसध्वज सेना सहित शस्त्र त्यागकर पैदल आ रहे थे। श्रीकृष्ण रथसे उतरकर सुधन्वाका सिर दोनों हाथोंमें लिए सिर झुकाये अपराधीकी भाँति अपने विशाल दृगोंसे अश्रु-विमोचन करते खड़े थे। अर्जुन तथा उनके साथके सब लोग आ गये थे और रथोंका त्याग करके शान्त खड़े हो गये थे। किसीकी भी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या होनेवाला है।

मेरे स्वामी। यह तो धन्य-धन्य हो गया। महाराज हंसध्वजने समीप आकर कहा- आपके सम्मुख शरीर छोड़ा इसने और आपके श्रीकरोंमें इसका सिर है, ऐसी सद्गति किसे मिलती है। इसने तो मेरे पूरे कुलको पवित्र कर दिया। अब आप समोच त्यागकर इस मृत्तिका मुण्डको फेंक दें और नगरमें पधारें। हम सबको आपके चरणार्चनका सौभाग्य प्राप्त होना चाहिए।

पुत्रका कटा सिर जैसे कुछ अर्थ ही नहीं रखता हो, इस उत्साहसे महाराज हंसध्वज कह रहे थे - मैं अर्जुनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारी धृष्टता क्षमा करें। हम सम्राट युधिष्ठिरके अनुचर हैं। सेनासहित नगरमें चलकर सम्राटके प्रतिनिधि हमारा आतिथ्य स्वीकार करें। अश्व ही नहीं, यह राज्य और इसकी सब सम्पत्ति उन्हींकी है। हम केवल उनकी सेवा करके सनाथ होना चाहते हैं। अर्जुनके मुखसे एक शब्द नहीं निकला। सुधन्वाका शव यहाँ पड़ा रहे और वे आतिथ्य स्वीकार करने नगरमें जायँ, यह कैसे उचित हो सकता था। महाराज हंसध्वजने तो पुत्रके शरीरकी ओर देखा भी नहीं।

महाराज। हम सब आपका आतिथ्य स्वीकार करनेको उत्सुक हैं। श्रीकृष्णने ही कहा- किन्तु यह मेरे अत्यन्त प्रियजनका मस्तक है। मैं अनुरोध करता हूँ कि आप पहिले इसकी उत्तर क्रिया करनेमें मेरी सहायता करें।

भक्त-वत्सल। इसके चार भाई हैं। हंसध्वजने कहा- वे इसकी उत्तर क्रिया कर देंगे। आप संकोचका त्याग करके इस मस्तकको विसर्जित करें और राजसदन पधारें।

इसे मैं अपने हाथों अग्निदेवको अर्पित किये बिना दूसरा कुछ कर नहीं सकूँगा महाराज। श्रीकृष्णका स्वर भरा हुआ था- यह मेरा भी भाई ही है। इसकी उत्तर क्रियाकी आप मुझे दया करके अनुमति दें। अर्जुनको इतनी ग्लानि, इतनी लज्जा जीवनमें कभी नहीं हुई थी। महाभारतके युद्धमें किसी भी प्रबलशत्रुका संहार होनेपर श्रीकृष्णने उन्हें हृदयसे लगाकर उनकी प्रशंसा की थी; किंतु आज सुधन्वाका सिर करोंमें लेकर वे कमल-लोचन रो रहे थे। उनके सम्मुख जानेका साहस नहीं था अर्जुनमें। महाराज हंसध्वज जैसा ममता रहित परम भागवत भी पहिली बार उन्होंने देखा था।

हंसध्वजने पुत्रोंको आदेश दे दिया। सुधन्वाका शरीर सरित तटपर पहुँचाया गया। कवच, आभूषण आदि उतारकर उसे स्नान कराया गया। श्रीकृष्ण उसका मस्तक अपने करोंमें ही उठाये पैदल चलते आये। वहां तक तो अर्जुन तथा उनके सब सैनिकोंको भी अनुगमन ही करना था। चितामें शरीरके साथ सिरको सावधानीसे सटाकर श्रीकृष्णने रखा।

विश्वमें सम्पूर्ण श्रद्धा और सैनिक सम्मानके साथ अनेक शूरोंकी अन्तिम क्रिया सम्पन्न हुई है; किंतु सुधन्वाकी समता न हुई और न हो सकती। जब वह चिता बुझ गई, उसे सबने जलांजलि दी। स्नान करके और तब सब वहाँसे राजसदन एक साथ आये। श्रीकृष्णके साथ अर्जुनकी पूरी सेनाका वहाँ बहुत आदरपूर्वक सत्कार हुआ। वहाँसे श्रीकृष्ण हस्तिनापुर लौटे और अर्जुन अश्वके संग गये। अब कोई अश्वको पकड़नेवाला नहीं था।

अर्जुन अश्वके साथ आये तो उनका स्वागत करने गरुड़ध्वज रथ ही सबसे आगे बढ़ा। वैसे तो अश्व साक्षात् यज्ञमूर्ति होता है। आचार्यों, ऋषियों तथा आगत सभी राजाओंके साथ आगे जाकर युधिष्ठिरने अश्वका स्वागत किया।

४) श्रीकृष्ण अर्जुन युद्ध- अर्जुनके परम-मित्र गन्धर्वराज चित्रसेन स्त्रियोंके साथ गङ्गाजलमें जल-विहार कर रहे थे। प्रमाद पुण्यात्माओंके लिए भी प्रतिषिद्ध है। वह उनके भी पतनका कारण हो जाता है। यह ठीक है कि गन्धर्व देवयोनिके लोग हैं। वे मनुष्य नहीं हैं कि उन्हें पाप-पुण्यका भागी होना पड़े। वे तो भोगयोनिमें हैं और अपने पुण्योंका ही भोग उन्हें भोगना है; किंतु फिर भी मनुष्य लोकमें आकर उन्हें यहाँकी मर्यादाका मान रखना चाहिए। परम-पावन सुरसरिमें, हिमालयके पवित्र क्षेत्रमें, रात्रिके समय स्त्रियोंके साथ जल विहार उचित नहीं था। इस अनुचित कर्मने ही चित्रसेनके चित्तमें प्रमाद उत्पन्न किया।

चित्रसेन रात्रिमें जल-विहार करके ब्रह्म-मुहूर्तमें स्त्रियोंके साथ स्वर्ग जाने लगे थे। आकाशमें पहुँचकर बिना नीचेका ध्यान रखे ही उन्होंने पानकी पीक थूक दी। उस समय अरुणोदय हो रहा था। महर्षि गालव गङ्गाजीमें स्नान करके सन्ध्या कर चुके थे और अञ्जलिमें जल लेकर अर्घ्य देनेको उद्यत थे। वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि सूर्य-बिम्ब क्षितिजसे उठता दीखते ही अर्घ्य अर्पित करें। चित्रसेनकी पीक जाकर महर्षिकी अञ्जलिमें गिरी। महर्षिने चौंककर ऊपर देखा और क्रोधसे उनके नेत्र लाल हो उठे। महर्षि गालव उस समय भी गन्धर्वराजको शाप दे सकते थे; किंतु शाप देनेसे अपने तपका नाश होता है। उन्होंने अञ्जलिका जल फेंककर फिर डुबकी लगायी। पवित्र होकर सूर्यको अर्घ्य दिया और वहाँसे आकाश मार्गसे सीधे द्वारिका पहुँचे। गालवने क्रोधमें भरे स्वरमें उपालम्भ देना प्रारम्भ किया- आपने धर्मकी रक्षा और साधुओंके उद्धारके लिए अवतार लिया है। आपके धरापर रहते ही हम ऋषियोंकी अर्घ्यको उठी अञ्जलिमें थूक दिया जाता है तो आगे कलियुग आनेपर पता नहीं क्या होगा।

श्रीकृष्ण की भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ललाटपर आकुञ्चन आया। नेत्र अरुण हो उठे- किसने यह साहस किया है? वह कोई भी हो, कल सूर्यास्तसे पहिले मैं उसे अवश्य मार दूँगा। प्रतिज्ञा करके, बहुत विनयपूर्वक श्रीद्वारिकानाथने महर्षि गालवको

आसन दिया। उनकी पूजा की। महर्षिको उन्होंने अपने सदनमें ही कलतक रुकनेका आग्रह किया।

देवर्षि नारद आ पहुँचे इतनेमें। उन्होंने भी आते ही पूछा- आज आपके नित्य प्रसन्न श्रीमुखपर रोषकी रेखाएँ क्यों देख रहा हूँ? भगवान जनार्दनने देवर्षिको सुना दिया। अब गन्धर्वोंमें भी आसुर भाव आ गया है। वैसे वे गन्धर्वराज चित्रसेनको मारनेकी प्रतिज्ञा करके प्रसन्न नहीं थे।

देवर्षि नारदने कह दिया; बहुत अनुचित बात है। किन्तु वे भगवानके साक्षात् मन हैं। निरपराध गन्धर्वराजको तनिकसे प्रमादके कारण प्राणदण्ड मिले, यह उन्हें सहन नहीं हुआ। चित्रसेन भगवद्भक्त हैं। श्रीकृष्णके प्रिय सखा अर्जुनके मित्र हैं और देवर्षिके साथ अनेक बार वीणा लेकर श्रीहरिका गुणगान करते तन्मय होते रहे हैं। देवर्षि वैसे भी दयामय हैं और वे भक्ताचार्य ही भक्तोंपर आई विपत्तिको बचानेको सचिन्त नहीं होंगे तो होगा कौन।

नारदजीने कहा- आपने प्रतिज्ञा तो कर ही ली है। मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस गन्धर्वकी रक्षा न कर सकूँ तो आपका भक्त नहीं। फिर इस वीणाका स्पर्श भी नहीं करूँगा।

आज मुझे कुछ शीघ्रता है। नारदजीने श्रीकृष्णसे विदा ली। वे लीलामय इनको जाते देखते रहे और जब देवर्षि आकाशमें अदृश्य हो गये तब श्रीकृष्णने अपने आप मानो उन्हें वरदान दिया हो, इस प्रकार कहा- एवमस्तु।

मनोवेग देवर्षिको गन्धर्वलोक पहुँचनेमें कितनी देर लगनी थी। चित्रसेन उन्हें देखते ही उठे तो देवर्षिने कहा- पूजा-प्रणाम पीछे। पहिले अपने सिरपर उतरनेको उद्यत कालदण्डका उपाय करो।

घबड़ाकर चित्रसेनने इधर-उधर और ऊपर देखा। स्मरण आया कि यमराजका दण्ड तो अदृश्य रहता है। अत: बोला- प्रभो। संयमिनीके स्वामीका तो मैंने कोई अपराध नहीं किया। वे मुझपर क्यों क्रुध हो गये हैं?

देवर्षिने कहा- यमराज नहीं रुष्ट हैं। रुष्ट हैं महर्षि गालव तुम्हारे प्रमादसे और उनके कारण यमराजकी स्वसाके स्वामी रुष्ट हो गये हैं। श्रीकृष्णने कल सूर्यास्तसे पूर्व तुम्हें मार देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। गन्धर्वराज सिर पकड़कर बैठ गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। शरीर काँपने लगा। मुख श्रीहीन पीला पड़ गया।

गन्धर्वराज चित्रसेनकी यह दशा देखकर- देवर्षिका हृदय अत्यन्त दु:खी हो उठा। वे दयालु बोले- तुम तो अभीसे निष्प्राण हुए जा रहे हो। कलके सूर्यास्तको बहुत समय है। अपनी रक्षाका प्रयत्न करो।

रोते-रोते चित्रसेनने देवर्षिके चरण पकड़ लिये और कहा- मैं क्या प्रयत्न करूँ? जिन चक्रपाणिकी भ्रूभङ्गसे महाकाल भी काँपता है, उनके अपराधीको भला त्रिभुवनमें शरण देनेका साहस कौन करेगा। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है तो चित्रसेनको अब बचानेवाला कौन है। अब तो आप कृपा करके कुछ ऐसा उपदेश करो कि मेरी मृत्यु तो सुधर जाय।

देवर्षिने कहा- तुम इतने हताश मत हो। तुम्हें शरण प्राप्त हो सकती है- समर्थकी शरण। तुम यदि मेरी बात ठीक प्रकारसे सुनो और उसका पूरा पालन करो तो तुम्हारी प्राण-रक्षामें कोई सन्देह नहीं है।

आप अवश्य ऐसा कर सकते हैं दयामय। चित्रसेनने अधिक दृढ़तासे देवर्षिके चरण पकड़े- भगवानकी प्रतिज्ञाको भी असफल करनेमें केवल आप जैसे उनके भक्त ही समर्थ है। मैं आपकी शरण हूँ दयामय। मेरी रक्षा कीजिये।

देवर्षि तो पहिलेसे ही रक्षा करनेको कटिबद्ध आये थे। बोले- अच्छी बात। मैं जो कहता हूँ, उसका पालन करो।

गन्धर्वने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते कहा- आज्ञा करें प्रभु। मैं आपके आदेशका अक्षरश: अवश्य पालन करूँगा।

देवर्षि बोले- आज अर्धरात्रिमें इन्द्रप्रस्थके पास यमुना-तटपर अकेले चले जाओ। वहीं रुदन-क्रन्दन करते रहो। एक स्त्री आवेगी वहाँ तुम्हारे समीप; किंतु वह जब तुम्हारी रक्षाका वचन दे दे, तभी अपने रुदनका कारण बतलाना।

नारदजीने चित्रसेनको बोलनेका भी फिर समय नहीं दिया। वे वहाँसे सीधे इन्द्रप्रस्थके राजसदनमें अर्जुनके अन्त:पुरमें उतरे और पुकारा भद्रे। सुभद्रा हड़बड़ाकर उठीं और उलाहना भरे स्वरमें बोलीं- ओह, देवर्षि। पर आप मुझे भाभीके नामसे

क्यों पुकारते हैं? देवर्षि नारदकी सुभद्राजी बचपनसे बहुत वात्सल्य-भाजना हैं। इनसे बालिका थीं तबसे रूठनेका स्वत्व प्राप्त हैं उन्हें। करोंमें अञ्चल लेकर भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया।

एक ही श्रीकृष्णसे तुम और तुम्हारी भाभी सम्बन्धित हो आसनपर बैठते-बैठते नारदजीने हँसकर कहा - अत: मैं भद्रा और सुभद्राके नामोंका भेद भूल जाता हूँ। वैसे भी इस समय तुम्हारे भैयाके ही स्मरणमें चित्त लगा था। सुभद्राजीने उलाहना दिया- आप तो भैयाके यहाँ ही चक्कर काटते रहते हैं। अपनी इस बच्चीको तो पता नहीं कैसे आज स्मरण किया है।

देवर्षि बोले- तुम्हें एक बहुत पुण्यपर्व बतलाने आया हूँ। पूजा रहने दो, पहिले सुन लो। अन्यथा मैं भूल जाऊँगा। मुझे भागनेकी शीघ्रता सदा रहती है, यह तुम जानती ही हो। वह आज ही आधी रातको है। कोई नारी आज आधी रातको यमुना स्नान करके किसी आर्तप्राणीको अभयदान करे तो उसके अतिशय प्रियकी आयु अक्षय हो जायगी; किन्तु उसके साथ कोई पुरुष नहीं होना चाहिए। योग ऐसे ही हैं और ऐसे योग अत्यन्त दुर्लभ होते हैं।

देवर्षि इतना कहकर विदा हो गये। उनका काम हो गया। वे जानते हैं कि सुभद्राके अतिशय प्रिय हैं उसके भाई श्रीकृष्ण। उनका मंगल होता हो तो यह पुण्यप्राणा असम्भवको भी सम्भव बना छोड़ेगी।

सुभद्राने कहा, मैं अकेली कैसे जाऊँगी? देवर्षि जाते-जाते कह गये- मैं साथ चलूँगा। मैं तो मनुष्य नहीं हूँ। अत: मेरी उपस्थिति किसी मानव-पुरुषकी उपस्थिति नहीं होती।

देवर्षि जैसे समर्थ साथ हों तो किसीको, कहीं भी, कभी भी जानेमें भला क्या हिचक हो सकती है। वह दिन सुभद्राने सायमालकी प्रतीक्षामें बिताया और रात्रिका पूर्वार्ध अर्धरात्रिकी प्रतीक्षामें। देवर्षि समयपर आ गये। सुभद्राने केवल एक दासीको साथ लिया और यमुना-स्नानको चल पड़ी।

गन्धर्वराज चित्रसेनको कहाँ चैन; जिसे मृत्युदण्ड सुनाया जा चुका हो, उसकी दशा क्या होगी। उन्हें तो अपने प्राण बचनेका कोई भरोसा नहीं था। देवर्षिका निर्दिष्ट उपाय भी उन्हें तिनकेका सहारा ही दीखता था। श्रीकृष्णके कोपसे कोई स्त्री बचा लेगी, यह बात उन्हें किञ्चित भी भरोसा नहीं देती थी; किंतु दूसरा तो कोई उपाय नहीं था। वे अर्धरात्रिसे पहिले ही आ गये इन्द्रप्रस्थ और यमुना-तटपर बैठ गये। फूट-फूटकर रोनेके अतिरिक्त और अब उन्हें सूझना क्या था।

सुभद्राकी भी एक समस्या थी। वे उधेड़बुनमें थीं कि अर्धरात्रिमें यमुना तटपर वे आर्तप्राणी कहाँ पावेंगी कि उसे अभयदान देंगी। उन्होंने सोचा था कि सर्वज्ञ देवर्षि साथ हैं ही। स्नान करके इन्हींसे पूछेंगी कि कहाँ कौन आर्त है और इनके द्वारा ही उसे अभयदानका आश्वासन दे देंगी। यमुना तटपर पहुँचते ही जब किसीका रुदन सुनाई पड़ा तो सुभद्राको प्रसन्नता ही हुई। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक स्नान किया और वस्त्र बदले कि वह दु:खी कहीं चला न जाय।

कौन हो तुम? क्यों रो रहे हो? क्या दु:ख है तुम्हें? उन महिमामयीने स्नानसे निवृत्त होकर रोते-बिलखते गन्धर्वको शीघ्र ढूँढ लिया। उसके सम्मुख खड़ी होकर वे साम्राज्ञीके गौरवके अनुरूप बोलीं।

गन्धर्वराज अत्यधिक व्याकुल होकर फूट पड़े और बोले, मैं सृष्टिका सबसे अभागा प्राणी। क्या लाभ अपनी विपत्ति किसीको सुनानेसे, जब कोई उसे दूर करनेवाला ही नहीं है।

सुभद्राने साग्रह पूछा- कोई दूर करनेवाला नहीं क्यों है। क्या है तुम्हारी विपत्ति? चित्रसेन बोला, नहीं देवि गन्धर्वका रुदन बढ़ता जा रहा था। मुझ भयातुरका भय कोई दूर नहीं कर सकता। सुभद्रा बोली, मैं दूर कर दूँगी तुम्हारा भय। गाण्डीवधन्वाकी अर्धाङ्गिनी और श्रीकृष्णकी स्वसा सुभद्रा तुम्हें अभय देती है। ऐसा क्या भय है तुम्हें।

चित्रसेन बोला, देवि। सचमुच आप मुझे अभय देनेका वचन देती हैं? अब चित्रसेनको भी भरोसा हो गया।

सुभद्राने बोला, मैंने वचन दिया है। दो बार मुझे कहनेकी आवश्यकता नहीं होती। तुम अपनी विपत्ति बतलाओ।

चित्रसेन बोला, आपके उन चक्रपाणि अग्रजने ही मुझे कल सूर्यास्तसे पहिले मार देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। जब

गन्धर्वराजने यह कहा तो किसीको उस अन्धकारमें नहीं दीखा कि सुभद्राका मुख भी पीला पड़ गया। उनके नेत्र भी भर आये। चित्रसेनसे पूरी बात सुनकर अपनेको स्थिर करके वे बोलीं- तुमको मैंने वचन दिया है। तुम निर्भय जा सकते हो।

चित्रसेन उनकी पद-रज मस्तकपर लगाकर चला गया। सुभद्रा पतिसे पूछकर ही आई थीं। लौटकर अर्जुनके समीप पहुँची तो उनका अश्रुसिक्त मुख देखकर धनञ्जयने कारण पूछा। रोते-रोते सुभद्राने सब सुना दिया। सुनकर गाण्डीवधन्वा अत्यन्त गम्भीर हो गये। उन्होंने कह दिया- तुमने प्रतिज्ञा कर ली है तो वह मेरी ही प्रतिज्ञा है। मैं चित्रसेनकी कल प्राण देकर भी रक्षा करूँगा।

देवर्षि नारद कृष्णके पास गये और बोले- गन्धर्वराज चित्रसेनको सुभद्राने अभय दे दिया है। अर्जुनने उसकी रक्षाके प्रतिज्ञा करके उसे अपने यहाँ बुलाकर आश्रय दे दिया है। श्रीकृष्ण जानते ही थे कि यह सब किसकी योजना है; किन्तु देवर्षिसे कहा- आप मेरी ओरसे जाकर युधिष्ठिरसे कहें कि अर्जुनको वे इस बचपनेसे रोकें। मैंने एक ऋषिके सम्मुख प्रतिज्ञा की है। इस अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिए मुझे कोई बहुत ही अप्रिय कार्य करना पड़ा तो वह भी मैं करूँगा।

देवर्षि हस्तिनापुर पहुँचे। श्रीकृष्णका सन्देश सुनकर युधिष्ठिर तो चकित रह गये। अर्जुनको उन्होंने बुलवा लिया। युधिष्ठिरने, दूसरे भाइयोंने तथा धृतराष्ट्र-गान्धारीने भी अर्जुनको समझाया। केवल विदुरजी मौन बने रहे। उन्होंने कुछ भी कहना उचित नहीं माना। अर्जुनका उत्तर था- श्रीकृष्ण ही मेरे बल हैं। वे ही मेरी आत्मा हैं। वे मेरे सर्वस्व हैं। मुझे केवल उन्हींका आश्रय है। लेकिन मार देनेकी अपेक्षा रक्षा करनेका प्रण महान है। मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोडूँगा। वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ सकते हैं। जिस अभयदानसे भैयाकी आयु अक्षय होती है, वह अभयदान भंग करनेको सुभद्रा भला कैसे मान लें और वे न मानें तो अर्जुन मान ही कैसे सकते हैं। कोई भी अर्जुनको भला श्रीकृष्णकी महिमा क्या समझावेगा। यह दो अत्यन्त प्रिय सखाओंका विवाद-दूसरोंको तो इसमें तटस्थ ही रहना था।

देवर्षि नारदने जाकर द्वारिका यह समाचार भी दे दिया कि अर्जुन किसी प्रकार माननेवाले नहीं है। वे कहते हैं- गन्धर्वराजको जो दण्ड देना है, वह श्रीकृष्ण मुझे दे दें। मैं सहर्ष उसे स्वीकार कर लूँगा।

इस विवादमें श्रीकृष्ण किसीको भी द्वारिकासे साथ नहीं ले सकते थे। अर्जुनके पक्षमें भी कोई श्रीकृष्णके विरुद्ध खड़ा होनेवाला नहीं था। द्वारिकासे दारुकने रथ सजाया तो अकेले श्रीकृष्ण उसपर बैठे। इन्द्रप्रस्थसे भी अकेले अर्जुन निकले अपने रथपर। सभी पाण्डव और दूसरे लोग तो इस युद्धके दृष्टा थे ही, स्वयं सुभद्रा गन्धर्वराज चित्रसेनको लेकर वहाँ ऐसे आ गयीं जैसे माता अपने पुत्रकी रक्षा करने आई हो। देवर्षि नारद तथा महर्षि गालव भी आये थे। गगनमें सभी दिव्य महर्षिगण इस युद्धको देखने आ गये।

शारङ्गधन्वा और गाण्डीवधन्वाका, नारायणका नरके साथ यह अद्भुत युद्ध। साधारण शर और शस्त्रोंका भला यहाँ क्या काम। पाञ्चजन्य और देवदत्त शंखोंकी ध्वनि समाप्त हुई तो अर्जुनने पाँच बाण मारकर श्रीकृष्णके चरणोंमें अभिवादन किया। सखाको ऐसा ही उत्तर देकर श्रीकृष्ण दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे। ऐसे दिव्यास्त्र जिनका लोगोंने नाम तक कठिनतासे सुने थे; किन्तु अव्यग्र अर्जुन अपने दिव्यास्त्रोंसे उन्हें शान्त करते चले गये।

जैसे अलौकिक अमित महिमावाले दिव्यास्त्रोंका प्रदर्शन चल रहा हो। महाभारतके पूरे युद्धमें भी दोनों पक्षोंने मिलकर इतने दिव्यास्त्रोंका उपयोग नहीं किया था। युद्ध कुछ ही देरमें अपने चरम बिन्दुपर जा पहुँचा। जब श्रीकृष्णने झल्लाकर चक्र उठा लिया। अर्जुनने केवल मस्तक झुकाया और उनके धनुषपर भगवान पुरारिका अमोघास्त्र पाशुपत पहुँच गया।

सहसा महर्षियोंका समूह गगनके धरापर दोनों रथोंके मध्य उतर आया। भगवान शमर प्रगट हो गये। उन्होंने दोनों अमोघास्त्रोंको हाथ उठाकर शान्त कर दिया। ऋषियोंने पुकारा- पार्थ। पाशुपत धनुषसे उतार लो। अभी प्रलयका समय नहीं आया है। यह त्रिभुवनको भस्म कर देगा।

अर्जुनने मस्तक झुकाकर कहा- भगवन्। मैं प्रहार नहीं कर रहा हूँ। केवल प्रयुक्त होनेवाले अमोघास्त्रका प्रतिकार कर रहा हूँ। बात सच थी। आप कोई भी हों; किन्तु किसीको आप अपनी प्राण-रक्षाका प्रयत्न करनेसे रोक कैसे सकते हैं?

महर्षियोंने श्रीकृष्णकी स्तुति की। भगवान महेश्वरने कहा- यह क्या लीला है लीलामय? आप तो सदासे भक्त-व्रत-रक्षक रहे हैं। आपको कबसे अपनी प्रतिज्ञा प्रिय हो गयी? भीष्मके लिए भी तो आपने अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग की थी। अर्जुनकी प्रतिज्ञाकी रक्षा कीजिये। यह आपका चक्र अर्जुनपर चल सकेगा? चक्र चिन्मय है और वह भक्त भयहारी है, यह मर्यादा मिटा देनेसे प्रतिज्ञा छोड़ देना अधिक उत्तम है भक्तवत्सल।

भगवान शमर इतना कहकर अदृश्य हो गये। चक्रमें तो आरम्भसे ही ज्वाला नहीं उठी थी। वह केवल श्रीकृष्णकी तर्जनीमें घूम रहा था। इसी समय सुभद्रा आगे आ गयीं- भैया। चित्रसेनको मैंने शरण दी है। बहिनने जिसे शरण दी है, उसे तुम अपनाओगे नहीं? श्रीकृष्ण रथसे कूद पड़े और अर्जुन भी कूदे धनुष रखकर। अपने पदोंमें प्रणत होते पार्थको उन पुरुषोत्तमने भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया। सखासे पृथक हुए तो सुभद्राके संकेतपर चित्रसेन आकर चरणोंपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णका अभय कर उसके मस्तकपर पहुँचा- तुम्हारा मङ्गल हो।

मेरे अपमानका कोई महत्त्व नहीं? महर्षि गालव यह सब देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कमण्डलुसे जल लिया अपने हाथमें शाप देनेके लिए और बोले- मैं तुम सबको देख लूँगा।

कोई भी महर्षिसे कुछ कहे, इससे पहिले ही सुभद्राके नेत्रोंमें अद्भुत ज्योति जागी। वे सरोष बोलीं- ब्राह्मणोंका भूषण क्षमा है। तपस्वीको अहमार शोभा नहीं देता। आप निश्चय ही महान तप: तेज रखते हैं; किंतु मैं यदि पतिव्रता हूँ और सच्चे मनसे श्रीकृष्णकी अनुगता हूँ तो यह शापका जल आपके हाथसे पृथ्वीपर कभी नहीं गिरेगा। यह आपके इस हाथपर ही सूख जायगा। अत्यन्त तप्त तवेपर पड़ी पानीकी बूँदके समान गालवके हाथका जल सूख गया और उनका हाथ मानों बहुत अधिक जल गया हो, इस प्रकार काला पड़ गया। गालवने अपने हाथकी ओर देखा और फिर सुभद्राकी ओर दृष्टि की तो काँपने लगे। ओह। उन्होंने यह किसका अपराध कर लिया है? उनके सम्मुख ये महाशक्ति अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विधात्री सरोष खड़ी है?

अम्ब क्षमा। गालव सुभद्राके चरणोंपर गिर पड़े। समोचपूर्वक सुभद्राने उनसे क्षमा माँगी। सब लोग वहाँसे इन्द्रप्रस्थ पहुँचे और श्रीकृष्ण कुछ दिन रुककर, अर्जुन तथा युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर बहिन सुभद्राके साथ द्वारिका जानेको विदा हुए। युधिष्ठिरने तथा अन्य भाइयोंने बार-बार अर्जुनकी धृष्टताके लिए क्षमा माँगी; किन्तु श्रीकृष्णने तो अर्जुनकी प्रशंसा ही की।

५) कृष्णका युधिष्ठिरको उपदेश

अश्वमेघ यज्ञके पूर्ण होनेपर महाराज युधिष्ठिरने धर्मके विषय में कृष्णसे पूछा, वैष्णव धर्मके अनुष्ठान से किस फलकी प्राप्ति होती है? ब्रह्महत्यारा, गो-घाती, माताकी हत्या करनेवाला, गुरुपत्नीकी शय्यापर सोनेवाला, भोजन परोसनेमें पंक्ति भेद करनेवाला, कृतघ्न, शराबी, वेद-विक्रयी, मित्रसे विश्वासघात करनेवाला, किसी वीरको कपटपूर्वक मारनेवाला, गर्भहत्यारा, तप और दानका फल बेचनेवाला, अपने शरीरका विक्रय करनेवाला, मूर्ख, पाप-कर्मसे जीविका चलानेवाला, पापी, शठ, कपटी, दम्भी, दूसरोंपर दोषारोपण करनेवाला, पारा आदि रसोंको बेचनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, शूद्रकी सेवामें रहनेवाला, चोर और पुरोहिती करनेवाला ब्राह्मण, दूसरोंकी धरोहर हड़पनेवाला, स्त्रीकी हत्या करनेवाला, परस्त्री-लम्पट तथा और भी जितने पापी हैं, वे सब जिन धर्मोंका श्रवण करके अपने पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं, उनके बारेमें बताइये। मैं सच्चे भक्तिभावसे आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ। मैं उनके सम्पूर्ण रहस्योंको यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ। मैंने मनु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, पराशर, मैत्रेय, उमा, महेश्वर, ब्रह्मा, कार्तिकेय, भार्गव, याज्ञवल्क्य, मार्कण्डेय, भरद्वाज, बृहस्पति, विश्वामित्र, जैमिनि, पुलस्त्य, पुलह, अग्नि, अगस्त्य, मुद्गल, शाण्डिल्य, शलभ,

बालखिल्यगण, सत्पर्षि, आपस्तम्ब, शफ, लिखित, प्रजापति, यम, महेन्द्र, व्यास, विभाण्ड, नारद, कपोत, विदुर, भृगु, अङ्गिरा, सूर्य, हारीत, उद्दालक, शुक्राचार्य, वैशम्पायन तथा दूसरे-दूसरे महात्माओंके बताये हुए धर्मोंका श्रवण किया है; परंतु मुझे विश्वास है कि आपके मुँहसे जो धर्म प्रकट होंगे; वे अत्यन्त पवित्र होनेके कारण उपर्युक्त सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ होंगे। इसलिये केशव। आपकी शरणमें आये हुए मुझ भक्तसे आप अपने पवित्र धर्मोंका वर्णन कीजिये।

धर्मपुत्र युधिष्ठिरके इस प्रकार प्रश्न करनेपर श्रीकृष्ण बोले, कुन्तीनन्दन। तुम धर्मके लिये इतना उद्योग करते हो, इसलिये तुम्हे संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहेगी। धर्म ही जीवका पिता-माता, रक्षक, सुहृद्, भ्राता, सखा और स्वामी है। अर्थ, काम, भोग, सुख, उत्तम ऐश्वर्य और सर्वोत्तम स्वर्गकी प्राप्ति भी धर्मसे ही होती है। यदि विशुद्ध धर्मका सेवन किया जाय तो वह महान् भयसे रक्षा करता है। धर्मसे ही ब्राह्मणत्व और देवत्वकी प्राप्ति होती है। धर्म ही मनुष्यको पावन बनाता है। जब कालक्रमसे मनुष्यका पाप नष्ट हो जाता है तभी उसकी बुद्धि धर्माचरणमें लगती है। हजारों योनियोंमें भटकनेके बाद भी मनुष्य-योनिका मिलना कठिन होता है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर भी जो धर्मका अनुष्ठान नहीं करता, वह महान् लाभसे वञ्चित हो जाता है। आज जो लोग निन्दित, दरिद्र, कुरूप, रोगी, दूसरोंके द्वेषपात्र और मूर्ख देखे जाते हैं, उन्होंने पूर्व-जन्ममें धर्मका अनुष्ठान नहीं किया है। किंतु जो दीर्घजीवी, शूर-वीर, पण्डित, भोग-सामग्रीसे सम्पन्न, नीरोग और रूपवान हैं, उनके द्वारा पूर्वजन्ममें निश्चय ही धर्मका सम्पादन हुआ है। इस प्रकार शुद्ध भावसे किया हुआ धर्मका अनुष्ठान उत्तम गतिकी प्राप्ति कराता है, परंतु जो अधर्मका सेवन करते हैं, उन्हें पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनियोंमें गिरना पड़ता है।

पाण्डुनन्दन। इस समय धर्मकी स्थापना और दुष्टोंका विनाश करनेके लिये मैंने अपनी मायासे मानव-शरीरमें अवतार धारण किया है। जो लोग मुझे केवल मनुष्य-शरीरमें सीमित समझकर मेरी अवहेलना करते हैं, वे मूर्ख हैं और संसारके भीतर बारंबार तिर्यग्योनियोंमें भटकते रहते हैं। इसके विपरीत जो ज्ञानदृष्टिसे मुझे सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित देखते हैं, वे सदा मुझमें मन लगाये रहनेवाले मेरे भक्त हैं, ऐसे भक्तोंको मैं परमधाममें अपने पास बुला लेता हूँ। मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता, वे निष्पाप होते हैं। मनुष्योंमें उन्हींका जन्म सफल है, जो मेरे भक्त हैं। हजारों जन्मोंतक तपस्या करनेसे जब मनुष्योंका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है तब उसमें भक्तिका उदय होता है। मेरा जो अत्यन्त गोपनीय, कूटस्थ, अचल और अविनाशी परस्वरूप है उसका मेरे भक्तोंको जैसा अनुभव होता है वैसा देवताओंको भी नहीं होता और जो मेरा अपरस्वरूप है वह अवतार लेनेपर दृष्टिगोचर होता है। संसारके समस्त जीव सब प्रकारके पदार्थोंसे मेरे स्वरूपकी पूजा करते हैं। जो मनुष्य मुझे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारका कारण समझकर मेरी शरण लेता है, उसके ऊपर कृपा करके मैं उसे संसार-बन्धनसे मुक्त कर देता हूँ। मैं ही देवताओंका आदि हूँ। ब्रह्मा आदि देवताओंकी मैंने ही सृष्टि की है। मैं ही अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण संसारकी सृष्टि करता हूँ। ब्रह्मासे लेकर छोटे-से कीड़ेतक सबमें मैं व्याप्त हो रहा हूँ। द्युलोकको मेरा मस्तक समझो। सूर्य और चन्द्रमा मेरी आँखें हैं। गौ, अग्नि और ब्राह्मण मेरे मुख हैं और वायु मेरी साँस है। आठ दिशाएँ मेरी बाँहें, नक्षत्र मेरे आभूषण और सम्पूर्ण भूतोंको अवकाश देनेवाला अन्तरिक्ष मेरा वक्ष:स्थल है। बादलों और हवाके चलनेका जो मार्ग है, उसे मेरा अविनाशी उदर समझो। द्वीप, समुद्र और जंगलोंसे भरा हुआ यह भूमण्डल मेरे दोनों पैरोंके स्थानमें है। मेरे हजारों मस्तक, हजारों मुख, हजारों नेत्र, हजारों भुजाएँ, हजारों उदर, हजारों ऊरु और हजारों पैर हैं। मैं पृथ्वीको सब ओरसे धारण करके समस्त ब्रह्माण्डसे दस अंगुल ऊँचे अर्थात् सबसे परे विराजमान हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा हूँ, इसलिये सर्वव्यापी कहलाता हूँ। मैं अचिन्त्य, अनन्त, अजर, अजन्मा, अनादि, अवध्य, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण, गूढ़स्वरूप, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्कल, निर्विकार और मोक्षका आदि कारण हूँ। सुधा, स्वधा और स्वाहा भी मैं ही हूँ। मैं चारों आश्रमोंका धर्म, चार प्रकारके होताओंसे सम्पन्न होनेवाला यज्ञ, चतुर्व्यूह, चतुर्यज्ञ और चारों आश्रमोंको प्रकट करनेवाला हूँ। प्रलयकालमें समस्त जगत्का संहार करके उसे अपने उदरमें स्थापित कर दिव्य योगका आश्रय ले

मैं एकार्णवके जलमें शयन करता हूँ। एक हजार युगोंतक रहनेवाली ब्रह्माकी रात पूर्ण होनेतक महार्णवमें शयन करनेके पश्चात् स्थावर-जंगम प्राणियोंकी सृष्टि करता हूँ। प्रत्येक कल्पमें मेरे द्वारा जीवोंकी सृष्टि और संहारका कार्य होता है; किंतु मेरी मायासे मोहित होनेके कारण वे जीव मुझे नहींजान पाते। राजन्। कहीं कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें मेरा निवास न हो तथा कोई ऐसा जीव नहीं है, जो मुझमें स्थित न हो। भूत और भविष्य जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ। सम्पूर्ण भूत मुझसे ही उत्पन्न होते हैं और मेरे ही स्वरूप हैं। फिर भी मेरी मायासे मोहित रहते हैं, इसलिये मुझे नहीं जान पाते। इस प्रकार देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त संसारका मुझसे ही जन्म और मुझमें ही लय होता है।

फिर कृष्णने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के धर्म बतलाये- जो ब्राह्मण शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते, संध्योपासना करते, पूर्णाहुति देते, विधिवत् अग्निहोत्र करते, बलिवैश्वदेव और अतिथियोंका पूजन करते, नित्य स्वाध्यायमें लगे रहते तथा जप-यज्ञका अनुष्ठान किया करते हैं; जो सायंकाल और प्रात:काल होम करनेके बाद ही अन्न ग्रहण करते, शूद्रका अन्न नहीं खाते, दम्भ और मिथ्या भाषणसे दूर रहते, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखते तथा पञ्चयज्ञ और अग्निहोत्र करते रहते हैं, वे ब्राह्मण पापरहित होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।

क्षत्रियोंमें भी जो राज्यसिंहासनपर आसीन होनेके बाद अपने धर्मका पालन और प्रजाकी भलीभाँति रक्षा करता है, लगानके रूपमें प्रजाकी आमदनीका छठा भाग लेकर सदा उतनेसे ही संतोष करता है, यज्ञ और दान करता रहता है, धैर्य रखता है, अपनी स्त्रीसे संतुष्ट रहता है, शास्त्रके अनुसार चलता, तत्वको जानता और प्रजाकी भलाईके कार्यमें संलग्न रहता है तथा ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करता, पोष्यवर्गके पालनमें तत्पर रहता, प्रतिज्ञाको सत्य करके दिखाता, सदा पवित्र रहता एवं लोभ और दम्भको त्याग देता है, उसे भी देवताओंद्वारा सेवित उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

जो वैश्य कृषि और गो-पालनमें लगा रहता है, धर्मका अनुसंधान किया करता है; दान, धर्म और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहता है तथा सत्यप्रतिज्ञ, नित्य, पवित्र, लोभ और दम्भसे रहित, सरल, अपनी ही स्त्रीसे प्रेम रखनेवाला और हिंसाद्रोहसे दूर रहनेवाला है, जो कभी भी वैश्यधर्मका त्याग नहीं करता और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजामें लगा रहता है, वह अप्सराओंसे सम्मानित होकर स्वर्गलोकमें गमन करता है।

शूद्रोंमेंसे जो सदा तीनों वर्णोंकी सेवा करता और विशेषत: ब्राह्मणोंकी सेवामें दासकी भाँति खड़ा रहता है; जो बिना माँगे ही दान देता, सत्य और शौचका पालन करता, गुरु और देवताओंकी पूजामें प्रेम रखता, परस्त्रीके संसर्गसे दूर रहता, दूसरोंको कष्ट न पहुँचाकर अपने कुटुम्बका पालन-पोषण करता और सब जीवोंको अभय-दान कर देता है, उसको भी स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

धर्मसे बढ़कर पाप-नाशका और कोई उपाय नहीं है। धर्मसे प्रेम करनेवाले पुरुषोंके लिये संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। मनुष्य का जातिगत कर्म हो, उसका किसीको त्याग नहीं करना चाहिये। अपना धर्म गुणरहित होनेपर भी पापको नष्ट करता है। पाप दूसरोंसे कहने और उसके लिये पश्चात्ताप करनेसे प्राय: उसका नाश हो जाता है। इसी प्रकार धर्म भी अपने मुँहसे दूसरोंपर प्रकट करनेपर नष्ट होता है। हमेशा पापको प्रकट करो और धर्मको गुप्त रखो।

चौदह जन्म व्यर्थ समझे जाते हैं। पचपन प्रकारके दान निष्फल होते हैं और छ: तरह के मनुष्योंका जीवन निरर्थक होता है। धर्मका नाश करनेवाले, लोभी, पापी, बलिवैश्वदेव किये बिना भोजन करनेवाले, परस्त्रीगामी, भोजनमें भेद करनेवाले, असत्यभाषी, बन्धु-बान्धवोंको क्लेश देकर अकेले ही स्वादिष्ट भोजन करनेवाले, माता-पिता, अध्यापक गुरु और मामा-मामीको मारने या गाली देनेवाले, ब्राह्मण होकर भी संध्या न करनेवाले, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाले, श्राद्ध-तर्पणसे दूर रहनेवाले, ब्राह्मण होकर शूद्रका अन्न खानेवाले तथा मेरी, शंकरजीकी, ब्रह्माजीकी अथवा ब्राह्मणोंकी भक्ति न करनेवाले- ये चौदह प्रकारके मनुष्य अधम होते हैं। इन्हीं पापियोंके जन्मको व्यर्थ समझना चाहिये।

जो दान अश्रद्धा या अपमानके साथ दिया जाता है, जिसे दिखावेके लिये दिया जाता है, जो पाखण्डीको प्राप्त हुआ है, जिसे शूद्रके समान आचरणवाले पुरुषने ग्रहण किया है, जिसे देकर अपने ही मुँहसे बारंबार बखान किया गया है, जिसे रोषपूर्वक दिया गया है तथा जिसको देकर पीछेसे उसके लिये शोक प्रकट किया गया है; जो दम्भसे उपार्जित अन्नका, झूठ बोलकर लाये हुए अन्नका, ब्राह्मणके धनका, चोरी करके लाये हुए द्रव्यका तथा कलंकी पुरुषके घरसे लाये हुए धनका दान किया गया है; जो पतित ब्राह्मणको दिया गया है; जिस दानकी वस्तुको वेदविहीन पुरुषोंने, सबके यहाँ याचना करनेवालोंने, संस्कारहीन पतितोंने तथा एक बार संन्यास लेकर फिर गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करनेवाले पुरुषोंने ग्रहण किया है; जो दान वेश्यागामीको और ससुरालमें रहकर गुजारा करनेवाले ब्राह्मणको दिया गया है; समूचे गाँवसे याचना करनेवाले, कृतघ्न, उपपातकी, वेद बेचनेवाले, राजसेवक, ज्योतिषी, तान्त्रिक, शूद्र जातिकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखनेवाले, अस्त्रशस्त्रसे जीविका चलानेवाले, नौकरी करनेवाले, साँप पकड़नेवाले, पुरोहिती करनेवाले, वैद्य, बनियेका काम करनेवाले, क्षुद्र मन्त्र जपकर जीविका चलानेवाले, शूद्रके यहाँ गुजारा करनेवाले, वेतन लेकर मन्दिरमें पूजा करनेवाले, देवोत्तर सम्पत्तिको खा जानेवाले, तस्वीर बनानेका काम करनेवाले, रंगभूमिमें नाच-कूदकर जीविका चलानेवाले, मांस बेचकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, सेवाका काम करनेवाले, ब्राह्मणोंचित आचारसे हीन होकर भी अपनेको ब्राह्मण बतानेवाले, उपदेश देनेकी शक्तिसे रहित, ब्याजखोर, अनाचारी, अग्निहोत्र न करनेवाले, संध्योपासनासे अलग रहनेवाले, शूद्रके गाँवमें निवास करनेवाले, झूठे ही महात्माओंके-से वेष धारण करनेवाले, सबके साथ और सब कुछ खानेवाले, नास्तिक, धर्मविक्रेता, नीच वृत्तिवाले, झूठी गवाही देनेवाले तथा कूटनीतिका आश्रय लेकर गाँव के लोगोंमें लड़ाई-झगड़ा करानेवाले ब्राह्मणको जो दान दिया जाता है, वह सब निष्फल होता है। उन्हें दिये गये दानका जो कुछ फल होनेवाला होता है, उसे राक्षस और पिशाच प्रसन्नताके साथ लूट ले जाते हैं।

जो लोग मेरी, भगवान शंकरकी अथवा भूमण्डलके देवता ब्राह्मणोंकी शरण नहीं लेते, उनका जीवन व्यर्थ है। जिनकी कोरे तर्कशास्त्रमें ही आसक्ति है, जो नास्तिक-पथका अवलम्बन करते हैं, जिन्होंने आचार त्याग दिया है तथा जो देवताओंकी निन्दा करते हैं, उनका जीवन भी व्यर्थ ही है। जो नराधम नास्तिकोंके शास्त्र पढ़कर ब्राह्मण और यज्ञोंकी निन्दा करते हैं, वे व्यर्थ ही जीवन धारण करते हैं। जो मूढ़ दुर्गा, स्वामी कार्तिकेय, वायु, अग्नि, जल, सूर्य, माता-पिता, गुरु, इन्द्र तथा चन्द्रमाकी निन्दा करते और आचारका पालन नहीं करते, वे भी निरर्थक ही जीवन व्यतीत करते हैं, जो धन होनेपर भी दान और धर्म नहीं करता तथा दूसरोंको न देकर अकेले ही स्वादिष्ट भोजन करता है, उसका जीवन भी निरर्थक ही है।

जो मनुष्य स्नान करके पवित्र हो मन और इन्द्रियोंको प्रसन्न रखकर श्रद्धाके साथ दान करता है, उसके फलको वह यौवनावस्थामें भोगता है। जो स्वयं देनेयोग्य वस्तु ले जाकर भक्तिपूर्वक सत्पात्रको दान करता है, उसको मरणपर्यन्त हर समय उस दानका फल प्राप्त होता है। दान और उसका फल सात्त्विक, राजस और तामस-भेदसे तीन-तीन प्रकारका होता है तथा उसकी गति भी तीन प्रकारकी होती है। दान देना कर्त्तव्य है- ऐसा समझकर अपना उपकार न करनेवाले ब्राह्मणको जो दान दिया जाता है, वह सात्त्विक है। जिसका कुटुम्ब बहुत बड़ा हो तथा जो दरिद्र और वेदका विद्वान हो, ऐसे ब्राह्मणको प्रसन्नतापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, वह भी सात्त्विक दानके ही अन्तर्गत है। परंतु जो वेदका एक अक्षर भी नहीं जानता, जिसके घरमें काफी सम्पत्ति मौजूद है तथा जो पहले कभी अपना उपकार कर चुका है, ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान राजस माना गया है। अपने सम्बन्धी और प्रमादीको दिया हुआ, फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंके द्वारा दिया हुआ तथा अपात्रको दिया हुआ दान भी राजस ही है। जो ब्राह्मण बलिवैश्वदेव नहीं करता, वेदका ज्ञान नहीं रखता तथा चोरी किया करता है, उसको दिया हुआ दान तामस है। क्रोध, तिरस्कार, क्लेश और अवहेलनापूर्वक़ तथा सेवकको दिया हुआ दान भी तामस ही बतलाया गया है। सात्त्विक दानको देवता, पितर, मुनि और अग्नि ग्रहण करते हैं तथा उससे इन्हें बड़ा संतोष होता है। राजस दान दानव, दैत्य, ग्रह, यक्ष और राक्षसोंके उपभोगमें आता है तथा तामस दान पापी और मलिन कर्म

करनेवाले प्रेत एवं पिशाचोंको प्राप्त होता है। सात्त्विक दानका फल उत्तम, राजस दानका मध्यम और तामस दानका फल अधम होता है। दानके उत्तम पात्र अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको जो दान दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। अत: जो वेदके विद्वान होते हुए दरिद्र हों, उनके भरण-पोषणका तुम स्वयं प्रबन्ध करो और सम्पत्तिशाली द्विजोंकी रक्षा करते रहो। धनहीन दरिद्र ब्राह्मणोंको दान देकर उनकी भलीभाँति पूजा करो। दाताका पाप दानके साथ ही दान लेनेवालेके पास चला जाता है और उसका पुण्य दाताको प्राप्त हो जाता है, अत: परलोकमें अपना हित चाहनेवाले पुरुषको सदा दान करते रहना चाहिये। जो वेद-विद्या पढ़कर अत्यन्त शुद्ध आचार-विचारसे रहते हों और शूद्रोंका अन्न कभी नहीं ग्रहण करते हों, ऐसे विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक बड़े-बड़े दानोंका भाण्डार बनाना चाहिये।

जिनकी स्त्रियाँ अपने पतिके भोजनसे बचे हुए अन्नको हजारोंगुना लाभ समझकर उसके मिलनेकी प्रतीक्षा किया करती हैं, ऐसे ब्राह्मणोंको तुम भोजनके लिये निमन्त्रित करना। दरिद्र कुलके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके उन्हें निराश न लौटाना, अन्यथा उनकी आशा मारी जायगी। जो मेरे भक्त हों, मेरी शरणमें हों, मेरा पूजन करते हों और नियमपूर्वक मुझमें ही लगे रहते हों, उनका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। अपने उन भक्तोंको पवित्र करनेके लिये मैं प्रतिदिन दोनों समयकी संध्यामें व्याप्त रहता हूँ। मेरा यह नियम कभी खण्डित नहीं होता, इसलिये मेरे निष्पाप भक्तजनोंको चाहिये कि वे आत्मशुद्धिके लिये संध्याके समय निरन्तर अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) का जप करते रहें। संध्या और अष्टाक्षर मन्त्रका जप करनेसे दूसरे ब्राह्मणोंके भी पाप नष्ट हो जाते हैं, अत: चित्त-शुद्धिके लिये प्रत्येक ब्राह्मणको दोनों कालकी संध्या करनी चाहिये। जो ब्राह्मण इस प्रकार संध्योपासन और जप करता हो, उसे देवकार्य और श्राद्धमें नियुक्त करना चाहिये। उसकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। धर्मके जाननेवाले पुरुषको यज्ञमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे यजमानकी बड़ी निन्दा होती है। ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला मनुष्य कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है, उसपर दोषारोपण करनेसे गदहा होता है और उसका तिरस्कार तथा उसके साथ द्वेष करनेसे वह कीड़ेकी योनिमें जन्म पाता है। बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि क्षत्रिय, साँप और विद्वान ब्राह्मण यदि कमजोर हों तो भी कभी उनका अपमान न करे; क्योंकि ये तीनों अपमानित होनेपर मनुष्यको भस्म कर डालते हैं। ब्राह्मण जन्मसे ही धर्मकी सनातन मूर्ति है। वह धर्मके ही लिये उत्पन्न हुआ है और मुक्तिपर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। ब्राह्मण अपना ही खाता और अपना ही पहनता है। दूसरे मनुष्य ब्राह्मणकी दयासे ही भोजन पाते हैं, अत: ब्राह्मणोंका कभी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सदा ही मुझमें भक्ति रखनेवाले होते हैं। घरपर या विदेश में, मेरे भक्त ब्राह्मणोंकी निरन्तर श्रद्धाके साथ पूजा करते रहना चाहिये। ब्राह्मणके समान कोई देवता, ब्राह्मणके समान गुरु, ब्राह्मणसे बढ़कर बन्धु और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई निधि नहीं है। कोई तीर्थ और पुण्य भी ब्राह्मणसे श्रेष्ठ नहीं है। ब्राह्मण ही सबसे बढ़कर पवित्र है। ब्राह्मणसे श्रेष्ठ धर्म और ब्राह्मणसे उत्तम कोई गति नहीं है। मेरे भक्त ब्राह्मणको दान देकर उसकी पूजा करने, चरण वन्दना करनेपर, सत्कार करनेपर, बातचीत करनेपर अथवा उसके दर्शन करनेपर वह मनुष्यको दिव्यलोकमें पहुँचा देता है। जो लोग मेरे गुण और लीलाओंका पाठ तथा कीर्तन, मेरा नमस्कार और ध्यान करते हैं, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मेरे भक्त हैं जिनके प्राण मुझमें ही लगे हुए हैं, जो मेरी महिमाका गान करते और मेरी शरणमें हैं, जिनकी उत्पत्ति शुद्ध रज और वीर्यसे हुई है, जो वेदके विद्वान, जितेन्द्रिय तथा शूद्रान्नसे बचे रहनेवाले हैं, उनका दर्शनमात्रसे ही वे पवित्र कर देते हैं। इसप्रकार सब अवस्थाओंमें मेरे भक्तोंको दिये हुए सब प्रकारके दान स्वर्गमार्ग प्रदान करनेवाले होते है।

कृष्ण बोले, युधिष्ठिर। स्थापित होनेवाले बीज और योनिकी शुद्धिसे यह संसार टिकता है और अशुद्धिसे उसका नाश हो जाता है। जिस कन्याकी योनि विवाह के पहले दूषित न हुई हो, उत्तम विवाह विधिसे ब्याही गयी हो, उसीकी योनि उत्तम है। जो स्त्री मन, वाणी और क्रियासे पर पुरुष के साथ भोग करती हो, उसकी योनि गर्भाधान के योग्य नहीं होती। ऐसा पुरुष

ऐसी स्त्रीके साथ संभोग करनेसे अपने पूर्वजोंको नरकमें डालता है। उसका तो बहिष्कार चांडाल के समान करना चाहिए और ऐसी स्त्री को कुलघातिनी समझना चाहिये। दूषित योनिसे उत्पन्न हुए मनुष्य यज्ञ, दान, भोजन, वार्तालाप, शयन तथा सम्बन्ध आदिमें सम्मिलित करने योग्य नहीं होते। कोई पुरुष शूद्र जातिके स्त्रीसे समागम कर लेता है वह पापात्मा स्वेच्छाचारी कहलाता है। उसका वीर्य अशुभ होता है। पुरुषके वीर्यको आत्मा बताया गया है। वह सबसे श्रेष्ठ देवता है। इसलिये अपने वीर्यकी रक्षा करनी चाहिये। मनुष्य ब्रह्मचर्यके पालनसे आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, महान् यश, पुण्य मुझे प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण वेदमाता गायत्रीका जप करता है, वह समुद्रपर्यंत पृथ्वीका दान लेनेपर भी किसीप्रकार दु:खी नहीं होता उसके गायत्री जपके प्रभावसे सब कुछ शुभ और कल्याणकारी होता है। मनुने कहा है, शील, स्वाध्याय, दान, शौच, कोमलता और सरलता ये सद्गुण ब्राह्मणके लिये वेदसे भी बढ़कर है। विद्वान ब्राह्मण भूमण्डलका देवता है। गायत्री सम्पूर्ण वेदोंका प्राण कहलाती है। गायत्रीके बिना सभी वेद निर्जीव हैं। शील और सदाचारसे युक्त ब्राह्मण यदि गायत्रीका जप करता है तो वह श्रेष्ठ माना जाता है। गायत्री सब पापोंको नष्ट करनेवाली है। ब्राह्मण की पूजा से मेरी पूजा होती है। ब्राह्मणको कटुवचन सुनानेसे उसका लक्ष्य मैं ही हूं, क्योंकि पृथ्वीपर ब्राह्मणके रूपमें मैं ही निवास करता हूँ। विद्वान पुरुषोंको ब्राह्मण का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके ऊपर जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, वे सब मेरे स्वरूप हैं। जो ब्राह्मणोंका अपमान करते हैं वे यमलोक में यातना प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणके पूजन से मेरी यथार्थ पूजा होती है। ब्राह्मणोंकी कृपासे ही मैं इस पृथ्वीको धारण करता हूँ। ब्राह्मणोंके अनुग्रहसे ही मैं असुरोंपर विजय पाता हूँ। ब्राह्मणोंकी दयासे ही मुझे कोई परास्त नहीं कर पाता।

मनुष्यलोक व यमलोक में छियासी हजार योजन का अन्तर है। इस बीचके मार्गमें न वृक्षकी छाया है, न तालाब है, न पोखरा है, न बावड़ी है और न कुआँ ही है। कोई मण्डप, बैठक, प्याऊ, घर, पर्वत, नदी, गुफा, गाँव, आश्रम, बगीचा, वन अथवा ठहरनेका दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। जब जीवका मृत्युकाल उपस्थित होता है और वह वेदनासे छटपटाने लगता है, उस समय कारण-तत्त्व शरीरका त्याग कर देते हैं, प्राण कण्ठतक आ जाते हैं और वायुके वशमें पड़े हुए जीवको बरबस इस शरीरसे निकल जाना पड़ता है। छ: कोषोंवाले शरीरसे निकलकर वायुरूपधारी जीव एक दूसरे अदृश्य शरीरमें प्रवेश करता है। उस शरीरके रूप, रंग और माप भी पहले शरीरके ही समान होते हैं। उसमें प्रविष्ट होनेपर भी जीवको कोई देख नहीं पाता। देहधारियोंका अन्तरात्मा जीव आठ अङ्गोंसे युक्त होकर यमलोककी यात्रा करता है। वह काटने, टुकड़े-टुकड़े करने, जलाने अथवा मारनेसे नष्ट नहीं होता। यमराजकी आज्ञासे नाना प्रकारके भयंकर रूप धारण कर अत्यन्त क्रोधी और दुर्धर्ष यमदूत प्रचण्ड हथियार लिये आते हैं और जीवको जबर्दस्ती पकड़कर ले जाते हैं। उस समय जीव स्त्री-पुत्रादिके स्नेह-बन्धनमें आबद्ध होकर विवश-सा हो जाता है। जब वह जाने लगता है तो उसके किये हुए पाप-पुण्य उसके पीछे-पीछे जाते हैं और उसके बन्धु-बान्धव दु:खसे पीडित होकर करुणाजनक स्वरमें विलाप करने लगते हैं। उस समय जीव सबकी ओरसे निरपेक्ष हो समस्त बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर चल देता है। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और मित्र रोते रह जाते हैं, उनका साथ छूट जाता है, उनके नेत्र और मुख आँसुओंसे भीगे होते हैं, उनकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है, फिर भी वह जीव उन्हें दिखायी नहीं पड़ता। वह अपना शरीर छोड़कर वायुरूपमें उस मार्गकी ओर चल देता है, जो अन्धकारसे भरा होता है और जिसका कहीं पार नहीं दिखायी देता। वह पथ बड़ा भयंकर होता है। उसपर चलनेवाले पापियोंको अन्ततक दु:ख-ही-दु:ख उठाना पड़ता है। पापाचारियोंके लिये वह बड़ा ही दुस्तर और दुर्गम मार्ग है। वहाँ किसी सहायकका मिलना बड़ा कठिन होता है। जिसका काल आ जाता है, उस मनुष्यको बन्धु-बान्धव, भोग-सामग्री और धन-वैभव सब कुछ छोड़कर अवश्य ही उस मार्गपर जाना पड़ता है। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी एक दिन यमलोकके पथिक होते हैं। यमराजके अधीन रहनेवाले देवता, असुर और मनुष्य आदि जो भी जीव हैं, वे स्त्री-पुरुष अथवा

नपुंसक हों, बाल, वृद्ध, तरुण या जवान हों, तुरंतके पैदा हुए हों, अथवा गर्भमें स्थित हों, उन सबको एक दिन उस महान् पथकी यात्रा करनी ही पड़ती है। पूर्वाहण हो या पराहण, संध्याका समय हो या रात्रिका, आधी रात हो या सबेरा, वहाँकी यात्रा सदा खुली ही रहती है। कोई परदेशमें हो, जंगल में हों, या पर्वतपर रहते हों, जल, थल, आकाश या घरके भीतर मौजूद हों, खाते या पानी पीते हों, बैठे हों, खड़े हों, या बिछौनेपर पड़े हों, जागते हों अथवा सो गये हों, हर जगह और हर अवस्थामें उस महामार्गकी ओर प्रस्थान करना ही पड़ता है। यमलोकके पथपर कहीं डरकर, कहीं पागल होकर, कहीं ठोकर खाकर और कहीं वेदनासे आर्त होकर रोते-चिल्लाते हुए चलना पड़ता है। यमलोक का मार्ग अन्यन्त यातनापूर्ण है। इस संसारमें जो लोग धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, जीवहिंसासे अलग रहकर गुरुजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं, देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं और नाना प्रकारकी वस्तुएँ दान करते हैं, वे यमलोकमें सुखपूर्वक जाते हैं।

सब प्रकारके दानोंका फल परम पवित्र, उत्तम और पापोंका नाश करनेवाला है। कुआँ खुदवाना, गायके प्यास का जलसे प्रबन्ध करना, संसारमें जलको प्राणियोंका जीवन उसके दानसे जीवोंकी तृप्ति होती है। सब प्राणी जलसे पैदा होते हैं और जलसे ही जीवन धारण करते हैं। इसलिये जलदान सब दानोंसे बढ़कर माना गया है। अन्नदान भी प्राणदान करनेके समान है। तेज, बल, रूप, सत्त्व, वीर्य, धृति, द्युति, ज्ञान, मेधा और आयु इन सबका आधार अन्न ही है। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँचों प्राण अन्नके ही आधारपर देहधारियोंको धारण करते हैं। समस्त विद्यालय, अनाथालय व पवित्र करनेवाले सम्पूर्ण यज्ञ अन्नसे ही चलते हैं। इसलिये अन्न सबसे श्रेष्ठ माना गया है। प्रजापतिने प्रत्येक कल्पमें अन्नसे ही सारी प्रजाकी सृष्टि की है। धर्म, अर्थ और कामका निर्वाह अन्नसे ही होता है। यक्ष, राक्षस, ग्रह, नाग, भूत और दानव भी अन्नसे ही संतुष्ट होते हैं, इसलिये अन्नका महत्त्व सबसे बढ़कर है। जो धनकी आय होते हुए याचकको अन्नदान नहीं करता, वह लोभी मनुष्य कीड़ोंसे भरे हुए कालसूत्र नामक नरकमें गिरता है। घरमें अतिथि के आनेपर उसका सत्कार करना चाहिये और पुष्करतीर्थमें कपिला गौका दान करनेका बड़ा महत्त्व है। अतिथि के निराश लौटनेपर देवता, पितर आदि हताश होते हैं और अतिथिका सम्मान नहीं करनेवाला व्यक्ति शीघ्र ही चंडाल हो जाता है। जो प्रतिदिन सांगोपान, वेदोंका अध्ययन करता है पर अतिथिकी पूजा नहीं करता उस व्यक्तिका तो जीवन ही व्यर्थ है। अतिथिकी मारी गयी आशा मनुष्यके समस्त शुभकर्मोंका और पुण्योंका नाश कर देती है। अन्न मनुष्योंका प्राण है और अन्नदान देनेवाला प्राणदाता है। इसलिये अपनी कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अन्नदानका विशेष प्रयत्न करना चाहिये।

भूमि-दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है और किसीकी भूमि हरण कर लेनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। भूमि दानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता। मनुष्य जीविकाके अभावमें जो कुछ पाप करता है, उससे वह गोकर्णमात्र भूमि दान करनेपर भी छुटकारा पा जाता है। गोकर्णभूमि चारों ओरसे वर्गाकार तीस-तीस दण्ड की होती है। और उस भूमिमें खुली गाय और बछड़ों का सूखपूर्वक चरने का स्थान होता है। उसीको गोकर्णभूमि कहते हैं। जो मनुष्य भूमिका दान करता है वह अपनी दस पीढ़ी पूर्वजोंका और दस पीढ़ी अपनी सन्तानोंका उद्धार करता है। किन्तु जो किसीकी भूमि का अपहरण करता है वह अपने वंशधरोंको भी नरकमें डुबो देता है। ब्राह्मणोंको तिलका दान करना भी श्रेष्ठ है। इससे मनुष्य का महान यश फैलता है। जो प्रतिदिन तर्पण करनेवाला, सदा यज्ञोपवीत धारण किये रहनेवाला, नित्यप्रति स्वाध्याय-परायण, वृषलका अन्न न खानेवाला, ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीसे समागम करनेवाला और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करनेवाला हो, वह ब्राह्मण दूसरोंको तारनेमें समर्थ होता है। जो मेरा भक्त, मुझमें अनुराग रखनेवाला, मेरे भजनमें परायण और मुझे ही कर्मफलोंको अर्पण करनेवाला है, वह ब्राह्मण अवश्य संसार-समुद्रसे तार सकता है। दरिद्रको दान देना चाहिए धनवान को नहीं। वस्त्रदान करनेवाला पुरुष तेजस्वी, दर्शनीय, सुन्दर, श्रीसम्पन्न और मनोरम होता है। देनेकी प्रतिज्ञा की हुई वस्तुको न देनेसे अथवा दी हुई वस्तुको छीन लेनेसे जन्मभर का किया हुआ सारा दान-पुण्य नष्ट हो जाता है। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंसे

बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है चाहे उन्हें भोजन करानेसे बढ़कर परलोकके लिये दूसरी कोई निधि नहीं है।

युधिष्ठिर। मनुष्यको पञ्चमहायज्ञ करना चाहिये। ऋभुयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ और पितृयज्ञ। इनमें ऋभुयज्ञ तर्पणको कहते हैं, ब्रह्मयज्ञ स्वाध्याय का नाम है, अन्नकी बलि देना भूतयज्ञ है, अतिथियोंकी पूजा को मनुष्ययज्ञ कहा गया है और पितरोंके निमित्त जो श्राद्ध, जलांजलि आदि कर्म किये जाते हैं उनको पितृयज्ञ कहते हैं। हुत, अहुत, प्रहुत, प्राशित और बलिदान यह पाक यज्ञ कहलाते हैं। वैश्वदेव आदि कर्मोंमें जो देवताओंके निमित्त हवन किया जाता है, उसे विद्वान पुरुष हुत कहते हैं। दान दी हुई वस्तुको अहुत कहते हैं। ब्राह्मणोंको भोजन करानेका नाम प्रहुत है। प्राणाग्निहोत्रकी विधिसे जो प्राणोंको पाँच ग्रास अर्पण किये जाते हैं, उनकी प्राशित संज्ञा है तथा गौ आदि प्राणियोंकी तृप्तिके लिये जो अन्नकी बलि दी जाती है, उसीका नाम बलिदान है। इन पाँच कर्मोंको पाकयज्ञ कहते हैं। मनुष्यको प्रतिदिन स्नान करके इन यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिए।

मनुष्यको नदी, तालाब, समुद्र के जलमें स्नान करना चाहिये। वहाँपर मूत्रविसर्जन या मलत्याग अपराधित है व थूँकना, कपड़े धोना भी नहीं करना चाहिये। जो दूसरे किसी देवता के भक्त न होकर केवल मेरी ही शरण ले चुके हो, मेरे परायण हैं वो मेरे भक्त हैं। पानी बरसते समय दौडना नहीं चाहिये, खाली नमक नहीं खाना चाहिये, गौको प्रतिदिन ग्रास अर्पण करें, ब्राह्मणों और देवताओंकी निन्दा न करे। ब्राह्मणके शरीरमें छ: वृषल निवास करते है। क्षत्रियोंके शरीरमें सात, वैश्योंके देहमें आठ और शूद्रोंमें इक्कीस वृषलोंका निवास माना गया है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और महामोह ये छ: वृषल ब्राह्मणके शरीरमें स्थित बताये गये हैं। गर्व, स्तम्भ (जड़ता), अहंकार, ईर्ष्या, द्रोह, पारुष्य (कठोर बोलना) और क्रूरता ये सात क्षत्रिय-शरीरमें रहनेवाले वृषल हैं। तीक्ष्णता, कपट, माया, शठता, दम्भ, सरलताका अभाव, चुगली और असत्य भाषण ये आठ वैश्य-शरीरके वृषल हैं। तृष्णा, खानेकी इच्छा, निद्रा, आलस्य, निर्दयता, क्रूरता, मानसिक चिन्ता, विषाद, प्रमाद, अधीरता, भय, घबराहट, जड़ता, पाप, क्रोध, आशा, अश्रद्धा, अनावस्था, निरमुशता, अपवित्रता और मलिनता ये इक्कीस वृषल शूद्रके शरीरमें रहनेवाले बताये गये हैं। ये सभी वृषल जिसके भीतर न दिखायी दें, वहीं वास्तवमें ब्राह्मण कहलाता है। धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं; सत्यकी विजय होती है, असत्यकी नहीं तथा क्षमाकी जीत होती है, क्रोधकी नहीं। इसलिये ब्राह्मणको क्षमाशील होना चाहिये।

पूर्वकालमें स्वयम्भू ब्रह्माने अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणोंके लिये सम्पूर्ण तेजोंका संग्रह करके कपिला गौको उत्पन्न किया था। कपिला गौ पवित्र वस्तुओंमें सबसे बढ़कर पवित्र, मङ्गलजनक पदार्थोंमें सबसे अधिक मङ्गलकारिणी तथा पुण्योंमें परमपुण्यस्वरूपा है। वह तपस्याओंमें श्रेष्ठ, तपस्या, व्रतोंमें उत्तम व्रत, दानोंमें श्रेष्ठ दान और सबका अक्षय कारण है। पृथ्वीपर जितने पवित्र तीर्थ और मन्दिर हैं तथा संसारमें जो कुछ पवित्र और रमणीय वस्तुएँ हैं, उन सबका तेज निकालकर विश्वविधाता ब्रह्माजीने जगत्को तारनेके लिये कपिला गौकी सृष्टि की है। कपिला सम्पूर्ण तेजोंका पुञ्ज है; वह अमृतस्वरूप, मेध्य, शुद्ध, पवित्र करनेवाली और उत्तम है। ब्रह्माजीकी आज्ञासे कपिला गौ में सम्पूर्ण तीर्थोंका निवास करते हैं।

ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं; पहली स्वर्णकपिला (सुवर्णके समान पीले रंगवाली), दूसरी गौर पिङ्गला (गौर तथा पीले रंगवाली), तीसरी आरक्तपिङ्गाक्षी (कुछ लालिमा लिये हुए पीले नेत्रोंवाली), चौथी गलपिङ्गला (जिसके गरदनके बाल कुछ पीले हों), पाँचवीं बभ्रुवर्णाभा (जिसका सारा शरीर पीले रंगका हो), छठी श्वेतपिङ्गला (कुछ सफेदी लिये हुए पीले रोमवाली), सातवीं रक्तपिङ्गाक्षी (सुर्ख और पीली आँखोंवाली), आठवीं खुरपिङ्गला (जिसके खुर पीले रंगके हो), नवीं पाटला (जिसका हल्का लाल रंग हो), दसवीं पुच्छपिङ्गला (जिसकी पूँछके बाल पीले रंगके हों) ये दस प्रकारकी कपिला गौएँ बतलायी गयी हैं जो सदा मनुष्योंका उद्धार करती हैं। वे मङ्गलमयी, पवित्र और सब पापोंको नष्ट करनेवाली हैं। बैलोंको डन्डी या छड़ीसे न मारे, जब बैल भूख प्यास और परिश्रम से थके हों तथा उनकी इन्द्रियाँ घबरायी

हुई हो उन्हें गाड़ीमें न जोते। जो व्यक्ति संसारसे मुक्त होना चाहता है उसे कपिला गौका दान करना चाहिये। सुपात्रको दी हुई कपिला गौ मनुष्यके सब पापोंको तत्काल नष्ट कर डालती है। जिस समय गौ प्रसव कर रही है प्रसव के समय बछड़ा योनि में से निकलनेवाला हों उसी समय तुरन्त उस गौका दान करना चाहिए। बछड़ा गर्भ में ही हो और पृथ्वीपर नहीं आया हो। इसप्रकार का दान पृथ्वीके दानके समान ही माना जाता है। कपिला गौके दर्शनमात्र से ही मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वहाँपर श्री, विजय और कीर्तिका नित्य निवास होता है। कपिला गौको होमधेनु गाय बताया गया है। कपिला गौके मूत्रमें गंगा का बाँस और गोबर में लक्ष्मीजीका बाँस आता है। चारों समुद्र उसके चारों स्तन हैं। रति, मेधा, क्षमा, स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, संतति, दिशा और प्रदिशा आदि देवियाँ सदा कपिला गौकी सेवा किया करती हैं। देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सराएँ, लोक, द्वीप, समुद्र, गङ्गा आदि नदियाँ तथा अंगों और यज्ञोंसहित सम्पूर्ण वेद, नाना प्रकारके मन्त्रोंसे कपिला गौकी प्रसन्नतापूर्वक स्तुति किया करते हैं।

कृष्णने कहा, युधिष्ठिर। देवकर्म (यज्ञ) पूर्वाह्णकालमें करना चाहिये और पितृकर्म (श्राद्ध) अपराह्णकाल में। अयोग्य समयमें किया हुआ दान राजस माना गया है। जिसके लिये लोगोंमें ढिंढोरा पीटा गया हो, जिसमेंसे किसी असत्यवादी मनुष्यने भोजन कर लिया हो तथा जो कुत्तेसे छू गया हो, उस अन्नको राक्षसोंका भाग समझना चाहिये। पतित, जड़ और उन्मत्त ब्राह्मण जितने भी मिलें, उनका देव-यज्ञ और पितृ-यज्ञमें सत्कार नहीं करना चाहिये। नपुंसक, अङ्गहीन, कोढ़ी और राजयक्ष्मा तथा मृगीका रोगी भी श्राद्धमें आदरके योग्य नहीं माना गया है। वैद्य, पुजारी, झूठे नियम धारण करनेवाले (पाखण्डी) तथा सोमरस बेचनेवाले ब्राह्मण श्राद्धमें सत्कार पानेयोग्य नहीं माने जाते। गवैये, नाचने-कूदनेवाले, बाजा बजानेवाले, बकवादी, पहलवान, अग्निहोत्र न करनेवाले, मुर्दा ढोनेवाले, चोरी करनेवाले, शास्त्रविरुद्ध कर्ममें संलग्न रहनेवाले और अपरिचित ब्राह्मण भी श्राद्धमें सत्कार पानेयोग्य नहीं माने जाते। जो किसी समुदायके पुत्र हों अर्थात जिनके पिताका निश्चित पता न हो तथा जो पुत्रिका-धर्मके अनुसार नानाके घरमें रहते हों, वे ब्राह्मण भी श्राद्धके अधिकारी नहीं हैं। युद्धमें लड़नेवाला, रोजगार करनेवाला तथा पशु-पक्षियोंकी विक्रीसे जीविका चलानेवाला ब्राह्मण भी श्राद्धमें सत्कार पानेका अधिकारी नहीं है।

परंतु जो ब्राह्मण व्रतका आचरण करनेवाले, गुणवान, सदा स्वाध्यायशील, गायत्री-मन्त्रके ज्ञाता और क्रियानिष्ठ हों, वे श्राद्धमें सत्कारके योग्य माने गये हैं। श्राद्धका सबसे उत्तम काल है सुपात्र ब्राह्मणका मिलना। जिस समय भी ब्राह्मण, दही, घी, कुशा, फूल और उत्तम क्षेत्र प्राप्त हो जायँ, उसी समय श्राद्धका दान आरम्भ कर देना चाहिये। जो ब्राह्मण सदाचारी, थोड़ी सी आजीविकापर गुजारा करनेवाले, दुर्बल, तपस्वी और भिक्षासे निर्वाह करनेवाले हों, वे यदि याचक होकर कुछ माँगने आवें तो उन्हें दिये हुए दानका महान फल होता है। युधिष्ठिर। यदि तुम अपने दानको अक्षय बनाना चाहते हो तो जो दान तुम्हें प्रिय लगता हो तथा जिसे वेदवेत्ता ब्राह्मण पसंद करते हों वही दान करो।

युधिष्ठिर। अब नरकमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन सुनो। जो ब्राह्मण गुरुकी रक्षा अथवा अपनेको भयसे बचानेके अवसरोंको छोड़कर अन्य समयमें भी झूठ बोलते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो परायी स्त्रीका अपहरण करते, परस्त्रीके साथ व्यभिचार करते और दूसरोंकी स्त्रियोंको दूसरे पुरुषोंसे मिलाया करते हैं, वे भी नरकमें पड़ते हैं। चुगुलखोर, घरमें सेंध खोदनेवाले(अथवा सुलहकी शर्त तोड़नेवाले), पराये धनसे जीविका चलानेवाले, वर्ण और आश्रमसे विरुद्ध आचरण करनेवाले, पाखंडी, पापाचारी, वेद बेचनेवाले, वेदोंकी निन्दा करनेवाले, वेदोंके लिखनेवाले तथा रस, विष और दूधकी विक्री करनेवाले मनुष्य भी नरकगामी होते हैं। जो नराधम धनके लोभसे अथवा आसक्तिवश चाण्डालोंको भी दूध देते हैं, पशुओंका दमन करते, उन्हें नाथने और बधिया करते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। जो सामर्थ्य होते हुए भी धनके लोभसे दान नहीं करते, दीनों और अंधोंपर कृपादृष्टि नहीं रखते तथा चिरकालतक अपने साथ रहे हुए सहनशील, जितेन्द्रिय, दुर्बल एवं

बुद्धिमान मनुष्योंको भी काम निकल जानेपर त्याग देते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो बच्चों, बूढ़ों तथा थके हुए मनुष्योंको कुछ न देकर अकेले ही स्वादिष्ट भोजन करते हैं, उन्हें भी नरकमें गिरना पड़ता है। प्राचीनकालके ऋषियोंने इस प्रकार नरकगामी मनुष्योंका वर्णन किया है।

अब स्वर्गमें जानेवालोंका वर्णन सुनो। जो दान, तपस्या, सत्यभाषण और इन्द्रिय-संयमके द्वारा निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं, जो उपाध्यायकी सेवा करके उनसे वेद पढ़ते तथा प्रतिग्रहमें आसक्ति नहीं रखते, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मधु, मांस, मदिरासे निवृत्त होकर उत्तम व्रतका पालन करते, परस्त्रीके संसर्गसे बचे रहते, माता-पिताकी सेवा करते, भाइयोंके प्रति स्नेह रखते, भोजनके समय घरसे बाहर निकलकर अतिथि-सेवा करते, अतिथियोंसे प्रेम रखते और उनके लिये कभी अपना दरवाजा बंद नहीं करते, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो दरिद्र मनुष्योंकी कन्याओंका धनियोंसे ब्याह करा देते अथवा स्वयं धनी होते हुए भी दरिद्रकी कन्यासे ब्याह करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं, जो श्रद्धापूर्वक रस, बीज और औषधियोंका दान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो मार्गमें जिज्ञासा करनेवाले पथिकोंको अच्छे-बुरे, सुखदायक और दुःखदायक मार्गका ठीक-ठीक परिचय दे देते हैं, तथा जो अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी - इन तिथियोंमें, दोनों संध्याओंके समय, आर्द्रा नक्षत्रमें, जन्म-नक्षत्रमें, विषुव योगमें और श्रवण नक्षत्रमें स्त्री-समागम से बचे रहते हैं, वे मनुष्य भी स्वर्गमें जाते हैं।

जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी जीविका छीन लेता है वह ब्रह्मघाती है। जो क्रोधमें भरकर किसी आश्रम, घर, गाँव, अथवा नगरमें आग लगा देता है, वैदिक श्रुतियों और ऋषिप्रणीत शास्त्रोंपर बिना समझे-बूझे दोषारोपण करता है, वह आततायी है और ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है। जो मनुष्य क्रोध या द्वेषके कारण अथवा कटुवचन से किसी स्त्रीका अपमान करता है तथा जो दरिद्र मनुष्यका सर्वस्व छीन लेता है, वह भी ब्रह्महत्यारा ही है।

अन्नके समान कोई दान नहीं है। इस जगतमें अन्न ही बल देनेवाला है और अन्नके ही आधारपर प्राण टिके रहते हैं। यज्ञमें दीक्षित, क्रोधी, शठ, शापग्रस्त, नपुंसक, भोजनमें भेद करनेवाले, वैद्य, दूत, उच्छिष्टभोजी, वर्णसंकर तथा अशौचमें पड़े हुए मनुष्यका अन्न और शत्रुका अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। इसीप्रकार पतित, चुगलखोर, यज्ञ का फल बेचनेवाले, नट, जुलाहे, कृतघ्न, अम्बष्ठ, निषाद, रङ्गभूमिमें नाटक खेलनेवाले, सुनार, वीणा बजाकर जीनेवाले, हथियार बेचनेवाले, शराब बेचनेवाले, सूत, धोबी, स्त्रीके अधीन रहनेवाले, क्रूर और भैंस चरानेवालेका अन्न भी अग्राह्य माना गया है। जिनके यहाँ मरणशौचको दस दिन न हुआ हो उनका तथा वेश्याओंका अन्न नहीं खाना चाहिए। कैदी, द्यूतक्रीड़ा जाननेवाले इत्यादिका भी अन्न खानेयोग्य नहीं है। राजाका अन्न तेजका, शूद्रका अन्न ब्राह्मणत्वका, सुनार का अन्न आयुका और चमारका अन्न सुयशका नाश करता है। यदि अनजानमें किसीका अन्न ग्रहण कर लिया हो तो तीन दिनतक उपवास करना चाहिये। तिलका दान मनुष्य मनके अनुरूप संतान पाता है। भूमि दान करनेवालेको, स्वर्ण दान करनेवाले को दीर्घायु प्राप्त होती है। वस्त्र दान करनेवाला चंद्रलोकमें जाता है। धन-धान्य दान करनेवाला मनुष्य शाश्वत सुख पाता है। वेद प्रदान करनेवाला पुरुष परब्रह्मका स्वरूप हो जाता है। विद्वान पुरुष कभी झूठ नहीं बोले और तपस्या करके उसपर गर्व न करे, कष्टमें पड़कर ब्राह्मणोंका अनादर न करे तथा दान देकर उसका बखान न करे। झूठ बोलनेसे यज्ञका, गर्व करनेसे तपस्याका, ब्राह्मणके अपमानसे आयुका और अपने मुँहसे बखान करनेपर दानका नाश हो जाता है। जीव अकेले जन्म लेता, अकेले मरता तथा अकेले ही पुण्य और पापका फल भोगता है। बन्धु-बान्धव मनुष्यके मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेके समान पृथ्वीपर डालकर मुँह फेरकर चल देते हैं। उस समय केवल धर्म ही जीवके पीछे-पीछे जाता है। मनुष्यका मन भविष्यके कर्मोंका हिसाब लगाया करता है, किंतु काल उसके नाशवान् शरीरको लक्ष्य करके मुस्कराता रहता है। इसलिए धर्मका ही आश्रय लेना चाहिए। धर्मकी सहायतासे मनुष्य नरकके पार हो जाता है।

अहिंसा, शौच, क्रोधका अभाव, क्रूरताका अभाव, दम, शम और सरलता ये धर्मके निश्चित रूप हैं। ब्रह्मचर्य, तपस्या, क्षमा, मधु-मांसका त्याग, धर्ममर्यादाके भीतर रहना और मनको वशमें रखना- ये सब शौच (पवित्रता) के लक्षण है। धर्मका आचरण सदा ही सब अवस्थाओंमें करता रहें। सन्यासी ब्राह्मणोंका गुरु है, ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है, पति अपने स्त्रीका गुरु है और राजा सबका गुरु है। यदि सन्यासी गृहस्थके घर एक रात भी अधिक ठहर जाय तो वह अनजान में किये हुए समस्त पापोंको भस्म कर डालता है। जो मनुष्य परलोकमें अपना कल्याण चाहते है वे अपने समस्त कर्मोंको मुझे अर्पण करे। गायको कभी नहीं मारना चाहिए, ब्राह्मण पर कभी हाथ नहीं उठाना चाहिए, अग्निको पैरसे कभी नहीं स्पर्श करना चाहिए, अग्निमें कोई अपवित्र वस्तु न डाले। अपने घरमें यज्ञकी आग कभी बुझने नहीं देनी चाहिए। जो अभिमानशून्य, सब कुछ सहनेवाले, शास्त्रीय अर्थके ज्ञाता, इन्द्रियजयी, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकारी, सबके साथ मैत्रीका भाव रखनेवाले, निर्लोभ, पवित्र, विद्वान, संकोची, सत्यवादी और स्वधर्मपरायण हों, उनको दिया हुआ दान महान् फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अन्नसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। इसलिये पुरुषको देश और कालका विचार करके अन्नदान करना चाहिये। संसार में अन्न देनेवाला पुरुष प्राणदाता माना जाता है। अन्नको अमृत कहते हैं, अन्नही प्रजाको जन्म देनेवाला माना गया है। फूटे हुए बर्तन में तथा उल्टी पत्तलमें भी कभी भोजन न करे। भोजन करते समय अन्नके सिवा दूसरी ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये और भोजन करते समय परोसे हुए अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। भोजन करते समय यदि रजस्वला स्त्रीका दर्शन हो जाय, चाण्डाल, कुत्ता, सुअर दीख जाय तो उस समय उस अन्नका त्याग कर देना चाहिये। गौओंके आगे घास डालनेका भी विधान है। बैलोंको जगत्का पिता कहा गया है। गाय और बैलकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है। इससे पुरुषने जान-बूझकर या अनजानमें जो-जो पाप किये हो वो सब नष्ट हो जाते है। श्राद्धमें तिलदान की बड़ी प्रशंसा की गयी है, हो सके तो तिलोंका भोजन कराना चाहिये।

जब देशमें अकाल पड़ा हो, राष्ट्रके ऊपर कोई आपत्ति हो, वैसी अवस्था में शूद्रसे भी कच्चा अन्न लिया जा सकता है। जो ब्राह्मण संसारमें कपटपूर्ण बर्ताव करते हैं, वे वेदोंके पारगामी विद्वान होनेपर भी पापाचारी ही माने जाते हैं। जो अग्निहोत्र और स्वाध्याय नहीं करता, सदा दान लेनेमें रूचि रखता, कहीं भी भक्ष-अभक्ष का ध्यान नहीं रखता उस ब्राह्मणको जातिका कलंक समझना चाहिए। जो ब्राह्मण शूद्रका भोजन करता हो, शूद्रके अन्नसे पुष्ट हुआ हो वो उत्तम गतिको नहीं प्राप्त होता। यदि ब्राह्मण शील और सदाचारसे रहित हो और छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद, सांख्य, पुराण और उत्तम कुलमें जन्म लिया हो। वे सब भी मिलकर उसे सद्गति नहीं दे सकते। वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया, कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी, भाद्रपद मासकी कृष्णा त्रयोदशी, माघकी अमावस्या, चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण तथा उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भिक दिन ये श्राद्धके उत्तम काल हैं। जो मूर्ख न विद्या पढ़ते हैं, न तप करते हैं, न दान देते और न अन्य सुखभोगोंका ही अनुभव कर पाते हैं, उनके लिये न इस लोकमें सुख है न परलोकमें।

मनुजीने जो धर्मके सारतत्वका वर्णन किया है वह पुराणोंके अनुकूल और वेदके द्वारा समर्पित है उसे बताता हूँ। अग्निहोत्री द्विज, कपिला गौ, यज्ञ करनेवाला पुरुष, राजा, संन्यासी और महासागर- ये दर्शनमात्रसे मनुष्यको पवित्र कर देते हैं, इसलिये सदा इनका दर्शन करना चाहिये। एक गौ एकको ही दानमें देनी चाहिये, बहुतोंको नहीं (बहुतोंको देनेपर वे उस गौको बेचकर आपसमें उसकी कीमत बाँट लेते हैं)। यदि वह गौ बेच दी गयी तो वह दाताकी सात पीढ़ियोंको भस्म कर देती है। एक गौ, एक वस्त्र, एक शय्या और एक स्त्रीको कभी अनेक मनुष्योंके अधिकारमें नहीं देना चाहिये। ब्राह्मणका, देवताका, दरिद्रका और गुरुका धन यदि चुरा लिया जाय तो वह स्वर्गवासियोंको भी नीचे गिरा देता है। जो धर्मका तत्त्व जानना चाहते हैं, उनके लिये वेद मुख्य प्रमाण हैं, धर्मशास्त्र दूसरा प्रमाण है और लोकाचार तीसरा प्रमाण है।

शूद्र जीविका न मिलेनेपर अपने निर्वाहके लिये किसी भी देशमें निवास कर सकता है। सदाचार, अहिंसा, सत्य और

शक्तिके अनुसार दान तथा यम और नियमोंका पालन- ये मुख्य धर्म है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यंत सब संस्कार वेदोक्त विधियों और मन्त्रोंके अनुसार कराना चाहिये; क्योंकि संस्कार इहलोक और परलोक भी पवित्र करनेवाला है। दस उपाध्यायोंसे बढ़कर एक आचार्य, सौ आचार्योंसे बढ़कर पिता और सौ पितासे भी बढ़कर माता हैं; किंतु जो ज्ञान देनेवाले गुरु हैं, वे इन सबकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। नास्तिकता, वेद और देवताओंकी निंदा, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध तथा कठोरता इनका परित्याग करना चाहिये।

कृष्ण बोले, मैंने सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि की और लोगोंकी कल्याणके लिये अपने मुखसे सर्वप्रथम अग्निको प्रकट किया। समस्त कार्योंमें सबसे आगे प्रज्ज्वलित अग्नि की आहुति दी जाती है, इसलिये इसका नाम अग्नि है। यह अग्नि सम्पूर्ण भूतोंका स्वरूप और देवताओंका मुख है। गार्हपत्य अग्नि जो घरमें जलाने के काम में आती है। जो अग्नि यजमानको दक्षिण मार्गसे स्वर्गमें ले जाता है, उसे दक्षिणाग्नि कहते हैं। यज्ञमें जो अग्नि प्रज्ज्वलित होती है उसे आहवनीय अग्नि कहा जाता है। गार्हपत्य अग्नि ब्रह्मा स्वरूप है, आहवनीय अग्नि विष्णु स्वरूप है और दक्षिणायन अग्नि रुद्र स्वरूप है। पंचयज्ञ के काममें जो अग्नि आती है वह पंचाग्नि अथवा सभ्य अग्नि कहलाती है, वह स्वामी कार्तिकेयका स्वरूप है। गार्हपत्य अग्नि गोलाकार है। दक्षिणाग्नि अर्धचन्द्रके समान है। आहवनीय अग्नि चौकोर है। शास्त्रज्ञानका फल शील और सदाचार है। स्त्री का फल रति और पुत्र है तथा धनकी सफलता दान और उपभोग करनेमें है। सब प्रकारके रस, घी आदि स्निग्ध पदार्थ, सुगन्धित द्रव्य, रत्न, मणि, सुवर्ण और लोहा इन सबकी उत्पत्ति अग्निहोत्रके ही लिये हुई है। अग्निहोत्रको ही जाननेके लिये आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, विस्तृत न्यायशास्त्र और धर्मशास्त्रका निर्माण किया गया है। छन्द, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र और निरुक्त भी अग्निहोत्रके ही लिये रचे गये हैं। इतिहास, पुराण, गाथा, उपनिषद् और अथर्ववेदके कर्म भी अग्निहोत्रके ही लिये हैं। तिथि, नक्षत्र, योग, मुहूर्त और कारणरूप कालका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये पूर्वकालमें ज्योतिषशास्त्रका निर्माण हुआ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामदेवके मन्त्रोंके छन्दका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तथा संशय और विकल्पके निराकरणपूर्वक उनका तात्त्विक अर्थ समझनेके लिये छन्द:शास्त्रकी रचना की गयी है। वर्ण, अक्षर और पदोंके अर्थका, संधि और लिंगका तथा नाम और धातुका विवेक होनेके लिये पूर्वकालमें व्याकरणशास्त्रका प्रणयन हुआ है। यूप, वेदी और यज्ञका स्वरूप जाननेके लिये, प्रोक्षण और श्रपण (चरु पकाना) आदिकी इतिकर्त्तव्यताको समझनेके लिये तथा यज्ञ और देवताके सम्बन्धका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये शिक्षानामक वेदांगकी रचना हुई है। यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि, यज्ञसम्बन्धी सामग्रियोंके संग्रह तथा समस्त यज्ञोंके वैकल्पिक विधानोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये कल्पका निर्माण हुआ है। यज्ञकी वेदी बनाने तथा अन्य सामग्रियोंको धारण करनेके लिये ब्रह्माजीने पृथ्वीकी सृष्टि की है। यज्ञ तथा पूजाका कार्य करनेके लिये ब्राह्मणोंका प्रादुर्भाव हुआ है। सबकी रक्षाके लिये क्षत्रिय-जातिकी सृष्टि की गयी है। कृषि, गो-रक्षा वाणिज्य आदि जीविकाका साधन जुटानेके लिए वैश्योंकी उत्पत्ति हुई है और तीनों वर्णोंकी सेवा के लिये शूद्रोंको उत्पन्न किया है। जो प्रतिदिन प्रात:काल स्नान करके जितेन्द्रियभावसे विधिवत् अग्निहोत्रका अनुष्ठान करते, अतिथिकी सेवामें लगे रहते तथा शान्तभावसे रहकर दोनों समय मेरा ध्यान करते हैं, वे मेरे परम धामको प्राप्त होते हैं, जहाँसे पुन: इस संसारमें नहीं लौटना पड़ता। पाण्डुनन्दन। इस संसारमें कुछ मूर्ख मनुष्य श्रुतिपर दोषारोपण करते हुए उसकी निन्दा करते हैं तथा उसे प्रमाणभूत नहीं मानते; ऐसे लोगोंकी बड़ी दुर्गति होती है। जो आस्तिक बुद्धिसे वेदोंको और इतिहासोंको प्रामाणिक मानते हैं, वे देवताओंका सायुज्य प्राप्त करते है।

समस्त पापोंका नाश चान्द्रायणव्रतसे होता है। इसके आचरणसे पापी मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं। संन्यासी को सात घरोंमें जाकर भिक्षा माँगनी चाहिये। सातसे अधिक घरोंमें न जाय। गौ दुहनेमें जितनी देर लगती है उतने ही समयतक एक द्वारपर खड़ा होकर भिक्षाके लिये प्रतीक्षा करें, मौन रहें और इन्द्रियोंपर काबू रक्खे। भिक्षा माँगनेवाला पुरुष किसीके घरमें

इधर-उधर दृष्टि नहीं डाले। पूर्वकालमें ऋषियोंने आत्मशुद्धिके लिये इस व्रतका आचरण किया।

सब प्रकारके उपवासोंमे द्वादशी का उपवास परम श्रेष्ठ है और मुझे अत्यन्त प्रिय है। यदि मनुष्य भक्तियुक्त चित्तसे मेरी पूजा करता है तो वह मेरी सालोक्य मुक्तिको प्राप्त करता है। महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी बार-बार स्तुति की।

सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के समय तथा व्यतीपात योगमें जो दान दिया जाता है वह अक्षयफल देनेवाला होता है। उस समय देवता, वसु, रुद्र, पितर, अश्विनीकुमार ,साध्यगण, विश्वेदेव, गन्धर्व, सिद्ध, ब्रह्मर्षि, सोम आदि ग्रह, नदियाँ, समुद्र मरुत्, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस तथा दूसरे देवता भी इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास करते है और परमात्मा के ध्यानमें संलग्न रहते है। इस समय गायत्रीका जप करना चाहिये। व्यतीपात योगमें पीपलका दर्शन करना चाहिये। मैं ही पीपल वृक्षके रूपमें रहकर तीनों लोकोंका पालन करता हूँ। जहाँ पीपलका वृक्ष नहीं है वहाँ मेरा वास नहीं है इसलिये पीपल के वृक्षको कभी काटना नहीं चाहिये। व्रत का पारण, सरलता, देवताओंकी सेवा, गुरु-सुश्रूषा, पिता-माताकी सेवा, अपनी स्त्रीको संतुष्ट रखना, गृहस्थ-धर्मका पालन करना, अतिथि-सेवामें लगे रहना, वेदका अध्ययन, ब्रह्मचर्यका पालन, आहवनीयादि तीन प्रकारकी अग्नियाँ ये सब परम पावन सनातन तीर्थ कहे जाते हैं। यही सब धर्म है। धर्म करनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। स्थावर तीर्थसे जङ्गम तीर्थ श्रेष्ठ है; ज्ञानतीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और ब्रह्मतीर्थ सनातन है।

पाण्डुनन्दन। सब तीर्थोंमें भी क्षमा सबसे बड़ा तीर्थ है। क्षमाशील मनुष्योंको इस लोक और परलोकमें भी सुख मिलता है। कोई मान करे या अपमान, पूजा करे या तिरस्कार, अथवा गाली दे या डाँट बतावे। इन सभी परिस्थितियोंमें जो क्षमाशील बना रहता है, वह तीर्थ कहलाता है। क्षमा ही यश, दान, यज्ञ और मनोनिग्रह है। अहिंसा, धर्म, इन्द्रियोंका संयम और दया भी क्षमाके ही स्वरूप हैं। क्षमासे ही सारा जगत् टिका हुआ है; अत: जो ब्राह्मण क्षमावान है वह देवता कहलाता है, वह सबसे श्रेष्ठ है। क्षमाशील मनुष्यको स्वर्ग, यश और मोक्षकी प्राप्ति होती है, इसलिये क्षमावान पुरुष साधु कहलाता है। राजन्। आत्मारूप नदी परम पावन तीर्थ है, यह सब तीर्थोंमें प्रधान है। आत्माको सदा यज्ञरूप माना गया है। स्वर्ग, मोक्ष सब आत्माके ही अधीन हैं। जो सदाचारके पालनसे अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा सत्य और क्षमाके द्वारा जिसमें अतुलनीय शीतलता आ गयी है- ऐसे ज्ञानरूपी जलमें निरन्तर स्नान करनेवाले पुरुषको केवल पानीसे भरे हुए तीर्थकी क्या आवश्यकता है।

यदि हृदयका भाव शुद्ध न हो तो त्रिदण्ड धारण करना, मौन रहना, जटा रखना, सिर मुँड़ाना, वल्कल या मृगचर्म पहनना, व्रत और अभिषेक करना, अग्निमें आहुति देना, गृहस्थ-धर्मका पालन करना, स्वाध्यायमें संलग्न रहना और अपनी स्त्रीका सत्कार करना- ये सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। जो क्षमाशील, दमका पालन करनेवाला, क्रोधरहित तथा मन और इन्द्रियोंको जीतनेवाला हो, उसीको मैं श्रेष्ठ ब्राह्मण मानता हूँ। उसके अतिरिक्त जो ब्राह्मण कहलानेवाले लोग हैं, वे सब शूद्र माने गये हैं। जो अग्निहोत्र, व्रत और स्वाध्यायमें लगे रहनेवाले, पवित्र, उपवास करनेवाले और जितेन्द्रिय हैं उन्हीं पुरुषोंको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। केवल जातिसे किसीकी पूजा नहीं होती, उत्तम गुण ही कल्याण करनेवाले होते हैं। मन:शुद्धि, क्रियाशुद्धि, कुलशुद्धि, शरीरशुद्धि और वाक्-शुद्धि - इस तरह पाँच प्रकारकी शुद्धि बतायी गयी है। इन पाँचों शुद्धियोंमें हृदयकी शुद्धि सबसे बढ़कर है। हृदयकी ही शुद्धिसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रका त्याग करके खरीद-बिक्रीमें लग गया है, वह वर्णसंकरताका प्रचार करनेवाला और शूद्रके समान माना गया है। जिसने वैदिक श्रुतियोंको भुला दिया है तथा जो खेतमें हल जोतता है, अपने वर्णके विरुद्ध काम करनेवाला वह ब्राह्मण वृषल माना गया है। वृष शब्दका अर्थ है धर्म; उसका जो लय करता है, उसको देवता लोग वृषल मानते हैं। वह चाण्डाल से भी नीच होता है। जो पापात्मा मनुष्य ब्रह्मगीता आदिके द्वारा मेरी स्तुति न करके किसी शूद्रका स्तवन करता है, वह चाण्डालके समान है। जैसे कुत्तेकी खालमें रक्खा हुआ दूध और कुत्तेका चाटा हुआ हविष्य अशुद्ध होता है, उसी प्रकार वृषल मनुष्यकी बुद्धिमें स्थित देव भी दूषित हो जाता है। चार वेद, छ: अङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण- ये चौदह विद्याएँ हैं। तीनों लोकोंके कल्याणके लिये

इनका अविर्भाव हुआ है, अत: शूद्रको इनका स्पर्श नहीं करना चाहिये। शूद्रके सम्पर्कमें आनेवाली सभी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। इस संसारमें तीन अपवित्र और पाँच अमेध्य हैं। कुत्ता, शूद्र और श्वपाक (चाण्डाल) ये तीन अपवित्र होते हैं तथा अश्लील गायक, मुर्गा, जिसमें वध करनेके लिये पशुओंको बाँधा जाय वह खंभा, रजस्वला स्त्री और वृषल जातिकी स्त्रीसे ब्याह करनेवाला द्विज- ये पाँच अमेध्य माने गये हैं, इनका कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिये।

जो मनुष्य मेरे भक्तोंके भक्त होते हैं, उनपर मेरा विशेष प्रेम होता है। इसलिये मेरे भक्तके भक्तोंका विशेष सत्कार करना चाहिये। मुझमें चित्त लगानेपर कीड़े, पक्षी और पशु भी ऊर्ध्वगतिको ही प्राप्त होते हैं, फिर ज्ञानी मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। मेरा भक्त शूद्र भी यदि पत्र, पुष्प, फल अथवा जल ही अर्पण करे तो मैं उसे सिरपर धारण करता हूँ। जो ब्राह्मण सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान मुझ परमेश्वरका वेदोक्त रीतिसे पूजन करते हैं, वे मेरे सायुज्यको प्राप्त होते हैं। युधिष्ठिर। मैं अपने भक्तोंका हित करनेके लिये ही अवतार धारण करता हूँ, अत: मेरे प्रत्येक अवतार-विग्रहका पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य मेरे अवतार विग्रहोंमेंसे किसी एककी भी भक्तिभावसे आराधना करता है, उसके ऊपर मैं नि:संदेह प्रसन्न होता हूँ।

जो व्रतका पालन करनेवाला मेरा भक्त नहीं है, उस शूद्रकी की हुई पूजाको मैं कुत्ता पकानेवाले चाण्डालकी की हुई समझकर त्याग देता हूँ। गौ, ब्राह्मण और पीपलका वृक्ष ये तीनों देवरूप हैं; इन्हें मेरा और भगवान शंकरका स्वरूप समझना चाहिये। मेरे भक्त पुरुषको उचित है कि वह इन तीनोंका कभी अपमान न करे; क्योंकि अपमानित होनेपर ये मनुष्यकी सात पीढ़ियोंको भस्म कर डालते हैं। युधिष्ठिर। मेरे स्वरूप होनेके कारण ये मनुष्यका उद्धार करनेवाले हैं, इसलिये तुम यत्नपूर्वक इनकी पूजा किया करो।

सत्य सब तीर्थोंको पवित्र करनेवाला है। सत्य बोलना और किसी जीवकी हिंसा न करना ये तीर्थ कहलाते हैं। तप, दया, शील, थोड़ेमें संतोष करना ये सद्गुण भी तीर्थरूप ही हैं। पतिव्रता नारी, संतोषी ब्राह्मण और ज्ञानको भी तीर्थ कहते हैं। मेरे और शंकरके भक्त, संन्यासी, विद्वान और दूसरोंको शरण देनेवाले पुरुष भी तीर्थ हैं। जीवोंको अभय-दान देना भी तीर्थ ही कहलाता है। मैं तीनों लोकोंमें उद्वेगशून्य हूँ। दिन हो या रात, मुझे कभी किसीसे भी भय नहीं होता। देवता, दैत्य और राक्षसोंसे भी मैं नहीं डरता। परंतु शूद्रके मुखसे जो वेदका उच्चारण होता है, उससे मुझे सदा ही भय बना रहता है। इसलिये शूद्रको मेरे नामका भी प्रणवके साथ नहीं उच्चारण करना चाहिये; क्योंकि वेदवेत्ता विद्वान इस संसारमें प्रणवको सर्वोत्कृष्ट वेद मानते हैं। शूद्र मुझमें भक्ति रखते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा करें- यही उनका परम धर्म है। द्विजोंकी सेवासे ही वे परम कल्याणके भागी होते हैं। इसके सिवा उनके उद्धारका दूसरा कोई उपाय नहीं है। राग, द्वेष, मोह, कठोरता, क्रूरता, शठता, अधिक कालतक वैर रखना, अधिक अभिमान, सरलताका अभाव, झूठ बोलना, निन्दा करना, चुगली खाना, अत्यन्त लोभ करना, हिंसा, चोरी, झूठ-मूठ अपवाद लगाना, धोखा देना, क्रोध, लालच, मूर्खता, नास्तिकता, भय, आलस्य, अपवित्रता, कृतघ्नता, दम्भ, जड़ता, कपट और अज्ञान- ये समस्त दुर्गुण शूद्रके पैदा होते ही उसमें प्रवेश कर जाते हैं। ब्रह्माजीने शूद्रोंको उत्पन्न करके उनके लिये द्विजोंकी सेवारूप धर्मका उपदेश किया। द्विजोंकी भक्तिसे शूद्रके तामस भाव नष्ट हो जाते हैं। शूद्र भी यदि भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल अर्पण करता है तो मैं उसके भक्तिपूर्वक दिये हुए उपहारको सादर शीश चढ़ाता हूँ। सम्पूर्ण पापोंसे युक्त होनेपर भी यदि कोई ब्राह्मण सदा मेरा ध्यान करता रहता है, तो वह अपने सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। विद्या और विनयसे सम्पन्न तथा वेदोंके पारंगत विद्वान होनेपर भी जो ब्राह्मण मुझमें भक्ति नहीं करते, वे चाण्डालके समान हैं। जो द्विज मेरा भक्त नहीं है उसके दान, तप, यज्ञ, होम और अतिथि सत्कार ये सब व्यर्थ हैं।

पाण्डुनन्दन। जब मनुष्य समस्त स्थावर जंगम प्राणियोंमें एवं मित्र अथवा शत्रुमें समान दृष्टि कर लेता है, उस समय वह मेरा सच्चा भक्त होता है। क्रूरताका अभाव, अहिंसा, सत्य, सरलता तथा किसी भी प्राणीसे द्रोह न करना- यह मेरे भक्तोंका व्रत है। जो मनुष्य मेरे भक्तको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता है, वह चाण्डाल ही क्यों न हो, उसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है। फिर जो

साक्षात् मेरे भक्त हैं, जिनके प्राण मुझमें ही लगे रहते हैं तथा जो सदा मेरे ही नाम और गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं, वे यदि लक्ष्मीसहित मेरी विधिवत् पूजा करते हैं तो उनकी सद्गतिके विषयमें क्या कहना है। अनेकों हजार वर्षोंतक तपस्या करनेवाला मनुष्य भी उस पदको नहीं प्राप्त होता, जो मेरे भक्तोंको अनायास ही मिल जाता है। इसलिये राजेन्द्र। तुम सदा सजग रहकर निरन्तर मेरा ही ध्यान करते रहो इससे तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी और तुम परम पदका साक्षात्कार कर सकोगे। जो व्यर्थकी बातें बकते रहते हैं वे मेरे भक्त नहीं, शूद्र हैं किंतु जो वास्तवमें मेरे भक्त हैं, वे जन्मसे शूद्र होनेपर भी वास्तवमें शूद्र नहीं है। भगवद्भक्त ब्राह्मणके ही समान माने गये हैं। जो द्वादशाक्षर मन्त्रके तत्त्वका ज्ञाता और निरन्तर पञ्चयाम सेवाविधिको जाननेवाला है, वह उत्तम भक्त है। जो होता बनकर ऋग्वेदके द्वारा, अध्वर्यु होकर यजुर्वेदके द्वारा, उद्गाता बनकर परम पवित्र सामवेद द्वारा तथा अथर्ववेदीय द्विजोंके रूपमें जो अथर्ववेदके द्वारा हमेशा मेरी स्तुति किया करते हैं, वे भगवद्भक्त माने गये हैं। यज्ञ वेदोंके अधीन हैं और देवता यज्ञ तथा ब्राह्मणोंके अधीन होते हैं, इसलिये ब्राह्मण देवता हैं।

किसीका सहारा लिये बिना कोई ऊँचे नहीं चढ़ सकता, अत: सबको किसी प्रधान आश्रयका सहारा लेना चाहिये। देवतालोग भगवान् रुद्रके आश्रयमें रहते हैं, रुद्र ब्रह्माजीके आश्रित हैं और ब्रह्माजी मेरे आश्रयमें रहते हैं; किंतु मैं किसीके आश्रित नहीं हूँ। मेरा आश्रय कोई नहीं है। मैं ही सबका आश्रय हूँ। राजन्। इस प्रकार ये उत्तम रहस्यकी बातें मैंने तुम्हें बतायी हैं; क्योंकि तुम धर्मके प्रेमी हो। अब तुम इस उपदेशके ही अनुसार आचरण करो। यह पवित्र आख्यान पुण्यदायक एवं वेदके समान मान्य है। जो मेरे बताये हुए इस वैष्णव-धर्मका प्रतिदिन पाठ करेगा, उसके धर्मकी वृद्धि होगी और बुद्धि निर्मल। साथ ही उसके समस्त पापोंका नाश होकर परम कल्याणका विस्तार होगा। यह प्रसंग परम पवित्र, पुण्यदायक, पापनाशक और अत्यन्त उत्कृष्ट है। सभी मनुष्योंको, विशेषत: श्रोत्रिय विद्वानोंको श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनाता और पवित्रचित्त होकर सुनता है, वह निश्चय ही मेरे सायुज्यको प्राप्त होता है। मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला जो भक्त पुरुष श्राद्धमें इस धर्मका श्रवण करता है, उसके पितर इस ब्रह्माण्डके प्रलय होनेतक सदा तृप्त बने रहते हैं।

साक्षात् विष्णुस्वरूप, जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे भागवत-धर्मोंका श्रवण करके इस अद्भुत प्रसंगपर विचार करते हुए ऋषि और पाण्डवलोग बहुत प्रसन्न हुए और सबने भगवानको प्रणाम किया। धर्मनन्दन युधिष्ठिरने तो बारंबार गोविन्दका पूजन किया। देवता, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराएँ, ऋषि, महात्मा, गुह्यक, सर्प, महात्मा बालखिल्य, तत्त्वदर्शी योगी तथा पञ्चयाम उपासना करनेवाले भगवद्भक्त पुरुष, जो अत्यन्त उत्कण्ठित होकर उपदेश सुननेके लिये पधारे थे, इस परम पवित्र वैष्णव-धर्मका उपदेश सुनकर तत्क्षण निष्पाप एवं पवित्र हो गये। सबमें भगवद्भक्ति उमड़ आयी। फिर उन सबने भगवान्के चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और उनके उपदेशकी प्रशंसा करके कहा- भगवन्। अब हम द्वारिकामें पुन: आप जगद्गुरुका दर्शन करेंगे। यों कहकर सब ऋषि प्रसन्नचित्त हो देवताओंके साथ अपने-अपने स्थानको चले गये। कृष्णने कहा, यह परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला ज्ञानयज्ञ मैंने तुम्हें सुनाया। फिर कुन्ती, धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर, द्रौपदी, महर्षि व्यास और अन्यान्य ऋषियों, सुभद्रा तथा उत्तराके पुत्र सहित उसे आशीर्वाद दे भगवान श्रीकृष्ण ने द्वारिका के लिये उन सबसे विदा ली।

इति आश्वमेधिकपर्व समाप्त

*** संसार के छल, कपट, प्रवंचना व हत्याओं को देखकर कभी मान ही लेना पड़ता है कि यह जगत ही नरक है।**

*** चुनौती इसलिये दी जाती है कि तुममें हौसला पैदा हो, इसलिये नहीं कि तुममें गरुर पैदा हो।**

आश्रमवासिक पर्व

पाण्डव राज्य पाने के अनन्तर राजा धृतराष्ट्रको आगे रखकर पृथ्वीका पालन करने लगे। विदुर, सञ्जय तथा युयुत्सु ये लोग सदा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित रहते थे। पाण्डव हर एक कार्यमें उनकी सलाह लेते हैं। १५ वर्षतक उन्होंने राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अनुसार काम किया। कुन्ती भी सदा गान्धारी की सेवामें लगी रहती है। द्रौपदी, सुभद्रा तथा पाण्डवोंकी अन्य स्त्रियाँ कुन्ती और गान्धारी की समान भाव से सेवा किया करती थी। द्रौपदी उनके दु:ख की अंशीदार थी। पंद्रह वर्ष का समय तो अंधे धृतराष्ट्र और गांधारी तथा मां कुन्ती की सेवा में रहकर कट गया। बाद में वनवास में समय बितायेंगे- यह कहकर मां गांधारी, कुन्ती तथा पिता धृतराष्ट्र विदा लेकर चले गए। कुलपुरोहित कृपाचार्य और धौम्यमुनि उनके पास रहते थे। महर्षि व्यास प्रतिदिन आते थे। उन्हें प्राचीन ऋषि, देवर्षि, पितर और राक्षसोंकी कथाएँ सुनाया करते थे। धर्म और व्यवहार के समस्त कार्य विदुर देखते थे। राजा धृतराष्ट्र की सेवामें सूपकार और रसोइये रहते थे। युधिष्ठिर सबसे कहते थे धृतराष्ट्र का अपने पुत्रोंसे वियोग हुआ है। आप लोग कभी कोई ऐसा बर्ताव नहीं करें जिससे उनके मनमें तनिक भी दु:ख हो, पर भीमके हृदयसे कभी भी यह बात नहीं निकली कि द्यूतके समय जो कुछ भी अनर्थ हुआ वह धृतराष्ट्रकी ही खोटी बुद्धि का परिणाम था। धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ सुखपूर्वक समय व्यतीत करते थे। ब्राह्मणोंको दान देते थे। वे युधिष्ठिरके बर्ताव से प्रसन्न थे। धृतराष्ट्र और गान्धारीदेवीने अपने पुत्रोंके समान व्यवहार किया। धृतराष्ट्र अपने मन बुद्धिसे दुर्योधनको स्मरण करके पछतावा किया करते थे। भीमके मनमें धृतराष्ट्रके प्रति दुर्भावना थी।

भीम कभी-कभी हृदयको लगनेवाले कठोर वचन बोल दिया करता था। एक बार भीमकी बात सुनकर राजा धृतराष्ट्रको मनमें बड़ा खेद हुआ। उसके वचनोंको गान्धारीदेवीने सुना। पर कुन्ती, नकुल, सहदेव, अर्जुन कोई भी अप्रिय बात नहीं करते थे। एक दिन धृतराष्ट्रने आँखोंमें आँसू भरकर गद्‌गद् वाणीमें अपने सुहृदोंसे कहा, आप लोगोंको यह मालूम है कि कौरवोंका नाश किस प्रकार हुआ। दुर्योधनकी बुद्धिमें दुष्टता भरी थी। वह अपनी जाति भाइयोंका भय बढ़ानेवाला था। मेरी मूर्खता के कारण मैंने उसे कौरवोंके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। कृष्ण की भी अर्थभरी बातें अनसुनी कर दी। पुत्रके स्नेहसे मेरी बुद्धि मारी गयी। विदुर, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और महर्षि व्यासने मुझे बार-बार नेक सलाह दी। संजय और गान्धारीने मुझे बहुत समझाया पर मेरी समझमें नहीं आया। इससे मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। यह सब पाण्डव बड़े गुणवान हैं। मैं उनके बाप-दादाओंकी सम्पत्ति भी उन्हें लौटा नहीं सका। मेरी की हुई भूलें मेरे हृदयमें संचित हैं और मुझे बार-बार कसक आ रही है। मैंने आज पंद्रह वर्षोंके बाद यह सब जाना। मैं अपने पापकी शुद्धि के लिये नियमपूर्वक रहकर भी भूख मिटाने की इच्छासे अन्नग्रहण करता हूँ पर मुझे भूख नहीं लगती। यह बात गान्धारी जानती है। मैं भूमिपर गान्धारीदेवीके साथ शयन करता हूँ। हमारे सौ पुत्र मारे गये। उनका मुझे दु:ख नहीं है। क्षत्रिय-धर्मको जानते हुए उन्होंने युद्धमें प्राणत्याग किया है और धृतराष्ट्र युधिष्ठिर से बोले हे कुन्तीनन्दन। तुम्हारे द्वारा पालित होकर हमने यहाँ बड़े सुखसे दिन बिताये हैं, बड़े-बड़े दान दिये हैं और अनेकों बार श्राद्धकर्मका अनुष्ठान किया है। अब मुझे गान्धारीको लेकर अपने हितके लिये पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना है। इसके लिये तुम्हारी अनुमति से मैं गान्धारीकेसहित चीर एवं वल्कल वस्त्र धारण कर वनमें जाना चाहता हूँ और वहाँ निवास करूँगा। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करूँगा।

युधिष्ठिरने कहा, महाराज। आप इतना कष्ट उठा रहे है मुझे इससे तनिक भी प्रसन्नता नहीं होती। मैं इतना प्रमादी और राज्यमें आसक्त हो गया कि मुझे आपके बारे में पता ही नहीं कि आप दु:खसे पीडित और उपवास करनेके कारण दुर्बल

होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं। आपको मेरे पास रहकर इतने दु:ख उठाने पड़े। आपही मेरे ज्येष्ठ पिता-माता और परमगुरु हैं। आपके साथ मैं वनको चलूँगा। मैं पहलेही अपयश की आग में जल चुका हूँ अब आप मुझे आगे न जलाइये। इस समय राजा मैं नहीं आप है। मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहनेवाला आपका सेवक हूँ। फिर मैं कैसे आपको अनुमति दे सकता हूँ। दुर्योधन के अपराधोंके कारण हमारे हृदयमें तनिक भी क्रोध नहीं है। जो कुछ हुआ वो होनहार था। यदि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मैं सत्य कहता हूँ मैं आपके पीछे-पीछे आऊँगा। यदि सौभाग्यवश आपकी सेवाका अवसर मिलता रहा तो मेरी मानसिक चिन्ता दूर हो जायगी।

धृतराष्ट्र बोले, पुत्र। अब मेरा मन तपस्यामें लग रहा है और जीवनकी अन्तिम अवस्थामें मैं वानप्रस्थि होना चाहता हूँ। हमारे कुलके लिये यही उचित है। मैं दीर्घकालतक तुम्हारे पास रह चुका। तुमने मेरी बहुत दिनोंतक सेवा सुश्रूषा की। अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी। इसलिये अब मुझे वनमें जानेकी अनुमति दो।

राजा धृतराष्ट्र संजय और कृपाचार्यसे बोले आप युधिष्ठिरको समझाइये और यह कहते-कहते गान्धारी का सहारा लेकर धृतराष्ट्र अचेत होकर गिर गये। तब राजा युधिष्ठिरको बड़ा दु:ख हुआ और वे बोले, जिनमें हजारों हाथियोंके समान बल था, वे ही राजा धृतराष्ट्र आज प्राणहीन होकर अपनी पत्नीका सहारा लिये सो रहे है। जिन्होंने भीमकी लोहमयी प्रतिमाको चूर्ण कर डाला वे ही महाबली राजा आज एक नारीके सहारे पड़े हैं। मुझ पापीको धिक्कार है, मेरी बुद्धि और विद्याको भी धिक्कार है। धृतराष्ट्र को धीरे-धीरे होश आया और वे बोले, मैं निर्भर हो गया हूँ, मुझसे बोला नहीं जाता। तुम्हारे हाथके स्पर्शसे मुझमें शक्ति आ गयी है। कुन्तीके साथ कुरूकुल की अन्य स्त्रियाँ भी शोकग्रस्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी। धृतराष्ट्र बोले, मेरा जी घबराता है। मुझे तपस्या करने की अनुमति दो।

उसी समय महर्षि व्यास वहाँ पहुँचे और कहने लगे। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र जो कुछ कह रहे हैं इस समय वैसा ही करना उचित है। वे अभी इस कष्टको अधिक कालतक नहीं सह सकेंगे। सौभाग्यवती गान्धारी परम विदुषी हैं, वह पुत्र-शोकको धैर्यपूर्वक सहती चली आ रही है। तुम राजा धृतराष्ट्रको गान्धारीसहित वनमें जानेकी अनुमति दे दो, नहीं तो उनकी यहीं मृत्यु हो जायेगी। इन्हें प्राचीन राजर्षियोंके पथका अनुसरण करने दो।

युधिष्ठिर बोले, महर्षि आप ही हमारे माननीय और हमलोगोंके गुरु हैं। इस राज्य और कुलके परम आधार आप ही हैं। राजा धृतराष्ट्र मेरे गुरु हैं। धर्म तो यही है कि पुत्र ही पिताकी आज्ञाका पालन करे। व्यास बोले, तुम्हारा कहना सत्य है। राजा धृतराष्ट्र अब बूढ़े हो गये हैं और अन्तिम अवस्थाको पहुँच चुके हैं; वे तपस्या के द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध करना चाहते हैं। तुम इनके शुभकार्यमें विघ्न मत डालो। उनकी वनमें ही विधिपूर्वक मृत्यु हो। अब इनके तप करनेका समय है और इसप्रकार समझाकर युधिष्ठिरको राजी कर लिया और राजा युधिष्ठिरने अपने ज्येष्ठ पिताश्रीको वन जानेकी आज्ञा दी। वो धृतराष्ट्रसे बोले आपने जो कुछ निश्चय किया है वह कृपाचार्य, विदुर, युयुत्सु और सञ्जय जैसा कहेंगे, मैं वैसा करूँगा। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी अनुमति लेकर धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ अपने महल में गये। उनके चलने की शक्ति क्षीण हो गयी। उनके पीछे-पीछे विदुर, संजय, कृपाचार्य और युयुत्सु गये। धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे बोले, तुम सदा धर्मको आगे रखकर बड़ी सावधानीके साथ राज्यका संचालन करो। राज्यकी रक्षा धर्मसे ही होती है। जो जाँच-पड़ताल किये हुए नीच कपट भावसे काम करनेवाले अपने पिता और पितामहोंके समयसे काम देखते आ रहे हैं जो बाहर-भीतरसे शुद्ध, सहमी, पुण्य कर्म करनेवाले तथा परम पवित्र हैं, उन मन्त्रियोंको सब तरहके कार्योंमें नियुक्त करो। अपनी नगरकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध करते रहना। जिन मनुष्योंका कुल और शील श्रेष्ठ हो उन्हींसे काम ले। ऐसे ही पुरुषोंसे रनिवास की रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध

करें। तुम ऐसे ब्राह्मणोंको मन्त्री बनाना जो विद्यामें प्रवीण, विनयशील, कुलीन, धर्म और अर्थमें कुशल तथा सरल स्वभाववाले हो। न्याय करनेके कामपर तुम सदा ऐसे ही पुरुषोंको नियुक्त करना जो विश्वासपात्र, संतोषी और हितैषी हो, तथा गुप्तचरोंके द्वारा हमेशा उनके कार्योंपर दृष्टि रखना। तुम्हें ऐसा विधान बनाना चाहिये जिसे तुम्हारे नियुक्त किये हुए न्यायाधिकारी पुरुष अपराधियोंके अपराधोंको भली-भाँति जानकर जो दण्डनीय है उन्हें उचित दण्ड दे। जिनमें रिश्वत लेने की आदत हो, झूठ फैला देनेवाले हो, कटुवादी, लोभी, दूसरोंका धन हरण करनेवाले, दु:साहस का काम करनेवाले, वर्णसंकर-दोषके प्रचारक हों, उन्हें आर्थिकदण्ड अथवा प्राणदण्ड दें। तुम्हे स्वयं आधीरात या दोपहरके पश्चात् प्रजा की अवस्थाका निरीक्षण करना चाहिये। न्यायप्रिय खजाना बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिये। न्यायके विपरीत उपायका अवलम्बन न करना। जो दृढ़प्रतिज्ञ, शूरवीर, क्लेश सहनेवाला, हितैषी और पुरुषार्थी, स्वामिभक्त हो ऐसे व्यक्तिको सेनापति नियुक्त करना। तुम्हरे राज्यके भीतर रहनेवाले कुशल कारीगर व कलाकारोंका भरण-पोषण करना चाहिये। उन्हें योग्य आजीविका देकर अपनाना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह अपनी वृद्धि, क्षय तथा स्थितिका हमेशा ज्ञान रखे। राजको हमेशा द्रव्योंका संग्रह करना चाहिये। राजाको अपने बलीसे सन्धि करनी चाहिये और प्रतिद्वन्द्वी राजासे युद्ध करना चाहिये। यदि कोई आपत्ति आ जाय तो उचित उपाय और मन्त्रणासे उसे छोड़ देना चाहिये। प्रजाजनोंके भीतर जो दीन-दरिद्र मनुष्य हो उनपर कृपादृष्टि रखनी चाहिये। अच्छे पुरुषोंसे मेल-जोल बढ़ाये, दुष्टोंको बन्दी कर उन्हें दण्ड दे। अपने बलाबलका उचित विचार करके शत्रुसे युद्ध या मेल करना ठीक है। राजाको अपने सेनाबल, धनबल, मित्रबल, अरण्यबल, भृत्यबल और श्रेणीबलका संग्रह करना चाहिये। राजाको चाहिये कि पुरस्कार देकर वह अपनी सेनाको संतुष्ट रक्खे।

स्वजनोंसे घिरे हुए, शरीर और सम्बन्धियोंकी चिन्ता लेकर मरना श्रेयस्कर नहीं है। जब शारीरिक शक्ति शिथिल पड़ने लगती है, तृष्णा और मोह प्रबल होनेका भय होता है। अत: जब शरीर समर्थ नहीं रहा, वह सांसारिक-पारमार्थिक किसी कामके योग्य नहीं रहा, तब इस क्षीण सत्व रोगी-जर्जर देहका ममत्व भी क्या। इससे विरक्त होकर अहंता-ममताके बन्धन तोड़कर जो इसे ऐसे छोड़ सके कि किसीको पता न लगे कि देह कहाँ गिर गया, वह धीर पुरुष है।

धृतराष्ट्र गान्धारीसे बोले, अब राजा युधिष्ठिरसे अनुमति मिल गयी है अब वन जानेमें अधिक विलम्ब नहीं है। अब प्रजाको बुलाकर अपने मरे हुए पुत्रोंके उद्देश्यसे कुछ धन दान कर लूँ। प्रजाको बुलाकर उनसे बोले, सज्जनों। आप और कौरव चिरकालसे एक साथ रहते आये हैं। कौरवों तथा आपमें परस्पर घनिष्ठ स्नेह स्थापित हो गया है। आप दोनों सदा एक-दूसरेके हितमें परायण रहते हैं। इस समय मैं आपलोगोंसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। आप उसे बिना विचारे स्वीकार करनेकी कृपा करें। मैंने गान्धारीके साथ वनमें जानेका निश्चय किया है। इसके लिये महर्षि व्यास और कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरकी भी अनुमति प्राप्त की है। अब आपलोग भी मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दें, इसमें कुछ अन्यथा विचार न करें। हमारे साथ आपलोगोंका जो यह प्रेम-सम्बन्ध सदासे चला आ रहा है, ऐसा सम्बन्ध मेरी समझमें दूसरे देशके राजाओंके साथ वहाँकी प्रजाका शायद ही हो। अब बुढ़ापेने मुझे और गान्धारीको बहुत थका दिया है, इधर उपवास करनेके कारण भी हम दोनों अति दुर्बल हो गये हैं। युधिष्ठिरके राज्यमें मुझे बड़ा सुख मिला है। मैं समझता हूँ दुर्योधनके राज्यमें भी कभी इतना सुख नहीं नसीब हुआ। एक तो मैं जन्मका अंधा हूँ, दूसरे बुढ़ापेने मुझपर अधिकार जमा लिया है; इसपर भी मेरे पुत्र मारे गये हैं (उनका शोक कभी दूर नहीं होता)। ऐसी दशामें वनमें जानेके सिवा मेरे कल्याणका और क्या उपाय हो सकता है? इसलिये अब आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें।

धृतराष्ट्रकी बातें सुनकर वहाँकी जनता फूट-फूटकर रोने लगी। तब धृतराष्ट्र शोकमग्न हो फिर बोले, महाराज शान्तनुने इस

पृथ्वीका यथावत् पालन किया था। उनके बाद यह भीष्मके द्वारा सुरक्षित राजा विचित्रवीर्य के अधिकारमें आयी। उन्होंने जिस प्रकार इस राज्यकी रक्षा की, वह आपलोगोंसे छिपा नहीं है। तदनन्तर, मेरे भाई पाण्डुने इसका विधिवत् पालन किया था, इसे भी आपलोग जानते हैं। अपने प्रजा-पालनरूपी गुणके कारण ही वे आपलोगोंके परमप्रिय हो गये थे। पाण्डुके बाद मैंने आपलोगोंकी भली या बुरी जैसी बन सकी, सेवा की है। किंतु उस समय मुझसे जो अपराध हो गये हों, उन्हें आपलोग क्षमा कीजियेगा। दुर्योधनने जब अकण्टक राज्यका उपभोग किया था, उस समय उसने भी आपलोगोंका कुछ नहीं बिगाड़ा था (केवल पाण्डवोंके साथ अन्याय किया था) किंतु उस दुर्बुद्धिके अपराध और अभिमानसे तथा मेरे किये हुए अन्यायके कारण असंख्य राजाओंका महान् संहार हो गया है। उस अवसरपर मुझसे भला या बुरा जो कुछ हुआ है, उसे आपलोग भूल जायँ। मुझे वृद्ध, दु:खी और अपने प्राचीन राजाओंका वंशज समझकर क्षमा करें। यह बेचारी तपस्विनी गान्धारी भी मेरे साथ आपलोगोंसे क्षमा-याचना करती है। हम दोनों वृद्ध हैं और अपने पुत्रोंके मारे जानेके कारण दु:खमें डूबे हुए हैं- ऐसा जानकर आप हमें वनमें जानेकी आज्ञा दें। आपलोगोंका कल्याण हो। हम दोनों आपकी शरणमें हैं। ये कुरुकुलभूषण कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर आपलोगोंके राजा हैं। अच्छे और बुरे-सभी समयमें आप सब लोग इनपर कृपादृष्टि रक्खें। लोकपालोंके समान महान् तेजस्वी तथा धर्म और अर्थके मर्मज्ञ भीम आदि चार भाई जिनके मन्त्री हैं, ऐसे राजा युधिष्ठिर कभी संकटमें नहीं पड़ सकते; फिर भी आपलोगोंको इनका खयाल रखना चाहिये। सम्पूर्ण जीव-जगत्के स्वामी भगवान ब्रह्मकी भाँति ये महान् तेजस्वी युधिष्ठिर आपलोगोंके हाथ सौंपता हूँ तथा आपलोगोंको इनके हाथमें दे रहा हूँ। आपलोग अत्यन्त गुरुभक्त हैं। मेरे पुत्रोंकी बुद्धि चञ्चल थी। वे लोभी और स्वेच्छाचारी थे, उनके अपराधोंके लिये मैं और गान्धारी दोनों आपसे क्षमाकी भीख माँगते हैं।

तब एकमत होकर प्रजाने राजाकी बातका उत्तर देनेका निश्चित किया और उत्तर देनेका भार साम्ब नामक एक ब्राह्मण पर रखा। वह ब्राह्मण सदाचारी, माननीय और अर्थज्ञान में निपुण था। ऋग्वेदके विद्वान, निर्भय और बोलनेमें बुद्धिमान थे। उन्होंने उठकर कहा, महाराज। आप जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है; उसमें असत्यका लेश भी नहीं है। नि:संदेह हममें और आपमें परस्पर घनिष्ठ स्नेह स्थापित हो चुका है। इस राजवंशमें कभी कोई भी ऐसा राजा नहीं हुआ, जो प्रजाका पालन करते समय सबका प्रिय न रहा हो। आपलोग पिता और बड़े भाईके समान हमारा पालन करते हैं। राजा दुर्योधनने भी हमारे साथ कोई अनुचित बर्ताव नहीं किया है। परम धर्मात्मा महर्षि व्यासजी आपको उचित सलाह देते हैं, क्योंकि वे हम सब लोगोंके परम गुरु हैं। आपसे बिछुड़ जानेपर हम बहुत दिनोंतक दु:ख और शोकमें डूबे रहेंगे। आपके सैकड़ों गुणोंकी याद हमें भूल नहीं सकती। महाराज शान्तनु, राजा चित्रांगद और भीष्मद्वारा सुरक्षित आपके पिता विचित्रवीर्यने जिस प्रकार इस पृथ्वीका पालन किया है तथा आपकी देख-रेखमें रहकर राजा पाण्डुने जिस तरह इस राज्यकी रक्षा की है, उसी प्रकार आपके पुत्र दुर्योधनने भी हमलोगोंका यथावत् पालन किया है। हमलोग पिताके समान उनपर विश्वास करते थे और उनके राज्यमें बड़े सुखसे जीवन व्यतीत करते थे। राजा युधिष्ठिर तो प्राचीनकालके पुण्यात्मा राजर्षि कुरु और संवरण आदिके तथा राजा भरतके बर्तावका अनुसरण करते हैं। इनमें कोई दोष भी नहीं दिखायी देता। इनके राज्यमें आपके द्वारा सुरक्षित होकर हम सदा सुखसे ही रहते आ रहे हैं। आपका या आपके पुत्रका कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अपराध भी हमारे देखनेमें नहीं आया। महाभारत-युद्धमें जो जाति-भाइयोंका संहार हुआ है और उसके विषयमें जो आपने दुर्योधनके अपराधकी चर्चा की है, इसके सम्बन्धमें भी मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। कौरवोंके मारे जानेमें न दुर्योधनका हाथ है, न आपका; कर्ण और शकुनिने भी कुछ नहीं किया है। हमारी समझमें तो यह दैवका विधान था, जिसे कोई टाल नहीं सकता था। पुरुषार्थसे दैवको मेटना असम्भव है। उस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्रित हुई थीं; किंतु भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण

और कृपाचार्य आदि कौरव-पक्षके प्रधान योद्धाओंने तथा सात्यकि, धृष्टद्युम्न, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदि पाण्डव-पक्षके वीरोंने अठारह दिनोंमेंही सबका संहार कर डाला। ऐसा विकट संहार दैवी शक्तिके बिना कदापि नहीं हो सकता था। अत: उन राजाओंके वधमें आपके पुत्र दुर्योधन, आप, आपके सेवक, महावीर कर्ण तथा शकुनि भी कारण नहीं हैं। उस समय जो हजारों राजा मौतके घाट उतारे गये, वह सब दैवकी ही करतूत समझिये। इस विषयमें दूसरा कोई क्या कह सकता है। आप इस सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, इसलिये हम आपको सबसे श्रेष्ठ और धर्मात्मा मानते हैं तथा आप और आपके पुत्रके साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं। परमात्मा करे, महाराज दुर्योधन ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे अपने सहायकोंसहित वीरलोकको प्राप्त हों। आप भी धर्ममें ऊँची स्थिति और पुण्य प्राप्त करें। आप सम्पूर्ण धर्मोंको ठीक-ठीक जानते हैं, इसलिये उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानमें लग जाइये। पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिर पहलेके राजाओंद्वारा स्वीकृत किये हुए ब्राह्मणोंके अग्रहार (दानमें दिये हुए ग्राम) तथा परिबर्ह (पुरस्कारमें दिये हुए ग्राम) की रक्षा करते ही हैं। ये दीर्घ-दर्शी, कोमल स्वभाववाले और जितेन्द्रिय हैं। इनके मन्त्री उच्च विचारके हैं, इनका हृदय बड़ा ही विशाल है। ये शत्रुओंपर भी दया करनेवाले और परम पवित्र हैं। बुद्धिमान होनेके साथ ही ये सबको सरल भावसे देखनेवाले हैं और हमलोगोंका सदा पुत्रवत् पालन करते हैं। ये पाँचों भाई बड़े पराक्रमी, महात्मा तथा पुरवासियोंके हित-साधनमें लगे रहनेवाले हैं। कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और सुभद्रा भी कभी प्रजाके प्रतिकूल व्यवहार नहीं करेंगी। आपका प्रजाके साथ जो स्नेह था, उसे युधिष्ठिरने और भी बढ़ा दिया है। नगर और प्रान्तके लोग कभी उनकी अवहेलना नहीं कर सकते। इसलिये महाराज। आप युधिष्ठिरके विषयकी चिन्ता तो छोड़ दीजिये और अपने धार्मिक कार्योंके अनुष्ठानमें लग जाइये। आपको समस्त प्रजाका नमस्कार है। साम्बके धर्मानुकूल और गुणयुक्त वचन सुनकर समस्त प्रजा उन्हें साधुवाद देने लगी तथा सबने उनकी बातका अनुमोदन किया। धृतराष्ट्रने भी बारंबार साम्बके वचनोंकी सराहना की और सब लोगोंसे सम्मानित होकर धीरे-धीरे सबको विदा कर दिया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उन ब्राह्मण-देवताका सत्कार किया और गान्धारीके साथ वे फिर अपने महलमें चले गये।

विदुर युधिष्ठिरसे बोले, महाराज धृतराष्ट्र वनवासकी दीक्षा ले चुके हैं और वे आगामी कार्तिक पूर्णिमा को वनकी यात्रा करेंगे। वे अपने सम्बन्धियोंका श्राद्ध कराना चाहते हैं। इसलिये उन्हें कुछ धनकी आवश्यकता है। युधिष्ठिर और अर्जुन बोले, धृतराष्ट्र हमारे ताऊ और वृद्ध पुरुष हैं और वे अपने सृहृदोंका श्राद्ध करना चाहते है। अत: इसमें उनको जितने धनकी आवश्यकता हो बिना कुछ विचार में आकर उन्हें चाहे जितना धन दें। तब भीम ने क्रोधमें भयसे कहा, हम लोग स्वयं ही महात्मा भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाल्हीक, महात्मा द्रोणाचार्य तथा अन्य सब सगे सम्बन्धियोंका श्राद्ध करेंगे। हमारी माता कुन्ती कर्णको दान पिण्ड करेंगी। तब अर्जुन बोले, आप मेरे बड़े और गुरुदेव हैं। राजर्षि धृतराष्ट्र हमारे द्वारा सर्वथा सम्मान पानेके योग्य हैं। साधु स्वभाववाले श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंके अपराधोंका स्मरण नहीं करते। युधिष्ठिर बोले, विदुरजी मेरे और अर्जुन के भवन में जितनी सम्पत्ति है उसके स्वामी महाराज धृतराष्ट्र ही है। वे अपने इच्छाके अनुसार ब्राह्मण को दान दें और खर्च करें। मेरा यह शरीर और धन सब उन्हीके अधीन है। तब विदुर ने धृतराष्ट्रके पास जाकर सब समाचार सुनाये। युधिष्ठिर की सम्मति से धृतराष्ट्रने सब सगे-सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया और पर्याप्त दक्षिणा दी। धृतराष्ट्रने अपने पुत्र, पितरों और पौत्रोंका श्राद्ध किया। कार्तिकी पूर्णिमा को धृतराष्ट्रने गान्धारीसहित पाण्डवोंको बुलाया उनका अभिनन्दन किया और मृगचर्म धारण कर अग्निहोत्रको आगे करके वे राजमहलसे बाहर निकल गये। यह देखकर युधिष्ठिर उनके पीछे-पीछे चले उनके साथ भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, संजय, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य तथा और भी बहुत से ब्राह्मण गये। कुन्ती गान्धारीका हाथ पकड़कर चल रही थी। द्रौपदी, सुभद्रा, चित्रांगदा और नन्हा शिशु लिये उत्तरा तथा

कुरुकुल की अन्य स्त्रियाँ धृतराष्ट्रके पीछे चल रही थी। कौरव राज धृतराष्ट्रके वनमें प्रस्थान करते समय शोकसे व्याकुल होकर सभी स्त्रियाँ विलाप करने लगी। तदनन्तर राजा धृतराष्ट्र वर्धमान नामक द्वारसे होते हुए हस्तिनापुरसे बाहर निकले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने साथ आये जनसमूहको विदा किया। विदुर और संजयने राजाके साथ वनप्रस्थान किया। युधिष्ठिरने अपनी माता कुन्तीसे कहा, आप अपनी बहुओंके साथ नगरको लौट जाइये। मैं महाराजके पीछे-पीछे जाऊँगा। ये धर्मात्मा नरेश तपस्याका निश्चय कर चुके हैं, इसलिये इन्हें वनमें जाने दीजिये। कुन्ती बोली, युधिष्ठिर तुम सहदेवकी कभी उपेक्षा नहीं करना। ये मेरे परम भक्त है। अपने भाई कर्णको याद रखना क्योंकि मेरी दुर्बुद्धिके कारण ही वह वीर युद्धमें मारा गया। मेरी बहू द्रौपदीका सदा प्रिय करना। भीम, अर्जुन और नकुलका खयाल रखना। आजसे कुरुकुल का भार तुम्हारे ऊपर है। युधिष्ठिर शोकाकुल होकर बोले, माते, आपने मनमें यह क्या ठान लिया। आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। हम लोगोंपर कृपा करके लौट चलना चाहिये। हमें क्षत्रिय धर्मका उपदेश देकर आप स्वयं उससे गिरना चाहती हैं। युधिष्ठिर के वचन सुनकर कुन्तीके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये पर फिर भी वे आगे चलती गयी। तब भीम बोला माताश्री जीते हुए इस राज्यको भोगनेका अवसर आया और धर्मोंके पालनकी सुविधा प्राप्त हुई तो आपकी बुद्धि कैसे बदल गयी? किस कारण से आप वनमें जाना चाहती है। जब वनमें ही रहना था तो बाल्यावस्थामें दु:खशोकमें डूबे हुए इन माद्रीकुमारोंको आप नगरमें क्यों ले आयी? उनके सब पुत्र नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। कुन्ती बोली, हे महाबाहो। तुम्हारा कहना ठीक है। पूर्वकालमें तुमने नाना प्रकारके कष्ट उठायें इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था। द्यूतमें तुम्हारा राज्य छीन लिया गया। तुम सुखसे भ्रष्ट हो चुके। मैं चाहती थी पाण्डुके सन्तान किसी तरह नष्ट होनेसे बच जाय। इस उद्देश्यसे मैंने तुम्हें युद्धके लिये उकसाया। पुत्र युधिष्ठिर मैं तपस्या के द्वारा अपने पतिके पवित्र लोकमें जाना चाहती हूँ। मैं तुम्हें आशीार्वद देती हूँ तुम्हारी बुद्धि धर्ममें स्थित रहें और तुम्हारा हृदय अत्यन्त उदार हो तथा तुम सब लोग लौट जाओ। बात चाहे जितनी उचित हो और बुद्धि उसे स्वीकार कर ले; किंतु माताका वन जाना मनको व्यथित न करे, यह कैसे सम्भव था। पुत्रोंको अन्तत: माताको विदा देनी पड़ी। उनमेंसे प्रत्येकका आग्रह कि वह साथ चलेगा, सुना जाने योग्य नहीं था; क्योंकि वह तपस्यामें बाधक बननेवाला था। धृतराष्ट्रने भी कहा, गान्धारी कुन्तीको लौटा दो। गान्धारीने आग्रह किया पर धर्मपरायणा कुन्ती वनवासके लिये दृढ़ निश्चय कर चुकी थी। तब राजा धृतराष्ट्र कुन्ती और गान्धारीसहित वनको चले गये। पाण्डव अत्यन्त विह्वल होकर दु:खशोकमें मग्न हो गये।

समस्त ऋषियों के, भाइयों के, श्रीकृष्ण के, गान्धारी, धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह तथा पुरजनवासी लोगों के समझाने-बुझाने से धर्मराज का मन कुछ शान्त हुआ। उनकी आत्मग्लानि कम हुई। सबके कहने पर उन्होंने सिंहासन पर बैठना स्वीकार किया। वे भाइयों के साथ राजकाम करने लगे। धृतराष्ट्र को वे पिता की तरह मानते थे और गांधारी को सगी माता की तरह। वे दोनों भी इन्हें अपना सगा पुत्र समझते थे। धर्मराज के सद्व्यवहार के कारण वे अपने पुत्रों के शोक को भूल गये थे, फिर भी अपने पुत्रों के पाप को स्मरण करके वे सदा चिन्तित रहते। अन्त में धर्मराज की अनुमति लेकर और समस्त पुरवासियों से विदा होकर धृतराष्ट्र विदुर को साथ लेकर वन में तपस्या करने को चले। पतिव्रता गांधारी उनके पीछे-पीछे चलीं। गांधारी का हाथ पकड़कर महारानी कुन्ती भी चलीं। पांडव रोते हुए उनके पीछे-पीछे चले। धृतराष्ट्र ने पांडवों को छाती से लगाया। वे उनकी आज्ञा से लौट पड़े, किन्तु कुन्ती नहीं लौटीं वे गांधारी का हाथ पकड़े चली ही गयीं।

धर्मराज ने दौड़कर माँ के पैर पकड़े और कहा- माँ। अब दूर आ गये, लौट चलो । गांधारी ने भी कहा। परन्तु कुन्ती ने कहा- अब मैं न लौटूंगी। रोते हुए धर्मराज ने कहा- क्यों माताजी। क्यों न लौटोगी?

HHH(८०८)HHH

कुन्ती ने कहा, मैं भी वन में जाकर अपने जेठ जिठानी की सेवा करूँगी और तपस्या से शरीर को सूखा दूँगी।

माँ। ऐसा मत कहो। हमें अनाथ मत बनाओ। तुम्हारे लिये तो हमने यह सब किया है। विवाह के बाद तुम हमारे पिता के साथ जङ्गलों में रहीं। वहीं हमारा जन्म हुआ। ऋषियों ने हमारे संस्कार किये। जब पिता के पश्चात् सुख भोग का समय आया हम कुछ सयाने हुए तब दुष्ट दुर्योधन के कारण हमें घर-घर भिक्षा माँगकर इस पापी पेट को भरना पड़ा। द्रौपदी मिलने पर जब राज्य की प्राप्ति हुई और सुख का समय आया तब हम द्यूतक्रीड़ा में हारकर तुम्हें चाचा विदुर के यहाँ छोड़कर १३ वर्ष वनों में भटकते रहे। हम राज्य के लिये युद्ध करना नहीं चाहते थे। तुमने ही उत्साहित करके हमें लड़वाया। अब जब हम पृथ्वी के एकछत्र राजा बन गये, सुख का समय आया तब तुम वन को जाने को तैयार हो मेरी जननी। ऐसी बात मत कहो और लौटकर घर चलो।

पुत्र तुम एक कहो, चाहे लाख कहो, मैं अब हस्तिनापुर में न रहूँगी। मुझे भोगों से क्या प्रयोजन। तुम सुख से राज्य करो। मेरी अवस्था अब तप करने की है। मैंने अपने सुख के लिये तुम्हें नहीं लड़वाया था, क्षत्रिय-धर्म सिखाया था। लो अब मैं जाती हूँ। पांडव रोते और चिल्लाते ही रहे। वे बच्चों की तरह बिलखते ही रहे, पांडु की पत्नी, कुन्तीभोज की पुत्री, कर्ण की माता कुन्ती चली ही गयीं और वन में जाकर गांधारी और धृतराष्ट्र की सेवा तथा तपस्या करने लगी।

राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूरतक यात्रा करनेके पश्चात् गंगातटपर निवास किया। वृद्ध राजा धृतराष्ट्रने अग्निको प्रकट किया और उसमें आहुतियाँ दी। रात्रिमें विदुर और संजय ने राजा के लिये कुश की शैया बिछा दी। उनके पास ही गान्धारी और कुन्तीका कुशासन बिछाया जिसके ऊपर दोनों सुखसे सोयी। विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके दूसरे दिन वे सब उत्तर दिशाकी ओर बढ़े और विदुरजीके कहने पर भागीरथीके पवित्र तटपर निवास किया। तत्पश्चात सायंकाल में राजा और गांधारी देवीने जलमें प्रवेश कर विधिवत् स्नान किया और अग्निहोत्र यज्ञ किया। वहाँसे चलकर राजा कुरुक्षेत्र में पहुँचे और वहाँपर वे राजर्षि शतयूप के आश्रम में गये। वहाँसे धृतराष्ट्र व्यासके आश्रमपर गये और शतयूप के आश्रम के नजदीक अपना आश्रम बनाकर रहने लगे। कुंती, गान्धारी और धृतराष्ट्र सब-के-सब तपस्या व्रत करने लगे। विदुर और संजय भी वल्कल वस्त्र धारण कर धृतराष्ट्रकी सेवा करने लगे और घोर तपस्या में रत हो गये।

धृतराष्ट्रके पास नारदजी आये और बताया कि धृतराष्ट्रकी आयु तीन वर्ष शेष है और वे गान्धारीके साथ कुबेर लोकको जायेंगे। तपस्याके द्वारा उनका सारा पाप भस्म हो जायगा। यह पाण्डवलोग धृतराष्ट्रके वनमें चले जानेसे बहुत दु:खी हो गये। उन्हे माता के बिछोह का कष्ट सता रहा था। पाण्डवोंके हृदयमें शोकने इतना घर बना लिया किसी भी वस्तुको पाकर वे प्रसन्न नहीं थे। राजा युधिष्ठिरने सबको वन जानेकी अपनी इच्छा प्रकट की। सहदेव और द्रौपदीने भी माता कुन्तीसे मिलने की इच्छा प्रकट की। वे सब सुविधाओंके साथ महाराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके दर्शन करने वनमें चले। युधिष्ठिर अपनी प्रजासहित यमुना नदीको पार करके कुरुक्षेत्रमें पहुँचे और धृतराष्ट्रके आश्रम को देखा। उस समय महाराज धृतराष्ट्र कलश में जल भरने के लिये यमुनाके तटपर गये थे। यह सुनकर सब यमुनाकी तटकी ओर चल दिये। कुछ दूर जानेपर उन्हें धृतराष्ट्र आदि सब लोग दूरसे आते हुए दिखायी दिये। सहदेवने बड़े वेगसे दौड़कर कुन्तीके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुलको देखकर वे उनके साथ चले। युधिष्ठिरने माता कुन्ती, गान्धारी और ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्रका चरणवन्दन किया। फिर युधिष्ठिरने सबका परिचय वहाँके आश्रमवासियों और महर्षियोंसे करवाया।

धृतराष्ट्रने राजा युधिष्ठिरसे पूछा, तुम नगर और प्रान्तकी समस्त प्रजाओं तथा भाइयोंसहित कुशलसे तो हो न? तुम्हारे आश्रयमें रहकर जीवन-निर्वाह करनेवाले मन्त्री, नौकर-चाकर और गुरुजन नीरोग हैं न? क्या वे तुम्हारे राज्यमें बेखटके रहते हैं?

क्या तुम प्राचीन राजर्षियोंसे सेवित पुरानी रीतिनीतिका पालन करते हो? अन्यायसे तो अपना खजाना नहीं भरते? शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषोंके साथ यथायोग्य बर्ताव करते हो न? क्या तुम्हारे स्वभाव और बर्तावसे ब्राह्मण संतुष्ट रहते हैं? पुरवासी, सेवक और स्वजनोंकी तो बात ही क्या, शत्रुओंको भी तुम अपने सद्व्यवहारसे संतुष्ट रखते हो न? क्या तुम श्रद्धापूर्वक पितरों और देवताओंकी पूजा तथा अन्न और जलके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करते हो? क्या तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कुटुम्बीजन न्यायमार्गका अवलम्बन करते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं? स्त्री, बालक और वृद्ध पुरुषों को तो दु:ख नहीं उठाना पड़ता? वे जीविकाके लिये भीख तो नहीं माँगते। तुम्हारे घरमें बहू-बेटियोंका आदर तो होता है न?

युधिष्ठिर बोले, राजन्। मेरे यहाँ सब कुशल है। आपके तप, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न? मेरी माता कुन्तीको आपकी सेवा सुश्रूषा करनेमें कुछ क्लेश तो नहीं होता? क्या इनका वनवास सार्थक होगा? मेरी बड़ी माता गान्धारीदेवी, जो घोर तपस्यामें संलग्न हो रही हैं, युद्धमें मारे गये अपने महापराक्रमी पुत्रोंके लिये कभी शोक तो नहीं करती? ज्येष्ठ पिताश्री। ये संजय तो कुशलपूर्वक तपस्या कर रहे हैं न? इस समय विदुरजी कहाँ है?

धृतराष्ट्र बोले युधिष्ठिर विदुरजी कुशलपूर्वक हैं। वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हुए हैं। उपवास और वायु पीकर वे क्षीण हो रहे हैं। कभी-कभी ब्राह्मणोंको उनके दर्शन हो जाया करते हैं। उसी समय विदुरजी आश्रम की ओर लौट रहे थे। यह देखकर राजा युधिष्ठिर उनके पीछे-पीछे दौड़े। विदुरजी अत्यन्त निर्जल और एकान्त वनमें पहुँचकर एक पेड़ के सहारे खड़े हो गये और एकाग्रचित्त होकर युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। अपनी दृष्टि को उनकी दृष्टि में, शरीर को शरीर में, प्राणोंको प्राणोंमें और इन्द्रिय में इन्द्रिय मिलाकर उनके साथ एकाकार हो गये। विदुरजीने धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया। विदुरजीका शरीर पेड़ के सहारे खड़ा रह गया, चेतना नहीं हुई। युधिष्ठिरके मनमें उनके शरीरकी दाहसंस्कार करने की इच्छा हुई उसी समय व्यासजीने कहा, विदुरजी सन्यास धर्मका पालन करते थे अत: उनके शरीरको दाह नहीं किया जा सकता।

धृतराष्ट्रकी आज्ञा से युधिष्ठिर मुनियोंका आश्रम देखने गये। व्यासजीने धृतराष्ट्रसे पूछा, तुम्हारी तपस्या तो ठीक-ठीक चल रही है ना। अब कभी तुम्हारे मन में अपने पुत्रोंका मारे जानेका शोक तो नहीं हो रहा है। यह कुन्ती जिसने अपने पुत्रोंकी ममता छोड़कर गुरुजनोंकी सेवा में मन लगाया है। युधिष्ठिरको देखकर तुम्हारा मन साफ है ना। क्या तुम्हारे हृदय के भाव शुद्ध हो गये। महात्मा विदुर परलोक सिधार गये है यह समाचार तुम्हें ज्ञात होगा। धर्मकी सर्वत्र गति है वह सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित है। व्यासजीने धृतराष्ट्रसे कहा, महाराज तुम और गान्धारी अपने मरे हुए पुत्रोंकी शोकाग्निसे निरन्तर जल रहे हो। इसलिये तुम दोनोंके हृदयमें सर्वदा जो दु:ख बना रहता है, उसे मैं जानता हूँ। कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी वहीं दु:ख है। सुभद्राभी अभिमन्युके मारे जानेका तीव्र दु:ख सहन कर रही है। अब तुम बताओ मैं तुम्हारी कौनसी कामना पूर्ण करूँ। आज मैं तुम्हें मनोवांछित फल देनेके लिये तैयार हूँ।

माता के वियोग से दुखी पांडवों को कुछ अच्छा ही नहीं लगता था। थोड़े दिनों के पश्चात् वे भी अपने ताऊ, ताई और माता के दर्शनों के लिये वन में उनके आश्रम पर आ गये। सब परस्पर में प्रेमपूर्वक मिल-भेंटकर प्रसन्न हुए। धर्मराज एक महीने वहीं रह गये। सर्वज्ञ भगवान् वेदव्यास वहाँ आ पहुँचे उन्होंने हर तरह से पांडवों को धैर्य बँधाया। धृतराष्ट्र को धर्म का तत्व बताया। संसार का नियम समझाया।

तब धृतराष्ट्रने कहा, भगवन् आज मुझे आप जैसे साधुपुरुष का समागम प्राप्त हुआ। आज मेरा जीवन सफल हो गया। मेरे मनमें एक संशय है- महाभारत युद्धमें जो मेरे पुत्र और पौत्र मारे गयें उनकी क्या गति हुई? मेरे दुष्ट पुत्र दुर्योधनने पृथ्वीका राज्य पानेके लोभसे शान्तनुनन्दन भीष्म और गुरु द्रोणाचार्यके साथ बहुत बड़ी सेना को मरवाकर समस्त कुलका संहार कर डाला। इससे मैं दिनरात सन्ताप की आग में जलता रहता हूँ। इस दु:ख-शोक के आघात से मुझे तनिक भी

शान्ति नहीं मिलती। रातभर मुझे नींद नहीं आती। मुझे अपने पुत्रोंके दर्शन करा दीजिये। आप तो अपने तपोबलसे लोकोंकी नयी सृष्टि कर सकते है। द्रौपदीके भी भाई-बन्धु मारे गये है। वह भी अत्यन्त शोकमग्न रहती है। सुभद्रा भी अभिमन्यु वधसे शोकसंतप्त रहती है। ये भूरिश्रवाकी धर्मपत्नी उसको भी अपने स्वामीका मारे जानेका बहुत दु:ख है। भीष्म पितामह किस गति में प्राप्त हुए होंगे यह मेरा संदेह दूर नहीं होता। कुन्ती भी अपने पुत्र कर्ण का शोक कर रही थी।

बातों-बातों में उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा- यदि तुम अपने पुत्रों का और मरे हुए राजाओं का दर्शन करना चाहते हो तो मैं अपने योग बल से उन सबको तुम्हें दिखा सकता हूँ।

सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और विशेष कर पांडव तो बड़े ही प्रभुदित हुए। तब धीरे-धीरे लजाती हुई कुन्ती ने हाथ जोड़कर भगवान् व्यास से कहा- प्रभो। आप मेरे गुरु ईश्वर और श्वसुर हैं। आपसे छिपाने योग्य कोई बात नहीं है। मैं आपसे एक निवेदन करना चाहती हूँ।

व्यासजी ने कहा, कहो पुत्री। क्या कहना है? कुन्ती ने नीचा सिर किये हुए कहा, मेरी एक इच्छा है।

व्यास बोले, मैं उसे पूर्ण करूँगा। तुम नि:समोच होकर प्रकट करो। मेरे लिये योग के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है।

कुन्ती ने कहना आरम्भ किया- प्रभो। जब मैं कुमारी थी तो मेरे यहाँ भगवान् दुर्वासा अतिथि हुए। साल भर मैंने उनकी यथा शक्ति मन लगाकर सेवा की। चलते समय वे मुझे एक मन्त्र दे गये थे, जिसके प्रभाव से मैं सब देवताओं को बुला सकती थी। कुतूहल वश मैंने भगवान सूर्य का मन्त्र की परीक्षा के निमित्त आह्वान किया। सूर्यदेव पधारे और मेरे बहुत मना करने पर भी उन्होंने मेरे गर्भाधान किया। यह चाहे धर्म हो या अधर्म, मैंने अपना सब समाचार सच-सच निवेदन कर दिया है। उनके द्वारा मेरे एक पुत्र हुआ, जो संसार में कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान् व्यासदेव ने कहा- मैं अपने योग बल से सब जानता हूँ। वह तुम्हारा काम अधर्म नहीं है। देवताओं के संसर्ग से मानव स्त्रियाँ दूषित नहीं होतीं।

कहते-कहते कुन्ती रोने लगीं। कर्ण बड़ा शूरवीर और बली था। मुझे वह प्राणों से भी अधिक प्रिय था। वह संसार में अद्वितीय दानवीर था। मैंने उसके साथ अन्याय किया। व्यासजी ने पूछा, भाग्य को कौन रोक सकता है। कर्ण कर्ण ही थे। ब्रह्माजी ने उन्हें क्षत्रियों को स्वर्ग भेजने के लिये पैदा किया था। वे देवतुल्य थे। अब तुम क्या चाहती हो बेटी? रोते-रोते कुन्ती ने कहा- भगवन्। मैं अब उस अपने प्रिय पुत्र कर्ण को देखना चाहती हूँ। उसे छाती से चिपटाना चाहती हूँ। मेरी इस इच्छा को पूर्ण कीजिये। व्यासजी ने कहा- ऐसा ही होगा। तुम आज रात्रि में अपने प्रिय पुत्र कर्ण को दिव्य शरीर से प्रत्यक्ष देखोगी।

अब महर्षि व्यासने गान्धारीसे कहा, पुत्री गान्धारी। आज रातमें तुम अपने पुत्रों और भाइयोंका दर्शन करोगी। कुन्ती कर्णको, सुभद्रा अभिमन्युको तथा द्रौपदी अपने पिता, पुत्र और भाइयोंको देखेगी। तुम सब लोगोंको उन महात्मा क्षत्रियोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहकर ही मृत्युको प्राप्त हुए हैं। यह देवताओंका कार्य था और इसी रूपमें होनेवाला था; इसलिये सम्पूर्ण देवता अपने-अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे। गन्धर्वोंके राजा धृतराष्ट्र ही इस मनुष्यलोकमें अवतीर्ण होकर तुम्हारे पति हुए हैं। महाराज पाण्डु देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णु के अंशसे अवतीर्ण हुए थे। विदुर और युधिष्ठिर धर्मके अंशावतार हैं, दुर्योधनको कलियुग और शकुनिको द्वापर समझो। दु:शासन आदि सभी भाई राक्षस थे। महाबली भीम मरूद्गणोंसे उत्पन्न हुए हैं। अर्जुनको पुरातन ऋषि नर और भगवान श्रीकृष्णको नारायण जानो, नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारोंके अवतार हैं। युद्धमें जिसे छ: महारथियोंने मिलकर मारा था, वह सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु साक्षात् चन्द्रमाका अंश था, और कर्णके रूपमें स्वयं सूर्यदेव अवतीर्ण हुए थे। द्रौपदीके साथ उत्पन्न हुआ धृष्टद्युम्न अग्निका अंश था और शिखण्डी राक्षस था। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंश थे और अश्वत्थामा

भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न हुआ था। गङ्गानन्दन भीष्म मनुष्यभावको प्राप्त हुए एक वसु थे। इस प्रकार ये सब देवता कार्यवश मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण हुए थे और अब अपने अवतारका उद्देश्य पूरा करके पुन: स्वर्गको चले गये हैं। तुम सब लोगोंके हृदयमें पारलौकिक भयके कारण जो चिरकालसे दु:ख भरा हुआ है, उसे आज दूर कर दूँगा। इस समय सब लोग गङ्गाजीके तटपर चलें। वहीं सबको अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन होंगे।

महर्षि व्यासके वचन सुनकर सबलोग गंगातट की ओर चल दिये। मृत राजाओंको देखनेकी इच्छा थी। सब लोग रात होनेकी प्रतीक्षा करने लगे। व्यासजीने गंगामें प्रवेश किया। थोड़ी देर में भीष्म और द्रोणाचार्य हजारों वीर सैनिकोंसहित जलके बाहर निकल आये। पुत्रों और सेनाओंसहित राजा विराट, द्रुपद, द्रौपदेय, अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच, कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और दु:शासन, और धृतराष्ट्रके सब पुत्र, राजा भगदत्त, जलसंध, भूरिश्रवा, शल्य, कर्णके सभी भ्राता, दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण, धृष्टद्युम्न और शिखंडी, अचल, वृषक, बाल्हीक, सोमदत्त, चेकितान देदिप्यमान शरीर धारण करके जलसे प्रकट हुए। महर्षि व्यासने प्रसन्न होकर अपने तपके प्रभावसे राजा धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किये। धृतराष्ट्र और गांधारीने अपने मरे हुए पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंको देखा। सब क्रोध और मात्सर्यसे रहित होकर आपसमें एक-दूसरेके साथ मिले। वहाँ किसीके हृदयमें शोक, भय, त्रास, विवेक और अपयशको स्थान नहीं रहा। सबका मानसिक दु:ख दूर हो गया।

संध्या की प्रतीक्षा पांडवों को असह्य हुई। वनवास के १३ वर्षों से भी बढ़कर लम्बा उन्हें उस दिन का सायंकाल जान पड़ा। भगवान भुवन-भास्कर अस्ताचल में प्रस्थान कर चुके। चिड़ियाँ अपने-अपने घोसलों में चुपचाप जा बैठीं। प्रकृति में स्तब्धता-छा गयी। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य था। धृतराष्ट्र, गांधारी, कुन्ती और पाँचों पांडव सन्ध्या-वन्दन करके जाह्नवी के तट पर चुपचाप बैठ गये। धीरे-धीरे सर्वत्र अन्धकार छा गया। उसी समय जल में से हुँ-हुँ और भयमर रथ घोड़ों का शब्द सुनायी दिया। एक-एक करके सभी वीर दिव्य शरीर धारण करके जल से निकलने लगे। भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, दु:शासन, अभिमन्यु, धृतराष्ट्र के सौ पुत्र तथा समस्त मुख्य-मुख्य राजा जल से निकलकर वहाँ आ बैठे। सबके वर्ण रूप, रङ्ग, आकृति, प्रकृति, पहिले जैसी थी। सब परस्पर में एक दूसरे को गले लगाने लगे। अब सबका राग, द्वेष, वैर भाव मिट गया था। सभी एक-दूसरे से बड़े स्नेह से मिले। धर्मराज ने बड़ों के पैर छुए। छोटों ने उन्हें प्रणाम किया। उस समय वे भूल गये थे कि हम स्वर्ग में बैठे हैं या पृथ्वी पर।

दौड़कर माता कुन्ती ने अपने प्रिय पुत्र को, अपने हृदय के टुकड़े को, अपने चिरकाल से बिछुड़े लाल को हृदय से लगाया। माता का हृदय भर आया। वे मारे प्रेम के फूट-फूटकर रोने लगीं। उनका गला रूँध गया था। स्नेह के कारण उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकल सकता था।

धर्मराजने जब कर्ण को अपनी माता की गोदी में देखा तो दौड़कर उन्होंने कर्ण के पैर छुए। उनके भाइयों ने भी उनका अनुकरण किया। बड़े स्नेह से, अपार प्रेम से कर्ण ने धर्मराज को हृदय से लगाया। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव का माथा सूँघा और कुशल प्रश्न किया। धर्मराज ने रोते-रोते कहा- आप मेरे गुरु हैं, पितातुल्य हैं, मेरे ज्येष्ठ भाई हैं। अज्ञान में मैंने आपको कितने कटु शब्द कहे। मेरा हृदय अब उन सब बातों को स्मरण करके फटा जाता है। मेरी निर्दयी माता ने मेरे साथ विश्वासघात किया। यह कहते-कहते धर्मराज बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे।

कर्ण ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा। बड़े स्नेह से बोले, धर्मराज। तुम तो धर्म की गति जानते हो, माता को दोष मत दो। यह तो भाग्य का चक्कर है। भाग्य को कौन अन्यथा कर सकता है। भावी होकर ही रहती है। भगवान् को ऐसा ही मंजूर था। जो होना होता है होकर ही रहता है अब तुम शोक का त्याग करो। धर्मपूर्वक राज्य करो। अब हम लोग जाते हैं।

अब थोड़े दिन पश्चात् स्वर्ग में मिलेंगे।

बातें करते -करते रात्रि का अन्त होने को आया। इस समय सब वीर गङ्गाजी के जल में पहले की तरह विलीन हो गये। व्यास की आज्ञा से जिस स्त्री ने सती होना चाहा, उसने गङ्गाजी में शरीर त्याग दिया और उन्होंने पतिलोक को प्राप्त किया।

धर्मराज अपने भाई की बात को बार-बार सोचते- जो होनेवाला होता है, होकर ही रहता है। भाग्य को कौन मेट सकता है?

रात्रि बीतने पर मुनिवर व्यासने उन सबका विसर्जन कर दिया और एक ही क्षणमें सब देखते-देखते गङ्गाजीमें डुबकी लगाकर अदृश्य हो गये। जनमेजय व्यासजीसे बोले, यदि आपकी कृपा हो तो मेरी इच्छा है कि मैं अपने पिताश्री के दर्शन करूँ। उसी समय महर्षि व्यासने कृपाकर उनके पिता परीक्षित को यज्ञभूमिमें अपने तपोबल से बुला लिया। राजा परीक्षित ने जनमेजय से कहा, तुमने समस्त ऋषियोंकी पूजा की और इस पापनाशक कथाको सुनकर महान धर्म प्राप्त किया। महर्षि व्यासके प्रभावसे मेरा दर्शन किया।

फिर धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको समझाकर अपने राज्य हस्तिनापुर को लौट जानेकी आज्ञा दी और कहा कि हमें अब तप करने दो। सभी पाण्डव तपोवन से लौटकर आये। एकदिन देवर्षि नारद राजा युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने कहा, ऋषिवर बहुत दिनोंसे आपके दर्शन नहीं हुए। आप कहाँसे आ रहे है। आपकी मैं क्या सेवा करूँ? नारदजी बोले, राजन्। इस समय मैं तपोवन से आ रहा हूँ। गंगा और अनेक तीर्थोंका दर्शन करके आ रहा हूँ। युधिष्ठिरने पूछा, गंगाके किनारे रहनेवाले मेरे ज्येष्ठ पिताश्री महाराज धृतराष्ट्र इस समय कठोर तपस्यामें लगे हुए है। क्या आपने उनका दर्शन किया। मेरी ज्येष्ठ माताश्री गान्धारी, कुन्ती और संजय यदि आप इनके बारेमें कुछ जानते हो तो मैं सुनना चाहता हूँ। तब देवर्षि नारदजी बोले, मैंने उन्हें तपोवन में देखा। तुमलोग जब वनसे लौट आयें तब तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री, गान्धारी और तुम्हारी माता कुन्ती हरिद्वार चले गये। वहाँ पहुँचकर धृतराष्ट्रने तीव्र तपस्या आरम्भ की।

एकदिन की बात है राजा धृतराष्ट्र गंगाक्षेत्र में विचरण कर रहे थे। जलमें प्रवेश करके डुबकी लगा रहे थे। उसी समय बड़े जोर की हवा चली और उस वनमें भयंकर दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। सारा जंगल सब ओरसे धायँ-धायँ करके जलने लगा, समस्त वन आगसे घिर गया और उन लोगोंके ऊपर बड़ा भारी संकट आ पड़ा। राजा धृतराष्ट्र की प्राणशक्ति क्षीण होनेके कारण भाग न सके। तुम्हारी दोनों माताएँ गांधारी और कुन्ती अत्यन्त दुर्बल हो गयी और भागनेमें असमर्थ रहीं। धृतराष्ट्रने संजय से कहा, तुम किसी ऐसे स्थानपर भाग जाओ, जहाँ यह दावाग्नि तुम्हें जला न सके। हमलोग तो भागने असमर्थ है और अपने शरीर को इसी अग्निमें होम कर परम गतिको प्राप्त करेंगे। यह कहकर राजा धृतराष्ट्रने अपने मनको एकाग्र किया और गान्धारी और कुन्तीके साथ पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये और योगयुक्त कर समाधि लगा ली। इसके बाद ये तीनों भी दावाग्नि में जलकर भस्म हो गये। संजय अपने प्राण बचाकर गंगातटपर भाग गया। मैंने उसे तपस्यामें बैठे हुए देखा। इसप्रकार तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री और दोनों माताओंकी मृत्यु हुई। राजा धृतराष्ट्रके परलोकगमन का वृत्तान्त सुनकर पाण्डवोंको बड़ा शोक और संताप हुआ। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों और ऋषियोंके साथ नगरसे बाहर निकलकर गंगातटपर गये और उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीका पृथक-पृथक नाम और गोत्र का उच्चारण करके जलांजलि दी और हरिद्वारमें उनके श्राद्धकर्म किये। उनका श्राद्ध करके सम्राट युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौट आये।

समय बहुत व्यतीत हो चला था। महाराज धृतराष्ट्र, महारानी गान्धारी एवं राजमाता वृष्णिनन्दिनी कुन्ती, महात्मा विदुर एवं संजय वनवास हेतु प्रस्थित हुए थे, और वहीं भयंकर दावानल में उनके प्राणों की आहुति चढ़ गयी।

इति आश्रमवासिक पर्व

HHH(८१३)HHH

मौसल पर्व

महाभारत युद्ध हुए छत्तीस वर्ष पूर्ण हो रहे थे। समय इतिहास हुआ जा रहा था। स्मृतियां धूमिल होने लगी थीं। छवियाँ धूमिल पड़ रही थी। महाराज युधिष्ठिर वृद्धावस्था से शिथिल हो चले और राज्यकार्य चारों अनुज दक्षता से सँभालते थे। युवराज परीक्षित अब एक अत्यन्त रूपवान्, सुन्दर, सुसंस्कृत युवक हो चुका था। शरद्वानपुत्र गुरुवर कृपाचार्य से ही उसने भी शिक्षा पायी थी एवं शस्त्रविद्या में स्वयं पितामह पाण्डुनन्दन अर्जुन ने उसे दीक्षित किया था। शस्त्र एवं शास्त्र दोनों विद्याओं से अलंकृत परीक्षित अपनी दोनों पितामही द्रौपदी, सुभद्रा तथा दु:ख-व्याकुल माता उत्तरा का नयनतारक था। पाण्डवों का कुलदीपक था वह।

वैशम्पायन कहते हैं जनमेजय युधिष्ठिरको कई तरहके अपशकुन दिखायी देने लगे। भारी तूफान लिये प्रचण्ड आँधी चलने लगी। कंकड़ और पत्थरोंकी वर्षा होने लगीं। बड़ी-बड़ी नदियोंका जल बालूमें सूख गया। समस्त दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित हो गयीं। आकाशसे पृथ्वीपर अग्नि गिरने लगी। उल्कायें गिरने लगी। सूर्य धूलसे आच्छादित हो गया। थोड़े ही दिनों में युधिष्ठिर को खबर मिली कि एरका घास के कारण समस्त ऋषि-मुनियोंका, यदुवंशियोंका आपस में कलह करके संहार हो गया। सभी पाण्डव दु:खशोक में डूब गये और हताश हो मन मारकर बैठे रहे। एक समय की बात है महर्षि विश्वामित्र, कण्व, नारद तथा दुर्वासा सभी एकत्रित हुए। उसी समय कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न सारण आदि वीर जाम्बवन्ती पुत्र साम्वको स्त्रीके वेष में विभूषित करके पेट में एक मूसल छिपाके उन ऋषियोंके पास गये और बोले महर्षियों ये महातेजस्वी बभ्रुकी स्त्री है। यह गर्भवती है। यह जानना चाहती है इस स्त्रीके गर्भ से क्या उत्पन्न होगा और ऐसा कहकर ऋषियोंका उपहास किया। तब ऋषियोंने क्रोधमें भरकर कहा हे मूर्खों। यह श्रीकृष्ण का पुत्र साम्व वृष्णि अन्धकवंशी और यदुवंशियोंका नाश करने के लिए एकाएक भयंकर मूसल उत्पन्न करेगा। जिसकेद्वारा तुम जैसे दुराचारी क्रूर और क्रोधी लोग अपने समस्त कुलका संहार करेंगे। यह समाचार उन बालकों ने महाराज उग्रसेन को बताया। यह सुनकर राजाने उस मूसलको निकालकर उसका चूर्ण कराकर समुद्रमें फेंकवा दिया और राजाने घोषणा करादी आजसे कोई भी नगरनिवासी वृष्णिवंशी और अन्धकवंशियोंके यहाँ शराब और मदिरा न तैयार करे। जो कोई मनुष्य कहीं छिपकर इसका पेय करेगा, उसे मृत्युदंड दिया जायगा। काल प्रतिदिन उन लोगोंके घरोंमें चक्कर लगाने लगा। उसका स्वरूप भयंकर और विकट था। वह काला पीला था। वह मूँड मुँडाये हुए पुरुषके रूपमें घूम-घूमकर वृष्णियोंके घरोंको देखता। वह सम्पूर्ण भूतोंसे अतीत था। चूहे इतने बढ़ गये थे कि सड़कोंपर भी अधिक संख्यामें पाये जाते थे। यदुवंशियोंके घरोंमें सारिकाएँ निरन्तर चें-चें किया करती थीं। दिन हो या रात सारस उल्लुओंकी और बकरे गीदड़ोंकीसी बोली बोलने लगे। इनके घरोंमें सफेद पंख और लाल पैरोंवाले कबूतर घूमने लगे। गौओंके पेटसे गदहे, खच्चरियोंसे हाथी, कुत्तियोंसे बिलाव और नेवलियोंके गर्भसे चूहे पैदा होने लगे। उस समय यदुवंशियोंको पाप करते हुए लज्जा नहीं आती थी। वे देवता, पित्तरों ब्राह्मणों और गुरुजनोंका भी अपमान करते थे। श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की जो ध्वनि होती उस समय यदुवंशियोंके घरोंमें चारों ओरसे गधोंके रेंकनेकी भयंकर आवाज होती थी। इसप्रकार कालकी विपरीत गति देखकर और मासके पक्षके तेरहवें दिन अमावस्याका संयोग जानकर श्रीकृष्णने यदुवंशियों से कहा- वीरों। महाभारत युद्धके समय जैसा योग आया था वैसा ही योग अब है। जान पड़ता है बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्र शोकसे संतप्त गांधारीने यदुवंशियोंके लिये जो शाप दिया था वह पूर्ण होनेका समय आ गया। यह समझकर कृष्णने यदुवंशियोंको तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी और सारे नगरमें घोषणा करा दी कि सब लोग समुद्र के तटपर प्रभास तीर्थमें चलनेकी तैयारी करें।

तदनन्तर वृष्णि और अन्धक महारथियोंने स्त्रियोंसहित तीर्थयात्रा करने का विचार किया। फिर अनेकों तेजस्वी सैनिक

रथ, घोड़े और हाथियोंपर सवार होकर नगर से बाहर निकले। इसके बाद समस्त यादव स्त्रियोंसहित प्रभासक्षेत्रमें चले गये। जब उद्धवने सुना कि यदुवंशी वीर प्रभासक्षेत्रमें समुद्रके तीरपर निवास करते हैं तो वे कृष्णसे मिलने और उनसे विदा लेने आये तब कृष्णने कहा, यदुवंशियोंके विनाश का काल आ गया। इसलिए हे उद्धव, तुम बद्रिकाश्रम चले जाओ। सात्यकिने मदमें आकर कृतवर्माका उपहास किया और कहा तूने तो अन्याय किया है, सोते हुए पांण्डवपुत्रोंकी हत्या की है। उन्हें यदुवंशी कभी क्षमा नहीं करेंगे। प्रद्युम्नने भी कृतवर्माका अपमान किया। इसप्रकार कृतवर्माको बड़ा क्रोध आया। कृतवर्माकी बात सुनकर सात्यकि क्रोध से बोले, मैं सत्य की शपथ कहता हूँ आज इस पापीको मारकर द्रौपदी के पाँचों पुत्र धृष्टद्युम्न और शिखंडी के वध का प्रतिशोध लूँगा और तलवार हाथमें लेकर उन्होंने कृतवर्मा का सिर काट डाला। श्रीकृष्ण उन्हें रोकने के लिए दौड़े इतने में ही काल की प्रेरणा से भोज और अन्धकवंशके वीरोंने एकसाथ मिलकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया और क्रोधित हो सात्यकिपर आक्रमण करने लगे। सात्यकि को बचानेके लिये भोजवंशी वीर कूद पड़े। उस आक्रमण में वे मारे गयें। अपने पुत्र प्रद्युम्न और सात्यकि को मारा गया देख कृष्ण क्रोध में आकर एरका घास उखाड़कर वज्रके समान भयंकर लोहेके मूसल से सब यदुवंशियोंको मौतके घाट उतारने लगे। इसप्रकार लड़ते-लड़ते पुत्र-पिताके और पिता पुत्रके प्राण ले रहे थे। यदुवंशी आपसमें ही लड़कर धराशायी होने लगे। श्रीकृष्णके देखते-देखते साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और गदकी मृत्यु हो गयी। कृष्णने अपने शंख चक्र गदासे समस्त बचे हुए वीरोंका संहार कर डाला। इसके बाद कृष्ण बलराम का पता लगाने लगे। और वहाँपर दारुक, बभ्रुक और कृष्ण ही बचे थे। थोड़ी दूर जानेपर उन्होंने बलरामजीको एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते देखा। कृष्णने दारुक को आज्ञा दी तुम शीघ्र ही कुरुदेश हस्तिनापुर जाओ और अर्जुन को यादवोंके इस महासंहारकी सूचना दो। दारुक रथपर सवार होकर हस्तिनापुर चला गया। श्रीकृष्णने बभ्रुको कहा, आजके सातवें दिन यह द्वारिकापुरी पानी में चली जायगी। इसलिये स्त्रियोंकी रक्षा के लिये तुम शीघ्र ही द्वारिका चले जाओ। प्रभास क्षेत्रमें कृष्ण एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे कि अचानक जरा नामक व्याध ने एक बाण मृगका शिकार समझकर उन्होंने मारा। बाणकी चोटसे सहसा उनकी मृत्यु हो गयी। श्रीकृष्णने द्वारिका में अपने पिता वसुदेवजीसे कहा आप अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करें तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंकी रक्षा करें और अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके तुरन्त वहाँसे चले गये। उन्होंने अन्त:पुर की स्त्रियोंसे कहा, देवियों नरश्रेष्ठ अर्जुन शीघ्र ही इस नगर में आयेंगे और वे आप लोगोंको इस संकटसे उबारेंगे। कृष्ण बलराम के पास आये जहाँ वे योग-समाधि में बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण के देखते-देखते बलराम के मुख से एक सफेद रंग का बहुत बड़ा साँप निकला और समुद्र की ओर चला गया। उसके हजारों मस्तक थे और मुखकी प्रभा रक्त वर्णकी थी। समुद्रने स्वयं प्रकट होकर उन भगवान् अनन्त का स्वागत किया। साथ ही दिव्य नागों और पवित्र सरिताओंने भी उनका सत्कार किया। कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, अरुण, कुञ्जर, मिश्री, शंख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्लाद, क्राथ, शितिकण्ट, उग्रतेजा, चक्रमन्द, अतिषण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष आदि नाग भी उनकी सेवामें उपस्थित थे। स्वयं राजा वरुणने भी वहाँ पदार्पण किया। इन सबने आकर अनन्त भगवान का सत्कार किया। बलरामजीके स्वधाम पधारनेके पश्चात् कृष्ण भी अपनी लीला संवरण करके गांधारीके श्राप को स्मरण कर अंतर्ध्यान हुए। श्रीकृष्णने जो सम्पूर्ण अर्थोंके तत्त्ववेत्ता और अविनाशी देवता थे; तो भी उन्होंने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये परमधाम पधारनेके उद्देश्यसे मन, वाणी और इन्द्रियोंका संयम किया और महायोग समाधि का अवलम्बन करके वे पृथ्वीपर बैठ गये। उसी समय जरा नामके व्याध ने उनके पैरमें बाण मार दिया। जरा उनके नजदीक आया तो अपने को अपराधी मानकर मन ही मन बहुत शंकित हुआ और कृष्णके चरण पकड़कर क्षमा याचना की। पर कृष्ण उस समय अपनी कान्तिसे आकाश एवं पृथ्वीको व्याप्त करते हुए ऊर्ध्वलोकमें अपने परम धामको चले गये। अन्तरिक्षमें पहुँचनेपर इन्द्र, अश्विनीकुमार, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मुनि, सिद्ध और अप्सराओंसहित मुख्य-मुख्य गन्धर्वोंने आगे बढ़कर कृष्णका स्वागत किया।

तत्पश्चात् अत्यन्त तेजस्वी, जगत्को उत्पन्न करनेवाले, संहार करनेवाले अविनाशी आचार्य नारायण अनन्त तेजसे पृथ्वी और आकाशको प्रकाशमान करते हुए अपने परम धाम अप्रमेय पदको प्राप्त हो गये।

दु:संवाद आया था। द्वारिकापुरी से। वासुदेव श्रीकृष्ण ने देह त्याग दी। वृष्णिशिरोमणि के रथसारथी दु:खविह्वल दारुक ने संवाद दिया और संवाद आकाश-सा फट पड़ा हस्तिनापुरी पर। सब स्तम्भित थे। मूर्तिवत्। सब एक साथ अनाथ। सब लुटे खड़े थे। निष्प्राण से। कहीं श्वास नहीं जैसे। कहीं स्पन्दन नहीं जैसे। गति नहीं। प्रस्तर-प्रतिमाएँ। छायाएँ। काली मूर्तियाँ। उस दिन सबकी मुख-दीप्ति उड़ गयी थी। उस दिन स्वर्णाभूषण कालिमायुक्त पड़ गये। उस दिन मणियों की ज्योति बुझ गयी थी। विश्वज्योति बुझ गयी थी। वयोवृद्ध-पाण्डवनरेश युधिष्ठिर मूर्च्छित पड़े थे। भीम स्तम्भ का अवलम्ब लिये अचेत बैठे थे। अर्जुन पर्यंक पर काष्ठवत् बैठे रह गये थे। निर्जीव। शक्तिशून्य। जैसे पृथ्वी रिक्त हो गयी हो। सव्यसाची को लगा, उनके परमवीर गात्र की समस्त शक्ति जैसे किसी ने खींचकर निकाल ली हो। समस्त बल जैसे किसी ने निर्दयता से निचोड़ लिया हो। और अनन्य सखी द्रौपदी स्तम्भ से चिपटकर रह गयी। सब कुछ चला गया। असहाय। अनाथ।

दारुक अवरुद्ध कण्ठ से रुक-रुककर किसी भाँति बोल रहे थे। महात्मन्। भारतयुद्ध में जो यदुवंशी कौरवों की ओर थे और जो पाण्डवों के पक्ष में थे, उन्हीं में परस्पर विवाद छिड़ गया। वे अत्यधिक मदिरापान किये थे अत: वह उग्र विवाद समस्त यदुवंशियों में दावानल-सा फैल गया और वे एक-दूसरे के रक्तपिपासे हो उठे। महाराज। अभिशप्त मौसल के कारण ही समझिए, मदान्ध यदुवंशियों ने एक-दूसरे का वध कर डाला। अब यदुवंश शेष नहीं।

दारुक बोले, महात्मा अर्जुन। द्वारिकापुरी शीघ्र चलें। वृद्ध बलराम भी शरीर त्याग चुके हैं। अब वहाँ एकमात्र पुरुष वयोवृद्ध एवं दु:खविह्वल महात्मा वसुदेव बचे हैं- शेष सब स्त्रियाँ हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण की महारानियाँ हैं। उनके पुत्रों एवं पौत्रों की रानियाँ हैं तथा वृष्णि एवं अन्धक परिवारों की भी महिलाएँ हैं। कुछ बालक एवं किशोर पुत्र भी हैं। द्वारिकानाथ ने कहा था कि आर्य अर्जुन सबको हस्तिनापुर ले जाएँगे, अब द्वारिकापुरी शेष नहीं रह पाएगी। वह मधुसूदन के प्रताप से ही अब तक अक्षुण्ण रही थी। अब उनका वह लीलाक्षेत्र समुद्र में विसर्जित होनेवाला है चलें तात। विलम्ब न करें। वयोवृद्ध श्रीकृष्णपितृ वसुदेव आकुल हो प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वे असंख्य अनाथ स्त्रियाँ करुण विलाप कर रही हैं।

सुदीर्घ सन्नाटा इसके उपरान्त वहाँ टँगा रह गया। सन्नाटा। सन्नाटा। श्वासरोध सन्नाटा।

सर्वप्रथम चेत आया कृष्णानुरागिनी कृष्णा को। कर्मयोगिनी महाभारती के अन्तर में दारुण शूल-सी पीड़ा टीस उठी, और उसका अश्रुसिंचित आर्द्रस्वर गूँज उठा; झंझा-मध्य घोर प्रकम्पित दीपशिखा-सा कँपकँपाता स्वर। हृदय दहलानेवाली कातर वाणी। वेदना भीगा आर्त-स्वर। सुनते-सुनते धीमे-धीमे लोगों को चेत आने लगा। हिचकियाँ बँधने लगीं। सामूहिक हिचकियों का स्वर राजमहल को कँपा दे रहा था।

दारुक अर्जुन को अवलम्ब देकर खड़ा कर रहे थे, किन्तु अर्जुन थे कि उठ ही नहीं पा रहे थे। हिल नहीं पा रहे थे। कुछ कह नहीं पा रहे थे। पांचाली भी काँपते हाथों से अर्जुन को खड़ा कर रही थी। दोनों के प्रयासों से अर्जुन को खड़ा किया गया। किन्तु वह दीर्घकाय पुरुषसिंह फिर खड़ा ही रह गया- लुटा-सा।

किन्तु जिह्वा तालु से जैसे चिपक गयी थी। वे एक-एक पग उठा रहे थे जैसे स्वप्न में चल रहे हों। जैसे जल में प्रबल वेगवान प्रवाह के कारण चरण न उठ पा रहे हों। बोझिल। महाबोझिल पग। दारुक ने द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण का रथ समक्ष किया। अर्जुन को चढ़ाया। श्वासरोधक निस्तब्धता में व्याकुल जनसमूह ने अर्जुन को मूक विदा दी। वे निष्प्राण से रथ में बैठ गये, खोये हुए से। समेट भी लिया अपनी लीलाजाल। ओ लीलामय। कातर हृदयस्पर्शी पुकार के साथ पांचाली वेग

से क्रन्दन कर उठी। हस्तिनापुर रो पड़ा। समूची पृथ्वी रो रही थी। समूची सृष्टि रो रही थी।

जब पाण्डवोंने यह समाचार सुना कि यदुवंशी आपसमें मुसलोंकी मारसे नष्ट हो गये और उनका संहार हुआ तो पाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ। अर्जुनको यह सुनकर विश्वास ही नहीं हुआ। वे तुरन्त दारुकसे समाचार पाकर अपने मामा वसुदेवसे मिलने के लिये द्वारिका चले गये। द्वारिका पहुँचनेपर अर्जुन ने देखा कि द्वारिका नगरी विधवा स्त्रीकी भाँति श्रीहीन हो रही है। श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियां अर्जुनको देखकर बिलख-बिलखकर रोने लगी। उनका आर्तनाद बहुत बढ़ गया। द्वारिकाकी यह दुरवस्था देखकर अर्जुन भी फूट-फूटकर रोने लगे। सत्यभामा, रुक्मिणी आदि पट्टरानियाँ भी अर्जुन के निकट बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ी। तत्पश्चात् अर्जुन के होश आनेपर कृष्णके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए उन दु:खिनी स्त्रियोंको समझा-बूझाकर सांत्वना दी। इसके बाद वे अपने मामा वसुदेवसे मिलने के लिये उनके महल में गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा महात्मा वसुदेव पुत्रशोक से विह्वल होकर पृथ्वीपर पड़े हुए। अर्जुन ने उन्हें उठाकर होश में लाये। वसुदेव बोले अर्जुन जिन वीरोंने सैकड़ों दैत्यों और राजाओंपर विजय प्राप्त की उन्हें मैं आज नहीं देख पा रहा हूँ। तुम्हारे प्रिय शिष्य सात्यकि जिनका तुम बहुत सम्मान किया करते थे तथा तुम जिसको अतिरथी मानते थे और प्रशंसा करते थे वे प्रद्युम्न और सात्यकि इस समय वृष्णिवंशियोंके विनाश का प्रधान कारण हुए है। वास्तवमें ऋषियोंका शाप ही इस सर्वनाशका प्रधान कारण है। जिस जगदीश्वरने केशी, कंस, चेदिराज, शिशुपाल, निषादराज, एकलव्य, कलिंग, मागध, गांधार, काशिराज तथा मरुभूमिके राजाओंको भी यमलोक भेज दिया जिन्होंने पूर्व, दक्षिण तथा पर्वतीय-प्रान्तके नरेशोंका संहार किया, उन्हीं मधुसूदनने बालकोंकी अनीतिके कारण यह संकट उत्पन्न हुआ। तुम, देवर्षि नारद और अन्य महर्षि भी श्रीकृष्णको सनातन परमेश्वर जानते हैं। वे ही परमात्मा अपने परिवार का वध चुपचाप देखते रहे और उदासीन बने रहे। वही परमात्मा मेरे पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए तथा गांधारी तथा ऋषियोंके शापको अन्यथा करना नहीं चाहा। अर्जुन पौत्र परीक्षित अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से मारा जाकर भी श्रीकृष्णके प्रभावसे जीवित हो गया यह तो तुम लोगोंकी आँखों देखी घटना है। इतने शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे सखा कृष्णने अपने कुटुम्बियोंकी रक्षा नहीं की। कृष्णने मुझसे कहा, पिताश्री अर्जुन हस्तिनापुर से आयेंगे और द्वारिका के बालकों और स्त्रियोंकी रक्षा तथा मृतकोंका और्ध्वदैहिक संस्कार भी वे करेंगे। अर्जुन के यहाँसे जाते ही समुद्र इस द्वारिका नगरी को डूबो देगा। श्रीकृष्ण ऐसा कहकर मुझे यहाँ इन स्त्रियोंके पास छोड़कर किसी अज्ञात दिशा को चले गये। मेरी भूख बन्द हो गयी। मुझसे भोजन नहीं होता अब मैं न तो भोजन ही करूँगा और न ही जीवन को धारण करूँगा। अब तुम आ गये हो वह सब करो जो श्रीकृष्ण कह गये हैं। यह राज्य, ये स्त्रियाँ और ये रत्न सब तुम्हारे अधीन है। अब मैं अपने प्राणों का परित्याग करूँगा।

अपने मामा वसुदेव की बात सुनकर अर्जुन बोले, मामाजी। अब यह कृष्ण बिना सूनी पृथ्वी मुझसे नहीं देखी जायगी। राजा युधिष्ठिर, आर्य भीम, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी भी इस धरा पर नहीं रह सकेंगे। लगता है राजा युधिष्ठिरके भी परलोक-गमनका समय आ गया है। अब मैं वृष्णिवंशकी स्त्रियों, बालकों, बूढ़ों को अपने साथ लेकर जाऊँगा। यह कहकर अर्जुनने दारुकसे कहा, रथ तैयार करो और चलने की तैयारी करो। उन्होंने द्वारिकावासियों से कहाँ तुम सब लोक इस नगर को छोड़कर मेरे साथ चलो क्योंकि समुद्र अब इस नगरको डूबो देगा। आज के सातवें दिन के पहले हमें इस नगर से बाहर हो जाना है। वहाँ इन्द्रप्रस्थ पहुँचनेपर श्रीकृष्णका पौत्र वज्रनाभ तुम्हारा राजा होगा। अर्जुनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर सब अपने जान की रक्षा के लिए उत्सुक होकर तैयारियाँ करने लगीं। दूसरे दिन प्रात: ही महातेजस्वी वसुदेवजीने अपने चित्तको समाहित करके योगके द्वारा अपने प्राणोंकी आहुति देकर उत्तम गति प्राप्त की। अर्जुन ने उनके अन्त्येष्टि की क्रिया की। देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा उनके शवके साथ सती होकर पतिलोक को प्राप्त हुई। अर्जुन ने अन्य मृतकोंका जो

कलह के कारण मर गये थे उन सबकी अन्त्येष्टि कर्म किये और जलांजलि दी। उन सबका विधिवत् प्रेतकर्म करके अर्जुन रथमें सवार हो तुरंत द्वारिका से चल दिये। उनके साथ घोड़े, स्त्रियाँ, बालक रत्न और अन्य सामग्री साथ में थी। उन सबके निकल जानेपर समुद्रने रत्नोंसे भरी हुई द्वारिका नगरी को अपने जलमें डुबो दिया। दैवकी लीला अद्भुत है। अर्जुन रमणीय काननों, पर्वतों और नदियोंके तटपर निवास करते हुए यदुवंशकी स्त्रियोंको ले जा रहे थे। चलते-चलते वे अत्यन्त समृद्धिशाली पञ्चनद देश में जा पहुँचे और अर्जुन ने वहीं पड़ाव डाला। इतने बड़े समुदाय को जाते देख वहाँ के भीलों और लुटेरों के मन में लोभ पैदा हुआ। वे सब आभीर जातिके थे। वे मन में लूटमार करका निश्चय करके वृष्णिवंशियों के समुदाय पर एक समूह में टूट पड़े और अपने महान सिंहनाद से लोगोंको डराते हुए मार डालनेको और लूटनेको उतारू हो गये। उस समय अर्जुन बोला, हे पापियों। यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ वरना मेरे गाण्डीव से विदीर्ण होकर तुम सब मारे जावोगे। अर्जुन के ऐसा कहनेपर भी लुटेरोंने उनपर कोई ध्यान नहीं दिया। अर्जुन ने अपना गांडीव चलाया किन्तु उनके अस्त्र-शस्त्र और गाण्डीव कुछ भी करने में समर्थ नहीं थे। यह देखकर अर्जुन बड़े लज्जित हुए। उन डाकूओं ने स्त्रियोंको तथा धन-धान को लूट लेकर चले गये। तभी अर्जुन उद्विग्न हो उठे। वे शोकसंतप्त हुए। अर्जुन ने इसे दैव का विधान ही समझा और दु:खशोक में डूबकर लम्बी-लम्बी सांस लेने लगे। अस्त्रोंका ज्ञान लुप्त हो गया। भुजाओं में पहले जैसी शक्ति नहीं रही और फिर उदास मनसे बचे-खूचे सामान और स्त्रियोंके साथ कुरुक्षेत्र पहुँचे। इसप्रकार वृष्णिवंशियोंके शेष परिवारको ले आकर अर्जुनने उनको जहाँ-तहाँ बसा दिया। कृतवर्माके पुत्रको मार्तिकावत नगरका राज्य दे दिया और भोजराजके परिवार को वहाँ छोड़ दिया। अन्य स्त्रियोंको लेकर वे इन्द्रप्रस्थ को लेकर आये और उनको वहाँका निवासी बना दिया। सात्यकिके पुत्रको सरस्वतीके तटपर सारस्वत देश का राजा बनाया। और वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ का राजा बना दिया। रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती तथा जाम्बवती देवी ये अग्निमें प्रवेश कर गयीं। श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा तथा अन्य देवियाँ तपस्याका निश्चय करके वनमें चली गयी। इसप्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन महर्षि व्यासके आश्रमपर आये और व्यासजीसे बोले मैं अर्जुन हूँ मेरा प्रणाम स्वीकार करें। अर्जुन का चित अशान्त था।

महर्षि व्यास बोले, पार्थ क्या बात है तुम्हारे ऊपर नख, बाल अथवा अधोवस्त्रकी कोर पड़ जानेसे अशुद्ध हुए घड़ेका जल तो नहीं पड़ गया है? या तुमने किसी रजस्वला स्त्रीसे समागम या ब्रह्महत्या तो नहीं की है? कहीं युद्धमें किसीसे परास्त तो नहीं हो गये? ऐसे श्रीहीन क्यों दिखायी दे रहे हो?

तब अर्जुनने कहा, भगवन्। जिनका सुन्दर विग्रह मेघके समान श्याम और नेत्र कमलदलके समान विशाल थे, वे श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ परम धामको चले गये। ब्राह्मणोंके शापसे मूसल-युद्धमें वृष्णिवीरोंका विनाश हो गया। प्रभासक्षेत्रमें उनका रोमाञ्चकारी संग्राम हुआ था। महाबली भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशी वीर आपसमें ही लड़कर मर मिटे हैं। समयका उलट-फेर तो देखिये, जिनकी भुजाएँ परिघके समान थीं तथा जो गदा, परिघ और शक्तियोंकी चोट सह लेनेवाले थे, वे ही एरका नामक घाससे मारे गये? उन अनन्त तेजस्वी वीरोंके विनाशका दु:ख मुझसे किसी तरह सहा नहीं जाता। यदुवंशियोंके संहारकी बात सोचकर तो मुझे ऐसा जान पड़ता है मानो समुद्र सूख गया, पर्वत हिलने लगे, आकाश टूट पड़ा और अग्निमें शीतलता आ गयी। यह घटना विश्वासके योग्य नहीं है, फिर भी सत्य है। इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। पञ्चनद देशके निवासी आभीरोंने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते वृष्णिवंशकी हजारों स्त्रियोंका अपहरण कर लिया। वहाँ मेरे पास धनुष था, तो भी मैं उसका संधान न कर सका। मेरी भुजाओंमें पहले जो बल था, वह अब नहीं रहा। मेरा नाना प्रकारके अस्त्रोंका ज्ञान विलुप्त हो गया। मेरे सभी बाण क्षणभरमें

नष्ट हो गये। जिनका स्वरूप अप्रमेय है, जो शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले, चतुर्भुज, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर तथा कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले हैं, जो परम पुरुष गोविन्द अपनी अनन्त प्रभाका प्रसार करते हुए मेरे रथके आगे-आगे चलते और शत्रुसेनाको भस्म किये डालते थे, वे अब मुझे नहीं दिखायी देते। उनका दर्शन न मिलनेसे मुझे बड़ा दु:ख हो रहा है, मस्तिष्कमें चक्कर आता है, चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो गया है, एक क्षणके लिये भी शान्ति नहीं मिलती। वीरवर जनार्दनके बिना अब मैं जीवित नहीं रह सकता। उनका अन्तर्धान सुनकर मुझे दिग्भ्रम हो गया है। मेरे भी कुटुम्बका नाश तो हो ही चुका था, मेरा पराक्रम भी नष्ट हो गया। अब शून्यहृदय होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। अत: आप कृपा करके यह उपदेश दें कि मेरा कल्याण कैसे होगा।

महर्षि व्यास बोले, कुरुश्रेष्ठ। वृष्णि और अन्धकवंशके महारथी ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध होकर नष्ट हुए है। तुम उनके लिये शोक न करो। उनकी ऐसी ही भवितव्यता थी। यद्यपि श्रीकृष्ण उनके इस संकटको टाल सकते थे, तथापि उन्होंने इसकी उपेक्षा कर दी। श्रीकृष्ण तो तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्राणियोंकी गतिको पलट सकते हैं; फिर यादवोंपर पड़े हुए शापको अन्यथा करना उनके लिये कौन बड़ी बात थी? जो स्नेहवश तुम्हारे रथके आगे चलते थे (सारथीका काम करते थे) वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं, साक्षात चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि नारायण थे। वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारकर अब अपने परमधामको चले गये। महाबाहो। तुमने भी भीम और नकुल-सहदेवकी सहायतासे देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया है। मेरी समझमें अब तुमलोगोंने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है। तुम्हें सब प्रकारसे सफलता प्राप्त हो चुकी है। अब तुम्हारे परलोकगमनका समय आया है और यही तुमलोगोंके लिये श्रेयस्कर है। जब उद्धवका समय आता है तो इसी प्रकार मनुष्यकी बुद्धि, तेज और ज्ञानका विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है तो इन सबका नाश हो जाता है। काल ही इन सबकी जड़ है। संसारकी उत्पत्तिका बीज भी काल ही है। तुम्हारे अस्त्रशस्त्रोंका प्रयोजन भी पूरा हो चुका है; इसलिये वे जैसे मिले थे, वैसे ही चले गये। अब तुमलोगोंके उत्तम गति प्राप्त करनेका समय उपस्थित है। व्यासजीके ऐसा कहनेपर अर्जुन उनकी आज्ञा से हस्तिनापुर चले गये और वहाँ युधिष्ठिरको यादवोंके संहार का पूरा वृत्तान्त सुनाया।

उस दिन हस्तिनापुरी काँप उठी। राजप्रसाद डोल गया। भित्तियाँ आघात से चटक उठीं। पृथ्वी का मर्मस्थल विदीर्ण हो गया। आकाश के कन्धे झुक गये। नतमस्तक हो वह अश्रुपात कर उठा। शाखाओं ने शोकमग्न हो सिमटकर मुँह ढाँप लिये। वृक्षों से अश्रु झर उठे। किन्तु- उस दिन हस्तिनापुर में कोई भूकम्प नहीं आया था। चक्रवात भी नहीं आया था। झंझा भी नहीं। प्रभंजन नहीं।

इति मौसलपर्व

आना है तो आ राह में कुछ फेर नहीं है, भगवान के घर देर हैं, अंधेर नहीं है।
जब तुझसे न सुलझे तेरे उलझे हुए धंधे, भगवान के इंसाफ पे सब छोड़ दे बंदे।
खुद ही तेरी मुश्किल को वो आसान करेगा, जो तू नहीं कर पाया वो भगवान करेगा।
कहने की जरूरत नहीं आना ही बहुत है, इस दर पे तेरा शीश झुकाना ही बहुत है।
जो कुछ है तेरे दिल में वो उसको खबर है, बंदे तेरे हर हाल पे मालिक की नजर है।
बिन माँगे भी मिलती है यहाँ मन की मुरादें, दिल साफ हो जिनका हो वो यहाँ अपने सदा है।
मिलती है जहाँ न्याय वो दरबार यही है, संसार की सबसे बड़ी सरकार यही है।

महाप्रस्थानिक पर्व

कृष्ण का महाप्रयाण हो गया। एक महायुग का अवसान हो गया। अर्जुन शक्तिहीन और द्रौपदी प्राणहीन हो गई। सोचा- काल ही बली है। उससे बचने की शक्ति किसी में नहीं। घोर कलियुग कृष्ण के महाप्रयाण की मानो प्रतीक्षा कर रहा था। कलियुग आरम्भ होने के बाद अहिंसा और धर्म के अवतार युधिष्ठिर को लगा, महाप्रस्थान का समय आ गया है। अब राजसिंहासन के वे अयोग्य हो गए हैं। नहीं, कलियुग में राज-सिंहासन पर न्यायपरायण युधिष्ठिर नहीं टिक सकते। यही जटिल समस्या थी द्रौपदी के आगे।

सिंहासन पड़े रहते हैं राजा बदल जाते हैं। आदमी आता-जाता है और महाकाल का प्रवाह चलता रहता है। कृष्ण बिना पांडव वैसे ही हैं जैसे न्याय बिना धर्म। सब जान गए कि युधिष्ठिर का सिंहासन त्यागने का समय आ गया है।

परन्तु अर्जुन जो संवाद लेकर आये, उस घटना का वर्णन क्या द्रौपदी कर पायेगी? सिर पर आकाश टूट पड़ा। पांवों तले से धरती ही खिसक गई। अत्यधिक सुरापान कर आपस में कलह करने लगे, इसी में यदुकुल ध्वंस हो गया। बलराम ने मृत्यु वरण की है। जारा शबर के शराघात से कृष्ण वासुदेव ने यह नाशवान काया त्याग की है। कृष्ण एवं बलराम का अन्तिम संस्कार कर कृष्ण के पोते वज्र को लेकर लौट आये हैं अर्जुन।

पुत्रहीन, मित्रहीन जीवन के छत्तीस वर्ष का राज्यशासन युधिष्ठिर के लिए अपने किए कर्मों का अभिशाप था। हर पल हस्तिनापुर की विधवा, पुत्रहीन रमणियों की विषादपूर्ण अभियोग भरी दृष्टि उनका तिरस्कार करती लगती- ये हैं वे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर। द्यूतक्रीड़ा के वश होकर राज्य एवं स्त्री को खो दिया और युद्ध की नींव डाल दी। अंत में सब-कुछ गंवाकर राज्य भोग रहे हैं। अगणित निरीह प्रजा के दु:ख के कारण हैं महाराज युधिष्ठिर।

धर्मराज युधिष्ठिरने बहुत दिनोंतक पृथ्वीपर राज्य किया। बड़े-बड़े यज्ञ, दान, व्रत आदि करते रहे। कुटुम्बमें पूर्णत: शान्ति थी, प्रजा सुखी थी, न आधि थी न व्याधि। धर्मराजके राज्यमें इस प्रकार धर्म-संस्थापन हो गया था कि लोगोंको सत्ययुग-सा प्रतीत होता था। दुराचारी, व्यभिचारी, चोर, डाकू आदिका अभाव-सा हो गया था। राज्यके किसी अङ्गमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं थी। सभी अपने-अपने कर्त्तव्यपालनमें तत्पर थे। द्रौपदी घरके काम-काजके साथ-ही-साथ राज्यके सभी विभागोंपर दृष्टि रखती थी। उसपर राज्यका भार छोड़कर युधिष्ठिर तो निश्चिन्त-से ही रहते थे। उनके जिम्मे केवल एक ही काम था- दान करना। वे बस, दान ही करते रहते थे।

हस्तिना के राजा बने अर्जुन के पोते, अभिमन्यु-सुत परीक्षित। इन्द्रप्रस्थ के राजा बने कृष्ण के पोते वज्र। दोनों सखाओं के अन्तिम वंशधर दोनों पोतों को राज्यभार सौंपकर युधिष्ठिर निश्चिंत हो गए।

सुभद्रा पर उनका दायित्व डाल दिया। युधिष्ठिर की इच्छा का पालन कर द्रौपदीने पंचपतियों के साथ स्वर्गारोहण के लिए हिमालय की यात्रा की।

युधिष्ठिरने युयुत्सु को बुलाकर उसे सम्पूर्ण राज्यकी देखभालका भार सौंप दिया और अपने राज्यसिंहासनपर परीक्षितका अभिषेक किया। इसके बाद वे अत्यन्त दुखी होकर सुभद्रासे बोले, हे पुत्री। यह तुम्हारा पौत्र परीक्षित कौरवोंका राजा होगा और यदुवंशियोंमें जो लोग बच गये हैं, उनका राजा श्रीकृष्णका पौत्र वज्रनाभ होगा। परीक्षितका राज्य हस्तिनापुर में होगा और वज्रका इन्द्रप्रस्थ में। तुम्हें राजा वज्रनाभ की भी रक्षा करनी है। फिर युधिष्ठिरने द्वैपायन व्यास, नारद, मार्कंडेय, भारद्वाज और याज्ञवल्क्यको यत्नपूर्वक़ बुलाकर उन्हें स्वादिष्ट अन्नका भोजन कराया। भगवानका नामकीर्तन करते हुए उन्होंने उत्तम ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, वस्त्र, ग्राम, घोड़े और रथ प्रदान किये। इसके पश्चात् गुरुवर कृपाचार्यकी

पूजा करके नगरवासियोंसहित परीक्षितको उनकी सेवामें सौंप दिया। और समस्त प्रजा को बुलाकर अपना महाप्रस्थानविषयक विचार बतलाया। उनकी बात सुनते ही नगर और प्रांतके लोग उद्विग्न हो कह रहे महाराज, आप ऐसा न करें हमें छोड़ कर न जायँ। धर्मात्मा युधिष्ठिरने उन्हें समझा-बूझाकर राजी किया फिर युधिष्ठिरने अपने आभूषण उतारकर वल्कलवस्त्र धारण किया। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा यशस्विनी द्रौपदी देवीने भी ऐसा ही किया। सबने वल्कलवस्त्र धारण किये। युधिष्ठिरके साथ उनके चारों भाई, द्रौपदी और एक कुत्ता ये सब साथ-साथ चले। नागकन्या उलूपी गंगामें प्रवेश कर गयी। चित्रांगदा मणिपुरमें चली गयी तथा शेष माताएँ परीक्षितके साथ हस्तिनापुर लौट आयीं। महाराज युधिष्ठिर पूर्व दिशा की ओर चले। वहाँ पहुँचनेपर अग्निदेव सामने मिले और बोले महाबाहु युधिष्ठिर, मैं अग्नि हूँ। नर और नारायण के स्वरूप कृष्ण और अर्जुन ने खांडव वन को जलाया था और मैंने उसे गाण्डीव धनुष प्रदान किया। अब इस गाण्डीव धनुष की कोई आवश्यकता नहीं है। यह मैं वरुण से माँगकर लाया था अब पुन: इसे वरुणको ही वापस कर देना चाहिए। सभीने अर्जुनको धनुष त्यागने के लिये कहा। अर्जुनने अग्निकी बात मानकर धनुष और तरकस अग्निदेवको सौंप दिये और उत्तर दिशाकी ओर यात्रा की।

श्वेत हिमाच्छादित विराट पर्वत समूह। अनन्त विस्तार था शैलराज हिमालय का। अनन्त थी वह हिमपूरित शिखर-श्रृंखला। और चलते जा रहे थे उस पर पाँचों पाण्डुनन्दन एवं उनकी जीवनसंगिनी द्रुपदनन्दिनी।

सबसे आगे थे वयोवृद्ध कृशकाय धर्मराज युधिष्ठिर। उनके साथ-साथ चल रहा था उनका प्रिय स्वामिभक्त एवं धर्मप्राण श्वान। यह श्वान-कुटुम्ब कभी अपने को उऋण न अनुभव कर पाता, सुदूर अतीत में युधिष्ठिर द्वारा उस कुटुम्ब के एक पूर्वज के साथ किये गये उपकार से। इसीलिए इस महाप्रस्थान के दुर्गमतम एवं कठोरतम पथ पर भी वे एकाकी न थे। उनका श्वान, अन्तिम समय तक उनका सहयात्री बना रहा।

उनके पीछे थे भीमकाय भीम, जो वृकोदर जैसे रोचक नाम से भी विख्यात थे। अतुलनीय शारीरिक शक्ति से वे इतने सम्पन्न थे कि उनका वह बल लगभग दानवीय बल लगने लगता था। निर्मम वध करने में उन्हें किंचित् भी संकोच न होता था। और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में यदि अधर्म का भी अवलम्ब लेना पड़ा तो उन्होंने सहर्ष लिया। इसलिए उनके द्वारा किये गये युद्ध एवं वधों में बीभत्सता का प्रदर्शन अवश्य होता था। जरासन्ध एवं कीचक का वध जिस प्रकार किया, उससे देखनेवालों के रोंगटे खड़े हो गये। दु:शासन के रक्त को जिस प्रकार अधरों से छुआकर रक्तपान का अभिनय किया, वह रोमहर्षक था। दुर्योधन की जंघा तोड़ना तत्पश्चात् उस पंगु पड़े हुए राजपुत्र के शीश में पादप्रहार करना उनके असंयम का प्रमाण था। किन्तु वे महावीर थे। निश्छल थे। भय उन्होंने कभी नहीं जाना एवं समस्त पाण्डव-बन्धुओं में सर्वाधिक स्वाभिमानी थे जो अन्याय का निर्भीकता से आजीवन विरोध करते रहे। अब वृद्धावस्था में वृकोदर की शारीरिक शक्ति क्षीण पड़ गयी थी किन्तु उनकी बृहत् काया में कोई विशेष अन्तर न आया था।

तदुपरान्त चल रहे थे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप में अपने शौर्य की दुन्दुभी बजा देनेवाले वीरवर सव्यसाची, जो आजीवन समरत रहे, जो ललित कलाओं के विशारद एवं अत्यन्त भावुक हृदय व्यक्ति थे। उनकी भावुकता उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता सिद्ध होती थी। अन्त तक युद्ध एवं संघर्ष करते-करते वे अत्यन्त दुर्बल हो चुके थे। उस अजेय योद्धा को अन्तिम युदध में पराजय का मुख देखना पड़ा था। द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की देहत्याग के पश्चात् उन ही की आदेशपूर्ति के लिए अर्जुन यदुवंशी महिलाओं को वहाँ से लाने द्वारिकापुरी गये। लौटकर हस्तिनापुर आते समय पंचन क्षेत्र में आभीरों के तुमुल आक्रमण का वे राजशार्दूल सामना न कर सके। श्रीकृष्ण के महावियोग से आतप्त, अनन्य सखा अर्जुन शस्त्र-मन्त्र तक विस्मृत कर गये। विचलित हृदय। शक्ति-शून्य तन। कैसे लड़ते? मन का उत्साह हार चुके थे। मन को हार चुके थे। चेत नहीं था। उनके देखते-देखते यदुकुल की आर्त्तनाद करती अधिकांश नारियों को वे दुर्धर्ष आभीर अपहरण कर ले गये। अर्जुन निरुपाय- असहाय खड़े रह

गये। विकल हो, वे आते ही महामुनि वेदव्यास के चरणों में गिर पड़े अपने पराजय की व्यथा सुनाने। तभी समझ लिया कि अब संसार त्यागने का समय आ गया है। युवराज परीक्षित को हस्तिनापुर के राजसिंहासनपर और वासुदेव के प्रपौत्र अनिरुद्ध-सुत युवराज वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन पर आरूढ़ कर उनका भलीभाँति राज्याभिषेक कर पाण्डवगण सांसारिक दायित्वों से मुक्त हो गये। अर्जुन भग्नहृदय, अशक्त तन से धीमे-धीमे पग बढ़ाते चल रहे थे।

तत्पश्चात् थे नकुल, जो सदा अपने सौन्दर्य एवं सुकुमारता के लिए विख्यात रहे थे। वे सूर्य की प्रखर किरणों की तीक्ष्णता से व्याकुल हो बार-बार छायादार वृक्षों के तले कुछ पल विश्राम करते हुए चल रहे थे। यही स्थिति थी उनके अनुज सहदेव की, जिनका लालन-पोषण अत्यन्त स्नेह में हुआ था और जो माता कुन्ती एवं समस्त अग्रजों के विशेष स्नेह-भाजन रहे थे। वे पर्वतीय जल-स्त्रोतों से बार-बार जल लेकर मुख शीतल करते, आचमन करते, मस्तक पर जल डालते, तब कहीं आगे बढ़ पाते। पाँचों महारथियों के पीछे थी मन्थर गति से चलती तेजमयी महिमामयी महादेवी द्रौपदी जो महाभारती का रूप पा चुकी थी, जिसने सुदीर्घ जीवन-यात्रा में भयंकर उत्थान एवं पतन देखे थे। जो दुर्गम से दुर्गम पथ पर चल चुकी थी बिना धीरज खोये- बिना साहस खोये। जो अपमानों का दंश सह चुकी थी। ताप सह चुकी थी। किन्तु भगवत्कृपा से अतुल साहस भी पाया था उसने।

अनोखे शिल्पकार थे माधव। अद्भुत मूर्तिकार। आघात कर-करके वे अपनी सखी कृष्णा की प्रतिमा गढ़ते रहे थे। काटते-छाँटते उस प्रतिमा को भव्य बनाने में व्यस्त रहे थे। अपनी छैनी-टाँकी से वह दक्ष मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता रहा, अनुपम शिल्प-रचना करता रहा। वह स्वयं भी न समझ पायी कलाकार के उद्देश्य को। माधव ने उसे साधारण नहीं, अपने शिल्प से असाधारण बनाया। नारी न रहने दिया, महारानी बनाया। एक ओर आघात देते, दूसरी ओर प्रेमबिन्दु बरसाते हुए वासुदेव ने अन्ततः उस प्रतिमा को भव्य रूप दे डाला। वासुदेव ने प्रथम उस भारती को गढ़ा, तत्पश्चात् उसे महाभारती के रूप में ढाला। और इस कार्य के लिए अन्तिम आघात करना था बहुत सूक्ष्म किन्तु, ठीक मर्मस्थल पर। और लीलामय ने देह त्याग दी।

प्रतिमा पूर्ण हो गयी। अब सब हो चुका। लीलामय चले गये। समस्त लीला-नृत्य चले गये।

शक्ति क्षीण पड़ती जा रही थी। चढ़ाई विषम होती जा रही थी। निरन्तर कई दिवसों से आहार-निद्रा त्यागे यह महाप्रयाण चल रहा था। जीवन-गिरि न हारी, किन्तु हिमालय की भयावह विराटता से हार चली। चरण प्रकम्पित होते, किन्तु प्रबल इच्छाशक्ति से सम्पन्न द्रुपदनन्दिनी एक-एक पग बढ़ाये जा रही थी। रुकती, श्वास लेती, पुनः बढ़ चलती। श्वास फूल रहा था। उस ऊँची शिला पर किसी प्रकार चढ़ पायी और वहीं खड़ी रह गयी- सुदूर क्षितिज को निहारती।

अनुपम दृश्य था। अलौकिक। दिव्य। अस्ताचलगामी भगवान् भुवन-भास्कर मनोहर छटा बिखेर रहे थे। असंख्य श्वेत हिमकिरीटों की श्रृंखला के मध्य जगमगा रहा था उनका विलक्षण स्वर्ण-किरीट। पंक्तिबद्ध रजत हिम-शिखर प्रतीत हो रहे थे, जैसे असंख्य राजमराल बैठे हों अपनी धवल पाँखें समेटे। और वह स्वर्ण पुरुष उन रजत-ज्योतिर्लिंगों का जैसे केसर कुंकुम से अभिषेक कर रहा था। देवदार के वृक्ष श्रेणीबद्ध खड़े थे जिनके मस्तक एवं याचनारत दोनों फैले हाथों पर वह महादानी जैसे स्वर्ण चूर्ण बिखेरता जा रहा था। सप्त तुरंगवाले सप्तरंगी राजरथ पर आरूढ़ भगवान आदित्य चले जा रहे थे स्वर्णिम मुस्कान बिखेरते- अनन्त की ओर। विश्राम हेतु। विश्राम।

स्वदेह से स्वर्गारोहण भी कम बड़ा प्रलोभन नहीं। प्रलोभन छोड़ दें तो स्वर्गारोहण संभव नहीं। द्रौपदी राज्य, धन, संपद सब छोड़ आयी, परन्तु लोभ कहां छूटा? लोभ को छोड़कर क्या जीवन संभव है।

कौन है मोहमुक्त? द्रौपदी? द्रौपदी के पति? मोहग्रस्त आदमी सदेह स्वर्ग की प्राप्ति कर सकेगा?

मोह आदमी को अन्धा कर देता है। परन्तु राह चलने के लिए कुछ मोह, कुछ फलासक्ति आदमी में जरूरी होती है। अत: वह अन्धे की तरह भले-बुरे का विचार किए बिना राह पर चलता रहता है, ठीक हमारी तरह।

रास्ते पर चलते-चलते द्रौपदी सोच रही है- इस जन्म में क्या पाया? क्या खोया? क्यों आयी थी? मुझसे क्या कार्य साधित हुआ? क्या करना उचित था मेरे लिए?

आहार, निद्रा, मैथुन, राज्यभोग आदि सब तो पाया है जीवन में। फिर भी लगता है जीवन अधूरा रहा। क्या अभाव रह गया। क्यों इतना दु:ख, शोक, दर्द भोगा जीवन में? सोचने लगी, युधिष्ठिर को पति रूप में पाकर कोई भी नारी दु:ख भोगती। और सोचते-सोचते हिमालय की स्वर्णरेणु पर द्रौपदी का पांव फिसल गया।

याज्ञसेनी खो गयी उस दिव्य-दृश्य के स्वर्गिक सौन्दर्य में। आत्मविस्मृत। आत्मलीन। भूल गयी कि वह कहाँ है। कैसी दिव्य निस्तब्धता थी। विराट शान्ति। महाशक्ति। वह विमुग्ध थी। अपलक। विमोहित। मुग्ध नयन उस दृश्य को जैसे अपने में भर लेना चाहते थे। बाँध लेना चाहते थे जैसे। और नेत्र धीरे-धीरे मुँदने लगे। विश्राम। अनन्त विश्राम।

पंचेन्द्रियों की तरह जिन्हें जीवन-भर स्थान दिया- द्रौपदी के जन्म-जन्मांतर के साथी, पंचपति मुड़ कर भी नहीं देखते। सीधे चलते रहे। स्वर्गपथ पर आगे बढ़ते गए। मृत्यु के द्वार पर द्रौपदी अकेली।

सहदेव के कण्ठ से आर्त्त पुकार निकली। महाराज। धर्मराज। यह क्या? रूकें तनिक।

चौंककर नकुल, अर्जुन, भीम ने पीछे देखा। वे सब दौड़ पड़े व्याकुल हो। भीम ने पांचाली को सँभाला, उसका शिर अपनी गोद में रखा। सहदेव एवं नकुल दुकूलों से विजन करने लगे। अर्जुन बैठै रह गये निकट ही निश्चल।

किन्तु युधिष्ठिर नहीं मुड़े। आगे बढ़ते जा रहे थे।

युधिष्ठिर बोले, क्या हो गया जो तुम लोग विचलित हो उठे?

भीम का कण्ठ अवरुद्ध था और बोला, महाराज। हमारी जीवनसंगिनी द्रुपदराजपुत्री देवी याज्ञसेनी, लगता है, अब आगे हमारा साथ न दे पाएगी। ऐसा इस महिमामयी, त्यागमयी वीरांगना ने क्या किया होगा जो दैव उसे पथ में ही अनन्त निद्रा के लिए विवश कर रहे हैं। भीम की आवाज सुनाई पड़ी- भैया। द्रौपदी गिर पड़ी है।

युधिष्ठिर बोले, भीम। याज्ञसेनी के लिए विचलित होने की आवश्यकता नहीं। छोड़ दो उसे। अपने पथ पर अग्रसर हो। ये सब अपने-अपने कर्मों के भोग हैं। द्रुपदनन्दिनी पांचाली पातिव्रत धर्म का आजीवन उल्लंघन करती रही। पाँचों पतियों को समान सम्मान नहीं दे पायी। पांचाली सदा ही अर्जुन में विशेष अनुरक्त रही। सव्यसाची पर विशेष कृपालु रही। उसी पक्षपात के पाप का फल भोगने को आज पथमध्य ही गिर पड़ी है। कठोर वेदनाशून्य स्वर में युधिष्ठिर बोले और निर्विकार-से आगे बढ़ गये। और इस प्रकार स्यात् स्वयं अपनी आजीवन संचित वेदना को अनायास प्रकट कर गये। वह हमसे पहले ही स्वर्ग में पहुँच चुकी होगी। वहाँ पहुँचकर हमारा स्वागत करेगी।

युधिष्ठिर के शब्द गूँज गये- पर्वतों, हिम-शिलाखण्डों, घाटियों और आकाश में। शब्द नहीं, वे कठोर हिम-पाषाण थे। ठण्डे। भावनाशून्य। निर्मम। युधिष्ठिर ने स्थिर स्वर में कहा, द्रौपदी अपने पतन के लिए स्वयं दायी है। अर्जुन को अधिक चाहती थी। यही उसका पाप है। भीम, तुम भी यहीं अपनी गदा रख दो। गदा ही तुम्हारा अहंकार है। स्वर्ग राज्य में अहंकार को कोई स्थान नहीं। मुड़ कर देखो मत, आगे बढ़ते रहो। भीम भ्रातृ-आज्ञा मान अपनी गदा रख आगे बढ़ गए। पांडवों की स्वर्गयात्रा के चिह्नस्वरूप पड़ी रही वह भीम-गदा हिमालय की छाती पर।

वह सचेत थी। उसने सुना- पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये। हा कष्ट। जीवनगाथा के सद्य: यौवन का वह पृष्ठ अचानक खुलकर फड़फड़ा उठा जिसे उसने वर्षों पूर्व अत्यन्त सावधानी से यत्नपूर्वक पलटकर दबा दिया था। अन्तर की

उदास सुप्त नारी अकस्मात् आज पुन: विकल हो रो पड़ी। ईश्वर साक्षी है? किस प्रकार स्वयं से संघर्ष कर-करके उसने तन, मन से पाँचों पतियों की सेवा की है। किन्तु अन्तर की नारी कहाँ जाती गोविन्द?

धर्म की रक्षा के लिए जीवन भर कितनी यातनाएं नहीं सहीं। सोचा था पातिव्रत के कारण और अपने धर्माचरण के बल पर पति संग स्वर्ग जा सकूंगी। पर गिरिराज हिमालय के पाद-देश की स्वर्णरिणु छूते-छूते ही पांव फिसल गए, मैं गिर पड़ी। पांचों पतियों ने मुड़कर भी नहीं देखा। वरन् धर्मराज युधिष्ठिर ने भीम से कहा- मुड़कर न देखो। आगे आ जाओ।

उनकी यही बात मेरे हृदय को टूक-टूक कर गई। सोचा- कितना झूठा है यह पति-पत्नी का संबंध। स्नेह, प्रेम, त्याग और उत्सर्ग। अपने कर्म अगर आदमी स्वयं भोगता है, तो फिर युधिष्ठिर के धर्म की रक्षा के लिए पांच पतियों के चरणों में अर्पित होकर सारी दुनिया का उपहास, व्यंग-विद्रूप और निंदा-अपवाद ढोती क्यों फिरी?

वायुमण्डल में वे शब्द जैसे ठहर गये थे। हिमखण्डों से प्रतिध्वनि आ रही थी। देवदारों से प्रतिध्वनि आ रही थी। पृथ्वी और आकाश दुहरा-दुहराकर वही कह रहे थे। वे शब्द उसके कर्ण-कुहरों में गूँज रहे थे। उनमें जैसे विराट पंख लग गये हों। भयावह पक्षी की भाँति वे शब्द उस पर चारों ओर से फड़फड़ाते और झपटते हुए मँडरा रहे थे।

तो वह पापिनी थी। सती नहीं? सतीत्व की उसकी उच्च परिकल्पना, पतिपरायणता के उच्च आदर्श? हा कष्ट। हा कष्ट। यही तो एकमात्र भूल उससे हुई थी। अबोध मन की एक विवशताभरी भूल कि वह अपने अन्तर की नारी नष्ट नहीं कर पायी। मन में बैठी उस समर्पिता साध्वी आराधिका को मिटा नहीं पायी।

अन्तर की कोमलमना नारी मर-मरकर जी उठती और हृदयद्रावक विलाप कर उठती। यही एकमात्र अपराध। एक अपराध, जिसका दण्ड उसे पथ में गिराकर विधाता ने नहीं दिया, बल्कि जिसका दण्ड उसे आज जाते-जाते सार्वजनिक उद्घोषणा करके धर्मराज युधिष्ठिर ने दे दिया।

भीम का विद्रोही मन व्याकुल हो छटपटा उठा। अहो। इस समय यह कहने की क्या आवश्यकता थी धर्मराज को?

नकुल तर्जनी से अश्रु पोंछते हुए सोच रहे थे। कौन नहीं अवगत इस तथ्य से? किन्तु इस कुवेला में यह अप्रिय प्रसंग उठाकर विदा लेती पांचाली को कष्ट देने से क्या लाभ हुआ। सहदेव साश्रुनयन अपने अंगवस्त्र से द्रोपदी पर विजन करते हुए सोच रहे थे। धन्य हो देवी। विधिवश पाँच पतियों की पत्नी होते हुए भी तुम एक को ही समर्पित रही अन्त तक। नश्वर शरीर पर ही अधिकार हो पाया अन्य पाण्डवों का किन्तु मन पर नहीं। मन एकाग्रचित्त रहा अपने आराध्य के श्रीचरणों में ही। यहीं तुम महासती हो देवी।

तो अर्जुन अभियुक्त थे। अर्जुन नतमस्तक बैठे थे- अभियुक्त बने। अपराधी से। घनी श्वेत भँवों के नीचे छिपे विशाल नेत्रों से अविरल अश्रु-प्रपात हो रहा था- विदा पांचाली। विदा। विदा, देवी करुणामयी। हा कष्ट। हा पांचाली।

पांचाली ने गहन वेदनामयी दृष्टि डाली चारों पतियों पर। धर्मराज युधिष्ठिर के अन्तिम दर्शन चाहकर भी न कर पायी। क्षमा-याचना करना चाहती थी- न कर पायी। और अन्त में उसकी सजल दृष्टि थम गयी अपने गौरव-पुरुष पर।

अहो कष्ट। आजीवन अश्रु बहाने के उपरान्त भी कुछ अमूल्य जो शेष थे। वे अश्रु भी जीवन की अन्तिम साँझ को बह निकले। आजीवन वह सत्य की उपासिका रही। सत्यवादिनी के नाम से विख्यात रही। सत्यवादिनी केनाम से महापुरुषों द्वारा सम्बोधित हुई। तो अन्तिम क्षण में संकोच कैसा? और उसने अपने क्षीण एवं दुर्बल हाथ से अर्जुन का हाथ थामा और हौले से उसे अपने मन्द-स्पन्दित हृदय पर रख लिया। सब ने देखा, भीम, नकुल, सहदेव रो पड़े।

व्यथित अर्जुन और झुक आये- आकाश की भाँति पांचाली पर। उनके शालस्कन्ध झुक आये थे। उन्होंने सुने अन्तिम शब्द- सम्भवामि युगे-युगे और अन्तिम सजल दृष्टि। अन्तिम श्वास। अन्तिम स्पन्दन और उनका हाथ रह गया

एक शीतल, निष्प्राण हाथ में बँधा। उनका हाथ रखा हुआ था एक निस्पन्द हृदय पर।

उनके शालस्कन्ध सहसा वेग से हिलने लगे। पुरुषसिंह रो रहा था। बालक की भाँति अर्जुन रो रहे थे, हिचकियाँ ले लेकर। पुत्रशोक में रोये थे तब उन्हें सँभाला था इसी महानारी के हाथ ने, जो अब जीवनशून्य, निष्प्राण होकर भी उनका हाथ थामे थी। उन्हें धीरज बँधाया था इसी विशाल हृदय ने जो अब स्पन्दनहीन है, निश्चल है। पुरुषसिंह रो रहा था।

ठीक इसी जगह मां कुंती, गांधारी, पिता धृतराष्ट्र, महात्मा विदुर ने भी जीवन के अन्तिम दिन बिताये थे, वहीं पड़ी थी द्रौपदी। आगे भरत मन्दिर दिख रहा है। रामचन्द्र के परमभक्त आज्ञाकारी लघुभ्राता भरत इसी राह से हिमालय के निभृत प्रदेश की ओर तपस्या के लिए गए थे। अरण्यवास के समय युधिष्ठिर ने यह मन्दिर बनवाया था। आज भरत मन्दिर में प्रणाम कर पांचों द्रौपदी को पीछे छोड़ चल पड़े।

अहंकार स्वर्गद्वार का पथावरोध करता है। कोई इस संसार में अहंकार-शून्य हो सकता है? कल द्रौपदी भी हस्तिना की राजरानी थी। पिता, पुत्र, भाई, बंधु, सबका उत्सर्ग कर द्रौपदी ने राजरानी पद पाया। मन में अहंकार नहीं होगा, यह कैसे कह सकती है? जिस जीवन में अहंकार के लिए काफी गुंजाइश थी, वह जीवन भी द्रौपदी को संपूर्ण नहीं लगा। आज मृत्युपथ पर अकेली पड़ी है। अहंकार जरूर दूर हो गया है। मगर असहायता पूर्णत: ग्रसने बैठी है। असहायता द्रौपदी के अन्दर हीनता की भावना भर रही है। आज उपलब्ध कर रही है कि जीवन सिर्फ अहंकार नहीं है, और न केवल असहायता से भरा है। इन दोनों के बीच ही जीवन का निर्झर बहता रहता है। जीवन में अहंकार एवं असहायता दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सिर्फ अहंकार आदमी को अन्धा बना देता है। जबकि असहायता उसमें हीनता भर देती है। परन्तु अहंकार और असहायता-बोध यदि क्षुद्र न होकर महान हो तो जीवन सार्थक हो जाता है। आदमी जब सोचता है कि प्रभु। मैं आपकी ही सृष्टि हूं, इसीसे मेरा अहंकार है। फिर वह जब सोचता है कि मेरी सारी शक्ति, सहायता आप ही हैं, तब आदमी की आत्मा ऊर्ध्वगामी हो जाती है, स्वर्ग का द्वार आदमी की आत्मा के लिए उन्मुक्त हो जाता है।

आज द्रौपदी भी अपना अहंकार और असहायता आपको अर्पण कर महान हो रही है। आपके बिना आदमी का अहंकार और असहायता दोनों अर्थहीन हैं, विफल हैं। आकाश झुका आ रहा था। अन्धकार झुका आ रहा था। सूर्य अस्त हो चुका था। दीर्घकाल देवदार शान्त खड़े थे- मौन श्रद्धांजलि अर्पित करते से। ज्योति बुझ गयी थी। जीवन की ऊष्मा तिरोहित हो चुकी थी और शेष था केवल शीत। कठोर शीत। हिमालय पर कँपकँपीवाला पाषाण-हृदय शीत उतर आया था।

धर्मराज युधिष्ठिर का धर्मपूरित, भावशून्य, कठोर आदेश सुदूर एक शिलाखण्ड से गूँजता आया। भीम। तुम आओ। आगे बढ़ो। किसी के लिए भी पथ विचलित होना उचित नहीं है। भीम ने पहली बार अवज्ञा की अपने अग्रज की। नकुल ने भी की। सहदेव ने भी की। वे अर्जुन को उस कातर अवस्था में कैसे छोड़ देते? अर्जुन ने धर्मराज के लिए क्या नहीं किया था? नकुल ने व्याकुल स्वर से कहते हुए अर्जुन की पीठ पर धीमे से हाथ रखा और बोले, उठें तात। अन्धकार हो गया।

अन्धकार। हाँ अन्धकार। वास्तव में अन्धकार।

भीम ने अपनी बलिष्ठ भुजा से शिथिल तन, विकल-मन अर्जुन को बलपूर्वक उठाया और ले चले सुदूर अनन्त की ओर। पार्थ। हमें अभी आगे चलना है। त्यागमयी इस महाभारती ने हमारा संग छोड़ दिया है अब। किन्तु तुम उठो भारतश्रेष्ठ। कुछ समय पश्चात् वहाँ कोई भी न था।

केवल था भीषण, कठोर शीत में आवृत तिमिराच्छन्न विराट, विहंगम अद्भुत हिमालय-प्रान्त।

किसका है यह मधुर वंशीस्वर। रक्त रिसते अन्त:करण को पवित्र कर रहा है, भावों का निर्झर बहा रहा है। कानों में कोई गुनगुना रहा है- जीवन भोग के लिए नहीं, भाव के लिए हैं। कौन द्रौपदी को राह दिखा कर भोग के जीवन से भाव के जीवन

की ओर खींच रहा है? पुकारता है- आओ आओ मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कौन है यह अदृश्य साथी? क्या माया है?

नहीं। माया तो कब की फिसल कर गिर पड़ी थी- उसकी वहीं मृत्यु हो गई। हिमालय के इस गंगाद्वार का नाम है, मायापुरी। यहां पांव रखते ही माया लीन हो जाती है। द्रौपदी अब मायामुक्त है। इतने दिन तक माया ही द्रौपदी को बंधन में रखे थी। शोक, दु:ख लांछना में छटपट करती रही। और उस मोहिनी माया को न पहचान कर कहती हे सखा कृष्ण। आप ही मुझे दु:ख दे रहे हैं। सच, आपको न पहचानने पर कितना कष्ट सहना पड़ा। मेरा क्या कसूर? जब भी स्वयं को मिटा देने आपकी ओर मन किया, माया ने राह रोक ली। मेरे मन को निम्नमुखी बना दिया। जीवन से आज मृत्यु अधिक सुखकर लगती है। क्योंकि जीवन मायाग्रस्त था, मृत्यु मायामुक्त कर रही है।

जीवनभर मांगती रही- दो, दो, सुख दो, ऐश्वर्य दो, संसार के भोग दो। सब दिया-संसार के सारे दु:ख भी खुलकर द्रौपदी के आंचल में डाल दिये। आज मांग रही हूं कुछ और- मुझे ले लो, ले लो, हे कृष्ण। मुझे समाप्त कर दो, नि:शेष कर दो। अविभाज्य कर दो। तुमसे जो विभक्त नहीं होता, वही तो भक्त है। मैं क्या आपकी भक्त नहीं? यह बात क्या इन्कार कर सकेंगे, हे सखा?

सखा प्रियतम। मैं अपने लिए कुछ नहीं मांगूंगी। इस अपनी सुन्दर पृथ्वी के लिए मांग रही हूं- इस जन्म की अन्तिम भिक्षा। तुम भगवान हो। तुम्हारे पास कुछ अदेय नहीं। जो मांगूंगी, क्या नहीं देंगे?

पहले मांगती हूं- हे कृष्ण वासुदेव। मेरे जीवन में जो हो गया, किसी और नारी के जीवन में न हो। कभी कोई नारी एक-साथ एकाधिक पति न रखे, ऐसा विधान कर दो। स्वयं को अविभक्त कर विभक्त होने का दु:ख जानती हूं।

मेरी दूसरी मांग- दयामय कृष्ण। शत्रु को भी पुत्रशोक न देना। इससे बढ़कर दूसरा शोक संसार में कुछ नहीं। मुझसे बढ़कर इसे कौन जानता है?

तीसरी बात- सभा में जो यातना मुझे दी गई, वैसी यातना पृथ्वी पर किसी नारी को न मिले। नारी को रूपवती करो, पर पुरुष को ऐसा कामुक न करो।

चौथी बात मांगती हूं- यह, जगत के लिए, कलियुग के आगामी वंशधरों के लिए। हे परमकल्याणकारी कृष्ण। मैंने एक समर सहा है। धरती माता का विलाप मेरा जननी हृदय अभी-भी सुन पाता है। अत: अनुरोध है- जाति, धर्म, भाषा, वर्ण के कारण हस्तिना और इन्द्रप्रस्थ की तरह कोई देश टुकड़े-टुकड़े न हो जाय। आपकी सृष्टि का वैचित्र्य है वैषम्य- इसके कारण देश की अखंडता, एकता, पवित्रता नष्ट न होने पाये। विश्व के सारे वैषम्य के बावजूद महासमर धरती पर कभी न हो। महासमर का परिणाम भोग चुकी हूं। समर में जूझते दोनों पक्ष क्षतिग्रस्त होते हैं। जेता और पराजित दोनों बंधु-रहित हो जाते हैं। सभ्यता, संस्कृति, धन, जीवन का लोप हो जाता है।

महर्षि व्यास से सुना है आज से पांच हजार वर्ष बाद कलिकाल में आदमी सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान की चरम उन्नति कर लेगा। विज्ञान के बल पर वह ग्रह-ग्रहांतर से मैत्री कर लेगा। तब यदि क्षमता-पिपासु आदमी सूझबूझ की गलती से महासमर ठान लेगा, तो उसी विज्ञान का आयुध लेकर कैसी भयावह स्थिति हो जाएगी। हे विपदबंधु कृष्ण। सृष्टि का नाश होने पर आप ही नूतन सृष्टि और सभ्यता के लिए श्रम करोगे। हे सृष्टिकर्ता। अत: जैसे द्वापर में शांतिस्थापना के लिए हस्तिना गए, वैसे पहले से ही सावधान करने के लिए कलियुग के चिंतनशील लोगों के कान में मोहन वंशी-स्वर से क्यों नहीं कह देते- शांति। शांति। शांति।

आपका शांति संगीत विफल होने पर आपको ही बाध्य होकर फिर पृथ्वी पर उतरना होगा। दो मार्ग हैं आपके- शांति, नहीं तो संहार। पृथ्वी पर यह भंगुर काया लेकर जन्म लेने का दु:ख अच्छी तरह अनुभव कर चुके हैं। अत: शांति मार्ग ही क्यों नहीं

चुनते? सृष्टि के कल्याण के लिए राष्ट्रीय ऐक्य, विश्वमैत्री मेरी चौथी मांग है। पंचम बात मांगती हूं- सखा। पंचपति की नायिका पांचाल देश की राजकुमारी, पंचपुत्र की जननी मैं पांचाली हूं। पांचवीं मांग पर पूरी करूंगी अपनी पंचभूत की काया का अन्तिम पर्व। अन्तिम बात क्या होगी? मोक्ष? स्वर्ग? मुक्ति? यही तो जीवात्मा की मांग है। परन्तु मेरी मांग उलटी है।

मैं मोक्ष नहीं चाहती। स्वदेह से स्वर्ग नहीं मांगती, मुक्ति भी नहीं। मैं तो पुनर्जन्म चाहती हूं। आश्चर्य हो रहा है सखा। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। वह देवों की वासस्थली है। स्वदेह में कोई स्वर्गारोहण करता है तो वह होंगे युधिष्ठिर। क्योंकि धार्मिक होते हुए भी वे आदमी के प्रति निष्ठुर हैं। आदमी से अधिक वे देवता हैं। पृथ्वी से दूर जाकर स्वर्ग पाने के लिए उनकी जीवन-भर की साधना है। मेरे अन्य पति एक-एक साधारण आदमी हैं। वे जरूर एक-एक कर फिसल कर गिरेंगे। स्वदेह से स्वर्ग पाने का कष्ट भोगने की अपेक्षा अपनी जन्मभूमि मर्त्यलोक को स्वर्ग भुवन में परिणत करने की चेष्टा करना ज्यादा श्रेयस्कर होगा।

सखा। इस जन्म में अनेक त्रुटियां हुईं। न्याय पाने के लिए ही हो, चाहे, मैंने युद्ध चाहा, प्रतिहिंसा का मौका ढूंढा। युद्ध के लिए पतियों को उत्साहित किया। आज सोचती हूं यदि शांति स्थापना का शुरू से ही प्रण करती तो आर्यावर्त्त के निरीह नर-नारी जी सकते थे।

इस जन्म की त्रुटियों के लिए पुन: जन्म दो, और इसी पवित्र भारत-भूमि पर जन्म दो। जहां पर क्षणभंगुर देह लेकर आपने जन्म लिया। भारत की आत्मा कृष्णमय, आनन्दमय, प्रेममय है। प्रेमपूर्ण हृदय ही ऐसी कृपा का आधार है। आदमी से घृणा कर ईश्वर से प्रेम नहीं किया जा सकता। अत: हे प्रेमिकशिरोमणि। मुझे प्रेमिका का जन्म देना। मुझे कृष्णप्रेमिका एवं विश्वप्रेमिका का बार-बार जन्म देना।

मैं समझ रही हूं महाभारत की कृष्णचेतना। आध्यात्मिकता और धर्मभाव सारे विश्ववासियों की चेतना को स्पर्श करेगा। सारा विश्व कभी होगा कृष्णचेतनामय। कृष्ण का अर्थ है अंधकार। अंधकार ही आलोक का जन्मदाता है। अत: विपन्नता के अंधकार में ढके विश्व का उत्थान सिर्फ आध्यात्मिक चेतना से ही संभव होगा, और कभी भारत समग्र विश्व में मैत्री, शांति का पथ-प्रदर्शक होगा। हे कृष्ण। मेरे इस जन्म की त्रुटि के लिए बारबार भारत-भूमि पर जन्म दें।

एक छिन ही सही, कर्मठ का हाथ, ज्ञानी की आंख, भक्त का हृदय देकर आपके लिए जन्म दें- आपके लिए ही मरण दें- सखा। आप ही जगत् हैं, ब्रह्माण्ड हैं, आपके लिए जीने-मरने का ही अर्थ है जगत् के लिए जीना-मरना। ऐसा जन्म पाने पर शायद इस जन्म की त्रुटियों से छुटकारा मिले। मानव-जीवन सार्थक होगा। पृथ्वी पर जीकर, पृथ्वी पर मरकर मरण पाने में आत्मा को स्वर्ग-प्राप्ति होगी। स्वदेह स्वर्ग-प्राप्ति की बजाय आत्मा का स्वर्ग पाना मुझे अधिक काम्य है।

आज मरने का मुझे दु:ख नहीं। क्योंकि पुन: पवित्र भारत माटी में जन्म लेने की कामना के साथ मर रही हूं। मृत्यु-पथ पर कृष्णनाम की जगह अपने अधरों पर आपके वंशीस्वर के भाव उच्चारित कर रही हूं- ओम शांति। शांति। शांति।

कलियुग के अशांत मानव मन में मोहन वंशी स्वर इसी तरह गूंजता रहे- ओम शांति। शांति। शांति।

आपके चरण-कमल में पंखड़ी बनकर संयुक्त हो रहे हैं, मेरे पिता, भ्राता, पुत्र, मां कुंती, गांधारी, बंधु-परिजन, और अंत में वीर कर्ण। उसी विकच पद्म में संयुक्त होने उड़ी जा रही हूं। जो कुछ खो दिया था, पा लेने जा रही हूं। अब समझी हूं आपके पाद-पद्म की प्राप्ति ही परमप्राप्ति है। परमप्राप्ति जहां पर है, वहां कोई शत्रु-मित्र, धर्मा-धर्म, जाति-वर्ण का भेद नहीं रह जाता। उन्हीं पदम् पंखुड़ियों में सब-कुछ देख रही हूं। और उपलब्ध कर रही हूं। जो शून्य है वही पूर्णता है। जो प्रारम्भ है वही प्रलय है, जो आरम्भ है वही इति।

सखे। जिस दिन मैं कुरुसभा में लांछित हो रही थी, पंचपति से भरोसा उठ चुका था, उस दिन लज्जा छोड़ हाथ उठाकर तुम्हें ही तो बुलाया। तुम्हारे आगे ही समर्पण किया। और आज फिर पंचपति मुझे नि:सहाय छोड़कर जा चुके हैं, मैं तुम्हारे

आगे ही स्वयं को अर्पित्त कर रही हूं। अपना सारा दु:ख-दर्द, हाहाकार, लांछन सब-कुछ तुम्हें दे रही हूं। मैं अगर अपनी ही नहीं रही, तो फिर मेरा दु:ख मेरा क्यों रहेगा?

थोड़ी देर के बाद सहदेव भी गिरे। उन्हें लेकर भीमने कहा माद्रीनन्दन सहदेव जो सदा हमलोगोंकी सेवामें संलग्न रहता और अहंकारको कभी अपने पास फटकने नहीं दिया वो आज क्यों धराशायी हुआ? युधिष्ठिर ने कहा राजकुमार सहदेव किसीको अपने जैसा नक्षत्र विद्या का विद्वान नहीं समझता था। इसी दोष के कारण उसे भी आज गिरना पड़ा। द्रौपदी और सहदेव को गिरे देखकर शूरवीर नकुल भी शोकसे व्याकुल होकर गिर पड़ा। तब भीमने पुन: धर्मराजसे प्रश्न किया। संसार में जिस रूप की समानता करनेवाला कोई नहीं। जिससे कभी अपने धर्ममें त्रुटि नहीं होने दी तथा हमलोगोंकी आज्ञा का पालन करता था वह हमारा प्रिय नकुल क्यों गिर पड़ा? युधिष्ठिर बोले, भीम। नकुल हमेशा यहीं समझता था कि रूप में उसके सिवा अन्य कोई नहीं है। उसके मनमें सबसे बड़ा अहंकार था इसलिये इसको गिरना पड़ा। उन तीनोंको गिरे देखकर अर्जुन के मनमें बड़ा शोक हुआ और इस शोकसे वे भी गिर पड़े। तब भीम ने पुन: पूछा महात्मा अर्जुनने कभी परिहास में भी असत्य भाषण किये हो ऐसा मुझे स्मरण नहीं। फिर उन्हें किस कर्म का फल भोगने के लिए इसप्रकार गिरना पड़ा। युधिष्ठिर बोले, अर्जुन को अपनी शूरता का अभिमान था। इसलिए उन्हें धराशायी होना पड़ा। राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतने में भीम भी वहाँ गिर पड़े। उन्होंने युधिष्ठिर को पुकारकर कहा, मैं आपका प्रिय भीम यहाँ गिरा पड़ा हूँ बताइये मेरे गिरने का क्या कारण है। युधिष्ठिर बोले भीम तुम बहुत खाते हो और अपने बल की ढींग हाँकते हो। तुम्हारे इसी अहंकार से तुम्हें गिरना पड़ा है। तुम वृकोदर हो और यह कहकर युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही अपने कुत्ते के साथ अकेले आगे की ओर चल दिये।

तदनन्तर आकाश और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए देवराज इन्द्र रथ लिये वहाँ आ पहुँचे और युधिष्ठिरसे बोले- कुन्तीनन्दन। तुम इस रथपर सवार हो जाओ। तब अपने गिरे हुए भाइयोंकी ओर दृष्टि डालकर धर्मराज युधिष्ठिर शोकसे संतप्त हो उठे और इन्द्रसे कहने लगे- देवेश्वर। मेरे भाई मार्गमें गिरे पड़े हैं। वे भी मेरे साथ चलें इसकी व्यवस्था कीजिये; अन्यथा मैं अपने भाइयोंके बिना स्वर्गमें भी नहीं जाना चाहता। राजकुमारी द्रौपदी अत्यन्त सुकुमारी है, वे भी हमारे साथ चलेंगी।

इन्द्रने कहा, भरतश्रेष्ठ। तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं; उनके साथ द्रौपदी भी है। वहाँ चलनेपर वे सब तुम्हें मिलेंगे, अत: उनके लिये शोक न करो। वे मनुष्य-शरीरका परित्याग करके स्वर्गमें गये हैं; किंतु तुम इसी शरीरसे वहाँतक जा सकते हो। युधिष्ठिर बोले- भगवन्। यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है, इसने सदा ही मेरा साथ दिया है; अत: इसे भी मेरे साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये। इन्द्रने कहा- राजन्। तुम्हें अमरता, मेरे समान ऐश्वर्य, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है; साथ ही तुम्हें स्वर्गीय सुख भी सुलभ हुए हैं। अत: इस कुत्तेको छोड़कर मेरे साथ चलो। इसमें कोई कठोरता नहीं है। युधिष्ठिरने कहा- भगवन्। आर्य पुरुषके द्वारा निम्न श्रेणीका काम होना कठिन है; मुझे ऐसी लक्ष्मीकी प्राप्ति कभी न हो, जिसके लिये भक्त पुरुषका त्याग करना पड़े। इन्द्रने कहा- धर्मराज। कुत्ता रखनेवालोंके लिये स्वर्गलोकमें स्थान नहीं है। उनके यज्ञ करने और कुआँ, बावली आदि बनवानेका जो पुण्य होता है उसे क्रोधवश नामके राक्षस हर लेते है; इसलिये सोच-विचारकर काम करो। इस कुत्तेको छोड़ दो- ऐसा करनेमें कोई निर्दयता नहीं है।

युधिष्ठिरने कहा- महेन्द्र। भक्तका त्याग करनेसे जो पाप होता है, उसका कभी अन्त नहीं होता, संसारमें वह ब्रह्महत्या के समान माना गया है। अत: मैं अपने सुखके लिये कभी किसी तरह भी इस कुत्तेका त्याग नहीं कर सकता। जो डरा हुआ हो, भक्त हो, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है- ऐसा कहते हुए आर्तभावसे शरणमें आया हो, अपनी रक्षामें असमर्थ दुर्बल हो और अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे पुरुषको प्राण जानेपर भी मैं नहीं छोड़ सकता- यह मेरा सदाका व्रत है।

इन्द्रने कहा, वीरवर। मनुष्य जो कुछ दान, स्वाध्याय अथवा हवन आदि पुण्यकर्म करता है, उसपर यदि कुत्तेकी दृष्टि भी

पड़ जाय तो उसके फलको क्रोधवश नामके राक्षस हर ले जाते हैं; इसलिये इस कुत्तेका त्याग कर दो। इससे तुम्हें देवलोककी प्राप्ति होगी। तुमने भाइयों तथा प्रिय पत्नी द्रौपदीका परित्याग करके अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप देवलोकको प्राप्त किया है, फिर इस कुत्तेको क्यों नहीं छोड़ देते? सब कुछ छोड़कर अब कुत्तेके मोहमें कैसे पड़ गये?

युधिष्ठिरने कहा- भगवन्। संसारमें यह निश्चित बात है कि मरे हुए मनुष्योंके साथ न किसीका मेल होता है, न विरोध। द्रौपदी तथा अपने भाइयोंको जीवित करना मेरे वशकी बात नहीं है; अत: मर जानेपर उनका मैंने त्याग किया है, जीवितावस्थामें नहीं। शरणमें आये हुएको भय देना, स्त्रीका वध करना, ब्राह्मणका धन लूटना और मित्रोंके साथ द्रोह करना- ये चार अधर्म एक ओर और भक्तका त्याग दूसरी ओर हो, तो मेरी समझमें यह अकेला ही उन चारोंके बराबर है।

(कुत्तेका शरीर धारण करके आये हुए) धर्मस्वरूपी भगवान धर्मराज युधिष्ठिरकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करते हुए मधुर वचनोंमें बोले- राजेन्द्र। तुम अपने सदाचार, बुद्धि और सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति होनेवाली इस दयाके कारण अपने पिताका नाम उज्ज्वल कर रहे हो। पुत्र। एक बार पहले मैंने द्वैतवनमें भी तुम्हारी परीक्षा की थी, जबकि तुम्हारे सभी भाई पानी लानेके लिये जाकर मारे गये थे। उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओंमें समानताकी इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुनको छोड़ केवल नकुलको जीवित करना चाहा था। इस समय भी, यह कुत्ता मेरा भक्त है ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्रके रथका भी परित्याग कर दिया है। अत: स्वर्गलोकमें तुम्हारी समता करनेवाला कोई नहीं है। इसलिये तुम्हें अपने इसी शरीरसे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हुई है, तुम परम उत्तम दिव्य गतिको पा गये हो।

यों कहकर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवता और देवर्षियोंने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको रथमें बिठाया और अपने-अपने विमानोंपर आरूढ़ होकर वे स्वर्गलोकको चल दिये। वे सब-के-सब अपनी इच्छाके अनुसार विचरनेवाले, रजोगुणशून्य, पुण्यात्मा, पवित्र वाणी, बुद्धि एवं कर्मवाले तथा सिद्ध थे। इन्द्रके रथमें बैठे हुए राजा युधिष्ठिर अपने तेजसे पृथ्वी और आकाशको देदीप्यमान करते हुए बड़ी तेजीके साथ ऊपरकी ओर जाने लगे। उस समय सम्पूर्ण लोकोंका वृत्तान्त जाननेवाले, बोलनेमें कुशल तथा महान् तपस्वी नारदने देवमण्डलमें स्थित होकर उच्चस्वरसे कहा- जितने राजर्षि स्वर्गमें आये हैं, वे सभी यहाँ उपस्थित हैं, किंतु कुरुराज युधिष्ठिर अपने सुयशसे उन सबकी कीर्तिको आच्छादित करके विराजमान हो रहे हैं। अपने यश, तेज और सदाचाररूप सम्पत्तिसे तीनों लोकोंको आवृत करके अपने भौतिक शरीरसे स्वर्गलोकमें आनेका सौभाग्य पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके सिवा और किसी राजाको भी प्राप्त हुआ हो- ऐसा मैंने कभी नहीं सुना है। युधिष्ठिर। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने आकाशमें नक्षत्र और ताराओंके रूपमें जितने तेज देखे हैं, वे ही ये देवताओंके हजारों लोक हैं; इनकी ओर देखो।

तब युधिष्ठिर बोले, मेरे भाइयोंको भला या बुरा जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ। उसके सिवा, दूसरे लोकमें जानेकी मेरी इच्छा नहीं है। उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रने कहा- महाराज। तुम अपने शुभ कर्मोंद्वारा प्राप्त हुए इस स्वर्गलोकमें निवास करो। मनुष्यलोकके स्नेहपाशको क्यों अभीतक खींचते आते हो? तुम्हें वह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है जो दूसरे मनुष्यके लिये दुर्लभ है। तुम्हारे भाइयोंको ऐसा स्थान नहीं प्राप्त है। क्या अभीतक मनुष्यलोककी भावना तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ती? यह स्वर्गलोक है; इन स्वर्गवासी देवर्षियों और सिद्धोंकी ओर तो दृष्टि डालो।

देवेन्द्रकी ऐसी बातें सुनकर युधिष्ठिरने फिर कहा- देवराज। अपने भाइयोंके बिना मुझे यहाँ रहनेका उत्साह नहीं होता। मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ मेरेभाई गये हैं और वहाँ सत्त्वगुणसम्पन्ना द्रौपदी देवी विराजमान हैं।

इति महाप्रस्थानिकपर्व समाप्त

HHH(८२९)HHH

स्वर्गारोहण पर्व

युधिष्ठिरने स्वर्गमें जानेके पश्चात् देखा कि दुर्योधन शोभासे सम्पन्न हो देवता और साध्यगणोंके साथ एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर देदीप्यमान हो रहा है। युधिष्ठिर दुर्योधनको देखकर कहने लगे, देवताओं जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका युद्धमें संहार कर डाला। हमारी पत्नी पाञ्चालीको भरी सभामें गुरुजनोंके सामने घसीटा गया। ऐसे दुर्योधनके साथ मैं स्वर्गलोकमें रहना नहीं चाहता। तब नारदजी बोले महाबाहु। स्वर्गमें आनेपर मृत्युलोकका बैर चला जाता है। स्वर्गलोकमें जितने श्रेष्ठ राजा रहते हैं और समस्त देवता भी दुर्योधनका सम्मान करते हैं। यह निश्चित है कि दुर्योधनने तुम लोगोंको कष्ट पहुँचाया, तो भी युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर ये वीरलोकको प्राप्त हुए है। माना कि द्रौपदीको दुर्योधनने क्लेश दिया पर अब उसे भूल जाओ और उनके साथ न्यायपूर्वक मिलो। युधिष्ठिर बोले, मैं यहाँपर महात्मा सत्यप्रतिज्ञ विश्वविख्यात वीर और सत्यवादी मेरे भाइयोंको नहीं देख रहा हूँ। मेरे ज्येष्ठ भ्राता कर्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकिको तथा अन्य राजाओंको भी देखनेकी इच्छा है। मैं राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, पांचाल राजकुमार शिखंडी, द्रौपदेय और वीर अभिमन्यु को भी मैं नहीं देख रहा हूँ। तब युधिष्ठिरने देवताओंसे कहा, मुझे यहाँपर वीर युधामन्यु और उत्तमौजा भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। क्या इन सब महापुरुषोंने भी स्वर्गलोकपर अधिकार कर लिया है। परन्तु अगर उन्हें अक्षयलोक नहीं प्राप्त हुआ है तो मैं अपने उन भाई-बन्धुओंके साथ सुखसे यहाँ नहीं रह सकता। मेरे ज्येष्ठ भ्राता कर्ण भी यहाँ नहीं है। उनके बिना यहाँ रहनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। उन सबसे अलग रहकर मुझे स्वर्गसे क्या लेना है। मेरे सब भाई-बन्धु जहाँपर है वहीं मेरे लिये स्वर्ग है।

तब देवताओंने कहा, राजन्। यदि तुम्हारी श्रद्धा उन लोगोंमें है तो हमारे साथ चलो विलम्ब न करो। ऐसा कहकर देवताओंने देवदूत को आज्ञा दी कि युधिष्ठिर को इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ। तब युधिष्ठिर और देवदूत उस स्थान की ओर चलें जहाँ सब श्रेष्ठ पुरुष और भीम इत्यादि थे। दोनों ऐसे मार्गपर पहुँचे जो बहुत ही खराब था; उसपर चलना कठिन हो रहा था। उस रास्तेसे पापाचारी पुरुष ही आते-जाते थे। वहाँ सब ओर घोर अन्धकार छा रहा था। चारों ओर सड़े गले मुर्दे दिखायी पड़ रहे थे। चारों तरफ से बदबू आ रही थी। चारों तरफ कौएं और गीध मँडरा रहे थे। प्रेत घूम रहे थे। युधिष्ठिर बहुत चिंतित हुए और उन्होंने देखा- वहाँ खौंलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसके पार जाना बहुत ही कठिन है। तीखे छुरोंके भाँति परिपूर्ण असिपत्रनामक नरक है। कहीं कहीं पर गरम-गरम बालू बिछी है तो कहीं तपाये हुए लोहेकी चट्टाने रखी गयी है। लोहेके कलशोंमें तेल खौलाया जा रहा है। काँटोंसे भरे हुए सेमलके वृक्ष हैं, जिनको हाथसे छूना भी कठिन है। वहाँपर पापियोंको बड़ी-बड़ी यातनाएँ दी जा रहे हैं। तब युधिष्ठिरने देवदूतोंसे पूछा इसतरह के मार्ग पर हमें कितनी दूर और जाना है और मेरे सब भाई कहाँ है।

देवदूतने कहा, जब आप थक जाएँगे तब मैं आपको लौटा ले चलूँगा। युधिष्ठिरने लौटनेका निश्चित किया। लौटते समय उनके कानोंमें चारों ओरसे दुखी जीवोंकी दयनीय पुकार सुन पड़ी। उन जीवोंने कहा आप थोड़ी देर यहाँ पर ठहर जाइये। आपके आनेसे यहाँ परम पवित्र और सुगन्धित हवा चलने लगी है इससे हमें बड़ा सुख मिला। हे कुन्तीनन्दन। बहुत दिनोंके बाद आपका दर्शन पाकर हमलोगोंको बड़ा आनन्द मिला। आपके यहाँ रहनेसे हमें यातना और कष्ट नहीं पहुँचती। दु:खी प्राणियोंकी वार्तालाप सुनकर युधिष्ठिरको बड़ी दया आयी और वे बोले, इन विचारोंको बड़ा कष्ट हो रहा है। युधिष्ठिरने उन दु:खी जीवोंको पूछा आप लोग कौन हैं और यहाँ किसलिये आये हैं। उनके पूछनेपर आवाज आयी मैं कर्ण हूँ। मैं भीम हूँ। मैं अर्जुन हूँ, मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं द्यृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ और द्रौपदेय के पुत्र। युधिष्ठिरने मन-ही-मन विचार किया देवका यह

कैसा विधान है। इन लोगोंने ऐसा कौनसा पाप किया है जिसके कारण इन्हें नरक भोगना पड़ रहा है। ये तो सब पुण्यात्मा थे। इन्हें किस कर्म का फल भोगना पड़ रहा है जो यह नरक में पड़े हुए हैं। मेरे सभी भाई धर्मके ज्ञाता शूरवीर, सत्यवादी, शास्त्रानुसार चलनेवाले क्षत्रिय-धर्ममें तत्पर रहनेवाले फिर इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई। मुझे कहीं भ्रम तो नहीं हुआ। युधिष्ठिर देवदूतसे बोले, तुम वापिस लौट जाओ। मैं तुम्हारे साथ नहीं चलूँगा। मेरे यहाँ रहनेसे मेरे भाई-बन्धुओंको सुख मिलता है। तब देवदूत लौटकर इन्द्रके पास चला गया। और युधिष्ठिरने जो कुछ कहा था वह सब इन्द्रसे निवेदन किया।

थोड़ी देरमें इन्द्र और सभी देवता युधिष्ठिरके पास मिलने के लिये आये। वहाँका सारा अन्धकार दूर हो गया। पापियोंकी यातनाका वह दृश्य कहीं नहीं दिखायी दिया। वहाँ शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बहने लगी। इन्द्र मरुद्गणों सहित वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, रुद्र, आदित्य तथा अन्य स्वर्गवासी देवता युधिष्ठिरके पास एकत्रित हुए। इन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा, अब तक तुमने जो कष्ट पाया अब उसकी आवश्यकता नहीं है। तुमने बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। तुम्हें अक्षयलोकोंकी प्राप्ति हुई है। तुम्हें जो नरक देखना पड़ा उसके लिये क्रोध मत करना। मनुष्य अपने जीवन में शुभ और अशुभ दो प्रकाराके कर्मोंकी राशि संचित करता है। जो पहले शुभ कर्मोंका फल भोगता है, उसे पीछेसे नरक भोगना पड़ता है और जो पहले ही नरक का कष्ट भोगता है उसे बाद में स्वर्गीय सुख मिलता है। जिसके पापकर्म अधिक होते हैं और पुण्य थोड़े होते है वह पहले स्वर्गका सुख भोगता है। इसी नियमके अनुसार तुम्हें नरकका दर्शन कराया गया। तुमने अश्वत्थामाकी मृत्युका असत्य समाचार देकर गुरु द्रोणकी छलसे मृत्यु कराई। इसलिये तुम्हें पहले नरक दिखाया गया। तुम्हारे पक्षके सभी राजाओंको स्वर्ग मिला है। कर्ण और तुम्हारे सभी भाई, द्रौपदी उसी स्थानको प्राप्त हुए है। अब तुम अपनी मानसिक चिन्ता का त्याग कर मेरे साथ स्वर्गमें विहार करो। अपनेद्वारा किये हुए पुण्यकर्म तप और दानके फल भोगो। तुम उन लोकोंको प्राप्त होंगे जहाँ राजा हरिश्चन्द्र, राजर्षि माधान्ता, राजा भगीरथ और दुष्यन्तकुमार भरत गये हैं। वह सामने देवनदी मदांकिनी है। इसके जलमें तुम स्नान करो। जलमें स्नान करके तुम दिव्यलोक में जाओगे। इसमें डुबकी लगानेसे तुम्हारा मानव-स्वभाव दूर हो जायगा और तुम्हारे मनके शोक-संताप, ग्लानि और बैर आदि सभी दोष मिट जायँगे।

इन्द्रकी बात समाप्त होने पर साक्षात् धर्मने कहा, पुत्र। तुममें अनुराग, सत्यभाषण, क्षमा इन्द्रियसंयम आदि गुणोंके कारण मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यह मैंने तुम्हारी तीसरी परीक्षा की है। किसी भी युक्तिसे तुम्हारे स्वभावसे मैं विचलित नहीं कर सका। तुममें पाप का नाम भी नहीं है इसलिये तुम स्वर्गका सुख भोगो तुम्हारे भाई भी नरक योग्य नहीं है। तुमने जो उन्हें नरक भोगते हुए देखा वह तो एक माया थी। युधिष्ठिरने अपनी मानव देह का त्याग कर दिव्य देह त्याग करी। उनके हृदयका शोक-संताप और बैर भाव जाता रहा। तत्पश्चात् वे देवताओंसे, महर्षियोंसे अपनी स्तुति सुन और वे उस स्थान को गये जहाँ उनके चारों भाई पाण्डव, कर्ण और द्रौपदी निवास कर रहे थे।

युधिष्ठिर वहाँ परमधाम में गये जहाँ श्रीकृष्ण विराजमान थे। उनके श्रीविग्रहसे दिव्य जोति छिटक रही थी। चक्र आदि भयंकर दिव्यास्त्र धारण कर अन्य देवता उनकी सेवामें उपस्थित थे। महात्मा भीम व अर्जुन उनकी आराधनामें लगे हुए थे। युधिष्ठिरको देखकर कृष्णने उनका यथावत् सत्कार किया। उन्होंने कर्णको बारह आदित्योंके समान तेजोमय स्वरूप धारण किये हुए वहाँपर विराजमान देखा। उन्हें भीम दिखाई पड़े जो मूर्तिमान वायुदेवता के पास बैठे थे। उनके चारों ओर मरूदगण दिखायी दिये। नकुल और सहदेव अश्विनीकुमारोंके साथ बैठे हुए थे।

इन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा, ये जो पवित्र गन्धवाली देवी दिखायी दे रही है यह साक्षात् भगवती लक्ष्मी है। यही तुम्हारे लिये मनुष्य लोकमें आकर द्रौपदीके रूपमें उत्तीर्ण हुई। स्वयम् भगवान शंकरने तुम्हारी प्रशंसा के लिये इन्हें प्रकट किया और इन्होंने ही द्रुपदके कुलमें जन्म धारण कर तुम लोगोंकी सेवा की। यह अग्निके समान तेजस्वी पाँच गन्धर्व दिखायी दे रहे

हैं वे द्रौपदीके पाँच पुत्र है। यह तुम्हारे ज्येष्ठ पिताश्री धृतराष्ट्र गन्धर्व वेश में है। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता कर्ण सूर्य के साथ है। यह वृष्णि, अन्धक और भोज-वंशके सात्यकि आदि महारथी महाबली वीरोंको देखो। यह सब साध्यों, विश्वेदेवों तथा मरूद्गणोंसे विराजमान है। जिसे युद्धमें कोई भी परास्त नहीं कर सकता। यह महान धनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्यु है जो चन्द्रमाके समान कान्ति धारण किये चन्द्रमाके साथ बैठा है। यहाँ कुन्ती और माद्री के साथ तुम्हारे पिता राजा पांडु विराजमान हैं। शान्तनुनन्दन भीष्म वसुओंके साथ और आचार्य गुरु द्रोणाचार्य बृहस्पतिके साथ बैठे हुए हैं इन सबका दर्शन करो। महातेजस्वी भीष्म वसुओंके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये, तभी आठ ही वसु उपलब्ध होते हैं (अन्यथा भीष्मको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य द्रोणने बृहस्पतिमें प्रवेश किया, कृतवर्मा मरूद्गणोंमें मिल गया, प्रद्युम्न जैसे आये थे, उसी प्रकार सनत्कुमारके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। धृतराष्ट्रको कुबेरके दुर्लभ लोकोंकी प्राप्ति हुई, यशस्विनी गान्धारी देवी भी उनके साथ ही गयीं। राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ इन्द्रभवनमें चले गये। विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव, उत्तर और शफ ये विश्वेदेवोंमें मिल गये। चन्द्रमाके महातेजस्वी पुत्र वर्चा ही नरश्रेष्ठ अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जिसकी कहीं तुलना नहीं थी। वे धर्मात्मा महारथी अभिमन्यु अपने अवतारका कार्य पूरा करके चन्द्रमामें प्रविष्ट हो गये। कुरुश्रेष्ठ कर्णने सूर्यमें, शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया। धृतराष्ट्रके सब पुत्र महाबली यातुधानों (राक्षसों) में मिल गये। विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मका सायुज्य प्राप्त किया। श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ अवसर पाकर सबके सब सरस्वती नदीमें कूद पड़ी और अपना भौतिक शरीर त्यागकर अप्सराओंके रूपमें भगवान् की सेवामें उपस्थित हो गयीं। इसप्रकार महाभारत युद्धमें मरे हुए वीर महारथी अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार देवताओं और यक्षोंमें मिल गये। कितने महापुरुष वरुणलोकको चले गए।

वैशम्पायन बोले हे जनमेजय। इस प्रकार मैंने तुम्हें कौरव और पाण्डवोंका सारा चरित्र विस्तारके साथ सुना दिया।

इति महाभारत स्वर्गारोहण पर्व समाप्त

*** अपने सौंदर्य का प्रदर्शन करना हर नारी का धर्म है।**

*** नारी को जननी बनने के लिए प्रसव वेदना सहनी पड़ती है।**

*** स्त्री होती है अन्नदात्री-अपने वक्ष से अमृतदान करने की शक्ति केवल स्त्री में है, पुरुष में नहीं।**

*** क्षुधार्त को आहार देना सर्वश्रेष्ठ दान है। क्योंकि वह जीवन रक्षा करता है।**

*** सुख की जगह दुःख में ही वास्तविक मित्र सहायक होता है।**

*** मनुष्य में यदि सत्य बोलने की शक्ति है तो वह तनी हुई तलवारें भी झुका सकता है।**

*** ग्रन्थ ऐसे अध्यापक हैं जो कटु शब्द एवं क्रोध के बिना वस्त्र और धन के लिये हमें शिक्षा देते हैं।**

*** समय रूपी अमृत बहता जा रहा है, सम्भव है प्यास बुझाने का अवसर फिर न मिले।**

इस संसार की सभी वस्तुयें अस्थिर हैं, सम्पत्ति और सत्ता भी नष्ट हो जायेंगे

लेकिन वीर का और शहीद का नाम सदा अमर रहता है।

लौहनारी महाभारती पांचाली

दुर्गम था कितना जीवन-पथ। किन्तु अदम्य थी उसकी इच्छा-शक्ति। कैसे-कैसे विषम वंकिम मार्गों से भी वह खींच ही लायी जीवन-रथको और उसे ठीक मार्ग पर लगा दिया। प्रशस्त, विराट, सुन्दर राजमार्ग। कितने व्यवधान। कितनी शंकाएँ। सन्देह। ऊहापोह। युद्ध। मृत्यु और अश्रु। अश्रु। और अश्रु। भीषण भारत-युद्ध समाप्त हुआ। परीक्षित का जन्म हो गया। सत्य की जय हुई। धर्म की जय हुई।

उस विराट उच्च राजशिखर पर चढ़कर उसने निश्चिन्तता का दीर्घ श्वास लिया। चारों ओर देखा। जिस विकराल टेढ़े-मेढ़े पथ से वह राजगिरि पर चढ़ पायी थी। उस पर दृष्टि डाली तो सिहर उठी। विहंगम दृश्य था। विषम। वंकिम। कण्टकमय राह। तो क्या वह इसी दुरूह पथ से चढ़ी है? उसे विश्वास न होता। इस राह से वह कैसे आ पायी? राह में टूट नहीं गयी। साहस नहीं खोया। वह विस्मय से भर जाती स्वयं अपनी सहनशक्ति पर। अन्याय-पथ। अनाचार का पथ। जहाँ घने अन्धकार में अशिष्ट और अभद्र अट्टहास गूँजे थे। जहाँ अत्याचार ने उसका अपहरण किया था। जहाँ स्वेच्छाचारी निरंकुश राजदस्युओं ने उसका चीरहरण करना चाहा था। जहाँ सत्तालोलुपों ने अवैधानिक ढंग से उसे पथ-पथ भटकाया था। भय, आतंक, अपमान व अन्याय से पीड़ित मानवता की वह प्रतीक बनी- किन्तु चलती गयी। जब उसने निरंकुशता, अन्याय, सिद्धान्तहीनता व अधर्म के विरुद्ध गुहार की तो उसका मुख बन्द करने का प्रयास किया गया। किन्तु मौन न रह सकी। विप्लव की रणभेरी-सा उसका स्वर गूँजा था। महाक्रान्ति का आह्वान उस एकाकिनी ने ही किया था।

हाँ। कितनी बार वह पथ पर एकाकिनी रह गयी थी। निपट-नितान्त एकाकिनी। सबने मुख मोड़ लिया था और वह अकेली थरथराती प्रकम्पित दीपशिखा-सी रह गयी थी। तिमिर विच्छिन्न करने के लिए एक ही प्रदीप का आलोक पर्याप्त है, और वही वह करती गयी। जब झंझाओं का अट्टहास-क्रूरता व निर्ममता की चरम सीमा पर पहुँचता तो वासुदेव के दोनों हाथ उस प्रकम्पित ज्योति को काल-प्रभंजन से ओट कर देते और वह पुन: सुस्थिर हो उठती। पुन: सुदृढ़ चरणों से चल पड़ती दुरूह धर्म-पथ पर।

और अब। राजधर्म। राजकर्म। कुटुम्ब- परिपालन। राज्य-सेवा। और फिर अश्वमेध। अश्वमेध। और अश्वमेध। समायोजन। यज्ञ अभ्यागत। स्वागत सत्कार। प्रबन्ध। परिश्रम।

महाराज युधिष्ठिर के साथ महारानी द्रौपदी को समस्त अनुष्ठानों, पूजा-पाठ, दान-धर्म आदि में संलग्न रहना पड़ता। कितनी व्यस्त हो चली थी वह। कुटुम्ब की परिचर्या का प्रमुख दायित्व उसी पर था। दुर्बल-कातर वयोवृद्ध महाराज धृतराष्ट्र, शोकमग्ना महारानी गान्धारी एवं राजमाता वृष्णिनन्दिनी कुन्ती की सेवा सुश्रूषा का प्रबन्ध वही करती। सुभद्रा एवं उत्तरा पर ममत्व उँड़ेलती एवं शिशु-युवराज परीक्षित पर प्राण न्यौछावर किये रहती। परीक्षित को कहीं कुछ हो गया, तो पाण्डवकुल के अन्त का कलंक उसी पर आ लगता। भारत-युद्ध उसी की प्रेरणा से जो हुआ था।

दास-दासी, परिचारक, सेवक, दीन-दुखी, दरिद्र, प्रजा, साधु-संन्यासी, ब्राह्मण, अभ्यागत किसकी उसे चिन्ता नहीं थी। और उस महिमामयी का प्रबल शक्तिशाली व्यक्तित्व विभिन्न कार्यों को दो ही हाथों से इतनी कुशलता से साथ लेता कि हस्तिनापुर राज्य चकित था। उषाकाल की प्रथम रश्मि, प्रथम पक्षीरव से भी पूर्व वह कर्मरत हो जाती और कर्मरत रहती देर रात्रि तक- जब तक निश्चिन्त न हो जाती कि सेवकगण भी विश्राम हेतु चले गये।

किन्तु एकान्त के उसके क्षण धनंजय के लिए सदा सुरक्षित रहते- धनंजय हस्तिनापुर में हों अथवा नहीं। अर्जुन की अतिशय मानसिक कोमलता, भावुकता एवं अन्य दुर्बलताओं के उपरान्त भी वह उनके श्रेष्ठ मानवीय गुणों की उपासिका

थी। उनके त्याग, ताप और सेवा से अभिभूत रहती। उनके कष्टों से व्यथित हो जाती।

कुल की ज्येष्ठ महिला होने के नाते पांचाली के उत्तरदायित्व दिन-पर-दिन बढ़ते गये और वह स्वयं दिन-पर-दिन मृदुल होती गयी। कभी वह सहस्त्र स्वर्णरश्मियों से देदीप्यमान उषा-सी थी। अब वह अत्यन्त मृदुल कार्तिकी भोर-सी हो चली थी-शान्त, मौन, गम्भीर, शीतल, स्नेहशील। समूचे कुल को, प्रजा को, राज्य को अपने स्नेहमय अंचल में ऐसे समेटे रहती जैसे पारिजात के सुकोमल शरत्फूलों को कार्तिकी भोर अपने हृदय में समेटे हो। कहीं कोई कुम्हला न जाये, कहीं किसी को आघात न मिले, कहीं कोई पीड़ित न हो जाये।

सुभद्रा के नयनों में अश्रु छलक आये। उसे स्मरण आ गया जब वह नववधू रूप में आयी थी। अतिशय भोली, विनम्र। श्वेत-शीतल मेघ-फूही-सी कोमल व स्निग्ध। पांचाली के दहकते व्यक्तित्व के ताप से कैसी पिघलकर तरह हो चली थी। कितनी भयभीत हो उठी थी प्रारम्भ में उस प्रबल प्रतापी ज्येष्ठा से। तात श्रीकृष्ण एवं आर्यपुत्र अर्जुन तक द्रौपदी की सुभद्रा के प्रति सम्भावित प्रतिक्रिया के विषय में आशंकित थे। देर तक विचार कर उन्होंने सुभद्रा को लाल चूनर में सीधी-सादी ग्वालिन, एक ग्राम्या के रूप में जाकर ज्येष्ठा के चरण-स्पर्श करने की राय दी थी। किन्तु कैसी महास्नेहशील थी द्रुपदसुता। प्रथम दृष्टि पड़ते ही जैसे पांचाली का हृदय उस नवागता के लिए उमड़ आया, कैसे नेहभीगे आलिंगन में उसने सुभद्रा को बाँध लिया था। स्वागत अनुजे। ईश्वर तुम्हारे पति को दीर्घायु करे। मैं धन्य हुई माधव की अनुजा में अपने लिए एक सुन्दर, सुशील अनुजा पाकर। उसके पश्चात् सदा ही वह सुभद्रा की न केवल अग्रजा-सी रही, बल्कि माता की भाँति उसने सुभद्रा को स्नेह दिया और प्रशिक्षित किया। और कितनी वह निर्भर भी रहती थी सुभद्रा पर। वनवास जाते समय पाँचों नन्हे-नन्हे पुत्र सुभद्रा को सौंपती हुई बोली थी, मैं निश्चिन्त हूँ- अब। उसे रोका वनवास जाने से सुभद्रा ने आँखों में आँसू भर-भरकर। किन्तु वह अपने निर्णय पर अडिग थी। उसे पाँचों पतियों की चिन्ता जो थी। वे धूर्त कुटिल कौरव इन पाँचों में परस्पर भेद न डाल दें। इनकी इहलीला ही न समाप्त कर दें। और उन पाँचों की रक्षा का भार द्रौपदी के सुकोमल कन्धों पर तो स्वयं माता कुन्ती ने डाला था। भोजपुत्री कुन्ती सदा पुत्रों से अधिक पुत्रवधू पर विश्वास रखती आयी थीं। पांचाली को पाँचों पुत्रों के साथ वनगमन करते देख, डबडबाये नेत्रों को पोंछती आर्या पृथा भी बोल उठी थीं, मैं निश्चिन्त हूँ अब। एक शक्तिवान प्रहरी जो उन्होंने पुत्रों के साथ कर दिया था।

पांचाल-राजकुमारी द्रौपदी अब हस्तिनापुर में महाप्रतिष्ठित हो चुकी थी। महारानी द्रौपदी की प्रजावत्सलता प्रसिद्ध थी। आबालवृद्ध उसे अपार श्रद्धा से देखते। प्रजानन सम्मान करते और चातुर्वर्ण्य उसे पूजा भाव से देखते।

आयु बढ़ती जा रही थी किन्तु कर्मयोगिनी का हृदय आज भी सबल था। आज भी वह तेजयुक्त महाशक्तिशालिनी महिला थी।

दिन-प्रतिदिन याज्ञसेनी का व्यक्तित्व दिव्य होता गया। वह अक्षतज्वाला थी। आपत्तियों की झंझाएँ उसे बुझा नहीं पायीं। यज्ञकुण्ड से जन्मी वह यज्ञज्वाला-सी पुनीत थी, प्रखर थी। आजीवन कठोर अग्निपरीक्षाओं एवं दुरूह तपश्चर्या से वह तपस्विनी और भी भव्य हो चली- महान्। श्रेष्ठ। उत्तम। महिमामयी।

कोई क्षुद्रता नहीं। ईर्ष्या नहीं। स्वार्थ नहीं। तुच्छता नहीं। वास्तव में वह जीवन-सन्ध्या में, कार्तिकमाह में तुलसी-चौरे पर प्रज्ज्वलित मद्धिम, स्निग्ध स्नेहपूर्ण आलोक बिखेरती कोमल दीपशिखा बन गयी थी। शान्त। दिव्य। स्नेहमयी। करुणामयी। भगवद्भक्ति की सात्त्विक दीपशिखा-सी।

दिन-पर-दिन वह अधिकाधिक अन्तर्मुखी होती गयी थी- योग एवं धर्मचर्चा में लिप्त। कर्मयोग की जीवन्त जाज्वल्यमान दृष्टान्त। धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में श्रीनारायण वार्ष्णेय द्वारा उच्चरित गीता उसे पूर्णत: कण्ठस्थ थी और वह सम्पूर्ण मनोयोग से

कर्मपथ पर अविचलित भाव से निरन्तर बढ़ती जा रही थी।

कभी-कभी एकान्त क्षणों में बैठकर विचार करती-कितना दुर्गम था जीवन-पथ। किन्तु कितनी प्रबल थी इच्छाशक्ति कि न्याय द्वार तक खींच ही लायी पाण्डवरथ।

सुदूर बालपन की सुरम्य मनोहारी वीथिकाओं से निकलते ही फँस गयी थी सघन जीवन-अरण्य की कँटीली झाड़ियों में। भटक गयी थी कण्टकमय पगडण्डियों में। पीड़ाओं के ज्वालामुखियों में। संघर्ष के दुर्गम पर्वतों एवं विषमताओं की खाइयों में। किन्तु धन्य था उसका साहस। साधु-साधु। आपत्तियाँ सह-सहकर उसका व्यक्तित्व तप-तपकर शुद्ध स्वर्ण-सा और निखर पड़ा था। और शुद्ध। और प्रखर। प्रतिबार नयी चुनौती। प्रतिबार नयी विषमता। किन्तु झुकी नहीं लौहनारी। बढ़ती ही गयी।

कितनी बार चरण शिथिल पड़े। कितनी बार धैर्यध्वजा हाथ से छूटने को हुई, किन्तु प्रतिबार वज्र-संकल्प ने साथ दिया। वह झुकेगी नहीं। टूटेगी नहीं। गिरेगी नहीं और मुड़ेगी नहीं पीछे।

महिमामयी राजमहिषी याज्ञसेनी के अक्षुण्ण साहस, औदार्य, सहनशक्ति, शौर्य, ओज एवं तेजस्विता से कौन नहीं था अभिभूत? कौन नहीं नतमस्तक हुआ उसके समक्ष? पाण्डव-पति स्वयं उससे चमत्कृत थे। लीलामय श्रीकृष्ण उस पर विमुग्ध थे। यही नहीं, वे भी उससे चमत्कृत रहे थे, जो उसके शत्रु थे, जिन्होंने उस लौहनारी को हर प्रकार तोड़ना चाहा था।

उसके कष्ट, पीड़ा, अपमान एवं त्याग की गाथाएँ आर्यावर्त में सुदूरतम अंचलों में उसके जीवनकाल में ही लोकप्रिय हो चली थीं। कितनों की वह प्रेरणास्त्रोत बन गयी थी, कितनों की शक्तिस्त्रोत।

वह प्रतीक बन गयी थी धर्म की। न्याय की। निरंकुशता के विरुद्ध, अन्याय के विरुद्ध, अनाचार एवं दुराचार के विरुद्ध, अधर्म एवं अनैतिकता के विरुद्ध, उस लौहनारी ने ही विद्रोह की घोषणा की थी।

अन्याय एवं अधर्म से पूरित भारत-भू पर उसी का एकाकी एवं स्वतन्त्र स्वर गूँजा था- न्याय की माँग के लिए। स्वर एकाकी था, किन्तु दुर्बल नहीं। सुदृढ़ था, ओजपूर्ण था, सशक्त था- क्योंकि वह क्रान्ति का स्वर था। विद्रोह का स्वर था। वह विद्रोह की प्रतीक बन गयी थी- अवैधानिकता के विरुद्ध। निरंकुश सम्राटों के विरुद्ध। अनैतिकता के विरुद्ध। दुराचार और द्यूतलिप्सा के विरुद्ध। चुनौती बनकर वह अग्नि ज्वाला सी दहकी थी- सत्तालोलुपों के विरुद्ध।

वह अपराजेय थी। उसकी विजय हुई थी। धर्म की विजय हुई थी। सत्य की जय हुई थी।

वह प्रतापी महिला विराट जीवन-पर्वत की दुर्गम चढ़ाइयाँ चढ़ चुकी थी और पराजित नहीं हुई थी। धर्मपथ सदा दुर्गम होता है, यह वह जानती थी। उसने संकल्प लिया था कि धर्मध्वजा का निरादर करनेवालों को जब तक दण्डित न किया जाएगा वह शान्त नहीं बैठेगी। इसीलिए परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् की वह निमित्त बनी, अपने गुरुवत् सखा श्रीकृष्ण के लिए। वासुदेव द्वारा सम्पादित धर्म-संस्थापना एवं धर्म के अभ्युत्थान में वह सतत उनके साथ रही। उनके हाथ से हाथ मिलाकर, उनके साथ-साथ वह चली। इस पूरे धर्मोदय अभियान में वही एकमात्र नारी थी, एकाकिनी, जिसने वासुदेव के पुण्य कार्य में हाथ बटाया था। वासुदेव इस तेजस्विनी नारी के प्रशंसक थे जो महायज्ञ में अपने पाँचों पुत्रों, पिता एवं भ्राताओं को होम कर गयी किन्तु मर्माहत होते हुए भी पथ-विचलित न हुई। वह युगपुरुष इस नारी के कष्टों, दु:खों से एवं न्याय के लिए उसकी दृढ़ पुकार से ही प्रेरित हो उसे महाभारती कह उठा था।

कष्ट- ज्वालाओं में तप-तपकर उसका मन-कंचन निखर पड़ा था। अब वह सर्वांग हिरण्यमयी थी। शुद्ध मन, सात्त्विक विचारवाली भागवत महिला याज्ञसेनी कृष्णा। जब धर्मध्वजा पुन:स्थापित करनेवाले योग-योगेश्वर नारायण वासुदेव देह-त्यागकर गये, तब भी वही सर्वाधिक सचेत रही, कर्त्तव्य के प्रति। सबको सचेत करती भी रही कर्त्तव्यपालन हेतु।

द्रौपदी नारीत्व का एक आह्वान है। कर्म, ज्ञान, भक्ति और शक्ति का मूर्त रूप है। विश्व में अब तक ऐसी नारी कोई नहीं हुई जो याज्ञसेनी द्रौपदी की तरह यातना, लांछन, मानसिक संकट एवं संघर्ष के सामने हुई हो।

कामांध पुरुषों द्वारा सुन्दर नारी युग-युग में यातना पाती और अपमानित होती आयी है। परन्तु भ्रातृविवाद, ईर्ष्या और असूया के अधीन हो अपने ही वंश की कुलवधू अनेक ज्ञानी, गुणी, मानी पुरुषों के सामने विवसना हो और सब चुपचाप निर्वसना की अंग-शोभा देखने बैठे रहें, इससे बढ़कर कलंक-भरा अध्याय विश्व के लिखित-अलिखित इतिहास में कहीं नहीं मिलेगा। यहां तक कि काव्य, कविता, कहानी, नाटक में भी किसी नारी के यों निर्यातन की बात नहीं मिलेगी। इतना ही नहीं, सास के अनजाने मुंह से जो बात निकल गई, उसके लिए राजनंदिनी कृष्णा को बाध्य होकर पंचपति वरण करने पड़े। पर सभ्य समाज के इतिहास में यह सिहरा देनेवाली बात है। अपने सतीत्व की पराकाष्ठा के कारण कृष्णा का नाम पंचसतियों में रहा। पर पंचपति वरण के कारण कौरवों द्वारा और कर्ण द्वारा कृष्णा को बहु पुरुषभोग्या, वार नारी कह कर बार-बार निंदा की गई हैं पंचपांडवों के सुख-दु:ख की चिरसहचरी कृष्णा के जीवन में नाना दु:खों का तांता लगा रहा। पर मनोबल कभी न टूटा।

द्रौपदी जानती थी की धर्मराज का मत क्या है। धर्मराज ने कभी क्षमा का त्याग नहीं किया और द्रौपदी अपने मन में जलती ज्वाला को तनिक सा भी शांत नहीं कर पायी थी। वह जानती थी कि पाण्डव लोग युद्ध के विषय में कभी भी सहमत नहीं हो सकते। न विवाद का कोई लाभ था, न सम्वाद का। न ही द्रौपदी अपने मन को बदल सकती थी, न धर्मराज की प्रकृति को। वह मन ही मन यह भी जानती थी कि मानव मन की उत्कृष्टता से धर्मराज का चिंतन ही श्रेष्ठ था।

पत्नी का अपमान ही उसके पति का अपमान है। हम परिवार तथा दाम्पत्य जीवन में पृथकता तथा विभाजन को श्रेयस्कर नहीं मानते। पति से पृथक पत्नी का कोई व्यक्तित्व ही नहीं है, उसका अपना कोई सुख-दुख होता ही नहीं है। व्यक्ति का अपमान पृथक बात है किन्तु नारीत्व का अपमान भयंकरतम अपराध है, पाप है।

द्वापर युग शेष होने जा रहा है, अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित का जिस दिन हस्तिनापुर की गद्दी पर अभिषेक हुआ, उसी दिन से कलियुग का प्रारंभ होता है। कहते हैं द्रौपदी का नाम पंच सती में गिना जाएगा। उसे देखकर कलियुग के नर-नारी विद्रूप कर हंसेंगें। कहेंगे- पंचपति वरण कर द्रौपदी अगर सती हो सकी, तो फिर एक पतिव्रतपालन की क्या आवश्यकता? बहुपति वरण कर वे कलियुग में सती क्यों नहीं होंगी? यौन विकारग्रस्त कलियुग के उच्छृंखल नर-नारियों के बीच द्रौपदी होगी व्यंग-परिहास का उपादान। पांच पतियों की पत्नी द्रौपदी को सतीत्व के लिए तिल-तिल जलना पड़ा होगा।

द्रौपदीके सङ्गसे बहुतोंमें कृष्णके प्रति श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, भक्तिकी जागृति हुई। संसारके इतिहासमें जितनी सती, साध्वी और भगवद्भक्ता देवियाँ हुई हैं, उनमें द्रौपदीका प्रधान स्थान है। द्रौपदी स्वर्गकी लक्ष्मी थी, राधाकी ही अंशभूत भगवान्‌की विशेष शक्ति थी। वह धर्मद्रोहियोंके नाश और धर्म-संस्थापनके उद्देश्यसे अवतीर्ण हुई थी। जबतक पृथ्वीपर रही, अपना काम करती रही। जब उसके अवतारका कार्य पूरा हो गया, श्रीकृष्ण अपने परिकरोंके साथ अन्तर्धान हो गये, तब द्रौपदीने भी श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए पतियोंका अनुगमन किया और पतिव्रता सती-साध्वी स्त्रियोंके लिये वाञ्छनीय सद्गति प्राप्त की।

यह जड लेखनी द्रौपदीके गुणगानमें सर्वथा असमर्थ है। भगवान करें, कोई द्रौपदी-सी नारी पुन: पृथ्वीमें अवतीर्ण होकर सारे संसारमें भगवद्भक्तिका, पति-सेवा, राज्य-व्यवस्था, गृह-प्रबन्ध आदि स्त्रियोंके कर्त्तव्य-पालनका, आत्म-सम्मान, उत्साह और धैर्य आदि सद्गुणोंका आदर्श स्थापित कर दे और जगत्‌के धर्मप्रेमियोंको अपने चरण-चिह्नोंपर चलाकर सारे जगत्‌का कल्याण कर दे। प्रात:स्मरणीया द्रौपदीके स्मरणसे उसका कृष्णके प्रति अविचल विश्वास हमारे हृदयमें भी आवे और हम भी उसीकी भाँति कृष्णपर विश्वास और प्रेम करें- यही वाञ्छनीय है।

उपसंहार

अठारह पर्वों और एक लाख श्लोकोंवाला प्रचलित महाभारत अनेक प्रज्ञावान ऋषियों की प्रक्षिप्त रचनाओं से लदी हुई संहिता है। भारतीय जीवन-प्रणाली के मानक ग्रन्थ के रूप में यह ग्रन्थ आज विश्वमान्य हो गया है। उसमें से गीता तत्त्वज्ञान के उपाख्यान का एक भाग है। गीता महाभारत के कथासागर की ऐसी बहुमोल गागर है, जिसकी बूँद-बूँद में मानव-जीवन के सागर को मथ डालने की सामर्थ्य है। कौरव-पाण्डव और श्रीकृष्ण का सन्दर्भ गीता में आवश्यकता के अनुसार ही आया है।

सम्पूर्ण महाभारत को पढ़ जाने के पश्चात् हमें चार बातें स्मरण रह जाती हैं। पहली बात तो यह है कि मनुष्य को किसी भी सांसारिक प्रलोभन में पड़कर धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। दूसरी बात यह है कि संसार अनित्य है। इसमें न कोई किसी का भाई है, न बन्धु। एकमात्र भगवान् ही सबके सुहृद हैं। तीसरी बात यह है कि मनुष्य को भूत, भविष्य की बातों का स्मरण करके शोक और भय नहीं करना चाहिये। चौथी बात यह है कि अभ्युदय का कारण धर्म ही है। धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति हो सकती है। सम्पूर्ण महाभारत का निचोड़ इतना ही है। मनुष्य पाप कर्मों में प्रवृत्त क्यों होता है? काम से, लोभ से, भय से और मरण के डर से। ये बातें न हों तो मनुष्य पाप करे ही नहीं, अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये मनुष्य कितने-कितने पाप करता है। कैसे-कैसे षडयन्त्र रचता है। भाँति-भाँति से लोगों को धोखा देता है। असत्यवादी होकर भी अपने को सबके सामने सत्यवादी प्रकट करता है। विद्वान न होने पर भी अनेक प्रकार के कौशल से लोगों के हृदयों पर अपनी विद्वत्ता की छाप छोड़ता है। ढोंग मनुष्य तभी रचता है, जब उसे धर्म में, सत्य में विश्वास नहीं होता। जो यह समझ लेगा कि सत्य बात एक दिन प्रकट हो ही जायगी, विजय धर्म की ही होगी तो फिर जैसा वह सचमुच में हैं, वैसा ही अपने को लोगों पर प्रकट करेगा। दम्भ से अपने को कुछ-न-कुछ बतावेगा। हम सदा ही अपनी इच्छित वस्तु के लिये धर्म को त्याग देते हैं, यही हमारी कमजोरी है। धर्म से, अधर्म से कोई वस्तु हमें प्राप्त हो जाय और वह सदा हमारे पास बनी रहे, यह दूसरे के काम में न आवे, इस वृत्ति का नाम लोभ है। लोभी मनुष्य की समस्त सद्वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। लोभ के कारण वह पिता, माता, स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धियों के सुख की भी परवाह नहीं करता। लोभ सब पापों की जड़ है। लोभ से ही असत्य, क्रोध, द्वेष, दम्भ, छल और अनेक दुर्गुण उत्पन्न होते हैं। कामी को चाहे भले ही स्वर्ग मिल जाय, किन्तु लोभी को सद्गति नहीं, जो इन अनित्य पदार्थों को ही सर्वस्व समझता है, जो चाँदी, सोना और ताँबे की ठिकरियों को प्राणों से अधिक प्यार करता है, इन निर्जीव एक प्रकार की मिट्टी विशेष के लिये सब पाप करता है, उससे बढ़कर नीच कौन होगा? लोभी पुरुष को सदा शमा बनी रहती है, कोई हमसे कुछ माँग न बैठे। उसे चोर से, राजा से, अपने स्वजनों से, यहाँ तक कि अपने आपसे भी सदा भय बना रहता है। लोभी पुरुष क्षुद्र होता है। वह कभी निर्भय नहीं रहता। अत: अपने पास की वस्तु की रक्षा के लिये भी मनुष्य पाप कर्मों में प्रवृत्त होता है।

भय से मनुष्य बडे-बडे पाप करता है। संसार में सर्वत्र भय है। भोग में रोगों का भय है, कुलीनता में जातिच्युत का भय है, धन में राजा, चोर और स्वजनों का भय है, मौन में दैन्य का भय, बल में शत्रु का भय है, सौन्दर्य में वृद्धावस्था का भय है। संसार में जिधर देखो उधर भय-ही-भय है। मनुष्य सदा भविष्य के भय से भयभीत बना रहता है। कल क्या होगा? वह मुझे मार न डाले। वह मुझे दु:ख देगा।

संसार में विस्मय और शोक के अनेकों स्थान हैं। अकस्मात् कोई चीज सामने आ जाती है तो हम विस्मित हो जाते हैं। यह कहाँ से आ गई? क्यों आ गई? सहसा कोई चीज चली जाती है तो हम शोकाकुल हो जाते हैं। यह हर्ष और विस्मय

मूर्खों को ही दु:ख देता है। जो पंडित हैं, जो जानते हैं कि जो वस्तु प्राप्त होनेवाली होगी अवश्य ही प्राप्त होगी, जानेवाली होगी, अवश्य ही जायगी। जो चीज मेरी है, जिसका उपयोग मेरे लिये बना है, वह दूसरे के उपयोग में आ ही नहीं सकती। वे लोग प्राप्त वस्तु से विस्मित नहीं होते, अप्राप्त या गई हुई वस्तु के लिये शोक नहीं करते।

इस जीवन की रक्षा के लिये भी मनुष्य पाप-कर्मों में प्रवृत्त होता है। मेरा जीवन सदा बना रहे। मैं मरूँ नहीं। मरने के डर से मनुष्य भाँति-भाँति के पाप करता है। उसे स्मरण नहीं रहता कि संसार में अमर कोई नहीं है। जो जन्मा है, वह मरेगा। बड़े-बड़े प्रतापी राजा हुए और अन्त में मृत्यु ने-काल ने- उन्हें ग्रस लिया। जो देवता अमर कहे जाते हैं, वे भी पुण्य-क्षीण होने पर स्वर्ग से ढकेल दिये जाते हैं। जन्मधारी की मृत्यु अवश्यम्भावी है। जिसे टाल नहीं सकता, जो होकर ही रहेगी उसके लिये चिन्ता करने से ही क्या होगा? शोक करने से भी वह न बचेगी। अधर्म से जीवित रहो या धर्मपूर्वक, काल आने पर दोनों का ही शरीर नष्ट होगा। जीव तो कभी नष्ट होता ही नहीं है। शरीर जीर्ण-शीर्ण होता है। जीव तो कभी शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर में चला जाता है। जब यह शरीर अनित्य है अधर्म करने पर भी यह बच नहीं सकता तो इस अनित्य पदार्थ से नित्य धर्म का अनुष्ठान, साधन क्यों न कर लें? संसार में कौन किसका पिता, कौन किसकी माता? यह सम्बन्ध तो शरीरों को लेकर है। न जाने इस जीव के कितने पिता, कितनी माता, कितने पुत्र, स्त्री और स्वजन हो चुके हैं और आगे होंगे। उन सबके लिये सोच करने लगे, तब तो इस दु:खसागर से त्राण ही नहीं।

स्वजनों का सम्बन्ध तो नौका का सम्बन्ध है। जब तक नौका में बैठे हैं, सम्बन्ध है। नौका उस पार लगी, कोई इधर चला गया, कोई उधर चला गया। जिन्होंने धर्माचरण करके जीवन बिताया है, उनकी कीर्ति बनी रहती है और अधर्माचरण वालों को कोई पूछता नहीं। धर्मात्मा मरकर भी जीवित बने रहते हैं कीर्तिर्यस्य स जीवति। धर्म से अर्थ भी मिल सकता है, कामोपभोग भी मिल सकता है। फिर तुम उस धर्म का आचरण क्यों नहीं करते?

महाभारत में हम सभी पात्रों को आदर्श पाते हैं। जिसने धर्माचरण किया, उसने आदर्श धर्म का आचरण किया और जिन्होंने अधर्म किया वे भी शूरवीर की तरह अधर्म करते रहे। अधर्म को चाहे धर्मात्मा करे या अधर्मी, उसका फल दु:ख होगा। धर्म का फल सभी को सुख होगा।

धर्म, अधर्म इन्हीं से संसार चल रहा है। धर्म भी भगवान् का अङ्ग है, अधर्म भी। एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता। दोनों ही व्याप्त होकर भगवान की क्रीड़ा कर रहे हैं। रामायण के लिये जितनी ही आवश्यकता राम की है, उतनी ही आवश्यकता रावण की है। कंस, अघासुर, बकासुर, शिशुपाल न होते तो हम श्रीकृष्ण-चरित की महत्ता क्या समझते? कंस और कृष्ण, राम और रावण, हिरण्यकशिपु और नृसिंह इन सभी रूपों में उनका ही तेज है। अपने आप ही अपने से लड़ रहे हैं और स्वयं ही उस आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। महाभारत के लिये जितने ही आवश्यक युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हैं, उतने ही नहीं उनसे बढ़कर आवश्यकता दुर्योधन, दु:शासन, कर्ण और शकुनि की है। दैत्य न होते तो देवताओं के पराक्रम को कौन जानता?

पृथ्वी में कुछ सामान्य जीव होते हैं, कुछ विशिष्ट। सामान्य जीव तो ८४ के चक्कर में स्वभाववश भ्रमते ही रहते हैं उनका तो इतिहास ही क्या? घूमना ही उनका इतिहास है। विशिष्ट पुरुषों में कुछ दैवी सम्पत्ति के होते हैं, कुछ आसुरी के। जो देवी सम्पत्ति के होते हैं, वे देवताओं के अंश से होते हैं। जो आसुरी सम्पत्ति के होते हैं, वे असुर राक्षस आदि अंशों से होते हैं। आसुरी सम्पत्तिवाले विशिष्ट पुरुष भी शक्ति-युक्त और प्रभावशाली होते हैं। वे अपने प्रभाव से अधर्म का प्रचार करते हैं। साधारण लोग उनकी आज्ञा टाल नहीं सकते। वे उनके सामने सिर झुका देते हैं। दैवी सम्पत्तिवाले विशिष्ट पुरुष अपने धर्माचरण से धर्म का उपदेश करते हैं। अधर्म करने वालों का सामना करते हैं और अपने चरित्र से तथा कार्यों से लोगों को प्रभावित करते हैं। सब

लोग उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं दोनों में भगवान् की विशिष्ट शक्ति होती है। अपना-अपना कार्य समाप्त करके जो जिस देवता के अंश से होते हैं, वे उसी देवता में जाकर मिल जाते हैं। इसी तरह जो जिस असुर, राक्षस या दैत्य के अंश से उत्पन्न होते हैं, वे उनमें मिल जाते हैं। यह अटल नियम है कि कार्य सदा अपने कारण में ही मिलता है। घड़ा मिट्टी से बनता है, कार्य हो जाने पर सब मिट्टी में ही मिल जायगा। नाम और रूप बदलने पर भी उसका स्वभाव नहीं जाता। इसी तरह पृथ्वी पर जो मनुष्य रूप में देवता और असुर आते हैं वे मनुष्य होने पर भी स्वभाव से देवता या असुरों के ही समान स्वभाववाले होते हैं। इतिहास ऐसे ही मनुष्यों का होता है। उनके ही चरित्रों के पठन से पुण्य होता है। ऐसा न होता तो बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी पुरुष गीता, रामायण, महाभारत और भागवत का नित्य पाठ क्यों करते, यदि दैवी सम्पत्तिवालों के ही नाम-संकीर्तन से पुण्य होता तो वेद तुल्य नित्य पाठ करनेवाली इन पुस्तकों में से दुर्योधन, कंस, रावण आदि के नामों को निकाल देते। ये सभी भगवान् की विशिष्ट विभूति है। विजय सदा धर्म की ही होती है। धर्म भगवान का उत्तम और प्रधान अङ्ग है।

महाभारत के समस्त पात्र अपने-अपने कार्य के लिये आदर्श हैं। जैसे नाटक में जो भङ्गी का, वधिक का, भिखारी का अभिनय करता है, वह भी दर्शकों को प्रसन्न करता है, वह भी सबको प्रसन्नता प्राप्त कराता है। यदि किसी का बधिक का अभिनय हो और वह विहित जीव-हिंसा को रङ्गभूमि पर ठीक-ठीक न दिखा सके तो वह कुशलपात्र नहीं कहा जायगा। इस सम्बन्ध में एक कहानी बहुत प्रसिद्ध है। एक राजा ने एक बहुरूपिया से कहा- तुम कोई ऐसा रूप बनाओ जिससे हम अत्यन्त ही चकित हों। तुम्हें ५०० रुपये पारितोषिक देंगे। बहुत अच्छा, कहकर वह चला गया।

थोड़े दिनों में वह लम्बी-लम्बी जटा बढ़ाकर शरीर पर भस्म रमाकर नगर के बाहर घोर तपस्या करने लगा। किसी से बोलता नहीं, चुपचाप बैठा रहता और कभी-कभी पत्ते खा लेता। चारों ओर ख्याति हो गई, एक बड़े महात्मा आये हैं। लोग तरह-तरह की भेंट लाकर रखते। वह किसी की ओर देखता ही नहीं था। जो आता उसे पड़ा रहने देता। कोई रुपया पैसा, सोना, चाँदी चढ़ा देता तो दूर फेंक देता। उसकी बड़ी ख्याति और प्रशंसा सुनकर राजा उसके दर्शन को आया। एक थाल में मोती, सुवर्ण की अशर्फियाँ बड़े-बड़े कीमती दुशाले लेकर वह साधु के पास पहुँचा। सब चीजें साधु के चरणों में रखीं। साधु ने मोती का थाल फेंक दिया, अशर्फियाँ बिखेर दी और दुशालों को वहीं छोड़कर उठ गया। राजा उसके ऐसे महान् त्याग को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बार-बार चरणों में पड़कर विदा हुए। राजा थोड़ी ही दूर गये होंगे कि वह बहुरूपिया जटाओं को फेंककर, मुख को पोंछकर राजा के सम्मुख प्रणाम करके नम्रता के साथ गिड़गिड़ाता हुआ बोला, सरकार। मेरे ५०० रुपये पारितोषिक के मिलने चाहिये।

राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे भौंचक्के रह गये। जिस साधु के चरणों में पड़कर वे अभी लौट रहे थे, वह तो उनका पुराना बहुरूपिया था। वे आश्चर्यचकित होकर बोले, क्यों भाई। तुम्हें हमने लाखों रुपये के मोती जवाहरात स्वर्णमुद्रा भेंट में दिये, उन्हें तो फेंक दिया, अब ५०० रुपये के लिये इस तरह क्यों गिड़गिड़ा रहे हो।

उसने कहा- राजन्। उस समय मैं त्यागी महात्मा का अभिनय कर रहा था, उस समय रुपये ग्रहण करना मेरे रूप के अनुकूल नहीं था। उस समय संसार का राज्य भी आप देते और मैं ले लेता तो अपने स्वरूप से च्युत हो जाता। त्यागी के वेष को कलमित कर देता। अपने स्वांग में अनुत्तीर्ण हो जाता। उस समय स्वरूप के अनुकूल मैंने अभिनय किया था। अब मैं आपके नट के वेष में हूँ। आपके सामने हाथ फैला रहा हूँ। आप मुझे एक पाई भी देंगे, उसे मैं सिर माथे चढ़ाऊँगा।

कहने का अभिप्राय इतना ही है कि हम सब भगवान् की रङ्गस्थली के अभिनय कर्त्ता हैं। भगवान् ने जिसके सुपुर्द जो काम कर दिया है, उसे ईमानदारी से पूरा करना ही उसके अनुरूप है। इस नियम से दुर्योधन ने जो भी किया अपने अनुरूप ठीक ही किया है। उसने स्पष्ट कह दिया मैंने जो कुछ किया भगवत् प्रेरणा से किया। मैंने धर्म का ढोंग नहीं रचा। जीते जी

समस्त पृथ्वी का राज्य किया, मरकर मैं स्वर्ग में सुख भोगूँगा। यह जीव जब समझ ले कि मैं भगवान का यन्त्र हूँ, वासुदेव मुझे जैसा चाहें घुमावें। तब तो उसे चिन्ता करने की कोई बात ही नहीं। सत्य बात यही है।

इस संसार में यदि सबसे बड़ा कोई संगीतकार है तो वे हैं श्रीकृष्ण। जिस प्रकार से सत्व, रज और तम तीनों गुणों के समन्वय को प्रकृति कहा गया है, उसी प्रकार से गायन, वादन और नृत्य इन तीनों में जो पारंगत हो उसे ही संगीतकार कहते हैं। कृष्ण गायन में कुशल हैं। कुरुक्षेत्र के मैदान में उन्होंने जो गाया, वह भगवद्गीता के रूप में आज हमारे पास है और पूरा जगत उसे गाता है। दुनिया के लोगों की अनेक समस्याओं का उसमें समाधान है। वह प्रश्नार्थ को पूर्णविराम तक ले जाता है। वादन में श्रीकृष्ण कुशल हैं जब बांसुरी वादन करते हैं तब जड़ चेतन और चेतन जड़ हो जाता है। नृत्य में भी वे कुशल हैं। श्रीकृष्ण ने गोपांगनाओं के साथ वृंदावन में रास रचाया। वे भागवत के पंचप्राण हैं। इसीलिए हम कहते हैं कि श्रीकृष्ण सबसे बड़े संगीतकार है।

श्रीकृष्ण तटस्थ नहीं वह पक्षधर हैं। उनके मस्तक पर मोरपंख है। जब समाज में धर्म की हानि हो रही हो, अधर्म पुष्ट हो रहा हो, सज्जन कष्ट झेल रहे हों, दुर्जन आनंद भोग रहे हों, सज्जन निष्क्रिय और दुर्जन सक्रिय हों, सज्जनों में अकर्मण्यता आ गई हो और दुर्जन पूरी तरह से सक्रिय हो, ऐसे में श्रीकृष्ण तटस्थ नहीं रह सकते। पांडव पांच थे और कौरव सौ, लेकिन कौरवों के अत्याचार को श्रीकृष्ण सिर्फ देखते नहीं रहे, उन्होंने इसके लिए अर्जुन को युद्ध हेतु ललकारा। यानी अधर्म के खिलाफ संघर्ष के लिए अर्जुन को खड़ा किया। उन्होंने कहा अर्जुन तू यहां अन्याय के लिए युद्ध के मैदान में खड़ा है। हस्तिनापुर राजसत्ता हासिल करने के लिए नहीं। महाभारत की यह कथा हर काल और समय में शाश्वत और सत्य है। आज का भी यही सत्य है। पांडव पांच और कौरव सौ हैं। पांच पांडव युधिष्ठिर यानी धर्म, भीम-बल, अर्जुन-आत्मा, नकुल-रूप और सहदेव-ज्ञान। इसीलिए श्रीकृष्ण युधिष्ठिर का शासन चाहते थे। मतलब धर्म का शासन हो। सबको न्याय मिले। कोई गुंडा किसी निर्दोष व्यक्ति को पीट रहा हो और वह चिल्ला-चिल्लाकर मदद की गुहार कर रहा हो और वहां खड़े लोग देखते रहें कि हम तो निष्पक्ष हैं और वह गुंडा उस निर्दोष का कत्ल कर दे, तो सही मायने में उस कत्ल के लिए तटस्थ समाज के लोग भी उतने ही दोषी हैं, जितना कि वह गुंडा। आज यही हो रहा है कि सज्जन समाज तटस्थ होकर देख रहा है। यह कृष्ण के अनुयायियों का काम नहीं है। श्रीकृष्ण न तो रागी हैं और न ही वीतरागी, सही मायने में वे अनुरागी हैं। कृष्ण हमें अनासक्त बनना सिखाते हैं। जब अनासक्त हो जाएंगे, फिर जहां रहेंगे, वहीं मस्ती का आनंद लेंगे। सांसारिक कार्यों को करते हुए भी मस्त रहेंगे। जीवन में यदि जागृति होगी तो चाहे फिर सुवर्ण की द्वारिका बनाएंगे, तो भी कोई आपत्ति नहीं। जीव को वस्तु नहीं बल्कि उसकी आसक्ति उसे बांधती है।

वृदांवन में गोपियों के साथ रास रचाते और कालिया नाग का दमन करके उसके ऊपर नृत्य करते हैं। बड़ा अद्भुत चरित्र है श्रीकृष्ण का। राम का अनुसरण कठिन है और कृष्ण को समझना कठिन है। कृष्ण एक प्रश्नार्थ हैं। राम एक पूर्णविराम हैं। अगर उनका अनुसरण करेंगे तो विश्राम और शांति पाएंगे। कृष्ण कितने विचित्र हैं। जन्मे जेल में और काम करते हैं मुक्ति देने का। खुद अर्जुन को उपदेश देते हैं कि रणभूमि छोड़ कर भागा नहीं जाता और स्वयं जरासंध को देख भाग खड़े होते हैं। कृष्ण के जीवन में विधायक दृष्टिकोण अद्भुत है। इसलिए तो उनका चरित्र सबको अति प्रिय है। सबको लुभाता है। तुम पार्थ तो बनो, तो वे तुम्हारे सारथी होने के लिए लालायित हैं। देरी तुम्हारी ओर से ही हो रही है। उन्होंने तो बांसुरी की मीठी तान छेड़ रखी है। तुम सुनो तो सही, तुम अपने को उस स्थिति में तो लाओ। मैं कृष्ण को जानने की, समझने की या समझाने की चेष्टा नहीं करता मैं कृष्ण को गाता हूं और केवल उससे प्रेम करता हूं क्योंकि वे प्रेम करने के काबिल है।

महाभारत हमारा काव्य भी है, इतिहास भी और अध्यात्म्य भी। न तो प्रकृति के नियम बदले हैं, न मनुष्य का मनोविज्ञान।

महाभारत की कथा भारतीय चिंतन और भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। यह कथा मनुष्य के बाहरी और भीतरी शत्रुओं के साथ निरंतर युद्ध करने की कथा है। वह उस संसार में रहता है, जिसमें चारों ओर लोभ, मोह, सत्ता और स्वार्थ की शक्तियाँ संघर्षरत है। बाहर से अधिक, उसे अपने भीतर लड़ना पड़ता है। परायों से अधिक उसे अपनों से लड़ना पड़ता है। और यदि वह अपने धर्म पर टिका रहता है, तो वह इसी देह में स्वर्ग भी जा सकता है। महाभारत में टकराहट मूल्यों और सिद्धांतों की है। प्रकृति और प्रवृत्तियों की घटनाएँ और परिस्थितियाँ अपना महत्त्व रखती हैं। वे व्यक्ति के जीवन की दिशा और दशा निर्धारित करती हैं। प्रत्येक चिन्तनशील मनुष्य के जीवन में एक वह स्थल आता है, जब उसका बाहरी महाभारत समाप्त हो जाता है और वह अपने ही प्रश्नों के आमने-सामने खड़ा होता है।

द्वापर युग में कुरु और पांचालों के अधीन जो इलाका था, वही आर्यावर्त का प्राणकेन्द्र था। भरत के वंशधर कुरुओं ने गंगा-तट पर हस्तिनापुर को राजधानी बनाया। इस समय यह देश के गर्व-गौरव का प्रतीकथा। पांचाल राज्य के वंशधर भी कुरु-वंशियों से कम न थे। वास्तव में इन दोनों के बीच एक तरह की प्रतिद्वंद्विता चल रही थी।

जीवन के विषय में हम एक ही ओर से सोचते हैं। दूसरी ओर से सोचने का हम प्रयास ही नहीं करते। यह महाभारतीय युद्ध अगर होता ही नहीं तो आर्यावर्त के भिन्न-भिन्न गणराज्यों का रूप कैसा होता? युधिष्ठिर के द्यूत से प्रेरणा लेकर क्या अन्य राज्यों के नरेश भी कुछ भी दाँव पर लगाकर द्यूत न खेलते? हस्तिनापुर के द्यूतगृह में हुई द्रौपदी की अप्रतिष्ठा से प्रेरित होकर देश-प्रदेशों के राजनगरों के चौक-चौक में असहाय, कुलीन नारियों के साथ किया गया दुर्व्यवहार हमें सदा इसी तरह देखने को मिलेगा। अहंकार पालनेवाले दुर्योधन से प्रेरणा लेकर अन्य राज्यों के नरेश भी वैसा ही व्यवहार करने लगे तो क्या होगा? कैसा रूप होगा आर्यावर्त का? सुदूर गान्धार प्रदेश से आकर हस्तिनापुर में यथेच्छ राजनीतिक ऊधम मचानेवाले शकुनि से प्रेरित होकर जाने किन-किन दुरात्माओं ने किस-किसका घर उजाड़ दिया होगा? परिवर्तन ही जीवन का स्थायी भाव है। जिस प्रकार मानव-जाति कभी-कभी मानवता के अत्युच्च शिखर पर पहुँचती है उसी प्रकार कभी-कभी वह अमानुषता के रसातल में भी पहुँच जाती है। महाभारतीय महायुद्ध की यही प्रेरणा है। काल अखण्ड है और जीवन चिरन्तन है, असीम है। दुर्योधन हो, दु:शासन हो, महात्यागी पितामह भीष्म हों अथवा दानवीर, दिग्विजयी कर्ण हो, अपने सुरक्षित, सीमित जीवन में रहकर कोई भी चिरन्तन सत्य की प्रतीति नहीं कर सकता। उसके लिए प्रत्येक को खुले आकाश के नीचे कभी-न-कभी जीवन संग्राम में उतरना ही पड़ता है। सम्भवत: कल आपको और परसों सबको युद्धमें उतरना पड़ेगा। कृष्णने केवल द्रौपदी की लज्जा-रक्षा के लिए महायुद्ध का महायज्ञ प्रज्वलित किया हो ऐसी भ्रान्त धारणा को अपने मनसे निकाल दीजिए। यदि ऐसा ही हुआ होता तो कृष्ण केवल दुर्योधन, शकुनि, दु:शासन आदि का ही वध करते। कुरुक्षेत्र का युद्ध कौरव-पाण्डवोंके व्यक्तिगत अधिकार के लिए लड़ा गया, ऐसी भी भ्रान्त धारणा को भी आप दूर करें। हर एक प्राणी में ईश्वरीय प्रकाश का अंश निवास करता है। सभी प्राणियों और वृक्ष-वनस्पतियों में भी वही निवास करता है। कीड़े-मकोड़ों में भी उसका वास होता है। वृक्ष-वनस्पतियाँ प्रतीति की एक ही मिति में रहती हैं। कीड़े-मकोड़े दो मितियों में और पशु-पक्षी तथा मनुष्य तीन मितियों में रहते हैं- अन्तर, भार और गुरुत्वाकर्षण ये वे तीन मितियाँ हैं। इनके अतिरिक्त एक चौथी भी मिति है- उसका नाम है काल-समय। उसका कोई आदि अथवा अन्त नहीं है। वह अनादि है, अनन्त हैं। मनुष्य सहित अन्य प्राणियों की चार प्रेरणाएँ होती हैं- आहार, निद्रा, भय और मैथुन। मनुष्य में स्थित ईश्वरीय अंश की खोज निरन्तर चलती रहती है। अठारह दिनों तक प्रज्ज्वलित किया गया महाभारतीय महायुद्ध का महायज्ञ उसी का एक भाग है। जीवन का अर्थ है प्रत्यक्ष अनुभव। अनुभव करते समय जिसे काल की अखण्डता की

अनुभूति हुई वह इस जीवन से पार हुआ। कुरुक्षेत्र पर वीरगति को प्राप्त हुए लाखों योद्धाओं के जीवनानुभव को आप कभी भी न भूलें। अवसर आने पर इससे भी अधिक विदारक जीवनानुभव का आपको सामना करना पड़ेगा। जीवन का अर्थ अखण्ड, अमाप उपभोग नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को पंचेन्द्रियाँ प्राप्त हुई हैं। उनमें से एक ही इन्द्रिय का- स्वाद का अनुभव देनेवाली जिह्वा यदि एक फल का भी स्वाद चख ले तो पूरा जीवन भी उसके लिए कम पड़ेगा। यही अन्य इन्द्रियोंपर भी लागू होगा। फल की अपेक्षा किये बिना कर्म करना निष्काम करना ही जीवन को समझ लेने का एकमात्र सरल मार्ग है। इस मार्गपर चलना दुष्कर अवश्य है किन्तु कड़वी औषधि की भाँति अनन्त: हितकर है।

कुरुक्षेत्र में कृष्ण ने अर्जुन को सभी जीवनयोग बताये। प्रेमयोग ही जीवन का सार है। प्रेम अनन्त है, उसका कभी अन्त नहीं होता। मनुष्य जाति उत्पन्न ही प्रेमयोग के लिए हुई है। द्वेष का अन्त होता है। जब एक मनुष्य दूसरे से द्वेष करता है, दूसरे का अन्त होते ही द्वेष भी समाप्त हो जाता है। जब एक जाति दूसरी जाति से द्वेष करती है, उसका अन्त होते ही द्वेष का भी अन्त हो जाता है। जब एक मानव-समूह दूसरे मानव-समूह से द्वेष करता है तब उस समूह के नष्ट होते ही द्वेष का भी अन्त होता है। जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति द्वेष-भावना रखता है, तब उस राष्ट्र के नष्ट होते ही द्वेष भी नष्ट हो जाता है। अर्थात कहीं-न-कहीं द्वेष समाप्त हो जाता है। किन्तु उसके समाप्त होने तक दोनों ओर के व्यक्तियों की, जातियों की, समूहों की, राष्ट्रों की अपूरणीय प्रचण्ड हानि हो चुकी होती है। पर यह नियम प्रेम पर लागू नहीं होता। प्रेम देने से बढ़ता है- कभी कम नहीं होता। मानवी बुद्धि का केवल कुछ अंश ही अब तक प्रकट हो पाया है। उसका बहुत बड़ा भाग अभी भी अप्रकट है। उसकी इस अनन्त यात्रा में सहयोग देना ही वास्तव में जीवन है।

सत्ता, सम्पत्ति और स्त्री की असीम अभिलाषा से ही युद्ध भडकते हैं, विनाश होता है। कौरव-पाण्डवों के युद्ध से भी यही सत्य सिद्ध हुआ। उस युद्ध को रोकने के लिये कृष्ण ने हर-सम्भव प्रयास किया, किन्तु जब युद्ध अनिवार्य हुआ तब उसे महायज्ञ का रूप देना पड़ा। सबसे बड़ा युद्ध महायुद्ध-महायज्ञ प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्मन में ही सुलगता रहता है। जिसने अपने अन्तरंग को जान लिया, सुष्ट-दुष्ट शक्तियों को जान लिया, उसने जीवन को जान लिया। जीवन का तात्पर्य ही है जीना और जीने देना। विराट प्रकृति में घटित होनेवाली छोटी-मोटी घटनाओं का कार्य-कारण-भाव हमारी समझ में आ जायगा जब हम अपने अहंभाव को समझ पाएँगे- जब हम अपनी अभिलाषा के शत्-शत् विषदंशों को समझ पाएँगे। हम में से प्रत्येक के भीतर-बाहर के विराट रूप का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब पसरा हुआ है। अलिप्तता से उसे देखने की शक्ति जब हमें प्राप्त होगी, तभी हमे अपने में ही विराट का दर्शन प्राप्त होगा। उस दर्शन को प्राप्त करनेवाले प्रेमनेत्र है। एक-दूसरे से द्वेष नहीं करना चाहिए और न ही अहंकार के वशीभूत होना चाहिए। अहंकार को हवा देनेवाले मदिरा जैसे व्यसन से दूर रहे। व्यसन, अभिलाषा, आलस्य, अनास्था, अविश्वसनीयता, ये कल भी असत् थे और आज भी हैं और कल भी असत् ही रहेंगे।

प्रेम, ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञान की लालसा, जीने और जीने देने की इच्छा, अभ्यास और स्वाध्याय में रूचि, सच्चाई के प्रति प्रेम और भ्रष्टता के प्रति चिढ़ ये कल भी सत् थे, आज भी हैं और कल भी सत ही रहेंगे। काल अखण्ड है। जीवन चिरन्तन और असीम है। इस चिरन्तन यात्रा में अपना भाग बहुत ही अल्प है, यह जिसने जान लिया, उसने बहुत कुछ जान लिया।

कृष्ण ही कर्तुम-अकर्तुम् है। उसीसे चन्द्र-सूर्य प्रकाशित होते हैं, उसीसे सभी नदी-नाले, पवन बहते हैं, विद्युत चमकती है, कृषि लहलहाती है, वृक्ष फलों से लद जाते हैं, फूल झूमते हैं। जीवन सत्य से कई योजन दूर रहता है। मन कितना भी चाहे, रक्त की अथवा दुग्ध की एक बूँद का भी हम निर्माण नहीं कर सकते। माता के स्तन में और गोमाता के थन में अन्न और चारे से दुग्ध का कैसे निर्माण होता है और मानव-शरीर में रक्त का कैसे निर्माण होता है, यह भी हम समझ

नहीं सकते, किस बात पर हम अपने आपमें इतना अहंकार करते हैं? हमें अपने विनाशकारी अहंकार को त्यागना होगा। शीघ्रकोपी स्वभाव को छोड़ना होगा और व्यसन को तो विष के समान अपने से दूर रखना होगा। जीव-सृष्टि को निर्माण करनेवाला परमात्मा प्रत्येक क्षण रास ही खेलता रहता है।

कोई भी पुरुष एक बार नहीं दो बार जन्म लेता है। पहली बार माता की कोख से और दूसरी बार तब, जब गुरु सुविचार और संस्कारों से उसे गढ़ते है। कृष्ण विश्व-वन्दनीय गुरु है। जीव का अर्थ है अपने होने की प्रतीति। जीवों के परिमाण तीन होते हैं- वस्तुभार, अन्तर और समय। समय का ही दूसरा नाम है काल। सजीव और निर्जीव दोनों प्रकार की सृष्टि इन तीन परिमाणों के मध्य रहती है। परमात्मा तुम्हें नहीं जाने तो उनका कुछ नहीं बिगड़ता है किन्तु तुम उन्हें नहीं जान पाएं तो तुम्हारा बहुत कुछ बिगड़ सकता है। परमात्मा निर्बाध, अखण्ड संचरण करनेवाली भाररहित तेजशक्ति, चिरन्तन, अजर, अमर, अखण्ड काल की सहायता से वह तेजशक्ति नित्य कुछ-न-कुछ गढ़ती-बिगड़ती रहती है। वह सभी का नियमन करती है। परमात्मा से जीव के सम्बन्ध का जब ज्ञान होता है, वैसे ही समस्त जीवन खुलने लगता है। केवल अपना ही नहीं, सजीव-निर्जीव, दृश्य-अदृश्य सृष्टि का, दूर तक फैले आकाश, अवकाश का और इन सबमें संचरण करनेवाली उस भाररहित तेजशक्ति का ज्ञान होता है।

सभी प्राणियोंमें नर-मादा दोनों के स्तन होते हैं। केवल अश्वजाति में नर के स्तन नहीं होते, मादा के होते हैं। तभी तो अश्व को पौरुष का अत्युच्च मानबिन्दु माना गया है। उसकी दौड़ने की शक्ति अन्य किसी भी प्राणी से अधिक है। अधिक समय तक वह टिकती भी है। इसीलिए शक्ति को अश्वशक्ति के परिमाण में गिना जाता है। अश्व कभी धरती पर बैठकर सोता नहीं है। वह खड़े-खड़े ही सो जाता है। अर्जुन का सबसे बड़ा गुण है- निद्रा पर उसका नियन्त्रण, इसीलिए उसे गुड़ाकेश भी कहते हैं। प्रत्येक जीव में परमात्मा का अंश विद्यमान है। कृष्ण का चुना प्रतिनिधि है। नर अर्थात् साधुत्व की ओर जाने की योग्यता रखनेवाला- प्राथमिक अवस्था में स्थित जीव। प्राणियों में अश्व की भाँति मनुष्यों मेंअर्जुन पूर्ण नर है। उसके स्तन नहीं हैं। निद्रा पर उसका पूर्ण नियन्त्रण है। अश्व की गति से वह विविध शस्त्र चलाता है। इसीलिए कुरेक्षेत्र में कृष्णने पाण्डवों में नरश्रेष्ठ अर्जुन को गीतोपदेश दिया। अर्जुन पूर्ण नर है, इसीलिए अन्य भ्राताओं की अपेक्षा अधिक नारियों में आसक्त हुआ। उद्धव नारियों से निर्लिप्त रहा, तभी कृष्णने उसे अवधूत की उपाधि दी थी। जीवन का अर्थ है अन्दर की तेजशक्ति का शोधन और शोधन का मार्ग है समर्पित भक्ति-भाव और निरपेक्ष प्रेम। नारी पुत्र-पुत्रियों को जन्म देनेवाला यन्त्र नहीं है। नारी अर्थात् वात्सल्य। घर-घर में विचरण करनेवाले परमात्मा के वैश्विक तेजशक्ति का अखण्ड निर्माणशील वत्सलता का अंश है नारी। वात्सल्य, वस्तुभार, अन्तर और समय परिमाणों से परे होता है। वह अज्ञान, ज्ञान और प्रज्ञान से परे होता है। वह अविद्या, विद्या तथा प्रविद्या से परे होता है। वह तम, रज और सत्त्व- इन तीनों भावों से परे होता है। नारी केवल माता, महामाता, सखी, पत्नी, भगिनी, भाभी, पुत्री, चाची, मामी, बुआ, सेविका- इन्हीं नातों में नहीं बल्कि नारी के रूप में भी सर्वदा वन्दनीया होती है। नारी उसके निर्माणशील योनिद्वार का यह अद्वितीय प्रतीक है।

कृष्णको किसीने नहीं पहचाना। कृष्ण वास्तव में कौन है? देवकी माँ को कभी ज्ञात नहीं हुआ। रोहिणी माता कभी जान नहीं पायी। वसुदेव उसे समझ नहीं पाये। जीवन-मरण उनका साथ देनेवाले बलराम को भी कभी उनका ज्ञान नहीं हुआ? गुरुदेव सान्दीपनि और आचार्य घोर-आंगिरस भी उनको जान नहीं पाए। पितामह भीष्म, दानवीर कौन्तेय कर्ण कृष्णको समझ नहीं सके। पालन-पोषण और संस्कारोंकी देन देनेवाले दादा चित्रसेन, यशोदा माता और नन्दबाबा को कभी कृष्ण की पहचान नहीं मिल पायी। माता कुन्तीको कृष्णके वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं हुआ। कृष्णके सुहृद गर्गमुनि, धौम्य ऋषि, देवभाग, विराट,

द्रुपद, धृष्टद्युम्न को कृष्ण की थाह नहीं मिली। कृष्णके हाथोंसे कंस, नरकासुर जैसे दुष्टोंका वध हुआ उनका जीवन धन्य हुआ। कृष्णके सखा दारूक, संजय, महात्मा विदुर, सुदामा, सात्यकि और सखियाँ राधा, द्रौपदी, बहन सुभद्रा, भानजा अभिमन्यु कृष्णको नहीं जान पाए कि वास्तव में कृष्ण क्या है? कृष्णके पुत्र-पुत्रियों ने भी आपके सत्य रूपको जाननेका प्रयास नहीं किया। आपकी पत्नियों को भी कभी आभास नहीं हुआ। जिसे कृष्णने गीता सुनायी और अपने लौकिक जीवन का परमप्रिय सखा कहकर जिसका गौरव बढ़ाया उस धनुर्धर अर्जुन को आपके जीवन के सभी आयामों के दर्शन हुए पर कृष्णको ठीकसे जान न सका। कृष्ण आर्यावर्त के ही नहीं समस्त विश्वके जीवन का युगन्धर है।

भीम की तनिक भी इच्छा नहीं थी कि उनके कारण दुर्योधन अथवा उसके परिवार को किसी भी प्रकार का कोई लाभ हो; किंतु हर बार वही होता था। धर्मराज की प्रकृति ही ऐसी थी कि वे किसी व्यक्ति के दोष स्मरण नहीं रखते थे। इसलिए अपने शैशव से लेकर आज तक पांडवों का अपमान करते रहने के बाद भी दुर्योधन को पांडवों से जो लाभ उठाना होता था वह उठा लेता था। भीम ने कभी नहीं चाहा था कि राजसूय यज्ञ में दुर्योधन को उपहार स्वीकार करने का महत्वपूर्ण तथा सम्मानजनक दायित्व दिया जाए, किंतु धर्मराज ने कहा कि कौरवों का विभाजन नहीं होना चाहिए और सारे कौरवों में युधिष्ठिर के बाद दुर्योधन ही सबसे बडा था। अत: यह उसी का अधिकार बनता था कि वह अतिथियों से उपहार ग्रहण करे।

धर्मराज चाहते तो द्यूतसभा में अपना राज्य त्यागते ही नहीं। वे चाहते तो सम्मुख युद्ध में अपना राज्य धार्तराष्ट्रों से लौटा लेते। कृष्ण ने कहा था कि यादव सेनाएँ कौरवों से युद्ध कर, पांडवों का राज्य दुर्योधन से छीन कर धर्मराज की गोद में डाल देंगी। किंतु धर्मराज ने सबको एक ही उत्तर दिया था कि वे अपना वचन भंग नहीं करेंगे, अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे। तुम इन दोनों स्थितियों का अंतर समझते हो? उन दो व्यक्तियों में भेद कर सकते हो, जिन में से एक भोग और सत्ता के लिए जीवन धारण करता है, और दूसरा अपने वचन के निर्वाह के लिए एक अत्यंत स्थूल धरातल पर जीता है, दूसरा अत्यंत सूक्ष्म पर। एक सांसारिक भोग के लिए शरीर धारण करता है, दूसरा धर्म का आचरण करने के लिए।

पांचों पाण्डव का जीवन धर्म के लिए है। वे उसे अधर्मपूर्वक ग्रहण के स्थान पर धर्मपूर्वक त्याग करेंगे। अर्जुन चाहता था बनवास के १२ वर्ष तथा अज्ञातवास का एक वर्ष पूरा किए बिना न ही वे अपना राज्य मांगेंगे और न ही किसी के द्वारा प्रदान किये जाने पर ग्रहण करेंगे।

चित्रसेन ने घोषयात्रा के समय कहा था धर्मराज तुम धर्म पर टिके रहोगे, अपने वचन का निर्वाह करोगे; किंतु दुर्योधन अपने वचन का निर्वाह नहीं करेगा। वह अधर्म का सहारा लेगा। फिर युद्ध की स्थिति आएगी। तुम्हें वह युद्ध जीतना होगा, क्योंकि तुम्हें अपना राज्य लौटाना है। उसे भी यह युद्ध जीतना है, क्योंकि उसे वह राज्य किसी भी प्रकार अपने आधिपत्य में रखना है। तुम समझते हो कि तुम अपने शस्त्र बल के आधार पर उसे जीतने में समर्थ हो। कदाचित वह भी यही समझता है। वह अपने पक्षधर एकत्रित करेगा, सैन्य संगठन करेगा। तुम उससे भी समर्थ होने के लिए अपने मित्रों से सहायता माँगोगे। इस प्रकार दोनों ओर सेनाएं एकत्रित होंगी। एक अति भयंकर युद्ध होगा। जाने उस युद्ध में ईश्वर के बनाए कितने जीव मारे जाएँगे। तब भी तुम्हें राज्य मिल पाएगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

हस्तिनापुर लौटते हुए मार्ग में दुर्योधन प्रायोपवेश के लिए बैठ गया था। वह अपना प्राण त्याग देना चाहता था। जिन पांडवों की कृपा से उन्हें अपना जीवन, राज्य और सम्मान वापस मिला, उन्हीं पांडवों की शक्ति से क्षुब्ध होकर, उन्हें नष्ट न कर पाने की हताशा में अपने प्राण त्याग देना चाहता था। एक बार भी उसके मन में धर्मराज और उनके भाइयों के प्रति कृतज्ञता का भाव नहीं जागा। स्नेह का उदय नहीं हुआ, सम्मान उत्पन्न नहीं हुआ। नीचता की भी कोई सीमा होती है। इन

लोगों में मनुष्यता नाम का तो कोई तत्त्व ही नहीं है। जिनकी कृपा से जीवित बचे थे, जिनकी शक्ति से इनकी पत्नियों के सम्मान की रक्षा हुई थी, उन्हीं को नष्ट करने के उपाय सोचते रहे, उन्हीं की भर्त्सना करते रहे, उन्हीं को कोसते रहे। और यह महावीर कर्ण। इसने एक बार भी यह संकल्प नहीं किया कि वह उन गंधर्वों से इस अपमान का प्रतिशोध लेगा। वह बार-बार पांडवों को नष्ट करने की ही प्रतिज्ञा करता रहा। बलिहारी इनकी बुद्धि की।

जब गंधर्व उन्हें मुक्त कर चले गए, तो युधिष्ठिर ने तो स्नेह जताया और कहा था कि जाओ, अब निर्भय होकर घर जाओ। द्वेष, ईर्ष्या तथा मात्सर्य को मन से निकालो और ईश्वर ने जो दिया है, उसका सुख से भोग करो; किंतु दुर्योधन ने पांडवों के प्रति कृतज्ञता का एक शब्द भी नहीं कहा। उसकी इंद्रियाँ जैसे शिथिल हो गई थीं। मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। वह द्वेष में ग्रस्त, वहाँ से चुपचाप चला आया। मार्ग में एक स्थान पर, जहाँ प्रकृति सुंदर थी तथा घास, जल और वृक्षों की छाया उपलब्ध थी, वहीं ठहर गया।

अर्जुन को गन्धर्व राज चित्रसेन के साथ हुए वार्तालाप का स्मरण हो आया। चित्रसेन के व्यवहार से पाण्डवों के साथ गन्धर्वों के प्रगाढ़ प्रेम का प्रमाण मिल गया। गन्धर्वों के साथ युद्ध का एक लाभ तो यह हुआ कि दुर्योधन का अहंकार खण्डित हुआ। उसके मद का भांड फूटा। उसे ज्ञात हो गया होगा कि वह स्वयं कितना शक्तिशाली है; उसके भाइयों की वीरता किस कोटि की है; और उसकी सेना और नायकों की रण-क्षमता कितनी है। और सबसे बड़ी बात, अपने जिस मित्र-कर्ण-पर उसे इतना भरोसा है, वह कैसा योद्धा है। कर्ण ने अपने मित्र को संकट में छोडकर, रणक्षेत्र से पलायन किया, अपने मित्र के लिए प्राण नहीं दिए। अपने राजा को शत्रुओं के घेरे में छोड़ कर, वह अपने प्राण बचाने के लिए भाग गया। महावीर अंगेश कर्ण ने अपने राजा के प्रति निष्ठा का निर्वाह तो खूब किया पर निभा नहीं पाया।

हमारी नीति है कि यदि कोई हम पर आक्रमण करता है और हम पराजित होते हैं, तो प्रयत्न करते हैं कि हमारी कम से कम हानि हो। अपना जितना बचाव कर सकते हैं करें। किंतु यदि हम आक्रांता को पराजित करने में सफल हो जाते हैं, तो उससे भरपूर क्षतिपूर्ति करवाते हैं। उस पर दंड लगाते हैं। प्रयत्न करते हैं कि यथासंभव उसे इतना अपमानित करें कि उसका मनोबल सर्वथा टूट जाए। उसे साधनों की दृष्टि से इतना दुर्बल कर देते हैं कि वह पुन: सिर न उठा सके। न युद्ध-क्षेत्र में ठहर सके, न पुन: आक्रमण कर सके।

शकुनि तो मात्र एक जुआरी थे। जो द्यूत की गोटियाँ बैठाया करते थे। वे तो कोई बड़े योद्धा अथवा युद्ध विशारद भी नहीं थे।

शकुनि ने कहा अंगराज मुझे लगता है कि युवराज की प्रसन्नता अभी तक लौटी नहीं है। कर्ण बोला मैं समझता हूं मामाश्री कि ये प्रमाद हम लोगों से हुआ। युवराज दुर्योधन को द्वैतवन में ले जाने के पूर्व नि:स्तृत सूचनायें हमें प्राप्त कर लेनी चाहिये थी इस असावधानी के कारण युवराज की घोषयात्रा आनन्ददायक नहीं रही। दुर्योधन बोला आनन्द न मिलता तो कोई बात नहीं थी परन्तु इस प्रकार अपमानित तो नहीं होना पड़ता। यहाँ हस्तिनापुर में बैठे क्या बुरे थे? दुर्योधन की मानसिकता देखते हुए किसीको भी कुछ कहने का लाभ नहीं था। दुर्योधन बोला- पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर कर भी मुझे उतना सुख न मिला होगा जितना आनन्द हम उन्हें वन में जाकर दे आये। उन्होंने तो हमसे कभी नहीं कहा था कि वे हमारे बिना उदास हैं। यह तो तुम लोगों का ही परामर्श था कि वन में जाकर हम उनको पीड़ित कर पायेंगे और उनको अपमानित कर पीडित कर सुखी होंगे। अब उस धर्मराज युधिष्ठिर को अवसर मिल गया मुझे उपदेश देने का, अपना उपकार जताने का। शकुनि बोला वहाँ जाकर हमने यह जाना कि पाण्डव अपनी सुरक्षा की ओर से असावधान नहीं है। दुर्योधन बोला- हमारा चिन्तन बहुत सीमित और संकीर्ण है। हम कूपमंडूक के समान सोचते है और अपने कुएँ को ही सागर मान लेते हैं।

शकुनि बोला- नहीं भान्जे, हमें ज्ञात हुआ कि हमें पाण्डवों के उन अज्ञात मित्रों के विषयों में भी सूचनाएँ एकत्रित करनी है जिनका आज तक हमारे लिये कोई अस्तित्व ही नहीं था। उनके मित्र केवल ये ही नहीं है जो उनके सम्बन्धी है अथवा उनके विभिन्न आयोजनों में मेहमान है। शकुनि बोला- दुर्योधन। अपने वर्तमान बल से संतुष्ट मत रहो। अपने और भी मित्र बनाओ। पांडवों के मित्रों को तोड़ो। जो उनके बहुत प्रिय हैं, उनसे भी अच्छे संबंध बनाओ, ताकि समय आने पर हम उन्हें अपनी ओर से युद्ध करने के लिए आमंत्रित कर सकें। अ थवा उनसे सैनिक सहायता माँग सकें।

यह कथा कर्ण के प्रति धिक्कार और तिरस्कार है। यह कर्ण के चरित्र तथा कृत्यों का जन सामान्य द्वारा किया गया मूल्यांकन है।

धृतराष्ट्र के चरित्र में धृतराष्ट्र की कुटिलता झलकती है। उसने द्रौपदीसे कहा था, जाओ, पुत्रो। सती याज्ञसेनी के साथ सुख से रहो। इस नेत्रहीन वृद्ध को क्षमा कर देना याज्ञसेनी। ऐसी अन्यायपूर्ण द्यूतक्रीड़ा के लिए बाध्य होकर मैंने अनुमति दी थी। पुत्र यदि पिता का उपदेश न माने तो पिता की लाचारी मेरे सिवा कौन समझेगा? पर तुम्हारे इस अपमान ने तुम्हारा मान सौ गुणा कर दिया है। मेरे पुत्र अब अपनी शक्ति और पराक्रम को समझ गए होंगे। किंतु द्यूतक्रीड़ा के परिणाम ने दिखा दिया है कि पांडव कितने महान हैं। युधिष्ठिर की धर्म-परायणता, अर्जुन का धैर्य, भीम का पराक्रम और सत्साहस, नकुल-सहदेव की नीति और शांति जगत के आगे प्रकट हो गई है। हे युधिष्ठिर, अब सती द्रौपदी का मानभंजन कर इंद्रप्रस्थ लौट जाओ। सुख-शांति से प्रजा पालन करो। अपने अबोध कौरव भाइयों के साथ मैत्री स्थापना करो।

कोई किसी के पापों का फल नहीं भुगतता। प्रत्येक जन अपने लिए उत्तरदायी है। वासना मल संचित करती है, और तपस्या उसे धोकर कलुषमुक्त करती है।

तपस्या से मन के विकार छूटते हैं, ताप से जल के। मनुष्य प्राय: अपनी सुषुप्त इच्छाओं को अपने स्वप्नों में सजीव रूप में देखता है। जब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, तो मनुष्य को इस संसार के यथार्थ का भान नहीं रहता, उसकी मरणासन्न चेतना जाने किन-किन काल्पनिक लोकों की यात्रा करती रहती है। नारी की लज्जा की रक्षा करना तो धर्म है- चाहे वह नारी स्वयं में कितनी ही पतित क्यों न हो। प्रतिहिंसा मनुष्य का श्रेय है, न प्रतिशोध। प्रतिशोध तो अपरिपक्व मन की क्रूर हिंसा है। धर्म तो संकट में पडे मनुष्य की रक्षा करना है। मनुष्य अपने अपमान से पीडित होता है। उसे स्मरण रखता है। उसका प्रतिशोध लेना चाहता है। किंतु यह भी सत्य है कि यह मनुष्य का कोई उदात्त रूप नहीं है। यह मान-अपमान, यह प्रतिशोध और क्रूरता। मनुष्य की दुर्बलताएँ ही तो हैं। वैसे तो क्रूरता सदा ही पाप है, किंतु असहाय स्त्रियों के प्रति क्रूरता जघन्यतम पाप है। रोगी मन है एक दम। न तो दूसरों को सुख देकर सुखी होना जानता है, न दूसरों के साथ सुखी होना। सुखी होना चाहता है, दूसरों को दुख देकर। स्वार्थ तो मूर्ख होता ही है। यही महाभारत का संक्षेप में सार है। यही महाभारत का संक्षेप में सार है।

*** उत्तरदायित्व योग्यता तथा शक्ति के साथ-साथ चलता है।**

*** शक्ति कभी उपहासास्पद नहीं होती। * प्रेम से मर्यादाओं की सृष्टि होती है।**

*** वर्तमान तो कर्म चाहता है स्वप्न नहीं, वह तो यथार्थ के दर्शन चाहता है।**

*** सन्देहों का धरातल इतना गर्म होता है कि उस पर प्रत्येक विश्वास पिघल जाता है अर्थात सन्देह विश्वास का नाश कर देता है।**

*** सौन्दर्य के आंसू उसकी मुस्कराहट की अपेक्षा अधिक प्रिय होते हैं।**

गीता मीमांसा

मानव-जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का हल श्रीमद्भगवद्गीता में समाहित है और उसका भाष्य यथार्थ गीता है। गीता में एक परमात्मा की प्राप्ति का क्रमिक वर्णन है। जिसे प्राप्त कर मनुष्य सभी समस्याओं से सर्वथा छूट जाता है। लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व भगवान् वेदव्यास ने भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश को गीता के रूप में संकलित कर सम्पूर्ण मानवजाति को कल्याण का खुला आमन्त्रण दिया। इस संदेश को महान् दार्शनिक प्लूटो, अरस्तू, सुकरात, तबरेज, जरथुस्त्र, बुद्ध, महावीर, मछीन्द्रनाथ, गोरखनाथ, भर्तृहरि, ईसा, मोहम्मद, आदिशंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर, कबीर, तुलसी, नानक, रैदास, मीरा, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द इत्यादि हजारों प्रभुभक्तों ने स्वीकार कर गीता का सम्मान किया हैं।

अपने उपदेशों एवं धर्मशास्त्रों में एक परमात्मा की चर्चा करके इन सभी महान् विभूतियों ने गीतासंदेश की पुष्टि की है। यदि इन सभी धर्मशास्त्रों से एक परमात्मा की चर्चा निकाल दी जाय तो किसी के पास कुछ भी नहीं बचता। इसलिए गीता सम्पूर्ण मानवजाति का अतर्क्य धर्मशास्त्र है, सर्वांगीण विकास की कुंजी है।

गीता में वर्णित साधन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति उस सम्पत्ति का मालिक बन सकता है जिसका कभी विनाश नहीं होता, जो प्रत्येक क्षेत्र में सफलता दिलाकर शाश्वत (अनन्त) जीवन प्रदान करता है।

जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियों का आश्रय समुद्र है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों का आश्रय परमात्मा है। उस परमात्मा को संपूर्णता से प्राप्त करने की सम्पूर्ण विधि का क्रमिक वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता में है।

महर्षि वेदव्यास से पूर्व कोई भी शास्त्र पुस्तक के रूप में उपलब्ध नहीं थी। श्रुतज्ञान की इस परम्परा को तोड़ते हुए उन्होंने चार वेद, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, भागवत एवं गीता जैसे- ग्रन्थों में पूर्व संचित भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञानराशि को संकलित कर अन्त में स्वयं ही निर्णय दिया कि सारे वेदों के प्राण उपनिषदों का भी सार है गीता, जिसे गोपाल श्रीकृष्ण ने दूहा और अशान्त जीव को परमात्मा के दर्शन और साधन की स्थिति से शाश्वत शान्ति की स्थिति तक पहुँचाया। उन महापुरुष ने अपने कृतियों में से गीता को शास्त्र की संज्ञा देते हुए स्तुति की और कहा- **गीता सुगीता कर्तव्या** गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है, जो भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से नि:सृत वाणी है फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता? भगवान् श्रीकृष्ण के हजारों वर्ष पश्चात परवर्ती जिन महापुरुषों ने एक ईश्वर को सत्य बताया, गीता के ही संदेशवाहक हैं।

जब-जब पृथ्वी पर संस्कृति और धर्म पर कुठाराघात होता है, जब मानवता दानवता के चंगुल में जकड़ी हुई चीत्कार करती है, तब इस धरती पर भगवान का अवतार होता है।

भगवान के अवतार के मुख्य तीन ही प्रयोजन हैं। साधु महापुरुषों की रक्षा करना और दुष्टों का विनाश करना तथा धर्म की स्थापना करना। प्रश्न होता है कि किस धर्म की रक्षा के लिए भगवान आते हैं। धर्म की परिभाषा किसी संकीर्णता की श्रृंखला में आबद्ध होकर नहीं की जा सकती। धर्म का स्वरूप बड़ा विस्तृत है। परम विस्तृत मानव धर्म (सनातन धर्म) जब-जब खतरे में पड़ता है तब-तब भगवान अवतारों की चर्चा आती है। जहां एक ओर भगवान श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम के रूप में विविध लीलायें अत्यंत मनोहारी रूप में पूतना वध, शकटासुर, तृणावर्त, अघासुर, बकासुर, वत्सासुर, धेनुक वध, कालिया मान मर्दन, दावाग्नि पान तथा गोपियों के चीर हरण एवं गोवर्धन धारण आदि रूपों में परिलक्षित होती है और महारास के संदर्भ में काम विजय की लीला से जनमानस अभिभूत हो उठता है, वहीं दूसरी ओर भगवान श्रीकृष्ण महान योगेश्वर के रूप में दिग्दर्शित होते हैं। जहां एक ओर विविध असुरों के अत्याचार से त्रसित दानवता के चंगुल में जकड़ी मानवता के उद्धार के लिए भगवान श्रीकृष्ण असंख्य राक्षसों का वध करते हैं वहीं दूसरी ओर महाभारत में कुरुक्षेत्र के मैदान में मोहग्रस्त दिग्भ्रमित तथा किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को भगवद गीता के माध्यम से आत्म विद्या का उपदेश कर स्व के कर्त्तव्य का

बोध कराते हैं। वह निखिल विश्व के समस्त मानव मात्र के लिए प्रेरणा स्रोत है तथा आत्मोद्धार का एकमात्र साधन है। संपूर्ण मानव मात्र का कल्याण सुनिश्चित है इसीलिए श्रीमद्भगवत गीता सदैव सर्वथा समाज को प्रेरणा देती रहेगी।

कृष्ण हमारे साथ हैं। लेकिन वो सिर्फ हमारे लिए ही हैं ऐसी गलतफहमी में जीवन में हाथ पर हाथ धरे मत बैठे रहना। हम पार्थ बनेंगे तब वो हमारे सारथी बनेंगे। पार्थ बनना मतलब पुरुषार्थ के लिए सदैव तत्पर रहना। कई लोग प्रारब्ध के भरोसे बैठे रहते हैं, तुम्हारा प्रारब्ध मूर्छित है तो उस पर अपने पुरुषार्थ के पसीने की बूंदें छिड़क कर उसे जागृत करो। जीवन में प्रारब्ध के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहनेवाले मनुष्य कुछ नहीं कर सकते, यही संदेश श्रीकृष्ण देते हैं।

हम सबकी यात्रा का प्रारंभ बंधन से हुआ और सबको मुक्त होना है। मोक्ष ही तो जीवन का लक्ष्य है। कारागृह में सबका जन्म होता है। जन्म के साथ ही बंधन है। कंस मरेगा तब कारागृह से मुक्त होंगे। कंस यानि देहाभिमान। देहाभिमान का नाश सद्विद्या से होगा और सद्विद्या की प्राप्ति सद्गुरु से होगी और कृष्ण जगद्गुरु हैं।

कर्मयोगी विवेक, साहस, धैर्य और दृढ़ता से युक्त होकर स्वधर्म का पालन करता है। वह फल के संबंध में चिंतन नहीं करता, क्योंकि फल सदा ईश्वराधीन होता है। कर्मयोगी प्रभु के विश्वास में और भक्ति में दृढ़ होता है, वह कभी निराश नहीं होता। वह कर्म के फल को ईश्वर का विधान मान कर स्वीकार करते हुए संतोष धारण कर लेता है। वह विषयों का सेवन करता है किन्तु उसमें लिप्त नहीं होता। वह ज्ञान और भक्ति के सहारे विवेक द्वारा मन और इंद्रियों का संयम करता है। उसे कामनाएं नहीं सताती। वह लोकप्रियता एवं यश की कामना नहीं करता। गीता एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथ है। गीता हमें समता, क्षमता और स्थिरता का पाठ पढ़ाती है। समग्र जीवन जीना सिखाती है।

*** आदमी जिसमें दु:ख पाता है, तनिक गहराई से समझें तो वही फिर अपार सुख भी देता है।**

*** एक आदमी दूसरे को चाहने लगे तो इतना सुख, इतना आनन्द मिलता है?**
मगर आदमी के चाहने में इतना कार्पण्य क्यों रह जाता है?

*** बिना प्रयत्न के प्राप्त धन का आनन्द जैसे नष्ट हो जाता है, प्रेमी के लिए त्याग और उत्सर्ग बिना उनका प्रेम प्राप्त करने में नारीत्व की महिमा कम हो जाती है।**

*** चालबाज और धूर्त को सबसे ज्यादा व्याकुलता उस समय होती है जब कि उसका पाला किसी सीधे, सरल और सच्चे आदमी से पडता है।**

*** बोलना एक सुन्दर कला है, पर मौन रहना उससे भी ऊँची कला है।**

*** जब स्वार्थ का बाजार गर्म होता है तब आपस का विश्वास भी ठंडा पडने लगता है और डगमगाने लगता है।**

कसमें वादे प्यार वफा सब, बातें है बातों का क्या,
कोई किसी का नहीं झूठे, नाते है नातों का क्या, कसमें वादे... ।।
होगा मसीहा सामने तेरे, फिर भी नहीं तू बच पायेगा,
तेरा अपना खून ही तुझको आखिर तुझको आग लगायेगा,
आसमान के उड़नेवाले मिट्टी में मिल जायेगा ।।
सुख में तेरे साथ चलेगा, दु:ख में सब मुख मोड़ेगा,
दुनियावाले तेरे बनकर तेरा ये दिल तोड़ेगा,
देते हैं भगवान को धोखा, इंसा को क्या छोड़ेंगे, कसमें वादे... ।।

HHH(८४८)HHH